संक्षिप्त

पद्मपुराण

[केवल हिन्दी]

गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरिः ॥

संक्षिप्त

पद्मपुराण

(सचित्र, केवल हिन्दी)

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

सम्पादक तथा संशोधक

जयदयाल गोयन्दका

नम्र निवेदन

शास्त्रोंमें पुराणोंकी बड़ी महिमा है। उन्हें साक्षात् श्रीहरिका रूप बताया गया है। जिस प्रकार सम्पूर्ण जगत्को आलोकित करनेके लिये भगवान् सूर्यरूपमें प्रकट होकर हमारे बाहरी अन्धकारको नष्ट करते हैं, उसी प्रकार हमारे हृदयान्धकार—भीतरी अन्धकारको दूर करनेके लिये श्रीहरि ही पुराण-विग्रह धारण करते हैं।* जिस प्रकार त्रैवर्णिकोंके लिये वेदोंका स्वाध्याय नित्य करनेकी विधि है, उसी प्रकार पुराणोंका श्रवण भी सबको नित्य करना चाहिये—**'पुराणं शृणुयान्नित्यम्'**। पुराणोंमें अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष—चारोंका बहुत ही सुन्दर निरूपण हुआ है और चारोंका एक-दूसरेके साथ क्या सम्बन्ध है—इसे भी भलीभाँति समझाया गया है। श्रीमद्भागवतमें लिखा है—

धर्मस्य ह्यापवर्ग्यस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते।
नार्थस्य धर्मैकान्तस्य कामो लाभाय हि स्मृतः॥
कामस्य नेन्द्रियप्रीतिर्लाभो जीवेत यावता।
जीवस्य तत्त्वजिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभिः॥

(१।२।९-१०)

'धर्मका फल है—संसारके बन्धनोंसे मुक्ति, भगवान्‌की प्राप्ति। उससे यदि कुछ सांसारिक सम्पत्ति उपार्जन कर ली तो यह उसकी कोई सफलता नहीं है। इसी प्रकार धनका फल है—एकमात्र धर्मका अनुष्ठान; वह न करके यदि कुछ भोगकी सामग्रियाँ एकत्र कर लीं तो यह कोई लाभकी बात नहीं है।

भोगकी सामग्रियोंका भी यह लाभ नहीं है कि उनसे इन्द्रियोंको तृप्त किया जाय; जितने भोगोंसे जीवन-निर्वाह हो जाय, उतने ही भोग हमारे लिये पर्याप्त हैं तथा जीवन-निर्वाहका—जीवित रहनेका फल यह नहीं है कि अनेक प्रकारके कर्मोंके पचड़ेमें पड़कर इस लोक या परलोकका सांसारिक सुख प्राप्त किया जाय। उसका परम लाभ तो यह है कि वास्तविक तत्त्वको—भगवत्तत्त्वको जाननेकी शुद्ध इच्छा हो।'

यह तत्त्व-जिज्ञासा पुराणोंके श्रवणसे भलीभाँति जगायी जा सकती है। इतना ही नहीं, सारे साधनोंका फल है—भगवान्‌की प्रसन्नता प्राप्त करना। यह भगवत्प्रीति भी पुराणोंके श्रवणसे सहजमें ही प्राप्त की जा सकती है। पद्मपुराणमें लिखा है—

तस्माद्यदि हरेः प्रीतेरुत्पादे धीयते मतिः।
श्रोतव्यमनिशं पुम्भिः पुराणं कृष्णरूपिणः॥

(पद्म०, स्वर्ग० ६२।६२)

'इसलिये यदि भगवान्‌को प्रसन्न करनेका मनमें संकल्प हो तो सभी मनुष्योंको निरन्तर श्रीकृष्णके अंगभूत पुराणोंका श्रवण करना चाहिये।' इसीलिये पुराणोंका हमारे यहाँ इतना आदर रहा है।

वेदोंकी भाँति पुराण भी हमारे यहाँ अनादि माने गये हैं। उनका रचयिता कोई नहीं है। सृष्टिकर्ता

---

* यथा सूर्यवपुर्भूत्वा प्रकाशाय चरेद्धरिः। सर्वेषां जगतामेव हरिरालोकहेतवे॥
तथैवान्तःप्रकाशाय पुराणावयवो हरिः। विचरेदिह भूतेषु पुराणं पावनं परम्॥

(पद्म०, स्वर्ग० ६२।६०-६१)

ब्रह्माजी भी उनका स्मरण ही करते हैं। पद्मपुराणमें लिखा है—'**पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।**' इनका विस्तार सौ करोड़ (एक अरब) श्लोकोंका माना गया है—'**शतकोटिप्रविस्तरम्।**' उसी प्रसंगमें यह भी कहा गया है कि समयके परिवर्तनसे जब मनुष्यकी आयु कम हो जाती है और इतने बड़े पुराणोंका श्रवण और पठन एक जीवनमें मनुष्योंके लिये असम्भव हो जाता है, तब उनका संक्षेप करनेके लिये स्वयं भगवान् प्रत्येक द्वापर युगमें व्यासरूपसे अवतीर्ण होते हैं और उन्हें अठारह भागोंमें बाँटकर चार लाख श्लोकोंमें सीमित कर देते हैं। पुराणोंका यह संक्षिप्त संस्करण ही भूलोकमें प्रकाशित होता है। कहते हैं स्वर्गादि लोकोंमें आज भी एक अरब श्लोकोंका विस्तृत पुराण विद्यमान है।* इस प्रकार भगवान् वेदव्यास भी पुराणोंके रचयिता नहीं, अपितु संक्षेपक अथवा संग्राहक ही सिद्ध होते हैं। इसीलिये पुराणोंको 'पंचम वेद' कहा गया है—'**इतिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्**' (छान्दोग्य-उपनिषद् ७। १। २)। उपर्युक्त उपनिषद्वाक्यके अनुसार यद्यपि इतिहास-पुराण दोनोंको ही 'पंचम वेद' की गौरवपूर्ण उपाधि दी गयी है, फिर भी वाल्मीकीय रामायण और महाभारत जिनकी इतिहास संज्ञा है, क्रमशः महर्षि वाल्मीकि तथा वेदव्यासद्वारा प्रणीत होनेके कारण पुराणोंकी अपेक्षा अर्वाचीन ही हैं। इस प्रकार पुराणोंकी पुराणता सर्वापेक्षया प्राचीनता सुतरां सिद्ध हो जाती है। इसीलिये वेदोंके बाद पुराणोंका ही हमारे यहाँ सबसे अधिक सम्मान है। बल्कि कहीं-कहीं तो उन्हें वेदोंसे भी अधिक गौरव दिया गया है। पद्मपुराणमें ही लिखा है—

यो विद्याच्चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विजः।
पुराणं च विजानाति यः स तस्माद्विचक्षणः॥

(सृष्टि० २। ५०-५१)

'जो ब्राह्मण अंगों एवं उपनिषदोंसहित चारों वेदोंका ज्ञान रखता है; उससे भी बड़ा विद्वान् वह है जो पुराणोंका विशेष ज्ञाता है।' यहाँ श्रद्धालुओंके मनमें स्वाभाविक भी यह शंका हो सकती है कि उपर्युक्त श्लोकोंमें वेदोंकी अपेक्षा भी पुराणोंके ज्ञानको श्रेष्ठ क्यों बतलाया है। इस शंकाका दो प्रकारसे समाधान किया जा सकता है। पहली बात तो यह है कि उपर्युक्त श्लोकके '**विद्यात्**' और '**विजानाति**' इन दो क्रियापदोंपर विचार करनेसे यह शंका निर्मूल हो जाती है। बात यह है कि ऊपरके वचनमें वेदोंके सामान्य ज्ञानकी अपेक्षा पुराणोंके विशिष्ट ज्ञानका वैशिष्ट्य बताया गया है, न कि वेदोंके सामान्य ज्ञानकी अपेक्षा पुराणोंके सामान्य ज्ञानका अथवा वेदोंके विशिष्ट ज्ञानकी अपेक्षा पुराणोंके विशिष्ट ज्ञानका। पुराणोंमें जो कुछ है, वह वेदोंका ही तो विस्तार—विशदीकरण है। ऐसी दशामें पुराणोंका विशिष्ट ज्ञान वेदोंका ही विशिष्ट ज्ञान है और वेदोंका विशिष्ट ज्ञान वेदोंके सामान्य ज्ञानसे ऊँचा होना ही चाहिये। दूसरी बात यह है कि जो बात वेदोंमें सूत्ररूपसे कही गयी है, वही पुराणोंमें विस्तारसे वर्णित है। उदाहरणके लिये परम तत्त्वके निर्गुण-निराकार रूपका तो वेदों (उपनिषदों)-में विशद वर्णन मिलता है, परन्तु सगुण-साकार तत्त्वका बहुत ही संक्षेपमें कहीं-कहीं वर्णन मिलता है। ऐसी दशामें जहाँ पुराणोंके विशिष्ट ज्ञाताको सगुण-निर्गुण दोनों तत्त्वोंका विशिष्ट ज्ञान होगा, वेदोंके सामान्य ज्ञाताको केवल निर्गुण-निराकारका ही सामान्य ज्ञान होगा। इस प्रकार उपर्युक्त श्लोककी संगति भलीभाँति बैठ जाती है और पुराणोंकी जो महिमा शास्त्रोंमें वर्णित है, वह अच्छी तरह समझमें आ जाती है। अस्तु,

पुराणोंमें पद्मपुराणका स्थान बहुत ऊँचा है। इसे श्रीभगवान्‌के पुराणरूप विग्रहका हृदयस्थानीय माना

---

* कालेनाग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य तदा विभुः। व्यासरूपस्तदा ब्रह्मा संग्रहार्थं युगे युगे॥
चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे द्वापरे जगौ। तदाष्टादशधा कृत्वा भूलोकेऽस्मिन् प्रकाशितम्॥
अद्यापि देवलोकेषु शतकोटिप्रविस्तरम्। (पद्म०, सृष्टि० १। ५१-५३)

गया है—‘**हृदयं पद्मसंज्ञकम्।**’ वैष्णवोंका तो यह सर्वस्व ही है। इसमें भगवान् विष्णुका माहात्म्य विशेषरूपसे वर्णित होनेके कारण ही यह वैष्णवोंको अधिक प्रिय है। परन्तु पद्मपुराणके अनुसार सर्वोपरि देवता भगवान् विष्णु होनेपर भी उनका ब्रह्माजी तथा भगवान् शंकरके साथ अभेद प्रतिपादित हुआ है। उसके अनुसार स्वयं भगवान् विष्णु ही ब्रह्मा होकर संसारकी सृष्टिमें प्रवृत्त होते हैं तथा जबतक कल्पकी स्थिति बनी रहती है, तबतक वे भगवान् विष्णु ही युग-युगमें अवतार धारण करके समूची सृष्टिकी रक्षा करते हैं। पुनः कल्पका अन्त होनेपर वे ही अपना तमःप्रधान रुद्ररूप प्रकट करते हैं और अत्यन्त भयानक आकार धारण करके सम्पूर्ण प्राणियोंका संहार करते हैं। इस प्रकार सब भूतोंका नाश करके संसारको एकार्णवके जलमें निमग्न कर वे सर्वरूपधारी भगवान् स्वयं शेषनागकी शय्यापर शयन करते हैं। पुनः जागनेपर ब्रह्माका रूप धारण करके वे नये सिरेसे संसारकी सृष्टि करने लगते हैं। इस तरह एक ही भगवान् जनार्दन सृष्टि, पालन और संहार करनेके कारण ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव नाम धारण करते हैं।[१] पद्मपुराणमें तो भगवान् श्रीकृष्णके यहाँतक वचन हैं—सूर्य, शिव, गणेश, विष्णु और शक्तिके उपासक सभी मुझको ही प्राप्त होते हैं। जैसे वर्षाका जल सब ओरसे समुद्रमें ही जाता है, वैसे ही इन पाँचों रूपोंके उपासक मेरे ही पास आते हैं। वस्तुतः मैं एक ही हूँ। लीलाके अनुसार विभिन्न नाम धारण कर पाँच रूपोंमें प्रकट हूँ। जैसे एक ही देवदत्त नामक व्यक्ति पुत्र-पिता आदि अनेक नामोंसे पुकारा जाता है, वैसे ही मुझको भिन्न-भिन्न नामोंसे पुकारते हैं।[२] ऐसी ही बातें अन्यान्य पुराणोंमें भी पायी जाती हैं। वैष्णवपुराणोंमें शिव और ब्रह्माजीको विष्णुसे तथा शैवपुराणोंमें भगवान् विष्णु एवं ब्रह्माजीको शंकरजीसे अभिन्न माना गया है। अतएव जो लोग पुराणोंमें साम्प्रदायिकताका गन्ध पाते हैं, वे वास्तवमें भूल करते हैं—यही प्रमाणित होता है।

पद्मपुराणमें भगवान् विष्णुके माहात्म्यके साथ-साथ भगवान् श्रीराम तथा श्रीकृष्णके अवतार-चरित्रों तथा उनके परात्पर रूपोंका भी विशदरूपसे वर्णन हुआ है। पातालखण्डमें भगवान् श्रीरामके अश्वमेध यज्ञकी कथाका तो बहुत ही विस्तृत और अद्भुत वर्णन है। इतना ही नहीं, उसमें श्रीअयोध्या और श्रीधाम वृन्दावनका माहात्म्य, श्रीराधा-कृष्ण एवं उनके पार्षदोंका वर्णन, वैष्णवोंकी द्वादशशुद्धि, पाँच प्रकारकी पूजा, शालग्रामके स्वरूप और महिमाका वर्णन, तिलककी विधि, भगवत्सेवा-अपराध और उनसे छूटनेके उपाय, तुलसीके वृक्ष तथा भगवन्नाम-कीर्तनकी महिमा, भगवान्के चरण-चिह्नोंका परिचय तथा प्रत्येक मासमें भगवान्की विशेष आराधनाका वर्णन, मन्त्रचिन्तामणिका उपदेश तथा उसके ध्यान आदिका वर्णन, दीक्षा-विधि, निर्गुण एवं सगुण-ध्यानका वर्णन, भगवद्भक्तिके लक्षण, वैशाख-मासमें माधव-पूजनकी महिमा, वैशाख, ज्येष्ठ और आषाढ़में जलस्थ श्रीहरिके पूजनका माहात्म्य, अश्वत्थकी महिमा, भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान, पवित्रारोपणकी विधि, महिमा तथा भिन्न-भिन्न मासोंमें श्रीहरिकी पूजामें काम आनेवाले विविध पुष्पोंका वर्णन, बदरिकाश्रम तथा नारायणकी महिमा, गंगाकी महिमा, त्रिरात्र तुलसीव्रतकी विधि और महिमा, गोपीचन्दनके तिलककी महिमा, जन्माष्टमी-व्रतकी महिमा, बारह महीनोंकी एकादशियोंके नाम तथा माहात्म्य, एकादशीकी विधि, उत्पत्ति-कथा और महिमाका वर्णन, भगवद्-भक्तिकी श्रेष्ठता, वैष्णवोंके लक्षण और महिमा, भगवान् विष्णुके दसों अवतारोंकी कथा, श्रीनृसिंहचतुर्दशीके व्रतकी महिमा, श्रीमद्भगवद्गीताके अठारहों अध्यायोंका अलग-अलग माहात्म्य, श्रीमद्भागवतका माहात्म्य तथा

१-सृष्टिस्थित्यन्तकरणाद् ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः। स संज्ञां याति भगवानेक एव जनार्दनः॥ (पद्म०, सृष्टि० २। ११४)

२-सौराश्च शैवा गाणेशा वैष्णवाः शक्तिपूजकाः। मामेव प्राप्नुवन्तीह वर्षापः सागरं यथा॥
एकोऽहं पञ्चधा जातः क्रीडया नामभिः किल। देवदत्तो यथा कश्चित् पुत्राद्याह्वाननामभिः॥ (पद्म०, उत्तर० ९०। ६३-६४)

श्रीमद्भागवतके सप्ताह-पारायणकी विधि, नीलाचल-निवासी भगवान् पुरुषोत्तमकी महिमा आदि-आदि ऐसे अनेकों विषयोंका समावेश हुआ है, जो वैष्णवोंके लिये बड़े ही महत्त्वके हैं। इसीलिये वैष्णवोंमें पद्मपुराणका विशेष समादर है।

इनके अतिरिक्त सृष्टिक्रमका वर्णन, युग आदिका काल-मान, ब्रह्माजीके द्वारा रचे हुए विविध सर्गोंका वर्णन, मरीचि आदि प्रजापति, रुद्र तथा स्वायम्भुव मनु आदिकी उत्पत्ति और उनकी सन्तान-परम्पराका वर्णन, देवता, दानव, गन्धर्व, नाग और राक्षसोंकी उत्पत्तिका वर्णन, मरुद्गणोंकी उत्पत्ति तथा चौदह मन्वन्तरोंका वर्णन, पृथुके चरित्र तथा सूर्यवंशका वर्णन, पितरों तथा श्राद्धके विभिन्न अंगोंका वर्णन, श्राद्धोपयोगी तीर्थोंका वर्णन, विविध, श्राद्धोंकी विधि, चन्द्रमाकी उत्पत्ति, पुष्कर आदि विविध तीर्थोंकी महिमा तथा उन तीर्थोंमें वास करनेवालोंके द्वारा पालनीय नियम, आश्रमधर्मका निरूपण, अन्नदान एवं दम आदि धर्मोंकी प्रशंसा, नाना प्रकारके व्रत, स्नान और तर्पणकी विधि, तालाबोंकी प्रतिष्ठा, वृक्षारोपणकी विधि, सत्संगकी महिमा, उत्तम ब्राह्मण तथा गायत्री-मन्त्रकी महिमा, अधम ब्राह्मणोंका वर्णन, ब्राह्मणोंके जीविकोपयोगी कर्म और उनका महत्त्व तथा गौओंकी महिमा और गोदानका फल, द्विजोचित आचार तथा शिष्टाचारका वर्णन, पितृभक्ति, पातिव्रत्य, समता, अद्रोह और विष्णु-भक्तिरूप पाँच महायज्ञोंके विषयमें पाँच आख्यान, पतिव्रताकी महिमा और कन्यादानका फल, सत्यभाषणकी महिमा, पोखरे खुदाने, वृक्ष लगाने, पीपलकी पूजा करने, पौंसले चलाने, गोचरभूमि छोड़ने, देवालय बनवाने और देवताओंकी पूजा करनेका माहात्म्य, रुद्राक्षकी उत्पत्ति और महिमा, श्रीगंगाजीकी उत्पत्ति, गणेशजीकी महिमा और उनकी स्तुति एवं पूजाका फल, मनुष्ययोनिमें उत्पन्न हुए दैत्य एवं देवताओंके लक्षण, भगवान् सूर्यका तथा संक्रान्तिमें दानका माहात्म्य, भगवान् सूर्यकी उपासना और उसका फल, विविध प्रकारके पुत्रोंका वर्णन, ब्रह्मचर्य, सांगोपांगधर्म तथा धर्मात्मा एवं पापियोंकी मृत्युका वर्णन, नैमित्तिक तथा आभ्युदयिक आदि दानोंका वर्णन, देहकी उत्पत्ति, उसकी अपवित्रता, जन्म-मरण और जीवनके कष्ट तथा संसारकी दुःखरूपताका वर्णन, पापों और पुण्योंके फलोंका वर्णन, नरक और स्वर्गमें जानेवाले पुरुषोंका वर्णन, ब्रह्मचारीके पालन करनेयोग्य नियम, ब्रह्मचारी शिष्यके धर्म, स्नातक एवं गृहस्थके धर्मोंका वर्णन, गृहस्थधर्ममें भक्ष्याभक्ष्यका विचार तथा दानधर्मका वर्णन, वानप्रस्थ एवं संन्यास-आश्रमोंके धर्मोंका वर्णन, संन्यासीके नियम, स्त्री-संगकी निन्दा, भजनकी महिमा, ब्राह्मण, पुराण और गंगाकी महत्ता, जन्म आदिके दुःख तथा हरिभजनकी आवश्यकता, तीर्थयात्राकी विधि, माघ, वैशाख तथा कार्तिक मासोंका माहात्म्य, यमराजकी आराधना, गृहस्थाश्रमकी प्रशंसा, दीपावली-कृत्य, गोवर्धन-पूजा तथा यमद्वितीयाके दिन करनेयोग्य कृत्योंका वर्णन, वैराग्यसे भगवद्भजनमें प्रवृत्ति आदि-आदि अनेकों सर्वोपयोगी तथा सबके लिये ज्ञातव्य एवं धारण करनेयोग्य धार्मिक विषयोंका वर्णन हुआ है, जिनके कारण पद्मपुराण आस्तिक हिंदूमात्रके लिये परम आदरकी वस्तु है।

पद्मपुराणकी इस सर्वोपयोगिताको लक्ष्यमें रखकर ही 'कल्याण' में इसका संक्षिप्त अनुवाद छापनेकी आयोजना की गयी थी। इससे भारतकी धार्मिक जनताका यदि कुछ भी उपकार हुआ होगा तो हम अपने प्रयासको सफल तथा अपनेको धन्य मानेंगे। अनुवादका कार्य आदिसे अन्ततक पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्रीने बड़े परिश्रम एवं मनोयोगके साथ किया है तथा अनुवादकी आवृत्ति तथा सम्पादन करने एवं प्रूफ-संशोधन आदि करनेमें सम्पादकीय विभागके सभी बन्धुओं तथा अन्य कई प्रेमी महानुभावोंका प्रेमपूर्ण एवं बहुमूल्य सहयोग प्राप्त हुआ है, जिसके लिये उन्हें धन्यवाद देना तो उनके कार्यके महत्त्वको घटाना होगा। ये सभी महानुभाव अपने ही हैं; ऐसी दशामें उनकी बड़ाई अपनी ही बड़ाई होगी। अन्तमें हम अपना यह क्षुद्र प्रयास श्रीभगवान्‌के पावन चरणोंमें अर्पित करते हैं और अपनी त्रुटियोंके लिये पुनः सबसे हाथ जोड़कर क्षमा माँगते हैं। हरिः ॐ तत्सत्॥

विनीत—**जयदयाल गोयन्दका**

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

विषय पृष्ठ-संख्या

सृष्टिखण्ड

विषय	पृष्ठ-संख्या

विषय	पृष्ठ-संख्या

स्वर्गखण्ड

विषय	पृष्ठ-संख्या

पातालखण्ड

विषय	पृष्ठ-संख्या

विषय	पृष्ठ-संख्या

उत्तरखण्ड

विषय	पृष्ठ-संख्या

विषय	पृष्ठ-संख्या

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

संक्षिप्त पद्मपुराण

सृष्टिखण्ड

ग्रन्थका उपक्रम तथा इसके स्वरूपका परिचय

स्वच्छं चन्द्रावदातं करिकरमकरक्षोभसंजातफेनं
ब्रह्मोद्भूतिप्रसक्तैर्व्रतनियमपरैः सेवितं विप्रमुख्यैः।
ॐकारालङ्कृतेन त्रिभुवनगुरुणा ब्रह्मणा दृष्टिपूतं
संभोगाभोगरम्यं जलमशुभहरं पौष्करं नः पुनातु॥*

श्रीव्यासजीके शिष्य परम बुद्धिमान् लोमहर्षणजीने एकान्तमें बैठे हुए [अपने पुत्र] उग्रश्रवा नामक सूतसे कहा—''बेटा! तुम ऋषियोंके आश्रमोंपर जाओ और उनके पूछनेपर सम्पूर्ण धर्मोंका वर्णन करो। तुमने मुझसे जो संक्षेपमें सुना है, वह उन्हें विस्तारपूर्वक सुनाओ। मैंने महर्षि वेदव्यासजीके मुखसे समस्त पुराणोंका ज्ञान प्राप्त किया है और वह सब तुम्हें बता दिया है; अतः अब मुनियोंके समक्ष तुम उसका विस्तारके साथ वर्णन करो। प्रयागमें कुछ महर्षियोंने, जो उत्तम कुलोंमें उत्पन्न हुए थे, साक्षात् भगवान्‌से प्रश्न किया था। वे [यज्ञ करनेके योग्य] किसी पावन प्रदेशको जानना चाहते थे। भगवान् नारायण ही सबके हितैषी हैं, वे धर्मानुष्ठानकी इच्छा रखनेवाले उन महर्षियोंके पूछनेपर बोले—'मुनिवरो! यह सामने जो चक्र दिखायी दे रहा है, इसकी कहीं तुलना नहीं है। इसकी नाभि सुन्दर और स्वरूप दिव्य है। यह सत्यकी ओर जानेवाला है। इसकी गति सुन्दर एवं कल्याणमयी है। तुमलोग सावधान होकर नियमपूर्वक इसके पीछे-पीछे जाओ। तुम्हें अपने लिये हितकारी स्थानकी प्राप्ति होगी। यह धर्ममय चक्र यहाँसे जा रहा है। जाते-जाते जिस स्थानपर इसकी नेमि जीर्ण-शीर्ण होकर गिर पड़े, उसीको पुण्यमय प्रदेश समझना।' उन सभी महर्षियोंसे ऐसा कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये और वह धर्म-चक्र नैमिषारण्यके गंगावर्त नामक स्थानपर गिरा। तब ऋषियोंने निमि शीर्ण होनेके कारण उस स्थानका नाम 'नैमिष' रखा और नैमिषारण्यमें दीर्घकालतक चालू रहनेवाले यज्ञोंका अनुष्ठान आरम्भ कर दिया। वहीं तुम भी जाओ और ऋषियोंके पूछनेपर उनके धर्म-विषयक संशयोंका निवारण करो।''

तदनन्तर ज्ञानी उग्रश्रवा पिताकी आज्ञा मानकर उन मुनीश्वरोंके पास गये तथा उनके चरण पकड़कर हाथ जोड़कर उन्होंने प्रणाम किया। सूतजी बड़े बुद्धिमान् थे,

---

* जो चन्द्रमाके समान उज्ज्वल और स्वच्छ है, जिसमें हाथीकी सूँड़के समान आकारवाले नाकोंके इधर-उधर वेगपूर्वक चलने-फिरनेसे फेन पैदा होता रहता है, ब्रह्माजीके प्रादुर्भावकी कथा-वार्तामें लगे हुए व्रत-नियम-परायण श्रेष्ठ ब्राह्मण जिसका सदा सेवन करते हैं, ॐकार-जपसे विभूषित त्रिभुवनगुरु ब्रह्माजीने जिसे अपनी दृष्टिसे पवित्र किया है, जो पीनेमें स्वादिष्ट है और अपनी विशालताके कारण रमणीय जान पड़ता है, वह पुष्करतीर्थका पापहारी जल हमलोगोंको पवित्र करे।

उन्होंने अपनी नम्रता और प्रणाम आदिके द्वारा महर्षियोंको सन्तुष्ट किया। वे यज्ञमें भाग लेनेवाले महर्षि भी सदस्योंसहित बहुत प्रसन्न हुए तथा सबने एकत्रित होकर सूतजीका यथायोग्य आदर-सत्कार किया।

ऋषि बोले—देवताओंके समान तेजस्वी सूतजी! आप कैसे और किस देशसे यहाँ आये हैं? अपने आनेका कारण बतलाइये।

सूतजीने कहा—महर्षियो! मेरे बुद्धिमान् पिता व्यास-शिष्य लोमहर्षणजीने मुझे यह आज्ञा दी है कि 'तुम मुनियोंके पास जाकर उनकी सेवामें रहो और वे जो कुछ पूछें, उसे बताओ।' आपलोग मेरे पूज्य हैं। बताइये, मैं कौन-सी कथा कहूँ? पुराण, इतिहास अथवा भिन्न-भिन्न प्रकारके धर्म—जो आज्ञा दीजिये, वही सुनाऊँ।

सूतजीका यह मधुर वचन सुनकर वे श्रेष्ठ महर्षि बहुत प्रसन्न हुए। अत्यन्त विश्वसनीय, विद्वान् लोमहर्षण-पुत्र उग्रश्रवाको उपस्थित देख उनके हृदयमें पुराण सुननेकी इच्छा जाग्रत् हुई। उस यज्ञमें यजमान थे महर्षि शौनक, जो सम्पूर्ण शास्त्रोंके विशेषज्ञ, मेधावी तथा [वेदके] विज्ञानमय आरण्यक-भागके आचार्य थे। वे सब महर्षियोंके साथ श्रद्धाका आश्रय लेकर धर्म सुननेकी इच्छासे बोले।

शौनकने कहा—महाबुद्धिमान् सूतजी! आपने इतिहास और पुराणोंका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ भगवान् व्यासजीकी भलीभाँति आराधना की है। उनकी पुराण-विषयक श्रेष्ठ बुद्धिसे आपने अच्छी तरह लाभ उठाया है। महामते! यहाँ जो ये श्रेष्ठ ब्राह्मण विराजमान हैं, इनका मन पुराणोंमें लग रहा है। ये पुराण सुनना चाहते हैं। अतः आप इन्हें पुराण सुनानेकी ही कृपा करें। ये सभी श्रोता, जो यहाँ एकत्रित हुए हैं, बहुत ही श्रेष्ठ हैं। भिन्न-भिन्न गोत्रोंमें इनका जन्म हुआ है। ये वेदवादी ब्राह्मण अपने-अपने वंशका पौराणिक वर्णन सुनें। इस दीर्घकालीन यज्ञके पूर्ण होनेतक आप मुनियोंको पुराण सुनाइये। महाप्राज्ञ! आप इन सब लोगोंसे पद्मपुराणकी कथा कहिये। पद्मकी उत्पत्ति कैसे हुई, उससे ब्रह्माजीका आविर्भाव किस प्रकार हुआ तथा कमलसे प्रकट हुए ब्रह्माजीने किस तरह जगत्‌की सृष्टि की—ये सब बातें इन्हें बताइये।

उनके इस प्रकार पूछनेपर लोमहर्षण-कुमार सूतजीने सुन्दर वाणीमें सूक्ष्म अर्थसे भरा हुआ न्याययुक्त वचन कहा—'महर्षियो! आपलोगोंने जो मुझे पुराण सुनानेकी आज्ञा दी है, इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है; यह मुझपर आपका महान् अनुग्रह है। सम्पूर्ण धर्मोंके पालनमें लगे रहनेवाले पुराणवेत्ता विद्वानोंने जिनकी भलीभाँति व्याख्या की है, उन पुराणोक्त विषयोंको मैंने जैसा सुना है, उसी रूपमें वह सब आपको सुनाऊँगा। सत्पुरुषोंकी दृष्टिमें सूत जातिका सनातन धर्म यही है कि वह देवताओं, ऋषियों तथा अमिततेजस्वी राजाओंकी वंश-परम्पराको धारण करे—उसे याद रखे तथा इतिहास और पुराणोंमें जिन ब्रह्मवादी महात्माओंका वर्णन किया गया है, उनकी स्तुति करे; क्योंकि जब वेनकुमार राजा पृथुका यज्ञ हो रहा था, उस समय सूत और मागधने पहले-पहल उन महाराजकी स्तुति ही की थी। उस स्तुतिसे सन्तुष्ट होकर महात्मा पृथुने उन दोनोंको वरदान दिया। वरदानमें उन्होंने सूतको सूत नामक देश और मागधको मगधका राज्य प्रदान किया था। क्षत्रियके वीर्य और ब्राह्मणीके गर्भसे जिसका जन्म होता है, वह सूत कहलाता है। ब्राह्मणोंने मुझे पुराण सुनानेका अधिकार दिया है। आपने धर्मका विचार करके ही मुझसे पुराणकी बातें पूछी हैं; इसलिये इस भूमण्डलमें जो सबसे उत्तम एवं ऋषियोंद्वारा सम्मानित पद्मपुराण है, उसकी कथा आरम्भ करता हूँ। श्रीकृष्ण-द्वैपायन व्यासजी साक्षात् भगवान् नारायणके स्वरूप हैं। वे ब्रह्मवादी, सर्वज्ञ, सम्पूर्ण लोकोंमें पूजित तथा अत्यन्त तेजस्वी हैं। उन्हींसे प्रकट हुए पुराणोंका मैंने अपने पिताजीके पास रहकर अध्ययन किया है। पुराण सब शास्त्रोंके पहलेसे विद्यमान हैं। ब्रह्माजीने [कल्पके आदिमें] सबसे पहले पुराणोंका ही स्मरण किया था। पुराण त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ और कामके साधक एवं परम पवित्र हैं। उनकी रचना सौ करोड़ श्लोकोंमें हुई

है।[१] समयके अनुसार इतने बड़े पुराणोंका श्रवण और पठन असम्भव देखकर स्वयं भगवान् उनका संक्षेप करनेके लिये प्रत्येक द्वापरयुगमें व्यासरूपसे अवतार लेते हैं और पुराणोंको अठारह भागोंमें बाँटकर उन्हें चार लाख श्लोकोंमें सीमित कर देते हैं। पुराणोंका यह संक्षिप्त संस्करण ही इस भूमण्डलमें प्रकाशित होता है। देवलोकोंमें आज भी सौ करोड़ श्लोकोंका विस्तृत पुराण मौजूद है।

अब मैं परम पवित्र पद्मपुराणका वर्णन आरम्भ करता हूँ। उसमें पाँच खण्ड और पचपन हजार श्लोक हैं। पद्मपुराणमें सबसे पहले सृष्टिखण्ड है। उसके बाद भूमिखण्ड आता है। फिर स्वर्गखण्ड और उसके पश्चात् पातालखण्ड है। तदनन्तर परम उत्तम उत्तरखण्डका वर्णन आया है। इतना ही पद्मपुराण है। भगवान्की नाभिसे जो महान् पद्म (कमल) प्रकट हुआ था, जिससे इस जगत्की उत्पत्ति हुई है, उसीके वृत्तान्तका आश्रय लेकर यह पुराण प्रकट हुआ है। इसलिये इसे पद्मपुराण कहते हैं। यह पुराण स्वभावसे ही निर्मल है, उसपर भी इसमें श्रीविष्णुभगवान्के माहात्म्यका वर्णन होनेसे इसकी निर्मलता और भी बढ़ गयी है। देवाधिदेव भगवान् विष्णुने पूर्वकालमें ब्रह्माजीके प्रति जिसका उपदेश किया था तथा ब्रह्माजीने जिसे अपने पुत्र मरीचिको सुनाया था वही यह पद्मपुराण है। ब्रह्माजीने ही इसे इस जगत्में प्रचलित किया है।

भीष्म और पुलस्त्यका संवाद—सृष्टि-क्रमका वर्णन तथा भगवान् विष्णुकी महिमा

सूतजी कहते हैं—महर्षियो! जो सृष्टिरूप मूल प्रकृतिके ज्ञाता तथा इन भावात्मक पदार्थोंके द्रष्टा हैं, जिन्होंने इस लोककी रचना की है, जो लोकतत्त्वके ज्ञाता तथा योगवेत्ता हैं, जिन्होंने योगका आश्रय लेकर सम्पूर्ण चराचर जीवोंकी सृष्टि की है और जो समस्त भूतों तथा अखिल विश्वके स्वामी हैं, उन सच्चिदानन्द परमेश्वरको मैं नमस्कार करता हूँ। फिर ब्रह्मा, महादेव, इन्द्र, अन्य लोकपाल तथा सूर्यदेवको एकाग्रचित्तसे नमस्कार करके ब्रह्मस्वरूप वेदव्यासजीको प्रणाम करता हूँ। उन्हींसे इस पुराण-विद्याको प्राप्त करके मैं आपके समक्ष प्रकाशित करता हूँ। जो नित्य, सदसत्स्वरूप, अव्यक्त एवं सबका कारण है, वह ब्रह्म ही महत्तत्त्वसे लेकर विशेषपर्यन्त विशाल ब्रह्माण्डकी सृष्टि करता है। यह विद्वानोंका निश्चित सिद्धान्त है। सबसे पहले हिरण्यमय (तेजोमय) अण्डमें ब्रह्माजीका प्रादुर्भाव हुआ। वह अण्ड सब ओर जलसे घिरा है। जलके बाहर तेजका घेरा और तेजके बाहर वायुका आवरण है। वायु आकाशसे और आकाश भूतादि (तामस अहंकार)-से घिरा है। अहंकारको महत्तत्त्वने घेर रखा है और महत्तत्त्व अव्यक्त—मूल प्रकृतिसे घिरा है। उक्त अण्डको ही सम्पूर्ण लोकोंकी उत्पत्तिका आश्रय बताया गया है। इसके सिवा, इस पुराणमें नदियों और पर्वतोंकी उत्पत्तिका बारम्बार वर्णन आया है। मन्वन्तरों और कल्पोंका भी संक्षेपमें वर्णन है। पूर्वकालमें ब्रह्माजीने महात्मा पुलस्त्यको इस पुराणका उपदेश दिया था। फिर पुलस्त्यने इसे गंगाद्वार (हरिद्वार)-में भीष्मजीको सुनाया था। इस पुराणका पठन, श्रवण तथा विशेषत: स्मरण धन, यश और आयुको बढ़ानेवाला एवं सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला है। जो द्विज अंगों और उपनिषदोंसहित चारों वेदोंका ज्ञान रखता है, उसकी अपेक्षा वह अधिक विद्वान् है जो केवल इस पुराणका ज्ञाता है।[२] इतिहास और पुराणोंके सहारे ही वेदकी व्याख्या करनी चाहिये; क्योंकि वेद अल्पज्ञ विद्वान्से यह सोचकर डरता रहता है कि कहीं यह मुझपर प्रहार न कर बैठे—अर्थका अनर्थ न कर बैठे। [तात्पर्य यह कि पुराणोंका अध्ययन किये बिना वेदार्थका ठीक-ठीक ज्ञान नहीं होता।][३]

१- पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्॥ त्रिवर्गसाधनं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम्॥ (१।४५-४६)

२- यो विद्याच्चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विज:। पुराणं च विजानाति य: स तस्माद् विचक्षण:॥ (२।५०)

३- इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्। बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति॥ (२।५१)

यह सुनकर ऋषियोंने सूतजीसे पूछा—'मुने! भीष्मजीके साथ पुलस्त्य ऋषिका समागम कैसे हुआ? पुलस्त्यमुनि तो ब्रह्माजीके मानसपुत्र हैं। मनुष्योंको उनका दर्शन होना दुर्लभ है। महाभाग! भीष्मजीको जिस स्थानपर और जिस प्रकार पुलस्त्यजीका दर्शन हुआ, वह सब हमें बतलाइये।'

सूतजीने कहा—महात्माओ! साधुओंका हित करनेवाली विश्वपावनी महाभागा गंगाजी जहाँ पर्वत-मालाओंको भेदकर बड़े वेगसे बाहर निकली हैं, वह महान् तीर्थ गंगाद्वारके नामसे विख्यात है। पितृभक्त भीष्मजी वहीं निवास करते थे। वे ज्ञानोपदेश सुननेकी इच्छासे बहुत दिनोंसे महापुरुषोंके नियमका पालन करते थे। स्वाध्याय और तर्पणके द्वारा देवताओं और पितरोंकी तृप्ति तथा अपने शरीरका शोषण करते हुए भीष्मजीके ऊपर भगवान् ब्रह्मा बहुत प्रसन्न हुए। वे अपने पुत्र मुनिश्रेष्ठ पुलस्त्यजीसे इस प्रकार बोले—'बेटा! तुम कुरुवंशका भार वहन करनेवाले वीरवर देवव्रतके, जिन्हें भीष्म भी कहते हैं, समीप जाओ। उन्हें तपस्यासे निवृत्त करो और इसका कारण भी बतलाओ। महाभाग भीष्म अपनी पितृभक्तिके कारण भगवान्का ध्यान करते हुए गंगाद्वारमें निवास करते हैं। उनके मनमें जो-जो कामना हो, उसे शीघ्र पूर्ण करो; विलम्ब नहीं होना चाहिये।'

पितामहका वचन सुनकर मुनिवर पुलस्त्यजी गंगाद्वारमें आये और भीष्मजीसे इस प्रकार बोले—'वीर! तुम्हारा कल्याण हो; तुम्हारे मनमें जो इच्छा हो, उसके अनुसार कोई वर माँगो। तुम्हारी तपस्यासे साक्षात् भगवान् ब्रह्माजी प्रसन्न हुए हैं। उन्होंने ही मुझे यहाँ भेजा है। मैं तुम्हें मनोवांछित वरदान दूँगा।' पुलस्त्यजीका वचन मन और कानोंको सुख पहुँचानेवाला था। उसे सुनकर भीष्मने आँखें खोल दीं और देखा पुलस्त्यजी सामने खड़े हैं। उन्हें देखते ही भीष्मजी उनके चरणोंपर गिर पड़े। उन्होंने अपने सम्पूर्ण शरीरसे पृथ्वीका स्पर्श करते हुए उन मुनिश्रेष्ठको साष्टांग प्रणाम किया और कहा—'भगवन्! आज मेरा जन्म सफल हो गया। यह दिन बहुत ही सुन्दर है; क्योंकि आज आपके विश्ववन्द्य चरणोंका मुझे दर्शन प्राप्त हुआ है। आज आपने दर्शन दिया और विशेषत: मुझे वरदान देनेके लिये गंगाजीके तटपर पदार्पण किया; इतनेसे ही मुझे अपनी तपस्याका सारा फल मिल गया। यह कुशकी चटाई है, इसे मैंने अपने हाथों बनाया है और [जहाँतक हो सका है] इस बातका भी प्रयत्न किया है कि यह बैठनेवालेके लिये आराम देनेवाली हो; अत: आप इसपर विराजमान हों। यह पलाशके दोनेमें अर्घ्य प्रस्तुत किया गया है; इसमें दूब, चावल, फूल, कुश, सरसों, दही, शहद, जौ और दूध भी मिले हुए हैं। प्राचीन कालके ऋषियोंने यह अष्टांग अर्घ्य ही अतिथिको अर्पण करनेयोग्य बतलाया है।'

अमिततेजस्वी भीष्मके ये वचन सुनकर ब्रह्माजीके पुत्र पुलस्त्यमुनि कुशासनपर बैठ गये। उन्होंने बड़ी प्रसन्नताके साथ पाद्य और अर्घ्य स्वीकार किया। भीष्मजीके शिष्टाचारसे उन्हें बड़ा सन्तोष हुआ। वे प्रसन्न होकर बोले—'महाभाग! तुम सत्यवादी, दानशील और सत्यप्रतिज्ञ राजा हो। तुम्हारे अंदर लज्जा, मैत्री और क्षमा आदि सद्गुण शोभा पा रहे हैं। तुम अपने पराक्रमसे

शत्रुओंको दमन करनेमें समर्थ हो। साथ ही धर्मज्ञ, कृतज्ञ, दयालु, मधुरभाषी, सम्मानके योग्य पुरुषोंको सम्मान देनेवाले, विद्वान्, ब्राह्मणभक्त तथा साधुओंपर स्नेह रखनेवाले हो। वत्स! तुम प्रणामपूर्वक मेरी शरण आये हो; अतः मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम जो चाहो, पूछो; मैं तुम्हारे प्रत्येक प्रश्नका उत्तर दूँगा।'

भीष्मजीने कहा—भगवन्! पूर्वकालमें भगवान् ब्रह्माजीने किस स्थानपर रहकर देवताओं आदिकी सृष्टि की थी, यह मुझे बताइये। उन महात्माने कैसे ऋषियों तथा देवताओंको उत्पन्न किया? कैसे पृथ्वी बनायी? किस तरह आकाशकी रचना की और किस प्रकार इन समुद्रोंको प्रकट किया? भयंकर पर्वत, वन और नगर कैसे बनाये? मुनियों, प्रजापतियों, श्रेष्ठ सप्तर्षियों और भिन्न-भिन्न वर्णोंको, वायुको, गन्धर्वों, यक्षों, राक्षसों, तीर्थों, नदियों, सूर्यादि ग्रहों तथा तारोंको भगवान् ब्रह्माने किस तरह उत्पन्न किया? इन सब बातोंका वर्णन कीजिये।

पुलस्त्यजीने कहा—पुरुषश्रेष्ठ! भगवान् ब्रह्मा साक्षात् परमात्मा हैं। वे परसे भी पर तथा अत्यन्त श्रेष्ठ हैं। उनमें रूप और वर्ण आदिका अभाव है। वे यद्यपि सर्वत्र व्याप्त हैं, तथापि ब्रह्मरूपसे इस विश्वकी उत्पत्ति करनेके कारण विद्वानोंके द्वारा ब्रह्मा कहलाते हैं। उन्होंने पूर्वकालमें जिस प्रकार सृष्टि-रचना की, वह सब मैं बता रहा हूँ। सुनो, सृष्टिके प्रारम्भकालमें जब जगत्के स्वामी ब्रह्माजी कमलके आसनसे उठे, तब सबसे पहले उन्होंने महत्तत्त्वको प्रकट किया; फिर महत्तत्त्वसे वैकारिक (सात्त्विक), तैजस (राजस) तथा भूतादिरूप तामस—तीन प्रकारका अहंकार उत्पन्न हुआ, जो कर्मेन्द्रियोंसहित पाँचों ज्ञानेन्द्रियों तथा पंचभूतोंका कारण है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—ये पाँच भूत हैं। इनमेंसे एक-एकके स्वरूपका क्रमशः वर्णन करता हूँ। [भूतादि नामक तामस अहंकारने विकृत होकर शब्द-तन्मात्राको उत्पन्न किया, उससे शब्द गुणवाले आकाशका प्रादुर्भाव हुआ।] भूतादि (तामस अहंकार)-ने शब्द-तन्मात्रारूप आकाशको सब ओरसे आच्छादित किया। [तब शब्दतन्मात्रारूप आकाशने विकृत होकर स्पर्श-तन्मात्राकी रचना की।] उससे अत्यन्त बलवान् वायुका प्राकट्य हुआ, जिसका गुण स्पर्श माना गया है। तदनन्तर आकाशसे आच्छादित होनेपर वायु-तत्त्वमें विकार आया और उसने रूप-तन्मात्राकी सृष्टि की। वह वायुसे अग्निके रूपमें प्रकट हुई। रूप उसका गुण कहलाता है। तत्पश्चात् स्पर्श-तन्मात्रावाले वायुने रूप-तन्मात्रावाले तेजको सब ओरसे आवृत किया। इससे अग्नि-तत्त्वने विकारको प्राप्त होकर रस-तन्मात्राको उत्पन्न किया। उससे जलकी उत्पत्ति हुई, जिसका गुण रस माना गया है। फिर रूप-तन्मात्रावाले तेजने रस-तन्मात्रारूप जल-तत्त्वको सब ओरसे आच्छादित किया। इससे विकृत होकर जलतत्त्वने गन्ध-तन्मात्राकी सृष्टि की, जिससे यह पृथ्वी उत्पन्न हुई। पृथ्वीका गुण गन्ध माना गया है। इन्द्रियाँ तैजस कहलाती हैं [क्योंकि वे राजस अहंकारसे प्रकट हुई हैं]। इन्द्रियोंके अधिष्ठाता दस देवता वैकारिक कहे गये हैं [क्योंकि उनकी उत्पत्ति सात्त्विक अहंकारसे हुई है]। इस प्रकार इन्द्रियोंके अधिष्ठाता दस देवता और ग्यारहवाँ मन—ये वैकारिक माने गये हैं। त्वचा, चक्षु, नासिका, जिह्वा और श्रोत्र—ये पाँच इन्द्रियाँ शब्दादि विषयोंका अनुभव करानेके साधन हैं। अतः इन पाँचोंको बुद्धियुक्त अर्थात् ज्ञानेन्द्रिय कहते हैं। गुदा, उपस्थ, हाथ, पैर और वाक्—ये क्रमशः मल-त्याग, मैथुनजनित सुख, शिल्प-निर्माण (हस्तकौशल), गमन और शब्दोच्चारण—इन कर्मोंमें सहायक हैं। इसलिये इन्हें कर्मेन्द्रिय माना गया है।

वीर! आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी—ये क्रमशः शब्दादि उत्तरोत्तर गुणोंसे युक्त हैं अर्थात् आकाशका गुण शब्द; वायुके गुण शब्द और स्पर्श; तेजके गुण शब्द, स्पर्श और रूप; जलके शब्द, स्पर्श, रूप और रस तथा पृथ्वीके शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध—ये सभी गुण हैं। उक्त पाँचों भूत शान्त, घोर और मूढ़ हैं*। अर्थात् सुख, दुःख और मोहसे युक्त हैं। अतः

* एक-दूसरेसे मिलनेपर सभी भूत शान्त, घोर और मूढ़ प्रतीत होते हैं। पृथक्-पृथक् देखनेपर तो पृथ्वी और जल शान्त हैं, तेज और वायु घोर हैं तथा आकाश मूढ़ है।

ये विशेष कहलाते हैं। ये पाँचों भूत अलग-अलग रहनेपर भिन्न-भिन्न प्रकारकी शक्तियोंसे सम्पन्न हैं। अत: परस्पर संगठित हुए बिना—पूर्णतया मिले बिना ये प्रजाकी सृष्टि करनेमें समर्थ न हो सके। इसलिये [परमपुरुष परमात्माने संकल्पके द्वारा इनमें प्रवेश किया। फिर तो] महत्तत्त्वसे लेकर विशेषपर्यन्त सभी तत्त्व पुरुषद्वारा अधिष्ठित होनेके कारण पूर्णरूपसे एकत्वको प्राप्त हुए। इस प्रकार परस्पर मिलकर तथा एक-दूसरेका आश्रय ले उन्होंने अण्डकी उत्पत्ति की। भीष्मजी! उस अण्डमें ही पर्वत और द्वीप आदिके सहित समुद्र, ग्रहों और तारोंसहित सम्पूर्ण लोक तथा देवता, असुर और मनुष्योंसहित समस्त प्राणी उत्पन्न हुए हैं। वह अण्ड पूर्व-पूर्वकी अपेक्षा दसगुने अधिक जल, अग्नि, वायु, आकाश और भूतादि अर्थात् तामस अहंकारसे आवृत है। भूतादि महत्तत्त्वसे घिरा है तथा इन सबके सहित महत्तत्त्व भी अव्यक्त (प्रधान या मूल प्रकृति)-के द्वारा आवृत है।

भगवान् विष्णु स्वयं ही ब्रह्मा होकर संसारकी सृष्टिमें प्रवृत्त होते हैं तथा जबतक कल्पकी स्थिति बनी रहती है, तबतक वे ही युग-युगमें अवतार धारण करके समूची सृष्टिकी रक्षा करते हैं। वे विष्णु सत्त्वगुण धारण किये रहते हैं; उनके पराक्रमकी कोई सीमा नहीं है। राजेन्द्र! जब कल्पका अन्त होता है, तब वे ही अपना तम:प्रधान रौद्र रूप प्रकट करते हैं और अत्यन्त भयानक आकार धारण करके सम्पूर्ण प्राणियोंका संहार करते हैं। इस प्रकार सब भूतोंका नाश करके संसारको एकार्णवके जलमें निमग्न कर वे सर्वरूपधारी भगवान् स्वयं शेषनागकी शय्यापर शयन करते हैं। फिर जागनेपर ब्रह्माका रूप धारण करके वे नये सिरेसे संसारकी सृष्टि करने लगते हैं। इस तरह एक ही भगवान् जनार्दन सृष्टि, पालन और संहार करनेके कारण ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव नाम धारण करते हैं।* वे प्रभु स्रष्टा होकर स्वयं अपनी ही सृष्टि करते हैं, पालक होकर पालनीय रूपसे अपना ही पालन करते हैं और संहारकारी होकर स्वयं अपना ही संहार करते हैं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—सब वे ही हैं; क्योंकि अविनाशी विष्णु ही सब भूतोंके ईश्वर और विश्वरूप हैं। इसलिये प्राणियोंमें स्थित सर्ग आदि भी उन्हींके सहायक हैं।

ब्रह्माजीकी आयु तथा युग आदिका कालमान, भगवान् वराहद्वारा पृथ्वीका रसातलसे उद्धार और ब्रह्माजीके द्वारा रचे हुए विविध सर्गोंका वर्णन

पुलस्त्यजी कहते हैं—राजन्! ब्रह्माजी सर्वज्ञ एवं साक्षात् नारायणके स्वरूप हैं। वे उपचारसे—आरोपद्वारा ही 'उत्पन्न हुए' कहलाते हैं। वास्तवमें तो वे नित्य ही हैं। अपने निजी मानसे उनकी आयु सौ वर्षकी मानी गयी है। वह ब्रह्माजीकी आयु 'पर' कहलाती है, उसके आधे भागको परार्ध कहते हैं। पंद्रह निमेषकी एक काष्ठा होती है। तीस काष्ठाओंकी एक कला और तीस कलाओंका एक मुहूर्त होता है। तीस मुहूर्तोंके कालको मनुष्यका एक दिन-रात माना गया है। तीस दिन-रातका एक मास होता है। एक मासमें दो पक्ष होते हैं। छ: महीनोंका एक अयन और दो अयनोंका एक वर्ष होता है। अयन दो है, दक्षिणायन और उत्तरायण। दक्षिणायन देवताओंकी रात्रि है और उत्तरायण उनका दिन है। देवताओंके बारह हजार वर्षोंके चार युग होते हैं, जो क्रमश: सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुगके नामसे प्रसिद्ध हैं। अब इन युगोंका वर्ष-विभाग सुनो। पुरातत्त्वके ज्ञाता विद्वान् पुरुष कहते हैं कि सत्ययुग आदिका परिमाण क्रमश: चार, तीन, दो और एक हजार दिव्य वर्ष हैं। प्रत्येक युगके आरम्भमें उतने ही सौ वर्षोंकी सन्ध्या कही जाती है और युगके अन्तमें सन्ध्यांश होता है। सन्ध्यांशका मान भी उतना ही है, जितना सन्ध्याका। नृपश्रेष्ठ! सन्ध्या और सन्ध्यांशके

* सृष्टिस्थित्यन्तकरणाद् ब्रह्मविष्णुशिवात्मक:॥ स संज्ञां याति भगवानेक एव जनार्दन:। (२। ११७, ११४)

बीचका जो समय है, उसीको युग समझना चाहिये। वही सत्ययुग और त्रेता आदिके नामसे प्रसिद्ध है। सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग—ये सब मिलकर चतुर्युग कहलाते हैं। ऐसे एक हजार चतुर्युगोंको ब्रह्माका एक दिन कहा जाता है।[१]

राजन्! ब्रह्माके एक दिनमें चौदह मनु होते हैं। उनके समयका परिमाण सुनो। सप्तर्षि, देवता, इन्द्र, मनु और मनुके पुत्र—ये एक ही समयमें उत्पन्न होते हैं तथा अन्तमें साथ-ही-साथ इनका संहार भी होता है। इकहत्तर चतुर्युगसे कुछ अधिक कालका एक मन्वन्तर होता है।[२] यही मनु और देवताओं आदिका समय है। इस प्रकार दिव्य वर्षगणनाके अनुसार आठ लाख, बावन हजार वर्षोंका एक मन्वन्तर होता है। महामते! मानव-वर्षोंसे गणना करनेपर मन्वन्तरका कालमान पूरे तीस करोड़, सरसठ लाख, बीस हजार वर्ष होता है। इससे अधिक नहीं।[३] इस कालको चौदह गुना करनेपर ब्रह्माके एक दिनका मान होता है। उसके अन्तमें नैमित्तिक नामवाला ब्राह्म-प्रलय होता है। उस समय भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक—सम्पूर्ण त्रिलोकी दग्ध होने लगती है और महर्लोकमें निवास करनेवाले पुरुष आँचसे सन्तप्त होकर जनलोकमें चले जाते हैं। दिनके बराबर ही अपनी रात बीत जानेपर ब्रह्माजी पुनः संसारकी सृष्टि करते हैं। इस प्रकार [पक्ष, मास आदिके क्रमसे धीरे-धीरे] ब्रह्माजीका एक वर्ष व्यतीत होता है तथा इसी क्रमसे उनके सौ वर्ष भी पूरे हो जाते हैं। सौ वर्ष ही उन महात्माकी पूरी आयु है।

भीष्मजीने कहा—महामुने! कल्पके आदिमें नारायणसंज्ञक भगवान् ब्रह्माने जिस प्रकार सम्पूर्ण भूतोंकी सृष्टि की, उसका आप वर्णन कीजिये।

पुलस्त्यजीने कहा—राजन्! सबकी उत्पत्तिके कारण और अनादि भगवान् ब्रह्माजीने जिस प्रकार प्रजावर्गकी सृष्टि की, वह बताता हूँ; सुनो। जब पिछले कल्पका अन्त हुआ, उस समय रात्रिमें सोकर उठनेपर सत्त्वगुणके उद्रेकसे युक्त प्रभु ब्रह्माजीने देखा कि सम्पूर्ण लोक सूना हो रहा है। तब उन्होंने यह जानकर कि पृथ्वी एकार्णवके जलमें डूब गयी है और इस समय पानीके भीतर ही स्थित है, उसको निकालनेकी इच्छासे कुछ देरतक विचार किया। फिर वे यज्ञमय वाराहका स्वरूप धारणकर जलके भीतर प्रविष्ट हुए। भगवान्‌को पाताललोकमें आया देख पृथ्वीदेवी भक्तिसे विनम्र हो

१- युगों तथा ब्रह्माके दिनकी वर्ष-संख्या इस प्रकार समझनी चाहिये। सत्ययुगका मान चार हजार दिव्य वर्ष है, उसके आरम्भमें चार सौ वर्षोंकी सन्ध्या और अन्तमें चार सौ वर्षोंका सन्ध्यांश होता है; इस प्रकार सन्ध्या और सन्ध्यांशसहित सत्ययुगकी अवधि चार हजार आठ सौ (४८००) दिव्य वर्षोंकी है। इसी तरह त्रेताका युगमान ३००० दिव्य वर्ष, सन्ध्या-मान ३०० वर्ष और सन्ध्यांश-मान ३०० वर्ष है; अत: उसकी पूरी अवधि ३६०० दिव्य वर्षोंकी हुई। द्वापरका युगमान २००० वर्ष, सन्ध्या-मान २०० वर्ष और सन्ध्यांश-मान २०० वर्ष है; अतः उसका मान २४०० दिव्य वर्षोंका हुआ। कलियुगका युगमान १००० वर्ष, सन्ध्या-मान १०० वर्ष और सन्ध्यांश-मान १०० वर्ष है; इसलिये उसकी आयु १२०० दिव्य वर्षोंकी हुई। देवताओंका वर्ष मानव-वर्षसे ३६० गुना अधिक होता है; अत: मानव-वर्षके अनुसार कलियुगकी आयु ४,३२,००० वर्षोंकी, द्वापरकी ८,६४,००० वर्षोंकी, त्रेताकी १२,९६,००० वर्षोंकी तथा सत्ययुगकी आयु १७,२८,००० वर्षोंकी है। इनका कुल योग ४३,२०,००० वर्ष हुआ। यह एक चतुर्युगका मान है। ऐसे एक हजार चतुर्युगोंका अर्थात् हमारे ४,३२,००,००,००० (चार अरब बत्तीस करोड़) वर्षोंका ब्रह्माका एक दिन होता है।

२- ब्रह्माजीके एक दिनमें चौदह मन्वन्तर होते हैं; इकहत्तर चतुर्युगोंके हिसाबसे चौदह मन्वन्तरोंमें ९९४ चतुर्युग होते हैं। परन्तु ब्रह्माका दिन एक हजार चतुर्युगोंका माना गया है; अत: छ: चतुर्युग और बचे। छ: चतुर्युगका चौदहवाँ भाग कुछ कम पाँच हजार एक सौ तीन दिव्य वर्षोंका होता है। इस प्रकार एक मन्वन्तरमें इकहत्तर चतुर्युगके अतिरिक्त इतने दिव्य वर्ष और अधिक होते हैं।

३- यह वर्ष-संख्या पूरे इकहत्तर चतुर्युगोंका मन्वन्तर मानकर निकाली गयी है; इस हिसाबसे ब्रह्माजीके दिनका मान ४,२९,४०,८०,००० (चार अरब, उनतीस करोड़, चालीस लाख, अस्सी हजार) मानव-वर्ष होता है। परन्तु पहले बता आये हैं कि इकहत्तर चतुर्युगसे कुछ अधिक कालका मन्वन्तर होता है। वह अधिक काल है—छ: चतुर्युगका चौदहवाँ भाग। उसको भी जोड़ लेनेपर मन्वन्तरका काल ऊपर दी हुई संख्यासे अधिक होगा और उस हिसाबसे ब्रह्माजीका दिनमान चार अरब, बत्तीस करोड़ वर्षोंका ही होगा।

गयीं और उनकी स्तुति करने लगीं।

पृथ्वी बोलीं—भगवन्! आप सर्वभूतस्वरूप परमात्मा हैं, आपको बारम्बार नमस्कार है। आप इस पाताललोकसे मेरा उद्धार कीजिये। पूर्वकालमें मैं आपसे ही उत्पन्न हुई थी। परमात्मन्! आपको नमस्कार है। आप सबके अन्तर्यामी हैं, आपको प्रणाम है। प्रधान (कारण) और व्यक्त (कार्य) आपके ही स्वरूप हैं। काल भी आप ही हैं, आपको नमस्कार है। प्रभो! जगत्की सृष्टि आदिके समय आप ही ब्रह्मा, विष्णु और रुद्ररूप धारण करके सम्पूर्ण भूतोंकी उत्पत्ति, पालन और संहार करते हैं, यद्यपि आप इन सबसे परे हैं। मुमुक्षु पुरुष आपकी आराधना करके मुक्त हो परब्रह्म परमात्माको प्राप्त हो गये हैं। भला, आप वासुदेवकी आराधना किये बिना कौन मोक्ष पा सकता है। जो मनसे ग्रहण करनेयोग्य, नेत्र आदि इन्द्रियोंद्वारा अनुभव करनेयोग्य तथा बुद्धिके द्वारा विचारणीय है, वह सब आपहीका रूप है। नाथ! आप ही मेरे उपादान हैं, आप ही आधार हैं, आपने ही मेरी सृष्टि की है तथा मैं आपहीकी शरणमें हूँ; इसीलिये इस जगत्के लोग मुझे 'माधवी' कहते हैं।

पृथ्वीने जब इस प्रकार स्तुति की, तब उन परम कान्तिमान् भगवान् धरणीधरने घर्घर स्वरमें गर्जना की। सामवेद ही उनकी उस ध्वनिके रूपमें प्रकट हुआ। उनके नेत्र खिले हुए कमलके समान शोभा पा रहे थे तथा शरीर कमलके पत्तेके समान श्याम रंगका था। उन महावराहरूपधारी भगवान्ने पृथ्वीको अपनी दाढ़ोंपर उठा लिया और रसातलसे वे ऊपरकी ओर उठे। उस समय उनके मुखसे निकली हुई साँसके आघातसे उछले हुए उस प्रलयकालीन जलने जनलोकमें रहनेवाले सनन्दन आदि मुनियोंको भिगोकर निष्पाप कर दिया। [निष्पाप तो वे थे ही, उन्हें और भी पवित्र बना दिया।] भगवान् महावराहका उदर जलसे भीगा हुआ था। जिस समय वे अपने वेदमय शरीरको कँपाते हुए पृथ्वीको लेकर उठने लगे, उस समय आकाशमें स्थित महर्षिगण उनकी स्तुति करने लगे।

ऋषियोंने कहा—जनेश्वरोंके भी परमेश्वर केशव! आप सबके प्रभु हैं। गदा, शंख, उत्तम खड्ग और चक्र धारण करनेवाले हैं। सृष्टि, पालन और संहारके कारण तथा ईश्वर भी आप ही हैं। जिसे परमपद कहते हैं, वह भी आपसे भिन्न नहीं है। प्रभो! आपका प्रभाव अतुलनीय है। पृथ्वी और आकाशके बीच जितना अन्तर है, वह सब आपके ही शरीरसे व्याप्त है। इतना ही नहीं, यह सम्पूर्ण जगत् भी आपसे व्याप्त है। भगवन्! आप इस विश्वका हित-साधन कीजिये। जगदीश्वर! एकमात्र आप ही परमात्मा हैं, आपके सिवा दूसरा कोई नहीं है। आपकी ही महिमा है, जिससे यह चराचर जगत् व्याप्त हो रहा है। यह सारा जगत् ज्ञानस्वरूप है, तो भी अज्ञानी मनुष्य इसे पदार्थरूप देखते हैं; इसीलिये उन्हें संसार-समुद्रमें भटकना पड़ता है। परन्तु परमेश्वर! जो लोग विज्ञानवेत्ता हैं, जिनका अन्तःकरण शुद्ध है, वे समस्त संसारको ज्ञानमय ही देखते हैं, आपका स्वरूप ही समझते हैं। सर्वभूतस्वरूप परमात्मन्! आप प्रसन्न होइये। आपका स्वरूप अप्रमेय है। प्रभो! भगवन्! आप सबके उद्भवके लिये इस पृथ्वीका उद्धार एवं सम्पूर्ण जगत्का कल्याण कीजिये।

राजन्! सनकादि मुनि जब इस प्रकार स्तुति कर

रहे थे, उस समय पृथ्वीको धारण करनेवाले परमात्मा महावराह शीघ्र ही इस वसुन्धराको ऊपर उठा लाये और उसे महासागरके जलपर स्थापित किया। उस जलराशिके ऊपर यह पृथ्वी एक बहुत बड़ी नौकाकी भाँति स्थित हुई। तत्पश्चात् भगवान्‌ने पृथ्वीके कई विभाग करके सात द्वीपोंका निर्माण किया तथा भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक और महर्लोक—इन चारों लोकोंकी पूर्ववत् कल्पना की। तदनन्तर ब्रह्माजीने भगवान्‌से कहा—'प्रभो! मैंने इस समय जिन प्रधान-प्रधान असुरोंको वरदान दिया है, उनको देवताओंकी भलाईके लिये आप मार डालें। मैं जो सृष्टि रचूँगा, उसका आप पालन करें।' उनके ऐसा कहनेपर भगवान् विष्णु 'तथास्तु' कहकर चले गये और ब्रह्माजीने देवता आदि प्राणियोंकी सृष्टि आरम्भ की। महत्तत्त्वकी उत्पत्तिको ही ब्रह्माकी प्रथम सृष्टि समझना चाहिये। तन्मात्राओंका आविर्भाव दूसरी सृष्टि है, उसे भूतसर्ग भी कहते हैं। वैकारिक अर्थात् सात्त्विक अहंकारसे जो इन्द्रियोंकी उत्पत्ति हुई है, वह तीसरी सृष्टि है; उसीका दूसरा नाम ऐन्द्रिय सर्ग है। इस प्रकार यह प्राकृत सर्ग है, जो अबुद्धिपूर्वक उत्पन्न हुआ है। चौथी सृष्टिका नाम है मुख्य सर्ग। पर्वत और वृक्ष आदि स्थावर वस्तुओंको मुख्य कहते हैं। तिर्यक्स्रोत कहकर जिनका वर्णन किया गया है, वे (पशु-पक्षी, कीट-पतंग आदि) ही पाँचवीं सृष्टिके अन्तर्गत हैं; उन्हें तिर्यक् योनि भी कहते हैं। तत्पश्चात् ऊर्ध्वरेता देवताओंका सर्ग है, वही छठी सृष्टि है और उसीको देवसर्ग भी कहते हैं। तदनन्तर सातवीं सृष्टि अर्वाक्स्रोताओंकी है, वही मानव-सर्ग कहलाता है। आठवाँ अनुग्रह-सर्ग है, वह सात्त्विक भी है और तामस भी। इन आठ सर्गोंमेंसे अन्तिम पाँच वैकृत-सर्ग माने गये हैं तथा आरम्भके तीन सर्ग प्राकृत बताये गये हैं। नवाँ कौमार सर्ग है, वह प्राकृत भी है वैकृत भी। इस प्रकार जगत्‌की रचनामें प्रवृत्त हुए जगदीश्वर प्रजापतिके ये प्राकृत और वैकृत नामक नौ सर्ग तुम्हें बतलाये गये, जो जगत्‌के मूल कारण हैं। अब तुम और क्या सुनना चाहते हो?

भीष्मजीने कहा—गुरुदेव! आपने देवताओं आदिकी सृष्टि थोड़ेमें ही बतायी है। मुनिश्रेष्ठ! अब मैं उसे आपके मुखसे विस्तारके साथ सुनना चाहता हूँ।

पुलस्त्यजीने कहा—राजन्! सम्पूर्ण प्रजा अपने पूर्वकृत शुभाशुभ कर्मोंसे प्रभावित रहती है; अतः प्रलयकालमें सबका संहार हो जानेपर भी वह उन कर्मोंके संस्कारसे मुक्त नहीं हो पाती। जब ब्रह्माजी सृष्टिकार्यमें प्रवृत्त हुए, उस समय उनसे देवताओंसे लेकर स्थावरपर्यन्त चार प्रकारकी प्रजा उत्पन्न हुई; वे चारों [ब्रह्माजीके मानसिक संकल्पसे प्रकट होनेके कारण] मानसी प्रजा कहलायीं। तदनन्तर प्रजापतिने देवता, असुर, पितर और मनुष्य—इन चार प्रकारके प्राणियोंकी तथा जलकी भी सृष्टि करनेकी इच्छासे अपने शरीरका उपयोग किया। उस समय सृष्टिकी इच्छावाले मुक्तात्मा प्रजापतिकी जंघासे पहले दुरात्मा असुरोंकी उत्पत्ति हुई। उनकी सृष्टिके पश्चात् भगवान् ब्रह्माने अपनी वयस् (आयु)-से इच्छानुसार वयों (पक्षियों)-को उत्पन्न किया। फिर अपनी भुजाओंसे भेड़ों और मुखसे बकरोंकी रचना की। इसी प्रकार अपने पेटसे गायों और भैंसोंको तथा पैरोंसे घोड़े, हाथी, गदहे, नीलगाय, हरिन, ऊँट, खच्चर तथा दूसरे-दूसरे पशुओंकी सृष्टि की। ब्रह्माजीकी रोमावलियोंसे फल, मूल तथा भाँति-भाँतिके अन्नोंका प्रादुर्भाव हुआ। गायत्री छन्द, ऋग्वेद, त्रिवृत्स्तोम, रथन्तर तथा अग्निष्टोम यज्ञको प्रजापतिने अपने पूर्ववर्ती मुखसे प्रकट किया। यजुर्वेद, त्रिष्टुप् छन्द, पंचदशस्तोम, बृहत्साम और उक्थकी दक्षिणवाले मुखसे रचना की। सामवेद जगती छन्द, सप्तदशस्तोम, वैरूप और अतिरात्रभागकी सृष्टि पश्चिम मुखसे की तथा एकविंशस्तोम, अथर्ववेद, आप्तोर्याम, अनुष्टुप् छन्द और वैराजको उत्तरवर्ती मुखसे उत्पन्न किया। छोटे-बड़े जितने भी प्राणी हैं, सब प्रजापतिके विभिन्न अंगोंसे उत्पन्न हुए। कल्पके आदिमें प्रजापति ब्रह्माने देवताओं, असुरों, पितरों और मनुष्योंकी सृष्टि करके फिर यक्ष, पिशाच, गन्धर्व, अप्सरा, सिद्ध, किन्नर, राक्षस, सिंह, पक्षी, मृग और सर्पोंको उत्पन्न किया। नित्य और अनित्य जितना

भी यह चराचर जगत् है, सबको आदिकर्ता भगवान् ब्रह्माने उत्पन्न किया। उन उत्पन्न हुए प्राणियोंमेंसे जिन्होंने पूर्वकल्पमें जैसे कर्म किये थे, वे पुनः बारम्बार जन्म लेकर वैसे ही कर्मोंमें प्रवृत्त होते हैं। इस प्रकार भगवान् विधाताने ही इन्द्रियोंके विषयों, भूतों और शरीरोंमें विभिन्नता एवं पृथक्-पृथक् व्यवहार उत्पन्न किया। उन्हींने कल्पके आरम्भमें वेदके अनुसार देवता आदि प्राणियोंके नाम, रूप और कर्तव्यका विस्तार किया। ऋषियों तथा अन्यान्य प्राणियोंके भी वेदानुकूल नाम और उनके यथायोग्य कर्मोंको भी ब्रह्माजीने ही निश्चित किया। जिस प्रकार भिन्न-भिन्न ऋतुओंके बारम्बार आनेपर उनके विभिन्न प्रकारके चिह्न पहलेके समान ही प्रकट होते हैं, उसी प्रकार सृष्टिके आरम्भमें सारे पदार्थ पूर्व कल्पके अनुसार ही दृष्टिगोचर होते हैं। सृष्टिके लिये इच्छुक तथा सृष्टिकी शक्तिसे युक्त ब्रह्माजी कल्पके आदिमें बारम्बार ऐसी ही सृष्टि किया करते हैं।

यज्ञके लिये ब्राह्मणादि वर्णों तथा अन्नकी सृष्टि, मरीचि आदि प्रजापति, रुद्र तथा स्वायम्भुव मनु आदिकी उत्पत्ति और उनकी संतान-परम्पराका वर्णन

भीष्मजीने कहा—ब्रह्मन्! आपने अर्वाक्स्रोत नामक सर्गका जो मानव सर्गके नामसे भी प्रसिद्ध है, संक्षेपसे वर्णन किया; अब उसीको विस्तारके साथ कहिये। ब्रह्माजीने मनुष्योंकी सृष्टि किस प्रकार की? महामुने! प्रजापतिने चारों वर्णों तथा उनके गुणोंको कैसे उत्पन्न किया? और ब्राह्मणादि वर्णोंके कौन-कौन-से कर्म माने गये हैं? इन सब बातोंका वर्णन कीजिये।

पुलस्त्यजी बोले—कुरुश्रेष्ठ! सृष्टिकी इच्छा रखनेवाले ब्रह्माजीने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन चार वर्णोंको उत्पन्न किया। इनमें ब्राह्मण मुखसे, क्षत्रिय वक्षःस्थलसे, वैश्य जाँघोंसे और शूद्र ब्रह्माजीके पैरोंसे उत्पन्न हुए। महाराज! ये चारों वर्ण यज्ञके उत्तम साधन हैं; अतः ब्रह्माजीने यज्ञानुष्ठानकी सिद्धिके लिये ही इन सबकी सृष्टि की। यज्ञसे तृप्त होकर देवतालोग जलकी वृष्टि करते हैं, जिससे मनुष्योंकी भी तृप्ति होती है; अतः धर्ममय यज्ञ सदा ही कल्याणका हेतु है। जो लोग सदा अपने वर्णोचित कर्ममें लगे रहते हैं, जिन्होंने धर्म-विरुद्ध आचरणोंका परित्याग कर दिया है तथा जो सन्मार्गपर चलनेवाले हैं, वे श्रेष्ठ मनुष्य ही यज्ञका यथावत् अनुष्ठान करते हैं। राजन्! [यज्ञके द्वारा] मनुष्य इस मानव-देहके त्यागके पश्चात् स्वर्ग और अपवर्ग भी प्राप्त कर सकते हैं तथा और भी जिस-जिस स्थानको पानेकी उन्हें इच्छा हो, उसी-उसीमें वे जा सकते हैं। नृपश्रेष्ठ! ब्रह्माजीके द्वारा चातुर्वर्ण्य-व्यवस्थाके अनुसार रची हुई प्रजा उत्तम श्रद्धाके साथ श्रेष्ठ आचारका पालन करने लगी। वह इच्छानुसार जहाँ चाहती, रहती थी। उसे किसी प्रकारकी बाधा नहीं सताती थी। समस्त प्रजाका अन्तःकरण शुद्ध था। वह स्वभावसे ही परम पवित्र थी। धर्मानुष्ठानके कारण उसकी पवित्रता और भी बढ़ गयी थी। प्रजाओंके पवित्र अन्तःकरणमें भगवान् श्रीहरिका निवास होनेके कारण सबको शुद्ध ज्ञान प्राप्त होता था, जिससे सब लोग श्रीहरिके 'परब्रह्म' नामक परमपदका साक्षात्कार कर लेते थे।

तदनन्तर प्रजा जीविकाके साधन उद्योग-धंधे और खेती आदिका काम करने लगी। राजन्! धान, जौ, गेहूँ, छोटे धान्य, तिल, कँगनी, ज्वार, कोदो, चेना, उड़द, मूँग, मसूर, मटर, कुलथी, अरहर, चना और सन—ये सत्रह ग्रामीण अन्नोंकी जातियाँ हैं। ग्रामीण और जंगली दोनों प्रकारके मिलाकर चौदह अन्न यज्ञके उपयोगमें आनेवाले माने गये हैं। उनके नाम ये हैं—धान, जौ, उड़द, गेहूँ, महीन धान्य, तिल, सातवीं कँगनी और आठवीं कुलथी—ये ग्रामीण अन्न हैं तथा साँवाँ, तिन्नीका चावल, जर्तिल (वनतिल), गवेधु, वेणुयव और मक्का—ये छः जंगली अन्न हैं। ये चौदह अन्न यज्ञानुष्ठानकी सामग्री हैं तथा यज्ञ ही इनकी उत्पत्तिका प्रधान हेतु है। यज्ञके साथ ये अन्न प्रजाकी उत्पत्ति और वृद्धिके परम कारण हैं; इसलिये इहलोक और परलोकके

ज्ञाता विद्वान् पुरुष इन्हींके द्वारा यज्ञोंका अनुष्ठान करते रहते हैं। नृपश्रेष्ठ! प्रतिदिन किया जानेवाला यज्ञानुष्ठान मनुष्योंका परम उपकारक तथा उन्हें शान्ति प्रदान करनेवाला होता है। [कृषि आदि जीविकाके साधनोंके सिद्ध हो जानेपर] प्रजापतिने प्रजाके स्थान और गुणोंके अनुसार उनमें धर्म-मर्यादाकी स्थापना की। फिर वर्ण और आश्रमोंके पृथक्-पृथक् धर्म निश्चित किये तथा स्वधर्मका भलीभाँति पालन करनेवाले सभी वर्णोंके लिये पुण्यमय लोकोंकी रचना की।

योगियोंको अमृतस्वरूप ब्रह्मधामकी प्राप्ति होती है, जो परम पद माना गया है। जो योगी सदा एकान्तमें रहकर यत्नपूर्वक ध्यानमें लगे रहते हैं, उन्हें वह उत्कृष्ट पद प्राप्त होता है, जिसका ज्ञानीजन ही साक्षात्कार कर पाते हैं। तामिस्र, अन्धतामिस्र, महारौरव, रौरव, घोर असिपत्रवन, कालसूत्र और अवीचिमान् आदि जो नरक हैं, वे वेदोंकी निन्दा, यज्ञोंका उच्छेद तथा अपने धर्मका परित्याग करनेवाले पुरुषोंके स्थान बताये गये हैं।

ब्रह्माजीने पहले मनके संकल्पसे ही चराचर प्राणियोंकी सृष्टि की; किन्तु जब इस प्रकार उनकी सारी प्रजा [पुत्र, पौत्र आदिके क्रमसे] अधिक न बढ़ सकी, तब उन्होंने अपने ही सदृश अन्य मानस पुत्रोंको उत्पन्न किया। उनके नाम हैं—भृगु, पुलह, क्रतु, अंगिरा, मरीचि, दक्ष, अत्रि और वसिष्ठ। पुराणमें ये नौ* ब्रह्मा निश्चित किये गये हैं। इन भृगु आदिके भी पहले जिन सनन्दन आदि पुत्रोंको ब्रह्माजीने जन्म दिया था, उनके मनमें पुत्र उत्पन्न करनेकी इच्छा नहीं हुई; इसलिये वे सृष्टि-रचनाके कार्यमें नहीं फँसे। उन सबको स्वभावतः विज्ञानकी प्राप्ति हो गयी थी। वे मात्सर्य आदि दोषोंसे रहित और वीतराग थे। इस प्रकार संसारकी सृष्टिके कार्यसे उनके उदासीन हो जानेपर महात्मा ब्रह्माजीको महान् क्रोध हुआ, उनकी भौंहें तन गयीं और ललाट क्रोधसे उद्दीप्त हो उठा। इसी समय उनके ललाटसे मध्याह्नकालीन सूर्यके समान तेजस्वी रुद्र प्रकट हुए। उनका आधा शरीर स्त्रीका था और आधा पुरुषका। वे बड़े प्रचण्ड थे और उनका शरीर बड़ा विशाल था। तब ब्रह्माजी उन्हें यह आदेश देकर कि 'तुम अपने शरीरके दो भाग करो' वहाँसे अन्तर्धान हो गये। उनके ऐसा कहनेपर रुद्रने अपने शरीरके स्त्री और पुरुषरूप दोनों भागोंको पृथक्-पृथक् कर दिया और फिर पुरुषभागको ग्यारह रूपोंमें विभक्त किया। इसी प्रकार स्त्रीभागको भी अनेकों रूपोंमें प्रकट किया। स्त्री और पुरुष दोनों भागोंके वे भिन्न-भिन्न रूप सौम्य, क्रूर, शान्त, श्याम और गौर आदि नाना प्रकारके थे।

तत्पश्चात् ब्रह्माजीने अपनेसे उत्पन्न, अपने ही स्वरूपभूत स्वायम्भुवको प्रजापालनके लिये प्रथम मनु बनाया। स्वायम्भुव मनुने शतरूपा नामकी स्त्रीको, जो तपस्याके कारण पापरहित थी, अपनी पत्नीके रूपमें स्वीकार किया। देवी शतरूपाने स्वायम्भुव मनुसे दो पुत्र और दो कन्याओंको जन्म दिया। पुत्रोंके नाम थे— प्रियव्रत और उत्तानपाद तथा कन्याएँ प्रसूति और आकूतिके नामसे प्रसिद्ध हुईं। मनुने प्रसूतिका विवाह दक्षके साथ और आकूतिका रुचि प्रजापतिके साथ कर दिया। दक्षने प्रसूतिके गर्भसे चौबीस कन्याएँ उत्पन्न कीं। उनके नाम हैं—श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, पुष्टि, तुष्टि, मेधा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, सिद्धि और तेरहवीं कीर्ति। इन दक्ष-कन्याओंको भगवान् धर्मने अपनी पत्नियोंके रूपमें ग्रहण किया। इनसे छोटी ग्यारह कन्याएँ और थीं, जो ख्याति, सती, सम्भूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा, सन्नति, अनसूया, ऊर्जा, स्वाहा और स्वधा नामसे प्रसिद्ध हुईं। नृपश्रेष्ठ! इन ख्याति आदि कन्याओंको क्रमशः भृगु, शिव, मरीचि, अंगिरा और मैंने (पुलस्त्य) तथा पुलह, क्रतु, अत्रि, वसिष्ठ, अग्नि तथा पितरोंने ग्रहण किया। श्रद्धाने कामको, लक्ष्मीने दर्पको, धृतिने नियमको, तुष्टिने सन्तोषको और पुष्टिने लोभको जन्म दिया। मेधाने श्रुतको, क्रियाने दण्ड, नय और विनयको, बुद्धिने बोधको, लज्जाने विनयको, वपुने अपने पुत्र

* संभवतः पुलस्त्यजीको मिलाकर ही नौ ब्रह्मा माने गये हैं।

व्यवसायको, शान्तिने क्षेमको, सिद्धिने सुखको और कीर्तिने यशको उत्पन्न किया। ये ही धर्मके पुत्र हैं। कामसे उसकी पत्नी नन्दीने हर्ष नामक पुत्रको जन्म दिया, यह धर्मका पौत्र था। भृगुकी पत्नी ख्यातिने लक्ष्मीको जन्म दिया, जो देवाधिदेव भगवान् नारायणकी पत्नी हैं। भगवान् रुद्रने दक्षसुता सतीको पत्नीरूपमें ग्रहण किया, जिन्होंने अपने पितापर खीझकर शरीर त्याग दिया।

अधर्मकी स्त्रीका नाम हिंसा है। उससे अनृत नामक पुत्र और निकृति नामवाली कन्याकी उत्पत्ति हुई। फिर उन दोनोंने भय और नरक नामक पुत्र और माया तथा वेदना नामकी कन्याओंको उत्पन्न किया। माया भयकी और वेदना नरककी पत्नी हुई। उनमेंसे मायाने समस्त प्राणियोंका संहार करनेवाले मृत्यु नामक पुत्रको जन्म दिया और वेदनासे नरकके अंशसे दुःखकी उत्पत्ति हुई। फिर मृत्युसे व्याधि, जरा, शोक, तृष्णा और क्रोधका जन्म हुआ। ये सभी अधर्मस्वरूप हैं और दुःखोत्तर नामसे प्रसिद्ध हैं। इनके न कोई स्त्री है न पुत्र। ये सब-के-सब नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं। राजकुमार भीष्म! ये ब्रह्माजीके रौद्र रूप हैं और ये ही संसारके नित्य प्रलयमें कारण होते हैं।

लक्ष्मीजीके प्रादुर्भावकी कथा, समुद्र-मन्थन और अमृत-प्राप्ति

भीष्मजीने कहा—मुने! मैंने तो सुना था लक्ष्मीजी क्षीर-समुद्रसे प्रकट हुई हैं; फिर आपने यह कैसे कहा कि वे भृगुकी पत्नी ख्यातिके गर्भसे उत्पन्न हुईं?

पुलस्त्यजी बोले—राजन्! तुमने मुझसे जो प्रश्न किया है, उसका उत्तर सुनो। लक्ष्मीजीके जन्मका सम्बन्ध समुद्रसे है, यह बात मैंने भी ब्रह्माजीके मुखसे सुन रखी है। एक समयकी बात है, दैत्यों और दानवोंने बड़ी भारी सेना लेकर देवताओंपर चढ़ाई की। उस युद्धमें दैत्योंके सामने देवता परास्त हो गये। तब इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता अग्निको आगे करके ब्रह्माजीकी शरणमें गये। वहाँ उन्होंने अपना सारा हाल ठीक-ठीक कह सुनाया। ब्रह्माजीने कहा—'तुमलोग मेरे साथ भगवान्‌की शरणमें चलो।' यह कहकर वे सम्पूर्ण देवताओंको साथ ले क्षीर-सागरके उत्तर-तटपर गये और भगवान् वासुदेवको सम्बोधित करके बोले—'विष्णो! शीघ्र उठिये और इन देवताओंका कल्याण कीजिये। आपकी सहायता न मिलनेसे दानव इन्हें बारम्बार परास्त करते हैं।' उनके ऐसा कहनेपर कमलके समान नेत्रवाले भगवान् अन्तर्यामी पुरुषोत्तमने देवताओंके शरीरकी अपूर्व अवस्था देखकर कहा—'देवगण! मैं तुम्हारे तेजकी वृद्धि करूँगा। मैं जो उपाय बतलाता हूँ, उसे तुमलोग करो। दैत्योंके साथ मिलकर सब प्रकारकी ओषधियाँ ले आओ और उन्हें क्षीरसागरमें डाल दो। फिर मन्दराचलको मथानी और वासुकि नागको नेती (रस्सी) बनाकर समुद्रका मन्थन करते हुए उससे अमृत निकालो। इस कार्यमें मैं तुमलोगोंकी सहायता करूँगा। समुद्रका मन्थन करनेपर जो अमृत निकलेगा, उसका पान करनेसे तुमलोग बलवान् और अमर हो जाओगे।'
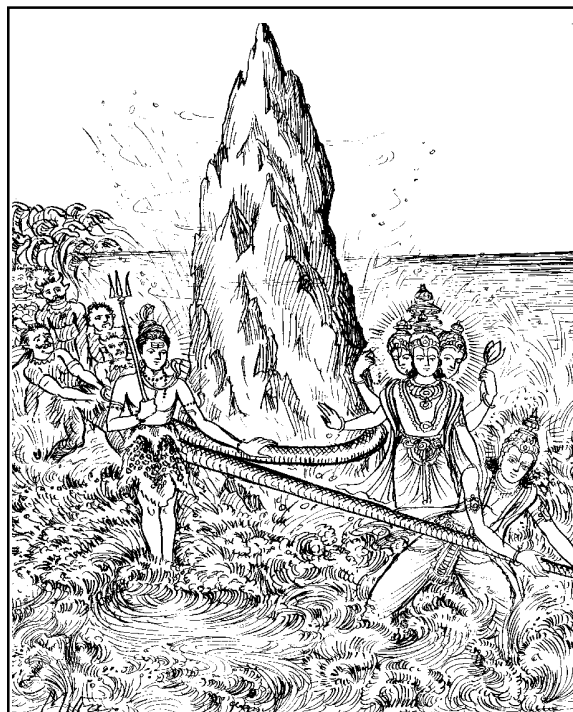
देवाधिदेव भगवान्‌के ऐसा कहनेपर सम्पूर्ण देवता दैत्योंके साथ सन्धि करके अमृत निकालनेके यत्नमें लग

गये। देव, दानव और दैत्य सब मिलकर सब प्रकारकी ओषधियाँ ले आये और उन्हें क्षीर-सागरमें डालकर मन्दराचलको मथानी एवं वासुकि नागको नेती बनाकर बड़े वेगसे मन्थन करने लगे। भगवान् विष्णुकी प्रेरणासे सब देवता एक साथ रहकर वासुकिकी पूँछकी ओर हो गये और दैत्योंको उन्होंने वासुकिके सिरकी ओर खड़ा कर दिया। भीष्मजी! वासुकिके मुखकी साँस तथा विषाग्निसे झुलस जानेके कारण सब दैत्य निस्तेज हो गये। क्षीर-समुद्रके बीचमें ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ भगवान् ब्रह्मा तथा महातेजस्वी महादेवजी कच्छप रूपधारी श्रीविष्णुभगवान्‌की पीठपर खड़े हो अपनी भुजाओंसे कमलकी भाँति मन्दराचलको पकड़े हुए थे तथा स्वयं भगवान् श्रीहरि कूर्मरूप धारण करके क्षीर-सागरके भीतर देवताओं और दैत्योंके बीचमें स्थित थे। [वे मन्दराचलको अपनी पीठपर लिये डूबनेसे बचाते थे।] तदनन्तर जब देवता और दानवोंने क्षीर-समुद्रका मन्थन आरम्भ किया, तब पहले-पहल उससे देवपूजित सुरभि (कामधेनु)-का आविर्भाव हुआ, जो हविष्य (घी-दूध)-की उत्पत्तिका स्थान मानी गयी है। तत्पश्चात् वारुणी (मदिरा)-देवी प्रकट हुई, जिसके मदभरे नेत्र घूम रहे थे। वह पग-पगपर लड़खड़ाती चलती थी। उसे अपवित्र मानकर देवताओंने त्याग दिया। तब वह असुरोंके पास जाकर बोली—'दानवो! मैं बल प्रदान करनेवाली देवी हूँ, तुम मुझे ग्रहण करो।' दैत्योंने उसे ग्रहण कर लिया। इसके बाद पुनः मन्थन आरम्भ होनेपर पारिजात (कल्पवृक्ष) उत्पन्न हुआ, जो अपनी शोभासे देवताओंका आनन्द बढ़ानेवाला था। तदनन्तर साठ करोड़ अप्सराएँ प्रकट हुईं, जो देवता और दानवोंकी सामान्यरूपसे भोग्या हैं। जो लोग पुण्यकर्म करके देवलोकमें जाते हैं, उनका भी उनके ऊपर समान अधिकार होता है। अप्सराओंके बाद शीतल किरणोंवाले चन्द्रमाका प्रादुर्भाव हुआ, जो देवताओंको आनन्द प्रदान करनेवाले थे। उन्हें भगवान् शंकरने अपने लिये माँगते हुए कहा—'देवताओ! ये चन्द्रमा मेरी जटाओंके आभूषण होंगे, अतः मैंने इन्हें ले लिया।' ब्रह्माजीने 'बहुत अच्छा' कहकर शंकरजीकी बातका अनुमोदन किया। तत्पश्चात् कालकूट नामक भयंकर विष प्रकट हुआ, उससे देवता और दानव सबको बड़ी पीड़ा हुई। तब महादेवजीने स्वेच्छासे उस विषको लेकर पी लिया। उसके पीनेसे उनके कण्ठमें काला दाग पड़ गया, तभीसे वे महेश्वर नीलकण्ठ कहलाने लगे। क्षीर-सागरसे निकले हुए उस विषका जो अंश पीनेसे बच गया था, उसे नागों (सर्पों)-ने ग्रहण कर लिया।

तदनन्तर अपने हाथमें अमृतसे भरा हुआ कमण्डलु लिये धन्वन्तरिजी प्रकट हुए। वे श्वेतवस्त्र धारण किये हुए थे। वैद्यराजके दर्शनसे सबका मन स्वस्थ एवं प्रसन्न हो गया। इसके बाद उस समुद्रसे उच्चैःश्रवा घोड़ा और ऐरावत नामका हाथी—ये दोनों क्रमशः प्रकट हुए। इसके पश्चात् क्षीरसागरसे लक्ष्मीदेवीका प्रादुर्भाव हुआ, जो खिले हुए कमलपर विराजमान थीं और हाथमें कमल लिये थीं। उनकी प्रभा चारों ओर छिटक रही थी। उस समय महर्षियोंने श्रीसूक्तका पाठ करते हुए बड़ी प्रसन्नताके साथ उनका स्तवन किया। साक्षात् क्षीर-समुद्रने [दिव्य पुरुषके रूपमें] प्रकट होकर लक्ष्मीजीको एक सुन्दर माला भेंट की, जिसके कमल कभी मुरझाते नहीं थे। विश्वकर्माने उनके समस्त अंगोंमें आभूषण पहना दिये। स्नानके पश्चात् दिव्य माला और दिव्य वस्त्र धारण करके जब वे सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित हुईं, तब इन्द्र आदि देवता तथा विद्याधर आदिने भी उन्हें प्राप्त करनेकी इच्छा की। तब ब्रह्माजीने भगवान् विष्णुसे कहा—'वासुदेव! मेरे द्वारा दी हुई इस लक्ष्मीदेवीको आप ही ग्रहण करें। मैंने देवताओं और दानवोंको मना कर दिया है—वे इन्हें पानेकी इच्छा नहीं करेंगे। आपने जो स्थिरतापूर्वक इस समुद्र-मन्थनके कार्यको सम्पन्न किया है, इससे आपपर मैं बहुत सन्तुष्ट हूँ।' यों कहकर ब्रह्माजी लक्ष्मीजीसे बोले—'देवि! तुम भगवान् केशवके पास जाओ। मेरे दिये हुए पतिको पाकर अनन्त वर्षोंतक आनन्दका उपभोग करो।'

ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर लक्ष्मीजी समस्त

देवताओंके देखते-देखते श्रीहरिके वक्ष:स्थलमें चली गयीं और भगवान्‌से बोलीं—'देव! आप कभी मेरा परित्याग न करें। सम्पूर्ण जगत्‌के प्रियतम! मैं सदा आपके आदेशका पालन करती हुई आपके वक्ष:स्थलमें निवास करूँगी।' यह कहकर लक्ष्मीजीने कृपापूर्ण दृष्टिसे देवताओंकी ओर देखा, इससे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। इधर लक्ष्मीसे परित्यक्त होनेपर दैत्योंको बड़ा उद्वेग हुआ। उन्होंने झपटकर धन्वन्तरिके हाथसे अमृतका पात्र छीन लिया। तब विष्णुने मायासे सुन्दरी स्त्रीका रूप धारण करके दैत्योंको लुभाया और उनके निकट जाकर कहा—'यह अमृतका कमण्डलु मुझे दे दो।' उस त्रिभुवनसुन्दरी रूपवती नारीको देखकर दैत्योंका चित्त कामके वशीभूत हो गया। उन्होंने चुपचाप वह अमृत उस सुन्दरीके हाथमें दे दिया और स्वयं उसका मुँह ताकने लगे। दानवोंसे अमृत लेकर भगवान्‌ने देवताओंको दे दिया और इन्द्र आदि देवता तत्काल उस अमृतको पी गये। यह देख दैत्यगण भाँति-भाँतिके अस्त्र-शस्त्र और तलवारें हाथमें लेकर देवताओंपर टूट पड़े; परन्तु देवता अमृत पीकर बलवान् हो चुके थे, उन्होंने दैत्य-सेनाको परास्त कर दिया। देवताओंकी मार पड़नेपर दैत्योंने भागकर चारों दिशाओंकी शरण ली और कितने ही पातालमें घुस गये। तब सम्पूर्ण देवता आनन्दमग्न हो शंख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् श्रीविष्णुको प्रणाम करके स्वर्गलोकको चले गये।

तबसे सूर्यदेवकी प्रभा स्वच्छ हो गयी। वे अपने मार्गसे चलने लगे। भगवान् अग्निदेव भी मनोहर दीप्तिसे युक्त हो प्रज्वलित होने लगे तथा सब प्राणियोंका मन धर्ममें संलग्न रहने लगा। भगवान् विष्णुसे सुरक्षित होकर समस्त त्रिलोकी श्रीसम्पन्न हो गयी। उस समय समस्त लोकोंको धारण करनेवाले ब्रह्माजीने देवताओंसे कहा—'देवगण! मैंने तुम्हारी रक्षाके लिये भगवान् श्रीविष्णुको तथा देवताओंके स्वामी उमापति महादेवजीको नियत किया है; वे दोनों तुम्हारे योगक्षेमका निर्वाह करेंगे। तुम सदा उनकी उपासना करते रहना; क्योंकि वे तुम्हारा कल्याण करनेवाले हैं। उपासना करनेसे ये दोनों महानुभाव सदा तुम्हारे क्षेमके साधक और वरदायक होंगे।' यों कहकर भगवान् ब्रह्मा अपने धामको चले गये। उनके जानेके बाद इन्द्रने देवलोककी राह ली। तत्पश्चात् श्रीहरि और शंकरजी भी अपने-अपने धाम—वैकुण्ठ एवं कैलासमें जा पहुँचे। तदनन्तर देवराज इन्द्र तीनों लोकोंकी रक्षा करने लगे। महाभाग! इस प्रकार लक्ष्मीजी क्षीरसागरसे प्रकट हुई थीं। यद्यपि वे सनातनी देवी हैं, तो भी एक समय भृगुकी पत्नी ख्यातिके गर्भसे भी उन्होंने जन्म ग्रहण किया था।

सतीका देहत्याग और दक्ष-यज्ञ-विध्वंस

भीष्मजीने पूछा—ब्रह्मन्! दक्षकन्या सती तो बड़ी शुभलक्षणा थीं, उन्होंने अपने शरीरका त्याग क्यों किया? तथा भगवान् रुद्रने किस कारणसे दक्षके यज्ञका विध्वंस किया?

पुलस्त्यजीने कहा—भीष्म! प्राचीन कालकी बात है, दक्षने गंगाद्वारमें यज्ञ किया। उसमें देवता, असुर, पितर और महर्षि सब बड़ी प्रसन्नताके साथ पधारे। इन्द्रसहित देवता, नाग, यक्ष, गरुड, लताएँ, ओषधियाँ, कश्यप, भगवान् अत्रि, मैं, पुलह, क्रतु, प्राचेतस, अंगिरा तथा महातपस्वी वसिष्ठजी भी उपस्थित हुए। वहाँ सब ओरसे बराबर वेदी बनाकर उसके ऊपर चातुर्होत्रकी* स्थापना हुई। उस यज्ञमें महर्षि वसिष्ठ होता, अंगिरा अध्वर्यु, बृहस्पति उद्‌गाता तथा नारदजी ब्रह्मा हुए। जब यज्ञकर्म आरम्भ हुआ और अग्निमें हवन होने लगा, उस समयतक देवताओंके आनेका क्रम जारी रहा। स्थावर और जंगम—सभी प्रकारके प्राणी वहाँ उपस्थित थे। इसी समय ब्रह्माजी अपने पुत्रोंके साथ आकर यज्ञके सभासद् हुए तथा साक्षात् भगवान्

* होता, अध्वर्यु, उद्‌गाता और ब्रह्मा—इन चारोंके द्वारा सम्पन्न होनेवाले यज्ञको चातुर्होत्र कहते हैं।

श्रीविष्णु भी यज्ञकी रक्षाके लिये वहाँ पधारे। आठों वसु, बारहों आदित्य, दोनों अश्विनीकुमार, उनचासों मरुद्गण तथा चौदहों मनु भी वहाँ आये थे। इस प्रकार यज्ञ होने लगा, अग्निमें आहुतियाँ पड़ने लगीं। वहाँ भक्ष्य-भोज्य सामग्रीका बहुत ही सुन्दर और भारी ठाट-बाट था। ऐश्वर्यकी पराकाष्ठा दिखायी देती थी। चारों ओरसे दस योजन भूमि यज्ञके समारोहसे पूर्ण थी। वहाँ एक विशाल वेदी बनायी गयी थी, जहाँ सब लोग एकत्रित थे। शुभलक्षणा सतीने इन सारे आयोजनोंको देखा और यज्ञमें आये हुए इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवताओंको लक्ष्य किया। इसके बाद वे अपने पितासे विनययुक्त वचन बोलीं।

सतीने कहा—पिताजी! आपके यज्ञमें सम्पूर्ण देवता और ऋषि पधारे हैं। देवराज इन्द्र अपनी धर्मपत्नी शचीके साथ ऐरावतपर चढ़कर आये हैं। पापियोंका दमन करनेवाले तथा धर्मात्माओंके रक्षक परमधर्मिष्ठ यमराज भी धूमोर्णाके साथ दृष्टिगोचर हो रहे हैं। जल-जन्तुओंके स्वामी वरुणदेव अपनी पत्नी गौरीके साथ इस यज्ञमण्डपमें सुशोभित हैं। यक्षोंके राजा कुबेर भी अपनी पत्नीके साथ आये हैं। देवताओंके मुखस्वरूप अग्निदेवने भी यज्ञ-मण्डपमें पदार्पण किया है। वायु देवता अपने उनचास गणोंके साथ और लोकपावन सूर्यदेव अपनी भार्या संज्ञाके साथ पधारे हैं। महान् यशस्वी चन्द्रमा भी सपत्नीक आये हैं। आठों वसु और दोनों अश्विनीकुमार भी उपस्थित हैं। इनके सिवा वृक्ष, वनस्पति, गन्धर्व, अप्सराएँ, विद्याधर, भूतोंके समुदाय, वेताल, यक्ष, राक्षस, भयंकर कर्म करनेवाले पिशाच तथा दूसरे-दूसरे प्राणधारी जीव भी यहाँ मौजूद हैं। भगवान् कश्यप, शिष्योंसहित वसिष्ठजी, पुलस्त्य, पुलह, सनकादि महर्षि तथा भूमण्डलके समस्त पुण्यात्मा राजा यहाँ पधारे हैं। अधिक क्या कहूँ, ब्रह्माजीकी बनायी हुई सारी सृष्टि ही यहाँ आ पहुँची है। ये हमारी बहिनें हैं, ये भानजे हैं और ये बहनोई हैं। ये सब-के-सब अपनी-अपनी स्त्री, पुत्र और बान्धवोंके साथ यहाँ उपस्थित दिखायी देते हैं। आपने दान-मानादिके द्वारा इन सबका यथावत् सत्कार किया है। केवल मेरे पति भगवान् शंकर ही इस यज्ञमण्डपमें नहीं पधारे हैं; उनके बिना यह सारा आयोजन मुझे सूना-सा ही जान पड़ता है। मैं समझती हूँ आपने मेरे पतिको निमन्त्रित नहीं किया है; निश्चय ही आप उन्हें भूल गये हैं। इसका क्या कारण है? मुझे सब बातें बताइये।

पुलस्त्यजी कहते हैं—प्रजापति दक्षने सतीके वचन सुने। सती उन्हें प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय थीं, उन्होंने पतिके स्नेहमें डूबी हुई परम सौभाग्यवती पतिव्रता सतीको गोदमें बिठा लिया और गम्भीर होकर कहा—'बेटी! सुनो; जिस कारणसे आज मैंने तुम्हारे पतिको निमन्त्रित नहीं किया है, वह सब ठीक-ठीक बताता हूँ। वे अपने शरीरमें राख लपेटे रहते हैं। त्रिशूल और दण्ड लिये नंग-धड़ंग सदा श्मशानभूमिमें ही विचरा करते हैं। व्याघ्रचर्म पहनते और हाथीका चमड़ा ओढ़ते हैं। कंधेपर नरमुण्डोंकी माला और हाथमें खट्वांग—यही उनके आभूषण हैं। वे नागराज वासुकिको यज्ञोपवीतके रूपमें धारण किये रहते हैं और इसी रूपमें वे सदा इस पृथ्वीपर भ्रमण करते हैं। इसके सिवा और भी बहुत-से घृणित कार्य तुम्हारे पति-देवता करते रहते हैं। यह सब मेरे लिये बड़ी लज्जाकी बात है। भला, इन देवताओंके निकट वे उस अभद्र वेषमें कैसे बैठ सकते हैं। जैसा उनका वस्त्र है, उसे पहनकर वे इस यज्ञमण्डपमें आनेयोग्य नहीं हैं। बेटी! इन्हीं दोषोंके कारण तथा लोक-लज्जाके भयसे मैंने उन्हें नहीं बुलाया। जब यज्ञ समाप्त हो जायगा, तब मैं तुम्हारे पतिको ले आऊँगा और त्रिलोकीमें सबसे बढ़-चढ़कर उनकी पूजा करूँगा; साथ ही तुम्हारा भी यथावत् सत्कार करूँगा। अतः इसके लिये तुम्हें खेद या क्रोध नहीं करना चाहिये।'

भीष्म! प्रजापति दक्षके ऐसा कहनेपर सतीको बड़ा शोक हुआ, उनकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं। वे पिताकी निन्दा करती हुई बोलीं—'तात! भगवान् शंकर ही सम्पूर्ण जगत्के स्वामी हैं, वे ही सबसे श्रेष्ठ माने गये हैं। समस्त देवताओंको जो ये उत्तमोत्तम स्थान प्राप्त हुए हैं, ये सब परम बुद्धिमान् महादेवजीके ही दिये

हुए हैं। भगवान् शिवमें जितने गुण हैं, उनका पूर्णतया वर्णन करनेमें ब्रह्माजीकी जिह्वा भी समर्थ नहीं है। वे ही सबके धाता (धारण करनेवाले) और विधाता (नियामक) हैं। वे ही दिशाओंके पालक हैं। भगवान् रुद्रके प्रसादसे ही इन्द्रको स्वर्गका आधिपत्य प्राप्त हुआ है। यदि रुद्रमें देवत्व है, यदि वे सर्वत्र व्यापक और कल्याणस्वरूप हैं, तो इस सत्यके प्रभावसे शंकरजी आपके यज्ञका विध्वंस कर डालें।'

इतना कहकर सती योगस्थ हो गयीं—उन्होंने ध्यान लगाया और अपने ही शरीरसे प्रकट हुई अग्निके

द्वारा अपनेको भस्म कर दिया। उस समय देवता, असुर, नाग, गन्धर्व और गुह्यक 'यह क्या! यह क्या!' कहते ही रह गये; किन्तु क्रोधमें भरी हुई सतीने गंगाके तटपर अपने देहका त्याग कर दिया। गंगाजीके पश्चिमी तटपर वह स्थान आज भी 'सौनक तीर्थ' के नामसे प्रसिद्ध है। भगवान् रुद्रने जब यह समाचार सुना, तब अपनी पत्नीकी मृत्युसे उन्हें बड़ा दुःख हुआ और उनके मनमें समस्त देवताओंके देखते-देखते उस यज्ञको नष्ट कर डालनेका विचार उत्पन्न हुआ। फिर तो उन्होंने दक्षयज्ञका विनाश करनेके लिये करोड़ों गणोंको आज्ञा दी। उनमें विनायक-सम्बन्धी ग्रह, भूत, प्रेत तथा पिशाच—सब थे। यज्ञमण्डपमें पहुँचकर उन्होंने सब देवताओंको परास्त किया और उन्हें भगाकर उस यज्ञको तहस-नहस कर डाला। यज्ञ नष्ट हो जानेसे दक्षका सारा उत्साह जाता रहा। वे उद्योगशून्य होकर देवाधिदेव पिनाकधारी भगवान् शिवके पास डरते-डरते गये और इस प्रकार बोले—'देव! मैं आपके प्रभावको नहीं जानता था; आप देवताओंके प्रभु और ईश्वर हैं। इस जगत्के अधीश्वर भी आप ही हैं; आपने सम्पूर्ण देवताओंको जीत लिया। महेश्वर! अब मुझपर कृपा कीजिये और अपने सब गणोंको लौटाइये।'

दक्षप्रजापतिने भगवान् शंकरकी शरणमें जाकर जब इस प्रकार उनकी स्तुति और आराधना की, तब भगवान्ने कहा—'प्रजापते! मैंने तुम्हें यज्ञका पूरा-पूरा फल दे दिया। तुम अपनी सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धिके लिये यज्ञका उत्तम फल प्राप्त करोगे।' भगवान्के ऐसा कहनेपर दक्षने उन्हें प्रणाम किया और सब गणोंके देखते-देखते वे अपने निवास-स्थानको चले गये। उस समय भगवान् शिव अपनी पत्नीके वियोगसे गंगाद्वारमें ही जाकर रहने लगे। 'हाय! मेरी प्रिया कहाँ चली गयी।' इस प्रकार कहते हुए वे सदा सतीके चिन्तनमें लगे रहते थे। तदनन्तर एक दिन देवर्षि नारद महादेवजीके समीप आये और इस प्रकार बोले—'देवेश्वर! आपकी पत्नी सती देवी, जो आपको प्राणोंके समान प्रिय थीं, देहत्यागके पश्चात् इस समय हिमवान्की कन्या होकर प्रकट हुई हैं। मेनाके गर्भसे उनका आविर्भाव हुआ है। वे लोकके तात्त्विक अर्थको जाननेवाली थीं। उन्होंने इस समय दूसरा शरीर धारण किया है।'

नारदजीकी बात सुनकर महादेवजीने ध्यानस्थ हो देखा कि सती अवतार ले चुकी हैं। इससे उन्होंने अपनेको कृतकृत्य माना और स्वस्थचित्त होकर रहने लगे। फिर जब पार्वतीदेवी यौवनावस्थाको प्राप्त हुईं, तब शिवजीने पुनः उनके साथ विवाह किया। भीष्म! पूर्वकालमें जिस प्रकार दक्षका यज्ञ नष्ट हुआ था, उसका इस रूपमें मैंने तुमसे वर्णन किया है।

देवता, दानव, गन्धर्व, नाग और राक्षसोंकी उत्पत्तिका वर्णन

भीष्मजीने कहा—गुरुदेव! देवताओं, दानवों, गन्धर्वों, नागों और राक्षसोंकी उत्पत्तिका आप विस्तारके साथ वर्णन कीजिये।

पुलस्त्यजी बोले—कुरुनन्दन! कहते हैं पहलेके प्रजा-वर्गकी सृष्टि संकल्पसे, दर्शनसे तथा स्पर्श करनेसे होती थी; किन्तु प्रचेताओंके पुत्र दक्षप्रजापतिके बाद मैथुनसे प्रजाकी उत्पत्ति होने लगी। दक्षने आदिमें जिस प्रकार प्रजाकी सृष्टि की, उसका वर्णन सुनो। जब वे [पहलेके नियमानुसार संकल्प आदिसे] देवता, ऋषि और नागोंकी सृष्टि करने लगे किन्तु प्रजाकी वृद्धि नहीं हुई, तब उन्होंने मैथुनके द्वारा अपनी पत्नी वीरिणीके गर्भसे साठ कन्याओंको जन्म दिया। उनमेंसे उन्होंने दस धर्मको, तेरह कश्यपको, सत्ताईस चन्द्रमाको, चार अरिष्टनेमिको, दो भृगुपुत्रको, दो बुद्धिमान् कृशाश्वको तथा दो महर्षि अंगिराको ब्याह दीं। वे सब देवताओंकी जननी हुईं। उनके वंश-विस्तारका आरम्भसे ही वर्णन करता हूँ, सुनो। अरुन्धती, वसु, जामी, लंबा, भानु, मरुत्वती, संकल्पा, मुहूर्ता, साध्या और विश्वा—ये दस धर्मकी पत्नियाँ बतायी गयी हैं। इनके पुत्रोंके नाम सुनो। विश्वाके गर्भसे विश्वेदेव हुए। साध्याने साध्य नामक देवताओंको जन्म दिया। मरुत्वतीसे मरुत्वान् नामक देवताओंकी उत्पत्ति हुई। वसुके पुत्र आठ वसु कहलाये। भानुसे भानु और मुहूर्तासे मुहूर्ताभिमानी देवता उत्पन्न हुए। लंबासे घोष, जामीसे नागवीथी नामकी कन्या तथा अरुन्धतीके गर्भसे पृथ्वीपर होनेवाले समस्त प्राणी उत्पन्न हुए। संकल्पसे संकल्पोंका जन्म हुआ। अब वसुकी सृष्टिका वर्णन सुनो। जो देवगण अत्यन्त प्रकाशमान और सम्पूर्ण दिशाओंमें व्यापक हैं, वे वसु कहलाते हैं; उनके नाम सुनो। आप, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास—ये आठ वसु हैं। 'आप' के चार पुत्र हैं—शान्त, वैतण्ड, साम्ब और मुनिबभ्रु। ये सब यज्ञरक्षाके अधिकारी हैं। ध्रुवके पुत्र काल और सोमके पुत्र वर्चा हुए। धरके दो पुत्र हुए—द्रविण और हव्यवाह। अनिलके पुत्र प्राण, रमण और शिशिर थे। अनलके कई पुत्र हुए, जो प्रायः अग्निके समान गुणवाले थे। अग्निपुत्र कुमारका जन्म सरकंडोंमें हुआ। उनके शाख, उपशाख और नैगमेय—ये तीन पुत्र हुए। कृत्तिकाओंकी सन्तान होनेके कारण कुमारको कार्तिकेय भी कहते हैं। प्रत्यूषके पुत्र देवल नामके मुनि हुए। प्रभाससे प्रजापति विश्वकर्माका जन्म हुआ, जो शिल्पकलाके ज्ञाता हैं। वे महल, घर, उद्यान, प्रतिमा, आभूषण, तालाब, उपवन और कूप आदिका निर्माण करनेवाले हैं। देवताओंके कारीगर वे ही हैं।

अजैकपाद्, अहिर्बुध्न्य, विरूपाक्ष, रैवत, हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, सावित्र, जयन्त, पिनाकी और अपराजित—ये ग्यारह रुद्र कहे गये हैं; ये गणोंके स्वामी हैं। इनके मानस संकल्पसे उत्पन्न चौरासी करोड़ पुत्र हैं, जो रुद्रगण कहलाते हैं। वे श्रेष्ठ त्रिशूल धारण किये रहते हैं। उन सबको अविनाशी माना गया है। जो गणेश्वर सम्पूर्ण दिशाओंमें रहकर सबकी रक्षा करते हैं, वे सब सुरभिके गर्भसे उत्पन्न उन्हींके पुत्र-पौत्रादि हैं। अब मैं कश्यपजीकी स्त्रियोंसे उत्पन्न पुत्र-पौत्रोंका वर्णन करूँगा। अदिति, दिति, दनु, अरिष्टा, सुरसा, सुरभि, विनता, ताम्रा, क्रोधवशा, इरा, कद्रू, खसा और मुनि—ये कश्यपजीकी पत्नियोंके नाम हैं। इनके पुत्रोंका वर्णन सुनो। चाक्षुष मन्वन्तरमें जो तुषित नामसे प्रसिद्ध देवता थे, वे ही वैवस्वत मन्वन्तरमें बारह आदित्य हुए। उनके नाम हैं—इन्द्र, धाता, भग, त्वष्टा, मित्र, वरुण, अर्यमा, विवस्वान्, सविता, पूषा, अंशुमान् और विष्णु। ये सहस्रों किरणोंसे सुशोभित बारह आदित्य माने गये हैं। इन श्रेष्ठ पुत्रोंको देवी अदितिने मरीचिनन्दन कश्यपके अंशसे उत्पन्न किया था। कृशाश्व नामक ऋषिसे जो पुत्र हुए, उन्हें देव-प्रहरण कहते हैं। ये देवगण प्रत्येक मन्वन्तर और प्रत्येक कल्पमें उत्पन्न एवं विलीन होते रहते हैं।

भीष्म! हमारे सुननेमें आया है कि दितिने कश्यपजीसे दो पुत्र प्राप्त किये, जिनके नाम थे—हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष। हिरण्यकशिपुसे चार पुत्र

उत्पन्न हुए—प्रह्लाद, अनुह्लाद, संह्लाद और ह्लाद। प्रह्लादके चार पुत्र हुए—आयुष्मान्, शिबि, वाष्कलि और चौथा विरोचन। विरोचनको बलि नामक पुत्रकी प्राप्ति हुई। बलिके सौ पुत्र हुए। उनमें बाण जेठा था। गुणोंमें भी वह सबसे बढ़ा-चढ़ा था। बाणके एक हजार बाँहें थीं तथा वह सब प्रकारके अस्त्र चलानेकी कलामें भी पूरा प्रवीण था। त्रिशूलधारी भगवान् शंकर उसकी तपस्यासे सन्तुष्ट होकर उसके नगरमें निवास करते थे। बाणासुरको 'महाकाल' की पदवी तथा साक्षात् पिनाकपाणि भगवान् शिवकी समानता प्राप्त हुई—वह महादेवजीका सहचर हुआ। हिरण्याक्षके उलूक, शकुनि, भूतसन्तापन और महाभीम—ये चार पुत्र थे। इनसे सत्ताईस करोड़ पुत्र-पौत्रोंका विस्तार हुआ। वे सभी महाबली, अनेक रूपधारी तथा अत्यन्त तेजस्वी थे। दनुने कश्यपजीसे सौ पुत्र प्राप्त किये। वे सभी वरदान पाकर उन्मत्त थे। उनमें सबसे ज्येष्ठ और अधिक बलवान् विप्रचित्ति था। दनुके शेष पुत्रोंके नाम स्वर्भानु और वृषपर्वा आदि थे। स्वर्भानुसे सुप्रभा और पुलोमा नामक दानवसे शची नामकी कन्या हुई। मयके तीन कन्याएँ हुईं—उपदानवी, मन्दोदरी और कुहू। वृषपर्वाके दो कन्याएँ थीं—सुन्दरी शर्मिष्ठा और चन्द्रा। वैश्वानरके भी दो पुत्रियाँ थीं—पुलोमा और कालका। ये दोनों ही बड़ी शक्तिशालिनी तथा अधिक सन्तानोंकी जननी हुईं। इन दोनोंसे साठ हजार दानवोंकी उत्पत्ति हुई। पुलोमाके पुत्र पौलोम और कालकाके कालखंज (या कालकेय) कहलाये। ब्रह्माजीसे वरदान पाकर ये मनुष्योंके लिये अवध्य हो गये थे और हिरण्यपुरमें निवास करते थे; फिर भी ये अर्जुनके हाथसे मारे गये।*

विप्रचित्तिने सिंहिकाके गर्भसे एक भयंकर पुत्रको जन्म दिया, जो सैंहिकेय (राहु)-के नामसे प्रसिद्ध था। हिरण्यकशिपुकी बहिन सिंहिकाके कुल तेरह पुत्र थे, जिनके नाम ये हैं—कंस, शंख, नल, वातापि, इल्वल, नमुचि, खसृम, अंजन, नरक, कालनाभ, परमाणु, कल्पवीर्य तथा दनुवंशविवर्धन। संह्लाद दैत्यके वंशमें निवातकवचोंका जन्म हुआ। वे गन्धर्व, नाग, राक्षस एवं सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये अवध्य थे। परन्तु वीरवर अर्जुनने संग्राम-भूमिमें उन्हें भी बलपूर्वक मार डाला। ताम्राने कश्यपजीके वीर्यसे छः कन्याओंको जन्म दिया, जिनके नाम हैं—शुकी, श्येनी, भासी, सुगृध्री, गृध्रिका और शुचि। शुकीने शुक और उल्लू नामवाले पक्षियोंको उत्पन्न किया। श्येनीने श्येनों (बाजों)-को तथा भासीने कुरर नामक पक्षियोंको जन्म दिया। गृध्रीसे गृध्र और सुगृध्रीसे कबूतर उत्पन्न हुए तथा शुचिने हंस, सारस, कारण्ड एवं प्लव नामके पक्षियोंको जन्म दिया। यह ताम्राके वंशका वर्णन हुआ। अब विनताकी सन्तानोंका वर्णन सुनो। पक्षियोंमें श्रेष्ठ गरुड और अरुण विनताके पुत्र हैं तथा उनके एक सौदामनी नामकी कन्या भी है, जो यह आकाशमें चमकती दिखायी देती है। अरुणके दो पुत्र हुए—सम्पाति और जटायु। सम्पातिके पुत्रोंका नाम बभ्रु और शीघ्रग हैं। इनमें शीघ्रग विख्यात हैं। जटायुके भी दो पुत्र हुए—कर्णिकार और शतगामी। वे दोनों ही प्रसिद्ध थे। इन पक्षियोंके असंख्य पुत्र-पौत्र हुए।

सुरसाके गर्भसे एक हजार सर्पोंकी उत्पत्ति हुई तथा उत्तम व्रतका पालन करनेवाली कद्रूने हजार मस्तकवाले एक सहस्र नागोंको पुत्रके रूपमें प्राप्त किया। उनमें छब्बीस नाग प्रधान एवं विख्यात हैं—शेष, वासुकि, कर्कोटक, शंख, ऐरावत, कम्बल, धनंजय, महानील, पद्म, अश्वतर, तक्षक, एलापत्र, महापद्म, धृतराष्ट्र, बलाहक, शंखपाल, महाशंख, पुष्पदन्त, सुभावन, शंखरोमा, नहुष, रमण, पाणिनि, कपिल, दुर्मुख तथा पतंजलिमुख। इन सबके पुत्र-पौत्रोंकी संख्याका अन्त नहीं है। इनमेंसे अधिकांश नाग पूर्वकालमें राजा जनमेजयके यज्ञ-मण्डपमें जला दिये गये। क्रोधवशाने अपने ही नामके क्रोधवशसंज्ञक राक्षससमूहको उत्पन्न किया। उनकी बड़ी-बड़ी दाढ़ें थीं। उनमेंसे दस लाख

* यहाँ तथा आगेके प्रसंगोंमें भी पुलस्त्यजी भविष्यकी बात भूतकालकी भाँति कह रहे हैं—यही समझना चाहिये।

क्रोधवश भीमसेनके हाथसे मारे गये। सुरभिने कश्यपजीके अंशसे रुद्रगण, गाय, भैंस तथा सुन्दरी स्त्रियोंको जन्म दिया। मुनिसे मुनियोंका समुदाय तथा अप्सराएँ प्रकट हुईं। अरिष्टाने बहुत-से किन्नरों और गन्धर्वोंको जन्म दिया। इरासे तृण, वृक्ष, लताएँ और झाड़ियाँ—इन सबकी उत्पत्ति हुई। खसाने करोड़ों राक्षसों और यक्षोंको जन्म दिया। भीष्म! ये सैकड़ों और हजारों कोटियाँ कश्यपजीकी सन्तानोंकी हैं। यह स्वारोचिष मन्वन्तरकी सृष्टि बतायी गयी है। सबसे पीछे दितिने कश्यपजीसे उनचास मरुद्गणोंको उत्पन्न किया, जो सब-के-सब धर्मके ज्ञाता और देवताओंके प्रिय हैं।

मरुद्गणोंकी उत्पत्ति, भिन्न-भिन्न समुदायके राजाओं तथा चौदह मन्वन्तरोंका वर्णन

भीष्मजीने पूछा—ब्रह्मन्! दितिके पुत्र मरुद्गणोंकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई? वे देवताओंके प्रिय कैसे हो गये? देवता तो दैत्योंके शत्रु हैं, फिर उनके साथ मरुद्गणोंकी मैत्री क्योंकर सम्भव हुई?

पुलस्त्यजीने कहा—भीष्म! पहले देवासुर-संग्राममें भगवान् श्रीविष्णु और देवताओंके द्वारा अपने पुत्र-पौत्रोंके मारे जानेपर दितिको बड़ा शोक हुआ। वे आर्त्त होकर परम उत्तम भूलोकमें आयीं और सरस्वतीके तटपर पुष्कर नामके शुभ एवं महान् तीर्थमें रहकर सूर्यदेवकी आराधना करने लगीं। उन्होंने बड़ी उग्र तपस्या की। दैत्य-माता दिति ऋषियोंके नियमोंका पालन करतीं और फल खाकर रहती थीं। वे कृच्छ्र-चान्द्रायण आदि कठोर व्रतोंके पालनद्वारा तपस्या करने लगीं। जरा और शोकसे व्याकुल होकर उन्होंने सौ वर्षोंसे कुछ अधिक कालतक तप किया। उसके बाद वसिष्ठ आदि महर्षियोंसे पूछा—'मुनिवरो! क्या कोई ऐसा भी व्रत है, जो मेरे पुत्रशोकको नष्ट करनेवाला तथा इहलोक और परलोकमें भी सौभाग्यरूप फल प्रदान करनेवाला हो? यदि हो तो, बताइये।' वसिष्ठ आदि महर्षियोंने ज्येष्ठकी पूर्णिमाका व्रत बताया तथा दितिने भी उस व्रतका सांगोपांग वर्णन सुनकर उसका यथावत् अनुष्ठान किया। उस व्रतके माहात्म्यसे प्रभावित होकर कश्यपजी बड़ी प्रसन्नताके साथ दितिके आश्रमपर आये। दितिका शरीर तपस्यासे कठोर हो गया था। किन्तु कश्यपजीने उन्हें पुनः रूप और लावण्यसे युक्त कर दिया और उनसे वर माँगनेका अनुरोध किया। तब दितिने वर माँगते हुए कहा—'भगवन्! मैं इन्द्रका वध करनेके लिये एक ऐसे पुत्रकी याचना करती हूँ, जो समृद्धिशाली, अत्यन्त तेजस्वी तथा समस्त देवताओंका संहार करनेवाला हो।'

कश्यपने कहा—'शुभे! मैं तुम्हें इन्द्रका घातक एवं बलिष्ठ पुत्र प्रदान करूँगा।' तत्पश्चात् कश्यपने दितिके उदरमें गर्भ स्थापित किया और कहा—'देवि! तुम्हें सौ वर्षोंतक इसी तपोवनमें रहकर इस गर्भकी रक्षाके लिये यत्न करना चाहिये। गर्भिणीको सन्ध्याके समय भोजन नहीं करना चाहिये तथा वृक्षकी जड़के पास न तो कभी जाना चाहिये और न ठहरना ही चाहिये। वह जलके भीतर न घुसे, सूने घरमें न प्रवेश करे। बाँबीपर खड़ी न हो। कभी मनमें उद्वेग न लाये। सूने घरमें बैठकर नख अथवा राखसे भूमिपर रेखा न खींचे, न तो सदा अलसाकर पड़ी रहे और न अधिक परिश्रम ही करे, भूसी, कोयले, राख, हड्डी और खपड़ेपर न बैठे। लोगोंसे कलह करना छोड़ दे, अँगड़ाई न ले, बाल खोलकर खड़ी न हो और कभी भी अपवित्र न रहे। उत्तरकी ओर अथवा नीचे सिर करके कभी न सोये। नंगी होकर, उद्वेगमें पड़कर और बिना पैर धोये भी शयन करना मना है। अमंगलयुक्त वचन मुँहसे न निकाले, अधिक हँसी-मजाक भी न करे। गुरुजनोंके साथ सदा आदरका बर्ताव करे, मांगलिक कार्योंमें लगी रहे, सर्वौषधियोंसे युक्त जलके द्वारा स्नान करे। अपनी रक्षाका प्रबन्ध रखे। गुरुजनोंकी सेवा करे और वाणीसे सबका सत्कार करती रहे। स्वामीके प्रिय और हितमें तत्पर रहकर सदा प्रसन्नमुखी बनी रहे। किसी भी अवस्थामें कभी पतिकी निन्दा न करे।'

यह कहकर कश्यपजी सब प्राणियोंके देखते-देखते

वहाँसे अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर पतिकी बातें सुनकर दिति विधिपूर्वक उनका पालन करने लगीं। इससे इन्द्रको बड़ा भय हुआ। वे देवलोक छोड़कर दितिके पास आये और उनकी सेवाकी इच्छासे वहाँ रहने लगे। इन्द्रका भाव विपरीत था, वे दितिका छिद्र ढूँढ़ रहे थे। बाहरसे तो उनका मुख प्रसन्न था, किन्तु भीतरसे वे भयके मारे विकल थे। वे ऊपरसे ऐसा भाव जताते थे, मानो दितिके कार्य और अभिप्रायको जानते ही न हों। परन्तु वास्तवमें अपना काम बनाना चाहते थे। तदनन्तर जब सौ वर्षकी समाप्तिमें तीन ही दिन बाकी रह गये, तब दितिको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे अपनेको कृतार्थ मानने लगीं तथा उनका हृदय विस्मयविमुग्ध रहने लगा। उस दिन वे पैर धोना भूल गयीं और बाल खोले हुए ही सो गयीं। इतना ही नहीं, निद्राके भारसे दबी होनेके कारण दिनमें उनका सिर कभी नीचेकी ओर हो गया। यह अवसर पाकर शचीपति इन्द्र दितिके गर्भमें प्रवेश कर गये और अपने वज्रके द्वारा उन्होंने उस गर्भस्थ बालकके सात टुकड़े कर डाले। तब वे सातों टुकड़े सूर्यके समान तेजस्वी सात कुमारोंके रूपमें परिणत हो गये और रोने लगे। उस समय दानवशत्रु इन्द्रने उन्हें रोनेसे मना किया तथा पुनः उनमेंसे एक-एकके सात-सात टुकड़े कर दिये। इस प्रकार उनचास कुमारोंके रूपमें होकर वे जोर-जोरसे रोने लगे। तब इन्द्रने '**मा रुदध्वम्**' (मत रोओ) ऐसा कहकर उन्हें बारम्बार रोनेसे रोका और मन-ही-मन सोचा कि ये बालक धर्म और ब्रह्माजीके प्रभावसे पुनः जीवित हो गये हैं। इस पुण्यके योगसे ही इन्हें जीवन मिला है, ऐसा जानकर वे इस निश्चयपर पहुँचे कि 'यह पौर्णमासी व्रतका फल है। निश्चय ही इस व्रतका अथवा ब्रह्माजीकी पूजाका यह परिणाम है कि वज्रसे मारे जानेपर भी इनका विनाश नहीं हुआ। ये एकसे अनेक हो गये, फिर भी उदरकी रक्षा हो रही है। इसमें सन्देह नहीं कि ये अवध्य हैं, इसलिये ये देवता हो जायँ। जब ये रो रहे थे, उस समय मैंने इन गर्भके बालकोंको '**मा रुदः**' कहकर चुप कराया है, इसलिये ये 'मरुत्' नामसे प्रसिद्ध होकर कल्याणके भागी बनें।'

ऐसा विचार कर इन्द्रने दितिसे कहा—'माँ! मेरा अपराध क्षमा करो, मैंने अर्थशास्त्रका सहारा लेकर यह दुष्कर्म किया है।' इस प्रकार बारम्बार कहकर उन्होंने दितिको प्रसन्न किया और मरुद्गणोंको देवताओंके समान बना दिया। तत्पश्चात् देवराजने पुत्रोंसहित दितिको विमानपर बिठाया और उनको साथ लेकर वे स्वर्गको चले गये। मरुद्गण यज्ञ-भागके अधिकारी हुए; उन्होंने असुरोंसे मेल नहीं किया, इसलिये वे देवताओंके प्रिय हुए।

भीष्मजीने कहा—ब्रह्मन्! आपने आदिसर्ग और प्रतिसर्गका विस्तारके साथ वर्णन किया। अब जिनके जो स्वामी हों, उनका वर्णन कीजिये।

पुलस्त्यजी बोले—राजन्! जब पृथु इस पृथ्वीके सम्पूर्ण राज्यपर अभिषिक्त होकर सबके राजा हुए, उस समय ब्रह्माजीने चन्द्रमाको अन्न, ब्राह्मण, व्रत और तपस्याका अधिपति बनाया। हिरण्यगर्भको नक्षत्र, तारे, पक्षी, वृक्ष, झाड़ी और लता आदिका स्वामी बनाया। वरुणको जलका, कुबेरको धनका, विष्णुको आदित्योंका और अग्निको वसुओंका अधिपति बनाया। दक्षको प्रजापतियोंका, इन्द्रको देवताओंका, प्रह्लादको दैत्यों और दानवोंका, यमराजको पितरोंका, शूलपाणि भगवान् शंकरको पिशाच, राक्षस, पशु, भूत, यक्ष और वेतालराजोंका, हिमालयको पर्वतोंका, समुद्रको नदियोंका, चित्ररथको गन्धर्व, विद्याधर और किन्नरोंका, भयंकर पराक्रमी वासुकिको नागोंका, तक्षकको सर्पोंका, गजराज ऐरावतको दिग्गजोंका, गरुड़को पक्षियोंका, उच्चैःश्रवाको घोड़ोंका, सिंहको मृगोंका, साँड़को गौओंका तथा प्लक्ष (पाकड़)-को सम्पूर्ण वनस्पतियोंका अधीश्वर बनाया। इस प्रकार पूर्वकालमें ब्रह्माजीने इन सभी अधिपतियोंको भिन्न-भिन्न वर्गके राजपदपर अभिषिक्त किया था।

कौरवनन्दन! पहले स्वायम्भुव मन्वन्तरमें याम्य नामसे प्रसिद्ध देवता थे। मरीचि आदि मुनि ही सप्तर्षि माने जाते थे। आग्नीध्र, अग्निबाहु, विभु, सवन, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, हव्य, मेधा, मेधातिथि और

वसु—ये दस स्वायम्भुव मनुके पुत्र हुए, जिन्होंने अपने वंशका विस्तार किया। ये प्रतिसर्गकी सृष्टि करके परमपदको प्राप्त हुए। यह स्वायम्भुव मन्वन्तरका वर्णन हुआ। इसके बाद स्वारोचिष मन्वन्तर आया। स्वारोचिष मनुके चार पुत्र हुए, जो देवताओंके समान तेजस्वी थे। उनके नाम हैं—नभ, नभस्य, प्रसृति और भावन। इनमेंसे भावन अपनी कीर्तिका विस्तार करनेवाला था। दत्तात्रेय, अत्रि, च्यवन, स्तम्ब, प्राण, कश्यप तथा बृहस्पति—ये सात सप्तर्षि हुए। उस समय तुषित नामके देवता थे। हवीन्द्र, सुकृत, मूर्ति, आप और ज्योतीरथ—ये वसिष्ठके पाँच पुत्र ही स्वारोचिष मन्वन्तरमें प्रजापति थे। यह द्वितीय मन्वन्तरका वर्णन हुआ। इसके बाद औत्तम मन्वन्तरका वर्णन करूँगा। तीसरे मनुका नाम था औत्तमि। उन्होंने दस पुत्र उत्पन्न किये, जिनके नाम हैं—ईष, ऊर्ज, तनूज, शुचि, शुक्र, मधु, माधव, नभस्य, नभ तथा सह। इनमें सह सबसे छोटा था। ये सब-के-सब उदार और यशस्वी थे। उस समय भानुसंज्ञक देवता और ऊर्ज नामके सप्तर्षि थे। कौकिभिण्डि, कुतुण्ड, दाल्भ्य, शंख, प्रवाहित, मित और सम्मित—ये सात योगवर्धन ऋषि थे। चौथा मन्वन्तर तामसके नामसे प्रसिद्ध है। उसमें कवि, पृथु, अग्नि, अकपि, कपि, जन्य तथा धामा—ये सात मुनि ही सप्तर्षि थे। साध्यगण देवता थे। अकल्मष, तपोधन्वा, तपोमूल, तपोधन, तपोराशि, तपस्य, सुतपस्य, परन्तप, तपोभागी और तपोयोगी—ये दस तामस मनुके पुत्र थे। जो धर्म और सदाचारमें तत्पर तथा अपने वंशका विस्तार करनेवाले थे। अब पाँचवें रैवत मन्वन्तरका वृत्तान्त श्रवण करो। देवबाहु, सुबाहु, पर्जन्य, सोमप, मुनि, हिरण्यरोमा और सप्ताश्व—ये सात रैवत मन्वन्तरके सप्तर्षि माने गये हैं। भूतरजा तथा प्रकृति नामवाले देवता थे तथा वरुण, तत्त्वदर्शी, चितिमान्, हव्यप, कवि, मुक्त, निरुत्सुक, सत्त्व, विमोह और प्रकाशक—ये दस रैवत मनुके पुत्र हुए, जो धर्म, पराक्रम और बलसे सम्पन्न थे। इसके बाद चाक्षुष मन्वन्तरमें भृगु, सुधामा, विरज, विष्णु, नारद, विवस्वान् और अभिमानी—ये सात सप्तर्षि हुए। उस समय लेख नामसे प्रसिद्ध देवता थे। इनके सिवा ऋभु, पृथग्भूत, वारिमूल और दिवौका नामके देवता भी थे। इस प्रकार चाक्षुष मन्वन्तरमें देवताओंकी पाँच योनियाँ थीं। चाक्षुष मनुके दस पुत्र हुए, जो रुरु आदि नामसे प्रसिद्ध थे।

अब सातवें मन्वन्तरका वर्णन करूँगा, जिसे वैवस्वत मन्वन्तर कहते हैं। इस समय [वैवस्वत मन्वन्तर ही चल रहा है, इसमें] अत्रि, वसिष्ठ, कश्यप, गौतम, योगी भरद्वाज, विश्वामित्र और जमदग्नि—ये सात ऋषि ही सप्तर्षि हैं। ये धर्मकी व्यवस्था करके परमपदको प्राप्त होते हैं। अब भविष्यमें होनेवाले सावर्ण्य मन्वन्तरका वर्णन किया जाता है। उस समय अश्वत्थामा, ऋष्यशृंग, कौशिक्य, गालव, शतानन्द, काश्यप तथा परशुराम—ये सप्तर्षि होंगे। धृति, वरीयान्, यवसु, सुवर्ण, धृष्टि, चरिष्णु, आद्य, सुमति, वसु तथा पराक्रमी शुक्र—ये भविष्यमें होनेवाले सावर्णि मनुके पुत्र बतलाये गये हैं। इसके सिवा रौच्य आदि दूसरे-दूसरे मनुओंके भी नाम आते हैं। प्रजापति रुचिके पुत्रका नाम रौच्य होगा। इसी प्रकार भूतिके पुत्र भौत्य नामके मनु कहलायेंगे। तदनन्तर मेरुसावर्णि नामक मनुका अधिकार होगा। वे ब्रह्माके पुत्र माने गये हैं। मेरुसावर्णिके बाद क्रमशः ऋभु, वीतधामा और विष्वक्सेन नामक मनु होंगे। राजन्! इस प्रकार मैंने तुम्हें भूत और भविष्य मनुओंका परिचय दिया है। इन चौदह मनुओंका अधिकार कुल मिलाकर एक हजार चतुर्युगतक रहता है। अपने-अपने मन्वन्तरमें इस सम्पूर्ण चराचर जगत्को उत्पन्न करके कल्पका संहार होनेपर ये ब्रह्माजीके साथ मुक्त हो जाते हैं। ये मनु प्रति एक सहस्र चतुर्युगीके बाद नष्ट होते रहते हैं तथा ब्रह्मा आदि विष्णुका सायुज्य प्राप्त करते हैं।

पृथुके चरित्र तथा सूर्यवंशका वर्णन

भीष्मजीने पूछा—ब्रह्मन्! सुना जाता है, पूर्वकालमें बहुत-से राजा इस पृथ्वीका उपभोग कर चुके हैं। पृथ्वीके सम्बन्धसे ही राजाओंको पार्थिव या पृथ्वीपति कहते हैं। परन्तु इस भूमिकी जो 'पृथ्वी' संज्ञा है, वह किसके सम्बन्धसे हुई है? भूमिको यह पारिभाषिक संज्ञा किसलिये दी गयी अथवा उसका 'गौ' नाम भी क्यों पड़ा, यह मुझे बताइये।

पुलस्त्यजीने कहा—स्वायम्भुव मनुके वंशमें एक अंग नामके प्रजापति थे। उन्होंने मृत्युकी कन्या सुनीथाके साथ विवाह किया था। सुनीथाका मुख बड़ा कुरूप था। उससे वेन नामक पुत्र हुआ, जो सदा अधर्ममें ही लगा रहता था। वह लोगोंकी बुराई करता और परायी स्त्रियोंको हड़प लेता था। एक दिन महर्षियोंने उसकी भलाई और जगत्के उपकारके लिये उसे बहुत कुछ समझाया-बुझाया; परन्तु उसका अन्त:करण अशुद्ध होनेके कारण उसने उनकी बात नहीं मानी, प्रजाको अभयदान नहीं दिया। तब ऋषियोंने शाप देकर उसे मार डाला। फिर अराजकताके भयसे पीड़ित होकर पापरहित ब्राह्मणोंने वेनके शरीरका बलपूर्वक मन्थन किया। मन्थन करनेपर उसके शरीरसे पहले म्लेच्छ जातियाँ उत्पन्न हुईं, जिनका रंग काले अंजनके समान था। तत्पश्चात् उसके दाहिने हाथसे एक दिव्य तेजोमय शरीरधारी धर्मात्मा पुरुषका प्रादुर्भाव हुआ, जो धनुष , बाण और गदा धारण किये हुए थे तथा रत्नमय कवच एवं अंगदादि आभूषणोंसे विभूषित थे। वे पृथुके नामसे प्रसिद्ध हुए। उनके रूपमें साक्षात् भगवान् विष्णु ही अवतीर्ण हुए थे। ब्राह्मणोंने उन्हें राज्यपर अभिषिक्त किया। राजा होनेपर उन्होंने देखा कि इस भूतलसे धर्म उठ गया है। न कहीं स्वाध्याय होता है, न वषट्कार (यज्ञादि)। तब वे क्रोध करके अपने बाणसे पृथ्वीको विदीर्ण कर डालनेके लिये उद्यत हो गये। यह देख पृथ्वी गौका रूप धारण करके भाग खड़ी हुई। उसे भागते देख पृथुने भी उसका पीछा किया। तब वह एक स्थानपर खड़ी होकर बोली—'राजन्! मेरे लिये क्या आज्ञा होती है?' पृथुने कहा—'सुव्रते! सम्पूर्ण चराचर जगत्के लिये जो अभीष्ट वस्तु है, उसे शीघ्र प्रस्तुत करो!' पृथ्वीने 'बहुत अच्छा' कहकर स्वीकृति दे दी। तब राजाने स्वायम्भुव मनुको बछड़ा बनाकर अपने हाथमें पृथ्वीका दूध दुहा। वही दूध अन्न हुआ, जिससे सारी प्रजा जीवन धारण करती है। तत्पश्चात् ऋषियोंने भी भूमिरूपिणी गौका दोहन किया। उस समय चन्द्रमा ही बछड़ा बने थे। दुहनेवाले थे वनस्पति, दुग्धका पात्र था वेद और तपस्या ही दूध थी। फिर देवताओंने भी वसुधाको दुहा। उस समय मित्र देवता दोग्धा हुए, इन्द्र बछड़ा बने तथा ओज और बल ही दूधके रूपमें प्रकट हुआ। देवताओंका दोहनपात्र सुवर्णका था और पितरोंका चाँदीका। पितरोंकी ओरसे अन्तकने दुहनेका काम किया, यमराज बछड़ा बने और स्वधा ही दूधके रूपमें प्राप्त हुई। नागोंने तूँबीको पात्र बनाया और तक्षकको बछड़ा। धृतराष्ट्र नामक नागने दोग्धा बनकर विषरूपी दुग्धका दोहन किया। असुरोंने लोहेके बर्तनमें इस पृथ्वीसे मायारूप दूध दुहा। उस समय प्रह्लादकुमार विरोचन बछड़ा बने थे और त्रिमूर्धाने दुहनेका काम किया था। यक्ष अन्तर्धान होनेकी विद्या प्राप्त करना चाहते थे; इसलिये उन्होंने कुबेरको बछड़ा बनाकर कच्चे बर्तनमें उस अन्तर्धान-विद्याको ही वसुधासे दुग्धके रूपमें दुहा। गन्धर्वों और अप्सराओंने चित्ररथको बछड़ा बनाकर कमलके पत्तेमें पृथ्वीसे सुगन्धोंका दोहन किया। उनकी ओरसे अथर्ववेदके पारगामी विद्वान् सुरुचिने दूध दुहनेका कार्य किया था। इस प्रकार दूसरे लोगोंने भी अपनी-अपनी रुचिके अनुसार पृथ्वीसे आयु, धन और सुखका दोहन किया। पृथुके शासन-कालमें कोई भी मनुष्य न दरिद्र था न रोगी, न निर्धन था न पापी तथा न कोई उपद्रव था न पीड़ा। सब सदा प्रसन्न रहते थे। किसीको दु:ख या शोक नहीं था। महाबली पृथुने लोगोंके हितकी इच्छासे अपने धनुषकी नोकसे बड़े-बड़े पर्वतोंको उखाड़कर हटा दिया और पृथ्वीको समतल बनाया। पृथुके राज्यमें गाँव बसाने या किले बनवानेकी

आवश्यकता नहीं थी। किसीको शस्त्र धारण करनेका भी कोई प्रयोजन नहीं था। मनुष्योंको विनाश एवं वैषम्यका दुःख नहीं देखना पड़ता था। अर्थशास्त्रमें किसीका आदर नहीं था। सब लोग धर्ममें ही संलग्न रहते थे। इस प्रकार मैंने तुमसे पृथ्वीके दोहन-पात्रोंका वर्णन किया तथा जैसा-जैसा दूध दुहा गया था, वह भी बता दिया। राजा पृथु बड़े विज्ञ थे; जिनकी जैसी रुचि थी, उसीके अनुसार उन्होंने सबको दूध प्रदान किया। यह प्रसंग यज्ञ और श्राद्ध सभी अवसरोंपर सुनानेके योग्य हैं; इसे मैंने तुम्हें सुना दिया। यह भूमि धर्मात्मा पृथुकी कन्या मानी गयी; इसीसे विद्वान् पुरुष 'पृथ्वी' कहकर इसकी स्तुति करते हैं।

भीष्मजीने कहा—ब्रह्मन्! आप तत्त्वके ज्ञाता हैं; अब क्रमशः सूर्यवंश और चन्द्रवंशका पूरा-पूरा एवं यथार्थ वर्णन कीजिये।

पुलस्त्यजीने कहा—राजन्! पूर्वकालमें कश्यपजीसे अदितिके गर्भसे विवस्वान् नामक पुत्र हुए। विवस्वान्के तीन स्त्रियाँ थीं—संज्ञा, राज्ञी और प्रभा। राज्ञीने रैवत नामक पुत्र उत्पन्न किया। प्रभासे प्रभातकी उत्पत्ति हुई। संज्ञा विश्वकर्माकी पुत्री थी। उसने वैवस्वत मनुको जन्म दिया। कुछ काल पश्चात् संज्ञाके गर्भसे यम और यमुना नामक दो जुड़वी सन्तानें पैदा हुईं। तदनन्तर वह विवस्वान् (सूर्य)-के तेजोमय स्वरूपको न सह सकी, अतः उसने अपने शरीरसे अपने ही समान रूपवाली एक नारीको प्रकट किया। उसका नाम छाया हुआ। छाया सामने खड़ी होकर बोली—'देवि! मेरे लिये क्या आज्ञा है?' संज्ञाने कहा—'छाया! तुम मेरे स्वामीकी सेवा करो, साथ ही मेरे बच्चोंका भी माताकी भाँति स्नेहपूर्वक पालन करना।' 'तथास्तु' कहकर छाया भगवान् सूर्यके पास गयी। वह उनसे अपनी कामना पूर्ण करना चाहती थी। सूर्यने भी यह समझकर कि यह उत्तम व्रतका पालन करनेवाली संज्ञा ही है, बड़े आदरके साथ उसकी कामना की। छायाने सूर्यसे सावर्ण मनुको उत्पन्न किया। उनका वर्ण भी वैवस्वत मनुके समान होनेके कारण उनका नाम सावर्ण मनु पड़ गया। तत्पश्चात् भगवान् भास्करने छायाके गर्भसे क्रमशः शनैश्चर नामक पुत्र तथा तपती और विष्टि नामकी कन्याओंको जन्म दिया।

एक समय महायशस्वी यमराज वैराग्यके कारण पुष्कर तीर्थमें गये और वहाँ फल, फेन एवं वायुका आहार करते हुए कठोर तपस्या करने लगे। उन्होंने सौ वर्षोंतक तपस्याके द्वारा ब्रह्माजीकी आराधना की। उनके तपके प्रभावसे देवेश्वर ब्रह्माजी सन्तुष्ट हो गये; तब यमराजने उनसे लोकपालका पद, अक्षय पितृलोकका राज्य तथा धर्माधर्ममय जगत्की देख-रेखका अधिकार माँगा। इस प्रकार उन्हें ब्रह्माजीसे लोकपाल-पदवी प्राप्त हुई। साथ ही उन्हें पितृलोकका राज्य और धर्माधर्मके निर्णयका अधिकार भी मिल गया।

छायाके पुत्र शनैश्चर भी तपके प्रभावसे ग्रहोंकी समानताको प्राप्त हुए। यमुना और तपती—ये दोनों सूर्य-कन्याएँ नदी हो गयीं। विष्टिका स्वरूप बड़ा भयंकर था; वह कालरूपसे स्थित हुई। वैवस्वत मनुके दस महाबली पुत्र हुए, उन सबमें 'इल' ज्येष्ठ थे। शेष पुत्रोंके नाम इस प्रकार हैं—इक्ष्वाकु, कुशनाभ, अरिष्ट, धृष्ट, नरिष्यन्त, करूष, महाबली शर्याति, पृषध्र तथा नाभाग। ये सभी दिव्य मनुष्य थे। राजा मनु अपने ज्येष्ठ और धर्मात्मा पुत्र 'इल' को राज्यपर अभिषिक्त करके स्वयं पुष्करके तपोवनमें तपस्या करनेके लिये चले गये। तदनन्तर उनकी तपस्याको सफल करनेके लिये वरदाता ब्रह्माजी आये और बोले—'मनो! तुम्हारा कल्याण हो, तुम अपनी इच्छाके अनुसार वर माँगो।'

मनुने कहा—स्वामिन्! आपकी कृपासे पृथ्वीके सम्पूर्ण राजा धर्मपरायण, ऐश्वर्यशाली तथा मेरे अधीन हों। 'तथास्तु' कहकर देवेश्वर ब्रह्माजी वहीं अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर मनु अपनी राजधानीमें आकर पूर्ववत् रहने लगे। इसके बाद राजा इल अर्थसिद्धिके लिये इस भूमण्डलपर विचरने लगे। वे सम्पूर्ण द्वीपोंमें घूम-घूमकर वहाँके राजाओंको अपने वशमें करते थे। एक दिन प्रतापी इल रथमें बैठकर भगवान् शंकरके महान् उपवनमें गये, जो कल्पवृक्षकी लताओंसे व्याप्त एवं

'शरवण' के नामसे प्रसिद्ध था। उसमें देवाधिदेव चन्द्रार्धशेखर भगवान् शिव पार्वतीजीके साथ क्रीडा करते हैं। पूर्वकालमें महादेवजीने उमाके साथ 'शरवण' के भीतर प्रतिज्ञापूर्वक यह बात कही थी कि 'पुरुष नामधारी जो कोई भी जीव हमारे वनमें आ जायगा, वह इस दस योजनके घेरेमें पैर रखते ही स्त्रीरूप हो जायगा।' राजा इल इस प्रतिज्ञाको नहीं जानते थे, इसीलिये 'शरवण' में चले गये। वहाँ पहुँचनेपर वे सहसा स्त्री हो गये तथा उनका घोड़ा भी उसी समय घोड़ी बन गया। राजाके जो-जो पुरुषोचित अंग थे, वे सभी स्त्रीके आकारमें परिणत हो गये। इससे उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। अब वे 'इला' नामकी स्त्री थे।

इला उस वनमें घूमती हुई सोचने लगी, 'मेरे माता-पिता और भ्राता कौन हैं?' वह इसी उधेड़-बुनमें पड़ी थी, इतनेमें ही चन्द्रमाके पुत्र बुधने उसे देखा। [इलाकी दृष्टि भी बुधके ऊपर पड़ी।] सुन्दरी इलाका मन बुधके रूपपर मोहित हो गया; उधर बुध भी उसे देखकर कामपीड़ित हो गये और उसकी प्राप्तिके लिये यत्न करने लगे। उस समय बुध ब्रह्मचारीके वेषमें थे। वे वनके बाहर पेड़ोंके झुरमुटमें छिपकर इलाको बुलाने लगे—'सुन्दरी! यह साँझका समय, विहारकी वेला है जो बीती जा रही है; आओ, मेरे घरको लीप-पोतकर फूलोंसे सजा दो।' इला बोली—'तपोधन! मैं यह सब कुछ भूल गयी हूँ। बताओ, मैं कौन हूँ? तुम कौन हो? मेरे स्वामी कौन हैं तथा मेरे कुलका परिचय क्या है?' बुधने कहा—'सुन्दरी! तुम इला हो, मैं तुम्हें चाहनेवाला बुध हूँ। मैंने बहुत विद्या पढ़ी है। तेजस्वीके कुलमें मेरा जन्म हुआ है। मेरे पिता ब्राह्मणोंके राजा चन्द्रमा हैं।'

बुधकी यह बात सुनकर इलाने उनके घरमें प्रवेश किया। वह सब प्रकारके भोगोंसे सम्पन्न था और अपने वैभवसे इन्द्रभवनको मात कर रहा था। वहाँ रहकर इला बहुत समयतक बुधके साथ वनमें रमण करती रही। उधर इलके भाई इक्ष्वाकु आदि मनुकुमार अपने राजाकी खोज करते हुए उस 'शरवण' के निकट आ पहुँचे। उन्होंने नाना प्रकारके स्तोत्रोंसे पार्वती और महादेवजीका स्तवन किया। तब वे दोनों प्रकट होकर बोले—'राजकुमारो! मेरी यह प्रतिज्ञा तो टल नहीं सकती; किन्तु इस समय एक उपाय हो सकता है। इक्ष्वाकु अश्वमेध यज्ञ करें और उसका फल हम दोनोंको अर्पण कर दें। ऐसा करनेसे वीरवर इल 'किम्पुरुष' हो जायँगे, इसमें तनिक भी सन्देहकी बात नहीं है।'

'बहुत अच्छा, प्रभो!' यह कहकर मनुकुमार लौट गये। फिर इक्ष्वाकुने अश्वमेध यज्ञ किया। इससे इला 'किम्पुरुष' हो गयी। वे एक महीने पुरुष और एक महीने स्त्रीके रूपमें रहने लगे। बुधके भवनमें [स्त्रीरूपसे] रहते समय इलने गर्भ धारण किया था। उस गर्भसे उन्होंने अनेक गुणोंसे युक्त पुत्रको जन्म दिया। उस पुत्रको उत्पन्न करके बुध स्वर्गलोकको चले गये। वह प्रदेश इलके नामपर 'इलावृतवर्ष' के नामसे प्रसिद्ध हुआ। ऐल चन्द्रमाके वंशज तथा चन्द्रवंशका विस्तार करनेवाले राजा हुए। इस प्रकार इलाकुमार पुरूरवा चन्द्रवंशकी तथा राजा इक्ष्वाकु सूर्यवंशकी वृद्धि करनेवाले बताये गये हैं। 'इल' किम्पुरुष-अवस्थामें 'सुद्युम्न' भी कहलाते थे। तदनन्तर सुद्युम्नसे तीन पुत्र और हुए, जो किसीसे परास्त होनेवाले नहीं थे। उनके नाम उत्कल, गय तथा हरिताश्व थे। हरिताश्व बड़े पराक्रमी थे। उत्कलकी राजधानी उत्कला (उड़ीसा) हुई और गयकी राजधानी गया मानी गयी है। इसी प्रकार हरिताश्वको कुरु प्रदेशके साथ-ही-साथ दक्षिण दिशाका राज्य दिया गया। सुद्युम्न अपने पुत्र पुरूरवाको प्रतिष्ठानपुर (पैठन)-के राज्यपर अभिषिक्त करके स्वयं दिव्य वर्षके फलोंका उपभोग करनेके लिये इलावृतवर्षमें चले गये।

[सुद्युम्नके बाद] इक्ष्वाकु ही मनुके सबसे बड़े पुत्र थे। उन्हें मध्यदेशका राज्य प्राप्त हुआ। इक्ष्वाकुके सौ पुत्रोंमें पंद्रह श्रेष्ठ थे। वे मेरुके उत्तरीय प्रदेशमें राजा हुए। उनके सिवा एक सौ चौदह पुत्र और हुए, जो मेरुके दक्षिणवर्ती देशोंके राजा बताये गये हैं। इक्ष्वाकुके ज्येष्ठ पुत्रसे ककुत्स्थ नामक पुत्र हुआ। ककुत्स्थका पुत्र सुयोधन था। सुयोधनका पुत्र पृथु और

पृथुका विश्वावसु हुआ। उसका पुत्र आर्द्र तथा आर्द्रका पुत्र युवनाश्व हुआ। युवनाश्वका पुत्र महापराक्रमी शावस्त हुआ, जिसने अंगदेशमें शावस्ती नामकी पुरी बसायी। शावस्तसे बृहदश्व और बृहदश्वसे कुवलाश्वका जन्म हुआ। कुवलाश्व धुन्धु नामक दैत्यका विनाश करके धुन्धुमारके नामसे विख्यात हुए। उनके तीन पुत्र हुए—दृढाश्व, दण्ड तथा कपिलाश्व। धुन्धुमारके पुत्रोंमें प्रतापी कपिलाश्व अधिक प्रसिद्ध थे। दृढाश्वका प्रमोद और प्रमोदका पुत्र हर्यश्व। हर्यश्वसे निकुम्भ और निकुम्भसे संहताश्वका जन्म हुआ। संहताश्वके दो पुत्र हुए—अकृताश्व तथा रणाश्व। रणाश्वके पुत्र युवनाश्व और युवनाश्वके मान्धाता थे। मान्धाताके तीन पुत्र हुए—पुरुकुत्स, धर्मसेतु तथा मुचुकुन्द। इनमें मुचुकुन्दकी ख्याति विशेष थी। वे इन्द्रके मित्र और प्रतापी राजा थे। पुरुकुत्सका पुत्र सम्भूत था, जिसका विवाह नर्मदाके साथ हुआ था। सम्भूतसे सम्भूति और सम्भूतिसे त्रिधन्वाका जन्म हुआ। त्रिधन्वाका पुत्र त्रैधारुण नामसे विख्यात हुआ। उसके पुत्रका नाम सत्यव्रत था। उससे सत्यरथका जन्म हुआ। सत्यरथके पुत्र हरिश्चन्द्र थे। हरिश्चन्द्रसे रोहित हुआ। रोहितसे वृक और वृकसे बाहुकी उत्पत्ति हुई। बाहुके पुत्र परम धर्मात्मा राजा सगर हुए। सगरकी दो स्त्रियाँ थीं—प्रभा और भानुमती। इन दोनोंने पुत्रकी इच्छासे और्व नामक अग्निकी आराधना की। इससे सन्तुष्ट होकर और्वने उन दोनोंको इच्छानुसार वरदान देते हुए कहा—'एक रानी साठ हजार पुत्र पा सकती है और दूसरीको एक ही पुत्र मिलेगा, जो वंशकी रक्षा करनेवाला होगा [इन दो वरोंमेंसे जिसको जो पसंद आवे, वह उसे ले ले]!' प्रभाने बहुत-से पुत्रोंको लेना स्वीकार किया तथा भानुमतीको एक ही पुत्र—असमंजसकी प्राप्ति हुई। तदनन्तर प्रभाने जो यदुकुलकी कन्या थी, साठ हजार पुत्रोंको उत्पन्न किया, जो अश्वकी खोजके लिये पृथ्वीको खोदते समय भगवान् विष्णुके अवतार महात्मा कपिलके कोपसे दग्ध हो गये। असमंजसका पुत्र अंशुमान्‌के नामसे विख्यात हुआ। उसका पुत्र दिलीप था। दिलीपसे भगीरथका जन्म हुआ, जिन्होंने तपस्या करके भागीरथी गंगाको इस पृथ्वीपर उतारा था। भगीरथके पुत्रका नाम नाभाग हुआ। नाभागके अम्बरीष और अम्बरीषके पुत्र सिन्धुद्वीप हुए। सिन्धुद्वीपसे अयुतायु और अयुतायुसे ॠतुपर्णका जन्म हुआ। ॠतुपर्णसे कल्माषपाद और कल्माषपादसे सर्वकर्माकी उत्पत्ति हुई। सर्वकर्माका आरण्य और आरण्यका पुत्र निघ्न हुआ। निघ्नके दो उत्तम पुत्र हुए—अनुमित्र और रघु। अनुमित्र शत्रुओंका नाश करनेके लिये वनमें चला गया। रघुसे दिलीप और दिलीपसे अज हुए। अजसे दीर्घबाहु और दीर्घबाहुसे प्रजापालकी उत्पत्ति हुई। प्रजापालसे दशरथका जन्म हुआ। उनके चार पुत्र हुए। वे सब-के-सब भगवान् नारायणके स्वरूप थे। उनमें राम सबसे बड़े थे, जिन्होंने रावणको मारा और रघुवंशका विस्तार किया तथा भृगुवंशियोंमें श्रेष्ठ वाल्मीकिने रामायणके रूपमें जिनके चरित्रका चित्रण किया। रामके दो पुत्र हुए—कुश और लव। ये दोनों ही इक्ष्वाकु-वंशका विस्तार करनेवाले थे। कुशसे अतिथि और अतिथिसे निषधका जन्म हुआ। निषधसे नल, नलसे नभा, नभासे पुण्डरीक और पुण्डरीकसे क्षेमधन्वाकी उत्पत्ति हुई। क्षेमधन्वाका पुत्र देवानीक हुआ। वह वीर और प्रतापी था। उसका पुत्र अहीनगु हुआ। अहीनगुसे सहस्राश्वका जन्म हुआ। सहस्राश्वसे चन्द्रावलोक, चन्द्रावलोकसे तारापीड, तारापीडसे चन्द्रगिरि, चन्द्रगिरिसे चन्द्र तथा चन्द्रसे श्रुतायु हुए, जो महाभारत-युद्धमें मारे गये। नल नामके दो राजा प्रसिद्ध हैं—एक तो वीरसेनके पुत्र थे और दूसरे निषधके। इस प्रकार इक्ष्वाकुवंशके प्रधान-प्रधान राजाओंका वर्णन किया गया।

पितरों तथा श्राद्धके विभिन्न अंगोंका वर्णन

भीष्मजीने कहा—भगवन्! अब मैं पितरोंके उत्तम वंशका वर्णन सुनना चाहता हूँ।

पुलस्त्यजी बोले—राजन्! बड़े हर्षकी बात है; मैं तुम्हें आरम्भसे ही पितरोंके वंशका वर्णन सुनाता हूँ, सुनो। स्वर्गमें पितरोंके सात गण हैं। उनमें तीन तो मूर्तिरहित हैं और चार मूर्तिमान्। ये सब-के-सब अमिततेजस्वी हैं। इनमें जो मूर्तिरहित पितृगण हैं, वे वैराज प्रजापतिकी सन्तान हैं; अत: वैराज नामसे प्रसिद्ध हैं। देवगण उनका यजन करते हैं। अब पितरोंकी लोक-सृष्टिका वर्णन करता हूँ, श्रवण करो। सोमपथ नामसे प्रसिद्ध कुछ लोक हैं, जहाँ कश्यपके पुत्र पितृगण निवास करते हैं। देवतालोग सदा उनका सम्मान किया करते हैं। अग्निष्वात्त नामसे प्रसिद्ध यज्वा पितृगण उन्हीं लोकोंमें निवास करते हैं। स्वर्गमें विभ्राज नामके जो दूसरे तेजस्वी लोक हैं, उनमें बर्हिषद्संज्ञक पितृगण निवास करते हैं। वहाँ मोरोंसे जुते हुए हजारों विमान हैं तथा संकल्पमय वृक्ष भी हैं, जो संकल्पके अनुसार फल प्रदान करनेवाले हैं। जो लोग इस लोकमें अपने पितरोंके लिये श्राद्ध करते हैं, वे उन विभ्राज नामके लोकोंमें जाकर समृद्धिशाली भवनोंमें आनन्द भोगते हैं तथा वहाँ मेरे सैकड़ों पुत्र विद्यमान रहते हैं, जो तपस्या और योगबलसे सम्पन्न, महात्मा, महान् सौभाग्यशाली और भक्तोंको अभयदान देनेवाले हैं। मार्तण्डमण्डल नामक लोकमें मरीचिगर्भ नामके पितृगण निवास करते हैं। वे अंगिरा मुनिके पुत्र हैं और लोकमें हविष्मान् नामसे विख्यात हैं; वे राजाओंके पितर हैं और स्वर्ग तथा मोक्षरूप फल प्रदान करनेवाले हैं। तीर्थोंमें श्राद्ध करनेवाले श्रेष्ठ क्षत्रिय उन्हींके लोकमें जाते हैं। कामदुघ नामसे प्रसिद्ध जो लोक हैं, वे इच्छानुसार भोगकी प्राप्ति करानेवाले हैं। उनमें सुस्वध नामके पितर निवास करते हैं। लोकमें वे आज्यप नामसे विख्यात हैं और प्रजापति कर्दमके पुत्र हैं। पुलहके बड़े भाईसे उत्पन्न वैश्यगण उन पितरोंकी पूजा करते हैं। श्राद्ध करनेवाले पुरुष उस लोकमें पहुँचनेपर एक ही साथ हजारों जन्मोंके परिचित माता, भाई, पिता, सास, मित्र, सम्बन्धी तथा बन्धुओंका दर्शन करते हैं। इस प्रकार पितरोंके तीन गण बताये गये। अब चौथे गणका वर्णन करता हूँ। ब्रह्मलोकके ऊपर सुमानस नामके लोक स्थित हैं, जहाँ सोमप नामसे प्रसिद्ध सनातन पितरोंका निवास है। वे सब-के-सब धर्ममय स्वरूप धारण करनेवाले तथा ब्रह्माजीसे भी श्रेष्ठ हैं। स्वधासे उनकी उत्पत्ति हुई है। वे योगी हैं; अत: ब्रह्मभावको प्राप्त होकर सृष्टि आदि करके सब इस समय मानसरोवरमें स्थित हैं। इन पितरोंकी कन्या नर्मदा नामकी नदी है, जो अपने जलसे समस्त प्राणियोंको पवित्र करती हुई पश्चिम समुद्रमें जा मिलती है। उन सोमप नामवाले पितरोंसे ही सम्पूर्ण प्रजासृष्टिका विस्तार हुआ है, ऐसा जानकर मनुष्य सदा धर्मभावसे उनका श्राद्ध करते हैं। उन्हींके प्रसादसे योगका विस्तार होता है।

आदि सृष्टिके समय इस प्रकार पितरोंका श्राद्ध प्रचलित हुआ। श्राद्धमें उन सबके लिये चाँदीके पात्र अथवा चाँदीसे युक्त पात्रका उपयोग होना चाहिये। 'स्वधा' शब्दके उच्चारणपूर्वक पितरोंके उद्देश्यसे किया हुआ श्राद्ध-दान पितरोंको सर्वदा सन्तुष्ट करता है। विद्वान् पुरुषोंको चाहिये कि वे अग्निहोत्री एवं सोमपायी ब्राह्मणोंके द्वारा अग्निमें हवन कराकर पितरोंको तृप्त करें। अग्निके अभावमें ब्राह्मणके हाथमें अथवा जलमें या शिवजीके स्थानके समीप पितरोंके निमित्त दान करे; ये ही पितरोंके लिये निर्मल स्थान हैं। पितृकार्यमें दक्षिण दिशा उत्तम मानी गयी है। यज्ञोपवीतको अपसव्य अर्थात् दाहिने कंधेपर करके किया हुआ तर्पण, तिलदान तथा 'स्वधा' के उच्चारणपूर्वक किया हुआ श्राद्ध—ये सदा पितरोंको तृप्त करते हैं। कुश, उड़द, साठी धानका चावल, गायका दूध, मधु, गायका घी, सावाँ, अगहनीका चावल, जौ, तीनाका चावल, मूँग, गन्ना और सफेद फूल—ये सब वस्तुएँ पितरोंको सदा प्रिय हैं।

अब ऐसे पदार्थ बताता हूँ, जो श्राद्धमें सर्वदा वर्जित हैं। मसूर, सन, मटर, राजमाष, कुलथी, कमल,

बिल्व, मदार, धतूरा, पारिभद्राट, रूषक, भेड़-बकरीका दूध, कोदो, दारवरट, कैथ, महुआ और अलसी—ये सब निषिद्ध हैं। अपनी उन्नति चाहनेवाले पुरुषको श्राद्धमें इन वस्तुओंका उपयोग कभी नहीं करना चाहिये। जो भक्तिभावसे पितरोंको प्रसन्न करता है, उसे पितर भी सन्तुष्ट करते हैं। वे पुष्टि, आरोग्य, सन्तान एवं स्वर्ग प्रदान करते हैं। पितृकार्य देवकार्यसे भी बढ़कर है; अतः देवताओंको तृप्त करनेसे पहले पितरोंको ही सन्तुष्ट करना श्रेष्ठ माना गया है। कारण, पितृगण शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं, सदा प्रिय वचन बोलते हैं, भक्तोंपर प्रेम रखते हैं और उन्हें सुख देते हैं। पितर पर्वोंके देवता हैं अर्थात् प्रत्येक पर्वपर पितरोंका पूजन करना उचित है। हविष्मान्संज्ञक पितरोंके अधिपति सूर्यदेव ही श्राद्धके देवता माने गये हैं।

भीष्मजीने कहा—ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ पुलस्त्यजी! आपके मुँहसे यह सारा विषय सुनकर मेरी इसमें बड़ी भक्ति हो गयी है; अतः अब मुझे श्राद्धका समय, उसकी विधि तथा श्राद्धका स्वरूप बतलाइये। श्राद्धमें कैसे ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये? तथा किनको छोड़ना चाहिये? श्राद्धमें दिया हुआ अन्न पितरोंके पास कैसे पहुँचता है? किस विधिसे श्राद्ध करना उचित है? और वह किस तरह उन पितरोंको तृप्त करता है?

पुलस्त्यजी बोले—राजन्! अन्न और जलसे अथवा दूध एवं फल-मूल आदिसे पितरोंको सन्तुष्ट करते हुए प्रतिदिन श्राद्ध करना चाहिये। श्राद्ध तीन प्रकारका होता है—नित्य, नैमित्तिक और काम्य। पहले नित्य श्राद्धका वर्णन करता हूँ। उसमें अर्घ्य और आवाहनकी क्रिया नहीं होती। उसे अदैव समझना चाहिये—उसमें विश्वदेवोंको भाग नहीं दिया जाता। पर्वके दिन जो श्राद्ध किया जाता है, उसे पार्वण कहते हैं। पार्वणश्राद्धमें जो ब्राह्मण निमन्त्रित करनेयोग्य हैं, उनका वर्णन करता हूँ; श्रवण करो! जो पंचाग्निका सेवन करनेवाला, स्नातक, त्रिसौपर्ण[१], वेदके व्याकरण आदि छहों अंगोंका ज्ञाता, श्रोत्रिय (वेदज्ञ), श्रोत्रियका पुत्र, वेदके विधिवाक्योंका विशेषज्ञ, सर्वज्ञ (सब विषयोंका ज्ञाता), वेदका स्वाध्यायी, मन्त्र जपनेवाला, ज्ञानवान्, त्रिणाचिकेत[२], त्रिमधु[३], अन्य शास्त्रोंमें भी परिनिष्ठित, पुराणोंका विद्वान्, स्वाध्यायशील, ब्राह्मणभक्त, पिताकी सेवा करनेवाला, सूर्यदेवताका भक्त, वैष्णव, ब्रह्मवेत्ता, योगशास्त्रका ज्ञाता, शान्त, आत्मज्ञ, अत्यन्त शीलवान् तथा शिवभक्तिपरायण हो, ऐसा ब्राह्मण श्राद्धमें निमन्त्रण पानेका अधिकारी है। ऐसे ब्राह्मणोंको यत्नपूर्वक श्राद्धमें भोजन कराना चाहिये। अब जो लोग श्राद्धमें वर्जनीय हैं, उनका वर्णन सुनो। पतित, पतितका पुत्र, नपुंसक, चुगलखोर और अत्यन्त रोगी—ये सब श्राद्धके समय धर्मज्ञ पुरुषोंद्वारा त्याग देनेयोग्य हैं। श्राद्धके पहले दिन अथवा श्राद्धके ही दिन विनयशील ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे। निमन्त्रण दिये हुए ब्राह्मणोंके शरीरमें पितरोंका आवेश हो जाता है। वे वायुरूपसे उनके भीतर प्रवेश करते हैं और ब्राह्मणोंके बैठनेपर स्वयं भी उनके साथ बैठे रहते हैं।

किसी ऐसे स्थानको, जो दक्षिण दिशाकी ओर नीचा हो, गोबरसे लीपकर वहाँ श्राद्ध आरम्भ करे अथवा गोशालामें या जलके समीप श्राद्ध करे। आहिताग्नि पुरुष पितरोंके लिये चरु (खीर) बनाये और यह कहकर कि इससे पितरोंका श्राद्ध करूँगा, वह सब दक्षिण दिशामें रख दे। तदनन्तर उसमें घृत और मधु आदि मिलाकर अपने सामनेकी ओर तीन निर्वापस्थान (पिण्डदानकी वेदियाँ) बनाये। उनकी लम्बाई एक बित्ता

१-'ब्रह्ममेतु माम्' इत्यादि तीन अनुवाकोंका नियमपूर्वक अध्ययन करनेवाला त्रिसौपर्ण कहलाता है।

२-द्वितीय कठके अन्तर्गत 'अयं वाव यः पवते' इत्यादि तीन अनुवाकोंको त्रिणाचिकेत कहते हैं। उसका स्वाध्याय अथवा अनुष्ठान करनेवाला पुरुष भी त्रिणाचिकेत कहलाता है।

३-'मधु वाता ऋतायते' इत्यादि तीनों ऋचाओंका पाठ और अनुगमन करनेवालेको त्रिमधु कहते हैं।

और चौड़ाई चार अंगुलकी होनी चाहिये। साथ ही, खैरकी तीन दर्वी (कलछुल) बनवावे, जो चिकनी हों तथा जिनमें चाँदीका संसर्ग हो। उनकी लम्बाई एक-एक रत्निकी[१] और आकार हाथके समान सुन्दर होना उचित है। जलपात्र, कांस्यपात्र, प्रोक्षण, समिधा, कुश, तिलपात्र, उत्तम वस्त्र, गन्ध, धूप, चन्दन—ये सब वस्तुएँ धीरे-धीरे दक्षिण दिशामें रखे। उस समय जनेऊ दाहिने कंधेपर होना चाहिये। इस प्रकार सब सामान एकत्रित करके घरके पूर्व गोबरसे लिपी हुई पृथ्वीपर गोमूत्रसे मण्डल बनावे और अक्षत तथा फूलसहित जल लेकर तथा जनेऊको क्रमशः बायें एवं दाहिने कंधेपर छोड़कर ब्राह्मणोंके पैर धोये तथा बारम्बार उन्हें प्रणाम करे। तदनन्तर विधिपूर्वक आचमन कराकर उन्हें बिछाये हुए दर्भयुक्त आसनोंपर बिठावे और उनसे मन्त्रोच्चारण करावे। सामर्थ्यशाली पुरुष भी देवकार्य (वैश्वदेव श्राद्ध)-में दो और पितृकार्यमें तीन ब्राह्मणोंको ही भोजन कराये अथवा दोनों श्राद्धोंमें एक-एक ब्राह्मणको ही जिमाये। विद्वान् पुरुषको श्राद्धमें अधिक विस्तार नहीं करना चाहिये। पहले विश्वेदेवसम्बन्धी और फिर पितृ-सम्बन्धी विद्वान् ब्राह्मणोंकी अर्घ्य आदिसे विधिवत् पूजा करे तथा उनकी आज्ञा लेकर अग्निमें यथाविधि हवन करे। विद्वान् पुरुष गृह्यसूत्रमें बतायी हुई विधिके अनुसार घृतयुक्त चरुका अग्नि और सोमकी तृप्तिके उद्देश्यसे समयपर हवन करे। इस प्रकार देवताओंकी तृप्ति करके वह श्राद्धकर्ता श्रेष्ठ ब्राह्मण साक्षात् अग्निका स्वरूप माना जाता है। देवताके उद्देश्यसे किया जानेवाला हवन आदि प्रत्येक कार्य जनेऊको बायें कंधेपर रखकर ही करना चाहिये। तत्पश्चात् पितरोंके निमित्त करनेयोग्य पर्युक्षण (सेचन) आदि सारा कार्य विज्ञ पुरुषको जनेऊको दायें कंधेपर करके—अपसव्य भावसे करना उचित है। हवन तथा विश्वेदेवोंको अर्पण करनेसे बचे हुए अन्नको लेकर उसके कई पिण्ड बनावे और एक-एक पिण्डको दाहिने हाथमें लेकर तिल और जलके साथ उसका दान करना चाहिये। संकल्पके समय जल-पात्रमें रखे हुए जलको बायें हाथकी सहायतासे दायें हाथमें ढाल लेना चाहिये। श्राद्धकालमें पूर्ण प्रयत्नके साथ अपने मन और इन्द्रियोंको काबूमें रखे और मात्सर्यका त्याग कर दे। [पिण्डदानकी विधि इस प्रकार है—] पिण्ड देनेके लिये बनायी हुई वेदियोंपर यत्नपूर्वक रेखा बनावे। इसके बाद अवनेजन-पात्रमें जल लेकर उसे रेखांकित वेदीपर गिरावे। [यह अवनेजन अर्थात् स्थान-शोधनकी क्रिया है।] फिर दक्षिणाभिमुख होकर वेदीपर कुश बिछावे और एक-एक करके सब पिण्डोंको क्रमशः उन कुशोंपर रखे। उस समय [पिता-पितामह आदिमेंसे जिस-जिसके उद्देश्यसे पिण्ड दिया जाता हो, उस-उस] पितरके नाम-गोत्र आदिका उच्चारण करते हुए संकल्प पढ़ना चाहिये। पिण्डदानके पश्चात् अपने दायें हाथको पिण्डाधारभूत कुशोंपर पोंछना चाहिये। यह लेपभागभोजी पितरोंका भाग है। उस समय ऐसे ही मन्त्रका जप अर्थात् **'लेपभागभुजः पितरस्तृप्यन्तु'** इत्यादि वाक्योंका उच्चारण करना उचित है। इसके बाद पुनः प्रत्यवनेजन करे अर्थात् अवनेजनपात्रमें जल लेकर उससे प्रत्येक पिण्डको नहलावे। फिर जलयुक्त पिण्डोंको नमस्कार करके श्राद्धकल्पोक्त वेदमन्त्रोंके द्वारा पिण्डोंपर पितरोंका आवाहन करे और चन्दन, धूप आदि पूजन-सामग्रियोंके द्वारा उनकी पूजा करे। तत्पश्चात् आहवनीयादि अग्नियोंके प्रतिनिधिभूत एक-एक ब्राह्मणको जलके साथ एक-एक दर्वी[२] प्रदान करे। फिर विद्वान् पुरुष पितरोंके उद्देश्यसे पिण्डोंके ऊपर कुश रखे तथा पितरोंका विसर्जन करे। तदनन्तर क्रमशः सभी पिण्डोंमेंसे थोड़ा-थोड़ा अंश निकालकर सबको एकत्र करे और ब्राह्मणोंको यत्नपूर्वक पहले वही भोजन करावे; क्योंकि उन पिण्डोंका अंश ब्राह्मणलोग ही भोजन करते

१-मुट्ठी बँधे हुए हाथकी लम्बाईको रत्नि कहते हैं।

२-खदिर (खैर)-की बनी हुई कलछुल।

हैं। इसीलिये अमावास्याके दिन किये हुए पार्वण-श्राद्धको 'अन्वाहार्य' कहा गया है। पहले अपने हाथमें पवित्रीसहित तिल और जल लेकर पिण्डोंके आगे छोड़ दे और कहे—'**एषां स्वधा अस्तु**' (ये पिण्ड स्वधा-स्वरूप हो जायँ)। इसके बाद परम पवित्र और उत्तम अन्न परोसकर उसकी प्रशंसा करते हुए उन ब्राह्मणोंको भोजन करावे। उस समय भगवान् श्रीनारायणका स्मरण करता रहे और क्रोधी स्वभावको सर्वथा त्याग दे। ब्राह्मणोंको तृप्त जानकर विकिरान्न दान करे; यह सब वर्णोंके लिये उचित है। विकिरान्न-दानकी विधि यह है—तिलसहित अन्न और जल लेकर उसे कुशके ऊपर पृथ्वीपर रख दे। जब ब्राह्मण आचमन कर लें तो पुनः पिण्डोंपर जल गिरावे। फूल, अक्षत, जल छोड़ना और स्वधावाचन आदि सारा कार्य पिण्डके ऊपर करे।' पहले देवश्राद्धकी समाप्ति करके फिर पितृश्राद्धकी समाप्ति करे, अन्यथा श्राद्धका नाश हो जाता है। इसके बाद नतमस्तक होकर ब्राह्मणोंकी प्रदक्षिणा करके उनका विसर्जन करे।

यह आहिताग्नि पुरुषोंके लिये अन्वाहार्य पार्वण-श्राद्ध बतलाया गया। अमावास्याके पर्वपर किये जानेके कारण यह पार्वण कहलाता है। यही नैमित्तिक श्राद्ध है। श्राद्धके पिण्ड गाय या बकरीको खिला दे अथवा ब्राह्मणोंको दे दे अथवा अग्नि या जलमें छोड़ दे। यह भी न हो तो खेतमें बिखेर दे अथवा जलकी धारामें बहा दे। [सन्तानकी इच्छा रखनेवाली] पत्नी विनीत भावसे आकर मध्यम अर्थात् पितामहके पिण्डको ग्रहण करे और उसे खा जाय। उस समय '**आधत्त पितरो गर्भम्**' इत्यादि मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये। श्राद्ध और पिण्डदान आदिकी स्थिति तभीतक रहती है, जबतक ब्राह्मणोंका विसर्जन नहीं हो जाता। इनके विसर्जनके पश्चात् पितृकार्य समाप्त हो जाता है। उसके बाद बलिवैश्वदेव करना चाहिये। तदनन्तर अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ पितरोंद्वारा सेवित प्रसादस्वरूप अन्न भोजन करे। श्राद्ध करनेवाले यजमान तथा श्राद्धभोजी ब्राह्मण दोनोंको उचित है कि वे दुबारा भोजन न करें, राह न चलें, मैथुन न करें; साथ ही उस दिन स्वाध्याय, कलह और दिनमें शयन—इन सबको सर्वथा त्याग दें। इस विधिसे किया हुआ श्राद्ध धर्म, अर्थ और काम—तीनोंकी सिद्धि करनेवाला होता है। कन्या, कुम्भ और वृष राशिपर सूर्यके रहते कृष्णपक्षमें प्रतिदिन श्राद्ध करना चाहिये। जहाँ-जहाँ सपिण्डीकरणरूप श्राद्ध करना हो, वहाँ अग्निहोत्र करनेवाले पुरुषको सदा इसी विधिसे करना चाहिये।

अब मैं ब्रह्माजीके बताये हुए साधारण श्राद्धका वर्णन करूँगा, जो भोग और मोक्षरूप फल प्रदान करनेवाला है। उत्तरायण और दक्षिणायनके प्रारम्भके दिन, विषुव नामक योग (तुला और मेषकी संक्रान्ति)-में [जब कि दिन और रात बराबर होते हैं], प्रत्येक अमावास्याको, प्रति संक्रान्तिके दिन, अष्टका (पौष, माघ, फाल्गुन तथा आश्विन मासके कृष्णपक्षकी अष्टमी तिथि)-में, पूर्णिमाको, आर्द्रा, मघा और रोहिणी—इन नक्षत्रोंमें, श्राद्धके योग्य उत्तम पदार्थ और सुपात्र ब्राह्मणके प्राप्त होनेपर, व्यतीपात, विष्टि और वैधृति योगके दिन, वैशाखकी तृतीयाको, कार्तिककी नवमीको, माघकी पूर्णिमा तथा भाद्रपदकी त्रयोदशी तिथिको भी श्राद्धका अनुष्ठान करना चाहिये। उपर्युक्त तिथियाँ युगादि कहलाती हैं। ये पितरोंका उपकार करनेवाली हैं। इसी प्रकार मन्वन्तरादि तिथियोंमें भी विद्वान् पुरुष श्राद्धका अनुष्ठान करे। आश्विन शुक्ला नवमी, कार्तिक शुक्ला द्वादशी, चैत्र तथा भाद्रपदकी शुक्ला तृतीया, फाल्गुनकी अमावास्या, पौषकी शुक्ला एकादशी, आषाढ़ शुक्ला दशमी, माघ शुक्ला सप्तमी, श्रावण कृष्णा अष्टमी, आषाढ़, कार्तिक, फाल्गुन और ज्येष्ठकी पूर्णिमा—इन तिथियोंको मन्वन्तरादि कहते हैं। ये दिये हुए दानको अक्षय कर देनेवाली हैं। विज्ञ पुरुषको चाहिये कि वैशाखकी पूर्णिमाको, ग्रहणके दिन, किसी उत्सवके अवसरपर और महालय (आश्विन कृष्णपक्ष)-में तीर्थ, मन्दिर, गोशाला, द्वीप, उद्यान तथा घर आदिमें लिपे-पुते एकान्त स्थानमें श्राद्ध करे।'

[अब श्राद्धके क्रमका वर्णन किया जाता है—]

पहले विश्वेदेवोंके लिये आसन देकर जौ और पुष्पोंसे उनकी पूजा करे। [विश्वेदेवोंके दो आसन होते हैं; एकपर पिता-पितामहादिसम्बन्धी विश्वेदेवोंका आवाहन होता है और दूसरेपर मातामहादिसम्बन्धी विश्वेदेवोंका।] उनके लिये दो अर्घ्य-पात्र (सिकोरे या दोने) जौ और जल आदिसे भर दे और उन्हें कुशकी पवित्रीपर रखे। **'शंनो देवीरभिष्टय०'** इत्यादि मन्त्रसे जल तथा **'यवोऽसि—'** इत्यादिके द्वारा जौके दोनोंको उन पात्रोंमें छोड़ना चाहिये। फिर गन्ध-पुष्प आदिसे पूजा करके वहाँ विश्वेदेवोंकी स्थापना करे और **'विश्वे देवास'**—इत्यादि दो मन्त्रोंसे विश्वेदेवोंका आवाहन करके उनके ऊपर जौ छोड़े। जौ छोड़ते समय इस प्रकार कहे—'जौ! तुम सब अन्नोंके राजा हो। तुम्हारे देवता वरुण हैं—वरुणसे ही तुम्हारी उत्पत्ति हुई है; तुम्हारे अंदर मधुका मेल है। तुम सम्पूर्ण पापोंको दूर करनेवाले, पवित्र एवं मुनियोंद्वारा प्रशंसित अन्न हो।'* फिर अर्घ्यपात्रको चन्दन और फूलोंसे सजाकर **'या दिव्या आपः'**—इस मन्त्रको पढ़ते हुए विश्वेदेवोंको अर्घ्य दे। इसके बाद उनकी पूजा करके गन्ध आदि निवेदन कर पितृयज्ञ (पितृश्राद्ध) आरम्भ करे। पहले पिता आदिके लिये कुशके तीन आसनोंकी कल्पना करके फिर तीन अर्घ्यपात्रोंका पूजन करे—उन्हें पुष्प आदिसे सजावे। प्रत्येक अर्घ्यपात्रको कुशकी पवित्रीसे युक्त करके **'शंनो देवीरभिष्टय०—'** इस मन्त्रसे सबमें जल छोड़े। फिर **'तिलोऽसि सोमदेवत्यो—'** इस मन्त्रसे तिल छोड़कर [बिना मन्त्रके ही] चन्दन और पुष्प आदि भी छोड़े। अर्घ्यपात्र पीपल आदिकी लकड़ीका, पत्तेका या चाँदीका बनवावे अथवा समुद्रसे निकले हुए शंख आदिसे अर्घ्यपात्रका काम ले। सोने, चाँदी और ताँबेका पात्र पितरोंको अभीष्ट होता है। चाँदीकी तो चर्चा सुनकर भी पितर प्रसन्न हो जाते हैं। चाँदीका दर्शन अथवा चाँदीका दान उन्हें प्रिय है। यदि चाँदीके बने हुए अथवा चाँदीसे युक्त पात्रमें जल भी रखकर पितरोंको श्रद्धापूर्वक दिया जाय तो वह अक्षय हो जाता है। इसलिये पितरोंके पिण्डोंपर अर्घ्य चढ़ानेके लिये चाँदीका ही पात्र उत्तम माना गया है। चाँदी भगवान् श्रीशंकरके नेत्रसे प्रकट हुई है, इसलिये वह पितरोंको अधिक प्रिय है।

इस प्रकार उपर्युक्त वस्तुओंमेंसे जो सुलभ हो, उसके अर्घ्यपात्र बनाकर उन्हें ऊपर बताये अनुसार जल, तिल और गन्ध-पुष्प आदिसे सुसज्जित करे; तत्पश्चात् **'या दिव्या आपः'** इस मन्त्रको पढ़कर पिताके नाम और गोत्र आदिका उच्चारण करके अपने हाथमें कुश ले ले। फिर इस प्रकार कहे—**'पितॄन् आवाहयिष्यामि'**— 'पितरोंका आवाहन करूँगा।' तब निमन्त्रणमें आये हुए ब्राह्मण 'तथास्तु' कहकर श्राद्धकर्ताको आवाहनके लिये आज्ञा प्रदान करें। इस प्रकार ब्राह्मणोंकी अनुमति लेकर **'उशन्तस्त्वा नि धीमहि—' 'आ यन्तु नः पितरः—'** इन दो ऋचाओंका पाठ करते हुए वह पितरोंका आवाहन करे। तदनन्तर **'या दिव्या आपः—'** इस मन्त्रसे पितरोंको अर्घ्य देकर प्रत्येकके लिये गन्ध-पुष्प आदि पूजोपचार एवं वस्त्र चढ़ावे तथा पृथक्-पृथक् संकल्प पढ़कर उन्हें समर्पित करे। [अर्घ्यदानकी प्रक्रिया इस प्रकार है—] पहले अनुलोमक्रमसे अर्थात् पिताके उद्देश्यसे दिये हुए अर्घ्यपात्रका जल पितामहके अर्घ्यपात्रमें डाले और फिर पितामहके अर्घ्यपात्रका सारा जल प्रपितामहके अर्घ्यपात्रमें डाल दे, फिर विलोमक्रमसे अर्थात् प्रपितामहके अर्घ्यपात्रको पितामहके अर्घ्यपात्रमें रखे और उन दोनों पात्रोंको उठाकर पिताके अर्घ्यपात्रमें रखे। इस प्रकार तीनों अर्घ्यपात्रोंको एक-दूसरेके ऊपर करके पिताके आसनके उत्तरभागमें **'पितृभ्यः स्थानमसि'** ऐसा कहकर उन्हें ढुलका दे—उलटकर रख दे। ऐसा करके अन्न परोसनेका कार्य करे।

परोसनेके समय भी पहले अग्निकार्य करना चाहिये अर्थात् थोड़ा-सा अन्न निकालकर **'अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा'** और **'सोमाय पितृमते स्वाहा'**—इन दो मन्त्रोंसे

---

* यवोऽसि धान्यराजस्तु वारुणो मधुमिश्रितः। निर्णोदः सर्वपापानां पवित्रमृषिसंस्तुतम्॥

अग्नि और सोम देवताके लिये अग्निमें दो बार आहुति डाले। इसके बाद दोनों हाथोंसे अन्न निकालकर परोसे। परोसते समय **'उशन्तस्त्वा नि धीमहि—'** इत्यादि मन्त्रका उच्चारण करता रहे। उत्तम, गुणकारी शाक आदि तथा नाना प्रकारके भक्ष्य पदार्थोंके साथ दही, दूध, गौका घृत और शक्कर आदिसे युक्त अन्न पितरोंके लिये तृप्तिकारक होता है। मधु मिलाकर तैयार किया हुआ कोई भी पदार्थ तथा गायका दूध और घी मिलायी हुई खीर आदि पितरोंके लिये दी जाय तो वह अक्षय होती है—ऐसा आदि देवता पितरोंने स्वयं अपने ही मुखसे कहा है। इस प्रकार अन्न परोसकर पितृसम्बन्धी ऋचाओंका पाठ सुनावे। इसके सिवा सभी तरहके पुराण; ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य और रुद्र-सम्बन्धी भाँति-भाँतिके स्तोत्र; इन्द्र, रुद्र और सोमदेवताके सूक्त; पावमानी ऋचाएँ; बृहद्रथन्तर; ज्येष्ठसामका गौरवगान; शान्तिकाध्याय, मधुब्राह्मण, मण्डलब्राह्मण तथा और भी जो कुछ ब्राह्मणोंको तथा अपनेको प्रिय लगे वह सब सुनाना चाहिये। महाभारतका भी पाठ करना चाहिये; क्योंकि वह पितरोंको अत्यन्त प्रिय है। ब्राह्मणोंके भोजन कर लेनेपर जो अन्न और जल आदि शेष रहे, उसे उनके आगे जमीनपर बिखेर दे। यह उन जीवोंका भाग है, जो संस्कार आदिसे हीन होनेके कारण अधम गतिको प्राप्त हुए हैं।

ब्राह्मणोंको तृप्त जानकर उन्हें हाथ-मुँह धोनेके लिये जल प्रदान करे। इसके बाद गायके गोबर और गोमूत्रसे लिपी हुई भूमिपर दक्षिणाग्र कुश बिछाकर उनके ऊपर यत्नपूर्वक पितृयज्ञकी भाँति विधिवत् पिण्डदान करे। पिण्डदानके पहले पितरोंके नाम-गोत्रका उच्चारण करके उन्हें अवनेजनके लिये जल देना चाहिये। फिर पिण्ड देनेके बाद पिण्डोंपर प्रत्यवनेजनका जल गिराकर उनपर पुष्प आदि चढ़ाना चाहिये। सव्यापसव्यका विचार करके प्रत्येक कार्यका सम्पादन करना उचित है। पिताके श्राद्धकी भाँति माताका श्राद्ध भी हाथमें कुश लेकर विधिवत् सम्पन्न करे। दीप जलावे; पुष्प आदिसे पूजा करे। ब्राह्मणोंके आचमन कर लेनेपर स्वयं भी आचमन करके एक-एक बार सबको जल दे। फिर फूल और अक्षत देकर तिलसहित अक्षय्योदक दान करे। फिर नाम और गोत्रका उच्चारण करते हुए शक्तिके अनुसार दक्षिणा दे। गौ, भूमि, सोना, वस्त्र और अच्छे-अच्छे बिछौने दे। कृपणता छोड़कर पितरोंकी प्रसन्नताका सम्पादन करते हुए जो-जो वस्तु ब्राह्मणोंको, अपनेको तथा पिताको भी प्रिय हो, वही-वही वस्तु दान करे। तत्पश्चात् स्वधावाचन करके विश्वेदेवोंको जल अर्पण करे और ब्राह्मणोंसे आशीर्वाद ले। विद्वान् पुरुष पूर्वाभिमुख होकर कहे—**'अघोराः पितरः सन्तु** (मेरे पितर शान्त एवं मंगलमय हों)।' यजमानके ऐसा कहनेपर ब्राह्मणलोग **'तथा सन्तु** (तुम्हारे पितर ऐसे ही हों)'—ऐसा कहकर अनुमोदन करें। फिर श्राद्धकर्ता कहे—**'गोत्रं नो वर्धताम्'** (हमारा गोत्र बढ़े)। यह सुनकर ब्राह्मणोंको **'तथास्तु'** (ऐसा ही हो) इस प्रकार उत्तर देना चाहिये। फिर यजमान कहे—**'दातारो मेऽभिवर्धन्ताम्' 'वेदाः सन्ततिरेव च—एताः सत्या आशिषः सन्तु** (मेरे दाता बढ़ें, साथ ही मेरे कुलमें वेदोंके अध्ययन और सुयोग्य सन्तानकी वृद्धि हो—ये सारे आशीर्वाद सत्य हों)'। यह सुनकर ब्राह्मण कहें—**'सन्तु सत्या आशिषः** (ये आशीर्वाद सत्य हों)'। इसके बाद भक्तिपूर्वक पिण्डोंको उठाकर सूँघे और स्वस्तिवाचन करे। फिर भाई-बन्धु और स्त्री-पुत्रके साथ प्रदक्षिणा करके आठ पग चले। तदनन्तर लौटकर प्रणाम करे। इस प्रकार श्राद्धकी विधि पूरी करके मन्त्रवेत्ता पुरुष अग्नि प्रज्वलित करनेके पश्चात् बलिवैश्वदेव तथा नैत्यिक बलि अर्पण करे। तदनन्तर भृत्य, पुत्र, बान्धव तथा अतिथियोंके साथ बैठकर वही अन्न भोजन करे, जो पितरोंको अर्पण किया गया हो। जिसका यज्ञोपवीत नहीं हुआ है, ऐसा पुरुष भी इस श्राद्धको प्रत्येक पर्वपर कर सकता है। इसे साधारण [या नैमित्तिक] श्राद्ध कहते हैं। यह सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। राजन्! स्त्रीरहित या विदेशस्थित मनुष्य भी भक्तिपूर्ण हृदयसे इस श्राद्धका अनुष्ठान करनेका अधिकारी है। यही नहीं, शूद्र भी इसी विधिसे श्राद्ध कर सकता है; अन्तर इतना ही है कि वह

वेदमन्त्रोंका उच्चारण नहीं कर सकता।

तीसरा अर्थात् काम्य श्राद्ध आभ्युदयिक है; इसे वृद्धि-श्राद्ध भी कहते हैं। उत्सव और आनन्दके अवसरपर, संस्कारके समय, यज्ञमें तथा विवाह आदि मांगलिक कार्योंमें यह श्राद्ध किया जाता है। इसमें पहले माताओंकी अर्थात् माता, पितामही और प्रपितामहीकी पूजा होती है। इनके बाद पितरों—पिता, पितामह और प्रपितामहका पूजन किया जाता है। अन्तमें मातामह आदिकी पूजा होती है। अन्य श्राद्धोंकी भाँति इसमें भी विश्वेदेवोंकी पूजा आवश्यक है। दक्षिणावर्तक क्रमसे पूजोपचार चढ़ाना चाहिये। आभ्युदयिक श्राद्धमें दही, अक्षत, फल और जलसे ही पूर्वाभिमुख होकर पितरोंको पिण्डदान दिया जाता है। **'सम्पन्नम्'** का उच्चारण करके अर्घ्य और पिण्डदान देना चाहिये। इसमें युगल ब्राह्मणोंको अर्घ्य दान दे तथा युगल (सपत्नीक) ब्राह्मणोंकी ही वस्त्र और सुवर्ण आदिके द्वारा पूजा करे। तिलका काम जौसे लेना चाहिये तथा सारा कार्य पूर्ववत् करना चाहिये। श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके द्वारा सब प्रकारके मंगलपाठ करावे। इस प्रकार शूद्र भी कर सकता है। यह वृद्धिश्राद्ध सबके लिये सामान्य है। बुद्धिमान् शूद्र **'पित्रे नमः'** इत्यादि नमस्कार-मन्त्रके द्वारा ही दान आदि कार्य करे। भगवान्का कथन है कि शूद्रके लिये दान ही प्रधान है; क्योंकि दानसे उसकी समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं।

एकोद्दिष्ट आदि श्राद्धोंकी विधि तथा श्राद्धोपयोगी तीर्थोंका वर्णन

पुलस्त्यजी कहते हैं—राजन्! अब मैं एकोद्दिष्ट श्राद्धका वर्णन करूँगा, जिसे पूर्वकालमें ब्रह्माजीने बतलाया था। साथ ही यह भी बताऊँगा कि पिताके मरनेपर पुत्रोंको किस प्रकार अशौचका पालन करना चाहिये। ब्राह्मणोंमें मरणाशौच दस दिनतक रखनेकी आज्ञा है, क्षत्रियोंमें बारह दिन, वैश्योंमें पंद्रह दिन तथा शूद्रोंमें एक महीनेका विधान है। यह अशौच सपिण्ड (सात पीढ़ीतक)-के प्रत्येक मनुष्यपर लागू होता है। यदि किसी बालककी मृत्यु चूडाकरणके पहले हो जाय तो उसका अशौच एक रातका कहा गया है। उसके बाद उपनयनके पहलेतक तीन राततक अशौच रहता है। जननाशौचमें भी सब वर्णोंके लिये यही व्यवस्था है। अस्थि-संचयनके बाद अशौचग्रस्त पुरुषके शरीरका स्पर्श किया जा सकता है। प्रेतके लिये बारह दिनोंतक प्रतिदिन पिण्ड-दान करना चाहिये; क्योंकि वह उसके लिये पाथेय (राहखर्च) है, इसलिये उसे पाकर प्रेतको बड़ी प्रसन्नता होती है। द्वादशाहके बाद ही प्रेतको यमपुरीमें ले जाया जाता है; तबतक वह घरपर ही रहता है। अतः दस राततक प्रतिदिन उसके लिये आकाशमें दूध देना चाहिये; इससे सब प्रकारके दाहकी शान्ति होती है तथा मार्गके परिश्रमका भी निवारण होता है। दशाहके बाद ग्यारहवें दिन, जब कि सूतक निवृत्त हो जाता है, अपने गोत्रके ग्यारह ब्राह्मणोंको ही बुलाकर भोजन कराना चाहिये। अशौचकी समाप्तिके दूसरे दिन एकोद्दिष्ट श्राद्ध करे। इसमें न तो आवाहन होता है न अग्नौकरण (अग्निमें हवन)। विश्वेदेवोंका पूजन आदि भी नहीं होता। एक ही पवित्री, एक ही अर्घ और एक ही पिण्ड देनेका विधान है। अर्घ और पिण्ड आदि देते समय प्रेतका नाम लेकर **'तवोपतिष्ठताम्',** (तुम्हें प्राप्त हो) ऐसा कहना चाहिये। तत्पश्चात् तिल और जल छोड़ना चाहिये। अपने किये हुए दानका जल ब्राह्मणके हाथमें देना चाहिये तथा विसर्जनके समय **'अभिरम्यताम्'** कहना चाहिये। शेष कार्य अन्य श्राद्धोंकी ही भाँति जानना चाहिये। उस दिन विधिपूर्वक शय्यादान, फल-वस्त्रसमन्वित कांचनपुरुषकी पूजा तथा द्विज-दम्पतिका पूजन भी करना आवश्यक है।

एकादशाह श्राद्धमें कभी भोजन नहीं करना चाहिये। यदि भोजन कर ले तो चान्द्रायणव्रत करना उचित है। सुयोग्य पुत्रको पिताकी भक्तिसे प्रेरित होकर सदा ही एकोद्दिष्ट श्राद्ध करना चाहिये। एकादशाहके दिन वृषोत्सर्ग करे, उत्तम कपिला गौ दान दे और उसी दिनसे आरम्भ करके एक वर्षतक प्रतिदिन भक्ष्य-भोज्यके

साथ तिल और जलसे भरा हुआ घड़ा दान करना चाहिये। [इसीको कुम्भदान कहते हैं।] तदनन्तर वर्ष पूरा होनेपर सपिण्डीकरण श्राद्ध होना चाहिये। सपिण्डीकरणके बाद प्रेत [प्रेतत्वसे मुक्त होकर] पार्वणश्राद्धका अधिकारी होता है तथा गृहस्थके वृद्धि-सम्बन्धी कार्योंमें आभ्युदयिक श्राद्धका भागी होता है। सपिण्डीकरण श्राद्ध देवश्राद्धपूर्वक करना चाहिये अर्थात् उसमें पहले विश्वेदेवोंकी, फिर पितरोंकी पूजा होती है। सपिण्डीकरणमें जब पितरोंका आवाहन करे तो प्रेतका आसन उनसे अलग रखे। फिर चन्दन, जल और तिलसे युक्त चार अर्घ्यपात्र बनावे तथा प्रेतके अर्घ्यपात्रका जल तीन भागोंमें विभक्त करके पितरोंके अर्घ्यपात्रोंमें डाले। इसी प्रकार पिण्डदान करनेवाला पुरुष चार पिण्ड बनाकर **'ये समानाः'**—इत्यादि दो मन्त्रोंके द्वारा प्रेतके पिण्डको तीन भागोंमें विभक्त करे [और एक-एक भागको पितरोंके तीन पिण्डोंमें मिला दे]। इसी विधिसे पहले अर्घ्यको और फिर पिण्डोंको संकल्पपूर्वक समर्पित करे। तदनन्तर वह चतुर्थ व्यक्ति अर्थात् प्रेत पितरोंकी श्रेणीमें सम्मिलित हो जाता है और अग्निष्वात्त आदि पितरोंके बीचमें बैठकर उत्तम अमृतका उपभोग करता है। इसलिये सपिण्डीकरण श्राद्धके बाद उस (प्रेत)-को पृथक् कुछ नहीं दिया जाता। पितरोंमें ही उसका भाग भी देना चाहिये तथा उन्हींके पिण्डोंमें स्थित होकर वह अपना भाग ग्रहण करता है। तबसे लेकर जब-जब संक्रान्ति और ग्रहण आदि पर्व आवें, तब-तब तीन पिण्डोंका ही श्राद्ध करना चाहिये। केवल मृत्यु-तिथिको केवल उसीके लिये एकोद्दिष्ट श्राद्ध करना उचित है। पिताके क्षयाहके दिन जो एकोद्दिष्ट नहीं करता, वह सदाके लिये पिताका हत्यारा और भाईका विनाश करनेवाला माना गया है। क्षयाह-तिथिको [एकोद्दिष्ट न करके] पार्वणश्राद्ध करनेवाला मनुष्य नरकगामी होता है। मृत व्यक्तिको जिस प्रकार प्रेतयोनिसे छुटकारा मिले और उसे स्वर्गादि उत्तम लोकोंकी प्राप्ति हो, इसके लिये विधिपूर्वक आमश्राद्ध* करना चाहिये। कच्चे अन्नसे ही अग्नौकरणकी क्रिया करे और उसीसे पिण्ड भी दे। पहले या तीसरे महीनेमें भी जब मृत व्यक्तिका पिता आदि तीन पुरुषोंके साथ सपिण्डीकरण हो जाता है, तब प्रेतत्वके बन्धनसे उसकी मुक्ति हो जाती है। मुक्त होनेपर उससे लेकर तीन पीढ़ीतकके पितर सपिण्ड कहलाते हैं तथा चौथा सपिण्डकी श्रेणीसे निकलकर लेपभागी हो जाता है। कुशमें हाथ पोंछनेसे जो अंश प्राप्त होता है, वही उसके उपभोगमें आता है। पिता, पितामह और प्रपितामह—ये तीन पिण्डभागी होते हैं; और इनसे ऊपर चतुर्थ व्यक्ति अर्थात् वृद्धप्रपितामहसे लेकर तीन पीढ़ीतकके पूर्वज लेपभागभोजी माने जाते हैं। [छः तो ये हुए,] इनमें सातवाँ है स्वयं पिण्ड देनेवाला पुरुष। ये ही सात पुरुष सपिण्ड कहलाते हैं।

भीष्मजीने पूछा—ब्रह्मन्! हव्य और कव्यका दान मनुष्योंको किस प्रकार करना चाहिये? पितृलोकमें उन्हें कौन ग्रहण करते हैं? यदि इस मर्त्यलोकमें ब्राह्मण श्राद्धके अन्नको खा जाते हैं अथवा अग्निमें उसका हवन कर दिया जाता है तो शुभ और अशुभ योनियोंमें पड़े हुए प्रेत उस अन्नको कैसे खाते हैं—उन्हें वह किस प्रकार मिल पाता है?

पुलस्त्यजी बोले—राजन्! पिता वसुके, पितामह रुद्रके तथा प्रपितामह आदित्यके स्वरूप हैं—ऐसी वेदकी श्रुति है। पितरोंके नाम और गोत्र ही उनके पास हव्य और कव्य पहुँचानेवाले हैं। मन्त्रकी शक्ति तथा हृदयकी भक्तिसे श्राद्धका सार-भाग पितरोंको प्राप्त होता है। अग्निष्वात्त आदि दिव्य पितर पिता-पितामह आदिके अधिपति हैं—वे ही उनके पास श्राद्धका अन्न पहुँचानेकी व्यवस्था करते हैं। पितरोंमेंसे जो लोग कहीं जन्म ग्रहण कर लेते हैं, उनके भी कुछ-न-कुछ नाम, गोत्र तथा देश आदि तो होते ही हैं; [दिव्य पितरोंको उनका ज्ञान होता है और वे उसी पतेपर सभी वस्तुएँ

* कच्चे अन्नके द्वारा श्राद्ध।

पहुँचा देते हैं।] अतः यह भेंट-पूजा आदिके रूपमें दिया हुआ सब सामान प्राणियोंके पास पहुँचकर उन्हें तृप्त करता है। यदि शुभ कर्मोंके योगसे पिता और माता दिव्ययोनिको प्राप्त हुए हों तो श्राद्धमें दिया हुआ अन्न अमृत होकर उस अवस्थामें भी उन्हें प्राप्त होता है। वही दैत्ययोनिमें भोगरूपसे, पशुयोनिमें तृणरूपसे, सर्पयोनिमें वायुरूपसे तथा यक्षयोनिमें पानरूपसे उपस्थित होता है। इसी प्रकार यदि माता-पिता मनुष्य-योनिमें हों तो उन्हें अन्न-पान आदि अनेक रूपोंमें श्राद्धान्नकी प्राप्ति होती है। यह श्राद्ध कर्म पुष्प कहा गया है, इसका फल है ब्रह्मकी प्राप्ति। राजन्! श्राद्धसे प्रसन्न हुए पितर आयु, पुत्र, धन, विद्या, राज्य, लौकिक सुख, स्वर्ग तथा मोक्ष भी प्रदान करते हैं।

भीष्मजीने पूछा—ब्रह्मन्! श्राद्धकर्ता पुरुष दिनके किस भागमें श्राद्धका अनुष्ठान करे तथा किन तीर्थोंमें किया हुआ श्राद्ध अधिक फल देनेवाला होता है?

पुलस्त्यजी बोले—राजन्! पुष्कर नामका तीर्थ सब तीर्थोंमें श्रेष्ठतम माना गया है। वहाँ किया हुआ दान, होम, [श्राद्ध] और जप निश्चय ही अक्षय फल प्रदान करनेवाला होता है। वह तीर्थ पितरों और ऋषियोंको सदा ही परम प्रिय है। इसके सिवा नन्दा, ललिता तथा मायापुरी (हरिद्वार) भी पुष्करके ही समान उत्तम तीर्थ हैं। मित्रपद और केदार-तीर्थ भी श्रेष्ठ हैं। गंगासागर नामक तीर्थको परम शुभदायक और सर्वतीर्थमय बतलाया जाता है। ब्रह्मसर तीर्थ और शतद्रु (सतलज) नदीका जल भी शुभ है। नैमिषारण्य नामक तीर्थ तो सब तीर्थोंका फल देनेवाला है। वहाँ गोमतीमें गंगाका सनातन स्रोत प्रकट हुआ है। नैमिषारण्यमें भगवान् यज्ञ-वराह और देवाधिदेव शूलपाणि विराजते हैं। जहाँ सोनेका दान दिया जाता है, वहाँ महादेवजीकी अठारह भुजावाली मूर्ति है। पूर्वकालमें जहाँ धर्मचक्रकी नेमि जीर्ण-शीर्ण होकर गिरी थी, वही स्थान नैमिषारण्यके नामसे प्रसिद्ध हुआ। वहाँ सब तीर्थोंका निवास है। जो वहाँ जाकर देवाधिदेव वराहका दर्शन करता है, वह धर्मात्मा पुरुष भगवान् श्रीनारायणके धाममें जाता है। कोकामुख नामक क्षेत्र भी एक प्रधान तीर्थ है। यह इन्द्रलोकका मार्ग है। यहाँ भी ब्रह्माजीके पितृतीर्थका दर्शन होता है। वहाँ भगवान् ब्रह्माजी पुष्करारण्यमें विराजमान हैं। ब्रह्माजीका दर्शन अत्यन्त उत्तम एवं मोक्षरूप फल प्रदान करनेवाला है। कृत नामक महान् पुण्यमय तीर्थ सब पापोंका नाशक है। वहाँ आदिपुरुष नरसिंहस्वरूप भगवान् जनार्दन स्वयं ही स्थित हैं। इक्षुमती नामक तीर्थ पितरोंको सदा प्रिय है। गंगा और यमुनाके संगम (प्रयाग)-में भी पितर सदा सन्तुष्ट रहते हैं। कुरुक्षेत्र अत्यन्त पुण्यमय तीर्थ है। वहाँका पितृ-तीर्थ सम्पूर्ण अभीष्ट फलोंको देनेवाला है।

राजन्! नीलकण्ठ नामसे विख्यात तीर्थ भी पितरोंका तीर्थ है। इसी प्रकार परम पवित्र भद्रसर तीर्थ, मानसरोवर, मन्दाकिनी, अच्छोदा, विपाशा (व्यास नदी), पुण्यसलिला सरस्वती, सर्वमित्रपद, महाफल-दायक वैद्यनाथ, अत्यन्त पावन क्षिप्रा नदी, कालिंजर गिरि, तीर्थोद्भेद, हरोद्भेद, गर्भभेद, महालय, भद्रेश्वर, विष्णुपद, नर्मदाद्वार तथा गयातीर्थ—ये सब पितृतीर्थ हैं। महर्षियोंका कथन है कि इन तीर्थोंमें पिण्डदान करनेसे समान फलकी प्राप्ति होती है। ये स्मरण करने मात्रसे लोगोंके सारे पाप हर लेते हैं; फिर जो इनमें पिण्डदान करते हैं, उनकी तो बात ही क्या है। ओंकारतीर्थ, कावेरी नदी, कपिलाका जल, चण्डवेगा नदीमें मिली हुई नदियोंके संगम तथा अमरकण्टक—ये सब पितृतीर्थ हैं। अमरकण्टकमें किये हुए स्नान आदि पुण्य-कार्य कुरुक्षेत्रकी अपेक्षा दसगुना उत्तम फल देनेवाले हैं। विख्यात शुक्लतीर्थ एवं उत्तम सोमेश्वरतीर्थ अत्यन्त पवित्र और सम्पूर्ण व्याधियोंको हरनेवाले हैं। वहाँ श्राद्ध करने, दान देने तथा होम, स्वाध्याय, जप और निवास करनेसे अन्य तीर्थोंकी अपेक्षा कोटिगुना अधिक फल होता है।

इनके अतिरिक्त एक कायावरोहण नामक तीर्थ है, जहाँ किसी ब्राह्मणके उत्तम भवनमें देवाधिदेव त्रिशूलधारी भगवान् शंकरका तेजस्वी अवतार हुआ था।

इसीलिये वह स्थान परम पुण्यमय तीर्थ बन गया। चर्मण्वती नदी, शूलतापी, पयोष्णी, पयोष्णी-संगम, महौषधी, चारणा, नागतीर्थप्रवर्तिनी, पुण्यसलिला महावेणा नदी, महाशालतीर्थ, गोमती, वरुणा, अग्नितीर्थ, भैरवतीर्थ, भृगुतीर्थ, गौरीतीर्थ, वैनायकतीर्थ, वस्त्रेश्वरतीर्थ, पापहरतीर्थ, पावनसलिला वेत्रवती (बेतवा) नदी, महारुद्रतीर्थ, महालिंगतीर्थ, दशार्णा, महानदी, शतरुद्रा, शताह्वा, पितृपदपुर, अंगारवाहिका नदी, शोण (सोन) और घर्घर (घाघरा) नामवाले दो नद, परमपावन कालिका नदी और शुभदायिनी पितरा नदी—ये समस्त पितृतीर्थ स्नान और दानके लिये उत्तम माने गये हैं। इन तीर्थोंमें जो पिण्ड आदि दिया जाता है, वह अनन्त फल देनेवाला माना गया है। शतवटा नदी, ज्वाला, शरद्वी नदी, श्रीकृष्णतीर्थ—द्वारकापुरी, उदक्सरस्वती, मालवती नदी, गिरिकर्णिका, दक्षिण-समुद्रके तटपर विद्यमान भूतपापतीर्थ, गोकर्णतीर्थ, गजकर्णतीर्थ, परम उत्तम चक्रनदी, श्रीशैल, शाकतीर्थ, नारसिंहतीर्थ, महेन्द्र पर्वत तथा पावनसलिला महानदी—इन सब तीर्थोंमें किया हुआ श्राद्ध भी सदा अक्षय फल प्रदान करनेवाला माना गया है। ये दर्शनमात्रसे पुण्य उत्पन्न करनेवाले तथा तत्काल समस्त पापोंको हर लेनेवाले हैं।

पुण्यमयी तुंगभद्रा, चक्ररथी, भीमेश्वरतीर्थ, कृष्णवेणा, कावेरी, अंजना, पावनसलिला गोदावरी, उत्तम त्रिसन्ध्यातीर्थ और समस्त तीर्थोंसे नमस्कृत त्र्यम्बकतीर्थ, जहाँ 'भीम' नामसे प्रसिद्ध भगवान् शंकर स्वयं विराजमान हैं, अत्यन्त उत्तम हैं। इन सबमें दिया हुआ दान कोटिगुना अधिक फल देनेवाला है। इनके स्मरण करनेमात्रसे पापोंके सैकड़ों टुकड़े हो जाते हैं। परम पावन श्रीपर्णा नदी, अत्यन्त उत्तम व्यासतीर्थ, मत्स्यनदी, राका, शिवधारा, विख्यात भवतीर्थ, सनातन पुण्यतीर्थ, पुण्यमय रामेश्वरतीर्थ, वेणायु, अमलपुर, प्रसिद्ध मंगलतीर्थ, आत्मदर्शतीर्थ, अलम्बुषतीर्थ, वत्सव्रातेश्वरतीर्थ, गोकामुखतीर्थ, गोवर्धन, हरिश्चन्द्र, पुरश्चन्द्र, पृथूदक, सहस्राक्ष, हिरण्याक्ष, कदली नदी, नामधेयतीर्थ, सौमित्रिसंगमतीर्थ, इन्द्रनील, महानाद तथा प्रियमेलक—ये भी श्राद्धके लिये अत्यन्त उत्तम माने गये हैं; इनमें सम्पूर्ण देवताओंका निवास बताया जाता है। इन सबमें दिया हुआ दान कोटिगुना अधिक फल देनेवाला होता है। पावन नदी बाहुदा, शुभकारी, सिद्धवट, पाशुपततीर्थ, पर्यटिका नदी—इन सबमें किया हुआ श्राद्ध भी सौ करोड़ गुना फल देता है। इसी प्रकार पंचतीर्थ और गोदावरी नदी भी पवित्र तीर्थ हैं। गोदावरी दक्षिण-वाहिनी नदी है। उसके तटपर हजारों शिवलिंग हैं। वहीं जामदग्न्यतीर्थ और उत्तम मोदायतनतीर्थ हैं, जहाँ गोदावरी नदी प्रतीकके भयसे सदा प्रवाहित होती रहती हैं। इसके सिवा हव्य-कव्य नामका तीर्थ भी है। वहाँ किये हुए श्राद्ध, होम और दान सौ करोड़ गुना अधिक फल देनेवाले होते हैं, सहस्रलिंग और राघवेश्वर नामक तीर्थका माहात्म्य भी ऐसा ही है। वहाँ किया हुआ श्राद्ध अनन्तगुना फल देता है। शालग्रामतीर्थ, प्रसिद्ध शोणपात (सोनपत)-तीर्थ, वैश्वानराशयतीर्थ, सारस्वततीर्थ, स्वामितीर्थ, मलंदरा नदी, पुण्यसलिला कौशिकी, चन्द्रका, विदर्भा, वेगा, प्राङ्मुखा, कावेरी, उत्तरांगा और जालन्धर गिरि—इन तीर्थोंमें किया हुआ श्राद्ध अक्षय हो जाता है। लोहदण्डतीर्थ, चित्रकूट, सभी स्थानोंमें गंगानदीके दिव्य एवं कल्याणमय तट, कुब्जाम्रक, उर्वशी-पुलिन, संसारमोचन और ऋणमोचनतीर्थ—इनमें किया हुआ श्राद्ध अनन्त हो जाता है। अट्टहासतीर्थ, गौतमेश्वरतीर्थ, वसिष्ठतीर्थ, भारततीर्थ-ब्रह्मावर्त, कुशावर्त, हंसतीर्थ, प्रसिद्ध पिण्डारकतीर्थ, शंखोद्धारतीर्थ, भाण्डेश्वरतीर्थ, बिल्वकतीर्थ, नीलपर्वत, सब तीर्थोंका राजाधिराज बदरीतीर्थ, वसुधारातीर्थ, रामतीर्थ, जयन्ती, विजय तथा शुक्लतीर्थ—इनमें पिण्डदान करनेवाले पुरुष परम पदको प्राप्त होते हैं।

मातृगृहतीर्थ, करवीरपुर तथा सब तीर्थोंका स्वामी सप्तगोदावरी नामक तीर्थ भी अत्यन्त पावन हैं। जिन्हें अनन्त फल प्राप्त करनेकी इच्छा हो, उन पुरुषोंको इन तीर्थोंमें पिण्डदान करना चाहिये। मगध देशमें गया

नामकी पुरी तथा राजगृह नामक वन पावन तीर्थ हैं। वहीं च्यवन मुनिका आश्रम, पुनःपुना (पुनपुन) नदी और विषयाराधनतीर्थ—ये सभी पुण्यमय स्थान हैं। राजेन्द्र! लोगोंमें यह किंवदन्ती प्रचलित है कि एक समय सब मनुष्य यही कहते हुए तीर्थों और मन्दिरोंमें आये थे कि 'क्या हमारे कुलमें कोई ऐसा पुत्र उत्पन्न होगा, जो गयाकी यात्रा करेगा? जो वहाँ जायगा, वह सात पीढ़ीतकके पूर्वजोंको और सात पीढ़ीतककी होनेवाली सन्तानोंको तार देगा।' मातामह आदिके सम्बन्धमें भी यह सनातन श्रुति चिरकालसे प्रसिद्ध है; वे कहते हैं—'क्या हमारे वंशमें एक भी ऐसा पुत्र होगा, जो अपने पितरोंकी हड्डियोंको ले जाकर गंगामें डाले, सात-आठ तिलोंसे भी जलांजलि दे तथा पुष्करारण्य, नैमिषारण्य और धर्मारण्यमें पहुँचकर भक्तिपूर्वक श्राद्ध एवं पिण्डदान करे?' गया क्षेत्रके भीतर जो धर्मपृष्ठ, ब्रह्मसर तथा गयाशीर्षवट नामक तीर्थोंमें पितरोंको पिण्डदान किया जाता है, वह अक्षय होता है। जो घरपर श्राद्ध करके गयातीर्थकी यात्रा करता है, वह मार्गमें पैर रखते ही नरकमें पड़े हुए पितरोंको तुरंत स्वर्गमें पहुँचा देता है। उसके कुलमें कोई प्रेत नहीं होता। गयामें पिण्डदानके प्रभावसे प्रेतत्वसे छुटकारा मिल जाता है। [गयामें] एक मुनि थे, जो अपने दोनों हाथोंके अग्रभागमें भरा हुआ ताम्रपात्र लेकर आमोंकी जड़में पानी देते थे; इससे आमोंकी सिंचाई भी होती थी और उनके पितर भी तृप्त होते थे। इस प्रकार एक ही क्रिया दो प्रयोजनोंको सिद्ध करनेवाली हुई। गयामें पिण्डदानसे बढ़कर दूसरा कोई दान नहीं है; क्योंकि वहाँ एक ही पिण्ड देनेसे पितर तृप्त होकर मोक्षको प्राप्त होते हैं। कोई-कोई मुनीश्वर अन्नदानको श्रेष्ठ बतलाते हैं और कोई वस्त्रदानको उत्तम कहते हैं। वस्तुतः गयाके उत्तम तीर्थोंमें मनुष्य जो कुछ भी दान करते हैं, वह धर्मका हेतु और श्रेष्ठ कहा गया है।

यह तीर्थोंका संग्रह मैंने संक्षेपमें बतलाया है; विस्तारसे तो इसे बृहस्पतिजी भी नहीं कह सकते, फिर मनुष्यकी तो बात ही क्या है। सत्य तीर्थ है, दया तीर्थ है और इन्द्रियोंका निग्रह भी तीर्थ है। मनोनिग्रहको भी तीर्थ कहा गया है। सबेरे तीन मुहूर्त (छः घड़ी)-तक प्रातःकाल रहता है। उसके बाद तीन मुहूर्ततकका समय संगव कहलाता है। तत्पश्चात् तीन मुहूर्ततक मध्याह्न होता है। उसके बाद उतने ही समयतक अपराह्न रहता है। फिर तीन मुहूर्ततक सायाह्न होता है। सायाह्न-कालमें श्राद्ध नहीं करना चाहिये; क्योंकि वह राक्षसी वेला है, अतः सभी कर्मोंके लिये निन्दित है। दिनके पंद्रह मुहूर्त बतलाये गये हैं। उनमें आठवाँ मुहूर्त, जो दोपहरके बाद पड़ता है, 'कुतप' कहलाता है। उस समयसे धीरे-धीरे सूर्यका ताप मन्द पड़ता जाता है। वह अनन्त फल देनेवाला काल है। उसीमें श्राद्धका आरम्भ उत्तम माना जाता है। खड्गपात्र, कुतप, नेपालदेशीय कम्बल, सुवर्ण, कुश, तिल, गौ तथा आठवाँ दौहित्र (पुत्रीका पुत्र)—ये कुत्सित अर्थात् पापको सन्ताप देनेवाले हैं; इसलिये इन आठोंको 'कुतप' कहते हैं। कुतप मुहूर्तके बाद चार मुहूर्ततक अर्थात् कुल पाँच मुहूर्त स्वधा-वाचन (श्राद्ध)-के लिये उत्तम काल है। कुश और काले तिल भगवान् श्रीविष्णुके शरीरसे उत्पन्न हुए हैं। मनीषी पुरुषोंने श्राद्धका लक्षण और काल इसी प्रकार बताया है। तीर्थवासियोंको तीर्थके जलमें प्रवेश करके पितरोंके लिये तिल और जलकी अंजलि देनी चाहिये। एक हाथमें कुश लेकर घरमें श्राद्ध करना चाहिये। यह तीर्थ-श्राद्धका विवरण पुण्यदायक, पवित्र, आयु बढ़ानेवाला तथा समस्त पापोंका निवारण करनेवाला है। इसे स्वयं ब्रह्माजीने अपने श्रीमुखसे कहा है। तीर्थवासियोंको श्राद्धके समय इस अध्यायका पाठ करना चाहिये। यह सब पापोंकी शान्तिका साधन और दरिद्रताका नाशक है।

चन्द्रमाकी उत्पत्ति तथा यदुवंश एवं सहस्त्रार्जुनके प्रभावका वर्णन

भीष्मजीने पूछा—समस्त शास्त्रोंके ज्ञाता पुलस्त्यजी! चन्द्रवंशकी उत्पत्ति कैसे हुई? उस वंशमें कौन-कौन-से राजा अपनी कीर्तिका विस्तार करनेवाले हुए?

पुलस्त्यजीने कहा—राजन्! पूर्वकालमें ब्रह्माजीने महर्षि अत्रिको सृष्टिके लिये आज्ञा दी। तब उन्होंने सृष्टिकी शक्ति प्राप्त करनेके लिये अनुत्तर* नामका तप किया। वे अपने मन और इन्द्रियोंके संयममें तत्पर होकर परमानन्दमय ब्रह्मका चिन्तन करने लगे। एक दिन महर्षिके नेत्रोंसे कुछ जलकी बूँदें टपकने लगीं, जो अपने प्रकाशसे सम्पूर्ण चराचर जगत्को प्रकाशित कर रही थीं। दिशाओं [-की अधिष्ठात्री देवियों]-ने स्त्रीरूपमें आकर पुत्र पानेकी इच्छासे उस जलको ग्रहण कर लिया। उनके उदरमें वह जल गर्भरूपसे स्थित हुआ। दिशाएँ उसे धारण करनेमें असमर्थ हो गयीं; अतः उन्होंने उस गर्भको त्याग दिया। तब ब्रह्माजीने उनके छोड़े हुए गर्भको एकत्रित करके उसे एक तरुण पुरुषके रूपमें प्रकट किया, जो सब प्रकारके आयुधोंको धारण करनेवाला था। फिर वे उस तरुण पुरुषको देवशक्ति-सम्पन्न सहस्र नामक रथपर बिठाकर अपने लोकमें ले गये। तब ब्रह्मर्षियोंने कहा—'ये हमारे स्वामी हैं।' तदनन्तर ऋषि, देवता, गन्धर्व और अप्सराएँ उनकी स्तुति करने लगीं। उस समय उनका तेज बहुत बढ़ गया। उस तेजके विस्तारसे इस पृथ्वीपर दिव्य ओषधियाँ उत्पन्न हुईं। इसीसे चन्द्रमा ओषधियोंके स्वामी हुए तथा द्विजोंमें भी उनकी गणना हुई। वे शुक्लपक्षमें बढ़ते और कृष्णपक्षमें सदा क्षीण होते रहते हैं। कुछ कालके बाद प्रचेताओंके पुत्र प्रजापति दक्षने अपनी सत्ताईस कन्याएँ जो रूप और लावण्यसे युक्त तथा अत्यन्त तेजस्विनी थीं, चन्द्रमाको पत्नीरूपमें अर्पण कीं। तत्पश्चात् चन्द्रमाने केवल श्रीविष्णुके ध्यानमें तत्पर होकर चिरकालतक बड़ी भारी तपस्या की। इससे प्रसन्न होकर परमात्मा श्रीनारायणदेवने उनसे वर माँगनेको कहा। तब चन्द्रमाने यह वर माँगा—'मैं इन्द्रलोकमें राजसूययज्ञ करूँगा। उसमें आपके साथ ही सम्पूर्ण देवता मेरे मन्दिरमें प्रत्यक्ष प्रकट होकर यज्ञभाग ग्रहण करें। शूलधारी भगवान् श्रीशंकर मेरे यज्ञकी रक्षा करें।' 'तथास्तु' कहकर भगवान् श्रीविष्णुने स्वयं ही राजसूययज्ञका समारोह किया। उसमें अत्रि होता, भृगु अध्वर्यु और ब्रह्माजी उद्गाता हुए। साक्षात् भगवान् श्रीहरि ब्रह्मा बनकर यज्ञके द्रष्टा हुए तथा सम्पूर्ण देवताओंने सदस्यका काम सँभाला। यज्ञ पूर्ण होनेपर चन्द्रमाको दुर्लभ ऐश्वर्य मिला और वे अपनी तपस्याके प्रभावसे सातों लोकोंके स्वामी हुए।

चन्द्रमासे बुधकी उत्पत्ति हुई। ब्रह्मर्षियोंके साथ ब्रह्माजीने बुधको भूमण्डलके राज्यपर अभिषिक्त करके उन्हें ग्रहोंकी समानता प्रदान की। बुधने इलाके गर्भसे एक धर्मात्मा पुत्र उत्पन्न किया, जिसने सौसे भी अधिक अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान किया। वह पुरूरवाके नामसे विख्यात हुआ। सम्पूर्ण जगत्के लोगोंने उसके सामने मस्तक झुकाया। पुरूरवाने हिमालयके रमणीय शिखरपर ब्रह्माजीकी आराधना करके लोकेश्वरका पद प्राप्त किया। वे सातों द्वीपोंके स्वामी हुए। केशी आदि दैत्योंने उनकी दासता स्वीकार की। उर्वशी नामकी अप्सरा उनके रूपपर मोहित होकर उनकी पत्नी हो गयी। राजा पुरूरवा सम्पूर्ण लोकोंके हितैषी राजा थे; उन्होंने सातों द्वीप, वन, पर्वत और काननोंसहित समस्त भूमण्डलका धर्मपूर्वक पालन किया। उर्वशीने पुरूरवाके वीर्यसे आठ पुत्रोंको जन्म दिया। उनके नाम ये हैं—आयु, दृढायु, वश्यायु, धनायु, वृत्तिमान्, वसु, दिविजात और सुबाहु—ये सभी दिव्य बल और पराक्रमसे सम्पन्न थे। इनमेंसे आयुके पाँच पुत्र हुए—नहुष, वृद्धशर्मा, रजि, दम्भ और विपाप्मा। ये पाँचों वीर महारथी थे। रजिके सौ पुत्र हुए, जो राजेयके नामसे विख्यात थे। राजन्! रजिने

* जिससे बड़ा दूसरा कोई तप न हो, वह लोकोत्तर तपस्या ही 'अनुत्तर' तपके नामसे कही गयी है।

तपस्याद्वारा पापके सम्पर्कसे रहित भगवान् श्रीनारायणकी आराधना की। इससे सन्तुष्ट होकर श्रीविष्णुने उन्हें वरदान दिया, जिससे रजिने देवता, असुर और मनुष्योंको जीत लिया।

अब मैं नहुषके पुत्रोंका परिचय देता हूँ। उनके सात पुत्र हुए और वे सब-के-सब धर्मात्मा थे। उनके नाम ये हैं—यति, ययाति, संयाति, उद्भव, पर, वियति और विद्यसाति। ये सातों अपने वंशका यश बढ़ानेवाले थे। उनमें यति कुमारावस्थामें ही वानप्रस्थ योगी हो गये। ययाति राज्यका पालन करने लगे। उन्होंने एकमात्र धर्मकी ही शरण ले रखी थी। दानवराज वृषपर्वाकी कन्या शर्मिष्ठा तथा शुक्राचार्यकी पुत्री सती देवयानी—ये दोनों उनकी पत्नियाँ थीं। ययातिके पाँच पुत्र थे। देवयानीने यदु और तुर्वसु नामके दो पुत्रोंको जन्म दिया तथा शर्मिष्ठाने द्रुह्यु, अनु और पूरु नामक तीन पुत्र उत्पन्न किये। उनमें यदु और पूरु—ये दोनों अपने वंशका विस्तार करनेवाले हुए। यदुसे यादवोंकी उत्पत्ति हुई, जिनमें पृथ्वीका भार उतारने और पाण्डवोंका हित करनेके लिये भगवान् बलराम और श्रीकृष्ण प्रकट हुए हैं। यदुके पाँच पुत्र हुए, जो देवकुमारोंके समान थे। उनके नाम थे—सहस्रजित्, क्रोष्टु, नील, अंजिक और रघु। इनमें सहस्रजित् ज्येष्ठ थे। उनके पुत्र राजा शतजित् हुए। शतजित्के हैहय, हय और उत्तालहय—ये तीन पुत्र हुए, जो बड़े धर्मात्मा थे। हैहयका पुत्र धर्मनेत्रके नामसे विख्यात हुआ। धर्मनेत्रके कुम्भि, कुम्भिके संहत और संहतके महिष्मान् नामक पुत्र हुआ। महिष्मान्से भद्रसेन नामक पुत्रका जन्म हुआ, जो बड़ा प्रतापी था। वह काशीपुरीका राजा था। भद्रसेनके पुत्र राजा दुर्दर्श हुए। दुर्दर्शके पुत्र भीम और भीमके बुद्धिमान् कनक हुए। कनकके कृताग्नि, कृतवीर्य, कृतधर्मा और कृतौजा—ये चार पुत्र हुए, जो संसारमें विख्यात थे। कृतवीर्यका पुत्र अर्जुन हुआ, जो एक हजार भुजाओंसे सुशोभित एवं सातों द्वीपोंका राजा था। राजा कार्तवीर्यने दस हजार वर्षोंतक दुष्कर तपस्या करके भगवान् दत्तात्रेयजीकी आराधना की। पुरुषोत्तम दत्तात्रेयजीने उन्हें चार वरदान दिये। राजाओंमें श्रेष्ठ अर्जुनने पहले तो अपने लिये एक हजार भुजाएँ माँगी। दूसरे वरके द्वारा उन्होंने यह प्रार्थना की कि 'मेरे राज्यमें लोगोंको अधर्मकी बात सोचते हुए भी मुझसे भय हो और वे अधर्मके मार्गसे हट जायँ।' तीसरा वरदान इस प्रकार था—'मैं युद्धमें पृथ्वीको जीतकर धर्मपूर्वक बलका संग्रह करूँ।' चौथे वरके रूपमें उन्होंने यह माँगा कि 'संग्राममें लड़ते-लड़ते मैं अपनी अपेक्षा श्रेष्ठ वीरके हाथसे मारा जाऊँ।' राजा अर्जुनने सातों द्वीप और नगरोंसे युक्त तथा सातों समुद्रोंसे घिरी हुई इस सारी पृथ्वीको क्षात्रधर्मके अनुसार जीत लिया था। उस बुद्धिमान् नरेशके इच्छा करते ही हजार भुजाएँ प्रकट हो जाती थीं। महाबाहु अर्जुनके सभी यज्ञोंमें पर्याप्त दक्षिणा बाँटी जाती थी। सबमें सुवर्णमय यूप (स्तम्भ) और सोनेकी ही वेदियाँ बनायी जाती थीं। उन यज्ञोंमें सम्पूर्ण देवता सज-धजकर विमानोंपर बैठकर प्रत्यक्ष दर्शन देते थे। महाराज कार्तवीर्यने पचासी हजार वर्षोंतक एकछत्र राज्य किया। वे चक्रवर्ती राजा थे। योगी होनेके कारण अर्जुन समय-समयपर मेघके रूपमें प्रकट हो वृष्टिके द्वारा प्रजाको सुख पहुँचाते थे। प्रत्यंचाके आघातसे उनकी भुजाओंकी त्वचा कठोर हो गयी थी। जब वे अपनी हजारों भुजाओंके साथ संग्राममें खड़े होते थे, उस समय सहस्रों किरणोंसे सुशोभित शरत्कालीन सूर्यके समान तेजस्वी जान पड़ते थे। परम कान्तिमान् महाराज अर्जुन माहिष्मतीपुरीमें निवास करते थे और वर्षाकालमें समुद्रका वेग भी रोक देते थे। उनकी हजारों भुजाओंके आलोडनसे समुद्र क्षुब्ध हो उठता था और उस समय पातालवासी महान् असुर लुक-छिपकर निश्चेष्ट हो जाते थे।

एक समयकी बात है, वे अपने पाँच बाणोंसे अभिमानी रावणको सेनासहित मूर्च्छित करके माहिष्मतीपुरीमें ले आये। वहाँ ले जाकर उन्होंने रावणको कैदमें डाल दिया। तब मैं (पुलस्त्य) अर्जुनको प्रसन्न करनेके लिये गया। राजन्! मेरी बात मानकर उन्होंने मेरे पौत्रको छोड़ दिया और उसके साथ मित्रता

कर ली। किन्तु विधाताका बल और पराक्रम अद्‌भुत है, जिसके प्रभावसे भृगुनन्दन परशुरामजीने राजा कार्तवीर्यकी हजारों भुजाओंको सोनेके तालवनकी भाँति संग्राममें काट डाला। कार्तवीर्य अर्जुनके सौ पुत्र थे; किन्तु उनमें पाँच महारथी, अस्त्रविद्यामें निपुण, बलवान्, शूर, धर्मात्मा और महान् व्रतका पालन करनेवाले थे। उनके नाम थे—शूरसेन, शूर, धृष्ट, कृष्ण और जयध्वज। जयध्वजका पुत्र महाबली तालजंघ हुआ। तालजंघके सौ पुत्र हुए, जिनकी तालजंघके नामसे ही प्रसिद्धि हुई। उन हैहयवंशीय राजाओंके पाँच कुल हुए—वीतिहोत्र, भोज, अवन्ति, तुण्डकेर और विक्रान्त। ये सब-के-सब तालजंघ ही कहलाये। वीतिहोत्रका पुत्र अनन्त हुआ, जो बड़ा पराक्रमी था। उसके दुर्जय नामक पुत्र हुआ, जो शत्रुओंका संहार करनेवाला था।

यदुवंशके अन्तर्गत क्रोष्टु आदिके वंश तथा श्रीकृष्णावतारका वर्णन

पुलस्त्यजी कहते हैं—राजेन्द्र! अब यदुपुत्र क्रोष्टुके वंशका, जिसमें श्रेष्ठ पुरुषोंने जन्म लिया था, वर्णन सुनो। क्रोष्टुके ही कुलमें वृष्णिवंशावतंस भगवान् श्रीकृष्णका अवतार हुआ है। क्रोष्टुके पुत्र महामना वृजिनीवान् हुए। उनके पुत्रका नाम स्वाति था। स्वातिसे कुशंकुका जन्म हुआ। कुशंकुसे चित्ररथ उत्पन्न हुए, जो शशविन्दु नामसे विख्यात चक्रवर्ती राजा हुए। शशविन्दुके दस हजार पुत्र हुए। वे बुद्धिमान्, सुन्दर, प्रचुर वैभवशाली और तेजस्वी थे। उनमें भी सौ प्रधान थे। उन सौ पुत्रोंमें भी, जिनके नामके साथ 'पृथु' शब्द जुड़ा था, वे महान् बलवान् थे। उनके पूरे नाम इस प्रकार हैं—पृथुश्रवा, पृथुयशा, पृथुतेजा, पृथूद्भव, पृथुकीर्ति और पृथुमति। पुराणोंके ज्ञाता पुरुष उन सबमें पृथुश्रवाको श्रेष्ठ बतलाते हैं। पृथुश्रवासे उशना नामक पुत्र हुआ, जो शत्रुओंको सन्ताप देनेवाला था। उशनाका पुत्र शिनेयु हुआ, जो सज्जनोंमें श्रेष्ठ था। शिनेयुका पुत्र रुक्मकवच नामसे प्रसिद्ध हुआ, वह शत्रुसेनाका विनाश करनेवाला था। राजा रुक्मकवचने एक बार अश्वमेध यज्ञका आयोजन किया और उसमें दक्षिणाके रूपमें यह सारी पृथ्वी ब्राह्मणोंको दे दी। उसके रुक्मेषु, पृथुरुक्म, ज्यामघ, परिघ और हरि—ये पाँच पुत्र उत्पन्न हुए, जो महान् बलवान् और पराक्रमी थे। उनमेंसे परिघ और हरिको उनके पिताने विदेह देशके राज्यपर स्थापित किया। रुक्मेषु राजा हुआ और पृथुरुक्म उसके अधीन होकर रहने लगा। उन दोनोंने मिलकर अपने भाई ज्यामघको घरसे निकाल दिया। ज्यामघ ऋक्षवान् पर्वतपर जाकर जंगली फल-मूलोंसे जीवन-निर्वाह करते हुए वहाँ रहने लगे। ज्यामघकी स्त्री शैब्या बड़ी सती-साध्वी स्त्री थी। उससे विदर्भ नामक पुत्र हुआ। विदर्भसे तीन पुत्र हुए—क्रथ, कैशिक और लोमपाद। राजकुमार क्रथ और कैशिक बड़े विद्वान् थे तथा लोमपाद परम धर्मात्मा थे। तत्पश्चात् राजा विदर्भने और भी अनेकों पुत्र उत्पन्न किये, जो युद्ध-कर्ममें कुशल तथा शूरवीर थे। लोमपादका पुत्र बभ्रु और बभ्रुका पुत्र हेति हुआ। कैशिकके चिदि नामक पुत्र हुआ, जिससे चैद्य राजाओंकी उत्पत्ति बतलायी जाती है।

विदर्भका जो क्रथ नामक पुत्र था, उससे कुन्तिका जन्म हुआ, कुन्तिसे धृष्ट और धृष्टसे पृष्टकी उत्पत्ति हुई। पृष्ट प्रतापी राजा था। उसके पुत्रका नाम निर्वृति था। वह परम धर्मात्मा और शत्रुवीरोंका नाशक था। निर्वृतिके दाशार्ह नामक पुत्र हुआ, जिसका दूसरा नाम विदूरथ था। दाशार्हका पुत्र भीम और भीमका जीमूत हुआ। जीमूतके पुत्रका नाम विकल था। विकलसे भीमरथ नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई। भीमरथका पुत्र नवरथ, नवरथका दृढरथ और दृढरथका पुत्र शकुनि हुआ। शकुनिसे करम्भ और करम्भसे देवरातका जन्म हुआ। देवरातके पुत्र महायशस्वी राजा देवक्षत्र हुए। देवक्षत्रका पुत्र देवकुमारके समान अत्यन्त तेजस्वी हुआ। उसका नाम मधु था। मधुसे कुरुवशका जन्म हुआ। कुरुवशके पुत्रका नाम पुरुष था। वह पुरुषोंमें श्रेष्ठ हुआ। उससे विदर्भकुमारी भद्रवतीके गर्भसे जन्तुका जन्म हुआ। जन्तुका दूसरा नाम पुरुद्वसु था। जन्तुकी पत्नीका नाम

वेत्रकी था। उसके गर्भसे सत्त्वगुणसम्पन्न सात्वतकी उत्पत्ति हुई। जो सात्वतवंशकी कीर्तिका विस्तार करनेवाले थे। सत्त्वगुणसम्पन्न सात्वतसे उनकी रानी कौसल्याने भजिन, भजमान, दिव्य राजा देवावृध, अन्धक, महाभोज और वृष्णि नामके पुत्रोंको उत्पन्न किया। इनसे चार वंशोंका विस्तार हुआ। उनका वर्णन सुनो। भजमानकी पत्नी सृंजयकुमारी सृंजयीके गर्भसे भाज नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई। भाजसे भाजकोंका जन्म हुआ। भाजकी दो स्त्रियाँ थीं। उन दोनोंने बहुत-से पुत्र उत्पन्न किये। उनके नाम हैं—विनय, करुण और वृष्णि। इनमें वृष्णि शत्रुके नगरोंपर विजय पानेवाले थे। भाज और उनके पुत्र—सभी भाजक नामसे प्रसिद्ध हुए; क्योंकि भजमानसे इनकी उत्पत्ति हुई थी।

देवावृधसे बभ्रु नामक पुत्रका जन्म हुआ, जो सभी उत्तम गुणोंसे सम्पन्न था। पुराणोंके ज्ञाता विद्वान् पुरुष महात्मा देवावृधके गुणोंका बखान करते हुए इस वंशके विषयमें इस प्रकार अपना उद्‌गार प्रकट करते हैं—'देवावृध देवताओंके समान हैं और बभ्रु समस्त मनुष्योंमें श्रेष्ठ हैं। देवावृध और बभ्रुके उपदेशसे छिहत्तर हजार मनुष्य मोक्षको प्राप्त हो चुके हैं।' बभ्रुसे भोजका जन्म हुआ, जो यज्ञ, दान और तपस्यामें धीर, ब्राह्मणभक्त, उत्तम व्रतोंका दृढ़तापूर्वक पालन करनेवाले, रूपवान् तथा महातेजस्वी थे। शरकान्तकी कन्या मृतकावती भोजकी पत्नी हुई। उसने भोजसे कुकुर, भजमान, समीक और बलबर्हिष—ये चार पुत्र उत्पन्न किये। कुकुरके पुत्र धृष्णु, धृष्णुके धृति, धृतिके कपोतरोमा, कपोतरोमाके नैमित्ति, नैमित्तिके सुसुत और सुसुतके पुत्र नरि हुए। नरि बड़े विद्वान् थे। उनका दूसरा नाम चन्दनोदक दुन्दुभि बतलाया जाता है। उनसे अभिजित् और अभिजित्से पुनर्वसु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। शत्रुविजयी पुनर्वसुसे दो सन्तानें हुईं; एक पुत्र और एक कन्या। पुत्रका नाम आहुक था और कन्याका आहुकी। भोजवंशमें कोई असत्यवादी, तेजहीन, यज्ञ न करनेवाला, हजारसे कम दान करनेवाला, अपवित्र और मूर्ख नहीं था। भोजसे बढ़कर कोई हुआ ही नहीं। यह भोजवंश आहुकतक आकर समाप्त हो गया।

आहुकने अपनी बहिन आहुकीका ब्याह अवन्ती देशमें किया था। आहुककी एक पुत्री भी थी, जिसने दो पुत्र उत्पन्न किये। उनके नाम हैं—देवक और उग्रसेन। वे दोनों देवकुमारोंके समान तेजस्वी हैं। देवकके चार पुत्र हुए, जो देवताओंके समान सुन्दर और वीर हैं। उनके नाम हैं—देववान्, उपदेव, सुदेव और देवरक्षक। उनके सात बहिनें थीं, जिनका ब्याह देवकने वसुदेवजीके साथ कर दिया। उन सातोंके नाम इस प्रकार हैं—देवकी, श्रुतदेवा, यशोदा, श्रुतिश्रवा, श्रीदेवा, उपदेवा और सुरूपा। उग्रसेनके नौ पुत्र हुए। उनमें कंस सबसे बड़ा था। शेषके नाम इस प्रकार हैं—न्यग्रोध, सुनामा, कंक, शंकु, सुभू, राष्ट्रपाल, बद्धमुष्टि और सुमुष्टिक। उनके पाँच बहिनें थीं—कंसा, कंसवती, सुरभी, राष्ट्रपाली और कंका। ये सब-की-सब बड़ी सुन्दरी थीं। इस प्रकार सन्तानोंसहित उग्रसेनतक कुकुर-वंशका वर्णन किया गया।

[भोजके दूसरे पुत्र] भजमानके विदूरथ हुआ, वह रथियोंमें प्रधान था। उसके दो पुत्र हुए—राजाधिदेव और शूर। राजाधिदेवके भी दो पुत्र हुए—शोणाश्व और श्वेतवाहन। वे दोनों वीर पुरुषोंके सम्माननीय और क्षत्रिय-धर्मका पालन करनेवाले थे। शोणाश्वके पाँच पुत्र हुए। वे सभी शूरवीर और युद्धकर्ममें कुशल थे। उनके नाम इस प्रकार हैं—शमी, गदचर्मा, निमूर्त, चक्रजित् और शुचि। शमीके पुत्र प्रतिक्षत्र, प्रतिक्षत्रके भोज और भोजके हृदिक हुए। हृदिकके दस पुत्र हुए, जो भयानक पराक्रम दिखानेवाले थे। उनमें कृतवर्मा सबसे बड़ा था। उससे छोटोंके नाम शतधन्वा, देवार्ह, सुभानु, भीषण, महाबल, अजात, विजात, कारक और करम्भक हैं। देवार्हका पुत्र कम्बलबर्हिष हुआ, वह विद्वान् पुरुष था। उसके दो पुत्र हुए—समौजा और असमौजा। अजातके पुत्रसे भी समौजा नामके दो पुत्र उत्पन्न हुए। समौजाके तीन पुत्र हुए, जो परम धार्मिक और पराक्रमी थे। उनके नाम हैं—सुदृश, सुरांश और कृष्ण।

[सात्वतके कनिष्ठ पुत्र] वृष्णिके वंशमें अनमित्र

नामके प्रसिद्ध राजा हो गये हैं, वे अपने पिताके कनिष्ठ पुत्र थे। उनसे शिनि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। अनमित्रसे वृष्णिवीर युधाजित्‌का भी जन्म हुआ। उनके सिवा दो वीर पुत्र और हुए, जो ऋषभ और क्षत्रके नामसे विख्यात हुए। उनमेंसे ऋषभने काशिराजकी पुत्रीको पत्नीके रूपमें ग्रहण किया। उससे जयन्तकी उत्पत्ति हुई। जयन्तने जयन्ती नामकी सुन्दरी भार्याके साथ विवाह किया। उसके गर्भसे एक सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ, जो सदा यज्ञ करनेवाला, अत्यन्त धैर्यवान्, शास्त्रज्ञ और अतिथियोंका प्रेमी था। उसका नाम अक्रूर था। अक्रूर यज्ञकी दीक्षा ग्रहण करनेवाले और बहुत-सी दक्षिणा देनेवाले थे। उन्होंने रत्नकुमारी शैब्याके साथ विवाह किया और उसके गर्भसे ग्यारह महाबली पुत्रोंको उत्पन्न किया। अक्रूरने पुनः शूरसेना नामकी पत्नीके गर्भसे देववान् और उपदेव नामक दो और पुत्रोंको जन्म दिया। इसी प्रकार उन्होंने अश्विनी नामकी पत्नीसे भी कई पुत्र उत्पन्न किये।

[विदूरथकी पत्नी] ऐक्ष्वाकीने मीढुष नामक पुत्रको जन्म दिया। उनका दूसरा नाम शूर भी था। शूरने भोजाके गर्भसे दस पुत्र उत्पन्न किये। उनमें आनकदुन्दुभि नामसे प्रसिद्ध महाबाहु वसुदेव ज्येष्ठ थे। उनके सिवा शेष पुत्रोंके नाम इस प्रकार हैं—देवभाग, देवश्रवा, अनाधृष्टि, कुनि, नन्दि, सकृद्यशाः, श्याम, समीढु और शंसस्यु। शूरसे पाँच सुन्दरी कन्याएँ भी उत्पन्न हुईं, जिनके नाम हैं—श्रुतिकीर्ति, पृथा, श्रुतदेवी, श्रुतश्रवा और राजाधिदेवी। ये पाँचों वीर पुत्रोंकी जननी थीं। श्रुतदेवीका विवाह वृद्ध नामक राजाके साथ हुआ। उसने कारूष नामक पुत्र उत्पन्न किया। श्रुतिकीर्तिने केकयनरेशके अंशसे सन्तर्दनको जन्म दिया। श्रुतश्रवा चेदिराजकी पत्नी थी। उसके गर्भसे सुनीथ (शिशुपाल)-का जन्म हुआ। राजाधिदेवीके गर्भसे धर्मकी भार्या अभिमर्दिताने जन्म ग्रहण किया। शूरकी राजा कुन्तिभोजके साथ मैत्री थी, अतः उन्होंने अपनी कन्या पृथाको उन्हें गोद दे दिया। इस प्रकार वसुदेवकी बहिन पृथा कुन्तिभोजकी कन्या होनेके कारण कुन्तीके नामसे प्रसिद्ध हुई। कुन्तिभोजने महाराज पाण्डुके साथ कुन्तीका विवाह किया। कुन्तीसे तीन पुत्र उत्पन्न हुए—युधिष्ठिर, भीमसेन और अर्जुन। अर्जुन इन्द्रके समान पराक्रमी हैं। वे देवताओंके कार्य सिद्ध करनेवाले, सम्पूर्ण दानवोंके नाशक तथा इन्द्रके लिये भी अवध्य हैं। उन्होंने दानवोंका संहार किया है। पाण्डुकी दूसरी रानी माद्रवती (माद्री)-के गर्भसे दो पुत्रोंकी उत्पत्ति सुनी गयी है, जो नकुल और सहदेव नामसे प्रसिद्ध हैं। वे दोनों रूपवान् और सत्त्वगुणी हैं। वसुदेवजीकी दूसरी पत्नी रोहिणीने, जो पुरुवंशकी कन्या हैं, ज्येष्ठ पुत्रके रूपमें बलरामको उत्पन्न किया। तत्पश्चात् उनके गर्भसे रणप्रेमी सारण, दुर्धर, दमन और लम्बी ठोढ़ीवाले पिण्डारक उत्पन्न हुए। वसुदेवजीकी पत्नी जो देवकी देवी हैं, उनके गर्भसे पहले तो महाबाहु प्रजापतिके अंशभूत बालक उत्पन्न हुए। फिर [कंसके द्वारा उनके मारे जानेपर] श्रीकृष्णका अवतार हुआ। विजय, रोचमान, वर्द्धमान और देवल—ये सभी महात्मा उपदेवीके गर्भसे उत्पन्न हुए हैं। श्रुतदेवीने महाभाग गवेषणको जन्म दिया, जो संग्राममें पराजित होनेवाले नहीं थे।

[अब श्रीकृष्णके प्रादुर्भावकी कथा कही जाती है।] जो श्रीकृष्णके जन्म और वृद्धिकी कथाका प्रतिदिन पाठ या श्रवण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।* पूर्वकालमें जो प्रजाओंके स्वामी थे, वे ही महादेव श्रीकृष्ण लीलाके लिये इस समय मनुष्योंमें अवतीर्ण हुए हैं। पूर्वजन्ममें देवकी और वसुदेवजीने तपस्या की थी, उसीके प्रभावसे वसुदेवजीके द्वारा देवकीके गर्भसे भगवान्‌का प्रादुर्भाव हुआ। उस समय उनके नेत्र कमलके समान शोभा पा रहे थे। उनके चार भुजाएँ थीं। उनका दिव्य रूप मनुष्योंका मन मोहनेवाला था। श्रीवत्ससे चिह्नित एवं शंख-चक्र आदि लक्षणोंसे

---

* कृष्णस्य जन्माभ्युदयं यः कीर्त्तयति नित्यशः। शृणोति वा नरो नित्यं सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ (१३।१३८)

युक्त भगवान्‌के दिव्य विग्रहको देखकर वसुदेवजी बोले—'प्रभो! इस रूपको छिपा लीजिये। मैं कंससे डरा हुआ हूँ, इसीलिये ऐसा कहता हूँ। उसने मेरे छः पुत्रोंको, जो देखनेमें बहुत ही सुन्दर थे, मार डाला है।' वसुदेवजीकी बात सुनकर भगवान्‌ने अपने दिव्यरूपको छिपा लिया। फिर भगवान्‌की आज्ञा लेकर वसुदेवजी उन्हें नन्दके घर ले गये और नन्दगोपको देकर बोले—'आप इस बालककी रक्षा करें; क्योंकि इससे सम्पूर्ण यादवोंका कल्याण होगा। देवकीका यह बालक जबतक कंसका वध नहीं करेगा, तबतक इस पृथ्वीपर भार बढ़ानेवाले अमंगलमय उपद्रव होते रहेंगे। भूतलपर जितने दुष्ट राजा हैं, उन सबका यह संहार करेगा। यह बालक साक्षात् भगवान् है। ये भगवान् कौरव-पाण्डवोंके युद्धमें सम्पूर्ण क्षत्रियोंके एकत्रित होनेपर अर्जुनके सारथिका काम करेंगे और पृथ्वीको क्षत्रियहीन करके उसका उपभोग एवं पालन करेंगे और अन्तमें समस्त यदुवंशको देवलोकमें पहुँचायेंगे।

भीष्मने पूछा—ब्रह्मन्! ये वसुदेव कौन थे? यशस्विनी देवकीदेवी कौन थीं तथा ये नन्दगोप और उनकी पत्नी महाव्रता यशोदा कौन थीं? जिसने बालकरूपमें भगवान्‌को जन्म दिया और जिसने उनका पालन-पोषण किया, उन दोनों स्त्रियोंका परिचय दीजिये।

पुलस्त्यजी बोले—राजन्! पुरुष वसुदेवजी कश्यप हैं और उनकी प्रिया देवकी अदिति कही गयी हैं। कश्यप ब्रह्माजीके अंश हैं और अदिति पृथ्वीका। इसी प्रकार द्रोण नामक वसु ही नन्दगोपके नामसे विख्यात हुए हैं तथा उनकी पत्नी धरा यशोदा हैं। देवी देवकीने पूर्वजन्ममें अजन्मा परमेश्वरसे जो कामना की थी, उसकी वह कामना महाबाहु श्रीकृष्णने पूर्ण कर दी। यज्ञानुष्ठान बंद हो गया था, धर्मका उच्छेद हो रहा था; ऐसी अवस्थामें धर्मकी स्थापना और पापी असुरोंका संहार करनेके लिये भगवान् श्रीविष्णु वृष्णि-कुलमें प्रकट हुए हैं। रुक्मिणी, सत्यभामा, नग्नजित्‌की पुत्री सत्या, सुमित्रा, शैब्या, गान्धार-राजकुमारी लक्ष्मणा, सुभीमा, मद्रराजकुमारी कौसल्या और विरजा आदि सोलह हजार देवियाँ श्रीकृष्णकी पत्नियाँ हैं। रुक्मिणीने दस पुत्र उत्पन्न किये; वे सभी युद्धकर्ममें कुशल हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—महाबली प्रद्युम्न, रणशूर चारुदेष्ण, सुचारु, चारुभद्र, सदश्व, ह्रस्व, चारुगुप्त, चारुभद्र, चारुक और चारुहास। इनमें प्रद्युम्न सबसे बड़े और चारुहास सबसे छोटे हैं। रुक्मिणीने एक कन्याको भी जन्म दिया, जिसका नाम चारुमती है। सत्यभामासे भानु, भीमरथ, क्षण, रोहित, दीप्तिमान्, ताम्रबन्ध और जलन्धम—ये सात पुत्र उत्पन्न हुए। इन सातोंके एक छोटी बहिन भी है। जाम्बवतीके पुत्र साम्ब हुए, जो बड़े ही सुन्दर हैं। ये सौर-शास्त्रके प्रणेता तथा प्रतिमा एवं मन्दिरके निर्माता हैं। मित्रविन्दाने सुमित्र, चारुमित्र और मित्रविन्दको जन्म दिया। मित्रबाहु और सुनीथ आदि सत्याके पुत्र हैं। इस प्रकार श्रीकृष्णके हजारों पुत्र हुए। प्रद्युम्नके विदर्भकुमारी रुक्मवतीके गर्भसे अनिरुद्ध नामक परम बुद्धिमान् पुत्र उत्पन्न हुआ। अनिरुद्ध संग्राममें उत्साहपूर्वक युद्ध करनेवाले वीर हैं। अनिरुद्धसे मृगकेतनका जन्म हुआ। राजा सुपार्श्वकी पुत्री काम्याने साम्बसे तरस्वी नामक पुत्र प्राप्त किया। प्रमुख वीर एवं महात्मा यादवोंकी संख्या तीन करोड़ साठ लाखके लगभग है। वे सभी अत्यन्त पराक्रमी और

महाबली हैं। उन सबकी देवताओंके अंशसे उत्पत्ति हुई है। देवासुर-संग्राममें जो महाबली असुर मारे गये थे, वे इस मनुष्यलोकमें उत्पन्न होकर सबको कष्ट दे रहे थे; उन्हींका संहार करनेके लिये भगवान् यदुकुलमें अवतीर्ण हुए हैं। महात्मा यादवोंके एक सौ एक कुल हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ही उन सबके नेता और स्वामी हैं तथा सम्पूर्ण यादव भी भगवान्की आज्ञाके अधीन रहकर ऋद्धि-सिद्धिसे सम्पन्न हो रहे हैं।*

पुष्कर तीर्थकी महिमा, वहाँ वास करनेवाले लोगोंके लिये नियम तथा आश्रम-धर्मका निरूपण

पुलस्त्यजी कहते हैं—राजन्! मेरु-गिरिके शिखरपर श्रीनिधान नामक एक नगर है, जो नाना प्रकारके रत्नोंसे सुशोभित, अनेक आश्चर्योंका घर तथा बहुतेरे वृक्षोंसे हरा-भरा है। भाँति-भाँतिकी अद्भुत धातुओंसे उसकी बड़ी विचित्र शोभा होती है। वह स्वच्छ स्फटिक मणिके समान निर्मल दिखायी देता है। वहाँ ब्रह्माजीका वैराज नामक भवन है, जहाँ देवताओंको सुख देनेवाली कान्तिमती नामकी सभा है। वह मुनिसमुदायसे सेवित तथा ऋषि-महर्षियोंसे भरी रहती है। एक दिन देवेश्वर ब्रह्माजी उसी सभामें बैठकर जगत्का निर्माण करनेवाले परमेश्वरका ध्यान कर रहे थे। ध्यान करते-करते उनके मनमें यह विचार उठा कि 'मैं किस प्रकार यज्ञ करूँ? भूतलपर कहाँ और किस स्थानपर मुझे यज्ञ करना चाहिये? काशी, प्रयाग, तुंगा (तुंगभद्रा), नैमिषारण्य, पुष्कर, कांची भद्रा, देविका, कुरुक्षेत्र, सरस्वती और प्रभास आदि बहुत-से तीर्थ हैं। भूमण्डलमें चारों ओर जितने पुण्य तीर्थ और क्षेत्र हैं, उन सबको मेरी आज्ञासे रुद्रने प्रकट किया है। जिससे मेरी उत्पत्ति हुई है, भगवान् श्रीविष्णुकी नाभिसे प्रकट हुए उस कमलको ही वेदपाठी ऋषि पुष्कर तीर्थ कहते हैं (पुष्कर तीर्थ उसीका व्यक्तरूप है)। इस प्रकार विचार करते-करते प्रजापति ब्रह्माके मनमें यह बात आयी कि अब मैं पृथ्वीपर चलूँ। यह सोचकर वे अपनी उत्पत्तिके प्राचीन स्थानपर आये और वहाँके उत्तम वनमें प्रविष्ट हुए, जो नाना प्रकारके वृक्षों और लताओंसे व्याप्त एवं भाँति-भाँतिके फूलोंसे सुशोभित था। वहाँ पहुँचकर उन्होंने क्षेत्रकी स्थापना की, जिसका यथार्थरूपसे वर्णन करता हूँ। चन्द्रनदीके उत्तर प्राची सरस्वतीतक और नन्दन नामक स्थानसे पूर्व क्रम्य या कल्प नामक स्थानतक जितनी भूमि है, वह सब पुष्कर तीर्थके नामसे प्रसिद्ध है। इसमें लोककर्ता ब्रह्माजीने यज्ञ करनेके निमित्त वेदी बनायी। ब्रह्माजीने वहाँ तीन पुष्करोंकी कल्पना की। प्रथम ज्येष्ठ पुष्कर तीर्थ समझना चाहिये, जो तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाला और विख्यात है,
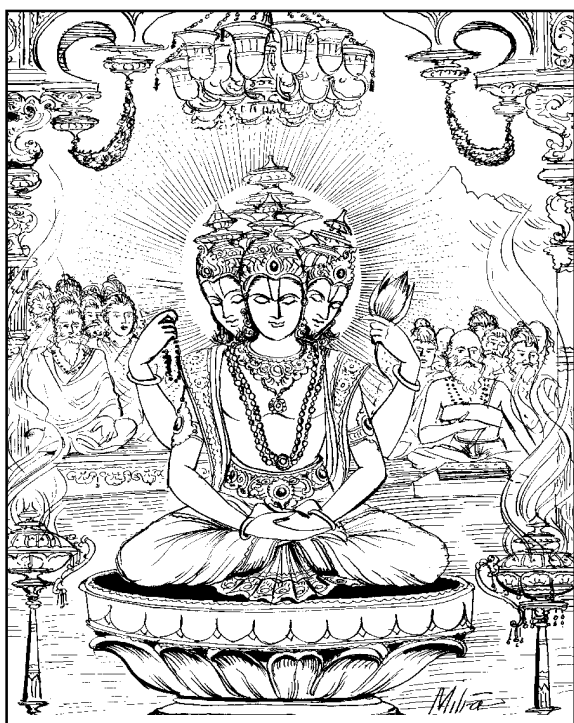
* भीष्मजी भगवान् श्रीकृष्णसे अवस्थामें बहुत बड़े थे। ऐसी दशामें जिस समय उनके साथ पुलस्त्यजीका संवाद हो रहा था, उस समय संभवतः श्रीकृष्णका जन्म न हुआ हो। फिर भी पुलस्त्यजी त्रिकालदर्शी ऋषि हैं, इसलिये उनके लिये भावी घटनाओंका भी वर्तमान अथवा भूतकी भाँति वर्णन करना अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता।

उसके देवता साक्षात् ब्रह्माजी हैं। दूसरा मध्यम पुष्कर है, जिसके देवता विष्णु हैं तथा तीसरा कनिष्ठ पुष्कर है, जिसके देवता भगवान् रुद्र हैं। यह पुष्कर नामक वन आदि, प्रधान एवं गुह्य क्षेत्र है। वेदमें भी इसका वर्णन आता है। इस तीर्थमें भगवान् ब्रह्मा सदा निवास करते हैं। उन्होंने भूमण्डलके इस भागपर बड़ा अनुग्रह किया है। पृथ्वीपर विचरनेवाले सम्पूर्ण जीवोंपर कृपा करनेके लिये ही ब्रह्माजीने इस तीर्थको प्रकट किया है। यहाँकी यज्ञवेदीको उन्होंने सुवर्ण और हीरेसे मढ़ा दिया तथा नाना प्रकारके रत्नोंसे सुसज्जित करके उसके फर्शको सब प्रकारसे सुशोभित एवं विचित्र बना दिया। तत्पश्चात् लोकपितामह भगवान् ब्रह्माजी वहाँ आनन्दपूर्वक रहने लगे। साथ ही भगवान् श्रीविष्णु, रुद्र, आठों वसु, दोनों अश्विनीकुमार, मरुद्गण तथा स्वर्गवासी देवता भी देवराज इन्द्रके साथ वहाँ आकर विहार करने लगे। यह तीर्थ सम्पूर्ण लोकोंपर अनुग्रह करनेवाला है। मैंने इसकी यथार्थ महिमाका तुमसे वर्णन किया है। जो ब्राह्मण अग्निहोत्र-परायण होकर संहिताके क्रमसे विधिपूर्वक मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए इस तीर्थमें वेदोंका पाठ करते हैं, वे सब लोग ब्रह्माजीके कृपापात्र होकर उन्हींके समीप निवास करते हैं।

भीष्मजीने पूछा—भगवन्! तीर्थनिवासी मनुष्योंको पुष्कर वनमें किस विधिसे रहना चाहिये? क्या केवल पुरुषोंको ही वहाँ निवास करना चाहिये या स्त्रियोंको भी? अथवा सभी वर्णों एवं आश्रमोंके लोग वहाँ निवास कर सकते हैं?

पुलस्त्यजी बोले—राजन्! सभी वर्णों एवं आश्रमोंके पुरुषों और स्त्रियोंको भी उस तीर्थमें निवास करना चाहिये। सबको अपने-अपने धर्म और आचारका पालन करते हुए दम्भ और मोहका परित्याग करके रहना उचित है। सभी मन, वाणी और कर्मसे ब्रह्माजीके भक्त एवं जितेन्द्रिय हों। कोई किसीके प्रति दोष-दृष्टि न करे। सब मनुष्य सम्पूर्ण प्राणियोंके हितैषी हों; किसीके भी हृदयमें खोटा भाव नहीं रहना चाहिये।

भीष्मजीने पूछा—ब्रह्मन्! क्या करनेसे मनुष्य इस लोकमें ब्रह्माजीका भक्त कहलाता है? मनुष्योंमें कैसे लोग ब्रह्मभक्त माने गये हैं? यह मुझे बताइये।

पुलस्त्यजी बोले—राजन्! भक्ति तीन प्रकारकी कही गयी है—मानस, वाचिक और कायिक। इसके सिवा भक्तिके तीन भेद और हैं—लौकिक, वैदिक तथा आध्यात्मिक। ध्यान-धारणापूर्वक बुद्धिके द्वारा वेदार्थका जो विचार किया जाता है, उसे मानस भक्ति कहते हैं। यह ब्रह्माजीकी प्रसन्नता बढ़ानेवाली है। मन्त्र-जप, वेदपाठ तथा आरण्यकोंके जपसे होनेवाली भक्ति वाचिक कहलाती है। मन और इन्द्रियोंको रोकनेवाले व्रत, उपवास, नियम, कृच्छ्र, सान्तपन तथा चान्द्रायण आदि भिन्न-भिन्न व्रतोंसे, ब्रह्मकृच्छ्र नामक उपवाससे एवं अन्यान्य शुभ नियमोंके अनुष्ठानसे जो भगवान्‌की आराधना की जाती है, उसको कायिक भक्ति कहते हैं। यह द्विजातियोंकी त्रिविध भक्ति बतायी गयी। गायके घी, दूध और दही, रत्न, दीप, कुश, जल, चन्दन, माला, विविध धातुओं तथा पदार्थ; काले अगरकी सुगन्धसे युक्त एवं घी और गूगुलसे बने हुए धूप, आभूषण, सुवर्ण और रत्न आदिसे निर्मित विचित्र-विचित्र हार, नृत्य, वाद्य, संगीत, सब प्रकारके जंगली फल-मूलोंके उपहार तथा भक्ष्य-भोज्य आदि नैवेद्य अर्पण करके मनुष्य ब्रह्माजीके उद्देश्यसे जो पूजा करते हैं, वह लौकिक भक्ति मानी गयी है। ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेदके मन्त्रोंका जप और संहिताओंका अध्यापन आदि कर्म यदि ब्रह्माजीके उद्देश्यसे किये जाते हैं, तो वह वैदिक भक्ति कहलाती है। वेद-मन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक हविष्यकी आहुति देकर जो क्रिया सम्पन्न की जाती है वह भी वैदिक भक्ति मानी गयी है। अमावास्या अथवा पूर्णिमाको जो अग्निहोत्र किया जाता है, यज्ञोंमें जो उत्तम दक्षिणा दी जाती है तथा देवताओंको जो पुरोडाश और चरु अर्पण किये जाते हैं—ये सब वैदिक भक्तिके अन्तर्गत हैं। इष्टि, धृति, यज्ञ-सम्बन्धी सोमपान तथा अग्नि, पृथ्वी, वायु, आकाश, चन्द्रमा, मेघ और सूर्यके उद्देश्यसे किये हुए जितने कर्म हैं, उन सबके देवता ब्रह्माजी ही हैं।

राजन्! ब्रह्माजीकी आध्यात्मिक भक्ति दो प्रकारकी मानी गयी है—एक सांख्यज और दूसरी योगज। इन दोनोंका भेद सुनो। प्रधान (मूल प्रकृति) आदि प्राकृत तत्त्व संख्यामें चौबीस हैं। वे सब-के-सब जड एवं भोग्य हैं। उनका भोक्ता पुरुष पचीसवाँ तत्त्व है, वह चेतन है। इस प्रकार संख्यापूर्वक प्रकृति और पुरुषके तत्त्वको ठीक-ठीक जानना सांख्यज भक्ति है। इसे सत्पुरुषोंने सांख्य-शास्त्रके अनुसार आध्यात्मिक भक्ति माना है। अब ब्रह्माजीकी योगज भक्तिका वर्णन सुनो। प्रतिदिन प्राणायामपूर्वक ध्यान लगाये, इन्द्रियोंका संयम करे और समस्त इन्द्रियोंको विषयोंकी ओरसे खींचकर हृदयमें धारण करके प्रजानाथ ब्रह्माजीका इस प्रकार ध्यान करे। हृदयके भीतर कमल है, उसकी कर्णिकापर ब्रह्माजी विराजमान हैं। वे रक्त वस्त्र धारण किये हुए हैं, उनके नेत्र सुन्दर हैं। सब ओर उनके मुख प्रकाशित हो रहे हैं। ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीत) कमरके ऊपरतक लटका हुआ है, उनके शरीरका वर्ण लाल है, चार भुजाएँ शोभा पा रही हैं तथा हाथोंमें वरद और अभयकी मुद्राएँ हैं। इस प्रकारके ध्यानकी स्थिरता योगजन्य मानस सिद्धि है; यही ब्रह्माजीके प्रति होनेवाली पराभक्ति मानी गयी है। जो भगवान् ब्रह्माजीमें ऐसी भक्ति रखता है, वह ब्रह्मभक्त कहलाता है।

राजन्! अब पुष्कर क्षेत्रमें निवास करनेवाले पुरुषोंके पालन करनेयोग्य आचारका वर्णन सुनो। पूर्वकालमें जब विष्णु आदि देवताओंका वहाँ समागम हुआ था, उस समय सबकी उपस्थितिमें ब्रह्माजीने स्वयं ही क्षेत्रनिवासियोंके कर्तव्यको विस्तारके साथ बतलाया था। पुष्कर क्षेत्रमें निवास करनेवालोंको उचित है कि वे ममता और अहंकारको पास न आने दें। आसक्ति और संग्रहकी वृत्तिका परित्याग करें। बन्धु-बान्धवोंके प्रति भी उनके मनमें आसक्ति नहीं रहनी चाहिये। वे ढेले, पत्थर और सुवर्णको समान समझें। प्रतिदिन नाना प्रकारके शुभ कर्म करते हुए सम्पूर्ण प्राणियोंको अभय-दान दें। नित्य प्राणायाम और परमेश्वरका ध्यान करें। जपके द्वारा अपने अन्तःकरणको शुद्ध बनायें। यति-धर्मके कर्तव्योंका पालन करें। सांख्ययोगकी विधिको जानें तथा सम्पूर्ण संशयोंका उच्छेद करके ब्रह्मका बोध प्राप्त करें। क्षेत्रनिवासी ब्राह्मण इसी नियमसे रहकर वहाँ यज्ञ करते हैं।

अब पुष्कर वनमें मृत्युको प्राप्त होनेवाले लोगोंको जो फल मिलता है, उसे सुनो। वे लोग अक्षय ब्रह्म-सायुज्यको प्राप्त होते हैं, जो दूसरोंके लिये सर्वथा दुर्लभ है। उन्हें उस पदकी प्राप्ति होती है, जहाँ जानेपर पुनः मृत्यु प्रदान करनेवाला जन्म नहीं ग्रहण करना पड़ता। वे पुनरावृत्तिके पथका परित्याग करके ब्रह्मसम्बन्धिनी परा विद्यामें स्थित हो जाते हैं।

भीष्मजीने कहा—ब्रह्मन्! पुष्कर तीर्थमें निवास करनेवाली स्त्रियाँ, म्लेच्छ, शूद्र, पशु-पक्षी, मृग, गूँगे, जड, अंधे तथा बहरे प्राणी, जो तपस्या और नियमोंसे दूर हैं, किस गतिको प्राप्त होते हैं—यह बतानेकी कृपा करें।

पुलस्त्यजी बोले—भीष्म! पुष्कर क्षेत्रमें मरनेवाले म्लेच्छ, शूद्र, स्त्री, पशु, पक्षी और मृग आदि सभी प्राणी ब्रह्मलोकको प्राप्त होते हैं। वे दिव्य शरीर धारण करके सूर्यके समान तेजस्वी विमानोंपर बैठकर ब्रह्मलोककी यात्रा करते हैं। तिर्यग्योनिमें पड़े हुए—पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े, चींटियाँ, थलचर, जलचर, स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज और जरायुज आदि प्राणी यदि पुष्कर वनमें प्राण-त्याग करते हैं तो सूर्यके समान कान्तिमान् विमानोंपर बैठकर ब्रह्मलोकमें जाते हैं! जैसे समुद्रके समान दूसरा कोई जलाशय नहीं है, वैसे ही पुष्करके समान दूसरा कोई तीर्थ नहीं है।* अब मैं तुम्हें अन्य देवताओंका परिचय देता हूँ, जो इस पुष्कर क्षेत्रमें सदा विद्यमान रहते हैं। भगवान् श्रीविष्णुके साथ इन्द्रादि सम्पूर्ण देवता, गणेश, कार्तिकेय, चन्द्रमा, सूर्य और

* यथा महोदधेस्तुल्यो न चान्योऽस्ति जलाशयः। तथा वै पुष्करस्यापि समं तीर्थं न विद्यते॥
(१५। २७३)

देवी—ये सब सम्पूर्ण जगत्‌का हित करनेके लिये ब्रह्माजीके निवास-स्थान पुष्कर क्षेत्रमें सदा विद्यमान रहते हैं। इस तीर्थमें निवास करनेवाले लोग सत्ययुगमें बारह वर्षोंतक, त्रेतामें एक वर्षतक तथा द्वापरमें एक मासतक तीर्थ-सेवन करनेसे जिस फलको पाते थे, उसे कलियुगमें एक दिन-रातके तीर्थ-सेवनसे ही प्राप्त कर लेते हैं।* यह बात देवाधिदेव ब्रह्माजीने पूर्वकालमें मुझसे (पुलस्त्यजीसे) स्वयं ही कही थी। पुष्करसे बढ़कर इस पृथ्वीपर दूसरा कोई क्षेत्र नहीं है; इसलिये पूरा प्रयत्न करके मनुष्यको इस पुष्कर वनका सेवन करना चाहिये। ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी—ये सब लोग अपने-अपने शास्त्रोक्त धर्मका पालन करते हुए इस क्षेत्रमें परम गतिको प्राप्त करते हैं।

धर्म और अर्थके तत्त्वको जाननेवाले पुरुषको चाहिये कि वह अपनी आयुके एक चौथाई भागतक दूसरेकी निन्दासे बचकर ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए गुरु अथवा गुरुपुत्रके समीप निवास करे तथा गुरुकी सेवासे जो समय बचे, उसमें अध्ययन करे, श्रद्धा और आदरपूर्वक गुरुका आश्रय ले। गुरुके घरमें रहते समय गुरुके सोनेके पश्चात् शयन करे और उनके उठनेसे पहले उठ जाय। शिष्यके करनेयोग्य जो कुछ सेवा आदि कार्य हो, वह सब पूरा करके ही शिष्यको गुरुके पास खड़ा होना चाहिये। वह सदा गुरुका किंकर होकर सब प्रकारकी सेवाएँ करे। सब कार्योंमें कुशल हो। पवित्र, कार्यदक्ष और गुणवान् बने। गुरुको प्रिय लगनेवाला उत्तर दे। इन्द्रियोंको जीतकर शान्तभावसे गुरुकी ओर देखे। गुरुके भोजन करनेसे पहले भोजन और जलपान करनेसे पहले जलपान न करे। गुरु खड़े हों तो स्वयं भी बैठे नहीं। उनके सोये बिना शयन भी न करे। उत्तान हाथोंके द्वारा गुरुके चरणोंका स्पर्श करे। गुरुके दाहिने पैरको अपने दाहिने हाथसे और बायें पैरको बायें हाथसे धीरे-धीरे दबाये और इस प्रकार प्रणाम करके गुरुसे कहे—'भगवन्! मुझे पढ़ाइये। प्रभो! यह कार्य मैंने पूरा कर लिया है और इस कार्यको मैं अभी करूँगा।' इस प्रकार पहले कार्य करे और फिर किया हुआ सारा काम गुरुको बता दे। मैंने ब्रह्मचारीके नियमोंका यहाँ विस्तारके साथ वर्णन किया है; गुरुभक्त शिष्यको इन सभी नियमोंका पालन करना चाहिये। इस प्रकार अपनी शक्तिके अनुसार गुरुकी प्रसन्नताका सम्पादन करते हुए शिष्यको कर्तव्यकर्ममें लगे रहना उचित है। वह एक, दो, तीन या चारों वेदोंको अर्थसहित गुरुमुखसे अध्ययन करे। भिक्षाके अन्नसे जीविका चलाये और धरतीपर शयन करे। वेदोक्त व्रतोंका पालन करता रहे और गुरु-दक्षिणा देकर विधिपूर्वक अपना समावर्तन-संस्कार करे। फिर धर्मपूर्वक प्राप्त हुई स्त्रीके साथ गार्हपत्यादि अग्नियोंकी स्थापना करके प्रतिदिन हवनादिके द्वारा उनका पूजन करे।

आयुका [प्रथम भाग ब्रह्मचर्याश्रममें बितानेके पश्चात्] दूसरा भाग गृहस्थ आश्रममें रहकर व्यतीत करे। गृहस्थ ब्राह्मण यज्ञ करना, यज्ञ कराना, वेद पढ़ना, वेद पढ़ाना तथा दान देना और दान लेना—इन छः कर्मोंका अनुष्ठान करे। उससे भिन्न वानप्रस्थी विप्र केवल यजन, अध्ययन और दान—इन तीन कर्मोंका ही अनुष्ठान करे तथा चतुर्थ आश्रममें रहनेवाला ब्रह्मनिष्ठ संन्यासी जपयज्ञ और अध्ययन—इन दो ही कर्मोंसे सम्बन्ध रखे। गृहस्थके व्रतसे बढ़कर दूसरा कोई महान् तीर्थ नहीं बताया गया है। गृहस्थ पुरुष कभी केवल अपने खानेके लिये भोजन न बनाये [देवता और अतिथियोंके उद्देश्यसे ही रसोई करे]। पशुओंकी हिंसा न करे। दिनमें कभी नींद न ले। रातके पहले और पिछले भागमें भी न सोये। दिन और रात्रिकी सन्धिमें (सूर्योदय एवं सूर्यास्तके समय) भोजन न करे। झूठ न बोले। गृहस्थके घरमें कभी ऐसा नहीं होना चाहिये कि कोई ब्राह्मण अतिथि आकर भूखा रह जाय और उसका

---

* कृते द्वादशभिर्वर्षैस्त्रेतायां हायनेन तु ॥ मासेन द्वापरे भीष्म अहोरात्रेण तत्कलौ॥
(१५। २७९-२८०)

यथावत् सत्कार न हो। अतिथिको भोजन करानेसे देवता और पितर संतुष्ट होते हैं; अतः गृहस्थ पुरुष सदा ही अतिथियोंका सत्कार करे। जो वेद-विद्या और व्रतमें निष्णात, श्रोत्रिय, वेदोंके पारगामी, अपने कर्मसे जीविका चलानेवाले, जितेन्द्रिय, क्रियावान् और तपस्वी हैं, उन्हीं श्रेष्ठ पुरुषोंके सत्कारके लिये हव्य और कव्यका विधान किया गया है। जो नश्वर पदार्थोंके प्रति आसक्त है, अपने कर्मसे भ्रष्ट हो गया है, अग्निहोत्र छोड़ चुका है, गुरुकी झूठी निन्दा करता है और असत्यभाषणमें आग्रह रखता है, वह देवताओं और पितरोंको अर्पण करनेयोग्य अन्नके पानेका अधिकारी नहीं है। गृहस्थकी सम्पत्तिमें सभी प्राणियोंका भाग होता है। जो भोजन नहीं बनाते, उन्हें भी गृहस्थ पुरुष अन्न दे। वह प्रतिदिन 'विघस' और 'अमृत' भोजन करे। यज्ञसे (देवताओं और पितर आदिको अर्पण करनेसे) बचा हुआ अन्न हविष्यके समान एवं अमृत माना गया है। तथा जो कुटुम्बके सभी मनुष्योंके भोजन कर लेनेके पश्चात् उनसे बचा हुआ अन्न ग्रहण करता है; उसे 'विघसाशी' ('विघस' अन्न भोजन करनेवाला) कहा गया है।

गृहस्थ पुरुषको केवल अपनी ही स्त्रीसे अनुराग रखना चाहिये। वह मनको अपने वशमें रखे, किसीके गुणोंमें दोष न देखे और अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियोंको काबूमें रखे। ऋत्विक्, पुरोहित, आचार्य, मामा, अतिथि, शरणागत, वृद्ध, बालक, रोगी, वैद्य, कुटुम्बी, सम्बन्धी, बान्धव, माता, पिता, दामाद, भाई, पुत्र, स्त्री, बेटी तथा दास-दासियोंके साथ विवाद नहीं करना चाहिये। जो इनसे विवाद नहीं करता, वह सब प्रकारके पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो अनुकूल बर्तावके द्वारा इन्हें अपने वशमें कर लेता है, वह सम्पूर्ण लोकोंपर विजय पा जाता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। आचार्य ब्रह्मलोकका स्वामी है, पिता प्रजापति-लोकका प्रभु है, अतिथि सम्पूर्ण लोकोंका ईश्वर है, ऋत्विक् वेदोंका अधिष्ठान और प्रभु होता है। दामाद अप्सराओंके लोकका अधिपति है। कुटुम्बी विश्वेदेवसम्बन्धी लोकोंके अधिष्ठाता हैं। सम्बन्धी और बान्धव दिशाओंके तथा माता और मामा भूलोकके स्वामी हैं। वृद्ध, बालक और रोगी मनुष्य आकाशके प्रभु हैं। पुरोहित ऋषिलोकके और शरणागत साध्यलोकोंके अधिपति हैं। वैद्य अश्विनीकुमारोंके लोकका तथा भाई वसुलोकका स्वामी है। पत्नी वायुलोककी ईश्वरी तथा कन्या अप्सराओंके घरकी स्वामिनी है। बड़ा भाई पिताके समान होता है। पत्नी और पुत्र अपने ही शरीर हैं। दासवर्ग परछाईंके समान हैं तथा कन्या अत्यन्त दीन—दयाके योग्य मानी गयी है। इसलिये उपर्युक्त व्यक्ति कोई अपमानजनक बात भी कह दें तो उसे चुपचाप सह लेना चाहिये। कभी क्रोध या दुःख नहीं करना चाहिये। गृहस्थ-धर्मपरायण विद्वान् पुरुषको एक ही साथ बहुत-से काम नहीं आरम्भ करने चाहिये। धर्मज्ञको उचित है कि वह किसी एक ही काममें लगकर उसे पूरा करे।

गृहस्थ ब्राह्मणकी तीन जीविकाएँ हैं, उनमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ एवं कल्याणकारक हैं। पहली है—कुम्भधान्य वृत्ति, जिसमें एक घड़ेसे अधिक धान्यका संग्रह न करके जीवन-निर्वाह किया जाता है। दूसरी उञ्छशिल वृत्ति है, जिसमें खेती कट जानेपर खेतोंमें गिरी हुई अनाजकी बालें चुनकर लायी जाती हैं और उन्हींसे जीवन-निर्वाह किया जाता है। तीसरी कापोती वृत्ति है, जिसमें खलिहान और बाजारसे अन्नके बिखरे हुए दाने चुनकर लाये जाते हैं तथा उन्हींसे जीविका चलायी जाती है। जहाँ इन तीन वृत्तियोंसे जीविका चलानेवाले पूजनीय ब्राह्मण निवास करते हैं, उस राष्ट्रकी वृद्धि होती है। जो ब्राह्मण गृहस्थकी इन तीन वृत्तियोंसे जीवन-निर्वाह करता है और मनमें कष्टका अनुभव नहीं करता, वह दस पीढ़ीतकके पूर्वजोंको तथा आगे होनेवाली सन्तानोंकी भी दस पीढ़ियोंको पवित्र कर देता है।

अब तीसरे आश्रम—वानप्रस्थका वर्णन करता हूँ, सुनो। गृहस्थ पुरुष जब यह देख ले कि मेरे शरीरमें झुर्रियाँ पड़ गयी हैं, सिरके बाल सफेद हो गये हैं और पुत्रके भी पुत्र हो गया है, तब वह वनमें चला जाय। जिन्हें गृहस्थ-आश्रमके नियमोंसे निर्वेद हो गया है, अतएव जो वानप्रस्थकी दीक्षा लेकर गृहस्थ-आश्रमका

त्याग कर चुकते हैं, पवित्र स्थानमें निवास करते हैं, जो बुद्धि-बलसे सम्पन्न तथा सत्य, शौच और क्षमा आदि सद्‌गुणोंसे युक्त हैं, उन पुरुषोंके कल्याणमय नियमोंका वर्णन सुनो। प्रत्येक द्विजको अपनी आयुका तीसरा भाग वानप्रस्थ-आश्रममें रहकर व्यतीत करना चाहिये। वानप्रस्थ-आश्रममें भी वह उन्हीं अग्नियोंका सेवन करे, जिनका गृहस्थ-आश्रममें सेवन करता था। देवताओंका पूजन करे, नियमपूर्वक रहे, नियमित भोजन करे, भगवान् श्रीविष्णुमें भक्ति रखे तथा यज्ञके सम्पूर्ण अंगोंका पालन करते हुए प्रतिदिन अग्निहोत्रका अनुष्ठान करे। धान और जौ वही ग्रहण करे, जो बिना जोती हुई जमीनमें अपने-आप पैदा हुआ हो। इसके सिवा नीवार (तीना) और विघस अन्नको भी वह पा सकता है। उसे अग्निमें देवताओंके निमित्त हविष्य भी अर्पण करना चाहिये। वानप्रस्थी लोग वर्षाके समय खुले मैदानमें आकाशके नीचे बैठते हैं, हेमन्त-ऋतुमें जलका आश्रय लेते हैं और ग्रीष्ममें पंचाग्नि-सेवनरूप तपस्या करते हैं। उनमेंसे कोई तो धरतीपर लोटते हैं, कोई पंजोंके बल खड़े रहते हैं और कोई-कोई एक स्थानपर एक आसनसे बैठे रह जाते हैं। कोई दाँतोंसे ही ऊखलका काम लेते हैं—दूसरे किसी साधनद्वारा फोड़ी हुई वस्तु नहीं ग्रहण करते। कोई पत्थरसे कूटकर खाते हैं, कोई जौके आटेको पानीमें उबालकर उसीको शुक्लपक्ष या कृष्णपक्षमें एक बार पी लेते हैं। कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो समयपर अपने-आप प्राप्त हुई वस्तुको ही भक्षण करते हैं। कोई मूल, कोई फल और कोई फूल खाकर ही नियमित जीवन व्यतीत करते हैं। इस प्रकार वे न्यायपूर्वक वैखानसों (वानप्रस्थियों)-के नियमोंका दृढ़तापूर्वक पालन करते हैं। वे मनीषी पुरुष ऊपर बताये हुए तथा अन्यान्य नाना प्रकारके नियमोंकी दीक्षा लेते हैं।

चौथा आश्रम संन्यास है। यह उपनिषदोंद्वारा प्रतिपादित धर्म है। गृहस्थ और वानप्रस्थ आश्रम प्रायः साधारण—मिलते-जुलते माने गये हैं; किन्तु संन्यास इनसे भिन्न—विलक्षण होता है। तात! प्राचीन युगमें सर्वार्थदर्शी ब्राह्मणोंने संन्यास-धर्मका आश्रय लिया था। अगस्त्य, सप्तर्षि, मधुच्छन्दा, गवेषण, सांकृति, सुदिव, भाण्डि, यवप्रोथ, कृतश्रम, अहोवीर्य, काम्य, स्थाणु, मेधातिथि, बुध, मनोवाक, शिनीवाक, शून्यपाल और अकृतश्रम—ये धर्म-तत्त्वके यथार्थ ज्ञाता थे। इन्हें धर्मके स्वरूपका साक्षात्कार हो गया था। इनके सिवा, धर्मकी निपुणताका ज्ञान रखनेवाले, उग्रतपस्वी ऋषियोंके जो यायावर नामसे प्रसिद्ध गण हैं, वे सभी विषयोंसे उपरत हो मायाके बन्धनको तोड़कर वनमें चले गये थे। मुमुक्षुको उचित है कि वह सर्वस्व दक्षिणा देकर—सबका त्याग करके सद्यस्करी (तत्काल आत्मकल्याण करनेवाला) बने। आत्माका ही यजन करे, विषयोंसे उपरत हो आत्मामें ही रमण करे तथा आत्मापर ही निर्भर करे। सब प्रकारके संग्रहका परित्याग करके भावनाके द्वारा गार्हपत्यादि अग्नियोंकी आत्मामें स्थापना करे और उसमें तदनुरूप यज्ञोंका सर्वदा अनुष्ठान करता रहे।

चतुर्थ आश्रम सबसे श्रेष्ठ बताया गया है। वह तीनों आश्रमोंके ऊपर है। उसमें अनेक प्रकारके उत्तम गुणोंका निवास है। वही सबकी चरम सीमा—परम आधार है। ब्रह्मचर्य आदि तीन आश्रमोंमें क्रमशः रहनेके पश्चात् काषाय-वस्त्र धारण करके संन्यास ले ले। सर्वस्व-त्यागरूप संन्यास सबसे उत्तम आश्रम है। संन्यासीको चाहिये कि वह मोक्षकी सिद्धिके लिये अकेले ही धर्मका अनुष्ठान करे, किसीको साथ न रखे। जो ज्ञानवान् पुरुष अकेला विचरता है, वह सबका त्याग कर देता है; उसे स्वयं कोई हानि नहीं उठानी पड़ती। संन्यासी अग्निहोत्रके लिये अग्निका चयन न करे, अपने रहनेके लिये कोई घर न बनाये, केवल भिक्षा लेनेके लिये ही गाँवमें प्रवेश करे, कलके लिये किसी वस्तुका संग्रह न करे, मौन होकर शुद्धभावसे रहे तथा थोड़ा और नियमित भोजन करे। प्रतिदिन एक ही बार भोजन करे। भोजन करने और पानी पीनेके लिये कपाल (काठ या नारियल आदिका पात्रविशेष) रखना, वृक्षकी जड़में निवास करना, मलिन वस्त्र धारण करना, अकेले रहना तथा सब प्राणियोंकी ओरसे उदासीनता रखना—ये भिक्षु (संन्यासी)-के लक्षण हैं! जिस पुरुषके भीतर

सबकी बातें समा जाती हैं—जो सबकी सह लेता है तथा जिसके पाससे कोई बात लौटकर पुनः वक्ताके पास नहीं जाती—जो कटु वचन कहनेवालेको भी कटु उत्तर नहीं देता, वही संन्यासाश्रममें रहनेका अधिकारी है। कभी किसीकी भी निन्दाको न तो करे और न सुने ही। विशेषतः ब्राह्मणोंकी निन्दा तो किसी तरह न करे। ब्राह्मणका जो शुभकर्म हो, उसीकी सदा चर्चा करनी चाहिये। जो उसके लिये निन्दाकी बात हो, उसके विषयमें मौन रहना चाहिये। यही आत्मशुद्धिकी दवा है।

जो जिस किसी भी वस्तुसे अपना शरीर ढक लेता है, जो कुछ मिल जाय उसीको खाकर भूख मिटा लेता है तथा जहाँ कहीं भी सो रहता है, उसे देवता ब्राह्मण (ब्रह्मवेत्ता) समझते हैं। जो जन-समुदायको साँप समझकर, स्नेह-सम्बन्धको नरक जानकर तथा स्त्रियोंको मुर्दा समझकर उन सबसे डरता रहता है; उसे देवतालोग ब्राह्मण कहते हैं। जो मान या अपमान होनेपर स्वयं हर्ष अथवा क्रोधके वशीभूत नहीं होता, उसे देवतालोग ब्राह्मण मानते हैं। जो जीवन और मरणका अभिनन्दन न करके सदा कालकी ही प्रतीक्षा करता रहता है, उसे देवता ब्राह्मण मानते हैं। जिसका चित्त राग-द्वेषादिके वशीभूत नहीं होता, जो इन्द्रियोंको वशमें रखता है तथा जिसकी बुद्धि भी दूषित नहीं होती, वह मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो सम्पूर्ण प्राणियोंसे निर्भय है तथा समस्त प्राणी जिससे भय नहीं मानते, उस देहाभिमानसे मुक्त पुरुषको कहीं भी भय नहीं होता। जैसे हाथीके पदचिह्नमें अन्य समस्त पादचारी जीवोंके पदचिह्न समा जाते हैं, तथा जिस प्रकार सम्पूर्ण ज्ञान चित्तमें लीन हो जाते हैं, उसी प्रकार सारे धर्म और अर्थ अहिंसामें लीन रहते हैं। राजन्! जो हिंसाका आश्रय लेता है वह सदा ही मृतकके समान है।

इस प्रकार जो सबके प्रति समान भाव रखता है, भलीभाँति धैर्य धारण किये रहता है, इन्द्रियोंको अपने वशमें रखता है तथा सम्पूर्ण भूतोंको त्राण देता है, वह ज्ञानी पुरुष उत्तम गतिको प्राप्त होता है। जिसका अन्तःकरण उत्तम ज्ञानसे परितृप्त है तथा जिसमें ममताका सर्वथा अभाव है, उस मनीषी पुरुषकी मृत्यु नहीं होती; वह अमृतत्वको प्राप्त हो जाता है। ज्ञानी मुनि सब प्रकारकी आसक्तियोंसे मुक्त होकर आकाशकी भाँति स्थित होता है। जो सबमें विष्णुकी भावना करनेवाला और शान्त होता है, उसे ही देवतालोग ब्राह्मण मानते हैं। जिसका जीवन धर्मके लिये, धर्म आत्मसन्तोषके लिये तथा दिन-रात पुण्यके लिये हैं, उसे देवतालोग ब्राह्मण समझते हैं। जिसके मनमें कोई कामना नहीं होती, जो कर्मोंके आरम्भका कोई संकल्प नहीं करता तथा नमस्कार और स्तुतिसे दूर रहता है, जिसने योगके द्वारा कर्मोंको क्षीण कर दिया है, उसे देवतालोग ब्राह्मण मानते हैं। सम्पूर्ण प्राणियोंको अभयकी दक्षिणा देना संसारमें समस्त दानोंसे बढ़कर है। जो किसीकी निन्दाका पात्र नहीं है तथा जो स्वयं भी दूसरोंकी निन्दा नहीं करता, वही ब्राह्मण परमात्माका साक्षात्कार कर पाता है। जिसके समस्त पाप नष्ट हो गये हैं, जो इहलोक और परलोकमें भी किसी वस्तुको पानेकी इच्छा नहीं करता, जिसका मोह दूर हो गया है, जो मिट्टीके ढेले और सुवर्णको समान दृष्टिसे देखता है, जिसने रोषको त्याग दिया है, जो निन्दा-स्तुति और प्रिय-अप्रियसे रहित होकर सदा उदासीनकी भाँति विचरता रहता है, वही वास्तवमें संन्यासी है।

पुष्कर क्षेत्रमें ब्रह्माजीका यज्ञ और सरस्वतीका प्राकट्य

भीष्मजीने कहा—ब्रह्मन्! आपके मुखसे यह सब प्रसंग मैंने सुना; अब पुष्कर क्षेत्रमें जो ब्रह्माजीका यज्ञ हुआ था, उसका वृत्तान्त सुनाइये। क्योंकि इसका श्रवण करनेसे मेरे शरीर [और मन]-की शुद्धि होगी।

पुलस्त्यजीने कहा—राजन्! भगवान् ब्रह्माजी पुष्कर क्षेत्रमें जब यज्ञ कर रहे थे, उस समय जो-जो बातें हुई उन्हें बतलाता हूँ; सुनो। पितामहका यज्ञ आदि कृतयुगमें प्रारम्भ हुआ था। उस समय मरीचि, अंगिरा, मैं, पुलह, क्रतु और प्रजापति दक्षने ब्रह्माजीके पास जाकर उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया। धाता, अर्यमा,

सविता, वरुण, अंश, भग, इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, त्वष्टा, मित्र और पर्जन्य—आदि बारहों आदित्य भी वहाँ उपस्थित हो अपने जाज्वल्यमान तेजसे प्रकाशित हो रहे थे। इन देवेश्वरोंने भी पितामहको प्रणाम किया। मृगव्याध, शर्व, महायशस्वी निर्ऋति, अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, पिनाकी, अपराजित, विश्वेश्वर भव, कपर्दी, स्थाणु और भगवान् भग—ये ग्यारह रुद्र भी उस यज्ञमें उपस्थित थे। दोनों अश्विनीकुमार, आठों वसु, महाबली मरुद्गण, विश्वेदेव और साध्य नामक देवता ब्रह्माजीके सम्मुख हाथ जोड़कर खड़े थे। शेषजीके वंशज वासुकि आदि बड़े-बड़े नाग भी विद्यमान थे। तार्क्ष्य, अरिष्टनेमि, महाबली गरुड़, वारुणि तथा आरुणि—ये सभी विनताकुमार वहाँ पधारे थे। लोकपालक भगवान् श्रीनारायणने वहाँ स्वयं पदार्पण किया और समस्त महर्षियोंके साथ लोकगुरु ब्रह्माजीसे कहा—'जगत्पते! तुम्हारे ही द्वारा इस सम्पूर्ण संसारका विस्तार हुआ है, तुम्हींने इसकी सृष्टि की है; इसलिये तुम सम्पूर्ण लोकोंके ईश्वर हो। यहाँ हमलोगोंके करनेयोग्य जो तुम्हारा महान् कार्य हो, उसे करनेकी हमें आज्ञा दो।' देवर्षियोंके साथ भगवान् श्रीविष्णुने ऐसा कहकर देवेश्वर ब्रह्माजीको नमस्कार किया।

ब्रह्माजी वहाँ स्थित होकर सम्पूर्ण दिशाओंको अपने तेजसे प्रकाशित कर रहे थे तथा भगवान् श्रीविष्णु भी श्रीवत्स-चिह्नसे सुशोभित एवं सुन्दर सुवर्णमय यज्ञोपवीतसे देदीप्यमान हो रहे थे। उनका एक-एक रोम परम पवित्र है। वे सर्वसमर्थ हैं, उनका वक्ष:स्थल विशाल तथा श्रीविग्रह सम्पूर्ण तेजोंका पुंज जान पड़ता है। [देवताओं और ऋषियोंने उनकी इस प्रकार स्तुति की—] जो पुण्यात्माओंको उत्तम गति और पापियोंको दुर्गति प्रदान करनेवाले हैं; योगसिद्ध महात्मा पुरुष जिन्हें उत्तम योगस्वरूप मानते हैं; जिनको अणिमा आदि आठ ऐश्वर्य नित्य प्राप्त हैं; जिन्हें देवताओंमें सबसे श्रेष्ठ कहा जाता है; मोक्षकी अभिलाषा रखनेवाले संयमी ब्राह्मण योगसे अपने अन्त:करणको शुद्ध करके जिन सनातन पुरुषको पाकर जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त हो जाते हैं; चन्द्रमा और सूर्य जिनके नेत्र हैं तथा अनन्त आकाश जिनका विग्रह है; उन भगवान्‌की हम शरण लेते हैं। जो भगवान् सम्पूर्ण भूतोंकी उत्पत्ति और वृद्धि करनेवाले हैं, जो ऋषियों और लोकोंके स्रष्टा तथा देवताओंके ईश्वर हैं, जिन्होंने देवताओंका प्रिय और समस्त जगत्‌का पालन करनेके लिये चिरकालसे पितरोंको कव्य तथा देवताओंको उत्तम हविष्य अर्पण करनेका नियम प्रवर्तित किया है, उन देवश्रेष्ठ परमेश्वरको हम सादर प्रणाम करते हैं।

तदनन्तर वृद्ध एवं बुद्धिमान् देवता भगवान् श्रीब्रह्माजी यज्ञशालामें लोकपालक श्रीविष्णुभगवान्‌के साथ बैठकर शोभा पाने लगे। वह यज्ञमण्डप धन आदि सामग्रियों और ऋत्विजोंसे भरा था। परम प्रभावशाली भगवान् श्रीविष्णु धनुष हाथमें लेकर सब ओरसे उसकी रक्षा कर रहे थे। दैत्य और दानवोंके सरदार तथा राक्षसोंके समुदाय भी वहाँ उपस्थित थे। यज्ञ-विद्या, वेद-विद्या तथा पद और क्रमका ज्ञान रखनेवाले महर्षियोंके वेद-घोषसे सारी सभा गूँज उठी। यज्ञमें स्तुति-कर्मके जानकार, शिक्षाके ज्ञाता, शब्दोंकी व्युत्पत्ति एवं अर्थका ज्ञान रखनेवाले और मीमांसाके युक्तियुक्त वाक्योंको समझनेवाले विद्वानोंके उच्चारण किये हुए शब्द सबको सुनायी देने लगे। इतिहास और पुराणोंके ज्ञाता, नाना प्रकारके विज्ञानको जानते हुए भी मौन रहनेवाले, संयमी तथा उत्तम व्रतोंका पालन करनेवाले विद्वानोंने वहाँ उपस्थित होकर जप और होममें लगे हुए मुख्य-मुख्य ब्राह्मणोंको देखा। देवता और असुरोंके गुरु लोक-पितामह ब्रह्माजी उस यज्ञभूमिमें विराजमान थे। सुर और असुर दोनों ही उनकी सेवामें खड़े थे। प्रजापतिगण—दक्ष, वसिष्ठ, पुलह, मरीचि, अंगिरा, भृगु, अत्रि, गौतम तथा नारद—ये सब लोग वहाँ भगवान् ब्रह्माजीकी उपासना करते थे। आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, व्याकरण, छन्द:शास्त्र, निरुक्त, कल्प, शिक्षा, आयुर्वेद, धनुर्वेद, मीमांसा, गणित, गजविद्या, अश्वविद्या और इतिहास—इन सभी अंगोपांगोंसे विभूषित सम्पूर्ण वेद भी मूर्तिमान्

होकर ओंकारयुक्त महात्मा ब्रह्माजीकी उपासना करते थे। नय, क्रतु, संकल्प, प्राण तथा अर्थ, धर्म, काम, हर्ष, शुक्र, बृहस्पति, संवर्त, बुध, शनैश्चर, राहु, समस्त ग्रह, मरुद्गण, विश्वकर्मा, पितृगण, सूर्य तथा चन्द्रमा भी ब्रह्माजीकी सेवामें उपस्थित थे। दुर्गम कष्टसे तारनेवाली गायत्री, समस्त वेद-शास्त्र, यम-नियम, सम्पूर्ण अक्षर, लक्षण, भाष्य तथा सब शास्त्र देह धारण करके वहाँ विद्यमान थे। क्षण, लव, मुहूर्त, दिन, रात्रि, पक्ष, मास और सम्पूर्ण ऋतुएँ अर्थात् इनके देवता महात्मा ब्रह्माजीकी उपासना करते थे।

इनके सिवा अन्यान्य श्रेष्ठ देवियाँ—ह्री, कीर्ति, द्युति, प्रभा, धृति, क्षमा, भूति, नीति, विद्या, मति, श्रुति, स्मृति, कान्ति, शान्ति, पुष्टि, क्रिया, नाच-गानमें कुशल समस्त दिव्य अप्सराएँ तथा सम्पूर्ण देव-माताएँ भी ब्रह्माजीकी सेवामें उपस्थित थीं। विप्रचित्ति, शिबि, शंकु, केतुमान्, प्रह्लाद, बलि, कुम्भ, संह्लाद, अनुह्लाद, वृषपर्वा, नमुचि, शम्बर, इन्द्रतापन, वातापि, केशी, राहु और वृत्र—ये तथा और भी बहुत-से दानव, जिन्हें अपने बलपर गर्व था, ब्रह्माजीकी उपासना करते हुए इस प्रकार बोले।

दानवोंने कहा—भगवन्! आपने ही हमलोगोंकी सृष्टि की है, हमें तीनों लोकोंका राज्य दिया है तथा देवताओंसे अधिक बलवान् बनाया है; पितामह! आपके इस यज्ञमें हमलोग कौन-सा कार्य करें? हम स्वयं ही कर्तव्यका निर्णय करनेमें समर्थ हैं; अदितिके गर्भसे पैदा हुए इन बेचारे देवताओंसे क्या काम होगा; ये तो सदा हमारे द्वारा मारे जाते और अपमानित होते रहते हैं। फिर भी आप तो हम सबके ही पितामह हैं; अतः देवताओंको भी साथ लेकर यज्ञ पूर्ण कीजिये। यज्ञ समाप्त होनेपर राज्यलक्ष्मीके विषयमें हमारा देवताओंके साथ फिर विरोध होगा; इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है, किन्तु इस समय हम चुपचाप इस यज्ञको देखेंगे—देवताओंके साथ युद्ध नहीं छेड़ेंगे।

पुलस्त्यजी कहते हैं—दानवोंके ये गर्वयुक्त वचन सुनकर इन्द्रसहित महायशस्वी भगवान् श्रीविष्णुने शंकरजीसे कहा।

भगवान् श्रीविष्णु बोले—प्रभो! पितामहके यज्ञमें प्रधान-प्रधान दानव आये हैं। ब्रह्माजीने इनको भी इस यज्ञमें आमन्त्रित किया है। ये सब लोग इसमें विघ्न डालनेका प्रयत्न कर रहे हैं। परन्तु जबतक यज्ञ समाप्त न हो जाय तबतक हमलोगोंको क्षमा करना चाहिये। इस यज्ञके समाप्त हो जानेपर देवताओंको दानवोंके साथ युद्ध करना होगा। उस समय आपको ऐसा यत्न करना चाहिये, जिससे पृथ्वीपरसे दानवोंका नामो-निशान मिट जाय। आपको मेरे साथ रहकर इन्द्रकी विजयके लिये प्रयत्न करना उचित है। इन दानवोंका धन लेकर राहगीरों, ब्राह्मणों तथा दुःखी मनुष्योंमें बाँट दें।

भगवान् श्रीविष्णुकी यह बात सुनकर ब्रह्माजीने कहा—'भगवन्! आपकी बात सुनकर ये दानव कुपित हो सकते हैं; किन्तु इस समय इन्हें क्रोध दिलाना आपको भी अभीष्ट न होगा। अतः रुद्र एवं अन्य देवताओंके साथ आपको क्षमा करना चाहिये। सत्ययुगके अन्तमें जब यह यज्ञ समाप्त हो जायगा, उस समय मैं आपलोगोंको तथा इन दानवोंको विदा कर दूँगा; उसी समय आप सब लोग सन्धि या विग्रह, जो उचित हो, कीजियेगा।'

पुलस्त्यजी कहते हैं—तदनन्तर भगवान् ब्रह्माजीने पुनः उन दानवोंसे कहा—'तुम्हें देवताओंके साथ किसी प्रकार विरोध नहीं करना चाहिये। इस समय तुम सब लोग परस्पर मित्रभावसे रहकर मेरा कार्य सम्पन्न करो।'

दानवोंने कहा—पितामह! आपके प्रत्येक आदेशका हमलोग पालन करेंगे। देवता हमारे छोटे भाई हैं, अतः उन्हें हमारी ओरसे कोई भय नहीं है।

दानवोंकी यह बात सुनकर ब्रह्माजीको बड़ा सन्तोष हुआ। थोड़ी ही देर बाद उनके यज्ञका वृत्तान्त सुनकर ऋषियोंका एक समुदाय आ पहुँचा। भगवान् श्रीविष्णुने उनका पूजन किया। पिनाकधारी महादेवजीने उन्हें आसन दिया तथा ब्रह्माजीकी आज्ञासे वसिष्ठजीने उन सबको अर्घ्य निवेदित करके उनका कुशल-क्षेम पूछा

और पुष्कर क्षेत्रमें उन्हें निवासस्थान देकर कहा—'आपलोग आरामसे यहीं रहें।' तत्पश्चात् जटा और मृगचर्म धारण करनेवाले वे समस्त महर्षि ब्रह्माजीकी यज्ञ-सभाको सुशोभित करने लगे। उनमें कुछ महात्मा वालखिल्य थे तथा कुछ लोग संप्रख्यान (एक समयके लिये ही अन्न ग्रहण करनेवाले अथवा तत्त्वका विचार करनेवाले) थे। वे नाना प्रकारके नियमोंमें संलग्न तथा वेदीपर शयन करनेवाले थे। उन सभी तपस्वियोंने पुष्करके जलमें ज्यों ही अपना मुँह देखा, उसी क्षण वे अत्यन्त रूपवान् हो गये। फिर एक-दूसरेकी ओर देखकर सोचने लगे—'यह कैसी बात है? इस तीर्थमें मुँहका प्रतिबिम्ब देखनेसे सबका सुन्दर रूप हो गया!' ऐसा विचार कर तपस्वियोंने उसका नाम 'मुखदर्शन तीर्थ' रख दिया। तत्पश्चात् वे नहाकर अपने-अपने नियमोंमें लग गये। उनके गुणोंकी कहीं उपमा नहीं थी। नरश्रेष्ठ! वे सभी वनवासी मुनि वहाँ रहकर अत्यन्त शोभा पाने लगे। उन्होंने अग्निहोत्र करके नाना प्रकारकी क्रियाएँ सम्पन्न कीं। तपस्यासे उनके पाप भस्म हो चुके थे। वे सोचने लगे कि 'यह सरोवर सबसे श्रेष्ठ है।' ऐसा विचार करके उन द्विजातियोंने उस सरोवरका 'श्रेष्ठ पुष्कर' नाम रखा।

तदनन्तर ब्राह्मणोंको दानके रूपमें नाना प्रकारके पात्र देनेके पश्चात् वे सभी द्विज वहाँ प्राची सरस्वतीका नाम सुनकर उसमें स्नान करनेकी इच्छासे गये। तीर्थोंमें श्रेष्ठ सरस्वतीके तटपर बहुत-से द्विज निवास करते थे। नाना प्रकारके वृक्ष उस स्थानकी शोभा बढ़ा रहे थे। वह तीर्थ सभी प्राणियोंको मनोरम जान पड़ता था। अनेकों ऋषि-मुनि उसका सेवन करते थे। उन ऋषियोंमेंसे कोई वायु पीकर रहनेवाले थे और कोई जल पीकर। कुछ लोग फलाहारी थे और कुछ केवल पत्ते चबाकर रहनेवाले थे।

सरस्वतीके तटपर महर्षियोंके स्वाध्यायका शब्द गूँजता रहता था। मृगोंके सैकड़ों झुंड वहाँ विचरा करते थे। अहिंसक तथा धर्मपरायण महात्माओंसे उस तीर्थकी अधिक शोभा हो रही थी। पुष्कर तीर्थमें सरस्वती नदी सुप्रभा, कांचना, प्राची, नन्दा और विशाला नामसे प्रसिद्ध पाँच धाराओंमें प्रवाहित होती हैं! भूतलपर वर्तमान ब्रह्माजीकी सभामें—उनके विस्तृत यज्ञमण्डपमें जब द्विजातियोंका शुभागमन हो गया, देवतालोग पुण्याहवाचन तथा नाना प्रकारके नियमोंका पालन करते हुए जब यज्ञ-कार्यके सम्पादनमें लग गये और पितामह ब्रह्माजी यज्ञकी दीक्षा ले चुके, उस समय सम्पूर्ण भोगोंकी समृद्धिसे युक्त यज्ञके द्वारा भगवान्का यजन आरम्भ हुआ। राजेन्द्र! उस यज्ञमें द्विजातियोंके पास उनकी मनचाही वस्तुएँ अपने-आप उपस्थित हो जाती थीं। धर्म और अर्थके साधनमें प्रवीण पुरुष भी स्मरण करते ही वहाँ आ जाते थे। देव, गन्धर्व गान करने लगे। अप्सराएँ नाचने लगीं। दिव्य बाजे बज उठे। उस यज्ञकी समृद्धिसे देवता भी सन्तुष्ट हो गये। मनुष्योंको तो वहाँका वैभव देखकर बड़ा ही विस्मय हुआ। पुष्कर तीर्थमें जब इस प्रकार ब्रह्माजीका यज्ञ होने लगा, उस समय ऋषियोंने सन्तुष्ट होकर सरस्वतीका सुप्रभा नामसे आवाहन किया। पितामहका सम्मान करती हुई वेगशालिनी सरस्वती नदीको उपस्थित देखकर मुनियोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। इस प्रकार नदियोंमें श्रेष्ठ सरस्वती ब्रह्माजीकी सेवा तथा मनीषी मुनियोंकी प्रसन्नताके लिये ही पुष्कर तीर्थमें प्रकट हुई थी। जो मनुष्य सरस्वतीके उत्तर-तटपर अपने शरीरका परित्याग करता है तथा प्राची सरस्वतीके तटपर जप करता है, वह पुनः जन्म-मृत्युको नहीं प्राप्त होता। सरस्वतीके जलमें डुबकी लगानेवालेको अश्वमेध यज्ञका पूरा-पूरा फल मिलता है। जो वहाँ नियम और उपवासके द्वारा अपने शरीरको सुखाता है, केवल जल या वायु पीकर अथवा पत्ते चबाकर तपस्या करता है, वेदीपर सोता है तथा यम और नियमोंका पृथक्-पृथक् पालन करता है, वह शुद्ध हो ब्रह्माजीके परम पदको प्राप्त होता है। जिन्होंने सरस्वती तीर्थमें तिलभर भी सुवर्णका दान किया है, उनका वह दान मेरुपर्वतके दानके समान फल देनेवाला है—यह बात पूर्वकालमें स्वयं प्रजापति ब्रह्माजीने कही थी। जो मनुष्य उस तीर्थमें श्राद्ध करेंगे, वे अपने कुलकी इक्कीस

पीढ़ियोंके साथ स्वर्गलोकमें जायँगे। वह तीर्थ पितरोंको बहुत ही प्रिय है, वहाँ एक ही पिण्ड देनेसे उन्हें पूर्ण तृप्ति हो जाती है। वे पुष्करतीर्थके द्वारा उद्धार पाकर ब्रह्मलोकमें पधारते हैं। उन्हें फिर अन्न—भोगोंकी इच्छा नहीं होती, वे मोक्षमार्गमें चले जाते हैं। अब मैं सरस्वती नदी जिस प्रकार पूर्ववाहिनी हुई, वह प्रसंग बतलाता हूँ; सुनो।

पहलेकी बात है, एक बार इन्द्र आदि समस्त देवताओंकी ओरसे भगवान् श्रीविष्णुने सरस्वतीसे कहा—'देवि! तुम पश्चिम-समुद्रके तटपर जाओ और इस बडवानलको ले जाकर समुद्रमें डाल दो। ऐसा करनेसे समस्त देवताओंका भय दूर हो जायगा। तुम माताकी भाँति देवताओंको अभय-दान दो।' सबको उत्पन्न करनेवाले भगवान् श्रीविष्णुकी ओरसे यह आदेश मिलनेपर देवी सरस्वतीने कहा—'भगवन्! मैं स्वाधीन नहीं हूँ; आप इस कार्यके लिये मेरे पिता ब्रह्माजीसे अनुरोध कीजिये। पिताजीकी आज्ञाके बिना मैं एक पग भी कहीं नहीं जा सकती।' सरस्वतीका अभिप्राय जानकर देवताओंने ब्रह्माजीसे कहा—'पितामह! आपकी कुमारी कन्या सरस्वती बड़ी साध्वी है—उसमें किसी प्रकारका दोष नहीं देखा गया है; अत: उसे छोड़कर दूसरा कोई नहीं है, जो बडवानलको ले जा सके।

पुलस्त्यजी कहते हैं—देवताओंकी बात सुनकर ब्रह्माजीने सरस्वतीको बुलाया और उसे गोदमें लेकर उसका मस्तक सूँघा। फिर बड़े स्नेहके साथ कहा—'बेटी! तुम मेरी और इन समस्त देवताओंकी रक्षा करो। देवताओंके प्रभावसे तुम्हें इस कार्यके करनेपर बड़ा सम्मान प्राप्त होगा। इस बडवानलको ले जाकर खारे पानीके समुद्रमें डाल दो।' पिताके वियोगके कारण बालिकाके नेत्रोंमें आँसू छलछला आये। उसने ब्रह्माजीको प्रणाम करके कहा—'अच्छा, जाती हूँ।' उस समय सम्पूर्ण देवताओं तथा उसके पिताने भी कहा—'भय न करो।' इससे वह भय छोड़कर प्रसन्न चित्तसे जानेको तैयार हुई। उसकी यात्राके समय शंख और नगारोंकी ध्वनि तथा मंगलघोष होने लगा, जिसकी आवाजसे सारा जगत् गूँज उठा। सरस्वती अपने तेजसे सर्वत्र प्रकाश फैलाती हुई चली। उस समय गंगाजी उसके पीछे हो लीं। तब सरस्वतीने कहा—'सखी! तुम कहाँ आती हो? मैं फिर तुमसे मिलूँगी।' सरस्वतीके ऐसा कहनेपर गंगाने मधुर वाणीमें कहा—'शुभे! अब तो तुम जब पूर्वदिशामें आओगी तभी मुझे देख सकोगी। देवताओंसहित तुम्हारा दर्शन तभी मेरे लिये सुलभ हो सकेगा।' यह सुनकर सरस्वतीने कहा—'शुचिस्मिते! तब तुम भी उत्तराभिमुखी होकर शोकका परित्याग कर देना।' गंगा बोलीं—'सखी! मैं उत्तराभिमुखी होनेपर अधिक पवित्र मानी जाऊँगी और तुम पूर्वाभिमुखी होनेपर। उत्तरवाहिनी गंगा और पूर्ववाहिनी सरस्वतीमें जो मनुष्य श्राद्ध और दान करेंगे, वे तीनों ऋणोंसे मुक्त होकर मोक्षमार्गका आश्रय लेंगे—इसमें कोई अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।'

इसपर वह सरस्वती नदीरूपमें परिणत हो गयी। देवताओंके देखते-देखते एक पाकरके वृक्षकी जड़से प्रकट हुई। वह वृक्ष भगवान् विष्णुका स्वरूप है। सम्पूर्ण देवताओंने उसकी वन्दना की है। उसकी अनेकों शाखाएँ सब ओर फैली हुई हैं। वह दूसरे ब्रह्माजीकी भाँति शोभा पाता है। यद्यपि उस वृक्षमें एक भी फूल नहीं है, तो भी वह डालियोंपर बैठे हुए शुक आदि पक्षियोंके कारण फूलोंसे लदा-सा जान पड़ता है। सरस्वतीने उस पाकरके समीप स्थित होकर देवाधिदेव विष्णुसे कहा—'भगवन्! मुझे बडवाग्नि समर्पित कीजिये; मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगी।' उसके ऐसा कहनेपर भगवान् श्रीविष्णु बोले—'शुभे! तुम्हें इस बडवानलको पश्चिम-समुद्रकी ओर ले जाते समय जलनेका कोई भय नहीं होगा।'

पुलस्त्यजी कहते हैं—तदनन्तर भगवान् श्रीविष्णुने बडवानलको सोनेके घड़ेमें रखकर सरस्वतीको सौंप दिया। उसने उस घड़ेको अपने उदरमें रखकर पश्चिमकी ओर प्रस्थान किया। अदृश्य गतिसे चलती हुई वह

महानदी पुष्करमें पहुँची और ब्रह्माजीने जिन-जिन कुण्डोंमें हवन किया था, उन सबको जलसे आप्लावित करके प्रकट हुई। इस प्रकार पुष्कर क्षेत्रमें परम पवित्र सरस्वती नदीका प्रादुर्भाव हुआ। जगत्को जीवनदान देनेवाली वायुने भी उसका जल लेकर वहाँके सब तीर्थोंमें डाल दिया। उस पुण्यक्षेत्रमें पहुँचकर पुण्यसलिला सरस्वती मनुष्योंके पापोंका नाश करनेके लिये स्थित हो गयी। जो पुण्यात्मा मनुष्य पुष्कर तीर्थमें विद्यमान सरस्वतीका दर्शन करते हैं, वे नारकी जीवोंकी अधोगतिका अनुभव नहीं करते। जो मनुष्य उसमें भक्ति-भावके साथ स्नान करते हैं, वे ब्रह्मलोकमें पहुँचकर ब्रह्माजीके साथ आनन्दका अनुभव करते हैं। जो मनुष्य ज्येष्ठ पुष्करमें स्नान करके पितरोंका तर्पण करता है, वह उन सबका नरकसे उद्धार कर देता है तथा स्वयं उसका भी चित्त शुद्ध हो जाता है। ब्रह्माजीके क्षेत्रमें पुण्यसलिला सरस्वतीको पाकर मनुष्य दूसरे किस तीर्थकी कामना करे—उससे बढ़कर दूसरा तीर्थ है ही कौन? सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह सब-का-सब ज्येष्ठ पुष्करमें एक बार डुबकी लगानेसे मिल जाता है। अधिक क्या कहा जाय—जिसने पुष्कर क्षेत्रका निवास, ज्येष्ठ कुण्डका जल तथा उस तीर्थमें मृत्यु—ये तीन बातें प्राप्त कर लीं, उसने परमगति पा ली। जो मनुष्य उत्तम काल, उत्तम क्षेत्र तथा उत्तम तीर्थमें स्नान और होम करके ब्राह्मणको दान देता है, वह अक्षय सुखका भागी होता है। कार्तिक और वैशाखके शुक्लपक्षमें तथा चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणके समय स्नान करनेयोग्य कुरुजांगलदेशमें जितने क्षेत्र और तीर्थ मुनीश्वरोंद्वारा बताये गये हैं, उन सबमें यह पुष्कर तीर्थ अधिक पवित्र है—ऐसा ब्रह्माजीने कहा है।

जो पुरुष कार्तिककी पूर्णिमाको मध्यम कुण्ड (मध्यम पुष्कर)-में स्नान करके ब्राह्मणको धन देता है, उसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। इसी प्रकार कनिष्ठ कुण्ड (अन्त्य पुष्कर)-में एकाग्रतापूर्वक स्नान करके जो ब्राह्मणको उत्तम अगहनीका चावल दान करता है, वह अग्निलोकमें जाता है तथा वहाँ इक्कीस पीढ़ियोंके साथ रहकर श्रेष्ठ फलका उपभोग करता है। इसलिये पुरुषको उचित है कि वह पूरा प्रयत्न करके पुष्कर तीर्थकी प्राप्तिके लिये—वहाँकी यात्रा करनेके लिये अपना विचार स्थिर करे। मति, स्मृति, प्रज्ञा, मेधा, बुद्धि और शुभ वाणी—ये छः सरस्वतीके पर्याय बतलाये गये हैं। जो पुष्करके वनमें, जहाँ प्राची सरस्वती है, जाकर उसके जलका दर्शन भर कर लेते हैं, उन्हें भी अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है तथा जो उसके भीतर गोता लगाकर स्नान करता है, वह तो ब्रह्माजीका अनुचर होता है। जो मनुष्य वहाँ विधिपूर्वक श्राद्ध करते हैं, वे पितरोंको दुःखदायी नरकसे निकालकर स्वर्गमें पहुँचा देते हैं। जो सरस्वतीमें स्नान करके पितरोंको कुश और तिलसे युक्त जल दान करते हैं, उनके पितर हर्षित हो नाचने लगते हैं। यह पुष्कर तीर्थ सब तीर्थोंसे श्रेष्ठ माना गया है; क्योंकि यह आदि तीर्थ है। इसीलिये इस पृथ्वीपर यह समस्त तीर्थोंमें विख्यात है। यह मानो धर्म और मोक्षकी क्रीडास्थली है, निधि है। सरस्वतीसे युक्त होनेके कारण इसकी महिमा और भी बढ़ गयी है। जो लोग पुष्कर तीर्थमें सरस्वती नदीका जल पीते हैं वे ब्रह्मा और महादेवजीके द्वारा प्रशंसित अक्षय लोकोंको प्राप्त होते हैं। धर्मके तत्त्वको जाननेवाले मुनियोंने जहाँ-जहाँ सरस्वतीदेवीका सेवन किया है, उन सभी स्थानोंमें वे परम पवित्ररूपसे स्थित हैं; किन्तु पुष्करमें वे अन्य स्थलोंकी अपेक्षा विशेष पवित्र मानी गयी हैं। पुण्यमयी सरस्वती नदी संसारमें सुलभ है; किन्तु कुरुक्षेत्र, प्रभासक्षेत्र और पुष्करक्षेत्रमें तो वह बड़े भाग्यसे प्राप्त होती है। अतः वहाँ इसका दर्शन दुर्लभ बताया गया है। सरस्वती तीर्थ इस भूतलके समस्त तीर्थोंमें श्रेष्ठ होनेके साथ ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंका साधक है। अतः मनुष्यको चाहिये कि वह ज्येष्ठ, मध्यम तथा कनिष्ठ—तीनों पुष्करोंमें यत्नपूर्वक स्नान करके उनकी प्रदक्षिणा करे। तत्पश्चात् पवित्र भावसे प्रतिदिन पितामहका दर्शन करे। ब्रह्मलोकमें जानेकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको अनुलोमक्रमसे अर्थात् क्रमशः ज्येष्ठ, मध्यम एवं कनिष्ठ पुष्करमें

तथा विलोमक्रमसे अर्थात् कनिष्ठ, मध्यम और ज्येष्ठ पुष्करमें स्नान करना चाहिये। इसी प्रकार वह उक्त तीनों पुष्करोंमेंसे किसी एकमें या सबमें नित्य स्नान करता रहे।

पुष्कर क्षेत्रमें तीन सुन्दर शिखर और तीन ही स्रोत हैं। वे सब-के-सब पुष्कर नामसे ही प्रसिद्ध हैं। उन्हें ज्येष्ठ पुष्कर, मध्यम पुष्कर और कनिष्ठ पुष्कर कहते हैं। जो मन और इन्द्रियोंको वशमें करके सरस्वतीमें स्नान करता और ब्राह्मणको एक उत्तम गौ दान देता है, वह शास्त्रीय आज्ञाके पालनसे शुद्धचित्त होकर अक्षय लोकोंको पाता है। अधिक क्या कहें—जो रात्रिके समय भी स्नान करके वहाँ याचकको धन देता है, वह अनन्त सुखका भागी होता है। पुष्करमें तिल-दानकी मुनिलोग अधिक प्रशंसा करते हैं तथा कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको वहाँ सदा ही स्नान करनेका विधान है।

भीष्मजी! पुष्कर वनमें पहुँचकर सरस्वती नदीके प्रकट होनेकी बात बतायी गयी। अब वह पुनः अदृश्य होकर वहाँसे पश्चिम दिशाकी ओर चली। पुष्करसे थोड़ी ही दूर जानेपर एक खजूरका वन मिला, जो फल और फूलोंसे सुशोभित था; सभी ऋतुओंके पुष्प उस वनस्थलीकी शोभा बढ़ा रहे थे, वह स्थान मुनियोंके भी मनको मोहनेवाला था। वहाँ पहुँचकर नदियोंमें श्रेष्ठ सरस्वतीदेवी पुनः प्रकट हुईं। वहाँ वे 'नन्दा' के नामसे तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध हुईं।

सरस्वतीके नन्दा नाम पड़नेका इतिहास और उसका माहात्म्य

सूतजी कहते हैं—यह सुनकर देवव्रत भीष्मने पुलस्त्यजीसे पूछा—"ब्रह्मन्! सरिताओंमें श्रेष्ठ नन्दा कोई दूसरी नदी तो नहीं है? मेरे मनमें इस बातको लेकर बड़ा कौतूहल हो रहा है कि सरस्वतीका नाम 'नन्दा' कैसे पड़ गया। जिस प्रकार और जिस कारणसे वह 'नन्दा' नामसे प्रसिद्ध हुई, उसे बतानेकी कृपा कीजिये।" भीष्मके इस प्रकार पूछनेपर पुलस्त्यजीने सरस्वतीका 'नन्दा' नाम क्यों पड़ा, इसका प्राचीन इतिहास सुनाना आरम्भ किया। वे बोले—भीष्म! पहलेकी बात है, पृथ्वीपर प्रभंजन नामसे प्रसिद्ध एक महाबली राजा हो गये हैं। एक दिन वे उस वनमें मृगोंका शिकार खेल रहे थे। उन्होंने देखा, एक झाड़ीके भीतर मृगी खड़ी है। वह राजाके ठीक सामने पड़ती थी। प्रभंजनने अत्यन्त तीक्ष्ण बाण चलाकर मृगीको बींध डाला। आहत हरिणीने चकित होकर चारों ओर दृष्टिपात किया। फिर हाथमें धनुष-बाण धारण किये राजाको खड़ा देख वह बोली—'ओ मूढ़! यह तूने क्या किया? तुम्हारा यह कर्म पापपूर्ण है। मैं यहाँ नीचे मुँह किये खड़ी थी और निर्भय होकर अपने बच्चेको दूध पिला रही थी। इसी अवस्थामें तूने इस वनके भीतर मुझ निरपराध हरिणीको अपने वज्रके समान बाणका निशाना बनाया है। तेरी बुद्धि बड़ी खोटी है, इसलिये तू कच्चा मांस खानेवाले पशुकी योनिमें पड़ेगा। इस कण्टकाकीर्ण वनमें तू व्याघ्र हो जा।'

मृगीका यह शाप सुनकर सामने खड़े हुए राजाकी सम्पूर्ण इन्द्रियाँ व्याकुल हो उठीं। वे हाथ जोड़कर बोले—'कल्याणी! मैं नहीं जानता था कि तू बच्चेको दूध पिला रही है, अनजानमें मैंने तेरा वध किया है। अतः मुझपर प्रसन्न हो! मैं व्याघ्रयोनिको त्यागकर पुनः मनुष्य-शरीरको कब प्राप्त करूँगा? अपने इस शापके उद्धारकी अवधि तो बता दो।' राजाके ऐसा कहनेपर मृगी बोली—'राजन्! आजसे सौ वर्ष बीतनेपर यहाँ नन्दा नामकी एक गौ आयेगी। उसके साथ तुम्हारा वार्तालाप होनेपर इस शापका अन्त हो जायगा।'

पुलस्त्यजी कहते हैं—मृगीके कथनानुसार राजा प्रभंजन व्याघ्र हो गये। उस व्याघ्रकी आकृति बड़ी ही घोर और भयानक थी। वह उस वनमें कालके वशीभूत हुए मृगों, अन्य चौपायों तथा मनुष्योंको भी मार-मारकर खाने और रहने लगा। वह अपनी निन्दा करते हुए कहता था, 'हाय! अब मैं पुनः कब मनुष्य-शरीर धारण करूँगा? अबसे नीच योनिमें डालनेवाला ऐसा निन्दनीय कर्म—महान् पाप नहीं करूँगा। अब इस योनिमें मेरे

द्वारा पुण्य नहीं हो सकता। एकमात्र हिंसा ही मेरी जीवन-वृत्ति है, इसके द्वारा तो सदा दुःख ही प्राप्त होता है। किस प्रकार मृगीकी कही हुई बात सत्य हो सकती है?'

जब व्याघ्रको उस वनमें रहते सौ वर्ष हो गये, तब एक दिन वहाँ गौओंका एक बहुत बड़ा झुंड उपस्थित हुआ। वहाँ घास और जलकी विशेष सुविधा थी, वही गौओंके आनेमें कारण हुई। आते ही गौओंके विश्रामके लिये बाड़ लगा दी गयी। ग्वालोंके रहनेके लिये भी साधारण घर और स्थानकी व्यवस्था की गयी। गोचरभूमि तो वहाँ थी ही। सबका पड़ाव पड़ गया। वनके पासका स्थान गौओंके रँभानेकी भारी आवाजसे गूँजने लगा। मतवाले गोप चारों ओरसे उस गो-समुदायकी रक्षा करते थे।

गौओंके झुंडमें एक बहुत ही हृष्ट-पुष्ट तथा सन्तुष्ट रहनेवाली गाय थी, उसका नाम था नन्दा। वही उस झुंडमें प्रधान थी तथा सबके आगे निर्भय होकर चला करती थी। एक दिन वह अपने झुंडसे बिछुड़ गयी और चरते-चरते पूर्वोक्त व्याघ्रके सामने जा पहुँची। व्याघ्र उसे

देखते ही 'खड़ी रह, खड़ी रह' कहता हुआ उसकी ओर दौड़ा और निकट आकर बोला—'आज विधाताने तुझे मेरा ग्रास नियत किया है, क्योंकि तू स्वयं यहाँ आकर उपस्थित हुई है।' व्याघ्रका यह रोंगटे खड़े कर देनेवाला निष्ठुर वचन सुनकर उस गायको चन्द्रमाके समान कान्तिवाले अपने सुन्दर बछड़ेकी याद आने लगी। उसका गला भर आया—वह गद्गद स्वरसे पुत्रके लिये हुंकार करने लगी। उस गौको अत्यन्त दुःखी होकर क्रन्दन करते देख व्याघ्र बोला—'अरी गाय! संसारमें सब लोग अपने कर्मोंका ही फल भोगते हैं। तू स्वयं मेरे पास आ पहुँची है, इससे जान पड़ता है तेरी मृत्यु आज ही नियत है। फिर व्यर्थ शोक क्यों करती है? अच्छा, यह तो बता—तू रोयी किसलिये?'

व्याघ्रका प्रश्न सुनकर नन्दाने कहा—'व्याघ्र! तुम्हें नमस्कार है, मेरा सारा अपराध क्षमा करो। मैं जानती हूँ तुम्हारे पास आये हुए प्राणीकी रक्षा असम्भव है; अतः मैं अपने जीवनके लिये शोक नहीं करती। मृत्यु तो मेरी एक-न-एक दिन होगी ही [फिर उसके लिये क्या चिन्ता]। किन्तु मृगराज! अभी नयी अवस्थामें मैंने एक बछड़ेको जन्म दिया है। पहली बियानका बच्चा होनेके कारण वह मुझे बहुत ही प्रिय है। मेरा बच्चा अभी दूध पीकर ही जीवन चलाता है। घासको तो वह सूँघता भी नहीं। इस समय वह गोष्ठमें बँधा है और भूखसे पीड़ित होकर मेरी राह देख रहा है। उसीके लिये मुझे बारम्बार शोक हो रहा है। मेरे न रहनेपर मेरा बच्चा कैसे जीवन धारण करेगा? मैं पुत्र-स्नेहके वशीभूत हो रही हूँ और उसे दूध पिलाना चाहती हूँ। [मुझे थोड़ी देरके लिये जाने दो।] बछड़ेको पिलाकर प्यारसे उसका मस्तक चाटूँगी और उसे हिताहितकी जानकारीके लिये कुछ उपदेश करूँगी; फिर अपनी सखियोंकी देख-रेखमें उसे सौंपकर तुम्हारे पास लौट आऊँगी। उसके बाद तुम इच्छानुसार मुझे खा जाना।'

नन्दाकी बात सुनकर व्याघ्रने कहा—'अरी! अब तुझे पुत्रसे क्या काम है?' नन्दा बोली—'मृगेन्द्र! मैं पहले-पहल बछड़ा ब्यायी हूँ [अतः उसके प्रति मेरी बड़ी ममता है, मुझे जाने दो]। सखियोंको, नन्हे बच्चेको, रक्षा करनेवाले ग्वालों और गोपियोंको तथा विशेषतः

अपनी जन्मदायिनी माताको देखकर उन सबसे विदा लेकर आ जाऊँगी—मैं शपथपूर्वक यह बात कहती हूँ। यदि तुम्हें विश्वास हो तो मुझे छोड़ दो। यदि मैं पुनः लौटकर न आऊँ तो मुझे वही पाप लगे, जो ब्राह्मण तथा माता-पिताका वध करनेसे होता है। व्याधों, म्लेच्छों और जहर देनेवालोंको जो पाप लगता है, वही मुझे भी लगे। जो गोशालामें विघ्न डालते हैं, सोते हुए प्राणीको मारते हैं तथा जो एक बार अपनी कन्याका दान करके फिर उसे दूसरेको देना चाहते हैं, उन्हें जो पाप लगता है, वही मुझे भी लगे। जो अयोग्य बैलोंसे भारी बोझ उठवाता है, उसको लगनेवाला पाप मुझे भी लगे। जो कथा होते समय विघ्न डालता है और जिसके घरपर आया हुआ मित्र निराश लौट जाता है, उसको जो पाप लगता है, वही मुझे भी लगे, यदि मैं पुनः लौटकर न आऊँ। इन भयंकर पातकोंके भयसे मैं अवश्य आऊँगी।'

नन्दाकी ये शपथें सुनकर व्याघ्रको उसपर विश्वास हो गया। वह बोला—"गाय! तुम्हारी इन शपथोंसे मुझे विश्वास हो गया है। पर कुछ लोग तुमसे यह भी कहेंगे कि 'स्त्रीके साथ हास-परिहासमें, विवाहमें, गौको संकटसे बचानेमें तथा प्राण-संकट उपस्थित होनेपर जो शपथ की जाती है, उसकी उपेक्षासे पाप नहीं लगता।' किन्तु तुम इन बातोंपर विश्वास न करना। इस संसारमें कितने ही ऐसे नास्तिक हैं, जो मूर्ख होते हुए भी अपनेको पण्डित समझते हैं; वे तुम्हारी बुद्धिको क्षणभरमें भ्रममें डाल देंगे। जिनके चित्तपर अज्ञानका परदा पड़ा रहता है, वे क्षुद्र मनुष्य कुतर्कपूर्ण युक्तियों और दृष्टान्तोंसे दूसरोंको मोहमें डाल देते हैं। इसलिये तुम्हारी बुद्धिमें यह बात नहीं आनी चाहिये कि मैंने शपथोंद्वारा व्याघ्रको ठग लिया। तुमने ही मुझे धर्मका सारा मार्ग दिखाया है; अतः इस समय तुम्हारी जैसी इच्छा हो, करो।"

नन्दा बोली—साधो! तुम्हारा कथन ठीक है, तुम्हें कौन ठग सकता है। जो दूसरोंको ठगना चाहता है, वह तो अपने-आपको ही ठगता है।

व्याघ्रने कहा—गाय! अब तुम जाओ। पुत्रवत्सले! अपने पुत्रको देखो, दूध पिलाओ, उसका मस्तक चाटो तथा माता, भाई, सखी, स्वजन एवं बन्धु-बान्धवोंका दर्शन करके सत्यको आगे रखकर शीघ्र ही यहाँ लौट आओ।

पुलस्त्यजी कहते हैं—वह पुत्रवत्सला धेनु बड़ी सत्यवादिनी थी। पूर्वोक्त प्रकारसे शपथ करके जब वह व्याघ्रकी आज्ञा ले चुकी, तब गोष्ठकी ओर चली। उसके मुखपर आँसुओंकी धारा बह रही थी। वह अत्यन्त दीन भावसे काँप रही थी। उसके हृदयमें बड़ा दुःख था। वह शोकके समुद्रमें डूबकर बारम्बार डँकराती थी। नदीके किनारे गोष्ठपर पहुँचकर उसने सुना, बछड़ा पुकार रहा है। आवाज कानमें पड़ते ही वह उसकी ओर दौड़ी और निकट पहुँचकर नेत्रोंसे आँसू बहाने लगी। माताको निकट पाकर बछड़ेने शंकित होकर पूछा—'माँ! [आज क्या हो गया है?] मैं तुम्हें प्रसन्न नहीं देखता, तुम्हारे हृदयमें शान्ति नहीं दिखायी देती। तुम्हारी दृष्टिमें भी व्यग्रता है, आज तुम अत्यन्त डरी हुई दीख पड़ती हो।'

नन्दा बोली—बेटा! स्तनपान करो, यह हमलोगोंकी अन्तिम भेंट है; अबसे तुम्हें माताका दर्शन दुर्लभ हो जायगा। आज एक दिन मेरा दूध पीकर कल सबेरेसे किसका पियोगे? वत्स! मुझे अभी लौट जाना

है, मैं शपथ करके यहाँ आयी हूँ। भूखसे पीड़ित बाघको मुझे अपना जीवन अर्पण करना है।

बछड़ा बोला—माँ! तुम जहाँ जाना चाहती हो; वहाँ मैं भी चलूँगा। तुम्हारे साथ मेरा भी मर जाना ही अच्छा है। तुम न रहोगी तो मैं अकेले भी तो मर ही जाऊँगा, [फिर साथ ही क्यों न मरूँ?] यदि बाघ तुम्हारे साथ मुझे भी मार डालेगा तो निश्चय ही मुझको वह उत्तम गति मिलेगी, जो मातृभक्त पुत्रोंको मिला करती है। अतः मैं तुम्हारे साथ अवश्य चलूँगा। मातासे बिछुड़े हुए बालकके जीवनका क्या प्रयोजन है? केवल दूध पीकर रहनेवाले बच्चोंके लिये माताके समान दूसरा कोई बन्धु नहीं है। माताके समान रक्षक, माताके समान आश्रय, माताके समान स्नेह, माताके समान सुख तथा माताके समान देवता इहलोक और परलोकमें भी नहीं है। यह ब्रह्माजीका स्थापित किया हुआ परम धर्म है। जो पुत्र इसका पालन करते हैं, उन्हें उत्तम गति प्राप्त होती है।[1]

नन्दाने कहा—बेटा! मेरी ही मृत्यु नियत है, तुम वहाँ न आना। दूसरेकी मृत्युके साथ अन्य जीवोंकी मृत्यु नहीं होती [जिसकी मृत्यु नियत है, उसीकी होती है]। तुम्हारे लिये माताका यह उत्तम एवं अन्तिम सन्देश है; मेरे वचनोंका पालन करते हुए यहीं रहो, यही मेरी सबसे बड़ी शुश्रूषा है। जलके समीप अथवा वनमें विचरते हुए कभी प्रमाद न करना; प्रमादसे समस्त प्राणी नष्ट हो जाते हैं। लोभवश कभी ऐसी घासको चरनेके लिये न जाना, जो किसी दुर्गम स्थानमें उगी हो; क्योंकि लोभसे इहलोक और परलोकमें भी सबका विनाश हो जाता है। लोभसे मोहित होकर लोग समुद्रमें, घोर वनमें तथा दुर्गम स्थानोंमें भी प्रवेश कर जाते हैं। लोभके कारण विद्वान् पुरुष भी भयंकर पाप कर बैठता है। लोभ, प्रमाद तथा हर एकके प्रति विश्वास कर लेना—इन तीन कारणोंसे जगत्का नाश होता है; अतः इन तीनों दोषोंका परित्याग करना चाहिये। बेटा! सम्पूर्ण शिकारी जीवोंसे तथा म्लेच्छ और चोर आदिके द्वारा संकट प्राप्त होनेपर सदा प्रयत्नपूर्वक अपने शरीरकी रक्षा करनी चाहिये। पापयोनिवाले पशु-पक्षी अपने साथ एक स्थानपर निवास करते हों, तो भी उनके विपरीत चित्तका सहसा पता नहीं लगता। नखवाले जीवोंका, नदियोंका, सींगवाले पशुओंका, शस्त्र धारण करनेवालोंका, स्त्रियोंका तथा दूतोंका कभी विश्वास नहीं करना चाहिये। जिसपर पहले कभी विश्वास नहीं किया गया हो, ऐसे पुरुषपर तो विश्वास करे ही नहीं, जिसपर विश्वास जम गया हो, उसपर भी अत्यन्त विश्वास न करे, क्योंकि [अविश्वसनीयपर] विश्वास करनेसे जो भय उत्पन्न होता है, वह विश्वास करनेवालेका समूल नाश कर डालता है। औरोंकी तो बात ही क्या है, अपने शरीरका भी विश्वास नहीं करना चाहिये। भीरुस्वभाववाले बालकका भी विश्वास न करे; क्योंकि बालक डराने-धमकानेपर प्रमादवश गुप्त बात भी दूसरोंको बता सकते हैं।[2] सर्वत्र और सदा सूँघते हुए

१-नास्ति मातृसमो नाथो नास्ति मातृसमा गतिः। नास्ति मातृसमः स्नेहो नास्ति मातृसमं सुखम्॥
नास्ति मातृसमो देव इहलोके परत्र च।
एनं वै परमं धर्मं प्रजापतिविनिर्मितम्। ये तिष्ठन्ति सदा पुत्रास्ते यान्ति परमां गतिम्॥
(१८। ३५३-३५४)

२-समुद्रमटवीं दुर्गं विशन्ते लोभमोहिताः। लोभादकार्यमत्युग्रं विद्वानपि समाचरेत्॥
लोभात्प्रमादाद्विश्रम्भात्त्रिविधैः क्षीयते जगत्। तस्माल्लोभं न कुर्वीत न प्रमादं न विश्वसेत्॥
आत्मा हि सततं पुत्र रक्षणीयः प्रयत्नतः। सर्वेभ्यः श्वापदेभ्यश्च म्लेच्छचौरादिसंकटे॥
तिरश्चां पापयोनीनामेकत्र वसतामपि। विपरीतानि चित्तानि विज्ञायन्ते न पुत्रक॥
नखिनां च नदीनां च शृंङ्गिणांशस्त्रधारिणाम्। विश्वासो नैव कर्तव्यः स्त्रीणां प्रेष्यजनस्य च॥
न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेत्। विश्वासाद्भयमुत्पन्नं मूलादपि निकृन्तति॥
न विश्वसेत् स्वदेहेऽपि बालेऽप्याभीतचेतसि। वक्ष्यन्ति गूढमत्यर्थं सुप्रमत्ते प्रमादतः॥
(१८। ३५९—३६५)

ही चलना चाहिये; क्योंकि गन्धसे ही गौएँ भली-बुरी वस्तुकी परख कर पाती हैं। भयंकर वनमें कभी अकेला न रहे। सदा धर्मका ही चिन्तन करे। मेरी मृत्युसे तुम्हें घबराना नहीं चाहिये; क्योंकि एक-न-एक दिन सबकी मृत्यु निश्चित है। जैसे कोई पथिक छायाका आश्रय लेकर बैठ जाता है और विश्राम करके फिर वहाँसे चल देता है, उसी प्रकार प्राणियोंका समागम होता है।[१] बेटा! तुम शोक छोड़कर मेरे वचनोंका पालन करो।

पुलस्त्यजी कहते हैं—यह कहकर नन्दा पुत्रका मस्तक सूँघकर उसे चाटने लगी और अत्यन्त शोकके वशीभूत हो डबडबायी हुई आँखोंसे बारम्बार लम्बी साँस लेने लगी। तदनन्तर बारम्बार पुत्रको निहारकर वह अपनी माता, सखियों तथा गोपियोंके पास जाकर बोली—'माताजी! मैं अपने झुंडके आगे चरती हुई चली जा रही थी। इतनेमें ही एक व्याघ्र मेरे पास आ पहुँचा। मैंने अनेकों सौगन्धें खाकर उसे लौट आनेका विश्वास दिलाया है; तब उसने मुझे छोड़ा है। मैं बेटेको देखने तथा आपलोगोंसे मिलनेके लिये चली आयी थी; अब फिर वहीं जा रही हूँ। माँ! मैंने अपने दुष्ट स्वभावके कारण तुम्हारा जो-जो अपराध किया हो, वह सब क्षमा करना। अब अपने इस नातीको लड़का करके मानना। [सखियोंकी ओर मुड़कर] प्यारी सखियो! मैंने जानकर या अनजानमें यदि तुमसे कोई अप्रिय बात कह दी हो अथवा और कोई अपराध किया हो तो उसके लिये तुम सब मुझे क्षमा करना। तुम सब सम्पूर्ण सद्‌गुणोंसे युक्त हो। तुममें सब कुछ देनेकी शक्ति है। मेरे बालकपर सदा क्षमाभाव रखना। मेरा बच्चा दीन, अनाथ और व्याकुल है; इसकी रक्षा करना। मैं तुम्हीं लोगोंको इसे सौंप रही हूँ; अपने पुत्रकी ही भाँति इसका भी पोषण करना। अच्छा, अब क्षमा माँगती हूँ। मैं सत्यको अपना चुकी हूँ, अतः व्याघ्रके पास जाऊँगी। सखियोंको मेरे लिये चिन्ता नहीं करनी चाहिये।'

नन्दाकी बात सुनकर उसकी माता और सखियोंको बड़ा दुःख हुआ। वे अत्यन्त आश्चर्य और विषादमें पड़कर बोलीं—'अहो! यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि व्याघ्रके कहनेसे सत्यवादिनी नन्दा पुनः उस भयंकर स्थानमें प्रवेश करना चाहती है। शपथ और सत्यके आश्रयसे शत्रुको धोखा दे अपने ऊपर आये हुए महान् भयका यत्नपूर्वक नाश करना चाहिये। जिस उपायसे आत्मरक्षा हो सके, वही कर्तव्य है। नन्दे! तुम्हें वहाँ नहीं जाना चाहिये। अपने नन्हे-से शिशुको त्यागकर सत्यके लोभसे जो तू वहाँ जा रही है, यह तुम्हारे द्वारा अधर्म हो रहा है। इस विषयमें धर्मवादी ऋषियोंने पहले एक वचन कहा था, वह इस प्रकार है। प्राणसंकट उपस्थित होनेपर शपथोंके द्वारा आत्मरक्षा करनेमें पाप नहीं लगता। जहाँ असत्य बोलनेसे प्राणियोंकी प्राणरक्षा होती हो, वहाँ वह असत्य भी सत्य है और सत्य भी असत्य है।'[२]

नन्दा बोली—बहिनो! दूसरोंके प्राण बचानेके लिये मैं भी असत्य कह सकती हूँ। किन्तु अपने लिये—अपने जीवनकी रक्षाके लिये मैं किसी तरह झूठ नहीं बोल सकती। जीव अकेले ही गर्भमें आता है, अकेले ही मरता है, अकेले ही उसका पालन-पोषण होता है तथा अकेले ही वह सुख-दुःख भोगता है; अतः मैं सदा सत्य ही बोलूँगी। सत्यपर ही संसार टिका हुआ है, धर्मकी स्थिति भी सत्यमें ही है। सत्यके कारण ही समुद्र अपनी मर्यादाका उल्लंघन नहीं करता। राजा बलि भगवान् विष्णुको पृथ्वी देकर स्वयं पातालमें चले गये और छलसे बाँधे जानेपर भी सत्यपर ही डटे रहे। गिरिराज विन्ध्य अपने सौ शिखरोंके साथ बढ़ते-बढ़ते

१-यथा हि पथिकः कश्चिच्छायामाश्रित्य तिष्ठति। विश्रम्य च पुनर्गच्छेत्तद्वद्भूतसमागमः॥ (१८। ३६८)

२-उक्त्वानृतं भवेद् यत्र प्राणिनां प्राणरक्षणम्। अनृतं तत्र सत्यं स्यात् सत्यमप्यनृतं भवेत्॥ (१८। ३९२)

बहुत ऊँचे हो गये थे [यहाँतक कि उन्होंने सूर्यका मार्ग भी रोक लिया था], किन्तु सत्यमें बँध जानेके कारण ही वे [महर्षि अगस्त्यके साथ किये गये] अपने नियमको नहीं तोड़ते। स्वर्ग, मोक्ष तथा धर्म—सब सत्यमें ही प्रतिष्ठित हैं; जो अपने वचनका लोप करता है, उसने मानो सबका लोप कर दिया। सत्य अगाध जलसे भरा हुआ तीर्थ है, जो उस शुद्ध सत्यमय तीर्थमें स्नान करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर परम गतिको प्राप्त होता है। एक हजार अश्वमेध यज्ञ और सत्यभाषण—ये दोनों यदि तराजूपर रखे जायँ तो एक हजार अश्वमेध यज्ञोंसे सत्यका ही पलड़ा भारी रहेगा। सत्य ही उत्तम तप है, सत्य ही उत्कृष्ट शास्त्रज्ञान है। सत्यभाषणमें किसी प्रकारका क्लेश नहीं है। सत्य ही साधु पुरुषोंकी परखके लिये कसौटी है। वही सत्पुरुषोंकी वंश-परम्परागत सम्पत्ति है। सम्पूर्ण आश्रयोंमें सत्यका ही आश्रय श्रेष्ठ माना गया है। वह अत्यन्त कठिन होनेपर भी उसका पालन करना अपने हाथमें है। सत्य सम्पूर्ण जगत्‌के लिये आभूषणरूप है। जिस सत्यका उच्चारण करके म्लेच्छ भी स्वर्गमें पहुँच जाता है, उसका परित्याग कैसे किया जा सकता है।*

सखियाँ बोलीं—नन्दे! तुम सम्पूर्ण देवताओं और दैत्योंके द्वारा नमस्कार करनेयोग्य हो; क्योंकि तुम परम सत्यका आश्रय लेकर अपने प्राणोंका भी त्याग कर रही हो, जिनका त्याग बड़ा ही कठिन है। कल्याणी! इस विषयमें हमलोग क्या कह सकती हैं। तुम तो धर्मका बीड़ा उठा रही हो। इस सत्यके प्रभावसे त्रिभुवनमें कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं है। इस महान् त्यागसे हमलोग यही समझती हैं कि तुम्हारा अपने पुत्रके साथ वियोग नहीं होगा। जिस नारीका चित्त कल्याणमार्गमें लगा हुआ है, उसपर कभी आपत्तियाँ नहीं आतीं।

पुलस्त्यजी कहते हैं—तदनन्तर गोपियोंसे मिलकर तथा समस्त गो-समुदायकी परिक्रमा करके वहाँके देवताओं और वृक्षोंसे विदा ले नन्दा वहाँसे चल पड़ी। उसने पृथ्वी, वरुण, अग्नि, वायु, चन्द्रमा, दसों दिक्पाल, वनके वृक्ष, आकाशके नक्षत्र तथा ग्रह—इन सबको बारम्बार प्रणाम करके कहा—'इस वनमें जो सिद्ध और वनदेवता निवास करते हैं, वे वनमें चरते हुए मेरे पुत्रकी रक्षा करें।' इस प्रकार पुत्रके स्नेहवश बहुत-सी बातें कहकर नन्दा वहाँसे प्रस्थित हुई और उस स्थानपर पहुँची, जहाँ वह तीखी दाढ़ों और भयंकर आकृतिवाला मांसभक्षी बाघ मुँह बाये बैठा था। उसके पहुँचनेके साथ ही उसका बछड़ा भी अपनी पूँछ ऊपरको उठाये अत्यन्त वेगसे दौड़ता हुआ वहाँ आ गया और

---

* एक: संश्लिष्यते गर्भे मरणे भरणे तथा। भुङ्क्ते चैक: सुखं दु:खमत: सत्यं वदाम्यहम्॥
सत्ये प्रतिष्ठिता लोका धर्म: सत्ये प्रतिष्ठित:। उदधि: सत्यवाक्येन मर्यादां न विलङ्घति॥
विष्णवे पृथिवीं दत्त्वा बलि: पातालमास्थित:। छद्मनापि बलिर्बद्ध: सत्यवाक्येन तिष्ठति॥
प्रवर्द्धमान: शैलेन्द्र: शतशृंग: समुच्छ्रित:। सत्येन संस्थितो विन्ध्य: प्रबन्धं नातिवर्तते॥
स्वर्गो मोक्षस्तथा धर्म: सर्वे वाचि प्रतिष्ठिता:। यस्तां लोपयते वाचमशेषं तेन लोपितम्॥

× × ×

अगाधसलिले शुद्धे सत्यतीर्थे क्षमाह्रदे। स्नात्वा पापविनिर्मुक्त: प्रयाति परमां गतिम्॥
अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम्। अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते॥
सत्यं साधु तप: श्रुतं च परमं क्लेशादिभिर्वर्जितं साधूनां निकषं सतां कुलधनं सर्वाश्रयाणां वरम्।
स्वाधीनं च सुदुर्लभं च जगत: साधारणं भूषणं यन्म्लेच्छोऽप्यभिधाय गच्छति दिवं तत्त्यज्यते वा कथम्॥
(१८। ३९५—३९९, ४०२-४०४)

अपनी माता और व्याघ्र दोनोंके आगे खड़ा हो गया। पुत्रको आया देख तथा सामने खड़े हुए मृत्युरूप बाघपर दृष्टि डालकर उस गौने कहा—'मृगराज! मैं सत्यधर्मका पालन करती हुई तुम्हारे पास आ गयी हूँ; अब मेरे मांससे तुम इच्छानुसार अपनी तृप्ति करो।'

व्याघ्र बोला—गाय! तुम बड़ी सत्यवादिनी निकली। कल्याणी! तुम्हारा स्वागत है। सत्यका आश्रय लेनेवाले प्राणियोंका कभी कोई अमंगल नहीं होता। तुमने लौटनेके लिये जो पहले सत्यपूर्वक शपथ की थी, उसे सुनकर मुझे बड़ा कौतूहल हुआ था कि यह जाकर फिर कैसे लौटेगी। तुम्हारे सत्यकी परीक्षाके लिये ही मैंने पुनः तुम्हें भेज दिया था। अन्यथा मेरे पास आकर तुम जीती-जागती कैसे लौट सकती थी। मेरा वह कौतूहल पूरा हुआ। मैं तुम्हारे भीतर सत्य खोज रहा था, वह मुझे मिल गया। इस सत्यके प्रभावसे मैंने तुम्हें छोड़ दिया; आजसे तुम मेरी बहिन हुईं और यह तुम्हारा पुत्र मेरा भानजा हो गया। शुभे! तुमने अपने आचरणसे मुझ महान् पापीको यह उपदेश दिया है कि सत्यपर ही सम्पूर्ण लोक प्रतिष्ठित है। सत्यके ही आधारपर धर्म टिका हुआ है। कल्याणी! तृण और लताओंसहित भूमिके वे प्रदेश धन्य हैं, जहाँ तुम निवास करती हो। जो तुम्हारा दूध पीते हैं, वे धन्य हैं, कृतार्थ हैं, उन्होंने ही पुण्य किया है और उन्होंने ही जन्मका फल पाया है। देवताओंने मेरे सामने यह आदर्श रखा है; गौओंमें ऐसा सत्य है, यह देखकर अब मुझे अपने जीवनसे अरुचि हो गयी। अब मैं वह कर्म करूँगा, जिसके द्वारा पापसे छुटकारा पा जाऊँ। अबतक मैंने हजारों जीवोंको मारा और खाया है। मैं महान् पापी, दुराचारी, निर्दयी और हत्यारा हूँ। पता नहीं, ऐसा दारुण कर्म करके मुझे किन लोकोंमें जाना पड़ेगा। बहिन! इस समय मुझे अपने पापोंसे शुद्ध होनेके लिये जैसी तपस्या करनी चाहिये, उसे संक्षेपमें बताओ; क्योंकि अब विस्तारपूर्वक सुननेका समय नहीं है।

गाय बोली—भाई बाघ! विद्वान् पुरुष सत्ययुगमें तपकी प्रशंसा करते हैं और त्रेतामें ज्ञान तथा उसके सहायक कर्मकी। द्वापरमें यज्ञोंको ही उत्तम बतलाते हैं, किन्तु कलियुगमें एकमात्र दान ही श्रेष्ठ माना गया है। सम्पूर्ण दानोंमें एक ही दान सर्वोत्तम है। वह है—सम्पूर्ण भूतोंको अभय-दान। इससे बढ़कर दूसरा कोई दान नहीं है। जो समस्त चराचर प्राणियोंको अभय-दान देता है, वह सब प्रकारके भयसे मुक्त होकर परब्रह्मको प्राप्त होता है। अहिंसाके समान न कोई दान है, न कोई तपस्या। जैसे हाथीके पदचिह्नमें अन्य सभी प्राणियोंके पदचिह्न समा जाते हैं, उसी प्रकार अहिंसाके द्वारा सभी धर्म प्राप्त हो जाते हैं।* योग एक ऐसा वृक्ष

---

* तपः कृते प्रशंसन्ति त्रेतायां ज्ञानकर्म च। द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे॥
सर्वेषामेव दानानामिदमेवैकमुत्तमम्। अभयं सर्वभूतानां नास्ति दानमतः परम्॥
चराचराणां भूतानामभयं यः प्रयच्छति। स सर्वभयसंत्यक्तः परं ब्रह्माधिगच्छति॥
नास्त्यहिंसासमं दानं नास्त्यहिंसासमं तपः। यथा हस्तिपदे ह्यन्यत्पदं सर्वं प्रलीयते॥
सर्वे धर्मास्तथा व्याघ्र प्रतीयन्ते ह्यहिंसया।

(१८। ४३७—४४१)

है, जिसकी छाया तीनों तापोंका विनाश करनेवाली है। धर्म और ज्ञान उस वृक्षके फूल हैं। स्वर्ग तथा मोक्ष उसके फल हैं। जो आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक—इन तीनों प्रकारके दु:खोंसे सन्तप्त हैं, वे इस योगवृक्षकी छायाका आश्रय लेते हैं। वहाँ जानेसे उन्हें उत्तम शान्ति प्राप्त होती है, जिससे फिर कभी दु:खोंके द्वारा वे बाधित नहीं होते। यही परम कल्याणका साधन है, जिसे मैंने संक्षेपसे बताया है। तुम्हें ये सभी बातें ज्ञात हैं, केवल मुझसे पूछ रहे हो।

व्याघ्रने कहा—पूर्वकालमें मैं एक राजा था; किन्तु एक मृगीके शापसे मुझे बाघका शरीर धारण करना पड़ा। तबसे निरन्तर प्राणियोंका वध करते रहनेके कारण मुझे सारी बातें भूल गयी थीं। इस समय तुम्हारे सम्पर्क और उपदेशसे फिर उनका स्मरण हो आया है, तुम भी अपने इस सत्यके प्रभावसे उत्तम गतिको प्राप्त होगी। अब मैं तुमसे एक प्रश्न और पूछता हूँ। मेरे सौभाग्यसे तुमने आकर मुझे धर्मका स्वरूप बताया, जो सत्पुरुषोंके मार्गमें प्रतिष्ठित है। कल्याणी! तुम्हारा नाम क्या है?

नन्दा बोली—मेरे यूथके स्वामीका नाम 'नन्द' है; उन्होंने ही मेरा नाम 'नन्दा' रख दिया है।

पुलस्त्यजी कहते हैं—नन्दाका नाम कानमें पड़ते ही राजा प्रभंजन शापसे मुक्त हो गये। उन्होंने पुन: बल और रूपसे सम्पन्न राजाका शरीर प्राप्त कर लिया। इसी समय सत्यभाषण करनेवाली यशस्विनी नन्दाका दर्शन करनेके लिये साक्षात् धर्म वहाँ आये और इस प्रकार बोले—'नन्दे! मैं धर्म हूँ, तुम्हारी सत्य वाणीसे आकृष्ट होकर यहाँ आया हूँ। तुम मुझसे कोई श्रेष्ठ वर माँग लो।' धर्मके ऐसा कहनेपर नन्दाने यह वर माँगा—'धर्मराज! आपकी कृपासे मैं पुत्रसहित उत्तम पदको प्राप्त होऊँ तथा यह स्थान मुनियोंको धर्मप्रदान करनेवाला शुभ तीर्थ बन जाय। देवेश्वर! यह सरस्वती नदी आजसे मेरे ही नामसे प्रसिद्ध हो—इसका नाम 'नन्दा' पड़ जाय। आपने वर देनेको कहा, इसलिये मैंने यही वर माँगा है।'

[पुत्रसहित] देवी नन्दा तत्काल ही सत्यवादियोंके उत्तम लोकमें चली गयी। राजा प्रभंजनने भी अपने पूर्वोपार्जित राज्यको पा लिया। नन्दा सरस्वतीके तटसे स्वर्गको गयी थी, [तथा उसने धर्मराजसे इस आशयका वरदान भी माँगा था।] इसलिये विद्वानोंने वहाँ 'सरस्वती' का नाम नन्दा रख दिया। जो मनुष्य वहाँ आते समय सरस्वतीके नामका उच्चारणमात्र कर लेता है, वह जीवनभर सुख पाता है और मृत्युके पश्चात् देवता होता है। स्नान और जलपान करनेसे सरस्वती नदी मनुष्योंके लिये स्वर्गकी सीढ़ी बन जाती है। अष्टमीके दिन जो लोग एकाग्रचित्त होकर सरस्वतीमें स्नान करते हैं, वे मृत्युके बाद स्वर्गमें पहुँचकर सुख भोगते हुए आनन्दित होते हैं। सरस्वती नदी सदा ही स्त्रियोंको सौभाग्य प्रदान करनेवाली है। तृतीयाको यदि उसका सेवन किया जाय तो वह विशेष सौभाग्यदायिनी होती है। उस दिन उसके दर्शनसे भी मनुष्यको पाप-राशिसे छुटकारा मिल जाता है। जो पुरुष उसके जलका स्पर्श करते हैं, उन्हें भी मुनीश्वर समझना चाहिये। वहाँ चाँदी दान करनेसे मनुष्य रूपवान् होता है। ब्रह्माकी पुत्री यह सरस्वती नदी परम पावन और पुण्यसलिला है, यही नन्दा नामसे प्रसिद्ध है। फिर जब यह स्वच्छ जलसे युक्त हो दक्षिण दिशाकी ओर प्रवाहित होती है, तब विपुला या विशाला नाम

धारण करती है। वहाँसे कुछ ही दूर आगे जाकर यह पुनः पश्चिम दिशाकी ओर मुड़ गयी है। वहाँसे सरस्वतीकी धारा प्रकट देखी जाती है। उसके तटोंपर अत्यन्त मनोहर तीर्थ और देवमन्दिर हैं, जो मुनियों और सिद्ध पुरुषोंद्वारा भलीभाँति सेवित हैं। नन्दा तीर्थमें स्नान करके यदि मनुष्य सुवर्ण और पृथ्वी आदिका दान करे तो वह महान् अभ्युदयकारी तथा अक्षय फल प्रदान करनेवाला होता है।

पुष्करका माहात्म्य, अगस्त्याश्रम तथा महर्षि अगस्त्यके प्रभावका वर्णन

भीष्मजीने कहा—ब्रह्मन्! अब आप मुझे यह बतानेकी कृपा करें कि वेदवेत्ता ब्राह्मण तीनों पुष्करोंकी यात्रा किस प्रकार करते हैं तथा उसके करनेसे मनुष्योंको क्या फल मिलता है?

पुलस्त्यजीने कहा—राजन्! अब एकाग्रचित्त होकर तीर्थ-सेवनके महान् फलका श्रवण करो। जिसके हाथ, पैर और मन संयममें रहते हैं तथा जो विद्वान्, तपस्वी और कीर्तिमान् होता है, वही तीर्थ-सेवनका फल प्राप्त करता है। जो प्रतिग्रहसे दूर रहता है—किसीका दिया हुआ दान नहीं लेता, प्रारब्धवश जो कुछ प्राप्त हो जाय—उसीसे सन्तुष्ट रहता है तथा जिसका अहंकार दूर हो गया है, ऐसे मनुष्यको ही तीर्थ-सेवनका पूरा फल मिलता है। राजेन्द्र! जो स्वभावतः क्रोधहीन, सत्यवादी, दृढ़तापूर्वक उत्तम व्रतका पालन करनेवाला तथा सम्पूर्ण प्राणियोंमें आत्मभाव रखनेवाला है, उसे तीर्थ-सेवनका फल प्राप्त होता है।* यह ऋषियोंका परम गोपनीय सिद्धान्त है।

राजेन्द्र! पुष्कर तीर्थ करोड़ों ऋषियोंसे भरा है, उसकी लम्बाई ढाई योजन (दस कोस) और चौड़ाई आधा योजन (दो कोस) है। यही उस तीर्थका परिमाण है। वहाँ जानेमात्रसे मनुष्यको राजसूय और अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है, जहाँ अत्यन्त पवित्र सरस्वती नदीने ज्येष्ठ पुष्करमें प्रवेश किया है, वहाँ चैत्र शुक्ला चतुर्दशीको ब्रह्मा आदि देवताओं, ऋषियों, सिद्धों और चारणोंका आगमन होता है, अतः उक्त तिथिको देवताओं और पितरोंके पूजनमें प्रवृत्त हो मनुष्यको वहाँ स्नान करना चाहिये। इससे वह अभय पदको प्राप्त होता है और अपने कुलका भी उद्धार करता है। वहाँ देवताओं और पितरोंका तर्पण करके मनुष्य विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। ज्येष्ठ पुष्करमें स्नान करनेसे उसका स्वरूप चन्द्रमाके समान निर्मल हो जाता है तथा वह ब्रह्मलोक एवं उत्तम गतिको प्राप्त होता है। मनुष्य-लोकमें देवाधिदेव ब्रह्माजीका यह पुष्कर नामसे प्रसिद्ध तीर्थ त्रिभुवनमें विख्यात है। यह बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला है। पुष्करमें तीनों सन्ध्याओंके समय—प्रातःकाल, मध्याह्न एवं सायंकालमें दस हजार करोड़ (एक खरब) तीर्थ उपस्थित रहते हैं तथा आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, मरुद्गण, गन्धर्व और अप्सराओंका भी प्रतिदिन आगमन होता है। वहाँ तपस्या करके कितने ही देवता, दैत्य तथा ब्रह्मर्षि दिव्य योगसे सम्पन्न एवं महान् पुण्यशाली हो गये। जो मनसे भी पुष्कर तीर्थके सेवनकी इच्छा करता है, उस मनस्वीके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। महाराज! उस तीर्थमें देवता और दानवोंके द्वारा सम्मानित भगवान् ब्रह्माजी सदा ही प्रसन्नतापूर्वक निवास करते हैं। वहाँ देवताओं और ऋषियोंने महान् पुण्यसे युक्त होकर इच्छानुसार सिद्धियाँ प्राप्त की हैं। जो मनुष्य देवताओं और पितरोंके पूजनमें तत्पर हो वहाँ स्नान करता है, उसके पुण्यको मनीषी

---

* यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्। विद्या तपश्च कीर्त्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते॥
प्रतिग्रहादुपावृत्तः संतुष्टो येन केनचित्। अहंकारनिवृत्तश्च स तीर्थफलमश्नुते॥
अक्रोधनश्च राजेन्द्र सत्यशीलो दृढव्रतः। आत्मोपमश्च भूतेषु स तीर्थफलमश्नुते॥
(१९। ८—१०)

पुरुष अश्वमेध यज्ञकी अपेक्षा दसगुना अधिक बतलाते हैं। पुष्करारण्यमें जाकर जो एक ब्राह्मणको भी भोजन कराता है, उसके उस अन्नसे एक करोड़ ब्राह्मणोंको पूर्ण तृप्तिपूर्वक भोजन करानेका फल होता है तथा उस पुण्यकर्मके प्रभावसे वह इहलोक और परलोकमें भी आनन्द मनाता है। [अन्न न हो तो] शाक, मूल अथवा फल—जिससे वह स्वयं जीवन-निर्वाह करता हो, वही—दोष-दृष्टिका परित्याग करके श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणको अर्पण करे। उसीके दानसे मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त करता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र—सभी इस तीर्थमें स्नान-दानादि पुण्यके अधिकारी हैं। ब्रह्माजीका पुष्कर नामक सरोवर परम पवित्र तीर्थ है। वह वानप्रस्थियों, सिद्धों तथा मुनियोंको भी पुण्य प्रदान करनेवाला है। परम पावन सरस्वती नदी पुष्करसे ही महासागरकी ओर गयी है। वहाँ महायोगी आदिदेव मधुसूदन सदा निवास करते हैं। वे आदिवराहके नामसे प्रसिद्ध हैं तथा सम्पूर्ण देवता उनकी पूजा करते रहते हैं। विशेषत: कार्तिककी पूर्णिमाको जो पुष्कर तीर्थकी यात्रा करता है, वह अक्षय फलका भागी होता है—ऐसा मैंने सुना है।

कुरुनन्दन! जो सायंकाल और सबेरे हाथ जोड़कर तीनों पुष्करोंका स्मरण करता है, उसे समस्त तीर्थोंमें आचमन करनेका फल प्राप्त होता है। स्त्री हो या पुरुष, पुष्करमें स्नान करनेमात्रसे उसके जन्मभरका सारा पाप नष्ट हो जाता है। जैसे सम्पूर्ण देवताओंमें ब्रह्माजी श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार सब तीर्थोंमें पुष्कर ही आदि तीर्थ बताया गया है। जो पुष्करमें संयम और पवित्रताके साथ दस वर्षोंतक निवास करता हुआ ब्रह्माजीका दर्शन करता है, वह सम्पूर्ण यज्ञोंका फल प्राप्त कर लेता है और अन्तमें ब्रह्मलोकको जाता है। जो पूरे सौ वर्षोंतक अग्निहोत्र करता है और कार्तिककी एक ही पूर्णिमाको पुष्करमें निवास करता है, उन दोनोंका फल एक-सा ही होता है। पुष्करमें निवास दुर्लभ है, पुष्करमें तपस्याका सुयोग मिलना कठिन है। पुष्करमें दान देनेका सौभाग्य भी मुश्किलसे प्राप्त होता है तथा वहाँकी यात्राका सुयोग भी दुर्लभ है।* वेदवेत्ता ब्राह्मण ज्येष्ठ पुष्करमें जाकर स्नान करनेसे मोक्षका भागी होता है और श्राद्धसे वह पितरोंको तार देता है। जो ब्राह्मण वहाँ जाकर नाममात्रके लिये भी सन्ध्योपासन करता है, उसे बारह वर्षोंतक सन्ध्योपासन करनेका फल प्राप्त हो जाता है। पूर्वकालमें ब्रह्माजीने स्वयं ही यह बात कही थी। जो अकेले भी कभी पुष्कर तीर्थमें चला जाय, उसको चाहिये कि झारीमें पुष्करका जल लेकर क्रमश: सन्ध्या-वन्दन कर ले; ऐसा करनेसे भी उसे बारह वर्षोंतक निरन्तर सन्ध्योपासन करनेका फल प्राप्त हो जाता है। जो पत्नीको पास बिठाकर दक्षिण दिशाकी ओर मुँह करके गायत्री मन्त्रका जप करते हुए वहाँ तर्पण करता है, उसके उस तर्पणद्वारा बारह वर्षोंतक पितरोंको पूर्ण तृप्ति बनी रहती है। फिर पिण्डदानपूर्वक श्राद्ध करनेसे अक्षय फलकी प्राप्ति होती है। इसीलिये विद्वान् पुरुष यह सोचकर स्त्रीके साथ विवाह करते हैं कि हम तीर्थमें जाकर श्रद्धापूर्वक पिण्डदान करेंगे। जो ऐसा करते हैं, उनके पुत्र, धन, धान्य और सन्तानका कभी उच्छेद नहीं होता—यह नि:सन्दिग्ध बात है।

राजन्! अब मैं तुमसे इस तीर्थके आश्रमोंका वर्णन करता हूँ, एकाग्रचित्त होकर सुनो। महर्षि अगस्त्यने इस तीर्थमें अपना आश्रम बनाया है, जो देवताओंके आश्रमकी समानता करता है। पूर्वकालमें यहाँ सप्तर्षियोंका भी आश्रम था। ब्रह्मर्षियों और मनुओंने भी यहाँ आश्रम बनाया था। यज्ञ-पर्वतके किनारे यहाँ नागोंकी रमणीय पुरी भी है। महाराज! मैं महामना अगस्त्यजीके प्रभावका संक्षेपसे वर्णन करता हूँ, ध्यान देकर सुनो। पहलेकी बात है—सत्ययुगमें कालकेय

* पुष्करे दुष्करो वास: पुष्करे दुष्करं तप:॥ पुष्करे दुष्करं दानं गन्तुं चैव सुदुष्करम्॥ (१९।४५-४६)

नामसे प्रसिद्ध दानव रहते थे। उनका स्वभाव अत्यन्त कठोर था तथा वे युद्धके लिये सदा उन्मत्त रहते थे। एक समय वे सभी दानव नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित हो वृत्रासुरको बीचमें करके इन्द्र आदि देवताओंपर चारों ओरसे चढ़ आये। तब देवतालोग इन्द्रको आगे करके ब्रह्माजीके पास गये। उन्हें हाथ जोड़कर खड़े देख ब्रह्माजीने कहा—"देवताओ! तुमलोग जो कार्य करना चाहते हो, वह सब मुझे मालूम है। मैं ऐसा उपाय बताऊँगा, जिससे तुम वृत्रासुरका वध कर सकोगे। दधीचि नामके एक महर्षि हैं, उनकी बुद्धि बड़ी ही उदार है। तुम सब लोग एक साथ जाकर उनसे वर माँगो। वे धर्मात्मा हैं, अतः प्रसन्नचित्त होकर तुम्हारी माँग पूरी करेंगे। तुम उनसे यही कहना कि 'आप त्रिभुवनका हित करनेके लिये अपनी हड्डियाँ हमें प्रदान करें।' निश्चय ही वे अपना शरीर त्यागकर तुम्हें हड्डियाँ अर्पण कर देंगे। उनकी हड्डियोंसे तुमलोग अत्यन्त भयंकर एवं सुदृढ़ वज्र तैयार करो, जो दिव्य-शक्तिसे सम्पन्न उत्तम अस्त्र होगा। उससे बिजलीके समान गड़गड़ाहट पैदा होगी और वह महान्-से-महान् शत्रुका विनाश करनेवाला होगा। उसी वज्रसे इन्द्र वृत्रासुरका वध करेंगे।"

पुलस्त्यजी कहते हैं—ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर समस्त देवता उनकी आज्ञा ले इन्द्रको आगे करके दधीचिके आश्रमपर गये। वह सरस्वती नदीके उस पार बना हुआ था। नाना प्रकारके वृक्ष और लताएँ उसे घेरे हुए थीं। वहाँ पहुँचकर देवताओंने सूर्यके समान तेजस्वी महर्षि दधीचिका दर्शन किया और उनके चरणोंमें प्रणाम करके ब्रह्माजीके कथनानुसार वरदान माँगा। तब दधीचिने अत्यन्त प्रसन्न होकर देवताओंको प्रणाम करके यह कार्य-साधक वचन कहा—'अहो! आज इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता यहाँ किसलिये पधारे हैं? मैं देखता हूँ आप सब लोगोंकी कान्ति फीकी पड़ गयी है, आपलोग पीड़ित जान पड़ते हैं। जिस कारणसे आपके हृदयको कष्ट पहुँच रहा है, उसे शान्तिपूर्वक बताइये।'

देवता बोले—महर्षे! यदि आपकी हड्डियोंका शस्त्र बनाया जाय तो उससे देवताओंका दुःख दूर हो सकता है।

दधीचिने कहा—देवताओ! जिससे आपलोगोंका हित होगा, वह कार्य मैं अवश्य करूँगा। आज आपलोगोंके लिये मैं अपने इस शरीरका भी त्याग करता हूँ।

ऐसा कहकर मनुष्योंमें श्रेष्ठ महर्षि दधीचिने सहसा अपने प्राणोंका परित्याग कर दिया। तब सम्पूर्ण देवताओंने आवश्यकताके अनुसार उनके शरीरसे हड्डियाँ निकाल लीं। इससे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई और वे विजय पानेके लिये विश्वकर्माके पास जाकर बोले—'आप इन हड्डियोंसे वज्रका निर्माण कीजिये।' देवताओंके वचन सुनकर विश्वकर्माने बड़े हर्षके साथ प्रयत्नपूर्वक उग्र शक्ति-सम्पन्न वज्रास्त्रका निर्माण किया और इन्द्रसे कहा—'देवेश्वर! यह वज्र सब अस्त्र-शस्त्रोंमें श्रेष्ठ है, आप इसके द्वारा देवताओंके भयंकर शत्रु वृत्रासुरको भस्म कीजिये।' उनके ऐसा कहनेपर इन्द्रको बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने शुद्ध भावसे उस वज्रको ग्रहण किया।

तदनन्तर इन्द्र देवताओंसे सुरक्षित हो, वज्र हाथमें लिये, वृत्रासुरका सामना करनेके लिये गये, जो

पृथ्वी और आकाशको घेरकर खड़ा था। कालकेय नामके विशालकाय दानव हाथोंमें शस्त्र उठाये चारों ओरसे उसकी रक्षा कर रहे थे। फिर तो दानवोंके साथ देवताओंका भयंकर युद्ध प्रारम्भ हुआ। दो घड़ीतक तो ऐसी मार-काट हुई, जो सम्पूर्ण लोकको महान् भयमें डालनेवाली थी। वीरोंकी भुजाओंसे चलायी हुई तलवारें जब शत्रुके शरीरपर पड़ती थीं, तब बड़े जोरका शब्द होता था। आकाशसे पृथ्वीपर गिरते हुए मस्तक ताड़के फलोंके समान जान पड़ते थे। उनसे वहाँकी सारी भूमि पटी हुई दिखायी देती थी। उस समय सोनेके कवच पहने हुए कालकेय दानव दावानलसे जलते हुए वृक्षोंके समान प्रतीत होते थे। वे हाथोंमें परिघ लेकर देवताओंपर टूट पड़े। उन्होंने एक साथ मिलकर बड़े वेगसे धावा किया था। यद्यपि देवता भी एक साथ संगठित होकर ही युद्ध कर रहे थे, तो भी वे उन दानवोंके वेगको न सह सके। उनके पैर उखड़ गये, वे भयभीत होकर भाग खड़े हुए। देवताओंको डरकर भागते और वृत्रासुरको प्रबल होते देख हजार आँखोंवाले इन्द्रको बड़ी घबराहट हुई। इन्द्रकी ऐसी अवस्था देख सनातन भगवान् श्रीविष्णुने उनके भीतर अपने तेजका संचार करके उनके बलको बढ़ाया। इन्द्रको श्रीविष्णुके तेजसे परिपूर्ण देख देवताओं तथा निर्मल अन्त:करणवाले ब्रह्मर्षियोंने भी उनमें अपने-अपने तेजका संचार किया। इस प्रकार भगवान् श्रीविष्णु, देवता तथा महाभाग महर्षियोंके तेजसे वृद्धिको प्राप्त होकर इन्द्र अत्यन्त बलवान् हो गये।

देवराज इन्द्रको सबल जान वृत्रासुरने बड़े जोरसे सिंहनाद किया। उसकी विकट गर्जनासे पृथ्वी, दिशाएँ, अन्तरिक्ष, द्युलोक और आकाशमें सभी काँप उठे। वह भयंकर सिंहनाद सुनकर इन्द्रको बड़ा सन्ताप हुआ। उनके हृदयमें भय समा गया और उन्होंने बड़ी उतावलीके साथ अपना महान् वज्रास्त्र उसके ऊपर छोड़ दिया। इन्द्रके वज्रका आघात पाकर वह महान् असुर निष्प्राण होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। तत्पश्चात् सम्पूर्ण देवता तुरंत आगे बढ़कर वृत्रासुरके वधसे सन्तप्त हुए शेष दैत्योंको मारने लगे। देवताओंकी मार पड़नेपर वे महान् असुर भयसे पीड़ित हो वायुके समान वेगसे भागकर अगाध समुद्रमें जा छिपे। वहाँ एकत्रित होकर सब-के-सब तीनों लोकोंका नाश करनेके लिये आपसमें सलाह करने लगे। उनमें जो विचारक थे, उन्होंने नाना प्रकारके उपाय बतलाये—तरह तरहकी युक्तियाँ सुझायीं। अन्ततोगत्वा यह निश्चय हुआ कि 'तपस्यासे ही सम्पूर्ण लोक टिके हुए हैं, इसलिये उसीका क्षय करनेके लिये शीघ्रता की जाय। पृथ्वीपर जो कोई भी तपस्वी, धर्मज्ञ और विद्वान् हों, उनका तुरंत वध कर दिया जाय। उनके नष्ट हो जानेपर सम्पूर्ण जगत्का स्वयं ही नाश हो जायगा।

उन सबकी बुद्धि मारी गयी थी; इसलिये उपर्युक्त प्रकारसे संसारके विनाशका निश्चय करके वे बहुत प्रसन्न हुए। समुद्ररूप दुर्गका आश्रय लेकर उन्होंने त्रिभुवनका विनाश आरम्भ किया। वे रातमें कुपित होकर निकलते और पवित्र आश्रमों तथा मन्दिरोंमें जो भी मुनि मिलते, उन्हें पकड़कर खा जाते थे। उन दुरात्माओंने वसिष्ठके आश्रममें जाकर आठ हजार आठ ब्राह्मणोंका भक्षण कर लिया तथा उस वनमें और भी जितने तपस्वी थे, उन्हें भी मौतके घाट उतार दिया। महर्षि च्यवनके पवित्र आश्रमपर, जहाँ बहुत-से द्विज निवास करते थे, जाकर उन्होंने फल-मूलका आहार करनेवाले सौ मुनियोंको अपना ग्रास बना लिया। इस प्रकार रातमें वे मुनियोंका संहार करते और दिनमें समुद्रके भीतर घुस जाते थे। भरद्वाजके आश्रमपर जाकर उन दानवोंने वायु और जल पीकर संयम-नियमके साथ रहनेवाले बीस ब्रह्मचारियोंकी हत्या कर डाली। इस तरह बहुत दिनोंतक उन्होंने मुनियोंका भक्षण जारी रखा, किन्तु मनुष्योंको इन हत्यारोंका पता नहीं चला। उस समय कालकेयोंके भयसे पीड़ित होकर सारा जगत् [धर्म-कर्मकी ओरसे] निरुत्साह हो गया। स्वाध्याय बंद हो गया। यज्ञ और उत्सव समाप्त हो गये। मनुष्योंकी संख्या दिनोदिन क्षीण होने लगी, वे भयभीत होकर आत्मरक्षाके लिये दसों दिशाओंमें दौड़ने लगे; कोई द्विज गुफाओंमें छिप गये,

दूसरोंने झरनोंकी शरण ली, कितनोंने भयसे व्याकुल होकर प्राण त्याग दिये। इस प्रकार यज्ञ और उत्सवोंसे रहित होकर जब सारा जगत् नष्ट होने लगा, तब इन्द्र-सहित सम्पूर्ण देवता व्यथित होकर भगवान् श्रीनारायणकी शरणमें गये और इस प्रकार स्तुति करने लगे।

देवता बोले—प्रभो! आप ही हमारे जन्मदाता और रक्षक हैं। आप ही संसारका भरण-पोषण करने-वाले हैं। चर और अचर—सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि आपसे ही हुई है। कमलनयन! पूर्वकालमें यह भूमि नष्ट होकर रसातलमें चली गयी थी। उस समय आपने ही वराहरूप धारण करके संसारके हितके लिये इसका समुद्रसे उद्धार किया था। पुरुषोत्तम! आदिदैत्य हिरण्यकशिपु बड़ा पराक्रमी था, तो भी आपने नृसिंहरूप धारण करके उसका वध कर डाला। इस प्रकार आपके बहुत-से ऐसे [अलौकिक] कर्म हैं, जिनकी गणना नहीं हो सकती। मधुसूदन! हमलोग भयभीत हो रहे हैं, अब आप ही हमारी गति हैं; इसलिये देवदेवेश्वर! हम आपसे लोककी रक्षाके लिये प्रार्थना करते हैं। सम्पूर्ण लोकोंकी, देवताओंकी तथा इन्द्रकी महान् भयसे रक्षा कीजिये। आपकी ही कृपासे [अण्डज, स्वेदज, जरायुज एवं उद्भिज्ज—] चार भागोंमें बँटी हुई सम्पूर्ण प्रजा जीवन धारण करती है। आपकी ही दयासे मनुष्य स्वस्थ होंगे और देवताओंकी हव्य-कव्योंसे तृप्ति होगी। इस प्रकार देव-मनुष्यादि सम्पूर्ण लोक एक-दूसरेके आश्रित हैं। आपके ही अनुग्रहसे इन सबका उद्वेग शान्त हो सकता है तथा आपके द्वारा ही इनकी पूर्णतया रक्षा होनी सम्भव है। भगवन्! संसारके ऊपर बड़ा भारी भय आ पहुँचा है। पता नहीं, कौन रात्रिमें जा-जाकर ब्राह्मणोंका वध कर डालता है। ब्राह्मणोंका क्षय हो जानेपर समूची पृथ्वीका नाश हो जायगा। अतः महाबाहो! जगत्पते! आप ऐसी कृपा करें, जिससे आपके द्वारा सुरक्षित होकर इन लोकोंका विनाश न हो।

भगवान् श्रीविष्णु बोले—देवताओ! मुझे प्रजाके विनाशका सारा कारण मालूम है। मैं तुम्हें भी बताता हूँ, निश्चिन्त होकर सुनो। कालकेय नामसे विख्यात जो दानवोंका समुदाय है, वह बड़ा ही निष्ठुर है। उन दानवोंने ही परस्पर मिलकर सम्पूर्ण जगत्को कष्ट पहुँचाना आरम्भ किया है। वे इन्द्रके द्वारा वृत्रासुरको मारा गया देख अपनी जान बचानेके लिये समुद्रमें घुस गये थे। नाना प्रकारके ग्राहोंसे भरे हुए भयंकर समुद्रमें रहकर वे जगत्का विनाश करनेके लिये रातमें मुनियोंको खा जाते हैं। जबतक वे समुद्रके भीतर छिपे रहेंगे, तबतक उनका नाश होना असम्भव है, इसलिये अब तुमलोग समुद्रको सुखानेका कोई उपाय सोचो।

पुलस्त्यजी कहते हैं—भगवान् श्रीविष्णुके ये वचन सुनकर देवता ब्रह्माजीके पास आकर वहाँसे महर्षि अगस्त्यके आश्रमपर गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने मित्रावरुणके पुत्र परम तेजस्वी महात्मा अगस्त्य ऋषिको देखा। अनेकों महर्षि उनकी सेवामें लगे थे। उनमें प्रमादका लेश भी नहीं था। वे तपस्याकी राशि जान पड़ते थे। ऋषिलोग उनके अलौकिक कर्मोंकी चर्चा करते हुए उनकी स्तुति कर रहे थे।

देवता बोले—महर्षे! पूर्वकालमें जब राजा नहुषके द्वारा लोकोंको कष्ट पहुँच रहा था, उस समय आपने संसारके हितके लिये उन्हें इन्द्र-पदसे भ्रष्ट किया और इस प्रकार लोकका काँटा दूर करके आप जगत्के आश्रयदाता हुए। जिस समय पर्वतोंमें श्रेष्ठ विन्ध्याचल सूर्यके ऊपर क्रोध करके बढ़कर बहुत ऊँचा हो गया था; उस समय आपने ही उसे नतमस्तक किया; तबसे आजतक आपकी आज्ञाका पालन करता हुआ वह पर्वत बढ़ता नहीं। जब सारा जगत् अन्धकारसे आच्छादित था और प्रजा मृत्युसे पीड़ित होने लगी, उस समय आपको ही अपना रक्षक समझकर प्रजा आपकी शरणमें आयी और उसे आपके द्वारा परम आनन्द एवं शान्तिकी प्राप्ति हुई। जब-जब हमलोगोंपर भयका आक्रमण हुआ, तब-तब सदा ही आपने हमें शरण दी है; इसलिये आज भी हम आपसे एक वरकी याचना करते हैं। आप वरदाता हैं [अतः हमारी इच्छा पूर्ण कीजिये]।

भीष्मजीने पूछा—महामुने! क्या कारण था, जिससे विन्ध्य पर्वत सहसा क्रोधसे मूर्च्छित हो बढ़कर बहुत ऊँचा हो गया था?

पुलस्त्यजीने कहा—सूर्य प्रतिदिन उदय और अस्तके समय सुवर्णमय महापर्वत गिरिराज मेरुकी परिक्रमा किया करते हैं। एक दिन सूर्यको देखकर विन्ध्याचलने उनसे कहा—'भास्कर! जिस प्रकार आप प्रतिदिन मेरुपर्वतकी परिक्रमा किया करते हैं, उसी प्रकार मेरी भी कीजिये।' यह सुनकर सूर्यने गिरिराज विन्ध्यसे कहा—'शैल! मैं अपनी इच्छासे मेरुकी परिक्रमा नहीं करता; जिन्होंने इस संसारकी सृष्टि की है, उन विधाताने ही मेरे लिये यह मार्ग नियत कर दिया है।' उनके ऐसा कहनेपर विन्ध्याचलको सहसा क्रोध हो आया और वह सूर्य तथा चन्द्रमाका मार्ग रोकनेके लिये बढ़कर बहुत ऊँचा हो गया। तब इन्द्रादि सम्पूर्ण देवताओंने जाकर बढ़ते हुए गिरिराज विन्ध्याचलको रोका, किन्तु उसने उनकी बात नहीं मानी। तब वे महर्षि अगस्त्यके पास जाकर बोले—'मुनीश्वर! शैलराज विन्ध्य क्रोधके वशीभूत होकर सूर्य, चन्द्रमा तथा नक्षत्रोंका मार्ग रोक रहा है; उसे कोई निवारण नहीं कर पाता।'

देवताओंकी बात सुनकर ब्रह्मर्षि अगस्त्यजी विन्ध्यके पास गये और आदरपूर्वक बोले—'पर्वतश्रेष्ठ! मैं दक्षिण दिशामें जानेके लिये तुमसे मार्ग चाहता हूँ; जबतक मैं लौटकर न आऊँ, तबतक तुम नीचे रहकर ही मेरी प्रतीक्षा करो।' [मुनिकी बात मानकर विन्ध्याचलने वैसा ही किया।] महर्षि अगस्त्य दक्षिण दिशासे आजतक नहीं लौटे; इसीसे विन्ध्य पर्वत अब नहीं बढ़ता। भीष्म! तुम्हारे प्रश्नके अनुसार यह प्रसंग मैंने सुना दिया; अब देवताओंने जिस प्रकार कालकेय दैत्योंका वध किया, वह वृत्तान्त सुनो।

देवताओंके वचन सुनकर महर्षि अगस्त्यने पूछा—'आपलोग किसलिये यहाँ आये हैं और मुझसे क्या वरदान चाहते हैं?' उनके इस प्रकार पूछनेपर देवताओंने कहा—'महात्मन्! हम आपसे एक अद्भुत वरदान चाहते हैं। महर्षे! आप कृपा करके समुद्रको पी जाइये। आपके ऐसा करनेपर हमलोग देवद्रोही कालकेय नामक दानवोंको उनके सगे-सम्बन्धियोंसहित मार डालेंगे।' महर्षिने कहा—'बहुत अच्छा, देवराज! मैं आपलोगोंकी इच्छा पूर्ण करूँगा।' ऐसा कहकर वे देवताओं और तप:सिद्ध मुनियोंके साथ जलनिधि समुद्रके पास गये। उनके इस अद्भुत कर्मको देखनेकी इच्छासे बहुतेरे मनुष्य, नाग, गन्धर्व, यक्ष और किन्नर भी उन महात्माके पीछे-पीछे गये। महर्षि सहसा समुद्रके तटपर जा पहुँचे। समुद्र भीषण गर्जना कर रहा था। वह अपनी उत्ताल तरंगोंसे नृत्य करता हुआ-सा जान पड़ता था। महर्षि अगस्त्यके साथ सम्पूर्ण देवता, गन्धर्व, नाग और महाभाग मुनि जब महासागरके किनारे पहुँच गये, तब महर्षिने समुद्रको पी जानेकी इच्छासे उन सबको लक्ष्य करके कहा—'देवगण! सम्पूर्ण लोकोंका हित करनेके लिये इस समय मैं इस महासागरको पिये लेता हूँ; अब आपलोगोंको जो कुछ करना हो, शीघ्र ही कीजिये।' यों कहकर वे सबके देखते-देखते समुद्रको

पी गये। यह देखकर इन्द्र आदि देवताओंको बड़ा विस्मय हुआ तथा वे महर्षिकी स्तुति करते हुए कहने लगे—'भगवन्! आप हमारे रक्षक और लोकोंको नया

जन्म देनेवाले हैं। आपकी कृपासे देवताओंसहित सम्पूर्ण जगत्का कभी उच्छेद नहीं हो सकता।' इस प्रकार सम्पूर्ण देवता उनका सम्मान कर रहे थे। प्रधान-प्रधान गन्धर्व हर्षनाद करते थे और महर्षिके ऊपर दिव्य पुष्पोंकी वर्षा हो रही थी। उन्होंने समूचे महासागरको जलशून्य कर दिया। जब समुद्रमें एक बूँद भी पानी न रहा, तब सम्पूर्ण देवता हर्षमें भरकर हाथोंमें दिव्य आयुध लिये दानवोंपर प्रहार करने लगे। महाबली देवताओंका वेग असुरोंके लिये असह्य हो गया। उनकी मार खाकर भी वे भीमकाय दानव दो घड़ीतक घमासान युद्ध करते रहे; किन्तु वे पवित्रात्मा मुनियोंकी तपस्यासे दग्ध हो चुके थे, इसलिये पूर्ण शक्ति लगाकर यत्न करते रहनेपर भी देवताओंके हाथसे मारे गये। जो मरनेसे बच रहे, वे पृथ्वी फाड़कर पातालमें घुस गये। दानवोंको मारा गया देख देवताओंने नाना प्रकारके वचनोंद्वारा मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यका स्तवन किया तथा इस प्रकार कहा—

देवता बोले—महाभाग! आपकी कृपासे संसारके लोगोंको बड़ा सुख मिला। कालकेय दानव बड़े ही क्रूर और पराक्रमी थे, वे सब आपकी शक्तिसे मारे गये। लोकरक्षक महर्षे! अब इस समुद्रको भर दीजिये। आपने जो जल पी लिया है, वह सब इसमें वापस छोड़ दीजिये।

उनके ऐसा कहनेपर मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजी बोले—'वह जल तो मैंने पचा लिया, अब समुद्रको भरनेके लिये आपलोग कोई दूसरा उपाय सोचें।' महर्षिकी बात सुनकर देवताओंको विस्मय भी हुआ और विषाद भी। वहाँ इकट्ठे हुए सब लोग एक-दूसरेकी अनुमति ले मुनिवर अगस्त्यजीको प्रणाम करके जैसे आये थे, वैसे ही लौट गये। देवतालोग समुद्रको भरनेके विषयमें परस्पर विचार करते हुए ब्रह्माजीके पास गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने हाथ जोड़ ब्रह्माजीको प्रणाम किया और समुद्रके पुनः भरनेका उपाय पूछा। तब लोकपितामह ब्रह्माने उनसे कहा—'देवताओ! तुम सब लोग इच्छानुसार अपने-अपने अभीष्ट स्थानको लौट जाओ, अब बहुत दिनोंके बाद समुद्र अपनी पूर्वावस्थाको प्राप्त होगा। महाराज भगीरथ अपने कुटुम्बी जनोंको तारनेके लिये गंगाजीको लायेंगे और उन्हींके जलसे पुनः समुद्रको भर देंगे।'

ऐसा कहकर ब्रह्माजीने देवताओं और ऋषियोंको भेज दिया।

सप्तर्षि-आश्रमके प्रसंगमें सप्तर्षियोंके अलोभका वर्णन तथा ऋषियोंके मुखसे अन्नदान एवं दम आदि धर्मोंकी प्रशंसा

पुलस्त्यजी कहते हैं—राजन्! अब मैं तुम्हारे लिये सप्तर्षियोंके आश्रमका वर्णन करूँगा। अत्रि, वसिष्ठ, मैं, पुलह, क्रतु, अंगिरा, गौतम, सुमति, सुमुख, विश्वामित्र, स्थूलशिरा, संवर्त, प्रतर्दन, रैभ्य, बृहस्पति, च्यवन, कश्यप, भृगु, दुर्वासा, जमदग्नि, मार्कण्डेय, गालव, उशना, भरद्वाज, यवक्रीत, स्थूलाक्ष, मकराक्ष, कण्व, मेधातिथि, नारद, पर्वत, स्वगन्धी, तृणाम्बु, शबल, धौम्य, शतानन्द, अकृतव्रण, जमदग्निकुमार परशुराम, अष्टक तथा कृष्णद्वैपायन—ये सभी ऋषि-महर्षि अपने पुत्रों और शिष्योंके साथ पुष्करमें आकर सप्तर्षियोंके आश्रममें रह चुके हैं तथा सबने इन्द्रिय-संयम और शौच-सन्तोषादि नियमोंके पालनपूर्वक पूरी चेष्टाके साथ तपस्या की है, जिसके फलस्वरूप उनमें इन्द्रिय-जय, धैर्य, सत्य, क्षमा, सरलता, दया और दान आदि सद्गुणोंकी प्रतिष्ठा हुई है। पूर्वकालकी बात है, समाधिके द्वारा सनातन ब्रह्मलोकपर विजय प्राप्त करनेकी अभिलाषा रखनेवाले सप्तर्षिगण तीर्थस्थानोंका दर्शन करते हुए इस पृथ्वीपर विचर रहे थे। इसी बीचमें एक बार बड़ा भारी सूखा पड़ा, जिसके कारण भूखसे पीड़ित होकर सम्पूर्ण जगत्के लोग बड़े कष्टमें पड़ गये। उसी समय उन ऋषियोंको भी कष्ट उठाते देख तत्कालीन राजाने, जो प्रजाकी देख-भालके लिये भ्रमण कर रहे थे, दुःखी होकर कहा—'मुनिवरो! ब्राह्मणोंके लिये प्रतिग्रह उत्तम वृत्ति है; अतः आपलोग मुझसे दान ग्रहण

करें—अच्छे-अच्छे गाँव, धान और जौ आदि अन्न, घृत-दुग्धादि रस, तरह-तरहके रत्न, सुवर्ण तथा दूध देनेवाली गौएँ ले लें।'

ऋषियोंने कहा—राजन्! प्रतिग्रह बड़ी भयंकर वृत्ति है। वह स्वादमें मधुके समान मधुर, किन्तु परिणाममें विषके समान घातक है। इस बातको स्वयं जानते हुए भी तुम क्यों हमें लोभमें डाल रहे हो?' दस कसाइयोंके समान एक चक्री (कुम्हार या तेली), दस चक्रियोंके समान एक शराब बेचनेवाला, दस शराब बेचनेवालोंके समान एक वेश्या और दस वेश्याओंके समान एक राजा होता है। जो प्रतिदिन दस हजार हत्यागृहोंका संचालन करता है, वह शौण्डिक है; राजा भी उसीके समान माना गया है। अतः राजाका प्रतिग्रह अत्यन्त भयंकर है। जो ब्राह्मण लोभसे मोहित होकर राजाका प्रतिग्रह स्वीकार करता है, वह तामिस्र आदि घोर नरकोंमें पकाया जाता है।[१] अतः महाराज! तुम अपने दानके साथ ही यहाँसे पधारो। तुम्हारा कल्याण हो। यह दान दूसरोंको देना।

यह कहकर वे सप्तर्षि वनमें चले गये। तदनन्तर राजाकी आज्ञासे उसके मन्त्रियोंने गूलरके फलोंमें सोना भरकर उन्हें पृथ्वीपर बिखेर दिया। सप्तर्षि अन्नके दाने बीनते हुए वहाँ पहुँचे तो उन फलोंको भी उन्होंने हाथमें उठाया।

[उन्हें भारी जानकर] अत्रिने कहा—'ये फल ग्रहण करनेयोग्य नहीं हैं। हमारी ज्ञानशक्तिपर मोहका पर्दा नहीं पड़ा है, हम मन्दबुद्धि नहीं हो गये हैं। हम समझदार हैं, ज्ञानी हैं, अतः इस बातको भलीभाँति समझते हैं कि वे गूलरके फल सुवर्णसे भरे हैं। धन इसी लोकमें आनन्ददायक होता है, मृत्युके बाद तो वह बड़े ही कटु परिणामको उत्पन्न करता है; अतः जो सुख एवं अनन्त पदकी इच्छा रखता हो, उसे तो इसे कदापि नहीं लेना चाहिये।'[२]

वसिष्ठजीने कहा—इस लोकमें धनसंचयकी अपेक्षा तपस्याका संचय ही श्रेष्ठ है। जो सब प्रकारके लौकिक संग्रहोंका परित्याग कर देता है, उसके सारे उपद्रव शान्त हो जाते हैं। संग्रह करनेवाला कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं है, जो सुखी रह सके। ब्राह्मण जैसे-जैसे प्रतिग्रहका त्याग करता है, वैसे-ही-वैसे सन्तोषके कारण उसके ब्रह्म-तेजकी वृद्धि होती है। एक ओर अकिंचनता और दूसरी ओर राज्यको तराजूपर रखकर तोला गया तो राज्यकी अपेक्षा अकिंचनताका ही पलड़ा भारी रहा; इसलिये जितात्मा पुरुषके लिये कुछ भी संग्रह न करना ही श्रेष्ठ है।

कश्यपजी बोले—धन-सम्पत्ति मोहमें डालनेवाली होती है। मोह नरकमें गिराता है; इसलिये कल्याण चाहनेवाले पुरुषको अनर्थके साधन अर्थका दूरसे ही परित्याग कर देना चाहिये। जिसको धर्मके लिये धन-संग्रहकी इच्छा होती है, उसके लिये उस इच्छाका त्याग ही श्रेष्ठ है; क्योंकि कीचड़को लगाकर धोनेकी अपेक्षा उसका स्पर्श न करना ही उत्तम है। धनके द्वारा जिस धर्मका साधन किया जाता है, वह क्षयशील माना गया है। दूसरेके लिये जो धनका परित्याग है, वही अक्षय धर्म है, वही मोक्षकी प्राप्ति करानेवाला है।

भरद्वाजने कहा—जब मनुष्यका शरीर जीर्ण होता है, तब उसके दाँत और बाल भी पक जाते हैं; किन्तु धन और जीवनकी आशा बूढ़े होनेपर भी जीर्ण नहीं होती—वह सदा नयी ही बनी रहती है। जैसे दर्जी सूईसे वस्त्रमें सूतका प्रवेश करा देता है, उसी प्रकार

१-दशसूनासमश्चक्री दशचक्रिसमो ध्वजः। दशध्वजसमा वेश्या दशवेश्यासमो नृपः॥
दशसूनासहस्राणि यो वाहयति शौण्डिकः। तेन तुल्यस्ततो राजा घोरस्तस्य प्रतिग्रहः॥
यो राज्ञः प्रतिगृह्णाति ब्राह्मणो लोभमोहितः। तामिस्रादिषु घोरेषु नरकेषु स पच्यते॥
(१९। २३६—२३८)

२-इहैवात्तं बसु प्रीत्यै प्रेत्य वै कटुकोदयम्। तस्मान्न ग्राह्यमेवैतत्सुखमानन्त्यमिच्छता॥
(१९। २४३)

तृष्णारूपी सूईसे संसाररूपी सूत्रका विस्तार होता है। तृष्णाका कहीं ओर-छोर नहीं है, उसका पेट भरना कठिन होता है; वह सैकड़ों दोषोंको ढोये फिरती है; उसके द्वारा बहुत-से अधर्म होते हैं। अतः तृष्णाका परित्याग ही उचित है।

गौतम बोले—इन्द्रियोंके लोभग्रस्त होनेसे सभी मनुष्य संकटमें पड़ जाते हैं। जिसके चित्तमें सन्तोष है, उसके लिये सर्वत्र धन-सम्पत्ति भरी हुई है; जिसके पैर जूतेमें हैं, उसके लिये सारी पृथ्वी मानो चमड़ेसे मढ़ी है। सन्तोषरूपी अमृतसे तृप्त एवं शान्त चित्तवाले पुरुषोंको जो सुख प्राप्त है, वह धनके लोभसे इधर-उधर दौड़नेवाले लोगोंको कहाँसे प्राप्त हो सकता है। असन्तोष ही सबसे बढ़कर दुःख है और सन्तोष ही सबसे बड़ा सुख है; अतः सुख चाहनेवाले पुरुषको सदा सन्तुष्ट रहना चाहिये।*

विश्वामित्रने कहा—किसी कामनाकी पूर्ति चाहनेवाले मनुष्यकी यदि एक कामना पूर्ण होती है, तो दूसरी नयी उत्पन्न होकर उसे पुनः बाणके समान बींधने लगती है। भोगोंकी इच्छा उपभोगके द्वारा कभी शान्त नहीं होती, प्रत्युत घी डालनेसे प्रज्वलित होनेवाली अग्निकी भाँति वह अधिकाधिक बढ़ती ही जाती है। भोगोंकी अभिलाषा रखनेवाला पुरुष मोहवश कभी सुख नहीं पाता।

जमदग्नि बोले—जो प्रतिग्रह लेनेकी शक्ति रखते हुए भी उसे नहीं ग्रहण करता, वह दानी पुरुषोंको मिलनेवाले सनातन लोकोंको प्राप्त होता है। जो ब्राह्मण राजासे धन लेता है, वह महर्षियोंद्वारा शोक करनेके योग्य है; उस मूर्खको नरक-यातनाका भय नहीं दिखायी देता। प्रतिग्रह लेनेमें समर्थ होकर भी उसमें प्रवृत्त नहीं होना चाहिये; क्योंकि प्रतिग्रहसे ब्राह्मणोंका ब्रह्मतेज नष्ट हो जाता है।

अरुन्धतीने कहा—तृष्णाका आदि-अन्त नहीं है, वह सदा शरीरके भीतर व्याप्त रहती है। दुष्ट बुद्धिवाले पुरुषोंके लिये जिसका त्याग करना कठिन है, जो शरीरके जीर्ण होनेपर भी जीर्ण नहीं होती तथा जो प्राणान्तकारी रोगके समान है, उस तृष्णाका त्याग करनेवालेको ही सुख मिलता है।

पशुसख बोले—धर्मपरायण विद्वान् पुरुष जैसा आचरण करते हैं, आत्मकल्याणकी इच्छा रखनेवाले विद्वान् पुरुषको वैसा ही आचरण करना चाहिये।

ऐसा कहकर दृढ़तापूर्वक नियमोंका पालन करनेवाले वे सभी महर्षि उन सुवर्णयुक्त फलोंको छोड़ अन्यत्र चले गये। घूमते-घामते वे मध्य पुष्करमें गये, जहाँ अकस्मात् आये हुए शुनःसख नामक परिव्राजकसे उनकी भेंट हुई। उसके साथ वे किसी वनमें गये। वहाँ उन्हें एक बहुत बड़ा सरोवर दिखायी दिया, जिसका जल कमलोंसे आच्छादित था। वे सब-के-सब उस सरोवरके किनारे बैठ गये और कल्याणका चिन्तन करने लगे। उस समय शुनःसखने क्षुधासे पीड़ित उन समस्त मुनियोंसे इस प्रकार कहा—'महर्षियो! आप सब लोग बताइये, भूखकी पीड़ा कैसी होती है?'

ऋषियोंने कहा—शक्ति, खड्ग, गदा, चक्र, तोमर और बाणोंसे पीड़ित किये जानेपर मनुष्यको जो वेदना होती है, वह भी भूखकी पीड़ाके सामने मात हो जाती है। दमा, खाँसी, क्षय, ज्वर और मिरगी आदि रोगोंसे कष्ट पाते हुए मनुष्यको भी भूखकी पीड़ा उन सबकी अपेक्षा अधिक जान पड़ती है। जिस प्रकार सूर्यकी किरणोंसे पृथ्वीका सारा जल खींच लिया जाता है, उसी प्रकार पेटकी आगसे शरीरकी समस्त नाड़ियाँ सूख जाती हैं। क्षुधासे पीड़ित मनुष्यको आँखोंसे कुछ सूझ नहीं

---

* सर्वत्र सम्पदस्तस्य सन्तुष्टं यस्य मानसम्। उपानद्गूढपादस्य ननु चर्मावृतेव भूः॥
सन्तोषामृततृप्तानां यत्सुखं शान्तचेतसाम्। कुतस्तद्धनलुब्धानामितश्चेतश्च धावताम्॥
असन्तोषः परं दुःखं सन्तोषः परमं सुखम्। सुखार्थी पुरुषस्तस्मात्सन्तुष्टः सततं भवेत्॥
(१९। २५९—२६१)

पड़ता, उसका सारा अंग जलता और सूखता जाता है। भूखकी आग प्रज्वलित होनेपर मनुष्य गूँगा, बहरा, जड, पंगु, भयंकर तथा मर्यादाहीन हो जाता है। लोग क्षुधासे पीड़ित होनेपर पिता-माता, स्त्री, पुत्र, कन्या, भाई तथा स्वजनोंका भी परित्याग कर देते हैं। भूखसे व्याकुल मनुष्य न पितरोंकी भलीभाँति पूजा कर सकता है न देवताओंकी, न गुरुजनोंका सत्कार कर सकता है न ऋषियों तथा अभ्यागतोंका।

इस प्रकार अन्न न मिलनेपर देहधारी प्राणियोंमें ये सभी दोष आ जाते हैं। इसलिये संसारमें अन्नसे बढ़कर न तो कोई पदार्थ हुआ है, न होगा। अन्न ही संसारका मूल है। सब कुछ अन्नके ही आधारपर टिका हुआ है। पितर, देवता, दैत्य, यक्ष, राक्षस, किन्नर, मनुष्य और पिशाच—सभी अन्नमय माने गये हैं; इसलिये अन्नदान करनेवालेको अक्षय तृप्ति और सनातन स्थिति प्राप्त होती है। तप, सत्य, जप, होम, ध्यान, योग, उत्तम गति, स्वर्ग और सुखकी प्राप्ति—ये सब कुछ अन्नसे ही सुलभ होते हैं। चन्दन, अगर, धूप और शीतकालमें ईंधनका दान अन्नदानके सोलहवें हिस्सेके बराबर भी नहीं हो सकता। अन्न ही प्राण, बल और तेज है। अन्न ही पराक्रम है, अन्नसे ही तेजकी उत्पत्ति और वृद्धि होती है। जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक भूखेको अन्न देता है, वह ब्रह्मस्वरूप होकर ब्रह्माजीके साथ आनन्द मनाता है। जो एकाग्रचित्त होकर अमावास्याको श्राद्धमें अन्नदानका माहात्म्यमात्र सुनाता है; उसके पितर आजीवन सन्तुष्ट रहते हैं।

इन्द्रिय-संयम और मनोनिग्रहसे युक्त ब्राह्मण सुखी एवं धर्मके भागी होते हैं। दम, दान एवं यम—ये तीनों तत्त्वार्थदर्शी पुरुषोंद्वारा बताये हुए धर्म हैं। इनमें भी विशेषतः दम ब्राह्मणोंका सनातन धर्म है। दम तेजको बढ़ाता है, दम परम पवित्र और उत्तम है। दमसे पुरुष पापरहित एवं तेजस्वी होता है। संसारमें जो कुछ नियम, धर्म, शुभ कर्म अथवा सम्पूर्ण यज्ञोंके फल हैं, उन सबकी अपेक्षा दमका महत्त्व अधिक है। दमके बिना दानरूपी क्रियाकी यथावत् शुद्धि नहीं हो सकती। दमसे ही यज्ञ और दमसे ही दानकी प्रवृत्ति होती है। जिसने इन्द्रियोंका दमन नहीं किया, उसके वनमें रहनेसे क्या लाभ। तथा जिसने मन और इन्द्रियोंका भलीभाँति दमन किया है, उसको [घर छोड़कर] किसी आश्रममें रहनेकी क्या आवश्यकता है। जितेन्द्रिय पुरुष जहाँ-जहाँ निवास करता है, उसके लिये वही-वही स्थान वन एवं महान् आश्रम है। जो उत्तम शील और आचरणमें रत है, जिसने अपनी इन्द्रियोंको काबूमें कर लिया है तथा जो सदा सरल भावसे रहता है, उसको आश्रमोंसे क्या प्रयोजन? विषयासक्त मनुष्योंसे वनमें भी दोष बन जाते हैं तथा घरमें रहकर भी यदि पाँचों इन्द्रियोंका निग्रह कर लिया जाय तो वह तपस्या ही है। जो सदा शुभ कर्ममें ही प्रवृत्त होता है, उस वीतराग पुरुषके लिये घर ही तपोवन है। केवल शब्द-शास्त्र-व्याकरणके चिन्तनमें लगे रहनेवालेका मोक्ष नहीं होता तथा लोगोंका मन बहलानेमें ही जिसकी प्रवृत्ति है, उसको भी मुक्ति नहीं मिलती। जो एकान्तमें रहकर दृढ़तापूर्वक नियमोंका पालन करता, इन्द्रियोंकी आसक्तिको दूर हटाता, अध्यात्मतत्त्वके चिन्तनमें मन लगाता और सर्वदा अहिंसा-व्रतका पालन करता है, उसीका मोक्ष निश्चित है। जितेन्द्रिय पुरुष सुखसे सोता और सुखसे जागता है। वह सम्पूर्ण भूतोंके प्रति समान भाव रखता है। उसके मनमें हर्ष-शोक आदि विकार नहीं आते। छेड़ा हुआ सिंह, अत्यन्त रोषमें भरा हुआ सर्प तथा सदा कुपित रहनेवाला शत्रु भी वैसा अनिष्ट नहीं कर सकता, जैसा संयमरहित चित्त कर डालता है।

मांसभक्षी प्राणियों तथा अजितेन्द्रिय मनुष्योंसे लोगोंको सदा भय रहता है, अतः उनके निवारणके लिये ब्रह्माजीने दण्डका विधान किया है। दण्ड ही प्राणियोंकी रक्षा और प्रजाका पालन करता है। वही पापियोंको पापसे रोकता है। दण्ड सबके लिये दुर्जय होता है। वह सब प्राणियोंको भय पहुँचानेवाला है। दण्ड ही मनुष्योंका शासक है, उसीपर धर्म टिका हुआ है। सम्पूर्ण आश्रमों और समस्त भूतोंमें दम ही उत्तम व्रत माना गया है। उदारता, कोमल स्वभाव, सन्तोष, दोष-दृष्टिका अभाव, गुरु-शुश्रूषा, प्राणियोंपर दया और चुगली न करना—

इन्हींको शान्त बुद्धिवाले संतों और ऋषियोंने दम कहा है। धर्म, मोक्ष तथा स्वर्ग—ये सभी दमके अधीन हैं। जो अपना अपमान होनेपर क्रोध नहीं करता और सम्मान होनेपर हर्षसे फूल नहीं उठता, जिसकी दृष्टिमें दुःख और सुख समान हैं, उस धीर पुरुषको प्रशान्त कहते हैं। जिसका अपमान होता है, वह साधु पुरुष तो सुखसे सोता और सुखसे जागता है तथा उसकी बुद्धि कल्याणमयी होती है। परन्तु अपमान करनेवाला मनुष्य स्वयं नष्ट हो जाता है। अपमानित पुरुषको चाहिये कि वह कभी अपमान करनेवालेकी बुराई न सोचे। अपने धर्मपर दृष्टि रखते हुए भी दूसरोंके धर्मकी निन्दा न करे।[१]

जो इन्द्रियोंका दमन करना नहीं जानते, वे व्यर्थ ही शास्त्रोंका अध्ययन करते हैं; क्योंकि मन और इन्द्रियोंका संयम ही शास्त्रका मूल है, वही सनातन धर्म है। सम्पूर्ण व्रतोंका आधार दम ही है। छहों अंगोंसहित पढ़े हुए वेद भी दमसे हीन पुरुषको पवित्र नहीं कर सकते। जिसने इन्द्रियोंका दमन नहीं किया, उसके सांख्य, योग, उत्तम कुल, जन्म और तीर्थस्नान—सभी व्यर्थ हैं। योगवेत्ता द्विजको चाहिये कि वह अपमानको अमृतके समान समझकर उससे प्रसन्नताका अनुभव करे और सम्मानको विषके तुल्य मानकर उससे घृणा करे। अपमानसे उसके तपकी वृद्धि होती है और सम्मानसे क्षय। पूजा और सत्कार पानेवाला ब्राह्मण दुही हुई गायकी तरह खाली हो जाता है। जैसे गौ घास और जल पीकर फिर पुष्ट हो जाती है, उसी प्रकार ब्राह्मण जप और होमके द्वारा पुनः ब्रह्मतेजसे सम्पन्न हो जाता है। संसारमें निन्दा करनेवालेके समान दूसरा कोई मित्र नहीं है, क्योंकि वह पाप लेकर अपना पुण्य दे जाता है।[२] निन्दा करने-वालोंकी स्वयं निन्दा न करे। अपने मनको रोके। जो उस समय अपने चित्तको वशमें कर लेता है, वह मानो अमृतसे स्नान करता है। वृक्षोंके नीचे रहना, साधारण वस्त्र पहनना, अकेले रहना, किसीकी अपेक्षा न रखना और ब्रह्मचर्यका पालन करना—ये सब परमगतिको प्राप्त करानेवाले होते हैं। जिसने काम और क्रोधको जीत लिया, वह जंगलमें जाकर क्या करेगा? अभ्याससे शास्त्रकी, शीलसे कुलकी, सत्यसे क्रोधका तथा मित्रके द्वारा प्राणोंकी रक्षा की जाती है। जो पुरुष उत्पन्न हुए क्रोधको अपने मनसे रोक लेता है, वह उस क्षमाके द्वारा सबको जीत लेता है। जो क्रोध और भयको जीतकर शान्त रहता है, पृथ्वीपर उसके समान वीर और कौन है। यह ब्रह्माजीका बताया हुआ गूढ़ उपदेश है। प्यारे! हमने धर्मका हृदय—सार तत्त्व तुम्हें बतलाया है।

यज्ञ करनेवालोंके लोक दूसरे हैं, तपस्वियोंके लोक दूसरे हैं तथा इन्द्रिय-संयम और मनोनिग्रह करनेवाले लोगोंके लोक दूसरे ही हैं। वे सभी परम सम्मानित हैं। क्षमा करनेवालेपर एक ही दोष लागू होता है, दूसरा नहीं; वह यह कि क्षमाशील पुरुषको लोग शक्तिहीन मान बैठते हैं। किन्तु इसे दोष नहीं मानना चाहिये, क्योंकि बुद्धिमानोंका बल क्षमा ही है। जो शान्ति अथवा क्षमाको नहीं जानता, वह इष्ट (यज्ञ आदि) और पूर्त (तालाब आदि खुदवाना) दोनोंके फलोंसे वंचित हो जाता है। क्रोधी मनुष्य जो जप, होम और पूजन करता है, वह सब फूटे हुए घड़ेसे जलकी भाँति नष्ट हो जाता है। जो पुरुष प्रातःकाल उठकर प्रतिदिन इस पुण्यमय दमाध्यायका पाठ करता है, वह धर्मकी नौकापर आरूढ़ होकर सारी कठिनाइयोंको पार कर जाता है। जो द्विज

१- अवमाने न कुप्येत सम्माने न प्रहृष्यति। समदुःखसुखो धीरः प्रशान्त इति कीर्त्यते॥
सुखं ह्यवमतः शेते सुखं चैव प्रबुध्यति। श्रेयस्तरमतिस्तिष्ठेदवमन्ता विनश्यति॥
अवमानी तु न ध्यायेत्तस्य पापं कदाचन। स्वधर्ममपि चावेक्ष्य परधर्मं न दूषयेत्॥
(१९। ३३२—३३४)

२- आक्रोशकसमो लोके सुहृदन्यो न विद्यते। यस्तु दुष्कृतमादाय सुकृतं स्वं प्रयच्छति॥
(१९। ३४४)

सदा ही इस पुण्यप्रद दमाध्यायको दूसरोंको सुनाता है, वह ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है तथा वहाँसे कभी नहीं गिरता।

धर्मका सार सुनो और सुनकर उसे धारण करो—जो बात अपनेको प्रतिकूल जान पड़े, उसे दूसरोंके लिये भी काममें न लाये। जो परायी स्त्रीको माताके समान, पराये धनको मिट्टीके ढेलेके समान और सम्पूर्ण भूतोंको अपने आत्माके समान जानता है, वही ज्ञानी है। जिसकी रसोई बलिवैश्वदेवके लिये और जीवन परोपकारके लिये है, वही विद्वान् है। जैसे धातुओंमें सुवर्ण उत्तम है, वैसे ही परोपकार सबसे श्रेष्ठ धर्म है, वही सर्वस्व है। सम्पूर्ण प्राणियोंके हितका ध्यान रखनेवाला पुरुष अमृतत्व प्राप्त करता है।

पुलस्त्यजी कहते हैं—इस प्रकार ऋषियोंने शुनःसखके सामने धर्मके सार-तत्त्वका प्रतिपादन करके उसके साथ वहाँसे दूसरे वनमें प्रवेश किया। वहाँ भी उन्हें एक बहुत विस्तृत जलाशय दिखायी दिया, जो पद्म और उत्पलोंसे आच्छादित था। उस सरोवरमें उतरकर उन्होंने मृणाल उखाड़े और उन्हें ढेर-के-ढेर किनारेपर रखकर जलसे सम्पन्न होनेवाली पुण्यक्रिया—सन्ध्या-तर्पण आदि करने लगे। तत्पश्चात् जब वे जलसे बाहर निकले तो उन मृणालोंको न देखकर परस्पर इस प्रकार कहने लगे।

ऋषि बोले—हम सब लोग क्षुधासे कष्ट पा रहे हैं—ऐसी दशामें किस पापी और क्रूरने मृणालोंको चुरा लिया?

जब इस तरह कुछ पता न लगा तब सबसे पहले कश्यपजी बोले—जिसने मृणालकी चोरी की हो, उसे सर्वत्र सब कुछ चुरानेका, थाती रखी हुई वस्तुपर जी ललचानेका और झूठी गवाही देनेका पाप लगे। वह दम्भपूर्वक धर्मका आचरण और राजाका सेवन करने, मद्य और मांसका सेवन करने, सदा झूठ बोलने, सूदसे जीविका चलाने और रुपया लेकर लड़की बेचनेके पापका भागी हो।

वसिष्ठजीने कहा—जिसने उन मृणालोंको चुराया हो, उसे ऋतुकालके बिना ही मैथुन करने, दिनमें सोने, एक-दूसरेके यहाँ जाकर अतिथि बनने, जिस गाँवमें एक ही कुआँ हो वहाँ निवास करने, ब्राह्मण होकर शूद्रजातिकी स्त्रीसे सम्बन्ध रखनेका पाप लगे और ऐसे लोगोंको जिन लोकोंमें जाना पड़ता है, वहीं वह भी जाय।

भरद्वाज बोले—जिसने मृणाल चुराये हों, वह सबके प्रति क्रूर, धनके अभिमानी, सबसे डाह रखनेवाले, चुगलखोर और रस बेचनेवालेकी गति प्राप्त करे।

गौतमने कहा—जिसने मृणालोंकी चोरी की हो, वह सदा शूद्रका अन्न खानेवाले, परस्त्रीगामी और घरमें दूसरोंको न देकर अकेले मिष्टान्न भोजन करनेवालेके समान पापका भागी हो।

विश्वामित्र बोले—जो मृणाल चुरा ले गया हो, वह सदा काम-परायण, दिनमें मैथुन करनेवाले, नित्य पातकी, परायी निन्दा करनेवाले और परस्त्रीगामीकी गति प्राप्त करे।

जमदग्निने कहा—जिसने मृणालोंकी चोरी की हो, वह दुर्बुद्धि मनुष्य अपने माता-पिताका अपमान करनेके, अपनी कन्याके दिये हुए धनसे अपनी जीविका चलानेके, सदा दूसरेकी रसोईमें भोजन करनेके, परस्त्रीसे सम्पर्क रखनेके और गौओंकी बिक्री करनेके पापका भागी हो।

पराशरजी बोले—जिसने मृणाल चुराये हों, वह दूसरोंका दास एवं जन्म-जन्म क्रोधी हो तथा सब प्रकारके धर्मकर्मोंसे हीन हो।

शुनःसखने कहा—जिसने मृणालोंकी चोरी की हो, वह न्यायपूर्वक वेदाध्ययन करे, अतिथियोंमें प्रीति रखनेवाला गृहस्थ हो, सदा सत्य बोले, विधिवत् अग्निहोत्र करे, प्रतिदिन यज्ञ करे और अन्तमें ब्रह्मलोकको जाय।

ऋषियोंने कहा—शुनःसख! तुमने जो शपथ की है, वह तो द्विजातिमात्रको अभीष्ट ही है; अतः तुम्हींने हम सबके मृणालोंकी चोरी की है।

शुनःसख बोले—ब्राह्मणो! मैंने ही आप-लोगोंके मुँहसे धर्म सुननेकी इच्छासे ये मृणाल छिपा

दिये थे। मुझे आप इन्द्र समझें। मुनिवरो! आपने लोभके परित्यागसे अक्षय लोकोंपर विजय पायी है। अतः इस विमानपर बैठिये, अब हमलोग स्वर्गलोकको चलें।

तब महर्षियोंने इन्द्रको पहचानकर उनसे इस प्रकार कहा।

ऋषि बोले—देवराज! जो मनुष्य यहाँ आकर मध्यम पुष्करमें स्नान करे और तीन राततक यहाँ उपवासपूर्वक निवास करे, उसे अक्षय फलकी प्राप्ति होती है। वनवासी महर्षियोंके लिये जो बारह वर्षोंकी यज्ञ-दीक्षा बतायी गयी है, उसका पूरा-पूरा फल उस मनुष्यको भी मिल जाता है। उसकी कभी दुर्गति नहीं होती। वह सदा अपने कुलवालोंके साथ आनन्दका अनुभव करता है तथा ब्रह्मलोकमें जाकर ब्रह्माजीके एक दिनतक (कल्पभर) वहाँ निवास करता है।

नाना प्रकारके व्रत, स्नान और तर्पणकी विधि तथा अन्नादि पर्वतोंके दानकी प्रशंसामें राजा धर्ममूर्तिकी कथा

पुलस्त्यजी कहते हैं—राजन्! ज्येष्ठ पुष्करमें गौ, मध्यम पुष्करमें भूमि और कनिष्ठ पुष्करमें सुवर्ण देना चाहिये। यही वहाँके लिये दक्षिणा है। प्रथम पुष्करके देवता श्रीब्रह्माजी, दूसरेके भगवान् श्रीविष्णु तथा तीसरेके श्रीरुद्र हैं। इस प्रकार तीनों देवता वहाँ पृथक्-पृथक् स्थित हैं। अब मैं सब व्रतोंमें उत्तम महापातकनाशन नामक व्रतका वर्णन करता हूँ। यह भगवान् शंकरका बताया हुआ व्रत है। रात्रिको अन्न तैयार करके कुटुम्बवाले ब्राह्मणको बुलाये और उसे भोजन कराकर एक गौ, सुवर्णमय चक्रसे युक्त त्रिशूल तथा दो वस्त्र—धोती और चद्दर दान करे। जो मनुष्य इस प्रकार पुण्य करता है, वह शिवलोकमें जाकर आनन्दका अनुभव करता है। यही महापातकनाशन व्रत है। जो एक दिन एकभक्तव्रती रहकर—एक ही अन्नका भोजन कर दूसरे दिन तिलमयी धेनु और वृषभका दान करता है, वह भगवान् शंकरके पदको प्राप्त होता है। यह पाप और शोकोंका नाश करनेवाला 'रुद्रव्रत' है। जो एक वर्षतक एक दिनका अन्तर दे रात्रिमें भोजन करता है तथा वर्ष पूरा होनेपर नील कमल, सुवर्णमय कमल और चीनीसे भरा हुआ पात्र एवं बैल दान करता है, वह भगवान् श्रीविष्णुके धामको प्राप्त होता है। यह 'नीलव्रत' कहलाता है। जो मनुष्य आषाढ़से लेकर चार महीनोंतक तेलकी मालिश छोड़ देता है और भोजनकी सामग्री दान करता है, वह भगवान् श्रीहरिके धाममें जाता है। यह मनुष्योंको प्रसन्न करनेवाला होनेके कारण 'प्रीतिव्रत' कहलाता है। जो चैत्रके महीनेमें दही, दूध, घी और गुड़का त्याग करता और गौरीकी प्रसन्नताके उद्देश्यसे ब्राह्मण-दम्पतीका पूजन करके उन्हें महीन वस्त्र और रससे भरे पात्र दान करता है, उसपर गौरीदेवी प्रसन्न होती हैं। यह 'गौरीव्रत' भवानीका लोक प्रदान करनेवाला है। जो आषाढ़ आदि चातुर्मास्यमें कोई भी फल नहीं खाता तथा चौमासा बीतनेपर घी और गुड़के साथ एक घड़ा एवं कार्तिककी पूर्णिमाको पुनः कुछ सुवर्ण ब्राह्मणको दान देता है, वह रुद्रलोकको प्राप्त होता है। यह 'शिवव्रत' कहलाता है।

जो मनुष्य हेमन्त और शिशिरमें पुष्पोंका सेवन छोड़ देता है तथा अपनी शक्तिके अनुसार सोनेके तीन फूल बनवाकर फाल्गुनकी पूर्णिमाको भगवान् श्रीशिव और श्रीविष्णुकी प्रसन्नताके लिये उनका दान करता है, वह परमपदको प्राप्त होता है। यह 'सौम्यव्रत' कहलाता है। जो फाल्गुनसे आरम्भ करके प्रत्येक मासकी तृतीयाको नमक छोड़ देता है और वर्ष पूर्ण होनेपर भवानीकी प्रसन्नताके लिये ब्राह्मण-दम्पतीका पूजन करके उन्हें शय्या और आवश्यक सामग्रियोंसहित गृह दान करता है, वह एक कल्पतक गौरीलोकमें निवास करता है। इसे 'सौभाग्यव्रत' कहते हैं। जो द्विज एक वर्षतक मौनभावसे सन्ध्या करता है और वर्षके अन्तमें घीका घड़ा, दो वस्त्र—धोती और चद्दर, तिल और घण्टा ब्राह्मणको दान करता है, वह सारस्वतलोकको प्राप्त होता है, जहाँसे फिर इस संसारमें लौटना नहीं पड़ता।

यह रूप और विद्या प्रदान करनेवाला 'सारस्वत' नामक व्रत है। प्रतिदिन गोबरका मण्डल बनाकर उसमें अक्षतोंद्वारा कमल बनाये। उसके ऊपर भगवान् श्रीशिव या श्रीविष्णुकी प्रतिमा रखकर उसे घीसे स्नान कराये; फिर विधिवत् पूजन करे। इस प्रकार जब एक वर्ष बीत जाय, तब साम-गान करनेवाले ब्राह्मणको शुद्ध सोनेका बना हुआ आठ अंगुलका कमल और तिलकी धेनु दान करे। ऐसा करनेवाला पुरुष शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है। यह 'सामव्रत' कहा गया है।

नवमी तिथिको एकभुक्त रहकर—एक ही अन्नका भोजन करके कुमारी कन्याओंको भक्तिपूर्वक भोजन कराये तथा गौ, सुवर्ण, सिला हुआ अंगा, धोती, चद्दर तथा सोनेका सिंहासन ब्राह्मणको दान करे; इससे वह शिवलोकको जाता है। अरबों जन्मतक सुरूपवान् होता है। शत्रु उसे कभी परास्त नहीं कर पाते। यह मनुष्योंको सुख देनेवाला 'वीरव्रत' नामका व्रत है। चैत्रसे आरम्भ कर चार महीनोंतक प्रतिदिन लोगोंको बिना माँगे जल पिलाये और इस व्रतकी समाप्ति होनेपर अन्न-वस्त्रसहित जलसे भरा हुआ माट, तिलसे पूर्ण पात्र तथा सुवर्ण दान करे। ऐसा करनेवाला पुरुष ब्रह्मलोकमें सम्मानित होता है। यह उत्तम 'आनन्दव्रत' है। जो पुरुष मांसका बिलकुल परित्याग करके व्रतका आचरण करे और उसकी पूर्तिके निमित्त गौ तथा सोनेका मृग दान करे, वह अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त करता है। इसका नाम 'अहिंसाव्रत' है। एक कल्पतक इसका फल भोगकर अन्तमें मनुष्य राजा होता है। माघके महीनेमें सूर्योदयके पहले स्नान करके द्विज-दम्पतीका पूजन करे तथा उन्हें भोजन कराकर यथाशक्ति वस्त्र और आभूषण दान दे। यह 'सूर्यव्रत' है। इसका अनुष्ठान करनेवाला पुरुष एक कल्पतक सूर्यलोकमें निवास करता है। आषाढ़ आदि चार महीनोंमें प्रतिदिन प्रात:स्नान करे और फिर कार्तिककी पूर्णिमाके दिन ब्राह्मणोंको भोजन कराकर गोदान दे तो वह मनुष्य भगवान् श्रीविष्णुके धामको प्राप्त होता है। यह 'विष्णुव्रत' है। जो एक अयनसे दूसरे अयनतक पुष्प और घृतका सेवन छोड़ देता है और व्रतके अन्तमें फूलोंका हार, घी और घृतमिश्रित खीर ब्राह्मणको दान करता है, वह शिवलोकमें जाता है। इसका नाम 'शीलव्रत' है। जो [नियत कालतक] प्रतिदिन सन्ध्याके समय दीप-दान करता है तथा घी और तेलका सेवन नहीं करता, फिर व्रत समाप्त होनेपर ब्राह्मणको दीपक, चक्र, शूल, सोना, धोती और चद्दर दान करता है, वह इस संसारमें तेजस्वी होता है तथा अन्तमें रुद्रलोकको जाता है। यह 'दीप्तिव्रत' है। जो कार्तिकसे आरम्भ करके प्रत्येक मासकी तृतीयाको रातके समय गोमूत्रमें पकायी हुई जौकी लप्सी खाकर रहता है और वर्ष समाप्त होनेपर गोदान करता है, वह एक कल्पतक गौरीलोकमें निवास करता है तथा उसके बाद इस लोकमें राजा होता है। इसका नाम 'रुद्रव्रत' है। यह सदा कल्याण करनेवाला है। जो चार महीनोंतक चन्दन लगाना छोड़ देता है तथा अन्तमें सीपी, चन्दन, अक्षत और दो श्वेत वस्त्र—धोती और चद्दर ब्राह्मणको दान करता है, वह वरुणलोकमें जाता है। यह 'दृढव्रत' कहलाता है।

सोनेका ब्रह्माण्ड बनाकर उसे तिलकी ढेरीमें रखे तथा 'मैं अहंकाररूपी तिलका दान करनेवाला हूँ' ऐसी भावना करके घीसे अग्निको तथा दक्षिणासे ब्राह्मणको तृप्त करे। फिर माला, वस्त्र तथा आभूषणोंद्वारा ब्राह्मण-दम्पतीका पूजन करके विश्वात्माकी तृप्तिके उद्देश्यसे किसी शुभ दिनको अपनी शक्तिके अनुसार तीन तोलेसे अधिक सोना तथा तिलसहित ब्रह्माण्ड ब्राह्मणको दान करे। ऐसा करनेवाला पुरुष पुनर्जन्मसे रहित ब्रह्मपदको प्राप्त होता है। इसका नाम 'ब्रह्मव्रत' है। यह मनुष्योंको मोक्ष देनेवाला है। जो तीन दिन केवल दूध पीकर रहता है और अपनी शक्तिके अनुसार एक तोलेसे अधिक सोनेका कल्पवृक्ष बनवाकर उसे एक सेर चावलके साथ ब्राह्मणको दान करता है, वह भी ब्रह्मपदको प्राप्त होता है। यह 'कल्पवृक्षव्रत' है। जो एक महीनेतक उपवास करके ब्राह्मणको सुन्दर गौ दान करता है, वह भगवान् श्रीविष्णुके धामको प्राप्त होता है। इसका नाम 'भीमव्रत' है। जो बीस तोलेसे अधिक सोनेकी

पृथ्वी बनवाकर दान करता है और दिनभर दूध पीकर रहता है, वह रुद्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। यह 'धनप्रद' नामक व्रत है। यह सात सौ कल्पोंतक अपना फल देता रहता है। माघ अथवा चैत्रकी तृतीयाको गुड़की गौ बनाकर दान करे। इसका नाम 'गुडव्रत' है। इसका अनुष्ठान करनेवाला पुरुष गौरीलोकमें सम्मान पाता है।

अब परम आनन्द प्रदान करनेवाले महाव्रतका वर्णन करता हूँ। जो पंद्रह दिन उपवास करके ब्राह्मणको दो कपिला गौएँ दान करता है, वह देवता और असुरोंसे पूजित हो ब्रह्मलोकमें जाता है तथा कल्पके अन्तमें सबका सम्राट् होता है। इसका नाम 'प्रभाव्रत' भी है। जो एक वर्षतक केवल एक ही अन्नका भोजन करता है और भक्ष्य पदार्थोंके साथ जलका घड़ा दान करता है, वह कल्पपर्यन्त शिवलोकमें निवास करता है। इसे 'प्राप्तिव्रत' कहते हैं। जो प्रत्येक अष्टमीको रात्रिमें एक बार भोजन करता है और वर्ष समाप्त होनेपर दूध देनेवाली गौका दान करता है, वह इन्द्रलोकमें जाता है। इसे 'सुगतिव्रत' कहते हैं। जो वर्षा आदि चार ऋतुओंमें ब्राह्मणको ईंधन देता है और अन्तमें घी तथा गौका दान करता है, वह परब्रह्मको प्राप्त होता है। यह सब पापोंका नाश करनेवाला 'वैश्वानरव्रत' है।

जो एक वर्षतक प्रतिदिन खीर खाकर रहता है और व्रत समाप्त होनेपर ब्राह्मणको एक गाय और एक बैल दान करता है, वह एक कल्पतक लक्ष्मीलोकमें निवास करता है। इसका नाम 'देवीव्रत' है। जो प्रत्येक सप्तमीको एक बार रात्रिमें भोजन करता है और वर्ष समाप्त होनेपर दूध देनेवाली गौ दान करता है, उसे सूर्यलोककी प्राप्ति होती है। यह 'भानुव्रत' है। जो प्रत्येक चतुर्थीको एक बार रात्रिमें भोजन करता और वर्षके अन्तमें सोनेका हाथी दान करता है, उसे शिवलोककी प्राप्ति होती है। यह 'वैनायकव्रत' है। जो चौमासेभर बड़े-बड़े फलोंका परित्याग करके कार्तिकमें सोनेके फलका दान करता है तथा हवन कराकर उसके अन्तमें ब्राह्मणको गाय-बैल देता है, उसे सूर्यलोककी प्राप्ति होती है। यह 'सौरव्रत' है। जो बारह द्वादशियोंको उपवास करके अपनी शक्तिके अनुसार गौ, वस्त्र और सुवर्णके द्वारा ब्राह्मणोंकी पूजा करता है, वह परमपदको प्राप्त होता है। यह 'विष्णुव्रत' है। जो प्रत्येक चतुर्दशीको एक बार रातमें भोजन करता और वर्षकी समाप्ति होनेपर एक गाय और एक बैल दान करता है, उसे रुद्रलोककी प्राप्ति होती है। इसे 'त्र्यम्बकव्रत' कहते हैं। जो सात रात उपवास करके ब्राह्मणको घीसे भरा हुआ घड़ा दान करता है, वह ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है। इसका नाम 'वरव्रत' है। जो काशी जाकर दूध देनेवाली गौका दान करता है, वह एक कल्पतक इन्द्रलोकमें निवास करता है। यह 'मित्रव्रत' है। जो एक वर्षतक ताम्बूलका सेवन छोड़कर अन्तमें गोदान करता है, वह वरुणलोकको जाता है। इसका नाम 'वारुणव्रत' है। जो चान्द्रायणव्रत करके सोनेका चन्द्रमा बनवाकर दान देता है, उसे चन्द्रलोककी प्राप्ति होती है। यह 'चन्द्रव्रत' कहलाता है। जो ज्येष्ठ मासमें पंचाग्नि तपकर अन्तमें अष्टमी या चतुर्दशीको सोनेकी गौका दान करता है, वह स्वर्गको जाता है। यह 'रुद्रव्रत' कहलाता है। जो प्रत्येक तृतीयाको शिवमन्दिरमें जाकर एक बार हाथ जोड़ता है और वर्ष पूर्ण होनेपर दूध देनेवाली गौ दान करता है, उसे देवीलोककी प्राप्ति होती है। इसका नाम 'भवानीव्रत' है।

जो माघभर गीला वस्त्र पहनता और सप्तमीको गोदान करता है, वह कल्पपर्यन्त स्वर्गमें निवास करके अन्तमें इस पृथ्वीपर राजा होता है। इसे 'तापकव्रत' कहते हैं। जो तीन रात उपवास करके फाल्गुनकी पूर्णिमाको घरका दान करता है, उसे आदित्यलोककी प्राप्ति होती है। यह 'धामव्रत' है। जो व्रत रहकर तीनों सन्ध्याओंमें—प्रातः, मध्याह्न एवं सायंकालमें भूषणोंद्वारा ब्राह्मण-दम्पतीकी पूजा करता है, उसे मोक्ष मिलता है। यह 'मोक्षव्रत' है। जो शुक्लपक्षकी द्वितीयाके दिन ब्राह्मणको नमकसे भरा हुआ पात्र, वस्त्रसे ढका हुआ काँसेका बर्तन तथा दक्षिणा देता है और व्रत समाप्त होनेपर गोदान करता है, वह भगवान् श्रीशिवके लोकमें जाता है तथा एक कल्पके बाद राजाओंका भी राजा होता है। इसका नाम 'सोमव्रत' है। जो हर प्रतिपदाको

एक ही अन्नका भोजन और वर्ष समाप्त होनेपर कमलका दान करता है, वह वैश्वानरलोकमें जाता है। इसे 'अग्निव्रत' कहते हैं। जो प्रत्येक दशमीको एक ही अन्नका भोजन और वर्ष समाप्त होनेपर दस गौएँ तथा सोनेका दीप दान करता है, वह ब्रह्माण्डका स्वामी होता है। इसका नाम 'विश्वव्रत' है। यह बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला है। जो स्वयं कन्यादान करता तथा दूसरेकी कन्याओंका विवाह करा देता है, वह अपनी इक्कीस पीढ़ियोंसहित ब्रह्मलोकमें जाता है। कन्या-दानसे बढ़कर दूसरा कोई दान नहीं है। विशेषतः पुष्करमें और वहाँ भी कार्तिकी पूर्णिमाको, जो कन्या-दान करेंगे, उनका स्वर्गमें अक्षय वास होगा। जो मनुष्य जलमें खड़े होकर तिलकी पीठीके बने हुए हाथीको रत्नोंसे विभूषित करके ब्राह्मणको दान देते हैं, उन्हें इन्द्रलोककी प्राप्ति होती है। जो भक्तिपूर्वक इन उत्तम व्रतोंका वर्णन पढ़ता और सुनता है, वह सौ मन्वन्तरोंतक गन्धर्वोंका स्वामी होता है।

स्नानके बिना न तो शरीर ही निर्मल होता है और न मनकी ही शुद्धि होती है, अतः मनकी शुद्धिके लिये सबसे पहले स्नानका विधान है। घरमें रखे हुए अथवा तुरंतके निकाले हुए जलसे स्नान करना चाहिये। [किसी जलाशय या नदीका स्नान सुलभ हो तो और उत्तम है।] मन्त्रवेत्ता विद्वान् पुरुषको मूलमन्त्रके द्वारा तीर्थकी कल्पना कर लेनी चाहिये। '**ॐ नमो नारायणाय**'—यह मूलमन्त्र बताया गया है। पहले हाथमें कुश लेकर विधिपूर्वक आचमन करे तथा मन और इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए बाहर-भीतरसे पवित्र रहे। फिर चार हाथका चौकोर मण्डल बनाकर उसमें निम्नांकित वाक्योंद्वारा भगवती गंगाका आवाहन करे—गंगे! तुम भगवान् श्रीविष्णुके चरणोंसे प्रकट हुई हो; श्रीविष्णु ही तुम्हारे देवता हैं, इसीलिये तुम्हें वैष्णवी कहते हैं। देवि! तुम जन्मसे लेकर मृत्युतक समस्त पापोंसे मेरी रक्षा करो! स्वर्ग, पृथ्वी और अन्तरिक्षमें कुल साढ़े तीन करोड़ तीर्थ हैं, यह वायु देवताका कथन है। माता जाह्नवी! वे सभी तीर्थ तुम्हारे भीतर मौजूद हैं। देवलोकमें तुम्हारा नाम नन्दिनी और नलिनी है। इनके सिवा दक्षा, पृथ्वी, सुभगा, विश्वकाया, शिवा, अमृता, विद्याधरी, महादेवी, लोकप्रसादिनी, क्षेमा, जाह्नवी, शान्ता और शान्तिप्रदायिनी आदि तुम्हारे अनेकों नाम हैं।'* जहाँ स्नानके समय इन पवित्र नामोंका कीर्तन होता है, वहाँ त्रिपथगामिनी भगवती गंगा उपस्थित हो जाती हैं।

सात बार उपर्युक्त नामोंका जप करके सम्पुटके आकारमें दोनों हाथोंको जोड़कर उनमें जल ले। तीन, चार, पाँच या सात बार मस्तकपर डाले; फिर विधिपूर्वक मृत्तिकाको अभिमन्त्रित करके अपने अंगोंमें लगाये। अभिमन्त्रित करनेका मन्त्र इस प्रकार है—

अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे।
मृत्तिके हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम्॥
उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना।
नमस्ते सर्वलोकानां प्रभवारणि सुव्रते॥

(२०। १५५, १५७)

'वसुन्धरे! तुम्हारे ऊपर अश्व और रथ चला करते हैं। भगवान् श्रीविष्णुने भी वामनरूपसे तुम्हें एक पैरसे नापा था। मृत्तिके! मैंने जो बुरे कर्म किये हों, मेरे उन सब पापोंको तुम हर लो। देवि! भगवान् श्रीविष्णुने सैकड़ों भुजाओंवाले वराहका रूप धारण करके तुम्हें जलसे बाहर निकाला था। तुम सम्पूर्ण लोकोंकी उत्पत्तिके लिये अरणीके समान हो। सुव्रते! तुम्हें मेरा नमस्कार है।'

---

* विष्णुपादप्रसूतासि वैष्णवी विष्णुदेवता। पाहि नस्त्वेनसस्तस्मादाजन्ममरणान्तिकात्॥
तिस्रः कोट्योऽर्द्धकोटी च तीर्थानां वायुरब्रवीत्। दिवि भूम्यन्तरिक्षे च तानि ते सन्ति जाह्नवि॥
नन्दिनीत्येव ते नाम देवेषु नलिनीति च। दक्षा पृथ्वी च सुभगा विश्वकाया शिवामृता॥
विद्याधरी महादेवी तथा लोकप्रसादिनी। क्षेमा च जाह्नवी चैव शान्ता शान्तिप्रदायिनी॥
(२०। १४९—१५२)

इस प्रकार मृत्तिका लगाकर पुनः स्नान करे। फिर विधिवत् आचमन करके उठे और शुद्ध सफेद धोती एवं चद्दर धारण कर त्रिलोकीको तृप्त करनेके लिये तर्पण करे। सबसे पहले ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और प्रजापतिका तर्पण करे। तत्पश्चात् देवता, यक्ष, नाग, गन्धर्व, श्रेष्ठ अप्सराएँ, क्रूर सर्प, गरुड़ पक्षी, वृक्ष, जम्भक आदि असुर, विद्याधर, मेघ, आकाशचारी जीव, निराधार जीव, पापी जीव तथा धर्मपरायण जीवोंको तृप्त करनेके लिये मैं जल देता हूँ—यह कहकर उन सबको जलांजलि दे।[१] देवताओंका तर्पण करते समय यज्ञोपवीतको बायें कंधेपर डाले रहे, तत्पश्चात् उसे गलेमें मालाकी भाँति कर ले और मनुष्यों, ऋषियों तथा ऋषिपुत्रोंका भक्तिपूर्वक तर्पण करे। 'सनक, सनन्दन, सनातन, कपिल, आसुरि, वोढु और पंचशिख—ये सभी मेरे दिये जलसे सदा तृप्त हों।' ऐसी भावना करके जल दे।[२] इसी प्रकार मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वसिष्ठ, भृगु, नारद तथा सम्पूर्ण देवर्षियों एवं ब्रह्मर्षियोंका अक्षतसहित जलके द्वारा तर्पण करे। इसके बाद यज्ञोपवीतको दायें कंधेपर करके बायें घुटनेको पृथ्वीपर टेककर बैठे; फिर अग्निष्वात्त, सौम्य, हविष्मान्, ऊष्मप, सुकाली, बर्हिषद् तथा आज्यप नामके पितरोंका तिल और चन्दनयुक्त जलसे भक्तिपूर्वक तर्पण करे। इसी प्रकार हाथोंमें कुश लेकर पवित्रभावसे परलोकवासी पिता, पितामह आदि और मातामह आदिका, नाम-गोत्रका उच्चारण करते हुए तर्पण करे। इस क्रमसे विधि और भक्तिके साथ सबका तर्पण करके निम्नांकित मन्त्रका उच्चारण करे—

येऽबान्धवा बान्धवा ये येऽन्यजन्मनि बान्धवाः॥
ते तृप्तिमखिला यान्तु येऽप्यस्मत्तोयकांक्षिणः।

(२०। १६९-१७०)

'जो लोग मेरे बान्धव न हों, जो मेरे बान्धव हों तथा जो दूसरे किसी जन्ममें मेरे बान्धव रहे हों, वे सब मेरे दिये हुए जलसे तृप्त हों। उनके सिवा और भी जो कोई प्राणी मुझसे जलकी अभिलाषा रखते हों, वे भी तृप्ति लाभ करें।' [ऐसा कहकर उनके उद्देश्यसे जल गिराये।]

तत्पश्चात् विधिपूर्वक आचमन करके अपने आगे पुष्प और अक्षतोंसे कमलकी आकृति बनाये। फिर यत्नपूर्वक सूर्यदेवके नामोंका उच्चारण करते हुए अक्षत, पुष्प और रक्तचन्दनमिश्रित जलसे अर्घ्य दे। अर्घ्यदानका मन्त्र इस प्रकार है—

नमस्ते विश्वरूपाय नमस्ते ब्रह्मरूपिणे।
सहस्त्ररश्मये नित्यं नमस्ते सर्वतेजसे॥
नमस्ते रुद्रवपुषे नमस्ते भक्तवत्सल।
पद्मनाभ नमस्तेऽस्तु कुण्डलांगदभूषित॥
नमस्ते सर्वलोकेषु सुप्तांस्तान् प्रतिबुध्यसे।
सुकृतं दुष्कृतं चैव सर्वं पश्यसि सर्वदा॥
सत्यदेव नमस्तेऽस्तु प्रसीद मम भास्कर।
दिवाकर नमस्तेऽस्तु प्रभाकर नमोऽस्तु ते॥

(२०। १७२—१७५)

'भगवान् सूर्य! आप विश्वरूप और ब्रह्मस्वरूप हैं, इन दोनों रूपोंमें आपको नमस्कार है। आप सहस्त्रों किरणोंसे सुशोभित और सबके तेजरूप हैं, आपको सदा नमस्कार है। भक्तवत्सल! रुद्ररूपधारी आप परमेश्वरको बारम्बार नमस्कार है। कुण्डल और अंगद आदि आभूषणोंसे विभूषित पद्मनाभ! आपको नमस्कार है। भगवन्! आप सम्पूर्ण लोकोंके सोये हुए जीवोंको जगाते हैं, आपको मेरा प्रणाम है। आप सदा सबके पाप-पुण्यको देखा करते हैं। सत्यदेव! आपको नमस्कार है। भास्कर! मुझपर प्रसन्न होइये। दिवाकर! आपको नमस्कार है। प्रभाकर! आपको नमस्कार है।'

१-देवा यक्षास्तथा नागा गन्धर्वाप्सरसां वराः॥
क्रूराः सर्पाः सुपर्णाश्च तरवो जम्भकादयः। विद्याधरा जलधरास्तथैवाकाशगामिनः॥
निराधाराश्च ये जीवा पापे धर्मे रताश्च ये। तेषामाप्यायनं चैव दीयते सलिलं मया॥
(२०। १५६—१५८)

२-सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः। कपिलश्चासुरिश्चैव वोढुः पंचशिखस्तथा॥
सर्वे ते तृप्तिमायान्तु मद्दत्तेनाम्बुना सदा। (२०। १६०—१६१)

इस प्रकार सूर्यदेवको नमस्कार करके तीन बार उनकी प्रदक्षिणा करे। फिर द्विज, गौ और सुवर्णका स्पर्श करके अपने घरमें जाय और वहाँ भगवान्‌की पावन प्रतिमाका पूजन करे। [तदनन्तर भगवान्‌को भोग लगाकर बलिवैश्वदेव करनेके पश्चात्] पहले ब्राह्मणोंको भोजन करा पीछे स्वयं भोजन करे। इस विधिसे नित्य-कर्म करके समस्त ऋषियोंने सिद्धि प्राप्त की है।

पुलस्त्यजी कहते हैं—राजन्! पूर्वकालकी बात है—बृहत् नामक कल्पमें धर्ममूर्ति नामके एक राजा थे, जिनकी इन्द्रके साथ मित्रता थी। उन्होंने सहस्रों दैत्योंका वध किया था। सूर्य और चन्द्रमा भी उनके तेजके सामने प्रभाहीन जान पड़ते थे। उन्होंने सैकड़ों शत्रुओंको परास्त किया था। वे इच्छानुसार रूप धारण कर सकते थे। मनुष्योंसे उनकी कभी पराजय नहीं हुई थी। उनकी पत्नीका नाम था भानुमती। वह त्रिभुवनमें सबसे सुन्दरी थी। उसने लक्ष्मीकी भाँति अपने रूपसे देवसुन्दरियोंको भी मात कर दिया था। भानुमती ही राजाकी पटरानी थी। वे उसे प्राणोंसे भी बढ़कर मानते थे। एक दिन राजसभामें बैठे हुए महाराज धर्ममूर्तिने विस्मय-विमुग्ध हो अपने पुरोहित मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठको प्रणाम करके पूछा—'भगवन्! किस धर्मके प्रभावसे मुझे सर्वोत्तम लक्ष्मीकी प्राप्ति हुई है? मेरे शरीरमें जो सदा उत्तम और विपुल तेज भरा रहता है—इसका क्या कारण है?'

वसिष्ठजीने कहा—राजन्! प्राचीन कालमें एक लीलावती नामकी वेश्या थी, जो सदा भगवान् शंकरके भजनमें तत्पर रहती थी। एक बार उसने पुष्करमें चतुर्दशीको नमकका पहाड़ बनाकर सोनेकी बनी देवप्रतिमाके साथ विधिपूर्वक दान किया था। शुद्ध नामका एक सुनार था, जो लीलावतीके घरमें नौकरका काम करता था। उसीने बड़ी श्रद्धाके साथ मुख्य-मुख्य देवताओंकी सुवर्णमयी प्रतिमाएँ बनायी थीं, जो देखनेमें अत्यन्त सुन्दर तथा शोभासम्पन्न थीं। धर्मका काम समझकर उसने उन प्रतिमाओंके बनानेकी मजदूरी नहीं ली थी। उस नमकके पर्वतपर जो सोनेके वृक्ष लगाये गये थे, उन्हें उस सुनारकी स्त्रीने तपाकर देदीप्यमान बना दिया था। [सुनारकी पत्नी भी लीलावतीके घर परिचारिकाका काम करती थी।] उन्हीं दोनोंने ब्राह्मणोंकी सेवासे लेकर सारा कार्य सम्पन्न किया था। तदनन्तर दीर्घ कालके पश्चात् लीलावती वेश्या सब पापोंसे मुक्त होकर शिवजीके धामको चली गयी तथा वह सुनार, जो दरिद्र होनेपर भी अत्यन्त सात्त्विक था और जिसने वेश्यासे मजदूरी नहीं ली थी, आप ही हैं। उसी पुण्यके प्रभावसे आप सातों द्वीपोंके स्वामी तथा हजारों सूर्योंके समान तेजस्वी हुए हैं। सुनारकी ही भाँति उसकी पत्नीने भी सोनेके वृक्षों और देवमूर्तियोंको कान्तिमान् बनाया था, इसलिये वही आपकी महारानी भानुमती हुई है। प्रतिमाओंको जगमग बनानेके कारण महारानीका रूप अत्यन्त सुन्दर हुआ है और उसी पुण्यके प्रभावसे आप मनुष्यलोकमें अपराजित हुए हैं तथा आपको आरोग्य और सौभाग्यसे युक्त राजलक्ष्मी प्राप्त हुई है; इसलिये आप भी विधिपूर्वक धान्य-पर्वत आदि दस प्रकारके पर्वत बनाकर उनका दान कीजिये।

पुलस्त्यजी कहते हैं—राजा धर्ममूर्तिने 'बहुत अच्छा' कहकर वसिष्ठजीके वचनोंका आदर किया और अनाज आदिके पर्वत बनाकर उन सबका विधिपूर्वक दान किया। तत्पश्चात् वे देवताओंसे पूजित होकर महादेवजीके परम धामको चले गये। जो मनुष्य इस प्रसंगका भक्तिपूर्वक श्रवण करता है, वह भी पापरहित हो स्वर्गलोकमें जाता है। राजन्! अन्नादि पर्वतोंके दानका पाठमात्र करनेसे दु:स्वप्नोंका नाश हो जाता है; फिर जो इस पुष्कर क्षेत्रमें शान्तचित्त होकर सब प्रकारके पर्वतोंका स्वयं दान करता है, उसको मिलनेवाले फलका क्या वर्णन हो सकता है।

भीमद्वादशी-व्रतका विधान

भीष्मजीने कहा—विप्रवर! भगवान् शंकरने जिन वैष्णव-धर्मोंका उपदेश किया है, उनका मुझसे वर्णन कीजिये। वे कैसे हैं और उनका फल क्या है?

पुलस्त्यजी बोले—राजन्! प्राचीन रथन्तर कल्पकी बात है, पिनाकधारी भगवान् शंकर मन्दराचलपर विराजमान थे। उस समय महात्मा ब्रह्माजीने स्वयं ही उनके पास जाकर पूछा—'परमेश्वर! थोड़ी-सी तपस्यासे मनुष्योंको मोक्षकी प्राप्ति कैसे हो सकती है?' ब्रह्माजीके इस प्रकार प्रश्न करनेपर जगत्की उत्पत्ति एवं वृद्धि करनेवाले विश्वात्मा उमानाथ शिव मनको प्रिय लगनेवाले वचन बोले।

महादेवजीने कहा—एक समय द्वारकाकी सभामें अमिततेजस्वी भगवान् श्रीकृष्ण वृष्णिवंशी पुरुषों, विद्वानों, कौरवों और देव-गन्धर्वोंके साथ बैठे हुए थे। धर्मसे सम्बन्ध रखनेवाली पौराणिक कथाएँ हो रही थीं। इसी समय भीमसेनने भगवान्से परमपदकी प्राप्तिके विषयमें पूछा। उनका प्रश्न सुनकर भगवान् श्रीवासुदेवने कहा—'भीम! मैं तुम्हें एक पापविनाशिनी तिथिका परिचय देता हूँ। उस दिन निम्नांकित विधिसे उपवास करके तुम श्रीविष्णुके परम धामको प्राप्त करो। जिस दिन माघ मासकी दशमी तिथि आये, उस दिन समस्त शरीरमें घी लगाकर तिलमिश्रित जलसे स्नान करे तथा '**ॐ नमो नारायणाय**' इस मन्त्रसे भगवान् श्रीविष्णुका पूजन करे। '**कृष्णाय नमः**' कहकर दोनों चरणोंकी और '**सर्वात्मने नमः**' कहकर मस्तककी पूजा करे। '**वैकुण्ठाय नमः**' इस मन्त्रसे कण्ठकी और '**श्रीवत्सधारिणे नमः**' इससे हृदयकी अर्चा करे। फिर '**शङ्खिने नमः**', '**चक्रिणे नमः**', '**गदिने नमः**', '**वरदाय नमः**' तथा '**सर्वं नारायणः**' (सब कुछ नारायण ही हैं)—ऐसा कहकर आवाहन आदिके क्रमसे भगवान्की पूजा करे। इसके बाद '**दामोदराय नमः**' कहकर उदरका, '**पञ्चजनाय नमः**' इस मन्त्रसे कमरका, '**सौभाग्यनाथाय नमः**' इससे दोनों जाँघोंका, '**भूतधारिणे नमः**' से दोनों घुटनोंका, '**नीलाय नमः**' इस मन्त्रसे पिण्डलियों (घुटनेसे नीचेके भाग)-का और '**विश्वसृजे नमः**' इससे पुनः दोनों चरणोंका पूजन करे। तत्पश्चात् '**देव्यै नमः**', '**शान्त्यै नमः**,' '**लक्ष्म्यै नमः**', '**श्रियै नमः**', '**तुष्ट्यै नमः**', '**पुष्ट्यै नमः**', '**व्युष्ट्यै नमः**'—इन मन्त्रोंसे भगवती लक्ष्मीकी पूजा करे। इसके बाद '**वायुवेगाय नमः**', '**पक्षिणे नमः**,' '**विषप्रमथनाय नमः**', '**विहङ्गनाथाय नमः**'—इन मन्त्रोंके द्वारा गरुड़की पूजा करनी चाहिये।

इसी प्रकार गन्ध, पुष्प, धूप तथा नाना प्रकारके पकवानोंद्वारा श्रीकृष्णकी, महादेवजीकी तथा गणेशजीकी भी पूजा करे। फिर गौके दूधकी बनी हुई खीर लेकर घीके साथ मौनपूर्वक भोजन करे। भोजनके अनन्तर विद्वान् पुरुष सौ पग चलकर बरगद अथवा खैरेकी दातुन ले उसके द्वारा दाँतोंको साफ करे; फिर मुँह धोकर आचमन करे। सूर्यास्त होनेके बाद उत्तराभिमुख बैठकर सायंकालकी सन्ध्या करे। उसके अन्तमें यह कहे—'भगवान् श्रीनारायणको नमस्कार है। भगवन्!

मैं आपकी शरणमें आया हूँ।'* [इस प्रकार प्रार्थना करके रात्रिमें शयन करे।]

दूसरे दिन एकादशीको निराहार रहकर भगवान् केशवकी पूजा करे और रातभर बैठा रहकर शेषशायी भगवान्‌की आराधना करे। फिर अग्निमें घीकी आहुति देकर प्रार्थना करे कि 'हे पुण्डरीकाक्ष! मैं द्वादशीको श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके साथ ही खीरका भोजन करूँगा। मेरा यह व्रत निर्विघ्नतापूर्वक पूर्ण हो।' यह कहकर इतिहास-पुराणकी कथा सुननेके पश्चात् शयन करे। सबेरा होनेपर नदीमें जाकर प्रसन्नतापूर्वक स्नान करे। पाखण्डियोंके संसर्गसे दूर रहे। विधिपूर्वक सन्ध्योपासन करके पितरोंका तर्पण करे। फिर शेषशायी भगवान्‌को प्रणाम करके घरके सामने भक्तिपूर्वक एक मण्डपका निर्माण कराये। उसके भीतर चार हाथकी सुन्दर वेदी बनवाये। वेदीके ऊपर दस हाथका तोरण लगाये। फिर सुदृढ़ खंभोंके आधारपर एक कलश रखे, उसमें नीचेकी ओर उड़दके दानेके बराबर छेद कर दे। तदनन्तर उसे जलसे भरे और स्वयं उसके नीचे काला मृगचर्म बिछाकर बैठ जाय। कलशसे गिरती हुई धाराको सारी रात अपने मस्तकपर धारण करे। वेदवेत्ता ब्राह्मणोंने धाराओंकी अधिकताके अनुपातसे फलमें भी अधिकता बतलायी है; इसलिये व्रत करनेवाले द्विजको चाहिये कि प्रयत्नपूर्वक उसे धारण करे। दक्षिण दिशाकी ओर अर्धचन्द्रके समान, पश्चिमकी ओर गोल तथा उत्तरकी ओर पीपलके पत्तेकी आकृतिका मण्डल बनवाये। वैष्णव द्विजको मध्यमें कमलके आकारका मण्डल बनवाना चाहिये। पूर्वकी ओर जो वेदीका स्थान है, उसके दक्षिण ओर भी एक दूसरी वेदी बनवाये। भगवान् श्रीविष्णुके ध्यानमें तत्पर हो पूर्वोक्त जलकी धाराको बराबर मस्तकपर धारण करता रहे। दूसरी वेदी भगवान्‌की स्थापनाके लिये हो। उसके ऊपर कर्णिकासहित कमलकी आकृति बनाये और उसके मध्यभागमें भगवान् पुरुषोत्तमको विराजमान करे। उनके निमित्त एक कुण्ड बनवाये, जो हाथभर लम्बा, उतना ही चौड़ा और उतना ही गहरा हो। उसके ऊपरी किनारेपर तीन मेखलाएँ बनवाये। उसमें यथास्थान योनि और मुखके चिह्न बनवाये। तदनन्तर ब्राह्मण [कुण्डमें अग्नि प्रज्वलित करके] जौ, घी और तिलोंका श्रीविष्णु-सम्बन्धी मन्त्रोंद्वारा हवन करे। इस प्रकार वहाँ विधि-पूर्वक वैष्णवयागका सम्पादन करे। फिर कुण्डके मध्यमें यत्नपूर्वक घीकी धारा गिराये, देवाधिदेव भगवान्‌के श्रीविग्रहपर दूधकी धारा छोड़े तथा अपने मस्तकपर पूर्वोक्त जलधाराको धारण करे। घीकी धारा मटरकी दालके बराबर मोटी होनी चाहिये। परन्तु दूध और जलकी धाराको अपनी इच्छाके अनुसार मोटी या पतली किया जा सकता है। ये धाराएँ रातभर अविच्छिन्न रूपसे गिरती रहनी चाहिये। फिर जलसे भरे हुए तेरह कलशोंकी स्थापना करे। वे नाना प्रकारके भक्ष्य पदार्थोंसे युक्त और श्वेत वस्त्रोंसे अलंकृत होने चाहिये। उनके साथ चँदोवा, उदुम्बर-पात्र तथा पंचरत्नका होना भी आवश्यक है। वहाँ चार ऋग्वेदी ब्राह्मण उत्तरकी ओर मुख करके हवन करें, चार यजुर्वेदी विप्र रुद्राध्यायका पाठ करें तथा चार सामवेदी ब्राह्मण वैष्णव-सामका गायन करते रहें। उपर्युक्त बारहों ब्राह्मणोंको वस्त्र, पुष्प, चन्दन, अँगूठी, कड़े, सोनेकी जंजीर, वस्त्र तथा शय्या आदि देकर उनका पूर्ण सत्कार करे। इस कार्यमें धनकी कृपणता न करे।

इस प्रकार गीत और मांगलिक शब्दोंके साथ रात्रि व्यतीत करे। उपाध्याय (आचार्य या पुरोहित)-को सब वस्तुएँ अन्य ब्राह्मणोंकी अपेक्षा दूनी मात्रामें अर्पण करे। रात्रिके बाद जब निर्मल प्रभातका उदय हो, तब शयनसे उठकर [नित्यकर्मके पश्चात्] तेरह गौएँ दान करनी चाहिये। उनके साथकी समस्त सामग्री सोनेकी होनी चाहिये। वे सब-की-सब दूध देनेवाली और सुशीला हों। उनके सींग सोनेसे और खुर चाँदीसे मँढ़े हुए हों तथा उन सबको वस्त्र ओढ़ाकर चन्दनसे विभूषित किया गया हो। गौओंके साथ काँसीका दोहनपात्र भी होना

* नमो नारायणायेति त्वामहं शरणं गतः॥

चाहिये। गोदानके पश्चात् ब्राह्मणोंको भक्तिपूर्वक भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंसे तृप्त करके नाना प्रकारके वस्त्र दान करे। फिर स्वयं भी क्षार लवणसे रहित अन्नका भोजन करके ब्राह्मणोंको विदा करे। पुत्र और स्त्रीके साथ आठ पगतक उनके पीछे-पीछे जाय और इस प्रकार प्रार्थना करे—'हमारे इस कार्यसे देवताओंके स्वामी भगवान् श्रीविष्णु, जो सबका क्लेश दूर करनेवाले हैं, प्रसन्न हों। श्रीशिवके हृदयमें श्रीविष्णु हैं और श्रीविष्णुके हृदयमें श्रीशिव विराजमान हैं। मैं इन दोनोंमें अन्तर नहीं देखता—इस धारणासे मेरा कल्याण हो।'* यह कहकर उन कलशों, गौओं, शय्याओं तथा वस्त्रोंको सब ब्राह्मणोंके घर पहुँचवा दे। अधिक शय्याएँ सुलभ न हों तो गृहस्थ पुरुष एक ही शय्याको सब सामानोंसे सुसज्जित करके दान करे। भीमसेन! वह दिन इतिहास और पुराणोंके श्रवणमें ही बिताना चाहिये। अतः तुम भी सत्त्वगुणका आश्रय ले, मात्सर्यका त्याग करके इस व्रतका अनुष्ठान करो। यह बहुत गुप्त व्रत है, किन्तु स्नेहवश मैंने तुम्हें बता दिया है। वीर! तुम्हारे द्वारा इसका अनुष्ठान होनेपर यह व्रत तुम्हारे ही नामसे प्रसिद्ध होगा। इसे लोग 'भीमद्वादशी' कहेंगे। यह भीमद्वादशी सब पापोंको हरनेवाली और शुभकारिणी होगी। प्राचीन कल्पोंमें इस व्रतको 'कल्याणिनी' व्रत कहा जाता था। इसका स्मरण और कीर्तनमात्र करनेसे देवराज इन्द्रका सारा पाप नष्ट हो गया था। इसीके अनुष्ठानसे मेरी प्रिया सत्यभामाने मुझे पतिरूपमें प्राप्त किया। इस कल्याणमयी तिथिको सूर्यदेवने सहस्रों धाराओंसे स्नान किया था, जिससे उन्हें तेजोमय शरीरकी प्राप्ति हुई। इन्द्रादि देवताओं तथा करोड़ों दैत्योंने भी इस व्रतका अनुष्ठान किया है। यदि एक मुखमें दस हजार करोड़ (एक खरब) जिह्वाएँ हों तो भी इसके फलका पूरा वर्णन नहीं किया जा सकता।

महादेवजी कहते हैं—ब्रह्मन्! कलियुगके पापोंको नष्ट करनेवाली एवं अनन्त फल प्रदान करनेवाली इस कल्याणमयी तिथिकी महिमाका वर्णन यादवराजकुमार भगवान् श्रीकृष्ण अपने श्रीमुखसे करेंगे। जो इसके व्रतका अनुष्ठान करता है, उसके नरकमें पड़े हुए पितरोंका भी यह उद्धार करनेमें समर्थ है। जो अत्यन्त भक्तिके साथ इस कथाको सुनता तथा दूसरोंके उपकारके लिये पढ़ता है, वह भगवान् श्रीविष्णुका भक्त और इन्द्रका भी पूज्य होता है। पूर्व कल्पमें जो माघ मासकी द्वादशी परम पूजनीय कल्याणिनी तिथिके नामसे प्रसिद्ध थी, वही पाण्डुनन्दन भीमसेनके व्रत करनेपर अनन्त पुण्यदायिनी 'भीमद्वादशी' के नामसे प्रसिद्ध होगी।

आदित्य-शयन और रोहिणी-चन्द्र-शयन-व्रत, तडागकी प्रतिष्ठा, वृक्षारोपणकी विधि तथा सौभाग्य-शयन-व्रतका वर्णन

भीष्मजीने पूछा—ब्रह्मन्! जो अभ्यास न होनेके कारण अथवा रोगवश उपवास करनेमें असमर्थ है, किन्तु उसका फल चाहता है, उसके लिये कौन-सा व्रत उत्तम है—यह बताइये।

पुलस्त्यजीने कहा—राजन्! जो लोग उपवास करनेमें असमर्थ हैं, उनके लिये वही व्रत अभीष्ट है, जिसमें दिनभर उपवास करके रात्रिमें भोजनका विधान हो; मैं ऐसे महान् व्रतका परिचय देता हूँ, सुनो। उस व्रतका नाम है—आदित्य-शयन। उसमें विधिपूर्वक भगवान् शंकरकी पूजा की जाती है। पुराणोंके ज्ञाता महर्षि जिन नक्षत्रोंके योगमें इस व्रतका उपदेश करते हैं, उन्हें बताता हूँ। जब सप्तमी तिथिको हस्त नक्षत्रके साथ

* प्रीयतामत्र देवेशः केशवः क्लेशनाशनः॥
शिवस्य हृदये विष्णुर्विष्णोश्च हृदये शिवः। यथान्तरं न पश्यामि तथा मे स्वस्ति चायुषः॥
(२३। ५९-६०)

रविवार हो अथवा सूर्यकी संक्रान्ति हो, वह तिथि समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाली होती है। उस दिन सूर्यके नामोंसे भगवती पार्वती और महादेवजीकी पूजा करनी चाहिये। सूर्यदेवकी प्रतिमा तथा शिवलिंगका भी भक्तिपूर्वक पूजन करना उचित है। हस्त नक्षत्रमें **'सूर्याय नमः'** का उच्चारण करके सूर्यदेवके चरणोंकी, चित्रा नक्षत्रमें **'अर्काय नमः'** कहकर उनके गुल्फों (घुट्टियों)-की, स्वाती नक्षत्रमें **'पुरुषोत्तमाय नमः'** से पिण्डलियोंकी, विशाखामें **'धात्रे नमः'** से घुटनोंकी तथा अनुराधामें **'सहस्त्रभानवे नमः'** से दोनों जाँघोंकी पूजा करनी चाहिये। ज्येष्ठा नक्षत्रमें **'अनङ्गाय नमः'**-से गुह्य प्रदेशकी, मूलमें **'इन्द्राय नमः'** और **'भीमाय नमः'** से कटिभागकी, पूर्वाषाढा और उत्तराषाढामें **'त्वष्ट्रे नमः'** और **'सप्ततुरङ्गमाय नमः'** से नाभिकी, श्रवणमें **'तीक्ष्णांशवे नमः'** से उदरकी, धनिष्ठामें **'विकर्तनाय नमः'** से दोनों बगलोंकी और शतभिषा नक्षत्रमें **'ध्वान्तविनाशनाय नमः'** से सूर्यके वक्षःस्थलकी पूजा करनी चाहिये। पूर्वा और उत्तराभाद्रपदामें **'चण्डकराय नमः'** से दोनों भुजाओंका, रेवतीमें **'साम्नामधीशाय नमः'** से दोनों हाथोंका, अश्विनीमें **'सप्ताश्वधुरन्धराय नमः'** से नखोंका और भरणीमें **'दिवाकराय नमः'** से भगवान् सूर्यके कण्ठका पूजन करे। कृत्तिकामें ग्रीवाकी, रोहिणीमें ओठोंकी, मृगशिरामें जिह्वाकी तथा आर्द्रामें **'हरये नमः'** से सूर्यदेवके दाँतोंकी अर्चना करे। पुनर्वसुमें **'सवित्रे नमः'** से शंकरजीकी नासिकाका, पुष्यमें **'अम्भोरुहवल्लभाय नमः'** से ललाटका तथा **'वेदशरीरधारिणे नमः'** से बालोंका, आश्लेषामें **'विबुधप्रियाय नमः'** से मस्तकका, मघामें दोनों कानोंका, पूर्वाफाल्गुनीमें **'गोब्राह्मणनन्दनाय नमः'** से शम्भुके सम्पूर्ण अंगोंका तथा उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें **'विश्वेश्वराय नमः'** से उनकी दोनों भौंहोंका पूजन करे। 'पाश, अंकुश, कमल, त्रिशूल, कपाल, सर्प, चन्द्रमा तथा धनुष धारण करनेवाले श्रीमहादेवजीको नमस्कार है।'[१] 'गयासुर, कामदेव, त्रिपुर और अन्धकासुर आदिके विनाशके मूल कारण भगवान् श्रीशिवको प्रणाम है।'[२] इत्यादि वाक्योंका उच्चारण करके प्रत्येक अंगकी पूजा करनेके पश्चात् **'विश्वेश्वराय नमः'** से भगवान्‌के मस्तकका पूजन करना चाहिये। तदनन्तर अन्न भोजन करना उचित है। भोजनमें तेल और खारे नमकका सम्पर्क नहीं रहना चाहिये। मांस और उच्छिष्ट अन्नका तो कदापि सेवन न करे।

राजन्! इस प्रकार रात्रिमें शुद्ध भोजन करके पुनर्वसु नक्षत्रमें दान करना चाहिये। किसी बर्तनमें एक सेर अगहनीका चावल, गूलरकी लकड़ीका पात्र तथा घृत रखकर सुवर्णके साथ उसे ब्राह्मणको दान करे। सातवें दिनके पारणमें और दिनोंकी अपेक्षा एक जोड़ा वस्त्र अधिक दान करना चाहिये। चौदहवें दिनके पारणमें गुड़, खीर और घृत आदिके द्वारा ब्राह्मणको भक्तिपूर्वक भोजन कराये। तदनन्तर कर्णिकासहित सोनेका अष्टदल कमल बनवाये, जो आठ अंगुलका हो तथा जिसमें पद्मरागमणि (नीलम)-की पत्तियाँ अंकित की गयी हों। फिर सुन्दर शय्या तैयार करावे, जिसपर सुन्दर बिछौने बिछाकर तकिया रखा गया हो और ऊपरसे चँदोवा तना हो। शय्याके ऊपर पंखा रखा गया हो। उसके आस-पास खड़ाऊँ, जूता, छत्र, चँवर, आसन और दर्पण रखे गये हों। फल, वस्त्र, चन्दन तथा आभूषणोंसे वह शय्या सुशोभित होनी चाहिये। ऊपर बताये हुए सोनेके कमलको उस शय्यापर रख दे। इसके बाद मन्त्रोच्चारणपूर्वक दूध देनेवाली अत्यन्त सीधी कपिला गौका दान करे। वह गौ उत्तम गुणोंसे सम्पन्न, वस्त्राभूषणोंसे सुशोभित और बछड़ेसहित होनी चाहिये। उसके खुर चाँदीसे और सींग सोनेसे मँढ़े होने चाहिये तथा उसके साथ काँसीकी दोहनी होनी चाहिये। दिनके पूर्व भागमें ही दान करना उचित है। समयका उल्लंघन

१-पाशांकुशपद्मशूलकपालसर्पेन्दुधनुर्धराय नमः।

२-गयासुरानङ्गपुरान्धकादिविनाशमूलाय नमः शिवाय।

कदापि नहीं करना चाहिये। शय्यादानके पश्चात् इस प्रकार प्रार्थना करे—'सूर्यदेव! जिस प्रकार आपकी शय्या कान्ति, धृति, श्री और पुष्टिसे कभी सूनी नहीं होती, वैसे ही मेरी भी वृद्धि हो। वेदोंके विद्वान् आपके सिवा और किसीको निष्पाप नहीं जानते, इसलिये आप सम्पूर्ण दुःखोंसे भरे हुए इस संसार-सागरसे मेरा उद्धार कीजिये।' इसके पश्चात् भगवान्की प्रदक्षिणा करके उन्हें प्रणाम करनेके अनन्तर विसर्जन करे। शय्या और गौ आदिको ब्राह्मणके घर पहुँचा दे।

भगवान् शंकरके इस व्रतकी चर्चा दुराचारी और दम्भी पुरुषके सामने नहीं करनी चाहिये। जो गौ, ब्राह्मण, देवता, अतिथि और धार्मिक पुरुषोंकी विशेषरूपसे निन्दा करता है, उसके सामने भी इसको प्रकट न करे। भगवान्के भक्त और जितेन्द्रिय पुरुषके समक्ष ही यह आनन्ददायी एवं कल्याणमय गूढ़ रहस्य प्रकाशित करनेके योग्य है। वेदवेत्ता पुरुषोंका कहना है कि यह व्रत महापातकी मनुष्योंके भी पापोंका नाश कर देता है। जो पुरुष इस व्रतका अनुष्ठान करता है, उसका बन्धु, पुत्र, धन और स्त्रीसे कभी वियोग नहीं होता तथा वह देवताओंका आनन्द बढ़ानेवाला माना जाता है। इसी प्रकार जो नारी भक्तिपूर्वक इस व्रतका पालन करती है, उसे कभी रोग, दुःख और मोहका शिकार नहीं होना पड़ता। प्राचीन कालमें महर्षि वसिष्ठ, अर्जुन, कुबेर तथा इन्द्रने इस व्रतका आचरण किया था। इस व्रतके कीर्तनमात्रसे सारे पाप नष्ट हो जाते हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। जो पुरुष इस आदित्यशयन नामक व्रतके माहात्म्य एवं विधिका पाठ या श्रवण करता है, वह इन्द्रका प्रियतम होता है तथा जो इस व्रतका अनुष्ठान करता है, वह नरकमें भी पड़े हुए समस्त पितरोंको स्वर्गलोकमें पहुँचा देता है।

भीष्मजीने कहा—मुने! अब आप चन्द्रमाके व्रतका वर्णन कीजिये।

पुलस्त्यजी बोले—राजन्! तुमने बड़ी उत्तम बात पूछी है। अब मैं तुम्हें वह गोपनीय व्रत बतलाता हूँ, जो अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाला है तथा जिसे पुराणवेत्ता विद्वान् ही जानते हैं। इस लोकमें 'रोहिणी-चन्द्र-शयन' नामक व्रत बड़ा ही उत्तम है। इसमें चन्द्रमाके नामोंद्वारा भगवान् नारायणकी प्रतिमाका पूजन करना चाहिये। जब कभी सोमवारके दिन पूर्णिमा तिथि हो अथवा पूर्णिमाको रोहिणी नक्षत्र हो, उस दिन मनुष्य सबेरे पंचगव्य और सरसोंके दानोंसे युक्त जलसे स्नान करे तथा विद्वान् पुरुष **'आप्यायस्व०'** इत्यादि मन्त्रको आठ सौ बार जपे। यदि शूद्र भी इस व्रतको करे तो अत्यन्त भक्तिपूर्वक **'सोमाय नमः'**, **'वरदाय नमः'**, **'विष्णवे नमः'**—इन मन्त्रोंका जप करे और पाखण्डियोंसे—विधर्मियोंसे बातचीत न करे। जप करनेके पश्चात् घर आकर फल-फूल आदिके द्वारा भगवान् श्रीमधुसूदनकी पूजा करे। साथ ही चन्द्रमाके नामोंका उच्चारण करता रहे। **'सोमाय शान्ताय नमः'** कहकर भगवान्के चरणोंका, **'अनन्तधाम्ने नमः'** का उच्चारण करके उनके घुटनों और पिण्डलियोंका, **'जलोदराय नमः'** से दोनों जाँघोंका, **'कामसुखप्रदाय नमः'** से चन्द्रस्वरूप भगवान्के कटिभागका, **'अमृतोदराय नमः'** से उदरका, **'शशाङ्काय नमः'** से नाभिका, **'चन्द्राय नमः'** से मुखमण्डलका, **'द्विजानामधिपाय नमः'** से दाँतोंका, **'चन्द्रमसे नमः'** से मुँहका, **'कौमोदवनप्रियाय नमः'** से ओठोंका, **'वनौषधीनामधिनाथाय नमः'** से नासिकाका, **'आनन्दबीजाय नमः'** से दोनों भौंहोंका, **'इन्दीवरव्यासकराय नमः'** से भगवान् श्रीकृष्णके कमल-सदृश नेत्रोंका, **'समस्तासुरवन्दिताय दैत्यनिषूदनाय नमः'** से दोनों कानोंका, **'उदधिप्रियाय नमः'** से चन्द्रमाके ललाटका, **'सुषुम्नाधिपतये नमः'** से केशोंका, **'शशाङ्काय नमः'** से मस्तकका और **'विश्वेश्वराय नमः'** से भगवान् मुरारिके किरीटका पूजन करे। फिर **'रोहिणीनामधेयलक्ष्मीसौभाग्यसौख्यामृत-सागराय पद्मश्रिये नमः'** (रोहिणी नाम धारण करने-वाली लक्ष्मीके सौभाग्य और सुखरूप अमृतके समुद्र तथा कमलकी-सी कान्तिवाले भगवान्को नमस्कार है)—इस मन्त्रका उच्चारण करके भगवान्के सामने

मस्तक झुकाये। तत्पश्चात् सुगन्धित पुष्प, नैवेद्य और धूप आदिके द्वारा इन्दुपत्नी रोहिणी देवीका भी पूजन करे।

इसके बाद रात्रिके समय भूमिपर शयन करे और सबेरे उठकर स्नानके पश्चात् **'पापविनाशाय नमः'** का उच्चारण करके ब्राह्मणको घृत और सुवर्णसहित जलसे भरा कलश दान करे। फिर दिनभर उपवास करनेके पश्चात् गोमूत्र पीकर मांसवर्जित एवं खारे नमकसे रहित अन्नके इकतीस ग्रास घीके साथ भोजन करे। तदनन्तर दो घड़ीतक इतिहास, पुराण आदिका श्रवण करे। राजन्! चन्द्रमाको कदम्ब, नील कमल, केवड़ा, जाती पुष्प, कमल, शतपत्रिका, बिना कुम्हलाये कुब्जके फूल, सिन्दुवार, चमेली, अन्यान्य श्वेत पुष्प, करवीर तथा चम्पा—ये ही फूल चढ़ाने चाहिये। उपर्युक्त फूलोंकी जातियोंमेंसे एक-एकको श्रावण आदि महीनोंमें क्रमशः अर्पण करे। जिस महीनेमें व्रत शुरू किया जाय, उस समय जो भी पुष्प सुलभ हों, उन्हींके द्वारा श्रीहरिका पूजन करना चाहिये।

इस प्रकार एक वर्षतक इस व्रतका विधिवत् अनुष्ठान करके समाप्तिके समय शयनोपयोगी सामग्रियोंके साथ शय्यादान करे। रोहिणी और चन्द्रमाकी सुवर्णमयी मूर्ति बनवाये। उनमें चन्द्रमा छः अंगुलके और रोहिणी चार अंगुलकी होनी चाहिये। आठ मोतियोंसे युक्त श्वेत नेत्रोंवाली उन प्रतिमाओंको अक्षतसे भरे हुए काँसीके पात्रमें रखकर दुग्धपूर्ण कलशके ऊपर स्थापित कर दे। फिर वस्त्र और दोहनीके साथ दूध देनेवाली गौ, शंख तथा पात्र प्रस्तुत करे। उत्तम गुणोंसे युक्त ब्राह्मण-दम्पतीको बुलाकर उन्हें आभूषणोंसे अलंकृत करे तथा मनमें यह भावना रखे कि ब्राह्मण-दम्पतीके रूपमें ये रोहिणीसहित चन्द्रमा ही विराजमान हैं। तत्पश्चात् इनकी इस प्रकार प्रार्थना करे—'चन्द्रदेव! आप ही सबको परम आनन्द और मुक्ति प्रदान करनेवाले हैं। आपकी कृपासे मुझे भोग और मोक्ष दोनों प्राप्त हों।' [इस प्रकार विनय करके शय्या, प्रतिमा तथा धेनु आदि सब कुछ ब्राह्मणको दान कर दे।]

राजन्! जो संसारसे भयभीत होकर मोक्ष पानेकी इच्छा रखता है, उसके लिये यही एक व्रत सर्वोत्तम है। यह रूप और आरोग्य प्रदान करनेवाला है। यही पितरोंको सर्वदा प्रिय है। जो इसका अनुष्ठान करता है वह त्रिभुवनका अधिपति होकर इक्कीस सौ कल्पोंतक चन्द्र-लोकमें निवास करता है। उसके बाद विद्युत् होकर मुक्त हो जाता है। चन्द्रमाके नाम-कीर्तनद्वारा भगवान् श्रीमधुसूदनकी पूजाका यह प्रसंग जो पढ़ता अथवा सुनता है, उसे भगवान् उत्तम बुद्धि प्रदान करते हैं तथा वह भगवान् श्रीविष्णुके धाममें जाकर देवसमूहके द्वारा पूजित होता है।

भीष्मजीने कहा—ब्रह्मन्! अब मुझे तालाब, बगीचा, कुआँ, बावली, पुष्करिणी तथा देवमन्दिरकी प्रतिष्ठा आदिका विधान बतलाइये।

पुलस्त्यजी बोले—महाबाहो! सुनो; तालाब आदिकी प्रतिष्ठाका जो विधान है, उसका इतिहास-पुराणोंमें इस प्रकार वर्णन है। उत्तरायण आनेपर शुभ शुक्लपक्षमें ब्राह्मणद्वारा कोई पवित्र दिन निश्चित करा ले। उस दिन ब्राह्मणोंका वरण करे और तालाबके समीप, जहाँ कोई अपवित्र वस्तु न हो, चार हाथ लम्बी और उतनी ही चौड़ी चौकोर वेदी बनाये। वेदी सब ओर समतल हो और चारों दिशाओंमें उसका मुख हो। फिर सोलह हाथका मण्डप तैयार कराये। जिसके चारों ओर एक-एक दरवाजा हो। वेदीके सब ओर कुण्डोंका निर्माण कराये। कुण्डोंकी संख्या नौ, सात या पाँच होनी चाहिये। कुण्डोंकी लम्बाई-चौड़ाई एक-एक रत्निकी[1] हो तथा वे सभी तीन-तीन मेखलाओंसे सुशोभित हों। उनमें यथास्थान योनि और मुख भी बने होने चाहिये। योनिकी लम्बाई एक बित्ता और चौड़ाई छः-सात अंगुलकी हो। मेखलाएँ तीन पर्व[2] ऊँची और एक हाथ लम्बी होनी

१-कोहनीसे लेकर मुट्ठी बँधे हुए हाथतककी लम्बाईको 'रत्नि' या 'अरत्नि' कहते हैं।

२-अँगुलियोंके पोरको 'पर्व' कहते हैं।

चाहिये। वे चारों ओरसे एक समान—एक रंगकी बनी हों। सबके समीप ध्वजा और पताकाएँ लगायी जायँ। मण्डपके चारों ओर क्रमशः पीपल, गूलर, पाकड़ और बरगदकी शाखाओंके दरवाजे बनाये जायँ। वहाँ आठ होता, आठ द्वारपाल तथा आठ जप करनेवाले ब्राह्मणोंका वरण किया जाय। वे सभी ब्राह्मण वेदोंके पारगामी विद्वान् होने चाहिये। सब प्रकारके शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न, मन्त्रोंके ज्ञाता, जितेन्द्रिय, कुलीन, शीलवान् एवं श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको ही इस कार्यमें नियुक्त करना चाहिये। प्रत्येक कुण्डके पास कलश, यज्ञ-सामग्री, निर्मल आसन और दिव्य एवं विस्तृत ताम्रपात्र प्रस्तुत रहें।

तदनन्तर प्रत्येक देवताके लिये नाना प्रकारकी बलि (दही, अक्षत आदि उत्तम भक्ष्य पदार्थ) उपस्थित करे। विद्वान् आचार्य मन्त्र पढ़कर उन सामग्रियोंके द्वारा पृथ्वीपर सब देवताओंके लिये बलि समर्पण करे। अरत्निके बराबर एक यूप (यज्ञस्तम्भ) स्थापित किया जाय, जो किसी दूधवाले वृक्षकी शाखाका बना हुआ हो। ऐश्वर्य चाहनेवाले पुरुषको यजमानके शरीरके बराबर ऊँचा यूप स्थापित करना चाहिये। उसके बाद पचीस ऋत्विजोंका वरण करके उन्हें सोनेके आभूषणोंसे विभूषित करे। सोनेके बने कुण्डल, बाजूबंद, कड़े, अँगूठी, पवित्री तथा नाना प्रकारके वस्त्र—ये सभी आभूषण प्रत्येक ऋत्विज्को बराबर-बराबर दे और आचार्यको दूना अर्पण करे। इसके सिवा उन्हें शय्या तथा अपनेको प्रिय लगनेवाली अन्यान्य वस्तुएँ भी प्रदान करे। सोनेका बना हुआ कछुआ और मगर, चाँदीके मत्स्य और दुन्दुभ, ताँबेके केंकड़ा और मेढक तथा लोहेके दो सूँस बनवाकर सबको सोनेके पात्रमें रखे। इसके बाद यजमान वेदज्ञ विद्वानोंकी बतायी हुई विधिके अनुसार सर्वौषधि-मिश्रित जलसे स्नान करके श्वेत वस्त्र और श्वेत माला धारण करे। फिर श्वेत चन्दन लगाकर पत्नी और पुत्र-पौत्रोंके साथ पश्चिमद्वारसे यज्ञ-मण्डपमें प्रवेश करे। उस समय मांगलिक शब्द होने चाहिये और भेरी आदि बाजे बजने चाहिये।

तदनन्तर विद्वान् पुरुष पाँच रंगके चूर्णोंसे मण्डल बनाये और उसमें सोलह अरोंसे युक्त चक्र चिह्नित करे। उसके गर्भमें कमलका आकार बनाये। चक्र देखनेमें सुन्दर और चौकोर हो। चारों ओरसे गोल होनेके साथ ही मध्यभागमें अधिक शोभायमान जान पड़ता हो। उस चक्रको वेदीके ऊपर स्थापित करके उसके चारों ओर प्रत्येक दिशामें मन्त्र-पाठपूर्वक ग्रहों और लोकपालोंकी स्थापना करे। फिर मध्यभागमें वरुण-सम्बन्धी मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए एक कलश स्थापित करे और उसीके ऊपर ब्रह्मा, शिव, विष्णु, गणेश, लक्ष्मी तथा पार्वतीकी भी स्थापना करे। इसके पश्चात् सम्पूर्ण लोकोंकी शान्तिके लिये भूतसमुदायको स्थापित करे। इस प्रकार पुष्प, चन्दन और फलोंके द्वारा सबकी स्थापना करके कलशोंके भीतर पंचरत्न छोड़कर उन्हें वस्त्रोंसे आवेष्टित कर दे। फिर पुष्प और चन्दनके द्वारा उन्हें अलंकृत करके द्वार-रक्षाके लिये नियुक्त ब्राह्मणोंसे वेदपाठ करनेके लिये कहे और स्वयं आचार्यका पूजन करे। पूर्वद्वारकी ओर दो ऋग्वेदी, दक्षिणद्वारपर दो यजुर्वेदी, पश्चिमद्वारपर दो सामवेदी तथा उत्तरद्वारपर दो अथर्ववेदी विद्वानोंको रखना चाहिये। यजमान मण्डलके दक्षिण-भागमें उत्तराभिमुख होकर बैठे और द्वार-रक्षक विद्वानोंसे कहे—'आपलोग वेदपाठ करें।' फिर यज्ञ करानेवाले आचार्यसे कहे—'आप यज्ञ प्रारम्भ करायें।' तत्पश्चात् जप करनेवाले ब्राह्मणोंसे कहे—'आपलोग उत्तम मन्त्रका जप करते रहें।' इस प्रकार सबको प्रेरित करके मन्त्रज्ञ पुरुष अग्निको प्रज्वलित करे तथा मन्त्र-पाठपूर्वक घी और समिधाओंकी आहुति दे। ऋत्विजोंको भी वरुण-सम्बन्धी मन्त्रोंद्वारा सब ओरसे हवन करना चाहिये। ग्रहोंके निमित्त विधिवत् आहुति देकर उस यज्ञकर्ममें इन्द्र, शिव, मरुद्गण और लोकपालोंके निमित्त भी विधिपूर्वक होम करे।

पूर्वद्वारपर नियुक्त ऋग्वेदी ब्राह्मण शान्ति, रुद्र, पवमान, सुमंगल तथा पुरुषसम्बन्धी सूक्तोंका पृथक्-पृथक् जप करे। दक्षिणद्वारपर स्थित यजुर्वेदी विद्वान् इन्द्र, रुद्र, सोम, कूष्माण्ड, अग्नि तथा सूर्य-सम्बन्धी

सूक्तोंका जप करे। पश्चिमद्वारपर रहनेवाले सामवेदी ब्राह्मण वैराजसाम, पुरुषसूक्त, सुपर्णसूक्त, रुद्रसंहिता, शिशुसूक्त, पंचनिधनसूक्त, गायत्रसाम, ज्येष्ठसाम, वामदेव्यसाम, बृहत्साम, रौरवसाम, रथन्तरसाम, गोव्रत, विकीर्ण, रक्षोघ्न और यम-सम्बन्धी सामोंका गान करें। उत्तरद्वारके अथर्ववेदी विद्वान् मन-ही-मन भगवान् वरुणदेवकी शरण ले शान्ति और पुष्टि-सम्बन्धी मन्त्रोंका जप करें। इस प्रकार पहले दिन मन्त्रोंद्वारा देवताओंकी स्थापना करके हाथी और घोड़ेके पैरोंके नीचेकी, जिसपर रथ चलता हो—ऐसी सड़ककी, बाँबीकी, दो नदियोंके संगमकी, गोशालाकी तथा साक्षात् गौओंके पैरके नीचेकी मिट्टी लेकर कलशोंमें छोड़ दे। उसके बाद सर्वौषधि, गोरोचन, सरसोंके दाने, चन्दन और गूगल भी छोड़े। फिर पंचगव्य (दधि, दूध, घी, गोबर और गोमूत्र) मिलाकर उन कलशोंके जलसे यजमानका विधिपूर्वक अभिषेक करे। अभिषेकके समय विद्वान् पुरुष वेदमन्त्रोंका पाठ करते रहें।

इस प्रकार शास्त्रविहित कर्मके द्वारा रात्रि व्यतीत करके निर्मल प्रभातका उदय होनेपर हवनके अन्तमें ब्राह्मणोंको सौ, पचास, छत्तीस अथवा पचीस गौ दान करे। तदनन्तर शुद्ध एवं सुन्दर लग्न आनेपर वेदपाठ, संगीत तथा नाना प्रकारके बाजोंकी मनोहर ध्वनिके साथ एक गौको सुवर्णसे अलंकृत करके तालाबके जलमें उतारे और उसे सामगान करनेवाले ब्राह्मणको दान कर दे। तत्पश्चात् पंचरत्नोंसे युक्त सोनेका पात्र लेकर उसमें पूर्वोक्त मगर और मछली आदिको रखे और उसे किसी बड़ी नदीसे मँगाये हुए जलसे भर दे। फिर उस पात्रको दही-अक्षतसे विभूषित करके वेद और वेदांगोंके विद्वान् चार ब्राह्मण हाथसे पकड़ें और यजमानकी प्रेरणासे उसे उत्तराभिमुख उलटकर तालाबके जलमें डाल दें। इस प्रकार **'आपो मयो०'** इत्यादि मन्त्रके द्वारा उसे जलमें डालकर पुनः सब लोग यज्ञ-मण्डपमें आ जायँ और यजमान सदस्योंकी पूजा करके सब ओर देवताओंके उद्देश्यसे बलि अर्पण करे। इसके बाद लगातार चार दिनोंतक हवन होना चाहिये। चौथे दिन चतुर्थी-कर्म करना उचित है। उसमें भी यथाशक्ति दक्षिणा देनी चाहिये। चतुर्थी-कर्म पूर्ण करके यज्ञ-सम्बन्धी जितने पात्र और सामग्री हों, उन्हें ऋत्विजोंमें बराबर बाँट देना चाहिये। फिर मण्डपको भी विभाजित करे। सुवर्णपात्र और शय्या किसी ब्राह्मणको दान कर दे। इसके बाद अपनी शक्तिके अनुसार हजार, एक सौ आठ, पचास अथवा बीस ब्राह्मणोंको भोजन कराये। पुराणोंमें तालाबकी प्रतिष्ठाके लिये यही विधि बतलायी गयी है। कुआँ, बावली और पुष्करिणीके लिये भी यही विधि है। देवताओंकी प्रतिष्ठामें भी ऐसा ही विधान समझना चाहिये। मन्दिर और बगीचे आदिके प्रतिष्ठा-कार्यमें केवल मन्त्रोंका ही भेद है। विधि-विधान प्रायः एक-से ही हैं। उपर्युक्त विधिका यदि पूर्णतया पालन करनेकी शक्ति न हो तो आधे व्ययसे भी यह कार्य सम्पन्न हो सकता है। यह बात ब्रह्माजीने कही है।

जिस पोखरेमें केवल वर्षाकालमें ही जल रहता है, वह सौ अग्निष्टोम यज्ञोंके बराबर फल देनेवाला होता है। जिसमें शरत्कालतक जल रहता हो, उसका भी यही फल है। हेमन्त और शिशिरकालतक रहनेवाला जल क्रमशः वाजपेय और अतिरात्र नामक यज्ञका फल देता है। वसन्तकालतक टिकनेवाले जलको अश्वमेध यज्ञके समान फलदायक बतलाया गया है तथा जो जल ग्रीष्मकालतक मौजूद रहता है, वह राजसूय यज्ञसे भी अधिक फल देनेवाला होता है।

महाराज! जो मनुष्य पृथ्वीपर इन विशेष धर्मोंका पालन करता है—विधिपूर्वक कुआँ, बावली, पोखरा आदि खुदवाता है तथा मन्दिर, बगीचा आदि बनवाता है, वह शुद्धचित्त होकर ब्रह्माजीके लोकमें जाता है और वहाँ अनेकों कल्पोंतक दिव्य आनन्दका अनुभव करता है। दो परार्द्ध (ब्रह्माजीकी आयु) तक वहाँका सुख भोगनेके पश्चात् ब्रह्माजीके साथ ही योगबलसे श्रीविष्णुके परमपदको प्राप्त होता है।

भीष्मजीने कहा—ब्रह्मन्! अब आप मुझे विस्तारके साथ वृक्ष लगानेकी यथार्थ विधि बतलाइये। विद्वानोंको किस विधिसे वृक्ष लगाने चाहिये?

पुलस्त्यजी बोले—राजन्! बगीचेमें वृक्षोंके लगानेकी विधि मैं तुम्हें बतलाता हूँ। तालाबकी प्रतिष्ठाके विषयमें जो विधान बतलाया गया है, उसीके समान सारी विधि पूर्ण करके वृक्षके पौधोंको सर्वौषधि-मिश्रित जलसे सींचे। फिर उनके ऊपर दही और अक्षत छोड़े। उसके बाद उन्हें पुष्प-मालाओंसे अलंकृत करके वस्त्रमें लपेट दे। वहाँ गूगलका धूप देना श्रेष्ठ माना गया है। वृक्षोंको पृथक्-पृथक् ताम्रपात्रमें रखकर उन्हें सप्तधान्यसे आवृत करे तथा उनके ऊपर वस्त्र और चन्दन चढ़ाये। फिर प्रत्येक वृक्षके पास कलश स्थापन करके उन कलशोंकी पूजा करे और रातमें द्विजातियोंद्वारा इन्द्रादि लोकपालों तथा वनस्पतिका विधिवत् अधिवास कराये। तदनन्तर दूध देनेवाली एक गौको लाकर उसे श्वेत वस्त्र ओढ़ाये। उसके मस्तकपर सोनेकी कलगी लगाये, सींगोंको सोनेसे मँढ़ा दे। उसको दुहनेके लिये काँसेकी दोहनी प्रस्तुत करे। इस प्रकार अत्यन्त शोभासम्पन्न उस गौको उत्तराभिमुख खड़ी करके वृक्षोंके बीचसे छोड़े। तत्पश्चात् श्रेष्ठ ब्राह्मण बाजों और मंगलगीतोंकी ध्वनिके साथ अभिषेकके मन्त्र—तीनों वेदोंकी वरुणसम्बन्धिनी ऋचाएँ पढ़ते हुए उक्त कलशोंके जलसे यजमानका अभिषेक करें। अभिषेकके पश्चात् नहाकर यज्ञकर्ता पुरुष श्वेत वस्त्र धारण करे और अपनी सामर्थ्यके अनुसार गौ, सोनेकी जंजीर, कड़े, अँगूठी, पवित्री, वस्त्र, शय्या, शय्योपयोगी सामान तथा चरणपादुका देकर एकाग्र चित्तवाले सम्पूर्ण ऋत्विजोंका पूजन करे। इसके बाद चार दिनोंतक दूधसे अभिषेक तथा घी, जौ और काले तिलोंसे होम करे। होममें पलाश (ढाक)-की लकड़ी उत्तम मानी गयी है। वृक्षारोपणके पश्चात् चौथे दिन विशेष उत्सव करे। उसमें अपनी शक्तिके अनुसार पुनः दक्षिणा दे। जो-जो वस्तु अपनेको अधिक प्रिय हो, ईर्ष्या छोड़कर उसका दान करे। आचार्यको दूनी दक्षिणा दे तथा प्रणाम करके यज्ञकी समाप्ति करे।

जो विद्वान् उपर्युक्त विधिसे वृक्षारोपणका उत्सव करता है, उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण होती हैं तथा वह अक्षय फलका भागी होता है। राजेन्द्र! जो इस प्रकार वृक्षकी प्रतिष्ठा करता है, वह जबतक तीस हजार इन्द्र समाप्त हो जाते हैं, तबतक स्वर्गलोकमें निवास करता है। उसके शरीरमें जितने रोम होते हैं, अपने पहले और पीछेकी उतनी ही पीढ़ियोंका वह उद्धार कर देता है तथा उसे पुनरावृत्तिसे रहित परम सिद्धि प्राप्त होती है। जो मनुष्य प्रतिदिन इस प्रसंगको सुनता या सुनाता है, वह भी देवताओंद्वारा सम्मानित और ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है। वृक्ष पुत्रहीन पुरुषको पुत्रवान् होनेका फल देते हैं। इतना ही नहीं, वे अधिदेवतारूपसे तीर्थोंमें जाकर वृक्ष लगानेवालोंको पिण्ड भी देते हैं। अतः भीष्म! तुम यत्नपूर्वक पीपलके वृक्ष लगाओ। वह अकेला ही तुम्हें एक हजार पुत्रोंका फल देगा। पीपलका पेड़ लगानेसे मनुष्य धनी होता है। अशोक शोकका नाश करनेवाला है। पाकड़ यज्ञका फल देनेवाला बताया गया है। नीमका वृक्ष आयु प्रदान करनेवाला माना गया है। जामुन कन्या देनेवाला कहा गया है। अनारका वृक्ष पत्नी प्रदान करता है। पीपल रोगका नाशक और पलाश ब्रह्मतेज प्रदान करनेवाला है। जो मनुष्य बहेड़ेका वृक्ष लगाता है, वह प्रेत होता है। अंकोल लगानेसे वंशकी वृद्धि होती है। खैरका वृक्ष लगानेसे आरोग्यकी प्राप्ति होती है। नीम लगानेवालोंपर भगवान् सूर्य प्रसन्न होते हैं। बेलके वृक्षमें भगवान् शंकरका और गुलाबके पेड़में देवी पार्वतीका निवास है। अशोक वृक्षमें अप्सराएँ और कुन्द (मोगरे)-के पेड़में श्रेष्ठ गन्धर्व निवास करते हैं। बेंतका वृक्ष लुटेरोंको भय प्रदान करनेवाला है। चन्दन और कटहलके वृक्ष क्रमशः पुण्य और लक्ष्मी देनेवाले हैं। चम्पाका वृक्ष सौभाग्य प्रदान करता है। ताड़का वृक्ष सन्तानका नाश करनेवाला है। मौलसिरीसे कुलकी वृद्धि होती है। नारियल लगानेवाला अनेक स्त्रियोंका पति होता है। दाखका पेड़ सर्वांगसुन्दरी स्त्री प्रदान करनेवाला है। केवड़ा शत्रुका नाश करनेवाला है। इसी प्रकार अन्यान्य वृक्ष भी जिनका यहाँ नाम नहीं लिया गया है, यथायोग्य फल प्रदान करते हैं। जो लोग वृक्ष लगाते हैं, उन्हें [परलोकमें] प्रतिष्ठा प्राप्त होती है।

पुलस्त्यजी कहते हैं—राजन्! इसी प्रकार एक दूसरा व्रत बतलाता हूँ, जो समस्त मनोवांछित फलोंको देनेवाला है। उसका नाम है—सौभाग्यशयन। इसे पुराणोंके विद्वान् ही जानते हैं। पूर्वकालमें जब भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक तथा महर्लोक आदि सम्पूर्ण लोक दग्ध हो गये, तब समस्त प्राणियोंका सौभाग्य एकत्रित होकर वैकुण्ठमें जा भगवान् श्रीविष्णुके वक्षःस्थलमें स्थित हो गया। तदनन्तर दीर्घकालके पश्चात् जब पुनः सृष्टि-रचनाका समय आया, तब प्रकृति और पुरुषसे युक्त सम्पूर्ण लोकोंके अहंकारसे आवृत हो जानेपर श्रीब्रह्माजी तथा भगवान् श्रीविष्णुमें स्पर्धा जाग्रत् हुई। उस समय एक पीले रंगकी भयंकर अग्निज्वाला प्रकट हुई। उससे भगवान्का वक्षःस्थल तप उठा, जिससे वह सौभाग्यपुंज वहाँसे गलित हो गया। श्रीविष्णुके वक्षःस्थलका वह सौभाग्य अभी रसरूप होकर धरतीपर गिरने नहीं पाया था कि ब्रह्माजीके बुद्धिमान् पुत्र दक्षने उसे आकाशमें ही रोककर पी लिया। दक्षके पीते ही वह अद्भुत रूप और लावण्य प्रदान करनेवाला सिद्ध हुआ। प्रजापति दक्षका बल और तेज बहुत बढ़ गया। उनके पीनेसे बचा हुआ जो अंश पृथ्वीपर गिर पड़ा, वह आठ भागोंमें बँट गया। उनमेंसे सात भागोंसे सात सौभाग्यदायिनी ओषधियाँ उत्पन्न हुईं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—ईख, तरुराज, निष्पाव, राजधान्य (शालि या अगहनी), गोक्षीर (क्षीरजीरक), कुसुम्भ और कुसुम। आठवाँ नमक है। इन आठोंकी सौभाग्याष्टक संज्ञा कहते हैं।

योग और ज्ञानके तत्त्वको जाननेवाले ब्रह्मपुत्र दक्षने पूर्वकालमें जिस सौभाग्य-रसका पान किया था, उसके अंशसे उन्हें सती नामकी एक कन्या उत्पन्न हुई। नील कमलके समान मनोहर शरीरवाली वह कन्या लोकमें ललिताके नामसे भी प्रसिद्ध है। पिनाकधारी भगवान् शंकरने उस त्रिभुवनसुन्दरी देवीके साथ विवाह किया। सती तीनों लोकोंकी सौभाग्यरूपा हैं। वे भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली हैं। उनकी आराधना करके नर या नारी क्या नहीं प्राप्त कर सकती।

भीष्मजीने पूछा—मुने! जगद्धात्री सतीकी आराधना कैसे की जाती है? जगत्की शान्तिके लिये जो विधान हो, वह मुझे बतानेकी कृपा कीजिये।

पुलस्त्यजी बोले—चैत्र मासके शुक्लपक्षकी तृतीयाको दिनके पूर्व भागमें मनुष्य तिलमिश्रित जलसे स्नान करे। उस दिन परम सुन्दरी भगवती सतीका विश्वात्मा भगवान् शंकरके साथ वैवाहिक मन्त्रोंद्वारा विवाह हुआ था; अतः तृतीयाको सती देवीके साथ ही भगवान् शंकरका भी पूजन करे। पंचगव्य तथा चन्दन-मिश्रित जलके द्वारा गौरी और भगवान् चन्द्रशेखरकी प्रतिमाको स्नान कराकर धूप, दीप, नैवेद्य तथा नाना प्रकारके फलोंद्वारा उन दोनोंकी पूजा करनी चाहिये। **'पार्वतीदेव्यै नमः', 'शिवाय नमः'** इन मन्त्रोंसे क्रमशः पार्वती और शिवके चरणोंका; **'जयायै नमः', 'शिवाय नमः'** से दोनोंकी घुट्टियोंका; **'त्र्यम्बकाय नमः', 'भवान्यै नमः'** से पिण्डलियोंका; **'भद्रेश्वराय नमः', 'विजयायै नमः'** से घुटनोंका; **'हरिकेशाय नमः', 'वरदायै नमः'** से जाँघोंका; **'ईशाय शङ्कराय नमः', 'रत्यै नमः'** से दोनोंके कटिभागका; **'कोटिन्यै नमः', 'शूलिने नमः'** से कुक्षिभागका; **'शूलपाणये नमः', 'मंगलायै नमः'** से उदरका; **'सर्वात्मने नमः', 'ईशान्यै नमः'** से दोनों स्तनोंका; **'चिदात्मने नमः', 'रुद्राण्यै नमः'** से कण्ठका; **'त्रिपुरघ्नाय नमः', 'अनन्तायै नमः'** से दोनों हाथोंका; **'त्रिलोचनाय नमः', 'कालानलप्रियायै नमः'** से बाँहोंका; **'सौभाग्यभवनाय नमः'** से आभूषणोंका; **'स्वधायै नमः', 'ईश्वराय नमः'** से दोनोंके मुखमण्डलका; **'अशोकवनवासिन्यै नमः'**—इस मन्त्रसे ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले ओठोंका; **'स्थाणवे नमः', 'चन्द्रमुखप्रियायै नमः'** से मुँहका; **'अर्द्धनारीश्वराय नमः', 'असिताङ्ग्यै नमः'** से नासिकाका; **'उग्राय नमः', 'ललितायै नमः'** से दोनों भौंहोंका; **'शर्वाय नमः', 'वासुदेव्यै नमः'** से केशोंका; **'श्रीकण्ठनाथाय नमः'** से केवल शिवके बालोंका तथा **'भीमोग्ररूपिण्यै नमः', 'सर्वात्मने नमः'** से दोनोंके मस्तकोंका पूजन करे। इस प्रकार शिव और पार्वतीकी

विधिवत् पूजा करके उनके आगे सौभाग्याष्टक रखे। निष्पाव, कुसुम्भ, क्षीरजीरक, तरुराज, इक्षु, लवण, कुसुम तथा राजधान्य—इन आठ वस्तुओंको देनेसे सौभाग्यकी प्राप्ति होती है; इसलिये इनकी 'सौभाग्याष्टक' संज्ञा है। इस प्रकार शिव-पार्वतीके आगे सब सामग्री निवेदन करके चैत्रमें सिंघाड़ा खाकर रातको भूमिपर शयन करे। फिर सबेरे उठकर स्नान और जप करके पवित्र हो माला, वस्त्र और आभूषणोंके द्वारा ब्राह्मण-दम्पतीका पूजन करे। इसके बाद सौभाग्याष्टकसहित शिव और पार्वतीकी सुवर्णमयी प्रतिमाओंको ललिता-देवीकी प्रसन्नताके लिये ब्राह्मणको निवेदन करे। दानके समय इस प्रकार कहे—'ललिता, विजया, भद्रा, भवानी, कुमुदा, शिवा, वासुदेवा, गौरी, मंगला, कमला, सती और उमा—ये प्रसन्न हों।'

बारह महीनोंकी प्रत्येक द्वादशीको भगवान् श्रीविष्णुकी तथा उनके साथ लक्ष्मीजीकी भी पूजा करे। इसी प्रकार परलोकमें उत्तम गति चाहनेवाले पुरुषको प्रत्येक मासकी पूर्णिमाको सावित्रीसहित ब्रह्माजीकी विधिवत् आराधना करनी चाहिये तथा ऐश्वर्यकी कामनावाले मनुष्यको सौभाग्याष्टकका दान भी करना चाहिये। इस प्रकार एक वर्षतक इस व्रतका विधिपूर्वक अनुष्ठान करके पुरुष, स्त्री या कुमारी भक्तिके साथ रात्रिमें शिवजीकी पूजा करे। व्रतकी समाप्तिके समय सम्पूर्ण सामग्रियोंसे युक्त शय्या, शिव-पार्वतीकी सुवर्णमयी प्रतिमा, बैल और गौका दान करे। कृपणता छोड़कर दृढ़ निश्चयके साथ भगवान्का पूजन करे। जो स्त्री इस प्रकार उत्तम सौभाग्यशयन नामक व्रतका अनुष्ठान करती है, उसकी कामनाएँ पूर्ण होती हैं अथवा [यदि वह निष्कामभावसे इस व्रतको करती है तो] उसे नित्यपदकी प्राप्ति होती है। इस व्रतका आचरण करनेवाले पुरुषको एक फलका परित्याग कर देना चाहिये। प्रतिमास इसका आचरण करनेवाला पुरुष यश और कीर्ति प्राप्त करता है। राजन्! सौभाग्यशयनका दान करनेवाला पुरुष कभी सौभाग्य, आरोग्य, सुन्दर रूप, वस्त्र, अलंकार और आभूषणोंसे वंचित नहीं होता। जो बारह, आठ या सात वर्षोंतक सौभाग्यशयन-व्रतका अनुष्ठान करता है, वह ब्रह्मलोकनिवासी पुरुषोंद्वारा पूजित होकर दस हजार कल्पोंतक वहाँ निवास करता है। इसके बाद वह विष्णुलोक तथा शिवलोकमें भी जाता है। जो नारी या कुमारी इस व्रतका पालन करती है, वह भी ललितादेवीके अनुग्रहसे ललित होकर पूर्वोक्त फलको प्राप्त करती है। जो इस व्रतकी कथाका श्रवण करता है अथवा दूसरोंको इसे करनेकी सलाह देता है, वह भी विद्याधर होकर चिरकालतक स्वर्गलोकमें निवास करता है। पूर्वकालमें इस अद्भुत व्रतका अनुष्ठान कामदेवने, राजा शतधन्वाने, वरुणदेवने, भगवान् सूर्यने तथा धनके स्वामी कुबेरने भी किया था।

तीर्थमहिमाके प्रसंगमें वामन-अवतारकी कथा, भगवान्का बाष्कलि दैत्यसे त्रिलोकीके राज्यका अपहरण

भीष्मजीने कहा—ब्रह्मन्! अब मैं तीर्थोंका अद्भुत माहात्म्य सुनना चाहता हूँ, जिसे सुनकर मनुष्य संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है। आप विस्तारके साथ उसका वर्णन करो।

पुलस्त्यजी बोले—राजन्! ऐसे अनेकों पावन तीर्थ हैं, जिनका नाम लेनेसे भी बड़े-बड़े पातकोंका नाश हो जाता है। तीर्थोंका दर्शन करना, उनमें स्नान करना, वहाँ जाकर बार-बार डुबकी लगाना तथा समस्त तीर्थोंका स्मरण करना—ये मनोवांछित फलको देनेवाले हैं। भीष्म! पर्वत, नदियाँ, क्षेत्र, आश्रम और मानस आदि सरोवर—सभी तीर्थ कहे गये हैं, जिनमें तीर्थयात्राके उद्देश्यसे जानेवाले पुरुषको पग-पगपर अश्वमेध आदि यज्ञोंका फल होता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

भीष्मजीने पूछा—द्विजश्रेष्ठ! मैं आपसे भगवान् श्रीविष्णुका चरित्र सुनना चाहता हूँ। सर्वसमर्थ एवं

सर्वव्यापक श्रीविष्णुने यज्ञ-पर्वतपर जा वहाँ अपने चरण रखकर किस दानवका दमन किया था? महामुने! ये सारी बातें मुझे बताइये।

पुलस्त्यजी बोले—वत्स! तुमने बड़ी उत्तम बात पूछी है, एकाग्रचित्त होकर सुनो। प्राचीन सत्ययुगकी बात है—बलिष्ठ दानवोंने समूचे स्वर्गपर अधिकार जमा लिया था। इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओंको जीतकर उनसे त्रिभुवनका राज्य छीन लिया था। उनमें बाष्कलि नामका दानव सबसे बलवान् था। उसने समस्त दानवोंको यज्ञका भोक्ता बना दिया। इससे इन्द्रको बड़ा दु:ख हुआ। वे अपने जीवनसे निराश हो चले। उन्होंने सोचा—'ब्रह्माजीके वरदानसे दानवराज बाष्कलि मेरे तथा सम्पूर्ण देवताओंके लिये युद्धमें अवध्य हो गया है। अत: मैं ब्रह्मलोकमें चलकर भगवान् ब्रह्माजीकी ही शरण लूँगा। उनके सिवा और कोई मुझे सहारा देनेवाला नहीं है।' ऐसा विचार कर देवराज इन्द्र सम्पूर्ण देवताओंको साथ ले तुरंत उस स्थानपर गये, जहाँ भगवान् ब्रह्माजी विराजमान थे।

इन्द्र बोले—देव! क्या आप हमारी दशा नहीं जानते, अब हमारा जीवन कैसे रहेगा? प्रभो! आपके वरदानसे दैत्योंने हमारा सर्वस्व छीन लिया। मैं दुरात्मा बाष्कलिकी सारी करतूतें पहले ही आपको बता चुका हूँ। पितामह! आप ही हमारे पिता हैं। हमारी रक्षाके लिये शीघ्र ही कोई उपाय कीजिये। संसारसे वेदपाठ और यज्ञ-यागादि उठ गये। उत्सव और मंगलकी बातें जाती रहीं। सबने अध्ययन करना छोड़ दिया है। दण्डनीति भी उठा दी गयी है। इन सब कारणोंसे संसारके प्राणी किसी तरह साँसमात्र ले रहे हैं। जगत् पीडाग्रस्त तो था ही, अब और भी कष्टतर दशाको पहुँच गया है। इतने समयमें हमलोगोंको बड़ी ग्लानि उठानी पड़ी है।

ब्रह्माजीने कहा—देवराज! मैं जानता हूँ बाष्कलि बड़ा नीच है और वरदान पाकर घमंडसे भर गया है। यद्यपि तुमलोगोंके लिये वह अजेय है, तथापि मैं समझता हूँ भगवान् श्रीविष्णु उसे अवश्य ठीक कर देंगे।

पुलस्त्यजी कहते हैं—उस समय ब्रह्माजी समाधिमें स्थित हो गये। उनके चिन्तन करनेपर ध्यानमात्रसे चतुर्भुज भगवान् श्रीविष्णु थोड़े ही समयमें सबके देखते-देखते वहाँ आ पहुँचे।

भगवान् श्रीविष्णु बोले—ब्रह्मन्! इस ध्यानको छोड़ो। जिसके लिये तुम ध्यान करते हो, वही मैं साक्षात् तुम्हारे पास आ गया हूँ।

ब्रह्माजीने कहा—स्वामीने यहाँ आकर मुझे दर्शन दिया, यह बहुत बड़ी कृपा हुई। जगत्के लिये जगदीश्वरको जितनी चिन्ता है, उतनी और किसको हो सकती है। मेरी उत्पत्ति भी आपने जगत्के लिये ही की थी और जगत्की यह दशा है; अत: उसके लिये भगवान्का यह शुभागमन वास्तवमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। प्रभो! विश्वके पालनका कार्य आपके ही अधीन है। इस इन्द्रका राज्य बाष्कलिने छीन लिया है। चराचर प्राणियोंके सहित त्रिलोकीको अपने अधिकारमें कर लिया है। केशव! अब आप ही सलाह देकर अपने इस सेवककी सहायता कीजिये।

भगवान् श्रीवासुदेवने कहा—ब्रह्मन्! तुम्हारे वरदानसे वह दानव इस समय अवध्य है, तथापि उसे बुद्धिके द्वारा बन्धनमें डालकर परास्त किया जा सकता है। मैं दानवोंका विनाश करनेके लिये वामनरूप धारण करूँगा। ये इन्द्र मेरे साथ बाष्कलिके घर चलें और वहाँ पहुँचकर मेरे लिये इस प्रकार वरकी याचना करें—'राजन्! इस बौने ब्राह्मणके लिये तीन पग भूमिका दान दीजिये। महाभाग! इनके लिये मैं आपसे याचना करता हूँ।' ऐसा कहनेपर वह दानवराज अपना प्राणतक दे सकता है। पितामह! उस दानवका दान स्वीकार करके पहले उसे राज्यसे वंचित करूँगा, फिर उसे बाँधकर पातालका निवासी बनाऊँगा।

यों कहकर भगवान् श्रीविष्णु अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर कार्य-साधनके अनुकूल समय आनेपर सम्पूर्ण प्राणियोंपर दया करनेवाले देवाधिदेव भगवान्ने देवताओंका हित करनेके लिये अदितिका पुत्र होनेका विचार किया। भगवान्ने जिस दिन गर्भमें प्रवेश किया,

उस दिन स्वच्छ वायु बहने लगी। सम्पूर्ण प्राणी बिना किसी उपद्रवके अपने-अपने इच्छित पदार्थ प्राप्त करने लगे। वृक्षोंसे फूलोंकी वर्षा होने लगी, समस्त दिशाएँ निर्मल हो गयीं तथा सभी मनुष्य सत्य-परायण हो गये। देवी अदितिने एक हजार दिव्य वर्षोंतक भगवान्‌को गर्भमें धारण किया। इसके बाद वे भूतभावन प्रभु वामनरूपमें प्रकट हुए। उनके अवतार लेते ही नदियोंका जल स्वच्छ हो गया। वायु सुगन्ध बिखेरने लगी। उस तेजस्वी पुत्रके प्रकट होनेसे महर्षि कश्यपको भी बड़ा आनन्द हुआ। तीनों लोकोंमें निवास करनेवाले समस्त प्राणियोंके मनमें अपूर्व उत्साह भर गया। भगवान् जनार्दनका प्रादुर्भाव होते ही स्वर्गलोकमें नगारे बज उठे। अत्यन्त हर्षोल्लासके कारण त्रिलोकीके मोह और दु:ख नष्ट हो गये। गन्धर्वोंने अत्यन्त उच्च स्वरसे संगीत आरम्भ किया। कोई ऊँचे स्वरसे भगवान्‌की जय-जयकार करने लगे, कोई अत्यन्त हर्षमें भरकर जोर-जोरसे गर्जना करते हुए बारम्बार भगवान्‌को साधुवाद देने लगे तथा कुछ लोग जन्म, भय, बुढ़ापा और मृत्युसे छुटकारा पानेके लिये उनका ध्यान करने लगे। इस प्रकार यह सम्पूर्ण जगत् सब ओरसे अत्यन्त प्रसन्न हो उठा।

देवतालोग मन-ही-मन विचार करने लगे—'ये साक्षात् परमात्मा श्रीविष्णु हैं। ब्रह्माजीके अनुरोधसे जगत्‌की रक्षाके लिये इन जगदीश्वरने यह छोटा-सा शरीर धारण किया है। ये ही ब्रह्मा, ये ही विष्णु और ये ही महेश्वर हैं। देवता, यज्ञ और स्वर्ग—सब कुछ ये ही हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। यह सम्पूर्ण चराचर जगत् भगवान् श्रीविष्णुसे व्याप्त है। ये एक होते हुए भी पृथक् शरीर धारण करके ब्रह्माके नामसे विख्यात हैं। जिस प्रकार बहुत-से रंगोंवाली वस्तुओंका सान्निध्य होनेपर स्फटिकमणि विचित्र-सी प्रतीत होने लगती है, वैसे ही मायामय गुणोंके संसर्गसे स्वयम्भू परमात्माकी नाना रूपोंमें प्रतीति होती है। जैसे एक ही गार्हपत्य अग्नि दक्षिणाग्नि तथा आहवनीयाग्नि आदि भिन्न-भिन्न संज्ञाओंको प्राप्त होती है, उसी प्रकार ये एक ही श्रीविष्णु ब्रह्मा आदि अनेक नाम एवं रूपोंमें उपलब्ध होते हैं। ये भगवान् सब तरहसे देवताओंका कार्य सिद्ध करेंगे।'

शुद्ध चित्तवाले देवगण जब इस प्रकार सोच रहे थे, उसी समय भगवान् वामन इन्द्रके साथ बाष्कलिके घर गये। उन्होंने दूरसे ही बाष्कलिकी नगरीको देखा, जो परकोटेसे घिरी थी। सब प्रकारके रत्नोंसे सजे हुए ऊँचे-ऊँचे सफेद महल, जो आकाशचारी प्राणियोंके लिये भी अगम्य थे, उस पुरीकी शोभा बढ़ा रहे थे। नगरकी सड़कें बड़ी ही सुन्दर एवं क्रमबद्ध बनायी गयी थीं। कोई ऐसा पुष्प नहीं, ऐसी विद्या नहीं, ऐसा शिल्प नहीं तथा ऐसी कला नहीं, जो बाष्कलिकी नगरीमें मौजूद न रही हो। वहीं रहकर दानवराज बाष्कलि चराचर प्राणियोंसहित समस्त त्रिलोकीका पालन करता था। वह धर्मका ज्ञाता, कृतज्ञ, सत्यवादी और जितेन्द्रिय था। सभी प्राणी उससे सुगमतापूर्वक मिल सकते थे। न्याय-अन्यायका निर्णय करनेमें उसकी बुद्धि बड़ी ही कुशल थी। वह ब्राह्मणोंका भक्त, शरणागतोंका रक्षक तथा दीन और अनाथोंपर दया करनेवाला था। मन्त्र-शक्ति, प्रभु-शक्ति और उत्साह-शक्ति—इन तीनों शक्तियोंसे वह सम्पन्न था। सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और समाश्रय—राजनीतिके इन छः गुणोंका अवसरके अनुकूल उपयोग करनेमें उसका सदा उत्साह रहता था। वह सबसे मुसकराकर बात करता था। वेद और वेदांगोंके तत्त्वका उसे पूर्ण ज्ञान था। वह यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाला, तपस्या-परायण, उदार, सुशील, संयमी, प्राणियोंकी हिंसासे विरत, माननीय पुरुषोंको आदर देनेवाला, शुद्धहृदय, प्रसन्नमुख, पूजनीय पुरुषोंका पूजन करनेवाला, सम्पूर्ण विषयोंका ज्ञाता, दुर्दमनीय, सौभाग्यशाली, देखनेमें सुन्दर, अन्नका बहुत बड़ा संग्रह रखनेवाला, बड़ा धनी और बहुत बड़ा दानी था। वह धर्म, अर्थ और काम—तीनोंके साधनमें संलग्न रहता था। बाष्कलि त्रिलोकीका एक श्रेष्ठ पुरुष था। वह सदा अपनी नगरीमें ही रहता था। उसमें देवता और दानवोंके भी घमंडको चूर्ण करनेकी शक्ति थी। ऐसे गुणोंसे विभूषित होकर वह त्रिभुवनकी समस्त प्रजाका पालन करता था। उस दानवराजके राज्यमें कोई भी अधर्म नहीं

होने पाता था। उसकी प्रजामें कोई भी ऐसा नहीं था जो दीन, रोगी, अल्पायु, दुःखी, मूर्ख, कुरूप, दुर्भाग्यशाली और अपमानित हो।

इन्द्रको आते देख दानवोंने जाकर राजा बाष्कलिसे कहा—'प्रभो! बड़े आश्चर्यकी बात है कि आज इन्द्र एक बौने ब्राह्मणके साथ अकेले ही आपकी पुरीमें आ रहे हैं। इस समय हमारे लिये जो कर्तव्य हो, उसे शीघ्र बताइये।' उनकी बात सुनकर बाष्कलिने कहा—'दानवो! इस नगरमें देवराजको आदरके साथ ले आना चाहिये। वे आज हमारे पूजनीय अतिथि हैं।'

पुलस्त्यजी कहते हैं—दानवराज बाष्कलि दानवोंसे ऐसा कहकर फिर स्वयं इन्द्रसे मिलनेके लिये अकेला ही राजमहलसे बाहर निकल पड़ा और अपने शोभा-सम्पन्न नगरकी सातवीं ड्योढ़ीपर जा पहुँचा। इतनेमें ही उधरसे भगवान् वामन और इन्द्र भी आ पहुँचे। दानवराजने बड़े प्रेमसे उनकी ओर देखा और प्रणाम करके अपनेको कृतार्थ माना। वह हर्षमें भरकर सोचने लगा—'मेरे समान धन्य दूसरा कोई नहीं है, क्योंकि आज मैं त्रिभुवनकी राजलक्ष्मीसे सम्पन्न होकर इन्द्रको याचकके रूपमें अपने घरपर आया देखता हूँ। ये मुझसे कुछ याचना करेंगे। घरपर आये हुए इन्द्रको मैं

अपनी स्त्री, पुत्र, महल तथा अपने प्राण भी दे डालूँगा; फिर त्रिलोकीके राज्यकी तो बात ही क्या है।' यह सोचकर उसने सामने आ इन्द्रको अंकमें भरकर बड़े आदरके साथ गले लगाया और अपने राजभवनके भीतर ले जाकर अर्घ्य तथा आचमनीय आदिसे उन दोनोंका यत्नपूर्वक पूजन किया। इसके बाद बाष्कलि बोला—'इन्द्र! आज मैं आपको अपने घरपर स्वयं आया देखता हूँ; इससे मेरा जन्म सफल हो गया, मेरे सभी मनोरथ पूर्ण हो गये। प्रभो! मेरे पास आपका किस प्रयोजनसे आगमन हुआ? मुझे सारी बात बताइये। आपने यहाँतक आनेका कष्ट उठाया, इसे मैं बड़े आश्चर्यकी बात समझता हूँ।'

इन्द्रने कहा—बाष्कले! मैं जानता हूँ, दानव-वंशके श्रेष्ठ पुरुषोंमें तुम सबसे प्रधान हो। तुम्हारे पास मेरा आना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। तुम्हारे घरपर आये हुए याचक कभी विमुख नहीं लौटते। तुम याचकोंके लिये कल्पवृक्ष हो। तुम्हारे समान दाता कोई नहीं है। तुम प्रभामें सूर्यके समान हो। गम्भीरतामें सागरकी समानता करते हो। क्षमाशीलताके कारण तुम्हारी पृथ्वीके साथ तुलना की जाती है। ये ब्राह्मणदेवता वामन कश्यपजीके उत्तम कुलमें उत्पन्न हैं। इन्होंने मुझसे तीन पग भूमिके लिये याचना की है; किन्तु बाष्कले! मेरा त्रिभुवनका राज्य तो तुमने पराक्रम करके छीन लिया है। अब मैं निराधार और निर्धन हूँ। इन्हें देनेके लिये मेरे पास कोई भूमि नहीं है। इसलिये तुमसे याचना करता हूँ। याचक मैं नहीं, ये हैं। दानवेन्द्र! यदि तुम्हें अभीष्ट हो तो इन वामनजीको तीन पग भूमि दे दो।

बाष्कलिने कहा—देवेन्द्र! आप भले पधारे, आपका कल्याण हो। जरा अपनी ओर तो देखिये; आप ही सबके परम आश्रय हैं। पितामह ब्रह्माजी त्रिभुवनकी रक्षाका भार आपके ऊपर डालकर सुखसे बैठे हैं और ध्यान-धारणासे युक्त हो परमपदका चिन्तन करते हैं। भगवान् श्रीविष्णु भी अनेकों संग्रामोंसे थककर जगत्‌की चिन्ता छोड़ आपके ही भरोसे क्षीर-सागरका आश्रय ले सुखकी नींद सो रहे हैं। उमानाथ भगवान् शंकर भी आपको ही सारा भार सौंपकर कैलास पर्वतपर

विहार करते हैं। मुझसे भिन्न बहुत-से दानवोंको, जो बलवानोंसे भी बलवान् थे, आपने अकेले ही मार गिराया। बारह आदित्य, ग्यारह रुद्र, दोनों अश्विनीकुमार, आठ वसु तथा सनातन देवता धर्म—ये सब लोग आपके ही बाहुबलका आश्रय ले स्वर्गलोकमें यज्ञका भाग ग्रहण करते हैं। आपने उत्तम दक्षिणाओंसे सम्पन्न सौ यज्ञोंद्वारा भगवान्‌का यजन किया है। वृत्र और नमुचि—आपके ही हाथसे मारे गये हैं। आपने ही पाक नामक दैत्यका दमन किया है। सर्वसमर्थ भगवान् विष्णुने आपकी ही आज्ञासे दैत्यराज हिरण्यकशिपुको अपनी जाँघपर बिठाकर मार डाला था। आप ऐरावतके मस्तकपर बैठकर वज्र हाथमें लिये जब संग्रामभूमिमें आते हैं, उस समय आपको देखते ही सब दानव भाग जाते हैं। पूर्वकालमें आपने बड़े-बड़े बलिष्ठ दानवोंपर विजय पायी है। देवराज! आप ऐसे प्रभावशाली हैं। आपके सामने मेरी क्या गिनती हो सकती है। आपने मेरा उद्धार करनेकी इच्छासे ही यहाँ पदार्पण किया है। निस्सन्देह मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा। मैं निश्चयपूर्वक कहता हूँ, आपके लिये अपने प्राण भी दे दूँगा। देवेश्वर! आपने मुझसे इतनी-सी भूमिकी बात क्यों कही? यह स्त्री, पुत्र, गौएँ तथा और जो कुछ भी धन मेरे पास है, वह सब एवं त्रिलोकीका सारा राज्य इन ब्राह्मणदेवताको दे दीजिये। आप ऐसा करके मुझपर तथा मेरे पूर्वजोंपर कृपा करेंगे, इसमें तनिक भी संशय नहीं है। क्योंकि भावी प्रजा कहेगी—'पूर्वकालमें राजा बाष्कलिने अपने घरपर आये हुए इन्द्रको त्रिलोकीका राज्य दे दिया था।' [आप ही क्यों,] दूसरा भी कोई याचक यदि मेरे पास आये तो वह सदा ही मुझे अत्यन्त प्रिय होगा। आप तो उन सबमें मेरे लिये विशेष आदरणीय हैं; अतः आपको कुछ भी देनेमें मुझे कोई विचार नहीं करना है। परन्तु देवराज! मुझे इस बातसे बड़ी लज्जा हो रही है कि इन ब्राह्मणदेवताके विशेष प्रार्थना करनेपर आप मुझसे तीन ही पग भूमि माँग रहे हैं। मैं इन्हें अच्छे-अच्छे गाँव दूँगा और आपको स्वर्गका राज्य अर्पण कर दूँगा। वामनजीको स्त्री और भूमि दोनों दान करूँगा। आप मुझपर कृपा करके यह सब स्वीकार करें।

पुलस्त्यजी कहते हैं—राजन्! दानवराज बाष्कलिके ऐसा कहनेपर उसके पुरोहित शुक्राचार्यने उससे कहा—'महाराज! तुम्हें उचित-अनुचितका बिलकुल ज्ञान नहीं है; किसको कब क्या देना चाहिये—इस बातसे तुम अनभिज्ञ हो। अतः मन्त्रियोंके साथ भलीभाँति विचार करके युक्तायुक्तका निर्णय करनेके पश्चात् तुम्हें कोई कार्य करना चाहिये। तुमने इन्द्रसहित देवताओंको जीतकर त्रिलोकीका राज्य प्राप्त किया है। अपने वचनको पूरा करते ही तुम बन्धनमें पड़ जाओगे। राजन्! ये जो वामन हैं, इन्हें साक्षात् सनातन विष्णु ही समझो। इनके लिये तुम्हें कुछ नहीं देना चाहिये; क्योंकि इन्होंने ही तो पहले तुम्हारे वंशका उच्छेद कराया है और आगे भी करायेंगे। इन्होंने मायासे दानवोंको परास्त किया है और मायासे ही इस समय बौने ब्राह्मणका रूप बनाकर तुम्हें दर्शन दिया है; अतः अब बहुत कहनेकी आवश्यकता नहीं है। इन्हें कुछ न दो। [तीन पग तो बहुत है,] मक्खीके पैरके बराबर भी भूमि देना न स्वीकार करो। यदि मेरी बात नहीं मानोगे तो शीघ्र ही तुम्हारा नाश हो जायगा; यह मैं तुम्हें सच्ची बात कह रहा हूँ।'

बाष्कलिने कहा—गुरुदेव! मैंने धर्मकी इच्छासे इन्हें सब कुछ देनेकी प्रतिज्ञा कर ली है। प्रतिज्ञाका पालन अवश्य करना चाहिये, यह सत्पुरुषोंका सनातन धर्म है। यदि ये भगवान् विष्णु हैं और मुझसे दान लेकर देवताओंको समृद्धिशाली बनाना चाहते हैं, तब तो मेरे समान धन्य दूसरा कोई नहीं होगा। ध्यान-परायण योगी निरन्तर ध्यान करते रहनेपर भी जिनका दर्शन जल्दी नहीं पाते, उन्होंने ही यदि मुझे दर्शन दिया है, तब तो इन देवेश्वरने मुझे और भी धन्य बना दिया। जो लोग हाथमें कुश और जल लेकर दान देते हैं, वे भी 'मेरे दानसे सनातन परमात्मा भगवान् विष्णु प्रसन्न हों' इस वचनके कहनेपर मोक्षके भागी होते हैं। इस कार्यको निश्चित रूपसे करनेके लिये मेरा जो दृढ़ संकल्प हुआ है, उसमें

आपका उपदेश ही कारण है। बचपनमें आपने एक बार उपदेश दिया था, जिसे मैंने अच्छी तरह अपने हृदयमें धारण कर लिया था। वह उपदेश इस प्रकार था—'शत्रु भी यदि घरपर आ जाय तो उसके लिये कोई वस्तु अदेय नहीं है—उसे कुछ भी देनेसे इनकार नहीं करना चाहिये।'* गुरुदेव! यही सोचकर मैंने इन्द्रके लिये स्वर्गका राज्य और वामनजीके लिये अपने प्राणतक दे डालनेका निश्चय कर लिया है। जिस दानके देनेमें कुछ भी कष्ट नहीं होता, ऐसा दान तो संसारमें सभी लोग देते हैं।

यह सुनकर गुरुजीने लज्जासे अपना मुँह नीचा कर लिया। तब बाष्कलिने इन्द्रसे कहा—'देव! आपके माँगनेपर मैं सारी पृथ्वी दे सकता हूँ; यदि इन्हें तीन ही पग भूमि देनी पड़ी तो यह मेरे लिये लज्जाकी बात होगी।'

इन्द्रने कहा—दानवराज! तुम्हारा कहना सत्य है, किन्तु इन ब्राह्मणदेवताने मुझसे तीन ही पग भूमिकी याचना की है। इनको इतनी ही भूमिकी आवश्यकता है। मैंने भी इन्हींके लिये तुमसे याचना की है। अतः इन्हें यही वर प्रदान करो।

बाष्कलिने कहा—देवराज! आप वामनको मेरी ओरसे तीन पग भूमि दे दीजिये और आप भी चिरकालतक वहाँ सुखसे निवास कीजिये।

पुलस्त्यजी कहते हैं—यह कहकर बाष्कलिने हाथमें जल ले 'साक्षात् श्रीहरि मुझपर प्रसन्न हों' ऐसा कहते हुए वामनजीको तीन पग भूमि दे दी। दानवराजके दान करते ही श्रीहरिने वामनरूप त्याग दिया और देवताओंका हित करनेकी इच्छासे सम्पूर्ण लोकोंको नाप लिया। वे यज्ञ-पर्वतपर पहुँचकर उत्तरकी ओर मुँह करके खड़े हो गये। उस समय दानवलोक भगवान्‌के बायें चरणके नीचे आ गया। तब जगदीश्वरने पहला पग सूर्यलोकमें रखा और दूसरा ध्रुवलोकमें। फिर अद्भुत कर्म करनेवाले भगवान्‌ने तीसरे पगसे ब्रह्माण्डपर आघात किया। उनके अँगूठेके अग्रभागसे लगकर ब्रह्माण्ड-कटाह फूट गया, जिससे बहुत-सा जल बाहर निकला। उसे ही भगवान् श्रीविष्णुके चरणोंसे प्रकट

होनेवाली वैष्णवी नदी गंगा कहते हैं। गंगाजी अनेक कारणवश भगवान् श्रीविष्णुके चरणोंसे प्रकट हुई हैं। उनके द्वारा चराचर प्राणियोंसहित समस्त त्रिलोकी व्याप्त है। तत्पश्चात् भगवान् श्रीवामनने बाष्कलिसे कहा—'मेरे तीन पग पूर्ण करो।' बाष्कलिने कहा—'भगवन्! आपने पूर्वकालमें जितनी बड़ी पृथ्वी बनायी थी, उसमेंसे मैंने कुछ भी छिपाया नहीं है। पृथ्वी छोटी है और आप महान् हैं। मुझमें सृष्टि उत्पन्न करनेकी शक्ति नहीं है। [जिससे कि दूसरी पृथ्वी बनाकर आपके तीन पग पूर्ण करूँ।] देव! आप-जैसे प्रभुओंकी इच्छा-शक्ति ही मनोवांछित कार्य करनेमें समर्थ होती है।'

सत्यवादी बाष्कलिको निरुत्तर जानकर भगवान् श्रीविष्णु बोले—'दानवराज! बोलो, मैं तुम्हारी कौन-सी इच्छा पूर्ण करूँ? तुम्हारा दिया हुआ संकल्पका जल मेरे हाथमें आया है, इसलिये तुम वर पानेके योग्य हो। वरदानके उत्तम पात्र हो। तुम्हें जिस वस्तुकी इच्छा हो, माँगो; मैं उसे दूँगा।'

* शत्रावपि गृहायाते नास्त्यदेयं तु किंचन। (२५।१७१)

बाष्कलिने कहा—देवेश्वर! मैं आपकी भक्ति चाहता हूँ। मेरी मृत्यु भी आपके ही हाथसे हो, जिससे मुझे आपके परमधाम श्वेतद्वीपकी प्राप्ति हो, जो तपस्वियोंके लिये भी दुर्लभ है।

पुलस्त्यजी कहते हैं—बाष्कलिके ऐसा कहनेपर भगवान् श्रीविष्णुने कहा—'तुम एक कल्पतक ठहरे रहो। जिस समय वराहरूप धारण करके मैं रसातलमें प्रवेश करूँगा, उसी समय तुम्हारा वध करूँगा; इससे तुम मेरे रूपमें लीन हो जाओगे।' भगवान्के ऐसे वचन सुनकर वह दानव उनके सामनेसे चला गया। भगवान् भी उससे त्रिलोकीका राज्य छीनकर अन्तर्धान हो गये। बाष्कलि पाताललोकका निवासी होकर सुखपूर्वक रहने लगा। बुद्धिमान् इन्द्र तीनों लोकोंका पालन करने लगे। यह जगद्गुरु भगवान् श्रीविष्णुके वामन-अवतारका वर्णन है, इसमें श्रीगंगाजीके प्रादुर्भावकी कथा भी आ गयी है। यह प्रसंग सब पापोंका नाश करनेवाला है। यह मैंने श्रीविष्णुके तीनों पगोंका इतिहास बतलाया है, जिसे सुनकर मनुष्य इस संसारमें सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है। श्रीविष्णुके पगोंका दर्शन कर लेनेपर उसके दुःस्वप्न, दुश्चिन्ता और घोर पाप शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। पापी मनुष्य प्रत्येक युगमें यज्ञ-पर्वतपर स्थित श्रीविष्णुके चरणोंका दर्शन करके पापसे छुटकारा पा जाते हैं। भीष्म! जो मनुष्य मौन होकर यज्ञ-पर्वतपर चढ़ता है अथवा तीनों पुष्करोंकी यात्रा करता है, उसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। वह सब पापोंसे मुक्त हो मृत्युके पश्चात् श्रीविष्णुधाममें जाता है।

भीष्मजी बोले—भगवन्! यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है कि वामनजीके द्वारा दानवराज बाष्कलि बन्धनमें डाला गया। मैंने तो श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके मुखसे ऐसी कथा सुन रखी है कि भगवान्ने वामनरूप धारण करके राजा बलिको बाँधा था और विरोचनकुमार बलि आजतक पाताल-लोकमें मौजूद हैं। अतः आप मुझसे बलिके बाँधे जानेकी कथाका वर्णन कीजिये।

पुलस्त्यजी बोले—नृपश्रेष्ठ! मैं तुम्हें सब बातें बताता हूँ, सुनो। पहली बारकी कथा तो तुम सुन ही चुके हो। दूसरी बार वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तरमें भी भगवान् श्रीविष्णुने त्रिलोकीको अपने चरणोंसे नापा था। उस समय उन देवाधिदेवने अकेले ही यज्ञमें जाकर राजा बलिको बाँधा और भूमिको नापा था। उस अवसरपर भगवान्का पुनः वामन-अवतार हुआ तथा पुनः उन्होंने त्रिविक्रमरूप धारण किया था। वे पहले वामन होकर फिर अवामन (विराट्) हो गये।

सत्संगके प्रभावसे पाँच प्रेतोंका उद्धार और पुष्कर तथा प्राची सरस्वतीका माहात्म्य

भीष्मजीने पूछा—ब्रह्मन्! किस कर्मके परिणामसे मनुष्य प्रेत-योनिमें जाता है तथा किस कर्मके द्वारा वह उससे छुटकारा पाता है—यह मुझे बतानेकी कृपा कीजिये।

पुलस्त्यजी बोले—राजन्! मैं तुम्हें ये सब बातें विस्तारसे बतलाता हूँ, सुनो; जिस कर्मसे जीव प्रेत होता है तथा जिस कर्मके द्वारा देवताओंके लिये भी दुस्तर घोर नरकमें पड़ा हुआ प्राणी भी उससे मुक्त हो जाता है, उसका वर्णन करता हूँ। प्रेत-योनिमें पड़े हुए मनुष्य सत्पुरुषोंके साथ वार्तालाप तथा पुण्यतीर्थोंका बारम्बार कीर्तन करनेसे उससे छुटकारा पा जाते हैं। भीष्म! सुना जाता है—प्राचीन कालमें कठिन नियमोंका पालन करनेवाले एक ब्राह्मण थे, जो 'पृथु' नामसे सर्वत्र विख्यात थे। वे सदा सन्तुष्ट रहा करते थे। उन्हें योगका ज्ञान था। वे प्रतिदिन स्वाध्याय, होम और जप-यज्ञमें संलग्न रहकर समय व्यतीत करते थे। उन्हें परमात्माके तत्त्वका बोध था। वे शम (मनोनिग्रह), दम (इन्द्रिय-संयम) और क्षमासे युक्त रहते थे। उनका चित्त अहिंसाधर्ममें स्थित था। वे सदा अपने कर्तव्यका ज्ञान रखते थे। ब्रह्मचर्य, तपस्या, पितृकार्य (श्राद्ध-तर्पण) और वैदिक कर्मोंमें उनकी प्रवृत्ति थी। वे परलोकका भय मानते और सत्य-भाषणमें रत रहते थे। सबसे मीठे वचन बोलते और अतिथियोंके सत्कारमें मन लगाते थे। सुख-दुःखादि सम्पूर्ण द्वन्द्वोंका परित्याग करनेके लिये

सदा योगाभ्यासमें तत्पर रहते थे। अपने कर्तव्यके पालन और स्वाध्यायमें लगे रहना उनका नित्यका नियम था। इस प्रकार संसारको जीतनेकी इच्छासे वे सदा शुभ कर्मका अनुष्ठान किया करते थे। ब्राह्मणदेवताको वनमें निवास करते अनेकों वर्ष व्यतीत हो गये। एक बार उनका ऐसा विचार हुआ कि मैं तीर्थ-यात्रा करूँ, तीर्थोंके पावन जलसे अपने शरीरको पवित्र बनाऊँ। ऐसा सोचकर उन्होंने सूर्योदयके समय शुद्ध चित्तसे पुष्कर तीर्थमें स्नान किया और गायत्रीका जप तथा नमस्कार करके यात्राके लिये चल पड़े। जाते-जाते एक जंगलके बीच कण्टकाकीर्ण भूमिमें, जहाँ न पानी था न वृक्ष, उन्होंने अपने सामने पाँच पुरुषोंको खड़े देखा, जो बड़े ही भयंकर थे। उन विकट आकार तथा पापपूर्ण दृष्टिवाले अत्यन्त घोर प्रेतोंको देखकर उनके हृदयमें कुछ भयका संचार हो आया; फिर भी वे निश्चलभावसे खड़े रहे। यद्यपि उनका चित्त भयसे उद्विग्न हो रहा था, तथापि उन्होंने धैर्य धारण करके मधुर शब्दोंमें पूछा— 'विकराल मुखवाले प्राणियो! तुमलोग कौन हो? किसके द्वारा कौन-सा ऐसा कर्म बन गया है, जिससे तुम्हें इस विकृत रूपकी प्राप्ति हुई है?'

प्रेतोंने कहा—हम भूख और प्याससे पीड़ित हो सर्वदा महान् दुःखसे घिरे रहते हैं। हमारा ज्ञान और विवेक नष्ट हो गया है, हम सभी अचेत हो रहे हैं। हमें इतना भी ज्ञान नहीं है कि कौन दिशा किस ओर है। दिशाओंके बीचकी अवान्तर दिशाओंको भी नहीं पहचानते। आकाश, पृथ्वी तथा स्वर्गका भी हमें ज्ञान नहीं है। यह तो दुःखकी बात हुई। सुख इतना ही है कि सूर्योदय देखकर हमें प्रभात-सा प्रतीत हो रहा है। हममेंसे एकका नाम पर्युषित है, दूसरेका नाम सूचीमुख है, तीसरेका नाम शीघ्रग, चौथेका रोधक और पाँचवेंका लेखक है।

ब्राह्मणने पूछा—तुम्हारे नाम कैसे पड़ गये? क्या कारण है, जिससे तुमलोगोंको ये नाम प्राप्त हुए हैं?

प्रेतोंमेंसे एकने कहा—मैं सदा स्वादिष्ठ भोजन किया करता था और ब्राह्मणोंको पर्युषित (बासी) अन्न देता था; इसी हेतुको लेकर मेरा नाम पर्युषित पड़ा है। मेरे इस साथीने अन्न आदिके अभिलाषी बहुत-से ब्राह्मणोंकी हिंसा की है, इसलिये इसका नाम सूचीमुख पड़ा है। यह तीसरा प्रेत भूखे ब्राह्मणके याचना करनेपर भी [उसे कुछ देनेके भयसे] शीघ्रतापूर्वक वहाँसे चला गया था; इसलिये इसका नाम शीघ्रग हो गया। यह चौथा प्रेत ब्राह्मणोंको देनेके भयसे उद्विग्न होकर सदा अपने घरपर ही स्वादिष्ठ भोजन किया करता था; इसलिये यह रोधक कहलाता है तथा हमलोगोंमें सबसे बड़ा पापी जो यह पाँचवाँ प्रेत है, यह याचना करनेपर चुपचाप खड़ा रहता था या धरती कुरेदने लगता था, इसलिये इसका नाम लेखक पड़ गया। लेखक बड़ी कठिनाईसे चलता है। रोधकको सिर नीचा करके चलना पड़ता है। शीघ्रग पंगु हो गया है। सूची (हिंसा करनेवाले)-का सूईके समान मुँह हो गया है तथा मुझ पर्युषितकी गर्दन लम्बी और पेट बड़ा हो गया है। अपने पापके प्रभावसे मेरा अण्डकोष भी बढ़ गया है तथा दोनों ओठ भी लम्बे होनेके कारण लटक गये हैं। यही हमारे प्रेतयोनिमें आनेका वृत्तान्त है, जो सब मैंने तुम्हें बता दिया। यदि तुम्हारी इच्छा हो तो कुछ और भी पूछो। पूछनेपर उस बातको भी बतायेंगे।

ब्राह्मण बोले—इस पृथ्वीपर जितने भी जीव रहते हैं, उन सबकी स्थिति आहारपर ही निर्भर है। अत: मैं तुमलोगोंका भी आहार जानना चाहता हूँ।

प्रेत बोले—विप्रवर! हमारे आहारकी बात सुनिये। हमलोगोंका आहार सभी प्राणियोंके लिये निन्दित है। उसे सुनकर आप भी बारम्बार निन्दा करेंगे। बलगम, पेशाब, पाखाना और स्त्रीके शरीरका मैल—इन्हींसे हमारा भोजन चलता है। जिन घरोंमें पवित्रता नहीं है, वहीं प्रेत भोजन करते हैं। जो घर स्त्रियोंके द्वारा दग्ध और छिन्न-भिन्न हैं, जिनके सामान इधर-उधर बिखरे पड़े रहते हैं तथा मल-मूत्रके द्वारा जो घृणित अवस्थाको पहुँच चुके हैं, उन्हीं घरोंमें प्रेत भोजन करते हैं। जिन घरोंमें मानसिक लज्जाका अभाव है, पतितोंका निवास है तथा जहाँके निवासी लूट-पाटका काम करते हैं, वहीं प्रेत भोजन करते हैं। जहाँ बलिवैश्वदेव तथा वेद-मन्त्रोंका उच्चारण नहीं होता, होम और व्रत नहीं होते, वहाँ प्रेत भोजन करते हैं। जहाँ गुरुजनोंका आदर नहीं होता, जिन घरोंमें स्त्रियोंका प्रभुत्व है, जहाँ क्रोध और लोभने अधिकार जमा लिया है, वहीं प्रेत भोजन करते हैं। तात! मुझे अपने भोजनका परिचय देते लज्जा हो रही है, अत: इससे अधिक मैं कुछ नहीं कह सकता। तपोधन! तुम नियमोंका दृढ़तापूर्वक पालन करनेवाले हो, इसलिये प्रेतयोनिसे दु:खी होकर हम तुमसे पूछ रहे हैं। बताओ, कौन-सा कर्म करनेसे जीव प्रेतयोनिमें नहीं पड़ता?

ब्राह्मणने कहा—जो मनुष्य एक रात्रिका, तीन रात्रियोंका तथा कृच्छ्र-चान्द्रायण आदि अन्य व्रतोंका अनुष्ठान करता है, वह कभी प्रेतयोनिमें नहीं पड़ता। जो प्रतिदिन तीन, पाँच या एक अग्निका सेवन करता है तथा जिसके हृदयमें सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति दया भरी हुई है, वह मनुष्य प्रेत नहीं होता। जो मान और अपमानमें, सुवर्ण और मिट्टीके ढेलेमें तथा शत्रु और मित्रमें समान भाव रखता है, वह प्रेत नहीं होता। देवता, अतिथि, गुरु तथा पितरोंकी पूजामें सदा प्रवृत्त रहनेवाला मनुष्य भी प्रेतयोनिमें नहीं पड़ता। शुक्लपक्षमें मंगलवारके दिन चतुर्थी तिथि आनेपर उसमें जो श्रद्धापूर्वक श्राद्ध करता है, वह मनुष्य प्रेत नहीं होता। जिसने क्रोधको जीत लिया है, जिसमें डाहका सर्वथा अभाव है, जो तृष्णा और आसक्तिसे रहित, क्षमावान् और दानशील है, वह प्रेतयोनिमें नहीं जाता। जो गौ, ब्राह्मण, तीर्थ, पर्वत, नदी और देवताओंको प्रणाम करता है, वह मनुष्य प्रेत नहीं होता।

प्रेत बोले—महामुने! आपके मुखसे नाना प्रकारके धर्म सुननेको मिले; हम दु:खी जीव हैं, इसलिये पुन: पूछते हैं—जिस कर्मसे प्रेतयोनिमें जाना पड़ता है, वह हमें बताइये।

ब्राह्मणने कहा—यदि कोई द्विज और विशेषत: ब्राह्मण शूद्रका अन्न खाकर उसे पेटमें लिये ही मर जाय तो वह प्रेत होता है। जो आश्रमधर्मका त्याग करके मदिरा पीता, परायी स्त्रीका सेवन करता तथा प्रतिदिन मांस खाता है, उस मनुष्यको प्रेत होना पड़ता है। जो ब्राह्मण यज्ञके अनधिकारी पुरुषोंसे यज्ञ करवाता, अधिकारी पुरुषोंका त्याग करता और शूद्रकी सेवामें रत रहता है, वह प्रेतयोनिमें जाता है। जो मित्रकी धरोहरको हड़प लेता, शूद्रका भोजन बनाता, विश्वासघात करता और कूटनीतिका आश्रय लेता है, वह निश्चय ही प्रेत होता है। ब्रह्महत्यारा, गोघाती, चोर, शराबी, गुरुपत्नीके साथ सम्भोग करनेवाला तथा भूमि और कन्याका अपहरण करनेवाला निश्चय ही प्रेत होता है। जो पुरोहित नास्तिकतामें प्रवृत्त होकर अनेकों ऋत्विजोंके लिये मिली हुई दक्षिणाको अकेले ही हड़प लेता है, उसे निश्चय ही प्रेत होना पड़ता है।

विप्रवर पृथु जब इस प्रकार उपदेश कर रहे थे, उसी समय आकाशमें सहसा नगारे बजने लगे। हजारों देवताओंके हाथसे छोड़े हुए फूलोंकी वर्षा होने लगी। प्रेतोंके लिये चारों ओरसे विमान आ गये। आकाशवाणी हुई—'इन ब्राह्मणदेवताके साथ वार्तालाप और पुण्यकथाका कीर्तन करनेसे तुम सब प्रेतोंको दिव्यगति प्राप्त हुई है।' [इस प्रकार सत्संगके प्रभावसे उन प्रेतोंका उद्धार हो गया।] गंगानन्दन! यदि तुम्हें कल्याण-

साधनकी आवश्यकता है तो तुम आलस्य छोड़कर पूर्ण प्रयत्न करके सत्पुरुषोंके साथ वार्तालाप—सत्संग करो। यह पाँच प्रेतोंकी कथा सम्पूर्ण धर्मोंका तिलक है। जो मनुष्य इसका एक लाख पाठ करता है, उसके वंशमें कोई प्रेत नहीं होता। जो अत्यन्त श्रद्धा और भक्तिके साथ इस प्रसंगका बारम्बार श्रवण करता है, वह भी प्रेतयोनिमें नहीं पड़ता।

भीष्मजीने पूछा—ब्रह्मन्! पुष्करकी स्थिति अन्तरिक्षमें क्योंकर बतलायी जाती है? धर्मशील मुनि इस लोकमें उसे कैसे प्राप्त करते हैं और किस-किसने प्राप्त किया है?

पुलस्त्यजी बोले—राजन्! एक समयकी बात है—दक्षिणभारतके निवासी एक करोड़ ऋषि पुष्कर तीर्थमें स्नान करनेके लिये आये; किन्तु पुष्कर आकाशमें स्थित हो गया। यह जानकर वे समस्त मुनि प्राणायाममें तत्पर हो परब्रह्मका ध्यान करते हुए बारह वर्षोंतक वहीं खड़े रह गये। तब ब्रह्माजी, इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता तथा ऋषि-महर्षि आकाशमें अलक्षित होकर उन्हें [पुष्कर-प्राप्तिके लिये] अत्यन्त दुष्कर नियम बताते हुए बोले—'द्विजगण! तुमलोग मन्त्रद्वारा पुष्करका आवाहन करो। **'आपो हि ष्ठा मयो०'** इत्यादि तीन ऋचाओंका जप करनेसे यह तीर्थ तुम्हारे समीप आ जायगा और अघमर्षण-मन्त्रका जप करनेसे पूर्ण फलदायक होगा।' उन ब्रह्मर्षियोंकी बात समाप्त होनेपर उन सब मुनियोंने वैसा ही किया। ऐसा करनेसे वे परम पावन बन गये—उन्हें पुष्कर-प्राप्तिका पूरा-पूरा फल मिल गया।

राजन्! जो कार्तिककी पूर्णिमाको पुष्करमें स्नान करता है, वह परम पवित्र हो जाता है। ब्रह्माजीके सहित पुष्कर तीर्थ सबको पुण्य प्रदान करनेवाला है। वहाँ आनेवाले सभी वर्णोंके लोग अपने पुण्यकी वृद्धि करते हैं। वे मन्त्रज्ञानके बिना ही ब्राह्मणोंके तुल्य हो जाते हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। यदि कार्तिककी पूर्णिमाको कृत्तिका नक्षत्र हो तो उसे स्नान-दानके लिये अत्यन्त उत्तम समझना चाहिये। यदि उस दिन भरणी नक्षत्र हो तो भी वह तिथि मुनियोंद्वारा परम पुण्यदायिनी बतलायी गयी है और यदि उस तिथिको रोहिणी नक्षत्र हो तो वह महाकार्तिकी पूर्णिमा कहलाती है। उस दिनका स्नान देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। यदि शनिवार, रविवार तथा बृहस्पतिवार—इन तीनों दिनोंमेंसे किसी दिन उपर्युक्त तीन नक्षत्रोंमेंसे कोई नक्षत्र हो तो उस दिन पुष्करमें स्नान करनेवालेको निश्चय ही अश्वमेध यज्ञका पुण्य होता है। उस दिन किया हुआ दान और पितरोंका तर्पण अक्षय होता है। यदि सूर्य विशाखा नक्षत्रपर और चन्द्रमा कृत्तिका नक्षत्रपर हों तो पद्मक नामका योग होता है, यह पुष्करमें अत्यन्त दुर्लभ माना गया है। जो आकाशसे उतरे हुए ब्रह्माजीके इस शुभ तीर्थमें स्नान करते हैं, उन्हें महान् अभ्युदयशाली लोकोंकी प्राप्ति होती है। महाराज! उन्हें दूसरे किसी पुण्यके करने-न-करनेकी लालसा नहीं रहती। यह मैंने सच्ची बात कही है। पुष्कर इस पृथ्वीपर सब तीर्थोंमें श्रेष्ठ बताया गया है। संसारमें इससे बढ़कर पुण्यतीर्थ दूसरा कोई नहीं है। कार्तिककी पूर्णिमाको यह विशेष पुण्यदायक होता है। वहाँ उदुम्बर वनसे सरस्वतीका आगमन हुआ है और उसीके जलसे मुनिजन-सेवित पुष्कर तीर्थ भरा हुआ है। सरस्वती ब्रह्माजीकी पुत्री है। वह पुण्यसलिला एवं पुण्यदायिनी नदी है। वंशस्तम्बसे विस्तृत आकार धारण करके वह उत्तरकी ओर प्रवाहित हुई है। इस रूपमें कुछ दूर जाकर वह फिर पश्चिमकी ओर बहने लगती है और वहाँसे प्राणियोंपर दया करनेके लिये अदृश्यभावका परित्याग करके स्वच्छ जलकी धारा बहाती हुई प्रकट रूपमें स्थित होती है। कनका, सुप्रभा, नन्दा, प्राची और सरस्वती—ये पाँच स्रोत पुष्करमें विद्यमान हैं। इसलिये ब्रह्माजीने सरस्वतीको पंचस्रोता कहा है। उसके तटपर अत्यन्त सुन्दर तीर्थ और मन्दिर हैं, जो सब ओरसे सिद्धों और मुनियोंद्वारा सेवित हैं। उन सब तीर्थोंमें सरस्वती ही धर्मकी हेतु है। वहाँ स्नान करने, जल पीने तथा सुवर्ण आदि दान करनेसे महानदी सरस्वती अक्षय फल उत्पन्न करती है।

मुनीश्वरगण अन्न और वस्त्रका दान श्रेष्ठ बतलाते

हैं; जो मनुष्य सरस्वती-तटवर्ती तीर्थोंमें उक्त वस्तुओंका दान करते हैं, उनका दान धर्मका साधक और अत्यन्त उत्तम माना गया है। जो स्त्री या पुरुष संयमसे रहकर प्रयत्नपूर्वक उन तीर्थोंमें उपवास करते हैं, वे ब्रह्मलोकमें जाकर यथेष्ट आनन्दका अनुभव करते हैं। जो स्थावर या जंगम प्राणी प्रारब्ध-कर्मका क्षय हो जानेपर सरस्वतीके तटपर मृत्युको प्राप्त होते हैं, वे सब हठात् यज्ञके सम्पूर्ण श्रेष्ठ फल प्राप्त करते हैं। जिनका चित्त जन्म और मृत्यु आदिके दुःखसे पीड़ित है, उन मनुष्योंके लिये सरस्वती नदी धर्मको उत्पन्न करनेवाली अरणीके समान है। अतः मनुष्योंको प्रयत्नपूर्वक उत्तम फल प्रदान करनेवाली महानदी सरस्वतीका सब प्रकारसे सेवन करना चाहिये। जो सरस्वतीके पवित्र जलका नित्य पान करते हैं, वे मनुष्य नहीं, इस पृथ्वीपर रहनेवाले देवता हैं। द्विजलोग यज्ञ, दान एवं तपस्यासे जिस फलको प्राप्त करते हैं, वह यहाँ स्नान करनेमात्रसे शूद्रोंको भी सुलभ हो जाता है। महापातकी मनुष्य भी पुष्कर तीर्थके दर्शनमात्रसे पापरहित हो जाते हैं और शरीर छूटनेपर स्वर्गको जाते हैं। पुष्करमें उपवास करनेसे पौण्डरीक यज्ञका फल मिलता है। जो वहाँ अपनी शक्तिके अनुसार प्रतिमास भक्तिपूर्वक ब्राह्मणको तिलका दान करता है, वह वैकुण्ठधामको प्राप्त होता है। जो मनुष्य वहाँ शुद्ध वृत्तिसे रहकर तीन राततक उपवास करते हैं और ब्राह्मणोंको धन देते हैं, वे मरनेके पश्चात् ब्रह्माका रूप धारण कर विमानपर आरूढ़ हो ब्रह्माजीके साथ सायुज्य मोक्षको प्राप्त होते हैं।

पुष्करमें गंगोद्भेद तीर्थ है, जहाँ नदियोंमें श्रेष्ठ गंगाजी सरस्वतीको देखनेके लिये आयी थीं। उस समय वहाँ आकर गंगाजीने कहा—'सखी! तुम बड़ी सौभाग्यशालिनी हो। तुमने देवताओंका वह दुष्कर कार्य किया है, जिसे दूसरा कोई कभी नहीं कर सकता था। महाभागे! इसीलिये देवता भी तुम्हारा दर्शन करने आये हैं। तुम मन, वाणी, शरीर और क्रियाद्वारा इनका सत्कार करो।'

पुलस्त्यजी कहते हैं—गंगाजीके ऐसा कहनेपर ब्रह्मकुमारी सरस्वती उन सुरेश्वरोंकी पूजा करके फिर अपनी सखियोंसे मिली। ज्येष्ठ और मध्यम पुष्करके बीच उनका विश्वविख्यात समागम हुआ था। वहाँ सरस्वतीका मुख पश्चिम दिशाकी ओर और गंगाका उत्तरकी ओर है। तदनन्तर पुष्करमें आये हुए समस्त देवता सरस्वतीके दुष्कर कर्मका महत्त्व समझकर उसकी स्तुति करने लगे।

देवता बोले—देवि! तुम्हीं धृति, तुम्हीं मति, तुम्हीं लक्ष्मी, तुम्हीं विद्या और तुम्हीं परागति हो। श्रद्धा, परानिष्ठा, बुद्धि, मेधा, धृति और क्षमा भी तुम्हीं हो। तुम्हीं सिद्धि हो, तुम्हीं स्वाहा और स्वधा हो तथा तुम्हीं परम पवित्र मत (सिद्धान्त) हो। सन्ध्या, रात्रि, प्रभा, भूति, मेधा, श्रद्धा, सरस्वती, यज्ञविद्या, महाविद्या, गुह्यविद्या, सुन्दर आन्वीक्षिकी (तर्कविद्या), त्रयीविद्या (वेदत्रयी) और दण्डनीति—ये सब तुम्हारे ही नाम हैं। समुद्रको जानेवाली श्रेष्ठ नदी! तुम्हें नमस्कार है। पुण्यसलिला सरस्वती! तुम्हें नमस्कार है। पापोंसे छुटकारा दिलानेवाली देवि! तुम्हें नमस्कार है। वरांगने! तुम्हें नमस्कार है।

देवताओंने जब इस प्रकार उस दिव्य देवीका स्तवन किया, तब वह पूर्वाभिमुख होकर स्थित हुई। ब्रह्माजीके कथनानुसार वही प्राची सरस्वती है। सम्पूर्ण देवताओंसे युक्त होनेके कारण देवी सरस्वती सब तीर्थोंमें प्रधान हैं। वहाँ सुधावट नामका एक पितामह-सम्बन्धी तीर्थ है, जिसके दर्शनमात्रसे महापातकी पुरुष भी शुद्ध हो जाते हैं और ब्रह्माजीके समीप रहकर दिव्य भोग भोगते हैं। जो नरश्रेष्ठ वहाँ उपवास करते हैं, वे मृत्युके पश्चात् हंसयुक्त विमानपर आरूढ़ हो निर्भयतापूर्वक शिवलोकको जाते हैं। जो लोग वहाँ शुद्ध अन्तःकरण-वाले ब्रह्मज्ञानी महात्माओंको थोड़ा भी दान करते हैं, उनका वह दान उन्हें सौ जन्मोंतक फल देता रहता है। जो मनुष्य वहाँ टूटे-फूटे तीर्थोंका जीर्णोद्धार करते हैं, वे ब्रह्मलोकमें जाकर सुखी एवं आनन्दित होते हैं। जो मनुष्य वहाँ ब्रह्माजीकी भक्तिके परायण हो पूजा, जप और होम करते हैं, उन्हें वह सब कुछ अनन्त पुण्यफल

प्रदान करता है। उस तीर्थमें दीप-दान करनेसे ज्ञान-नेत्रकी प्राप्ति होती है, मनुष्य अतीन्द्रिय पदमें स्थित होता है और धूप-दानसे उसे ब्रह्मधाम प्राप्त होता है। अधिक क्या कहा जाय, प्राची सरस्वती और गंगाके संगममें जो कुछ दिया जाता है, वह जीते-जी तथा मरनेके बाद भी अक्षयफल प्रदान करनेवाला होता है। वहाँ स्नान, जप और होम करनेसे अनन्त फलकी सिद्धि होती है।

भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने भी उस तीर्थमें आकर मार्कण्डेयजीके कथनानुसार अपने पिता दशरथजीके लिये पिण्ड-दान और श्राद्ध किया था। वहाँ एक चौकोर बावली है, जहाँ पिण्डदान करनेवाले मनुष्य हंसयुक्त विमानसे स्वर्गको जाते हैं। यज्ञवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्माजीने उस तीर्थके ऊपर उत्तम दक्षिणाओंसे युक्त पितृमेध यज्ञ (श्राद्ध) किया था। उसमें उन्होंने वसुओंको पितर, रुद्रोंको पितामह और आदित्योंको प्रपितामह नियत किया था। फिर उन तीनोंको बुलाकर कहा—'आपलोग सदा यहाँ विराजमान रहकर पिण्डदान आदि ग्रहण किया करें।' वहाँ जो पितृकार्य किया जाता है, उसका अक्षय फल होता है। पितर और पितामह सन्तुष्ट होकर उन्हें उत्तम जीविकाकी प्राप्तिके लिये आशीर्वाद देते हैं। वहाँ तर्पण करनेसे पितरोंकी तृप्ति होती है और पिण्डदान करनेसे उन्हें स्वर्ग मिलता है। इसलिये सब कुछ छोड़कर प्राची सरस्वती तीर्थमें तुम पिण्डदान करो। प्रत्येक पुत्रको उचित है कि वह वहाँ जाकर अपने समस्त पितरोंको यत्नपूर्वक तृप्त करे। वहाँ प्राचीनेश्वर भगवान्का स्थान है। उसके सामने आदितीर्थ प्रतिष्ठित है, जो दर्शनमात्रसे मोक्ष प्रदान करनेवाला है। वहाँके जलका स्पर्श करके मनुष्य जन्म-मृत्युके बन्धनसे छुटकारा पा जाता है। उसमें स्नान करनेसे वह ब्रह्माजीका अनुचर होता है। जो मनुष्य आदितीर्थमें स्नान करके एकाग्रतापूर्वक थोड़ेसे अन्नका भी दान करता है, वह स्वर्गलोकको प्राप्त होता है। जो विद्वान् वहाँ स्नान करके ब्रह्माजीके भक्तोंको सुवर्ण और खिचड़ी दान करता है, वह स्वर्गलोकमें सुखी एवं आनन्दित होता है। जहाँ प्राची सरस्वती विद्यमान हैं, वहाँ मनुष्य दूसरे साधनकी खोज क्यों करते हैं। प्राची सरस्वतीमें स्नान करनेसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, उसीके लिये तो जप-तप आदि साधन किये जाते हैं। जो भगवती प्राची सरस्वतीका पवित्र जल पीते हैं, उन्हें मनुष्य नहीं, देवता समझना चाहिये—यह मार्कण्डेय मुनिका कथन है। सरस्वती नदीके तटपर पहुँचकर स्नान करनेका कोई नियम नहीं है। भोजनके बाद अथवा भोजनके पहले, दिनमें अथवा रात्रिमें भी स्नान किया जा सकता है। वह तीर्थ अन्य सब तीर्थोंकी अपेक्षा प्राचीन और श्रेष्ठ माना गया है। वह प्राणियोंके पापोंका नाशक और पुण्यजनक बतलाया गया है।

मार्कण्डेयजीके दीर्घायु होनेकी कथा और श्रीरामचन्द्रजीका लक्ष्मण और सीताके साथ पुष्करमें जाकर पिताका श्राद्ध करना तथा अजगन्ध शिवकी स्तुति करके लौटना

भीष्मजीने पूछा—मुने! मार्कण्डेयजीने वहाँ भगवान् श्रीरामचन्द्रजीको किस प्रकार उपदेश दिया तथा किस समय और कैसे उनका समागम हुआ? मार्कण्डेयजी किसके पुत्र हैं, वे कैसे महान् तपस्वी हुए तथा उनके इस नामका क्या रहस्य है? महामुने! इन सब बातोंका यथार्थ रूपसे वर्णन कीजिये।

पुलस्त्यजीने कहा—राजन्! मैं तुम्हें मार्कण्डेयजीके जन्मकी उत्तम कथा सुनाता हूँ। प्राचीन कल्पकी बात है; मृकण्डु नामसे विख्यात एक मुनि थे, जो महर्षि भृगुके पुत्र थे। वे महाभाग मुनि अपनी पत्नीके साथ वनमें रहकर तपस्या करते थे। वनमें रहते समय ही उनके एक पुत्र हुआ। धीरे-धीरे उसकी अवस्था पाँच वर्षकी हुई। वह बालक होनेपर भी गुणोंमें बहुत बढ़ा-चढ़ा था। एक दिन जब वह बालक आँगनमें घूम रहा था, किसी सिद्ध ज्ञानीने उसकी ओर देखा और बहुत देरतक ठहरकर उसके जीवनके विषयमें विचार किया। बालकके पिताने पूछा—'मेरे पुत्रकी कितनी आयु है?' सिद्ध बोला—'मुनीश्वर! विधाताने तुम्हारे पुत्रकी जो

आयु निश्चित की है, उसमें अब केवल छः महीने और शेष रह गये हैं। मैंने यह सच्ची बात बतायी है; इसके लिये आपको शोक नहीं करना चाहिये।'

भीष्म! उस सिद्ध ज्ञानीकी बात सुनकर बालकके पिताने उसका उपनयन-संस्कार कर दिया और कहा—'बेटा! तुम जिस-किसी मुनिको देखो, प्रणाम करो।' पिताके ऐसा कहनेपर वह बालक अत्यन्त हर्षमें भरकर सबको प्रणाम करने लगा। धीरे-धीरे पाँच महीने, पचीस दिन और बीत गये। तदनन्तर निर्मल स्वभाववाले सप्तर्षिगण उस मार्गसे पधारे। बालकने उन्हें देखकर उन सबको प्रणाम किया। सप्तर्षियोंने उस बालकको **'आयुष्मान् भव, सौम्य!'** कहकर दीर्घायु होनेका आशीर्वाद दिया। इतना कहनेके बाद जब उन्होंने उसकी आयुपर विचार किया, तब पाँच ही दिनकी आयु शेष जानकर उन्हें बड़ा भय हुआ। वे उस बालकको लेकर ब्रह्माजीके पास गये और उसे उनके सामने रखकर उन्होंने ब्रह्माजीको प्रणाम किया। बालकने भी ब्रह्माजीके चरणोंमें मस्तक झुकाया। तब ब्रह्माजीने ऋषियोंके समीप ही उसे चिरायु होनेका आशीर्वाद दिया। पितामहका वचन सुनकर ऋषियोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। तत्पश्चात् ब्रह्माजीने उनसे पूछा—'तुमलोग किस कामसे यहाँ आये हो तथा यह बालक कौन है? बताओ।' ऋषियोंने कहा—'यह बालक मृकण्डुका पुत्र है, इसकी आयु क्षीण हो चुकी है। इसका सबको प्रणाम करनेका स्वभाव हो गया है। एक दिन दैवात् तीर्थयात्राके प्रसंगसे हमलोग उधर जा निकले। यह पृथ्वीपर घूम रहा था। हमने इसकी ओर देखा और इसने हम सब लोगोंको प्रणाम किया। उस समय हमलोगोंके मुखसे बालकके प्रति यह वाक्य निकल गया—**'चिरायुर्भव, पुत्र!** (बेटा! चिरजीवी होओ।)' [आपने भी ऐसा ही कहा है।] अतः देव! आपके साथ हमलोग झूठे क्यों बनें?'
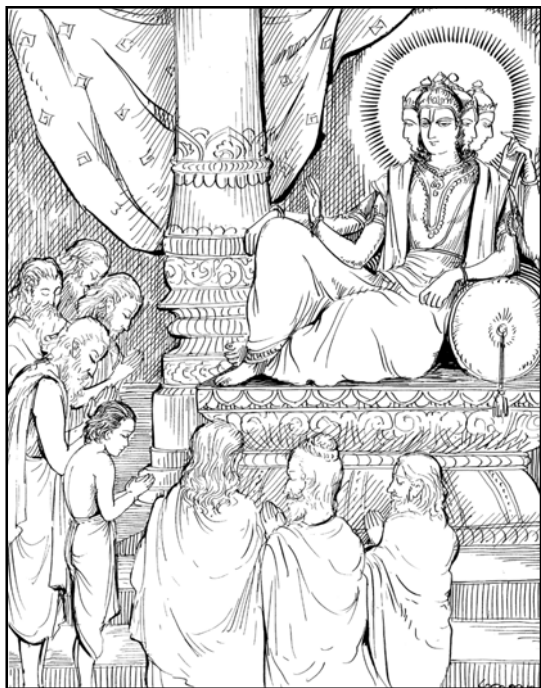
ब्रह्माजीने कहा—ऋषियो! यह बालक मार्कण्डेय आयुमें मेरे समान होगा। यह कल्पके आदि और अन्तमें भी श्रेष्ठ मुनियोंसे घिरा हुआ सदा जीवित रहेगा।

पुलस्त्यजी कहते हैं—इस प्रकार सप्तर्षियोंने ब्रह्माजीसे वरदान दिलवाकर उस बालकको पुनः पृथ्वीतलपर भेज दिया और स्वयं तीर्थयात्राके लिये चले गये। उनके चले जानेपर मार्कण्डेय अपने घर आये और पितासे इस प्रकार बोले—'तात! मुझे ब्रह्मवादी मुनिलोग ब्रह्मलोकमें ले गये थे। वहाँ ब्रह्माजीने मुझे दीर्घायु बना दिया। इसके बाद ऋषियोंने बहुत-से वरदान देकर मुझे यहाँ भेज दिया। अतः आपके लिये जो चिन्ताका कारण था, वह अब दूर हो गया। मैं लोककर्ता ब्रह्माजीकी कृपासे कल्पके आदि और अन्तमें तथा आगे आनेवाले कल्पमें भी जीवित रहूँगा। इस पृथ्वीपर पुष्कर तीर्थ ब्रह्मलोकके समान है; अतः अब मैं वहीं जाऊँगा।'

मार्कण्डेयजीके वचन सुनकर मुनिश्रेष्ठ मृकण्डुको बड़ा हर्ष हुआ। वे एक क्षणतक चुपचाप आनन्दकी साँस लेते रहे। इसके बाद मनके द्वारा धैर्य धारण कर इस प्रकार बोले—'बेटा! आज मेरा जन्म सफल हो गया तथा आज ही मेरा जीवन धन्य हुआ है; क्योंकि तुम्हें सम्पूर्ण जगत्‌की सृष्टि करनेवाले भगवान् ब्रह्माजीका दर्शन प्राप्त हुआ। तुम-जैसे वंशधर पुत्रको पाकर वास्तवमें मैं पुत्रवान् हुआ हूँ। वत्स! जाओ, पुष्करमें विराजमान देवेश्वर ब्रह्माजीका दर्शन करो।

उन जगदीश्वरका दर्शन कर लेनेपर मनुष्योंको बुढ़ापा और मृत्युका द्वार नहीं देखना पड़ता। उन्हें सभी प्रकारके सुख प्राप्त होते हैं तथा उनका तप और ऐश्वर्य भी अक्षय हो जाते हैं। तात! जिस कार्यको मैं भी न कर सका, मेरे किसी कर्मसे जिसकी सिद्धि न हो सकी, उसे तुमने बिना यत्नके ही सिद्ध कर लिया। सबके प्राण लेनेवाली मृत्युको भी जीत लिया। अतः दूसरा कोई मनुष्य इस पृथ्वीपर तुम्हारी समानता नहीं कर सकता। पाँच वर्षकी अवस्थामें ही तुमने मुझे पूर्ण सन्तुष्ट कर दिया; अतः मेरे वरदानके प्रभावसे तुम चिरजीवी महात्माओंके आदर्श माने जाओगे, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। मेरा तो ऐसा आशीर्वाद है ही, तुम्हारे लिये और सब लोग भी यही कहते हैं कि 'तुम अपनी इच्छाके अनुसार उत्तम लोकोंमें जाओगे।'

पुलस्त्यजी कहते हैं—इस प्रकार ऋषियों और गुरुजनोंका अनुग्रह प्राप्त करके मृकण्डुनन्दन मार्कण्डेयजीने पुष्कर तीर्थमें जाकर एक आश्रम स्थापित किया, जो मार्कण्डेय-आश्रमके नामसे प्रसिद्ध है। वहाँ स्नान करके पवित्र हो मनुष्य वाजपेय यज्ञका फल प्राप्त करता है। उसका अन्तःकरण सब पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा उसे दीर्घ आयु प्राप्त होती है। अब मैं दूसरे प्राचीन इतिहासका वर्णन करता हूँ। श्रीरामचन्द्रजीने जिस प्रकार पुष्कर तीर्थका निर्माण किया, वह प्रसंग आरम्भ करता हूँ। पूर्वकालमें श्रीरामचन्द्रजी जब सीता और लक्ष्मणके साथ चित्रकूटसे चलकर महर्षि अत्रिके आश्रमपर पहुँचे, तब वहाँ उन्होंने मुनिश्रेष्ठ अत्रिसे पूछा—'महामुने! इस पृथ्वीपर कौन-कौन-से पुण्यमय तीर्थ अथवा कौन-सा ऐसा क्षेत्र है, जहाँ जाकर मनुष्यको अपने बन्धुओंके वियोगका दुःख नहीं उठाना पड़ता? भगवन्! यदि ऐसा कोई स्थान हो तो वह मुझे बताइये।'

अत्रि बोले—रघुवंशका विस्तार करनेवाले वत्स श्रीराम! तुमने बड़ा उत्तम प्रश्न किया है। मेरे पिता ब्रह्माजीके द्वारा निर्मित एक उत्तम तीर्थ है, जो पुष्कर नामसे विख्यात है। वहाँ दो प्रसिद्ध पर्वत हैं, जिन्हें मर्यादा-पर्वत और यज्ञ-पर्वत कहते हैं। उन दोनोंके बीचमें तीन कुण्ड हैं, जिनके नाम क्रमशः ज्येष्ठ पुष्कर, मध्यम पुष्कर और कनिष्ठ पुष्कर हैं। वहाँ जाकर अपने पिता दशरथको तुम पिण्डदानसे तृप्त करो। वह तीर्थोंमें श्रेष्ठ तीर्थ और क्षेत्रोंमें उत्तम क्षेत्र है। रघुनन्दन! वहाँ अवियोगा नामकी एक चौकोर बावली है तथा एक दूसरा जलसे युक्त कुआँ है, जिसे सौभाग्य-कूप कहते हैं। वहाँपर पिण्डदान करनेसे पितरोंकी मुक्ति हो जाती है। वह तीर्थ प्रलयपर्यन्त रहता है, ऐसा पितामहका कथन है।

पुलस्त्यजी कहते हैं—'बहुत अच्छा!' कहकर श्रीरामचन्द्रजीने पुष्कर जानेका विचार किया। वे ऋक्षवान् पर्वत, विदिशा नगरी तथा चर्मण्वती नदीको पार करके यज्ञपर्वतके पास जा पहुँचे। फिर बड़े वेगसे उस पर्वतको भी पार करके वे मध्यम पुष्करमें गये। वहाँ स्नान करके उन्होंने मध्यम पुष्करके ही जलसे समस्त देवताओं और पितरोंका तर्पण किया। उसी समय मुनिश्रेष्ठ मार्कण्डेयजी अपने शिष्योंके साथ वहाँ आये। श्रीरामचन्द्रजीने जब उन्हें देखा तो सामने जाकर प्रणाम किया और बड़े आदरके साथ कहा—'मुने! मैं राजा दशरथका पुत्र हूँ, मुझे लोग राम कहते हैं। मैं महर्षि अत्रिकी आज्ञासे अवियोगा नामकी बावलीका दर्शन करनेके लिये यहाँ आया हूँ। विप्रवर! बताइये, वह स्थान कहाँ है?'

मार्कण्डेयजीने कहा—रघुनन्दन! इसके लिये मैं आपको साधुवाद देता हूँ, आपका कल्याण हो। आपने यह बड़े पुण्यका कार्य किया कि तीर्थ-यात्राके प्रसंगसे यहाँतक चले आये। यहाँसे अब आप आगे चलिये और 'अवियोगा' नामकी बावलीका दर्शन कीजिये। वहाँ सबका सभी आत्मीयजनोंके साथ संयोग होता है। इहलोक या परलोकमें स्थित, जीवित या मृत—सभी प्रकारके बन्धुओंसे भेंट होती है।

मुनीश्वर मार्कण्डेयजीके ये वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने महाराज दशरथ, भरत, शत्रुघ्न, माताओं तथा अन्य पुरवासीजनोंका स्मरण किया। इस प्रकार

सबका चिन्तन करते-करते उन्हें सन्ध्या हो गयी। तब श्रीरघुनाथजीने मुनियोंके साथ सायंकालका सन्ध्योपासन किया। तत्पश्चात् रात्रिमें भाई और पत्नीके साथ वहीं शयन किया। जब रात्रिका अन्तिम प्रहर व्यतीत होने लगा, तब श्रीरघुनाथजीने स्वप्नमें देखा वे पिताजी तथा अन्य सम्बन्धियोंके साथ अयोध्यामें विराजमान हैं। वैवाहिक मंगल-कार्य समाप्त करके वे बहुत-से बन्धु-बान्धवोंके साथ ऋषियोंसे घिरे बैठे हैं। साथमें पत्नी सीता भी मौजूद हैं।' लक्ष्मण और सीताने भी इसी रूपमें श्रीरघुनाथजीको देखा। सबेरा होनेपर उन्होंने मुनियोंसे सारी बातें निवेदन कीं, जिन्हें सुनकर ऋषियोंने कहा—'रघुनन्दन! यह स्वप्न सत्य है; परन्तु मृत पुरुषका जब स्वप्नमें दर्शन हो तो उसके लिये श्राद्ध करना आवश्यक माना गया है। सन्तानके अभ्युदयकी कामना रखनेवाले तथा अन्न चाहनेवाले पितर ही भक्त सन्तानको स्वप्नमें दर्शन देते हैं। आपको पितासे तो वियोग था ही, माता और भरतके साथ भी चौदह वर्षोंतक वियोग रहेगा। वीर! अब आप राजा दशरथका श्राद्ध कीजिये। ये सभी ऋषि-महर्षि आपके भक्त हैं और आपके शुभ कार्यमें सहयोग देनेके लिये प्रस्तुत हैं। मैं (मार्कण्डेय), जमदग्नि, भरद्वाज, लोमश, देवरात और शमीक—ये छः श्रेष्ठ द्विज श्राद्धमें उपस्थित रहेंगे। महाबाहो! आप केवल सामान जुटाइये। श्राद्धमें प्रधान वस्तु तो हैं इंगुदी (लिसोड़े)-की खली, बेर और आँवले। इनके साथ पके हुए बेल तथा भाँति-भाँतिके मूल होने चाहिये। इन सब वस्तुओंसे तथा श्राद्ध-सम्बन्धी दानके द्वारा आप ब्राह्मणोंको तृप्त कीजिये। सुव्रत! पुष्करके वनमें आकर जो नियमपूर्वक रहता और नियमित आहार करके [श्राद्ध आदिके द्वारा] पितरोंको तृप्त करता है, उसे अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है। श्रीराम! [आप श्राद्धकी सामग्री एकत्रित कराइये,] हमलोग स्नान करनेके लिये ज्येष्ठ पुष्करमें जा रहे हैं।'

श्रीरघुनाथजीसे ऐसा कहकर वे सभी ऋषि चले गये। तब श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणसे कहा—'सुमित्रानन्दन! अच्छे-अच्छे संतरे, कटहल, पारद, मीठे बेल, शालूक, कसेरू, पीली काबरा, अच्छे-अच्छे कैर, शक्कर-जैसे सिंघाड़े, पके कैथ तथा और भी जो सामयिक फल हों, उन्हें श्राद्धके लिये शीघ्र ही ले आओ।' श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा पाकर लक्ष्मणने सारा सामान एकत्रित कर दिया। जानकीजीने भोजन बनाया और तैयार हो जानेपर श्रीरामचन्द्रजीको सूचित कर दिया। श्रीराम भी अवियोगा नामकी बावलीमें स्नान करके मुनियोंके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगे। दुपहरीके बाद जब सूर्य ढलने लगे और कुतप नामकी बेला उपस्थित हुई, उस समय श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा निमन्त्रित सम्पूर्ण ऋषि वहाँ आ पहुँचे। मुनियोंको आया देख विदेहकुमारी सीता वहाँसे दूर हट गयीं और झाड़ियोंकी आड़में छिपकर बैठ गयीं। श्रीरामचन्द्रजीने स्मृतियोंमें बतायी हुई विधिके अनुसार ब्राह्मणोंको भोजन कराया तथा मनुष्योंके श्राद्धके लिये जो वैदिक क्रिया बतलायी गयी है, वह सब सम्पन्न की। फिर वैश्वदेव करके पुराणोक्त विधिका भी पालन किया। ब्राह्मणोंके भोजन कर चुकनेपर क्रमशः पिण्ड देनेके पश्चात् ब्राह्मणोंको विदा किया। उनके चले जानेपर श्रीरामचन्द्रजीने अपनी प्रिया सीतासे कहा—'प्रिये! यहाँ आये हुए मुनियोंको देखकर तुम छिप क्यों गयीं?
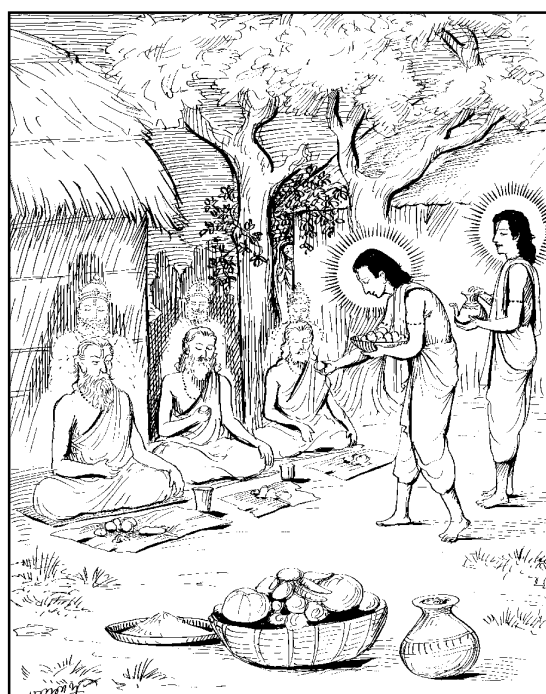
इसका सारा कारण मुझे शीघ्र बताओ।'

सीता बोलीं—नाथ! मैंने जो आश्चर्य देखा, उसे [बताती हूँ,] सुनिये। आपके द्वारा नामोच्चारण होते ही स्वर्गीय महाराज यहाँ आकर उपस्थित हो गये। उनके साथ उन्हींके समान रूप-रेखावाले दो पुरुष और आये थे, जो सब प्रकारके आभूषण धारण किये हुए थे। वे तीनों ही ब्राह्मणोंके शरीरसे सटे हुए थे। रघुनन्दन! ब्राह्मणोंके अंगोंमें मुझे पितरोंके दर्शन हुए। उन्हें देखकर मैं लज्जाके मारे आपके पाससे हट गयी। इसीलिये आपने अकेले ही ब्राह्मणोंको भोजन कराया और विधिपूर्वक श्राद्धकी क्रिया भी सम्पन्न की। भला, मैं स्वर्गीय महाराजके सामने कैसे खड़ी होती। यह आपसे मैंने सच्ची बात बतायी है।

पुलस्त्यजी कहते हैं—यह सुनकर श्रीरघुनाथजी बहुत प्रसन्न हुए और प्रिय वचन बोलनेवाली प्रियतमा सीताको बड़े आदरके साथ हृदयसे लगा लिया। तत्पश्चात् श्रीराम और लक्ष्मण दोनों वीरोंने भोजन किया। उनके बाद जानकीजीने स्वयं भी भोजन किया। इस प्रकार दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण तथा सीताने वह रात वहीं बितायी। दूसरे दिन सूर्योदय होनेपर सबने जानेका निश्चय किया। श्रीरामचन्द्रजी पश्चिमकी ओर चले और एक कोस चलकर ज्येष्ठ पुष्करके पास जा पहुँचे। श्रीरघुनाथजी ज्यों ही जाकर पुष्करके पूर्वमें खड़े हुए, त्यों ही उन्हें देवदूतके कहे हुए ये वचन सुनायी दिये—'रघुनन्दन! आपका कल्याण हो। यह तीर्थ अत्यन्त दुर्लभ है। वीरवर! इस स्थानपर कुछ कालतक निवास कीजिये; क्योंकि आपको देवताओंका कार्य सिद्ध करना—देवशत्रुओंका वध करना है।' यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजीके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई, उन्होंने लक्ष्मणसे कहा—'सुमित्रानन्दन! देवाधिदेव ब्रह्माजीने हमलोगोंपर अनुग्रह किया है। अत: मैं यहाँ आश्रम बनाकर एक मासतक रहना तथा शरीरकी शुद्धि करनेवाले उत्तम व्रतका आचरण करना चाहता हूँ।' लक्ष्मणने 'बहुत अच्छा' कहकर उनकी बातका अनुमोदन किया। तत्पश्चात् वहाँ अपना व्रत पूर्ण करके वे दोनों भाई चले और पुष्कर क्षेत्रकी सीमा मर्यादा-पर्वतके पास जा पहुँचे। वहाँ देवताओंके स्वामी पिनाकधारी देवदेव महादेवजीका स्थान था। वे वहाँ अजगन्धके नामसे प्रसिद्ध थे। श्रीरामचन्द्रजीने वहाँ जाकर त्रिनेत्रधारी भगवान् उमानाथको साष्टांग प्रणाम किया। उनके दर्शनसे श्रीरघुनाथजीके श्रीविग्रहमें रोमांच हो आया। वे सात्त्विक भावमें स्थित हो गये। उन्होंने देवेश्वर भगवान् श्रीशिवको ही जगत्का कारण समझा और विनम्रभावसे स्थित हो उनकी स्तुति करने लगे।

श्रीरामचन्द्रजी बोले—

कृत्स्नस्य योऽस्य जगतः सचराचरस्य
कर्ता कृतस्य च तथा सुखदुःखहेतुः।
संहारहेतुरपि यः पुनरन्तकाले
तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि॥

जो चराचर प्राणियोंसहित इस सम्पूर्ण जगत्को उत्पन्न करनेवाले हैं, उत्पन्न हुए जगत्के सुख-दु:खमें एकमात्र कारण हैं तथा अन्तकालमें जो पुनः इस विश्वके संहारमें भी कारण बनते हैं, उन शरणदाता भगवान् श्रीशंकरकी मैं शरण लेता हूँ।

यं योगिनो विगतमोहतमोरजस्का
भक्त्यैकतानमनसो विनिवृत्तकामाः।
ध्यायन्ति निश्चलधियोऽमितदिव्यभावं
तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि॥

जिनके हृदयसे मोह, तमोगुण और रजोगुण दूर हो गये हैं, भक्तिके प्रभावसे जिनका चित्त भगवान्के ध्यानमें लीन हो रहा है, जिनकी सम्पूर्ण कामनाएँ निवृत्त हो चुकी हैं और जिनकी बुद्धि स्थिर हो गयी है, ऐसे योगी पुरुष अपरिमेय दिव्यभावसे सम्पन्न जिन भगवान् शिवका निरन्तर ध्यान करते रहते हैं, उन शरणदाता भगवान् श्रीशंकरकी मैं शरण लेता हूँ।

यश्चेन्दुखण्डममलं विलसन्मयूखं
बद्ध्वा सदा प्रियतमां शिरसा बिभर्ति।
यश्चार्द्धदेहमददाद् गिरिराजपुत्र्यै
तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि॥

जो सुन्दर किरणोंसे युक्त निर्मल चन्द्रमाकी कलाको

जटाजूटमें बाँधकर अपनी प्रियतमा गंगाजीको मस्तकपर धारण करते हैं, जिन्होंने गिरिराजकुमारी उमाको अपना आधा शरीर दे दिया है, उन शरणदाता भगवान् श्रीशंकरकी मैं शरण लेता हूँ।

योऽयं सकृद्विमलचारुविलोलतोयां
गङ्गां महोर्मिविषमां गगनात् पतन्तीम्।
मूर्ध्नाऽऽददे स्रजमिव प्रतिलोलपुष्पां
तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि॥

आकाशसे गिरती हुई गंगाजीको, जो स्वच्छ, सुन्दर एवं चंचल जलराशिसे युक्त तथा ऊँची-ऊँची लहरोंसे उल्लसित होनेके कारण भयंकर जान पड़ती थीं, जिन्होंने हिलते हुए फूलोंसे सुशोभित मालाकी भाँति सहसा अपने मस्तकपर धारण कर लिया, उन शरणदाता भगवान् श्रीशंकरकी मैं शरण लेता हूँ।

कैलासशैलशिखरं प्रतिकम्प्यमानं
कैलासशृङ्गसदृशेन दशाननेन।
यः पादपद्मपरिवादनमादधान-
स्तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि॥

कैलास पर्वतके शिखरके समान ऊँचे शरीरवाले दशमुख रावणके द्वारा हिलायी जाती हुई कैलास-गिरिकी चोटीको जिन्होंने अपने चरणकमलोंसे ताल देकर स्थिर कर दिया, उन शरणदाता भगवान् श्रीशंकरकी मैं शरण लेता हूँ।

येनासकृद् दितिसुताः समरे निरस्ता
विद्याधरोरगगणाश्च वरैः समग्राः।
संयोजिता मुनिवराः फलमूलभक्षा-
स्तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि॥

जिन्होंने अनेकों बार दैत्योंको युद्धमें परास्त किया है और विद्याधर, नागगण तथा फल-मूलका आहार करनेवाले सम्पूर्ण मुनिवरोंको उत्तम वर दिये हैं, उन शरणदाता भगवान् श्रीशंकरकी मैं शरण लेता हूँ।

दग्ध्वाध्वरं च नयने च तथा भगस्य
पूष्णस्तथा दशनपङ्क्तिमपातयच्च।
तस्तम्भ यः कुलिशयुक्तमहेन्द्रहस्तं
तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि॥

जिन्होंने दक्षका यज्ञ भस्म करके भग देवताकी आँखें फोड़ डालीं और पूषाके सारे दाँत गिरा दिये तथा वज्रसहित देवराज इन्द्रके हाथको भी स्तम्भित कर दिया—जडवत् निश्चेष्ट बना दिया, उन शरणदाता भगवान् श्रीशंकरकी मैं शरण लेता हूँ।

एनस्कृतोऽपि विषयेष्वपि सक्तभावा
ज्ञानान्वयश्रुतगुणैरपि नैव युक्ताः।
यं संश्रिताः सुखभुजः पुरुषा भवन्ति
तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि॥

जो पापकर्ममें निरत और विषयासक्त हैं, जिनमें उत्तम ज्ञान, उत्तम कुल, उत्तम शास्त्र-ज्ञान और उत्तम गुणोंका भी अभाव है—ऐसे पुरुष भी जिनकी शरणमें जानेसे सुखी हो जाते हैं, उन शरणदाता भगवान् श्रीशंकरकी मैं शरण लेता हूँ।

अत्रिप्रसूतिरविकोटिसमानतेजाः
संत्रासनं विबुधदानवसत्तमानाम्।
यः कालकूटमपिबत् समुदीर्णवेगं
तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि॥

जो तेजमें करोड़ों चन्द्रमाओं और सूर्योंके समान हैं; जिन्होंने बड़े-बड़े देवताओं तथा दानवोंका भी दिल दहला देनेवाले कालकूट नामक भयंकर विषका पान कर लिया था, उन प्रचण्ड वेगशाली शरणदाता भगवान् श्रीशंकरकी मैं शरण लेता हूँ।

ब्रह्मेन्द्ररुद्रमरुतां च सषण्मुखानां
योऽदाद् वरांश्च बहुशो भगवान् महेशः।
नन्दिं च मृत्युवदनात् पुनरुज्जहार
तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि॥

जिन भगवान् महेश्वरने कार्तिकेयके सहित ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र तथा मरुद्गणोंको अनेकों बार वर दिये हैं तथा नन्दीका मृत्युके मुखसे उद्धार किया, उन शरणदाता भगवान् श्रीशंकरकी मैं शरण लेता हूँ।

आराधितः सुतपसा हिमवन्निकुञ्जे
धूम्रव्रतेन मनसाऽपि परैरगम्यः।
सञ्जीवनीं समददाद् भृगवे महात्मा
तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि॥

जो दूसरोंके लिये मनसे भी अगम्य हैं, महर्षि भृगुने हिमालय पर्वतके निकुंजमें होमका धुआँ पीकर कठोर तपस्याके द्वारा जिनकी आराधना की थी तथा जिन महात्माने भृगुको [उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर] संजीवनी विद्या प्रदान की, उन शरणदाता भगवान् श्रीशंकरकी मैं शरण लेता हूँ।

नानाविधैर्गजबिडालसमानवक्त्रै-
र्दक्षाध्वरप्रमथनैर्बलिभिर्गणौघैः।
योऽभ्यर्च्यतेऽमरगणैश्च सलोकपालै-
स्तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि॥

हाथी और बिल्ली आदिकी-सी मुखाकृतिवाले तथा दक्ष-यज्ञका विनाश करनेवाले नाना प्रकारके महाबली गणोंद्वारा जिनकी निरन्तर पूजा होती रहती है एवं लोकपालोंसहित देवगण भी जिनकी आराधना किया करते हैं, उन शरणदाता भगवान् श्रीशंकरकी मैं शरण लेता हूँ।

क्रीडार्थमेव भगवान् भुवनानि सप्त
नानानदीविहगपादपमण्डितानि।
सब्रह्मकानि व्यसृजत् सुकृताहितानि
तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि॥

जिन भगवान्ने अपनी क्रीडाके लिये ही अनेकों नदियों, पक्षियों और वृक्षोंसे सुशोभित एवं ब्रह्माजीसे अधिष्ठित सातों भुवनोंकी रचना की है तथा जिन्होंने सम्पूर्ण लोकोंको अपने पुण्यपर ही प्रतिष्ठित किया है, उन शरणदाता भगवान् श्रीशंकरकी मैं शरण लेता हूँ।

यस्याखिलं जगदिदं वशवर्त्ति नित्यं
योऽष्टाभिरेव तनुभिर्भुवनानि भुङ्क्ते।
यः कारणं सुमहतामपि कारणानां
तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि॥

यह सम्पूर्ण विश्व सदा ही जिनकी आज्ञाके अधीन है, जो [जल, अग्नि, यजमान, सूर्य, चन्द्रमा, आकाश, वायु और प्रकृति—इन] आठ विग्रहोंसे समस्त लोकोंका उपभोग करते हैं तथा जो बड़े-से-बड़े कारण-तत्त्वोंके भी महाकारण हैं, उन शरणदाता भगवान् श्रीशंकरकी मैं शरण लेता हूँ।

शङ्खेन्दुकुन्दधवलं वृषभप्रवीर-
मारुह्य यः क्षितिधरेन्द्रसुतानुयातः।
यात्यम्बरे हिमविभूतिविभूषिताङ्ग-
स्तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि॥

जो अपने श्रीविग्रहको हिम और भस्मसे विभूषित करके शंख, चन्द्रमा और कुन्दके समान श्वेतवर्णवाले वृषभ-श्रेष्ठ नन्दीपर सवार होकर गिरिराजकिशोरी उमाके साथ आकाशमें विचरते हैं, उन शरणदाता भगवान् श्रीशंकरकी मैं शरण लेता हूँ।

शान्तं मुनिं यमनियोगपरायणं तै-
र्भीमैर्यमस्य पुरुषैः प्रतिनीयमानम्।
भक्त्या नतं स्तुतिपरं प्रसभं ररक्ष
तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि॥

यमराजकी आज्ञाके पालनमें लगे रहनेपर भी जिन्हें वे भयंकर यमदूत पकड़कर लिये जा रहे थे तथा जो भक्तिसे नम्र होकर स्तुति कर रहे थे, उन शान्त मुनिकी जिन्होंने बलपूर्वक यमदूतोंसे रक्षा की, उन शरणदाता भगवान् श्रीशंकरकी मैं शरण लेता हूँ।

यः सव्यपाणिकमलाग्रनखेन देव-
स्तत् पञ्चमं प्रसभमेव पुरः सुराणाम्।
ब्राह्मं शिरस्तरुणपद्मनिभं चकर्त
तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि॥

जिन्होंने समस्त देवताओंके सामने ही ब्रह्माजीके उस पाँचवें मस्तकको, जो नवीन कमलके समान शोभा पा रहा था, अपने बायें हाथके नखसे बलपूर्वक काट डाला था, उन शरणदाता भगवान् श्रीशंकरकी मैं शरण लेता हूँ।

यस्य प्रणम्य चरणौ वरदस्य भक्त्या
स्तुत्वा च वाग्भिरमलाभिरतन्द्रिताभिः।
दीप्तैस्तमांसि नुदते स्वकरैर्विवस्वां-
स्तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि॥

जिन वरदायक भगवान्के चरणोंमें भक्तिपूर्वक प्रणाम करके तथा आलस्यरहित निर्मल वाणीके द्वारा जिनकी स्तुति करके सूर्यदेव अपनी उद्दीप्त किरणोंसे जगत्का अन्धकार दूर करते हैं, उन शरणदाता भगवान् श्रीशंकरकी मैं शरण लेता हूँ।

ये त्वां सुरोत्तम गुरुं पुरुषा विमूढा
जानन्ति नास्य जगतः सचराचरस्य।
ऐश्वर्यमाननिगमानुशयेन पश्चा-
त्ते यातनां त्वनुभवन्त्यविशुद्धचित्ताः॥

देवश्रेष्ठ! जो मलिनहृदय मूढ पुरुष ऐश्वर्य, मान-प्रतिष्ठा तथा वेदविद्याके अभिमानके कारण आपको इस चराचर जगत्का गुरु नहीं जानते, वे मृत्युके पश्चात् नरककी यातना भोगते हैं।

पुलस्त्यजी कहते हैं—श्रीरघुनाथजीके इस प्रकार स्तुति करनेपर हाथमें त्रिशूल धारण करनेवाले वृषभध्वज भगवान् श्रीशंकरने सन्तुष्ट हो हर्षमें भरकर कहा—'रघुनन्दन! आपका कल्याण हो। मैं आपके ऊपर बहुत सन्तुष्ट हूँ। आपने विमल वंशमें अवतार लिया है। आप जगत्के वन्दनीय हैं। मानव-शरीरमें प्रकट होनेपर भी वास्तवमें आप देवस्वरूप हैं। आप-जैसे रक्षकके द्वारा सुरक्षित हो देवता अनन्त वर्षोंतक सुखी रहेंगे। चिरकालतक उनकी वृद्धि होती रहेगी। चौदहवाँ वर्ष बीतनेपर जब आप अयोध्याको लौट जायँगे, उस समय इस पृथ्वीपर रहनेवाले जो-जो मनुष्य आपका दर्शन करेंगे, वे सभी सुखी होंगे तथा उन्हें अक्षय स्वर्गका निवास प्राप्त होगा। अतः आप देवताओंका महान् कार्य करके पुनः अयोध्यापुरीको लौट जाइये।

यह सुनकर श्रीरघुनाथजी श्रीशंकरजीको प्रणाम करके शीघ्र ही वहाँसे चल दिये। इन्द्रमार्गा नदीके पास पहुँचकर उन्होंने अपनी जटा बाँधी। फिर सब लोग महानदी नर्मदाके तटपर गये। वहाँ श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मण और सीताके साथ स्नान किया तथा नर्मदाके जलसे देवताओं और अपने पितरोंका तर्पण किया। इसके बाद उन दोनों भाइयोंने एकाग्र मनसे भगवान् सूर्य तथा अन्यान्य देवताओंको बारम्बार मस्तक झुकाया। जैसे भगवान् श्रीशंकर पार्वती और कार्तिकेयके साथ स्नान करके शोभा पाते हैं, उसी प्रकार सीता और लक्ष्मणके साथ नर्मदामें नहाकर श्रीरामचन्द्रजी भी सुशोभित हुए।

ब्रह्माजीके यज्ञके ऋत्विजोंका वर्णन, सब देवताओंको ब्रह्माद्वारा वरदानकी प्राप्ति, श्रीविष्णु और श्रीशिवद्वारा ब्रह्माजीकी स्तुति तथा ब्रह्माजीके द्वारा भिन्न-भिन्न तीर्थोंमें अपने नामों और पुष्करकी महिमाका वर्णन

भीष्मजीने पूछा—ब्रह्मन्! लोकविधाता भगवान् ब्रह्माजीने किस समय यज्ञसम्बन्धी सामग्रियाँ एकत्रित करके उनसे यज्ञ करना आरम्भ किया? वह यज्ञ जैसा और जिस प्रकार हुआ था, वह सब मुझे बताइये।

पुलस्त्यजीने कहा—राजन्! यह तो मैं पहले ही बता चुका हूँ कि जब स्वायम्भुव मनु भूलोकके राज्य-सिंहासनपर प्रतिष्ठित हुए, उस समय ब्रह्माजीने समस्त प्रजापतियोंको उत्पन्न करके कहा—'तुमलोग सृष्टि करो' और स्वयं वे पुष्करमें जा यज्ञ-सामग्री एकत्रित करके अग्निशालामें स्थित हो यज्ञ करने लगे। ब्रह्माजी समस्त देवताओं, गन्धर्वों तथा अप्सराओंको भी वहाँ ले गये थे। ब्रह्मा, उद्गाता, होता और अध्वर्यु—ये चार प्रधानरूपसे यज्ञके निर्वाहक होते हैं। इनमेंसे प्रत्येकके साथ अन्य तीन व्यक्ति परिवाररूपमें रहते हैं, जिन्हें ये स्वयं ही निर्वाचित करते हैं। ब्रह्मा, ब्राह्मणाच्छंसी, पोता तथा आग्नीध्र—इन चार व्यक्तियोंका एक समुदाय होता है। इन सबको ब्रह्माका परिवार कहते हैं। ये चारों व्यक्ति आन्वीक्षिकी (तर्कशास्त्र) तथा वेदविद्यामें प्रवीण होते हैं। उद्गाता, प्रत्युद्गाता, प्रतिहर्ता और सुब्रह्मण्य—इन चार व्यक्तियोंका दूसरा समुदाय उद्गाताका परिवार कहलाता है। होता, मैत्रावरुणि, अच्छावाक और ग्रावस्तुत—इन चार व्यक्तियोंका तीसरा समुदाय उद्गाताका परिवार होता है। अध्वर्यु, प्रतिप्रस्थाता, नेष्टा और उन्नेता—इन चारोंका चौथा समुदाय अध्वर्युका परिवार माना गया है। शन्तनुनन्दन! वेदके प्रधान-प्रधान विद्वानोंने ये सोलह ऋत्विज् बताये हैं। स्वयम्भू ब्रह्माजीने तीन सौ छाछठ

यज्ञोंकी सृष्टि की है। उन सबमें इतने ही ब्राह्मण ऋत्विज् बतलाये गये हैं। कोई-कोई ऊपर बताये हुए ऋत्विजोंके अतिरिक्त एक सदस्य और दस चमसाध्वर्युओंका निर्वाचन चाहते हैं।

ब्रह्माजीके यज्ञमें देवर्षि नारदको ब्रह्मा बनाया गया। गौतम ब्राह्मणाच्छंसी हुए। देवरातको पोता और देवलको आग्नीध्रके पदपर प्रतिष्ठित किया गया। अंगिराका उद्‌गाताके रूपमें वरण हुआ। पुलह प्रस्तोता बनाये गये। नारायण ऋषि प्रतिहर्ता हुए और अत्रि सुब्रह्मण्य कहलाये। उस यज्ञमें भृगु होता, वसिष्ठ मैत्रावरुणि, क्रतु अच्छावाक तथा च्यवन ग्रावस्तुत बनाये गये। मैं (पुलस्त्य) अध्वर्यु था और शिबि प्रतिष्ठाता। बृहस्पति नेष्टा, सांशपायन उन्नेता और अपने पुत्र-पौत्रोंके साथ धर्म सदस्य थे। भरद्वाज, शमीक, पुरुकुत्स्य, युगन्धर, एणक, ताण्डिक, कोण, कुतप, गार्ग्य और वेदशिरा—ये दस चमसाध्वर्यु बनाये गये। कण्व आदि अन्य महर्षि तथा मार्कण्डेय और अगस्त्य मुनि अपने पुत्र, पौत्र, शिष्य तथा बान्धवोंके साथ उपस्थित होकर रात-दिन आलस्य छोड़कर उस यज्ञमें आवश्यक कार्य किया करते थे। मन्वन्तर व्यतीत होनेपर उस यज्ञका अवभृथ (यज्ञान्त-स्नान) हुआ। उस समय ब्रह्माको पूर्व दिशा, होताको दक्षिण दिशा, अध्वर्युको पश्चिम दिशा और उद्‌गाताको उत्तर दिशा दक्षिणाके रूपमें दी गयी। ब्रह्माजीने समूची त्रिलोकी ऋत्विजोंको दक्षिणाके रूपमें दे दी। बुद्धिमान् पुरुषोंको यज्ञकी सिद्धिके लिये एक सौ दूध देनेवाली गौएँ दान करनी चाहिये। उनमेंसे यज्ञका निर्वाह करनेवाले प्रथम समुदायके ऋत्विजोंको अड़तालीस, द्वितीय समुदायवालोंको चौबीस, तृतीय समुदायको सोलह और चतुर्थ समुदायको बारह गौएँ देनी उचित हैं। इस प्रकार आग्नीध्र आदिको दक्षिणा देनी चाहिये। इसी संख्यामें गाँव, दास-दासी तथा भेड़-बकरियाँ भी देनी चाहिये। अवभृथ-स्नानके बाद ब्राह्मणोंको षट्‌रस भोजन देना चाहिये। स्वायम्भुव मनुका कथन है कि यजमान यज्ञके अन्तमें अपना सर्वस्व दान कर दे। अध्वर्यु और सदस्योंको अपनी इच्छाके अनुसार जितना हो सके दान देना चाहिये।

तदनन्तर देवाधिदेव ब्रह्माजीने भगवान् श्रीविष्णुके साथ यज्ञान्त-स्नानके पश्चात् सब देवताओंको वरदान दिये। उन्होंने इन्द्रको देवताओंका, सूर्यको ग्रहोंसहित समस्त ज्योतिर्मण्डलका, चन्द्रमाको नक्षत्रोंका, वरुणको रसोंका, दक्षको प्रजापतियोंका, समुद्रको नदियोंका, धनाध्यक्ष कुबेरको यक्ष और राक्षसोंका, पिनाकधारी महादेवजीको सम्पूर्ण भूतगणोंका, मनुको मनुष्योंका, गरुड़को पक्षियोंका तथा वसिष्ठको ऋषियोंका स्वामी बनाया। इस प्रकार अनेकों वरदान देकर देवाधिदेव ब्रह्माजीने भगवान् विष्णु और शंकरसे आदरपूर्वक कहा—'आप दोनों पृथ्वीके समस्त तीर्थोंमें परम पूजनीय होंगे। आपके बिना कभी कोई भी तीर्थ पवित्र नहीं होगा। जहाँ कहीं शिवलिंग या विष्णुकी प्रतिमाका दर्शन होगा, वही तीर्थ परम पवित्र और श्रेष्ठ फल देनेवाला हो सकता है। जो लोग पुष्प आदि वस्तुओंकी भेंट चढ़ाकर आपलोगोंकी तथा मेरी पूजा करेंगे, उन्हें कभी रोगका भय नहीं होगा। जिन राज्योंमें मेरा तथा आपलोगोंका पूजन आदि होगा, वहाँ भी क्रियाएँ सफल होंगी तथा और भी जिन-जिन फलोंकी प्राप्ति होगी, उन्हें सुनिये। वहाँकी प्रजाको कभी मानसिक चिन्ता, शारीरिक रोग, दैवी उपद्रव और क्षुधा आदिका भय नहीं होगा। प्रियजनोंसे वियोग और अप्रिय मनुष्योंसे संयोगकी भी सम्भावना नहीं होगी।' यह सुनकर भगवान् श्रीविष्णु ब्रह्माजीकी स्तुति करनेको उद्यत हुए।

भगवान् श्रीविष्णु बोले—जिनका कभी अन्त नहीं होता, जो विशुद्धचित्त और आत्मस्वरूप हैं, जिनके हजारों भुजाएँ हैं, जो सहस्र किरणोंवाले सूर्यकी भी उत्पत्तिके कारण हैं, जिनका शरीर और कर्म दोनों अत्यन्त शुद्ध हैं, उन सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीको नमस्कार है। जो समस्त विश्वकी पीड़ा हरनेवाले, कल्याणकारी, सहस्रों सूर्य और अग्निके समान प्रचण्ड तेजस्वी, सम्पूर्ण विद्याओंके आश्रय, चक्रधारी तथा समस्त ज्ञानेन्द्रियोंको व्याप्त करके स्थित हैं, उन परमेश्वरको सदा नमस्कार है। प्रभो! आप अनादि देव हैं। अपनी महिमासे कभी च्युत

नहीं होते। इसलिये 'अच्युत' हैं। आप शंकररूपसे शेषनागका मुकुट धारण करते हैं, इसलिये 'शेषशेखर' हैं। महेश्वर! आप ही भूत और वर्तमानके स्वामी हैं। सर्वेश्वर! आप मरुद्गणोंके, जगत्‌के, पृथ्वीके तथा समस्त भुवनोंके पति हैं। आपको सदा प्रणाम है। आप ही जलके स्वामी वरुण, क्षीरशायी नारायण, विष्णु, शंकर, पृथ्वीके स्वामी, विश्वका शासन करनेवाले, जगत्‌को नेत्र देनेवाले [अथवा जगत्‌को अपनी दृष्टिमें रखनेवाले], चन्द्रमा, सूर्य, अच्युत, वीर, विश्वस्वरूप, तर्कके अविषय, अमृतस्वरूप और अविनाशी हैं। प्रभो! आपने अपने तेज:स्वरूप प्रज्वलित अग्निकी ज्वालासे समस्त भुवनमण्डलको व्याप्त कर रखा है। आप हमारी रक्षा करें। आपके मुख सब ओर हैं। आप समस्त देवताओंकी पीड़ा हरनेवाले हैं। अमृतस्वरूप और अविनाशी हैं। मैं आपके अनेकों मुख देख रहा हूँ। आप शुद्ध अन्त:करणवाले पुरुषोंकी परमगति और पुराणपुरुष हैं। आप ही ब्रह्मा, शिव तथा जगत्‌के जन्मदाता हैं। आप ही सबके परदादा हैं। आपको नमस्कार है। आदिदेव! संसारचक्रमें अनेकों बार चक्कर लगानेके बाद उत्तम मार्गके अवलम्बन और विज्ञानके द्वारा जिन्होंने अपने शरीरको विशुद्ध बना लिया है, उन्हींको कभी आपकी उपासनाका सौभाग्य प्राप्त होता है। देववर! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। भगवन्! जो आपको प्रकृतिसे परे, अद्वितीय ब्रह्मस्वरूप समझता है, वही सर्वज्ञोंमें श्रेष्ठ है। गुणमय पदार्थोंमें आप विराट्‌रूपसे पहचाने जा सकते हैं तथा अन्त:करणमें [बुद्धिके द्वारा] आपका सूक्ष्मरूपसे बोध होता है। भगवन्! आप जिह्वा, हाथ, पैर आदि इन्द्रियोंसे रहित होनेपर भी पद्म धारण करते हैं। गति और कर्मसे रहित होनेपर भी संसारी हैं। देव! इन्द्रियोंसे शून्य होनेपर भी आप सृष्टि कैसे करते हैं? भगवन्! विशुद्ध भाववाले याज्ञिक पुरुष संसार-बन्धनका उच्छेद करनेवाले यज्ञोंद्वारा आपका यजन करते हैं, परन्तु उन्हें स्थूल साधनसे सूक्ष्म परात्पर रूपका ज्ञान नहीं होता; अत: उनकी दृष्टिमें आपका यह चतुर्मुख स्वरूप ही रह जाता है। अद्भुत रूप धारण करनेवाले परमेश्वर! देवता आदि भी आपके उस परम स्वरूपको नहीं जानते; अत: वे भी कमलासनपर विराजमान उस पुरातन विग्रहकी ही आराधना करते हैं, जो अवतार धारण करनेसे उग्र प्रतीत होता है। आप विश्वकी रचना करनेवाले प्रजापतियोंके भी उत्पत्ति-स्थान हैं। विशुद्ध भाववाले योगीजन भी आपके तत्त्वको पूर्णरूपसे नहीं जानते। आप तपस्यासे विशुद्ध आदिपुरुष हैं। पुराणमें यह बात बारम्बार कही गयी है कि कमलासन ब्रह्माजी ही सबके पिता हैं, उन्हींसे सबकी उत्पत्ति हुई है। इसी रूपमें आपका चिन्तन भी किया जाता है। आपके उसी स्वरूपको मूढ़ मनुष्य अपनी बुद्धि लगाकर जानना चाहते हैं। वास्तवमें उनके भीतर बुद्धि है ही नहीं। अनेकों जन्मोंकी साधनासे वेदका ज्ञान, विवेकशील बुद्धि अथवा प्रकाश (ज्ञान) प्राप्त होता है। जो उस ज्ञानकी प्राप्तिका लोभी है, वह फिर मनुष्य-योनिमें नहीं जन्म लेता; वह तो देवता और गन्धर्वोंका स्वामी अथवा कल्याणस्वरूप हो जाता है। भक्तोंके लिये आप अत्यन्त सुलभ हैं; जो आपका त्याग कर देते हैं— आपसे विमुख होते हैं, वे नरकमें पड़ते हैं। प्रभो! आपके रहते इन सूर्य, चन्द्रमा, वसु, मरुद्गण और पृथ्वी आदिकी क्या आवश्यकता है; आपने ही अपने स्वरूपभूत तत्त्वोंसे इन सबका रूप धारण किया है। आपके आत्माका ही प्रभाव सर्वत्र विस्तृत है; भगवन्! आप अनन्त हैं—आपकी महिमाका अन्त नहीं है। आप मेरी की हुई यह स्तुति स्वीकार करें। मैंने हृदयको शुद्ध करके, समाहित हो, आपके स्वरूपके चिन्तनमें मनको लगाकर यह स्तवन किया है। प्रभो! आप सदा मेरे हृदयमें विराजमान रहते हैं, आपको नमस्कार है। आपका स्वरूप सबके लिये सुगम—सुबोध नहीं है; क्योंकि आप सबसे पृथक्—सबसे परे हैं।

ब्रह्माजी बोले—केशव! इसमें सन्देह नहीं कि आप सर्वज्ञ और ज्ञानकी राशि हैं। देवताओंमें आप सदा सबसे पहले पूजे जाते हैं।

भगवान् श्रीविष्णुके बाद रुद्रने भी भक्तिसे

नतमस्तक होकर ब्रह्माजीका इस प्रकार स्तवन किया—'कमलके समान नेत्रोंवाले देवेश्वर! आपको नमस्कार है। आप संसारकी उत्पत्तिके कारण हैं और स्वयं कमलसे प्रकट हुए हैं, आपको नमस्कार है। प्रभो! आप देवता और असुरोंके भी पूर्वज हैं, आपको प्रणाम है। संसारकी सृष्टि करनेवाले आप परमात्माको नमस्कार है। सम्पूर्ण देवताओंके ईश्वर! आपको प्रणाम है। सबका मोह दूर करनेवाले जगदीश्वर! आपको नमस्कार है। आप विष्णुकी नाभिसे प्रकट हुए हैं, कमलके आसनपर आपका आविर्भाव हुआ है। आप मूँगेके समान लाल अंगों तथा कर-पल्लवोंसे शोभायमान हैं, आपको नमस्कार है।

'नाथ! आप किन-किन तीर्थस्थानोंमें विराजमान हैं तथा इस पृथ्वीपर आपके स्थान किस-किस नामसे प्रसिद्ध हैं?'

ब्रह्माजीने कहा—पुष्करमें मैं देवश्रेष्ठ ब्रह्माजीके नामसे प्रसिद्ध हूँ। गयामें मेरा नाम चतुर्मुख है। कान्यकुब्जमें देवगर्भ [या वेदगर्भ] और भृगुकक्ष (भृगुक्षेत्र)-में पितामह कहलाता हूँ। कावेरीके तटपर सृष्टिकर्ता, नन्दीपुरीमें बृहस्पति, प्रभासमें पद्मजन्मा, वानरी (किष्किन्धा)-में सुरप्रिय, द्वारकामें ऋग्वेद, विदिशापुरीमें भुवनाधिप, पौण्ड्रकमें पुण्डरीकाक्ष, हस्तिनापुरमें पिंगाक्ष, जयन्तीमें विजय, पुष्करावतमें जयन्त, उग्रदेशमें पद्महस्त, श्यामलापुरीमें भवोरुद, अहिच्छत्रमें जयानन्द, कान्तिपुरीमें जनप्रिय, पाटलिपुत्र (पटना)-में ब्रह्मा, ऋषिकुण्डमें मुनि, महिलारोप्यमें कुमुद, श्रीनिवासमें श्रीकण्ठ, कामरूप (आसाम)-में शुभाकार, काशीमें शिवप्रिय, मल्लिकामें विष्णु, महेन्द्र पर्वतपर भार्गव, गोनर्द देशमें स्थविराकार, उज्जैनमें पितामह, कौशाम्बीमें महाबोध, अयोध्यामें राघव, चित्रकूटमें मुनीन्द्र, विन्ध्यपर्वतपर वाराह, गंगाद्वार (हरिद्वार)-में परमेष्ठी, हिमालयमें शंकर, देविकामें स्रुचाहस्त, चतुष्पथमें स्रुवहस्त, वृन्दावनमें पद्मपाणि, नैमिषारण्यमें कुशहस्त, गोप्लक्षमें गोपीन्द्र, यमुनातटपर सुचन्द्र, भागीरथीके तटपर पद्मतनु, जनस्थानमें जनानन्द, कोंकण देशमें मद्राक्ष, काम्पिल्यमें कनकप्रिय, खेटकमें अन्नदाता, कुशस्थलमें शम्भु, लंकामें पुलस्त्य, काश्मीरमें हंसवाहन, अर्बुद (आबू)-में वसिष्ठ, उत्पलावतमें नारद, मेधकमें श्रुतिदाता, प्रयागमें यजुषांपति, यज्ञ-पर्वतपर सामवेद, मधुरमें मधुरप्रिय, अंकोलकमें यज्ञगर्भ, ब्रह्मवाहमें सुतप्रिय, गोमन्तमें नारायण, विदर्भ (बरार)-में द्विजप्रिय, ऋषिवेदमें दुराधर्ष, पम्पापुरीमें सुरमर्दन, विरजामें महारूप, राष्ट्रवर्द्धनमें सुरूप, मालवीमें पृथूदर, शाकम्भरीमें रसप्रिय, पिण्डारक क्षेत्रमें गोपाल, भोगवर्द्धनमें शुष्कन्ध, कादम्बकमें प्रजाध्यक्ष, समस्थलमें देवाध्यक्ष, भद्रपीठमें गंगाधर, सुपीठमें जलमाली, त्र्यम्बकमें त्रिपुराधीश, श्रीपर्वतपर त्रिलोचन, पद्मपुरमें महादेव, कलापमें वैधस, शृंगवेरपुरमें शौरि, नैमिषारण्यमें चक्रपाणि, दण्डपुरीमें विरूपाक्ष, धूतपातकमें गोतम, माल्यवान् पर्वतपर हंसनाथ, वालिकमें द्विजेन्द्र, इन्द्रपुरी (अमरावती)-में देवनाथ, धूताषाढीमें धुरन्धर, लम्बामें हंसवाह, चण्डामें गरुडप्रिय, महोदयमें महायज्ञ, यूपकेतनमें सुयज्ञ, पद्मवनमें सिद्धेश्वर, विभामें पद्मबोधन, देवदारुवनमें लिंग, उदक्पथमें उमापति, मातृस्थानमें विनायक, अलकापुरीमें धनाधिप, त्रिकूटमें गोनर्द, पातालमें वासुकि, केदारक्षेत्रमें पद्माध्यक्ष, कूष्माण्डमें सुरतप्रिय, भूतवापीमें शुभांग, सावलीमें भषक, अक्षरमें पापहा, अम्बिकामें सुदर्शन, वरदामें महावीर, कान्तारमें दुर्गनाशन, पर्णादमें अनन्त, प्रकाशामें दिवाकर, विरजामें पद्मनाभ, वृकस्थलमें सुवृद्ध, वठकमें मार्कण्ड, रोहिणीमें नागकेतन, पद्मावतीमें पद्मागृह तथा गगनमें पद्मकेतन नामसे मैं प्रसिद्ध हूँ। त्रिपुरान्तक! ये एक सौ आठ स्थान मैंने तुम्हें बताये हैं। इन स्थानोंमें तीनों सन्ध्याओंके समय मैं उपस्थित रहता हूँ। जो भक्तिमान् पुरुष इन स्थानोंमेंसे एकका भी दर्शन कर लेता है, वह परलोकमें निर्मल स्थान पाकर अनन्त वर्षोंतक आनन्दका अनुभव करता है। उसके मन, वाणी और शरीरके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं—इसमें तनिक भी अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। और जो इन सभी तीर्थोंकी यात्रा

करके मेरा दर्शन करता है, वह मोक्षका अधिकारी होकर मेरे लोकमें निवास करता है। जो पुष्प, नैवेद्य एवं धूप चढ़ाता और ब्राह्मणोंको [भोजनादिसे] तृप्त करता है, साथ ही जो स्थिरतापूर्वक ध्यान लगाता है, वह शीघ्र ही परमेश्वरको प्राप्त कर लेता है। उसे पुण्यका श्रेष्ठ फल तथा अन्तमें मोक्ष प्राप्त होता है। जो इन तीर्थोंकी यात्रा करता या कराता है अथवा जो इस प्रसंगको सुनता है, वह भी समस्त पापोंसे छुटकारा पा जाता है। शंकर! इस विषयमें अधिक क्या कहा जाय—इन तीर्थोंकी यात्रा करनेसे अप्राप्य वस्तुकी प्राप्ति होती है और सारा पाप नष्ट हो जाता है। जिन्होंने पुष्कर तीर्थमें अपनी पत्नीके दिये हुए पुष्करके जलसे सन्ध्या करके गायत्रीका जप किया है, उन्होंने मानो सम्पूर्ण वेदोंका अध्ययन कर लिया।

पुष्कर तीर्थके पवित्र जलको झारी अथवा मिट्टीके करवेमें ले आकर सायंकालमें एकाग्र मनसे प्राणायामपूर्वक सन्ध्योपासन करना चाहिये। शंकर! इस प्रकार सन्ध्या करनेका जो फल है, उसका अब श्रवण करो। उस पुरुषको एक ही दिनकी सन्ध्यासे बारह वर्षोंतक सन्ध्योपासन करनेका फल मिल जाता है। पुष्करमें स्नान करनेपर अश्वमेध यज्ञका फल होता है, दान करनेसे उसके दसगुने और उपवास करनेसे अनन्तगुने फलकी प्राप्ति होती है। यह बात मैंने स्वयं [भलीभाँति सोच-विचारकर] कही है। तीर्थसे अपने डेरेपर आकर शास्त्रीय विधिके अनुसार पिण्डदानपूर्वक पितरोंका श्राद्ध करना चाहिये। ऐसा करनेसे उसके पितर ब्रह्माके एक दिन (एक कल्प)-तक तृप्त रहते हैं। शिवजी! अपने डेरेमें आकर पिण्डदान करनेवालोंको तीर्थकी अपेक्षा आठगुना अधिक पुण्य होता है; क्योंकि वहाँ द्विजातियोंद्वारा दिये जाते हुए पिण्डदानपर नीच पुरुषोंकी दृष्टि नहीं पड़ती। एकान्त और सुरक्षित गृहमें ही पितरोंके श्राद्धका विधान है; क्योंकि बाहर नीच पुरुषोंकी दृष्टिसे दूषित हो जानेपर यह पितरोंको नहीं पहुँचता। आत्मकल्याणकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको गुप्तरूपसे ही पिण्डदान करना चाहिये। यदि श्राद्धमें दिया जानेवाला पक्वान्न साधारण मनुष्य देख लेते हैं तो उससे कभी पितरोंकी तृप्ति नहीं होती। मनुजीका कथन है कि तीर्थोंमें श्राद्धके लिये ब्राह्मणकी परीक्षा नहीं करनी चाहिये। जो भी अन्नकी इच्छासे अपने पास आ जाय, उसे भोजन करा देना चाहिये।'[1] श्राद्धके योग्य समय हो या न हो—तीर्थमें पहुँचते ही मनुष्यको सर्वदा स्नान, तर्पण और श्राद्ध करना चाहिये। पिण्डदान करना तो बहुत ही उत्तम है, वह पितरोंको अधिक प्रिय है। जब अपने वंशका कोई व्यक्ति तीर्थमें जाता है तब पितर बड़ी आशासे उसकी ओर देखते हैं, उससे जल पानेकी अभिलाषा रखते हैं; अतः इस कार्यमें विलम्ब नहीं करना चाहिये। और यदि दूसरा कोई इस कार्यको करना चाहता हो तो उसमें विघ्न नहीं डालना चाहिये। सत्ययुगमें पुष्करका, त्रेतामें नैमिषारण्यका, द्वापरमें कुरुक्षेत्र तथा कलियुगमें गंगाजीका आश्रय लेना चाहिये। अन्यत्रका किया हुआ पाप तीर्थमें जानेपर कम हो जाता है; किन्तु तीर्थका किया हुआ पाप अन्यत्र कहीं नहीं छूटता।[2] जो सबेरे और शामको हाथ जोड़कर पुष्कर तीर्थका स्मरण करता है, उसे समस्त तीर्थोंमें आचमन करनेका फल प्राप्त हो जाता है। जो पुष्करमें इन्द्रिय-संयमपूर्वक रहकर प्रातःकाल और सन्ध्याके समय आचमन करता है, उसे सम्पूर्ण यज्ञोंका फल प्राप्त होता है तथा वह ब्रह्मलोकको जाता है। जो बारह वर्ष, बारह दिन, एक मास अथवा पक्षभर भी पुष्करमें निवास करता है, वह परम गतिको प्राप्त

१-तीर्थेषु ब्राह्मणं नैव परीक्षेत कथंचन॥ अन्नार्थिनमनुप्राप्तं भोज्यं तु मनुरब्रवीत्॥
(३४। २१२-२१३)

२-कृते युगे पुष्कराणि त्रेतायां नैमिषं स्मृतम्। द्वापरे च कुरुक्षेत्रं कलौ गङ्गां समाश्रयेत्॥
यदन्यत्रकृतं पापं तीर्थे तद्याति लाघवम्। न तीर्थकृतमन्यत्र क्वचित् पापं व्यपोहति॥
(३४। २२८—२३०)

करता है। इस पृथ्वीपर करोड़ों तीर्थ हैं। वे सब तीनों सन्ध्याओंके समय पुष्करमें उपस्थित रहते हैं। पिछले हजारों जन्मोंके तथा जन्मसे लेकर मृत्यु-पर्यन्त वर्तमान जीवनके जितने भी पाप हैं, उन सबको पुष्करमें एक बार स्नान करके मनुष्य भस्म कर डालता है।

श्रीरामके द्वारा शम्बूकका वध और मरे हुए ब्राह्मण-बालकको जीवनकी प्राप्ति

पुलस्त्यजी बोले—राजन्! पूर्वकालमें स्वयं भगवान्‌ने जब रघुवंशमें अवतार लिया था तब वहाँ वे श्रीराम-नामसे विख्यात हुए। तब उन्होंने लंकामें जाकर रावणको मारा और देवताओंका कार्य किया था। इसके बाद जब वे वनसे लौटकर पृथ्वीके राज्यसिंहासनपर स्थित हुए, उस समय उनके दरबारमें [अगस्त्य आदि] बहुत-से महात्मा ऋषि उपस्थित हुए। महर्षि अगस्त्यजीकी आज्ञासे द्वारपालने तुरंत जाकर महाराजको ऋषियोंके आगमनकी सूचना दी। सूर्यके समान तेजस्वी महर्षियोंको द्वारपर आया जान श्रीरामचन्द्रजीने द्वारपालसे कहा—'तुम शीघ्र ही उन्हें भीतर ले आओ।'

श्रीरामकी आज्ञासे द्वारपालने उन मुनियोंको सुख-पूर्वक महलके भीतर पहुँचा दिया। उन्हें आया देख रघुनाथजी हाथ जोड़कर खड़े हो गये और उनके चरणोंमें प्रणाम करके उन्होंने उन सबको आसनोंपर बिठाया। तदनन्तर पुरोहित वसिष्ठजीने पाद्य, अर्घ्य और आचमनीय निवेदन करके उनका आतिथ्य-सत्कार किया। तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजीने जब उनसे कुशल-समाचार पूछा, तब वे वेदवेत्ता महर्षि [महर्षि अगस्त्यको आगे करके] इस प्रकार बोले—'महाबाहो! आपके प्रतापसे सर्वत्र कुशल है। रघुनन्दन! बड़े सौभाग्यकी बात है कि शत्रुदलका संहार करके लौटे हुए आपको हमलोग सकुशल देख रहे हैं। कुलघाती, पापी एवं दुरात्मा रावणने आपकी पत्नीको हर लिया था। वह उन्हींके तेजसे मारा गया। आपने उसे युद्धमें मार डाला। रघुसिंह! आपने जैसा कर्म किया है, वैसा कर्म करनेवाला इस संसारमें दूसरा कोई नहीं है। राजेन्द्र! हम सब लोग यहाँ आपसे वार्तालाप करनेके लिये आये हैं। इस समय आपका दर्शन करके हम पवित्र हो गये। आपके दर्शनसे हम वास्तवमें आज तपस्वी हुए हैं। आपने सबसे शत्रुता रखनेवाले रावणका वध करके हमारे आँसू पोंछे हैं और सब लोगोंको अभयदान दिया है। काकुत्स्थ! आपके पराक्रमकी कोई थाह नहीं है। आपकी विजयसे वृद्धि हो रही है, यह बड़े आनन्दकी बात है। हमने आपका दर्शन और आपके साथ सम्भाषण कर लिया, अब हमलोग अपने-अपने आश्रमको जायँगे। रघुनन्दन! आप भविष्यमें कभी हमारे आश्रमपर भी आइयेगा।'

पुलस्त्यजी कहते हैं—भीष्म! ऐसा कहकर वे मुनि उसी समय अन्तर्धान हो गये। उनके चले जानेपर धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीने सोचा—"अहो! मुनि अगस्त्यने मेरे सामने जो यह प्रस्ताव रखा है कि 'रघुनन्दन! फिर कभी मेरे आश्रमपर भी आना' तब अवश्य ही मुझे महर्षि अगस्त्यके यहाँ जाना चाहिये और देवताओंकी कोई गुप्त बात हो तो उसे सुनना चाहिये। अथवा यदि वे कोई दूसरा काम बतायें तो उसे भी करना

चाहिये।'' ऐसा विचारकर महात्मा रघुनाथजी पुनः प्रजा-पालनमें लग गये। एक दिन एक बूढ़ा ब्राह्मण, जो उसी प्रान्तका रहनेवाला था, अपने मरे हुए पुत्रको लेकर राजद्वारपर आया और इस प्रकार कहने लगा—'बेटा! मैंने पूर्वजन्ममें ऐसा कौन-सा पाप किया है, जिससे तुझ इकलौते पुत्रको आज मैं मौतके मुखमें पड़ा देख रहा हूँ। निश्चय ही यह महाराज श्रीरामका ही दोष है, जिसके कारण तेरी मृत्यु [इतनी जल्दी] आ गयी। रघुनन्दन! अब मैं भी स्त्रीसहित प्राण त्याग दूँगा। फिर आपको बालहत्या, ब्रह्महत्या और स्त्रीहत्या—तीन पाप लगेंगे।

रघुनाथजीने उस ब्राह्मणकी दुःख और शोकसे भरी सारी बात सुनी। फिर उसे चुप कराकर महर्षि वसिष्ठजीसे पूछा—'गुरुदेव! ऐसी अवस्थामें इस अवसरपर मुझे क्या करना चाहिये? इस ब्राह्मणकी कही हुई बात सुनकर मैं किस प्रकार अपने दोषका मार्जन करूँ—कैसे इस बालकको जीवन-दान दूँ?' [इतनेमें ही देवर्षि नारद वहाँ आ पहुँचे।] वे वसिष्ठके सामने खड़े हो अन्य ऋषियोंके समीप महाराज श्रीरामसे बोले—'रघुनन्दन! इस बालककी जिस प्रकार अकालमृत्यु हुई है, उसका कारण बताता हूँ; सुनिये। पहले सत्ययुगमें सब ओर ब्राह्मणोंकी ही प्रधानता थी। कोई ब्राह्मणेतर पुरुष तपस्वी नहीं होता था। उस समय सभी अकालमृत्युसे रहित और चिरजीवी होते थे। फिर त्रेतायुग आनेपर ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनोंकी प्रधानता हो जाती है—दोनों ही तपमें प्रवृत्त होते हैं। द्वापरमें वैश्योंमें भी तपस्याका प्रचार हो जाता है। यह तीनों युगोंके धर्मकी विशेषता है। इन तीनों युगोंमें शूद्रजातिका मनुष्य तपस्या नहीं कर सकता, केवल कलियुगमें शूद्रजातिको भी तपस्याका अधिकार होगा। राजन्! इस समय आपके राज्यकी सीमापर एक खोटी बुद्धिवाला शूद्र अत्यन्त कठोर तपस्या कर रहा है। उसीके शास्त्रविरुद्ध आचरणके प्रभावसे इस बालककी मृत्यु हुई है। राजाके राज्य या नगरमें जो कोई भी अधर्म अथवा अनुचित कर्म करता है, उसके पापका चतुर्थांश राजाके हिस्सेमें आता है। अतः पुरुषश्रेष्ठ! आप अपने राज्यमें घूमिये और जहाँ कहीं भी पाप होता दिखायी दे, उसे रोकनेका प्रयत्न कीजिये। ऐसा करनेसे आपके धर्म, बल और आयुकी वृद्धि होगी। साथ ही यह बालक भी जी उठेगा।

नारदजीके इस कथनपर श्रीरघुनाथजीको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे अत्यन्त हर्षमें भरकर लक्ष्मणसे बोले—'सौम्य! जाकर उस श्रेष्ठ ब्राह्मणको सान्त्वना दो और उस बालकके शरीरको तेलसे भरी नावमें रखवा दो। जिस प्रकार भी उस निरपराध बालकके शरीरकी रक्षा हो सके, वह उपाय करना चाहिये।' उत्तम लक्षणोंसे युक्त सुमित्राकुमार लक्ष्मणको इस प्रकार आदेश देकर भगवान् श्रीरामने पुष्पक विमानका स्मरण किया। रघुनाथजीका अभिप्राय जानकर इच्छानुसार चलनेवाला वह स्वर्णभूषित विमान एक ही मुहूर्तमें उनके समीप आ पहुँचा और हाथ जोड़कर बोला— 'महाराज! आपका आज्ञाकारी यह दास सेवामें उपस्थित है।' पुष्पककी सुन्दर उक्ति सुनकर महाराज श्रीराम महर्षि वसिष्ठको प्रणाम करके विमानपर आरूढ़ हुए और धनुष, भाथा एवं चमचमाता हुआ खड्ग लेकर तथा लक्ष्मण और भरतको नगरका भार सौंप दक्षिण दिशाकी ओर चल दिये। [दण्डकारण्यके पास पहुँचनेपर] एक पर्वतके दक्षिण किनारे बहुत बड़ा तालाब

दिखायी दिया। रघुनाथजीने देखा—उस सरोवरके तटपर एक तपस्वी नीचा मुँह किये लटक रहा है और बड़ी कठोर तपस्या कर रहा है। भगवान् श्रीराम उस तपस्वीके पास जाकर बोले—'तापस! मैं दशरथका पुत्र राम हूँ और कौतूहलवश तुमसे एक प्रश्न पूछता हूँ। मैं यह जानना चाहता हूँ, तुम किसलिये तपस्या करते हो, ठीक-ठीक बताओ—तुम ब्राह्मण हो या दुर्जय क्षत्रिय? तीसरे वर्णमें उत्पन्न वैश्य हो या शूद्र? तपस्या सत्यस्वरूप और नित्य है। उसका उद्देश्य है—स्वर्गादि उत्तम लोकोंकी प्राप्ति। तप सात्त्विक, राजस और तामस तीन प्रकारका होता है। ब्रह्माजीने जगत्के उपकारके लिये तपस्याकी सृष्टि की है। [अतः परोपकारके उद्देश्यसे किया हुआ तप 'सात्त्विक' होता है;] क्षत्रियोचित तेजकी प्राप्तिके लिये किया जानेवाला भयंकर तप 'राजस' कहलाता है तथा जो दूसरोंका नाश करनेके लिये [अपने शरीरको अस्वाभाविक रूपसे कष्ट देते हुए] तपस्या की जाती है, वह 'आसुर' (तामस) कही गयी है। तुम्हारा भाव आसुर जान पड़ता है तथा मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि तुम द्विज नहीं हो।'

अनायास ही महान् कर्म करनेवाले श्रीरघुनाथजीके उपर्युक्त वचन सुनकर नीचे मस्तक करके लटका हुआ शूद्र उसी अवस्थामें बोला—'नृपश्रेष्ठ! आपका स्वागत है। रघुनन्दन! चिरकालके बाद मुझे आपका दर्शन हुआ है। मैं आपके पुत्रके समान हूँ, आप मेरे लिये पिताके तुल्य हैं। क्योंकि राजा तो सभीके पिता होते हैं। महाराज! आप हमारे पूजनीय हैं। हम आपके राज्यमें तपस्या करते हैं; उसमें आपका भी भाग है। विधाताने पहलेसे ही ऐसी व्यवस्था कर दी है। राजन्! आप धन्य हैं, जिनके राज्यमें तपस्वीलोग इस प्रकार सिद्धिकी इच्छा रखते हैं। मैं शूद्रयोनिमें उत्पन्न हुआ हूँ और कठोर तपस्यामें लगा हूँ। पृथ्वीनाथ! मैं झूठ नहीं बोलता; क्योंकि मुझे देवलोक प्राप्त करनेकी इच्छा है। काकुत्स्थ! मेरा नाम शम्बूक है।'

वह इस प्रकार बातें कर ही रहा था कि श्रीरघुनाथजीने म्यानसे चमचमाती हुई तलवार निकाली और उसका उज्ज्वल मस्तक धड़से अलग कर दिया। उस शूद्रके मारे जानेपर इन्द्र और अग्नि आदि देवता 'साधु-साधु' कहकर बारम्बार श्रीरामचन्द्रजीकी प्रशंसा करने लगे। आकाशसे श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर वायु देवताके छोड़े हुए दिव्य फूलोंकी सुगन्धभरी वृष्टि होने लगी। जिस क्षण यह शूद्र मारा गया, ठीक उसी समय वह बालक जी उठा।

महर्षि अगस्त्यद्वारा राजा श्वेतके उद्धारकी कथा

पुलस्त्यजी कहते हैं—तदनन्तर देवतालोग अपने बहुत-से विमानोंके साथ वहाँसे चल दिये। श्रीरामचन्द्रजीने भी शीघ्र ही महर्षि अगस्त्यके तपोवनकी ओर प्रस्थान किया। फिर श्रीरघुनाथजी पुष्पक विमानसे उतरे और मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यको प्रणाम करनेके लिये उनके समीप गये।

श्रीराम बोले—मुनिश्रेष्ठ! मैं दशरथका पुत्र राम आपको प्रणाम करनेके लिये सेवामें उपस्थित हुआ हूँ। आप अपनी सौम्य दृष्टिसे मेरी ओर निहारिये।

इतना कहकर उन्होंने बारम्बार मुनिके चरणोंमें प्रणाम किया और कहा—'भगवन्! मैं शम्बूक नामक शूद्रका वध करके आपका दर्शन करनेकी इच्छासे यहाँ आया हूँ। कहिये, आपके शिष्य कुशलसे हैं न? इस वनमें तो कोई उपद्रव नहीं है?'

अगस्त्यजी बोले—रघुश्रेष्ठ! आपका स्वागत है। जगद्वन्द्य सनातन परमेश्वर! आपके दर्शनसे आज मैं इन मुनियोंसहित पवित्र हो गया। आपके लिये यह अर्घ्य प्रस्तुत है, इसे स्वीकार करें। आप अपने अनेकों उत्तम गुणोंके कारण सदा सबके सम्मानपात्र हैं। मेरे हृदयमें तो आप सदा ही विराजमान रहते हैं, अतः मेरे परम पूज्य हैं। आपने अपने धर्मसे ब्राह्मणके मरे हुए बालकको जिला दिया। भगवन्! आज रातको आप यहाँ मेरे पास रहिये। महामते! कल सबेरे आप पुष्पक विमानसे अयोध्याको लौट जाइयेगा। सौम्य! यह

आभूषण विश्वकर्माका बनाया हुआ है। यह दिव्य आभरण है और अपने दिव्य रूप एवं तेजसे जगमगा रहा है। राजेन्द्र! आप इसे स्वीकार करके मेरा प्रिय कीजिये; क्योंकि प्राप्त हुई वस्तुका पुनः दान कर देनेसे महान् फलकी प्राप्ति बतायी गयी है।

श्रीरामने कहा—ब्रह्मन्! आपका दिया हुआ दान लेना मेरे लिये निन्दाकी बात होगी। क्षत्रिय जान-बूझकर ब्राह्मणका दिया हुआ दान कैसे ले सकता है, यह बात आप मुझे बताइये। किसी आपत्तिके कारण मुझे कष्ट हो—ऐसी बात भी नहीं है; फिर दान कैसे लूँ। इसे लेकर मुझे केवल दोषका भागी होना पड़ेगा, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

अगस्त्यजी बोले—श्रीराम! प्राचीन सत्ययुगमें जब अधिकांश मनुष्य ब्राह्मण ही थे, तथा समस्त प्रजा राजासे हीन थी, एक दिन सारी प्रजा पुराणपुरुष ब्रह्माजीके पास राजा प्राप्त करनेकी इच्छासे गयी और कहने लगी—'लोकेश्वर! जैसे देवताओंके राजा देवाधिदेव इन्द्र हैं, उसी प्रकार हमारे कल्याणके लिये भी इस समय एक ऐसा राजा नियत कीजिये, जिसे पूजा और भेंट देकर सब लोग पृथ्वीका उपभोग कर सकें।' तब देवताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्माजीने इन्द्रसहित समस्त लोकपालोंको बुलाकर कहा—'तुम सब लोग अपने-अपने तेजका अंश यहाँ एकत्रित करो।' तब सम्पूर्ण लोकपालोंने मिलकर चार भाग दिये। वह भाग अक्षय था। उससे अक्षय राजाकी उत्पत्ति हुई। लोकपालोंके उस अंशको ब्रह्माजीने मनुष्योंके लिये एकत्रित किया। उसीसे राजाका प्रादुर्भाव हुआ, जो प्रजाओंके हित-साधनमें कुशल होता है। इन्द्रके भागसे राजा सबपर हुकूमत चलाता है। वरुणके अंशसे समस्त देहधारियोंका पोषण करता है। कुबेरके अंशसे वह याचकोंको धन देता है तथा राजामें जो यमराजका अंश है, उसके द्वारा वह प्रजाको दण्ड देता है। रघुश्रेष्ठ! उसी इन्द्रके भागसे आप भी मनुष्योंके राजा हुए हैं, इसलिये प्रभो! मेरा उद्धार करनेके लिये यह आभूषण ग्रहण कीजिये।

पुलस्त्यजी कहते हैं—राजन्! तब श्रीरघुनाथजीने महात्मा अगस्त्यके हाथसे वह दिव्य आभूषण ले लिया, जो बहुत ही विचित्र था और सूर्यकी तरह चमक रहा था। उसे लेकर वे निहारते रहे। फिर बारम्बार विचार करने लगे—'ऐसे रत्न तो मैंने विभीषणकी लंकामें भी नहीं देखे।' इस प्रकार मन-ही-मन सोच-विचार करनेके बाद श्रीरामचन्द्रजीने महर्षि अगस्त्यसे उस दिव्य आभूषणकी प्राप्तिका वृत्तान्त पूछना आरम्भ किया।

श्रीराम बोले—ब्रह्मन्! यह रत्न तो बड़ा अद्भुत है। राजाओंके लिये भी यह अलभ्य ही है। आपको यह कहाँसे और कैसे मिल गया? तथा किसने इस आभूषणको बनाया है?

अगस्त्यजीने कहा—रघुनन्दन! पहले त्रेतायुगमें एक बहुत विशाल वन था। इसका व्यास सौ योजनका था। किन्तु उसमें न कोई पशु रहता था, न पक्षी। उस वनके मध्यभागमें चार कोस लम्बी एक झील थी, जो हंस और कारण्डव आदि पक्षियोंसे संकुल थी। वहाँ मैंने एक बड़े आश्चर्यकी बात देखी। सरोवरके पास ही एक बहुत बड़ा आश्रम था, जो बहुत पुराना होनेपर भी अत्यन्त पवित्र दिखायी देता था, किन्तु उसमें कोई तपस्वी नहीं था और न कोई और जीव भी थे। मैंने उस आश्रममें रहकर ग्रीष्मकालकी एक रात्रि व्यतीत की। सबेरे उठकर जब तालाबकी ओर चला तो रास्तेमें मुझे एक बहुत बड़ा मुर्दा दीख पड़ा, जिसका शरीर अत्यन्त हृष्ट-पुष्ट था। मालूम होता था किसी तरुण पुरुषकी लाश है। उसे देखकर मैं सोचने लगा—'यह कौन है? इसकी मृत्यु कैसे हो गयी तथा यह इस महान् वनमें आया कैसे था? इन सारी बातोंका मुझे अवश्य पता लगाना चाहिये।' मैं खड़ा-खड़ा यही सोच रहा था कि इतनेमें आकाशसे एक दिव्य एवं अद्भुत विमान उतरता दिखायी दिया। वह परम सुन्दर और मनके समान वेगशाली था। एक ही क्षणमें वह विमान सरोवरके निकट आ पहुँचा। मैंने देखा, उस विमानसे एक दिव्य मनुष्य उतरा और सरोवरमें नहाकर उस मुर्देका मांस खाने

लगा। भरपेट उस मोटे-ताजे मुर्देका मांस खाकर वह फिर सरोवरमें उतरा और उसकी शोभा निहारकर फिर शीघ्र ही स्वर्गकी ओर जाने लगा। उस शोभा-सम्पन्न देवोपम पुरुषको ऊपर जाते देख मैंने कहा—'स्वर्ग-लोकके निवासी महाभाग! [तनिक ठहरो।] मैं तुमसे एक बात पूछता हूँ—तुम्हारी यह कैसी अवस्था है? तुम कौन हो? देखनेमें तो तुम देवताके समान जान पड़ते हो; किन्तु तुम्हारा भोजन बहुत ही घृणित है। सौम्य! ऐसा भोजन क्यों करते हो और कहाँ रहते हो?'

रघुनन्दन! मेरी बात सुनकर उस स्वर्गवासी पुरुषने हाथ जोड़कर कहा—''विप्रवर! मेरा जैसा वृत्तान्त है, उसे आप सुनिये। पूर्वकालकी बात है, विदर्भदेशमें मेरे महायशस्वी पिता राज्य करते थे। वे वसुदेवके नामसे त्रिलोकीमें विख्यात और परम धार्मिक थे। उनके दो स्त्रियाँ थीं। उन दोनोंसे एक-एक करके दो पुत्र हुए। मैं उनका ज्येष्ठ पुत्र था। लोग मुझे श्वेत कहते थे। मेरे छोटे भाईका नाम सुरथ था। पिताकी मृत्युके बाद पुरवासियोंने विदर्भदेशके राज्यपर मेरा अभिषेक कर दिया। तब मैं वहाँ पूर्ण सावधानीके साथ राज्य-संचालन करने लगा। इस प्रकार राज्य और प्रजाका पालन करते मुझे कई हजार वर्ष बीत गये। एक दिन किसी निमित्तको लेकर मुझे प्रबल वैराग्य हो गया और मैं मरणपर्यन्त तपस्याका निश्चय करके इस तपोवनमें चला आया। राज्यपर मैंने अपने भाई महारथी सुरथका अभिषेक कर दिया था। फिर इस सरोवरपर आकर मैंने अत्यन्त कठोर तपस्या आरम्भ की। अस्सी हजार वर्षोंतक इस वनमें मेरी तपस्या चालू रही। उसके प्रभावसे मुझे भुवनोंमें सर्वश्रेष्ठ कल्याणमय ब्रह्मलोककी प्राप्ति हुई। किन्तु वहाँ पहुँचनेपर मुझे भूख और प्यास अधिक सताने लगी। मेरी इन्द्रियाँ तिलमिला उठीं। मैंने त्रिलोकीके सर्वश्रेष्ठ देवता ब्रह्माजीसे पूछा—'भगवन्! यह लोक तो भूख और प्याससे रहित सुना गया है; यह मुझे किस कर्मका फल प्राप्त हुआ है कि भूख और प्यास यहाँ भी मेरा पिण्ड नहीं छोड़तीं? देव! शीघ्र बताइये, मेरा आहार क्या है?' महामुने! इसपर ब्रह्माजीने बहुत देरतक सोचनेके बाद कहा—'तात! पृथ्वीपर कुछ दान किये बिना यहाँ कोई वस्तु खानेको नहीं मिलती। तुमने उस जन्ममें भिखमंगेको कभी भीखतक नहीं दी। [जब तुम राजभवनमें रहकर राज्य करते थे,] उस समय भूलसे या मोहवश तुम्हारे द्वारा किसी अतिथिको भोजन नहीं मिला है। इसलिये यहाँ रहते हुए भी तुम्हें भूख और प्यासका कष्ट भोगना पड़ता है। राजेन्द्र! भाँति-भाँतिके आहारोंसे जिसको तुमने भलीभाँति पुष्ट किया था, वह तुम्हारा उत्तम शरीर पड़ा हुआ है; उसीका मांस खाओ, उसीसे तुम्हारी तृप्ति होगी।'

''ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर मैंने पुनः उनसे निवेदन किया—'प्रभो! अपने शरीरका भक्षण कर लेनेपर भी फिर मेरे लिये दूसरा कोई आहार नहीं रह जाता है। जिससे इस शरीरकी भूख मिट सके तथा जो कभी चुकनेवाला न हो, ऐसा कोई भोजन मुझे देनेकी कृपा कीजिये।' तब ब्रह्माजीने कहा—'तुम्हारा शरीर ही अक्षय बना दिया गया है। उसे प्रतिदिन खाकर तुम तृप्तिका अनुभव करते रहोगे। इस प्रकार अपने ही शरीरका मांस खाते जब तुम्हें सौ वर्ष पूरे हो जायँगे, उस समय तुम्हारे विशाल एवं दुर्गम तपोवनमें महर्षि अगस्त्य पधारेंगे। उनके आनेपर तुम संकटसे छूट जाओगे। राजर्षे! वे इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओं और असुरोंका भी उद्धार करनेमें समर्थ हैं, फिर तुम्हारे इस घृणित आहारको छुड़ाना उनके लिये कौन बड़ी बात है।' भगवान् ब्रह्माजीका यह कथन सुनकर मैं अपने शरीरके मांसका घृणित भोजन करने लगा। विप्रवर! यह कभी नष्ट नहीं होता तथा इससे मेरी पूर्ण तृप्ति भी हो जाती है। न जाने कब वे मुनि इस वनमें आकर मुझे दर्शन देंगे, यही सोचते हुए मुझे सौ वर्ष पूरे हो गये हैं। ब्रह्मन्! अब अगस्त्य मुनि ही मेरे सहायक होंगे, यह बिलकुल निश्चित बात है।''

राजा श्वेतका यह कथन सुनकर तथा उनके उस घृणित आहारपर दृष्टि डालकर मैंने कहा—'अच्छा, तो तुम्हारे सौभाग्यसे मैं आ गया, अब निःसन्देह तुम्हारा उद्धार करूँगा।' तब वे मुझे पहचानकर दण्डकी भाँति

मेरे सामने पृथ्वीपर पड़ गये। यह देख मैंने उन्हें उठा लिया और कहा—'बताओ, मैं तुम्हारा कौन-सा उपकार करूँ?'

राजा बोले—ब्रह्मन्! इस घृणित आहारसे तथा जिस पापके कारण यह मुझे प्राप्त हुआ है, उससे मेरा आज उद्धार कीजिये, जिससे मुझे अक्षय लोककी प्राप्ति हो सके। ब्रह्मर्षे! अपने उद्धारके लिये मैं यह दिव्य आभूषण आपकी भेंट करता हूँ। इसे लेकर मुझपर कृपा कीजिये।

रघुनन्दन! उस स्वर्गवासी राजाकी ये दुःखभरी बातें सुनकर उसके उद्धारकी दृष्टिसे ही वह दान मैंने स्वीकार किया, लोभवश नहीं। उस आभूषणको लेकर ज्यों ही मैंने अपने हाथपर रखा, उसी समय उनका वह मुर्दा शरीर अदृश्य हो गया। फिर मेरी आज्ञा लेकर वे राजर्षि बड़ी प्रसन्नताके साथ विमानद्वारा ब्रह्मलोकको चले गये। इन्द्रके समान तेजस्वी राजर्षि श्वेतने ही मुझे यह सुन्दर आभूषण दिया था और इसे देकर वे पापसे मुक्त हो गये।

दण्डकारण्यकी उत्पत्तिका वर्णन

पुलस्त्यजी कहते हैं—अगस्त्यजीके ये अद्भुत वचन सुनकर श्रीरघुनाथजीने विस्मयके कारण पुनः प्रश्न किया—'महामुने! वह वन, जिसका विस्तार सौ योजनका था, पशु-पक्षियोंसे रहित, निर्जन, सूना और भयंकर कैसे हुआ?'

अगस्त्यजी बोले—राजन्! पूर्वकालके सत्ययुगकी बात है, वैवस्वत मनु इस पृथ्वीका शासन करनेवाले राजा थे। उनके पुत्रका नाम इक्ष्वाकु था। इक्ष्वाकु बड़े ही सुन्दर और अपने भाइयोंमें सबसे बड़े थे। महाराज उनको बहुत मानते थे। उन्होंने इक्ष्वाकुको भूमण्डलके राज्यपर अभिषिक्त करके कहा—'तुम पृथ्वीके राजवंशोंके अधिपति (सम्राट्) बनो।' रघुनन्दन! 'बहुत अच्छा' कहकर इक्ष्वाकुने पिताकी आज्ञा स्वीकार की। तब वे अत्यन्त सन्तुष्ट होकर बोले—'बेटा! अब तुम दण्डके द्वारा प्रजाकी रक्षा करो। किन्तु दण्डका अकारण प्रयोग न करना। मनुष्योंके द्वारा अपराधियोंको जो दण्ड दिया जाता है, वह शास्त्रीय विधिके अनुसार [उचित अवसरपर] प्रयुक्त होनेपर राजाको स्वर्गमें ले जाता है। इसलिये महाबाहो! तुम दण्डके समुचित प्रयोगके लिये सदा सचेष्ट रहना। ऐसा करनेपर संसारमें तुम्हारे द्वारा अवश्य परम धर्मका पालन होगा।'

इस प्रकार एकाग्र चित्तसे अपने पुत्र इक्ष्वाकुको बहुत-से उपदेश दे महाराज मनु बड़ी प्रसन्नताके साथ ब्रह्मलोकको सिधार गये। तत्पश्चात् राजा इक्ष्वाकुको यह चिन्ता हुई कि 'मैं कैसे पुत्र उत्पन्न करूँ?' इसके लिये उन्होंने नाना प्रकारके शास्त्रीय कर्म (यज्ञ-यागादि) किये और उनके द्वारा राजाको अनेकों पुत्रोंकी प्राप्ति हुई। देवकुमारके समान तेजस्वी राजा इक्ष्वाकुने पुत्रोंको जन्म देकर पितरोंको सन्तुष्ट किया। रघुनन्दन! इक्ष्वाकुके पुत्रोंमें जो सबसे छोटा था, वह [गुणोंमें] सबसे श्रेष्ठ था। वह शूर और विद्वान् तो था ही, प्रजाका आदर करनेके कारण सबके विशेष गौरवका पात्र हो गया था। उसके बुद्धिमान् पिताने उसका नाम दण्ड रखा और विन्ध्यगिरिके दो शिखरोंके बीचमें उसके रहनेके लिये एक नगर दे दिया। उस नगरका नाम मधुमत्त था। धर्मात्मा दण्डने बहुत वर्षोंतक वहाँका अकण्टक राज्य किया। तदनन्तर एक समय जब कि चारों ओर चैत्र मासकी मनोरम छटा छा रही थी, राजा दण्ड भार्गव मुनिके रमणीय आश्रमके पास गया। वहाँ जाकर उसने देखा—भार्गव मुनिकी परम सुन्दरी कन्या, जिसके रूपकी कहीं तुलना नहीं थी, वनमें घूम रही है। उसे देखकर राजा दण्डके मनमें पापका उदय हुआ और वह कामबाणसे पीड़ित हो कन्याके पास जाकर बोला—'सुन्दरी! तुम कहाँसे आयी हो? शोभामयी! तुम किसकी कन्या हो? मैं कामसे पीड़ित होकर तुमसे ये बातें पूछ रहा हूँ। वरारोहे! मैं तुम्हारा दास हूँ। सुन्दरि! मुझ भक्तको अंगीकार करो।'

अरजा बोली—राजेन्द्र! आपको मालूम होना चाहिये कि मैं भार्गव-वंशकी कन्या हूँ। पुण्यात्मा शुक्राचार्यकी मैं ज्येष्ठ पुत्री हूँ, मेरा नाम अरजा है। पिताजी इस आश्रमपर ही निवास करते हैं। महाराज! शुक्राचार्य मेरे पिता हैं और आप उनके शिष्य हैं। अतः धर्मके नाते मैं आपकी बहिन हूँ। इसलिये आपको मुझसे ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये। यदि दूसरे कोई दुष्ट पुरुष भी मुझपर कुदृष्टि करें तो आपको सदा उनके हाथसे मेरी रक्षा करनी चाहिये। मेरे पिता बड़े क्रोधी और भयंकर हैं। वे [अपने शापसे] आपको भस्म कर सकते हैं। अतः नृपश्रेष्ठ! आप मेरे महातेजस्वी पिताके पास जाइये और धर्मानुकूल बर्तावके द्वारा उनसे मेरे लिये याचना कीजिये। अन्यथा [इसके विपरीत आचरण करनेपर] आपपर महान् एवं घोर दुःख आ पड़ेगा। मेरे पिताका क्रोध उभड़ जानेपर वे समूची त्रिलोकीको भी जलाकर खाक कर सकते हैं।

दण्ड बोला—सुन्दरी! तुम्हें पा लेनेपर चाहे मेरा वध हो जाय अथवा वधसे भी महान् कष्ट भोगना पड़े [मुझे स्वीकार है]। भीरु! मैं तुम्हारा भक्त हूँ, मुझे स्वीकार करो।

ऐसा कहकर राजाने उस कन्याको बलपूर्वक बाहुपाशमें कस लिया और उस एकान्त वनमें, जहाँसे कहीं आवाज भी नहीं पहुँच सकती थी, उसे नंगा कर दिया। बेचारी अबला उसकी भुजाओंसे छूटनेके लिये बहुत छटपटायी, परन्तु फिर भी उसने स्वेच्छानुसार उसके साथ भोग किया। राजा दण्ड वह अत्यन्त कठोरतापूर्ण और महाभयानक अपराध करके तुरंत अपने नगरको चल दिया तथा भार्गव-कन्या अरजा दीनभावसे रोती हुई अत्यन्त उद्विग्न हो आश्रमके समीप अपने देव-तुल्य पिताके पास आयी। उसके पिता अमित तेजस्वी देवर्षि शुक्राचार्य सरोवरपर स्नान करने गये थे। स्नान करके वे दो ही घड़ीमें शिष्योंसहित आश्रमपर लौट आये। [आश्रमपर आकर] उन्होंने देखा—अरजाकी दशा बड़ी दयनीय है, वह धूलमें सनी हुई है। [तुरंत ही सारा रहस्य उनके ध्यानमें आ गया।] फिर तो शुक्रको बड़ा रोष हुआ, वे तीनों लोकोंको दग्ध-सा करते हुए अपने शिष्योंको सुनाकर बोले—'धर्मके विपरीत आचरण करनेवाले अदूरदर्शी दण्डके ऊपर प्रज्वलित अग्निशिखाके समान भयंकर विपत्ति आ रही है; तुम सब लोग देखना—वह खोटी बुद्धिवाला पापी राजा अपने देश, भृत्य, सेना और वाहनसहित नष्ट हो जायगा। उसका राज्य सौ योजन लम्बा-चौड़ा है, उस समूचे राज्यमें इन्द्र धूलकी बड़ी भारी वर्षा करेंगे। उस राज्यमें रहनेवाले स्थावर-जंगम जितने भी प्राणी हैं, उन सबका उस धूलकी वर्षासे शीघ्र ही नाश हो जायगा। जहाँतक दण्डका राज्य है, वहाँतकके उपवनों और आश्रमोंमें अकस्मात् सात राततक धूलकी वर्षा होती रहेगी।'

क्रोधसे संतप्त होनेके कारण इस प्रकार शाप दे महर्षि शुक्रने आश्रमवासी शिष्योंसे कहा—'तुमलोग यहाँ रहनेवाले सब लोगोंको इस राज्यकी सीमासे बाहर ले जाओ।' उनकी आज्ञा पाते ही आश्रमवासी मनुष्य शीघ्रतापूर्वक उस राज्यसे हट गये और सीमासे बाहर जाकर उन्होंने अपने डेरे डाल दिये। तदनन्तर शुक्राचार्य अरजासे बोले—'ओ नीच बुद्धिवाली कन्या! तू अपने चित्तको एकाग्र करके सदा इस आश्रमपर ही निवास कर। यह चार कोसके विस्तारका सुन्दर शोभासम्पन्न सरोवर है। अरजे! तू रजोगुणसे रहित सात्त्विक जीवन व्यतीत करती हुई सौ वर्षोंतक यहीं रह।' महर्षिका यह आदेश सुन अरजाने 'तथास्तु' कहकर उनकी आज्ञा स्वीकार की। उस समय वह बहुत ही दुःखी हो रही थी। शुक्राचार्यने कन्यासे उपर्युक्त बात कहकर वहाँसे दूसरे आश्रमके लिये प्रस्थान किया। ब्रह्मवादी महर्षिके कथनानुसार विन्ध्यगिरिके शिखरोंपर फैला हुआ राजा दण्डका समूचा राज्य एक सप्ताहके भीतर ही जलकर खाक हो गया। तबसे वह विशाल वन 'दण्डकारण्य' कहलाता है। रघुनन्दन! आपने जो मुझसे पूछा था, वह सारा प्रसंग मैंने कह सुनाया, अब सन्ध्योपासनका समय बीता जा रहा है। ये महर्षिगण सब ओर जलसे भरे घड़े लेकर अर्घ्य दे भगवान् सूर्यकी पूजा कर रहे हैं। आप

भी चलकर सन्ध्यावन्दन करें।

ऋषिकी आज्ञा मानकर श्रीरघुनाथजी सन्ध्योपासन करनेके लिये उस पवित्र सरोवरके तटपर गये। तदनन्तर आचमन एवं सायं-सन्ध्या करके श्रीरघुनाथजी महात्मा कुम्भजके आश्रममें गये। वहाँ उन्होंने बड़े आदरके साथ अधिक गुणकारी फल-मूल तथा रसीले साग भोजनके लिये अर्पण किये। नरश्रेष्ठ श्रीरामने बड़ी प्रसन्नताके साथ उस अमृतके समान मधुर भोजनका भोग लगाया और पूर्ण तृप्त होकर रात्रिमें वहीं शयन किया। सबेरे उठकर

उन्होंने अपना नित्यकर्म किया और वहाँसे विदा होनेके लिये महर्षिके पास गये। वहाँ जाकर उन्होंने मुनिको प्रणाम किया और कहा—'ब्रह्मन्! अब मैं आपसे विदा होना चाहता हूँ, आप आज्ञा देनेकी कृपा करें। महामुने! आज मैं आपके दर्शनसे कृतार्थ और अनुगृहीत हुआ।'

श्रीरामचन्द्रजीके ऐसे अद्‌भुत वचन कहनेपर तपस्वी अगस्त्यजीने अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा—'श्रीराम! कल्याणमय अक्षरोंसे युक्त आपका यह वचन बड़ा ही अद्भुत है। रघुनन्दन! यह सम्पूर्ण प्राणियोंको पवित्र करनेवाला है। जो मनुष्य आपको दो घड़ी भी देख लेते हैं, वे समस्त प्राणियोंमें पवित्र हैं और देवता कहलाते हैं।* रघुश्रेष्ठ! आप समस्त देहधारियोंके लिये परम पावन हैं आपका प्रभाव ऐसा ही है। जो लोग आपकी चर्चा करेंगे, उन्हें भी सिद्धि प्राप्त होगी। आप इस मार्गसे शान्त एवं निर्भय होकर जाइये और धर्मपूर्वक राज्यका पालन कीजिये; क्योंकि आप ही इस जगत्‌के एकमात्र सहारे हैं।'

महर्षिके ऐसा कहनेपर महाराज श्रीरामचन्द्रजीने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया तथा अन्यान्य मुनिवरोंको भी, जो सब-के-सब तपस्याके धनी थे, सादर अभिवादन करके वे शान्तभावसे सुवर्णभूषित पुष्पक विमानपर चढ़ गये। यात्राके समय मुनिगणोंने सब ओरसे उनपर आशीर्वादोंकी वर्षा की। समस्त पुरुषार्थोंके ज्ञाता श्रीरघुनाथजी दोपहर होते-होते अयोध्यामें पहुँचकर सातवीं ड्योढ़ीमें उतरे। तत्पश्चात् उन्होंने इच्छानुसार चलनेवाले उस परम सुन्दर पुष्पक विमानको विदा कर दिया। फिर महाराजने द्वारपालोंसे कहा—'तुमलोग फुर्तीसे जाकर भरत और लक्ष्मणको मेरे आगमनकी सूचना दो और उन्हें अपने साथ ही लिवा लाओ; विलम्ब

* मुहूर्तमपि राम त्वां नेत्रेणेक्षन्ति ये नराः। पाविताः सर्वभूतेषु कथ्यन्ते त्रिदिवौकसः॥ (३४। ३८)
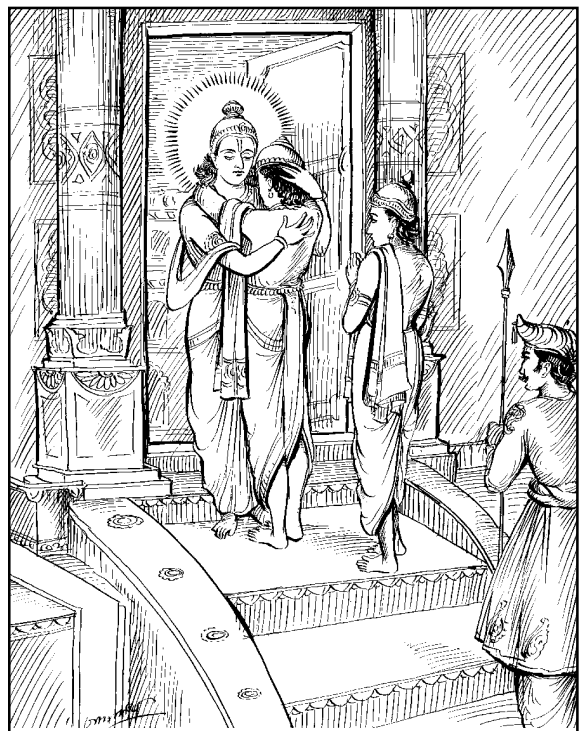
न करना।' द्वारपाल आज्ञाके अनुसार जाकर दोनों कुमारोंको बुला ले आये। श्रीरघुनाथजी अपने प्रियबन्धु भरत और लक्ष्मणको देखकर बड़े प्रसन्न हुए और उन्हें छातीसे लगाकर बोले—'मैंने ब्राह्मणके शुभ कार्यका यथावत् सम्पादन किया है। अब मैं [प्रतिमास्थापन, देवालय-निर्माण आदि] पूर्त-धर्मका अनुष्ठान करूँगा। वीरो! मेरा कान्यकुब्ज देशमें जाकर भगवान् वामनकी प्रतिष्ठा करनेका विचार है।'

श्रीरामका लंका, रामेश्वर, पुष्कर एवं मथुरा होते हुए गंगातटपर जाकर भगवान् श्रीवामनकी स्थापना करना

भीष्मजीने पूछा—ब्रह्मर्षे! श्रीरामचन्द्रजीने कान्यकुब्ज देशमें भगवान् श्रीवामनकी प्रतिष्ठा किस प्रकार की, उन्हें श्रीवामनजीका विग्रह कहाँ प्राप्त हुआ—इन सब बातोंका विस्तारके साथ वर्णन कीजिये। भगवन्! श्रीरामचन्द्रजीके कीर्तनसे सम्बन्ध रखनेवाली कथा बड़ी ही मधुर, पावन तथा मनोरम होती है। आपने जो यह कथा सुनायी है, उससे मेरे हृदय और कानोंको बड़ा सुख मिला है। सारा संसार भगवान् श्रीरामको प्रेम और अनुरागसे देखता है; वे बड़े ही धर्मज्ञ थे। वे जब पृथ्वीका राज्य करते थे, उस समय सभी वृक्ष फल और रससे भरे रहते थे। पृथ्वी बिना जोते ही अन्न देती थी। उन महात्माका इस भूमण्डलपर कोई शत्रु नहीं था। अतः मुनिवर! मैं उन भगवान् श्रीरामचन्द्रजी-का सारा चरित्र सुनना चाहता हूँ।

पुलस्त्यजी बोले—महाराज! धर्मके मार्गपर स्थित रहनेवाले श्रीरामचन्द्रजीने कुछ कालके पश्चात् जो महत्त्वपूर्ण कार्य किया, उसे एकाग्र मनसे सुनो। एक दिन श्रीरघुनाथजी मन-ही-मन इस बातका विचार करने लगे कि 'राक्षस-कुलोत्पन्न राजा विभीषण लंकामें रहकर सदा ही राज्य करते रहें—उसमें किसी प्रकारकी विघ्न-बाधा न पड़े, इसके लिये क्या उपाय हो सकता है। मुझे चलकर उन्हें हितकी बात बतानी चाहिये, जिससे उनका राज्य सदा कायम रहे।' अमित तेजस्वी श्रीरामचन्द्रजी जब इस प्रकार विचार कर रहे थे, उसी समय भरतजी वहाँ आये और श्रीरामको विचारमग्न देख यों बोले—'देव! आप क्या सोच रहे हैं? यदि कोई गुप्त बात न हो तो मुझे बतानेकी कृपा करें।' श्रीरघुनाथजीने कहा—'मेरी कोई भी बात तुमसे छिपानेयोग्य नहीं है। तुम और महायशस्वी लक्ष्मण मेरे बाहरी प्राण हो। मेरे मनमें इस समय सबसे बड़ी चिन्ता यह है कि विभीषण देवताओंके साथ कैसा बर्ताव करते हैं; क्योंकि देवताओंके हितके लिये ही मैंने रावणका वध किया था। इसलिये वत्स! जहाँ विभीषण हैं, वहाँ मैं जाना चाहता हूँ। लंकापुरीको देखकर राक्षसराजको उनके कर्तव्यका उपदेश करूँगा।'

भगवान् श्रीरामके ऐसा कहनेपर हाथ जोड़कर खड़े हुए भरतने कहा—'मैं भी आपके साथ चलूँगा।' श्रीरघुनाथजी बोले—'महाबाहो! अवश्य चलो।' फिर वे लक्ष्मणसे बोले—'वीर! तुम नगरमें रहकर हम दोनोंके लौटनेतक इसकी रक्षा करना।' लक्ष्मणको इस प्रकार आदेश देकर कौसल्याका आनन्द बढ़ानेवाले श्रीरामचन्द्रजीने पुष्पक विमानका स्मरण किया।
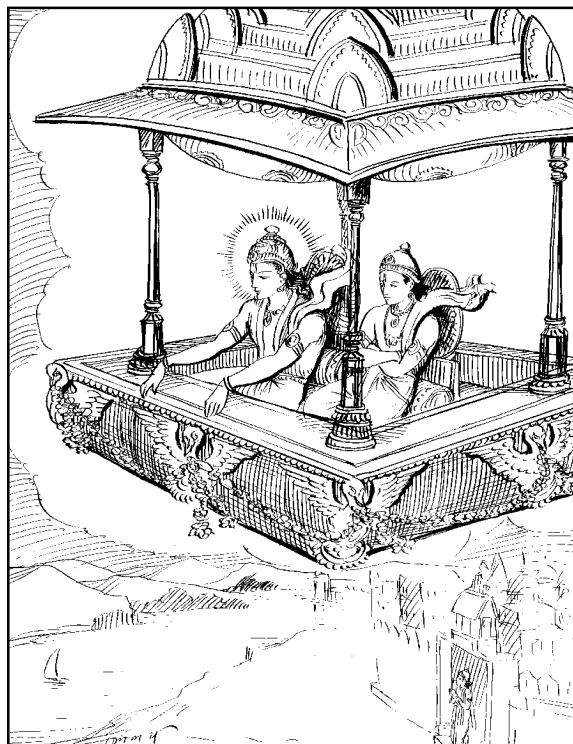
विमानके आ जानेपर वे दोनों भाई उसपर आरूढ़ हुए। सबसे पहले वह विमान गान्धार देशमें गया, वहाँ भगवान्‌ने भरतके दोनों पुत्रोंसे मिलकर उनकी राजनीतिका निरीक्षण किया। इसके बाद पूर्व दिशामें जाकर वे लक्ष्मणके पुत्रोंसे मिले। उनके नगरोंमें छ: रातें व्यतीत करके दोनों भाई राम और भरत दक्षिण दिशाकी ओर चले। गंगा-यमुनाके संगम-स्थान प्रयागमें जाकर महर्षि भरद्वाजको प्रणाम करके वे अत्रिमुनिके आश्रमपर गये। वहाँ अत्रिमुनिसे बातचीत करके दोनों भाइयोंने जनस्थानकी यात्रा की। [जनस्थानमें प्रवेश करते हुए] श्रीरामचन्द्रजी बोले—"भरत! यही वह स्थान है, जहाँ दुरात्मा रावणने गृध्रराज जटायुको मारकर सीताका हरण किया था। जटायु हमारे पिताजीके मित्र थे। इस स्थानपर हमलोगोंका दुष्ट बुद्धिवाले कबन्धके साथ महान् युद्ध हुआ था। कबन्धको मारकर हमने उसे आगमें जला दिया था। मरते समय उसने बताया कि सीता रावणके घरमें हैं। उसने यह भी कहा कि 'आप ऋष्यमूक पर्वतपर जाइये। वहाँ सुग्रीव नामके वानर रहते हैं, वे आपके साथ मित्रता करेंगे।' यही वह पम्पा सरोवर है, जहाँ शबरी नामकी तपस्विनी रहती थी। यही वह स्थान है, जहाँ सुग्रीवके लिये मैंने वालिको मारा था। वीर! 'वालिकी राजधानी किष्किन्धापुरी यह दिखायी दे रही है। इसीमें धर्मात्मा वानरराज सुग्रीव अन्यान्य वानरोंके साथ निवास करते हैं।' सुग्रीव उस समय अपने सभा-भवनमें विराजमान थे। इतनेमें ही भरत और श्रीरामचन्द्रजी किष्किन्धापुरीमें जा पहुँचे। उन दोनों भाइयोंको उपस्थित देख सुग्रीवने उनके चरणोंमें प्रणाम किया। फिर उन दोनों भाइयोंको सिंहासनपर बिठाकर सुग्रीवने अर्घ्य निवेदन किया और साथ ही अपने-आपको भी उनके चरणोंमें अर्पित कर दिया। इस प्रकार जब परम धर्मात्मा श्रीरघुनाथजी सभामें विराजमान हुए तब अंगद, हनुमान्, नल, नील, पाटल और ऋक्षराज जाम्बवान् आदि सभी वानर-वीर सेनाओंसहित वहाँ आये। अन्त:पुरकी सभी स्त्रियाँ—रुमा और तारा आदि भी उपस्थित हुईं। सबको अनुपम आनन्द प्राप्त हुआ। सब लोग भगवान्‌को साधुवाद देने लगे और सबने भगवान्‌का दर्शन करके प्रेमाश्रुओंसे गद्‌गद हो उन्हें प्रणाम किया।"
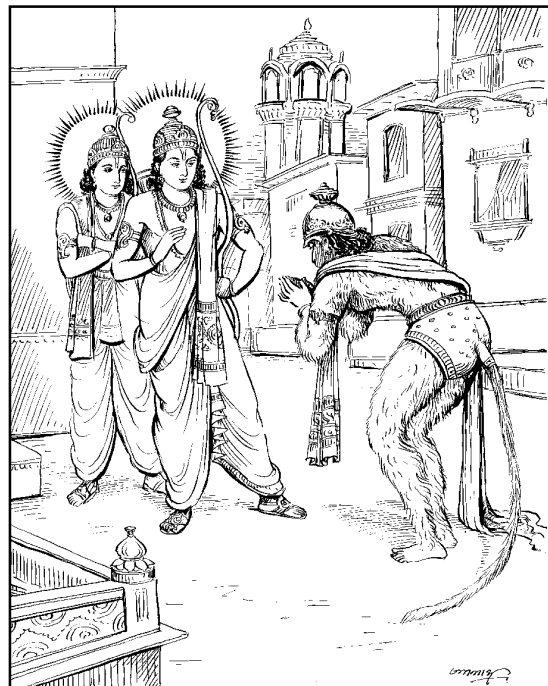
सुग्रीव बोले—महाराज! आप दोनोंने किस कार्यसे यहाँ पधारनेकी कृपा की है, यह शीघ्र बताइये।

सुग्रीवके इस प्रकार पूछनेपर श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे भरतने लंकायात्राकी बात बतायी। तब सुग्रीवने कहा—'मैं भी आप दोनोंके साथ राक्षसराज विभीषणसे मिलनेके लिये लंकापुरीमें चलूँगा।' सुग्रीवके ऐसा कहनेपर श्रीरघुनाथजीने कहा—'चलो।' फिर सुग्रीव, श्रीराम और भरत—ये तीनों पुष्पक विमानपर बैठे। तुरंत ही वह विमान समुद्रके उत्तर-तटपर जा पहुँचा। उस समय श्रीरामने भरतसे कहा—'यही वह स्थान है, जहाँ राक्षसराज विभीषण अपने चार मन्त्रियोंको साथ लेकर प्राण बचानेके लिये मेरे पास आये थे। उसी समय लक्ष्मणने लंकाके राज्यपर उनका अभिषेक किया था। यहाँ मैं समुद्रके इस पार तीन दिनतक इस आशासे ठहरा रहा कि यह मुझे दर्शन देगा और [सगरका पुत्र होनेके नाते] अपना कुटुम्बी समझकर मेरा कार्य करेगा। किन्तु तबतक इसने मुझे दर्शन नहीं दिया। यह देखकर चौथे दिन मैंने बड़े वेगसे धनुष चढ़ाकर हाथमें दिव्यास्त्र ले

लिया। यह देख समुद्रको बड़ा भय हुआ और वह शरणार्थी होकर लक्ष्मणके पास पहुँचा। सुग्रीवने भी बहुत अनुनय-विनय की और कहा—'प्रभो! इसे क्षमा कर दीजिये।' तब मैंने वह बाण मरुदेशमें फेंक दिया। इसके बाद समुद्रने मुझसे कहा—'रघुनन्दन! आप मेरे ऊपर पुल बाँधकर जलराशिसे पूर्ण महासागरके पार चले जाइये।' तब मैंने वरुणके निवास-स्थान समुद्रपर यह महान् पुल बाँधा था। श्रेष्ठ वानरोंने मिलकर तीन ही दिनोंमें यह कार्य पूरा किया था। पहले दिन उन्होंने चौदह योजनतक पुल बाँधा, दूसरे दिन छत्तीस योजनतक और तीसरे दिन सौ योजनतकका पूरा पुल तैयार कर दिया। देखो, यह लंका दिखायी दे रही है। इसका परकोटा और नगरद्वार—सब सोनेके बने हुए हैं। यहाँ वानरवीरोंने बहुत बड़ा घेरा डाला था। यहाँ नीलने राक्षसश्रेष्ठ प्रहस्तका वध किया था। इसी स्थानपर हनुमान्‌जीने धूम्राक्षको मार गिराया था। यहीं सुग्रीवने महोदर और अतिकायको मौतके घाट उतारा था। इसी स्थानपर मैंने कुम्भकर्णको और लक्ष्मणने इन्द्रजित्‌को मारा था तथा यहीं मैंने राक्षसराज दशग्रीवका वध किया था। यहाँ लोकपितामह ब्रह्माजी मुझसे वार्तालाप करनेके लिये पधारे थे। उनके साथ पार्वतीसहित त्रिशूलधारी भगवान् शंकर भी थे। हमारे पिता महाराज दशरथ भी स्वर्गलोकसे यहाँ पधारे थे। जानकीकी शुद्धि चाहनेवाले उन सभी लोगोंके समक्ष सीताने इस स्थानपर अग्निमें प्रवेश किया था और वे सर्वथा शुद्ध प्रमाणित हुई थीं। लंकापुरीके अधिष्ठाता देवताओंने भी सीताकी अग्नि-परीक्षा देखी थी। पिताजीकी आज्ञासे मैंने सीताको स्वीकार किया। उसके बाद महाराजने मुझसे कहा—बेटा! अब अयोध्याको जाओ।''

श्रीरामचन्द्रजी जब इस प्रकार बात कर रहे थे, पुष्पक विमान वहीं ठहरा रहा। उसी समय प्रधान-प्रधान राक्षसोंने, जो वहाँ उपस्थित थे, तुरंत ही विभीषणके पास जा बड़े हर्षमें भरकर निवेदन किया—'राक्षसराज! सुग्रीवके साथ भगवान् श्रीरामचन्द्रजी पधारे हैं, उनके साथ उन्हींकी-सी आकृतिवाले एक दूसरे पुरुष भी हैं।' श्रीरामचन्द्रजी नगरके समीप आ गये हैं, यह समाचार सुनकर विभीषणने [प्रिय संवाद सुनानेवाले] उन दूतोंका विशेष सत्कार किया तथा उन्हें धन देकर उनके सभी मनोरथ पूर्ण किये। फिर लंकापुरीको सजानेकी आज्ञा देकर वे मन्त्रियोंके साथ बाहर निकले। मेरु पर्वतपर उदित हुए सूर्यकी भाँति भगवान् श्रीरामको विमानपर बैठे देख विभीषणने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया और कहा—'भगवन्! आज मेरा जन्म सफल हुआ, मेरे सभी मनोरथ पूर्ण हो गये; क्योंकि आज मुझे आपके विश्व-वन्द्य-चरणोंका दर्शन मिला है।' इस प्रकार श्रीरघुनाथजीका अभिवादन करके वे भरत और सुग्रीवसे भी गले लगकर मिले। तदनन्तर उन्होंने स्वर्गसे भी बढ़कर सुशोभित लंकापुरीमें सबको प्रवेश कराया और सब प्रकारके रत्नोंसे सुशोभित रावणके जगमगाते हुए भवनमें उन्हें ठहराया। जब श्रीरामचन्द्रजी आसनपर विराजमान हो गये, तब विभीषणने अर्घ्य निवेदन करके हाथ जोड़कर सुग्रीव और भरतसे कहा—'यहाँ पधारे हुए भगवान् श्रीरामको भेंट करनेयोग्य कोई वस्तु मेरे पास नहीं है। यह लंकापुरी तो स्वयं भगवान्‌ने ही त्रिलोकीके लिये कण्टकरूप पापी शत्रुको मारकर मुझे

प्रदान की है। यह पुरी ही नहीं, ये स्त्रियाँ, वे पुत्र तथा स्वयं मैं—यह सब कुछ भगवान्की सेवामें अर्पित है। भगवन्! आपको नमस्कार है; आप इसे स्वीकार करें।'

तदनन्तर राजा विभीषणका मन्त्रिमण्डल और लंकाके निवासी श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनके लिये उत्सुक हो वहाँ आये और विभीषणसे बोले—'प्रभो! हमें श्रीरामजीका दर्शन करा दीजिये।' विभीषणने महाराज श्रीरामचन्द्रजीसे उनका परिचय कराया और श्रीरामकी आज्ञासे भरतने उन राक्षस-पतियोंके द्वारा भेंटमें दिये हुए धन और रत्नराशिको ग्रहण किया। इस प्रकार राक्षसराजके भवनमें श्रीरघुनाथजीने तीन दिनतक निवास किया। चौथे दिन जब श्रीरामचन्द्रजी राजसभामें विराजमान थे, राजमाता कैकसीने विभीषणसे कहा—'बेटा! मैं भी अपनी बहुओंके साथ चलकर श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन करूँगी, तुम उन्हें सूचना दे दो। ये महाभाग श्रीरघुनाथजी चार मूर्तियोंमें प्रकट हुए सनातन भगवान् श्रीविष्णु हैं तथा परम सौभाग्यवती सीता साक्षात् लक्ष्मी हैं। तुम्हारा बड़ा भाई उनके स्वरूपको नहीं पहचान पाया था। तुम्हारे पिताने देवताओंके सामने पहले ही कह दिया था कि भगवान् श्रीविष्णु रघुकुलमें राजा दशरथके पुत्ररूपसे अवतार लेंगे। वे ही दशग्रीव रावणका विनाश करेंगे।'

विभीषण बोले—माँ! तुम श्रीरघुनाथजीके समीप अवश्य जाओ। मैं पहले जाकर उन्हें सूचना देता हूँ।

यों कहकर विभीषण जहाँ श्रीरामचन्द्रजी थे, वहाँ गये और वहाँ भगवान्का दर्शन करनेके लिये आये हुए सब लोगोंको विदा करके उन्होंने सभाभवनको सर्वथा एकान्त बना दिया। फिर श्रीरामके सम्मुख खड़े होकर कहा—'महाराज! मेरा निवेदन सुनिये; रावणको, कुम्भकर्णको तथा मुझको जन्म देनेवाली मेरी माता कैकसी आपके चरणोंका दर्शन चाहती है; आप कृपा करके उसे दर्शन दें।'

श्रीरामने कहा—'राक्षसराज! [तुम्हारी माता मेरी भी माता ही हैं,] मैं माताका दर्शन करनेकी इच्छासे स्वयं ही उनके पास चलूँगा। तुम शीघ्र मेरे आगे-आगे चलो।' ऐसा कहकर वे सिंहासनसे उठे और चल पड़े। कैकसीके पास पहुँचकर उन्होंने मस्तकपर अंजलि बाँध उसे प्रणाम करते हुए कहा—'देवि! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। [मित्रकी माता होनेके नाते] आप धर्मतः मेरी माता हैं। जैसे कौसल्या मेरी माता हैं, उसी प्रकार आप भी हैं।'

कैकसी बोली—वत्स! तुम्हारी जय हो, तुम चिरकालतक जीवित रहो। वीर! मेरे पतिने कहा था कि 'भगवान् श्रीविष्णु देवताओंका हित करनेके लिये रघुकुलमें मनुष्य-रूपसे अवतार लेंगे। वे रावणका विनाश करके विभीषणको राज्य प्रदान करेंगे। वे दशरथनन्दन श्रीराम बालिका वध और समुद्रपर पुल बाँधने आदिका कार्य भी करेंगे!' इस समय स्वामीके वचनोंका स्मरण करके मैंने तुम्हें पहचान लिया। सीता लक्ष्मी हैं, तुम श्रीविष्णु हो और वानर देवता हैं। अच्छा, बेटा! तुम्हें अमर यश प्राप्त हो।

[विभीषणकी पत्नी] सरमाने कहा—भगवन्! यहीं अशोक-वाटिकामें आपकी प्रिया श्रीजानकी देवीकी मैंने पूरे एक वर्षतक सेवा की थी, वे मेरी सेवासे यहाँ सुखपूर्वक रही हैं। परंतप! मैं प्रतिदिन श्रीसीताके चरणोंका स्मरण करती हूँ। रात-दिन यही सोचती रहती

हूँ कि कब उनका दर्शन होगा। आप श्रीजनकनन्दिनीको अपने साथ ही यहाँ क्यों नहीं लेते आये? उनके बिना अकेले आपकी शोभा नहीं हो रही है। आपके निकट सीता शोभा पाती हैं और सीताके समीप आप।

जब सरमा इस प्रकार बात कर रही थी, उस समय भरत मन-ही-मन सोचने लगे—'यह कौन स्त्री है, जो श्रीरघुनाथजीसे वार्तालाप कर रही है?' श्रीरामचन्द्रजी भरतका अभिप्राय ताड़ गये, वे तुरंत ही बोले—'ये विभीषणकी पत्नी हैं, इनका नाम सरमा है। ये सीताकी प्रिय सखी हैं। वे इन्हें बहुत मानती हैं।' इतना कहकर वे सरमासे बोले—'कल्याणी! अब तुम भी जाओ और पतिके गृहकी रक्षा करो।' इस प्रकार सीताकी प्यारी सखी सरमाको विदा करके श्रीरामने विभीषणसे कहा—'निष्पाप विभीषण! तुम सदा देवताओंका प्रिय कार्य करना, कभी उनका अपराध न करना, तुम्हें देवराजके आज्ञानुसार ही चलना चाहिये। यदि लंकामें किसी तरह कोई मनुष्य चला आये तो राक्षसोंको उसका वध नहीं करना चाहिये, वरं मेरी ही भाँति उसका स्वागत-सत्कार करना चाहिये।'

विभीषणने कहा—नरश्रेष्ठ! आपकी आज्ञाके अनुसार ही मैं सारा कार्य करूँगा।' विभीषण जब इस प्रकार कह रहे थे, उसी समय वायुदेवताने आकर श्रीरामसे कहा—'महाभाग! यहाँ भगवान् श्रीविष्णुकी वामनमूर्ति है, जिसने पूर्वकालमें राजा बलिको बाँधा था। आप उसे ले जायँ और कान्यकुब्ज देशमें स्थापित कर दें।' वायुदेवताके प्रस्तावमें श्रीरामचन्द्रजीकी सम्मति जान विभीषणने श्रीवामनभगवान्‌के विग्रहको सब प्रकारके रत्नोंसे विभूषित किया और लाकर भगवान् श्रीरामको समर्पित कर दिया। फिर उन्होंने इस प्रकार कहा—'रघुनन्दन! जिस समय मेघनादने इन्द्रको परास्त किया था, उस समय विजय-चिह्नके रूपमें वह इस वामनमूर्तिको [इन्द्रलोकसे] उठा लाया था। देवदेव! अब आप—इन भगवान्‌को ले जाइये और यथास्थान इन्हें स्थापित कीजिये।'

'तथास्तु' कहकर श्रीरघुनाथजी पुष्पक विमानपर आरूढ हुए। उनके पीछे असंख्य धन, रत्न और देवश्रेष्ठ वामनजीको लेकर सुग्रीव और भरत भी विमानपर चढ़े। आकाशमें जाते समय श्रीरामने विभीषणसे कहा—'तुम यहीं रहो।' यह सुनकर विभीषणने श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—'प्रभो! आपने मुझे जो-जो आज्ञाएँ दी हैं, उन सबका मैं पालन करूँगा। परन्तु महाराज! इस सेतुके मार्गसे पृथ्वीके समस्त मानव यहाँ आकर मुझे सतायेंगे। ऐसी परिस्थितिमें मुझे क्या करना चाहिये?' विभीषणकी बात सुनकर श्रीरघुनाथजीने हाथमें धनुष ले सेतुके दो टुकड़े कर दिये। फिर तीन विभाग करके बीचका दस योजन उड़ा दिया। उसके बाद एक स्थानपर एक योजन और तोड़ दिया। तदनन्तर वेलावन (वर्तमान रामेश्वरक्षेत्र)-में पहुँचकर श्रीरामचन्द्रजीने श्रीरामेश्वरके नामसे देवाधिदेव महादेवजीकी स्थापना की तथा उनका विधिवत् पूजन किया।
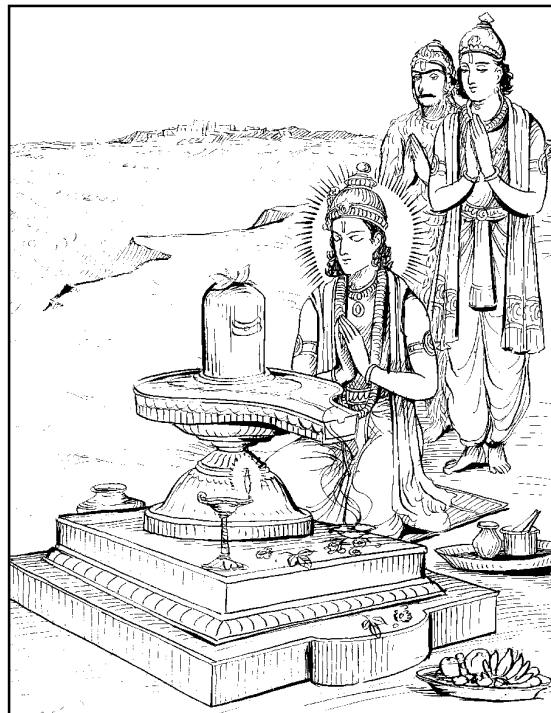
भगवान् रुद्र बोले—रघुनन्दन! मैं इस समय यहाँ साक्षात् रूपसे विराजमान हूँ। जबतक यह संसार, यह पृथ्वी और यह आपका सेतु कायम रहेगा, तबतक मैं भी यहाँ स्थिरतापूर्वक निवास करूँगा।

श्रीरामने कहा—भक्तोंको अभय करनेवाले देवदेवेश्वर! आपको नमस्कार है—दक्ष-यज्ञका

विध्वंस करनेवाले गौरीपते! आपको नमस्कार है। आप ही शर्व[१], रुद्र[२], भव[३] और वरद[४] आदि नामोंसे प्रसिद्ध हैं। आपको नमस्कार है। आप पशुओं (जीवों)-के स्वामी, नित्य उग्रस्वरूप तथा जटाजूट धारण करनेवाले हैं; आपको नमस्कार है। आप ही महादेव, भीम[५] और त्र्यम्बक (त्रिनेत्रधारी) कहलाते हैं, आपको नमस्कार है। प्रजापालक, सबके ईश्वर, भग देवताके नेत्र फोड़नेवाले तथा अन्धकासुरका वध करनेवाले भी आप ही हैं; आपको नमस्कार है। आप नीलकण्ठ, भीम, वेधा (विधाता), ब्रह्माजीके द्वारा स्तुत, कुमार कार्तिकेयके शत्रुका विनाश करनेवाले, कुमारको जन्म देनेवाले, विलोहित[६], धूम्र[७], शिव[८], क्रथन[९], नीलशिखण्ड[१०], शूली (त्रिशूलधारी), दिव्यशायी,[११] उग्र और त्रिनेत्र आदि नामोंसे प्रसिद्ध हैं। सोना और धन आपका वीर्य है। आपका स्वरूप किसीके चिन्तनमें नहीं आ सकता। आप देवी पार्वतीके स्वामी हैं। सम्पूर्ण देवता आपकी स्तुति करते हैं। आप शरण लेनेयोग्य, कामना करने-योग्य और सद्योजात[१२] नामसे प्रसिद्ध हैं, आपको नमस्कार है। आपकी ध्वजामें वृषभका चिह्न है। आप मुण्डित भी हैं और जटाधारी भी। आप ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करनेवाले, तपस्वी, शान्त, ब्राह्मणभक्त, जयस्वरूप, विश्वके आत्मा, संसारकी सृष्टि करनेवाले तथा सम्पूर्ण विश्वको व्याप्त करके स्थित हैं; आपको नमस्कार है। आप दिव्यस्वरूप, शरणागतका कष्ट दूर करनेवाले, भक्तोंपर सदा ही दया रखनेवाले तथा विश्वके तेज और मनमें व्याप्त रहनेवाले हैं; आपको बारम्बार नमस्कार है।[१३]

पुलस्त्यजी कहते हैं—इस प्रकार स्तुति करनेपर देवाधिदेव महादेवजीने अपने सामने खड़े हुए श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—'रघुनन्दन! आपका कल्याण हो। कमलनयन परमेश्वर! आप देवताओंके भी आराध्य देव और सनातन पुरुष हैं। नररूपमें छिपे हुए साक्षात् नारायण हैं। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये ही आपने अवतार ग्रहण किया था, सो अब इस अवतारका सारा कार्य आपने पूर्ण कर दिया है। आपके बनाये हुए मेरे इस स्थानपर समुद्रके समीप आकर जो मनुष्य मेरा दर्शन करेंगे, वे यदि महापापी होंगे तो भी उनके सारे पाप नष्ट हो जायँगे। ब्रह्महत्या आदि जो कोई भी घोर पाप हैं, वे मेरे दर्शनमात्रसे नष्ट हो जाते हैं, इसमें अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।[१४] अच्छा, अब आप जाइये और गंगाजीके तटपर भगवान् श्रीवामनकी स्थापना कीजिये। पृथ्वीके आठ भाग करके [उन्हें

१-प्रलय-कालमें संसारका संहार करनेवाले। २-जगत्‌को रुलानेवाले। ३-संसारकी उत्पत्तिके कारण। ४-वर देनेवाले। ५-भयंकर रूप धारण करनेवाले। ६-लाल रंगवाले। ७-धुएँके समान रंगवाले। ८-कल्याणस्वरूप। ९-मारनेवाले। १०-नीले रंगका जटाजूट धारण करनेवाले। ११-दिव्यरूपसे शयन करनेवाले। १२-भक्तोंकी प्रार्थनासे तत्काल प्रकट होनेवाले।

१३-नमस्ते देवदेवेश भक्तानामभयंकर। गौरीकान्त नमस्तुभ्यं दक्षयज्ञविनाशन॥
नमः शर्वाय रुद्राय भवाय वरदाय च। पशूनां पतये नित्यमुग्राय च कपर्दिने॥
महादेवाय भीमाय त्र्यम्बकाय विशाम्पते। ईशानाय भगघ्नाय नमोऽस्त्वन्धकघातिने॥
नीलग्रीवाय भीमाय वेधसे वेधसा स्तुत। कुमारशत्रुनिघ्नाय कुमारजननाय च॥
विलोहिताय धूम्राय शिवाय क्रथनाय च। नित्यं नीलशिखण्डाय शूलिने दिव्यशायिने॥
उग्राय च त्रिनेत्राय हिरण्यवसुरेतसे। अचिन्त्यायाम्बिकाभर्त्रे सर्वदेवस्तुताय च॥
अभिगम्याय काम्याय सद्योजाताय वै नमः। वृषध्वजाय मुण्डाय जटिने ब्रह्मचारिणे॥
तप्यमानाय शान्ताय ब्रह्मण्याय जयाय च। विश्वात्मने विश्वसृजे विश्वमावृत्य तिष्ठते॥
नमो नमस्ते दिव्याय प्रपन्नार्त्तिहराय च। भक्तानुकम्पिने नित्यं विश्वतेजोमनोगते॥
(३५। १३९—१४७)

१४-इह त्वया कृते स्थाने मदीये रघुनन्दन। आगत्य मानवा राम पश्येयुरिह सागरे॥
महापातकयुक्ता ये तेषां पापं विनङ्क्ष्यति। ब्रह्मवध्यादि पापानि दुष्टानि यानि कानिचित्॥
दर्शनादेव नश्यन्ति नात्र कार्या विचारणा। (३५। १५२-१५३)

पुत्रोंको सौंप दीजिये और स्वयं] अपने परम धामको पधारिये। भगवन्! आपको नमस्कार है।'

तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी भगवान् शंकरको प्रणाम करके वहाँसे चल दिये। ऊपर-ही-ऊपर जब वे पुष्कर तीर्थके सामने पहुँचे तो उनके विमानकी गति रुक गयी। अब वह आगे नहीं बढ़ पाता था। तब श्रीरामचन्द्रजीने कहा—'सुग्रीव! इस निराधार आकाशमें स्थित होकर भी यह विमान कैसे आबद्ध हो गया है?' इसका कुछ कारण अवश्य होगा, तुम नीचे जाकर पता लगाओ।' श्रीरघुनाथजीके आज्ञानुसार सुग्रीव विमानसे उतरकर जब पृथ्वीपर आये तो क्या देखते हैं कि देवताओं, सिद्धों और ब्रह्मर्षियोंके समुदायके साथ चारों वेदोंसे युक्त भगवान् ब्रह्माजी विराजमान हैं। यह देख वे विमानपर जाकर श्रीरामचन्द्रजीसे बोले—'भगवन्! यहाँ समस्त लोकोंके पितामह ब्रह्माजी लोकपालों, वसुओं, आदित्यों और मरुद्गणोंके साथ विराजमान हैं। इसीलिये पुष्पक विमान उन्हें लाँघकर नहीं जा रहा है।' तब श्रीरामचन्द्रजी सुवर्णभूषित पुष्पक विमानसे उतरे और देवी गायत्रीके साथ बैठे हुए भगवान् ब्रह्माको साष्टांग प्रणाम किया। इसके बाद वे प्रणतभावसे उनकी स्तुति करने लगे।
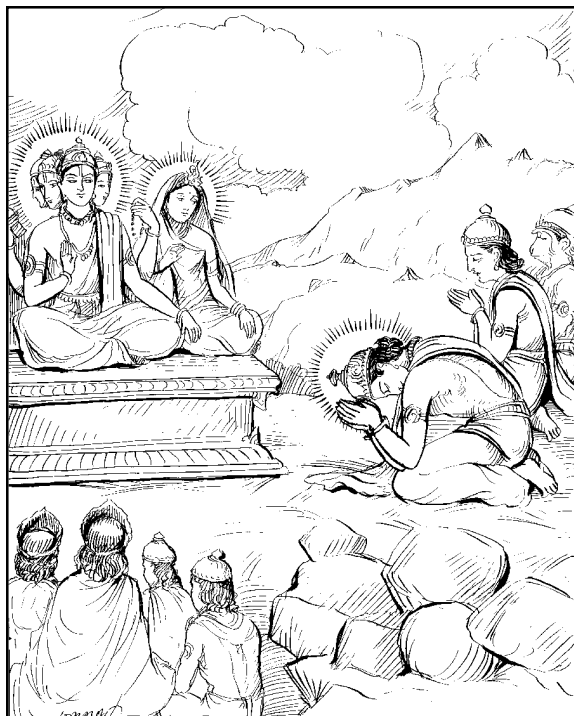
श्रीरामचन्द्रजीने कहा—मैं प्रजापतियों और देवताओंसे पूजित लोककर्त्ता ब्रह्माजीको नमस्कार करता हूँ। समस्त देवताओं, लोकों एवं प्रजाओंके स्वामी जगदीश्वरको प्रणाम करता हूँ। देवदेवेश्वर! आपको नमस्कार है। देवता और असुर दोनों ही आपकी वन्दना करते हैं। आप भूत, भविष्य और वर्तमान—तीनों कालोंके स्वामी हैं। आप ही संहारकारी रुद्र हैं। आपके नेत्र भूरे रंगके हैं। आप ही बालक और आप ही वृद्ध हैं। गलेमें नीला चिह्न धारण करनेवाले महादेवजी तथा लम्बे उदरवाले गणेशजी भी आपके ही स्वरूप हैं। आप वेदोंके कर्ता, नित्य, पशुपति (जीवोंके स्वामी), अविनाशी, हाथोंमें कुश धारण करनेवाले, हंससे चिह्नित ध्वजावाले, भोक्ता, रक्षक, शंकर, विष्णु, जटाधारी, मुण्डित, शिखाधारी एवं दण्ड धारण करनेवाले, महान् यशस्वी, भूतोंके ईश्वर, देवताओंके अधिपति, सबके आत्मा, सबको उत्पन्न करनेवाले, सर्वव्यापक, सबका संहार करनेवाले, सृष्टिकर्ता, जगद्गुरु, अविकारी, कमण्डलु धारण करनेवाले देवता, स्रुक्-स्रुवा आदि धारण करनेवाले, मृत्यु एवं अमृतस्वरूप, पारियात्र पर्वतरूप, उत्तम व्रतका पालन करनेवाले, ब्रह्मचारी, व्रतधारी, हृदय-गुहामें निवास करनेवाले, उत्तम कमल धारण करनेवाले, अमर, दर्शनीय, बालसूर्यके समान अरुण कान्तिवाले, कमलपर वास करनेवाले, षड्विध ऐश्वर्यसे परिपूर्ण, सावित्रीके पति, अच्युत, दानवोंको वर देनेवाले, विष्णुसे वरदान प्राप्त करनेवाले, कर्मकर्ता, पापहारी, हाथमें अभय-मुद्रा धारण करनेवाले, अग्निरूप मुखवाले, अग्निमय ध्वजा धारण करनेवाले, मुनिस्वरूप, दिशाओंके अधिपति, आनन्दरूप, वेदोंकी सृष्टि करनेवाले, धर्मादि चारों पुरुषार्थोंके स्वामी, वानप्रस्थ, वनवासी, आश्रमोंद्वारा पूजित, जगत्को धारण करनेवाले, कर्ता, पुरुष, शाश्वत, ध्रुव, धर्माध्यक्ष, विरूपाक्ष, मनुष्योंके गन्तव्य मार्ग, भूतभावन, ऋक्, साम और यजुः—इन तीनों वेदोंको धारण करनेवाले, अनेक रूपोंवाले, हजारों सूर्योंके समान तेजस्वी, अज्ञानियोंको—विशेषतः दानवोंको मोह और बन्धनमें डालनेवाले,

देवताओंके भी आराध्यदेव, देवताओंसे बढ़े-चढ़े, कमलसे चिह्नित जटा धारण करनेवाले, धनुर्धर, भीमरूप और धर्मके लिये पराक्रम करनेवाले हैं।

ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्माजीकी जब इस प्रकार स्तुति की गयी, तब वे विनीतभावसे खड़े हुए श्रीरामचन्द्रजीका हाथ पकड़कर बोले—'रघुनन्दन! आप साक्षात् श्रीविष्णु हैं। देवताओंका कार्य करनेके लिये इस पृथ्वीपर मनुष्यरूपमें अवतीर्ण हुए हैं। प्रभो! आप देवताओंका सम्पूर्ण कार्य कर चुके हैं। अब गंगाजीके दक्षिण किनारे श्रीवामनभगवान्‌की प्रतिमाको स्थापित करके आप अयोध्यापुरीको लौट जाइये और वहाँसे परमधामको सिधारिये।' ब्रह्माजीसे आज्ञा पाकर श्रीरामचन्द्रजीने उन्हें प्रणाम किया और पुष्पक विमानपर चढ़कर वहाँसे मथुरापुरीकी यात्रा की। वहाँ पुत्र और स्त्रीसहित शत्रुघ्नजीसे मिलकर श्रीरामचन्द्रजी भरत और सुग्रीवके साथ बहुत सन्तुष्ट हुए। शत्रुघ्नने भी अपने भाइयोंको उपस्थित देख उनके चरणोंमें मस्तक नवाकर प्रणाम किया। उनके पाँचों अंग (दोनों हाथ, दोनों घुटने और मस्तक) धरतीका स्पर्श करने लगे। श्रीरामचन्द्रजीने भाईको उठाकर छातीसे लगा लिया। तदनन्तर भरत और सुग्रीव भी शत्रुघ्नसे मिले। जब श्रीरामचन्द्रजी आसनपर विराजमान हुए, तब शत्रुघ्नने फुर्तीसे अर्घ्य निवेदन करके सेना-मन्त्री आदि आठों अंगोंसे युक्त अपने राज्यको उनके चरणोंमें अर्पित कर दिया। श्रीरामचन्द्रजीके आगमनका समाचार सुनकर समस्त मथुरावासी, जिनमें ब्राह्मणोंकी संख्या अधिक थी, उनके दर्शनके लिये आये। भगवान्‌ने समस्त सचिवों, वेदके विद्वानों और ब्राह्मणोंसे बातचीत करके, पाँच दिन मथुरामें रहकर वहाँसे जानेका विचार किया। उस समय श्रीरामने अत्यन्त प्रसन्न होकर शत्रुघ्नसे कहा—'तुमने जो कुछ मुझे अर्पण किया है, वह सब मैंने तुम्हें वापस दिया। अब मथुराके राज्यपर अपने दोनों पुत्रोंका अभिषेक करो।' ऐसा कहकर भगवान् श्रीराम वहाँसे चल दिये और दोपहर होते-होते गंगातटपर महोदय तीर्थपर जा पहुँचे। वहाँ भगवान् वामनजीको स्थापित करके वे ब्राह्मणों एवं भावी राजाओंसे बोले—'यह मैंने धर्मका सेतु बनाया है, जो ऐश्वर्य एवं कल्याणकी वृद्धि करनेवाला है। समयानुसार इसका पालन करते रहना चाहिये। किसी प्रकार इसका उल्लंघन करना उचित नहीं है।' इसके बाद भगवान् श्रीराम वानरराज सुग्रीवको किष्किन्धा भेजकर अयोध्या लौट आये और पुष्पक विमानसे बोले—'अब तुम्हें यहाँ आनेकी आवश्यकता नहीं होगी; जहाँ धनके स्वामी कुबेर हैं, वहीं रहना।' तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी सम्पूर्ण कार्योंसे निवृत्त हो गये। अब उन्होंने अपने लिये कोई कर्तव्य शेष नहीं समझा। भीष्म! इस प्रकार मैंने श्रीरामकी कथाके प्रसंगसे भगवान् श्रीवामनके प्राकट्यकी वार्ता भी तुम्हें कह दी।
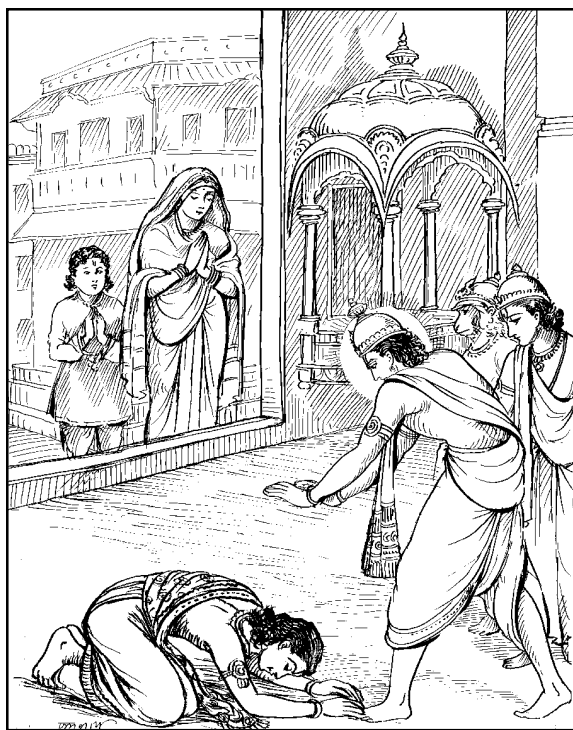
भगवान् श्रीनारायणकी महिमा, युगोंका परिचय, प्रलयके जलमें मार्कण्डेयजीको भगवान्के दर्शन तथा भगवान्की नाभिसे कमलकी उत्पत्ति

भीष्मजी बोले—ब्रह्मन्! आपने भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी महिमाका वर्णन किया। अब पुनः उन्हीं श्रीविष्णुभगवान्के माहात्म्यका प्रतिपादन कीजिये। [उनकी नाभिसे] वह सुवर्णमय कमल कैसे उत्पन्न हुआ, प्राचीन कालमें वैष्णवी सृष्टि कमलके भीतर कैसे हुई? धर्मात्मन्! मैं श्रद्धापूर्वक सुननेके लिये बैठा हूँ, अतः आप मुझे भगवान् नारायणका यश अवश्य सुनायें।

पुलस्त्यजीने कहा—कुरुश्रेष्ठ! तुम उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए हो; अतः तुम्हारे हृदयमें जो भगवान् श्रीनारायणके सुयशको सुननेकी उत्कण्ठा हुई है, यह उचित ही है। पुराणोंमें जैसा वर्णन किया गया है, देवताओंके मुखसे जैसा सुना है तथा द्वैपायन व्यासजीने अपनी तपस्यासे देखकर जैसा बतलाया है, वह अपनी बुद्धिके अनुसार मैं तुमसे कहूँगा। यह विश्व परम पुरुष श्रीनारायणका स्वरूप है, इसे मेरे पिता ब्रह्माजी भी ठीक-ठीक नहीं जानते, फिर दूसरा कौन जान सकता है। वे भगवान् नारायण ही महर्षियोंके गुप्त रहस्य, सब कुछ देखने और जाननेवालोंके परमतत्त्व, अध्यात्मवेत्ताओंके अध्यात्म, अधिदैव तथा अधिभूत हैं। वे ही परमर्षियोंके परब्रह्म हैं। वेदोंमें प्रतिपादित यज्ञ उन्हींका स्वरूप है। विद्वान् पुरुष उन्हींको तप मानते हैं। जो कर्ता, कारक, मन, बुद्धि, क्षेत्रज्ञ, प्रणव, पुरुष, शासन करनेवाले और अद्वितीय समझे जाते हैं, जो पाँच प्रकारके प्राण (प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान), ध्रुव एवं अक्षर-तत्त्व हैं, वे ही परमात्मा नाना प्रकारके भावोंद्वारा प्रतिपादित होते हैं। वे ही परब्रह्म हैं तथा वे ही भगवान् सबकी सृष्टि और संहार करते हैं। उन्हीं आदि पुरुषका हमलोग यजन करते हैं। जितनी कथाएँ हैं, जो-जो श्रुतियाँ हैं, जिसे धर्म कहते हैं, जो धर्मपरायण पुरुष हैं और जो विश्व तथा विश्वके स्वामी हैं, वे सब भगवान् नारायणके ही स्वरूप माने गये हैं। जो सत्य है, जो मिथ्या है, जो आदि, मध्य और अन्तमें है, जो सीमारहित भविष्य है, जो कोई चर-अचर प्राणी हैं तथा इनके अतिरिक्त भी जो कुछ वस्तु है, वह सब पुरुषोत्तम नारायण ही हैं।

कुरुनन्दन! चार हजार दिव्य वर्षोंका सत्ययुग कहा गया है। उसकी सन्ध्या और सन्ध्यांश आठ सौ वर्षोंके माने गये हैं। उस युगमें धर्म अपने चारों चरणोंसे मौजूद रहता है और अधर्म एक ही पैरसे स्थित होता है। उस समय सब मनुष्य स्वधर्मपरायण और शान्त होते हैं। सत्ययुगमें सत्य, पवित्रता और धर्मकी वृद्धि होती है। श्रेष्ठ पुरुष जिसका आचरण करते हैं, वही कर्म उस समय सबके द्वारा किया और कराया जाता है। राजन्! सत्ययुगमें जन्मतः धार्मिक अथवा नीच कुलमें उत्पन्न सभी मनुष्योंका ऐसा ही धर्मानुकूल बर्ताव होता है। त्रेतायुगका मान तीन हजार दिव्य वर्ष बतलाया जाता है। उसकी दोनों सन्ध्याएँ छः सौ वर्षोंकी होती हैं। उस समय धर्म तीन चरणोंसे और अधर्म दो पादोंसे स्थित रहता है। उस युगमें सत्य एवं शौचका पालन तथा यज्ञ-यागादिका अनुष्ठान होता है। त्रेतामें चारों वर्णोंके लोग केवल लोभके कारण विकारको प्राप्त होते हैं। वर्णधर्ममें विकार आनेसे आश्रमोंमें भी दुर्बलता आ जाती है। यह त्रेतायुगकी देवनिर्मित विचित्र गति है। द्वापर दो हजार दिव्य वर्षोंका होता है। इसकी सन्ध्याओंका मान चार सौ वर्षका बताया जाता है। उस समयके प्राणी रजोगुणसे अभिभूत होनेके कारण अधिक अर्थ-परायण, शठ, दूसरोंकी जीविकाका नाश करनेवाले तथा क्षुद्र होते हैं। द्वापरमें धर्म दो चरणोंसे और अधर्म तीन पादोंसे स्थित रहता है। दोनों सन्ध्याओंसहित कलियुगका मान एक हजार दो सौ दिव्य वर्ष है। यह क्रूरताका युग है। इसमें अधर्म अपने चारों पादोंसे और धर्म एक ही चरणसे स्थित रहता है। उस समय मनुष्य कामी, तमोगुणी और नीच होते हैं। इस युगमें प्रायः कोई साधक, साधु और सत्यवादी नहीं होता। लोग नास्तिक होते हैं, ब्राह्मणोंके प्रति उनकी भक्ति नहीं होती। सब मनुष्य अहंकारके वशीभूत होते हैं। उनमें परस्पर प्रेम प्रायः बहुत ही कम होता है। कलियुगमें ब्राह्मणोंके आचरण प्रायः शूद्रोंके-से

हो जाते हैं। आश्रमोंका ढंग भी बिगड़ जाता है। जब युगका अन्त होनेको आता है, उस समय तो वर्णोंके पहचाननेमें भी सन्देह हो जाता है—कौन मनुष्य किस वर्णका है, यह समझना कठिन हो जाता है। यह बारह हजार दिव्य वर्षोंका समय एक चतुर्युग (चौकड़ी) कहलाता है। इस प्रकारके हजार चतुर्युग बीतनेपर ब्रह्माका एक दिन होता है।

इस प्रकार ब्रह्माकी भी आयु जब समाप्त हो जाती है, तब काल सम्पूर्ण प्राणियोंके शरीरकी आयु पूरी हुई जान जगत्का संहार करनेके लिये महाप्रलय आरम्भ करता है। योग-शक्ति-सम्पन्न सर्वरूप भगवान् नारायण सूर्यरूप होकर अपनी प्रचण्ड किरणोंसे समुद्रोंको सोख लेते हैं। तदनन्तर श्रीहरि बलवान् वायुका रूप धारणकर सारे जगत्को कँपाते हुए प्राण, अपान और समान आदिके द्वारा आक्रमण करते हैं। घ्राणेन्द्रियका विषय, घ्राणेन्द्रिय तथा पार्थिव शरीर—ये गुण पृथ्वीमें समा जाते हैं। रसनेन्द्रिय, उसका विषय रस और स्नेह आदि जलके गुण जलमें लीन हो जाते हैं। नेत्रेन्द्रिय, उसका विषय रूप और मन्दता, पटुता आदि नेत्रके गुण—ये अग्नि-तत्त्वमें प्रवेश कर जाते हैं। वागिन्द्रिय और उसका विषय, स्पर्श और चेष्टा आदि वायुके गुण—ये वायुमें समा जाते हैं। श्रवणेन्द्रिय और उसका विषय शब्द तथा सुननेकी क्रिया आदि गुण आकाशमें विलीन हो जाते हैं। इस प्रकार कालरूप भगवान् एक ही मुहूर्तमें सम्पूर्ण लोकोंकी जीवनयात्रा नष्ट कर देते हैं। मन, बुद्धि, चित्त और क्षेत्रज्ञ—ये परमेष्ठी ब्रह्माजीमें लीन हो जाते हैं और ब्रह्माजी भगवान् हृषीकेशमें लीन हो जाते हैं। पंच महाभूत भी उस अमित तेजस्वी विभुमें प्रवेश कर जाते हैं। सूर्य, वायु और आकाशके नष्ट हो जाने तथा सूक्ष्म जगत्के भी लीन हो जानेपर अमितपराक्रमी सनातन पुरुष भगवान् श्रीविष्णु सबको दग्ध करके अपनेमें समेटकर अकेले ही अनेक सहस्र युगोंतक एकार्णवके जलमें शयन करते हैं। उन अव्यक्त परमेश्वरके सम्बन्धमें कोई व्यक्त जीव यह नहीं जान पाता कि ये पुरुषरूप कौन हैं। उन देव-श्रेष्ठके विषयमें उनके सिवा दूसरा कोई कुछ नहीं जानता।

भीष्म! एक समयकी बात सुनो, महामुनि मार्कण्डेयको एकार्णवके जलमें शयन करनेवाले भगवान् कौतूहलवश अपने मुँहमें लील गये। कई हजार वर्षोंकी आयुवाले वे महर्षि भगवान्के ही उत्कृष्ट तेजसे उनके उदरमें तीर्थयात्राके प्रसंगसे विचरते हुए पृथ्वीके समस्त तीर्थोंमें घूमते फिरे। अनेकों पुण्यतीर्थोंके जलसे युक्त वन और नाना प्रकारके आश्रम उन्हें दृष्टिगोचर हुए। उत्तम दक्षिणाओंसे सम्पन्न यज्ञोंद्वारा यजन करनेवाले यजमानों तथा यज्ञमें सम्मिलित सैकड़ों ब्राह्मणोंको भी उन्होंने भगवान्के उदरमें देखा। वहाँ ब्राह्मण आदि सभी वर्णोंके लोग सदाचारमें स्थित थे। चारों ही आश्रम अपनी-अपनी मर्यादामें स्थित थे। इस प्रकार भगवान्के उदरमें समूची पृथ्वीपर विचरते बुद्धिमान् मार्कण्डेयजीको सौ वर्षोंसे कुछ अधिक समय बीत गया। तदनन्तर वे किसी समय पुनः भगवान्के मुखसे बाहर निकले। उस समय भी सब ओर एकार्णवका जल ही दिखायी देता था। समस्त दिशाएँ कुहरेसे आच्छादित थीं। जगत् सम्पूर्ण प्राणियोंसे रहित था। ऐसी अवस्थामें मार्कण्डेयजीने देखा—एक बरगदकी शाखापर एक छोटा-सा बालक सो रहा है। यह देखकर मुनिको बड़ा

आश्चर्य हुआ। वे उस बालकका वृत्तान्त जाननेके लिये उत्सुक हो गये। उनके मनमें यह संदेह हुआ कि मैंने कभी इसे देखा है। यह सोचकर वे उस पूर्व-परिचित बालकको देखनेके लिये आगे बढ़े। उस समय उनके नेत्र भयसे कातर हो रहे थे। उन्हें आते देख बालरूपधारी भगवान्ने कहा—'मार्कण्डेय! तुम्हारा स्वागत है। तुम डरो मत, मेरे पास चले आओ।'

मार्कण्डेय बोले—यह कौन है, जो मेरा तिरस्कार करता हुआ मुझे नाम लेकर पुकार रहा है?

भगवान्ने कहा—बेटा! मैं तुम्हारा पितामह, आयु प्रदान करनेवाला पुराणपुरुष हूँ। मेरे पास तुम क्यों नहीं आते। तुम्हारे पिता आंगिरस मुनिने पूर्वकालमें पुत्रकी कामनासे तीव्र तपस्या करके मेरी ही आराधना की थी। तब मैंने उन अमिततेजस्वी महर्षिको तुम्हारे-जैसा तेजस्वी पुत्र होनेका सच्चा वरदान दिया था।

यह सुनकर महातपस्वी मार्कण्डेयजीका हृदय प्रसन्नतासे भर गया, उनके नेत्र आश्चर्यसे खिल उठे। वे मस्तकपर अंजलि बाँधे नाम-गोत्रका उच्चारण करते हुए भक्तिपूर्वक भगवान्को नमस्कार करने लगे और बोले—'भगवन्! मैं आपकी मायाको यथार्थरूपसे जानना चाहता हूँ; इस एकार्णवके बीच आप बालरूप धरकर कैसे सो रहे हैं?'

श्रीभगवान्ने कहा—ब्रह्मन्! मैं नारायण हूँ। जिन्हें हजारों मस्तकों और हजारों चरणोंसे युक्त बताया जाता है, वह विराट परमात्मा मेरा ही स्वरूप है। मैं सूर्यके समान वर्णवाला तेजोमय पुरुष हूँ। मैं देवताओंको हविष्य पहुँचानेवाला अग्नि हूँ और मैं ही सात घोड़ोंके रथवाला सूर्य हूँ। मैं ही इन्द्रपदपर प्रतिष्ठित होनेवाला इन्द्र और ऋतुओंमें परिवत्सर हूँ। सम्पूर्ण प्राणी तथा समस्त देवता मेरे ही स्वरूप हैं। मैं सर्पोंमें शेषनाग और पक्षियोंमें गरुड़ हूँ। सम्पूर्ण भूतोंका संहार करनेवाला काल भी मुझे ही समझना चाहिये। समस्त आश्रमोंमें निवास करनेवाले मनुष्योंका धर्म और तप मैं ही हूँ। मैं दयापरायण धर्म और दूधसे भरा हुआ महासागर हूँ तथा जो सत्यस्वरूप परम तत्त्व है, वह भी मैं ही हूँ। एकमात्र मैं ही प्रजापति हूँ। मैं ही सांख्य, मैं ही योग और मैं ही परमपद हूँ। यज्ञ, क्रिया और ब्राह्मणोंका स्वामी भी मैं ही हूँ। मैं ही अग्नि, मैं ही वायु, मैं ही पृथ्वी, मैं ही आकाश और मैं ही जल, समुद्र, नक्षत्र तथा दसों दिशाएँ हूँ। वर्षा, सोम, मेघ और हविष्य—इन सबके रूपमें मैं ही हूँ। क्षीरसागरके भीतर तथा समुद्रगत बडवाग्निके मुखमें भी मेरा ही निवास है। मैं ही संवर्तक अग्नि होकर सारा जल सोख लेता हूँ। मैं ही सूर्य हूँ। मैं ही परम पुरातन तथा सबका आश्रय हूँ। भविष्यमें भी सर्वत्र मैं ही प्रकट होऊँगा तथा भावी सम्पूर्ण वस्तुओंकी उत्पत्ति मुझसे ही होती है। विप्रवर! संसारमें तुम जो कुछ देखते हो, जो कुछ सुनते हो और जो कुछ अनुभव करते हो उन सबको मेरा ही स्वरूप समझो।* मैंने ही पूर्वकालमें विश्वकी सृष्टि की है तथा आज भी मैं ही करता हूँ। तुम मेरी ओर देखो। मार्कण्डेय! मैं ही प्रत्येक युगमें सम्पूर्ण जगत्की रक्षा करता हूँ। इन सारी बातोंको तुम अच्छी तरह समझ लो। यदि धर्मके सेवन या श्रवणकी इच्छा हो तो मेरे उदरमें रहकर सुखपूर्वक विचरो। मैं ही एक अक्षरका और मैं ही तीन अक्षरका मन्त्र हूँ। ब्रह्माजी भी मेरे ही स्वरूप हैं। धर्म-अर्थ-कामरूप त्रिवर्गसे परे ओंकारस्वरूप परमात्मा, जो सबको तात्त्विक दृष्टि प्रदान करनेवाले हैं, मैं ही हूँ।

इस प्रकार कहते हुए उन महाबुद्धिमान् पुराणपुरुष परमेश्वरने महामुनि मार्कण्डेयको तुरंत ही अपने मुँहमें ले लिया। फिर तो वे मुनिश्रेष्ठ भगवान्के उदरमें प्रवेश कर गये और नेत्रके सामने एकान्त स्थानमें धर्म श्रवण करनेकी इच्छासे बैठे हुए अविनाशी हंस भगवान्के पास उपस्थित हुए। भगवान् हंस अविनाशी और विविध शरीर धारण करनेवाले हैं। वे चन्द्रमा और सूर्यसे रहित प्रलयकालीन एकार्णवके जलमें धीरे-धीरे विचरते तथा

---

* यत्किञ्चित्पश्यसे विप्र यच्छृणोषि च किंचन॥ यच्चानुभवसे लोके तत्सर्वं मामनुस्मर। (३६। १३४-१३५)

जगत्‌की सृष्टि करनेका संकल्प लेकर विहार करते हैं। तदनन्तर विमलमति महात्मा हंसने लोक-रचनाका विचार किया। उस विश्वरूप परमात्माने विश्वका चिन्तन किया एवं भूतोंकी उत्पत्तिके विषयमें सोचा। उनके तेजसे अमृतके समान पवित्र जलका प्रादुर्भाव हुआ। अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले सर्वलोकविधाता महेश्वर श्रीहरिने उस महान् जलमें विधिवत् जलक्रीड़ा की। फिर उन्होंने अपनी नाभिसे एक कमल उत्पन्न किया, जो अनेकों रंगोंके कारण बड़ी शोभा पा रहा था। वह सुवर्णमय कमल सूर्यके समान तेजोमय प्रतीत होता था।

मधु-कैटभका वध तथा सृष्टि-परम्पराका वर्णन

पुलस्त्यजी कहते हैं—तदनन्तर अनेक योजनके विस्तारवाले उस सुवर्णमय कमलमें, जो सब प्रकारके तेजोमय गुणोंसे युक्त और पार्थिव लक्षणोंसे सम्पन्न था, भगवान् श्रीविष्णुने योगियोंमें श्रेष्ठ, महान् तेजस्वी एवं समस्त लोकोंकी सृष्टि करनेवाले चतुर्मुख ब्रह्माजीको उत्पन्न किया। महर्षिगण उस कमलको श्रीनारायणकी नाभिसे उत्पन्न बतलाते हैं। उस कमलका जो सारभाग है, उसे पृथ्वी कहते हैं तथा उस सारभागमें भी जो अधिक भारी अंश हैं, उन्हें दिव्य पर्वत माना जाता है। कमलके भीतर एक और कमल है, जिसके भीतर एकार्णवके जलमें पृथ्वीकी स्थिति मानी गयी है। इस कमलके चारों ओर चार समुद्र हैं। विश्वमें जिनके प्रभावकी कहीं तुलना नहीं है, जिनकी सूर्यके समान प्रभा और वरुणके समान अपार कान्ति है तथा यह जगत् जिनका स्वरूप है, वे स्वयम्भू महात्मा ब्रह्माजी उस एकार्णवके जलमें धीरे-धीरे पद्मरूप निधिकी रचना करने लगे। इसी समय तमोगुणसे उत्पन्न मधु नामका महान् असुर तथा रजोगुणसे प्रकट हुआ कैटभ-नामधारी असुर—ये दोनों ब्रह्माजीके कार्यमें विघ्नरूप होकर उपस्थित हुए। यद्यपि वे क्रमशः तमोगुण और रजोगुणसे उत्पन्न हुए थे, तथापि तमोगुणका विशेष प्रभाव पड़नेके कारण दोनोंका स्वभाव तामस हो गया था। महान् बली तो वे थे ही, एकार्णवमें स्थित सम्पूर्ण जगत्‌को क्षुब्ध करने लगे। उन दोनोंके सब ओर मुख थे। एकार्णवके जलमें विचरते हुए जब वे पुष्करमें गये, तब वहाँ उन्हें अत्यन्त तेजस्वी ब्रह्माजीका दर्शन हुआ।

तब वे दोनों असुर ब्रह्माजीसे पूछने लगे—'तुम कौन हो? जिसने तुम्हें सृष्टिकार्यमें नियुक्त किया है, वह तुम्हारा कौन है? कौन तुम्हारा स्रष्टा है और कौन रक्षक? तथा वह किस नामसे पुकारा जाता है?'

ब्रह्माजी बोले—असुरो! तुमलोग जिनके विषयमें पूछते हो, वे इस लोकमें एक ही कहे जाते हैं। जगत्‌में जितनी भी वस्तुएँ हैं उन सबसे उनका संयोग है—वे सबमें व्याप्त हैं। [उनका कोई एक नाम नहीं है,] उनके अलौकिक कर्मोंके अनुसार अनेक नाम हैं।

यह सुनकर वे दोनों असुर सनातन देवता भगवान् श्रीविष्णुके समीप गये, जिनकी नाभिसे कमल प्रकट हुआ था तथा जो इन्द्रियोंके स्वामी हैं। वहाँ जा उन दोनोंने उन्हें सिर झुकाकर प्रणाम करते हुए कहा—हम जानते हैं, आप विश्वकी उत्पत्तिके स्थान, अद्वितीय तथा पुरुषोत्तम हैं। हमारे जन्मदाता भी आप ही हैं। हम आपको ही बुद्धिका भी कारण समझते हैं। देव! हम आपसे हितकारी वरदान चाहते हैं। शत्रुदमन! आपका दर्शन अमोघ है। समर-विजयी वीर! हम आपको नमस्कार करते हैं।'

श्रीभगवान् बोले—असुरो! तुमलोग वर किसलिये माँगते हो? तुम्हारी आयु समाप्त हो चुकी है, फिर भी तुम दोनों जीवित रहना चाहते हो! यह बड़े आश्चर्यकी बात है।

मधु-कैटभने कहा—प्रभो! जिस स्थानमें किसीकी मृत्यु न हुई हो; वहीं हमारा वध हो—हमें इसी वरदानकी इच्छा है।

श्रीभगवान् बोले—'ठीक है' इस प्रकार उन महान् असुरोंको वरदान देकर देवताओंके प्रभु सनातन श्रीविष्णुने अंजनके समान काले शरीरवाले मधु और कैटभको अपनी जाँघोंपर गिराकर मसल डाला।

तदनन्तर ब्रह्माजी अपनी बाँहें ऊपर उठाये घोर तपस्यामें संलग्न हुए। भगवान् भास्करकी भाँति अन्धकारका नाश कर रहे थे और सत्यधर्मके परायण होकर अपनी किरणोंसे सूर्यके समान चमक रहे थे। किन्तु अकेले होनेके कारण उनका मन नहीं लगा; अतः उन्होंने अपने शरीरके आधे भागसे शुभलक्षणा भार्याको उत्पन्न किया। तत्पश्चात् पितामहने अपने ही समान पुत्रोंकी सृष्टि की, जो सब-के-सब प्रजापति और लोकविख्यात योगी हुए।

ब्रह्माजीने [दस प्रजापतियोंके अतिरिक्त] लक्ष्मी, साध्या, शुभलक्षणा विश्वेशा, देवी तथा सरस्वती—इन पाँच कन्याओंको भी उत्पन्न किया। ये देवताओंसे भी श्रेष्ठ और आदरणीय मानी जाती हैं। कर्मोंके साक्षी ब्रह्माजीने ये पाँचों कन्याएँ धर्मको अर्पण कर दीं। ब्रह्माजीके आधे शरीरसे जो पत्नी प्रकट हुई थी, वह इच्छानुसार रूप धारण कर लेती थी। वह सुरभिके रूपमें ब्रह्माजीकी सेवामें उपस्थित हुई। लोकपूजित ब्रह्माजीने उसके साथ समागम किया, जिससे ग्यारह पुत्र उत्पन्न हुए। पितामहसे जन्म ग्रहण करनेवाले वे सभी बालक रोदन करते हुए दौड़े। अतः रोने और दौड़नेके कारण उनकी 'रुद्र' संज्ञा हुई। इसी प्रकार सुरभिके गर्भसे गौ, यज्ञ तथा देवताओंकी भी उत्पत्ति हुई। बकरा, हंस और श्रेष्ठ ओषधियाँ (अन्न आदि) भी सुरभिसे ही उत्पन्न हुई हैं। धर्मसे लक्ष्मीने सोमको और साध्याने साध्य नामक देवताओंको जन्म दिया। उनके नाम इस प्रकार हैं—भव, प्रभव, कृशाश्व, सुवह, अरुण, वरुण, विश्वामित्र, चल, ध्रुव, हविष्मान्, तनूज, विधान, अभिमत, वत्सर, भूति, सर्वासुरनिषूदन, सुपर्वा, बृहत्कान्त और महालोकनमस्कृत। देवी (वसु)-ने वसु-संज्ञक देवताओंको उत्पन्न किया, जो इन्द्रका अनुसरण करनेवाले थे। धर्मकी चौथी पत्नी विश्वा (विश्वेशा)-के गर्भसे विश्वेदेव नामक देवता उत्पन्न हुए। इस प्रकार यह धर्मकी सन्तानोंका वर्णन हुआ। विश्वेदेवोंके नाम इस प्रकार हैं—महाबाहु दक्ष, नरेश्वर पुष्कर, चाक्षुष मनु, महोरग, विश्वानुग, वसु, बाल, महायशस्वी निष्कल, अति सत्यपराक्रमी रुरुद तथा परम कान्तिमान् भास्कर। इन विश्वेदेव-संज्ञक पुत्रोंको देवमाता विश्वेशाने जन्म दिया है। मरुत्वतीने मरुत्वान् नामके देवताओंको उत्पन्न किया, जिनके नाम ये हैं—अग्नि, चक्षु, ज्योति, सावित्र, मित्र, अमर, शरवृष्टि, सुवर्ष, महाभुज, विराज, राज, विश्वायु, सुमति, अश्वगन्ध, चित्ररश्मि, निषध, आत्मविधि, चारित्र, पादमात्रग, बृहत्, बृहद्रूप तथा विष्णुसनाभिग। ये सब मरुत्वतीके पुत्र मरुद्गण कहलाते हैं। अदितिने कश्यपके अंशसे बारह आदित्योंको जन्म दिया।

इस प्रकार महर्षियोंद्वारा प्रशंसित सृष्टि-परम्पराका क्रमशः वर्णन किया गया। जो मनुष्य इस श्रेष्ठ पुराणको सदा सुनेगा और पर्वोंके अवसरपर इसका पाठ करेगा, वह इस लोकमें वैराग्यवान् होकर परलोकमें उत्तम फलोंका उपभोग करेगा। जो इस पौष्कर पर्वका—महात्मा ब्रह्माजीके प्रादुर्भावकी कथाका पाठ करता है, उसका कभी अमंगल नहीं होता। महाराज! श्रीव्यासदेवसे जैसे मैंने सुना है, उसी प्रकार तुम्हारे सामने मैंने इस प्रसंगका वर्णन किया है।

तारकासुरके जन्मकी कथा, तारककी तपस्या, उसके द्वारा देवताओंकी पराजय और ब्रह्माजीका देवताओंको सान्त्वना देना

भीष्मजीने पूछा—ब्रह्मन्! अत्यन्त बलवान् तारक नामके दैत्यकी उत्पत्ति कैसे हुई? कार्तिकेयजीने उस महान् असुरका संहार किस प्रकार किया? भगवान् रुद्रको उमाकी प्राप्ति किस प्रकार हुई? महामुने! ये सारी बातें जिस प्रकार हुई हों, सब मुझे सुनाइये।

पुलस्त्यजीने कहा—राजन्! जैसे अरणीसे अग्नि प्रकट होती है, उसी प्रकार दितिके गर्भसे दैत्योंकी उत्पत्ति हुई है। पूर्वकालमें उसी शुभलक्षणा दितिको महर्षि कश्यपने यह वरदान दिया था कि 'देवि! तुम्हें वज्रांग नामका एक पुत्र होगा, जिसके सभी अंग वज्रके समान सुदृढ़ होंगे।' वरदान पाकर देवी दितिने समयानुसार उस पुत्रको जन्म दिया, जो वज्रके द्वारा भी अच्छेद्य था।

वह जन्मते ही समस्त शास्त्रोंमें पारंगत हो गया। उसने बड़ी भक्तिके साथ मातासे कहा—'माँ! मैं तुम्हारी किस आज्ञाका पालन करूँ?' यह सुनकर दितिको बड़ा हर्ष हुआ। वह दैत्यराजसे बोली—'बेटा! इन्द्रने मेरे बहुत-से पुत्रोंको मौतके घाट उतार दिया है। अतः उनका बदला लेनेके उद्देश्यसे तुम भी इन्द्रका वध करनेके लिये जाओ।' महाबली वज्रांग 'बहुत अच्छा!' कहकर स्वर्गमें गया और अमोघ तेजवाले पाशसे इन्द्रको बाँधकर अपनी माँके पास ले आया—ठीक उसी तरह, जैसे कोई व्याध छोटे-से मृगको बाँध लाये। इसी समय ब्रह्माजी तथा महातपस्वी कश्यप मुनि उस स्थानपर आये, जहाँ वे दोनों माँ-बेटे निर्भय होकर खड़े थे। उन्हें देखकर ब्रह्मा और कश्यपजीने कहा—'बेटा! इन्हें छोड़ दो, ये देवताओंके राजा हैं; इन्हें लेकर तुम क्या करोगे। सम्मानित पुरुषका अपमान ही उसका वध कहा गया है। यदि शत्रु अपने शत्रुके हाथमें आ जाय और वह दूसरेके गौरवसे छुटकारा पाये तो वह जीता हुआ भी प्रतिदिन चिन्तामग्न रहनेके कारण मृतकके ही समान हो जाता है।' यह सुनकर वज्रांगने ब्रह्माजी और कश्यपजीके चरणोंमें प्रणाम करते हुए कहा—'मुझे इन्द्रको बाँधनेसे कोई मतलब नहीं है। मैंने तो माताकी आज्ञाका पालन किया है। देव! आप देवता और असुरोंके भी स्वामी तथा मेरे माननीय प्रपितामह हैं; अतएव आपकी आज्ञाका पालन अवश्य करूँगा। यह लीजिये, मैंने इन्द्रको मुक्त कर दिया। मेरा मन तपस्यामें लगता है, अतः मेरी तपस्या ही निर्विघ्न पूरी हो—यह आशीर्वाद प्रदान कीजिये।'

ब्रह्माजी बोले—वत्स! तुम मेरी आज्ञाके अधीन रहकर तपस्या करो। तुम्हारे ऊपर कोई आपत्ति नहीं आ सकती। तुमने अपने इस शुद्ध भावसे जन्मका फल प्राप्त कर लिया।

यह कहकर ब्रह्माजीने बड़े-बड़े नेत्रोंवाली एक कन्या उत्पन्न की और उसे वज्रांगको पत्नीरूपमें अंगीकार करनेके लिये दे दिया। उस कन्याका नाम वरांगी बताकर ब्रह्माजी वहाँसे चले गये और वज्रांग उसे साथ ले तपस्याके लिये वनमें चला गया। उस दैत्यराजके नेत्र कमलपत्रके समान विशाल एवं सुन्दर थे। उसकी बुद्धि शुद्ध थी तथा वह महान् तपस्वी था। उसने एक हजार वर्षोंतक बाँहें ऊपर उठाये खड़े होकर तपस्या की। तदनन्तर उसने एक हजार वर्षोंतक पानीके भीतर निवास किया। जलके भीतर प्रवेश कर जानेपर उसकी पत्नी वरांगी, जो बड़ी पतिव्रता थी, उसी सरोवरके तटपर चुपचाप बैठी रही और बिना कुछ खाये-पिये घोर तपस्यामें प्रवृत्त हो गयी। उसके शरीरमें महान् तेज था। इसी बीचमें एक हजार वर्षोंका समय पूरा हो गया। तब ब्रह्माजी प्रसन्न होकर उस जलाशयके तटपर आये और वज्रांगसे इस प्रकार बोले—'दितिनन्दन! उठो, मैं तुम्हारी सारी कामनाएँ पूरी करूँगा।'

उनके ऐसा कहनेपर वज्रांग बोला—'भगवन्! मेरे हृदयमें आसुर-भाव न हो, मुझे अक्षय लोकोंकी प्राप्ति हो तथा जबतक यह शरीर रहे, तबतक तपस्यामें ही मेरा अनुराग बना रहे।' 'एवमस्तु' कहकर ब्रह्माजी अपने लोकको चले गये और संयमको स्थिर रखनेवाला वज्रांग तपस्या समाप्त होनेपर जब घर लौटनेकी इच्छा करने लगा, तब उसे आश्रमपर अपनी स्त्री नहीं दिखायी दी। भूखसे आकुल होकर उसने पर्वतके घने जंगलमें फल-मूल लेनेके लिये प्रवेश किया। वहाँ जाकर देखा—उसकी पत्नी वृक्षकी ओटमें मुँह छिपाये दीनभावसे रो रही है। उसे इस अवस्थामें देख दितिकुमारने सान्त्वना देते हुए पूछा—'कल्याणी! किसने तुम्हारा अपकार करके यमलोकमें जानेकी इच्छा की है?'

वरांगी बोली—प्राणनाथ! तुम्हारे जीते-जी मेरी दशा अनाथकी-सी हो रही है। देवराज इन्द्रने भयंकर रूप धारण करके मुझे डराया है, आश्रमसे बाहर निकाल दिया है, मारा है और भूरि-भूरि कष्ट दिया है। मुझे अपने दुःखका अन्त नहीं दिखायी देता था; इसलिये मैं प्राणत्याग देनेका निश्चय कर चुकी थी। आप एक ऐसा पुत्र दीजिये, जो मुझे इस दुःखके समुद्रसे तार दे।

वरांगीके ऐसा कहनेपर दैत्यराज वज्रांगके नेत्र

क्रोधसे चंचल हो उठे। यद्यपि वह महान् असुर देवराजसे बदला लेनेकी पूरी शक्ति रखता था, तथापि उस महाबलीने पुनः तप करनेका ही निश्चय किया। उसका संकल्प जानकर ब्रह्माजी वहाँ आये और उससे पूछने लगे—'बेटा! तुम फिर किसलिये तपस्या करनेको उद्यत हुए हो?' वज्रांगने कहा—'पितामह! आपकी आज्ञा मानकर समाधिसे उठनेपर मैंने देखा—इन्द्रने वरांगीको बहुत त्रास पहुँचाया है; अतः यह मुझसे ऐसा पुत्र चाहती है, जो इसे इस विपत्तिसे उबार दे। दादाजी! यदि आप मुझपर सन्तुष्ट हैं तो मुझे ऐसा पुत्र दीजिये।'

ब्रह्माजी बोले—वीर! ऐसा ही होगा। अब तुम्हें तपस्या करनेकी आवश्यकता नहीं है। तुम्हारे तारक नामका एक महाबली पुत्र होगा।

ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर दैत्यराजने उन्हें प्रणाम किया और वनमें जाकर अपनी रानीको, जिसका हृदय दुःखी था, प्रसन्न किया। वे दोनों पति-पत्नी सफल-मनोरथ होकर अपने आश्रममें गये। सुन्दरी वरांगी अपने पतिके द्वारा स्थापित किये हुए गर्भको पूरे एक हजार वर्षोंतक उदरमें ही धारण किये रही। इसके बाद उसने पुत्रको जन्म दिया। उस दैत्यके पैदा होते ही सारी पृथ्वी डोलने लगी—सर्वत्र भूकम्प होने लगा। महासागर विक्षुब्ध हो उठे। वरांगी पुत्रको देखकर हर्षसे भर गयी। दैत्यराज तारक जन्मते ही भयंकर पराक्रमी हो गया। कुजम्भ और महिष आदि मुख्य-मुख्य असुरोंने मिलकर उसे राजाके पदपर अभिषिक्त कर दिया। दैत्योंका महान् साम्राज्य प्राप्त करके दानवश्रेष्ठ तारकने कहा—'महाबली असुरो और दानवो! तुम सब लोग मेरी बात सुनो। देवगण हमलोगोंके वंशका नाश करनेवाले हैं। जन्मगत स्वभावसे ही उनके साथ हमारा अटूट वैर बढ़ा हुआ है। अतः हम सब लोग देवताओंका दमन करनेके लिये तपस्या करेंगे।'

पुलस्त्यजी कहते हैं—राजन्! यह सन्देश सुनाकर सबकी सम्मति ले तारकासुर पारियात्र पर्वतपर चला गया और वहाँ सौ वर्षोंतक निराहार रहकर, सौ वर्षोंतक पंचाग्नि-सेवन कर, सौ वर्षोंतक केवल पत्ते चबाकर तथा सौ वर्षोंतक सिर्फ जल पीकर तपस्या करता रहा। इस प्रकार जब उसका शरीर अत्यन्त दुर्बल और तपका पुंज हो गया, तब ब्रह्माजीने आकर कहा—'दैत्यराज! तुमने उत्तम व्रतका पालन किया है, कोई वर माँगो।' उसने कहा—'किसी भी प्राणीसे मेरी मृत्यु न हो।' तब ब्रह्माजीने कहा—'देहधारियोंके लिये मृत्यु निश्चित है; इसलिये तुम जिस किसी निमित्तसे भी, जिससे तुम्हें भय न हो, अपनी मृत्यु माँग लो।' तब दैत्यराज तारकने बहुत सोच-विचारकर सात दिनके बालकसे अपनी मृत्यु माँगी। उस समय वह महान् असुर घमंडसे मोहित हो रहा था। ब्रह्माजी 'तथास्तु' कहकर अपने धामको चले और दैत्य अपने घर लौट गया। वहाँ जाकर उसने अपने मन्त्रियोंसे कहा—'तुमलोग शीघ्र ही मेरी सेना तैयार करो।' ग्रसन नामका दानव दैत्यराज तारकका सेनापति था। उसने स्वामीकी बात सुनकर बहुत बड़ी सेना तैयार की। गम्भीर स्वरमें रणभेरी बजाकर उसने तुरंत ही बड़े-बड़े दैत्योंको एकत्रित किया, जिनमें एक-एक दैत्य प्रचण्ड पराक्रमी होनेके साथ ही दस-दस करोड़ दैत्योंका यूथपति था। जम्भ नामक दैत्य उन सबका अगुआ था और कुजम्भ उसके पीछे चलनेवाला था। इनके सिवा महिष, कुंजर, मेघ, कालनेमि, निमि, मन्थन, जम्भक और शुम्भ भी प्रधान थे। इस प्रकार ये दस दैत्यपति सेनानायक थे। उनके अतिरिक्त और भी सैकड़ों ऐसे दानव थे, जो अपनी भुजाओंपर पृथ्वीको तोलनेकी शक्ति रखते थे। दैत्योंमें सिंहके समान पराक्रमी तारकासुरकी वह सेना बड़ी भयंकर जान पड़ती थी। वह मतवाले गजराजों, घोड़ों और रथोंसे भरी हुई थी। पैदलोंकी संख्या भी बहुत थी और सेनामें सब ओर पताकाएँ फहरा रही थीं।

इसी बीचमें देवताओंके दूत वायु असुरलोकमें आये और दानव-सेनाका उद्योग देखकर इन्द्रको उसका समाचार देनेके लिये गये। देवसभामें पहुँचकर उन्होंने देवताओंके बीचमें इस नयी घटनाका हाल सुनाया। उसे सुनकर महाबाहु देवराजने आँखें बंद करके बृहस्पतिजीसे

कहा—'गुरुदेव! इस समय देवताओंके सामने दानवोंके साथ घोर संग्रामका अवसर उपस्थित होना चाहता है; इस विषयमें हमें क्या करना चाहिये। कोई नीतियुक्त बात बताइये।'

बृहस्पतिजी बोले—सुरश्रेष्ठ! सामनीति और चतुरंगिणी सेना—ये ही दो विजयाभिलाषी वीरोंकी सफलताके साधन सुने गये हैं। ये ही सनातन रक्षा-कवच हैं। नीतिके चार अंग हैं—साम, भेद, दान और दण्ड। यदि आक्रमण करनेवाले शत्रु लोभी हों तो उनपर सामनीतिका प्रभाव नहीं पड़ता। यदि वे एकमतके और संगठित हों तो उनमें फूट भी नहीं डाली जा सकती तथा जो बलपूर्वक सर्वस्व छीन लेनेकी शक्ति रखते हैं, उनके प्रति दाननीतिके प्रयोगसे भी सफलता नहीं मिल सकती; अतः अब यहाँ एक ही उपाय शेष रह जाता है। वह है—दण्ड। यदि आपलोगोंको जँचे तो दण्डका ही प्रयोग करें।

बृहस्पतिजीके ऐसा कहनेपर इन्द्रने अपने कर्तव्यका निश्चय करके देवताओंकी सभामें इस प्रकार कहा—'स्वर्गवासियो! सावधान होकर मेरी बात सुनो—इस समय युद्धके लिये उद्योग करना ही उचित है; अतः मेरी सेना तैयार की जाय। यमराजको सेनापति बनाकर सम्पूर्ण देवता शीघ्र ही संग्रामके लिये निकलें।' यह सुनकर प्रधान-प्रधान देवता कवच बाँधकर तैयार हो गये। मातलिने देवराजका दुर्जय रथ जोतकर खड़ा किया। यमराज भैंसेपर सवार हो सेनाके आगे खड़े हुए। वे अपने प्रचण्ड किंकरोंद्वारा सब ओरसे घिरे हुए थे। अग्नि, वायु, वरुण, कुबेर, चन्द्रमा तथा आदित्य—सब लोग युद्धके लिये उपस्थित हुए। देवताओंकी वह सेना तीनों लोकोंके लिये दुर्जय थी। उसमें तैंतीस करोड़ देवता एकत्रित थे। तदनन्तर युद्ध आरम्भ हुआ। अश्विनीकुमार, मरुद्गण, साध्यगण, इन्द्र, यक्ष और गन्धर्व—ये सभी महाबली एक साथ मिलकर दैत्यराज तारकपर प्रहार करने लगे। उन सबके हाथोंमें नाना प्रकारके दिव्यास्त्र थे। परन्तु तारकासुरका शरीर वज्र एवं पर्वतके समान सुदृढ़ था। देवताओंके हथियार उसपर काम नहीं करते थे। उन्हें प्रहार करते देख दानवराज तारक रथसे कूद पड़ा और करोड़ों देवताओंको उसने अपने हाथके पृष्ठभागसे ही मार गिराया। यह देख देवताओंकी बची-खुची सेना भयभीत हो उठी और युद्धकी सामग्री वहीं छोड़कर चारों दिशाओंमें भाग गयी। ऐसी परिस्थितिमें पड़ जानेपर देवताओंके हृदयमें बड़ा दुःख हुआ और वे जगद्गुरु ब्रह्माजीकी शरणमें जाकर सुन्दर अक्षरोंसे युक्त वाक्योंद्वारा उनकी स्तुति करने लगे।

देवता बोले—सत्त्वमूर्ते! आप प्रणवरूप हैं। अनन्त भेदोंसे युक्त जो यह विश्व है, उसके अंकुर आदिकी उत्पत्तिके लिये आप सबसे पहले ब्रह्मारूपमें प्रकट हुए हैं। तदनन्तर इस जगत्की रक्षाके लिये सत्त्वगुणके मूलभूत विष्णुरूपसे स्थित हुए हैं। इसके बाद इसके संहारकी इच्छासे आपने रुद्ररूप धारण किया। इस प्रकार एक होकर भी त्रिविध रूप धारण करनेवाले आप परमात्माको नमस्कार है। जगत्में जितने भी स्थूल पदार्थ हैं, उन सबके आदि कारण आप ही हैं; अतः आपने अपनी ही महिमासे सोच-विचारकर हम देवताओंका नाम-निर्देश किया है; साथ ही इस ब्रह्माण्डके दो भाग करके ऊर्ध्वलोकोंको आकाशमें तथा अधोलोकोंको पृथ्वीपर और उसके भीतर स्थापित किया है। इससे हमें यह जान पड़ता है कि विश्वका सारा अवकाश आपने ही बनाया है। आप देहके भीतर रहनेवाले अन्तर्यामी पुरुष हैं। आपके शरीरसे ही देवताओंका प्राकट्य हुआ है। आकाश आपका मस्तक, चन्द्रमा और सूर्य नेत्र, सर्पोंका समुदाय केश और दिशाएँ कानोंके छिद्र हैं। यज्ञ आपका शरीर, नदियाँ सन्धिस्थान, पृथ्वी चरण और समुद्र उदर हैं। भगवन्! आप भक्तोंको शरण देनेवाले, आपत्तिसे बचानेवाले तथा उनकी रक्षा करनेवाले हैं। आप सबके ध्यानके विषय हैं। आपके स्वरूपका अन्त नहीं है।

देवताओंके इस प्रकार स्तुति करनेपर ब्रह्माजी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने बायें हाथसे वरद मुद्राका प्रदर्शन करते हुए देवताओंसे कहा—'देवगण! तुम्हारा तेज

किसने छीन लिया है? तुम आज ऐसे हो रहे हो मानो तुममें अब कुछ भी करनेकी शक्ति ही नहीं रह गयी है; तुम्हारी कान्ति किसने हर ली?' ब्रह्माजीके इस प्रकार पूछनेपर देवताओंने वायुको उत्तर देनेके लिये कहा। उनसे प्रेरित होकर वायुने कहा—'भगवन्! आप चराचर जगत्की सारी बातें जानते हैं—आपसे क्या छिपा है। सैकड़ों दैत्योंने मिलकर इन्द्र आदि बलिष्ठ देवताओंको भी बलपूर्वक परास्त कर दिया है। आपके आदेशसे स्वर्गलोक सदा ही यज्ञभोगी देवताओंके अधिकारमें रहता आया है। परन्तु इस समय तारकासुरने देवताओंका सारा विमानसमूह छीनकर उसे दुर्लभ कर दिया है। देवताओंके निवासस्थान जिस मेरु पर्वतको आपने सम्पूर्ण पर्वतोंका राजा मानकर उसे सब प्रकारके गुणोंमें बढ़ा-चढ़ा, यज्ञोंसे विभूषित तथा आकाशमें भी ग्रहों और नक्षत्रोंकी गतिका सीमा-प्रदेश बना रखा था, उसीको उस दानवने अपने निवास और विहारके लिये उपयोगी बनानेके उद्देश्यसे परिष्कृत किया है, उसके शिखरोंमें आवश्यक परिवर्तन और सुधार किया है। इस प्रकार उसकी सारी उद्दण्डता मैंने बतायी है। अब आप ही हमारी गति हैं।'

यों कहकर वायुदेवता चुप हो गये। तब ब्रह्माजीने कहा—'देवताओ! तारक नामका दैत्य देवता और असुर—सबके लिये अवध्य है। जिसके द्वारा उसका वध हो सकता है, वह पुरुष अभीतक त्रिलोकीमें पैदा ही नहीं हुआ। तारकासुर तपस्या कर रहा था। उस समय मैंने वरदान दे उसे अनुकूल बनाया और तपस्यासे रोका। उस दैत्यने सात दिनके बालकसे अपनी मृत्यु होनेका वरदान माँगा था। सात दिनका वही बालक उसे मार सकता है, जो भगवान् शंकरके वीर्यसे उत्पन्न हो। हिमालयकी कन्या जो उमादेवी होगी, उसके गर्भसे उत्पन्न पुत्र अरणिसे प्रकट होनेवाले अग्निदेवकी भाँति तेजस्वी होगा; अतः भगवान् शंकरके अंशसे उमादेवी जिस पुत्रको जन्म देगी, उसका सामना करनेपर तारकासुर नष्ट हो जायगा।' ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर देवता उन्हें प्रणाम करके अपने-अपने स्थानको चले गये।

पार्वतीका जन्म, मदन-दहन, पार्वतीकी तपस्या और उनका भगवान् शिवके साथ विवाह

तदनन्तर जगत्को शान्ति प्रदान करनेवाली गिरिराज हिमालयकी पत्नी मेनाने परम सुन्दर ब्राह्ममुहूर्तमें एक कन्याको जन्म दिया। उसके जन्म लेते ही समस्त लोकोंमें निवास करनेवाले स्थावर, जंगम—सभी प्राणी सुखी हो गये। आकाशमें भगवान् श्रीविष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, वायु और अग्नि आदि हजारों देवता विमानोंपर बैठकर हिमालय पर्वतके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे। गन्धर्व गाने लगे। उस समय संसारमें हिमालय पर्वत समस्त चराचर भूतोंके लिये सेव्य तथा आश्रय लेनेके योग्य हो गया—सब लोग वहाँ निवास और वहाँकी यात्रा करने लगे। उत्सवका आनन्द ले देवता अपने-अपने स्थानको चले गये। गिरिराजकुमारी उमाको रूप, सौभाग्य और ज्ञान आदि गुणोंने विभूषित किया। इस प्रकार वह तीनों लोकोंमें सबसे अधिक सुन्दरी और समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न हो गयी। इसी बीचमें कार्य-साधन-परायण देवराज इन्द्रने देवताओंद्वारा सम्मानित देवर्षि नारदका स्मरण किया। इन्द्रका अभिप्राय जानकर देवर्षि नारद बड़ी प्रसन्नताके साथ उनके भवनमें आये। उन्हें देखकर इन्द्र सिंहासनसे उठ खड़े हुए और यथायोग्य पाद्य आदिके द्वारा उन्होंने नारदजीका पूजन किया। फिर नारदजीने जब उनकी कुशल पूछी तो इन्द्रने कहा—'मुने! त्रिभुवनमें हमारी कुशलका अंकुर तो जम चुका है, अब उसमें फल लगनेका साधन उपस्थित करनेके लिये मैंने आपकी याद की है। ये सारी बातें आप जानते ही हैं; फिर भी आपने प्रश्न किया है इसलिये मैं बता रहा हूँ। विशेषतः अपने सुहृदोंके निकट अपना प्रयोजन बताकर प्रत्येक पुरुष बड़ी शान्तिका अनुभव करता है। अतः जिस प्रकार

भी पार्वतीदेवीका पिनाकधारी भगवान् शंकरके साथ संयोग हो, उसके लिये हमारे पक्षके सब लोगोंको शीघ्र उद्योग करना चाहिये।'

इन्द्रसे उनका सारा कार्य समझ लेनेके पश्चात् नारदजीने उनसे विदा ली और शीघ्र ही गिरिराज हिमालयके भवनके लिये प्रस्थान किया। गिरिराजके द्वारपर, जो विचित्र बेंतकी लताओंसे हरा-भरा था, पहुँचनेपर हिमवान्ने पहले ही बाहर निकलकर मुनिको प्रणाम किया। उनका भवन पृथ्वीका भूषण था। उसमें प्रवेश करके अनुपम कान्तिवाले मुनिवर नारदजी एक बहुमूल्य आसनपर विराजमान हुए। फिर हिमवान्ने उन्हें यथायोग्य अर्घ्य, पाद्य आदि निवेदन किया और बड़ी मधुर वाणीमें नारदजीके तपकी कुशल पूछी। उस समय गिरिराजका मुखकमल प्रफुल्लित हो रहा था। मुनिने भी गिरिराजकी कुशल पूछते हुए कहा—'पर्वतराज! तुम्हारा कलेवर अद्भुत है। तुम्हारा स्थान धर्मानुष्ठानके लिये बहुत ही उपयोगी है। तुम्हारी कन्दराओंका विस्तार विशाल है। इन कन्दराओंमें अनेकों पावन एवं तपस्वी मुनियोंने आश्रय ले तुम्हें पवित्र बनाया है। गिरिराज! तुम धन्य हो, जिसकी गुफामें लोकनाथ भगवान् शंकर शान्तिपूर्वक ध्यान लगाये बैठे रहते हैं।'

पुलस्त्यजी कहते हैं—देवर्षि नारदकी यह बात समाप्त होनेपर गिरिराज हिमालयकी रानी मेना मुनिका दर्शन करनेकी इच्छासे उस भवनमें आयीं। वे लज्जा और प्रेमके भारसे झुकी हुई थीं। उनके पीछे-पीछे उनकी कन्या भी आ रही थी। देवर्षि नारद तेजकी राशि जान पड़ते थे, उन्हें देखकर शैलपत्नीने प्रणाम किया। उस समय उनका मुख अंचलसे ढका था और कमलके समान शोभा पानेवाले दोनों हाथ जुड़े हुए थे। अमिततेजस्वी देवर्षिने महाभागा मेनाको देखकर अपने अमृतमय आशीर्वादोंसे उन्हें प्रसन्न किया। उस समय गिरिराजकुमारी उमा अद्भुत रूपवाले नारद मुनिकी ओर चकित चित्तसे देख रही थी। देवर्षिने स्नेहमयी वाणीमें कहा—'बेटी! यहाँ आओ।' उनके इस प्रकार बुलानेपर उमा पिताके गलेमें बाँहें डालकर उनकी गोदमें बैठ गयी। तब उसकी माताने कहा—'बेटी! देवर्षिको प्रणाम करो।' उमाने ऐसा ही किया। उसके प्रणाम कर लेनेपर माताने कौतूहलवश पुत्रीके शारीरिक लक्षणोंको जाननेके लिये अपनी सखीके मुँहसे धीरेसे कहलाया—'मुने! इस कन्याके सौभाग्यसूचक चिह्नोंको देखनेकी कृपा करें।' मेनाकी सखीसे प्रेरित होकर महाभाग मुनिवर नारदजी मुसकराते हुए बोले—'भद्रे! इस कन्याके पतिका जन्म नहीं हुआ है, यह लक्षणोंसे रहित है। इसका एक हाथ सदा उत्तान (सीधा) रहेगा। इसके चरण व्यभिचारी लक्षणोंसे युक्त हैं; किन्तु उनकी कान्ति बड़ी सुन्दर होगी। यही इसका भविष्यफल है।'

नारदजीकी यह बात सुनकर हिमवान् भयसे घबरा उठे, उनका धैर्य जाता रहा, वे आँसू बहाते हुए गद्गद कण्ठसे बोले—'अत्यन्त दोषोंसे भरे हुए संसारकी गति दुर्विज्ञेय है—उसका ज्ञान होना कठिन है। शास्त्रकारोंने शास्त्रोंमें पुत्रको नरकसे त्राण देनेवाला बनाकर सदा पुत्रप्राप्तिकी ही प्रशंसा की है; किन्तु यह बात प्राणियोंको मोहमें डालनेके लिये है। क्योंकि स्त्रीके बिना किसी जीवकी सृष्टि हो ही नहीं सकती। परन्तु स्त्री-जाति

स्वभावसे ही दीन एवं दयनीय है। शास्त्रोंमें यह महान् फलदायक वचन अनेकों बार निःसन्देहरूपसे दुहराया गया है कि शुभलक्षणोंसे सम्पन्न सुशीला कन्या दस पुत्रोंके समान है। किन्तु आपने मेरी कन्याके शरीरमें केवल दोषोंका ही संग्रह बताया है। ओह! यह सुनकर मुझपर मोह छा गया है, मैं सूख गया हूँ, मुझे बड़ी भारी ग्लानि और विषाद हो रहा है। मुने! मुझपर अनुग्रह करके इस कन्यासम्बन्धी दुःखका निवारण कीजिये। देवर्षे! आपने कहा है कि इसके पतिका जन्म ही नहीं हुआ है।' यह ऐसा दुर्भाग्य है, जिसकी कहीं तुलना नहीं है। यह अपार और दुःसह दुःख है। हाथों और पैरोंमें जो रेखाएँ बनी होती हैं, वे मनुष्य अथवा देवजातिके लोगोंको शुभ और अशुभ फलकी सूचना देनेवाली हैं; सो आपने इसे लक्षणहीन बताया है। साथ ही यह भी कहा है कि 'इसका एक हाथ सदा उत्तान रहेगा।' परन्तु उत्तान हाथ तो सदा याचकोंका ही होता है—वे ही सबके सामने हाथ फैलाकर माँगते देखे जाते हैं। जिनके शुभका उदय हुआ है, जो धन्य तथा दानशील हैं, उनका हाथ उत्तान नहीं देखा जाता। आपने इसकी उत्तम कान्ति बतानेके साथ ही यह भी कहा है कि इसके चरण व्यभिचारी लक्षणोंसे युक्त हैं; अतः मुने! उस चिह्नसे भी मुझे कल्याणकी आशा नहीं जान पड़ती।'

नारदजी बोले—गिरिराज! तुम तो अपार हर्षके स्थानमें दुःखकी बात कर रहे हो। अब मेरी यह बात सुनो। मैंने पहले जो कुछ कहा था, वह रहस्यपूर्ण था। इस समय उसका स्पष्टीकरण करता हूँ, एकाग्रचित्त होकर श्रवण करो। हिमाचल! मैंने जो कहा था कि इस देवीके पतिका जन्म नहीं हुआ है, सो ठीक ही है। इसके पति महादेवजी हैं। उनका वास्तवमें जन्म नहीं हुआ है—वे अजन्मा हैं। भूत, भविष्य और वर्तमान जगत्की उत्पत्तिके कारण वे ही हैं। वे सबको शरण देनेवाले एवं शासक, सनातन, कल्याणकारी और परमेश्वर हैं। यह ब्रह्माण्ड उन्हींके संकल्पसे उत्पन्न हुआ है। ब्रह्माजीसे लेकर स्थावरपर्यन्त जो यह संसार है, वह जन्म, मृत्यु आदिके दुःखसे पीड़ित होकर निरन्तर परिवर्तित होता रहता है। किन्तु महादेवजी अचल और स्थिर हैं। वे जात नहीं, जनक हैं—पुत्र नहीं, पिता हैं। उनपर बुढ़ापेका आक्रमण नहीं होता। वे जगत्के स्वामी और आधि-व्याधिसे रहित हैं। इसके सिवा जो मैंने तुम्हारी कन्याको लक्षणोंसे रहित बताया है, उस वाक्यका ठीक-ठीक विचारपूर्ण तात्पर्य सुनो। शरीरके अवयवोंमें जो चिह्न या रेखाएँ होती हैं, वे सीमित आयु, धन और सौभाग्यको व्यक्त करनेवाली होती हैं; परन्तु जो अनन्त और अप्रमेय है, उसके अमित सौभाग्यको सूचित करनेवाला कोई चिह्न या लक्षण शरीरमें नहीं होता। महामते! इसीसे मैंने बतलाया है कि इसके शरीरमें कोई लक्षण नहीं है। इसके अतिरिक्त जो यह कहा गया है कि इसका एक हाथ सदा उत्तान रहेगा, उसका आशय यह है—वर देनेवाला हाथ उत्तान होता है। देवीका यह हाथ वरद मुद्रासे युक्त होगा। यह देवता, असुर और मुनियोंके समुदायको वर देनेवाली होगी तथा जो मैंने इसके चरणोंको उत्तम कान्ति और व्यभिचारी लक्षणोंसे युक्त बताया है, उसकी व्याख्या भी मेरे मुँहसे सुनो—'गिरिश्रेष्ठ! इस कन्याके चरण कमलके समान अरुण रंगके हैं। इनपर नखोंकी उज्ज्वल कान्ति पड़नेसे स्वच्छता (श्वेत कान्ति) आ गयी है। देवता और असुर जब इसे प्रणाम करेंगे, तब उनके किरीटमें जड़ी हुई मणियोंकी कान्ति इसके चरणोंमें प्रतिबिम्बित होगी। उस समय ये चरण अपना स्वाभाविक रंग छोड़कर विचित्र रंगके दिखायी देंगे। उनके इस परिवर्तन और विचित्रताको ही व्यभिचार कहा गया है [अतः तुम्हें कोई विपरीत आशंका नहीं करनी चाहिये]। महीधर! यह जगत्का भरण-पोषण करनेवाले वृषभध्वज महादेवजीकी पत्नी है। यह सम्पूर्ण लोकोंकी जननी तथा भूतोंको उत्पन्न करनेवाली है। इसकी कान्ति परम पवित्र है। यह साक्षात् शिवा है और तुम्हारे कुलको पवित्र करनेके लिये ही इसने तुम्हारी पत्नीके गर्भसे जन्म लिया है। अतः जिस प्रकार यह शीघ्र ही पिनाकधारी भगवान् शंकरका संयोग प्राप्त करे, उसी उपायका तुम्हें विधिपूर्वक अनुष्ठान करना चाहिये। ऐसा करनेसे देवताओंका एक महान् कार्य सिद्ध होगा।

पुलस्त्यजी कहते हैं—राजन्! नारदजीके मुँहसे ये सारी बातें सुनकर मेनाके स्वामी गिरिराज हिमालयने अपना नया जन्म हुआ माना। वे अत्यन्त हर्षमें भरकर बोले—'प्रभो! आपने घोर और दुस्तर नरकसे मेरा उद्धार कर दिया। मुने! आप-जैसे संतोंका दर्शन निश्चय ही अमोघ फल देनेवाला होता है। इसलिये इस कार्यमें—मेरी कन्याके विवाहके सम्बन्धमें आप समय-समयपर योग्य आदेश देते रहें [जिससे यह कार्य निर्विघ्नतापूर्वक सम्पन्न हो सके]।'

गिरिराजके ऐसा कहनेपर नारदजी हर्षमें भरकर बोले—'शैलराज! सारा कार्य सिद्ध ही समझो। ऐसा करनेसे ही देवताओंका भी कार्य होगा और इसीमें तुम्हारा भी महान् लाभ है।' यों कहकर नारदजी देवलोकमें जाकर इन्द्रसे मिले और बोले—'देवराज! आपने मुझे जो कार्य सौंपा था, उसे तो मैंने कर ही दिया; किन्तु अब कामदेवके बाणोंसे सिद्ध होने योग्य कार्य उपस्थित हुआ है।' कार्यदर्शी नारद मुनिके इस प्रकार कहनेपर देवराज इन्द्रने आमकी मंजरीको ही अस्त्रके रूपमें प्रयोग करनेवाले कामदेवका स्मरण किया। उसे सामने प्रकट हुआ देख इन्द्रने कहा—'रतिवल्लभ! तुम्हें बहुत उपदेश देनेकी क्या आवश्यकता है; तुम तो संकल्पसे ही उत्पन्न हुए हो, इसलिये सम्पूर्ण प्राणियोंके मनकी बात जानते हो। स्वर्गवासियोंका प्रिय कार्य करो। मनोभव! गिरिराजकुमारी उमाके साथ भगवान् शंकरका शीघ्र संयोग कराओ। इस मधुमास चैत्रको भी साथ लेते जाओ तथा अपनी पत्नी रतिसे भी सहायता लो।'

कामदेव बोला—देव! यह सामग्री मुनियों और दानवोंके लिये तो बड़ी भयंकर है, किन्तु इससे भगवान् शंकरको वशमें करना कठिन है।

इन्द्रने कहा—'रतिकान्त! तुम्हारी शक्तिको मैं जानता हूँ; तुम्हारे द्वारा इस कार्यके सिद्ध होनेमें तनिक भी सन्देह नहीं है।'

इन्द्रके ऐसा कहनेपर कामदेव अपने सखा मधुमासको लेकर रतिके साथ तुरंत ही हिमालयके शिखरपर गया। वहाँ पहुँचकर उसने कार्यके उपायका विचार करते हुए सोचा कि 'महात्मा पुरुष निष्कम्प—अविचल होते हैं। उनके मनको वशमें करना अत्यन्त दुष्कर कार्य है। उसे पहले ही क्षुब्ध करके उसके ऊपर विजय पायी जाती है। पहले मनका संशोधन कर लेनेपर ही प्रायः सिद्धि प्राप्त होती है। मैं महादेवजीके अन्तःकरणमें प्रवेश करके इन्द्रिय-समुदायको व्याप्त कर रमणीय साधनोंके द्वारा अपना कार्य सिद्ध करूँगा।' यह सोचकर कामदेव भगवान् भूतनाथके आश्रमपर गया। वह आश्रम पृथ्वीका सारभूत स्थान जान पड़ता था। वहाँकी वेदी देवदारुके वृक्षसे सुशोभित हो रही थी। कामदेवने, जिसका अन्तकाल क्रमशः समीप आता जा रहा था, धीरे-धीरे आगे बढ़कर देखा—भगवान् शंकर ध्यान लगाये बैठे हैं। उनके अधखुले नेत्र अर्ध-विकसित कमलदलके समान शोभा पा रहे हैं। उनकी दृष्टि सीधी एवं नासिकाके अग्रभागपर लगी हुई है। शरीरपर उत्तरीयके रूपमें अत्यन्त रमणीय व्याघ्रचर्म लटक रहा है। कानोंमें धारण किये हुए सर्पोंके फनोंसे निकली हुई फुफकारकी आँचसे उनका मुख पिंगल वर्णका हो रहा है। हवासे हिलती हुई लम्बी-लम्बी जटाएँ उनके कपोल-प्रान्तका चुम्बन कर रही हैं। वासुकि नागका यज्ञोपवीत धारण करनेसे उनकी नाभिके मूल भागमें वासुकिका मुख और पूँछ सटे हुए दिखायी देते हैं। वे अंजलि बाँधे ब्रह्मके चिन्तनमें स्थिर हो रहे हैं और सर्पोंके आभूषण धारण किये हुए हैं।

तदनन्तर वृक्षकी शाखासे भ्रमरकी भाँति झंकार करते हुए कामदेवने भगवान् शंकरके कानमें होकर हृदयमें प्रवेश किया। कामका आधारभूत वह मधुर झंकार सुनकर शंकरजीके मनमें रमणकी इच्छा जाग्रत् हुई और उन्होंने अपनी प्राणवल्लभा दक्षकुमारी सतीका स्मरण किया। तब स्मरण-पथमें आयी हुई सती उनकी निर्मल समाधि-भावनाको धीरे-धीरे लुप्त करके स्वयं ही लक्ष्य-स्थानमें आ गयीं और उन्हें प्रत्यक्ष रूपमें उपस्थित-सी जान पड़ीं। फिर तो भगवान् शिव उनकी सुधमें तन्मय हो गये। इस आकस्मिक विघ्नने उनके अन्तःकरणको आवृत्त कर लिया। देवताओंके अधीश्वर

शिव क्षणभरके लिये कामजनित विकारको प्राप्त हो गये। किन्तु यह अवस्था अधिक देरतक न रही, कामदेवका कुचक्र समझकर उनके हृदयमें कुछ क्रोधका संचार हो आया। उन्होंने धैर्यका आश्रय लेकर कामदेवके प्रभावको दूर किया और स्वयं योगमायासे आवृत होकर दृढ़तापूर्वक समाधिमें स्थित हो गये।

उस योगमायासे आविष्ट होनेपर कामदेव जलने लगा, अत: वह वासनामय व्यसनका रूप धारण करके उनके हृदयसे बाहर निकल आया। बाहर आकर वह एक स्थानपर खड़ा हुआ। उस समय उसकी सहायिका रति और सखा वसन्त—इन दोनोंने भी उसका अनुसरण किया। फिर मदनने आमकी मौरका मनोहर गुच्छ लेकर उसमें मोहनास्त्रका आधान किया और उसे अपने पुष्पमय धनुषपर रखकर तुरंत ही महादेवजीकी छातीमें मारा। इन्द्रियोंके समुदायरूप हृदयके बिंध जानेपर भगवान् शिवने कामदेवकी ओर दृष्टिपात किया। फिर तो उनका मुख क्रोधके आवेगसे निकलते हुए घोर हुंकारके कारण अत्यन्त भयानक हो उठा। उनके तीसरे नेत्रमें आगकी ज्वाला प्रज्वलित हो उठी। रौद्र शरीरधारी भगवान् रुद्रका वह नेत्र ऐसा भयंकर दिखायी देने लगा, मानो संसारका संहार करनेके लिये खुला हो। मदन पास ही खड़ा था। महादेवजीने उस नेत्रको फैलाकर मदनको ही उसका लक्ष्य बनाया। देवतालोग 'त्राहि-त्राहि' कहकर चिल्लाते ही रह गये और मदन उस नेत्रसे निकली हुई चिनगारियोंमें पड़कर भस्म हो गया। कामदेवको दग्ध करके वह आग समस्त जगत्‌को जलानेके लिये बढ़ने लगी। यह जानकर भगवान् शिवने उस कामाग्निको आमके वृक्ष, वसन्त, चन्द्रमा, पुष्पसमूह, भ्रमर तथा कोयलके मुखमें बाँट दिया। महादेवजी बाहर और भीतर भी कामदेवके बाणोंसे विद्ध थे, इसलिये उपर्युक्त स्थानोंमें उस अग्निका विभाग करके वे उनमेंसे प्रत्येकको प्रज्वलित कामाग्निके ही रूपमें देखने लगे। वह कामाग्नि सम्पूर्ण लोकको क्षोभमें डालनेवाली है; उसके प्रसारको रोकना कठिन होता है।

कामदेवको भगवान् शिवके हुंकारकी ज्वालासे भस्म हुआ देख रति उसके सखा वसन्तके साथ जोर-जोरसे रोने लगी। फिर वह त्रिनेत्रधारी भगवान् चन्द्रशेखरकी शरणमें गयी और धरतीपर घुटने टेककर स्तुति करने लगी।

रति बोली—जो सबके मन हैं, यह जगत् जिनका स्वरूप है और जो अद्‌भुत मार्गसे चलनेवाले हैं, उन कल्याणमय शिवको नमस्कार है। जो सबको शरण देनेवाले तथा प्राकृत गुणोंसे रहित हैं, उन भगवान् शंकरको नमस्कार है। नाना लोकोंमें समृद्धिका विस्तार करनेवाले शिवको नमस्कार है। भक्तोंको मनोवांछित वस्तु देनेवाले महादेवजीको प्रणाम है। कर्मोंको उत्पन्न करनेवाले महेश्वरको नमस्कार है। प्रभो! आपका स्वरूप अनन्त है; आपको सदा ही नमस्कार है। देव! आप ललाटमें चन्द्रमाका चिह्न धारण करते हैं; आपको नमस्कार है। आपकी लीलाएँ असीम हैं। उनके द्वारा आपकी उत्तम स्तुति होती रहती है। वृषभराज नन्दी आपका वाहन है। आप दानवोंके तीनों पुरोंका अन्त करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। आप सर्वत्र प्रसिद्ध हैं और नाना प्रकारके रूप धारण किया करते हैं; आपको

नमस्कार है। कालस्वरूप आपको नमस्कार है। कलसंख्यरूप आपको नमस्कार है तथा काल और कल दोनोंसे अतीत आप परमेश्वरको नमस्कार है। आप चराचर प्राणियोंके आचारका विचार करनेवालोंमें सबसे बड़े आचार्य हैं। प्राणियोंकी सृष्टि आपके ही संकल्पसे हुई है। आपके ललाटमें चन्द्रमा शोभा पाते हैं। मैं अपने प्रियतमकी प्राप्तिके लिये सहसा आप महेश्वरकी शरणमें आयी हूँ। भगवन्! मेरी कामनाको पूर्ण करनेवाले और यशको बढ़ानेवाले मेरे पतिको मुझे दे दीजिये। मैं उनके बिना जीवित नहीं रह सकती। पुरुषेश्वर! प्रियाके लिये प्रियतम ही नित्य सेव्य है, उससे बढ़कर संसारमें दूसरा कौन है। आप सबके प्रभु, प्रभावशाली तथा प्रिय वस्तुओंकी उत्पत्तिके कारण हैं। आप ही इस भुवनके स्वामी और रक्षक हैं। आप परम दयालु और भक्तोंका भय दूर करनेवाले हैं।

पुलस्त्यजी कहते हैं—कामदेवकी पत्नी रतिके इस प्रकार स्तुति करनेपर मस्तकपर चन्द्रमाका मुकुट धारण करनेवाले भगवान् शंकर उसकी ओर देखकर मधुर वाणीमें बोले—'सुन्दरी! समय आनेपर यह कामदेव शीघ्र ही उत्पन्न होगा। संसारमें इसकी अनंगके नामसे प्रसिद्धि होगी। भगवान् शिवके ऐसा कहनेपर कामवल्लभा रति उनके चरणोंमें मस्तक झुकाकर हिमालयके दूसरे उपवनमें चली गयी।

उधर नारदजीके कथनानुसार हिमवान् अपनी कन्याको वस्त्राभूषणोंसे विभूषित करके उसकी दो सखियोंके साथ भगवान् शंकरके समीप ले आ रहे थे। मार्गमें रतिके मुखसे मदन-दहनका समाचार सुनकर उनके मनमें कुछ भय हुआ। उन्होंने कन्याको लेकर अपनी पुरीमें लौट जानेका विचार किया। यह देख संकोचशीला पार्वतीने अपनी सखियोंके मुखसे पिताको कहलाया—'तपस्यासे अभीष्ट वस्तुकी प्राप्ति होती है। तप करनेवालेके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं है। संसारमें तपस्या-जैसे साधनके रहते लोग व्यर्थ ही दुर्भाग्यका भार ढोते हैं। अतः अपनी अभीष्ट वस्तुको प्राप्त करनेकी इच्छासे मैं तपस्या ही करूँगी।' यह सुनकर हिमवान्ने कहा—'बेटी! 'उ' 'मा'—ऐसा न करो। तुम अभी चपल बालिका हो। तुम्हारा शरीर तपस्याका कष्ट सहन करनेमें समर्थ नहीं है। बाले! जो बात होनेवाली होती है, वह होकर ही रहती है; इसलिये तुम्हें तपस्या करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। अब घरको ही चलूँगा और वहीं इस कार्यकी सिद्धिके लिये कोई उपाय सोचूँगा।' पिताके ऐसा कहनेपर भी जब पार्वती घर जानेको तैयार नहीं हुई, तब हिमवान्ने मन-ही-मन अपनी पुत्रीके दृढ़ निश्चयकी प्रशंसा की। इसी समय आकाशमें दिव्य वाणी प्रकट हुई, जो तीनों लोकोंमें सुनायी पड़ी। वह इस प्रकार थी—'गिरिराज! तुमने 'उ' 'मा' कहकर अपनी पुत्रीको तपस्या करनेसे रोका है; इसलिये संसारमें इसका नाम उमा होगा। यह मूर्तिमती सिद्धि है। अपनी अभिलषित वस्तुको अवश्य प्राप्त करेगी।' यह आकाशवाणी सुनकर हिमवान्ने पुत्रीको तप करनेकी आज्ञा दे दी और स्वयं अपने भवनको चले गये।

पार्वती अपनी दोनों सखियोंके साथ हिमालयके उस प्रदेशमें गयी, जहाँ देवताओंका भी पहुँचना कठिन था। वहाँका शिखर परम पवित्र और नाना प्रकारकी धातुओंसे विभूषित था। सब ओर दिव्य पुष्प और लताएँ फैली थीं, वृक्षोंपर भ्रमर गुंजार कर रहे थे। वहाँ पार्वतीने अपने वस्त्र और आभूषण उतारकर दिव्य वल्कल धारण कर लिये। कटिमें कुशोंकी मेखला पहन ली। वह प्रतिदिन तीन बार स्नान करती और गुलाबके फूल चबाकर रह जाती थी। इस प्रकार उसने सौ वर्षोंतक तपस्या की। तत्पश्चात् सौ वर्षोंतक हिमवान्-कुमारी प्रतिदिन एक पत्ता खाकर रही। तदनन्तर पुनः सौ वर्षोंतक उसने आहारका सर्वथा परित्याग कर दिया। इस तरह वह तपस्याकी निधि बन गयी। उसके तपकी आँचसे समस्त प्राणी उद्विग्न हो उठे। तब इन्द्रने सप्तर्षियोंका स्मरण किया। वे सब बड़ी प्रसन्नताके साथ एक ही समय वहाँ उपस्थित हुए। इन्द्रने उनका स्वागत-सत्कार किया। इसके बाद उन्होंने अपने बुलाये जानेका प्रयोजन पूछा। तब इन्द्रने कहा—'महात्माओ! आपलोगोंके आवाहनका प्रयोजन सुनिये। हिमालयपर

पार्वतीदेवी घोर तपस्या कर रही हैं। आपलोग संसारके हितके लिये शीघ्रतापूर्वक वहाँ जाकर उन्हें अभिमत वस्तुकी प्राप्तिका विश्वास दिला तपस्या बंद करा दीजिये।' 'बहुत अच्छा!' कहकर सप्तर्षिगण उस सिद्धसेवित शैलपर आये और पार्वतीदेवीसे मधुर वाणीमें बोले—'बेटी! तुम किस उद्देश्यसे यहाँ तप कर रही हो?' पार्वतीदेवीने मुनियोंके गौरवका ध्यान रखकर आदरपूर्वक कहा—'महात्माओ! आपलोग समस्त प्राणियोंके मनोरथको जानते हैं। प्राय: सभी देहधारी ऐसी ही वस्तुकी अभिलाषा करते हैं, जो अत्यन्त दुर्लभ होती है। मैं भगवान् शंकरको पतिरूपमें प्राप्त करनेका उद्योग कर रही हूँ। वे स्वभावसे ही दुराराध्य हैं। देवता और असुर भी जिनके स्वरूपको निश्चित रूपसे नहीं जानते, जो पारमार्थिक क्रियाओंके एकमात्र आधार हैं, जिन वीतराग महात्माने कामदेवको जलाकर भस्म कर डाला है, ऐसे महामहिम शिवको मेरी-जैसी तुच्छ अबला किस प्रकार आराधनाद्वारा प्रसन्न कर सकती है।'

पार्वतीके यों कहनेपर मुनियोंने उनके मनकी दृढ़ता जाननेके लिये कहा—'बेटी! संसारमें दो तरहका सुख देखा जाता है—एक तो वह है, जिसका शरीरसे सम्बन्ध होता है और दूसरा वह, जो मनको शान्ति एवं आनन्द प्रदान करनेवाला होता है। यदि तुम अपने शरीरके लिये नित्य सुखकी इच्छा करती हो तो तुम्हें घृणित वेषमें रहनेवाले भूत-प्रेतोंके संगी महादेवसे वह सुख कैसे मिल सकता है। अरी! वे फुफकारते हुए भयंकर भुजंगोंको आभूषणरूपमें धारण करते हैं, श्मशानभूमिमें रहते हैं और रौद्ररूपधारी प्रमथगण सदा उनके साथ लगे रहते हैं। उनसे तो लक्ष्मीपति भगवान् श्रीविष्णु कहीं अच्छे हैं। वे इस जगत्के पालक हैं। उनके स्वरूपका कहीं ओर-छोर नहीं है तथा वे यज्ञभोगी देवताओंके स्वामी हैं। तुम उन्हें पानेकी इच्छा क्यों नहीं करतीं? अथवा दूसरे किसी देवताको पानेसे भी तुम्हें मानसिक सुखकी प्राप्ति हो सकती है। जिस वरको तुम चाहती हो, उसके पानेमें ही बहुत क्लेश है; यदि कदाचित् प्राप्त भी हो गया तो वह निष्फल वृक्षके समान है—उससे तुम्हें सुख नहीं मिल सकता।'

उन श्रेष्ठ मुनियोंके ऐसा कहनेपर पार्वतीदेवी कुपित हो उठीं, उनके ओठ फड़कने लगे और वे क्रोधसे लाल आँखें करके बोलीं—'महर्षियो! दुराग्रहीके लिये कौन-सी नीति है। जिनकी समझ उलटी है, उन्हें आजतक किसने राहपर लगाया है। मुझे भी ऐसी ही जानिये। अत: मेरे विषयमें अधिक विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। आप सब लोग प्रजापतिके समान हैं, सब कुछ देखने और समझनेवाले हैं; फिर भी यह निश्चय है कि आप उन जगत्प्रभु सनातन देव भगवान् शंकरको नहीं जानते। वे अजन्मा, ईश्वर और अव्यक्त हैं। उनकी महिमाका माप-तौल नहीं है। उनके अलौकिक कर्मोंका उत्तम रहस्य समझना तो दूर रहा, उनके स्वरूपका बोध भी आवृत है। श्रीविष्णु और ब्रह्मा आदि देवेश्वर भी उन्हें यथार्थरूपसे नहीं जानते। ब्रह्मर्षियो! उनका आत्म-वैभव समस्त भुवनोंमें फैला हुआ है, सम्पूर्ण प्राणियोंके सामने प्रकट है; क्या उसे भी आपलोग नहीं जानते? बताइये तो, यह आकाश किसका स्वरूप है? यह अग्नि, यह वायु किसकी मूर्ति हैं? पृथ्वी और जल किसके विग्रह हैं? तथा ये चन्द्रमा और सूर्य किसके नेत्र हैं?'

पार्वतीदेवीकी बात सुनकर सप्तर्षिगण वहाँसे उस स्थानपर गये, जहाँ भगवान् शिव विराजमान थे। उन्होंने भक्तिपूर्वक नमस्कार करके भगवान्से कहा—'स्वर्गके अधीश्वर महादेव! आप दयालु देवता हैं। गिरिराज हिमालयकी पुत्री आपके लिये तपस्या कर रही है। हमलोग उसका मनोरथ जानकर आपके पास आये हैं। आप योगमाया, महिमा और गुणोंके आश्रय हैं। आपको अपने निर्मल ऐश्वर्यपर गर्व नहीं है। शरीरधारियोंमें हमलोग अधिक पुण्यवान् हैं जो कि ऐसे महिमाशाली आपका दर्शन कर रहे हैं।' ऋषियोंके रमणीय एवं हितकर वचन सुनकर वागीश्वरोंमें श्रेष्ठ भगवान् शंकर मुसकराते हुए बोले—'मुनिवरो! मैं जानता हूँ लोक-रक्षाकी दृष्टिसे वास्तवमें यह कार्य बहुत उत्तम है; किन्तु इस विषयमें मुझे हिमवान् पर्वतसे ही आशंका

है—शायद वे मेरे साथ अपनी कन्याके विवाहकी बात स्वीकार न करें। इसमें सन्देह नहीं कि जो लोग कार्यसिद्धिके लिये उद्यत होते हैं, वे सभी उत्कण्ठित रहा करते हैं। उत्कण्ठा होनेपर बड़े-बड़े महात्माओंके चित्तमें भी उतावली पड़ जाती है। तथापि विशिष्ट व्यक्तियोंको लोक-मर्यादाका अनुसरण करना ही चाहिये। क्योंकि इससे धर्मकी वृद्धि होती है और परवर्ती लोगोंके लिये भी आदर्श उपस्थित होता है।'

भगवान्‌के ऐसा कहनेपर सप्तर्षिगण तुरंत हिमालयके भवनमें गये। वहाँ हिमवान्‌ने बड़े आदरके साथ उनका पूजन किया। उससे प्रसन्न होकर वे मुनिश्रेष्ठ उतावलीके कारण संक्षेपसे बोले—'गिरिराज! तुम्हारी पुत्रीके लिये साक्षात् पिनाकधारी भगवान् शंकर तुमसे याचना करते हैं। अतः तुम अपनी पुत्री भगवान् श्रीशंकरको समर्पित करके अपनेको पावन बनाओ। यह देवताओंका कार्य है। जगत्‌का उद्धार करनेके लिये ही यह उद्योग किया जा रहा है।' उनके ऐसा कहनेपर हिमवान् आनन्द-विभोर हो गये। तब वे हिमवान्‌को साथ ले पार्वतीके आश्रमपर गये। उमा तपस्याके कारण तेजोमयी दिखायी दे रही थी। उसने अपने तेजसे सूर्य और अग्निकी ज्वालाको भी परास्त कर दिया था। मुनियोंने जब स्नेहपूर्वक उसका मनोगत भाव पूछा तो उस मानिनीने यह सारगर्भित वचन कहा—'मैं पिनाकधारी भगवान् रुद्रके सिवा दूसरे किसीको नहीं चाहती। वे ही छोटे-बड़े सब प्राणियोंमें [आत्मारूपसे] स्थित हैं, वे ही सबको समृद्धि प्रदान करनेवाले हैं। धीरता और ऐश्वर्य आदि गुण उन्हींमें शोभा पाते हैं; वे तुलनारहित महान् प्रमाण हैं, उनके सिवा दूसरी कोई वस्तु है ही नहीं। यह सारा जगत् उन्हींसे उत्पन्न होता है। जिनका ऐश्वर्य आदि, अन्तसे रहित है, उन्हीं भगवान् शंकरकी शरणमें मैं आयी हूँ।'

पार्वतीदेवीके ये वचन सुनकर वे मुनिश्रेष्ठ बहुत प्रसन्न हुए। उनके नेत्रोंमें आनन्दके आँसू उमड़ आये और उन्होंने तपस्विनी गिरिजाकी प्रशंसा करते हुए मधुर वाणीमें कहा—'अहो! बड़ी अद्‌भुत बात है। बेटी! तुम निर्मल ज्ञानकी मूर्ति-सी जान पड़ती हो और श्रीशंकरजीमें दृढ़ अनुराग रखनेके कारण हमारे अन्तःकरणको अत्यन्त प्रसन्न कर रही हो। हम भगवान् शिवके अद्‌भुत ऐश्वर्यको जानते हैं, केवल तुम्हारे निश्चयकी दृढ़ता जाननेके लिये यहाँ आये थे। अब तुम्हारी यह कामना शीघ्र ही पूरी होगी। अपने इस मनोहर रूपको तपस्याकी आगमें न जलाओ। कल प्रातःकाल भगवान् शंकर स्वयं आकर तुम्हारा पाणिग्रहण करेंगे। हमलोग पहले आकर तुम्हारे पिताजीसे भी प्रार्थना कर चुके हैं। अब तुम अपने पिताके साथ घर जाओ, हम भी अपने आश्रमको जाते हैं।' उनके इस प्रकार कहनेपर पार्वती यह सोचकर कि तपस्याका यथार्थ फल प्राप्त हो गया, तुरंत ही पिताके शोभासम्पन्न दिव्य भवनमें चली गयीं। वहाँ जानेपर गिरिजाके हृदयमें भगवान् शंकरके दर्शनकी प्रबल उत्कण्ठा जाग्रत् हुई। अतः उसे वह रात एक हजार वर्षोंके समान जान पड़ी। तदनन्तर ब्राह्म-मुहूर्तमें उठकर सखियोंने पार्वतीका मांगलिक कार्य करना आरम्भ किया। क्रमशः नाना प्रकारके मंगल विधान यथार्थरूपसे सम्पन्न किये गये। सब प्रकारकी कामनाएँ पूर्ण करनेवाली ऋतुएँ मूर्तिमान् होकर गिरिराज हिमालयकी उपासना करने लगीं। सुखदायिनी वायु झाड़ने-बुहारनेके काममें लगी थी। चिन्तामणि आदि रत्न, तरह-तरहकी लताएँ तथा कल्पतरु आदि बड़े-बड़े वृक्ष भी वहाँ सब ओर उपस्थित थे। दिव्य ओषधियोंके साथ साधारण ओषधियाँ भी दिव्य देह धारण करके सेवामें संलग्न थीं। रस और धातुएँ भी वहाँ दास-दासीका काम करती थीं। नदियाँ, समुद्र तथा स्थावर-जंगम सभी प्राणी मूर्तिमान् होकर हिमवान्‌की महिमा बढ़ा रहे थे।

दूसरी ओर निर्मल शरीरवाले देवता, मुनि, नाग, यक्ष, गन्धर्व और किन्नरगण श्रीशंकरजीके शृंगारकी सारी सामग्री सजाये गन्धमादन पर्वतपर उपस्थित हुए। ब्रह्माजीने श्रीशंकरजीके जटा-जूटमें चन्द्रमाकी कला सजायी। भगवान् श्रीविष्णु रत्नके बने कर्णभूषण, उज्ज्वल कण्ठहार और भुजंगमय आभूषण लेकर

श्रीशंकरजीके सामने उपस्थित हुए। अन्य देवताओंने मनके समान वेगवाले शिववाहन नन्दीको भी विभूषित किया। भाँति-भाँतिकी श्रृंगार-सामग्रियोंसे श्रीशंकरजीको सुसज्जित करके उन्हें सुन्दर आभूषण पहनाकर भी देवताओंकी व्यग्रता अभी दूर नहीं हुई—वे शीघ्र-से-शीघ्र वैवाहिक कार्य सम्पन्न कराना चाहते थे। पृथ्वीदेवी भी सर्वथा व्यग्र थीं। वे मनोरम रूप धारण करके उपस्थित हुईं और नूतन तथा सुन्दर रस और ओषधियाँ प्रदान करने लगीं। साक्षात् वरुण रत्न, आभूषण तथा भाँति-भाँतिके रत्नोंके बने हुए विचित्र-विचित्र पुष्प लेकर उपस्थित हुए। समस्त देहधारियोंके भीतर रहकर सब कुछ जाननेवाले अग्निदेव भी परम पवित्र सोनेके दिव्य आभूषण लेकर विनीत भावसे सामने आये। वायु सुगन्ध बिखेरती हुई मन्द-मन्द गतिसे प्रवाहित होने लगी, जिससे उसका स्पर्श भगवान् शंकरको सुखद प्रतीत हो। वज्रसे सुसज्जित देवराज इन्द्रने बड़ी प्रसन्नताके साथ अपने हाथोंमें भगवान् शिवका छत्र ग्रहण किया। वह छत्र अपने उज्ज्वल प्रकाशसे चन्द्रमाकी किरणावलियोंका उपहास कर रहा था। गन्धर्व और किन्नर अत्यन्त मधुर बाजोंकी ध्वनि करते हुए गान करने लगे। मुहूर्त और ऋतुएँ मूर्तिमान् होकर गान और नृत्य करने लगीं। भगवान् शंकर हिमवान्के नगरमें पहुँचे। उनके चंचल प्रमथगण हिमालयका आलोडन करते हुए वहाँ स्थित हुए। तत्पश्चात् विश्वविधाता ब्रह्माजी तथा भगवान् शंकर क्रमशः विवाहमण्डपमें विराजमान हुए। शिवने अपनी पत्नी उमाके साथ शास्त्रोक्त रीतिसे वैवाहिक कार्य सम्पन्न किया। गिरिराजने उन्हें अर्घ्य दिया और देवताओंने विनोदके द्वारा उन्हें प्रसन्न किया। शिवने पत्नीके साथ वह रात्रि वहीं व्यतीत की। सबेरे देवताओंके स्तवन करनेपर वे उठे और गिरिराजसे विदा ले वायुके समान वेगशाली नन्दीपर सवार हो पत्नीसहित मन्दराचलको चले गये। उमाके साथ भगवान् नीललोहितके चले जानेपर हिमवान्का मन कुछ उदास हो गया। क्यों न हो, कन्याकी विदाई हो जानेपर भला, किस पिताका हृदय व्याकुल नहीं होता।
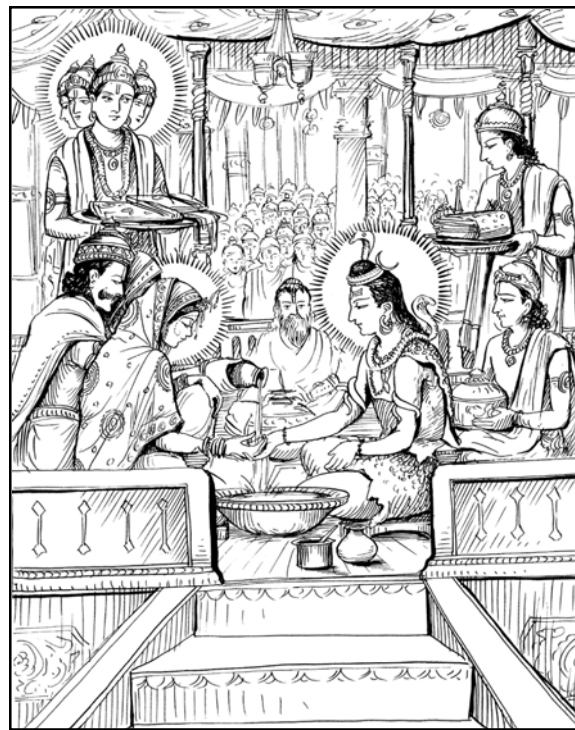
गणेश और कार्तिकेयका जन्म तथा कार्तिकेयद्वारा तारकासुरका वध

पुलस्त्यजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर भगवान् शंकर पार्वती देवीके साथ नगरके रमणीय उद्यानों तथा एकान्त वनोंमें विहार करने लगे। देवीके प्रति उनके हृदयमें बड़ा अनुराग था। एक समयकी बात है—गिरिजाने सुगन्धित तेल और चूर्णसे अपने शरीरमें उबटन लगवाया और उससे जो मैल गिरा, उसे हाथमें उठाकर उन्होंने एक पुरुषकी आकृति बनायी, जिसका मुँह हाथीके समान था; फिर खेल करते हुए भगवती शिवाने उसे गंगाजीके जलमें डाल दिया। गंगाजी पार्वतीको अपनी सखी मानती थीं। उनके जलमें पड़ते ही वह पुरुष बढ़कर विशालकाय हो गया। पार्वती देवीने उसे पुत्र कहकर पुकारा। फिर गंगाजीने भी पुत्र कहकर सम्बोधित किया। देवताओंने गांगेय कहकर सम्मानित किया। इस प्रकार गजानन देवताओंके द्वारा पूजित हुए। ब्रह्माजीने उन्हें गणोंका आधिपत्य प्रदान किया।

तत्पश्चात् परम सुन्दरी शिवा देवीने खेलमें ही एक वृक्ष बनाया। उससे अशोकका मनोहर अंकुर फूट निकला। सुन्दर मुखवाली पार्वतीने उसका मंगल-संस्कार किया। तब इन्द्रके पुरोहित बृहस्पति आदि ब्राह्मणों, देवताओं तथा मुनियोंने कहा—'देवि! बताइये, वृक्षोंके पौधे लगानेसे क्या फल होगा?' यह सुनकर पार्वती देवीका शरीर हर्षसे पुलकित हो उठा, वे अत्यन्त कल्याणमय वचन बोलीं—'जो विज्ञ पुरुष ऐसे गाँवमें जहाँ जलका अभाव हो, कुआँ बनवाता है, वह उसके जलकी जितनी बूँदें हों उतने वर्षतक स्वर्गमें निवास करता है। दस कुओंके समान एक बावली, दस बावलियोंके समान एक सरोवर, दस सरोवरोंके समान एक कन्या और दस कन्याओंके समान एक वृक्ष लगानेका फल होता है। यह शुभ मर्यादा नियत है। यह लोकको उन्नतिके पथपर ले जानेवाली है।' माता पार्वती देवीके यों कहनेपर बृहस्पति आदि ब्राह्मण उन्हें प्रणाम करके अपने-अपने निवासस्थानको चले गये।

उनके जानेके पश्चात् भगवान् शंकर पार्वतीके साथ अपने भवनमें गये। उस भवनमें चित्तको प्रसन्न करनेवाले ऊँचे-ऊँचे चौबारे, अटारियाँ और गोपुर बने हुए थे। वेदियोंपर मालाएँ शोभा पा रही थीं। सब ओर सोना जड़ा था। महलमें पुष्प बिखेरे हुए थे, जिनकी सुगन्धसे उन्मत्त होकर भ्रमरगण गुंजार कर रहे थे। उस भवनमें भगवान् श्रीशंकरको पार्वतीजीके साथ निवास करते एक हजार वर्ष व्यतीत हो गये। तब देवताओंने उतावले होकर अग्निदेवको श्रीशंकरजीकी चेष्टा जाननेके लिये भेजा। अग्निने तोतेका रूप धारण करके, जिससे पक्षी आते-जाते थे, उसी छिद्रके द्वारा शंकरजीके महलमें प्रवेश किया और उन्हें गिरिजाके साथ एक शय्यापर सोते देखा। तत्पश्चात् देवी पार्वती शय्यासे उठकर कौतूहलवश एक सरोवरके तटपर गयीं, जो सुवर्णमय कमलोंसे सुशोभित था। वहाँ जाकर उन्होंने जलविहार किया। तदनन्तर वे सखियोंके साथ सरोवरके किनारे बैठीं और उसके निर्मल पंकजोंसे सुशोभित स्वादिष्ट जलको पीनेकी इच्छा करने लगीं। इतनेमें ही उन्हें सूर्यके समान तेजस्विनी छः कृत्तिकाएँ दिखायी दीं। वे कमलके पत्तेमें उस सरोवरका जल लेकर जब अपने घरको जाने लगीं, तब पार्वती देवीने हर्षमें भरकर कहा—'देवियो! कमलके पत्तेमें रखे हुए जलको मैं भी देखना चाहती हूँ।' वे बोलीं—'सुमुखि! हम तुम्हें इसी शर्तपर जल दे सकती हैं कि तुम्हारे प्रिय गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न हो, वह हमारा भी पुत्र माना जाय एवं हममें भी मातृभाव रखनेवाला तथा हमारा रक्षक हो। वह पुत्र तीनों लोकोंमें विख्यात होगा।' उनकी बात सुनकर गिरिजाने कहा—'अच्छा, ऐसा ही हो।' यह उत्तर पाकर कृत्तिकाओंको बड़ा हर्ष हुआ और उन्होंने कमल-पत्रमें स्थित जलमेंसे थोड़ा पार्वतीजीको भी दे दिया। उनके साथ पार्वतीने भी क्रमशः उस जलका पान किया।

जल पीनेके बाद तुरंत ही रोग-शोकका नाश करनेवाला एक सुन्दर और अद्‌भुत बालक भगवती पार्वतीकी दाहिनी कोख फाड़कर निकल आया। उसका शरीर सूर्यकी किरणोंके समान प्रकाश-पुंजसे व्याप्त था। उसने अपने हाथमें तीक्ष्ण शक्ति, शूल और अंकुश धारण कर रखे थे। वह अग्निके समान तेजस्वी और सुवर्णके समान गोरे रंगका बालक कुत्सित दैत्योंको मारनेके लिये प्रकट हुआ था; इसलिये उसका नाम 'कुमार' हुआ। वह कृत्तिकाके दिये हुए जलसे शाखाओंसहित प्रकट हुआ था। वे कल्याणमयी शाखाएँ छहों मुखोंके रूपमें विस्तृत थीं; इन्हीं सब कारणोंसे वह तीनों लोकोंमें विशाख, षण्मुख, स्कन्द, षडानन और कार्तिकेय आदि नामोंसे विख्यात हुआ। ब्रह्मा, श्रीविष्णु, इन्द्र और सूर्य आदि समस्त देवताओंने चन्दन, माला, सुन्दर धूप, खिलौने, छत्र, चँवर, भूषण और अंगराग आदिके द्वारा कुमार षडाननको सावधानीके साथ विधिपूर्वक सेनापतिके पदपर अभिषिक्त किया। भगवान् श्रीविष्णुने सब तरहके आयुध प्रदान किये। धनाध्यक्ष कुबेरने दस लाख यक्षोंकी सेना दी। अग्निने तेज और वायुने वाहन अर्पित किये। इस प्रकार देवताओंने प्रसन्न चित्तसे सूर्यके समान तेजस्वी स्कन्दको अनन्त पदार्थ

दिये। तत्पश्चात् वे सब पृथ्वीपर घुटने टेककर बैठ गये और स्तोत्र पढ़कर वरदायक देवता षडाननकी स्तुति करने लगे। स्तुति पूर्ण होनेके पश्चात् कुमारने कहा—'देवताओ! आपलोग शान्त होकर बताइये, मैं आपकी कौन-सी इच्छा पूरी करूँ? यदि आपके मनमें चिरकालसे कोई असाध्य कार्य करनेकी भी इच्छा हो तो कहिये।'

देवता बोले—कुमार! तारक नामसे प्रसिद्ध एक दैत्योंका राजा है, जो सम्पूर्ण देवकुलका अन्त कर रहा है। वह बलवान्, अजेय, तीखे स्वभाववाला, दुराचारी और अत्यन्त क्रोधी है। सबका नाश करनेवाला और दुर्दमनीय है। अतः आप उस दैत्यका वध कीजिये। यही एक कार्य शेष रह गया है, जो हमलोगोंको बहुत ही भयभीत कर रहा है।

देवताओंके यों कहनेपर कुमारने 'तथास्तु' कहकर उनकी आज्ञा स्वीकार की और जगत्के लिये कण्टकरूप तारकासुरका वध करनेके लिये वे देवताओंके पीछे-पीछे चले। उस समय समस्त देवता उनकी स्तुति कर रहे थे। तदनन्तर कुमारका आश्रय मिल जानेके कारण इन्द्रने दानवराज तारकके पास अपना दूत भेजा। वहाँ जाकर दूतने उस भयानक आकृतिवाले दैत्यसे निर्भयतापूर्वक कहा—'तारकासुर! देवराज इन्द्रने तुम्हें यह कहलाया है कि देवता तुमसे युद्ध करने आ रहे हैं, तुम अपनी शक्तिभर प्राण बचानेकी चेष्टा करो।' यों कहकर जब दूत चला गया, तब दानवने सोचा, हो-न-हो, इन्द्रको कोई आश्रय अवश्य मिल गया है, अन्यथा वे ऐसी बात नहीं कह सकते थे।' इन्द्र मुझपर आक्रमण करने आ रहे हैं। वह सोचने लगा, 'ऐसा कौन अपूर्व योद्धा होगा, जिसे मैंने अबतक परास्त नहीं किया है।' तारकासुर इसी चिन्तामें व्याकुल हो रहा था, इतनेमें ही उसे सिद्ध-वन्दियोंके द्वारा गाया जाता हुआ किसीका यशोगान सुनायी पड़ा, जो हृदयको दुःखद प्रतीत होता था, जिसके अक्षर कड़वे जान पड़ते थे।

वन्दीगण कह रहे थे—महासेन! आपकी जय हो। आपके मस्तककी चंचल शिखाएँ बड़ी सुन्दर दिखायी देती हैं, श्रीविग्रहकी कान्ति नूतन एवं निर्मल कमलदलके समान मनोरम जान पड़ती है। आप दैत्यवंशके लिये दुःसह दावानलके समान हैं। प्रभो! विशाख! आपकी जय हो। तीनों लोकोंके शोकको शमन करनेवाले सात दिनकी अवस्थाके बालक! आपकी जय हो। सम्पूर्ण विश्वकी रक्षाका भार वहन करनेवाले दैत्यविनाशक स्कन्द! आपकी जय हो।

देववन्दियोंद्वारा उच्चारित यह विजयघोष सुनकर तारकासुरको ब्रह्माजीके वचनका स्मरण हो आया। बालकके हाथसे वध होनेकी बात याद करके वह धर्मविध्वंसी दैत्य शोकाकुल हृदयसे अपने महलके बाहर निकला। उस समय बहुत-से वीर उसके पीछे-पीछे चल रहे थे। कालनेमि आदि दैत्य भी थर्रा उठे। उनका हृदय भयभीत हो गया। वे अपनी-अपनी सेनामें खड़े होकर व्यग्रताके कारण चकित हो रहे थे। तारकासुरने कुमारको सामने देखकर कहा—'बालक! तू क्यों युद्ध करना चाहता है? जा, गेंद लेकर खेल। तेरे ऊपर जो यह महान् युद्धकी विभीषिका लादी गयी है, यह तेरे साथ बड़ा अन्याय किया गया है। तू अभी निरा बच्चा है, इसीलिये तेरी बुद्धि इतनी अल्प समझ रखनेवाली है।'

कुमार बोले—तारक! सुनो, यहाँ [अधिक बुद्धि लेकर] शास्त्रार्थ नहीं करना है। भयंकर संग्राममें शस्त्रोंके द्वारा ही अर्थकी सिद्धि होती है [बुद्धिके द्वारा नहीं]। तुम मुझे शिशु समझकर मेरी अवहेलना न करो। साँपका नन्हा-सा बच्चा भी मौतका कष्ट देनेवाला होता है। [प्रभातकालके] बाल-सूर्यकी ओर देखना भी कठिन होता है। इसी प्रकार मैं बालक होनेपर भी दुर्जय हूँ—मुझे परास्त करना कठिन है। दैत्य! क्या थोड़े अक्षरोंवाले मन्त्रमें अद्भुत शक्ति नहीं देखी जाती?

कुमारकी यह बात समाप्त होते ही दैत्यने उनके ऊपर मुद्गरका प्रहार किया। परन्तु उन्होंने अमोघ तेजवाले चक्रके द्वारा उस भयंकर अस्त्रको नष्ट कर दिया। तब दैत्यराजने लोहेका भिन्दिपाल चलाया, किन्तु कार्तिकेयने उसको अपने हाथसे पकड़ लिया। इसके

बाद उन्होंने भी दैत्यको लक्ष्य करके भयानक आवाज करनेवाली गदा चलायी; उसकी चोट खाकर वह पर्वताकार दैत्य तिलमिला उठा। अब उसे विश्वास हो गया कि यह बालक दु:सह एवं दुर्जय वीर है। उसने बुद्धिसे सोचा, अब नि:सन्देह मेरा काल आ पहुँचा है। उसे कम्पित होते देख कालनेमि आदि सभी दैत्यपति संग्राममें कठोरता धारण करनेवाले कुमारको मारने लगे। परन्तु महातेजस्वी कार्तिकेयको उनके प्रहार और विभीषिकाएँ छू भी नहीं सकीं। उन्होंने दानव-सेनाको अस्त्र-शस्त्रोंसे विदीर्ण करना आरम्भ किया। उनके अस्त्रोंका कोई निवारण नहीं हो पाता था। उनकी मार खाकर कालनेमि आदि देवशत्रु युद्धसे विमुख होकर भाग चले।

इस प्रकार जब दैत्यगण आहत होकर चारों ओर भाग गये और किन्नरगण विजय-गीत गाने लगे, उस समय अपना उपहास जानकर तारकासुर क्रोधसे अचेत-सा हो गया। उसने तपाये हुए सोनेकी कान्तिसे सुशोभित गदा लेकर कुमारपर प्रहार किया और विचित्र बाणोंसे मारकर उनके वाहन मयूरको युद्धसे भगा दिया। अपने वाहनको रक्त बहाते हुए भागते देख कार्तिकेयने सुवर्णभूषित निर्मल शक्ति हाथमें ली और दानवराज तारकसे कहा—'खोटी बुद्धिवाले दैत्य! खड़ा रह, खड़ा रह; जीते-जी इस संसारको भर आँख देख ले। अब मैं अपनी शक्तिके द्वारा तेरे प्राण ले रहा हूँ, तू अपने कुकर्मोंको याद कर।' यों कहकर कुमारने दैत्यके ऊपर शक्तिका प्रहार किया। कुमारकी भुजासे छूटी हुई वह शक्ति केयूरकी खनखनाहटके साथ चली और दैत्यकी छातीमें, जो वज्र तथा गिरिराजके समान कठोर थी, जा लगी। उसने तारकासुरके हृदयको चीर डाला और वह दैत्य निष्प्राण होकर प्रलयकालीन पर्वतके समान धरतीपर गिर पड़ा। दानवोंके धुरन्धर वीर दैत्यराज तारकके मारे जानेपर सबका दु:ख दूर हो गया। देवतालोग कार्तिकेयजीकी स्तुति करते हुए क्रीडामें मग्न हो गये, उनके मुखपर मुसकान छा गयी। वे अपनी मानसिक चिन्ताका परित्याग करके हर्षपूर्वक अपने-अपने लोकमें गये। सबने कार्तिकेयजीको वरदान दिये।
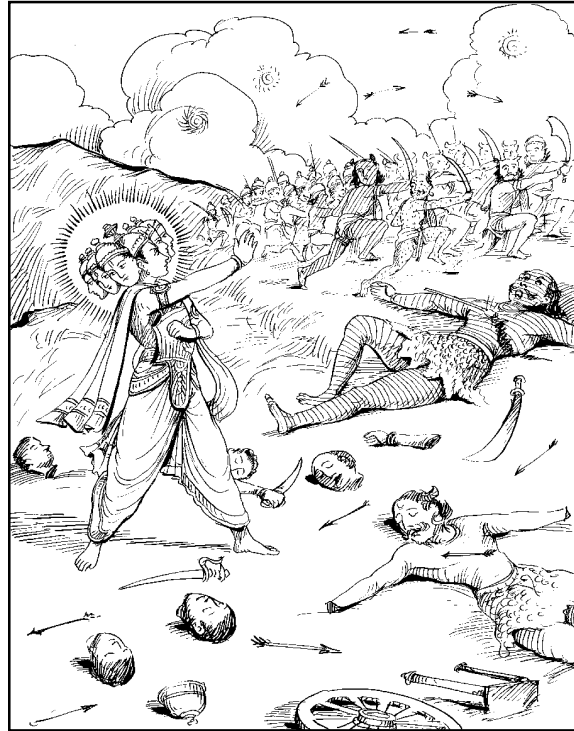
देवता बोले—जो परम बुद्धिमान् मनुष्य कार्तिकेयजीसे सम्बन्ध रखनेवाली इस कथाको पढ़ेगा, सुनेगा अथवा सुनायेगा, वह यशस्वी होगा। उसकी आयु बढ़ेगी; वह सौभाग्यशाली, श्रीसम्पन्न, कान्तिमान्, सुन्दर, समस्त प्राणियोंसे निर्भय तथा सब दु:खोंसे मुक्त होगा।

उत्तम ब्राह्मण और गायत्री-मन्त्रकी महिमा

भीष्मजीने पूछा—विप्रवर! मनुष्यको भी देवत्व, सुख, राज्य, धन, यश, विजय, भोग, आरोग्य, आयु, विद्या, लक्ष्मी, पुत्र, बन्धुवर्ग एवं सब प्रकारके मंगलकी प्राप्ति कैसे हो सकती है? यह बतानेकी कृपा कीजिये।

पुलस्त्यजीने कहा—राजन्! इस पृथ्वीपर ब्राह्मण सदा ही विद्या आदि गुणोंसे युक्त और श्रीसम्पन्न होता है। तीनों लोकों और प्रत्येक युगमें ब्राह्मण-देवता नित्य पवित्र माने गये हैं। ब्राह्मण देवताओंका भी देवता है। संसारमें उसके समान दूसरा कोई नहीं है। वह साक्षात् धर्मकी मूर्ति है और इस पृथ्वीपर सबको मोक्ष प्रदान करनेवाला है। ब्राह्मण सब लोगोंका गुरु, पूज्य और तीर्थस्वरूप मनुष्य है। ब्रह्माजीने उसे सब देवताओंका आश्रय बनाया है। पूर्वकालमें नारदजीने इसी विषयको ब्रह्माजीसे इस प्रकार पूछा था—'ब्रह्मन्! किसकी पूजा करनेपर भगवान् लक्ष्मीपति प्रसन्न होते हैं?'

ब्रह्माजी बोले—जिसपर ब्राह्मण प्रसन्न होते हैं, उसपर भगवान् श्रीविष्णु भी प्रसन्न हो जाते हैं। अतः ब्राह्मणकी सेवा करनेवाला मनुष्य परब्रह्म परमात्माको प्राप्त होता है। ब्राह्मणके शरीरमें सदा ही श्रीविष्णुका निवास है। जो दान, मान और सेवा आदिके द्वारा प्रतिदिन ब्राह्मणोंकी पूजा करता है, उसके द्वारा मानो शास्त्रीय विधिके अनुसार उत्तम दक्षिणासे युक्त सौ यज्ञोंका अनुष्ठान हो जाता है। जिसके घरपर आया हुआ विद्वान् ब्राह्मण निराश नहीं लौटता, उसके सम्पूर्ण पापोंका नाश हो जाता है तथा वह अक्षय स्वर्गको प्राप्त होता है। पवित्र देश-कालमें सुपात्र ब्राह्मणको जो धन दान किया जाता है, उसे अक्षय जानना चाहिये; वह जन्म-जन्मान्तरोंमें भी फल देता रहता है। ब्राह्मणोंकी पूजा करनेवाला मनुष्य कभी दरिद्र, दुःखी और रोगी नहीं होता। जिस घरके आँगन ब्राह्मणोंकी चरणधूलि पड़नेसे पवित्र एवं शुद्ध होते रहते हैं, वे पुण्यक्षेत्रके समान हैं। उन्हें यज्ञ-कर्मके लिये श्रेष्ठ माना गया है। भीष्म! पूर्वकालमें ब्रह्माजीके मुखसे पहले ब्राह्मणका प्रादुर्भाव हुआ; फिर उसी मुखसे जगत्की सृष्टि और पालनके हेतुभूत वेद प्रकट हुए। अतः विधाताने समस्त लोकोंकी पूजा ग्रहण करनेके लिये और समस्त यज्ञोंके अनुष्ठानके लिये ब्राह्मणके ही मुखमें वेदोंको समर्पित किया। पितृयज्ञ (श्राद्ध-तर्पण), विवाह, अग्निहोत्र, शान्तिकर्म तथा सब प्रकारके मांगलिक कार्योंमें ब्राह्मण सदा उत्तम माने गये हैं। ब्राह्मणके ही मुखसे देवता हव्यका और पितर कव्यका उपभोग करते हैं। ब्राह्मणके बिना दान, होम और बलि—सब निष्फल होते हैं। जहाँ ब्राह्मणोंको भोजन नहीं दिया जाता, वहाँ असुर, प्रेत, दैत्य और राक्षस भोजन करते हैं। अतः दान-होम आदिमें ब्राह्मणको बुलाकर उन्हींसे सब कर्म कराना चाहिये। उत्तम देश-कालमें और उत्तम पात्रको दिया हुआ दान लाखगुना अधिक फलदायक होता है। ब्राह्मणको देखकर श्रद्धापूर्वक उसको प्रणाम करना चाहिये। उसके आशीर्वादसे मनुष्यकी आयु बढ़ती है, वह चिरजीवी होता है। ब्राह्मणको देखकर उसे प्रणाम न करनेसे, ब्राह्मणके साथ द्वेष रखनेसे तथा उसके प्रति अश्रद्धा करनेसे मनुष्योंकी आयु क्षीण होती है, उनके धन-ऐश्वर्यका नाश होता है तथा परलोकमें उनकी दुर्गति होती है। ब्राह्मणका पूजन करनेसे आयु, यश, विद्या और धनकी वृद्धि होती है तथा मनुष्य श्रेष्ठ दशाको प्राप्त होता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। जिन घरोंमें ब्राह्मणके चरणोदकसे कीच नहीं होती, जहाँ वेद और शास्त्रोंकी ध्वनि नहीं सुनायी देती, जो यज्ञ, तर्पण और ब्राह्मणोंके आशीर्वादसे वंचित रहते हैं, वे श्मशानके समान हैं।*

* न विप्रपादोदककर्दमानि न वेदशास्त्रप्रतिघोषितानि। स्वाहास्वधास्वस्तिविवर्जितानि श्मशानतुल्यानि गृहाणि तानि॥ (४३। १२७)

नारदजीने पूछा—पिताजी! कौन ब्राह्मण अत्यन्त पूजनीय है? ब्राह्मण और गुरुके लक्षणका यथावत् वर्णन कीजिये।

ब्रह्माजीने कहा—वत्स! श्रोत्रिय और सदाचारी ब्राह्मणकी नित्य पूजा करनी चाहिये। जो उत्तम व्रतका पालन करनेवाला और पापोंसे मुक्त है, वह मनुष्य तीर्थस्वरूप है। उत्तम श्रोत्रियकुलमें उत्पन्न होकर भी जो वैदिक कर्मोंका अनुष्ठान नहीं करता, वह पूजित नहीं होता तथा असत् क्षेत्र (मातृकुल)-में जन्म लेकर भी जो वेदानुकूल कर्म करता है, वह पूजाके योग्य है—जैसे महर्षि वेदव्यास और ऋष्यशृंग।[1] विश्वामित्र यद्यपि क्षत्रियकुलमें उत्पन्न हैं, तथापि अपने सत्कर्मोंके कारण वे मेरे समान हैं; इसलिये बेटा! तुम पृथ्वीके तीर्थस्वरूप श्रोत्रिय आदि ब्राह्मणोंके लक्षण सुनो, इनके सुननेसे सब पापोंका नाश होता है। ब्राह्मणके बालकको जन्मसे ब्राह्मण समझना चाहिये। संस्कारोंसे उसकी 'द्विज' संज्ञा होती है तथा विद्या पढ़नेसे वह 'विप्र' नाम धारण करता है। इस प्रकार जन्म, संस्कार और विद्या—इन तीनोंसे युक्त होना श्रोत्रियका लक्षण है। जो विद्या, मन्त्र तथा वेदोंसे शुद्ध होकर तीर्थस्नानादिके कारण और भी पवित्र हो गया है, वह ब्राह्मण परम पूजनीय माना गया है। जो सदा भगवान् श्रीनारायणमें भक्ति रखता है, जिसका अन्तःकरण शुद्ध है, जिसने अपनी इन्द्रियों और क्रोधको जीत लिया है, जो सब लोगोंके प्रति समान भाव रखता है, जिसके हृदयमें गुरु, देवता और अतिथिके प्रति भक्ति है, जो पिता-माताकी सेवामें लगा रहता है, जिसका मन परायी स्त्रीमें कभी सुखका अनुभव नहीं करता, जो सदा पुराणोंकी कथा कहता और धार्मिक उपाख्यानोंका प्रसार करता है, उस ब्राह्मणके दर्शनसे प्रतिदिन अश्वमेध आदि यज्ञोंका फल प्राप्त होता है।[2] जो प्रतिदिन स्नान, ब्राह्मणोंका पूजन तथा नाना प्रकारके व्रतोंका अनुष्ठान करनेसे पवित्र हो गया है तथा जो गंगाजीके जलका सेवन करता है, उसके साथ वार्तालाप करनेसे ही उत्तम गतिकी प्राप्ति होती है। जो शत्रु और मित्र दोनोंके प्रति दयाभाव रखता है, सब लोगोंके साथ समताका बर्ताव करता है, दूसरेका धन—जंगलमें पड़ा हुआ तिनका भी नहीं चुराता, काम और क्रोध आदि दोषोंसे मुक्त है, जो इन्द्रियोंके वशमें नहीं होता, यजुर्वेदमें वर्णित चतुर्वेदमयी शुद्ध तथा चौबीस अक्षरोंसे युक्त त्रिपदा गायत्रीका प्रतिदिन जप करता है तथा उसके भेदोंको जानता है, वह ब्रह्मपदको प्राप्त होता है।

नारदजीने पूछा—पिताजी! गायत्रीका क्या लक्षण है, उसके प्रत्येक अक्षरमें कौन-सा गुण है तथा उसकी कुक्षि, चरण और गोत्रका क्या निर्णय है—इस बातको स्पष्टरूपसे बताइये।

ब्रह्माजी बोले—वत्स! गायत्री-मन्त्रका छन्द गायत्री और देवता सविता निश्चित किये गये हैं। गायत्री देवीका वर्ण शुक्ल, मुख अग्नि और ऋषि विश्वामित्र हैं। ब्रह्माजी उनके मस्तकस्थानीय हैं। उनकी शिखा रुद्र और हृदय श्रीविष्णु हैं। उनका उपनयन-कर्ममें विनियोग होता

१-सच्छ्रोत्रियकुले जातो अक्रियो नैव पूजितः। असत्क्षेत्रकुले पूज्यो व्यासवैभाण्डकौ यथा॥
(४३। १३१)

२-जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्कारैर्द्विज उच्यते। विद्यया याति विप्रत्वं त्रिभिः श्रोत्रियलक्षणम्॥
विद्यापूतो मन्त्रपूतो वेदपूतस्तथैव च। तीर्थस्नानादिभिर्मेध्यो विप्रः पूज्यतमः स्मृतः॥
नारायणे सदा भक्तः शुद्धान्तःकरणस्तथा। जितेन्द्रियो जितक्रोधः समः सर्वजनेषु च॥
गुरुदेवातिथेर्भक्तः पित्रोः शुश्रूषणे रतः। परदारे मनो यस्य कदाचिन्नैव मोदते॥
पुराणकथको नित्यं धर्माख्यानस्य सन्ततिः। अस्यैव दर्शनान्नित्यमश्वमेधादिजं फलम्॥
(४३। १३४—३८)

है। गायत्री देवी सांख्यायन गोत्रमें उत्पन्न हुई हैं। तीनों लोक उनके तीन चरण हैं। पृथ्वी उनके उदरमें स्थित है। पैरसे लेकर मस्तकतक शरीरके चौबीस स्थानोंमें गायत्रीके चौबीस अक्षरोंका न्यास करके द्विज ब्रह्म-लोकको प्राप्त होता है तथा प्रत्येक अक्षरके देवताका ज्ञान प्राप्त करनेसे विष्णुका सायुज्य मिलता है। अब मैं गायत्रीका दूसरा निश्चित लक्षण बतलाता हूँ। वह अठारह अक्षरोंका यजुर्मन्त्र है। 'अग्नि' शब्दसे उसका आरम्भ होता है और 'स्वाहा' के हकारपर उसकी समाप्ति। जलमें खड़ा होकर इस मन्त्रका सौ बार जप करना चाहिये। इससे करोड़ों पातक और उपपातक नष्ट हो जाते हैं तथा जप करनेवाले पुरुष ब्रह्महत्या आदि पापोंसे मुक्त होकर मेरे लोकको प्राप्त होते हैं। वह मन्त्र इस प्रकार है—'**ॐ अग्नेर्वाक्पुंसि यजुर्वेदेन जुष्टा सोमं पिब स्वाहा**'। इसी प्रकार विष्णु-मन्त्र, माहेश्वर महामन्त्र, देवीमन्त्र, सूर्यमन्त्र, गणेश-मन्त्र तथा अन्यान्य देवताओंके मन्त्रोंका जप करनेसे भी मनुष्य पापरहित होकर उत्तम गति पाता है। जिस किसी कुलमें उत्पन्न हुआ ब्राह्मण भी यदि जप-परायण हो तो वह साक्षात् ब्रह्मस्वरूप है; उसका यत्नपूर्वक पूजन करना चाहिये। ऐसे ब्राह्मणको प्रत्येक पर्वपर विधिपूर्वक दान देना चाहिये। इससे दाताको करोड़ों जन्मोंतक अक्षय पुण्यकी प्राप्ति होती है। जो ब्राह्मण स्वाध्यायपरायण होकर स्वयं पढ़ता, दूसरोंको पढ़ाता और संसारमें द्विजातियोंके यहाँ धर्म, सदाचार, श्रुति, स्मृति, पुराणसंहिता तथा धर्मसंहिताका श्रवण कराता है, वह इस पृथ्वीपर भगवान् श्रीविष्णुके समान है। मनुष्यों और देवताओंका भी पूज्य है। उस तीर्थस्वरूप और निष्पाप ब्राह्मणका बल अक्षय होता है। उसका आदरपूर्वक पूजन करके मनुष्य श्रीविष्णुधामको प्राप्त होता है। जो द्विज गायत्रीके प्रत्येक अक्षरका उसके देवतासहित अपने शरीरमें न्यास करके प्रतिदिन प्राणायामपूर्वक उसका जप करता है, वह करोड़ों जन्मोंके किये हुए सम्पूर्ण पापोंसे छुटकारा पा जाता है। इतना ही नहीं, वह ब्रह्मपदको प्राप्त होकर प्रकृतिसे परे हो जाता है; इसलिये नारद! तुम प्राणायामसहित गायत्रीका जप किया करो।

नारदजीने पूछा—ब्रह्मन्! प्राणायामका क्या स्वरूप है, गायत्रीके प्रत्येक अक्षरके देवता कौन-कौन हैं तथा शरीरके किन-किन अवयवोंमें उनका न्यास किया जाता है? तात! इन सभी बातोंका क्रमशः वर्णन कीजिये।

ब्रह्माजी बोले—प्रत्येक देहधारीके गुदादेशमें अपान और हृदयमें प्राण रहता है; इसलिये गुदाको संकुचित करके पूरक क्रियाके द्वारा अपान वायुको प्राणवायुके साथ संयुक्त करे। तत्पश्चात् वायुको रोककर कुम्भक करे [और उसके बाद रेचककी क्रियाद्वारा वायुको बाहर निकाले। पूरक आदि प्रत्येक क्रियाके साथ तीन-तीन बार प्राणायाम-मन्त्रका जप करना चाहिये]। द्विजको तीन प्राणायाम करके गायत्रीका जप करना उचित है। इस प्रकार जो जप करता है, उसके महापातकोंकी राशि भस्म हो जाती है। तथा दूसरे-दूसरे पातक भी एक ही बारके मन्त्रोच्चारणसे नष्ट हो जाते हैं। जो प्रत्येक वर्णके देवताका ज्ञान प्राप्त करके अपने शरीरमें उसका न्यास करता है, वह ब्रह्मभावको प्राप्त होता है; उसे मिलनेवाले फलका वर्णन नहीं किया जा सकता। बेटा! प्रत्येक अक्षरके जो-जो देवता हैं, उनका वर्णन करता हूँ, सुनो—[इन अक्षरोंका जप करनेसे द्विजको फिर जन्म नहीं लेना पड़ता।] प्रथम अक्षरके देवता अग्नि, दूसरेके वायु, तीसरेके सूर्य, चौथेके वियत् (आकाश), पाँचवेंके यमराज, छठेके वरुण, सातवेंके बृहस्पति, आठवेंके पर्जन्य, नवेंके इन्द्र, दसवेंके गन्धर्व, ग्यारहवेंके पूषा, बारहवेंके मित्र, तेरहवेंके त्वष्टा, चौदहवेंके वसु, पंद्रहवेंके मरुद्गण, सोलहवेंके सोम, सत्रहवेंके अंगिरा, अठारहवेंके विश्वेदेव, उन्नीसवेंके अश्विनीकुमार, बीसवेंके प्रजापति, इक्कीसवेंके सम्पूर्ण देवता, बाईसवेंके रुद्र, तेईसवेंके ब्रह्मा और चौबीसवेंके श्रीविष्णु हैं। इस प्रकार चौबीस

अक्षरोंके ये चौबीस देवता माने गये हैं।[१] गायत्री मन्त्रके इन देवताओंका ज्ञान प्राप्त कर लेनेपर सम्पूर्ण वाङ्मय (वाणीके विषय)-का बोध हो जाता है। जो इन्हें जानता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर ब्रह्मपदको प्राप्त होता है।

विज्ञ पुरुषको चाहिये कि अपने शरीरके पैरसे लेकर सिरतक चौबीस स्थानोंमें पहले गायत्रीके अक्षरोंका न्यास करे। 'तत्' का पैरके अँगूठेमें, 'स' का गुल्फ (घुट्ठी)-में, 'वि' का दोनों पिंडलियोंमें, 'तु' का घुटनोंमें, 'र्व' का जाँघोंमें, 'रे' का गुदामें, 'ण्य' का अण्डकोषमें, 'म्' का कटिभागमें, 'भ' का नाभिमण्डलमें, 'र्गो' का उदरमें, 'दे' का दोनों स्तनोंमें, 'व' का हृदयमें, 'स्य' का दोनों हाथोंमें, 'धी' का मुँहमें, 'म' का तालुमें, 'हि' का नासिकाके अग्रभागमें, 'धि' का दोनों नेत्रोंमें, 'यो' का दोनों भौंहोंमें, 'यो' का ललाटमें 'नः' का मुखके पूर्वभागमें, 'प्र' का दक्षिण भागमें, 'चो' का पश्चिम भागमें और 'द' का मुखके उत्तर भागमें न्यास करे। फिर 'यात्' का मस्तकमें न्यास करके सर्वव्यापी स्वरूपसे स्थित हो जाय। धर्मात्मा पुरुष इन अक्षरोंका न्यास करके ब्रह्मा, विष्णु और शिवका स्वरूप हो जाता है। वह महायोगी और महाज्ञानी होकर परम शान्तिको प्राप्त होता है।

नारद! अब सन्ध्या-कालके लिये एक और न्यास बतलाता हूँ, उसका भी यथार्थ वर्णन सुनो। **'ॐ भूः'** इसका हृदयमें[२] न्यास करके, **'ॐ भुवः'** का सिरमें[३] न्यास करे। फिर **'ॐ स्वः'** का शिखामें[४], **'ॐ तत्सवितुर्वरेण्यम्'** का समस्त शरीरमें[५], **'ॐ भर्गो देवस्य धीमहि'** इसका नेत्रोंमें[६] तथा **'ॐ धियो यो नः प्रचोदयात्'**का 'दोनों[७] हाथोंमें न्यास करे। तत्पश्चात् **'ॐ आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्'** का उच्चारण करके जल-स्पर्श मात्र करनेसे द्विज पापसे शुद्ध होकर श्रीहरिको प्राप्त होता है।

इस प्रकार व्याहृति और बारह ॐकारोंसे युक्त गायत्रीका सन्ध्याके समय कुम्भक क्रियाके साथ तीन बार जप करके सूर्योपस्थानकालमें जो चौबीस अक्षरोंकी गायत्रीका जप करता है, वह महाविद्याका अधीश्वर होता है और ब्रह्मपदको प्राप्त करता है।

व्याहृतियोंसहित इस गायत्रीका पुनः न्यास करना चाहिये। ऐसा करनेसे द्विज सब पापोंसे मुक्त होकर श्रीविष्णुके सायुज्यको प्राप्त होता है। न्यास-विधि यह है—**'ॐ भूः पादाभ्याम्'** का उच्चारण करके दोनों चरणोंका स्पर्श करे। इसी प्रकार **'ॐ भुवः जानुभ्याम्'** कहकर दोनों घुटनोंका, **'ॐ स्वः कट्याम्'** बोलकर कटिभागका, **'ॐ महः नाभौ'** का उच्चारण करके नाभिस्थानका, **'ॐ जनः हृदये'** कहकर हृदयका, **'ॐ तपः करयोः'** बोलकर दोनों हाथोंका, **'ॐ सत्यं ललाटे'** का उच्चारण करके ललाटका तथा गायत्री-मन्त्रका पाठ करके शिखाका स्पर्श करना चाहिये।

सब बीजोंसे युक्त इस गायत्रीको जो जानता है, वह मानो चारों वेदोंका, योगका तथा तीनों प्रकारके

१-आग्नेयं प्रथमं ज्ञेयं वायव्यं तु द्वितीयकम्। तृतीयं सूर्यदैवत्यं चतुर्थं वैयतं तथा॥
पञ्चमं यमदैवत्यं वारुणं षष्ठमुच्यते। सप्तमं बार्हस्पत्यं तु पार्जन्यं चाष्टमं विदुः॥
ऐन्द्रं च नवमं ज्ञेयं गान्धर्वं दशमं तथा। पौष्णमेकादशं विद्धि मैत्रं द्वादशकं स्मृतम्॥
त्वाष्ट्रं त्रयोदशं ज्ञेयं वासवं तु चतुर्दशम्। मारुतं पञ्चदशकं सौम्यं षोडशकं स्मृतम्॥
आङ्गिरसं सप्तदशं वैश्वदेवमतः परम्। आश्विनं चैकोनविंशं प्राजापत्यं तु विंशकम्॥
सर्वदेवमयं ज्ञेयमेकविंशकमक्षरम्। रौद्रं द्वाविंशकं ज्ञेयं ब्राह्मं ज्ञेयमतः परम्॥
वैष्णवं तु चतुर्विंशमेता अक्षरदेवताः। (४३। १६९—१७५)

२-ॐ भूरिति हृदये। ३-ॐ भुवः शिरसि। ४-ॐ स्वः शिखायै। ५-ॐ तत्सवितुर्वरेण्यमिति कलेवरे। ६-ॐ भर्गो देवस्य धीमहीति नेत्रयोः। ७-ॐ धियो यो नः प्रचोदयादिति करयोः। इन छः वाक्योंको क्रमशः पढ़कर सिर आदि छः अंगोंका स्पर्श करना चाहिये।

(वाचिक, उपांशु और मानसिक) जपका ज्ञान रखता है। जो इस गायत्रीको नहीं जानता, वह शूद्रसे भी अधम माना गया है। उस अपवित्र ब्राह्मणको पितरोंके निमित्त किये हुए पार्वण श्राद्धका दान नहीं देना चाहिये। उसे कोई भी तीर्थ स्नानका फल नहीं देता। उसका किया हुआ समस्त शुभ-कर्म निष्फल हो जाता है। उसकी विद्या, धन-सम्पत्ति, उत्तम जन्म, द्विजत्व तथा जिस पुण्यके कारण उसे यह सब कुछ मिला है, वह भी व्यर्थ होता है। ठीक उसी तरह, जैसे कोई पवित्र पुष्प किसी गंदे स्थानमें पड़ जानेपर काममें लेनेयोग्य नहीं रह जाता। मैंने पूर्वकालमें चारों वेद और गायत्रीकी तुलना की थी, उस समय चारों वेदोंकी अपेक्षा गायत्री ही गुरुतर सिद्ध हुई; क्योंकि गायत्री मोक्ष देनेवाली मानी गयी है। गायत्री दस बार जपनेसे वर्तमान जन्मके, सौ बार जपनेसे पिछले जन्मके तथा एक हजार बार जपनेसे तीन युगोंके पाप नष्ट कर देती है[1]। जो सबेरे और शामको रुद्राक्षकी मालापर गायत्रीका जप करता है, वह निःसन्देह चारों वेदोंका फल प्राप्त करता है। जो द्विज एक वर्षतक तीनों समय गायत्रीका जप करता है, उसके करोड़ों जन्मोंके उपार्जित पाप नष्ट हो जाते हैं। गायत्रीके उच्चारणमात्रसे पापराशिसे छुटकारा मिल जाता है—मनुष्य शुद्ध हो जाता है। तथा जो द्विजश्रेष्ठ प्रतिदिन गायत्रीका जप करता है, उसे स्वर्ग और मोक्ष दोनों प्राप्त होते हैं।

जो नित्यप्रति वासुदेवमन्त्रका जप और भगवान् श्रीविष्णुके चरणोंमें प्रणाम करता है, वह मोक्षका अधिकारी हो जाता है। जिसके मुखमें भगवान् वासुदेवके स्तोत्र और उनकी उत्तम कथा रहती है, उसके शरीरमें पापका लेशमात्र भी नहीं रहता। वेदशास्त्रोंका अवगाहन करने—उनके विचारमें संलग्न रहनेसे गंगा-स्नानके समान फल होता है। लोकमें धार्मिक ग्रन्थोंका पाठ करनेवाले मनुष्योंको करोड़ों यज्ञोंका फल मिलता है। नारद! मुझमें ब्राह्मणोंके गुणोंका पूरा-पूरा वर्णन करनेकी शक्ति नहीं है। ब्राह्मणके सिवा, दूसरा कौन देहधारी है, जो विश्वस्वरूप हो। ब्राह्मण श्रीहरिका मूर्तिमान् विग्रह है। उसके शापसे विनाश होता है और वरदानसे आयु, विद्या, यश, धन तथा सब प्रकारकी सम्पत्तियाँ प्राप्त होती हैं। ब्राह्मणोंके ही प्रसादसे भगवान् श्रीविष्णु सदा ब्रह्मण्य कहलाते हैं। जो ब्रह्मण्य (ब्राह्मणोंके प्रति अनुराग रखनेवाले) देव हैं, गौ और ब्राह्मणोंके हितकारी हैं तथा संसारकी भलाई करनेवाले हैं, उन गोविन्द श्रीकृष्णको बारम्बार नमस्कार है[2]। जो सदा इस मन्त्रसे श्रीहरिका पूजन करता है, उसके ऊपर भगवान् प्रसन्न होते हैं तथा वह श्रीविष्णुका सायुज्य प्राप्त करता है। जो इस धर्मस्वरूप पवित्र आख्यानका श्रवण करता है, उसके जन्म-जन्मान्तरोंके किये हुए पाप नष्ट हो जाते हैं। जो इसे पढ़ता, पढ़ाता तथा दूसरे लोगोंको उपदेश करता है, उसे पुनः इस संसारमें नहीं आना पड़ता। वह इस लोकमें धन, धान्य, राजोचित भोग, आरोग्य, उत्तम पुत्र तथा शुभ-कीर्ति प्राप्त करता है।

१-चतुर्वेदाश्च गायत्री पुरा वै तुलिता मया॥ चतुर्वेदात् परा गुर्वी गायत्री मोक्षदा स्मृता।
दशभिर्जन्मजनितं शतेन च पुराकृतम्॥ त्रियुगं तु सहस्रेण गायत्री हन्ति किल्बिषम्।
(४३। १९२—१९४)

२-नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च। जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः॥
(४३। २०३)

अधम ब्राह्मणोंका वर्णन, पतित विप्रकी कथा और गरुड़जीका चरित्र

नारदजीने कहा—देवेश्वर! आपकी कृपासे मुझे परम पवित्र उत्तम ब्राह्मणका परिचय तो मिल गया; अब जिस प्रकार मैं कर्मसे अधम ब्राह्मणको भी पहचान सकूँ, वह बात बताइये।

ब्रह्माजी बोले—बेटा! जो दस प्रकारके स्नान, सन्ध्योपासन और तर्पण आदि नहीं करता, जिसमें इन्द्रियसंयमका अभाव है, वही अधम ब्राह्मण है। जो देवताओंकी पूजा, व्रत, वेद-विद्या, सत्य, शौच, योग, ज्ञान तथा अग्निहोत्रका त्यागी है, वह भी ब्राह्मणोंमें अधम ही है। महर्षियोंने ब्राह्मणोंके लिये पाँच स्नान बताये हैं—आग्नेय, वारुण, ब्राह्म, वायव्य और दिव्य। सम्पूर्ण शरीरमें भस्म लगाना आग्नेय-स्नान है; जलसे जो स्नान किया जाता है, उसे वारुण-स्नान कहते हैं; **'आपो हि ष्ठा०'** इत्यादि ऋचाओंसे जो अपने ऊपर अभिषेक किया जाता है, वह ब्राह्म-स्नान है। शरीरपर हवासे उड़कर जो गौके चरणोंकी धूलि पड़ती है, उसे वायव्य-स्नान माना गया है तथा धूप रहते हुए जो आकाशसे जलकी वर्षा होती है, उससे नहानेको दिव्य-स्नान कहते हैं। उपर्युक्त वस्तुओंके द्वारा मन्त्रपाठपूर्वक स्नान करनेसे तीर्थ-स्नानका फल प्राप्त होता है। तुलसीके पत्तेसे लगा हुआ जल, शालग्राम-शिलाको नहलाया हुआ जल, गौओंके सींगसे स्पर्श कराया हुआ जल, ब्राह्मणका चरणोदक तथा मुख्य-मुख्य गुरुजनोंका चरणोदक—ये पवित्रसे भी पवित्र माने गये हैं। ऐसा स्मृतियोंका कथन है। [इन पाँच तरहके जलोंसे मस्तकपर अभिषेक करना पुनः पाँच प्रकारका स्नान है—इस तरह पहलेके पाँच स्नानोंके साथ मिलकर यह दस प्रकारका स्नान माना गया है।] त्याग, तीर्थ-स्नान, यज्ञ, व्रत और होम आदिके द्वारा जो फल मिलता है, वही फल धीर पुरुष उपर्युक्त स्नानोंसे प्राप्त कर लेता है।

जो प्रतिदिन पितरोंका तर्पण नहीं करता, वह पितृघातक है, उसे नरकमें जाना पड़ता है। सन्ध्या नहीं करनेवाला द्विज ब्रह्महत्यारा है। जो ब्राह्मण, मन्त्र, व्रत, वेद, विद्या, उत्तम गुण, यज्ञ और दान आदिका त्याग कर देता है, वह अधमसे भी अधम है। मन्त्र और संस्कारसे हीन, शौच और संयमसे रहित, बलिवैश्व किये बिना ही अन्न भोजन करनेवाले, दुरात्मा, चोर, मूर्ख, सब प्रकारके धर्मोंसे शून्य, कुमार्गगामी, श्राद्ध आदि कर्म न करनेवाले, गुरु-सेवासे दूर रहनेवाले, मन्त्रज्ञानसे वंचित तथा धार्मिक मर्यादा भंग करनेवाले—ये सभी ब्राह्मण अधमसे भी अधम हैं। उन दुष्टोंसे बात भी नहीं करनी चाहिये। वे सब-के-सब नरकगामी होते हैं। उनका आचरण दूषित होता है; अतएव वे अपवित्र और अपूज्य होते हैं। जो द्विज तलवारसे जीविका चलाते, दासवृत्ति स्वीकार करते, बैलोंको सवारीमें जोतते, बढ़ईका काम करके जीवन-निर्वाह करते, ऋण देकर ब्याज लेते, बालिका और वेश्याओंके साथ व्यभिचार करते, चाण्डालोंके आश्रयमें रहते, दूसरोंके उपकारको नहीं मानते और गुरुकी हत्या करते हैं, वे सबसे अधम माने गये हैं। इनके सिवा दूसरे भी जो आचारहीन, पाखण्डी, धर्मकी निन्दा करनेवाले तथा भिन्न-भिन्न देवताओंपर दोषारोपण करनेवाले हैं, वे सभी द्विज ब्रह्मद्रोही हैं। नारद! अधम होनेपर भी ब्राह्मणका कभी वध नहीं करना चाहिये; क्योंकि उसको मारनेसे मनुष्यको ब्रह्महत्याका पाप लगता है।

नारदजीने पूछा—सम्पूर्ण लोकोंके पितामह! यदि ब्राह्मण ऐसे-ऐसे दुष्कर्म करनेके पश्चात् फिर पुण्यका अनुष्ठान करे तो वह किस गतिको प्राप्त होता है?

ब्रह्माजीने कहा—वत्स! जो सारे पाप करनेके पश्चात् भी इन्द्रियोंको वशमें कर लेता है, वह उन पापोंसे छुटकारा पा जाता है तथा पुनः ब्राह्मणत्व प्राप्त करनेके योग्य बन जाता है। इस विषयमें एक प्राचीन कथा सुनो, जो बड़ी सुन्दर और विचित्र है। पूर्वकालमें किसी ब्राह्मणका एक नौजवान पुत्र था। उसने जवानीकी उमंगमें मोहके वशीभूत होकर एक बार चाण्डालीके

साथ समागम किया। चाण्डालीके गर्भसे उसने अनेकों पुत्र और कन्याएँ उत्पन्न कीं तथा अपना कुटुम्ब छोड़कर वह चिरकालतक उसीके घरमें रहा। किन्तु घृणाके कारण न तो वह दूसरा कोई अभक्ष्य पदार्थ खाता और न कभी शराब ही पीता था। चाण्डाली उससे सदा ही कहा करती थी कि 'ये सब चीजें खाओ और शराब पियो।' किन्तु वह उसे यही उत्तर देता—'प्रिये! तुझे ऐसी गंदी बात नहीं कहनी चाहिये। शराबका तो नाम सुननेमात्रसे मुझे ओकाई आती है।'

एक दिनकी बात है—वह थका-माँदा होनेके कारण दिनमें भी घरपर ही सो रहा था। चाण्डालीने शराब उठायी और हँसकर उसके मुँहमें डाल दी। मदिराकी बूँद पड़ते ही उस ब्राह्मणके मुँहसे अग्नि प्रज्वलित हो उठी; उसकी ज्वालाने फैलकर कुटुम्बसहित उस चाण्डालीको जलाकर भस्म कर दिया तथा उसके घरको भी फूँक डाला। उस समय वह ब्राह्मण 'हाय! हाय!' करता हुआ उठा और बिलख-बिलखकर रोने लगा। विलापके बाद उसने पूछना आरम्भ किया—'कहाँसे आग प्रकट हुई और कैसे मेरा घर जला?' तब आकाशवाणीने उससे कहा—'तुम्हारे ब्रह्मतेजने चाण्डालीके घरमें आग लगायी है।' इसके बाद उसने ब्राह्मणके मुँहमें शराब डालने आदिका ठीक-ठीक वृत्तान्त कह सुनाया। यह सब सुनकर ब्राह्मणको बड़ा विस्मय हुआ। उसने इस विषयपर भलीभाँति विचार करके अपने-आपको उपदेश देनेके लिये यह बात कही—'विप्र! तेरा तेज नष्ट हो गया, अब तू पुनः धर्मका आचरण कर।' तदनन्तर उस ब्राह्मणने बड़े-बड़े मुनियोंके पास जाकर उनसे अपने हितकी बात पूछी। मुनियोंने कहा—'तू दान-धर्मका आचरण कर। ब्राह्मण नियम और व्रतोंके द्वारा सब पापोंसे छूट जाते हैं। अतः तू भी अपनी पवित्रताके लिये शास्त्रोक्त नियमोंका आचरण कर। चान्द्रायण, कृच्छ्र, तप्तकृच्छ्र, प्राजापत्य तथा दिव्य व्रतोंका बारम्बार अनुष्ठान कर। ये व्रत समस्त दोषोंका तत्काल शोषण कर लेते हैं। तू पवित्र तीर्थोंमें जा और वहाँ भगवान् श्रीविष्णुकी आराधना कर। ऐसा करनेसे तेरे सारे पाप शीघ्र ही नष्ट हो जायँगे। पुण्यतीर्थों और भगवान् श्रीगोविन्दके प्रभावसे पापोंका क्षय होगा और तू ब्रह्मत्वको प्राप्त होगा। तात! इस विषयमें हम तुझे एक प्राचीन इतिहास सुनाते हैं। पूर्वकालमें विनतानन्दन गरुड़ जब अंडा फोड़कर बाहर निकले, तब नवजात शिशुकी अवस्थामें ही उन्हें आहार ग्रहण करनेकी इच्छा हुई। वे भूखसे व्याकुल होकर मातासे बोले—'माँ! मुझे कुछ खानेको दो।'

पर्वतके समान शरीरवाले महाबली गरुड़को देखकर परम सौभाग्यवती माता विनताके मनमें बड़ा हर्ष हुआ। वे अपने पुत्रसे बोलीं—'बेटा! मुझमें तेरी भूख मिटानेकी शक्ति नहीं है। तेरे पिता धर्मात्मा कश्यप साक्षात् ब्रह्माजीके समान तेजस्वी हैं। वे सोन नदीके उत्तर तटपर तपस्या करते हैं। वहीं जा और अपने पितासे इच्छानुसार भोजनके विषयमें परामर्श कर। तात! उनके उपदेशसे तेरी भूख शान्त हो जायगी।'

ऋषि कहते हैं—माताकी बात सुनकर मनके समान वेगवाले महाबली गरुड़ एक ही मुहूर्तमें पिताके समीप जा पहुँचे। वहाँ प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी अपने पिता मुनिवर कश्यपजीको देखकर उन्हें मस्तक झुका प्रणाम किया और इस प्रकार कहा—'प्रभो! मैं आपका पुत्र हूँ और आहारकी इच्छासे आपके पास आया हूँ। भूख बहुत सता रही है, कृपा करके मुझे कुछ भोजन दीजिये।'

कश्यपजीने कहा—वत्स! उधर समुद्रके किनारे विशाल हाथी और कछुआ रहते हैं। वे दोनों बहुत बड़े जीव हैं। उनमें अपार बल है। वे एक-दूसरेको मारनेकी घातमें लगे हुए हैं। तू शीघ्र ही उनके पास जा, उनसे तेरी भूख मिट सकती है।

पिताकी बात सुनकर महान् वेगशाली और विशाल आकारवाले गरुड़ उड़कर वहाँ गये तथा उन दोनोंको नखोंसे विदीर्ण करके चोंच और पंजोंमें लेकर विद्युत्‌के समान वेगसे आकाशमें उड़ चले। उस समय मन्दराचल आदि पर्वत उन्हें धारण नहीं कर पाते थे। तब वे वायुवेगसे दो लाख योजन आगे जाकर एक जामुनके

वृक्षकी बहुत बड़ी शाखापर बैठे। उनके पंजा रखते ही वह शाखा सहसा टूट पड़ी। उसे गिरते देख महाबली पक्षिराज गरुड़ने गौ और ब्राह्मणोंके वधके भयसे तुरंत पकड़ लिया और फिर बड़े वेगसे आकाशमें उड़ने लगे। उन्हें बहुत देरसे आकाशमें मँड़राते देख भगवान् श्रीविष्णु मनुष्यका रूप धारण कर उनके पास जा इस प्रकार बोले—'पक्षिराज! तुम कौन हो और किसलिये यह विशाल शाखा तथा ये महान् हाथी एवं कछुआ लिये आकाशमें घूम रहे हो?' उनके इस प्रकार पूछनेपर पक्षिराजने नररूपधारी श्रीनारायणसे कहा—'महाबाहो! मैं गरुड़ हूँ। अपने कर्मके अनुसार मुझे पक्षी होना पड़ा है। मैं कश्यप मुनिका पुत्र हूँ और माता विनताके गर्भसे मेरा जन्म हुआ है। देखिये, इन बड़े-बड़े जीवोंको मैंने खानेके लिये पकड़ रखा है। वृक्ष और पर्वत—कोई भी मुझे धारण नहीं कर पाते। अनेकों योजन उड़नेके बाद मैं एक विशाल जामुनका वृक्ष देखकर इन दोनोंको खानेके लिये उसकी शाखापर बैठा था; किन्तु मेरे बैठते ही वह भी सहसा टूट गयी, अतः सहस्रों ब्राह्मणों और गौओंके वधके डरसे इसे भी लिये डोलता हूँ। अब मेरे मनमें बड़ा विषाद हो रहा है कि क्या करूँ, कहाँ जाऊँ और कौन मेरा वेग सहन करेगा।'

श्रीविष्णु बोले—अच्छा, मेरी बाँहपर बैठकर तुम इन दोनों—हाथी और कछुएको खाओ।

गरुड़ने कहा—बड़े-बड़े पर्वत भी मुझे धारण करनेमें असमर्थ हो रहे हैं; फिर तुम मुझ-जैसे महाबली पक्षीको कैसे धारण कर सकोगे? भगवान् श्रीनारायणके सिवा दूसरा कौन है, जो मुझे धारण कर सके। तीनों लोकोंमें कौन ऐसा पुरुष है, जो मेरा भार सह लेगा।

श्रीविष्णु बोले—पक्षिश्रेष्ठ! बुद्धिमान् पुरुषको अपना कार्य सिद्ध करना चाहिये, अतः इस समय तुम अपना काम करो। कार्य हो जानेपर निश्चय ही मुझे जान लोगे।

गरुड़ने उन्हें महान् शक्तिसम्पन्न देख मन-ही-मन कुछ विचार किया, फिर 'एवमस्तु' कहकर वे उनकी विशाल भुजापर बैठे। गरुड़के वेगपूर्वक बैठनेपर भी उनकी भुजा काँपी नहीं। वहाँ बैठकर गरुड़ने उस शाखाको तो पर्वतके शिखरपर डाल दिया और हाथी तथा कछुएको भक्षण किया। तत्पश्चात् वे श्रीविष्णुसे बोले—'तुम कौन हो? इस समय तुम्हारा कौन-सा प्रिय कार्य करूँ?'

भगवान् श्रीविष्णुने कहा—मुझे नारायण समझो, मैं तुम्हारा प्रिय करनेके लिये यहाँ आया हूँ।

यह कहकर भगवान्ने उन्हें विश्वास दिलानेके लिये अपना रूप दिखाया। मेघके समान श्याम विग्रहपर पीताम्बर शोभा पा रहा था। चार भुजाओंके कारण उनकी झाँकी बड़ी मनोरम जान पड़ती थी। हाथोंमें शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये सर्वदेवेश्वर श्रीहरिका दर्शन करके गरुड़ने उन्हें प्रणाम किया और कहा—'पुरुषोत्तम! बताइये, मैं आपका कौन-सा प्रिय कार्य करूँ?'

श्रीविष्णु बोले—सखे! तुम बड़े शूरवीर हो, अतः हर समय मेरा वाहन बने रहो।

यह सुनकर पक्षियोंमें श्रेष्ठ गरुड़ने भगवान्से कहा—'देवेश्वर! आपका दर्शन करके मैं धन्य हुआ,

मेरा जन्म सफल हो गया। प्रभो! मैं पिता-मातासे आज्ञा लेकर आपके पास आऊँगा।' तब भगवान्‌ने प्रसन्न होकर कहा—'पक्षिराज! तुम अजर-अमर बने रहो, किसी भी प्राणीसे तुम्हारा वध न हो। तुम्हारा कर्म और तेज मेरे समान हो। सर्वत्र तुम्हारी गति हो। निश्चय ही तुम्हें सब प्रकारके सुख प्राप्त हों। तुम्हारे मनमें जो-जो इच्छा हो, सब पूर्ण हो जाय। तुम्हें अपनी रुचिके अनुकूल यथेष्ट आहार बिना किसी कष्टके प्राप्त होता रहेगा। तुम शीघ्र ही अपनी माताको कष्टसे मुक्त करोगे।' ऐसा कहकर भगवान् श्रीविष्णु तत्काल अन्तर्धान हो गये। गरुड़ने भी अपने पिताके पास जाकर सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

गरुड़का वृत्तान्त सुनकर उनके पिता महर्षि कश्यप मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुए और अपने पुत्रसे इस प्रकार बोले—'खगश्रेष्ठ! मैं धन्य हूँ, तुम्हारी कल्याणमयी माता भी धन्य है। माताकी कोख तथा यह कुल, जिसमें तुम्हारे-जैसा पुत्र उत्पन्न हुआ—सभी धन्य हैं। जिसके कुलमें वैष्णव पुत्र उत्पन्न होता है; वह धन्य है, वह वैष्णव पुत्र पुरुषोंमें श्रेष्ठ है तथा अपने कुलका उद्धार करके श्रीविष्णुका सायुज्य प्राप्त करता है। जो प्रतिदिन श्रीविष्णुकी पूजा करता, श्रीविष्णुका ध्यान करता, उन्हींके यशको गाता, सदा उन्हींके मन्त्रको जपता, श्रीविष्णुके ही स्तोत्रका पाठ करता, उनका प्रसाद पाता और एकादशीके दिन उपवास करता है, वह सब पापोंका क्षय हो जानेसे निस्सन्देह मुक्त हो जाता है। जिसके हृदयमें सदा ही श्रीगोविन्द विराजते हैं, वह नरश्रेष्ठ विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। जलमें, पवित्र स्थानमें, उत्तम पथपर, गौमें, ब्राह्मणमें, स्वर्गमें, ब्रह्माजीके भवनमें तथा पवित्र पुरुषके घरमें सदा ही भगवान् श्रीविष्णु विराजमान रहते हैं। इन सब स्थानोंमें जो भगवान्‌का जप और चिन्तन करता है, वह अपने पुण्यके द्वारा पुरुषोंमें श्रेष्ठ होता है और सब पापोंका क्षय हो जानेसे भगवान् श्रीविष्णुका किंकर होता है। जो श्रीविष्णुका सारूप्य प्राप्त कर ले, वही मानव संसारमें धन्य है। बड़े-बड़े देवता जिनकी पूजा करते हैं, जो इस जगत्‌के स्वामी, नित्य, अच्युत और अविनाशी हैं, वे भगवान् श्रीविष्णु जिसके ऊपर प्रसन्न हो जायँ, वही पुरुषोंमें श्रेष्ठ है। नाना प्रकारकी तपस्या तथा भाँति-भाँतिके धर्म और यज्ञोंका अनुष्ठान करके भी देवतालोग भगवान् श्रीविष्णुको नहीं पाते; किन्तु तुमने उन्हें प्राप्त कर लिया। [अतः तुम धन्य हो।] तुम्हारी माता सौतके द्वारा घोर संकटमें डाली गयी है, उसे छुड़ाओ। माताके दुःखका प्रतीकार करके देवेश्वर भगवान् श्रीविष्णुके पास जाना।'

इस प्रकार श्रीविष्णुसे महान् वरदान पा और पिताकी आज्ञा लेकर गरुड़ अपनी माताके पास गये और हर्षपूर्वक उन्हें प्रणाम करके सामने खड़े हो उन्होंने पूछा—'माँ! बताओ, मैं तुम्हारा कौन-सा प्रिय कार्य करूँ? कार्य करके मैं भगवान् विष्णुके पास जाऊँगा।' यह सुनकर सती विनताने गरुड़से कहा—'बेटा! मुझपर महान् दुःख आ पड़ा है, तुम उसका निवारण करो। बहिन कद्रू मेरी सौत है। पूर्वकालमें उसने मुझे एक बातमें अन्यायपूर्वक हराकर दासी बना लिया। अब मैं उसकी दासी हो चुकी हूँ। तुम्हारे सिवा कौन मुझे इस दुःखसे छुटकारा दिलायेगा। कुलनन्दन! जिस समय मैं उसे मुँहमाँगी वस्तु दे दूँगी, उसी समय दासीभावसे मेरी मुक्ति हो सकती है।'

गरुड़ने कहा—माँ! शीघ्र ही उसके पास जाकर पूछो, वह क्या चाहती है? मैं तुम्हारे कष्टका निवारण करूँगा। तब दुःखिनी विनताने कद्रूसे कहा—'कल्याणी! तुम अपनी अभीष्ट वस्तु बताओ, जिसे देकर मैं इस कष्टसे छुटकारा पा सकूँ।' यह सुनकर उस दुष्टाने कहा—'मुझे अमृत ला दो।' उसकी बात सुनकर विनता धीरे-धीरे लौटी और बेटेसे दुःखी होकर बोली—'तात! वह तो अमृत माँग रही है, अब तुम क्या करोगे?'

गरुड़ने कहा—'माँ! तुम उदास न हो, मैं अमृत ले आऊँगा।' यों कहकर मनके समान वेगवान् पक्षी गरुड़ सागरसे जल ले आकाशमार्गसे चले। उनके पंखोंकी हवासे बहुत-सी धूल भी उनके साथ-साथ

उड़ती गयी। वह धूलराशि उनका साथ न छोड़ सकी। गन्तव्य स्थानपर पहुँचकर गरुड़ने अपनी चोंचमें रखे हुए जलसे वहाँके अग्निमय प्राकार (परकोटे)-को बुझा दिया तथा अमृतकी रक्षाके लिये जो देवता नियुक्त थे, उनकी आँखोंमें पूर्वोक्त धूल भर गयी, जिससे वे गरुड़जीको देख नहीं पाते थे। बलवान् गरुड़ने रक्षकोंको मार गिराया और अमृत लेकर वे वहाँसे चल दिये। पक्षीको अमृत लेकर आते देख ऐरावतपर चढ़े हुए इन्द्रने कहा—'अहो! पक्षीका रूप धारण करनेवाले तुम कौन हो, जो बलपूर्वक अमृतको लिये जाते हो? सम्पूर्ण देवताओंका अप्रिय करके यहाँसे जीवित कैसे जा सकते हो।'

गरुड़ने कहा—देवराज! मैं तुम्हारा अमृत लिये जाता हूँ, तुम अपना पराक्रम दिखाओ।

यह सुनकर महाबाहु इन्द्रने गरुड़पर तीखे बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी, मानो मेरुगिरिके शिखरपर मेघ जलकी धाराएँ बरसा रहा हो। गरुड़ने अपने वज्रके समान तीखे नखोंसे ऐरावत हाथीको विदीर्ण कर डाला तथा मातलिसहित रथ और चक्कोंको हानि पहुँचाकर अग्रगामी देवताओंको भी घायल कर दिया। तब इन्द्रने कुपित होकर उनके ऊपर वज्रका प्रहार किया। वज्रकी चोट खाकर भी महापक्षी गरुड़ विचलित नहीं हुए। वे बड़े वेगसे भूतलकी ओर चले। तब इन्द्रने सब देवताओंके आगे स्थित होकर कहा—'निष्पाप गरुड़! यदि तुम नागमाताको इस समय अमृत दे दोगे तो सारे साँप अमर हो जायँगे; अतः यदि तुम्हारी सम्मति हो तो मैं इस अमृतको वहाँसे हर लाऊँगा।'

गरुड़ बोले—मेरी साध्वी माता विनता दासीभावके कारण बहुत दुःखी है। जिस समय वह दासीपनसे मुक्त हो जाय और सब लोग इस बातको जान लें, उस समय तुम अमृतको हर ले आना।

यों कहकर महाबली गरुड़ माताके पास जा इस प्रकार बोले—'माँ! मैं अमृत ले आया हूँ, इसे नागमाताको दे दो।' अमृतसहित पुत्रको आया देख विनताका हृदय हर्षसे खिल उठा। उसने कद्रूको बुलाकर अमृत दे दिया और स्वयं दासीभावसे मुक्त हो गयी। इसी बीचमें इन्द्रने सहसा पहुँचकर अमृतका घड़ा चुरा लिया और वहाँ विषका पात्र रख दिया। उन्हें ऐसा करते कोई देख न सका। कद्रूका मन बहुत प्रसन्न था। उसने पुत्रोंको वेगपूर्वक बुलाया और उनके मुखमें अमृत-जैसा दिखायी देनेवाला विष दे दिया। नागमाताने पुत्रोंसे कहा—तुम्हारे कुलमें होनेवाले सभी सर्पोंके मुखमें ये अमृतकी बूँदें नित्य-निरन्तर उत्पन्न होती रहें तथा तुमलोग इनसे सदा सन्तुष्ट रहो। इसके बाद गरुड़ अपने पिता-मातासे वार्तालाप करके देवताओंकी पूजा कर अविनाशी भगवान् श्रीविष्णुके पास चले गये। जो गरुड़के इस उत्तम चरित्रका पाठ या श्रवण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर देवलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

ब्रह्माजी कहते हैं—ऋषियोंके मुखसे यह उपदेश और गरुड़का प्रसंग सुनकर वह पतित ब्राह्मण नाना प्रकारके पुण्य-कर्मोंका अनुष्ठान करके पुनः ब्राह्मणत्वको प्राप्त हुआ और तीव्र तपस्या करके स्वर्गलोकमें चला गया। सदाचारी मनुष्यका पाप प्रतिदिन क्षीण होता है और दुराचारीका पुण्य सदा नष्ट होता रहता है। अनाचारसे पतित हुआ ब्राह्मण भी यदि फिर सदाचारका सेवन करे तो वह देवत्वको प्राप्त होता है। अतः द्विज प्राणोंके कण्ठगत होनेपर भी सदाचारका त्याग नहीं करते। नारद! तुम भी मन, वाणी, शरीर और क्रियाद्वारा सदाचारका पालन करो।

ब्राह्मणोंके जीविकोपयोगी कर्म और उनका महत्त्व तथा गौओंकी महिमा और गोदानका फल

नारदजीने पूछा—प्रभो! उत्तम ब्राह्मणोंकी पूजा करके तो सब लोग श्रेष्ठ गति प्राप्त करते हैं; किन्तु जो उन्हें कष्ट पहुँचाते हैं, उनकी क्या गति होती है?

ब्रह्माजी बोले—क्षुधासे संतप्त हुए उत्तम ब्राह्मणोंका जो लोग अपनी शक्तिके अनुसार भक्तिपूर्वक सत्कार नहीं करते, वे नरकमें पड़ते हैं। जो क्रोधपूर्वक कठोर शब्दोंमें ब्राह्मणकी निन्दा करके उसे द्वारसे हटा देते हैं, वे अत्यन्त घोर महारौरव एवं कृच्छ्र नरकमें पड़ते हैं तथा नरकसे निकलनेपर कीड़े होते हैं। उससे छूटनेपर चाण्डालयोनिमें जन्म लेते हैं। फिर रोगी एवं दरिद्र होकर भूखसे पीड़ित होते हैं। अतः भूखसे पीड़ित हो घरपर आये हुए ब्राह्मणका कभी अपमान नहीं करना चाहिये। जो देवता, अग्नि और ब्राह्मणके लिये 'नहीं दूँगा' ऐसा वचन कहता है, वह सौ बार नीचेकी योनियोंमें जन्म लेकर अन्तमें चाण्डाल होता है। जो लात उठाकर ब्राह्मण, गौ, पिता-माता और गुरुको मारता है, उसका रौरव नरकमें वास निश्चित है; वहाँसे कभी उसका उद्धार नहीं होता। यदि पुण्यवश जन्म हो भी जाय तो वह पंगु होता है। साथ ही अत्यन्त दीन, विषादग्रस्त और दुःखशोकसे पीड़ित रहता है। इस प्रकार तीन जन्मोंतक कष्ट भोगनेके बाद ही उसका उद्धार होता है। जो पुरुष मुक्कों, तमाचों और कीलोंसे ब्राह्मणको मारता है, वह एक कल्पतक तापन और रौरव नामक घोर नरकमें निवास करता है और पुनः जन्म लेनेपर कुत्ता होता है। उसके बाद चाण्डालयोनिमें जन्म लेकर दरिद्र और उदरशूलसे पीड़ित होता है। माता, पिता, ब्राह्मण, स्नातक, तपस्वी और गुरुजनोंको क्रोधपूर्वक मारकर मनुष्य दीर्घकालतक कुम्भीपाक नरकमें पड़ा रहता है। इसके बाद वह कीट-योनिमें जन्म लेता है। बेटा नारद! जो ब्राह्मणोंके विरुद्ध कठोर वचन बोलता है, उसके शरीरमें आठ प्रकारकी कोढ़ होती है—खुजली, दाद, मण्डल (चकत्ता), शुक्ति (सफेदी), सिध्म (सेहुँआ), काली कोढ़, सफेद कोढ़ और तरुण कुष्ठ—इनमें काली कोढ़, सफेद कोढ़ और अत्यन्त दारुण तरुण कुष्ठ—ये तीन महाकुष्ठ माने गये हैं। जो जान-बूझकर महापातकमें प्रवृत्त होते हैं अथवा महापातकी पुरुषोंका संग करते हैं अथवा अतिपातकका आचरण करते हैं, उनके शरीरमें ये तीनों प्रकारके कुष्ठ होते हैं। संसर्गसे अथवा परस्पर सम्बन्ध होनेसे मनुष्योंमें इस रोगका संक्रमण होता है। इसलिये विवेकी पुरुष कोढ़ीसे दूर ही रहे। उसका स्पर्श हो जानेपर तुरंत स्नान कर ले। पतित, कोढ़ी, चाण्डाल, गोभक्षी, कुत्ता, रजस्वला स्त्री और भीलका स्पर्श हो जानेपर तत्काल स्नान करना चाहिये।

जो ब्राह्मणकी न्यायोपार्जित जीविका तथा उसके धनका अपहरण करते हैं, वे अक्षय नरकमें पड़ते हैं। जो चुगलखोर मनुष्य ब्राह्मणोंका छिद्र ढूँढ़ा करता है, उसे देखकर या स्पर्श करके वस्त्रसहित जलमें गोता लगाना चाहिये। ब्राह्मणके धनका यदि कोई प्रेमसे उपभोग कर ले, तो भी वह उसकी सात पीढ़ियोंतकको जला डालता है और जो पराक्रमपूर्वक छीनकर उसका उपभोग करता है, वह तो दस पीढ़ी पहले और दस पीढ़ी पीछेतकके पुरुषोंको नष्ट करता है। विषको विष नहीं कहते, ब्राह्मणका धन ही विष कहलाता है। विष तो केवल उसके खानेवालेको ही मारता है, किन्तु ब्राह्मणका धन पुत्र-पौत्रोंका भी नाश कर डालता है। जो मोहवश माता, ब्राह्मणी अथवा गुरुकी स्त्रीके साथ समागम करता है, वह घोर रौरव नरकमें पड़ता है। वहाँसे पुनः मनुष्ययोनिमें आना कठिन होता है।

नारदजीने पूछा—पिताजी! सभी ब्राह्मणोंकी हत्यासे बराबर ही पाप लगता है अथवा किसीमें कुछ

अधिक या कम भी? यदि न्यूनाधिक होता है तो क्यों? इसको यथार्थ रूपसे बताइये।

ब्रह्माजीने कहा—'बेटा! ब्रह्महत्याका जो पाप बताया गया है, वह किसी भी ब्राह्मणका वध करनेपर अवश्य लागू होता है। ब्रह्महत्यारा घोर नरकमें पड़ता है। इस विषयमें कुछ और भी कहना है, उसे सुनो। वेद-शास्त्रोंके ज्ञाता, जितेन्द्रिय एवं श्रोत्रिय ब्राह्मणकी हत्या करनेपर करोड़ों ब्राह्मणोंके वधका दोष लगता है। शैव तथा वैष्णव ब्राह्मणको मारनेपर उससे भी दसगुना अधिक पाप होता है। अपने वंशके ब्राह्मणका वध करनेपर तो कभी नरकसे उद्धार होता ही नहीं। तीन वेदोंके ज्ञाता स्नातककी हत्या करनेपर जो पाप लगता है, उसकी कोई सीमा ही नहीं है। श्रोत्रिय, सदाचारी तथा तीर्थ-स्नान और वेदमन्त्रसे पवित्र ब्राह्मणके वधसे होनेवाले पापका भी कभी अन्त नहीं होता। यदि किसीके द्वारा अपनी बुराई होनेपर ब्राह्मण स्वयं भी शोकवश प्राण त्याग दे तो वह बुराई करनेवाला मनुष्य ब्रह्महत्यारा ही समझा जाता है। कठोर वचनों और कठोर बर्तावोंसे पीड़ित एवं ताड़ित हुआ ब्राह्मण जिस अत्याचारी मनुष्यका नाम ले-लेकर अपने प्राण त्यागता है, उसे सभी ऋषि, मुनि, देवता और ब्रह्मवेत्ताओंने ब्रह्महत्यारा बताया है। ऐसी हत्याका पाप उस देशके निवासियों तथा राजाको लगता है। अत: वे ब्रह्महत्याका पाप करके अपने पितरोंसहित नरकमें पकाये जाते हैं। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वह मरणपर्यन्त उपवास (अनशन) करनेवाले ब्राह्मणको मनाये—उसे प्रसन्न करके अनशन तोड़नेका प्रयत्न करे। यदि किसी निर्दोष पुरुषको निमित्त बनाकर कोई ब्राह्मण अपने प्राण त्यागता है तो वह स्वयं ही ब्रह्महत्याके घोर पापका भागी होता है। जिसका नाम लेकर मरता है, वह नहीं। जो अधम ब्राह्मण अपने कुटुम्बीका वध करता है, उसको भी ब्रह्महत्याका पाप लगता है। यदि कोई आततायी ब्राह्मण युद्धके लिये अपने पास आ रहा हो और प्राण लेनेकी चेष्टा करता हो, तो उसे अवश्य मार डाले; इससे वह ब्रह्महत्याका भागी नहीं होता। जो घरमें आग लगाता है, दूसरेको जहर देता है, धन चुरा लेता है, सोते हुएको मार डालता है; तथा खेत और स्त्रीका अपहरण करता है—ये छ: आततायी माने गये हैं।[1] संसारमें ब्राह्मणके समान दूसरा कोई पूजनीय नहीं है। वह जगत्‌का गुरु है। ब्राह्मणको मारनेपर जो पाप होता है, उससे बढ़कर दूसरा कोई पाप है ही नहीं।

नारदजीने पूछा—सुरश्रेष्ठ! पापसे दूर रहनेवाले द्विजको किस वृत्तिका आश्रय लेकर जीवन-निर्वाह करना चाहिये? इसका यथावत् वर्णन कीजिये।

ब्रह्माजीने कहा—बेटा! बिना माँगे मिली हुई भिक्षा उत्तम वृत्ति बतायी गयी है। उञ्छवृत्ति[2] उससे भी उत्तम है। वह सब प्रकारकी वृत्तियोंमें श्रेष्ठ और कल्याणकारिणी है। श्रेष्ठ मुनिगण उञ्छवृत्तिका आश्रय लेकर ब्रह्मपदको प्राप्त होते हैं। यज्ञमें आये हुए ब्राह्मणको यज्ञकी समाप्ति हो जानेपर यजमानसे जो दक्षिणा प्राप्त होती है, वह उसके लिये ग्राह्य वृत्ति है। द्विजोंको पढ़ाकर या यज्ञ कराकर उसकी दक्षिणा लेनी चाहिये। पठन-पाठन तथा उत्तम मांगलिक शुभ कर्म करके भी उन्हें दक्षिणा ग्रहण करनी चाहिये। यही ब्राह्मणोंकी जीविका है। दान लेना उनके लिये अन्तिम वृत्ति है। उनमें जो शास्त्रके द्वारा जीविका चलाते हैं, वे धन्य हैं। वृक्ष और लताओंके सहारे जिनकी जीविका चलती है, वे भी धन्य हैं।

ब्राह्मणोचित वृत्तिके अभावमें ब्राह्मणोंको क्षत्रियवृत्तिसे जीवन-निर्वाह करना चाहिये। उस अवस्थामें न्याययुक्त युद्धका अवसर उपस्थित होनेपर युद्ध करना उनका कर्तव्य है। उन्हें उत्तम वीरव्रतका

१-अग्निदो गरदश्चैव धनहारी च सुप्तघ:। क्षेत्रदारापहारी च षडेते ह्याततायिन:॥ (४८।५८)

२-कटे हुए खेत, खलिहान या उठे हुए बाजारसे अन्नका एक-एक दाना बीनकर लाने और उसीसे जीविका चलानेका नाम 'उञ्छवृत्ति' है।

आचरण करना चाहिये। ब्राह्मण क्षत्रियवृत्तिके द्वारा राजासे जो धन प्राप्त करता है, वह श्राद्ध और यज्ञ आदिमें दानके लिये पवित्र माना गया है। उस ब्राह्मणको सदा पापसे दूर रहकर वेद और धनुर्वेद दोनोंका अभ्यास करना चाहिये। जो ब्राह्मण न्यायोचित युद्धमें सम्मिलित होकर संग्राममें शत्रुका सामना करते हुए मारे जाते हैं, वे वेदपाठियोंके लिये भी दुर्लभ परमपदको प्राप्त होते हैं। धर्मयुद्धका जो पवित्र बर्ताव है, उसका यथार्थ वर्णन सुनो। धर्मयुद्ध करनेवाले योद्धा सामने लड़ते हैं, कभी कायरता नहीं दिखाते तथा जो पीठ दिखा चुका हो, जिसके पास कोई हथियार न हो और जो युद्धभूमिसे भागा जा रहा हो—ऐसे शत्रुपर पीछेकी ओरसे प्रहार नहीं करते। जो दुराचारी सैनिक विजयकी इच्छासे डरपोक, युद्धसे विमुख, पतित, मूर्च्छित, असत्-शूद्र, स्तुतिप्रिय और शरणागत शत्रुको युद्धमें मार डालते हैं, वे नरकमें पड़ते हैं।

यह क्षत्रियवृत्ति सदाचारी पुरुषोंद्वारा प्रशंसित है। इसका आश्रय लेकर समस्त क्षत्रिय स्वर्गलोकको प्राप्त करते हैं। धर्मयुद्धमें शत्रुका सामना करते हुए मृत्युको प्राप्त होना क्षत्रियके लिये शुभ है। वह पवित्र होकर सब पापोंसे मुक्त हो जाता है और एक कल्पतक स्वर्गलोकमें निवास करता है। उसके बाद सार्वभौम राजा होता है। उसे सब प्रकारके भोग प्राप्त होते हैं। उसका शरीर नीरोग और कामदेवके समान सुन्दर होता है। उसके पुत्र धर्मशील, सुन्दर, समृद्धिशाली और पिताकी रुचिके अनुकूल चलनेवाले होते हैं। इस प्रकार क्रमशः सात जन्मोंतक वे क्षत्रिय उत्तम सुखका उपभोग करते हैं। इसके विपरीत जो अन्यायपूर्वक युद्ध करनेवाले हैं, उन्हें चिरकालतक नरकमें निवास करना पड़ता है। इस तरह ब्राह्मणोंको श्रेष्ठ क्षत्रियवृत्तिका सहारा लेना उचित है।

उत्तम ब्राह्मण आपत्तिकालमें वैश्यवृत्तिसे—व्यापार एवं खेती आदिसे भी जीविका चला सकता है। परन्तु उसे चाहिये कि वह दूसरोंके द्वारा खेती और व्यापारका काम कराये, स्वयं ब्राह्मणोचित कर्मका त्याग न करे। वैश्यवृत्तिका आश्रय लेकर यदि ब्राह्मण झूठ बोले या किसी वस्तुकी बहुत बढ़ा-चढ़ाकर प्रशंसा करे तो [लोगोंको ठगनेके कारण] वह दुर्गतिको प्राप्त होता है। भीगे हुए द्रव्यके व्यापारसे बचा रहकर ब्राह्मण कल्याणका भागी होता है। तौलमें कभी असत्यपूर्ण बर्ताव नहीं करना चाहिये, क्योंकि तुला धर्मपर ही प्रतिष्ठित है। जो तराजूपर तोलते समय छल करता है, वह नरकमें पड़ता है। जो द्रव्य तराजूपर चढ़ाये बिना ही बेचा जाता है, उसमें भी झूठ-कपटका त्याग कर देना चाहिये। इस प्रकार मिथ्या बर्ताव नहीं करना चाहिये; क्योंकि मिथ्या व्यवहारसे पापकी उत्पत्ति होती है। 'सत्यसे बढ़कर धर्म और झूठसे बढ़कर दूसरा कोई पाप नहीं है' अतः सब कार्योंमें सत्यको ही श्रेष्ठ माना गया है।[1] यदि एक ओर एक हजार अश्वमेध यज्ञोंका पुण्य और दूसरी ओर सत्यको तराजूपर रखकर तोला जाय तो एक हजार अश्वमेध यज्ञोंकी अपेक्षा सत्यका ही पलड़ा भारी होता है। जो समस्त कार्योंमें सत्य बोलता और मिथ्याका परित्याग करता है, वह सब दुःखोंसे पार हो जाता है और अक्षय स्वर्गका उपभोग करता है।[2] ब्राह्मण [दूसरोंके द्वारा] व्यापारका काम करा सकता है; किन्तु उसे झूठका त्याग करना ही चाहिये। उसे चाहिये कि जो मुनाफा हो उसमेंसे पहले तीर्थोंमें दान करे; जो शेष बचे, उसका स्वयं उपभोग करे। यदि ब्राह्मण वाणिज्यवृत्तिसे न्यायपूर्वक उपार्जित किये हुए धनको

१-तुलेऽसत्यं न कर्तव्यं तुला धर्मप्रतिष्ठिता॥
छलभावं तुले कृत्वा नरकं प्रतिपद्यते। अतुलं चापि यद् द्रव्यं तत्र मिथ्या परित्यजेत्॥
एवं मिथ्या न कर्तव्या मृषा पापप्रसूतिका। नास्ति सत्यात्परो धर्मो नानृतात्पातकं परम्॥
अतः सर्वेषु कार्येषु सत्यमेव विशिष्यते। (४५। ९३—९६)

२-यो वदेत् सर्वकार्येषु सत्यं मिथ्यां परित्यजेत्॥
स निस्तरति दुर्गाणि स्वर्गमक्षयमश्नुते। (४५। ९७-९८)

पितरों, देवताओं और ब्राह्मणोंके निमित्त यत्नपूर्वक दान देता है; तो उसे अक्षय फलकी प्राप्ति होती है। वाणिज्य लाभकारी व्यवसाय है। किन्तु दो उसमें बहुत बड़े दोष आ जाते हैं—लोभ न छोड़ना और झूठ बोलकर माल बेचना। विद्वान् पुरुष इन दोनों दोषोंका परित्याग करके धनोपार्जन करे। व्यापारमें कमाये हुए धनका दान करनेसे वह अक्षय फलका भागी होता है।[1]

नारद! पुण्यकर्ममें लगे हुए ब्राह्मणको इस प्रकार खेती करानी चाहिये। वह आधे दिन (दोपहर)-तक चार बैलोंको हलमें जोते। चारके अभावमें तीन बैलोंको भी जोता जा सकता है। बैलोंसे इतना काम न ले कि उन्हें दिनभर विश्राम करनेका मौका ही न मिले। प्रतिदिन बैलोंको चोर और व्याघ्र आदिसे रहित स्थानमें, जहाँकी घास काटी न गयी हो, ले जाकर चराये। उन्हें यथेष्ट घास खानेको दे और स्वयं उपस्थित रहकर उनके खाने-पीनेकी व्यवस्था करे। उनके रहनेके लिये गोशाला बनवावे, जहाँ किसी प्रकार उपद्रव न हो।[2] वहाँसे गोबर, मूत्र और बिखरी हुई घास आदि हटाकर गोशालाको सदा साफ रखे। गोशाला सम्पूर्ण देवताओंका निवासस्थान है, अतः वहाँ कूड़ा नहीं फेंकना चाहिये। विद्वान् पुरुषको उचित है कि वह अपने शयन-गृहके समान गोशालाको साफ रखे। उसकी फर्शको समतल बनाये तथा यत्नपूर्वक ऐसी व्यवस्था करे, जिससे वहाँ सर्दी, हवा और धूल-धक्कड़से बचाव हो। गौको अपने प्राणोंके समान समझे। उसके शरीरको अपने ही शरीरके तुल्य माने। अपनी देहमें जैसे सुख-दुःख होते हैं, वैसे ही गौके शरीरमें भी होते हैं—ऐसा समझकर गौके कष्टको दूर करने और उसे सुख पहुँचानेकी चेष्टा करे।

जो इस विधिसे खेतीका काम कराता है, वह बैलको जोतनेके दोषसे मुक्त और धनवान् होता है। जो दुर्बल, रोगी, अत्यन्त छोटी अवस्थाके और अधिक बूढ़े बैलसे काम लेकर उसे कष्ट पहुँचाता है, उसे गोहत्याका पाप लगता है। जो एक ओर दुर्बल और दूसरी ओर बलवान् बैलको जोड़कर उनसे भूमिको जुतवाता है, उसे गोहत्याके समान पापका भागी होना पड़ता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। जो बिना चारा खिलाये ही बैलको हल जोतनेके काममें लगाता है तथा घास खाते और पानी पीते हुए बैलको मोहवश हाँक देता है, वह भी गोहत्याके पापका भागी होता है।[3] अमावास्या, संक्रान्ति तथा पूर्णिमाको हल जोतनेसे दस हजार गोहत्याओंका पाप लगता है। जो उपर्युक्त तिथियोंको गौओंके शरीरमें सफेद और रंग-बिरंगी रचना करके काजल, पुष्प और तेलके द्वारा उनकी पूजा करता है, वह अक्षय स्वर्गका सुख भोगता है। जो प्रतिदिन दूसरेकी गायको मुट्ठीभर घास देता है, उसके समस्त पापोंका नाश हो जाता है तथा वह अक्षय स्वर्गका उपभोग करता है। जैसा ब्राह्मणका महत्त्व है, वैसा ही गौका भी महत्त्व है; दोनोंकी पूजाका फल समान ही है। विचार करनेपर मनुष्योंमें ब्राह्मण प्रधान है और पशुओंमें गौ।

नारदजीने पूछा—नाथ! आपने बताया है कि ब्राह्मणकी उत्पत्ति भगवान्‌के मुखसे हुई है; फिर गौओंकी

१-एतौ दोषौ महान्तौ च वाणिज्ये लाभकर्मणि। लोभानामपरित्यागो मृषाग्राह्यश्च विक्रयः॥
एतौ दोषौ परित्यज्य कुर्यादर्थार्जनं बुधः। अक्षयं लभते दानाद् ....॥
(४५। १०७-१०८)

२-दद्याद् घासं यथेष्टं च नित्यमातिष्ठयेत् स्वयम्। गोष्ठं च कारयेत्तत्र किञ्चिद्विघ्नविवर्जितम्॥
(४५। १०९)

३-दुर्बलं पीडयेद्यस्तु तथैव गदसंयुतम्। अतिबालातिवृद्धञ्च स गोहत्यां समालभेत्॥
विषमं वाहयेद्यस्तु दुर्बलेन बलेन च। स गोहत्यासमं पापं प्राप्नोतीह न संशयः॥
यो वाहयेद्विना सस्यं खादन्तं गां निवारयेत्। मोहात्तृणं जलं वापि स गोहत्यासमं लभेत्॥
(४५। ११४—११६)

उससे तुलना कैसे हो सकती है? विधाता! इस विषयको लेकर मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है।

ब्रह्माजीने कहा—बेटा! पहले भगवान्‌के मुखसे महान् तेजोमय पुंज प्रकट हुआ। उस तेजसे सर्वप्रथम वेदकी उत्पत्ति हुई। तत्पश्चात् क्रमशः अग्नि, गौ और ब्राह्मण—ये पृथक्-पृथक् उत्पन्न हुए। मैंने सम्पूर्ण लोकों और भुवनोंकी रक्षाके लिये पूर्वकालमें एक वेदसे चारों वेदोंका विस्तार किया। अग्नि और ब्राह्मण देवताओंके लिये हविष्य ग्रहण करते हैं और हविष्य (घी) गौओंसे उत्पन्न होता है; इसलिये ये चारों ही इस जगत्‌के जन्मदाता हैं। यदि ये चारों महत्तर पदार्थ विश्वमें नहीं होते तो यह सारा चराचर जगत् नष्ट हो जाता। ये ही सदा जगत्‌को धारण किये रहते हैं; जिससे स्वभावतः इसकी स्थिति बनी रहती है। ब्राह्मण, देवता तथा असुरोंको भी गौकी पूजा करनी चाहिये; क्योंकि गौ सब कार्योंमें उदार तथा वास्तवमें समस्त गुणोंकी खान है। वह साक्षात् सम्पूर्ण देवताओंका स्वरूप है। सब प्राणियोंपर उसकी दया बनी रहती है। प्राचीन कालमें सबके पोषणके लिये मैंने गौकी सृष्टि की थी। गौओंकी प्रत्येक वस्तु पावन है और समस्त संसारको पवित्र कर देती है। गौका मूत्र, गोबर, दूध, दही और घी—इन पंचगव्योंका पान कर लेनेपर शरीरके भीतर पाप नहीं ठहरता। इसलिये धार्मिक पुरुष प्रतिदिन गौके दूध, दही और घी खाया करते हैं। गव्य पदार्थ सम्पूर्ण द्रव्योंमें श्रेष्ठ, शुभ और प्रिय हैं। जिसको गायका दूध, दही और घी खानेका सौभाग्य नहीं प्राप्त होता, उसका शरीर मलके समान है। अन्न आदि पाँच रात्रितक, दूध सात रात्रितक, दही बीस रात्रितक और घी एक मासतक शरीरमें अपना प्रभाव रखता है। जो लगातार एक मासतक बिना गव्यका भोजन करता है, उस मनुष्यके भोजनमें प्रेतोंको भाग मिलता है; इसलिये प्रत्येक युगमें सब कार्योंके लिये एकमात्र गौ ही प्रशस्त मानी गयी है। गौ सदा और सब समय धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चारों पुरुषार्थ प्रदान करनेवाली है।

जो गौकी एक बार प्रदक्षिणा करके उसे प्रणाम करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर अक्षय स्वर्गका सुख भोगता है। जैसे देवताओंके आचार्य बृहस्पतिजी वन्दनीय हैं, जिस प्रकार भगवान् लक्ष्मीपति सबके पूज्य हैं, उसी प्रकार गौ भी वन्दनीय और पूजनीय है। जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर गौ और उसके घीका स्पर्श करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। गौएँ दूध और घी प्रदान करनेवाली हैं। वे घृतकी उत्पत्ति-स्थान और घीकी उत्पत्तिमें कारण हैं। वे घीकी नदियाँ हैं, उनमें घीकी भँवरें उठती हैं। ऐसी गौएँ सदा मेरे घरपर मौजूद रहें।[१] घी मेरे सम्पूर्ण शरीर और मनमें स्थित हो। 'गौएँ सदा मेरे आगे रहें। वे ही मेरे पीछे रहें। मेरे सब अंगोंको गौओंका स्पर्श प्राप्त हो। मैं गौओंके बीचमें निवास करूँ।'[२] इस मन्त्रको प्रतिदिन सन्ध्या और सबेरेके समय शुद्ध भावसे आचमन करके जपना चाहिये। ऐसा करनेसे उसके सब पापोंका क्षय हो जाता है तथा वह स्वर्गलोकमें पूजित होता है। जैसे गौ आदरणीय है वैसे ब्राह्मण; जैसे ब्राह्मण हैं वैसे भगवान् श्रीविष्णु। जैसे भगवान् श्रीविष्णु हैं वैसी ही श्रीगंगाजी भी हैं। ये सभी धर्मके साक्षात् स्वरूप माने गये हैं। गौएँ मनुष्योंकी बन्धु हैं और मनुष्य गौओंके बन्धु हैं। जिस घरमें गौ नहीं है, वह बन्धुरहित गृह है। छहों अंगों, पदों और क्रमोंसहित सम्पूर्ण वेद गौओंके मुखमें निवास करते हैं। उनके सींगोंमें भगवान् श्रीशंकर और श्रीविष्णु सदा विराजमान रहते हैं। गौओंके उदरमें कार्तिकेय, मस्तकमें ब्रह्मा, ललाटमें महादेवजी, सींगोंके अग्रभागमें इन्द्र, दोनों कानोंमें अश्विनीकुमार, नेत्रोंमें चन्द्रमा और सूर्य, दाँतोंमें गरुड़, जिह्वामें सरस्वती देवी, अपान (गुदा)-में

१- घृतक्षीरप्रदा गावो घृतयोन्यो घृतोद्भवाः। घृतनद्यो घृतावर्त्तास्ता मे सन्तु सदा गृहे॥ (४५। १४९)

२-गावो ममाग्रतो नित्यं गावः पृष्ठत एव च। गावश्च सर्वगात्रेषु गवां मध्ये वसाम्यहम्॥

सम्पूर्ण तीर्थ, मूत्रस्थानमें गंगाजी, रोमकूपोंमें ऋषि, मुख और पृष्ठभागमें यमराज, दक्षिण पार्श्वमें वरुण और कुबेर, वाम पार्श्वमें तेजस्वी और महाबली यक्ष, मुखके भीतर गन्धर्व, नासिकाके अग्रभागमें सर्प, खुरोंके पिछले भागमें अप्सराएँ, गोबरमें लक्ष्मी, गोमूत्रमें पार्वती, चरणोंके अग्रभागमें आकाशचारी देवता, रँभानेकी आवाजमें प्रजापति और थनोंमें भरे हुए चारों समुद्र निवास करते हैं। जो प्रतिदिन स्नान करके गौका स्पर्श करता है, वह मनुष्य सब प्रकारके स्थूल पापोंसे भी मुक्त हो जाता है। जो गौओंके खुरसे उड़ी हुई धूलको सिरपर धारण करता है, वह मानो तीर्थके जलमें स्नान कर लेता है और सब पापोंसे छुटकारा पा जाता है।

नारदजीने पूछा—गुरुश्रेष्ठ! परमेष्ठिन्! विभिन्न रंगोंकी गौओंमें किसके दानसे क्या फल होता है? इसका तत्त्व बतलाइये।

ब्रह्माजीने कहा—बेटा! ब्राह्मणको श्वेत गौका दान करके मनुष्य ऐश्वर्यशाली होता है। सदा महलमें निवास करता है तथा भोग-सामग्रियोंसे सम्पन्न होकर सुख-समृद्धिसे भरा-पूरा रहता है। धूएँके समान रंगवाली गौ स्वर्ग प्रदान करनेवाली तथा भयंकर संसारमें पापोंसे छुटकारा दिलानेवाली है। कपिला गौका दान अक्षय फल प्रदान करनेवाला है। कृष्णा गौका दान देकर मनुष्य कभी कष्टमें नहीं पड़ता। भूरे रंगकी गौ संसारमें दुर्लभ है। गौर वर्णकी धेनु समूचे कुलको आनन्द प्रदान करनेवाली होती है। लाल नेत्रोंवाली गौ रूपकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको रूप प्रदान करती है। नीली गौ धनाभिलाषी पुरुषकी कामना पूर्ण करती है। एक ही कपिला गौका दान करके मनुष्य सारे पापोंसे मुक्त हो जाता है। बचपन, जवानी और बुढ़ापेमें जो पाप किया गया है, क्रियासे, वचनसे तथा मनसे भी जो पाप बन गये हैं, उन सबका कपिला गौके दानसे क्षय हो जाता है और दाता पुरुष विष्णुरूप होकर वैकुण्ठमें निवास करता है। जो दस गौएँ दान करता है तथा जो भार ढोनेमें समर्थ एक ही बैल दान करता है, उन दोनोंका फल ब्रह्माजीने समान ही बतलाया है। जो पुत्र पितरोंके उद्देश्यसे साँड़ छोड़ता है, उसके पितर अपनी इच्छाके अनुसार विष्णुलोकमें सम्मानित होते हैं। छोड़े हुए साँड़ या दान की हुई गौओंके जितने रोएँ होते हैं, उतने हजार वर्षोंतक मनुष्य स्वर्गका सुख भोगते हैं। छोड़ा हुआ साँड़ अपनी पूँछसे जो जल फेंकता है, वह एक हजार वर्षोंतक पितरोंके लिये तृप्तिदायक होता है। वह अपने खुरसे जितनी भूमि खोदता है, जितने ढेले और कीचड़ उछालता है, वे सब लाखगुने होकर पितरोंके लिये स्वधारूप हो जाते हैं। यदि पिताके जीते-जी माताकी मृत्यु हो जाय तो उसकी स्वर्ग-प्राप्तिके लिये चन्दन-चर्चित धेनुका दान करना चाहिये। ऐसा करनेसे दाता पितरोंके ऋणसे मुक्त हो जाता है तथा भगवान् श्रीविष्णुकी भाँति पूजित होकर अक्षय स्वर्गको प्राप्त करता है। सब प्रकारके शुभ लक्षणोंसे युक्त, प्रतिवर्ष बच्चा देनेवाली नयी दुधार गाय पृथ्वीके समान मानी गयी है। उसके दानसे भूमि-दानके समान फल होता है। उसे दान करनेवाला मनुष्य इन्द्रके तुल्य होता है और अपनी सौ पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। जो गौका हरण करके उसके बछड़ेकी मृत्युका कारण बनता है, वह महाप्रलयपर्यन्त कीड़ोंसे भरे हुए कुएँमें पड़ा रहता है। गौओंका वध करके मनुष्य अपने पितरोंके साथ घोर रौरव नरकमें पड़ता है तथा उतने ही समयतक अपने पापका दण्ड भोगता रहता है। जो इस पवित्र कथाको एक बार भी दूसरोंको सुनाता है, उसके सब पापोंका नाश हो जाता है तथा वह देवताओंके साथ आनन्दका उपभोग करता है। जो इस परम पुण्यमय प्रसंगका श्रवण करता है, वह सात जन्मोंके पापोंसे तत्काल मुक्त हो जाता है।

द्विजोचित आचार, तर्पण तथा शिष्टाचारका वर्णन

नारदजीने पूछा—पिताजी! किस आचरणसे ब्राह्मणके ब्रह्मतेजकी वृद्धि होती है?

ब्रह्माजीने कहा—बेटा! श्रेष्ठ ब्राह्मणको चाहिये कि वह प्रतिदिन कुछ रात रहते ही बिस्तरसे उठ जाय और गोविन्द, माधव, कृष्ण, हरि, दामोदर, नारायण, जगन्नाथ, वासुदेव, वेदमाता सावित्री, अजन्मा, विभु, सरस्वती, महालक्ष्मी, ब्रह्मा, शंकर, शिव, शम्भु, ईश्वर, महेश्वर, सूर्य, गणेश, स्कन्द, गौरी, भागीरथी और शिवा आदि नामोंका कीर्तन करे। जो मनुष्य सबेरे उठकर इन सबका स्मरण करता है, वह ब्रह्महत्या आदि पापोंसे निःसन्देह मुक्त हो जाता है। तात! एक बार भी इन नामोंका उच्चारण करनेपर सम्पूर्ण यज्ञोंका तथा लाखों गोदानका फल मिलता है।

इस प्रकार उपर्युक्त नामोंका उच्चारण करके गाँवसे बाहर दूर जाकर साफ-सुथरे स्थानमें मल-मूत्रका परित्याग करे। यदि रातका समय हो तो दक्षिण दिशाकी ओर मुँह करके और दिनमें उत्तर दिशाकी ओर मुँह करके शौच होना चाहिये। इसके बाद [हाथ-मुँह धो, कुल्ला करके] गूलर आदिकी लकड़ीसे दाँत साफ करना चाहिये। तत्पश्चात् द्विजको स्नान आदि करके संयमपूर्वक बैठकर सन्ध्योपासन करना चाहिये। पूर्वाह्णकालमें रक्तवर्णा गायत्री, मध्याह्नकालमें शुक्लवर्णा सावित्री और सायंकालमें श्यामवर्णा सरस्वतीका विधिपूर्वक ध्यान करना उचित है।

प्रतिदिनके स्नानकी विधि इस प्रकार है। अपने ज्ञानके अनुसार यत्नपूर्वक स्नान-विधिका पालन करना चाहिये। पहले शरीरको जलसे भिगोकर फिर उसमें मिट्टी लगाये। मस्तक, ललाट, नासिका, हृदय, भौंह, बाहु, पसली, नाभि, घुटने और दोनों पैरोंमें मृत्तिका लगाना उचित है। मनुष्यको शुद्धिकी इच्छासे [शौच होकर] एक बार लिंगमें, तीन बार गुदामें, दस बार बायें हाथमें तथा पुनः सात बार दोनों हाथोंमें मिट्टी लगानी चाहिये। 'घोड़े, रथ और भगवान् श्रीविष्णुद्वारा आक्रान्त होनेवाली मृत्तिकामयी वसुन्धरे! मेरे द्वारा जो दुष्कर्म या पाप हुए हों, उन्हें तुम हर लो।'*—इस मन्त्रसे जो अपने शरीरमें मिट्टीका लेप करता है, उसके सब पापोंका क्षय होता है तथा वह मनुष्य सर्वथा शुद्ध हो जाता है। तदनन्तर विद्वान् पुरुष नद, नदी, पोखरा, सरोवर या कुएँपर जाकर वेदमन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक स्नान करे। उसे नदी आदिकी जल-राशिमें प्रवेश करके स्नान करना चाहिये और कुएँपर नहाना हो तो किनारे रहकर घड़ेसे स्नान करना उचित है। मनुष्यको अपने समस्त पापोंका नाश करनेके लिये विधिवत् स्नान करना चाहिये। सबेरेका स्नान महान् पुण्यदायक और सब पापोंका नाश करनेवाला है। जो ब्राह्मण सदा प्रातःकाल स्नान करता है, वह विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। प्रातः-सन्ध्याके समय चार दण्डतक जल अमृतके समान रहता है, वह पितरोंको सुधाके समान तृप्तिदायी होता है। उसके बाद दो घड़ीतक अर्थात् कुल एक पहरतक जल मधुके समान रहता है; वह भी पितरोंकी प्रसन्नता बढ़ानेवाला होता है। तत्पश्चात् डेढ़ पहरतकका जल दूधके समान माना गया है। उसके बाद चार दण्डतकका जल दुग्ध-मिश्रित-सा रहता है।

नारदजीने कहा—देवेश्वर! अब मुझे यह बताइये कि जलके देवता कौन हैं तथा जिस प्रकार मैं तर्पणकी विधि ठीक-ठीक जान सकूँ, ऐसा उपदेश कीजिये।

ब्रह्माजीने कहा—बेटा! सम्पूर्ण लोकोंमें भगवान् श्रीविष्णु ही जलके देवता माने गये हैं; अतः जो जलसे स्नान करके पवित्र होता है, उसका भगवान् श्रीविष्णु कल्याण करते हैं। एक घूँट जल पीकर भी मनुष्य पवित्र हो जाता है। विशेष बात यह है कि

* अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे। मृत्तिके हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम्॥

कुशके संसर्गसे जल अमृतसे भी बढ़कर होता है। कुश सम्पूर्ण देवताओंका निवासस्थान है; पूर्वकालमें मैंने ही उसे उत्पन्न किया था। कुशके मूलमें स्वयं मैं (ब्रह्मा) उसके मध्यभागमें श्रीविष्णु और अग्रभागमें भगवान् श्रीशंकर विराजमान हैं; इन तीनोंके द्वारा कुशकी प्रतिष्ठा है। अपने हाथोंमें कुश धारण करनेवाला द्विज सदा पवित्र माना गया है; वह यदि किसी स्तोत्र या मन्त्रका पाठ करे तो उसका सौगुना महत्त्व बतलाया गया है। वही यदि तीर्थमें किया जाय तो उसका फल हजारगुना अधिक होता है। कुश, काश, दूर्वा, जौका पत्ता, धानका पत्ता, बल्वज और कमल—ये सात प्रकारके कुश बताये गये हैं।[1] इनमें पूर्व-पूर्व कुश अधिक पवित्र माने गये हैं। ये सभी कुश लोकमें प्रतिष्ठित हैं।

तिलके सम्पर्कसे जल अमृतसे भी अधिक स्वादिष्ट हो जाता है। जो प्रतिदिन स्नान करके तिलमिश्रित जलसे पितरोंका तर्पण करता है, वह अपने दोनों कुलोंका (पितृकुल एवं मातृकुलका) उद्धार करके ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है। वर्षाके चार महीनोंमें दीपदान करनेसे पितरोंके ऋणसे छुटकारा मिलता है। जो एक वर्षतक प्रति अमावास्याको तिलोंके द्वारा पितरोंका तर्पण करता है, वह विनायक-पदवीको प्राप्त होता है और सम्पूर्ण देवता उसकी पूजा करते हैं। जो समस्त युगादि तिथियोंको तिलोंद्वारा पितरोंका तर्पण करता है, उसे अमावास्याकी अपेक्षा सौगुना अधिक फल प्राप्त होता है। अयन आरम्भ होनेके दिन, विषुव योगमें, पूर्णिमा तथा अमावास्याको पितरोंका तर्पण करके मनुष्य स्वर्ग-लोकमें प्रतिष्ठित होता है। मन्वन्तरसंज्ञक तिथियोंमें तथा अन्यान्य पुण्यपर्वोंके अवसरपर भी तर्पण करनेसे यही फल होता है। चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणमें गया आदि पुण्य तीर्थोंके भीतर पितरोंका तर्पण करके मनुष्य वैकुण्ठधामको प्राप्त होता है। इसलिये कोई पुण्यदिवस प्राप्त होनेपर पितृसमुदायका तर्पण करना चाहिये। एकाग्रचित्त होकर पहले देवताओंका तर्पण करनेके पश्चात् विद्वान् पुरुष पितरोंका तर्पण करनेका अधिकारी होता है। श्राद्धमें भोजनके समय एक ही हाथसे अन्न परोसे, किन्तु तर्पणके समय दोनों हाथोंसे जल दे; यही सनातन विधि है। दक्षिणाभिमुख होकर पवित्र भावसे **'तृप्यताम्'** इस वाक्यके साथ नाम-गोत्रका उच्चारण करते हुए पितरोंका तर्पण करना चाहिये।

जो मोहवश सफेद तिलोंके द्वारा पितृवर्गका तर्पण करता है, उसका किया हुआ तर्पण व्यर्थ होता है। यदि दाता स्वयं जलमें स्थित होकर पृथ्वीपर तर्पणका जल गिराये तो उसका वह जलदान व्यर्थ हो जाता है, किसीके पास नहीं पहुँचता। इसी प्रकार जो स्थलमें खड़ा होकर जलमें तर्पणका जल गिराता है, उसका दिया हुआ जल भी निरर्थक होता है; वह पितरोंको नहीं प्राप्त होता। जो जलमें नहाकर भीगे वस्त्र पहने हुए ही तर्पण करता है, उसके पितर देवताओंसहित सदा तृप्त रहते हैं। विद्वान् पुरुष धोबीके धोये हुए वस्त्रको अशुद्ध मानते हैं। अपने हाथसे पुनः धोनेपर ही वह वस्त्र शुद्ध होता है।[2] जो सूखे वस्त्र पहने हुए किसी पवित्र स्थानपर बैठकर पितरोंका तर्पण करता है, उसके पितर दसगुनी तृप्ति लाभ करते हैं। जो अपनी तर्जनी अँगुलीमें चाँदीकी अँगूठी धारण करके पितरोंका तर्पण करता है, उसका सब तर्पण लाखगुना अधिक फल देनेवाला होता है। इसी प्रकार विद्वान् पुरुष यदि अनामिका अँगुलीमें सोनेकी अँगूठी पहनकर पितृवर्गका तर्पण करे तो वह करोड़ोंगुना अधिक फल देनेवाला होता है।

जो स्नान करनेके लिये जाता है, उसके पीछे प्यासमे पीड़ित देवता और पितर भी वायुरूप होकर

१-कुशाः काशास्तथा दूर्वा यवपत्राणि व्रीहयः। बल्वजाः पुण्डरीकाश्च कुशाः सप्त प्रकीर्तिताः॥ (५१। ३४-३५)

२-रजकैः क्षालितं वस्त्रमशुद्धं कवयो विदुः। हस्तप्रक्षालनेनैव पुनर्वस्त्रञ्च शुद्ध्यति॥ (५१। ५३)

जलकी आशासे जाया करते हैं; किन्तु जब वह नहाकर धोती निचोड़ने लगता है, तब वे निराश लौट जाते हैं; अतः पितृतर्पण किये बिना धोती नहीं निचोड़नी चाहिये। मनुष्यके शरीरमें जो साढ़े तीन करोड़ रोएँ हैं, वे सम्पूर्ण तीर्थोंके प्रतीक हैं। उनका स्पर्श करके जो जल धोतीपर गिरता है, वह मानो सम्पूर्ण तीर्थोंका ही जल गिरता है; इसलिये तर्पणके पहले धोये हुए वस्त्रको निचोड़ना नहीं चाहिये। देवता स्नान करनेवाले व्यक्तिके मस्तकसे गिरनेवाले जलको पीते हैं, पितर मूँछ-दाढ़ीके जलसे तृप्त होते हैं, गन्धर्व नेत्रोंका जल और सम्पूर्ण प्राणी अधोभागका जल ग्रहण करते हैं। इस प्रकार देवता, पितर, गन्धर्व तथा सम्पूर्ण प्राणी स्नानमात्रसे संतुष्ट होते हैं। स्नानसे शरीरमें पाप नहीं रह जाता। जो मनुष्य प्रतिदिन स्नान करता है, वह पुरुषोंमें श्रेष्ठ है। वह सब पापोंसे मुक्त होकर स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। देवता और महर्षि तर्पणतक स्नानका ही अंग मानते हैं। तर्पणके बाद विद्वान् पुरुषको देवताओंका पूजन करना चाहिये।

जो गणेशकी पूजा करता है, उसके पास कोई विघ्न नहीं आता। लोग धर्म और मोक्षके लिये लक्ष्मीपति भगवान् श्रीविष्णुकी, आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये शंकरकी, आरोग्यके लिये सूर्यकी तथा सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धिके लिये भवानीकी पूजा करते हैं। देवताओंकी पूजा करनेके पश्चात् बलिवैश्वदेव करना चाहिये। पहले अग्निकार्य करके फिर ब्राह्मणोंको तृप्त करनेवाला अतिथियज्ञ करे। देवताओं और सम्पूर्ण प्राणियोंका भाग देकर मनुष्य स्वर्गलोकको जाता है। इसलिये प्रतिदिन पूरा प्रयत्न करके नित्यकर्मोंका अनुष्ठान करना चाहिये। जो स्नान नहीं करता, वह मल भोजन करता है। जो जप नहीं करता, वह पीब और रक्तपान करता है। जो प्रतिदिन तर्पण नहीं करता, वह पितृघाती होता है। देवताओंकी पूजा न करनेपर ब्रह्महत्याके समान पाप लगता है। सन्ध्योपासन न करके पापी मनुष्य सूर्यकी हत्या करता है।

नारदजीने पूछा—पिताजी! ब्राह्मणादि वर्णोंके सदाचार और उनके कर्तव्योंका क्रम बतलाइये, साथ ही समस्त प्रवृत्तिप्रधान कर्मोंका वर्णन कीजिये।

ब्रह्माजीने कहा—वत्स! मनुष्य आचारसे आयु, धन तथा स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त करता है। आचार अशुभ लक्षणोंका निवारण करता है। आचारहीन पुरुष संसारमें निन्दित, सदा दुःखका भागी, रोगी और अल्पायु होता है। अनाचारी मनुष्यको निश्चय ही नरकमें निवास करना पड़ता है तथा आचारसे श्रेष्ठ लोककी प्राप्ति होती है; इसलिये तुम आचारका यथार्थरूपमें वर्णन सुनो।

प्रतिदिन अपने घरको गोबरसे लीपना चाहिये। उसके बाद काठका पीढ़ा, बर्तन और पत्थर धोने चाहिये। काँसेका बर्तन राखसे और ताँबा खटाईसे शुद्ध होता है। सोने और चाँदी आदिके बर्तन जलमात्रसे धोनेपर शुद्ध हो जाते हैं। लोहेका पात्र आगके द्वारा तपाने और धोनेसे शुद्ध होता है। अपवित्र भूमि खोदने, जलाने, लीपने तथा धोनेसे एवं वर्षासे शुद्ध होती है। धातुनिर्मित पात्र, मणिपात्र तथा सब प्रकारके पत्थरसे बने हुए पात्रकी भस्म और मृत्तिकासे शुद्धि बतायी गयी है। शय्या, स्त्री, बालक, वस्त्र, यज्ञोपवीत और कमण्डलु—ये अपने हों तो सदा शुद्ध हैं और दूसरेके हों तो कभी शुद्ध नहीं माने जाते। एक वस्त्र धारण करके भोजन और स्नान न करे। दूसरेका उतारा हुआ वस्त्र कभी न धारण करे। केशों और दाँतोंकी सफाई सबेरे ही करनी चाहिये। गुरुजनोंको नित्यप्रति नमस्कार करना नित्यका कर्तव्य होना चाहिये। दोनों हाथ, दोनों पैर और मुख—इन पाँचों अंगोंको धोकर विद्वान् पुरुष भोजन आरम्भ करे। जो इन पाँचोंको धोकर भोजन करता है, वह सौ वर्ष जीता है। देवता, गुरु, स्नातक, आचार्य और यज्ञमें दीक्षित ब्राह्मणकी छायापर जान-बूझकर पैर नहीं रखना चाहिये। गौओंके समुदाय, देवता, ब्राह्मण, घी, मधु, चौराहे तथा प्रसिद्ध वनस्पतियोंको अपने दाहिने करके चलना चाहिये। गौ-ब्राह्मण, अग्नि-ब्राह्मण, दो ब्राह्मण तथा पति-पत्नीके बीचसे होकर नहीं निकलना चाहिये। जो ऐसा करता है, वह स्वर्गमें रहता हो तो भी नीचे गिर जाता है। जूठे हाथसे अग्नि, ब्राह्मण, देवता,

गुरु, अपने मस्तक, पुष्पवाले वृक्ष तथा यज्ञोपयोगी पेड़का स्पर्श नहीं करना चाहिये। सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्र—इन तीन प्रकारके तेजोंकी ओर जूठे मुँह कभी दृष्टि न डाले। इसी प्रकार ब्राह्मण, गुरु, देवता, राजा, श्रेष्ठ संन्यासी, योगी, देवकार्य करनेवाले तथा धर्मका उपदेश करनेवाले द्विजकी ओर भी जूठे मुँह दृष्टिपात न करे।

नदियों और समुद्रके किनारे, यज्ञ-सम्बन्धी वृक्षकी जड़के पास, बगीचेमें, फुलवारीमें, ब्राह्मणके निवास-स्थानपर, गोशालामें तथा साफ-सुथरी सुन्दर सड़कोंपर तथा जलमें कभी मल-त्याग न करे। धीर पुरुष अपने हाथ, पैर, मुख और केशोंको रूखे न रखे। दाँतोंपर मैल न जमने दे। नखको मुँहमें न डाले। रविवार और मंगलको तेल न लगाये। अपने शरीर और आसनपर ताल न दे। गुरुके साथ एक आसनपर न बैठे। श्रोत्रियके धनका अपहरण न करे। देवता और गुरुका भी धन न ले। राजा, तपस्वी, पंगु, अंधे तथा स्त्रीका धन भी न ले। ब्राह्मण, गौ, राजा, रोगी भारसे दबा हुआ मनुष्य, गर्भिणी स्त्री तथा अत्यन्त दुर्बल पुरुष सामनेसे आते हों तो स्वयं किनारे होकर उन्हें जानेके लिये रास्ता दे। राजा, ब्राह्मण तथा वैद्यसे झगड़ा न करे। ब्राह्मण और गुरु-पत्नीसे दूर ही रहना चाहिये। पतित, कोढ़ी, चाण्डाल, गोमांस-भक्षी और समाजबहिष्कृतको दूरसे ही त्याग दे। जो स्त्री दुष्टा, दुराचारिणी, कलंक लगानेवाली, सदा ही कलहसे प्रेम करनेवाली, प्रमादिनी, निडर, निर्लज्ज, बाहर घूमने-फिरनेवाली, अधिक खर्च करनेवाली और सदाचारसे हीन हो, उसको भी दूरसे ही त्याग देना चाहिये।

बुद्धिमान् शिष्यको उचित है कि वह रजस्वला अवस्थामें गुरुपत्नीको प्रणाम न करे, उसका चरण-स्पर्श न करे; यदि उस अवस्थामें भी वह उसे छू ले तो पुनः स्नान करनेसे ही उसकी शुद्धि होती है। शिष्य गुरु-पत्नीके साथ खेल-कूदमें भी भाग न ले। उसकी बात अवश्य सुने; किन्तु उसकी ओर आँख उठाकर देखे नहीं। पुत्रवधू, भाईकी स्त्री, अपनी पुत्री, गुरुपत्नी तथा अन्य किसी युवती स्त्रीकी ओर न तो देखे और न उसका स्पर्श करे। उपर्युक्त स्त्रियोंकी ओर भौंहें मटकाकर देखना, उनसे विवाद करना और अश्लील वचन बोलना सदा ही त्याज्य है। भूसी, अँगारे, हड्डी, राख, रूई निर्माल्य (देवताको अर्पण की हुई वस्तु), चिताकी लकड़ी, चिता तथा गुरुजनोंके शरीरपर कभी पैर न रखे। अपवित्र, दूसरेका उच्छिष्ट तथा दूसरेकी रसोई बनानेके लिये रखा हुआ अन्न भोजन न करे। धीर पुरुष किसी दुष्टके साथ एक क्षण भी न तो ठहरे और न यात्रा ही करे। इसी प्रकार उसे दीपककी छायामें तथा बहेड़ेके वृक्षके नीचे भी खड़ा नहीं होना चाहिये।

अपनेसे छोटेको प्रणाम न करे। चाचा और मामा आदिके आनेपर उठकर आसन दे और उनके सामने हाथ जोड़कर खड़ा रहे। जो तेल लगाये हो [किन्तु स्नान न किये हो], जिसके मुँह और हाथ जूठे हों, जो भीगे वस्त्र पहने हो, रोगी हो, समुद्रमें घुसा हो, उद्विग्न हो, भार ढो रहा हो, यज्ञ-कार्यमें लिप्त हो, स्त्रियोंके साथ क्रीड़ामें आसक्त हो, बालकके साथ खेल कर रहा हो तथा जिसके हाथोंमें फूल और कुश हों, ऐसे व्यक्तिको प्रणाम न करे। मस्तक अथवा कानोंको ढककर, जलमें खड़ा होकर, शिखा खोलकर, पैरोंको बिना धोये अथवा दक्षिणाभिमुख होकर आचमन नहीं करना चाहिये। यज्ञोपवीतसे रहित या नग्न होकर, कच्छ खोलकर अथवा एक वस्त्र धारण करके आचमन करनेवाला पुरुष शुद्ध नहीं होता। पहले तर्जनी, मध्यमा और अनामिका—तीन अँगुलियोंसे मुखका स्पर्श करे, फिर अँगूठे और तर्जनीके द्वारा नासिकाका, अँगूठे और अनामिकाके द्वारा दोनों नेत्रोंका, कनिष्ठिका और अँगूठेके द्वारा दोनों कानोंका, केवल अँगूठेसे नाभिका, करतलसे हृदयका, सम्पूर्ण अँगुलियोंसे मस्तकका तथा अँगुलियोंके अग्रभागसे दोनों बाहुओंका स्पर्श करके मनुष्य शुद्ध होता है। इस विधिसे आचमन करके मनुष्यको संयमपूर्वक रहना चाहिये। ऐसा करनेसे वह सब पापोंसे मुक्त होकर अक्षय स्वर्गका उपभोग करता है। भीगे पैर सोना, सूखे पैर भोजन करना और अँधेरेमें शयन तथा भोजन करना

निषिद्ध है। पश्चिम और दक्षिणकी ओर मुँह करके दन्तधावन न करे। उत्तर और पश्चिम दिशाकी ओर सिरहाना करके कभी न सोये; क्योंकि इस प्रकार शयन करनेसे आयु क्षीण होती है। पूर्व और दक्षिण दिशाकी ओर सिरहाना करके सोना उत्तम है। मनुष्यके एक बारका भोजन देवताओंका भाग, दूसरी बारका भोजन मनुष्योंका, तीसरी बारका भोजन प्रेतों और दैत्योंका तथा चौथी बारका भोजन राक्षसोंका भाग होता है।[१]

जो स्वर्गमें निवास करके इस लोकमें पुनः उत्पन्न हुए हैं, उनके हृदयमें नीचे लिखे चार सद्‌गुण सदा मौजूद रहते हैं—उत्तम दान देना, मीठे वचन बोलना, देवताओंका पूजन करना तथा ब्राह्मणोंको संतुष्ट रखना। इनके विपरीत कंजूसी, स्वजनोंकी निन्दा, मैले-कुचैले वस्त्र पहनना, नीच जनोंके प्रति भक्ति रखना, अत्यन्त क्रोध करना और कटुवचन बोलना—ये नरकसे लौटे हुए मनुष्योंके चिह्न हैं।[२] नवनीतके समान कोमल वाणी और करुणासे भरा कोमल हृदय—ये धर्मबीजसे उत्पन्न मनुष्योंकी पहचानके चिह्न हैं। दयाशून्य हृदय और आरीके समान मर्मस्थानोंको विदीर्ण करनेवाला तीखा वचन—ये पापबीजसे पैदा हुए पुरुषोंको पहचाननेके लक्षण हैं। जो मनुष्य इस आचार आदिसे युक्त प्रसंगको सुनता या सुनाता है, वह आचार आदिका फल पाकर पापसे शुद्ध हो स्वर्गमें जाता है और वहाँसे भ्रष्ट नहीं होता।

पितृभक्ति, पातिव्रत्य, समता, अद्रोह और विष्णुभक्तिरूप पाँच महायज्ञोंके विषयमें ब्राह्मण नरोत्तमकी कथा

भीष्मजीने कहा—ब्रह्मन्! जो कर्म सबसे अधिक पुण्यजनक हो, जो संसारमें सदा और सबको प्रिय जान पड़ता हो तथा पूर्व पुरुषोंने जिसका अनुष्ठान किया हो, ऐसा कर्म आप अपनी इच्छाके अनुसार सोचकर बताइये।

पुलस्त्यजी बोले—राजन्! एक समयकी बात है, व्यासजीकी शिष्यमण्डलीके समस्त द्विज आदरपूर्वक उन्हें प्रणाम करके धर्मकी बात पूछने लगे—ठीक इसी तरह, जैसे तुम मुझसे पूछते हो।

द्विजोंने पूछा—गुरुदेव! संसारमें पुण्यसे भी पुण्यतम और सब धर्मोंमें उत्तम कर्म क्या है? किसका अनुष्ठान करके मनुष्य अक्षय पदको प्राप्त करते हैं? मर्त्यलोकमें निवास करनेवाले छोटे-बड़े सभी वर्णोंके लोग जिसका अनुष्ठान कर सकें।

व्यासजी बोले—शिष्यगण! मैं तुमलोगोंको पाँच धर्मोंके आख्यान सुनाऊँगा। उन पाँचोंमेंसे एकका भी अनुष्ठान करके मनुष्य सुयश, स्वर्ग तथा मोक्ष भी पा सकता है। माता-पिताकी पूजा, पतिकी सेवा, सबके प्रति समान भाव, मित्रोंसे द्रोह न करना और भगवान् श्रीविष्णुका भजन करना—ये पाँच महायज्ञ हैं। ब्राह्मणो! पहले माता-पिताकी पूजा करके मनुष्य जिस धर्मका साधन करता है, वह इस पृथ्वीपर सैकड़ों यज्ञों तथा तीर्थयात्रा आदिके द्वारा भी दुर्लभ है। पिता धर्म है, पिता स्वर्ग है और पिता ही सर्वोत्कृष्ट तपस्या है। पिताके प्रसन्न हो जानेपर सम्पूर्ण देवता प्रसन्न हो जाते हैं। जिसकी सेवा और सद्‌गुणोंसे पिता-माता सन्तुष्ट रहते हैं, उस पुत्रको प्रतिदिन गंगास्नानका फल मिलता है। माता सर्वतीर्थमयी है और पिता सम्पूर्ण देवताओंका स्वरूप है; इसलिये सब प्रकारसे यत्नपूर्वक माता-पिताका पूजन करना चाहिये। जो माता-पिताकी प्रदक्षिणा करता है,

---

१-देवान्नमेकभुक्तं तु द्विभुक्तं स्यान्नरस्य च। त्रिभुक्तं प्रेतदैत्यस्य चतुर्थं कौणपस्य तु॥ (५१।१२९)

२-स्वर्गस्थितानामिह जीवलोके चत्वारि तेषां हृदये वसन्ति। दानं प्रशस्तं मधुरा च वाणी देवार्चनं ब्राह्मणतर्पणं च॥
कार्पण्यवृत्तिः स्वजनेषु निन्दा कुचैलता नीचजनेषु भक्तिः। अतीव रोषः कटुका च वाणी नरस्य चिह्नं नरकागतस्य॥ (५१।१३१-१३२)

उसके द्वारा सातों द्वीपोंसे युक्त समूची पृथ्वीकी परिक्रमा हो जाती है। माता-पिताको प्रणाम करते समय जिसके हाथ, घुटने और मस्तक पृथ्वीपर टिकते हैं, वह अक्षय स्वर्गको प्राप्त होता है।[१] जबतक माता-पिताके चरणोंकी रज पुत्रके मस्तक और शरीरमें लगती रहती है, तभीतक वह शुद्ध रहता है। जो पुत्र माता-पिताके चरणकमलोंका जल पीता है, उसके करोड़ों जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं। वह मनुष्य संसारमें धन्य है। जो नीच पुरुष माता-पिताकी आज्ञाका उल्लंघन करता है, वह महाप्रलयपर्यन्त नरकमें निवास करता है। जो रोगी, वृद्ध, जीविकासे रहित, अंधे और बहरे पिताको त्यागकर चला जाता है वह रौरव नरकमें पड़ता है।[२] इतना ही नहीं, उसे अन्त्यजों, म्लेच्छों और चाण्डालोंकी योनिमें जन्म लेना पड़ता है। माता-पिताका पालन-पोषण न करनेसे समस्त पुण्योंका नाश हो जाता है। माता-पिताकी आराधना न करके पुत्र यदि तीर्थ और देवताओंका सेवन भी करे तो उसे उसका फल नहीं मिलता।

ब्राह्मणो! इस विषयमें मैं एक प्राचीन इतिहास कहता हूँ, यत्नपूर्वक उसका श्रवण करो। इसका श्रवण करके भूतलपर फिर कभी तुम्हें मोह नहीं व्यापेगा।

पूर्वकालकी बात है—नरोत्तम नामसे प्रसिद्ध एक ब्राह्मण था। वह अपने माता-पिताका अनादर करके तीर्थसेवनके लिये चल दिया। सब तीर्थोंमें घूमते हुए उस ब्राह्मणके वस्त्र प्रतिदिन आकाशमें ही सूखते थे। इससे उसके मनमें बड़ा भारी अहंकार हो गया। वह समझने लगा, मेरे समान पुण्यात्मा और महायशस्वी दूसरा कोई नहीं है। एक दिन वह मुख ऊपरकी ओर करके यही बात कह रहा था, इतनेमें ही एक बगलेने उसके मुँहपर बीट कर दी। तब ब्राह्मणने क्रोधमें आकर उसे शाप दे दिया। बेचारा बगला राखकी ढेरी होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। बगलेकी मृत्यु होते ही नरोत्तमके भीतर महामोहने प्रवेश किया। उसी पापसे ब्राह्मणका वस्त्र अब आकाशमें नहीं ठहरता था। यह जानकर उसे बड़ा खेद हुआ। तदनन्तर आकाशवाणीने कहा—
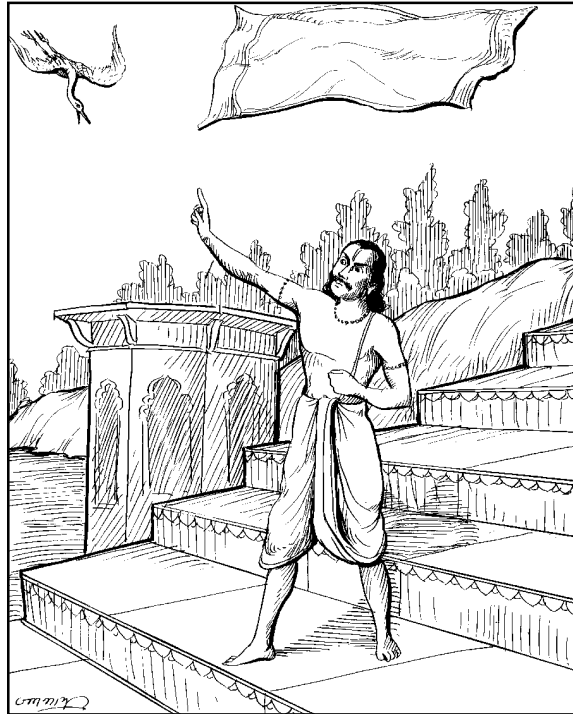
१-पित्रोरर्चाथ पत्युश्च साम्यं सर्वजनेषु च । मित्राद्रोहो विष्णुभक्तिरेते पञ्च महामखाः॥
प्राक् पित्रोरर्चया विप्रा यद्धर्मं साधयेन्नरः । न तत्क्रतुशतैरेव तीर्थयात्रादिभिर्भुवि॥
पिता धर्मः पिता स्वर्गः पिता हि परमं तपः । पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवताः॥
पितरो यस्य तृप्यन्ति सेवया च गुणेन च । तस्य भागीरथीस्नानमहन्यहनि वर्तते॥
सर्वतीर्थमयी माता सर्वदेवमयः पिता । मातरं पितरं तस्मात् सर्वयत्नेन पूजयेत्॥
मातरं पितरं चैव यस्तु कुर्यात् प्रदक्षिणम् । प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा॥
जानुनी च करौ यस्य पित्रोः प्रणमतः शिरः । निपतन्ति पृथिव्यां च सोऽक्षयं लभते दिवम्॥
(४७।७—१३)

२-रोगिणं चापि वृद्धं च पितरं वृत्तिकर्शितम् । विकलं नेत्रकर्णाभ्यां त्यक्त्वा गच्छेच्च रौरवम्॥
(४७।१९)

'ब्राह्मण! तुम परम धर्मात्मा मूक चाण्डालके पास जाओ। वहाँ जानेसे तुम्हें धर्मका ज्ञान होगा। उसका वचन तुम्हारे लिये कल्याणकारी होगा।'

यह आकाशवाणी सुनकर ब्राह्मण मूक चाण्डालके घर गया। वहाँ जाकर उसने देखा, वह चाण्डाल सब प्रकारसे अपने माता-पिताकी सेवामें लगा है। जाड़ेके दिनोंमें वह अपने माँ-बापको स्नानके लिये गरम जल देता, उनके शरीरमें तेल मलता, तापनेके लिये अँगीठी जलाता, भोजनके पश्चात् पान खिलाता और रूईदार कपड़े पहननेको देता था। प्रतिदिन मिष्टान्न भोजनके लिये परोसता और वसन्तऋतुमें महुएकी सुगन्धित माला पहनाता था। इनके सिवा और भी जो भोग-सामग्रियाँ प्राप्त होतीं, उन्हें देता और भाँति-भाँतिकी आवश्यकताएँ पूर्ण किया करता था। गर्मीके मौसममें प्रतिदिन माता-पिताको पंखा झलता था। इस प्रकार नित्यप्रति उनकी परिचर्या करके ही वह भोजन करता था। माता-पिताकी थकावट और कष्टका निवारण करना उसका सदाका नियम था। इन पुण्यकर्मोंके कारण चाण्डालका घर बिना किसी आधार और खंभेके ही आकाशमें स्थित था। उसके अंदर त्रिभुवनके स्वामी भगवान् श्रीहरि मनोहर ब्राह्मणका रूप धारण किये नित्य क्रीड़ा करते थे। वे सत्यस्वरूप परमात्मा अपने महान् सत्त्वमय तेजस्वी विग्रहसे उस चाण्डाल-मन्दिरकी शोभा बढ़ाते थे। यह सब देखकर ब्राह्मणको बड़ा विस्मय हुआ। उसने मूक चाण्डालसे कहा—'तुम मेरे पास आओ, मैं तुमसे सम्पूर्ण लोकोंके सनातन हितकी बात पूछता हूँ; उसे ठीक-ठीक बताओ।'

मूक चाण्डाल बोला—विप्र! इस समय मैं माता-पिताकी सेवा कर रहा हूँ, आपके पास कैसे आऊँ? इनकी पूजा करके आपकी आवश्यकता पूर्ण करूँगा; तबतक मेरे दरवाजेपर ठहरिये, मैं आपका अतिथि-सत्कार करूँगा।

चाण्डालके इतना कहते ही ब्राह्मण-देवता आगबबूला हो गये और बोले—'मुझ ब्राह्मणकी सेवा छोड़कर तुम्हारे लिये कौन-सा कार्य बड़ा हो सकता है।'

चाण्डाल बोला—बाबा! क्यों व्यर्थ कोप करते हैं, मैं बगला नहीं हूँ। इस समय आपका क्रोध बगलेपर ही सफल हो सकता है, दूसरे किसीपर नहीं। अब आपकी धोती न तो आकाशमें सूखती है और न ठहर ही पाती है। अत: आकाशवाणी सुनकर आप मेरे घरपर आये हैं। थोड़ी देर ठहरिये तो मैं आपके प्रश्नका उत्तर दूँगा; अन्यथा पतिव्रता स्त्रीके पास जाइये। द्विजश्रेष्ठ! पतिव्रता स्त्रीका दर्शन करनेपर आपका अभीष्ट सिद्ध होगा।

व्यासजी कहते हैं—तदनन्तर चाण्डालके घरसे ब्राह्मणरूपधारी भगवान् श्रीविष्णुने निकलकर उस द्विजसे कहा—'चलो, मैं पतिव्रता देवीके घर चलता हूँ।' द्विजश्रेष्ठ नरोत्तम कुछ सोचकर उनके साथ चल दिया। उसके मनमें बड़ा विस्मय हो रहा था। उसने रास्तेमें भगवान्से पूछा—'विप्रवर! आप इस चाण्डालके घरमें जहाँ स्त्रियाँ रहती हैं, किसलिये निवास करते हैं?'

ब्राह्मणरूपधारी भगवान्ने कहा—विप्रवर! इस समय तुम्हारा हृदय शुद्ध नहीं है; पहले पतिव्रता

आदिका दर्शन करो, उसके बाद मुझे ठीक-ठीक जान सकोगे।

ब्राह्मणने पूछा—तात! पतिव्रता कौन है? उसका शास्त्र-ज्ञान कितना बड़ा है? जिस कारण मैं उसके पास जा रहा हूँ, वह भी मुझे बतलाइये।

श्रीभगवान् बोले—ब्रह्मन्! नदियोंमें गंगाजी, स्त्रियोंमें पतिव्रता और देवताओंमें भगवान् श्रीविष्णु श्रेष्ठ हैं। जो पतिव्रता नारी प्रतिदिन अपने पतिके हितसाधनमें लगी रहती है, वह अपने पितृकुल और पतिकुल दोनों कुलोंकी सौ-सौ पीढ़ियोंका उद्धार कर देती है।[१]

ब्राह्मणने पूछा—द्विजश्रेष्ठ! कौन स्त्री पतिव्रता होती है? पतिव्रताका क्या लक्षण है? मैं जिस प्रकार इस बातको ठीक-ठीक समझ सकूँ, उस प्रकार उपदेश कीजिये।

श्रीभगवान् बोले—जो स्त्री पुत्रकी अपेक्षा सौगुने स्नेहसे पतिकी आराधना करती है, राजाके समान उसका भय मानती है और पतिको भगवान्का स्वरूप समझती है, वह पतिव्रता है। जो गृहकार्य करनेमें दासी, रमणकालमें वेश्या तथा भोजनके समय माताके समान आचरण करती है और जो विपत्तिमें स्वामीको नेक सलाह देकर मन्त्रीका काम करती है, वह स्त्री पतिव्रता मानी गयी है। जो मन, वाणी, शरीर और क्रियाद्वारा कभी पतिकी आज्ञाका उल्लंघन नहीं करती तथा हमेशा पतिके भोजन कर लेनेपर ही भोजन करती है, उस स्त्रीको पतिव्रता समझना चाहिये। जिस-जिस शय्यापर पति शयन करते हैं वहाँ-वहाँ जो प्रतिदिन यत्नपूर्वक उनकी पूजा करती है, पतिके प्रति कभी जिसके मनमें डाह नहीं पैदा होती, कृपणता नहीं आती और जो मान भी नहीं करती, पतिकी ओरसे आदर मिले या अनादर—दोनोंमें जिसकी समान बुद्धि रहती है, ऐसी स्त्रीको पतिव्रता कहते हैं। जो साध्वी स्त्री सुन्दर वेषधारी परपुरुषको देखकर उसे भ्राता, पिता अथवा पुत्र मानती है, वह भी पतिव्रता है।[२] द्विजश्रेष्ठ! तुम उस पतिव्रताके पास जाओ और उसे अपना मनोरथ कह सुनाओ। उसका नाम शुभा है। वह रूपवती युवती है, उसके हृदयमें दया भरी है। वह बड़ी यशस्विनी है। उसके पास जाकर तुम अपने हितकी बात पूछो।

व्यासजी कहते हैं—यों कहकर भगवान् वहीं अन्तर्धान हो गये। उन्हें अदृश्य होते देख ब्राह्मणको बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने पतिव्रताके घर जाकर उसके विषयमें पूछा। अतिथिकी बोली सुनकर पतिव्रता स्त्री वेगपूर्वक घरसे निकली और ब्राह्मणको आया देख दरवाजेपर खड़ी हो गयी। ब्राह्मणने उसे देखकर प्रसन्नतापूर्वक उससे कहा—'देवि! तुमने जैसा देखा और समझा है, उसके अनुसार स्वयं ही सोचकर मेरे लिये प्रिय और हितकी बात बताओ।'
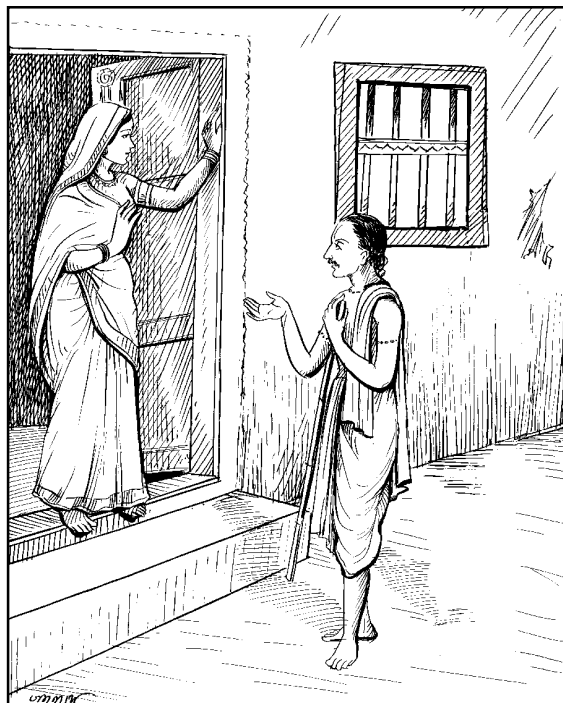
१-पतिव्रता च या नारी पत्युर्नित्यं हिते रता। कुलद्वयस्य पुरुषानुद्धरेत्सा शत शतम्॥ (४७।५१)

२-पुत्राच्छतगुणं स्नेहाद्राजानं च भयादथ। आराधयेत् पतिं शौरिं या पश्येत् सा पतिव्रता॥
कार्ये दासी रतौ वेश्या भोजने जननीसमा। विपत्सु मन्त्रिणी भर्तुः सा च भार्या पतिव्रता॥

पतिव्रता बोली—ब्रह्मन्! इस समय मुझे पतिदेवकी पूजा करनी है, अतः अवकाश नहीं है; इसलिये आपका कार्य पीछे करूँगी। इस समय मेरा आतिथ्य ग्रहण कीजिये।

ब्राह्मण बोला—कल्याणी! मेरे शरीरमें इस समय भूख, प्यास और थकावट नहीं है। मुझे अभीष्ट बात बताओ, नहीं तो तुम्हें शाप दे दूँगा।

[तब उस] पतिव्रताने (भी) कहा—'द्विजश्रेष्ठ! मैं बगला नहीं हूँ, आप धर्म-तुलाधारके पास जाइये और उन्हींसे अपने हितकी बात पूछिये।' यों कहकर वह महाभागा पतिव्रता घरके भीतर चली गयी। तब ब्राह्मणने चाण्डालके घरकी भाँति वहाँ भी विप्ररूपधारी भगवान्‌को उपस्थित देखा। उन्हें देखकर वह बड़े विस्मयमें पड़ा और कुछ सोच-विचारकर उनके समीप गया। घरमें जानेपर उसे हर्षमें भरे हुए ब्राह्मण और उस पतिव्रताके भी दर्शन हुए। उन्हें देखकर नरोत्तम ब्राह्मणने कहा—'तात! देशान्तरमें जो घटना घटी थी, उसे इस पतिव्रता देवीने भी बता दिया और चाण्डालने तो बताया ही था। ये लोग उस घटनाको कैसे जानते हैं? इस बातको लेकर मुझे बड़ा विस्मय हो रहा है। इससे बढ़कर महान् आश्चर्य और क्या हो सकता है।

श्रीभगवान् बोले—तात! महात्मा पुरुष अत्यन्त पुण्य और सदाचारके बलपर सबका कारण जान लेते हैं, जिससे तुम्हें विस्मय हुआ है। मुने! बताओ, इस समय उस पतिव्रताने तुमसे क्या कहा है?

ब्राह्मणने कहा—वह तो मुझे धर्म-तुलाधारसे प्रश्न करनेके लिये उपदेश देती है।

श्रीभगवान् बोले—'मुनिश्रेष्ठ! आओ, मैं उसके पास चलता हूँ।' यों कहकर भगवान् जब चलने लगे, तब ब्राह्मणने पूछा—'तुलाधार कहाँ रहता है?'

श्रीभगवान्‌ने कहा—जहाँ मनुष्योंकी भीड़ एकत्रित है और नाना प्रकारके द्रव्योंकी बिक्री हो रही है, उस बाजारमें तुलाधार वैश्य इधर-उधर क्रय-विक्रय करता है। उसने कभी मन, वाणी या क्रियाद्वारा किसीका कुछ बिगाड़ नहीं किया, असत्य नहीं बोला और दुष्टता नहीं की। वह सब लोगोंके हितमें तत्पर रहता है। सब प्राणियोंमें समान भाव रखता तथा ढेले, पत्थर और सुवर्णको समान समझता है। लोग जौ, नमक, तेल, घी, अनाजकी ढेरियाँ तथा अन्यान्य संगृहीत वस्तुएँ उसकी जबानपर ही लेते-देते हैं। वह प्राणान्त उपस्थित होनेपर भी सत्य छोड़कर कभी झूठ नहीं बोलता। इसीसे वह धर्म-तुलाधार कहलाता है।

श्रीभगवान्‌के यों कहनेपर ब्राह्मणने नाना प्रकारके रसोंको बेचते हुए तुलाधारको देखा। वह बिक्रीकी वस्तुओंके सम्बन्धमें बातें कर रहा था। बहुत-से पुरुष और स्त्रियाँ उसे चारों ओरसे घेरकर खड़ी थीं। ब्राह्मणको उपस्थित देख तुलाधारने मधुर वाणीमें पूछा—'ब्रह्मन्! यहाँ कैसे पधारना हुआ?'

ब्राह्मणने कहा—मुझे धर्मका उपदेश करो, मैं इसीलिये तुम्हारे पास आया हूँ।

तुलाधार बोला—विप्रवर! जबतक लोग मेरे पास रहेंगे, तबतक मैं निश्चिन्त नहीं हो सकूँगा। पहरभर राततक यही हालत रहेगी। अतः आप मेरा उपदेश मानकर धर्माकरके पास जाइये। बगलेकी मृत्युसे होनेवाला दोष और आकाशमें धोती सुखानेका रहस्य—ये सभी बातें आगे आपको मालूम हो जायँगी। धर्माकरका नाम अद्रोहक है। वे बड़े सज्जन हैं। उनके पास जाइये। वहाँ उनके उपदेशसे आपकी कामना सफल होगी।

भर्तुराज्ञां न लङ्घेद्या मनोवाक्कायकर्मभिः। भुक्ते पतौ सदा चात्ति सा च भार्या पतिव्रता॥
यस्यां यस्यां तु शय्यायां पतिस्स्वपिति यत्नतः। तत्र तत्र च सा भर्तुरर्चां करोति नित्यशः॥
नैव मत्सरतां याति न कार्पण्यं नमानिनी। मानेऽमाने समानत्वं या पश्येत् सा पतिव्रता॥
सुवेषं या नरं दृष्ट्वा भ्रातरं पितरं सुतम्। मन्यते च परं साध्वी सा च भार्या पतिव्रता॥
(४७। ५५—६०)

यों कहकर तुलाधार खरीद-बिक्रीमें लग गया। नरोत्तमने विप्ररूपधारी भगवान्‌से पूछा—'तात! अब मैं तुलाधारके कथनानुसार सज्जन अद्रोहकके पास जाऊँगा। परन्तु मैं उनका घर नहीं जानता।'

श्रीभगवान् बोले—चलो, मैं तुम्हारे साथ उनके घर चलूँगा।

तदनन्तर मार्गमें जाते हुए भगवान्‌से ब्राह्मणने पूछा—'तात! तुलाधार न तो देवताओं एवं ऋषियोंका और न पितरोंका ही तर्पण करता है। फिर देशान्तरमें संघटित हुए मेरे वृत्तान्तको वह कैसे जानता है? इससे मुझे बड़ा विस्मय होता है। आप इसका सब कारण बताइये।

श्रीभगवान् बोले—ब्रह्मन्! उसने सत्य और समतासे तीनों लोकोंको जीत लिया है; इसीसे उसके ऊपर पितर, देवता तथा मुनि भी सन्तुष्ट रहते हैं। धर्मात्मा तुलाधार उपर्युक्त गुणोंके कारण ही भूत और भविष्यकी सब बातें जानता है। सत्यसे बढ़कर कोई धर्म और झूठसे बड़ा दूसरा कोई पाप नहीं है।* जो पुरुष पापसे रहित और समभावमें स्थित है, जिसका चित्त शत्रु, मित्र और उदासीनके प्रति समान है, उसके सब पापोंका नाश हो जाता है और वह भगवान् श्रीविष्णुके सायुज्यको प्राप्त होता है। समता धर्म और समता ही उत्कृष्ट तपस्या है। जिसके हृदयमें सदा समता विराजती है, वही पुरुष सम्पूर्ण लोकोंमें श्रेष्ठ, योगियोंमें गणना करनेके योग्य और निर्लोभ होता है। जो सदा इसी प्रकार समतापूर्ण बर्ताव करता है, वह अपनी अनेकों पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। उस पुरुषमें सत्य, इन्द्रिय-संयम, मनोनिग्रह, धीरता, स्थिरता, निर्लोभता और आलस्यहीनता—ये सभी गुण प्रतिष्ठित होते हैं। समताके प्रभावसे धर्मज्ञ पुरुष देवलोक और मनुष्य-लोकके सम्पूर्ण वृत्तान्तोंको जान लेता है। उसकी देहके भीतर भगवान् श्रीविष्णु विराजमान रहते हैं। सत्य और सरलता आदि गुणोंमें उसकी समानता करनेवाला इस संसारमें दूसरा कोई नहीं होता। वह साक्षात् धर्मका स्वरूप होता है और वही इस जगत्‌को धारण करता है।

ब्राह्मणने कहा—विप्रवर! आपकी कृपासे मुझे तुलाधारके सर्वज्ञ होनेका कारण ज्ञात हो गया; अब अद्रोहकका जो वृत्तान्त हो, वह मुझे बताइये।

श्रीभगवान् बोले—विप्रवर! पूर्वकालकी बात है, एक राजपुत्रकी कुलवती स्त्री बड़ी सुन्दरी और नयी अवस्थाकी थी। वह कामदेवकी पत्नी रति और इन्द्रकी पत्नी शचीके समान मनको हरनेवाली थी। राजकुमार उसे अपने प्राणोंके समान प्यार करते थे। उस सुन्दरी भार्याका नाम भी सुन्दरी ही था। एक दिन राजकुमारको राजकार्यके लिये ही अकस्मात् बाहर जानेके लिये उद्यत होना पड़ा। उन्होंने मन-ही-मन सोचा—'मैं प्राणोंसे भी बढ़कर प्यारी अपनी इस भार्याको किस स्थानपर रखूँ, जिससे इसके सतीत्वकी रक्षा निश्चितरूपसे हो सके।' इस बातपर खूब विचार करके राजकुमार सहसा अद्रोहकके घरपर आये और उनसे अपनी पत्नीकी रक्षाका प्रस्ताव करने लगे। उनकी बात सुनकर अद्रोहकको बड़ा विस्मय हुआ। वे बोले—'तात! न तो मैं आपका पिता हूँ, न भाई हूँ, न बान्धव हूँ, न आपकी पत्नीके पिता-माताके कुलका ही; तथा सुहृदोंमेंसे भी कोई नहीं हूँ, फिर मेरे घरमें इसको रखनेसे आप किस प्रकार निश्चिन्त हो सकेंगे?'

राजकुमार बोले—महात्मन्! इस संसारमें आपके समान धर्मज्ञ और जितेन्द्रिय पुरुष दूसरा कोई नहीं है।

यह सुनकर अद्रोहकने उस विज्ञ राजकुमारसे कहा—'भैया! मुझे दोष न देना। इस त्रिभुवन-मोहिनी भार्याकी रक्षा करनेमें कौन पुरुष समर्थ हो सकता है।'

---

* सत्येन समभावेन जितं तेन जगत्त्रयम्। तेनातृप्यन्त पितरो देवा मुनिगणैः सह॥
भूतभव्यप्रवृत्तं च तेन जानाति धार्मिकः। नास्ति सत्यात्परो धर्मो नानृतात्पातकं परम्॥
(४७। ९२-९३)

राजपुत्रने कहा—मैं सब बातोंका भलीभाँति विचार करके ही आपके पास आया हूँ। यह आपके घरमें रहे, अब मैं जाता हूँ।

राजकुमारके यों कहनेपर वे फिर बोले—'भैया! इस शोभासम्पन्न नगरमें बहुतेरे कामी पुरुष भरे पड़े हैं। यहाँ किसी स्त्रीके सतीत्वकी रक्षा कैसे हो सकती है।' राजकुमार पुनः बोले—'जैसे भी हो, रक्षा कीजिये। मैं तो अब जाता हूँ।' गृहस्थ अद्रोहकने धर्मसंकटमें पड़कर कहा—'तात! मैं उचित और हितकारी समझकर इसके साथ सदा अनुचित बर्ताव करूँगा और उसी अवस्थामें ऐसी स्त्री सदा मेरे घरमें सुरक्षित रह सकती है। अन्यथा इस अरक्ष्य वस्तुकी रक्षाके लिये आप ही कोई अनुकूल और प्रिय उपाय बतलाइये। इसे मेरी शय्यापर मेरे एक ओर मेरी स्त्रीके साथ शयन करना होगा। फिर भी यदि आप इसे अपनी वल्लभा समझें, तब तो यह रह सकती है; नहीं तो यहाँसे चली जाय।'

यह सुनकर राजकुमारने एक क्षणतक कुछ विचार किया; फिर बोले—'तात! मुझे आपकी बात स्वीकार है। आपको जो अनुकूल जान पड़े, वही कीजिये।' ऐसा कहकर राजकुमार अपनी पत्नीसे बोले—'सुन्दरी! तुम इनके कथनानुसार सब कार्य करना, तुमपर कोई दोष नहीं आयेगा। इसके लिये मेरी आज्ञा है।' यों कहकर वे अपने पिता महाराजके आदेशसे गन्तव्य स्थानको चले गये। तदनन्तर रातमें अद्रोहकने जैसा कहा था, वैसा ही किया। वे धर्मात्मा नित्यप्रति दोनों स्त्रियोंके बीचमें शयन करते थे। फिर भी वे अपनी और परायी स्त्रीके विषयमें कभी धर्मसे विचलित नहीं होते थे। अपनी स्त्रीके स्पर्शसे ही उनके मनमें कामोपभोगकी इच्छा होती थी। इधर राजकुमारकी स्त्रीके स्तन भी बार-बार उनकी पीठमें लग जाते थे; किन्तु उसका उनके प्रति वैसा ही भाव होता था, जैसा बालक पुत्रका माताके स्तनोंके प्रति होता है। वे प्रतिदिन उसके प्रति मातृभावको ही दृढ़ रखते थे। क्रमशः उनके हृदयसे स्त्री-संभोगकी इच्छा ही जाती रही। इस प्रकार छः मास व्यतीत होनेपर राजकुमारीके पति अद्रोहकके नगरमें आये। उन्होंने लोगोंसे अद्रोहक तथा अपनी स्त्रीके बर्तावके सम्बन्धमें पूछा। लोगोंने भी अपनी-अपनी रुचिके अनुसार उत्तर दिया। कोई राजकुमारके प्रबन्धको उत्तम बताते थे। कुछ नौजवान उनकी बात सुनकर आश्चर्यमें पड़ जाते थे और कुछ लोग इस प्रकार उत्तर देते थे—'भाई! तुमने अपनी स्त्री उसे सौंप दी है और वह उसीके साथ शयन करता है। स्त्री और पुरुषमें एकत्र संसर्ग होनेपर दोनोंके मन शान्त कैसे रह सकते हैं।' अद्रोहकने अपने धर्माचरणके बलसे लोगोंकी कुत्सित चर्चा सुन ली। तब उनके मनमें लोकनिन्दासे मुक्त होनेका शुभ संकल्प प्रकट हुआ। उन्होंने स्वयं लकड़ी एकत्रित करके एक बहुत बड़ी चिता बनायी और उसमें आग लगा दी। चिता प्रज्वलित हो उठी। इसी समय प्रतापी राजकुमार अद्रोहकके घर आ पहुँचे। वहाँ उन्होंने अद्रोहक तथा अपनी पत्नीको भी देखा। पत्नीका मुख प्रसन्नतासे खिला हुआ था और अद्रोहक अत्यन्त विषादयुक्त थे। उन दोनोंकी मानसिक स्थिति जानकर राजकुमारने कहा—'भाई! मैं आपका मित्र हूँ और बहुत दिनोंके बाद यहाँ लौटा हूँ। आप मुझसे बातचीत क्यों नहीं करते?'

अद्रोहकने कहा—मित्र! मैंने आपके हितके लिये जो दुष्कर कर्म किया है, वह लोक-निन्दाके कारण व्यर्थ-सा हो गया है। अतः अब मैं अग्निमें प्रवेश करूँगा। सम्पूर्ण देवता और मनुष्य मेरे इस कार्यको देखें।

श्रीभगवान् कहते हैं—ऐसा कहकर महाभाग अद्रोहक अग्निमें प्रवेश कर गये। किन्तु अग्नि उनके शरीर, वस्त्र और केशोंको जला नहीं सका। आकाशमें खड़े समस्त देवता प्रसन्न होकर उन्हें साधुवाद देने लगे। सबने चारों ओरसे उनके मस्तकपर फूलोंकी वर्षा की। जिन-जिन लोगोंने राजकुमारकी पत्नी और अद्रोहकके सम्बन्धमें कलंकपूर्ण बात कही थी, उनके मुँहपर नाना प्रकारकी कोढ़ हो गयी। देवताओंने वहाँ उपस्थित हो अद्रोहकको आगसे खींचकर बाहर निकाला और प्रसन्नतापूर्वक दिव्य पुष्पोंसे उनका पूजन किया। उनका चरित्र सुनकर मुनियोंको भी बड़ा विस्मय हुआ। समस्त मुनिवरों तथा विभिन्न वर्णोंके मनुष्योंने उन महातेजस्वी महात्माका पूजन किया और उन्होंने भी सबका विशेष आदर किया। उस समय देवताओं, असुरों और मनुष्योंने मिलकर उनका नाम सज्जनाद्रोहक रखा। उनके चरणोंकी धूलिसे पवित्र हुई भूमिके ऊपर खेतीकी उपज अधिक होने लगी। देवताओंने राजकुमारसे कहा—'तुम अपनी इस स्त्रीको स्वीकार करो। इन अद्रोहकके समान कोई मनुष्य इस संसारमें नहीं हुआ है। इस समय इस पृथ्वीपर दूसरा कोई ऐसा पुरुष नहीं है, जिसे काम और लोभने परास्त न किया हो। देवता, असुर, मनुष्य, राक्षस, मृग, पक्षी और कीट आदि सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये यह काम दुर्जय है। काम, लोभ और क्रोधके कारण ही प्राणियोंको सदा जन्म लेना पड़ता है। काम ही संसार-बन्धनमें डालनेवाला है। प्रायः कहीं भी कामरहित पुरुषका मिलना कठिन है। इन अद्रोहकने सबको जीत लिया है; चौदहों भुवनोंपर विजय प्राप्त की है। इनके हृदयमें भगवान् श्रीवासुदेव बड़ी प्रसन्नताके साथ नित्य विराजमान रहते हैं। इनका स्पर्श और दर्शन करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं और निष्पाप होकर अक्षय स्वर्ग प्राप्त करते हैं।'

यों कहकर देवता विमानोंपर बैठ आनन्दपूर्वक स्वर्गलोकको पधारे। मनुष्य भी सन्तुष्ट होकर अपने-अपने स्थानको चल दिये तथा वे दोनों स्त्री-पुरुष भी अपने राजमहलको चले गये। तबसे अद्रोहकको दिव्य दृष्टि प्राप्त हो गयी है। वे देवताओंको भी देखते हैं और तीनों लोकोंकी बातें अनायास ही जान लेते हैं।

व्यासजी कहते हैं—तदनन्तर अद्रोहककी गलीमें जाकर द्विजने उनका दर्शन किया और बड़ी प्रसन्नताके साथ उनसे धर्ममय उपदेश तथा हितकी बातें पूछीं।

सज्जनाद्रोहकने कहा—धर्मज्ञ ब्राह्मण! आप पुरुषोंमें श्रेष्ठ वैष्णवके पास जाइये। उनका दर्शन करनेसे इस समय आपका मनोरथ सफल होगा। बगलेकी मृत्यु तथा आकाशमें वस्त्रके न सूखने आदिका कारण आपको विदित हो जायगा। इसके सिवा आपके हृदयमें और भी जो-जो कामनाएँ हैं, उनकी भी पूर्ति हो जायगी।

यह सुनकर वह ब्राह्मण द्विजरूपधारी भगवान्‌के साथ प्रसन्नतापूर्वक वैष्णवके यहाँ आया। वहाँ पहुँचकर उसने सामने बैठे हुए शुद्ध हृदयवाले एक तेजस्वी पुरुषको देखा, जो समस्त शुद्ध लक्षणोंसे सम्पन्न एवं अपने तेजसे देदीप्यमान थे। धर्मात्मा द्विजने ध्यानमग्न हरिभक्तसे कहा—'महात्मन्! मैं बहुत दूरसे आपके पास आया हूँ। मेरे लिये जो-जो कर्तव्य उचित हो, उसका उपदेश कीजिये।'

वैष्णवने कहा—देवताओंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीविष्णु तुमपर प्रसन्न हैं। इस समय तुम्हें देखकर मेरा हृदय उल्लसित-सा हो रहा है। अतः तुम्हें अनुपम कल्याणकी प्राप्ति होगी। आज तुम्हारा मनोरथ सफल होगा। मेरे घरमें भगवान् श्रीविष्णु विराजमान हैं।

वैष्णवके यों कहनेपर ब्राह्मणने पुनः उनसे कहा—'भगवान् श्रीविष्णु कहाँ हैं, आज कृपा करके मुझे उनका दर्शन कराइये।'

वैष्णवने कहा—इस सुन्दर देवालयमें प्रवेश करके तुम परमेश्वरका दर्शन करो। ऐसा करनेसे तुम्हें जन्म और मृत्युके बन्धनमें डालनेवाले घोर पापसे छुटकारा मिल जायगा।

उनकी बात सुनकर जब ब्राह्मणने देवमन्दिरमें प्रवेश किया तो देखा—वे ही विप्ररूपधारी भगवान् कमलके आसनपर विराजमान हैं। ब्राह्मणने मस्तक झुकाकर उन्हें प्रणाम किया और बड़ी प्रसन्नताके साथ उनके दोनों चरण पकड़कर कहा—'देवेश्वर! अब मुझपर प्रसन्न होइये। मैंने पहले आपको नहीं पहचाना था। प्रभो! इस लोक और परलोकमें भी मैं आपका किंकर बना रहूँ। मधुसूदन! मुझे अपने ऊपर आपका प्रत्यक्ष अनुग्रह दिखायी दिया है। यदि मुझपर कृपा हो तो मैं आपका साक्षात् स्वरूप देखना चाहता हूँ।'

भगवान् श्रीविष्णु बोले—भूदेव! तुम्हारे ऊपर मेरा प्रेम सदा ही बना रहता है। मैंने स्नेहवश ही तुम्हें पुण्यात्मा महापुरुषोंका दर्शन कराया है। पुण्यवान् महात्माओंके एक बार भी दर्शन, स्पर्श, ध्यान एवं नामोच्चारण करनेसे तथा उनके साथ वार्तालाप करनेसे मनुष्य अक्षय स्वर्गका सुख भोगता है। महापुरुषोंका नित्य संग करनेसे सब पापोंका नाश हो जाता है तथा मनुष्य अनन्त सुख भोगकर मेरे स्वरूपमें लीन होता है।[1] जो मनुष्य पुण्य-तीर्थोंमें स्नान करके शंकरजी तथा पुण्यात्मा पुरुषोंके आश्रमका दर्शन करता है, वह भी मेरे शरीरमें लीन हो जाता है। एकादशी तिथिको—जो मेरा ही दिन (हरिवासर) है—उपवास करके जो लोगोंके सामने पुण्यमयी कथा कहता है, वह भी मेरे स्वरूपमें लीन हो जाता है। मेरे चरित्रका श्रवण करते हुए जो रात्रिमें जागता है, उसका भी मेरे शरीरमें लय होता है। विप्रवर! जो प्रतिदिन ऊँचे स्वरसे गीत गाते और बाजा बजाते हुए मेरे नामोंका स्मरण करता है, उसका भी मेरी देहमें लय होता है। जिसका मन तपस्वी, राजा और गुरुजनोंसे कभी द्रोह नहीं करता, वह भी मेरे स्वरूपमें लीन होता है। तुम मेरे भक्त और तीर्थस्वरूप हो; किन्तु तुमने बगलेकी मृत्युके लिये जो शाप दिया था, उसके दोषसे छुटकारा दिलानेके लिये मैंने ही वहाँ उपस्थित होकर कहा कि 'तुम पुण्यवानोंमें श्रेष्ठ और तीर्थस्वरूप महात्मा मूक चाण्डालके पास जाओ।' तात! उस महात्माका दर्शन करके तुमने देखा ही था कि वह किस प्रकार अपने माता-पिताका पूजन करता था। उन सभी महात्माओंके दर्शनसे, उनके साथ वार्तालाप करनेसे और मेरा सम्पर्क होनेसे आज तुम मेरे मन्दिरमें आये हो। करोड़ों जन्मोंके बाद जिसके पापोंका क्षय होता है, वह धर्मज्ञ पुरुष मेरा दर्शन करता है, जिससे उसे प्रसन्नता प्राप्त होती है। वत्स! मेरे ही अनुग्रहसे तुमको मेरा दर्शन हुआ है। इसलिये तुम्हारे मनमें जो इच्छा हो, उसके अनुसार मुझसे वरदान माँग लो।

ब्राह्मण बोला—नाथ! मेरा मन सर्वथा आपके ही ध्यानमें स्थित रहे, सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी माधव! आपके सिवा कोई भी दूसरी वस्तु मुझे कभी प्रिय न लगे।

श्रीभगवान्ने कहा—निष्पाप ब्राह्मण! तुम्हारी बुद्धिमें सदा ऐसा उत्तम विचार जाग्रत् रहता है; इसलिये तुम मेरे धाममें आकर मेरे ही समान दिव्य भोगोंका उपभोग करोगे। किन्तु तुम्हारे माता-पिता तुमसे आदर नहीं पा रहे हैं; अतः पहले माता-पिताकी पूजा करो, इसके बाद मेरे स्वरूपको प्राप्त हो सकोगे! उनके दुःखपूर्ण उच्छ्वास और क्रोधसे तुम्हारी तपस्या प्रतिदिन नष्ट हो रही है। जिस पुत्रके ऊपर सदा ही माता-पिताका कोप रहता है, उसको नरकमें पड़नेसे मैं, ब्रह्मा तथा महादेवजी भी नहीं रोक सकते[2]। इसलिये तुम माता-पिताके पास जाओ और यत्नपूर्वक उनकी पूजा करो। फिर उन्हींकी कृपासे तुम मेरे पदको प्राप्त होगे।

१-दर्शनात्स्पर्शनाद्ध्यानात्कीर्तनाद्भाषणात्तथा । सकृत्पुण्यवतामेव स्वर्गं चाक्षयमश्नुते॥
नित्यमेव तु संसर्गात् सर्वपापक्षयो भवेत्। भुक्त्वा सुखमनन्तं च मद्देहे प्रविलीयते॥
(४७। १६२-१६३)

२-मन्युर्निपतिते यस्मिन् पुत्रे पित्रोश्च नित्यशः। तन्निरयं न बाधेऽहं न धाता न च शंकरः॥
(४७। १७८)

व्यासजी कहते हैं—जगद्‌गुरु भगवान्‌के ऐसा कहनेपर द्विजश्रेष्ठ नरोत्तमने फिर इस प्रकार कहा—'नाथ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझे अपने स्वरूपका दर्शन कराइये।' तब सम्पूर्ण लोकोंके एकमात्र कर्ता एवं ब्राह्मण-हितैषी भगवान्‌ने नरोत्तमके प्रेमसे प्रसन्न होकर उस पुण्यकर्मा ब्राह्मणको शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये अपने पुरुषोत्तम रूपका दर्शन कराया। उनके तेजसे सम्पूर्ण जगत् व्याप्त हो रहा था। ब्राह्मणने दण्डकी भाँति धरतीपर गिरकर भगवान्‌को प्रणाम किया और कहा—'जगदीश्वर! आज मेरा जन्म सफल हुआ; आज मेरे नेत्र कल्याणमय हो गये। इस समय मेरे

दोनों हाथ प्रशस्त हो गये। आज मैं भी धन्य हो गया। मेरे पूर्वज सनातन ब्रह्मलोकको जा रहे हैं। जनार्दन! आज आपकी कृपासे मेरे बन्धु-बान्धव आनन्दित हो रहे हैं! इस समय मेरे सभी मनोरथ सिद्ध हो गये। किन्तु नाथ! मूक चाण्डाल आदि ज्ञानी महात्माओंकी बात सोचकर मुझे बड़ा विस्मय हो रहा है। भला, वे लोग देशान्तरमें होनेवाले मेरे वृत्तान्तको कैसे जानते हैं? मूक चाण्डालके घरमें आप अत्यन्त सुन्दर ब्राह्मणका रूप धारण किये विराजमान थे; इसी प्रकार पतिव्रताके घरमें, तुलाधारके यहाँ, मित्राद्रोहकके भवनमें तथा इन वैष्णव महात्माके मन्दिरमें भी आपका दर्शन हुआ है। इन सब बातोंका यथार्थ रहस्य क्या है? मुझपर अनुग्रह करके बताइये।'

श्रीभगवान्‌ने कहा—विप्रवर! मूक चाण्डाल सदा अपने माता-पितामें भक्ति रखता है। शुभा देवी पतिव्रता है। तुलाधार सत्यवादी है और सब लोगोंके प्रति समान भाव रखता है। अद्रोहकने लोभ और कामपर विजय पायी है तथा वैष्णव मेरा अनन्य भक्त है। इन्हीं सद्‌गुणोंके कारण प्रसन्न होकर मैं इन सबके घरमें सानन्द निवास करता हूँ। मेरे साथ सरस्वती और लक्ष्मी भी इन लोगोंके यहाँ मौजूद रहती हैं। मूक चाण्डाल त्रिभुवनमें सबका कल्याण करनेवाला है। चाण्डाल होनेपर भी वह सदाचारमें स्थित है; इसलिये देवता उसे ब्राह्मण मानते हैं। पुण्य-कर्मद्वारा मूक चाण्डालकी समानता करनेवाला इस संसारमें दूसरा कोई नहीं है। वह सदा माता-पिताकी भक्तिमें संलग्न रहता है। उसने [अपनी इस भक्तिके बलसे] तीनों लोकोंको जीत लिया है। उसकी माता-पिताके प्रति भक्ति देखकर मैं बहुत सन्तुष्ट रहता हूँ और इसीलिये उसके घरके भीतर आकाशमें सम्पूर्ण देवताओंके साथ ब्राह्मणरूपसे निवास करता हूँ। इसी प्रकार मैं उस पतिव्रताके, तुलाधारके, अद्रोहकके और इस वैष्णवके घरमें भी सदा निवास करता हूँ। धर्मज्ञ! एक मुहूर्तके लिये भी मैं इन लोगोंका घर नहीं छोड़ता। जो पुण्यात्मा हैं, वे ही मेरा प्रतिदिन दर्शन पाते हैं; दूसरे पापी मनुष्य नहीं। तुमने अपने पुण्यके प्रभावसे और मेरे अनुग्रहके कारण मेरा दर्शन किया है; अब मैं क्रमशः उन महात्माओंके सदाचारका वर्णन करूँगा, तुम ध्यान देकर सुनो। ऐसे वर्णनोंको सुनकर मनुष्य जन्म और मृत्युके बन्धनसे सर्वथा मुक्त हो जाता है। देवताओंमें भी, पिता और मातासे बढ़कर तीर्थ नहीं है। जिसने माता-पिताकी आराधना की है, वही पुरुषोंमें श्रेष्ठ है। वह मेरे हृदयमें रहता है और मैं उसके हृदयमें। हम दोनोंमें कोई अन्तर नहीं रह जाता। इहलोक और परलोकमें भी वह मेरे ही समान पूज्य है। वह

अपने समस्त बन्धु-बान्धवोंके साथ मेरे रमणीय धाममें पहुँचकर मुझमें ही लीन हो जाता है। माता-पिताकी आराधनाके बलसे ही वह नरश्रेष्ठ मूक चाण्डाल तीनों लोकोंकी बातें जानता है। फिर इस विषयमें तुम्हें विस्मय क्यों हो रहा है?

ब्राह्मणने पूछा—जगदीश्वर! मोह और अज्ञानवश पहले माता-पिताकी आराधना न करके फिर भले-बुरेका ज्ञान होनेपर यदि मनुष्य पुनः माता-पिताकी सेवा करना चाहे तो उसके लिये क्या कर्तव्य है?

श्रीभगवान् बोले—विप्रवर! एक वर्ष, एक मास, एक पक्ष, एक सप्ताह अथवा एक दिन भी जिसने माता-पिताकी भक्ति की है, वह मेरे धामको प्राप्त होता है।* तथा जो उनके मनको कष्ट पहुँचाता है, वह अवश्य नरकमें पड़ता है। जिसने पहले अपने माता-पिताकी पूजा की हो या न की हो, यदि उनकी मृत्युके पश्चात् वह साँड़ छोड़ता है, तो उसे पितृभक्तिका फल मिल जाता है। जो बुद्धिमान् पुत्र अपना सर्वस्व लगाकर माता-पिताका श्राद्ध करता है, वह जातिस्मर (पूर्वजन्मकी बातोंको स्मरण करनेवाला) होता है और उसे पितृ-भक्तिका पूरा फल मिल जाता है। श्राद्धसे बढ़कर महान् यज्ञ तीनों लोकोंमें दूसरा कोई नहीं है। इसमें जो कुछ दान दिया जाता है, वह सब अक्षय होता है। दूसरोंको जो दान दिया जाता है; उसका फल दस हजारगुना होता है। अपनी जातिवालोंको देनेसे लाख-गुना, पिण्डदानमें लगाया हुआ धन करोड़गुना और ब्राह्मणको देनेपर वह अनन्त गुना फल देनेवाला बताया गया है। जो गंगाजीके जलमें और गया, प्रयाग, पुष्कर, काशी, सिद्धकुण्ड तथा गंगा-सागर-संगम तीर्थमें पितरोंके लिये अन्नदान करता है, उसकी मुक्ति निश्चित है तथा उसके पितर अक्षय स्वर्ग प्राप्त करते हैं। उनका जन्म सफल हो जाता है। जो विशेषतः गंगाजीमें तिलमिश्रित जलके द्वारा तर्पण करता है, उसे भी मोक्षका मार्ग मिल जाता है। फिर जो पिण्डदान करता है, उसके लिये तो कहना ही क्या है। अमावास्या और युगादि तिथियोंको तथा चन्द्रमा और सूर्य-ग्रहणके दिन जो पार्वण श्राद्ध करता है, वह अक्षय लोकका भागी होता है। उसके पितर उसे प्रिय आशीर्वाद और अनन्त भोग प्रदान करके दस हजार वर्षोंतक तृप्त रहते हैं। इसलिये प्रत्येक पर्वपर पुत्रोंको प्रसन्नतापूर्वक पार्वण श्राद्ध करना चाहिये। माता-पिताके इस श्राद्ध-यज्ञका अनुष्ठान करके मनुष्य सब प्रकारके बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है।

जो श्राद्ध प्रतिदिन किया जाता है, उसे नित्य श्राद्ध माना गया है। जो पुरुष श्रद्धापूर्वक नित्य श्राद्ध करता है, वह अक्षय लोकका उपभोग करता है। इसी प्रकार कृष्णपक्षमें विधिपूर्वक काम्य श्राद्धका अनुष्ठान करके मनुष्य मनोवांछित फल प्राप्त करता है। आषाढ़की पूर्णिमाके बाद जो पाँचवाँ पक्ष आता है, [जिसे महालय या पितृपक्ष कहते हैं] उसमें पितरोंका श्राद्ध करना चाहिये। उस समय सूर्य कन्याराशिपर गये हैं या नहीं—इसका विचार नहीं करना चाहिये। जब सूर्य कन्याराशिपर स्थित होते हैं, उस समयसे लेकर सोलह दिन उत्तम दक्षिणाओंसे सम्पन्न यज्ञोंके समान महत्त्व रखते हैं। उन दिनोंमें इस परम पवित्र काम्य श्राद्धका अनुष्ठान करना उचित है। इससे श्राद्धकर्ताका मंगल होता है। यदि उस समय श्राद्ध न हो सके तो जब सूर्य तुलाराशिपर स्थित हों, उसी समय कृष्णपक्ष आदिमें उक्त श्राद्ध करना उचित है।

चन्द्रग्रहणके समय सभी दान भूमिदानके समान होते हैं, सभी ब्राह्मण व्यासके समान माने जाते हैं और समस्त जल गंगाजलके तुल्य हो जाता है। चन्द्रग्रहणमें दिया हुआ दान और समयकी अपेक्षा लाखगुना तथा सूर्यग्रहणका दस लाखगुना अधिक फल देनेवाला बताया गया है। और यदि गंगाजीका जल प्राप्त हो जाय, तब तो चन्द्रग्रहणका दान करोड़गुना और सूर्यग्रहणमें दिया हुआ दान दस करोड़गुना अधिक फल देनेवाला होता है। विधिपूर्वक एक लाख गोदान करनेसे जो फल प्राप्त

* दिनैकं मासपक्षं वा पक्षार्द्धं वापि वत्सरम्। पित्रोर्भक्तिः कृता येन स च गच्छेन्ममालयम्॥ (४७। २०८)

होता है, वह चन्द्रग्रहणके समय गंगाजीमें स्नान करनेसे मिल जाता है। जो चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणमें गंगाजीके जलमें डुबकी लगाता है, उसे सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करनेका फल प्राप्त होता है। यदि रविवारको सूर्यग्रहण और सोमवारको चन्द्रग्रहण हो तो वह चूड़ामणि नामक योग कहलाता है; उसमें स्नान और दानका अनन्त फल माना गया है। उस समय पुण्य तीर्थमें पहले उपवास करके जो पुरुष पिण्डदान, तर्पण तथा धन-दान करता है, वह सत्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

ब्राह्मणने पूछा—देव! आपने पिताके लिये किये जानेवाले श्राद्ध नामक महायज्ञका वर्णन किया। अब यह बताइये कि पुत्रको पिताके जीते-जी क्या करना चाहिये; कौन-सा कर्म करके बुद्धिमान् पुत्रको जन्म-जन्मान्तरोंमें परम कल्याणकी प्राप्ति हो सकती है। ये सब बातें यत्नपूर्वक बतानेकी कृपा कीजिये।

श्रीभगवान् बोले—विप्रवर! पिताको देवताके समान समझकर उनकी पूजा करनी चाहिये और पुत्रकी भाँति उनपर स्नेह रखना चाहिये। कभी मनसे भी उनकी आज्ञाका उल्लंघन नहीं करना चाहिये। जो पुत्र रोगी पिताकी भलीभाँति परिचर्या करता है, उसे अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति होती है और वह सदा देवताओंद्वारा पूजित होता है। पिता जब मरणासन्न होकर मृत्युके लक्षण देख रहे हों, उस समय भी उनका पूजन करके पुत्र देवताओंके समान हो जाता है। [पिताकी सद्गतिके निमित्त] विधिपूर्वक उपवास करनेसे जो लाभ होता है, अब उसका वर्णन करता हूँ; सुनो। हजार अश्वमेध और सौ राजसूय यज्ञ करनेसे जो पुण्य होता है, वही पुण्य [पिताके निमित्त] उपवास करनेसे प्राप्त होता है। वही उपवास यदि तीर्थमें किया जाय तो उन दोनों यज्ञोंसे करोड़गुना अधिक फल होता है। जिस श्रेष्ठ पुरुषके प्राण गंगाजीके जलमें छूटते हैं, वह पुनः माताके दूधका पान नहीं करता, वरं मुक्त हो जाता है। जो अपने इच्छानुसार काशीमें रहकर प्राण-त्याग करता है, वह मनोवांछित फल भोगकर मेरे स्वरूपमें लीन हो जाता है।[1] योगयुक्त नैष्ठिक ब्रह्मचारी मुनियोंको जिस गतिकी प्राप्ति होती है, वही गति ब्रह्मपुत्र नदीकी सात धाराओंमें प्राणत्याग करनेवालेको मिलती है। विशेषतः [अन्तकालमें] जो सोन नदीके उत्तर तटका आश्रय लेकर विधिपूर्वक प्राण-त्याग करता है, वह मेरी समानताको प्राप्त होता है। जिस मनुष्यकी मृत्यु घरके भीतर होती है, उस घरके छप्परमें जितनी गाँठें बँधी रहती हैं, उतने ही बन्धन उसके शरीरमें भी बँध जाते हैं। एक-एक वर्षके बाद उसका एक-एक बन्धन खुलता है। पुत्र और भाई-बन्धु देखते रह जाते हैं; किसीके द्वारा उसे उस बन्धनसे छुटकारा नहीं मिलता। पर्वत, जंगल, दुर्गम भूमि या जलरहित स्थानमें प्राणत्याग करनेवाला मनुष्य दुर्गतिको प्राप्त होता है। उसे कीड़े आदिकी योनिमें जन्म लेना पड़ता है। जिस मरे हुए व्यक्तिके शवका दाह-संस्कार मृत्युके दूसरे दिन होता है, वह साठ हजार वर्षोंतक कुम्भीपाक नरकमें पड़ा रहता है। जो मनुष्य अस्पृश्यका स्पर्श करके या पतितावस्थामें प्राण-त्याग करता है, वह चिरकालतक नरकमें निवास करके म्लेच्छयोनिमें जन्म लेता है। पुण्यसे अथवा पुण्य-कर्मोंका अनुष्ठान करनेसे मर्त्यलोकनिवासी सब मनुष्योंकी मृत्युके समय जैसी बुद्धि होती है, वैसी ही गति उन्हें प्राप्त होती है।

पिताके मरनेपर जो बलवान् पुत्र उनके शरीरको कंधेपर ढोता है, उसे पग-पगपर अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है। पुत्रको चाहिये कि वह पिताके शवको चितापर रखकर विधिपूर्वक मन्त्रोच्चारण करते हुए पहले उसके मुखमें आग दे, उसके बाद सम्पूर्ण शरीरका दाह करे। [उस समय इस प्रकार कहे—] 'जो लोभ-मोहसे युक्त तथा पाप-पुण्यसे आच्छादित थे, उन पिताजीके इस शवका, इसके सम्पूर्ण अंगोंका मैं दाह करता हूँ; वे दिव्य लोकोंमें जायँ।'[2] इस प्रकार दाह

१-वाराणस्यां त्यजेद्यस्तु प्राणांश्चैव यदृच्छया। अभीष्टं च फलं भुक्त्वा मद्देहे प्रविलीयते॥ (४७। २५२)

२-लोभमोहसमायुक्तं पापपुण्यसमावृतम्। दहेयं सर्वगात्राणि दिव्याँल्लोकान् स गच्छतु॥ (४७। २६६)

करके पुत्र अस्थि-संचयके लिये कुछ दिन प्रतीक्षामें व्यतीत करे। फिर यथासमय अस्थि-संचय करके दशाह (दसवाँ दिन) आनेपर स्नान कर गीले वस्त्रका परित्याग कर दे। फिर विद्वान् पुरुष ग्यारहवें दिन एकादशाह-श्राद्ध करे और प्रेतके शरीरकी पुष्टिके लिये एक ब्राह्मणको भोजन कराये। उस समय वस्त्र, पीढ़ा और चरणपादुका आदि वस्तुओंका विधिपूर्वक दान करे। दशाहके चौथे दिन किया जानेवाला श्राद्ध (चतुर्थाह), तीन पक्षके बाद किया जानेवाला (त्रैपाक्षिक अथवा सार्धमासिक), छः मासके भीतर होनेवाला (ऊनषाण्मासिक) तथा वर्षके भीतर किया जानेवाला (ऊनाब्दिक) श्राद्ध और इनके अतिरिक्त बारह महीनोंके बारह श्राद्ध—कुल सोलह श्राद्ध माने गये हैं। जिसके लिये ये सोलह श्राद्ध यथाशक्ति श्रद्धापूर्वक नहीं किये जाते, उसका पिशाचत्व स्थिर हो जाता है। अन्यान्य सैकड़ों श्राद्ध करनेपर भी प्रेतयोनिसे उसका उद्धार नहीं होता। एक वर्ष व्यतीत होनेपर विद्वान् पुरुष पार्वण श्राद्धकी विधिसे सपिण्डीकरण नामक श्राद्ध करे।

ब्राह्मणने पूछा—केशव! तपस्वी, वनवासी और गृहस्थ ब्राह्मण यदि धनसे हीन हो तो उसका पितृ-कार्य कैसे हो सकता है?

श्रीभगवान् बोले—जो तृण और काष्ठका उपार्जन करके अथवा कौड़ी-कौड़ी माँगकर पितृ-कार्य करता है, उसके कर्मका लाखगुना अधिक फल होता है। कुछ भी न हो तो पिताकी तिथि आनेपर जो मनुष्य केवल गौओंको घास खिला देता है, उसे पिण्डदानसे भी अधिक फल प्राप्त होता है। पूर्वकालकी बात है, विराटदेशमें एक अत्यन्त दीन मनुष्य रहता था। एक दिन पिताकी तिथि आनेपर वह बहुत रोया। रोनेका कारण यह था कि उसके पास [श्राद्धोपयोगी] सभी वस्तुओंका अभाव था। बहुत देरतक रोनेके पश्चात् उसने किसी विद्वान् ब्राह्मणसे पूछा—'ब्रह्मन्! आज मेरे पिताजीकी तिथि है, किन्तु मेरे पास धनके नामपर कौड़ी भी नहीं है; ऐसी दशामें क्या करनेसे मेरा हित होगा? आप मुझे ऐसा उपदेश दीजिये, जिससे मैं धर्ममें स्थित रह सकूँ।'

विद्वान् ब्राह्मणने कहा—तात! इस समय 'कुतप' नामक मुहूर्त बीत रहा है, तुम शीघ्र ही वनमें जाओ और पितरोंके उद्देश्यसे घास लाकर गौको खिला दो।

तदनन्तर ब्राह्मणके उपदेशसे वह वनमें गया और घासका बोझा लेकर बड़े हर्षके साथ पिताकी तृप्तिके लिये उसे गौको खिला दिया। इस पुण्यके प्रभावसे वह देवलोकको चला गया। पितृयज्ञसे बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है; इसलिये पूर्ण प्रयत्न करके अपनी शक्तिके अनुसार मात्सर्यभावका त्याग करके श्राद्ध करना चाहिये। जो मनुष्य लोगोंके सामने इस धर्मसन्तान (धर्मका विस्तार करनेवाले) अध्यायका पाठ करता है, उसे प्रत्येक लोकमें गंगाजीके जलमें स्नान करनेका फल प्राप्त होता है। जिसने प्रत्येक जन्ममें महापातकोंका संग्रह किया हो, उसका वह सारा संग्रह इस अध्यायका एक बार पाठ या श्रवण करनेपर नष्ट हो जाता है।

पतिव्रता ब्राह्मणीका उपाख्यान, कुलटा स्त्रियोंके सम्बन्धमें उमा-नारद-संवाद, पतिव्रताकी महिमा और कन्यादानका फल

नरोत्तमने पूछा—नाथ! पतिव्रता स्त्री मेरे बीते हुए वृत्तान्तको कैसे जानती है? उसका प्रभाव कैसा है? यह सब बतानेकी कृपा करें।

श्रीभगवान् बोले—वत्स! मैं यह बात तुम्हें पहले बता चुका हूँ। किन्तु फिर यदि सुननेका कौतूहल हो रहा है तो सुनो; तुम्हारे मनमें जो कुछ प्रश्न है, सबका उत्तर दे रहा हूँ। जो स्त्री पतिव्रता होती है, पतिको प्राणोंके समान समझती है और सदा पतिके हित-साधनमें संलग्न रहती है, वह देवताओं और ब्रह्मवादी मुनियोंकी भी पूज्य होती है। जो नारी एक ही पुरुषकी सेवा स्वीकार करती है—दूसरेकी ओर दृष्टि भी नहीं डालती, वह संसारमें परम पूजनीय मानी जाती है।

तात! प्राचीन कालकी बात है, मध्यदेशमें एक अत्यन्त शोभायमान नगरी थी। उसमें एक पतिव्रता ब्राह्मणी रहती थी, उसका नाम था शैब्या। उसका पति पूर्वजन्मके पापसे कोढ़ी हो गया था। उसके शरीरमें अनेकों घाव हो गये थे, जो बराबर बहते रहते थे। शैब्या अपने ऐसे पतिकी सेवामें सदा संलग्न रहती थी। पतिके मनमें जो-जो इच्छा होती, उसे वह अपनी शक्तिके अनुसार अवश्य पूर्ण करती थी। प्रतिदिन देवताकी भाँति स्वामीकी पूजा करती और दोषबुद्धि त्यागकर उसके प्रति विशेष स्नेह रखती थी। एक दिन उसके पतिने सड़कसे जाती हुई एक परम सुन्दरी वेश्याको देखा। उसपर दृष्टि पड़ते ही वह अत्यन्त मोहके वशीभूत हो गया। उसकी चेतनापर कामदेवने पूरा अधिकार कर लिया। वह दीर्घ कालतक लम्बी साँस खींचता रहा और अन्तमें बहुत उदास हो गया। उसका उच्छ्वास सुनकर पतिव्रता घरसे बाहर आयी और अपने पतिसे पूछने लगी—'नाथ! आप उदास क्यों हो गये? आपने लम्बी साँस कैसे खींची? प्रभो! आपको जो प्रिय हो वह कार्य मुझे बताइये। वह करनेयोग्य हो या न हो, मैं आपके प्रियकार्यको अवश्य पूर्ण करूँगी। एकमात्र आप ही मेरे गुरु हैं, प्रियतम हैं।'

पत्नीके इस प्रकार पूछनेपर उसके पतिने कहा—'प्रिये! उस कार्यको न तुम्हीं पूर्ण कर सकती हो और न मैं ही; अतः व्यर्थ बात करनी उचित नहीं है।'

पतिव्रता बोली—नाथ! [मुझे विश्वास है] मैं आपका मनोरथ जानकर उस कार्यको सिद्ध कर सकूँगी, आप मुझे आज्ञा दीजिये। जिस किसी उपायसे हो सके मुझे आपका कार्य सिद्ध करना है। यदि आपके दुष्कर कार्यको मैं यत्न करके पूर्ण कर सकूँ तो इस लोक और परलोकमें भी मेरा परम कल्याण होगा।

कोढ़ीने कहा—साध्वि! अभी-अभी इस मार्गसे एक परम सुन्दरी वेश्या जा रही थी। उसका शरीर सब ओरसे मनोरम था। उसे देखकर मेरा हृदय कामाग्निसे दग्ध हो रहा है। यदि तुम्हारी कृपासे मैं उस नवयौवनाको प्राप्त कर सकूँ तो मेरा जन्म सफल हो जायगा। देवि! तुम उसे मिलाकर मेरा हितसाधन करो।

पतिकी कही हुई बात सुनकर पतिव्रता बोली—'प्रभो! इस समय धैर्य रखिये। मैं यथाशक्ति आपका कार्य सिद्ध करूँगी।'

यह कहकर पतिव्रताने मन-ही-मन कुछ विचार किया और रात्रिके अन्तिम भाग—उषःकालमें उठकर वह गोबर और झाड़ू ले तुरंत ही चल दी। जाते समय उसके मनमें बड़ी प्रसन्नता थी। वेश्याके घर पहुँचकर उसने उसके आँगन और गली-कूचेमें झाड़ू लगायी तथा गोबरसे लीप-पोतकर लोगोंकी दृष्टि पड़नेके भयसे वह शीघ्रतापूर्वक अपने घर लौट आयी। इस प्रकार लगातार तीन दिनोंतक पतिव्रताने वेश्याके घरमें झाड़ू देने और लीपनेका काम किया। उधर वह वेश्या अपने दास-दासियोंसे पूछने लगी—आज आँगनकी इतनी बढ़िया सफाई किसने की है? सेवकोंने परस्पर विचार करके वेश्यासे कहा—'भद्रे! घरकी सफाईका यह काम हमलोगोंने तो नहीं किया है।' यह सुनकर वेश्याको बड़ा विस्मय हुआ। उसने बहुत देरतक इसके विषयमें विचार किया और रात्रि बीतनेपर ज्यों ही वह उठी तो उसकी दृष्टि उस पतिव्रता ब्राह्मणीपर पड़ी। वह पुनः टहल बजानेके लिये आयी थी। उस परम साध्वी पतिव्रता ब्राह्मणीको देखकर 'हाय! हाय! आप यह क्या करती हैं। क्षमा कीजिये, रहने दीजिये।' यह कहती हुई वेश्याने उसके पैर पकड़ लिये और पुनः कहा—'पतिव्रते! आप मेरी आयु, शरीर, सम्पत्ति, यश तथा कीर्ति—इन सबका विनाश करनेके लिये ऐसी चेष्टा कर रही हैं। साध्वि! आप जो-जो वस्तु माँगें, उसे निश्चय दूँगी—यह बात मैं दृढ़ निश्चयके साथ कह रही हूँ। सुवर्ण, रत्न, मणि, वस्त्र तथा और भी जिस किसी वस्तुकी आपके मनमें अभिलाषा हो, उसे माँगिये।'

तब पतिव्रताने उस वेश्यासे कहा—'मुझे धनकी आवश्यकता नहीं है, तुम्हींसे कुछ काम है; यदि करो तो उसे बताऊँ। उस कार्यकी सिद्धि होनेपर ही मेरे हृदयमें सन्तोष होगा और तभी मैं यह समझूँगी कि तुमने इस समय मेरा सारा मनोरथ पूर्ण कर दिया।'

वेश्या बोली—पतिव्रते! आप जल्दी बताइये। मैं सच-सच कहती हूँ आपका अभीष्ट कार्य अवश्य करूँगी। माताजी! आप तुरंत ही अपनी आवश्यकता बतायें और मेरी रक्षा करें।

पतिव्रताने लजाते-लजाते वह कार्य, जो उसके पतिको श्रेष्ठ एवं प्रिय जान पड़ता था, कह सुनाया। उसे सुनकर वेश्या एक क्षणतक अपने कर्तव्य और उसके पतिकी पीड़ापर कुछ विचार करती रही। दुर्गन्धियुक्त कोढ़ी मनुष्यके साथ संसर्ग करनेकी बात सोचकर उसके मनमें बड़ा दुःख हुआ। वह पतिव्रतासे इस प्रकार बोली—'देवि! यदि आपके पति मेरे घरपर आयें तो मैं एक दिन उनकी इच्छा पूर्ण करूँगी।'

पतिव्रताने कहा—सुन्दरी! मैं आज ही रातमें अपने पतिको लेकर तुम्हारे घरमें आऊँगी और जब वे अपनी अभीष्ट वस्तुका उपभोग करके सन्तुष्ट हो जायँगे, तब पुनः उनको अपने घर ले जाऊँगी।

वेश्या बोली—महाभागे! अब शीघ्र ही अपने घरको पधारो। तुम्हारे पति आज आधी रातके समय मेरे महलमें आयें।

यह सुनकर वह पतिव्रता स्त्री अपने घर चली आयी। वहाँ पहुँचकर उसने पतिसे निवेदन किया—'प्रभो! आपका कार्य सफल हो गया। आज ही रातमें आपको उसके घर जाना है।'

कोढ़ी ब्राह्मण बोला—देवि! मैं कैसे उसके घर जाऊँगा, मुझसे तो चला नहीं जाता। फिर किस प्रकार वह कार्य सिद्ध होगा?

पतिव्रता बोली—प्राणनाथ! मैं आपको अपनी पीठपर बैठाकर उसके घर पहुँचाऊँगी और आपका मनोरथ सिद्ध हो जानेपर फिर उसी मार्गसे लौटा ले आऊँगी।

ब्राह्मणने कहा—कल्याणी! तुम्हारे करनेसे ही मेरा सब कार्य सिद्ध होगा। इस समय तुमने जो काम किया है, वह दूसरी स्त्रियोंके लिये दुष्कर है।

श्रीभगवान् कहते हैं—उस नगरमें किसी धनीके घरसे चोरोंने बहुत-सा धन चुरा लिया। यह बात जब राजाके कानोंमें पड़ी, तब उन्होंने रातमें घूमनेवाले समस्त गुप्तचरोंको बुलाया और कुपित होकर कहा—'यदि तुम्हें जीवित रहनेकी इच्छा है तो आज चोरको पकड़कर मेरे हवाले करो।' राजाकी यह आज्ञा पाकर सभी गुप्तचर व्याकुल हो उठे और चोरको पकड़नेकी इच्छासे चल दिये। उस नगरके पास ही एक घना जंगल था, जहाँ एक वृक्षके नीचे महातेजस्वी मुनिवर माण्डव्य समाधि लगाये बैठे थे। वे योगियोंमें प्रधान महर्षि अग्निके समान देदीप्यमान हो रहे थे। ब्रह्माजीके समान तेजस्वी उन महामुनिको देखकर दुष्ट गुप्तचरोंने आपसमें कहा—'यही चोर है। यह धूर्त अद्भुत रूप बनाये इस जंगलमें निवास करता है।' यों कहकर उन पापियोंने मुनिश्रेष्ठ माण्डव्यको बाँध लिया। किन्तु उन कठोर स्वभाववाले मनुष्योंसे न तो उन्होंने कुछ कहा और न उनकी ओर दृष्टिपात ही किया। जब गुप्तचर उन्हें बाँधकर राजाके पास ले गये तो राजाने कहा—'आज मुझे चोर मिला है। तुमलोग इसे नगरके निकटवर्ती प्रवेशद्वारके मार्गपर ले जाओ और चोरके लिये जो नियत दण्ड है, वह इसे दो।' उन्होंने माण्डव्य मुनिको वहाँ ले जाकर मार्गमें

गड़े हुए शूलपर रख दिया। वह शूल मुनिके गुदाद्वारसे प्रविष्ट होकर मस्तकके पार हो गया। उनका सारा शरीर शूलसे बिंध गया, इसी बीचमें आधी रातके घोर अन्धकारमें, जब कि आकाशमें घटाएँ घिरी हुई थीं, वह पतिव्रता ब्राह्मणी अपने पतिको पीठपर बिठाकर वेश्याके घर जा रही थी। वह मुनिके निकटसे होकर निकली, अतः उस कोढ़ीका शरीर माण्डव्य मुनिके शरीरसे छू गया। कोढ़ीके संसर्गसे उनकी समाधि भंग हो गयी। वे कुपित होकर बोले—'जिसने इस समय मुझे गाढ़ वेदनाका अनुभव करानेवाली कष्टमय अवस्थामें पहुँचा दिया, वह सूर्योदय होते-होते भस्म हो जाय।'

माण्डव्यके इतना कहते ही वह कोढ़ी पृथ्वीपर गिर पड़ा। तब पतिव्रताने कहा—'आजसे तीन दिनोंतक सूर्यका उदय ही न हो।' यों कहकर वह अपने पतिको घर ले गयी और एक सुन्दर शय्यापर सुला स्वयं उसे थामकर बैठी रही। उधर मुनिश्रेष्ठ माण्डव्य उस कोढ़ीको शाप दे अपने अभीष्ट स्थानको चले गये। संसारमें तीन दिनोंके समयतक सूर्यका उदय होना रुक गया। चराचर प्राणियोंसहित सम्पूर्ण त्रिलोकी व्यथित हो उठी। यह देख समस्त देवता इन्द्रको आगे करके ब्रह्माजीके पास गये और सूर्योदय न होनेका समाचार निवेदन करते हुए बोले—'भगवन्! सूर्यके उदय न होनेका क्या कारण है, यह हमारी समझमें नहीं आता। इस समय आप जो उचित हो, करें।' उनकी बात सुनकर ब्रह्माजीने पतिव्रता ब्राह्मणी और माण्डव्य मुनिका सारा वृत्तान्त कह सुनाया। तदनन्तर देवता विमानोंपर आरूढ़ हो प्रजापतिको आगे करके शीघ्र ही पृथ्वीपर उस कोढ़ी ब्राह्मणके घरके पास गये। उनके विमानोंकी कान्ति तथा मुनियोंके तेजसे पतिव्रताके घरके भीतर सैकड़ों सूर्योंका-सा प्रकाश छा गया; उस समय हंसके समान तेजस्वी विमानोंद्वारा आये हुए देवताओंको पतिव्रताने देखा। वह [अपने पतिके समीप] लेटी हुई थी। ब्रह्माजीने उसे सम्बोधित करके कहा—'माता! सम्पूर्ण देवताओं, ब्राह्मणों और गौ आदि प्राणियोंकी जिससे मृत्यु होनेकी सम्भावना है—ऐसा कार्य तुम्हें क्योंकर पसंद आया? सूर्योदयके विरुद्ध जो तुम्हारा क्रोध है, उसे त्याग दो।'

पतिव्रता बोली—भगवन्! एकमात्र पति ही
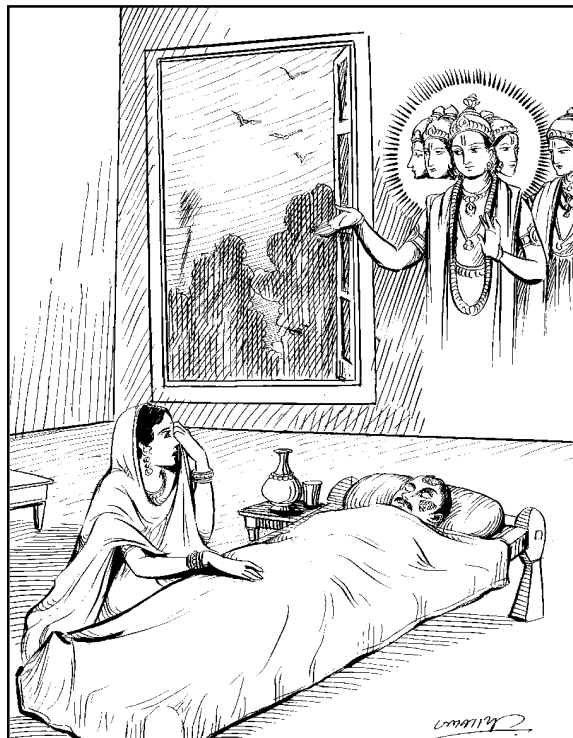
मेरे गुरु हैं। ये मेरे लिये सम्पूर्ण लोकोंसे बढ़कर हैं। सूर्योदय होते ही मुनिके शापसे उनकी मृत्यु हो जायगी। इसी हेतुसे मैंने सूर्यको शाप दिया है। क्रोध, मोह, लोभ, मात्सर्य अथवा कामके वशमें होकर मैंने ऐसा नहीं किया है।

ब्रह्माजीने कहा—माता! जब एककी मृत्युसे तीनों लोकोंका हित हो रहा है, ऐसी दशामें तुम्हें बहुत अधिक पुण्य होगा।

पतिव्रता बोली—पतिका त्याग करके मुझे आपका परम कल्याणमय सत्यलोक भी अच्छा नहीं लगता।

ब्रह्माजीने कहा—देवि! सूर्योदय होनेपर जब सारी त्रिलोकी स्वस्थ हो जायगी, तब तुम्हारे पतिके भस्म हो जानेपर भी मैं तुम्हारा कल्याण-साधन करूँगा। हमलोगोंके आशीर्वादसे यह कोढ़ी ब्राह्मण कामदेवके समान सुन्दर हो जायगा।

ब्रह्माजीके यों कहनेपर उस सतीने क्षणभर कुछ विचार किया; उसके बाद 'हाँ' कहकर उसने स्वीकृति

दे दी। फिर तो तत्काल सूर्योदय हुआ और मुनिके शापसे पीड़ित ब्राह्मण राखका ढेर हो गया। फिर उस राखसे कामदेवके समान सुन्दर रूप धारण किये वह ब्राह्मण प्रकट हुआ। यह देखकर समस्त पुरवासी बड़े विस्मयमें पड़े। देवता प्रसन्न हो गये। सब लोगोंका चित्त पूर्ण स्वस्थ हुआ। उस समय स्वर्गलोकसे सूर्यके समान तेजस्वी एक विमान आया और वह साध्वी अपने पतिके साथ उसपर बैठकर देवताओंके साथ स्वर्गको चली गयी।
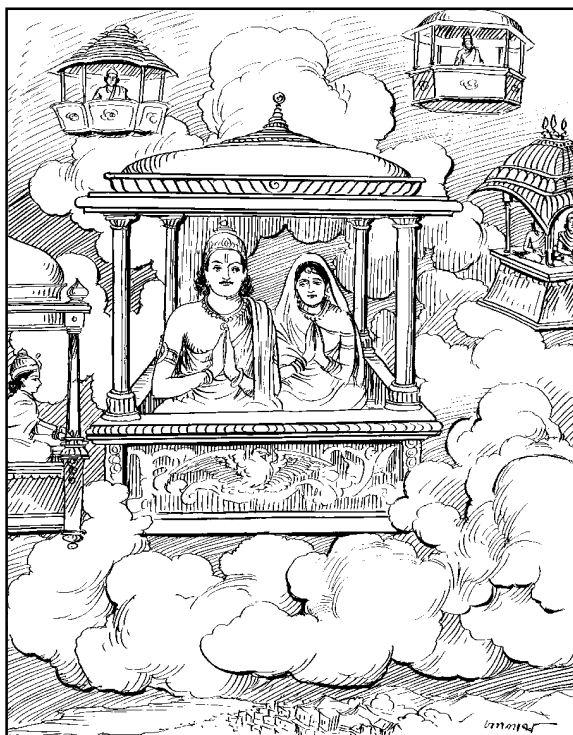
शुभा भी ऐसी ही पतिव्रता है; इसलिये वह मेरे समान है। उस सतीत्वके प्रभावसे ही वह भूत, भविष्य और वर्तमान—तीनों कालोंकी बातें जानती है। जो मनुष्य इस परम उत्तम पुण्यमय उपाख्यानको लोकमें सुनायेगा, उसके जन्म-जन्मके किये हुए पाप नष्ट हो जायँगे।

ब्राह्मणने पूछा—भगवन्! माण्डव्य मुनिके शरीरमें शूलका आघात कैसे लगा? तथा पतिव्रता स्त्रीके पतिको कोढ़का रोग क्यों हुआ?

भगवान् श्रीविष्णु बोले—माण्डव्य मुनि जब बालक थे, तब उन्होंने अज्ञान और मोहवश एक झींगुरके गुदादेशमें तिनका डालकर छोड़ दिया था। यद्यपि उन्हें उस समय धर्मका ज्ञान नहीं था, तथापि उस दोषके कारण उन्हें एक दिन और रात वैसा कष्ट भोगना पड़ा। किन्तु माण्डव्य मुनिने समाधिस्थ होनेके कारण शूलाघातजनित वेदनाका पूरी तरह अनुभव नहीं किया। इसी प्रकार पतिव्रताके पतिने भी पूर्वजन्ममें एक कोढ़ी ब्राह्मणका वध किया था, इसीसे उसके शरीरमें दुर्गन्धियुक्त कोढ़का रोग उत्पन्न हो गया था। किन्तु उसने ब्राह्मणको चार गौरीदान और तीन कन्यादान किये थे; इसीसे उसकी पत्नी पतिव्रता हुई। उस पत्नीके कारण ही वह मेरी समताको प्राप्त हुआ।

ब्राह्मणने कहा—नाथ! यदि पतिव्रताका ऐसा माहात्म्य है; तब तो जिस पुरुषकी भी स्त्री व्यभिचारिणी न हो उसे स्वर्गकी प्राप्ति निश्चित है। सती स्त्रीसे सबका कल्याण होना चाहिये।

भगवान् श्रीविष्णु बोले—ठीक है। संसारमें कुछ स्त्रियाँ ऐसी कुलटा होती हैं, जो सर्वस्व अर्पण करनेवाले पुरुषके प्रतिकूल आचरण करती हैं; उनमें जो सर्वथा अरक्षणीय हो—जिसकी दुराचारसे रक्षा करना असम्भव हो, ऐसी स्त्रीको तो मनसे भी स्वीकार नहीं करना चाहिये। जो नारी कामके वशीभूत हो जाती है, वह निर्धन, कुरूप, गुणहीन तथा नीच कुलके नौकर पुरुषको भी स्वीकार कर लेती है। मृत्युतकसे सम्बन्ध जोड़नेमें उसे हिचक नहीं होती। वह गुणवान्, कुलीन, अत्यन्त धनी, सुन्दर और रतिकार्यमें कुशल पतिका भी परित्याग करके नीच पुरुषका सेवन करती है। विप्रवर! इस विषयमें उमा-नारद-संवाद ही दृष्टान्त है; क्योंकि नारदजी स्त्रियोंकी बहुत-सी चेष्टाएँ जानते हैं। नारद मुनि स्वभावसे ही संसारकी प्रत्येक बात जाननेकी इच्छा रखते हैं। एक बार वे अपने मनमें कुछ सोच-विचारकर पर्वतोंमें उत्तम कैलासगिरिपर गये। वहाँ उन महात्मा मुनिने पार्वतीजीको प्रणाम करके पूछा—'देवि! मैं कामिनियोंकी कुचेष्टाएँ जानना चाहता हूँ। मैं इस विषयमें बिलकुल अनजान हूँ और विनीत भावसे प्रश्न कर रहा

हूँ; अतः आप मुझे यह बात बताइये।'

पार्वती देवीने कहा—नारद! युवती स्त्रियोंका चित्त सदा पुरुषोंमें ही लगा रहता है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। नारी घीसे भरे हुए घड़ेके समान है और पुरुष दहकते हुए अँगारेके समान; इसलिये घी और अग्निको एक स्थानपर नहीं रखना चाहिये।[1] जैसे मतवाले हाथीको महावत अंकुश और मुगदरकी सहायतासे अपने वशमें करता है, उसी प्रकार स्त्रियोंका रक्षक उन्हें दण्डके बलसे ही काबूमें रख सकता है। बचपनमें पिता, जवानीमें पति और बुढ़ापेमें पुत्र नारीकी रक्षा करता है; उसे कभी स्वतन्त्रता नहीं देनी चाहिये।[2] सुन्दरी स्त्रीको यदि उसकी इच्छाके अनुसार स्वतन्त्र छोड़ दिया जाय तो पर-पुरुषकी प्रार्थनासे अधीर होकर वह उसके आदेशके अनुसार व्यभिचारमें प्रवृत्त हो जाती है। जैसे तैयार की हुई रसोईपर दृष्टि न रखनेसे उसपर कौए और कुत्ते अधिकार जमा लेते हैं, उसी प्रकार युवती नारी स्वच्छन्द होनेपर व्यभिचारिणी हो जाती है। फिर उस कुलटाके संसर्गसे सारा कुल दूषित हो जाता है। पराये बीजसे उत्पन्न होनेवाला मनुष्य वर्णसंकर कहलाता है।[3] सदाचारिणी स्त्री पितृकुल और पतिकुल—दोनों कुलोंका सम्मान बढ़ाती हुई उन्हें कायम रखती है। साध्वी नारी अपने कुलका उद्धार करती और दुराचारिणी उसे नरकमें गिराती है। कहते हैं—संसारमें स्त्रीके ही अधीन स्वर्ग, कुल, कलंक, यश, अपयश, पुत्र, पुत्री और मित्र आदिकी स्थिति है। इसलिये विद्वान् पुरुष सन्तानकी इच्छासे विवाह करे। जो पापी पुरुष मोहवश किसी साध्वी स्त्रीको दूषित करके छोड़ देता है, वह उस स्त्रीकी हत्याका पाप भोगता हुआ नरकमें गिरता है। जो परायी स्त्रीके साथ बलात्कार करता अथवा उसे धनका लालच देकर फँसाता है, वह इस संसारमें स्त्री-हत्यारा कहलाता है और मरनेके पश्चात् घोर नरकमें पड़ता है। परायी स्त्रीका अपहरण करके मनुष्य चाण्डाल-कुलमें जन्म लेता है। इसी प्रकार पतिके साथ वंचना करनेवाली व्यभिचारिणी स्त्री चिरकालतक नरक भोगकर कौएकी योनिमें जन्म लेती है और उच्छिष्ट एवं दुर्गन्धयुक्त पदार्थ खा-खाकर जीवन बिताती है। तदनन्तर मनुष्य-योनिमें जन्म लेकर विधवा होती है। जो माता, गुरुपत्नी, ब्राह्मणी, राजाकी रानी या दूसरी किसी प्रभु-पत्नीके साथ समागम करता है, वह अक्षय नरकमें गिरता है। बहिन, भानजेकी स्त्री, बेटी, बेटेकी बहू, चाची, मामी, बुआ तथा मौसी आदि अन्यान्य स्त्रियोंके साथ समागम करनेपर भी कभी नरकसे उद्धार नहीं होता। यही नहीं, उसे ब्रह्महत्याका पाप भी लगता है तथा वह अंधा, गूँगा और बहरा होकर निरन्तर नीचे गिरता जाता है; उस अधःपतनसे उसका कभी बचाव नहीं हो पाता।

ब्राह्मणने पूछा—भगवन्! ऐसा पाप करके मनुष्यका उससे किस प्रकार उद्धार हो सकता है?

श्रीभगवान्ने कहा—उपर्युक्त स्त्रियोंके साथ समागम करनेवाला पुरुष लोहेकी स्त्री-प्रतिमा बनवाकर उसे आगमें खूब तपाये; फिर उसका गाढ़ आलिंगन करके प्राण त्याग दे और शुद्ध होकर परलोककी यात्रा करे। जो मनुष्य गृहस्थाश्रमका परित्याग करके मुझमें मन लगाता है और प्रतिदिन मेरे 'गोविन्द' नामका स्मरण करता है, उसके सब पापोंका नाश हो जाता है। उसके द्वारा की हुई हजारों ब्रह्महत्याएँ, सौ बार किया हुआ गुरुपत्नी-समागम, लाख बार किया हुआ पैष्टी मदिराका

१-घृतकुम्भसमा नारी तप्तांगारसमः पुमान्। तस्माद् घृतं च वह्निं च ह्येकस्थाने न धारयेत्॥ (४९। २१)

२-पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने। पुत्राश्च स्थाविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति॥ (४९। २३)

३-अरक्षणाद्यथा पाकः श्वकाकवशगो वसेत्। तथैव युवती नारी स्वच्छन्दाद्दुष्टतां व्रजेत्॥
पुनरेव कुलं दुष्टं तस्याः संसर्गतो भवेत्। परबीजे नरो जातः स च स्याद्वर्णसंकरः॥ (४९। २५-२६)

सेवन, सुवर्णकी चोरी, पापियोंके साथ चिरकालतक संसर्ग रखना—ये तथा और भी जितने बड़े-बड़े पाप एवं पातक हैं, वे सब मेरा नाम लेनेसे तत्काल नष्ट हो जाते हैं; ठीक उसी तरह जैसे अग्निके पास पहुँचनेपर रूईके ढेर जल जाते हैं। अतः मनुष्यको उचित है कि वह मेरे 'गोविन्द' नामका स्मरण करके पवित्र हो जाय [परन्तु जो नामके भरोसे पाप करता है, नाम उसकी रक्षा कभी नहीं करता।] अथवा जो प्रतिदिन मुझ गोविन्दका कीर्तन और पूजन करते हुए गृहस्थाश्रममें निवास करता है, वह पापसे तर जाता है। तात! गंगाके रमणीय तटपर चन्द्रग्रहणकी मंगलमयी वेलामें करोड़ों गोदान करनेसे मनुष्यको जो फल मिलता है, उससे हजारगुना अधिक फल 'गोविन्द' का कीर्तन करनेसे प्राप्त होता है। कीर्तन करनेवाला मनुष्य मेरे वैकुण्ठधाममें सदा निवास करता है।* पुराणमें मेरी कथा सुननेसे मानव मेरी समानता प्राप्त करता है। जो पुराणकी कथा सुनाता है, उसे मेरा सायुज्य प्राप्त होता है; अतः प्रतिदिन पुराणका श्रवण करना चाहिये। पुराण धर्मोंका संग्रह है।

विप्रवर! अब मैं सती स्त्रियोंमें जो अत्यन्त उत्कृष्ट गुण होते हैं, उनका वर्णन करता हूँ। सती स्त्रीका वंश शुद्ध होता है। वहाँ सदा लक्ष्मी निवास करती हैं। सतीके पितृकुल और पतिकुल— दोनों कुलोंको तथा उसके स्वामीको भी स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है। जो स्त्रियाँ अपने जीवनका पूर्वकाल पुण्य-पापमिश्रित कर्मोंमें व्यतीत करके पीछे भी पतिव्रता होती हैं, उन्हें भी मेरे लोककी प्राप्ति हो जाती है। जो स्त्री अपने स्वामीका अनुगमन करती है, वह शराबी, ब्रह्महत्यारे तथा सब प्रकारके पापोंसे लदे हुए पतिको भी पापमुक्त करके अपने साथ स्वर्गमें ले जाती है। जो मरे हुए पतिके पीछे प्राण-त्याग करके जाती है, उसे स्वर्गकी प्राप्ति निश्चित है। जो नारी पतिका अनुगमन करती है, वह मनुष्यके शरीरमें जितने (साढ़े तीन करोड़) रोम होते हैं, इतने ही वर्षोंतक स्वर्गलोकमें निवास करती है। यदि पतिकी मृत्यु कहीं दूर हो जाय तो उसका कोई चिह्न पाकर जो स्त्री चिताकी अग्निमें प्राण-त्याग करती है, वह अपने पतिका पापसे उद्धार कर देती है। जो स्त्री पतिव्रता होती है, उसे चाहिये कि यदि पतिकी मृत्यु परदेशमें हो जाय तो उसका कोई चिह्न प्राप्त करे और उसे ही ले अग्निमें शयन करके स्वर्गलोककी यात्रा करे। यदि ब्राह्मण जातिकी स्त्री मरे हुए पतिके साथ चिताग्निमें प्रवेश करे तो उसे आत्मघातका दोष लगता है, जिससे न तो वह अपनेको और न अपने पतिको ही स्वर्गमें पहुँचा पाती है। इसलिये ब्राह्मण जातिकी स्त्री अपने मरे हुए पतिके साथ जलकर न मरे—यह ब्रह्माजीकी आज्ञा है। ब्राह्मणी विधवाको वैधव्य-व्रतका आचरण करना चाहिये। जो विधवा एकादशीका व्रत नहीं रखती, वह दूसरे जन्ममें भी विधवा ही होती है तथा प्रत्येक जन्ममें दुर्भाग्यसे पीड़ित रहती है। मछली-मांस खाने और व्रत न करनेसे वह चिरकालतक नरकमें रहकर फिर कुत्तेकी योनिमें जन्म लेती है। जो कुलनाशिनी विधवा दुराचारिणी होकर मैथुन कराती है, वह नरक-यातना भोगनेके पश्चात् दस जन्मोंतक गीधिनी होती है। फिर दो जन्मोंतक लोमड़ी होकर पीछे मनुष्य-योनिमें जन्म लेती है। उसमें भी बाल-विधवा होकर दासीभावको प्राप्त होती है।

---

* यो वै गृहाश्रमं त्यक्त्वा मच्चित्तो जायते नरः। नित्यं स्मरति गोविन्दं सर्वपापक्षयो भवेत्॥
ब्रह्महत्यायुतं तेन कृतं गुर्वङ्गनागमः। शतं शतसहस्रं च पैष्टीमद्यस्य भक्षणम्॥
स्वर्णादेर्हरणं चैव तेषां संसर्गकश्चिरम्। एतान्यन्यानि पापानि महान्ति पातकानि च॥
अग्निं प्राप्य यथा तूलं तृणमाशु प्रणश्यति। तस्मान्मन्नाम गोविन्दं स्मृत्वा पूतो भवेन्नरः॥
यो वा गृहाश्रमे तिष्ठेन्नित्यं गोविन्दघोषणम्। कृत्वा च पूजयित्वा च स पापात्संतरो भवेत्॥
भागीरथीतटे रम्ये खगस्य ग्रहणे शिवे। गवां कोटिप्रदानेन यत्फलं लभते नरः॥
तत्फलं समवाप्नोति सहस्रं चाधिकं च यत्। गोविन्दकीर्तने तात मत्पुरे चाक्षयं वसत्॥
(४९। ५०—५६)

ब्राह्मणने कहा—भगवन्! यदि आपका मुझपर अनुग्रह है तो अब कन्यादानके फलका वर्णन कीजिये। साथ ही उसकी यथार्थ विधि भी बतलाइये।

श्रीभगवान् बोले—ब्रह्मन्! रूपवान्, गुणवान्, कुलीन, तरुण, समृद्धिशाली और धन-धान्यसे सम्पन्न वरको कन्यादान करनेका जो फल होता है, उसे श्रवण करो। जो मनुष्य आभूषणोंसे युक्त कन्याका दान करता है, उसके द्वारा पर्वत, वन और काननोंसहित सम्पूर्ण पृथ्वीका दान हो जाता है। जो पिता कन्याका शुल्क लेकर खाता है, वह नरकमें पड़ता है। जो मूर्ख अपनी पुत्रीको बेच देता है, उसका कभी नरकसे उद्धार नहीं होता। जो लोभवश अयोग्य पुरुषको कन्यादान देता है, वह रौरव नरकमें पड़कर अन्तमें चाण्डाल होता है।* इसीसे विद्वान् पुरुष दामादसे शुल्क लेनेका कभी विचार भी मनमें नहीं लाते। अपनी ओरसे दामादको जो कुछ दिया जाता है, वह अक्षय हो जाता है। पृथ्वी, गौ, सोना, धन-धान्य और वस्त्र आदि जो कुछ दामादको दहेजके रूपमें दिया जाता है, सब अक्षय फलका देनेवाला होता है। जैसे कटी हुई डोर घड़ेके साथ स्वयं भी कुएँमें डूब जाती है, उसी प्रकार यदि दाता संकल्प किये हुए दानको भूल जाता है और दान लेनेवाला पुरुष फिर उसे याद दिलाकर माँगता नहीं तो वे दोनों नरकमें पड़ते हैं। सात्त्विक पुरुषको उचित है कि वह जामाताको दहेजमें देनेके लिये निश्चित की हुई सभी वस्तुएँ अवश्य दे डाले। न देनेपर पहले तो वह नरकमें पड़ता है; फिर प्रतिग्रह लेनेवालेके दासके रूपमें जन्म ग्रहण करता है।

जो बहुत खाता हो, अधिक दूर रहता हो, अत्यधिक धनवान् हो, जिसमें अधिक दुष्टता हो, जिसका कुल उत्तम न हो तथा जो मूर्ख हो—इन छः मनुष्योंको कन्या नहीं देनी चाहिये। इसी प्रकार अतिवृद्ध, अत्यन्त दीन, रोगी, अति निकट रहनेवाले, अत्यन्त क्रोधी और असन्तुष्ट—इन छः व्यक्तियोंको भी कन्यादान नहीं करना चाहिये। इन्हें कन्या देकर मनुष्य नरकमें पड़ता है। धनके लोभसे या सम्मान मिलनेकी आशासे जो कन्या देता या एक कन्या दिखाकर दूसरीका विवाह कर देता है, वह भी नरकगामी होता है। जो प्रतिदिन इस परम उत्तम पुण्यमय उपाख्यानका श्रवण करता है, उसके जन्म-जन्मके पाप नष्ट हो जाते हैं।

तुलाधारके सत्य और समताकी प्रशंसा, सत्यभाषणकी महिमा, लोभ-त्यागके विषयमें एक शूद्रकी कथा और मूक चाण्डाल आदिका परमधामगमन

ब्राह्मणने कहा—प्रभो! यदि मुझपर आपकी कृपा हो तो अब तुलाधारके चरित्र और अनुपम प्रभावका पूरा-पूरा वर्णन कीजिये।

श्रीभगवान् बोले—जो सत्यका पालन करते हुए लोभ और दोषबुद्धिका त्याग करके प्रतिदिन कुछ दान करता है, उसके द्वारा मानो नित्यप्रति उत्तम दक्षिणासे युक्त सौ यज्ञोंका अनुष्ठान होता रहता है। सत्यसे सूर्यका उदय होता है, सत्यसे ही वायु चलती रहती है, सत्यके ही प्रभावसे समुद्र अपनी मर्यादाका उल्लंघन नहीं करता और भगवान् कच्छप इस पृथ्वीको अपनी पीठपर धारण किये रहते हैं। सत्यसे ही तीनों लोक और समस्त पर्वत टिके हुए हैं। जो सत्यसे भ्रष्ट हो जाता है, उस प्राणीको निश्चय ही नरकमें निवास करना पड़ता है। जो सत्य वाणी और सत्य कार्यमें सदा संलग्न रहता है, वह इसी शरीरसे भगवान्के धाममें जाकर भगवत्स्वरूप हो जाता है। सत्यसे ही समस्त ऋषि-मुनि मुझे प्राप्त होकर

---

* यः पुनः शुल्कमश्नाति स याति नरकं नरः। विक्रीत्वा चात्मजां मूढो नरकान्न निवर्तते॥
लोभादसदृशे पुंसि कन्यां यस्तु प्रयच्छति। रौरवं नरकं प्राप्य चाण्डालत्वं च गच्छति॥
(४९। ९०-९१)

शाश्वत गतिमें स्थित हुए हैं। सत्यसे ही राजा युधिष्ठिर सशरीर स्वर्गमें चले गये।* उन्होंने समस्त शत्रुओंको जीतकर धर्मके अनुसार लोकका पालन किया। अत्यन्त दुर्लभ एवं विशुद्ध राजसूय यज्ञका अनुष्ठान किया। वे प्रतिदिन चौरासी हजार ब्राह्मणोंको भोजन कराते और उनकी इच्छाके अनुसार पर्याप्त धन दान करते थे। जब यह जान लेते कि इनमेंसे प्रत्येक ब्राह्मणकी दरिद्रता दूर हो चुकी है, तभी उस ब्राह्मण-समुदायको विदा करते थे। यह सब उनके सत्यका ही प्रभाव था। राजा हरिश्चन्द्र सत्यका आश्रय लेनेसे ही वाहन, परिवार तथा अपने विशुद्ध शरीरके साथ सत्यलोकमें प्रतिष्ठित हैं। इनके सिवा और भी बहुत-से राजा, सिद्ध, महर्षि, ज्ञानी और यज्ञकर्ता हो चुके हैं, जो कभी सत्यसे विचलित नहीं हुए। अतः लोकमें जो सत्यपरायण है, वही संसारका उद्धार करनेमें समर्थ होता है। महात्मा तुलाधार सत्यभाषणमें स्थित हैं। सत्य बोलनेके कारण ही इस जगत्में उनकी समानता करनेवाला दूसरा कोई नहीं है। ये तुलाधार कभी झूठ नहीं बोलते। महँगी और सस्ती सब प्रकारकी वस्तुओंके खरीदने-बेचनेमें ये बड़े बुद्धिमान् हैं।

विशेषतः साक्षीका सत्य वचन ही उत्तम माना गया है। कितने ही साक्षी सत्यभाषण करके अक्षय स्वर्गको प्राप्त कर चुके हैं। जो वक्ता विद्वान् सभामें पहुँचकर सत्य बोलता है, वह ब्रह्माजीके धामको, जो अन्यान्य यज्ञोंद्वारा दुर्लभ है, प्राप्त होता है। जो सभामें सत्यभाषण करता है, उसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। लोभ और द्वेषवश झूठ बोलनेसे मनुष्य रौरव नरकमें पड़ता है। तुलाधार सबके साक्षी हैं, वे मनुष्योंमें साक्षात् सूर्य ही हैं। विशेष बात यह है कि लोभका परित्याग कर देनेके कारण मनुष्य स्वर्गमें देवता होता है।

एक महान् भाग्यशाली शूद्र था, जो कभी लोभमें नहीं पड़ता था। वह साग खाकर, बाजारसे अन्नके दाने चुनकर तथा खेतोंसे धानकी बालें बीनकर बड़े दुःखसे जीवन-निर्वाह करता था। उसके पास दो फटे-पुराने वस्त्र थे तथा वह अपने हाथोंसे ही सदा पात्रका काम लेता था। उसे कभी किसी वस्तुका लाभ नहीं हुआ, तथापि वह पराया धन नहीं लेता था। एक दिन मैं उसकी परीक्षा करनेके लिये दो नवीन वस्त्र लेकर गया और नदीके तीरपर एक कोनेमें उन्हें आदरपूर्वक रखकर अन्यत्र जा खड़ा हुआ। शूद्रने उन दोनों वस्त्रोंको देखकर भी मनमें लोभ नहीं किया और यह समझकर कि ये किसी औरके पड़े होंगे चुपचाप घर चला गया। तब यह सोचकर कि बहुत थोड़ा लाभ होनेके कारण ही उसने इन वस्त्रोंको नहीं लिया होगा, मैंने गूलरके फलमें सोनेका टुकड़ा डालकर उसे वहीं रख दिया। मगध प्रदेश, नदीका तट और कोनेका निर्जन स्थान—ऐसी जगह पहुँचकर उसने उस अद्भुत फलको देखा। उसपर दृष्टि पड़ते ही वह बोल उठा—'बस, बस; यह तो कोई कृत्रिम विधान दिखायी देता है। इस समय इस फलको ग्रहण कर लेनेपर मेरी अलोभवृत्ति नष्ट हो जायगी। इस धनकी रक्षा करनेमें बड़ा कष्ट होता है। यह अहंकारका स्थान है। जितना ही लाभ होता है, उतना ही लोभ बढ़ता जाता है। लाभसे ही लोभकी उत्पत्ति होती है। लोभसे ग्रस्त मनुष्यको सदा ही नरकमें रहना पड़ता है। यदि यह गुणहीन द्रव्य मेरे घरमें रहेगा तो मेरी स्त्री और पुत्रोंको उन्माद हो जायगा। उन्माद कामजनित विकार है। उससे बुद्धिमें भ्रम हो जाता है, भ्रमसे मोह और अहंकारकी उत्पत्ति होती है। उनसे क्रोध और लोभका प्रादुर्भाव होता है। इन सबकी अधिकता होनेपर तपस्याका नाश हो जायगा। तपस्याका क्षय हो जानेपर चित्तको मोहमें

---

* सत्येनोदयते सूरो वाति वातस्तथैव च। न लङ्घयेत् समुद्रस्तु कूर्मो वा धरणीं यथा॥
सत्येन लोकास्तिष्ठन्ति सर्वे च वसुधाधराः। सत्याद् भ्रष्टोऽथ यः सत्त्वोऽप्यधोवासी भवेद् ध्रुवम्॥
सत्यवाचि रतो यस्तु सत्यकार्यरतः सदा। सशरीरेण स्वर्लोकमागत्याच्युततां व्रजेत्॥
सत्येन मुनयः सर्वे मां च गत्वा स्थिराः स्थिताः। सत्याद् युधिष्ठिरो राजा सशरीरो दिवं गतः॥
(५०। ३—६)

डालनेवाला मालिन्य पैदा होगा। उस मलिनतारूप साँकलमें बँध जानेपर मनुष्य फिर ऊपर नहीं उठ सकता।'

यह विचारकर वह शूद्र उस फलको वहीं छोड़ घर चला गया। उस समय स्वर्गस्थ देवता प्रसन्नताके साथ 'साधु-साधु' कहकर उसकी प्रशंसा करने लगे। तब मैं एक क्षपणकका रूप धारण करके उसके घरके पास गया और लोगोंको उनके भाग्यकी बातें बताने लगा। विशेषत: भूतकालकी बात बताया करता था। फिर लोगोंके बारम्बार आने-जानेसे यह समाचार सब ओर फैल गया। यह सुनकर उस शूद्रकी स्त्री भी मेरे पास आयी और अपने भाग्यका कारण पूछने लगी। तब मैंने तुरंत ही उसके मनकी बात बता दी और एकान्तमें स्थित होकर कहा—'महाभागे! विधाताने आज तेरे लिये बहुत धन दिया था, किन्तु तेरे पतिने मूर्खकी भाँति उसका परित्याग कर दिया है। तेरे घरमें धनका बिलकुल अभाव है। अत: जबतक तेरा पति जीवित रहेगा, तबतक उसे दरिद्रता ही भोगनी पड़ेगी—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। माता! तू शीघ्र ही अपने घर जा और पतिसे उस धनके विषयमें पूछ।' इस मंगलमय वचनको सुनकर वह अपने पतिके पास गयी और उस दु:खद वृत्तान्तकी चर्चा करने लगी। उसकी बातको सुनकर शूद्रको बड़ा विस्मय हुआ। वह कुछ सोचकर पत्नीको साथ लिये मेरे पास आया और एकान्तमें मुझसे बोला—'क्षपणक! बताओ, तुम क्या कहते थे?'

क्षपणक बोला—तात! तुम्हें प्रत्यक्ष धन प्राप्त हुआ था; फिर भी तुमने अवज्ञापूर्वक तिनकेकी भाँति उसका त्याग कर दिया। ऐसा क्यों किया? जान पड़ता है तुम्हारे भाग्यमें भोग नहीं बदा है। धनके अभावमें तुम्हें जन्मसे लेकर मृत्युतक अपने और बन्धु-बान्धवोंके दु:ख देखने पड़ेंगे; प्रतिदिन मृतकोंकी-सी अवस्था भोगनी पड़ेगी। इसलिये शीघ्र ही उस धनको ग्रहण करो और निष्कण्टक भोग भोगो।

शूद्रने कहा—क्षपणक! मुझे धनकी इच्छा नहीं है। धन संसार-बन्धनमें डालनेवाला एक जाल है। उसमें फँसे हुए मनुष्यका फिर उद्धार नहीं होता। इस लोक और परलोकमें भी धनके जो दोष हैं, उन्हें सुनो। धन रहनेपर चोर, बन्धु-बान्धव तथा राजासे भी भय प्राप्त होता है। सब मनुष्य [उस धनको हड़प लेनेके लिये] धनी व्यक्तिको मार डालनेकी अभिलाषा रखते हैं; फिर धन कैसे सुखद हो सकता है? धन प्राणोंका घातक और पापका साधक है। धनीका घर काल एवं काम आदि दोषोंका निकेतन बन जाता है। अत: धन दुर्गतिका प्रधान कारण है।

क्षपणक बोला—जिसके पास धन होता है, उसीको मित्र मिलते हैं। जिसके पास धन है, उसके सभी भाई-बन्धु हैं। कुल, शील, पाण्डित्य, रूप, भोग, यश और सुख—ये सब धनवान्को ही प्राप्त होते हैं। धनहीन मनुष्यको तो उसके स्त्री-पुत्र भी त्याग देते हैं; फिर उसे मित्रोंकी प्राप्ति कैसे हो सकती है। जो जन्मसे दरिद्र हैं, वे धर्मका अनुष्ठान कैसे कर सकते हैं। स्वर्गप्राप्तिमें उपकारक जो सात्त्विक यज्ञकार्य तथा पोखरे खुदवाना आदि कर्म हैं, वे भी धनके अभावमें नहीं हो सकते। दान संसारके लिये स्वर्गकी सीढ़ी है; किन्तु निर्धन व्यक्तिके द्वारा उसकी भी सिद्धि होनी असम्भव है। व्रत आदिका पालन, धर्मोपदेश आदिका श्रवण, पितृ-यज्ञ आदिका अनुष्ठान तथा तीर्थ-सेवन—ये शुभकर्म धनहीन मनुष्यके किये नहीं हो सकते। रोगोंका निवारण, पथ्यका सेवन, औषधोंका संग्रह, अपने शरीरकी रक्षा तथा शत्रुओंपर विजय आदि कार्य भी धनसे ही सिद्ध होते हैं, इसलिये जिसके पास बहुत धन हो, उसीको इच्छानुसार भोग प्राप्त हो सकते हैं। धन रहनेपर तुम दानसे ही शीघ्र स्वर्गकी प्राप्ति कर सकते हो।

शूद्रने कहा—कामनाओंका त्याग करनेसे ही समस्त व्रतोंका पालन हो जाता है। क्रोध छोड़ देनेसे तीर्थोंका सेवन हो जाता है। दया ही जपके समान है। सन्तोष ही शुद्ध धन है, अहिंसा ही सबसे बड़ी सिद्धि है, शिलोञ्छवृत्ति ही उत्तम जीविका है। सागका भोजन ही अमृतके समान है। उपवास ही उत्तम तपस्या है। सन्तोष ही मेरे लिये बहुत बड़ा भोग है। कौड़ीका दान

ही मुझ-जैसे व्यक्तिके लिये महादान है। परायी स्त्रियाँ माता और पराया धन मिट्टीके ढेलेके समान है। परस्त्री सर्पिणीके समान भयंकर है। यही सब मेरा यज्ञ है। गुणनिधे! इसी कारण मैं उस धनको नहीं ग्रहण करता। यह मैं सच-सच बता रहा हूँ। कीचड़ लगाकर धोनेकी अपेक्षा दूरसे उसका स्पर्श न करना ही अच्छा है।

श्रीभगवान् कहते हैं—नरश्रेष्ठ! उस शूद्रके इतना कहते ही सम्पूर्ण देवता उसके शरीर और मस्तकपर फूलोंकी वर्षा करने लगे। देवताओंके नगारे बज उठे। गन्धर्वोंका गान होने लगा। तुरंत ही आकाशसे विमान उतर आया। देवताओंने कहा—'धर्मात्मन्! इस विमानपर बैठो और सत्यलोकमें चलकर दिव्य भोगोंका उपभोग करो। तुम्हारे उपभोग-कालका कोई परिमाण नहीं है—अनन्त कालतक तुम्हें पुण्योंका फल भोगना है।' देवगणोंके यों कहनेपर शूद्र बोला—'इस क्षपणकको ऐसा ज्ञान, ऐसी चेष्टा और इस प्रकार भाषणकी शक्ति कैसे प्राप्त हुई है? इसके रूपमें भगवान् विष्णु, शिव, ब्रह्मा, शुक्र अथवा बृहस्पति—इनमेंसे तो कोई नहीं है? अथवा मुझे छलनेके लिये साक्षात् धर्म ही तो यहाँ नहीं आये हैं?' शूद्रके ऐसे वचन सुनकर क्षपणकके रूपमें उपस्थित हुआ मैं हँसकर बोला—'महामुने! मैं साक्षात् विष्णु हूँ, तुम्हारे धर्मको जाननेके लिये यहाँ आया था। अब तुम अपने परिवारसहित विमानपर बैठकर स्वर्गको जाओ।'

तदनन्तर वह शूद्र दिव्य आभूषण और दिव्य वस्त्रोंसे सुशोभित हो सहसा परिवारसहित स्वर्गलोकको चला गया। इस प्रकार उस शूद्रपरिवारके सब लोग लोभ त्याग देनेके कारण स्वर्ग सिधारे। बुद्धिमान् तुलाधार धर्मात्मा हैं। वे सत्यधर्ममें प्रतिष्ठित हैं। इसीलिये देशान्तरमें होनेवाली बातें भी उन्हें ज्ञात हो जाती हैं। तुलाधारके समान प्रतिष्ठित व्यक्ति देवलोकमें भी नहीं है। जो मनुष्य सब धर्मोंमें प्रतिष्ठित होकर इस पवित्र उपाख्यानका श्रवण करता है, उसके जन्म-जन्मके पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं। एक बारके पाठसे उसे सब यज्ञोंका फल मिल जाता है। वह लोकमें श्रेष्ठ और देवताओंका भी पूज्य होता है।

व्यासजी कहते हैं—तदनन्तर मूक चाण्डाल आदि सभी धर्मात्मा परमधाम जानेकी इच्छासे भगवान्के पास आये। उनके साथ उनकी स्त्रियाँ तथा अन्यान्य परिकर भी थे। इतना ही नहीं, उनके घरके आस-पास जो छिपकलियाँ तथा नाना प्रकारके कीड़े-मकोड़े आदि थे, वे देवस्वरूप होकर उनके पीछे-पीछे जानेको उपस्थित थे। उस समय देवता, सिद्ध और महर्षिगण 'धन्य-धन्य' के नारे लगाते हुए फूलोंकी वर्षा करने लगे। विमानों और वनोंमें देवताओंके नगारे बजने लगे। वे सब महात्मा अपने-अपने विमानपर आरूढ़ हो विष्णुधामको पधारे। ब्राह्मण नरोत्तमने यह अद्भुत दृश्य देखकर श्रीजनार्दनसे कहा—'देवेश! मधुसूदन!! मुझे कोई उपदेश दीजिये।'

श्रीभगवान् बोले—तात! तुम्हारे माता-पिताका चित्त शोकसे व्याकुल हो रहा है; उनके पास जाओ। उनकी यत्नपूर्वक आराधना करके तुम शीघ्र ही मेरे धाममें जाओगे। माता-पिताके समान देवता देवलोकमें भी नहीं हैं। उन्होंने शैशवकालमें तुम्हारे

घिनौने शरीरका सदा पालन किया है। उसका पोषण करके बढ़ाया है। तुम अज्ञान-दोषसे युक्त थे, माता-पिताने तुम्हें सज्ञान बनाया है। चराचर प्राणियोंसहित समस्त त्रिलोकीमें भी उनके समान पूज्य कोई नहीं है।

व्यासजी कहते हैं—तदनन्तर देवगण मूक चाण्डाल, पतिव्रता शुभा, तुलाधार वैश्य, सज्जनाद्रोहक और वैष्णव संत—इन पाँचों महात्माओंको साथ ले प्रसन्नतापूर्वक भगवान्की स्तुति करते हुए वैकुण्ठधाममें पधारे। वे सभी अच्युतस्वरूप होकर सम्पूर्ण लोकोंके ऊपर स्थित हुए। नरोत्तम ब्राह्मणने भी यत्नपूर्वक माता-पिताकी आराधना करके थोड़े कालमें ही कुटुम्ब-सहित भगवद्धामको प्राप्त किया। शिष्यगण! यह पाँच महात्माओंका पवित्र उपाख्यान मैंने तुम्हें सुनाया है। जो इसका पाठ अथवा श्रवण करेगा, उसकी कभी दुर्गति नहीं होगी। वह ब्रह्महत्या आदि पापोंसे कभी लिप्त नहीं हो सकता। मनुष्य करोड़ों गोदान करनेसे जिस फलको प्राप्त करता है, पुष्कर तीर्थ और गंगानदीमें स्नान करनेसे उसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, वही फल एक बार इस उपाख्यानके सुनने मात्रसे मिल जाता है।

पोखरे खुदाने, वृक्ष लगाने, पीपलकी पूजा करने, पौंसले (प्याऊ) चलाने, गोचरभूमि छोड़ने, देवालय बनवाने और देवताओंकी पूजा करनेका माहात्म्य

ब्राह्मणोंने कहा—मुनिश्रेष्ठ! यदि हमलोगोंपर आपका अनुग्रह हो तो उन श्रेष्ठ कर्मोंका वर्णन कीजिये, जिनसे संसारमें कीर्ति और धर्मकी प्राप्ति होती है।

व्यासजीने कहा—जिसके खुदवाये हुए पोखरेमें अथवा वनमें गौएँ एक मास या सात दिनोंतक तृप्त रहती हैं, वह पवित्र होकर सम्पूर्ण देवताओंद्वारा पूजित होता है। विशेषत: प्रतिष्ठाके द्वारा पवित्र हुई पोखरीके जलका दान करनेसे जो फल होता है, वह सब सुनो। पोखरेमें जब मेघ वर्षा करता है, उस समय जलके जितने छींटे उछलते हैं, उतने ही हजार वर्षोंतक पोखरा बनवानेवाला मनुष्य स्वर्गलोकका सुख भोगता है। जलसे खेती पकती है, जिससे मनुष्यको प्रसन्नता होती है। जलके बिना प्राणोंका धारण करना असम्भव है। पितरोंका तर्पण, शौच, सुन्दर रूप और दुर्गन्धका नाश—ये सब जलपर ही निर्भर हैं। इस जगत्में संग्रह किये हुए सम्पूर्ण बीजोंका आधार जल ही है। कपड़े धोना और बर्तनोंको माँज-धोकर चमकीला बनाना भी जलके ही अधीन है। इसीसे प्रत्येक कार्यमें जलको पवित्र माना गया है। अत: सब प्रकारसे प्रयत्न करके सारा बल और सारा धन लगाकर बावली, कुआँ तथा पोखरा बनवाने चाहिये। जो निर्जल प्रदेशमें जलाशय बनवाता है, उसे प्रतिदिन इतना पुण्य प्राप्त होता है, जिससे वह एक-एक दिनके पुण्यके बदले एक-एक कल्पतक स्वर्गमें निवास करता है। जो पुरुष प्रतिदिन दूसरोंके उपकारके लिये चार हाथ कुआँ खोदता है, वह एक-एक वर्षके पुण्यका एक-एक कल्पतक स्वर्गमें रहकर उपभोग करता है। जलाशय बनानेका उपदेश देनेवालेको एक करोड़ वर्षोंतक स्वर्गका निवास प्राप्त होता है तथा जो स्वयं जलाशय बनवाता है, उसका पुण्य अक्षय होता है।

पूर्वकालकी बात है, किसी धनीके पुत्रने एक विख्यात जलाशयका निर्माण कराया, जिसमें उसने दस हजार सोनेकी मुहरें व्यय की थीं। धनीने अपनी पूरी शक्ति लगाकर प्राणपणसे चेष्टा करके बड़ी श्रद्धाके साथ सम्पूर्ण प्राणियोंके उपकारके लिये वह कल्याणमय जलाशय तैयार कराया था। कुछ कालके पश्चात् वह निर्धन हो गया। उसके बाद एक दूसरा धनी उसके बनवाये हुए जलाशयका मूल्य देनेको उद्यत हुआ और कहा—'मैं इस जलाशयके लिये दस हजार स्वर्ण-मुद्राएँ दूँगा। इसे खुदवानेका पुण्य तो तुम्हें मिल ही चुका है। मैं केवल मूल्य देकर इसके ऊपर अपना अधिकार करना चाहता हूँ। यदि तुम्हें लाभ जान पड़े तो मेरा प्रस्ताव स्वीकार करो।' धनीके ऐसा कहनेपर जलाशय-

निर्माण करानेवालेने उसे इस प्रकार उत्तर दिया—'भाई! दस हजारका पुण्यफल तो इस जलाशयसे मुझे रोज ही प्राप्त होता है। पुण्यवेत्ताओंने जलाशय-निर्माणका ऐसा ही पुण्य माना है। इस निर्जल प्रदेशमें मैंने यह कल्याणमय सरोवर निर्माण कराया है, इसमें सब लोग अपनी इच्छाके अनुसार स्नान और जलपान आदि कार्य करते हैं।'

उसकी यह बात सुनकर लोगोंने खूब हँसी उड़ायी। तब वह लज्जासे पीड़ित होकर बोला—'हमारी यह बात सच है; विश्वास न हो तो धर्मानुसार इसकी परीक्षा कर लो।' धनीने ईर्ष्यापूर्वक कहा—'बाबू! मेरी बात सुनो। मैं पहले तुम्हें दस हजार स्वर्ण-मुद्राएँ देता हूँ। इसके बाद मैं पत्थर लाकर तुम्हारे जलाशयमें डालूँगा। पत्थर स्वाभाविक ही पानीमें डूब जायगा। फिर यदि वह समयानुसार पानीके ऊपर आकर तैरने लगेगा तो मेरा रुपया मारा जायगा। नहीं तो इस जलाशयपर धर्मत: मेरा अधिकार हो जायगा।' जलाशय बनवानेवालेने 'बहुत अच्छा' कहकर उससे दस हजार मुद्राएँ ले लीं और अपने घरको चल दिया। धनीने कई गवाह बुलाकर उनके सामने उस महान् जलाशयमें पत्थर गिराया। उसके इस कार्यको मनुष्यों, देवताओं और असुरोंने भी देखा। तब धर्मके साक्षीने धर्मतुलापर दस हजार स्वर्ण-मुद्राएँ और जलाशयके जलको तोला; किन्तु वे मुद्राएँ जलाशयसे होनेवाले एक दिनके जल-दानकी भी तुलना न कर सकीं। अपने धनको व्यर्थ जाते देख धनीके हृदयको बड़ा दु:ख हुआ। दूसरे दिन वह पत्थर भी द्वीपकी भाँति जलके ऊपर तैरने लगा। यह देख लोगोंमें बड़ा कोलाहल मचा। इस अद्भुत घटनाकी बात सुनकर धनी और जलाशयका स्वामी दोनों ही प्रसन्नतापूर्वक वहाँ आये। पत्थरको उस अवस्थामें देख धनीने अपनी दस हजार मुद्राएँ उसीकी मान लीं। तत्पश्चात् जलाशयके स्वामीने ही वह पत्थर उठाकर दूर फेंक दिया।

नष्ट होते हुए जलाशयको पुन: खुदवाकर उसका उद्धार करनेसे जो पुण्य होता है, उसके द्वारा मनुष्य स्वर्गमें निवास करता है तथा प्रत्येक जन्ममें वह शान्त और सुखी होता है। अपने गोत्रके मनुष्य, माताके कुटुम्बी, राजा, सगे-सम्बन्धी, मित्र और उपकारी पुरुषोंके खुदवाये हुए जलाशयका जीर्णोद्धार करनेसे अक्षय फलकी प्राप्ति होती है। तपस्वियों, अनाथों और विशेषत: ब्राह्मणोंके लिये जलाशय खुदवानेसे भी मनुष्य अक्षय स्वर्गका सुख भोगता है। इसलिये ब्राह्मणो! जो अपनी शक्तिके अनुसार जलाशय आदिका निर्माण कराता है, वह सब पापोंके क्षय हो जानेसे [अक्षय] पुण्य तथा मोक्षको प्राप्त होता है। जो धार्मिक पुरुष लोकमें इस महान् धर्ममय उपाख्यानको सुनाता है, उसे सब प्रकारके जलाशय-दान करनेका फल होता है। सूर्यग्रहणके समय गंगाजीके उत्तम तटपर एक करोड़ गोदान करनेका जो फल होता है; वही इस प्रसंगको सुननेसे मनुष्य प्राप्त कर लेता है।

अब मैं सम्पूर्ण वृक्षोंके लगानेका अलग-अलग फल कहूँगा। जो जलाशयके तटपर चारों ओर पवित्र वृक्षोंको लगाता है, उसके पुण्यफलका वर्णन नहीं किया जा सकता। अन्य स्थानोंमें वृक्ष लगानेसे जो फल प्राप्त होता है, जलके समीप लगानेपर उसकी अपेक्षा करोड़ोंगुना अधिक फल होता है। अपने बनवाये हुए पोखरेके किनारे वृक्ष लगानेवाला मनुष्य अनन्त फलका भागी होता है।

जलाशयके समीप पीपलका वृक्ष लगाकर मनुष्य जिस फलको प्राप्त करता है, वह सैकड़ों यज्ञोंसे भी नहीं मिल सकता। प्रत्येक पर्वके दिन जो उसके पत्ते जलमें गिरते हैं, वे पिण्डके समान होकर पितरोंको अक्षय तृप्ति प्रदान करते हैं तथा उस वृक्षपर रहनेवाले पक्षी अपनी इच्छाके अनुसार जो फल खाते हैं, उसका ब्राह्मण-भोजनके समान अक्षय फल होता है। गर्मीके समयमें गौ, देवता और ब्राह्मण जिस पीपलकी छायामें बैठते हैं, उसे लगानेवाले मनुष्यके पितरोंको अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति होती है। अत: सब प्रकारसे प्रयत्न करके पीपलका वृक्ष लगाना चाहिये। एक वृक्ष लगा देनेपर भी मनुष्य स्वर्गसे भ्रष्ट नहीं होता। रसोंके क्रय-विक्रयके लिये नियत रमणीय स्थानपर, मार्गमें और जलाशयके किनारे जो

वृक्ष लगाता है, वह मनोरम स्वर्गको प्राप्त होता है।

ब्राह्मणो! पीपलके वृक्षकी पूजा करनेसे जो पुण्य होता है, उसे बतलाता हूँ; सुनो। जो मनुष्य स्नान करके पीपलके वृक्षका स्पर्श करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो बिना नहाये पीपलका स्पर्श करता है, उसे स्नानजन्य फलकी प्राप्ति होती है। अश्वत्थके दर्शनसे पापका नाश और स्पर्शसे लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है, उसकी प्रदक्षिणा करनेसे आयु बढ़ती है। अश्वत्थ वृक्षको हविष्य, दूध, नैवेद्य, फूल, धूप और दीपक अर्पण करके मनुष्य स्वर्गसे भ्रष्ट नहीं होता। पीपलकी जड़के पास बैठकर जो जप, होम, स्तोत्र-पाठ और यन्त्र-मन्त्रादिके अनुष्ठान किये जाते हैं, उन सबका फल करोड़गुना होता है। जिसकी जड़में श्रीविष्णु, तनेमें भगवान् शंकर तथा अग्रभागमें साक्षात् ब्रह्माजी स्थित हैं, उसे संसारमें कौन नहीं पूजेगा। सोमवती अमावास्याको मौन होकर स्नान और एक हजार गौओंका दान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वही फल अश्वत्थ वृक्षको प्रणाम करनेसे मिल जाता है। अश्वत्थकी सात बार प्रदक्षिणा करनेसे दस हजार गौओंके और इससे अधिक अनेकों बार परिक्रमा करनेपर करोड़ों गौओंके दानका फल प्राप्त होता है। अत: पीपल वृक्षकी परिक्रमा सदा ही करनी चाहिये।

विप्रगण! पीपलके वृक्षके नीचे जो फल, मूल और जल आदिका दान किया जाता है, वह सब अक्षय होकर जन्म-जन्मान्तरोंमें प्राप्त होता रहता है। पीपलके समान दूसरा कोई वृक्ष नहीं है। अश्वत्थ वृक्षके रूपमें साक्षात् श्रीहरि ही इस भूतलपर विराजमान हैं। जैसे संसारमें ब्राह्मण, गौ तथा देवता पूजनीय होते हैं, उसी प्रकार पीपलका वृक्ष भी अत्यन्त पूजनीय माना गया है। पीपलको रोपने, रक्षा करने, छूने तथा पूजनेसे वह क्रमश: धन, पुत्र, स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करता है। जो मनुष्य अश्वत्थ वृक्षके शरीरमें कहीं कुछ चोट पहुँचाता है—उसकी डाली या टहनी काट लेता है, वह एक कल्पतक नरक भोगकर चाण्डाल आदिकी योनिमें जन्म ग्रहण करता है। और जो कोई पीपलको जड़से काट देता है, उसका कभी नरकसे उद्धार नहीं होता। यही नहीं, उसकी पहली कई पीढ़ियाँ भयंकर रौरव नरकमें पड़ती हैं। बेलके आठ, बरगदके सात और नीमके दस वृक्ष लगानेका जो फल होता है, पीपलका एक पेड़ लगानेसे भी वही फल होता है।

अब मैं पौंसले (प्याऊ)-का लक्षण बताता हूँ। जहाँ जलका अभाव हो, ऐसे मार्गमें पवित्र स्थानपर एक मण्डप बनाये। वह मार्ग ऐसा होना चाहिये, जहाँ बहुत-से पथिकोंका आना-जाना लगा रहता हो। वहाँ मण्डपमें जलका प्रबन्ध रखे और गर्मी, बरसात तथा शरद्-ऋतुमें बटोहियोंको जल पिलाता रहे। तीन वर्षोंतक इस प्रकार पौंसलेको चालू रखनेसे पोखरा खुदवानेका पुण्य प्राप्त होता है। जो जलहीन प्रदेशमें ग्रीष्मके समय एक मासतक पौंसला चलाता है, वह एक कल्पतक स्वर्गमें सम्मानपूर्वक निवास करता है। जो पोखरे आदिके फलको पढ़ता अथवा सुनाता है, वह पापसे मुक्त होता है और उसके प्रभावसे उसकी सद्गति हो जाती है। अब ब्रह्माजीने सेतु बाँधनेका जैसा फल बताया है, वह सुनो। जहाँका मार्ग दुर्गम हो, दुस्तर कीचड़से भरा हो तथा जो प्रचुर कण्टकोंसे आकीर्ण हो, वहाँ पुल बँधवाकर मनुष्य पवित्र हो जाता है तथा देवत्वको प्राप्त होता है। जो एक बित्तेका भी पुल बँधवा देता है, वह सौ दिव्य वर्षोंतक स्वर्गमें निवास करता है। अत: जिसने पहले कभी एक बित्तेका भी पुल बँधवाया है, वह राजवंशमें जन्म ग्रहण करता है और अन्तमें महान् स्वर्गको प्राप्त होता है।

इसी प्रकार जो गोचरभूमि छोड़ता है, वह कभी स्वर्गसे नीचे नहीं गिरता। गोदान करनेवालेकी जो गति होती है, वही उसकी भी होती है। जो मनुष्य यथाशक्ति गोचरभूमि छोड़ता है, उसे प्रतिदिन सौसे भी अधिक ब्राह्मणोंको भोजन करानेका पुण्य होता है। जो पवित्र वृक्ष और गोचरभूमिका उच्छेद करता है, उसकी इक्कीस पीढ़ियाँ रौरव नरकमें पकायी जाती हैं। गाँवके गोपालकको चाहिये कि गोचरभूमिको नष्ट करनेवाले मनुष्यका पता लगाकर उसे दण्ड दे।

जो मनुष्य भगवान् श्रीविष्णुकी प्रतिमाके लिये तीन

या पाँच खंभोंसे युक्त, शोभासम्पन्न और सुन्दर कलशसे विभूषित मन्दिर बनवाता है, अथवा इससे भी बढ़कर जो मिट्टी या पत्थरका देवालय निर्माण कराता है, उसके खर्चके लिये धन और वृत्ति लगाता है तथा मन्दिरमें अपने इष्टदेवकी, विशेषतः भगवान् श्रीविष्णुकी प्रतिमा स्थापित करके शास्त्रोक्त विधिसे उसकी प्रतिष्ठा कराता है, वह नरश्रेष्ठ भगवान् श्रीविष्णुके सायुज्यको प्राप्त होता है। श्रीविष्णु या श्रीशिवकी प्रतिमा बनवाकर उसके साथ अन्य देवताओंकी भी मनोहर मूर्ति निर्माण करानेसे मनुष्य जिस फलको प्राप्त करता है, वह इस पृथ्वीपर हजारों यज्ञ, दान और व्रत आदि करनेसे भी नहीं मिलता। अपनी शक्तिके अनुसार श्रीशिवलिंगके लिये मन्दिर बनवाकर धर्मात्मा पुरुष वही फल प्राप्त करता है, जो श्रीविष्णु-प्रतिमाके लिये मन्दिर बनवानेसे मिलता है। [वह शिव-सायुज्यको प्राप्त होता है।] जो मनुष्य अपने घरमें भगवान् श्रीशंकरकी सुन्दर प्रतिमा स्थापित करता है, वह एक करोड़ कल्पोंतक देवलोकमें निवास करता है। जो मनुष्य प्रसन्नतापूर्वक श्रीगणेशजीका मन्दिर बनवाता है, वह देवलोकमें पूजित होता है। इसी प्रकार जो नरश्रेष्ठ भगवान् सूर्यका मन्दिर बनवाता है, उसे उत्तम फलकी प्राप्ति होती है। सूर्य-प्रतिमाके लिये पत्थरका मन्दिर बनवाकर मनुष्य सौ करोड़ कल्पोंतक स्वर्ग भोगता है।

जो इष्टदेवके मन्दिरमें एक मासतक अहर्निश घीका दीपक जलाता है, वह उत्तम देवताओंसे पूजित होकर दस हजार दिव्य वर्षोंतक स्वर्गलोकमें निवास करता है। तिलके अथवा दूसरे किसी तेलसे दीपक जलानेका फल घीकी अपेक्षा आधा होता है। एक मासतक जल चढ़ानेसे जो फल मिलता है, उससे मनुष्य ईश्वर-भावको प्राप्त होता है। शीत-कालमें देवताको रूईदार कपड़ा चढ़ाकर मनुष्य सब दुःखोंसे मुक्त हो जाता है। देव-विग्रहको ढकनेके लिये चार हाथका सुन्दर वस्त्र अर्पण करके मनुष्य कभी स्वर्गसे नहीं गिरता। उन्नतिकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको स्वयम्भू शिव-लिंगोंकी पूजा करनी चाहिये। जो विद्वान् एक बार भी शिवलिंगकी परिक्रमा करता है, वह सौ दिव्य वर्षोंतक स्वर्गलोकका सुख भोगता है। इसी प्रकार क्रमशः स्वयम्भू लिंगको नमस्कार करके मनुष्य विश्ववन्द्य होकर स्वर्गलोकको जाता है; इसलिये प्रतिदिन उन्हें प्रणाम करना चाहिये।

जो मनुष्य लिंगस्वरूप भगवान् श्रीशंकरके धनका अपहरण करता है, वह रौरव नरककी यातना भोगकर अन्तमें कीड़ा होता है। जो शिवलिंग अथवा भगवान् श्रीविष्णुकी पूजाके लिये मिले हुए दाताके द्रव्यको स्वयं ही हड़प लेता है, वह अपने कुलकी करोड़ों पीढ़ियोंके साथ नरकसे उद्धार नहीं पाता। जो जल, फूल और धूप-दीप आदिके लिये धन लेकर फिर लोभवश उसे उस कार्यमें नहीं लगाता, वह अक्षय नरकमें पड़ता है। भगवान् शिवके अन्न-पानका भक्षण करनेसे मनुष्यकी बड़ी दुर्गति होती है। अतः जो ब्राह्मण शिवमन्दिरमें पूजाकी वृत्तिसे जीविका चलाता है, उसका कभी नरकसे उद्धार नहीं होता। अनाथ, दीन और विशेषतः श्रोत्रिय ब्राह्मणके लिये सुन्दर घर निर्माण कराकर मनुष्य कभी स्वर्गलोकसे नहीं गिरता। जो इस परम उत्तम पवित्र उपाख्यानका प्रतिदिन श्रवण करता है, उसे अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति होती है तथा मन्दिर-निर्माण आदिका फल भी प्राप्त हो जाता है।

रुद्राक्षकी उत्पत्ति और महिमा तथा आँवलेके फलकी महिमामें प्रेतोंकी कथा और तुलसीदलका माहात्म्य

ब्राह्मणोंने पूछा—द्विजश्रेष्ठ! इस मर्त्यलोकमें कौन ऐसा मनुष्य है, जो पुण्यात्माओंमें श्रेष्ठ, परम पवित्र, सबके लिये सुलभ, मनुष्योंके द्वारा पूजन करनेयोग्य तथा मुनियों और तपस्वियोंका भी आदरपात्र हो?

व्यासजी बोले—विप्रगण! रुद्राक्षकी माला धारण करनेवाला पुरुष सब प्राणियोंमें श्रेष्ठ है। उसके

दर्शनमात्रसे लोगोंकी पाप-राशि विलीन हो जाती है। रुद्राक्षके स्पर्शसे मनुष्य स्वर्गका सुख भोगता है और उसे धारण करनेसे वह मोक्षको प्राप्त होता है। जो मस्तकपर तथा हृदय और बाँहमें भी रुद्राक्ष धारण करता है, वह इस संसारमें साक्षात् भगवान् शंकरके समान है। रुद्राक्षधारी ब्राह्मण जहाँ रहता है, वह देश पुण्यवान् होता है। रुद्राक्षका फल तीर्थोंमें महान् तीर्थके समान है। ब्रह्म-ग्रन्थिसे युक्त मंगलमयी रुद्राक्षकी माला लेकर जो जप-दान-स्तोत्र, मन्त्र और देवताओंका पूजन तथा दूसरा कोई पुण्य कर्म करता है, वह सब अक्षय हो जाता है तथा उससे पापोंका क्षय होता है।

श्रेष्ठ द्विजगण! अब मैं मालाका लक्षण बतलाता हूँ, सुनो। उसका लक्षण जानकर तुमलोग मोक्ष-मार्ग प्राप्त कर लोगे। जिस रुद्राक्षमें योनिका चिह्न न हो, जिसमें कीड़ोंने छेद कर दिया हो, जिसका लिंगचिह्न मिट गया हो तथा जिसमें दो बीज एक साथ सटे हुए हों, ऐसे रुद्राक्षके दानेको मालामें नहीं लेना चाहिये। जो माला अपने हाथसे गूँथी हुई और ढीली-ढाली हो, जिसके दाने एक-दूसरेसे सटे हुए हों अथवा शूद्र आदि नीच मनुष्योंने जिसे गूँथा हो—ऐसी माला अशुद्ध होती है। उसका दूरसे ही परित्याग कर देना चाहिये। जो सर्पके समान आकारवाली (एक ओरसे बड़ी और क्रमशः छोटी), नक्षत्रोंकी-सी शोभा धारण करनेवाली, सुमेरुसे युक्त तथा सटी हुई ग्रन्थिके कारण शुद्ध है, वही माला उत्तम मानी गयी है। विद्वान् पुरुषको वैसी ही मालापर जप करना चाहिये। उपर्युक्त लक्षणोंसे शुद्ध रुद्राक्षकी माला हाथमें लेकर मध्यमा अंगुलिसे लगे हुए दानोंको क्रमशः अँगूठेसे सरकाते हुए जप करना चाहिये। मेरुके पास पहुँचनेपर मालाको हाथसे बार-बार घुमा लेना चाहिये—मेरुका उल्लंघन करना उचित नहीं है। वैदिक, पौराणिक तथा आगमोक्त जितने भी मन्त्र हैं, सब रुद्राक्षमालापर जप करनेसे अभीष्ट फलके उत्पादक और मोक्षदायक होते हैं। जो रुद्राक्षमालासे चूते हुए जलको मस्तकपर धारण करता है, वह सब पापोंसे शुद्ध होकर अक्षय पुण्यका भागी होता है। रुद्राक्षमालाका एक-एक बीज एक-एक देवताके समान है। जो मनुष्य अपने शरीरमें रुद्राक्ष धारण करता है, वह देवताओंमें श्रेष्ठ होता है।

ब्राह्मणोंने पूछा—गुरुदेव! रुद्राक्षकी उत्पत्ति कहाँसे हुई है? तथा वह इतना पवित्र कैसे हुआ?

व्यासजी बोले—ब्राह्मणो! पहले किसी सत्ययुगमें एक त्रिपुर नामका दानव रहता था, वह देवताओंका वध करके अपने अन्तरिक्षचारी नगरमें छिप जाता था। ब्रह्माजीके वरदानसे प्रबल होकर वह सम्पूर्ण लोकोंके विनाशकी चेष्टा कर रहा था। एक समय देवताओंके निवेदन करनेपर भगवान् शंकरने यह भयंकर समाचार सुना। सुनते ही उन्होंने अपने आजगव नामक धनुषपर विकराल बाण चढ़ाया और उस दानवको दिव्य दृष्टिसे देखकर मार डाला। दानव आकाशसे टूटकर गिरनेवाली बहुत बड़ी लूकाके समान इस पृथ्वीपर गिरा। इस कार्यमें अत्यन्त श्रम होनेके कारण रुद्रदेवके शरीरसे पसीनेकी बूँदें टपकने लगीं। उन बूँदोंसे तुरंत ही पृथ्वीपर रुद्राक्षका महान् वृक्ष प्रकट हुआ। इसका फल अत्यन्त गुप्त होनेके कारण साधारण जीव उसे नहीं जानते। तदनन्तर एक दिन कैलासके शिखरपर विराजमान हुए देवाधिदेव भगवान् शंकरको प्रणाम करके कार्तिकेयजीने कहा—'तात! मैं रुद्राक्षका यथार्थ फल जानना चाहता हूँ। उसपर जप करने तथा उसका धारण, दर्शन अथवा स्पर्श करनेसे क्या फल मिलता है?'

भगवान् शिवने कहा—रुद्राक्षके धारण करनेसे मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाता है। यदि कोई हिंसक पशु भी कण्ठमें रुद्राक्ष धारण करके मर जाय तो रुद्रस्वरूप हो जाता है, फिर मनुष्य आदिके लिये तो कहना ही क्या है। जो मनुष्य मस्तक और हृदयमें रुद्राक्षकी माला धारण करके चलता है, उसे पग-पगपर अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है। [रुद्राक्षमें एकसे लेकर चौदहतक मुख होते हैं।] जो कितने भी मुखवाले रुद्राक्षोंको धारण करता है, वह मेरे समान होता है; इसलिये पुत्र! तुम पूरा प्रयत्न करके रुद्राक्ष धारण करो।

जो रुद्राक्ष धारण करके इस भूतलपर प्राण-त्याग करता है; वह सब देवताओंसे पूजित होकर मेरे रमणीय धामको जाता है। जो मृत्युकालमें मस्तकपर एक रुद्राक्षकी माला धारण करता है, वह शैव, वैष्णव, शाक्त, गणेशोपासक और सूर्योपासक सब कुछ है। जो इस प्रसंगको पढ़ता-पढ़ाता, सुनता और सुनाता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर सुखपूर्वक मोक्ष-लाभ करता है।

कार्तिकेयजीने कहा—जगदीश्वर! मैं अन्यान्य फलोंकी पवित्रताके विषयमें भी प्रश्न कर रहा हूँ। सब लोगोंके हितके लिये यह बतलाइये कि कौन-कौन-से फल उत्तम हैं।

ईश्वरने कहा—बेटा! आँवलेका फल समस्त लोकोंमें प्रसिद्ध और परम पवित्र है। उसे लगानेपर स्त्री और पुरुष सभी जन्म-मृत्युके बन्धनसे मुक्त हो जाते हैं। यह पवित्र फल भगवान् श्रीविष्णुको प्रसन्न करनेवाला एवं शुभ माना गया है, इसके भक्षणमात्रसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं। आँवला खानेसे आयु बढ़ती है, उसका जल पीनेसे धर्म-संचय होता है और उसके द्वारा स्नान करनेसे दरिद्रता दूर होती है तथा सब प्रकारके ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं। कार्तिकेय! जिस घरमें आँवला सदा मौजूद रहता है, वहाँ दैत्य और राक्षस नहीं जाते। एकादशीके दिन यदि एक ही आँवला मिल जाय तो उसके सामने गंगा, गया, काशी और पुष्कर आदि तीर्थ कोई विशेष महत्त्व नहीं रखते। जो दोनों पक्षोंकी एकादशीको आँवलेसे स्नान करता है, उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं और वह श्रीविष्णुलोकमें सम्मानित होता है। षडानन! जो आँवलेके रससे सदा अपने केश साफ करता है, वह पुनः माताके स्तनका दूध नहीं पीता। आँवलेका दर्शन, स्पर्श तथा उसके नामका उच्चारण करनेसे सन्तुष्ट होकर वरदायक भगवान् श्रीविष्णु अनुकूल हो जाते हैं। जहाँ आँवलेका फल मौजूद होता है, वहाँ भगवान् श्रीविष्णु सदा विराजमान रहते हैं तथा उस घरमें ब्रह्मा एवं सुस्थिर लक्ष्मीका भी वास होता है। इसलिये अपने घरमें आँवला अवश्य रखना चाहिये। जो आँवलेका बना मुरब्बा एवं बहुमूल्य नैवेद्य अर्पण करता है, उसके ऊपर भगवान् श्रीविष्णु बहुत सन्तुष्ट होते हैं। उतना सन्तोष उन्हें सैकड़ों यज्ञ करनेपर भी नहीं हो सकता।

स्कन्द! योगी, मुनियों तथा ज्ञानियोंको जो गति प्राप्त होती है, वही आँवलेका सेवन करनेवाले मनुष्यको भी मिलती है। तीर्थोंमें वास एवं तीर्थ-यात्रा करनेसे तथा नाना प्रकारके व्रतोंसे मनुष्यको जो गति प्राप्त होती है, वही आँवलेके फलका सेवन करनेसे भी मिल जाती है। तात! प्रत्येक रविवार तथा विशेषतः सप्तमी तिथिको आँवलेका फल दूरसे ही त्याग देना चाहिये। संक्रान्तिके दिन, शुक्रवारको तथा षष्ठी, प्रतिपदा, नवमी और अमावास्याको आँवलेका दूरसे ही परित्याग करना उचित है। जिस मृतकके मुख, नाक, कान अथवा बालोंमें आँवलेका फल हो, वह विष्णुलोकको जाता है। आँवलेके सम्पर्कमात्रसे मृत व्यक्ति भगवद्धामको प्राप्त होता है। जो धार्मिक मनुष्य शरीरमें आँवलेका रस लगाकर स्नान करता है, उसे पद-पदपर अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है। उसके दर्शन मात्रसे जितने भी पापी जन्तु हैं, वे भाग जाते हैं तथा कठोर एवं दुष्ट ग्रह पलायन कर जाते हैं।

स्कन्द! पूर्वकालकी बात है—एक चाण्डाल शिकार खेलनेके लिये वनमें गया। वहाँ अनेकों मृगों और पक्षियोंको मारकर जब वह भूख-प्याससे अत्यन्त पीड़ित हो गया, तब सामने ही उसे एक आँवलेका वृक्ष दिखायी दिया। उसमें खूब मोटे-मोटे फल लगे थे। चाण्डाल सहसा वृक्षके ऊपर चढ़ गया और उसके उत्तम-उत्तम फल खाने लगा। प्रारब्धवश वह वृक्षके शिखरसे पृथ्वीपर गिर पड़ा और वेदनासे व्यथित होकर इस लोकसे चल बसा। तदनन्तर सम्पूर्ण प्रेत, राक्षस, भूतगण तथा यमराजके सेवक बड़ी प्रसन्नताके साथ वहाँ आये; किन्तु उसे ले न जा सके। यद्यपि वे महान् बलवान् थे, तथापि उस मृतक चाण्डालकी ओर आँख उठाकर देख भी नहीं सकते थे। जब कोई भी उसे पकड़कर ले जा न सका, तब वे अपनी असमर्थता देख मुनियोंके पास जाकर बोले—'ज्ञानी महर्षियो!

चाण्डाल तो बड़ा पापी था; फिर क्या कारण है कि हमलोग तथा ये यमराजके सेवक उसकी ओर देख भी न सके?' 'यह मेरा है, यह मेरा है' कहते हुए हमलोग झगड़ा कर रहे हैं, किन्तु उसे ले जानेकी शक्ति नहीं रखते। क्यों और किसके प्रभावसे वह सूर्यकी भाँति दुष्प्रेक्ष्य हो रहा है—उसकी ओर दृष्टिपात करना भी कठिन जान पड़ता है।'

मुनियोंने कहा—प्रेतगण! इस चाण्डालने आँवलेके पके हुए फल खाये थे। उसकी डाल टूट जानेसे उसके सम्पर्कमें ही इसकी मृत्यु हुई है। मृत्युकालमें भी इसके आस-पास बहुत-से फल बिखरे पड़े थे। इन्हीं सब कारणोंसे तुमलोगोंका इसकी ओर देखना कठिन हो रहा है। इस पापीका आँवलेसे सम्पर्क रविवारको या और किसी निषिद्ध वेलामें नहीं हुआ है; इसलिये यह दिव्य लोकको प्राप्त होगा।

प्रेत बोले—मुनीश्वरो! आपलोगोंका ज्ञान उत्तम है, इसलिये हम आपसे एक प्रश्न पूछते हैं। जबतक यहाँ श्रीविष्णुलोकसे विमान नहीं आता, तबतक आपलोग हमारे प्रश्नका उत्तर दे दें। जहाँ वेदों और नाना प्रकारके मन्त्रोंका गम्भीर घोष होता है, जहाँ पुराणों और स्मृतियोंका स्वाध्याय किया जाता है, वहाँ हम एक क्षणके लिये भी नहीं ठहर सकते। यज्ञ, होम, जप तथा देवपूजा आदि शुभ कार्योंके सामने हमारा ठहरना असम्भव है; इसलिये हमें यह बताइये कि कौन-सा कर्म करके मनुष्य प्रेतयोनियोंको प्राप्त होते हैं। हमें यह सुननेकी भी इच्छा है कि उनका शरीर विकृत क्योंकर हो जाता है।

ब्रह्मर्षियोंने कहा—जो झूठी गवाही देते तथा वध और बन्धनमें पड़कर मृत्युको प्राप्त होते हैं, वे नरकमें पड़े हुए जीव ही प्रेत होते हैं। जो ब्राह्मणोंके दोष ढूँढ़नेमें लगे रहते हैं और गुरुजनोंके शुभ कर्मोंमें बाधा पहुँचाते हैं तथा जो श्रेष्ठ ब्राह्मणको दिये जानेवाले दानमें रुकावट डाल देते हैं, वे चिरकालतक प्रेतयोनिमें पड़कर नरकसे कभी उद्धार नहीं पाते। जो मूर्ख अपने और दूसरेके बैलोंको कष्ट दे उनसे बोझ ढोनेका काम लेकर उनकी रक्षा नहीं करते, जो अपनी प्रतिज्ञाका त्याग करते, असत्य बोलते और व्रत भंग करते हैं तथा जो कमलके पत्तेपर भोजन करते हैं, वे सब इस पृथ्वीपर कर्मानुसार प्रेत होते हैं। जो अपने चाचा और मामा आदिकी सदाचारिणी कन्या तथा साध्वी स्त्रीको बेच देते हैं, वे भूतलपर प्रेत होते हैं।

प्रेतोंने पूछा—ब्राह्मणो! किस प्रकार और किस कर्मके आचरणसे मनुष्य प्रेत नहीं होते?

ब्राह्मणोंने कहा—जिस बुद्धिमान् पुरुषने तीर्थोंके जलमें स्नान तथा शिवको नमस्कार किया है, वह मनुष्य प्रेत नहीं होता। जो एकादशी अथवा द्वादशीको उपवास करके विशेषतः भगवान् श्रीविष्णुका पूजन करते हैं तथा जो वेदोंके अक्षर, सूक्त, स्तोत्र और मन्त्र आदिके द्वारा देवताओंके पूजनमें संलग्न रहते हैं, उन्हें भी प्रेत नहीं होना पड़ता। पुराणोंके धर्मयुक्त दिव्य वचन सुनने, पढ़ने और पढ़ानेसे तथा नाना प्रकारके व्रतोंका अनुष्ठान करने और रुद्राक्ष धारण करनेसे जो पवित्र हो चुके हैं एवं जो रुद्राक्षकी मालापर जप करते हैं, वे प्रेतयोनिको नहीं प्राप्त होते। जो आँवलेके फलके रससे स्नान करके प्रतिदिन आँवला खाया करते हैं तथा आँवलेके द्वारा भगवान् श्रीविष्णुका पूजन भी करते हैं, वे कभी पिशाचयोनिमें नहीं जाते।

प्रेत बोले—महर्षियो! संतोंके दर्शनसे पुण्य होता है—इस बातको पौराणिक विद्वान् जानते हैं। हमें भी आपका दर्शन हुआ है; इसलिये आपलोग हमारा कल्याण करें। धीर महात्माओ! जिस उपायसे हम सब लोगोंको प्रेतयोनिसे छुटकारा मिले, उसका उपदेश कीजिये। हम आपलोगोंकी शरणमें आये हैं।

ब्राह्मण बोले—हमारे वचनसे तुमलोग आँवलेका भक्षण कर सकते हो। वह तुम्हारे लिये कल्याणकारक होगा। उसके प्रभावसे तुम उत्तम लोकमें जानेके योग्य बन जाओगे।

महादेवजी कहते हैं—इस प्रकार ऋषियोंसे सुनकर पिशाच आँवलेके वृक्षपर चढ़ गये और उसका फल ले-लेकर उन्होंने बड़ी मौजके साथ खाया। तब

देवलोकसे तुरंत ही एक पीले रंगका सुवर्णमय विमान उतरा, जो परम शोभायमान था। पिशाचोंने उसपर आरूढ़ होकर स्वर्गलोककी यात्रा की। बेटा! अनेक व्रतों और यज्ञोंके अनुष्ठानसे भी जो अत्यन्त दुर्लभ है, वही लोक उन्हें आँवलेका भक्षण करने मात्रसे मिल गया।

कार्तिकेयजीने पूछा—पिताजी! जब आँवलेके फलका भक्षण करने मात्रसे प्रेत पुण्यात्मा होकर स्वर्गको चले गये, तब मनुष्य आदि जितने प्राणी हैं, वे भी आँवला खानेसे क्यों नहीं तुरंत स्वर्गमें चले जाते?

महादेवजीने कहा—बेटा! [स्वर्गकी प्राप्ति तो उन्हें भी होती है; किन्तु] तुरंत ऐसा न होनेमें एक कारण है—उनका ज्ञान लुप्त रहता है, वे अपने हित और अहितकी बात नहीं जानते। [इसलिये आँवलेके महत्त्वमें उनकी श्रद्धा नहीं होती।]

जिस घरकी मालकिन सहज ही काबूमें न आने-वाली, पवित्रता और संयमसे रहित, गुरुजनोंद्वारा निकाली हुई तथा दुराचारिणी होती है, वहाँ प्रेत रहा करते हैं। जो कुल और जातिसे नीच, बल और उत्साहसे रहित, बहरे, दुर्बल और दीन हैं, वे कर्मजनित पिशाच हैं। जो माता, पिता, गुरु और देवताओंकी निन्दा करते हैं, पाखण्डी और वाममार्गी हैं, जो गलेमें फाँसी लगाकर, पानीमें डूबकर, तलवार या छुरा भोंककर अथवा जहर खाकर आत्मघात कर लेते हैं, वे प्रेत होनेके पश्चात् इस लोकमें चाण्डाल आदि योनियोंके भीतर जन्म ग्रहण करते हैं। जो माता-पिता आदिसे द्रोह करते, ध्यान और अध्ययनसे दूर रहते हैं, व्रत और देवपूजा नहीं करते, मन्त्र और स्नानसे हीन रहकर गुरुपत्नी-गमनमें प्रवृत्त होते हैं तथा जो दुर्गतिमें पड़ी हुई चाण्डाल आदिकी स्त्रियोंसे समागम करते हैं, वे भी प्रेत होते हैं। म्लेच्छोंके देशमें जिनकी मृत्यु होती है, जो म्लेच्छोंके समान आचरण करते और स्त्रीके धनसे जीविका चलाते हैं, जिनके द्वारा स्त्रियोंकी रक्षा नहीं होती, वे निस्सन्देह प्रेत होते हैं। जो क्षुधासे पीड़ित, थके-माँदे, गुणवान् और पुण्यात्मा अतिथिके रूपमें घरपर आये हुए ब्राह्मणको लौटा देते हैं—उसका यथावत् सत्कार नहीं करते, जो गो-भक्षी म्लेच्छोंके हाथ गौएँ बेच देते हैं, जो जीवनभर स्नान, सन्ध्या, वेद-पाठ, यज्ञानुष्ठान और अक्षरज्ञानसे दूर रहते हैं, जो लोग जूठे शकोरे आदि और शरीरके मल-मूत्र तीर्थ-भूमिमें गिराते हैं, वे निस्सन्देह प्रेत होते हैं। जो स्त्रियाँ पतिका परित्याग करके दूसरे लोगोंके साथ रहती हैं, वे चिरकालतक प्रेतलोकमें निवास करनेके पश्चात् चाण्डालयोनिमें जन्म लेती हैं। जो विषय और इन्द्रियोंसे मोहित होकर पतिको धोखा देकर स्वयं मिठाइयाँ उड़ाती हैं, वे पापाचारिणी स्त्रियाँ चिरकालतक इस पृथ्वीपर प्रेत होती हैं। जो मनुष्य बलपूर्वक दूसरेकी वस्तुएँ लेकर उन्हें अपने अधिकारमें कर लेते हैं और अतिथियोंका अनादर करते हैं, वे प्रेत होकर नरकमें पड़े रहते हैं।

इसलिये जो आँवला खाकर उसके रससे स्नान करते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होते हैं। अतः सब प्रकारसे प्रयत्न करके तुम आँवलेके कल्याणमय फलका सेवन करो। जो इस पवित्र और मंगलमय उपाख्यानका प्रतिदिन श्रवण करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे शुद्ध होकर भगवान् श्रीविष्णुके लोकमें सम्मानित होता है। जो सदा ही लोगोंमें, विशेषतः वैष्णवोंमें आँवलेके माहात्म्यका श्रवण कराता है, वह भगवान् श्रीविष्णुके सायुज्यको प्राप्त होता है—ऐसा पौराणिकोंका कथन है।

कार्तिकेयजीने कहा—प्रभो! रुद्राक्ष और आँवला—इन दोनों फलोंकी पवित्रताको तो मैं जान गया। अब मैं यह सुनना चाहता हूँ कि कौन-सा ऐसा वृक्ष है, जिसका पत्ता और फूल भी मोक्ष प्रदान करनेवाला है।

महादेवजी बोले—बेटा! सब प्रकारके पत्तों और पुष्पोंकी अपेक्षा तुलसी ही श्रेष्ठ मानी गयी है। वह परम मंगलमयी, समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाली, शुद्ध, श्रीविष्णुको अत्यन्त प्रिय तथा 'वैष्णवी' नाम धारण करनेवाली है। वह सम्पूर्ण लोकमें श्रेष्ठ, शुभ तथा भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली है। भगवान् श्रीविष्णुने पूर्वकालमें सम्पूर्ण लोकोंका हित करनेके लिये तुलसीका वृक्ष रोपा था। तुलसीके पत्ते और पुष्प सब धर्मोंमें

प्रतिष्ठित हैं। जैसे भगवान् श्रीविष्णुको लक्ष्मी और मैं दोनों प्रिय हैं, उसी प्रकार यह तुलसीदेवी भी परम प्रिय है। हम तीनके सिवा कोई चौथा ऐसा नहीं जान पड़ता, जो भगवान्‌को इतना प्रिय हो। तुलसीदलके बिना दूसरे-दूसरे फूलों, पत्तों तथा चन्दन आदिके लेपोंसे भगवान् श्रीविष्णुको उतना सन्तोष नहीं होता। जिसने तुलसीदलके द्वारा पूर्ण श्रद्धाके साथ प्रतिदिन भगवान् श्रीविष्णुका पूजन किया है, उसने दान, होम, यज्ञ और व्रत आदि सब पूर्ण कर लिये। तुलसीदलसे भगवान्‌की पूजा कर लेनेपर कान्ति, सुख, भोगसामग्री, यश, लक्ष्मी, श्रेष्ठ कुल, शील, पत्नी, पुत्र, कन्या, धन, राज्य, आरोग्य, ज्ञान, विज्ञान, वेद, वेदांग, शास्त्र, पुराण, तन्त्र और संहिता—सब कुछ मैं करतलगत समझता हूँ। जैसे पुण्यसलिला गंगा मुक्ति प्रदान करनेवाली हैं, उसी प्रकार यह तुलसी भी कल्याण करनेवाली है। स्कन्द! यदि मंजरीयुक्त तुलसीपत्रोंके द्वारा भगवान् श्रीविष्णुकी पूजा की जाय तो उसके पुण्यफलका वर्णन करना असम्भव है। जहाँ तुलसीका वन है, वहीं भगवान् श्रीकृष्णकी समीपता है तथा वहीं ब्रह्मा और लक्ष्मीजी भी सम्पूर्ण देवताओंके साथ विराजमान हैं। इसलिये अपने निकटवर्ती स्थानमें तुलसीदेवीको रोपकर उनकी पूजा करनी चाहिये। तुलसीके निकट जो स्तोत्र-मन्त्र आदिका जप किया जाता है, वह सब अनन्तगुना फल देनेवाला होता है।

प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस, भूत और दैत्य आदि सब तुलसीके वृक्षसे दूर भागते हैं। ब्रह्महत्या आदि पाप तथा पाप और खोटे विचारसे उत्पन्न होनेवाले रोग—ये सब तुलसीवृक्षके समीप नष्ट हो जाते हैं। जिसने श्रीभगवान्‌की पूजाके लिये पृथ्वीपर तुलसीका बगीचा लगा रखा है, उसने उत्तम दक्षिणाओंसे युक्त सौ यज्ञोंका विधिवत् अनुष्ठान पूर्ण कर लिया है। जो श्रीभगवान्‌की प्रतिमाओं तथा शालग्राम-शिलाओंपर चढ़े हुए तुलसीदलको प्रसादके रूपमें ग्रहण करता है, वह श्रीविष्णुके सायुज्यको प्राप्त होता है। जो श्रीहरिकी पूजा करके उन्हें निवेदन किये हुए तुलसीदलको अपने मस्तकपर धारण करता है, वह पापसे शुद्ध होकर स्वर्गलोकको प्राप्त होता है। कलियुगमें तुलसीका पूजन, कीर्तन, ध्यान, रोपण और धारण करनेसे वह पापको जलाती और स्वर्ग एवं मोक्ष प्रदान करती है। जो तुलसीके पूजन आदिका दूसरोंको उपदेश देता और स्वयं भी आचरण करता है, वह भगवान् श्रीलक्ष्मीपतिके परम धामको प्राप्त होता है।* जो वस्तु भगवान् श्रीविष्णुको प्रिय जान पड़ती है, वह मुझे भी अत्यन्त प्रिय है। श्राद्ध और यज्ञ आदि कार्योंमें तुलसीका एक पत्ता भी महान् पुण्य प्रदान करनेवाला है। जिसने तुलसीकी सेवा की है, उसने गुरु, ब्राह्मण, देवता और तीर्थ—सबका भलीभाँति सेवन कर लिया। इसलिये षडानन! तुम तुलसीका सेवन करो। जो शिखामें तुलसी स्थापित करके प्राणोंका परित्याग करता है, वह पापराशिसे मुक्त हो जाता है। राजसूय आदि यज्ञ, भाँति-भाँतिके व्रत तथा संयमके द्वारा धीर पुरुष जिस गतिको प्राप्त करता है, वही उसे तुलसीकी सेवासे मिल जाती है। तुलसीके एक पत्रसे श्रीहरिकी पूजा करके मनुष्य वैष्णवत्वको प्राप्त होता है। उसके लिये अन्यान्य शास्त्रोंके विस्तारकी क्या आवश्यकता है। जिसने तुलसीकी शाखा तथा कोमल पत्तियोंसे भगवान् श्रीविष्णुकी पूजा की है, वह कभी माताका दूध नहीं पीता—उसका पुनर्जन्म नहीं होता। कोमल तुलसीदलोंके द्वारा प्रतिदिन श्रीहरिकी पूजा करके मनुष्य अपनी सैकड़ों और हजारों पीढ़ियोंको पवित्र कर सकता है। तात! ये मैंने तुमसे तुलसीके प्रधान-प्रधान गुण बतलाये हैं। सम्पूर्ण गुणोंका वर्णन तो बहुत अधिक समय लगानेपर भी नहीं हो सकता। यह उपाख्यान

---

* पूजने कीर्तने ध्याने रोपणे धारणे कलौ। तुलसी दहते पापं स्वर्गं मोक्षं ददाति च॥
उपदेशं ददेदस्याः स्वयमाचरते पुनः। स याति परमं स्थानं माधवस्य निकेतनम्॥
(५८। १३१-१३२)

पुण्यराशिका संचय करनेवाला है। जो प्रतिदिन इसका श्रवण करता है, वह पूर्वजन्मके किये हुए पाप तथा जन्म-मृत्युके बन्धनसे मुक्त हो जाता है। बेटा! इस अध्यायके पाठ करनेवाले पुरुषको कभी रोग नहीं सताते, अज्ञान उसके निकट नहीं आता। उसकी सदा विजय होती है।

तुलसी-स्तोत्रका वर्णन

ब्राह्मणोंने कहा—गुरुदेव! हमने आपके मुखसे तुलसीके पत्र और पुष्पका शुभ माहात्म्य सुना, जो भगवान् श्रीविष्णुको बहुत ही प्रिय है। अब हमलोग तुलसीके पुण्यमय स्तोत्रका श्रवण करना चाहते हैं।

व्यासजी बोले—ब्राह्मणो! पहले स्कन्दपुराणमें मैं जो कुछ बतला आया हूँ, वही यहाँ कहता हूँ। शतानन्द मुनिके शिष्य कठोर व्रतका पालन करनेवाले थे। उन सबोंने एक दिन अपने गुरुको प्रणाम करके परम पुण्य और हितकी बात पूछी।

शिष्योंने कहा—नाथ! ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! आपने पूर्वकालमें ब्रह्माजीके मुखसे तुलसीजीके जिस स्तोत्रका श्रवण किया था, उसको हम आपसे सुनना चाहते हैं।

शतानन्दजी बोले—शिष्यगण! तुलसीका नामोच्चारण करनेपर असुरोंका दर्प दलन करनेवाले भगवान् श्रीविष्णु प्रसन्न होते हैं। मनुष्यके पाप नष्ट हो जाते हैं तथा उसे अक्षय पुण्यकी प्राप्ति होती है। जिसके दर्शनमात्रसे करोड़ों गोदानका फल होता है, उस तुलसीका पूजन और वन्दन लोग क्यों न करें। कलियुगके संसारमें वे मनुष्य धन्य हैं, जिनके घरमें शालग्राम-शिलाका पूजन सम्पन्न करनेके लिये प्रतिदिन तुलसीका वृक्ष भूतलपर लहलहाता रहता है। जो कलियुगमें भगवान् श्रीकेशवकी पूजाके लिये पृथ्वीपर तुलसीका वृक्ष लगाते हैं, उनपर यदि यमराज अपने किंकरोंसहित रुष्ट हो जायँ तो भी वे उनका क्या कर सकते हैं। 'तुलसी! तुम अमृतसे उत्पन्न हो और केशवको सदा ही प्रिय हो। कल्याणी! मैं भगवान्की पूजाके लिये तुम्हारे पत्तोंको चुनता हूँ। तुम मेरे लिये वरदायिनी बनो। तुम्हारे श्रीअंगोंसे उत्पन्न होनेवाले पत्रों और मंजरियोंद्वारा मैं सदा ही जिस प्रकार श्रीहरिका पूजन कर सकूँ, वैसा उपाय करो। पवित्रांगी तुलसी! तुम कलि-मलका नाश करनेवाली हो।'* इस भावके मन्त्रोंसे जो तुलसीदलोंको चुनकर उनसे भगवान् वासुदेवका पूजन करता है, उसकी पूजाका करोड़ोंगुना फल होता है।

देवेश्वरी! बड़े-बड़े देवता भी तुम्हारे प्रभावका गायन करते हैं। मुनि, सिद्ध, गन्धर्व, पाताल-निवासी साक्षात् नागराज शेष तथा सम्पूर्ण देवता भी तुम्हारे प्रभावको नहीं जानते; केवल भगवान् श्रीविष्णु ही तुम्हारी महिमाको पूर्णरूपसे जानते हैं। जिस समय क्षीर-समुद्रके मन्थनका उद्योग प्रारम्भ हुआ था, उस समय श्रीविष्णुके आनन्दांशसे तुम्हारा प्रादुर्भाव हुआ था। पूर्वकालमें श्रीहरिने तुम्हें अपने मस्तकपर धारण किया था। देवि! उस समय श्रीविष्णुके शरीरका सम्पर्क पाकर तुम परम पवित्र हो गयी थीं। तुलसी! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ। तुम्हारे श्रीअंगसे उत्पन्न पत्रोंद्वारा जिस प्रकार श्रीहरिकी पूजा कर सकूँ, ऐसी कृपा करो, जिससे मैं निर्विघ्नतापूर्वक परम गतिको प्राप्त होऊँ। साक्षात् श्रीकृष्णने तुम्हें गोमतीतटपर लगाया और बढ़ाया था। वृन्दावनमें विचरते समय उन्होंने सम्पूर्ण जगत् और गोपियोंके हितके लिये तुलसीका सेवन किया। जगत्-प्रिया तुलसी! पूर्वकालमें वसिष्ठजीके कथनानुसार श्रीरामचन्द्रजीने भी राक्षसोंका वध करनेके उद्देश्यसे सरयूके तटपर तुम्हें लगाया था। तुलसीदेवी!

---

* तुलस्यमृतजन्मासि सदा त्वं केशवप्रिये। केशवार्थं चिनोमि त्वां वरदा भव शोभने॥
त्वदङ्गसम्भवैर्नित्यं पूजयामि यथा हरिम्। तथा कुरु पवित्राङ्गि कलौ मलविनाशिनि॥
(५९। ११—१३)

मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ। श्रीरामचन्द्रजीसे वियोग हो जानेपर अशोकवाटिकामें रहते हुए जनककिशोरी सीताने तुम्हारा ही ध्यान किया था, जिससे उन्हें पुनः अपने प्रियतमका समागम प्राप्त हुआ। पूर्वकालमें हिमालय पर्वतपर भगवान् शंकरकी प्राप्तिके लिये पार्वतीदेवीने तुम्हें लगाया और अपनी अभीष्ट-सिद्धिके लिये तुम्हारा सेवन किया था। तुलसीदेवी! मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ। सम्पूर्ण देवांगनाओं और किन्नरोंने भी दुःस्वप्नका नाश करनेके लिये नन्दनवनमें तुम्हारा सेवन किया था। देवि! तुम्हें मेरा नमस्कार है। धर्मारण्य गयामें साक्षात् पितरोंने तुलसीका सेवन किया था। दण्डकारण्यमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने अपने हित-साधनकी इच्छासे परम पवित्र तुलसीका वृक्ष लगाया तथा लक्ष्मण और सीताने भी बड़ी भक्तिके साथ उसे पोसा था। जिस प्रकार शास्त्रोंमें गंगाजीको त्रिभुवनव्यापिनी कहा गया है, उसी प्रकार तुलसीदेवी भी सम्पूर्ण चराचर जगत्में दृष्टिगोचर होती हैं। तुलसीका ग्रहण करके मनुष्य पातकोंसे मुक्त हो जाता है। और तो और, मुनीश्वरो! तुलसीके सेवनसे ब्रह्महत्या भी दूर हो जाती है। तुलसीके पत्तेसे टपकता हुआ जल जो अपने सिरपर धारण करता है, उसे गंगा- स्नान और दस गोदानका फल प्राप्त होता है। देवि! मुझपर प्रसन्न होओ। देवेश्वरि! हरिप्रिये! मुझपर प्रसन्न हो जाओ। क्षीरसागरके मन्थनसे प्रकट हुई तुलसीदेवि! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ।

द्वादशीकी रात्रिमें जागरण करके जो इस तुलसी-स्तोत्रका पाठ करता है, भगवान् श्रीविष्णु उसके बत्तीस अपराध क्षमा करते हैं। बाल्यावस्था, कुमारावस्था, जवानी और बुढ़ापेमें जितने पाप किये होते हैं, वे सब तुलसी-स्तोत्रके पाठसे नष्ट हो जाते हैं। तुलसीके स्तोत्रसे सन्तुष्ट होकर भगवान् सुख और अभ्युदय प्रदान करते हैं। जिस घरमें तुलसीका स्तोत्र लिखा हुआ विद्यमान रहता है, उसका कभी अशुभ नहीं होता, उसका सब कुछ मंगलमय होता है, किंचित् भी अमंगल नहीं होता। उसके लिये सदा सुकाल रहता है। वह घर प्रचुर धन-धान्यसे भरा रहता है। तुलसी-स्तोत्रका पाठ करनेवाले मनुष्यके हृदयमें भगवान् श्रीविष्णुके प्रति अविचल भक्ति होती है तथा उसका वैष्णवोंसे कभी वियोग नहीं होता। इतना ही नहीं, उसकी बुद्धि कभी अधर्ममें नहीं प्रवृत्त होती। जो द्वादशीकी रात्रिमें जागरण करके तुलसी-स्तोत्रका पाठ करता है, उसे करोड़ों तीर्थोंके सेवनका फल प्राप्त होता है।

श्रीगंगाजीकी महिमा और उनकी उत्पत्ति

ब्राह्मण बोले—गुरुदेव! अब आप हमें कोई ऐसा तीर्थ बतलाइये, जहाँ डुबकी लगानेसे निश्चय ही समस्त पाप तथा दूसरे-दूसरे महापातक भी नष्ट हो जाते हैं।

व्यासजी बोले—ब्राह्मणो! अविलम्ब सद्गतिका उपाय सोचनेवाले सभी स्त्री-पुरुषोंके लिये गंगाजी ही एक ऐसा तीर्थ हैं, जिनके दर्शनमात्रसे सारा पाप नष्ट हो जाता है। गंगाजीके नामका स्मरण करनेमात्रसे पातक, कीर्तनसे अतिपातक और दर्शनसे भारी-भारी पाप (महापातक) भी नष्ट हो जाते हैं। गंगाजीमें स्नान, जलपान और पितरोंका तर्पण करनेसे महापातकोंकी राशिका प्रतिदिन क्षय होता रहता है। जैसे अग्निका संसर्ग होनेसे रूई और सूखे तिनके क्षणभरमें भस्म हो जाते हैं, उसी प्रकार गंगाजी अपने जलका स्पर्श होनेपर मनुष्योंके सारे पाप एक ही क्षणमें दग्ध कर देती हैं।*

जो विधिपूर्वक संकल्पवाक्यका उच्चारण करते हुए

---

* गङ्गेति स्मरणादेव क्षयं याति च पातकम्। कीर्तनादतिपापानि दर्शनाद् गुरुकल्मषम्॥
स्नानात् पानाच्च जाह्नव्यां पितॄणां तर्पणात्तथा। महापातकवृन्दानि क्षयं यान्ति दिने दिने॥
अग्निना दह्यते तूलं तृणं शुष्कं क्षणाद् यथा। तथा गङ्गाजलस्पर्शात् पुंसां पापं दहेत् क्षणात्॥
(६०।५—७)

गंगाजीके जलमें पितरोंके उद्देश्यसे पिण्डदान करता है, उसे प्रतिदिन सौ यज्ञोंका फल होता है। जो लोग गंगाजीके जलमें अथवा तटपर आवश्यक सामग्रियोंसे तर्पण और पिण्डदान करते हैं, उन्हें अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति होती है। जो अकेला भी गंगाजीकी यात्रा करता है, उसके पितरोंकी कई पीढ़ियाँ पवित्र हो जाती हैं। एकमात्र इसी महापुण्यके बलपर वह स्वयं भी तरता है और पितरोंको भी तार देता है। ब्राह्मणो! गंगाजीके सम्पूर्ण गुणोंका वर्णन करनेमें चतुर्मुख ब्रह्माजी भी समर्थ नहीं हैं। इसलिये मैं भागीरथीके कुछ ही गुणोंका दिग्दर्शन कराता हूँ।

मुनि, सिद्ध, गन्धर्व तथा अन्यान्य श्रेष्ठ देवता गंगाजीके तीरपर तपस्या करके स्वर्गलोकमें स्थिर भावसे विराजमान हुए हैं। आजतक वे वहाँसे इस संसारमें नहीं लौटे। तपस्या, बहुत-से यज्ञ, नाना प्रकारके व्रत तथा पुष्कल दान करनेसे जो गति प्राप्त होती है, गंगाजीका सेवन करके मनुष्य उसी गतिको पा लेता है।[१]

पिता पुत्रको, पत्नी प्रियतमको, सम्बन्धी अपने सम्बन्धीको तथा अन्य सब भाई-बन्धु भी अपने प्रिय बन्धुको छोड़ देते हैं, किन्तु गंगाजी उनका परित्याग नहीं करतीं।[२] जिन श्रेष्ठ मनुष्योंने एक बार भी भक्तिपूर्वक गंगामें स्नान किया है, कल्याणमयी गंगा उनकी लाख पीढ़ियोंका भवसागरसे उद्धार कर देती हैं। संक्रान्ति, व्यतीपात, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण और पुष्य नक्षत्रमें गंगाजीमें स्नान करके मनुष्य अपने कुलकी करोड़ पीढ़ियोंका उद्धार कर सकता है। जो मनुष्य [अन्तकालमें] अपने हृदयमें भगवान् श्रीविष्णुका चिन्तन करते हुए उत्तरायणके शुक्लपक्षमें दिनको गंगाजीके जलमें देह-त्याग करते हैं, वे धन्य हैं। जो इस प्रकार भागीरथीके शुभ जलमें प्राण-त्याग करते हैं, उन्हें पुनरावृत्तिरहित स्वर्गकी प्राप्ति होती है। गंगाजीमें पितरोंको पिण्डदान तथा तिलमिश्रित जलसे तर्पण करनेपर वे यदि नरकमें हों तो स्वर्गमें जाते हैं और स्वर्गमें हों तो मोक्षको प्राप्त होते हैं।

पर-स्त्री और पर-धनका हरण करने तथा सबसे द्रोह करनेवाले पापी मनुष्योंको उत्तम गति प्रदान करनेका साधन एकमात्र गंगाजी ही हैं। वेद-शास्त्रके ज्ञानसे रहित, गुरु-निन्दापरायण और सदाचारशून्य मनुष्यके लिये गंगाके समान दूसरी कोई गति नहीं है। गंगाजीमें स्नान करनेमात्रसे मनुष्योंके अनेक जन्मोंकी पापराशि नष्ट हो जाती है तथा वे तत्काल पुण्यभागी होते हैं।

प्रभासक्षेत्रमें सूर्यग्रहणके समय एक सहस्र गोदान करनेपर जो फल मिलता है, वह गंगाजीमें स्नान करनेसे प्रतिदिन प्राप्त होता है। गंगाजीका दर्शन करके मनुष्य पापोंसे छूट जाता है और उसके जलका स्पर्श करके स्वर्ग पाता है। अन्य कार्यके प्रसंगसे भी गंगाजीमें गोता लगानेपर वे मोक्ष प्रदान करती हैं। गंगाजीके दर्शनमात्रसे पर-धन और पर-स्त्रीकी अभिलाषा तथा पर-धर्म-विषयक रुचि नष्ट हो जाती है। अपने-आप जो कुछ मिल जाय, उसीमें सन्तोष करना, अपने धर्ममें प्रवृत्त रहना तथा सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति समान भाव रखना—ये सद्‌गुण गंगाजीमें स्नान करनेवाले मनुष्यके हृदयमें स्वभावतः उत्पन्न होते हैं। जो मनुष्य गंगाजीका आश्रय लेकर सुखपूर्वक निवास करता है, वही इस लोकमें जीवन्मुक्त और सर्वश्रेष्ठ है। उसके लिये कोई कर्तव्य शेष नहीं रह जाता। गंगाजीमें या उनके तटपर किया हुआ यज्ञ, दान, तप, जप, श्राद्ध और देवपूजन प्रतिदिन कोटि-कोटिगुना अधिक फल देनेवाला होता है। अपने जन्म-नक्षत्रके दिन गंगाजीके संगममें स्नान करके मनुष्य अपने कुलका उद्धार कर देता है। जो बिना श्रद्धाके भी पुण्यसलिला गंगाजीके नामका कीर्तन करता है, वह निश्चय ही स्वर्गका अधिकारी है। वे पृथ्वीपर मनुष्योंको, पातालमें नागोंको और स्वर्गमें देवताओंको तारती हैं। जानकर या अनजानमें, इच्छासे या

१- तपोभिर्बहुभिर्यज्ञैर्व्रतैर्नानाविधैस्तथा । पुरुदानैर्गतिर्या च गङ्गां संसेव्यतां लभेत्॥ (६०।२४)

२- त्यजन्ति पितरं पुत्राः प्रियं पत्न्यः सुहृद्‌गणाः। अन्ये च बान्धवाः सर्वे गङ्गा तान्न परित्यजेत्॥ (६०।२६)

अनिच्छासे गंगामें मरनेवाला मनुष्य स्वर्ग और मोक्षको भी प्राप्त करता है। सत्त्वगुणमें स्थित योगयुक्त मनीषी पुरुषको जो गति मिलती है, वही गंगाजीमें प्राण त्यागनेवाले देहधारियोंको प्राप्त होती है। एक मनुष्य अपने शरीरका शोधन करनेके लिये हजारों चान्द्रायण-व्रत करता है और दूसरा मनचाहा गंगाजीका जल पीता है—उन दोनोंमें गंगाजलका पान करनेवाला पुरुष ही श्रेष्ठ है। मनुष्यके ऊपर तभीतक तीर्थों, देवताओं और वेदोंका प्रभाव रहता है, जबतक कि वह गंगाजीको नहीं प्राप्त कर लेता।

भगवती गंगे! वायु देवताने स्वर्ग, पृथ्वी और आकाशमें साढ़े तीन करोड़ तीर्थ बतलाये हैं; वे सब तुम्हारे जलमें विद्यमान हैं। गंगे! तुम श्रीविष्णुका चरणोदक होनेके कारण परम पवित्र हो। तीनों लोकोंमें गमन करनेसे त्रिपथगामिनी कहलाती हो। तुम्हारा जल धर्ममय है; इसलिये तुम धर्मद्रवीके नामसे विख्यात हो। जाह्नवी! मेरे पाप हर लो। भगवान् श्रीविष्णुके चरणोंसे तुम्हारा प्रादुर्भाव हुआ है। तुम श्रीविष्णुद्वारा सम्मानित तथा वैष्णवी हो। मुझे जन्मसे लेकर मृत्युतकके पापोंसे बचाओ। महादेवी! भागीरथी! तुम श्रद्धासे, शोभायमान रज:कणोंसे तथा अमृतमय जलसे मुझे पवित्र करो।[१] इस भावके तीन श्लोकोंका उच्चारण करते हुए जो गंगाजीके जलमें स्नान करता है, वह करोड़ जन्मोंके पापसे निस्सन्देह मुक्त हो जाता है। अब मैं गंगाजीके मूल-मन्त्रका वर्णन करूँगा, जिसे साक्षात् श्रीहरिने बतलाया है। उसका एक बार भी जप करके मनुष्य पवित्र हो जाता तथा श्रीविष्णुके श्रीविग्रहमें प्रतिष्ठित होता है। वह मन्त्र इस प्रकार है—'**ॐ नमो गङ्गायै विश्वरूपिण्यै नारायण्यै नमो नमः।**' (भगवान् श्रीनारायणसे प्रकट हुई विश्वरूपिणी गंगाजीको बारंबार नमस्कार है।)

जो मनुष्य गंगातीरकी मिट्टी अपने मस्तकपर धारण करता है, वह गंगामें स्नान किये बिना ही सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। गंगाजीकी लहरोंसे सटकर बहनेवाली वायु यदि किसीके शरीरका स्पर्श करती है, तो वह घोर पापसे शुद्ध होकर अक्षय स्वर्गका उपभोग करता है। मनुष्यकी हड्डी जबतक गंगाजीके जलमें पड़ी रहती है, उतने ही हजार वर्षोंतक वह स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। माता-पिता, बन्धु-बान्धव, अनाथ तथा गुरुजनोंकी हड्डी गंगाजीमें गिरानेसे मनुष्य कभी स्वर्गसे भ्रष्ट नहीं होता। जो मानव अपने पितरोंकी हड्डियोंके टुकड़े बटोरकर उन्हें गंगाजीमें डालनेके लिये ले जाता है, वह पग-पगपर अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त करता है। गंगा-तीरपर बसे हुए गाँव, पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े तथा चर-अचर—सभी प्राणी धन्य हैं।

विप्रवरो! जो गंगाजीसे एक कोसके भीतर प्राण-त्याग करते हैं, वे मनुष्य देवता ही हैं; उससे बाहरके मनुष्य ही इस पृथ्वीपर मानव हैं। गंगास्नानके लिये यात्रा करता हुआ यदि कोई मार्गमें ही मर जाता है, तो वह भी स्वर्गको प्राप्त होता है। ब्राह्मणो! जो लोग गंगाजीकी यात्रा करनेवाले मनुष्योंको वहाँका मार्ग बता देते हैं, उन्हें भी परमपुण्यकी प्राप्ति होती है और वे भी गंगास्नानका फल पा लेते हैं। जो पाखण्डियोंके संसर्गसे विचारशक्ति खो बैठनेके कारण गंगाजीकी निन्दा करते हैं, वे घोर नरकमें पड़ते हैं तथा वहाँसे फिर कभी उनका उद्धार होना कठिन है। जो सैकड़ों योजन दूरसे भी 'गंगा-गंगा' कहता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो श्रीविष्णुलोकको प्राप्त होता है।[२] जो मनुष्य कभी गंगाजीमें स्नानके लिये

१-विष्णुपादार्घसम्पूते गङ्गे त्रिपथगामिनि। धर्मद्रवीति विख्याते पापं मे हर जाह्नवि॥
विष्णुपादप्रसूतासि वैष्णवी विष्णुपूजिता। त्राहि मामेनसस्तस्मादाजन्ममरणान्तिकात्॥
श्रद्धया धर्मसम्पूर्णे श्रीमता रजसा च ते। अमृतेन महादेवि भागीरथि पुनीहि माम्॥
(६०। ६०—६२)

२-गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद् योजनानां शतैरपि। मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥
(६०। ७८)

नहीं गये हैं, वे अंधे और पंगुके समान हैं। उनका इस संसारमें जन्म लेना व्यर्थ है। जो गंगाजीके नामका कीर्तन नहीं करते, वे नराधम जडके समान हैं। जो लोग श्रद्धाके साथ गंगाजीके माहात्म्यका पठन-पाठन करते हैं, वे धीर पुरुष स्वर्गको जाते और पितरों तथा गुरुओंका उद्धार कर देते हैं। जो पुरुष गंगाजीकी यात्रा करनेवाले लोगोंको राह-खर्चके लिये अपनी शक्तिके अनुसार धन देता है, उसे भी गंगाजीमें स्नान करनेका फल मिलता है। दूसरेके खर्चसे जानेवालेको स्नानका जितना फल मिलता है, उससे दूना फल खर्च देकर भेजनेवालोंको प्राप्त होता है। इच्छासे या अनिच्छासे, किसीके भेजनेसे या दूसरेकी सेवाके मिससे भी जो परम पवित्र गंगाजीकी यात्रा करता है, वह देवताओंके लोकमें जाता है।

ब्राह्मणोंने पूछा—व्यासजी! हमने आपके मुँहसे गंगाजीके गुणोंका अत्यन्त पवित्र कीर्तन सुना। अब हम यह जानना चाहते हैं कि गंगाजी कैसे इस रूपमें प्रकट हुईं, उनका स्वरूप क्या है तथा वे क्यों अत्यन्त पावन मानी जाती हैं।

व्यासजी बोले—द्विजवरो! सुनो, मैं एक परम पवित्र प्राचीन कथा सुनाता हूँ। प्राचीन कालकी बात है, मुनिश्रेष्ठ नारदजीने ब्रह्मलोकमें जाकर त्रिलोकपावन ब्रह्माजीको नमस्कार किया और पूछा—'तात! आपने ऐसी कौन-सी वस्तु उत्पन्न की है, जो भगवान् शंकर और श्रीविष्णुको भी अत्यन्त प्रिय हो तथा जो भूतलपर सब लोगोंका हित करनेके लिये अभीष्ट मानी गयी हो?'

ब्रह्माजीने कहा—बेटा! पूर्वकालमें सृष्टि आरम्भ करते समय मैंने मूर्तिमती प्रकृतिसे कहा—'देवि! तुम सम्पूर्ण लोकोंका आदि कारण बनो। मैं तुमसे ही संसारकी सृष्टि आरम्भ करूँगा।' यह सुनकर परा प्रकृति सात स्वरूपोंमें अभिव्यक्त हुई; गायत्री, वाग्देवी (सरस्वती), सब प्रकारके धन-धान्य प्रदान करनेवाली लक्ष्मी, ज्ञान-विद्यास्वरूपा उमादेवी, शक्तिबीजा, तपस्विनी और धर्मद्रवा—ये ही सात परा प्रकृतिके स्वरूप हैं। इनमें गायत्रीसे सम्पूर्ण वेद प्रकट हुए हैं और वेदसे सारे जगत्की स्थिति है। स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा और दीक्षा—ये भी गायत्रीसे ही उत्पन्न मानी गयी हैं। अत: यज्ञमें मातृका आदिके साथ सदा ही गायत्रीका उच्चारण करना चाहिये। भारती (सरस्वती) सब लोगोंके मुख और हृदयमें स्थित हैं तथा वे ही समस्त शास्त्रोंमें धर्मका उपदेश करती हैं। तीसरी प्रकृति लक्ष्मी हैं, जिनसे वस्त्र और आभूषणोंकी राशि प्रकट हुई है। सुख और त्रिभुवनका राज्य भी उन्हींकी देन है। इसीसे वे भगवान् श्रीविष्णुकी प्रियतमा हैं। चौथी प्रकृति उमाके द्वारा ही संसारमें भगवान् शंकरके स्वरूपका ज्ञान होता है। अत: उमाको ज्ञानकी जननी (ब्रह्मविद्या) समझना चाहिये। वे भगवान् शिवके आधे अंगमें निवास करती हैं। शक्तिबीजा नामकी जो पाँचवीं प्रकृति है, वह अत्यन्त उग्र और समूचे विश्वको मोहमें डालनेवाली है। समस्त लोकोंमें वही जगत्का पालन और संहार करती है। [तपस्विनी तपस्याकी अधिष्ठात्री देवी है।] सातवीं प्रकृति धर्मद्रवा है, जो सब धर्मोंमें प्रतिष्ठित है। उसे सबसे श्रेष्ठ देखकर मैंने अपने कमण्डलुमें धारण कर लिया। फिर परम प्रभावशाली भगवान् श्रीविष्णुने बलिके यज्ञके समय इसे प्रकट किया। उनके दोनों चरणोंसे सम्पूर्ण महीतल व्याप्त हो गया था। उनमेंसे एक चरण आकाश एवं ब्रह्माण्डको भेदकर मेरे सामने स्थित हुआ। उस समय मैंने कमण्डलुके जलसे उस चरणका पूजन किया। उस चरणको धोकर जब मैं पूजन कर चुका, तब उसका धोवन हेमकूट पर्वतपर गिरा। वहाँसे भगवान् शंकरके पास पहुँचकर वह जल गंगाके रूपमें उनकी जटामें स्थित हुआ। गंगा बहुत कालतक उनकी जटामें ही भ्रमण करती रहीं। तत्पश्चात् महाराज भगीरथने भगवान् शंकरकी आराधना करके गंगाको पृथ्वीपर उतारा। वे तीन धाराओंमें प्रकट होकर तीनों लोकोंमें गयीं; इसलिये संसारमें त्रिस्रोताके नामसे विख्यात हुईं। शिव, ब्रह्मा तथा विष्णु—तीनों देवताओंके संयोगसे पवित्र होकर वे त्रिभुवनको पावन करती हैं। भगवती भागीरथीका आश्रय लेकर मनुष्य सम्पूर्ण धर्मोंका फल प्राप्त करता है। पाठ, यज्ञ, मन्त्र, होम और देवार्चन आदि समस्त शुभ कर्मोंसे भी जीवको वह गति नहीं

मिलती, जो श्रीगंगाजीके सेवनसे प्राप्त होती है।[१] गंगाजीके सेवनसे बढ़कर धर्म-साधनका दूसरा कोई उपाय नहीं है। इसलिये नारद! तुम भी गंगाजीका आश्रय लो। हड्डियोंमें गंगाजीके जलका स्पर्श होनेसे राजा सगरके पुत्र अपने पितरों तथा वंशजोंके साथ स्वर्गलोकमें पहुँच गये।

व्यासजी कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ नारद ब्रह्माजीके मुखसे यह बात सुनकर गंगाद्वार (हरिद्वार)-में गये और वहाँ तपस्या करके ब्रह्माजीके समान हो गये। गंगाजी सर्वत्र सुलभ होते हुए भी गंगाद्वार, प्रयाग और गंगा-सागर-संगम—इन तीन स्थानोंमें दुर्लभ हैं—वहाँ इनकी प्राप्ति बड़े भाग्यसे होती है। वहाँ तीन रात्रि या एक रात निवास करनेसे भी मनुष्य परम गतिको प्राप्त होता है; इसलिये धर्मज्ञ ब्राह्मणो! सब प्रकारसे प्रयत्न करके तुमलोग परम कल्याणमयी भगवती भागीरथीके तीरपर जाओ। विशेषतः इस कलिकालमें सत्त्वगुणसे रहित मनुष्योंको कष्टसे छुड़ाने और मोक्ष प्रदान करनेवाली गंगाजी ही हैं। गंगाजीके सेवनसे अनन्त पुण्यका उदय होता है।[२]

पुलस्त्यजी कहते हैं—भीष्म! तदनन्तर वे ब्राह्मण व्यासजीकी कल्याणमयी वाणी सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और गंगाजीके तटपर तपस्या करके मोक्षमार्गको पा गये। जो मनुष्य इस उत्तम परम पवित्र उपाख्यानका श्रवण करता है, वह समस्त दुःख-राशिसे पार हो जाता है तथा उसे गंगाजीमें स्नान करनेका फल मिलता है। एक बार भी इस प्रसंगका पाठ करनेपर सम्पूर्ण यज्ञोंका फल मिल जाता है। जो गंगाजीके तटपर ही दान, जप, ध्यान, स्तोत्र, मन्त्र और देवार्चन आदि कर्म कराता है, उसे अनन्त फलकी प्राप्ति होती है।

गणेशजीकी महिमा और उनकी स्तुति एवं पूजाका फल

पुलस्त्यजी कहते हैं—भीष्म! इसके बाद एक दिन व्यासजीके शिष्य महामुनि संजयने अपने गुरुदेवको प्रणाम करके प्रश्न किया।

संजयने पूछा—गुरुदेव! आप मुझे देवताओंके पूजनका सुनिश्चित क्रम बतलाइये। प्रतिदिनकी पूजामें सबसे पहले किसका पूजन करना चाहिये?

व्यासजी बोले—संजय! विघ्नोंको दूर करनेके लिये सर्वप्रथम गणेशजीकी पूजा करनी चाहिये। पार्वतीदेवीने पूर्वकालमें भगवान् शंकरजीके संयोगसे स्कन्द (कार्तिकेय) और गणेश नामके दो पुत्रोंको जन्म दिया। उन दोनोंको देखकर देवताओंको पार्वतीजीपर बड़ी श्रद्धा हुई और उन्होंने अमृतसे तैयार किया हुआ एक दिव्य मोदक (लड्डू) पार्वतीके हाथमें दिया। मोदक देखकर दोनों बालक मातासे माँगने लगे। तब पार्वतीदेवी विस्मित होकर पुत्रोंसे बोलीं—'मैं पहले इसके गुणोंका वर्णन करती हूँ, तुम दोनों सावधान होकर सुनो। इस मोदकके सूँघनेमात्रसे अमरत्व प्राप्त होता है; जो इसे सूँघता या खाता है, वह सम्पूर्ण शास्त्रोंका मर्मज्ञ, सब तन्त्रोंमें प्रवीण, लेखक, चित्रकार, विद्वान्, ज्ञान-विज्ञानके तत्त्वको जाननेवाला और सर्वज्ञ होता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। पुत्रो! तुममेंसे जो धर्माचरणके द्वारा श्रेष्ठता प्राप्त करके आयेगा, उसीको मैं यह मोदक दूँगी। तुम्हारे पिताकी भी यही सम्मति है।'

माताके मुखसे ऐसी बात सुनकर परम चतुर स्कन्द

१- पाठयज्ञपरैः सर्वैर्मन्त्रहोमसुरार्चनैः। सा गतिर्न भवेज्जन्तोर्गङ्गासंसेवया च या॥ (६०।११६)

२- विशेषात्कलिकाले च गङ्गा मोक्षप्रदा नृणाम्। कृच्छ्राच्च क्षीणसत्त्वानामनन्तः पुण्यसम्भवः॥ (६०।१२३)

मयूरपर आरूढ़ हो तुरंत ही त्रिलोकीके तीर्थोंकी यात्राके लिये चल दिये। उन्होंने मुहूर्तभरमें सब तीर्थोंमें स्नान कर लिया। इधर लम्बोदरधारी गणेशजी स्कन्दसे भी बढ़कर बुद्धिमान् निकले। वे माता-पिताकी परिक्रमा करके बड़ी प्रसन्नताके साथ पिताजीके सम्मुख खड़े हो गये। फिर स्कन्द भी आकर पिताके सामने खड़े हुए और बोले, 'मुझे मोदक दीजिये।' तब पार्वतीजीने दोनों पुत्रोंकी ओर देखकर कहा—'समस्त तीर्थोंमें किया हुआ स्नान, सम्पूर्ण देवताओंको किया हुआ नमस्कार, सब यज्ञोंका अनुष्ठान तथा सब प्रकारके व्रत, मन्त्र, योग और संयमका पालन—ये सभी साधन माता-पिताके पूजनके सोलहवें अंशके बराबर भी नहीं हो सकते। इसलिये यह गणेश सैकड़ों पुत्रों और सैकड़ों गणोंसे भी बढ़कर है। अतः देवताओंका बनाया हुआ यह मोदक मैं गणेशको ही अर्पण करती हूँ। माता-पिताकी भक्तिके कारण ही इसकी प्रत्येक यज्ञमें सबसे पहले पूजा होगी।'

महादेवजी बोले—इस गणेशके ही अग्रपूजनसे सम्पूर्ण देवता प्रसन्न हों।

व्यासजी कहते हैं—अतः द्विजको उचित है कि वह सब यज्ञोंमें पहले गणेशजीका ही पूजन करे। ऐसा करनेसे उन यज्ञोंका फल कोटि-कोटि गुना अधिक होगा। सम्पूर्ण देवी-देवताओंका कथन भी यही है। देवाधिदेवी पार्वतीने सर्वगुणदायक पवित्र मोदक गणेशजीको ही दिया तथा बड़ी प्रसन्नताके साथ सम्पूर्ण देवताओंके सामने ही उन्हें समस्त गणोंका अधिपति बनाया। इसलिये विस्तृत यज्ञों, स्तोत्रपाठों तथा नित्यपूजनमें भी पहले गणेशजीकी पूजा करके ही मनुष्य सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्राप्त कर सकता है। चतुर्थीको दिनभर उपवास करके श्रीगणेशजीका पूजन करे और रातमें अन्न ग्रहण करे। गणेशजीकी स्तुति इस प्रकार करनी चाहिये—'श्रीगणेशजी! आपको नमस्कार है। आप सम्पूर्ण विघ्नोंकी शान्ति करनेवाले हैं। उमाको आनन्द प्रदान करनेवाले परम बुद्धिमान् प्रभो! भवसागरसे मेरा उद्धार कीजिये। आप भगवान् शंकरको आनन्दित करनेवाले हैं। अपना ध्यान करनेवालोंको ज्ञान और विज्ञान प्रदान करते हैं। विघ्नराज! आप सम्पूर्ण दैत्योंके एकमात्र संहारक हैं, आपको नमस्कार है। आप सबको प्रसन्नता और लक्ष्मी देनेवाले हैं, सम्पूर्ण यज्ञोंके एकमात्र रक्षक तथा सब प्रकारके मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले हैं। गणपते! मैं प्रेमपूर्वक आपको प्रणाम करता हूँ।'[1] जो मनुष्य उपर्युक्त भावके मन्त्रोंसे गणेशजीका पूजन करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। अब मैं गणेशजीके बारह नामोंका कल्याणमय स्तोत्र सुनाता हूँ। उनके बारह नाम ये हैं—गणपति, विघ्नराज, लम्बतुण्ड, गजानन, द्वैमातुर, हेरम्ब, एकदन्त, गणाधिप, विनायक, चारुकर्ण, पशुपाल और भवात्मज। जो प्रातःकाल उठकर इन बारह नामोंका पाठ करता है, सम्पूर्ण विश्व उसके वशमें हो जाता है तथा उसे कभी विघ्नका सामना नहीं करना पड़ता।[2]

उपनयन, विवाह आदि सम्पूर्ण मांगलिक कार्योंमें जो श्रीगणेशजीका पूजन करता है, वह सबको अपने वशमें कर लेता है और उसे अक्षय पुण्यकी प्राप्ति होती है। जो मनुष्य सम्पूर्ण यज्ञके कलशोंमें **'गणानां त्वा—'** इस मन्त्रसे श्रीगणेशजीका आवाहन करके उनकी पूजा

१-गणाधिप नमस्तुभ्यं सर्वविघ्नप्रशान्तिद। उमानन्दप्रद प्राज्ञ त्राहि मां भवसागरात्॥
हरानन्दकर ध्यानज्ञानविज्ञानद प्रभो। विघ्नराज नमस्तुभ्यं सर्वदैत्यैकसूदन॥
सर्वप्रीतिप्रद श्रीद सर्वयज्ञैकरक्षक। सर्वाभीष्टप्रद प्रीत्या नमामि त्वां गणाधिप॥
(६१। २६—२८)

२-गणपतिर्विघ्नराजो लम्बतुण्डो गजाननः। द्वैमातुरश्च हेरम्ब एकदन्तो गणाधिपः॥
विनायकश्चारुकर्णः पशुपालो भवात्मजः। द्वादशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत्॥
विश्वं तस्य भवेद्वश्यं न च विघ्नं भवेत् क्वचित्।
(६१। ३१—३३)

करता है, उसे सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं तथा वह स्वर्ग और मोक्षको भी पा लेता है। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वह मिट्टीकी दीवारोंमें, प्रतिमा अथवा चित्रके रूपमें पत्थरपर, दरवाजेकी लकड़ीमें तथा पात्रोंमें श्रीगणेशजीकी मूर्ति अंकित करा ले। इनके सिवा दूसरे-दूसरे स्थानमें भी, जहाँ हमेशा दृष्टि पड़ सके, श्रीगणेशजीकी स्थापना करके अपनी शक्तिके अनुसार उनका पूजन करे। जो ऐसा करता है उसके समस्त प्रिय कार्य सिद्ध होते हैं। उसके सामने कोई विघ्न नहीं आता तथा वह तीनों लोकोंको अपने वशमें कर लेता है। सम्पूर्ण देवता अपने अभीष्टकी सिद्धिके लिये जिनका पूजन करते हैं, समस्त विघ्नोंका उच्छेद करनेवाले उन श्रीगणेशजीको नमस्कार है।* जो भगवान् श्रीविष्णुको प्रिय लगनेवाले पुष्पों तथा अन्यान्य सुगन्धित फूलोंसे, फल, मूल, मोदक और सामयिक सामग्रियोंसे, दही और दूधसे, प्रिय लगनेवाले बाजोंसे तथा धूप और दीप आदिके द्वारा गणेशजीकी पूजा करता है, उसे सब प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

संजय-व्यास-संवाद—मनुष्ययोनिमें उत्पन्न हुए दैत्य और देवताओंके लक्षण

संजयने पूछा—ब्रह्मन्! सात्त्विक पुरुष मनुष्योंमें असुर आदिके लक्षणोंको कैसे जान सकते हैं? नाथ! मेरे इस संशयको दूर कीजिये।

व्यासजी बोले—द्विजों तथा अन्य जातियोंमें अपने पूर्वकृत पापोंके अनुरूप असुर, राक्षस और प्रेत भी जन्म ग्रहण करते हैं; किन्तु वे अपना स्वभाव नहीं छोड़ते। मनुष्योंमें जो असुर जन्मते हैं, वे सदा ही लड़ाई-झगड़ा करनेको उत्सुक रहते हैं। जो मायावी, दुराचारी और क्रूर हों, उन्हें इस पृथ्वीपर राक्षस समझना चाहिये।

इसके विपरीत एक भी बुद्धिमान् एवं सुयोग्य पुत्र हो तो उसके द्वारा समूचे कुलकी रक्षा होती है। एक भी वैष्णव पुत्र अपने कुलकी अनेकों पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। जो पुण्यतीर्थों और मुक्तिक्षेत्रमें ज्ञानपूर्वक मृत्युको प्राप्त होते हैं, वे संसारसागरसे तर जाते हैं। और जो ब्रह्मज्ञानी होते हैं, वे स्वयं तो तरते ही हैं, दूसरोंको भी तार देते हैं। एक पतिव्रता स्त्री अपने कुलकी अनेकों पीढ़ियोंका उद्धार कर देती है। इसी प्रकार द्विज और देवताओंके पूजनमें तत्पर रहनेवाला धर्मात्मा जितेन्द्रिय पुरुष भी अपने कुलका उद्धार करता है। कलियुगके अन्तमें जब शहर और गाँवोंमें धर्मका नाश हो जाता है, तब एक ही धर्मात्मा पुरुष समस्त पुर, ग्राम, जनसमुदाय और कुलकी रक्षा करता है।

जो मनुष्य अपवित्र एवं दुर्गन्धयुक्त पदार्थोंके भक्षणमें आनन्द मानता है, बराबर पाप करता है और रातमें घूम-घूमकर चोरी करता रहता है, उसे विद्वान् पुरुषोंको वंचक समझना चाहिये। जो सम्पूर्ण कर्तव्य कार्योंसे अनभिज्ञ तथा सब प्रकारके कर्मोंसे अपरिचित है, जिसे समयोचित सदाचारका ज्ञान नहीं है, वह मूर्ख वास्तवमें पशु ही है। जो हिंसक, सजातीय मनुष्योंको उद्वेजित करनेवाला, कलह-प्रिय, कायर और उच्छिष्ट भोजनका प्रेमी है, वह मनुष्य कुत्ता कहा गया है। जो स्वभावसे ही चंचल, भोजनके लिये सदा लालायित रहनेवाला, कूद-कूदकर चलनेवाला और जंगलमें रहनेका प्रेमी है, उस मनुष्यको इस पृथ्वीपर बंदर समझना चाहिये। जो वाणी और बुद्धिद्वारा अपने कुटुम्बियों तथा दूसरे लोगोंकी भी चुगली खाता और सबके लिये उद्वेगजनक होता है, वह पुरुष सर्पके समान माना गया है। जो बलवान्, आक्रमण करनेवाला, नितान्त निर्लज्ज, दुर्गन्धयुक्त मांसका प्रेमी और भोगासक्त होता है, वह मनुष्योंमें सिंह कहा गया है। उसकी आवाज सुनते ही दूसरे भेड़िये आदिकी श्रेणीमें गिने

* अभिप्रेतार्थसिद्ध्यर्थं पूजितो यः सुरैरपि। सर्वविघ्नच्छिदे तस्मै गणाधिपतये नमः॥ (६३।१०)

जानेवाले लोग भयभीत और दु:खी हो जाते हैं। जिनकी दृष्टि दूरतक नहीं जाती, ऐसे लोग हाथी माने जाते हैं। इसी क्रमसे मनुष्योंमें अन्य पशुओंका विवेक कर लेना चाहिये।

अब हम नररूपमें स्थित देवताओंका लक्षण बतलाते हैं। जो द्विज, देवता, अतिथि, गुरु, साधु और तपस्वियोंके पूजनमें संलग्न रहनेवाला, नित्य तपस्यापरायण, धर्मशास्त्र एवं नीतिमें स्थित, क्षमाशील, क्रोधजयी, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, लोभहीन, प्रिय बोलनेवाला, शान्त धर्मशास्त्रप्रेमी, दयालु, लोकप्रिय, मिष्टभाषी, वाणीपर अधिकार रखनेवाला, सब कार्योंमें दक्ष, गुणवान्, महाबली, साक्षर, विद्वान्, आत्मविद्या आदिके लिये उपयोगी कार्योंमें संलग्न, घी और गायके दूध-दही आदिमें तथा निरामिष भोजनमें रुचि रखनेवाला, अतिथिको दान देने और पार्वण आदि कर्मोंमें प्रवृत्त रहनेवाला है, जिसका समय स्नान-दान आदि शुभ कर्म, व्रत, यज्ञ, देवपूजन तथा स्वाध्याय आदिमें ही व्यतीत होता है, कोई भी दिन व्यर्थ नहीं जाने पाता, वही मनुष्य देवता है। यही मनुष्योंका सनातन सदाचार है। श्रेष्ठ मुनियोंने मानवोंका आचरण देवताओंके ही समान बतलाया है। अन्तर इतना ही है कि देवता सत्त्वगुणमें बढ़े-चढ़े होते हैं [इसलिये निर्भय होते हैं,] और मनुष्योंमें भय अधिक होता है। देवता सदा गम्भीर रहते हैं और मनुष्योंका स्वभाव सर्वदा मृदु होता है। इस प्रकार पुण्यविशेषके तारतम्यसे सामान्यत: सभी जातियोंमें विभिन्न स्वभावके मनुष्योंका जन्म होता है; उनके प्रिय-अप्रिय पदार्थोंको जानकर पुण्य-पाप तथा गुण-अवगुणका निश्चय करना चाहिये।

मनुष्योंमें यदि पति-पत्नीके अंदर जन्मगत संस्कारोंका भेद हो तो उन्हें तनिक भी सुख नहीं मिलता। सालोक्य आदि मुक्तिकी स्थितिमें रहना पड़े अथवा नरकमें, सजातीय संस्कारवालोंमें ही परस्पर प्रेम होता है। शुभ कार्यमें संलग्न रहनेवाले पुण्यात्मा मनुष्योंको अत्यन्त पुण्यके कारण दीर्घायुकी प्राप्ति होती है तथा जो दैत्य आदिकी श्रेणीमें गिने जानेवाले पापात्मा मनुष्य हैं, उनकी मृत्यु जल्दी होती है। सत्ययुगमें देवजातिके मनुष्य ही इस पृथ्वीपर उत्पन्न हुए थे। दैत्य अथवा अन्य जातिके नहीं। त्रेतामें एक चौथाई, द्वापरमें आधा तथा कलियुगकी सन्ध्यामें समूचा भूमण्डल दैत्य आदिसे व्याप्त हो जाता है। देवता और असुर जातिके मनुष्योंका समान संख्यामें जन्म होनेके कारण ही महाभारतका युद्ध छिड़नेवाला है। दुर्योधनके योद्धा और सेना आदि जितने भी सहायक हैं, वे दैत्य आदि ही हैं। कर्ण आदि वीर सूर्य आदिके अंशसे उत्पन्न हुए हैं। गंगानन्दन भीष्म वसुओंमें प्रधान हैं। आचार्य द्रोण देवमुनि बृहस्पतिके अंशसे प्रकट हुए हैं। नन्दनन्दन श्रीकृष्णके रूपमें साक्षात् भगवान् श्रीविष्णु हैं। विदुर साक्षात् धर्म हैं। गान्धारी, द्रौपदी और कुन्ती—इनके रूपमें देवियाँ ही धरातलपर अवतीर्ण हुई हैं।

जो मनुष्य जितेन्द्रिय, दुर्गुणोंसे मुक्त तथा नीतिशास्त्रके तत्त्वको जाननेवाला है और ऐसे ही नाना प्रकारके उत्तम गुणोंसे सन्तुष्ट दिखायी देता है, वह देवस्वरूप है। स्वर्गका निवासी हो या मनुष्यलोकका—जो पुराण और तन्त्रमें बताये हुए पुण्यकर्मोंका स्वयं आचरण करता है, वही इस पृथ्वीका उद्धार करनेमें समर्थ है। जो शिव, विष्णु, शक्ति, सूर्य और गणेशका उपासक है, वह समस्त पितरोंको तारकर इस पृथ्वीका उद्धार करनेमें समर्थ है। विशेषत: जो वैष्णवको देखकर प्रसन्न होता और उसकी पूजा करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो इस भूतलका उद्धार कर सकता है। जो ब्राह्मण यजन-याजन आदि छ: कर्मोंमें संलग्न, सब प्रकारके यज्ञोंमें प्रवृत्त रहनेवाला और सदा धार्मिक उपाख्यान सुनानेका प्रेमी है, वह भी इस पृथ्वीका उद्धार करनेमें समर्थ है।

जो लोग विश्वासघाती, कृतघ्न, व्रतका उल्लंघन करनेवाले तथा ब्राह्मण और देवताओंके द्वेषी हैं, वे मनुष्य इस पृथ्वीका नाश कर डालते हैं। जो माता-पिता, स्त्री, गुरुजन और बालकोंका पोषण नहीं करते, देवता, ब्राह्मण और राजाओंका धन हर लेते हैं तथा जो मोक्षशास्त्रमें श्रद्धा नहीं रखते, वे मनुष्य भी इस पृथ्वीका

नाश करते हैं। जो पापी मदिरा पीने और जुआ खेलनेमें आसक्त रहते और पाखण्डियों तथा पतितोंसे वार्तालाप करते हैं, जो महापातकी और अतिपातकी हैं, जिनके द्वारा बहुत-से जीव-जन्तु मारे जाते हैं, वे लोग इस भूतलका विनाश करनेवाले हैं। जो सत्कर्मसे रहित, सदा दूसरोंको उद्विग्न करनेवाले और निर्भय हैं, स्मृतियों तथा धर्मशास्त्रोंमें बताये हुए शुभकर्मोंका नाम सुनकर जिनके हृदयमें उद्वेग होता है, जो अपनी उत्तम जीविका छोड़कर नीच वृत्तिका आश्रय लेते हैं तथा द्वेषवश गुरुजनोंकी निन्दामें प्रवृत्त होते हैं, वे मनुष्य इस भूलोकका नाश कर डालते हैं। जो दाताको दानसे रोकते और पापकर्मकी ओर प्रेरित करते हैं तथा जो दीनों और अनाथोंको पीड़ा पहुँचाते हैं, वे लोग इस भूतलका सत्यानाश करते हैं। ये तथा और भी बहुत-से पापी मनुष्य हैं, जो दूसरे लोगोंको पापोंमें ढकेलकर इस पृथ्वीका सर्वनाश करते हैं।

जो मानव इस प्रसंगको सुनता है, उसे इस भूतलपर दुर्गति, दुःख, दुर्भाग्य और दीनताका सामना नहीं करना पड़ता। उसका दैत्य आदिके कुलमें जन्म नहीं होता तथा वह स्वर्गलोकमें शाश्वत सुखका उपभोग करता है।

भगवान् सूर्यका तथा संक्रान्तिमें दानका माहात्म्य

वैशम्पायनजीने पूछा—विप्रवर! आकाशमें प्रतिदिन जिसका उदय होता है, यह कौन है? इसका क्या प्रभाव है? तथा इस किरणोंके स्वामीका प्रादुर्भाव कहाँसे हुआ है? मैं देखता हूँ—देवता, बड़े-बड़े मुनि, सिद्ध, चारण, दैत्य, राक्षस तथा ब्राह्मण आदि समस्त मानव इसकी सदा ही आराधना किया करते हैं।

व्यासजी बोले—वैशम्पायन! यह ब्रह्मके स्वरूपसे प्रकट हुआ ब्रह्मका ही उत्कृष्ट तेज है। इसे साक्षात् ब्रह्ममय समझो। यह धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंको देनेवाला है। निर्मल किरणोंसे सुशोभित यह तेजका पुंज पहले अत्यन्त प्रचण्ड और दुःसह था। इसे देखकर इसकी प्रखर रश्मियोंसे पीड़ित हो सब लोग इधर-उधर भागकर छिपने लगे। चारों ओरके समुद्र, समस्त बड़ी-बड़ी नदियाँ और नद आदि सूखने लगे। उनमें रहनेवाले प्राणी मृत्युके ग्रास बनने लगे। मानव-समुदाय भी शोकसे आतुर हो उठा। यह देख इन्द्र आदि देवता ब्रह्माजीके पास गये और उनसे यह सारा हाल कह सुनाया। तब ब्रह्माजीने देवताओंसे कहा—'देवगण! यह तेज आदि ब्रह्मके स्वरूपसे जलमें प्रकट हुआ है। यह तेजोमय पुरुष उस ब्रह्मके ही समान है। इसमें और आदि ब्रह्ममें तुम अन्तर न समझना। ब्रह्मासे लेकर कीटपर्यन्त चराचर प्राणियोंसहित समूची त्रिलोकीमें इसीकी सत्ता है। ये सूर्यदेव सत्त्वमय हैं। इनके द्वारा चराचर जगत्का पालन होता है। देवता, जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज आदि जितने भी प्राणी हैं—सबकी रक्षा सूर्यसे ही होती है। इन सूर्य देवताके प्रभावका हम पूरा-पूरा वर्णन नहीं कर सकते। इन्होंने ही लोकोंका उत्पादन और पालन किया है। सबके रक्षक होनेके कारण इनकी समानता करनेवाला दूसरा कोई नहीं है। पौ फटनेपर इनका दर्शन करनेसे राशि-राशि पाप विलीन हो जाते हैं। द्विज आदि सभी मनुष्य इन सूर्यदेवकी आराधना करके मोक्ष पा लेते हैं। सन्ध्योपासनके समय ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण अपनी भुजाएँ ऊपर उठाये इन्हीं सूर्यदेवका उपस्थान करते हैं और उसके फलस्वरूप समस्त देवताओंद्वारा पूजित होते हैं। सूर्यदेवके ही मण्डलमें रहनेवाली सन्ध्यारूपिणी देवीकी उपासना करके सम्पूर्ण द्विज स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त करते हैं। इस भूतलपर जो पतित और जूठन खानेवाले मनुष्य हैं, वे भी भगवान् सूर्यकी किरणोंके स्पर्शसे पवित्र हो जाते हैं। सन्ध्याकालमें सूर्यकी उपासना करनेमात्रसे द्विज सारे पापोंसे शुद्ध

हो जाता है।* जो मनुष्य चाण्डाल, गोघाती (कसाई), पतित, कोढ़ी, महापातकी और उपपातकीके दीख जानेपर भगवान् सूर्यका दर्शन करते हैं, वे भारी-से-भारी पापसे मुक्त हो पवित्र हो जाते हैं। सूर्यकी उपासना करनेमात्रसे मनुष्यको सब रोगोंसे छुटकारा मिल जाता है। जो सूर्यकी उपासना करते हैं, वे इहलोक और परलोकमें भी अंधे, दरिद्र, दुःखी और शोकग्रस्त नहीं होते। श्रीविष्णु और शिव आदि देवताओंके दर्शन सब लोगोंको नहीं होते, ध्यानमें ही उनके स्वरूपका साक्षात्कार किया जाता है; किन्तु भगवान् सूर्य प्रत्यक्ष देवता माने गये हैं।

देवता बोले—ब्रह्मन्! सूर्य देवताको प्रसन्न करनेके लिये आराधना, उपासना अथवा पूजा तो दूर रहे, इनका दर्शन ही प्रलयकालकी आगके समान है। भूतलके मनुष्य आदि सम्पूर्ण प्राणी इनके तेजके प्रभावसे मृत्युको प्राप्त हो गये। समुद्र आदि जलाशय नष्ट हो गये। हमलोगोंसे भी इनका तेज सहन नहीं होता; फिर दूसरे लोग कैसे सह सकते हैं। इसलिये आप ही ऐसी कृपा करें, जिससे हमलोग भगवान् सूर्यका पूजन कर सकें। सब मनुष्य भक्तिपूर्वक सूर्यदेवकी आराधना कर सकें—इसके लिये आप ही कोई उपाय करें।

व्यासजी कहते हैं—देवताओंके वचन सुनकर ब्रह्माजी ग्रहोंके स्वामी भगवान् सूर्यके पास गये और सम्पूर्ण जगत्का हित करनेके लिये उनकी स्तुति करने लगे।

ब्रह्माजी बोले—देव! तुम सम्पूर्ण संसारके नेत्रस्वरूप और निरामय हो। तुम साक्षात् ब्रह्मरूप हो। तुम्हारी ओर देखना कठिन है। तुम प्रलयकालकी अग्निके समान तेजस्वी हो। सम्पूर्ण देवताओंके भीतर तुम्हारी स्थिति है। तुम्हारे श्रीविग्रहमें वायुके सखा अग्नि निरन्तर विराजमान रहते हैं। तुम्हींसे अन्न आदिका पाचन तथा जीवनकी रक्षा होती है। देव! तुम्हींसे उत्पत्ति और प्रलय होते हैं। एकमात्र तुम्हीं सम्पूर्ण भुवनोंके स्वामी हो। तुम्हारे बिना समस्त संसारका जीवन एक दिन भी नहीं रह सकता। तुम्हीं सम्पूर्ण लोकोंके प्रभु तथा चराचर प्राणियोंके रक्षक, पिता और माता हो। तुम्हारी ही कृपासे यह जगत् टिका हुआ है। भगवन्! सम्पूर्ण देवताओंमें तुम्हारी समानता करनेवाला कोई नहीं है। शरीरके भीतर, बाहर तथा समस्त विश्वमें—सर्वत्र तुम्हारी सत्ता है। तुमने ही इस जगत्को धारण कर रखा है। तुम्हीं रूप और गन्ध आदि उत्पन्न करनेवाले हो। रसोंमें जो स्वाद है, वह तुम्हींसे आया है। इस प्रकार तुम्हीं सम्पूर्ण जगत्के ईश्वर और सबकी रक्षा करनेवाले सूर्य हो। प्रभो! तीर्थों, पुण्यक्षेत्रों, यज्ञों और जगत्के एकमात्र कारण तुम्हीं हो। तुम परम पवित्र, सबके साक्षी और गुणोंके धाम हो। सर्वज्ञ, सबके कर्ता, संहारक, रक्षक, अन्धकार, कीचड़ और रोगोंका नाश करनेवाले तथा दरिद्रताके दुःखोंका निवारण करनेवाले भी तुम्हीं हो। इस लोक तथा परलोकमें सबसे श्रेष्ठ बन्धु एवं सब कुछ जानने और देखनेवाले तुम्हीं हो। तुम्हारे सिवा दूसरा कोई ऐसा नहीं है, जो सब लोकोंका उपकारक हो।

आदित्यने कहा—महाप्राज्ञ पितामह! आप विश्वके स्वामी तथा स्रष्टा हैं, शीघ्र अपना मनोरथ बताइये। मैं उसे पूर्ण करूँगा।

ब्रह्माजी बोले—सुरेश्वर! तुम्हारी किरणें अत्यन्त प्रखर हैं। लोगोंके लिये वे अत्यन्त दुःसह हो गयी हैं। अतः जिस प्रकार उनमें कुछ मृदुता आ सके, वही उपाय करो।

आदित्यने कहा—प्रभो! वास्तवमें मेरी कोटि-कोटि किरणें संसारका विनाश करनेवाली ही हैं। अतः आप किसी युक्तिद्वारा इन्हें खरादकर कम कर दें।

तब ब्रह्माजीने सूर्यके कहनेसे विश्वकर्माको बुलाया और वज्रकी सान बनवाकर उसीके ऊपर प्रलयकालके समान तेजस्वी सूर्यको आरोपित करके उनके प्रचण्ड तेजको छाँट दिया। उस छँटे हुए तेजसे ही भगवान्

---

* सन्ध्योपासनमात्रेण कल्मषात् पूततां व्रजेत्। (७५। १६)

श्रीविष्णुका सुदर्शनचक्र बनाया गया। अमोघ यमदण्ड, शंकरजीका त्रिशूल, कालका खड्ग, कार्तिकेयको आनन्द प्रदान करनेवाली शक्ति तथा भगवती दुर्गाके विचित्र शूलका भी उसी तेजसे निर्माण हुआ। ब्रह्माजीकी आज्ञासे विश्वकर्माने उन सब अस्त्रोंको फुर्तीसे तैयार किया था। सूर्यदेवकी एक हजार किरणें शेष रह गयीं, बाकी सब छाँट दी गयीं। ब्रह्माजीके बताये हुए उपायके अनुसार ही ऐसा किया गया।

कश्यपमुनिके अंश और अदितिके गर्भसे उत्पन्न होनेके कारण सूर्य आदित्यके नामसे प्रसिद्ध हुए। भगवान् सूर्य विश्वकी अन्तिम सीमातक विचरते और मेरु गिरिके शिखरोंपर भ्रमण करते रहते हैं। ये दिन-रात इस पृथ्वीसे लाख योजन ऊपर रहते हैं। विधाताकी प्रेरणासे चन्द्रमा आदि ग्रह भी वहीं विचरण करते हैं। सूर्य बारह स्वरूप धारण करके बारह महीनोंमें बारह राशियोंमें संक्रमण करते रहते हैं। उनके संक्रमणसे ही संक्रान्ति होती है, जिसको प्राय: सभी लोग जानते हैं।

मुने! संक्रान्तियोंमें पुण्यकर्म करनेसे लोगोंको जो फल मिलता है, वह सब हम बतलाते हैं। धनु, मिथुन, मीन और कन्या राशिकी संक्रान्तिको षडशीति कहते हैं तथा वृष, वृश्चिक, कुम्भ और सिंह राशिपर जो सूर्यकी संक्रान्ति होती है, उसका नाम विष्णुपदी है। षडशीति नामकी संक्रान्तिमें किये हुए पुण्यकर्मका फल छियासी हजारगुना, विष्णुपदीमें लाखगुना और उत्तरायण या दक्षिणायन आरम्भ होनेके दिन कोटि-कोटिगुना अधिक होता है। दोनों अयनोंके दिन जो कर्म किया जाता है, वह अक्षय होता है। मकरसंक्रान्तिमें सूर्योदयके पहले स्नान करना चाहिये। इससे दस हजार गोदानका फल प्राप्त होता है। उस समय किया हुआ तर्पण, दान और देवपूजन अक्षय होता है। विष्णुपदी नामक संक्रान्तिमें किये हुए दानको भी अक्षय बताया गया है। दाताको प्रत्येक जन्ममें उत्तम निधिकी प्राप्ति होती है। शीतकालमें रूईदार वस्त्र दान करनेसे शरीरमें कभी दु:ख नहीं होता। तुला-दान और शय्या-दान दोनोंका ही फल अक्षय है। माघमासके कृष्णपक्षकी अमावास्याको सूर्योदयके पहले जो तिल और जलसे पितरोंका तर्पण करता है, वह स्वर्गमें अक्षय सुख भोगता है। जो अमावस्याके दिन सुवर्णजटित सींग और मणिके समान कान्तिवाली शुभलक्षणा गौको, उसके खुरोंमें चाँदी मँढ़ाकर काँसेके बने हुए दुग्धपात्रसहित श्रेष्ठ ब्राह्मणके लिये दान करता है, वह चक्रवर्ती राजा होता है। जो उक्त तिथिको तिलकी गौ बनाकर उसे सब सामग्रियोंसहित दान करता है, वह सात जन्मके पापोंसे मुक्त हो स्वर्गलोकमें अक्षय सुखका भागी होता है। ब्राह्मणको भोजनके योग्य अन्न देनेसे भी अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति होती है। जो उत्तम ब्राह्मणको अनाज, वस्त्र, घर आदि दान करता है, उसे लक्ष्मी कभी नहीं छोड़ती। माघमासके शुक्लपक्षकी तृतीयाको मन्वन्तर-तिथि कहते हैं; उस दिन जो कुछ दान किया जाता है, वह सब अक्षय बताया गया है। अत: दान और सत्पुरुषोंका पूजन—ये परलोकमें अनन्त फल देनेवाले हैं।

भगवान् सूर्यकी उपासना और उसका फल—भद्रेश्वरकी कथा

व्यासजी कहते हैं—कैलासके रमणीय शिखरपर भगवान् महेश्वर सुखपूर्वक बैठे थे। इसी समय स्कन्दने उनके पास जा पृथ्वीपर मस्तक टेककर उन्हें प्रणाम किया और कहा—'नाथ! मैं आपसे रविवार आदिका यथार्थ फल सुनना चाहता हूँ।'

महादेवजीने कहा—बेटा! रविवारके दिन मनुष्य व्रत रहकर सूर्यको लाल फूलोंसे अर्घ्य दे और रातको हविष्यान्न भोजन करे। ऐसा करनेसे वह कभी स्वर्गसे भ्रष्ट नहीं होता। रविवारका व्रत परम पवित्र और हितकर है। वह समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला, पुण्यप्रद, ऐश्वर्यदायक, रोगनाशक और स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला है। यदि रविवारके दिन सूर्यकी संक्रान्ति तथा शुक्लपक्षकी सप्तमी हो तो उस दिन किया हुआ व्रत, पूजा और जप—सब अक्षय होता है।

शुक्लपक्षके रविवारको ग्रहपति सूर्यकी पूजा करनी चाहिये। हाथमें फूल ले, लाल कमलपर विराजमान, सुन्दर ग्रीवासे सुशोभित, रक्तवस्त्रधारी और लाल रंगके आभूषणोंसे विभूषित भगवान् सूर्यका ध्यान करे और फूलोंको सूँघकर ईशान कोणकी ओर फेंक दे। इसके बाद **'आदित्याय विद्महे भास्कराय धीमहि तन्नो भानुः प्रचोदयात्'** इस सूर्य-गायत्रीका जप करे। तदनन्तर गुरुके उपदेशके अनुसार विधिपूर्वक पूजा करे। भक्तिके साथ पुष्प और केले आदिके सुन्दर फल अर्पण करके जल चढ़ाना चाहिये। जलके बाद चन्दन, चन्दनके बाद धूप, धूपके बाद दीप, दीपके पश्चात् नैवेद्य तथा उसके बाद जल निवेदन करना चाहिये। तत्पश्चात् जप, स्तुति, मुद्रा और नमस्कार करना उचित है। पहली मुद्राका नाम अंजलि और दूसरीका नाम धेनु है। इस प्रकार जो सूर्यका पूजन करता है, वह उन्हींका सायुज्य प्राप्त करता है।

भगवान् सूर्य एक होते हुए भी कालभेदसे नाना रूप धारण करके प्रत्येक मासमें तपते रहते हैं। एक ही सूर्य बारह रूपोंमें प्रकट होते हैं। मार्गशीर्षमें मित्र, पौषमें सनातन विष्णु, माघमें वरुण, फाल्गुनमें सूर्य, चैत्रमें भानु, वैशाखमें तापन, ज्येष्ठमें इन्द्र, आषाढ़में रवि, श्रावणमें गभस्ति, भादप्रदमें यम, आश्विनमें हिरण्यरेता और कार्तिकमें दिवाकर तपते हैं। इस प्रकार बारह महीनोंमें भगवान् सूर्य बारह नामोंसे पुकारे जाते हैं। इनका रूप अत्यन्त विशाल, महान् तेजस्वी और प्रलयकालीन अग्निके समान देदीप्यमान है। जो इस प्रसंगका नित्य पाठ करता है, उसके शरीरमें पाप नहीं रहता। उसे रोग, दरिद्रता और अपमानका कष्ट भी कभी नहीं उठाना पड़ता। वह क्रमशः यश, राज्य, सुख तथा अक्षय स्वर्ग प्राप्त करता है।

अब मैं सबको प्रसन्नता प्रदान करनेवाले सूर्यके उत्तम महामन्त्रका वर्णन करूँगा। उसका भाव इस प्रकार है—'सहस्र भुजाओं (किरणों)-से सुशोभित भगवान् आदित्यको नमस्कार है। हाथमें कमल धारण करनेवाले वरुणदेवको बारंबार नमस्कार है। अन्धकारका विनाश करनेवाले श्रीसूर्यदेवको अनेक बार नमस्कार है। रश्मिमयी सहस्रों जिह्वाएँ धारण करनेवाले भानुको नमस्कार है। भगवन्! तुम्हीं ब्रह्मा, तुम्हीं विष्णु और तुम्हीं रुद्र हो; तुम्हें नमस्कार है। तुम्हीं सम्पूर्ण प्राणियोंके भीतर अग्नि और वायुरूपसे विराजमान हो; तुम्हें बारंबार प्रणाम है। तुम्हारी सर्वत्र गति और सब भूतोंमें स्थिति है, तुम्हारे बिना किसी भी वस्तुकी सत्ता नहीं है। तुम इस चराचर जगत्में समस्त देहधारियोंके भीतर स्थित हो।'* इस मन्त्रका जप करके मनुष्य अपने सम्पूर्ण अभिलषित पदार्थों तथा स्वर्ग आदिके भोगको प्राप्त करता है। आदित्य, भास्कर, सूर्य, अर्क, भानु, दिवाकर, सुवर्णरेता, मित्र, पूषा, त्वष्टा, स्वयम्भू और तिमिराश—ये सूर्यके बारह नाम बताये गये हैं। जो मनुष्य पवित्र होकर सूर्यके इन बारह नामोंका पाठ करता है, वह सब पापों और रोगोंसे मुक्त हो परम गतिको प्राप्त होता है।

षडानन! अब मैं महात्मा भास्करके जो दूसरे-दूसरे प्रधान नाम हैं, उनका वर्णन करूँगा। तपन, तापन, कर्ता, हर्ता, महेश्वर, लोकसाक्षी, त्रिलोकेश, व्योमाधिप, दिवाकर, अग्निगर्भ, महाविप्र, खग, सप्ताश्ववाहन, पद्महस्त, तमोभेदी, ऋग्वेद, यजुःसामग, कालप्रिय, पुण्डरीक, मूलस्थान और भावित। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इन नामोंका सदा स्मरण करता है, उसे रोगका भय कैसे हो सकता है। कार्तिकेय! तुम यत्नपूर्वक सुनो। सूर्यका नाम-स्मरण सब पापोंको हरनेवाला और शुभ है। महामते! आदित्यकी महिमाके विषयमें तनिक भी सन्देह नहीं करना चाहिये। **'ॐ इन्द्राय नमः स्वाहा', 'ॐ विष्णवे नमः'**—इन मन्त्रोंका जप, होम और सन्ध्योपासन करना चाहिये। ये मन्त्र सब प्रकारसे शान्ति

* ॐ नमः सहस्रबाहवे आदित्याय नमो नमः। नमस्ते पद्महस्ताय वरुणाय नमो नमः॥
नमस्तिमिरनाशाय श्रीसूर्याय नमो नमः। नमः सहस्रजिह्वाय भानवे च नमो नमः॥
त्वं च ब्रह्मा त्वं च विष्णू रुद्रस्त्वं च नमो नमः। त्वमग्निस्सर्वभूतेषु वायुस्त्वं च नमो नमः॥
सर्वगः सर्वभूतेषु न हि किंचित्त्वया विना। चराचरे जगत्यस्मिन् सर्वदेहे व्यवस्थितः॥
(७६। ३१—३४)

देनेवाले और सम्पूर्ण विघ्नोंके विनाशक हैं। ये सब रोगोंका नाश कर डालते हैं।

अब महात्मा भास्करके मूलमन्त्रका वर्णन करूँगा, जो सम्पूर्ण कामनाओं एवं प्रयोजनोंको सिद्ध करनेवाला तथा भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है। वह मन्त्र इस प्रकार है—'**ॐ ह्रां ह्रीं सः सूर्याय नमः।**' इस मन्त्रसे सदा सब प्रकारकी सिद्धि प्राप्त होती है—यह निश्चित बात है। इसके जपसे रोग नहीं सताते तथा किसी प्रकारके अनिष्टका भय नहीं होता। यह मन्त्र न किसीको देना चाहिये और न किसीसे इसकी चर्चा करनी चाहिये; अपितु प्रयत्नपूर्वक इसका निरन्तर जप करते रहना चाहिये। जो लोग अभक्त, सन्तानहीन, पाखण्डी और लौकिक व्यवहारोंमें आसक्त हों, उनसे तो इस मन्त्रकी कदापि चर्चा नहीं करनी चाहिये। सन्ध्या और होमकर्ममें मूलमन्त्रका जप करना चाहिये। उसके जपसे रोग और क्रूर ग्रहोंका प्रभाव नष्ट हो जाता है। वत्स! दूसरे-दूसरे अनेकों शास्त्रों और बहुतेरे विस्तृत मन्त्रोंकी क्या आवश्यकता है; इस मूलमन्त्रका जप ही सब प्रकारकी शान्ति तथा सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धि करनेवाला है। देवता और ब्राह्मणोंकी निन्दा करनेवाले नास्तिक पुरुषको इसका उपदेश नहीं देना चाहिये। जो प्रतिदिन एक, दो या तीन समय भगवान् सूर्यके समीप इसका पाठ करता है, उसे अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है। पुत्रकी कामनावालेको पुत्र, कन्या चाहनेवालेको कन्या, विद्याकी अभिलाषा रखनेवालेको विद्या और धनार्थीको धन मिलता है। जो शुद्ध आचार-विचारसे युक्त हो संयम तथा भक्तिपूर्वक इस प्रसंगका श्रवण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो सूर्यलोकको जाता है। सूर्य देवताके व्रतके दिन तथा अन्यान्य व्रत, अनुष्ठान, यज्ञ, पुण्यस्थान और तीर्थोंमें जो इसका पाठ करता है, उसे कोटिगुना फल मिलता है।

व्यासजी कहते हैं—मध्यदेशमें भद्रेश्वर नामसे प्रसिद्ध एक चक्रवर्ती राजा थे। वे बहुत-सी तपस्याओं तथा नाना प्रकारके व्रतोंसे पवित्र हो गये थे। प्रतिदिन देवता, ब्राह्मण, अतिथि और गुरुजनोंका पूजन करते थे। उनका बर्ताव न्यायके अनुकूल होता था। वे स्वभावके सुशील और शास्त्रोंके तात्पर्य तथा विधानके पारगामी विद्वान् थे। सदा सद्भावपूर्वक प्रजाजनोंका पालन करते थे। एक समयकी बात है, उनके बायें हाथमें श्वेत कुष्ठ हो गया। वैद्योंने बहुत कुछ उपचार किया; किन्तु उससे कोढ़का चिह्न और भी स्पष्ट दिखायी देने लगा। तब राजाने प्रधान-प्रधान ब्राह्मणों और मन्त्रियोंको बुलाकर कहा—'विप्रगण! मेरे हाथमें एक ऐसा पापका चिह्न प्रकट हो गया है, जो लोकमें निन्दित होनेके कारण मेरे लिये दुःसह हो रहा है। अतः मैं किसी महान् पुण्यक्षेत्रमें जाकर अपने शरीरका परित्याग करना चाहता हूँ।'

ब्राह्मण बोले—महाराज! आप धर्मशील और बुद्धिमान् हैं। यदि आप अपने राज्यका परित्याग कर देंगे तो यह सारी प्रजा नष्ट हो जायगी। इसलिये आपको ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये। प्रभो! हमलोग इस रोगको दबानेका उपाय जानते हैं; वह यह है कि आप यत्नपूर्वक महान् देवता भगवान् सूर्यकी आराधना कीजिये।

राजाने पूछा—विप्रवरो! किस उपायसे मैं भगवान् भास्करको सन्तुष्ट कर सकूँगा?

ब्राह्मण बोले—राजन्! आप अपने राज्यमें ही रहकर सूर्यदेवकी उपासना कीजिये; ऐसा करनेसे आप भयंकर पापसे मुक्त हो स्वर्ग और मोक्ष दोनों प्राप्त कर सकेंगे।

यह सुनकर सम्राट्ने उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको प्रणाम किया और सूर्यकी उत्तम आराधना आरम्भ की। वे प्रतिदिन मन्त्रपाठ, नैवेद्य, नाना प्रकारके फल, अर्घ्य, अक्षत, जपापुष्प, मदारके पत्ते, लाल चन्दन, कुंकुम, सिन्दूर, कदलीपत्र तथा उसके मनोहर फल आदिके द्वारा भगवान् सूर्यकी पूजा करते थे। राजा गूलरके पात्रमें अर्घ्य सजाकर सदा सूर्यदेवताको निवेदन किया करते थे। अर्घ्य देते समय वे मन्त्री और पुरोहितोंके साथ सदा सूर्यके सामने खड़े रहते थे। उनके साथ आचार्य, रानियाँ, अन्तःपुरमें रहनेवाले रक्षक तथा उनकी पत्नियाँ, दासवर्ग तथा अन्य लोग भी रहा करते थे। वे सब लोग प्रतिदिन साथ-ही-साथ अर्घ्य देते थे। सूर्यदेवताके अंगभूत जितने व्रत थे, उनका भी उन्होंने एकाग्रचित्त होकर

अनुष्ठान किया। क्रमशः एक वर्ष व्यतीत होनेपर राजाका रोग दूर हो गया। इस प्रकार उस भयंकर रोगके नष्ट हो जानेपर राजाने सम्पूर्ण जगत्को अपने वशमें करके सबके द्वारा प्रभातकालमें सूर्यदेवताका पूजन और व्रत कराना आरम्भ किया। सब लोग कभी हविष्यान्न खाकर और कभी निराहार रहकर सूर्यदेवताका पूजन करते थे। इस प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—इन तीन वर्गोंके द्वारा पूजित होकर भगवान् सूर्य बहुत सन्तुष्ट हुए और कृपापूर्वक राजाके पास आकर बोले—'राजन्! तुम्हारे मनमें जिस वस्तुकी इच्छा हो, उसे वरदानके रूपमें माँग लो। सेवकों और पुरवासियोंसहित तुम सब लोगोंका हित करनेके लिये मैं उपस्थित हूँ।'

राजाने कहा—सबको नेत्र प्रदान करनेवाले भगवन्! यदि आप मुझे अभीष्ट वरदान देना चाहते हैं, तो ऐसी कृपा कीजिये कि हम सब लोग आपके पास रहकर ही सुखी हों।

सूर्य बोले—राजन्! तुम्हारे मन्त्री, पुरोहित, ब्राह्मण, स्त्रियाँ तथा अन्य परिवारके लोग—सभी शुद्ध होकर कल्पपर्यन्त मेरे रमणीय धाममें निवास करें।

व्यासजी कहते हैं—यों कहकर संसारको नेत्र प्रदान करनेवाले भगवान् सूर्य वहीं अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर राजा भद्रेश्वर अपने पुरवासियोंसहित दिव्यलोकमें आनन्दका अनुभव करने लगे। वहाँ जो कीड़े-मकोड़े आदि थे, वे भी अपने पुत्र आदिके साथ प्रसन्नतापूर्वक स्वर्गको सिधारे। इसी प्रकार राजा, ब्राह्मण, कठोर व्रतोंका पालन करनेवाले मुनि तथा क्षत्रिय आदि अन्य वर्ण सूर्यदेवताके धाममें चले गये। जो मनुष्य पवित्रतापूर्वक इस प्रसंगका पाठ करता है, उसके सब पापोंका नाश हो जाता है तथा वह रुद्रकी भाँति इस पृथ्वीपर पूजित होता है। जो मानव संयमपूर्वक इसका श्रवण करता है, उसे अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है। इस अत्यन्त गोपनीय रहस्यका भगवान् सूर्यने यमराजको उपदेश दिया था। भूमण्डलपर तो व्यासके द्वारा ही इसका प्रचार हुआ है।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! इस तरह नाना प्रकारके धर्मोंका निर्णय सुनाकर भगवान् व्यास शम्याप्राशमें चले गये। तुम भी इस तत्त्वको श्रद्धापूर्वक जानकर सुखसे विचरो और समयानुसार भगवान् श्रीविष्णुके सुयशका सानन्द गान करते रहो। साथ ही जगत्को धर्मका उपदेश देते हुए जगद्गुरु भगवान्को प्रसन्न करो।

पुलस्त्यजी कहते हैं—भीष्म! ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर देवर्षि नारद मुनिवर श्रीनारायणका दर्शन करनेके लिये गन्धमादन पर्वतपर बदरिकाश्रम तीर्थमें चले गये।

महाराज! इस प्रकार यह सारा सृष्टिखण्ड मैंने क्रमशः तुम्हें सुना दिया। यह सम्पूर्ण वेदार्थोंका सार है, इसे सुनकर मनुष्य भगवान्का सान्निध्य प्राप्त करता है। यह परम पवित्र, यशका निधान तथा पितरोंको अत्यन्त प्रिय है। यह देवताओंके लिये अमृतके समान मधुर तथा पापी पुरुषोंको भी पुण्य प्रदान करनेवाला है। जो मनुष्य ऋषियोंके इस शुभ चरित्रका प्रतिदिन श्रवण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। सत्ययुगमें तपस्या, त्रेतामें ज्ञान, द्वापरमें यज्ञ तथा कलियुगमें एकमात्र दानकी विशेष प्रशंसा की गयी है। सम्पूर्ण दानोंमें भी समस्त भूतोंको अभय देना—यही सर्वोत्तम दान है; इससे बढ़कर दूसरा कोई दान नहीं है।* तीर्थ और श्राद्धके वर्णनसे युक्त यह पुराण-खण्ड कहा गया। यह पुण्यजनक, पवित्र, आयुवर्धक और सम्पूर्ण पापोंका नाशक है। जो मनुष्य इसका पाठ या श्रवण करता है, वह श्रीसम्पन्न होता है तथा सब पापोंसे मुक्त हो लक्ष्मीसहित भगवान् श्रीविष्णुको प्राप्त कर लेता है।

॥ सृष्टिखण्ड समाप्त॥

---

* सर्वेषामेव दानानामिदमेवैकमुत्तमम्। अभयं सर्वभूतानां नास्ति दानमतः परम्॥ (८२।३९)

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः॥

संक्षिप्त पद्मपुराण

भूमिखण्ड

शिवशर्माके चार पुत्रोंका पितृ-भक्तिके प्रभावसे श्रीविष्णुधामको प्राप्त होना

यं सर्वदेवं परमेश्वरं हि निष्केवलं ज्ञानमयं प्रधानम्।
वदन्ति नारायणमादिसिद्धं सिद्धेश्वरं तं शरणं प्रपद्ये॥*

(१६।३५)

सूतजी कहते हैं—पश्चिम-समुद्रके तटपर द्वारका नामसे प्रसिद्ध एक नगरी है। वहाँ योगशास्त्रके ज्ञाता एक ब्राह्मण-देवता सदा निवास करते थे। उनका नाम था शिवशर्मा। वे वेद-शास्त्रोंके अच्छे विद्वान् थे। उनके पाँच पुत्र हुए, जिन्हें शास्त्रोंका पूर्ण ज्ञान था। उनके नाम इस प्रकार हैं—यज्ञशर्मा, वेदशर्मा, धर्मशर्मा, विष्णुशर्मा तथा सोमशर्मा—ये सभी पिताके भक्त थे। द्विजश्रेष्ठ शिवशर्माने उनकी भक्ति देखकर सोचा—'पितृभक्त पुरुषोंके हृदयमें जो भाव होना चाहिये, वह मेरे इन पुत्रोंके हृदयमें है या नहीं—इस बातको बुद्धिपूर्वक परीक्षा करके जाननेका प्रयत्न करूँ।' शिवशर्मा ब्रह्म-वेत्ताओंमें श्रेष्ठ थे। उन्हें उपायका ज्ञान था। उन्होंने मायाद्वारा अपने पुत्रोंके सामने एक घटना उपस्थित की। पुत्रोंने देखा, उनकी माता महान् ज्वररोगसे पीड़ित होकर मृत्युको प्राप्त हो गयी। तब वे पिताके पास जाकर बोले—'तात! हमारी माता अपने शरीरका परित्याग करके चली गयी। अब उसके विषयमें आप हमें क्या आज्ञा देते हैं?' द्विजश्रेष्ठ शिवशर्माने अपने भक्तिपरायण ज्येष्ठ पुत्र यज्ञशर्माको सम्बोधित करके कहा—'बेटा! इस तीखे हथियारसे अपनी माताके सारे अंगोंको टुकड़े-टुकड़े करके इधर-उधर फेंक दो। पुत्रने पिताकी आज्ञाके अनुसार ही कार्य किया। पिताने भी यह बात सुनी। इससे उन्हें उस पुत्रकी भक्तिके विषयमें पूर्ण निश्चय हो गया। अब उन्होंने दूसरे पुत्रकी पितृ-भक्ति जाननेका विचार किया और वेदशर्माके पास जाकर कहा—'बेटा! मैं स्त्रीके बिना नहीं रह सकता। तुम मेरी आज्ञा मानकर जाओ और समस्त सौभाग्य-सम्पत्तिसे युक्त जो स्त्री मैंने देखी है, उसे मेरे लिये यहाँ बुला लाओ।' पिताके ऐसा कहनेपर वेदशर्मा बोले—'मैं आपका प्रिय कार्य करूँगा।' यों कहकर वे पिताको प्रणाम करके चले गये और उस स्त्रीके पास पहुँचकर बोले—'देवि! मेरे पिता तुम्हारे लिये प्रार्थना करते हैं; यद्यपि वे वृद्ध हैं तथापि तुम मेरे अनुरोधसे उनपर कृपा करके उनके अनुकूल हो जाओ।'

वेदशर्माकी ऐसी बात सुनकर मायासे प्रकट हुई उस स्त्रीने कहा—'ब्रह्मन्! तुम्हारे पिता बुढ़ापेसे कष्ट पा रहे हैं; अतः मैं कदापि उन्हें पति बनाना नहीं चाहती। उन्हें खाँसीका रोग है, उनके मुँहमें कफ भरा रहता है। इस समय दूसरी-दूसरी बीमारियोंने भी उन्हें पकड़ रखा है। रोगके कारण वे शिथिल एवं आर्त हो गये हैं; अतः मुझे उनका समागम नहीं चाहिये। मैं तुम्हारे साथ रमण करना चाहती हूँ। तुम्हारा प्रिय कार्य करूँगी। तुम दिव्य लक्षणोंसे सम्पन्न, दिव्यरूपधारी तथा महान् तेजस्वी हो; अतः मैं तुम्हींको पाना चाहती हूँ। मानद! उस बूढ़ेको लेकर क्या करोगे। मेरे शरीरका उपभोग करनेसे तुम्हें समस्त दुर्लभ सुखोंकी प्राप्ति होगी, विप्रवर! तुम्हें जिस-जिस वस्तुकी इच्छा होगी, वह सब ला दूँगी; इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।'

यह महान् पापपूर्ण अप्रिय वचन सुनकर वेदशर्माने कहा—'देवि! तुम्हारा वचन अधर्मयुक्त, पापमिश्रित और अनुचित है। मैं पिताका भक्त और निरपराध हूँ;

---

* जिन्हें सर्वदेवस्वरूप, परमेश्वर, केवल, ज्ञानमय और प्रधानरूप कहते हैं, उन सिद्धोंके स्वामी आदिसिद्ध भगवान् श्रीनारायणकी मैं शरण हूँ।

मुझसे ऐसी बात न कहो। शुभे! मैं पिताके लिये ही यहाँ आया हूँ और उन्हींके लिये तुमसे प्रार्थना करता हूँ। इसके विपरीत दूसरी कोई बात न कहो। मेरे पिताजीको ही स्वीकार करो। देवि! इसके लिये तुम चराचर प्राणियोंसहित त्रिलोकीकी जो-जो वस्तु चाहोगी, वह सब निस्सन्देह तुम्हें अर्पण करूँगा। अधिक क्या कहूँ, देवताओंका राज्य आदि भी यदि चाहो तो तुम्हें दे सकता हूँ।'

स्त्री बोली—यदि तुम अपने पिताके लिये इस प्रकार दान देनेमें समर्थ हो तो मुझे इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओंका अभी दर्शन कराओ।

वेदशर्मा बोले—देवि! मेरा बल, मेरी तपस्याका प्रभाव देखो। मेरे आवाहन करनेपर ये इन्द्र आदि श्रेष्ठ देवता यहाँ आ पहुँचे।

देवताओंने वेदशर्मासे कहा—'द्विजश्रेष्ठ! हम तुम्हारा कौन-सा कार्य करें?'

वेदशर्मा बोले—देवगण! यदि आपलोग मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझे अपने पिताके चरणोंमें पूर्ण भक्ति प्रदान करें। 'एवमस्तु' कहकर सम्पूर्ण देवता जैसे आये थे, वैसे लौट गये। तब उस स्त्रीने हर्षमें भरकर कहा—'तुम्हारी तपस्याका बल देख लिया। देवताओंसे मुझे कोई काम नहीं है। यदि तुम मुझे मुँहमाँगी वस्तु देना चाहते हो और अपने पिताके लिये मुझे ले जाना चाहते हो तो अपना सिर अपने ही हाथसे काटकर मुझे अर्पण कर दो।'

वेदशर्माने कहा—देवि! आज मैं धन्य हो गया। शुभे! मैं पिताके लिये अपना मस्तक भी दे दूँगा; ले लो, ले लो। यह कहकर द्विजश्रेष्ठ वेदशर्माने तीखी धारवाली तेज तलवार उठायी और हँसते-हँसते अपना मस्तक काटकर उस स्त्रीको दे दिया। खूनमें डूबे हुए उस मस्तकको लेकर वह शिवशर्माके पास गयी।

स्त्रीने कहा—विप्रवर! तुम्हारे पुत्र वेदशर्माने मुझे तुम्हारी सेवाके लिये यहाँ भेजा है; यह उनका मस्तक है, इसे ग्रहण करो। इसको उन्होंने अपने हाथसे काटकर दिया है।

उस मस्तकको देखकर वेदशर्माके चारों भाई काँप उठे। उन पुण्यात्मा बन्धुओंमें इस प्रकार बात होने लगी—'अहो! धर्म ही जिसका सर्वस्व था, वह हमारी माता सत्य समाधिके द्वारा मृत्युको प्राप्त हो गयी। हमलोगोंमें ये वेदशर्मा ही परम सौभाग्यशाली थे, जिन्होंने पिताके लिये प्राण दे दिये। ये धन्य तो थे ही और अधिक धन्य हो गये।' शिवशर्माने उस स्त्रीकी बात सुनकर जान लिया कि वेदशर्मा पूर्ण भक्त था। तत्पश्चात् उन्होंने अपने तृतीय पुत्र धर्मशर्मासे कहा—'बेटा! यह अपने भाईका मस्तक लो और जिस प्रकार यह जी सके, वह उपाय करो।'

सूतजी कहते हैं—धर्मशर्मा भाईके मस्तकको लेकर तुरंत ही वहाँसे चल दिये। उन्होंने पिताकी भक्ति, तपस्या, सत्य और सरलताके बलसे धर्मको आकर्षित किया। उनकी तपस्यासे खिंचकर धर्मराज धर्मशर्माके पास आये और इस प्रकार बोले—'धर्मशर्मन्! तुम्हारे आवाहन करनेसे मैं यहाँ उपस्थित हुआ हूँ; मुझे अपना कार्य बताओ, मैं उसे निस्सन्देह पूर्ण करूँगा।'

धर्मशर्माने कहा—धर्मराज! यदि मैंने गुरुकी सेवा की हो, यदि मुझमें पिताके प्रति निष्ठा और अविचल तपस्या हो तो इस सत्यके प्रभावसे मेरे भाई वेदशर्मा जी उठें।

धर्म बोले—महामते! मैं तुम्हारी तपस्या और पितृभक्तिसे सन्तुष्ट हूँ, तुम्हारे भाई जी जायँगे; तुम्हारा कल्याण हो। धर्मवेत्ताओंके लिये जो दुर्लभ है, ऐसा कोई उत्तम वरदान मुझसे और माँग लो।

धर्मशर्माने जब धर्मका यह उत्तम वचन सुना तो उस महायशस्वीने महात्मा वैवस्वतसे कहा—'धर्मराज! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो पिताके चरणोंकी पूजामें अविचल भक्ति, धर्ममें अनुराग तथा अन्तमें मोक्षका वरदान मुझे दीजिये।' तब धर्मने कहा—'मेरी कृपासे यह सब कुछ तुम्हें प्राप्त होगा।' उनके मुखसे यह महावाक्य निकलते ही वेदशर्मा उठकर खड़े हो गये। मानो वे सोतेसे जाग उठे हों। उठते ही महाबुद्धिमान् वेदशर्माने धर्मशर्मासे कहा—'भाई! वे देवी कहाँ

गयीं? पिताजी कहाँ हैं?' धर्मशर्माने थोड़ेमें सब हाल कह सुनाया। सब हाल जानकर वेदशर्माको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने धर्मशर्मासे कहा—'प्रिय बन्धु! इस पृथ्वीपर तुम्हारे-जैसा मेरा हितैषी कौन है?' तदनन्तर दोनों भाई प्रसन्न होकर अपने पिता शिवशर्माके पास गये। उस समय धर्मशर्माने तेजस्वी पितासे कहा—'महाभाग! आज मैंने आपके पुत्र वेदशर्माको मस्तक और जीवनके साथ यहाँ ला दिया है। आप इन्हें स्वीकार कीजिये।'

तदनन्तर शिवशर्माने विनीत भावसे सामने खड़े हुए चौथे पुत्र महामति विष्णुशर्मासे कहा—'बेटा! मेरा कहना करो। आज ही इन्द्रलोकको जाओ और वहाँसे अमृत ले आओ। मैं अपनी इस प्रियतमाके साथ इस समय अमृत पीना चाहता हूँ; क्योंकि अमृत सब रोगोंको दूर करनेवाला है।' महात्मा पिताका यह वचन सुनकर विष्णुशर्माने उनसे कहा—'पिताजी! मैं आपके कथनानुसार सब कार्य करूँगा।' यह कहकर परम बुद्धिमान् धर्मात्मा विष्णुशर्माने पिताको प्रणाम किया और उनकी प्रदक्षिणा करके अपने महान् बल, तपस्या

तथा नियमके प्रभावसे आकाशमार्गद्वारा इन्द्रलोककी यात्रा की।

अन्तरिक्षमार्गसे जब वे आकाशके भीतर घुसे, तब देवराज इन्द्रने उन्हें देखा और उनका उद्देश्य जानकर उसमें विघ्न डालना आरम्भ किया। उन्होंने मेनकासे कहा—'सुन्दरी! मेरी आज्ञासे शीघ्रतापूर्वक जाओ और विप्रवर विष्णुशर्माके कार्यमें बाधा डालो।' देवराजकी आज्ञा पाकर मेनका बड़ी उतावलीके साथ चली। उसका सुन्दर रूप था और वह सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित थी। नन्दनवनके भीतर पहुँचकर वह झूलेमें जा बैठी और मधुर स्वरसे गीत गाने लगी। उसका संगीत बीणाके स्वरके समान था। विष्णुशर्माने उसे देखा और उसके मनोभावको समझ लिया। उन्होंने सोचा—'यह एक बहुत बड़े विघ्नके रूपमें उपस्थित हुई है, इन्द्रने इसे भेजा है; यह मेरी भलाई नहीं कर सकती।' यह विचारकर वे शीघ्रतापूर्वक आगे बढ़ गये। मेनकाने उन्हें जाते देखा और पूछा—'महामते! कहाँ जाओगे?' विष्णुशर्मा बोले—'मैं पिताके कार्यसे इन्द्रलोकमें जाऊँगा, वहाँ पहुँचनेके लिये मुझे बड़ी जल्दी है।' मेनकाने कहा—'विप्रवर! मैं कामदेवके बाणोंसे घायल होकर इस समय तुम्हारी शरणमें आयी हूँ। यदि धर्मका पालन करना चाहते हो तो मेरी रक्षा करो।'

विष्णुशर्मा बोले—सुमुखि! मुझे देवराजका सारा चरित्र मालूम है; तुम्हारे मनमें क्या है, यह भी मुझसे छिपा नहीं है। तुम्हारे तेज और रूपसे विश्वामित्र आदि दूसरे लोग ही मोहित होते हैं। मैं शिवशर्माका पुत्र हूँ, मुझपर तुम्हारा जादू नहीं चल सकता। अबले! मैं योगसिद्धिको प्राप्त हूँ, तपस्यासे सिद्ध हो चुका हूँ। काम आदि बड़े-बड़े दोषोंको मैंने पहले ही जीत लिया है। तुम किसी दूसरे पुरुषका आश्रय लो, मैं इन्द्रलोकको जा रहा हूँ।

यों कहकर द्विजश्रेष्ठ विष्णुशर्मा शीघ्रतापूर्वक चले गये। मेनकाका प्रयत्न निष्फल हुआ। देवराजके पूछनेपर उसने सब कुछ बता दिया। तब इन्द्रने बारंबार विघ्न उपस्थित किया, किन्तु महायशस्वी ब्राह्मणने अपने तेजसे
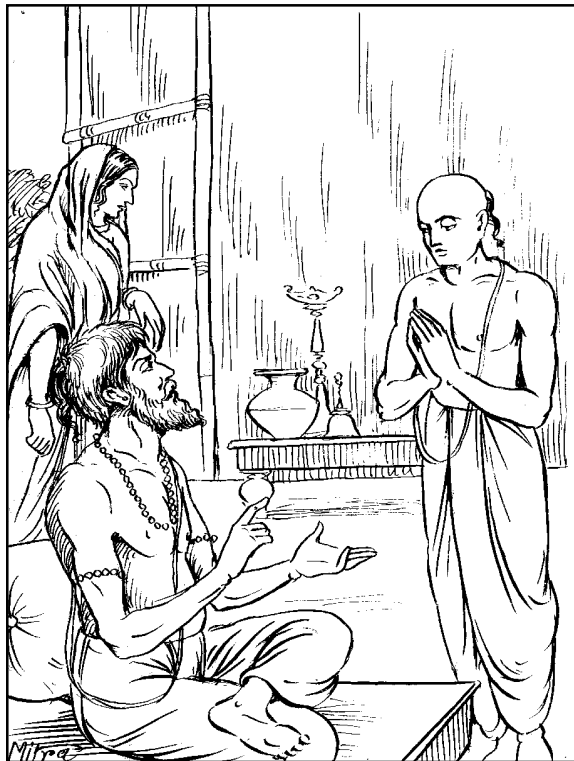
उन सब विघ्नोंका नाश कर दिया। उनके उपस्थित किये हुए भयंकर विघ्नोंका विचार करके महातेजस्वी विष्णुशर्माको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने सोचा—'मैं इन्द्रलोकसे इन्द्रको गिरा दूँगा और देवताओंकी रक्षाके लिये दूसरा इन्द्र बनाऊँगा।' वे इस प्रकार विचार कर ही रहे थे कि देवराज इन्द्र वहाँ आ पहुँचे और बोले—'महाप्राज्ञ विप्र! तपस्या, नियम, इन्द्रियसंयम, सत्य और शौचके द्वारा तुम्हारी समानता करनेवाला दूसरा कोई नहीं है। तुम्हारी इस पितृभक्तिसे मैं देवताओंसहित परास्त हो गया। साधुश्रेष्ठ! तुम मेरे सारे अपराध क्षमा करो और मुझसे कोई वर माँगो। तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारे माँगनेपर मैं दुर्लभ-से-दुर्लभ वर भी दे दूँगा।' यह सुनकर विष्णुशर्माने देवराजसे कहा—'आपको महात्मा ब्राह्मणोंके तेजका विनाश करनेकी कभी चेष्टा नहीं करनी चाहिये; क्योंकि यदि श्रेष्ठ ब्राह्मण क्रोधमें भर जायँ तो समस्त पुत्र-पौत्रोंके साथ अपराधी व्यक्तिका संहार कर सकते हैं—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। यदि आप इस समय यहाँ न आये होते तो मैं अपनी तपस्याके प्रभावसे आपके इस उत्तम राज्यको छीनकर किसी दूसरेको दे डालनेका विचार कर चुका था। मेरी आँखें क्रोधसे लाल हो रही थीं। [किन्तु आपके आनेसे मेरा भाव बदल गया।] देवेन्द्र! आप आकर मुझे वर देना चाहते हैं तो अमृत दीजिये; साथ ही पिताके चरणोंमें अविचल भक्ति प्रदान कीजिये।'

इस प्रकार बातचीत होनेपर इन्द्रने प्रसन्न चित्तसे ब्राह्मणको अमृतसे भरा घड़ा लाकर दिया तथा वरदान देते हुए कहा—'विप्रवर! अपने पिताके प्रति तुम्हारे हृदयमें सदा अविचल भक्ति बनी रहेगी।' यों कहकर इन्द्रने ब्राह्मणको विदा किया। तदनन्तर विष्णुशर्मा अपने पिताके पास जाकर बोले—'तात! मैं इन्द्रके यहाँसे अमृत ले आया हूँ। इसका सेवन करके आप सदाके लिये नीरोग हो जाइये।' शिवशर्मा पुत्रकी यह बात सुनकर बहुत सन्तुष्ट हुए और सब पुत्रोंको बुलाकर कहने लगे—'तुम सब लोग पितृभक्तिसे युक्त और मेरी आज्ञाके पालक हो। अतः प्रसन्नतापूर्वक मुझसे कोई वर माँगो। इस भूतलपर जो दुर्लभ वस्तु होगी, वह भी तुम्हें मिल जायगी।' पिताकी यह बात सुनकर वे सभी पुत्र एक-दूसरेकी ओर देखते हुए उनसे बोले—'सुव्रत! आपकी कृपासे हमारी माता, जो यमलोकको चली गयी हैं, जी जायँ।'

शिवशर्माने कहा—'पुत्रो! तुम्हारी मरी हुई पुत्रवत्सला माता अभी जीवित होकर हर्षमें भरी हुई यहाँ आयेगी—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।' ऋषि शिवशर्माके मुखसे यह शुभ वाक्य निकलते ही उन पुत्रोंकी माता हर्षमें भरी हुई वहाँ आ पहुँची और बोली—'मेरे सौभाग्यशाली पुत्रो! इसीलिये संसारमें पुण्यात्मा स्त्रियाँ पुण्यसाधक पुत्रकी इच्छा करती हैं। जिसका कुलके अनुरूप आचरण हो, जो अपने कुलका आधार तथा माता-पिताको तारनेवाला हो—ऐसे उत्तम पुत्रको कोई भी स्त्री पुण्यके बिना कैसे पा सकती है। न जाने मैंने कैसे-कैसे पुण्य किये थे, जिनके फलस्वरूप ये धर्मप्राण, धर्मात्मा, धर्मवत्सल तथा अत्यन्त पुण्यभागी महात्मा मुझे पतिरूपमें प्राप्त हुए। मेरे सभी पुत्र पितृभक्तिमें रत हैं; इससे बढ़कर प्रसन्नताकी बात और
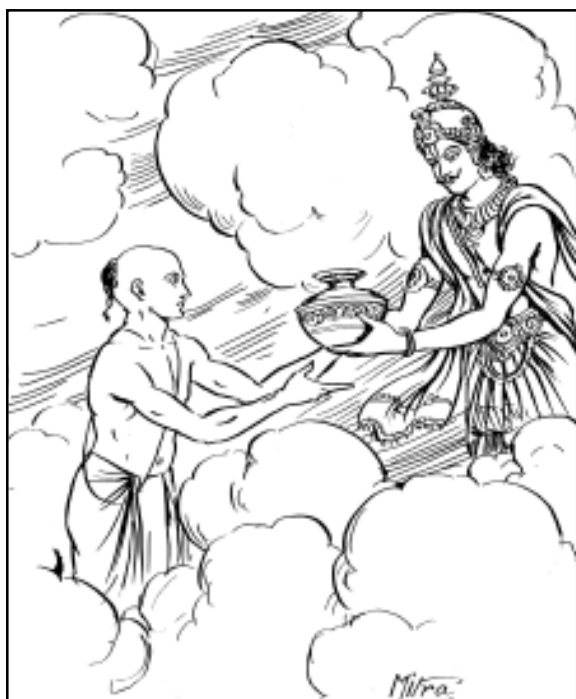
क्या होगी। अहो! संसारमें पुण्यके ही बलसे उत्तम पुत्रकी प्राप्ति होती है। मुझे पाँच पुत्र प्राप्त हुए हैं, जिनका हृदय विशाल है तथा जिनमें एक-से-एक बढ़कर है। मेरे सभी पुत्र यज्ञ करनेवाले, पुण्यात्मा, तपस्वी, तेजस्वी और पराक्रमी हैं।'

इस प्रकार माताके कहनेपर पुत्रोंको बड़ा हर्ष हुआ और वे अपनी माताको प्रणाम करके बोले—'माँ! अच्छे माता-पिताकी प्राप्ति बड़े पुण्यसे होती है। तुम सदा पुण्य कर्म करती रहती हो। हमारे बड़े भाग्य थे, जो तुम हमें माताके रूपमें प्राप्त हुईं, जिनके गर्भमें आकर हमलोग उत्तम पुण्योंसे वृद्धिको प्राप्त हुए हैं। हमारी यही अभिलाषा है कि प्रत्येक जन्ममें तुम्हीं हमारी माता और ये ही हमारे पिता हों।'

पिता बोले—पुत्रो! तुमलोग मुझसे कोई परम उत्तम और पुण्यदायक वरदान माँगो। मेरे सन्तुष्ट होनेपर तुमलोग अक्षय लोकोंका उपभोग कर सकते हो।

पुत्रोंने कहा—पिताजी! यदि आप हमपर प्रसन्न हैं और वर देना चाहते हैं तो हमें भगवान् श्रीविष्णुके गोलोकधाममें भेज दीजिये, जहाँ किसी प्रकारकी चिन्ता और व्याधि नहीं फटकने पाती।

पिता बोले—पुत्रो! तुमलोग सर्वथा निष्पाप हो; इसलिये मेरे प्रसाद, तपस्या और इस पितृभक्तिके बलसे वैष्णवधामको जाओ।

महर्षि शिवशर्माके यह उत्तम वचन कहते ही भगवान् श्रीविष्णु अपने हाथोंमें शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये गरुड़पर सवार हो वहाँ आ पहुँचे और पुत्रोंसहित शिवशर्मासे बारंबार कहने लगे—'विप्रवर! पुत्रोंसहित तुमने भक्तिके बलसे मुझे अपने वशमें कर लिया है। अतः इन पुण्यात्मा पुत्रों तथा पतिके साथ रहनेकी इच्छावाली इस पुण्यमयी पत्नीको साथ लेकर तुम मेरे परमधामको चलो।'

शिवशर्माने कहा—भगवन्! ये मेरे चारों पुत्र ही इस समय परम उत्तम वैष्णवधाममें चलें। मैं पत्नीके साथ अभी भूलोकमें ही कुछ काल व्यतीत करना चाहता हूँ। मेरे साथ मेरा कनिष्ठ पुत्र सोमशर्मा भी रहेगा।

सत्यभाषी महर्षि शिवशर्माके यों कहनेपर देवेश्वर भगवान् श्रीविष्णुने उनके चार पुत्रोंसे कहा—'तुमलोग दाह और प्रलयसे रहित मोक्षदायक गोलोकधामको चलो।' भगवान्‌के इतना कहते ही उन चारों सत्यतेजस्वी ब्राह्मणोंका तत्काल विष्णुके समान रूप हो गया, उनके शरीरका श्यामवर्ण इन्द्र नीलमणिके समान शोभा पाने लगा। उनके हाथोंमें शंख, चक्र, गदा और पद्म सुशोभित होने लगे। वे विष्णुरूपधारी महान् तेजस्वी द्विज पितृभक्तिके प्रभावसे विष्णुधामको प्राप्त हो गये।

सोमशर्माकी पितृ-भक्ति

सूतजी कहते हैं—भगवान् श्रीविष्णुका गोलोकधाम तमसे परे परम प्रकाशरूप है। पूर्वोक्त चारों ब्राह्मण जब उस लोकमें चले गये, तब महाप्राज्ञ शिवशर्माने अपने छोटे पुत्रसे कहा—'महामते! सोमशर्मन्! तुम पिताकी भक्तिमें रत हो। मैं इस समय तुम्हें यह अमृतका घड़ा दे रहा हूँ; तुम सदा इसकी रक्षा करना। मैं पत्नीके साथ तीर्थयात्रा करने जाऊँगा।' यह सुनकर सोमशर्माने कहा—'महाभाग! ऐसा ही होगा।' बुद्धिमान् शिवशर्मा सोमशर्माके हाथमें वह घड़ा देकर वहाँसे चल दिये और दस वर्षोंतक निरन्तर तपस्यामें लगे रहे। धर्मात्मा सोमशर्मा दिन-रात आलस्य छोड़कर उस अमृत-कुम्भकी रक्षा करते रहे। दस वर्षोंके पश्चात् महायशस्वी शिवशर्मा पुनः लौटकर वहाँ आये। ये मायाका प्रयोग करके भार्यासहित कोढ़ी बन गये। जैसे वे स्वयं कुष्ठरोगसे पीड़ित थे, उसी प्रकार उनकी स्त्री भी थीं। दोनों ही मांसके पिण्डकी भाँति त्याग देनेयोग्य दिखायी देते थे। वे धीरचित्त ब्राह्मण महात्मा सोमशर्माके समीप आये। वहाँ पधारे हुए माता-पिताको सर्वथा दुःखसे पीड़ित देख महायशस्वी सोमशर्माको बड़ी दया आयी। भक्तिसे उनका मस्तक झुक गया। वे उन दोनोंके

चरणोंमें पड़ गये और बोले—'पिताजी! मैं दूसरे किसीको ऐसा नहीं देखता, जो तपस्या, गुण-समुदाय और उत्तम पुण्यसे युक्त होकर आपकी समानता कर सके। फिर भी आपको यह क्या हो गया? विप्रवर! सम्पूर्ण देवता सदा दासकी भाँति आपकी आज्ञाके पालनमें लगे रहते हैं। वे आपके तेजसे खिंचकर यहाँ आ जाते हैं। आप इतने शक्तिशाली हैं तो भी किस पापके कारण आपके शरीरमें यह पीड़ा देनेवाला रोग हो गया? ब्राह्मणश्रेष्ठ! इसका कारण बताइये। यह मेरी माता भी पुण्यवती है, इसका पुण्य महान् है; यह पतिव्रत-धर्मका पालन करनेवाली है। यह अपने स्वामीकी कृपासे समूची त्रिलोकीको भी धारण करनेमें समर्थ है। जो राग-द्वेषका परित्याग करके भाँति-भाँतिके कर्मोंद्वारा अपने पतिदेवका पूजन करती है, देवताओंकी ही भाँति गुरुजनोंके प्रति भी जिसके हृदयमें आदरका भाव है, वह मेरी माता क्यों इस कष्टकारी कुष्ठरोगका दुःख भोग रही है?'
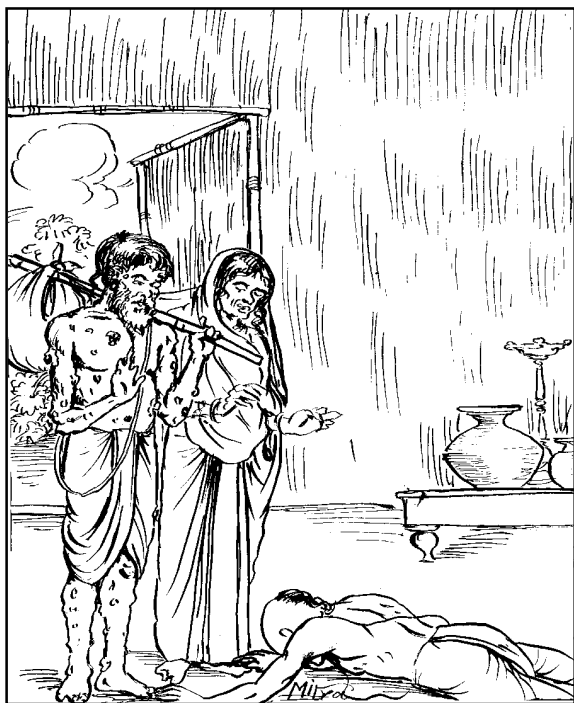
शिवशर्मा बोले—महाभाग! तुम शोक न करो; सबको अपने कर्मोंका ही फल भोगना पड़ता है; क्योंकि मनुष्य प्रायः [पूर्वकृत] पाप और पुण्यमय कर्मोंसे युक्त होता ही है। अब तुम हम दोनों रोगियोंके घावोंको धोकर साफ करो।

पिताका यह शुभ वाक्य सुनकर महायशस्वी सोमशर्माने कहा—'आप दोनों पुण्यात्मा हैं; मैं आपकी सेवा अवश्य करूँगा। माता-पिताकी शुश्रूषाके सिवा मेरा और कर्तव्य ही क्या है।' सोमशर्मा उन दोनोंके दुःखसे दुःखी थे। वे माता-पिताके मल-मूत्र तथा कफ आदि धोते। अपने हाथसे उनके चरण पखारते और दबाया करते थे। उनके रहने और नहाने आदिका प्रबन्ध भी वे पूर्ण भक्तिके साथ स्वयं ही करते थे। विप्रवर सोमशर्मा बड़े यशस्वी, धर्मात्मा और सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ थे। वे अपने दोनों गुरुजनोंको कंधेपर बिठाकर तीर्थोंमें ले जाया करते थे। वे वेदके ज्ञाता थे; अतः मांगलिक मन्त्रोंका उच्चारण करके दोनोंको अपने हाथसे विधिपूर्वक नहलाते और स्वयं भी स्नान करते थे। फिर पितरोंका तर्पण और देवताओंका पूजन भी वे उन दोनोंसे प्रतिदिन कराया करते थे। स्वयं अग्निमें होम करते और अपने दोनों महागुरु माता-पिताको प्रसन्न करते हुए अपने सब कार्य उन्हें बताया करते थे। सोमशर्मा उन दोनोंको प्रतिदिन शय्यापर सुलाते और उन्हें वस्त्र तथा पुष्प आदि सब सामग्री निवेदन करते थे। परम सुगन्धित पान लगाकर माता-पिताको अर्पण करते तथा नित्यप्रति उनकी इच्छाके अनुसार फल, मूल, दूध आदि उत्तमोत्तम भोज्य पदार्थ खानेको देते थे। इस क्रमसे वे सदा ही माता-पिताको प्रसन्न रखनेकी चेष्टा करते थे। पिता सोमशर्माको बुलाकर उन्हें नाना प्रकारके कठोर एवं दुःखदायी वचनोंसे पीड़ित करते और आतुर होकर उन्हें डंडोंसे पीटते भी थे। यह सब करनेपर भी धर्मात्मा सोमशर्मा कभी पिताके ऊपर क्रोध नहीं करते थे। वे सदा सन्तुष्ट रहकर मन, वाणी और क्रिया—तीनोंके ही द्वारा पिताकी पूजा करते थे।

ये सब बातें जानकर शिवशर्मा अपने चरित्रपर विचार करने लगे। उन्होंने सोचा—'सोमशर्माका मेरी सेवामें अधिक अनुराग दिखायी देता है, इसीलिये

समयपर मैंने इसके तपकी परीक्षा की है; किन्तु मेरा पुत्र भक्ति-भाव तथा सत्यपूर्ण बर्तावसे भ्रष्ट नहीं हो रहा है। निन्दा करने और मारनेपर भी सदा मीठे वचन बोलता है। इस प्रकार मेरा बुद्धिमान् पुत्र दुष्कर सदाचारका पालन कर रहा है। अतः अब मैं भगवान् श्रीविष्णुके प्रसादसे इसके दुःख दूर करूँगा।' इस प्रकार बहुत देरतक सोच-विचार करनेके पश्चात् परम बुद्धिमान् शिवशर्माने पुनः मायाका प्रयोग किया। अमृतके घड़ेसे अमृतका अपहरण कर लिया। उसके बाद सोमशर्माको बुलाकर कहा—'बेटा! मैंने तुम्हारे हाथमें रोगनाशक अमृत सौंपा था, उसे शीघ्र लाकर मुझे अर्पण करो, जिससे मैं इस समय उसका पान करूँ।'

पिताके यों कहनेपर सोमशर्मा तुरंत उठकर चल दिये। अमृतके घड़ेके पास जाकर उन्होंने देखा कि वह खाली पड़ा है—उसमें अमृतकी एक बूँद भी नहीं है। यह देखकर परम सौभाग्यशाली सोमशर्माने मन-ही-मन कहा—'यदि मुझमें सत्य और गुरु-शुश्रूषा है, यदि मैंने पूर्वकालमें निश्छल हृदयसे तपस्या की है, इन्द्रियसंयम, सत्य और शौच आदि धर्मोंका ही सदा पालन किया है, तो यह घड़ा निश्चय ही अमृतसे भर जाय।' महाभाग सोमशर्माने इस प्रकार विचार करके ज्यों ही उस घड़ेकी ओर देखा, त्यों ही वह अमृतसे भर गया। घड़ेको भरा देख उसे हाथमें ले महायशस्वी सोमशर्मा तुरंत ही पिताके पास गये और उन्हें प्रणाम करके बोले—'पिताजी! लीजिये, यह अमृतसे भरा घड़ा आ गया। महाभाग! अब इसे पीकर शीघ्र ही रोगसे मुक्त हो जाइये।' पुत्रका यह परम पुण्यमय तथा सत्य और धर्मके उद्देश्यसे युक्त मधुर वचन सुनकर शिवशर्माको बड़ा हर्ष हुआ। वे बोले—'पुत्र! आज मैं तुम्हारी तपस्या, इन्द्रियसंयम, शौच, गुरुशुश्रूषा तथा भक्तिभावसे विशेष संतुष्ट हूँ। लो, अब मैं इस विकृत रूपका त्याग करता हूँ।'

यों कहकर ब्राह्मण शिवशर्माने पुत्रको अपने पहले रूपमें दर्शन दिया। सोमशर्माने माता-पिताको पहले जिस रूपमें देखा था, उसी रूपमें उस समय भी देखा। वे दोनों महात्मा सूर्यमण्डलकी भाँति तेजसे दिप रहे थे। सोमशर्माने बड़ी भक्तिके साथ उन महात्माओंके चरणोंमें मस्तक झुकाया। तदनन्तर वे दोनों पति-पत्नी पुत्रसे बातचीत करके अत्यन्त प्रसन्न हुए। फिर धर्मात्मा ब्राह्मण भगवान् श्रीविष्णुकी कृपासे अपनी पत्नीको साथ ले विष्णुधामको चले गये। अपने पुण्य और योगाभ्यासके प्रभावसे उन महर्षिने दुर्लभ पद प्राप्त कर लिया।

सुव्रतकी उत्पत्तिके प्रसंगमें सुमना और शिवशर्माका संवाद—विविध प्रकारके पुत्रोंका वर्णन तथा दुर्वासाद्वारा धर्मको शाप

ऋषियोंने कहा—सूतजी! अब हम महात्मा सुव्रतका चरित्र सुनना चाहते हैं। वे महाप्राज्ञ किस गोत्रमें उत्पन्न हुए और किसके पुत्र थे? ब्राह्मण सुव्रतकी क्या तपस्या थी और किस प्रकार उन्होंने भगवान् श्रीहरिकी आराधना की थी?

सूतजी बोले—विप्रगण! मैं सुव्रतके दिव्य एवं पावन चरित्रका वर्णन करता हूँ। यह प्रसंग परम कल्याणकारी तथा भगवान् श्रीविष्णुकी चर्चासे युक्त है। पूर्व कल्पकी बात है, नर्मदाके पापनाशक तटपर अमरकण्टक तीर्थके भीतर कौशिक-वंशमें एक श्रेष्ठ ब्राह्मण उत्पन्न हुए थे। उनका नाम था सोमशर्मा। उनके कोई पुत्र नहीं था। इस कारण वे बहुत दुःखी रहा करते थे। उनकी पत्नीका नाम था सुमना। वह उत्तम व्रतका आचरण करनेवाली थी। एक दिन उसने अपने पतिको चिन्तित देखकर कहा—'नाथ! चिन्ता छोड़िये। चिन्ताके समान दूसरा कोई दुःख नहीं है, क्योंकि वह शरीरको सुखा डालती है। जो उसे त्यागकर यथोचित बर्ताव करता है, वह अनायास ही आनन्दमें मस्त रहता है।* विप्रवर! मेरे सामने आप अपनी चिन्ताका कारण बताइये।'

सोमशर्माने कहा—सुव्रते! न जाने किस पापसे मैं निर्धन और पुत्रहीन हूँ। यही मेरे दुःखका कारण है।

सुमना बोली—प्राणनाथ! सुनिये। मैं एक ऐसी बात बताती हूँ, जो सब सन्देहोंका नाश करनेवाली है। पाप एक वृक्षके समान है, उसका बीज है लोभ। मोह उसकी जड़ है। असत्य उसका तना और माया उसकी शाखाओंका विस्तार है। दम्भ और कुटिलता पत्ते हैं। कुबुद्धि फूल है और अनृत उसकी गन्ध है। छल, पाखण्ड, चोरी, ईर्ष्या, क्रूरता, कूटनीति और पापाचारसे युक्त प्राणी उस मोहमूलक वृक्षके पक्षी हैं, जो मायारूपी शाखाओंपर बसेरे लेते हैं। अज्ञान उस वृक्षका फल है और अधर्मको उसका रस बताया गया है। दुर्भावरूप जलसे सींचनेपर उसकी वृद्धि होती है। अश्रद्धा उसके फूलने-फलनेकी ऋतु है। जो मनुष्य उस वृक्षकी छायाका आश्रय लेकर संतुष्ट रहता है, उसके पके हुए फलोंको प्रतिदिन खाता है और उन फलोंके अधर्मरूप रससे पुष्ट होता है, वह ऊपरसे कितना ही प्रसन्न क्यों न हो, वास्तवमें पतनकी ओर ही जाता है। इसलिये पुरुषको चिन्ता छोड़कर लोभका भी त्याग कर देना चाहिये।

स्त्री, पुत्र और धनकी चिन्ता तो कभी करनी ही नहीं चाहिये। प्रियतम! कितने ही विद्वान् भी मूर्खोंके मार्गका अवलम्बन करते हैं। दिन-रात मोहमें डूबे रहकर निरन्तर इसी चिन्तामें पड़े रहते हैं कि किस प्रकार मुझे अच्छी स्त्री मिले और कैसे मैं बहुत-से पुत्र प्राप्त करूँ। ब्रह्मन्! आप चिन्ता और मोहका त्याग करके विवेकका आश्रय लीजिये।

कोई पूर्वजन्ममें ऋण देनेके कारण इस जन्ममें अपने सम्बन्धी होते हैं और कोई-कोई धरोहर हड़प लेनेके कारण भी सम्बन्धीके रूपमें जन्म लेते हैं। पत्नी, पिता, माता, भृत्य, स्वजन और बान्धव—सब लोग अपने-अपने ऋणानुबन्धसे ही इस पृथ्वीपर उत्पन्न होते हैं। जिसने जिसकी जिस भावसे धरोहर हड़प ली है, वह उसी भावसे उसके यहाँ जन्म लेता है। धरोहरका स्वामी रूपवान् और गुणवान् पुत्र होकर पृथ्वीपर उत्पन्न होता है और धरोहरके अपहरणका बदला लेनेके लिये दारुण दुःख देकर चला जाता है।

जो किसीका ऋण लेकर मर जाता है, उसके यहाँ दूसरे जन्ममें ऋणदाता पुरुष पुत्र, भाई, पिता, पत्नी और मित्ररूपसे उत्पन्न होता है। वह सदा ही अत्यन्त दुष्टतापूर्ण बर्ताव करता है। गुणोंकी ओर तो वह कभी

* नास्ति चिन्तासमं दुःखं कायशोषणमेव हि। यस्तां संत्यज्य वर्तेत स सुखेन प्रमोदते॥ (११। ११)

देखता ही नहीं। क्रूर स्वभाव और निष्ठुर आकृति बनाये अपने स्वजनोंको सदा कठोर बातें सुनाया करता है। प्रतिदिन मीठी-मीठी वस्तुएँ स्वयं खाता है। घरमें रहते हुए धनका बलपूर्वक उपभोग करता है और रोकनेपर कुपित हो जाता है।

विप्रवर! अब मैं आपके सामने शत्रु-स्वभाववाले पुत्रका वर्णन करती हूँ। वह बाल्यावस्थासे ही सदा शत्रुओंका-सा बर्ताव करता है। खेल-कूदमें भी पिता-माताको मार-मारकर भागता है और बारंबार हँसा करता है। क्रोधयुक्त स्वभावको लेकर ही बड़ा होता है और सदा वैरके काममें लगा रहता है। वह प्रतिदिन पिता और माताकी निन्दा करता है। फिर विवाह-सम्बन्ध हो जानेपर नाना प्रकारसे धनका अपव्यय करता है। 'घर और खेत आदि सब मेरा ही है' [तुमलोग कौन हो मेरा हाथ रोकनेवाले?] यों कहकर पिता और माताको प्रतिदिन पीटता रहता है। उनकी मृत्युके पश्चात् न वह श्राद्ध करता है और न कभी दान ही देता है। ऐसे बहुतेरे पुत्र इस पृथ्वीपर उत्पन्न होते रहते हैं।

अब मैं उस पुत्रका वर्णन करती हूँ, जिसके द्वारा प्रिय वस्तुकी प्राप्ति होती है। वैसा बालक बचपनसे ही माता-पिताका प्रिय करता है। वयस्क (बड़ा) होनेपर भी उनके प्रियसाधनमें लगा रहता है और सदा अपनी भक्तिसे माता-पिताको सन्तुष्ट रखता है। स्नेहसे, मीठी वाणीसे तथा प्रिय लगनेवाली बातचीतसे उन्हें प्रसन्न रखनेकी चेष्टा करता है। माता-पिताकी मृत्युके पश्चात् सम्पूर्ण श्राद्धकर्म और पिण्डदान आदिका कार्य करता है तथा उनकी सद्गतिके लिये तीर्थयात्रा भी करता है।

प्रियतम! अब इस समय आपके सामने उदासीन पुत्रका वर्णन करती हूँ—विप्रवर! उदासीन बालक सदा उदासीन-भावसे ही रहता है। वह न कुछ देता है और न लेता है। न रुष्ट होता है और न सन्तुष्ट। इस प्रकार मैंने पुत्रोंके सम्बन्धमें सब कुछ बता दिया। पुत्रोंकी ऐसी ही गति है। जैसे पुत्र होते हैं, वैसे ही पिता, माता, पत्नी, बन्धु-बान्धव तथा भृत्य आदि अन्य लोग भी बताये गये हैं। [इनमें भी शत्रु, मित्र और उदासीन आदि भेद होते हैं।] मनुष्योंकी तो बात ही क्या है, पशु—घोड़े, हाथी, भैंस आदि भी ऐसे ही होते हैं। नौकरोंकी भी यही स्थिति है; ये सब ऋणके सम्बन्धसे ही प्राप्त होते हैं।

हम दोनोंने पूर्वजन्ममें न तो किसीसे ऋण लिया है और न किसीकी धरोहर ही हड़पी है। इतना ही नहीं, हमने किसीके साथ वैर भी नहीं किया है। [इसीलिये हमें धन और पुत्र आदि किसी भी वस्तुकी प्राप्ति नहीं हुई है।] यह जानकर आप शान्ति धारण करें और व्यर्थकी चिन्ता छोड़ दें। आपने किसीको दान नहीं दिया है, तब धन कैसे आये। अतः प्राणनाथ! दुःखी न होइये। द्विजश्रेष्ठ! जिस पुरुषको धन मिलना निश्चित है, उसके हाथमें अनायास ही धन आ जाता है। मनुष्य उस धनकी बड़े यत्नसे रक्षा करता है। किन्तु जब वह जानेको होता है, तब चला ही जाता है। ऐसा समझकर आप शान्त हो जाइये। निरर्थक चिन्ता छोड़िये। महान् मोहसे मूढ़ (विवेकशून्य) हुए मानव पापमें आसक्तचित्त होकर कहने लगते हैं कि 'यह घर, यह पुत्र और ये स्त्रियाँ मेरी ही हैं।' किन्तु प्राणनाथ! संसारका यह बन्धन सदा झूठा ही दिखायी देता है।

सोमशर्मा बोले—कल्याणी! तुम ठीक कहती हो; तुम्हारा यह वचन सब प्रकारके सन्देहोंका नाश करनेवाला है तथापि सत्यके ज्ञाता साधु पुरुष वंशकी इच्छा रखते हैं। प्रिये! मुझे पुत्रकी चिन्ता है; जीमें आता है—जिस-किसी उपायसे सम्भव हो, मैं पुत्र अवश्य उत्पन्न करूँ।

सुमनाने कहा—महाभाग! एक ही विद्वान् पुत्र श्रेष्ठ है, बहुत-से गुणहीन पुत्रोंको लेकर क्या करना है? एक ही पुत्र कुलका उद्धार करता है; दूसरे तो केवल कष्ट देनेवाले होते हैं। पुण्यसे ही पुत्र प्राप्त होता है, पुण्यसे ही अच्छा कुल मिलता है तथा पुण्यसे ही उत्तम गर्भकी प्राप्ति होती है। इसलिये आप पुण्यका अनुष्ठान कीजिये। प्राणनाथ! पुण्यकर्म करनेवाले मनुष्य ही सुख-राशिका उपभोग करते हैं।

सोमशर्मा बोले—भद्रे! मुझे पुण्यका अनुष्ठान बताओ। उत्तम पुण्य कैसा होता है? पुण्यके लक्षणोंका वर्णन करो।

सुमनाने कहा—प्राणनाथ! पुरुष या स्त्रीको सदा जिस प्रकार बर्ताव करना चाहिये तथा जिस प्रकार पुण्य करनेसे कीर्ति, पुत्र, प्यारी स्त्री और धनकी प्राप्ति होती है, वह सब मैं बताती हूँ तथा पुण्यका लक्षण भी कहती हूँ। ब्रह्मचर्य, तपस्या, पंचयज्ञोंका अनुष्ठान, दान, नियम, क्षमा, शौच, अहिंसा, उत्तम शक्ति और चोरीका अभाव—ये दस पुण्यके अंग हैं; इनके अनुष्ठानसे धर्मकी पूर्ति करनी चाहिये।* धर्मात्मा पुरुष मन, वाणी और शरीर—तीनोंकी क्रियासे धर्मका सम्पादन करता है। फिर वह जिस-जिस वस्तुका चिन्तन करता है, वह दुर्लभ होनेपर भी उसे प्राप्त हो जाती है।

सोमशर्माने पूछा—भामिनि! धर्मका स्वरूप कैसा है? और उसके कौन-कौन-से अंग हैं? प्रिये! इस विषयको सुननेकी मेरे मनमें बड़ी रुचि हो रही है; अतः तुम प्रसन्नतापूर्वक इसका वर्णन करो।

सुमना बोली—ब्रह्मन्! जिनका अत्रिवंशमें जन्म हुआ है तथा जो अनसूयाके पुत्र हैं, उन भगवान् दत्तात्रेयजीने ही सदा धर्मका साक्षात्कार किया है। महर्षि दुर्वासा और दत्तात्रेय—इन दोनोंने उत्तम तपस्या की है। उन्होंने तपस्या और आत्मबलके साथ धर्मानुकूल बर्ताव किया है। उन्होंने वनमें रहकर दस हजार वर्षोंतक तपस्या की, बिना कुछ खाये-पीये केवल हवा पीकर जीवन-निर्वाह किया; इससे वे दोनों शुभदर्शी हो गये हैं। तत्पश्चात् उतने ही समय (दस हजार वर्ष)-तक उन दोनोंने पंचाग्निसेवन किया। उसके बाद वे जलके भीतर खड़े हो उतने ही वर्षोंतक तपस्यामें लगे रहे। यतिवर दत्तात्रेय और मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा बहुत दुर्बल हो गये। तब मुनिवर दुर्वासाके मनमें धर्मके प्रति बड़ा क्रोध हुआ। इसी समय बुद्धिमान् धर्म साक्षात् वहाँ आ पहुँचे। उनके साथ ब्रह्मचर्य और तप आदि भी मूर्तिमान् होकर आये। सत्य, ब्रह्मचर्य, तप और इन्द्रियसंयम—ये उत्तम एवं विद्वान् ब्राह्मणके रूपमें आये। नियमने महाप्राज्ञ पण्डितका रूप धारण कर रखा था और दान अग्निहोत्रीका स्वरूप धारण किये महर्षि दुर्वासाके निकट उपस्थित हुआ था। क्षमा, शान्ति, लज्जा, अहिंसा और अकल्पना (निःसंकल्प अवस्था)—ये सब स्त्री रूप धारण किये वहाँ आयी थीं। बुद्धि, प्रज्ञा, दया, श्रद्धा, मेधा, सत्कृति और शान्ति—इनका भी वही रूप था। पाँचों अग्नियाँ, परम पावन वेद और वेदांग—ये भी अपना-अपना दिव्य रूप धारण किये उपस्थित थे। इस प्रकार धर्म अपने परिवारके साथ वहाँ आये थे। ये सब-के-सब मुनिको सिद्ध हो गये थे।

धर्म बोले—ब्रह्मन्! आपने तपस्वी होकर भी क्रोध क्यों किया है? क्रोध तो मनुष्यके श्रेय और तपस्या—दोनोंका ही नाश कर डालता है; इसलिये तपस्याके समय इस सर्वनाशी क्रोधको अवश्य त्याग देना चाहिये। द्विजश्रेष्ठ! स्वस्थ होइये; आपकी तपस्याका फल बहुत उत्तम है।

दुर्वासाने कहा—आप कौन हैं, जो इन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके साथ यहाँ पधारे हैं? तथा आपके साथ ये सुन्दर रूप और अलंकारोंसे सुशोभित स्त्रियाँ कैसे खड़ी हैं?

धर्म बोले—मुने! ये जो आपके सामने ब्राह्मणके रूपमें सम्पूर्ण तेजसे युक्त दिखायी देते हैं, जो हाथमें दण्ड और कमण्डलु लिये अत्यन्त प्रसन्न जान पड़ते हैं; इनका नाम 'ब्रह्मचर्य' है। इसी प्रकार ये जो दूसरे तेजस्वी ब्राह्मण खड़े हैं, इनपर भी दृष्टिपात कीजिये। इनके शरीरका रंग पीला और आँखें भूरे रंगकी हैं; ये 'सत्य' कहलाते हैं। धर्मात्मन्! इन्हींके समान जो अपनी दिव्य प्रभासे विश्वेदेवोंकी समानता कर रहे हैं तथा जिनका आपने सदा ही आश्रय लिया है, वही ये आपके मूर्तिमान् 'तप' हैं; इनका दर्शन कीजिये। जिनकी

---

* ब्रह्मचर्येण तपसा मखपञ्चकवर्तनैः। दानेन नियमैश्चापि क्षमाशौचेन वल्लभ॥
अहिंसया सुशक्त्या च ह्यस्तेयेनापि वर्तनैः। एतैर्दशभिरङ्गैस्तु धर्ममेव प्रपूरयेत्॥
(१२। ४४-४५)

वाणी प्रसादगुणसे युक्त है, जो दीप्तिमान् दिखायी देते हैं, सम्पूर्ण जीवोंपर दया करना जिनका स्वभाव है तथा जो सर्वदा आपका पोषण करते हैं, वे ही 'दम' (इन्द्रियसंयम) यहाँ व्यक्तरूप धारण करके उपस्थित हैं। जिनके मस्तकपर जटा है, जिनका स्वभाव कुछ कठोर जान पड़ता है, जिनके शरीरका रंग कुछ पीला है, जो अत्यन्त तीव्र और महान् सामर्थ्यशाली प्रतीत होते हैं तथा जिन्होंने श्रेष्ठ ब्राह्मणका रूप धारण कर हाथमें तलवार ले रखी है, वे पापोंका नाश करनेवाले 'नियम' हैं। जो अत्यन्त श्वेत और महान् दीप्तिमान् हैं, जिनके शरीरका रंग शुद्ध स्फटिकमणिके समान जान पड़ता है, जिनके हाथमें जलसे भरा कमण्डलु है तथा जिन्होंने दातुन ले रखी है, वे 'शौच' ही यहाँ ब्राह्मणका रूप धारण करके आये हैं।

स्त्रियोंमें यह शुश्रूषा है, जो सत्यसे विभूषित, परम सौभाग्यवती और अत्यन्त साध्वी है। जिसका स्वभाव अत्यन्त धीर है, जिसके सारे अंगोंसे प्रसन्नता टपक रही है, जिसका रंग गोरा और मुखपर हास्यकी छटा छा रही है, वह कमललोचना सरस्वती है। द्विजश्रेष्ठ! यह दिव्य आभूषणोंसे युक्त क्षमा उपस्थित है, जो परम शान्त, सुस्थिर और अनेकों मंगलमय विधानोंसे सुशोभित है। महाप्राज्ञ! तुम्हारी ज्ञानस्वरूपा शान्ति भी दिव्य आभूषणोंसे विभूषित होकर यहाँ आयी है। यह तुम्हारी प्रज्ञा है, जो परोपकारमें संलग्न, सत्यपरायण तथा स्वल्प भाषण करनेवाली है। यह क्षमाके साथ बड़ी प्रसन्न रहती है। इस यशस्विनीके शरीरका वर्ण श्याम है। जिसका शरीर तपाये हुए सोनेके समान उद्दीप्त दिखायी दे रहा है, वह महाभागा अहिंसा है। यह अत्यन्त प्रसन्न और अच्छी मन्त्रणासे युक्त है। यह यत्र-तत्र दृष्टि नहीं डालती। ज्ञानभावसे आक्रान्त हो सदा तपस्यामें लगी रहती है। महाभाग! यह देखिये—आपकी श्रद्धा भी आयी है, जो नाना प्रकारकी बुद्धिसे आक्रान्त और अनेकों ज्ञानोंसे आकुल होनेपर भी सुस्थिर है। यह श्रद्धा मनोहर और मंगलमयी है। सबका शुभ चिन्तन करनेवाली, सम्पूर्ण जगत्की माता, यशस्विनी तथा गौरवर्णा है। इधर यह मेधा उपस्थित है, जिसके शरीरका रंग हंस और चन्द्रमाके समान श्वेत है, गलेमें मोतियोंका हार लटक रहा है और हाथमें पुस्तक तथा स्फटिकाक्षकी माला शोभा पा रही है। यह प्रज्ञा है, जो सदा ही अत्यन्त प्रसन्न रहा करती है; यह प्रज्ञादेवी पीत वस्त्रसे शोभा पा रही है। द्विजश्रेष्ठ! जो त्रिभुवनका उपकार और पोषण करनेमें अद्वितीय है, जिसके शीलकी सदा ही प्रशंसा होती रहती है, वह दया भी आपके पास आयी है। यह वृद्धा, परम विदुषी, तपस्विनी, भावकी भार्या और मेरी माता है। सुव्रत! मैं आपका मूर्तिमान् धर्म हूँ। ऐसा समझकर शान्त होइये। मेरी रक्षा कीजिये। विप्रवर! आप कुपित क्यों हो रहे हैं?

दुर्वासाने कहा—देव! जिससे मुझे क्रोध हुआ है, वह कारण सुनिये। मैंने इन्द्रियसंयम और शौच आदि क्लेशमय साधनोंद्वारा अपने शरीरका शोधन किया तथा तपस्या की; किन्तु ऐसा करनेपर भी देख रहा हूँ—केवल मेरे ही ऊपर आपकी दया नहीं हो रही है। धर्मराज! मैं आपके इस बर्तावको न्याययुक्त नहीं मानता। यही मेरे क्रोधका कारण है, दूसरा कुछ नहीं; इसलिये मैं आपको तीन शाप दूँगा।

'धर्म! अब आप राजा और दासीपुत्र होइये। साथ ही स्वेच्छानुसार चाण्डाल-योनिमें भी प्रवेश कीजिये।' इस प्रकार तीन शाप देकर द्विजश्रेष्ठ दुर्वासा चले गये।

सोमशर्माने पूछा—भामिनि! महात्मा दुर्वासाका शाप पाकर धर्मकी क्या अवस्था हुई? उन शापोंका उपभोग उन्होंने किस प्रकार किया? यदि जानती हो तो बताओ।

सुमना बोली—प्राणनाथ! धर्मने भरतवंशमें राजा युधिष्ठिरके रूपमें जन्म ग्रहण किया। दासीपुत्र होकर जब वे उत्पन्न हुए, तब विदुर नामसे उनकी प्रसिद्धि हुई। अब तीसरे शापका उपभोग बतलाती हूँ—जिस समय महर्षि विश्वामित्रने राजा हरिश्चन्द्रको बहुत कष्ट पहुँचाया, उस समय परम बुद्धिमान् धर्म चाण्डालके स्वरूपको प्राप्त हुए थे।

सुमनाके द्वारा ब्रह्मचर्य, सांगोपांग धर्म तथा धर्मात्मा और पापियोंकी मृत्युका वर्णन

सोमशर्माने कहा—भामिनि! ब्रह्मचर्यके लक्षणका विस्तारपूर्वक वर्णन करो।

सुमना बोली—नाथ! सदा सत्यभाषणमें जिसका अनुराग है, जो पुण्यात्मा होकर साधुताका आश्रय लेता है, ऋतुकाल प्राप्त होनेपर अपनी स्त्रीके साथ समागम करता है, स्वयं दोषोंसे दूर रहता है और अपने कुलके सदाचारका कभी त्याग नहीं करता, वही सच्चा ब्रह्मचारी है। द्विजश्रेष्ठ! यह मैंने गृहस्थके ब्रह्मचर्यका वर्णन किया है। यह ब्रह्मचर्य गृहस्थ पुरुषोंको सदा मुक्ति प्रदान करनेवाला है। अब मैं यतियों (संन्यासियों)-के ब्रह्मचर्यका वर्णन करूँगी, आप ध्यान देकर सुनें। यतिको चाहिये कि वह इन्द्रियसंयम और सत्यसे युक्त हो पापसे सदा डरता रहे तथा स्त्रीके संगका परित्याग करके ध्यान और ज्ञानमें निरन्तर संलग्न रहे। यह यतियोंका ब्रह्मचर्य बतलाया गया। अब आपके समक्ष वानप्रस्थके ब्रह्मचर्यका वर्णन करती हूँ, सुनिये। वानप्रस्थीको सदाचारसे रहना और काम-क्रोधका परित्याग करना चाहिये। वह उञ्छवृत्तिसे जीविका चलाये और प्राणियोंके उपकारमें संलग्न रहे। यह वानप्रस्थका ब्रह्मचर्य बताया गया।

अब सत्यका वर्णन करती हूँ। जिसकी बुद्धि पराये धन और परायी स्त्रियोंको देखकर लोलुपतावश उनके प्रति आसक्त नहीं होती, वही पुरुष सत्यनिष्ठ कहा गया है। अब दानका वर्णन करती हूँ; जिससे मनुष्य जीवित रहता है। भूखसे पीड़ित मनुष्यको भोजनके लिये अन्न अवश्य देना चाहिये। उसको देनेसे महान् पुण्य होता है तथा दाता मनुष्य सदा अमृतका उपभोग करता है। अपने वैभवके अनुसार प्रतिदिन कुछ-न-कुछ दान करना चाहिये। सहानुभूतिपूर्ण वचन, तृण, शय्या, घरकी शीतल छाया, पृथ्वी, जल, अन्न, मीठी बोली, आसन, वस्त्र या निवासस्थान और पैर धोनेके लिये जल—ये सब वस्तुएँ जो प्रतिदिन अतिथिको निष्कपट भावसे अर्पण करता है; वह इहलोक और परलोकमें भी आनन्दका अनुभव करता है। जो दान और स्वाध्याय आदि शुभ कर्मोंके द्वारा अपने प्रत्येक दिनको सफल बनाता है, वह इस जगत्में मनुष्य होकर भी देवता ही है—इसमें तनिक भी सन्देहकी बात नहीं है।

अब मैं सांगोपांग धर्मके साधनभूत उत्तम नियमोंका वर्णन करती हूँ। जो देवताओं और ब्राह्मणोंकी पूजामें संलग्न रहता है, नित्य-निरन्तर शौच, सन्तोष आदि नियमोंका पालन करता है तथा दान, व्रत और सब प्रकारके परोपकारी कार्योंमें योग देता है, उसके इस कार्यको नियम कहा गया है। द्विजश्रेष्ठ! अब मैं क्षमाका स्वरूप बतलाती हूँ, सुनिये। दूसरोंद्वारा की हुई अपनी निन्दा सुनकर अथवा किसीके द्वारा मार खाकर भी जो क्रोध नहीं करता और स्वयं मार खाकर भी मारनेवाले व्यक्तिको नहीं मारता, वह क्षमाशील कहलाता है। अब शौचका वर्णन करती हूँ। जो राग-द्वेषसे रहित होकर प्रतिदिन स्नान और आचमन आदिका व्यवहार करता है और इस प्रकार जो बाहर तथा भीतरसे भी शुद्ध है, उसे शौचयुक्त (पवित्र) माना गया है। अब मैं अहिंसाका रूप बतलाती हूँ। विज्ञ पुरुषको किसी विशेष आवश्यकताके बिना एक तिनका भी नहीं तोड़ना चाहिये। संयमके साथ रहकर प्रत्येक जीवकी हिंसासे दूर रहना चाहिये और अपने प्रति जैसे बर्तावकी इच्छा होती है वैसा ही बर्ताव दूसरोंके साथ स्वयं भी करना चाहिये। अब शान्तिके स्वरूपका वर्णन करती हूँ। शान्तिसे सुखकी प्राप्ति होती है। अतः शान्तिपूर्ण आचरण अपना कर्तव्य है। कभी खिन्न नहीं होना चाहिये। प्राणियोंके साथ वैरभावका सर्वथा परित्याग करके मनमें भी कभी वैरका भाव नहीं आने देना चाहिये। अब अस्तेयका स्वरूप बतलाती हूँ। परधन और परस्त्रीका कदापि अपहरण न करे। मन, वाणी तथा शरीरके द्वारा भी कभी किसी दूसरेकी वस्तु लेनेकी चेष्टा न करे। अब दमका वर्णन करती हूँ। इन्द्रियोंका दमन करके मनके द्वारा उन्हें प्रकाश देते रहना और उनकी चंचलताका नाश

करना चाहिये। इससे मनुष्यमें चेतनाका विकास होता है। अब मैं शुश्रूषाका स्वरूप बतलाती हूँ। मन, वाणी और शरीरसे गुरुके कार्य-साधनमें लगे रहना शुश्रूषा है। द्विजश्रेष्ठ! इस प्रकार मैंने आपसे धर्मका सांगोपांग वर्णन किया। जो मनुष्य ऐसे धर्ममें सदा संलग्न रहता है, उसे संसारमें पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता—यह मैं आपसे सच-सच कह रही हूँ। महाप्राज्ञ! यह जानकर आप धर्मका अनुसरण करें।

सोमशर्माने पूछा—देवि! तुम्हारा कल्याण हो, तुम इस प्रकार धर्मकी परम पुण्यमयी उत्तम व्याख्या कैसे जानती हो? किसके मुँहसे तुमने यह सब सुना है?

सुमना बोली—महामते! मेरे पिताका जन्म भार्गव-वंशमें हुआ है। वे सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञानमें निपुण हैं। उनका नाम है महर्षि च्यवन। मैं उन्हींकी कन्या हूँ। वे मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय मानते थे। जिस-जिस तीर्थ, मुनि-समाज अथवा देवालयमें वे जाते, मैं भी उनके साथ वहाँ जाया करती थी। मेरे पिताजीके एक मित्र हैं, जिनका नाम है वेदशर्मा। कौशिकवंशमें उनका जन्म हुआ है। एक दिन वे घूमते-घामते पिताजीके पास आये। उस समय वे बहुत दुःखी थे और बारंबार चिन्तामग्न हो जाते थे। तब उनसे मेरे पिताने कहा—'सुव्रत! मालूम होता है आप किसी दुःखसे संतप्त हैं। आपको दुःख कैसे प्राप्त हुआ है, मुझे इसका कारण बतलाइये।' यह सुनकर वेदशर्माने कहा—'मेरी स्त्री बड़ी साध्वी और पतिव्रता है, किन्तु अबतक उसे कोई पुत्र नहीं हुआ। मेरा वंश चलानेवाला कोई नहीं है। यही मेरे दुःखका कारण है; आपने पूछा था, इसलिये बताया है।'

इसी बीचमें कोई सिद्ध पुरुष मेरे पिताके आश्रमपर आये। पिताजी और वेदशर्मा दोनोंने खड़े होकर भक्तिपूर्वक सिद्धका पूजन किया। भोजन आदि उपचारों और मीठे वचनोंसे उनका स्वागत किया। फिर आपने पहले जिस प्रकार प्रश्न किया था, उसी प्रकार उन दोनोंने भी सिद्धसे अपने मनकी बात पूछी। तब धर्मात्मा सिद्धने मेरे पिता और उनके मित्रसे इस प्रकार कहा—'धर्मके अनुष्ठानसे ही स्त्री, पुत्र और धन-धान्यकी प्राप्ति होती है।' उनके उपदेशसे वेदशर्माने धर्मका अनुष्ठान पूरा किया। उस धर्मसे उन्हें महान् सुख और सुयोग्य पुत्रकी प्राप्ति हुई। उन सिद्ध महात्माके सत्संगसे ही धर्मके विषयमें मेरी बुद्धिका ऐसा निश्चय हुआ है।

सोमशर्माने पूछा—प्रिये! धर्मसे कैसी मृत्यु और कैसा जन्म होता है? शास्त्रके अनुसार उस मृत्यु और जन्मका लक्षण जैसा निश्चित किया गया हो, वह सब मुझे बताओ।

सुमना बोली—प्राणनाथ! जिसने सत्य, शौच, क्षमा, शान्ति, तीर्थ और पुण्य आदिके द्वारा धर्मका पालन किया है, उसकी मृत्युका लक्षण बतलाती हूँ। धर्मात्मा पुरुषको मृत्युके समय कोई रोग नहीं होता, उसके शरीरमें कोई पीड़ा नहीं होती; श्रम, ग्लानि, स्वेद और भ्रान्ति आदि उपद्रव भी नहीं होते। गीत-ज्ञान-विशारद दिव्यरूपधारी गन्धर्व और वेदपाठी ब्राह्मण उसके पास आकर मनोहर स्तुति किया करते हैं। वह स्वस्थ रहकर सुखदायक आसनपर विराजमान होता है। अथवा देवपूजामें बैठा होता है। ऐसा भी हुआ करता है कि धर्मपरायण बुद्धिमान् पुरुष [मृत्युकालमें] स्नानके लिये तीर्थ-स्थानमें पहुँचा हो। अग्निहोत्र-गृह, गोशाला, देवमन्दिर, बगीचा, पोखरा, पीपल या बड़का वृक्ष तथा पाकर अथवा बेलका पेड़—ये मृत्युके लिये पवित्र स्थान माने गये हैं। धर्मात्मा पुरुष धर्मराजके दूतोंको प्रत्यक्ष देखता है। वे स्नेहसे युक्त और मुसकराते हुए दिखायी देते हैं। वह मरनेवाला जीव स्वप्न, मोह तथा क्लेशके अधीन नहीं होता। धर्मराजके दूत उससे कहते हैं—'महाभाग! परम बुद्धिमान् धर्मराज आपको बुला रहे हैं।' दूतोंकी यह बात सुनकर उसे मोह और सन्देह नहीं होता। उसका चित्त प्रसन्न हो जाता है। वह ज्ञान-विज्ञानसे सम्पन्न हो भगवान् श्रीविष्णुका स्मरण करता है और संतुष्ट एवं हृष्टचित्त होकर उन दूतोंके साथ चला जाता है।

सोमशर्माने पूछा—भद्रे! पापियोंकी मृत्यु किन लक्षणोंसे युक्त होती है, इसका विस्तारके साथ वर्णन करो।

सुमना बोली—प्राणनाथ! सुनिये, मैं महापातकी मनुष्योंकी मृत्युके स्थान और चेष्टाका वर्णन करती हूँ। दुष्टात्मा पुरुष विष्ठा और मूत्र आदि अपवित्र वस्तुओंसे युक्त और पापियोंसे भरे हुए भूभागमें रहकर बड़े दुःखसे प्राण त्याग करता है। चाण्डालके स्थानपर जाकर दुःखपूर्वक मरता है। गदहोंसे घिरी हुई भूमिमें, वेश्याके भवनमें तथा चमारके घरमें जाकर वह मृत्युको प्राप्त होता है। हड्डी, चमड़े और नखोंसे भरी हुई पृथ्वीपर पहुँचकर दुष्टात्मा पुरुषकी मृत्यु होती है। अब मैं उसे ले जानेकी इच्छासे आये हुए यमदूतोंकी चेष्टाका वर्णन करती हूँ। वे अत्यन्त भयानक, घोर और दारुण रूप धारण किये आते हैं। उनके शरीर अत्यन्त काले, पेट लंबे-लंबे और आँखें कुछ-कुछ पीली होती हैं। कोई पीले, कोई नीले और कोई अत्यन्त सफेद होते हैं। पापी मनुष्य उन्हें देखकर काँप उठता है, उसके शरीरसे बारंबार पसीना छूटने लगता है।

अब मैं दुःखी जीवकी चेष्टा बताती हूँ। लोभ और स्वादसे मोहित होकर पापी पुरुष जो पराये धन और परायी स्त्रियोंका अपहरण किये रहते हैं, पहले दूसरेसे ऋण लेकर बादमें उसे चुका नहीं पाते तथा असत्प्रतिग्रह आदि जो अन्य बड़े-बड़े पाप किये रहते हैं—सारांश यह कि मृत्युसे पहले वे जितने भी पापोंका आचरण किये रहते हैं, वे सभी महापापीके कण्ठमें आकर उसके कफको रोक देते और दुःसह दुःख पहुँचाते हैं। असह्य पीड़ाओंसे उसका कण्ठ घरघराने लगता है। वह बारंबार रोता और माता, पिता, भाई, पत्नी तथा पुत्रोंका स्मरण करता है। फिर महापापसे मोहित होकर वह सबको भूल जाता है। अत्यन्त पीड़ासे व्याकुल होनेपर भी उसके प्राण शीघ्रतापूर्वक नहीं निकलते। वह काँपता, तलमलाता और रह-रहकर मूर्च्छित हो जाता है। इस प्रकार लोभ और मोहसे युक्त मनुष्य सदा मूर्च्छित होकर ही प्राण त्यागता है। तत्पश्चात् यमराजके दूत उसे यमलोकमें ले जाते हैं।

उस समय उसको जो दुःख भोगना पड़ता है, उसका वर्णन करती हूँ। जहाँ ढेर-के-ढेर अंगारे बिछे होते हैं, उस मार्गपर पापीको घसीटते हुए ले जाया जाता है। वहाँ वह दुष्टात्मा जीव बारंबार आगमें जलता और छटपटाया करता है। जहाँ बारह सूर्योंके तापसे युक्त अत्यन्त तीव्र धूप पड़ती है, उसी मार्गसे उसे पहुँचाया जाता है। वहाँ वह सूर्यकी प्रचण्ड किरणोंसे संतप्त और भूख-प्याससे पीड़ित होता रहता है। यमदूत उसे गदा, डंडे और फरसोंसे मारते, कोड़ोंसे पीटते तथा गालियाँ सुनाते हैं। तदनन्तर वे पापीको उस मार्गपर ले जाते हैं, जहाँ जाड़ा अधिक पड़ता है और ठंडी हवाका झोंका सहना पड़ता है। पापी पुरुष शीतसे पीड़ित होकर उस मार्गको तय करता है; यमदूत उसे घसीटते हुए नाना प्रकारके दुर्गम स्थानोंमें ले जाते हैं। इस प्रकार देवता और ब्राह्मणोंकी निन्दा करनेवाले, सम्पूर्ण पापोंसे युक्त दुष्टात्मा पापी पुरुषको यमराजके दूत यमलोकमें ले जाते हैं।

वहाँ पहुँचकर वह दुष्टात्मा यमराजको काले अंजनकी राशिके समान देखता है। वे उग्र, दारुण और भयंकर रूप धारण किये भैंसेपर सवार दिखायी देते हैं। अनेकों यमदूत उन्हें घेरे खड़े रहते हैं। उनके साथ सब प्रकारके रोग और चित्रगुप्त भी उपस्थित होते हैं। द्विजश्रेष्ठ! उस समय भगवान् धर्मराजका मुख विकराल दाढ़ोंके कारण अत्यन्त भयानक और कालके समान प्रतीत होता है। यमराज धर्ममें बाधा डालनेवाले उस महापापी दुष्टको देखते और अत्यन्त दुःखदायी, दुस्सह अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा पीड़ा पहुँचाते हुए उसे कठोर दण्ड देते हैं। वह पापी एक हजार युगोंतक नाना प्रकारकी यातनाओंमें पकाया जाता है। इस प्रकार दुष्ट बुद्धिवाला पापात्मा मनुष्य अपने पापका उपभोग करता है। तत्पश्चात् वह जिन-जिन योनियोंमें जन्म लेता है, उसका भी वर्णन करती हूँ। कुछ कालतक कुत्तेकी योनिमें रहकर वह दुष्टात्मा अपना पाप भोगता है। उसके बाद व्याघ्र और फिर गदहा होता है। तदनन्तर बिलाव, सूअर और साँपकी योनिमें जन्म लेता है। इस तरह अनेक भेदोंवाली सम्पूर्ण पापयोनियोंमें उसे बारंबार जन्म लेना पड़ता है। इस प्रकार मैंने आपसे पापियोंके जन्मका सारा वृत्तान्त भी बतला दिया।

वसिष्ठजीके द्वारा सोमशर्माके पूर्वजन्म-सम्बन्धी शुभाशुभ कर्मोंका वर्णन तथा उन्हें भगवान्‌के भजनका उपदेश

सोमशर्माने पूछा—कल्याणी! मैं किस प्रकार सर्वज्ञ और गुणवान् पुत्र प्राप्त कर सकूँगा?

सुमना बोली—स्वामिन्! आप महामुनि वसिष्ठजीके पास जाइये; वे धर्मके ज्ञाता हैं, उन्हींसे प्रार्थना कीजिये। उनसे आपको धर्मज्ञ एवं धर्मवत्सल पुत्रकी प्राप्ति होगी।

सूतजी कहते हैं—पत्नीके यों कहनेपर द्विजश्रेष्ठ सोमशर्मा सब बातोंके जाननेवाले, तेजस्वी और तपस्वी महात्मा वसिष्ठजीके पास गये। वे गंगाजीके तटपर स्थित अपने पवित्र आश्रममें विराजमान थे। सोमशर्माने बड़ी भक्तिके साथ बारंबार उन्हें दण्डवत्-प्रणाम किया। तब पापरहित महातेजस्वी ब्रह्मपुत्र वसिष्ठजी उनसे बोले—'महामते! इस पवित्र आसनपर सुखसे बैठो।' यह कहकर उन योगीश्वरने पूछा—'महाभाग! तुम्हारे पुण्यकर्म और अग्निहोत्र आदि कार्य कुशलसे हो रहे हैं न? शरीरसे तो नीरोग रहते हो न? धर्मका पालन तो सदा करते ही होगे। द्विजश्रेष्ठ! बताओ, मैं तुम्हारी कौन-सी प्रिय कामना पूर्ण करूँ?' इस प्रकार संभाषण करके वसिष्ठजी चुप हो गये। तब सोमशर्माने कहा—'तात! किस पापके कारण मुझे दरिद्रताका कष्ट भोगना पड़ता है? मुझे पुत्रका सुख क्यों नहीं मिलता, इस बातका मेरे मनमें बड़ा सन्देह है। किस पापसे ऐसा हो रहा है, यह बताइये। महामते! मैं महान् पापसे मोहित एवं विवेकशून्य हो गया था, अपनी प्यारी पत्नीके समझाने और भेजनेसे आज आपके पास आया हूँ।

वसिष्ठजीने कहा—द्विजश्रेष्ठ! मैं तुम्हारे सामने पुत्रके पवित्र लक्षणका वर्णन करता हूँ। जिसका मन पुण्यमें आसक्त हो, जो सदा सत्यधर्मके पालनमें तत्पर रहता हो और जो बुद्धिमान्, ज्ञानसम्पन्न, तपस्वी, वक्ताओंमें श्रेष्ठ, सब कर्मोंमें कुशल, धीर, वेदाध्ययन-परायण, सम्पूर्ण शास्त्रोंका वक्ता, देवता और ब्राह्मणोंका पुजारी, समस्त यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाला, ध्यानी, त्यागी, प्रिय वचन बोलनेवाला, भगवान् श्रीविष्णुके ध्यानमें तत्पर, नित्य शान्त, जितेन्द्रिय, सदा जप करनेवाला, पितृभक्तिपरायण, सदा समस्त स्वजनोंपर स्नेह रखनेवाला, कुलका उद्धारक, विद्वान् तथा कुलको सन्तुष्ट करनेवाला हो—ऐसे गुणोंसे युक्त उत्तम पुरुष ही सुख देनेवाला होता है। इसके सिवा दूसरे तरहके पुत्र सम्बन्ध जोड़कर केवल शोक और सन्ताप देते हैं। ऐसा पुत्र किस कामका। उसके होनेसे कोई लाभ नहीं है। महाप्राज्ञ! तुम पूर्वजन्ममें शूद्र थे। तुम्हें धर्माधर्मका ज्ञान नहीं था, तुम बड़े लोभी थे। तुम्हारे एक स्त्री और बहुत-से पुत्र थे। तुम दूसरोंके साथ सदा द्वेष रखते थे। तुमने सत्यका कभी श्रवण नहीं किया था। तीर्थोंकी यात्रा नहीं की थी। महामते! तुमने एक ही काम किया था—खेती करना। बार-बार तुम उसीमें लगे रहते थे। द्विजश्रेष्ठ! तुम पशुओंका पालन भी करते थे। पहले गाय पालते थे, फिर भैंस और घोड़ोंको भी पालने लगे। तुमने अन्नको बहुत महँगा कर रखा था। तुम इतने निर्दयी थे कि कभी किसीको किंचित् भी दान नहीं किया। देवताओंकी पूजा नहीं की। पर्व आनेपर ब्राह्मणोंको धन नहीं दिया तथा श्राद्धकाल उपस्थित होनेपर भी तुमने श्रद्धापूर्वक कुछ नहीं किया। तुम्हारी साध्वी स्त्री कहती थी—'आज श्राद्धका दिन है। यह श्वशुरके श्राद्धका समय है और यह सासके।' महामते! उसकी ये बातें सुनकर तुम घर छोड़ कहीं अन्यत्र भाग जाते थे। तुमने धर्मका मार्ग न कभी देखा था, न सुना ही था। लोभ ही तुम्हारी माता, लोभ ही पिता, लोभ ही भ्राता और लोभ ही स्वजन एवं बन्धु था। तुमने सदाके लिये धर्मको तिलांजलि देकर एकमात्र लोभका ही आश्रय लिया था; इसीलिये तुम दुःखी और गरीबीसे पीड़ित हुए हो।

तुम्हारे हृदयमें प्रतिदिन महातृष्णा बढ़ती जाती थी। रातमें सो जानेपर भी तुम सदा धनकी ही चिन्तामें लगे

रहते थे। इस प्रकार क्रमशः हजार, लाख, करोड़, अरब, खरब और दस खरब सोनेकी मुहरें तुम्हें प्राप्त हो गयीं; फिर भी तृष्णा तुम्हारा पिंड नहीं छोड़ती थी। वह सदा बढ़ती ही रहती थी। तुमने कभी दान, होम या धनका उपभोग भी नहीं किया। जितना कमाया, सब जमीनके अंदर गाड़ दिया। तुम्हारे पुत्रोंको भी उस गड़े हुए धनका पता न था। तुम्हारे हृदयमें तृष्णाकी आग प्रज्वलित होती रहती थी। उसीके दुःखसे तुम्हें कभी सुख नहीं मिलता था। तृष्णाकी आगसे संतप्त होकर तुम हाहाकार मचाते और अचेत रहते थे। विप्रवर! इस प्रकार मोहमें पड़े-पड़े ही तुम कालके अधीन हो गये। स्त्री और पुत्र पूछते ही रह गये; किन्तु तुमने उन्हें न तो उस धनका पता बताया और न उन्हें दिया ही। तुम प्राण त्यागकर यमलोकमें चले गये। इस प्रकार मैंने तुम्हारे पूर्वजन्मका सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

विप्रवर! उसी कर्मके कारण तुम निर्धन और दरिद्र हो। जिसके ऊपर भगवान् श्रीविष्णु प्रसन्न होते हैं, उसीके घरमें सदा सुशील, ज्ञानी और सत्यधर्मपरायण पुत्र होते हैं। संसारमें जिसको भक्तिमान् श्रेष्ठ पुत्रकी प्राप्ति हुई है, वह भगवान्का कृपापात्र है। भगवान् श्रीविष्णुकी कृपाके बिना कोई भी स्त्री, पुत्र, उत्तम जन्म तथा उत्तम कुलको और श्रीविष्णुके परम धामको नहीं पा सकता।

सोमशर्माने पूछा—ज्ञान-विज्ञानके पण्डित विप्रवर वसिष्ठजी! यदि ऐसी बात है तो मुझे ब्राह्मण-वंशमें जन्म कैसे मिला? इसका सारा कारण बतलाइये।

वसिष्ठजी बोले—ब्रह्मन्! पूर्वजन्ममें तुम्हारे द्वारा एक धर्मसम्बन्धी कार्य भी बन गया था, उसे बताता हूँ; उन दिनों एक निष्पाप, सदाचारी, अच्छे विद्वान्, विष्णुभक्त और धर्मात्मा ब्राह्मण थे, जो तीर्थ-यात्राके व्याजसे समूची पृथ्वीपर अकेले विचरण किया करते थे। एक दिन वे महामुनि घूमते-घामते तुम्हारे घरपर आये। द्विजश्रेष्ठ! उस समय उन्होंने अपने ठहरनेके लिये तुमसे कोई स्थान माँगा। तुम बड़ी प्रसन्नताके साथ बोले—'विद्वन्! अहा, आज मैं धन्य हो गया। आज मैंने पावन तीर्थकी यात्रा कर ली तथा इस समय मुझे आपके दर्शनसे तीर्थसेवनका फल प्राप्त हो गया।' यह कहकर तुमने उन्हें ठहरनेके लिये परम पवित्र गोशालाका स्थान दिखलाया और वहाँ ठहराकर उनके शरीरकी सेवा करके दोनों पैरोंको भी दबाया। फिर उनके चरणोंको जलसे धोकर चरणोदकसे अपने मस्तकका अभिषेक किया। तत्पश्चात् तुरंत ही दूध, दही, घी और मट्ठेके साथ उन ब्राह्मण-देवताको अन्न अर्पण किया।

महामते! इस प्रकार अपनी स्त्रीसहित सेवा करके तुमने ब्राह्मणको बहुत सन्तुष्ट कर लिया। दूसरे दिन प्रातःकाल अत्यन्त शुभकारक पुण्य दिवस आया। उस दिन शुद्ध आषाढ़मासकी शुक्ला द्वादशी थी, जो सब पापोंका नाश करनेवाली है; उसी तिथिको भगवान् श्रीविष्णु योगनिद्राका आश्रय लेते हैं। वह तिथि आनेपर बुद्धिमान् और विद्वान् पुरुष घरके सारे काम छोड़कर भगवान् श्रीविष्णुके ध्यानमें संलग्न हो गये। गीत और मंगलवाद्योंके द्वारा परम उत्सव मनाने लगे। समस्त ब्राह्मण वेदके सूक्तों और मंगलमय स्तोत्रोंद्वारा भगवान्की स्तुति करने लगे। ऐसे महोत्सवका अवसर पाकर वे श्रेष्ठ ब्राह्मण उस दिन वहीं ठहर गये। उन्होंने एकादशीका व्रत किया और उसका माहात्म्य भी पढ़कर सुनाया। तुमने अपनी स्त्री और पुत्रोंके साथ एकादशीसे होनेवाले उत्तम पुण्यका वर्णन सुना। उस महापुण्यमय प्रसंगको सुनकर स्त्री और पुत्रोंसे प्रेरित हो ब्राह्मणके संसर्गसे तुमने भी एकादशी-व्रतका आचरण किया। स्त्री और पुत्रोंके साथ जाकर प्रातःकाल स्नान किया और प्रसन्न मनसे गन्ध-पुष्प आदि पवित्र उपचारों तथा सब प्रकारके नैवेद्योंद्वारा भगवान् श्रीमधुसूदनकी पूजा की। फिर नृत्य और गीत आदिके द्वारा उत्सव मनाते हुए रात्रिमें जागरण किया। तत्पश्चात् भगवान्को स्नान कराकर भक्तिके साथ बारंबार उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया और महात्मा ब्राह्मणके दिये हुए भगवान्के चरणोदकका पान किया, जो परम शान्ति प्रदान करनेवाला है। इसके बाद ब्राह्मणको भक्तिपूर्वक प्रणाम करके तुमने उन्हें उत्तम दक्षिणा दी और पुत्र एवं पत्नी आदिके साथ व्रतका पारण किया। इस प्रकार भक्ति और सद्भावके द्वारा तुमने ब्राह्मणको

भलीभाँति प्रसन्न कर लिया। अतः ब्राह्मणके संग और भगवान् श्रीविष्णुके प्रसादसे सत्यधर्ममें स्थित होनेके कारण तुम्हें ब्राह्मणका शरीर प्राप्त हुआ है।

तुमने धनके लालचमें आकर पुत्रका स्नेह त्याग दिया। उसी पापका यह फल है कि तुम पुत्रहीन हो गये। विप्रवर! उत्तम पुत्र, उत्तम कुल, धन, धान्य, पृथ्वी, स्त्री, उत्तम जन्म, श्रेष्ठ मृत्यु, सुन्दर भोग, सुख, राज्य, स्वर्ग तथा मोक्ष आदि जो-जो दुर्लभ वस्तुएँ हैं, वे सभी परमात्मा भगवान् श्रीविष्णुकी कृपासे प्राप्त होती हैं। इसलिये अबसे भगवान् नारायणकी आराधना करके तुम उस उत्कृष्ट पदको प्राप्त कर सकोगे, जो श्रीविष्णुका परमपद कहलाता है। महाभाग! यह जानकर तुम श्रीनारायणके भजनमें लग जाओ।

सूतजी कहते हैं—वसिष्ठजीके द्वारा इस प्रकार समझाये जानेपर वे महानुभाव ब्राह्मण हर्षमें भर गये और भक्तिपूर्वक महर्षि वसिष्ठके चरणोंमें प्रणाम करके उनकी आज्ञा ले अपने घरको पधारे। वहाँ पहुँचकर अपनी स्त्री सुमनासे प्रसन्नतापूर्वक बोले—'प्रिये! तुम्हारी कृपासे ब्रह्मर्षि वसिष्ठजीके द्वारा ही मुझे अपने पूर्वजन्मकी सारी चेष्टाएँ ज्ञात हो गयीं।

सोमशर्माके द्वारा भगवान् श्रीविष्णुकी आराधना, भगवान्का उन्हें दर्शन देना तथा सोमशर्माका उनकी स्तुति करना

सूतजी कहते हैं—तदनन्तर सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ महाबुद्धिमान् सोमशर्मा अपनी स्त्री सुमनाके साथ नर्मदाके अत्यन्त पुण्यदायक तटपर गये और कपिला-संगम नामक पुण्यतीर्थमें नहाकर देवताओं तथा पितरोंका तर्पण करके शान्तचित्तसे भगवान् नारायणके मंगलमय नामका जप करते हुए तपस्या करने लगे। महामना सोमशर्मा द्वादशाक्षर मन्त्रका जप और भगवान्का ध्यान करते थे। वे सदा निश्चिन्त होकर बैठने, सोने, चलने और स्वप्नके समय भी केवल भगवान् श्रीविष्णुकी ओर ही दृष्टि रखते थे। उन्होंने काम-क्रोधका परित्याग कर दिया था। साथ ही पातिव्रत्य-धर्ममें तत्पर रहनेवाली परम सौभाग्यवती सती-साध्वी सुमना भी अपने तपस्वी पतिकी सेवामें लगी रहती थी। सोमशर्मा जब भगवान्का ध्यान करने लगे, उस समय अनेक प्रकारके विघ्नोंने सामने आकर उन्हें भय दिखाया। भयंकर विषवाले काले साँप उनके पास पहुँच जाते थे। सिंह, बाघ और हाथी उनकी दृष्टिमें आकर भय उत्पन्न करते थे। इस प्रकार बड़े-बड़े विघ्नोंसे घिरे रहनेपर भी वे महाबुद्धिमान् धर्मात्मा ब्राह्मण भगवान् श्रीविष्णुके ध्यानसे कभी विचलित नहीं होते थे।

एक दिनकी बात है, एक महाभयानक सिंह भयंकर गर्जना करता हुआ वहाँ आया; उसे देखकर

सोमशर्मा भयसे थर्रा उठे और भगवान् श्रीनरसिंह (विष्णु)-का ध्यान करने लगे। इन्द्रनीलमणिके समान श्याम विग्रहपर पीताम्बर शोभा पा रहा है। श्रीभगवान्का बल और तेज महान् है। वे अपने चारों हाथोंमें क्रमशः शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये

हुए हैं। मोतियोंका विशाल हार चन्द्रमाकी भाँति चमक रहा है। उसके साथ ही कौस्तुभमणि भी भगवान्‌के श्रीविग्रहको उद्भासित कर रही है। श्रीवत्सका चिह्न वक्ष:स्थलकी शोभा बढ़ा रहा है। श्रीभगवान् सब प्रकारके आभूषणोंकी शोभासे सम्पन्न हैं। कमलके समान खिले हुए नेत्र, मुखपर मुसकानकी मनोहर छटा, स्वाभाविक प्रसन्नता और रत्नमय हार उनकी शोभाको दुगुनी कर रहे हैं। इस प्रकार परम शोभायमान भगवान् श्रीविष्णुकी मनोहर झाँकीका सोमशर्माने ध्यान किया।

तत्पश्चात् वे उनकी स्तुति करने लगे—'शरणागत-वत्सल श्रीकृष्ण! आप ही मुझे शरण देनेवाले हैं। देवदेवेश्वर! आपको नमस्कार है। जिन परमात्माके उदरमें तीनों लोक और सात भुवन स्थित हैं, उन्हींकी शरणमें मैं आ पड़ा हूँ, भय मेरा क्या करेगा। कृत्या आदि प्रबल विघ्न भी जिनसे भय मानते हैं तथा जो सबको दण्ड देनेमें समर्थ हैं, उन भगवान्‌के मैं शरणागत हूँ। जो समस्त देवताओं, महाकाय दानवों तथा क्लेश उठानेवाले भक्तोंके भी आश्रय हैं, उन भगवान्‌की मैं शरणमें आया हूँ। जो भयका नाश करनेके लिये अभयरूप बने हुए हैं और पापोंके नाशके लिये ज्ञानवान् हैं तथा जो ब्रह्मरूपसे एक—अद्वितीय हैं, उन भगवान्‌की मैं शरणमें हूँ। जो रोगोंका नाश करनेके लिये औषधरूप हैं, जिनमें रोग-शोकका नाम भी नहीं है, जो लौकिक आनन्दसे भी शून्य हैं, उन भगवान्‌की मैं शरणमें हूँ। जो अविचल लोकोंको भी विचलित कर सकते हैं, उन भगवान्‌की मैं शरणमें आया हूँ; भय मेरा क्या करेगा। जो समस्त साधुओंका पालन करनेवाले हैं, जिनकी नाभिसे कमलकी उत्पत्ति हुई है तथा जो विश्वात्मा इस विश्वकी सदा ही रक्षा करते हैं, उन भगवान्‌की मैं शरणमें आया हूँ।

'जो सिंहके रूपमें मेरे सामने उपस्थित होकर भय दिखा रहे हैं, उन भक्तभयहारी भगवान् श्रीनृसिंहजीकी मैं शरणमें आया हूँ। ग्राहसे युद्ध करते समय आपत्तिमें पड़ा हुआ विशालकाय गजराज जिनकी शरणमें आया था और जो गजेन्द्रमोक्षकी लीलामें स्वयं उपस्थित हुए थे, उन शरणागतवत्सल प्रभुकी मैं शरणमें आया हूँ। हिरण्याक्षका वध करनेवाले भगवान् श्रीवराहकी मैं शरणमें हूँ। ये सब जीव मृत्युका रूप धारण करके मुझे भय दिखा रहे हैं, किन्तु मैं अमृतकी शरणमें पड़ा हूँ। श्रीहरि वेदोंका ज्ञान प्रदान करनेवाले, ब्राह्मण-भक्त, ब्रह्मा तथा ब्रह्मज्ञानस्वरूप हैं; मैं उनकी शरणमें पड़ा हूँ। जो निर्भय, संसारका भय दूर करनेवाले और भयदाता हैं, उन भयरूप भगवान्‌की मैं शरणमें हूँ; भय मेरा क्या करेगा। जो समस्त पुण्यात्माओंका उद्धार और सम्पूर्ण पापियोंका विनाश करनेवाले हैं, उन धर्मरूप भगवान् श्रीविष्णुकी मैं शरणमें पड़ा हूँ।

'यह परम प्रचण्ड आँधी मेरे शरीरको अत्यन्त पीड़ा दे रही है, मैं इसे भी भगवान्‌का ही स्वरूप मानकर इसकी शरणमें हूँ, अत: ये भगवान् वायु मुझे सदा ही आश्रय प्रदान करें। अत्यन्त शीत, अधिक वर्षा और दु:सह ताप देनेवाली धूप—इन सबके रूपमें जिन भगवान्‌का साक्षात्कार हो रहा है, मैं उन्हींकी शरणमें आया हूँ। ये जो कालरूपधारी जीव यहाँ आकर मुझे भय देते हुए विचलित कर रहे हैं, सब-के-सब भगवान् श्रीविष्णुके स्वरूप हैं; मैं सर्वदा इनकी शरणमें हूँ। जिन्हें सर्वदेवस्वरूप, परमेश्वर, केवल, ज्ञानमय और प्रधानरूप बतलाते हैं, उन सिद्धोंके स्वामी आदिसिद्ध भगवान् श्रीनारायणकी मैं शरणमें हूँ।'

इस प्रकार प्रतिदिन भगवान् श्रीकेशवका ध्यान और स्तवन करते हुए सोमशर्माने अपनी भक्तिके बलसे भगवान्‌को हृदयमें बिठा लिया। उनका उद्यम और पुरुषार्थ देखकर भगवान् श्रीहृषीकेश प्रकट हो गये और उन्हें हर्ष प्रदान करते हुए बोले—'महाप्राज्ञ सोमशर्मन्! अपनी पत्नीके साथ मेरी बात सुनो; विप्रवर! मैं वासुदेव हूँ, सुव्रत! तुम मुझसे कोई उत्तम वर माँगो।' श्रीभगवान्‌का यह कथन सुनकर द्विजश्रेष्ठ सोमशर्माने अपने नेत्र खोले; देखा तो विश्वके स्वामी श्रीभगवान् दिव्यरूप धारण किये सामने खड़े हैं। उनके शरीरकी कान्ति मेघके समान श्याम है, वे महान् अभ्युदयशाली और सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित हैं। सम्पूर्ण

आयुध उनकी शोभा बढ़ा रहे हैं। उनका श्रीविग्रह दिव्य लक्षणोंसे सम्पन्न है। नेत्र खिले हुए कमलके समान हैं। पीतवस्त्र श्रीअंगोंकी शोभा बढ़ा रहा है। देवेश्वर भगवान् श्रीविष्णु शंख, चक्र और गदा धारण किये गरुड़पर विराजमान हैं। वे इस जगत् तथा ब्रह्मा आदिके भी भलीभाँति भरण-पोषण करनेवाले हैं। यह विश्व उन्हींका स्वरूप है। वे सनातन रूप धारण करनेवाले हैं। वे विश्वसे अतीत, निराकार परमात्मा हैं।

भगवान् श्रीजनार्दनको इस रूपमें उपस्थित देख विप्रवर सोमशर्मा महान् हर्षमें भर गये और करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी एवं लक्ष्मीसहित शोभा पानेवाले श्रीभगवान्को साष्टांग प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़े अपनी स्त्री सुमनाके साथ उनकी स्तुति करने लगे—'देव! जगन्नाथ! आपकी जय हो, सबको सम्मान देनेवाले लक्ष्मीपते! आपकी जय हो। योगियोंके स्वामिन्! योगीन्द्र! आपकी जय हो। यज्ञके स्वामी हरे! आपकी जय हो। विष्णुरूपसे यज्ञेश्वर! और शिवरूपसे यज्ञविध्वंसक! सनातन और सर्वव्यापक परमेश्वर! आपकी जय हो, जय हो। सर्वेश्वर! अनन्त! आपकी जय हो। जयस्वरूप प्रभो! आपको मेरा प्रणाम है। ज्ञानवानोंमें श्रेष्ठ! आपकी जय हो। ज्ञाननायक! आपकी जय हो। सब कुछ देनेवाले सर्वज्ञ परमेश्वर! आपकी जय हो। सत्त्वगुणको उत्पन्न करनेवाले प्रभो! आपकी जय हो।

'यज्ञव्यापी परमेश्वर! आप प्रज्ञास्वरूप हैं, आपकी जय हो। प्राण प्रदान करनेवाले प्रभो! आपकी जय हो। पापनाशक! पुण्येश्वर! आपकी जय हो। पुण्यपालक हरे! आपकी जय हो। ज्ञानस्वरूप ईश्वर! आपकी जय हो। आप ज्ञानगम्य हैं, आपको नमस्कार है। कमललोचन! आपकी जय हो। आपकी नाभिसे कमलका प्रादुर्भाव हुआ था; अत: पद्मनाभ नामसे प्रसिद्ध आपको प्रणाम है। गोविन्द! आपकी जय हो। गोपाल! आपकी जय हो। शंख धारण करनेवाले निर्मलस्वरूप परमात्मन्! आपकी जय हो। चक्र धारण करनेवाले अव्यक्तरूप परमेश्वर! व्यक्तरूपधारी आपको नमस्कार है। प्रभो! आपके अंग पराक्रमसे शोभा पा रहे हैं, आपकी जय हो। विक्रम-नायक! आपकी जय हो। विद्यासे विलसित रूपवाले देवेश्वर! आपकी जय हो। वेदमय परमेश्वर! आपको नमस्कार है। पराक्रमसे सुशोभित अंगोंवाले प्रभो! आपकी जय हो। उद्यम प्रदान करनेवाले देव! आपकी जय हो। आप ही उद्यमके योग्य समय और उद्यमरूप हैं; आपको बारंबार नमस्कार है। भगवन्! आप उद्यममें समर्थ हैं, आपकी जय हो। उद्यम करानेवाले भी आप ही हैं, आपकी जय हो। युद्धोद्योगमें प्रवृत्त होनेवाले आप सर्वात्माको नमस्कार है।

'सुवर्ण आपका तेज है, आपको नमस्कार है। आप विजयी वीर हैं, आपको नमस्कार है। आप अत्यन्त तेज:स्वरूप और सर्वतेजोमय हैं, आपको प्रणाम है। आप दैत्य-तेजके विनाशक और पापमय तेजका अपहरण करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। गौओं और ब्राह्मणोंका हित-साधन करनेवाले आप परमात्माको प्रणाम है। आप हविष्य-भोजी तथा हव्य और कव्यका वहन करनेवाले अग्नि हैं, आप ही स्वधारूप हैं; आपको नमस्कार है। आप स्वाहारूप, यज्ञस्वरूप और योगके बीज हैं; आपको नमस्कार है। हाथमें शार्ङ्ग नामक धनुष धारण करनेवाले, आप पापहारी हरिको प्रणाम है।

'कार्य-कारणरूप जगत्को प्रेरित करनेवाले विज्ञानशाली परमेश्वरको नमस्कार है। वेदस्वरूप भगवान्को प्रणाम है। सबको पवित्र करनेवाले प्रभुको नमस्कार है। सबके क्लेशोंका अपहरण करनेवाले, हरित केशोंसे युक्त श्रीभगवान्को प्रणाम है। विश्वके आधारभूत परमात्मा केशवको नमस्कार है। कृपामय और आनन्दमय ईश्वरको नमस्कार है। क्लेशोंका नाश करनेवाले नित्यशुद्ध भगवान् श्रीअनन्तको नमस्कार है। जिनका स्वरूप नित्य आनन्दमय है, जो दिव्य होनेके साथ ही दिव्यरूप धारण करते हैं, ग्यारह रुद्र जिनके चरणोंकी वन्दना करते हैं तथा ब्रह्माजी भी जिनके सामने मस्तक झुकाते हैं, उन भगवान्को प्रणाम है। प्रभो! देवता और असुरोंके स्वामी भी आपके चरणकमलोंमें

माथा टेकते हैं। आप देवेश, अमृत और अमृतात्मा हैं; आपको बारंबार नमस्कार है। आप क्षीरसागरमें निवास करनेवाले और लक्ष्मीके प्रियतम हैं, आपको नमस्कार है। आप ओंकार, विशुद्ध तथा अविचलरूप हैं; आपको बारंबार प्रणाम है। आप व्यापी, व्यापक और सब प्रकारके दु:खोंको दूर करनेवाले हैं; आपको नमस्कार है।

'वराहरूपधारी आपको प्रणाम है। महाकच्छपके रूपमें आपको नमस्कार है। वामन और नृसिंहका रूप धारण करनेवाले आप परमात्माको प्रणाम है। सर्वज्ञ मत्स्यभगवान्‌को प्रणाम है। श्रीराम, कृष्ण, ब्राह्मणश्रेष्ठ कपिल और हयग्रीवके रूपमें अवतीर्ण हुए आप भगवान्‌को प्रणाम है।'

इस प्रकार इन्द्रियोंके स्वामी भगवान् श्रीजनार्दनका स्तवन करके सोमशर्माने फिर कहा—'प्रभो! ब्रह्माजी भी आपके पावन गुणोंकी सीमाको नहीं जानते तथा सर्वेश्वर! रुद्र और इन्द्र भी आपकी स्तुति करनेमें असमर्थ हैं; फिर दूसरा कौन आपके गुणोंका वर्णन कर सकता है। मुझमें बुद्धि ही कौन-सी है, जो मैं आपकी स्तुति कर सकूँ। केशव! मैंने अपनी छोटी बुद्धिके अनुसार आपके निर्गुण और सगुण रूपोंका स्तवन किया है। सर्वेश! मैं जन्म-जन्मसे आपका ही दास हूँ। लोकेश! मुझपर दया कीजिये।'

श्रीभगवान्‌के वरदानसे सोमशर्माको सुव्रत नामक पुत्रकी प्राप्ति तथा सुव्रतका तपस्यासे माता-पितासहित वैकुण्ठलोकमें जाना

श्रीहरि बोले—ब्रह्मन्! मैं तुम्हारी इस तपस्या, पुण्य, सत्य तथा पावन स्तोत्रसे बहुत सन्तुष्ट हूँ। मुझसे कोई वर माँगो।

सोमशर्माने कहा—प्रभो! पहले तो आप मुझे भलीभाँति निश्चित किया हुआ एक वर यह दीजिये कि मैं प्रत्येक जन्ममें आपकी भक्ति करता रहूँ। दूसरा यह कि मुझे मोक्ष प्रदान करनेवाले अपने अविचल परमधामका दर्शन कराइये। तीसरे वरके रूपमें मुझे एक ऐसा पुत्र दीजिये, जो अपने वंशका उद्धारक, दिव्य लक्षणोंसे सम्पन्न, विष्णुभक्तिपरायण, मेरे कुलको धारण करनेवाला, सर्वज्ञ, सर्वस्व—दान करनेवाला, जितेन्द्रिय, तप और तेजसे युक्त, देवता, ब्राह्मण तथा इस जगत्‌का पालन करनेवाला, श्रीभगवान् (आप)-का पुजारी और शुभ संकल्पवाला हो। इसके सिवा, श्रीकेशव! आप मेरी दरिद्रता हर लीजिये।

श्रीहरि बोले—द्विजश्रेष्ठ! ऐसा ही होगा, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। मेरे प्रसादसे तुमको सुयोग्य पुत्रकी प्राप्ति होगी, जो तुम्हारे वंशका उद्धार करनेवाला होगा। तुम इस मनुष्यलोकमें भी परम उत्तम दिव्य एवं मनुष्योचित भोगोंका उपभोग करोगे। तदनन्तर तुम परमगतिको प्राप्त होगे।

इस प्रकार भगवान् श्रीहरि स्त्रीसहित ब्राह्मणको वरदान देकर अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर द्विजश्रेष्ठ सोमशर्मा अपनी पत्नी सुमनाके साथ नर्मदाके पुण्यदायक तटपर उस परमपावन उत्तम तीर्थ अमरकण्टकमें रहकर दान-पुण्य करने लगे। इस प्रकार बहुत समय व्यतीत हो जानेपर एक दिन सोमशर्मा कपिला और नर्मदाके संगममें स्नान करके निकले और घर आकर ब्राह्मणोचित कर्ममें लग गये। उस दिन व्रतसे शोभा पानेवाली परम सौभाग्यवती सुमनाने पतिके सहवाससे गर्भ धारण किया। समय आनेपर उस बड़भागिनीने देवताओंके समान कान्तिमान् उत्तम पुत्रको जन्म दिया, जिसके शरीरसे तेजोमयी किरणें छिटक रही थीं। उसके जन्मके समय आकाशमें बारंबार देवताओंके नगारे बजने लगे। तत्पश्चात् ब्रह्माजी देवताओंको साथ लेकर वहाँ आये और स्वस्थ चित्तसे उस बालकका नाम उन्होंने 'सुव्रत' रखा। नामकरण करके महाबली देवता स्वर्गको चले गये।

उनके जानेके पश्चात् द्विजश्रेष्ठ सोमशर्माने बालकके जातकर्म आदि संस्कार किये। उस बड़भागी पुत्र सुव्रतके, जो भगवान्‌की कृपासे प्राप्त हुआ था, जन्म लेनेपर ब्राह्मणके घरमें धन-धान्यसे परिपूर्ण महालक्ष्मी निवास करने लगी। हाथी, घोड़े, भैंसें, गौएँ, सोने और रत्न आदि किसी भी वस्तुकी कमी न रही। सोमशर्माका घर रत्नराशिसे कुबेर-भवनकी भाँति शोभा पाने लगा। ब्राह्मणने दान-पुण्य आदि धर्मोंका अनुष्ठान किया। तीर्थोंमें जाकर वे नाना प्रकारके पुण्योंमें लगे रहे और भी जो-जो दान-पुण्य हो सकते हैं, उन सबका उन्होंने अनुष्ठान किया। मेधावी सोमशर्माका सारा जीवन ही ज्ञान और पुण्यके उपार्जनमें लगा रहा। उन्होंने बड़े हर्षके साथ पुत्रका विवाह किया। फिर पुत्रके भी पुत्र उत्पन्न हुए, जो बड़े ही पुण्यात्मा और उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न थे। वे भी सदा सत्यवादी, धर्मात्मा, तपस्वी तथा दान-धर्ममें संलग्न थे। उन पौत्रोंके भी पुण्यसंस्कार सोमशर्माने ही सम्पन्न किये। सुमना और सोमशर्मा दोनों ही सौभाग्यशाली थे। वे महान् अभ्युदयसे युक्त होकर सदा हर्षमें भरे रहते थे।
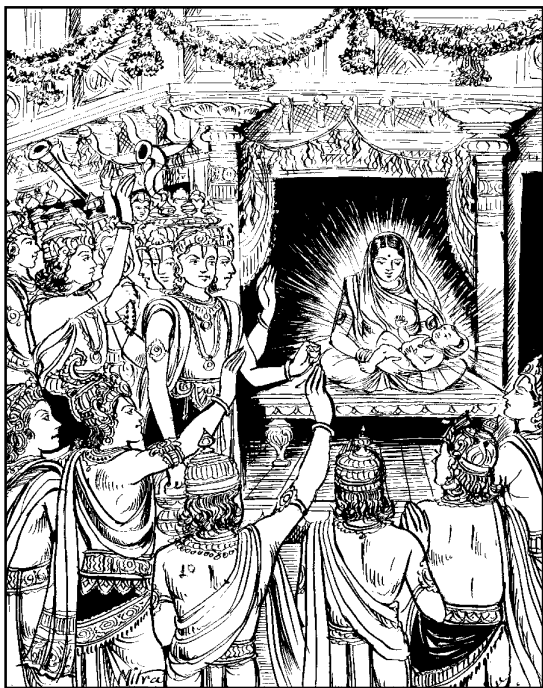
सूतजी कहते हैं—एक समय महर्षि व्यासने अत्यन्त विस्मित होकर लोकनाथ ब्रह्माजीसे सुव्रतका सारा उपाख्यान पूछा।

ब्रह्माजीने कहा—सुव्रत बड़ा मेधावी बालक था। वह बाल्यकालसे ही भगवान् श्रीविष्णुका चिन्तन करने लगा। उसने गर्भमें ही पुरुषोत्तम भगवान् श्रीनारायणका दर्शन किया था। पूर्वकर्मोंके प्रभावसे वह सदा भगवान्‌के ध्यानमें लगा रहता था। वह गान, विद्याभ्यास और अध्यापन करते समय भी शंख-चक्रधारी, उत्तम पुण्यदायी भगवान् श्रीपद्मनाभका ध्यान और चिन्तन किया करता था। इस प्रकार वह द्विजश्रेष्ठ सदा श्रीभगवान्‌का ध्यान करते हुए ही बच्चोंके साथ खेला करता था। वह मेधावी, पुण्यात्मा और पुण्यमें प्रेम रखनेवाला था। उसने अपने साथी बालकोंका नाम अपनी ओरसे परमात्मा श्रीहरिके नामपर ही रख दिया था। वह महामुनि था और भगवान्‌के ही नामसे अपने मित्रोंको भी पुकारा करता था। 'ओ केशव! यहाँ आओ, चक्रधारी माधव! बचाओ, पुरुषोत्तम! तुम्हीं मेरे साथ खेलो, मधुसूदन! हम दोनोंको वनमें ही चलना चाहिये।' इस प्रकार श्रीहरिके नाम ले-लेकर वह ब्राह्मणबालक मित्रोंको बुलाया करता था। खेलने, पढ़ने, हँसने, सोने, गीत गाने, देखने, चलने, बैठने, ध्यान करने, सलाह करने, ज्ञान अर्जन करने तथा शुभ कर्मोंका अनुष्ठान करनेके समय भी वह श्रीभगवान्‌को ही देखता और जगन्नाथ, जनार्दन आदि नामोंका उच्चारण किया करता था। विश्वके एकमात्र स्वामी श्रीपरमेश्वरका ध्यान करता रहता था। तृण, काष्ठ, पत्थर तथा सूखे और गीले सभी पदार्थोंमें वह धर्मात्मा बालक श्रीकेशवको ही देखता, कमललोचन श्रीगोविन्दका ही साक्षात्कार किया करता था। सुमनाका पुत्र ब्राह्मण सुव्रत बड़ा बुद्धिमान् था; वह आकाशमें, पृथ्वीपर, पर्वतोंमें, वनोंमें, जल, थल और पाषाणमें तथा सम्पूर्ण जीवोंके भीतर भी भगवान् श्रीनृसिंहका ही दर्शन करता था।*

* क्रीडने पठने हास्ये शयने गीतप्रेक्षणे। याने च ह्यासने ध्याने मन्त्रे ज्ञाने सुकर्मसु॥

इस प्रकार बालकोंके साथ खेलमें सम्मिलित होकर वह प्रतिदिन खेलता तथा मधुर अक्षर और उत्तम रागसे युक्त गीतोंद्वारा श्रीकृष्णका गुणगान किया करता था। उसके गीत-ताल, लय, उत्तम स्वर और मूर्च्छनासे युक्त होते थे। सुव्रत कहता—'सम्पूर्ण देवता सदा भगवान् श्रीमुरारिका ध्यान करते हैं। जिनके श्रीअंगोंके भीतर सम्पूर्ण जगत् स्थित है, जो योगके स्वामी, पापोंका नाश करनेवाले और शरणागतोंके रक्षक हैं, उन भगवान् श्रीमधुसूदनका मैं भजन करता हूँ।[१] जो सम्पूर्ण जगत्के भीतर सदा जागते और व्याप्त रहते हैं, जिनमें समस्त गुणवानोंका निवास है तथा जो सब दोषोंसे रहित हैं, उन परमेश्वरका चिन्तन करके मैं सदा उनके युगल चरणोंमें मस्तक झुकाता हूँ। जो गुणोंके अधिष्ठान हैं, जिनके पराक्रमका अन्त नहीं है, वेदान्तज्ञानसे विशुद्ध बुद्धिवाले पुरुष जिनका सदा स्तवन किया करते हैं, इस अपार, अनन्त और दुर्गम संसारसागरसे पार होनेके लिये जो नौकाके समान हैं, उन सर्वस्वरूप भगवान् श्रीनारायणकी मैं शरण लेता हूँ। मैं श्रीभगवान्के उन निर्मल युगल चरणोंको प्रणाम करता हूँ, जो योगीश्वरोंके हृदयमें निवास करते हैं, जिनका शुद्ध एवं पूर्ण प्रभाव सदा और सर्वत्र विख्यात है। देव! मैं दीन हूँ, आप अशुभके भयसे मेरी रक्षा कीजिये।[२] संसारका पालन करनेके लिये जिन्होंने धर्मको अंगीकार किया है, जो सत्यसे युक्त, सम्पूर्ण लोकोंके गुरु, देवताओंके स्वामी, लक्ष्मीजीके एकमात्र निवासस्थान, सर्वस्वरूप और सम्पूर्ण विश्वके आराध्य हैं; उन भगवान्के सुयशका मैं सुमधुर रससे युक्त संगीत एवं ताल-लयके साथ गान करता हूँ। मैं अखिल भुवनके स्वामी भगवान् श्रीविष्णुका ध्यान करता हूँ, जो इस लोकमें दुःखरूपी अन्धकारका नाश करनेके लिये चन्द्रमाके समान हैं। जो अज्ञानमय तिमिरका ध्वंस करनेके लिये साक्षात् सूर्यके तुल्य हैं तथा आनन्दके अखण्ड मूल और महिमासे सुशोभित हैं, जो अमृतमय आनन्दसे परिपूर्ण, समस्त कलाओंके आधार तथा गीतके कौशल हैं, उन श्रीभगवान्का मैं अनन्य अनुरागसे गान करता हूँ। जो उत्तम योगके साधनोंसे युक्त हैं, जिनकी दृष्टि परमार्थकी ओर लगी रहती है, जो सम्पूर्ण चराचर जगत्को एक साथ देखते रहते हैं तथा पापी लोगोंको जिनके स्वरूपका दर्शन नहीं होता, उन एकमात्र भगवान् श्रीकेशवकी मैं सदाके लिये शरण लेता हूँ।'

इस प्रकार सुमनाका पुत्र सुव्रत दोनों हाथोंसे ताली बजाकर ताल देते हुए श्रीकृष्णके सुयशका गान करता और बालकोंके साथ सदा प्रसन्न रहता था। प्रतिदिन बालस्वभावके अनुसार खेलता और भगवान् श्रीविष्णुके ध्यानमें लगा रहता था। अपने सुलक्षण पुत्र सुव्रतको खेलते देख माता सुमना कहती—'बेटा! आ, कुछ भोजन कर ले; तुझे भूख सता रही होगी।' यह सुनकर वह बुद्धिमान् बालक सुमनाको उत्तर देता—'माँ! भगवान्का ध्यान महान् अमृतके तुल्य है, मैं उसीसे तृप्त रहता हूँ—मुझे भूख नहीं सताती।' भोजनके आसनपर बैठकर जब वह अपने सामने मिष्टान्न परोसा हुआ

पश्यत्येवं वदत्येवं जगन्नाथं जनार्दनम्। स ध्यायते तमेकं हि विश्वनाथं महेश्वरम्॥
तृणे काष्ठे च पाषाणे शुष्के सार्द्रे ही केशवम्। पश्यत्येवं स धर्मात्मा गोविन्दं कमलेक्षणम्॥
आकाशे भूमिमध्ये तु पर्वतेषु वनेषु च। जले स्थले च पाषाणे जीवेषु च महामतिः॥
नृसिंहं पश्यते विप्रः सुव्रतः सुमनासुतः।

(२०। ११—१५)

१-ध्यायन्ति देवाः सततं मुरारिं यस्याङ्गमध्ये सकलं निविष्टम्। योगेश्वरं पापविनाशनं च भजे शरण्यं मधुसूदनाख्यम्॥ (२०। १७)

२-नारायणं गुणनिधानमनन्तवीर्यं वेदान्तशुद्धमतयः प्रपठन्ति नित्यम्। संसारसागरमपारमनन्तदुर्गमुत्तारणार्थमखिलं शरणं प्रपद्ये॥
योगीन्द्रमानससरोवरराजहंसं शुद्धं प्रभावमखिलं सततं हि यस्य। तस्यैव पादयुगलं ह्यमलं नमामि दीनस्य मेऽशुभभयात् कुरु देव रक्षाम्॥

(२०। १९-२०)

देखता, तब कहता—'इस अन्नसे भगवान् श्रीविष्णु तृप्त हों।' वह धर्मात्मा बालक जब सोनेके लिये जाता, तब वहाँ भी श्रीकृष्णका चिन्तन करते हुए कहता—'मैं योगनिद्रापरायण भगवान् श्रीकृष्णकी शरणमें आया हूँ।' इस प्रकार भोजन करते, वस्त्र पहनते, बैठते और सोते समय भी वह श्रीवासुदेवका चिन्तन करता और उन्हींको सब वस्तुएँ समर्पित कर देता था। धर्मात्मा सुव्रत युवावस्था आनेपर काम-भोगका परित्याग करके वैडूर्य पर्वतपर जा भगवान् श्रीविष्णुके ध्यानमें लग गया। वहीं उस मेधावीने श्रीविष्णुका चिन्तन करते हुए तपस्या आरम्भ कर दी। उस श्रेष्ठ पर्वतपर सिद्धेश्वर नामक स्थानके पास वह निर्जन वनमें रहता और काम-क्रोध आदि सम्पूर्ण दोषोंका परित्याग करके इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए तपस्या करता था। उसने अपने मनको एकाग्र करके भगवान् श्रीविष्णुके साथ जोड़ दिया। इस प्रकार परमात्माके ध्यानमें सौ वर्षोंतक लगे रहनेपर उसके ऊपर शंख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् श्रीजगन्नाथ बहुत प्रसन्न हुए तथा लक्ष्मीजीके साथ उसके सामने प्रकट होकर बोले—'धर्मात्मा सुव्रत! अब ध्यानसे उठो, तुम्हारा कल्याण हो; मैं विष्णु तुम्हारे पास आया हूँ, मुझसे वर माँगो।' मेधावी सुव्रत भगवान् श्रीविष्णुके ये उत्तम वचन सुनकर अत्यन्त हर्षमें भर गये। उन्होंने आँख खोलकर देखा, जनार्दन सामने खड़े हैं; फिर तो दोनों हाथ जोड़कर उन्होंने श्रीभगवान्‌को प्रणाम किया और उनकी स्तुति करने लगे।

सुव्रत बोले—

संसारसागरमतीव गभीरपारं
दुःखोर्मिभिर्विविधमोहमयैस्तरङ्गैः ।
सम्पूर्णमस्ति निजदोषगुणैस्तु प्राप्तं
तस्मात् समुद्धर जनार्दन मां सुदीनम्॥

जनार्दन! यह संसार-समुद्र अत्यन्त गहरा है, इसका पार पाना कठिन है। यह दुःखमयी लहरों और मोहमयी भाँति-भाँतिकी तरंगोंसे भरा है। मैं अत्यन्त दीन हूँ और अपने ही दोषों तथा गुणोंसे—पाप-पुण्योंसे प्रेरित होकर इसमें आ फँसा हूँ; अतः आप मेरा इससे उद्धार कीजिये।

कर्माम्बुदे महति गर्जति वर्षतीव
विद्युल्लतोल्लसति पातकसञ्चयैर्मे।
मोहान्धकारपटलैर्मम नष्टदृष्टे-
र्दीनस्य तस्य मधुसूदन देहि हस्तम्॥

कर्मरूपी बादलोंकी भारी घटा घिरी हुई है, जो गरजती और बरसती भी है। मेरे पातकोंकी राशि विद्युल्लताकी भाँति उसमें थिरक रही है। मोहरूपी अन्धकार-समूहसे मेरी दृष्टि—विवेकशक्ति नष्ट हो गयी है, मैं अत्यन्त दीन हो रहा हूँ; मधुसूदन! मुझे अपने हाथका सहारा दीजिये।

संसारकाननवरं बहुदुःखवृक्षैः
संसेव्यमानमपि मोहमयैश्च सिंहैः।
संदीप्तमस्ति करुणाबहुवह्नितेजः
संतप्यमानमनसं परिपाहि कृष्ण॥

यह संसार एक महान् वन है, इसमें बहुत-से दुःख ही वृक्षरूपमें स्थित हैं। मोहरूपी सिंह इसमें निर्भय होकर निवास करते हैं; इसके भीतर शोकरूपी प्रचण्ड दावानल प्रज्वलित हो रहा है, जिसकी आँचसे मेरा चित्त सन्तप्त हो उठा है। कृष्ण! इससे मुझे बचाइये।

संसारवृक्षमतिजीर्णमपीह उच्चं
मायासुकन्दकरुणाबहुदुःखशाखम् ।
जायादिसङ्घच्छदनं फलितं मुरारे
तं चाधिरूढपतितं भगवन् हि रक्ष॥

संसार एक वृक्षके समान है, यह अत्यन्त पुराना होनेके साथ बहुत ऊँचा भी है; माया इसकी जड़ है, शोक तथा नाना प्रकारके दुःख इसकी शाखाएँ हैं, पत्नी आदि परिवारके लोग पत्ते हैं और इसमें अनेक प्रकारके फल लगे हैं। मुरारे! मैं इस संसार-वृक्षपर चढ़कर गिर रहा हूँ; भगवन्! इस समय मेरी रक्षा कीजिये—मुझे बचाइये।

दुःखानलैर्विविधमोहमयैः सुधूमैः
शोकैर्वियोगमरणान्तकसंनिभैश्च ।
दग्धोऽस्मि कृष्ण सततं मम देहि मोक्षं
ज्ञानाम्बुनाथ परिषिच्य सदैव मां त्वम्॥

कृष्ण! मैं दुःखरूपी अग्नि, विविध प्रकारके मोहरूपी धुएँ तथा वियोग, मृत्यु और कालके समान

शोकोंसे जल रहा हूँ; आप सर्वदा ज्ञानरूपी जलसे सींचकर मुझे सदाके लिये संसार-बन्धनसे छुड़ा दीजिये।

मोहान्धकारपटले महतीव गर्ते
संसारनाम्नि सततं पतितं हि कृष्ण।
कृत्वा तरीं मम हि दीनभयातुरस्य
तस्माद् विकृष्य शरणं नय मामितस्त्वम्॥

कृष्ण! मैं मोहरूपी अन्धकार-राशिसे भरे हुए संसार नामक महान् गड्ढेमें सदासे गिरा हुआ हूँ, दीन हूँ और भयसे अत्यन्त व्याकुल हूँ; आप मेरे लिये नौका बनाकर मुझे उस गड्ढेसे निकालिये, वहाँसे खींचकर अपनी शरणमें ले लीजिये।

त्वामेव ये नियतमानसभावयुक्ता
ध्यायन्त्यनन्यमनसा पदवीं लभन्ते।
नत्वैव पादयुगलं च महत्सुपुण्यं
ये देवकिन्नरगणाः परिचिन्तयन्ति॥

जो संयमशील हृदयके भावसे युक्त होकर अनन्य चित्तसे आपका ध्यान करते हैं। वे आपकी पदवीको प्राप्त हो जाते हैं तथा जो देवता और किन्नरगण आपके दोनों परम पवित्र चरणोंको प्रणाम करके उनका चिन्तन करते हैं, वे भी आपकी पदवीको प्राप्त होते हैं।

नान्यं वदामि न भजामि न चिन्तयामि
त्वत्पादपद्मयुगलं सततं नमामि।
एवं हि मामुपगतं शरणं च रक्ष
दूरेण यान्तु मम पातकसञ्चयास्ते।
दासोऽस्मि भृत्यवदहं तव जन्म जन्म
त्वत्पादपद्मयुगलं सततं नमामि॥

(२१। २०—२७)

मैं न तो दूसरेका नाम लेता हूँ न दूसरेको भजता हूँ और न दूसरेका चिन्तन ही करता हूँ; नित्य-निरन्तर आपके युगल चरणोंको प्रणाम करता रहता हूँ। इस प्रकार मैं आपकी शरणमें आया हूँ। आप मेरी रक्षा करें, मेरे पातकसमूह शीघ्र दूर हो जायँ। मैं नौकरकी भाँति जन्म-जन्म आपका दास बना रहूँ। भगवन्! आपके युगल चरण-कमलोंको सदा प्रणाम करता हूँ।

श्रीकृष्ण! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं, तो मुझे यह उत्तम वरदान दीजिये—मेरे माता-पिताको सशरीर अपने परमधाममें पहुँचाइये। मेरे ही साथ मेरी पत्नीको भी अपने लोकमें ले चलिये।

श्रीहरि बोले—ब्रह्मन्! तुम्हारी यह उत्तम कामना अवश्य पूर्ण होगी।

इस प्रकार सुव्रतकी भक्तिसे सन्तुष्ट होकर भगवान् श्रीविष्णु उन्हें उत्तम वरदान दे दाह और प्रलयसे रहित वैष्णवधामको चले गये। सुव्रतके साथ ही सुमना और सोमशर्मा भी वैकुण्ठधामको प्राप्त हुए।

राजा पृथुके जन्म और चरित्रका वर्णन

ऋषियोंने कहा—महाभाग सूतजी! आप महात्मा राजा पृथुके जन्मका विस्तारके साथ वर्णन कीजिये। हम उनकी कथा सुननेके लिये उत्सुक हैं। महाराज पृथुने जिस प्रकार इस पृथ्वीका दोहन किया तथा देवताओं, पितरों और तत्त्ववेत्ता मुनियोंने भी जिस प्रकार उसको दुहा था, वह सब प्रसंग मुझे सुनाइये।

सूतजी बोले—द्विजवरो! मैं वेनकुमार पृथुके जन्म, पराक्रम और क्षत्रियोचित पुरुषार्थका विस्तारके साथ वर्णन करूँगा। ऋषियोंने जो रहस्यकी बातें कही हैं, उन्हें भी बताऊँगा। जो प्रतिदिन वेननन्दन पृथुकी कथाको विस्तारपूर्वक कहेगा, उसके सात जन्मके पाप नष्ट हो जायँगे। पृथुका जन्म-वृत्तान्त तथा सम्पूर्ण चरित्र ही पापोंका नाश करनेवाला और पवित्र है।

पूर्वकालमें अंग नामके प्रजापति थे, जिनका जन्म अत्रिवंशमें हुआ था। वे अत्रिके समान ही प्रभावशाली, धर्मके रक्षक, परम बुद्धिमान् तथा वेद और शास्त्रोंके तत्त्वज्ञ थे। उन्होंने ही सम्पूर्ण धर्मोंकी सृष्टि की थी। मृत्युकी एक परम सौभाग्यवती कन्या थी, जिसका नाम था सुनीथा। महाभाग अंगने उसीके साथ विवाह किया और उसके गर्भसे वेन नामक पुत्रको जन्म दिया, जो

धर्मका नाश करनेवाला था। राजा वेन वेदोक्त सदाचाररूप धर्मका परित्याग करके काम, लोभ और महामोहवश पापका ही आचरण करता था। मद और मात्सर्यसे मोहित होकर पापके ही रास्ते चलता था। उस समय सम्पूर्ण द्विज वेदाध्ययनसे विमुख हो गये। वेनके राजा होनेपर प्रजाजनोंमें स्वाध्याय और यज्ञका नाम भी नहीं सुनायी पड़ता था। यज्ञमें आये हुए देवता यजमानके द्वारा अर्पण किये हुए सोमरसका पान नहीं करते थे। वह दुष्टात्मा राजा ब्राह्मणोंसे प्रतिदिन यही कहता था कि 'स्वाध्याय न करो, होम करना छोड़ दो, दान न दो और यज्ञ भी न करो।' प्रजापति वेनका विनाशकाल उपस्थित था; इसीलिये उसने यह क्रूर घोषणा की थी। वह सदा यही कहा करता था कि 'मैं ही यजन करनेके योग्य देवता, मैं ही यज्ञ करनेवाला यजमान तथा मैं ही यज्ञ-कर्म हूँ। मेरे ही उद्देश्यसे यज्ञ और होमका अनुष्ठान होना चाहिये। मैं ही सनातन विष्णु, मैं ही ब्रह्मा, मैं ही रुद्र, मैं ही इन्द्र तथा सूर्य और वायु हूँ। हव्य और कव्यका भोक्ता भी सदा मैं ही हूँ। मेरे सिवा दूसरा कोई नहीं है।'

यह सुनकर महान् शक्तिशाली मुनियोंको वेनके प्रति बड़ा क्रोध हुआ। वे सब एकत्रित हो उस पापबुद्धि राजाके पास जाकर बोले—राजाको धर्मका मूर्तिमान् स्वरूप माना गया है। इसलिये प्रत्येक राजाका यह कर्तव्य है कि वह धर्मकी रक्षा करे। हमलोग बारह वर्षोंमें समाप्त होनेवाले यज्ञकी दीक्षा ग्रहण कर रहे हैं। तुम अधर्म न करो; क्योंकि ऐसा करना सत्पुरुषोंका धर्म नहीं है। महाराज! तुमने यह प्रतिज्ञा की है कि 'मैं राजा होकर धर्मका पालन करूँगा, अतः उस प्रतिज्ञाके अनुसार धर्म करो और सत्य एवं पुण्यको आचरणमें लाओ।'

ऋषियोंकी उपर्युक्त बातें सुनकर वह क्रोधसे आगबबूला हो उठा और उनकी ओर दृष्टिपात करके द्वितीय यमराजकी भाँति बोला—'अरे! तुमलोग मूर्ख हो, तुम्हारी बुद्धि मारी गयी है। अतः निश्चय ही तुमलोग मुझे नहीं जानते। भला ज्ञान, पराक्रम, तपस्या और सत्यके द्वारा मेरी समानता करनेवाला इस पृथ्वीपर दूसरा कौन है। मैं ही सम्पूर्ण भूतों और विशेषतः सब धर्मोंकी उत्पत्तिका कारण हूँ। यदि चाहूँ तो इस पृथ्वीको जला सकता हूँ, जलमें डुबा सकता हूँ तथा पृथ्वी और आकाशको रूँध सकता हूँ।'

जब वेनको किसी प्रकार भी अधर्म-मार्गसे हटाया न जा सका, तब महर्षियोंने क्रोधमें भरकर उसे बलपूर्वक पकड़ लिया। वह विवश होकर छटपटाने लगा। उधर क्रोधमें भरे हुए ऋषियोंने राजा वेनकी बायीं जाँघको मथना आरम्भ किया। उससे काले अंजनकी राशिके समान एक नाटे कदका मनुष्य प्रकट हुआ। उसकी आकृति विलक्षण थी। लंबा मुँह, विकराल आँखें, नीले कवचके समान काला रंग, मोटे और चौड़े कान, बेडौल बढ़ी हुई बाँहें और विशाल भद्दा-सा पेट—यही उसका हुलिया था। ऋषियोंने उसकी ओर देखा और कहा—'निषीद (बैठ जाओ)।' उनकी बात सुनकर वह भयसे व्याकुल हो बैठ गया। [ऋषियोंने 'निषीद' कहकर उसे बैठनेकी आज्ञा दी थी; इसलिये उसका नाम 'निषाद' पड़ गया।] पर्वतों और वनोंमें ही उसके वंशकी प्रतिष्ठा हुई। निषाद, किरात, भील, नाहलक, भ्रमर, पुलिन्द तथा और जितने भी म्लेच्छजातिके पापाचारी मनुष्य हैं, वे सब वेनके उसी अंगसे उत्पन्न हुए हैं।

तब यह जानकर कि राजा वेनका पाप निकल गया, समस्त ऋषियोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। अब उन्होंने राजाके दाहिने हाथका मन्थन आरम्भ किया। उससे पहले तो पसीना प्रकट हुआ; किन्तु जब पुनः जोरसे मन्थन किया गया, तब वेनके उस सुन्दर हाथसे एक पुरुषका प्रादुर्भाव हुआ, जो बारह आदित्योंके समान तेजस्वी थे। उनके मस्तकपर सूर्यके समान चमचमाता हुआ मुकुट और कानोंमें कुण्डल शोभा पा रहे थे। उन महाबली राजकुमारने आजगव नामका आदि धनुष, दिव्य बाण और रक्षाके लिये कान्तिमान् कवच धारण कर रखे थे। उनका नाम 'पृथु' हुआ। वे बड़े सौभाग्यशाली, वीर और महात्मा थे। उनके जन्म लेते ही सम्पूर्ण प्राणियोंमें हर्ष छा गया। उस समय समस्त

ब्राह्मणोंने मिलकर पृथुका राज्याभिषेक किया। तदनन्तर ब्रह्माजी, सब देवता तथा नाना प्रकारके स्थावर-जंगम प्राणियोंने महाराज पृथुका अभिषेक किया। उनके पिताने कभी भी सम्पूर्ण प्रजाको प्रसन्न नहीं किया था। किन्तु पृथुने सबका मनोरंजन किया। इसलिये सारी प्रजा सुखी होकर आनन्दका अनुभव करने लगी। प्रजाका अनुरंजन करनेके कारण ही वीर पृथुका नाम 'राजराज' हो गया।

द्विजवरो! उन महात्मा नरेशके भयसे समुद्रका जल भी शान्त रहता था। जब उनका रथ चलता, उस समय पर्वत दुर्गम मार्गको छिपाकर उन्हें उत्तम मार्ग देते थे। पृथ्वी बिना जोते ही अनाज तैयार करके देती थी। सर्वत्र गौएँ कामधेनु हो गयी थीं। मेघ प्रजाकी इच्छाके अनुसार वर्षा करता था। सम्पूर्ण ब्राह्मण और क्षत्रिय देवयज्ञ तथा बड़े-बड़े उत्सव किया करते थे। राजा पृथुके शासनकालमें वृक्ष इच्छानुसार फलते थे, उनके पास जानेसे सबकी इच्छा पूर्ण होती थी। देशमें न कभी अकाल पड़ता, न कोई बीमारी फैलती और न मनुष्योंकी अकाल मृत्यु ही होती थी। सब लोग सुखसे जीवन बिताते और धर्मानुष्ठानमें लगे रहते थे।*

ब्राह्मणो! प्रजाओंने अपनी जीवन-रक्षाके लिये पहले जो अन्नका बीज बो रखा था, उसे एक बार यह पृथ्वी पचाकर स्थिर हो गयी। उस समय सारी प्रजा राजा पृथुके पास दौड़ी गयी और मुनियोंके कथनानुसार बोली—'राजन्! हमारे लिये उत्तम जीविकाका प्रबन्ध कीजिये।' राजाओंमें श्रेष्ठ पृथुने देखा—प्रजाके ऊपर बहुत बड़ा भय उपस्थित हुआ है। यह देखकर तथा महर्षियोंकी बात मानकर महाराज पृथुने धनुष और बाण हाथमें लिया और क्रोधमें भरकर बड़े वेगसे पृथ्वीके ऊपर धावा किया। पृथ्वी गायका रूप धारण करके तीव्र गतिसे स्वर्गकी ओर भागी। फिर क्रमशः ब्रह्माजी, भगवान् श्रीविष्णु तथा रुद्र आदि देवताओंकी शरणमें गयी; किन्तु कहीं भी उसे अपने बचावका स्थान न मिला। अन्तमें अपनी रक्षाका कोई उपाय न देखकर वह वेनकुमार पृथुकी ही शरणमें आयी और बाणोंके आघातसे व्याकुल हो उन्हींके पास खड़ी हो गयी। उसने नमस्कार करके राजा पृथुसे कहा—

'महाराज! रक्षा करो, रक्षा करो। महाप्राज्ञ! मैं

धारण करनेवाली भूमि हूँ। मेरे ही आधारपर सब लोग टिके हुए हैं। राजन्! यदि मैं मारी गयी तो सातों लोक नष्ट हो जायँगे। गौओंकी हत्यामें बहुत बड़ा पाप है, इस बातका श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने प्रत्यक्ष अनुभव किया है। मेरा नाश होनेपर सारी प्रजा नष्ट हो जायगी। राजन्! यदि मैं न रही तो तुम प्रजाको कैसे धारण कर सकोगे। अतः यदि तुम प्रजाका कल्याण करना चाहते हो तो मुझे मारनेका विचार छोड़ दो। भूपाल! मैं तुम्हें हितकी बात बताती हूँ, सुनो। अपने क्रोधका नियन्त्रण करो, मैं अन्नमयी हो जाऊँगी, समस्त प्रजाको धारण करूँगी। मैं स्त्री हूँ। स्त्री अवध्य मानी गयी है। मुझे मारकर तुम्हें प्रायश्चित्तका भागी होना पड़ेगा।'

राजा पृथु बोले—यदि किसी एक महापापी एवं

* न दुर्भिक्षं न च व्याधिर्नाकालमरणं नृणाम्। सर्वे सुखेन जीवन्ति लोका धर्मपरायणाः॥ (२७।६४)

दुराचारीका वध कर डालनेपर सब लोग सुखसे जी सकें, तथा पुण्यदर्शी साधु पुरुषोंको सुख मिलता हो तो एक पापिष्ठ पुरुषका विनाश करना कर्तव्य माना गया है। वसुधे! तुमने भी प्रजाके सम्पूर्ण स्वार्थोंका विनाश किया है। इस समय जितने भी बीज थे, उन सबको तुम पचा गयीं। बीजोंको हड़पकर स्वयं तो स्थिर हो गयीं और प्रजाको मार रही हो। ऐसी दशामें [मेरे हाथसे बचकर] अब कहाँ जाओगी। वसुन्धरे! संसारके हितके लिये मेरा यह कार्य उत्तम ही माना जायगा। तुमने मेरी आज्ञाका उल्लंघन किया है, इसलिये इन तीखे बाणोंसे मारकर मैं तुम्हें मौतके घाट उतार दूँगा। तुम्हारे न रहनेपर मैं त्रिलोकीमें रहनेवाली पावन प्रजाको अपने ही तेज और धर्मके बलसे धारण करूँगा, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। वसुन्धरे! मेरा शासन धर्मके अनुकूल है, अतः इसे मानकर मेरी आज्ञासे तुम प्रजाके जीवनकी सदा ही रक्षा करो। भद्रे! यदि इस प्रकार आज ही मेरी आज्ञा मान लोगी तो मैं प्रसन्न होकर सदा तुम्हारी रखवाली करूँगा।

पृथ्वी देवी गौके रूपमें खड़ी थीं। उनका शरीर बाणोंसे आच्छादित हो रहा था। उन्होंने धर्मात्मा और परम बुद्धिमान् राजा पृथुसे कहा—'महाराज! तुम्हारी आज्ञा सत्य और पुण्यसे युक्त है। अतः प्रजाके लिये मैं उसका विशेषरूपसे पालन करूँगी। राजेन्द्र! तुम स्वयं ही कोई उपाय सोचो, जिससे तुम्हारे सत्यका पालन हो सके और तुम इन प्रजाओंको भी धारण कर सको। मैं भी जिस प्रकार समूची प्रजाकी वृद्धि कर सकूँ—ऐसा कोई उपाय बताओ। महाराज! मेरे शरीरमें तुम्हारे उत्तम बाण धँसे हुए हैं, उन्हें निकाल दो और सब ओरसे मुझे समतल बना दो, जिससे मेरे भीतर दुग्ध स्थिर रह सके।'

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो! पृथ्वीकी बात सुनकर राजा पृथुने अपने धनुषके अग्रभागसे विभिन्न रूपवाले भारी-भारी पर्वतोंको उखाड़ डाला और भूमिको समतल बना दिया। राजकुमार पृथुने पृथ्वीके शरीरसे अपने बाणोंको स्वयं ही निकाल लिया। उनके आविर्भावसे पहले केवल प्रजाओंकी ही उत्पत्ति हुई थी। कोई सच्चा राजा नहीं हुआ था। उन दिनों यह सारी प्रजा कहीं भूमिमें गुफा बनाकर, कहीं पर्वतपर, कहीं नदीके किनारे, जंगली झाड़ियोंमें, सम्पूर्ण तीर्थोंमें तथा समुद्रके किनारोंपर निवास करती थी। सब लोग पुण्य-कर्मोंमें लगे रहते थे। फल, फूल और मधु—यही उनका आहार था। वेनकुमार पृथुने प्रजाके इस कष्टको देखा और उसे दूर करनेके लिये स्वायम्भुव मनुको बछड़ा तथा अपने हाथको ही दुग्धपात्र बनाकर पृथ्वीसे सब प्रकारके धान्य और गुणकारी अन्नमय दूधका दोहन किया। सुधाके समान लाभ पहुँचानेवाले उस पवित्र अन्नसे प्रजा पितरों तथा ब्रह्मा आदि देवताओंका यजन-पूजन करने लगी। द्विजवरो! उस समयकी सारी प्रजा पुण्यकर्ममें संलग्न रहती थी; अतः देवताओं, पितरों, विशेषतः ब्राह्मणों और अतिथियोंको अन्न देकर पश्चात् स्वयं भोजन करती थी। उसी अन्नसे अन्यान्य यज्ञोंका अनुष्ठान करके वह देवेश्वर भगवान् श्रीविष्णुका यजन और तर्पण करती तथा उसी अन्नके द्वारा सम्पूर्ण देवता तृप्त होते थे। फिर श्रीभगवान्की प्रेरणासे मेघ पानी बरसाता और उससे पवित्र अन्न आदि उत्पन्न होता था।

तदनन्तर समस्त ऋषियों, महामना ब्राह्मणों तथा सत्यवादी देवताओंने भी इस पृथ्वीका दोहन किया। अब मैं यह बताता हूँ कि पितर आदिने किस प्रकार बछड़ोंकी कल्पना करके पूर्वकालमें वसुधाको दुहा था। द्विजोत्तमो! पितरोंने चाँदीका दोहन-पात्र बनाकर यमको बछड़ा बनाया, अन्तकने दुहनेवाले ग्वालेका काम किया और 'स्वधा' रूपी दुग्धको दुहा। इसके बाद सर्पों और नागोंने तक्षकको बछड़ा बनाकर तूँबीका पात्र हाथमें ले विषरूपी दूध दुहा। वे महाबली और महाकाय भयानक सर्प उस विषसे ही जीवन धारण करते हैं। विष ही उनका आधार, विष ही आचार, विष ही बल और विष ही पराक्रम है। इसी प्रकार समस्त असुरों और दानवोंने भी अन्नके अनुरूप लोहेका पात्र बनाकर सम्पूर्ण कामनाओंके साधनभूत मायामय दूधका दोहन किया, जो उनके समस्त शत्रुओंका विनाश करनेवाला है। वही उनका बल और पुरुषार्थ है, उसीसे दानव जीवन धारण

करते हैं। उसीको पाकर आज भी समस्त दानव मायामें प्रवीण देखे जाते हैं। इसके बाद गन्धर्वों और अप्सराओंने पृथ्वीका दोहन किया। नृत्य और संगीतकी विद्या ही उनका दूध थी। उसीसे गन्धर्व, यक्ष और अप्सराओंकी जीविका चलती है। परम पुण्यमय पर्वतोंने भी इस पृथ्वीसे नाना प्रकारके रत्न और अमृतके समान ओषधियोंका दोहन किया। वृक्षोंने पत्तोंके पात्रमें पृथ्वीका दूध दुहा। जलने और कटनेके बाद भी फिरसे अंकुर निकल आना—यही उनका दूध था। उस समय पाकरका पेड़ बछड़ा बना था और शालके पवित्र वृक्षने दुहनेका काम किया था।

गुह्यक, चारण, सिद्ध और विद्याधरोंने भी सबको धारण करनेवाली इस पृथ्वीको दुहा था। उस समय यह वसुन्धरा सम्पूर्ण अभिलषित पदार्थोंको देनेवाली कामधेनु बन गयी थी। जो लोग जिस-जिस वस्तुकी इच्छा करते थे, उन्हें भिन्न-भिन्न पात्र और बछड़ोंके द्वारा वह वस्तु यह दूधके रूपमें प्रदान करती थी। यह धात्री (धारण करनेवाली) और विधात्री (उत्पन्न करनेवाली) है। यह श्रेष्ठ वसुन्धरा है, यह समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाली धेनु है तथा यह पुण्योंसे अलंकृत, परम पावन, पुण्यदायिनी, पुण्यमयी और सब प्रकारके धान्योंको अंकुरित करनेवाली है। यह सम्पूर्ण चराचर जगत्‌की प्रतिष्ठा और योनि (उत्पत्तिस्थान) है। यही महालक्ष्मी और सब प्रकारके कल्याणकी जननी है। यही पाँचों भूतोंका प्रकाश और रूप है। यह समुद्रपर्यन्त पृथ्वी पहले 'मेदिनी' के नामसे प्रसिद्ध थी। फिर अपनेको वेनकुमार राजा पृथुकी पुत्री स्वीकार करनेके कारण यह 'पृथ्वी' कहलाने लगी।

ब्राह्मणो! पृथुके प्रयत्नसे इस पृथ्वीपर घर और गाँवोंकी नींव पड़ी। फिर बड़े-बड़े कस्बे और शहर इसकी शोभा बढ़ाने लगे। यह धन-धान्यसे सम्पन्न हुई और सब प्रकारके तीर्थ इसके ऊपर प्रकट हुए। इस वसुमती देवीकी ऐसी ही महिमा बतलायी गयी है। यह सर्वदा सर्वलोकमयी मानी गयी है। वेनकुमार महाराज पृथुका ऐसा ही प्रभाव पुराणोंमें वर्णित है। ये महाभाग नरेश सम्पूर्ण धर्मोंके प्रकाशक, वर्णों और आश्रमोंके संस्थापक तथा समस्त लोकोंके धारण-पोषण करनेवाले थे। जो सौभाग्यशाली राजा इस लोकमें वास्तविक राजपद प्राप्त करना चाहते हों, उन्हें परम प्रतापी राजा वेनकुमार पृथुको नमस्कार करना चाहिये। जो धनुर्वेदका ज्ञान और युद्धमें सदा ही विजय प्राप्त करना चाहते हों, उन्हें भी महाराज पृथुको प्रणाम करना चाहिये। सम्राट् पृथु राजा-महाराजाओंको भी जीविका प्रदान करनेवाले थे। द्विजवरो! यह प्रसंग धन, यश, आरोग्य और पुण्य प्रदान करनेवाला है। जो मनुष्य महाराज पृथुके चरित्रका श्रवण करता है, उसे प्रतिदिन गंगास्नानका फल मिलता है तथा वह सब पापोंसे शुद्ध होकर भगवान् श्रीविष्णुके परमधामको जाता है।

मृत्युकन्या सुनीथाको गन्धर्वकुमारका शाप, अंगकी तपस्या और भगवान्‌से वर-प्राप्ति

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! पापाचारपूर्ण बर्ताव करनेवाले जिस राजा वेनका आपने परिचय दिया है, उस पापीको उस व्यवहारका कैसा फल मिला?

सूतजी बोले—ब्राह्मणो! पृथु-जैसे सौभाग्यशाली और महात्मा पुत्रके जन्म लेनेपर राजा वेन पापरहित हो गया। उसे धर्मका फल प्राप्त हुआ। जिन नरेशोंने समस्त महापापोंका उपार्जन किया है, उनके वे पाप तीर्थयात्रासे नष्ट हो जाते हैं और संतोंका संग प्राप्त होनेसे पुण्यकी ही वृद्धि होती रहती है। पापियोंसे बातचीत करने, उन्हें देखने, स्पर्श करने, उनके साथ बैठने, भोजन करने तथा उनके संगमें रहनेसे पापका संचार होता है और पुण्यात्माओंके संगसे केवल पुण्यका ही प्रसार होता है, जिससे सारे पाप धुल जानेके कारण मनुष्य पुण्य-गतिको ही प्राप्त करते हैं।

ऋषियोंने पूछा—महामते! पापी मनुष्योंको परम सिद्धिकी प्राप्ति कैसे होती है, यह बात [भी] हमें

विस्तारके साथ बतलाइये।

सूतजी बोले—नर्मदा, यमुना और गंगा—इन नदियोंकी धाराके आस-पास जो महापापी रहते हैं, वे जान-बूझकर या बिना जाने भी इनके जलमें नहाते और क्रीड़ा करते हैं; अतः महानदीके संसर्गसे उन्हें परम गतिकी प्राप्ति हो जाती है। द्विजवरो! महानदीके सम्पर्कसे अथवा अन्यान्य नदियोंके परम पवित्र जलका दर्शन, स्पर्श और पान करनेसे पापियोंका पाप नष्ट हो जाता है। तीर्थोंके प्रभाव तथा संतोंके संगसे पापियोंका पाप उसी प्रकार नष्ट होता है, जैसे आग ईंधनको जला डालती है। महात्मा ऋषियोंके संसर्ग, उनके साथ वार्तालाप करनेसे, दर्शन और स्पर्शसे तथा पूर्वकालमें सत्संग प्राप्त होनेसे राजा वेनका सारा पाप नष्ट हो गया था। पुण्यका संसर्ग हो जानेपर अत्यन्त भयंकर पापका भी संचार नहीं होता।

पूर्वकालमें मृत्युके एक सौभाग्यशालिनी कन्या उत्पन्न हुई थी, जिसका नाम सुनीथा रखा गया था। वह पिताके कार्योंको देखती और खेल-कूदमें सदा उन्हींका अनुकरण किया करती थी। एक दिन सुनीथा अपनी सखियोंके साथ खेलती हुई वनमें गयी। वहाँ गीतकी ध्वनि उसके कानोंमें पड़ी। तब सुनीथाने उस ओर दृष्टिपात किया। देखा, गन्धर्वकुमार महाभाग सुशंख भारी तपस्यामें लगा हुआ है। उसके सारे अंग बड़े ही मनोहर थे। सुनीथा प्रतिदिन वहाँ जाकर उस तपस्वीको सताने लगी। सुशंख रोज-रोज उसके अपराधको क्षमा कर देता और कहता—'जाओ, चली जाओ यहाँसे।' उसके यों कहनेपर वह बालिका कुपित हो जाती और बेचारे तपस्वीको पीटने लगती थी। उसका यह बर्ताव देखकर एक दिन सुशंख क्रोधसे मूर्च्छित हो उठा और बोला—'कल्याणी! श्रेष्ठ पुरुष मारनेके बदले न तो मारते हैं और न किसीके गाली देनेपर क्रोध ही करते हैं; यही धर्मकी मर्यादा है।' पाप करनेवाली सुनीथासे ऐसा कहकर वह धर्मात्मा गन्धर्व क्रोधसे निवृत्त हो रहा और उसे अबला स्त्री जानकर बिना कुछ दण्ड दिये लौट गया।

सुनीथाने पिताके पास जाकर कहा—'तात! मैंने वनमें जाकर एक गन्धर्वकुमारको पीटा है, वह काम-क्रोधसे रहित हो तपस्या कर रहा था। मेरे पीटनेपर उस धर्मात्माने कहा है—मारनेवालेको मारना और गाली देनेवालेको गाली देना उचित नहीं है। पिताजी! बताइये, उसके इस कथनका क्या कारण है?' सुनीथाके इस प्रकार पूछनेपर धर्मात्मा मृत्युने उससे कुछ भी नहीं कहा। उसके प्रश्नका उत्तर ही नहीं दिया। तदनन्तर वह फिर वनमें गयी। सुशंख तपस्यामें लगा था। दुष्ट स्वभाववाली सुनीथाने उस श्रेष्ठ तपस्वीके पास जाकर उसे कोड़ोंसे पीटना आरम्भ किया। अब वह महातेजस्वी गन्धर्व अपने क्रोधको न रोक सका। उस सुन्दरी बालिकाको शाप देते हुए बोला—'गृहस्थ-धर्ममें प्रवेश करनेपर जब तुम्हारा अपने पतिके साथ सम्पर्क होगा, तब तुम्हारे गर्भसे देवताओं और ब्राह्मणोंकी निन्दा करनेवाला, पापाचारी, सब प्रकारके पापोंमें आसक्त और दुष्ट पुत्र उत्पन्न होगा।' इस प्रकार शाप दे वह पुनः जाकर तपस्यामें ही लग गया।

महाभाग गन्धर्वकुमारके चले जानेपर सुनीथा अपने घर आयी। वहाँ उसने पितासे सारा वृत्तान्त कह

सुनाया। मृत्युने कहा—'अरी! उस निर्दोष तपस्वीको तुमने क्यों मारा है? भद्रे! तपस्यामें लगे हुए पुरुषको मारना—यह तुम्हारे द्वारा उचित कार्य नहीं हुआ।' धर्मात्मा मृत्यु ऐसा कहकर बहुत दुःखी हो गये।

सूतजी कहते हैं—एक समयकी बात है, महर्षि अत्रिके पुत्र महातेजस्वी राजा अंग नन्दन-वनमें गये थे। वहाँ उन्होंने गन्धर्वों, किन्नरों और अप्सराओंके साथ देवराज इन्द्रका दर्शन किया। उनके वैभव, उनके भोगविलास और उनकी लीला देखकर धर्मात्मा अंग सोचने लगे—'किस उपायसे मुझे इन्द्रके समान पुत्रकी प्राप्ति हो?' क्षणभर इस बातका विचार करके राजा अंग खिन्न हो उठे। नन्दन-वनसे जब वे घर लौटे तो अपने पिता अत्रिके चरणोंमें मस्तक झुकाकर बोले—'पिताजी! आप ज्ञानवानोंमें श्रेष्ठ और पुत्रपर स्नेह रखनेवाले हैं। मुझे इन्द्रके समान वैभवशाली पुत्र कैसे प्राप्त हो, इसका कोई उपाय बताइये।'

अत्रिने कहा—साधुश्रेष्ठ! भक्ति करने और श्रद्धापूर्वक ध्यान लगानेसे भगवान् श्रीविष्णु संतुष्ट होते हैं और संतुष्ट होनेपर वे सदा सब कुछ देते रहते हैं। भगवान् श्रीगोविन्द सब वस्तुओंके दाता, सबकी उत्पत्तिके कारण, सर्वज्ञ, सर्ववेत्ता, सर्वेश्वर और परमपुरुष हैं। इसलिये तुम उन्हींकी आराधना करो। बेटा! तुम जो-जो चाहते हो, वह सब उनसे प्राप्त होगा। भगवान् श्रीविष्णु सुख, परमार्थ और मोक्ष देनेवाले तथा इस जगत्के ईश्वर हैं। अतः जाओ, उनकी आराधना करो; उनसे तुम्हें इन्द्रके समान पुत्र प्राप्त होगा।

ब्रह्माजीके पुत्र अंगके पिता महर्षि अत्रि ब्रह्माके समान ही तेजस्वी थे। उनसे आज्ञा लेकर अंगने प्रस्थान किया। वे सुवर्ण और रत्नमय शिखरोंसे सुशोभित मेरुगिरिके मनोहर शिखरपर चले गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने गंगाजीके पवित्र तटपर एकान्तमें स्थित रत्नमय कन्दरामें प्रवेश किया। महामुनि अंग बड़े मेधावी और धर्मात्मा थे। वे काम-क्रोधका त्याग करके सम्पूर्ण इन्द्रियोंको काबूमें रखकर भगवान्के मनोमय स्वरूपका ध्यान करने लगे। क्लेशहारी भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान करते-करते वे ऐसे तन्मय हो गये कि बैठने, सोने, चलने तथा चिन्तन करनेके समय भी उन्हें नित्य-निरन्तर भगवान् श्रीमधुसूदन ही दिखायी देते थे। उनका मन भगवान्में लग गया था। वे योगयुक्त और जितेन्द्रिय होकर चराचर जीवों तथा सूखे और गीले आदि समस्त पदार्थोंमें केवल भगवान् श्रीविष्णुका ही दर्शन करते थे। इस प्रकार तपस्या करते उन्हें सौ वर्ष बीत गये। नियम, संयम तथा उपवासके कारण उनका सारा शरीर दुर्बल हो गया था; तो भी वे अपने तेजसे सूर्य और अग्निके समान देदीप्यमान दिखायी दे रहे थे। इस तरह तपस्यामें प्रवृत्त हो ध्यानमें लगे हुए राजा अंगके सामने भगवान् श्रीविष्णु प्रकट हुए और बोले—'मानद! वर माँगो, इन्द्रियोंके स्वामी भगवान् श्रीवासुदेवको उपस्थित देख राजा अंगको बड़ा हर्ष हुआ, उनका चित्त प्रसन्न हो गया। वे भगवान्को प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगे।

अंग बोले—भूतभावन! आप ही सम्पूर्ण भूतोंकी गति हैं। पावन परमेश्वर! आप प्राणियोंके आत्मा, सब भूतोंके ईश्वर और सगुण स्वरूप धारण करनेवाले हैं; आपको नमस्कार है। आप गुणस्वरूप,

गुह्य तथा गुणातीत हैं; आपको नमस्कार है। गुण, गुणकर्ता, गुणसम्पन्न और गुणात्मा भगवान्‌को प्रणाम है। आप भव (संसाररूप), भवकर्ता तथा भक्तोंके संसार-बन्धनका अपहरण करनेवाले हैं; आपको नमस्कार है। भवकी उत्पत्तिके कारण होनेसे आपका नाम 'भव' है; इस भवमें आप अव्यक्तरूपसे छिपे हुए हैं, इसलिये आपको 'भवगुह्य' कहा गया है तथा आप रुद्ररूपसे इस भव—संसारका विनाश करते हैं, इससे आपका नाम भवविनाशी है। आपको प्रणाम है। आप यज्ञ, यज्ञरूप, यज्ञेश्वर और यज्ञकर्ममें संलग्न हैं; आपको नमस्कार है। शंख धारण करनेवाले भगवान्‌को प्रणाम है। सोनेके समान वर्णवाले परमात्माको नमस्कार है। चक्रधारी श्रीविष्णुको प्रणाम है। सत्य, सत्यभाव, सर्वसत्यमय, धर्म, धर्मकर्ता और सर्वविधाता आप भगवान्‌को प्रणाम है। धर्म आपका अंग है, आप श्रेष्ठ वीर और धर्मके आधारभूत हैं; आपको नमस्कार है। आप माया-मोहके नाशक होते हुए भी सब प्रकारकी मायाओंके उत्पादक हैं; आपको नमस्कार है। आप मायाधारी, मूर्त (साकार) और अमूर्त (निराकार) भी हैं; आपको प्रणाम है। आप सब प्रकारकी मूर्तियोंको धारण करनेवाले और कल्याणकारी हैं, आपको नमस्कार है। ब्रह्मा, ब्रह्मरूप और परब्रह्मस्वरूप आप परमात्माको प्रणाम है। आप सबके धाम तथा धामधारी हैं, आपको नमस्कार है। आप श्रीमान्, श्रीनिवास, श्रीधर, क्षीरसागरवासी और अमृतस्वरूप हैं; आपको प्रणाम है। [संसाररूपी रोगके लिये] महान् औषध, दुष्टोंके लिये घोररूपधारी, महाप्रज्ञापरायण, अक्रूर (सौम्य), प्रमेध्य (परम पवित्र) तथा मेध्यों (पावन वस्तुओं)-के स्वामी आप परमेश्वरको नमस्कार है। आपका कहीं अन्त नहीं है, आप अशेष (पूर्ण) और अनघ (पापरहित) हैं; आपको प्रणाम है। आकाशको प्रकाशित करनेवाले सूर्य-चन्द्रस्वरूप आपको नमस्कार है। आप हवनकर्म, हुतभोजी अग्नि तथा हविष्यरूप हैं; आपको नमस्कार है। आप बुद्ध (ज्ञानी), बुध (विद्वान्) तथा सदा बुद्ध (नित्यज्ञानी) हैं; आपको प्रणाम है।

स्वाहाकार, शुद्ध अव्यक्त, महात्मा, व्यास (वेदोंका विस्तार करनेवाले), वासव (वसुपुत्र इन्द्र) तथा वसुस्वरूप हैं; आपको नमस्कार है। आप वासुदेव, विश्वरूप और वह्निस्वरूप हैं; आपको प्रणाम है। हरि, कैवल्यरूप तथा वामनभगवान्‌को नमस्कार है। सत्त्वगुणकी रक्षा करनेवाले भगवान् नृसिंहदेवको प्रणाम है। गोविन्द एवं गोपालको नमस्कार है। भगवन्! आप एकाक्षर (प्रणव), सर्वाक्षर (वर्णरूप) और हंसस्वरूप हैं; आपको प्रणाम है। तीन, पाँच और पचीस तत्त्व आपके ही रूप हैं; आप समस्त तत्त्वोंके आधार हैं। आपको नमस्कार है। आप कृष्ण (सच्चिदानन्दस्वरूप), कृष्णरूप (श्यामविग्रह) तथा लक्ष्मीनाथ हैं; आपको प्रणाम है। कमललोचन! आप परमानन्दमय प्रभुको नमस्कार है। आप विश्वके भरण-पोषण करनेवाले तथा पापोंके नाशक हैं, आपको प्रणाम है। पुण्योंमें भी उत्तम पुण्य तथा सत्यधर्मरूप आप परमात्माको नमस्कार है। शाश्वत, अविनाशी एवं पूर्ण आकाशस्वरूप परमेश्वरको प्रणाम है। महेश्वर श्रीपद्मनाभको नमस्कार है। केशव! आपके चरणकमलोंमें मैं प्रणाम करता हूँ। आनन्दकन्द! कमलाप्रिय! वासुदेव! सर्वेश्वर! ईश! मधुसूदन! मुझे अपनी दासता प्रदान कीजिये। शंख धारण करनेवाले शान्तिदायी केशव! आपके चरणोंमें मस्तक झुकाता हूँ। प्रत्येक जन्ममें मुझपर कृपा कीजिये। मेरे स्वामी पद्मनाभ! संसाररूपी दुःसह अग्निके तापसे मैं दग्ध हो रहा हूँ; आप ज्ञानरूपी मेघकी धारासे मेरे तापको शान्त कीजिये तथा मुझ दीनके लिये शरणरूप हो जाइये।

अंगके मुखसे यह स्तोत्र सुनकर भगवान्‌ने अंगको अपने श्रीविग्रहका दर्शन कराया। उनका मेघके समान श्याम वर्ण तथा महान् ओजस्वी शरीर था तथा हाथोंमें शंख, चक्र, गदा और पद्म शोभा दे रहे थे। सब ओर महान् प्रकाश छा रहा था। श्रीभगवान् गरुड़की पीठपर बैठे थे। अंगोंमें सब प्रकारके आभूषण शोभा पा रहे थे। हार, कंकण और कुण्डलोंसे सुशोभित तथा वनमालासे उज्ज्वल उनका अत्यन्त दिव्यरूप बड़ा सुन्दर जान पड़ता था। भगवान् श्रीजनार्दन अंगके सामने विराजमान थे। श्रीवत्स नामक चिह्न और पुण्यमय

कौस्तुभमणिसे उनकी अपूर्व शोभा हो रही थी। वे सर्वदेवमय श्रीहरि समस्त अलंकारोंकी शोभासे सम्पन्न अपने श्रीविग्रहकी झाँकी कराकर ऋषिश्रेष्ठ अंगसे बोले—'महाभाग! मैं तुम्हारी तपस्यासे संतुष्ट हूँ, तुम कोई उत्तम वर माँग लो।'

अंगने भगवान्‌के चरणकमलोंमें बारंबार प्रणाम किया और अत्यन्त हर्षमें भरकर कहा—'देवेश्वर! मैं आपका दास हूँ; यदि आप मुझे वर देना चाहते हैं तो जैसी शोभा स्वर्गमें सम्पूर्ण तेजसे सम्पन्न इन्द्रकी है, वैसी ही शोभा पानेवाला एक सुन्दर पुत्र मुझे देनेकी कृपा करें। वह पुत्र सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षा करनेवाला होना चाहिये। इतना ही नहीं, वह बालक समस्त देवताओंका प्रिय, ब्राह्मण-भक्त, दानी, त्रिलोकीका रक्षक, सत्यधर्मका निरन्तर पालन करनेवाला, यजमानोंमें श्रेष्ठ, त्रिभुवनकी शोभा बढ़ानेवाला, अद्वितीय शूरवीर, वेदोंका विद्वान्, सत्यप्रतिज्ञ, जितेन्द्रिय, शान्त, तपस्वी और सर्वशास्त्रविशारद हो। प्रभो! यदि आप वर देनेके लिये उत्सुक हों तो मुझे ऐसा ही पुत्र होनेका वरदान दीजिये।'

भगवान् वासुदेव बोले—महामते! तुम्हें इन सद्गुणोंसे युक्त उत्तम पुत्रकी प्राप्ति होगी, वह अत्रिवंशका रक्षक और सम्पूर्ण विश्वका पालन करनेवाला होगा। तुम भी मेरे परम धामको प्राप्त होगे।

इस प्रकार वरदान देकर भगवान् श्रीविष्णु अन्तर्धान हो गये।

सुनीथाका तपस्याके लिये वनमें जाना, रम्भा आदि सखियोंका वहाँ पहुँचकर उसे मोहिनी विद्या सिखाना, अंगके साथ उसका गान्धर्वविवाह, वेनका जन्म और उसे राज्यकी प्राप्ति

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! गन्धर्वश्रेष्ठ सुशंखने जब सुनीथाको शाप दे दिया, तब वह शाप उसके ऊपर किस प्रकार लागू हुआ? उसके बाद सुनीथाने कौन-कौन-सा कार्य किया? और उसको कैसा पुत्र प्राप्त हुआ?

सूतजी बोले—ब्राह्मणो! हम पहले बता आये हैं कि सुशंखके शाप देनेपर सुनीथा दुःखसे पीड़ित हो अपने पिताके निवासस्थानपर आयी और वहाँ उसने पितासे अपनी सारी करतूतें कह सुनायीं। मृत्युने सब बातें सुनकर अपनी पुत्री सुनीथासे कहा—'बेटी! तूने बड़ा भारी पाप किया है। तेरा यह कार्य धर्म और तेजका नाश करनेवाला है। काम-क्रोधसे रहित, परम शान्त, धर्मवत्सल और परब्रह्ममें स्थित तपस्वीको जो चोट पहुँचाता है, उसके पापात्मा पुत्र होता है तथा उसे उस पापका फल भोगना पड़ता है। वही जितेन्द्रिय और शान्त है, जो मारनेवालेको भी नहीं मारता। किन्तु तूने निर्दोष होनेपर भी उन्हें मारा है; अतः तेरे द्वारा यह महान् पाप हो गया है। पहले तूने ही अपराध किया है; फिर उन्होंने भी शाप दे दिया। इसलिये अब तू पुण्यकर्मोंका आचरण कर, सदा साधु पुरुषोंके संगमें रहकर जीवन व्यतीत कर। प्रतिदिन योग, ध्यान और दानके द्वारा काल-यापन करती रह।

बाले! सत्संग महान् पुण्यदायक और परम कल्याणकारक होता है। सत्संगका जो गुण है, उसके विषयमें एक सुन्दर दृष्टान्त देख। जल एक सद्वस्तु है; उसके स्पर्शसे, उसमें स्नान करनेसे, उसे पीनेसे तथा उसका दर्शन करनेसे भी बाहर और भीतरके दोष धुल जानेके कारण मुनिलोग सिद्धि प्राप्त करते हैं तथा समस्त चराचर प्राणी भी जल पीते रहनेसे दीर्घायु होते हैं। [इसी प्रकार संतोंके संगसे मनुष्य शुद्ध एवं सफलमनोरथ होते हैं।] पुत्री! सत्संगसे मनुष्य संतोषी, मृदुगामी, सबका प्रिय करनेवाला, शुद्ध, सरस, पुण्यबलसे सम्पन्न, शारीरिक और मानसिक मलोंको दूर करनेवाला, शान्तस्वभाव तथा सबको सुख देनेवाला होता है। जैसे सुवर्ण अग्निके सम्पर्कमें आनेपर मैल त्याग देता है, उसी प्रकार मनुष्य संतोंके संगसे पापका

परित्याग कर देता है।* जिसमें सत्यकी अग्नि प्रज्वलित रहती है, वह अपने पुण्यमय तेजसे प्रकाशमान होता रहता है। जिसमें सत्यकी दीप्ति है, जो ज्ञानके द्वारा भी अत्यन्त निर्मल हो गया है तथा ध्यानके द्वारा अत्यन्त तेजस्वी प्रतीत होता है, पापसे पैदा हुए मनुष्य उसका स्पर्श नहीं कर सकते। सत्यरूपी अग्निसे महात्मा पुरुष पापरूपी ईंधनको भस्म कर डालना चाहता है। इसलिये बेटी! तुझे सत्यका संसर्ग करना चाहिये, असत्यका नहीं। महाभागे! जाओ, भगवान् श्रीविष्णुका चिन्तन करो; पापभावको छोड़कर केवल पुण्यका आश्रय लो।'

पिताके इस प्रकार समझानेपर दुःखमें पड़ी हुई सुनीथा उनके चरणोंमें प्रणाम करके निर्जन वनमें चली गयी और वहाँ एकान्तमें रहकर तपस्या करने लगी। उसने काम, क्रोध, बालोचित चपलता, मोह, द्रोह और मायाको त्याग दिया। एक दिन उसके पास उसकी रम्भा आदि सखियाँ, जो तपःशक्तिसे सम्पन्न थीं, आयीं। उन्होंने देखा, सुनीथा दुःखका अनुभव कर रही है। ध्यानके ही साथ उसे चिन्ता करते देख वहाँ आयी हुई सहेलियोंने कहा—'सखी! तुम्हारा कल्याण हो, तुम चिन्ता किसलिये करती हो? इस चिन्तामें क्यों डूबी हुई हो? अपने सन्तापका कारण बताओ। चिन्ता तो केवल दुःख देनेवाली होती है। एक ही चिन्ता सार्थक मानी गयी है, जो धर्मके लिये की जाती है। धर्मनन्दिनी! दूसरी चिन्ता जो योगियोंके हृदयमें होती है, [जिसके द्वारा वे ब्रह्मका चिन्तन करते हैं] वह भी सार्थक है। इनके सिवा और जितनी भी चिन्ताएँ हैं, सब निरर्थक हैं। उसकी कल्पना भी नहीं करनी चाहिये। चिन्ता शरीर, बल और तेजका नाश करनेवाली है; वह सारे सुखोंको नष्ट कर डालती है। साथ ही रूपको भी हानि पहुँचाती है। चिन्ता तृष्णा, मोह और लोभ—इन तीन दोषोंको ले आती है तथा प्रतिदिन उसीमें घुलते रहनेपर वह पापको भी उत्पन्न करती है। चिन्ता रोगोंकी उत्पत्ति और नरककी प्राप्तिका कारण है। अतः चिन्ताको छोड़ो। जीव पूर्वजन्ममें अपने कर्मोंद्वारा जिन शुभाशुभ भोगोंका उपार्जन करता है, उन्हींका वह दूसरे जन्ममें उपभोग करता है। अतः समझदारको चिन्ता नहीं करनी चाहिये। तुम चिन्ता छोड़कर अपने सुख-दुःख आदिकी ही बात बताओ।

सखियोंके ये वचन सुनकर सुनीथाने अपना वृत्तान्त कहना आरम्भ किया। पहले सुशंखने उसे वनमें जिस प्रकार शाप दिया था, वह सारी घटना उसने सहेलियोंसे कह सुनायी। उसने अपने अपराधोंका भी वर्णन किया। उस समय महाभागा सुनीथा मानसिक दुःखसे बड़ा कष्ट

---

* सतां सङ्गो महापुण्यो बहुक्षेमप्रदायकः । बाले पश्य सुदृष्टान्तं सतां सङ्गस्य यद्गुणम्॥
अपां संस्पर्शनात्स्नानात्पानाद् दर्शनतोऽपि वा॥
मुनयः सिद्धिमायान्ति बाह्याभ्यन्तरक्षालिताः । आयुष्मन्तो भवन्त्येते लोकाः सर्वे चराचराः॥
अपि सन्तोषशीलश्च मृदुगामी प्रियंकरः । निर्मलो रसवांश्चासौ पुण्यवीर्यो मलापहः॥
तथा शान्तो भवेत् पुत्रि सर्वसौख्यप्रदायकः । यथा वह्निप्रसंगाच्च मलं त्यजति काञ्चनम्॥
तथा सतां हि संसर्गात् पापं त्यजति मानवः॥
(३२। १४—१९)

पा रही थी। उसका सारा वृत्तान्त सुनकर सखियोंने कहा—'महाभागे! तुम्हें दुःखको तो त्याग ही देना चाहिये, क्योंकि वह शरीरका नाश करनेवाला है। शुभे! तुम्हारे अंगोंमें सती स्त्रियोंके जो उत्तम गुण हैं, उन्हें हम अन्यत्र कहीं नहीं देखतीं। उत्तम स्त्रियोंका पहला आभूषण रूप है, दूसरा शील, तीसरा सत्य, चौथा आर्यता (सदाचार), पाँचवाँ धर्म, छठा सतीत्व, सातवाँ दृढ़ता, आठवाँ साहस (कार्य करनेका उत्साह), नवाँ मंगलगान, दसवाँ कार्य-कुशलता, ग्यारहवाँ कामभावका आधिक्य और बारहवाँ गुण मीठे वचन बोलना है। बाले! इन सभी गुणोंने तुम्हारा सम्मान बढ़ाया है; अतः देवि! तुम तनिक भी भय न करो। वरानने! जिस उपायसे तुम्हें धर्मात्मा पतिकी प्राप्ति होगी, उसे हम जानती हैं। तुम्हारा काम तो हमलोग ही सिद्ध कर देंगी। महाभागे! अब तुम स्वस्थ एवं निश्चिन्त हो जाओ। हम तुम्हें एक ऐसी विद्या प्रदान करेंगी, जो पुरुषोंको मोहित कर लेती है।

यह कहकर सखियोंने सुनीथाको वह सुखदायक विद्याबल प्रदान किया और कहा—'कल्याणी! तुम देवता आदिमेंसे जिस-जिस पुरुषको मोहित करना चाहो, उसे-उसे तत्काल मोहित कर सकती हो।' सखियोंके यों कहनेपर सुनीथाने उस विद्याका अभ्यास किया। जब वह विद्या भलीभाँति सिद्ध हो गयी, तब सुनीथा बड़ी प्रसन्न हुई। वह सखियोंके साथ ही पुरुषोंको देखती हुई वनमें घूमने लगी। तदनन्तर उसने गंगाजीके तटपर एक रूपवान् ब्राह्मणको देखा, जो समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न और सूर्यके समान तेजस्वी थे। वे तपस्या कर रहे थे। उनका प्रभाव दिव्य था। उन तपस्वी महर्षिका रूप देखकर सुनीथाका मन मोह गया। उसने अपनी सखी रम्भासे पूछा—'ये देवताओंसे भी श्रेष्ठ महात्मा कौन हैं?' रम्भा बोली—'सखी! अव्यक्त परमेश्वरसे ब्रह्माजीकी उत्पत्ति हुई है। उनसे प्रजापति अत्रिका जन्म हुआ, जो बड़े धर्मात्मा हैं। ये महामना तपस्वी उन्हींके पुत्र हैं, इनका नाम अंग है। भद्रे! ये नन्दनवनमें आये थे। वहाँ नाना प्रकारके तेजसे सम्पन्न इन्द्रका वैभव देखकर इन्होंने भी उनके समान पद पानेकी अभिलाषा की। सोचा—जब मुझे भी वंशको बढ़ानेवाला ऐसा ही पुत्र प्राप्त हो, तब मेरा जन्म कल्याणकारी हो सकता है, साथ ही यश और कीर्ति भी मिल सकती है।' ऐसा विचार करके इन्होंने तपस्या और नियमोंके द्वारा भगवान् हृषीकेशकी आराधना की है। जब भगवान् अत्यन्त प्रसन्न होकर इनके सामने प्रकट हुए, तब इन महर्षिने इस प्रकार वर माँगा—'मधुसूदन! मुझे इन्द्रके समान वैभवशाली तथा अपने समान तेजस्वी एवं पराक्रमी पुत्र प्रदान कीजिये। वह पुत्र आपका भक्त एवं सब पापोंका नाश करनेवाला होना चाहिये।' श्रीभगवान्ने कहा—'महात्मन्! मैंने तुम्हें ऐसा पुत्र होनेका वर दिया। वह सबका पालन करनेवाला होगा।' [यों कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये।] तबसे विप्रवर अंग किसी पवित्र कन्याकी तलाशमें हैं। जैसी तुम सब अंगोंसे मनोहर हो, वैसे ही कन्या वे चाहते हैं; अतः इन्हींको पतिरूपमें प्राप्त करो। इनसे तुम्हें पुण्यात्मा पुत्रकी प्राप्ति होगी। ये महाभाग तपस्वी और पुण्यबलसे सम्पन्न हैं। इनके वीर्यसे उत्पन्न हुआ पुत्र इन्हींकी गुणसम्पत्तिसे युक्त, महातेजस्वी, समस्त धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ, परम सौभाग्यशाली, युक्तात्मा और योगतत्त्वका ज्ञाता होगा।'

सुनीथा बोली—भद्रे! तुमने ठीक कहा है, मैं ऐसा ही करूँगी। इस विद्यासे ब्राह्मणको मोहमें डालूँगी। तुम मुझे सहायता प्रदान करो; जिससे इस समय मैं उनके पास जाऊँ।

रम्भाने कहा—'मैं तुम्हारी सहायता करूँगी, तुम मुझे आज्ञा दो।' सुनीथाके नेत्र बड़े-बड़े थे। वह रूप और यौवनसे शोभा पा रही थी। उसने सद्भावनापूर्वक मायासे दिव्यरूप धारण किया। उसका मुख बड़ा ही मनोहर था। संसारमें उसके सुन्दर रूपकी कहीं तुलना नहीं थी। वह तीनों लोकोंको मोहित करने लगी। सुन्दरी सुनीथा झूलेपर जा बैठी और वीणा बजाती हुई मधुर स्वरमें गीत गाने लगी। उसका स्वर बड़ा मोहक था। उस समय महर्षि अंग अपनी पवित्र गुफाके भीतर एकान्तमें ध्यान लगाये बैठे थे। वे काम-क्रोधसे रहित

होकर भगवान् श्रीजनार्दनका चिन्तन कर रहे थे। उत्तम ताल-स्वरके साथ गाया हुआ वह मधुर और मनोहर गीत सुनकर अंगका चित्त ध्यानसे विचलित हो गया। उस मायामय संगीतने उन्हें मोह लिया था। वे तुरंत ही आसनसे उठे और बारंबार इधर-उधर दृष्टि दौड़ाने लगे। मायासे उनका मन चंचल हो उठा था। वे बड़े वेगसे बाहर निकले और झूलेपर बैठी हुई वीणाधारिणी स्त्रीकी ओर देखा। वह मुसकराती हुई गा रही थी। महायशस्वी अंग उसके गीत और रूप दोनोंपर मुग्ध हो गये। तत्पश्चात् वे महान् मोहके वशीभूत हो उस तरुणीके पास गये। विशाल नेत्र और मनोहर मुसकानवाली मृत्युकी यशस्विनी कन्या सुनीथाको देखकर अंगने पूछा—'सुन्दरी! तुम कौन हो? किसकी कन्या हो? सखियोंसे घिरी हुई यहाँ किस कामसे आयी हो? किसने तुम्हें इस वनमें भेजा है?'

परम बुद्धिमान् अंगका यह महत्त्वपूर्ण वचन सुनकर सुनीथा उनसे कुछ न बोली। उसने केवल सखीके मुखकी ओर देखा। रम्भाने इशारेसे कुछ कहकर सुनीथाको समझा दिया और वह स्वयं ही उन श्रेष्ठ ब्राह्मणसे आदरपूर्वक बोली—'महर्षे! यह मृत्युकी परम सौभाग्यवती कन्या है, लोकमें इसकी सुनीथाके नामसे प्रसिद्धि है। यह सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न है। इस समय यह बाला अपने लिये धर्मात्मा, तपस्वी, शान्त, जितेन्द्रिय, महाप्राज्ञ और वेदविद्या-विशारद पतिकी खोजमें है।'

यह सुनकर अंगने अप्सराओंमें श्रेष्ठ रम्भासे कहा—'भद्रे! मैंने सर्वविश्वमय भगवान् श्रीहरिकी आराधना की है; उन्होंने मुझे पुत्र होनेका वरदान दिया है, जो सम्पूर्ण सिद्धियोंका दाता है। अतः इस वरदानकी सफलताके निमित्त—उत्तम पुत्रकी प्राप्तिके लिये मैं किसी पुण्यबलसे सम्पन्न महापुरुषकी कन्याके साथ विवाहका विचार कर रहा था; किन्तु कहीं भी अपने लिये परम मंगलमयी कन्या नहीं पा सका। यह धर्मकी सुमुखी कन्या धर्माचारपरायणा है। यदि वास्तवमें यह पतिकी ही तलाशमें है तो मुझे ही स्वीकार करे। इसकी प्राप्तिके लिये मैं अदेय वस्तु भी दे सकता हूँ।'

रम्भा बोली—'द्विजश्रेष्ठ! आपको इसी प्रकार उदारतापूर्वक इसकी अभीष्ट वस्तु इसे देनी चाहिये। यह सदाके लिये आपकी धर्मपत्नी हो रही है; आप कभी इसका परित्याग न करें। इसके दोष-गुणोंपर कभी आपको ध्यान नहीं देना चाहिये। विप्रवर! इस विषयमें आप मुझे प्रत्यक्ष विश्वास दिलाइये। सत्यकी प्रतीति दिलानेवाला अपना हाथ इसके हाथमें दीजिये।' अंगने कहा—'एवमस्तु। निश्चय ही अपना हाथ मैंने इसे दे दिया।'

इस प्रकार सत्यका विश्वास करानेवाला सम्बन्ध करके अंगने सुनीथाको गान्धर्वविवाहकी प्रणालीके अनुसार ग्रहण किया। सुनीथाको उन्हें सौंपकर रम्भाके हृदयमें बड़ा हर्ष हुआ। वह अपनी सखीसे आज्ञा लेकर घरको चली गयी। दूसरी-दूसरी सखियोंने भी प्रसन्न होकर अपने-अपने घरकी राह ली। उन सब सहेलियोंके चले जानेपर द्विजश्रेष्ठ अंग अपनी प्यारी पत्नीके साथ विहार करने लगे। उसके गर्भसे उन्होंने एक सर्वलक्षण-सम्पन्न पुत्र उत्पन्न किया और उसका नाम वेन रखा। सुनीथाका वह महातेजस्वी बालक दिनोदिन बढ़ने लगा और वेद-शास्त्र तथा उपकारी धनुर्वेदका अध्ययन करके समस्त विद्याओंका पारगामी विद्वान् हो गया। क्योंकि वह बड़ा मेधावी था। अंगकुमार वेन सज्जनोचित आचारसे रहता था। वह क्षत्रियधर्मका पालन करने लगा। वैवस्वत मन्वन्तर आनेपर संसारकी सारी प्रजा राजाके बिना निरन्तर कष्ट पाने लगी। उस समय सब लोगोंने वेनको ही सब लक्षणोंसे सम्पन्न देखा। तब श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने उन्हें प्रजापतिके पदपर अभिषिक्त कर दिया। तत्पश्चात् समस्त ऋषि अपने-अपने तपोवनमें चले गये। उन सबके जानेके पश्चात् अकेले वेन ही राज्यका पालन करने लगे। इस प्रकार वेन भूमण्डलके प्रजापालक हुए। उनके समयमें सब लोग सुखसे जीवन बिताते थे। प्रजा उनके धर्मसे प्रसन्न रहती थी। वेनके राज्यका प्रभाव ऐसा ही था। उनके शासनकालमें सर्वत्र धर्मका प्रभाव छा रहा था।

छद्मवेषधारी पुरुषके द्वारा जैन-धर्मका वर्णन, उसके बहकावेमें आकर वेनकी पापमें प्रवृत्ति और सप्तर्षियोंद्वारा उसकी भुजाओंका मन्थन

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! जब इस प्रकार राजा वेनकी उत्पत्ति ही महात्मा पुरुषसे हुई थी, तब उन्होंने धर्ममय आचरणका परित्याग करके पापमें कैसे मन लगाया?

सूतजी बोले—वेनकी जिस प्रकार पापाचारमें प्रवृत्ति हुई, वह सब बात मैं बता रहा हूँ। धर्मके ज्ञाता प्रजापालक राजा वेन जब शासन कर रहे थे, उस समय कोई पुरुष छद्मवेष धारण किये उनके दरबारमें आया। उसका नंग-धड़ंग रूप, विशाल शरीर और सफेद सिर था। वह बड़ा कान्तिमान् जान पड़ता था। काँखमें मोरपंखकी बनी हुई मार्जनी (ओघा) दबाये और एक हाथमें नारियलका जलपात्र (कमण्डलु) धारण किये वह वेद-शास्त्रोंको दूषित करनेवाले शास्त्रका पाठ कर रहा था। जहाँ महाराज वेन बैठे थे, उसी स्थानपर वह बड़ी उतावलीके साथ पहुँचा। उसे आया देख वेनने पूछा—'आप कौन हैं, जो ऐसा अद्भुत रूप धारण किये यहाँ आये हैं? मेरे सामने सब बातें सच-सच बताइये।' वेनका वचन सुनकर उस पुरुषने उत्तर दिया—'तुम इस प्रकार धर्मके पचड़ेमें पड़कर जो राज्य चला रहे हो, वह सब व्यर्थ है। तुम बड़े मूढ़ जान पड़ते हो। [मेरा परिचय जानना चाहते हो तो सुनो] मैं देवताओंका परम पूज्य हूँ। मैं ही ज्ञान, मैं ही सत्य और मैं ही सनातन ब्रह्म हूँ। मोक्ष भी मैं ही हूँ। मैं ब्रह्माजीके देहसे उत्पन्न सत्यप्रतिज्ञ पुरुष हूँ। मुझे जिनस्वरूप जानो। सत्य और धर्म ही मेरा कलेवर है। ज्ञानपरायण योगी मेरे ही स्वरूपका ध्यान करते हैं।

वेनने पूछा—आपका धर्म कैसा है? आपका शास्त्र क्या है? तथा आप किस आचारका पालन करते हैं? ये सब बातें बताइये।

जिन बोला—जहाँ 'अर्हन्' देवता, निर्ग्रन्थ गुरु और दयाको ही परम धर्म बताया गया है, वहीं मोक्ष देखा जाता है। यही जैन-दर्शन है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। अब मैं अपने आचार बतला रहा हूँ। मेरे मतमें यजन-याजन और वेदाध्ययन नहीं है । सन्ध्योपासन भी नहीं है। तपस्या, दान, स्वधा (श्राद्ध) और स्वाहा (अग्निहोत्र)-का भी परित्याग किया गया है। हव्य-कव्य आदिकी भी आवश्यकता नहीं है। यज्ञ-यागादि क्रियाओंका भी अभाव है। पितरोंका तर्पण, अतिथियोंका सत्कार तथा बलिवैश्वदेव आदि कर्मोंका भी विधान नहीं किया गया है। केवल 'अर्हन्' का ध्यान ही उत्तम माना गया है। जैन-मार्गमें प्राय: ऐसे धर्मका आचरण ही दृष्टिगोचर होता है।

प्राणियोंका यह शरीर पाँचों तत्त्वोंसे ही बनता और परिपुष्ट होता है। आत्मा वायुस्वरूप है; अत: श्राद्ध और यज्ञ आदि क्रियाओंकी कोई आवश्यकता नहीं है। जैसे पानीमें जल-जन्तुओंका समागम होता है तथा जिस प्रकार बुलबुले पैदा होते और विलीन हो जाते हैं, उसी प्रकार संसारमें समस्त प्राणियोंका आवागमन होता

रहता है। अन्तकाल आनेपर वायुरूप आत्मा शरीर छोड़कर चला जाता है और पंचतत्त्व पाँचों भूतोंमें मिल जाते हैं। फिर मोहसे मुग्ध मनुष्य परस्पर मिलकर मरे हुए जीवके लिये श्राद्ध आदि पारलौकिक कृत्य करते हैं। मोहवश क्षयाह तिथिको पितरोंका तर्पण करते हैं। भला, मरा हुआ मनुष्य कहाँ रहता है? किस रूपमें आकर श्राद्ध आदिका उपभोग करता है? मिष्टान्न खाकर तो ब्राह्मणलोग तृप्त होते हैं। [मृतात्माको क्या मिलता है?] इसी प्रकार दानकी भी आवश्यकता नहीं जान पड़ती। दान क्यों दिया जाता है? दान देना उत्कृष्ट कर्म नहीं समझना चाहिये। यदि अन्नका भोजन किया जाय तो इसीमें उसकी सार्थकता है। यदि दान ही देना हो तो दयाका दान देना चाहिये, दयापरायण होकर प्रतिदिन जीवोंकी रक्षा करनी चाहिये। ऐसा करनेवाला पुरुष चाण्डाल हो या शूद्र, उसे ब्राह्मण ही कहा गया है। दानका भी कोई फल नहीं है, इसलिये दान नहीं देना चाहिये। जैसा श्राद्ध, वैसा दान; दोनोंका एक ही उद्देश्य है। केवल भगवान् जिनका बताया हुआ धर्म ही भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला है। मैं तुम्हारे सामने उसीका वर्णन करता हूँ। वह बहुत पुण्यदायक है। पहले शान्तचित्तसे सबपर दया करनी चाहिये। फिर हृदयसे—मनके शुद्ध भावसे चराचरस्वरूप एकमात्र जिनकी आराधना करनी चाहिये। उन्हींको नमस्कार करना उचित है। नृपश्रेष्ठ वेन! माता-पिताके चरणोंमें भी कभी मस्तक नहीं झुकाना चाहिये, फिर औरोंकी तो बात ही क्या है?

वेनने पूछा—ये ब्राह्मण तथा आचार्यगण गंगा आदि नदियोंको पुण्यतीर्थ बतलाते हैं; इनका कहना है, ये तीर्थ महान् पुण्य प्रदान करनेवाले हैं। इसमें कहाँतक सत्य है, यह बतानेकी कृपा कीजिये।

जिन बोला—महाराज! आकाशसे बादल एक ही समय जो पानी बरसाते हैं, वह पृथ्वी और पर्वत—सभी स्थानोंमें गिरता है। वही बहकर नदियोंमें एकत्रित होता है और वहाँसे सर्वत्र जाता है। नदियाँ तो जल बहानेवाली हैं ही, उनमें तीर्थ कैसा। सरोवर और समुद्र—सभी जलके आश्रय हैं, पृथ्वीको धारण करनेवाले पर्वत भी केवल पत्थरकी राशि हैं, इनमें तीर्थ नामकी कोई वस्तु नहीं है। यदि समुद्र आदिमें स्नान करनेसे सिद्धि मिलती है तो मछलियोंको सबसे पहले सिद्ध होना चाहिये; पर ऐसा नहीं देखा जाता। राजेन्द्र! एकमात्र भगवान् जिन ही सर्वमय हैं, उनसे बढ़कर न कोई धर्म है न तीर्थ। संसारमें जिन ही सर्वश्रेष्ठ हैं; अतः उन्हींका ध्यान करो, इससे तुम्हें नित्य सुखकी प्राप्ति होगी।

इस प्रकार उस पुरुषने वेद, दान, पुण्य तथा यज्ञरूप समस्त धर्मोंकी निन्दा करके अंगकुमार राजा वेनको पापके भावोंद्वारा बहुत कुछ समझाया-बुझाया। उसके इस प्रकार समझानेपर वेनके हृदयमें पापभावका उदय हो गया। वेन उसकी बातोंसे मोहित हो गया। उसने उसके चरणोंमें प्रणाम करके वैदिक धर्म तथा सत्य-धर्म आदिकी क्रियाओंको त्याग दिया। पापात्मा वेनके शासनसे संसार पापमय हो गया—उसमें सब तरहके पाप होने लगे। वेनने वेद, यज्ञ और उत्तम धर्मशास्त्रोंका अध्ययन बंद करा दिया। उसके शासनमें ब्राह्मणलोग न दान करने पाते थे न स्वाध्याय। इस प्रकार धर्मका सर्वथा लोप हो गया और सब ओर महान् पाप छा गया। वेन अपने पिता अंगके मना करनेपर भी उनकी आज्ञाके विपरीत ही आचरण करता था। वह दुरात्मा न पिताके चरणोंमें प्रणाम करता था न माताके। वह पुण्य, तीर्थ-स्नान और दान आदि भी नहीं करता था। उसके महायशस्वी पिताने अपने भाव और स्वरूपपर बहुत कालतक विचार किया, किन्तु किसी तरह उनकी समझमें यह बात नहीं आयी कि वेन पापी कैसे हो गया।

तदनन्तर एक दिन सप्तर्षि अंगकुमार वेनके पास आये और उसे आश्वासन देते हुए बोले—'वेन! दुःसाहस न करो, तुम यहाँ समस्त प्रजाके रक्षक बनाये गये हो; यह सारा जगत् तुमपर ही अवलम्बित है, धर्माधर्मरूप सम्पूर्ण विश्वका भार तुम्हारे ही ऊपर है। अतः पाप-कर्म छोड़कर धर्मका आचरण करो।'

सप्तर्षियोंके यों कहनेपर वेन हँसकर बोला—'मैं ही परम धर्म हूँ और मैं ही सनातन देवता अर्हन् हूँ। धाता,
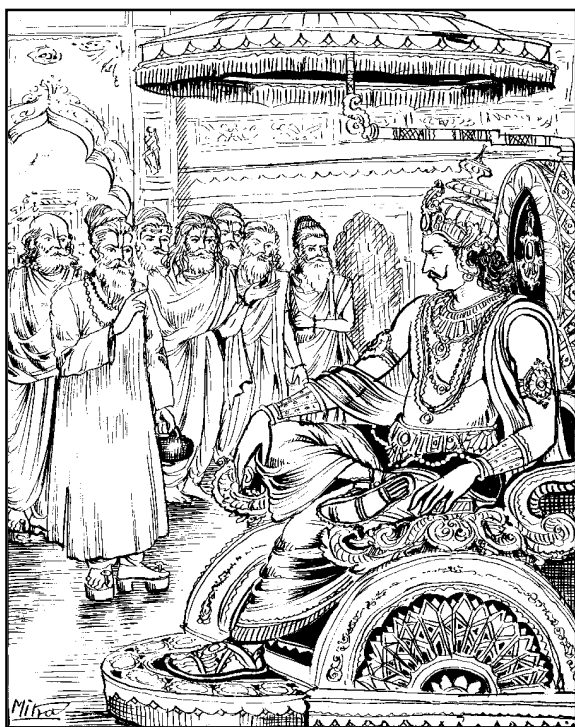
रक्षक और सत्य भी मैं ही हूँ। मैं परम पुण्यमय सनातन जैनधर्म हूँ। ब्राह्मणो! मुझ धर्मरूपी देवताका ही तुमलोग अपने कर्मोंद्वारा भजन करो।'

ऋषि बोले—राजेन्द्र! ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—ये तीन वर्ण द्विजाति कहलाते हैं। इन सभी वर्णोंके लिये सनातन श्रुति ही परम प्रमाण है। समस्त प्राणी वैदिक आचारसे ही रहते हैं और उसीसे जीविका चलाते हैं। राजाके पुण्यसे प्रजा सुखपूर्वक जीवन-निर्वाह करती है और राजाके पापसे उसका नाश हो जाता है; इसलिये तुम सत्यका आचरण करो। यह जैनधर्म सत्ययुग, त्रेता और द्वापरका धर्म नहीं है; कलियुगका प्रवेश होनेपर ही कुछ मनुष्य इसका आश्रय लेंगे। जैनधर्म ग्रहण करके सब मनुष्य पापसे मोहित हो जायँगे; वे वैदिक आचारका त्याग करके पाप बटोरेंगे। भगवान् श्रीगोविन्द सब पापोंके हरनेवाले हैं। वे ही कलियुगमें पापोंका संहार करेंगे। पापियोंके एकत्रित होनेपर म्लेच्छोंका नाश करनेके लिये साक्षात् भगवान् श्रीविष्णु ही कल्किरूपमें अवतीर्ण होंगे, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। अतः वेन! तुम कलियुगके व्यवहारको त्याग दो और पुण्यका आश्रय लो।

वेनने कहा—ब्राह्मणो! मैं ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ हूँ, विश्वका ज्ञान मेरा ही ज्ञान है। जो मेरी आज्ञाके विपरीत बर्ताव करता है, वह निश्चय ही दण्डका पात्र है।

पापबुद्धि राजा वेनको बहुत बढ़-बढ़कर बातें करते देख ब्रह्माजीके पुत्र महात्मा सप्तर्षि कुपित हो उठे। उनके शापके भयसे वेन एक बाँबीमें घुस गया; किन्तु वे ब्रह्मर्षि उस क्रूर पापीको वहाँसे बलपूर्वक पकड़ लाये और क्रोधमें भरकर राजाके बायें हाथका मन्थन करने लगे। उससे एक नीच जातिका मनुष्य पैदा हुआ, जो बहुत ही नाटा, काला और भयंकर था। वह निषादों और विशेषतः म्लेच्छोंका धारण-पोषण करनेवाला राजा हुआ। तत्पश्चात् ऋषियोंने दुरात्मा वेनके दाहिने हाथका मन्थन किया। उससे महात्मा राजा पृथुका जन्म हुआ, जिन्होंने वसुन्धराका दोहन किया था। उन्हींके पुण्य-प्रसादसे राजा वेन धर्म और अर्थका ज्ञाता हुआ।

वेनकी तपस्या और भगवान् श्रीविष्णुके द्वारा उसे दान-तीर्थ आदिका उपदेश

सूतजी कहते हैं—द्विजवरो! ऋषियोंके पुण्यमय संसर्गसे, उनके साथ वार्तालाप करनेसे तथा उनके द्वारा शरीरका मन्थन होनेसे, वेनका पाप निकल गया। तत्पश्चात् उसने नर्मदाके दक्षिण तटपर रहकर तपस्या आरम्भ की। तृणविन्दु ऋषिके पापनाशक आश्रमपर निवास करते हुए वेनने काम-क्रोधसे रहित हो सौ वर्षोंसे कुछ अधिक कालतक तप किया। राजा वेन निष्पाप हो गया था। अतः उसकी तपस्यासे प्रसन्न होकर शंख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् श्रीविष्णुने उसे प्रत्यक्ष दर्शन दिया और प्रसन्नतापूर्वक कहा—'राजन्! तुम मुझसे कोई उत्तम वर माँगो।'

वेनने कहा—देवेश्वर! यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे

यह उत्तम वर दीजिये। मैं पिता और माताके साथ इसी शरीरसे आपके परमपदको प्राप्त करना चाहता हूँ। देव! आपके ही तेजसे आपके परमधाममें जाना चाहता हूँ।

भगवान् श्रीविष्णु बोले—महाभाग! पूर्वकालमें तुम्हारे महात्मा पिता अंगने भी मेरी आराधना की थी। उसी समय मैंने उन्हें वरदान दिया था कि तुम अपने पुण्यकर्मसे मेरे परम उत्तम धामको प्राप्त होगे। वेन! मैं तुम्हें पहलेका वृत्तान्त बतला रहा हूँ। तुम्हारी माता सुनीथाको बाल्यकालमें सुशंखने कुपित होकर शाप दिया था। तदनन्तर तुम्हारा उद्धार करनेकी इच्छासे मैंने ही राजा अंगको वरदान दिया कि 'तुम्हें सुयोग्य पुत्रकी प्राप्ति होगी।' गुणवत्सल! तुम्हारे पितासे तो मैं ऐसा कह ही चुका था, इस समय तुम्हारे शरीरसे भी मैं ही [पृथुके रूपमें] प्रकट होकर लोकका पालन कर रहा हूँ। पुत्र अपना ही रूप होता है—यह श्रुति सत्य है। अतः राजन्! मेरे वरदानसे तुम्हें उत्तम गति मिलेगी। अब तुम एकमात्र दान-धर्मका अनुष्ठान करो। दान ही सबसे श्रेष्ठ धर्म है; इसलिये तुम दान दिया करो। दानसे पुण्य होता है, दानसे पाप नष्ट हो जाता है, उत्तम दानसे कीर्ति होती है और सुख मिलता है। जो श्रद्धायुक्त चित्तसे सुपात्र ब्राह्मणको गौ, भूमि, सोने और अन्न आदिका महादान देता है, वह अपने मनसे जिस-जिस वस्तुकी इच्छा करता है, वह सब मैं उसे देता हूँ।

वेनने कहा—जगन्नाथ! मुझे दानोपयोगी कालका लक्षण बतलाइये, साथ ही तीर्थका स्वरूप और पात्रके उत्तम लक्षणका भी वर्णन कीजिये। दानकी विधिको विस्तारके साथ बतलानेकी कृपा कीजिये। मेरे मनमें यह सब सुननेकी बड़ी श्रद्धा है।

भगवान् श्रीविष्णु बोले—राजन्! मैं दानका समय बताता हूँ। महाराज! नित्य, नैमित्तिक और काम्य—ये दानकालके तीन भेद हैं। चौथा भेद प्रायिक (मृत्यु) सम्बन्धी कहलाता है। भूपाल! मेरे अंशभूत सूर्यको उदय होते देख जो जलमात्र भी अर्पण करता है, उसके पुण्यवर्द्धक नित्यकर्मकी कहाँतक प्रशंसा की जाय। उस उत्तम बेलाके प्राप्त होनेपर जो श्रद्धा और भक्तिके साथ स्नान करता तथा पितरों और देवताओंका पूजन करके दान देता है, जो अपनी शक्ति और प्रभावके अनुसार दयार्द्र-चित्तसे अन्न-जल, फल-फूल, वस्त्र, पान, आभूषण, सुवर्ण आदि वस्तुएँ दान करता है, उसका पुण्य अनन्त होता है। राजन्! मध्याह्न और तीसरे पहरमें भी जो मेरे उद्देश्यसे खान-पान आदि वस्तुएँ दान करता है, उसके पुण्यका भी अन्त नहीं है। अतः जो अपना कल्याण चाहता है, उस पुरुषको तीनों समय निश्चय ही दान करना चाहिये। अपना कोई भी दिन दानसे खाली नहीं जाने देना चाहिये। राजन्! दानके प्रभावसे मनुष्य बहुत बड़ा बुद्धिमान्, अधिक सामर्थ्यशाली, धनाढ्य और गुणवान् होता है। यदि एक पक्ष या एक मासतक मनुष्य अन्नका दान नहीं करता तो मैं उसे भी उतने ही समयतक भूखा रखता हूँ। उत्तम दान न देनेवाला मनुष्य अपने मलका भक्षण करता है। मैं उसके शरीरमें ऐसा रोग उत्पन्न कर देता हूँ, जिससे उसके सब भोगोंका निवारण हो जाता है। जो तीनों कालोंमें ब्राह्मणों और देवताओंको दान नहीं देता तथा स्वयं ही मिष्टान्न खाता है, उसने महान् पाप किया है। महाराज! शरीरको सुखा देनेवाले उपवास आदि भयंकर प्रायश्चित्तोंके द्वारा उसको अपने देहका शोषण करना चाहिये।

नरश्रेष्ठ! अब मैं तुम्हारे सामने नैमित्तिक पुण्यकालका वर्णन करता हूँ, मन लगाकर सुनो। महाराज! अमावास्या, पूर्णिमा, एकादशी, संक्रान्ति, व्यतीपात और वैधृति नामक योग तथा माघ, आषाढ़, वैशाख और कार्तिककी पूर्णिमा, सोमवती अमावास्या, मन्वादि एवं युगादि तिथियाँ, गजच्छाया (आश्विन कृष्ण त्रयोदशी) तथा पिताकी क्षयाह तिथि दानके नैमित्तिक काल बताये गये हैं। नृपश्रेष्ठ! जो मेरे उद्देश्यसे भक्तिपूर्वक ब्राह्मणको दान देता है, उसे मैं निश्चयपूर्वक महान् सुख और स्वर्ग, मोक्ष आदि बहुत कुछ प्रदान करता हूँ।

अब दानका फल देनेवाले काम्य-कालका वर्णन करता हूँ। समस्त व्रतों और देवता आदिके निमित्त जब सकामभावसे दान दिया जाता है, उसे श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने

दानका काम्यकाल बताया है। राजन्! मैं तुमसे आभ्युदयिक कालका भी वर्णन करता हूँ। सम्पूर्ण शुभकर्मोंका अवसर, उत्तम वैवाहिक उत्सव, नवजात पुत्रके जातकर्म आदि संस्कार तथा चूड़ाकर्म और उपनयन आदिका समय, मन्दिर, ध्वजा, देवता, बावली, कुआँ, सरोवर और बगीचे आदिकी प्रतिष्ठाका शुभ अवसर—इन सबको आभ्युदयिक काल कहा गया है। उस समय जो दान दिया जाता है, वह सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाला होता है।

नृपश्रेष्ठ! अब मैं पाप और पीड़ाका निवारण करनेवाले अन्य कालका वर्णन करता हूँ। मृत्युकाल प्राप्त होनेपर अपने शरीरके नाशको समझकर दान देना चाहिये। वह दान यमलोकके मार्गमें सुख पहुँचानेवाला होता है। महाराज! नित्य, नैमित्तिक और काम्याभ्युदयिक कालसे भिन्न अन्त्यकाल (मृत्युसम्बन्धी काल)-का तुम्हें परिचय दिया गया। ये सभी काल अपने कर्मोंका फल देनेवाले बताये गये हैं।

राजन्! अब मैं तुम्हें तीर्थका लक्षण बताता हूँ। उत्तम तीर्थोंमें ये गंगाजी बड़ी पावन जान पड़ती हैं। इनके सिवा सरस्वती, नर्मदा, यमुना, तापी (ताप्ती), चर्मण्वती, सरयू, घाघरा और वेणा नदी भी पुण्यमयी तथा पापोंका नाश करनेवाली हैं। कावेरी, कपिला, विशाला, गोदावरी और तुंगभद्रा—ये भी जगत्को पवित्र करनेवाली मानी गयी हैं। भीमरथी नदी सदा पापोंको भय देनेवाली बतायी गयी है। वेदिका, कृष्णगंगा तथा अन्यान्य श्रेष्ठ नदियाँ भी उत्तम हैं। पुण्यपर्वके अवसरपर स्नान करनेके लिये इनसे सम्बद्ध अनेक तीर्थ हैं। गाँव अथवा जंगलमें—जहाँ भी नदियाँ हों, सर्वत्र ही वे पावन मानी गयी हैं। अतः वहाँ जाकर स्नान, दान आदि कर्म करने चाहिये। यदि नदियोंके तीर्थका नाम ज्ञात न हो तो उसका 'विष्णुतीर्थ' नाम रख लेना चाहिये। सभी तीर्थोंमें मैं ही देवता हूँ। तीर्थ भी मुझसे भिन्न नहीं हैं—यह निश्चित बात है। जो साधक तीर्थ-देवताओंके पास जाकर मेरे ही नामका उच्चारण करता है, उसे मेरे नामके अनुसार ही पुण्य-फल प्राप्त होता है। नृपनन्दन! अज्ञात तीर्थों और देवताओंकी संनिधिमें स्नान-दान आदि करते हुए मेरे ही नामका उच्चारण करना चाहिये। विधाताने तीर्थोंका नाम ही ऐसा रखा है।

भूमण्डलपर सात सिन्धु परम पवित्र और सर्वत्र स्थित हैं। जहाँ कहीं भी उत्तम तीर्थ प्राप्त हो, वहाँ स्नान-दान आदि कर्म करना चाहिये। उत्तम तीर्थोंके प्रभावसे अक्षय फलकी प्राप्ति होती है। राजन्! मानस आदि सरोवर भी पावन तीर्थ बताये गये हैं तथा जो छोटी-छोटी नदियाँ हैं, उनमें भी तीर्थ प्रतिष्ठित है। कुएँको छोड़कर जितने भी खोदे हुए जलाशय हैं, उनमें तीर्थकी प्रतिष्ठा है। भूतलपर जो मेरु आदि पर्वत हैं, वे भी तीर्थरूप हैं। यज्ञभूमि, यज्ञ और अग्निहोत्रमें भी तीर्थकी प्रतिष्ठा है। शुद्ध श्राद्धभूमि, देवमन्दिर, होमशाला, वैदिक स्वाध्यायमन्दिर, घरका पवित्र-स्थान और गोशाला—ये सभी उत्तम तीर्थ हैं। जहाँ सोमयाजी ब्राह्मण निवास करता हो, वहाँ भी तीर्थकी प्रतिष्ठा है। जहाँ पवित्र बगीचे हों, जहाँ पीपल, ब्रह्मवृक्ष (पाकर) और बरगदका वृक्ष हो तथा जहाँ अन्य जंगली वृक्षोंका समुदाय हो, उन सब स्थानोंपर तीर्थका निवास है। इस प्रकार इन तीर्थोंका वर्णन किया गया। जहाँ पिता और माता रहते हैं, जहाँ पुराणोंका पाठ होता है, जहाँ गुरुका निवास है तथा जहाँ सती स्त्री रहती है वह स्थान निस्संदेह तीर्थ है। जहाँ श्रेष्ठ पिता और सुयोग्य पुत्र निवास करते हैं, वहाँ भी तीर्थ है। ये सभी स्थान तीर्थ माने गये हैं।

महाप्राज्ञ! अब तुम दानके उत्तम पात्रका लक्षण सुनो। दान श्रद्धापूर्वक देना चाहिये। उत्तम कुलमें उत्पन्न, वेदाध्ययनमें तत्पर, शान्त, जितेन्द्रिय, दयालु, शुद्ध, बुद्धिमान्, ज्ञानवान्, देवपूजापरायण, तपस्वी, विष्णुभक्त, ज्ञानी, धर्मज्ञ, सुशील और पाखण्डियोंके संगसे रहित ब्राह्मण ही दानका श्रेष्ठ पात्र है। ऐसे पात्रको पाकर अवश्य दान देना चाहिये। अब मैं दूसरे दान-पात्रोंको बताता हूँ। उपर्युक्त गुणोंसे युक्त बहिनके पुत्र (भानजे)-को तथा पुत्रीके पुत्र (दौहित्र)-को भी दानका उत्तम पात्र समझो। इन्हीं भावोंसे युक्त दामाद, गुरु और यज्ञकी

दीक्षा लेनेवाला पुरुष भी उत्तम पात्र है। नरश्रेष्ठ! ये दान देनेयोग्य श्रेष्ठ पात्र बताये गये हैं। जो वेदोक्त आचारसे युक्त हो, वह भी दान-पात्र है। धूर्त और काने ब्राह्मणको दान न दे। जिसकी स्त्री अन्याययुक्त दुष्कर्ममें प्रवृत्त हो, जो स्त्रीके वशीभूत रहता हो, उसे दान देना निषिद्ध है। चोरको भी दान नहीं देना चाहिये। उसे दान देनेवाला मनुष्य तत्काल चोरके समान हो जाता है। अत्यन्त जड और विशेषतः शठ ब्राह्मणको भी दान देना उचित नहीं है। वेद-शास्त्रका ज्ञाता होनेपर भी जो सदाचारसे रहित हो, वह श्राद्ध और दानमें सम्मिलित करनेयोग्य कदापि नहीं है। श्रद्धापूर्वक उत्तम कालमें, उत्तम तीर्थमें और उत्तम पात्रको दान देनेसे उत्तम फल मिलता है। राजन्! संसारमें प्राणियोंके लिये श्रद्धाके समान पुण्य, श्रद्धाके समान सुख और श्रद्धाके समान तीर्थ नहीं है।* नृपश्रेष्ठ! श्रद्धा-भावसे युक्त होकर मनुष्य पहले मेरा स्मरण करे, उसके बाद सुपात्रके हाथमें द्रव्यका दान दे। इस प्रकार विधिवत् दान करनेका जो अनन्त फल है, उसे मनुष्य पा जाता है और मेरी कृपासे सुखी होता है।

श्रीविष्णुद्वारा नैमित्तिक और आभ्युदयिक आदि दानोंका वर्णन और पत्नीतीर्थके प्रसंगमें सती सुकलाकी कथा

भगवान् श्रीविष्णु कहते हैं—नृपश्रेष्ठ! अब मैं पुनः नैमित्तिक दानका वर्णन करता हूँ। जो सत्पात्रको हाथी, घोड़ा और रथ दान करता है, वह भृत्योंसहित पुण्यमय प्रदेशका राजा होता है। राजा होनेके साथ ही वह धर्मात्मा, विवेकी, बलवान्, उत्तम बुद्धिसे युक्त, सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये अजेय और महान् तेजस्वी होता है। महाराज! जो महान् पर्व आनेपर भूमिदान अथवा गोदान करता है, वह सब भोगोंका अधीश्वर होता है। जो पर्व आनेपर तीर्थमें गुप्त दान देता है, उसे शीघ्र ही अक्षय निधियोंकी प्राप्ति होती है। जो तीर्थोंमें महापर्वके प्राप्त होनेपर ब्राह्मणको सुन्दर वस्त्र और सुवर्णका महादान देता है, उसके बहुत-से सद्‌गुणी और वेदोंके पारगामी पुत्र उत्पन्न होते हैं। वे सभी आयुष्मान्, पुत्रवान्, यशस्वी, पुण्यात्मा, यज्ञ करनेवाले तथा तत्त्वज्ञानी होते हैं। महामते! दान करनेवालेको सुख, पुण्य एवं धनकी प्राप्ति होती है। महाराज! कपिला गौका दान करनेवाले पुरुष महान् सुख भोगते हैं; ब्रह्माकी आयुपर्यन्त वे भी ब्रह्मलोकमें निवास करते हैं। सुशील ब्राह्मणको वस्त्रसहित सुवर्णका दान देकर मनुष्य अग्निके समान तेजस्वी होता है और अपनी इच्छाके अनुसार वैकुण्ठ-धाममें निवास करता है।

अब आभ्युदयिक दानका वर्णन करता हूँ। नृपश्रेष्ठ! यज्ञ आदिमें जो दान दिया जाता है, वह यदि शुद्धभावसे दिया गया हो तो उससे मनुष्यकी बुद्धि बढ़ती है तथा दाताको कभी दुःख नहीं उठाना पड़ता। वह जीवनभर सुख भोगता है और मृत्युके पश्चात् दिव्य गतिको प्राप्त होकर इन्द्रलोकके भोगोंका अनुभव करता है। इतना ही नहीं, वह हजार कल्पोंतकके लिये अपने कुलको स्वर्गमें ले जाता है। अब दूसरे प्रकारका दान बताता हूँ। शरीरको बुढ़ापेसे पीड़ित और क्षीण जानकर मनुष्यको [अपने कल्याणके लिये] दान अवश्य करना चाहिये, उसे किसीकी भी आशा नहीं रखनी चाहिये। 'मेरे मर जानेपर ये मेरे पुत्र तथा अन्यान्य स्वजन-सम्बन्धी, बन्धु-बान्धव कैसे रहेंगे; मेरे बिना मेरे मित्रोंकी क्या दशा होगी?' इत्यादि बातें सोचकर उनके मोहसे मुग्ध हुआ मनुष्य कुछ भी दान नहीं कर पाता। ऐसा जीव यमलोकके मार्गमें पहुँचकर बहुत दुःखी हो जाता है; वह भूख-प्याससे व्याकुल तथा नाना प्रकारके दुःखोंसे पीड़ित रहता है। संसारमें कोई भी किसीका नहीं है; अतः जीते-जी स्वयं ही अपने लिये दान करना

* नास्ति श्रद्धासमं पुण्यं नास्ति श्रद्धासमं सुखम्। नास्ति श्रद्धासमं तीर्थं संसारे प्राणिनां नृप॥ (३९।७८)

चाहिये। अन्न, जल, सोना, बछड़ेसहित उत्तम गौ, भूमि तथा नाना प्रकारके फल दान करने चाहिये। यदि अधिक शुभ फलकी इच्छा हो तो पैरोंको आराम देनेवाले जूते भी दान देने चाहिये।

वेनने पूछा—भगवन्! पुत्र, पत्नी, माता, पिता और गुरु—ये सब तीर्थ कैसे हैं—इस विषयका विस्तारके साथ वर्णन कीजिये।

भगवान् श्रीविष्णु बोले—[राजन्! पहले इस बातको सुनो कि पत्नी कैसे तीर्थ है।] काशी नामकी एक बहुत बड़ी पुरी है, जो गंगासे सटकर बसी होनेके कारण बहुत सुन्दर दिखायी देती है। उसमें एक वैश्य रहते थे, जिनका नाम था कृकल। उनकी पत्नी परम साध्वी तथा उत्तम व्रतका पालन करनेवाली थी। वह सदा धर्माचरणमें रत और पतिव्रता थी। उसका नाम था सुकला। सुकलाके अंग पवित्र थे। वह सुयोग्य पुत्रोंकी जननी, सुन्दरी, मंगलमयी, सत्यवादिनी, शुभा और शुद्ध स्वभाववाली थी। उसकी आकृति देखनेमें बड़ी मनोहर थी। व्रतोंका पालन करना उसे अत्यन्त प्रिय था। इस प्रकार वह मनोहर मुसकानवाली सुन्दरी अनेक गुणोंसे युक्त थी। वे वैश्य भी उत्तम वक्ता, धर्मज्ञ, विवेक-सम्पन्न और गुणी थे। वैदिक तथा पौराणिक धर्मोंके श्रवणमें उनकी बड़ी लगन थी। उन्होंने तीर्थयात्राके प्रसंगमें यह बात सुनी थी कि 'तीर्थोंका सेवन बहुत पुण्यदायक है, वहाँ जानेसे पुण्यके साथ ही मनुष्यका कल्याण भी होता है।' इस बातपर उनके मनमें श्रद्धा तो थी ही, ब्राह्मणों और व्यापारियोंका साथ भी मिल गया। इससे वे धर्मके मार्गपर चल दिये। उन्हें जाते देख उनकी पतिव्रता पत्नी पतिके स्नेहसे मुग्ध होकर बोली।

सुकलाने कहा—प्राणनाथ! मैं आपकी धर्मपत्नी हूँ, अतः आपके साथ रहकर पुण्य करनेका मेरा अधिकार है। मैं आपके मार्गपर चलती हूँ। इस सद्भावके कारण मैं कभी आपको अपनेसे अलग नहीं कर सकती। आपकी छायाका आश्रय लेकर मैं पातिव्रत्यके उत्तम व्रतका पालन करूँगी, जो नारियोंके पापका नाशक और उन्हें सद्गति प्रदान करनेवाला है। जो स्त्री पतिपरायणा होती है, वह संसारमें पुण्यमयी कहलाती है। युवतियोंके लिये पतिके सिवा दूसरा कोई ऐसा तीर्थ नहीं है, जो इस लोकमें सुखद और परलोकमें स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला हो। साधुश्रेष्ठ! स्वामीके दाहिने चरणको प्रयाग समझिये और बायेंको पुष्कर। जो स्त्री ऐसा मानती है तथा इसी भावनाके अनुसार पतिके चरणोदकसे स्नान करती है, उसे उन तीर्थोंमें स्नान करनेका पुण्य प्राप्त होता है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि स्त्रियोंके लिये पतिके चरणोदकका अभिषेक प्रयाग और पुष्करतीर्थमें स्नान करनेके समान है। पति समस्त तीर्थोंके समान है। पति सम्पूर्ण धर्मोंका स्वरूप है। यज्ञकी दीक्षा लेनेवाले पुरुषको यज्ञोंके अनुष्ठानसे जो पुण्य प्राप्त होता है, वही पुण्य साध्वी स्त्री अपने पतिकी पूजा करके तत्काल प्राप्त कर लेती है।* अतः प्रियतम! मैं भी आपकी सेवा करती हुई तीर्थोंमें चलूँगी और आपकी ही छायाका अनुसरण करती हुई लौट आऊँगी।

कृकलने अपनी पत्नीके रूप, शील, गुण भक्ति और सुकुमारता देखकर बारंबार उसपर विचार किया—'यदि मैं अपनी पत्नीको साथ ले लूँ तो मैं तो अत्यन्त दुःखदायी दुर्गम मार्गपर भी चल सकूँगा, किन्तु वहाँ सर्दी और धूपके कारण इस बेचारीका तो हुलिया ही

---

* सव्यं पादं स्वभर्तुश्च प्रयागं विद्धि सत्तम । वामं च पुष्करं तस्य या नारी परिकल्पयेत्॥
तस्य पादोदकस्नानात्तत्पुण्यं परिजायते । प्रयागपुष्करसमं स्नानं स्त्रीणां न संशयः॥
सर्वतीर्थसमो भर्ता सर्वधर्ममयः पतिः । मखानां यजनात् पुण्यं यद् वै भवति दीक्षिते।
तत् पुण्यं समवाप्नोति भर्तुश्चैव हि साम्प्रतम्॥
(४१।१३—१५)

बिगड़ जायगा। रास्तेमें कठोर पत्थरोंसे ठोकर खाकर इसके कोमल चरणोंको बड़ी पीड़ा होगी। उस अवस्थामें इसका चलना असम्भव हो जायगा। भूख-प्याससे जब इसके शरीरको कष्ट पहुँचेगा तो न जाने इसकी क्या दशा होगी। यह सदा मुझे प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय है तथा नित्य-निरन्तर मेरे गार्हस्थ्यधर्मका यही एक आधार है। यह बाला यदि मर गयी तो मेरा तो सर्वनाश ही हो जायगा। यही मेरे जीवनका अवलम्बन है, यही मेरे प्राणोंकी अधीश्वरी है। अत: मैं इसे तीर्थोंमें नहीं ले जाऊँगा, अकेला ही यात्रा करूँगा।'

यह सोचकर उन्होंने अपनी पत्नीसे कहा—मैं तेरा कभी त्याग नहीं करूँगा। पता दिये बिना ही वे चुपकेसे साथियोंके साथ चले गये। महाभाग कृकल बड़े पुण्यात्मा थे; उनके चले जानेपर सुन्दरी सुकला देवाराधनकी बेलामें पुण्यमय प्रभातके समय जब सोकर उठी, तब उसने स्वामीको घरमें नहीं देखा। फिर तो वह हड़बड़ाकर उठ बैठी और अत्यन्त शोकसे पीड़ित होकर रोने लगी। वह बाला अपने पतिके साथियोंके पास जा-जाकर पूछने लगी—'महाभागगण! आपलोग मेरे बन्धु हैं, मेरे प्राणनाथ कृकल मुझे छोड़कर कहीं चले गये हैं; यदि आपने उन्हें देखा हो तो बताइये। जिन महात्माओंने मेरे पुण्यात्मा स्वामीको देखा हो, वे मुझे बतानेकी कृपा करें।' उसकी बात सुनकर जानकार लोगोंने उससे परम बुद्धिमान् कृकलके विषयमें इस प्रकार कहा—'शुभे! तुम्हारे स्वामी कृकल धार्मिक यात्राके प्रसंगसे तीर्थसेवनके लिये गये हैं। तुम शोक क्यों करती हो? भद्रे! वे बड़े-बड़े तीर्थोंकी यात्रा पूरी करके फिर लौट आयेंगे।'

राजन्! विश्वासी पुरुषोंके द्वारा इस प्रकार विश्वास दिलाये जानेपर सुकला पुन: अपने घरमें गयी और करुण स्वरसे फूट-फूटकर रोने लगी। वह पतिपरायणा नारी थी। उसने यह निश्चय कर लिया कि 'जबतक मेरे स्वामी लौटकर नहीं आयेंगे, तबतक मैं भूमिपर चटाई बिछाकर सोऊँगी। घी, तेल और दूध-दही नहीं खाऊँगी। पान और नमकका भी त्याग कर दूँगी। गुड़ आदि मीठी वस्तुओंको भी छोड़ दूँगी। जबतक मेरे स्वामीका पुन: यहाँ आगमन नहीं होगा, तबतक एक समय भोजन करूँगी अथवा उपवास करके रह जाऊँगी।'

इस प्रकार नियम लेकर सुकला बड़े दु:खसे दिन बिताने लगी। उसने एक वेणी धारण करना आरम्भ कर दिया। एक ही अँगियासे वह अपने शरीरको ढकने लगी। उसका वेष मलिन हो गया। वह एक ही मलिन वस्त्र धारण करके रहती और अत्यन्त दु:खित हो लंबी साँस खींचती हुई हाहाकार किया करती थी। विरहाग्निसे दग्ध होनेके कारण उसका शरीर काला पड़ गया। उसपर मैल जम गया। इस तरह दु:खमय आचारका पालन करनेसे वह अत्यन्त दुबली हो गयी। निरन्तर पतिके लिये व्याकुल रहने लगी। दिन-रात रोती रहती थी। रातको उसे कभी नींद नहीं आती थी और न भूख ही लगती थी।

सुकलाकी यह अवस्था देख उसकी सहेलियोंने आकर पूछा—'सखी सुकला! तुम इस समय रो क्यों रही हो? सुमुखि! हमें अपने दु:खका कारण बताओ।'

सुकला बोली—सखियो! मेरे धर्मपरायण स्वामी मुझे छोड़कर धर्म कमाने गये हैं। मैं निर्दोष, साध्वी, सदाचार-परायणा और पतिव्रता हूँ। फिर भी मेरे प्राणाधार मेरा त्याग करके तीर्थ-यात्रा कर रहे हैं; इसीसे मैं दु:खी हूँ। उनके वियोगसे मुझे बड़ी पीड़ा हो रही है। सखी! प्राण त्याग देना अच्छा है, किन्तु प्राणाधार स्वामीका त्यागना कदापि अच्छा नहीं है। प्रतिदिनका यह दारुण वियोग अब मुझसे नहीं सहा जाता। सखियो! यही मेरे दु:खका कारण है। नित्यके विरहसे ही मैं कष्ट पा रही हूँ।

सखियोंने कहा—बहिन! तुम्हारे पति तीर्थ-यात्राके लिये गये हैं। यात्रा पूरी होनेपर वे घर लौट आयेंगे। तुम व्यर्थ ही शोक कर रही हो। वृथा ही अपने शरीरको सुखा रही हो तथा अकारण ही भोगोंका परित्याग कर रही हो। अरी! मौजसे खाओ-पीयो; क्यों कष्ट उठाती हो। कौन किसका स्वामी, कौन किसके पुत्र और कौन किसके सगे-सम्बन्धी हैं? संसारमें कोई किसीका नहीं है। किसीके साथ भी नित्य सम्बन्ध नहीं है। बाले!

खाना-पीना और मौज उड़ाना, यही इस संसारका फल है। मनुष्यके मर जानेपर कौन इस फलका उपभोग करता है और कौन उसे देखने आता है।

सुकला बोली—सखियो! तुमलोगोंने जो बात कही है, वह वेदोंको मान्य नहीं है। जो नारी अपने स्वामीसे पृथक् होकर सदा अकेली रहती है, उसे पापिनी समझा जाता है। श्रेष्ठ पुरुष उसका आदर नहीं करते। वेदोंमें सदा यही बात देखी गयी है कि पतिके साथ नारीका सम्बन्ध पुण्यके संसर्गसे ही होता है और किसी कारणसे नहीं। [अतः उसे सदा पतिके ही साथ रहना चाहिये।] शास्त्रोंका वचन है कि पति ही सदा नारियोंके लिये तीर्थ है। इसलिये स्त्रीको उचित है कि वह सच्चे भावसे पति-सेवामें प्रवृत्त होकर प्रतिदिन मन, वाणी, शरीर और क्रियाद्वारा पतिका ही आवाहन करे और सदा पतिका ही पूजन करे। पति स्त्रीका दक्षिण अंग है। उसका वाम पार्श्व ही पत्नीके लिये महान् तीर्थ है। गृहस्थ नारी पतिके वाम भागमें बैठकर जो दान-पुण्य और यज्ञ करती है, उसका बहुत बड़ा फल बताया गया है; काशीकी गंगा, पुष्कर तीर्थ, द्वारकापुरी, उज्जैन तथा केदार नामसे प्रसिद्ध महादेवजीके तीर्थमें स्नान करनेसे भी वैसा फल नहीं मिल सकता। यदि स्त्री अपने पतिको साथ लिये बिना ही कोई यज्ञ करती है, तो उसे उसका फल नहीं मिलता। पतिव्रता स्त्री उत्तम सुख, पुत्रका सौभाग्य, स्नान, दान, वस्त्र, आभूषण, सौभाग्य, रूप, तेज, फल, यश, कीर्ति और उत्तम गुण प्राप्त करती है। पतिकी प्रसन्नतासे उसे सब कुछ मिल जाता है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। जो स्त्री पतिके रहते हुए उसकी सेवाको छोड़कर दूसरे किसी धर्मका अनुष्ठान करती है, उसका वह कार्य निष्फल होता है तथा लोकमें वह व्यभिचारिणी कही जाती है।[१] नारियोंका यौवन, रूप और जन्म—सब कुछ पतिके लिये होते हैं; इस भूमण्डलमें नारीकी प्रत्येक वस्तु उसके पतिकी आवश्यकता-पूर्तिका ही साधन है। जब स्त्री पतिहीन हो जाती है, तब उसे भूतलपर सुख, रूप, यश, कीर्ति और पुत्र कहाँ मिलते हैं। वह तो संसारमें परम दुर्भाग्य और महान् दुःख भोगती है। पापका भोग ही उसके हिस्सेमें पड़ता है। उसे सदा दुःखमय आचारका पालन करना पड़ता है। पतिके संतुष्ट रहनेपर समस्त देवता स्त्रीसे संतुष्ट रहते हैं। ऋषि और मनुष्य भी प्रसन्न रहते हैं। राजन्! पति ही स्त्रीका स्वामी, पति ही गुरु, पति ही देवताओंसहित उसका इष्टदेव और पति ही तीर्थ एवं पुण्य है।[२] पतिके बाहर चले जानेपर यदि स्त्री शृंगार करती है तो उसका रूप, वर्ण—सब कुछ भाररूप हो जाता है। पृथ्वीपर लोग उसे देखकर कहते हैं कि यह निश्चय ही व्यभिचारिणी है, इसलिये किसी भी पत्नीको अपने सनातन धर्मका त्याग नहीं करना चाहिये। सखियो! इस विषयमें एक पुराना इतिहास सुना जाता है, जिसमें रानी सुदेवाके पापनाशक एवं पवित्र चरित्रका वर्णन है।

१-स्वभर्तुर्वा पृथग्भूता तिष्ठत्येका सदैव हि। पापरूपा भवेन्नारी तां न मन्यन्ति सज्जनाः॥
भर्तुः सार्द्धं सदा सख्यो दृष्टो वेदेषु सर्वदा। सम्बन्धः पुण्यसंसर्गाज्जायते नान्यकारणात्॥
नारीणां च सदा तीर्थं भर्ता शास्त्रेषु पठ्यते। यमेवावाहयेन्नित्यं वाचा कायेन कर्मभिः॥
मनसा पूजयेन्नित्यं सत्यभावेन तत्परा। एतत्पार्श्वं महातीर्थं दक्षिणाङ्गं सदैव हि॥
तमाश्रित्य यदा नारी गृहस्था परिवर्तते। यजते दानपुण्यैश्च तस्य दानस्य यत्फलम्॥
वाराणस्यां च गंगायां यत्फलं न च पुष्करे। द्वारकायां न चावन्त्यां केदारे शशिभूषणे॥
लभते नैव सा नारी यजमाना सदा किल। तादृशं फलमेवं सा न प्राप्नोति कदा सखि॥
सुसुखं पुत्रसौभाग्यं स्नानं दानं च भूषणम्। वस्त्रालंकारसौभाग्यं रूपं तेजः फलं सदा॥
यशः कीर्तिमवाप्नोति गुणं च वरवर्णिनि। भर्तुः प्रसादाच्च सर्वं लभते नात्र संशयः॥
विद्यमाने यदा कान्ते अन्यधर्मं करोति या। निष्फलं जायते तस्याः पुंश्चली परिकथ्यते॥ (४१।६०—६९)

२-भर्ता नाथो गुरुर्भर्ता देवता दैवतैः सह। भर्ता तीर्थञ्च पुण्यञ्च नारीणां नृपनन्दन॥ (४१।७५)

सुकलाका रानी सुदेवाकी महिमा बताते हुए एक शूकर और शूकरीका उपाख्यान सुनाना, शूकरीद्वारा अपने पतिके पूर्वजन्मका वर्णन

सखियोंने पूछा—महाभागे! ये रानी सुदेवा कौन थीं? उनका आचार-विचार कैसा था? यह हमें बताओ।

सुकला बोली—सखियो! पहलेकी बात है, अयोध्यापुरीमें मनुपुत्र महाराज इक्ष्वाकु राज्य करते थे। वे धर्मके तत्त्वज्ञ, परम सौभाग्यशाली, सब धर्मोंके अनुष्ठानमें रत, सर्वज्ञ और देवता तथा ब्राह्मणोंके पुजारी थे। काशीके राजा वीरवर महात्मा देवराजकी सदाचारपरायणा कन्या सुदेवाके साथ उन्होंने विवाह किया था। सुदेवा सत्यव्रतके पालनमें तत्पर रहती थीं। पुण्यात्मा राजा इक्ष्वाकु उनके साथ अनेक प्रकारके उत्तम पुण्य और यज्ञ किया करते थे।

एक दिन महाराज अपनी रानीके साथ गंगाके तटवर्ती वनमें गये और वहाँ शिकार खेलने लगे। उन्होंने बहुत-से सिंहों और शूकरोंको मारा। वे शिकारमें लगे ही हुए थे कि इतनेमें उनके सामने एक बहुत बड़ा सूअर आ निकला उसके साथ झुंड-के-झुंड सूअर थे। वह अपने पुत्र-पौत्रोंसे घिरा था। उसकी प्रियतमा शूकरी भी उसके बगलमें मौजूद थी। उस समय सूअरने राजाको देखकर अपने पुत्रों, पौत्रों तथा पत्नीसे कहा—'प्रिये! कोसलदेशके वीर सम्राट् महातेजस्वी इक्ष्वाकु यहाँ शिकार खेलनेके लिये पधारे हैं। उनके साथ बहुत-से कुत्ते और व्याध हैं। इसमें सन्देह नहीं कि ये मुझपर भी प्रहार करेंगे। महाराज इक्ष्वाकु बड़े पुण्यात्मा हैं, ये राजाओंके भी राजा और समस्त विश्वके अधिपति हैं। प्रिये! मैं इन महात्माके साथ रणभूमिमें पुरुषार्थ और पराक्रम दिखाता हुआ युद्ध करूँगा। यदि मैंने अपने तेजसे इन्हें जीत लिया तो पृथ्वीपर अनुपम कीर्ति भोगूँगा और यदि वीरवर महाराजके हाथसे मैं ही युद्धमें मारा गया तो भगवान् श्रीविष्णुके लोकमें जाऊँगा। न जाने पूर्वजन्ममें मैंने कौन-सा पाप किया था, जिससे सूअरकी योनिमें मुझे आना पड़ा। आज मैं महाराजके अत्यन्त भयंकर, पैने और तेज धारवाले सैकड़ों बाणोंकी जलधारासे अपने पूर्वसंचित घोर पातकको धो डालूँगा। तुम मेरा मोह छोड़ दो और इन पुत्रों, पौत्रों तथा श्रेष्ठ कन्याको और बाल-वृद्धसहित समूचे कुटुम्बको साथ लेकर पर्वतकी कन्दरामें चली जाओ। इस समय मेरा स्नेह त्यागकर इन बालकोंकी रक्षा करो।'

शूकरी बोली—नाथ! मेरे बच्चे तुम्हारे ही बलसे पर्वतपर गर्जना करते हुए विचरते हैं। तुम्हारे तेजसे ही निर्भय होकर यहाँ कोमल मूल-फलोंका आहार करते हैं। महाभाग! बीहड़ वनोंमें, झाड़ियोंमें, पर्वतोंपर और गुफाओंमें तथा यहाँ भी जो ये सिंहों और मनुष्योंके तीव्र भयकी परवा नहीं करते, उसका यही कारण है कि ये तुम्हारे तेजसे सुरक्षित हैं। तुम्हारे त्याग देनेपर मेरे सभी बच्चे दीन, असहाय और अचेत हो जायँगे। [तुमसे अलग रहनेमें मेरी भी शोभा नहीं है।] उत्तम सोनेके बने हुए दिव्य आभूषणों, रत्नमय उपकरणों तथा सुन्दर वस्त्रोंसे विभूषित होकर और पिता, माता, भाई, सास, ससुर तथा अन्य सम्बन्धियोंसे आदर पाकर भी पतिहीना स्त्री शोभा नहीं पाती। जैसे आचारके बिना मनुष्य, ज्ञानके बिना संन्यासी तथा गुप्त मन्त्रणाके बिना राज्यकी शोभा नहीं होती, उसी प्रकार तुम्हारे बिना इस यूथकी शोभा नहीं हो सकती। प्रिय! प्राणेश्वर! तुम्हारे बिना मैं अपने प्राण नहीं रख सकती। महामते! मैं सच कहती हूँ—तुम्हारे साथ यदि मुझे नरकमें भी निवास करना पड़े तो उसे सहर्ष-स्वीकार करूँगी। यूथपते! हम दोनों ही अपने पुत्र-पौत्रोंसहित इस उत्तम यूथको लेकर किसी पर्वतकी दुर्गम कन्दरामें घुस जायँ, यही अच्छा है। तुम जीवनकी आशा छोड़कर मरनेके लिये जा रहे हो; बताओ, इसमें तुम्हें क्या लाभ दिखायी देता है?

सूअर बोला—प्रिये! तुम वीरोंके उत्तम धर्मको नहीं जानती; सुनो, मैं इस समय तुम्हें वही बताता हूँ। यदि योद्धा शत्रुके प्रार्थना करने या ललकारनेपर भी

काम, लोभ, भय अथवा मोहके कारण उसे युद्धका अवसर नहीं देता, वह एक हजार युगोंतक कुम्भीपाक नामक नरकमें निवास करता है। वीर पुरुष युद्धमें शत्रुका सामना करके यदि उसे जीत लेता है तो यश और कीर्तिका उपभोग करता है; अथवा निर्भयतापूर्वक लड़ता हुआ यदि स्वयं ही मारा जाता है, तो वीरलोकको प्राप्त हो दिव्य भोगोंका उपभोग करता है। प्रिये! बीस हजार वर्षोंतक वह इस सुखका अनुभव करता है। मनुपुत्र राजा इक्ष्वाकु यहाँ पधारे हैं, जो स्वयं बड़े वीर हैं। ये मुझसे युद्ध चाहें तो मुझे अवश्य ही इन्हें युद्धका अवसर देना चाहिये। शुभे! महाराज युद्धके अतिथि होकर आये हैं और अतिथि सनातन श्रीविष्णुका स्वरूप होता है; अतः युद्धरूपसे इनका सत्कार करना मेरा आवश्यक कर्तव्य है।

शूकरी बोली—प्राणनाथ! यदि आप महात्मा राजाको युद्धका अवसर प्रदान करेंगे तो मैं भी आपके साथ रहकर आपका पराक्रम देखूँगी।

यों कहकर शूकरीने तुरंत अपने प्यारे पुत्रोंको बुलाया और कहा—'बच्चो! मेरी बात सुनो; युद्धभूमिमें सनातन विष्णुरूप अतिथि पधारे हैं, उनके सत्कारके लिये मेरे स्वामी जायँगे; इनके साथ मुझे भी वहाँ जाना चाहिये। तुम्हारी रक्षा करनेवाले प्राणनाथ जबतक यहाँ उपस्थित हैं, तभीतक तुम दूरके पर्वतकी किसी दुर्गम गुफामें चले जाओ। पुत्रो! मनुपुत्र इक्ष्वाकु बड़े बलवान् और दुर्दमनीय राजा हैं; ये हमलोगोंके लिये कालस्वरूप हैं, सबका संहार कर डालेंगे। अतः तुम दूर भाग जाओ।'

पुत्रोंने कहा—जो माता-पिताको [संकटमें] छोड़कर जाता है, वह पापात्मा है, उसे महारौद्र एवं अत्यन्त घोर नरकमें गिरना पड़ता है, यह उसके लिये अनिवार्य गति है। जो निर्दयी अपनी माताके पवित्र दूधको पीकर परिपुष्ट होता है और माँ-बापको [विपत्तिमें] छोड़कर चल देता है, वह कीड़ों और दुर्गन्धसे परिपूर्ण नरकमें पड़कर सदा पीबका भोजन करता है। इसलिये माँ! हमलोग पिताको और तुम्हें यहाँ छोड़कर नहीं जायँगे।

ऐसा निश्चय करके समस्त शूकर मोर्चा बाँधकर खड़े हो गये। वे सभी बल और तेजसे सम्पन्न थे।

उधर अयोध्याके वीर महाराज मनुकुमार इक्ष्वाकु अपनी सुन्दरी भार्या तथा चतुरंगिणी सेनाके साथ आखेटके लिये चले। उनके आगे-आगे व्याध, कुत्ते और तेज चलनेवाले वीर योद्धा थे। वे लोग उस स्थानके समीप गये, जहाँ बलवान् शूकर अपनी पत्नीके साथ मौजूद था। छोटे-बड़े बहुत-से सूअर सब ओरसे उसकी रक्षा कर रहे थे। गंगाके किनारे मेरु पर्वतकी तराईमें पहुँचकर महाराज इक्ष्वाकुने व्याधोंसे कहा—'बड़े-बड़े वीर योद्धाओंको शूकरका सामना करनेके लिये भेजो।' इस प्रकार महाराजकी आज्ञासे भेजे हुए बलवान्, तेजस्वी तथा पराक्रमी योद्धा हाँका डालते हुए दौड़े और वायुके समान वेगसे चलकर तत्काल शूकरके पास जा पहुँचे। वनचारी व्याध अपने तीखे बाणों तथा चमचमाते हुए नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे वीरोंका बाना बाँधकर खड़े हुए और उस वराहको बींधने लगे।

यह देख वह यूथपति वराह अपने सैकड़ों पुत्र, पौत्र तथा बान्धवोंके साथ युद्धके मैदानमें आ धमका और शत्रुओंपर टूट पड़ा। वह बड़े वेगसे उनका संहार करने लगा। व्याध उसकी पैनी दाढ़ोंसे घायल हो-होकर समरभूमिमें गिरने लगे। तदनन्तर शूकरों और व्याधोंमें भयानक संग्राम आरम्भ हुआ। वे क्रोधसे लाल आँखें किये एक-दूसरेको मारने लगे। व्याधोंने बहुतेरे शूकरोंको और शूकरोंने अनेक व्याधोंको मार गिराया। वहाँकी जमीन खूनसे रँग गयी। कितने ही सूअर मर-खप गये, कितने घायल हुए और कितने ही भाग-भागकर बीहड़ स्थानों, झाड़ियों, कन्दराओं और अपनी-अपनी माँदोंमें जा घुसे। यही दशा व्याधोंकी भी हुई। कितने ही मर गये, कितने ही सूअरोंकी पैनी दाढ़ोंके आघातसे कट गये और कितने ही टुकड़े-टुकड़े होकर प्राण त्याग स्वर्गलोकको चले गये। केवल वह बलाभिमानी वराह अपनी पत्नी तथा पाँच-सात

पुत्र-पौत्रोंके साथ युद्धकी इच्छासे मैदानमें डटा रहा। उस समय शूकरीने उससे कहा—'नाथ! मुझे और इन बालकोंको साथ लेकर अब यहाँसे चले चलो।'

शूकरने कहा—महाभागे! दो सिंहोंके बीचमें सूअर पानी पी सकता है, किन्तु दो सूअरोंके बीचमें सिंह नहीं पी सकता। सूअर-जातिमें ऐसा उत्तम बल देखा जाता है। यदि मैं संग्राममें पीठ दिखाकर चला जाऊँ तो उस बलका नाश ही करूँगा—मेरी जातिकी प्रसिद्धि ही नष्ट हो जायगी। मुझे परम कल्याणदायक धर्मका ज्ञान है। जो योद्धा काम, लोभ अथवा भयसे युद्धतीर्थका त्याग करके भाग जाता है, वह निस्सन्देह पापी है। जो तीखे शस्त्रोंका व्यूह देखकर प्रसन्न होता है और रणसिन्धुमें गोता लगाकर तीर्थके पार पहुँच जाता है, वह अपने आगेकी सौ पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है और अन्तमें विष्णुधामको जाता है। जो अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित योद्धाको सामने आते देख प्रसन्नतापूर्वक उसकी ओर बढ़ता है, उसके पुण्य-फलका वर्णन सुनो—'उसे पग-पगपर गंगा-स्नानका महान् फल प्राप्त होता है। जो काम या लोभवश युद्धसे भागकर घरको चला जाता है, वह अपनी माताके दोषको प्रकाशित करता है और व्यभिचारसे उत्पन्न कहलाता है। मैं इस वीर-धर्मको जानता हूँ, अतः युद्ध छोड़कर भाग कैसे सकता हूँ। तुम बच्चोंको लेकर यहाँसे चली जाओ और सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करो।

पतिकी बात सुनकर शूकरी बोली—'प्रिय! मैं तुम्हारे स्नेह-बन्धनमें बँधी हूँ; तुमने प्रेम, आदर, हास-परिहास तथा रति-क्रीड़ा आदिके द्वारा मेरे मनको बाँध लिया है। अतः मैं पुत्रोंके साथ तुम्हारे सामने प्राण त्याग करूँगी।' इस तरह बातचीत करके एक-दूसरेका हित चाहनेवाले दोनों पति-पत्नीने युद्धका ही निश्चय किया। कोसलसम्राट् इक्ष्वाकुने देखा—वर्षाके समय आकाशमें मेघ जिस प्रकार बिजलीकी चमकके साथ गर्जते हैं, उसी तरह अपनी पत्नीके साथ शूकर भी गर्जना करता है और अपने खुरोंके अग्रभागसे मानो महाराजको युद्धके लिये ललकार रहा है।

अपनी दुर्द्धर्ष सेनाको उस दुर्द्धर्ष वराहके द्वारा परास्त होते देख राजा इक्ष्वाकुको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने धनुष और कालके समान भयंकर बाण लेकर अश्वके द्वारा बड़े वेगसे शूकरपर आक्रमण किया। उन्हें आते देख सूअर भी आगे बढ़ा। वह घोड़ेके पैरोंके नीचे आ गया, इतनेमें ही राजाने उसे अपने तीखे बाणका निशाना बनाया। सूअर घायल होकर बड़े वेगसे उछला और घोड़ेसहित राजाको लाँघ गया। उसने अपनी दाढ़ोंसे मारकर घोड़ेके पैरोंमें घाव कर दिया था। इससे उसको बड़ी पीड़ा हो रही थी, उससे चला नहीं जाता था; अन्ततोगत्वा वह पृथ्वीपर गिर पड़ा। तब राजा एक छोटे-से रथपर सवार हो गये। यूथपति सूअर अपनी जातिके स्वभावानुसार रणभूमिमें भयंकर गर्जना कर रहा था, इतनेमें ही कोसलसम्राट्ने उसके ऊपर गदासे प्रहार किया। गदाका आघात पाकर उसने शरीर त्याग दिया और भगवान् श्रीविष्णुके श्रेष्ठ धाममें प्रवेश किया। इस प्रकार महाराज इक्ष्वाकुके साथ युद्ध करके वह शूकरराज हवाके वेगसे उखड़कर गिरे हुए वृक्षकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ा। उस समय देवता उसके ऊपर

फूलोंकी वर्षा कर रहे थे।

तदनन्तर वे समस्त शूर, क्रूर और भयंकर व्याध हाथोंमें पाश लिये उस शूकरीकी ओर चले। शूकरी अपने चार बच्चोंको घेरकर खड़ी थी। उस महासमरमें कुटुम्बसहित अपने पतिको मारा गया देख वह शोकसे मोहित होकर पुत्रोंसे बोली—'बच्चो! जबतक मैं यहाँ खड़ी हूँ, तबतक शीघ्र गतिसे अन्यत्र भाग जाओ।' यह सुनकर उनमेंसे ज्येष्ठ पुत्रने कहा—'मैं जीवनके लोभसे अपनी माताको संकटमें छोड़कर चला जाऊँ, यह कैसे हो सकता है। माँ! यदि मैं ऐसा करूँ तो मेरे जीवनको धिक्कार है। मैं अपने पिताके वैरका बदला लूँगा। युद्धमें शत्रुको परास्त करूँगा। तुम मेरे तीनों छोटे भाइयोंको लेकर पर्वतकी कन्दरामें चली जाओ। जो माता-पिताको विपत्तिमें छोड़कर जाता है, वह पापात्मा है। उसे कोटि-कोटि कीड़ोंसे भरे हुए नरकमें गिरना पड़ता है।' बेटेकी बात सुनकर शूकरी दुःखसे आतुर होकर बोली—'आह, मेरे बच्चे! मैं महापापिनी तुझे छोड़कर कैसे जा सकती हूँ। मेरे ये तीन पुत्र भले ही चले जायँ।'

ऐसा निश्चय करके उन दोनों माँ-बेटेने शेष तीन बच्चोंको आगे कर लिया और व्याधोंके देखते-देखते वे विकट मार्गसे जाने लगे। समस्त शूकर अपने तेज और बलसे जोशमें आकर बारंबार गरज रहे थे। इसी बीचमें वे शूरवीर व्याध वेगसे चलकर वहाँ आ पहुँचे। शूकरी और शूकर—दोनों माँ-बेटे व्याधोंका मार्ग रोककर खड़े हो गये। व्याध तलवार, बाण और धनुष लिये अधिक समीप आ गये और तीखे तोमर, चक्र तथा मुसलोंका प्रहार करने लगे। ज्येष्ठ पुत्र माताको पीछे करके व्याधोंके साथ युद्ध करने लगा। कितनोंको दाढ़ोंसे कुचलकर उसने मार डाला। कितनोंको थूथनोंकी चोटसे धराशायी कर दिया और कितनोंको खुरोंके अग्रभागसे मारकर मौतके घाट उतार दिया। बहुत-से शूरवीर रणभूमिमें ढेर हो गये। राजा इक्ष्वाकु संग्राममें सूअरको युद्ध करते देखकर और उसे पिताके समान ही शूरवीर जानकर स्वयं उसके सामने आये। महातेजस्वी, प्रतापी मनुकुमारके हाथमें धनुष-बाण थे। उन्होंने अर्धचन्द्राकार तीखे बाणसे शूकरपर प्रहार किया। उसकी छाती छिद गयी और वह राजाके हाथसे घायल होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। गिरते ही उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। पुत्रके शोक और मोहसे अत्यन्त व्याकुल होकर शूकरी उसकी लाशपर गिर पड़ी; फिर सँभलकर उसने अपने थूथनसे ऐसा प्रहार किया, जिससे अनेकों शूरवीर धरतीपर सो गये। कितने ही व्याध धराशायी हुए, कितने ही भाग गये और कितने ही कालके गालमें चले गये। शूकरी अपने दाढ़ोंके प्रहारसे राजाकी विशाल सेनाको खदेड़ने लगी।

यह देख काशीनरेश देवराजकी पुत्री महारानी सुदेवाने अपने पतिसे कहा—'प्राणनाथ! इस शूकरीने आपकी बहुत बड़ी सेनाका विध्वंस कर डाला; फिर भी आप इसकी उपेक्षा क्यों कर रहे हैं? मुझे इसका कारण बताइये।' महाराजने उत्तर दिया—'प्रिये! यह स्त्री है। स्त्रीके वधसे देवताओंने बहुत बड़ा पाप बताया है; इसीलिये मैं इस शूकरीको न तो स्वयं मारता हूँ और न किसी दूसरेको ही इसे मारनेके लिये भेज रहा हूँ। इसके वधके कारण होनेवाले पापसे मुझे भय लगता है।' यों कहकर महाबुद्धिमान् राजा चुप हो गये। व्याधोंमें एकका नाम भार्गव था; उसने देखा—शूकरी समस्त वीरोंका संहार कर रही है, बड़े-बड़े सूरमा भी उसके सामने टिक नहीं पाते हैं। यह देख व्याधने बड़े वेगसे एक पैने बाणका प्रहार किया और उस शूकरीको बींध डाला। शूकरीने भी झपटकर व्याधको पछाड़ दिया। व्याधने गिरते-गिरते शूकरीपर तेज धारवाली तलवारका भरपूर हाथ जमाया। वह बुरी तरहसे घायल होकर गिर पड़ी और धीरे-धीरे साँस लेती हुई मूर्च्छित हो गयी।

रानी सुदेवाने उस पुत्रवत्सला शूकरीको जब धरतीपर गिरकर बेहोश होते और ऊपरको श्वास लेते देखा तो उनका हृदय करुणासे भर आया। वे उस दुःखिनीके पास गयीं और ठंडे जलसे उसका मुँह धोया, फिर समस्त शरीरपर पानी डाला। इससे शूकरीको कुछ होश हुआ। उसने रानीको पवित्र एवं शीतल जलसे अपने शरीरका अभिषेक करते देख मनुष्योंकी बोलीमें

कहा—'देवि! तुमने मेरा अभिषेक किया है, इसलिये तुम्हारा कल्याण हो; तुम्हारे दर्शन और स्पर्शसे आज
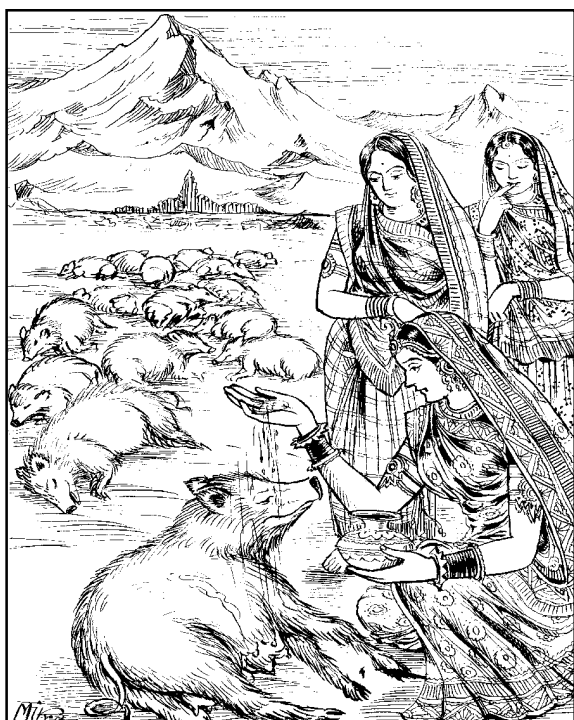
मेरी पापराशि नष्ट हो गयी।' पशुके मुखसे यह अद्भुत वचन सुनकर रानी सुदेवाको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे मन-ही-मन कहने लगीं—'यह तो आज मैंने विचित्र बात देखी; पशु-जातिकी यह मादा इतनी स्पष्ट, सुन्दर, स्वर और व्यंजनसे युक्त तथा उत्तम संस्कृत बोल रही है!' महाभागा सुदेवा इस घटनासे हर्षमग्न होकर अपने पतिसे बोलीं—'राजन्! इधर देखिये, यह अपूर्व जीव है; पशु-जातिकी स्त्री होकर भी मानवीकी भाँति उत्तम संस्कृत बोल रही है।' इसके बाद रानीने शूकरीसे उसका परिचय पूछा—'भद्रे! तुम कौन हो? तुम्हारा बर्ताव तो बड़ा विचित्र दिखायी देता है; तुम पशुयोनिकी स्त्री होकर भी मनुष्योंकी तरह बोलती हो। अपने और अपने स्वामीके पूर्व-जन्मका वृत्तान्त सुनाओ।'

शूकरी बोली—देवि! मेरे पति पूर्वजन्ममें संगीत-कुशल गन्धर्व थे; इनका नाम रंगविद्याधर था। [कुछ लोग इन्हें गीतविद्याधर भी कहते थे।] ये सब शास्त्रोंके मर्मज्ञ थे। एक समयकी बात है, महातेजस्वी मुनिश्रेष्ठ पुलस्त्यजी मनोहर कन्दराओं और झरनोंसे सुशोभित गिरिवर मेरुपर निष्कपट भावसे तपस्या कर रहे थे। रंगविद्याधर अपनी इच्छाके अनुसार उस स्थानपर गये और एक वृक्षकी छायामें बैठकर गानेका अभ्यास करने लगे। उनका मधुर संगीत सुनकर मुनिका चित्त ध्यानसे विचलित हो गया। वे गायकके पास जाकर बोले—'विद्वन्! तुम्हारे गीतके उत्तम स्वर, ताल, लय और मूर्च्छनायुक्त भावसे मेरा मन ध्यानसे विचलित हो गया है। जब मन निश्चल होता है, तभी समस्त विद्याएँ प्राणियोंको सिद्धि प्रदान करती हैं। मन एकाग्र होनेपर ही तप और मन्त्रोंकी सिद्धि होती है। इन्द्रियोंका यह महान् समुदाय अधम और चंचल है; यह मनको ध्यानसे हटाकर सदा विषयोंकी ओर ही ले जाता है। इसलिये जहाँ शब्द, रूप तथा युवती स्त्रीका अभाव होता है, वहीं मुनिलोग अपने तपकी सिद्धिके लिये जाया करते हैं। [तुम्हारे इस संगीतसे मेरे ध्यानमें बाधा पड़ती है] अतः मेरा अनुरोध है कि तुम इस स्थानको छोड़कर कहीं अन्यन्त्र चले जाओ; अन्यथा मुझे ही यह स्थान छोड़कर दूसरी जगह जाना पड़ेगा।'

गीतविद्याधरने कहा—महामते! जिस महात्माने इन्द्रियोंके समुदाय तथा उसके बलको जीत लिया है, उसीको तपस्वी, योगी, धीर और साधक कहते हैं। आप जितेन्द्रिय नहीं हैं, इसीलिये तेजसे हीन हैं। ब्रह्मन्! यह वन सबके लिये साधारण है—इसपर सबका समान अधिकार है; इसमें कोई 'ननु नच' नहीं हो सकता। जैसे इसके ऊपर देवताओं और सम्पूर्ण जीवोंका स्वत्व है, उसी प्रकार मेरा और आपका भी है। ऐसी दशामें मैं इस उत्तम वनको छोड़कर क्यों चला जाऊँ? आप जायँ, चाहे रहें; मुझे इसकी परवा नहीं है।

विप्रवर पुलस्त्यजी धर्मात्मा हैं; इसलिये वे क्षमा करके स्वयं ही उस स्थानको छोड़कर अन्यत्र चले गये और योगासनसे बैठकर तपस्या करने लगे। महाभाग मुनिश्रेष्ठ पुलस्त्यके चले जानेपर दीर्घकालके पश्चात् गन्धर्वको पुनः उनका स्मरण हो आया। वे सोचने लगे—'मुनि मेरे ही भयसे भाग गये थे—चलूँ, देखूँ। कहाँ गये? क्या करते हैं और कहाँ रहते हैं?' यह विचारकर गीतविद्याधरने पहले महर्षिके स्थानका पता लगाया और फिर वराहका रूप धारण करके वे उनके उत्तम आश्रमपर गये, जहाँ पुलस्त्यजी आसनपर विराजमान थे। उनके शरीरसे तेजकी ज्वाला उठ रही थी। किन्तु मेरे पतिपर इसका कुछ प्रभाव न पड़ा, वे कुचेष्टापूर्वक थूथनके अग्रभागसे उन नियमशील ब्राह्मणका तिरस्कार करने लगे। यहाँतक कि उनके आगे जाकर उन्होंने मल-मूत्रतक कर दिया; किन्तु पशु जानकर मुनिने उनको छोड़ दिया—दण्ड नहीं दिया। [मुनिकी इस क्षमाका मेरे पतिपर उलटा ही असर हुआ, उनकी उद्दण्डता और भी बढ़ गयी।] एक दिन शूकरके ही रूपमें वे फिर वहाँ गये और बारंबार अट्टहास करने लगे। कभी ठहाका मारकर हँसते, कभी रोते और कभी मधुर स्वरसे गीत गाते थे।
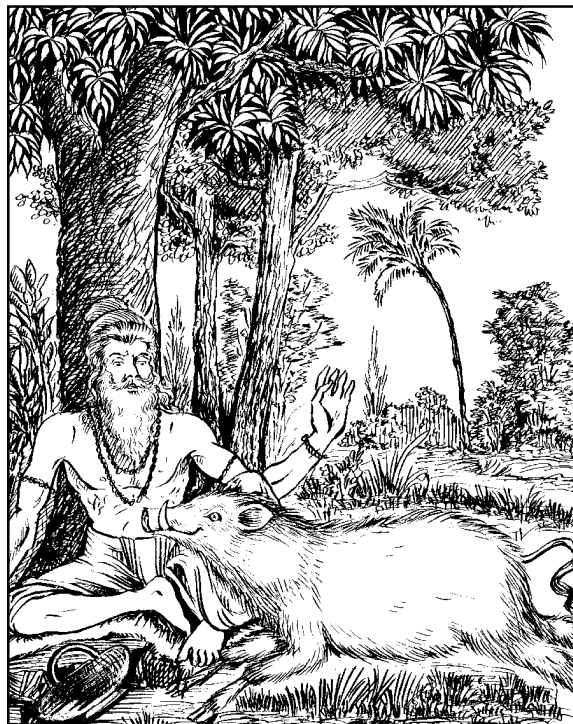
सूअरकी चेष्टा छिपी देखकर मुनि समझ गये कि हो-न-हो, यह वही नीच गन्धर्व है और मुझे ध्यानसे विचलित करनेकी चेष्टा कर रहा है। फिर तो उन्हें बड़ा क्रोध हुआ। वे शाप देते हुए बोले—'ओ महापापी! तू शूकरका रूप धारण करके मुझे इस प्रकार विचलित कर रहा है, इसलिये अब शूकरकी ही योनिमें जा।' देवि! यही मेरे पतिके शूकरयोनिमें पड़नेका वृत्तान्त है। यह सब मैंने तुम्हें सुना दिया। अब अपना हाल बताती हूँ, सुनो। पूर्वजन्ममें मुझ पापिनीने भी घोर पातक किया है।

शूकरीद्वारा अपने पूर्वजन्मके वृत्तान्तका वर्णन तथा रानी सुदेवाके दिये हुए पुण्यसे उसका उद्धार

शूकरी बोली—कलिंग (उड़ीसा) नामसे प्रसिद्ध एक सुन्दर देश है, वहाँ श्रीपुर नामका एक नगर था। उसमें वसुदत्त नामके एक ब्राह्मण निवास करते थे। वे सदा सत्यधर्ममें तत्पर, वेदवेत्ता, ज्ञानी, तेजस्वी, गुणवान् और धन-धान्यसे भरे-पूरे थे। अनेक पुत्र-पौत्र उनके घरकी शोभा बढ़ाते थे। मैं वसुदत्तकी पुत्री थी; मेरे और भी कई भाई, स्वजन तथा बान्धव थे। परम बुद्धिमान् पिताने मेरा नाम सुदेवा रखा। मैं अप्रतिम सुन्दरी थी। संसारमें दूसरी कोई स्त्री ऐसी नहीं थी, जो रूपमें मेरी समानता कर सके। रूपके साथ ही चढ़ती जवानी पाकर मैं गर्वसे उन्मत्त हो उठी। मेरी मुसकान बड़ी मनोहर थी। बचपनके बाद जब मुझे हाव-भावसे युक्त यौवन प्राप्त हुआ, तब मेरा भरा-पूरा रूप देखकर मेरी माताको बड़ा दुःख हुआ। वह पितासे बोली—'महाभाग! आप कन्याका विवाह क्यों नहीं कर देते? अब यह जवान हो चुकी है, इसे किसी योग्य वरको सौंप दीजिये।' वसुदत्तने कहा—'कल्याणी! सुनो; मैं उसी वरके साथ इसका विवाह करूँगा, जो विवाहके पश्चात् मेरे ही घरपर निवास करे; क्योंकि सुदेवा मुझे प्राणोंसे भी बढ़कर प्यारी है। मैं इसे आँखोंसे ओट नहीं होने देना चाहता।'

तदनन्तर एक दिन सम्पूर्ण विद्याओंमें विशारद एक कौशिक-गोत्री ब्राह्मण भिक्षाके लिये मेरे द्वारपर आये। उन्होंने वेदोंका पूर्ण अध्ययन किया था। वे बड़े अच्छे स्वरसे वेद-मन्त्रोंका उच्चारण करते थे। उन्हें आया देख मेरे पिताने पूछा—'आप कौन हैं? आपका नाम, कुल, गोत्र और आचार क्या है? यह बताइये।' पिताकी बात सुनकर ब्राह्मण-कुमारने उत्तर दिया—'कौशिकवंशमें मेरा जन्म हुआ है। मैं वेद-वेदांगोंका पारंगत विद्वान् हूँ, मेरा नाम शिवशर्मा है; मेरे माता-पिता अब इस संसारमें नहीं हैं।' शिवशर्माने जब इस प्रकार अपना परिचय दिया, तब मेरे पिताने शुभ लग्नमें उनके साथ मेरा विवाह कर दिया। अब उनके साथ ही मैं पिताके घरपर रहने लगी। परन्तु मैं माता-पिताके धनके घमंडसे अपनी विवेकशक्ति खो बैठी थी। मुझ पापिनीने कभी भी अपने स्वामीकी सेवा नहीं की। मैं सदा उन्हें क्रूर दृष्टिसे ही देखा करती थी। कुछ व्यभिचारिणी स्त्रियोंका साथ हो गया था, अतः संग-दोषसे मेरे मनमें भी वैसा ही नीच भाव आ गया था। मैं जहाँ-तहाँ स्वच्छन्दतापूर्वक घूमती-फिरती और माता-पिता, पति तथा भाइयोंके हितकी परवा नहीं करती थी। शिवशर्माका शील और उनकी साधुता सबको ज्ञात थी, अतः माता-पिता आदि सब लोग मेरे पापसे दुःखी रहते थे। मेरा दुष्कर्म देख पतिदेव उस घरको छोड़कर चले गये। उनके जानेसे पिताजीको बड़ी चिन्ता हुई। उन्हें दुःखसे व्याकुल देख माताने पूछा—'नाथ! आप चिन्तित क्यों हो रहे हैं?' वसुदत्तने कहा—'प्रिये! सुनो, दामाद मेरी पुत्रीको त्यागकर चले गये। सुदेवा पापाचारिणी है और वे पण्डित तथा बुद्धिमान् थे। मैं क्या जानता था कि यह मेरी कन्या सुदेवा ऐसी दुष्टा और कुलनाशिनी होगी।'

ब्राह्मणी बोली—नाथ! आज आपको पुत्रीके गुण और दोषका ज्ञान हुआ है—इस समय आपकी आँखें खुली हैं; किन्तु सच तो यह है कि आपके ही मोह और स्नेहसे—लाड़ और प्यारसे यह इस प्रकार बिगड़ी है। अब मेरी बात सुनिये—सन्तान जबतक पाँच वर्षकी न हो जाय, तभीतक उसका लाड़-प्यार करना चाहिये। उसके बाद सदा सन्तानकी शिक्षाकी ओर ध्यान देते हुए उसका पालन-पोषण करना उचित है। नहलाना-धुलाना, उत्तम वस्त्र पहनाना, अच्छे खान-पानका प्रबन्ध करना—ये सब बातें सन्तानकी पुष्टिके लिये आवश्यक हैं। साथ ही पुत्रोंको उत्तम गुण और विद्याकी ओर भी लगाना चाहिये। पिताका कर्तव्य है कि वह सन्तानको सद्गुणोंकी शिक्षा देनेके लिये सदा कठोर बना रहे। केवल पालन-पोषणके लिये उसके प्रति मोह-ममता

रखे। पुत्रके सामने कदापि उसके गुणोंका वर्णन न करे। उसे राहपर लानेके लिये कड़ी फटकार सुनाये तथा इस प्रकार उसे साधे, जिससे वह विद्या और गुणोंमें सदा ही निपुण होता जाय। जब माता अपनी कन्याको, सास अपनी पुत्र-वधूको और गुरु अपने शिष्योंको ताड़ना देता है, तभी वे सीधे होते हैं। इसी प्रकार पति अपनी पत्नीको और राजा अपने मन्त्रीको दोषोंके लिये कड़ी फटकार सुनायें। शिक्षा-बुद्धिसे ताड़न और पालन करनेपर सन्तान सद्गुणोंद्वारा प्रसिद्धि लाभ करती है।

शिवशर्मा उत्तम ब्राह्मण थे। उनके साथ रहनेपर भी इस कन्याको आपने घरमें निरंकुश—स्वच्छन्द बना रखा था। इसीसे उच्छृंखल हो जानेके कारण यह नष्ट हुई है। पुत्री अपने पिताके घरमें रहकर जो पाप करती है, उसका फल माता-पिताको भी भोगना पड़ता है; इसलिये समर्थ पुत्रीको अपने घरमें नहीं रखना चाहिये। जिससे उसका ब्याह किया गया है, उसीके घरमें उसका पालन-पोषण होना उचित है। वहाँ रहकर वह भक्तिपूर्वक जो उत्तम गुण सीखती और पतिकी सेवा करती है, उससे कुलकी कीर्ति बढ़ती है और पिता भी सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करता है। ससुरालमें रहकर यदि वह पाप करती है तो उसका फल पतिको भोगना पड़ता है। वहाँ सदाचारपूर्वक रहनेसे वह सदा पुत्र-पौत्रोंके साथ वृद्धिको प्राप्त होती है। प्राणनाथ! पुत्रीके उत्तम गुणोंसे पिताकी कीर्ति बढ़ती है। इसलिये दामादके साथ भी कन्याको अपने घर नहीं रखना चाहिये। इस विषयमें एक पौराणिक इतिहास सुना जाता है, जो अट्ठाईसवें द्वापरके आनेपर संघटित होनेवाला है। यदुकुलश्रेष्ठ वीरवर उग्रसेनके यहाँ जो घटना घटित होनेवाली है, उसीका मैं [भूतकालके रूपमें] वर्णन करूँगी।

माथुर प्रदेशमें मथुरा नामकी नगरी है, वहाँ उग्रसेन नामवाले यदुवंशी राजा राज्य करते थे। वे शत्रुविजयी, सम्पूर्ण धर्मोंके तत्त्वज्ञ, बलवान्, दाता और सद्गुणोंके जानकार थे। मेधावी राजा उग्रसेन धर्मपूर्वक राज्यका संचालन और प्रजाका पालन करते थे। उन्हीं दिनों परम पवित्र विदर्भदेशमें सत्यकेतु नामसे प्रसिद्ध एक प्रतापी राजा थे। उनकी एक पुत्री थी, जिसका नाम पद्मावती था। वह सत्य-धर्ममें तत्पर तथा स्त्री-समुचित गुणोंसे युक्त होनेके कारण दूसरी लक्ष्मीके समान थी। मथुराके राजा उग्रसेनने उस मनोहर नेत्रोंवाली पद्मावतीसे विवाह किया। उसके स्नेह और प्रेमसे मथुरानरेश मुग्ध हो गये। पद्मावतीको वे प्राणोंके समान प्यार करने लगे। उसे साथ लिये बिना भोजनतक नहीं करते थे। उसके साथ क्रीड़ा-विलासमें ही राजाका समय बीतने लगा। पद्मावतीके बिना उन्हें एक क्षण भी चैन नहीं पड़ता था। इस प्रकार उस दम्पतिमें परस्पर बड़ा प्रेम था।

कुछ कालके पश्चात् विदर्भनरेश सत्यकेतुने अपनी पुत्री पद्मावतीको स्मरण किया। उसकी माता उसे न देखनेके कारण बहुत दु:खी थी। उन्होंने मथुरानरेश उग्रसेनके पास अपने दूत भेजे। दूतोंने वहाँ जाकर आदरपूर्वक राजासे कहा—'महाराज! विदर्भनरेश सत्यकेतुने अपनी कुशल कहलायी है और आपका कुशल-समाचार वे पूछ रहे हैं। यदि उनका प्रेम और स्नेहपूर्ण अनुरोध आपको स्वीकार हो तो राजकुमारी पद्मावतीको उनके यहाँ भेजनेकी व्यवस्था कीजिये। वे अपनी पुत्रीको देखना चाहते हैं।' नरश्रेष्ठ उग्रसेनने जब दूतोंके मुँहसे यह बात सुनी तो प्रीति, स्नेह और उदारताके कारण अपनी प्रिय पत्नी पद्मावतीको विदर्भराजके यहाँ भेज दिया। पतिके भेजनेपर पद्मावती बड़े हर्षके साथ अपने मायके गयी। वहाँ पहुँचकर उसने पिताके चरणोंमें प्रणाम किया। उसके आनेसे महाराज सत्यकेतुको बड़ी प्रसन्नता हुई। पद्मावती वहाँ अपनी सखियोंके साथ नि:शंक होकर घूमने लगी। पहलेकी ही भाँति घर, वन, तालाब और चौबारोंमें विचरण करने लगी। यहाँ आकर वह पुनः बालिका बन गयी; उसके बर्तावमें लाज या संकोचका भाव नहीं रहा।

एक दिनकी बात है—'पद्मावती [अपनी सखियोंके साथ] एक सुन्दर पर्वतपर सैर करनेके लिये गयी। उसकी तराईमें एक रमणीय वन दिखायी दिया, जो केलोंके उद्यानसे शोभा पा रहा था। पहाड़पर भी फूलोंकी बहार थी। राजकुमारीने देखा—एक ओर ऐसा

रमणीय पर्वत, दूसरी ओर मनोहर वनस्थली और बीचमें स्वच्छ जलसे भरा सर्वतोभद्र नामक तालाब है। बालोचित चपलता, नारी-स्वभाव और खेल-कूदकी रुचि—इन सबका प्रभाव उसके ऊपर पड़ा। वह सहेलियोंके साथ तालाबमें उतर पड़ी और हँसती-गाती हुई जल-क्रीड़ा करने लगी।

इसी समय कुबेरका सेवक गोभिल नामक दैत्य दिव्य विमानपर बैठकर आकाशमार्गसे कहीं जा रहा था। तालाबके ऊपर आनेपर उसकी दृष्टि विशाल नेत्रोंवाली विदर्भ-राजकुमारी पद्मावतीपर पड़ी, जो निर्भय होकर स्नान कर रही थी। गोभिलकी ज्ञान-शक्ति बहुत बढ़ी हुई थी, उसने निश्चित रूपसे जान लिया कि 'यह विदर्भ-नरेशकी कन्या और महाराज उग्रसेनकी प्यारी पत्नी है। परन्तु यह तो पतिव्रता होनेके कारण आत्मबलसे ही सुरक्षित है, परपुरुषोंके लिये इसे प्राप्त करना नितान्त कठिन है। उग्रसेन महामूर्ख है, जो उसने ऐसी सुन्दरी पत्नीको मायके भेज दिया है। आह! यह पतिव्रता नारी पराये पुरुषके लिये दुर्लभ है, इधर कामदेव मुझे अत्यन्त पीड़ा दे रहा है। मैं किस प्रकार इसके निकट जाऊँ और कैसे इसका उपभोग करूँ?' इसी उधेड़-बुनमें पड़े-पड़े उसने अपने लिये एक उपाय निकाल लिया। गोभिलने महाराज उग्रसेनका मायामय रूप धारण किया। वह ज्यों-का-त्यों उग्रसेन बन गया। वही अंग, वही उपांग, वैसे ही वस्त्र, उसी तरहका वेष और वही अवस्था। पूर्णरूपसे उग्रसेन-सा होकर वह पर्वतके शिखरपर उतरा और एक अशोकवृक्षकी छायामें शिलाके ऊपर बैठकर उसने मधुर स्वरसे संगीत छेड़ दिया। वह गीत सम्पूर्ण विश्वको मोहित करनेवाला था। ताल, लय और उत्तम स्वरसे युक्त उस मधुर गानको सखियोंके मध्यमें बैठी हुई सुन्दरी पद्मावतीने भी सुना। वह सोचने लगी—कौन गायक यह गीत गा रहा है? राजकुमारीके मनमें उसे देखनेकी उत्कण्ठा हुई। उसने सखियोंके साथ जाकर देखा, अशोककी छायामें उज्ज्वल शिलाखण्डके ऊपर बैठा हुआ कोई पुरुष गा रहा है; वह महाराज उग्रसेन-सा ही जान पड़ता है। वास्तवमें तो वह राजाके वेषमें नीच दानव गोभिल ही था। पद्मावती विचार करने लगी—मेरे धर्मपरायण स्वामी मथुरानरेश अपना राज्य छोड़कर इतनी दूर कब और कैसे चले आये? वह इस प्रकार सोच ही रही थी कि उस पापीने स्वयं ही पुकारा—'प्रिये! आओ, आओ; देवि! तुम्हारे बिना मैं नहीं जी सकता। सुन्दरी! तुमसे अलग रहकर मेरे लिये इस प्रिय जीवनका भार वहन करना भी असम्भव हो गया है। तुम्हारे स्नेहने मुझे मोह लिया है; अतः मैं तुम्हें छोड़कर कहीं नहीं रह सकता।'

पतिरूपधारी दैत्यके ऐसा कहनेपर पद्मावती कुछ लज्जित-सी होकर उसके सामने गयी। वह पद्मावतीका हाथ पकड़कर उसे एकान्त स्थानमें ले गया और वहाँ अपनी इच्छाके अनुसार उसका उपभोग किया। महाराज उग्रसेनके गुप्त अंगमें कुछ खास निशानी थी, जो उस पुरुषमें नहीं दिखायी दी। इससे सुन्दरी पद्मावतीके मनमें उसके प्रति सन्देह उत्पन्न हुआ। राजकुमारीने अपने वस्त्र सँभालकर पहन लिये; किन्तु उसके हृदयमें इस घटनासे बड़ा दुःख हुआ। वह क्रोधमें भरकर नीच दानव गोभिलसे बोली—'ओ नीच! जल्दी बता, तू कौन है? तेरा आकार दानव-जैसा है, तू पापाचारी और निर्दयी है।' यह कहते-कहते आत्मग्लानिके कारण उसकी आँखें भर आयीं। वह शाप देनेको उद्यत होकर बोली—'दुरात्मन्! तूने मेरे पतिके रूपमें आकर मेरे साथ छल किया और इस धर्ममय शरीरको अपवित्र करके मेरे उत्तम पातिव्रत्यका नाश कर डाला है। अब यहीं तू मेरा भी प्रभाव देख ले, मैं तुझे अत्यन्त कठोर शाप दूँगी।'

उसकी बात सुनकर गोभिलने कहा—'पतिव्रता स्त्री, भगवान् श्रीविष्णु तथा उत्तम ब्राह्मणके भयसे तो समस्त राक्षस और दानव दूर भागते हैं। मैं दानव-धर्मके अनुसार ही इस पृथ्वीपर विचर रहा हूँ; पहले मेरे दोषका विचार करो, किस अपराधपर तुम मुझे शाप देनेको उद्यत हुई हो?'

पद्मावती बोली—पापी! मैं साध्वी और पतिव्रता हूँ, मेरे मनमें केवल अपने पतिकी कामना

रहती है; मैं सदा उन्हींके लिये तपस्या किया करती हूँ। मैं अपने धर्ममार्गपर स्थित थी, किन्तु तूने माया रचकर मेरे धर्मके साथ ही मुझे भी नष्ट कर दिया। इसलिये रे दुष्ट! तुझे भी मैं भस्म कर डालूँगी।

गोभिल बोला—राजकुमारी! यदि उचित समझो तो सुनो; मैं धर्मकी ही बात कह रहा हूँ। जो स्त्री प्रतिदिन मन, वाणी और क्रियाद्वारा अपने स्वामीकी सेवा करती है, पतिके संतुष्ट रहनेपर स्वयं भी संतोषका अनुभव करती है, पतिके क्रोधी होनेपर भी उसका त्याग नहीं करती, उसके दोषोंकी ओर ध्यान नहीं देती, उसके मारनेपर भी प्रसन्न होती है और स्वामीके सब कामोंमें आगे रहती है, वही नारी पतिव्रता कही गयी है। यदि स्त्री इस लोकमें अपना कल्याण करना चाहती हो तो वह पतित, रोगी, अंगहीन, कोढ़ी, सब धर्मोंसे रहित तथा पापी पतिका भी परित्याग न करे। जो स्वामीको छोड़कर जाती और दूसरे-दूसरे कामोंमें मन लगाती है, वह संसारमें सब धर्मोंसे बहिष्कृत व्यभिचारिणी समझी जाती है। जो पतिकी अनुपस्थितिमें लोलुपतावश ग्राम्य-भोग तथा शृंगारका सेवन करती है, उसे मनुष्य कुलटा कहते हैं। मुझे वेद और शास्त्रोंद्वारा अनुमोदित धर्मका ज्ञान है। गृहस्थ-धर्मका परित्याग करके पतिकी सेवा छोड़कर यहाँ किसलिये आयीं? इतनेपर भी अपने ही मुँहसे कहती हो—मैं पतिव्रता हूँ। कर्मसे तो तुममें पातिव्रत्यका लेशमात्र भी नहीं दिखायी देता। तुम डर-भय छोड़कर पर्वत और वनमें मतवाली होकर घूमती-फिरती हो, इसलिये पापिनी हो। मैंने यह महान् दण्ड देकर तुम्हें सीधी राहपर लगाया है—अब कभी तुमसे ऐसी धृष्टता नहीं हो सकती। बताओ तो, पतिको छोड़कर किसलिये यहाँ आयी हो? यह शृंगार, ये आभूषण तथा यह मनोहर वेष धारण करके क्यों खड़ी हो? पापिनी! बोलो न, किसलिये और किसके लिये यह सब किया है? कहाँ है तुम्हारा पातिव्रत्य? दिखाओ तो मेरे सामने। व्यभिचारिणी स्त्रियोंके समान बर्ताव करनेवाली नारी! तुम इस समय अपने पतिसे चार सौ कोस दूर हो; कहाँ है तुममें पतिको देवता माननेका भाव। दुष्टा कहींकी! तुम्हें लाज नहीं आती, अपने बर्तावपर घृणा नहीं होती? तुम क्या मेरे सामने बोलती हो। कहाँ है तुम्हारी तपस्याका प्रभाव। कहाँ है तुम्हारा तेज और बल। आज ही मुझे अपना बल, वीर्य और पराक्रम दिखाओ।

पद्मावती बोली—ओ नीच असुर! सुन; पिताने स्नेहवश मुझे पतिके घरसे बुलाया है, इसमें कहाँ पाप है। मैं काम, लोभ, मोह तथा डाहके वश पतिको छोड़कर नहीं आयी हूँ; मैं यहाँ भी पतिका चिन्तन करती हुई ही रहती हूँ। तुमने भी छलसे मेरे पतिका रूप धारण करके ही मुझे धोखा दिया है।

गोभिलने कहा—पद्मावती! मेरी युक्तियुक्त बात सुनो। अंधे मनुष्योंको कुछ दिखायी नहीं देता; तुम धर्मरूपी नेत्रसे हीन हो, फिर कैसे मुझे यहाँ पहचान पातीं। जिस समय तुम्हारे मनमें पिताके घर आनेका भाव उदय हुआ, उसी समय तुम पतिकी भावना छोड़कर उनके ध्यानसे मुक्त हो गयी थीं। पतिका निरन्तर चिन्तन ही सतियोंके ज्ञानका तत्त्व है। जब वही नष्ट हो गया, जब तुम्हारे हृदयकी आँख ही फूट गयी, तब ज्ञान-नेत्रसे हीन होनेपर तुम मुझे कैसे पहचानतीं।

ब्राह्मणी कहती है—प्राणनाथ! गोभिलकी बात सुनकर राजकुमारी पद्मावती धरतीपर बैठ गयी। उसके हृदयमें बड़ा दुःख हो रहा था। गोभिलने फिर कहा 'शुभे! मैंने तुम्हारे उदरमें जो अपने वीर्यकी स्थापना की है, उससे तीनों लोकोंको त्रास पहुँचानेवाला पुत्र उत्पन्न होगा।' यों कहकर वह दानव चला गया। गोभिल बड़ा दुराचारी और पापात्मा था। उसके चले जानेपर पद्मावती महान् दुःखसे अभिभूत होकर रोने लगी। रोनेका शब्द सुनकर सखियाँ उसके पास दौड़ी आयीं और पूछने लगीं—'राजकुमारी! रोती क्यों हो? मथुरानरेश महाराज उग्रसेन कहाँ चले गये?' पद्मावतीने अत्यन्त दुःखसे रोते-रोते अपने छले जानेकी सारी बात बता दी। सहेलियाँ उसे पिताके घर ले गयीं। उस समय वह शोकसे कातर हो थर-थर काँप रही थी। सखियोंने पद्मावतीकी माताके सामने सारी घटना कह दी। सुनते ही महारानी अपने पतिके महलमें गयीं और उनसे

कन्याका सारा वृत्तान्त उन्होंने कह सुनाया। उसे सुनकर महाराज सत्यकेतुको बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने सवारी और वस्त्र आदि देकर कुछ लोगोंके साथ पुत्रीको मथुरामें उसके पतिके घर भेज दिया।

धर्मात्मा राजा उग्रसेन पद्मावतीको आयी देख बहुत प्रसन्न हुए। वे रानीसे बार-बार कहने लगे— 'सुन्दरी! मैं तुम्हारे बिना जीवन धारण नहीं कर सकता। प्रिये! तुम अपने गुण, शील, भक्ति, सत्य और पातिव्रत्य आदि सद्गुणोंसे मुझे अत्यन्त प्रिय लगती हो।' अपनी प्यारी भार्या पद्मावतीसे यों कहकर नृपश्रेष्ठ महाराज उग्रसेन उसके साथ विहार करने लगे। सब लोगोंको भय पहुँचानेवाला उसका भयंकर गर्भ दिन-दिन बढ़ने लगा; किन्तु उस गर्भका कारण केवल पद्मावती ही जानती थी। अपने उदरमें बढ़ते हुए उस गर्भके विषयमें पद्मावतीको दिन-रात चिन्ता बनी रहती थी। दस वर्षतक वह गर्भ बढ़ता ही गया। तत्पश्चात् उसका जन्म हुआ। वही महान् तेजस्वी और महाबली कंस था, जिसके भयसे तीनों लोकोंके निवासी थर्रा उठे थे तथा जो भगवान् श्रीकृष्णके हाथसे मारा जाकर मोक्षको प्राप्त हुआ। स्वामिन्! ऐसी घटना भविष्यमें संघटित होनेवाली है, यह मैंने सुन रखा है। मैंने आपसे जो कुछ कहा है, वह समस्त पुराणोंका निश्चित मत है। इस प्रकार पिताके घरमें रहनेवाली कन्या बिगड़ जाती है। अतः कन्याको घरमें रखनेका मोह नहीं करना चाहिये। यह सुदेवा बड़ी दुष्टा और महापापिनी है। अतः इसका परित्याग करके आप निश्चिन्त हो जाइये।

शूकरी कहती है—माताकी यह बात—यह उत्तम सलाह सुनकर मेरे पिता द्विजश्रेष्ठ वसुदत्तने मुझे त्याग देनेका ही निश्चय किया। उन्होंने मुझे बुलाकर कहा—'दुष्टे! कुलमें कलंक लगानेवाली दुराचारिणी! तेरे ही अन्यायसे परम बुद्धिमान् शिवशर्मा चले गये। जहाँ तेरे स्वामी रहते हैं, वहीं तू भी चली जा; अथवा जो स्थान तुझे अच्छा लगे, वहीं जा, जैसा जीमें आये, वैसा कर।' महारानीजी! यों कहकर पिता-माता और कुटुम्बके लोगोंने मुझे त्याग दिया। मैं तो अपनी लाज-हया खो चुकी थी, शीघ्र ही वहाँसे चल दी। किन्तु कहीं भी मुझे ठहरनेके लिये स्थान और सुख नहीं मिलता था। लोग मुझे देखते ही 'यह कुलटा आयी!' कहकर दुत्कारने लगते थे।

कुल और मानसे वंचित होकर घूमती-फिरती मैं प्रान्तसे बाहर निकल गयी और गुर्जर देश (गुजरात प्रान्त)-के सौराष्ट्र (प्रभास) नामक पुण्यतीर्थमें जा पहुँची, जहाँ भगवान् शिव (सोमनाथ)-का मन्दिर है। मन्दिरके पास ही वनस्थल नामसे विख्यात एक नगर था, जिसकी उस समय बड़ी उन्नति थी। मैं भूखसे अत्यन्त पीड़ित थी, इसलिये खपरा लेकर भीख माँगने चली। परन्तु सब लोग मुझसे घृणा करते थे। 'यह पापिनी आयी [भगाओ इसे]' यों कहकर कोई भी मुझे भिक्षा नहीं देता था। इस प्रकार दुःखमय जीवन व्यतीत करती मैं बड़े भारी रोगसे पीड़ित हो गयी। उस नगरमें घूमते-घूमते मैंने एक बड़ा सुन्दर घर देखा, जहाँ वैदिक पाठशाला थी। वह घर अनेक ब्राह्मणोंसे भरा था और वहाँ सब ओर वेदमन्त्रोंकी ध्वनि हो रही थी। लक्ष्मीसे युक्त और आनन्दसे परिपूर्ण उस रमणीय गृहमें मैंने

प्रवेश किया। वह सब ओरसे मंगलमय प्रतीत होता था। मेरे पति शिवशर्माका ही वह घर था। मैं दुःखसे पीड़ित होकर बोली—'भिक्षा दीजिये।' द्विजश्रेष्ठ शिवशर्माने भिक्षाका शब्द सुना। उनकी एक भार्या थी, जो साक्षात् लक्ष्मीके समान रूपवती थी। उसका मुख बड़ा ही सुन्दर था। वह मंगला नामसे प्रसिद्ध थी। परम बुद्धिमान् धर्मात्मा शिवशर्माने मन्द-मन्द मुसकराती हुई अपनी पत्नी मंगलासे कहा—'प्रिये! वह देखो—एक दुबली-पतली स्त्री आयी है, जो भिक्षाके लिये द्वारपर खड़ी है; इसे घरमें बुलाकर भोजन दो।' मुझे आयी जान मंगलाका हृदय अत्यन्त करुणासे भर आया। उसने मुझ दीन-दुर्बल भिक्षुकीको मिष्टान्न भोजन कराया। मैं अपने पतिको पहचान गयी थी, उन्हें देखकर लज्जासे मेरा मस्तक झुक गया। परम सुन्दरी मंगलाने मेरे इस भावको लक्ष्य किया और स्वामीसे पूछा—'प्राणनाथ! यह कौन है, जो आपको देखकर लजा रही है? मुझपर कृपा करके इसका यथार्थ परिचय दीजिये।'

शिवशर्माने कहा—प्रिये! यह विप्रवर वसुदत्तकी कन्या है। बेचारी इस समय भिक्षुकीके रूपमें यहाँ आयी है। इसका नाम सुदेवा है। यह मेरी कल्याणमयी भार्या है, जो मुझे सदा ही प्रिय रही है। किसी विशेष कारणसे यह अपना देश छोड़कर आज यहाँ आयी है, ऐसा समझकर तुम्हें इसका अच्छे ढंगसे स्वागत-सत्कार करना चाहिये। यदि तुम मेरा भलीभाँति प्रिय करना चाहती हो तो इसके आदरभावमें कमी न करना।

पतिकी बात सुनकर मंगलमयी मंगला बहुत प्रसन्न हुई। उसने अपने ही हाथों मुझे स्नान कराकर उत्तम वस्त्र पहननेको दिया और स्वयं भोजन बनाकर खिलाने-पिलाने लगी। रानीजी! अपने स्वामीके द्वारा इतना सम्मान पाकर मुझे अपार दुःख हुआ। मेरे हृदयमें पश्चात्तापकी तीव्र अग्नि प्रज्वलित हो उठी। मैंने मंगलाके किये हुए सम्मान और अपने दुष्कर्मकी ओर देखा; इससे मनमें दुःसह चिन्ता हुई, यहाँतक कि प्राण जानेकी नौबत आ गयी। मैं ऐसी पापिनी थी कि पतिसे कभी मीठे वचनतक नहीं बोली। उलटे उन श्रेष्ठ ब्राह्मणके विपरीत बुरे कर्मोंका ही आचरण करती रही। इस प्रकार चिन्ता करते-करते मेरा हृदय फट गया और प्राण शरीर छोड़कर चल बसे।

तदनन्तर यमराजके दूत आये और मुझे साँकलके दृढ़ बन्धनमें बाँधकर यमपुरीको ले चले। मार्गमें जब मैं अत्यन्त दुःखी होकर रोती तब वे मुझे मुगदरोंसे पीटते और दुर्गम मार्गसे ले जाकर कष्ट पहुँचाते थे। बीच-

बीचमें मुझे फटकारें भी सुनाते जाते थे। उन्होंने मुझे यमराजके सामने ले जाकर खड़ा कर दिया। महात्मा यमराजने बड़ी क्रोधपूर्ण दृष्टिसे मेरी ओर देखा और मुझे अंगारोंकी ढेरीमें फेंकवा दिया। उसके बाद मैं कई नरकोंमें डाली गयी। मैंने अपने स्वामीके साथ धोखा किया था, इसलिये एक लोहेका पुरुष बनाकर उसे आगसे तपाया गया और वह मेरी छातीपर सुला दिया गया। नरककी प्रचण्ड आगमें तपायी जानेपर मैं नाना प्रकारकी पीड़ाओंसे अत्यन्त कष्ट पाने लगी। असिपत्र-वनमें पड़कर मेरा सारा शरीर छिन्न-भिन्न हो गया। फिर मैं पीब, रक्त और विष्ठामें डाली गयी।

कीड़ोंसे भरे हुए कुण्डमें रहना पड़ा। आरीसे मुझे चीरा गया। शक्ति नामक अस्त्रका भलीभाँति मुझपर प्रहार किया गया। दूसरे-दूसरे नरकोंमें भी मैं गिरायी गयी। अनेक योनियोंमें जन्म लेकर मुझे असह्य दुःख भोगना पड़ा। पहले सियारकी योनिमें पड़ी, फिर कुत्तेकी योनिमें जन्म लिया। तत्पश्चात् क्रमशः साँप, मुर्गे, बिल्ली और चूहेकी योनिमें जाना पड़ा। इस प्रकार धर्मराजने पीड़ा देनेवाली प्रायः सभी पापयोनियोंमें मुझे डाला। उन्होंने ही मुझे इस भूतलपर शूकरी बनाया है। महाभागे! तुम्हारे हाथमें अनेक तीर्थोंका वास है। देवि! तुमने अपने हाथके जलसे मुझे सींचा है, इसलिये तुम्हारी कृपासे मेरा सब पाप दूर हो गया। तुम्हारे तेज और पुण्यसे मुझे अपने पूर्वजन्मकी बातोंका ज्ञान हुआ है। रानीजी! इस समय संसारमें केवल तुम्हीं सबसे बड़ी पतिव्रता हो। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि तुमने अपने स्वामीकी बहुत बड़ी सेवा की है। सुन्दरी! यदि मेरा प्रिय करना चाहती हो तो अपने एक दिनकी पतिसेवाका पुण्य मुझे अर्पण कर दो। इस समय तुम्हीं मेरी माता, पिता और सनातन गुरु हो। मैं पापिनी, दुराचारिणी, असत्यवादिनी और ज्ञानहीना हूँ। महाभागे! मेरा उद्धार करो।

सुकला बोली—सखियो! शूकरीकी यह बात सुनकर रानी सुदेवाने राजा इक्ष्वाकुकी ओर देखकर पूछा—'महाराज! मैं क्या करूँ? यह शूकरी क्या कहती है?'

इक्ष्वाकुने कहा—शुभे! यह बेचारी पाप-योनिमें पड़कर दुःख उठा रही है; तुम अपने पुण्योंसे इसका उद्धार करो, इससे महान् कल्याण होगा।

महाराजकी आज्ञा लेकर रानी सुदेवाने शूकरीसे कहा—'देवि! मैंने अपना एक वर्षका पुण्य तुम्हें अर्पण किया।' रानी सुदेवाके इतना कहते ही वह शूकरी तत्काल दिव्य देह धारण कर प्रकट हुई। उसके शरीरसे तेजकी ज्वाला निकल रही थी। सब प्रकारके आभूषण और भाँति-भाँतिके रत्न उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। वह साध्वी दिव्यरूपसे युक्त हो दिव्य विमानपर बैठी और अन्तरिक्ष लोकको चलने लगी। जाते समय उसने मस्तक झुकाकर रानीको प्रणाम किया और कहा—'महाभागे! तुम्हारी कृपासे आज मैं पापमुक्त होकर परम पवित्र एवं मंगलमय वैकुण्ठको जा रही हूँ।' यों कहकर वह वैकुण्ठको चली गयी।

सुकला कहने लगी—इस प्रकार पहले मैंने पुराणोंमें नारीधर्मका वर्णन सुना है। ऐसी दशामें जब पतिदेव यहाँ उपस्थित नहीं हैं, मैं किस प्रकार भोगोंका उपभोग करूँ। मेरे लिये ऐसा विचार निश्चय ही पापपूर्ण होगा।

सुकलाके मुखसे इस प्रकार उत्तम पातिव्रत्य-धर्मका वर्णन सुनकर सखियोंको बड़ा हर्ष हुआ। नारियोंको सद्गति प्रदान करनेवाले उस परम पवित्र धर्मका श्रवण करके समस्त ब्राह्मण और पुण्यवती स्त्रियाँ धर्मानुरागिणी महाभागा सुकलाकी प्रशंसा करने लगीं।

सुकलाका सतीत्व नष्ट करनेके लिये इन्द्र और काम आदिकी कुचेष्टा तथा उनका असफल होकर लौट आना

भगवान् श्रीविष्णु कहते हैं—राजेन्द्र! सुकलाके मनमें केवल पतिका ही ध्यान था और पतिकी ही कामना थी। उसके सतीत्वका प्रभाव देवराज इन्द्रने भी भलीभाँति देखा तथा उसके विषयमें पूर्णतया विचार करके वे मन-ही-मन कहने लगे—'मैं इसके अविचल धैर्य [और धर्म]-को नष्ट कर दूँगा।' ऐसा निश्चय करके उन्होंने तुरंत ही कामदेवका स्मरण किया। महाबली कामदेव अपनी प्रिया रतिके साथ वहाँ आ गये और हाथ जोड़कर इन्द्रसे बोले—'नाथ! इस समय किसलिये आपने मुझे याद किया है? आज्ञा दीजिये, मैं सब प्रकारसे उसका पालन करूँगा।'

इन्द्रने कहा—कामदेव! यह जो पातिव्रत्यमें तत्पर रहनेवाली महाभागा सुकला है, वह परम पुण्यवती और मंगलमयी है; मैं इसे अपनी ओर आकर्षित करना

चाहता हूँ। इस कार्यमें तुम मेरी पूरी तरहसे सहायता करो।

कामदेवने उत्तर दिया—'सहस्रलोचन! मैं आपकी इच्छापूर्तिके लिये आपकी सहायता अवश्य करूँगा। देवराज! मैं देवताओं, मुनियों और बड़े-बड़े ऋषीश्वरोंको भी जीतनेकी शक्ति रखता हूँ; फिर एक साधारण कामिनीको, जिसके शरीरमें कोई बल ही नहीं होता, जीतना कौन बड़ी बात है। मैं कामिनियोंके विभिन्न अंगोंमें निवास करता हूँ। नारी मेरा घर है, उसके भीतर मैं सदा मौजूद रहता हूँ। अतः भाई, पिता, स्वजन-सम्बन्धी या बन्धु-बान्धव—कोई भी क्यों न हो, यदि उसमें रूप और गुण है तो वह उसे देखकर मेरे बाणोंसे घायल हो ही जाती है। उसका चित्त चंचल हो जाता है, वह परिणामकी चिन्ता नहीं करती। इसलिये देवेश्वर! मैं सुकलाके सतीत्वको अवश्य नष्ट करूँगा।'

इन्द्र बोले—मनोभव! मैं रूपवान्, गुणवान् और धनी बनकर कौतूहलवश इस नारीको [धर्म और] धैर्यसे विचलित करूँगा।

कामदेवसे यों कहकर देवराज इन्द्र उस स्थानपर गये, जहाँ कृकल वैश्यकी प्यारी पत्नी सुकला देवी निवास करती थी। वहाँ जाकर वे अपने हाव-भाव, रूप और गुण आदिका प्रदर्शन करने लगे। रूप और सम्पत्तिसे युक्त होनेपर भी उस पराये पुरुषपर सुकला दृष्टि नहीं डालती थी; परन्तु वह जहाँ-जहाँ जाती, वहीं-वहीं पहुँचकर इन्द्र उसे निहारते थे। इस प्रकार सहस्रनेत्रधारी इन्द्र अपने सम्पूर्ण भावोंसे कामजनित चेष्टा प्रदर्शित करते हुए चाहभरे हृदयसे उसकी ओर देखते थे। इन्द्रने उसके पास अपनी दूती भी भेजी। वह मुसकराती हुई गयी और मन-ही-मन सुकलाकी प्रशंसा करती हुई बोली—'अहो! इस नारीमें कितना सत्य, कितना धैर्य, कितना तेज और कितना क्षमाभाव है। संसारमें इसके रूपकी समानता करनेवाली दूसरी कोई भी सुन्दरी नहीं है।' इसके बाद उसने सुकलासे पूछा—'कल्याणी! तुम कौन हो, किसकी पत्नी हो? जिस पुरुषको तुम-जैसी गुणवती भार्या प्राप्त है, वही इस पृथ्वीपर पुण्यका भागी है।'

दूतीकी बात सुनकर मनस्विनी सुकलाने कहा—'देवि! मेरे पति वैश्य जातिमें उत्पन्न, धर्मात्मा और सत्यप्रेमी हैं; उन्हें लोग कृकल कहते हैं। मेरे स्वामीकी बुद्धि उत्तम है, उनका चित्त सदा धर्ममें ही लगा रहता है। वे इस समय तीर्थ-यात्राके लिये गये हैं; उन्हें गये आज तीन वर्ष हो गये। अतः उन महात्माके बिना मैं बहुत दुःखी हूँ। यही मेरा हाल है। अब यह बताओ कि तुम कौन हो, जो मुझसे मेरा हाल पूछ रही हो?' सुकलाका कथन सुनकर दूतीने पुनः इस प्रकार कहना आरम्भ किया—'सुन्दरी! तुम्हारे स्वामी बड़े निर्दयी हैं, जो तुम्हें अकेली छोड़कर चले गये। वे अपनी प्रिय पत्नीके घातक जान पड़ते हैं, अब उन्हें लेकर क्या करोगी। जो तुम-जैसी साध्वी और सदाचार-परायणा पत्नीको छोड़कर चले गये, वे पापी नहीं तो क्या हैं। बाले! अब तो वे गये; अब उनसे तुम्हारा क्या नाता है। कौन जाने वे वहाँ जीवित हैं या मर गये। जीते भी हों तो उनसे तुम्हें क्या लेना है। तुम व्यर्थ ही इतना खेद करती हो। इस सोने-जैसे शरीरको क्यों नष्ट करती हो। मनुष्य बचपनमें खेल-कूदके सिवा और किसी सुखका अनुभव नहीं करता। बुढ़ापा आनेपर जब जरावस्था शरीरको जीर्ण बना देती है, तब दुःख-ही-दुःख उठाना रह जाता है। इसलिये सुन्दरी! जबतक जवानी है, तभीतक संसारके सम्पूर्ण सुख और भोग भोग लो। मनुष्य जबतक जवान रहता है, तभीतक वह भोग भोगता है। सुख-भोग आदिकी सब सामग्रियोंका इच्छानुसार सेवन करता है। इधर देखो—ये एक पुरुष आये हैं, जो बड़े सुन्दर, गुणवान्, सर्वज्ञ, धनी तथा पुरुषोंमें श्रेष्ठ हैं। तुम्हारे ऊपर इनका बड़ा स्नेह है; ये सदा तुम्हारे हित-साधनके लिये प्रयत्नशील रहते हैं। इनके शरीरमें कभी बुढ़ापा नहीं आता। स्वयं तो ये सिद्ध हैं ही, दूसरोंको भी उत्तम सिद्धि प्रदान करनेवाले हैं। उत्तम सिद्ध और सर्वज्ञोंमें श्रेष्ठ हैं। लोकमें अपने स्वरूपसे सबकी कामना पूर्ण करते हैं।

सुकला बोली—दूती! यह शरीर मल-मूत्रका

खजाना है, अपवित्र है; सदा ही क्षय होता रहता है। शुभे! यह पानीके बुलबुलेके समान क्षणभंगुर है। फिर इसके रूपका क्या वर्णन करती हो। पचास वर्षकी अवस्थातक ही यह देह दृढ़ रहती है, उसके बाद प्रतिदिन क्षीण होती जाती है। भला, बताओ तो, मेरे इस शरीरमें ही तुमने ऐसी क्या विशेषता देखी है, जो अन्यत्र नहीं है। उस पुरुषके शरीरसे मेरे शरीरमें कोई भी वस्तु अधिक नहीं है। जैसी तुम, जैसा वह पुरुष, वैसी ही मैं—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है, ऊँचे उठनेका परिणाम पतन ही है। ये बड़े-बड़े वृक्ष और पर्वत कालसे पीड़ित होकर नष्ट हो जाते हैं। यही दशा सम्पूर्ण भूतोंकी है—इसमें रत्तीभर भी संदेह नहीं। दूती! आत्मा दिव्य है। वह रूपहीन है। स्थावर-जंगम सभी प्राणियोंमें वह व्याप्त है। जैसे एक ही जल भिन्न-भिन्न घड़ोंमें रहता है, उसी प्रकार एक ही शुद्ध आत्मा सम्पूर्ण भूतोंमें निवास करता है। घड़ोंका नाश होनेसे जैसे सब जल मिलकर एक हो जाता है, उसी प्रकार आत्माकी भी एकता समझो। [स्थूल, सूक्ष्म और कारणरूप] त्रिविध शरीरका नाश होनेपर पंचकोशके सम्बन्धसे पाँच प्रकारका प्रतीत होनेवाला आत्मा एकरूप हो जाता है। संसारमें निवास करनेवाले प्राणियोंका मैंने सदा एक ही रूप देखा है। [किसीमें कोई अपूर्वता नहीं है।] कामकी खुजलाहट सब प्राणियोंको होती है। उस समय स्त्री और पुरुष दोनोंकी इन्द्रियोंमें उत्तेजना पैदा हो जाती है, जिससे वे दोनों प्रमत्त होकर एक-दूसरेसे मिलते हैं। शरीरसे शरीरको रगड़ते हैं। इसीका नाम मैथुन है। इससे क्षणभरके लिये सुख होता है, फिर वैसी ही दशा हो जाती है। दूती! सर्वत्र यही बात देखी जाती है। इसलिये अब तुम अपने स्थानको लौट जाओ। तुम्हारे प्रस्तावित कार्यमें कोई नवीनता नहीं है। कम-से-कम मेरे लिये तो इसमें कोई अपूर्व बात नहीं जान पड़ती; अतः मैं कदापि ऐसा नहीं कर सकती।

भगवान् श्रीविष्णु कहते हैं—सुकलाके यों कहनेपर दूती चली गयी। उसने इन्द्रसे उसकी कही हुई सारी बातें संक्षेपमें सुना दीं। सुकलाका भाषण सत्य और धर्मसे युक्त था। उसके साहस, धैर्य और ज्ञानकी आलोचना करके इन्द्र मन-ही-मन सोचने लगे—'इस पृथ्वीपर दूसरी कोई स्त्री ऐसी नहीं है, जो इस तरहकी बात कह सके। इसका वचन योगस्वरूप, निश्चयात्मक तथा ज्ञानरूपी जलसे प्रक्षालित है। इसमें सन्देह नहीं कि यह महाभागा सुकला परम पवित्र और सत्यस्वरूपा है। यह समस्त त्रिलोकीको धारण करनेमें समर्थ है।' यह विचारकर इन्द्रने कामदेवसे कहा—'अब मैं तुम्हारे साथ कृकलपत्नी सुकलाको देखने चलूँगा।' कामदेवको अपने बलपर बड़ा घमंड था। वह जोशमें आकर इन्द्रसे बोला—'देवराज! जहाँ वह पतिव्रता रहती है, उस स्थानपर चलिये। मैं अभी चलकर उसके ज्ञान, वीर्य, बल, धैर्य, सत्य और पातिव्रत्यको नष्ट कर डालूँगा। उसकी क्या शक्ति है, जो मेरे सामने टिक सके।'

कामदेवकी बात सुनकर इन्द्रने कहा—'काम! मैं जानता हूँ, यह पतिव्रता तुमसे परास्त होनेवाली नहीं है। यह अपने धर्ममय पराक्रमसे सुरक्षित है। इसका भाव बहुत सच्चा है। यह नाना प्रकारके पुण्य किया करती है। फिर भी मैं यहाँसे चलकर तुम्हारे तेज, बल और भयंकर पराक्रमको देखूँगा।' यह कहकर इन्द्र धनुर्धर वीर कामदेवके साथ चले। उनके साथ कामकी पत्नी रति और दूती भी थी। वह परम पुण्यमयी पतिव्रता अपने घरके द्वारपर अकेली बैठी थी और केवल पतिके ध्यानमें तन्मय हो रही थी। वह प्राणोंको वशमें करके स्वामीका चिन्तन करती हुई विकल्प-शून्य हो गयी थी। कोई भी पुरुष उसकी स्थितिकी कल्पना नहीं कर सकता था। उस समय इन्द्र अनुपम तेज और सौन्दर्यसे युक्त, विलास तथा हाव-भावसे सुशोभित अत्यन्त अद्‌भुत रूप धारण करके सुकलाके सामने प्रकट हुए। उत्तम विलास और कामभावसे युक्त महापुरुषको इस प्रकार सामने विचरण करते देख महात्मा कृकल वैश्यकी पत्नीने उसके रूप, गुण और तेजका तनिक भी सम्मान नहीं किया। जैसे कमलके पत्तेपर छोड़ा हुआ जल उस पत्तेको छोड़कर दूर चला जाता है—उसमें ठहरता नहीं, उसी प्रकार वह

सती भी उस पुरुषकी ओर आकृष्ट नहीं हुई। महासती सुकलाका तेज सत्यकी रज्जुसे आबद्ध था। [उस पुरुषकी दृष्टिसे बचनेके लिये] वह घरके भीतर चली गयी और अपने पतिमें ही अनुरक्त हो उन्हींका चिन्तन करने लगी।

इन्द्र सुकलाके शुद्ध भावको समझकर सामने खड़े हुए कामदेवसे बोले—'इस सतीने सत्यरूप पतिके ध्यानका कवच धारण कर रखा है। [तुम्हारे बाण इसे चोट नहीं पहुँचा सकते,] अतः सुकलाको परास्त करना असम्भव है। यह पतिव्रता अपने हाथमें धर्मरूपी धनुष और ध्यानरूपी उत्तम बाण लेकर इस समय रणभूमिमें तुमसे युद्ध करनेको उद्यत है। अज्ञानी पुरुष ही त्रिलोकीके महात्माओंके साथ वैर बाँधते हैं। कामदेव! इस सतीके तपका नाश करनेसे हम दोनोंको अनन्त एवं अपार दुःख भोगना पड़ेगा। इसलिये अब हमें इसे छोड़कर यहाँसे चल देना चाहिये। तुम जानते हो, पहले एक बार मैं सतीके साथ समागम करनेका पापमय परिणाम—असह्य दुःख भोग चुका हूँ। महर्षि गौतमने मुझे भयंकर शाप दिया था। आगकी लपटको छूनेका साहस कौन करेगा। कौन ऐसा मूर्ख है, जो अपने गलेमें भारी पत्थर बाँधकर समुद्रमें उतरना चाहेगा तथा किसको मौतके मुखमें जानेकी इच्छा है, जो सती स्त्रीको विचलित करनेका प्रयत्न करेगा।'

इन्द्रने कामदेवको उत्तम शिक्षा देनेके लिये बहुत ही नीतियुक्त बात कही; उसे सुनकर कामदेवने इन्द्रसे कहा—'सुरेश! मैं तो आपके ही आदेशसे यहाँ आया था। अब आप धैर्य, प्रेम तथा पुरुषार्थका त्याग करके ऐसी पौरुषहीनता और कायरताकी बातें क्यों करते हैं। पूर्वकालमें मैंने जिन-जिन देवताओं, दानवों और तपस्यामें लगे हुए मुनीश्वरोंको परास्त किया है, वे सब मेरा उपहास करते हुए कहेंगे कि 'यह कामदेव बड़ा डरपोक है, एक साधारण स्त्रीने इसको क्षणभरमें परास्त कर दिया।' इसलिये मैं अपने सम्मानरूपी धनकी रक्षा करूँगा और आपके साथ चलकर इस सतीके तेज, बल और धैर्यका नाश करूँगा। आप डरते क्यों हैं।' देवराज इन्द्रको इस प्रकार समझा-बुझाकर कामदेवने पुष्पयुक्त धनुष और बाण हाथमें ले लिये तथा सामने खड़ी हुई अपनी सखी क्रीड़ासे कहा—'प्रिये! तुम माया रचकर वैश्यपत्नी सुकलाके पास जाओ। वह अत्यन्त पुण्यवती, सत्यमें स्थित, धर्मका ज्ञान रखनेवाली और गुणज्ञ है। यहाँसे जाकर तुम मेरी सहायताके लिये उत्तम-से-उत्तम कार्य करो।' क्रीड़ासे यों कहकर वे पास ही खड़ी हुई प्रीतिको सम्बोधित करके बोले—'तुम्हें भी मेरी सहायताके लिये उत्तम कार्य करना होगा; तुम अपनी चिकनी-चुपड़ी बातोंसे सुकलाको वशमें करो।' इस प्रकार अपने-अपने कार्यमें लगे हुए वायु आदिके साथ उपर्युक्त व्यक्तियोंको भेजकर कामदेवने उस महासतीको मोहित करनेके लिये इन्द्रके साथ पुनः प्रयाण किया।

सुकलाका सतीत्व नष्ट करनेके उद्देश्यसे जब इन्द्र और कामदेव प्रस्थित हुए; तब सत्यने धर्मसे कहा—'महाप्राज्ञ धर्म! कामदेवकी जो चेष्टा हो रही है, उसपर दृष्टिपात करो। मैंने तुम्हारे, अपने तथा महात्मा पुण्यके लिये जो स्थान बनाया था, उसे यह नष्ट करना चाहता है। दुष्टात्मा काम हमलोगोंका शत्रु है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। सदाचारी पति, तपस्वी ब्राह्मण और पतिव्रता पत्नी—ये तीन मेरे निवास-स्थान हैं। जहाँ मेरी वृद्धि होती है—जहाँ मैं पुष्ट और सन्तुष्ट रहता हूँ, वहीं तुम्हारा भी निवास होता है। श्रद्धाके साथ पुण्य भी वहाँ आकर क्रीड़ा करते हैं। मेरे शान्तियुक्त मन्दिरमें क्षमाका भी आगमन होता है। जहाँ मैं रहता हूँ, वहीं सन्तोष, इन्द्रिय-संयम, दया, प्रेम, प्रज्ञा और लोभहीनता आदि गुण भी निवास करते हैं। वहीं पवित्र भाव रहता है। ये सभी सत्यके बन्धु-बान्धव हैं। धर्म! चोरी न करना, अहिंसा, सहनशीलता और बुद्धि—ये सब मेरे ही घरमें आकर धन्य होते हैं। गुरु-शुश्रूषा, लक्ष्मीके साथ भगवान् श्रीविष्णु तथा अग्नि आदि देवता भी मेरे घरमें पधारते हैं। मोक्ष-मार्गको प्रकाशित करनेवाले ज्ञान और उदारता आदिसे युक्त हो पूर्वोक्त व्यक्तियोंके साथ मैं धर्मात्मा पुरुषों और सती स्त्रियोंके भीतर निवास करता हूँ। ये जितने भी साधु-महात्मा हैं, सब मेरे गृहस्वरूप हैं;

इन सबके भीतर मैं उक्त कुटुम्बियोंके साथ वास करता हूँ। जो जगत्‌के स्वामी, त्रिशूलधारी, वृषभवाहन तथा साक्षात् ईश्वर हैं, वे कल्याणमय भगवान् शिव भी मेरे निवास-स्थान हैं। कृकल वैश्यकी प्रियतमा भार्या मंगलमयी सुकला भी मेरा उत्तम गृह है; किन्तु आज पापी काम इसे भी जला डालनेको उद्यत हुआ है। ये बलवान् इन्द्र भी कामका साथ दे रहे हैं; कामकी ही करतूतसे अहल्याका संग करनेपर एक बार जो हानि उठानी पड़ी है, उस प्राचीन घटनाका इन्हें स्मरण क्यों नहीं होता। सतीके सतीत्वका नाश करनेसे ही इन्हें महान् दुःखमें पड़कर दुःसह शापका उपभोग करना पड़ा था। फिर भी आज कामदेवके साथ आकर ये धर्मचारिणी कृकलपत्नी सुकलाका अपहरण करनेको उतारू हुए हैं।'

धर्मने कहा—मैं कामका तेज कम कर दूँगा; [मैं यदि चाहूँ तो] उसकी मृत्युका भी कारण उपस्थित कर सकता हूँ। मैंने एक ऐसा उपाय सोच लिया है, जिससे यह काम आज ही भाग खड़ा होगा। यह महाप्रज्ञा पक्षिणीका रूप धारण करके सुकलाके घर जाय और अपने मंगलमय शब्दसे उसको स्वामीके शुभागमनकी सूचना दे।

धर्मके भेजनेसे प्रज्ञा सुकलाके घरमें गयी और वहाँ मंगलजनक शब्दका उच्चारण किया। सुकलाने धूप-गन्ध आदिके द्वारा उसका समादर और पूजन किया तथा सुयोग्य ब्राह्मणको बुलाकर पूछा—'इस शकुनका क्या तात्पर्य है? मेरे पतिदेव कब आयेंगे?'

ब्राह्मणने कहा—भद्रे! यह शकुन तुम्हारे स्वामीके शुभागमनकी सूचना दे रहा है। वे सात दिनसे पहले-पहले यहाँ अवश्य आ जायँगे। इसमें अन्तर नहीं हो सकता।

ब्राह्मणका यह मंगलमय वचन सुनकर सुकलाको बड़ी प्रसन्नता हुई।

उधर कामदेवकी भेजी हुई क्रीड़ा सती स्त्रीका रूप धारण करके उस सुन्दरी पतिव्रताके घर गयी। उस रूपवती नारीको आयी देख सुकलाने आदरयुक्त वचन कहकर उसका सम्मान किया और अपनेको धन्य माना। उसकी पुण्यमयी वाणीसे पूजित होकर क्रीड़ा मुसकराती हुई बातचीत करने लगी। उसका मायामय वचन विश्वको मोहित करनेवाला था। सुननेपर सत्य और विश्वासके योग्य जान पड़ता था। क्रीड़ा बोली—'देवि! मेरे स्वामी बड़े बलवान्, गुणज्ञ, धीर तथा अत्यन्त पुण्यात्मा हैं; परन्तु मुझे छोड़कर न जाने कहाँ चले गये हैं। वह मेरे पूर्वजन्मके कर्मोंका फल है, जो आज इस रूपमें सामने आया है; मैं कैसी मन्दभागिनी हूँ। महाभागे! नारियोंके लिये रूप, सौभाग्य, शृंगार, सुख और सम्पत्ति—सब कुछ पति ही है; यही शास्त्रोंका मत है।'

पतिव्रता सुकलाने क्रीड़ाकी ये सारी बातें सुनीं। उसे विश्वास हो गया कि यह सब कुछ इस दुःखिनी नारीके हृदयका सच्चा भाव है। वह उसके दुःखसे दुःखी हो गयी और अपनी बातें भी उसे बताने लगी। उसने पहलेका अपना सारा हाल थोड़ेमें कह सुनाया। अपने दुःख-सुखकी बात बताकर मनस्विनी सुकला चुप हो गयी; तब क्रीड़ाने उस पतिव्रताको सान्त्वना दी और बहुत कुछ समझाया-बुझाया। तदनन्तर एक दिन उसने सुकलासे कहा—'सखी! देखो, वह सामने बड़ा सुन्दर वन दिखायी दे रहा है; अनेकों दिव्य वृक्ष उसकी शोभा बढ़ा रहे हैं। वहाँ एक परम पवित्र पापनाशन तीर्थ है; वरानने! चलो, हम दोनों भी वहाँ पुण्य-संचय करनेके लिये चलें।'

यह सुनकर सुकला उस मायामयी स्त्रीके साथ वहाँ जानेको राजी हो गयी। उसने वनमें प्रवेश करके देखा तो उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानो उसमें नन्दन-वनकी शोभा उतर आयी है। सभी ऋतुओंके फूल खिले थे; सैकड़ों कोकिलोंके कलरवसे सारा वन-प्रान्त गूँज रहा था। माधवी लता और माधव (वसन्त)-ने उस उपवनकी शोभाको सब भावोंसे परिपूर्ण बनाया था! सुकलाको मोहित करनेके लिये ही उसकी सृष्टि की गयी थी। उसने क्रीड़ाके साथ सबके मनको भानेवाले उस वनमें घूम-घूमकर अनेकों दिव्य कौतुक देखे। इसी समय रतिके साथ काम और इन्द्र भी वहाँ आये। इन्द्र सम्पूर्ण भोगोंके अधिपति होकर भी काम-क्रीडाके लिये व्यग्र थे। उन्होंने कामदेवको पुकारकर कहा—'लो, यह सुकला आ

गयी, क्रीड़ाके आगे खड़ी है। इस महाभागा सतीपर प्रहार करो।'

कामदेव बोला—सहस्रलोचन! लीला और चातुरीसे युक्त अपने दिव्य रूपको प्रकट कीजिये, जिसका आश्रय लेकर मैं इसके ऊपर अपने पाँचों बाणोंका पृथक्-पृथक् प्रहार करूँ। त्रिशूलधारी महादेवने मेरे रूपको पहले ही हर लिया। मेरा शरीर है ही नहीं। जब मैं किसी नारीको अपने बाणोंका निशाना बनाना चाहता हूँ, उस समय पुरुष-शरीरका आश्रय लेकर अपने रूपको प्रकट करता हूँ। इसी तरह पुरुषपर प्रहार करनेके लिये मैं नारी-देहका आश्रय लेता हूँ। पुरुष जब पहले-पहल किसी सुन्दरी नारीको देखकर बारम्बार उसीका चिन्तन करने लगता है, तब मैं चुपकेसे उसके भीतर घुसकर उसे उन्मत्त बना देता हूँ। स्मरण—चिन्तनसे मेरा प्रादुर्भाव होता है; इसीलिये मेरा नाम 'स्मर' हो गया है। आज मैं आपके रूपका आश्रय लेकर इस नारीको अपनी इच्छाके अनुसार नचाऊँगा।

यों कहकर कामदेव इन्द्रके शरीरमें घुस गया और पुण्यमयी कृकल-पत्नी सती सुकलाको घायल करनेके लिये हाथमें बाण ले उत्कण्ठापूर्वक अवसरकी प्रतीक्षा करने लगा। वह उसके नेत्रोंको ही लक्ष्य बनाये बैठा था।

भगवान् श्रीविष्णु कहते हैं—राजन्! क्रीड़ाकी प्रेरणासे उस सुन्दर वनमें गयी हुई वैश्यपत्नी सुकलाने पूछा—'सखी! यह मनोरम दिव्य वन किसका है?'

क्रीड़ा बोली—यह स्वभावसिद्ध दिव्य गुणोंसे युक्त सारा वन कामदेवका है, तुम भलीभाँति इसका निरीक्षण करो।

दुरात्मा कामकी यह चेष्टा देखकर सुन्दरी सुकलाने वायुके द्वारा लायी हुई वहाँके फूलोंकी सुगन्धको नहीं ग्रहण किया। उस सतीने वहाँके रसोंका भी आस्वादन नहीं किया। यह देख कामदेवका मित्र वसन्त बहुत लज्जित हुआ। तत्पश्चात् कामदेवकी पत्नी रति प्रीतिको साथ लेकर आयी और सुकलासे हँसकर बोली—'भद्रे! तुम्हारा कल्याण हो, मैं तुम्हारा स्वागत करती हूँ। तुम रति और प्रीतिके साथ यहाँ रमण करो।' सुकलाने कहा—'जहाँ मेरे स्वामी हैं, वहीं मैं भी हूँ। मैं सदा पतिके साथ रहती हूँ। मेरा काम, मेरी प्रीति सब वहीं है। यह शरीर तो निराश्रय है—छायामात्र है।' यह सुनकर रति और प्रीति दोनों लज्जित हो गयीं तथा महाबली कामके पास जाकर बोलीं—'महाप्राज्ञ! अब आप अपना पुरुषार्थ छोड़ दीजिये, इस नारीको जीतना कठिन है। यह महाभागा पतिव्रता सदैव अपने पतिकी ही कामना रखती है।'

कामदेवने कहा—देवि! जब यह इन्द्रके रूपको देखेगी, उस समय मैं अवश्य इसे घायल करूँगा।

तदनन्तर देवराज इन्द्र परम सुन्दर दिव्य वेष धारण किये रतिके पीछे-पीछे चले; उनकी गतिमें अत्यन्त ललित विलास दृष्टिगोचर होता था। सब प्रकारके आभूषण उनकी शोभा बढ़ा रहे थे। दिव्य माला, दिव्य वस्त्र और दिव्य गन्धसे सुसज्जित हो वे पतिव्रता सुकलाके पास आये और उससे इस प्रकार बोले—'भद्रे! मैंने पहले तुम्हारे सामने दूती भेजी थी, फिर प्रीतिको रवाना किया। मेरी प्रार्थना क्यों नहीं मानती? मैं स्वयं तुम्हारे पास आया हूँ, मुझे स्वीकार करो।'

सुकला बोली—मेरे स्वामीके महात्मा पुत्र (सत्य, धर्म आदि) मेरी रक्षा कर रहे हैं। मुझे किसीका भय नहीं है। अनेक शूरवीर पुरुष सर्वत्र मेरी रक्षाके लिये उद्यत रहते हैं। जबतक मेरे नेत्र खुले रहते हैं, तबतक मैं निरन्तर पतिके ही कार्यमें लगी रहती हूँ। आप कौन हैं, जो मृत्युका भी भय छोड़कर मेरे पास आये हैं?

इन्द्रने कहा—तुमने अपने स्वामीके जिन शूरवीर पुत्रोंकी चर्चा की है, उन्हें मेरे सामने प्रकट करो! मैं कैसे उन्हें देख सकूँगा।

सुकला बोली—इन्द्रिय-संयमके विभिन्न गुणोंद्वारा उत्तम धर्म सदा मेरी रक्षा करता है। वह देखो, शान्ति और क्षमाके साथ सत्य मेरे सामने उपस्थित है। महाबली सत्य बड़ा यशस्वी है। यह कभी मेरा त्याग नहीं करता। इस प्रकार धर्म आदि रक्षक सदा मेरी देख-भाल किया करते हैं; फिर क्यों आप बलपूर्वक मुझे

प्राप्त करना चाहते हैं। आप कौन हैं, जो निडर होकर दूतीके साथ यहाँ आये हैं? सत्य, धर्म, पुण्य और ज्ञान आदि बलवान् पुत्र मेरे तथा मेरे स्वामीके सहायक हैं। वे सदा मेरी रक्षामें तत्पर रहते हैं। मैं नित्य सुरक्षित हूँ। इन्द्रिय-संयम और मनोनिग्रहमें तत्पर रहती हूँ। साक्षात् शचीपति इन्द्र भी मुझे जीतनेकी शक्ति नहीं रखते। यदि महापराक्रमी कामदेव भी आ जाय तो मुझे कोई परवा नहीं है; क्योंकि मैं अनायास ही सतीत्वरूपी कवचसे सदा सुरक्षित हूँ। मुझपर कामदेवके बाण व्यर्थ हो जायँगे, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। उलटे महाबली धर्म आदि तुम्हींको मार डालेंगे। दूर हटो, भाग जाओ, मेरे सामने न खड़े होओ। यदि मना करनेपर भी खड़े रहोगे तो जलकर खाक हो जाओगे। मेरे स्वामीकी अनुपस्थितिमें यदि तुम मेरे शरीरपर दृष्टि डालोगे तो जैसे आग सूखी लकड़ीको जला देती है, उसी प्रकार मैं भी तुम्हें भस्म कर डालूँगी।*

सुकलाने जब यह कहा, तब तो उस सतीके भयंकर शापके डरसे व्याकुल हो सब लोग जैसे आये थे, वैसे ही लौट गये। इन्द्र आदिने अपने-अपने लोककी राह ली। सबके चले जानेपर पुण्यमयी पतिव्रता सुकला पतिका ध्यान करती हुई अपने घर लौट आयी। वह घर पुण्यमय था। वहाँ सब तीर्थ निवास करते थे। सम्पूर्ण यज्ञोंकी भी वहाँ उपस्थिति थी। राजन्! पतिको ही देवता माननेवाली वह सती अपने उसी घरमें आकर रहने लगी।

सुकलाके स्वामीका तीर्थयात्रासे लौटना और धर्मकी आज्ञासे सुकलाके साथ श्राद्धादि करके देवताओंसे वरदान प्राप्त करना

भगवान् श्रीविष्णु कहते हैं—राजन्! कृकल वैश्य सब तीर्थोंकी यात्रा पूरी करके अपने साथियोंके साथ बड़े आनन्दसे घरकी ओर लौटे। वे सोचते थे—मेरा संसारमें जन्म लेना सफल हो गया; मेरे सब पितर स्वर्गको चले गये होंगे। वे इस प्रकार विचार कर ही रहे थे कि एक दिव्य-रूपधारी विशालकाय पुरुष उनके पिता-पितामहोंको प्रत्यक्षरूपसे बाँधकर सामने प्रकट हुए और बोले—'वैश्य! तुम्हारा पुण्य उत्तम नहीं है। तुम्हें तीर्थ-यात्राका फल नहीं मिला। तुमने व्यर्थ ही इतना परिश्रम किया।' यह सुनकर कृकल वैश्य दु:खसे पीड़ित हो गये। उन्होंने पूछा—'आप कौन हैं, जो ऐसी बात कह रहे हैं? मेरे पिता-पितामह क्यों बाँधे गये हैं? मुझे तीर्थका फल क्यों नहीं मिला?'

धर्मने कहा—जो धार्मिक आचार और उत्तम व्रतका पालन करनेवाली, श्रेष्ठ गुणोंसे विभूषित, पुण्यमें अनुराग रखनेवाली तथा पुण्यमयी पतिव्रता पत्नीको अकेली छोड़कर धर्म करनेके लिये बाहर जाता है, उसका किया हुआ सारा धर्म व्यर्थ हो जाता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। जो सब प्रकारके सदाचारमें संलग्न रहनेवाली, प्रशंसाके योग्य आचरणवाली, धर्मसाधनमें तत्पर, सदा पातिव्रत्यका पालन करनेवाली, सब बातोंको जाननेवाली तथा ज्ञानकी अनुरागिणी है, ऐसी गुणवती, पुण्यवती और महासती नारी जिसकी पत्नी हो, उसके घरमें सर्वदा देवता निवास करते हैं। पितर भी उसके घरमें रहकर निरन्तर उसके यशकी कामना करते रहते हैं। गंगा आदि पवित्र नदियाँ,

---

* अहं रक्षापरा नित्यं दमशान्तिपरायणा। न मां जेतुं समर्थश्च अपि साक्षाच्छचीपतिः॥
यदि वा मन्मथो वापि समागच्छति वीर्यवान्। दंशिताहं सदा सत्यमत्याकष्टेन सर्वदा॥
निरर्थकास्तस्य बाणा भविष्यन्ति न संशयः। त्वामेवं हि हनिष्यन्ति धर्माद्यास्ते महाबलाः॥
दूरं गच्छ पलायस्व नात्र तिष्ठ ममाग्रतः। वार्यमाणो यदा तिष्ठेर्भस्मीभूतो भविष्यसि॥
भर्त्रा विना निरीक्षेत मम रूपं यदा भवान्। यथा दारु दहेद्वह्निस्तथा धक्ष्यामि नान्यथा॥
(५८। ३२—३६)

सागर, यज्ञ, गौ, ऋषि तथा सम्पूर्ण तीर्थ भी उस घरमें मौजूद रहते हैं। पुण्यमयी पत्नीके सहयोगसे गृहस्थ-धर्मका पालन अच्छे ढंगसे होता है। इस भूमण्डलमें गृहस्थधर्मसे बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है। वैश्य! गृहस्थका घर यदि सत्य और पुण्यसे युक्त हो तो परम पवित्र माना गया है, वहाँ सब तीर्थ और देवता निवास करते हैं। गृहस्थका सहारा लेकर सब प्राणी जीवन धारण करते हैं। गृहस्थ-आश्रमके समान दूसरा कोई उत्तम आश्रम मुझे नहीं दिखायी देता।* जिसके घरमें साध्वी स्त्री होती है, उसके यहाँ मन्त्र, अग्निहोत्र, सम्पूर्ण देवता, सनातन धर्म तथा दान एवं आचार सब मौजूद रहते हैं। इसी प्रकार जो पत्नीसे रहित है, उसका घर जंगलके समान है। वहाँ किये हुए यज्ञ तथा भाँति-भाँतिके दान सिद्धिदायक नहीं होते। साध्वी पत्नीके समान कोई तीर्थ नहीं है, पत्नीके समान कोई सुख नहीं है तथा संसारसे तारनेके लिये और कल्याण-साधनके लिये पत्नीके समान कोई पुण्य नहीं है। जो अपनी धर्मपरायणा सती नारीको छोड़कर चला जाता है, वह मनुष्योंमें अधम है। गृह-धर्मका परित्याग करके तुम्हें धर्मका फल कहाँ मिलेगा। अपनी पत्नीको साथ लिये बिना जो तुमने तीर्थमें श्राद्ध और दान किया है, उसी दोषसे तुम्हारे पूर्वज बाँधे गये हैं। तुम चोर हो और तुम्हारे ये पितर भी चोर हैं; क्योंकि इन्होंने लोलुपतावश तुम्हारा दिया हुआ श्राद्धका अन्न खाया है। तुमने श्राद्ध करते समय अपनी पत्नीको साथ नहीं रखा था। जो सुयोग्य पुत्र श्रद्धासे युक्त हो अपनी पत्नीके दिये हुए पिण्डसे श्राद्ध करता है, उससे पितरोंको वैसी ही तृप्ति होती है, जैसी अमृत पीनेसे—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। पत्नी ही गार्हस्थ्य-धर्मकी स्वामिनी है; उसके बिना ही जो तुमने शुभ कर्मोंका अनुष्ठान किया है, यह स्पष्ट ही तुम्हारी चोरी है। जब पत्नी अपने हाथसे अन्न तैयार करके देती है, तो वह अमृतके समान मधुर होता है। उसी अन्नको पितर प्रसन्न होकर भोजन करते हैं तथा उसीसे उन्हें विशेष संतोष और तृप्ति होती है। अतः पत्नीके बिना जो धर्म किया जाता है, वह निष्फल होता है।

कृकलने पूछा—धर्म! अब कैसे मुझे सिद्धि प्राप्त होगी और किस प्रकार मेरे पितरोंको बन्धनसे छुटकारा मिलेगा?

धर्मने कहा—महाभाग! अपने घर जाओ। तुम्हारी धर्मपरायणा, पुण्यवती पत्नी सुकला तुम्हारे बिना बहुत दुःखी हो गयी थी; उसे सान्त्वना दो और उसीके हाथसे श्राद्ध करो। अपने घरपर ही पुण्यतीर्थोंका स्मरण करके तुम श्रेष्ठ देवताओंका पूजन करो, इससे तुम्हारी की हुई तीर्थ-यात्रा सफल हो जायगी।

भगवान् श्रीविष्णु कहते हैं—राजन्! यों कहकर धर्म जैसे आये थे, वैसे ही लौट गये; परम बुद्धिमान् कृकल भी अपने घर गये और पतिव्रता पत्नीको देखकर मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुए। सुकलाने स्वामीको आया देख उनके शुभागमनके उपलक्षमें मांगलिक कार्य किया। तत्पश्चात् धर्मात्मा वैश्यने धर्मकी सारी चेष्टा बतलायी। स्वामीके आनन्ददायक वचन सुनकर महाभागा सुकलाको बड़ा हर्ष हुआ। उसके बाद कृकलने घरपर ही रहकर पत्नीके साथ श्रद्धापूर्वक श्राद्ध और देवपूजन आदि पुण्यकर्मका अनुष्ठान किया। इससे प्रसन्न होकर देवता, पितर और मुनिगण विमानोंके द्वारा वहाँ आये और महात्मा कृकल और उसकी महानुभावा पत्नी दोनोंकी सराहना करने लगे। मैं, ब्रह्मा तथा महादेवजी भी अपनी-अपनी देवीके साथ वहाँ गये। सम्पूर्ण देवता उस सतीके सत्यसे सन्तुष्ट थे। सबने उन दोनों पति-पत्नीसे कहा—'सुव्रत! तुम्हारा कल्याण हो, तुम अपनी पत्नीके साथ वर माँगो।'

कृकलने पूछा—देववरो! मेरे किस पुण्य और तपके प्रसंगसे पत्नीसहित मुझे वर देनेको आपलोग पधारे हैं?

---

* गार्हस्थ्यं च समाश्रित्य सर्वे जीवन्ति जन्तवः। तादृशं नैव पश्यामि ह्यन्यमाश्रममुत्तमम्॥ (५९।१९)

इन्द्रने कहा—यह महाभागा सुकला सती है। इसके सत्यसे सन्तुष्ट होकर हमलोग तुम्हें वर देना चाहते हैं।

यह कहकर इन्द्रने उसके सतीत्वकी परीक्षाका सारा वृत्तान्त थोड़ेमें कह सुनाया। उसके सदाचारका माहात्म्य सुनकर उसके स्वामीको बड़ी प्रसन्नता हुई। हर्षोल्लाससे कृकलके नेत्र डबडबा आये। धर्मात्मा वैश्यने पत्नीके साथ समस्त देवताओंको बारम्बार साष्टांग प्रणाम किया और कहा—'महाभाग देवगण! आप सब लोग प्रसन्न हों; तीनों सनातन देवता ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव हमपर सन्तुष्ट हों तथा अन्य जो पुण्यात्मा ऋषि मुझपर कृपा करके यहाँ पधारे हैं, वे भी प्रसन्नता प्राप्त करें। मैं सदा भगवान्‌की भक्ति करता रहूँ। आपलोगोंकी कृपासे धर्म तथा सत्यमें मेरा निरन्तर अनुराग बना रहे। तत्पश्चात् अन्तमें पत्नी और पितरके साथ मैं भगवान् श्रीविष्णुके धाममें जाना चाहता हूँ।'

देवता बोले—महाभाग! एवमस्तु, यह सब कुछ तुम्हें प्राप्त होगा।

भगवान् श्रीविष्णुने कहा—राजन्! यह कहकर देवताओंने उन दोनों पति-पत्नीके ऊपर फूलोंकी वर्षा की तथा ललित, मधुर और पवित्र संगीत सुनाया। वर देकर वे उस पतिव्रताकी स्तुति करते हुए अपने-अपने लोकको चले गये। इस परम उत्तम और पवित्र उपाख्यानको मैंने पूर्णरूपसे तुम्हें सुना दिया। राजन्! जो मनुष्य इसे सुनता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। स्त्रीमात्रको सुकलाका उपाख्यान श्रद्धापूर्वक सुनना चाहिये। इसके श्रवणसे वह सौभाग्य, सतीत्व तथा पुत्र-पौत्रोंसे युक्त होती है। इतना ही नहीं, पतिके साथ सुखी रहकर वह निरन्तर आनन्दका अनुभव करती है।

पितृतीर्थके प्रसंगमें पिप्पलकी तपस्या और सुकर्माकी पितृभक्तिका वर्णन; सारसके कहनेसे पिप्पलका सुकर्माके पास जाना और सुकर्माका उन्हें माता-पिताकी सेवाका महत्त्व बताना

वेनने कहा—भगवन्! आपने सब तीर्थोंमें उत्तम भार्या-तीर्थका वर्णन तो किया, अब पितरोंको तारनेवाले पितृतीर्थका वर्णन कीजिये।

भगवान् श्रीविष्णुने कहा—परम पुण्यमय कुरुक्षेत्रमें कुण्डल नामके एक ब्राह्मण रहते थे। उनके सुयोग्य पुत्रका नाम सुकर्मा था। सुकर्माके माता और पिता दोनों ही अत्यन्त वृद्ध, धर्मज्ञ और शास्त्रवेत्ता थे। सुकर्माको भी धर्मका पूर्ण ज्ञान था। वे श्रद्धायुक्त होकर बड़ी भक्तिके साथ दिन-रात माता-पिताकी सेवामें लगे रहते थे। उन्होंने पितासे ही सम्पूर्ण वेद और अनेक शास्त्रोंका अध्ययन किया। वे पूर्णरूपसे सदाचारका पालन करनेवाले, जितेन्द्रिय और सत्यवादी थे। अपने ही हाथों माता-पिताका शरीर दबाते, पैर धोते और उन्हें स्नान-भोजन आदि कराते थे। राजेन्द्र! सुकर्मा स्वभावसे ही भक्तिपूर्वक माता-पिताकी परिचर्या करते और सदा उन्हींके ध्यानमें लीन रहते थे।

उन्हीं दिनों कश्यप-कुलमें उत्पन्न एक ब्राह्मण थे, जो पिप्पल नामसे प्रसिद्ध थे। वे सदा धर्म-कर्ममें लगे रहते थे और इन्द्रिय-संयम, पवित्रता तथा मनोनिग्रहसे सम्पन्न थे। एक समयकी बात है, वे महामना बुद्धिमान् ब्राह्मण दशारण्यमें जाकर ज्ञान और शान्तिके साधनमें तत्पर हो तपस्या करने लगे। उनकी तपस्याके प्रभावसे आस-पासके समस्त प्राणियोंका पारस्परिक वैर-विरोध शान्त हो गया। वे सब वहाँ एक पेटसे पैदा हुए भाइयोंकी तरह हिल-मिलकर रहते थे। पिप्पलकी तपस्या देख मुनियों तथा इन्द्र आदि देवताओंको भी बड़ा विस्मय हुआ।

देवता कहने लगे—'अहो! इस ब्राह्मणकी कितनी तीव्र तपस्या है। कैसा मनोनिग्रह है और कितना इन्द्रियसंयम है! मनमें विकार नहीं। चित्तमें उद्वेग नहीं।' काम-क्रोधसे रहित हो, सर्दी-गर्मी और हवाका झोंका सहते हुए वे तपस्वी ब्राह्मण पर्वतकी भाँति अविचल

भावसे स्थित रहे। ऐसी अवस्थामें पहुँचकर उनका चित्त एकाग्र हो गया। वे ब्रह्मके ध्यानमें तन्मय थे। उनका मुख-कमल प्रसन्नतासे खिल उठा था। वे पत्थर और काठकी भाँति निश्चेष्ट एवं सुस्थिर दिखायी देते थे। धर्ममें उनका अनुराग था। तपसे शरीर दुर्बल हो गया था और हृदयमें पूर्ण श्रद्धा थी। इस प्रकार उन बुद्धिमान् ब्राह्मणको तपस्या करते एक हजार वर्ष बीत गये।

वहाँ बहुत-सी चींटियोंने मिलकर मिट्टीका ढेर लगा दिया। उनके ऊपर बाँबीका विशाल मन्दिर-सा बन गया। काले साँपोंने आकर उनके शरीरको लपेट लिया। भयंकर विषवाले सर्प उन उग्र तेजस्वी ब्राह्मणको डँस लेते थे; किन्तु जहर उनके शरीरपर गिर जाता था, उनकी त्वचाको भेदकर भीतर नहीं फैलने पाता था। उनके सम्पर्कमें आकर साँप स्वयं ही शान्त हो जाते थे। उनकी देहसे नाना प्रकारकी तेजोमयी लपटें निकलती दिखायी देती थीं। पिप्पल तीनों काल तपमें प्रवृत्त रहते थे। वे तीन हजार वर्षोंतक केवल वायु पीकर रह गये। तब देवताओंने उनके मस्तकपर फूलोंकी वर्षा की और कहा—'महाभाग! तुम जिस-जिस वस्तुको प्राप्त करना चाहते हो, वह सब निश्चय ही प्राप्त होगी। तुम्हें समस्त अभिलषित पदार्थोंको देनेवाली सिद्धि स्वतः ही प्राप्त हो जायगी।'

यह वाक्य सुनकर महामना पिप्पलने भक्तिपूर्वक मस्तक झुका समस्त देवताओंको प्रणाम किया और बड़े हर्षमें भरकर कहा—'देवताओ! यह सारा जगत् मेरे वशमें हो जाय—ऐसा वरदान दीजिये; मैं विद्याधर होना चाहता हूँ।' 'एवमस्तु' कहकर देवताओंने उन ब्राह्मणको अभीष्ट वरदान दिया और अपने-अपने स्थानको चले गये। राजेन्द्र! तबसे द्विजश्रेष्ठ पिप्पल विद्याधरका पद पा गये और इच्छानुसार विचरते हुए सर्वत्र सम्मानित होने लगे। एक दिन महातेजस्वी पिप्पलने विचार किया—'देवताओंने मुझे वर दिया है कि सम्पूर्ण विश्व तुम्हारे वशमें हो जायगा। अतः उसकी परीक्षा करनी चाहिये।' यह सोचकर वे उसे आजमानेको तैयार हुए। जिस-जिस व्यक्तिका वे मनसे चिन्तन करते, वही-वही उनके वशमें हो जाता था। इस प्रकार जब उन्हें देवताओंकी बातपर विश्वास हो गया, तब वे [अहंकारके वशीभूत हो] सोचने लगे—'मेरे समान श्रेष्ठ पुरुष इस संसारमें दूसरा कोई नहीं है।'

पिप्पल जब इस प्रकारकी भावना करने लगे, तब उनके मनका भाव जानकर एक सारसने कहा—'ब्राह्मण! तुम ऐसा अहंकार क्यों कर रहे हो कि 'मैं ही सबसे बड़ा हूँ।' मैं तो ऐसा नहीं मानता कि सबको वशमें करनेकी सिद्धि केवल तुम्हींको प्राप्त हुई है। पिप्पल! मेरी समझमें तुम्हारी बुद्धि मूढ़ है, तुम पराचीन तत्त्वको नहीं जानते। तुमने तीन हजार वर्षोंतक तप किया है, इसीका तुम्हें गर्व है; फिर भी तुम यहाँ मूढ़ ही रह गये। कुण्डलके जो सुकर्मा नामक पुत्र हैं, वे विद्वान् पुरुष हैं; उनकी बुद्धि उत्तम है। वे अर्वाचीन तथा पराचीन तत्त्वको जानते हैं। पिप्पल! तुम कान खोलकर सुन लो, संसारमें सुकर्माके समान महाज्ञानी दूसरा कोई नहीं है। उन्होंने दान नहीं दिया; ध्यान, होम और यज्ञ आदि कर्म भी कभी नहीं किया। न तीर्थ करने गये, न गुरुकी उपासना ही की। वे केवल माता-पिताके हितैषी हैं, वेदाध्ययनसम्पन्न हैं तथा सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञाता हैं। यद्यपि सुकर्मा अभी बालक हैं, तो भी उन्हें जैसा ज्ञान प्राप्त है, वैसा तुम्हें अबतक नहीं हुआ। ऐसी दशामें तुम व्यर्थ ही यह गर्वका बोझ ढो रहे हो।

पिप्पल बोले—आप कौन हैं, जो पक्षीके रूपमें आकर इस प्रकार मेरी निन्दा कर रहे हैं? इस समय मुझे अर्वाचीन और पराचीनका स्वरूप पूर्णतया समझाइये।

सारसने कहा—द्विजश्रेष्ठ! कुण्डलके बालक पुत्रको जैसा ज्ञान प्राप्त है, वैसा तुममें नहीं है। यहाँसे जाओ और अर्वाचीन एवं पराचीनका स्वरूप तथा मेरा परिचय भी उन्हींसे पूछो। वे धर्मात्मा हैं, तुम्हें सारा ज्ञान बतलायेंगे।

सारसकी यह बात सुनकर विप्रवर पिप्पल बड़े वेगसे कुण्डलके आश्रमकी ओर गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा, सुकर्मा माता-पिताकी सेवामें लगे हैं। वे सत्यपराक्रमी महात्मा अपने माता-पिताके चरणोंके

निकट बैठे थे। उनके भीतर बड़ी भक्ति थी। वे परम शान्त और सम्पूर्ण ज्ञानकी महान् निधि जान पड़ते थे। कुण्डलकुमार सुकर्माने जब पिप्पलको अपने द्वारपर आया देखा, तब वे आसन छोड़कर तुरंत खड़े हो गये और आगे बढ़कर उनका स्वागत किया। फिर उनको आसन, पाद्य और अर्घ्य आदि निवेदन करके पूछा—'महाप्राज्ञ! आप कुशलसे तो हैं न? मार्गमें कोई कष्ट तो नहीं हुआ? जिस कारणसे आपका यहाँ आना हुआ है, वह सब मैं बताता हूँ। महाभाग! आपने तीन हजार वर्षोंतक तपस्या करके देवताओंसे वरदान प्राप्त किया—सबको वशमें करनेकी शक्ति और इच्छानुसार गति पायी है। इससे उन्मत्त हो जानेके कारण आपके मनमें गर्व हो आया। तब महात्मा सारसने आपकी सारी चेष्टा देखकर आपको मेरा नाम बताया और मेरे उत्तम ज्ञानका परिचय दिया।

पिप्पलने पूछा—ब्रह्मन्! नदीके तीरपर जो सारस मिला था, जिसने मुझे यह कहकर आपके पास भेजा कि 'वे सब ज्ञान बता सकते हैं,' वह कौन था?

सुकर्माने कहा—विप्रवर! सरिताके तटपर जिन्होंने सारसके रूपमें आपसे बात की थी, वे साक्षात् महात्मा ब्रह्माजी थे।

[यह सुनकर धर्मात्मा] पिप्पलने कहा—ब्रह्मन्! मैंने सुना है, सारा जगत् आपके अधीन है; इस बातको देखनेके लिये मेरे मनमें उत्कण्ठा हो रही है। आप यत्न करके मुझे अपनी यह शक्ति दिखाइये। तब सुकर्माने पिप्पलको विश्वास दिलानेके लिये देवताओंका स्मरण किया। उनके आवाहन करनेपर सम्पूर्ण देवता वहाँ आये और सुकर्मासे इस प्रकार बोले—'ब्रह्मन्! तुमने किसलिये हमें याद किया है, इसका कारण बताओ।'

सुकर्माने कहा—देवगण! विद्याधर पिप्पल आज मेरे अतिथि हुए हैं, ये इस बातका प्रमाण चाहते हैं कि सम्पूर्ण विश्व मेरे वशमें कैसे है। इन्हें विश्वास दिलानेके लिये ही मैंने आपलोगोंका आवाहन किया है। अब आप अपने-अपने स्थानको पधारें।'

तब देवताओंने कहा—'ब्रह्मन्! हमारा दर्शन निष्फल नहीं होता। तुम्हारा कल्याण हो; तुम्हारे मनको जो रुचिकर प्रतीत हो, वही वरदान हमसे माँग लो।' तब द्विजश्रेष्ठ सुकर्माने देवताओंको भक्तिपूर्वक प्रणाम करके यह वरदान माँगा—'देवेश्वरो! माता-पिताके चरणोंमें मेरी उत्तम भक्ति सदा सुस्थिर रहे तथा मेरे माता-पिता भगवान् श्रीविष्णुके धाममें पधारें।'

देवता बोले—विप्रवर! तुम माता-पिताके भक्त तो हो ही, तुम्हारी उत्तम भक्ति और भी बढ़े।

यों कहकर सम्पूर्ण देवता स्वर्गलोगको चले गये। पिप्पलने भी वह महान् और अद्भुत कौतुक प्रत्यक्ष देखा। तत्पश्चात् उन्होंने कुण्डलपुत्र सुकर्मासे कहा—'वक्ताओंमें श्रेष्ठ! परमात्माका अर्वाचीन और पराचीन रूप कैसा होता है, दोनोंका प्रभाव क्या है? यह बताइये।'

सुकर्माने कहा—ब्रह्मन्! मैं पहले आपको पराचीन रूपकी पहचान बताता हूँ, उसीसे इन्द्र आदि देवता तथा चराचर जगत् मोहित होते हैं। ये जो जगत्के स्वामी परमात्मा हैं, वे सबमें मौजूद और सर्वव्यापक हैं। उनके रूपको किसी योगीने भी नहीं देखा है। श्रुति भी ऐसा कहती है कि उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। उनके न हाथ हैं न पैर, न नाक है न कान और न मुख ही है। फिर भी वे तीनों लोकोंके निवासियोंके सारे कर्म देखा करते हैं। कान न होनेपर भी सबकी कही हुई बातोंको सुनते हैं। वे परम शान्ति प्रदान करनेवाले हैं। हाथ न होनेपर भी काम करते और पैरोंसे रहित होकर भी सब ओर दौड़ते हैं।* वे व्यापक, निर्मल, सिद्ध, सिद्धिदायक और सबके नायक हैं। आकाशस्वरूप और अनन्त

* पराचीनस्य रूपस्य लिङ्गमेवं वदामि ते। येन लोकाः प्रमोह्यन्त इन्द्राद्याः सचराचराः॥
अयमेष जगन्नाथः सर्वगो व्यापकः परः। अस्य रूपं न दृष्टं हि केनाप्येव हि योगिना॥
श्रुतिरेव वदत्येवं न वक्तुं शक्यतेऽपि सः। अपादो ह्यकरोऽनासो ह्यकर्णो मुखवर्जितः॥

हैं। व्यास तथा मार्कण्डेय उनके स्वरूपको जानते हैं।

अब मैं भगवान्‌के अर्वाचीन रूपका वर्णन करूँगा, तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो। 'जिस समय सम्पूर्ण भूतोंके आत्मा प्रजापति ब्रह्माजी स्वयं ही सबका संहार करके श्रीभगवान्‌के स्वरूपमें स्थित होते हैं और भगवान् श्रीजनार्दन उन्हें अपनेमें लीन करके पानीके भीतर शेषनागकी शय्यापर दीर्घकालतक अकेले सोये रहते हैं, उस समयकी बात है। महामुनि मार्कण्डेयजी जल और अन्धकारसे व्याकुल हो इधर-उधर भटक रहे थे। उन्होंने देखा सर्वव्यापी ईश्वर शेषनागकी शय्यापर सो रहे हैं। उनका तेज करोड़ों सूर्योंके समान जान पड़ता है। वे दिव्य आभूषण, दिव्य माला और दिव्य वस्त्र धारण किये योगनिद्रामें स्थित हैं। उनका श्रीविग्रह बड़ा ही कमनीय है। उनके हाथोंमें शंख, चक्र और गदा विराजमान हैं।[१] उनके पास ही उन्होंने एक विशालकाय स्त्री देखी, जो काली अंजन-राशिके समान थी। उसका रूप बड़ा भयंकर था। उसने मुनिश्रेष्ठ मार्कण्डेयसे कहा—'महामुने! डरो मत।' तब उन योगीश्वरने पूछा—'देवि! तुम कौन हो?' मुनिके इस प्रकार पूछनेपर देवीने बड़े आदरके साथ कहा—'ब्रह्मन्! जो शेषनागकी शय्यापर सो रहे हैं, वे भगवान् श्रीविष्णु हैं। मैं उन्हींकी वैष्णवी शक्ति कालरात्रि हूँ।'

पिप्पलजी! यों कहकर वह देवी अन्तर्धान हो गयी। उसके चले जानेपर मार्कण्डेयजीने देखा—भगवान्‌की नाभिसे एक कमल प्रकट हुआ, जिसकी कान्ति सुवर्णके समान थी। उसीसे महातेजस्वी लोकपितामह ब्रह्माजी उत्पन्न हुए। फिर ब्रह्माजीसे समस्त चराचर प्राणी, इन्द्रादि लोकपाल तथा अग्नि आदि देवताओंका जन्म हुआ। इस प्रकार मैंने यह अर्वाचीनका स्वरूप बतलाया है। अर्वाचीन रूप शरीरधारी है और पराचीन रूप शरीररहित है, अतः ब्रह्मा आदि सम्पूर्ण देवता अर्वाचीन हैं। ये लोक भी, जो तीनों भुवनोंमें स्थित हैं, अर्वाचीन ही माने गये हैं। विद्याधर! मोक्षरूप जो परम स्थान है; जिसे परब्रह्म कहते हैं, जो अव्यक्त, अक्षर, हंसस्वरूप, शुद्ध और सिद्धियुक्त है, वही पराचीन है।[२] इस प्रकार तुम्हारे सामने पराचीन स्वरूपका वर्णन किया गया।

विद्याधरने पूछा—सुव्रत! आप अर्वाचीन और पराचीन स्वरूपके विद्वान् हैं। तीनों लोकोंका उत्तम ज्ञान आपमें वर्तमान है। फिर भी मैं आपमें तपस्याकी पराकाष्ठा नहीं देखता। ऐसी दशामें आपके इस प्रभावका क्या कारण है? कैसे आपको सब बातोंका ज्ञान प्राप्त हुआ?

सुकर्माने कहा—ब्रह्मन्! मैंने यजन-याजन, धर्मानुष्ठान ज्ञानोपार्जन और तीर्थ-सेवन—कुछ भी नहीं किया। इनके सिवा और भी किसी शुभकर्मजनित पुण्यका अर्जन मेरे द्वारा नहीं हुआ। मैं तो स्पष्टरूपसे एक ही बात जानता हूँ—वह है पिता और माताकी सेवा-पूजा। पिप्पल! मैं स्वयं ही अपने हाथसे माता-पिताके चरण धोनेका पुण्यकार्य करता हूँ। उनके शरीरकी सेवा करता तथा उन्हें स्नान और भोजन आदि कराता हूँ। प्रतिदिन तीनों समय माता-पिताकी सेवामें ही लगा रहता हूँ। जबतक मेरे माँ-बाप जीवित हैं, तबतक मुझे यह अतुलनीय लाभ मिल रहा है कि तीनों समय

सर्वं पश्यति वै कर्म कृतं त्रैलोक्यवासिनाम् । तेषामुक्तमकर्णश्च स शृणोति सुशान्तिदः॥
.... । पाणिहीनः पादहीनः कुरुते च प्रधावति॥
(६२। २८—३२)

१-भ्रममाणः स ददृशे शेषपर्यङ्कशायिनम् । सूर्यकोटिप्रतीकाशं दिव्याभरणभूषितम्॥
दिव्यमाल्याम्बरधरं सर्वव्यापिनमीश्वरम् । योगनिद्रागतं कान्तं शङ्खचक्रगदाधरम्॥
(६२। ३९-४०)

२-मोक्षरूपं परं स्थानं परब्रह्मस्वरूपकम्। अव्यक्तमक्षरं हंसं शुद्धं सिद्धिसमन्वितम्॥
(६२। ५३)

मैं शुद्धभावसे मन लगाकर इन दोनोंकी पूजा करता हूँ। पिप्पल! मुझे दूसरी तपस्यासे क्या लेना है। तीर्थयात्रा तथा अन्य पुण्यकर्मोंसे क्या प्रयोजन है। विद्वान् पुरुष सम्पूर्ण यज्ञोंका अनुष्ठान करके जिस फलको प्राप्त करते हैं, वही मैंने पिता-माताकी सेवासे पा लिया है। जहाँ माता-पिता रहते हों, वही पुत्रके लिये गंगा, गया और पुष्करतीर्थ है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। माता-पिताकी सेवासे पुत्रके पास अन्यान्य पवित्र तीर्थ भी स्वयं ही पहुँच जाते हैं। जो पुत्र माता-पिताके जीते-जी उनकी सेवा करता है, उसके ऊपर देवता तथा पुण्यात्मा महर्षि प्रसन्न होते हैं। पिताकी सेवासे तीनों लोक संतुष्ट हो जाते हैं। जो पुत्र प्रतिदिन माता-पिताके चरण पखारता है, उसे नित्यप्रप्ति गंगास्नानका फल मिलता है।[१] जिस पुत्रने ताम्बूल, वस्त्र, खान-पानकी विविध सामग्री तथा पवित्र अन्नके द्वारा भक्तिपूर्वक माता-पिताका पूजन किया है, वह सर्वज्ञ होता है।

द्विजश्रेष्ठ! माता-पिताको स्नान कराते समय जब उनके शरीरसे जलके छींटे उछटकर पुत्रके सम्पूर्ण अंगोंपर पड़ते हैं, उस समय उसे सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करनेका फल होता है। यदि पिता पतित, भूखसे व्याकुल, वृद्ध, सब कार्योंमें असमर्थ, रोगी और कोढ़ी हो गये हों तथा माताकी भी वही अवस्था हो, उस समयमें भी जो पुत्र उनकी सेवा करता है, उसपर निस्सन्देह भगवान् श्रीविष्णु प्रसन्न होते हैं। वह योगियोंके लिये भी दुर्लभ भगवान् श्रीविष्णुके धामको प्राप्त होता है। जो किसी अंगसे हीन, दीन, वृद्ध, दुःखी तथा महान् रोगसे पीड़ित माता-पिताको त्याग देता है, वह पापात्मा पुत्र कीड़ोंसे भरे हुए दारुण नरकमें पड़ता है। जो पुत्र बूढ़े माँ-बापके बुलानेपर भी उनके पास नहीं जाता, वह मूर्ख विष्ठा खानेवाला कीड़ा होता है तथा हजार जन्मोंतक उसे कुत्तेकी योनिमें जन्म लेना पड़ता है। वृद्ध माता-पिता जब घरमें मौजूद हों, उस समय जो पुत्र पहले उन्हें भोजन कराये बिना स्वयं अन्न ग्रहण करता है, वह घृणित कीड़ा होता है और हजार जन्मोंतक मल-मूत्र भोजन करता है। इसके सिवा वह पापी तीन सौ जन्मोंतक काला नाग होता है।[२] जो पुत्र कटु-वचनोंद्वारा माता-पिताकी निन्दा करता है, वह पापी बाघकी योनिमें जन्म लेता है तथा और भी बहुत दुःख उठाता है। जो पापात्मा पुत्र माता-पिताको प्रणाम नहीं करता, वह हजार युगोंतक कुम्भीपाक नरकमें निवास करता है। पुत्रके लिये माता-पितासे बढ़कर दूसरा कोई तीर्थ नहीं है। माता-पिता इस लोक और परलोकमें भी नारायणके समान हैं।[३] इसलिये महाप्राज्ञ! मैं प्रतिदिन माता-पिताकी पूजा करता और उनके योग-क्षेमकी चिन्तामें लगा रहता हूँ। इसीसे तीनों लोक मेरे वशमें हो

१-मातापित्रोस्तु यः पादौ नित्यं प्रक्षालयेत्सुतः। तस्य भागीरथीस्नानमहन्यहनि जायते॥ (६२।७४)

२-तयोश्चापि द्विजश्रेष्ठ मातापित्रोश्च स्नातयोः। पुत्रस्यापि हि सर्वांगे पतन्त्यम्बुकणा यदा॥
सर्वतीर्थसमं स्नानं पुत्रस्यापि प्रजायते। ....॥
पतितं क्षुधितं वृद्धमशक्तं सर्वकर्मसु। व्याधितं कुष्ठिनं तातं मातरं च तथाविधाम्॥
उपाचरति यः पुत्रस्तस्य पुण्यं वदाम्यहम्। विष्णुस्तस्य प्रसन्नात्मा जायते नात्र संशयः॥
प्रयाति वैष्णवं लोकं यदप्राप्यं हि योगिभिः। पितरौ विकलौ दीनौ वृद्धौ दुःखितमानसौ॥
महागदेन संतप्तौ परित्यजति पापधीः। स पुत्रो नरकं याति दारुणं कृमिसंकुलम्॥
वृद्धाभ्यां यः समाहूतो गुरुभ्यामिह साम्प्रतम्। न प्रयाति सुतो भूत्वा तस्य पापं वदाम्यहम्॥
विष्ठाशी जायते मूढोऽमेध्यभोजी न संशयः। यावज्जन्मसहस्त्रं तु पुनः श्वानोऽभिजायते॥
पुत्रगेहे स्थितौ मातापितरौ वृद्धकौ तथा। स्वयं ताभ्यां विना भुक्त्वा प्रथमं जायते घृणिः॥
मूत्रं विष्ठां च भुञ्जीत यावज्जन्मसहस्रकम्। कृष्णसर्पो भवेत्पापी यावज्जन्मशतत्रयम्॥ (६३।१—१०)

३-पितरौ कुत्सते पुत्रः कटुकैर्वचनैरपि। स च पापी भवेद्व्याघ्रः पश्चाद्दुःखी प्रजायते॥
मातरं पितरं पुत्रो न नमस्यति पापधीः। कुम्भीपाके वसेत्तावद्यावद्युगसहस्रकम्॥
नास्ति मातुः परं तीर्थं पुत्राणां च पितुस्तथा। नारायणसमावेताविह चैव परत्र च॥ (६३।११—१३)

गये हैं। माता-पिताके प्रसादसे ही मुझे पराचीन तथा वासुदेवस्वरूप अर्वाचीन तत्त्वका उत्तम ज्ञान प्राप्त हुआ है। मेरी सर्वज्ञतामें माता-पिताकी सेवा ही कारण है। भला, कौन ऐसा विद्वान् पुरुष होगा, जो पिता-माताकी पूजा नहीं करेगा। ब्रह्मन्! श्रुति (उपनिषद्) और शास्त्रोंसहित सम्पूर्ण वेदोंके सांगोपांग अध्ययनसे ही क्या लाभ हुआ, यदि उसने माता-पिताका पूजन नहीं किया। उसका वेदाध्ययन व्यर्थ है। उसके यज्ञ, तप, दान और पूजनसे भी कोई लाभ नहीं। जिसने माँ-बापका आदर नहीं किया, उसके सभी शुभकर्म निष्फल होते हैं। माता-पिता ही पुत्रके लिये धर्म, तीर्थ, मोक्ष, जन्मके उत्तम फल, यज्ञ और दान आदि सब कुछ हैं।

सुकर्माद्वारा ययाति और मातलिके संवादका उल्लेख—मातलिके द्वारा देहकी उत्पत्ति, उसकी अपवित्रता, जन्म-मरण और जीवनके कष्ट तथा संसारकी दुःखरूपताका वर्णन

सुकर्मा कहते हैं—अब मैं इस विषयमें पुण्यात्मा राजा ययातिके चरित्रका वर्णन करूँगा, जो सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला है। सोमवंशमें एक नहुष नामके राजा हो गये हैं। उन्होंने अनेकों दानधर्मोंका अनुष्ठान किया, जिनकी कहीं तुलना नहीं थी। उन्होंने अपने पुण्यके प्रभावसे इन्द्रलोकपर अधिकार प्राप्त किया था। उन्हींके पुत्र राजा ययाति हुए, जो शत्रुओंका मानमर्दन करनेवाले थे। वे सत्यका आश्रय ले धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करते थे। प्रजाके सब कार्योंकी स्वयं ही देख-भाल किया करते थे। वे उत्तम धर्मकी महिमा सुनकर सब प्रकारके दान-पुण्य, यज्ञानुष्ठान एवं तीर्थ-सेवन आदिमें लगे रहते थे। महाराज ययातिने अस्सी हजार वर्षोंतक इस पृथ्वीका राज्य किया। उनके चार पुत्र हुए, जो उन्हींके समान शूरवीर, बलवान् और पराक्रमी थे। तेज और पुरुषार्थमें भी वे पिताकी समानता करते थे। इस प्रकार ययातिने दीर्घकालतक धर्मपूर्वक राज्य किया।

एक समयकी बात है, ब्रह्माजीके पुत्र नारदजी इन्द्रलोकमें गये। उन्हें आया देख इन्द्रने भक्तिपूर्वक मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और मधुपर्क आदिसे उनकी पूजा करके उन्हें एक पवित्र आसनपर बिठाया। तत्पश्चात् वे उन महामुनिसे पूछने लगे—'देवर्षे! किस लोकसे आपका यहाँ आना हुआ है? तथा यहाँ पदार्पण करनेका क्या उद्देश्य है?'

नारदजीने कहा—मैं इस समय भूलोकसे आ रहा हूँ। नहुष-पुत्र ययातिसे मिलकर अब आपसे मिलनेके लिये आया हूँ।

इन्द्रने पूछा—इस समय पृथ्वीपर कौन राजा सत्य और धर्मके अनुसार प्रजाका पालन करता है? कौन सब धर्मोंसे युक्त, विद्वान्, ज्ञानवान्, गुणी, ब्राह्मणोंके कृपापात्र, ब्राह्मणभक्त, वेदवेत्ता, शूरवीर, दाता, यज्ञ करनेवाला और पूर्ण भक्तिमान् है?

नारदजीने कहा—नहुषके बलवान् पुत्र ययाति इन गुणोंसे युक्त हैं। वे अपने पितासे भी बढ़े-चढ़े हैं। उन्होंने सौ अश्वमेध और सौ वाजपेय यज्ञ किये हैं। भक्तिपूर्वक अनेक प्रकारके दान दिये हैं। उनके द्वारा लाखों-करोड़ों गौएँ दानमें दी जा चुकी हैं। उन्होंने कोटिहोम तथा लक्षहोम भी किये हैं। ब्राह्मणोंको भूमि आदिका दान भी दिया है। उन्होंने ही धर्मके सांगोपांग स्वरूपका पालन किया है। ऐसे गुणोंसे युक्त नहुष-पुत्र राजा ययाति अस्सी हजार वर्षोंसे सत्य-धर्मके अनुसार विधिवत् राज्य करते आ रहे हैं। इस कार्यमें वे आपकी समानता करते हैं।

सुकर्मा कहते हैं—मुनीश्वर नारदके मुखसे ऐसी बात सुनकर बुद्धिमान् इन्द्र कुछ सोचने लगे। वे ययातिके धर्म-पालनसे भयभीत हो उठे थे। उनके मनमें यह बात आयी कि 'पूर्वकालमें राजा नहुष सौ यज्ञोंके प्रभावसे मेरे इन्द्रपदपर अधिकार करके देवताओंके राजा बन बैठे थे। शचीकी बुद्धिके प्रभावसे उन्हें पदभ्रष्ट होना पड़ा था। ये महाराज ययाति भी ऐसे ही सुने जाते हैं।

इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि ये इन्द्रपदपर अधिकार कर लेंगे। अत: जिस-किसी उपायसे सम्भव हो, उन्हें स्वर्गमें लाऊँगा।'

ययातिसे डरे हुए देवराजने ऐसा विचार करके उन्हें बुलानेके लिये दूत भेजा। अपने सारथि मातलिको विमानके साथ रवाना किया। मातलि उस स्थानपर गये, जहाँ नहुष-पुत्र धर्मात्मा ययाति अपनी राजसभामें विराजमान थे। सत्य ही उन श्रेष्ठ नरेशका आभूषण था। देवराजके सारथिने उनसे कहा—'राजन्! मेरी बात सुनिये, देवराज इन्द्रने मुझे इस समय आपके पास भेजा है। उनका अनुरोध है कि अब आप पुत्रको राज्य दे आज ही इन्द्रलोकको पधारें। महीपते! वहाँ इन्द्रके साथ रहकर आप स्वर्गका आनन्द भोगिये।'

ययातिने पूछा—मातले! मैंने देवराज इन्द्रका कौन-सा ऐसा कार्य किया है, जिससे तुम ऐसी प्रार्थना कर रहे हो?

मातलिने कहा—राजन्! लगभग एक लाख वर्षोंसे आप दान-यज्ञ आदि कर्म कर रहे हैं। इन कर्मोंके फलस्वरूप इस समय स्वर्गलोकमें चलिये और देवराज इन्द्रके सखा होकर रहिये। इस पांचभौतिक शरीरको भूमिपर ही त्याग दीजिये और दिव्य रूप धारण करके मनोरम भोगोंका उपभोग कीजिये।

ययातिने प्रश्न किया—मनुष्य जिस शरीरसे सत्यधर्म आदि पुण्यका उपार्जन करता है, उसे वह कैसे छोड़ सकता है।

मातलिने कहा—राजन्! तुम्हारा कथन ठीक है, तथापि मनुष्यको अपना यह शरीर छोड़कर ही जाना पड़ता है [क्योंकि आत्माका शरीरके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है]। शरीर पंचभूतोंसे बना हुआ है; जब इसकी संधियाँ शिथिल हो जाती हैं, उस समय वृद्धावस्थासे पीड़ित मनुष्य इस शरीरको त्याग देना चाहता है।

ययातिने पूछा—साधुश्रेष्ठ! वृद्धावस्था कैसे उत्पन्न होती है तथा वह क्यों शरीरको पीड़ा देती है? इन सब बातोंको विस्तारसे समझाओ।

मातलिने कहा—राजन्! पंचभूतोंसे इस शरीरका निर्माण हुआ है तथा पाँच विषयोंसे यह घिरा हुआ है। वीर्य और रक्तका नाश होनेसे प्राय: शरीर खोखला हो जाता है, उसमें प्रचण्ड वायुका प्रकोप होता है। इससे मनुष्यका रंग बदल जाता है। वह दु:खसे संतप्त और हतबुद्धि हो जाता है। जो स्त्री देखी-सुनी होती है, उसमें चित्त आसक्त होनेसे वह सदा भटकता रहता है। शरीरमें तृप्ति नहीं होती; क्योंकि उसका चित्त सदा लोलुप रहा करता है। जब कामी मनुष्य मांस और रक्त क्षीण होनेसे दुर्बल हो जाता है, तब उसके बाल पक जाते हैं। कामाग्निसे शरीरका शोषण हो जाता है। वृद्ध होनेपर भी दिन-दिन उसकी कामना बढ़ती ही जाती है। बूढ़ा मनुष्य ज्यों-ज्यों स्त्रीके सहवासका चिन्तन करता है, त्यों-त्यों उसके तेजकी हानि होती है। अत: काम नाशस्वरूप है, यह नाशके लिये ही उत्पन्न होता है। काम एक भयंकर ज्वर है, जो प्राणियोंका काल बनकर उत्पन्न होता है। इस प्रकार इस शरीरमें जीर्णता—जरावस्था आती है।

ययातिने कहा—मातले! आत्माके साथ यह शरीर ही धर्मका रक्षक है, तो भी यह स्वर्गको नहीं जाता—इसका क्या कारण है? यह बताओ।

मातलि बोले—महाराज! पाँचों भूतोंका आपसमें ही मेल नहीं है। फिर आत्माके साथ उनका मेल कैसे हो सकता है। आत्माके साथ इनका सम्बन्ध बिलकुल नहीं है। शरीर-समुदायमें भी सम्पूर्ण भूतोंका पूर्ण संघट नहीं है; क्योंकि जरावस्थासे पीड़ित होनेपर सभी अपने-अपने स्थानको चले जाते हैं। इस शरीरमें अधिकांश पृथ्वीका भाग है। यह पृथ्वीकी समानताको लेकर ही प्रतिष्ठित है। जैसे पृथ्वी स्थित है, उसी प्रकार यह भी यहीं स्थित रहता है। अत: शरीर स्वर्गको नहीं जाता।

ययातिने कहा—मातले! मेरी बात सुनो। जब पापसे भी शरीर गिर जाता है और पुण्यसे भी, तब मैं इस पृथ्वीपर पुण्यमें कोई विशेषता नहीं देखता। जैसे पहले शरीरका पतन होता है, उसी प्रकार पुन: दूसरे शरीरका जन्म भी हो जाता है। किन्तु उस देहकी उत्पत्ति कैसे होती है? मुझे इसका कारण बताओ।

मातलि बोले—राजन्! नारकी पुरुषोंके अधर्ममात्रसे एक ही क्षणमें भूतोंके द्वारा नूतन शरीरका निर्माण हो जाता है। इसी प्रकार एकमात्र धर्मसे ही देवत्वकी प्राप्ति करानेवाले दिव्य शरीरकी तत्काल उत्पत्ति हो जाती है। उसका आविर्भाव भूतोंके सारतत्त्वसे होता है। कर्मोंके मेलसे जो शरीर उत्पन्न होता है, उसे रूपके परिमाणसे चार प्रकारका समझना चाहिये। [उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज और जरायुज—ये ही चार प्रकारके शरीर हैं।] स्थावरोंको उद्भिज्ज कहते हैं। उन्हें तृण, गुल्म और लता आदिके रूपमें जानना चाहिये। कृमि, कीट और पतंग आदि प्राणी स्वेदज कहलाते हैं। समस्त पक्षी, नाके और मछली आदि जीव अण्डज हैं। मनुष्यों और चौपायोंको जरायुज जानना चाहिये।

भूमिके पानीसे सींचे जानेपर बोये हुए अन्नमें उसकी गर्मी चली जाती है। फिर वायुसे संयुक्त होनेपर क्षेत्रमें बीज जमने लगता है। पहले तपे हुए बीज जब पुनः जलसे सींचे जाते हैं, तब गर्मीके कारण उनमें मृदुता आ जाती है; फिर वे जड़के रूपमें बदल जाते हैं। उस मूलसे अंकुरकी उत्पत्ति होती है। अंकुरसे पत्ते निकलते हैं, पत्तेसे तना, तनेसे काण्ड, काण्डसे प्रभव, प्रभवसे दूध और दूधसे तण्डुल उत्पन्न होता है। तण्डुलके पक जानेपर अनाजकी खेती तैयार हुई समझी जाती है। अनाजोंमें शालि (अगहनी धान)-से लेकर जौतक दस अन्न श्रेष्ठ माने गये हैं। उनमें फलकी प्रधानता होती है। शेष अन्न क्षुद्र बताये गये हैं। भक्ष्य, भोज्य, पेय, लेह्य, चोष्य और खाद्य—ये अन्नके छः भेद हैं तथा मधुर आदि छः प्रकारके रस हैं। देहधारी उस अन्नको पिण्डके समान कौर या ग्रास बनाकर खाते हैं। वह अन्न शरीरके भीतर उदरमें पहुँचकर समस्त प्राणोंको क्रमशः स्थिर करता है। खाये हुए अपक्व भोजनको वायु दो भागोंमें बाँट देती है। अन्नके भीतर प्रवेश करके उसे पचाती और पृथक्-पृथक् गुणोंसे युक्त करती है। अग्निके ऊपर जल और जलके ऊपर अन्नको स्थापित करके प्राण स्वयं जलके नीचे स्थित हो धीरे-धीरे जठराग्निको प्रज्वलित करता है। वायुसे उद्दीप्त की हुई अग्नि जलको अधिक गर्म कर देती है। उसकी गर्मीके कारण अन्न सब ओरसे भलीभाँति पच जाता है। पचा हुआ अन्न कीट और रस—इन दो भागोंमें विभक्त होता है। इनमें कीट मलरूपसे बारह छिद्रोंद्वारा शरीरके बाहर निकलता है। दो कान, दो नेत्र, दो नासा-छिद्र, जिह्वा, दाँत, ओठ, लिंग, गुदा और रोमकूप—ये ही मल निकलनेके बारह मार्ग हैं। इनके द्वारा कफ, पसीने और मल-मूत्र आदिके रूपमें शरीरका मैल निकलता है। हृदयकमलमें शरीरकी सब नाड़ियाँ आबद्ध हैं। उनके मुखमें प्राण अन्नका सूक्ष्म रस डाला करता है। वह बारम्बार उस रससे नाड़ियोंको भरता रहता है तथा रससे भरी हुई नाड़ियाँ सम्पूर्ण देहको तृप्त करती रहती हैं।

नाड़ियोंके मध्यमें स्थित हुआ रस शरीरकी गर्मीसे पकने लगता है। उस रसके जब दो पाक हो जाते हैं, तब उससे त्वचा, मांस, हड्डी, मज्जा, मेद और रुधिर आदि उत्पन्न होते हैं। रक्तसे रोम और मांस, मांससे केश और स्नायु, स्नायुसे मज्जा और हड्डी तथा मज्जा और हड्डीसे वसाकी उत्पत्ति होती है। मज्जासे शरीरकी उत्पत्तिका कारणभूत वीर्य बनता है। इस प्रकार अन्नके बारह परिणाम बताये गये हैं।* जब ऋतुकालमें दोषरहित वीर्य स्त्रीकी योनिमें स्थित होता है, उस समय वह वायुसे प्रेरित हो रजके साथ मिलकर एक हो जाता है। वीर्य-स्थापनके समय कारण-शरीरयुक्त जीव अपने कर्मोंसे प्रेरित होकर योनिमें प्रवेश करता है।

वीर्य और रज दोनों एकत्र होकर एक ही दिनमें कललके आकारमें परिणत हो जाते हैं, फिर पाँच रातमें उनका बुद्‌बुद बन जाता है। तत्पश्चात् एक महीनेमें ग्रीवा, मस्तक, कंधे, रीढ़की हड्डी तथा उदर—ये पाँच अंग उत्पन्न होते हैं; फिर दो महीनेमें हाथ, पैर, पसली, कमर और पूरा शरीर—ये सभी क्रमशः सम्पन्न होते हैं। तीन महीने बीतते-बीतते सैकड़ों अंकुरसंधियाँ प्रकट हो

* अन्नके बारह परिणाम ये हैं—पाक, रस, मल, रक्त, रोम, मांस, केश, स्नायु, मज्जा, हड्डी, वसा और वीर्य।

जाती हैं। चार महीनोंमें क्रमशः अँगुली आदि अवयव भी उत्पन्न हो जाते हैं। पाँच महीनोंमें मुँह, नाक और कान तैयार हो जाते हैं; छः महीनोंके भीतर दाँतोंके मसूड़े, जिह्वा तथा कानोंके छिद्र प्रकट होते हैं। सात महीनोंमें गुदा, लिंग, अण्डकोष, उपस्थ तथा शरीरकी सन्धियाँ प्रकट होती हैं। आठ मास बीतते-बीतते शरीरका प्रत्येक अवयव, केशोंसहित पूरा मस्तक तथा अंगोंकी पृथक्-पृथक् आकृतियाँ स्पष्ट हो जाती हैं।

माताके आहारसे जो छः प्रकारका रस मिलता है, उसीके बलसे गर्भस्थ बालककी प्रतिदिन पुष्टि होती है। नाभिमें जो नाल बँधा होता है, उसीके द्वारा बालकको रसकी प्राप्ति होती रहती है। तदनन्तर शरीरका पूर्ण विकास हो जानेपर जीवको स्मरण-शक्ति प्राप्त होती है तथा वह दुःख-सुखका अनुभव करने लगता है। उसे पूर्वजन्मके किये हुए कर्मोंका, यहाँतक कि निद्रा और शयन आदिका भी स्मरण हो आता है। वह सोचने लगता है—'मैंने अबतक हजारों योनियोंमें अनेकों बार चक्कर लगाया। इस समय अभी-अभी जन्म ले रहा हूँ, मुझे पूर्वजन्मोंकी स्मृति हो आयी है; अतः इस जन्ममें मैं वह कल्याणकारी कार्य करूँगा, जिससे मुझे फिर गर्भमें न आना पड़े। मैं यहाँसे निकलनेपर संसार-बन्धनकी निवृत्ति करनेवाले उत्तम ज्ञानको प्राप्त करनेका प्रयत्न करूँगा।'

जीव गर्भवासके महान् दुःखसे पीड़ित हो कर्मवश माताके उदरमें पड़ा-पड़ा अपने मोक्षका उपाय सोचता रहता है। जैसे कोई पर्वतकी गुफामें बंद हो जानेपर बड़े दुःखसे समय बिताता है, उसी प्रकार देहधारी जीव जरायु (जेर)-के बन्धनमें बँधकर बहुत दुःखी होता और बड़े कष्टसे उसमें रह पाता है। जैसे समुद्रमें गिरा हुआ मनुष्य दुःखसे छटपटाने लगता है, वैसे ही गर्भके जलसे अभिषिक्त जीव अत्यन्त व्याकुल हो उठता है। जिस प्रकार किसीको लोहेके घड़ेमें बंद करके आगसे पकाया जाय, उसी प्रकार गर्भरूपी कुम्भमें डाला हुआ जीव जठराग्निसे पकाया जाता है। आगमें तपाकर लाल-लाल की हुई बहुत-सी सूइयोंसे निरन्तर शरीरको छेदनेपर जितना दुःख होता है, उससे आठगुना अधिक कष्ट गर्भमें होता है। गर्भवाससे बढ़कर कष्ट कहीं नहीं होता। देहधारियोंके लिये गर्भमें रहना इतना भयंकर कष्ट है, जिसकी कहीं तुलना नहीं है। इस प्रकार प्राणियोंके गर्भजनित दुःखका वर्णन किया गया। स्थावर और जंगम—सभी प्राणियोंको अपने-अपने गर्भके अनुरूप कष्ट होता है।

जीवको जन्मके समय गर्भवासकी अपेक्षा करोड़-गुनी अधिक पीड़ा होती है। जन्म लेते समय वह मूर्च्छित हो जाता है। उस समय उसका शरीर हड्डियोंसे युक्त गोल आकारका होता है। स्नायुबन्धनसे बँधा रहता है। रक्त, मांस और वसासे व्याप्त होता है। मल और मूत्र आदि अपवित्र वस्तुएँ उसमें जमा रहती हैं। केश, रोम और नखोंसे युक्त तथा रोगका आश्रय होता है। मनुष्यका यह शरीर जरा और शोकसे परिपूर्ण तथा कालके अग्निमय मुखमें स्थित है। इसपर काम और क्रोधके आक्रमण होते रहते हैं। यह भोगकी तृष्णासे आतुर, विवेकशून्य और राग-द्वेषके वशीभूत होता है। इस देहमें तीन सौ साठ हड्डियाँ तथा पाँच सौ मांस-पेशियाँ हैं, ऐसा समझना चाहिये। यह सब ओरसे साढ़े तीन करोड़ रोमोंद्वारा व्याप्त है तथा स्थूल-सूक्ष्म एवं दृश्य-अदृश्यरूपसे उतनी ही नाड़ियाँ भी इसके भीतर फैली हुई हैं। उन्हींके द्वारा भीतरका अपवित्र मल पसीने आदिके रूपमें निकलता रहता है। शरीरमें बत्तीस दाँत और बीस नख होते हैं। देहके अंदर पित्त एक कुडव[1] और कफ आधा आढक[2] होता है। वसा तीन पल[3], कलल पंद्रह पल, वात अर्बुद पल, मेद दस पल, महारक्त तीन पल, मज्जा उससे चौगुनी (बारह पल), वीर्य आधा कुडव, बल चौथाई कुडव, मांस-पिण्ड

१-आयुर्वेदके अनुसार ३२ तोले (६ छटाक २ तोले)-का एक वजन। २-चार सेरके लगभगका एक तौल। ३-आयुर्वेदके अनुसार ८ तोलेका १ पल होता है। अन्यत्र ४ तोलेका एक पल माना गया है।

हजार पल तथा रक्त सौ पल होता है और मूत्रका कोई नियत माप नहीं है।

राजन्! आत्मा परम शुद्ध है और उसका यह देहरूपी घर, जो कर्मोंके बन्धनसे तैयार किया गया है, नितान्त अशुद्ध है। इस बातको सदा ही याद रखना चाहिये। वीर्य और रजका संयोग होनेपर ही किसी भी योनिमें देहकी उत्पत्ति होती है तथा यह हमेशा पेशाब और पाखानेसे भरा रहता है; इसलिये इसे अपवित्र माना गया है। जैसे घड़ा बाहरसे चिकना होनेपर भी यदि विष्ठासे भरा हो तो वह अपवित्र ही समझा जाता है, उसी प्रकार यह देह ऊपरसे पंचभूतोंद्वारा शुद्ध किया जानेपर भी भीतरकी गंदगीके कारण अपवित्र ही माना गया है। जिसमें पहुँचकर पंचगव्य और हविष्य आदि अत्यन्त पवित्र पदार्थ भी तत्काल अपवित्र हो जाते हैं, उस शरीरसे बढ़कर अशुद्ध दूसरा क्या हो सकता है।[१] जिसके द्वारोंसे निरन्तर क्षण-क्षणमें कफ-मूत्र आदि अपवित्र वस्तुएँ बहती रहती हैं, उस अत्यन्त अपावन शरीरको कैसे शुद्ध किया जा सकता है।[२] शरीरके छिद्रोंका स्पर्शमात्र कर लेनेपर हाथको जलसे शुद्ध किया जाता है, तथापि मनुष्य अशुद्ध ही बने रहते हैं; किन्तु फिर भी उन्हें देहसे वैराग्य नहीं होता।[३] जैसे जन्मसे ही काले रंगकी ऊन धोनेसे कभी सफेद नहीं होती, उसी प्रकार यह शरीर धोनेसे भी पवित्र नहीं हो सकता। मनुष्य अपने शरीरके मलको अपनी आँखों देखता है, उसकी दुर्गन्धका अनुभव करता है और उससे बचनेके लिये नाक भी दबाता है; किन्तु फिर भी उसके मनमें वैराग्य नहीं होता। अहो! मोहका कैसा माहात्म्य है, जिससे सारा जगत् मोहित हो रहा है। अपने शरीरके दोषोंको देखकर और सूँघकर भी वह उससे विरक्त नहीं होता। जो मनुष्य अपने देहकी अपवित्र गन्धसे घृणा करता है, उसे वैराग्यके लिये और क्या उपदेश दिया जा सकता है।[४] सारा संसार पवित्र है, केवल शरीर ही अत्यन्त अपवित्र है; क्योंकि जन्मकालमें इस शरीरके अवयवोंका स्पर्श करनेसे शुद्ध मनुष्य भी अशुद्ध हो जाता है। अपवित्र वस्तुकी गन्ध और लेपको दूर करनेके लिये शरीरको नहलाने-धोने आदिका विधान है। गन्ध और लेपकी निवृत्ति हो जानेके पश्चात् भावशुद्धिसे वस्तुतः मनुष्य शुद्ध होता है।

जिसका भीतरी भाव दूषित है, वह यदि आगमें प्रवेश कर जाय तो भी न तो उसे स्वर्ग मिलता है और न मोक्षकी ही प्राप्ति होती है; उसे सदा देहके बन्धनमें ही जकड़े रहना पड़ता है। भावकी शुद्धि ही सबसे बड़ी पवित्रता है और वही प्रत्येक कार्यमें श्रेष्ठताका हेतु है। पत्नी और पुत्री—दोनोंका ही आलिंगन किया जाता है; किन्तु पत्नीके आलिंगनमें दूसरा भाव होता है और पुत्रीके आलिंगनमें दूसरा। भिन्न-भिन्न वस्तुओंके प्रति मनकी वृत्तिमें भी भेद हो जाता है। नारी अपने पतिका और भावसे चिन्तन करती है और पुत्रका और भावसे।[५] तुम यत्नपूर्वक अपने मनको शुद्ध करो, दूसरी-दूसरी बाह्य शुद्धियोंसे क्या लेना है। जो भावसे पवित्र है, जिसका अन्तःकरण शुद्ध हो गया है, वही स्वर्ग तथा मोक्षको प्राप्त करता है। उत्तम वैराग्यरूपी मिट्टी तथा

१-यं प्राप्यातिपवित्राणि पञ्चगव्यं हवींषि च। अशुचित्वं क्षणाद्यान्ति कोऽन्योऽस्मादशुचिस्ततः॥ (६६। ६९)

२-स्रोतांसि यस्य सततं प्रवहन्ति क्षणे क्षणे। कफमूत्राद्यत्यशुचिः स देहः शुध्यते कथम्॥ (६६। ७३)

३-स्पृष्ट्वा च देहस्रोतांसि मृदादिभिः शोध्यते करः। तथाप्यशुचिभाजश्च न विरज्यन्ति ते नराः॥ (६६। ७५)

४-जिघ्रन्नपि स्वदुर्गन्धं पश्यन्नपि मलं स्वकम्। न विरज्येत लोकोऽयं पीडयन्नपि नासिकाम्॥
अहो मोहस्य माहात्म्यं येन व्यामोहितं जगत्। जिघ्रन् पश्यन् स्वकान् दोषान् कायस्य न विरज्यते॥
स्वदेहाशुचिगन्धेन यो विरज्येत मानवः। विरागकारणं तस्य किमन्यदुपदिश्यते॥ (६६। ७८—८०)

५-अन्तर्भावप्रदुष्टस्य विशतोऽपि हुताशनम्। न स्वर्गो नापवर्गश्च देहनिर्बन्धनं परम्॥
भावशुद्धिः परं शौचं प्रमाणं सर्वकर्मसु। अन्यथाऽऽलिङ्ग्यते कान्ता भावेन दुहितान्यथा॥
मनसो भिद्यते वृत्तिर्भिन्नेष्वपि च वस्तुषु। अन्यथैव ततः पुत्रं भावयत्यन्यथा पतिम्॥ (६६। ८५—८७)

ज्ञानरूप निर्मल जलसे माँजने-धोनेपर पुरुषके अविद्या तथा रागरूपी मल-मूत्रका लेप नष्ट होता है। इस प्रकार इस शरीरको स्वभावतः अपवित्र माना गया है। केलेके वृक्षकी भाँति यह सर्वथा सारहीन है; अध्यात्म-ज्ञान ही इसका सार है। देहके दोषको जानकर जिसे इससे वैराग्य हो जाता है, वह विद्वान् संसार-सागरसे पार हो जाता है। इस प्रकार महान् कष्टदायक जन्मकालीन दुःखका वर्णन किया गया।

गर्भमें रहते समय जीवको जो विवेक-बुद्धि प्राप्त होती है, वह उसके अज्ञान-दोषसे या नाना प्रकारके कर्मोंकी प्रेरणासे जन्म लेनेके पश्चात् नष्ट हो जाती है। योनि-यन्त्रसे पीड़ित होनेपर जब वह दुःखसे मूर्च्छित हो जाता है और बाहर निकलकर बाहरी हवाके सम्पर्कमें आता है, उस समय उसके चित्तपर महान् मोह छा जाता है। मोहग्रस्त होनेपर उसकी स्मरणशक्तिका भी शीघ्र ही नाश हो जाता है; स्मृति नष्ट होनेसे पूर्वकर्मोंकी वासनाके कारण उस जन्ममें भी ममता और आसक्ति बढ़ जाती है। फिर संसारमें आसक्त होकर मूढ जीव न आत्माको जान पाता है न परमात्माको, अपितु निषिद्ध कर्ममें प्रवृत्त हो जाता है।[१] बाल्यकालमें इन्द्रियोंकी वृत्तियाँ पूर्णतया व्यक्त नहीं होतीं; इसलिये बालक महान्-से-महान् दुःखको सहन करता है, किन्तु इच्छा होते हुए भी न तो उसे कह सकता है और न उसका कोई प्रतिकार ही कर पाता है। शैशवकालीन रोगसे उसको भारी कष्ट भोगना पड़ता है। भूख-प्यासकी पीड़ासे उसके सारे शरीरमें दर्द होता है। बालक मोहवश मल-मूत्रको भी खानेके लिये मुँहमें डाल लेता है। कुमारावस्थामें कान बिंधानेसे कष्ट होता है। समय-समयपर उसे माता-पिताकी मार भी सहनी पड़ती है। अक्षर लिखने-पढ़नेके समय गुरुका शासन दुःखद जान पड़ता है।

जवानीमें भी इन्द्रियोंकी वृत्तियाँ कामना और रागकी प्रेरणासे इधर-उधर विषयोंमें भटकती हैं; फिर मनुष्य रोगोंसे आक्रान्त हो जाता है। अतः युवावस्थामें भी सुख कहाँ है। युवकको ईर्ष्या और मोहके कारण महान् दुःखका सामना करना पड़ता है, यह राग ईर्ष्यालु व्यक्तिके लिये केवल दुःखका कारण होता है। कामाग्निसे संतप्त रहनेके कारण उसे रातभर नींद नहीं आती। दिनमें भी अर्थोपार्जनकी चिन्तासे सुख कहाँ मिलता है[२]। कीड़ोंसे पीड़ित कोढ़ी मनुष्यको अपनी कोढ़ खुजलानेमें जो सुख

१-चित्तं शोधय यत्नेन किमन्यैर्बाह्यशोधनैः। भावतः शुचिः शुद्धात्मा स्वर्गं मोक्षं च विन्दति॥
ज्ञानामलाम्भसा पुंसः सद्वैराग्यमृदा पुनः। अविद्यारागविण्मूत्रलेपो नश्येद्विशोधनैः॥
एवमेतच्छरीरं हि निसर्गादशुचि विदुः। अध्यात्मसारनिस्सारं कदलीसारसंनिभम्॥
ज्ञात्वैव देहदोषं यः प्राज्ञः स शिथिलो भवेत्। सोऽतिक्रामति संसारं............॥
एवमेतन्महाकष्टं जन्मदुःखं प्रकीर्त्तितम्। पुंसामज्ञानदोषेण नानाकर्मवशेन च॥
गर्भस्थस्य मतिर्याऽऽसीत् संजातस्य प्रणश्यति। सम्मूर्च्छितस्य दुःखेन योनियन्त्रप्रपीडनात्॥
बाह्येन वायुना तस्य मोहसङ्गेन देहिनाम्। स्पृष्टमात्रेण घोरेण............॥
............महामोहः प्रजायते। सम्मूढस्य स्मृतिभ्रंशः शीघ्रं संजायते पुनः॥
स्मृतिभ्रंशात्तस्य पूर्वकर्मज्ञानसमुद्भवा। रतिः संजायते पूर्णा जन्तोस्तत्रैव जन्मनि॥
रक्तो मूढश्च लोकोऽयमकार्ये सम्प्रवर्तते। न चात्मानं विजानाति न परं न च दैवतम्॥
(६६। ९०—९९)

२-अव्यक्तेन्द्रियवृत्तित्वाद्बाल्ये दुःखं महत्पुनः। इच्छन्नपि न शक्नोति वक्तुं कर्त्तुं च संस्कृतम्॥
भुङ्क्ते तेन महद्दुःखं बाल्येन व्याधिनान्यथा। बाल्यरोगैश्च विविधैः पीडा............॥
तृड्बुभुक्षापरीतांगः क्वचिद्गच्छति तिष्ठति। विण्मूत्रभक्षणाद्यं च मोहाद्बालः समाचरेत्॥
कौमारः कर्णवेधेन मात्रापित्रोश्च ताडनम्। अक्षराध्ययनाद्यैश्च दुःखं स्याद्गुरुशासनम्॥
अन्यत्रेन्द्रियवृत्तिश्च कामरागप्रयोजनात्। रोगावृत्तस्य सततं कुतः सौख्यं च यौवने॥
ईर्ष्यया सुमहद्दुःखं मोहाद्दुःखं सुजायते। तत्र स्यात्कुपितस्यैव रागे दुःखाय केवलम्॥
रात्रौ न कुरुते निद्रां कामाग्निपरिखेदितः। दिवा वापि कुतः सौख्यमर्थोपार्जनचिन्तया॥
(६६। १०४—११०)

प्रतीत होता है, वही स्त्रियोंके साथ सम्भोग करनेमें भी है।[१] जवानीके बाद जब वृद्धावस्था मनुष्यको दबा लेती है, तब असमर्थ होनेके कारण उसे पत्नी-पुत्र आदि बन्धु-बान्धव तथा दुराचारी भृत्य भी अपमानित कर बैठते हैं। बुढ़ापेसे आक्रान्त होनेपर मनुष्य धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—इनमेंसे किसीका भी साधन नहीं कर सकता; इसलिये युवावस्थामें ही धर्मका आचरण कर लेना चाहिये[२]।

प्रारब्ध-कर्मका क्षय होनेपर जो जीवोंका भिन्न-भिन्न देहोंसे वियोग होता है, उसीको मरण कहा गया है। वास्तवमें जीवका नाश नहीं होता। मृत्युके समय जब शरीरके मर्मस्थानोंका उच्छेद होने लगता है और जीवपर महान् मोह छा जाता है, उस समय उसको जो दुःख होता है, उसकी कहीं भी तुलना नहीं है। वह अत्यन्त दुःखी होकर 'हाय बाप! हाय मैया! हा प्रिये!' आदिकी पुकार मचाता हुआ बारम्बार विलाप करता है। जैसे साँप मेढकको निगल जाता है, उसी प्रकार वह सारे संसारको निगलनेवाली मृत्युका ग्रास बना हुआ है। भाई-बन्धुओंसे उसका साथ छूट जाता है; प्रियजन उसे घेरकर बैठे रहते हैं। वह गरम-गरम लम्बी साँसें खींचता है, जिससे उसका मुँह सूख जाता है। रह-रहकर उसे मूर्च्छा आ जाती है। बेहोशीकी हालतमें वह जोर-जोरसे इधर-उधर हाथ-पैर पटकने लगता है। अपने काबूमें नहीं रहता। लाज छूट जाती है और वह मल-मूत्रमें सना पड़ा रहता है। उसके कण्ठ, ओठ और तालु सूख जाते हैं। वह बार-बार पानी माँगता है। कभी धनके विषयमें चिन्ता करने लगता है—'हाय! मेरे मरनेके बाद यह किसके हाथ लगेगा?' यमदूत उसे कालपाशमें बाँधकर घसीट ले जाते हैं। उसके कण्ठमें घरघर आवाज होने लगती है; दूतोंके देखते-देखते उसकी मृत्यु होती है। जीव एक देहसे दूसरी देहमें जाता है। सभी जीव सबेरे मल-मूत्रकी हाजतका कष्ट भोगते हैं; मध्याह्नकालमें उन्हें भूख-प्यास सताती है और रात्रिमें वे काम-वासना तथा नींदके कारण क्लेश उठाते हैं [इस प्रकार संसारका सारा जीवन ही कष्टमय है]।

पहले तो धनको पैदा करनेमें कष्ट होता है, फिर पैदा किये हुए धनकी रखवालीमें क्लेश उठाना पड़ता है; इसके बाद यदि कहीं वह नष्ट हो जाय तो दुःख और खर्च हो जाय तो भी दुःख होता है। भला, धनमें सुख है ही कहाँ। जैसे देहधारी प्राणियोंको सदा मृत्युसे भय होता है; उसी प्रकार धनवानोंको चोर, पानी, आग, कुटुम्बियों तथा राजासे भी हमेशा डर बना रहता है। जैसे मांसको आकाशमें पक्षी, पृथ्वीपर हिंसक जीव और जलमें मत्स्य आदि जन्तु भक्षण करते हैं, उसी प्रकार सर्वत्र धनवान् पुरुषको लोग नोचते-खसोटते रहते हैं। सम्पत्तिमें धन सबको मोहित करता—उन्मत्त बना देता है, विपत्तिमें सन्ताप पहुँचाता है और उपार्जनके समय दुःखका अनुभव कराता है; फिर धनको कैसे सुखदायक कहा जाय।[३] हेमन्त और शिशिरमें जाड़ेका कष्ट रहता है। गर्मीमें दुस्सह तापसे संतप्त होना पड़ता है और वर्षाकालमें अतिवृष्टि तथा अल्पवृष्टिसे दुःख होता है; इस प्रकार विचार करनेपर कालमें भी सुख कहाँ है।

१-कृमिभिः पीड्यमानस्य कुष्ठिनः पामरस्य च। कण्डूयनाभितापेन यत्सुखं स्त्रीषु तद्विदुः॥ (६६।११२)

२-धर्ममर्थं च कामं च मोक्षं न जरया पुनः। शक्तः साधयितुं तस्माद् युवा धर्मं समाचरेत्॥ (६६।११७)

३-अर्थस्योपार्जने दुःखं दुःखमर्जितरक्षणे। नाशे दुःखं व्यये दुःखमर्थस्यैव कुतः सुखम्॥
चौरेभ्यः सलिलेभ्योऽग्नेः स्वजनात् पार्थिवादपि। भयमर्थवतां नित्यं मृत्योर्देहभृतामिव॥
खे यथा पक्षिभिर्मांसं भुज्यते श्वापदैर्भुवि। जले च भक्ष्यते मत्स्यैस्तथा सर्वत्र वित्तवान्॥
विमोहयन्ति सम्पत्सु तापयन्ति विपत्सु च। वेदयन्त्यर्जने दुःखं कथमर्थाः सुखावहाः॥
(६६।१४८—१५१)

यही दशा कुटुम्बकी भी है। पहले तो विवाहमें विस्तारपूर्वक व्यय होनेपर दु:ख होता है; फिर पत्नी जब गर्भ धारण करती है, तब उसे उसका भार ढोनेमें कष्टका अनुभव होता है। प्रसवकालमें अत्यन्त पीड़ा भोगनी पड़ती है तथा फिर सन्तान होनेपर उसके मल-मूत्र उठाने आदिमें क्लेश होता है। इसके सिवा हाय! मेरी स्त्री भाग गयी, मेरी पत्नीकी सन्तान अभी बहुत छोटी है, वह बेचारी क्या कर सकेगी? कन्याके विवाहका समय आ रहा है, उसके लिये कैसा वर मिलेगा?—इत्यादि चिन्ताओंके भारसे दबे हुए कुटुम्बीजनोंको कैसे सुख मिल सकता है।

राज्यमें भी सुख कहाँ है। सदा सन्धि-विग्रहकी चिन्ता लगी रहती है। जहाँ पुत्रसे भी भय प्राप्त होता है, वहाँ सुख कैसा। एक द्रव्यकी अभिलाषा रखनेके कारण आपसमें लड़नेवाले कुत्तोंकी तरह प्राय: सभी देहधारियोंको अपने सजातियोंसे भय बना रहता है। कोई भी राजा राज्य छोड़कर वनमें प्रवेश किये बिना इस भूतलपर विख्यात न हो सका। जो सारे सुखोंका परित्याग कर देता है, वही निर्भय होता है। राजन्! पहननेके लिये दो वस्त्र हों और भोजनके लिये सेर भर अन्न—इतनेमें ही सुख है। मान-सम्मान, छत्र-चँवर और राज्यसिंहासन तो केवल दु:ख देनेवाले हैं। समस्त भूमण्डलका राजा ही क्यों न हो, एक खाटके नापकी भूमि ही उसके उपभोगमें आती है। जलसे भरे हजारों घड़ोंद्वारा अभिषेक कराना क्लेश और श्रमको ही बढ़ाना है। [स्नान तो एक घड़ेसे भी हो सकता है।] प्रात:काल पुरवासियोंके साथ शहनाईका मधुर शब्द सुनना अपने राजत्वका अभिमानमात्र है। केवल यह कहकर सन्तोष लाभ करना है कि मेरे महलमें सदा शहनाई बजती है। समस्त आभूषण भारमात्र हैं, सब प्रकारके अंगराग मैलके समान हैं, सारे गीत प्रलापमात्र हैं और नृत्य पागलोंकी-सी चेष्टा है। इस प्रकार विचार करके देखा जाय, तो राजोचित भोगोंसे भी क्या सुख मिलता है। राजाओंका यदि किसीके साथ युद्ध छिड़ जाय तो एक-दूसरेको जीतनेकी इच्छासे वे सदा चिन्तामग्न रहते हैं। नहुष आदि बड़े-बड़े सम्राट् भी राज्य-लक्ष्मीके मदसे उन्मत्त होनेके कारण स्वर्गमें जाकर भी वहाँसे भ्रष्ट हो गये। भला, लक्ष्मीसे किसको सुख मिलता है।*

स्वर्गमें भी सुख कहाँ है। देवताओंमें भी एक देवताकी सम्पत्ति दूसरेकी अपेक्षा बढ़ी-चढ़ी तो होती ही है, वे अपनेसे ऊपरकी श्रेणीवालोंके बढ़े हुए वैभवको देख-देखकर जलते हैं। मनुष्य तो स्वर्गमें जाकर अपना मूल गँवाते हुए ही पुण्यफलका भी उपभोग करते हैं। जैसे जड़ कट जानेपर वृक्ष विवश होकर धरतीपर गिर जाता है, उसी प्रकार पुण्य क्षीण होनेपर मनुष्य भी स्वर्गसे नीचे आ जाते हैं। इस प्रकार विचारसे देवताओंके स्वर्गलोकमें भी सुख नहीं जान पड़ता। स्वर्गसे लौटनेपर देहधारियोंको मन, वाणी और शरीरसे किये हुए नाना प्रकारके भयंकर पाप भोगने पड़ते हैं। उस समय नरककी आगमें उन्हें बड़े भारी कष्ट और दु:खका सामना करना पड़ता है। जो जीव स्थावरयोनिमें पड़े हुए हैं, उन्हें भी सब प्रकारके दु:ख प्राप्त होते हैं। कभी उन्हें कुल्हाड़ीके तीव्र प्रहारसे काटा जाता है तो कभी उनकी छाल काटी जाती है और कभी उनकी डालियों, पत्तों और फलोंको भी गिराया जाता है; कभी प्रचण्ड आँधीसे वे अपने-आप उखड़कर गिर जाते हैं तो

---

* एवं वस्त्रयुगं राजन् प्रस्थमात्रं तु भोजनम् । मानं छत्रासनं चैव सुखदु:खाय केवलम्॥
सार्वभौमोऽपि भवति खट्वामात्रपरिग्रह: । उदकुम्भसहस्रेभ्य: क्लेशायासप्रविस्तर:॥
प्रत्यूषे तूर्यनिर्घोष: समं पुरनिवासिभि: । राज्येऽभिमानमात्रं हि ममेदं वाद्यते गृहे॥
सर्वमाभरणं भार: सर्वमालेपनं मलम् । सर्वं संलपितं गीतं नृत्तमुन्मत्तचेष्टितम्॥
इत्येवं राज्यसम्भोगै: कुत: सौख्यं विचारत: । नृपाणां विग्रहे चिन्ता वान्योन्यविजिगीषया॥
प्रायेण श्रीमदालेपान्नहुषाद्या महानृपा: । स्वर्गं प्राप्ता निपतिता: क्व श्रिया विन्दते सुखम्॥
(६६।१७५—१८०)

कभी हाथी या दूसरे जन्तु उन्हें समूल नष्ट कर डालते हैं। कभी वे दावानलकी आँचमें झुलसते हैं तो कभी पाला पड़नेसे कष्ट भोगते हैं। पशु-योनिमें पड़े हुए जीवोंकी कसाइयोंद्वारा हत्या होती है; उन्हें डंडोंसे पीटा जाता है, नाक छेदकर त्रास दिया जाता है, चाबुकोंसे मारा जाता है, बेत या काठ आदिकी बेड़ियोंसे अथवा अंकुशके द्वारा उनके शरीरको बन्धनमें डाला जाता है तथा बलपूर्वक मनमाने स्थानमें ले जाया जाता और बाँधा जाता है तथा उन्हें अपने टोलोंसे अलग किया जाता है। इस प्रकार पशुओंके शरीरको भी अनेक प्रकारके दुःख भोगने पड़ते हैं।

देवताओंसे लेकर सम्पूर्ण चराचर जगत् पूर्वोक्त दुःखोंसे ग्रस्त है; इसलिये विद्वान् पुरुषको सबका त्याग कर देना चाहिये। जैसे मनुष्य इस कंधेका भार उस कंधेपर लेकर अपनेको विश्राम मिला समझता है, उसी प्रकार संसारके सब लोग दुःखसे ही दुःखको शान्त करनेकी चेष्टा कर रहे हैं। अतः सबको दुःखसे व्याकुल जानकर विचारवान् पुरुषको परम निर्वेद धारण करना चाहिये, निर्वेदसे परम वैराग्य होता है और उससे ज्ञान। ज्ञानसे परमात्माको जानकर मनुष्य कल्याणमयी मुक्तिको प्राप्त होता है। फिर वह समस्त दुःखोंसे मुक्त होकर सदा सुखी, सर्वज्ञ और कृतार्थ हो जाता है। ऐसे ही पुरुषको मुक्त कहते हैं। राजन्! तुम्हारे प्रश्नके अनुसार मैंने सब बातें तुम्हें बता दीं।

पापों और पुण्योंके फलोंका वर्णन

ययाति बोले—मातले! मर्त्यलोकके मानव बड़े भयानक पाप करते हैं; उन्हें उन कर्मोंका क्या फल मिलता है? इस समय यही बात बताओ।

मातलिने कहा—राजन्! जो लोग वेदोंकी निन्दा और वेदोक्त सदाचारकी गर्हणा करते हैं तथा जो अपने कुलके आचारका त्याग करके दूसरोंका आचार ग्रहण करते हैं, जो सब साधुओंको पीड़ा देते हैं, वे सब पातकी हैं। तत्त्ववेत्ता पुरुषोंने इन दुष्कर्मोंको पातक नाम दिया है। जो माता-पिताकी निन्दा करते, बहिनको सदा मारते और उसकी गर्हणा करते हैं, उनका यह कार्य निश्चय ही पातक है। जो श्राद्धकाल आनेपर भी काम, क्रोध अथवा भयसे, पाँच कोसके भीतर रहनेवाले दामाद, भांजे तथा बहिनको नहीं बुलाता और सदा दूसरोंको ही भोजन कराता है, उसके श्राद्धमें पितर अन्न ग्रहण नहीं करते, उसमें विघ्न पड़ जाता है। दामाद आदिकी उपेक्षा श्राद्धकर्ता पुरुषके लिये पितृहत्याके समान है, उसे बहुत बड़ा पातक माना गया है। इसी प्रकार यदि दान देते समय बहुत-से ब्राह्मण आ जायँ तथा उनमेंसे एकको तो दान दिया जाय और दूसरोंको न दिया जाय तो यह दानके फलको नष्ट करनेवाला बहुत बड़ा पातक माना गया है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रको उचित है कि वह प्रत्येक पुण्यपर्वके अवसरपर निर्धन ब्राह्मणकी पूजा करें तथा जहाँतक हो सके, उसे धनकी प्राप्ति करायें। श्राद्धके समय निमन्त्रित ब्राह्मणके अतिरिक्त यदि दूसरा कोई ब्राह्मण आ जाय तो उन दोनोंकी ही भोजन, वस्त्र, ताम्बूल और दक्षिणाके द्वारा पूजा करनी चाहिये; इससे श्राद्धकर्ताके पितरोंको बड़ा हर्ष होता है। यदि श्राद्धकर्ता धनहीन हो तो वह एककी ही पूजा कर सकता है। जो श्राद्धमें ब्राह्मणको भोजन कराकर आदरपूर्वक दक्षिणा नहीं देता, उसे गोहत्या आदिके समान पाप लगता है। महाराज! व्यतीपात और वैधृति योग आनेपर अथवा अमावास्या तिथिको या पिताकी क्षयाह-तिथि प्राप्त होनेपर अपराह्णकालमें ब्राह्मण आदि वर्णोंको अवश्य श्राद्ध करना चाहिये।

विज्ञ पुरुषको उचित है कि वह अपरिचित ब्राह्मणको श्राद्धमें निमन्त्रित न करे। अपरिचितोंमें भी यदि कोई वेद-वेदांगोंका पारगामी विद्वान् हो तो उस ब्राह्मणको श्राद्धमें निमन्त्रित करना और दान देना उचित है। राजन्! निमन्त्रित ब्राह्मणका अपूर्व आतिथ्य-सत्कार करना चाहिये। जो पापी इसके विपरीत

आचरण करता है, उसे निश्चय ही नरकमें जाना पड़ता है। इसलिये दान, श्राद्ध तथा पर्वके अवसरपर ब्राह्मणको निमन्त्रित करना आवश्यक है। पहले ब्राह्मणकी भलीभाँति जाँच और परख कर लेनी चाहिये, उसके बाद उसे श्राद्ध और दानमें सम्मिलित करना उचित है। जो बिना ब्राह्मणके श्राद्ध करता है, उसके घरमें पितर भोजन नहीं करते, शाप देकर लौट जाते हैं। ब्राह्मणहीन श्राद्ध करनेसे मनुष्य महापापी होता है तथा ब्राह्मणघाती कहलाता है। राजन्! जो पितृकुलके आचारका परित्याग करके स्वेच्छानुसार बर्ताव करता है, उसे महापापी समझना चाहिये; वह सब धर्मोंसे बहिष्कृत है। जो पापी मनुष्य शिवकी परिचर्या छोड़कर शिवभक्तोंसे द्वेष रखते हैं तथा जो ब्राह्मणोंसे द्रोह करते हुए सदा भगवान् श्रीविष्णुकी निन्दा करते हैं, वे महापापी हैं, सदाचारकी निन्दा करनेवाले पुरुषोंकी गणना भी इसी श्रेणीमें है।

सर्वप्रथम उत्तम ज्ञानस्वरूप पुण्यमय भागवत-पुराणकी पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् विष्णुपुराण, हरिवंश, मत्स्यपुराण और कूर्मपुराणका पूजन करना उचित है। जो पद्मपुराणकी पूजा करते हैं, उनके द्वारा भगवान् श्रीमधुसूदनकी प्रत्यक्ष पूजा हो जाती है। जो श्रीभगवान्‌के ज्ञानस्वरूप पुराणकी पूजा किये बिना ही उसे पढ़ते और लिखते हैं, लोभमें आकर बेच देते हैं, अपवित्र स्थानमें मनमाने ढंगसे रख देते हैं तथा स्वयं अशुद्ध रहकर अशुद्ध स्थानमें पुराणकी कथा कहते और सुनते हैं, उनका यह सब कार्य गुरुनिन्दाके समान माना गया है। जो गुरुकी पूजा किये बिना ही उनसे शास्त्र श्रवण करना चाहता है, गुरुकी सेवा नहीं करता, उनकी आज्ञा भंग करनेका विचार रखता है, उनकी बातका अभिनन्दन नहीं करता, अपितु प्रतिवाद कर देता है, गुरुके कार्यकी, करनेयोग्य होनेपर भी, उपेक्षा करता है तथा जो गुरुको रोगादिसे पीड़ित, असमर्थ, विदेशकी ओर प्रस्थित और शत्रुओंद्वारा अपमानित देखकर भी उनका साथ छोड़ देता है, वह पापी तबतक कुम्भीपाक नरकमें निवास करता है, जबतक कि चौदह इन्द्रोंकी आयु पूरी नहीं हो जाती। जो स्त्री, पुत्र और मित्रोंकी अवहेलना करता है, उसके इस कार्यको भी गुरुनिन्दाके समान महान् पातक समझना चाहिये। ब्राह्मणकी हत्या करनेवाला, सुवर्ण चुरानेवाला, शराबी, गुरुकी शय्यापर सोनेवाला तथा इनका सहयोगी—ये पाँच प्रकारके मनुष्य महापातकी माने गये हैं। जो क्रोध, द्वेष, भय अथवा लोभसे विशेषतः ब्राह्मणके मर्म आदिका उच्छेद करता है, दरिद्र भिक्षुक ब्राह्मणको द्वारपर बुलाकर पीछे कोरा जवाब दे देता है, जो विद्याके अभिमानमें आकर सभामें उदासीन भावसे बैठे हुए ब्राह्मणोंको भी निस्तेज कर देता है तथा जो मिथ्या गुणोंद्वारा अपनेको जबर्दस्ती ऊँचा सिद्ध करता है और गुरुको ही उपदेश करने लगता है—इन सबको ब्राह्मणघाती माना गया है।

जिनका शरीर भूख और प्याससे पीड़ित है, जो अन्न खाना चाहते हैं, उनके कार्यमें विघ्न खड़ा करनेवाला मनुष्य भी ब्राह्मणघाती ही है। जो चुगलखोर, सब लोगोंके दोष ढूँढ़नेमें तत्पर, सबको उद्वेगमें डालनेवाला और क्रूर है तथा जो देवताओं, ब्राह्मणों और गौओंके निमित्त पहलेकी दी हुई भूमिको हर लेता है, उसे ब्रह्मघाती कहते हैं। दूसरोंके द्वारा उपार्जित द्रव्यका और ब्राह्मणके धनका अपहरण भी ब्रह्महत्याके समान ही भारी पातक है। जो अग्निहोत्र तथा पंचयज्ञादि कर्मोंका परित्याग करके माता, पिता और गुरुका अनादर करता है, झूठी गवाही देता है, शिवभक्तोंकी बुराई और अभक्ष्य वस्तुका भक्षण करता है, वनमें जाकर निरपराध प्राणियोंको मारता है तथा गोशाला, देवमन्दिर, गाँव और नगरमें आग लगाता है, उसके ये भयंकर पाप पूर्वोक्त पापोंके ही समान हैं।

दीनोंका सर्वस्व छीन लेना, परायी स्त्री, दूसरेके हाथी, घोड़े, गौ, पृथ्वी, चाँदी, रत्न, अनाज, रस, चन्दन, अरगजा, कपूर, कस्तूरी, मालपूआ और वस्त्रको चुरा लेना तथा परायी धरोहरको हड़प लेना—ये सब पाप सुवर्णकी चोरीके समान माने गये हैं। विवाह करनेयोग्य कन्याका योग्य वरके साथ विवाह न करना, पुत्र एवं मित्रकी भार्याओं और अपनी बहिनोंके साथ समागम

करना, कुमारी कन्याके साथ बलात्कार करना, अन्त्यज जातिकी स्त्रीका सेवन तथा सवर्णा स्त्रीके साथ सम्भोग—ये पाप गुरु-पत्नी-गमनके समान बताये गये हैं। जो ब्राह्मणको धन देनेकी प्रतिज्ञा करके न तो उसे देता है और न फिर उसको याद ही रखता है, उसका यह कार्य उपपातकोंकी श्रेणीमें रखा गया है। ब्राह्मणके धनका अपहरण, मर्यादाका उल्लंघन, अत्यन्त मान, अधिक क्रोध, दम्भ, कृतघ्नता, अत्यन्त विषयासक्ति, कृपणता, शठता, मात्सर्य, परस्त्री-गमन और साध्वी कन्याको कलंकित करना; परिवित्ति*, परिवेत्ता तथा उसकी पत्नी—इनसे सम्पर्क रखना, इन्हें कन्या देना अथवा इनका यज्ञ कराना; धनके अभावमें पुत्र, मित्र और पत्नीका परित्याग करना; बिना किसी कारणके ही स्त्रीको छोड़ देना, साधु और तपस्वियोंकी उपेक्षा करना; गौ, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री तथा शूद्रोंके प्राण लेना; शिवमन्दिर, वृक्ष और फुलवाड़ीको नष्ट करना; आश्रमवासियोंको थोड़ा-सा भी कष्ट पहुँचाना, भृत्यवर्गको दुःख देना; अन्न, वस्त्र और पशुओंकी चोरी करना; जिनसे माँगना उचित नहीं है, ऐसे लोगोंसे याचना करना; यज्ञ, बगीचा, पोखरा, स्त्री और सन्तानका विक्रय करना; तीर्थयात्रा, उपवास, व्रत और शुभ कर्मोंका फल बेचना, स्त्रियोंके धनसे जीविका चलाना, स्त्रीद्वारा उपार्जित अन्नसे जीवन-निर्वाह करना तथा किसीके छिपे हुए अधर्मको लोगोंके सामने खोलकर रख देना—इन सब पापोंमें जो लोग रचे-पचे रहते हैं, जो दूसरोंके दोष बताते, पराये छिद्रपर दृष्टि रखते, औरोंका धन हड़पना चाहते और परस्त्रियोंपर कुदृष्टि रखते हैं—इन सभी पापियोंको गोघातकके तुल्य समझना चाहिये।

जो मनुष्य झूठ बोलता, स्वामी, मित्र और गुरुसे द्रोह रखता, माया रचता और शठता करता है; जो स्त्री, पुत्र, मित्र, बालक, वृद्ध, दुर्बल मनुष्य, भृत्य, अतिथि और बन्धु-बान्धवोंको भूखे छोड़, अकेले भोजन कर लेता है; जो अपने तो खूब मिठाई उड़ाते और दूसरोंको अन्न भी नहीं देते, उन सबको पृथक्-पाकी समझना चाहिये। वेदज्ञ पुरुषोंमें उनकी बड़ी निन्दा की गयी है। जो स्वयं ही नियम लेकर फिर उन्हें छोड़ देते हैं, जिन्होंने दूसरोंके साथ धोखा किया है, जो मदिरा पीनेवालोंसे संसर्ग रखते और घाव एवं रोगसे पीड़ित तथा भूख-प्याससे व्याकुल गौका यत्नपूर्वक पालन नहीं करते, वे गो-हत्यारे माने गये हैं; उन्हें नरककी यातना भोगनी पड़ती है। जो सब प्रकारके पापोंमें डूबे रहते; साधु, ब्राह्मण, गुरु और गौको मारते तथा सन्मार्गमें स्थित निर्दोष स्त्रीको पीटते हैं; जिनका सारा शरीर आलस्यसे व्याप्त रहता है, अतएव जो बार-बार सोया करते हैं, जो दुर्बल पशुओंको काममें लगाते, बलपूर्वक हाँकते, अधिक भार लादकर कष्ट देते और घायल होनेपर भी उन्हें जोतते रहते हैं, जो दुरात्मा मनुष्य बैलोंको बधिया करते हैं तथा गायके बछड़ोंको नाथते हैं, वे सभी महापापी हैं। उनके ये कार्य महापातकोंके तुल्य हैं।

जो भूख-प्यास और परिश्रमसे पीड़ित एवं आशा लगाकर घरपर आये हुए अतिथिका अनादर करते हैं, वे नरकगामी होते हैं। जो मूर्ख, अनाथ, विकल, दीन, बालक, वृद्ध और क्षुधातुर व्यक्तिपर दया नहीं करते, उन्हें नरकके समुद्रमें गिरना पड़ता है। जो नीतिशास्त्रकी आज्ञाका उल्लंघन करके प्रजासे मनमाना कर वसूल करते हैं और अकारण ही दण्ड देते हैं, उन्हें नरकमें पकाया जाता है। जिस राजाके राज्यमें प्रजा सूदखोरों, अधिकारियों और चोरोंद्वारा पीड़ित होती है, उसे नरकोंमें पकना पड़ता है। जो ब्राह्मण अन्यायी राजासे दान लेते हैं, उन्हें भी घोर नरकोंमें जाना पड़ता है। पापाचारी पुरवासियोंका पाप राजाका ही समझा जाता है। अतः राजाको उस पापसे डरकर प्रजाको शासनमें रखना चाहिये। जो राजा भलीभाँति विचार न करके, जो चोर नहीं है उसे भी चोरके समान दण्ड देता और चोरको भी साधु समझकर छोड़ देता है, वह नरकमें जाता है।

जो मनुष्य दूसरोंके घी, तेल, मधु, गुड़, ईख, दूध,

* बड़े भाईके अविवाहित रहते यदि छोटे भाईका विवाह हो जाय तो बड़ा भाई 'परिवित्ति' और छोटा भाई 'परिवेत्ता' कहलाता है।

साग, दही, मूल, फल, घास, लकड़ी, फूल, पत्ती, काँसा, चाँदी, जूता, छाता, बैलगाड़ी, पालकी, मुलायम आसन, ताँबा, सीसा, राँगा, शंख, वंशी आदि बाजा, घरकी सामग्री, ऊन, कपास, रेशम, रंग, पत्र आदि तथा महीन वस्त्र चुराते हैं या इसी तरहके दूसरे-दूसरे द्रव्योंका अपहरण करते हैं, वे सदा नरकमें पड़ते हैं। दूसरेकी वस्तु थोड़ी हो या बहुत—जो उसपर ममता करके उसे चुराता है, वह निस्सन्देह नरकमें गिरता है। इस तरहके पाप करनेवाले मनुष्य मृत्युके पश्चात् यमराजकी आज्ञासे यमलोकमें जाते हैं। यमराजके महाभयंकर दूत उन्हें ले जाते हैं। उस समय उनको बहुत दु:ख उठाना पड़ता है। देवता, मनुष्य तथा पशु-पक्षी—इनमेंसे जो भी अधर्ममें मन लगाते हैं, उनके शासक धर्मराज माने गये हैं। वे भाँति-भाँतिके भयानक दण्ड देकर पापोंका भोग कराते हैं। विनय और सदाचारसे युक्त मनुष्य यदि भूलसे मलिन आचारमें लिप्त हो जायँ तो उनके लिये गुरु ही शासक माने गये हैं; वे कोई प्रायश्चित्त कराकर उनके पाप धो सकते हैं। ऐसे लोगोंको यमराजके पास नहीं जाना पड़ता। परस्त्री-लम्पट, चोर तथा अन्यायपूर्ण बर्ताव करनेवाले पुरुषोंपर राजाका शासन होता है—राजा ही उनके दण्ड-विधाता माने गये हैं; परन्तु जो पाप छिपकर किये जाते हैं, उनके लिये धर्मराज ही दण्डका निर्णय करते हैं। इसलिये अपने किये हुए पापोंके लिये प्रायश्चित्त करना चाहिये। अन्यथा वे करोड़ों कल्पोंमें भी [फल-भोग कराये बिना] नष्ट नहीं होते। मनुष्य मन, वाणी तथा शरीरसे जो कर्म करता है, उसका फल उसे स्वयं भोगना पड़ता है; कर्मोंके अनुसार उसकी सद्‌गति या अधोगति होती है। राजन्! इस प्रकार संक्षेपसे मैंने तुम्हें पापोंके भेद बताये हैं; बोलो, अब और क्या सुनाऊँ?

ययातिने कहा—मातले! अधर्मके सारे फलोंका वर्णन तो मैंने सुन लिया; अब धर्मका फल बताओ।

मातलिने कहा—राजन्! जो श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको जूता और खड़ाऊँ दान करता है, वह बहुत बड़े विमानपर बैठकर सुखसे परलोककी यात्रा करता है, वस्त्र-दान करनेवाले मनुष्य दिव्य वस्त्र धारण करके परलोकमें जाते हैं। पालकी दान करनेसे भी जीव विमानद्वारा सुखपूर्वक यात्रा करता है। सुखासन (गद्दे, कुर्सी आदि)-के दानसे भी वह सुखपूर्वक जाता है। बगीचा लगानेवाला पुरुष शीतल छायामें सुखसे परलोककी यात्रा करता है। फूल-माला दान करनेवाले पुरुष पुष्पक विमानसे जाते हैं। जो देवताओंके लिये मन्दिर, संन्यासियोंके लिये आश्रम तथा अनाथों और रोगियोंके लिये घर बनवाते हैं, वे परलोकमें उत्तम महलोंके भीतर रहकर विहार करते हैं। जो देवता, अग्नि, गुरु, ब्राह्मण, माता और पिताकी पूजा करता है तथा गुणवानों और दीनोंको रहनेके लिये घर देता है, वह सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाले ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है। राजन्! जिसने श्रद्धाके साथ ब्राह्मणको एक कौड़ीका भी दान किया है, वह स्वर्गलोकमें देवताओंका अतिथि होता है तथा उसकी कीर्ति बढ़ती है। अत: श्रद्धापूर्वक दान देना चाहिये। उसका फल अवश्य होता है।

अहिंसा, क्षमा, सत्य, लज्जा, श्रद्धा, इन्द्रिय-संयम, दान, यज्ञ, ध्यान [और ज्ञान]—ये धर्मके दस साधन हैं। अन्न देनेवालेको प्राणदाता कहा गया है और जो प्राणदाता है, वही सब कुछ देनेवाला है। अत: अन्न-दान करनेसे सब दानोंका फल मिल जाता है। अन्नसे पुष्ट होकर ही मनुष्य पुण्यका संचय करता है; अत: पुण्यका आधा अंश अन्न-दाताको और आधा भाग पुण्यकर्ताको प्राप्त होता—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका सबसे बड़ा साधन है शरीर और शरीर स्थिर रहता है अन्न तथा जलसे; अत: अन्न और जल ही सब पुरुषार्थोंके साधन हैं। अन्न-दानके समान दान न हुआ है न होगा। जल तीनों लोकोंका जीवन माना गया है। वह परम पवित्र, दिव्य, शुद्ध तथा सब रसोंका आश्रय है।

अन्न, पानी, घोड़ा, गौ, वस्त्र, शय्या, सूत और आसन—इन आठ वस्तुओंका दान प्रेतलोकके लिये बहुत उत्तम है। इस प्रकार दानविशेषसे मनुष्य

धर्मराजके नगरमें सुखपूर्वक जाता है; इसलिये धर्मका अनुष्ठान अवश्य करना चाहिये। राजन्! जो लोग क्रूर कर्म करते और दान नहीं देते हैं, उन्हें नरकमें दु:सह दु:ख भोगना पड़ता है। दान करके मनुष्य अनुपम सुख भोगते हैं।

जो एक दिन भी भक्तिपूर्वक भगवान् शिवकी पूजा करता है, वह भी शिवलोकको प्राप्त होता है; फिर जो अनेकों बार उनकी अर्चना कर चुका है, उसके लिये तो कहना ही क्या है। श्रीविष्णुकी भक्तिमें तत्पर और श्रीविष्णुके ध्यानमें संलग्न रहनेवाले वैष्णव वैकुण्ठधाममें चक्रधारी भगवान् श्रीविष्णुके समीप जाते हैं। श्रीविष्णुका उत्तम लोक श्रीशंकरजीके निवासस्थानसे ऊपर समझना चाहिये। वहाँ श्रीविष्णुके ध्यानमें तत्पर रहनेवाले वैष्णव मनुष्य ही जाते हैं। मनुष्योंमें श्रेष्ठ, सदाचारी, यज्ञ करानेवाले, सुनीतियुक्त और विद्वान् ब्राह्मण ब्रह्मलोकको जाते हैं। युद्धमें उत्साहपूर्वक जानेवाले क्षत्रियोंको इन्द्रलोककी प्राप्ति होती है तथा अन्यान्य पुण्यकर्ता भी पुण्यलोकोंमें गमन करते हैं।

मातलिके द्वारा भगवान् शिव और श्रीविष्णुकी महिमाका वर्णन, मातलिको विदा करके राजा ययातिका वैष्णवधर्मके प्रचारद्वारा भूलोकको वैकुण्ठ-तुल्य बनाना तथा ययातिके दरबारमें काम आदिका नाटक खेलना

ययाति बोले—मातले! तुमने धर्म और अधर्म—सबका उत्तम प्रकारसे वर्णन किया। अब देवताओंके लोकोंकी स्थितिका वर्णन करो। उनकी संख्या बताओ। जिस पुण्यके प्रसंगसे जिसने जो लोक प्राप्त किया हो, उसका भी वर्णन करो।

मातलिने कहा—राजन्! देवताओंके लोक भावमय हैं। भावोंके अनेक रूप दिखायी देते हैं; अत: भावात्मक जगत्‌की संख्या करोड़ोंतक पहुँच जाती है। परन्तु पुण्यात्माओंके लिये उनमेंसे अट्ठाईस लोक ही प्राप्य हैं, जो एक-दूसरेके ऊपर स्थित और अत्यन्त विशाल हैं। जो लोग भगवान् शंकरको नमस्कार करते हैं, उन्हें शिवलोकका विमान प्राप्त होता है। जो प्रसंगवश भी शिवका स्मरण या नाम-कीर्तन अथवा उन्हें नमस्कार कर लेता है, उसे अनुपम सुखकी प्राप्ति होती है। फिर जो निरन्तर उनके भजनमें ही लगे रहते हैं, उनके विषयमें तो कहना ही क्या है। जो ध्यानके द्वारा भगवान् श्रीविष्णुका चिन्तन करते हैं और सदा उन्हींमें मन लगाये रहते हैं, वे उन्हींके परम पदको प्राप्त होते हैं। नरश्रेष्ठ! श्रीशिव और भगवान् श्रीविष्णुके लोक एक-से ही हैं, उन दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है; क्योंकि उन दोनों महात्माओं—श्रीशिव तथा श्रीविष्णुका स्वरूप भी एक ही है। श्रीविष्णुरूपधारी शिव और श्रीशिवरूपधारी विष्णुको नमस्कार है। श्रीशिवके हृदयमें विष्णु और श्रीविष्णुके हृदयमें भगवान् शिव विराजमान हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शिव—ये तीनों देवता एकरूप ही हैं। इन तीनोंके स्वरूपमें कोई अन्तर नहीं है, केवल गुणोंका भेद बतलाया गया है।* राजेन्द्र! आप श्रीशिवके भक्त तथा भगवान् विष्णुके अनुरागी हैं; अत: आपपर ब्रह्मा, विष्णु और शिव—तीनों देवता प्रसन्न हैं। मानद! मैं इन्द्रकी आज्ञासे इस समय आपके पास आया हूँ। अत: पहले इन्द्रलोकमें चलिये; उसके बाद क्रमश: ब्रह्मलोक, शिवलोक तथा विष्णुलोकको जाइयेगा। वे लोक दाह

* शैवं च वैष्णवं लोकमेकरूपं नरोत्तम। द्वयोश्चाप्यन्तरं नास्ति एकरूपं महात्मनो:॥
शिवाय विष्णुरूपाय विष्णवे शिवरूपिणे। शिवस्य हृदये विष्णुर्विष्णोश्च हृदये शिव:॥
एकमूर्तिस्त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा:। त्रयाणामन्तरं नास्ति गुणभेदा: प्रकीर्तिता:॥
(७१। १८—२०)

और प्रलयसे रहित हैं।

पिप्पलने पूछा—ब्रह्मन्! मातलिकी बात सुनकर नहुषपुत्र राजा ययातिने क्या किया? इसका विस्तारके साथ वर्णन कीजिये।

सुकर्मा बोले—विप्रवर! सुनिये, उस समय सम्पूर्ण धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ नृपवर ययातिने मातलिसे इस प्रकार कहा—'देवदूत! तुमने स्वर्गका सारा गुण-अवगुण मुझे पहले ही बता दिया है। अतः अब मैं शरीर छोड़कर स्वर्गलोकमें नहीं जाऊँगा। देवाधिदेव इन्द्रसे तुम यही जाकर कह देना। भगवान् हृषीकेशके नामोंका उच्चारण ही सर्वोत्तम धर्म है। मैं प्रतिदिन इसी रसायनका सेवन करता हूँ। इससे मेरे रोग, दोष और पापादि नष्ट हो गये हैं। संसारमें श्रीकृष्णका नाम सबसे बड़ी औषध है। इसके रहते हुए भी मनुष्य पाप और व्याधियोंसे पीड़ित होकर मृत्युको प्राप्त हो रहे हैं—यह कितने आश्चर्यकी बात है। लोग कितने बड़े मूर्ख हैं कि श्रीकृष्ण-नामका रसायन नहीं पीते।* भगवान्की पूजा, ध्यान, नियम, सत्य-भाषण तथा दानसे शरीरकी शुद्धि होती है। इससे रोग और दोष नष्ट हो जाते हैं। तदनन्तर भगवान्के प्रसादसे मनुष्य शुद्ध हो जाता है। इसलिये मैं अब स्वर्गलोकको नहीं चलूँगा। अपने तपसे, भावसे और धर्माचरणके द्वारा भगवत्-कृपासे इस पृथ्वीको ही स्वर्ग बनाऊँगा। यह जानकर तुम यहाँसे जाओ और सारी बातें इन्द्रसे कह सुनाओ।'

राजा ययातिकी यह बात सुनकर मातलि चले गये। उन्होंने इन्द्रसे सब बातें निवेदन कीं। उन्हें सुनकर इन्द्र पुनः राजाको स्वर्गमें लानेके विषयमें विचार करने लगे।

पिप्पलने पूछा—ब्रह्मन्! इन्द्रके दूत महाभाग मातलिके चले जानेपर धर्मात्मा ययातिने कौन-सा कार्य किया?

सुकर्मा बोले—विप्रवर! देवराजके दूत मातलि जब चले गये, तब राजा ययातिने मन-ही-मन कुछ विचार किया और तुरंत ही प्रधान-प्रधान दूतोंको बुलाकर उन्हें धर्म और अर्थसे युक्त उत्तम आदेश दिया—'दूतो! तुमलोग मेरी आज्ञा मानकर अपने और दूसरे देशोंमें जाओ; तुम्हारे मुखसे वहाँके सब लोग मेरी धर्मयुक्त बात सुनें और सुनकर उसका पालन करें। जगत्के मनुष्य परम पवित्र और अमृतके समान सुखदायी भगवत्-सम्बन्धी भावोंद्वारा उत्तम मार्गका आश्रय लें। सदा तत्पर होकर शुभ कर्मोंका अनुष्ठान, भगवत्तत्त्वका ज्ञान, भगवान्का ध्यान और तपस्या करें। सब लोग विषयोंका परित्याग करके यज्ञ और दानके द्वारा एकमात्र मधुसूदनका पूजन करें। सर्वत्र सूखे और गीलेमें, आकाश और पृथ्वीपर तथा चराचर प्राणियोंमें केवल श्रीहरिका दर्शन करें। जो मानव लोभ या मोहवश लोकमें मेरी इस आज्ञाका पालन नहीं करेगा, उसे निश्चय ही कठोर दण्ड दिया जायगा। मेरी दृष्टिमें वह चोरकी भाँति निकृष्ट समझा जायगा।'

राजाके ये वचन सुनकर दूतोंका हृदय प्रसन्न हो गया। वे समूची पृथ्वीपर घूम-घूमकर समस्त प्रजाको महाराजका आदेश सुनाने लगे—'ब्राह्मणादि चारों वर्णोंके मनुष्यो! राजा ययातिने संसारमें परम पवित्र अमृत ला दिया है। आप सब लोग उसका पान करें। उस अमृतका नाम है—पुण्यमय वैष्णव धर्म। वह सब दोषोंसे रहित और उत्तम परिणामका जनक है। भगवान् केशव सबका क्लेश हरनेवाले, सर्वश्रेष्ठ, आनन्दस्वरूप और परमार्थ-तत्त्व हैं। उनका नाममय अमृत सब दोषोंको दूर करनेवाला है। महाराज ययातिने उस अमृतको यहीं सुलभ कर दिया है। संसारके लोग इच्छानुसार उसका पान करें। भगवान् विष्णुकी नाभिसे कमल प्रकट हुआ है। उनके नेत्र कमलके समान सुन्दर हैं। वे जगत्के आधारभूत और महेश्वर हैं। पापोंका नाश करके आनन्द प्रदान करते हैं। दानवों और दैत्योंका संहार करनेवाले हैं। यज्ञ उनके अंगस्वरूप हैं, उनके

* विद्यमाने हि संसारे कृष्णनाम्नि महौषधे। मानवा मरणं यान्ति पापव्याधिप्रपीडिताः।
न पिबन्ति महामूढाः कृष्णनामरसायनम्॥ (७२। १८)

हाथमें सुदर्शन चक्र शोभा पाता है। वे पुण्यकी निधि और सुखरूप हैं। उनके स्वरूपका कहीं अन्त नहीं है। सम्पूर्ण विश्व उनके हृदयमें निवास करता है। वे निर्मल, सबको आराम देनेवाले, 'राम'-नामसे विख्यात, सबमें रमण करनेवाले, मुर दैत्यके शत्रु, आदित्यस्वरूप, अन्धकारके नाशक, मलरूप कमलोंके लिये चाँदनीरूप, लक्ष्मीके निवासस्थान, सगुण और देवेश्वर हैं। उनका नामामृत सब दोषोंको दूर करनेवाला है। राजा ययातिने उसे यहीं सुलभ कर दिया है, सब लोग उसका पान करें। यह नामामृतस्तोत्र दोषहारी और उत्तम पुण्यका जनक है। लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुमें भक्ति रखनेवाला जो महात्मा पुरुष प्रतिदिन प्रातःकाल नियमपूर्वक इसका पाठ करता है, वह मुक्त हो जाता है।*

सुकर्मा कहते हैं—राजा ययातिके दूत सम्पूर्ण देशों, द्वीपों, नगरों और गाँवोंमें कहते फिरते थे— 'लोगो! महाराजकी आज्ञा सुनो, तुमलोग पूरा जोर लगाकर सर्वतोभावेन भगवान् विष्णुकी पूजा करो। दान, यज्ञ, शुभकर्म, धर्म और पूजन आदिके द्वारा भगवान् मधुसूदनकी आराधना करते हुए मनकी सम्पूर्ण वृत्तियोंसे उन्हींका ध्यान—चिन्तन करो।' इस प्रकार राजाके उत्तम आदेशका, जो शुभ पुण्य उत्पन्न करनेवाला था, भूतल-निवासी सब लोगोंने श्रवण किया। उसी समयसे सम्पूर्ण मनुष्य एकमात्र भगवान् मुरारिका ध्यान, गुणगान, जप और तप करने लगे। वेदोक्त सूक्तों और मन्त्रोंद्वारा, जो कानोंको पवित्र करनेवाले तथा अमृतके समान मधुर थे, श्रीकेशवका यजन करने लगे। उनका चित्त सदा भगवान्में ही लगा रहता था। वे समस्त विषयों और दोषोंका परित्याग करके व्रत, उपवास, नियम और दानके द्वारा भक्तिपूर्वक जगन्निवास श्रीविष्णुका पूजन करते थे। राजाका भगवदाराधन-सम्बन्धी आदेश भूमण्डलपर प्रवर्तित हो गया। सब लोग वैष्णव प्रभावके कारण भगवान्का यजन करने लगे। यज्ञ-विधिको जाननेवाले विद्वान् नाम और कर्मोंके द्वारा श्रीविष्णुका यजन करते और उन्हींके ध्यानमें संलग्न रहते थे। उनका सारा उद्योग भगवान्के लिये ही होता था। वे विष्णु-पूजामें निरन्तर लगे रहते थे। जहाँतक यह सारा भूमण्डल है और जहाँतक प्रचण्ड किरणोंवाले भगवान् सूर्य तपते हैं, वहाँतक समस्त मनुष्य भगवद्भक्त हो गये। श्रीविष्णुके प्रभावसे, उनका पूजन, स्तवन और नाम-कीर्तन करनेसे सबके शोक दूर हो गये। सभी पुण्यात्मा और तपस्वी बन गये। किसीको रोग नहीं सताता था। सब-के-सब दोष और रोषसे शून्य तथा समस्त ऐश्वर्योंसे सम्पन्न हो गये थे।

महाभाग! उन लोगोंके घरोंके दरवाजोंपर सदा ही पुण्यमय कल्पवृक्ष और समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाली गौएँ रहती थीं। उनके घरमें चिन्तामणि नामकी मणि थी, जो परम पवित्र और सम्पूर्ण मनोरथोंको पूर्ण करनेवाली मानी गयी है। भगवान् विष्णुकी कृपासे पृथ्वीके समस्त मानव सब प्रकारके दोषोंसे रहित हो गये थे। पुत्र तथा पौत्र उनकी शोभा बढ़ाते थे। वे मंगलसे युक्त, परम पुण्यात्मा, दानी, ज्ञानी और ध्यानपरायण थे। धर्मके ज्ञाता महाराज ययातिके शासनकालमें दुर्भिक्ष

---

* श्रीकेशवं क्लेशहरं वरेण्यमानन्दरूपं परमार्थमेव। नामामृतं दोषहरं तु राज्ञा आनीतमत्रैव पिबन्तु लोकाः॥
श्रीपद्मनाभं कमलेक्षणं च आधाररूपं जगतां महेशम्। नामामृतं दोषहरं तु राज्ञा आनीतमत्रैव पिबन्तु लोकाः॥
पापापहं व्याधिविनाशरूपमानन्ददं दानवदैत्यनाशम्। नामामृतं दोषहरं तु राज्ञा आनीतमत्रैव पिबन्तु लोकाः॥
यज्ञाङ्गरूपं च रथाङ्गपाणिं पुण्याकरं सौख्यमनन्तरूपम्। नामामृतं दोषहरं तु राज्ञा आनीतमत्रैव पिबन्तु लोकाः॥
विश्वाधिवासं विमलं विरामं रामाभिधानं रमणं मुरारिम्। नामामृतं दोषहरं तु राज्ञा आनीतमत्रैव पिबन्तु लोकाः॥
आदित्यरूपं तमसां विनाशं चन्द्रप्रकाशं मलपङ्कजानाम्। नामामृतं दोषहरं तु राज्ञा आनीतमत्रैव पिबन्तु लोकाः॥
सखड्गपाणिं मधुसूदनाख्यं तं श्रीनिवासं सगुणं सुरेशम्। नामामृतं दोषहरं तु राज्ञा आनीतमत्रैव पिबन्तु लोकाः॥
नामामृतं दोषहरं सुपुण्यमधीत्य यो माधवविष्णुभक्तः। प्रभातकाले नियतो महात्मा स याति मुक्तिं न हि कारणं च॥
(७३। १०—१७)

और व्याधियोंका भय नहीं था। मनुष्योंकी अकाल-मृत्यु नहीं होती थी। सब लोग विष्णु-सम्बन्धी व्रतोंका पालन करनेवाले और वैष्णव थे। भगवान्का ही ध्यान और उन्हींके नामोंका जप उनकी दिनचर्याका अंग बन गया था। वे सब लोग भाव-भक्तिके साथ भगवान्की आराधनामें तत्पर रहते थे। द्विजश्रेष्ठ! उस समय सब लोगोंके घरोंमें तुलसीके वृक्ष और भगवान्के मन्दिर शोभा पाते थे। सबके घर साफ-सुथरे और चमकीले थे तथा उत्तम गुणोंके कारण दिव्य दिखायी देते थे। सर्वत्र वैष्णव भाव छा रहा था। नाना प्रकारके मांगलिक उत्सवोंका दर्शन होता था। विप्रवर! भूलोकमें सदा शंखोंकी ध्वनियाँ सुनायी पड़ती थीं, जो आपसमें टकराया करती थीं। वे ध्वनियाँ समस्त दोषों और पापोंका विनाश करनेवाली थीं। भगवान् विष्णुमें भक्ति रखनेवाली स्त्रियोंने अपने-अपने घरके दरवाजेपर शंख, स्वस्तिक और पद्मकी आकृतियाँ लिख रखी थीं। सब लोग केशवका गुणगान करते थे। कोई 'हरि' और 'मुरारि' का उच्चारण करता तो कोई 'श्रीश', 'अच्युत' तथा माधवका नाम लेता था। कितने ही श्रीनरसिंह, कमलनयन, गोविन्द, कमलापति, कृष्ण और राम-नामकी रट लगाते हुए भगवान्की शरणमें जाते, मन्त्रोंके द्वारा उनका जप करते तथा पूजन भी करते थे। सब-के-सब वैष्णव थे; अतः वे श्रीविष्णुके ध्यानमें मग्न रहकर उन्हींको दण्डवत् प्रणाम किया करते थे।

कृष्ण, विष्णु, हरि, राम, मुकुन्द, मधुसूदन, नारायण, हृषीकेश, नरसिंह, अच्युत, केशव, पद्मनाभ, वासुदेव, वामन, वाराह, कमठ, मत्स्य, कपिल, सुराधिप, विश्वेश, विश्वरूप, अनन्त, अनघ, शुचि, पुरुष, पुष्कराक्ष, श्रीधर, श्रीपति, हरि, श्रीद, श्रीश, श्रीनिवास, सुमोक्ष, मोक्षद और प्रभु—इन नामोंका उच्चारण करते हुए पृथ्वीके समस्त मानव—बाल, वृद्ध और कुमार भी भगवान्का भजन करते थे। घरके काम-धंधोंमें लगी हुई स्त्रियाँ सदा भगवान् श्रीहरिको प्रणाम करतीं और बैठते, सोते, चलते, ध्यान लगाते तथा ज्ञान प्राप्त करते समय भी वे लक्ष्मीपतिका स्मरण करती रहती थीं। खेल-कूदमें लगे हुए बालक गोविन्दको मस्तक झुकाते और दिन-रात मधुर हरिनामका कीर्तन करते रहते थे। द्विजश्रेष्ठ! सर्वत्र भगवान् विष्णुके नामकी ही ध्वनि सुनायी पड़ती थी। भूतलके समस्त मानव वैष्णवोचित भावसे रहा करते थे। महलों और देवमन्दिरोंके कलशोंपर सूर्यमण्डलके समान चक्र शोभा पाते थे। पृथ्वीपर सर्वत्र श्रीकृष्णका भाव दृष्टिगोचर होता था। यह भूतल विष्णुलोककी समानताको पहुँच गया था। वैकुण्ठमें वैष्णव लोग जैसे विष्णुका उच्चारण करते हैं, उसी प्रकार इस पृथ्वीपर मनुष्य कृष्ण-नामका कीर्तन करते थे। भूतल और वैकुण्ठ दोनों लोकोंका एक ही भाव दिखायी देता था। वृद्धावस्था और रोगका भय नहीं था; क्योंकि मनुष्य अजर-अमर हो गये थे। भूलोकमें दान और भोगका अधिक प्रभाव दृष्टिगोचर होता था। प्रायः सब मनुष्य—द्विजमात्र वेदोंके विद्वान् और ज्ञान-ध्यानपरायण थे। सब यज्ञ और दानमें लगे रहते थे। सबमें दयाका भाव था। सभी परोपकारी, शुभ विचार-सम्पन्न और धर्मनिष्ठ थे। महाराज ययातिके उपदेशसे भूमण्डलके समस्त मानव वैष्णव हो गये थे।

भगवान् श्रीविष्णु कहते हैं—नृपश्रेष्ठ वेन! नहुषपुत्र महाराज ययातिका चरित्र सुनो; वे सर्वधर्म-परायण और निरन्तर भगवान् विष्णुमें भक्ति रखनेवाले थे। उन्हें इस पृथ्वीपर रहते एक लाख वर्ष व्यतीत हो गये। परन्तु उनका शरीर नित्य-नूतन दिखायी देता था, मानो वे पचीस वर्षके तरुण हों। भगवान् विष्णुके प्रसादसे राजा ययाति बड़े ही प्रशस्त और प्रौढ़ हो गये थे। भूमण्डलके मनुष्य कामनाओंके बन्धनसे रहित होनेके कारण यमराजके पास नहीं जाते थे। वे दान-पुण्यसे सुखी थे और सब धर्मोंके अनुष्ठानमें संलग्न रहते थे। जैसे दूर्वा और वटवृक्ष पृथ्वीपर विस्तारको प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार वे मनुष्य पुत्र-पौत्रोंके द्वारा वृद्धिको प्राप्त हो रहे थे। मृत्युरूपी दोषसे हीन होनेके कारण वे दीर्घजीवी होते थे। उनका शरीर अधिक कालतक दृढ़ रहता था। वे सुखी थे और बुढ़ापेका रोग उन्हें छू भी नहीं गया था। पृथ्वीके सभी मनुष्य पचीस वर्षकी

अवस्थाके दिखायी देते थे। सबका आचार-विचार सत्यसे युक्त था। सभी भगवान्‌के ध्यानमें तन्मय रहते थे। समूची पृथ्वीपर जगत्‌में किसीकी मृत्यु नहीं सुनी जाती थी। किसीको शोक नहीं देखना पड़ता था। कोई भी दोषसे लिप्त नहीं होते थे।

एक समय इन्द्रने कामदेव और गन्धर्वोंको बुलाया तथा उनसे इस प्रकार कहा—'तुम सब लोग मिलकर ऐसा कोई उपाय करो, जिससे राजा ययाति यहाँ आ जायँ।' इन्द्रके यों कहनेपर कामदेव आदि सब लोग नटके वेषमें राजा ययातिके पास आये और उन्हें आशीर्वादसे प्रसन्न करके बोले—'महाराज! हमलोग एक उत्तम नाटक खेलना चाहते हैं।' राजा ययाति ज्ञान-विज्ञानमें कुशल थे। उन्होंने नटोंकी बात सुनकर सभा एकत्रित की और स्वयं भी उसमें उपस्थित हुए। नटोंने विप्ररूपधारी भगवान् वामनके अवतारकी लीला उपस्थित की। राजा उनका नाटक देखने लगे। उस नाटकमें साक्षात् कामदेवने सूत्रधारका काम किया। वसन्त पारिपार्श्वक बना। अपने वल्लभको प्रसन्न करनेवाली रति-नटीके वेषमें उपस्थित हुई। नाटकमें सब लोग पात्रके अनुरूप वेष धारण किये अभिनय करने लगे। मकरन्द (वसन्त)-ने महाप्राज्ञ राजा ययातिके चित्तको क्षोभमें डाल दिया।

ययातिके शरीरमें जरावस्थाका प्रवेश, कामकन्यासे भेंट, पूरुका यौवन-दान, ययातिका कामकन्याके साथ प्रजावर्गसहित वैकुण्ठधाम-गमन

सुकर्मा कहते हैं—पिप्पल! महाराज ययाति कामदेवके गीत, नृत्य और ललित हास्यसे मोहित होकर स्वयं भी नट-स्वरूप हो गये। वे मल-मूत्रका त्याग करके आये और पैरोंको धोये बिना ही आसनपर बैठ गये। यह छिद्र पाकर वृद्धावस्था तथा कामदेवने राजाके शरीरमें प्रवेश किया। नृपश्रेष्ठ! उन सबने मिलकर इन्द्रका कार्य पूरा कर दिया। नाटक समाप्त हो गया। सब लोग अपने-अपने स्थानको चले गये। तत्पश्चात् धर्मात्मा राजा ययाति जरावस्थासे पराजित हुए। उनका चित्त काम-भोगमें आसक्त हो गया।

एक दिन वे कामयुक्त होकर वनमें शिकार खेलनेके लिये गये। उस समय उनके सामने एक हिरन निकला, जिसके चार सींग थे। उसके रूपकी कहीं तुलना नहीं थी। उसके सभी अंग सुन्दर थे। रोमावलियाँ सुनहरे रंगकी थीं, मस्तकपर रत्न-सा जड़ा हुआ प्रतीत होता था। सारा शरीर चितकबरे रंगका था। वह मनोहर मृग देखने ही योग्य था। राजा धनुष-बाण लेकर बड़े वेगसे उसके पीछे दौड़े। मृग भी उन्हें बहुत दूर ले गया और उनके देखते-देखते वहीं अन्तर्धान हो गया। राजाको वहाँ नन्दनवनके समान एक अद्भुत वन दिखायी दिया, जो सभी गुणोंसे युक्त था। उसके भीतर राजाने एक बहुत सुन्दर तालाब देखा, जो दस योजन लंबा और पाँच योजन चौड़ा था। सब ओर कल्याणमय जलसे भरा वह सर्वतोभद्र नामक तालाब दिव्य भावोंसे शोभा पा रहा था। राजा रथके वेगपूर्वक चलनेसे खिन्न हो गये थे। परिश्रमके कारण उन्हें कुछ पीड़ा हो रही थी; अतः सरोवरके तटपर ठंडी छायाका आश्रय लेकर बैठ गये।

थोड़ी देर बाद स्नान करके उन्होंने कमलकी सुगन्धसे सुवासित सरोवरका शीतल जल पिया। इतनेमें ही उन्हें अत्यन्त मधुर स्वरमें गाया जानेवाला एक दिव्य संगीत सुनायी पड़ा, जो ताल और मूर्च्छनासे युक्त था। राजा तुरंत उठकर उस स्थानकी ओर चल दिये, जहाँ गीतकी मनोहर ध्वनि हो रही थी। जलके निकट एक विशाल एवं सुन्दर भवन था। उसीके ऊपर बैठकर रूप, शील और गुणसे सुशोभित एक सुन्दरी नारी मनोहर गीत गा रही थी। उसकी आँखें बड़ी-बड़ी थीं। रूप और तेज उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। चराचर जगत्‌में उसके-जैसी सुन्दरी स्त्री दूसरी कोई नहीं थी। महाराज ययातिके शरीरमें जरायुक्त कामका संचार पहले ही हो चुका था। उस स्त्रीको देखते ही वह काम विशाल रूपमें प्रकट

हुआ। राजा कामाग्निसे जलने और कामज्वरसे पीड़ित होने लगे। उन्होंने उस सुन्दरीसे पूछा—'शुभे! तुम कौन हो? किसकी कन्या हो? तुम्हारे पास यह कौन बैठी है? कल्याणी! मुझे सब बातोंका परिचय दो। मैं नहुषका पुत्र हूँ। मेरा जन्म चन्द्रवंशमें हुआ है। पृथ्वीके सातों द्वीपोंपर मेरा अधिकार है। मैं तीनों लोकोंमें विख्यात हूँ। मेरा नाम ययाति है। सुन्दरी! मुझे दुर्जय काम मारे डालता है। मैं उत्तम शीलसे युक्त हूँ। मेरी रक्षा करो। तुम्हारे समागमके लिये मैं अपना राज्य, समूची पृथ्वी और यह शरीर भी अर्पण कर दूँगा। यह त्रिलोकी तुम्हारी ही है।'

राजाकी बात सुनकर सुन्दरीने अपनी सखी विशालाको उत्तर देनेके लिये प्रेरित किया। तब विशालाने कहा—'नरश्रेष्ठ! यह रतिकी पुत्री है। इसका नाम अश्रुबिन्दुमती है। मैं इसके प्रेम और सौहार्दवश सदा इसके साथ रहती हूँ। हम दोनोंमें स्वाभाविक मित्रता है, जिससे मैं सर्वदा प्रसन्न रहती हूँ। मेरा नाम विशाला है। मैं वरुणकी पुत्री हूँ। महाराज! मेरी यह सुन्दरी सखी योग्य वरकी प्राप्तिके लिये तपस्या कर रही है। इस प्रकार मैंने आपसे अपनी इस सखीका तथा अपना भी पूरा-पूरा परिचय दे दिया।'

ययाति बोले—शुभे! मेरी बात सुनो—यह सुन्दर मुखवाली रतिकुमारी मुझे ही पतिरूपमें स्वीकार करे। यह बाला जिस-जिस वस्तुकी इच्छा करेगी, वह सब मैं इसे प्रदान करूँगा।

विशालाने कहा—राजन्! मैं इसका नियम बतलाती हूँ, पहले उसे सुन लीजिये। यह स्थिर यौवनसे युक्त; सर्वज्ञ, वीरके लक्षणोंसे सुशोभित, देवराजके समान तेजस्वी, धर्मका आचरण करनेवाले, त्रिलोक-पूजित, सुबुद्धि, सुप्रिय तथा उत्तम गुणोंसे युक्त पुरुषको अपना पति बनाना चाहती है।

ययाति बोले—मुझे इन सभी गुणोंसे युक्त समझो। मैं इसके योग्य पति हो सकता हूँ।

विशालाने कहा—राजन्! मैं जानती हूँ, आप अपने पुण्यके लिये तीनों लोकोंमें विख्यात हैं। मैंने पहले जिन-जिन गुणोंकी चर्चा की है, वे सभी आपके भीतर विद्यमान हैं; केवल एक ही दोषके कारण यह मेरी सखी आपको पसंद नहीं करती। आपके शरीरमें वृद्धावस्थाका प्रवेश हो गया है। यदि आप उससे मुक्त हो सकें, तो यह आपकी प्रियतमा हो सकती है। राजन्! यही इसका निश्चय है। मैंने सुना है, पुत्र, भ्राता और भृत्य—जिसके शरीरमें भी इस जरावस्थाको डाला जाय, उसीमें इसका संचार हो जाता है। अतः भूपाल! आप अपना बुढ़ापा तो पुत्रको दे दीजिये और स्वयं उसका यौवन लेकर परम सुन्दर बन जाइये। मेरी सखी जिस रूपमें आपका उपभोग करना चाहती है, उसीके अनुकूल व्यवस्था कीजिये।

ययाति बोले—महाभागे! एवमस्तु, मैं तुम्हारी आज्ञाका पालन करूँगा।

राजा ययाति काम-भोगमें आसक्त होकर अपनी विवेकशक्ति खो बैठे थे। वे घर जाकर अपने पुत्रोंसे बोले—'तुमलोगोंमेंसे कोई एक मेरी दुःखदायिनी जरावस्थाको ग्रहण कर ले और अपनी जवानी मुझे दे दे, जिससे मैं इच्छानुसार भोग भोग सकूँ। जो मेरी वृद्धावस्थाको ग्रहण करेगा, वह पुत्रोंमें श्रेष्ठ समझा जायगा और वही मेरे राज्यका स्वामी होगा। उसको सुख, सम्पत्ति, धन-धान्य, बहुत-सी सन्तानें तथा यश और कीर्ति प्राप्त होगी।'

तुरुने कहा—पिताजी! इसमें सन्देह नहीं कि पिता-माताकी कृपासे ही पुत्रको शरीरकी प्राप्ति होती है; अतः उसका कर्तव्य है कि वह विशेष चेष्टाके साथ माता-पिताकी सेवा करे। परन्तु महाराज! यौवन-दान करनेका यह मेरा समय नहीं है।

तुरुकी बात सुनकर धर्मात्मा राजाको बड़ा क्रोध हुआ। वे उसे शाप देते हुए बोले—'तूने मेरी आज्ञाका अनादर किया है, अतः तू सब धर्मोंसे बहिष्कृत और पापी हो जा। तेरा हृदय पवित्र ज्ञानसे शून्य हो जाय और तू कोढ़ी हो जा।' तुरुको इस प्रकार शाप देकर वे अपने दूसरे पुत्र यदुसे बोले—'बेटा! तू मेरी जरावस्थाको ग्रहण कर और मेरा अकण्टक राज्य भोग।' यह सुनकर

यदुने हाथ जोड़कर कहा—'पिताजी! कृपा कीजिये। मैं बुढ़ापेका भार नहीं ढो सकता। शीतका कष्ट सहना, अधिक राह चलना, कदन्न भोजन करना, जिनकी जवानी बीत गयी हो ऐसी स्त्रियोंसे सम्पर्क रखना और मनकी प्रतिकूलताका सामना करना—ये वृद्धावस्थाके पाँच हेतु हैं।' यदुके यों कहनेपर महाराज ययातिने कुपित होकर उन्हें भी शाप दिया—'जा, तेरा वंश राज्यहीन होगा, उसमें कभी कोई राजा न होगा।'

यदुने कहा—महाराज! मैं निर्दोष हूँ। आपने मुझे शाप क्यों दे दिया? मुझ दीनपर दया कीजिये, प्रसन्न हो जाइये।

ययाति बोले—बेटा! महान् देवता भगवान् विष्णु जब तेरे वंशमें अपने अंशसहित अवतार लेंगे, उस समय तेरा कुल पवित्र—शापसे मुक्त हो जायगा।

राजा ययातिने कुरुको शिशु समझकर छोड़ दिया और शर्मिष्ठाके पुत्र पूरुको बुलाकर कहा—'बेटा! तू मेरी वृद्धावस्था ग्रहण कर ले।' पूरुने कहा—'राजन्! मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा। मुझे अपनी वृद्धावस्था दीजिये और आज ही मेरी युवावस्थासे सुन्दर रूप धारण कर उत्तम भोग भोगिये।' यह सुनकर महामनस्वी राजाका चित्त अत्यन्त प्रसन्न हुआ। वे पूरुसे बोले—'महामते! तूने मेरी वृद्धावस्था ग्रहण की और अपना यौवन मुझे दिया; इसलिये मेरे दिये हुए राज्यका उपभोग कर।' अब राजाकी बिलकुल नयी अवस्था हो गयी। वे सोलह वर्षके तरुण प्रतीत होने लगे। देखनेमें अत्यन्त सुन्दर, मानो दूसरे कामदेव हों। महाराजने पूरुको अपना धनुष, राज्य, छत्र, घोड़ा, हाथी, धन, खजाना, देश, सेना, चँवर और व्यजन—सब कुछ दे डाला। धर्मात्मा नहुषकुमार अब कामात्मा हो गये। वे कामासक्त होकर बारंबार उस स्त्रीका चिन्तन करने लगे। उन्हें अपने पहले वृत्तान्तका स्मरण न रहा। नयी जवानी पाकर वे बड़ी शीघ्रताके साथ कदम बढ़ाते हुए अश्रुबिन्दुमतीके पास गये। उस समय उनका चित्त कामसे उन्मत्त हो रहा था। वे विशाल नेत्रोंवाली विशालाको देखकर बोले—'भद्रे! मैं प्रबल दोषरूप वृद्धावस्थाको त्यागकर यहाँ आया हूँ। अब मैं तरुण हूँ, अतः तुम्हारी सखी मुझे स्वीकार करे।'

विशाला बोली—राजन्! आप दोषरूपा जरावस्थाको त्यागकर आये हैं, यह बड़ी अच्छी बात है; परन्तु अब भी आप एक दोषसे लिप्त हैं, जिससे यह आपको स्वीकार करना नहीं चाहती। आपकी दो सुन्दर नेत्रोंवाली स्त्रियाँ हैं—शर्मिष्ठा और देवयानी। ऐसी दशामें आप मेरी इस सखीके वशमें कैसे रह सकेंगे? जलती हुई आगमें समा जाना और पर्वतके शिखरसे कूद पड़ना अच्छा है; किन्तु रूप और तेजसे युक्त होनेपर भी ऐसे पतिसे विवाह करना अच्छा नहीं है, जो सौतरूपी विषसे युक्त हो। यद्यपि आप गुणोंके समुद्र हैं, तो भी इसी एक दोषके कारण यह आपको पति बनाना पसंद नहीं करती।

ययातिने कहा—शुभे! मुझे देवयानी और शर्मिष्ठासे कोई प्रयोजन नहीं है। इस बातके लिये मैं सत्यधर्मसे युक्त अपने शरीरको छूकर शपथ करता हूँ।

अश्रुबिन्दुमती बोली—राजन्! मैं ही आपके राज्य और शरीरका उपभोग करूँगी। जिस-जिस कार्यके लिये मैं कहूँ, उसे आपको अवश्य पूर्ण करना होगा। इस बातका विश्वास दिलानेके लिये अपना हाथ मेरे हाथमें दीजिये।

ययातिने कहा—राजकुमारी! मैं तुम्हारी सिवा किसी दूसरी स्त्रीको नहीं ग्रहण करूँगा। वरानने! मेरा राज्य, समूची पृथ्वी, मेरा यह शरीर और खजाना—सबका तुम इच्छानुसार उपभोग करो। सुन्दरी! लो, मैंने तुम्हारे हाथमें अपना हाथ दे दिया।

अश्रुबिन्दुमती बोली—महाराज! अब मैं आपकी पत्नी बनूँगी। इतना सुनते ही महाराज ययातिकी आँखें हर्षसे खिल उठीं; उन्होंने गान्धर्व-विवाहकी विधिसे काम-कुमारी अश्रुबिन्दुमतीको ग्रहण किया और युवावस्थाके द्वारा वे उसके साथ विहार करने लगे। अश्रुबिन्दुमतीमें आसक्त होकर वहाँ रहते हुए राजाको बीस हजार वर्ष बीत गये। इस प्रकार इन्द्रके लिये किये हुए कामदेवके प्रयोगसे उस स्त्रीने महाराजको भलीभाँति

मोहित कर लिया। एक दिनकी बात है—कामनन्दिनी अश्रुबिन्दुमतीने मोहित हुए राजा ययातिसे कहा—'प्राणनाथ! मेरे हृदयमें कुछ अभिलाषा जाग्रत् हुई है। आप मेरे उस मनोरथको पूर्ण कीजिये। पृथ्वीपते! आप यज्ञोंमें प्रधान अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान करें।'

राजा बोले—महाभागे! एवमस्तु, मैं तुम्हारा प्रिय कार्य अवश्य करूँगा।

ऐसा कहकर महाराजने राज्य-भोगसे निःस्पृह अपने पुत्र पूरुको बुलाया। पिताका आह्वान सुनकर पूरु आये; उन्होंने भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर राजाके चरणोंमें प्रणाम किया और अश्रुबिन्दुमतीके युगल चरणोंमें भी मस्तक झुकाया। इसके बाद वे पितासे बोले—'महाप्राज्ञ! मैं आपका दास हूँ; बताइये, मेरे लिये आपकी क्या आज्ञा है, मैं कौन-सा कार्य करूँ?'

राजाने कहा—बेटा! पुण्यात्मा द्विजों, ऋत्विजों और भूमिपालोंको आमन्त्रित करके तुम अश्वमेध यज्ञकी तैयारी करो।

महातेजस्वी पूरु बड़े धार्मिक थे। उन्होंने पिताके कहनेपर उनकी आज्ञाका पूर्णतया पालन किया। तत्पश्चात् राजा ययातिने काम-कन्याके साथ यज्ञकी दीक्षा ली। उन्होंने अश्वमेध यज्ञमें ब्राह्मणों और दीनोंको अनेक प्रकारके दान दिये। यज्ञ समाप्त होनेपर महाराजने उस सुमुखीसे पूछा—'बाले! और कोई कार्य भी, जो तुम्हें अत्यन्त प्रिय हो, बताओ; मैं तुम्हारा कौन-सा कार्य करूँ?' यह सुनकर उसने राजासे कहा—'महाराज! मैं इन्द्रलोक, ब्रह्मलोक, शिवलोक तथा विष्णुलोकका दर्शन करना चाहती हूँ।' राजा बोले—'महाभागे! तुमने जो प्रस्ताव किया है, वह इस समय मुझे असाध्य प्रतीत होता है। वह तो पुण्य, दान, यज्ञ और तपस्यासे ही साध्य है। मैंने आजतक ऐसा कोई मनुष्य नहीं देखा या सुना है, जो पुण्यात्मा होकर भी मर्त्यलोकसे इस शरीरके साथ ही स्वर्गको गया हो। अतः सुन्दरी! तुम्हारा बताया हुआ कार्य मेरे लिये असाध्य है। प्रिये! दूसरा कोई कार्य बताओ, उसे अवश्य पूर्ण करूँगा।'

अश्रुबिन्दुमती बोली—राजन्! इसमें सन्देह नहीं कि यह कार्य दूसरे मनुष्योंके लिये सर्वथा असाध्य है; पर आपके लिये तो साध्य ही है—यह मैं बिलकुल सच-सच कह रही हूँ। इसी उद्देश्यसे मैंने आपको अपना स्वामी बनाया था; आप सब प्रकारके शुभ-लक्षणोंसे सम्पन्न और सब धर्मोंसे युक्त हैं। मैं जानती हूँ—आप भगवान् विष्णुके भक्त हैं, वैष्णवोंमें परम श्रेष्ठ हैं। जिसके ऊपर भगवान् विष्णुकी कृपा होती है, वह सर्वत्र जा सकता है। इसी आशासे मैंने आपको पति-रूपमें अंगीकार किया था। राजन्! केवल आपने ही मृत्युलोकमें आकर सम्पूर्ण मनुष्योंको जरावस्थाकी पीड़ासे रहित और मृत्युहीन बनाया है। नरश्रेष्ठ! आपने इन्द्र और यमराजका विरोध करके मर्त्यलोकको रोग और पापसे शून्य कर दिया है। महाराज! आपके समान दूसरा कोई भी राजा नहीं है। बहुत-से पुराणोंमें भी आपके-जैसे राजाका वर्णन नहीं मिलता। मैं अच्छी तरह जानती हूँ, आप सब धर्मोंके ज्ञाता हैं।

राजाने कहा—भद्रे! तुम्हारा कहना सत्य है, मेरे लिये कोई साध्य-असाध्यका प्रश्न नहीं है। जगदीश्वरकी कृपासे मुझे स्वर्गलोकमें सब कुछ सुलभ है। तथापि मैं स्वर्गमें जो नहीं जाता हूँ, इसका कारण सुनो। मेरे छोड़ देनेपर मानवलोककी सारी प्रजा मृत्युका शिकार हो जायगी, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। सुमुखि! यही सोचकर मैं स्वर्गमें नहीं चलता हूँ; यह मैंने तुम्हें सच्ची बात बतायी है।

रानी बोली—महाराज! उन लोकोंको देखकर मैं फिर मर्त्यलोकमें लौट आऊँगी। इस समय उन्हें देखनेके लिये मेरे मनमें इतनी उत्सुकता हुई है, जिसकी कहीं तुलना नहीं है।

राजाने कहा—देवि! तुमने जो कुछ कहा है, उसे निस्सन्देह पूर्ण करूँगा।

अपनी प्रिया अश्रुबिन्दुमतीसे यों कहकर राजा सोचने लगे—'मत्स्य पानीके भीतर रहता है, किन्तु वह भी जालसे बँध जाता है। स्वर्गमें या पृथ्वीपर जो स्थावर आदि प्राणी हैं, उन सबपर कालका प्रभाव है। एकमात्र काल ही इस जगत्के रूपमें उपलब्ध होता है। कालसे

पीड़ित मनुष्यको मन्त्र, तप, दान, मित्र और बन्धु-बान्धव—कोई भी नहीं बचा सकते। विवाह, जन्म और मृत्यु—ये कालके रचे हुए तीन बन्धन हैं। ये जहाँ, जैसे और जिस हेतुसे होनेको होते हैं, होकर ही रहते हैं; कोई उन्हें मेट नहीं सकता।[१] उपद्रव, आघातदोष, सर्प और व्याधियाँ—ये सभी कर्मसे प्रेरित होकर मनुष्यको प्राप्त होते हैं। आयु, कर्म, धन, विद्या और मृत्यु—ये पाँच बातें जीवके गर्भमें रहते समय ही रच दी जाती हैं।[२] जीवको देवत्व, मनुष्यत्व, पशु-पक्षी आदि तिर्यग्योनियाँ और स्थावर योनि—ये सब कुछ अपने-अपने कर्मानुसार ही प्राप्त होते हैं।[३] मनुष्य जैसा करता है, वैसा भोगता है; उसे अपने किये हुएको ही सदा भोगना पड़ता है। वह अपना ही बनाया हुआ दुःख और अपना ही रचा हुआ सुख भोगता है। जो लोग अपने धन और बुद्धिसे किसी वस्तुको अन्यथा करनेकी युक्ति रखते हैं, वे भी अपने उपार्जित सुख-दुःखोंका उपभोग करते हैं। जैसे बछड़ा हजारों गौओंके बीचमें खड़ी होनेपर भी अपने माताको पहचानकर उसके पास पहुँच जाता है, उसी प्रकार पूर्व-जन्मके किये हुए शुभाशुभ कर्म कर्ताका अनुसरण करते हैं। पहलेका किया हुआ कर्म कर्ताके सोनेपर उसके साथ ही सोता है, उसके खड़े होनेपर खड़ा होता है और चलनेपर पीछे-पीछे चलता है। तात्पर्य यह कि कर्म छायाकी भाँति कर्ताके साथ लगा रहता है। जैसे छाया और धूप सदा एक-दूसरेसे सम्बद्ध होते हैं, उसी प्रकार कर्म और कर्ताका भी परस्पर सम्बन्ध है। शस्त्र, अग्नि, विष आदिसे जो बचाने योग्य वस्तु है, उसको भी दैव ही बचाता है। जो वास्तवमें अरक्षित वस्तु है, उसकी दैव ही रक्षा करता है। दैवने जिसका नाश कर दिया हो, उसकी रक्षा नहीं देखी जाती। यह मेरे पूर्वकर्मोंका परिणाम ही है, दूसरा कुछ नहीं है। इस स्त्रीके रूपमें दैव ही यहाँ आ पहुँचा है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। मेरे घरमें जो नाटक खेलनेवाले नट और नर्तक आये थे, उन्हींके संगसे मेरे शरीरमें जरावस्थाने प्रवेश किया है। इन सब बातोंको मैं अपने कर्मोंका ही परिणाम मानता हूँ।'

इस प्रकारकी चिन्तामें पड़कर राजा ययाति बहुत दुःखी हो गये। उन्होंने सोचा—'यदि मैं प्रसन्नतापूर्वक इसकी बात नहीं मानूँगा तो मेरे सत्य और धर्म—दोनों ही चले जायँगे, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। जैसा कर्म मैंने किया था, उसके अनुरूप ही फल आज दृष्टिगोचर हुआ है। यह निश्चित बात है कि दैवका विधान टाला नहीं जा सकता है।'

इस तरह सोच-विचारमें पड़े हुए राजा ययाति सबके क्लेश दूर करनेवाले भगवान् श्रीहरिकी शरणमें गये। उन्होंने मन-ही-मन भगवान् मधुसूदनका ध्यान और नमस्कारपूर्वक स्तवन किया तथा कातरभावसे कहा—'लक्ष्मीपते! मैं आपकी शरणमें आया हूँ, आप मेरा उद्धार कीजिये।'

सुकर्मा कहते हैं—परम धर्मात्मा राजा ययाति इस प्रकार चिन्ता कर ही रहे थे कि रतिकुमारी देवी अश्रुबिन्दुमतीने कहा—'राजन्! अन्यान्य प्राकृत मनुष्योंकी भाँति आप दुःखपूर्ण चिन्ता कैसे कर रहे हैं। जिसके कारण आपको दुःख हो, वह कार्य मुझे कभी नहीं करना है।' उसके यों कहनेपर राजाने उस वरांगनासे कहा—'देवि! मुझे जिस बातकी चिन्ता हुई है, उसे बताता हूँ; सुनो। मेरे स्वर्ग चले जानेपर सारी प्रजा दीन

१-न मन्त्रा न तपो दानं न मित्राणि न बान्धवाः। शक्नुवन्ति परित्रातुं नरं कालेन पीडितम्॥
त्रयः कालकृताः पाशाः शक्यन्ते न निवर्तितुम्। विवाहो जन्म मरणं यथा यत्र च येन च॥
(८१। ३३-३४)

२-पञ्चैतानि विसृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः। आयुः कर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव च॥
(८१। ४१)

३-देवत्वमथ मानुष्यं पशुत्वं पक्षिता तथा। तिर्यक्त्वं स्थावरत्वं च प्राप्यते वै स्वकर्मभिः॥
(८१। ४३)

हो जायगी। तथापि अब मैं तुम्हारे साथ स्वर्गलोकको चलूँगा।' यों कहकर राजाने अपने उत्तम पुत्र पूरुको, जो सब धर्मोंके ज्ञाता, वृद्धावस्थासे युक्त और परम बुद्धिमान् थे, बुलाया और इस प्रकार कहा—'धर्मात्मन्! मेरी आज्ञासे तुमने धर्मका पालन किया है, अब मेरी वृद्धावस्था दे दो और अपनी युवावस्था ग्रहण करो। खजाना, सेना तथा सवारियोंसहित मेरा यह राज्य तथा समुद्रसहित समूची पृथ्वीको भोगो। मैंने इसे तुम्हें ही दिया है। दुष्टोंको दण्ड देना और साधु पुरुषोंकी रक्षा करना तुम्हारा कर्तव्य है।

तात! तुम्हें धर्मशास्त्रको प्रमाण मानकर उसीके अनुसार सब कार्य करना चाहिये। महाभाग! शास्त्रीय विधिके अनुसार भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंका पूजन करना, क्योंकि वे तीनों लोकोंमें पूजनीय हैं। पाँचवें-सातवें दिन खजानेकी देखभाल करते रहना, सेवकोंको धन और भोजन आदिसे प्रसन्न करके सदा इनका आदर करना। गुप्तचरोंको नियुक्त करके राज्यके प्रत्येक अंगपर दृष्टि रखना, सदा दान देते रहना, शत्रुपर अनुराग या विश्वास न करना, विद्वान् पुरुषोंके द्वारा सदा अपनी रक्षाका प्रबन्ध रखना। बेटा! अपने मनको काबूमें रखना, कभी शिकार खेलनेके लिये न जाना। स्त्री, खजाना, सेना और शत्रुपर कभी विश्वास न करना। सुयोग्य पात्रों और सब प्रकारके बलोंका संग्रह करना। यज्ञोंके द्वारा भगवान् हृषीकेशका पूजन करना और सदा पुण्यात्मा बने रहना। प्रजाको जिस वस्तुकी इच्छा हो, वह सब उन्हें प्रतिदिन देते रहना। बेटा! तुम प्रजाको सुख पहुँचाओ, प्रजाका पालन-पोषण करो। पराये धन और परायी स्त्रियोंके प्रति कभी दूषित विचार मनमें न लाना। वेद और शास्त्रोंका निरन्तर चिन्तन करना और सदा अस्त्र-शस्त्रोंके अभ्यासमें लगे रहना। हाथी और रथ हाँकनेका अभ्यास भी बढ़ाते रहना।'

पुत्रको ऐसा आदेश देकर राजाने आशीर्वादके द्वारा उसे प्रसन्न किया और अपने हाथसे राजसिंहासनपर बिठाया। फिर अपनी वृद्धावस्था ले पुत्रको यौवन समर्पित करके महाराजने समस्त प्रजाओंको बुलाया और बड़े हर्षमें भरकर यह वचन कहा—'सज्जनो! मैं अपनी इस पत्नीके साथ पहले इन्द्रलोकमें जाता हूँ, फिर क्रमशः ब्रह्मलोक और शिवलोकमें जाऊँगा। इसके बाद समस्त लोकोंके पाप दूर करनेवाले तथा जीवोंको सद्गति प्रदान करनेवाले विष्णुधामको प्राप्त होऊँगा—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—मेरी समस्त प्रजाको कुटुम्बसहित यहीं सुखपूर्वक रहना चाहिये। यही मेरी आज्ञा है। आजसे ये महाबाहु पूरु आपलोगोंके रक्षक हैं। इनका स्वभाव धीर है, मैंने इन्हें शासनका अधिकार देकर राजाके पदपर प्रतिष्ठित किया है।'

महाराजके यों कहनेपर प्रजाजनोंने कहा—नृपश्रेष्ठ सम्पूर्ण वेदोंमें धर्मका ही श्रवण होता है, पुराणोंमें भी धर्मकी ही व्याख्या की गयी है, किन्तु पूर्वकालमें किसीने धर्मका साक्षात् दर्शन नहीं किया। केवल हमलोगोंने ही चन्द्रवंशमें राजा नहुषके घर उत्पन्न हुए आपके रूपमें उस दशांग धर्मका साक्षात्कार किया है। महाराज! आप सत्यप्रिय, ज्ञान-विज्ञान-सम्पन्न, पुण्यकी महान् राशि, गुणोंके आधार तथा सत्यके ज्ञाता हैं। सत्यका पालन करनेवाले महान् ओजस्वी पुरुष परम-धर्मका अनुष्ठान करते हैं। आपसे बढ़कर दूसरा कोई पुरुष हमारे देखनेमें नहीं आया है। आप-जैसे धर्मपालक एवं सत्यवादी राजाको हम मन, वाणी और शरीर—किसीकी भी क्रियाद्वारा छोड़नेमें असमर्थ हैं। महाराज! जब आप ही नहीं रहेंगे, तब स्त्री, धन, भोग और जीवन लेकर हम क्या करेंगे। अतः राजेन्द्र! अब हमें यहाँ रहनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। आपके साथ ही हम भी चलेंगे।'

प्रजाजनोंकी यह बात सुनकर राजा ययातिको बड़ा हर्ष हुआ। वे बोले—'आप सब लोग परम पुण्यात्मा हैं, मेरे साथ चलें।' यों कहकर वे कामकन्याके साथ रथपर सवार हुए। वह रथ चन्द्रमण्डलके समान जान पड़ता था। सेवकगण हाथमें चँवर और व्यजन लेकर महाराजको हवा कर रहे थे। राजाके मनमें किसी प्रकारकी पीड़ा नहीं थी। उनके राज्यमें ब्राह्मण, क्षत्रिय,

वैश्य तथा शूद्र—सभी वैष्णव थे। इनके सिवा, जो अन्त्यज थे, उनके मनमें भी भगवान् विष्णुके प्रति भक्ति थी। सभी दिव्य माला धारण किये तुलसीदलोंसे शोभा पा रहे थे। उनकी संख्या अरबों-खरबोंतक पहुँच गयी। सभी भगवान् विष्णुके ध्यानमें तत्पर और जप एवं दानमें संलग्न रहनेवाले थे। सब-के-सब विष्णु-भक्त और पुण्यात्मा थे। उन सबने महाराजके साथ दिव्य लोकोंकी यात्रा की। उस समय सबके हृदयमें महान् आनन्द छा रहा था। राजा ययाति सबसे पहले इन्द्रलोकमें गये, उनके तेज, पुण्य, धर्म और तपोबलसे और लोग भी साथ-साथ गये। वहाँ पहुँचनेपर देवता, गन्धर्व, किन्नर तथा चारणोंसहित देवराज इन्द्र उनके सामने आये और उनका सम्मान करते हुए बोले—'महाभाग! आपका स्वागत है! आइये, मेरे घरमें पधारिये और दिव्य, पावन एवं मनोरम भोगोंका उपभोग कीजिये।'

राजाने कहा—देवराज! आपके चरणारविन्दोंमें प्रणाम करके हमलोग सनातन ब्रह्मलोकमें जा रहे हैं।

यह कहकर देवताओंके मुखसे अपनी स्तुति सुनते हुए वे ब्रह्मलोकमें गये। वहाँ मुनिवरोंके साथ महातेजस्वी ब्रह्माजीने अर्घ्यादि सुविस्तृत उपचारोंके द्वारा उनका आतिथ्य-सत्कार किया और कहा—'राजन्! तुम अपने शुभ कर्मोंके फलस्वरूप विष्णुलोकको जाओ।' ब्रह्माजीके यों कहनेपर वे पहले शिवलोकमें गये, वहाँ भगवान् शंकरने पार्वतीजीके साथ उनका स्वागत-सत्कार किया और इस प्रकार कहा—'महाराज! तुम भगवान् विष्णुके भक्त हो, अतः मेरे भी अत्यन्त प्रिय हो, क्योंकि मुझमें और विष्णुमें कोई अन्तर नहीं है। जो विष्णु हैं, वही मैं हूँ तथा मुझीको विष्णु समझो, पुण्यात्मा विष्णुभक्तके लिये भी यही स्थान है। अतः महाराज! तुम यहाँ इच्छानुसार रह सकते हो।'

भगवान् शिवके यों कहनेपर श्रीविष्णुके प्रिय भक्त ययातिने मस्तक झुकाकर उनके चरणोंमें भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और कहा—'महादेव! आपने इस समय जो कुछ भी कहा है, सत्य है, आप दोनोंमें वस्तुतः कोई अन्तर नहीं है। एक ही परमात्माके स्वरूपकी ब्रह्मा, विष्णु और शिव—तीन रूपोंमें अभिव्यक्ति हुई है। तथापि मेरी विष्णुलोकमें जानेकी इच्छा है, अतः आपके चरणोंमें प्रणाम करता हूँ।' भगवान् शिव बोले—'महाराज! एवमस्तु , तुम विष्णुलोकको जाओ।' उनकी आज्ञा पाकर राजाने कल्याणमयी भगवती उमाको नमस्कार किया और उन परमपावन विष्णुभक्तोंके साथ वे विष्णुधामको चल दिये। ऋषि और देवता सब ओर खड़े हो उनकी स्तुति कर रहे थे। गन्धर्व, किन्नर, सिद्ध, पुण्यात्मा, चारण, साध्य, विद्याधर, उनचास मरुद्गण, आठों वसु, ग्यारहों रुद्र, बारहों आदित्य, लोकपाल तथा समस्त त्रिलोकी चारों ओर उनका गुणगान कर रही थी। महाराज ययातिने रोग-शोकसे रहित अनुपम विष्णुलोकका दर्शन किया। सब प्रकारकी शोभासे सम्पन्न सोनेके विमान उस लोककी सुषमा बढ़ा रहे थे। चारों ओर दिव्य छटा छा रही थी। वह मोक्षका उत्तम धाम वैष्णवोंसे शोभा पा रहा था। देवताओंकी वहाँ भीड़-सी लगी थी।

नहुषनन्दन ययातिने सब प्रकारके दाहसे रहित उस दिव्य धाममें प्रवेश करके क्लेशहारी भगवान् नारायणका दर्शन किया। भगवान्‌के ऊपर चँदोवे तने हुए थे, जिनसे उनकी बड़ी शोभा हो रही थी। वे सब प्रकारके आभूषण और पीत वस्त्रोंसे विभूषित थे। उनके वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न शोभा पा रहा था। सबके महान् आश्रय भगवान् जगन्नाथ लक्ष्मीके साथ गरुड़पर विराजमान थे। वे ही परात्पर परमेश्वर हैं। सम्पूर्ण देवलोकोंकी गति हैं। परमानन्दमय कैवल्यसे सुशोभित हैं। बड़े-बड़े लोक, पुण्यात्मा वैष्णव, देवता तथा गन्धर्व उनकी सेवामें रहते हैं। राजा ययातिने अपनी पत्नीसहित निकट जाकर गन्धर्वोंद्वारा सेवित, देववृन्दसे घिरे, दुःख-क्लेशहारी प्रभु नारायणको नमस्कार किया तथा उनके साथ जो अन्य वैष्णव पधारे थे, उन्होंने भी भक्तिपूर्वक भगवान्‌के दोनों चरण-कमलोंमें मस्तक झुकाया। परम तेजस्वी राजाको प्रणाम करते देख भगवान् हृषीकेशने कहा—'महाराज! मैं तुमपर बहुत संतुष्ट हूँ। तुम मेरे भक्त हो; अतः तुम्हारे मनमें यदि कोई दुर्लभ मनोरथ हो तो उसके लिये वर

माँगो। मैं उसे निस्सन्देह पूर्ण करूँगा।'

राजा बोले—मधुसूदन! जगत्पते! देवेश्वर! यदि आप मुझपर सन्तुष्ट हैं तो सदाके लिये मुझे अपना दास बना लीजिये।

भगवान् श्रीविष्णुने कहा—महाभाग! ऐसा ही होगा। तुम मेरे भक्त हो, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। राजन्! तुम अपनी पत्नीके साथ सदा मेरे लोकमें निवास करो।

भगवान्‌की ऐसी आज्ञा पाकर उनकी कृपासे महाराज ययाति परम प्रकाशमान विष्णुलोकमें निवास करने लगे।

सुकर्मा कहते हैं—पिप्पलजी! यह सम्पूर्ण पापनाशक चरित्र मैंने आपको सुना दिया। संसारमें राजा ययातिका दिव्य एवं शुभ जीवनचरित्र परम कल्याणदायक तथा पितृभक्त पुत्रोंका उद्धार करनेवाला है। पिताकी सेवाके प्रभावसे पूरुको राज्य प्राप्त हुआ। पिता-माताके समान अभीष्ट फल देनेवाला दूसरा कोई नहीं है। जो पुत्र माताके बुलानेपर हर्षमें भरकर उसकी ओर जाता है, उसे गंगास्नानका फल मिलता है। जो माता और पिताके चरण पखारता है, वह महायशस्वी पुत्र उन दोनोंकी कृपासे समस्त तीर्थोंके सेवनका फल भोगता है। उनके शरीरको दबाकर व्यथा दूर करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। जो भोजन और वस्त्र देकर माता-पिताका पालन करता है, उसे पृथ्वीदानका पुण्य प्राप्त होता है। गंगा और माता सर्वतीर्थमयी मानी गयी हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। जैसे जगत्‌में समुद्र परम पुण्यमय एवं प्रतिष्ठित माना गया है, उसी प्रकार इस संसारमें पिता-माताका भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। ऐसा पौराणिक विद्वानोंका कथन है। जो पुत्र माता-पिताको कटुवचन सुनाता और कोसता है, वह बहुत दुःख देनेवाले नरकमें पड़ता है। जो गृहस्थ होकर भी बूढ़े माता-पिताका पालन नहीं करता, वह पुत्र नरकमें पड़ता और भारी यातना भोगता है। जो दुर्बुद्धि एवं पापाचारी पुरुष पिताकी निन्दा करता है, उसके उस पापका प्रायश्चित्त प्राचीन विद्वानोंको भी कभी दृष्टिगोचर नहीं हुआ है।[1]

विप्रवर! यही सब सोचकर मैं प्रतिदिन माता-पिताकी भक्तिपूर्वक पूजा करता हूँ और चरण दबाने आदिकी सेवामें लगा रहता हूँ। मेरे पिता मुझे बुलाकर जो कुछ भी आज्ञा देते हैं, उसे मैं अपनी शक्तिके अनुसार बिना विचारे पूर्ण करता हूँ। इससे मुझे सद्‌गति प्रदान करनेवाला उत्तम ज्ञान प्राप्त हुआ है। पिता-माताकी कृपासे संसारमें तीनों कालोंका ज्ञान सुलभ हो जाता है। पृथ्वीपर रहनेवाले जो मनुष्य माता-पिताकी भक्ति करते हैं, उन्हें यह ज्ञान प्राप्त होता है। मैं यहीं रहकर स्वर्गलोकतककी बातें जानता हूँ। विद्याधरश्रेष्ठ! आप भी जाइये और भगवत्स्वरूप माता-पिताकी आराधना कीजिये। देखिये, इन माता-पिताके प्रसादसे ही मुझे ऐसा ज्ञान मिला है।[2]

भगवान् श्रीविष्णु कहते हैं—राजन्! विप्रवर

१-पितृमातृसमं नास्ति अभीष्टफलदायकम्। ....
समाहूतो यदा पुत्रः प्रयाति मातरं प्रति। यो याति हर्षसंयुक्तो गंगास्नानफलं लभेत्॥
पादप्रक्षालनं यश्च कुरुते च महायशाः। सर्वतीर्थफलं भुङ्क्ते प्रसादादुभयोः सुतः॥
अङ्गसंवाहनाच्चाथ अश्वमेधफलं लभेत्। भोजनाच्छादनैश्चैव गुरुं च परिपोषयेत्॥
पृथ्वीदानस्य यत्पुण्यं तत्पुण्यं तस्य जायते। सर्वतीर्थमयी गङ्गा तथा माता न संशयः॥
बहुपुण्यमयः सिन्धुर्यथा लोके प्रतिष्ठितः। अस्मिन्नेव पिता तद्वत् पुराणाः कवयो विदुः॥
शंसते क्रोशते यस्तु पितरं मातरं पुनः। स पुत्रो नरकं याति बहुदुःखप्रदायकम्॥
मातरं पितरं वृद्धौ गृहस्थो यो न पोषयेत्। स पुत्रो नरकं याति वेदनां प्राप्नुयाद् ध्रुवम्॥
कुत्सते पापकर्ता यो गुरुं पुत्रः सुदुर्मतिः। निष्कृतिस्तस्य नोद्दिष्टा पुराणैः कविभिः कदा॥ (८४।५—१३)

२-एवं मत्वा त्वहं विप्र पूजयामि दिने दिने। मातरं पितरं भक्त्या पादसंवाहनादिभिः॥
कृत्याकृत्यं वदेच्चैव समाहूय गुरुर्मम। तत्करोम्यविचारेण शक्त्या स्वस्य च पिप्पल॥
तेन मे परमं ज्ञानं संजातं गतिदायकम्। एतयोश्च प्रसादेन संसारे परिवर्तते॥

सुकर्माके मुखसे ये उपदेश सुनकर पिप्पलको अपनी करतूतपर बड़ी लज्जा आयी और वे द्विजश्रेष्ठ सुकर्माको प्रणाम करके स्वर्गको चले गये। तत्पश्चात् धर्मात्मा सुकर्मा माता-पिताकी सेवामें लग गये। महामते! पितृतीर्थसे सम्बन्ध रखनेवाली ये सारी बातें मैंने तुम्हें बता दीं; बोलो अब और किस विषयका वर्णन करूँ?

गुरुतीर्थके प्रसंगमें महर्षि च्यवनकी कथा—कुंजल पक्षीका अपने पुत्र उज्ज्वलको ज्ञान, व्रत और स्तोत्रका उपदेश

वेनने कहा—भगवन्! देवदेवेश्वर! आपने मुझपर कृपा करके भार्यातीर्थ, परम उत्तम पितृतीर्थ एवं परम पुण्यदायक मातृतीर्थका वर्णन किया। हृषीकेश! अब प्रसन्न होकर मुझे गुरुतीर्थकी महिमा बतलाइये।

भगवान् श्रीविष्णु बोले—राजन्! गुरुतीर्थ बड़ा उत्तम तीर्थ है, मैं उसका वर्णन करता हूँ। गुरुके अनुग्रहसे शिष्यको लौकिक आचार-व्यवहारका ज्ञान होता है, विज्ञानकी प्राप्ति होती है और वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है। जैसे सूर्य सम्पूर्ण लोकोंको प्रकाशित करते हैं, उसी प्रकार गुरु शिष्योंको उत्तम बुद्धि देकर उनके अन्तर्जगत्को प्रकाशपूर्ण बनाते हैं।* सूर्य दिनमें प्रकाश करते हैं, चन्द्रमा रातमें प्रकाशित होते हैं और दीपक केवल घरके भीतर उजाला करता है; परन्तु गुरु अपने शिष्यके हृदयमें सदा ही प्रकाश फैलाते रहते हैं। वे शिष्यके अज्ञानमय अन्धकारका नाश करते हैं; अतः शिष्योंके लिये गुरु ही सबसे उत्तम तीर्थ हैं। यह समझकर शिष्यको उचित है कि वह सब तरहसे गुरुको प्रसन्न रखे। गुरुको पुण्यमय जानकर मन, वाणी और शरीर—तीनोंकी क्रियासे उनकी आराधना करता रहे।

नृपश्रेष्ठ! भार्गव-वंशमें उत्पन्न महर्षि च्यवन मुनियोंमें श्रेष्ठ थे। एक दिन उनके मनमें यह विचार हुआ कि 'मैं इस पृथ्वीपर कब ज्ञानसम्पन्न होऊँगा।' इस प्रकार सोचते-सोचते उनके मनमें यह बात आयी कि 'मैं तीर्थयात्राको चलूँ; क्योंकि तीर्थयात्रा अभीष्ट फलको देनेवाली है।' ऐसा निश्चय करके वे पिता आदिको तथा पत्नी, पुत्र और धनको भी घरपर ही छोड़कर तीर्थयात्राके प्रसंगसे भूतलपर विचरने लगे। मुनीश्वर च्यवनने नर्मदा, सरस्वती तथा गोदावरी आदि समस्त नदियों और समुद्रके तटोंकी यात्रा की। अन्यान्य क्षेत्रों, सम्पूर्ण तीर्थों तथा पुण्यमय देवताओंके स्थानोंमें भ्रमण किया। इस प्रकार यात्रा करते हुए वे ओंकारेश्वर तीर्थमें आये और एक बरगदकी शीतल छायामें बैठकर सुखपूर्वक विश्राम करने लगे। उस वृक्षकी छाया ठंडी और थकावटको दूर करनेवाली थी। मुनिश्रेष्ठ च्यवन वहाँ लेट गये। लेटे-लेटे ही उनके कानोंमें पक्षियोंका मनोहर शब्द सुनायी पड़ा, जो ज्ञान-विज्ञानसे युक्त था। उस वृक्षके ऊपर अपनी पत्नीके साथ एक दीर्घजीवी तोता रहता था, जो कुंजलके नामसे प्रसिद्ध था। वह तोता बड़ा ज्ञानी था। उसके उज्ज्वल, समुज्ज्वल, विज्ज्वल और कपिंजल—ये चार पुत्र थे। चारों ही माता-पिताके बड़े भक्त थे। वे भूखसे आकुल होनेपर चारा चुगनेके लिये पर्वतीय कुंजों और समस्त द्वीपोंमें भ्रमण किया करते थे। उनका चित्त बहुत एकाग्र रहता था। सन्ध्याके समय मुनिवर च्यवनके देखते-देखते वे चारों तोते अपने पिताके सुन्दर घोंसलेमें आये। वहाँ आकर उन सबने माता-पिताको प्रणाम किया और उन्हें चारा निवेदन करके उनके सामने खड़े हो गये। तत्पश्चात् अपने पंखोंकी शीतल हवासे माता-पिताकी सेवा करने लगे।

ये विप्रभक्तिं कुर्वन्ति मानवा भुवि संस्थिताः। अत्रस्थस्तदहं जाने अधिस्वर्गे प्रवर्तते॥
एतयोश्च प्रसादेन ज्ञानं मम प्रदृश्यताम्। गच्छ विद्याधरश्रेष्ठ भवानर्चतु माधवम्॥ (८४।१४—१८)

* सर्वेषामेव लोकानां यथा सूर्यः प्रकाशकः। गुरुः प्रकाशकस्तद्वच्छिष्याणां बुद्धिदानतः॥ (८५।८)

कुंजल पक्षी अपनी पत्नीके साथ भोजन करके जब तृप्त हुआ, तब पुत्रोंके साथ बैठकर परम पवित्र दिव्य कथाएँ कहने लगा।

उज्ज्वलने कहा—पिताजी! इस समय पहले मेरे लिये उत्तम ज्ञानका वर्णन कीजिये; इसके बाद ध्यान, व्रत, पुण्य तथा भगवान्‌के शतनामका भी उपदेश दीजिये।

कुंजल बोला—बेटा! मैं तुम्हें उस उत्तम ज्ञानका उपदेश देता हूँ, जिसे किसीने इन चर्मचक्षुओंसे नहीं देखा है; उसका नाम है—कैवल्य (मोक्ष)। वह केवल—अद्वितीय और दुःखसे रहित है। जैसे वायुशून्य प्रदेशमें रखा हुआ दीपक हवाका झोंका न लगनेके कारण स्थिर भावसे जलता है और घरके समूचे अन्धकारका नाश करता रहता है, उसी प्रकार कैवल्यस्वरूप ज्ञानमय आत्मा सब दोषोंसे रहित और स्थिर है। उसका कोई आधार नहीं है [वही सबका आधार है]।[1] बेटा! वह आशा-तृष्णासे रहित और निश्चल है। आत्मा न किसीका मित्र है न शत्रु। उसमें न शोक है, न हर्ष, न लोभ है न मात्सर्य। वह भ्रम, प्रलाप, मोह तथा सुख-दुःखसे रहित है। जिस समय इन्द्रियाँ सम्पूर्ण विषयोंमें भोग-बुद्धिका त्याग कर देती हैं, उस समय [सब प्रकारकी आसक्तियोंसे रहित] केवल आत्मा रह जाता है; उसे कैवल्यरूपकी प्राप्ति हो जाती है। जैसे दीपक प्रज्वलित होकर जब प्रकाश फैलाता है, तब बत्तीके आधारसे वह तेलको सोखता रहता है। फिर उस तेलको भी काजलके रूपमें उगल देता है। महामते! दीपक स्वयं ही तेलको खींचता और अपने तेजसे निर्मल बना रहता है। इसी प्रकार देहरूपी बत्तीमें स्थित हुआ आत्मा कर्मरूपी तेलका शोषण करता रहता है। वह विषयोंका काजल बनाकर प्रत्यक्ष दिखा देता है और जपसे निर्मल होकर स्वयं ही प्रकाशित होता है। उसमें क्रोध आदि दोषोंका अभाव है। क्लेश नामक वायु उसका स्पर्श नहीं करती। वह निःस्पृह और निश्चल होकर स्वयं अपने तेजसे प्रकाशमान रहता है। स्वकीय स्थानपर स्थित रहकर ही अपने तेजसे सम्पूर्ण त्रिलोकीको देखा करता है। यह आत्मा केवल ज्ञानस्वरूप है [इसीको परमात्मा कहते हैं]। इस परमात्माका ही मैंने तुमसे वर्णन किया है।

अब मैं चक्रधारी भगवान् श्रीविष्णुके ध्यानका वर्णन आरम्भ करता हूँ। वह ध्यान दो प्रकारका है—निराकार और साकार। निराकारका ध्यान केवल ज्ञानरूपसे होता है, ज्ञाननेत्रसे उनका दर्शन किया जाता है। योगयुक्त महात्मा तथा परमार्थपरायण संन्यासी उन सर्वज्ञ एवं सर्वद्रष्टा परमेश्वरका साक्षात्कार करते हैं। वत्स! वे हाथ-पैरसे हीन होकर भी सर्वत्र जाते और समस्त चराचर त्रिलोकीको ग्रहण करते हैं। उनके मुख और नाक नहीं हैं, फिर भी वे खाते और सूँघते हैं। बिना कानके ही सब कुछ श्रवण करते हैं। वे सबके साक्षी और जगत्‌के स्वामी हैं। रूपहीन होते हुए भी पाँच इन्द्रियोंसे युक्त रूप धारण करते हैं। समस्त लोकोंके प्राण हैं। चराचर जगत्‌के जीव उनकी पूजा करते हैं। बिना जिह्वाके ही वे बोलते हैं। उनकी सब बातें वेदशास्त्रोंके अनुकूल होती है। उनके त्वचा नहीं है, फिर भी वे सबके स्पर्शका अनुभव करते हैं। उनका स्वरूप सत् और आनन्दमय है; वे विरक्तात्मा हैं। उनका रूप एक है। वे आश्रयरहित और जरावस्थासे शून्य हैं। ममता तो उन्हें छू भी नहीं गयी है। वे सर्वव्यापक, सगुण, निर्गुण और निर्मल हैं। वे किसीके वशमें नहीं हैं तो भी उनका मन सब भक्तोंके अधीन रहता है। वे सब कुछ देनेवाले और सर्वज्ञोंमें श्रेष्ठ हैं। उनका पूर्णरूपसे ध्यान करनेवाला कोई नहीं है। वे सर्वमय और सर्वत्र व्यापक हैं।[2]

१-यथा दीपो निवातस्थो निश्चलो वायुवर्जितः। प्रज्वलन्नाशयेत्सर्वमन्धकारं महामते॥
तद्वद्दोषविहीनात्मा भवत्येव निराश्रयः। (८६। ५९-६०)

२-ध्यानं चैव प्रवक्ष्यामि द्विविधं तस्य चक्रिणः। केवलं ज्ञानरूपेण दृश्यते ज्ञानचक्षुषा॥

इस प्रकार जो परमात्माके सर्वमय स्वरूपका ध्यान करता है, वह अमृतके समान सुखदायी और आकार-रहित परम पद (मोक्ष)-को प्राप्त होता है।[१]

अब परमात्माके ध्यानका दूसरा रूप—साकार ध्यान बतलाता हूँ। मूर्तिमान् आकारके चिन्तनको साकार ध्यान कहते हैं तथा जो निरामय तत्त्वका चिन्तन है, उसे निराकार ध्यान कहा गया है। यह समस्त ब्रह्माण्ड, जिसकी कहीं तुलना नहीं है, भगवान्‌की वासनासे ही वासित है—भगवान्‌में ही इसका निवास है; इसीलिये उन्हें 'वासुदेव' कहते हैं। वर्षाके लिये उन्मुख मेघका जैसा वर्ण होता है, वैसा ही उनका भी वर्ण है। वे सूर्यके समान तेजस्वी, चतुर्भुज और देवताओंके स्वामी हैं। उनके दाहिने हाथोंमेंसे एकमें सुवर्ण और रत्नोंसे विभूषित शंख शोभा पा रहा है। बायें हाथोंमेंसे एकमें चक्र प्रतिष्ठित है, जिसकी तेजोमयी आकृति सूर्यमण्डलके समान है। कौमोदकी गदा, जो बड़े-बड़े असुरोंका विनाश करनेवाली है, उन परमात्माके दूसरे बायें हाथमें सुशोभित है तथा उनके दूसरे दाहिने हाथमें सुगन्धपूर्ण महान् पद्म शोभा पा रहा है। इस प्रकार आयुधोंसहित भगवान् कमलापतिका ध्यान करना चाहिये। शंखके समान ग्रीवा, गोल-गोल मुख और पद्मपत्रके समान बड़ी-बड़ी आँखें अत्यन्त मनोहर जान पड़ती हैं। रत्नोंके समान चमकीले दाँतोंसे भगवान् हृषीकेशकी बड़ी शोभा हो रही है। उनके घुँघराले बाल हैं, बिम्बाफलके समान लाल-लाल ओठ हैं तथा मस्तकपर धारण किये हुए किरीटसे कमलनयन श्रीहरि अत्यन्त सुशोभित हो रहे हैं। विशाल रूप, सुन्दर नेत्र तथा कौस्तुभमणिसे उनकी कान्ति बहुत बढ़ गयी है। सूर्यके समान तेजसे प्रकाशित होनेवाले कुण्डल और पुण्यमय श्रीवत्स-चिह्नसे श्रीहरि सदा देदीप्यमान दिखायी देते हैं। उनके श्यामविग्रहपर बाजूबन्द, कंगन और मोतियोंके हार नक्षत्रोंके समान छबि पा रहे हैं। इनसे सुशोभित भगवान् विजय विजयी पुरुषोंमें सर्वश्रेष्ठ जान पड़ते हैं। सोनेके समान रंगवाले पीताम्बरसे गोविन्दकी सुषमा और भी बढ़ गयी है। रत्नजटित मुँदरियोंसे सुशोभित अँगुलियोंके कारण भगवान् बड़े सुन्दर प्रतीत होते हैं। सब प्रकारके आयुधोंसे पूर्ण और दिव्य आभूषणोंसे विभूषित श्रीहरि गरुड़की पीठपर विराजमान हैं। वे इस विश्वके स्रष्टा और जगत्‌के स्वामी हैं। जो मनुष्य इस प्रकार भगवान्‌की मनोहर झाँकीका प्रतिदिन अनन्य चित्तसे ध्यान करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो अन्तमें भगवान् श्रीविष्णुके लोकको जाता है। बेटा! इस जगदीश्वरके ध्यानका यह सारा प्रकार मैंने तुम्हें बता दिया।[२]

योगयुक्ता महात्मानः परमार्थपरायणाः। यं पश्यन्ति यतीन्द्रास्ते सर्वज्ञं सर्वदर्शकम्॥
हस्तपादादिहीनश्च सर्वत्र परिगच्छति। सर्वं गृह्णाति त्रैलोक्यं स्थावरं जङ्गमं सुत॥
मुखनासाविहीनस्तु घ्राति भुङ्क्ते हि पुत्रक। अकर्णः शृणुते सर्वं सर्वसाक्षी जगत्पतिः॥
अरूपो रूपसम्पन्नः पञ्चवर्गसमन्वितः। सर्वलोकस्य यः प्राणः पूजितः सचराचरैः॥
अजिह्वो वदते सर्वं वेदशास्त्रानुगं सुत। अत्वचः स्पर्शमेवापि सर्वेषामेव जायते॥
सदानन्दो विरक्तात्मा एकरूपो निराश्रयः। निर्जरो निर्ममो व्यापी सगुणो निर्गुणोऽमलः॥
अवश्यः सर्ववश्यात्मा सर्वदः सर्ववित्तमः। तस्य ध्याता न चैवास्ति स वै सर्वमयो विभुः॥ (८६। ६९—७६)

१-एवं सर्वमयं ध्यानं पश्यते यो महात्मनः। स याति परमं स्थानममूर्तममृतोपमम्॥ (८६।७७)

२-द्वितीयं तु प्रवक्ष्यामि ह्यस्य ध्यानं महात्मनः। मूर्ताकारं तु साकारं निराकारं निरामयम्॥
ब्रह्माण्डं सर्वमतुलं वासितं यस्य वासनात्। स तस्माद् वासुदेवेति उच्यते मम नन्दन॥
वर्षमाणस्य मेघस्य यद्वर्षं तस्य तद्भवेत्। सूर्यतेजःप्रतीकाशं चतुर्बाहुं सुरेश्वरम्॥
दक्षिणे शोभते शङ्खो हेमरत्नविभूषितः। सूर्यबिम्बसमाकारं चक्रं पद्मप्रतिष्ठितम्॥
कौमोदकीं गदा तस्य महासुरविनाशिनी। वामे च शोभते वत्स करे तस्य महात्मनः॥
महापद्मं तु गन्धाढ्यं तस्य दक्षिणहस्तगम्। शोभमानं सदा ध्यायेत् सायुधं कमलाप्रियम्॥
कम्बुग्रीवं वृत्तमास्यं पद्मपत्रनिभेक्षणम्। राजमानं हृषीकेशं दशनैः रत्नसन्निभैः॥

अब व्रतोंके भेद बताता हूँ, जिनके द्वारा भगवान् श्रीविष्णुकी आराधना होती है। जया, विजया, पापनाशिनी, जयन्ती, त्रि:स्पृशा, वंजुली, तिलगन्धा, अखण्डा तथा मनोरक्षा—ये सब एकादशी या द्वादशियोंके भेद हैं। इनके सिवा और भी बहुत-सी ऐसी तिथियाँ हैं, जिनका प्रभाव दिव्य है। अशून्यशयन और जन्माष्टमी—ये दोनों महान् व्रत हैं। इन व्रतोंका आचरण करनेसे प्राणियोंके सब पाप दूर हो जाते हैं।

पुत्र! अब भगवान्के शतनामस्तोत्रका वर्णन करता हूँ। यह मनुष्योंकी पापराशिका नाशक और उत्तम गति प्रदान करनेवाला है। विष्णुके इस शतनाम-स्तोत्रके ब्रह्मा ऋषि, अनुष्टप् छन्द, प्रणव (ओंकार) देवता है। सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धि तथा मोक्षके निमित्त इसका विनियोग किया जाता है।*

हृषीकेश (इन्द्रियोंके स्वामी), केशव, मधुसूदन (मधु दैत्यको मारनेवाले), सर्वदैत्यसूदन (सम्पूर्ण दैत्योंके संहारक), नारायण, अनामय (रोग-शोकसे रहित), जयन्त, विजय, कृष्ण, अनन्त, वामन, विष्णु, विश्वेश्वर, पुण्य, विश्वात्मा, सुरार्चित (देवताओंद्वारा पूजित), अनघ (पापरहित), अघहर्ता, नारसिंह, श्रीप्रिय (लक्ष्मीके प्रियतम), श्रीपति, श्रीधर, श्रीद (लक्ष्मी प्रदान करनेवाले), श्रीनिवास, महोदय (महान् अभ्युदयशाली), श्रीराम, माधव, मोक्ष, क्षमारूप, जनार्दन, सर्वज्ञ, सर्ववेत्ता, सर्वेश्वर, सर्वदायक, हरि, मुरारि, गोविन्द, पद्मनाभ, प्रजापति, आनन्द, ज्ञानसम्पन्न, ज्ञानद, ज्ञानदायक, अच्युत, सबल, चन्द्रवक्त्र (चन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाले), व्याप्तपरावर (कार्य-कारणरूप सम्पूर्ण जगत्में व्याप्त), योगेश्वर, जगद्योनि (जगत्की उत्पत्तिके स्थान), ब्रह्मरूप, महेश्वर, मुकुन्द, वैकुण्ठ, एकरूप, कवि, ध्रुव, वासुदेव, महादेव, ब्रह्मण्य ब्राह्मणप्रिय, गोप्रिय, गोहित, यज्ञ, यज्ञांग, यज्ञवर्धन (यज्ञोंका विस्तार करनेवाले), यज्ञ-भोक्ता, वेद-वेदांगपारग, वेदज्ञ, वेदरूप, विद्यावास, सुरेश्वर, प्रत्यक्ष, महाहंस, शंखपाणि, पुरातन, पुष्कर, पुष्कराक्ष, वाराह, धरणीधर, प्रद्युम्न, कामपाल, व्यासध्यात (व्यासजीके द्वारा चिन्तित), महेश्वर (महान् ईश्वर), सर्वसौख्य, महासौख्य, सांख्य, पुरुषोत्तम, योगरूप, महाज्ञान, योगीश्वर, अजित, प्रिय, असुरारि, लोकनाथ, पद्महस्त, गदाधर, गुहावास, सर्ववास, पुण्यवास, महाजन, वृन्दानाथ, बृहत्काय, पावन, पापनाशन, गोपीनाथ, गोपसख, गोपाल, गोगणाश्रय, परात्मा, पराधीश, कपिल तथा कार्यमानुष (संसारका उद्धार करनेके लिये मानव-शरीर धारण करनेवाले) आदि नामोंसे प्रसिद्ध सर्वस्वरूप परमेश्वरको मैं प्रतिदिन मन, वाणी तथा क्रियाद्वारा नमस्कार करता हूँ। जो पुण्यात्मा पुरुष शतनामस्तोत्र पढ़कर स्थिरचित्तसे भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति करता है, वह सम्पूर्ण दोषोंका त्याग करके इस लोकमें पुण्यस्वरूप हो जाता है तथा अन्तमें वह भगवान् मधुसूदनके लोकको प्राप्त होता है। यह शतनामस्तोत्र महान् पुण्यका जनक और समस्त

गुडाकेशा: सन्ति यस्य अधरं बिम्बसन्निभम् । शोभते पुण्डरीकाक्ष: किरीटेनापि पुत्रक॥
विशालेनापि रूपेण केशवस्तु सुचक्षुषा । कौस्तुभेनापि वै तेन राजमानो जनार्दन:॥
सूर्यतेज:प्रकाशाभ्यां कुण्डलाभ्यां प्रभाति च । श्रीवत्साङ्केन पुण्येन सर्वदा राजते हरि:॥
केयूरकङ्कणैर्हारैर्मौक्तिकैर्ऋक्षसन्निभै: । वपुषा भ्राजमानस्तु विजयो जयतां वर:॥
राजते सोऽपि गोविन्दो हेमवर्णेन वाससा । मुद्रिकारत्नयुक्ताभिरङ्गुलीभिर्विराजते ॥
सर्वायुधै: सुसंपूर्णो दिव्यैराभरणैर्हरि: । वैनतेयसमारूढो लोककर्त्ता जगत्पति:॥
एवं तं ध्यायते नित्यमनन्यमनसा नर: । मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥
एतत्ते सर्वमाख्यातं ध्यानमेवं जगत्पते:॥ (८६। ७८—९२)

* शतनामस्तोत्रका विनियोग इस प्रकार है—'ॐ अस्य श्रीविष्णुशतनामस्तोत्रस्य ब्रह्मा ऋषिरनुष्टुप् छन्द: प्रणवो देवता सर्वकामिकसंसिद्ध्यै मोक्षार्थे च जपे विनियोग:।

पातकोंकी शुद्धि करनेवाला है। मनुष्यको ध्यानयुक्त होकर अनन्यचित्तसे इसका जप और चिन्तन करना चाहिये। प्रतिदिन इसका जप करनेवाले पुरुषको नित्यप्रति गंगास्नानका फल मिलता है। इसलिये सुस्थिर और एकाग्रचित्त होकर इसका जप करना उचित है।*

सुखकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको चाहिये कि जहाँ शालग्रामकी शिला तथा द्वारकाकी शिला (गोमतीचक्र) हों, उन दोनों शिलाओंके समीप पूर्वोक्त स्तोत्रका जप करे। ऐसा करनेसे वह संसारमें नाना प्रकारके सुख भोगकर अन्तमें अपने सहित एक सौ एक पीढ़ीका उद्धार कर देता है। जो कार्तिकमें प्रतिदिन प्रात:स्नान करके मधुसूदनकी पूजा करता और भगवान्‌के सामने शतनामस्तोत्रको पढ़ता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है। बेटा! माघ-स्नान करनेवाला पुरुष यदि भगवान्‌की पूजा करके उनका ध्यान करता और इस स्तोत्रका जप अथवा श्रवण करता है तो वह मदिरापान आदिसे होनेवाले पापोंका भी त्याग करके परमपदको प्राप्त होता है। बिना किसी विघ्नके उसे विष्णुपदकी प्राप्ति हो जाती है। जो मनुष्य श्राद्ध-कालमें भोजन करनेवाले ब्राह्मणोंके सामने इस पापनाशक शतनामस्तोत्रका पाठ करता है, उसके पितर संतुष्ट होकर परमगतिको प्राप्त होते हैं। यह स्तोत्र सुख तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला है। निश्चय ही इसका जप करना चाहिये। जपकर्ता मनुष्य भगवान् श्रीविष्णुकी कृपासे पूर्ण सिद्ध हो जाता है—उसे सब प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।

---

* शतनामस्तोत्रका मूल पाठ इस प्रकार है—

नमाम्यहं हृषीकेशं केशवं मधुसूदनम्। सूदनं सर्वदैत्यानां नारायणमनामयम्॥
जयन्तं विजयं कृष्णमनन्तं वामनं तथा। विष्णुं विश्वेश्वरं पुण्यं विश्वात्मानं सुरार्चितम्॥
अनघं त्वघहर्तारं नारसिंहं श्रिय:प्रियम्। श्रीपतिं श्रीधरं श्रीदं श्रीनिवासं महोदयम्॥
श्रीरामं माधवं मोक्षं क्षमारूपं जनार्दनम्। सर्वज्ञं सर्ववेत्तारं सर्वेशं सर्वदायकम्॥
हरिं मुरारिं गोविन्दं पद्मनाभं प्रजापतिम्। आनन्दं ज्ञानसम्पन्नं ज्ञानदं ज्ञानदायकम्॥
अच्युतं सबलं चन्द्रवक्त्रं व्याप्तपरावरम्। योगेश्वरं जगद्योनिं ब्रह्मरूपं महेश्वरम्॥
मुकुन्दं चापि वैकुण्ठमेकरूपं कविं ध्रुवम्। वासुदेवं महादेवं ब्रह्मण्यं ब्राह्मणप्रियम्॥
गोप्रियं गोहितं यज्ञं यज्ञाङ्गं यज्ञवर्धनम्। यज्ञस्यापि सुभोक्तारं वेदवेदाङ्गपारगम्॥
वेदज्ञं वेदरूपं तं विद्यावासं सुरेश्वरम्। प्रत्यक्षं च महाहंसं शङ्खपाणिं पुरातनम्॥
पुष्करं पुष्कराक्षं च वाराहं धरणीधरम्। प्रद्युम्नं कामपालं च व्यासध्यातं महेश्वरम्॥
सर्वसौख्यं महासौख्यं सांख्यं च पुरुषोत्तमम्। योगरूपं महाज्ञानं योगीशमजितं प्रियम्॥
असुरारिं लोकनाथं पद्महस्तं गदाधरम्। गुहावासं सर्ववासं पुण्यवासं महाजनम्॥
वृन्दानाथं बृहत्कायं पावनं पापनाशनम्। गोपीनाथं गोपसखं गोपालं गोगणाश्रयम्॥
परात्मानं पराधीशं कपिलं कार्यमानुषम्। नमामि निखिलं नित्यं मनोवाक्कायकर्मभि:॥
नाम्नां शतेनापि तु पुण्यकर्ता य: स्तौति कृष्णं मनसा स्थिरेण। स याति लोकं मधुसूदनस्य विहाय दोषानिह पुण्यभूत:॥
नाम्नां शतं महापुण्यं सर्वपातकशोधनम्। अनन्यमनसा ध्यायेज्जपेद्ध्यानसमन्वित:॥
नित्यमेवं नर: पुण्यं गङ्गास्नानफलं लभेत्। तस्मात्तु सुस्थिरो भूत्वा समाहितमना जपेत्॥
(८७। ९—२५)

कुंजलका अपने पुत्र विज्वलको उपदेश—महर्षि जैमिनिका सुबाहुसे दानकी महिमा कहना तथा नरक और स्वर्गमें जानेवाले पुरुषोंका वर्णन

तदनन्तर कुंजलने अपने पुत्र विज्वलको उपदेश देते हुए कहा—'बेटा! प्रत्येक भोगमें शुभ और अशुभ कर्म ही कारण हैं। पुण्य-कर्मसे जीव सुख भोगता है और पाप-कर्मसे दुःखका अनुभव करता है। किसान अपने खेतमें जैसा बीज बोता है, वैसा ही फल उसे प्राप्त होता है। इसी प्रकार जैसा कर्म किया जाता है, वैसा ही फलका उपभोग किया जाता है। इस शरीरके विनाशका कारण भी कर्म ही है। हम सब लोग कर्मके अधीन हैं। संसारमें कर्म ही जीवोंकी संतान है। कर्म ही उनके बन्धु-बान्धव हैं तथा कर्म ही यहाँ पुरुषको सुख-दुःखमें प्रवृत्त करते हैं। जैसे किसानको उसके प्रयत्नके अनुसार खेतीका फल प्राप्त होता है, उसी प्रकार पूर्वजन्मका किया हुआ कर्म ही कर्ताको मिलता है। जीव अपने कर्मोंके अनुसार ही देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी और स्थावर योनियोंमें जन्म लेता है तथा उन योनियोंमें वह सदा अपने किये हुए कर्मको ही भोगता है। दुःख और सुख दोनों अपने ही किये हुए कर्मोंके फल हैं। जीव गर्भकी शय्यापर सोकर पूर्व-शरीरके किये हुए शुभाशुभ कर्मोंका फल भोगता है। पृथ्वीपर कोई भी पुरुष ऐसा नहीं है, जो पूर्वजन्मके किये हुए कर्मको अन्यथा कर सके। सभी जीव अपने कमाये हुए सुख-दुःखको ही भोगते हैं। भोगके बिना किये हुए कर्मका नाश नहीं होता। पूर्वजन्मके बन्धनस्वरूप कर्मको कौन मेट सकता है।

बेटा! विषय एक प्रकारके विघ्न हैं। जरा आदि अवस्थाएँ उपद्रव हैं। ये पूर्वजन्मके कर्मोंसे पीड़ित मनुष्यको पुनः-पुनः पीड़ा पहुँचाते रहते हैं। जिसको जहाँ भी सुख या दुःख भोगना होता है, दैव उसे बलपूर्वक वहाँ पहुँचा देता है, जीव कर्मोंसे बँधा रहता है। प्रारब्धको ही जीवोंके सुख-दुःखका उत्पादक बताया गया है।

महाप्राज्ञ! चोल देशमें सुबाहु नामके एक राजा हो गये हैं। जैमिनि नामके ब्राह्मण उनके पुरोहित थे। एक दिन पुरोहितने राजा सुबाहुको सम्बोधित करके कहा—'राजन्! आप उत्तम-उत्तम दान दीजिये। दानके ही प्रभावसे सुख भोगा जाता है। मनुष्य मरनेके पश्चात् दानके ही बलसे दुर्गम लोकोंको प्राप्त होता है। दानसे सुख और सनातन यशकी प्राप्ति होती है। दानसे ही मर्त्यलोकमें मनुष्यकी उत्तम कीर्ति होती है। जबतक इस जगत्में कीर्ति स्थिर रहती है, तबतक उसका कर्ता स्वर्गलोकमें निवास करता है। अतः मनुष्योंको चाहिये कि वे पूर्ण प्रयत्न करके सदा दान करते रहें।'

राजाने पूछा—द्विजश्रेष्ठ! दान और तपस्या—इन दोमें दुष्कर कौन है? तथा परलोकमें जानेपर कौन महान् फलको देनेवाला होता है? यह मुझे बतलाइये।

जैमिनि बोले—राजन्! इस पृथ्वीपर दानसे बढ़कर दुष्कर कार्य दूसरा कोई नहीं है। यह बात प्रत्यक्ष देखी जाती है। सारा लोक इसका साक्षी है। संसारमें लोभसे मोहित मनुष्य धनके लिये अपने प्यारे प्राणोंकी भी परवा न करके समुद्र और घने जंगलोंमें प्रवेश कर जाते हैं। कितने ही मनुष्य धनके लिये दूसरोंकी सेवातक स्वीकार कर लेते हैं। विद्वान् लोग धनके लिये पाठ करते हैं तथा दूसरे-दूसरे लोग धनकी इच्छासे ही हिंसापूर्ण और कष्टसाध्य कार्य करते हैं। इसी प्रकार कितने ही लोग खेतीके कार्यमें संलग्न होते हैं। इस तरह दुःख उठाकर कमाया हुआ धन प्राणोंसे भी अधिक प्रिय जान पड़ता है। ऐसे धनका परित्याग करना अत्यन्त कठिन है। महाराज! उसमें भी जो न्यायसे उपार्जित धन है, उसे यदि श्रद्धापूर्वक विधिके अनुसार सुपात्रको दान दिया जाय तो उसका फल अनन्त होता है। श्रद्धा देवी धर्मकी पुत्री हैं, वे विश्वको पवित्र एवं अभ्युदयशील बनानेवाली हैं। इतना ही नहीं, वे सावित्रीके समान पावन, जगत्को उत्पन्न करनेवाली तथा संसारसागरसे उद्धार करनेवाली हैं। आत्मवादी विद्वान् श्रद्धासे ही धर्मका चिन्तन करते हैं। जिनके पास किसी भी वस्तुका

संग्रह नहीं है, ऐसे अकिंचन मुनि श्रद्धालु होनेके कारण ही स्वर्गको प्राप्त हुए हैं।*

नृपश्रेष्ठ! दानके कई प्रकार हैं। परन्तु अन्नदानसे बढ़कर प्राणियोंको सद्गति प्रदान करनेवाला दूसरा कोई दान नहीं है। इसलिये जलसहित अन्नका दान अवश्य करना चाहिये। दानके समय मधुर और पवित्र वचन बोलनेकी भी आवश्यकता है। अन्नदान संसार-सागरसे तारनेवाला, हितसाधक तथा सुख-सम्पत्तिका हेतु है। यदि शुद्ध चित्तसे श्रद्धापूर्वक सुपात्र व्यक्तिको एक बार भी अन्नका दान दिया जाय तो मनुष्य सदा ही उसका उत्तम फल भोगता रहता है। अपने भोजनमेंसे मुट्ठीभर अन्न 'अग्रग्रास' के रूपमें अवश्य दान करना चाहिये। उस दानका बहुत बड़ा फल है, उसे अक्षय बताया गया है। जो प्रतिदिन सेरभर या मुट्ठीभर भी अन्न न दे सके, वह मनुष्य पर्व आनेपर आस्तिकता, श्रद्धा तथा भक्तिके साथ एक ब्राह्मणको भोजन करा दे। राजन्! जो प्रतिदिन ब्राह्मणको अन्न देते और जलसहित मिष्टान्न भोजन कराते हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। वेदोंके पारगामी ऋषि अन्नको ही प्राणस्वरूप बतलाते हैं; अन्नकी उत्पत्ति अमृतसे हुई है। महाराज! जिसने किसीको अन्नका दान किया है, उसने मानो प्राणदान दिया है। इसलिये आप यत्न करके अन्नका दान दीजिये।

सुबाहुने कहा—द्विजश्रेष्ठ! अब मुझसे स्वर्गके गुणोंका वर्णन कीजिये।

जैमिनि बोले—राजन्! स्वर्गमें नन्दनवन आदि अनेकों दिव्य उद्यान हैं, जो अत्यन्त मनोहर, पवित्र और समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हैं। इनके सिवा वहाँ परम सुन्दर दिव्य विमान भी हैं। पुण्यात्मा मनुष्य उन विमानोंपर सुखपूर्वक विचरण किया करते हैं। वहाँ नास्तिक नहीं जाते; चोर, असंयमी, निर्दय, चुगलखोर, कृतघ्न और अभिमानी भी नहीं जाने पाते। जो सत्यके आधारपर रहनेवाले, शूर, दयालु, क्षमाशील, याज्ञिक तथा दानशील हैं, वे ही मनुष्य वहाँ जाने पाते हैं। वहाँ किसीको रोग, बुढ़ापा, मृत्यु, शोक, जाड़ा, गर्मी, भूख, प्यास और ग्लानि नहीं सताती। राजन्! ये तथा और भी बहुत-से स्वर्गलोकके गुण हैं। अब वहाँके दोषोंका वर्णन सुनिये। वहाँ सबसे बड़ा दोष यह है कि दूसरोंकी अपनेसे बढ़ी हुई सम्पत्ति देखकर मनमें असंतोष होता है तथा स्वर्गीय सुखमें आसक्त चित्तवाले प्राणियोंका [पुण्य क्षीण होते ही] सहसा वहाँसे पतन हो जाता है। यहाँ जो शुभ कर्म किया जाता है, उसका फल वहीं (स्वर्गमें) भोगा जाता है। राजन्! यह कर्मभूमि है और स्वर्गको भोगभूमि माना गया है।

सुबाहुने कहा—ब्रह्मन्! स्वर्गके अतिरिक्त जो दोषरहित सनातन लोक हों, उनका मुझसे वर्णन कीजिये।

जैमिनि बोले—राजन्! ब्रह्मलोकसे ऊपर भगवान् श्रीविष्णुका परम पद है। वह शुभ, सनातन एवं ज्योतिर्मय धाम है। उसीको परब्रह्म कहा गया है। विषयासक्त मूढ़ पुरुष वहाँ नहीं जा सकते। दम्भ, लोभ, भय, क्रोध, द्रोह और द्वेषसे आक्रान्त मनुष्योंका वहाँ प्रवेश नहीं हो सकता। जो ममता और अहंकारसे रहित, निर्द्वन्द्व, जितेन्द्रिय तथा ध्यान-योगपरायण हैं, वे साधु पुरुष ही उस धाममें प्रवेश करते हैं।

सुबाहुने कहा—महाभाग! मैं स्वर्गमें नहीं जाऊँगा, मुझे उसकी इच्छा नहीं है। जिस स्वर्गसे एक दिन नीचे गिरना पड़ता है, उसकी प्राप्ति करानेवाला कर्म ही मैं नहीं करूँगा। मैं तो ध्यानयोगके द्वारा देवेश्वर लक्ष्मीपतिका पूजन करूँगा और दाह तथा प्रलयसे रहित विष्णु-लोकमें जाऊँगा।

जैमिनि बोले—राजन्! तुम्हारा कहना ठीक है, तुमने सबके कल्याणकी बात कही है। वास्तवमें राजा दानशील हुआ करते हैं। वे बड़े-बड़े यज्ञोंद्वारा भगवान्

---

* श्रद्धा धर्मसुता देवी पावनी विश्वभाविनी॥
सावित्री प्रसवित्री च संसारार्णवतारिणी। श्रद्धया ध्यायते धर्मो विद्वद्भिश्चात्मवादिभिः॥
निष्किञ्चनास्तु मुनयः श्रद्धावन्तो दिवं गताः। (९४। ४४—४६)

श्रीविष्णुका यजन करते हैं। यज्ञोंमें सब प्रकारके दान दिये जाते हैं। उत्तम यज्ञोंमें पहले अन्न और फिर वस्त्र एवं ताम्बूलका दान किया जाता है। इसके बाद सुवर्णदान, भूमिदान और गोदानकी बात कही जाती है। इस प्रकार उत्तम यज्ञ करके राजालोग अपने शुभ कर्मोंके फलस्वरूप विष्णुलोकमें जाते हैं। दानसे तृप्तिलाभ करते और संतुष्ट रहते हैं। अतः राजेन्द्र! आप भी न्यायोपार्जित धनका दान कीजिये। दानसे ज्ञान और ज्ञानसे आपको सिद्धि प्राप्त होगी।

जो मनुष्य इस उत्तम और पवित्र आख्यानका श्रवण करेगा, वह सब पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकमें जायगा।

सुबाहुने पूछा—ब्रह्मन्! मनुष्य किस दुष्कर्मसे नरकमें पड़ते हैं और किस शुभकर्मके प्रभावसे स्वर्गमें जाते हैं? यह बात मुझे बताइये।

जैमिनिने कहा—जो द्विज लोभसे मोहित हो पावन ब्राह्मणत्वका परित्याग करके कुकर्मसे जीविका चलाते हैं, वे नरकगामी होते हैं। जो नास्तिक हैं, जिन्होंने धर्मकी मर्यादा भंग की है; जो काम-भोगके लिये उत्कण्ठित, दाम्भिक और कृतघ्न हैं; जो ब्राह्मणोंको धन देनेकी प्रतिज्ञा करके भी नहीं देते, चुगली खाते, अभिमान रखते और झूठ बोलते हैं; जिनकी बातें परस्पर विरुद्ध होती हैं; जो दूसरोंका धन हड़प लेते, दूसरोंपर कलंक लगानेके लिये उत्सुक रहते और परायी सम्पत्ति देखकर जलते हैं, वे नरकमें जाते हैं। जो मनुष्य सदा प्राणियोंके प्राण लेनेमें लगे रहते, परायी निन्दामें प्रवृत्त होते; कुएँ, बगीचे, पोखरे और पौंसलेको दूषित करते; सरोवरोंको नष्ट-भ्रष्ट करते तथा शिशुओं, भृत्यों और अतिथियोंको भोजन दिये बिना ही स्वयं भोजन कर लेते हैं; जिन्होंने पितृयाग (श्राद्ध) और देवयाग (यज्ञ)-का त्याग कर दिया है, जो संन्यास तथा अपने रहनेके आश्रमको कलंकित करते हैं और मित्रोंपर लांच्छन लगाते हैं, वे सब-के-सब नरकगामी होते हैं।

जो प्रयाज नामक यज्ञों, शुद्ध चित्तवाली कन्याओं, साधु पुरुषों और गुरुजनोंको दूषित करते हैं; जो काठ, कील, शूल अथवा पत्थर गाड़कर रास्ता रोकते हैं, कामसे पीड़ित रहते और सब वर्णोंके यहाँ भोजन कर लेते हैं तथा जो भोजनके लिये द्वारपर आये हुए जीविकाहीन ब्राह्मणोंकी अवहेलना करते हैं, वे नरकोंमें पड़ते हैं। जो दूसरोंके खेत, जीविका, घर और प्रेमको नष्ट करते हैं; जो हथियार बनाते और धनुष-बाणका विक्रय करते हैं; जो मूढ़ मानव अनाथ, वैष्णव, दीन, रोगातुर और वृद्ध पुरुषोंपर दया नहीं करते तथा जो पहले कोई नियम लेकर फिर संयमहीन होनेके कारण चंचलतावश उसका परित्याग कर देते हैं, वे नरकगामी होते हैं।

अब मैं स्वर्गगामी पुरुषोंका वर्णन करूँगा। जो मनुष्य सत्य, तपस्या, ज्ञान, ध्यान तथा स्वाध्यायके द्वारा धर्मका अनुसरण करते हैं, वे स्वर्गगामी होते हैं। जो प्रतिदिन हवन करते तथा भगवान्के ध्यान और देवताओंके पूजनमें संलग्न रहते हैं, वे महात्मा स्वर्गलोकके अतिथि होते हैं। जो बाहर-भीतरसे पवित्र रहते, पवित्र स्थानमें निवास करते, भगवान् वासुदेवके भजनमें लगे रहते तथा भक्तिपूर्वक श्रीविष्णुकी शरणमें जाते हैं; जो सदा आदरपूर्वक माता-पिताकी सेवा करते और दिनमें नहीं सोते; जो सब प्रकारकी हिंसासे दूर रहते, साधुओंका संग करते और सबके हितमें संलग्न रहते हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। जो गुरुजनोंकी सेवामें संलग्न, बड़ोंको आदर देनेवाले, दान न लेनेवाले, सहस्रों मनुष्योंको भोजन परोसनेवाले, सहस्रों मुद्राओंका दान करनेवाले तथा सहस्रों मनुष्योंको दान देनेवाले हैं, वे पुरुष स्वर्गलोकको जाते हैं। जो युवावस्थामें भी क्षमाशील और जितेन्द्रिय हैं; जिनमें वीरता भरी है; जो सुवर्ण, गौ, भूमि, अन्न और वस्त्रका दान करते हैं; जो अपनेसे द्वेष रखनेवालोंके भी दोष कभी नहीं कहते, बल्कि उनके गुणोंका ही वर्णन करते हैं; जो विज्ञ पुरुषोंको देखकर प्रसन्न होते, दान देकर प्रिय वचन बोलते तथा दानके फलकी इच्छाका परित्याग कर देते हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। जो पुरुष प्रवृत्तिमार्गमें तथा निवृत्तिमार्गमें भी मुनियों और शास्त्रोंके कथनानुसार ही आचरण करते हैं, वे स्वर्गलोकके अतिथि होते हैं।

जो मनुष्योंसे कटु वचन बोलना नहीं जानते, जो प्रिय वचन बोलनेके लिये प्रसिद्ध हैं; जिन्होंने बावली, कुआँ, सरोवर, पौंसला, धर्मशाला और बगीचे बनवाये हैं; जो मिथ्यावादियोंके लिये भी सत्यपूर्ण बर्ताव करनेवाले और कुटिल मनुष्योंके लिये भी सरल हैं, वे दयालु तथा सदाचारी मनुष्य स्वर्गलोकमें जाते हैं।

जो एकमात्र धर्मका अनुष्ठान करके अपने प्रत्येक दिवसको सदा सफल बनाते हैं तथा नित्य ही व्रतका पालन करते हैं; जो शत्रु और मित्रकी समान भावसे सराहना करते और सबको समान दृष्टिसे देखते हैं; जिनका चित्त शान्त है, जो अपने मनको वशमें कर चुके हैं, जिन्होंने भयसे डरे हुए ब्राह्मणों तथा स्त्रियोंकी रक्षाका नियम ले रखा है; जो गंगा, पुष्कर तीर्थ और विशेषतः गयामें पितरोंको पिण्ड-दान करते हैं, वे स्वर्गगामी होते हैं। जो इन्द्रियोंके वशमें नहीं रहते, जिनकी संयममें प्रवृत्ति है; जिन्होंने लोभ, भय और क्रोधका परित्याग कर दिया है; जो शरीरमें पीड़ा देनेवाले जूँ, खटमल और डाँस आदि जन्तुओंका भी पुत्रकी भाँति पालन करते हैं—उन्हें मारते नहीं; सर्वदा मन और इन्द्रियोंके निग्रहमें लगे रहते हैं और परोपकारमें ही जीवन व्यतीत करते हैं, वे मनुष्य स्वर्गलोकके अतिथि होते हैं। जो विशेष विधिके अनुसार यज्ञोंका अनुष्ठान करते, सब प्रकारके द्वन्द्वोंको सहते तथा इन्द्रियोंको वशमें रखते हैं; जो पवित्र और सत्त्वगुणमें स्थित रहकर मन, वाणी तथा क्रियाद्वारा भी कभी परायी स्त्रियोंके साथ रमण नहीं करते; निन्दित कर्मोंसे दूर रहते, विहित कर्मोंका अनुष्ठान करते तथा आत्माकी शक्तिको जानते हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं।

जो दूसरोंके प्रतिकूल आचरण करता है, उसे अत्यन्त दुःखदायी घोर नरकमें गिरना पड़ता है तथा जो सदा दूसरोंके अनुकूल चलता है, उस मनुष्यके लिये सुखदायिनी मुक्ति दूर नहीं है। राजन्! कर्मोंद्वारा जिस प्रकार दुर्गति और सुगति प्राप्त होती है, वह सब मैंने तुम्हें यथार्थरूपसे बतला दिया।

कुंजल कहता है—धर्म-अधर्मकी सम्पूर्ण गतिके विषयमें महर्षि जैमिनिका भाषण सुनकर राजा सुबाहुने कहा—'द्विजश्रेष्ठ! मैं भी धर्मका ही अनुष्ठान करूँगा, पापका नहीं। जगत्की उत्पत्तिके स्थानभूत भगवान् वासुदेवका निरन्तर भजन करूँगा।'

इस निश्चयके अनुसार राजा सुबाहुने धर्मके द्वारा भगवान् मधुसूदनका पूजन किया तथा नाना प्रकारके यज्ञोंद्वारा भगवान्की आराधना करके तथा सम्पूर्ण भोगोंको भोगकर वे शीघ्र ही प्रसन्नतापूर्वक विष्णुलोकको पधार गये।

कुंजलका अपने पुत्र विज्वलको श्रीवासुदेवाभिधानस्तोत्र सुनाना

तदनन्तर वक्ताओंमें श्रेष्ठ कुंजलने विज्वलको परम पवित्र श्रीवासुदेवाभिधानस्तोत्रका उपदेश किया—

इस श्रीवासुदेवाभिधानस्तोत्रके अनुष्टुप् छन्द, नारद ऋषि और ओंकार देवता हैं; सम्पूर्ण पातकोंके नाश तथा चतुर्वर्गकी सिद्धिके लिये इसका विनियोग है।[1] **'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'**—यही इस स्तोत्रका मूलमन्त्र है।[2]

[3]जो परम पावन, पुण्यस्वरूप, वेदके ज्ञाता,

१-ॐ अस्य श्रीवासुदेवाभिधानस्तोत्रस्यानुष्टुप् छन्दः, नारद ऋषिः, ओंकारो देवता, सर्वपातकनाशाय चतुर्वर्गसाधने च विनियोगः।

२-'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' इति मन्त्रः। (९८। ३८)

३-परमं पावनं पुण्यं वेदज्ञं वेदमन्दिरम्। विद्याधारं मखाधारं प्रणवं तं नमाम्यहम्॥
निरावासं निराकारं सुप्रकाशं महोदयम्। निर्गुणं गुणकर्तारं नमामि प्रणवं परम्॥
गायत्रीसाम गायन्तं गीतज्ञं गीतसुप्रियम्। गन्धर्वगीतभोक्तारं प्रणवं तं नमाम्यहम्॥

वेदमन्दिर, विद्याके आधार तथा यज्ञके आश्रय हैं, उन प्रणवस्वरूप परमात्माको मैं नमस्कार करता हूँ। जो आवास (गृह) और आकारसे रहित, उत्तम प्रकाशरूप, महान् अभ्युदयशाली, निर्गुण तथा गुणोंके उत्पादक हैं, उन प्रणवस्वरूप परमात्माको मैं प्रणाम करता हूँ। जो गायत्री-सामका गान करनेवाले, गीतके ज्ञाता, गीतप्रेमी तथा गन्धर्वगीतका अनुभव करनेवाले हैं, उन प्रणव-स्वरूप परमात्माको मैं नमस्कार करता हूँ।

महाकान्तं महोत्साहं महामोहविनाशनम्। आचिन्वन्तं जगत् सर्वं गुणातीतं नमाम्यहम्॥
भाति सर्वत्र यो भूत्वा भूतानां भूतिवर्धनः। समभावाय सद्धर्मं नमामि प्रणवं परम्॥
विचारं वेदरूपं तं यज्ञाख्यं यज्ञवल्लभम्। योनिं सर्वस्य लोकस्य ओंकारं प्रणमाम्यहम्॥
तारकं सर्वलोकानां नौरूपेण विराजितम्। संसारार्णवमग्नानां नमामि प्रणवं हरिम्॥
वसते सर्वभूतेषु एकरूपेण नैकधा। धामकैवल्यरूपेण नमामि वरदं सुखम्॥
सूक्ष्मं सूक्ष्मतरं शुद्धं निर्गुणं गुणनायकम्। वर्जितं प्राकृतैर्भावैर्वेदाख्यं तं नमाम्यहम्॥
देवदैत्यवियोगैश्च वर्जितं तुष्टिभिस्तथा। वेदैश्च योगिभिर्ध्येयं तमोङ्कारं नमाम्यहम्॥
व्यापकं विश्ववेत्तारं विज्ञानं परमं पदम्। शिवं शिवगुणं शान्तं वन्दे प्रणवमीश्वरम्॥
यस्य मायां प्रविष्टास्तु ब्रह्माद्याश्च सुरासुराः। न विन्दन्ति परं शुद्धं मोक्षद्वारं नमाम्यहम्॥
आनन्दकन्दाय च केवलाय शुद्धाय हंसाय परावराय। नमोऽस्तु तस्मै गुणनायकाय श्रीवासुदेवाय महाप्रभाय॥
श्रीपाञ्चजन्येन विराजमानं रविप्रभेणापि सुदर्शनेन। गदाख्यकेनापि विशोभमानं विष्णुं सदैवं शरणं प्रपद्ये॥
यं वेद कोशं सुगुणं गुणानामाधारभूतं सचराचरस्य। यं सूर्यवैश्वानरतुल्यतेजसं तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये॥
तमोघनानां स्वकरैर्विनाशं करोति नित्यं यतिधर्महेतुम्। उद्योतमानं रवितेजसोर्ध्वं तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये॥
सुधानिधानं विमलांशुरूपमानन्दमानेन विराजमानम्। यं प्राप्य जीवन्ति सुरादिलोकास्तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये॥
यो भाति सर्वत्र रविप्रभावैः करोति शोषं च रसं ददाति। यः प्राणिनामन्तरगः स वायुस्तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये॥
ज्येष्ठस्तु रूपेण स देवदेवो बिभर्ति लोकान् सकलान् महात्मा। एकार्णवे नौरिव वर्तते यस्तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये॥
अन्तर्गतो लोकमयः सदैव भवत्यसौ स्थावरजङ्गमानाम्। स्वाहामुखो देवगणस्य हेतुस्तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये॥
रसैः सुपुण्यैः सकलैस्तु पुष्टः ससौम्यरूपैर्गुणवित् स लोके। रत्नाधिपो निर्मलतेजसैव तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये॥
अस्त्येव सर्वत्र विनाशहेतुः सर्वाश्रयः सर्वमयः स सर्वः। विना हृषीकैर्विषयान् प्रभुङ्क्ते तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये॥
तेजःस्वरूपेण बिभर्ति लोकान् सत्त्वान् समस्तान् स चराचरस्य। निष्केवलो ज्ञानमयः सुशुद्धस्तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये॥
दैत्यान्तकं दुःखविनाशमूलं शान्तं परं शक्तिमयं विशालम्। संप्राप्य देवा विलयं प्रयान्ति तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये॥
सुखं सुखाप्तं सुहृदं सुरेशं ज्ञानार्णवं तं सुहितं हितं च। सत्याश्रयं सत्यगुणोपविष्टं तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये॥
यज्ञस्वरूपं पुरुषार्थरूपं सत्यान्वितं मापतिमेव पुण्यम्। विज्ञानमेतं जगतां निवासं तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये॥
अम्भोधिमध्ये शयनं हि यस्य नागाङ्गभोगे शयने विशाले। श्रीः पादपद्मद्वयमेव सेवते तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये॥
पुण्यान्वितं शङ्करमेव नित्यं तीर्थैरनेकैः परिसेव्यमानम्। तत्पादपद्मद्वयमेव तस्य श्रीवासुदेवस्य नमामि नित्यम्॥
अघापहं वा यदि वाम्बुजं तद्रक्तोत्पलाभं ध्वजवायुयुक्तम्। अलङ्कृतं नूपुरमुद्रिकाभिः श्रीवासुदेवस्य नमामि पादम्॥
देवैस्तु सिद्धैर्मुनिभिः सदैव नुतं सुभक्त्या भुजगाधिपैश्च। तत्पादपङ्केरुहमेव पुण्यं श्रीवासुदेवस्य नमामि नित्यम्॥
यस्यापि पादाम्भसि मज्जमानाः पूतं दिवं यान्ति विकल्मषास्ते। मोक्षं लभन्ते मुनयः सुतुष्टास्तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये॥
पादोदकं तिष्ठति यत्र विष्णोर्गङ्गादितीर्थानि सदैव तत्र। पिबन्ति येऽद्यापि सपापदेहाः प्रयान्ति शुद्धाः सुगृहं मुरारेः॥
पादोदकेनाप्यभिषिच्यमाना अत्युग्रपापैः परिलिप्तदेहाः। ते यान्ति मुक्तिं परमेश्वरस्य तस्यैव पादौ सततं नमामि॥
नैवेद्यमात्रेण सुभक्षितेन सुचक्रिणस्तस्य महात्मनश्च। ते वाजपेयस्य फलं लभन्ते सर्वार्थयुक्ताश्च नरा भवन्ति॥
नारायणं दुःखविनाशनं तं मायाविहीनं सकलं गुणज्ञम्। यं ध्यायमानाः सुगतिं व्रजन्ति तं वासुदेवं सततं नमामि॥

यो वन्द्यस्त्वृषिसिद्धचारणगणैर्देवैः सदा पूज्यते यो विश्वस्य हि सृष्टिहेतुकरणे ब्रह्मादिकानां प्रभुः।
यः संसारमहार्णवे निपतितस्योद्धारको वत्सलस्तस्यैवापि नमाम्यह सुचरणौ भक्त्या वरौ साधकौ॥
यो दृष्टो निजमण्डपेऽसुरगणैः श्रीवामनः सामगः सामोद्गीतकुतूहलःसुरगणैस्त्रैलोक्य एकः प्रभुः।
कुर्वस्तु ध्वनितैः स्वकैर्गतभयान् यः पापभीतान् रणे तस्याहं चरणारविन्दयुगलं वन्दे परं पावनम्॥

जो महान् कान्तिमान्, अत्यन्त उत्साही, महामोहके नाशक, सम्पूर्ण जगत्में व्यापक तथा गुणातीत हैं; जो सर्वत्र विद्यमान रहकर शोभायमान हो रहे हैं, प्राणियोंके ऐश्वर्य एवं कल्याणकी वृद्धि करते हैं तथा समताका भाव उत्पन्न करनेके लिये सद्धर्मका प्रसार करनेवाले हैं, उन प्रणवस्वरूप परमेश्वरको मैं नमस्कार करता हूँ। जो विचारक हैं, वेद जिनका स्वरूप है, जो 'यज्ञ' के नामसे पुकारे जाते हैं, यज्ञ जिन्हें अत्यन्त प्रिय है, जो सम्पूर्ण विश्वकी उत्पत्तिके स्थान तथा समस्त जगत्का उद्धार करनेवाले हैं; संसार-सागरमें डूबे हुए प्राणियोंको बचानेके लिये जो नौकारूपसे विराजमान हैं, उन प्रणवस्वरूप श्रीहरिको मैं प्रणाम करता हूँ। जो सम्पूर्ण भूतोंमें निवास करते हैं, नाना रूपोंमें प्रतीत होते हुए भी एक रूपसे विराजमान हैं तथा जो परमधाम और कैवल्य (मोक्ष)-के रूपमें प्रतिष्ठित हैं, उन सुखस्वरूप वरदाता भगवान्को मैं प्रणाम करता हूँ।

जो सूक्ष्म, सूक्ष्मतर, शुद्ध, निर्गुण, गुणोंके नियन्ता और प्राकृत भावोंसे रहित हैं, उन वेदसंज्ञक परमात्माको नमस्कार करता हूँ। जो देवताओं और दैत्योंके वियोगसे वर्जित (सर्वदा सबसे संयुक्त), तुष्टियोंसे रहित तथा वेदों और योगियोंके ध्येय हैं, उन ॐकारस्वरूप परमेश्वरको नमस्कार करता हूँ। व्यापक, विश्वके ज्ञाता, विज्ञानस्वरूप, परमपदरूप, शिव, कल्याणमय गुणोंसे युक्त, शान्त एवं प्रणवरूप ईश्वरको मैं प्रणाम करता हूँ। जिनकी मायाके प्रभावमें आकर ब्रह्मा आदि देवता और असुर भी उनके परम शुद्ध रूपको नहीं जानते तथा जो मोक्षके द्वार हैं, उन परमात्माको मैं नमस्कार करता हूँ।

जो आनन्दके मूलस्रोत, केवल (अद्वितीय) तथा शुद्ध हंसस्वरूप हैं; कार्य-कारणमय जगत् जिनका स्वरूप है; जो गुणोंके नियन्ता तथा महान् प्रभा-पुंजसे परिपूर्ण हैं, उन श्रीवासुदेवको नमस्कार है। जो पांचजन्य नामक शंख और सूर्यके समान तेजस्वी सुदर्शन चक्रसे विराजमान हैं तथा कौमोदकी गदा जिनकी शोभा बढ़ा रही है, उन भगवान् श्रीविष्णुकी मैं सदा शरण लेता हूँ। जो उत्तम गुणोंसे सम्पन्न हैं, जिन्हें गुणोंका कोश माना जाता है, जो चराचर जगत्के आधार तथा सूर्य एवं अग्निके समान तेजस्वी हैं, उन भगवान् वासुदेवकी मैं शरण लेता हूँ। जो अपने प्रकाशकी किरणोंसे अविद्याके बादलोंको छिन्न-भिन्न कर देते हैं, संन्यास-धर्मके प्रवर्तक हैं तथा सूर्यके समान तेजसे सबसे ऊँचे लोकमें प्रकाशित होते हैं, उन भगवान् वासुदेवकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ। जो चन्द्रमाके रूपमें अमृतके भंडार हैं, आनन्दकी मात्रासे जिनकी विशेष शोभा हो रही है, देवताओंसे लेकर सम्पूर्ण जीव जिनका आश्रय पाकर ही जीवन धारण करते हैं, उन भगवान् वासुदेवकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ। जो सूर्यके रूपमें सर्वत्र विराजमान रहकर पृथ्वीके रसको सोखते और पुनः नवीन रसकी वृष्टि करते हैं, जो सम्पूर्ण प्राणियोंके भीतर प्राणरूपसे व्याप्त हैं, उन भगवान् वासुदेवकी मैं शरण लेता हूँ। जो महात्मा स्वरूपसे सबकी अपेक्षा ज्येष्ठ हैं, देवताओंके भी आराध्य देव हैं, सम्पूर्ण लोकोंका पालन करते हैं तथा प्रलयकालीन जलमें नौकाकी भाँति स्थित रहते हैं, उन भगवान् वासुदेवकी मैं शरण लेता हूँ। सम्पूर्ण विश्व जिनका स्वरूप है, जो स्थावर और जंगम—सभी प्राणियोंके भीतर निवास करते हैं, स्वाहा जिनका मुख है तथा जो देववृन्दकी उत्पत्तिके कारण हैं, उन भगवान् वासुदेवकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ। जो सब प्रकारके परम पवित्र रसोंसे परिपुष्ट और शान्तिमय रूपोंसे युक्त हैं, संसारमें गुणज्ञ माने जाते हैं, रत्नोंके अधीश्वर हैं और निर्मल तेजसे शोभा पाते हैं, उन भगवान् वासुदेवकी मैं

राजन्तं द्विजमण्डले मखमुखे ब्रह्मश्रिया पूजितं दिव्येनापि सुतेजसा करमयं यं चेन्द्रनीलोपमम्।
देवानां हितकाम्यया सुतनुजं वैरोचनस्यार्पकं याचन्तं मम दीयतां त्रिपदकं वन्दे परं वामनम्॥
तं दृष्टं रविमण्डले मुनिगणैः सम्प्राप्तवन्तं दिवं चन्द्रार्कौ तु तपन्तमेव सहसा सम्प्राप्तवन्तौ सदा।
तस्यैवापि सुचक्रिणः सुरगणाः प्रापुर्लयं साम्प्रतं काये विश्वविकोशके तमतुलं भौमि प्रभोर्विक्रमम्॥
(९८। ३९—७७)

शरण लेता हूँ। जो सर्वत्र विद्यमान, सबकी मृत्युके हेतु, सबके आश्रय, सर्वमय तथा सर्वस्वरूप हैं, जो इन्द्रियोंके बिना ही विषयोंका अनुभव करते हैं, उन भगवान् वासुदेवकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ। जो अपने तेजोमय स्वरूपसे समस्त लोकों तथा चराचर जगत्के सम्पूर्ण जीवोंका पालन करते हैं तथा केवल ज्ञान ही जिनका स्वरूप है, उन परम शुद्ध भगवान् वासुदेवकी मैं शरण लेता हूँ।

जो दैत्योंका अन्त करनेवाले, दुःख-नाशके मूल कारण, परम शान्त, शक्तिशाली और विराट्रूपधारी हैं; जिनको पाकर देवता भी मुक्त हो जाते हैं, उन भगवान् वासुदेवकी मैं शरण लेता हूँ। जो सुखस्वरूप और सुखसे पूर्ण हैं, सबके अकारण प्रेमी हैं, जो देवताओंके स्वामी और ज्ञानके महासागर हैं, जो परम हितैषी, कल्याणस्वरूप, सत्यके आश्रय और सत्त्व गुणमें स्थित हैं, उन भगवान् वासुदेवका मैं आश्रय लेता हूँ। यज्ञ और पुरुषार्थ जिनके रूप हैं; जो सत्यसे युक्त, लक्ष्मीके पति, पुण्यस्वरूप, विज्ञानमय तथा सम्पूर्ण जगत्के आश्रय हैं, उन भगवान् वासुदेवकी मैं शरण लेता हूँ। जो क्षीर-सागरके बीचमें शेषनागकी विशाल शय्यापर शयन करते हैं तथा भगवती लक्ष्मी जिनके युगल चरणारविन्दोंकी सेवा करती रहती हैं, उन भगवान् वासुदेवकी मैं शरण लेता हूँ। श्रीवासुदेवके दोनों चरणकमल पुण्यसे युक्त, सबका कल्याण करनेवाले तथा सर्वदा अनेकों तीर्थोंसे सुसेवित हैं, मैं उन्हें प्रतिदिन प्रणाम करता हूँ। श्रीवासुदेवका चरण समस्त पापोंको हरनेवाला है, वह लाल कमलकी शोभा धारण करता है; उसके तलवेमें ध्वजा और वायुके चिह्न हैं; वह नूपुरों तथा मुद्रिकाओंसे विभूषित है। ऐसी सुषमासे युक्त भगवान् वासुदेवके चरणको मैं प्रणाम करता हूँ। देवता, सिद्ध, मुनि तथा नागराज वासुकि आदि जिसका भक्तिपूर्वक सदा ही स्तवन करते हैं, श्रीवासुदेवके उस पवित्र चरणकमलको मैं प्रतिदिन प्रणाम करता हूँ। जिनकी चरणोदकस्वरूपा गंगाजीमें गोते लगानेवाले प्राणी पवित्र एवं निष्पाप होकर स्वर्गलोकको जाते हैं तथा परम संतुष्ट मुनिजन उसमें अवगाहन करके मोक्ष प्राप्त करते हैं, उन भगवान् वासुदेवकी मैं शरण लेता हूँ। जहाँ भगवान् श्रीविष्णुका चरणोदक रहता है, वहाँ गंगा आदि तीर्थ सदैव मौजूद रहते हैं; आज भी जो लोग उसका पान करते हैं, वे पापी रहे हों तो भी शुद्ध होकर श्रीविष्णुभगवान्के उत्तम धामको जाते हैं। जिनका शरीर अत्यन्त भयंकर पाप-पंकमें सना है, वे भी जिनके चरणोदकसे अभिषिक्त होनेपर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं, उन परमेश्वरके युगलचरणोंको मैं निरन्तर प्रणाम करता हूँ। उत्तम सुदर्शन चक्र धारण करनेवाले महात्मा श्रीविष्णुके नैवेद्यका भक्षण करनेमात्रसे मनुष्य वाजपेय यज्ञका फल प्राप्त करते हैं तथा सम्पूर्ण पदार्थ पा जाते हैं। दुःखोंका नाश करनेवाले, मायासे रहित, सम्पूर्ण कलाओंसे युक्त तथा समस्त गुणोंके ज्ञाता जिन भगवान् नारायणका ध्यान करके मनुष्य उत्तम गतिको प्राप्त होते हैं, उन श्रीवासुदेवको मैं सदा प्रणाम करता हूँ।

जो ऋषि, सिद्ध और चारणोंके वन्दनीय हैं; देवगण सदा जिनकी पूजा करते हैं, जो संसारकी सृष्टिका साधन जुटानेमें ब्रह्मा आदिके भी प्रभु हैं, संसाररूपी महासागरमें गिरे हुए जीवका जो उद्धार करनेवाले हैं, जिनमें वत्सलता भरी हुई है, जो श्रेष्ठ और समस्त कामनाओंको सिद्ध करनेवाले हैं; उन भगवान्के उत्तम चरणोंको मैं भक्तिपूर्वक प्रणाम करता हूँ। जिन्हें असुरोंने अपने यज्ञमण्डपमें देवताओंसहित सामगान करते हुए वामन ब्रह्मचारीके रूपमें देखा था, जो सामगानके लिये उत्सुक रहते हैं, त्रिलोकीके जो एकमात्र स्वामी हैं तथा युद्धमें पाप या मृत्युसे डरे हुए आत्मीयजनोंको जो अपनी ध्वनिमात्रसे निर्भय बना देते हैं, उन भगवान्के परम पावन युगल चरणारविन्दोंकी मैं वन्दना करता हूँ। जो यज्ञके मुहानेपर विप्र-मण्डलीमें खड़े हो अपने ब्राह्मणोचित तेजसे देदीप्यमान एवं पूजित हो रहे हैं, दिव्य तेजके कारण किरणोंके समूहसे जान पड़ते हैं तथा इन्द्रनीलमणिके समान दिखायी देते हैं, जो देवताओंके हितकी इच्छासे विरोचनके दानी पुत्र बलिके समक्ष 'मुझे तीन पग भूमि दीजिये।' ऐसा कहकर

याचना करते हैं, उन श्रेष्ठ ब्राह्मण श्रीवामनजीको मैं प्रणाम करता हूँ। भगवान्ने जब वामनसे विराट्रूप होकर अपना पैर बढ़ाया, तब उनका विक्रम (विशाल डग) आकाशको आच्छादित करके सहसा तपते हुए सूर्य और चन्द्रमातक पहुँच गया; इस बातको सूर्यमण्डलमें स्थित हुए मुनिगणोंने भी देखा। फिर उन चक्रधारी भगवान्के विराट्रूपमें, जो समस्त विश्वका खजाना है, सम्पूर्ण देवता भी लीन हो गये। भगवान् वामनके उस विक्रमकी कहीं तुलना नहीं है, मैं इस समय उस विक्रमका स्तवन करता हूँ।

भगवान् श्रीविष्णु कहते हैं—राजन्! इस प्रकार यह सारा वृत्तान्त मैंने तुम्हें सुना दिया।

कुंजल पक्षी तथा महात्मा च्यवनका चरित्र नाना प्रकारकी कल्याणमयी वार्ताओंसे युक्त है। मैं इसका वर्णन करूँगा, तुम सुनो।

कुंजल पक्षी और उसके पुत्र कपिंजलका संवाद—कामोदाकी कथा और विहुण्ड दैत्यका वध

भगवान् श्रीविष्णु कहते हैं—धर्मात्मा कुंजलने अपने चौथे पुत्र कपिंजलको पुकार कर बड़ी प्रसन्नताके साथ कहा—'बेटा! तुम मेरे उत्तम पुत्र हो; बोलो, आहार लानेके लिये यहाँसे किस स्थानपर जाते हो? वहाँ तुमने कौन-सी अपूर्व बात देखी अथवा सुनी है? वह मुझे बताओ।'

कपिंजलने कहा—पिताजी! मैंने जो अपूर्व बात देखी है, उसे बताता हूँ, सुनिये। कैलास सब पर्वतोंमें श्रेष्ठ है। उसकी कान्ति चन्द्रमाके समान श्वेत है। वह नाना प्रकारकी धातुओंसे व्याप्त है। भाँति-भाँतिके वृक्ष उसकी शोभा बढ़ाते हैं। गंगाजीका शुभ्र एवं पावन जल सब ओरसे उस पर्वतको नहलाता रहता है। वहाँसे सहस्रों विख्यात नदियोंका प्रादुर्भाव हुआ है। उस पर्वत-शिखरपर भगवान् शिवका मन्दिर है, जहाँ कोटि-कोटि शिवगण भरे रहते हैं। पिताजी! एक दिन मैं उसी कैलासपर, जो शंकरजीका घर है, गया था। वहाँ मुझे एक ऐसा आश्चर्य दिखायी दिया, जो पहले कभी देखने या सुननेमें नहीं आया था। मैं उस अद्भुत घटनाका वर्णन करता हूँ, सुनिये। गिरिराज मेरुका पवित्र शिखर महान् अभ्युदयसे युक्त है; वहाँसे हिम और दूधके समान रंगवाला गंगानदीका प्रवाह बड़े वेगसे पृथ्वीकी ओर गिरता है। वह स्रोत कैलासके शिखरपर पहुँचकर सब ओर फैल जाता है। उस जलसे दस योजनका लंबा-चौड़ा एक भारी तालाब बन गया है, उसे 'गंगाह्रद' कहते हैं। वह तालाब परम पवित्र और निर्मल जलसे सुशोभित है।

महामते! गंगाह्रदके सामने ही शिलाके ऊपर एक कन्या बैठी थी, जिसके केश खुले थे। रूपके वैभवसे उसकी बड़ी शोभा हो रही थी। वह कन्या दिव्य रूप और सब प्रकारके शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न थी। उसने दिव्य आभूषण धारण कर रखे थे। उस स्थानपर वह बड़ी शोभासम्पन्न दिखायी देती थी। पता नहीं, वह
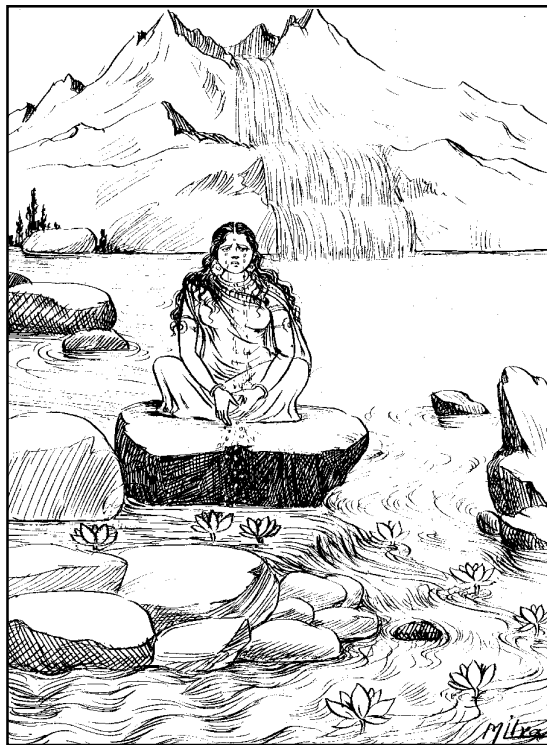
गिरिराज हिमालयकी कन्या पार्वती थी या समुद्रतनया लक्ष्मी। इन्द्र या यमराजकी पत्नी भी ऐसी सुन्दरी नहीं दिखायी देतीं। उसके शील, सद्भाव, गुण तथा रूप जैसे दीख पड़ते थे, वैसे अन्य दिव्यांगनाओंमें नहीं दृष्टिगोचर होते। शिलाके ऊपर बैठी हुई वह कन्या किसी भारी दुःखसे व्याकुल थी और फूट-फूटकर रो रही थी और कोई स्वजन-सम्बन्धी उसके पास नहीं थे। नेत्रोंसे गिरते हुए निर्मल अश्रुबिन्दु मोतीके दाने-जैसे चमक रहे थे। वे सब-के-सब गंगाजीके स्रोतमें ही गिरते और सुन्दर कमल-पुष्पके रूपमें परिणत हो जाते थे। इस प्रकार अगणित सुन्दर पुष्प गंगाजीके जलमें पड़े थे और पानीके वेगके साथ बह रहे थे।

पिताजी! इस प्रकार मैंने यह अपूर्व बात देखी है। आप वक्ताओंमें श्रेष्ठ हैं; यदि इसका कारण जानते हों तो मुझपर कृपा करके बतायें। गंगाके मुहानेपर जो सुन्दरी स्त्री रो रही थी, जिसके नेत्रोंसे गिरे हुए आँसू सुन्दर कमलके फूल बन जाते थे, वह कौन थी? यदि मैं आपका प्रिय हूँ तो मुझे यह सारा रहस्य बताइये।

कुंजल बोला—बेटा! बता रहा हूँ, सुनो। यह देवताओंका रचा हुआ वृत्तान्त है। इसमें महात्मा श्रीविष्णुके चरित्रका वर्णन है, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है। एक समयकी बात है, राजा नहुषने संग्राममें महापराक्रमी हुंड नामक दैत्यको मार डाला। उस दैत्यके पुत्रका नाम विहुण्ड था, वह भी बड़ा पराक्रमी और तपस्वी था। उसने जब सुना कि राजा नहुषने उसके पिताका मन्त्री तथा सेनासहित वध किया है, तब उसे बड़ा क्रोध हुआ और वह देवताओंका विनाश करनेके लिये उद्यत होकर तपस्या करने लगा। तपसे बढ़े हुए उस दुष्ट दैत्यका पुरुषार्थ सम्पूर्ण देवताओंको विदित था। वे जानते थे कि समरभूमिमें विहुण्डके वेगको सहन करना अत्यन्त कठिन है। उधर, विहुण्डके मनमें त्रिलोकीका नाश कर डालनेकी इच्छा हुई। उसने निश्चय किया, मैं मनुष्यों और देवताओंको मारकर पिताके वैरका बदला लूँगा। इस प्रकार अत्याचारके लिये उद्यत हो देवताओं और ब्राह्मणोंके लिये कण्टकरूप उस पापी दैत्यने उपद्रव मचाना आरम्भ किया। समस्त प्रजाको पीड़ा देने लगा। उसके तेजसे संतप्त होकर इन्द्र आदि देवता परम तेजस्वी देवाधिदेव भगवान् श्रीविष्णुकी शरणमें गये और बोले—'भगवन्! विहुण्डके महान् भयसे आप हमारी रक्षा करें।'

भगवान् विष्णु बोले—पापी विहुण्ड देवताओंके लिये कण्टकरूप है, मैं अवश्य उसका नाश करूँगा।

देवताओंसे यों कहकर भगवान् श्रीविष्णुने मायाको प्रेरित किया। सम्पूर्ण विश्वको मोहित करनेवाली महाभागा विष्णुमायाने विहुण्डका वध करनेके लिये रूप और लावण्यसे सुशोभित तरुणी स्त्रीका रूप धारण किया। वह नन्दनवनमें आकर तपस्या करने लगी। इसी समय दैत्यराज विहुण्ड देवताओंका वध करनेके लिये दिव्य मार्गसे चला। नन्दनवनमें पहुँचनेपर उसकी दृष्टि तपस्विनी मायापर पड़ी। वह इस बातको नहीं जान सका कि यह मेरा ही नाश करनेके लिये उत्पन्न हुई है। यह सुन्दरी स्त्री कालरूपा है, यह बात उसकी समझमें नहीं आयी। मायाका शरीर तपाये हुए सुवर्णके समान दमक रहा था। रूपका वैभव उसकी शोभा बढ़ा रहा था। पापात्मा विहुण्ड उस सुन्दरी युवतीको देखते ही लुभा गया और बोला—'भद्रे! तुम कौन हो? कौन हो? तुम्हारे शरीरका मध्यभाग बड़ा सुन्दर है, तुम मेरे चित्तको मथे डालती हो। सुमुखि! मुझे संगम प्रदान करो और कामजनित वेदनासे मेरी रक्षा करो। देवेश्वरि! अपने समागमके बदले इस समय तुम जिस-जिस वस्तुकी इच्छा करो, वह सब तुम्हें देनेको तैयार हूँ।'

माया बोली—दानव! यदि तुम मेरा ही उपभोग करना चाहते हो, तो सात करोड़ कमलके फूलोंसे भगवान् शंकरकी पूजा करो। वे फूल कामोदसे उत्पन्न, दिव्य, सुगन्धित और देवदुर्लभ होने चाहिये। उन्हीं फूलोंकी सुन्दर माला बनाकर मेरे कण्ठमें भी पहनाओ। तभी मैं तुम्हारी प्रिय भार्या बनूँगी।

विहुण्डने कहा—देवि! मैं ऐसा ही करूँगा। तुम्हारा माँगा हुआ वर तुम्हें दे रहा हूँ।

यह कहकर दैत्यराज विहुण्ड जितने भी दिव्य एवं

पवित्र वन थे, उनमें विचरण करने लगा। उसके चित्तपर कामका आवेश छा रहा था। बहुत खोजनेपर भी उसे कामोद नामक वृक्ष कहीं नहीं दिखायी दिया। वह स्वयं इधर-उधर जाकर पूछ-ताछ करता रहा; किन्तु सर्वत्र लोगोंके मुँहसे उसे यही उत्तर मिलता था कि 'यहाँ कामोद वृक्ष नहीं है।' दुष्टात्मा विहुण्ड उस वृक्षका पता लगाता हुआ शुक्राचार्यके पास गया और भक्तिपूर्वक मस्तक झुकाकर पूछने लगा—'ब्रह्मन्! मुझे फूलोंसे लदे सुन्दर कामोद वृक्षका पता बताइये।'

शुक्राचार्य बोले—दानव! कामोद नामका कोई वृक्ष नहीं है। कामोदा तो एक स्त्रीका नाम है। वह जब किसी प्रसंगसे अत्यन्त हर्षमें भरकर हँसती है, तब उसके मनोहर हास्यसे सुगन्धित, श्रेष्ठ तथा दिव्य कामोद पुष्प उत्पन्न होते हैं। उनका रंग अत्यन्त पीला होता है तथा वे दिव्य गन्धसे युक्त होते हैं। उनमेंसे एक फूलके द्वारा भी जो भगवान् शंकरकी पूजा करता है, उसकी बड़ी-से-बड़ी कामनाको भी भगवान् शिव पूर्ण कर देते हैं। कामोदाके रोदनसे भी वैसे ही सुन्दर फूल उत्पन्न होते हैं; किन्तु उनमें सुगन्ध नहीं होती। अतः उनका स्पर्श नहीं करना चाहिये।

शुक्राचार्यकी यह बात सुनकर विहुण्डने पूछा—'भृगुनन्दन! कामोदा कहाँ रहती है?'

शुक्राचार्य बोले—सम्पूर्ण पातकोंका शोधन करनेवाले परम पावन गंगाद्वार (हरिद्वार) नामक तीर्थके पास कामोद नामक पुर है, जिसे विश्वकर्माने बनाया था। उस कामोद नगरमें दिव्य भोगोंसे विभूषित एक सुन्दरी स्त्री रहती है, जो सम्पूर्ण देवताओंसे पूजित है। वह भाँति-भाँतिके आभूषणोंसे अत्यन्त सुशोभित जान पड़ती है। तुम वहीं चले जाओ और उस युवतीकी पूजा करो। साथ ही किसी पवित्र उपायका अवलम्बन करके उसे हँसाओ।

यह कहकर शुक्राचार्य चुप हो गये और वह महातेजस्वी दानव अपना कार्य सिद्ध करनेके लिये उद्यत हुआ।

कपिंजलने पूछा—पिताजी! कामोदाके हास्यसे जो पवित्र, दिव्यगन्धसे युक्त और देवता तथा दानवोंके लिये दुर्लभ सुन्दर फूल उत्पन्न होते हैं, उन्हें सम्पूर्ण देवता क्यों चाहते हैं? उन हास्यजनित फूलोंसे पूजित होनेपर भगवान् शंकर क्यों सन्तुष्ट होते हैं? उस फूलका क्या गुण है? कामोदा कौन है और वह किसकी पुत्री है?

कुंजल बोला—पूर्वकालकी बात है, देवताओं और बड़े-बड़े दैत्योंने अमृतके लिये परस्पर उत्तम सौहार्द स्थापित करके उद्यमपूर्वक क्षीरसागरका मन्थन किया। देवताओं और दैत्योंके मथनेसे चार कन्याएँ प्रकट हुईं। फिर कलशमें रखा हुआ पुण्यमय अमृत दिखायी पड़ा। उपर्युक्त कन्याओंमेंसे एकका नाम लक्ष्मी था, दूसरी वारुणी नामसे प्रसिद्ध थी, तीसरीका नाम कामोदा और चौथीका ज्येष्ठा था। कामोदा अमृतकी लहरसे प्रकट हुई थी। वह भविष्यमें भगवान् श्रीविष्णुकी प्रसन्नताके लिये वृक्षरूप धारण करेगी और सदा ही श्रीविष्णुको आनन्द देनेवाली होगी। वृक्षरूपमें वह परम पवित्र तुलसीके नामसे विख्यात होगी। उसके साथ भगवान् जगन्नाथ सदा ही रमण करेंगे। जो तुलसीका एक पत्ता भी ले जाकर श्रीकृष्णभगवान्‌को समर्पित करेगा, उसका भगवान् बड़ा उपकार मानेंगे और 'मैं इसे क्या दे डालूँ?' यह सोचते हुए वे उसके ऊपर बहुत प्रसन्न होंगे।

इस प्रकार पूर्वोक्त चार कन्याओंमेंसे जो कामोदा नामसे प्रसिद्ध देवी है, वह जब हर्षसे गद्गद होकर बोलती और हँसती है, तब उसके मुखसे सुनहरे रंगके सुगन्धित फूल झड़ते हैं। वे फूल बड़े सुन्दर होते हैं। कभी कुम्हलाते नहीं हैं। जो उन फूलोंका यत्नपूर्वक संग्रह करके उनके द्वारा भगवान् शंकर, ब्रह्मा तथा विष्णुकी पूजा करता है, उसके ऊपर सब देवता संतुष्ट होते हैं और वह जो-जो चाहता है, वही-वही उसे अर्पण करते हैं। इसी प्रकार जब कामोदा किसी दुःखसे दुःखी होकर रोने लगती है, तब उसकी आँखोंके आँसुओंसे भी फूल पैदा होते और झड़ते हैं। महाभाग! वे फूल भी देखनेमें बड़े मनोहर होते हैं; किन्तु उनमें सुगन्ध नहीं होती। वैसे फूलोंसे जो शंकरका पूजन करता है, उसे

दु:ख और संताप होता है। जो पापात्मा एक बार भी उस तरहके फूलोंसे देवताओंकी पूजा करता है, उसे वे निश्चय ही दु:ख देते हैं।

भगवान् श्रीविष्णुने पापी विहुण्डके पराक्रम और दु:साहसपर दृष्टि डालकर देवर्षि नारदको उसके पास भेजा। उस समय वह दुरात्मा दानव कामोदाके पास जा रहा था। नारदजी उसके समीप जाकर हँसते हुए बोले—'दैत्यराज! कहाँ जा रहे हो? इस समय तुम बड़े उतावले और व्यग्र जान पड़ते हो।' विहुण्डने ब्रह्मकुमार नारदजीको हाथ जोड़कर प्रणाम किया और कहा—'द्विजश्रेष्ठ! मैं कामोद पुष्पके लिये चला हूँ।' यह सुनकर नारदजीने कहा—'दैत्य! तुम कामोद नामक श्रेष्ठ नगरमें कदापि न जाना; क्योंकि वहाँ सम्पूर्ण देवताओंको विजय दिलानेवाले परम बुद्धिमान् भगवान् श्रीविष्णु रहते हैं। दानव! जिस उपायसे कामोद नामक फूल तुम्हारे हाथ लग सकते हैं, वह मैं बता रहा हूँ। वे दिव्य पुष्प गंगाजीके जलमें गिरेंगे और प्रवाहके पावन जलके साथ बहते हुए तुम्हारे पास आ जायँगे। वे देखनेमें बड़े सुन्दर होंगे। तुम उन्हें पानीसे निकाल लाना। इस प्रकार उन फूलोंका संग्रह करके अपना मनोरथ सिद्ध करो।'

दानवश्रेष्ठ विहुण्डसे यह कहकर धर्मात्मा नारदजी कामोद नगरकी ओर चल दिये। जाते-जाते उन्हें वह दिव्य नगर दिखायी दिया। उस नगरमें प्रवेश करके वे कामोदाके घर गये और उससे मिले। कामोदाने स्वागत आदिके द्वारा मुनिको प्रसन्न किया और मीठे वचनोंमें कुशल-समाचार पूछा। द्विजश्रेष्ठ नारदजीने कामोदाके दिये हुए दिव्य सिंहासनपर बैठकर उससे पूछा—'भगवान् श्रीविष्णुके तेजसे प्रकट हुई कल्याणमयी देवी! तुम यहाँ सुखसे रहती हो न? किसी तरहका कष्ट तो नहीं है?'

कामोदा बोली—महाभाग! मैं आप-जैसे महात्माओं तथा भगवान् श्रीविष्णुकी कृपासे सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर रही हूँ। इस समय आपसे कुछ प्रश्नोत्तर करनेका कारण उपस्थित हुआ है; आप मेरे प्रश्नका समाधान कीजिये। मुने! सोते समय मैंने एक दारुण स्वप्न देखा है, मानो किसीने मेरे सामने आकर कहा है—'अव्यक्तस्वरूप भगवान् हृषीकेश संसारमें जायँगे—वहाँ जन्म ग्रहण करेंगे।' महामते! ऐसा स्वप्न देखनेका क्या कारण है? आप ज्ञानवानोंमें श्रेष्ठ हैं, कृपया बताइये।

नारदजीने कहा—भद्रे! मनुष्य जो स्वप्न देखते हैं, वह तीन प्रकारका होता है—वातिक (वातज), पैत्तिक (पित्तज) और कफज। सुन्दरी! देवताओंको न नींद आती है न स्वप्न। मनुष्य शुभ और अशुभ नाना प्रकारके स्वप्न देखता है। वे सभी स्वप्न कर्मसे प्रेरित होकर दृष्टिपथमें आते हैं। पर्वत तथा ऊँचे-नीचे नाना प्रकारके दुर्गम स्थानोंका दर्शन होना वातिक स्वप्न है। अब कफाधिक्यके कारण दिखायी देनेवाले स्वप्न बता रहा हूँ। जल, नदी, तालाब तथा पानीके विभिन्न स्थान—ये सब कफज स्वप्नके अन्तर्गत हैं। देवि! अग्नि तथा बहुत-से उत्तम सुवर्णका जो दर्शन होता है, उसे पैत्तिक स्वप्न समझो। अब मैं भावी (भविष्यमें तुरंत फल देनेवाले) स्वप्नका वर्णन करता हूँ—प्रात:काल जो कर्मप्रेरित शुभ या अशुभ स्वप्न दिखायी देता है, वह क्रमश: लाभ और हानिको व्यक्त करनेवाला है। सुन्दरी! इस प्रकार मैंने तुमसे स्वप्नकी अवस्थाएँ बतायीं। भगवान् श्रीविष्णुके सम्बन्धमें यह बात अवश्य होनेवाली है, इसी कारण तुम्हें दु:स्वप्न दिखायी दिया है।

कामोदा बोली—नारदजी! सम्पूर्ण देवता भी जिनका अन्त नहीं जानते, उन्हें भी जिनके स्वरूपका ज्ञान नहीं है, जिनमें सम्पूर्ण विश्वका लय होता है, जिन्हें विश्वात्मा कहते हैं और सारा संसार जिनकी मायासे मुग्ध हो रहा है, वे मेरे स्वामी जगदीश्वर श्रीविष्णु संसारमें क्यों जन्म ले रहे हैं?

नारदजीने कहा—देवि! इसका कारण सुनो; महर्षि भृगुके शापसे भगवान् संसारमें अवतार लेनेवाले हैं। [यही बात बतानेके लिये उन्होंने मुझे तुम्हारे पास भेजा है।] इसीलिये तुम्हें दु:स्वप्नका दर्शन हुआ है।

बेटा! यों कहकर नारदजी ब्रह्मलोकको चले गये।

उस समय कामोदा भगवान्‌के दुःखसे दुःखी हो गयी और गंगाजीके तटपर जलके समीप बैठकर बारंबार हाहाकार करती हुई करुण स्वरसे विलाप करने लगी। वह अपने नेत्रोंसे जो दुःखके आँसू बहाती थी, वे ही गंगाजीके जलमें गिरते थे। पानीमें पड़ते ही वे पुनः पद्म-पुष्पके रूपमें प्रकट होते और धाराके साथ बह जाते थे। दानवश्रेष्ठ विहुण्ड भगवान् श्रीविष्णुकी मायासे मोहित था। उसने उन फूलोंको देखा; किन्तु महर्षि शुक्राचार्यके बतानेपर भी वह इस बातको न जान सका कि ये दुःखके आँसुओंसे उत्पन्न फूल हैं। उन्हें देखकर वह असुर बड़े हर्षमें भर गया और उन सबको जलसे निकाल लाया। फिर वह उन खिले हुए पद्म-पुष्पोंसे गिरिजापतिकी पूजा करने लगा। विष्णुकी मायाने उसके मनको हर लिया था; अतः विवेकशून्य होकर उस दैत्यराजने सात करोड़ फूलोंसे भगवान् शिवका पूजन किया। यह देख जगन्माता पार्वतीको बड़ा क्रोध हुआ; उन्होंने शंकरजीसे कहा—'नाथ! इस दुर्बुद्धि दानवका कुकर्म तो देखिये—यह शोकसे उत्पन्न फूलोंद्वारा आपका पूजन कर रहा है, इसे दुःख और संताप ही मिलेगा; यह सुख पानेका अधिकारी नहीं है।'

भगवान् शिव बोले—भद्रे! तुम सच कहती हो, इस पापीने सत्यपूर्ण उद्योगको पहलेसे ही छोड़ रखा है। इसकी चेतना कामसे आकुल है; अतः यह दुष्टात्मा गंगाजीके जलमें पड़े हुए शोकजनित फूलोंको ग्रहण करता है तथा उनसे मेरा पूजन भी करता है। दुःख और शोकसे उत्पन्न ये फूल तो शोक और संताप ही देनेवाले हैं; इनके द्वारा किसीका कल्याण कैसे हो सकता है। देवि! मैं तो समझता हूँ, यह ध्यानहीन है; क्योंकि अब पापाचारी हो गया है। अतः तुम इसे अपने ही तेजसे मार डालो।

भगवान् शंकरके ये वचन सुनकर भगवती पार्वतीने कहा—'नाथ! मैं आपकी आज्ञासे इसका अवश्य संहार करूँगी।' यों कहकर देवी वहाँ गयीं और विहुण्डके वधका उपाय सोचने लगीं। वे एक महात्मा ब्राह्मणका मायामय रूप बनाकर पारिजातके सुन्दर फूलोंसे अपने स्वामी शंकरजीकी पूजा करने लगीं। इतनेमें ही उस पापी दानवने आकर देवीकी दिव्य पूजाको नष्ट कर दिया। वह दुष्टात्मा कालके वशीभूत हो चुका था। उसने पार्वतीद्वारा पारिजातके फूलोंसे की हुई पूजाको मिटा दिया और स्वयं लोभवश शोकजनित पुष्पोंसे शंकरजीका पूजन करने लगा। उस समय उस दुष्टके नेत्रोंसे आँसूकी अविरल बूँदें निकलकर शिवलिंगके मस्तकपर पड़ रही थीं। यह देखकर देवीने ब्राह्मणके रूपमें ही पूछा—आप कौन हैं, जो शोकाकुल चित्तसे भगवान् शिवकी पूजा कर रहे हैं? ये शोकजनित अपवित्र आँसू भगवान्‌के मस्तकपर पड़ रहे हैं। आप ऐसा क्यों करते हैं? मुझे इसका कारण बताइये।

विहुण्ड बोला—ब्रह्मन्! कुछ दिन हुए मैंने एक सुन्दरी स्त्री देखी, जो सब प्रकारकी सौभाग्य-सम्पदासे युक्त और समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न थी। देखनेमें वह कामदेवका विशाल निकेतन जान पड़ती थी। उसके मोहसे मैं संतप्त हो उठा, कामसे मेरा चित्त व्याकुल हो गया। जब मैंने उससे समागमकी प्रार्थना की, तब वह बोली—'कामोदके फूलोंसे भगवान् शंकरकी पूजा करो तथा उन्हीं फूलोंको माला बनाकर मेरे कण्ठमें पहनाओ। सात करोड़ पुष्पोंसे महेश्वरका पूजन करो।' उस स्त्रीको पानेके लिये ही मैं पूजा करता हूँ; क्योंकि भगवान् शिव अभीष्ट फलके दाता हैं।

देवीने कहा—अरे! कहाँ तेरा भाव है, कहाँ ध्यान है और कहाँ तुझ दुरात्माका ज्ञान है? [तू कामोद पुष्पोंसे पूजा कर रहा है न?] अच्छा, बता, कामोदाका सुन्दर रूप कैसा है? तूने उसके हास्यसे उत्पन्न सुन्दर फूल कहाँ पाये हैं?

विहुण्ड बोला—'ब्रह्मन्! मैं भाव और ध्यान कुछ नहीं जानता। कामोदाको मैंने कभी देखा भी नहीं है। गंगाजीके जलमें जो फूल बहकर आते हैं, उन्हींका मैं प्रतिदिन संग्रह करता हूँ और उन्हींसे एकमात्र शंकरजीका पूजन करता हूँ। महात्मा शुक्राचार्यने मेरे सामने इस फूलका परिचय दिया था। मैं उन्हींकी आज्ञासे नित्यप्रति पूजा करता हूँ।

देवीने कहा—पापी! ये फूल कामोदाके रोदनसे उत्पन्न हुए हैं। इनकी उत्पत्ति दुःखसे हुई है। इन्हींसे तू पापपूर्ण भावना लेकर, प्रतिदिन भगवान्‌की पूजा करता है, किन्तु दिव्य पूजा नष्ट करके तू शोकजनित पुष्पोंसे पूजन कर रहा है—यह आज तेरे द्वारा भयंकर अपराध हुआ है; इसके लिये मैं तुझे दण्ड दूँगा।

यह सुनकर कालके वशीभूत हुआ दानव विहुण्ड बोला—'रे दुष्ट! रे अनाचारी! तू मेरे कर्मकी निन्दा करता है? तुझे अभी इस तलवारसे मौतके घाट उतारता हूँ।' यों कहकर वह ब्राह्मणको मारनेके लिये तीखी तलवार ले उसकी ओर झपटा। यह देख ब्राह्मणरूपमें खड़ी हुई भगवती परमेश्वरी कुपित हो उठीं और ज्यों ही वह दैत्य उनके पास पहुँचा त्यों ही उन्होंने अपने मुँहसे 'हुंकार' का उच्चारण किया। हुंकारकी ध्वनि होते ही वह अधम दानव निश्चेष्ट होकर गिर पड़ा, मानो वज्रके आघातसे पर्वत फट पड़ा हो। उस लोक-संहारक दानवके मारे जानेपर सम्पूर्ण जगत् स्वस्थ हो गया, सबके दुःख और सन्ताप दूर हो गये। बेटा! गंगाजीके तीरपर दुःखसे व्याकुलचित्त होकर बैठी हुई जो सुन्दरी स्त्री रो रही थी, [वह कामोदा ही थी;] उसके रोनेका यही कारण था। यह सारा रहस्य जो तुमने पूछा था, मैंने कह सुनाया।

कुंजलका च्यवनको अपने पूर्व-जीवनका वृत्तान्त बताकर सिद्ध पुरुषके कहे हुए ज्ञानका उपदेश करना, राजा वेनका यज्ञ आदि करके विष्णुधाममें जाना तथा पद्मपुराण और भूमिखण्डका माहात्म्य

भगवान् श्रीविष्णु कहते हैं—राजन्! धर्मात्मा पक्षी महाप्राज्ञ कुंजल अपने पुत्रोंसे यों कहकर चुप हो गया। तब वटके नीचे बैठे हुए द्विजश्रेष्ठ च्यवनने उस महाशुकसे कहा—'महात्मन्! आप कौन हैं, जो पक्षीके रूपसे धर्मका उपदेश कर रहे हैं? आप देवता, गन्धर्व अथवा विद्याधर तो नहीं हैं? किसके शापसे आपको यह तोतेकी योनि प्राप्त हुई है? यह अतीन्द्रिय ज्ञान आपको किससे प्राप्त हुआ है?'

कुंजल बोला—सिद्धपुरुष! मैं आपको जानता हूँ; आपके कुल, उत्तम गोत्र, विद्या, तप और प्रभावसे भी परिचित हूँ तथा आप जिस उद्देश्यसे पृथ्वीपर विचरण करते हैं, उसका भी मुझे ज्ञान है। श्रेष्ठ व्रतका पालन करनेवाले ब्राह्मण! आपका स्वागत है। मैं आपकी पूछी हुई सब बातें बताऊँगा। इस पवित्र आसनपर बैठकर शीतल छायाका आश्रय लीजिये। अव्यक्त परमात्मासे ब्रह्माजीका प्रादुर्भाव हुआ। उनसे प्रजापति भृगु प्रकट हुए, जो ब्रह्माजीके समान गुणोंसे युक्त हैं। भृगुसे भार्गव (शुक्राचार्य)-का जन्म हुआ, जो सम्पूर्ण धर्म और अर्थशास्त्रके तत्त्वज्ञ हैं। उन्हींके वंशमें आपने जन्म ग्रहण किया है। पृथ्वीपर आप च्यवनके नामसे विख्यात हैं। [अब मेरा परिचय सुनिये—] मैं देवता, गन्धर्व या विद्याधर नहीं हूँ। पूर्वजन्ममें कश्यपजीके कुलमें एक श्रेष्ठ ब्राह्मण उत्पन्न हुए थे। उन्हें वेद-वेदांगोंके तत्त्वका ज्ञान था। वे सब धर्मोंको प्रकाशित करनेवाले थे। उनका नाम विद्याधर था; वे कुल, शील और गुण—सबसे युक्त थे। विप्रवर विद्याधर अपनी तपस्याके प्रभावसे सदा शोभायमान दिखायी देते थे। उनके तीन पुत्र हुए—वसुशर्मा, नामशर्मा और धर्मशर्मा। उनमें धर्मशर्मा मैं ही था, अवस्थामें सबसे छोटा और गुणोंसे हीन। मेरे बड़े भाई वसुशर्मा वेद-शास्त्रोंके पारगामी विद्वान् थे। विद्या आदि सद्‌गुणोंके साथ उनमें सदाचार भी था। नामशर्मा भी उन्हींकी भाँति महान् पण्डित थे। केवल मैं ही महामूर्ख निकला। विप्रवर! मैं विद्याके उत्तम भाव और शुभ अर्थको कभी नहीं सुनता था और गुरुके घर भी कभी नहीं जाता था।

यह देख मेरे पिता मेरे लिये बहुत चिन्तित रहने लगे। वे सोचते—'मेरा यह पुत्र धर्मशर्मा कहलाता है,

पर इसके लिये यह नाम व्यर्थ है। इस पृथ्वीपर न तो यह विद्वान् हुआ और न गुणोंका आधार ही।' यह विचारकर मेरे धर्मात्मा पिताको बड़ा दुःख हुआ। वे मुझसे बोले—'बेटा! गुरुके घर जाओ और विद्या सीखो।' उनका यह कल्याणमय वचन सुनकर मैंने उत्तर दिया—'पिताजी! गुरुके घरपर बड़ा कष्ट होता है। वहाँ प्रतिदिन मार खानी पड़ती है, धमकाया जाता है। नींद लेनेकी भी फुरसत नहीं मिलती। इन असुविधाओंके कारण मैं गुरुके मन्दिरपर नहीं जाना चाहता, मैं तो आपकी कृपासे यहीं स्वच्छन्दतापूर्वक खेलूँगा, खाऊँगा और सोऊँगा।'

धर्मात्मा पिता मुझे मूर्ख समझकर बहुत दुःखी हुए और बोले—'बेटा! ऐसा दुःसाहस न करो। विद्या सीखनेका प्रयत्न करो। विद्यासे सुख मिलता है, यश और अतुलित कीर्ति प्राप्त होती है तथा ज्ञान, स्वर्ग और उत्तम मोक्ष मिलता है; अतः विद्या सीखो*। विद्या पहले तो दुःखका मूल जान पड़ती है, किन्तु पीछे वह बड़ी सुखदायिनी होती है। इसलिये तुम गुरुके घर जाओ और विद्या सीखो।' पिताके इतना समझानेपर भी मैं उनकी बात नहीं मानता और प्रतिदिन इधर-उधर घूम-फिरकर अपनी हानि किया करता था। विप्रवर! मेरा बर्ताव देखकर लोगोंने मेरा बड़ा उपहास किया, मेरी बड़ी निन्दा हुई। इससे मैं बहुत लज्जित हुआ। जान पड़ा यह लज्जा मेरे प्राण लेकर रहेगी। तब मैं विद्या पढ़नेको तैयार हुआ। [अवस्था अधिक हो चुकी थी,] सोचने लगा—'किस गुरुके पास चलकर पढ़ानेके लिये प्रार्थना करूँ?' इस चिन्तामें पड़कर मैं दुःख-शोकसे व्याकुल हो उठा। 'कैसे मुझे विद्या प्राप्त हो? किस प्रकार मैं गुणोंका उपार्जन करूँ? कैसे मुझे स्वर्ग मिले और किस तरह मैं मोक्ष प्राप्त करूँ?' यही सब सोचते-विचारते मेरा बुढ़ापा आ गया।

एक दिनकी बात है, मैं बहुत दुःखी होकर एक देवालयमें बैठा था; वहाँ अकस्मात् कोई सिद्ध महात्मा आ पहुँचे। मानो मेरे भाग्यने ही उन्हें भेज दिया था। उनका कहीं आश्रय नहीं था, वे निराहार रहते थे। सदा आनन्दमें मग्न और निःस्पृह थे। प्रायः एकान्तमें ही रहा करते थे। बड़े दयालु और जितेन्द्रिय थे। परब्रह्ममें लीन, ज्ञानी, ध्यानी और समाधिनिष्ठ थे। मैं उन परम बुद्धिमान् ज्ञानस्वरूप महात्माकी शरणमें गया और भक्तिसे मस्तक झुका उन्हें प्रणाम करके सामने खड़ा हो गया। मैं दीनताकी साक्षात् मूर्ति और मन्दभागी था। महात्माने मुझसे पूछा—'ब्रह्मन्! तुम इतने शोकमग्न कैसे हो रहे हो? किस अभिप्रायसे इतना दुःख भोगते हो?' मैंने अपनी मूर्खताका सारा पूर्व-वृत्तान्त उनसे कह सुनाया और निवेदन किया—'मुझे सर्वज्ञता कैसे प्राप्त हो? इसीके लिये मैं दुःखी हूँ। अब आप ही मुझे आश्रय देनेवाले हैं।'

सिद्ध महात्माने कहा—ब्रह्मन्! सुनो, मैं तुम्हारे सामने ज्ञानके स्वरूपका वर्णन करता हूँ। ज्ञानका कोई आकार नहीं है [ज्ञान परमात्माका स्वरूप है]। वह सदा सबको जानता है, इसलिये सर्वज्ञ है। मायामोहित मूढ़ पुरुष उसे नहीं प्राप्त कर सकते। ज्ञान भगवत्तत्त्वके चिन्तनसे उद्दीप्त होता है, उसकी कहीं भी तुलना नहीं है। ज्ञानसे ही परमात्माके स्वरूपका साक्षात्कार होता है। चन्द्रमा और सूर्य आदिके प्रकाशसे उसका दर्शन नहीं किया जा सकता। ज्ञानके न हाथ हैं न पैर; न नेत्र हैं न कान। फिर भी वह सर्वत्र गतिशील है। सबको ग्रहण करता और देखता है। सब कुछ सूँघता तथा सबकी बातें सुनता है। स्वर्ग, भूमि और पाताल—तीनों लोकोंमें प्रत्येक स्थानपर वह व्यापक देखा जाता है। जिनकी बुद्धि दूषित है, वे उसे नहीं जानते। ज्ञान सदा प्राणियोंके हृदयमें स्थित होकर काम आदि महाभोगों तथा महामोह आदि सब दोषोंको विवेककी आगसे दग्ध करता रहता है। अतः पूर्ण शान्तिमय होकर इन्द्रियोंके विषयोंका मर्दन—उनकी आसक्तिका नाश करना चाहिये। इससे समस्त तात्त्विक अर्थोंका साक्षात्कार करानेवाला ज्ञान

* विद्यया प्राप्यते सौख्यं यशः कीर्तिस्तथातुला॥ ज्ञानं स्वर्गः सुमोक्षश्च तस्माद्विद्यां प्रसाधय। (१२२। २५-२६)

प्रकट होता है। यह शान्तिमूलक ज्ञान निर्मल तथा पापनाशक है। इसलिये तुम शान्ति धारण करो; वह सब प्रकारके सुखोंको बढ़ानेवाली है। शत्रु और मित्रमें समान भाव रखो। तुम अपने प्रति जैसा भाव रखते हो, वैसा ही दूसरोंके प्रति भी बनाये रहो। सदा नियमपूर्वक रहकर आहारपर विजय प्राप्त करो, इन्द्रियोंको जीतो। किसीसे मित्रता न जोड़ो; वैरका भी दूरसे ही त्याग करो। निस्संग और निःस्पृह होकर एकान्त स्थानमें रहो। इससे तुम सबको प्रकाश देनेवाले ज्ञानी, सर्वदर्शी बन जाओगे। बेटा! उस स्थितिमें पहुँचनेपर तुम मेरी कृपासे एक ही स्थानपर बैठे-बैठे तीनों लोकोंमें होनेवाली बातोंको जान लोगे—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

कुंजल कहता है—विप्रवर! उन सिद्ध महात्माने ही मेरे सामने ज्ञानका रूप प्रकाशित किया था। उनकी आज्ञामें स्थित होकर मैं पूर्वोक्त भावनाका ही चिन्तन करने लगा। इससे सद्गुरुकी कृपा हुई, जिससे एक ही स्थानमें रहकर मैं त्रिभुवनमें जो कुछ हो रहा है, सबको जानता हूँ।

च्यवनने पूछा—खगश्रेष्ठ! आप तो ज्ञानवानोंमें श्रेष्ठ हैं, फिर आपको यह तोतेकी योनि कैसे प्राप्त हुई?

कुंजलने कहा—ब्रह्मन्! संसर्गसे पाप और संसर्गसे पुण्य भी होता है। अतः शुद्ध आचार-विचारवाले कल्याणमय पुरुषको कुसंगका त्याग कर देना चाहिये। एक दिन कोई पापी व्याध एक तोतेके बच्चेको बाँधकर उसे बेचनेके लिये आया। वह बच्चा देखनेमें बड़ा सुन्दर और मीठी बोली बोलनेवाला था। एक ब्राह्मणने उसे खरीद लिया और मेरी प्रसन्नताके लिये उसको मुझे दे दिया। मैं प्रतिदिन ज्ञान और ध्यानमें स्थित रहता था। उस समय वह तोतेका बच्चा बाल-स्वभावके कारण कौतूहलवश मेरे हाथपर आ बैठता और बोलने लगता—'तात! मेरे पास आओ, बैठो; स्नानके लिये जाओ और अब देवताओंका पूजन करो।' इस तरहकी मीठी-मीठी बातें वह मुझसे कहा करता था। उसके वाग्विनोदमें पड़कर मेरा सारा उत्तम ज्ञान चला गया।

एक दिन मैं फूल और फल लानेके लिये वनमें गया था। इसी बीचमें एक बिलाव आकर तोतेको उठा ले गया। यह दुर्घटना मुझे केवल दुःख देनेका कारण हुई। बिलाव उस पक्षीको मारकर खा गया। इस प्रकार उस तोतेकी मृत्यु सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ। असह्य शोकके कारण अत्यन्त पीड़ा होने लगी। मैं महान् मोह-जालमें बँधकर उसके लिये प्रलाप करने लगा। सिद्ध महात्माने जिस ज्ञानका उपदेश दिया था, उसकी याद जाती रही। तब तो मीठे वचन बोलनेवाले उस तोतेको तथा उसके ज्ञानको याद करके मैं 'हा वत्स! हा वत्स!' कहकर प्रतिदिन विलाप करने लगा।

इस प्रकार विलाप करता हुआ मैं शोकसे अत्यन्त पीड़ित हो गया। अन्ततोगत्वा उसी दुःखसे मेरी मृत्यु हो गयी। उसीकी भावनासे मोहित होकर मुझे प्राण त्यागना पड़ा। द्विजश्रेष्ठ! मृत्युके समय मेरा जैसा भाव था, जैसी बुद्धि थी, उसी भाव और बुद्धिके अनुसार मेरा तोतेकी योनिमें जन्म हुआ है। परन्तु मुझे जो गर्भवास प्राप्त हुआ, वह मेरे ज्ञान और स्मरण-शक्तिको जाग्रत् करनेवाला था। गर्भमें स्वयं ही मुझे अपने पूर्वकर्मका स्मरण हो आया। मैंने सोचा—'ओह! मुझ मूर्ख, अजितेन्द्रिय तथा पापीने यह क्या कर डाला।' फिर गुरुदेवके अनुग्रहसे मुझे उत्तम ज्ञान प्राप्त हुआ। उनके वाक्यरूपी स्वच्छ जलसे मेरे शरीरके भीतर और बाहरका सारा मल धुल गया। मेरा अन्तःकरण निर्मल हो गया। पूर्वजन्ममें मृत्युकाल उपस्थित होनेपर मैंने तोतेका ही चिन्तन किया और उसीकी भावनासे भावित होकर मैं मृत्युको प्राप्त हुआ। यही कारण है कि मुझे पृथ्वीपर तोतेके रूपमें पुनः जन्म लेना पड़ा। मृत्युके समय प्राणियोंका जैसा भाव रहता है, वे वैसे ही जीवके रूपमें उत्पन्न होते हैं। उनका शरीर, पराक्रम, गुण और स्वरूप—सब उसी तरहके होते हैं। वे भावस्वरूप होकर ही जन्म लेते हैं।*

* मरणे यादृशो भावः प्राणिनां परिजायते॥
तादृशाः स्युस्तु सत्त्वास्ते तद्रूपास्तत्पराक्रमाः। तद्गुणास्तत्स्वरूपाश्च भावभूता भवन्ति हि॥ (१२३। ४६-४७)

महामते! इस तोतेके शरीरमें मुझे अतुलित ज्ञान प्राप्त हुआ है, जिसके प्रभावसे मैं भूत, भविष्य और वर्तमान—तीनों कालोंको प्रत्यक्ष देखता हूँ। यहाँ रहकर भी उसी ज्ञानके प्रभावसे मुझे सब कुछ ज्ञात हो जाता है। विप्रवर! संसारमें भटकनेवाले मनुष्योंको तारनेके लिये गुरुके समान बन्धन-नाशक तीर्थ दूसरा कोई नहीं है।[१] भूतलपर प्रकट हुए जलसे बाहरका ही सारा मल नष्ट होता है; किन्तु गुरुरूपी तीर्थ जन्म-जन्मान्तरके पापोंका भी नाश कर डालता है। संसारमें जीवोंका उद्धार करनेके लिये गुरु चलता-फिरता उत्तम तीर्थ है।[२]

भगवान् श्रीविष्णु कहते हैं—नृपश्रेष्ठ! वह परम ज्ञानी शुक महात्मा च्यवनको इस प्रकार तत्त्वज्ञानका उपदेश देकर चुप हो गया। यह सब परम उत्तम जंगम तीर्थकी महिमाका वर्णन किया गया। राजन्! तुम्हारा कल्याण हो! तुम्हारे मनमें जो इच्छा हो, उसे वरके रूपमें माँग लो।

वेनने कहा—जनार्दन! मुझे राज्य पानेकी अभिलाषा नहीं है। मैं दूसरी कोई वस्तु भी नहीं चाहता। केवल आपके शरीरमें प्रवेश करना चाहता हूँ।

भगवान् श्रीविष्णु बोले—राजन्! तुम अश्वमेध और राजसूय यज्ञोंके द्वारा मेरा यजन करो। गौ, भूमि, सुवर्ण, अन्न और जलका दान दो। महामते! दानसे ब्रह्महत्या आदि घोर पाप भी नष्ट हो जाते हैं। दानसे चारों पुरुषार्थोंकी भी सिद्धि होती है, इसलिये मेरे उद्देश्यसे दान अवश्य करना चाहिये। जो जिस भावसे मेरे लिये दान देता है, उसके उस भावको मैं सत्य कर देता हूँ।[३] ऋषियोंके दर्शन और स्पर्शसे तुम्हारी पापराशि नष्ट हो चुकी है। यज्ञोंके अन्तमें तुम निश्चय ही मेरे शरीरमें आ मिलोगे।

वेनसे यों कहकर श्रीहरि अन्तर्धान हो गये। उनके अदृश्य हो जानेपर नृपश्रेष्ठ वेन बड़े हर्षके साथ घर आये और कुछ सोच-विचारकर अपने पुत्र पृथुको निकट बुला मधुर वाणीमें बोले—'बेटा! तुम वास्तवमें पुत्र हो। तुमने इस भूलोकमें बहुत बड़े पातकसे मेरा उद्धार कर दिया। मेरे वंशको उज्ज्वल बना दिया। मैंने अपने दोषोंसे इस कुलका नाश कर दिया था, किन्तु तुमने फिर इसे चमका दिया है। अब मैं अश्वमेध यज्ञके द्वारा भगवान्का यजन करूँगा और नाना प्रकारके दान दूँगा। फिर भगवान् विष्णुकी कृपासे उनके उत्तम धामको जाऊँगा। अतः महाभाग! अब तुम यज्ञकी उत्तम सामग्रियोंको जुटाओ और वेदोंके पारगामी विद्वान् ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करो।'

सूतजी कहते हैं—वेनकी आज्ञा पाकर परम धर्मात्मा राजकुमार पृथुने नाना प्रकारकी पवित्र सामग्रियाँ एकत्रित कीं तथा नाना देशोंमें उत्पन्न हुए समस्त ब्राह्मणोंको निमन्त्रित किया। तदनन्तर राजा वेनने अश्वमेध यज्ञ किया और ब्राह्मणोंको अनेक प्रकारके दान दिये। इसके बाद वे भगवान् विष्णुके धामको चले गये। महर्षियो! इस प्रकार मैंने आपलोगोंसे राजा पृथुके समस्त चरित्रका वर्णन किया। यह सब पापोंकी शान्ति और सम्पूर्ण दुःखोंका विनाश करनेवाला है। धर्मात्मा राजा पृथुने इस प्रकार पृथ्वीका राज्य किया और तीनों लोकोंसहित भूमण्डलकी रक्षा की। उन्होंने पुण्य-धर्ममय कर्मोंके द्वारा समस्त प्रजाका मनोरंजन किया।

यह मैंने आपलोगोंसे परम उत्तम भूमिखण्डका वर्णन किया है। पहला सृष्टिखण्ड है और दूसरा

१-तारणाय मनुष्याणां संसारे परिवर्तताम्। नास्ति तीर्थं गुरुसमं बन्धच्छेदकरं द्विज॥ (१२३।५०)

२-स्थलजाच्चोदकात् सर्वं बाह्यं मलं प्रणश्यति। जन्मान्तरकृतान्पापान् गुरुतीर्थं प्रणाशयेत्॥
संसारे तारणायैव जङ्गमं तीर्थमुत्तमम्। (१२३।५२-५३)

३-यादृशेनापि भावेन मामुद्दिश्य ददाति यः॥
तादृशं तस्य वै भावं सत्यमेव करोम्यहम्। (१२३।५८-५९)

भूमिखण्ड। अब भूमिखण्डके माहात्म्यका वर्णन आरम्भ करता हूँ। जो श्रेष्ठ मनुष्य इस खण्डके एक श्लोकका भी श्रवण करता है, उसके एक दिनका पाप नष्ट हो जाता है। जो श्रेष्ठ बुद्धिसे युक्त पुरुष इसके एक अध्यायको सुनता है, उसे पर्वके अवसरपर ब्राह्मणोंको एक हजार गोदान देनेका फल मिलता है। साथ ही उसपर भगवान् श्रीविष्णु भी प्रसन्न होते हैं। जो इस पद्मपुराणका प्रतिदिन पाठ करता है, उसपर कलियुगमें कभी विघ्नोंका आक्रमण नहीं होगा। ब्राह्मणो! अश्वमेध यज्ञका जो फल बतलाया जाता है, इस पद्मपुराणके पाठसे उसी फलकी प्राप्ति होती है। पुण्यमय अश्वमेध यज्ञ कलियुगमें नहीं होता, अतः उस समय यह पुराण ही अश्वमेधके समान फल देनेवाला है। कलियुगमें मनुष्य प्रायः पापी होते हैं, अतः उन्हें नरकके समुद्रमें गिरना पड़ता है; इसलिये उनको चाहिये कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंके साधक इस पुण्यमय पुराणका श्रवण करें। जिसने पुण्यके साधनभूत इस पद्मपुराणका श्रवण किया, उसने चतुर्वर्गके समस्त साधनोंको सिद्ध कर लिया। इसका श्रवण करनेवाले मनुष्यके ऊपर कभी भारी विघ्नका आक्रमण नहीं होता। धर्मपरायण पुरुषोंको पूरी पुराणसंहिताका श्रवण करना चाहिये। इससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी भी सिद्धि होती है। भूमिखण्डका श्रवण करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा रोग, दुःख और शत्रुओंके भयसे भी छुटकारा पाकर सदा सुखका अनुभव करता है। पद्मपुराणमें पहला सृष्टिखण्ड, दूसरा भूमिखण्ड, तीसरा स्वर्गखण्ड, चौथा पातालखण्ड और पाँचवाँ सब पापोंका नाश करनेवाला उत्तरखण्ड है।* ब्राह्मणो! इन पाँचों खण्डोंको सुननेका अवसर बड़े भाग्यसे प्राप्त होता है। सुननेपर ये मोक्ष प्रदान करते हैं—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

॥ भूमिखण्ड समाप्त ॥

---

* प्रथमं सृष्टिखण्डं हि भूमिखण्डं द्वितीयकम् । तृतीयं स्वर्गखण्डं च पातालं च चतुर्थकम्॥
पञ्चमं चोत्तरं खण्डं सर्वपापप्रणाशनम् । ....॥ (१२५।४८-४९)

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

संक्षिप्त पद्मपुराण

स्वर्गखण्ड

आदि सृष्टिके क्रमका वर्णन

नमामि गोविन्दपदारविन्दं सदेन्दिरानन्दनमुत्तमाढ्यम्।
जगज्जनानां हृदि संनिविष्टं महाजनैकायनमुत्तमोत्तमम्॥[1]

ऋषि बोले—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले रोमहर्षणजी[2]! आप पुराणोंके विद्वान् तथा परम बुद्धिमान् हैं। आजसे पहले हमलोग आपके मुँहसे पुराणोंकी अनेकों परम पावन कथाएँ सुन चुके हैं तथा इस समय भी भगवान्‌की कथा-वार्तामें ही लगे हैं। जीवोंके लिये सबसे महान् धर्म वही है, जिससे उनकी भगवान्‌में भक्ति हो। अतः सूतजी! आप फिर हमें श्रीहरिकी कथा सुनाइये; क्योंकि भगवच्चर्चाके अतिरिक्त दूसरी कोई बातचीत श्मशानभूमिके समान मानी गयी है। हमने सुना है तीर्थोंके रूपमें स्वयं भगवान् विष्णु ही इस भूतलपर विराजमान हैं; इसलिये आप पुण्य प्रदान करनेवाले तीर्थोंके नाम बताइये। साथ ही यह भी कहनेकी कृपा कीजिये कि यह चराचर जगत् किससे उत्पन्न हुआ है, किसके द्वारा इसका पालन होता है तथा प्रलयके समय किसमें यह लीन होता है। जगत्‌में कौन-कौन-से पुण्यक्षेत्र हैं? किन-किन पर्वतोंके प्रति पूज्यभाव रखना चाहिये? और मनुष्योंके पाप दूर करनेवाली परम पवित्र नदियाँ कौन-कौन-सी हैं? महाभाग! इन सबका आप क्रमशः वर्णन कीजिये।

सूतजीने कहा—द्विजवरो! पहले मैं आदि सर्गका वर्णन करता हूँ, जिसके द्वारा षड्विध ऐश्वर्यसे सम्पन्न सनातन परमात्माका ज्ञान होता है। प्रलयकालके पश्चात् इस सृष्टिकी कोई भी वस्तु शेष नहीं रह गयी थी। उस समय केवल ज्योतिःस्वरूप ब्रह्म ही शेष था, जो सबको उत्पन्न करनेवाला है। वह ब्रह्म नित्य, निरंजन, शान्त, निर्गुण, सदा ही निर्मल, आनन्दधाम और शुद्धस्वरूप है। संसार-बन्धनसे मुक्त होनेकी अभिलाषा रखनेवाले साधु पुरुष उसीको जाननेकी इच्छा करते हैं। वह ज्ञानस्वरूप होनेके कारण सर्वज्ञ, अनन्त, अजन्मा, अविकारी, अविनाशी, नित्यशुद्ध, अच्युत, व्यापक तथा सबसे महान् है। सृष्टिका समय आनेपर उस ब्रह्मने वैकारिक जगत्‌को अपनेमें लीन जानकर पुनः उसे उत्पन्न करनेका विचार किया। तब ब्रह्मसे प्रधान (मूल प्रकृति) प्रकट हुआ। प्रधानसे महत्तत्त्वकी उत्पत्ति हुई, जो सात्त्विक, राजस और तामस भेदसे तीन प्रकारका है। यह महत्तत्त्व प्रधानके द्वारा सब ओरसे आवृत है। फिर महत्तत्त्वसे वैकारिक (सात्त्विक), तैजस (राजस) और भूतादिरूप तामस—तीन प्रकारका अहंकार उत्पन्न हुआ। जिस प्रकार प्रधानसे महत्तत्त्व आवृत है, उसी प्रकार महत्तत्त्वसे अहंकार भी आवृत है। तत्पश्चात् भूतादि नामक तामस अहंकारने विकृत होकर भूत और तन्मात्राओंकी सृष्टि की।

इन्द्रियाँ तैजस कहलाती हैं—वे राजस अहंकारसे प्रकट हुई हैं। इन्द्रियोंके अधिष्ठाता दस देवता वैकारिक कहे गये हैं—उनकी उत्पत्ति सात्त्विक अहंकारसे हुई है। तत्त्वका विचार करनेवाले विद्वानोंने मनको ग्यारहवीं

१-मैं भगवान् विष्णुके उन चरणकमलोंको [भक्तिपूर्वक] प्रणाम करता हूँ, जो भगवती लक्ष्मीजीको सदा ही आनन्द प्रदान करनेवाले और उत्तम शोभासे सम्पन्न हैं, जिनका संसारके प्रत्येक जीवके हृदयमें निवास है तथा जो महापुरुषोंके एकमात्र आश्रय और श्रेष्ठसे भी श्रेष्ठ हैं।

२-स्वर्गखण्डसे लेकर आगेका अंश रोमहर्षणजीका सुनाया हुआ है। इसके पहलेका भाग इनके पुत्रने सुनाया था।

इन्द्रिय बताया है। विप्रगण! आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी—ये क्रमशः शब्दादि उत्तरोत्तर गुणोंसे युक्त हैं। ये पाँचोंभूत पृथक्-पृथक् नाना प्रकारकी शक्तियोंसे सम्पन्न हैं, किन्तु परस्पर संघटित हुए बिना वे प्रजाकी सृष्टि करनेमें समर्थ न हुए। इसलिये महत्तत्त्वसे लेकर पंचभूतपर्यन्त सभी तत्त्व परम पुरुष परमात्माद्वारा अधिष्ठित और प्रधानद्वारा अनुगृहीत होनेके कारण पूर्णरूपसे एकत्वको प्राप्त हुए। इस प्रकार एक-दूसरेसे संयुक्त होकर परस्परका आश्रय ले उन्होंने अण्डकी उत्पत्ति की। महाप्राज्ञ महर्षियो! इस तरह भूतोंसे प्रकट हो क्रमशः वृद्धिको प्राप्त हुआ वह विशाल अण्ड पानीके बुलबुलेकी तरह सब ओरसे समान—गोलाकार दिखायी देने लगा। वह पानीके ऊपर स्थित होकर ब्रह्मा (हिरण्यगर्भ)-के रूपमें प्रकट हुए भगवान् विष्णुका उत्तम स्थान बन गया। सम्पूर्ण विश्वके स्वामी अव्यक्त-स्वरूप भगवान् विष्णु स्वयं ही ब्रह्माजीका रूप धारण कर उस अण्डके भीतर विराजमान हुए।

उस समय मेरु पर्वतने उन महात्मा हिरण्यगर्भके लिये गर्भको ढकनेवाली झिल्लीका काम दिया, अन्य पर्वत जरायु—जेरके स्थानमें थे और समुद्र उसके भीतरका जल था। उस अण्डमें ही पर्वत और द्वीप आदिके सहित समुद्र, ग्रहों और ताराओंके साथ सम्पूर्ण लोक तथा देवता, असुर और मनुष्योंसहित सारी सृष्टि प्रकट हुई। आदि-अन्तरहित सनातन भगवान् विष्णुकी नाभिसे जो कमल प्रकट हुआ था, वही उनकी इच्छासे सुवर्णमय अण्ड हो गया। परमपुरुष भगवान् श्रीहरि स्वयं ही रजोगुणका आश्रय ले ब्रह्माजीके रूपमें प्रकट होकर संसारकी सृष्टिमें प्रवृत्त होते हैं। वे परमात्मा नारायणदेव ही सृष्टिके समय ब्रह्मा होकर समस्त जगत्की रचना करते हैं, वे ही पालनकी इच्छासे श्रीराम आदिके रूपमें प्रकट हो इसकी रक्षामें तत्पर रहते हैं तथा अन्तमें वे ही इस जगत्का संहार करनेके लिये रुद्रके रूपमें प्रकट हुए हैं।

भारतवर्षका वर्णन और वसिष्ठजीके द्वारा पुष्कर-तीर्थकी महिमाका बखान

सूतजी कहते हैं—महर्षिगण! अब मैं आपलोगोंसे परम उत्तम भारतवर्षका वर्णन करूँगा। राजा प्रियमित्र, देव, वैवस्वत मनु, पृथु, इक्ष्वाकु, ययाति, अम्बरीष, मान्धाता, नहुष, मुचुकुन्द, कुबेर, उशीनर, ऋषभ, पुरूरवा, राजा नृग, राजर्षि कुशिक, गाधि, सोम तथा राजर्षि दिलीपको, अन्यान्य बलिष्ठ क्षत्रिय राजाओंको एवं सम्पूर्ण भूतोंको ही यह उत्तम देश भारतवर्ष बहुत ही प्रिय रहा। इस देशमें महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्षवान्, विन्ध्य तथा पारियात्र—ये सात कुल-पर्वत हैं। इनके आसपास और भी हजारों पर्वत हैं। भारतवर्षके लोग जिन विशाल नदियोंका जल पीते हैं, उनके नाम ये हैं—गंगा, सिन्धु, सरस्वती, गोदावरी, नर्मदा, बाहुदा, शतद्रु (सतलज), चन्द्रभागा, यमुना, दृषद्वती, विपाशा (व्यास), वेत्रवती (बेतवा), कृष्णा, वेणी, इरावती, (इरावदी), वितस्ता (झेलम), पयोष्णी, देविका, वेदस्मृति, वेदशिरा, त्रिदिवा, सिन्धुलाकृमि, करीषिणी, चित्रवहा, त्रिसेना, गोमती, चन्दना, कौशिकी (कोसी), हृद्या, नाचिता, रोहितारणी, रहस्या, शतकुम्भा, सरयू, चर्मण्वती, हस्तिसोमा, दिशा, शरावती, भीमरथी, कावेरी, बालुका, तापी (ताप्ती), नीवारा, महिता, सुप्रयोगा, पवित्रा, कृष्णला, वाजिनी, पुरुमालिनी, पूर्वाभिरामा, वीरा, मालावती, पापहारिणी, पलाशिनी, महेन्द्रा, पाटलावती, असिक्नी, कुशवीरा, मरुत्वा, प्रवरा, मेना, होरा, घृतवती, अनाकती, अनुष्णी, सेव्या, कापी, सदावीरा, अधृष्या, कुशचीरा, रथचित्रा, ज्योतिरथा, विश्वामित्रा, कपिंजला, उपेन्द्रा, बहुला, कुवीरा, वैनन्दी, पिंजला, वेणा, तुंगवेगा, महानदी, विदिशा, कृष्णवेगा, ताम्रा, कपिला, धेनु, सकामा, वेदस्वा, हविःस्त्रावा, महापथा, क्षिप्रा (सिप्रा), पिच्छला, भारद्वाजी, कौर्णिकी, शोणा (सोन), चन्द्रमा, अन्तःशिला, ब्रह्ममेध्या, परोक्षा, रोही, जम्बूनदी (जम्मू), सुनासा, तपसा, दासी, सामान्या, वरुणा, असी, नीला, धृतिकरी,

पर्णाशा, मानवी, वृषभा तथा भाषा। द्विजवरो! ये तथा और भी बहुत-सी बड़ी-बड़ी नदियाँ है।

अब जनपदोंका वर्णन करता हूँ, सुनिये। कुरु, पांचाल, शाल्व, मात्रेय, जांगल, शूरसेन (मथुराके आसपासका प्रान्त), पुलिन्द, बौध, माल, सौगन्ध्य, चेदि, मत्स्य (जयपुरके आसपासका भूखण्ड), करूष, भोज, सिन्धु (सिंध), उत्तम, दशार्ण, मेकल, उत्कल, कोशल, नैकपृष्ठ, युगंधर, मद्र, कलिंग, काशि, अपरकाशि, जठर, कुकुर, कुन्ति, अवन्ति (उज्जैनके आसपासका देश), अपरकुन्ति, गोमन्त, मल्लक, पुण्ड्र, नृपवाहिक, अश्मक, उत्तर, गोपराष्ट्र, अधिराज्य, कुशट्ट, मल्लराष्ट्र, मालव (मालवा), उपवास्य, वक्रा, वक्रातप, मागध, सह्म, मलज, विदेह (तिरहुत), विजय, अंग (भागलपुरके आसपासका प्रान्त), वंग (बंगाल), यकृल्लोमा, मल्ल, सुदेष्ण, प्रह्लाद, महिष, शशक, बाह्लिक (बलख), वाटधान, आभीर, कालतोयक, अपरान्त, परान्त, पंकल, चर्मचण्डक, अटवीशेखर, मेरुभूत, उपावृत्त, अनुपावृत्त, सुराष्ट्र (सूरतके आसपासका देश), केकय, कुट्ट, माहेय, कक्ष, सामुद्र, निष्कुट, अन्ध, बहु, अन्तर्गिरि, बहिर्गिरि, मलद, सत्वतर, प्रावृषेय, भार्ग, भार्गव, भासुर, शक, निषाद, निषध, आनर्त्त (द्वारकाके आसपासका देश), नैर्ऋत, पूर्णल, पूतिमत्स्य, कुन्तल, कुशक, तीरग्रह, ईजिक, कल्पकारण, तिलभाग, मसार, मधुमत्त, ककुन्दक, काश्मीर, सिन्धुसौवीर, गान्धार (कंधार), दर्शक, अभीसार, कुद्रुत, सौरिल, दर्वी, दर्वावात, जामरथ, उरग, बलरट्ट, सुदामा, सुमल्लिक, बन्ध, करीकष, कुलिन्द, गन्धिक, वानायु, दश, पार्श्वरोमा, कुशबिन्दु, कच्छ, गोपालकच्छ, कुरुवर्ण, किरात, बर्बर, सिद्ध, ताम्रलिप्तिक, औड्रम्लेच्छ, सैरिन्ध्र और पर्वतीय। ये सब उत्तर भारतके जनपद बताये गये हैं।

मुनिवरो! अब दक्षिण भारतके जनपदोंका वर्णन किया जाता है। द्रविड (तमिलनाड), केरल (मलावार), प्राच्य, मूषिक, बालमूषिक, कर्णाटक, माहिषक, किष्किन्ध, झल्लिक, कुन्तल, सौहृद, नलकानन, कोकुट्टक, चोल, कोण, मणिवालव, सभंग, कनंक, कुकुर, अंगार, मारिष, ध्वजिनी, उत्सव, संकेत, त्रिगर्भ, माल्यसेनि, व्यूढक, कोरक, प्रोष्ठ, संगवेगधर, विन्ध्य, रुलिक, बल्वल, मलर, अपरवर्तक, कालद, चण्डक, कुरट, मुशल, तनवाल, सतीर्थ, पूति, सृंजय, अनिदाय, शिवाट, तपान, सूतप, ऋषिक, विदर्भ (बरार), तंगण और परतंगण। अब उत्तर एवं अन्य दिशाओंमें रहनेवाले म्लेच्छोंके स्थान बताये जाते हैं—यवन (यूनानी) और काम्बोज—ये बड़े क्रूर म्लेच्छ हैं। कृघृह, पुलट्य, हूण, पारसिक (ईरान) तथा दशमानिक इत्यादि अनेकों जनपद हैं। इनके सिवा क्षत्रियोंके भी कई उपनिवेश हैं। वैश्यों और शूद्रोंके भी स्थान हैं। शूरवीर आभीर, दरद तथा काश्मीर जातिके लोग पशुओंके साथ रहते हैं। खाण्डीक, तुषार, पह्नाव, गिरिगह्वर, आत्रेय, भारद्वाज, स्तनपोषक, द्रोषक और कलिंग—ये किरातोंकी जातियाँ हैं [और इनके नामसे भिन्न-भिन्न जनपद हुए हैं]। तोमर, हन्यमान और करभंजक आदि अन्य बहुत-से जनपद हैं। यह पूर्व और उत्तरके जनपदोंका वर्णन हुआ। ब्राह्मणो! इस प्रकार संक्षेपसे ही मैंने सब देशोंका परिचय दिया है। इस अध्यायका पाठ और श्रवण त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ और काम)-रूप महान् फलको देनेवाला है।

द्विजवरो! प्राचीन कालमें राजा युधिष्ठिरके साथ जो देवर्षि नारदका संवाद हुआ था, उसका वर्णन करता हूँ; आपलोग श्रवण करें। महारथी पाण्डवोंके राज्यका अपहरण हो चुका था। वे द्रौपदीके साथ वनमें निवास करते थे। एक दिन उन्हें परम महात्मा देवर्षि नारदजीने दर्शन दिया। पाण्डवोंने उनका स्वागत-सत्कार किया। नारदजी उनकी की हुई पूजा स्वीकार करके युधिष्ठिरसे बोले—'धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ! तुम क्या चाहते हो?' यह सुनकर धर्मनन्दन राजा युधिष्ठिरने भाइयोंसहित हाथ जोड़ देवतुल्य नारदजीको प्रणाम किया और कहा—'महाभाग! आप सम्पूर्ण लोकोंद्वारा पूजित हैं। आपके संतुष्ट हो जानेपर मैं अपनेको कृतार्थ मानता हूँ—मुझे किसी बातकी आवश्यकता नहीं है। मुनिश्रेष्ठ! जो

तीर्थयात्रामें प्रवृत्त होकर समूची पृथ्वीकी परिक्रमा करता है, उसको क्या फल मिलता है? ब्रह्मन्! इस बातको आप पूर्णरूपसे बतानेकी कृपा करें।'

नारदजी बोले—राजन्! पहलेकी बात है, राजाओंमें श्रेष्ठ दिलीप धर्मानुकूल व्रतका नियम लेकर गंगाजीके तटपर मुनियोंकी भाँति निवास करते थे। कुछ कालके बाद एक दिन जब महामना दिलीप जप कर रहे थे, उसी समय उन्हें ऋषियोंमें श्रेष्ठ वसिष्ठजीका दर्शन हुआ। महर्षिको उपस्थित देख राजाने उनका विधिवत् पूजन किया और कहा—'उत्तम व्रतका पालन करने-वाले मुनिश्रेष्ठ! मैं आपका दास दिलीप हूँ। आज आपका दर्शन पाकर मैं सब पापोंसे मुक्त हो गया।'

वसिष्ठजीने कहा—महाभाग! तुम धर्मके ज्ञाता हो। तुम्हारे विनय, इन्द्रियसंयम तथा सत्य आदि गुणोंसे मैं सर्वथा संतुष्ट हूँ। बोलो, तुम्हारा कौन-सा प्रिय कार्य करूँ?

दिलीप बोले—मुने! आप प्रसन्न हैं, इतनेसे ही मैं अपनेको कृतकृत्य समझता हूँ। तपोधन! जो (तीर्थ-यात्राके उद्देश्यसे) सारी पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करता है, उसको क्या फल मिलता है? यह मुझे बताइये।

वसिष्ठजीने कहा—तात! तीर्थोंका सेवन करनेसे जो फल मिलता है, उसे एकाग्रचित्त होकर सुनो। तीर्थ ऋषियोंके परम आश्रय हैं। मैं उनका वर्णन करता हूँ। वास्तवमें तीर्थसेवनका फल उसे ही मिलता है, जिसके हाथ, पैर और मन अच्छी तरह अपने वशमें हों; जो विद्वान्, तपस्वी और कीर्तिमान् हो तथा जिसने दान लेना छोड़ दिया हो। जो संतोषी, नियमपरायण, पवित्र, अहंकारशून्य और उपवास (व्रत) करनेवाला हो; जो अपने आहार और इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त कर चुका हो, जो सब दोषोंसे मुक्त हो तथा जिसमें क्रोधका अभाव हो। जो सत्यवादी, दृढप्रतिज्ञ तथा सम्पूर्ण भूतोंके प्रति अपने-जैसा भाव रखनेवाला हो, उसीको तीर्थका पूरा फल प्राप्त होता है। राजन्! दरिद्र मनुष्य यज्ञ नहीं कर सकते; क्योंकि उसमें नाना प्रकारके साधन और सामग्रीकी आवश्यकता होती है। कहीं कोई राजा या धनवान् पुरुष ही यज्ञका अनुष्ठान कर पाते हैं। इसलिये मैं तुम्हें वह शास्त्रोक्त कर्म बतला रहा हूँ, जिसे दरिद्र मनुष्य भी कर सकते हैं तथा जो पुण्यकी दृष्टिसे यज्ञफलोंकी समानता करनेवाला है; उसे ध्यान देकर सुनो। पुष्कर-तीर्थमें जाकर मनुष्य देवाधिदेवके समान हो जाता है। महाराज! दिव्यशक्तिसे सम्पन्न देवता, दैत्य तथा ब्रह्मर्षिगण वहाँ तपस्या करके महान् पुण्यके भागी हुए हैं; जो मनीषी पुरुष मनसे भी पुष्कर तीर्थके सेवनकी इच्छा करता है, उसके सब पाप धुल जाते हैं तथा वह स्वर्गलोकमें पूजित होता है। इस तीर्थमें पितामह ब्रह्माजी सदा प्रसन्नतापूर्वक निवास करते हैं। महाभाग! पुष्करमें आकर देवता और ऋषि भी महान् पुण्यसे युक्त हो परमसिद्धिको प्राप्त हुए हैं। जो वहाँ स्नान करके पितरों और देवताओंके पूजनमें प्रवृत्त होता है, उसके लिये मनीषी विद्वान् अश्वमेधसे दसगुने पुण्यकी प्राप्ति बतलाते हैं। जो पुष्करके वनमें जाकर एक ब्राह्मणको भी भोजन कराता है, वह उसके पुण्यसे ब्रह्मधाममें स्थित अजित लोकोंको प्राप्त होता है। जो सायंकाल और प्रातःकालमें हाथ जोड़कर पुष्कर-तीर्थका चिन्तन करता है, वह सब तीर्थोंमें स्नान करनेका फल प्राप्त करता है। पुष्करमें जानेमात्रसे स्त्री या पुरुषके जन्मभरके किये हुए सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। जैसे भगवान् विष्णु सम्पूर्ण देवताओंके आदि हैं, उसी प्रकार पुष्कर भी समस्त तीर्थोंका आदि कहलाता है। पुष्करमें नियम और पवित्रतापूर्वक बारह वर्षतक निवास करके मनुष्य सम्पूर्ण यज्ञोंका फल प्राप्त कर लेता है और अन्तमें ब्रह्मलोकको जाता है। जो पूरे सौ वर्षोंतक अग्निहोत्रका अनुष्ठान करता है अथवा केवल कार्तिककी पूर्णिमाको पुष्करमें निवास करता है, उसके ये दोनों कर्म समान ही हैं। पहले तो पुष्करमें जाना ही कठिन है। जानेपर भी वहाँ तपस्या करना और भी कठिन है। पुष्करमें दान देना उससे भी कठिन है और सदा वहाँ निवास करना तो बहुत ही मुश्किल है।

जम्बूमार्ग आदि तीर्थ, नर्मदा नदी, अमरकण्टक पर्वत तथा कावेरी-संगमकी महिमा

वसिष्ठजी कहते हैं—राजन्! पृथ्वीकी परिक्रमा आरम्भ करनेवाले मनुष्यको पहले जम्बूमार्गमें प्रवेश करना चाहिये। वह पितरों, देवताओं तथा ऋषियोंद्वारा पूजित तीर्थ है। जम्बूमार्गमें जाकर मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त करता है और अन्तमें विष्णुलोकको जाता है। जो मनुष्य प्रतिदिन छठे पहरमें एक बार भोजन करते हुए पाँच राततक उस तीर्थमें निवास करता है, उसकी कभी दुर्गति नहीं होती तथा वह परम उत्तम सिद्धिको प्राप्त होता है। जम्बूमार्गसे चलकर तुण्डूलिकाश्रमकी यात्रा करनी चाहिये। वहाँ जानेसे मनुष्य दुर्गतिमें नहीं पड़ता तथा स्वर्गलोकमें उसका सम्मान होता है। राजन्! जो अगस्त्याश्रममें जाकर देवताओं और पितरोंकी पूजा करता और वहाँ तीन रात उपवास करके रहता है, उसे अग्निष्टोम यज्ञका फल मिलता है तथा जो शाक या फलसे जीवन-निर्वाह करते हुए वहाँ निवास करता है, वह परम उत्तम कार्तिकेयजीके धामको प्राप्त होता है। राजाओंमें श्रेष्ठ दिलीप! लक्ष्मीसे सेवित तथा समस्त लोकोंद्वारा पूजित कन्याश्रम-तीर्थ धर्मारण्यके नामसे प्रसिद्ध है, वह पुण्यदायक और प्रधान क्षेत्र है; वहाँ पहुँचकर उसमें प्रवेश करनेमात्रसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो नियमानुकूल आहार करके शौच-संतोष आदि नियमोंका पालन करते हुए वहाँ देवता तथा पितरोंका पूजन करता है, वह सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाले यज्ञका फल पाता है। उस तीर्थकी परिक्रमा करके ययातिपतन नामक स्थानको जाना चाहिये। वहाँकी यात्रा करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है।

तदनन्तर नियमानुकूल आहार और आचारका पालन करते हुए [उज्जैनमें स्थित] महाकाल तीर्थकी यात्रा करे। वहाँ कोटितीर्थमें स्नान करके मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त करता है। वहाँसे धर्मज्ञ पुरुषको भद्रवट नामक स्थानमें जाना चाहिये, जो भगवान् उमापतिका तीर्थ है। वहाँकी यात्रा करनेसे एक हजार गोदानका फल मिलता है तथा महादेवजीकी कृपासे शिवगणोंका आधिपत्य प्राप्त होता है। नर्मदा नदीमें जाकर देवताओं तथा पितरोंका तर्पण करके मनुष्य अग्निष्टोम यज्ञका फल पाता है।

युधिष्ठिर बोले—द्विजश्रेष्ठ नारदजी! मैं पुनः नर्मदाका माहात्म्य सुनना चाहता हूँ।

नारदजीने कहा—राजन्! नर्मदा सब नदियोंमें श्रेष्ठ है। वह समस्त पापोंका नाश करनेवाली तथा स्थावर-जंगम सम्पूर्ण भूतोंको तारनेवाली है। सरस्वतीका जल तीन सप्ताहतक स्नान करनेसे, यमुनाका जल एक सप्ताहतक गोता लगानेसे और गंगाजीका जल स्पर्शके समय ही पवित्र करता है; किन्तु नर्मदाका जल दर्शनमात्रसे पवित्र कर देता है। नर्मदा तीनों लोकोंमें रमणीय तथा पावन नदी है। महाराज! देवता, असुर, गन्धर्व और तपोधन ऋषि—ये नर्मदाके तटपर तपस्या करके परम सिद्धिको प्राप्त हो चुके हैं। युधिष्ठिर! वहाँ स्नान करके शौच-संतोष आदि नियमोंका पालन करते हुए जो जितेन्द्रियभावसे एक रात भी उसके तटपर निवास करता है, वह अपनी सौ पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। जो मनुष्य जनेश्वर तीर्थमें स्नान करके विधिपूर्वक पिण्डदान देता है, उसके पितर महाप्रलयतक तृप्त रहते हैं। अमरकण्टक पर्वतके चारों ओर कोटि रुद्रोंकी प्रतिष्ठा हुई है; जो वहाँ स्नान करता और चन्दन एवं फूल-माला आदि चढ़ाकर रुद्रकी पूजा करता है, उसपर रुद्रकोटिस्वरूप भगवान् शिव प्रसन्न होते हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। पर्वतके पश्चिम भागमें स्वयं भगवान् महेश्वर विराजमान हैं। वहाँ स्नान करके पवित्र हो ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए जितेन्द्रियभावसे शास्त्रीय विधिके अनुसार श्राद्ध करना चाहिये तथा वहीं तिल और जलसे पितरों तथा देवताओंका तर्पण भी करना चाहिये। पाण्डुनन्दन! जो ऐसा करता है, उसकी सातवीं पीढ़ीतकके सभी लोग स्वर्गमें निवास करते हैं।

राजा युधिष्ठिर! सरिताओंमें श्रेष्ठ नर्मदाकी लंबाई

सौ योजनसे कुछ अधिक सुनी जाती है तथा चौड़ाई दो योजनकी है। अमरकण्टक पर्वतके चारों ओर साठ करोड़ और साठ हजार तीर्थ हैं। वहाँ रहनेवाला पुरुष ब्रह्मचर्यका पालन करे, पवित्र रहे, क्रोध और इन्द्रियोंको काबूमें रखे तथा सब प्रकारकी हिंसाओंसे दूर रहकर सब प्राणियोंके हित-साधनमें संलग्न रहे। इस प्रकार समस्त सदाचारोंका पालन करते हुए क्षेत्रपालों (तीर्थ-देवताओं)-के दर्शनके लिये यात्रा करनी चाहिये। नर्मदाके दक्षिण-भागमें थोड़ी ही दूरपर एक कपिला नामकी बहुत बड़ी नदी है, जो अपने तटपर उगे हुए देवदारु एवं अर्जुनके वृक्षोंसे आच्छादित रहती है। वह परम सौभाग्यवती पावन नदी तीनों लोकोंमें विख्यात है। युधिष्ठिर! उसके तटपर सौ करोड़से अधिक तीर्थ हैं। कपिलाके तीरपर जो वृक्ष कालचक्रके प्रभावसे गिर जाते हैं, वे भी नर्मदाके जलसे संयुक्त होनेपर परम गतिको प्राप्त होते हैं। एक दूसरी भी नदी है, जिसका नाम विशल्यकरणा है। उस शुभ नदीके किनारे स्नान करनेसे मनुष्य तत्काल शल्यरहित—शोकहीन हो जाता है। नर्मदासे मिली हुई विशल्या नामकी नदी सब पापोंका नाश करनेवाली है। राजन्! जो मनुष्य वहाँ स्नान करके ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए जितेन्द्रियभावसे एक रात निवास करता है, वह अपनी सौ पीढ़ियोंको तार देता है। महाराज! जो उस तीर्थमें उपवास करता है, वह सब पापोंसे शुद्ध होकर इन्द्रलोकको जाता है। नर्मदामें स्नान करके मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त करता है। अमरकण्टक पर्वतपर जिसकी मृत्यु होती है, वह सौ करोड़ वर्षोंसे अधिक कालतक इन्द्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। फेन और लहरोंसे सुशोभित नर्मदाका पावन जल मस्तकपर चढ़ानेयोग्य है; ऐसा करनेसे सब पापोंसे छुटकारा मिल जाता है। नर्मदा सब प्रकारके पुण्य देनेवाली और ब्रह्महत्याका पाप दूर करनेवाली है। जो नर्मदा-तटपर एक दिन और एक रात उपवास करता है, वह ब्रह्महत्यासे छूट जाता है । पाण्डुनन्दन! इस प्रकार नर्मदा परम पावन एवं रमणीय नदी है। यह महानदी तीनों लोकोंको पवित्र करती है।

महाराज! अमरकण्टक पर्वत सब ओरसे पुण्यमय है। जो चन्द्रग्रहण तथा सूर्यग्रहणके अवसरपर अमर-कण्टककी यात्रा करता है, उसके लिये मनीषी पुरुष अश्वमेधसे दसगुना पुण्य बताते हैं। वहाँ महेश्वरका दर्शन करनेसे स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है। जो लोग सूर्यग्रहणके समय समुदायके साथ अमरकण्टक पर्वतकी यात्रा करते हैं, उन्हें पुण्डरीक यज्ञका सम्पूर्ण फल प्राप्त होता है। उस पर्वतपर ज्वालेश्वर नामक महादेव हैं, वहाँ स्नान करके मनुष्य स्वर्गलोकको प्राप्त होते हैं तथा जिनकी वहाँ मृत्यु होती है, वे पुनः जन्म-मरणके बन्धनमें नहीं पड़ते। मनुष्यके हृदयमें सकाम भाव हो या निष्काम, वह नर्मदाके शुभ जलमें स्नान करके सब पापोंसे मुक्त हो जाता है और अन्तमें रुद्रलोकको जाता है।

सूतजी कहते हैं—युधिष्ठिर आदि सब महात्मा पुरुषोंने नारदजीसे पूछा—'भगवन्! सम्पूर्ण लोकोंके हितके उद्देश्यसे तथा हमलोगोंके ज्ञान एवं पुण्यकी वृद्धिके लिये आप [कृपापूर्वक] नर्मदा-कावेरी-संगमकी यथार्थ महिमाका वर्णन कीजिये।'

नारदजीने कहा—राजन्! लोक-विख्यात कावेरी नदी जहाँ नर्मदामें मिली हैं, उसी स्थानपर पहले कभी सत्यपराक्रमी कुबेर स्नान करके पवित्र हो तपस्या करते थे। उन्होंने सौ दिव्य वर्षोंतक भारी तपस्या की। इससे प्रसन्न होकर महादेवजीने उन्हें उत्तम वर प्रदान किया। वे बोले—'महान् सत्त्वशाली यक्ष! तुम इच्छानुसार वर माँगो; तुम्हारे मनमें जो अभीष्ट कार्य हो, उसे बताओ।'

कुबेरने कहा—देवेश्वर! यदि आप संतुष्ट हैं और मुझे वर देना चाहते हैं तो ऐसी कृपा कीजिये कि मैं सब यक्षोंका स्वामी बनूँ।

कुबेरकी बात सुनकर भगवान् महेश्वर बहुत प्रसन्न हुए, वे 'एवमस्तु' कहकर वहीं अन्तर्धान हो गये। वर पाकर कुबेर यक्षपुरी—अलकापुरीमें गये। वहाँ श्रेष्ठ यक्षोंने उनका बड़ा सम्मान किया और उन्हें 'राजा' के पदपर अभिषिक्त कर दिया। जहाँ कुबेरने तपस्या की थी, वहाँ कावेरी-संगमका जल

सब पापोंका नाश करनेवाला है। जो लोग उस संगमकी महिमाको नहीं जानते, वे बड़े भारी लाभसे वंचित रह जाते हैं। अतः मनुष्यको सर्वथा प्रयत्न करके वहाँ स्नान करना चाहिये। कावेरी और महानदी नर्मदा दोनों ही परम पुण्यदायिनी हैं। महाराज! वहाँ स्नान करके वृषभध्वज भगवान् शंकरका पूजन करना चाहिये। ऐसा करनेवाला पुरुष अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त करके रुद्रलोकमें पूजित होता है। गंगा और यमुनाके संगममें स्नान करके मनुष्य जिस फलको प्राप्त करता है, वही फल उसे कावेरी-नर्मदा-संगममें स्नान करनेसे भी मिलता है। राजेन्द्र! इस प्रकार नर्मदा-कावेरी-संगमकी बड़ी महिमा है। वहाँ सब पापोंका नाश करनेवाला महान् पुण्यफल प्राप्त होता है।

नर्मदाके तटवर्ती तीर्थोंका वर्णन

नारदजी कहते हैं—युधिष्ठिर! नर्मदाके उत्तर तटपर 'पत्रेश्वर' नामसे विख्यात एक तीर्थ है, जिसका विस्तार चार कोसका है। वह सब पापोंका नाश करनेवाला उत्तम तीर्थ है। राजन्! वहाँ स्नान करके मनुष्य देवताओंके साथ आनन्दका अनुभव करता है। वहाँसे 'गर्जन' नामक तीर्थमें जाना चाहिये, जहाँ [रावणका पुत्र] मेघनाद गया था; उसी तीर्थके प्रभावसे उसको 'इन्द्रजित्' नाम प्राप्त हुआ था। वहाँसे 'मेघराव' तीर्थकी यात्रा करनी चाहिये, जहाँ मेघनादने मेघके समान गर्जना की थी तथा अपने परिकरोंसहित उसने अभीष्ट वर प्राप्त किये थे। राजा युधिष्ठिर! उस स्थानसे 'ब्रह्मावर्त' नामक तीर्थको जाना चाहिये, जहाँ ब्रह्माजी सदा निवास करते हैं। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

तदनन्तर अंगारेश्वर तीर्थमें जाकर नियमित आहार ग्रहण करते हुए नियमपूर्वक रहे। ऐसा करनेवाला मनुष्य सब पापोंसे शुद्ध हो रुद्रलोकमें जाता है। वहाँसे परम उत्तम कपिला तीर्थकी यात्रा करे। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्यको गोदानका फल प्राप्त होता है। तत्पश्चात् कुण्डलेश्वर नामक उत्तम तीर्थमें जाय, जहाँ भगवान् शंकर पार्वतीजीके साथ निवास करते हैं। राजेन्द्र! वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य देवताओंके लिये भी अवध्य हो जाता है। वहाँसे पिप्पलेश्वर तीर्थकी यात्रा करे, वह सब पापोंका नाश करनेवाला तीर्थ है। वहाँ जानेसे रुद्रलोकमें सम्मानपूर्वक निवास प्राप्त होता है। इसके बाद विमलेश्वर तीर्थमें जाय; वह बड़ा निर्मल तीर्थ है; उस तीर्थमें मृत्यु होनेपर रुद्रलोककी प्राप्ति होती है। तदनन्तर पुष्करिणीमें जाकर स्नान करना चाहिये; वहाँ स्नान करनेमात्रसे मनुष्य इन्द्रके आधे सिंहासनका अधिकारी हो जाता है। नर्मदा समस्त सरिताओंमें श्रेष्ठ है, वह स्थावर-जंगम समस्त प्राणियोंका उद्धार कर देती है। मुनि भी इस श्रेष्ठ नदी नर्मदाका स्तवन करते हैं। यह समस्त लोकोंका हित करनेकी इच्छासे भगवान् रुद्रके शरीरसे निकली है। यह सदा सब पापोंका अपहरण करनेवाली और सब लोगोंके द्वारा अभिवन्दित है। देवता, गन्धर्व और अप्सरा—सभी इसकी स्तुति करते रहते हैं—'पुण्यसलिला नर्मदा! तुम सब नदियोंमें प्रधान हो, तुम्हें नमस्कार है। सागरगामिनी! तुमको प्रणाम है। ऋषिगणोंसे पूजित तथा भगवान् शंकरके श्रीविग्रहसे प्रकट हुई नर्मदे! तुम्हें बारंबार नमस्कार है। सुमुखि! तुम धर्मको धारण करनेवाली हो, तुम्हें प्रणाम है। देवताओंका समुदाय तुम्हारे चरणोंमें मस्तक झुकाता है, तुम्हें नमस्कार है। देवि! तुम समस्त पवित्र वस्तुओंको भी परम पावन बनानेवाली हो, सम्पूर्ण संसार तुम्हारी पूजा करता है; तुम्हें बारंबार नमस्कार है।'*

* नमः पुण्यजले आद्ये नमः सागरगामिनि। नमोऽस्तु ते ऋषिगणैः शङ्करदेहनिःसृते॥
नमोऽस्तु ते धर्मभृते वरानने नमोऽस्तु ते देवगणैकवन्दिते। नमोऽस्तु ते सर्वपवित्रपावने नमोऽस्तु ते सर्वजगत्सुपूजिते॥
(१८। १७-१८)

जो मनुष्य प्रतिदिन शुद्धभावसे इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह ब्राह्मण हो तो वेदका विद्वान् होता है, क्षत्रिय हो तो युद्धमें विजय प्राप्त करता है, वैश्य हो तो [व्यापारमें] लाभ उठाता है और शूद्र हो तो उत्तम गतिको प्राप्त होता है। साक्षात् भगवान् शंकर भी नर्मदा नदीका नित्य सेवन करते हैं; अत: इस नदीको परम पावन समझना चाहिये। यह ब्रह्महत्याको भी दूर करनेवाली है।

शूलभद्र नामसे विख्यात एक परम पवित्र तीर्थ है। वहाँ स्नान करके भगवान् शिवका पूजन करना चाहिये। इससे एक हजार गोदानका फल मिलता है। राजन्! जो उस तीर्थमें महादेवजीकी पूजा करते हुए तीन राततक निवास करता है, उसका इस संसारमें फिर जन्म नहीं होता। तदनन्तर क्रमश: भीमेश्वर, परम उत्तम नर्मदेश्वर तथा महापुण्यमय आदित्येश्वरकी यात्रा करनी चाहिये। आदित्येश्वर तीर्थमें स्नानके पश्चात् घी और मधुसे शिवजीका पूजन करना उचित है। मल्लिकेश्वर तीर्थमें जाकर उसकी परिक्रमा करनेसे जन्मका पूर्ण फल प्राप्त हो जाता है। वहाँसे वरुणेश्वरमें तथा वरुणेश्वरसे परम उत्तम नीराजेश्वर तीर्थमें जाना चाहिये। नीराजेश्वरके पंचायतन (पंचदेवमन्दिर)-का दर्शन करनेसे सब तीर्थोंका फल प्राप्त हो जाता है। राजेन्द्र! वहाँसे कोटितीर्थकी यात्रा करनी चाहिये; वह तीर्थ सर्वत्र प्रसिद्ध है। वहाँ भगवान् शिवने करोड़ों दानवोंका वध किया था; इसीलिये उन्हें कोटीश्वर कहा गया है। उस तीर्थका दर्शन करनेसे मनुष्य सशरीर स्वर्गको चला जाता है। वहाँ त्रयोदशीको महादेवजीकी उपासना करके स्नान करनेमात्रसे मनुष्यको सम्पूर्ण यज्ञोंका फल प्राप्त हो जाता है। तत्पश्चात् परम शोभायमान और उत्तम तीर्थ अगस्त्येश्वरकी यात्रा करे, वह पापोंका नाश करनेवाला है। वहाँ स्नान करके मनुष्यको ब्रह्महत्यासे छुटकारा मिल जाता है। जो कार्तिक मासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तिथिको उस तीर्थमें इन्द्रियसंयमपूर्वक एकाग्रचित्त हो घृतसे भगवान् शिवको स्नान कराता है, वह इक्कीस पीढ़ियोंतक शिव-धामकी प्राप्तिसे वंचित नहीं होता। जो वहाँ सवारी, जूते, छाता, घृतपूर्ण सुवर्णपात्र तथा भोजन-सामग्री ब्राह्मणोंको दान करता है, उसका वह सारा दान कोटिगुना अधिक फल देनेवाला होता है।

राजेन्द्र! अगस्त्येश्वर तीर्थसे चलकर रविस्तव नामक उत्तम तीर्थमें जाना चाहिये। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य राजा होता है। नर्मदाके दक्षिण किनारे एक इन्द्र-तीर्थ है, जो सर्वत्र प्रसिद्ध है; वहाँ एक रात उपवास करके स्नान करना चाहिये। स्नानके पश्चात् विधिपूर्वक भगवान् जनार्दनका पूजन करे। ऐसा करनेसे उसे एक हजार गोदानका फल मिलता है तथा अन्तमें वह विष्णुलोकको प्राप्त होता है। इसके बाद ऋषितीर्थमें जाना चाहिये; वहाँ स्नान करनेमात्रसे मनुष्य शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है। वहीं परम कल्याणमय नारदतीर्थ भी है; वहाँ नहानेमात्रसे एक हजार गोदानका फल मिलता है। तदनन्तर देवतीर्थकी यात्रा करे, जिसे पूर्वकालमें साक्षात् ब्रह्माजीने उत्पन्न किया था; वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य ब्रह्मलोकमें सम्मानित होता है।

महाराज! इसके बाद परम उत्तम वामनेश्वर तीर्थमें जाना चाहिये; वहाँके मन्दिरका दर्शन करनेसे ब्रह्महत्याका पाप छूट जाता है। वहाँसे मनुष्यको निश्चय ही ईशानेश्वरकी यात्रा करनी चाहिये। तत्पश्चात् वटेश्वरमें जाकर भगवान् शिवका दर्शन करनेसे जन्म लेनेका सारा फल मिल जाता है। वहाँसे भीमेश्वर तीर्थमें जाना चाहिये, वह सब प्रकारकी व्याधियोंका नाश करनेवाला है। उस तीर्थमें स्नानमात्र करके मनुष्य सब दु:खोंसे छुटकारा पा जाता है। तत्पश्चात् वारणेश्वर नामक उत्तम तीर्थकी यात्रा करे, वहाँ स्नान करनेसे भी सब दु:ख छूट जाते हैं। उसके बाद सोमतीर्थमें जाकर चन्द्रमाका दर्शन करना चाहिये; वहाँ परम भक्तिपूर्वक स्नान करनेसे मनुष्य तत्काल दिव्य देह धारण करके शिवलोकको चला जाता है और वहाँ भगवान् शिवकी ही भाँति चिरकालतक आनन्दका अनुभव करता है। शिवलोकमें वह साठ हजार वर्षोंतक सम्मानपूर्वक निवास करता है। वहाँसे परम उत्तम पिंगलेश्वर तीर्थको जाय। वहाँ एक दिन-रातके उपवाससे त्रिरात्र-व्रतका फल मिलता है।

राजन्! जो उस तीर्थमें कपिला गौका दान करता है, वह उस गौके तथा उससे होनेवाले गोवंशके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने हजार वर्षोंतक रुद्रलोकमें सम्मानपूर्वक रहता है।

तदनन्तर नन्दितीर्थमें जाकर वहाँ स्नान करे; इससे उसपर नन्दीश्वर प्रसन्न होते हैं और वह सोमलोकमें सम्मानपूर्वक निवास करता है। इसके बाद व्यासतीर्थकी यात्रा करे। व्यासतीर्थ एक तपोवनके रूपमें है। पूर्वकालमें वहाँ महानदी नर्मदाको व्यासजीके भयसे लौटना पड़ा था। व्यासजीने हुंकार किया, जिससे नर्मदा उनके स्थानसे दक्षिण दिशाकी ओर होकर बहने लगी। राजन्! जो उस तीर्थकी परिक्रमा करता है, उसपर व्यासजी संतुष्ट होते और उसे मनोवांछित फल प्रदान करते हैं। जो मनुष्य परम तेजस्वी भगवान् व्यासकी प्रतिमाको वेदीसहित सूत्रसे आवेष्टित करता है, वह शंकरजीकी भाँति अनन्त कालतक शिवलोकमें विहार करता है। इसके बाद एरण्डीतीर्थकी यात्रा करनी चाहिये, वह एक उत्तम तीर्थ है। वहाँ नर्मदा-एरण्डी-संगमके जलमें स्नान करनेसे मनुष्य सब पातकोंसे मुक्त हो जाता है। एरण्डी नदी तीनों लोकोंमें विख्यात और सब पापोंका नाश करनेवाली है। आश्विन मासमें शुक्लपक्षकी अष्टमी तिथिको वहाँ पवित्र भावसे स्नान करके उपवास करनेवाला मनुष्य यदि एक ब्राह्मणको भी भोजन करा दे तो उसे एक करोड़ ब्राह्मणोंको भोजन करानेका फल प्राप्त होता है। जो मनुष्य भक्तिभावसे युक्त होकर नर्मदा-एरण्डी-संगममें स्नान करता है अथवा मस्तकपर नर्मदेश्वरकी मूर्ति रखकर नर्मदाके जलसे मिले हुए एरण्डीके जलमें गोता लगाता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। राजन्! जो उस तीर्थकी परिक्रमा करता है, उसके द्वारा सात द्वीपोंसे युक्त समूची पृथ्वीकी परिक्रमा हो जाती है।

तदनन्तर सुवर्णतिलक नामक तीर्थमें स्नान करके सुवर्ण दान करे। ऐसा करनेवाला पुरुष सोनेके विमानपर बैठकर रुद्रलोकमें जाता और सम्मानपूर्वक वहाँ निवास करता है। उसके बाद नर्मदा और इक्षुनदीके संगममें जाना चाहिये। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य गणपति-पदको प्राप्त होता है। तत्पश्चात् स्कन्दतीर्थकी यात्रा करे। वह सब पापोंका नाश करनेवाला है। वहाँ स्नान करनेमात्रसे जन्मभरका किया हुआ पाप नष्ट हो जाता है। पुनः वहाँके आंगिरस तीर्थमें जाकर स्नान करे, इससे एक हजार गोदानका फल मिलता है तथा रुद्रलोकमें सम्मान प्राप्त होता है। आंगिरस तीर्थसे लांगल तीर्थमें जाना चाहिये। वह भी सब पापोंका नाश करनेवाला है। महाराज! वहाँ जाकर यदि मनुष्य स्नान करे तो सात जन्मके किये हुए पापोंसे छुटकारा पा जाता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। वहाँसे वटेश्वर तीर्थ और सर्वतीर्थकी यात्रा करे। सर्वतीर्थ अत्युत्तम तीर्थ है। वहाँ स्नान करनेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है। उसके बाद संगमेश्वर तीर्थमें जाना चाहिये। वह सब पापोंका अपहरण करनेवाला उत्तम तीर्थ है। वहाँसे भद्रतीर्थमें जाकर जो मनुष्य दान करता है, उसका वह सारा दान कोटिगुना अधिक हो जाता है।

तत्पश्चात् अंगारेश्वर तीर्थमें जाकर स्नान करे। वहाँ नहानेमात्रसे मनुष्य रुद्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है, जो अंगारक-चतुर्थीको वहाँ स्नान करता है, वह भगवान् विष्णुके शासनमें रहकर अनन्त कालतक आनन्दका अनुभव करता है। अयोनिसंगम-तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्य गर्भमें नहीं आता। जो पाण्डवेश्वर-तीर्थमें जाकर वहाँ स्नान करता है, वह अनन्त कालतक सुखी तथा देवता और असुरोंके लिये अवध्य होता है। उत्तरायण आनेपर कम्बोजकेश्वर तीर्थमें जाकर स्नान करे। ऐसा करनेसे मनुष्य जिस वस्तुकी इच्छा करता है, वही उसे प्राप्त हो जाती है। तदनन्तर चन्द्रभागामें जाकर स्नान करे। वहाँ नहानेमात्रसे मनुष्य सोमलोकमें प्रतिष्ठित होता है। इसके बाद शक्रतीर्थकी यात्रा करे। वह सर्वत्र विख्यात, देवराज इन्द्रद्वारा सम्मानित तथा सम्पूर्ण देवताओंसे भी अभिवन्दित है। जो मनुष्य वहाँ स्नान करके सुवर्ण दान करता है अथवा नीले रंगका साँड़ छोड़ता है, वह उस साँड़के तथा उससे उत्पन्न होनेवाले गोवंशके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं; उतने हजार वर्षोंतक

भगवान् शिवके धाममें निवास करता है।

राजेन्द्र! शक्रतीर्थसे कपिलातीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। वह बड़ा ही उत्तम तीर्थ है। जो वहाँ स्नानके पश्चात् कपिला गौका दान करता है, उसे सम्पूर्ण पृथ्वीके दानका फल प्राप्त होता है। नर्मदेश्वर नामक तीर्थ सबसे श्रेष्ठ है। ऐसा तीर्थ आजतक न हुआ है न होगा। वहाँ स्नान करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है तथा मनुष्य इस पृथ्वीपर सर्वत्र प्रसिद्ध राजाके रूपमें जन्म ग्रहण करता है। वह सब प्रकारके शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न तथा समस्त व्याधियोंसे रहित होता है। नर्मदाके उत्तर तटपर एक बहुत ही सुन्दर तथा रमणीय तीर्थ है, उसका नाम है—आदित्यायतन। उसे साक्षात् भगवान् शंकरने प्रकट किया है। वहाँ स्नान करके यथाशक्ति दिया हुआ दान उस तीर्थके प्रभावसे अक्षय हो जाता है। दरिद्र, रोगी तथा पापी मनुष्य भी वहाँ स्नान करके सब पापोंसे मुक्त होते और भगवान् सूर्यके लोकमें जाते हैं। वहाँसे मासेश्वर तीर्थमें जाकर स्नान करना चाहिये। वहाँके जलमें डुबकी लगाने मात्रसे स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है तथा जबतक चौदह इन्द्रोंकी आयु व्यतीत नहीं होती, तबतक मनुष्य स्वर्गलोकमें निवास करता है। तदनन्तर मासेश्वर तीर्थके पास ही जो नागेश्वर नामका तपोवन है, उसमें निवास करे और वहाँ एकाग्रचित्त हो स्नान करके पवित्र हो जाय। जो ऐसा करता है, वह अनन्त कालतक नाग-कन्याओंके साथ विहार करता है। तत्पश्चात् कुबेरभवन नामक तीर्थकी यात्रा करे। वहाँसे कालेश्वर नामक उत्तम तीर्थमें जाय, जहाँ महादेवजीने कुबेरको वर देकर संतुष्ट किया था। महाराज! वहाँ स्नान करनेसे सब प्रकारकी सम्पत्ति प्राप्त होती है। उसके बाद पश्चिम दिशाकी ओर मारुतालय नामक उत्तम तीर्थकी यात्रा करे और वहाँ स्नान करके पवित्र एवं एकाग्रचित्त होकर बुद्धिमान् पुरुष यथाशक्ति सुवर्ण और अन्नका दान करे। ऐसा करनेसे वह पुष्पक विमानके द्वारा वायुलोकमें जाता है। युधिष्ठिर! माघ मासमें यमतीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। माघकृष्ण चतुर्दशीको जो वहाँ स्नान करता और दिनमें उपवास करके रातमें भोजन करता है, उसे गर्भवासकी पीड़ा नहीं भोगनी पड़ती।

तदनन्तर सोमतीर्थमें* जाकर स्नान करे। वहाँ गोता लगानेमात्रसे मनुष्य सब पापोंसे छुटकारा पा जाता है। महाराज! जो उस तीर्थमें चान्द्रायण व्रत करता है, वह सब पापोंसे शुद्ध होकर सोमलोकमें जाता है। सोमतीर्थसे स्तम्भतीर्थमें जाकर स्नान करे। ऐसा करनेसे मनुष्य सोमलोकमें प्रतिष्ठित होता है। इसके बाद विष्णुतीर्थकी यात्रा करे। वह बहुत ही उत्तम तीर्थ है और योधनीपुरके नामसे विख्यात है। वहाँ भगवान् वासुदेवने करोड़ों असुरोंके साथ युद्ध किया था। युद्धभूमिमें उस तीर्थकी उत्पत्ति हुई है। वहाँ स्नान करनेसे भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं। जो वहाँ एक दिन-रात उपवास करता है, उसका ब्रह्महत्या-जैसा पाप भी दूर हो जाता है। तत्पश्चात् तापसेश्वर नामक उत्तम तीर्थमें जाना चाहिये; वह अमोहक तीर्थके नामसे विख्यात है। वहाँ पितरोंका तर्पण तथा पूर्णिमा और अमावास्याको विधिपूर्वक श्राद्ध करना चाहिये। वहाँ स्नानके पश्चात् पितरोंको पिण्डदान करना आवश्यक है। उस तीर्थमें जलके भीतर हाथीके समान आकारवाली बड़ी-बड़ी चट्टानें हैं। उनके ऊपर विशेषतः वैशाख मासमें पिण्डदान करना चाहिये। ऐसा करनेसे जबतक यह पृथ्वी कायम रहती है, तबतक पितरोंको पूर्ण तृप्ति बनी रहती है। महाराज! वहाँसे सिद्धेश्वर नामक उत्तम तीर्थकी यात्रा करे। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य गणेशजीके निकट जाता है। उस तीर्थमें जहाँ जनार्दन नामसे प्रसिद्ध लिंग है, वहाँ स्नान करनेसे विष्णुलोकमें प्रतिष्ठा होती है। सिद्धेश्वरमें अन्धोन तीर्थके समीप स्नान, दान, ब्राह्मण-भोजन तथा पिण्डदान करना उचित है। उसके आधे योजनके भीतर जिसकी मृत्यु होती है, उसे मुक्ति प्राप्त होती है। अन्धोनमें विधिपूर्वक पिण्डदान देनेसे पितरोंको तबतक तृप्ति बनी रहती है, जबतक चन्द्रमा और सूर्यकी सत्ता है। उत्तरायण प्राप्त

* यह सोमतीर्थ दूसरा है। पहले जिसका वर्णन आया है, वह इससे भिन्न है।

होनेपर जो स्त्री या पुरुष वहाँ स्नान करते और पवित्रभावसे भगवान् सिद्धेश्वरके मन्दिरमें रहकर प्रात:काल उनकी पूजा करते हैं, उन्हें सत्पुरुषोंकी गति प्राप्त होती है। वैसी गति सम्पूर्ण महायज्ञोंके अनुष्ठानसे भी दुर्लभ है।

नारदजी कहते हैं—युधिष्ठिर! तदनन्तर भक्तिपूर्वक भार्गवेश्वर तीर्थकी यात्रा करे। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। पाण्डुनन्दन! अब शुक्लतीर्थकी उत्पत्तिका प्रसंग श्रवण करो। एक समयकी बात है, हिमालयके रमणीय शिखरपर भगवान् शंकर अपनी पत्नी उमा तथा पार्षदगणोंके साथ बैठे थे। उस समय मार्कण्डेयजीने उनसे पूछा—'देवदेव महादेव! मैं संसारके भयसे डरा हुआ हूँ। आप मुझे कोई ऐसा उपाय बताइये, जिससे सुख प्राप्त हो सके। महेश्वर! जो तीर्थ सम्पूर्ण तीर्थोंमें श्रेष्ठ हो, उसका मुझे परिचय दीजिये।

भगवान् शिव बोले—ब्रह्मन्! तुम महान् पण्डित और सम्पूर्ण शास्त्रोंमें कुशल हो; मेरी बात सुनो। दिनमें या रातमें—किसी भी समय शुक्लतीर्थका सेवन किया जाय तो वह महान् फलदायक होता है। उसके दर्शन और स्पर्शसे तथा वहाँ स्नान, ध्यान, तपस्या, होम एवं उपवास करनेसे शुक्लतीर्थ महान् फलका साधक होता है। नर्मदा नदीके तटपर स्थित शुक्लतीर्थ महान् पुण्यदायक है। चाणिक्य नामके राजर्षिने वहीं सिद्धि प्राप्त की थी। यह क्षेत्र चार कोसके घेरेमें प्रकट हुआ है। शुक्लतीर्थ परम पुण्यमय तथा सब पापोंका नाशक है। वहाँके वृक्षोंकी शिखाका भी दर्शन हो जाय तो ब्रह्महत्या दूर हो जाती है। मुनिश्रेष्ठ! इसीलिये मैं यहाँ निवास करता हूँ। परम निर्मल वैशाख मासके कृष्ण पक्षकी चतुर्दशीको तो मैं कैलाससे भी निकलकर यहाँ आ जाता हूँ। जैसे धोबीके द्वारा जलसे धोया हुआ वस्त्र सफेद हो जाता है, उसी प्रकार शुक्लतीर्थ भी जन्मभरके संचित पापको दूर कर देता है। मुनिवर मार्कण्डेय! वहाँका स्नान और दान अत्यन्त पुण्यदायक है। शुक्लतीर्थसे बढ़कर दूसरा कोई तीर्थ न तो हुआ है और न होगा ही। मनुष्य अपनी पूर्वावस्थामें जो-जो पाप किये होता है, उन्हें वह शुक्लतीर्थमें एक दिन-रातके उपवाससे नष्ट कर डालता है। वहाँ मेरे निमित्त दान देनेसे जो पुण्य होता है, वह सैकड़ों यज्ञोंके अनुष्ठानसे भी नहीं हो सकता। जो मनुष्य कार्तिक मासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको वहाँ उपवास करके घीसे मुझे स्नान कराता है, वह अपनी इक्कीस पीढ़ियोंके साथ मेरे लोकमें रहकर कभी वहाँसे भ्रष्ट नहीं होता। शुक्लतीर्थ अत्यन्त श्रेष्ठ है। ऋषि और सिद्धगण उसका सेवन करते हैं। वहाँ स्नान करनेसे पुनर्जन्म नहीं होता। जिस दिन उत्तरायण या दक्षिणायनका प्रारम्भ हो, चतुर्दशी हो, संक्रान्ति हो अथवा विषुव नामक योग हो, उस दिन स्नान करके उपवासपूर्वक मनको वशमें रखकर समाहितचित्त हो यथाशक्ति वहाँ दान दे तो भगवान् विष्णु तथा हम प्रसन्न होते हैं। शुक्लतीर्थके प्रभावसे वह सब दान अक्षय पुण्यका देनेवाला होता है। जो अनाथ, दुर्दशाग्रस्त अथवा सनाथ ब्राह्मणका भी उस तीर्थमें विवाह कराता है, उस ब्राह्मणके तथा उसकी संतानोंके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने हजार वर्षोंतक वह मेरे लोकमें प्रतिष्ठित होता है।

नारदजी कहते हैं—राजा युधिष्ठिर! शुक्लतीर्थसे गोतीर्थमें जाना चाहिये। उसका दर्शन करने मात्रसे मनुष्य पापरहित हो जाता है। वहाँसे कपिलातीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। वह एक उत्तम तीर्थ है। राजन्! वहाँ स्नान करके मानव सहस्र गो-दानका फल प्राप्त करता है। ज्येष्ठ मास आनेपर विशेषत: चतुर्दशी तिथिको उस तीर्थमें उपवास करके जो मनुष्य भक्तिपूर्वक घीका दीपक जलाता; घृतसे भगवान् शंकरको स्नान कराता, घीसहित श्रीफलका दान करता तथा अन्तमें प्रदक्षिणा करके घण्टा और आभूषणोंके सहित कपिला गौको दानमें देता है, वह साक्षात् भगवान् शिवके समान होता है तथा इस लोकमें पुन: जन्म नहीं लेता।

राजेन्द्र! वहाँसे परम उत्तम ऋषितीर्थकी यात्रा करे, उस तीर्थके प्रभावसे द्विज पापमुक्त हो जाता है। ऋषितीर्थसे गणेश्वर तीर्थमें जाना चाहिये। वह बहुत

उत्तम तीर्थ है। श्रावण मासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको वहाँ स्नान करनेमात्रसे मनुष्य रुद्रलोकमें सम्मानित होता है। वहाँ पितरोंका तर्पण करनेपर तीनों ऋणोंसे छुटकारा मिल जाता है। गयेश्वरके पास ही गंगावदन नामक उत्तम तीर्थ है; वहाँ निष्काम या सकामभावसे भी स्नान करनेवाला मानव जन्मभरके पापोंसे मुक्त हो जाता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। पर्वके दिन वहाँ सदा स्नान करना चाहिये। उस तीर्थमें पितरोंका तर्पण करनेपर मनुष्य तीनों ऋणोंसे मुक्त होता है। उसके पश्चिम और थोड़ी ही दूरपर दशाश्वमेधिक तीर्थ है; वहाँ भादोंके महीनेमें एक रात उपवास करके जो अमावास्याको स्नान करता है, वह भगवान् शंकरके धामको जाता है। वहाँ भी पर्वके दिनोंमें सदा ही स्नान करना चाहिये। उस तीर्थमें पितरोंका तर्पण करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है।

दशाश्वमेधसे पश्चिम भृगुतीर्थ है, जहाँ ब्राह्मणश्रेष्ठ भृगुने एक हजार दिव्य वर्षोंतक भगवान् शंकरकी उपासना की थी। तभीसे ब्रह्मा आदि सम्पूर्ण देवता और किन्नर भृगुतीर्थका सेवन करते हैं। यह वही स्थान है, जहाँ भगवान् महेश्वर भृगुजीपर प्रसन्न हुए थे। उस तीर्थका दर्शन होनेपर तत्काल पापोंसे छुटकारा मिल जाता है। जिन प्राणियोंकी वहाँ मृत्यु होती है, उन्हें गुह्यातिगुह्य गतिकी प्राप्ति होती है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। यह क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत तथा सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला है। वहाँ स्नान करके मनुष्य स्वर्गको जाते हैं तथा जिनकी वहाँ मृत्यु होती है, वे फिर संसारमें जन्म नहीं लेते—मुक्त हो जाते हैं। उस तीर्थमें अन्न, सुवर्ण, जूता और यथाशक्ति भोजन देना चाहिये। इसका पुण्य अक्षय होता है। जो सूर्यग्रहणके समय वहाँ स्नान करके इच्छानुसार दान करता है, उसके तीर्थस्नान और दानका पुण्य अक्षय होता है। जो मनुष्य एक बार भृगुतीर्थका माहात्म्य श्रवण कर लेता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर रुद्रलोकमें जाता है। राजेन्द्र! वहाँसे परम उत्तम गौतमेश्वर तीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। जो मनुष्य वहाँ नहाकर उपवास करता है, वह सुवर्णमय विमानपर बैठकर ब्रह्मलोकमें जाता है। तदनन्तर धौतपाप नामक तीर्थमें जाना चाहिये। वहाँ स्नान करनेसे ब्रह्महत्या दूर होती है। इसके बाद हिरण्यद्वीप नामसे विख्यात तीर्थमें जाय। वह सब पापोंका नाश करनेवाला है। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य धनी तथा रूपवान् होता है। वहाँसे कनखलकी यात्रा करे। वह बहुत बड़ा तीर्थ है। वहाँ गरुड़ने तपस्या की थी। जो मनुष्य वहाँ स्नान करता है, उसकी रुद्रलोकमें प्रतिष्ठा होती है। तदनन्तर सिद्धजनार्दन तीर्थकी यात्रा करे। वहाँ परमेश्वर श्रीविष्णु वाराहरूप धारण करके प्रकट हुए थे। इसीलिये उसे वाराहतीर्थ भी कहते हैं। उस तीर्थमें विशेषतः द्वादशीको स्नान करनेसे विष्णुलोककी प्राप्ति होती है।

राजेन्द्र! तदनन्तर देवतीर्थमें जाना चाहिये, जो सम्पूर्ण देवताओंद्वारा अभिवन्दित है। वहाँ स्नान करके मनुष्य देवताओंके साथ आनन्द भोगता है। तत्पश्चात् शिखितीर्थकी यात्रा करे, वह बहुत ही उत्तम तीर्थ है। वहाँ जो कुछ दान किया जाता है, वह सब-का-सब कोटिगुना अधिक फल देनेवाला होता है। जो कृष्णपक्षमें अमावास्याको वहाँ स्नान करता और एक ब्राह्मणको भी भोजन कराता है, उसे कोटि ब्राह्मणोंके भोजन करानेका फल प्राप्त होता है।

राजा युधिष्ठिर! तदनन्तर नर्मदेश्वर तीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। वह भी उत्तम तीर्थ है। वहाँ स्नान करके मनुष्य स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। इसके बाद पितामह-तीर्थमें जाना चाहिये, जिसे पूर्वकालमें साक्षात् ब्रह्माजीने उत्पन्न किया था। मनुष्यको उचित है कि वहाँ स्नान करके भक्तिपूर्वक पितरोंको पिण्डदान दे तथा तिल और कुशमिश्रित जलसे पितरोंका तर्पण करे। उस तीर्थके प्रभावसे वह सब कुछ अक्षय हो जाता है। जो सावित्री-तीर्थमें जाकर स्नान करता है, वह सब पापोंको धोकर ब्रह्मलोकमें सम्मानित होता है। वहाँसे मानस नामक उत्तम तीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। उस तीर्थमें स्नान करके मनुष्य रुद्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। तत्पश्चात् क्रतुतीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। वह बहुत ही उत्तम, तीनों लोकोंमें विख्यात और सम्पूर्ण पापोंका नाश

करनेवाला तीर्थ है। इसके बाद स्वर्गबिन्दु नामसे प्रसिद्ध तीर्थमें जाना उचित है। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्यको कभी दुर्गति नहीं देखनी पड़ती। वहाँसे भारभूत नामक तीर्थकी यात्रा करे और वहाँ पहुँचकर उपवासपूर्वक भगवान् विरूपाक्षकी पूजा करे। ऐसा करनेसे वह रुद्रलोकमें सम्मानित होता है। राजन्! जो उस तीर्थमें उपवास करता है, वह पुनः गर्भमें नहीं आता। वहाँसे परम उत्तम अटवी तीर्थमें जाय। वहाँ स्नान करके मनुष्य इन्द्रका आधा सिंहासन प्राप्त करता है। तदनन्तर सब पापोंका नाश करनेवाले शृंगतीर्थकी यात्रा करे। वहाँ स्नान करनेमात्रसे निश्चय ही गणेशपदकी प्राप्ति होती है। पश्चिम-समुद्रके साथ जो नर्मदाका संगम है, वह तो मुक्तिका दरवाजा ही खोल देता है। वहाँ देवता, गन्धर्व, ऋषि, सिद्ध और चारण तीनों सन्ध्याओंके समय उपस्थित होकर देवताओंके स्वामी भगवान् विमलेश्वरकी आराधना करते हैं। विमलेश्वरसे बढ़कर दूसरा कोई तीर्थ न हुआ है न होगा। जो लोग वहाँ उपवास करके विमलेश्वरका दर्शन करते हैं, वे सब पापोंसे शुद्ध हो रुद्रलोकमें जाते हैं।

राजेन्द्र! वहाँसे परम उत्तम केशिनी-तीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। जो मनुष्य वहाँ स्नान करके एक रात उपवास करता है तथा मन और इन्द्रियोंको वशमें करके आहारपर भी संयम रखता है, वह उस तीर्थके प्रभावसे ब्रह्महत्यासे मुक्त हो जाता है। जो सागरेश्वरका दर्शन करता है, उसे समस्त तीर्थोंमें स्नान करनेका फल मिल जाता है। केशिनी-तीर्थसे एक योजनके भीतर समुद्रके भँवरमें साक्षात् भगवान् शिव विराजमान हैं। उनको देखनेसे सब तीर्थोंके दर्शनका फल प्राप्त हो जाता है तथा दर्शन करनेवाला पुरुष सब पापोंसे मुक्त हो रुद्रलोकमें जाता है। महाराज! अमरकण्टकसे लेकर नर्मदा और समुद्रके संगमतक जितनी दूरी है, उसके भीतर दस करोड़ तीर्थ विद्यमान हैं। एक तीर्थसे दूसरे तीर्थको जानेके जो मार्ग हैं, उनका करोड़ों ऋषियोंने सेवन किया है। अग्निहोत्री, दिव्यज्ञानसम्पन्न तथा ज्ञानी—सब प्रकारके मनुष्योंने तीर्थयात्राएँ की हैं। इससे तीर्थयात्रा मनोवांछित फलको देनेवाली मानी गयी है। पाण्डुनन्दन! जो पुरुष प्रतिदिन भक्तिपूर्वक इस अध्यायका पाठ या श्रवण करता है, वह समस्त तीर्थोंमें स्नानके पुण्यका भागी होता है। साथ ही नर्मदा उसके ऊपर सदा प्रसन्न रहती है। इतना ही नहीं, भगवान् रुद्र तथा महामुनि मार्कण्डेयजी भी उसके ऊपर प्रसन्न होते हैं। जो तीनों सन्ध्याओंके समय इस प्रसंगका पाठ करता है, उसे कभी नरकका दर्शन नहीं होता तथा वह किसी कुत्सित योनिमें भी नहीं पड़ता।

विविध तीर्थोंकी महिमाका वर्णन

युधिष्ठिर बोले—नारदजी! महर्षि वसिष्ठके बताये हुए अन्यान्य तीर्थोंका, जिनका नाम श्रवण करनेसे ही पाप नष्ट हो जाते हैं, मुझसे वर्णन कीजिये।

नारदजीने कहा—'धर्मज्ञ युधिष्ठिर! हिमालयके पुत्र अर्बुद पर्वतकी यात्रा करनी चाहिये, जहाँ पूर्वकालमें पृथ्वीमें छेद था। वहाँ महर्षि वसिष्ठका आश्रम है, जो तीनों लोकोंमें विख्यात है। वहाँ एक रात निवास करनेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है। ब्रह्मचर्यके पालनपूर्वक पिंगातीर्थमें आचमन करनेसे कपिला जातिकी सौ गौओंके दानका फल प्राप्त होता है। तत्पश्चात् प्रभासक्षेत्रमें जाना चाहिये। वह विश्वविख्यात तीर्थ है। वहाँ साक्षात् अग्निदेव नित्य निवास करते हैं। उस श्रेष्ठ तीर्थमें शुद्ध एवं एकाग्रचित्त होकर स्नान करनेसे मानव अग्निष्टोम और अतिरात्र यज्ञका फल प्राप्त करता है। उसके बाद सरस्वती और समुद्रके संगममें जाकर स्नान करनेसे मनुष्य सहस्र गोदानका फल पाता और स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। जो वरुण देवताके उस तीर्थमें स्नान करके एकाग्रचित्त हो तीन राततक वहाँ निवास तथा देवता और पितरोंका तर्पण करता है, वह चन्द्रमाके समान कान्तिमान् होता और अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त करता है।

भरतश्रेष्ठ! वहाँसे वरदान नामक तीर्थकी यात्रा

करनी चाहिये। वरदानमें स्नान करके मनुष्य सहस्र गोदानका फल प्राप्त करता है। तदनन्तर नियमपूर्वक रहकर नियमित आहारका सेवन करते हुए द्वारकापुरीमें जाना चाहिये। उस तीर्थमें आज भी कमलके चिह्नसे चिह्नित मुद्राएँ दृष्टिगोचर होती हैं। यह एक अद्‌भुत बात है। वहाँके कमलदलोंमें त्रिशूलके चिह्न दिखायी देते हैं। वहाँ महादेवजीका निवास है। जो समुद्र और सिन्धु नदीके संगमपर जाकर वरुण-तीर्थमें नहाता और एकाग्रचित्त हो देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंका तर्पण करता है, वह अपने तेजसे देदीप्यमान हो वरुणलोकमें जाता है। युधिष्ठिर! मनीषी पुरुष कहते हैं कि भगवान् शंकुकर्णेश्वरकी पूजा करनेसे दस अश्वमेधोंका फल होता है। शंकुकर्णेश्वर तीर्थकी प्रदक्षिणा करके तीनों लोकोंमें विख्यात तिमि नामक तीर्थमें जाना चाहिये। वह सब पापोंको दूर करनेवाला तीर्थ है। वहाँ स्नान करके देवताओंसहित रुद्रकी पूजा करनेसे मनुष्य जन्मभरके किये हुए पापोंको नष्ट कर डालता है। धर्मज्ञ! तदनन्तर सबके द्वारा प्रशंसित वसुधारा-तीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। वहाँ जानेमात्रसे ही अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है। कुरुश्रेष्ठ! जो मानव वहाँ स्नान करके एकाग्रचित्त हो देवताओं तथा पितरोंका तर्पण करता है, वह विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। वहाँ वसुओंका एक दूसरा तीर्थ भी है, जहाँ स्नान और जलपान करनेसे मनुष्य वसुओंका प्रिय होता है। तथा ब्रह्मतुंग नामक तीर्थमें जाकर पवित्र, शुद्धचित्त, पुण्यात्मा तथा रजोगुणरहित पुरुष ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है। वहीं रेणुकाका भी तीर्थ है, जिसका देवता भी सेवन करते हैं। वहाँ स्नान करके ब्राह्मण चन्द्रमाकी भाँति निर्मल होता है।

तदनन्तर पंचनद-तीर्थमें जाकर नियमित आहार ग्रहण करते हुए नियमपूर्वक रहना चाहिये। इससे पंचयज्ञोंके अनुष्ठानका फल प्राप्त होता है। भरतश्रेष्ठ! तत्पश्चात् भीमा नदीके उत्तम स्थानपर जाना चाहिये। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य कभी गर्भमें नहीं आता तथा एक लाख गोदानोंका फल प्राप्त करता है। गिरिकुंज नामक तीर्थ तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है। वहाँ जाकर पितामहको नमस्कार करनेसे सहस्र गोदानोंका फल प्राप्त होता है। उसके बाद परम उत्तम विमलतीर्थकी यात्रा करनी चाहिये, जहाँ आज भी सोने और चाँदी-जैसे मत्स्य दिखायी देते हैं। नरश्रेष्ठ! वहाँ स्नान करनेसे वाजपेय यज्ञका फल मिलता है और मनुष्य सब पापोंसे शुद्ध हो परम गतिको प्राप्त होता है।

काश्मीरमें जो वितस्ता नामक तीर्थ है, वह नागराज तक्षकका भवन है। वह तीर्थ समस्त पापोंको दूर करनेवाला है। जो मनुष्य वहाँ स्नान करके देवताओं और पितरोंका तर्पण करता है, वह निश्चय ही वाजपेय यज्ञका फल पाता है। उसका हृदय सब पापोंसे शुद्ध हो जाता है तथा वह परम उत्तम गतिको प्राप्त होता है। वहाँसे मलद नामक तीर्थकी यात्रा करे। राजन्! वहाँ सायं-सन्ध्याके समय विधिपूर्वक आचमन करके जो अग्निदेवको यथाशक्ति चरु निवेदन करता है तथा पितरोंके निमित्त दान देता है, उसका वह दान आदि अक्षय हो जाता है—ऐसा विद्वान् पुरुषोंका कथन है। वहाँ अग्निको दिया हुआ चरु एक लाख गोदान, एक हजार अश्वमेध यज्ञ तथा एक सौ राजसूय यज्ञोंसे भी श्रेष्ठ है। धर्मके ज्ञाता युधिष्ठिर! वहाँसे दीर्घसत्र नामक तीर्थमें जाना चाहिये। वहाँ जानेमात्रसे मानव राजसूय और अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त करता है। शशयान-तीर्थ बहुत ही दुर्लभ है। उस तीर्थमें प्रतिवर्ष कार्तिकी पूर्णिमाको लोग सरस्वती नदीमें स्नान करते हैं। जो वहाँ स्नान करता है, वह साक्षात् शिवकी भाँति कान्तिमान् होता है; साथ ही उसे सहस्र गोदानका फल मिलता है। कुरुनन्दन! जो कुमारकोटि नामक तीर्थमें जाकर नियमपूर्वक स्नान करता और देवताओं तथा पितरोंके पूजनमें संलग्न होता है, उसे दस हजार गोदानका फल मिलता है तथा वह अपने कुलका भी उद्धार कर देता है। महाराज! वहाँसे एकाग्रचित्त होकर रुद्रकोटि-तीर्थमें जाना चाहिये, जहाँ पूर्वकालमें करोड़ ऋषियोंने भगवान् शिवके दर्शनकी इच्छासे बड़े हर्षके साथ ध्यान लगाया था। वहाँ स्नान करके पवित्र हुआ मनुष्य अश्वमेध

यज्ञका फल पाता और अपने कुलका भी उद्धार करता है। तदनन्तर लोकविख्यात संगम-तीर्थमें जाना चाहिये और वहाँ सरस्वती नदीमें परम पुण्यमय भगवान् जनार्दनकी उपासना करनी चाहिये। उस तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्यका चित्त सब पापोंसे शुद्ध हो जाता है और वह शिवलोकको प्राप्त होता है।

राजेन्द्र! तदनन्तर कुरुक्षेत्रकी यात्रा करनी चाहिये। उसकी सब लोग स्तुति करते हैं। वहाँ गये हुए समस्त प्राणी पापमुक्त हो जाते हैं। धीर पुरुषको उचित है कि वह कुरुक्षेत्रमें सरस्वती नदीके तटपर एक मासतक निवास करे। युधिष्ठिर! जो मनसे भी कुरुक्षेत्रका चिन्तन करता है उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं और वह ब्रह्मलोकको जाता है। धर्मज्ञ! वहाँसे भगवान् विष्णुके उत्तम स्थानको, जो 'सतत' नामसे प्रसिद्ध है, जाना चाहिये। वहाँ भगवान् सदा मौजूद रहते हैं। जो उस तीर्थमें नहाकर त्रिभुवनके कारण भगवान् विष्णुका दर्शन करता है, वह विष्णुलोकमें जाता है। तत्पश्चात् पारिप्लवमें जाना चाहिये। वह तीनों लोकोंमें विख्यात तीर्थ है। उसके सेवनसे मनुष्यको अग्निष्टोम और अतिरात्र यज्ञोंका फल मिलता है। तत्पश्चात् तीर्थसेवी मनुष्यको शाल्विकिनि नामक तीर्थमें जाना चाहिये। वहाँ दशाश्वमेध घाटपर स्नान करनेसे भी वही फल प्राप्त होता है। तदनन्तर पंचनदमें जाकर नियमित आहार करते हुए नियमपूर्वक रहे। वहाँ कोटि-तीर्थमें स्नान करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। तत्पश्चात् परम उत्तम वाराह-तीर्थकी यात्रा करे, जहाँ पूर्वकालमें भगवान् विष्णु वराहरूपसे विराजमान हुए थे। उस तीर्थमें निवास करनेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल प्राप्त होता है। तदनन्तर जयिनीमें जाकर सोमतीर्थमें प्रवेश करे। वहाँ स्नान करके मानव राजसूय यज्ञका फल प्राप्त करता है। कृतशौच-तीर्थमें जाकर उसका सेवन करनेवाला पुरुष पुण्डरीक यज्ञका फल पाता है और स्वयं भी पवित्र हो जाता है। 'पम्पा' नामका तीर्थ तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है, वहाँ जाकर स्नान करनेसे मनुष्य अपनी सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। कायशोधन-तीर्थमें जाकर स्नान करनेवालेके शरीरकी शुद्धि होती है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। तथा जिसका शरीर शुद्ध हो जाता है, वह कल्याणमय उत्तम लोकोंको प्राप्त होता है। तत्पश्चात् लोकोद्धार नामक तीर्थकी यात्रा करनी चाहिये, जहाँ पूर्वकालमें सबकी उत्पत्तिके कारणभूत भगवान् विष्णुने समस्त लोकोंका उद्धार किया था। राजन्! वहाँ पहुँचकर उस उत्तम तीर्थमें स्नान करके मनुष्य आत्मीय जनोंका उद्धार कर देता है। जो कपिला-तीर्थमें जाकर ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए एकाग्रचित्त होकर स्नान तथा देवता-पितरोंका पूजन करता है, वह मानव एक सहस्र कपिला-दानका फल पाता है। जो सूर्यतीर्थमें जाकर स्नान करता और मनको काबूमें रखते हुए उपवास-परायण होकर देवताओं तथा पितरोंकी पूजा करता है, उसे अग्निष्टोम यज्ञका फल मिलता है तथा वह सूर्यलोकको जाता है। गोभवन नामक तीर्थमें जाकर स्नान करनेवालेको सहस्र गोदानका फल मिलता है।

तदनन्तर ब्रह्मावर्तकी यात्रा करे। ब्रह्मावर्तमें स्नान करनेसे मनुष्य ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है। वहाँसे अन्यान्य तीर्थोंमें घूमते हुए क्रमशः काशीश्वरके तीर्थोंमें पहुँचकर स्नान करनेसे मनुष्य सब प्रकारके रोगोंसे छुटकारा पाता और ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है। तदनन्तर शौच-सन्तोष आदि नियमोंका पालन करते हुए शीतवनमें जाय। वहाँ बहुत बड़ा तीर्थ है, जो अन्यत्र दुर्लभ है। वह दर्शनमात्रसे एक दण्डमें पवित्र कर देता है। वहाँ एक दूसरा भी श्रेष्ठ तीर्थ है, जो स्नान करनेवाले लोगोंका दुःख दूर करनेवाला माना गया है। वहाँ तत्त्वचिन्तन-परायण विद्वान् ब्राह्मण स्नान करके परम गतिको प्राप्त होते हैं। स्वर्णलोमापनयन नामक तीर्थमें प्राणायामके द्वारा जिनका अन्तःकरण पवित्र हो चुका है, वे परम गतिको प्राप्त होते हैं। दशाश्वमेध नामक तीर्थमें भी स्नान करनेसे उत्तम गतिकी प्राप्ति होती है।

तत्पश्चात् लोकविख्यात मानुष-तीर्थकी यात्रा करे। राजन्! पूर्वकालमें एक व्याधके बाणोंसे पीड़ित हुए कुछ कृष्णमृग उस सरोवरमें कूद पड़े थे और उसमें गोता लगाकर मनुष्य-शरीरको प्राप्त हुए थे। [तभीसे वह मानुष-तीर्थके नामसे प्रसिद्ध हुआ।] इस तीर्थमें स्नान

करके ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए जो ध्यान लगाता है, उसका हृदय सब पापोंसे शुद्ध हो जाता है तथा वह स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। राजन्! मानुष-तीर्थसे पूर्व दिशामें एक कोसकी दूरीपर आपगा नामसे विख्यात एक नदी बहती है। उसके तटपर जाकर जो मानव देवता और पितरोंके उद्देश्यसे साँवाका बना हुआ भोजन दान देता है, वह यदि एक ब्राह्मणको भोजन कराये तो एक करोड़ ब्राह्मणोंके भोजन करानेका फल प्राप्त होता है। वहाँ स्नान करके देवताओं और पितरोंके पूजन तथा एक रात निवास करनेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल प्राप्त होता है। तत्पश्चात् उस तीर्थमें जाना चाहिये, जो इस पृथ्वीपर ब्रह्मानुस्वर-तीर्थके नामसे प्रसिद्ध है। वहाँ सप्तर्षियोंके कुण्डोंमें तथा महात्मा कपिलके क्षेत्रमें स्नान करके जो ब्रह्माजीके पास जा उनका दर्शन करता है, वह पवित्र एवं जितेन्द्रिय होता है तथा उसका चित्त सब पापोंसे शुद्ध होनेके कारण वह अन्तमें ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है।

राजन्! शुक्लपक्षकी दशमीको पुण्डरीक-तीर्थमें प्रवेश करना चाहिये। वहाँ स्नान करके मनुष्य पुण्डरीक यज्ञका फल प्राप्त करता है। वहाँसे त्रिविष्टप नामक तीर्थको जाय, वह तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है। वहाँ वैतरणी नामकी एक पवित्र नदी है, जो सब पापोंसे छुटकारा दिलानेवाली है। वहाँ स्नान करके शूलपाणि भगवान् शंकरका पूजन करनेसे मनुष्यका हृदय सब पापोंसे शुद्ध हो जाता है तथा वह परम गतिको प्राप्त होता है। पाणिख्यात नामसे विख्यात तीर्थमें स्नान और देवताओंका तर्पण करके मानव राजसूय यज्ञका फल प्राप्त करता है। तत्पश्चात् विश्वविख्यात मिश्रक (मिश्रिख)-में जाना चाहिये। नृपश्रेष्ठ! हमारे सुननेमें आया है कि महात्मा व्यासजीने द्विजातिमात्रके लिये वहाँ सब तीर्थोंका सम्मेलन किया था, अतः जो मिश्रिखमें स्नान करता है, वह मानो सब तीर्थोंमें स्नान कर लेता है।

नरेश्वर! जो ऋणान्त कूपके पास जाकर वहाँ एक सेर तिलका दान करता है, वह ऋणसे मुक्त हो परम सिद्धिको प्राप्त होता है। वेदीतीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्यको सहस्त्र गोदानका फल मिलता है। अहन् और सुदिन—ये दो तीर्थ अत्यन्त दुर्लभ हैं। उनमें स्नान करनेसे सूर्यलोककी प्राप्ति होती है। मृगधूम तीर्थ तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है। वहाँ रुद्रपदमें स्नान और महात्मा शूलपाणिका पूजन करके मानव अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त करता है। कोटितीर्थमें स्नान करनेसे सहस्त्र गोदानका फल मिलता है। वामनतीर्थ भी तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है। वहाँ जाकर विष्णुपदमें स्नान और भगवान् वामनका पूजन करनेसे तीर्थयात्रीका हृदय सब पापोंसे शुद्ध हो जाता है। कुलम्पुन-तीर्थमें स्नान करके मनुष्य अपने कुलको पवित्र करता है। शालिहोत्रका एक तीर्थ है, जो शालिसूर्य नामसे प्रसिद्ध है। उसमें विधिपूर्वक स्नान करनेसे मनुष्यको सहस्त्र गोदानोंका फल मिलता है। राजन्! सरस्वती नदीमें एक श्रीकुंज नामक तीर्थ है। वहाँ स्नान करके मनुष्य अग्निष्टोम यज्ञका फल प्राप्त करता है। तत्पश्चात् ब्रह्माजीके उत्तम स्थान (पुष्कर)-की यात्रा करनी चाहिये। छोटे वर्णका मनुष्य वहाँ स्नान करनेसे ब्राह्मणत्व प्राप्त करता है और ब्राह्मण शुद्धचित्त होकर परमगतिको प्राप्त होता है।

कपालमोचन-तीर्थ सब पापोंका नाश करनेवाला है। वहाँ स्नान करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। वहाँसे कार्तिकेयके पृथूदक-तीर्थमें जाना चाहिये, वह तीनों लोकोंमें विख्यात है। वहाँ देवता और पितरोंके पूजनमें तत्पर होकर स्नान करना चाहिये। स्त्री हो या पुरुष, वह मानवबुद्धिसे प्रेरित हो जान-बूझकर या बिना जाने जो कुछ भी अशुभ कर्म किये होता है, वह सब वहाँ स्नान करनेमात्रसे नष्ट हो जाता है। इतना ही नहीं, उसे अश्वमेध यज्ञके फल तथा स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है। कुरुक्षेत्रको परम पवित्र कहते हैं, कुरुक्षेत्रसे भी पवित्र है सरस्वती नदी, उससे भी पवित्र हैं वहाँके तीर्थ और उन तीर्थोंसे भी पावन है पृथूदक। पृथूदक-तीर्थमें जप करनेवाले मनुष्यका पुनर्जन्म नहीं होता। राजन्! श्रीसनत्कुमार तथा महात्मा व्यासने इस तीर्थकी महिमा गायी है। वेदमें भी इसे निश्चित रूपसे महत्त्व दिया गया है। अतः पृथूदक-तीर्थमें अवश्य जाना चाहिये। पृथूदक-तीर्थसे बढ़कर दूसरा कोई परम पावन तीर्थ नहीं है।

निस्सन्देह यही मेध्य, पवित्र और पावन है। वहीं मधुपुर नामक तीर्थ है, वहाँ स्नान करनेसे सहस्र गोदानोंका फल प्राप्त होता है। नरश्रेष्ठ! वहाँसे सरस्वती और अरुणाके संगममें, जो विश्वविख्यात तीर्थ है, जाना चाहिये। वहाँ तीन राततक उपवास करके रहने और स्नान करनेसे ब्रह्महत्या छूट जाती है। साथ ही तीर्थसेवी पुरुषको अग्निष्टोम और अतिरात्र यज्ञका फल मिलता है और वह अपनी सात पीढ़ियोंतकका उद्धार कर देता है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। वहाँसे शतसहस्र तथा साहस्रक—इन दोनों तीर्थोंमें जाना चाहिये। वे दोनों तीर्थ भी वहीं हैं तथा सम्पूर्ण लोकोंमें उनकी प्रसिद्धि है। उन दोनोंमें स्नान करनेसे मनुष्य सहस्र गोदानोंका फल पाता है। वहाँ जो दान या उपवास किया जाता है, वह सहस्रगुना अधिक फल देनेवाला होता है। तदनन्तर परम उत्तम रेणुकातीर्थमें जाना चाहिये और वहाँ देवताओं तथा पितरोंके पूजनमें तत्पर हो स्नान करना चाहिये। ऐसा करनेसे मनुष्यका हृदय सब पापोंसे शुद्ध हो जाता है तथा उसे अग्निष्टोम यज्ञका फल मिलता है। जो क्रोध और इन्द्रियोंको जीतकर विमोचन-तीर्थमें स्नान करता है, वह प्रतिग्रहजनित समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है।

तदनन्तर जितेन्द्रिय हो ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए पंचवट-तीर्थमें जाकर [स्नान करनेसे] मनुष्यको महान् पुण्य होता है तथा वह स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। जहाँ स्वयं योगेश्वर शिव विराजमान हैं, वहाँ उन देवेश्वरका पूजन करके मनुष्य वहाँकी यात्रा करनेमात्रसे सिद्धि प्राप्त कर लेता है। कुरुक्षेत्रमें इन्द्रिय-निग्रह तथा ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए स्नान करनेसे मनुष्यका हृदय सब पापोंसे शुद्ध हो जाता है और वह रुद्रलोकको प्राप्त होता है। इसके बाद नियमित आहारका भोजन तथा शौचादि नियमोंका पालन करते हुए स्वर्गद्वारकी यात्रा करे। ऐसा करनेसे मनुष्य अग्निष्टोम यज्ञका फल पाता और ब्रह्मलोकको जाता है। महाराज! नारायण तथा पद्मनाभके क्षेत्रोंमें जाकर उनका दर्शन करनेसे तीर्थसेवी पुरुष शोभायमान रूप धारण करके विष्णुधामको प्राप्त होता है। समस्त देवताओंके तीर्थोंमें स्नान करनेमात्रसे मनुष्य सम्पूर्ण दुःखोंसे मुक्त होकर श्रीशिवकी भाँति कान्तिमान् होता है। तत्पश्चात् तीर्थसेवी पुरुष अस्थिपुरमें जाय और उस पावन तीर्थमें पहुँचकर देवताओं तथा पितरोंका तर्पण करे। इससे उसे अग्निष्टोम यज्ञका फल मिलता है। भरतश्रेष्ठ! वहीं गंगाह्रद नामक कूप है, जिसमें तीन करोड़ तीर्थोंका निवास है। राजन्! उसमें स्नान करनेसे मनुष्य ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है। आपगामें स्नान और महेश्वरका पूजन करके मनुष्य परम गतिको पाता है और अपने कुलका भी उद्धार कर देता है। तत्पश्चात् तीनों लोकोंमें विख्यात स्थाणुवट-तीर्थमें जाना चाहिये; वहाँ स्नान करके रात्रिमें निवास करनेसे मनुष्य रुद्रलोकको प्राप्त होता है। जो नियम-परायण, सत्यवादी पुरुष एकरात्र नामक तीर्थमें जाकर एक रात निवास करता है, वह ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है। राजेन्द्र! वहाँसे उस त्रिभुवनविख्यात तीर्थमें जाना चाहिये, जहाँ तेजोराशि महात्मा आदित्यका आश्रम है। जो मनुष्य उस तीर्थमें स्नान करके भगवान् सूर्यका पूजन करता है, वह सूर्यलोकमें जाता और अपने कुलका उद्धार कर देता है।

युधिष्ठिर! इसके बाद सन्निहिता नामक तीर्थकी यात्रा करनी चाहिये, जहाँ ब्रह्मा आदि देवता तथा तपोधन ऋषि महान् पुण्यसे युक्त हो प्रतिमास एकत्रित होते हैं। सूर्यग्रहणके समय सन्निहितामें स्नान करनेसे सौ अश्वमेध यज्ञोंके अनुष्ठानका फल होता है। पृथ्वीपर तथा आकाशमें जितने भी तीर्थ, जलाशय, कूप तथा पुण्य-मन्दिर हैं, वे सब प्रत्येक मासकी अमावास्याको निश्चय ही सन्निहितामें एकत्रित होते हैं। अमावास्या तथा सूर्यग्रहणके समय वहाँ केवल स्नान तथा श्राद्ध करनेवाला मानव सहस्र अश्वमेध यज्ञके अनुष्ठानका फल प्राप्त करता है। स्त्री अथवा पुरुषका जो कुछ भी दुष्कर्म होता है, वह सब वहाँ स्नान करनेमात्रसे नष्ट हो जाता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। उस तीर्थमें स्नान करनेवाला पुरुष विमानपर बैठकर ब्रह्मलोकमें जाता है। पृथ्वीपर नैमिषारण्य पवित्र है तथा तीनों

लोकोंमें कुरुक्षेत्रको अधिक महत्त्व दिया गया है। हवासे उड़ायी हुई कुरुक्षेत्रकी धूलि भी यदि देहपर पड़ जाय तो वह पापीको भी परमगतिकी प्राप्ति करा देती है। कुरुक्षेत्र ब्रह्मवेदीपर स्थित है। वह ब्रह्मर्षियोंसे सेवित पुण्यमय तीर्थ है। राजन्! जो उसमें निवास करते हैं, वे किसी तरह शोकके योग्य नहीं होते। तरण्डकसे लेकर अरण्डकतक तथा रामह्रद (परशुराम-कुण्ड)-से लेकर मचक्रुकतकके भीतरका क्षेत्र समन्तपंचक कहलाता है। यही कुरुक्षेत्र है। इसे ब्रह्माजीके यज्ञकी उत्तर-वेदी कहा गया है।

धर्मतीर्थ आदिकी महिमा, यमुना-स्नानका माहात्म्य—हेमकुण्डल वैश्य और उसके पुत्रोंकी कथा एवं स्वर्ग तथा नरकमें ले जानेवाले शुभाशुभ कर्मोंका वर्णन

नारदजी कहते हैं—धर्मके ज्ञाता युधिष्ठिर! कुरुक्षेत्रसे तीर्थयात्रीको परम प्राचीन धर्मतीर्थमें जाना चाहिये, जहाँ महाभाग धर्मने उत्तम तपस्या की थी। धर्मशील मनुष्य एकाग्रचित्त हो वहाँ स्नान करके अपनी सात पीढ़ियोंतकको पवित्र कर देता है। वहाँसे उत्तम कलाप-वनकी यात्रा करनी उचित है; उस तीर्थमें एकाग्रतापूर्वक स्नान करके मनुष्य अग्निष्टोम यज्ञका फल पाता और विष्णुलोकको जाता है। राजन्! तत्पश्चात् मानव सौगन्धिक-वनकी यात्रा करे। उस वनमें प्रवेश करते ही वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। उसके बाद नदियोंमें श्रेष्ठ सरस्वती आती हैं, जिन्हें प्लक्षा देवी भी कहते हैं। उनमें जहाँ वल्मीक (बाँबी)-से जल निकला है, वहाँ स्नान करे। फिर देवताओं तथा पितरोंका पूजन करके मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता है। भारत! सुगन्धा, शतकुम्भा तथा पंचयज्ञकी यात्रा करके मनुष्य स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

तत्पश्चात् तीनों लोकोंमें विख्यात सुवर्ण नामक तीर्थमें जाय; वहाँ पहुँचकर भगवान् शंकरकी पूजा करनेसे मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता और गणपति-पदको प्राप्त होता है। वहाँसे धूमवन्तीको प्रस्थान करे। वहाँ तीन रात निवास करनेवाला मनुष्य मनोवांछित कामनाओंको प्राप्त कर लेता है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। देवीके दक्षिणार्ध भागमें रथावर्त नामक स्थान है। वहाँ जाकर श्रद्धालु एवं जितेन्द्रिय पुरुष महादेवजीकी कृपासे परमगतिको प्राप्त होता है। तत्पश्चात् महागिरिको नमस्कार करके गंगाद्वार (हरिद्वार)-की यात्रा करे तथा वहाँ एकाग्रचित्त हो कोटितीर्थमें स्नान करे। ऐसा करनेवाला पुरुष पुण्डरीक यज्ञका फल पाता और अपने कुलका भी उद्धार कर देता है। वहाँ एक रात निवास करनेसे सहस्र गोदानोंका फल मिलता है। सप्तगंग, त्रिगंग और शक्रावर्त नामक तीर्थमें देवता तथा पितरोंका विधिपूर्वक तर्पण करनेवाला पुरुष पुण्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है। इसके बाद कनखलमें स्नान करके तीन राततक उपवास करनेवाला मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता और स्वर्गलोकको जाता है। वहाँसे ललितिका-(ललिता)-में, जो राजा शन्तनुका उत्तम तीर्थ है, जाना चाहिये। राजन्! वहाँ स्नान करनेसे मनुष्यकी कभी दुर्गति नहीं होती।

महाराज युधिष्ठिर! तत्पश्चात् उत्तम कालिन्दी-तीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य दुर्गतिमें नहीं पड़ता। नरश्रेष्ठ! पुष्कर, कुरुक्षेत्र, ब्रह्मावर्त, पृथूदक, अविमुक्त क्षेत्र (काशी) तथा सुवर्ण नामक तीर्थमें भी जिस फलकी प्राप्ति नहीं होती, वह यमुनामें स्नान करनेसे मिल जाता है। निष्काम या सकाम भावसे भी जो यमुनाजीके जलमें गोता लगाता है, उसे इस लोक और परलोकमें दुःख नहीं देखना पड़ता। जैसे कामधेनु और चिन्तामणि मनोगत कामनाओंको पूर्ण कर देती हैं, उसी प्रकार यमुनामें किया हुआ स्नान सारे मनोरथोंको पूर्ण करता है। सत्ययुगमें तप, त्रेतामें ज्ञान, द्वापरमें यज्ञ तथा कलियुगमें दान सर्वश्रेष्ठ माने गये हैं; किन्तु कलिन्द-कन्या यमुना सदा ही शुभकारिणी हैं। राजन्! यमुनाके जलमें स्नान करना सभी वर्णों तथा

समस्त आश्रमोंके लिये धर्म है। मनुष्यको चाहिये कि वह भगवान् वासुदेवकी प्रसन्नता, समस्त पापोंकी निवृत्ति तथा स्वर्गलोककी प्राप्तिके लिये यमुनाके जलमें स्नान करे। यदि यमुना-स्नानका अवसर न मिला तो सुन्दर, सुपुष्ट, बलिष्ठ एवं नाशवान् शरीरकी रक्षा करनेसे क्या लाभ।

विष्णुभक्तिसे रहित ब्राह्मण, विद्वान् पुरुषोंसे रहित श्राद्ध, ब्राह्मणभक्तिसे शून्य क्षत्रिय, दुराचारसे दूषित कुल, दम्भयुक्त धर्म, क्रोधपूर्वक किया हुआ तप, दृढ़तारहित ज्ञान, प्रमादपूर्वक किया हुआ शास्त्राध्ययन, परपुरुषमें आसक्ति रखनेवाली नारी, मदयुक्त ब्रह्मचारी, बुझी हुई आगमें किया हुआ हवन, कपटपूर्ण भक्ति, जीविकाका साधन बनी हुई कन्या, अपने लिये बनायी हुई रसोई, शूद्र संन्यासीका साधा हुआ योग, कृपणका धन, अभ्यासरहित विद्या, विरोध पैदा करनेवाला ज्ञान, जीविकाके साधन बने हुए तीर्थ और व्रत, असत्य और चुगलीसे भरी हुई वाणी, छः कानोंमें पहुँचा हुआ गुप्त मन्त्र, चंचल चित्तसे किया हुआ जप, अश्रोत्रियको दिया हुआ दान, नास्तिक मनुष्य तथा अश्रद्धापूर्वक किया हुआ समस्त पारलौकिक कर्म—ये सब-के-सब जिस प्रकार नष्टप्राय माने गये हैं, वैसे ही यमुना-स्नानके बिना मनुष्योंका जन्म भी नष्ट ही है। मन, वाणी और क्रियाद्वारा किये हुए आर्द्र, शुष्क, लघु और स्थूल—सभी प्रकारके पापोंको यमुनाका स्नान दग्ध कर देता है; ठीक उसी तरह जैसे आग लकड़ीको जला डालती है। राजन्! जैसे भगवान् विष्णुकी भक्तिमें सभी मनुष्योंका अधिकार है, उसी प्रकार यमुनादेवी सदा सबके पापोंका नाश करनेवाली हैं। यमुनामें किया हुआ स्नान ही सबसे बड़ा मन्त्र, सबसे बड़ी तपस्या और सबसे बढ़कर प्रायश्चित्त है। यदि मथुराकी यमुना प्राप्त हो जायँ तो वे मोक्ष देनेवाली मानी गयी हैं। अन्यत्रकी यमुना पुण्यमयी तथा महापातकोंका नाश करनेवाली हैं; किन्तु मथुरामें बहनेवाली यमुनादेवी विष्णुभक्ति प्रदान करती हैं।

राजन्! इस विषयमें मैं तुमसे एक प्राचीन इतिहासका वर्णन करता हूँ। पूर्वकालके सत्ययुगकी बात है। निषध नामक सुन्दर नगरमें एक वैश्य रहते थे। उनका नाम हेमकुण्डल था। वे उत्तम कुलमें उत्पन्न होनेके साथ ही सत्कर्म करनेवाले थे। देवता, ब्राह्मण और अग्निकी पूजा करना उनका नित्यका नियम था। वे खेती और व्यापारका काम करते थे। पशुओंके पालन-पोषणमें तत्पर रहते थे। दूध, दही, मट्ठा, घास, लकड़ी, फल, मूल, लवण, अदरख, पीपल, धान्य, शाक, तैल, भाँति-भाँतिके वस्त्र, धातुओंके सामान और ईखके रससे बने हुए खाद्य पदार्थ (गुड़, खाँड़, शक्कर आदि)—इन्हीं सब वस्तुओंको सदा बेचा करते थे। इस तरह नाना प्रकारके अन्यान्य उपायोंसे वैश्यने आठ करोड़ स्वर्णमुद्राएँ पैदा कीं। इस प्रकार व्यापार करते-करते उनके कानोंतकके बाल सफेद हो गये। तदनन्तर उन्होंने अपने चित्तमें संसारकी क्षणभंगुरताका विचार करके उस धनके छठे भागसे धर्मका कार्य करना आरम्भ किया। भगवान् विष्णुका मन्दिर तथा शिवालय बनवाये, पोखरा खुदवाया तथा बहुत-सी बावलियाँ बनवायीं। इतना ही नहीं, उन्होंने बरगद, पीपल, आम, जामुन और नीम आदिके जंगल लगवाये तथा सुन्दर पुष्पवाटिका भी तैयार करायी। सूर्योदयसे लेकर सूर्यास्ततक अन्न-जल बाँटनेकी उन्होंने व्यवस्था कर रखी थी। नगरके बाहर चारों ओर अत्यन्त शोभायमान पौंसले बनवा दिये थे। राजन्! पुराणोंमें जो-जो दान प्रसिद्ध हैं, वे सभी दान उन धर्मात्मा वैश्यने दिये थे। वे सदा ही दान, देवपूजा तथा अतिथि-सत्कारमें लगे रहते थे।

इस प्रकार धर्मकार्यमें लगे हुए वैश्यके दो पुत्र हुए। उनके नाम थे—श्रीकुण्डल और विकुण्डल। उन दोनोंके सिरपर घरका भार छोड़कर हेमकुण्डल तपस्या करनेके लिये वनमें चले गये। वहाँ उन्होंने सर्वश्रेष्ठ देवता वरदायक भगवान् गोविन्दकी आराधनामें संलग्न हो तपस्याद्वारा अपने शरीरको क्षीण कर डाला। तथा निरन्तर श्रीवासुदेवमें मन लगाये रहनेके कारण वे वैष्णव-धामको प्राप्त हुए, जहाँ जाकर मनुष्यको शोक नहीं करना पड़ता। तत्पश्चात् उस वैश्यके दोनों पुत्र जब

तरुण हुए तो उन्हें बड़ा अभिमान हो गया। वे धनके गर्वसे उन्मत्त हो उठे। उनका आचरण बिगड़ गया। वे दुर्व्यसनोंमें आसक्त हो गये। धर्म-कर्मोंकी ओर उनकी दृष्टि नहीं जाती थी। वे माताकी आज्ञा तथा वृद्ध पुरुषोंका कहना नहीं मानते थे। दोनों ही दुरात्मा और कुमार्गगामी हो गये। वे अधर्ममें ही लगे रहते थे। उन दुष्टोंने परायी स्त्रियोंके साथ व्यभिचार आरम्भ कर दिया। वे गाने-बजानेमें मस्त रहते और सैकड़ों वेश्याओंको साथ रखते थे। चिकनी-चुपड़ी बातें बनाकर 'हाँ-में-हाँ' मिलानेवाले चापलूस ही उनके संगी थे। उन्हें मद्य पीनेका चस्का लग गया था। इस प्रकार सदा भोगपरायण होकर पिताके धनका नाश करते हुए वे दोनों भाई अपने रमणीय भवनमें निवास करते थे। धनका दुरुपयोग करते हुए उन्होंने वेश्याओं, गुंडों, नटों, मल्लों, चारणों तथा बन्दियोंको अपना सारा धन लुटा दिया। ऊसरमें डाले हुए बीजकी भाँति सारा धन उन्होंने अपात्रोंको ही दिया। सत्पात्रको कभी दान नहीं दिया, ब्राह्मणके मुखमें अन्नका होम नहीं किया तथा समस्त भूतोंका भरण-पोषण करनेवाले सर्वपापनाशक भगवान् विष्णुकी कभी पूजा नहीं की।

इस प्रकार उन दोनोंका धन थोड़े ही दिनोंमें समाप्त हो गया। इससे उन्हें बड़ा दुःख हुआ। उनके घरमें ऐसी कोई भी वस्तु नहीं बची, जिससे वे अपना निर्वाह करते। द्रव्यके अभावमें समस्त स्वजनों, बान्धवों, सेवकों तथा आश्रितोंने भी उन्हें त्याग दिया। उस नगरमें उनकी बड़ी शोचनीय स्थिति हो गयी। इसके बाद उन्होंने चोरी करना आरम्भ किया। राजा तथा लोगोंके भयसे डरकर वे अपने नगरसे निकल गये और वनमें जाकर रहने लगे। अब वे सबको पीड़ा पहुँचाने लगे। इस प्रकार पापपूर्ण आहारसे उनकी जीविका चलने लगी। तदनन्तर एक दिन उनमेंसे एक तो पहाड़पर गया और दूसरेने वनमें प्रवेश किया। राजन्! उन दोनोंमें जो बड़ा था, उसे सिंहने मार डाला और छोटेको साँपने डस लिया। उन दोनों महापापियोंकी एक ही दिन मृत्यु हुई। इसके बाद यमदूत उन्हें पाशोंमें बाँधकर यमपुरीमें ले गये। वहाँ जाकर वे यमराजसे बोले—'धर्मराज! आपकी आज्ञासे हम इन दोनों मनुष्योंको ले आये हैं। अब आप प्रसन्न होकर अपने इन किंकरोंको आज्ञा दीजिये, कौन-सा कार्य करें?' तब यमराजने दूतोंसे कहा—'वीरो! एकको तो दुःसह पीड़ा देनेवाले नरकमें डाल दो और दूसरेको स्वर्गलोकमें, जहाँ उत्तम-उत्तम भोग सुलभ हैं, स्थान दो।' यमराजकी आज्ञा सुनकर शीघ्रतापूर्वक काम करनेवाले दूतोंने वैश्यके ज्येष्ठ पुत्रको भयंकर रौरव नरकमें डाल दिया। इसके बाद उनमेंसे किसी श्रेष्ठ दूतने दूसरे पुत्रसे मधुर वाणीमें कहा—'विकुण्डल! तुम मेरे साथ आओ, मैं तुम्हें स्वर्गमें स्थान देता हूँ। तुम वहाँ अपने पुण्यकर्मद्वारा उपार्जित दिव्य भोगोंका उपभोग करो।'

यह सुनकर विकुण्डलके मनमें बड़ा हर्ष हुआ। मार्गमें अत्यन्त विस्मित होकर उसने दूतसे पूछा—'दूतप्रवर! मैं आपसे अपने मनका एक सन्देह पूछ रहा हूँ। हम दोनों भाइयोंका एक ही कुलमें जन्म हुआ। हमने कर्म भी एक-सा ही किया तथा दुर्मृत्यु भी हमारी एक-सी ही हुई; फिर क्या कारण है कि मेरे ही समान कर्म करनेवाला मेरा बड़ा भाई नरकमें डाला गया और मुझे स्वर्गकी प्राप्ति हुई? आप मेरे इस संशयका निवारण कीजिये। बाल्यकालसे ही मेरा मन पापोंमें लगा रहा। पुण्य-कर्मोंमें कभी संलग्न नहीं हुआ। यदि आप मेरे किसी पुण्यको जानते हों तो कृपया बतलाइये।'

देवदूतने कहा—वैश्यवर! सुनो। हरिमित्रके पुत्र स्वमित्र नामक ब्राह्मण वनमें रहते थे। वे वेदोंके पारगामी विद्वान् थे। यमुनाके दक्षिण किनारे उनका पवित्र आश्रम था। उस वनमें रहते समय ब्राह्मणदेवताके साथ तुम्हारी मित्रता हो गयी थी। उन्हींके संगसे तुमने कालिन्दीके पवित्र जलमें, जो सब पापोंको हरनेवाला और श्रेष्ठ है, दो बार माघ-स्नान किया है। एक माघ-स्नानके पुण्यसे तुम सब पापोंसे मुक्त हो गये और दूसरेके पुण्यसे तुम्हें स्वर्गकी प्राप्ति हुई है। इसी पुण्यके प्रभावसे तुम सदा स्वर्गमें रहकर आनन्दका अनुभव करो। तुम्हारा भाई नरकमें बड़ी भारी यातना भोगेगा। असिपत्र-वनके

पत्तोंसे उसके सारे अंग छिद जायँगे। मुगदरोंकी मारसे उसकी धज्जियाँ उड़ जायँगी। शिलाकी चट्टानोंपर पटककर उसे चूर-चूर कर दिया जायगा तथा वह दहकते हुए अंगारोंमें भूना जायगा।

दूतकी यह बात सुनकर विकुण्डलको भाईके दुःखसे बड़ा दुःख हुआ। उसके सारे शरीरके रोंगटे खड़े हो गये। वह दीन और विनीत होकर बोला—'साधो! सत्पुरुषोंमें सात पग साथ चलनेमात्रसे मैत्री हो जाती है तथा वह उत्तम फल देनेवाली होती है; अतः आप मित्रभावका विचार करके मेरा उपकार करें। मैं आपसे उपदेश सुनना चाहता हूँ। मेरी समझमें आप सर्वज्ञ हैं; अतः कृपा करके बताइये, मनुष्य किस कर्मके अनुष्ठानसे यमलोकका दर्शन नहीं करते तथा कौन-सा कर्म करनेसे वे नरकमें जाते हैं?'

देवदूतने कहा—जो मन, वाणी और क्रियाद्वारा कभी किसी भी अवस्थामें दूसरोंको पीड़ा नहीं देते, वे यमराजके लोकमें नहीं जाते। अहिंसा परम धर्म है, अहिंसा ही श्रेष्ठ तपस्या है तथा अहिंसाको ही मुनियोंने सदा श्रेष्ठ दान बताया है।[१] जो मनुष्य दयालु हैं वे मच्छर, साँप, डाँस, खटमल तथा मनुष्य—सबको अपने ही समान देखते हैं। जो अपनी जीविकाके लिये जलचर और थलचर जीवोंकी हत्या करते हैं, वे कालसूत्र नामक नरकमें पड़कर दुर्गति भोगते हैं। वहाँ उन्हें कुत्तेका मांस खाना तथा पीब और रक्त पीना पड़ता है। वे चर्बीकी कीचमें डूबकर अधोमुखी कीड़ोंके द्वारा डँसे जाते हैं। अँधेरेमें पड़कर वे एक-दूसरेको खाते और परस्पर आघात करते हैं। इस अवस्थामें भयंकर चीत्कार करते हुए वे एक कल्पतक वहाँ निवास करते हैं। नरकसे निकलनेपर उन्हें दीर्घकालतक स्थावर-योनिमें रहना पड़ता है। उसके बाद वे क्रूर प्राणी सैकड़ों बार तिर्यग्योनियोंमें जन्म लेते हैं और अन्तमें मनुष्य-योनिके भीतर जन्मसे अंधे, काने, कुबड़े, पंगु, दरिद्र तथा अंगहीन होकर उत्पन्न होते हैं।

इसलिये जो दोनों लोकोंमें सुख पाना चाहता है, उस धर्मज्ञ पुरुषको उचित है कि इस लोक और परलोकमें मन, वाणी तथा क्रियाके द्वारा किसी भी जीवकी हिंसा न करे। प्राणियोंकी हिंसा करनेवाले लोग दोनों लोकोंमें कहीं भी सुख नहीं पाते। जो किसी जीवकी हिंसा नहीं करते, उन्हें कहीं भी भय नहीं होता। जैसे नदियाँ समुद्रमें मिलती हैं, उसी प्रकार समस्त धर्म अहिंसामें लय हो जाते हैं—यह निश्चित बात है। वैश्यप्रवर! जिसने इस लोकमें सम्पूर्ण भूतोंको अभयदान कर दिया है, उसीने सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान किया है तथा वह सम्पूर्ण यज्ञोंकी दीक्षा ले चुका है। वर्णाश्रमधर्ममें स्थित होकर शास्त्रोक्त आज्ञाका पालन करनेवाले समस्त जितेन्द्रिय मनुष्य सनातन ब्रह्मलोकको प्राप्त होते हैं। जो इष्ट[२] और पूर्तमें[३] लगे रहते हैं, पंचयज्ञोंका[४] अनुष्ठान किया करते हैं, जिनके मनमें सदा दया भरी रहती है, जो विषयोंकी ओरसे निवृत्त, सामर्थ्यशाली, वेदवादी तथा सदा अग्निहोत्रपरायण हैं, वे ब्राह्मण स्वर्गगामी होते हैं। शत्रुओंसे घिरे होनेपर भी जिनके मुखपर कभी दीनताका भाव नहीं आता, जो शूरवीर हैं, जिनकी मृत्यु संग्राममें ही होती है; जो अनाथ स्त्रियों, ब्राह्मणों तथा शरणागतोंकी रक्षाके लिये अपने प्राणोंकी बलि दे देते हैं तथा जो पंगु, अन्ध, बाल-वृद्ध, अनाथ, रोगी तथा दरिद्रोंका सदा पालन-पोषण करते हैं, वे सदा स्वर्गमें रहकर आनन्द भोगते हैं। जो कीचड़में फँसी हुई गाय तथा रोगसे आतुर ब्राह्मणको देखकर उनका उद्धार करते हैं, जो गौओंको ग्रास अर्पण करते, गौओंकी सेवा-शुश्रूषामें रहते तथा गौओंकी पीठपर

१-अहिंसा परमो धर्मो ह्यहिंसैव परं तपः। अहिंसा परमं दानमित्याहुर्मुनयः सदा॥ (३१। २७)

२-अग्निहोत्र, तप, सत्य, यज्ञ, दान, वेदरक्षा, आतिथ्य, वैश्वदेव और ध्यान आदि धार्मिक कार्योंको 'इष्ट' कहते हैं। ३-बावली, कुआँ, तालाब, देवमन्दिर और धर्मशाला बनवाना तथा बगीचे लगाना आदि कार्य 'पूर्त' कहलाते हैं। ४-ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, मनुष्ययज्ञ, पितृयज्ञ तथा भूतयज्ञ—ये ही पंचयज्ञ कहे गये हैं।

कभी सवारी नहीं करते, वे स्वर्गलोकके निवासी होते हैं। जो ब्राह्मण प्रतिदिन अग्निपूजा, देवपूजा, गुरुपूजा और द्विजपूजामें तत्पर रहते हैं, वे स्वर्गलोकमें जाते हैं।

बावली, कुआँ और पोखरे बनवाने आदिके पुण्यका कभी अन्त नहीं होता; क्योंकि वहाँ जलचर और थलचर जीव सदा अपनी इच्छाके अनुसार जल पीते रहते हैं। देवता भी बावली आदि बनवानेवालेको नित्य दानपरायण कहते है। वैश्यवर! प्राणी जैसे-जैसे बावली आदिका जल पीते हैं, वैसे-ही-वैसे धर्मकी वृद्धि होनेसे उसके बनवानेवाले मनुष्यके लिये स्वर्गका निवास अक्षय होता जाता है। जल प्राणियोंका जीवन है। जलके ही आधारपर प्राण टिके हुए हैं। पातकी मनुष्य भी प्रतिदिन स्नान करनेसे पवित्र हो जाते हैं। प्रातःकालका स्नान बाहर और भीतरके मलको भी धो डालता है। प्रातःस्नानसे निष्पाप होकर मनुष्य कभी नरकमें नहीं पड़ता। जो बिना स्नान किये भोजन करता है, वह सदा मलका भोजन करनेवाला है। जो मनुष्य स्नान नहीं करता, देवता और पितर उससे विमुख हो जाते हैं। वह अपवित्र माना गया है। वह नरक भोगकर कीट-योनिको प्राप्त होता है।

जो लोग पर्वके दिन नदीकी धारामें स्नान करते हैं, वे न तो नरकमें पड़ते हैं और न किसी नीच योनिमें ही जन्म लेते हैं। उनके लिये बुरे स्वप्न और बुरी चिन्ताएँ सदा निष्फल होती हैं। विकुण्डल! जो पृथ्वी, सुवर्ण और गौ—इनका सोलह बार दान करते हैं, वे स्वर्गलोकमें जाकर फिर वहाँसे वापस नहीं आते। विद्वान् पुरुष पुण्य तिथियोंमें, व्यतीपात योगमें तथा संक्रान्तिके समय स्नान करके यदि थोड़ा-सा भी दान करे तो कभी दुर्गतिमें नहीं पड़ता। जो मनुष्य सत्यवादी, सदा मौन धारण करनेवाले, प्रियवक्ता, क्रोधहीन, सदाचारी, अधिक बकवाद न करनेवाले, दूसरोंके दोष न देखनेवाले, सदा सब प्राणियोंपर दया करनेवाले, दूसरोंकी गुप्त बातोंको प्रकट न करनेवाले तथा दूसरोंके गुणोंका बखान करनेवाले हैं; जो दूसरेके धनको तिनकेके समान समझकर मनसे भी उसे लेना नहीं चाहते, ऐसे लोगोंको नरक-यातनाका अनुभव नहीं करना पड़ता। जो दूसरोंपर कलंक लगानेवाला, पाखण्डी, महापापी और कठोर वचन बोलनेवाला है, वह प्रलयकालतक नरकमें पकाया जाता है। कृतघ्न पुरुषका तीर्थोंके सेवन तथा तपस्यासे भी उद्धार नहीं होता। उसे नरकमें दीर्घकालतक भयंकर यातना सहन करनी पड़ती है। जो मनुष्य जितेन्द्रिय तथा मिताहारी होकर पृथ्वीके समस्त तीर्थोंमें स्नान करता है, वह यमराजके घर नहीं जाता। तीर्थमें कभी पातक न करे, तीर्थको कभी जीविकाका साधन न बनाये, तीर्थमें दान न ले तथा वहाँ धर्मको बेचे नहीं। तीर्थमें किये हुए पातकका क्षय होना कठिन है। तीर्थमें लिये हुए दानका पचाना मुश्किल है।

जो एक बार भी गंगाजीके जलमें स्नान करके गंगाजलसे पवित्र हो चुका है, उसने चाहे राशि-राशि पाप किये हों, फिर भी वह नरकमें नहीं पड़ता। हमारे सुननेमें आया है कि व्रत, दान, तप, यज्ञ तथा पवित्रताके अन्यान्य साधन गंगाकी एक बूँदसे अभिषिक्त हुए पुरुषकी समानता नहीं कर सकते।* जो धर्मद्रव (धर्मका ही द्रवीभूतस्वरूप) है, जलका आदि कारण है, भगवान् विष्णुके चरणोंसे प्रकट हुआ है तथा जिसे भगवान् शंकरने अपने मस्तकपर धारण कर रखा है, वह गंगाजीका निर्मल जल प्रकृतिसे परे निर्गुण ब्रह्म ही है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। अतः ब्रह्माण्डके भीतर ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो गंगाजलकी समानता कर सके। जो सौ योजन दूरसे भी 'गंगा, गंगा' कहता है, वह मनुष्य नरकमें नहीं पड़ता। फिर गंगाजीके समान

---

* सकृद्गङ्गाम्भसि स्नातः पूतो गाङ्गेयवारिणा। न नरो नरकं याति अपि पातकराशिकृत्॥
व्रतदानतपोयज्ञाः पवित्राणीतराणि च। गङ्गाविन्द्वभिषिक्तस्य न समा इति नः श्रुतम्॥
(३१।७२-७३)

कौन हो सकता है।[१] नरक देनेवाला पापकर्म दूसरे किसी उपायसे तत्काल दग्ध नहीं हो सकता; इसलिये मनुष्योंको प्रयत्नपूर्वक गंगाजीके जलमें स्नान करना चाहिये।

जो ब्राह्मण दान लेनेमें समर्थ होकर भी उससे अलग रहता है, वह आकाशमें तारा बनकर चिरकालतक प्रकाशित होता रहता है। जो कीचड़से गौका उद्धार करते हैं, रोगियोंकी रक्षा करते हैं तथा गोशालामें जिनकी मृत्यु होती है, उन्हीं लोगोंके लिये आकाशमें स्थित तारामय लोक हैं। सदा प्राणायाम करनेवाले द्विज यमलोकका दर्शन नहीं करते। वे पापी हों तो भी प्राणायामसे ही उनका पाप नष्ट हो जाता है। वैश्यवर! यदि प्रतिदिन सोलह प्राणायाम किये जायँ तो वे साक्षात् ब्रह्मघातीको भी पवित्र कर देते हैं। जिन-जिन तपोंका अनुष्ठान किया जाता है, जो-जो व्रत और नियम कहे गये हैं, वे तथा एक सहस्र गोदान—ये सब एक साथ हों तो भी प्राणायाम अकेला ही इनकी समानता कर सकता है। जो मनुष्य सौसे अधिक वर्षोंतक प्रतिमास कुशके अग्रभागसे एक बूँद पानी पीकर रहता है, उसकी कठोर तपस्याके बराबर केवल प्राणायाम ही है। प्राणायामके बलसे मनुष्य अपने सारे पातकोंको क्षणभरमें भस्म कर देता है। जो नरश्रेष्ठ! परायी स्त्रियोंको माताके समान समझते हैं, वे कभी यम-यातनामें नहीं पड़ते। जो पुरुष मनसे भी परायी स्त्रियोंका सेवन नहीं करता, उसने इस लोक और परलोकके साथ समूची पृथ्वीको धारण कर रखा है। इसलिये परस्त्री-सेवनका परित्याग करना चाहिये। परायी स्त्रियाँ इक्कीस पीढ़ियोंको नरकोंमें ले जाती हैं।

जो क्रोधका कारण उपस्थित होनेपर भी कभी क्रोधके वशीभूत नहीं होता, उस अक्रोधी पुरुषको इस पृथ्वीपर स्वर्गका विजेता समझना चाहिये। जो पुत्र माता-पिताकी देवताके समान आराधना करता है, वह कभी यमराजके घर नहीं जाता। स्त्रियाँ अपने शील-सदाचारकी रक्षा करनेसे इस लोकमें धन्य मानी जाती हैं। शील भंग होनेपर स्त्रियोंको अत्यन्त भयंकर यमलोककी प्राप्ति होती है। अतः स्त्रियोंको दुष्टोंके संगका परित्याग करके सदा अपने शीलकी रक्षा करनी चाहिये। वैश्यवर! शीलसे नारियोंको उत्तम स्वर्गकी प्राप्ति होती है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।[२]

जो शास्त्रका विचार करते हैं, वेदोंके अभ्यासमें लगे रहते हैं, पुराण-संहिताको सुनाते तथा पढ़ते हैं, स्मृतियोंकी व्याख्या और धर्मोंका उपदेश करते हैं तथा वेदान्तमें जिनकी निष्ठा है, उन्होंने इस पृथ्वीको धारण कर रखा है। उपर्युक्त विषयोंके अभ्यासकी महिमासे उन सबके पाप नष्ट हो जाते हैं तथा वे ब्रह्मलोकको जाते हैं, जहाँ मोहका नाम भी नहीं है। जो अनजान मनुष्यको वेद-शास्त्रका ज्ञान प्रदान करता है, उसकी वेद भी प्रशंसा करते हैं; क्योंकि वह भव-बन्धनको नष्ट करनेवाला है।

वैष्णव पुरुष यम, यमलोक तथा वहाँके भयंकर प्राणियोंका कदापि दर्शन नहीं करते—यह बात मैंने बिलकुल सच-सच बतायी है। यमुनाके भाई यमराज हमलोगोंसे सदा ही और बारंबार कहा करते हैं कि 'तुमलोग वैष्णवोंको छोड़ देना; ये मेरे अधिकारमें नहीं हैं। जो प्राणी प्रसंगवश एक बार भी भगवान् केशवका स्मरण कर लेते हैं, उनकी समस्त पापराशि नष्ट हो जाती

१-धर्मद्रवं ह्यपां बीजं वैकुण्ठचरणच्युतम्। धृतं मूर्ध्नि महेशेन यद्गाङ्गममलं जलम्॥
तद्ब्रह्मैव न सन्देहो निर्गुणं प्रकृतेः परम्। तेन किं समतां गच्छेदपि ब्रह्माण्डगोचरे॥
गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि। नरो न नरकं याति किं तया सदृशं भवेत्॥
(३१।७५—७७)

२-इह चैव स्त्रियो धन्याः शीलस्य परिरक्षणात्। शीलभङ्गे च नारीणां यमलोकः सुदारुणः॥
शीलं रक्ष्यं सदा स्त्रीभिर्दुष्टसङ्गविवर्जनात्। शीलेन हि परः स्वर्गः स्त्रीणां वैश्य न संशयः॥
(३१।९३-९४)

है तथा वे श्रीविष्णुके परमपदको प्राप्त होते हैं।[1] दुराचारी, पापी अथवा सदाचारी—कैसा भी क्यों न हो, जो मनुष्य भगवान् विष्णुका भजन करता है, उसे तुमलोग सदा दूरसे ही त्याग देना। जिनके घरमें वैष्णव भोजन करता हो, जिन्हें वैष्णवोंका संग प्राप्त हो, वे भी तुम्हारे लिये त्याग देने योग्य हैं; क्योंकि वैष्णवोंके संगसे उनके पाप नष्ट हो गये हैं।' पापिष्ठ मनुष्योंको नरक-समुद्रसे पार जानेके लिये भगवान् विष्णुकी भक्तिके सिवा दूसरा कोई उपाय नहीं है। वैष्णव पुरुष चारों वर्णोंसे बाहरका हो तो भी वह तीनों लोकोंको पवित्र कर देता है। मनुष्योंके पाप दूर करनेके लिये भगवान्के गुण, कर्म और नामोंका संकीर्तन किया जाय—इतने बड़े प्रयासकी कोई आवश्यकता नहीं है; क्योंकि अजामिल-जैसा पापी भी मृत्युके समय 'नारायण' नामसे अपने पुत्रको पुकारकर भी मुक्ति पा गया।[2] जिस समय मनुष्य प्रसन्नतापूर्वक भगवान् श्रीहरिकी पूजा करते हैं, उसी समय उनके मातृकुल और पितृकुल दोनों कुलोंके पितर, जो चिरकालसे नरकमें पड़े होते हैं, तत्काल स्वर्गको चले जाते हैं। जो विष्णुभक्तोंके सेवक तथा वैष्णवोंका अन्न भोजन करनेवाले हैं, वे शान्तभावसे देवताओंकी गतिको प्राप्त होते हैं। अतः विद्वान् पुरुष समस्त पापोंकी शुद्धिके लिये प्रार्थना और यत्नपूर्वक वैष्णवका अन्न प्राप्त करे; अन्नके अभावमें उसका जल माँगकर ही पी ले। यदि 'गोविन्द' इस मन्त्रका जप करते हुए कहीं मृत्यु हो जाय तो वह मरनेवाला मनुष्य न तो स्वयं यमराजको देखता है और न हमलोग ही उसकी ओर दृष्टि डालते हैं। अंग, मुद्रा, ध्यान, ऋषि, छन्द और देवतासहित द्वादशाक्षर मन्त्रकी दीक्षा लेकर उसका विधिवत् जप करना चाहिये। जो श्रेष्ठ मानव [**'ॐ नमो नारायणाय'**] इस अष्टाक्षर मन्त्रका जप करते हैं, उनका दर्शन करके ब्राह्मणघाती भी शुद्ध हो जाता है तथा वे स्वयं भी भगवान् विष्णुकी भाँति तेजस्वी प्रतीत होते हैं।

जो मनुष्य हृदय, सूर्य, जल, प्रतिमा अथवा वेदीमें भगवान् विष्णुकी पूजा करते हैं, वे वैष्णवधामको प्राप्त होते हैं अथवा मुमुक्षु पुरुषोंको चाहिये कि वे शालग्राम-शिलाके चक्रमें सर्वदा वासुदेव भगवान्का पूजन करें। वह श्रीविष्णुका अधिष्ठान है तथा सब प्रकारके पापोंका नाशक, पुण्यदायक एवं सबको मुक्ति प्रदान करनेवाला है। जो शालग्राम-शिलासे उत्पन्न हुए चक्रमें श्रीहरिका पूजन करता है, वह मानो प्रतिदिन एक सहस्र राजसूय यज्ञोंका अनुष्ठान करता है। जिन शान्त ब्रह्मस्वरूप अच्युतको उपनिषद् सदा नमस्कार करते हैं, उन्हींका अनुग्रह शालग्राम-शिलाकी पूजा करनेसे मनुष्योंको प्राप्त होता है। जैसे महान् काष्ठमें स्थित अग्नि उसके अग्रभागमें प्रकाशित होती है, उसी प्रकार सर्वत्र व्यापक भगवान् विष्णु शालग्राम-शिलामें प्रकाशित होते हैं। जिसने शालग्राम-शिलासे उत्पन्न चक्रमें श्रीहरिका पूजन कर लिया उसने अग्निहोत्रका अनुष्ठान पूर्ण कर लिया तथा समुद्रोंसहित सारी पृथ्वी दान दे दी। जो नराधम इस लोकमें काम, क्रोध और लोभसे व्याप्त हो रहा है, वह भी शालग्राम-शिलाके पूजनसे श्रीहरिके लोकको प्राप्त होता है। वैश्य! शालग्राम-शिलाकी पूजा करनेसे मनुष्य तीर्थ, दान, यज्ञ और व्रतोंके बिना ही

१-प्राहास्मान् यमुनाभ्राता सदैव हि पुनः पुनः। भवद्भिर्वैष्णवास्त्याज्या न ते स्युर्मम गोचराः॥
स्मरन्ति ये सकृद्भूताः प्रसङ्गेनापि केशवम्। ते विध्वस्ताखिलाघौघा यान्ति विष्णोः परं पदम्॥
(३१। १०२-१०३)

२-एतावतालमघनिर्हरणाय पुंसां
संकीर्तनं भगवतो गुणकर्मनाम्नाम्।
विक्रुश्य पुत्रमघवान् यदजामिलोऽपि
नारायणेति म्रियमाण इयाय मुक्तिम्॥
(३१। १०९)

मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। शालग्राम-शिलाकी पूजा करनेवाला मानव पापी हो तो भी नरक, गर्भवास, तिर्यग्योनि तथा कीट-योनिको नहीं प्राप्त होता। गंगा, गोदावरी और नर्मदा आदि जो-जो मुक्तिदायिनी नदियाँ हैं, वे सब-की-सब शालग्राम-शिलाके जलमें निवास करती हैं। शालग्राम-शिलाके लिंगका एक बार भी पूजन करनेपर ज्ञानसे रहित मनुष्य भी मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। जहाँ शालग्राम-शिलारूपी भगवान् केशव विराजमान रहते हैं, वहाँ सम्पूर्ण देवता, यज्ञ एवं चौदह भुवनोंके प्राणी वर्तमान रहते हैं। जो मनुष्य शालग्राम-शिलाके निकट श्राद्ध करता है, उसके पितर सौ कल्पोंतक द्युलोकमें तृप्त रहते हैं। जहाँ शालग्राम-शिला रहती है, वहाँकी तीन योजन भूमि तीर्थस्वरूप मानी गयी है। वहाँ किये हुए दान और होम सब कोटिगुना अधिक फल देते हैं। जो एक बूँदके बराबर भी शालग्राम-शिलाका जल पी लेता है, उसे फिर माताके स्तनोंका दूध नहीं पीना पड़ता; वह मनुष्य भगवान् विष्णुको प्राप्त कर लेता है। जो शालग्राम-शिलाके चक्रका उत्तम दान देता है, उसने पर्वत, वन और काननोंसहित मानो समस्त भूमण्डलका दान कर दिया। जो मनुष्य शालग्राम-शिलाको बेचकर उसकी कीमत उगाहता है, वह विक्रेता, उसकी बिक्रीका अनुमोदन करनेवाला तथा उसकी परख करते समय अधिक प्रसन्न होनेवाला—ये सभी नरकमें जाते हैं और जबतक सम्पूर्ण भूतोंका प्रलय नहीं हो जाता, तबतक वहीं बने रहते हैं।

वैश्य! अधिक कहनेसे क्या लाभ? पापसे डरनेवाले मनुष्यको सदा भगवान् वासुदेवका स्मरण करना चाहिये। श्रीहरिका स्मरण समस्त पापोंको हरनेवाला है। मनुष्य वनमें रहकर अपनी इन्द्रियोंका संयम करते हुए घोर तपस्या करके जिस फलको प्राप्त करता है वह भगवान् विष्णुको नमस्कार करनेसे ही मिल जाता है।* मनुष्य मोहके वशीभूत होकर अनेकों पाप करके भी यदि सर्वपापापहारी श्रीहरिके चरणोंमें मस्तक झुकाता है तो वह नरकमें नहीं जाता। भगवान् विष्णुके नामोंका संकीर्तन करनेसे मनुष्य भूमण्डलके समस्त तीर्थों और पुण्यस्थानोंके सेवनका पुण्य प्राप्त कर लेता है। जो शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले भगवान् विष्णुकी शरणमें जा चुके हैं, वे शरणागत मनुष्य न तो यमराजके लोकमें जाते हैं और न नरकमें ही निवास करते हैं।

वैश्य! जो वैष्णव पुरुष शिवकी निन्दा करता है, वह विष्णुके लोकमें नहीं जाता; उसे महान् नरकमें गिरना पड़ता है। जो मनुष्य प्रसंगवश किसी भी एकादशीको उपवास कर लेता है, वह यमयातनामें नहीं पड़ता—यह बात हमने महर्षि लोमशके मुखसे सुनी है। एकादशीसे बढ़कर पावन तीनों लोकोंमें दूसरा कुछ भी नहीं है। एकादशी और द्वादशी—दोनों ही भगवान् विष्णुके दिन हैं और समस्त पातकोंका नाश करनेवाले हैं। इस शरीरमें तभीतक पाप निवास करते हैं, जबतक प्राणी भगवान् विष्णुके शुभ दिन एकादशीको उपवास नहीं करता। हजार अश्वमेध और सौ राजसूय यज्ञ एकादशीके उपवासकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हैं। मनुष्य अपनी ग्यारहों इन्द्रियोंसे जो पाप किये होता है, वह सब एकादशीके अनुष्ठानसे नष्ट हो जाता है। एकादशी व्रतके समान दूसरा कोई पुण्य इस संसारमें नहीं है। यह एकादशी शरीरको नीरोग बनानेवाली और स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाली है। वैश्य! एकादशीको दिनमें उपवास और रातमें जागरण करके मनुष्य पितृकुल, मातृकुल तथा पत्नीकुलकी दस-दस पूर्व पीढ़ियोंका निश्चय ही उद्धार कर देता है।

मन, वाणी, शरीर तथा क्रियाद्वारा किसी भी

---

* बहुनोक्तेन किं वैश्य कर्तव्यं पापभीरुणा। स्मरणं वासुदेवस्य सर्वपापहरं हरेः॥
तपस्तप्त्वा नरो घोरमरण्ये नियतेन्द्रियः। यत्फलं समवाप्नोति तन्नत्वा गरुडध्वजम्॥
(३१। १४८-१४९)

प्राणीके साथ द्रोह न करना, इन्द्रियोंको रोकना, दान देना, श्रीहरिकी सेवा करना तथा वर्णों और आश्रमोंके कर्तव्योंका सदा विधिपूर्वक पालन करना—ये दिव्य गतिको प्राप्त करानेवाले कर्म हैं। वैश्य! स्वर्गार्थी मनुष्यको अपने तप और दानका अपने ही मुँहसे बखान नहीं करना चाहिये; जैसी शक्ति हो उसके अनुसार अपने हितकी इच्छासे दान अवश्य करते रहना चाहिये। दरिद्र पुरुषको भी पत्र, फल, मूल तथा जल आदि देकर अपना प्रत्येक दिन सफल बनाना चाहिये। अधिक क्या कहा जाय, मनुष्य सदा और सर्वत्र अधर्म करनेसे दुर्गतिको प्राप्त होते हैं और धर्मसे स्वर्गको जाते हैं। इसलिये बाल्यावस्थासे ही धर्मका संचय करना उचित है। वैश्य! ये सब बातें हमने तुम्हें बता दीं, अब और क्या सुनना चाहते हो?

वैश्य बोला—सौम्य! आपकी बात सुनकर मेरा चित्त प्रसन्न हो गया। गंगाजीका जल और सत्पुरुषोंका वचन—ये शीघ्र ही पाप नष्ट करनेवाले हैं। दूसरोंका उपकार करना और प्रिय वचन बोलना—यह साधु पुरुषोंका स्वाभाविक गुण है। अत: देवदूत! आप कृपा करके मुझे यह बताइये कि मेरे भाईका नरकसे तत्काल उद्धार कैसे हो सकता है?

देवदूतने कहा—वैश्य! तुमने पूर्ववर्ती आठवें जन्ममें जिस पुण्यका संचय किया है, वह सब अपने भाईको दे डालो। यदि तुम चाहते हो कि उसे भी स्वर्गकी प्राप्ति हो जाय तो तुम्हें यही करना चाहिये।

विकुण्डलने पूछा—देवदूत! वह पुण्य क्या है? कैसे हुआ? मेरे प्राचीन जन्मका परिचय क्या है? ये सब बातें बताइये; फिर मैं शीघ्र ही वह पुण्य भाईको अर्पण कर दूँगा।

देवदूतने कहा—पूर्वकालकी बात है, पुण्यमय मधुवनमें एक ऋषि रहते थे, जिनका नाम शाकुनि था, वे तपस्या और स्वाध्यायमें लगे रहते थे और तेजमें ब्रह्माजीके समान थे। उनके रेवती नामकी पत्नीके गर्भसे नौ पुत्र उत्पन्न हुए, जो नवग्रहोंके समान शक्तिशाली थे। उनमेंसे ध्रुव, शाली, बुध, तार और ज्योतिष्मान्—ये पाँच पुत्र अग्निहोत्री हुए। उनका मन गृहस्थधर्मके अनुष्ठानमें लगता था। शेष चार ब्राह्मण-कुमार—जो निर्मोह, जितकाम, ध्यानकाष्ठ और गुणाधिकके नामसे प्रसिद्ध थे—घरकी ओरसे विरक्त हो गये। वे सब सम्पूर्ण भोगोंसे नि:स्पृह हो चतुर्थ-आश्रम—संन्यासमें प्रविष्ट हुए। वे सब-के-सब आसक्ति और परिग्रहसे शून्य थे। उनमें आकांक्षा और आरम्भका अभाव था। वे मिट्टीके ढेले, पत्थर और सुवर्णमें समान भाव रखते थे। जिस किसी भी वस्तुसे अपना शरीर ढक लेते थे। जो कुछ भी खाकर पेट भर लेते थे। जहाँ साँझ हुई, वहीं ठहर जाते थे। वे नित्य भगवान्‌का ध्यान किया करते थे। उन्होंने निद्रा और आहारको जीत लिया था। वे बात और शीतका कष्ट सहन करनेमें पूर्ण समर्थ थे तथा समस्त चराचर जगत्‌को विष्णुरूप देखते हुए लीलापूर्वक पृथ्वीपर विचरते रहते थे। उन्होंने परस्पर मौनव्रत धारण कर लिया था। वे स्वल्प मात्रामें भी कभी किसी क्रियाका अनुष्ठान नहीं करते थे। उन्हें तत्त्वज्ञानका साक्षात्कार हो गया था। उनके सारे संशय दूर हो चुके थे और वे चिन्मय तत्त्वके विचारमें अत्यन्त प्रवीण थे।

वैश्य! उन दिनों तुम अपने पूर्ववर्ती आठवें जन्ममें एक गृहस्थ ब्राह्मणके रूपमें थे। तुम्हारा निवास मध्यप्रदेशमें था। एक दिन उपर्युक्त चारों ब्राह्मण संन्यासी किसी प्रकार घूमते-घामते मध्याह्नके समय तुम्हारे घरपर आये। उस समय उन्हें भूख और प्यास सता रही थी। बलिवैश्वदेवके पश्चात् तुमने उन्हें अपने घरके आँगनमें उपस्थित देखा। उनपर दृष्टि पड़ते ही तुम्हारे नेत्रोंमें आनन्दके आँसू छलक आये। तुम्हारी वाणी गद्‌गद हो गयी, तुमने बड़े वेगसे दौड़कर उनके चरणोंमें साष्टांग प्रणाम किया। फिर बड़े आदरभावके साथ दोनों हाथ जोड़कर मधुर वाणीसे उन सबका अभिनन्दन करते हुए कहा—महानुभाव! आज मेरा जन्म और जीवन सफल हो गया। आज मुझपर भगवान् विष्णु प्रसन्न हैं। मैं सनाथ और पवित्र हो गया। आज मैं, मेरा घर तथा मेरे सभी कुटुम्बी धन्य हो गये। आज मेरे पितर धन्य हैं, मेरी गौएँ धन्य हैं, मेरा शास्त्राध्ययन

तथा धन भी धन्य है; क्योंकि इस समय आपलोगोंके इन चरणोंका दर्शन हुआ, जो तीनों तापोंका विनाश करनेवाला है। भगवान् विष्णुकी भाँति आपलोगोंका दर्शन भी किसी धन्य व्यक्तिको ही होता है।'

इस प्रकार उनका पूजन करके तुमने अतिथियोंके पाँव पखारे और चरणोदक लेकर बड़ी श्रद्धाके साथ अपने मस्तकपर चढ़ाया। फिर चन्दन, फूल, अक्षत, धूप और दीप आदिके द्वारा भक्ति-भावके साथ उन यतियोंकी पूजा करके उन्हें उत्तम अन्न भोजन कराया। वे चारों परमहंस तृप्त होकर रातको तुम्हारे भवनमें विश्राम और सूर्य आदिके भी प्रकाशक परब्रह्मका ध्यान करते रहे। उनका आतिथ्य-सत्कार करनेसे जो पुण्य तुम्हें प्राप्त हुआ है, उसका एक हजार मुखोंसे भी वर्णन करनेमें मैं असमर्थ हूँ। भूतोंमें प्राणधारी श्रेष्ठ हैं, उनमें भी बुद्धिजीवी, बुद्धिजीवियोंमें भी मनुष्य और मनुष्योंमें भी ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं। ब्राह्मणोंमें विद्वान्, विद्वानोंमें पवित्र बुद्धिवाले पुरुष, उनमें भी कर्म करनेवाले व्यक्ति तथा उनमें भी ब्रह्मज्ञानी पुरुष सबसे श्रेष्ठ हैं। इस प्रकार ब्रह्मज्ञानी तीनों लोकोंमें सर्वश्रेष्ठ माने गये हैं, अतः सबके परमपूज्य हैं। उनका संग महान् पातकोंका नाश करनेवाला है। यदि कभी किसी गृहस्थके घरपर ब्रह्मज्ञानी महात्मा आकर संतोषपूर्वक विश्राम करें तो वे उसके जन्मभरके पापोंका अपने दृष्टिपातमात्रसे नाश कर डालते हैं।* एक रात गृहस्थके घरपर विश्राम करनेवाला संन्यासी उसके जीवनभरके सारे पापोंको भस्म कर देता है। वैश्य! वही पुण्य तुम अपने भाईको दे दो, जिसके द्वारा उसका नरकसे उद्धार हो जाय।

देवदूतकी यह बात सुनकर विकुण्डलने तत्काल ही वह पुण्य अपने भाईको दे दिया। तब उसका भाई भी प्रसन्न होकर नरकसे निकल आया। फिर तो देवताओंने उन दोनोंपर पुष्पोंकी वृष्टि करते हुए उनका पूजन किया तथा वे दोनों भाई स्वर्गलोकमें चले गये। तदनन्तर दोनोंसे सम्मानित होकर देवदूत यमलोकमें लौट आया।

नारदजी कहते हैं—राजन्! देवदूतका वचन वेद-वाक्यके समान था, उसमें सम्पूर्ण लोकका ज्ञान भरा था, उसे वैश्यपुत्र विकुण्डलने सुना और अपने किये हुए पुण्यका दान देकर अपने भाईको भी तार दिया। तत्पश्चात् वह भाईके साथ ही देवराज इन्द्रके श्रेष्ठ लोकमें गया। जो इस इतिहासको पढ़ेगा या सुनेगा, वह शोकरहित होकर सहस्र गोदानका फल प्राप्त करेगा।

सुगन्ध आदि तीर्थोंकी महिमा तथा काशीपुरीका माहात्म्य

नारदजी कहते हैं—राजेन्द्र! तदनन्तर तीर्थयात्री पुरुष विश्वविख्यात सुगन्ध नामक तीर्थकी यात्रा करे। वहाँ सब पापोंसे चित्त शुद्ध हो जानेपर वह ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है। तत्पश्चात् रुद्रावर्त तीर्थमें जाय। वहाँ स्नान करके मनुष्य स्वर्गलोकमें सम्मानित होता है। नरश्रेष्ठ! गंगा और सरस्वतीके संगममें स्नान करनेवाला पुरुष अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त करता है। वहाँ कर्णह्रदमें स्नान और भगवान् शंकरकी पूजा करके मनुष्य कभी दुर्गतिमें नहीं पड़ता। इसके बाद क्रमशः कुब्जाम्रक-तीर्थको प्रस्थान करना चाहिये। वहाँ स्नान करनेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है और मनुष्य स्वर्गलोकमें जाता है। राजन्! इसके बाद अरुन्धतीवटमें

---

* भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां मतिजीविनः॥
मतिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्रह्मजातयः। ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः॥
कृतबुद्धिषु कर्तारः कर्तृषु ब्रह्मवेदिनः। अत एव सुपूज्यास्ते तस्माच्छ्रेष्ठा जगत्त्रये॥
सत्संगतिर्विशां श्रेष्ठ महापातकनाशिनी॥
विश्रान्ता गृहिणो गेहे संतुष्टा ब्रह्मवेदिनः। आजन्मसंचितं पापं नाशयन्तीक्षणेन वै॥
(३१। २००—२०४)

जाना चाहिये। वहाँ समुद्रके जलमें स्नान करके तीन राततक उपवास करनेवाला मनुष्य सहस्त्र गोदानोंका फल पाता और स्वर्गलोकको जाता है। तदनन्तर ब्रह्मावर्त-तीर्थकी यात्रा करे। वहाँ ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए एकाग्रचित्त हो स्नान करनेसे मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता और स्वर्गलोकमें जाता है। उसके बाद यमुनाप्रभव नामक तीर्थमें जाय। वहाँ यमुनाजलमें स्नान करनेसे मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाकर ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है। दर्वीसंक्रमण नामक तीर्थ तीनों लोकोंमें विख्यात है। वहाँ पहुँचकर स्नान करनेसे अश्वमेध यज्ञके फल और स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है। भृगुतुंग-तीर्थमें जानेसे भी अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। वीरप्रमोक्ष नामक तीर्थकी यात्रा करके मनुष्य सब पापोंसे छुटकारा पा जाता है। कृत्तिका और मघाके दुर्लभ तीर्थमें जाकर पुण्य करनेवाला पुरुष अग्निष्टोम और अतिरात्र यज्ञोंका फल पाता है।

तत्पश्चात् सन्ध्या-तीर्थमें जाकर जो परम उत्तम विद्या-तीर्थमें स्नान करता है, वह सम्पूर्ण विद्याओंमें पारंगत होता है। महाश्रम-तीर्थ सब पापोंसे छुटकारा दिलानेवाला है। वहाँ रात्रिमें निवास करना चाहिये। जो मनुष्य वहाँ एक समय भी उपवास करता है, उसे उत्तम लोकोंमें निवास प्राप्त होता है। जो तीन दिनपर एक समय उपवास करते हुए एक मासतक महाश्रम-तीर्थमें निवास करता है, वह स्वयं तो भवसागरके पार हो ही जाता है, अपने आगे-पीछेकी दस-दस पीढ़ियोंको भी तार देता है। परमपवित्र देववन्दित महेश्वरका दर्शन करके मनुष्य सब कर्तव्योंसे उऋण हो जाता है। उसके बाद पितामहद्वारा सेवित वेतसिका-तीर्थके लिये प्रस्थान करे। वहाँ जानेसे मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता और परमगतिको प्राप्त होता है।

तत्पश्चात् ब्राह्मणिका-तीर्थमें जाकर ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए एकाग्रचित्त हो स्नानादि करनेसे मनुष्य कमलके समान रंगवाले विमानपर बैठकर ब्रह्मलोकको जाता है। उसके बाद द्विजोंद्वारा सेवित पुण्यमय नैमिष-तीर्थकी यात्रा करे। वहाँ ब्रह्माजी देवताओंके साथ सदा निवास करते हैं। नैमिष-तीर्थमें जानेकी इच्छा करनेवालेका ही आधा पाप नष्ट हो जाता है तथा उसमें प्रविष्ट हुआ मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। भारत! धीर पुरुषको उचित है कि वह तीर्थ-सेवनमें तत्पर हो एक मासतक नैमिषारण्यमें निवास करे। भूमण्डलमें जितने तीर्थ हैं, वे सभी नैमिषारण्यमें विद्यमान रहते हैं। जो वहाँ स्नान करके नियमपूर्वक रहते हुए नियमानुकूल आहार ग्रहण करता है, वह मानव राजसूय यज्ञका फल पाता है। इतना ही नहीं, वह अपने कुलकी सात पीढ़ियोंतकको पवित्र कर देता है।

गंगोद्भेद-तीर्थमें जाकर तीन राततक उपवास करनेवाला मनुष्य वाजपेय यज्ञका फल पाता और सदाके लिये ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। सरस्वतीके तटपर जाकर देवता और पितरोंका तर्पण करना चाहिये। ऐसा करनेवाला पुरुष सारस्वत-लोकोंमें जाकर आनन्द भोगता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। तत्पश्चात् बाहुदा नदीकी यात्रा करे। वहाँ एक रात निवास करनेवाला मनुष्य स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है और उसे देवसत्र नामक यज्ञका फल मिलता है। इसके बाद सरयू नदीके उत्तम तीर्थ गोप्रतार (गुप्तार) घाटपर जाना चाहिये। जो मनुष्य उस तीर्थमें स्नान करता है, वह सब पापोंसे शुद्ध होकर स्वर्गलोकमें पूजित होता है। कुरुनन्दन! गोमती नदीके रामतीर्थमें स्नान करके मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता और अपने कुलका उद्धार कर देता है। वहीं शतसाहस्त्रक नामका तीर्थ है; जो वहाँ स्नान करके नियमसे रहता और नियमानुकूल भोजन करता है, उसे सहस्त्र गोदानोंका पुण्य-फल प्राप्त होता है। धर्मज्ञ युधिष्ठिर! वहाँसे ऊर्ध्वस्थान नामक उत्तम तीर्थमें जाना चाहिये। वहाँ कोटितीर्थमें स्नान करके कार्तिकेयजीका पूजन करनेसे मनुष्यको सहस्त्र गोदानोंका फल मिलता है तथा वह तेजस्वी होता है। उसके बाद काशीमें जाकर भगवान् शंकरकी पूजा और कपिलाकुण्डमें स्नान करनेसे राजसूय यज्ञका फल प्राप्त होता है।

युधिष्ठिर बोले—मुने! आपने काशीका माहात्म्य बहुत थोड़ेमें बताया है, उसे कुछ विस्तारके साथ कहिये।

नारदजीने कहा—राजन्! मैं इस विषयमें एक संवाद सुनाऊँगा, जो वाराणसीके गुणोंसे सम्बन्ध रखनेवाला है। उस संवादके श्रवणमात्रसे मनुष्य ब्रह्महत्याके पापसे छुटकारा पा जाता है। पूर्वकालकी बात है, भगवान् शंकर मेरुगिरिके शिखरपर विराजमान थे तथा पार्वती देवी भी वहीं दिव्य सिंहासनपर बैठी थीं। उन्होंने महादेवजीसे पूछा—'भक्तोंके दुःख दूर करनेवाले देवाधिदेव! मनुष्य शीघ्र ही आपका दर्शन कैसे पा सकता है? समस्त प्राणियोंके हितके लिये यह बात मुझे बताइये।'

भगवान् शिव बोले—देवि! काशीपुरी मेरा परम गुह्यतम क्षेत्र है। वह सम्पूर्ण भूतोंको संसार-सागरसे पार उतारनेवाली है। वहाँ महात्मा पुरुष भक्तिपूर्वक मेरी भक्तिका आश्रय ले उत्तम नियमोंका पालन करते हुए निवास करते हैं। वह समस्त तीर्थों और सम्पूर्ण स्थानोंमें उत्तम है। इतना ही नहीं, अविमुक्त क्षेत्र मेरा परम ज्ञान है। वह समस्त ज्ञानोंमें उत्तम है। देवि! यह वाराणसी सम्पूर्ण गोपनीय स्थानोंमें श्रेष्ठ तथा मुझे अत्यन्त प्रिय है। मेरे भक्त वहाँ जाते तथा मुझमें ही प्रवेश करते हैं। वाराणसीमें किया हुआ दान, जप, होम, यज्ञ, तपस्या, ध्यान, अध्ययन और ज्ञान—सब अक्षय होता है। पहलेके हजारों जन्मोंमें जो पाप संचित किया गया हो, वह सब अविमुक्त क्षेत्रमें प्रवेश करते ही नष्ट हो जाता है। वरानने! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, वर्णसंकर, स्त्रीजाति, म्लेच्छ तथा अन्यान्य मिश्रित जातियोंके मनुष्य, चाण्डाल आदि, पापयोनिमें उत्पन्न जीव, कीड़े, चींटियाँ तथा अन्य पशु-पक्षी आदि जितने भी जीव हैं, वे सब समयानुसार अविमुक्त क्षेत्रमें मरनेपर मेरे अनुग्रहसे परम गतिको प्राप्त होते हैं। मोक्षको अत्यन्त दुर्लभ और संसारको अत्यन्त भयानक समझकर मनुष्यको काशीपुरीमें निवास करना चाहिये। जहाँ-तहाँ मरनेवालेको संसार-बन्धनसे छुड़ानेवाली सद्गति तपस्यासे भी मिलनी कठिन है। [किन्तु वाराणसीपुरीमें बिना तपस्याके ही ऐसी गति अनायास प्राप्त हो जाती है।] जो विद्वान् सैकड़ों विघ्नोंसे आहत होनेपर भी काशीपुरीमें निवास करता है, वह उस परमपदको प्राप्त होता है जहाँ जानेपर शोकसे पिण्ड छूट जाता है। काशीपुरीमें रहनेवाले जीव जन्म, मृत्यु और वृद्धावस्थासे रहित परमधामको प्राप्त होते हैं। उन्हें वही गति प्राप्त होती है, जो पुनः मृत्युके बन्धनमें न आनेवाले मोक्षाभिलाषी पुरुषोंको मिलती है तथा जिसे पाकर जीव कृतार्थ हो जाता है। अविमुक्त क्षेत्रमें जो उत्कृष्ट गति प्राप्त होती है वह अन्यत्र दान, तपस्या, यज्ञ और विद्यासे भी नहीं मिल सकती। जो चाण्डाल आदि घृणित जातियोंमें उत्पन्न हैं तथा जिनकी देह विशिष्ट पातकों और पापोंसे परिपूर्ण है, उन सबकी शुद्धिके लिये विद्वान् पुरुष अविमुक्त क्षेत्रको ही श्रेष्ठ औषध मानते हैं। अविमुक्त क्षेत्र परम ज्ञान है, अविमुक्त क्षेत्र परम पद है, अविमुक्त क्षेत्र परम तत्त्व है और अविमुक्त क्षेत्र परम शिव—परम कल्याणमय है। जो मरणपर्यन्त रहनेका नियम लेकर अविमुक्त क्षेत्रमें निवास करते हैं, उन्हें अन्तमें मैं परमज्ञान एवं परमपद प्रदान करता हूँ। वाराणसीपुरीमें प्रवेश करके बहनेवाली त्रिपथगामिनी गंगा विशेषरूपसे सैकड़ों जन्मोंका पाप नष्ट कर देती हैं। अन्यत्र गंगाजीका स्नान, श्राद्ध, दान, तप, जप और व्रत सुलभ हैं; किन्तु वाराणसीपुरीमें रहते हुए इन सबका अवसर मिलना अत्यन्त दुर्लभ है। वाराणसीपुरीमें निवास करनेवाला मनुष्य जप, होम, दान एवं देवताओंका नित्यप्रति पूजन करनेका तथा निरन्तर वायु पीकर रहनेका फल प्राप्त कर लेता है। पापी, शठ और अधार्मिक मनुष्य भी यदि वाराणसीमें चला जाय तो वह अपने समूचे कुलको पवित्र कर देता है। जो वाराणसीपुरीमें मेरी पूजा और स्तुति करते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं। देवदेवेश्वरि! जो मेरे भक्तजन वाराणसीपुरीमें निवास करते हैं, वे एक ही जन्ममें परम मोक्षको पा जाते हैं। परमानन्दकी इच्छा रखनेवाले ज्ञाननिष्ठ पुरुषोंके लिये शास्त्रोंमें जो गति प्रसिद्ध है, वही अविमुक्त क्षेत्रमें मरनेवालेको प्राप्त हो जाती है। अविमुक्त क्षेत्रमें देहावसान होनेपर साक्षात् परमेश्वर मैं स्वयं ही जीवको तारक ब्रह्म (राम-नाम)-का उपदेश करता हूँ। वरणा और असी नदियोंके बीचमें वाराणसीपुरी

स्थित है तथा उस पुरीमें ही नित्य-विमुक्त तत्त्वकी स्थिति है। वाराणसीसे उत्तम दूसरा कोई स्थान न हुआ है और न होगा। जहाँ स्वयं भगवान् नारायण और देवेश्वर मैं विराजमान हूँ। देवि! जो महापातकी हैं तथा जो उनसे भी बढ़कर पापाचारी हैं, वे सभी वाराणसीपुरीमें जानेसे परमगतिको प्राप्त होते हैं। इसलिये मुमुक्षु पुरुषको मृत्युपर्यन्त नियमपूर्वक वाराणसीपुरीमें निवास करना चाहिये। वहाँ मुझसे ज्ञान पाकर वह मुक्त हो जाता है।* किन्तु जिसका चित्त पापसे दूषित होगा, उसके सामने नाना प्रकारके विघ्न उपस्थित होंगे। अतः मन, वाणी और शरीरके द्वारा कभी पाप नहीं करना चाहिये।

नारदजी कहते हैं—राजन्! जैसे देवताओंमें पुरुषोत्तम नारायण श्रेष्ठ हैं, जिस प्रकार ईश्वरोंमें महादेवजी श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार समस्त तीर्थस्थानोंमें यह काशीपुरी उत्तम है। जो लोग सदा इस पुरीका स्मरण और नामोच्चारण करते हैं, उनका इस जन्म और पूर्वजन्मका भी सारा पातक तत्काल नष्ट हो जाता है; इसलिये योगी हो या योगरहित, महान् पुण्यात्मा हो अथवा पापी—प्रत्येक मनुष्यको पूर्ण प्रयत्न करके वाराणसीपुरीमें निवास करना चाहिये।

पिशाचमोचन कुण्ड एवं कपर्दीश्वरका माहात्म्य—पिशाच तथा शंकुकर्ण मुनिके मुक्त होनेकी कथा और गया आदि तीर्थोंकी महिमा

नारदजी कहते हैं—युधिष्ठिर! वाराणसीपुरीमें कपर्दीश्वरके नामसे प्रसिद्ध एक शिवलिंग है, जो अविनाशी माना गया है। वहाँ स्नान करके पितरोंका विधिवत् तर्पण करनेसे मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा भोग और मोक्ष प्राप्त कर लेता है। काशीपुरीमें निवास करनेवाले पुरुषोंके काम, क्रोध आदि दोष तथा सम्पूर्ण विघ्न कपर्दीश्वरके पूजनसे नष्ट हो जाते हैं। इसलिये परम उत्तम कपर्दीश्वरका सदैव दर्शन करना चाहिये। यत्नपूर्वक उनका पूजन तथा वेदोक्त स्तोत्रोंद्वारा उनका स्तवन भी करना चाहिये। कपर्दीश्वरके स्थानमें नियमपूर्वक ध्यान लगानेवाले शान्तचित्त योगियोंको छः मासमें ही योगसिद्धि प्राप्त होती है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। पिशाचमोचन कुण्डमें नहाकर कपर्दीश्वरके पूजनसे मनुष्यके ब्रह्महत्या आदि पाप नष्ट हो जाते हैं।

पूर्वकालकी बात है, कपर्दीश्वर क्षेत्रमें उत्तम व्रतका पालन करनेवाले एक तपस्वी ब्राह्मण रहते थे। उनका नाम था—शंकुकर्ण। वे प्रतिदिन भगवान् शंकरका पूजन, रुद्रका पाठ तथा निरन्तर ब्रह्मस्वरूप प्रणवका जप करते थे। उनका चित्त योगमें लगा हुआ था। वे मरणपर्यन्त काशीमें रहनेका नियम लेकर पुष्प, धूप आदि उपचार, स्तोत्र, नमस्कार और परिक्रमा आदिके द्वारा भगवान् कपर्दीश्वरकी आराधना करते थे। एक दिन उन्होंने देखा, एक भूखा प्रेत सामने आकर खड़ा है। उसे देख मुनिश्रेष्ठ शंकुकर्णको बड़ी दया आयी। उन्होंने पूछा—'तुम कौन हो? और किस देशसे यहाँ आये हो?' पिशाच भूखसे पीड़ित हो रहा था। उसने शंकुकर्णसे कहा—'मुने! मैं पूर्वजन्ममें धन-धान्यसे सम्पन्न ब्राह्मण था। मेरा घर पुत्र-पौत्रादिसे भरा था। किन्तु मैंने केवल कुटुम्बके भरण-पोषणमें आसक्त

* यत्र साक्षान्महादेवो देहान्ते स्वयमीश्वरः। व्याचष्टे तारकं ब्रह्म तत्रैव ह्यविमुक्तके॥
वरणायास्तथा चास्या मध्ये वाराणसी पुरी। तत्रैव संस्थितं तत्त्वं नित्यमेवं विमुक्तकम्॥
वाराणस्याः परं स्थानं न भूतं न भविष्यति। यत्र नारायणो देवो महादेवो दिवीश्वरः॥
महापातकिनो देवि ये तेभ्यः पापकृत्तमाः। वाराणसीं समासाद्य ते यान्ति परमां गतिम्॥
तस्मान्मुमुक्षुर्नियतो वसेद्वै मरणान्तकम्। वाराणस्यां महादेवाज्ज्ञानं लब्ध्वा विमुच्यते॥
(३३। ४६, ४९-५०, ५२-५३)

रहनेके कारण कभी देवताओं, गौओं तथा अतिथियोंका पूजन नहीं किया। कभी थोड़ा-बहुत भी पुण्यका कार्य नहीं किया। अतः इस समय भूख-प्याससे व्याकुल होनेके कारण मैं हिताहितका ज्ञान खो बैठा हूँ। प्रभो! यदि आप मेरे उद्धारका कोई उपाय जानते हों तो कीजिये। आपको नमस्कार है। मैं आपकी शरणमें आया हूँ।'

शंकुकर्णने कहा—तुम शीघ्र ही एकाग्रचित्त होकर इस कुण्डमें स्नान करो, इससे शीघ्र ही इस घृणित योनिसे छुटकारा पा जाओगे।

दयालु मुनिके इस प्रकार कहनेपर पिशाचने त्रिनेत्रधारी देववर भगवान् कपर्दीश्वरका स्मरण किया और चित्तको एकाग्र करके उस कुण्डमें गोता लगाया। मुनिके समीप गोता लगाते ही उसने पिशाचका शरीर त्याग दिया। भगवान् शिवकी कृपासे उसे तत्काल बोध प्राप्त हुआ और मुनीश्वरोंका समुदाय उसकी स्तुति करने लगा। तत्पश्चात् जहाँ भगवान् शंकर विराजते हैं, उस त्रयीमय श्रेष्ठ धाममें वह प्रवेश कर गया। पिशाचको इस प्रकार मुक्त हुआ देख मुनिको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने मन-ही-मन भगवान् महेश्वरका चिन्तन करके कपर्दीश्वरको प्रणाम किया तथा उनकी इस प्रकार स्तुति करने लगे—'भगवन्! आप जटा-जूट धारण करनेके कारण कपर्दी कहलाते हैं; आप परात्पर, सबके रक्षक, एक—अद्वितीय, पुराण-पुरुष, योगेश्वर, ईश्वर, आदित्य और अग्निरूप तथा कपिल वर्णके वृषभ नन्दीश्वरपर आरूढ़ हैं; मैं आपकी शरणमें आया हूँ। आप सबके हृदयमें स्थित सारभूत ब्रह्म हैं, हिरण्यमय पुरुष हैं, योगी हैं तथा सबके आदि और अन्त हैं। आप 'रु'—दुःखको दूर करनेवाले हैं, अतः आपको रुद्र कहते हैं; आप आकाशमें व्यापकरूपसे स्थित, महामुनि, ब्रह्मस्वरूप एवं परम पवित्र हैं; मैं आपकी शरणमें आया हूँ। आप सहस्रों चरण, सहस्रों नेत्र तथा सहस्रों मस्तकोंसे युक्त हैं; आपके सहस्रों रूप हैं, आप अन्धकारसे परे और वेदोंकी भी पहुँचके बाहर हैं, कल्याणोत्पादक होनेसे आपको 'शम्भु' कहते हैं, आप हिरण्यगर्भ आदि देवताओंके स्वामी तथा तीन नेत्रोंसे सुशोभित हैं, मैं आपको प्रणाम करता हूँ। जिनमें इस जगत्की उत्पत्ति और लय होते हैं, जिन शिवस्वरूप परमात्माने इस समस्त दृश्य-प्रपंचको व्याप्त कर रखा है तथा जो वेदोंकी सीमासे भी परे हैं, उन भगवान् शंकरको प्रणाम करके मैं सदाके लिये उनकी शरणमें आ पड़ा हूँ। जो लिंगरहित (किसीकी पहचानमें न आनेवाले) आलोकशून्य (जिन्हें कोई प्रकाशित नहीं कर सकता—जो स्वयंप्रकाश हैं), स्वयंप्रभु, चेतनाके स्वामी, एकरूप तथा ब्रह्माजीसे भी उत्कृष्ट परमेश्वर हैं; जिनके सिवा दूसरी कोई वस्तु है ही नहीं तथा जो वेदसे भी परे हैं, उन्हीं आप भगवान् कपर्दीश्वरको मैं नमस्कार करता हूँ। सबीज समाधिका त्याग करके निर्बीज समाधिको सिद्ध कर परमात्मरूप हुए योगीजन जिसका साक्षात्कार करते हैं और जो वेदसे भी परे है, वह आपका ही स्वरूप है; मैं आपको सदा प्रणाम करता हूँ। जहाँ नाम आदि विशेषणोंकी कल्पना नहीं है, जिनका स्वरूप इन चर्म-चक्षुओंका विषय नहीं होता तथा जो स्वयम्भू—कारणहीन तथा वेदसे परे हैं, उन्हीं आप भगवान् शिवकी मैं शरणमें हूँ और सदा आपको प्रणाम करता हूँ। जो देहसे रहित, ब्रह्म (व्यापक), विज्ञानमय, भेदशून्य और एक—अद्वितीय है; तथापि वेदवादमें आसक्त मनुष्य जिसमें अनेकता देखते हैं, उस आपके वेदातीत स्वरूपको मैं नित्य प्रणाम करता हूँ। जिससे प्रकृतिकी उत्पत्ति हुई है, स्वयं पुराणपुरुष आप जिसे तेजके रूपमें धारण करते हैं, जिसे देवगण सदा नमस्कार करते हैं तथा जो आपकी ज्योतिमें सन्निहित है, उस आपके स्वरूपभूत बृहत् कालको मैं नमस्कार करता हूँ। मैं सदाके लिये कार्तिकेयके स्वामीकी शरण जाता हूँ। स्थाणुका आश्रय लेता हूँ, कैलाश पर्वतपर शयन करनेवाले पुराणपुरुष शिवकी शरणमें पड़ा हूँ। भगवन्! आप कष्ट हरनेके कारण 'हर' कहलाते हैं, आपके मस्तकमें चन्द्रमाका मुकुट शोभा पा रहा है तथा आप पिनाक नामसे प्रसिद्ध धनुष धारण करनेवाले हैं; मैं

आपकी शरण ग्रहण करता हूँ।*

इस प्रकार भगवान् कपर्दीकी स्तुति करके शंकुकर्ण प्रणवका उच्चारण करते हुए पृथ्वीपर दण्डकी भाँति पड़ गये। उसी समय शिवस्वरूप उत्कृष्ट लिंगका प्रादुर्भाव हुआ, जो ज्ञानमय तथा अनन्त आनन्दस्वरूप था। आगकी भाँति उससे करोड़ों लपटें निकल रही थीं। महात्मा शंकुकर्ण मुक्त होकर सर्वव्यापी निर्मल शिवस्वरूप हो गये और उस विमल लिंगमें समा गये। राजन्! यह मैंने तुम्हें कपर्दीका गूढ़ माहात्म्य बतलाया है। जो प्रतिदिन इस पापनाशिनी कथाका श्रवण करता है, वह निष्पाप एवं शुद्धचित्त होकर भगवान् शिवके समीप जाता है। जो प्रातःकाल और मध्याह्नके समय शुद्ध होकर सदा ब्रह्मपार नामक इस महास्तोत्रका पाठ करता है, उसे परम योगकी प्राप्ति होती है।

तदनन्तर गयामें जाकर ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए एकाग्रचित्त होकर स्नान करे। भारत! वहाँ जानेमात्रसे मनुष्यको अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है। वहाँ अक्षयवट नामका वटवृक्ष है, जो तीनों लोकोंमें विख्यात है। राजन्! वहाँ पितरोंके लिये जो पिण्डदान किया जाता है, वह अक्षय होता है। उसके बाद महानदीमें स्नान करके देवताओं और पितरोंका तर्पण करे। इससे मनुष्य अक्षय लोकोंको प्राप्त होता तथा अपने कुलका भी उद्धार कर देता है। तत्पश्चात् ब्रह्मारण्यमें स्थित ब्रह्मसरकी यात्रा करे। वहाँ जानेसे पुण्डरीक यज्ञका फल प्राप्त होता है।

राजेन्द्र! वहाँसे विश्वविख्यात धेनुक-तीर्थको प्रस्थान करे और वहाँ एक रात रहकर तिलकी धेनु दान करे। ऐसा करनेवाला पुरुष सब पापोंसे शुद्ध हो निश्चय ही सोमलोकमें जाता है। वहाँ बछड़ेसहित कपिला गौके पदचिह्न आज भी देखे जाते हैं। उन पदचिह्नोंमेंसे जल लेकर आचमन करनेसे जो कुछ घोर पाप होता है, वह नष्ट हो जाता है। वहाँसे गृध्रवटकी यात्रा करे। वह शूलधारी भगवान् शंकरका स्थान है। वहाँ शंकरजीका दर्शन करके भस्म-स्नान करे—सारे अंगोंमें भस्म लगाये। ऐसा करनेवाला यदि ब्राह्मण हो तो उसे बारह वर्षोंतक व्रत करनेका फल प्राप्त होता है और अन्य वर्णके मनुष्योंका सारा पाप नष्ट हो जाता है। तत्पश्चात् उदय पर्वतपर जाय। वहाँ सावित्रीके चरणचिह्नोंका दर्शन होता है। उस तीर्थमें सन्ध्योपासन करना चाहिये। इससे एक ही समयमें बारह वर्षोंतक सन्ध्या करनेका फल प्राप्त होता है। तत्पश्चात् वहीं योनिद्वारके पास जाय। वह विख्यात स्थान है। उसके पास जानेमात्रसे मनुष्य गर्भवासके कष्टसे छुटकारा पा जाता है। राजन्! जो मनुष्य शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्षोंमें गयामें निवास करता है, वह अपने कुलकी सात पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

राजन्! तत्पश्चात् तीर्थसेवी मनुष्य फल्गु नदीके किनारे जाय। वहाँ जानेसे वह अश्वमेध यज्ञका फल पाता और परम सिद्धिको प्राप्त होता है। तदनन्तर एकाग्रचित्त हो धर्मपृष्ठकी यात्रा करे, जहाँ धर्मका

---

* कपर्दिनं त्वां परतः परस्ताद् गोप्तारमेकं पुरुषं पुराणम्। व्रजामि योगेश्वरमीशितारमादित्यमग्निं कपिलाधिरूढम्॥
त्वां ब्रह्मसारं हृदि संनिविष्टं हिरण्मयं योगिनमादिमन्तम्। व्रजामि रुद्रं शरणं दिविष्ठं महामुनिं ब्रह्ममयं पवित्रम्॥
सहस्रपादाक्षिशिरोऽभियुक्तं सहस्ररूपं तमसः परस्तात्। तं ब्रह्मपारं प्रणमामि शम्भुं हिरण्यगर्भाधिपतिं त्रिनेत्रम्॥
यत्र प्रसूतिर्जगतो विनाशो येनावृतं सर्वमिदं शिवेन। तं ब्रह्मपारं भगवन्तमीशं प्रणम्य नित्यं शरणं प्रपद्ये॥
अलिङ्गमालोकविहीनरूपं स्वयंप्रभुं चित्पतिमेकरूपम्। तं ब्रह्मपारं परमेश्वरं त्वां नमस्करिष्ये न यतोऽन्यदस्ति॥
यं योगिनस्त्यक्तसबीजयोगा लब्ध्वा समाधिं परमात्मभूताः। पश्यन्ति देवं प्रणतोऽस्मि नित्यं तं ब्रह्मपारं भवतः स्वरूपम्॥
न यत्र नामादिविशेषक्लृप्तिर्न संदृशे तिष्ठति यत्स्वरूपम्। तं ब्रह्मपारं प्रणतोऽस्मि नित्यं स्वयम्भुवं त्वां शरणं प्रपद्ये॥
यद् वेदवादाभिरता विदेहं सब्रह्मविज्ञानमभेदमेकम्। पश्यन्त्यनेकं भवतः स्वरूपं तं ब्रह्मपारं प्रणतोऽस्मि नित्यम्॥
यतः प्रधानं पुरुषः पुराणो बिभर्ति तेजः प्रणमन्ति देवाः। नमामि तं ज्योतिषि संनिविष्टं कालं बृहन्तं भवतः स्वरूपम्॥
व्रजामि नित्यं शरणं गुहेशं स्थाणुं प्रपद्ये गिरिशं पुराणम्। शिवं प्रपद्ये हरमिन्दुमौलिं पिनाकिनं त्वां शरणं व्रजामि॥
(३५। ३४—४३)

नित्य-निवास है। वहाँ धर्मके समीप जानेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। वहाँसे ब्रह्माजीके उत्तम तीर्थको प्रस्थान करे और वहाँ पहुँचकर व्रतका पालन करते हुए ब्रह्माजीकी पूजा करे। इससे राजसूय और अश्वमेध यज्ञोंका फल मिलता है। इसके बाद मणिनाग-तीर्थमें जाय। वहाँ सहस्र गोदानोंका फल प्राप्त होता है। उस तीर्थमें एक रात निवास करनेपर सब पापोंसे छुटकारा मिल जाता है। इसके बाद ब्रह्मर्षि गौतमके वनमें जाय। वहाँ अहल्याकुण्डमें स्नान करनेसे परम गतिकी प्राप्ति होती है। उसके बाद राजर्षि जनकका कूप है, जो देवताओंद्वारा भी पूजित है। वहाँ स्नान करके मनुष्य विष्णुलोकको प्राप्त कर लेता है। वहाँसे विनाशन-तीर्थको जाय, जो सब पापोंसे मुक्त करनेवाला है। वहाँकी यात्रासे मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता और सोमलोकको जाता है। तत्पश्चात् सम्पूर्ण तीर्थोंके जलसे प्रकट हुई गण्डकी नदीकी यात्रा करे। वहाँ जानेसे मनुष्य वाजपेय यज्ञका फल पाता और सूर्यलोकको जाता है। धर्मज्ञ युधिष्ठिर! वहाँसे ध्रुवके तपोवनमें प्रवेश करे। महाभाग! वहाँ जानेसे मनुष्य यक्षलोकमें आनन्दका अनुभव करता है। तदनन्तर सिद्धसेवित कर्मदा नदीकी यात्रा करे। वहाँ जानेवाला मनुष्य पुण्डरीक यज्ञका फल पाता और सोमलोकको जाता है।

राजा युधिष्ठिर! तत्पश्चात् माहेश्वरी धाराके समीप जाना चाहिये। वहाँ यात्रीको अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है और वह अपने कुलका उद्धार कर देता है। देवपुष्करिणी-तीर्थमें जाकर स्नानसे पवित्र हुआ मनुष्य कभी दुर्गतिमें नहीं पड़ता और वाजपेय यज्ञका फल पाता है। इसके बाद ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए एकाग्रचित्त हो माहेश्वर पदकी यात्रा करे। वहाँ स्नान करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। भरतश्रेष्ठ! माहेश्वर पदमें एक करोड़ तीर्थ सुने गये हैं; उनमें स्नान करना चाहिये, इससे पुण्डरीक यज्ञके फल और विष्णुलोककी प्राप्ति होती है, तदनन्तर भगवान् नारायणके स्थानको जाना चाहिये, जहाँ सदा ही भगवान् श्रीहरि निवास करते हैं। ब्रह्मा आदि देवता, तपोधन ऋषि, बारहों आदित्य, आठों वसु और ग्यारहों रुद्र वहाँ उपस्थित होकर भगवान् जनार्दनकी उपासना करते हैं। वहाँ अद्भुतकर्मा भगवान् विष्णुका विग्रह शालग्रामके नामसे विख्यात है, उस तीर्थमें अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले और भक्तोंको वर प्रदान करनेवाले त्रिलोकीपति श्रीविष्णुका दर्शन करनेसे मनुष्य विष्णुलोकको प्राप्त होता है। वहाँ एक कुआँ है, जो सब पापोंको हरनेवाला है। उसमें सदा चारों समुद्रोंके जल मौजूद रहते हैं। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य कभी दुर्गतिमें नहीं पड़ता और अविनाशी एवं महान् देवता वरदायक विष्णुके पास पहुँचकर तीनों ऋणोंसे मुक्त हो चन्द्रमाकी भाँति शोभा पाता है। जातिस्मर-तीर्थमें स्नान करके पवित्र एवं शुद्धचित्त हुआ मनुष्य पूर्वजन्मके स्मरणकी शक्ति प्राप्त करता है। वटेश्वरपुरमें जाकर उपवासपूर्वक भगवान् केशवकी पूजा करनेसे मनुष्य मनोवांछित लोकोंको प्राप्त होता है। तत्पश्चात् सब पापोंसे छुटकारा दिलानेवाले वामन-तीर्थमें जाकर भगवान् श्रीहरिको प्रणाम करनेसे मनुष्य कभी दुर्गतिको नहीं प्राप्त होता। भरतका आश्रम भी सब पापोंको दूर करनेवाला है। वहाँ जाकर महापातकनाशिनी कौशिकी (कोसी) नदीका सेवन करना चाहिये। ऐसा करनेवाला मानव राजसूय यज्ञका फल पाता है।

तदनन्तर परम उत्तम चम्पकारण्य (चम्पारन)-की यात्रा करे। वहाँ एक रात उपवास करनेसे मनुष्य सहस्र गोदानोंका फल पाता है। तत्पश्चात् कन्यासंवेद्य नामक तीर्थमें जाकर नियमसे रहे और नियमानुकूल भोजन करे। इससे प्रजापति मनुके लोकोंकी प्राप्ति होती है। जो कन्यातीर्थमें थोड़ा-सा भी दान करते हैं, उनका वह दान अक्षय होता है। निष्ठावास नामक तीर्थमें जानेसे मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता और विष्णुलोकको जाता है। नरश्रेष्ठ! जो मनुष्य निष्ठाके संगममें दान करते हैं, वे रोग-शोकसे रहित ब्रह्मलोकमें जाते हैं। निष्ठा-संगमपर महर्षि वसिष्ठका आश्रम है। देवकूट-तीर्थकी यात्रा करनेसे मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता और अपने कुलका उद्धार कर देता है। वहाँसे कौशिक मुनिके

कुण्डपर जाना चाहिये, जहाँ कुशिक गोत्रमें उत्पन्न महर्षि विश्वामित्रने परम सिद्धि प्राप्त की थी। भरतश्रेष्ठ! वहाँ धीर पुरुषको कौशिकी नदीके तटपर एक मासतक निवास करना चाहिये। एक ही मासमें वहाँ अश्वमेध यज्ञका पुण्य प्राप्त हो जाता है। कालिका-संगम एवं कौशिकी तथा अरुणाके संगममें स्नान करके तीन राततक उपवास करनेवाला विद्वान् सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। सकृन्नदी नामक तीर्थमें जानेसे द्विज कृतार्थ हो जाता है तथा सब पापोंसे शुद्ध हो स्वर्गलोकको प्राप्त होता है। मुनिजनसेवित औद्यानक-तीर्थमें जाकर स्नान करना चाहिये; इससे सब पाप छूट जाते हैं।

तदनन्तर चम्पापुरीमें जाकर गंगाजीके तटपर तर्पण करना चाहिये। वहाँसे दण्डार्पणमें जाकर मनुष्य सहस्त्र गोदानोंका फल प्राप्त करता है। तदनन्तर संध्यामें जाकर सद्विद्या नामक उत्तम तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्य विद्वान् होता है। उसके बाद गंगा-सागर-संगममें स्नान करना चाहिये। इससे विद्वान् लोग दस अश्वमेध यज्ञोंके फलकी प्राप्ति बतलाते हैं। तत्पश्चात् पाप दूर करनेवाली वैतरणी नदीमें जाकर विरज-तीर्थमें स्नान करे; इससे मनुष्य चन्द्रमाकी भाँति शोभा पाता है। प्रभाव क्षेत्रके भीतर कुल नामक तीर्थमें जाकर मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है तथा सहस्त्र गोदानोंका फल पाकर अपने कुलका भी उद्धार कर देता है। सोन नदी और ज्योतिरथीके संगमपर निवास करनेवाला पवित्र मनुष्य देवताओं और पितरोंका तर्पण करके अग्निष्टोम यज्ञका फल प्राप्त करता है। सोन और नर्मदाके उद्गम-स्थानपर वंशगुल्म-तीर्थमें आचमन करके मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त करता है। कोशलाके तटपर ऋषभ-तीर्थमें जाकर तीन रात उपवास करनेवाला मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता है। कोशलाके किनारे कालतीर्थमें जाकर स्नान करे तो ग्यारह बैल दान करनेका पुण्य प्राप्त होता है। पुष्पवतीमें स्नान करके तीन रात उपवास करनेवाला मनुष्य सहस्त्र गोदानोंका फल पाता और अपने कुलका भी उद्धार कर देता है। तदनन्तर जहाँ परशुरामजी निवास करते हैं, उस महेन्द्र पर्वतपर जाकर रामतीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता है। वहीं मतंगका क्षेत्र है, जहाँ स्नान करनेसे सहस्त्र गोदानोंका फल मिलता है। उसके बाद श्रीपर्वतपर जाकर नदीके किनारे स्नान करे। वहाँ देवह्रदमें स्नान करनेसे मनुष्य पवित्र एवं शुद्धचित्त हो अश्वमेध यज्ञका फल पाता और परम सिद्धिको प्राप्त होता है। तदनन्तर कावेरी नदीकी यात्रा करे। वहाँ स्नान करके मनुष्य सहस्त्र गोदानोंका फल पाता है। वहाँसे आगे समुद्रके तटवर्ती तीर्थमें, जिसे कन्यातीर्थ कहते हैं, जाकर स्नान करे। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। तदनन्तर समुद्र-मध्यवर्ती गोकर्णतीर्थमें जा भगवान् शंकरकी पूजा करके तीन रात उपवास करनेवाला मनुष्य दस अश्वमेध यज्ञोंका फल पाता और गणपति पदको प्राप्त होता है। बारह राततक वहाँ उपवास करनेवाला मनुष्य कृतार्थ हो जाता है—उसे कुछ भी पाना शेष नहीं रहता। उसी तीर्थमें गायत्री देवीका भी स्थान है, जहाँ तीन रात उपवास करनेवालेको सहस्त्र गोदानका फल मिलता है। तत्पश्चात् सदा सिद्ध पुरुषोंद्वारा सेवित गोदावरीकी यात्रा करनेसे मनुष्य गवामय यज्ञका फल पाता और वायुलोकको जाता है। वेणाके संगममें स्नान करनेसे वाजपेय यज्ञका फल प्राप्त होता है और वरदा-संगममें नहानेसे सहस्त्र गोदानका फल मिलता है।

ब्रह्मस्थूणा आदि तीर्थों तथा प्रयागकी महिमा; इस प्रसंगके पाठका माहात्म्य

नारदजी कहते हैं—युधिष्ठिर! ब्रह्मस्थूणा नामक तीर्थमें जाकर तीन राततक उपवास करनेवाला मनुष्य सहस्र गोदानोंका फल पाता और स्वर्गलोकको जाता है। कुब्जा-वनमें जाकर ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए एकाग्रचित्त हो स्नान करके तीन रात उपवास करनेवालेको सहस्र गोदानोंका फल मिलता है। इसके बाद देवह्रदमें जहाँसे कृष्णवेणा नदी निकलती है, स्नान करे। फिर ज्योतिर्मात्र (जातिमात्र) ह्रदमें तथा कन्याश्रममें स्नान करे। कन्याश्रममें जानेमात्रसे सौ अग्निष्टोम यज्ञोंका फल मिलता है। सर्वदेवह्रदमें स्नान करनेसे सहस्र गोदानोंका फल प्राप्त होता है तथा जातिमात्र ह्रदमें नहानेसे मनुष्यको पूर्वजन्मका स्मरण हो जाता है। इसके बाद परम पुण्यमयी वाणी तथा नदियोंमें श्रेष्ठ पयोष्णी (मन्दाकिनी)-में जाकर देवताओं तथा पितरोंका पूजन करनेवाला मनुष्य सहस्र गोदानोंका फल पाता है।

महाराज! तदनन्तर दण्डकारण्यमें जाकर गोदावरीमें स्नान करना चाहिये। वहाँ शरभंग मुनि तथा महात्मा शुकके आश्रमकी यात्रा करनेसे मनुष्य कभी दुर्गतिमें नहीं पड़ता और अपने कुलको पवित्र कर देता है। तत्पश्चात् सप्तगोदावरीमें स्नान करके नियमोंका पालन करते हुए नियमानुकूल भोजन करनेवाला पुरुष महान् पुण्यको प्राप्त होता और देवलोकको जाता है। वहाँसे देवपथकी यात्रा करे। इससे मानव देवसत्रका पुण्य प्राप्त कर लेता है। तुंगकारण्यमें जाकर ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए जितेन्द्रिय भावसे रहे। युधिष्ठिर! तुंगकारण्यमें प्रवेश करनेवाले पुरुष अथवा स्त्रीका सारा पाप तत्काल नष्ट हो जाता है। धीर पुरुषको उचित है कि वह नियमोंका पालन तथा नियमानुकूल भोजन करते हुए एक मासतक वहाँ निवास करे। इससे वह ब्रह्मलोकको जाता और अपने कुलको भी पवित्र कर देता है। मेधा-वनमें जाकर देवताओं और पितरोंका तर्पण करना चाहिये। इससे अग्निष्टोम यज्ञका फल मिलता तथा स्मरणशक्ति और मेधाकी प्राप्ति होती है। वहीं कालंजर-तीर्थमें जानेसे सहस्र गोदानोंका फल मिलता है।

महाराज! तत्पश्चात् पर्वतश्रेष्ठ चित्रकूटपर मन्दाकिनी नदीकी यात्रा करे। वह सब पापोंको दूर करनेवाली है। उसमें स्नान करके देवताओं तथा पितरोंके पूजनमें तत्पर रहनेवाला मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता और परम गतिको प्राप्त होता है। वहाँसे परम उत्तम भर्तृस्थान नामक तीर्थमें जाना चाहिये। वहाँ जानेमात्रसे ही मनुष्यको सिद्धि प्राप्त होती है। उस तीर्थकी प्रदक्षिणा करके शिवस्थानकी यात्रा करनी चाहिये। वहाँ एक विख्यात कूप है, जिसमें चारों समुद्रोंका निवास है। वहाँ स्नान करके उस कूपकी प्रदक्षिणा करे; इससे पवित्र हुआ जितात्मा पुरुष परम गतिको प्राप्त होता है। तदनन्तर महान् शृंगवेरपुरकी यात्रा करे। वहाँ गंगामें स्नान करके ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए इन्द्रियोंको संयममें रखनेवाले पुरुषके पाप धुल जाते हैं और वह वाजपेय यज्ञका फल पाता है। वहाँसे परम बुद्धिमान् भगवान् शंकरके मुंजवट नामक स्थानकी यात्रा करे। वहाँ जाकर महादेवजीकी पूजा और प्रदक्षिणा करनेसे मनुष्य गणपति-पदको प्राप्त होता है।

इसके बाद ऋषियोंद्वारा प्रशंसित प्रयागतीर्थकी यात्रा करे, जहाँ ब्रह्माजीके साथ साक्षात् भगवान् माधव विराजमान हैं। गंगा सब तीर्थोंके साथ प्रयागमें आयी हैं और वहाँ तीनों लोकोंमें विख्यात तथा सम्पूर्ण जगत्को पवित्र करनेवाली सूर्यनन्दिनी यमुना गंगाजीके साथ मिली हैं। गंगा और यमुनाके बीचकी भूमि पृथ्वीका जघन (कटिसे नीचेका भाग) मानी गयी है। और प्रयाग जघनके बीचका उपस्थ भाग है, ऐसी ऋषियोंकी मान्यता है। वहाँ प्रयाग, उत्तम प्रतिष्ठानपुर (झूसी), कम्बल और अश्वतर नामक नागोंका स्थान, भोगवतीतीर्थ तथा प्रजापतिकी वेदी आदि पवित्र स्थान बताये गये हैं। वहाँ यज्ञ और वेद मूर्तिमान् होकर रहते हैं। प्रयागसे बढ़कर पवित्र तीर्थ तीनों लोकोंमें नहीं है। प्रयाग अपने प्रभावके

कारण सब तीर्थोंसे बढ़कर है। प्रयागतीर्थके नामको सुनने, कीर्तन करने तथा उसे मस्तक झुकानेसे भी मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो उत्तम व्रतका पालन करते हुए वहाँ संगममें स्नान करता है, उसे महान् पुण्यकी प्राप्ति होती है; क्योंकि प्रयाग देवताओंकी भी यज्ञभूमि है। वहाँ थोड़ेसे दानका भी महान् फल होता है। कुरुनन्दन! प्रयागमें साठ करोड़ और दस हजार तीर्थोंका निवास बताया गया है। चारों विद्याओंके अध्ययनसे जो पुण्य होता है तथा सत्यवादी पुरुषोंको जिस पुण्यकी प्राप्ति होती है, वह वहाँ गंगा-यमुना-संगममें स्नान करनेसे ही मिल जाता है। प्रयागमें भोगवती नामक उत्तम बावली है जो वासुकि नागका उत्तम स्थान माना गया है। जो वहाँ स्नान करता है, उसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। वहाँ हंसप्रपतन तथा दशाश्वमेध नामक तीर्थ हैं। गंगामें कहीं भी स्नान करनेपर कुरुक्षेत्रमें स्नान करनेके समान पुण्य होता है।

गंगाजीका जल सारे पापोंको उसी प्रकार भस्म कर देता है, जैसे आग रूईके ढेरको जला डालती है। सत्ययुगमें सभी तीर्थ, त्रेतामें पुष्कर, द्वापरमें कुरुक्षेत्र तथा कलियुगमें गंगा ही सबसे पवित्र तीर्थ मानी गयी हैं। पुष्करमें तपस्या करे, महालयमें दान दे और भृगु-तुंगपर उपवास करे तो विशेष पुण्य होता है। किन्तु पुष्कर, कुरुक्षेत्र और गंगाके जलमें स्नान करनेमात्रसे प्राणी अपनी सात पहलेकी तथा सात पीछेकी पीढ़ियोंको भी तत्काल ही तार देता है। गंगाजी नाम लेनेमात्रसे पापोंको धो देती हैं, दर्शन करनेपर कल्याण प्रदान करती हैं तथा स्नान करने और जल पीनेपर सात पीढ़ियोंतकको पवित्र कर देती हैं। राजन्! जबतक मनुष्यकी हड्डीका गंगाजलसे स्पर्श बना रहता है, तबतक वह पुरुष स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित रहता है। ब्रह्माजीका कथन है कि गंगाके समान तीर्थ, श्रीविष्णुसे बढ़कर देवता तथा ब्राह्मणोंसे बढ़कर पूज्य कोई नहीं है। महाराज! जहाँ गंगा बहती हैं, वहाँ उनके किनारेपर जो-जो देश और तपोवन होते हैं, उन्हें सिद्ध क्षेत्र समझना चाहिये।*

जो मनुष्य प्रतिदिन तीर्थोंके इस पुण्य-प्रसंगका श्रवण करता है, वह सदा पवित्र होकर स्वर्गलोकमें आनन्दका अनुभव करता है तथा उसे अनेकों जन्मोंकी बातें याद आ जाती हैं। जहाँकी यात्रा की जा सकती है और जहाँ जाना असम्भव है, उन सभी प्रकारके तीर्थोंका मैंने वर्णन किया है। यदि प्रत्यक्ष सम्भव न हो तो मानसिक इच्छाके द्वारा भी इन सभी तीर्थोंकी यात्रा करनी चाहिये। पुण्यकी इच्छा रखनेवाले देवोपम ऋषियोंने भी इन तीर्थोंका आश्रय लिया है।

वसिष्ठ मुनि बोले—राजा दिलीप! तुम भी उपर्युक्त विधिके अनुसार मनको वशमें करके तीर्थोंकी यात्रा करो; क्योंकि पुण्य पुण्यसे ही बढ़ता है। पहलेके बने हुए कारणोंसे, आस्तिकतासे और श्रुतियोंको देखनेसे शिष्ट पुरुषोंके मार्गपर चलनेवाले सज्जनोंको उन तीर्थोंकी प्राप्ति होती है।

नारदजी कहते हैं—राजा युधिष्ठिर! इस प्रकार दिलीपको तीर्थोंकी महिमा बताकर मुनि वसिष्ठ उनसे विदा ले प्रातःकाल प्रसन्न हृदयसे वहीं अन्तर्धान हो गये। राजा दिलीपने शास्त्रोंके तात्त्विक अर्थका ज्ञान हो जाने और वसिष्ठजीके कहनेसे सारी पृथ्वीपर तीर्थ-यात्राके लिये भ्रमण किया। महाभाग! इस प्रकार सब पापोंसे छुड़ानेवाली यह परमपुण्यमयी तीर्थयात्रा प्रतिष्ठानपुर (झूसी)-में आकर प्रतिष्ठित—समाप्त होती है। जो मनुष्य इस विधिसे पृथ्वीकी परिक्रमा करेगा, वह मृत्युके पश्चात् सौ अश्वमेध यज्ञोंका फल प्राप्त करेगा, युधिष्ठिर! तुम ऋषियोंको भी साथ ले जाओगे, इसलिये

---

* पुनाति कीर्तिता पापं दृष्ट्वा भद्रं प्रयच्छति । अवगाढा च पीता च पुनात्यासप्तमं कुलम्॥
यावदस्थि मनुष्यस्य गङ्गायाः स्पृशते जलम् । तावत्स पुरुषो राजन् स्वर्गलोके महीयते॥
न गङ्गासदृशं तीर्थं न देवः केशवात्परः । ब्राह्मणेभ्यः परं नास्ति एवमाह पितामहः॥
यत्र गङ्गा महाराज स देशस्तत्तपोवनम् । सिद्धक्षेत्रं च विज्ञेयं गङ्गातीरसमाश्रितम्॥
(३९।८६-८७, ८९-९०)

तुम्हें औरोंकी अपेक्षा आठगुना फल होगा।

सूतजी कहते हैं—समस्त तीर्थोंके वर्णनसे सम्बन्ध रखनेवाले देवर्षि नारदके इस चरित्रका जो सबेरे उठकर पाठ करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। नारदजीने यह भी कहा—'राजन्! वाल्मीकि, कश्यप, आत्रेय, कौण्डिन्य, विश्वामित्र, गौतम, असित, देवल, मार्कण्डेय, गालव, भरद्वाज-शिष्य उद्दालक मुनि, शौनक, पुत्रसहित महान् तपस्वी व्यास, मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा और महातपस्वी जाबालि—इन सभी तपस्वी ऋषियोंकी तुम प्रतीक्षा करो तथा इन सबको साथ लेकर उपर्युक्त तीर्थोंकी यात्रा करो।' राजा युधिष्ठिरसे यों कहकर देवर्षि नारद उनसे विदा ले वहीं अन्तर्धान हो गये। तत्पश्चात् उत्तम व्रतका पालन करनेवाले धर्मात्मा युधिष्ठिरने बड़े आदरके साथ समस्त तीर्थोंकी यात्रा की। ऋषियो! मेरी कही हुई इस तीर्थयात्राकी कथाका जो पाठ या श्रवण करता है, वह सब पातकोंसे मुक्त हो जाता है।

मार्कण्डेयजी तथा श्रीकृष्णका युधिष्ठिरको प्रयागकी महिमा सुनाना

सूतजी कहते हैं—महर्षियो! पापराशिका निवारण करनेके लिये तीर्थोंकी महिमाका श्रवण श्रेष्ठ है तथा तीर्थोंका सेवन भी प्रशस्त है। जो मनुष्य प्रतिदिन यह कहता है कि मैं तीर्थोंमें निवास करूँ और तीर्थोंमें स्नान करूँ, वह परमपदको प्राप्त होता है। तीर्थोंकी चर्चा करनेमात्रसे उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं; अतः तीर्थ धन्य हैं। तीर्थसेवी पुरुषोंके द्वारा जगत्कर्ता भगवान् नारायणका सेवन होता है। ब्राह्मण, तुलसी, पीपल, तीर्थसमुदाय तथा परमेश्वर श्रीविष्णु—ये सदा ही मनुष्योंके लिये सेव्य हैं।[1] पीपल, तुलसी, गौ तथा सूर्यकी परिक्रमा करनेसे मनुष्य सब तीर्थोंका फल पाकर विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है।[2] इसलिये विद्वान् पुरुष निश्चय ही पुण्य-तीर्थोंका सेवन करे।

ऋषि बोले—सूतजी! हमने माहात्म्यसहित समस्त तीर्थोंका श्रवण किया; किन्तु आपने प्रयागकी महिमाको पहले थोड़ेमें बताया है, उसे हमलोग विस्तारके साथ सुनना चाहते हैं। अतः आप कृपापूर्वक उसका वर्णन कीजिये।

सूतजी बोले—महर्षियो! बड़े हर्षकी बात है। मैं अवश्य ही प्रयागकी महिमाका वर्णन करूँगा। पूर्वकालमें महाभारत-युद्ध समाप्त हो जानेपर जब कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरको अपना राज्य प्राप्त हो गया, उस समय मार्कण्डेयजीने पाण्डुकुमारसे प्रयागकी महिमाका जो वर्णन किया था, वही प्रसंग मैं आपलोगोंको सुनाता हूँ। राज्य प्राप्त हो जानेपर कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरको बारंबार चिन्ता होने लगी। उन्होंने सोचा—'राजा दुर्योधन ग्यारह अक्षौहिणी सेनाका स्वामी था। उसने हमलोगोंको अनेकों बार कष्ट पहुँचाया। किन्तु अब वे सब-के-सब मौतके मुँहमें चले गये। भगवान् वासुदेवका आश्रय लेनेके कारण हम पाँच पाण्डव शेष रह गये हैं। द्रोणाचार्य, भीष्म, महाबली कर्ण, भ्राता और पुत्रोंसहित राजा दुर्योधन तथा अन्यान्य जितने वीर राजा मारे गये हैं उन सबके बिना यह राज्य, भोग अथवा जीवन लेकर क्या करना है। हाय! धिक्कार है, इस सुखको; मेरे लिये यह प्रसंग बड़ा कष्टदायक है।' यह विचारकर राजा व्याकुल हो उठे। वे उत्साहहीन होकर नीचे मुँह किये बैठे रहते थे। उन्हें बारंबार इस बातकी चिन्ता होने लगी कि 'अब मैं किस योग, नियम एवं तीर्थका सेवन करूँ, जिससे महापातकोंकी राशिसे मुझे शीघ्र ही छुटकारा मिले। कौन-सा ऐसा तीर्थ है, जहाँ स्नान करके मनुष्य

१-ब्राह्मणस्तुलसी चैव अश्वत्थस्तीर्थसंचयः। विष्णुश्च परमेशानः सेव्य एव नृभिः सदा॥ (४०।६)

२-अश्वत्थस्य तुलस्याश्च गवां सूर्यात् प्रदक्षिणात्। सर्वतीर्थफलं प्राप्य विष्णुलोके महीयते॥ (४०।९)

परम उत्तम विष्णुलोकको प्राप्त होता है?' इस प्रकार सोचते हुए धर्मपुत्र युधिष्ठिर अत्यन्त विकल हो गये।

उस समय महातपस्वी मार्कण्डेयजी काशीमें थे। उन्हें युधिष्ठिरकी अवस्थाका ज्ञान हो गया; इसलिये वे तुरंत ही हस्तिनापुरमें जा पहुँचे और राजमहलके द्वारपर खड़े हो गये। द्वारपालने जब उन्हें देखा तो शीघ्र ही महाराजके पास जाकर कहा—'राजन्! मार्कण्डेय मुनि आपसे मिलनेके लिये आये हैं और द्वारपर खड़े हैं।' यह समाचार सुनते ही धर्मपुत्र युधिष्ठिर तुरंत राजद्वारपर आ पहुँचे और उनके शरणागत होकर बोले—'महामुने! आपका स्वागत है। महाप्राज्ञ! आपका स्वागत है। आज मेरा जन्म सफल हुआ। आज मेरा कुल पवित्र हो गया। आज आपका दर्शन होनेसे मेरे पितर तृप्त हो गये।' यों कहकर युधिष्ठिरने मुनिको सिंहासनपर बिठाया और पैर धोकर पूजन-सामग्रियोंसे उनकी पूजा की। तब मार्कण्डेयजीने कहा—'राजन्! तुम व्याकुल क्यों हो रहे हो? मेरे सामने अपना मनोभाव प्रकट करो।'

युधिष्ठिर बोले—महामुने! राज्यके लिये हमलोगोंकी ओरसे जो बर्ताव हुआ है, उस सारे प्रसंगको जानकर ही आप यहाँ पधारे हैं [फिर आपसे क्या कहना है]।

मार्कण्डेयजीने कहा—महाबाहो! सुनो—जहाँ धर्मकी व्यवस्था है, उस शास्त्रमें संग्राममें युद्ध करनेवाले किसी भी बुद्धिमान् पुरुषके लिये पापकी बात नहीं देखी गयी है। फिर विशेषतः क्षत्रियके लिये जो राजधर्मके अनुसार युद्धमें प्रवृत्त हुआ है, पापकी आशंका कैसे हो सकती है। अतः इस बातको हृदयमें रखकर पापकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। महाभाग युधिष्ठिर! तुम तीर्थकी बात जानना चाहते हो तो सुनो—पुण्य-कर्म करनेवाले मनुष्योंके लिये प्रयागकी यात्रा करना सर्वश्रेष्ठ है।

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! मैं यह सुनना चाहता हूँ कि प्रयागकी यात्रा कैसे की जाती है, वहाँ कैसा पुण्य होता है, प्रयागमें जिनकी मृत्यु होती है, उनकी क्या गति होती है तथा जो वहाँ स्नान और निवास करते हैं, उन्हें किस फलकी प्राप्ति होती है। ये सब बातें बताइये। मेरे मनमें इन्हें सुननेके लिये बड़ी उत्कण्ठा है।

मार्कण्डेयजीने कहा—वत्स! पूर्वकालमें ऋषियों और ब्राह्मणोंके मुँहसे जो कुछ मैंने सुना है, वह प्रयागका फल तुम्हें बताता हूँ। प्रयागसे लेकर प्रतिष्ठानपुर (झूसी)-तक, धर्मकी हृदसे लेकर वासुकि-हृदतक तथा कम्बल और अश्वतर नागोंके स्थान एवं बहुमूलिक नामवाले नागोंका स्थान—यह सब प्रजापतिका क्षेत्र है, जो तीनों लोकोंमें विख्यात है। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य स्वर्गलोकमें जाते हैं और जिनकी वहाँ मृत्यु होती है, वे फिर जन्म नहीं लेते। प्रयागमें ब्रह्मा आदि देवता एकत्रित होकर प्राणियोंकी रक्षा करते हैं। वहाँ और भी बहुत-से तीर्थ हैं, जो सब पापोंको हरनेवाले तथा कल्याणकारी हैं। उनका कई सौ वर्षोंमें भी वर्णन नहीं किया जा सकता। स्वयं इन्द्र विशेषरूपसे प्रयागतीर्थकी रक्षा करते हैं तथा भगवान् विष्णु देवताओंके साथ प्रयागके सर्वमान्य मण्डलकी रक्षा करते हैं। हाथमें शूल लिये हुए भगवान् महेश्वर प्रतिदिन वहाँके वटवृक्ष (अक्षयवट)-की रक्षा करते हैं तथा

देवता समूचे तीर्थस्थानकी रक्षामें रहते हैं। वह स्थान सब पापोंको हरनेवाला और शुभ है। जो प्रयागका स्मरण करता है, उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। उस तीर्थके दर्शन और नाम-कीर्तनसे तथा वहाँकी मिट्टी प्राप्त करनेसे भी मनुष्य पापमुक्त हो जाता है। महाराज! प्रयागमें पाँच कुण्ड हैं, जिनके बीचसे होकर गंगाजी बहती हैं। प्रयागमें प्रवेश करनेवाले मनुष्यका पाप तत्काल नष्ट हो जाता है। जो मनुष्य सहस्रों योजन दूरसे भी गंगाजीका स्मरण करता है, वह पापाचारी होनेपर भी परमगतिको प्राप्त होता है। मनुष्य गंगाका नाम लेनेसे पापमुक्त होता है, दर्शन करनेसे कल्याणका दर्शन करता है तथा स्नान करने और जल पीनेसे अपने कुलकी सात पीढ़ियोंको पवित्र कर देता है। जो सत्यवादी, क्रोधजयी, अहिंसा-धर्ममें स्थित, धर्मानुगामी, तत्त्वज्ञ तथा गौ और ब्राह्मणोंके हितमें तत्पर होकर गंगा-यमुनाके बीचमें स्नान करता है, वह सारे पापोंसे छूट जाता है तथा मन-चीते समस्त भोगोंको पूर्णरूपसे प्राप्त कर लेता है।*

तत्पश्चात् सम्पूर्ण देवताओंसे रक्षित प्रयागमें जाकर ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए एक मासतक निवास करे और देवताओं तथा पितरोंका तर्पण करे। इससे मनुष्य मनोवांछित पदार्थोंको प्राप्त करता है। युधिष्ठिर! प्रयागमें साक्षात् भगवान् महेश्वर सदा निवास करते हैं। वह परम पावन तीर्थ मनुष्योंके लिये दुर्लभ है। राजेन्द्र! देवता, दानव, गन्धर्व, ऋषि, सिद्ध और चारण वहाँ स्नान करके स्वर्गलोकमें जा सुख भोगते हैं।

प्रयागमें जानेवाला मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। मनुष्य अपने देशमें हो या वनमें, विदेशमें हो या घरमें, जो प्रयागका स्मरण करते हुए मृत्युको प्राप्त होता है, वह ब्रह्मलोकमें जाता है—यह श्रेष्ठ ऋषियोंका कथन है। जो मन, वाणी तथा क्रियाद्वारा सत्यधर्ममें स्थित हो गंगा-यमुनाके बीचकी भूमिमें दान देता है, वह सद्‌गतिको प्राप्त होता है। जो अपने कार्यके लिये या पितृकार्यके लिये अथवा देवताकी पूजाके लिये प्रयागमें सुवर्ण, मणि, मोती अथवा धान्यका दान ग्रहण करता है, उसका तीर्थ-सेवन व्यर्थ होता है; वह जबतक दूसरेका द्रव्य भोगता है, तबतक उसके तीर्थ-सेवनका कोई फल नहीं है।

अतः इस प्रकार तीर्थ अथवा पवित्र मन्दिरोंमें जाकर किसीसे कुछ ग्रहण न करे। कोई भी निमित्त हो, द्विजको प्रतिग्रहसे सावधान रहना चाहिये। प्रयागमें भूरी अथवा लाल रंगकी गायके, जो दूध देनेवाली हो, सींगोंको सोनेसे और खुरोंको चाँदीसे मढ़ा दे; फिर उसके गलेमें वस्त्र लपेटकर श्वेतवस्त्रधारी, शान्त, धर्मज्ञ, वेदोंके पारगामी तथा साधु श्रोत्रिय ब्राह्मणको बुलाकर गंगा-यमुनाके संगममें वह गौ उसे विधिपूर्वक दान कर दे। साथ ही बहुमूल्य वस्त्र तथा नाना प्रकारके रत्न भी देने चाहिये। इससे उस गौके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने हजार वर्षोंतक मनुष्य स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। वह उस पुण्यकर्मके प्रभावसे भयंकर नरकका दर्शन नहीं करता। लाख गौओंकी अपेक्षा वहाँ एक ही दूध देनेवाली गौ देना उत्तम है। वह एक ही पुत्र, स्त्री तथा भृत्योंतकका उद्धार कर देती है। इसलिये सब दानोंमें गोदान ही सबसे बढ़कर है। महापातकके कारण मिलनेवाले दुर्गम, विषम तथा भयंकर नरकमें गौ ही मनुष्यकी रक्षा करती है। इसलिये ब्राह्मणको गोदान करना चाहिये।

कुरुश्रेष्ठ! जो देवताओंके द्वारा सेवित प्रयागतीर्थमें बैल अथवा बैलगाड़ीपर चढ़कर जाता है, वह पुरुष गौओंका भयंकर क्रोध होनेपर घोर नरकमें निवास करता है तथा उसके पितर उसका दिया जलतक नहीं ग्रहण करते। जो ऐश्वर्यके लोभसे अथवा मोहवश सवारीसे तीर्थयात्रा करता है, उसके तीर्थसेवनका कोई फल नहीं

* योजनानां सहस्रेषु गङ्गां स्मरति यो नरः। अपि दुष्कृतकर्मासौ लभते परमां गतिम्॥
कीर्तनान्मुच्यते पापैर्दृष्ट्वा भद्राणि पश्यति। अवगाह्य च पीत्वा च पुनात्यासप्तमं कुलम्॥
सत्यवादी जितक्रोधो अहिंसां परमां स्थितः। धर्मानुसारी तत्त्वज्ञो गोब्राह्मणहिते रतः॥
गङ्गायमुनयोर्मध्ये स्नातो मुच्येत किल्बिषात्। मनसा चिन्तितान् कामान् सम्यक् प्राप्नोति पुष्कलान्॥ (४१। १४—१७)

होता; इसलिये सवारीको त्याग देना चाहिये। जो गंगा-यमुनाके बीचमें ऋषियोंकी बतायी हुई विधि तथा अपनी सामर्थ्यके अनुसार कन्यादान करता है, वह उस कर्मके प्रभावसे यमराज तथा भयंकर नरकको नहीं देखता। जिस मनुष्यकी अक्षयवटके नीचे मृत्यु होती है, वह सब लोकोंको लाँघकर रुद्रलोकमें जाता है। वहाँ रुद्रका आश्रय लेकर बारह सूर्य तपते हैं और सारे जगत्‌को जला डालते हैं। परन्तु वटकी जड़ नहीं जला पाते। जब सूर्य, चन्द्रमा और वायुका विनाश हो जाता है और सारा जगत् एकार्णवमें मग्न दिखायी देता है, उस समय भगवान् विष्णु यहीं अक्षयवटपर शयन करते हैं। देवता, दानव, गन्धर्व, ऋषि, सिद्ध और चारण—सभी गंगा-यमुनाके संगममें स्थित तीर्थका सेवन करते हैं। वहाँ ब्रह्मा आदि देवता, दिशाएँ, दिक्पाल, लोकपाल, साध्य, पितर, सनत्कुमार आदि परमर्षि, अंगिरा आदि ब्रह्मर्षि, नाग, सुपर्ण (गरुड़) पक्षी, नदियाँ, समुद्र, पर्वत, विद्याधर तथा साक्षात् भगवान् विष्णु प्रजापतिको आगे रखकर निवास करते हैं। उस तीर्थका नाम सुनने, नाम लेने तथा वहाँकी मिट्टीका स्पर्श करनेसे भी मनुष्य पापमुक्त हो जाता है। जो वहाँ कठोर व्रतका पालन करते हुए संगममें स्नान करता है, वह राजसूय एवं अश्वमेध यज्ञोंके समान फल पाता है। योगयुक्त विद्वान् पुरुषको जिस गतिकी प्राप्ति होती है, वह गति गंगा और यमुनाके संगममें मृत्युको प्राप्त होनेवाले प्राणियोंकी भी होती है।

इस प्रकार परमपदके साधनभूत प्रयागतीर्थका दर्शन करके यमुनाके दक्षिण किनारे, जहाँ कम्बल और अश्वतर नागोंके स्थान हैं, जाना चाहिये। वहाँ स्नान और जलपान करनेसे मनुष्य सब पातकोंसे छुटकारा पा जाता है। वह परम बुद्धिमान् महादेवजीका स्थान है। वहाँकी यात्रा करनेसे मनुष्य अपने कुलकी दस पहलेकी और दस पीछेकी पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। जो मनुष्य वहाँ स्नान करता है, उसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है तथा वह प्रलयकालतक स्वर्गलोकमें स्थान पाता है। भारत! गंगाके पूर्वतटपर तीनों लोकोंमें विख्यात समुद्रकूप और प्रतिष्ठानपुर (झूसी) हैं। यदि कोई ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए क्रोधको जीतकर तीन रात वहाँ निवास करता है, तो वह सब पापोंसे शुद्ध होकर अश्वमेध यज्ञका फल पाता है। प्रतिष्ठानसे उत्तर और भागीरथीसे पूर्व हंसप्रपतन नामक तीर्थ है, उसमें स्नान करनेमात्रसे मनुष्यको अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है तथा जबतक सूर्य और चन्द्रमाकी स्थिति है, तबतक वह स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

रमणीय अक्षयवटके नीचे ब्रह्मचारी, जितेन्द्रिय एवं योगयुक्त होकर उपवास करनेवाला मनुष्य ब्रह्मज्ञानको प्राप्त होता है। कोटितीर्थमें जाकर जिनकी मृत्यु होती है, वह करोड़ों वर्षतक स्वर्गलोकमें सम्मानित होता है। चारों वेदोंके अध्ययनसे जो पुण्य होता है, सत्य बोलनेसे जो फल होता है तथा अहिंसाके पालनसे जो धर्म होता है, वह दशाश्वमेध घाटकी यात्रा करनेसे ही प्राप्त हो जाता है। गंगामें जहाँ कहीं भी स्नान किया जाय, वे कुरुक्षेत्रके समान फल देनेवाली हैं; किन्तु जहाँ वे समुद्रसे मिली हैं, वहाँ उनका माहात्म्य कुरुक्षेत्रसे दसगुना है। महाभागा गंगा जहाँ कहीं भी बहती हैं, वहाँ बहुत-से तीर्थ और तपस्वी रहते हैं। उस स्थानको सिद्धक्षेत्र समझना चाहिये। इसमें अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। गंगा पृथ्वीपर मनुष्योंको, पातालमें नागोंको और स्वर्गमें देवताओंको तारती हैं; इसलिये वे त्रिपथगा कहलाती हैं। किसी भी जीवकी हड्डियाँ जितने समयतक गंगामें रहती हैं, उतने हजार वर्षोंतक वह स्वर्गलोकमें सम्मानित होता है। गंगा तीर्थोंमें श्रेष्ठ तीर्थ, नदियोंमें उत्तम नदी तथा सम्पूर्ण भूतों—महापातकियोंको भी मोक्ष देनेवाली हैं। गंगा सर्वत्र सुलभ हैं, केवल तीन स्थानोंमें वे दुर्लभ मानी गयी हैं—गंगाद्वार, प्रयाग तथा गंगा-सागर-संगममें। वहाँ स्नान करके मनुष्य स्वर्गको जाते हैं तथा जिनकी वहाँ मृत्यु होती है, वे फिर कभी जन्म नहीं लेते। जिनका चित्त पापसे दूषित है, ऐसे समस्त प्राणियों और मनुष्योंकी गंगाके सिवा अन्यत्र गति नहीं है। गंगाके सिवा दूसरी कोई गति है ही नहीं। भगवान् शंकरके मस्तकसे निकली हुई गंगा सब पापोंको हरनेवाली और शुभकारिणी हैं। वे पवित्रोंको भी पवित्र

करनेवाली और मंगलमय पदार्थोंके लिये भी मंगलकारिणी हैं।*

राजन्! पुनः प्रयागका माहात्म्य सुनो, जिसे सुनकर मनुष्य सब पापोंसे निस्सन्देह मुक्त हो जाता है। गंगाके उत्तर-तटपर मानस नामक तीर्थ है। वहाँ तीन रात उपवास करनेसे समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। मनुष्य गौ, भूमि और सुवर्णका दान करनेसे जिस फलको पाता है, वह उस तीर्थका बारंबार स्मरण करनेसे ही मिल जाता है। जो गंगामें मृत्युको प्राप्त होता है, वह मृत व्यक्ति स्वर्गमें जाता है। उसे नरक नहीं देखना पड़ता। माघ मासमें गंगा और यमुनाके संगमपर छाछठ हजार तीर्थोंका समागम होता है। विधिपूर्वक एक लाख गौओंका दान करनेसे जो फल मिलता है, वह माघ मासमें प्रयागके भीतर तीन दिन स्नान करनेसे ही प्राप्त हो जाता है। जो गंगा-यमुनाके बीचमें पंचाग्निसेवनकी साधना करता है, वह किसी अंगसे हीन नहीं होता; उसका रोग दूर हो जाता है तथा उसकी पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ सबल रहती हैं। इतना ही नहीं, उस मनुष्यके शरीरमें जितने रोमकूप होते हैं, उतने ही हजार वर्षोंतक वह स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। यमुनाके उत्तर-तटपर और प्रयागके दक्षिण भागमें ऋणप्रमोचन नामक तीर्थ है, जो अत्यन्त श्रेष्ठ माना गया है। वहाँ एक रात निवास करनेसे मनुष्य समस्त ऋणोंसे मुक्त हो जाता है। उसे सूर्यलोककी प्राप्ति होती है तथा वह सदाके लिये ऋणसे छूट जाता है। प्रयागका मण्डल पाँच योजन विस्तृत है, उसमें प्रवेश करनेवाले पुरुषको पग-पगपर अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है। जिस मनुष्यकी वहाँ मृत्यु होती है, वह अपनी पिछली सात पीढ़ियोंको और आगे आनेवाली चौदह पीढ़ियोंको तार देता है। महाराज! यह जानकर प्रयागके प्रति सदा श्रद्धा रखनी चाहिये। जिनका चित्त पापसे दूषित है, वे अश्रद्धालु पुरुष उस स्थानको—देवनिर्मित प्रयागको नहीं पा सकते।

राजन्! अब मैं अत्यन्त गोपनीय रहस्यकी बात बताता हूँ, जो सब पापोंका नाश करनेवाली है; सुनो। जो प्रयागमें इन्द्रिय-संयमपूर्वक एक मासतक निवास करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है—ऐसा ब्रह्माजीका कथन है। वहाँ रहनेसे मनुष्य पवित्र, जितेन्द्रिय, अहिंसक और श्रद्धालु होकर सब पापोंसे छूट जाता और परमपदको प्राप्त होता है। वहाँ तीनों काल स्नान और भिक्षाका आहार करना चाहिये; इस प्रकार तीन महीनोंतक प्रयागका सेवन करनेसे वे मुक्त हो जाते हैं—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। तत्त्वके ज्ञाता युधिष्ठिर! तुम्हारी प्रसन्नताके लिये मैंने इस धर्मानुसारी सनातन गुह्य रहस्यका वर्णन किया है।

युधिष्ठिर बोले—धर्मात्मन्! आज मेरा जन्म सफल हुआ, आज मेरा कुल कृतार्थ हो गया। आज आपके दर्शनसे मैं प्रसन्न हूँ, अनुगृहीत हूँ तथा सब पातकोंसे मुक्त हो गया हूँ। महामुने! यमुनामें स्नान करनेसे क्या पुण्य होता है, कौन-सा फल मिलता है? ये सब बातें आप अपने प्रत्यक्ष अनुभव एवं श्रवणके आधारपर बताइये।

मार्कण्डेयजीने कहा—राजन्! सूर्यकन्या यमुना देवी तीनों लोकोंमें विख्यात हैं। जिस हिमालयसे गंगा प्रकट हुई हैं, उसीसे यमुनाका भी आगमन हुआ है। सहस्रों योजन दूरसे भी नामोच्चारण करनेपर वे पापोंका नाश कर देती हैं। युधिष्ठिर! यमुनामें नहाने, जल पीने और उनके नामका कीर्तन करनेसे मनुष्य पुण्यका भागी होकर कल्याणका दर्शन करता है।

* यावदस्थीनि गङ्गायां तिष्ठन्ति तस्य देहिनः। तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥
तीर्थानां तु परं तीर्थं नदीनामुत्तमा नदी। मोक्षदा सर्वभूतानां महापातकिनामपि॥
सर्वत्र सुलभा गङ्गा त्रिषु स्थानेषु दुर्लभा। गङ्गाद्वारे प्रयागे च गङ्गासागरसङ्गमे॥
तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः।
सर्वेषां चैव भूतानां पापोपहतचेतसाम्। गतिरन्यत्र मर्त्यानां नास्ति गङ्गासमा गतिः॥
पवित्राणां पवित्रं या मङ्गलानां च मङ्गलम्। महेश्वरशिरोभ्रष्टा सर्वपापहरा शुभा॥ (४३।५२—५६)

यमुनामें गोता लगाने और उनका जल पीनेसे कुलकी सात पीढ़ियाँ पवित्र हो जाती हैं। जिसकी वहाँ मृत्यु होती है, वह परमगतिको प्राप्त होता है। यमुनाके दक्षिण किनारे विख्यात अग्नितीर्थ है; उसके पश्चिम धर्मराजका तीर्थ है, जिसे हरवरतीर्थ भी कहते हैं। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य स्वर्गमें जाते हैं तथा जो वहाँ मृत्युको प्राप्त होते हैं, वे फिर जन्म नहीं लेते।

इसी प्रकार यमुनाके दक्षिण-तटपर हजारों तीर्थ हैं। अब मैं उत्तर-तटके तीर्थोंका वर्णन करता हूँ। युधिष्ठिर! उत्तरमें महात्मा सूर्यका विरज नामक तीर्थ है, जहाँ इन्द्र आदि देवता प्रतिदिन सन्ध्योपासन करते हैं। देवता तथा विद्वान् पुरुष उस तीर्थका सेवन करते हैं। तुम भी श्रद्धापूर्वक दानमें प्रवृत्त होकर उस तीर्थमें स्नान करो। वहाँ और भी बहुत-से तीर्थ हैं, जो सब पापोंको हरनेवाले और शुभ हैं। उनमें स्नान करके मनुष्य स्वर्गमें जाते हैं तथा जिनकी वहाँ मृत्यु होती है, वे मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। गंगा और यमुना—दोनों ही समान फल देनेवाली मानी गयी हैं; केवल श्रेष्ठताके कारण गंगा सर्वत्र पूजित होती हैं। कुन्तीनन्दन! तुम भी इसी प्रकार सब तीर्थोंमें स्नान करो, इससे जीवनभरका पाप तत्काल नष्ट हो जाता है। जो मनुष्य सबेरे उठकर इस प्रसंगका पाठ या श्रवण करता है, वह भी सब पापोंसे मुक्त होकर स्वर्गलोकको जाता है।

युधिष्ठिर बोले—मुने! मैंने ब्रह्माजीके कहे हुए पुण्यमय पुराणका श्रवण किया है; उसमें सैकड़ों, हजारों और लाखों तीर्थोंका वर्णन आया है। सभी तीर्थ पुण्यजनक और पवित्र बताये गये हैं तथा सबके द्वारा उत्तम गतिकी प्राप्ति बतायी गयी है। पृथ्वीपर नैमिषारण्य और आकाशमें पुष्करतीर्थ पवित्र है। लोकमें प्रयाग और कुरुक्षेत्र दोनोंको ही विशेष स्थान दिया गया है। आप उन सबको छोड़कर केवल एककी ही प्रशंसा क्यों कर रहे हैं? आप प्रयागसे परम दिव्य गति तथा मनोवांछित भोगोंकी प्राप्ति बताते हैं। थोड़े-से अनुष्ठानके द्वारा अधिक धर्मकी प्राप्ति बताते हुए प्रयागकी ही अधिक प्रशंसा क्यों कर रहे हैं? यह मेरा संशय है। इस सम्बन्धमें आपने जैसा देखा और सुना हो, उसके अनुसार इस संशयका निवारण कीजिये।

मार्कण्डेयजीने कहा—राजन्! मैंने जैसा देखा और सुना है, उसके अनुसार प्रयागका माहात्म्य बतलाता हूँ, सुनो। प्रत्यक्षरूपसे, परोक्ष तथा और जिस प्रकार सम्भव होगा, मैं उसका वर्णन करूँगा। शास्त्रको प्रमाण मानकर आत्माका परमात्माके साथ जो योग किया जाता है, उस योगकी प्रशंसा की जाती है। हजारों जन्मोंके पश्चात् मनुष्योंको उस योगकी प्राप्ति होती है। इसी प्रकार सहस्रों युगोंमें योगकी उपलब्धि होती है। ब्राह्मणोंको सब प्रकारके रत्न दान करनेसे मानवोंको योगकी उपलब्धि होती है। प्रयागमें मृत्यु होनेपर यह सब कुछ स्वतः सुलभ हो जाता है। जैसे सम्पूर्ण भूतोंमें व्यापक ब्रह्मकी सर्वत्र पूजा होती है, उसी प्रकार सम्पूर्ण लोकोंमें विद्वानोंद्वारा प्रयाग पूजित होता है। नैमिषारण्य, पुष्कर, गोतीर्थ, सिन्धु-सागर-संगम, कुरुक्षेत्र, गया और गंगासागर तथा और भी बहुत-से तीर्थ एवं पवित्र पर्वत—कुल मिलाकर तीस करोड़, दस हजार तीर्थ प्रयागमें सदा निवास करते हैं। ऐसा विद्वानोंका कथन है। वहाँ तीन अग्निकुण्ड हैं, जिनके बीच होकर गंगा प्रयागसे निकलती हैं। वे सब तीर्थोंसे युक्त हैं। वायु देवताने देवलोक, भूलोक तथा अन्तरिक्षमें साढ़े तीन करोड़ तीर्थ बतलाये हैं। गंगाको उन सबका स्वरूप माना गया है।* प्रयाग, प्रतिष्ठानपुर (झूसी), कम्बल और अश्वतर नागोंके स्थान तथा भोगवती—ये प्रजापतिकी वेदियाँ हैं। युधिष्ठिर! वहाँ देवता, मूर्तिमान् यज्ञ तथा तपस्वी ऋषि रहते और प्रयागकी पूजा करते हैं। प्रयागका यह माहात्म्य धन्य है, यही स्वर्ग प्रदान करनेवाला है, यही सेवन करनेयोग्य है, यही सुखरूप है, यही पुण्यमय है, यही सुन्दर है और यही परम उत्तम, धर्मानुकूल एवं पावन है। यह महर्षियोंका गोपनीय

* तिस्रः कोट्यर्द्धकोटीश्च तीर्थानां वायुरब्रवीत् । दिवि भुव्यन्तरिक्षे च तत्सर्वं जाह्नवी स्मृता॥ (४७। ७)

रहस्य है, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है। इस प्रसंगका पाठ करनेवाला द्विज सब प्रकारके पापोंसे रहित हो जाता है। कुरुनन्दन! तुम प्रयागके तीर्थोंमें स्नान करो। राजन्! तुमने विधिपूर्वक प्रश्न किया था, इसलिये मैंने तुमसे प्रयाग-माहात्म्यका वर्णन किया है। इसे सुनकर तुमने अपने समस्त पितरों और पितामहोंका उद्धार कर दिया।

युधिष्ठिर बोले—महामुने! आपने प्रयाग-माहात्म्यकी यह सारी कथा सुनायी; इसी प्रकार और सब बातें भी बताइये, जिससे मेरा उद्धार हो सके।

मार्कण्डेयजीने कहा—राजन्! सुनो, बताता हूँ। ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेवजी—ये तीनों देवता सबके प्रभु और अविनाशी हैं। ब्रह्मा इस सम्पूर्ण जगत्‌की, यहाँके चराचर प्राणियोंकी सृष्टि करते हैं और परमेश्वर विष्णु उन सबका, समस्त प्रजाओंका पालन करते हैं। फिर जब कल्पका अन्त उपस्थित होता है, तब

भगवान् रुद्र सम्पूर्ण जगत्‌का संहार करते हैं। ये ब्रह्मा, विष्णु और महादेवजी प्रयागमें सदा निवास करते हैं। प्रयागमण्डलका विस्तार पाँच योजन (बीस कोस) है। उपर्युक्त देवता पापकर्मोंका निवारण करते हुए उस मण्डलकी रक्षाके लिये वहाँ मौजूद रहते हैं। अतः प्रयागमें किया हुआ थोड़ा-सा भी पाप नरकमें गिरानेवाला होता है।

सूतजी कहते हैं—तदनन्तर धर्मपर विश्वास करनेवाले समस्त पाण्डवोंने भाइयोंसहित ब्राह्मणोंको नमस्कार करके गुरुजनों और देवताओंको तृप्त किया। उसी समय भगवान् वासुदेव भी वहाँ आ पहुँचे। फिर समस्त पाण्डवोंने मिलकर भगवान् श्रीकृष्णका पूजन किया। तत्पश्चात् कृष्णसहित सब महात्माओंने धर्मपुत्र युधिष्ठिरको स्वराज्यपर अभिषिक्त किया। इसके बाद भाइयोंसहित धर्मात्मा युधिष्ठिरने ब्राह्मणोंको बड़े-बड़े दान दिये। जो सबेरे उठकर इस प्रसंगका पाठ अथवा श्रवण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकमें जाता है।

भगवान् वासुदेव बोले—राजा युधिष्ठिर! मैं आपके स्नेहवश कुछ निवेदन करता हूँ, आपको मेरी बात माननी चाहिये। महाराज! आप प्रतिदिन हमारे साथ प्रयागका स्मरण करनेसे स्वयं सनातन लोकको प्राप्त होंगे। जो मनुष्य प्रयागको जाता अथवा वहाँ निवास करता है, वह सब पापोंसे शुद्ध होकर दिव्यलोकको जाता है। जो किसीका दिया हुआ दान नहीं लेता, संतुष्ट रहता, मन और इन्द्रियोंको संयममें रखता, पवित्र रहता और अहंकारका त्याग कर देता है, उसीको तीर्थका पूरा फल मिलता है। राजेन्द्र! जो क्रोधहीन, सत्यवादी, दृढ़तापूर्वक उत्तम व्रतका पालन करनेवाला तथा सम्पूर्ण भूतोंमें आत्मभाव रखनेवाला है, वही तीर्थके फलका उपभोग करता है।* ऋषियों और देवताओंने भी क्रमशः यज्ञोंका वर्णन किया है, किन्तु

---

* प्रतिग्रहादुपावृत्तः संतुष्टो नियतः शुचिः। अहंकारनिवृत्तश्च स तीर्थफलमश्नुते॥
अकोपनश्च राजेन्द्र सत्यवादी दृढव्रतः। आत्मोपमश्च भूतेषु स तीर्थफलमश्नुते॥ (४९। १०-११)

महाराज! दरिद्र मनुष्य यज्ञ नहीं कर सकते। यज्ञमें बहुत सामग्रीकी आवश्यकता होती है। नाना प्रकारकी तैयारियाँ और समारोह करने पड़ते हैं। कहीं कोई धनवान् मनुष्य ही भाँति-भाँतिके द्रव्योंका उपयोग करके यज्ञ कर सकता है। नरेश्वर! जिसे विद्वान् पुरुष दरिद्र होनेपर भी कर सकें तथा जो पुण्य और फलमें यज्ञकी समानता करता हो, वह उपाय बताता हूँ; सुनिये। भरतश्रेष्ठ! यह ऋषियोंका गोपनीय रहस्य है; तीर्थयात्राका पुण्य यज्ञोंसे भी बढ़कर होता है। एक खरब, तीस करोड़से भी अधिक तीर्थ माघ मासमें गंगाजीके भीतर आकर स्थित होते हैं [अतः माघमें गंगा-स्नान परम पुण्यका साधक होता है]।* महाराज! अब आप निश्चिन्त होकर अकण्टक राज्य भोगिये। अब फिर अश्वमेध यज्ञके समय मुझसे आपकी भेंट होगी।

भगवान्‌के भजन एवं नाम-कीर्तनकी महिमा

ऋषय ऊचुः

भवता कथितं सर्वं यत्किञ्चित् पृष्टमेव च।
इदानीमपि पृच्छाम एकं वद महामते॥ १॥

ऋषियोंने कहा—महामते! हमलोगोंने जो कुछ पूछा था, वह सब आपने कह सुनाया। अब भी आपसे एक प्रश्न करते हैं, उसका उत्तर दीजिये।

एतेषां खलु तीर्थानां सेवनाद्यत् फलं भवेत्।
सर्वेषां किल कृत्वैकं कर्म केन च लभ्यते।
एतन्नो ब्रूहि सर्वज्ञ कर्मैवं यदि वर्तते॥ २॥

इन सभी तीर्थोंके सेवनसे जो फल होता है, वही कौन-सा एक कर्म करनेसे प्राप्त हो सकता है? सर्वज्ञ सूतजी! यदि ऐसा कोई कर्म हो तो उसे हमें बताइये।

सूत उवाच

कर्मयोगः किल प्रोक्तो वर्णानां द्विजपूर्वशः।
नानाविधो महाभागास्तत्र चैकं विशिष्यते॥ ३॥

सूतजीने कहा—महाभाग महर्षिगण! [शास्त्रोंमें] ब्राह्मणादि वर्णोंके लिये निश्चय ही नाना प्रकारके कर्मयोगका वर्णन किया गया है, परन्तु उसमें एक ही बात सबसे बढ़कर है।

हरिभक्तिः कृता येन मनसा कर्मणा गिरा।
जितं तेन जितं तेन जितमेव न संशयः॥ ४॥

जिसने मन, वाणी और क्रियाद्वारा श्रीहरिकी भक्ति की है, उसने बाजी मार ली, उसने विजय प्राप्त कर ली, उसकी निश्चय ही जीत हो गयी—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

हरिरेव समाराध्यः सर्वदेवेश्वरेश्वरः।
हरिनाममहामन्त्रैर्नश्येत् पापपिशाचकम्॥ ५॥

सम्पूर्ण देवेश्वरोंके भी ईश्वर भगवान् श्रीहरिकी ही भलीभाँति आराधना करनी चाहिये। हरिनामरूपी महामन्त्रोंके द्वारा पापरूपी पिशाचोंका समुदाय नष्ट हो जाता है।

हरेः प्रदक्षिणां कृत्वा सकृदप्यमलाशयाः।
सर्वतीर्थसमागाह्यं लभन्ते यन्न संशयः॥ ६॥

एक बार भी श्रीहरिकी प्रदक्षिणा करके मनुष्य शुद्ध हो जाते हैं तथा सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करनेका जो फल होता है, उसे प्राप्त कर लेते हैं—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

प्रतिमां च हरेर्दृष्ट्वा सर्वतीर्थफलं लभेत्।
विष्णुनाम परं जप्त्वा सर्वमन्त्रफलं लभेत्॥ ७॥

मनुष्य श्रीहरिकी प्रतिमाका दर्शन करके सब तीर्थोंका फल प्राप्त करता है तथा विष्णुके उत्तम नामका जप करके सम्पूर्ण मन्त्रोंके जपका फल पा लेता है।

विष्णुप्रसादतुलसीमाघ्राय द्विजसत्तमाः।
प्रचण्डं विकरालं तद् यमस्यास्यं न पश्यति॥ ८॥

---

* ऋषीणां परमं गुह्यमिदं भरतसत्तम। तीर्थाभिगमनं पुण्यं यज्ञैरपि विशिष्यते॥
दशकोटिसहस्राणि त्रिंशस्कोट्यस्तथापरे। माघमासे तु गङ्गायां गमिष्यन्ति नरर्षभ॥ (४९। १५-१६)

द्विजवरो! भगवान् विष्णुके प्रसादस्वरूप तुलसीदलको सूँघकर मनुष्य यमराजके प्रचण्ड एवं विकराल मुखका दर्शन नहीं करता।

सकृत्प्रणामी कृष्णस्य मातुः स्तन्यं पिबेन्न हि।
हरिपादे मनो येषां तेभ्यो नित्यं नमो नमः॥ ९॥

एक बार भी श्रीकृष्णको प्रणाम करनेवाला मनुष्य पुनः माताके स्तनोंका दूध नहीं पीता—उसका दूसरा जन्म नहीं होता। जिन पुरुषोंका चित्त श्रीहरिके चरणोंमें लगा है, उन्हें प्रतिदिन मेरा बारंबार नमस्कार है।

पुल्कसः श्वपचो वापि ये चान्ये म्लेच्छजातयः।
तेऽपि वन्द्या महाभागा हरिपादैकसेवकाः॥ १०॥

पुल्कस, श्वपच (चाण्डाल) तथा और भी जो म्लेच्छ जातिके मनुष्य हैं, वे भी यदि एकमात्र श्रीहरिके चरणोंकी सेवामें लगे हों तो वन्दनीय और परम सौभाग्यशाली हैं।

किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा।
हरौ भक्तिं विधायैव गर्भवासं न पश्यति॥ ११॥

फिर जो पुण्यात्मा ब्राह्मण और राजर्षि भगवान्‌के भक्त हों, उनकी तो बात ही क्या है। भगवान् श्रीहरिकी भक्ति करके ही मनुष्य गर्भवासका दुःख नहीं देखता।

हरेरग्रे स्वनैरुच्चैर्नृत्यंस्तन्नामकृन्नरः।
पुनाति भुवनं विप्रा गङ्गादि सलिलं यथा॥ १२॥

ब्राह्मणो! भगवान्‌के सामने उच्चस्वरसे उनके नामोंका कीर्तन करते हुए नृत्य करनेवाला मनुष्य गंगा आदि नदियोंके जलकी भाँति समस्त संसारको पवित्र कर देता है।

दर्शनात् स्पर्शनात्तस्य आलापादपि भक्तितः।
ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः॥ १३॥

उस भक्तके दर्शन और स्पर्शसे, उसके साथ वार्तालाप करनेसे तथा उसके प्रति भक्तिभाव रखनेसे मनुष्य ब्रह्महत्या आदि पापोंसे मुक्त हो जाता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

हरेः प्रदक्षिणं कुर्वन्नुच्चैस्तन्नामकृन्नरः।
करतालादिसंधानं सुस्वरं कलशब्दितम्।
ब्रह्महत्यादिकं पापं तेनैव करतालितम्॥ १४॥

जो श्रीहरिकी प्रदक्षिणा करते हुए करताल आदि बजाकर मधुर स्वर तथा मनोहर शब्दोंमें उनके नामोंका कीर्तन करता है, उसने ब्रह्महत्या आदि पापोंको मानो ताली बजाकर भगा दिया।

हरिभक्तिकथामुक्ताख्यायिकां शृणुयाच्च यः।
तस्य संदर्शनादेव पूतो भवति मानवः॥ १५॥

जो हरिभक्ति-कथारूपी मुक्तामयी आख्यायिकाका श्रवण करता है, उसके दर्शनमात्रसे मनुष्य पवित्र हो जाता है।

किं पुनस्तस्य पापानामाशङ्का मुनिपुङ्गवाः।
तीर्थानां च परं तीर्थं कृष्णनाम महर्षयः॥ १६॥

मुनिवरो! फिर उसके विषयमें पापोंकी आशंका क्या रह सकती है। महर्षियो! श्रीकृष्णका नाम सब तीर्थोंमें परम तीर्थ है।

तीर्थीकुर्वन्ति जगतीं गृहीतं कृष्णनाम यैः।
तस्मान्मुनिवराः पुण्यं नातः परतरं विदुः॥ १७॥

जिन्होंने श्रीकृष्ण-नामको अपनाया है, वे पृथ्वीको तीर्थ बना देते हैं। इसलिये श्रेष्ठ मुनिजन इससे बढ़कर पावन वस्तु और कुछ नहीं मानते।

विष्णुप्रसादनिर्माल्यं भुक्त्वा धृत्वा च मस्तके।
विष्णुरेव भवेन्मर्त्यो यमशोकविनाशनः।
अर्चनीयो नमस्कार्यो हरिरेव न संशयः॥ १८॥

श्रीविष्णुके प्रसादभूत निर्माल्यको खाकर और मस्तकपर धारण करके मनुष्य साक्षात् विष्णु ही हो जाता है। वह यमराजसे होनेवाले शोकका नाश करनेवाला होता है; वह पूजन और नमस्कारके योग्य साक्षात् श्रीहरिका ही स्वरूप है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

ये हीमं विष्णुमव्यक्तं देवं वापि महेश्वरम्।
एकीभावेन पश्यन्ति न तेषां पुनरुद्भवः॥ १९॥

जो इन अव्यक्त विष्णु तथा भगवान् महेश्वरको एक भावसे देखते हैं, उनका पुनः इस संसारमें जन्म नहीं होता।

तस्मादनादिनिधनं विष्णुमात्मानमव्ययम्।
हरं चैकं प्रपश्यध्वं पूजयध्वं तथैव हि॥ २०॥

अतः महर्षियो! आप आदि-अन्तसे रहित

अविनाशी परमात्मा विष्णु तथा महादेवजीको एक भावसे देखें तथा एक समझकर ही उनका पूजन करें।

येऽसमानं प्रपश्यन्ति हरिं वै देवतान्तरम्।
ते यान्ति नरकान् घोरान्न तांस्तु गणयेद्धरिः॥ २१॥

जो 'हरि' और 'हर' को समान भावसे नहीं देखते, श्रीहरिको दूसरा देवता समझते हैं, वे घोर नरकमें पड़ते हैं; उन्हें श्रीहरि अपने भक्तोंमें नहीं गिनते।

मूर्खं वा पण्डितं वापि ब्राह्मणं केशवप्रियम्।
श्वपाकं वा मोचयति नारायणः स्वयं प्रभुः॥ २२॥

पण्डित हो या मूर्ख, ब्राह्मण हो या चाण्डाल, यदि वह भगवान्‌का प्यारा भक्त है तो स्वयं भगवान् नारायण उसे संकटोंसे छुड़ाते हैं।

नारायणात्परो नास्ति पापराशिदवानलः।
कृत्वापि पातकं घोरं कृष्णनाम्ना विमुच्यते॥ २३॥

भगवान् नारायणसे बढ़कर दूसरा कोई ऐसा नहीं है, जो पापपुंजरूपी वनको जलानेके लिये दावानलके समान हो। भयंकर पातक करके भी मनुष्य श्रीकृष्ण-नामके उच्चारणसे मुक्त हो जाता है।

स्वयं नारायणो देवः स्वनाम्नि जगतां गुरुः।
आत्मनोऽभ्यधिकां शक्तिं स्थापयामास सुव्रताः॥ २४॥

उत्तम व्रतका पालन करनेवाले महर्षियो! जगद्‌गुरु भगवान् नारायणने स्वयं ही अपने नाममें अपनेसे भी अधिक शक्ति स्थापित कर दी है।

अत्र ये विवदन्ते वा आयासलघुदर्शनात्।
फलानां गौरवाच्चापि ते यान्ति नरकं बहु॥ २५॥

नाम-कीर्तनमें परिश्रम तो थोड़ा होता है, किन्तु फल भारी-से-भारी प्राप्त होता है—यह देखकर जो लोग इसकी महिमाके विषयमें तर्क उपस्थित करते हैं, वे अनेकों बार नरकमें पड़ते हैं।

तस्माद्धरौ भक्तिमान् स्याद्धरिनामपरायणः।
पूजकं पृष्ठतो रक्षेन्नामिनं वक्षसि प्रभु॥ २६॥

इसलिये हरिनामकी शरण लेकर भगवान्‌की भक्ति करनी चाहिये। प्रभु अपने पुजारीको तो पीछे रखते हैं; किन्तु नाम-जप करनेवालेको छातीसे लगाये रहते हैं।

हरिनाममहावज्रं पापपर्वतदारणम्।
तस्य पादौ तु सफलौ तदर्थगतिशालिनौ॥ २७॥

हरिनामरूपी महान् वज्र पापोंके पहाड़को विदीर्ण करनेवाला है। जो भगवान्‌की ओर आगे बढ़ते हों, मनुष्यके वे ही पैर सफल हैं।

तावेव धन्यावाख्यातौ यौ तु पूजाकरौ करौ।
उत्तमाङ्गमुत्तमाङ्गं तद्धरौ नम्रमेव यत्॥ २८॥

वे ही हाथ धन्य कहे गये हैं, जो भगवान्‌की पूजामें संलग्न रहते हैं। जो मस्तक भगवान्‌के आगे झुकता हो, वही उत्तम अंग है।

सा जिह्वा या हरिं स्तौति तन्मनस्तत्पदानुगम्।
तानि लोमानि चोच्यन्ते यानि तन्नाम्नि चोत्थितम्॥ २९॥
कुर्वन्ति तच्च नेत्राम्बु यदच्युतप्रसङ्गतः।

जीभ वही श्रेष्ठ है, जो भगवान् श्रीहरिकी स्तुति करती है। मन भी वही अच्छा है, जो उनके चरणोंका अनुगमन—चिन्तन करता है तथा रोएँ भी वे ही सार्थक कहलाते हैं, जो भगवान्‌का नाम लेनेपर खड़े हो जाते हैं। इसी प्रकार आँसू वे ही सार्थक हैं, जो भगवान्‌की चर्चाके अवसरपर निकलते हैं।

अहो लोका अतितरां दैवदोषेण वञ्चिताः॥ ३०॥
नामोच्चारणमात्रेण मुक्तिदं न भजन्ति वै।

अहो! संसारके लोग भाग्यदोषसे अत्यन्त वंचित हो रहे हैं, क्योंकि वे नामोच्चारणमात्रसे मुक्ति देनेवाले भगवान्‌का भजन नहीं करते।

वञ्चितास्ते च कलुषाः स्त्रीणां सङ्गप्रसङ्गतः॥ ३१॥
प्रतिष्ठन्ति च लोमानि येषां नो कृष्णशब्दने।

स्त्रियोंके स्पर्श एवं चर्चासे जिन्हें रोमांच हो आता है, श्रीकृष्णका नाम लेनेपर नहीं, वे मलिन तथा कल्याणसे वंचित हैं।

ते मूर्खा ह्यकृतात्मानः पुत्रशोकादिविह्वलाः॥ ३२॥
रुदन्ति बहुलालापैर्न कृष्णाक्षरकीर्तने।

जो अजितेन्द्रिय पुरुष पुत्रशोकादिसे व्याकुल होकर अत्यन्त विलाप करते हुए रोते हैं, किन्तु श्रीकृष्णनामके अक्षरोंका कीर्तन करते हुए नहीं रोते, वे मूर्ख हैं।

जिह्वां लब्ध्वापि लोकेऽस्मिन् कृष्णनाम जपेन्न हि॥ ३३॥
लब्ध्वापि मुक्तिसोपानं हेलयैव च्यवन्ति ते।

जो इस लोकमें जीभ पाकर भी श्रीकृष्णनामका जप नहीं करते, वे मोक्षतक पहुँचनेके लिये सीढ़ी पाकर भी अवहेलनावश नीचे गिरते हैं।

तस्माद्यत्नेन वै विष्णुं कर्मयोगेन मानवः॥ ३४॥
कर्मयोगार्चितो विष्णुः प्रसीदत्येव नान्यथा।
तीर्थादप्यधिकं तीर्थं विष्णोर्भजनमुच्यते॥ ३५॥

इसलिये मनुष्यको उचित है कि वह कर्मयोगके द्वारा भगवान् विष्णुकी यत्नपूर्वक आराधना करे। कर्मयोगसे पूजित होनेपर ही भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं, अन्यथा नहीं। भगवान् विष्णुका भजन तीर्थोंसे भी अधिक पावन तीर्थ कहा गया है।

सर्वेषां खलु तीर्थानां स्नानपानावगाहनैः।
यत्फलं लभते मर्त्यस्तत्फलं कृष्णसेवनात्॥ ३६॥

सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करने, उनका जल पीने और उनमें गोता लगानेसे मनुष्य जिस फलको पाता है, वह श्रीकृष्णके सेवनसे प्राप्त हो जाता है।

यजन्ते कर्मयोगेन धन्या एव नरा हरिम्।
तस्माद्यजध्वं मुनयः कृष्णं परममङ्गलम्॥ ३७॥

भाग्यवान् मनुष्य ही कर्मयोगके द्वारा श्रीहरिका पूजन करते हैं। अतः मुनियो! आपलोग परम मंगलमय श्रीकृष्णकी आराधना करें।

ब्रह्मचारीके पालन करनेयोग्य नियम

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! कर्मयोग कैसे किया जाता है, जिसके द्वारा आराधना करनेपर भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं? महाभाग! आप वक्ताओंमें श्रेष्ठ हैं; अतः हमें यह बात बताइये। जिसके द्वारा मुमुक्षु पुरुष सबके ईश्वर भगवान् श्रीहरिकी आराधना कर सकें, वह समस्त लोकोंकी रक्षा करनेवाला धर्म क्या वस्तु है? उसका वर्णन कीजिये। उसके श्रवणकी इच्छासे ये ब्राह्मणलोग आपके सामने बैठे हैं।

सूतजी बोले—महर्षियो! पूर्वकालमें अग्निके समान तेजस्वी ऋषियोंने सत्यवतीके पुत्र व्यासजीसे ऐसा ही प्रश्न किया था। उसके उत्तरमें उन्होंने जो कुछ कहा था, उसे आपलोग सुनिये।

व्यासजीने कहा—ऋषियो! मैं सनातन कर्मयोगका वर्णन करूँगा, तुम सब लोग ध्यान देकर सुनो। कर्मयोग ब्राह्मणोंको अक्षय फल प्रदान करनेवाला है। पहलेकी बात है, प्रजापति मनुने श्रोता बनकर बैठे हुए ऋषियोंके समक्ष ब्राह्मणोंके लाभके लिये वेदप्रसिद्ध सम्पूर्ण विषयोंका उपदेश किया था। वह उपदेश सम्पूर्ण पापोंको हरनेवाला, पवित्र और मुनि-समुदायद्वारा सेवित है; मैं उसीका वर्णन करता हूँ, तुमलोग एकाग्रचित्त होकर श्रवण करो। श्रेष्ठ ब्राह्मणको उचित है कि वह अपने गृह्यसूत्रमें बतायी हुई विधिके अनुसार गर्भ या जन्मसे आठवें वर्षमें उपनयन होनेके पश्चात् वेदोंका अध्ययन आरम्भ करे। दण्ड, मेखला, यज्ञोपवीत और हिंसारहित
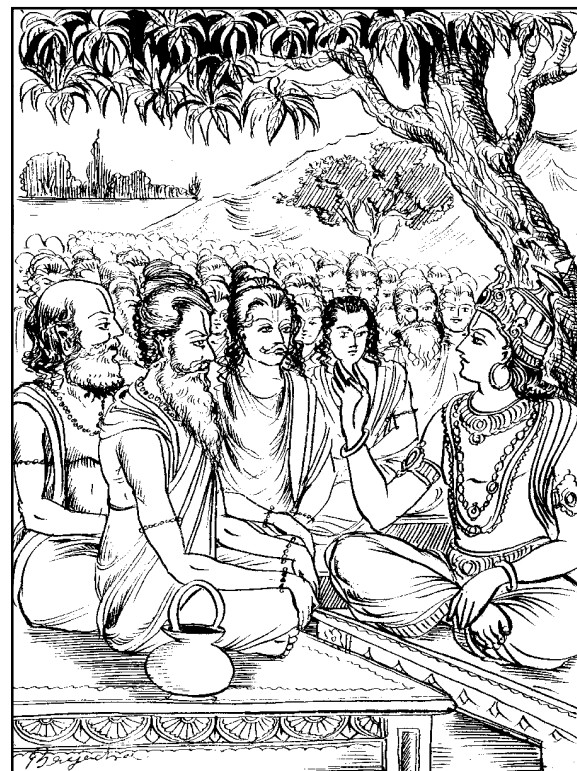
काला मृगचर्म धारण किये मुनिवेषमें रहे, भिक्षाका अन्न ग्रहण करे और गुरुका मुँह जोहते हुए सदा उनके हितमें संलग्न रहे। ब्रह्माजीने पूर्वकालमें यज्ञोपवीत बनानेके लिये ही कपास उत्पन्न किया था। ब्राह्मणोंके लिये तीन आवृत्ति करके बनाया हुआ यज्ञोपवीत शुद्ध माना गया है। द्विजको सदा यज्ञोपवीत धारण किये रहना चाहिये। अपनी शिखाको सदा बाँधे रखना चाहिये। इसके विपरीत बिना यज्ञोपवीत पहने और बिना शिखा बाँधे जो कर्म किया जाता है, वह विधिपूर्वक किया हुआ नहीं माना जाता। वस्त्र रूई-जैसा सफेद हो या गेरुआ। फटा न हो, तभी उसे ओढ़ना चाहिये तथा वही पहननेके योग्य माना गया है। इनमें भी श्वेत वस्त्र अत्यन्त उत्तम है। उससे भी उत्तम और शुभ आच्छादन काला मृगचर्म माना गया है। जनेऊ गलेमें डालकर दाहिना हाथ उसके ऊपर कर ले और बायीं बाँह [अथवा कंधे]-पर उसे रखे तो वह 'उपवीत' कहलाता है। यज्ञोपवीतको सदा इसी तरह रखना चाहिये। कण्ठमें मालाकी भाँति पहना हुआ जनेऊ 'निवीत' कहा गया है। ब्राह्मणो! बायीं बाँह बाहर निकालकर दाहिनी बाँह या कंधेपर रखे हुए जनेऊको 'प्राचीनावीत' (अपसव्य) कहते हैं। इसका पितृ-कार्य (श्राद्ध-तर्पण आदि)-में उपयोग करना चाहिये। हवन-गृहमें, गोशालामें, होम और जपके समय, स्वाध्यायमें, भोजनकालमें, ब्राह्मणोंके समीप रहनेपर, गुरुजनों तथा दोनों कालकी संध्याकी उपासनाके समय तथा साधु पुरुषोंसे मिलनेपर सदा उपवीतके ढंगसे ही जनेऊ पहनना चाहिये—यही सनातन विधि है। ब्राह्मणके लिये तीन आवृत्ति की हुई मूँजकी ही मेखला बनानी चाहिये। मूँज न मिलनेपर कुशसे भी मेखला बनानेका विधान है। मेखलामें गाँठ एक या तीन होनी चाहिये। द्विज बाँस अथवा पलाशका दण्ड धारण करे। दण्ड उसके पैरसे लेकर सिरके केशतक लंबा होना चाहिये। अथवा किसी भी यज्ञोपयोगी वृक्षका दण्ड, जो सुन्दर और छिद्र आदिसे रहित हो, वह धारण कर सकता है।

द्विज सबेरे और सायंकालमें एकाग्रचित्त होकर संध्योपासन करे। जो काम, लोभ, भय अथवा मोहवश संध्योपासन त्याग देता है, वह गिर जाता है। संध्या करनेके पश्चात् द्विज प्रसन्नचित्त होकर सायंकाल और प्रातःकालमें अग्निहोत्र करे। फिर दुबारा स्नान करके देवताओं, ऋषियों और पितरोंका तर्पण करे। इसके बाद पत्र, पुष्प, फल, जौ और जल आदिसे देवताओंकी पूजा करे। प्रतिदिन आयु और आरोग्यकी सिद्धिके लिये तन्द्रा और आलस्य आदिका परित्याग करके 'मैं अमुक हूँ और आपको प्रणाम करता हूँ' इस प्रकार अपने नाम, गोत्र आदिका परिचय देते हुए धर्मतः अपनेसे बड़े पुरुषोंको विधिपूर्वक प्रणाम करे और इस प्रकार गुरुजनोंको नमस्कार करनेका स्वभाव बना ले। नमस्कार करनेवाले ब्राह्मणको बदलेमें **'आयुष्मान् भव सौम्य!'** कहना चाहिये तथा उसके नामके अन्तमें प्लुताकारका उच्चारण करना चाहिये। यदि नाम हलन्त हो, तो अन्तिम हल्‌के आदिका अक्षर प्लुत बोलना चाहिये।* जो

---

* पाणिनिने भी 'प्रत्यभिवादेऽशूद्रे' (८।२।८३)—इस सूत्रके द्वारा इस नियमका उल्लेख किया है। इसके अनुसार आशीर्वाद वाक्यके 'टि' को 'प्लुत' स्वरसे बोला जाता है। किन्तु उस वाक्यके अन्तमें प्रणाम करनेवालेका नाम या 'सौम्य' आदि पर ही प्रयुक्त होते हैं। यदि नाम स्वरान्त हो तो अन्तिम अक्षरको ही 'टि' संज्ञा प्राप्त होगी और यदि हलन्त हुआ तो अन्तिम अक्षरके पूर्ववर्ती स्वरको 'टि' माना जायगा; उसीका प्लुत-उच्चारण होगा। ह्रस्वका उच्चारण एक मात्राका, दीर्घका दो मात्राका और प्लुतका तीन मात्राका होता है। अतः ह्रस्वको उच्चारणमें जितना समय लगता है, उससे तिगुने समयमें प्लुतका ठीक उच्चारण होता है। यह नियम ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य—तीनों वर्णोंके पुरुषोंके लिये लागू होता है। यदि प्रणाम करनेवाला शूद्र या स्त्री हो तो उसे आशीर्वाद देते समय उसके नामका अन्तिम अक्षर प्लुत नहीं बोला जाता। प्रणाम-वाक्य इस प्रकार होना चाहिये—'अमुक गोत्रः, अमुक शर्माहं (वर्माहं गुप्तोऽहं वा) भवन्तमभिवादये।' आशीर्वाद-वाक्य ऐसा होना चाहिये—'आयुष्मान् भव सौम्य ३ आयुष्मानेधीन्द्रशर्म ३ न्, आयुष्मानेधीन्द्रवर्म ३ न् अथवा आयुष्मानेधीन्द्रगुप्त ३, इत्यादि। जो इस प्रकार आशीर्वाद देना जानता हो उसीको उक्त विधिसे नाम-गोत्रादिका उच्चारण करके प्रणाम करना चाहिये; जो न जाने, उससे 'अयमहं प्रणमामि' आदि साधारण वाक्य बोलना चाहिये।

ब्राह्मण प्रणामके बदले उक्तरूपसे आशीर्वाद देनेकी विधि नहीं जानता, वह विद्वान् पुरुषके द्वारा प्रणाम करनेके योग्य नहीं है। जैसा शूद्र है, वैसा ही वह भी है। अपने दोनों हाथोंको विपरीत दिशामें करके गुरुके चरणोंका स्पर्श करना उचित है अर्थात् अपने बायें हाथसे गुरुके बायें चरणका और दाहिने हाथसे दाहिने चरणका स्पर्श करना चाहिये। शिष्य जिनसे लौकिक, वैदिक तथा आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करता है, उन गुरुदेवको वह पहले प्रणाम करे।

जल, भिक्षा, फूल और समिधा—इन्हें दूसरे दिनके लिये संग्रह न करे—प्रतिदिन जाकर आवश्यकताके अनुसार ले आये। देवताके निमित्त किये जानेवाले कार्योंमें भी जो इस तरहके दूसरे-दूसरे आवश्यक सामान हैं, उनका भी अन्य समयके लिये संग्रह न करे। ब्राह्मणसे भेंट होनेपर कुशल पूछे, क्षत्रियसे अनामय, वैश्यसे क्षेम और शूद्रसे आरोग्यका प्रश्न करे। उपाध्याय (गुरु), पिता, बड़े भाई, राजा, मामा, श्वशुर, नाना, दादा, वर्णमें अपनेसे श्रेष्ठ व्यक्ति तथा पिताका भाई—ये पुरुषोंमें गुरु माने गये हैं। माता, नानी, गुरुपत्नी, बुआ, मौसी, सास, दादी, बड़ी बहिन और दूध पिलानेवाली धाय—इन्हें स्त्रियोंमें गुरु माना गया है। यह गुरुवर्ग माता और पिताके सम्बन्धसे है, ऐसा जानना चाहिये तथा मन, वाणी और शरीरकी क्रियाद्वारा इनके अनुकूल आचरण करना चाहिये। गुरुजनोंको देखते ही उठकर खड़ा हो जाय और हाथ जोड़कर प्रणाम करे। इनके साथ एक आसनपर न बैठे। इनसे विवाद न करे। अपने जीवनकी रक्षाके लिये भी गुरुजनोंके साथ द्वेषपूर्वक बातचीत न करे। अन्य गुणोंके द्वारा ऊँचा उठा हुआ पुरुष भी गुरुजनोंसे द्वेष करनेके कारण नीचे गिर जाता है। समस्त गुरुजनोंमें भी पाँच विशेष रूपसे पूज्य हैं। उन पाँचोंमें भी पहले पिता, माता और आचार्य—ये तीन सर्वश्रेष्ठ हैं। उनमें भी माता सबसे अधिक सम्मानके योग्य है। उत्पन्न करनेवाला पिता, जन्म देनेवाली माता, विद्याका उपदेश देनेवाला गुरु, बड़ा भाई और स्वामी—ये पाँच परमपूज्य गुरु माने गये हैं। कल्याणकामी पुरुषको चाहिये कि अपने पूर्ण प्रयत्नसे अथवा प्राण त्यागकर भी इन पाँचोंका विशेष रूपसे सम्मान करे। जबतक पिता और माता—ये दोनों जीवित हों, तबतक सब कुछ छोड़कर पुत्र उनकी सेवामें संलग्न रहे। पिता-माता यदि पुत्रके गुणोंसे भलीभाँति प्रसन्न हों, तो वह पुत्र उनकी सेवारूप कर्मसे ही सम्पूर्ण धर्मोंका फल प्राप्त कर लेता है। माताके समान देवता और पिताके समान गुरु दूसरा नहीं है। उनके किये हुए उपकारोंका बदला भी किसी तरह नहीं हो सकता। अतः मन, वाणी और क्रियाद्वारा सदा उन दोनोंका प्रिय करना चाहिये; उनकी आज्ञाके बिना दूसरे किसी धर्मका आचरण न करे।* परन्तु यह निषेध मोक्षरूपी फल देनेवाले नित्य-नैमित्तिक कर्मोंको छोड़कर ही लागू होता है। [मोक्षके साधनभूत नित्य-नैमित्तिक कर्म अनिवार्य हैं, उनका अनुष्ठान होना ही चाहिये; उनके लिये किसीकी अनुमति लेना आवश्यक नहीं है।] यह धर्मके सार-तत्त्वका उपदेश किया गया है। यह मृत्युके बाद भी अनन्त फलको देनेवाला है। उपदेशक गुरुकी विधिवत् आराधना करके उनकी आज्ञासे घर लौटनेवाला शिष्य इस लोकमें विद्याका फल भोगता है और मृत्युके पश्चात् स्वर्गमें जाता है।

---

* गुरूणामपि सर्वेषां पञ्च पूज्या विशेषतः। तेषामाद्यास्त्रयः श्रेष्ठास्तेषां माता सुपूजिता॥
यो भावयति या सूते येन विद्योपदिश्यते। ज्येष्ठो भ्राता च भर्ता च पञ्चैते गुरवः स्मृताः॥
आत्मनः सर्वयत्नेन प्राणत्यागेन वा पुनः। पूजनीया विशेषेण पञ्चैते भूतिमिच्छता॥
यावत् पिता च माता च द्वावेतौ निर्विकारिणौ। तावत् सर्वं परित्यज्य पुत्रः स्यात्तत्परायणः॥
पिता माता च सुप्रीतौ स्यातां पुत्रगुणैर्यदि। स पुत्रः सकलं धर्मं प्राप्नुयात्तेन कर्मणा॥
नास्ति मातृसमं दैवं नास्ति पितृसमो गुरुः। तयोः प्रत्युपकारोऽपि न कथंचन विद्यते॥
तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यात् कर्मणा मनसा गिरा। न ताभ्यामननुज्ञातो धर्ममन्यं समाचरेत्॥ (५१। ३५—४१)

ज्येष्ठ भ्राता पिताके समान है; जो मूर्ख उसका अपमान करता है, वह उस पापके कारण मृत्युके बाद घोर नरकमें पड़ता है। सत्पुरुषोंके मार्गपर चलनेवाले पुरुषको स्वामीका सदा सम्मान करना चाहिये। इस संसारमें माताका अधिक उपकार है; इसलिये उसका अधिक गौरव माना गया है। मामा, चाचा, श्वशुर, ऋत्विज् और गुरुजनोंसे 'मैं अमुक हूँ' ऐसा कहकर बोले और खड़ा होकर उनका स्वागत करे। यज्ञमें दीक्षित पुरुष यदि अवस्थामें अपनेसे छोटा हो, तो भी उसे नाम लेकर नहीं बुलाना चाहिये। धर्मज्ञ पुरुषको उचित है कि वह उससे '**भोः!**' और '**भवत्**' (आप) आदि कहकर बात करे। ब्राह्मण और क्षत्रिय आदिके द्वारा भी वह सदा सादर नमस्कारके योग्य और पूजनीय है। उसे मस्तक झुकाकर प्रणाम करना चाहिये। क्षत्रिय आदि यदि ज्ञान, उत्तम कर्म एवं श्रेष्ठ गुणोंसे युक्त होते हुए अनेक शास्त्रोंके विद्वान् हों, तो भी ब्राह्मणके द्वारा नमस्कारके योग्य कदापि नहीं हैं। ब्राह्मण अन्य सभी वर्णोंके लोगोंसे स्वस्ति कहकर बोले—यह श्रुतिकी आज्ञा है। एक वर्णके पुरुषको अपने समान वर्णवालोंको प्रणाम ही करना चाहिये। समस्त वर्णोंके गुरु ब्राह्मण हैं, ब्राह्मणोंके गुरु अग्नि हैं, स्त्रीका एकमात्र गुरु पति है और अतिथि सबका गुरु है। विद्या, कर्म, वय, भाई-बन्धु और कुल—ये पाँच सम्मानके कारण बताये गये हैं। इनमें पिछलोंकी अपेक्षा पहले उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं।[1] ब्राह्मणादि तीन वर्णोंमें जहाँ इन पाँचोंमेंसे अधिक एवं प्रबल गुण होते हैं, वही सम्मानके योग्य समझा जाता है। दसवीं (९० वर्षसे ऊपरकी) अवस्थाको प्राप्त हुआ शूद्र भी सम्मानके योग्य होता है। ब्राह्मण, स्त्री, राजा, नेत्रहीन, वृद्ध, भारसे पीड़ित मनुष्य, रोगी तथा दुर्बलको जानेके लिये मार्ग देना चाहिये।[2]

ब्रह्मचारी प्रतिदिन मन और इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए शिष्ट पुरुषोंके घरोंसे भिक्षा ले आये तथा गुरुको निवेदन कर दे। फिर गुरु उसमेंसे जितना भोजनके लिये दें, उनकी आज्ञाके अनुसार उतना ही लेकर मौनभावसे भोजन करे। उपनयन-संस्कारसे युक्त श्रेष्ठ ब्राह्मण '**भवत्**' शब्दका पहले प्रयोग करके अर्थात् '**भवति भिक्षां मे देहि**' कहकर भिक्षा माँगे। क्षत्रिय ब्रह्मचारी वाक्यके बीचमें और वैश्य अन्तमें '**भवत्**' शब्दका प्रयोग करे अर्थात् क्षत्रिय '**भिक्षां भवति मे देहि**' और वैश्य '**भिक्षां मे देहि भवति**' कहे। ब्रह्मचारी सबसे पहले अपनी माता, बहिन अथवा मौसीसे भिक्षा माँगे। अपने सजातीय लोगोंके घरोंमें ही भिक्षा माँगे अथवा सभी वर्णोंके घरसे भिक्षा ले आये। भिक्षाके सम्बन्धमें दोनों ही प्रकारका विधान मिलता है। किन्तु पतित आदिके घरसे भिक्षा लाना वर्जित है। जिनके यहाँ वेदाध्ययन और यज्ञोंकी परम्परा बंद नहीं है, जो अपने कर्मके लिये सर्वत्र प्रशंसित हैं, उन्हींके घरोंसे जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी प्रतिदिन भिक्षा ले आये। गुरुके कुलमें भिक्षा न माँगे। अपने कुटुम्ब, कुल और सम्बन्धियोंके यहाँ भी भिक्षाके लिये न जाय। यदि दूसरे घर न मिलें तो यथासम्भव ऊपर बताये हुए पूर्व-पूर्व गृहोंका परित्याग करके भिक्षा ले सकता है। यदि पूर्वकथनानुसार योग्य घर मिलना असम्भव हो जाय तो समूचे गाँवमें भिक्षाके लिये विचरण करे। उस समय मनको काबूमें रखकर मौन रहे और इधर-उधर दृष्टि न डाले।

इस प्रकार सरलभावसे आवश्यकतानुसार भिक्षाका संग्रह करके भोजन करे। सदा जितेन्द्रिय रहे। मौन रहकर एवं एकाग्रचित्त हो व्रतका पालन करनेवाला ब्रह्मचारी प्रतिदिन भिक्षाके अन्नसे ही जीवन-निर्वाह करे, एक स्थानका अन्न न खाय। भिक्षासे किया हुआ निर्वाह ब्रह्मचारीके लिये उपवासके समान माना गया है। ब्रह्मचारी भोजनको सदा सम्मानकी दृष्टिसे देखे। गर्वमें

१-गुरुरग्निर्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः। पतिरेको गुरुः स्त्रीणां सर्वस्याभ्यागतो गुरुः॥
विद्या कर्म वयो बन्धुः कुलं भवति पञ्चमम्। मान्यस्थानानि पञ्चाहुः पूर्वं पूर्वं गुरूत्तरात्॥ (५१।५१-५२)

२-पन्था देयो ब्राह्मणाय स्त्रियै राज्ञे विचक्षुषे। वृद्धाय भारभग्नाय रोगिणे दुर्बलाय च॥ (५१।५४)

आकर अन्नकी गर्हणा न करे। उसे देखकर हर्ष प्रकट करे। मनमें प्रसन्न हो और सब प्रकारसे उसका अभिनन्दन करे। अधिक भोजन आरोग्य, आयु और स्वर्गलोककी प्राप्तिमें हानि पहुँचानेवाला है; वह पुण्यका नाशक और लोक-निन्दित है। इसलिये उसका परित्याग कर देना चाहिये। पूर्वाभिमुख होकर अथवा सूर्यकी ओर मुँह करके अन्नका भोजन करना उचित है। उत्तराभिमुख होकर कदापि भोजन न करे। यह भोजनकी सनातन विधि है। भोजन करनेवाला पुरुष हाथ-पैर धो, शुद्ध स्थानमें बैठकर पहले जलसे आचमन करे; फिर भोजनके पश्चात् भी उसे दो बार आचमन करना चाहिये।

भोजन करके, जल पीकर, सोकर उठनेपर और स्नान करनेपर, गलियोंमें घूमनेपर, ओठ चाटने या स्पर्श करनेपर, वस्त्र पहननेपर, वीर्य, मूत्र और मलका त्याग करनेपर, अनुचित बात कहनेपर, थूकनेपर, अध्ययन आरम्भ करनेके समय, खाँसी तथा दम उठनेपर, चौराहे या श्मशानभूमिमें घूमकर लौटनेपर तथा दोनों संध्याओंके समय श्रेष्ठ द्विज आचमन किये होनेपर भी फिर आचमन करे। चाण्डालों और म्लेच्छोंके साथ बात करनेपर, स्त्रियों, शूद्रों तथा जूठे मुँहवाले पुरुषोंसे वार्तालाप होनेपर, जूठे मुँहवाले पुरुष अथवा जूठे भोजनको देख लेनेपर तथा आँसू या रक्त गिरनेपर भी आचमन करना चाहिये। अपने शरीरसे स्त्रियोंका स्पर्श हो जानेपर, अपने बालों तथा खिसककर गिरे हुए वस्त्रका स्पर्श कर लेनेपर धर्मकी दृष्टिसे आचमन करना उचित है। आचमनके लिये जल ऐसा होना चाहिये, जो गर्म न हो, जिसमें फेन न हो तथा जो खारा न हो। पवित्रताकी इच्छा रखनेवाला पुरुष सर्वदा पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख बैठकर ही आचमन करे। उस समय सिर अथवा गलेको ढके रहे तथा बाल और चोटीको खुला रखे। कहींसे आया हुआ पुरुष दोनों पैरोंको धोये बिना पवित्र नहीं होता। विद्वान् पुरुष सीढ़ीपर या जलमें खड़ा होकर अथवा पगड़ी बाँधे आचमन न करे। बरसती हुई धाराके जलसे अथवा खड़ा होकर या हाथसे उलीचे हुए जलके द्वारा आचमन करना उचित नहीं है। एक हाथसे दिये हुए जलके द्वारा अथवा बिना यज्ञोपवीतके भी आचमन करना निषिद्ध है। खड़ाऊँ पहने हुए अथवा घुटनोंके बाहर हाथ करके भी आचमन नहीं करना चाहिये। बोलते, हँसते, किसीकी ओर देखते तथा बिछौनेपर लेटे हुए भी आचमन करना निषिद्ध है। जिस जलको अच्छी तरह देखा न गया हो, जिसमें फेन आदि हों, जो शूद्रके द्वारा अथवा अपवित्र हाथोंसे लाया गया हो तथा जो खारा हो, ऐसे जलसे भी आचमन करना अनुचित है। आचमनके समय अँगुलियोंसे शब्द न करे, मनमें दूसरी कोई बात न सोचे। हाथसे बिलोड़े हुए जलके द्वारा भी आचमन करना निषिद्ध है। ब्राह्मण उतने ही जलसे आचमन करनेपर पवित्र हो सकता है, जो हृदयतक पहुँच सके। क्षत्रिय कण्ठतक पहुँचनेवाले आचमनके जलसे शुद्ध होता है। वैश्य जिह्वासे जलका आस्वादन मात्र कर लेनेसे पवित्र होता है और स्त्री तथा शूद्र जलके स्पर्शमात्रसे शुद्ध हो जाते हैं।

अँगूठेकी जड़के भीतरकी रेखामें ब्राह्मतीर्थ बताया जाता है। अँगूठे और तर्जनीके बीचके भागको पितृतीर्थ कहते हैं। कानी अँगुलीके मूलसे पीछेका भाग प्राजापत्यतीर्थ कहलाता है। अँगुलियोंका अग्रभाग देवतीर्थ माना गया है। उसीको आर्षतीर्थ भी कहते हैं। अथवा अँगुलियोंके मूलभागमें दैव और आर्षतीर्थ तथा मध्यमें आग्नेय तीर्थ है। उसीको सौमिक तीर्थ भी कहते हैं। यह जानकर मनुष्य मोहमें नहीं पड़ता। ब्राह्मण सदा ब्राह्मतीर्थसे ही आचमन करे अथवा देवतीर्थसे आचमनकी इच्छा रखे। किन्तु पितृ-तीर्थसे कदापि आचमन न करे। पहले मन और इन्द्रियोंको संयममें रखकर ब्राह्मतीर्थसे तीन बार आचमन करे। फिर अँगूठेके मूलभागसे मुँहको पोंछते हुए उसका स्पर्श करे। तत्पश्चात् अँगूठे और अनामिका अँगुलियोंसे दोनों नेत्रोंका स्पर्श करे। फिर तर्जनी और अँगूठेके योगसे नाकके दोनों छिद्रोंका, कनिष्ठा और अँगूठेके संयोगसे दोनों कानोंका, सम्पूर्ण अँगुलियोंके योगसे हृदयका, करतलसे मस्तकका और अँगूठेसे दोनों कंधोंका स्पर्श करे।

द्विज तीन बार जो जलका आचमन करता है, उससे ब्रह्मा, विष्णु और महादेवजी तृप्त होते हैं—ऐसा हमारे सुननेमें आया है। मुखका परिमार्जन करनेसे गंगा और यमुनाको तृप्ति होती है। दोनों नेत्रोंके स्पर्शसे सूर्य और चन्द्रमा प्रसन्न होते हैं। नासिकाके दोनों छिद्रोंका स्पर्श करनेसे अश्विनीकुमारोंकी तथा कानोंके स्पर्शसे वायु और अग्निकी तृप्ति होती है। हृदयके स्पर्शसे सम्पूर्ण देवता प्रसन्न होते हैं और मस्तकके स्पर्शसे वह अद्वितीय पुरुष (अन्तर्यामी) प्रसन्न होता है। मधुपर्क, सोमरस, पान, फल, मूल तथा गन्ना—इन सबके खाने-पीनेमें मनुजीने दोष नहीं बताया है—उससे मुँह जूठा नहीं होता। अन्न खाने या जल पीनेके लिये प्रवृत्त होनेवाले मनुष्यके हाथमें यदि कोई वस्तु हो तो उसे पृथ्वीपर रखकर आचमनके पश्चात् उसपर भी जल छिड़क देना चाहिये। जिस-जिस वस्तुको हाथमें लिये हुए मनुष्य अपना मुँह जूठा करता है, उसे यदि पृथ्वीपर न रखे तो वह स्वयं भी अशुद्ध ही रह जाता है। वस्त्र आदिके विषयमें विकल्प है—उसे पृथ्वीपर रखा भी जा सकता है और नहीं भी। उसका स्पर्श करके आचमन करना चाहिये। रातके समय जंगलमें चोर और व्याघ्रोंसे भरे हुए रास्तेपर चलनेवाला पुरुष द्रव्य हाथमें लिये हुए भी मल-मूत्रका त्याग करके दूषित नहीं होता। यदि दिनमें शौच जाना हो तो जनेऊको दाहिने कानपर चढ़ाकर उत्तराभिमुख हो मल-मूत्रका त्याग करे। यदि रात्रिमें जाना पड़े तो दक्षिणकी ओर मुँह करके बैठना चाहिये। पृथ्वीको लकड़ी, पत्ते, मिट्टी, ढेले अथवा घाससे ढककर तथा अपने मस्तकको भी वस्त्रसे आच्छादित करके मल-मूत्रका त्याग करना चाहिये। किसी पेड़की छायामें, कुएँके पास, नदीके किनारे, गोशाला, देवमन्दिर तथा जलमें, रास्तेपर, राखपर, अग्निमें तथा श्मशान-भूमिमें भी मल-मूत्रका त्याग नहीं करना चाहिये। गोबरपर, काठपर, बहुत बड़े वृक्षपर तथा हरी-भरी घासमें भी मल-मूत्र करना निषिद्ध है। खड़े होकर तथा नग्न होकर भी मल-मूत्रका त्याग नहीं करना चाहिये। पर्वतमण्डलमें, पुराने देवालयमें, बाँबीपर तथा किसी भी गड्ढेमें मल-मूत्रका त्याग वर्जित है। चलते-चलते भी पाखाना और पेशाब नहीं करना चाहिये। भूसी, कोयले तथा ठीकरेपर, खेतमें, बिलमें, तीर्थमें, चौराहेपर अथवा सड़कपर, बगीचेमें, जलके निकट, ऊसर भूमिमें तथा नगरके भीतर—इन सभी स्थानोंमें मल-मूत्रका त्याग मना है।

खड़ाऊँ या जूता पहनकर, छाता लगाकर, अन्तरिक्षमें, स्त्री, गुरु, ब्राह्मण, गौ, देवता, देवालय तथा जलकी ओर मुँह करके, नक्षत्रों तथा ग्रहोंको देखते हुए अथवा उनकी ओर मुँह करके तथा सूर्य, चन्द्रमा और अग्निकी ओर दृष्टि करके भी कभी मल-मूत्रका त्याग नहीं करना चाहिये। शौच आदि होनेके पश्चात् कहीं किनारेसे लेप और दुर्गन्धको मिटानेवाली मिट्टी लेकर आलस्यरहित हो विशुद्ध एवं बाहर निकाले हुए जलसे हाथ आदिकी शुद्धि करे। ब्राह्मणको उचित है कि वह रेत मिली हुई अथवा कीचड़की मिट्टी न ले। रास्तेसे, ऊसर भूमिसे तथा दूसरोंके शौचसे बची हुई मिट्टीको भी काममें न ले। देवमन्दिरसे, कुएँसे, घरकी दीवारसे और जलसे भी मिट्टी न ले। तदनन्तर हाथ-पैर धोकर प्रतिदिन पूर्वोक्त विधिसे आचमन करना चाहिये।

ब्रह्मचारी शिष्यके धर्म

व्यासजी कहते हैं—महर्षियो! इस प्रकार दण्ड, मेखला, मृगचर्म आदिसे युक्त तथा शौचाचारसे सम्पन्न ब्रह्मचारी गुरुके मुँहकी ओर देखता रहे और जब वे बुलायें तभी उनके पास जाकर अध्ययन करे। सदा हाथ जोड़े रहे, सदाचारी और संयमी बने। जब गुरु बैठनेकी आज्ञा दें, तब उनके सामने बैठे। गुरुकी बातका श्रवण और गुरुके साथ वार्तालाप—ये दोनों कार्य लेटे-लेटे न करे और भोजन करते समय भी न करे। उस समय न तो खड़ा रहे और न दूसरी ओर मुख ही फेरे। गुरुके समीप शिष्यकी शय्या और आसन सदा नीचे रहने

चाहिये। जहाँतक गुरुकी दृष्टि पड़ती हो, वहाँतक मनमाने आसनपर न बैठे। गुरुके परोक्षमें भी उनका नाम न ले। उनकी चाल, उनकी बोली तथा उनकी चेष्टाका अनुकरण न करे। जहाँ गुरुपर लांछन लगाया जाता हो अथवा उनकी निन्दा हो रही हो, वहाँ कान मूँद लेने चाहिये अथवा वहाँसे अन्यत्र हट जाना चाहिये। दूर खड़ा होकर, क्रोधमें भरकर अथवा स्त्रीके समीप रहकर गुरुकी पूजा न करे। गुरुकी बातोंका प्रत्युत्तर न दे। यदि गुरु पास ही खड़े हों तो स्वयं भी बैठा न रहे। गुरुके लिये सदा पानीका घड़ा, कुश, फूल और समिधा लाया करे। प्रतिदिन उनके आँगनमें झाड़ू देकर उसे लीप-पोत दे। गुरुके उपभोगमें आयी हुई वस्तुओंपर, उनकी शय्या, खड़ाऊँ, जूते, आसन तथा छाया आदिपर कभी पैर न रखे। गुरुके लिये दातुन आदि ला दिया करे। जो कुछ प्राप्त हो, उन्हें निवेदन कर दे। उनसे पूछे बिना कहीं न जाय और सदा उनके प्रिय एवं हितमें संलग्न रहे। गुरुके समीप कभी पैर न फैलाये। उनके सामने जँभाई लेना, हँसना, गला ढँकना और अँगड़ाई लेना सदाके लिये छोड़ दे। समयानुसार गुरुसे, जबतक कि वे पढ़ानेसे उदासीन न हो जायँ, अध्ययन करे। गुरुके पास नीचे बैठे। एकाग्र चित्तसे उनकी सेवामें लगा रहे। गुरुके आसन, शय्या और सवारीपर कभी न बैठे। गुरु यदि दौड़ते हों तो उनके पीछे-पीछे स्वयं भी दौड़े। वे चलते हों तो स्वयं भी पीछे-पीछे जाय। बैलगाड़ी, घोड़ागाड़ी, ऊँटगाड़ी, महलकी अटारी, कुशकी चटाई, शिलाखण्ड तथा नावपर गुरुके साथ शिष्य भी बैठ सकता है।

शिष्यको सदा जितेन्द्रिय, जितात्मा, क्रोधहीन और पवित्र रहना चाहिये। वह सदा मधुर और हितकारी वचन बोले। चन्दन, माला, स्वाद, शृंगार, सीपी, प्राणियोंकी हिंसा, तेलकी मालिश, सुरमा, शर्बत आदि पेय, छत्रधारण, काम, लोभ, भय, निद्रा, गाना-बजाना, दूसरोंको फटकारना, किसीपर लांछन लगाना, स्त्रीकी ओर देखना, उसका स्पर्श करना, दूसरेका घात करना तथा चुगली खाना—इन दोषोंका यत्नपूर्वक परित्याग करे। जलसे भरा हुआ घड़ा, फूल, गोबर, मिट्टी और कुश—इन वस्तुओंका आवश्यकताके अनुसार संग्रह करे तथा अन्नकी भिक्षा लेनेके लिये प्रतिदिन जाय। घी, नमक और बासी अन्न ब्रह्मचारीके लिये वर्जित हैं। वह कभी नृत्य न देखे। सदा संगीत आदिसे निःस्पृह रहे। न सूर्यकी ओर देखे न दातुन करे। उसके लिये स्त्रियोंके साथ एकान्तमें रहना और शूद्र आदिके साथ वार्तालाप करना भी निषिद्ध है। वह गुरुके उच्छिष्ट औषध और अन्नका स्वेच्छासे उपयोग न करे।

ब्राह्मण गुरुके परित्यागका किसी तरह विचार भी मनमें न लाये। यदि मोह या लोभवश वह उन्हें त्याग दे तो पतित हो जाता है। जिनसे लौकिक, वैदिक तथा आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त किया जाता है, उन गुरुदेवसे कभी द्रोह न करे। गुरु यदि घमंडी, कर्तव्य-अकर्तव्यको न जाननेवाला और कुमार्गगामी हो तो मनुजीने उसका त्याग करनेका आदेश दिया है। गुरुके गुरु समीप आ जायँ तो उनके प्रति भी गुरुकी ही भाँति बर्ताव करना चाहिये। नमस्कार करनेके पश्चात् जब वे गुरुजी आज्ञा दें, तब आकर अपने गुरुओंको प्रणाम करना चाहिये। जो विद्यागुरु हों, उनके प्रति भी यही बर्ताव करना चाहिये। जो योगी हों, जो अधर्मसे रोकने और हितका उपदेश करनेवाले हों, उनके प्रति भी सदा गुरुजनोचित बर्ताव करना चाहिये। गुरुके पुत्र, गुरुकी पत्नी तथा गुरुके बन्धु-बान्धवोंके साथ भी सदा अपने गुरुके समान ही बर्ताव करना उचित है। इससे कल्याण होता है। बालक अथवा शिष्य यज्ञकर्ममें माननीय पुरुषोंका आदर करे। यदि गुरुका पुत्र भी पढ़ाये तो गुरुके समान ही सम्मान पानेका अधिकारी है। किन्तु गुरुपुत्रके शरीर दबाने, नहलाने, उच्छिष्ट भोजन करने तथा चरण धोने आदिका कार्य न करे। गुरुकी स्त्रियोंमें जो उनके समान वर्णकी हों, उनका गुरुकी भाँति सम्मान करना चाहिये तथा जो समान वर्णकी न हों, उनका अभ्युत्थान और प्रणाम आदिके द्वारा ही सत्कार करना चाहिये। गुरुपत्नीके प्रति तेल लगाने, नहलाने, शरीर दबाने और केशोंका शृंगार करने आदिकी सेवा न करे। यदि गुरुकी स्त्री युवती हो तो उसका चरण-स्पर्श करके

प्रणाम नहीं करना चाहिये; अपितु 'मैं अमुक हूँ', यह कहकर पृथ्वीपर ही मस्तक टेकना चाहिये। सत्पुरुषोंके धर्मका निरन्तर स्मरण करनेवाले शिष्यको उचित है कि वह बाहरसे आनेपर प्रतिदिन गुरुपत्नीका चरण-स्पर्श एवं प्रणाम करे। मौसी, मामी, सास, बुआ—ये सब गुरुपत्नीके समान हैं। अतः गुरुपत्नीकी भाँति इनका भी आदर करना चाहिये। अपने बड़े भाइयोंकी सवर्ण स्त्रियोंका प्रतिदिन चरण-स्पर्श करना उचित है। परदेशसे आनेपर अपने कुटुम्बी और सम्बन्धियोंकी सभी श्रेष्ठ स्त्रियोंके चरणोंमें मस्तक झुकाना चाहिये। बुआ, मौसी तथा बड़ी बहिनके साथ माताकी ही भाँति बर्ताव करना चाहिये, इन सबकी अपेक्षा माताका गौरव अधिक है।

जो इस प्रकार सदाचारसे सम्पन्न, अपने मनको वशमें रखनेवाला और दम्भहीन शिष्य हो, उसे प्रतिदिन वेद, धर्मशास्त्र और पुराणोंका अध्ययन कराना चाहिये। जब शिष्य सालभरतक गुरुकुलमें निवास कर ले और उस समयतक गुरु उसे ज्ञानका उपदेश न करे तो वह अपने पास रहनेवाले शिष्यके सारे पापोंको हर लेता है। आचार्यका पुत्र, सेवापरायण, ज्ञान देनेवाला, धर्मात्मा, पवित्र, शक्तिशाली, अन्न देनेवाला, पानी पिलानेवाला, साधु पुरुष और अपना शिष्य—ये दस प्रकारके पुरुष धर्मतः पढ़ानेके योग्य हैं।[1] कृतज्ञ, द्रोह न रखनेवाला, मेधावी, गुरु बनानेवाला, विश्वासपात्र और प्रिय—ये छः प्रकारके द्विज विधिपूर्वक अध्ययन करानेके योग्य हैं। शिष्य आचमन करके संयमशील हो उत्तराभिमुख बैठकर प्रतिदिन स्वाध्याय करे। गुरुके चरणोंमें प्रणाम करके उनका मुँह जोहता रहे। जब गुरु कहें—'सौम्य! आओ, पढ़ो,' तब उनके पास जाकर पाठ पढ़े और जब वे कहें कि 'अब पाठ बंद करना चाहिये', तब पाठ बंद कर दे। अग्निके पूर्व आदि दिशाओंमें कुश बिछाकर उनकी उपासना करे। तीन प्राणायामोंसे पवित्र होकर ब्रह्मचारी ॐकारके जपका अधिकारी होता है। ब्राह्मणो! विप्रको अध्ययनके आदि और अन्तमें भी विधिपूर्वक प्रणवका जप करना चाहिये। प्रतिदिन पहले वेदको अंजलि देकर उसका अध्ययन कराना चाहिये। वेद सम्पूर्ण भूतोंके सनातन नेत्र हैं; अतः प्रतिदिन उनका अध्ययन करे अन्यथा वह ब्राह्मणत्वसे गिर जाता है। जो नित्यप्रति ऋग्वेदका अध्ययन करता है, वह दूधकी आहुतिसे; जो यजुर्वेदका पाठ करता है, वह दहीसे; जो सामवेदका अध्ययन करता है, वह घीकी आहुतियोंसे तथा जो अथर्ववेदका पाठ करता है, वह सदा मधुसे देवताओंको तृप्त करता है। उन देवताओंके समीप नियमपूर्वक नित्यकर्मका आश्रय ले वनमें जा एकाग्रचित्त हो गायत्रीका जप करे। प्रतिदिन अधिक-से-अधिक एक हजार, मध्यम स्थितिमें एक सौ अथवा कम-से-कम दस बार गायत्री देवीका जप करना चाहिये; यह जपयज्ञ कहा गया है। भगवान्ने गायत्री और वेदोंको तराजूपर रखकर तोला था, एक ओर चारों वेद थे और एक ओर केवल गायत्री-मन्त्र। दोनोंका पलड़ा बराबर रहा।[2] द्विजको चाहिये कि वह श्रद्धालु एवं एकाग्रचित्त होकर पहले ओंकारका और फिर व्याहृतियोंका उच्चारण करके गायत्रीका उच्चारण करे। पूर्वकल्पमें '**भूः**', '**भुवः**' और '**स्वः**'—ये तीन सनातन महाव्याहृतियाँ उत्पन्न हुईं, जो सब प्रकारके अमंगलका नाश करनेवाली हैं। ये तीनों व्याहृतियाँ क्रमशः प्रधान, पुरुष और कालका, विष्णु, ब्रह्मा और महादेवजीका तथा सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुणका प्रतीक मानी गयी हैं। पहले 'ओं' उसके बाद 'ब्रह्म' तथा उसके पश्चात् गायत्री-मन्त्र—इन सबको मिलाकर यह महायोग नामक मन्त्र बनता है, जो सारसे भी सार बताया गया है। जो ब्रह्मचारी प्रतिदिन इस वेदमाता गायत्रीका अर्थ समझकर जप करता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है। गायत्री वेदोंकी जननी है, गायत्री सम्पूर्ण संसारको पवित्र करनेवाली है। गायत्रीसे बढ़कर दूसरा कोई जपनेयोग्य

१-आचार्यपुत्रः शुश्रूषुर्ज्ञानदो धार्मिकः शुचिः। शक्तोऽन्नदोऽम्बुदः साधुः स्वोऽध्याप्या दश धर्मतः॥ (५३। ४०)

२-गायत्रीं चैव वेदांश्च तुलयातोलयत्प्रभुः। एकतश्चतुरो वेदा गायत्री च तथैकतः॥ (५३। ५२)

मन्त्र नहीं है। यह जानकर मनुष्य मुक्त हो जाता है।*

द्विजवरो! आषाढ़, श्रावण अथवा भादोंकी पूर्णिमाको वेदोंका उपाकर्म बताया गया है अर्थात् उक्त तिथिसे वेदोंका स्वाध्याय प्रारम्भ किया जाता है। जबतक सूर्य दक्षिणायनके मार्गपर चलते हैं, तबतक अर्थात् साढ़े चार महीने प्रतिदिन पवित्र स्थानमें बैठकर ब्रह्मचारी एकाग्रतापूर्वक वेदोंका स्वाध्याय करे। तत्पश्चात् द्विज पुष्यनक्षत्रमें घरके बाहर जाकर वेदोंका उत्सर्ग—स्वाध्यायकी समाप्ति करे। शुक्लपक्षमें प्रातःकाल और कृष्णपक्षमें संध्याके समय वेदोंका स्वाध्याय करना चाहिये।

वेदोंका अध्ययन, अध्यापन प्रयत्नपूर्वक अभ्यास करनेवाले पुरुषको नीचे लिखे अनध्यायोंके समय सदा ही अध्ययन बंद रखना चाहिये। यदि रातमें ऐसी तेज हवा चले, जिसकी सनसनाहट कानोंमें गूँज उठे तथा दिनमें धूल उड़ानेवाली आँधी चलने लगे तो अनध्याय होता है। यदि बिजलीकी चमक, मेघोंकी गर्जना, वृष्टि तथा महान् उल्कापात हो तो प्रजापति मनुने अकालिक अनध्याय बताया है—ऐसे अवसरोंपर उस समयसे लेकर दूसरे दिन उसी समयतक अध्ययन रोक देना उचित है। यदि अग्निहोत्रके लिये अग्नि प्रज्वलित करनेपर इन उत्पातोंका उदय जान पड़े तो वर्षाकालमें अनध्याय समझना चाहिये तथा वर्षासे भिन्न ऋतुमें यदि बादल दीख भी जाय तो अध्ययन रोक देना चाहिये। वर्षा-ऋतुमें और उससे भिन्न कालमें भी यदि उत्पात-सूचक शब्द, भूकम्प, चन्द्र-सूर्यादि ज्योतिर्मय ग्रहोंके उपद्रव हों तो अकालिक (उस समयसे लेकर दूसरे दिन उसी समयतक) अनध्याय समझना चाहिये। यदि प्रातःकालमें होमाग्नि प्रज्वलित होनेपर बिजलीकी गड़गड़ाहट और मेघकी गर्जना सुनायी दे तो सज्योति अनध्याय होता है अर्थात् ज्योति—सूर्यके रहनेतक ही अध्ययन बंद रहता है। इसी प्रकार रातमें भी अग्नि प्रज्वलित होनेके पश्चात् यदि उक्त उत्पात हो तो दिनकी ही भाँति सज्योति—ताराओंके दीखनेतक अनध्याय माना जाता है। धर्मकी निपुणता चाहनेवाले पुरुषोंके लिये गाँवों, नगरों तथा दुर्गन्धपूर्ण स्थानोंमें सदा ही अनध्याय रहता है। गाँवके भीतर मुर्दा रहनेपर, शूद्रकी समीपता होनेपर, रोनेका शब्द कानमें पड़नेपर तथा मनुष्योंकी भारी भीड़ रहनेपर भी सदा ही अनध्याय होता है। जलमें, आधी रातके समय, मल-मूत्रका त्याग करते समय, जूठा मुँह रहनेपर तथा श्राद्धका भोजन कर लेनेपर मनसे भी वेदका चिन्तन नहीं करना चाहिये। विद्वान् ब्राह्मण एकोद्दिष्ट श्राद्धका निमन्त्रण लेकर तीन दिनोंतक वेदोंका अध्ययन बंद रखे। राजाके यहाँ सूतक (जननाशौच) हो या ग्रहणका सूतक लगा हो, तो भी तीन दिनोंतक वेद-मन्त्रोंका उच्चारण न करे। एकोद्दिष्टमें सम्मिलित होनेवाले विद्वान् ब्राह्मणके शरीरमें जबतक श्राद्धके चन्दनकी सुगन्ध और लेप रहे, तबतक वह वेद-मन्त्रका उच्चारण न करे। लेटकर, पैर फैलाकर, घुटने मोड़कर तथा शूद्रका श्राद्धान्न भोजन करके वेदाध्ययन न करे। कुहरा पड़नेपर, बाणका शब्द होनेपर, दोनों संध्याओंके समय, अमावास्या, चतुर्दशी, पूर्णिमा तथा अष्टमीको भी वेदाध्ययन निषिद्ध है। वेदोंके उपाकर्मके पहले और उत्सर्गके बाद तीन राततक अनध्याय माना गया है। अष्टका तिथियोंको एक दिन-रात तथा ऋतुके अन्तकी रात्रियोंको रातभर अध्ययन निषिद्ध है। मार्गशीर्ष, पौष और माघ मासके कृष्णपक्षमें जो अष्टमी तिथियाँ आती हैं, उन्हें विद्वान् पुरुषोंने तीन अष्टकाओंके नामसे कहा है। बहेड़ा, सेमल, महुआ, कचनार और कैथ—इन वृक्षोंकी छायामें कभी वेदाध्ययन नहीं करना चाहिये। अपने सहपाठी अथवा साथ रहनेवाले ब्रह्मचारी या आचार्यकी

---

* ओङ्कारस्तत्परं ब्रह्म सावित्री स्यात्तदुत्तरम्। एष मन्त्रो महायोगः सारात् सार उदाहृतः॥
योऽधीतेऽहन्यहन्येतां गायत्रीं वेदमातरम्। विज्ञायार्थं ब्रह्मचारी स याति परमां गतिम्॥
गायत्री वेदजननी गायत्री लोकपावनी। गायत्र्या न परं जप्यमेतद्विज्ञाय मुच्यते॥ (५३। ५६—५८)

मृत्यु हो जानेपर तीन राततक अनध्याय माना गया है। ये अवसर वेदपाठी ब्राह्मणोंके लिये छिद्ररूप हैं, अतः अनध्याय कहे गये हैं। इनमें अध्ययन करनेसे राक्षस हिंसा करते हैं; अतः इन अनध्यायोंका त्याग कर देना चाहिये। नित्य कर्ममें अनध्याय नहीं होता। संध्योपासन भी बराबर चलता रहता है। उपाकर्ममें, उत्सर्गमें, होमके अन्तमें तथा अष्टकाकी आदि तिथियोंको वायुके चलते रहनेपर भी स्वाध्याय करना चाहिये। वेदांगों, इतिहास-पुराणों तथा अन्य धर्मशास्त्रोंके लिये भी अनध्याय नहीं है। इन सबको अनध्यायकी कोटिसे पृथक् समझना चाहिये।

यह मैंने ब्रह्मचारीके धर्मका संक्षेपसे वर्णन किया है। पूर्वकालमें ब्रह्माजीने शुद्ध अन्तःकरणवाले ऋषियोंके सामने इस धर्मका प्रतिपादन किया था। जो द्विज वेदका अध्ययन न करके दूसरे शास्त्रोंमें परिश्रम करता है, वह मूढ़ और वेदबाह्य माना गया है। द्विजातियोंको उससे बात नहीं करनी चाहिये। द्विजको केवल वेदोंके पाठ मात्रसे ही संतोष नहीं कर लेना चाहिये। जो केवल पाठ मात्रमें लगा रह जाता है, वह कीचड़में फँसी हुई गौकी भाँति कष्ट उठाता है। जो विधिपूर्वक वेदका अध्ययन करके उसके अर्थका विचार नहीं करता, वह मूढ़ एवं शूद्रके समान है। वह सुपात्र नहीं होता[1]। यदि कोई सदाके लिये गुरुकुलमें वास करना चाहे तो सदा उद्यत रहकर शरीर छूटनेतक गुरुकी सेवा करता रहे। वनमें जाकर विधिवत् अग्निमें होम करे तथा ब्रह्मनिष्ठ एवं एकाग्रचित्त होकर सदा स्वाध्याय करता रहे। वह भिक्षाके अन्नपर निर्भर रहकर योगयुक्त हो सदा गायत्रीका जप और शतरुद्रिय तथा विशेषतः उपनिषदोंका अभ्यास करता रहे। वेदाध्ययनके विषयमें जो यह परम प्राचीन विधि है, इसका भलीभाँति मैंने आपलोगोंसे वर्णन किया है। पूर्वकालमें श्रेष्ठ महर्षियोंके पूछनेपर दिव्यशक्तिसम्पन्न स्वायम्भुव मनुने इसका प्रतिपादन किया था।

स्नातक और गृहस्थके धर्मोंका वर्णन

व्यासजी कहते हैं—ब्राह्मणो! श्रेष्ठ ब्रह्मचारी अपनी शक्तिके अनुसार एक, दो, तीन अथवा चारों वेदों तथा वेदांगोंका अध्ययन करके उनके अर्थको भलीभाँति हृदयंगम करके ब्रह्मचर्य-व्रतकी समाप्तिका स्नान करे[2]। गुरुको दक्षिणारूपमें धन देकर उनकी आज्ञा ले स्नान करना चाहिये। व्रतको पूरा करके मनको काबूमें रखनेवाला समर्थ पुरुष स्नातक होनेके योग्य है। वह बाँसकी छड़ी, अधोवस्त्र तथा उत्तरीय (चादर) धारण करे। एक जोड़ा यज्ञोपवीत और जलसे भरा हुआ कमण्डलु धारण करे। बाल और नख कटाकर स्नान आदिसे शुद्ध हो उसे छाता, साफ पगड़ी, खड़ाऊँ या जूता तथा सोनेके कुण्डल धारण करने चाहिये। ब्राह्मण सोनेकी मालाके सिवा दूसरी कोई लाल रंगकी माला न धारण करे। वह सदा श्वेत वस्त्र पहने, उत्तम गन्धका सेवन करे और वेश-भूषा ऐसी रखे, जो देखनेमें प्रिय जान पड़े। धन रहते हुए फटे और मैले वस्त्र न पहने। अधिक लाल और दूसरेके पहने हुए वस्त्र, कुण्डल, माला, जूता और खड़ाऊँको अपने काममें न लाये। यज्ञोपवीत, आभूषण, कुश और काला मृगचर्म—इन्हें अपसव्य भावसे न धारण करे। अपने योग्य स्त्रीसे विधिपूर्वक विवाह करे। स्त्री शुभ गुणोंसे युक्त, रूपवती, सुलक्षणा और योनिगत दोषोंसे रहित होनी चाहिये।

१-योऽन्यत्र कुरुते यत्नमनधीत्य श्रुतिं द्विजः। स सम्मूढो न सम्भाष्यो वेदबाह्यो द्विजातिभिः॥
न वेदपाठमात्रेण संतुष्टो वै भवेत् द्विजः। पाठमात्रावसन्नस्तु पङ्के गौरिव सीदति॥
योऽधीत्य विधिवद्वेदं वेदार्थं न विचारयेत्। स सम्मूढः शूद्रकल्पः पात्रतां न प्रपद्यते॥ (५३।८४—८६)

२-वेदं वेदौ तथा वेदान् वेदाङ्गानि तथाद्विजाः। अधीत्य चाधिगम्यार्थं ततः स्नायाद् द्विजोत्तमः॥ (५४।१)

माताके गोत्रमें जिसका जन्म न हुआ हो, जो अपने गोत्रमें उत्पन्न न हुई हो तथा उत्तम शील और पवित्रतासे युक्त हो, ऐसी भार्यासे ब्राह्मण विवाह करे। जबतक पुत्रका जन्म न हो, तबतक केवल ऋतुकालमें स्त्रीके साथ समागम करे। इसके लिये शास्त्रोंमें जो निषिद्ध दिन हैं, उनका यत्नपूर्वक त्याग करे। षष्ठी, अष्टमी, पूर्णिमा, द्वादशी तथा चतुर्दशी—ये तिथियाँ स्त्री-समागमके लिये निषिद्ध हैं। उक्त नियमोंका पालन करनेसे गृहस्थ भी सदा ब्रह्मचारी ही माना जाता है। विवाह-कालकी अग्निको सदा स्थापित रखे और उसमें अग्निदेवताके निमित्त प्रतिदिन हवन करे। स्नातक पुरुष इन पावन नियमोंका सदा ही पालन करे।

अपने [वर्ण और आश्रमके लिये विहित] वेदोक्त कर्मका सदा आलस्य छोड़कर पालन करना चाहिये। जो नहीं करता, वह अत्यन्त भयंकर नरकोंमें पड़ता है। सदा संयमशील रहकर वेदोंका अभ्यास करे, पंच महायज्ञोंका त्याग न करे, गृहस्थोचित समस्त शुभ कार्य और संध्योपासन करता रहे। अपने समान तथा अपनेसे बड़े पुरुषोंके साथ मित्रता करे, सदा ही भगवान्‌की शरणमें रहे। देवताओंके दर्शनके लिये यात्रा करे तथा पत्नीका पालन-पोषण करता रहे। विद्वान् पुरुष लोगोंमें अपने किये हुए धर्मकी प्रसिद्धि न करे तथा पापको भी न छिपाये। सम्पूर्ण प्राणियोंपर दया करते हुए सदा अपने हितका साधन करे। अपनी वय, कर्म, धन, विद्या, उत्तम कुल, देश, वाणी और बुद्धिके अनुरूप आचरण करते हुए सदा विचरण करता रहे। श्रुतियों और स्मृतियोंमें जिसका विधान हो तथा साधु पुरुषोंने जिसका भलीभाँति सेवन किया हो, उसी आचारका पालन करे; अन्य कार्योंके लिये कदापि चेष्टा न करे। जिसका उसके पिताने अनुसरण किया हो तथा जिसका पितामहोंने किया हो, उसी वृत्तिसे वह भी सत्पुरुषोंके मार्गपर चले; उसका अनुसरण करनेवाला पुरुष दोषका भागी नहीं होता। प्रतिदिन स्वाध्याय करे, सदा यज्ञोपवीत धारण किये रहे तथा सर्वदा सत्य बोले। क्रोधको जीते और लोभ-मोहका परित्याग कर दे। गायत्रीका जप तथा पितरोंका श्राद्ध करनेवाला गृहस्थ मुक्त हो जाता है। माता-पिताके हितमें संलग्न, ब्राह्मणोंके कल्याणमें तत्पर, दाता, याज्ञिक और वेदभक्त गृहस्थ ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है। सदा ही धर्म, अर्थ एवं कामका सेवन करते हुए प्रतिदिन देवताओंका पूजन करे और शुद्धभावसे उनके चरणोंमें मस्तक झुकाये। बलिवैश्वदेवके द्वारा सबको अन्नका भाग दे। निरन्तर क्षमाभाव रखे और सबपर दयाभाव बनाये रहे। ऐसे पुरुषको ही गृहस्थ कहा गया है; केवल घरमें रहनेसे कोई गृहस्थ नहीं हो सकता।

क्षमा, दया, विज्ञान, सत्य, दम, शम, सदा अध्यात्मचिन्तन तथा ज्ञान—ये ब्राह्मणके लक्षण हैं। श्रेष्ठ ब्राह्मणको उचित है कि वह विशेषतः इन गुणोंसे कभी च्युत न हो। अपनी शक्तिके अनुसार धर्मका अनुष्ठान करते हुए निन्दित कर्मोंको त्याग दे। मोहरूपी कीचड़को धोकर परम उत्तम ज्ञानयोगको प्राप्त करके गृहस्थ पुरुष संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है—इसमें अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये।

निन्दा, पराजय, आक्षेप, हिंसा, बन्धन और वधको तथा दूसरोंके क्रोधसे उत्पन्न होनेवाले दोषोंको सह लेना 'क्षमा' है। अपने दुःखमें करुणा तथा दूसरोंके दुःखमें सौहार्द—स्नेहपूर्ण सहानुभूतिके होनेको मुनियोंने 'दया' कहा है, जो धर्मका साक्षात् साधन है। छहों अंग, चारों वेद, मीमांसा, विस्तृत न्याय-शास्त्र, पुराण और धर्मशास्त्र—ये चौदह विद्याएँ हैं। इन चौदह विद्याओंको यथार्थरूपसे धारण करना—इसीको 'विज्ञान' समझना चाहिये। जिससे धर्मकी वृद्धि होती है। विधिपूर्वक विद्याका अध्ययन करके तथा धनका उपार्जन कर धर्म-कार्यका अनुष्ठान करे—इसे भी 'विज्ञान' कहते हैं। सत्यसे मनुष्यलोकपर विजय पाता है, वह सत्य ही परम पद है। जो बात जैसे हुई हो उसे उसी रूपमें कहनेको मनीषी पुरुषोंने 'सत्य' कहा है। शरीरकी उपरामताका नाम 'दम' है। बुद्धिकी निर्मलतासे 'शम' सिद्ध होता है। अक्षर (अविनाशी) पदको 'अध्यात्म' समझना चाहिये; जहाँ जाकर मनुष्य शोकमें नहीं पड़ता। जिस विद्यासे षड्विध

ऐश्वर्ययुक्त परम देवता साक्षात् भगवान् हृषीकेशका ज्ञान होता है, उसे 'ज्ञान' कहा गया है। जो विद्वान् ब्राह्मण उस ज्ञानमें स्थित, भगवत्परायण, सदा ही क्रोधसे दूर रहनेवाला, पवित्र तथा महायज्ञके अनुष्ठानमें तत्पर रहनेवाला है, वह उस उत्तम पदको प्राप्त कर लेता है। यह मनुष्य-शरीर धर्मका आश्रय है, इसका यत्नपूर्वक पालन करना चाहिये; क्योंकि देहके बिना कोई भी पुरुष परमात्मा श्रीविष्णुका ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता। द्विजको चाहिये कि वह सदा नियमपूर्वक रहकर धर्म, अर्थ और कामके साधनमें लगा रहे। धर्महीन काम या अर्थका कभी मनसे चिन्तन भी न करे। धर्मपर चलनेसे कष्ट हो, तो भी अधर्मका आचरण नहीं करना चाहिये; क्योंकि धर्म-देवता साक्षात् भगवान्‌के स्वरूप हैं; वे ही सब प्राणियोंकी गति हैं। द्विज सब भूतोंका प्रिय करनेवाला बने; दूसरोंके प्रति द्रोहभावसे किये जानेवाले कर्ममें मन न लगाये; वेदों और देवताओंकी निन्दा न करे तथा निन्दा करनेवालोंके साथ निवास भी न करे। जो ब्राह्मण प्रतिदिन नियमपूर्वक रहकर पवित्रताके साथ इस धर्माध्यायको पढ़ता, पढ़ाता अथवा सुनाता है, वह ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है।*

---

* श्रुतिस्मृत्युदितः सम्यक्साधुभिर्यश्च सेवितः। तमाचारं निषेवेत नेहेतान्यत्र कर्हिचित्॥
येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः। तेन यायात् सतां मार्गं तेन गच्छन्न दुष्यति॥
नित्यं स्वाध्यायशीलः स्यान्नित्यं यज्ञोपवीतवान्। सत्यवादी जितक्रोधो लोभमोहविवर्जितः॥
सावित्रीजापनिरतः श्राद्धकृन्मुच्यते गृही। मातापित्रोर्हिते युक्तो ब्राह्मणस्य हिते रतः॥
दाता यज्वा वेदभक्तो ब्रह्मलोके महीयते। त्रिवर्गसेवी सततं देवानां च समर्चनम्॥
कुर्यादहरहर्नित्यं नमस्येत्प्रयतः सुरान्। विभागशीलः सततं क्षमायुक्तो दयालुकः॥
....। गृहस्थस्तु समाख्यातो न गृहेण गृही भवेत्॥
क्षमा दया च विज्ञानं सत्यं चैव दमः शमः। अध्यात्मनित्यता ज्ञानमेतद् ब्राह्मणलक्षणम्॥
एतस्मान्न प्रमाद्येत विशेषेण द्विजोत्तमः। यथाशक्ति चरन् धर्मं निन्दितानि विवर्जयेत्॥
विधूय मोहकलिलं लब्ध्वा योगमनुत्तमम्। गृहस्थो मुच्यते बन्धान्नात्र कार्या विचारणा॥
विगर्हातिजयाक्षेपहिंसाबन्धवधात्मनाम्। अन्यमन्युसमुत्थानां दोषाणां मर्षणं क्षमा॥
स्वदुःखेषु च कारुण्यं परदुःखेषु सौहृदम्। दयेति मुनयः प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य साधनम्॥
अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः। पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्या एताश्चतुर्दश॥
चतुर्दशानां विद्यानां धारणा हि यथार्थतः। विज्ञानमिति तद्विद्याद्येन धर्मो विवर्धते॥
अधीत्य विधिवद्विद्यामर्थं चैवोपलभ्य तु। धर्मकर्माणि कुर्वीत ह्येतद्विज्ञानमुच्यते॥
सत्येन लोकं जयति सत्यं तत् परमं पदम्। यथाभूताप्रमादं तु सत्यमाहुर्मनीषिणः॥
दमः शरीरोपरतिः शमः प्रज्ञाप्रसादतः। अध्यात्ममक्षरं विद्यात्तत्र गत्वा न शोचति॥
यया स देवो भगवान् विद्यया विद्यते परः। साक्षादेव हृषीकेशस्तज्ज्ञानमिति कीर्तितम्॥
तन्निष्ठस्तत्परो विद्वान् नित्यमक्रोधनः शुचिः। महायज्ञपरो विप्रो लभते तदनुत्तमम्॥
धर्मस्यायतनं यत्नाच्छरीरं परिपालयेत्। न हि देहं विना विष्णुः पुरुषैर्विद्यते परः॥
नित्यं धर्मार्थकामेषु युज्येत नियतो द्विजः। न धर्मवर्जितं काममर्थं वा मनसा स्मरेत्॥
सीदन्नपि हि धर्मेण न त्वधर्मं समाचरेत्। धर्मो हि भगवान् देवो गतिः सर्वेषु जन्तुषु॥
भूतानां प्रियकारी स्यान्न परद्रोहकर्मधीः। न वेददेवतानिन्दां कुर्यात्तैश्च न संवसेत्॥
यस्त्विमं नियतो विप्रो धर्माध्यायं पठेच्छुचिः। अध्यापयेच्छ्रावयेद् वा ब्रह्मलोके महीयते॥
(५४। १८—४१)

व्यावहारिक शिष्टाचारका वर्णन

व्यासजी कहते हैं—ब्राह्मणो! किसी भी प्राणीकी हिंसा न करे। कभी झूठ न बोले। अहित करनेवाला तथा अप्रिय वचन मुँहसे न निकाले। कभी चोरी न करे। किसी दूसरेकी वस्तु—चाहे वह तिनका, साग, मिट्टी या जल ही क्यों न हो—चुरानेवाला मनुष्य नरकमें पड़ता है। राजासे, शूद्रसे, पतितसे तथा दूसरे किसीसे भी दान न ले। यदि विद्वान् ब्राह्मण असमर्थ हो—उसका दान लिये बिना काम न चले, तो भी उसे निन्दित पुरुषोंको तो त्याग ही देना चाहिये। कभी याचक न बने; [याचना करे भी, तो] एक ही पुरुषसे दुबारा याचना न करे। इस प्रकार सदा या बारंबार माँगनेवाला याचक कभी-कभी दुर्बुद्धि दाताका प्राण भी ले लेता है। श्रेष्ठ द्विज विशेषतः देवसम्बन्धी द्रव्यका अपहरण न करे तथा ब्राह्मणका धन तो कभी आपत्ति पड़नेपर भी न ले। विषको विष नहीं कहते; ब्राह्मण और देवताका धन ही विष कहलाता है; अतः सर्वदा प्रयत्नपूर्वक उससे बचा रहे।[१]

द्विजो! देवपूजाके लिये सदा एक ही स्थानसे मालिककी आज्ञा लिये बिना फूल नहीं तोड़ने चाहिये। विद्वान् पुरुष केवल धर्मकार्यके लिये दूसरेके घास, लकड़ी, फल और फूल ले सकता है; किन्तु इन्हें सबके सामने—दिखाकर ले जाना चाहिये। जो इस प्रकार नहीं करता, वह गिर जाता है। विप्रगण! जो लोग कहीं मार्गमें हों और भूखसे पीड़ित हों, वे ही किसी खेतसे मुट्ठीभर तिल, मूँग या जौ आदि ले सकते हैं अन्यथा जो भूखे एवं राही न हों, वे उन वस्तुओंको लेनेके अधिकारी नहीं हैं—यही मर्यादा है। जो वास्तवमें अलिंगी है—जिसने किसी आश्रमका चिह्न नहीं ग्रहण किया है, वह भी यदि दिखावेके तौरपर आश्रमविशेषका चिह्न—उसकी वेश-भूषा धारण करके जीविका चलाता है तो वह वास्तविक लिंगी (आश्रमचिह्नधारी) पुरुषके पापको ग्रहण करता है तथा तिर्यग्योनिमें जन्म लेता है। नीच पुरुषसे याचना, योनिसम्बन्ध, सहवास और बातचीत करनेवाला द्विज गिर जाता है; अतः इन सब बातोंसे यत्नपूर्वक दूर रहना चाहिये। देवद्रोह और गुरुद्रोह न करे; देवद्रोहसे भी गुरुद्रोह कोटि-कोटिगुना अधिक है तथा उससे भी करोड़गुना अधिक है दूसरे लोगोंपर लांछन लगाना और ईश्वर तथा परलोकपर अविश्वास करना। कुत्सित विचार, क्रियालोप, वेदोंके न पढ़ने और ब्राह्मणका तिरस्कार करनेसे उत्तम कुल भी अधम हो जाते हैं। असत्यभाषण, परस्त्रीसंगम, अभक्ष्यभक्षण तथा अपने कुलधर्मके विरुद्ध आचरण करनेसे कुलका शीघ्र ही नाश हो जाता है।[२]

जो गाँव अधार्मिकोंसे भरा हो तथा जहाँ रोगोंकी अधिकता हो, वहाँ निवास न करे। शूद्रके राज्यमें तथा पाखण्डियोंसे घिरे हुए स्थानमें भी न रहे। द्विज हिमालय और विन्ध्याचलके तथा पूर्व समुद्र और पश्चिम समुद्रके बीचके पवित्र देशको छोड़कर अन्यत्र निवास न करे। जिस देशमें कृष्णसार मृग सदा स्वभावतः विचरण करता है अथवा पवित्र एवं प्रसिद्ध नदियाँ प्रवाहित होती हैं, वहीं द्विजको निवास करना चाहिये। श्रेष्ठ द्विजको उचित है कि नदी-तटसे आधे कोसकी भूमि छोड़कर अन्यत्र

१-न हिंस्यात् सर्वभूतानि नानृतं वा वदेत् क्वचित्। नाहितं नाप्रियं वाच्यं न स्तेनः स्यात् कदाचन॥
तृणं वा यदि वा शाकं मृदं वा जलमेव वा। परस्यापहरञ्जन्तुर्नरकं प्रतिपद्यते॥
न राज्ञः प्रतिगृह्णीयान्न शूद्रात् पतितादपि। न चान्यस्मादशक्तश्चेन्निन्दितान् वर्जयेद् बुधः॥
नित्यं याचनको न स्यात् पुनस्तं नैव याचयेत्। प्राणानपहरत्येवं याचकस्तस्य दुर्मतेः॥
न देवद्रव्यहारी स्याद् विशेषेण द्विजोत्तमः। ब्रह्मस्वं वा नापहरेदापत्स्वपि कदाचन॥
न विषं विषमित्याहुर्ब्रह्मस्वं विषमुच्यते। देवस्वं चापि यत्नेन सदा परिहरेत्ततः॥ (५५। १—६)

२-अनृतात् पारदार्याश्च तथाभक्ष्यस्य भक्षणात्। अगोत्रधर्माचरणात् क्षिप्रं नश्यति वै कुलम्॥ (५५। १८)

निवास न करे। चाण्डालोंके गाँवके समीप नहीं रहना चाहिये। पतित, चाण्डाल, पुल्कस (निषादसे शूद्रामें उत्पन्न), मूर्ख, अभिमानी, अन्त्यज तथा अन्त्यावसायी (निषादकी स्त्रीमें चाण्डालसे उत्पन्न) पुरुषोंके साथ कभी निवास न करे। एक शय्यापर सोना, एक आसनपर स्थित होना, एक पंक्तिमें बैठना, एक बर्तनमें खाना, दूसरोंके पके हुए अन्नको अपने अन्नमें मिलाकर भोजन करना, यज्ञ करना, पढ़ाना, विवाह-सम्बन्ध स्थापित करना, साथ बैठकर भोजन करना, साथ-साथ पढ़ना और एक साथ यज्ञ कराना ये संकरताका प्रसार करनेवाले ग्यारह सांकर्यदोष बताये गये हैं। समीप रहनेसे भी मनुष्योंके पाप एक-दूसरेमें फैल जाते हैं। इसलिये पूरा प्रयत्न करके सांकर्यदोषसे बचना चाहिये। जो राख आदिसे सीमा बनाकर एक पंक्तिमें बैठते और एक-दूसरेका स्पर्श नहीं करते, उनमें संकरताका दोष नहीं आता। अग्नि, भस्म, जल, विशेषतः द्वार, खंभा तथा मार्ग—इन छःसे पंक्तिका भेद (पृथक्करण) होता है।

अकारण वैर न करे, विवादसे दूर रहे, किसीकी चुगली न करे, दूसरेके खेतमें चरती हुई गौका समाचार कदापि न कहे। चुगलखोरके साथ न रहे, किसीको चुभनेवाली बात न कहे। सूर्यमण्डलका घेरा, इन्द्रधनुष, बाणसे प्रकट हुई आग, चन्द्रमा तथा सोना—इन सबकी ओर विद्वान् पुरुष दूसरेका ध्यान आकृष्ट न करे। बहुत-से मनुष्यों तथा भाई-बन्धुओंके साथ विरोध न करे। जो बर्ताव अपने लिये प्रतिकूल जान पड़े, उसे दूसरोंके लिये भी न करे। द्विजवरो! रजस्वला स्त्री अथवा अपवित्र मनुष्यके साथ बातचीत न करे। देवता, गुरु और ब्राह्मणके लिये किये जानेवाले दानमें रुकावट न डाले। अपनी प्रशंसा न करे तथा दूसरेकी निन्दाका त्याग कर दे। वेदनिन्दा और देवनिन्दाका यत्नपूर्वक त्याग करे।[1] मुनीश्वरो! जो द्विज देवताओं, ऋषियों अथवा वेदोंकी निन्दा करता है, शास्त्रोंमें उसके उद्धारका कोई उपाय नहीं देखा गया है। जो गुरु, देवता, वेद अथवा उसका विस्तार करनेवाले इतिहास-पुराणकी निन्दा करता है, वह मनुष्य सौ करोड़ कल्पसे अधिक कालतक रौरव नरकमें पकाया जाता है। जहाँ इनकी निन्दा होती हो, वहाँ चुप रहे; कुछ भी उत्तर न दे। कान बंद करके वहाँसे चला जाय। निन्दा करनेवालेकी ओर दृष्टिपात न करे।[2] विद्वान् पुरुष दूसरोंकी निन्दा न करे। अच्छे पुरुषोंके साथ कभी विवाद न करे, पापियोंके पापकी चर्चा न करे। जिनपर झूठा कलंक लगाया जाता है; उन मनुष्योंके रोनेसे जो आँसू गिरते हैं, वे मिथ्या कलंक लगानेवालोंके पुत्रों और पशुओंका विनाश कर डालते हैं। ब्रह्महत्या, सुरापान, चोरी और गुरुपत्नीगमन आदि पापोंसे शुद्ध होनेका उपाय वृद्ध पुरुषोंने देखा है; किन्तु मिथ्या कलंक लगानेवाले मनुष्यकी शुद्धिका कोई उपाय नहीं देखा गया है।[3]

बिना किसी निमित्तके सूर्य और चन्द्रमाको उदयकालमें न देखे; उसी प्रकार अस्त होते हुए, जलमें प्रतिबिम्बित, मेघसे ढके हुए, आकाशके मध्यमें स्थित, छिपे हुए तथा दर्पण आदिमें छायाके रूपमें दृष्टिगोचर होते हुए सूर्य-चन्द्रमाको भी न देखे। नंगी स्त्री और नंगे पुरुषकी ओर भी कभी दृष्टिपात न करे। मल-मूत्रको न देखे; मैथुनमें प्रवृत्त पुरुषकी ओर दृष्टि न डाले। विद्वान् पुरुष अपवित्र अवस्थामें सूर्य, चन्द्रमा आदि ग्रहोंकी

१-न चात्मानं प्रशंसेद्वा परनिन्दां च वर्जयेत्। वेदनिन्दां देवनिन्दां प्रयत्नेन विवर्जयेत्॥ (५५। ३५)

२-निन्दयेद्वा गुरुं देवं वेदं वा सोपबृंहणम्। कल्पकोटिशतं साग्रं रौरवे पच्यते नरः॥
तूष्णीमासीत निन्दायां न ब्रूयात् किञ्चिदुत्तरम्। कर्णौ पिधाय गन्तव्यं न चैनमवलोकयेत्॥ (५५। ३७-३८)

३-नृणां मिथ्याभिशस्तानां पतन्त्यश्रूणि रोदनात्। तानि पुत्रान् पशून् घ्नन्ति तेषां मिथ्याभिशंसिनाम्॥
ब्रह्महत्यासुरापाने स्तेये गुर्वङ्गनागमे। दृष्टं वै शोधनं वृद्धैर्नास्ति मिथ्याभिशंसिनि॥ (५५। ४१-४२)

ओर न देखे। उच्छिष्ट अवस्थामें या कपड़ेसे अपने सारे बदनको ढककर दूसरेसे बात न करे। क्रोधमें भरे हुए गुरुके मुखपर दृष्टि न डाले। तेल और जलमें अपनी परछाईं न देखे। भोजन समाप्त हो जानेपर जूठी पंक्तिकी ओर दृष्टिपात न करे। बन्धनसे खुले हुए और मतवाले हाथीकी ओर दृष्टि न डाले। पत्नीके साथ भोजन न करे। भोजन करती, छींकती, जँभाई लेती और अपनी मौजसे आसनपर बैठी हुई भार्याकी ओर दृष्टिपात न करे। बुद्धिमान् पुरुष किसी शुभ या अशुभ वस्तुको न तो लाँघे और न उसपर पैर ही रखे। कभी क्रोधके अधीन नहीं होना चाहिये। राग और द्वेषका त्याग करना चाहिये तथा लोभ, दम्भ, अवज्ञा, दोषदर्शन, ज्ञाननिन्दा, ईर्ष्या, मद, शोक और मोह आदि दोषोंको छोड़ देना चाहिये। किसीको पीड़ा न दे। पुत्र और शिष्यको शिक्षाके लिये ताड़ना दे। नीच पुरुषोंकी सेवा न करे तथा कभी तृष्णामें मन न लगाये। दीनताको यत्नपूर्वक त्याग दे। विद्वान् पुरुष किसी विशिष्ट व्यक्तिका अनादर न करे।

नखसे धरती न कुरेदे। गौको जबर्दस्ती न बिठाये। साथ-साथ यात्रा करनेवालेको कहीं ठहरने या भोजन करनेके समय छोड़ न दे। नग्न होकर जलमें प्रवेश न करे। अग्निको न लाँघे। मस्तकपर लगानेसे बचे हुए तेलको शरीरमें न लगाये।[१] साँपों और हथियारोंसे खिलवाड़ न करे। अपनी इन्द्रियोंका स्पर्श न करे। रोमावलियों तथा गुप्त अंगोंको भी न छूए। अशिष्ट मनुष्यके साथ यात्रा न करे। हाथ, पैर, वाणी, नेत्र, शिश्न, उदर तथा कान आदिको चंचल न होने दे। अपने शरीर और नख आदिसे बाजेका काम न ले। अंजलिसे जल न पीये। पानीपर कभी पैर या हाथसे आघात न करे। ईंटें मारकर कभी फल या मूल न तोड़े। म्लेच्छोंकी भाषा न सीखे। पैरसे आसन न खींचे। बुद्धिमान् पुरुष अकारण नख तोड़ना, ताल ठोंकना, धरतीपर रेखा खींचना या अंगोंको मसलना आदि व्यर्थका कार्य न करे। खाद्य पदार्थको गोदमें लेकर न खाय। व्यर्थकी चेष्टा न करे। नाच-गान न करे। बाजे न बजाये। दोनों हाथ सटाकर अपना सिर न खुजलाये। जुआ न खेले। दौड़ते हुए न चले। पानीमें पेशाब या पाखाना न करे। जूठे मुँह बैठना या लेटना निषिद्ध है। नग्न होकर स्नान न करे। चलते हुए न पढ़े। दाँतोंसे नख और रोएँ न काटे। सोये हुएको न जगाये। सबेरेकी धूपका सेवन न करे। चिताके धुएँसे बचकर रहे। सूने घरमें न सोये। अकारण न थूके। भुजाओंसे तैरकर नदी पार न करे। पैरसे कभी पैर न धोये। पैरोंको आगमें न तपाये। काँसीके बर्तनमें पैर न धुलाये। देवता, ब्राह्मण, गौ, वायु, अग्नि, राजा, सूर्य तथा चन्द्रमाकी ओर पाँव न पसारे। अशुद्ध अवस्थामें शयन, यात्रा, स्वाध्याय, स्नान, भोजन तथा बाहर प्रस्थान न करे। दोनों संध्याओं तथा मध्याह्नके समय शयन, क्षौरकर्म, स्नान, उबटन, भोजन तथा यात्रा न करे। ब्राह्मण जूठे मुँह गौ, ब्राह्मण तथा अग्निका स्पर्श न करे। उन्हें पैरसे कभी न छेड़े तथा देवताकी प्रतिमाका भी जूठे मुँह स्पर्श न करे। अशुद्धावस्थामें अग्निहोत्र तथा देवता और ऋषियोंका कीर्तन न करे। अगाध जलमें न घुसे तथा अकारण न दौड़े। बायें हाथसे जल उठाकर या पानीमें मुँह लगाकर न पिये। आचमन किये बिना जलमें न उतरे। पानीमें वीर्य न छोड़े। अपवित्र तथा बिना लिपी हुई भूमि, रक्त तथा विषको लाँघकर न चले। रजस्वला स्त्रीके साथ अथवा जलमें मैथुन न करे। देवालय या श्मशानभूमिमें स्थित वृक्षको न काटे। जलमें न थूके। हड्डी, राख, ठीकरे, बाल, काँटे, भूसी, कोयले तथा कंडोंपर कभी पैर न रखे।

बुद्धिमान् पुरुष न तो अग्निको लाँघे और न कभी उसे नीचे रखे। अग्निकी ओर पैर न करे तथा मुँहसे उसे कभी न फूँके।[२] पेड़पर न चढ़े। अपवित्रावस्थामें किसीकी ओर दृष्टिपात न करे। आगमें आग न डाले तथा उसे पानी डालकर न बुझाये। अपने किसी सुहृद्की

१-नावगाहेदपो नग्नो वह्निं नातिव्रजेत्तथा। शिरोऽभ्यङ्गावशिष्टेन तैलेनाङ्गं न लेपयेत्॥ (५५। ५६-५७)

२-न चाग्निं लङ्घयेद्धीमान् नोपदध्यादधः क्वचित्। न चैनं पादतः कुर्यान्मुखेन न धमेद् बुधः॥ (५५। ७७)

मृत्युका समाचार स्वयं दूसरोंको न सुनाये। माल बेचते समय बेमोलका भाव अथवा झूठा मूल्य न बतावे। विद्वान्‌को उचित है कि वह मुखके निःश्वाससे और अपवित्रावस्थामें अग्निको प्रज्वलित न करे। पहलेकी की हुई प्रतिज्ञा भंग न करे। पशुओं, पक्षियों तथा व्याघ्रोंको परस्पर न लड़ाये। जल, वायु और धूप आदिके द्वारा दूसरेको कष्ट न पहुँचाये। पहले अच्छे कर्म करवाकर बादमें गुरुजनोंको धोखा न दे। सबेरे और सायंकालको रक्षाके लिये घरके दरवाजोंको बंद कर दे। विद्वान् ब्राह्मणको भोजन करते समय खड़ा होना और बातचीत करते समय हँसना उचित नहीं है। अपने द्वारा स्थापित अग्निको हाथसे न छूए तथा देरतक जलके भीतर न रहे। अग्नि-को पंखेसे, सूपसे, हाथसे अथवा मुँहसे न फूँके। विद्वान् पुरुष परायी स्त्रीसे वार्तालाप न करे। जो यज्ञ करानेयोग्य नहीं है, उसका यज्ञ न कराये। ब्राह्मण कभी अकेला न चले और समुदायसे भी दूर रहे। कभी देवालयको बायें रखकर न जाय, वस्त्रोंको कूटे नहीं और देवमन्दिरमें सोये नहीं। अधार्मिक मनुष्योंके साथ भी न चले। रोगी, शूद्र तथा पतित मनुष्योंके साथ भी यात्रा करना मना है। द्विज बिना जूतेके न चले। जल आदिका प्रबन्ध किये बिना यात्रा न करे। मार्गमें चिताको बायें करके न जाय। योगी, सिद्ध, व्रतधारी, संन्यासी, देवालय, देवता तथा याज्ञिक पुरुषोंकी कभी निन्दा न करे। जान-बूझकर गौ तथा ब्राह्मणकी छायापर पैर न रखे। झाड़ूकी धूलसे बचकर रहे। स्नान किया हुआ वस्त्र तथा घड़ेसे छलकता हुआ जल—इन दोनोंके स्पर्शसे बचना चाहिये। द्विजको उचित है कि वह अभक्ष्य वस्तुका भक्षण और नहीं पीनेयोग्य वस्तुका पान न करे।

गृहस्थधर्ममें भक्ष्याभक्ष्यका विचार तथा दान-धर्मका वर्णन

व्यासजी कहते हैं—द्विजवरो! ब्राह्मणको शूद्रका अन्न नहीं खाना चाहिये; जो ब्राह्मण आपत्तिकालके बिना ही मोहवश या स्वेच्छासे शूद्रान्न भक्षण करता है, वह मरकर शूद्र-योनिमें जन्म लेता है। जो द्विज छः मासतक शूद्रके कुत्सित अन्नका भोजन करता है, वह जीते-जी ही शूद्रके समान हो जाता है और मरनेपर कुत्ता होता है। मुनीश्वरो! मनुष्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र—जिसके अन्नको पेटमें रखकर प्राण-त्याग करता है, उसीकी योनिमें जन्म लेता है। नट, नाचनेवाला, चाण्डाल, चमार, समुदाय तथा वेश्या—इन छःके अन्नका परित्याग करना चाहिये। तेली, धोबी, चोर, शराब बेचनेवाले, नाचने-गानेवाले, लुहार तथा मरणाशौचसे युक्त मनुष्यका अन्न भी त्याग देना चाहिये।[1] कुम्हार, चित्रकार, सूदखोर, पतित, द्वितीय पति स्वीकार करनेवाली स्त्रीके पुत्र, अभिशापग्रस्त, सुनार, रंगमंचपर खेल दिखाकर जीवन-निर्वाह करनेवाले, व्याध, वन्ध्या, रोगी, चिकित्सक (वैद्य या डॉक्टर), व्यभिचारिणी स्त्री, हाकिम, नास्तिक, देवनिन्दक, सोमरसका विक्रय करनेवाले, स्त्रीके वशीभूत रहनेवाले, स्त्रीके उपपतिको घरमें रखनेवाले, पुरुष-परित्यक्त, कृपण, जूठा खानेवाले, महापापी, शस्त्रोंसे जीविका चलानेवाले, भयभीत तथा रोनेवाले मनुष्यका अन्न भी त्याज्य है। ब्रह्मद्वेषी और पापमें रुचि रखनेवालेका अन्न, मृतकके श्राद्धका अन्न, बलिवैश्वदेवरहित रसोईका अन्न तथा रोगीका अन्न भी नहीं खाना चाहिये। संतानहीन स्त्री, कृतघ्न, कारीगर और नाजिर तथा परिवेत्ता (बड़े भाईको अविवाहित छोड़कर अपना विवाह करनेवाले)-का अन्न भी खानेयोग्य नहीं है। पुनर्विवाहिता स्त्री तथा दिधिषू-पतिका[2] अन्न भी त्याज्य है। अवहेलना,

---

१-नटान्नं नर्तकान्नं च चाण्डालचर्मकारिणाम्। गणान्नं गणिकान्नं च षडन्नं च विवर्जयेत्॥
चक्रोपजीविरजकतस्करध्वजिनां तथा। गान्धर्वलोहकारान्नं मृतकान्नं विवर्जयेत्॥ (५६। ४-५)

२-जो कामवश भाईकी विधवा पत्नीके साथ सम्भोग करता है, उसे 'दिधिषू-पति' कहते हैं। बड़ी बहिनके अविवाहित होनेपर भी यदि छोटी बहिन विवाह कर ले तो बड़ी बहिन 'दिधिषू' कहलाती है, उसका पति 'दिधिषू-पति' है।

अनादर तथा रोषपूर्वक मिला हुआ अन्न भी नहीं खाना चाहिये। गुरुका अन्न भी यदि संस्काररहित हो तो वह भोजन करनेयोग्य नहीं है। क्योंकि मनुष्यका सारा पाप अन्नमें स्थित होता है। जो जिसका अन्न खाता है, वह उसका पाप भोजन करता है।

आर्धिक (किसान), कुलमित्र (कुर्मी), गोपाल (ग्वाला), दास, नाई तथा आत्मसमर्पण करनेवाला पुरुष—इनका अन्न भोजन करनेके योग्य है। कुशीलव—चारण और क्षेत्रकर्मक—(खेतमें काम करनेवाले) इनका भी अन्न खानेयोग्य है। विद्वान् पुरुष इन्हें थोड़ी कीमत देकर इनका अन्न ग्रहण कर सकते हैं। तेलमें पकायी हुई वस्तु, गोरस, सत्तू, तिलकी खली और तेल—ये वस्तुएँ द्विजातियोंद्वारा शूद्रसे ग्रहण करनेयोग्य हैं। भाँटा, कमलनाल, कुसुम्भ, प्याज, लहसुन, शुक्त और गोंदका त्याग करना चाहिये। छत्राक तथा यन्त्रसे निकाले हुए आसव आदिका भी परित्याग करना उचित है। गाजर, मूली, कुम्हड़ा, गूलर और लौकी खानेसे द्विज गिर जाता है। रातमें तेल और दहीका यत्नपूर्वक त्याग करना चाहिये। दूधके साथ मट्ठा और नमकीन अन्न नहीं मिलाना चाहिये।

जिस अन्नके प्रति दूषित भावना हो गयी हो, जो दुष्ट पुरुषोंके सम्पर्कमें आ गया हो, जिसे कुत्तेने सूँघ लिया हो, जिसपर चाण्डाल, रजस्वला स्त्री अथवा पतितोंकी दृष्टि पड़ गयी हो, जिसे गायने सूँघ लिया हो, जिसे कौए अथवा मुर्गेने छू लिया हो, जिसमें कीड़े पड़ गये हों, जो मनुष्योंद्वारा सूँघा अथवा कोढ़ीसे छू गया हो, जिसे रजस्वला, व्यभिचारिणी अथवा रोगिणी स्त्रीने दिया हो, ऐसे अन्नको त्याग देना चाहिये। दूसरेका वस्त्र भी त्याज्य है। बिना बछड़ेकी गायका, ऊँटनीका, एक खुरवाले पशु—घोड़ी आदिका, भेड़का तथा हथिनीका दूध पीनेयोग्य नहीं है—यह मनुका कथन है। मांस-भक्षण न करे। द्विजातियोंके लिये मदिरा किसीको देना, स्वयं उसे पीना, उसका स्पर्श करना तथा उसकी ओर देखना भी मना है—पाप है; उससे सदा दूर ही रहना चाहिये—यही सनातन मर्यादा है। इसलिये पूर्ण प्रयत्न करके सर्वदा मद्यका त्याग करे। जो द्विज मद्य-पान करता है, वह द्विजोचित कर्मोंसे भ्रष्ट हो जाता है; उससे बात भी नहीं करनी चाहिये।[१] अतः ब्राह्मणको सदा यत्नपूर्वक अभक्ष्य एवं अपेय वस्तुओंका परित्याग करना उचित है। यदि त्याग न करके उक्त निषिद्ध वस्तुओंका सेवन करता है तो वह रौरव नरकमें जाता है।[२]

अब मैं परम उत्तम दानधर्मका वर्णन करूँगा। इसे पूर्वकालमें ब्रह्माजीने ब्रह्मवादी ऋषियोंको उपदेश किया था। योग्य पात्रको श्रद्धापूर्वक धन अर्पण करना दान कहलाता है। ओंकारके उच्चारणपूर्वक किया हुआ दान भोग और मोक्षरूपी फल प्रदान करनेवाला होता है। दान तीन प्रकारका बतलाया जाता है—नित्य, नैमित्तिक और काम्य। एक चौथा प्रकार भी है, जिसे 'विमल' नाम दिया गया है। विमल दान सब प्रकारके दानोंमें परमोत्तम है। जिसका अपने ऊपर कोई उपकार न हो, ऐसे ब्राह्मणको फलकी इच्छा न रखकर प्रतिदिन जो कुछ दिया जाता है, वह 'नित्यदान' है। जो पापोंकी शान्तिके लिये विद्वानोंके हाथमें अर्पण किया जाता है, उसे श्रेष्ठ पुरुषोंने 'नैमित्तिक' दान बताया है; वह भी उत्तम दान है। जो सन्तान, विजय, ऐश्वर्य और सुखकी प्राप्तिके उद्देश्यसे दिया जाता है, उसे धर्मका विचार करनेवाले ऋषियोंने 'काम्य' दान कहा है तथा जो भगवान्की प्रसन्नताके लिये धर्मयुक्त चित्तसे ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंको कुछ अर्पण किया जाता है, वह कल्याणमय दान 'विमल' (सात्त्विक) माना गया है।[३]

१-अदेयं वाप्यपेयं च तथैवास्पृश्यमेव वा। द्विजातीनामनालोक्यं नित्यं मद्यमिति स्थितिः॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन मद्यं नित्यं विवर्जयेत्। पीत्वा पतति कर्मभ्यस्त्वसंभाष्यो भवेद् द्विजः॥ (५६। ४३-४४)

२-तस्मात् परिहरेन्नित्यमभक्ष्याणि प्रयत्नतः। अपेयानि च विप्रो वै तथा चेद् याति रौरवम्॥ (५६। ४६)

३-नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिविधं दानमुच्यते। चतुर्थं विमलं प्रोक्तं सर्वदानोत्तमोत्तमम्॥
अहन्यहनि यत्किंचिद् दीयतेऽनुपकारिणे। अनुद्दिश्य फलं तस्माद् ब्राह्मणाय तु नित्यकम्॥

सुयोग्य पात्रके मिलनेपर अपनी शक्तिके अनुसार दान अवश्य करना चाहिये। कुटुम्बको भोजन और वस्त्र देनेके बाद जो बच रहे, उसीका दान करना चाहिये; अन्यथा कुटुम्बका भरण-पोषण किये बिना जो कुछ दिया जाता है, वह दान दानका फल देनेवाला नहीं होता। वेदपाठी, कुलीन, विनीत, तपस्वी, व्रतपरायण एवं दरिद्रको भक्तिपूर्वक दान देना चाहिये।* जो अग्निहोत्री ब्राह्मणको भक्तिपूर्वक पृथ्वीका दान करता है; वह उस परमधामको प्राप्त होता है जहाँ जाकर जीव कभी शोक नहीं करता। जो मनुष्य वेदवेत्ता ब्राह्मणको गन्नोंसे भरी हुई तथा जौ और गेहूँकी खेतीसे लहलहाती हुई भूमि दान करता है, वह फिर इस संसारमें जन्म नहीं लेता। जो दरिद्र ब्राह्मणको गौके चमड़े बराबर भूमि भी प्रदान करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। भूमिदानसे बढ़कर इस संसारमें दूसरा कोई दान नहीं है। केवल अन्नदान उसकी समानता करता है और विद्यादान उससे अधिक है। जो शान्त, पवित्र और धर्मात्मा ब्राह्मणको विधिपूर्वक विद्यादान करता है, वह ब्रह्म-लोकमें प्रतिष्ठित होता है। गृहस्थ ब्राह्मणको अन्नदान करके मनुष्य उत्तम फलको प्राप्त होता है। गृहस्थको अन्न ही देना चाहिये, उसे देकर मानव परमगतिको प्राप्त होता है। वैशाखकी पूर्णिमाको विधिपूर्वक उपवास करके शान्त, पवित्र एवं एकाग्रचित्त होकर काले तिलों और विशेषतः मधुसे सात या पाँच ब्राह्मणोंकी पूजा करे तथा इससे धर्मराज प्रसन्न हों—ऐसी भावना करे। जब मनमें यह भाव स्थिर हो जाता है, उसी क्षण मनुष्यके जीवनभरके किये हुए पाप नष्ट हो जाते हैं। काले मृगचर्मपर तिल, सोना, मधु और घी रखकर जो ब्राह्मणको दान देता है, वह सब पापोंसे तर जाता है। जो विशेषतः वैशाखकी पूर्णिमाको धर्मराजके उद्देश्यसे ब्राह्मणोंको घी और अन्नसहित जलका घड़ा दान करता है, वह भयसे छुटकारा पा जाता है। जो सुवर्ण और तिलसहित जलके पात्रोंसे सात या पाँच ब्राह्मणोंको तृप्त करता है, वह ब्रह्महत्यासे छूट जाता है। माघ मासके कृष्णपक्षमें द्वादशी तिथिको उपवास करे और श्वेत वस्त्र धारण करके काले तिलोंसे अग्निमें हवन करे। तत्पश्चात् एकाग्रचित्त हो ब्राह्मणोंको तिलोंका ही दान करे। इससे द्विज जन्मभरके किये हुए सब पापोंको पार कर जाता है। अमावास्या आनेपर देवदेवेश्वर भगवान् श्रीविष्णुके उद्देश्यसे जो कुछ भी बन पड़े, तपस्वी ब्राह्मणको दान दे और सबका शासन करनेवाले इन्द्रियोंके स्वामी भगवान् श्रीविष्णु प्रसन्न हों, यह भाव रखे। ऐसा करनेसे सात जन्मोंका किया हुआ पाप तत्काल नष्ट हो जाता है।

जो कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तिथिको स्नान करके ब्राह्मणके मुखमें अन्न डालकर इस प्रकार भगवान् शंकरकी आराधना करता है, उसका पुनः इस संसारमें जन्म नहीं होता। विशेषतः कृष्णपक्षकी अष्टमी तिथिको स्नान करके चरण धोने आदिके द्वारा विधिपूर्वक पूजा करनेके पश्चात् धार्मिक ब्राह्मणको 'मुझपर महादेवजी प्रसन्न हों' इस उद्देश्यसे अपना द्रव्य दान करना चाहिये। ऐसा करनेवाला पुरुष सब पापोंसे मुक्त हो परमगतिको प्राप्त होता है। भक्त द्विजोंको उचित है कि वे कृष्णपक्षकी चतुर्दशी, अष्टमी तथा विशेषतः अमावास्याके दिन भगवान् महादेवजीकी पूजा करें। जो एकादशीको निराहार रहकर द्वादशीको ब्राह्मणके मुखमें अन्न दे इस प्रकार पुरुषोत्तमकी अर्चना करता है, वह परमपदको प्राप्त होता है। यह शुक्लपक्षकी द्वादशी भगवान् विष्णुकी तिथि है। इस दिन भगवान् जनार्दनकी प्रयत्नपूर्वक आराधना करनी चाहिये। भगवान् शंकर अथवा श्रीविष्णुके उद्देश्यसे जो कुछ भी पवित्र ब्राह्मणको दान

यत्तु पापोपशान्त्यर्थं दीयते विदुषां करे। नैमित्तिकं तदुद्दिष्टं दानं सद्भिरनुत्तमम्॥
अपत्यविजयैश्वर्यसुखार्थं यत्प्रदीयते। दानं तत्काम्यमाख्यातमृषिभिर्धर्मचिन्तकैः॥
यदीश्वरस्य प्रीत्यर्थं ब्रह्मवित्सु प्रदीयते। चेतसा धर्मयुक्तेन दानं तद् विमलं शिवम्॥ (५७। ४—८)

* श्रोत्रियाय कुलीनाय विनीताय तपस्विने। व्रतस्थाय दरिद्राय प्रदेयं भक्तिपूर्वकम्॥ (५७। ११)

दिया जाता है, उसका अक्षय फल माना गया है। जो मनुष्य जिस देवताकी आराधना करना चाहे, उसके उद्देश्यसे ब्राह्मणोंका ही यत्नपूर्वक पूजन करे, इससे वह उस देवताको संतुष्ट कर लेता है। देवता सदा ब्राह्मणोंके शरीरका आश्रय लेकर ही रहते हैं। ब्राह्मणोंके न मिलनेपर वे कहीं-कहीं प्रतिमा आदिमें भी पूजित होते हैं। प्रतिमा आदिमें बहुत यत्न करनेपर अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है। अतः सदा विशेषतः द्विजोंमें ही देवताओंका पूजन करना उचित है।

ऐश्वर्य चाहनेवाला मनुष्य इन्द्रकी पूजा करे। ब्रह्मतेज और ज्ञान चाहनेवाला पुरुष ब्रह्माजीकी आराधना करे। आरोग्यकी अभिलाषा रखनेवाला पुरुष सूर्यकी, धनकी कामनावाला मनुष्य अग्निकी तथा कर्मोंकी सिद्धि चाहनेवाला पुरुष गणेशजीका पूजन करे। जो भग चाहता हो, वह चन्द्रमाकी, बल चाहनेवाला वायुकी तथा सम्पूर्ण संसार-बन्धनसे छूटनेकी अभिलाषा रखनेवाला मनुष्य यत्नपूर्वक श्रीहरिकी आराधना करे। जो योग, मोक्ष तथा ईश्वरीय ज्ञान—तीनोंकी इच्छा रखता हो, वह यत्न करके देवताओंके स्वामी महादेवजीकी अर्चना करे। जो महान् भोग तथा विविध प्रकारके ज्ञान चाहते हैं, वे भोगी पुरुष श्रीभूतनाथ महेश्वर तथा भगवान् श्रीविष्णुकी भी पूजा करते हैं। जल देनेवाले मनुष्यकी तृप्ति होती है; अतः जलदानका महत्त्व अधिक है। तेल दान करनेवालेको अनुकूल संतान और दीप देनेवालेको उत्तम नेत्रकी प्राप्ति होती है। भूमि-दान करनेवालोंको सब कुछ सुलभ होता है। सुवर्ण-दाताको दीर्घ आयु प्राप्त होती है। गृह-दान करनेवालेको श्रेष्ठ भवन और चाँदी दान करनेवालेको उत्तम रूप मिलता है। वस्त्र-दान करनेवाला चन्द्रमाके लोकमें जाता है। अश्व-दान करनेवालेको उत्तम सवारी मिलती है। अन्न-दाताको अभीष्ट सम्पत्ति और गोदान करनेवालेको सूर्यलोककी प्राप्ति होती है। सवारी और शय्या-दान करनेवाले पुरुषको पत्नी मिलती है। अभय-दान करनेवालेको ऐश्वर्य प्राप्त होता है। धान्य-दाताको सनातन सुख और ब्रह्म (वेद) दान करनेवालेको शाश्वत ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है।

जो वेदविद्याविशिष्ट ब्राह्मणोंको अपनी शक्तिके अनुसार अनाज देता है, वह मृत्युके पश्चात् स्वर्गका सुख भोगता है। गौओंको अन्न देनेसे मनुष्य सब पापोंसे छुटकारा पा जाता है; ईंधन दान करनेसे मनुष्यकी जठराग्नि दीप्त होती है। जो ब्राह्मणोंको फल, मूल, पीनेयोग्य पदार्थ और तरह-तरहके शाक-दान करता है, वह सदा आनन्दित होता है। जो रोगीके रोगको शान्त करनेके लिये उसे औषध, तेल और आहार प्रदान करता है, वह रोगहीन, सुखी और दीर्घायु होता है। जो छत्र और जूते दान करता है, वह नरकोंके अन्तर्गत असिपत्रवन, छूरेकी धारसे युक्त मार्ग तथा तीखे तापसे बच जाता है। संसारमें जो-जो वस्तु अत्यन्त प्रिय मानी गयी है तथा जो मनुष्यके घरमें अपेक्षित है, उसीको यदि अक्षय बनानेकी इच्छा हो तो गुणवान् ब्राह्मणको उसका दान करना चाहिये। अयन-परिवर्तनके दिन, विषुव[१] नामक योग आनेपर, चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणमें तथा संक्रान्ति आदिके अवसरोंपर दिया हुआ दान अक्षय होता है।[२] प्रयाग आदि तीर्थों, पुण्य-मन्दिरों, नदियों तथा वनोंमें भी दान करके मनुष्य अक्षय फलका भागी होता है। प्राणियोंके लिये इस संसारमें दानधर्मसे बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है। इसलिये द्विजातियोंको चाहिये कि वे श्रोत्रिय ब्राह्मणको अवश्य दान दें। ऐश्वर्यकी इच्छा रखनेवाले पुरुष स्वर्गकी प्राप्तिके लिये तथा मुमुक्षु पुरुष पापोंकी शान्तिके लिये प्रतिदिन ब्राह्मणोंको दान देते रहें।

जो पापात्मा मानव गौ, ब्राह्मण, अग्नि और देवताके लिये दी जानेवाली वस्तुको मोहवश रोक देता है, उसे पशु-पक्षियोंकी योनिमें जाना पड़ता है। जो द्रव्यका उपार्जन करके ब्राह्मणों और देवताओंका पूजन नहीं

१-तुला और मेषकी संक्रान्तिको, जब कि दिन और रात बराबर होते हैं, 'विषुव' कहते हैं।

२-अयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः। संक्रान्त्यादिषु कालेषु दत्तं भवति चाक्षयम्॥ (५७। ५३)

करता, उसका सर्वस्व छीनकर राजा उसे राज्यसे बाहर निकाल दे। जो अकालके समय ब्राह्मणोंके मरते रहनेपर भी अन्न आदिका दान नहीं करता, वह ब्राह्मण निन्दित है। ऐसे ब्राह्मणसे दान नहीं लेना चाहिये तथा उसके साथ निवास भी नहीं करना चाहिये। राजाको उचित है वह उसके शरीरमें कोई चिह्न अंकित करके उसे अपने राज्यसे बाहर कर दे। द्विजोत्तमगण! जो ब्राह्मण स्वाध्यायशील, विद्वान्, जितेन्द्रिय तथा सत्य और संयमसे युक्त हों, उन्हें दान करना चाहिये। जो सम्मानपूर्वक देता और सम्मानपूर्वक ग्रहण करता है, वे दोनों स्वर्गमें जाते हैं; इसके विपरीत आचरण करनेपर उन्हें नरकमें गिरना पड़ता है, यदि अविद्वान् ब्राह्मण चाँदी, सोना, गौ, घोड़ा, पृथिवी और तिल आदिका दान ग्रहण करे तो सूखे ईंधनकी भाँति भस्म हो जाता है। श्रेष्ठ ब्राह्मणको उचित है कि वह उत्तम ब्राह्मणोंसे धन लेनेकी इच्छा रखे। क्षत्रिय और वैश्योंसे भी वह धन ले सकता है; किन्तु शूद्रसे तो वह किसी प्रकार धन न ले।

अपनी जीविका-वृत्तिको कम करनेकी ही इच्छा रखे, धन बढ़ानेकी चेष्टा न करे; धनके लोभमें फँसा हुआ ब्राह्मण ब्राह्मणत्वसे ही भ्रष्ट हो जाता है। सम्पूर्ण वेदोंको पढ़कर और सब प्रकारके यज्ञोंका पुण्य पाकर भी ब्राह्मण उस गतिको नहीं पा सकता, जिसे वह संतोषसे पा लेता है।[1] दान लेनेकी रुचि न रखे। जीवन-निर्वाहके लिये जितना आवश्यक है, उससे अधिक धन ग्रहण करनेवाला ब्राह्मण अधोगतिको प्राप्त होता है। जो संतोष नहीं धारण करता, वह स्वर्गलोकको पानेका अधिकारी नहीं है। वह लोभवश प्राणियोंको उद्विग्न करता है; चोरकी जैसी स्थिति है, वैसी ही उसकी भी है।[2] गुरुजनों और भृत्यजनोंके उद्धारकी इच्छा रखनेवाला पुरुष देवताओं और अतिथियोंका तर्पण करनेके लिये सब ओरसे प्रतिग्रह ले; किन्तु उसे अपनी तृप्तिका साधन न बनाये—स्वयं उसका उपभोग न करे। इस प्रकार गृहस्थ पुरुष मनको वशमें करके देवताओं और अतिथियोंका पूजन करता हुआ जितेन्द्रियभावसे रहे तो वह परमपदको प्राप्त होता है।

तदनन्तर गृहस्थ पुरुषको उचित है कि पत्नीको पुत्रोंके हवाले कर दे और स्वयं वनमें जाकर तत्त्वका ज्ञान प्राप्त करके सदा एकाग्रचित्त हो उदासीन भावसे अकेला विचरे। द्विजवरो! यह गृहस्थोंका धर्म है, जिसका मैंने आपलोगोंसे वर्णन किया है। इसे जानकर नियमपूर्वक आचरणमें लाये और दूसरे द्विजोंसे भी इसका अनुष्ठान कराये। जो इस प्रकार गृहस्थधर्मके द्वारा निरन्तर एक, अनादि देव ईश्वरका पूजन करता है, वह सम्पूर्ण भूतयोनियोंका अतिक्रमण करके परमात्माको प्राप्त होता है, फिर संसारमें जन्म नहीं लेता।

वानप्रस्थ-आश्रमके धर्मका वर्णन

व्यासजी कहते हैं—द्विजवरो! इस प्रकार आयुके दो भाग व्यतीत होनेतक गृहस्थ-आश्रममें रहकर पत्नी तथा अग्निसहित वानप्रस्थ-आश्रममें प्रवेश करे अथवा पत्नीका भार पुत्रोंपर रखकर या पुत्रके पुत्रको देख लेनेके पश्चात् जरा-जीर्ण कलेवरको लेकर वनके लिये प्रस्थान करे। उत्तरायणका श्रेष्ठ काल आनेपर शुक्लपक्षके पूर्वाह्ण-भागमें वनमें जाय और वहाँ नियमोंका पालन करते हुए एकाग्रचित्त होकर तपस्या करे। प्रतिदिन फल-मूलका पवित्र आहार ग्रहण करे। जैसा अपना आहार हो, उसीसे देवताओं और पितरोंका पूजन किया करे। नित्यप्रति अतिथि-सत्कार करता रहे। स्नान करके देवताओंकी पूजा करे। घरसे लाकर एकाग्रचित्त हो आठ

१-वेदानधीत्य सकलान् यज्ञांश्चावाप्य सर्वशः। न तां गतिमवाप्नोति संतोषाद् यामवाप्नुयात्॥ (५७। ७१)

२-यस्तु याति न संतोषं न स स्वर्गस्य भाजनम्। उद्वेजयति भूतानि यथा चौरस्तथैव सः॥ (५७। ७३)

ग्रास भोजन करे। सदा जटा धारण किये रहे। नख और रोएँ न कटाये। सर्वथा स्वाध्याय किया करे। अन्य समयमें मौन रहे। अग्निहोत्र करता रहे तथा अपने-आप उत्पन्न हुए भाँति-भाँतिके पदार्थों और शाक या मूल-फलके द्वारा पंचमहायज्ञोंका अनुष्ठान करे। सदा फटा-पुराना वस्त्र पहने। तीनों समय स्नान करे। पवित्रतासे रहे। प्रतिग्रह न लेकर सम्पूर्ण प्राणियोंपर दया करता रहे।

द्विजको चाहिये कि वह नियमपूर्वक दर्श एवं पौर्णमास नामक यज्ञोंका अनुष्ठान करे। ऋत्विष्टि, आग्रयण तथा चातुर्मास्य व्रतोंका भी आचरण करे। क्रमशः उत्तरायण और दक्षिणायन यज्ञ करे। वसन्त और शरद्-ऋतुओंमें उत्पन्न हुए पवित्र पदार्थोंको स्वयं लाकर उनके द्वारा पुरोडाश और चरु बनाये और विधिपूर्वक पृथक्-पृथक् देवताओंको अर्पण करे। परम पवित्र जंगली अन्नद्वारा निर्मित हविष्यका देवताओंके निमित्त हवन करके स्वयं भी यज्ञ-शेष अन्नका भोजन करे। मद्य-मांसका त्याग करे। जमीनपर उगा हुआ तृण, घास तथा बहेड़ेके फल न खाय। हलसे जोते हुए खेतका अन्न किसीके देनेपर भी न खाय, कष्टमें पड़नेपर भी ग्रामीण फूलों और फलोंका उपभोग न करे। श्रौत-विधिके अनुसार सदा अग्निदेवकी उपासना—अग्निहोत्र करता रहे। किसी भी प्राणीसे द्रोह न करे। निर्द्वन्द्व और निर्भय रहे। रातमें कुछ भी न खाय, उस समय केवल परमात्माके ध्यानमें संलग्न रहे। इन्द्रियोंको वशमें करके क्रोधको काबूमें रखे। तत्त्वज्ञानका चिन्तन करे। सदा ब्रह्मचर्यका पालन करता रहे। अपनी पत्नीसे भी संसर्ग न करे। जो पत्नीके साथ वनमें जाकर कामनापूर्वक मैथुन करता है, उसका वानप्रस्थ-व्रत नष्ट हो जाता है तथा वह द्विज प्रायश्चित्तका भागी होता है। वहाँ उससे जो बच्चा पैदा होता है, वह द्विजातियोंके स्पर्श करनेयोग्य नहीं रहता। उस बालकका वेदाध्ययनमें अधिकार नहीं होता। यही बात उसके वंशमें होनेवाले अन्य लोगोंके लिये भी लागू होती है। वानप्रस्थीको सदा भूमिपर शयन करना और गायत्रीके जपमें तत्पर रहना चाहिये। वह सब भूतोंकी रक्षामें तत्पर रहे तथा सत्-पुरुषोंको सदा अन्नका भाग देता रहे। उसे निन्दा, मिथ्या अपवाद, अधिक निद्रा और आलस्यका परित्याग करना चाहिये। वह एकमात्र अग्निका सेवन करे। कोई घर बनाकर न रहे। भूमिपर जल छिड़ककर बैठे। जितेन्द्रिय होकर मृगोंके साथ विचरे और उन्हींके साथ निवास करे। एकाग्रचित्त होकर पत्थर या कंकड़पर सो रहे। वानप्रस्थ-आश्रमके नियममें स्थित होकर केवल फूल, फल और मूलके द्वारा सदा जीवन-निर्वाह करे। वह भी तोड़कर नहीं; जो स्वभावतः पककर अपने-आप झड़ गये हों, उन्हींका उपभोग करे। पृथ्वीपर लोटता रहे अथवा पंजोंके बलपर दिनभर खड़ा रहे। कभी धैर्यका त्याग न करे।

गर्मीमें पंचाग्निका सेवन करे। वर्षाके समय खुले मैदानमें रहे। हेमन्त-ऋतुमें भीगा वस्त्र पहने रहे। इस प्रकार क्रमशः अपनी तपस्याको बढ़ाता रहे। तीनों समय स्नान करके देवताओं और पितरोंका तर्पण करे। एक पैरसे खड़ा रहे अथवा सदा सूर्यकी किरणोंका पान करे। पंचाग्निके धूम, गर्मी अथवा सोमरसका पान करे। शुक्लपक्षमें जल और कृष्णपक्षमें गोबरका पान करे अथवा सूखे पत्ते चबाकर रहे अथवा और किसी क्लेशमय वृत्तिसे सदा जीवन-निर्वाह करे। योगाभ्यासमें तत्पर रहे। प्रतिदिन रुद्राष्टाध्यायीका पाठ किया करे। अथर्ववेदका अध्ययन और वेदान्तका अभ्यास करे। आलस्य छोड़कर सदा यम-नियमोंका सेवन करे। काला मृगचर्म और उत्तरीय वस्त्र धारण करे। श्वेत यज्ञोपवीत पहने। अग्नियोंको अपने आत्मामें आरोपित करके ध्यानपरायण हो जाय अथवा अग्नि और गृहसे रहित हो मुनिभावसे रहते हुए मोक्षपरायण हो जाय। यात्राके समय तपस्वी ब्राह्मणोंसे ही भिक्षा ग्रहण करे अथवा वनमें निवास करनेवाले अन्य गृहस्थ द्विजोंसे भी वह भिक्षा ले सकता है। यह भी सम्भव न हो तो वह गाँवसे ही आठ ग्रास लाकर भोजन करे और सदा वनमें ही रहे। दोनेमें, हाथमें अथवा टुकड़ेमें लेकर खाय। आत्मज्ञानके लिये नाना प्रकारके उपनिषदोंका अभ्यास

करे। किसी विशेष मन्त्र, गायत्री-मन्त्र तथा रुद्राष्टाध्यायीका जप करता रहे अथवा वह महाप्रस्थान आमरण यात्रा आरम्भ करके निरन्तर उपवास करे अथवा ब्रह्मार्पण-विधिमें स्थित होकर और कोई ऐसा ही कार्य करे।

संन्यास-आश्रमके धर्मका वर्णन

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार आयुके तीसरे भागको वानप्रस्थ-आश्रममें व्यतीत करके क्रमशः चतुर्थ भागको संन्यासके द्वारा बिताये। उस समय द्विजको उचित है कि वह अग्नियोंको अपनेमें स्थापित करके परिव्राजक—संन्यासी हो जाय और योगाभ्यासमें तत्पर, शान्त तथा ब्रह्मविद्या-परायण रहे। जब मनमें सब वस्तुओंकी ओरसे वैराग्य हो जाय, उस समय संन्यास लेनेकी इच्छा करे। इसके विपरीत आचरण करनेपर वह गिर जाता है। प्राजापत्य अथवा आग्नेयी इष्टिका अनुष्ठान करके मनकी वासना धुल जानेपर जितेन्द्रियभावसे ब्रह्माश्रम—संन्यासमें प्रवेश करे। संन्यासी तीन प्रकारके बताये गये हैं—कोई तो ज्ञानसंन्यासी होते हैं, कुछ वेदसंन्यासी होते हैं तथा कुछ दूसरे कर्मसंन्यासी होते हैं। जो सब ओरसे मुक्त, निर्द्वन्द्व और निर्भय होकर आत्मामें ही स्थित रहता है, उसे 'ज्ञानसंन्यासी' कहा जाता है। जो कामना और परिग्रहका त्याग करके मुक्तिकी इच्छासे जितेन्द्रिय होकर सदा वेदका ही अभ्यास करता रहता है, वह 'वेदसंन्यासी' कहलाता है। जो द्विज अग्निको अपनेमें लीन करके स्वयं ब्रह्ममें समर्पित हो जाता है, उसे महायज्ञपरायण 'कर्मसंन्यासी' जानना चाहिये।* इन तीनोंमें ज्ञानी सबसे श्रेष्ठ माना गया है। उस विद्वान्‌के लिये कोई कर्तव्य या आश्रम-चिह्न आवश्यक नहीं रहता। संन्यासीको ममता और भयसे रहित, शान्त एवं निर्द्वन्द्व होना चाहिये। वह पत्ता खाकर रहे, पुराना कौपीन पहने अथवा नंगा रहे। उसे ज्ञानपरायण होना चाहिये। वह ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए आहारको जीते और भोजनके लिये बस्तीसे अन्न माँग लाया करे। वह अध्यात्मतत्त्वके चिन्तनमें अनुरक्त हो सब ओरसे निरपेक्ष रहे और भोग्य वस्तुओंका परित्याग कर दे। केवल आत्माको ही सहायक बनाकर आत्मसुखके लिये इस संसारमें विचरता रहे। जीवन या मृत्यु—किसीका अभिनन्दन न करे। जैसे सेवक स्वामीके आदेशकी प्रतीक्षा करता रहता है, उसी प्रकार संन्यासी कालकी ही प्रतीक्षा करे। उसे कभी अध्ययन, प्रवचन अथवा श्रवण नहीं करना चाहिये।

इस प्रकार ज्ञानपरायण योगी ब्रह्मभावका अधिकारी होता है। विद्वान् संन्यासी एक वस्त्र धारण करे अथवा केवल कौपीन धारण किये रहे। सिर मुँड़ाये रहे या बाल बढ़ाये रखे। त्रिदण्ड धारण करे, किसी वस्तुका संग्रह न करे। गेरुए रंगका वस्त्र पहने और सदा ध्यानयोगमें तत्पर रहे। गाँवके समीप किसी वृक्षके नीचे अथवा देवालयमें रहे। शत्रु और मित्रमें तथा मान और अपमानमें समानभाव रखे। सदा भिक्षासे ही जीवन-निर्वाह करे। कभी एक स्थानके अन्नका भोजन न करे। जो संन्यासी मोहवश या और किसी कारणसे एक जगहका अन्न खाने लगता है, धर्मशास्त्रोंमें उसके उद्धारका कोई उपाय नहीं देखा गया है। संन्यासीका चित्त राग-द्वेषसे रहित होना चाहिये। उसे मिट्टीके ढेले, पत्थर और सुवर्णको एक-सा समझना चाहिये तथा प्राणियोंकी हिंसासे दूर रहना चाहिये। वह मौनभावका

* ज्ञानसंन्यासिनः केचिद् वेदसंन्यासिनोऽपरे। कर्मसंन्यासिनस्त्वन्ये त्रिविधाः परिकीर्तिताः॥
यः सर्वत्र विनिर्मुक्तो निर्द्वन्द्वश्चैव निर्भयः। प्रोच्यते ज्ञानसंन्यासी आत्मन्येव व्यवस्थितः॥
वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं निराशीर्निष्परिग्रहः। प्रोच्यते वेदसंन्यासी मुमुक्षुर्विजितेन्द्रियः॥
यस्त्वग्निमात्मसात् कृत्वा ब्रह्मार्पणपरो द्विजः। ज्ञेयः स कर्मसंन्यासी महायज्ञपरायणः॥ (५९। ५—८)

आश्रय ले सबसे नि:स्पृह रहे। संन्यासी भलीभाँति देख-भालकर आगे पैर रखे। वस्त्रसे छानकर जल पिये। सत्यसे पवित्र हुई वाणी बोले तथा मनसे जो पवित्र जान पड़े, उसीका आचरण करे।[1]

संन्यासीको उचित है कि वह वर्षाकालके सिवा और किसी समय एक स्थानपर निवास न करे। स्नान करके शौचाचारसे सम्पन्न रहे। सदा हाथमें कमण्डलु लिये रहे। ब्रह्मचर्य-पालनमें संलग्न होकर सदा वनमें ही निवास करे। मोक्षसम्बन्धी शास्त्रोंके विचारमें तत्पर रहे। ब्रह्मसूत्रका ज्ञान रखे और जितेन्द्रियभावसे रहे। संन्यासी यदि दम्भ एवं अहंकारसे मुक्त, निन्दा और चुगलीसे रहित तथा आत्मज्ञानके अनुकूल गुणोंसे युक्त हो तो वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है। यति विधिपूर्वक स्नान और आचमन करके पवित्र हो देवालय आदिमें प्रणव नामक सनातन देवताका निरन्तर जप करता रहे। वह यज्ञोपवीतधारी एवं शान्त-चित्त होकर हाथमें कुश धारण करके धुला हुआ गेरुआ वस्त्र पहने, सारे शरीरमें भस्म रमाये, वेदान्तप्रतिपादित अधियज्ञ, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक ब्रह्मका एकाग्रभावसे चिन्तन करे। जो सदा वेदका ही अभ्यास करता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है। अहिंसा, सत्य, चोरीका अभाव, ब्रह्मचर्य, उत्तम तप, क्षमा, दया और संतोष—ये संन्यासीके विशेष व्रत हैं। वह प्रतिदिन स्वाध्याय तथा दोनों संध्याओंके समय गायत्रीका जप करे। एकान्तमें बैठकर निरन्तर परमेश्वरका ध्यान करता रहे। सदा एक स्थानके अन्नका त्याग करे; साथ ही काम, क्रोध तथा संग्रहको भी त्याग दे। वह एक या दो वस्त्र पहनकर शिखा और यज्ञोपवीत धारण किये हाथमें कमण्डलु लिये रहे। इस प्रकार त्रिदण्ड धारण करनेवाला विद्वान् संन्यासी परमपदको प्राप्त होता है।

संन्यासीके नियम

व्यासजी कहते हैं—द्विजवरो! इस प्रकार आश्रममें निष्ठा रखनेवाले तथा नियमित जीवन बितानेवाले संन्यासियोंके लिये फल-मूल अथवा भिक्षासे जीवन-निर्वाहकी बात कही गयी। उसे एक ही समय भिक्षा माँगनी चाहिये। अधिक भिक्षाके संग्रहमें आसक्त नहीं होना चाहिये; क्योंकि भिक्षामें आसक्त होनेवाला संन्यासी विषयोंमें भी आसक्त हो जाता है। सात घरोंतक भिक्षाके लिये जाय। यदि उनमें न मिले तो फिर न माँगे। भिक्षुको चाहिये कि वह एक बार भिक्षाका नाम लेकर चुप हो जाय और नीचे मुँह किये एक द्वारपर उतनी ही देरतक खड़ा रहे, जितनी देरमें एक गाय दुही जाती है। भिक्षा मिल जानेपर हाथ-पैर धोकर विधिपूर्वक आचमन करे और पवित्र हो मौन-भावसे भोजन करे।[2] पहले वह अन्न सूर्यको दिखा ले; फिर पूर्वाभिमुख हो पाँच बार प्राणाग्निहोत्र करके अर्थात् **'प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा, उदानाय स्वाहा, समानाय स्वाहा,'**—इन मन्त्रोंसे पाँच ग्रास अन्न मुँहमें डालकर एकाग्रचित्त हो आठ ग्रास अन्न भोजन करे। भोजनके पश्चात् आचमन करके भगवान् ब्रह्माजी एवं परमेश्वरका ध्यान करे। तूँबी, लकड़ी, मिट्टी तथा बाँस—इन्हीं चारोंके बने हुए पात्र संन्यासीके उपयोगमें आते हैं, ऐसा प्रजापति मनुका कथन है। रातके पहले पहरमें मध्यरात्रिमें तथा रातके पिछले पहरमें विश्वकी उत्पत्तिके कारण एवं विश्व-नामसे प्रसिद्ध ईश्वरको अपने हृदय-कमलमें स्थापित करके ध्यान-सम्बन्धी विशेष श्लोकों एवं मन्त्रोंके द्वारा उनका इस प्रकार

१-दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत्। सत्यपूतां वदेद्वाणीं मन:पूतं समाचरेत्॥ (५९। १९)

२-सप्तागारं चरेद् भैक्ष्यमलाभे न पुनश्चरेत्। गोदोहमात्रं तिष्ठेत कालं भिक्षुरधोमुख:॥
भिक्षेत्युक्त्वा सकृत्तूष्णीमश्नीयाद् वाग्यत: शुचि:। प्रक्षाल्य पाणिपादं च समाचम्य यथाविधि॥ (६०। ३-४)

चिन्तन करे। परमेश्वर सम्पूर्ण भूतोंके आत्मा, अज्ञानमय अन्धकारसे परे विराजमान, सबके आधार, अव्यक्त-स्वरूप, आनन्दमय, ज्योतिर्मय, अविनाशी, प्रकृति और पुरुषसे अतीत, आकाशकी भाँति निर्लेप, परम कल्याणमय, समस्त भावोंकी चरम सीमा, सबका शासन करनेवाले तथा ब्रह्मरूप हैं।

तदनन्तर प्रणव-जपके पश्चात् आत्माको आकाश-स्वरूप परमात्मामें लीन करके उनका इस प्रकार ध्यान करे—'परमात्मदेव सबके ईश्वर, हृदयाकाशके बीच विराजमान, समस्त भावोंकी उत्पत्तिके कारण, आनन्दके एकमात्र आधार तथा पुराणपुरुष श्रीविष्णु हैं। इस प्रकार ध्यान करनेवाला पुरुष भव-बन्धनसे मुक्त हो जाता है। जो समस्त प्राणियोंका जीवन है, जहाँ जगत्का लय होता है तथा मुमुक्षु पुरुष जिसे ब्रह्मका सूक्ष्म आनन्द समझते हैं, उस परम व्योमके भीतर केवल—अद्वितीय ज्ञानस्वरूप ब्रह्म स्थित है, जो अनन्त, सत्य एवं ईश्वररूप है।' इस प्रकार ध्यान करके मौन हो जाय। यह संन्यासियोंके लिये गोपनीयसे भी अत्यन्त गोपनीय ज्ञानका वर्णन किया गया। जो सदा इस ज्ञानमें स्थित रहता है, वह इसके द्वारा ईश्वरीय योगका अनुभव करता है। इसलिये संन्यासीको उचित है कि वह सदा ज्ञानके अभ्यासमें तत्पर और आत्मविद्यापरायण होकर ज्ञानस्वरूप ब्रह्मका चिन्तन करे, जिससे भव-बन्धनसे छुटकारा मिले।

पहले आत्माको सब (दृश्य-पदार्थों)-से पृथक्, केवल—अद्वितीय, आनन्दमय, अक्षर—अविनाशी एवं ज्ञानस्वरूप जान ले; इसके बाद उसका ध्यान करे। जिनसे सम्पूर्ण भूतोंकी उत्पत्ति होती है, जिन्हें जानकर मनुष्य पुनः इस संसारमें जन्म नहीं लेता, वे परमात्मा इसलिये ईश्वर कहलाते हैं कि वे सबसे परे स्थित हैं—सबके ऊपर अध्यक्षरूपसे विराजमान हैं। उन्हींके भीतर उस शाश्वत, कल्याणमय अविनाशी ब्रह्मका ज्ञान होता है, जो इस दृश्य जगत्के रूपमें प्रत्यक्ष और स्वस्वरूपसे परोक्ष हैं, वे ही महेश्वर देव हैं। संन्यासियोंके जो व्रत बताये गये हैं, वैसे ही उनके भी व्रत हैं।[1] उन व्रतोंमेंसे एक-एकका उल्लंघन करनेपर भी प्रायश्चित्त करना पड़ता है।

संन्यासी यदि कामनापूर्वक स्त्रीके पास चला जाय तो एकाग्रचित्त होकर प्रायश्चित्त करे। उसे पवित्र होकर प्राणायामपूर्वक सांतपन[2]-व्रत करना चाहिये। सांतपनके बाद चित्तको एकाग्र करके शौच-संतोषादि नियमोंका पालन करते हुए वह कृच्छ्रव्रतका[3] अनुष्ठान करे। तदनन्तर आश्रममें आकर पुनः आलस्यरहित हो भिक्षुरूपसे विचरता रहे। असत्यका प्रयोग कभी नहीं करना चाहिये; क्योंकि यह झूठका प्रसंग बड़ा भयंकर होता है। धर्मकी अभिलाषा रखनेवाला संन्यासी यदि झूठ बोल दे तो उसे उसके प्रायश्चित्तके लिये एक रात

१-ओंकारान्तेऽथ चात्मानं समाप्य परमात्मनि। आकाशे देवमीशानं ध्यायेदाकाशमध्यगम्॥
कारणं सर्वभावानामानन्दैकसमाश्रयम्। पुराणपुरुषं विष्णुं ध्यायन्मुच्येत बन्धनात्॥
जीवनं सर्वभूतानां यत्र लोकः प्रलीयते। आनन्दं ब्रह्मणः सूक्ष्मं यत्पश्यन्ति मुमुक्षवः॥
तन्मध्ये निहितं ब्रह्म केवलं ज्ञानलक्षणम्। अनन्तं सत्यमीशानं विचिन्त्यासीत वाग्यतः॥
गुह्याद् गुह्यतमं ज्ञानं यतीनामेतदीरितम्। योऽत्र तिष्ठेत्सदानेन सोऽश्नुते योगमैश्वरम्॥
तस्माज्ज्ञानरतो नित्यमात्मविद्यापरायणः। ज्ञानं समभ्यसेद् ब्रह्म येन मुच्येत बन्धनात्॥
मत्वा पृथक् तमात्मानं सर्वस्मादेव केवलम्। आनन्दमक्षरं ज्ञानं ध्यायेत् च ततः परम्॥
यस्माद् भवन्ति भूतानि यज्ज्ञात्वा नेह जायते।
स तस्मादीश्वरो देवः परस्ताद् योऽधितिष्ठति। यदन्तरे तद्गमनं शाश्वतं शिवमव्ययम्॥
य इदं स्वपरोक्षस्तु स देवः स्यान्महेश्वरः। व्रतानि यानि भिक्षूणां तथैवास्य व्रतानि च॥ (६०। ११-१२, १४—२०)

२-गोमूत्र, गोबर, गायका दूध, गायका दही, गायका घी और कुशका जल—इन सबको मिलाकर पी ले तथा उस दिन और कुछ भी न खाय; फिर दूसरे दिन चौबीस घंटे उपवास करे। यह दो दिनका सांतपन-व्रत होता है। ३-यदि उपर्युक्त छः वस्तुओंमेंसे एक-एकको एक-एक दिन खाकर रहे और सातवें दिन उपवास करे तो यह कृच्छ्र या महासांतपन-व्रत कहलाता है।

उपवास और सौ प्राणायाम करने चाहिये।

बहुत बड़ी आपत्तिमें पड़नेपर भी संन्यासीको किसी दूसरेके यहाँसे चोरी नहीं करनी चाहिये। स्मृतियोंका कथन है कि चोरीसे बढ़कर दूसरा कोई अधर्म नहीं है[१] हिंसा, तृष्णा और याचना—ये आत्मज्ञानका नाश करनेवाली हैं। जिसे धन कहते हैं, वह मनुष्योंका बाह्य प्राण ही है। जो जिसके धनका अपहरण करता है, वह मानो उसके प्राण ही हर लेता है। ऐसा करके दुष्टात्मा पुरुष आचारभ्रष्ट हो अपने व्रतसे गिर जाता है। यदि संन्यासी अकस्मात् किसी जीवकी हिंसा कर बैठे तो कृच्छ्र, अतिकृच्छ्र अथवा चान्द्रायणव्रतका अनुष्ठान करे।[२] यदि भिक्षुका उसकी अपनी इन्द्रियोंकी दुर्बलताके कारण किसी स्त्रीको देखकर वीर्यपात हो जाय तो उसे सोलह प्राणायाम करने चाहिये। विद्वानो! दिनमें वीर्यपात होनेपर वह तीन रातका व्रत और सौ प्राणायाम करे। यदि वह एक स्थानका अन्न, मधु, नवीन श्राद्धका अन्न तथा खाली नमक खा ले तो उसकी शुद्धिके लिये प्राजापत्यव्रत[३] बताया गया है।

सदा ध्यानमें स्थित रहनेवाले पुरुषके सारे पातक नष्ट हो जाते हैं। इसलिये महेश्वरका चिन्तन करते हुए सदा उन्हींके ध्यानमें संलग्न रहना चाहिये। जो परम ज्योतिःस्वरूप ब्रह्म, सबका आश्रय, अक्षर, अव्यय, अन्तरात्मा तथा परब्रह्म हैं, उन्हींको भगवान् महेश्वर समझना चाहिये। ये महादेवजी केवल परम शिवरूप हैं। ये ही अक्षर, अद्वैत एवं सनातन परमपद हैं। वे देव स्वप्रकाशस्वरूप हैं, ज्ञान उनकी संज्ञा है, वे ही आत्मयोगरूप तत्त्व हैं, उनमें सबकी महिमा—प्रतिष्ठा होती है, इसलिये उन्हें महादेव कहा गया है।[४] जो महादेवजीके सिवा दूसरे किसी देवताको नहीं देखता, अपने आत्मस्वरूप उन महादेवजीका ही अनुसरण करता है, वह परमपदको प्राप्त होता है। जो अपनेको उन परमेश्वरसे भिन्न मानते हैं, वे उन महादेवजीका दर्शन नहीं पाते; उनका परिश्रम व्यर्थ हो जाता है। एकमात्र परब्रह्म ही जानने-योग्य अविनाशी तत्त्व हैं, वे ही देवाधिदेव महादेवजी हैं। इस बातको जान लेनेपर मनुष्य कभी बन्धनमें नहीं पड़ता। इसलिये संन्यासी अपने मनको वशमें करके नियमपूर्वक साधनमें लगा रहे तथा शान्तभावसे महादेवजीके शरणागत होकर ज्ञानयोगमें तत्पर रहे।[५]

१-परमापद्गतेनापि न कार्यं स्तेयमन्यतः। स्तेयादभ्यधिकः कश्चिन्नास्त्यधर्म इति स्मृतिः॥ (६०। २५)

२-कृच्छ्रव्रत पहले बताया जा चुका है। तीन दिन सबेरे, तीन दिन शामको और तीन दिन बिना माँगे एक-एक ग्रास अन्न खाय और अन्तमें तीन दिनोंतक उपवास करे—यह अतिकृच्छ्रव्रत है। चान्द्रायणव्रत कई प्रकारका होता है; एक वृद्धि-क्रमसे किया जाता है और दूसरा ह्रास-क्रमसे। प्रतिदिन सायं, प्रातः और मध्याह्नकालमें स्नान करते हुए पूर्णिमाको पंद्रह ग्रास भोजन करे; तदनन्तर कृष्णपक्षकी प्रतिपदासे एक-एक ग्रास घटाये। चतुर्दशीको एक ग्रास भोजन करके अमावास्याको उपवास करे। फिर शुक्लपक्षकी प्रतिपदाको एक ग्रास भोजन करके प्रतिदिन एक-एक ग्रास बढ़ाता रहे। पूर्णिमाको पंद्रह ग्रास खाकर व्रत पूर्ण किया जाता है। यह एक प्रकार है। दूसरा अमावास्याको उपवास करके आरम्भ किया जाता है; इसमें पहले एक-एक ग्रास बढ़ाया जाता है, फिर पूर्णिमाके बाद एक-एक ग्रास घटाते हुए अमावास्याको उपवास करके समाप्त किया जाता है।

३-तीन दिन सबेरे, तीन दिन शामको और तीन दिन अयाचित अन्न भोजन करके अन्तमें तीन दिनोंतक लगातार उपवास करे; यह प्राजापत्यव्रत है।

४-ध्याननिष्ठस्य सततं नश्यते सर्वपातकम्। तस्मान्महेश्वरं ध्यात्वा तस्य ध्यानपरो भवेत्॥
यद् ब्रह्म परमं ज्योतिः प्रतिष्ठाक्षरमव्ययम्। योऽन्तरात्मा परं ब्रह्म स विज्ञेयो महेश्वरः॥
एष देवो महादेवः केवलः परमः शिवः। तदेवाक्षरमद्वैतं सदानित्यं परं पदम्॥
तस्मिन्महीयते देवे स्वधाम्नि ज्ञानसंज्ञिते। आत्मयोगात्मके तत्त्वे महादेवस्ततः स्मृतः॥ (६०। ३२—३५)

५-एकमेव परं ब्रह्म विज्ञेयं तत्त्वमव्ययम्। स देवस्तु महादेवो नैतद् विज्ञाय बध्यते॥
तस्माद् यतेत नियतं यतिः संयतमानसः। ज्ञानयोगरतः शान्तो महादेवपरायणः॥ (६०। ३८-३९)

ब्राह्मणो! इस प्रकार मैंने आपलोगोंसे संन्यासियोंके कल्याणमय आश्रम-धर्मका वर्णन किया। इसे मुनिवर भगवान् ब्रह्माजीने पूर्वकालमें उपदेश किया था। संन्यास-धर्मसे सम्बन्ध रखनेवाला यह परम उत्तम कल्याणमय ज्ञान साक्षात् स्वयम्भू ब्रह्माजीका बताया हुआ है; अतः पुत्र, शिष्य तथा योगियोंके सिवा दूसरे किसीको इसका उपदेश नहीं करना चाहिये। द्विजवरो! इस प्रकार मैंने संन्यासियोंके नियमोंका विधान बताया है; यह देवेश्वर ब्रह्माजीके संतोषका एकमात्र साधन है। जो मन लगाकर प्रतिदिन इन नियमोंका पालन करते हैं, उनका जन्म अथवा मरण नहीं होता।

भगवद्भक्तिकी प्रशंसा, स्त्री-संगकी निन्दा, भजनकी महिमा, ब्राह्मण, पुराण और गंगाकी महत्ता, जन्म आदिके दुःख तथा हरिभजनकी आवश्यकता

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो! पूर्वकालमें अमित तेजस्वी व्यासजीने इस प्रकार आश्रम-धर्मका वर्णन किया था। इतना उपदेश करनेके पश्चात् उन सत्यवती-नन्दन भगवान् व्यासने समस्त मुनियोंको भलीभाँति आश्वासन दिया और जैसे आये थे, वैसे ही वे चले गये। वही यह वर्णाश्रम-धर्मकी विधि है, जिसका मैंने आपलोगोंसे वर्णन किया है। इस प्रकार वर्ण-धर्म तथा आश्रम-धर्मका पालन करके ही मनुष्य भगवान् विष्णुका प्रिय होता है, अन्यथा नहीं। द्विजवरो! अब इस विषयमें मैं आपलोगोंको रहस्यकी बात बताता हूँ, सुनिये। यहाँ वर्ण और आश्रमसे सम्बन्ध रखनेवाले जो धर्म बताये गये हैं, वे सब हरि-भक्तिकी एक कलाके अंशके अंशकी भी समानता नहीं कर सकते। कलियुगमें मनुष्योंके लिये इस मर्त्यलोकमें एकमात्र हरि-भक्ति ही साध्य है। जो कलियुगमें भगवान् नारायणका पूजन करता है, वह धर्मके फलका भागी होता है। अनेकों नामोंद्वारा जिन्हें पुकारा जाता है तथा जो इन्द्रियोंके नियन्ता हैं, उन परम शान्त सनातन भगवान् दामोदरको हृदयमें स्थापित करके मनुष्य तीनों लोकोंपर विजय पा जाता है। जो द्विज हरिभक्तिरूपी अमृतका पान कर लेता है, वह कलिकालरूपी साँपके डँसनेसे फैले हुए पापरूपी भयंकर विषसे आत्मरक्षा करनेके योग्य हो जाता है। यदि मनुष्योंने श्रीहरिके नामका आश्रय ग्रहण कर लिया तो उन्हें अन्य मन्त्रोंके जपकी क्या आवश्यकता है।* जो अपने मस्तकपर श्रीविष्णुका चरणोदक धारण करता है, उसे स्नानसे क्या लेना है। जिसने अपने हृदयमें श्रीहरिके चरणकमलोंको स्थापित कर लिया है, उसको यज्ञसे क्या प्रयोजन है। जिन्होंने सभामें भगवान्‌की लीलाओंका वर्णन किया है, उन्हें दानकी क्या आवश्यकता है। जो श्रीहरिके गुणोंका श्रवण करके बारंबार हर्षित होता है, भगवान् श्रीकृष्णमें चित्त लगाये रखनेवाले उस भक्त पुरुषको वही गति प्राप्त होती है, जो समाधिमें आनन्दका अनुभव करनेवाले योगीको मिलती है। पाखण्डी और पापासक्त पुरुष उस आनन्दमें विघ्न डालनेवाले बताये गये हैं। नारियाँ तथा उनका अधिक संग करनेवाले पुरुष भी हरिभक्तिमें बाधा पहुँचानेवाले हैं।

स्त्रियाँ नेत्रोंके कटाक्षसे जो संकेत करती हैं, उसका उल्लंघन करना देवताओंके लिये भी कठिन होता है। जिसने उसपर विजय पा ली है, वही संसारमें भगवान्‌का भक्त कहलाता है। मुनि भी इस लोकमें नारीके चरित्रपर लुभाकर मतवाले हो उठते हैं। ब्राह्मणो! जो लोग

---

* कलौ नारायणं देवं यजते यः स धर्मभाक्। दामोदरं हृषीकेशं पुरुहूतं सनातनम्॥
हृदि कृत्वा परं शान्तं जितमेव जगत्त्रयम्। कलिकालोरगादंशात् किल्बिषात् कालकूटतः॥
हरिभक्तिसुधां पीत्वा उल्लङ्घ्यो भवति द्विजः। किं जपैः श्रीहरेर्नाम गृहीतं यदि मानुषैः॥
(६१। ६—८)

नारीकी भक्तिका आश्रय लेते हैं, उन्हें भगवान्‌की भक्ति कैसे प्राप्त हो सकती है।[१] द्विजो! बहुत-सी राक्षसियाँ कामिनीका वेष धारण करके इस संसारमें विचरती रहती हैं, वे सदा मनुष्योंकी बुद्धि एवं विवेकको अपना ग्रास बनाया करती हैं।

विप्रगण! जबतक किसी सुन्दरी स्त्रीके चंचल नेत्रोंका कटाक्ष, जो सम्पूर्ण धर्मोंका लोप करनेवाला है, मनुष्यके ऊपर नहीं पड़ता तभीतक उसकी विद्या कुछ करनेमें समर्थ होती है, तभीतक उसे ज्ञान बना रहता है। तभीतक सब शास्त्रोंको धारण करनेवाली उसकी मेधा-शक्ति निर्मल बनी रहती है। तभीतक जप-तप और तीर्थसेवा बन पड़ती है। तभीतक गुरुकी सेवा संभव है और तभीतक इस संसार-सागरसे पार होनेके साधनमें मनुष्यका मन लगता है। इतना ही नहीं, बोध, विवेक, सत्संगकी रुचि तथा पौराणिक बातोंको सुननेकी लालसा भी तभीतक रहती है।

जो भगवच्चरणारविन्दोंके मकरन्दका लेशमात्र भी पाकर आनन्दमग्न हो जाते हैं, उनके ऊपर नारियोंके चंचल कटाक्षपातका प्रभाव नहीं पड़ता। द्विजो! जिन्होंने प्रत्येक जन्ममें भगवान् हृषीकेशका सेवन किया है, ब्राह्मणोंको दान दिया है तथा अग्निमें हवन किया है, उन्हींको उन-उन विषयोंकी ओरसे वैराग्य होता है।[२] स्त्रियोंमें सौन्दर्य नामकी वस्तु ही क्या है? पीब, मूत्र, विष्ठा, रक्त, त्वचा, मेदा, हड्डी और मज्जा—इन सबसे युक्त जो ढाँचा है, उसीका नाम है शरीर। भला, इसमें सौन्दर्य कहाँसे आया। उपर्युक्त वस्तुओंको पृथक्-पृथक् करके यदि छू लिया जाय तो स्नान करके ही मनुष्य शुद्ध होता है। किन्तु ब्राह्मणो! इन सभी वस्तुओंसे युक्त जो अपवित्र शरीर है, वह लोगोंको सुन्दर दिखायी देता है। अहो! यह मनुष्योंकी अत्यन्त दुर्दशा है, जो दुर्भाग्यवश घटित हुई है। पुरुष उभरे हुए कुचोंसे युक्त शरीरमें स्त्री-बुद्धि करके प्रवृत्त होता है; किन्तु कौन स्त्री है? और कौन पुरुष? विचार करनेपर कुछ भी सिद्ध नहीं होता। इसलिये साधु पुरुषको सब प्रकारसे स्त्रीके संगका परित्याग करना चाहिये। भला, स्त्रीका आश्रय लेकर कौन पुरुष इस पृथ्वीपर सिद्धि पा सकता है। कामिनी और उसका संग करनेवाले पुरुषका संग भी त्याग देना चाहिये। उनके संगसे रौरव नरककी प्राप्ति होती है, यह बात प्रत्यक्ष प्रतीत होती है।[३] जो लोग अज्ञानवश स्त्रियोंपर लुभाये रहते हैं, उन्हें दैवने ठग लिया है। नारीकी योनि साक्षात् नरकका कुण्ड है। कामी पुरुषको उसमें पकना पड़ता है। क्योंकि जिस भूमिसे उसका आविर्भाव हुआ है, वहीं वह फिर रमण करता है। अहो! जहाँसे मलजनित मूत्र और रज बहता है, वहीं मनुष्य रमण करता है! उससे बढ़कर अपवित्र कौन होगा। वहाँ अत्यन्त कष्ट है; फिर भी मनुष्य उसमें प्रवृत्त होता है! अहो! यह दैवकी कैसी विडम्बना है? उस अपवित्र योनिमें बारंबार रमण करना—यह मनुष्योंकी कितनी निर्लज्जता है! अतः बुद्धिमान् पुरुषको स्त्री-प्रसंगसे होनेवाले बहुतेरे दोषोंपर विचार करना चाहिये।

मैथुनसे बलकी हानि होती है और उससे उसको अत्यन्त निद्रा (आलस्य) आने लगती है। फिर नींदसे बेसुध रहनेवाले मनुष्यकी आयु कम हो जाती है। इसलिये बुद्धिमान् पुरुषको उचित है कि वह नारीको

१-नारीणां नयनादेशः सुराणामपि दुर्जयः। स येन विजितो लोके हरिभक्तः स उच्यते॥
माद्यन्ति मुनयोऽप्यत्र नारीचरितलोलुपाः। हरिभक्तिः कुतः पुंसां नारीभक्तिजुषां द्विजाः॥
(६१। १२-१३)

२-तत्र ये हरिपादाब्जमधुलेशप्रमोदिताः। तेषां न नारीलोलाक्षिक्षेपणं हि प्रभुर्भवेत्॥
जन्म जन्म हृषीकेशसेवनं यैः कृतं द्विजाः। द्विजे दत्तं हुतं वह्नौ विरतिस्तत्र तत्र हि॥
(६१। १९-२०)

३-कामिनीकामिनीसंगिसंगमित्यपि संत्यजेत्। तत्संगाद् रौरवमिति साक्षादेव प्रतीयते॥
(६१। २७)

अपनी मृत्युके समान समझे और मनको प्रयत्नपूर्वक भगवान् गोविन्दके चरणकमलोंमें लगावे। श्रीगोविन्दके चरणोंकी सेवा इहलोक और परलोकमें भी सुख देनेवाली है। उसे छोड़कर कौन महामूर्ख पुरुष स्त्रीके चरणोंका सेवन करेगा। भगवान् जनार्दनके चरणोंकी सेवा मोक्ष प्रदान करनेवाली है तथा स्त्रियोंकी योनिका सेवन योनिके ही संकटमें डालनेवाला है।[१] योनिसेवी पुरुषको बार-बार योनिमें ही गिरना पड़ता है; यन्त्रमें कसे जानेवालेको जैसा कष्ट होता है, वैसी ही यातना उसे भी भोगनी पड़ती है। परन्तु फिर भी वह योनिकी ही अभिलाषा करता है। यह पुरुषकी कैसी विडम्बना है। इसे जानना चाहिये। मैं अपनी भुजाएँ ऊपर उठाकर कहता हूँ, मेरी उत्तम बात सुनो—श्रीगोविन्दमें मन लगाओ, यातना देनेवाली योनिमें नहीं।[२]

जो स्त्रीकी आसक्ति छोड़कर विचरता है, वह मानव पग-पगपर अश्वमेध यज्ञका फल पाता है। यदि दैवयोगसे उत्तम कुलमें उत्पन्न सती-साध्वी स्त्रीसे मनुष्यका विवाह हो जाय तो उससे पुत्रका जन्म होनेके पश्चात् फिर उसके साथ समागम न करे। ऐसे पुरुषपर भगवान् जगदीश्वर संतुष्ट होते हैं, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। धर्मज्ञ पुरुष स्त्रीके संगको असत्संग कहते हैं। उसके रहते भगवान् श्रीहरिमें सुदृढ़ भक्ति नहीं होती। इसलिये सब प्रकारके संगोंका परित्याग करके भगवान्‌की भक्ति ही करनी चाहिये।

मेरे विचारसे इस संसारमें श्रीहरिकी भक्ति दुर्लभ है। जिसकी भगवान्‌में भक्ति होती है, वह मनुष्य निस्सन्देह कृतार्थ हो जाता है। उसी-उसी कर्मका अनुष्ठान करना चाहिये, जिससे भगवान् प्रसन्न हों। भगवान्‌के संतुष्ट और तृप्त होनेपर सम्पूर्ण जगत् संतुष्ट एवं तृप्त होता है। श्रीहरिकी भक्तिके बिना मनुष्योंका जन्म व्यर्थ बताया गया है। जिनकी प्रसन्नताके लिये ब्रह्मा आदि देवता भी यजन करते हैं, उन आदि-अन्तरहित भगवान् नारायणका भजन कौन नहीं करेगा? जो अपने हृदयमें श्रीजनार्दनके युगल चरणोंकी स्थापना करता है, उसकी माता परम सौभाग्यशालिनी और पिता महापुण्यात्मा हैं। 'जगद्वन्द्य जनार्दन! शरणागतवत्सल!' आदि कहकर जो मनुष्य भगवान्‌को पुकारते हैं, उनको नरकमें नहीं जाना पड़ता।[३]

विशेषतः ब्राह्मणोंका, जो साक्षात् भगवान्‌के स्वरूप हैं, जो लोग यथायोग्य पूजन करते हैं, उनके ऊपर भगवान् प्रसन्न होते हैं। भगवान् विष्णु ही ब्राह्मणोंके रूपमें इस पृथ्वीपर विचरते हैं। ब्राह्मणके बिना कोई भी कर्म सिद्ध नहीं होता। जिन्होंने भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंका चरणोदक पीकर उसे मस्तकपर चढ़ाया है, उन्होंने अपने पितरोंको तृप्त कर दिया तथा आत्माका भी उद्धार कर लिया। जिन्होंने ब्राह्मणोंके मुखमें सम्मानपूर्वक मधुर अन्न अर्पित किया है, उनके द्वारा साक्षात् श्रीकृष्णके ही मुखमें वह अन्न दिया गया है।

१-मैथुनाद् बलहानिः स्यान्निद्रातितरुणायते। निद्रयापहृतज्ञानो ह्यल्पायुर्जायते नरः॥
तस्मात् प्रयत्नतो धीमान्नारीं मृत्युमिवात्मनः। पश्येद्गोविन्दपादाब्जे मनो वै रमयेद् बुधः॥
इहामुत्र सुखं तद्धि गोविन्दपदसेवनम्। विहाय को महामूढो नारीपादं ही सेवते॥
जनार्दनाङ्घ्रिसेवा हि ह्यपुनर्भवदायिनी। नारीणां योनिसेवा हि योनिसंकटकारिणी॥ (६१। ३२—३५)

२-ऊर्ध्वबाहुरहं वच्मि शृणु मे परमं वचः। गोविन्दे धेहि हृदयं न योनौ यातनाजुषि॥ (६१। ३७)

३-हरिभक्तिश्च लोकेऽत्र दुर्लभा हि मता मम। हरौ यस्य भवेद् भक्तिः स कृतार्थो न संशयः॥
तत्तदेवाचरेत्कर्म हरिः प्रीणाति येन हि। तस्मिंस्तुष्टे जगत्तुष्टं प्रीणिते प्रीणितं जगत्॥
हरौ भक्तिं विना नृणां वृथा जन्म प्रकीर्तितम्। ब्रह्मादयः सुरा यस्य यजन्ते प्रीतिहेतवे॥
नारायणमनाद्यन्तं न तं सेवेत को जनः।
तस्य माता महाभागा पिता तस्य महाकृती। जनार्दनपदद्वन्द्वं हृदये येन धार्यते॥
जनार्दन जगद्वन्द्य शरणागतवत्सल। इतीरयन्ति ये मर्त्या न तेषां निरये गतिः॥ (६१। ४२—४६)

इसमें सन्देह नहीं कि साक्षात् श्रीहरि ही उस अन्नको भोग लगाते हैं। ब्राह्मणोंके रहनेसे ही यह पृथ्वी धन्य मानी गयी है। उनके हाथमें जो कुछ दिया जाता है, वह भगवान्‌के हाथमें ही समर्पित होता है। उनको नमस्कार करनेसे पापोंका नाश होता है। ब्राह्मणकी वन्दना करनेसे मनुष्य ब्रह्महत्या आदि पापोंसे मुक्त हो जाता है। इसलिये ब्राह्मण सत्पुरुषोंके लिये विष्णुबुद्धिसे आराधना करनेके योग्य हैं। भूखे ब्राह्मणके मुखमें यदि कुछ अन्न दिया जाय तो दाता मृत्युके पश्चात् परलोकमें जानेपर करोड़ कल्पोंतक अमृतकी धारासे अभिषिक्त होता है। ब्राह्मणोंका मुख ऊसर और काँटोंसे रहित बहुत बड़ा खेत है; वहाँ यदि कुछ बोया जाता है तो उसका कोटि-कोटिगुना अधिक फल प्राप्त होता है। ब्राह्मणको घृतसहित भोजन देकर मनुष्य एक कल्पतक आनन्दका अनुभव करता है। जो ब्राह्मणको संतुष्ट करनेके लिये नाना प्रकारके सुन्दर मिष्टान्न दान करता है, उसे कोटि कल्पोंतक महान् भोगसम्पन्न लोक प्राप्त होते हैं।

ब्राह्मणको आगे करके ब्राह्मणके द्वारा ही कही हुई पुराण-कथाका प्रतिदिन श्रवण करना चाहिये। पुराण बड़े-बड़े पापोंके वनको भस्म करनेके लिये महान् दावानलके समान है। पुराण सब तीर्थोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ तीर्थ बताया जाता है, जिसके चतुर्थांशका श्रवण करनेसे श्रीहरि प्रसन्न हो जाते हैं। जैसे भगवान् श्रीहरि सम्पूर्ण जगत्‌को प्रकाश देने तथा सबको दृष्टि प्रदान करनेके लिये सूर्यका स्वरूप धारण करके विचरते हैं, उसी प्रकार श्रीहरि ही अन्तःकरणमें ज्ञानका प्रकाश फैलानेके लिये पुराणोंका रूप धारण करके जगत्‌में विचरते हैं। पुराण परम पावन शास्त्र है। अतः यदि श्रीहरिकी प्रसन्नता प्राप्त करनेका मन हो तो मनुष्योंको निरन्तर श्रीकृष्णरूपी परमात्माके पुराणका श्रवण करना चाहिये। विष्णुभक्त पुरुषको शान्तभावसे पुराण सुनना उचित है; क्योंकि वह अत्यन्त दुर्लभ है। पुराणकी कथा बड़ी निर्मल है तथा अन्तःकरणको निर्मल बनानेका उत्कृष्ट साधन है। व्यासरूपधारी श्रीहरिने वेदार्थोंका संग्रह करके पुराणकी रचना की है; अतः उसके श्रवणमें तत्पर रहना चाहिये। पुराणमें धर्मका निश्चय किया गया है और धर्म साक्षात् केशवका स्वरूप है; अतः विद्वान् पुरुष पुराण सुन लेनेपर विष्णुरूप हो जाता है। एक तो ब्राह्मण ही साक्षात् श्रीहरिका रूप है, दूसरे पुराण भी वैसा ही है; अतः उन दोनोंका संग पाकर मनुष्य विष्णुरूप ही हो जाता है।

इसी प्रकार गंगाजीके जलसे अभिषिक्त होनेपर मनुष्य अपने पापोंको दूर भगा देता है; भगवान् केशव ही जलके रूपमें इस भूमण्डलका पापसे उद्धार कर रहे हैं। यदि वैष्णव पुरुष विष्णुके भजनकी अभिलाषा रखता हो तो उसे गंगाजीके जलका निर्मल अभिषेक प्राप्त करना चाहिये; क्योंकि वह अन्तःकरणको शुद्ध करनेका उत्तम साधन है। इस पृथ्वीपर भगवती गंगा विष्णुभक्ति प्रदान करनेवाली बतायी जाती हैं। लोकोंका उद्धार करनेवाली गंगा वास्तवमें श्रीविष्णुका ही स्वरूप है। ब्राह्मणोंमें, पुराणोंमें, गंगामें, गौओंमें तथा पीपलके वृक्षमें नारायण-बुद्धि करके मनुष्योंको उनके प्रति निष्काम भक्ति करनी चाहिये।* तत्त्वज्ञ पुरुषोंने इन्हें विष्णुका प्रत्यक्ष स्वरूप निश्चित किया है। अतः विष्णु-भक्तिकी अभिलाषा रखनेवाले पुरुषोंको सदा इनकी पूजा करनी चाहिये।

विष्णुमें भक्ति किये बिना मनुष्योंका जन्म निष्फल बताया जाता है। कलिकाल ही जिसके भीतर जल-राशि है, जो पापरूपी ग्रहोंसे भरा हुआ है, विषयासक्ति ही जिसमें भँवर है, दुर्बोध ही फेनका काम देता है, महादुष्टरूपी सर्पोंके कारण जो अत्यन्त भयानक प्रतीत होता है, उस दुस्तर भवसागरको हरिभक्तिकी नौकापर

* विष्णुभक्तिप्रदा देवी गंगा भुवि च गीयते। विष्णुरूपा हि सा गंगा लोकनिस्तारकारिणी॥
ब्राह्मणेषु पुराणेषु गंगायां गोषु पिप्पले। नारायणधिया पुम्भिर्भक्तिः कार्या ह्यहैतुकी॥
(६१। ६९-७०)

बैठे हुए मनुष्य पार कर जाते हैं। इसलिये लोगोंको हरिभक्तिकी सिद्धिके लिये प्रयत्न करना चाहिये। लोग बुरी-बुरी बातोंको सुननेमें क्या सुख पाते हैं, जो अद्भुत लीलाओंवाले श्रीहरिकी लीलाकथामें आसक्त नहीं होते। यदि मनुष्योंका मन विषयमें ही आसक्त हो तो लोकमें नाना प्रकारके विषयोंसे मिश्रित उनकी विचित्र कथाओंका ही श्रवण करना चाहिये। द्विजो! यदि निर्वाणमें ही मन रमता हो, तो भी भगवत्कथाओंको सुनना उचित है; उन्हें अवहेलनापूर्वक सुननेपर भी श्रीहरि संतुष्ट हो जाते हैं। भक्तवत्सल भगवान् हृषीकेश यद्यपि निष्क्रिय हैं, तथापि उन्होंने श्रवणकी इच्छावाले भक्तोंका हित करनेके लिये नाना प्रकारकी लीलाएँ की हैं। सौ वाजपेय आदि कर्म तथा दस हजार राजसूय यज्ञोंके अनुष्ठानसे भी भगवान् उतनी सुगमतासे नहीं मिलते, जितनी सुगमतासे वे भक्तिके द्वारा प्राप्त होते हैं। जो हृदयसे सेवन करनेयोग्य, संतोंके द्वारा बारंबार सेवित तथा भवसागरसे पार होनेके लिये सार वस्तु हैं, श्रीहरिके उन चरणोंका आश्रय लो। रे विषयलोलुप पामरो! अरे निष्ठुर मनुष्यो! क्यों स्वयं अपने-आपको रौरव नरकमें गिरा रहे हो। यदि तुम अनायास ही दुःखोंके पार जाना चाहते हो तो गोविन्दके चारु-चरणोंका सेवन किये बिना नहीं जा सकोगे। भगवान् श्रीकृष्णके युगल चरण मोक्षके हेतु हैं; उनका भजन करो। मनुष्य कहाँसे आया है और कहाँ पुनः उसे जाना है, इस बातका विचार करके बुद्धिमान् पुरुष धर्मका संग्रह करे।* क्योंकि नाना प्रकारके नरकोंमें गिरनेके पश्चात् यदि पुनः उत्थान होता है, तभी मनुष्यका जन्म मिलता है। वहाँ उसे गर्भवासका अत्यन्त दुःखदायी कष्ट तो भोगना ही पड़ता है। द्विजो! फिर कर्मवश जीव यदि इस पृथ्वीपर जन्म लेता है, तो बाल्यावस्था आदिके अनेक दोषोंसे उसे पीड़ा सहनी पड़ती है। फिर युवावस्थामें पहुँचनेपर यदि दरिद्रता हुई तो उससे बहुत कष्ट होता है। भारी रोगसे तथा अनावृष्टि आदि आपत्तियोंसे भी क्लेश उठाना पड़ता है। वृद्धावस्थामें मनके इधर-उधर भटकनेसे जो कष्ट उसे प्राप्त होता है, उसका वर्णन नहीं हो सकता। तदनन्तर व्याधिके कारण समयानुसार मनुष्यकी मृत्यु हो जाती है। संसारमें मृत्युसे बढ़कर दूसरे किसी दुःखका अनुभव नहीं होता।

तत्पश्चात् जीव अपने कर्मवश यमलोकमें पीड़ा भोगता है; वहाँ अत्यन्त दारुण यातना भोगकर फिर संसारमें जन्म लेता है। इस प्रकार वह बारंबार जन्मता और मरता तथा मरता और जन्मता रहता है। जिसने भगवान् गोविन्दके चरणोंकी आराधना नहीं की है, उसीकी ऐसी दशा होती है। गोविन्दके चरणोंकी आराधना न करनेवाले मनुष्यकी बिना कष्टके मृत्यु नहीं होती तथा बिना कष्टके उसे जीवन भी नहीं मिलता। यदि घरमें धन हो तो उसे रखनेसे क्या फल हुआ। जिस समय यमराजके दूत आकर जीवको खींचते हैं, उस समय धन क्या उसके पीछे-पीछे जाता है? अतः ब्राह्मणोंके सत्कारमें लगाया हुआ धन ही सब प्रकारके

---

* किं सुखं लभते जन्तुरसद्वार्तावधारणे। हरेरद्भुतलीलस्य लीलाख्याने न सज्जते॥
तद्विचित्रकथा लोके नाना विषयमिश्रिताः। श्रोतव्या यदि वै नृणां विषये सज्जते मनः॥
निर्वाणे यदि वा चित्तं श्रोतव्या तदपि द्विजाः। हेलया श्रवणाच्चापि तस्य तुष्टो भवेद्धरिः॥
निष्क्रियोऽपि हृषीकेशो नाना कर्म चकार सः। शुश्रूषूणां हितार्थाय भक्तानां भक्तवत्सलः॥
न लभ्यते कर्मणापि वाजपेयशतादिना। राजसूयायुतेनापि यथा भक्त्या स लभ्यते॥
यत्पदं चेतसा सेव्यं सद्भिराचरितं मुहुः। भवाब्धितरणे सारमाश्रयध्वं हरेः पदम्॥
रे रे विषयसंलुब्धाः पामरा निष्ठुरा नराः। रौरवे हि किमात्मानमात्मना पातयिष्यथ॥
विना गोविन्दसौम्याङ्घ्रिसेवनं मा गमिष्यथ। अनायासेन दुःखानां तरणं यदि वाञ्छथ॥
भजध्वं कृष्णचरणावपुनर्भवकारणे। कुत एवागतो मर्त्यः कुत एव पुनर्व्रजेत्॥
एतद्विचार्य मतिमानाश्रयेद् धर्मसंग्रहम्। (६१। ७५—८४)

सुख देनेवाला है। दान स्वर्गकी सीढ़ी है, दान सब पापोंका नाश करनेवाला है। गोविन्दका भक्तिपूर्वक किया हुआ भजन महान् पुण्यकी वृद्धि करनेवाला है। यदि मनुष्यमें बल हो तो उसे व्यर्थ ही नष्ट न करे। आलस्य छोड़कर भगवान्‌के सामने नृत्य करे और गीत गाये। मनुष्यके पास जो कुछ हो, उसे भगवान् श्रीकृष्णको समर्पित कर दे। श्रीकृष्णको समर्पित की हुई वस्तु कल्याणदायिनी होती है और किसीको दी हुई वस्तु केवल दुःख देनेवाली होती है। नेत्रोंसे श्रीहरिकी ही प्रतिमा आदिका दर्शन तथा कानोंसे श्रीकृष्णके गुण और नामोंका ही अहर्निश श्रवण करे। विद्वान् पुरुषोंको अपनी जिह्वासे श्रीहरिके चरणोदकका आस्वादन करना चाहिये। नासिकासे श्रीगोविन्दके चरणारविन्दोंपर चढ़े हुए श्रीतुलसीदलको सूँघकर, त्वचासे हरिभक्तका स्पर्श कर तथा मनसे भगवान्‌के चरणोंका ध्यान करके जीव कृतार्थ हो जाता है—इसमें अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। विद्वान् पुरुष भगवान्‌में ही मन लगाये और हृदयमें उन्हींकी भावना करे; ऐसा करनेवाला मनुष्य अन्तमें भगवान्‌को ही प्राप्त होता है—इसमें कुछ विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। जो मनसे भी निरन्तर चिन्तन करनेपर भक्तको अपना पद प्रदान कर देते हैं, उन आदि-अन्तरहित भगवान् नारायणका कौन मनुष्य सेवन नहीं करेगा। जो श्रीविष्णुके चरणारविन्दोंमें निरन्तर चित्त लगाये रहता है, भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये अपनी शक्तिके अनुसार दान किया करता है तथा उन्हींके युगल चरणोंमें प्रणाम करता, मन लगाता और अनुराग रखता है, वह इस मनुष्यलोकमें निश्चय ही पूज्यभावको प्राप्त होता है।*

श्रीहरिके पुराणमय स्वरूपका वर्णन तथा पद्मपुराण और स्वर्गखण्डका माहात्म्य

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो! इस प्रकार संसारमें जिनकी महिमा समस्त लोकोंका उद्धार करनेवाली है, उन नानारूपधारी परमेश्वर विष्णुका एक विग्रह पुराण भी है। पुराणोंमें पद्मपुराणका बहुत बड़ा महत्त्व है। (१) ब्रह्मपुराण श्रीहरिका मस्तक है। (२) पद्मपुराण हृदय है। (३) विष्णुपुराण उनकी दाहिनी भुजा है। (४) शिवपुराण उन महेश्वरकी बायीं भुजा है। (५) श्रीमद्भागवतको भगवान्‌का ऊरुयुगल कहा गया है। (६) नारदीय पुराण नाभि है। (७) मार्कण्डेयपुराण दाहिना तथा (८) अग्निपुराण बायाँ चरण है। (९) भविष्यपुराण महात्मा श्रीविष्णुका दाहिना घुटना है। (१०) ब्रह्मवैवर्तपुराणको बायाँ घुटना बताया गया है। (११) लिंगपुराण दाहिना और (१२) वाराहपुराण बायाँ गुल्फ (घुट्ठी) है। (१३) स्कन्दपुराण रोएँ तथा

---

* यदासौ कृष्यते याम्यैर्दूतैः किं धनमन्वियात् । तस्माद् द्विजातिसत्कार्यं द्रविणं सर्वसौख्यदम्॥
दानं स्वर्गस्य सोपानं दानं किल्बिषनाशनम् । गोविन्दभक्तिभजनं महापुण्यविवर्धनम्॥
बलं यदि भवेन्मर्त्ये न वृथा तद्व्ययं चरेत् । हरेरग्रे नृत्यगीतं कुर्यादेवमतन्द्रितः॥
यत्किञ्चिद् विद्यते पुंसां तच्च कृष्णे समर्पयेत् । कृष्णार्पितं कुशलदमन्यार्पितमसौख्यदम्॥
चक्षुर्भ्यां श्रीहरेरेव प्रतिमादिनिरूपणम् । श्रोत्राभ्यां कलयेत्कृष्णगुणनामान्यहर्निशम्॥
जिह्वया हरिपादाम्बु स्वादितव्यं विचक्षणैः । घ्राणेनाघ्राय गोविन्दपादाब्जतुलसीदलम्॥
त्वचाऽऽस्पृश्य हरेर्भक्तं मनसाऽऽध्याय तत्पदम् । कृतार्थो जायते जन्तुर्नात्र कार्या विचारणा॥
तन्मना हि भवेत्प्राज्ञस्तथा स्यात्तद्गताशयः । तमेवान्तेऽभ्येति लोको नात्र कार्या विचारणा॥
चेतसा चाप्यनुध्यातः स्वपदं यः प्रयच्छति । नारायणमनाद्यन्तं न तं सेवेत को जनः॥
सततनियतचित्तो विष्णुपादारविन्दे वितरणमनुशक्ति प्रीतये तस्य कुर्यात्।
नतिमतिरतिमस्याङ्घ्रिद्वये संविदध्यात् स हि खलु नरलोके पूज्यतामाप्नुयाच्च॥
(६१। ९३—१०२)

(१४) वामनपुराण त्वचा माना गया है। (१५) कूर्मपुराणको पीठ तथा (१६) मत्स्यपुराणको मेदा कहा जाता है। (१७) गरुडपुराण मज्जा बताया गया है और (१८) ब्रह्माण्डपुराणको अस्थि (हड्डी) कहते हैं। इसी प्रकार पुराणविग्रहधारी सर्वव्यापक श्रीहरिका आविर्भाव हुआ है।[1] उनके हृदय-स्थानमें पद्मपुराण है, जिसे सुनकर मनुष्य अमृतपद—मोक्ष-सुखका उपभोग करता है। यह पद्मपुराण साक्षात् भगवान् श्रीहरिका स्वरूप है; इसके एक अध्यायका भी पाठ करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

स्वर्गखण्डका श्रवण करके महापातकी मनुष्य भी केंचुलसे छूटे हुए सर्पकी भाँति समस्त पापोंसे मुक्त हो जाते हैं। कितना ही बड़ा दुराचारी और सब धर्मोंसे बहिष्कृत क्यों न हो, स्वर्गखण्डका श्रवण करके वह पवित्र हो जाता है—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। द्विजो! समस्त पुराणोंको सुनकर मनुष्य जिस फलको प्राप्त करता है, वह सब केवल पद्मपुराणको सुनकर ही प्राप्त कर लेता है। कैसी अद्भुत महिमा है! समूचे पद्मपुराणको सुननेसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, वही फल मनुष्य केवल स्वर्गखण्डको सुनकर प्राप्त कर लेता है। माघमासमें मनुष्य प्रतिदिन प्रयागमें स्नान करके जैसे पापसे मुक्त हो जाता है, उसी प्रकार इस स्वर्गखण्डके श्रवणसे भी वह पापोंसे छुटकारा पा जाता है। जिस पुरुषने भरी सभामें इस स्वर्गखण्डको सुना और सुनाया है, उसने मानो समूची पृथ्वी दानमें दे दी है, निरन्तर भगवान् विष्णुके सहस्र-नामोंका पाठ किया है, सम्पूर्ण वेदोंका अध्ययन तथा उसमें बताये हुए भिन्न-भिन्न पुण्यकर्मोंका अनुष्ठान कर लिया है, बहुत-से अध्यापकोंको वृत्ति देकर पढ़ानेके कार्यमें लगाया है, भयभीत मनुष्योंको अभयदान किया है, गुणवान् ज्ञानी तथा धर्मात्मा पुरुषोंको आदर दिया है, ब्राह्मणों और गौओंके लिये प्राणोंका परित्याग किया है तथा उस बुद्धिमान्ने और भी बहुतेरे उत्तम कर्म किये हैं। तात्पर्य यह कि स्वर्गखण्डके श्रवणसे उक्त सभी शुभकर्मोंका फल प्राप्त हो जाता है। स्वर्गखण्डका पाठ करनेसे मनुष्यको नाना प्रकारके भोग प्राप्त होते हैं तथा वह तेजोमय शरीर धारण करके ब्रह्मलोकमें जाता और वहीं ज्ञान पाकर मोक्षको प्राप्त हो जाता है। बुद्धिमान् मनुष्य उत्तम पुरुषोंके साथ निवास, उत्तम तीर्थमें स्नान, उत्तम वार्तालाप तथा उत्तम शास्त्रका श्रवण करे।[2] उन शास्त्रोंमें पद्मपुराण महाशास्त्र है, यह सम्पूर्ण वेदोंका फल देनेवाला है। इसमें भी स्वर्गखण्ड महान् पुण्यका फल प्रदान करनेवाला है।

ओ संसारके मनुष्यो! मेरी बात सुनो—गोविन्दको भजो और एकमात्र देवेश्वर विष्णुको प्रणाम करो। यदि कामनाकी उत्ताल तरंगोंको सुखपूर्वक पार करना चाहते हो तो एकमात्र हरिनामका, जिसकी कहीं तुलना नहीं है, उच्चारण करो।

॥ स्वर्गखण्ड समाप्त ॥

१-एकं पुराणं रूपं वै तत्र पाद्मं परं महत् । ब्राह्मं मूर्धा हरेरेव हृदयं पद्मसंज्ञकम्॥
वैष्णवं दक्षिणो बाहुः शैवं वामो महेशितुः । ऊरू भागवतं प्रोक्तं नाभिः स्यान्नारदीयकम्॥
मार्कण्डेयं च दक्षाङ्घ्रिर्वामो ह्याग्नेयमुच्यते । भविष्यं दक्षिणो जानुर्विष्णोरेव महात्मनः॥
ब्रह्मवैवर्तसंज्ञं तु वामजानुरुदाहृतः। लैंगं तु गुल्फकं दक्षं वाराहं वामगुल्फकम्॥
स्कान्दं पुराणं लोमानि त्वगस्य वामनं स्मृतम्। कौर्मं पृष्ठं समाख्यातं मात्स्यं मेदः प्रकीर्त्यते॥
मज्जा तु गारुडं प्रोक्तं ब्रह्माण्डमस्थि गीयते। एवमेवाभवद्विष्णुः पुराणावयवो हरिः॥ (६२। २—७)

२-सद्भिः सह वसेद्धीमान् सत्तीर्थे स्नानमाचरेत् । कुर्यादेव सदालापं सच्छास्त्रं शृणुयान्नरः॥ (६२। २४)

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

संक्षिप्त पद्मपुराण

पातालखण्ड

शेषजीका वात्स्यायन मुनिसे रामाश्वमेधकी कथा आरम्भ करना, श्रीरामचन्द्रजीका लंकासे अयोध्याके लिये विदा होना

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥*

ऋषि बोले—महाभाग सूतजी! हमने आपके मुखसे समूचे स्वर्गखण्डकी मनोहर कथा सुनी; आयुष्मन्! अब हमलोगोंको श्रीरामचन्द्रजीका चरित्र सुनाइये।

सूतजीने कहा—महर्षिगण! एक समय मुनिवर वात्स्यायनने पृथ्वीको धारण करनेवाले नागराज भगवान् अनन्तसे इस परम निर्मल कथाके विषयमें प्रश्न किया।

श्रीवात्स्यायन बोले—भगवन्! शेषनाग! मैंने आपके मुखसे संसारकी सृष्टि और प्रलय आदिके विषयकी सब बातें सुनीं; भूगोल, खगोल, ग्रह-तारे और नक्षत्र आदिकी गतिका निर्णय, महत्तत्त्व आदिकी सृष्टियोंके तत्त्वका पृथक्-पृथक् निरूपण तथा सूर्यवंशी राजाओंके अद्भुत चरित्रका भी मैंने श्रवण किया है। इसी प्रसंगमें आपने भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी कथाका भी वर्णन किया है, जो अनेकों महापापोंको दूर करनेवाली है। परन्तु उन भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके अश्वमेध यज्ञकी कथा संक्षेपसे ही सुननेको मिली, अतः अब मैं उसे आपके द्वारा विस्तारके साथ सुनना चाहता हूँ। यह वही कथा है जो कहने, सुनने तथा स्मरण करनेसे बड़े-बड़े पातकोंको भी नष्ट कर डालती है। इतना ही नहीं, वह मनोवांछित वस्तुको देनेवाली तथा भक्तोंके चित्तको प्रसन्न करनेवाली है।

भगवान् शेषने कहा—ब्रह्मन्! आप ब्राह्मणकुलमें श्रेष्ठ एवं धन्यवादके पात्र हैं; क्योंकि आपको ऐसी बुद्धि प्राप्त हुई है, जो श्रीरामचन्द्रजीके युगल चरणारविन्दोंका मकरन्द पान करनेके लिये लोलुप रहती है। सभी ऋषि-महर्षि साधु पुरुषोंके

समागमको श्रेष्ठ बतलाते हैं; इसका कारण यही है कि सत्संग होनेपर श्रीरघुनाथजीकी उस कथाके लिये अवसर मिलता है, जो समस्त पापोंका नाश करनेवाली है। देवता और असुर प्रणाम करते समय अपने मुकुटोंकी मणियोंसे जिनके चरणोंकी आरती उतारते हैं, उन्हीं भगवान् श्रीरामका स्मरण कराकर आपने मुझपर बहुत बड़ा अनुग्रह किया है। जहाँ ब्रह्मा आदि देवता भी मोहित होकर कुछ नहीं जान पाते, उसी श्रीरघुनाथ-

---

* भगवान् नारायण, पुरुषश्रेष्ठ नर, उनकी लीला प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वती तथा उसके वक्ता महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके जय (इतिहास-पुराण)-का पाठ करना चाहिये।

कथारूपी महासागरकी थाह लगानेके लिये मेरे-जैसे मशक-समान तुच्छ जीवकी कितनी शक्ति है। तथापि मैं अपनी शक्तिके अनुसार आपसे श्रीराम-कथाका वर्णन करूँगा; क्योंकि अत्यन्त विस्तृत आकाशमें भी पक्षी अपनी गमन-शक्तिके अनुसार उड़ते ही हैं। श्रीरघुनाथजीका चरित्र करोड़ों श्लोकोंमें वर्णित है। जिनकी जैसी बुद्धि होती है, वे वैसा ही उसका वर्णन करते हैं। जैसे अग्निके सम्पर्कसे सोना शुद्ध हो जाता है, उसी प्रकार श्रीरघुनाथजीकी उत्तम कीर्ति मेरी बुद्धिको भी निर्मल बना देगी।

सूतजी कहते हैं—महर्षियो! मुनिवर वात्स्यायनसे यों कहकर भगवान् शेषने ध्यानस्थ हो अपनी आँखें बंद कर लीं और ज्ञानदृष्टिके द्वारा उस लोकोत्तर कल्याणमयी कथाका अवलोकन किया। फिर तो अत्यन्त हर्षके कारण उनके शरीरमें रोमांच हो आया और वे गद्गदवाणीसे युक्त होकर दशरथ-नन्दन श्रीरघुनाथजीकी विशद कथाका वर्णन करने लगे।

भगवान् शेष बोले—वात्स्यायनजी! देवता और दानवोंको दुःख देनेवाले लंकापति रावणके मारे जानेपर इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवताओंको बड़ा सुख मिला। वे आनन्दमग्न होकर दासकी भाँति भगवान्के चरणोंमें पड़ गये और उनकी स्तुति करने लगे।

तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी धर्मात्मा विभीषणको लंकाके राज्यपर स्थापित करके सीताके साथ पुष्पक विमानपर आरूढ़ हुए। उनके साथ लक्ष्मण, सुग्रीव और हनुमान् आदि भी विमानपर जा बैठे। उस समय भगवान्के विरहके भयसे विभीषणके मनमें भी साथ जानेकी उत्कण्ठा हुई और उन्होंने अपने मन्त्रियोंके साथ श्रीरघुनाथजीका अनुसरण किया। इसके बाद लंका और अशोक-वाटिकापर दृष्टि डालते हुए भगवान् श्रीराम तुरंत ही अयोध्यापुरीकी ओर प्रस्थित हुए। साथ ही ब्रह्मा आदि देवता भी अपने-अपने विमानोंपर बैठकर यात्रा करने लगे। उस समय भगवान् श्रीराम कानोंको सुख पहुँचानेवाली देव-दुन्दुभियोंकी मधुर ध्वनि सुनते तथा मार्गमें सीताजीको अनेकों आश्रमोंसे युक्त तीर्थों, मुनियों, मुनिपुत्रों तथा पतिव्रता मुनिपत्नियोंका दर्शन कराते हुए चल रहे थे। परम बुद्धिमान् श्रीरघुनाथजीने पहले लक्ष्मणके साथ जिन-जिन स्थानोंपर निवास किया था, वे सभी सीताजीको दिखाये। इस प्रकार उन्हें मार्गके स्थानोंका दर्शन कराते हुए श्रीरामचन्द्रजीने अपनी पुरी अयोध्याको देखा; फिर उसके निकट नन्दिग्रामपर दृष्टिपात किया, जहाँ भाईके वियोगजनित अनेकों दुःखमय चिह्नोंको धारण करके धर्मका पालन करते हुए राजा भरत निवास कर रहे थे। उन दिनों वे जमीनमें गड्ढा खोदकर उसीमें सोया करते थे। ब्रह्मचर्यके पालनपूर्वक मस्तकपर जटा और शरीरमें वल्कल वस्त्र धारण किये रहते थे। उनका शरीर अत्यन्त दुर्बल हो गया था। वे निरन्तर श्रीरामचन्द्रजीकी चर्चा करते हुए दुःखसे आतुर रहते थे। अन्नके नामपर तो वे जौ भी नहीं ग्रहण करते थे तथा पानी भी बारंबार नहीं पीते थे।

जब सूर्यदेवका उदय होता, तब वे उन्हें प्रणाम करके कहते—'जगत्को नेत्र प्रदान करनेवाले भगवान् सूर्य! आप देवताओंके स्वामी हैं; मेरे महान् पापको हर लीजिये [हाय! मुझसे बढ़कर पापी कौन होगा]। मेरे

ही कारण जगत्पूज्य श्रीरामचन्द्रजीको भी वनमें जाना पड़ा। सुकुमार शरीरवाली सीतासे सेवित होकर वे इस समय वनमें रहते हैं। अहो! जो सीता फूलकी शय्यापर पुष्पोंकी डंठलके स्पर्शसे भी व्याकुल हो उठती थीं और जो कभी सूर्यकी धूपमें घरसे बाहर नहीं निकलीं, वे ही पतिव्रता जनककिशोरी आज मेरे कारण जंगलोंमें भटक रही हैं! जिनके ऊपर कभी राजाओंकी भी दृष्टि नहीं पड़ी थी, उन्हीं सीताको आज किरातलोग प्रत्यक्ष देखते हैं। जो यहाँ मीठे-मीठे पकवानोंको भोजनके लिये आग्रह करनेपर भी नहीं खाना चाहती थीं, वे जानकी आज जंगली फलोंके लिये स्वयं याचना करती होंगी।' इस प्रकार श्रीरामके प्रति भक्ति रखनेवाले महाराज भरत प्रतिदिन प्रातःकाल सूर्योपस्थानके पश्चात् उपर्युक्त बातें कहा करते थे। उनके दुःख-सुखमें समान रूपसे हाथ बँटानेवाले शास्त्रचतुर, नीतिज्ञ और विद्वान् मन्त्री जब भरतजीको सान्त्वना देते हुए कुछ कहते तब वे उन्हें इस प्रकार उत्तर देते थे—'अमात्यगण! मुझ भाग्यहीनसे आपलोग क्यों बातचीत करते हैं? मैं संसारके सब लोगोंसे अधम हूँ; क्योंकि मेरे ही कारण मेरे बड़े भाई श्रीराम आज वनमें जाकर कष्ट उठा रहे हैं। मुझ अभागेके लिये अपने पापोंके प्रायश्चित्त करनेका यह अवसर प्राप्त हुआ है, अतः मैं श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंका निरन्तर आदरपूर्वक स्मरण करते हुए अपने दोषोंका मार्जन करूँगा। इस जगत्में माता सुमित्रा भी धन्य हैं! वे ही अपने पतिसे प्रेम करनेवाली तथा वीर पुत्रकी जननी हैं, जिनके पुत्र लक्ष्मण सदा श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंकी सेवामें रहते हैं।' इस प्रकार भ्रातृवत्सल भरत जहाँ रहकर उच्चस्वरसे विलाप किया करते थे, उस नन्दिग्रामको भगवान् श्रीरामने देखा।

भरतसे मिलकर भगवान् श्रीरामका अयोध्याके निकट आगमन

शेषजी कहते हैं—मुने! नन्दिग्रामपर दृष्टि पड़ते ही श्रीरघुनाथजीका चित्त भरतको देखनेकी उत्कण्ठासे विह्वल हो गया। उन्हें धर्मात्माओंमें अग्रगण्य भाई भरतकी बारंबार याद आने लगी। तब वे महाबली वायुनन्दन हनुमान्‌जीसे बोले—"वीर! तुम मेरे भाईके पास जाओ। उनका शरीर मेरे वियोगसे क्षीण होकर छड़ीके समान दुबला-पतला हो गया है और वे उसे किसी प्रकार हठपूर्वक धारण किये हुए हैं। जो वल्कल पहनते हैं, मस्तकपर जटा धारण करते हैं, जिनकी दृष्टिमें परायी स्त्री माता और सुवर्ण मिट्टीके ढेलेके समान है तथा जो प्रजाजनोंको अपने पुत्रोंकी भाँति स्नेह-दृष्टिसे देखते हैं, वे मेरे धर्मज्ञ भ्राता भरत दुःखी हैं। उनका शरीर मेरे वियोगजनित दुःखरूप अग्निकी ज्वालामें दग्ध हो रहा है; अतः इस समय तुम तुरंत जाकर मेरे आगमनके संदेशरूपी जलकी वर्षासे उन्हें शान्त करो। उन्हें यह समाचार सुनाओ कि 'सीता, लक्ष्मण, सुग्रीव आदि कपीश्वरों तथा विभीषणसहित राक्षसोंको साथ ले तुम्हारे भाई श्रीराम पुष्पक विमानपर बैठकर सुखपूर्वक आ पहुँचे हैं।' इससे मेरा आगमन जानकर मेरे छोटे भाई भरत शीघ्र ही प्रसन्न हो जायँगे।"

परम बुद्धिमान् श्रीरघुवीरके ये वचन सुनकर हनुमान्‌जी उनकी आज्ञाका पालन करते हुए भरतजीके निवास-स्थान नन्दिग्रामको गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा, भरतजी बूढ़े मन्त्रियोंके साथ बैठे हैं और अपने पूज्य भ्राताके वियोगसे अत्यन्त दुर्बल हो गये हैं। उस समय उनका मन श्रीरघुनाथजीके चरणारविन्दोंके मकरन्दमें डूबा हुआ था और वे अपने वृद्ध मन्त्रियोंसे उन्हींकी कथा-वार्ता कह रहे थे। वे ऐसे जान पड़ते थे मानो धर्मके मूर्तिमान् स्वरूप हों अथवा विधाताने मानो सम्पूर्ण सत्त्वगुणको एकत्रित करके उसीके द्वारा उनका निर्माण किया हो। भरतजीको इस रूपमें देखकर हनुमान्‌जीने उन्हें प्रणाम किया तथा भरतजी भी उन्हें देखते ही तुरंत हाथ जोड़कर खड़े हो गये और बोले—'आइये, आपका स्वागत है; श्रीरामचन्द्रजीकी कुशल कहिये।' वे इस प्रकार कह ही रहे थे कि इतनेमें उनकी दाहिनी बाँह फड़क उठी। हृदयसे शोक निकल

गया और उनके मुखपर आनन्दके आँसुओंकी धारा बह चली। उनकी ऐसी अवस्था देख वानरराज हनुमान्ने कहा—'लक्ष्मणसहित श्रीरामचन्द्रजी इस ग्रामके निकट आ गये हैं।' श्रीरघुनाथजीके आगमनके संदेशने भरतके शरीरपर मानो अमृत छिड़क दिया, वे हर्षमें भरकर बोले—'श्रीरामका संदेश लानेवाले हनुमान्जी! मेरे पास ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसे यह प्रिय समाचार सुनानेके बदलेमें मैं आपको दे सकूँ; इस उपकारके कारण मैं जीवनभर आपका दास बना रहूँगा।' महर्षि वसिष्ठ तथा वृद्ध मन्त्री भी अत्यन्त हर्षमें भरकर अर्घ्य हाथमें लिये हनुमान्जीके दिखाये हुए मार्गसे श्रीरामचन्द्रजीके पास चल दिये। भरतजीकी दृष्टि दूरसे आते हुए परम मनोरम भगवान् श्रीरामपर पड़ी। वे पुष्पक विमानके मध्यभागमें सीता और लक्ष्मणके साथ बैठे थे।
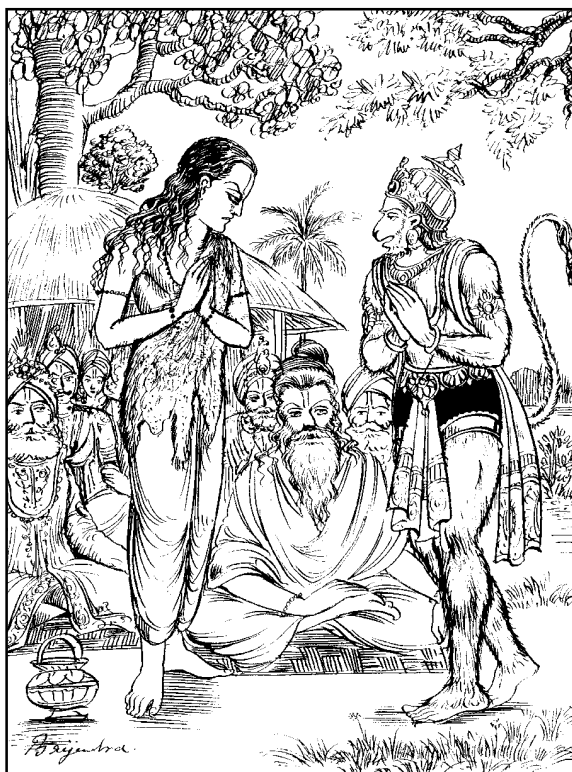
श्रीरामचन्द्रजीने भी जटा, वल्कल और कौपीन धारण किये हुए भरतको पैदल ही आते देखा; साथ ही उनकी दृष्टि उन मन्त्रियोंपर भी पड़ी, जिन्होंने भाईके वेषके समान ही वेष धारण कर रखा था। उनके मस्तकपर भी जटा थी तथा वे भी निरन्तर तपस्यासे क्लेश उठानेके कारण अत्यन्त दुर्बल हो गये थे। राजा भरतको इस अवस्थामें देखकर श्रीरघुनाथजीको बड़ी चिन्ता हुई, वे कहने लगे—'अहो! राजाओंके भी राजा महाबुद्धिमान् महाराज दशरथका यह पुत्र आज जटा और वल्कल आदि तपस्वीका वेष धारण किये पैदल ही मेरे पास आ रहा है। मित्रो! मैं वनमें गया था; किन्तु मुझे भी ऐसा दुःख नहीं उठाना पड़ा, जैसा कि मेरे वियोगके कारण इस भरतको भोगना पड़ रहा है। अहो! देखो तो सही, प्राणोंसे भी बढ़कर प्यारा और हितैषी मेरा भाई भरत मुझे निकट आया सुनकर हर्षमें भरे हुए वृद्ध मन्त्रियों तथा महर्षि वसिष्ठजीको साथ लेकर मुझसे मिलनेके लिये आ रहा है।' इस प्रकार भगवान् श्रीराम आकाशमें स्थित पुष्पक विमानसे उपर्युक्त बातें कह रहे थे और विभीषण, हनुमान् तथा लक्ष्मण उनके प्रति आदरका भाव प्रकट कर रहे थे। निकट आनेपर भगवान्का हृदय विरहसे कातर हो उठा और वे 'भैया! भैया भरत! तुम कहाँ हो' इस प्रकार कहते तथा बारंबार 'भाई! भाई!! भाई!!!' की रट
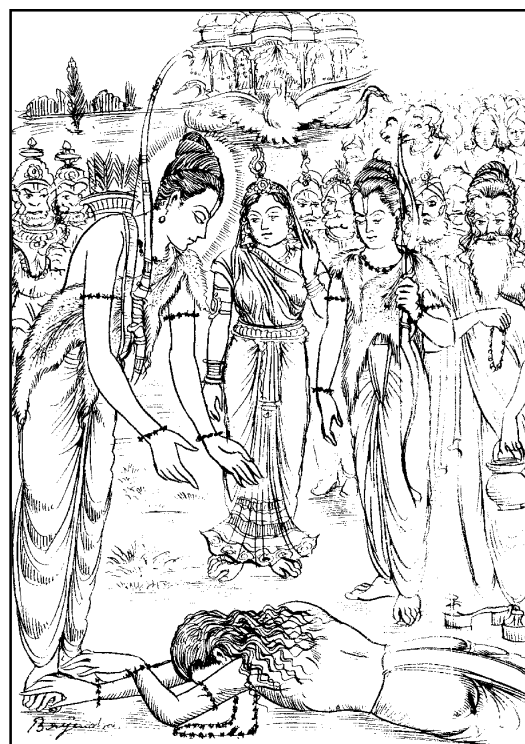
लगाते हुए तुरंत ही विमानसे उतर पड़े। सहायकोंसहित श्रीरामचन्द्रजीको भूमिपर उतरे देख भरतजी हर्षके आँसू बहाते हुए उनके सामने दण्डकी भाँति धरतीपर पड़ गये। श्रीरघुनाथजीने भी उन्हें दण्डकी भाँति पृथ्वीपर पड़ा देख हर्षपूर्ण दृष्टिसे देखते हुए अपनी दोनों भुजाओंसे उठाकर छातीसे लगा लिया। आरम्भमें श्रीरामचन्द्रजीके बारंबार उठानेपर भी भरतजी उठे नहीं, अपितु अपने दोनों हाथोंसे भगवान्‌के चरण पकड़कर फूट-फूटकर रोते रहे।

भरतजीने कहा—महाबाहु भगवान् श्रीराम! मैं दुष्ट, दुराचारी और पापी हूँ; मुझपर कृपा कीजिये। आप दयाके सागर हैं, अपनी दयासे ही मुझे अनुगृहीत कीजिये। भगवन्! जिन्हें सीताजीके कोमल हाथोंका स्पर्श भी कठोर जान पड़ता था, आपके उन्हीं चरणोंको मेरे कारण वनमें भटकना पड़ा!

यों कहकर भरतजीने दीनभावसे आँसू बहाते हुए बारंबार श्रीरघुनाथजीके चरणोंका आलिंगन किया और हर्षसे विह्वल होकर उनके सामने हाथ जोड़े खड़े हो गये। करुणासागर श्रीरघुनाथजीने अपने छोटे भाईको गले लगाकर प्रधान मन्त्रियोंको भी प्रणाम किया तथा सबसे आदरपूर्वक कुशल-समाचार पूछा। इसके बाद भाई भरतके साथ वे पुष्पक विमानपर जा बैठे। वहाँ भरतजीने अपनी भ्रातृ-पत्नी पतिव्रता सीताजीको देखा, जो अत्रिकी भार्या अनसूया तथा अगस्त्यकी पत्नी लोपामुद्राकी भाँति जान पड़ती थीं। पतिव्रता जनक-किशोरीका दर्शन करके भरतजीने उन्हें सम्मानपूर्वक प्रणाम किया और कहा—'माँ! मैं महामूर्ख हूँ; मेरे द्वारा जो अपराध हो गया है, उसे क्षमा करना; क्योंकि आप-जैसी पतिव्रताएँ सबका भला करनेवाली ही होती हैं।' परम सौभाग्यवती जनक-किशोरीने भी अपने देवर भरतकी ओर आदरपूर्ण दृष्टि डालकर उन्हें आशीर्वाद दिया तथा उनका कुशल-मंगल पूछा। उस श्रेष्ठ विमानपर आरूढ़ होकर सब-के-सब आकाशमें आ गये; फिर एक ही क्षणमें श्रीरामचन्द्रजीने देखा कि पिताकी राजधानी अयोध्या अब बिलकुल अपने निकट है।

श्रीरामका नगर-प्रवेश, माताओंसे मिलना, राज्य-ग्रहण करना तथा रामराज्यकी सुव्यवस्था

शेषजी कहते हैं—अपनी राजधानीको देखकर भगवान् श्रीरामचन्द्रजीको बड़ी प्रसन्नता हुई। इधर भरतने अपने मित्र एवं सचिव सुमुखको नागरिक-उत्सवका प्रबन्ध करनेके लिये नगरके भीतर भेजा।

भरतजी बोले—नगरके सब लोग शीघ्र ही श्रीरघुनाथजीके आगमनका उत्सव आरम्भ करें। घर-घरमें सजावट की जाय, सड़कें झाड़-बुहारकर साफ की जायँ और उनपर चन्दन-मिश्रित जलका छिड़काव करके उनके ऊपर फूल बिछा दिये जायँ। हर एक घरके आँगनमें नाना प्रकारकी ध्वजाएँ फहरायी जायँ, प्रकाशका प्रबन्ध हो और सर्वतोभद्र आदि चित्र अंकित किये जायँ। श्रीरामका आगमन सुनकर हर्षमें भरे हुए लोग मेरे कथनानुसार नगरकी शोभा बढ़ानेवाली भाँति-भाँतिकी रचना करें।

शेषजी कहते हैं—भरतजीके ये वचन सुनकर मन्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ सुमुखने अयोध्यापुरीको अनेक प्रकारकी सजावट एवं तोरणोंसे सुशोभित करनेके लिये उसके भीतर प्रवेश किया। नगरमें जाकर उसने सब लोगोंमें श्रीरामके आगमन-महोत्सवकी घोषणा करा दी। लोगोंने जब सुना कि श्रीरघुनाथजी अयोध्यापुरीके निकट आ गये हैं, तब उन्हें बड़ा हर्ष हुआ; क्योंकि वे पहले भगवान्‌के विरहसे दुःखी हो अपने सुखभोगका परित्याग कर चुके थे। वैदिक ज्ञानसे सम्पन्न पवित्र ब्राह्मण हाथोंमें कुश लिये धोती और चादरसे सुसज्जित हो श्रीरामचन्द्रजीके पास गये। जिन्होंने संग्राम-भूमिमें अनेकों वीरोंपर विजय पायी थी, वे धनुष-बाण धारण करनेवाले श्रेष्ठ और सूरमा क्षत्रिय भी उनके समीप गये। धन-धान्यसे समृद्ध वैश्य भी सुन्दर वस्त्र पहनकर

महाराज श्रीरामके निकट उपस्थित हुए। उस समय उनके हाथ सोनेकी मुद्राओंसे सुशोभित हो रहे थे तथा वे शूद्र, जो ब्राह्मणोंके भक्त, अपने जातीय आचारमें दृढ़तापूर्वक स्थित और धर्म-कर्मका पालन करनेवाले थे, अयोध्यापुरीके स्वामी श्रीरामचन्द्रजीके पास गये। व्यवसायी लोग जो अपने-अपने कर्ममें स्थित थे, वे सब भी भेंटमें देनेके लिये अपनी-अपनी वस्तु लेकर महाराज श्रीरामके समीप गये। इस प्रकार राजा भरतका संदेश पाकर आनन्दकी बाढ़में डूबे हुए पुरवासी नाना प्रकारके कौतुकोंमें प्रवृत्त होकर अपने महाराजके निकट आये। तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीने भी अपने-अपने विमानपर बैठे हुए सम्पूर्ण देवताओंसे घिरकर मनोहर रचनासे सुशोभित अयोध्यापुरीमें प्रवेश किया। आकाशमार्गसे विचरण करनेवाले वानर भी उछलते-कूदते हुए श्रीरघुनाथजीके पीछे-पीछे उस उत्तम नगरमें गये। उस समय उन सबकी पृथक्-पृथक् शोभा हो रही थी। कुछ दूर जाकर श्रीरामचन्द्रजी पुष्पक विमानसे उतर गये और शीघ्र ही श्रीसीताके साथ पालकीपर सवार हुए; उस समय वे अपने सहायक परिवारद्वारा चारों ओरसे घिरे हुए थे। जोर-जोरसे बजाये जाते हुए वीणा, पणव और भेरी आदि बाजोंके द्वारा उनकी बड़ी शोभा हो रही थी। सूत, मागध और वन्दीजन उनकी स्तुति कर रहे थे; सब लोग कहते थे—'रघुनन्दन! आपकी जय हो, सूर्यकुलभूषण श्रीराम! आपकी जय हो, देव! दशरथ-नन्दन! आपकी जय हो, जगत्‌के स्वामी श्रीरघुनाथजी! आपकी जय हो।' इस प्रकार हर्षमें भरे पुरवासियोंकी कल्याणमयी बातें भगवान्‌को सुनायी दे रही थीं। उनके दर्शनसे सब लोगोंके शरीरमें रोमांच हो आया था, जिससे वे बड़ी शोभा पा रहे थे। क्रमशः आगे बढ़कर भगवान्‌की सवारी गली और चौराहोंसे सुशोभित नगरके प्रधान मार्गपर जा पहुँची, जहाँ चन्दन-मिश्रित जलका छिड़काव हुआ था और सुन्दर फूल तथा पल्लव बिछे थे। उस समय नगरकी कुछ स्त्रियाँ खिड़कीके सामनेकी छज्जोंका सहारा लेकर भगवान्‌की मनोहर छवि निहारती हुई आपसमें कहने लगीं—

पुरवासिनी स्त्रियाँ बोलीं—सखियो! वनवासिनी भीलोंकी कन्याएँ भी धन्य हो गयीं, जिन्होंने अपने नीलकमलके समान लोचनोंद्वारा श्रीरामचन्द्रजीके मुखारविन्दका मकरन्द पान किया है। अपने सौभाग्यसे इन कन्याओंने महान् अभ्युदय प्राप्त किया है। अरी! वीरोचित तेजसे युक्त श्रीरघुनाथजीके मुखकी ओर तो देखो, जो कमलकी सुषमाको लज्जित करनेवाले सुन्दर नेत्रोंसे सुशोभित हो रहा है; उसे देखकर धन्य हो जाओगी। अहो! ब्रह्मा आदि देवता भी जिनका दर्शन नहीं कर पाते, वे ही आज हमारी आँखोंके सामने हैं। अवश्य ही हमलोग अत्यन्त बड़भागिनी हैं। देखो, इनके मुखपर कैसी सुन्दर मुसकान है, मस्तकपर किरीट शोभा पा रहा है; ये लाल-लाल ओठ बन्धूक-पुष्पकी अरुण प्रभाको अपनी शोभासे तिरस्कृत कर रहे हैं तथा इनकी ऊँची नासिका मनोहर जान पड़ती है।

इस प्रकार अधिक प्रेमके कारण उपर्युक्त बातें कहनेवाली अवधपुरीकी रमणियाँ भगवान्‌के दर्शनकर प्रसन्न होने लगीं। तदनन्तर जिनका प्रेम बहुत बढ़ा हुआ था, उन पुरवासी मनुष्योंको अपने दृष्टिपातसे संतुष्ट

करके सम्पूर्ण जगत्‌को मर्यादाका पाठ पढ़नेवाले श्रीरघुनाथजीने माताके भवनमें जानेका विचार किया। वे राजाओंके राजा तथा अच्छी नीतिका पालन करनेवाले थे; अत: पालकीपर बैठे हुए ही सबसे पहले अपनी माता कैकेयीके घरमें गये। कैकेयी लज्जाके भारसे दबी हुई थी, अत: श्रीरामचन्द्रजीको सामने देखकर भी वह कुछ न बोली। बारंबार गहरी चिन्तामें डूबने लगी। सूर्यवंशकी पताका फहरानेवाले श्रीरामने माताको लज्जित देखकर उसे विनययुक्त वचनोंद्वारा सान्त्वना देते हुए कहा।

श्रीराम बोले—माँ! मैंने वनमें जाकर तुम्हारी आज्ञाका पूर्णरूपसे पालन किया है। अब बताओ, तुम्हारी आज्ञासे इस समय कौन-सा कार्य करूँ?

श्रीरामकी यह बात सुनकर भी कैकेयी अपने मुँहको ऊपर न उठा सकी, वह धीरे-धीरे बोली—'बेटा राम! तुम निष्पाप हो। अब तुम अपने महलमें जाओ।' माताका यह वचन सुनकर कृपानिधान श्रीरामचन्द्रजीने भी उन्हें नमस्कार किया और वहाँसे सुमित्राके भवनमें गये। सुमित्राका हृदय बड़ा उदार था, उन्होंने अपने पुत्र लक्ष्मणसहित श्रीरामचन्द्रजीको उपस्थित देख आशीर्वाद देते हुए कहा—'बेटा! तुम चिरजीवी हो।' श्रीरामचन्द्रजीने भी माता सुमित्राके चरणोंमें प्रणाम करके बारंबार प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा—'माँ! लक्ष्मण-जैसे पुत्ररत्नको जन्म देनेके कारण तुम रत्नगर्भा हो; बुद्धिमान् लक्ष्मणने जिस प्रकार हमारी सेवा की है, जिस तरह इन्होंने मेरे कष्टोंका निवारण किया है वैसा कार्य और किसीने कभी नहीं किया। रावणने सीताको हर लिया। उसके बाद मैंने पुन: जो इन्हें प्राप्त किया है, वह सब तुम लक्ष्मणका ही पराक्रम समझो।' यों कहकर तथा सुमित्राके दिये हुए आशीर्वादको शिरोधार्य करके वे देवताओंके साथ अपनी माता कौसल्याके महलमें गये। माताको अपने दर्शनके लिये उत्कण्ठित तथा हर्षमग्न देख भगवान् श्रीराम तुरंत ही पालकीसे उतर पड़े और निकट पहुँचकर उन्होंने माताके चरणोंको पकड़ लिया। माता कौसल्याका हृदय बेटेका मुँह देखनेके लिये उत्कण्ठासे विह्वल हो रहा था; उन्होंने अपने रामको बारंबार छातीसे लगाया और बहुत प्रसन्न हुईं। उनके शरीरमें रोमांच हो आया, वाणी गद्गद हो गयी और नेत्रोंसे आनन्दके आँसू प्रवाहित होकर चरणोंको भिगोने लगे। विनयशील श्रीरघुनाथजीने देखा कि 'माता अत्यन्त दुर्बल हो गयी हैं। मुझे देखकर ही इन्हें कुछ-कुछ हर्ष हुआ है।' उनकी इस अवस्थापर दृष्टिपात करके उन्होंने कहा।
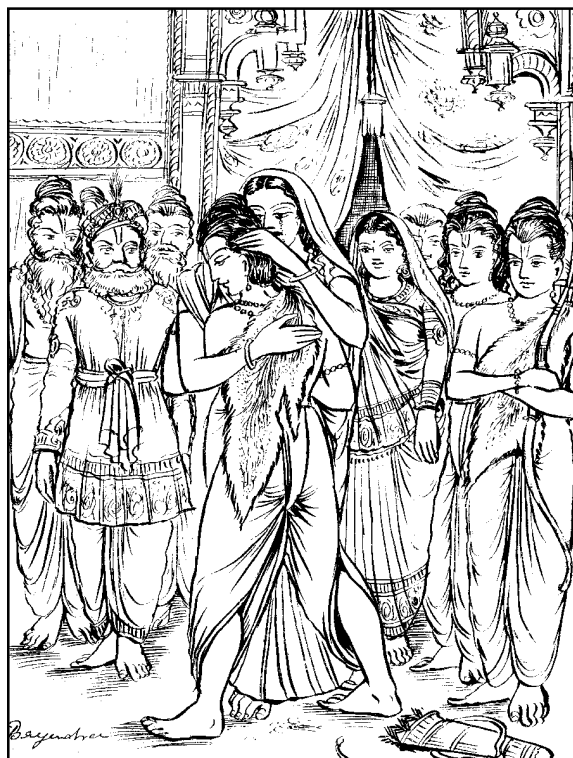
श्रीराम बोले—माँ! मैंने बहुत दिनोंतक तुम्हारे चरणोंकी सेवा नहीं की है, निश्चय ही मैं बड़ा भाग्यहीन हूँ; तुम मेरे इस अपराधको क्षमा करना। जो पुत्र अपने माता-पिताकी सेवाके लिये उत्सुक नहीं रहते, उन्हें रज-वीर्यसे उत्पन्न हुआ कीड़ा ही समझना चाहिये। क्या करूँ, पिताजीकी आज्ञासे मैं दण्डकारण्यमें चला गया था। वहाँसे रावण सीताको हरकर लंकामें ले गया था; किन्तु तुम्हारी कृपासे उस राक्षसराजको मारकर मैंने पुन: इन्हें प्राप्त किया है। ये पतिव्रता सीता भी तुम्हारे चरणोंमें पड़ी हैं, इनका चित्त सदा तुम्हारे इन चरणोंमें ही लगा रहता है।

श्रीरामचन्द्रजीकी बात सुनकर माता कौसल्याने अपने पैरोंपर पड़ी हुई पतिव्रता बहू सीताको आशीर्वाद देते हुए कहा—'मानिनी सीते! तुम चिरकालतक अपने पतिकी जीवन-संगिनी बनी रहो। मेरी पवित्र स्वभाव-वाली बहू! तुम दो पुत्रोंकी जननी होकर अपने इस कुलको पवित्र करो। बेटी! दुःख-सुखमें पतिका साथ देनेवाली तुम्हारी-जैसी पतिव्रता स्त्रियाँ तीनों लोकोंमें कहीं भी दुःखकी भागिनी नहीं होतीं—यह सर्वथा सत्य है। विदेहकुमारी! तुमने महात्मा रामके चरणकमलोंका अनुसरण करके अपने ही द्वारा अपने कुलको पवित्र कर दिया।' सुन्दर नेत्रोंवाली श्रीरघुनाथपत्नी सीतासे यों कहकर माता कौसल्या चुप हो गयीं। हर्षके कारण पुनः उनका सर्वांग पुलकित हो गया।

तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीके भाई भरतने उन्हें पिताजीका दिया हुआ अपना महान् राज्य निवेदन कर दिया। इससे मन्त्रियोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने मन्त्रके जाननेवाले ज्योतिषियोंको बुलाकर राज्याभिषेकका मुहूर्त पूछा और उद्योग करके उनके बताये हुए उत्तम नक्षत्रसे युक्त अच्छे दिनको शुभ मुहूर्तमें बड़े हर्षके साथ राजा श्रीरामचन्द्रजीका अभिषेक कराया। सुन्दर व्याघ्रचर्मके ऊपर सातों द्वीपोंसे युक्त पृथ्वीका नकशा बनाकर राजाधिराज महाराज श्रीराम उसपर विराजमान हुए। उसी दिनसे साधु पुरुषोंके हृदयमें आनन्द छा गया। सभी स्त्रियाँ पतिके प्रति भक्ति रखती हुई पतिव्रत-धर्मके पालनमें संलग्न हो गयीं। संसारके मनुष्य कभी मनसे भी पापका आचरण नहीं करते थे। देवता, दैत्य, नाग, यक्ष, असुर तथा बड़े-बड़े सर्प—ये सभी न्यायमार्गपर स्थित होकर श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञाको शिरोधार्य करने लगे। सभी परोपकारमें लगे रहते थे। सबको अपने धर्मके अनुष्ठानमें ही सुख और संतोषकी प्राप्ति होती थी। विद्यासे ही सबका विनोद होता था। दिन-रात शुभ कर्मोंपर ही सबकी दृष्टि रहती थी। श्रीरामके राज्यमें चोरोंकी तो कहीं चर्चा ही नहीं थी। जोरसे चलनेवाली हवा भी राह चलते हुए पथिकोंके सूक्ष्म-से-सूक्ष्म वस्त्रको भी नहीं उड़ाती थी। कृपानिधान श्रीरामचन्द्रजीका स्वभाव बड़ा दयालु था। वे याचकोंके लिये कुबेर थे।

देवताओंद्वारा श्रीरामकी स्तुति, श्रीरामका उन्हें वरदान देना तथा रामराज्यका वर्णन

शेषजी कहते हैं—मुने! जब श्रीरामचन्द्रजीका राज्याभिषेक हो गया तो राक्षसराज रावणके वधसे प्रसन्नचित्त हुए देवताओंने प्रणाम करके उनका इस प्रकार स्तवन किया।

देवता बोले—देवताओंकी पीड़ा दूर करनेवाले दशरथ-नन्दन श्रीराम! आपकी जय हो। आपके द्वारा जो राक्षसराजका विनाश हुआ है, उस अद्भुत कथाका समस्त कविजन उत्कण्ठापूर्वक वर्णन करेंगे। भुवनेश्वर! प्रलयकालमें आप सम्पूर्ण लोकोंकी परम्पराको लीलापूर्वक ग्रस लेते हैं। प्रभो! आप जन्म और जरा आदिके दुःखोंसे सदा मुक्त हैं। प्रबल शक्तिसम्पन्न परमात्मन्! आपकी जय हो, आप हमारा उद्धार कीजिये, उद्धार कीजिये। धार्मिक पुरुषोंके कुलरूपी समुद्रमें प्रकट होनेवाले अजर-अमर और अच्युत परमेश्वर! आपकी जय हो। भगवन्! आप देवताओंसे श्रेष्ठ हैं। आपका नाम लेकर अनेकों प्राणी पवित्र हो गये; फिर जिन्होंने श्रेष्ठ द्विज-वंशमें जन्म ग्रहण करके उत्तम मानव-शरीरको प्राप्त किया है, उनका उद्धार होना कौन बड़ी बात है? शिव और ब्रह्माजी भी जिनको मस्तक झुकाते हैं, जो पवित्र यव आदिके चिह्नोंसे सुशोभित तथा मनोवांछित कामना एवं समृद्धि देनेवाले हैं, उन आपके चरणोंका हम निरन्तर अपने हृदयमें चिन्तन करते रहें, यही हमारी अभिलाषा है। आप कामदेवकी भी शोभाको तिरस्कृत करनेवाली मनोहर कान्ति धारण करते हैं। परमपावन दयामय! यदि आप इस भूमण्डलको अभयदान न दें तो देवता कैसे सुखी हो सकते हैं?

नाथ! जब-जब दानवी शक्तियाँ हमें दुःख देने लगें तब-तब आप इस पृथ्वीपर अवतार ग्रहण करें। विभो! यद्यपि आप सबसे श्रेष्ठ, अपने भक्तोंद्वारा पूजित, अजन्मा तथा अविकारी हैं तथापि अपनी मायाका आश्रय लेकर भिन्न-भिन्न रूपमें प्रकट होते हैं। आपके सुन्दर चरित्र (पवित्र लीलाएँ) मरनेवाले प्राणियोंके लिये अमृतके समान दिव्य जीवन प्रदान करनेवाले हैं। उनके श्रवणमात्रसे समस्त पापोंका नाश हो जाता है। आपने अपनी इन लीलाओंसे समस्त भूमण्डलको व्याप्त कर रखा है तथा गुणोंका गान करनेवाले देवताओंद्वारा भी आपकी स्तुति की गयी है। जो सबके आदि हैं, परन्तु जिनका आदि कोई नहीं है, जो अजर (तरुण)-रूप धारण करनेवाले हैं, जिनके गलेमें हार और मस्तकपर किरीट शोभा पाता है, जो कामदेवकी भी कान्तिको लज्जित करनेवाले हैं, साक्षात् भगवान् शिव जिनके चरणकमलोंकी सेवामें लगे रहते हैं तथा जिन्होंने अपने शत्रु रावणका बलपूर्वक वध किया है, वे श्रीरघुनाथजी सदा ही विजयी हों।

ब्रह्मा आदि सम्पूर्ण देवताओंने इस प्रकार स्तुति करके विनीत भावसे श्रीरघुनाथजीको बारंबार प्रणाम किया। महायशस्वी श्रीरामचन्द्रजी देवताओंकी इस स्तुतिसे बहुत सन्तुष्ट हुए और उन्हें मस्तक झुकाकर चरणोंमें पड़े देख बोले।

श्रीरामने कहा—देवताओ! तुमलोग मुझसे कोई ऐसा वर माँगो जो तुम्हें अत्यन्त दुर्लभ हो तथा जिसे अबतक किसी देवता, दानव, यक्ष और राक्षसने भी नहीं प्राप्त किया हो।

देवता बोले—स्वामिन्! आपने हमलोगोंके इस शत्रु दशाननका जो वध किया है, उसीसे हमें सब उत्तम वरदान प्राप्त हो गया। अब हम यही चाहते हैं कि जब-जब कोई असुर हमलोगोंको क्लेश पहुँचावे तब-तब आप इसी तरह हमारे उस शत्रुका नाश किया करें।

वीरवर भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने 'बहुत अच्छा' कहकर देवताओंकी प्रार्थना स्वीकार की और फिर इस प्रकार कहा।

श्रीराम बोले—देवताओ! तुम सब लोग आदरपूर्वक मेरा वचन सुनो, तुमलोगोंने मेरे गुणोंको ग्रथित करके जो यह अद्भुत स्तोत्र बनाया है, इसका जो मनुष्य प्रातःकाल तथा रात्रिमें एक बार प्रतिदिन पाठ करेगा, उसको कभी अपने शत्रुओंसे पराजित होनेका भयंकर कष्ट नहीं भोगना पड़ेगा। उसके घरमें दरिद्रताका प्रवेश नहीं होगा तथा उसे रोग नहीं सतायेंगे। इतना ही नहीं, इसके पाठसे मनुष्योंके उल्लासपूर्ण हृदयमें मेरे युगल-चरणोंकी गाढ़ भक्तिका उदय होगा।

यह कहकर नरदेवशिरोमणि श्रीरघुनाथजी चुप हो गये तथा सम्पूर्ण देवता अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने-अपने लोकको चले गये। इधर लोकनाथ श्रीरामचन्द्रजी अपने विद्वान् भाइयोंका पिताकी भाँति पालन करते हुए प्रजाको अपने पुत्रके समान मानकर सबका लालन-पालन करने लगे। उनके शासनकालमें जगत्के मनुष्योंकी कभी अकाल-मृत्यु नहीं होती थी। किसीके घरमें रोग आदिका प्रकोप नहीं होता था। न

कभी ईति[१] दिखायी देती और न शत्रुसे ही कोई भय होता। वृक्षोंमें सदा फल लगे रहते और पृथ्वीपर अधिक मात्रामें अनाजकी उपज होती थी। स्त्रियोंका जीवन पुत्र-पौत्र आदि परिवारसे सनाथ रहता था। उन्हें निरन्तर अपने प्रियतमका संयोगजनित सुख मिलते रहनेके कारण विरहका क्लेश नहीं भोगना पड़ता था। सब लोग सदा श्रीरघुनाथजीके चरणकमलोंकी कथा सुननेके लिये उत्सुक रहते थे। उनकी वाणी कभी परायी निन्दामें नहीं प्रवृत्त होती थी। उनके मनमें भी कभी पापका संकल्प नहीं होता था। सीतापति श्रीरामके मुखकी ओर निहारते समय लोगोंकी आँखें स्थिर हो जातीं—वे एकटक नेत्रोंसे उन्हें देखते रह जाते थे। सबका हृदय निरन्तर करुणासे भरा रहता था। सदा इष्ट (यज्ञ-यागादि) और आपूर्त (कुएँ खुदवाने, बगीचे लगवाने आदि)-के अनुष्ठान करनेवाले लोगोंके द्वारा उस राज्यकी जड़ और मजबूत होती थी। समूचे राष्ट्रमें सदा हरी-भरी खेती लहराती रहती थी। जहाँ सुगमतापूर्वक यात्रा की जा सके, ऐसे क्षेत्रोंसे वह देश भरा हुआ था। उस राज्यका देश सुन्दर और प्रजा उत्तम थी। सब लोग स्वस्थ रहते थे। गौएँ अधिक थीं और घास-पातका अच्छा सुभीता था। स्थान-स्थानपर देव-मन्दिरोंकी श्रेणियाँ रामराज्यकी शोभा बढ़ाती थीं। उस राज्यमें सभी गाँव भरे-पूरे और धन-सम्पत्तिसे सुशोभित थे। वाटिकाओंमें सुन्दर-सुन्दर फूल शोभा पाते और वृक्षोंमें स्वादिष्ट फल लगते थे। कमलोंसे भरे हुए तालाब वहाँकी भूमिका सौन्दर्य बढ़ा रहे थे।

रामराज्यमें केवल नदी ही सदम्भा (उत्तम जलवाली) थी, वहाँकी जनता कहीं भी सदम्भा (दम्भ या पाखण्डसे युक्त) नहीं दिखायी देती थी। ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वर्णोंके कुल (समुदाय) ही कुलीन (उत्तम कुलमें उत्पन्न) थे, उनके धन नहीं कुलीन थे (अर्थात् उनके धनका कुत्सित मार्गमें लय—उपयोग नहीं होता था)। उस राज्यकी स्त्रियोंमें ही विभ्रम (हाव-भाव या विलास) था; विद्वानोंमें कहीं विभ्रम (भ्रान्ति या भूल)-का नाम भी नहीं था। वहाँकी नदियाँ ही कुटिल मार्गसे जाती थीं, प्रजा नहीं; अर्थात् प्रजामें कुटिलताका सर्वथा अभाव था। श्रीरामके राज्यमें केवल कृष्णपक्षकी रात्रि ही तम (अन्धकार)-से युक्त थी, मनुष्योंमें तम (अज्ञान या दुःख) नहीं था। वहाँकी स्त्रियोंमें ही रजका संयोग देखा जाता था, धर्म-प्रधान मनुष्योंमें नहीं; अर्थात् मनुष्योंमें धर्मकी अधिकता होनेके कारण सत्त्वगुणका ही उद्रेक होता था [रजोगुणका नहीं]। धनसे वहाँके मनुष्य ही अनन्ध थे (मदान्ध होनेसे बचे थे); उनका भोजन अनन्ध (अन्नरहित) नहीं था। उस राज्यमें केवल रथ ही 'अनय' (लोहरहित) था; राजकर्मचारियोंमें 'अनय' (अन्याय)-का भाव नहीं था। फरसे, फावड़े, चँवर तथा छत्रोंमें ही दण्ड (डंडा) देखा जाता था; अन्यत्र कहीं भी क्रोध या बन्धन-जनित दण्ड देखनेमें नहीं आता था। जलोंमें ही जडता (या जलत्व)-की बात सुनी जाती थी; मनुष्योंमें नहीं। स्त्रीके मध्यभाग (कटि)-में ही दुर्बलता (पतलापन) थी; अन्यत्र नहीं। वहाँ ओषधियोंमें ही कुष्ठ (कूट या कूठ नामक दवा)-का योग देखा जाता था, मनुष्योंमें कुष्ठ (कोढ़)-का नाम भी नहीं था। रत्नोंमें ही वेध (छिद्र) होता था, मूर्तियोंके हाथोंमें ही शूल (त्रिशूल) रहता था, प्रजाके शरीरमें वेध या शूलका रोग नहीं था। रसानुभूतिके समय सात्त्विक भावके कारण ही शरीरमें कम्प होता था; भयके कारण कहीं किसीको कँपकँपी होती हो—ऐसी बात नहीं देखी जाती थी। राम-राज्यमें केवल हाथी ही मतवाले होते थे, मनुष्योंमें कोई मतवाला नहीं था। तरंगें जलाशयोंमें ही उठती थीं, किसीके मनमें नहीं; क्योंकि सबका मन स्थिर था। दान (मद)-का त्याग केवल हाथियोंमें ही दृष्टिगोचर होता था; राजाओंमें नहीं। काँटे ही तीखे होते थे, मनुष्योंका स्वभाव नहीं। केवल बाणोंका ही गुणोंसे वियोग होता था[२]

१-'ईति' कई प्रकारकी होती है—अवृष्टि (सूखा पड़ना), अतिवृष्टि (अधिक वर्षाके कारण बाढ़ आना), खेतोंमें चूहोंका लगना, टिड्डियोंका उपद्रव, सुग्गोंसे हानि और राजासे वैर इत्यादि।

२-धनुषकी डोरीको गुण कहते हैं, छूटते समय बाणका उससे वियोग होता है।

मनुष्योंका नहीं। दृढ़ बन्धोक्ति (सुश्लिष्ट प्रबन्धरचना या कमलबन्ध आदि श्लोकोंकी रचना) केवल पुस्तकोंमें ही उपलब्ध होती थी; लोकमें कोई सुदृढ़ बन्धनमें बाँधा या कैद किया गया हो—ऐसी बात नहीं सुनी जाती थी।

प्रजाको सदा ही श्रीरामचन्द्रजीसे लाड़-प्यार प्राप्त होता था। अपने द्वारा लालित प्रजाका निरन्तर लालन-पालन करते हुए वे उस सम्पूर्ण देशकी रक्षा करते थे।

श्रीरामके दरबारमें अगस्त्यजीका आगमन, उनके द्वारा रावण आदिके जन्म तथा तपस्याका वर्णन और देवताओंकी प्रार्थनासे भगवान्‌का अवतार लेना

शेषजी कहते हैं—एक बार एक नीचके मुखसे श्रीसीताजीके अपमानकी बात सुनकर—धोबीके आक्षेपपूर्ण वचनसे प्रभावित होकर श्रीरघुनाथजीने अपनी पत्नीका परित्याग कर दिया। इसके बाद वे सीतासे रहित एकमात्र पृथ्वीका, जो उनके आदेशसे ही सुरक्षित थी, धर्मानुसार पालन करने लगे। एक दिन महामति श्रीरामचन्द्रजी राजसभामें बैठे हुए थे, इसी समय मुनियोंमें श्रेष्ठ अगस्त्य ऋषि, जो बहुत बड़े महात्मा थे, वहाँ पधारे। समुद्रको सोख लेनेवाले उन अद्‌भुत महर्षिको आया देख महाराज श्रीरामचन्द्रजी अर्घ्य लिये सम्पूर्ण सभासदों तथा गुरु वसिष्ठके साथ उठकर खड़े हो गये। फिर स्वागत-सत्कारके द्वारा उन्हें सम्मानित करके भगवान्‌ने उनकी कुशल पूछी और जब वे सुखपूर्वक आसनपर बैठकर विश्राम कर चुके तो श्रीरघुनन्दनने उनसे वार्तालाप आरम्भ किया।

श्रीरामने कहा—महाभाग कुम्भज! आपका स्वागत है। तपोनिधे! निश्चय ही आज आपके दर्शनसे हम सब लोग कुटुम्बसहित पवित्र हो गये। इस भूमण्डलपर कहीं कोई भी ऐसा प्राणी नहीं है जो आपकी तपस्यामें विघ्न डाल सके। आपकी सहधर्मिणी लोपामुद्रा भी बड़ी सौभाग्यशालिनी हैं, जिनके पातिव्रत्य-धर्मके प्रभावसे सब कुछ शुभ ही होता है। मुनीश्वर! आप धर्मके साक्षात् विग्रह और करुणाके सागर हैं। लोभ तो आपको छू भी नहीं गया है। बताइये, मैं आपका कौन-सा कार्य करूँ? महामुने! यद्यपि आपकी तपस्याके प्रभावसे ही सब कुछ सिद्ध हो जाता है, आपके संकल्पमात्रसे ही बहुत कुछ हो सकता है; तथापि मुझपर कृपा करके ही मेरे लिये कोई सेवा बतलाइये।

शेषजी कहते हैं—मुने! राजाओंके भी राजा परम बुद्धिमान् जगद्‌गुरु श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर महर्षि अगस्त्यजी अत्यन्त विनययुक्त वाणीमें बोले।

अगस्त्यजीने कहा—स्वामिन्! आपका दर्शन देवताओंके लिये भी दुर्लभ है; यही सोचकर मैं यहाँ आया हूँ। राजाधिराज! मुझे अपने दर्शनके लिये ही आया हुआ समझिये। कृपानिधे! आपने रावण नामक असुरका, जो समस्त लोकोंके लिये कण्टकरूप था, वध कर डाला—यह बहुत अच्छा हुआ। अब देवगण

सुखी और विभीषण राजा हुए—यह बड़े सौभाग्यकी बात है। श्रीराम! आज आपका दर्शन पाकर मेरे मनका खाली खजाना भर गया। मेरे सारे पाप नष्ट हो गये।

यों कहकर महर्षि कुम्भज चुप हो गये। भगवान्‌के दर्शनजनित आह्लादसे उनका चित्त विह्वल हो रहा था। उस समय श्रीरघुनाथजीने उन ज्ञान-विशारद मुनिसे पुनः इस प्रकार प्रश्न किया—'मुने! मैं आपसे कुछ बातें पूछ रहा हूँ, आप उन्हें विस्तारपूर्वक बतलावें। देवताओंको पीड़ा देनेवाला वह रावण, जिसे मैंने मारा है, कौन था? तथा उस दुरात्माका भाई कुम्भकर्ण भी कौन था? उसकी जाति—उसके बन्धु-बान्धव कौन थे? सर्वज्ञ! आप इन सब बातोंको विस्तारके साथ जानते हैं, अतः मुझे सब बताइये।' भगवान्‌की ये बातें सुनकर तपोनिधि कुम्भज ऋषिने इन सबका उत्तर देना आरम्भ किया—"राजन्! सम्पूर्ण जगत्‌की सृष्टि करनेवाले जो ब्रह्माजी हैं, उनके पुत्र महर्षि पुलस्त्य हुए। पुलस्त्यजीसे मुनिवर विश्रवाका जन्म हुआ, जो वेदविद्यामें अत्यन्त प्रवीण थे। उनकी दो पत्नियाँ थीं, जो बड़ी पतिव्रता और सदाचारिणी थीं। उनमेंसे एकका नाम मन्दाकिनी था और दूसरी कैकसी नामसे प्रसिद्ध थी। पहली स्त्री मन्दाकिनीके गर्भसे कुबेरका जन्म हुआ, जो लोकपालके पदको प्राप्त हुए हैं। उन्होंने भगवान् शंकरके प्रसादसे लंकापुरीको अपना निवास-स्थान बनाया था। कैकसी विद्युन्माली नामक दैत्यकी पुत्री थी, उसके गर्भसे रावण, कुम्भकर्ण तथा पुण्यात्मा विभीषण—ये तीन महाबली पुत्र उत्पन्न हुए। महामते! इनमें रावण और कुम्भकर्णकी बुद्धि अधर्ममें निपुण हुई; क्योंकि वे दोनों जिस गर्भसे उत्पन्न हुए थे, उसकी स्थापना सन्ध्याकालमें हुई थी।

एक समयकी बात है, कुबेर परम शोभायमान पुष्पक विमानपर आरूढ़ हो माता-पिताका दर्शन करनेके लिये उनके आश्रममें गये। वहाँ जाकर वे अधिक कालतक माता-पिताके चरणोंमें पड़े रहे। उस समय उनका हृदय हर्षसे विह्वल हो रहा था और सम्पूर्ण शरीरमें रोमांच हो आया था। वे बोले—'माता और पिताजी! आजका दिन मेरे लिये बहुत ही सुन्दर तथा महान् सौभाग्यजनक फलको प्रकट करनेवाला है; क्योंकि इस समय मुझे आपके इन युगल चरणोंका दर्शन मिला है जो अत्यन्त पुण्य प्रदान करनेवाला है।' इस प्रकार स्तुतियुक्त पदोंसे माता-पिताका स्तवन करके कुबेर पुनः अपने भवनको लौट गये। रावण बड़ा बुद्धिमान् था, उसने कुबेरको देखकर अपनी मातासे पूछा—'माँ! ये कौन हैं, जो मेरे पिताजीके चरणोंकी सेवा करके फिर लौट गये हैं? इनका विमान तो वायुके समान वेगवान् है। इन्हें किस तपस्यासे ऐसा विमान प्राप्त हुआ है?'

शेषजी कहते हैं—मुने! रावणका वचन सुनकर उसकी माता रोषसे विकल हो उठी और कुछ आँखें टेढ़ी करके अनमनी होकर बेटेसे बोली—'अरे! मेरी बात सुन, इसमें बहुत शिक्षा भरी हुई है। जिनके विषयमें तू पूछ रहा है, वे मेरी सौतकी कोखके रत्न—कुबेर यहाँ उपस्थित हुए थे; जिन्होंने अपनी माताके विमल वंशको अपने जन्मसे और भी उज्ज्वल बना दिया है। परन्तु तू तो मेरे गर्भका कीड़ा है, केवल अपना पेट भरनेमें ही लगा हुआ है। कुबेरने तपस्यासे भगवान् शंकरको सन्तुष्ट करके लंकाका निवास, मनके समान वेगशाली विमान

तथा राज्य और सम्पत्तियाँ प्राप्त की हैं। संसारमें वही माता धन्य, सौभाग्यवती तथा महान् अभ्युदयसे सुशोभित होनेवाली है, जिसके पुत्रने अपने गुणोंसे महापुरुषोंका पद प्राप्त कर लिया हो।' रावण दुरात्माओंमें सबसे श्रेष्ठ था, उसने अपनी माताके क्रोधपूर्ण वचन सुनकर तपस्या करनेका निश्चय किया और उससे कहा।

रावण बोला—माँ! कीड़ेकी-सी हस्ती रखनेवाला वह कुबेर क्या चीज है? उसकी थोड़ी-सी तपस्या किस गिनतीमें है? लंकाकी क्या बिसात है? तथा बहुत थोड़े सेवकोंवाला उसका राज्य भी किस कामका है? यदि मैं अन्न, जल, निद्रा और क्रीड़ाका सर्वदा परित्याग करके ब्रह्माजीको सन्तुष्ट करनेवाली दुष्कर तपस्याके द्वारा सम्पूर्ण लोकोंको अपने वशमें न कर लूँ तो मुझे पितृलोकके विनाशका पाप लगे।

तत्पश्चात् कुम्भकर्ण और विभीषणने भी तपस्याका निश्चय किया। फिर रावण अपने भाइयोंको साथ लेकर पर्वतीय वनमें चला गया। वहाँ उसने सूर्यकी ओर ऊपर दृष्टि लगाये एक पैरसे खड़ा होकर दस हजार वर्षोंतक घोर तपस्या की। कुम्भकर्णने भी बड़ा कठोर तप किया।

विभीषण तो धर्मात्मा थे; अतः उन्होंने उत्तम तपस्याका अनुष्ठान किया। तदनन्तर देवाधिदेव भगवान् ब्रह्माजीने प्रसन्न होकर रावणको बहुत बड़ा राज्य दिया और उसका स्वरूप तीनों लोकोंमें प्रकाशमान एवं सुन्दर बना दिया, जो देवता और दानव दोनोंसे सेवित था। कुबेरकी बुद्धि सदा धर्ममें ही लगी रहती थी। रावणने वर पानेके अनन्तर अपने भाई कुबेरको बहुत सताया। उनका विमान छीन लिया तथा उनकी लंकानगरीपर भी हठात् अधिकार जमा लिया। उसने समस्त लोकोंको सन्ताप पहुँचाया। देवता स्वर्गसे भाग गये। उस निशाचरने ब्राह्मण-वंशका भी विनाश किया और मुनियोंकी तो वह जड़ ही काटता फिरता था। तब उसके अत्याचारसे अत्यन्त दुःखी होकर इन्द्र आदि समस्त देवता ब्रह्माजीके पास गये तथा दण्डवत्-प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगे। जब सबने आदरपूर्वक प्रिय वचनोंद्वारा उनका स्तवन किया तो भगवान् ब्रह्माने प्रसन्न होकर कहा—'देवगण! मैं तुम्हारा कौन-सा कार्य करूँ?' तब देवताओंने ब्रह्माजीसे अपना अभिप्राय निवेदन किया—रावणसे प्राप्त होनेवाले अपने कष्ट और पराजयका वर्णन किया। उनकी बातें सुनकर ब्रह्माजीने क्षणभर विचार किया, फिर देवताओंको साथ लेकर वे कैलास-पर्वतपर गये। उस पर्वतके पास पहुँचकर इन्द्र आदि देवता वहाँकी विचित्रता देखकर मुग्ध हो गये और खड़े होकर उन्होंने शंकरजीकी इस प्रकार स्तुति की—'भगवन्! आप भव (उत्पादक), शर्व (संहारक) तथा नीलग्रीव (कण्ठमें नील चिह्न धारण करनेवाले) आदि नामसे प्रसिद्ध हैं, आपको नमस्कार है। स्थूल और सूक्ष्मरूप धारण करनेवाले आपको प्रणाम है तथा अनेकों रूपोंमें प्रतीत होनेवाले आपको नमस्कार है।'

सब देवताओंके मुखसे यह स्तुतियुक्त वाणी सुनकर भगवान् शंकरने नन्दीसे कहा—'देवताओंको मेरे पास बुला लाओ।' आज्ञा पाकर नन्दीने उसी समय देवताओंको बुलाया। अन्तःपुरमें पहुँचकर उन्होंने आश्चर्यचकित दृष्टिसे भगवान्‌का दर्शन किया। देवताओंके साथ प्रणाम करके ब्रह्माजी शिवजीके सामने

खड़े हो गये और उन देवदेवेश्वरसे बोले—'शरणागतवत्सल महादेव! आप देवताओंकी अवस्था-पर दृष्टि डालिये और इनके ऊपर कृपा कीजिये। दुष्ट राक्षस रावणका वध करनेके लिये जो उद्योग हो सके, वह कीजिये।' ब्रह्माजीके दैन्य और शोकसे युक्त वचन सुनकर शंकरजी भी देवताओंके साथ भगवान् श्रीविष्णुके स्थानपर आये। वहाँ देवता, नाग किन्नर और मुनि सबने मिलकर भगवान्‌की स्तुति की—'देवताओंके स्वामी माधव! आपकी जय हो, भक्तजनोंका दुःख दूर करनेवाले परमेश्वर! आपकी जय हो, महादेव! हमपर कृपा कीजिये और अपने इन सेवकोंपर दृष्टि डालिये।'

रुद्र आदि सम्पूर्ण देवताओंने जब इस प्रकार उच्च-स्वरसे स्तवन किया तो उनके वचन सुनकर देवाधिदेव श्रीविष्णुने देवसमुदायके दुःखपर अच्छी तरह विचार किया। तत्पश्चात् वे मेघके समान गम्भीर वाणीसे उनका शोक शान्त करते हुए बोले—ब्रह्मा, रुद्र और इन्द्र आदि देवताओ! मैं आपलोगोंके हितकी बात बता रहा हूँ, सुनिये; रावणके द्वारा जो आपको भय प्राप्त हुआ है, उसे मैं जानता हूँ, अब अवतार धारण करके मैं उस भयका नाश करूँगा। भूमण्डलमें एक अयोध्या नामकी पुरी है, जो बड़े-बड़े दान और यज्ञ आदि शुभ-कर्मोंका अनुष्ठान करनेवाले सूर्यवंशी राजाओंद्वारा सुरक्षित है; वह अपनी रजतमयी भूमिसे सुशोभित हो रही है। उस पुरीमें दशरथ नामसे प्रसिद्ध एक राजा हैं, जो इस समय दसों दिशाओंको जीतकर पृथ्वीके राज्यका पालन कर रहे हैं। यद्यपि वे राज्यलक्ष्मीसे सम्पन्न और शक्तिशाली हैं, तथापि अभीतक उन्हें कोई सन्तान नहीं है। महान् बलशाली राजा दशरथ पुत्र-प्राप्तिकी इच्छासे वन्दनीय ऋष्यशृंगमुनिको प्रार्थनापूर्वक बुलावेंगे और उनके आचार्यत्वमें विधिपूर्वक पुत्रेष्टि यज्ञका अनुष्ठान करेंगे। तदनन्तर मैं आपलोगोंके हितके लिये राजाकी तीन रानियोंके गर्भसे चार स्वरूपोंमें प्रकट होऊँगा। राजा भी पूर्व-जन्ममें तपस्या करके मुझसे इस बातके लिये प्रार्थना कर चुके हैं। मेरे चारों स्वरूप क्रमशः, राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्नके नामसे प्रसिद्ध होंगे। उस समय मैं रावणका बल, वाहन और जड़-मूलसहित संहार कर डालूँगा। आपलोग भी अपने-अपने अंशसे भालू और वानरके रूपमें प्रकट होकर पृथ्वीपर सर्वत्र विचरते रहिये।'

इस प्रकार आकाशवाणी करके भगवान् मौन हो गये। उनका वचन सुनकर सब देवताओंका चित्त प्रसन्न हो गया। परम मेधावी देवाधिदेव भगवान्‌ने जैसा कहा था, उसीके अनुसार देवताओंने कार्य किया। उन्होंने अपने-अपने अंशसे ऋक्ष और वानरका रूप धारण करके समूची पृथ्वीको भर दिया। महाराज! देवताओंका दुःख दूर करनेवाले जो महान् देव श्रीविष्णु कहलाते हैं, वे आप ही हैं। आप ही मानवशरीरधारी भगवान् हैं। महामते! ये भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न आपहीके अंश हैं। आपने देवताओंको पीड़ा देनेवाले दशाननका वध किया है। उस दैत्यकी ब्रह्म-राक्षस जाति थी, उसीका आपके द्वारा वध हुआ है। नरश्रेष्ठ! आप जगत्‌के उत्पत्ति-स्थान और सम्पूर्ण विश्वके आत्मा हैं। आपके राजा होनेसे देवता, असुर और मनुष्योंसहित समस्त संसारको सुख प्राप्त हुआ है। पापके स्पर्शसे रहित श्रीरघुनाथजी! आपने जो कुछ पूछा है, वह सब मैंने बतला दिया।''

अगस्त्यका अश्वमेधयज्ञकी सलाह देकर अश्वकी परीक्षा करना तथा यज्ञके लिये आये हुए ऋषियोंद्वारा धर्मकी चर्चा

श्रीराम बोले—विप्रवर! इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुए किसी पुरुषके मुखसे कभी ब्राह्मणोंने कटुवचनतक नहीं सुना था [किन्तु मैंने उनकी हत्या कर डाली।] वर्ण और आश्रमके भेदसे भिन्न-भिन्न धर्मोंके मूल हैं वेद और वेदोंके मूल हैं ब्राह्मण। ब्राह्मणवंश ही वेदोंकी सम्पूर्ण शाखाओंको धारण करनेवाला एकमात्र वृक्ष है। ऐसे ब्राह्मण-कुलका मेरे द्वारा संहार हुआ है; ऐसी अवस्थामें मैं क्या करूँ, जिससे मेरा कल्याण हो?

अगस्त्यजीने कहा—राजन्! आप अन्तर्यामी आत्मा एवं प्रकृतिसे परे साक्षात् परमेश्वर हैं। आप ही इस जगत्के कर्ता, पालक और संहारक हैं। साक्षात् गुणातीत परमात्मा होते हुए भी आपने स्वेच्छासे सगुणस्वरूप धारण किया है। शराबी, ब्रह्महत्यारा, सोना चुरानेवाला तथा महापापी (गुरुस्त्रीगामी)—ये सभी आपके नामका उच्चारण करनेमात्रसे तत्काल पवित्र हो जाते हैं।* महामते! ये जनककिशोरी भगवती सीता महाविद्या हैं; जिनके स्मरणमात्रसे मनुष्य मुक्त होकर सद्गति प्राप्त कर लेंगे। लोगोंपर अनुग्रह करनेवाले महावीर श्रीराम! जो राजा अश्वमेधयज्ञका अनुष्ठान करता है, वह सब पापोंके पार हो जाता है। राजा मनु, सगर, मरुत्त और नहुषनन्दन ययाति—ये आपके सभी पूर्वज यज्ञ करके परमपदको प्राप्त हुए हैं। महाराज! आप सर्वथा समर्थ हैं, अतः आप भी यज्ञ करिये। परम सौभाग्यशाली श्रीरघुनाथजीने महर्षि अगस्त्यजीकी बात सुनकर यज्ञ करनेका ही विचार किया और उसकी विधि पूछी।

श्रीराम बोले—महर्षे! अश्वमेधयज्ञमें कैसा अश्व होना चाहिये? उसके पूजनकी विधि क्या है? किस प्रकार उसका अनुष्ठान किया जा सकता है तथा उसके लिये किन-किन शत्रुओंको जीतनेकी आवश्यकता है?

अगस्त्यजीने कहा—रघुनन्दन! जिसका रंग गंगाजलके समान उज्ज्वल तथा शरीर सुन्दर हो, जिसका कान श्याम, मुँह लाल और पूँछ पीले रंगकी हो तथा जो देखनेमें भी अच्छा जान पड़े, वह उत्तम लक्षणोंसे लक्षित अश्व ही अश्वमेधमें ग्राह्य बतलाया गया है। वैशाखमासकी पूर्णिमाको अश्वकी विधिवत् पूजा करके एक ऐसा पत्र लिखे जिसमें अपने नाम और बलका उल्लेख हो, वह पत्र घोड़ेके ललाटमें बाँधकर उसे स्वच्छन्द विचरनेके लिये छोड़ देना चाहिये तथा बहुत-से रक्षकोंको तैनात करके उसकी सब ओरसे प्रयत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिये। यज्ञका घोड़ा जहाँ-जहाँ जाय, उन सब स्थानोंपर रक्षकोंको भी जाना चाहिये। जो कोई राजा अपने बल या पराक्रमके घमंडमें आकर उस घोड़ेको जबरदस्ती बाँध ले, उससे लड़-भिड़कर उस अश्वको बलपूर्वक छीन लाना रक्षकोंका कर्तव्य है। जबतक अश्व लौटकर न आ जाय, तबतक यज्ञ-कर्त्ताको उत्तम विधि एवं नियमोंका पालन करते हुए राजधानीमें ही रहना चाहिये। वह ब्रह्मचर्यका पालन करे और मृगका सींग हाथमें धारण किये रहे। यज्ञ-सम्बन्धी व्रतका पालन करनेके साथ ही एक वर्षतक दीनों, अंधों और दुःखियोंको धन आदि देकर सन्तुष्ट करते रहना चाहिये। महाराज! बहुत-सा अन्न और धन दान करना उचित है। याचक जिस-जिस वस्तुके लिये याचना करे, बुद्धिमान् दाताको उसे वही-वही वस्तु देनी चाहिये। इस प्रकारका कार्य करते हुए यजमानका यज्ञ जब भलीभाँति पूर्ण हो जाता है, तो वह सब पापोंका नाश कर डालता है। शत्रुओंका नाश करनेवाले रघुनाथजी! आप यह सब कुछ करने, सब नियमोंको पालने तथा अश्वका विधिवत् पूजन करनेमें समर्थ हैं; अतः इस यज्ञके द्वारा

* सुरापो ब्रह्महत्याकृत्स्वर्णस्तेयी महाघकृत्। सर्वे त्वन्नामवादेन पूताः शीघ्रं भवन्ति हि॥ (८। १९)

अपनी विशद कीर्तिका विस्तार करके दूसरे मनुष्योंको भी पवित्र कीजिये।

श्रीरामचन्द्रजीने कहा—विप्रवर! आप इस समय मेरी अश्वशालाका निरीक्षण कीजिये और देखिये, उसमें ऐसे उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न घोड़े हैं या नहीं।

भगवान्‌की बात सुनकर दयालु महर्षि उठकर खड़े हो गये और यज्ञके योग्य उत्तम घोड़ोंको देखनेके लिये चल दिये। श्रीरामचन्द्रजीके साथ अश्वशालामें जाकर उन्होंने देखा, वहाँ चित्र-विचित्र शरीरवाले अनेकों प्रकारके अश्व थे, जो मनके समान वेगवान् और अत्यन्त बलवान् प्रतीत होते थे। उसमें ऊपर बताये हुए रंगके एक-दो नहीं, सैकड़ों घोड़े थे, जिनकी पूँछ पीली और मुख लाल थे। साथ ही वे सभी तरहके शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न दिखायी देते थे। उन्हें देखकर अगस्त्यजी बोले—'रघुनन्दन! आपके यहाँ अश्वमेधके योग्य बहुत-से सुन्दर घोड़े हैं; अतः आप विस्तारके साथ उस यज्ञका अनुष्ठान कीजिये। महाराज श्रीराम! आप महान् सौभाग्यशाली हैं। देवता और असुर—सभी आपके चरणोंपर मस्तक झुकाते हैं; अतः आपको इस यज्ञका अनुष्ठान अवश्य करना चाहिये। मुनिके इस वचनसे उन्होंने यज्ञके सभी मनोहर सम्भार एकत्रित किये।
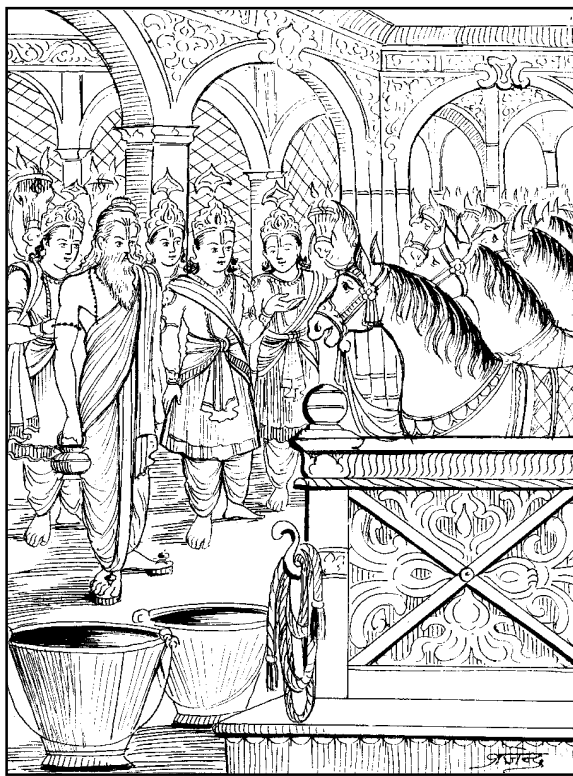
तत्पश्चात् महाराज श्रीराम मुनियोंके साथ सरयू-तटपर आये और सोनेके हलोंसे चार योजन लंबी-चौड़ी बहुत बड़ी भूमिको जोता। इसके बाद उन

पुरुषोत्तमने यज्ञके लिये अनेकों मण्डप बनवाये और योनि एवं मेखलासे युक्त कुण्डका विधिवत् निर्माण करके उसे अनेकों रत्नोंसे सुसज्जित एवं सब प्रकारकी शोभासे सम्पन्न बनाया। महान् तपस्वी एवं परम सौभाग्यशाली मुनिवर वसिष्ठने सब कार्य वेदशास्त्रकी विधिके अनुसार सम्पन्न कराया। उन्होंने अपने शिष्योंको महर्षियोंके आश्रमोंपर भेजकर कहलाया कि श्रीरघुनाथजी अश्वमेधयज्ञका अनुष्ठान करनेके लिये उद्यत हुए हैं; अतः आप सब लोग उसमें पधारें। इस प्रकार आमन्त्रित होकर वे सभी तपस्वी महर्षि भगवान् श्रीरामके दर्शनके लिये अत्यन्त उत्कण्ठित होकर वहाँ आये। नारद, असित, पर्वत, कपिलमुनि, जातूकर्ण्य, अंगिरा, आर्ष्टिषेण, अत्रि, गौतम, हारीत, याज्ञवल्क्य तथा संवर्त आदि महात्मा भी भगवान् श्रीरामके अश्वमेध यज्ञमें

आये। श्रीरघुनाथजीने बड़े आनन्दके साथ उठकर उनका स्वागत किया और उन्हें प्रणाम करके अर्घ्य तथा आसन आदि देकर उन सबकी विधिवत् पूजा की। फिर गौ और सुवर्ण निवेदन करके वे बोले—'महर्षियो! मेरे बड़े भाग्य हैं, जो आपके दर्शन हुए।'

शेषजी कहते हैं—ब्रह्मन्! इस प्रकार जब वहाँ बड़े-बड़े ऋषियोंका समुदाय एकत्रित हुआ तो उनमें वर्ण और आश्रमके अनुकूल धर्मविषयक चर्चा होने लगी।

वात्स्यायनजीने पूछा—भगवन्! वहाँ धर्मके सम्बन्धमें क्या-क्या बातें हुईं? कौन-सी अद्भुत बात बतायी गयी? उन महात्माओंने सब लोगोंपर दया करके किस विषयका वर्णन किया?

शेषजीने कहा—मुने! महापुरुषोंमें श्रेष्ठ दशरथनन्दन भगवान् श्रीरामने सब मुनियोंको एकत्रित देखकर उनसे समस्त वर्णों और आश्रमोंके धर्म पूछे। श्रीरघुनाथजीके पूछनेपर उन महर्षियोंने जिन-जिन महान् गुणकारी धर्मोंका वर्णन किया, उन सबको मैं विधिपूर्वक बतलाऊँगा, आप ध्यान देकर सुनें।

ऋषि बोले—ब्राह्मणको सदा यज्ञ करना और वेद पढ़ाना आदि कार्य करना चाहिये। वह ब्रह्मचर्य-आश्रममें वेदोंका अध्ययन पूर्ण करके इच्छा हो तो विरक्त हो जाय और यदि ऐसी इच्छा न हो तो गृहस्थ-आश्रममें प्रवेश करे। नीच पुरुषोंकी सेवासे जीविका चलाना ब्राह्मणके लिये सदा त्याज्य है। वह आपत्तिमें पड़नेपर भी कभी सेवा-वृत्तिसे जीवन-निर्वाह न करे।

सन्तान-प्राप्तिकी इच्छासे ऋतुकालमें अपनी पत्नीके साथ समागम करना उचित माना गया है। दिनमें स्त्रीके साथ सम्पर्क करना पुरुषोंकी आयुको नष्ट करनेवाला है। श्राद्धका दिन और सभी पर्व स्त्री-समागमके लिये निषिद्ध हैं, अतः बुद्धिमान् पुरुषोंको इनका त्याग करना चाहिये। जो मोहवश उक्त समयमें भी स्त्रीके साथ सम्पर्क करता है; वह उत्तम धर्मसे भ्रष्ट हो जाता है। जो पुरुष केवल ऋतुकालमें स्त्रीके साथ समागम करता है तथा अपनी ही पत्नीमें अनुराग रखता है [परायी स्त्रीकी ओर कुदृष्टि नहीं डालता], उस उत्तम गृहस्थको इस जगत्‌में सदा ब्रह्मचारी ही समझना चाहिये। स्त्रीके रजस्वला होनेसे लेकर सोलह रात्रियाँ ऋतु कहलाती हैं, उनमें पहली चार रातें निन्दित हैं; [अतः उनमें स्त्रीका स्पर्श नहीं करना चाहिये] शेष बारह रातोंमेंसे जो सम संख्यावाली अर्थात् छठीं और आठवीं आदि रातें हैं, उनमें स्त्री-समागम करनेसे पुत्रकी उत्पत्ति होती है तथा विषम संख्यावाली अर्थात् पाँचवीं, सातवीं आदि रात्रियाँ कन्याकी उत्पत्ति करानेवाली हैं। जिस दिन चन्द्रमा अपने लिये दूषित हों, उस दिनको छोड़कर तथा मघा और मूलनक्षत्रका भी परित्याग करके विशेषतः पुँल्लिंग नामवाले श्रवण आदि नक्षत्रोंमें शुद्ध भावसे पत्नीके साथ समागम करे; इससे चारों पुरुषार्थोंके साधक शुद्ध एवं सदाचारी पुत्रका जन्म होता है।

थोड़ी-सी भी कीमत लेकर कन्याको बेचनेवाला पुरुष पापी माना गया है। ब्राह्मणके लिये व्यापार, राजाकी सेवा, वेदाध्ययनका त्याग, निन्दित विवाह और नित्य कर्मका लोप—ये दोष कुलको नीचे गिरानेवाले

हैं।[1] गृहस्थाश्रममें रहनेवाले पुरुषको अन्न, जल, दूध, मूल अथवा फल आदिके द्वारा अतिथिका सत्कार करना चाहिये। आया हुआ अतिथि सत्कार न पाकर जिसके घरसे निराश लौट जाता है, वह गृहस्थ जीवनभरके कमाये हुए पुण्यसे क्षणभरमें वंचित हो जाता है।[2] गृहस्थको उचित है कि वह बलिवैश्वदेव-कर्मके द्वारा देवताओं, पितरों तथा मनुष्योंको उनका भाग देकर शेष अन्नका भोजन करे, वही उसके लिये अमृत है। जो केवल अपना पेट भरनेवाला है—जो अपने ही लिये भोजन बनाता और खाता है, वह पापका ही भोजन करता है। तेलमें षष्ठी और अष्टमीको तथा मांसमें सदा ही पापका निवास है। चतुर्दशीको क्षौर-कर्म तथा अमावास्याको स्त्री-समागमका त्याग करना चाहिये।[3] रजस्वला-अवस्थामें स्त्रीके सम्पर्कसे दूर रहे। पत्नीके साथ भोजन न करे। एक वस्त्र पहनकर तथा चटाईके आसनपर बैठकर भोजन करना निषिद्ध है। अपनेमें तेजकी इच्छा रखनेवाले श्रेष्ठ पुरुषको भोजन करती हुई स्त्रीकी ओर नहीं देखना चाहिये। मुँहसे आगको न फूँके, नंगी स्त्रीकी ओर दृष्टि न डाले। बछड़ेको दूध पिलाती हुई गौको न छेड़े। दूसरेको इन्द्र-धनुष न दिखावे। रातमें दही खाना सर्वथा निषिद्ध है। आगमें अपने पैर न सेंके, उसमें कोई अपवित्र वस्तु न डाले। किसी भी जीवकी हिंसा तथा दोनों सन्ध्याओंके समय भोजन न करे। रात्रिको खूब पेट भरके भोजन करना उचित नहीं है। पुरुषको नाचने, गाने और बजानेमें आसक्ति नहीं रखनी चाहिये। काँसेके बर्तनमें पैर धुलाना निषिद्ध है। दूसरेके पहने हुए कपड़े और जूते न धारण करे। फूटे अथवा दूसरेके जूठे किये हुए बर्तनमें भोजन न करे, भीगे पैर न सोये। हाथ और मुँहके जूठे रहते हुए कहीं न जाय। सोते-सोते न खाय। उच्छिष्ट-अवस्थामें मस्तकका स्पर्श न करे। दूसरोंके गुप्त भेद न खोले। इस प्रकार गृहस्थ-धर्मका समय पूरा करके वानप्रस्थ-आश्रममें प्रवेश करे। उस समय इच्छा हो तो वैराग्यपूर्वक स्त्रीके साथ रहे अथवा स्त्रीको साथ न रखकर उसे पुत्रोंके अधीन सौंप दे। वानप्रस्थ-धर्मका पूर्ण पालन करनेके पश्चात् विरक्त हो जाय—संन्यास ले ले।

वात्स्यायनजी! उस समय महर्षियोंने उपर्युक्त प्रकारसे अनेकों धर्मोंका वर्णन किया तथा सम्पूर्ण जगत्के महान् हितैषी भगवान् श्रीरामने उन सबको ध्यानपूर्वक सुना।

यज्ञ-सम्बन्धी अश्वका छोड़ा जाना और श्रीरामका उसकी रक्षाके लिये शत्रुघ्नको उपदेश करना

शेषजी कहते हैं—मुने! इस प्रकार भगवान् श्रीराम ऋषियोंके मुखसे कुछ कालतक धर्मकी व्याख्या सुनते रहे; इतनेमें वसन्तका समय उपस्थित हुआ जब कि महापुरुषोंके यज्ञ आदि शुभ कर्मोंका प्रारम्भ होता है। वह समय आया देख बुद्धिमान् महर्षि वसिष्ठने सम्पूर्ण जगत्के सम्राट् श्रीरामचन्द्रजीसे यथोचित वाणीमें कहा—'महाबाहु रघुनाथजी! अब आपके लिये वह समय आ गया है, जब कि यज्ञके लिये निश्चित किये हुए अश्वकी भलीभाँति पूजा करके उसे पृथ्वीपर भ्रमण करनेके लिये छोड़ा जाय। इसके लिये सामग्री एकत्रित हो, अच्छे-अच्छे ब्राह्मण बुलाये जायँ तथा स्वयं आप ही उन ब्राह्मणोंकी यथोचित पूजा करें। दीनों, अंधों और दु:खियोंका विधिवत् सत्कार करके उन्हें रहनेको स्थान दें और उनके मनमें जिस वस्तुके पानेकी इच्छा हो, वही

१-वाणिज्यं नृपतेः सेवा वेदानध्ययनं तथा। कुविवाहः क्रियालोपः कुलपातनहेतवः॥ (९। ४९)

२-अनर्चितोऽतिथिर्गेहाद् भग्नाशो यस्य गच्छति। आजन्मसञ्चितात् पुण्यात् क्षणात् स हि बहिर्भवेत्॥ (९। ५१)

३-षष्ठ्यष्टम्योर्विशेत् पापं तैले मांसे सदैव हि। चतुर्दश्यां तथामायां त्यजेत क्षुरमङ्गनाम्॥ (९। ५३)

उन्हें दान करें। आप सुवर्णमयी सीताके साथ यज्ञकी दीक्षा लेकर उसके नियमोंका पालन करें—पृथ्वीपर सोवें, ब्रह्मचारी रहें तथा धन-सम्बन्धी भोगोंका परित्याग करें। आपके कटिभागमें मेखला सुशोभित हो, आप हरिणका सींग, मृगचर्म तथा दण्ड धारण करें तथा सब प्रकारके सामान और द्रव्य एकत्रित करके यज्ञका आरम्भ करें।'

महर्षि वसिष्ठके ये उत्तम और यथार्थ वचन सुनकर परम बुद्धिमान् श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणसे अभिप्राययुक्त बात कही।

श्रीराम बोले—लक्ष्मण! मेरी बात सुनो और सुनकर तुरंत उसका पालन करो। जाओ, प्रयत्न करके अश्वमेध यज्ञके लिये उपयोगी अश्व ले आओ।

शेषजी कहते हैं—श्रीरामचन्द्रजीके वचन सुनकर शत्रुविजयी लक्ष्मणने सेनापतिसे कहा—'वीर! मैं तुम्हें एक अत्यन्त प्रिय वचन सुना रहा हूँ, सुनो; श्रीरघुनाथजीकी आज्ञाके अनुसार शीघ्र ही हाथी, घोड़े, रथ तथा पैदलसे युक्त चतुरंगिणी सेना तैयार करो, जो कालकी सेनाका भी विनाश करनेमें समर्थ हो।' महात्मा लक्ष्मणका यह कथन सुनकर कालजित् नामवाले सेनापतिने सेनाको सुसज्जित किया। उस समय लक्ष्मणके आदेशानुसार सजकर आये हुए अश्वमेधयज्ञके अश्वकी बड़ी शोभा हुई। एक श्रेष्ठ पुरुषने उसकी बागडोर पकड़ रखी थी। दस ध्रुवक (चिह्न-विशेष) उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। अपने छोटे-छोटे रोएँके कारण भी वह बड़ा सुन्दर जान पड़ता था। उसके गलेमें घुँघुरू पहनाये गये थे, जो एक-दूसरेसे मिले नहीं थे। विस्तृत कण्ठ-कोशमें मणि सुशोभित थी। मुखकी कान्ति भी बड़ी विशद थी और उसके दोनों कान छोटे-छोटे तथा काले थे। घासके ग्राससे उसका मुँह बड़ा सुहावना जान पड़ता था और चमकीले रत्नोंसे उसको सजाया गया था। इस प्रकार सज-धजकर मोतियोंकी मालाओंसे सुशोभित हो वह अश्व बाहर निकला। उसके ऊपर श्वेत छत्र तना हुआ था। दोनों ओरसे दो सफेद चँवर उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। सारांश यह कि उस अश्वका सारा शरीर ही नाना प्रकारके शोभासाधनोंसे सम्पन्न था। जिस प्रकार देवतालोग सेवाके योग्य श्रीहरिकी सब ओरसे सेवा करते हैं। उसी प्रकार बहुत-से सैनिक उस घोड़ेके आगे-पीछे और बीचमें रहकर उसकी रक्षा कर रहे थे।

तदनन्तर सेनापति कालजित्ने अपनी विशाल सेनाको कूच करनेकी आज्ञा दी। आज्ञा पाकर जन-समुदायसे भरी हुई वह विशाल वाहिनी छत्रोंसे सूर्यको ओटमें करके अपनी छावनीसे निकली। उस सेनाके सभी श्रेष्ठ वीर श्रीरघुनाथजीके यज्ञके लिये सुसज्जित हो गर्जते तथा युद्धके लिये उत्साह प्रकट करते हुए बड़े हर्षमें भरकर चले। सभी सैनिक हाथोंमें धनुष, पाश और खड्ग धारण किये सैनिक-शिक्षाके अनुसार स्फुट गतिसे चलते हुए बड़ी तेजीके साथ महाराज श्रीरामके पास उपस्थित हुए। वह घोड़ा भी आकाशमें उछलता तथा पृथ्वीको अपनी टापसे खोदता हुआ धीरे-धीरे यज्ञ-चिह्नसे युक्त मण्डपके पास पहुँचा। घोड़ेको आया देख श्रीरामचन्द्रजीने महर्षि वसिष्ठको समयोचित कार्य करानेके लिये प्रेरित किया। महर्षि वसिष्ठने श्रीरामचन्द्रजीको स्वर्णमयी पत्नीके साथ बुलाकर अनुष्ठान आरम्भ कराया। उस यज्ञमें वेद-शास्त्रोंका विवेचन करनेवाले बुद्धिमान् महर्षि वसिष्ठ, जो श्रीरघुनाथजीके वंशके आदि गुरु थे, आचार्य हुए। तपोनिधि अगस्त्यजीने ब्रह्माका [कृताकृतावेक्षणरूप] कार्य सँभाला। वाल्मीकि मुनि अध्वर्यु बनाये गये और कण्व द्वारपाल। उस यज्ञ-मण्डपके आठ द्वार थे जो तोरण आदिसे सुसज्जित होनेके कारण बहुत सुन्दर दिखायी देते थे। वात्स्यायनजी! उनमेंसे प्रत्येक द्वारपर दो-दो मन्त्रवेत्ता ब्राह्मण बिठाये गये थे। पूर्व द्वारपर मुनिश्रेष्ठ देवल और असित थे। दक्षिण द्वारपर तपस्याके भंडार महात्मा कश्यप और अत्रि विराजमान थे। पश्चिम द्वारपर श्रेष्ठ महर्षि जातूकर्ण्य और जाजलिकी उपस्थिति थी तथा उत्तर द्वारपर द्वित और एकत नामके दो तपस्वी मुनि विराज रहे थे।

ब्रह्मन्! इस प्रकार द्वारकी विधि पूर्ण करके महर्षि

वसिष्ठने उस यज्ञसम्बन्धी श्रेष्ठ अश्वका विधिवत् पूजन
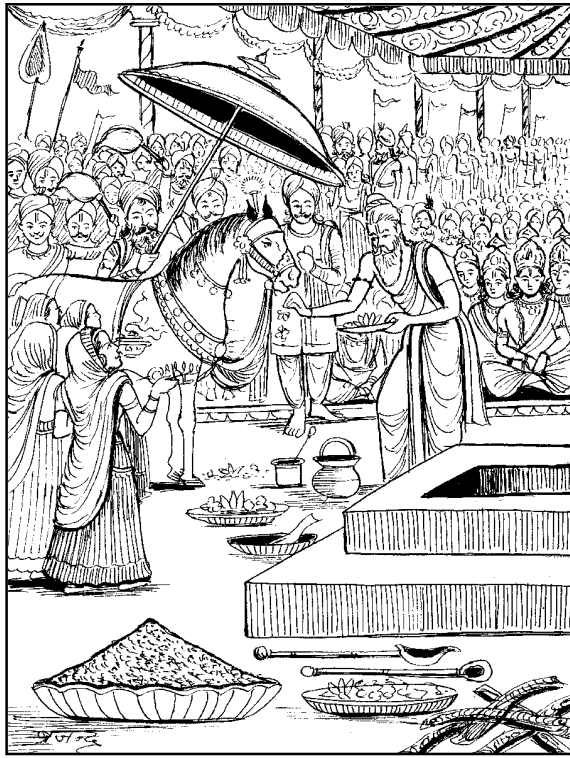
आरम्भ किया। फिर सुन्दर वस्त्र और आभूषणोंसे सुशोभित सुवासिनी स्त्रियोंने वहाँ आकर हल्दी, अक्षत और चन्दन आदिके द्वारा उस पूजित अश्वका पुनः पूजन किया तथा अगुरुका धूप देकर उसकी आरती उतारी। इस तरह पूजा करनेके पश्चात् महर्षि वसिष्ठने अश्वके उज्ज्वल ललाटपर, जो चन्दनसे चर्चित, कुंकुम आदि गन्धोंसे युक्त तथा सब प्रकारकी शोभाओंसे सम्पन्न था, एक चमचमाता हुआ पत्र बाँध दिया जो तपाये हुए सुवर्णका बना था। उस पत्रपर महर्षिने दशरथनन्दन श्रीरघुनाथजीके बढ़े हुए बल और प्रतापका इस प्रकार उल्लेख किया—'सूर्यवंशकी पताका फहरानेवाले महाराज दशरथ बहुत बड़े धनुर्धर हो गये हैं। वे धनुषकी दीक्षा देनेवाले गुरुओंके भी गुरु थे, उन्हींके पुत्र महाभाग श्रीरामचन्द्रजी इस समय रघुवंशके स्वामी हैं। वे सब सूरमाओंके शिरोमणि तथा बड़े-बड़े वीरोंके बल-सम्बन्धी अभिमानको चूर्ण करनेवाले हैं। महाराज श्रीरामचन्द्र ब्राह्मणोंकी बतायी हुई विधिके अनुसार अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ कर रहे हैं। उन्होंने ही यह यज्ञ-सम्बन्धी अश्व, जो समस्त अश्वोंमें श्रेष्ठ तथा सभी वाहनोंमें प्रधान है, पृथ्वीपर भ्रमण करनेके लिये छोड़ा है। श्रीरामके ही भाई शत्रुघ्न, जिन्होंने लवणासुरका विनाश किया है, इस अश्वके रक्षक हैं। उनके साथ हाथी, घोड़े और पैदलोंकी विशाल सेना भी है। जिन राजाओंको अपने बलके घमंडमें आकर ऐसा अभिमान होता हो कि हमलोग ही सबसे बढ़कर शूर, धनुर्धर तथा प्रचण्ड बलवान् हैं, वे ही रत्नकी मालाओंसे विभूषित इस यज्ञ-सम्बन्धी अश्वको पकड़नेका साहस करें। वीर शत्रुघ्न उनके हाथसे इस अश्वको हठात् छुड़ा लेंगे।'

इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीकी भुजाओंके पराक्रमसे शोभा पानेवाले उनके प्रखर प्रतापका परिचय देते हुए महामुनि वसिष्ठजीने और भी अनेकों बातें लिखीं। इसके बाद अश्वको, जो शोभाका भंडार तथा वायुके समान बल और वेगसे युक्त था, छोड़ दिया। उसकी भू-लोक तथा पातालमें समानरूपसे तीव्र गति थी। तदनन्तर शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीने शत्रुघ्नको आज्ञा दी—'सुमित्रानन्दन! यह अश्व अपनी इच्छाके अनुसार विचरनेवाला है, तुम इसकी रक्षाके लिये पीछे-पीछे जाओ। जो योद्धा संग्राममें तुम्हारा सामना करनेके लिये आवें, उन्हींको तुम अपने पराक्रमसे रोकना। इस विशाल भू-मण्डलमें विचरते हुए अश्वकी तुम अपने वीरोचित गुणोंसे रक्षा करना। जो सोये हों, गिर गये हों, जिनके वस्त्र खुल गये हों और जो अत्यन्त भयभीत होकर चरणोंमें पड़े हों, उनको न मारना। साथ ही जो अपने पराक्रमकी झूठी प्रशंसा नहीं करते, उन पुण्यात्माओंपर भी हाथ न उठाना। शत्रुघ्न! यदि तुम रथपर रहो और तुम्हारे विपक्षी रथहीन हो जायँ तो उन्हें न मारना। यदि पुण्य चाहो तो जो शरणागत होकर कहें कि 'हम आपहीके हैं,' उनका भी तुम्हें वध नहीं करना चाहिये। जो योद्धा उन्मत्त, मतवाले, सोये हुए, भागे हुए, भयसे आतुर हुए तथा 'मैं आपका ही हूँ' ऐसा कहनेवाले मनुष्यको मारता है, वह नीच-गतिको प्राप्त होता है। कभी पराये धन और परायी स्त्रीकी ओर चित्त न ले जाना। नीचोंका संग न करना, सभी अच्छे गुणोंको अपनाये रहना, बड़े-बूढ़ोंके ऊपर पहले प्रहार न करना,

पूजनीय पुरुषोंकी पूजाका उल्लंघन न हो, इसके लिये सचेष्ट रहना तथा कभी दयाभावका परित्याग न करना। गौ, ब्राह्मण तथा धर्मपरायण वैष्णवको नमस्कार करना। इन्हें मस्तक झुकाकर मनुष्य जहाँ कहीं जाता है, वहीं उसे सफलता प्राप्त होती है।

'महाबाहो! भगवान् श्रीविष्णु सबके ईश्वर, साक्षी तथा सर्वत्र व्यापक स्वरूप धारण करनेवाले हैं। जो उनके भक्त हैं, वे भी उन्हींके रूपमें सर्वत्र विचरते हैं। जो लोग सम्पूर्ण भूतोंके हृदयमें स्थित रहनेवाले महाविष्णुका स्मरण करते हैं, उन्हें साक्षात् महाविष्णुके समान ही समझना चाहिये। जिनके लिये कोई अपना या पराया नहीं है तथा जो अपने साथ शत्रुता रखनेवालेको भी मित्र ही मानते हैं, वे वैष्णव एक ही क्षणमें पापीको पवित्र कर देते हैं। जिन्हें भागवत प्रिय है तथा जो ब्राह्मणोंसे प्रेम करते हैं, वे वैकुण्ठलोकसे इस संसारको पवित्र करनेके लिये यहाँ आये हैं। जिनके मुखमें भगवान्का नाम, हृदयमें सनातन श्रीविष्णुका ध्यान तथा उदरमें उन्हींका प्रसाद है, वे यदि जातिके चाण्डाल हों तो भी वैष्णव ही हैं। जिन्हें वेद ही अत्यन्त प्रिय हैं संसारके सुख नहीं, तथा जो निरन्तर अपने धर्मका पालन करते रहते हैं, उनसे भेंट होनेपर तुम उनके सामने मस्तक झुकाना। जिनकी दृष्टिमें शिव और विष्णुमें तथा ब्रह्मा और शिवमें भी कोई भेद नहीं है, उनके चरणोंकी पवित्र धूलि मैं अपने शीश चढ़ाता हूँ, वह समस्त पापोंका विनाश करनेवाली है।* गौरी, गंगा तथा महालक्ष्मी—इन तीनोंमें जो भेद नहीं समझते, उन सभी मनुष्योंको स्वर्गलोकसे भूमिपर आये हुए देवता समझना चाहिये। जो अपनी शक्तिके अनुसार भगवान्की प्रसन्नताके लिये शरणागतोंकी रक्षा तथा बड़े-बड़े दान किया करता है, उसे वैष्णवोंमें सर्वश्रेष्ठ समझो। जिनका नाम महान् पापोंकी राशिको तत्काल भस्म कर देता है, उन भगवान्के युगल-चरणोंमें जिसकी भक्ति है, वही वैष्णव है। जिनकी इन्द्रियाँ वशमें हैं और मन भगवान्के चिन्तनमें लगा रहता है, उनको नमस्कार करके मनुष्य अपने जन्मसे लेकर मृत्युतकके सम्पूर्ण जीवनको पवित्र बना लेता है। परायी स्त्रियोंको तलवारकी धार समझकर यदि तुम उनका परित्याग करोगे तो संसारमें तुम्हें सुयशसे सुशोभित ऐश्वर्यकी प्राप्ति होगी। इस प्रकार मेरे आदेशका पालन करते हुए तुम उत्तम योगके द्वारा प्राप्त होनेवाले परम धामको पा सकते हो, जिसकी सभी महात्माओंने प्रशंसा की है।'

शत्रुघ्न और पुष्कल आदिका सबसे मिलकर सेनासहित घोड़ेके साथ जाना, राजा सुमदकी कथा तथा सुमदके द्वारा शत्रुघ्नका सत्कार

शेषजी कहते हैं—मुने! शत्रुघ्नको इस प्रकार आदेश देकर भगवान् श्रीरामने अन्य योद्धाओंकी ओर देखते हुए पुनः मधुर वाणीमें कहा—'वीरो! मेरे भाई शत्रुघ्न घोड़ेकी रक्षाके लिये जा रहे हैं, तुमलोगोंमेंसे कौन वीर इनके आदेशका पालन करते हुए पीछेकी ओरसे इनकी रक्षा करनेके लिये जायगा? जो अपने मर्मभेदी अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा सामने आये हुए सब वीरोंको जीतने तथा भूमण्डलमें अपने सुयशको फैलानेमें समर्थ हो, वह मेरे हाथपर रखा हुआ यह बीड़ा उठा ले।' श्रीरघुनाथजीके ऐसा कहनेपर भरतकुमार पुष्कलने आगे बढ़कर उनके करकमलसे वह बीड़ा उठा लिया और कहा—'स्वामिन्! मैं जाता हूँ; मैं ही कवच आदिके द्वारा सब ओरसे सुरक्षित हो तलवार आदि शस्त्र तथा धनुष-बाण धारण करके अपने चाचा शत्रुघ्नके पृष्ठभागकी रक्षा करूँगा। इस समय आपका प्रताप ही समूची पृथ्वीपर विजय प्राप्त करेगा; ये सब लोग तो

* शिवे विष्णौ न वा भेदो न च ब्रह्ममहेशयोः। तेषां पादरजः पूतं वहाम्यघविनाशनम्॥ (१०। ६८)

केवल निमित्तमात्र हैं। यदि देवता, असुर और मनुष्योंसहित सारी त्रिलोकी युद्धके लिये उपस्थित हो जाय तो उसे भी मैं आपकी कृपासे रोकनेमें समर्थ हो सकता हूँ; ये सब बातें कहनेकी आवश्यकता नहीं है, मेरा पराक्रम देखकर प्रभुको स्वयं ही सब कुछ ज्ञात हो जायगा।'

ऐसा कहते हुए भरतकुमारकी बातें सुनकर भगवान् श्रीरामने उनकी प्रशंसा की तथा 'साधु-साधु' कहकर उनके कथनका अनुमोदन किया। इसके बाद वानरवीरोंमें प्रधान हनुमान्‌जी आदि सब लोगोंसे कहा—'महावीर हनुमान्! मेरी बात ध्यान देकर सुनो, मैंने तुम्हारे ही प्रसादसे यह अकण्टक राज्य पाया है। हमलोगोंने मनुष्य होकर भी जो समुद्रको पार किया तथा सीताके साथ जो मेरा मिलाप हुआ; यह सब कुछ मैं तुम्हारे ही बलका प्रभाव समझता हूँ। मेरी आज्ञासे तुम भी सेनाके रक्षक होकर जाओ। मेरे भाई शत्रुघ्नकी मेरी ही भाँति तुम्हें रक्षा करनी चाहिये। महामते! जहाँ-जहाँ भाई शत्रुघ्नकी बुद्धि विचलित हो वहाँ-वहाँ तुम इन्हें समझा-बुझाकर कर्तव्यका ज्ञान कराना।'

परमबुद्धिमान् श्रीरामचन्द्रजीका यह श्रेष्ठ वचन सुनकर हनुमान्‌जीने उनकी आज्ञा शिरोधार्य की और जानेके लिये तैयार होकर प्रणाम किया। तब महाराजने जाम्बवान्‌को भी साथ जानेका आदेश दिया और कहा—'अंगद, गवय, मयन्द, दधिमुख, वानरराज सुग्रीव, शतबलि, अक्षिक, नील, नल, मनोवेग तथा अधिगन्ता आदि सभी वानर सेनाके साथ जानेको तैयार हो जायँ। सब लोग रथों तथा सुवर्णमय आभूषणोंसे विभूषित अच्छे-अच्छे घोड़ोंपर सवार हो बख्तर और टोपसे सज-धजकर शीघ्र यहाँसे यात्रा करें।'

शेषजी कहते हैं—तत्पश्चात् बल और पराक्रमसे शोभा पानेवाले श्रीरामचन्द्रजीने अपने उत्तम मन्त्री सुमन्त्रको बुलाकर कहा—'मन्त्रिवर! बताओ, इस कार्यमें और किन-किन लोगोंको नियुक्त करना चाहिये? कौन-कौन मनुष्य अश्वकी रक्षा करनेमें समर्थ हैं?' उनका प्रश्न सुनकर सुमन्त्र बोले—'श्रीरघुनाथजी! सुनिये, आपके यहाँ सम्पूर्ण शस्त्र और अस्त्रके ज्ञानमें निपुण, महान् विद्वान्, धनुर्धर तथा अच्छी प्रकार बाणोंका सन्धान करनेवाले अनेकों वीर उपस्थित हैं। उनके नाम ये हैं—प्रतापाग्र्य, नीलरत्न, लक्ष्मीनिधि, रिपुताप, उग्राश्व और शस्त्रवित्—ये सभी बढ़े-चढ़े राजा चतुरंगिणी सेनाके साथ कवच आदिसे सुसज्जित होकर जायँ और आपके घोड़ेकी रक्षा करते हुए शत्रुघ्नजीकी आज्ञा शिरोधार्य करें।' मन्त्रीकी यह बात सुनकर श्रीरामचन्द्रजीको बड़ा हर्ष हुआ और उन्होंने उनके बताये हुए सभी योद्धाओंको जानेके लिये आदेश दिया। श्रीरघुनाथजीकी आज्ञा पाकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई, क्योंकि वे बहुत दिनोंसे युद्धकी इच्छा रखते थे और रणमें उन्मत्त होकर लड़नेवाले थे। श्रीसीतापतिकी प्रेरणासे वे सभी राजा कवच आदिसे सुसज्जित हो अस्त्र-शस्त्र लेकर शत्रुघ्नके निवासस्थानपर गये।

तदनन्तर ऋषिकी आज्ञा पाकर श्रीरामचन्द्रजीने आचार्य आदि सभी ऋत्विज् महर्षियोंको शास्त्रोक्त उत्तम दक्षिणाएँ देकर उनका विधिवत् पूजन किया। उस समय श्रीरघुनाथजीके यज्ञमें सब ओर यही बात सुनायी देती थी—देते जाओ, देते जाओ, खूब धन लुटाओ, किसीसे 'नहीं' मत करो, साथ ही समस्त भोग-सामग्रियोंसे युक्त अन्नका दान करो, अन्नका दान करो।' इस प्रकार वह यज्ञ चल रहा था। उसमें दक्षिणा पाये हुए श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी भरमार थी। वहाँ सभी तरहके शुभ कर्मोंका अनुष्ठान हो रहा था। इधर श्रीरामचन्द्रजीके छोटे भाई शत्रुघ्न अपनी माताके पास जा उन्हें प्रणाम करके बोले—'कल्याणमयी माँ! मैं घोड़ेकी रक्षाके लिये जा रहा हूँ, मुझे आज्ञा दो। तुम्हारी कृपासे शत्रुओंको जीतकर विजयकी शोभासे सम्पन्न हो अन्य महाराजाओं तथा घोड़ेको साथ लेकर लौट आऊँगा।'

माता बोली—बेटा! जाओ, महावीर! तुम्हारा मार्ग मंगलमय हो, सुमते! तुम अपने समस्त शत्रुओंको जीतकर फिर यहाँ लौट आओ। तुम्हारा भतीजा पुष्कल धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ है, उसकी रक्षा करना। बेटा! तुम पुष्कलके साथ सकुशल लौटकर आओगे, तभी मुझे अधिक प्रसन्नता होगी।

अपनी माताकी ऐसी बात सुनकर शत्रुघ्नने उत्तर दिया—'माँ! मैं अपने शरीरकी भाँति पुष्कलकी रक्षा करूँगा तथा जैसा मेरा नाम है उसके अनुसार शत्रुओंका नाश करके प्रसन्नतापूर्वक लौटूँगा। तुम्हारे इन युगल-चरणोंका स्मरण करके मैं कल्याणका ही भागी होऊँगा।' ऐसा कहकर वीर शत्रुघ्न वहाँसे चल दिये तथा यज्ञ-मण्डपसे छोड़ा हुआ वह यज्ञका अश्व अस्त्र-शस्त्रोंकी विद्यामें प्रवीण सम्पूर्ण योद्धाओंद्वारा चारों ओरसे घिरकर सबसे पहले पूर्व दिशाकी ओर गया। उसका वेग वायुके समान था। जब वे चलनेको उद्यत हुए तो उनकी दाहिनी बाँह फड़क उठी और उन्हें कल्याण तथा विजयकी सूचना देने लगी। उधर पुष्कल अपने सुन्दर एवं समृद्धिशाली महलमें गये और वहाँ अपनी पतिव्रता पत्नीसे मिले, जो स्वामीके दर्शनके लिये उत्कण्ठित थी और उन्हें देखकर हर्षमें भर गयी थी। उससे मिलकर पुष्कलने कहा—'भद्रे! मैं चाचा शत्रुघ्नका पृष्ठपोषक होकर रथपर सवार हो यज्ञके घोड़ेकी रक्षाके लिये जा रहा हूँ; इस कार्यके लिये मुझे श्रीरघुनाथजीकी आज्ञा मिल चुकी है। तुम यहाँ रहकर मेरी समस्त माताओंका सत्कार करना तथा चरण दबाना आदि सभी प्रकारकी सेवाएँ करना। उनके प्रत्येक कार्यमें—उनकी आज्ञाका पालन करनेमें आदर एवं उत्साहके साथ प्रवृत्त होना। यहाँ लोपामुद्रा आदि जितनी पतिव्रता देवियाँ आयी हुई हैं, वे सभी अपने तपोबलसे सुशोभित एवं कल्याणमयी हैं; तुम्हारे द्वारा उनमेंसे किसीका अपमान न हो जाय, इसके लिये सदा सावधान रहना।'
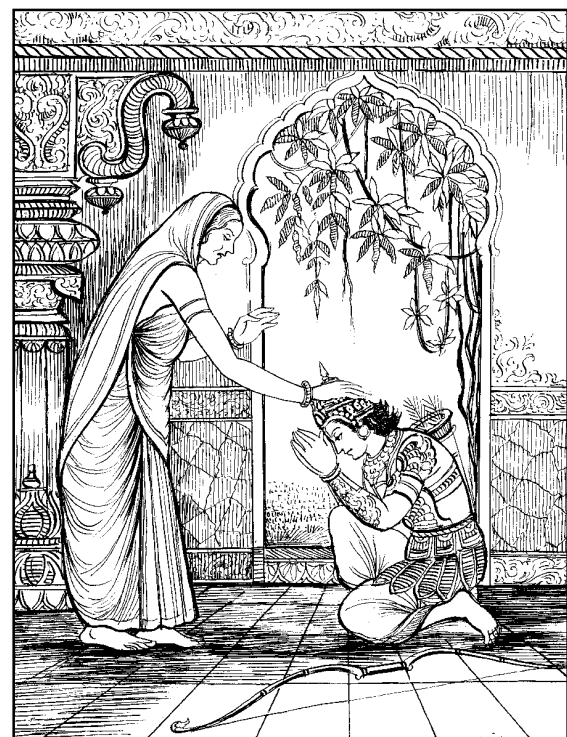
शेषजी कहते हैं—पुष्कल जब इस प्रकार उपदेश दे चुके तो उनकी पतिव्रता पत्नी कान्तिमतीने पतिकी ओर प्रेमपूर्ण दृष्टिसे देखा तथा अत्यन्त विश्वस्त होकर मन्द-मन्द मुसकराती हुई वह गद्गद वाणीमें बोली—'नाथ! संग्राममें आपकी सर्वत्र विजय हो, आपको चाचा शत्रुघ्नजीकी आज्ञाका सर्वथा पालन करना चाहिये तथा जिस प्रकार भी घोड़ेकी रक्षा हो उसके लिये सचेष्ट रहना चाहिये। स्वामिन्! आप शत्रुओंपर विजय प्राप्त करके अपने श्रेष्ठ कुलकी शोभा बढ़ाइये। महाबाहो! जाइये, इस यात्रामें आपका कल्याण हो। यह है आपका धनुष, जो उत्तम गुण (सुदृढ़ प्रत्यंचा)-से सुशोभित है; इसे शीघ्र ही हाथमें लीजिये, इसकी टंकार सुनकर आपके शत्रुओंका दल भयसे व्याकुल हो उठेगा। वीर! ये आपके दोनों तरकश हैं; इन्हें बाँध लीजिये, जिससे युद्धमें आपको सुख मिले। इसमें वैरियोंको टुकड़े-टुकड़े कर डालनेवाले अनेक बाण भरे हैं। प्राणनाथ! कामदेवके समान सुन्दर अपने शरीरपर यह सुदृढ़ कवच धारण कीजिये, जो विद्युत्की प्रभाके समान अपने महान् प्रकाशसे अन्धकारको दूर किये देता है। प्रियतम अपने मस्तकपर यह शिरस्त्राण (मुकुट) भी पहन लीजिये, जो मनको लुभानेवाला है। साथ ही मणियों और रत्नोंसे विभूषित ये दो उज्ज्वल कुण्डल हैं, इन्हें कानोंमें धारण कीजिये।'

पुष्कलने कहा—प्रिये! तुम जैसा कहती हो, वह सब मैं करूँगा। वीरपत्नी कान्तिमती! तुम्हारी इच्छाके अनुसार मेरी उत्तम कीर्तिका विस्तार होगा।

ऐसा कहकर पराक्रमी वीर पुष्कलने कान्तिमतीके दिये हुए कवच, सुन्दर मुकुट, धनुष और विशाल

तरकश—इन सभी वस्तुओंको ले लिया। उन सबको धारण करके वे वीरोचित शोभासे सम्पन्न दिखायी देने लगे। उस समय सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंके ज्ञानमें प्रवीण, उत्तम योद्धा पुष्कलकी शोभा बहुत बढ़ गयी। पतिव्रता कान्तिमतीने अस्त्र-शस्त्रोंसे शोभायमान अपने पतिको वीरमालासे विभूषित किया तथा कुंकुम, अगुरु, कस्तूरी और चन्दन आदिसे उनकी पूजा करके अनेकों फूलोंके हार पहनाये, जो घुटनेतक लटककर पुष्कलकी कान्ति बढ़ा रहे थे। पूजनके पश्चात् उस सतीने बारम्बार पतिकी आरती उतारी। उसके बाद पुष्कल बोले—'भामिनि!

अब मैं तुम्हारे सामने ही यात्रा करता हूँ।' पत्नीसे ऐसा कहकर वे सुन्दर रथपर आरूढ़ हुए और अपने पिता भरत तथा स्नेहविह्वला माता माण्डवीका दर्शन करनेके लिये गये। वहाँ जाकर उन्होंने बड़ी प्रसन्नताके साथ पिता और माताके चरणोंमें मस्तक झुकाया। फिर पिता और माताकी आज्ञा लेकर वे पुलकित शरीरसे शत्रुघ्नकी सेनामें गये, जो बड़े-बड़े वीरोंसे सुशोभित थी।

तदनन्तर शत्रुघ्न श्रीरघुनाथजीके महायज्ञ-सम्बन्धी घोड़ेको आगे करके अनेकों रथियों, पैदल चलनेवाले शूरवीरों, अच्छे-अच्छे घोड़ों और सवारोंसे घिरकर बड़ी प्रसन्नताके साथ आगे बढ़े। वे घोड़ेके साथ-साथ पांचाल, कुरु, उत्तरकुरु और दशार्ण आदि देशोंमें, जो सम्पत्तिमें बहुत बढ़े-चढ़े थे, भ्रमण करते रहे। शत्रुघ्नजी सब प्रकारकी शोभासे सम्पन्न थे। उन्हें उन सभी देशोंमें श्रीरामचन्द्रजीके सम्पूर्ण सुयशकी कथा सुनायी पड़ती थी, लोग कहते थे—'श्रीरघुनाथजीने रावण नामक असुरको मारकर अपने भक्तजनोंकी रक्षा की है, अब पुनः अश्वमेध आदि पवित्र कार्योंका अनुष्ठान आरम्भ करके भगवान् श्रीराम त्रिभुवनमें अपने सुयशका विस्तार करते हुए सम्पूर्ण लोकोंकी भयसे रक्षा करेंगे।' इस तरह भगवान्‌का यशोगान करनेवाले लोगोंपर सन्तुष्ट होकर पुरुषश्रेष्ठ शत्रुघ्नजी उन्हें पुरस्कारके रूपमें सुन्दर हार, नाना प्रकारके रत्न और बहुमूल्य वस्त्र देते थे। श्रीरघुनाथजीके एक सचिव थे, जिनका नाम था सुमति। वे सम्पूर्ण विद्याओंमें प्रवीण और तेजस्वी थे। वे भी शत्रुघ्नजीके अनुगामी होकर आये थे। महाधीर शत्रुघ्न उनके साथ अनेकों गाँवों और जनपदोंमें गये, किन्तु श्रीरघुनाथजीके प्रतापसे कोई भी उस घोड़ेका अपहरण न कर सका। भिन्न-भिन्न देशोंके जो बहुत-से राजे-महाराजे थे, वे यद्यपि महान् बलसे विभूषित तथा चतुरंगिणी सेनासे सम्पन्न थे, तथापि मोती और मणियोंसहित बहुत-सी सम्पत्ति साथ ले घोड़ेकी रक्षामें आये हुए शत्रुघ्नजीके चरणोंमें गिर जाते और बारम्बार कहने लगते थे—'रघुनन्दन! यह राज्य तथा पुत्र, पशु और बान्धवोंसहित सारा धन भगवान् श्रीरामका ही है, हमारा इसमें कुछ भी नहीं है।' उनकी ऐसी बातें सुनकर विपक्षी वीरोंका हनन करनेवाले शत्रुघ्नजी वहाँ अपनी आज्ञा घोषित कर देते और उन्हें साथ ले आगेके मार्गपर बढ़ जाते थे।

ब्रह्मन्! इस प्रकार क्रमशः आगे-आगे बढ़ते हुए शत्रुघ्नजी घोड़ेके साथ अहिच्छत्रा नगरीके पास जा पहुँचे, जो नाना प्रकारके मनुष्योंसे भरी हुई थी। उसमें ब्राह्मणों तथा अन्यान्य द्विजोंका निवास था। अनेकों प्रकारके रत्नोंसे वह पुरी सजायी गयी थी। सोने और स्फटिक-

मणिके बने हुए महल तथा गोपुर (फाटक) उस नगरीकी शोभा बढ़ा रहे थे। वहाँके मनुष्य सब प्रकारके भोग भोगनेवाले तथा सदाचारसे सुशोभित थे। वहाँ बाण सन्धान करनेमें चतुर वीर हाथोंमें धनुष लिये उस पुरीके श्रेष्ठ राजा सुमदको प्रसन्न किया करते थे। शत्रुघ्नने दूरसे ही उस नगरीको देखा। उसके पास ही एक उद्यान था, जो उस नगरमें सबसे श्रेष्ठ और शोभायमान दिखायी देता था। तमाल और ताल आदिके वृक्ष उसकी सुषमाको और भी बढ़ा रहे थे। यज्ञका घोड़ा उस उपवनके बीचमें घुस गया तथा उसके पीछे-पीछे वीर शत्रुघ्न भी, जिनके चरण-कमलोंकी सेवामें अनेकों धनुर्धर क्षत्रिय मौजूद थे, उसमें जा पहुँचे। वहाँ जानेपर उन्हें एक देव-मन्दिर दिखायी दिया, जिसकी रचना अद्‌भुत थी। वह कैलास-शिखरके समान ऊँचा तथा शोभासे सम्पन्न था। देवताओंके लिये भी वह सेव्य जान पड़ता था। उस सुन्दर देवालयको देखकर श्रीरघुनाथजीके भाई शत्रुघ्नने अपने सुमति नामक मन्त्रीसे, जो अच्छे वक्ता थे, पूछा।

शत्रुघ्न बोले—मन्त्रिवर! बताओ, यह क्या है? किस देवताका मन्दिर है? किस देवताका यहाँ पूजन होता है तथा वे देवता किस हेतुसे यहाँ विराजमान हैं?

मन्त्री सब बातोंके जानकार थे, उन्होंने शत्रुघ्नका प्रश्न सुनकर कहा—'वीरवर! एकाग्रचित्त होकर सुनो, मैं सब बातोंका यथावत् वर्णन करता हूँ, इसे तुम कामाक्षा देवीका उत्तम स्थान समझो। यह जगत्‌को एकमात्र कल्याण प्रदान करनेवाला है। पूर्वकालमें अहिच्छत्रा नगरीके स्वामी राजा सुमदकी प्रार्थनासे भगवती कामाक्षा यहाँ विराजमान हुईं, जो भक्तोंका दुःख दूर करती हुई उनकी समस्त कामनाओंको पूर्ण करती हैं। वीरशिरोमणि शत्रुघ्न! तुम इन्हें प्रणाम करो।' मन्त्रीके वचन सुनकर शत्रुओंको ताप देनेवाले नरश्रेष्ठ शत्रुघ्नने भगवती कामाक्षाको प्रणाम किया और उनके प्रकट होनेके सम्बन्धकी सब बातें पूछीं—'मन्त्रिवर! अहिच्छत्राके स्वामी राजा सुमद कौन हैं? उन्होंने कौन-सी तपस्या की है, जिसके प्रभावसे ये सम्पूर्ण लोकोंकी जननी कामाक्षा देवी सन्तुष्ट होकर यहाँ विराज रही हैं?'

सुमतिने कहा—हेमकूट नामसे प्रसिद्ध एक पवित्र पर्वत है, जो सम्पूर्ण देवताओंसे सुशोभित रहा करता है। वहाँ ऋषि-मुनियोंसे सेवित विमल नामका एक तीर्थ है। वहीं राजा सुमदने तपस्या की थी। उनके राज्यकी सीमापर रहनेवाले सम्पूर्ण सामन्त नरेशोंने, जो वास्तवमें शत्रु थे, एक साथ मिलकर उनके राज्यपर चढ़ाई की। उस युद्धमें उनके पिता, माता तथा प्रजावर्गके लोग भी शत्रुओंके हाथसे मारे गये। तब सर्वथा असहाय होकर राजा सुमद तपस्याके लिये उपयोगी विमलतीर्थमें गये और वहाँ तीन वर्षतक एक पैरसे खड़े हो मन-ही-मन जगदम्बाका ध्यान करते रहे। उस समय उनकी आँखें नासिकाके अग्रभागपर जमी रहती थीं। इसके बाद तीन वर्षोंतक उन्होंने सूखे पत्ते चबाकर अत्यन्त उग्र तपस्या की, जिसका अनुष्ठान दूसरेके लिये अत्यन्त कठिन था। तत्पश्चात् पुनः तीन वर्षोंतक उन्होंने और भी कठोर नियम धारण किये—जाड़ेके दिनोंमें वे पानीमें डूबे रहते, गर्मीमें पंचाग्निका सेवन करते तथा वर्षाकालमें बादलोंकी ओर मुँह किये मैदानमें खड़े रहते थे। तदनन्तर पुनः तीन वर्षोंतक वे धीर राजा अपने हृदयान्तर्वर्ती प्राणवायुको रोककर केवल भवानीके ध्यानमें संलग्न रहे। उस समय उन्हें जगदम्बाके सिवा दूसरा कुछ दिखलायी नहीं देता था। इस प्रकार जब बारहवाँ वर्ष व्यतीत हो गया, तो उनकी भारी तपस्या देखकर इन्द्रने मन-ही-मन उसपर विचार किया और भयके कारण वे उनसे डाह करने लगे। उन्होंने अप्सराओंके साथ कामदेवको, जो ब्रह्मा और इन्द्रको भी परास्त करनेके लिये उद्यत रहता था, परिवारसहित बुलाकर इस प्रकार आज्ञा दी—'सखे कामदेव! तुम सबका मन मोहनेवाले हो, जाओ, मेरा एक प्रिय कार्य करो, जैसे भी हो सके राजा सुमदकी तपस्यामें विघ्न डालो।'

कामदेवने कहा—देवराज! मुझ सेवकके रहते हुए आप चिन्ता न कीजिये, आर्य! मैं अभी सुमदके

पास जाता हूँ। आप देवताओंकी रक्षा कीजिये।

ऐसा कहकर कामदेव अपने सखा वसन्त तथा अप्सराओंके समूहको साथ लेकर हेमकूट पर्वतपर गया। वसन्तने जाते ही वहाँके सारे वृक्षोंको फल और फूलोंसे सुशोभित कर दिया। उनकी डालियोंपर कोयल कूकने तथा भ्रमर गुंजार करने लगे। दक्षिण दिशाकी ओरसे ठंडी-ठंडी हवा चलने लगी। जिसमें कृतमाला नदीके तीरपर खिले हुए लवंग-कुसुमोंकी सुगन्ध आ रही थी। इस प्रकार जब समूचे वनमें वसन्तकी शोभा छा गयी, तो अप्सराओंमें श्रेष्ठ रम्भा अपनी सखियोंसे घिरकर सुमदके पास गयी। रम्भाका स्वर किन्नरोंके समान मनोहर था। वह मृदंग और पणव आदि नाना प्रकारके बाजे बजानेमें भी निपुण थी। राजाके समीप पहुँचकर उसने गाना आरम्भ कर दिया। महाराज सुमदने जब वह मधुर गान सुना, वसन्तकी मनोहारिणी छटा देखी तथा मनको लुभानेवाली कोयलकी मीठी तान सुनी तो चारों ओर दृष्टि दौड़ायी, फिर सारा रहस्य उनकी समझमें आ गया। राजाको ध्यानसे जगा देख फूलोंका धनुष धारण करनेवाले कामदेवने बड़ी फुर्ती दिखायी। उसने उनके पीछेकी ओर खड़ा होकर तत्काल अपना धनुष चढ़ा लिया। इतनेहीमें एक अप्सरा अपने नेत्रपल्लवोंको नचाती हुई राजाके दोनों चरण दबाने लगी। दूसरी सामने खड़ी होकर कटाक्षपात करने लगी तथा तीसरी शरीरकी श्रृंगारजनित चेष्टाएँ (तरह-तरहके हाव-भाव) प्रदर्शित करने लगी। इस प्रकार अप्सराओंसे घिरकर जितेन्द्रियोंके शिरोमणि बुद्धिमान् राजा सुमद यों चिन्ता करने लगे—'ये सुन्दरी अप्सराएँ मेरी तपस्यामें विघ्न डालनेके लिये यहाँ आयी हैं। इन्हें इन्द्रने भेजा है। ये सब-की-सब उनकी आज्ञाके अनुसार ही कार्य करेंगी।'

इस प्रकार चिन्तासे आकुल होकर धीरचित्त, मेधावी तथा वीर राजा सुमदने अपने हृदयमें अच्छी तरह विचार किया। इसके बाद वे देवांगनाओंसे बोले—'देवियो! आपलोग मेरे हृदय-मन्दिरमें विराजमान जगदम्बाकी स्वरूप हैं। आपलोगोंने जिस स्वर्गीय सुखकी चर्चा की है, वह अत्यन्त तुच्छ और अनिश्चित है। मैं भक्ति-भावसे जिनकी आराधनामें लगा हूँ, वे मेरी स्वामिनी जगदम्बा मुझे उत्तम वरदान देंगी। जिनकी कृपासे सत्यलोकको पाकर ब्रह्माजी महान् बने हैं, वे ही मुझे सब कुछ देंगी; क्योंकि वे भक्तोंका दुःख दूर करनेवाली हैं। भगवतीकी कृपाके सामने नन्दन-वन अथवा सुवर्णमण्डित मेरुगिरि क्या हैं? और वह सुधा भी किस गिनतीमें है, जो थोड़े-से पुण्यके द्वारा प्राप्त होनेवाली और दानवोंको दुःखमें डालनेवाली है?'

राजाका यह वचन सुनकर कामदेवने उनपर अनेकों बाणोंका प्रहार किया; किन्तु वह उनकी कुछ भी हानि न कर सका। वे सुन्दरी अप्सराएँ अपने कुटिल-कटाक्ष, नूपुरोंकी झनकार, आलिंगन तथा चितवन आदिके द्वारा उनके मनको मोहमें न डाल सकीं। अन्तमें निराश होकर जैसे आयी थीं, वैसे ही लौट गयीं और इन्द्रसे बोलीं—'राजा सुमदकी बुद्धि स्थिर है, उनपर हमारा जादू नहीं चल सकता।' अपने प्रयत्नके व्यर्थ होनेकी बात सुनकर इन्द्र डर गये। इधर जगदम्बाने महाराज सुमदको जितेन्द्रिय तथा अपने चरण-कमलोंके ध्यानमें दृढ़तापूर्वक स्थित देख उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया। उनकी

कान्ति करोड़ों सूर्योंके समान थी। वे अपनी चार भुजाओंमें धनुष, बाण, अंकुश और पाश धारण किये हुए थीं। माताका दर्शन पाकर बुद्धिमान् राजाको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने बारम्बार मस्तक झुकाकर भक्तिभावनासे प्रकट हुई माता दुर्गाको प्रणाम किया। वे बारम्बार राजाके शरीरपर अपने कोमल हाथ फेरती हुई हँस रही थीं। महामति राजा सुमदके शरीरमें रोमांच हो आया। उनके अन्तःकरणकी वृत्ति भक्ति-भावसे उत्कण्ठित हो गयी और वे गद्‌गद स्वरसे माताकी इस प्रकार स्तुति करने लगे—'देवि! आपकी जय हो। महादेवि! भक्त-जन सदा आपकी ही सेवा करते हैं। ब्रह्मा और इन्द्र आदि समस्त देवता आपके युगल-चरणोंकी आराधनामें लगे रहते हैं। आप पापके स्पर्शसे रहित हैं। आपहीके प्रतापसे अग्निदेव प्राणियोंके भीतर और बाहर स्थित होकर सारे जगत्‌का कल्याण करते हैं। महादेवि! देवता और असुर—सभी आपके चरणोंमें नतमस्तक होते हैं। आप ही विद्या तथा आप ही भगवान् विष्णुकी महामाया हैं। एकमात्र आप ही इस जगत्‌को पवित्र करनेवाली हैं। आप ही अपनी शक्तिसे इस संसारकी सृष्टि और पालन करती हैं। जगत्‌के जीवोंको मोहमें डालनेवाली भी आप ही हैं। सब देवता आपहीसे सिद्धि पाकर सुखी होते हैं। मातः! आप दयाकी स्वामिनी, सबकी वन्दनीया तथा भक्तोंपर स्नेह रखनेवाली हैं। मेरा पालन कीजिये। मैं आपके चरण-कमलोंका सेवक हूँ। मेरी रक्षा कीजिये।'

सुमतिने कहा—इस प्रकार की हुई स्तुतिसे सन्तुष्ट होकर जगन्माता कामाक्षा अपने भक्त सुमदसे, जिनका शरीर तपस्याके कारण दुर्बल हो रहा था, बोलीं—'बेटा! कोई उत्तम वर माँगो।' माताका यह वचन सुनकर राजा सुमदको बड़ा हर्ष हुआ और उन्होंने अपना खोया हुआ अकण्टक राज्य, जगन्माता भवानीके चरणोंमें अविचल भक्ति तथा अन्तमें संसारसागरसे पार उतारनेवाली मुक्तिका वरदान माँगा।

कामाक्षाने कहा—सुमद! तुम सर्वत्र अकण्टक राज्य प्राप्त करो और शत्रुओंके द्वारा तुम्हारी कभी पराजय न हो। जिस समय महायशस्वी श्रीरघुनाथजी रावणको मारकर सब सामग्रियोंसे सुशोभित अश्वमेधयज्ञका अनुष्ठान करेंगे, उस समय शत्रुओंका दमन करनेवाले उनके महावीर भ्राता शत्रुघ्न वीर आदिसे घिरकर घोड़ेकी रक्षा करते हुए यहाँ आयेंगे। तुम उन्हें अपना राज्य, समृद्धि और धन आदि सब कुछ सौंपकर उनके साथ पृथ्वीपर भ्रमण करोगे तथा अन्तमें ब्रह्मा, इन्द्र और शिव आदिसे सेवित भगवान् श्रीरामको प्रणाम करके ऐसी मुक्ति प्राप्त करोगे, जो यम-नियमोंका साधन करनेवाले योगियोंके लिये भी दुर्लभ है।

ऐसा कहकर देवता और असुरोंसे अभिवन्दित कामाक्षा देवी वहाँसे अन्तर्धान हो गयीं तथा सुमद भी अपने शत्रुओंको मारकर अहिच्छत्रा नगरीके राजा हुए। वही ये इस नगरीके स्वामी राजा सुमद हैं। यद्यपि ये सब प्रकारसे समर्थ तथा बल और वाहनोंसे सम्पन्न हैं तथापि तुम्हारे यज्ञ-सम्बन्धी घोड़ेको नहीं पकड़ेंगे; क्योंकि महामायाने इस बातके लिये इनको भलीभाँति शिक्षा दी है।

शेषजी कहते हैं—सुमतिके मुखसे राजा सुमदका यह वृत्तान्त सुनकर महान् यशस्वी, बुद्धिमान् और बलवान् शत्रुघ्नजी बड़े प्रसन्न हुए तथा 'साधु-साधु' कहकर उन्होंने अपना हर्ष प्रकट किया। उधर अहिच्छत्राके स्वामी अपने सेवकगणोंसे घिरकर सुखपूर्वक राजसभामें विराजमान थे। वेदवेत्ता ब्राह्मण तथा धन-धान्यसे सम्पन्न वैश्य भी उनके पास बैठे थे; इससे उनकी बड़ी शोभा हो रही थी। इसी समय किसीने आकर राजासे कहा—'स्वामिन्! न जाने किसका घोड़ा नगरके पास आया है, जिसके ललाटमें पत्र बँधा हुआ है।' यह सुनकर राजाने तुरंत ही एक अच्छे सेवकको भेजा और कहा—'जाकर पता लगाओ, किस राजाका घोड़ा मेरे नगरके निकट आया है।' सेवकने जाकर सब बातका पता लगाया और महान् क्षत्रियोंसे सेवित राजा सुमदके पास आ आरम्भसे ही सारा वृत्तान्त कह सुनाया। 'श्रीरघुनाथजीका घोड़ा है' यह सुनकर बुद्धिमान् राजाको चिरकालकी पुरानी बातका स्मरण हो आया

और उन्होंने सब लोगोंको आज्ञा दी—'धन-धान्यसे सम्पन्न जो मेरे आत्मीय जन हैं, वे सब लोग अपने-अपने घरोंपर तोरण आदि मांगलिक वस्तुओंकी रचना करें।' इन सब बातोंके लिये आज्ञा देकर स्वयं राजा सुमद अपने पुत्र-पौत्र और रानी आदि समस्त परिवारको साथ लेकर शत्रुघ्नके पास गये। शत्रुघ्नने पुष्कल आदि योद्धाओं तथा मन्त्रियोंके साथ देखा, वीर राजा सुमद आ रहे हैं। राजाने आकर बड़ी प्रसन्नताके साथ शत्रुघ्नको प्रणाम किया और कहा—'प्रभो! आज मैं धन्य और कृतार्थ हो गया। आपने यहाँ दर्शन देकर मेरा बड़ा सत्कार किया। मैं चिरकालसे इस अश्वके आगमनकी प्रतीक्षा कर रहा था। माता कामाक्षा देवीने पूर्वकालमें जिस बातके लिये मुझसे कहा था, वह आज और इस समय पूरी हुई है। श्रीरामके छोटे भाई महाराज शत्रुघ्नजी! अब चलकर मेरी नगरीको देखिये, यहाँके मनुष्योंको कृतार्थ कीजिये तथा मेरे समस्त कुलको पवित्र बनाइये।' ऐसा कहकर राजाने चन्द्रमाके समान कान्तिवाले श्वेत गजराजपर शत्रुघ्न और महावीर पुष्कलको चढ़ाया तथा पीछे स्वयं भी सवार हुए। फिर महाराज सुमदकी आज्ञासे भेरी और पणव आदि बाजे बजने लगे, वीणा आदिकी मधुर ध्वनि होने लगी तथा इन समस्त वाद्योंकी तुमुल ध्वनि चारों ओर व्याप्त हो गयी। धीरे-धीरे नगरमें आकर सब लोगोंने शत्रुघ्नजीका अभिनन्दन किया—उनकी वृद्धिके लिये शुभकामना प्रकट की तथा वे वीरोंसे सुशोभित हो अपने अश्वरत्नको

साथ लिये राज-मन्दिरमें उतरे। उस समय सारा राजभवन तोरण आदिसे सजाया गया था तथा स्वयं राजा सुमद शत्रुघ्नजीको आगे करके चल रहे थे। महलमें पहुँचकर उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक अर्घ्य आदिके द्वारा शत्रुघ्नजीका पूजन किया और अपना सब कुछ भगवान् श्रीरामकी सेवामें अर्पण कर दिया।

शत्रुघ्नका राजा सुमदको साथ लेकर आगे जाना और च्यवन मुनिके आश्रमपर पहुँचकर सुमतिके मुखसे उनकी कथा सुनना—च्यवनका सुकन्यासे ब्याह

शेषजी कहते हैं—तदनन्तर नरश्रेष्ठ राजा सुमदने श्रीरघुनाथजीकी उत्तम कथा सुननेके लिये उत्सुक होकर स्वागत-सत्कारसे सन्तुष्ट हुए शत्रुघ्नजीसे वार्तालाप आरम्भ किया।

सुमद बोले—महामते! सम्पूर्ण लोकोंके शिरोमणि, भक्तोंकी रक्षाके लिये अवतार ग्रहण करनेवाले तथा मुझपर निरन्तर अनुग्रह रखनेवाले भगवान् श्रीराम अयोध्यामें सुखपूर्वक तो विराज रहे हैं न? ये सब लोग धन्य हैं, जो सदा आनन्दमग्न होकर अपने नेत्र-पुटोंके द्वारा श्रीरघुनाथजीके मुखारविन्दका मकरन्द पान करते रहे हैं। नरश्रेष्ठ! अब मेरी कुल-परम्परा तथा राज्य-भूमि आदि सब वस्तुएँ पूर्ण सफल हो गयीं। दयासे द्रवित होनेवाली माता कामाक्षा देवीने पूर्वकालमें मुझपर बड़ी कृपा की थी।

राजाओंमें श्रेष्ठ वीर सुमदके ऐसा कहनेपर शत्रुघ्नने श्रीरघुनाथजीके गुणोंको प्रकट करनेवाली सब कथाएँ

कह सुनायीं। वे तीन रात्रितक वहाँ ठहरे रहे। इसके बाद उन्होंने राजाके साथ वहाँसे जानेका विचार किया। उनका अभिप्राय जानकर सुमदने शीघ्र ही अपने पुत्रको राज्यपर अभिषिक्त कर दिया तथा उन महाबुद्धिमान् नरेशने शत्रुघ्नके सेवकोंको बहुत-से वस्त्र, रत्न और नाना प्रकारके धन दिये। तत्पश्चात् शत्रुघ्नने धनुष धारण किये हुए राजा सुमदको साथ लेकर अपने बहुज्ञ मन्त्रियों, पैदल योद्धाओं, हाथियों और अच्छे घोड़े जुते हुए अनेकों रथोंके साथ वहाँसे यात्रा आरम्भ की। श्रीरघुनाथजीके प्रतापका आश्रय लेकर वे हँसते-हँसते मार्ग तय करने लगे। पयोष्णी नदीके तीरपर पहुँचकर उन्होंने अपनी चाल तेज कर दी तथा शत्रुओंपर प्रहार करनेवाले समस्त योद्धा भी पीछे-पीछे उनका साथ देने लगे। वे तपस्वी ऋषियोंके भाँति-भाँतिके आश्रम देखते तथा वहाँ श्रीरघुनाथजीके गुणगान सुनते हुए यात्रा कर रहे थे। उस समय उन्हें चारों ओर मुनियोंकी यह कल्याणमयी वाणी सुनायी पड़ती थी—'यह यज्ञका अश्व चला जा रहा है, जो श्रीहरिके अंशावतार श्रीशत्रुघ्नजीके द्वारा सब ओरसे सुरक्षित है। भगवान्‌का अनुसरण करनेवाले वानर तथा भगवद्‌भक्त भी उसकी रक्षा कर रहे हैं।' जिनकी चित्तवृत्तियाँ भक्तिसे निरन्तर प्रभावित रहती हैं, उन महर्षियोंकी पूर्वोक्त बातें सुनकर शत्रुघ्नजीको बड़ा सन्तोष हुआ। आगे जाकर उन्होंने एक विशुद्ध आश्रम देखा, जो निरन्तर होनेवाली वेदोंकी ध्वनिसे उसको श्रवण करनेवाले मनुष्योंका सारा अमंगल नष्ट किये देता था। वहाँका सम्पूर्ण आकाश अग्निहोत्रके समय दी जानेवाली आहुतिके धूमसे पवित्र हो गया था। श्रेष्ठ मुनियोंके द्वारा स्थापित किये हुए अनेकों यज्ञसम्बन्धी यूप उस आश्रमको सुशोभित कर रहे थे। वहाँ सिंह भी पालन करनेयोग्य गौओंकी रक्षा करते थे। चूहे अपने रहनेके लिये बिल नहीं खोदते थे; क्योंकि वहाँ उन्हें बिल्लियोंसे भय नहीं था। साँप सदा मोरों और नेवलोंके साथ खेलते रहते थे। हाथी और सिंह एक-दूसरेके मित्र होकर उस आश्रमपर निवास करते थे। मृग वहाँ प्रेमपूर्वक चरते रहते थे, उन्हें किसीसे भय नहीं था। गौओंके थन घड़ोंके समान दिखायी देते थे। उनका विग्रह नन्दिनीकी भाँति सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाला था और वे अपने खुरोंसे उठी हुई धूलके द्वारा वहाँकी भूमिको पवित्र करती थीं। हाथोंमें समिधा धारण करनेवाले श्रेष्ठ मुनिवरोंने वहाँकी भूमिको धार्मिक क्रियाओंका अनुष्ठान करनेके योग्य बना रखा था। उस आश्रमको देखकर शत्रुघ्नजीने सब बातोंको जाननेवाले श्रीराममन्त्री सुमतिसे पूछा।
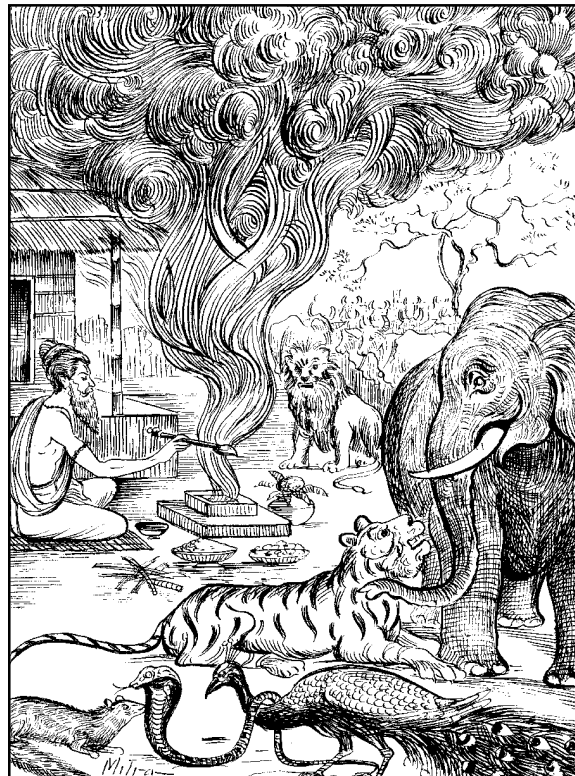
शत्रुघ्नजी बोले—सुमते! यह सामने किस मुनिका आश्रम शोभा पा रहा है? यहाँ सब जन्तु आपसका वैर-भाव छोड़कर एक ही साथ निवास करते हैं तथा यह मुनियोंकी मण्डलीसे भी भरा-पूरा दिखायी देता है। मैं मुनिकी वार्ता सुनूँगा तथा उनका वृत्तान्त श्रवण करके अपनेको पवित्र करूँगा।

महात्मा शत्रुघ्नके ये उत्तम वचन सुनकर परम मेधावी श्रीरघुनाथजीके मन्त्री सुमतिने कहा—'सुमित्रानन्दन! इसे महर्षि च्यवनका आश्रम समझो। यह बड़े-बड़े तपस्वियोंसे सुशोभित तथा वैरशून्य जन्तुओंसे भरा हुआ है। मुनियोंकी पत्नियाँ भी यहाँ

निवास करती हैं। महामुनि च्यवन वे ही हैं, जिन्होंने मनुपुत्र शर्यातिके महान् यज्ञमें इन्द्रका मान भंग किया और अश्विनीकुमारोंको यज्ञका भाग दिया था।

शत्रुघ्नने पूछा—मन्त्रिवर! महर्षि च्यवनने कब अश्विनीकुमारोंको देवताओंकी पंक्तिमें बिठाकर उन्हें यज्ञका भाग अर्पण किया था? तथा देवराज इन्द्रने उस महान् यज्ञमें क्या किया था?

सुमतिने कहा—सुमित्रानन्दन! ब्रह्माजीके वंशमें महर्षि भृगु बड़े विख्यात महात्मा हुए हैं। एक दिन सन्ध्याके समय समिधा लानेके लिये वे आश्रमसे दूर चले गये थे। उसी समय दमन नामका एक महाबली राक्षस उनके यज्ञका नाश करनेके लिये आया और उच्च स्वरसे अत्यन्त भयंकर वचन बोला—'कहाँ है वह अधम मुनि और कहाँ है उसकी पापरहित पत्नी?' वह रोषमें भरकर जब बारम्बार इस प्रकार कहने लगा तो अग्निदेवताने अपने ऊपर राक्षससे भय उपस्थित जानकर मुनिकी पत्नीको उसे दिखा दिया। वह सती-साध्वी नारी गर्भवती थी। राक्षसने उसे पकड़ लिया। बेचारी अबला कुररीकी भाँति विलाप करने लगी—'महर्षि भृगु! रक्षा करो, पतिदेव! बचाओ, प्राणनाथ! तपोनिधे!! मेरी रक्षा करो।' इस प्रकार वह आर्तभावसे पुकार रही थी, तथापि राक्षस उसे लेकर आश्रमसे बाहर चला गया और दुष्टताभरी बातोंसे महात्मा भृगुकी उस पतिव्रता पत्नीको अपमानित करने लगा। उस समय महान् भयसे त्रस्त होकर वह गर्भ मुनिपत्नीके पेटसे गिर गया। उस नवजात शिशुके नेत्र प्रज्वलित हो रहे थे, मानो सतीके शरीरसे अग्निदेव ही प्रकट हुए हों। उसने राक्षसकी ओर देखकर कहा—'ओ दुष्ट! अब तू यहाँसे न जा, अभी जलकर भस्म हो जा। सतीका स्पर्श करनेके कारण तेरा कल्याण न होगा।' बालकके इतना कहते ही वह राक्षस गिर पड़ा और तुरंत जलकर राखका ढेर हो गया। तब माता अपने बच्चेको गोदमें लेकर उदास मनसे आश्रमपर आयी। महर्षि भृगुको जब मालूम हुआ कि यह सब अग्निदेवकी ही करतूत है तो वे क्रोधसे व्याकुल हो उठे और शाप देते हुए बोले—'शत्रुको घरका भेद बतानेवाले दुष्टात्मा! तू सर्वभक्षी हो जा (पवित्र, अपवित्र—सभी वस्तुओंका आहार कर)।' यह शाप सुनकर अग्निदेवको बड़ा दुःख हुआ, उन्होंने मुनिके चरण पकड़ लिये और कहा—प्रभो! तुम दयाके सागर हो। महामते! मुझपर अनुग्रह करो। धार्मिकशिरोमणे! मैंने झूठ बोलनेके भयसे उस राक्षसको आपकी पत्नीका पता बता दिया था, इसलिये मुझपर कृपा करो।'

अग्निकी प्रार्थना सुनकर तपस्वी मुनि दयासे द्रवित हो गये और उनपर अनुग्रह करते हुए इस प्रकार बोले—'अग्ने! तुम सर्वभक्षी होकर भी पवित्र ही रहोगे।' तत्पश्चात् परम मंगलमय विप्रवर भृगुने स्नान आदिसे पवित्र हो हाथमें कुश लेकर गर्भसे गिरे हुए अपने पुत्रका जातकर्म आदि संस्कार किया। उस समय सम्पूर्ण तपस्वियोंने गर्भसे च्युत होनेके कारण उस बालकका नाम च्यवन रख दिया। भृगुकुमार च्यवन शुक्लपक्षकी प्रतिपदाके चन्द्रमाकी भाँति धीरे-धीरे बढ़ने लगे। कुछ बड़े हो जानेपर वे तपस्या करनेके लिये जगत्को पवित्र करनेवाली नर्मदा नदीके तटपर गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने दस हजार वर्षोंतक तपस्या की।

उनके दोनों कंधोंपर दीमकोंने मिट्टीकी ढेरी जमा कर दी और उसपर दो पलाशके वृक्ष उग आये। हरिण उत्सुकतापूर्वक वहाँ आते और मुनिके शरीरमें अपनी देह रगड़कर खुजली मिटाते थे; किन्तु उनको इन सब बातोंका कुछ भी ज्ञान नहीं रहता था। वे अविचलभावसे स्थिर रहते थे।

एक समयकी बात है। मनुके पुत्र राजा शर्याति तीर्थयात्राके लिये तैयार होकर परिवारसहित नर्मदाके तटपर गये, उनके साथ बहुत बड़ी सेना थी। महानदी नर्मदामें स्नान करके उन्होंने देवता और पितरोंका तर्पण किया तथा भगवान् श्रीविष्णुकी प्रसन्नताके लिये ब्राह्मणोंको नाना प्रकारके दान दिये। राजाके एक कन्या थी, जो तपाये हुए सोनेके आभूषण पहनकर बड़ी सुन्दरी दिखायी देती थी। वह अपनी सखियोंके साथ वनमें इधर-उधर विचरने लगी। वहाँ उसने महान् वृक्षोंसे सुशोभित वल्मीक (मिट्टीका ढेर) देखा, जिसके भीतर एक ऐसा तेज दीख पड़ा, जो निमेष और उन्मेषसे रहित था (उसमें खुलने-मिचनेकी क्रिया नहीं होती थी)। राजकन्या कौतूहलवश उसके पास गयी और शलाकाओंसे दबाकर उसे फोड़ डाला। फूटनेपर उससे खून निकलने लगा। यह देखकर राजकुमारीको बड़ा खेद हुआ और वह दुःखसे कातर हो गयी। अपराधसे दबी होनेके कारण उसने माता और पिताको इस दुर्घटनाका हाल नहीं बताया। वह भयसे आतुर होकर स्वयं ही अपने लिये शोक करने लगी। उस समय पृथ्वी काँपने लगी, आकाशसे उल्कापात होने लगा, सारी दिशाएँ धूमिल हो गयीं तथा सूर्यके चारों ओर घेरा पड़ गया। राजाके कितने ही घोड़े नष्ट हो गये, बहुतेरे हाथी मर गये, धन और रत्नका नाश हो गया तथा उनके साथ आये हुए लोगोंमें परस्पर कलह होने लगा।

वह उत्पात देखकर राजा डर गये, उनका मन कुछ उद्विग्न हो गया। वे सब लोगोंसे पूछने लगे—'किसीने मुनिका अपराध तो नहीं किया है?' परम्परासे उन्हें अपनी पुत्रीकी करतूत मालूम हो गयी और वे अत्यन्त दुःखी होकर सेना और सवारियोंसहित मुनिके पास गये। भारी तपस्यामें लगे हुए तपोनिधि च्यवन मुनिको देखकर राजाने स्तुतिके द्वारा उन्हें प्रसन्न किया और कहा—'मुनिवर! दया कीजिये।' तब महातपस्वी मुनिश्रेष्ठ च्यवनने सन्तुष्ट होकर कहा—'महाराज! तुम्हें मालूम होना चाहिये कि यह सारा उत्पात तुम्हारी पुत्रीका ही किया हुआ है। तुम्हारी कन्याने मेरी आँखें फोड़ डाली हैं, इनसे बहुत खून गिरा है, इस बातको जानते हुए भी उसने तुमसे नहीं बताया है; इसलिये अब तुम शास्त्रीय विधिके अनुसार मुझे उस कन्याका दान कर दो, तब सारे उत्पातोंकी शान्ति हो जायगी।' यह सुनकर राजाको बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने उत्तम कुल, नयी अवस्था, सुन्दर रूप, अच्छे स्वभाव तथा शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न अपनी प्यारी पुत्री उन अंधे महर्षिको ब्याह दी। राजाने कमलके समान नेत्रोंवाली उस कन्याका जब दान कर दिया तो मुनिके क्रोधसे प्रकट हुए सारे उत्पात तत्काल शान्त हो गये। इस प्रकार तपोनिधि मुनिवर च्यवनको अपनी कन्या देकर राजा शर्याति फिर अपनी राजधानीको लौट आये। पुत्रीपर दया आनेके कारण वे बहुत दुःखी थे।

सुकन्याके द्वारा पतिकी सेवा, च्यवनको यौवन-प्राप्ति, उनके द्वारा अश्विनीकुमारोंको यज्ञभाग-अर्पण तथा च्यवनका अयोध्या-गमन

सुमतिने कहा—सुमित्रानन्दन! राजा शर्यातिके चले जानेके पश्चात् महर्षि च्यवन पत्नीरूपमें प्राप्त हुई उनकी कन्याके साथ अपने आश्रमपर रहने लगे। उसको पाकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई थी। योगाभ्यासमें प्रवृत्त होनेके कारण उनके सारे पाप धुल गये थे। वह कन्या अपने श्रेष्ठ पतिकी भगवद्बुद्धिसे सेवा करने लगी। यद्यपि वे नेत्रोंसे हीन थे और बुढ़ापाके कारण उनकी शारीरिक शक्ति जवाब दे चुकी थी, तथापि वह उन्हें

अपने अभीष्ट पूर्ण करनेवाले कुलदेवताके समान समझकर उनकी शुश्रूषा करती थी। जैसे शची इन्द्रकी सेवामें तत्पर होकर प्रसन्नता प्राप्त करती हैं, उसी प्रकार उस सुन्दरी सतीको अपने प्रियतम पतिकी सेवामें बड़ा आनन्द आता था। पति भी साधारण नहीं, तपस्याके भण्डार थे और उनका आशय (मनोभाव) बहुत ही गम्भीर था, तो भी वह उनकी प्रत्येक चेष्टाको जानती—हर एक अभिप्रायको समझती हुई शुश्रूषामें संलग्न रहती थी। वह सुन्दर शरीरवाली राजकुमारी सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न और कृशांगी थी, तो भी फल, मूल और जलका आहार करती हुई अपने स्वामीके चरणोंकी सेवा करती थी। सदा पतिकी आज्ञा पालन करनेके लिये तैयार रहती और उन्हींके पूजन (आदर-सत्कार)-में समय बिताती थी। सम्पूर्ण प्राणियोंका हित-साधन करनेमें उसका अनुराग था। वह काम, दम्भ, द्वेष, लोभ, भय और मदका परित्याग करके सावधानीके साथ उद्यत रहकर सर्वदा च्यवन मुनिको सन्तुष्ट रखनेका यत्न करती थी। महाराज! इस प्रकार वाणी, शरीर और क्रियाके द्वारा मुनिकी सेवा करती हुई उस राजकुमारीने एक हजार वर्ष व्यतीत कर दिये तथा अपनी कामनाको मनमें ही रखा [मुनिपर कभी प्रकट नहीं किया]।

एक समयकी बात है, मुनिके आश्रमपर देववैद्य अश्विनीकुमार पधारे। सुकन्याने स्वागतके द्वारा उनका सम्मान करके उन दोनोंका पूजन (आतिथ्य-सत्कार) किया। शर्यातिकुमारी सुकन्याके किये हुए पूजन तथा अर्घ्य-पाद्य आदिसे उन सुन्दर शरीरवाले अश्विनी-कुमारोंके मनमें प्रसन्नता हुई। उन्होंने स्नेहवश उस सुन्दरीसे कहा—'देवि! तुम कोई वर माँगो।' उन दोनों देववैद्योंको सन्तुष्ट देख बुद्धिमती नारियोंमें श्रेष्ठ राजकुमारी सुकन्याने उनसे वर माँगनेका विचार किया। अपने पतिके अभिप्रायको लक्ष्य करके उसने कहा—'देवताओ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मेरे पतिको नेत्र प्रदान कीजिये।' सुकन्याका यह मनोहर वचन सुनकर तथा उसके सतीत्वको देखकर उन श्रेष्ठ वैद्योंने कहा—'यदि तुम्हारे पति यज्ञमें हमलोगोंको देवोचित भाग अर्पण कर सकें तो हम इनके नेत्रोंमें स्पष्टरूपसे देखनेकी शक्ति पैदा कर सकते हैं।' च्यवनने भी उन तेजस्वी देवताओंको यज्ञमें भाग देनेके लिये हामी भर दी। तब वे दोनों अश्विनीकुमार अत्यन्त प्रसन्न होकर महान् तपस्वी च्यवनसे बोले—'मुने! सिद्धोंद्वारा तैयार किये हुए इस कुण्डमें आप गोता लगावें।' ऐसा कहकर उन्होंने च्यवन मुनिको, जिनका शरीर वृद्धावस्थाका ग्रास बन चुका था तथा जिनकी नस-नाड़ियाँ साफ दिखायी दे रही थीं, उस कुण्डमें प्रवेश कराया और स्वयं भी उसमें गोता लगाया। तत्पश्चात् उस कुण्डमेंसे तीन पुरुष प्रकट हुए जो अत्यन्त सुन्दर और नारियोंका मन मोहनेवाले थे। उनका रूप एक ही समान था। सोनेके हार, कुण्डल तथा सुन्दर वस्त्र—तीनोंके शरीरपर शोभा पा रहे थे। सुन्दर शरीरवाली सुकन्या उन तीनोंको अत्यन्त रूपवान् और सूर्यके समान तेजस्वी देखकर अपने पतिको पहचान न सकी। तब वह साध्वी दोनों अश्विनीकुमारोंकी शरणमें गयी। सुकन्याके पातिव्रत्यसे सन्तुष्ट होकर उन्होंने उसके पतिको दिखा दिया और ऋषिसे विदा ले वे दोनों विमानपर बैठकर स्वर्गको
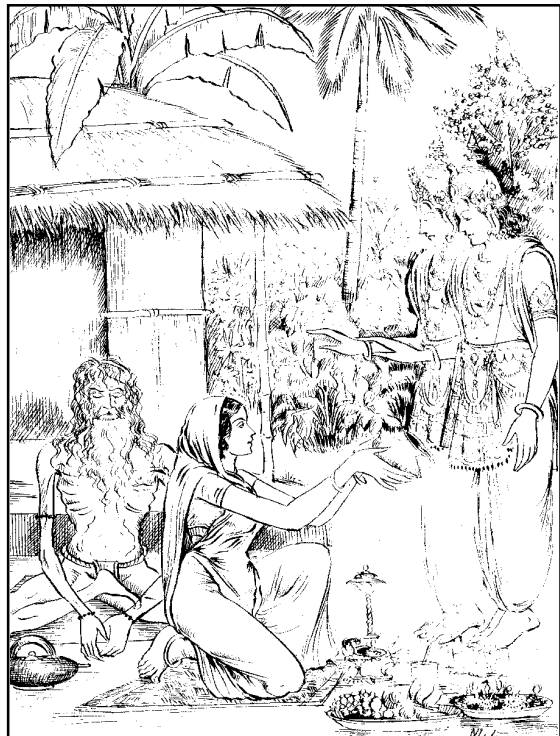
चले गये। अब उन्हें इस बातकी आशा हो गयी थी कि जब मुनि यज्ञ करेंगे तो उसमें हमलोगोंको भी अवश्य भाग देंगे।

तदनन्तर किसी समय राजा शर्यातिके मनमें यह इच्छा हुई कि मैं यज्ञद्वारा देवताओंका पूजन करूँ। उस समय उन्होंने महर्षि च्यवनको बुलानेके लिये अपने कई सेवक भेजे। उनके बुलानेपर महातपस्वी विप्रवर च्यवन वहाँ गये। साथमें उनकी धर्मपत्नी सुकन्या भी थी, जो मुनियोंके समान आचार-विचारका पालन करनेमें पक्की हो गयी थी। जब पत्नीके साथ वे महर्षि राजभवनमें पधारे, तब महायशस्वी राजा शर्यातिने देखा कि मेरी कन्याके पास एक सूर्यके समान तेजस्वी पुरुष खड़ा है। सुकन्याने पिताके चरणोंमें प्रणाम किया, किन्तु शर्यातिने उसे आशीर्वाद नहीं दिया। वे कुछ अप्रसन्न-से होकर
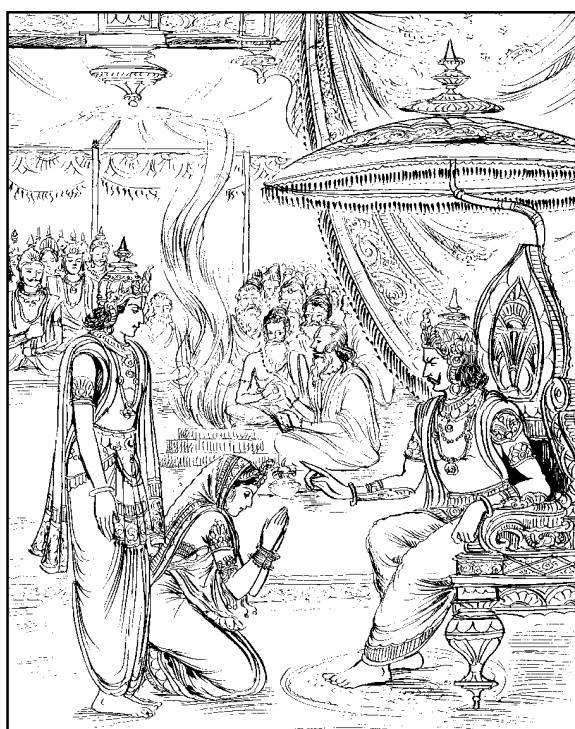
पुत्रीसे बोले—'अरी! तूने यह क्या किया? अपने पति महर्षि च्यवनको, जो सब लोगोंके वन्दनीय हैं, धोखा तो नहीं दे दिया? क्या तूने उन्हें बूढ़ा और अप्रिय जानकर छोड़ दिया और अब तू इस राह चलते जार पुरुषकी सेवा कर रही है? तेरा जन्म तो श्रेष्ठ पुरुषोंके कुलमें हुआ है, फिर ऐसी उलटी बुद्धि तुझे कैसे प्राप्त हुई? ऐसा करके तू तो अपने पिता तथा पति—दोनोंके कुलको नरकमें ले जा रही है?' पिताके ऐसा कहनेपर पवित्र मुसकानवाली सुकन्या किंचित् मुसकराकर बोली—'पिताजी! ये जार पुरुष नहीं—आपके जामाता भृगुनन्दन महर्षि च्यवन ही हैं।' इसके बाद उसने पतिकी नयी अवस्था और सौन्दर्य-प्राप्तिका सारा समाचार पितासे कह सुनाया। सुनकर राजा शर्यातिको बड़ा विस्मय हुआ और उन्होंने अत्यन्त प्रसन्न होकर पुत्रीको छातीसे लगा लिया। इसके बाद च्यवनने राजासे सोमयागका अनुष्ठान कराया और सोमपानके अधिकारी न होनेपर भी दोनों अश्विनीकुमारोंके लिये उन्होंने सोमका भाग निश्चित किया। महर्षि तपोबलसे सम्पन्न थे, अतः उन्होंने अपने तेजसे अश्विनीकुमारोंको सोमरसका पान कराया। अश्विनीकुमार वैद्य होनेके कारण पंक्तिपावन देवताओंमें नहीं गिने जाते थे—उन्हें देवता अपनी पंक्तिमें नहीं बिठाते थे; परन्तु उस दिन ब्राह्मणश्रेष्ठ च्यवनने उन्हें देवपंक्तिमें बैठनेका अधिकारी बनाया। यह देखकर इन्द्रको क्रोध आ गया और वे हाथमें वज्र लेकर उन्हें मारनेको तैयार हो गये। वज्रधारी इन्द्रको अपना वध करनेके लिये उद्यत देख बुद्धिमान् महर्षि च्यवनने एक बार हुंकार किया और उनकी भुजाओंको स्तम्भित कर दिया। उस समय सब लोगोंने देखा, इन्द्रकी भुजाएँ जडवत् हो गयी हैं।

बाहें स्तम्भित हो जानेपर इन्द्रकी आँखें खुलीं और उन्होंने मुनिकी स्तुति करते हुए कहा—'स्वामिन्! आप अश्विनीकुमारोंको यज्ञका भाग अर्पण कीजिये, मैं नहीं रोकता। तात! एक बार मैंने जो अपराध किया है, उसको क्षमा कीजिये।' उनके ऐसा कहनेपर दयासागर महर्षिने तुरंत क्रोध त्याग दिया और इन्द्रकी भुजाएँ भी तत्काल बन्धनमुक्त हो गयीं—उनकी जडता दूर हो गयी। यह देखकर सब लोगोंका हृदय विस्मयपूर्ण कौतूहलसे भर गया। वे ब्राह्मणोंके बलकी, जो देवता आदिके लिये भी दुर्लभ है, सराहना करने लगे। तदनन्तर शत्रुओंको ताप देनेवाले महाराज शर्यातिने

ब्राह्मणोंको बहुत-सा धन दिया और यज्ञके अन्तमें अवभृथस्नान किया।

सुमित्रानन्दन! तुमने मुझसे जो कुछ पूछा था, वह सब मैंने कह सुनाया। महर्षि च्यवन तपस्या और योगबलसे सम्पन्न हैं। इन तपोमूर्ति महात्माको प्रणाम करके तुम विजयका आशीर्वाद ग्रहण करो और श्रीरामचन्द्रजीके मनोहर यज्ञमें इन्हें पत्नीसहित पधारनेके लिये प्रार्थना करो।

शेषजी कहते हैं—शत्रुघ्न और सुमतिमें इस प्रकार वार्तालाप हो रहा था, इतनेहीमें यज्ञका घोड़ा आश्रमके पास जा पहुँचा और उस महान् आश्रममें घूम-घूमकर मुखके अग्रभागसे दूबके अंकुर चरने लगा। इसी बीचमें शत्रुघ्न भी च्यवन मुनिके शोभायमान आश्रमपर पहुँच गये। वहाँ जाकर उन्होंने सुकन्याके पास बैठे हुए महर्षि च्यवनका दर्शन किया, जो तपस्याके मूर्तिमान् स्वरूप-से जान पड़ते थे। सुमित्राकुमारने अपना नाम बतलाते हुए मुनिके चरणोंमें प्रणाम किया और कहा—'मुने! मैं श्रीरघुनाथजीका भाई और इस अश्वका रक्षक शत्रुघ्न हूँ। अपने महान् पापोंकी शान्तिके लिये आपको नमस्कार करता हूँ।' यह वचन सुनकर मुनिवर च्यवनने कहा—'नरश्रेष्ठ शत्रुघ्न! तुम्हारा कल्याण हो। इस यज्ञरूपी अश्वका पालन करनेसे संसारमें तुम्हारे महान् यशका विस्तार होगा।' शत्रुघ्नसे ऐसा कहकर महर्षिने आश्रमवासी ब्राह्मणोंसे कहा—'ब्रह्मर्षियो! यह आश्चर्यकी बात देखो, जिनके नामोंके स्मरण और कीर्तन आदि मनुष्यके समस्त पापोंका नाश कर देते हैं, वे भगवान् श्रीराम भी यज्ञ करनेवाले हैं। महान् पातकी और परस्त्री-लम्पट पुरुष भी जिनका नाम स्मरण करके आनन्दपूर्वक परमगतिको प्राप्त होते हैं।[१] जिनके चरणकमलोंकी धूलि पड़नेसे पत्थरकी मूर्ति बनी हुई अहल्या तत्क्षण मनोहर रूप धारण करके महर्षि गौतमकी धर्मपत्नी हो गयी। रणक्षेत्रमें जिनके मनोहारी रूपका दर्शन करके दैत्योंने उन्हींके निर्विकार स्वरूपको प्राप्त कर लिया तथा योगीजन समाधिमें जिनका ध्यान करके योगारूढ-अवस्थाको पहुँच गये और संसारके भयसे छुटकारा पाकर परमपदको प्राप्त हो गये, वे ही श्रीरघुनाथजी यज्ञ कर रहे हैं—यह कैसी अद्भुत बात है! मेरा धन्य भाग, जो अब श्रीरामचन्द्रजीके उस सुन्दर मुखकी झाँकी करूँगा, जिसके नेत्रोंका प्रान्तभाग मेघके जलकी समानता करता है। जिसकी नासिका मनोहर और भौंहें सुन्दर हैं तथा जो विनयसे कुछ झुका हुआ है। जिह्वा वही उत्तम है जो श्रीरघुनाथजीके नामोंका आदरके साथ कीर्तन करती है। जो इसके विपरीत आचरण करती है, वह तो साँपकी जीभके समान है।[२] आज मुझे अपनी तपस्याका पवित्र फल प्राप्त हो गया। अब मेरे सारे मनोरथ पूरे हो गये; क्योंकि ब्रह्मादि देवताओंको भी जिसका दर्शन दुर्लभ है, भगवान् श्रीरामके उसी मुखको मैं इन नेत्रोंसे निहारूँगा। उनके चरणोंकी रजसे अपने
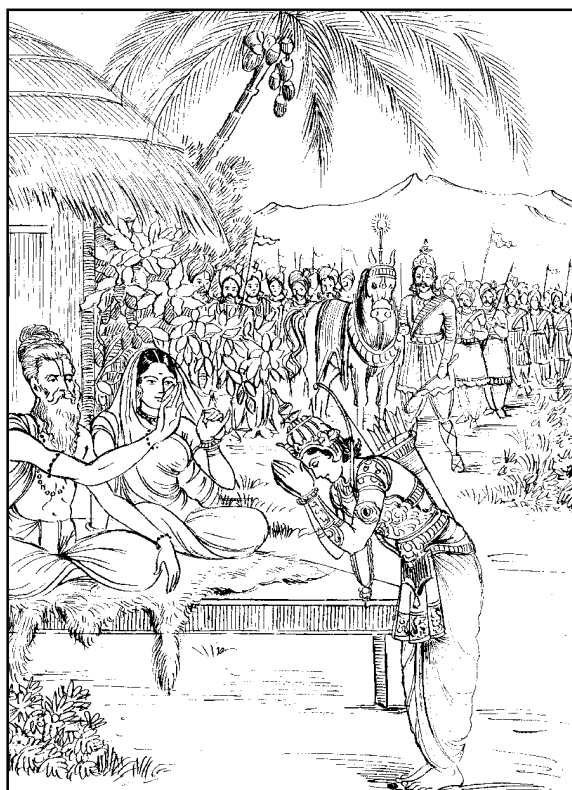
१-महापातकसंयुक्ताः परदाररता नराः। यन्नामस्मरणे युक्ता मुदा यान्ति परां गतिम्॥ (१६। ३३)

२-सा जिह्वा रघुनाथस्य नामकीर्तनमादरात्। करोति विपरीता या फणिनो रसनासमा॥ (१६। ३९)

शरीरको पवित्र करूँगा तथा उनकी अत्यन्त विचित्र वार्ताओंका वर्णन करके अपनी रसनाको पावन बनाऊँगा।'

इस प्रकारकी बातें करते-करते श्रीरामके चरणोंका स्मरण होनेसे महर्षिका प्रेम-भाव जाग्रत् हो उठा। उनकी वाणी गद्गद हो गयी और नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बह चली। वे मुनियोंके सामने ही अश्रुपूर्ण कण्ठसे पुकारने लगे—'हे श्रीरामचन्द्र! हे रघुनाथ! हे धर्ममूर्ते! हे भक्तोंपर दया करनेवाले परमेश्वर! इस संसारसे मेरा उद्धार कीजिये।' इतना कहते-कहते महर्षि ध्यानमग्न हो गये, उन्हें अपने-परायेका ज्ञान न रहा। उस समय शत्रुघ्नने मुनिसे कहा—'स्वामिन्! आप हमारे श्रेष्ठ यज्ञको अपने चरणोंकी धूलिसे पवित्र कीजिये। सब लोगोंके द्वारा एकमात्र पूजित होनेवाले महाबाहु श्रीरघुनाथजीका भी बड़ा सौभाग्य है कि वे आप-जैसे महात्माके अन्तःकरणमें निवास करते हैं।' शत्रुघ्नके ऐसा कहनेपर मुनिवर च्यवन आनन्दमग्न हो गये और अपने सम्पूर्ण अग्नियोंको साथ ले परिवारसहित वहाँसे चल दिये। उन्हें पैदल जाते देख और श्रीरामचन्द्रजीका भक्त जान हनुमान्जीने शत्रुघ्नसे विनयपूर्वक कहा—'स्वामिन्! यदि आप कहें तो महापुरुषोंमें श्रेष्ठ इन राम-भक्त महर्षिको मैं ही अपनी पुरीमें पहुँचा दूँ।' वानर वीरके ये उत्तम वचन सुनकर शत्रुघ्नने उन्हें आज्ञा दी—'हनुमान्जी! जाइये, मुनिको पहुँचा आइये।' तब हनुमान्जीने मुनिको कुटुम्बसहित अपनी पीठपर बिठा लिया और सर्वत्र विचरनेवाले वायुकी भाँति उन्हें शीघ्र ही अयोध्या पहुँचा दिया। मुनिको आया देख, श्रीराम बहुत प्रसन्न हुए और प्रेमसे विह्वल होकर उन्होंने उनके
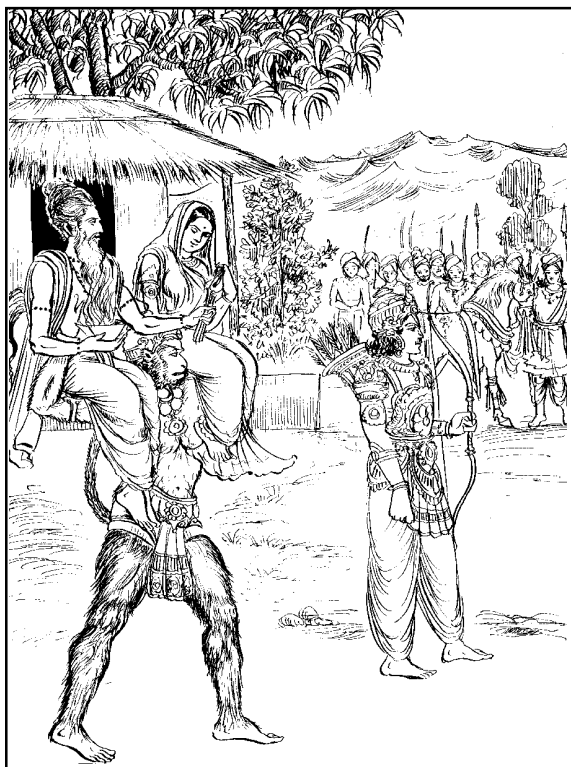
लिये अर्घ्य-पाद्य आदि अर्पण किया। तत्पश्चात् वे बोले—'मुनिश्रेष्ठ! इस समय आपका दर्शन पाकर मैं धन्य हो गया। आपने सब सामग्रियोंसहित मेरे यज्ञको पवित्र कर दिया।'

भगवान्का यह वचन सुनकर मुनिवर च्यवन बहुत सन्तुष्ट हुए। प्रेमोद्रेकके कारण उनके शरीरमें रोमांच हो आया। वे बोले—'प्रभो! आप ब्राह्मणोंपर प्रेम रखनेवाले और धर्ममार्गके रक्षक हैं; अतः आपके द्वारा ब्राह्मणका सम्मान होना उचित ही है।'

सुमतिका शत्रुघ्नसे नीलाचलनिवासी भगवान् पुरुषोत्तमकी महिमाका वर्णन करते हुए एक इतिहास सुनाना

शेषजी कहते हैं—मुने! महर्षि च्यवनके अचिन्तनीय तपोबलको देखकर शत्रुघ्नने विश्व-वन्दित ब्राह्मबलकी बड़ी प्रशंसा की। वे मन-ही-मन कहने लगे—'कहाँ तो विशुद्ध अन्तःकरणवाले मुनियोंको स्वतः प्राप्त होनेवाली महान् भोगोंकी सिद्धि और कहाँ तपोबलसे हीन मनुष्योंकी भोगेच्छा!' इस प्रकार सोचते हुए शत्रुघ्नने च्यवन मुनिके आश्रमपर थोड़ी देरतक ठहरकर जल पीया और सुख एवं आरामका अनुभव किया। उनका घोड़ा पुण्यसलिला पयोष्णी नदीका जल पीकर आगेके मार्गपर चल पड़ा। सैनिकोंने जब उसे

आश्रमसे निकलते देखा, तो वे भी उसके पीछे-पीछे चल दिये। कुछ लोग हाथीपर थे और कुछ लोग रथोंपर। कुछ घोड़ोंपर सवार थे और कुछ लोग पैदल ही जा रहे थे। शत्रुघ्नने भी मन्त्रिवर सुमतिके साथ घोड़ोंसे सुशोभित होनेवाले रथपर बैठकर बड़ी शीघ्रताके साथ यज्ञसम्बन्धी अश्वका अनुसरण किया। वह घोड़ा आगे बढ़ता हुआ राजा विमलके रत्नातट नामक नगरमें जा पहुँचा। राजाने जब अपने सेवकके मुँहसे सुना कि श्रीरघुनाथजीका श्रेष्ठ अश्व सम्पूर्ण योद्धाओंके साथ अपने नगरके निकट आया है, तो वे शत्रुघ्नके पास गये और उन्हें प्रणाम करके अपना रत्न, कोष, धन और सारा राज्य सौंपते हुए सामने खड़े होकर बोले—'मैं कौन-सा कार्य करूँ—मेरे लिये क्या आज्ञा होती है?' शत्रुघ्नने भी उन्हें अपने चरणोंमें नतमस्तक देख दोनों भुजाओंसे उठाकर छातीसे लगा लिया। इसके बाद राजा विमल भी पुत्रको राज्य देकर अनेकों धनुर्धर योद्धाओंसहित शत्रुघ्नजीके साथ गये। सबके मन और कानोंको प्रिय लगनेवाले श्रीरामचन्द्रजीका मधुर नाम सुनकर प्रायः सभी राजा उस यज्ञसम्बन्धी घोड़ेको प्रणाम करते और बहुमूल्य रत्न एवं धन भेंट देते थे। इस प्रकार अश्वके मार्गपर जाते हुए शत्रुघ्नने एक बहुत ऊँचा पर्वत देखा। उसे देखकर उनका मन आश्चर्यचकित हो गया; अतः वे मन्त्री सुमतिसे बोले—'मन्त्रिवर! यह कौन-सा पर्वत है, जो मेरे मनको विस्मयमें डाल रहा है। इसके बड़े-बड़े शिखर चाँदीके समान चमक रहे हैं। मार्गमें इस पर्वतकी बड़ी शोभा हो रही है। मुझे तो यह बड़ा अद्भुत जान पड़ता है। क्या यहाँ देवताओंका निवासस्थान है या यह उनकी क्रीड़ास्थली है? यह पर्वत अपनी सब प्रकारकी शोभासे मेरे मनको मोहे लेता है।'

शत्रुघ्नजीका यह प्रश्न सुनकर मन्त्री सुमति, जिनका चित्त सदा श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें लगा रहता था, बोले—राजन्! हमलोगोंके सामने यह नीलपर्वत शोभा पा रहा है। इसके चारों ओर फैले हुए बड़े-बड़े शिखर स्फटिक आदि मणियोंके समूह हैं; अतएव वे बड़े मनोहर प्रतीत होते हैं। पापी और परस्त्री-लम्पट मनुष्य इस पर्वतको नहीं देख पाते। जो नीच मनुष्य भगवान् श्रीविष्णुके गुणोंपर विश्वास या आदर नहीं करते, सत्पुरुषोंद्वारा आचरणमें लाये हुए श्रौत और स्मार्त धर्मोंको नहीं मानते तथा सदा अपने बौद्धिक तर्कके आधारपर ही विचार करते हैं, उन्हें भी इस पर्वतका दर्शन नहीं होता। नील और लाहकी बिक्री करनेवाले मनुष्य, घी आदि बेचनेवाला ब्राह्मण तथा शराबी मनुष्य भी इसके दर्शनसे वंचित रहते हैं। जो पिता अपनी रूपवती कन्याका किसी कुलीन वरके साथ ब्याह नहीं करता, बल्कि पापसे मोहित होकर धनके लोभसे उसको बेच देता है, उसे भी इसका दर्शन नहीं होता। जो मनुष्य उत्तम कुल और शीलसे युक्त सती साध्वी स्त्रीको कलंकित करता है तथा भाई-बन्धुओंको न देकर स्वयं ही मीठे पकवान उड़ाता है, जो ब्राह्मणका धन हड़प लेनेके लिये जालसाजी करता है, रसोईमें भेद करता है तथा जो दूषित विचार रखनेके कारण केवल अपने लिये खिचड़ी या खीर बनाता है, वह भी इस पर्वतको नहीं देख पाता। महाराज! जो मध्याह्नकालमें भूखसे पीड़ित होकर आये हुए अतिथियोंका अपमान करते हैं, दूसरोंके साथ

विश्वासघात करते रहते हैं तथा जो श्रीरघुनाथजीके भजनसे विमुख होते हैं, उन्हें भी इस पर्वतका दर्शन नहीं होता। यह श्रेष्ठ पर्वत बड़ा ही पवित्र है, पुरुषोत्तमका निवासस्थान होनेसे इसकी शोभा और भी बढ़ गयी है। अपने दर्शनसे यह मनोहर शैल हम सब लोगोंको पवित्र कर रहा है। देवताओंके मुकुटोंसे जिनके चरणोंकी पूजा होती है—जहाँ देवता अपने मुकुट-मण्डित मस्तक झुकाया करते हैं, पुण्यात्मा पुरुष ही जिनका दर्शन पानेके अधिकारी हैं, वे पुण्य-प्रदाता भगवान् पुरुषोत्तम इस पर्वतपर विराजमान हैं। वेदकी श्रुतियाँ 'नेति-नेति' कहकर निषेधकी अवधिरूपसे जिनको जानती हैं, इन्द्रादि देवता भी जिनके चरणोंकी रज ढूँढ़ा करते हैं फिर भी उन्हें सुगमतासे प्राप्त नहीं होती तथा विद्वान् पुरुष वेदान्त आदिके महावाक्योंद्वारा जिनका बोध प्राप्त करते हैं, वे ही श्रीमान् पुरुषोत्तम इस महान् पर्वतपर विराज रहे हैं। जो इस नीलगिरिपर चढ़कर भगवान्को नमस्कार करता और पुण्यकर्म आदिके द्वारा उनकी पूजा करके उनका प्रसाद ग्रहण करता है, वह साक्षात् भगवान् चतुर्भुजका स्वरूप हो जाता है।

महाराज! इस विषयमें जानकार लोग एक प्राचीन इतिहास कहा करते हैं, उसको सुनो। राजा रत्नग्रीवको अपने परिवारके साथ ही जो 'चार भुजा' आदि भगवान्का सारूप्य प्राप्त हुआ था, उसीका इस उपाख्यानमें वर्णन है। ऐसा सौभाग्य देवता और दानवोंके लिये भी दुर्लभ है। यह आश्चर्यपूर्ण वृत्तान्त इस प्रकार है—तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध जो कांची नामकी नगरी है, वह पूर्वकालमें बड़ी सम्पन्न-अवस्थामें थी, वहाँ बहुत अधिक मनुष्योंकी आबादी थी। सेना और सवारी सभी दृष्टियोंसे कांची बड़ी समृद्धिशालिनी पुरी थी। वहाँ ब्राह्मणोचित छः कर्मोंमें निरन्तर लगे रहनेवाले श्रेष्ठ ब्राह्मण निवास करते थे, जो सब प्राणियोंके हितमें संलग्न और श्रीरामचन्द्रजीके भजनके लिये सदा उत्कण्ठित रहनेवाले थे। वहाँके क्षत्रिय युद्धमें लोहा लेनेवाले थे। वे संग्राममें कभी पीछे पैर नहीं हटाते थे। परायी स्त्री, पराये धन और परद्रोहसे वे सदा दूर रहनेवाले थे। वैश्य भी ब्याज, खेती और व्यापार आदि शुभ वृत्तियोंसे जीविका चलाते हुए निरन्तर श्रीरघुनाथजीके चरणकमलोंमें अनुराग रखते थे। शूद्र-जातिके मनुष्य रात-दिन अपने शरीरसे ब्राह्मणोंकी सेवा करते और जिह्वासे 'राम-राम' की रट लगाये रहते थे। वहाँ नीच श्रेणीके मनुष्योंमें भी कोई ऐसा नहीं था, जो मनसे भी पाप करता हो। उस नगरीमें दान, दया, दम और सत्य—ये सदा विराजमान रहते थे। कोई भी मनुष्य ऐसी बात नहीं बोलता था, जो दूसरोंको कष्ट पहुँचानेवाली हो। वहाँके लोग न तो पराये धनका लोभ रखते और न कभी पाप ही करते थे। इस प्रकार राजा रत्नग्रीव प्रजाका पालन करते थे। वे लोभसे रहित होकर केवल प्रजाकी आयके छठे अंशको 'कर' के रूपमें ग्रहण करते थे, इससे अधिक कुछ नहीं लेते थे। इस तरह धर्मपूर्वक प्रजाका पालन और सब प्रकारके भोगोंका उपभोग करते हुए राजाके अनेकों वर्ष व्यतीत हो गये। एक दिन उन्होंने अपनी धर्मपत्नी विशालाक्षीसे, जो पातिव्रत्य-धर्मका पालन करनेवाली पतिव्रता थी, कहा—'प्रिये! अब अपने पुत्र प्रजाकी रक्षाका भार सँभालनेवाले हो गये। भगवान् महाविष्णुके प्रसादसे मेरे पास किसी बातकी कमी नहीं है। अब मेरे मनमें केवल एक ही अभिलाषा रह गयी है, वह यह कि मैंने आजतक किसी परम कल्याणमय उत्तम तीर्थका सेवन नहीं किया। जो मनुष्य जन्मभर अपना पेट ही भरता रहता है, भगवान्की पूजा नहीं करता वह बैल माना गया है, इसलिये कल्याणी! मैं राज्यका भार पुत्रको सौंपकर अब कुटुम्बसहित तीर्थयात्राके लिये चलना चाहता हूँ।' ऐसा निश्चय करके उन्होंने सन्ध्याकालमें भगवान्का ध्यान किया और आधी रातको सोते समय स्वप्नमें एक श्रेष्ठ तपस्वी ब्राह्मणको देखा। फिर सबेरे उठकर उन्होंने सन्ध्या आदि नित्यकर्म पूरे किये और सभामें जाकर मन्त्रीजनोंके साथ वे सुखपूर्वक विराजमान हुए। इतनेमें ही उन्हें एक दुर्बल शरीरवाले तपस्वी ब्राह्मण दिखायी दिये, जो जटा, वल्कल और कौपीन धारण किये हुए थे। उनके हाथमें एक छड़ी थी तथा अनेकों

तीर्थोंके सेवनसे उनका शरीर पवित्र हो गया था। महाबाहु राजा रत्नग्रीवने उन्हें देख मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और प्रसन्नचित्त होकर अर्घ्य, पाद्य आदि निवेदन किया। जब ब्राह्मण सुखपूर्वक आसनपर बैठकर विश्राम कर चुके तो राजाने उनका परिचय जानकर इस प्रकार प्रश्न किया—'स्वामिन्! आज आपके दर्शनसे मेरे शरीरका समस्त पाप निवृत्त हो गया। वास्तवमें महात्मा पुरुष दीन-दु:खियोंकी रक्षाके लिये ही उनके घर जाते हैं। ब्रह्मन्! अब मैं बूढ़ा हो गया हूँ; इसलिये मुझे एक बात बताइये। कौन-सा देवता अथवा कौन ऐसा तीर्थ है जो गर्भवासके कष्टसे बचानेमें समर्थ हो सकता है? आपलोग समाधि और ध्यानमें तत्पर रहनेवाले हैं; अत: सर्वज्ञोंमें श्रेष्ठ हैं।'

ब्राह्मणने कहा—महाराज! आपने तीर्थ-सेवनके विषयमें जिज्ञासा करते हुए जो यह प्रश्न किया है कि किस देवताकी कृपासे गर्भवासके कष्टका निवारण हो सकता है? सो उसके विषयमें बता रहा हूँ, सुनिये—'भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी ही सेवा करनी चाहिये; क्योंकि वे ही संसाररूपी रोगका नाश करनेवाले हैं। वे ही भगवान् पुरुषोत्तमके नामसे प्रसिद्ध हैं, उन्हींकी पूजा करनी चाहिये। मैंने सब पापोंका क्षय करनेवाली अनेकों पुरियों और नदियोंका दर्शन किया है—अयोध्या, सरयू, तापी, हरिद्वार, अवन्ती, विमला, कांची, समुद्रगामिनी नर्मदा, गोकर्ण और करोड़ों हत्याओंका विनाश करनेवाला हाटकतीर्थ—इन सबका दर्शन पापको दूर करनेवाला है। मल्लिका-नामसे प्रसिद्ध महान् पर्वत मनुष्योंको दर्शनमात्रसे मोक्ष देनेवाला है तथा वह पातकोंका भी नाश करनेवाला तीर्थ है, उसका भी मैंने दर्शन किया है। देवता और असुर—दोनों जिसका सेवन करते हैं, उस द्वारवती (द्वारकापुरी) तीर्थका भी मैंने दर्शन किया है। वहाँ कल्याणमयी गोमती नामकी नदी बहती है, जिसका जल साक्षात् ब्रह्मस्वरूप है। उसमें शयन करना (डूबना) लय कहलाता है और मृत्युको प्राप्त होना मोक्ष; ऐसा श्रुतिका वचन है। उस पुरीमें निवास करनेवाले मनुष्योंपर कलियुग कभी अपना प्रभाव नहीं डाल पाता। जहाँके पत्थर भी चक्रसे चिह्नित होते हैं, मनुष्य तो चक्रका चिह्न धारण करते ही हैं; वहाँके पशु-पक्षी और कीट-पतंग आदि सबके शरीर चक्रसे अंकित होते हैं। उस पुरीमें सम्पूर्ण जगत्के एकमात्र रक्षक भगवान् त्रिविक्रम निवास करते हैं। मुझे बड़े पुण्यके प्रभावसे उस द्वारकापुरीका दर्शन हुआ है। साथ ही जो सब प्रकारकी हत्याओंका दोष दूर करनेवाला है तथा जहाँ महान् पातकोंका नाश करनेवाला स्यमन्तपंचक नामक तीर्थ है, उस कुरुक्षेत्रका भी मैंने दर्शन किया है। इसके सिवा, मैंने वाराणसीपुरीको भी देखा है, जिसे भगवान् विश्वनाथने अपना निवासस्थान बनाया है। जहाँ भगवान् शंकर मुमूर्षु प्राणियोंको तारक ब्रह्मके नामसे प्रसिद्ध 'राम' मन्त्रका उपदेश देते हैं। जिसमें मरे हुए कीट, पतंग, भृंग, पशु-पक्षी आदि तथा असुर-योनिके प्राणी भी अपने-अपने कर्मोंके भोग और सीमित सुखका परित्याग करके दु:ख-सुखसे परे हो कैलासको प्राप्त हो जाते हैं तथा जहाँ मणिकर्णिकातीर्थ और उत्तरवाहिनी गंगा हैं, जो पापियोंका भी संसारबन्धन काट देती हैं। राजन्! इस प्रकार मैंने अनेकों तीर्थोंका दर्शन किया है; परन्तु नीलगिरिपर भगवान् पुरुषोत्तमके समीप जो महान् आश्चर्यकी घटना देखी है वह अन्यत्र कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं हुई है।

पर्वतश्रेष्ठ नीलगिरिपर जो वृत्तान्त घटित हुआ था, उसे सुनिये; इसपर श्रद्धा और विश्वास करनेवाले पुरुष सनातन ब्रह्मको प्राप्त होते हैं। मैं सब तीर्थोंमें भ्रमण करता हुआ नीलगिरिपर गया, जिसका आँगन सदा गंगासागरके जलसे धुलता रहता है। वहाँ पर्वतके शिखरपर मुझे कुछ ऐसे भील दिखायी दिये, जिनकी चार भुजाएँ थीं और वे धनुष धारण किये हुए थे। वे फल-मूलका आहार करके वहाँ जीवन-निर्वाह करते थे, उस समय उन्हें देखकर मेरे मनमें यह महान् सन्देह खड़ा हुआ कि ये धनुष-बाण धारण करनेवाले जंगली मनुष्य चतुर्भुज कैसे हो गये? वैकुण्ठलोकमें निवास करनेवाले जितेन्द्रिय पुरुषोंका जैसा स्वरूप शास्त्रोंमें देखा जाता है

तथा जो ब्रह्मा आदिके लिये भी दुर्लभ है, ऐसा स्वरूप इन्हें कैसे प्राप्त हो गया? भगवान् विष्णुके निकट रहनेवाले उनके पार्षदोंके हाथ, जिस प्रकार शंख, चक्र, गदा, शार्ङ्गधनुष तथा कमलसे सुशोभित होते हैं तथा उनके शरीरपर जैसे वनमाला शोभा पाती है, उसी प्रकार ये भील भी क्यों दिखायी दे रहे हैं? इस प्रकार सन्देहमें पड़ जानेपर मैंने उनसे पूछा—'सज्जनो! आपलोग कौन हैं? और यह चतुर्भुज स्वरूप आपको कैसे प्राप्त हुआ है?' मेरा प्रश्न सुनकर वे लोग बहुत हँसे और कहने लगे—'ये महाशय ब्राह्मण होकर भी यहाँके पिण्ड-दानकी अद्भुत महिमा नहीं जानते।' यह सुनकर मैंने कहा—'कैसा पिण्ड और किसको दिया जाता है? चतुर्भुज-शरीर धारण करनेवाले महात्माओ! मुझे इसका रहस्य बताओ।' मेरी बात सुनकर उन महात्माओंने, जिस तरह उन्हें चतुर्भुज स्वरूपकी प्राप्ति हुई थी, वह सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

किरात बोले—ब्राह्मण! हमलोगोंका वृत्तान्त सुनो; हमारा एक बालक प्रतिदिन जामुन आदि वृक्षोंके फल खाता और अन्य बालकोंके साथ विचरा करता था। एक दिन घूमता-घामता वह यहाँ आया और शिशुओंके साथ ही इस पर्वतके मनोहर शिखरपर चढ़ गया। ऊपर जाकर उसने देखा, एक अद्भुत देवमन्दिर है, उसकी दीवार सोनेकी बनी हुई है। जिसमें गारुत्मत आदि नाना प्रकारकी मणियाँ जड़ी हुई हैं। वह अपनी मनोहर कान्तिसे सूर्यकी भाँति अन्धकारका नाश कर रहा है। उसे देखकर बालकको बड़ा विस्मय हुआ और उसने मन-ही-मन सोचा—'यह क्या है, किसका घर है? जरा चलकर देखूँ तो सही, यह महात्माओंका कैसा स्थान है?' ऐसा विचारकर वह बड़भागी बालक मन्दिरके भीतर घुस गया। वहाँ जाकर उसने देवाधिदेव पुरुषोत्तमका दर्शन किया, जिनके चरणोंमें देवता और असुर सभी मस्तक झुकाते हैं। जिनका श्रीविग्रह किरीट, हार, केयूर और ग्रैवेयक (कण्ठा) आदिसे सुशोभित रहता है। जो कानोंमें अत्यन्त उज्ज्वल और मनोहर कुण्डल धारण करते हैं। जिनके युगल चरणकमलोंपर तुलसीकी सुगन्धसे मतवाले हुए भँवरे मड़राया करते हैं। शंख, चक्र, गदा और कमल आदि परिकर दिव्य शरीर धारण करके जिनके चरणोंकी आराधना करते हैं तथा नारद आदि देवर्षि जिनके श्रीविग्रहकी सेवामें लगे रहते हैं, ऐसे भगवान्की उस बालकने झाँकी की। वहाँ भगवान्की उपासनामें लगे हुए देवताओंमेंसे कुछ लोग गाते थे, कुछ नाच रहे थे और कुछ लोग अद्भुत रूपसे अट्टहास कर रहे थे। वे सभी विश्व-वन्दित भगवान्को रिझानेमें ही लगे हुए थे। भगवान्को देखकर हमारा बालक उनके निकट चला गया। देवताओंने अच्छी तरह पूजा करके श्रीरमावल्लभ भगवान्को धूप और नैवेद्य अर्पण किया तथा आदरपूर्वक उनकी आरती करके भगवत्-कृपाका अनुभव करते हुए वे सब लोग अपने-अपने स्थानको चले गये। उस बालकके सौभाग्यवश वहाँ भगवान्को भोग लगाया हुआ भात (महाप्रसाद) गिरा हुआ था, जो मनुष्योंके लिये अलभ्य और देवताओंके लिये भी दुर्लभ है; वही उसे मिल गया। उसको खाकर बालकने भगवान्के श्रीविग्रहका दर्शन किया। इससे उसे चतुर्भुज रूपकी प्राप्ति हो गयी

और वह अत्यन्त सुन्दर दिखायी देने लगा। चार भुजा आदि भगवत्सारूप्यको प्राप्त हो शंख, चक्र आदि धारण किये जब वह बालक घर आया तो हमलोगोंने बारम्बार उसकी ओर देखकर पूछा—'तुम्हारा यह अद्भुत स्वरूप कैसे हो गया?' तब बालक अपने आश्चर्ययुक्त वृत्तान्तका वर्णन करने लगा—'मैं नीलगिरिके शिखरपर गया था, वहाँ मैंने देवाधिदेव भगवान्‌का दर्शन किया है, वहीं भगवान्‌को भोग लगाया हुआ मनोहर प्रसाद भी मुझे मिल गया था, जिसके भक्षण करनेमात्रसे इस समय मेरा ऐसा चतुर्भुज स्वरूप हो गया है। मैं स्वयं ही अपने इस परिवर्तनपर विस्मय-विमुग्ध हो रहा हूँ।' बालककी बात सुनकर हम सब लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ और हमने भी इन परम दुर्लभ भगवान्‌का दर्शन किया; साथ ही सब प्रकारके स्वादसे परिपूर्ण जो अन्न आदिका प्रसाद मिला, उसको भी खाया। उसके खाते ही भगवान्‌की कृपासे हम सब लोग चार भुजाधारी हो गये। साधुश्रेष्ठ! तुम भी जाकर भगवान्‌का दर्शन करो, वहाँ अन्नका प्रसाद ग्रहण करके तुम भी चतुर्भुज हो जाओगे। विप्रवर! तुमने हमलोगोंसे जो बात पूछी और जिसको कहनेके लिये हमें आज्ञा दी थी, वह सब वृत्तान्त हमलोगोंने कह सुनाया।

तीर्थयात्राकी विधि, राजा रत्नग्रीवकी यात्रा तथा गण्डकी नदी एवं शालग्रामशिलाकी महिमाके प्रसंगमें एक पुल्कसकी कथा

ब्राह्मण कहते हैं—राजन्! भीलोंके ये अद्भुत वचन सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ, साथ ही मैं बहुत प्रसन्न भी हुआ। पहले गंगा-सागर-संगममें स्नान करके मैंने अपने शरीरको पवित्र किया। फिर मणियों और माणिक्योंसे चित्रित नीलाचलके शिखरपर चढ़ गया। महाराज! वहाँ जाकर मैंने देवता आदिसे वन्दित भगवान्‌का दर्शन किया और उन्हें प्रणाम करके कृतार्थ हो गया। भगवान्‌का प्रसाद ग्रहण करनेसे मुझे शंख, चक्र आदि चिह्नोंसे सुशोभित चतुर्भुज स्वरूपकी प्राप्ति हुई। पुरुषोत्तमके दर्शनसे पुनः मुझको गर्भमें नहीं प्रवेश करना पड़ेगा। राजन्! तुम भी शीघ्र ही नीलाचलको जाओ और गर्भवासके दुःखसे छूटकर अपने आत्माको कृतार्थ करो।

उन परम बुद्धिमान् श्रेष्ठ ब्राह्मणके वचन सुनकर राजा रत्नग्रीवका सारा शरीर पुलकित हो गया और उन्होंने मुनिसे तीर्थयात्राकी विधि पूछी।

ब्राह्मणने कहा—राजन्! तीर्थयात्राकी उत्तम विधिका वर्णन आरम्भ करता हूँ, सुनो; इससे देव-दानववन्दित भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है। मनुष्यके शरीरमें झुर्रियाँ पड़ गयी हों, सिरके बाल पक गये हों अथवा वह अभी नौजवान हो, आयी हुई मौतको कोई नहीं टाल सकता; ऐसा समझकर भगवान्‌की शरणमें जाना चाहिये।[1] भगवान्‌के कीर्तन, श्रवण-वन्दन तथा पूजनमें ही अपना मन लगाना चाहिये। स्त्री, पुत्रादि, अन्य संसारी वस्तुओंमें नहीं, यह सारा प्रपंच नाशवान्, क्षणभर रहनेवाला तथा अत्यन्त दुःख देनेवाला है, परन्तु भगवान् जन्म, मृत्यु और जरा—तीनों ही अवस्थाओंसे परे हैं, वे भक्ति-देवीके प्राणवल्लभ और अच्युत (अविनाशी) हैं—ऐसा विचारकर भगवान्‌का भजन करना उचित है। मनुष्य काम, क्रोध, भय, द्वेष, लोभ और दम्भसे अथवा जिस किसी प्रकारसे भी यदि भगवान्‌का भजन करे तो उसे दुःख नहीं भोगना पड़ता। भगवान्‌का ज्ञान होता है पापरहित साधुसंग करनेसे; साधु वे ही हैं जिनकी कृपासे मनुष्य संसारके दुःखसे छुटकारा पा जाते हैं। महाराज! काम और लोभसे रहित तथा वीतराग साधु पुरुष जिस विषयका उपदेश देते हैं, वह संसार-बन्धनकी निवृत्ति करनेवाला होता है[2]। तीर्थोंमें श्रीरामचन्द्रजीके भजनमें

१-वलीपलितदेहो वा यौवनेनान्वितोऽपि वा। ज्ञात्वा मृत्युमनिस्तीर्यं हरिं शरणमाव्रजेत्॥ (१९। १०)

२-स हरिर्ज्ञायते साधुसंगमात् पापवर्जितात्। येषां कृपातः पुरुषा भवन्त्यसुखवर्जिताः॥
ते साधवः शान्तरागाः कामलोभविवर्जिताः। ब्रुवन्ति यन्महाराज तत्संसारनिवर्तकम्॥ (१९। १४-१५)

लगे हुए साधु पुरुष मिलते हैं, जिनका दर्शन मनुष्योंकी पापराशिको भस्म करनेके लिये अग्निका काम देता है; इसलिये संसार-बन्धनसे डरे हुए मनुष्योंको पवित्र जलवाले तीर्थोंमें, जो सदा साधु-महात्माओंके सहवाससे सुशोभित रहते हैं, अवश्य जाना चाहिये।

नृपश्रेष्ठ! यदि तीर्थोंका विधिपूर्वक दर्शन किया जाय तो वे पापका नाश कर देते हैं, अब तीर्थसेवनकी विधिका श्रवण करो। पहले स्त्री, पुत्रादि कुटुम्बको मिथ्या समझकर उसकी ओरसे अपने मनमें वैराग्य उत्पन्न करे और मन-ही-मन भगवान्‌का स्मरण करता रहे। तदनन्तर 'राम-राम' की रट लगाते हुए तीर्थयात्रा आरम्भ करे, एक कोस जानेके पश्चात् वहाँ तीर्थ (पवित्र जलाशय) आदिमें स्नान करके क्षौर करा डाले। यात्राकी विधि जाननेवाले पुरुषके लिये ऐसा करना नितान्त आवश्यक है। तीर्थोंकी ओर जाते हुए मनुष्योंके पाप उसके बालोंपर ही स्थित रहते हैं, अतः उनका मुण्डन अवश्य करावे। उसके बाद बिना गाँठका डंडा, कमण्डलु और मृगचर्म धारण करे तथा लोभका त्याग करके तीर्थोपयोगी वेष बना ले। विधिपूर्वक यात्रा करनेवाले मनुष्योंको विशेषरूपसे फलकी प्राप्ति होती है, इसलिये पूर्ण प्रयत्न करके तीर्थयात्राकी विधिका पालन करे। जिसके दोनों हाथ, दोनों पैर तथा मन अपने वशमें होते हैं तथा जिसके भीतर विद्या, तपस्या और कीर्ति रहती है, वही तीर्थके वास्तविक फलका भागी होता है।[1] **'हरे कृष्ण हरे कृष्ण भक्तवत्सल गोपते। शरण्य भगवन् विष्णो मां पाहि बहुसंसृतेः॥**[2] (१९। २५)' जिह्वासे इस मन्त्रका पाठ तथा मनसे भगवान्‌का स्मरण करते हुए पैदल ही तीर्थकी यात्रा करनी चाहिये; तभी वह महान् अभ्युदयका साधक होता है। जो मनुष्य सवारीसे यात्रा करता है उसका फल सवारी ढोनेवाले प्राणीके साथ बराबर-बराबर बँट जाता है। जूता पहनकर जानेवालेको चौथाई फल मिलता है और बैलगाड़ीपर जानेवाले पुरुषको गोहत्या आदिका पाप लगता है। जो अनिच्छासे भी तीर्थयात्रा करता है, उसे उसका आधा फल मिल जाता है तथा पापक्षय भी होता ही है; किन्तु विधिके साथ तीर्थदर्शन करनेसे विशेष फलकी प्राप्ति होती है [यह ऊपर बताया जा चुका है]। इस प्रकार मैंने थोड़ेहीमें यह तीर्थकी विधि बतायी है, इसका विस्तार नहीं किया है। इस विधिका आश्रय लेकर तुम पुरुषोत्तमका दर्शन करनेके लिये जाओ। महाराज! भगवान् प्रसन्न होकर तुम्हें अपनी भक्ति प्रदान करेंगे, जिससे एक ही क्षणमें तुम्हारे संसार-बन्धनका नाश हो जायगा। नरश्रेष्ठ! तीर्थयात्राकी यह विधि सम्पूर्ण पातकोंका नाश करनेवाली है, जो इसे सुनता है वह अपने सारे भयंकर पापोंसे छुटकारा पा जाता है।

सुमति कहते हैं—सुमित्रानन्दन! ब्राह्मणकी यह बात सुनकर राजा रत्नग्रीवने उनके चरणोंमें प्रणाम किया। उस समय पुरुषोत्तमतीर्थके दर्शनकी उत्कण्ठासे उनका चित्त विह्वल हो रहा था। राजाके मन्त्री मन्त्रज्ञोंमें श्रेष्ठ और अच्छे स्वभावके थे। राजाने समस्त पुरवासियोंको तीर्थयात्राकी इच्छासे साथ ले जानेका विचार करते हुए अपने मन्त्रीको आज्ञा दी—'अमात्य! तुम नगरके सब लोगोंको मेरा यह आदेश सुना दो कि सबको भगवान् पुरुषोत्तमके चरणारविन्दोंका दर्शन करनेके लिये चलना है। मेरे नगरमें जो श्रेष्ठ मनुष्य निवास करते हैं तथा जो लोग मेरी आज्ञाका पालन करनेवाले हैं वे सब मेरे साथ ही यहाँसे निकलें। उन पुत्रोंसे तथा सदा अनीतिमें लगे रहनेवाले बन्धु-बान्धवोंसे क्या लेना है, जिन्होंने आजतक अपने नेत्रोंसे पुण्यदायक पुरुषोत्तमका दर्शन नहीं किया? जिनके पुत्र और पौत्र भगवान्‌की शरणमें नहीं गये, उनकी वे सन्तानें सूकरोंके झुंडके समान हैं। मेरी प्रजाओ! जो भगवान् अपना नाम लेनेमात्रसे सबको पवित्र कर देनेकी शक्ति रखते हैं, उनके चरणोंमें शीघ्र मस्तक झुकाओ।'

१-यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंहितम्। विद्यातपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते॥ (१९। २४)

२-हरे कृष्ण! भक्तवत्सल गोपाल! सबको शरण देनेवाले भगवन्! विष्णो! मुझे अनेकों जन्मोंके चक्करमें पड़नेसे बचाइये।

राजाका यह मनोहर वचन भगवान्‌के गुणोंसे गुँथा हुआ था। इसे सुनकर सत्यनामवाले प्रधान मन्त्रीको बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने हाथीपर बैठकर ढिंढोरा पीटते हुए सारे नगरमें घोषणा करा दी। तीर्थयात्राकी इच्छासे महाराजने जो आज्ञा दी थी उसके अनुसार सब प्रजाको यह आदेश दिया—'पुरवासियो! आप सब लोग महाराजके साथ तुरंत नीलगिरिको चलें और सब पापोंके हरनेवाले पुरुषोत्तम भगवान्‌का दर्शन करें। ऐसा करके आपलोग समस्त संसार-समुद्रको अपने लिये गायकी खुरके समान बना लें। साथ ही सब लोग अपने-अपने शरीरको शंख, चक्र आदि चिह्नोंसे विभूषित करें।' इस प्रकार प्रधान सचिवने, जो श्रीरघुनाथजीके चरणोंका ध्यान करनेके कारण अपने शोक-सन्तापको दूर कर चुके थे, राजा रत्नग्रीवके अद्भुत आदेशकी सर्वत्र घोषणा करा दी। उसे सुनकर सारी प्रजा आनन्द-रसमें निमग्न हो गयी। सबने पुरुषोत्तमका दर्शन करके अपना उद्धार करनेका निश्चय किया। पुरवासी ब्राह्मण सुन्दर वेष धारण करके राजाको आशीर्वाद और वरदान देते हुए शिष्योंके साथ नगरसे बाहर निकले, क्षत्रियवीर धनुष धारण करके चले और वैश्य नाना प्रकारकी उपयोगी वस्तुएँ लिये आगे बढ़े। शूद्र भी संसार-सागरसे उद्धार पानेकी बात सोचकर पुलकित हो रहे थे। धोबी, चमार, शहद बेचनेवाले, किरात, मकान बनानेवाले कारीगर, दर्जी, पान बेचनेवाले, तबला बजानेवाले, नाटकसे जीविका निभानेवाले नट आदि, तेली, बजाज, पुराणकी कथा सुनानेवाले सूत, मागध तथा वन्दी—ये सभी हर्षमें भरकर राजधानीसे बाहर निकले। वैद्य-वृत्तिसे जीविका चलानेवाले चिकित्सक तथा भोजन बनाने और स्वादिष्ट रसोंका ज्ञान रखनेवाले रसोइये भी महाराजकी प्रशंसा करते हुए पुरीसे बाहर निकले। राजा रत्नग्रीवने भी प्रातःकाल सन्ध्योपासन आदि करके शुद्ध अन्तःकरणवाले ब्राह्मण देवताको, जो तपस्वियोंमें श्रेष्ठ थे, अपने पास बुलाया और उनकी आज्ञा लेकर वे नगरसे बाहर निकले। आगे-आगे राजा थे और पीछे-पीछे पुरवासी मनुष्य। उस समय वे ताराओंसे घिरे हुए चन्द्रमाकी भाँति शोभा पा रहे थे। एक कोस जानेके बाद उन्होंने विधिके अनुसार मुण्डन कराया और दण्ड, कमण्डलु तथा सुन्दर मृग-चर्म धारण किये। इस प्रकार वे महायशस्वी राजा उत्तम वेषसे युक्त होकर भगवान्‌के ध्यानमें तत्पर हो गये और उन्होंने अपने मनको काम-क्रोधादि दोषोंसे रहित बना लिया। उस समय भिन्न-भिन्न बाजोंको बजानेवाले लोग बारंबार दुन्दुभि, भेरी, आनक, पणव, शंख और वीणा आदिकी ध्वनि फैला रहे थे। सभी यात्री यही कहते हुए आगे बढ़ रहे थे कि 'समस्त दुःखोंको दूर करनेवाले देवेश्वर! आपकी जय हो, पुरुषोत्तम नामसे प्रसिद्ध परमेश्वर! मुझे अपने स्वरूपका दर्शन कराइये।'

तदनन्तर जब महाराज रत्नग्रीव सब लोगोंके साथ यात्राके लिये चल दिये तो मार्गमें उन्हें अनेकों स्थानोंपर महान् सौभाग्यशाली वैष्णवोंके द्वारा किया जानेवाला श्रीकृष्णका कीर्तन सुनायी पड़ा। जगह-जगह गोविन्दका गुणगान हो रहा था—'भक्तोंको शरण देनेवाले पुरुषोत्तम! लक्ष्मीपते! आपकी जय हो।' कांचीनरेश यात्राके पथमें अनेकों अभ्युदयकारी तीर्थोंका सेवन और दर्शन करते तथा तपस्वी ब्राह्मणके मुखसे उनकी महिमा भी सुनते जाते थे। भगवान् विष्णुसे सम्बन्ध रखनेवाली अनेकों प्रकारकी विचित्र बातें सुननेसे राजाका भलीभाँति मनोरंजन होता था और वे मार्गके बीच-बीचमें अपने गायकोंद्वारा महाविष्णुकी महिमाका गान कराया करते थे। महाराज रत्नग्रीव बड़े बुद्धिमान् और जितेन्द्रिय थे, वे स्थान-स्थानपर दीनों, अंधों, दुःखियों तथा पंगुओंको उनकी इच्छाके अनुकूल दान देते रहते थे। साथ आये हुए सब लोगोंके सहित अनेकों तीर्थोंमें स्नान करके वे अपनेको निर्मल एवं भव्य बना रहे थे और भगवान्‌का ध्यान करते हुए आगे बढ़ रहे थे। जाते-जाते महाराजने अपने सामने एक ऐसी नदी देखी जो सब पापोंको दूर करनेवाली थी। उसके भीतरके पत्थर (शालग्राम) चक्रके चिह्नसे अंकित थे। वह मुनियोंके हृदयकी भाँति स्वच्छ दिखायी देती थी। उस नदीके किनारे अनेकों महर्षियोंके समुदाय कई पंक्तियोंमें बैठकर उसे

सुशोभित कर रहे थे। उस सरिताका दर्शन करके महाराजने धर्मके ज्ञाता तपस्वी ब्राह्मणसे उसका परिचय पूछा; क्योंकि वे अनेकों तीर्थोंकी विशेष महिमाके ज्ञानमें बढ़े-चढ़े थे। राजाने प्रश्न किया—'स्वामिन्! महर्षि-समुदायके द्वारा सेवित यह पवित्र नदी कौन है? जो अपने दर्शनसे मेरे चित्तमें अत्यन्त आह्लाद उत्पन्न कर रही है।' बुद्धिमान् महाराजका यह वचन सुनकर विद्वान् ब्राह्मणने उस तीर्थका अद्भुत माहात्म्य बतलाना आरम्भ किया।

ब्राह्मणने कहा—राजन्! यह गण्डकी नदी है [इसे शालग्रामी और नारायणी भी कहते हैं], देवता और असुर सभी इसका सेवन करते हैं। इसके पावन जलकी उत्ताल तरंगें राशि-राशि पातकोंको भी भस्म कर डालती हैं। यह अपने दर्शनसे मानसिक, स्पर्शसे कर्मजनित तथा जलका पान करनेसे वाणीद्वारा होनेवाले पापोंके समुदायको दग्ध करती है। पूर्वकालमें प्रजापति ब्रह्माजीने सब प्रजाको विशेष पापमें लिप्त देखकर अपने गण्डस्थल (गाल)-के जलकी बूँदोंसे इस पापनाशिनी नदीको उत्पन्न किया। जो उत्तम लहरोंसे सुशोभित इस पुण्यसलिला नदीके जलका स्पर्श करते हैं, वे मनुष्य पापी हों तो भी पुनः माताके गर्भमें प्रवेश नहीं करते। इसके भीतरसे जो चक्रके चिह्नोंद्वारा अलंकृत पत्थर प्रकट होते हैं, वे साक्षात् भगवान्के ही विग्रह हैं—भगवान् ही उनके रूपमें प्रादुर्भूत होते हैं। जो मनुष्य प्रतिदिन चक्रके चिह्नसे युक्त शालग्रामशिलाका पूजन करता है वह फिर कभी माताके उदरमें प्रवेश नहीं करता। जो बुद्धिमान् श्रेष्ठ शालग्रामशिलाका पूजन करता है, उसको दम्भ और लोभसे रहित एवं सदाचारी होना चाहिये। परायी स्त्री और पराये धनसे मुँह मोड़कर यत्नपूर्वक चक्रांकित शालग्रामका पूजन करना चाहिये। द्वारकामें लिया हुआ चक्रका चिह्न और गण्डकी नदीसे उत्पन्न हुई शालग्रामकी शिला—ये दोनों मनुष्योंके सौ जन्मोंके पाप भी एक ही क्षणमें हर लेते हैं। हजारों पापोंका आचरण करनेवाला मनुष्य क्यों न हो, शालग्रामशिलाका चरणामृत पीकर तत्काल पवित्र हो सकता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा वेदोक्त मार्गपर स्थित रहनेवाला शूद्र गृहस्थ भी शालग्रामकी पूजा करके मोक्ष प्राप्त कर सकता है। परन्तु स्त्रीको कभी शालग्रामशिलाका पूजन नहीं करना चाहिये। विधवा हो या सुहागिन, यदि वह स्वर्गलोक एवं आत्मकल्याणकी इच्छा रखती है तो शालग्रामशिलाका स्पर्श न करे। यदि मोहवश उसका स्पर्श करती है तो अपने किये हुए पुण्य-समूहका त्याग करके तुरंत नरकमें पड़ती है। कोई कितना ही पापाचारी और ब्रह्महत्यारा क्यों न हो, शालग्रामशिलाको स्नान कराया हुआ जल (भगवान्का चरणामृत) पी लेनेपर परमगतिको प्राप्त होता है। भगवान्को निवेदित तुलसी, चन्दन, जल, शंख, घण्टा, चक्र, शालग्रामशिला, ताम्रपात्र, श्रीविष्णुका नाम तथा उनका चरणामृत—ये सभी वस्तुएँ पावन हैं। उपर्युक्त नौ वस्तुओंके साथ भगवान्का चरणामृत पापराशिको दग्ध करनेवाला है। ऐसा सम्पूर्ण शास्त्रोंके अर्थको जाननेवाले शान्तचित्त महर्षियोंका कथन है। राजन्! समस्त तीर्थोंमें स्नान करनेसे तथा सब प्रकारके यज्ञोंद्वारा भगवान्का पूजन करनेसे जो अद्भुत पुण्य होता है, वह भगवान्के चरणामृतकी एक-एक बूँदमें प्राप्त होता है।

[चार, छः, आठ आदि] समसंख्यामें शालग्राम-मूर्तियोंकी पूजा करनी चाहिये। परन्तु समसंख्यामें दो शालग्रामोंकी पूजा उचित नहीं है। इसी प्रकार विषमसंख्यामें भी शालग्राममूर्तियोंकी पूजा होती है, किन्तु विषममें तीन शालग्रामोंकी नहीं। द्वारकाका चक्र तथा गण्डकी नदीके शालग्राम—इन दोनोंका जहाँ समागम हो, वहाँ समुद्रगामिनी गंगाकी उपस्थिति मानी जाती है। यदि शालग्रामशिलाएँ रूखी हों तो वे पुरुषोंको आयु, लक्ष्मी और उत्तम कीर्तिसे वंचित कर देती हैं; अतः जो चिकनी हों, जिनका रूप मनोहर हो, उन्हींका पूजन करना चाहिये। वे लक्ष्मी प्रदान करती हैं। पुरुषको आयुकी इच्छा हो या धनकी, यदि वह शालग्राम-शिलाका पूजन करता है तो उसकी ऐहलौकिक और पारलौकिक—सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। राजन्! जो मनुष्य बड़ा भाग्यवान् होता है, उसीके प्राणान्तके

समय जिह्वापर भगवान्‌का पवित्र नाम आता है और उसीकी छातीपर तथा आसपास शालग्रामशिला मौजूद रहती है। प्राणोंके निकलते समय अपने विश्वास या भावनामें ही यदि शालग्रामशिलाकी स्फुरणा हो जाय तो उस जीवकी निस्सन्देह मुक्ति हो जाती है। पूर्वकालमें भगवान्‌ने बुद्धिमान् राजा अम्बरीषसे कहा था कि 'ब्राह्मण, संन्यासी तथा चिकनी शालग्रामशिला—ये तीन इस भूमण्डलपर मेरे स्वरूप हैं। पापियोंका पाप नाश करनेके लिये मैंने ही ये स्वरूप धारण किये हैं।' जो अपने किसी प्रिय व्यक्तिको शालग्रामकी पूजा करनेका आदेश देता है वह स्वयं तो कृतार्थ होता ही है, अपने पूर्वजोंको भी शीघ्र ही वैकुण्ठमें पहुँचा देता है।

इस विषयमें काम-क्रोधसे रहित वीतराग महर्षिगण एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं। पूर्व-कालकी बात है, धर्मशून्य मगधदेशमें एक पुल्कस-जातिका मनुष्य रहता था, जो लोगोंमें शबरके नामसे प्रसिद्ध था। सदा अनेकों जीव-जन्तुओंकी हत्या करना और दूसरोंका धन लूटना, यही उसका काम था। राग-द्वेष और काम-क्रोधादि दोष सर्वदा उसमें भरे रहते थे। एक दिन वह व्याध समस्त प्राणियोंको भय पहुँचाता हुआ घूम रहा था, उसके मनपर मोह छाया हुआ था; इसलिये वह इस बातको नहीं जानता था कि उसका काल समीप आ पहुँचा है। यमराजके भयंकर दूत हाथोंमें मुद्‌गर और पाश लिये वहाँ पहुँचे। उनके ताँबे-जैसे लाल-लाल केश, बड़े-बड़े नख तथा लंबी-लंबी दाढ़ें थीं। वे सभी काले-कलूटे दिखायी देते थे तथा हाथोंमें लोहेकी साँकलें लिये हुए थे। उन्हें देखते ही प्राणियोंको मूर्च्छा आ जाती थी। वहाँ पहुँचकर वे कहने लगे—'सम्पूर्ण जीवोंको भय पहुँचानेवाले इस पापीको बाँध लो।' तदनन्तर सब यमदूत उसे लोहेके पाशसे बाँधकर बोले—'दुष्ट! दुरात्मा! तूने कभी मनसे शुभकर्म नहीं किये; इसलिये हम तुझे रौरव-नरकमें डालेंगे। जन्मसे लेकर अबतक तूने कभी भगवान्‌की सेवा नहीं की। समस्त पापोंको दूर करनेवाले श्रीनारायणदेवका कभी स्मरण नहीं किया; अत: धर्मराजकी आज्ञासे हम तुझे बारंबार पीटते हुए लोहशंकु, कुम्भीपाक अथवा अतिरौरव नरकमें ले जायँगे।' ऐसा कहकर यमदूत ज्यों ही उसे ले जानेको उद्यत हुए त्यों ही महाविष्णुके चरणकमलोंकी सेवा करनेवाले एक भक्त महात्मा वहाँ आ पहुँचे। उन वैष्णव महात्माने देखा कि यमदूत पाश, मुद्‌गर और दण्ड आदि कठोर आयुध धारण किये हुए हैं तथा पुल्कसको लोहेकी साँकलोंसे बाँधकर ले जानेको उद्यत हैं। भगवद्‌भक्त महात्मा बड़े दयालु थे। उस समय पुल्कसकी अवस्था देखकर उनके हृदयमें अत्यन्त करुणा भर आयी और उन्होंने मन-ही-मन इस प्रकार विचार किया—यह पुल्कस मेरे समीप रहकर अत्यन्त कठोर यातनाको प्राप्त न हो, इसलिये मैं अभी यमदूतोंसे इसको छुटकारा दिलाता हूँ।' ऐसा सोचकर वे कृपालु मुनीश्वर हाथमें शालग्रामशिला लेकर पुल्कसके निकट गये और भगवान् शालग्रामका पवित्र चरणामृत, जिसमें तुलसीदल भी मिला हुआ था, उसके मुखमें डाल दिया। फिर
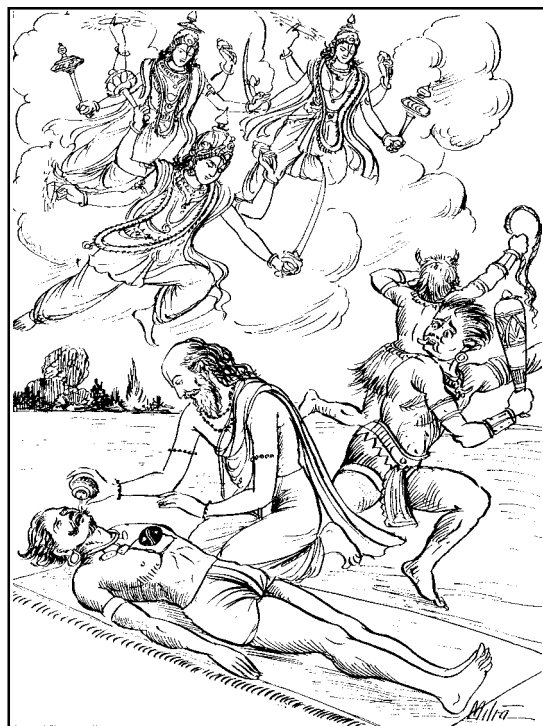
उसके कानमें उन्होंने रामनामका जप किया, मस्तकपर तुलसी रखी और छातीपर महाविष्णुकी शालग्रामशिला रखकर कहा—'यातना देनेवाले यमदूत यहाँसे चले

जायँ। शालग्रामशिलाका स्पर्श इस पुल्कसके महान् पातकको भस्म कर डाले।' वैष्णव महात्माके इतना कहते ही भगवान् विष्णुके पार्षद, जिनका स्वरूप बड़ा अद्भुत था, उस पुल्कसके निकट आ पहुँचे; शालग्रामकी शिलाके स्पर्शसे उसके सारे पाप नष्ट हो गये थे। वे पार्षद पीताम्बर धारण किये शंख, चक्र, गदा और पद्मसे सुशोभित हो रहे थे। उन्होंने आते ही उस दुःसह लोहपाशसे पुल्कसको मुक्त कर दिया। उस महापापीको छुटकारा दिलानेके बाद वे यमदूतोंसे बोले—'तुमलोग किसकी आज्ञाका पालन करनेवाले हो, जो इस प्रकार अधर्म कर रहे हो? यह पुल्कस तो वैष्णव है, इसने पूजनीय देह धारण कर रखा है, फिर किसलिये तुमने इसे बन्धनमें डाला था?' उनकी बात सुनकर यमदूत बोले—'यह पापी है, हमलोग धर्मराजकी आज्ञासे इसे ले जानेको उद्यत हुए हैं, इसने कभी मनसे भी किसी प्राणीका उपकार नहीं किया है। इसने जीवहिंसा जैसे बड़े-बड़े पाप किये हैं। तीर्थ-यात्रियोंको तो इसने अनेकों बार लूटा है। यह सदा परायी स्त्रियोंका सतीत्व नष्ट करनेमें ही लगा रहता था। सभी तरहके पाप इसने किये हैं; अतः हमलोग इस पापीको ले जानेके उद्देश्यसे ही यहाँ उपस्थित हुए हैं। आपलोगोंने सहसा आकर क्यों इसे बन्धनसे मुक्त कर दिया?'

विष्णुदूत बोले—यमदूतो! ब्रह्महत्या आदिका पाप हो या करोड़ों प्राणियोंके वध करनेका, शालग्राम-शिलाका स्पर्श सबको क्षणभरमें जला डालता है। जिसके कानोंमें अकस्मात् भी रामनाम पड़ जाता है, उसके सारे पापोंको वह उसी प्रकार भस्म कर डालता है, जैसे आगकी चिनगारी रूईको।* जिसके मस्तकपर तुलसी, छातीपर शालग्रामकी मनोहर शिला तथा मुख या कानमें रामनाम हो वह तत्काल मुक्त हो जाता है। इस पुल्कसके मस्तकपर भी पहलेसे ही तुलसी रखी हुई है, इसकी छातीपर शालग्रामकी शिला है तथा अभी तुरंत ही इसको श्रीरामका नाम भी सुनाया गया है; अतः इसके पापोंका समूह दग्ध हो गया और अब इसका शरीर पवित्र हो चुका है। तुमलोगोंको शालग्रामशिलाकी महिमाका ठीक-ठीक ज्ञान नहीं है; यह दर्शन, स्पर्श अथवा पूजन करनेपर तत्काल ही सारे पापोंको हर लेती है।

इतना कहकर भगवान् विष्णुके पार्षद चुप हो गये। यमदूतोंने लौटकर यह अद्भुत घटना धर्मराजसे कह सुनायी तथा श्रीरघुनाथजीके भजनमें लगे रहनेवाले वे वैष्णव महात्मा भी यह सोचकर कि 'यह यमराजके पाशसे मुक्त हो गया और अब परमपदको प्राप्त होगा' बहुत प्रसन्न हुए। इसी समय देवलोकसे बड़ा ही मनोहर, अत्यन्त अद्भुत और उज्ज्वल विमान आया तथा वह पुल्कस उसपर आरूढ हो बड़े-बड़े पुण्यवानोंद्वारा सेवित स्वर्गलोकको चला गया। वहाँ प्रचुर भोगोंका उपभोग करके वह फिर इस पृथ्वीपर आया और काशीपुरीके भीतर एक शुद्ध ब्राह्मणवंशमें जन्म लेकर उसने विश्वनाथजीकी आराधना की एवं अन्तमें परमपदको प्राप्त कर लिया। वह पुल्कस पापी था तो भी साधु-संगके प्रभावसे शालग्रामशिलाका स्पर्श पाकर यमदूतोंकी भयंकर पीड़ासे मुक्त हो परमपदको पा गया। राजन्! यह मैंने तुम्हें शालग्रामशिलाके पूजनकी महिमा बतलायी है, इसका श्रवण करके मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता और भोग तथा मोक्षको प्राप्त होता है।

---

* रामेति नाम यच्छ्रोत्रे विश्रम्भादागतं यदि । करोति पापसंदाहं तूलं वह्निकणो यथा॥ (२०। ८०)

राजा रत्नग्रीवका नीलपर्वतपर भगवान्‌का दर्शन करके रानी आदिके साथ वैकुण्ठको जाना तथा शत्रुघ्नका नीलपर्वतपर पहुँचना

सुमति कहते हैं—सुमित्रानन्दन! गण्डकी नदीका यह अनुपम माहात्म्य सुनकर राजा रत्नग्रीवने अपनेको कृतार्थ माना। उन्होंने उस तीर्थमें स्नान करके अपने समस्त पितरोंका तर्पण किया। इससे उनको बड़ा हर्ष हुआ। फिर शालग्रामशिलाकी पूजाके उद्देश्यसे उन्होंने गण्डकी नदीसे चौबीस शिलाएँ ग्रहण कीं और चन्दन आदि उपचार चढ़ाकर बड़े प्रेमसे उनकी पूजा की। तत्पश्चात् वहाँ दीनों और अंधोंको विशेष दान देकर राजाने पुरुषोत्तममन्दिरको जानेके लिये प्रस्थान किया। इस प्रकार क्रमशः यात्रा करते हुए वे उस तीर्थमें पहुँचे, जहाँ गंगा और समुद्रका संगम हुआ है। वहाँ जाकर उन्होंने ब्राह्मणोंसे प्रसन्नतापूर्वक पूछा—'स्वामिन्! बताइये, नीलाचल यहाँसे कितनी दूर है? जहाँ साक्षात् भगवान् पुरुषोत्तम निवास करते हैं तथा देवता और असुर भी जिनके सामने मस्तक नवाते हैं।'

उस समय तपस्वी ब्राह्मणको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने राजासे बड़े आदरके साथ कहा—'राजन्! नीलपर्वतका विश्ववन्दित स्थान है तो यही; किन्तु न जाने वह हमें दिखायी क्यों नहीं देता।' वे बारंबार इस बातको दुहराने लगे कि 'नीलाचलका वह स्थान, जो महान् पुण्यफल प्रदान करनेवाला है तथा जहाँ भगवान् पुरुषोत्तमका निवास है, यही है। उसका दर्शन क्यों नहीं होता? यह बात समझमें नहीं आती। इसी स्थानपर मैंने स्नान किया था, यहीं मुझे वे भील दिखायी दिये थे और इसी मार्गसे मैं पर्वतके ऊपर चढ़ा था।' यह बात सुनकर राजाके मनमें बड़ी व्यथा हुई, वे कहने लगे—'विप्रवर! मुझे पुरुषोत्तमका दर्शन कैसे होगा? तथा वह नीलपर्वत कैसे दिखायी देगा? मुझे इसका कोई उपाय बताइये।' तब तपस्वी ब्राह्मणने विस्मित होकर कहा—'राजन्! हमलोग गंगासागर-संगममें स्नान करके यहाँ तबतक ठहरे रहें जबतक कि नीलाचलका दर्शन न हो जाय। भगवान् पुरुषोत्तम पापहारी कहलाते हैं। वे भक्तवत्सल नाम धारण करते हैं; अतः हमलोगोंपर शीघ्र ही कृपा करेंगे। वे देवाधिदेवोंके भी शिरोमणि हैं, अपने भक्तोंका कभी परित्याग नहीं करते। अबतक उन्होंने अनेकों भक्तोंकी रक्षा की है, इसलिये महामते! तुम उन्हींका गुणगान करो।' ब्राह्मणकी बात सुनकर राजाने व्यथित चित्तसे गंगासागर-संगममें स्नान किया। इसके बाद उन्होंने उपवासका व्रत लिया। 'जब भगवान् पुरुषोत्तम दर्शन देनेकी कृपा करेंगे तभी उनकी पूजा करके भोजन करूँगा, अन्यथा निराहार ही रहूँगा।' ऐसा नियम करके वे गंगासागरके तटपर बैठ गये और भगवान्‌का गुणगान करते हुए उपवासव्रतका पालन करने लगे।

राजा बोले—प्रभो! आप दीनोंपर दया करनेवाले हैं; आपकी जय हो। भक्तोंका दुःख दूर करनेवाले पुरुषोत्तम! आपका नाम मंगलमय है, आपकी जय हो। भक्तजनोंकी पीड़ाका नाश करनेके लिये ही आपने सगुण विग्रह धारण किया है, आप दुष्टोंका विनाश करनेवाले हैं; आपकी जय हो! जय हो!! आपके भक्त प्रह्लादको उसके पिता दैत्यराजने बड़ी व्यथा पहुँचायी—शूलीपर चढ़ाया, फाँसी दी, पानीमें डुबोया, आगमें जलाया और पर्वतसे नीचे गिराया; किन्तु आपने नृसिंहरूप धारण करके प्रह्लादको तत्काल संकटसे बचा लिया; उसका पिता देखता ही रह गया। मतवाले गजराजका पैर ग्राहके मुखमें पड़ा था और वह अत्यन्त दुःखी हो रहा था; उसकी दशा देख आपके हृदयमें करुणा भर आयी और आप उसे बचानेके लिये शीघ्र ही गरुड़पर सवार हुए; किन्तु आगे चलकर आपने पक्षिराज गरुड़को भी छोड़ दिया और हाथमें चक्र लिये बड़े वेगसे दौड़े। उस समय अधिक वेगके कारण आपकी वनमाला जोर-जोरसे हिल रही थी और पीताम्बरका छोर आकाशमें फहरा रहा था। आपने तत्काल पहुँचकर गजराजको ग्राहके चंगुलसे छुड़ाया

और ग्राहको मौतके घाट उतार दिया। जहाँ-जहाँ आपके सेवकोंपर संकट आता है वहीं-वहीं आप देह धारण करके अपने भक्तोंकी रक्षा करते हैं। आपकी लीलाएँ मनको मोहने तथा पापको हर लेनेवाली हैं। उन्हींके द्वारा आप भक्तोंका पालन करते हैं। भक्तवल्लभ! आप दीनोंके नाथ हैं, देवताओंके मुकुटमें जड़े हुए हीरे आपके चरणोंका स्पर्श करते हैं। प्रभो! आप करोड़ों पापोंको भस्म करनेवाले हैं। मुझे अपने चरण-कमलोंका दर्शन दीजिये। यदि मैं पापी हूँ तो भी आपके मानसमें—आपको प्रिय लगनेवाले इस पुरुषोत्तमक्षेत्रमें आया हूँ; अतः अब मुझे दर्शन दीजिये। देव-दानववन्दित परमेश्वर! हम आपके ही हैं। आप पाप-राशिका नाश करनेवाले हैं। आपकी यह महिमा मुझे भूली नहीं है। सबके दुःखोंको दूर करनेवाले दयामय! जो लोग आपके पवित्र नामोंका कीर्तन करते हैं, वे पाप-समुद्रसे तर जाते हैं। यदि संतोंके मुखसे सुनी हुई मेरी यह बात सच्ची है तो आप मुझे प्राप्त होइये—मुझे दर्शन देकर कृतार्थ कीजिये।

सुमति कहते हैं—इस प्रकार राजा रत्नग्रीव रात-दिन भगवान्‌का गुणगान करते रहे। उन्होंने क्षणभरके लिये भी न तो कभी विश्राम किया, न नींद ली और न कोई सुख ही उठाया। वे चलते-फिरते, ठहरते, गीत गाते तथा वार्तालाप करते समय भी निरन्तर यही कहते कि—'पुरुषोत्तम! कृपानाथ! आप मुझे अपने स्वरूपकी झाँकी कराइये।' इस तरह गंगासागरके तटपर रहते हुए राजाके पाँच दिन व्यतीत हो गये। तब दयासागर श्रीगोपालने कृपापूर्वक विचार किया कि 'यह राजा मेरी महिमाका गान करनेके कारण सर्वथा पापरहित हो गया है; अतः अब इसे मेरे देव-दानववन्दित प्रियतम विग्रहका दर्शन होना चाहिये।' ऐसा सोचकर भगवान्‌का हृदय करुणासे भर गया और वे संन्यासीका वेष धारण करके राजाके समीप गये। तपस्वी ब्राह्मणने देखा, भगवान् अपने भक्तपर कृपा करनेके लिये हाथमें त्रिदण्ड ले यतिका वेष बनाये यहाँ उपस्थित हुए हैं। नृपश्रेष्ठ रत्नग्रीवने '**ॐ नमो नारायणाय**' कहकर संन्यासी बाबाको नमस्कार किया और अर्घ्य, पाद्य तथा आसन आदि निवेदन करके उनका विधिवत् पूजन किया। इसके बाद वे बोले—'महात्मन्! आज मेरे सौभाग्यकी कोई तुलना नहीं है; क्योंकि आज आप-जैसे साधु पुरुषने कृपापूर्वक मुझे दर्शन दिया है। मैं समझता हूँ, इसके बाद अब भगवान् गोविन्द भी मुझे अपना दर्शन देंगे।' यह सुनकर संन्यासी बाबाने कहा—'राजन्! मेरी बात सुनो, मैं अपनी ज्ञानशक्तिसे भूत, भविष्य और वर्तमान—तीनों कालकी बात जानता हूँ, इसलिये जो कुछ भी कहूँ, उसे एकाग्रचित्त होकर सुनना, कल दोपहरके समय भगवान् तुम्हें दर्शन देंगे, वही दर्शन, जो ब्रह्माजीके लिये भी दुर्लभ है, तुम्हें सुलभ होगा। तुम अपने पाँच आत्मीय-जनोंके साथ परमपदको प्राप्त होओगे। तुम, तुम्हारे मन्त्री, तुम्हारी रानी, ये तपस्वी ब्राह्मण तथा तुम्हारे नगरमें रहनेवाला करम्ब नामका साधु, जो जातिका तन्तुवाय—कपड़ा बुननेवाला जुलाहा है—इन सबके साथ तुम पर्वतश्रेष्ठ नीलगिरिपर जा सकोगे। वह पर्वत देवताओंद्वारा पूजित तथा ब्रह्मा और इन्द्रद्वारा अभिवन्दित है।' यह कहकर संन्यासी बाबा अन्तर्धान हो गये, अब वे कहीं दिखायी नहीं देते थे। उनकी बात सुनकर राजाको बड़ा हर्ष हुआ। साथ ही विस्मय भी। उन्होंने तपस्वी ब्राह्मणसे पूछा—स्वामिन्! वे संन्यासी कौन थे, जो यहाँ आकर मुझसे बात कर गये हैं, इस समय वे फिर दिखायी नहीं देते, कहाँ चले गये? उन्होंने मेरे चित्तको बड़ा हर्ष प्रदान किया है।'

तपस्वी ब्राह्मणने कहा—राजन्! वे समस्त पापोंका नाश करनेवाले भगवान् पुरुषोत्तम ही थे, जो तुम्हारे महान् प्रेमसे आकृष्ट होकर यहाँ आये थे। कल दोपहरके समय महान् पर्वत नीलगिरि तुम्हारे सामने प्रकट होगा, तुम उसपर चढ़कर भगवान्‌का दर्शन करके कृतार्थ हो जाओगे।

ब्राह्मणका यह वचन अमृत-राशिके समान सुखदायी प्रतीत हुआ; उसने राजाके हृदयकी सारी चिन्ताओंका नाश कर दिया। उस समय कांची नरेशको

जो आनन्द मिला, उसका ब्रह्माजी भी अनुभव नहीं कर सकते। दुन्दुभी बजने लगी तथा वीणा, पणव और गोमुख आदि बाजे भी बज उठे। महाराज रत्नग्रीवके मनमें उस समय बड़ा उल्लास छा गया था। वे प्रतिक्षण भगवान्‌का गुणगान करते हुए, नाचते, खड़े होते, हँसते, बोलते और बात करते थे। उन्हें सब सन्तापोंका नाश करनेवाले घनीभूत आनन्दकी प्राप्ति हुई थी। तदनन्तर सारा दिन भगवान्‌के कीर्तन और स्मरणमें बिताकर राजा रत्नग्रीव रातमें गंगाजीके तटपर, जो महान् फल प्रदान करनेवाला है, सो रहे। सपनेमें उन्होंने देखा, 'मेरा स्वरूप चतुर्भुज हो गया है। मैं शंख, चक्र, गदा, पद्म और शार्ङ्गधनुष धारण किये हुए हूँ तथा भगवान् पुरुषोत्तमके सामने रुद्र आदि देवताओंके साथ नृत्य कर रहा हूँ।'

उन्हें यह भी दिखायी दिया कि शंख, चक्र, गदा और पद्म आदि आयुध तथा विष्वक्सेन आदि पार्षदगण परम सुन्दर दिव्य स्वरूपसे प्रकट हो सदा श्रीलक्ष्मीपतिकी उपासनामें संलग्न रहते हैं। यह सब देखकर उन्हें अद्‌भुत हर्ष और आश्चर्य हुआ। अपनी मनोवांछित कामना पूर्ण करनेवाले भगवान् पुरुषोत्तमका दर्शन पाकर महाबुद्धिमान् राजाने अपनेको उनका कृपापात्र माना। स्वप्नमें ये सारी बातें देखकर जब वे प्रातःकाल नींदसे उठे तो तपस्वी ब्राह्मणको बुलाकर उन्होंने अपने देखे हुए सपनेका सारा समाचार उनसे कह सुनाया। उसे सुनकर बुद्धिमान् ब्राह्मणको बड़ा विस्मय हुआ, उन्होंने कहा—'राजन्! तुमने जिन भगवान् पुरुषोत्तमका दर्शन किया है, वे तुम्हें अपना शंख, चक्र आदि चिह्नोंसे विभूषित स्वरूप प्रदान करना चाहते हैं।' यह सुनकर महामना रत्नग्रीवने दीन-दुःखियोंको उनकी इच्छाके अनुसार दान दिलाया। फिर गंगासागर-संगममें स्नान करके देवताओं और पितरोंका तर्पण किया तथा भगवान्‌के गुणोंका गान करते हुए वे उनके दर्शनकी प्रतीक्षा करने लगे। तदनन्तर जब दोपहरका समय हुआ तो आकाशमें बारंबार दुन्दुभियाँ बजने लगीं। देवताओंके हाथसे बजाये जानेके कारण उनसे बड़े जोरकी आवाज होती थी। सहसा राजाके मस्तकपर फूलोंकी वर्षा हुई। देवता कहने लगे—'नृपश्रेष्ठ! तुम धन्य हो! नीलाचलका प्रत्यक्ष दर्शन करो।' देवताओंकी कही हुई यह बात ज्यों ही राजाके कानोंमें पड़ी, त्यों ही नीलगिरिके नामसे प्रसिद्ध वह महान् पर्वत उनकी आँखोंके समक्ष प्रकट हो गया। करोड़ों सूर्योंके समान उसका प्रकाश छा रहा था। चारों ओरसे सोने और चाँदीके शिखर उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। राजा सोचने लगे—क्या यह अग्नि प्रज्वलित हो रहा है या दूसरे सूर्यका उदय हुआ है? अथवा स्थिर कान्ति धारण करनेवाला विद्युत्पुंज ही सहसा सामने प्रकट हो गया है?'

तपस्वी ब्राह्मणने अत्यन्त शोभासम्पन्न नीलगिरिको देखकर राजासे कहा—'महाराज! यही वह परम पवित्र महान् पर्वत है।' यह सुनकर नृपश्रेष्ठ रत्नग्रीवने मस्तक झुकाकर उसे प्रणाम किया और कहा—'मैं धन्य और कृतकृत्य हो गया; क्योंकि इस समय मुझे नीलाचलका प्रत्यक्ष दर्शन हो रहा है। राजमन्त्री, रानी और करम्ब नामका जुलाहा—ये भी नीलाचलका दर्शन पाकर बड़े प्रसन्न हुए। नरश्रेष्ठ! उपर्युक्त पाँचों व्यक्तियोंने

विजय नामक मुहूर्तमें नीलगिरिपर चढ़ना आरम्भ किया। उस समय उन्हें देवताओंद्वारा बजायी हुई महान् दुन्दुभियोंकी ध्वनि सुनायी दे रही थी। पर्वतके ऊपरी शिखरपर, जो विचित्र वृक्षोंसे सुशोभित हो रहा था, उन्होंने एक सुवर्णजटित परम सुन्दर देवालय देखा। जहाँ प्रतिदिन ब्रह्माजी आकर भगवान्‌की पूजा करते हैं तथा श्रीहरिको सन्तोष देनेवाला नैवेद्य भोग लगाते हैं। वह अद्भुत एवं उज्ज्वल देवालय देखकर राजा सबके साथ उसके भीतर प्रविष्ट हुए। वहाँ एक सोनेका सिंहासन था, जो बहुमूल्य मणियोंसे जटित होनेके कारण अत्यन्त विचित्र दिखायी दे रहा था। उसके ऊपर भगवान् चतुर्भुज रूपसे विराजमान थे! उनकी झाँकी बड़ी मनोहर दिखायी देती थी। चण्ड, प्रचण्ड और विजय आदि पार्षद उनकी सेवामें खड़े थे। नृपश्रेष्ठ रत्नग्रीवने अपनी रानी और सेवकोंसहित भगवान्‌को प्रणाम किया। प्रणामके पश्चात् वेदोक्त मन्त्रोंद्वारा उन्हें विधिवत् स्नान कराया और प्रसन्नचित्तसे अर्घ्य, पाद्य आदि उपचार अर्पण किये। इसके बाद भगवान्‌के श्रीविग्रहमें चन्दन लगाकर उन्हें वस्त्र निवेदन किया तथा धूप-आरती करके सब प्रकारके स्वादसे युक्त मनोहर नैवेद्य भोग लगाया। अन्तमें पुनः प्रणाम करके तापस ब्राह्मणके साथ वे भगवान्‌की स्तुति करने लगे। उसमें उन्होंने अपनी बुद्धिके अनुसार श्रीहरिके गुण-समुदायसे ग्रथित स्तोत्रोंका संग्रह सुनाया था।

राजा बोले—भगवन्! एकमात्र आप ही पुरुष (अन्तर्यामी) हैं। आप ही प्रकृतिसे परे साक्षात् भगवान् हैं। आप कार्य और कारणसे भिन्न तथा महत्तत्त्व आदिसे पूजित हैं। सृष्टि-रचनामें कुशल ब्रह्माजी आपहीके नाभि-कमलसे उत्पन्न हुए हैं तथा संहारकारी रुद्रका आविर्भाव भी आपहीके नेत्रोंसे हुआ है। आपकी ही आज्ञासे ब्रह्माजी इस संसारकी सृष्टि करते हैं। पुराणपुरुष! आदिकालका जो स्थावर-जंगमरूप जगत् दिखायी देता है, वह सब आपसे ही उत्पन्न हुआ है। आप ही इसमें चेतनाशक्ति डालकर इस संसारको चेतन बनाते हैं। जगदीश्वर! वास्तवमें आपका जन्म तो कभी होता ही नहीं है; अतएव आपका अन्त भी नहीं है। प्रभो! आपमें वृद्धि, क्षय और परिणाम—इन तीनों विकारोंका सर्वथा अभाव है, तथापि आप भक्तोंकी रक्षा और धर्मकी स्थापनाके लिये अपने अनुरूप गुणोंसे युक्त दिव्य जन्म-कर्म स्वीकार करते हैं। आपने मत्स्यावतार धारण करके शंखासुरको मारा और वेदोंकी रक्षा की। ब्रह्मन्! आप महापुरुष (पुरुषोत्तम) और सबके पूर्वज हैं। महाविष्णो! शेष भी आपकी महिमाको नहीं जानते। भगवती वाणी भी आपको समझ नहीं पाती, फिर मेरे-जैसे अन्यान्य अज्ञानी जीव कैसे आपकी स्तुति करनेमें समर्थ हो सकते हैं?*

* एकस्त्वं पुरुषः साक्षाद् भगवान् प्रकृतेः परः। कार्यकारणतो भिन्नो महत्तत्त्वादिपूजितः॥
त्वन्नाभिकमलाज्जज्ञे ब्रह्मा सृष्टिविचक्षणः। तथा संहारकर्ता च रुद्रस्त्वन्नेत्रसंभवः॥
त्वयाऽऽज्ञप्तः करोत्यस्य विश्वस्य परिचेष्टितम्॥

इस प्रकार स्तुति करके राजाने भगवान्‌के चरणोंमें मस्तक नवाकर पुनः प्रणाम किया। उस समय उनका स्वर गद्‌गद हो रहा था। समस्त अंगोंमें रोमांच हो आया था। उनकी इस स्तुतिसे भगवान् पुरुषोत्तम बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने राजासे सत्य और सार्थक वचन कहा।

श्रीभगवान् बोले—राजन्! तुम्हारे द्वारा की हुई इस स्तुतिसे मुझे बड़ा हर्ष हुआ है। महाराज! तुम यह जान लो कि मैं प्रकृतिसे परे रहनेवाला परमात्मा हूँ। अब तुम शीघ्र ही मेरा नैवेद्य (प्रसाद) ग्रहण करो। इससे परम मनोहर चतुर्भुज रूपको प्राप्त होकर परमपदको जाओगे। जो मनुष्य तुम्हारे किये हुए इस स्तोत्ररत्नसे मेरी स्तुति करेगा; उसे भी मैं अपना उत्तम दर्शन दूँगा, जो भोग और मोक्ष—दोनों प्रदान करनेवाला है।

भगवान्‌के कहे हुए इस वचनको सुनकर राजाने अपनी सेवामें रहनेवाले चारों स्वजनोंके साथ नैवेद्य भक्षण किया। तदनन्तर क्षुद्रघण्टिकाओंसे सुशोभित सुन्दर विमान उपस्थित हुआ। उस समय धर्मात्मा राजा रत्नग्रीवने, जो भगवान्‌के कृपापात्र हो चुके थे, श्रीपुरुषोत्तमदेवका दर्शन करके उनके चरणोंमें प्रणाम किया तथा उनकी आज्ञा ले अपनी रानीके साथ विमानपर जा बैठे। फिर भगवान्‌के देखते-देखते अद्‌भुत वैकुण्ठलोकमें चले गये। राजाके मन्त्री भी धर्मपरायण तथा धर्मवेत्ताओंमें सबसे श्रेष्ठ थे; अतः वे भी विमानपर बैठकर उनके साथ ही गये। सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करनेवाले तपस्वी ब्राह्मण भी चतुर्भुज-स्वरूपको प्राप्त होकर वैकुण्ठको चले गये। इसी प्रकार करम्बने भी भगवान्‌के गुणोंका गायन करनेके पुण्यसे उनका दर्शन पाया और सम्पूर्ण देवताओंके लिये दुर्लभ भगवद्-धामको प्रस्थान किया। सभी एक ही साथ परम अद्‌भुत विष्णुलोककी ओर प्रस्थित हुए। सबके चार-चार भुजाएँ थीं। सबके हाथोंमें शंख, चक्र, गदा और पद्म शोभा पा रहे थे। सभी मेघके समान श्यामसुन्दर और विशुद्ध स्वभाववाले थे। सबके हाथ कमलोंकी भाँति सुशोभित थे। हार, केयूर और कड़ोंसे सभीके अंग विभूषित थे। इस प्रकार उन सब लोगोंने वैकुण्ठधामकी यात्रा की। साथमें आये हुए प्रजावर्गके लोगोंने विमानोंकी पंक्तियाँ देखीं तथा दुन्दुभीकी ध्वनिको भी श्रवण किया। उस समय एक ब्राह्मण भी वहाँ गये थे, जो भगवान्‌के चरणारविन्दोंमें बड़ा प्रेम रखनेवाले थे। उनके चित्तपर भगवद्‌विरहका इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि वे चतुर्भुज-स्वरूप हो गये। यह अद्‌भुत बात देखकर सब लोग ब्राह्मणके महान् सौभाग्यकी सराहना करने लगे और गंगासागर-संगममें स्नान करके कांचीनगरीमें लौट आये। सब लोग कहते थे कि 'उत्तम बुद्धिवाले महाराज रत्नग्रीवका अहोभाग्य है, जो वे इसी शरीरसे श्रीविष्णुके परमधामको चले गये।'

[सुमति कहते हैं—] राजन्! यही वह नीलगिरि है, जिसका भगवान् पुरुषोत्तमने आदर बढ़ाया है। इसका दर्शन करनेमात्रसे मनुष्य परमपद—वैकुण्ठधामको प्राप्त हो जाते हैं। जो सौभाग्यशाली पुरुष नीलगिरिके इस माहात्म्यको सुनता है तथा जो दूसरे लोगोंको सुनाता है, वे दोनों ही परमधामको प्राप्त होते हैं। इसका श्रवण और स्मरण करनेमात्रसे बुरे सपने नष्ट हो जाते हैं तथा अन्तमें भगवान् पुरुषोत्तम इस संसारसे उद्धार कर देते हैं। ये नीलाचलनिवासी पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रके ही स्वरूप हैं तथा देवी सीता साक्षात् महालक्ष्मी हैं। ये दोनों दम्पत्ति ही समस्त कारणोंके भी कारण हैं। भगवान् श्रीराम अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान करके सम्पूर्ण लोकोंको पवित्र कर देंगे। उनका नाम ब्रह्महत्याके प्रायश्चित्तमें भी जपनेके लिये बताया गया

* त्वत्तो जातं पुराणाद्यं जगत् स्थास्नु चरिष्णु च। चेतनाशक्तिमाविश्य त्वमेनं चेतयस्यहो॥
तव जन्म तु नास्त्येव नान्तस्तव जगत्पते। वृद्धिक्षयपरीणामास्त्वयि सन्त्येव नो विभो॥
तथापि भक्तरक्षार्थं धर्मस्थापनहेतवे। करोषि जन्मकर्माणि ह्यनुरूपगुणानि च॥
त्वया मात्स्यं वपुर्धृत्वा शङ्खस्तु निहतोऽसुरः। वेदाः सुरक्षिता ब्रह्मन् महापुरुषपूर्वज॥
शेषो न वेत्ति मह ते भारत्यपि महेश्वरी। किमुतान्ये महाविष्णो मादृशास्तु कुबुद्धयः॥ (२२। २८—३४)

है। [रामनाम लेनेसे ब्रह्महत्या-जैसे पातक भी दूर हो जाते हैं।] सुमित्रानन्दन! इस समय तुम्हारा यज्ञ-सम्बन्धी घोड़ा पर्वतश्रेष्ठ नीलगिरिके निकट जा पहुँचा है। महामते! तुम भी वहाँ चलकर भगवान् पुरुषोत्तमको नमस्कार करो। वहाँ जानेसे हम सब लोग निष्पाप होकर अन्तमें परमपदको प्राप्त होंगे; क्योंकि भगवान्के प्रसादसे अबतक अनेक मनुष्य भवसागरके पार हो चुके हैं।

[शेषजी कहते हैं—] वात्स्यायनजी! इस प्रकार सुमति भगवान्की महिमाका वर्णन कर रहे थे; इतने-हीमें वह अश्व पृथ्वीको अपनी टापोंसे खोदता हुआ वायुके समान वेगसे चलकर नीलाचलपर पहुँच गया। तब राजा शत्रुघ्न भी उसके पीछे-पीछे जाकर नीलगिरिपर पहुँचे और गंगासागर-संगममें स्नान करके पुरुषोत्तमका दर्शन करनेके लिये गये। निकट जाकर उन्होंने देव-दानववन्दित भगवान्को प्रणाम किया और उनकी स्तुति करके अपनेको कृतार्थ माना।

चक्रांका नगरीके राजकुमार दमनद्वारा घोड़ेका पकड़ा जाना तथा राजकुमारका प्रतापाग्र्यको युद्धमें परास्त करके स्वयं पुष्कलके द्वारा पराजित होना

शेषजी कहते हैं—मुने! तदनन्तर वह घोड़ा नीलाचलपर थोड़ी देर ठहरकर घास चरता हुआ आगे बढ़ गया। उसका वेग मनके समान तीव्र था। श्रेष्ठ वीर शत्रुघ्न, राजा लक्ष्मीनिधि, भयंकर वाहनवाले राजकुमार पुष्कल तथा राजा प्रतापाग्र्य—ये सभी उसकी रक्षा कर रहे थे। कई करोड़ वीरोंसे सुरक्षित वह यज्ञसम्बन्धी अश्व क्रमशः आगे बढ़ता हुआ राजा सुबाहुद्वारा परिपालित चक्रांका नगरीके पास जा पहुँचा। उस समय राजाका पुत्र दमन शिकार खेल रहा था। उसकी दृष्टि उस घोड़ेपर पड़ी, जो चन्दन आदिसे चर्चित तथा मस्तकमें सुवर्णमय पत्रसे शोभायमान था। राजकुमार दमनने उस पत्रको बाँचा, सुन्दर अक्षरोंमें लिखा होनेके कारण उसकी बड़ी शोभा हो रही थी। पत्रका अभिप्राय समझकर वह बोला—'अहो! भूमण्डलपर मेरे पिताजीके जीते-जी यह इतना बड़ा अहंकार कैसा? जिसने यह घमण्ड दिखाया है उसे मेरे धनुषसे छूटे हुए बाण इस उद्दण्डताका फल चखायेंगे। आज मेरे तीखे बाण शत्रुघ्नके समस्त शरीरको घायल करके उन्हें लहूलुहान कर देंगे, जिससे वे फूले हुए पलाशकी भाँति दिखायी देंगे। आज सभी श्रेष्ठ योद्धा मेरी भुजाओंका महान् बल देखें! मैं अपने धनुर्दण्डसे करोड़ों बाणोंकी वर्षा करूँगा।'

राजकुमार दमनने ऐसा कहकर घोड़ेको तो अपने नगरमें भेज दिया और स्वयं हर्ष तथा उत्साहमें भरकर सेनापतिसे कहा—'महामते! शत्रुओंका सामना करनेके लिये मेरी सेना तैयार कर दो।' इस प्रकार सेनाको सुसज्जित करके वह शीघ्र ही युद्ध-क्षेत्रमें सामने जाकर डट गया। उस समय उसका स्वरूप बड़ा उग्र दिखायी देता था। इसी बीचमें घोड़ेके पीछे चलनेवाले योद्धा भी वहाँ आ पहुँचे और अत्यन्त व्याकुल होकर बारम्बार एक-दूसरेसे पूछने लगे—'महाराजका वह यज्ञसम्बन्धी अश्व, जो भालपत्रसे चिह्नित था, कहाँ चला गया?' इतनेहीमें शत्रुओंको ताप देनेवाले राजा प्रतापाग्र्यने देखा, सामने ही कोई सेना तैयार होकर खड़ी है, जो वीरोचित शब्दोंका उच्चारण करती हुई गर्जना कर रही है। प्रतापाग्र्यके सिपाहियोंने उनसे कहा—'महाराज जान पड़ता है, यही राजा घोड़ा ले गया है; अन्यथा यह वीर अपने सैनिकोंके साथ हमारे सामने क्यों खड़ा होता?' यह सुनकर प्रतापाग्र्यने अपना एक सेवक भेजा। उसने जाकर पूछा—'महाराज श्रीरामचन्द्रजीका अश्व कहाँ है? कौन ले गया है? क्यों ले गया है? क्या वह भगवान् श्रीरामचन्द्रजीको नहीं जानता?'

राजकुमार दमन बड़ा बलवान् था, वह सेवकका ऐसा वचन सुनकर बोला—'अरे! भालपत्र आदि चिह्नोंसे अलंकृत उस यज्ञसम्बन्धी अश्वको मैं ले गया हूँ। उसकी सेवामें जो शूरवीर हों, वे आवें और मुझे

जीतकर बलपूर्वक यहाँसे घोड़ेको छुड़ा ले जायँ।' राजकुमारका वचन सुनकर सेवकको बड़ा रोष हुआ, तथापि वह हँसता हुआ वहाँसे लौट गया और राजाके पास जाकर उसने दमनकी कही हुई सारी बातें ज्यों-की-त्यों सुना दीं। उसे सुनते ही महाबली प्रतापाग्र्यकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं और वे चार घोड़ोंसे सुशोभित सुवर्णमय रथपर सवार हो बड़े-बड़े वीरोंको साथ ले राजकुमारसे युद्ध करनेके लिये चले। उनकी सहायतामें बहुत बड़ी सेना थी। आगे बढ़कर वे धनुषपर टंकार देने लगे। उस समय रोषपूर्ण नेत्रोंवाले राजा प्रतापाग्र्यके पीछे-पीछे बहुत-से घुड़सवार और हाथीसवार भी गये। निकट जाकर प्रतापाग्र्यने युद्धके लिये उद्यत राजकुमारको सम्बोधित करके कहा—'कुमार! तू तो अभी बालक है। क्या तूने ही हमारे श्रेष्ठ घोड़ेको बाँध रखा है? अरे! समस्त वीरशिरोमणि जिनके चरणोंकी सेवा करते हैं, उन महाराज श्रीरामचन्द्रजीको तू नहीं जानता? दैत्यराज रावण भी जिनके अद्भुत प्रतापको नहीं सह सका, उन्हींके घोड़ेको ले जाकर तूने अपने नगरमें पहुँचा दिया है! जान ले, मैं तेरे सामने आया हुआ काल हूँ, तेरा घोर शत्रु हूँ। छोकरे! तू अब तुरंत चला जा और घोड़ेको छोड़ दे, फिर जाकर बालकोंकी भाँति खेल-कूदमें जी बहला।'

दमनका हृदय बड़ा विशाल था, वह प्रतापाग्र्यकी ऐसी बातें सुनकर मुसकराया और उनकी सेनाको तिनकेके समान समझता हुआ बोला—'महाराज! मैंने बलपूर्वक आपके घोड़ेको बाँधा और अपने नगरमें पहुँचा दिया है, अब जीते-जी उसे लौटा नहीं सकता। आप बड़े बलवान् हैं तो युद्ध कीजिये। आपने जो यह कहा—'तू अभी बालक है, इसलिये जाकर खेल-कूदमें जी बहला' उसके लिये इतना ही कहना है कि अब आप युद्धके मुहानेपर ही मेरा खेल देखिये।'

इतना कहकर सुबाहुकुमारने अपने धनुषपर प्रत्यंचा चढ़ायी और राजा प्रतापाग्र्यकी छातीको लक्ष्य करके सौ बाणोंका संधान किया। परन्तु राजा प्रतापाग्र्यने अपने हाथकी फुर्ती दिखाते हुए उन सभी बाणोंके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। यह देखकर राजकुमार दमनको बड़ा क्रोध हुआ और वह बाणोंकी वर्षा करने लगा। तदनन्तर दमनने अपने धनुषपर तीन सौ बाणोंका संधान किया और उन्हें शत्रुपर चलाया। उन्होंने प्रतापाग्र्यकी छाती छेद डाली और रक्तमें नहाकर वे उसी भाँति नीचे गिरे, जैसे श्रीरामचन्द्रजीकी भक्तिसे विमुख हुए पुरुषोंका पतन हो जाता है। इसके बाद राजकुमारने शंखध्वनिके साथ गर्जना की। उसका पराक्रम देखकर प्रतापाग्र्य क्रोधसे जल उठे और बोले—'वीर! अब तू मेरा अद्भुत पराक्रम देख।' यों कहकर उन्होंने तुरंत तीखे बाणोंकी बौछार आरम्भ कर दी। वे बाण घोड़े और पैदल—सबके ऊपर पड़ते दिखायी देने लगे। उस समय राजकुमार दमनने प्रतापाग्र्यकी बाण-वर्षाको रोककर कहा—'आर्य! यदि आप शूरवीर हैं तो मेरी एक ही मार सह लीजिये। मैं अभिमानपूर्वक प्रतिज्ञा करके एक बात कहता हूँ, इसे सुनिये—वीरवर! यदि मैं इस बाणके द्वारा आपको रथसे नीचे न गिरा दूँ तो जो लोग युक्तिवादमें कुशल होनेके कारण मतवाले होकर वेदोंकी निन्दा करते हैं, उनका वह नरकमें डुबोनेवाला पाप मुझे ही लगे।' यह कहकर उसने कालके समान भयंकर, आगकी ज्वालाओंसे व्याप्त एवं अत्यन्त तीक्ष्ण बाण तरकशसे निकालकर अपने धनुषपर चढ़ाया। वह कालाग्निके समान देदीप्यमान हो रहा था। राजकुमारने अपने शत्रुके हृदयको निशाना बनाया और बाण छोड़ दिया। वह बड़े वेगसे शत्रुकी ओर चला। प्रतापाग्र्यने जब देखा कि शत्रुका बाण मुझे गिरानेके लिये आ रहा है, तो उन्होंने उसे काट डालनेके लिये कई तीखे बाण अपने धनुषपर चढ़ाये। किन्तु राजकुमारका बाण प्रतापाग्र्यके सब बाणोंको बीचसे काटता हुआ उनके धैर्ययुक्त हृदयतक पहुँच ही गया। हृदयपर चोट करके वह उसके भीतर घुस गया। राजा प्रतापाग्र्य उसकी चोट खाकर पृथ्वीपर गिर पड़े। उन्हें मूर्च्छित—चेतनाहीन एवं रथकी बैठकसे धरतीपर गिरा देख सारथिने उठाकर रथपर बिठाया और युद्धभूमिसे बाहर ले गया। उस समय राजाकी सेनामें

बड़ा हाहाकार मचा। समस्त योद्धा भागकर वहाँ पहुँचे जहाँ करोड़ों वीरोंसे घिरे हुए शत्रुघ्नजी मौजूद थे। प्रतापाग्र्यको परास्त करके राजकुमार दमनने विजय पायी और अब वह शत्रुघ्नकी प्रतीक्षा करने लगा।

उधर शत्रुघ्नको जब यह हाल मालूम हुआ तो वे क्रोधमें भरकर दाँतोंसे दाँत पीसते हुए बारंबार सैनिकोंसे पूछने लगे—'कौन मेरा घोड़ा ले गया है? किसने शूर-शिरोमणि राजा प्रतापाग्र्यको परास्त किया है?' तब सेवकोंने कहा—'राजा सुबाहुके पुत्र दमनने प्रतापाग्र्यको पराजित किया है और वे ही यज्ञका घोड़ा ले गये हैं।' यह सुनकर शत्रुघ्न बड़े वेगसे चलकर युद्धभूमिमें आये। वहाँ उन्होंने देखा, कितने ही हाथियोंके गण्डस्थल विदीर्ण हो गये हैं, घोड़े अपने सवारोंसहित घायल होकर मरे पड़े हैं। यह सब देखकर शत्रुघ्नके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये; वे अपने योद्धाओंसे बोले—'यहाँ मेरी सेनामें सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंका ज्ञान रखनेवाला कौन ऐसा वीर है, जो राजकुमार दमनको परास्त कर सकेगा?' शत्रुघ्नका यह वचन सुनकर शत्रुवीरोंका नाश करनेवाले पुष्कलके हृदयमें दमनको जीतनेका उत्साह हुआ और उन्होंने इस प्रकार कहा—'स्वामिन्! कहाँ यह छोटा-सा राजकुमार दमन और कहाँ आपका असीम बल! महामते! मैं अभी जा रहा हूँ, आपके प्रतापसे दमनको परास्त करूँगा। युद्धके लिये मुझ सेवकके उद्यत रहते हुए कौन घोड़ा ले जायगा? श्रीरघुनाथजीका प्रताप ही सारा कार्य सिद्ध करेगा। स्वामिन्! मेरी प्रतिज्ञा सुनिये; इससे आपको प्रसन्नता होगी। यदि मैं दमनको परास्त न करूँ तो श्रीरामचन्द्रजीके चरणारविन्दोंके रसास्वादनसे विलग (श्रीरामचरणचिन्तनसे दूर) रहनेवाले पुरुषोंको जो पाप लगता है, वही मुझे भी लगे। यदि मैं दमनपर विजय न पाऊँ तो जो पुत्र माताके चरणोंसे पृथक् दूसरा कोई तीर्थ मानकर उसके साथ विरोध करता है, उसको लगनेवाला पाप मुझे भी लगे।'

पुष्कलकी यह प्रतिज्ञा सुनकर शत्रुघ्नजीके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने उन्हें युद्धमें जानेकी आज्ञा दे दी। आज्ञा पाकर पुष्कल बहुत बड़ी सेनाके साथ उस स्थानपर गये, जहाँ वीरवंशमें उत्पन्न राजकुमार दमन मौजूद था। युद्धक्षेत्रमें पुष्कलको आया जान वीराग्रगण्य दमन भी अपनी सेनासे घिरा हुआ आगे बढ़ा। दोनोंका एक-दूसरेसे सामना हुआ। अपने-अपने रथपर बैठे हुए दोनों वीर बड़ी शोभा पा रहे थे, उस समय पुष्कलने महाबली राजकुमारसे कहा—'दमन! तुम्हें मालूम होना चाहिये कि मैं तुम्हारे साथ युद्ध करनेके लिये प्रतिज्ञा करके आया हूँ, मेरा नाम पुष्कल है, मैं भरतजीका पुत्र हूँ; तुम्हें अपने शस्त्रोंसे परास्त करूँगा। महामते! तुम भी हर तरहसे तैयार हो जाओ।' पुष्कलकी उपर्युक्त बात सुनकर उसने हँसते-हँसते उत्तर दिया—'भरतनन्दन! मुझे राजा सुबाहुका पुत्र समझो, मेरा नाम दमन है; पिताके प्रति भक्ति रखनेके कारण मेरे सारे पाप दूर हो गये हैं, महाराज शत्रुघ्नका घोड़ा ले जानेवाला मैं ही हूँ। विजय तो दैवके अधीन है, दैव जिसे देगा—जिसे अपनी कृपासे अलंकृत करेगा, उसे ही विजय मिलेगी। परन्तु तुम युद्धके मुहानेपर डटे रहकर मेरा पराक्रम देखो।'

यों कहकर दमनने धनुष चढ़ाया और उसे कानतक खींचकर शत्रुओंके प्राण लेनेवाले तीखे बाणोंको छोड़ना आरम्भ किया। उन बाणोंने आकाशमण्डलको ढक लिया और उनकी छायासे सूर्यदेवकी किरणोंका प्रकाश भी रुक गया। राजकुमारके चलाये हुए उन बाणोंकी चोट खाकर कितने ही मनुष्य, रथ, हाथी और घोड़े धरतीपर लोटते दिखायी देने लगे। शत्रुवीरोंका नाश करनेवाले पुष्कलने उसका वह पराक्रम देखा तथा आचमन करके एक बाण हाथमें लिया और उसे अग्निदेवके मन्त्रसे विधिपूर्वक अभिमन्त्रित करके अपने धनुषपर रखा। तदनन्तर भलीभाँति खींचकर उसे शत्रुओंके ऊपर छोड़ दिया। धनुषसे छूटते ही उस बाणसे युद्धके मुहानेपर भयंकर आग प्रकट हुई। वह अपनी ज्वालाओंसे आकाशको चाटती हुई प्रलयाग्निके समान प्रज्वलित हो उठी। फिर तो दमनकी सेना रणभूमिमें दग्ध होने लगी, उसके ऊपर त्रास छा गया और वह आगकी लपटोंसे पीड़ित होकर भाग चली।

राजकुमार दमनके छोड़े हुए सभी बाण अग्निकी ज्वालाओंमें झुलसकर सब ओरसे नष्ट हो गये। अपनी सेना दग्ध होती देख दमन क्रोधसे भर गया। वह सभी अस्त्र-शस्त्रोंका विद्वान् था; इसलिये उसने वह आग बुझानेके लिये वरुणास्त्र हाथमें लिया और शत्रुपर छोड़ दिया। उसके छोड़े हुए वरुणास्त्रने रथ और घोड़े आदिसे भरी हुई पुष्कलकी सेनाको जलसे आप्लावित कर दिया। शत्रुओंके रथ और हाथी पानीमें डूबते दिखायी देने लगे तथा अपने पक्षके योद्धाओंको शान्ति मिली। पुष्कलने देखा, मेरी सेना जलराशिसे पीड़ित होकर काँपती, क्षुब्ध होती और नष्ट होती जा रही है तथा मेरा आग्नेयास्त्र शत्रुके वरुणास्त्रसे शान्त हो गया है। तब अत्यन्त क्रोधके कारण उसकी आँखें लाल हो गयीं और उसने वायव्यास्त्रसे अभिमन्त्रित करके एक बहुत बड़ा बाण अपने धनुषपर रखा। तदनन्तर वायव्यास्त्रकी प्रेरणासे बड़े जोरकी हवा उठी और उसने अपने वेगसे वहाँ घिरी हुई मेघोंकी घटाको छिन्न-भिन्न कर दिया। राजकुमार दमनने अपने सैनिकोंको वायुसे पराजित होते देख अपने धनुषपर पर्वतास्त्रका संधान किया। फिर तो शत्रुयोद्धाओंके मस्तकपर पर्वतोंकी वर्षा होने लगी। उन पर्वतोंने वायुकी गतिको रोक दिया। अब हवा कहीं भी नहीं जा पाती थी। यह देख पुष्कलने अपने धनुषपर वज्रास्त्रका प्रयोग किया। तब वज्रके आघातसे वे सभी पर्वत क्षणभरमें तिलके समान टुकड़े-टुकड़े हो गये। साथ ही वह वज्र उच्चस्वरसे गर्जना करता हुआ राजकुमार दमनकी छातीपर बड़े वेगसे गिरा। छातीके बिंध जानेके कारण राजकुमारको गहरी चोट पहुँची, इससे उस बलवान् वीरको बड़ी व्यथा हुई। उसका हृदय व्याकुल हो उठा और वह मूर्च्छित हो गया। दमनका सारथि युद्धनीतिमें निपुण था। वह राजकुमारको मूर्च्छित देखकर उसे रणभूमिसे एक कोस दूर हटा ले गया। फिर तो उसके योद्धा अदृश्य हो गये—इधर-उधर भाग खड़े हुए और राजधानीमें जाकर उन्होंने राजकुमारके मूर्च्छित होनेका समाचार कह सुनाया। पुष्कल धर्मके ज्ञाता थे; उन्होंने संग्राम-भूमिमें इस प्रकार विजय पाकर श्रीरघुनाथजीके वचनोंका स्मरण करते हुए फिर किसीपर प्रहार नहीं किया। तदनन्तर दुन्दुभि बज उठी, जोर-जोरसे जय-जयकार होने लगा। सब ओरसे साधुवादके मनोहर वचन सुनायी देने लगे। पुष्कलको विजयी देखकर शत्रुघ्न बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने सुमति आदि मन्त्रियोंसे घिरकर उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की।

राजा सुबाहुका भाई और पुत्रोंसहित युद्धमें आना तथा सेनाका क्रौंच-व्यूहनिर्माण

शेषजी कहते हैं—मुने! उधर राजा सुबाहुने जब देखा कि मेरे सैनिक रक्तमें डूबे हुए आ रहे हैं तो उनका शोक शान्त-सा करते हुए उन्होंने अपने पुत्रकी करतूत पूछी। राजाका प्रश्न सुनकर उनके सेवकोंने, जो खूनसे लथपथ हो रहे थे तथा जिन्होंने रक्तसे भीगे हुए वस्त्र धारण कर रखा था, इस प्रकार उत्तर दिया—'राजन्! आपके पुत्रने स्वर्णमय पत्र आदिके चिह्नोंसे अलंकृत यज्ञसम्बन्धी अश्वको जब आते देखा तो वीरताके गर्वसे शत्रुघ्नको तिनकेके समान समझकर—उनकी कुछ भी परवा न करके उसे पकड़वा लिया। इतनेहीमें घोड़ेके पीछे चलनेवाला रक्षक थोड़ी-सी सेनाके साथ वहाँ आ पहुँचा। उसके साथ राजकुमारका बड़ा भारी युद्ध हुआ, जो रोंगटे खड़े कर देनेवाला था। आपके पुत्र दमन अपने बाणोंसे उस अश्व-रक्षकको मूर्च्छित करके ज्यों ही स्थिर हुए त्यों ही शत्रुघ्न भी अपनी सेनाओंसे घिरे हुए उपस्थित हो गये। तदनन्तर दोनों दलोंमें बड़ा भयंकर युद्ध छिड़ा, उसमें सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंका प्रयोग होने लगा। उस युद्धमें आपके महाबली पुत्रने अनेकों बार विजय पायी है, किन्तु इस समय शत्रुघ्नके भतीजेने वज्रास्त्र छोड़कर आपके वीर पुत्रको रणभूमिमें मूर्च्छित कर दिया है।'

सेवकोंकी यह बात सुनकर राजा सुबाहु राजधानीसे

निकलकर उस स्थानको चले, जहाँ उनके पुत्रको पीड़ा पहुँचानेवाले शत्रुघ्न मौजूद थे।

राजा सुबाहुको सुवर्णभूषित रथपर सवार हो नगरसे निकलते देख समस्त शत्रुओंपर प्रहार करनेवाली शत्रुघ्नकी सेना युद्धके लिये तैयार हो गयी। राजा सुबाहुके भाईका नाम था सुकेतु, वे गदायुद्धमें प्रवीण थे। वे भी अपने रथपर सवार होकर युद्धके लिये आये। राजाका पुत्र चित्रांग सब प्रकारकी युद्धकलामें निपुण था। वह भी रथारूढ़ होकर शीघ्र ही शत्रुघ्नकी मतवाली सेनापर चढ़ आया। उसके छोटे भाईका नाम था विचित्र। वह विचित्र प्रकारसे संग्राम करनेमें कुशल था। अपने भाईका दुःख सुनकर उसके मनमें बड़ी व्यथा हो रही थी, इसलिये वह भी सोनेके रथपर सवार हो युद्धके लिये उपस्थित हुआ। इनके सिवा और भी अनेकों धनुर्धर वीर, जो सभी अस्त्र-शस्त्रोंके ज्ञाता थे, राजाकी आज्ञा पाकर वीरोंसे भरी हुई संग्रामभूमिमें गये। राजा सुबाहुने बड़े रोषमें भरकर युद्धक्षेत्रमें पदार्पण किया और वहाँ अपने पुत्रको बाणोंसे पीड़ित एवं मूर्च्छित देखा। अपने प्यारे पुत्र दमनको रथकी बैठकमें मूर्च्छित होकर पड़ा देख राजाको बड़ा दुःख हुआ और वे पल्लवोंसे उसके ऊपर हवा करने लगे। उन्होंने कुमारके शरीरपर जलका छींटा दिया और अपने कोमल हाथसे उसका स्पर्श किया। इससे महान् अस्त्रवेत्ता वीरवर दमनको धीरे-धीरे चेत हो आया। होशमें आते ही दमन उठ बैठा और बोला—'मेरा धनुष कहाँ है? और पुष्कल यहाँसे कहाँ चला गया? मुझसे भिड़कर मेरे बाणोंके आघातसे पीड़ित होकर वह युद्ध छोड़कर कहाँ भाग गया?' पुत्रके ये वचन सुनकर राजा सुबाहु बड़े प्रसन्न हुए और उसे छातीसे लगा लिया। पिताको उपस्थित देख दमनने लज्जासे गर्दन झुका ली। उसका सारा शरीर अस्त्रोंकी मारसे घायल हो गया था, तो भी उसने बड़ी भक्तिके साथ पिताके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रणाम किया। बेटेको पुनः रथपर बिठाकर युद्धकर्ममें कुशल राजा सुबाहुने सेनापतिसे कहा—'इस युद्धमें तुम अपनी सेनाको क्रौंच-व्यूहके रूपमें खड़ी करो; उस व्यूहको जीतना शत्रुके लिये अत्यन्त कठिन है। उसीका आश्रय लेकर मैं राजा शत्रुघ्नकी सेनापर विजय प्राप्त करूँगा।' महाराज सुबाहुकी बात सुनकर सेनापतिने अपने सैनिकोंका क्रौंच नामक सुन्दर व्यूह बनाया। उसमें मुखके स्थानपर सुकेतु और कण्ठकी जगह चित्रांग खड़े हुए। पंखोंके स्थानपर दोनों राजकुमार—दमन और विचित्र थे। स्वयं राजा सुबाहु व्यूहके पुच्छ भागमें स्थित हुए। मध्यभागमें उनकी विशाल सेना थी, जो रथ, गज, अश्व और पैदल—इन चारों अंगोंसे शोभा पा रही थी। इस प्रकार विचित्र क्रौंच-व्यूहकी रचना करके सेनाध्यक्षने राजासे निवेदन किया—'महाराज! व्यूह सम्पन्न हो गया।'

राजा सुबाहुकी प्रशंसा तथा लक्ष्मीनिधि और सुकेतुका द्वन्द्वयुद्ध

शेषजी कहते हैं—मुनिवर! राजा सुबाहुकी सेनाका आकार बड़ा भयंकर दिखायी देता था, वह मेघोंकी घटाके समान जान पड़ती थी। उसे देखकर शत्रुघ्नने अपने मन्त्री सुमतिसे गम्भीर वाणीमें कहा—'मन्त्रिवर! मेरा घोड़ा किसके नगरमें जा पहुँचा है? यह सेना तो समुद्रकी लहरोंके समान दिखायी पड़ती है।'

सुमतिने कहा—राजन्! यहाँसे पास ही चक्रांका नामवाली सुन्दर नगरी विराजमान है। उसके भीतर ऐसे मनुष्य निवास करते हैं, जो भगवान् विष्णुकी भक्तिसे पापरहित हो गये हैं। ये धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ राजा सुबाहु उसी नगरीके स्वामी हैं। इस समय ये अपने पुत्र-पौत्रोंके साथ तुम्हारे सामने विराजमान हैं। ये नरेश सदा अपनी ही स्त्रीके प्रति अनुराग रखते हैं। परायी स्त्रियोंपर कभी दृष्टि नहीं डालते। इनके कानोंमें सदा विष्णुकी ही कथा गूँजती है। अन्य विषयोंका प्रतिपादन करनेवाली कथा-वार्ता ये कभी नहीं सुनते। प्रजाकी आयके छठे भागसे अधिक दूसरेका धन कभी नहीं ग्रहण करते। ये

धर्मात्मा हैं और विष्णु-बुद्धिसे भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंकी पूजा करते हैं। सदा भगवान्‌की सेवामें लगे रहते और भगवान् विष्णुके चरणारविन्दोंका मकरन्द पान करनेके लिये भ्रमरकी भाँति लोलुप बने रहते हैं। परधर्मसे विमुख हो सदा स्वधर्मका ही सेवन करते हैं। वीरोंमें कहीं भी इनके बलकी समानता नहीं है। इस समय अपने पुत्रका युद्धके मैदानमें गिरना सुनकर ये क्रोध और शोकसे व्याकुल होकर युद्धके लिये उपस्थित हुए हैं।

मन्त्रीकी बात सुनकर शत्रुघ्नने अपने श्रेष्ठ योद्धाओंसे कहा—'वीरो! राजा सुबाहुके सैनिकोंने आज क्रौंच-व्यूहका निर्माण किया है। इसके मुख और पक्षभागमें प्रधान-प्रधान योद्धा खड़े हुए हैं। तुमलोगोंमें कौन ऐसा शस्त्रवेत्ता है, जो उन वीरोंका भेदन करेगा? जिसमें व्यूहका भेदन करनेकी शक्ति हो, जो वीरोंपर विजय पानेके लिये उद्यत हो, वह मेरे हाथसे पानका बीड़ा उठा ले।' उस समय वीर लक्ष्मीनिधिने क्रौंच-व्यूहको तोड़नेकी प्रतिज्ञा करके बीड़ा उठा लिया। पुष्कलने उनके पीछे सहायताके लिये जानेका विचार किया। तदनन्तर शत्रुघ्नकी आज्ञासे रिपुताप, नीलरत्न, उग्रास्य और वीरमर्दन—ये सब लोग क्रौंच-व्यूहका भेदन करनेके लिये लक्ष्मीनिधिके साथ गये।

व्यूहके मुख-भागमें सुकेतु खड़े थे, उनसे लक्ष्मीनिधिने कहा—'मैं राजा जनकका पुत्र हूँ, मेरा नाम लक्ष्मीनिधि है; मैं कहता हूँ, समस्त दानवकुलका विनाश करनेवाले भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके यज्ञसम्बन्धी अश्वको छोड़ दो, नहीं तो मेरे बाणोंसे घायल होकर तुम्हें यमराजके लोकमें जाना पड़ेगा।' वीराग्रगण्य लक्ष्मीनिधिके ऐसा कहनेपर महाबली सुकेतुने बड़े वेगसे अपना धनुष चढ़ाया और तुरंत ही रण-क्षेत्रमें बाणोंकी झड़ी लगा दी। यह देख लक्ष्मीनिधिने भी अपने धनुषकी प्रत्यंचा चढ़ायी और सुकेतुके बाण-समूहको वेगपूर्वक नष्ट करके उनकी छातीमें छः तीखे बाण मारे। उनके प्रहारसे सुकेतुकी छाती छिद गयी। इससे क्रोधमें भरकर उन्होंने बीस तीखे बाणोंसे लक्ष्मीनिधिको मारा। तब लक्ष्मीनिधिने अपने धनुषपर अनेकों सुदृढ़ एवं तेज धारवाले बाण चढ़ाये। उनमेंसे चार सायकोंद्वारा उन्होंने सुकेतुके घोड़ोंको मार डाला, एकसे उनकी भयंकर ध्वजाको हँसते-हँसते काट गिराया, एक बाणसे सारथिका मस्तक धड़से अलग करके पृथ्वीपर डाल दिया, एकके द्वारा उन्होंने रोषमें भरकर प्रत्यंचासहित सुकेतुके धनुषको काट डाला तथा एक बाणसे उनकी छातीमें बड़े वेगसे प्रहार किया। लक्ष्मीनिधिके इस अद्‌भुत कर्मको देखकर समस्त वीरोंको बड़ा विस्मय हुआ।

धनुष, रथ, घोड़े और सारथिके नष्ट हो जानेपर सुकेतु बहुत बड़ी गदा हाथमें लेकर युद्धके लिये आगे बढ़े। गदायुद्धमें कुशल शत्रुको विशाल गदा लिये आते देख लक्ष्मीनिधि भी लोहेकी बनी हुई भारी गदा लेकर रथसे उतर पड़े और गदायुद्धमें प्रवीण वे दोनों वीर एक-दूसरेको जीतनेके लिये अत्यन्त क्रोधपूर्वक युद्ध करने लगे। उस समय लक्ष्मीनिधिने कुपित होकर गदा ऊपर उठायी और सुकेतुकी छातीपर गहरी चोट पहुँचानेके लिये वे बड़े वेगसे उनकी ओर झपटे; किन्तु महाबली सुकेतुने उनकी चलायी हुई गदाको अपने हाथमें पकड़ लिया और पुनः वही गदा उनकी छातीमें दे मारी। अपनी गदाको शत्रुके हाथमें गयी देख राजा लक्ष्मीनिधिने बाहु-युद्धके द्वारा लड़नेका विचार किया। फिर तो दोनों एक-दूसरेसे गुथ गये, पैरमें पैर, हाथमें हाथ और छातीमें छाती सटाकर बड़े वेगसे युद्ध करने लगे। इस प्रकार एक-दूसरेका वध करनेकी इच्छासे परस्पर भिड़े हुए वे दोनों वीर आपसके बलसे आक्रान्त होकर मूर्च्छित हो गये, यह देखकर हजारों योद्धा विस्मय-विमुग्ध हो उन दोनोंकी प्रशंसा करते हुए कहने लगे— 'राजा लक्ष्मीनिधि धन्य हैं! तथा महाराज सुबाहुके बलवान् भ्राता सुकेतु भी धन्य हैं!!'

पुष्कलके द्वारा चित्रांगका वध, हनुमान्‌जीके चरण-प्रहारसे सुबाहुका शापोद्धार तथा उनका आत्मसमर्पण

शेषजी कहते हैं—मुने! राजकुमार चित्रांग क्रौंच-व्यूहके कण्ठभागमें रथपर विराजमान था। अनेकों वीरोंसे घिरे हुए होनेके कारण उसकी बड़ी शोभा हो रही थी। वाराहावतारधारी भगवान् विष्णुने जिस प्रकार समुद्रमें प्रवेश किया था, उसी प्रकार उसने भी शत्रुघ्नकी सेनामें प्रवेश किया। उसका धनुष अत्यन्त सुदृढ़ और मेघ-गर्जनाके समान टंकार करनेवाला था। चित्रांगने उसे खींचकर चढ़ाया और करोड़ों शत्रुओंको भस्म करनेवाले तीखे बाणोंका प्रहार आरम्भ किया। उन बाणोंसे समस्त शरीर छिन्न-भिन्न हो जानेके कारण बहुत-से योद्धा धराशायी हो गये। इस प्रकार घोर संग्राम आरम्भ हो जानेपर पुष्कल भी युद्धके लिये गये। चित्रांग और पुष्कल दोनों एक-दूसरेसे भिड़ गये। उस समय उन दोनोंका स्वरूप बड़ा ही मनोहर दिखायी देता था। पुष्कलने सुन्दर भ्रामकास्त्रका प्रयोग करके चित्रांगके दिव्य रथको आकाशमें घुमाना आरम्भ किया। यह एक अद्‌भुत-सी बात हुई। एक मुहूर्ततक आकाशमें चक्कर लगानेके बाद घोड़ोंसहित वह रथ बड़े कष्टसे स्थिर हुआ और युद्धभूमिमें आकर ठहरा। उस समय चित्रांगने कहा—'पुष्कल! तुमने बड़ा उत्तम पराक्रम दिखाया। श्रेष्ठ योद्धा संग्राममें ऐसे कर्मोंकी बड़ी सराहना करते हैं। तुम घोड़ोंसहित मेरे रथको आकाशमें घुमाते रह गये! किन्तु अब मेरा भी पराक्रम देखो, जिसकी शूरवीर प्रशंसा करते हैं।' ऐसा कहकर चित्रांगने युद्धमें बड़े भयंकर अस्त्रका प्रयोग किया। उस बाणसे आबद्ध होकर पुष्कलका रथ आकाशमें पक्षीकी भाँति घोड़े और सारथिसहित चक्कर लगाने लगा। पुत्रका यह पराक्रम देखकर राजा सुबाहुको बड़ा विस्मय हुआ।

शत्रुवीरोंका दमन करनेवाले पुष्कल जब किसी तरह धरतीपर आकर ठहरे तो उन्होंने घोड़े और सारथिसहित चित्रांगके रथको अपने बाणोंसे नष्ट कर दिया। जब वह रथ टूट गया तो वीर चित्रांग पुनः दूसरे रथपर सवार हुआ; परन्तु पुष्कलने लगे हाथ उसे भी अपने बाणोंसे नष्ट कर डाला। इस प्रकार उस युद्धके मैदानमें वीर पुष्कलने राजकुमार चित्रांगके दस रथ चौपट कर दिये। तब चित्रांग एक विचित्र रथपर सवार होकर पुष्कलके साथ युद्ध करनेके लिये बड़े वेगसे आया। उसने क्रोधमें भरकर पाँच भल्ल हाथमें लिये और महातेजस्वी भरतपुत्रके मस्तकको उनका निशाना बनाया। उन भल्लोंकी चोट खाकर पुष्कल क्रोधसे जल उठे और धनुषपर बाणका सन्धान करके चित्रांगको मार डालनेकी प्रतिज्ञा करते हुए बोले—'चित्रांग! यदि इस बाणसे मैं तुम्हारे प्राण न ले लूँ तो शील और सदाचारसे शोभा पानेवाली सती नारीको कलंकित करनेसे यमराजके वशमें पड़े हुए पापी मनुष्योंको जिस लोककी प्राप्ति होती है, वही मुझे भी मिले! मेरी यह प्रतिज्ञा सत्य हो।' पुष्कलका यह उत्तम वचन सुनकर शत्रुपक्षके वीरोंका नाश करनेवाला बुद्धिमान् वीर चित्रांग हँसकर बोला—'शूरशिरोमणे! प्राणियोंकी मृत्यु सदा और सर्वत्र ही हो सकती है; अतः मुझे अपने मरनेका दुःख नहीं है; किन्तु तुम मेरे वधके लिये जो बाण छोड़ोगे, उसे मैं यदि काट न डालूँ तो उस अवस्थामें मेरी प्रतिज्ञा सुनो—जो मनुष्य तीर्थ-यात्राकी इच्छा रखनेवाले पुरुषका मानसिक उत्साह नष्ट करता है, उसको लगनेवाला पाप मुझे भी लगे; क्योंकि उस दशामें मैं प्रतिज्ञा-भंगका अपराधी समझा जाऊँगा।' इतना कहकर चित्रांग चुप हो गया। उसने अपने धनुषको सँभाला।

पुष्कल बोले—'यदि मैंने निष्कपट भावसे श्रीरामचन्द्रजीके युगल चरणोंकी उपासना की हो तो मेरी बात सच्ची हो जाय। यदि मैं अपनी स्त्रीके सिवा दूसरी किसी स्त्रीका मनमें भी विचार न करता होऊँ तो इस सत्यके प्रभावसे युद्धमें मेरा वचन सत्य हो।' यह कहकर पुष्कलने तुरंत ही अपने धनुषपर एक बाण चढ़ाया, जो कालाग्निके समान तेजस्वी तथा वीरोंके

मस्तकका उच्छेद करनेवाला था। उस बाणको उन्होंने चित्रांगके ऊपर छोड़ दिया। वह बाण छूटता देख बलवान् राजकुमारने भी धनुषपर कालाग्निके समान एक तीक्ष्ण बाण रखा और उससे अपने वधके लिये आते हुए पुष्कलके बाणको काट डाला। उस समय बाणके कट जानेपर पुष्कलकी सेनामें भारी हाहाकार मचा। कटे हुए बाणका पिछला आधा भाग धरतीपर गिर पड़ा; किन्तु पूर्वार्ध भाग, जिसमें बाणका फल (नोंक) जुड़ा हुआ था, आगे बढ़ा। उसने एक ही क्षणमें कमलकी नालके समान चित्रांगका गला काट डाला। राजकुमारका सुन्दर मस्तक किरीट और कुण्डलोंसहित पृथ्वीपर गिर पड़ा और आकाशसे गिरे हुए चन्द्रमाकी भाँति शोभा पाने लगा। भरतकुमार वीरवर पुष्कलने राजकुमार चित्रांगको भूमिपर पड़ा देख उस क्रौंच-व्यूहके भीतर प्रवेश किया, जो समस्त वीरोंसे सुशोभित हो रहा था।

तदनन्तर अपने पुत्र चित्रांगको प्राणहीन होकर धरतीपर पड़ा देख राजा सुबाहु पुत्रशोकसे अत्यन्त दुःखी होकर विलाप करने लगे। उस समय राजकुमार विचित्र और दमन अपने-अपने रथपर बैठकर आये और पिताके चरणोंमें प्रणाम करके समयोचित वचन बोले—'राजन्! हमलोगोंके जीते-जी आपके हृदयमें दुःख क्यों हो रहा है। वीर पुरुषोंको तो युद्धमें मृत्यु अत्यन्त अभीष्ट होती है। यह चित्रांग धन्य है, जो वीर-भूमिमें शोभा पा रहा है। महामते! आप शोक छोड़िये, दुःखसे इतने आतुर क्यों हो रहे हैं? मान्यवर! हम दोनोंको युद्धके लिये आज्ञा दीजिये और स्वयं भी युद्धमें मन लगाइये।' अपनी वीरतापर गर्व करनेवाले दोनों पुत्रोंका यह वचन सुनकर महाराजने शोक छोड़ दिया और युद्धके लिये निश्चय किया। साथ ही संग्राममें उन्मत्त होकर लड़नेवाले वे दोनों भाई विचित्र और दमन भी अपने समान योद्धाकी अभिलाषा करते हुए असंख्य सैनिकोंसे भरी हुई शत्रुकी सेनामें घुस गये। दमनने रिपुतापके और विचित्रने नीलरत्नके साथ लोहा लिया। वे दोनों वीर रणभूमिमें उत्साहपूर्वक युद्ध करने लगे। स्वयं राजा सुबाहु सुवर्णजटित रथपर सवार हो करोड़ों वीरोंसे घिरे हुए शत्रुघ्नके साथ युद्ध करनेके लिये चले। सुबाहुको पुत्रवधके कारण रोषमें भरकर युद्धके लिये आते और सैनिकोंका नाश करते देखकर शत्रुघ्नके पार्श्वभागकी रक्षा करनेवाले हनुमान्जी उनकी ओर दौड़े। नख ही उनके आयुध थे और वे युद्धमें मेघकी भाँति विकट गर्जना कर रहे थे। उस समय सुबाहुने दस बाणोंसे हनुमान्जीकी छातीमें बड़े वेगसे चोट की। परन्तु हनुमान्जी बड़े भयंकर वीर थे। उन्होंने सुबाहुके छोड़े हुए सभी बाण अपने हाथसे पकड़ लिये और उन्हें तिल-तिल करके तोड़ डाला। वे महान् बलवान् तो थे ही; राजाके रथको अपनी पूँछमें लपेटकर वेगपूर्वक खींच ले चले। उन्हें रथ लेकर जाते देख नृपश्रेष्ठ सुबाहु आकाशमें ही खड़े हो गये और तीखी नोंकवाले सायकोंसे उनकी पूँछ, मुख, हृदय, बाहु और चरणोंमें बारम्बार चोट पहुँचाने लगे। तब कपिवर हनुमान्जीको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने वेगसे उछलकर उत्तम योद्धाओंसे सुशोभित राजा सुबाहुकी छातीमें लात मारी। राजा उनके चरण-प्रहारसे मूर्च्छित होकर धरतीपर गिर पड़े और मुखसे गरम-गरम रक्त वमन करने लगे। उस समय वे जोर-जोरसे साँस लेते हुए काँप रहे थे। मूर्च्छावस्थामें ही राजाने एक स्वप्न देखा—'अयोध्यापुरीमें सरयूके तटपर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी यज्ञ-मण्डपके भीतर विराजमान हैं। यज्ञ करानेवालोंमें श्रेष्ठ अनेक ब्राह्मण उन्हें घेरकर बैठे हुए हैं। ब्रह्मा आदि देवता और करोड़ों ब्रह्माण्डके प्राणी हाथ जोड़े खड़े हैं तथा बारम्बार भगवान्की स्तुति कर रहे हैं। भगवान् श्रीरामका विग्रह श्याम रंगका है, उनके नेत्र सुन्दर हैं। उन्होंने अपने हाथमें मृगका सींग धारण कर रखा है। नारद आदि देवर्षिगण हाथोंसे वीणा बजाते हुए उनका सुयश गान कर रहे हैं। चारों वेद मूर्तिमान् होकर रघुनाथजीकी उपासना करते हैं। संसारमें जो कुछ भी सुन्दर वस्तुएँ हैं, उन सबके दाता पूर्ण ब्रह्म भगवान् श्रीराम ही हैं।'

इस प्रकार स्वप्न देखते-देखते वे जाग उठे, उन्हें चेत हो आया। फिर तो वे शत्रुघ्नजीके चरणोंकी ओर

पैदल ही चल दिये। धर्मज्ञ महाराजने युद्धके लिये उद्यत हुए सुकेतु, विचित्र और दमनको बुलाकर लड़नेसे रोका और कहा—"अब शीघ्र ही युद्ध बंद करो, दमन! यह बहुत बड़ा अन्याय हुआ, जो तुमने भगवान् श्रीरामके तेजस्वी अश्वको पकड़ लिया। ये श्रीरामचन्द्रजी कार्य और कारणसे परे साक्षात् परब्रह्म हैं, चराचर जगत्के स्वामी हैं, मानव-शरीर धारण करनेपर भी वे वास्तवमें मनुष्य नहीं हैं। इन्हें इस रूपमें जान लेना ही ब्रह्मज्ञान है। इस तत्त्वको मैं अभी समझ पाया हूँ। मेरे पापहीन पुत्रो! पूर्वकालमें असितांगमुनिके शापसे मेरा ज्ञानरूपी धन नष्ट हो गया था। [वह प्रसंग मैं सुना रहा हूँ—] प्राचीन समयकी बात है, मैं तत्त्वज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छासे तीर्थयात्राके लिये निकला था। उस यात्रामें मुझे अनेकों धर्मज्ञ ऋषि-महर्षियोंके दर्शन हुए। एक दिन ज्ञान-प्राप्तिकी इच्छासे मैं असितांगमुनिकी सेवामें गया। उस समय उन ब्रह्मर्षिने मेरे ऊपर कृपा करके इस प्रकार उपदेश देना आरम्भ किया—'वे जो अयोध्यापुरीके स्वामी महाराज श्रीरामचन्द्रजी हैं, उन्हींका नाम परब्रह्म है तथा जो उनकी धर्मपत्नी जनककिशोरी भगवती सीता हैं, वे भगवान्की साक्षात् चिन्मयी शक्ति मानी गयी हैं। दुस्तर एवं अपार संसार-सागरसे पार जानेकी इच्छा रखनेवाले योगीजन यम-नियम आदि साधनोंके द्वारा साक्षात् श्रीरघुनाथजीकी ही उपासना करते हैं। वे ही ध्वजामें गरुड़का चिह्न धारण करनेवाले भगवान् नारायण हैं। स्मरण करनेमात्रसे ही वे बड़े-बड़े पापोंको हर लेते हैं। जो विद्वान् उनकी उपासना करेगा, वह इस संसार-समुद्रसे तर जायगा।' मुनिकी बात सुनकर मैंने उनका उपहास करते हुए कहा—'राम कौन बड़े शक्तिशाली हैं। ये तो एक साधारण मनुष्य हैं! इसी प्रकार हर्ष और शोकमें डूबी हुई ये जानकीदेवी भी क्या चीज हैं? जो अजन्मा है, उसका जन्म कैसा? तथा जो अकर्ता है, उसके लिये संसारमें आनेका क्या प्रयोजन है? मुने! मुझे तो आप उस तत्त्वका उपदेश दीजिये, जो जन्म, दु:ख और जरावस्थासे परे हो।' मेरे ऐसा कहनेपर उन विद्वान् मुनीश्वरने मुझे शाप दे दिया। वे बोले—'ओ नीच! तू श्रीरघुनाथजीके स्वरूपको नहीं जानता तो भी मेरे कथनका प्रतिवाद कर रहा है, इन भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी निन्दा करता है और 'ये साधारण मनुष्य हैं' ऐसा कहकर उनका उपहास कर रहा है; इसलिये तू तत्त्वज्ञानसे शून्य होकर केवल पेट पालनेमें लगा रहेगा।' यह सुनकर मैंने महर्षिके चरण पकड़ लिये और अपने प्रति उनके हृदयमें दयाका संचार किया। वे करुणाके सागर थे, मेरी प्रार्थनासे पिघल गये और बोले—'राजन्! जब तुम श्रीरघुनाथजीके यज्ञमें विघ्न डालोगे और हनुमान्जी वेगपूर्वक तुम्हारे ऊपर चरण-प्रहार करेंगे, उसी समय तुम्हें भगवान् श्रीरामके स्वरूपका ज्ञान होगा; अन्यथा अपनी बुद्धिसे तुम उन्हें नहीं जान सकोगे।' मुनिवर असितांगने पहले ही जो बात बतायी थी, उसका इस समय मुझे प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा है। अत: अब मेरे महाबली सैनिक रघुनाथजीके शोभायमान अश्वको ले आवें। उसके साथ ही मैं बहुत-सा धन-वस्त्र तथा यह राज्य भी भगवान्को अर्पण कर दूँगा। वह यज्ञ अत्यन्त पुण्य प्रदान करनेवाला है। उसमें श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन करके मैं कृतार्थ हो जाऊँगा, इसलिये घोड़ेसहित अपना सर्वस्व समर्पण कर देना ही मुझे अच्छा जान पड़ता है।"

उत्तम रीतिसे युद्ध करनेवाले सुबाहुपुत्रोंने पिताकी बात सुनकर बड़ा हर्ष प्रकट किया। वे महाराज सुबाहुको श्रीरघुनाथजीके दर्शनके लिये उत्कण्ठित देखकर उनसे बोले—'राजन्! हमलोग आपके चरणोंके सिवा और कुछ नहीं जानते, अत: आपके हृदयमें जो शुभ संकल्प प्रकट हुआ है, वह शीघ्र ही पूर्ण होना चाहिये। सफेद चँवरसे सुशोभित, रत्न और माला आदिकी शोभासे सम्पन्न तथा चन्दन आदिके द्वारा चर्चित यह यज्ञसम्बन्धी अश्व शत्रुघ्नजीके पास ले जाइये। आपकी आज्ञाके अनुसार उपयोग होनेमें ही इस राज्यकी सार्थकता है। स्वामिन्! प्रचुर समृद्धियोंसे भरे हुए कोष, हाथी, घोड़े, वस्त्र, रत्न, मोती तथा मूँगे आदि द्रव्य लाखोंकी संख्यामें प्रस्तुत हैं। इनके सिवा और भी जो-जो महान् अभ्युदयकी वस्तुएँ हैं, उन सबको

श्रीरामचन्द्रजीकी सेवामें समर्पित कीजिये। महामते! हम सभी पुत्र आपके किंकर हैं, हमें भी भगवान्‌की सेवामें अर्पण कीजिये।'

पुत्रोंके ये वचन सुनकर महाराज सुबाहुको बड़ा हर्ष हुआ। वे आज्ञा-पालनके लिये उद्यत हुए अपने वीर पुत्रोंसे इस प्रकार बोले—'तुम सब लोग हाथोंमें हथियार ले नाना प्रकारके रथोंसे घिरकर कवच आदिसे सुसज्जित हो घोड़ेको यहाँ ले आओ। तत्पश्चात् मैं राजा शत्रुघ्नके पास चलूँगा।'

शेषजी कहते हैं—राजा सुबाहुके वचन सुनकर विचित्र, दमन, सुकेतु तथा अन्यान्य शूरवीर उनकी आज्ञाका पालन करनेके लिये उद्यत हो नगरमें गये और उस मनोहर अश्वको, जो सफेद चँवरसे संयुक्त और स्वर्णपत्र आदिसे अलंकृत था, राजाके सामने ले आये। रत्नमाला आदिसे विभूषित और मनके समान वेगवान् उस अश्वमेध यज्ञके घोड़ेको लाया गया देख बुद्धिमान् राजाको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे अपने पुत्र-पौत्रोंके साथ परम धार्मिक शत्रुघ्नजीके समीप पैदल ही चले। उन्हें अच्छी तरह मालूम था कि 'यह धन नश्वर है, जो लोग इसमें आसक्त होते हैं; उन्हें यह दुःख ही देता है।' यही सोचकर वे विनाशकी ओर जानेवाले धनका सदुपयोग करनेके लिये वहाँसे चले। निकट जाकर उन्होंने देखा—शत्रुघ्नजी श्वेतछत्रसे सुशोभित हैं तथा मन्त्री सुमतिसे भगवान् श्रीरामकी कथावार्ता पूछ रहे हैं। भयकी बात तो उन्हें छू भी नहीं सकी थी। वे वीरोचित शोभासे उद्दीप्त हो रहे थे।

उनका दर्शन करके पुत्रसहित राजा सुबाहुने शत्रुघ्नजीके चरणोंमें प्रणाम किया और अत्यन्त हर्षमें भरकर कहा—'मैं धन्य हो गया।' उस समय उनका मन एकमात्र श्रीरघुनाथजीके चिन्तनमें लगा हुआ था। शत्रुघ्नने देखा ये उद्भट राजा सुबाहु मेरे प्रेमी होकर मिलने आये हैं, तो वे आसनसे उठ खड़े हुए और सबके साथ बाँहें पसारकर मिले। विपक्षी वीरोंका नाश करनेवाले राजा सुबाहुने शत्रुघ्नजीका भलीभाँति पूजन करके अत्यन्त हर्ष प्राप्त किया और गद्‌गद स्वरसे कहा—'करुणानिधे! आज मैं पुत्र, कुटुम्ब और वाहनसहित धन्य हो गया; क्योंकि इस समय मुझे करोड़ों राजाओंद्वारा अभिवन्दित आपके चरणोंका दर्शन हो रहा है। मेरा पुत्र दमन अभी नादान है, इसीलिये इसने इस श्रेष्ठ अश्वको पकड़ लिया है; आप इसके अनीतिपूर्ण बर्तावको क्षमा कीजिये। जो सम्पूर्ण देवताओंके भी देवता हैं तथा जो लीलासे ही इस जगत्‌की सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले हैं, उन रघुवंशशिरोमणि श्रीरामचन्द्रजीको यह नहीं जानता, इसीसे इसके द्वारा यह अपराध हो गया है। हमारे इस राज्यका प्रत्येक अंग समृद्धिशाली है। सेना और सवारियोंकी संख्या भी बहुत बढ़ी-चढ़ी है। ये सब श्रीरामकी सेवामें समर्पित हैं। ये मेरे पुत्र और हम भी आपहीके हैं। हम सब लोगोंके स्वामी भगवान् श्रीराम ही हैं। हम आपकी प्रत्येक आज्ञाका पालन करेंगे। मेरी दी हुई ये सभी वस्तुएँ स्वीकार करके इन्हें सफल बनाइये। मेरे पास कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जो ग्रहण करनेके योग्य न हो। श्रीरामजीके चरणारविन्दोंके मधुकर हनुमान्‌जी कहाँ हैं? उन्हींकी कृपासे मैं राजाधिराज भगवान् रामका दर्शन

करूँगा। साधुओंका संग हो जानेपर इस पृथ्वीपर क्या-क्या नहीं मिल जाता! मैं महामूढ़ था; किन्तु संतके प्रसादसे ही आज मेरा ब्रह्मशापसे उद्धार हुआ है। अब मैं पद्मपत्रके समान विशाल लोचनोंवाले महाराज श्रीरघुनाथजीका दर्शन करके इस लोकमें जन्म लेनेका सम्पूर्ण एवं दुर्लभ फल प्राप्त करूँगा। मेरी आयुका बहुत बड़ा भाग श्रीरामके वियोगमें ही बीत गया। अब थोड़ी-सी ही आयु शेष रह गयी है; इसमें मैं श्रीरघुनाथजीका कैसे दर्शन करूँगा? मुझे यज्ञकर्ममें कुशल श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन कराइये, जिनके चरणोंकी धूलिसे पवित्र होकर शिला भी मुनिपत्नी हो गयी तथा युद्धमें जिनके मुखारविन्दका अवलोकन करके अनेकों वीर परमपदको प्राप्त हो गये। जो लोग आदरपूर्वक श्रीरघुनाथजीके नाम लेते हैं, वे उसी परम धामको प्राप्त होते हैं, जिसका योगी लोग चिन्तन किया करते हैं। अयोध्याके लोग धन्य हैं, जो अपने नेत्र-पुटोंके द्वारा श्रीरामके मुखकमलका मकरन्द पान करके सुख पाते और महान् अभ्युदयको प्राप्त होते हैं।'

शत्रुघ्नने कहा—राजन्! आप ऐसा क्यों कहते हैं? आप वृद्ध होनेके नाते मेरे पूज्य हैं। आपका यह सारा राज्य राजकुमार दमनके अधिकारमें रहना चाहिये। क्षत्रियोंका कर्तव्य ही ऐसा है, जो युद्धका अवसर उपस्थित कर देता है। सम्पूर्ण राज्य और यह धन—सब मेरी आज्ञासे लौटा ले जाइये। महीपते! जिस प्रकार श्रीरघुनाथजी मेरे लिये मन-वाणीद्वारा सदा ही पूज्य हैं, उसी प्रकार आप भी पूजनीय होंगे। इस घोड़ेके पीछे चलनेके लिये आप भी तैयार हो जाइये।

परम बुद्धिमान् शत्रुघ्नजीका कथन सुनकर सुबाहुने अपने पुत्रको राज्यपर अभिषिक्त कर दिया। उस समय शत्रुघ्नजीने उनकी बड़ी सराहना की। तदनन्तर वे महारथियोंसे घिरकर रणभूमिमें गये और पुष्कलके हाथसे मरे हुए अपने पुत्रका विधिपूर्वक दाह-संस्कार करके कुछ देरतक शोकमें डूबे रहे; उनका वह शोक साधारण लोगोंकी ही दृष्टिमें था। वास्तवमें तो वे महारथी नरेश तत्त्वज्ञानी थे; अतः श्रीरघुनाथजीका निरन्तर स्मरण करते हुए उन्होंने ज्ञानके द्वारा अपना समस्त शोक दूर कर दिया। फिर अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित होकर रथपर बैठे और विशाल सेनाके साथ महारथियोंको आगे करके शत्रुघ्नके पास आये। राजा शत्रुघ्नने सुबाहुको सम्पूर्ण सेनाके साथ उपस्थित देख घोड़ेकी रक्षाके लिये जानेका विचार किया। सुबाहुके यहाँसे छूटनेपर वह भालपत्रसे चिह्नित अश्व भारतवर्षकी वामावर्त परिक्रमा करता हुआ पूर्वदिशाके अनेकों देशोंमें गया। उन सभी देशोंमें बड़े-बड़े शूरवीरोंद्वारा पूजित भूपाल उस अश्वको प्रणाम करते थे। कोई भी उसे पकड़ता नहीं था। कोई विचित्र-विचित्र वस्त्र, कोई अपना महान् राज्य तथा कोई धन-वैभव या और कोई वस्तु भेंटके लिये लाकर अश्वसहित शत्रुघ्नको प्रणाम करते थे।

तेजःपुरके राजा सत्यवान्‌की जन्मकथा—सत्यवान्‌का शत्रुघ्नको सर्वस्व-समर्पण

शेषजी कहते हैं—मुनिवर! सुवर्णपत्रसे शोभा पानेवाला यह यज्ञसम्बन्धी अश्व पूर्वोक्त देशोंमें भ्रमण करता हुआ तेजःपुरमें गया, जहाँके राजा सत्यवान् सत्यधर्मका आश्रय लेकर प्रजाका पालन करते थे। तदनन्तर शत्रुके नगरका विध्वंस करनेवाले श्रीरघुनाथजीके भाई शत्रुघ्नजी करोड़ों वीरोंसे घिरकर घोड़ेके पीछे-पीछे उस राजाके नगरसे होकर निकले। वह नगर बड़ा रमणीय था। चित्र-विचित्र प्राकार उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। हजारों देव-मन्दिरोंके कारण वह सब ओरसे शोभायमान दिखायी देता था। भगवान् शंकरके मस्तकपर निवास करनेवाली महादेवी भगवती भागीरथी वहाँ प्रवाहित हो रही थीं। उनके तटपर ऋषि-महर्षियोंका समुदाय निवास करता था। तेजःपुरमें रहनेवाले प्रत्येक ब्राह्मणके घरमें जो अग्निहोत्रका धुआँ उठता था, वह पापमें डूबे हुए बड़े-बड़े पातकियोंको भी पवित्र कर देता था। उस नगरको देखकर शत्रुघ्नने सुमतिसे पूछा—

'मन्त्रिवर! यह सामने दिखायी देनेवाला नगर किसका है, जो धर्मपूर्वक पालित होनेके कारण मेरे मनको अपार आनन्द प्रदान करता है?'

सुमतिने कहा—स्वामिन्! यहाँके राजा भगवान् विष्णुके भक्त हैं। आप सावधान होकर उनकी कल्याणमयी कथाओंको सुनें। उनका श्रवण करनेसे मनुष्य ब्रह्महत्या-जैसे पापसे भी मुक्त हो जाता है। इस नगरके राजाका नाम है सत्यवान्। वे श्रीरामचन्द्रजीके चरणारविन्दोंका रस-पान करनेके लिये भ्रमर एवं जीवन्मुक्त हैं। उन्हें यज्ञ और उसके अंगोंका पूर्ण ज्ञान है। वे महान् कर्मठ और प्रजाजनोंके रक्षक हैं। पूर्वकालमें यहाँ ऋतम्भर नामके एक राजा हो गये हैं। उन्हें कोई सन्तान नहीं थी। उनके कई स्त्रियाँ थीं, परन्तु उनमेंसे किसीके गर्भसे भी राजाको पुत्रकी प्राप्ति नहीं हुई। एक दिन दैववश उनके यहाँ जाबालि नामक मुनि पधारे। राजाने कुशल-प्रश्नके पश्चात् उनसे पुत्र उत्पन्न होनेका उपाय पूछा।

ऋतम्भरने कहा—स्वामिन्! मैं सन्तानहीन हूँ; मुझे कोई ऐसा उपाय बताइये, जो पुत्र उत्पन्न होनेमें सहायक हो। जिसका प्रयोग करनेसे मेरी वंश-परम्पराकी रक्षा करनेवाला एक श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हो।

राजाकी यह बात सुनकर मुनिश्रेष्ठ जाबालिने कहा—"राजन्! सन्तान-प्राप्तिकी इच्छावाले मनुष्यके लिये तीन प्रकारके उपाय बताये गये हैं—भगवान् विष्णुकी, गौकी अथवा भगवान् शिवकी कृपा; अतः तुम देवस्वरूपा गौकी पूजा करो; क्योंकि उसकी पूँछ, मुँह, सींग तथा पृष्ठभागमें भी देवताओंका निवास है। जो प्रतिदिन अपने घरपर घास आदिके द्वारा गौकी पूजा करता है, उसपर देवता और पितर सदा सन्तुष्ट रहते हैं। जो उत्तम व्रतका पालन करनेवाला मनुष्य प्रतिदिन नियमपूर्वक गौको भोजन देता है, उसके सभी मनोरथ उस सत्य धर्मका अनुष्ठान करनेके कारण पूर्ण हो जाते हैं। यदि घरमें प्यासी हुई गाय बँधी रहे, रजस्वला कन्या अविवाहित हो तथा देवताके विग्रहपर दूसरे दिनका चढ़ाया हुआ निर्माल्य पड़ा रहे तो ये सभी दोष पहलेके किये हुए पुण्यको नष्ट कर डालते हैं। जो मनुष्य घास चरती हुई गौको रोकता है, उसके पूर्वज पितर पतनोन्मुख होकर काँप उठते हैं। जो मूढ़बुद्धि मानव गौको लाठीसे मारता है, उसे हाथसे हीन होकर यमराजके नगरमें जाना पड़ता है।* जो गौके शरीरसे डाँस और मच्छरोंको हटाता है, उसके पूर्वज कृतार्थ होकर अधिक प्रसन्नताके कारण नाच उठते हैं और कहते हैं—'हमारा यह वंशज बड़ा भाग्यवान् है, अपनी गो-सेवाके द्वारा यह हमें तार देगा।'

"इस विषयमें जानकार लोग एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं, जो धर्मराजके नगरमें राजा जनकके सामने अद्‌भुत रूपसे घटित हुआ था। एक समयकी बात है, राजा जनकने योगके द्वारा अपने शरीरका परित्याग कर दिया। उस समय उनके पास एक विमान आया, जो क्षुद्र-घण्टिकाओंसे शोभा पा रहा था। राजा दिव्य-देहसे विमानपर आरूढ़ होकर चल दिये और उनके त्यागे हुए शरीरको सेवकगण उठा ले गये। राजा जनक धर्मराजकी संयमनीपुरीके निकटवर्ती मार्गसे जा रहे थे। उस समय करोड़ों नरकोंमें जो पापाचारी जीव यातना भोग रहे थे, वे जनकके शरीरकी वायुका स्पर्श पाकर सुखी हो गये। परन्तु जब वे उस स्थानसे आगे निकले तो पापपीड़ित प्राणी उन्हें जाते देख भयभीत होकर जोर-जोरसे चीत्कार करने लगे। वे नहीं चाहते थे कि राजा जनकसे वियोग हो। उन्होंने करुणाजनक वाणीमें कहा—'पुण्यात्मन्! यहाँसे न जाओ। तुम्हारे

---

* तृषिता गौर्गृहे बद्धा गेहे कन्या रजस्वला। देवताश्च सनिर्माल्या हन्ति पुण्यं पुराकृतम्॥
यो वै गां प्रतिषिध्येत चरन्तीं स्वं तृणं नरः। तस्य पूर्वे च पितरः कम्पन्ते पतनोन्मुखाः॥
यो वै ताडयते यष्ट्या धेनुं मर्त्यो विमूढधीः। धर्मराजस्य नगरे स याति करवर्जितः॥ (३०। २७—२९)

शरीरको छूकर चलनेवाली वायुका स्पर्श पाकर हम यातनापीड़ित प्राणियोंको बड़ा सुख मिल रहा है।'

"राजा बड़े धर्मात्मा थे, उन दु:खी जीवोंकी पुकार सुनकर उनके हृदयमें करुणा भर आयी। वे सोचने लगे—'यदि मेरे रहनेसे इन प्राणियोंको सुख होता है, तो अब मैं इसी नगरमें निवास करूँगा; यही मेरे लिये मनोहर स्वर्ग है।' ऐसा विचार करके राजा जनक दु:खी प्राणियोंको सुख पहुँचानेके लिये वहीं—नरकके दरवाजेपर ही ठहर गये। उस समय उनका हृदय दयासे परिपूर्ण हो रहा था। इतनेहीमें नरकके उस दु:खदायी द्वारपर नाना प्रकार पातकके करनेवाले प्राणियोंको कठोर यातना देते हुए स्वयं धर्मराज उपस्थित हुए। उन्होंने देखा, महान् पुण्यात्मा तथा दयालु राजा जनक विमानपर आरूढ़ हो नरकके दरवाजेपर खड़े हैं। उन्हें देखकर प्रेतराज हँस पड़े और बोले—'राजन्! तुम तो समस्त धर्मात्माओंके शिरोमणि हो, भला तुम यहाँ कैसे आये? यह स्थान तो प्राणियोंकी हिंसा करनेवाले पापाचारी एवं दुष्टात्मा जीवोंके लिये है। यहाँ तुम्हारे समान पुण्यात्मा पुरुष नहीं आते। यहाँ उन्हीं मनुष्योंका आगमन होता है, जो अन्य प्राणियोंसे द्रोह करते, दूसरोंपर कलंक लगाते तथा औरोंका धन लूट-खसोटकर जीविका चलाते हैं। जो अपनी सेवामें लगी हुई धर्म-परायणा पत्नीको बिना किसी अपराधके त्याग देता है, उसको भी यहाँ आना पड़ता है। जो धनके लालचमें फँसकर मित्रके साथ धोखा करता है, वह मनुष्य यहाँ आकर मेरे हाथसे भयंकर यातना प्राप्त करता है। जो मूढ़चित्त मानव दम्भ, द्वेष अथवा उपहासवश मन, वाणी एवं क्रियाद्वारा कभी भगवान् श्रीरामका स्मरण नहीं करता, उसे बाँधकर मैं नरकोंमें डाल देता हूँ और अच्छी तरह पकाता हूँ। जिन्होंने नरकके कष्टका निवारण करनेवाले रमानाथ भगवान् श्रीविष्णुका स्मरण किया है, वे मेरे स्थानको छोड़कर बहुत शीघ्र वैकुण्ठधामको प्राप्त होते हैं। मनुष्योंके शरीरमें तभीतक पाप ठहर पाता है, जबतक कि वे अपनी जिह्वासे श्रीराम-नामका उच्चारण नहीं करते।* महामते! जो बड़े-बड़े पापोंका आचरण करनेवाले हैं, उन्हीं लोगोंको मेरे दूत यहाँ ले आते हैं! तुम्हारे-जैसे पुण्यात्माओंकी ओर तो वे देख ही नहीं सकते; अत: महाराज! यहाँसे जाओ और अनेक प्रकारके दिव्य भोगोंका उपभोग करो। इस श्रेष्ठ विमानपर आरूढ़ होकर अपने उपार्जित किये हुए पुण्यको भोगो।'

जनकने कहा—'नाथ! मुझे इन दु:खी जीवोंपर दया आती है, अत: इन्हें छोड़कर मैं नहीं जा सकता। मेरे शरीरकी वायुका स्पर्श पाकर इन लोगोंको सुख मिल रहा है। धर्मराज! यदि आप नरकमें पड़े हुए इन सभी प्राणियोंको छोड़ दें, तो मैं पुण्यात्माओंके निवासस्थान स्वर्गको सुखपूर्वक जा सकता हूँ।'

धर्मराज बोले—'राजन्! [यह जो तुम्हारे सामने खड़ा है] इस पापीने अपने मित्रकी पत्नीके साथ, जो इसके ऊपर पूर्ण विश्वास करती थी, बलात्कार किया है; इसलिये मैंने इसे लोहशंकु नामक नरकमें डालकर दस हजार वर्षोंतक पकाया है। इसके पश्चात् इसे सूअरकी योनिमें डालकर अन्तमें मनुष्यके शरीरमें उत्पन्न करना है। मनुष्य-योनिमें यह नपुंसक होगा। इस दूसरे पापीने अनेकों बार बलपूर्वक परायी स्त्रियोंका आलिंगन किया है; इसलिये यह सौ वर्षोंतक रौरव नरकमें पकाया जायगा और यह जो पापी खड़ा है, यह बड़ी नीच बुद्धिका है। इसने दूसरोंका धन चुराकर स्वयं भोगा है; इसलिये इसके दोनों हाथ काटकर मैं इसे पूयशोणित नामक नरकमें पकाऊँगा। इसने सायंकालके समय

* यो रामं मनसा वाचा कर्मणा दम्भतोऽपि वा। द्वेषाद्वा चोपहासाद्वा न स्मरत्येव मूढधी:॥
तं बध्नामि पुनस्त्वेषु निक्षिप्य श्रपयामि च। यै: स्मृतो वै रमानाथो नरकक्लेशवारक:॥
ते मत्स्थानं विहायाशु वैकुण्ठाख्यं प्रयान्त्यहो। तावत्पापं मनुष्याणामङ्गेषु नृप तिष्ठति॥
यावद्रामं रसनया न गृह्णाति सुदुर्मति:॥
(३०। ४८—५१)

भूखसे पीड़ित हो घरपर आये हुए अतिथिका वचनद्वारा भी स्वागत-सत्कार नहीं किया है; अतः इसे अन्धकारसे भरे हुए तामिस्र नामक नरकमें गिराना उचित है। वहाँ भ्रमरोंसे पीड़ित होकर यह सौ वर्षोंतक यातना भोगे। यह पापी उच्च स्वरसे दूसरोंकी निन्दा करते हुए कभी लज्जित नहीं हुआ है तथा उसने भी कान लगा-लगाकर अनेकों बार दूसरोंकी निन्दा सुनी है; अतः ये दोनों पापी अन्धकूपमें पड़कर दुःख-पर-दुःख उठा रहे हैं। यह जो अत्यन्त उद्विग्न दिखायी दे रहा है, मित्रोंसे द्रोह करनेवाला है, इसीलिये इसे रौरव नरकमें पकाया जाता है। नरश्रेष्ठ! इन सभी पापियोंको इनके पापोंका भोग कराकर छुटकारा दूँगा। अतः तुम उत्तम लोकोंमें जाओ; क्योंकि तुमने पुण्य-राशिका उपार्जन किया है।

जनकने पूछा—'धर्मराज! इन दुःखी जीवोंका नरकसे उद्धार कैसे होगा? आप वह उपाय बतावें, जिसका अनुष्ठान करनेसे इन्हें सुख मिले।

धर्मराज बोले—'महाराज! इन्होंने कभी भगवान् विष्णुकी आराधना नहीं की, उनकी कथा नहीं सुनी, फिर इन पापियोंको नरकसे छुटकारा कैसे मिल सकता है! इन्होंने बड़े-बड़े पाप किये हैं तो भी यदि तुम इन्हें छुड़ाना चाहते हो तो अपना पुण्य अर्पण करो। कौन-सा पुण्य? सो मैं बतलाता हूँ। एक दिन प्रातःकाल उठकर तुमने शुद्ध चित्तसे श्रीरघुनाथजीका ध्यान किया था, जिनका नाम महान् पापोंका भी नाश करनेवाला है। नरश्रेष्ठ! उस दिन तुमने जो अकस्मात् 'राम-राम' का उच्चारण किया था, उसीका पुण्य इन पापियोंको दे डालो; जिससे इनका नरकसे उद्धार हो जाय।'

जाबालि कहते हैं—महाराज! बुद्धिमान् धर्मराजके उपर्युक्त वचन सुनकर राजा जनकने अपने जीवनभरका कमाया हुआ पुण्य उन पापियोंको दे डाला। उनके संकल्प करते ही नरकमें पड़े हुए जीव तत्क्षण वहाँसे मुक्त हो गये और दिव्य शरीर धारण करके जनकसे बोले—'राजन्! आपकी कृपासे हमलोग एक ही क्षणमें इस दुःखदायी नरकसे छुटकारा पा गये, अब हम परमधामको जा रहे हैं।' राजा जनक सम्पूर्ण प्राणियों-पर दया करनेवाले थे; उन्होंने नरकसे निकले हुए प्राणियोंका सूर्यके समान तेजस्वी रूप देखकर मन-ही-मन बड़े सन्तोषका अनुभव किया। वे सभी प्राणी दयासागर महाराज जनककी प्रशंसा करते हुए दिव्य लोकको चले गये। नरकस्थ प्राणियोंके चले जानेपर राजा जनकने सम्पूर्ण धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ यमराजसे प्रश्न किया।

राजाने कहा—धर्मराज! आपने कहा था कि पाप करनेवाले मनुष्य ही आपके स्थानपर आते हैं, धार्मिक चर्चामें लगे रहनेवाले जीवोंका यहाँ आगमन नहीं होता। ऐसी दशामें मेरा यहाँ किस पापके कारण आना हुआ है? आप धर्मात्मा हैं; इसलिये मेरे पापका समस्त कारण आरम्भसे ही बतावें।

धर्मराज बोले—राजन्! तुम्हारा पुण्य बहुत बड़ा है। इस पृथ्वीपर तुम्हारे समान पुण्य किसीका नहीं है। तुम श्रीरघुनाथजीके युगलचरणारविन्दोंका मकरन्द पान करनेवाले भ्रमर हो। तुम्हारी कीर्तिमयी गंगा मलसे भरे हुए समस्त पापियोंको पवित्र कर देती है। वह अत्यन्त आनन्द प्रदान करनेवाली और दुष्टोंको तारनेवाली है। तथापि तुम्हारा एक छोटा-सा पाप भी है, जिसके कारण तुम पुण्यसे भरे होनेपर भी संयमनीपुरीके पास आये हो। एक समयकी बात है—एक गाय कहीं चर रही थी, तुमने पहुँचकर उसके चरनेमें रुकावट डाल दी। उसी पापका यह फल है कि तुम्हें नरकका दरवाजा देखना पड़ा है। इस समय तुम उससे छुटकारा पा गये तथा तुम्हारा पुण्य पहलेसे बहुत बढ़ गया; अतः अपने पुण्यद्वारा उपार्जित नाना प्रकारके उत्तम भोगोंका उपभोग करो। श्रीरघुनाथजी करुणाके सागर हैं। उन्होंने इन दुःखी जीवोंका दुःख दूर करनेके लिये ही संयमनीके इस महामार्गमें तुम-जैसे वैष्णवको भेज दिया है। सुव्रत! यदि तुम इस मार्गसे नहीं आते तो इन बेचारोंका नरकसे उद्धार कैसे होता! महामते! दूसरोंके दुःखसे दुःखी होनेवाले तुम्हारे-जैसे दया-धाम महात्मा आर्त प्राणियोंका दुःख दूर करते ही हैं।

जाबालि कहते हैं—ऐसा कहते हुए यमराजको प्रणाम करके राजा जनक परमधामको चले गये।

इसलिये नृपश्रेष्ठ! तुम गौकी पूजा करो; वह सन्तुष्ट होनेपर तुम्हें शीघ्र ही धर्मपरायण पुत्र देगी।

सुमति कहते हैं—सुमित्रानन्दन! जाबालिके मुँहसे धेनु-पूजाकी बात सुनकर राजा ऋतम्भरने आदरपूर्वक पूछा—'मुने! गौकी किस प्रकार यत्नपूर्वक पूजा करनी चाहिये? पूजा करनेसे वह मनुष्यको कैसा बना देती है?' तब जाबालिने विधिके अनुसार धेनु-पूजाका इस प्रकार वर्णन किया—'राजन्! गो-सेवाका व्रत लेनेवाला पुरुष प्रतिदिन गौको चरानेके लिये जंगलमें जाय। गायको यव खिलाकर उसके गोबरमें जो यव आ जायँ, उनका संग्रह करे। पुत्रकी इच्छा रखनेवाले पुरुषके लिये उन्हीं यवोंको भक्षण करनेका विधान है। जब गौ जल पीये तभी उसको भी पवित्र जल पीना चाहिये। जब वह ऊँचे स्थानमें रहे तो उसको उससे नीचे स्थानमें रहना चाहिये, प्रतिदिन गौके शरीरसे डाँस और मच्छरोंको हटावे और स्वयं ही उसके खानेके लिये घास ले आवे। इस प्रकार सेवामें लगे रहनेपर गौ तुम्हें धर्मपरायण पुत्र प्रदान करेगी।'

जाबालि मुनिकी यह बात सुनकर राजा ऋतम्भरने श्रीरघुनाथजीका स्मरण किया और शुद्धचित्त होकर व्रतका पालन आरम्भ किया। वे पहले बताये अनुसार धेनुकी रक्षा करते हुए उसे चरानेके लिये प्रतिदिन महान् वनमें जाया करते थे। श्रीरामचन्द्रजीके नामका स्मरण करना और सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें लगे रहना—यही उनका प्रतिदिनका कार्य था। उनकी सेवासे सन्तुष्ट होकर सुरभिने कहा—'राजन्! तुम अपने हार्दिक अभिप्रायके अनुसार मुझसे कोई वर माँगो, जो तुम्हारे मनको प्रिय लगे।' तब राजा बोले—'देवि! मुझे ऐसा पुत्र दो, जो परम सुन्दर, श्रीरघुनाथजीका भक्त, पिताका सेवक तथा अपने धर्मका पालन करनेवाला हो।' पुत्रकी इच्छा रखनेवाले राजाको मनोवांछित वरदान देकर दयामयी देवी कामधेनु वहाँसे अन्तर्धान हो गयीं। समय आनेपर राजाको पुत्रकी प्राप्ति हुई, जो परम वैष्णव—श्रीरामचन्द्रजीका सेवक हुआ। पिताने उसका नाम सत्यवान् रखा। सत्यवान् बड़े ही पितृभक्त और इन्द्रके समान पराक्रमी हुए। उनको पुत्रके रूपमें पाकर राजा ऋतम्भरको बड़ी प्रसन्नता हुई। अपने पुत्रको धार्मिक जानकर राजा हर्षमें मग्न रहते थे। वे राज्यका भार सत्यवान्को ही सौंप स्वयं तपस्याके लिये वनमें चले गये। वहाँ भक्तिपूर्ण हृदयसे भगवान् हृषीकेशकी आराधना करके वे निष्पाप हो गये और शरीरसहित भगवद्धामको प्राप्त हुए।

शत्रुघ्नजी! ऋतम्भरके चले जानेपर राजा सत्यवान्ने भी अपने धर्मके अनुष्ठानसे लोकनाथ श्रीरघुनाथजीको सन्तुष्ट किया। भगवान् रमानाथने प्रसन्न होकर सत्यवान्को अपने चरणकमलोंमें अविचल भक्ति प्रदान की, जो यज्ञ करनेवाले पुरुषोंके लिये करोड़ों पुण्योंके द्वारा भी दुर्लभ है। वे प्रतिदिन सुस्थिर चित्तसे सम्पूर्ण लोकोंको पवित्र करनेवाली श्रीरघुनाथजीकी कथाका आयोजन करते हैं। उनके हृदयमें सबके प्रति दया भरी हुई है। जो लोग रमानाथ श्रीरघुनाथजीका पूजन नहीं करते, उनको वे इतना कठोर दण्ड देते हैं, जो यमराजके लिये भी भयंकर है। आठ वर्षके बाद अस्सी वर्षकी अवस्था होनेतक सभी मनुष्योंसे वे एकादशीका व्रत कराया करते हैं। तुलसीकी सेवा उन्हें बड़ी प्रिय है। लक्ष्मीपतिके चरणकमलोंमें चढ़ी हुई उत्तम माला उनके गलेसे कभी दूर नहीं होती है [अपनी भक्तिके कारण] वे ऋषियोंके भी पूजनीय हो गये हैं, फिर औरोंके लिये क्यों न होंगे। श्रीरघुनाथजीके स्मरणसे तथा उनके प्रति प्रेम करनेसे राजा सत्यवान्के सारे पाप धुल गये हैं, सम्पूर्ण अमंगल नष्ट हो गये हैं। ये श्रीरामचन्द्रजीके अद्‌भुत अश्वको पहचानकर यहाँ आयेंगे और तुम्हें अपना यह अकण्टक राज्य समर्पित करेंगे। राजन्! जिसके विषयमें तुमने पूछा था, वह उत्तम प्रसंग मैंने तुमको सुना दिया।

शेषजी कहते हैं—तदनन्तर नाना प्रकारके आश्चर्योंसे युक्त वह यज्ञसम्बन्धी अश्व राजा सत्यवान्के नगरमें प्रविष्ट हुआ। उसे देखकर वहाँकी सारी जनताने राजाके पास जा निवेदन किया—'महाराज! भगवान् श्रीरामका अश्व इस नगरके मध्यसे होकर आ रहा है। शत्रुघ्न उसके रक्षक हैं।' 'राम' यह दो अक्षरोंका

अत्यन्त मनोरम नाम सुनकर सत्यवान्‌के हृदयमें बड़ी प्रसन्नता हुई। उनकी वाणी गद्‌गद हो गयी। वे कहने लगे—'जिन भगवान् श्रीरामको मैं सदा अपने हृदयमें धारण करता हूँ, मनमें चिन्तन करता हूँ, उन्हींका अश्व शत्रुघ्नजीके साथ मेरे नगरमें आया है। उसके पास श्रीरामके चरणोंकी सेवा करनेवाले हनुमान्‌जी भी होंगे, जो कभी भी श्रीरघुनाथजीको अपने मनसे नहीं बिसारते। जहाँ शत्रुघ्न हैं, जहाँ वायुनन्दन हनुमान्‌जी हैं तथा जहाँ श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंकी सेवामें रहनेवाले अन्य लोग मौजूद हैं, वहीं मैं भी जाता हूँ।' उन्होंने मन्त्रीको आज्ञा दी—'तुम समूचे राज्यका बहुमूल्य धन लेकर शीघ्र ही मेरे साथ आओ। मैं श्रीरघुनाथजीके श्रेष्ठ अश्वकी रक्षा अथवा श्रीरामचरणोंकी सुदुर्लभ सेवा करनेके लिये जाऊँगा।' यह कहकर वे सैनिकोंके साथ शत्रुघ्नके पास चल दिये। इतनेहीमें श्रीरामके छोटे भाई शत्रुघ्न भी राजधानीमें आ पहुँचे। राजा सत्यवान् मन्त्रियोंके साथ उनके पास आये और चरणोंमें पड़कर उन्हें अपना समृद्धिशाली राज्य अर्पण कर दिया। शत्रुघ्नने राजा सत्यवान्‌को श्रीरामभक्त जानकर उनका विशाल राज्य उन्हींके पुत्रको, जिसका नाम रुक्म था, दे दिया। सत्यवान् हनुमान्‌जीसे मिलनेके पश्चात् श्रीरामसेवक सुबाहुसे मिले तथा और भी जितने राम-भक्त वहाँ पधारे थे, उन सबको हृदयसे लगाकर उन्होंने अपने-आपको कृतार्थ माना। फिर शत्रुघ्नजीके साथ होकर वे मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए। इतनेहीमें वीर पुरुषोंद्वारा सुरक्षित वह अश्व दूर निकल गया; अतः शूरवीरोंसे घिरे हुए शत्रुघ्नजी भी राजा सत्यवान्‌को साथ लेकर वहाँसे चल दिये।

शत्रुघ्नके द्वारा विद्युन्माली और उग्रदंष्ट्रका वध तथा उसके द्वारा चुराये हुए अश्वकी प्राप्ति

शेषजी कहते हैं—मुनिवर! रथियोंमें श्रेष्ठ शत्रुघ्न आदि बहुसंख्यक राजे-महाराजे करोड़ों रथोंके साथ चले जा रहे थे, इसी समय उस मार्गपर सहसा अत्यन्त भयंकर अन्धकार छा गया; जिसमें बुद्धिमान् पुरुषोंको भी अपने या परायेकी पहचान नहीं हो पाती थी। तदनन्तर पातालनिवासी विद्युन्माली नामक राक्षस निशाचरोंके समुदायसे घिरा हुआ वहाँ आया। वह रावणका हितैषी सुहृद् था। उसने घोड़ेको चुरा लिया। फिर तो दो ही घड़ीके पश्चात् वह सारा अन्धकार नष्ट हो गया। आकाश स्वच्छ दिखायी देने लगा। शत्रुघ्न आदि वीरोंने एक-दूसरेसे पूछा—'घोड़ा कहाँ है?' उस अश्वराजके विषयमें परस्पर पूछ-ताछ करते हुए वे सब लोग कहने लगे—'अश्वमेधका अश्व कहाँ है? किस दुर्बुद्धिने उसका अपहरण किया है?' वे इस प्रकार कह ही रहे थे कि राक्षसराज विद्युन्माली अपने समस्त योद्धाओंके साथ दिखायी दिया। उसके योद्धा रथपर विराजमान हो अपने शौर्यसे शोभा पा रहे थे। विद्युन्माली स्वयं एक श्रेष्ठ विमानपर बैठा था और प्रधान-प्रधान राक्षस उसे चारों ओरसे घेरकर खड़े थे। उन राक्षसोंके मुख दूषित एवं विकराल थे, दाढ़ें लम्बी थीं और आकृति बड़ी भयानक थी। वे ऐसे दिखायी दे रहे थे, मानो शत्रुघ्नकी सेनाको निगल जानेके लिये तैयार हों। तब सैनिकोंने राजाओंमें श्रेष्ठ शत्रुघ्नसे निवेदन किया—'राजन्! एक राक्षसने घोड़ेको पकड़ लिया है, अब आपको जैसा उचित जान पड़े वैसा कीजिये।' उनकी बात सुनकर शत्रुघ्न अत्यन्त रोषमें भर गये और बोले—'कौन ऐसा पराक्रमी राक्षस है, जिसने मेरे घोड़ेको पकड़ रखा है?' फिर वे मन्त्रीसे बोले—'मन्त्रिवर! बताओ, इस राक्षससे लोहा लेनेके लिये किन-किन वीरोंको नियुक्त करना चाहिये, जो उसका वध करनेके लिये उत्साह रखनेवाले, अत्यन्त शूर, महान् शस्त्र धारण करनेवाले तथा प्रधान अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हों।'

सुमतिने कहा—हमारी सेनामें कुमार पुष्कल महान् वीर, अस्त्र-शस्त्रोंके ज्ञाता और शत्रुओंको ताप देनेवाले हैं; अतः ये ही विजयके लिये उद्यत हो युद्धमें उस राक्षसको जीतनेके लिये जायँ। इनके सिवा

लक्ष्मीनिधि, हनुमान्‌जी तथा अन्य योद्धा भी युद्धके लिये प्रस्थित हों। वीरोंमें अग्रगण्य अमात्य सुमतिके ऐसा कहनेपर शत्रुघ्नने संग्रामकुशल वीर योद्धाओंसे कहा—'सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंमें प्रवीण पुष्कल आदि जो-जो वीर यहाँ उपस्थित हैं, वे राक्षसको मारनेके विषयमें मेरे सामने कोई प्रतिज्ञा करें।'

पुष्कल बोले—राजन्! मेरी प्रतिज्ञा सुनिये, मैं अपने पराक्रमके भरोसे सब लोगोंके सुनते हुए यह अद्‌भुत प्रतिज्ञा कर रहा हूँ। यदि मैं अपने धनुषसे छूटे हुए बाणोंकी तीखी धारसे उस दैत्यको मूर्च्छित न कर दूँ—मुखपर बाल छितराये यदि वह धरतीपर न पड़ जाय, यदि उसके महाबली सैनिक मेरे बाणोंसे छिन्न-भिन्न होकर धराशायी न हो जायँ तथा यदि मैं अपनी बात सच्ची करके न दिखा सकूँ तो मुझे वही पाप लगे, जो विष्णु और शिवमें तथा शिव और शक्तिमें भेद-दृष्टि रखनेवालेको लगता है। श्रीरघुनाथजीके चरणकमलोंमें मेरी निश्चल भक्ति है, वही मेरी कही हुई सब बातें सत्य करेगी।

पुष्कलकी प्रतिज्ञा सुनकर युद्धकुशल हनुमान्‌जीने श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंका स्मरण करते हुए यह कल्याणमय वचन कहा—'योगीजन अपने हृदयमें नित्य-निरन्तर जिनका ध्यान किया करते हैं, देवता और असुर भी अपना मुकुटमण्डित मस्तक झुकाकर जिनके चरणोंमें प्रणाम करते हैं तथा बड़े-बड़े लोकेश्वर जिनकी पूजा करते हैं, वे अयोध्याके अधिनायक भगवान् श्रीरामचन्द्रजी मेरे स्वामी हैं। मैं उनका स्मरण करके जो कुछ कहता हूँ, वह सब सत्य होगा। राजन्! अपनी इच्छाके अनुसार चलनेवाले विमानपर बैठा हुआ यह दुर्बल एवं तुच्छ दैत्य किस गिनतीमें है! शीघ्र आज्ञा दीजिये, मैं अकेला ही इसे मार गिराऊँगा। राजा श्रीरघुनाथजी तथा महारानी जनककिशोरीकी कृपासे इस पृथ्वीपर कोई ऐसा कार्य नहीं है, जो मेरे लिये कभी भी असाध्य हो। यदि मेरी कही हुई यह बात झूठी हो तो मैं तत्काल श्रीरामचन्द्रजीकी भक्तिसे दूर हो जाऊँ। यदि मैं अपनी बात झूठी कर दूँ, तो मुझे वही पाप लगे, जो काममोहित शूद्रको मोहवश ब्राह्मणीके साथ समागम करनेसे लगता है। जिसको सूँघनेसे मनुष्य नरकमें पड़ता है, जिसका स्पर्श करनेसे रौरव नरककी यातना भोगनी पड़ती है, उस मदिराका जो पुरुष जिह्वाके स्वादके वशीभूत होकर लोलुपतावश पान करता है, उसको जो पाप होता है वह मुझे ही लगे, यदि मैं श्रीरामजीकी कृपाके बलसे अपनी प्रतिज्ञाको सत्य न कर सकूँ तो निश्चय ही उपर्युक्त पापोंका भागी होऊँ।'

उनके ऐसा कहनेपर दूसरे-दूसरे महावीर योद्धाओंने आवेशमें आकर अपने-अपने पराक्रमसे शोभा पानेवाली बड़ी-बड़ी प्रतिज्ञाएँ कीं। उस समय शत्रुघ्नने भी उन युद्धविशारद वीरोंको साधुवाद देकर उनकी प्रशंसा की और सबके देखते-देखते प्रतिज्ञा करते हुए कहा—'वीरो! अब मैं तुमलोगोंके सामने अपनी प्रतिज्ञा बता रहा हूँ। यदि मैं उसके मस्तकको अपने सायकोंसे काटकर, छिन्न-भिन्न करके धड़ और विमानसे नीचे पृथ्वीपर न गिरा दूँ। तो आज निश्चय ही मुझे वह पाप लगे, जो झूठी गवाही देने, सुवर्ण चुराने और ब्राह्मणकी निन्दा करनेसे लगता है।'

शत्रुघ्नके ये वचन सुनकर वीर-पूजित योद्धा कहने लगे—'श्रीरघुनाथजीके अनुज! आप धन्य हैं। आपके सिवा दूसरा कौन ऐसी प्रतिज्ञा कर सकता है। यह दुष्ट राक्षस क्या चीज है! इसका तुच्छ बल किस गिनतीमें है! महामते! आप एक ही क्षणमें इसका नाश कर डालेंगे।' ऐसा कहकर वे महावीर योद्धा अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित हो गये और अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनेके लिये युद्धके मैदानमें उस राक्षसकी ओर प्रसन्नतापूर्वक चले। वह इच्छानुसार चलनेवाले विमानपर बैठा था। पुष्कल आदि वीरोंको उपस्थित देख उस राक्षसने कहा—'अरे! राम कहाँ है? मेरे सखा रावणको मारकर वह कहाँ चला गया है? आज उसको और उसके भाईको भी मारकर उन दोनोंके कण्ठसे निकलती हुई रक्तकी धाराका पान करूँगा और इस प्रकार रावण-वधका बदला चुकाऊँगा।'

पुष्कलने कहा—दुर्बुद्धि निशाचर! क्यों इतनी

शेखी बघार रहा है? अच्छे योद्धा संग्राममें डींग नहीं हाँकते, अपने अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करके पराक्रम दिखाते हैं। जिन्होंने सुहृद्, सेना और सवारियोंसहित रावणका संहार किया है, उन भगवान् श्रीरामके अश्वको लेकर तू कहाँ जा सकता है?

शेषजी कहते हैं—युद्धमें उन्मत्त होकर लड़नेवाले वीर पुष्कलको ऐसी बातें करते देख राक्षसराज विद्युन्मालीने उनकी छातीको लक्ष्य करके बड़े वेगसे शक्तिका प्रहार किया। उसे आती देख पुष्कलने तेज धारवाले तीखे बाणोंसे उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले तथा अपने धनुषपर बहुत-से बाणोंका सन्धान किया, जो बड़े ही तीक्ष्ण और मनके समान वेगशाली थे। वे बाण राक्षसकी छातीमें लगकर तुरंत ही रक्तकी धारा बहाने लगे; पुष्कलके बाणप्रहारसे राक्षसपर मोह छा गया, उसके मस्तिष्कमें चक्कर आने लगा तथा वह अचेत होकर अपने कामग विमानसे धरतीपर गिर पड़ा। विद्युन्मालीका छोटा भाई उग्रदंष्ट्र वहाँ मौजूद था। उसने अपने बड़े भाईको जब गिरते देखा तो उसे पकड़ लिया और पुनः विमानके भीतर ही पहुँचा दिया; क्योंकि विमानके बाहर उसे शत्रुकी ओरसे अनिष्ट प्राप्त होनेकी आशंका थी। उसने बलवानोंमें श्रेष्ठ पुष्कलसे बड़े रोषके साथ कहा—'दुर्मते! मेरे भाईको गिराकर अब तू कहाँ जायगा।' पुष्कलके नेत्र भी क्रोधसे लाल हो उठे थे। उग्रदंष्ट्र उपर्युक्त बातें कह ही रहा था कि उन्होंने दस बाणोंसे उस दुष्टकी छातीमें वेगपूर्वक प्रहार किया। उनकी चोटसे व्यथित होकर दैत्यने एक जलता हुआ त्रिशूल हाथमें लिया, जिससे अग्निकी तीन शिखाएँ उठ रही थीं। महावीर पुष्कलके हृदयमें वह भयंकर त्रिशूल लगा और वे गहरी मूर्च्छाको प्राप्त हो रथपर गिर पड़े। पुष्कलको मूर्च्छित जानकर पवननन्दन हनुमान्जी मन-ही-मन क्रोधसे अस्थिर हो उठे और उस राक्षससे बोले—'दुर्बुद्धे! मैं युद्धके लिये उपस्थित हूँ, मेरे रहते तू कहाँ जा सकता है? तू घोड़ेका चोर है और सामने आ गया है, अतः मैं लातोंसे मारकर तेरे प्राण ले लूँगा।' ऐसा कहकर हनुमान्जी आकाशमें स्थित हो गये और विमानपर बैठे हुए शत्रुपक्षके योद्धा महान् दैत्योंको नखोंसे विदीर्ण करके मौतके घाट उतारने लगे। किन्हींको पूँछसे मार डाला, किन्हींको पैरोंसे कुचल डाला तथा कितनोंको उन्होंने दोनों हाथोंसे चीर डाला। जहाँ-जहाँ वह विमान जाता था, वहीं-वहीं वायुनन्दन हनुमान्जी इच्छानुसार रूप धारण करके प्रहार करते हुए ही दिखायी देते थे। इस प्रकार जब विमानपर बैठे हुए बड़े-बड़े योद्धा व्याकुल हो गये तब दैत्यराज उग्रदंष्ट्रने हनुमान्जीपर आक्रमण किया। उस दुर्बुद्धिने प्रज्वलित अग्निके समान कान्ति धारण करनेवाले अत्यन्त तीखे त्रिशूलसे उनके ऊपर प्रहार किया; परन्तु महाबली हनुमान्जीने अपने पास आये हुए उस त्रिशूलको अपने मुँहमें ले लिया। यद्यपि वह सारा-का-सारा लोहेका बना हुआ था, तथापि उसे दाँतोंसे चबाकर उन्होंने चूर्ण कर डाला तथा उस दैत्यको कई तमाचे जड़ दिये। उनके थप्पड़ोंकी मार खाकर राक्षसको बड़ी पीड़ा हुई और उसने सम्पूर्ण लोकोंमें भय उत्पन्न करनेवाली मायाका प्रयोग किया। उस समय चारों ओर घोर अन्धकार छा गया, जिसमें कोई भी दिखायी नहीं देता था। इतने बड़े जनसमुदायमें वहाँ अपना या पराया कोई भी किसीको पहचान नहीं पाता था। चारों ओर नंगे, कुरूप, उग्र एवं भयंकर दैत्य दिखायी देते थे। उनके बाल बिखरे हुए थे और मुख विकराल प्रतीत होते थे। उस समय सब लोग व्याकुल हो गये, सबको एक-दूसरेसे भय होने लगा। सभी यह समझकर कि कोई महान् उत्पात आया हुआ है, वहाँसे भागने लगे। तब महायशस्वी शत्रुघ्नजी रथपर बैठकर वहाँ आये और भगवान् श्रीरामका स्मरण करके उन्होंने अपने धनुषपर बाणोंका सन्धान किया। वे बड़े पराक्रमी थे। उन्होंने मोहनास्त्रके द्वारा राक्षसी मायाका नाश कर दिया और आकाशमें उस असुरको लक्ष्य करके बाणोंकी बौछार आरम्भ कर दी। उस समय सारी दिशाएँ प्रकाशमय हो गयीं, सूर्यके चारों ओर पड़ा हुआ घेरा निवृत्त हो गया। सुवर्णमय पंखसे शोभा पानेवाले लाखों बाण उस राक्षसके विमानपर पड़ने लगे। कुछ ही देरमें वह विमान टूटकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। वह इतना

ऊँचा दिखायी देता था, मानो अमरावतीपुरीका एक भाग ही टूटकर भूतलके एक स्थानमें पड़ा हो। तब उस दैत्यको बड़ा क्रोध हुआ और उसने अपने धनुषपर अनेकों बाणोंका सन्धान किया तथा रामभ्राता शत्रुघ्नको उन बाणोंका निशाना बनाकर बड़ी विकट गर्जना की। शत्रुघ्न बड़े शक्तिशाली थे, उन्होंने अपने धनुषपर वायव्यास्त्रका प्रयोग किया, जो राक्षसोंको कँपा देनेवाला था। उस अस्त्रकी मार खाकर व्योमचारी भूत-बेताल मस्तकके बाल छितराये आकाशसे पृथ्वीपर गिरते दिखायी देने लगे। रामभ्राता शत्रुघ्नके उस अस्त्रको देखकर राक्षसकुमारने अपने धनुषपर पाशुपतास्त्रका प्रयोग किया। समस्त वीरोंका विनाश करनेवाले उस अस्त्रको चारों ओर फैलते देखकर उसका निवारण करनेके लिये शत्रुघ्नने नारायण नामक अस्त्र छोड़ा। नारायणास्त्रने एक ही क्षणमें शत्रुपक्षके सभी अस्त्रोंको शान्त कर दिया। निशाचरोंके छोड़े हुए सभी बाण विलीन हो गये। तब विद्युन्मालीने क्रोधमें भरकर शत्रुघ्नको मारनेके लिये एक तीक्ष्ण एवं भयंकर त्रिशूल हाथमें लिया। उसे शूल हाथमें लिये आते देख शत्रुघ्नने अर्धचन्द्राकार बाणसे उसकी भुजा काट डाली। फिर कुण्डलोंसहित उसके मस्तकको भी धड़से अलग कर दिया। भाईका मस्तक कट गया, यह देखकर प्रतापी उग्रदंष्ट्रने शूरवीरोंद्वारा सेवित शत्रुघ्नको मुक्केसे मारना आरम्भ किया। किन्तु शत्रुघ्नने क्षुरप्र नामक सायकसे उसका भी मस्तक उड़ा दिया। तदनन्तर मरनेसे बचे हुए सभी राक्षस अनाथ हो गये; इसलिये उन्होंने शत्रुघ्नके चरणोंमें पड़कर वह यज्ञका घोड़ा उन्हें अर्पण कर दिया। फिर तो विजयके उपलक्ष्यमें वीणा झंकृत होने लगी; सब ओर शंख बज उठे तथा शूरवीरोंका मनोहर विजयनाद सुनायी देने लगा।

शत्रुघ्न आदिका घोड़ेसहित आरण्यक मुनिके आश्रमपर जाना, मुनिकी आत्मकथामें रामायणका वर्णन और अयोध्यामें जाकर उनका श्रीरघुनाथजीके स्वरूपमें मिल जाना

शेषजी कहते हैं—राक्षसोंद्वारा अपहरण किये हुए घोड़ेको पाकर पुष्कलसहित राजा शत्रुघ्नको बड़ा हर्ष हुआ। दुर्जय दैत्य विद्युन्मालीके मारे जानेपर समस्त देवता निर्भय हो गये। उन्हें बड़ा सुख मिला। तदनन्तर शत्रुघ्नने उस उत्तम अश्वको छोड़ा। फिर तो वह उत्तर-दिशामें भ्रमण करने लगा। सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंमें प्रवीण श्रेष्ठ रथी, घुड़सवार और पैदल सिपाही उसकी रक्षामें नियुक्त थे। घूमता-घामता वह नर्मदाके तटपर जा पहुँचा, जहाँ बहुत-से ऋषि-महर्षि निवास करते हैं। नर्मदाका जल ऐसा जान पड़ता था, मानो पानीके ब्याजसे नील-रत्नोंका रस ही दिखायी दे रहा हो। वहाँ तटपर उन्होंने एक पुरानी पर्णशाला देखी, जो पलाशके पत्तोंसे बनी हुई थी और नर्मदाकी लहरें उसे अपने जलसे सींच रही थीं। शत्रुघ्नजी सम्पूर्ण धर्म, अर्थ, कर्म और कर्तव्यके ज्ञानमें निपुण थे; उन्होंने सर्वज्ञ एवं नीतिकुशल मन्त्री सुमतिसे पूछा—'मन्त्रिवर! बताओ, यह पवित्र आश्रम किसका है?'

सुमतिने कहा—महाराज! यहाँ एक श्रेष्ठ मुनि रहते हैं, जो सम्पूर्ण शास्त्रोंके विद्वान् हैं; इनका दर्शन करके हमलोगोंके समस्त पाप धुल जायँगे। इसलिये तुम इन्हें प्रणाम करके इन्हींसे पूछो। ये तुम्हें सब कुछ बता देंगे। इनका नाम आरण्यक है, ये श्रीरघुनाथजीके चरणोंके सेवक हैं तथा उनके चरणकमलोंके मकरन्दका आस्वादन करनेके लिये सदा लोलुप बने रहते हैं। इन्होंने बड़ी उग्र तपस्या की है और ये समस्त शास्त्रोंके मर्मज्ञ हैं।

सुमतिका यह धर्मयुक्त वचन सुनकर शत्रुघ्नजी थोड़े-से सेवकोंको साथ ले मुनिका दर्शन करनेके लिये गये। पास जा उन सभी वीरोंने विनीतभावसे मस्तक झुकाकर तापसोंमें श्रेष्ठ आरण्यक मुनिको नमस्कार किया। मुनिने उन सब लोगोंसे पूछा—'आपलोग कहाँ एकत्रित हुए हैं तथा कैसे यहाँ पधारे हैं? ये सब बातें स्पष्टरूपसे बताइये।'

सुमतिने कहा—मुने! ये सब लोग रघुकुल-नरेशके अश्वकी रक्षा कर रहे हैं। वे इस समय सब सामग्रियोंसे युक्त अश्वमेध-यज्ञका अनुष्ठान करनेवाले हैं।

आरण्यक बोले—सब सामग्रियोंको एकत्रित करके भाँति-भाँतिके सुन्दर यज्ञोंका अनुष्ठान करनेसे क्या लाभ? वे तो अत्यन्त अल्प पुण्य प्रदान करनेवाले हैं तथा उनसे क्षणभंगुर फलकी ही प्राप्ति होती है। स्थिर ऐश्वर्यपदको देनेवाले तो एकमात्र रमानाथ भगवान् श्रीरघुवीर ही हैं। जो लोग उन भगवान्को छोड़कर दूसरेकी पूजा करते हैं, वे मूर्ख हैं। जो मनुष्योंके स्मरण करनेमात्रसे पहाड़-जैसे पापोंका भी नाश कर डालते हैं, उन भगवान्को छोड़कर मूढ़ मनुष्य योग, याग और व्रत आदिके द्वारा क्लेश उठाते हैं। सकाम पुरुष अथवा निष्काम योगी भी जिनका अपने हृदयमें चिन्तन करते हैं तथा जो मनुष्योंको मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं, वे भगवान् श्रीराम स्मरण करनेमात्रसे सारे पापोंको दूर कर देते हैं।*

पूर्वकालकी बात है, मैं तत्त्वज्ञानकी इच्छासे ज्ञानी गुरुका अनुसन्धान करता हुआ बहुत-से तीर्थोंमें भ्रमण करता रहा; किन्तु किसीने मुझे भी तत्त्वका उपदेश नहीं दिया। उसी समय एक दिन भाग्यवश मुझे लोमश मुनि मिल गये। वे स्वर्गलोकसे तीर्थयात्राके लिये आये थे। उन महर्षिको प्रणाम करके मैंने पूछा—'स्वामिन्! मैं इस अद्भुत और दुर्लभ मनुष्य-शरीरको पाकर भयंकर भव-सागरके पार जाना चाहता हूँ, ऐसी दशामें मुझे क्या करना चाहिये?' मेरी यह बात सुनकर वे मुनिश्रेष्ठ बोले—'विप्रवर! एकाग्रचित्त होकर पूर्ण श्रद्धाके साथ सुनो, संसार-समुद्रसे तरनेके लिये दान, तीर्थ, व्रत, नियम, यम, योग तथा यज्ञ आदि अनेकों साधन हैं। ये सभी स्वर्ग प्रदान करनेवाले हैं; किन्तु महाभाग! मैं तुमसे एक परम गोपनीय तत्त्वका वर्णन करता हूँ, जो सब पापोंका नाश करनेवाला और संसार-सागरसे पार उतारनेवाला है। नास्तिक और श्रद्धाहीन पुरुषको इसका उपदेश नहीं देना चाहिये। निन्दक, शठ तथा भक्तिसे द्वेष रखनेवाले पुरुषके लिये भी इस तत्त्वका उपदेश करना मना है। जो काम और क्रोधसे रहित हो, जिसका चित्त शान्त हो तथा जो भगवान् श्रीरामका भक्त हो उसीके सामने इस गूढ़ तत्त्वका वर्णन करना चाहिये। यह समस्त दुःखोंका नाश करनेवाला सर्वोत्तम साधन है। श्रीरामसे बड़ा कोई देवता नहीं, श्रीरामसे बढ़कर कोई व्रत नहीं, श्रीरामसे बड़ा कोई योग नहीं तथा श्रीरामसे बढ़कर कोई यज्ञ नहीं है। श्रीरामका स्मरण, जप और पूजन करके मनुष्य परम पदको प्राप्त होता है। उसे इस लोक और परलोककी उत्तम समृद्धि मिलती है। श्रीरघुनाथजी सम्पूर्ण कामनाओं और फलोंके दाता हैं। मनके द्वारा स्मरण और ध्यान करनेपर वे अपनी उत्तम भक्ति प्रदान करते हैं, जो संसार-समुद्रसे तारनेवाली है। चाण्डाल भी

* मूढो लोको हरिं त्यक्त्वा करोत्यन्यसमर्चनम्। रघुवीरं रमानाथं स्थिरैश्वर्यपदप्रदम्॥
यो नरैः स्मृतमात्रोऽसौ हरते पापपर्वतम्। तं मुक्त्वा क्लिश्यते मूढो योगयागव्रतादिभिः॥
सकामैर्योगिभिर्वापि चिन्त्यते कामवर्जितैः। अपवर्गप्रदं नृणां स्मृतमात्राखिलाघहम्॥ (३५। ३१-३२,३४)

श्रीरामका स्मरण करके परमगतिको प्राप्त कर लेता है। फिर तुम्हारे-जैसे वेद-शास्त्रपरायण पुरुषोंके लिये तो कहना ही क्या है? यह सम्पूर्ण वेद और शास्त्रोंका रहस्य है, जिसे मैंने तुमपर प्रकट कर दिया। अब जैसा तुम्हारा विचार हो, वैसा ही करो। एक ही देवता हैं—श्रीराम, एक ही व्रत है—उनका पूजन, एक ही मन्त्र है—उनका नाम, तथा एक ही शास्त्र है—उनकी स्तुति। अतः तुम सब प्रकारसे परममनोहर श्रीरामचन्द्रजीका भजन करो; इससे तुम्हारे लिये यह महान् संसार-सागर गायके खुरके समान तुच्छ हो जायगा।'[१]

महर्षि लोमशका वचन सुनकर मैंने पुनः प्रश्न किया—'मुनिवर! मनुष्योंको भगवान् श्रीरामका ध्यान और पूजन कैसे करना चाहिये?' यह सुनकर उन्होंने स्वयं श्रीरामका ध्यान करते हुए मुझे सब बातें बतायीं—'साधकको इस प्रकार ध्यान करना चाहिये; रमणीय अयोध्या नगरी परम चित्र-विचित्र मण्डपोंसे शोभा पा रही है। उसके भीतर एक कल्पवृक्ष है, जिसके मूलभागमें परम मनोहर सिंहासन विराजमान है। वह सिंहासन बहुमूल्य मरकतमणि, सुवर्ण तथा नीलमणि आदिसे सुशोभित है और अपनी कान्तिसे गहन अन्धकारका नाश कर रहा है। वह सब प्रकारकी मनोभिलषित समृद्धियोंको देनेवाला है। उसके ऊपर भक्तोंका मन मोहनेवाले श्रीरघुनाथजी बैठे हुए हैं। उनका दिव्य विग्रह दूर्वादलके समान श्याम है, जो देवराज इन्द्रके द्वारा पूजित होता है। भगवान्का सुन्दर मुख अपनी शोभासे राकाके पूर्ण चन्द्रकी कमनीय कान्तिको भी तिरस्कृत कर रहा है। उनका तेजस्वी ललाट अष्टमीके अर्धचन्द्रकी सुषमा धारण करता है। मस्तकपर काले-काले घुँघराले केश शोभा पा रहे हैं। मुकुटकी मणियोंसे उनका मुखमण्डल उद्भासित हो रहा है। कानोंमें पहने हुए मकराकार कुण्डल अपने सौन्दर्यसे भगवान्की शोभा बढ़ा रहे हैं। मूँगेके समान सुन्दर कान्ति धारण करनेवाले लाल-लाल ओठ बड़े मनोहर जान पड़ते हैं। चन्द्रमाकी किरणोंसे होड़ लगानेवाली दन्तपंक्तियों तथा जपा-पुष्पके समान रंगवाली जिह्वाके कारण उनके श्रीमुखका सौन्दर्य और भी बढ़ गया है। शंखके आकारवाला कमनीय कण्ठ, जिसमें ऋक् आदि चारों वेद तथा सम्पूर्ण शास्त्र निवास करते हैं, उनके श्रीविग्रहको सुशोभित कर रहा है। श्रीरघुनाथजी सिंहके समान ऊँचे और मांसल कंधेवाले हैं। वे केयूर एवं कड़ोंसे विभूषित विशाल भुजाएँ धारण किये हुए हैं। उनकी दोनों बाँहें अंगूठीमें जड़े हुए हीरेकी शोभासे देदीप्यमान और घुटनोंतक लंबी हैं। विस्तृत वक्षःस्थल लक्ष्मीके निवाससे शोभा पा रहा है। श्रीवत्स आदि चिह्नोंसे अंकित होनेके कारण भगवान् अत्यन्त मनोहर जान पड़ते हैं। महान् उदर, गहरी नाभि तथा सुन्दर कटिभाग उनकी शोभा बढ़ाते हैं। रत्नोंकी बनी हुई करधनीके कारण श्रीअंगोंकी सुषमा बहुत बढ़ गयी है। निर्मल ऊरु और सुन्दर घुटने भी सौन्दर्यवृद्धिमें सहायक हो रहे हैं। भगवान्के चरण, जिनका योगीलोग ध्यान करते हैं, बड़े कोमल हैं। उनके तलवेमें वज्र, अंकुश और यव आदिकी उत्तम रेखाएँ हैं। उन युगल चरणोंसे श्रीरघुनाथजीके विग्रहकी बड़ी शोभा हो रही है।[२]

'इस प्रकार ध्यान और स्मरण करके तुम संसार-

१-रामान्नास्ति परो देवो रामान्नास्ति परं व्रतम्। न हि रामात्परो योगो न हि रामात्परो मखः॥
तं स्मृत्वा चैव जप्त्वा च पूजयित्वा नरः पदम्। प्राप्नोति परमामृद्धिमैहिकामुष्मिकीं तथा॥
संस्मृतो मनसा ध्यातः सर्वकामफलप्रदः। ददाति परमां भक्तिं संसाराम्भोधितारिणीम्॥
श्वपाकोऽपि हि संस्मृत्य रामं याति परां गतिम्। ये वेदशास्त्रनिरतास्त्वादृशास्तत्र किं पुनः॥
सर्वेषां वेदशास्त्राणां रहस्यं ते प्रकाशितम्। समाचर तथा त्वं वै यथा स्यात्ते मनीषितम्॥
एको देवो रामचन्द्रो व्रतमेकं तदर्चनम्। मन्त्रोऽप्येकश्च तन्नाम शास्त्रं तद्ध्येव तत्स्तुतिः॥
तस्मात्सर्वात्मना रामचन्द्रं भज मनोहरम्। यथा गोष्पदवत्तुच्छो भवेत्संसारसागरः॥ (३५। ४६—५२)

२-अयोध्यानगरे रम्ये चित्रमण्डपशोभिते। ध्यायेत्कल्पतरोर्मूले सर्वकामसमृद्धिदम्॥

सागरसे तर जाओगे। जो मनुष्य प्रतिदिन चन्दन आदि सामग्रियोंसे इच्छानुसार श्रीरामचन्द्रजीका पूजन करता है, उसे इहलोक और परलोककी उत्तम समृद्धि प्राप्त होती है, तुमने श्रीरामके ध्यानका प्रकार पूछा था। सो मैंने तुम्हें बता दिया। इसके अनुसार ध्यान करके भवसागरके पार हो जाओ।'

आरण्यकने कहा—मुनिश्रेष्ठ! मैं आपसे पुनः कुछ प्रश्न करता हूँ, मुझे उनका उत्तर दीजिये। महामते! गुरुजन अपने सेवकपर कृपा करके उन्हें सब बातें बता देते हैं। महाभाग! आप प्रतिदिन जिनका ध्यान करते हैं वे श्रीराम कौन हैं तथा उनके चरित्र कौन-कौन-से हैं? यह बतानेकी कृपा कीजिये। द्विजश्रेष्ठ! श्रीरामने किसलिये अवतार लिया था? वे क्यों मनुष्य-शरीरमें प्रकट हुए थे? आप मेरा सन्देह निवारण करनेके लिये सब बातोंको शीघ्र बताइये।

मुनिके परम कल्याणमय वचन सुनकर महर्षि लोमशने श्रीरामचन्द्रजीके अद्‌भुत चरित्रका वर्णन किया। वे बोले—'योगेश्वरोंके ईश्वर भगवान्‌ने सम्पूर्ण लोकोंको दुःखी जानकर संसारमें अपनी कीर्ति फैलानेका विचार किया। ऐसा करनेका उद्देश्य यह था कि जगत्‌के मनुष्य मेरी कीर्तिका गान करके घोर संसारसे तर जायँगे। यह समझकर भक्तोंका मन लुभानेवाले दयासागर भगवान्‌ने चार विग्रहोंमें अवतार धारण किया। साथ ही उनकी ह्लादिनी शक्ति लक्ष्मी भी अवतीर्ण हुईं। पूर्वकालमें त्रेतायुग आनेपर सूर्यवंशमें श्रीरघुनाथजीका पूर्णावतार हुआ। उनकी श्रीरामके नामसे प्रसिद्धि हुई। श्रीरामके नेत्र कमलके समान शोभायमान थे। लक्ष्मण सदा उनके साथ रहते थे। धीरे-धीरे उन्होंने यौवनमें प्रवेश किया। तत्पश्चात् पिताकी आज्ञासे दोनों भाई—श्रीराम और लक्ष्मण महर्षि विश्वामित्रके अनुगामी हुए। राजा दशरथने यज्ञकी रक्षाके लिये अपने दोनों कुमारोंको विश्वामित्रके अर्पण कर दिया था। वे दोनों भाई जितेन्द्रिय, धनुर्धर और वीर थे। मार्गमें जाते समय उन्हें भयंकर वनके भीतर ताड़का नामकी राक्षसी मिली। उसने उनके रास्तेमें विघ्न डाला। तब महर्षि विश्वामित्रकी आज्ञासे रघुकुलभूषण श्रीरामचन्द्रजीने ताड़काको परलोक भेज दिया। गौतम-पत्नी अहल्या, जो इन्द्रके साथ सम्पर्क करनेके कारण पत्थर हो गयी थी, श्रीरामके चरणस्पर्शसे पुनः अपने स्वरूपको प्राप्त हो गयी। विश्वामित्रका यज्ञ प्रारम्भ होनेपर श्रीरघुनाथजीने अपने श्रेष्ठ बाणोंसे मारीचको घायल किया और सुबाहुको मार डाला। तदनन्तर राजा जनकके भवनमें रखे हुए शंकरजीके धनुषको तोड़ा। उस समय श्रीरामचन्द्रजीकी अवस्था पंद्रह वर्षकी थी। उन्होंने छः वर्षकी अवस्थावाली मिथिलेशकुमारी सीताको, जो परम सुन्दरी और अयोनिजा थी, वैवाहिक विधिके अनुसार ग्रहण

महामरकतस्वर्णनीलरत्नादिशोभितम्॥
सिंहासनं चित्तहरं कान्त्या तामिस्रनाशनम्। तत्रोपरि समासीनं रघुराजं मनोरमम्॥
दूर्वादलश्यामतनुं देवं देवेन्द्रपूजितम्। राकायां पूर्णशीतांशुकान्तिधिक्कारिवक्त्रिणम्॥
अष्टमीचन्द्रशकलसमभालाधिधारिणम्। नीलकुन्तलशोभाढ्यं किरीटमणिरञ्जितम्॥
मकराकारसौन्दर्यकुण्डलाभ्यां विराजितम्॥
विद्रुमप्रभसत्कान्तिरदच्छदविराजितम्।
तारापतिकराकारद्विजराजिसुशोभितम्। जपापुष्पाभया माध्व्या जिह्वया शोभिताननम्॥
यस्यां वसन्ति निगमा ऋग्गाद्याः शास्त्रसंयुताः। कम्बुकान्तिधरग्रीवाशोभया समलङ्कृतम्॥
सिंहवदुच्चकौ स्कन्धौ मांसलौ बिभ्रतं वरम्। बाहू दधानं दीर्घाङ्गौ केयूरकटकाङ्कितौ॥
मुद्रिकाहीरशोभाभिर्भूषितौ जानुलम्बिनौ। वक्षो दधानं विपुलं लक्ष्मीवासेन शोभितम्॥
श्रीवत्सादिविचित्राङ्कैरङ्कितं सुमनोहरम्। महोदरं महानाभिं शुभकट्या विराजितम्॥
काञ्चया वै मणिमय्या च विशेषेण श्रियान्वितम्। ऊरुभ्यां विमलाभ्यां च जानुभ्यां शोभितं श्रिया॥
चरणाभ्यां वज्ररेखायवाङ्कुशसुरेखया। युताभ्यां योगिध्येयाभ्यां कोमलाभ्यां विराजितम्॥ (३५। ५७—६९)

किया। इसके बाद श्रीरामचन्द्रजी बारह वर्षोंतक सीताके साथ रहे। सत्ताईसवें वर्षकी उम्रमें उन्हें युवराज बनानेकी तैयारी हुई। इसी बीचमें रानी कैकेयीने राजा दशरथसे दो वर माँगे। उनमेंसे एकके द्वारा उन्होंने यह इच्छा प्रकट की कि 'श्रीराम मस्तकपर जटा धारण करके चौदह वर्षोंतक वनमें रहें।' तथा दूसरे वरके द्वारा यह माँगा कि 'मेरे पुत्र भरत युवराज बनाये जायँ', राजा दशरथने श्रीरामको वनवास दे दिया। श्रीरामचन्द्रजी तीन रात्रितक केवल जल पीकर रहे, चौथे दिन उन्होंने फलाहार किया और पाँचवें दिन चित्रकूटपर पहुँचकर अपने लिये रहनेका स्थान बनाया। [इस प्रकार वहाँ बारह वर्ष बीत गये।] तदनन्तर तेरहवें वर्षके आरम्भमें वे पंचवटीमें जाकर रहने लगे। महामुने! वहाँ श्रीरामने [लक्ष्मणके द्वारा] शूर्पणखा नामकी राक्षसीको [उसकी नाक कटाकर] कुरूप बना दिया। तत्पश्चात् वे जानकीके साथ वनमें विचरण करने लगे। इसी बीचमें अपने पापोंका फल उदय होनेपर दस मस्तकोंवाला राक्षसराज रावण सीताको हर ले जानेके लिये वहाँ आया और माघ कृष्ण अष्टमीको वृन्द नामक मुहूर्तमें, जब कि श्रीराम और लक्ष्मण आश्रमपर नहीं थे, उन्हें हर ले गया। उसके द्वारा अपहरण होनेपर देवी सीता कुररीकी भाँति विलाप करने लगीं—'हा राम! हा राम! मुझे राक्षस हरकर लिये जा रहा है, मेरी रक्षा करो, रक्षा करो।' रावण कामके अधीन होकर जनककिशोरी सीताको लिये जा रहा था। इतनेहीमें पक्षिराज जटायु वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने राक्षसराज रावणके साथ युद्ध किया, किन्तु स्वयं ही उसके हाथसे मारे जाकर धरतीपर गिर पड़े। इसके बाद दसवें महीनेमें मार्गशीर्ष* शुक्ल नवमीके दिन सम्पातिने वानरोंको इस बातकी सूचना दी कि 'सीता देवी रावणके भवनमें निवास कर रही हैं।'

'फिर एकादशीको हनुमान्जी महेन्द्र पर्वतसे उछलकर सौ योजन चौड़ा समुद्र लाँघ गये। उस रातमें वे लंकापुरीके भीतर सीताकी खोज करते रहे। रात्रिके अन्तिम भागमें हनुमान्जीको सीताका दर्शन हुआ। द्वादशीके दिन वे शिंशपा नामक वृक्षपर बैठे रहे। उसी दिन रातमें जानकीजीको विश्वास दिलानेके लिये उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीकी कथा सुनायी। फिर त्रयोदशीको अक्ष आदिके साथ उनका युद्ध हुआ। चतुर्दशीके दिन इन्द्रजित्ने आकर ब्रह्मास्त्रसे उन्हें बाँध लिया। इसके बाद उनकी पूँछमें आग लगा दी गयी और उसी आगके द्वारा उन्होंने लंकापुरीको जला डाला। पूर्णिमाको वे पुनः महेन्द्र पर्वतपर आ गये। फिर मार्गशीर्ष कृष्णपक्षकी प्रतिपदासे लेकर पाँच दिन उन्होंने मार्गमें बिताये। छठे दिन मधुवनमें पहुँचकर उसका विध्वंस किया और सप्तमीको श्रीरामचन्द्रजीके पास पहुँचकर सीताजीका दिया हुआ चिह्न उन्हें अर्पण किया तथा वहाँका सारा समाचार कह सुनाया। तत्पश्चात् अष्टमीको उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र और विजय नामक मुहूर्तमें दोपहरके समय श्रीरघुनाथजीका लंकाके लिये प्रस्थान हुआ। श्रीरामचन्द्रजी यह प्रतिज्ञा करके कि 'मैं समुद्रको लाँघकर राक्षसराज रावणका वध करूँगा', दक्षिण दिशाकी ओर चले। उस समय सुग्रीव उनके सहायक हुए। सात दिनोंके बाद समुद्रके तटपर पहुँचकर उन्होंने सेनाको ठहराया। पौषशुक्ल प्रतिपदासे लेकर तृतीयातक श्रीरघुनाथजी सेनासहित समुद्र-तटपर टिके रहे। चतुर्थीको विभीषण आकर उनसे मिले। फिर पंचमीको समुद्र पार करनेके विषयमें विचार हुआ। इसके बाद श्रीरामने चार दिनोंतक अनशन किया। फिर समुद्रसे वर मिला और उसने पार जानेका उपाय भी दिखा दिया। तदनन्तर दशमीको सेतु बाँधनेका कार्य आरम्भ होकर त्रयोदशीको समाप्त हुआ। चतुर्दशीको श्रीरामने सुवेल पर्वतपर अपनी सेनाको ठहराया। पूर्णिमासे द्वितीयातक तीन दिनोंमें सारी सेना समुद्रके पार हुई। समुद्र पार करके लक्ष्मणसहित श्रीरामने वानरराजकी

* यह गणना शुक्लपक्षसे महीनेका आरम्भ मानकर की गयी है; अतः यहाँ मार्गशीर्ष शुक्लका अर्थ यहाँकी प्रचलित गणनाके अनुसार कार्तिक शुक्लपक्ष समझना चाहिये। तथा इसी प्रकार आगे बतायी जानेवाली अन्य तिथियोंको भी जानना चाहिये।

सेना साथ ले सीताके लिये लंकापुरीको चारों ओरसे घेर लिया। तृतीयासे दशमीपर्यन्त आठ दिनोंतक सेनाका घेरा पड़ा रहा। एकादशीके दिन शुक और सारण सेनामें घुस आये थे। पौषकृष्ण द्वादशीको शार्दूलके द्वारा वानर-सेनाकी गणना हुई। साथ ही उसने प्रधान-प्रधान वानरोंकी शक्तिका भी वर्णन किया। शत्रुसेनाकी संख्या जानकर रावणने त्रयोदशीसे अमावास्यापर्यन्त तीन दिनोंतक लंकापुरीमें अपने सैनिकोंको युद्धके लिये उत्साहित किया। माघशुक्ल प्रतिपदाको अंगद दूत बनकर रावणके दरबारमें गये। उधर रावणने मायाके द्वारा सीताको, उनके पतिके कटे हुए मस्तक आदिका दर्शन कराया। माघकी द्वितीयासे लेकर अष्टमीपर्यन्त सात दिनोंतक राक्षसों और वानरोंमें घमासान युद्ध होता रहा। माघशुक्ल नवमीको रात्रिके समय इन्द्रजित्ने युद्धमें श्रीराम और लक्ष्मणको नाग-पाशसे बाँध लिया। इससे प्रधान-प्रधान वानर जब सब ओरसे व्याकुल और उत्साहहीन हो गये तो दशमीको नाग-पाशका नाश करनेके लिये वायुदेवने श्रीरामचन्द्रजीके कानमें गरुड़के मन्त्रका जप और उनके स्वरूपका ध्यान बता दिया। ऐसा करनेसे एकादशीको गरुड़जीका आगमन हुआ। फिर द्वादशीको श्रीरामचन्द्रजीके हाथसे धूम्राक्षका वध हुआ। त्रयोदशीको भी उन्हींके द्वारा कम्पन नामका राक्षस युद्धमें मारा गया। माघशुक्ल चतुर्दशीसे कृष्णपक्षकी प्रतिपदातक तीन दिनमें नीलके द्वारा प्रहस्तका वध हुआ। माघ कृष्ण द्वितीयासे चतुर्थीपर्यन्त तीन दिनोंतक तुमुल युद्ध करके श्रीरामने रावणको रणभूमिसे भगा दिया। पंचमीसे अष्टमीतक चार दिनोंमें रावणने कुम्भकर्णको जगाया और जागनेपर उसने आहार ग्रहण किया। फिर नवमीसे चतुर्दशीपर्यन्त छः दिनोंतक युद्ध करके श्रीरामने कुम्भकर्णका वध किया। उसने बहुत-से वानरोंको भक्षण कर लिया था। अमावास्याके दिन कुम्भकर्णकी मृत्युके शोकसे रावणने युद्धको बंद रखा। उसने अपनी सेना पीछे हटा ली। फाल्गुन शुक्ल प्रतिपदासे चतुर्थीतक चार दिनोंके भीतर विसतन्तु आदि पाँच राक्षस मारे गये। पंचमीसे सप्तमीतकके युद्धमें अतिकायका वध हुआ। अष्टमीसे द्वादशीतक पाँच दिनोंमें निकुम्भ और कुम्भ मौतके घाट उतारे गये। उसके बाद तीन दिनोंमें मकराक्षका वध हुआ। फाल्गुन कृष्ण द्वितीयाके दिन इन्द्रजित्ने लक्ष्मणपर विजय पायी। फिर तृतीयासे सप्तमीतक पाँच दिन लक्ष्मणके लिये दवा आदिके प्रबन्धमें व्यग्र रहनेके कारण श्रीरामने युद्धको बंद रखा। तदनन्तर त्रयोदशीपर्यन्त पाँच दिनोंतक युद्ध करके लक्ष्मणने विख्यात बलशाली इन्द्रजित्को युद्धमें मार डाला। चतुर्दशीको दशग्रीव रावणने यज्ञकी दीक्षा ली और युद्धको स्थगित रखा। फिर अमावास्याके दिन वह युद्धके लिये प्रस्थित हुआ। चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे लेकर पंचमीतक रावण युद्ध करता रहा; उसमें पाँच दिनोंके भीतर बहुत-से राक्षसोंका विनाश हुआ। षष्ठीसे अष्टमीतक महापार्श्व आदि राक्षस मारे गये। चैत्र शुक्ल नवमीके दिन लक्ष्मणजीको शक्ति लगी। तब श्रीरामने क्रोधमें भरकर दशशीशको मार भगाया। फिर अंजना-नन्दन हनुमान्जी लक्ष्मणकी चिकित्साके लिये द्रोण पर्वत उठा लाये। दशमीके दिन श्रीरामचन्द्रजीने भयंकर युद्ध किया, जिसमें असंख्य राक्षसोंका संहार हुआ। एकादशीके दिन इन्द्रके भेजे हुए मातलि नामक सारथि श्रीरामचन्द्रजीके लिये रथ ले आये और उसे युद्धक्षेत्रमें भक्तिपूर्वक उन्होंने श्रीरघुनाथजीको अर्पण किया। तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी चैत्र शुक्ल द्वादशीसे कृष्णपक्षकी चतुर्दशीतक अठारह दिन रोषपूर्वक युद्ध करते रहे। अन्ततोगत्वा उस द्वैरथयुद्धमें रामने रावणका वध किया। उस तुमुल संग्राममें श्रीरघुनाथजीने ही विजय प्राप्त की। माघ शुक्ल द्वितीयासे लेकर चैत्र कृष्ण चतुर्दशीतक सतासी दिन होते हैं, इनके भीतर केवल पंद्रह दिन युद्ध बंद रहा। शेष बहत्तर दिनोंतक संग्राम चलता रहा। रावण आदि राक्षसोंका दाहसंस्कार अमावास्याके दिन हुआ। वैशाख शुक्ल प्रतिपदाको श्रीरामचन्द्रजी युद्धभूमिमें ही ठहरे रहे। द्वितीयाको लंकाके राज्यपर विभीषणका अभिषेक किया गया। तृतीयाको सीताजीकी अग्निपरीक्षा हुई और देवताओंसे वर मिला। इस प्रकार लक्ष्मणके बड़े भाई श्रीरामने लंकापति रावणको थोड़े ही दिनोंमें

मारकर परमपवित्र जनककिशोरी सीताको ग्रहण किया, जिन्हें राक्षसने बहुत कष्ट पहुँचाया था। जानकीजीको पाकर श्रीरामचन्द्रजीको बड़ी प्रसन्नता हुई और वे लंकासे लौटे। वैशाख शुक्ल चतुर्थीको पुष्पकविमानपर आरूढ़ होकर वे आकाशमार्गसे पुनः अयोध्यापुरीकी ओर चले। वैशाख शुक्ल पंचमीको भगवान् श्रीराम अपने दल-बलके साथ भरद्वाजमुनिके आश्रमपर आये और चौदहवाँ वर्ष पूर्ण होनेपर षष्ठीको नन्दिग्राममें जाकर भरतसे मिले। फिर सप्तमीको अयोध्यापुरीमें श्रीरघुनाथजीका राज्याभिषेक हुआ। मिथिलेशकुमारी सीताको अधिक दिनोंतक रामसे अलग होकर रावणके यहाँ रहना पड़ा था। बयालिसवें वर्षकी उम्रमें श्रीरामचन्द्रजीने राज्य ग्रहण किया, उस समय सीताकी अवस्था तैंतीस वर्षकी थी। रावणका संहार करनेवाले भगवान् श्रीराम चौदह वर्षोंके बाद पुनः अपनी पुरी अयोध्यामें प्रविष्ट होकर बड़े प्रसन्न हुए। तत्पश्चात् वे भाइयोंके साथ राज्यकार्य देखने लगे। श्रीरघुनाथजीके राज्य करते समय ही अगस्त्यजी, जो एक अच्छे वक्ता हैं तथा जिनकी उत्पत्ति कुम्भसे हुई है, उनके पास पधारेंगे। उनके कहनेसे श्रीरघुनाथजी अश्वमेधयज्ञका अनुष्ठान करेंगे। सुव्रत! भगवान्‌का यह यज्ञसम्बन्धी अश्व तुम्हारे आश्रमपर आवेगा तथा उसकी रक्षा करनेवाले योद्धा भी बड़े हर्षके साथ तुम्हारे आश्रमपर पधारेंगे। उनके सामने तुम श्रीरामचन्द्रजीकी मनोहर कथा सुनाओगे तथा उन्हीं लोगोंके साथ अयोध्यापुरीको भी जाओगे। द्विजश्रेष्ठ! अयोध्यामें कमलनयन श्रीरामका दर्शन करके तुम तत्काल ही संसारसागरसे पार हो जाओगे।'

मुनिश्रेष्ठ लोमश सर्वज्ञ हैं; उन्होंने मुझसे उपर्युक्त बातें कहकर पूछा—'आरण्यक! तुम्हें अपने कल्याणके लिये और क्या पूछना है?' तब मैंने उनसे कहा—'महर्षे! आपकी कृपासे मुझे भगवान् श्रीरामके अद्भुत चरित्रका पूर्ण ज्ञान हो गया। अब आपहीके प्रसादसे मैं उनके चरणकमलोंको भी प्राप्त करूँगा।' ऐसा कहकर मैंने मुनीश्वरको प्रणाम किया। तत्पश्चात् वे चले गये। उन्हींकी कृपासे मुझे श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंकी पूजन-विधि भी प्राप्त हुई है। तबसे मैं सदा ही श्रीरामके चरणोंका चिन्तन करता हूँ तथा आलस्य छोड़कर बारम्बार उन्हींके चरित्रका गान करता रहता हूँ। उनके गुणोंका गान मेरे चित्तको लुभाये रहता है। मैं उसके द्वारा दूसरे लोगोंको भी पवित्र किया करता हूँ तथा मुनिके वचनोंका बारम्बार स्मरण करके भगवत्-दर्शनकी उत्कण्ठासे पुलकित हो उठता हूँ। इस पृथ्वीपर मैं धन्य हूँ; कृतकृत्य हूँ और परम सौभाग्यशाली हूँ; क्योंकि मेरे हृदयमें श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंको देखनेकी जो अभिलाषा है, वह निश्चय ही पूर्ण होगी। अतः सब प्रकारसे परम मनोहर श्रीरामचन्द्रजीका ही भजन करना चाहिये। संसार-समुद्रके पार जानेकी इच्छासे सब लोगोंको श्रीरघुनाथजीकी ही वन्दना करनी चाहिये।*

---

* धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं सभाग्योऽहं महीतले । रामचन्द्रपदाम्भोजदिदृक्षा मे भविष्यति॥
तस्मात्सर्वात्मना रामो भजनीयो मनोहरः। वन्दनीयो हि सर्वेषां संसाराब्धितितीर्षया॥ (३६। ८९-९०)

अच्छा, अब तुमलोग बताओ, किसलिये यहाँ आये हो? कौन धर्मात्मा राजा अश्वमेध नामक महान् यज्ञका अनुष्ठान कर रहा है? ये सब बातें यहाँ बतलाकर अश्वकी रक्षाके लिये जाओ और श्रीरघुनाथजीके चरणोंका निरन्तर स्मरण करते रहो।

आरण्यक मुनिके ये वचन सुनकर सब लोगोंको बड़ा विस्मय हुआ। वे श्रीरघुनाथजीका स्मरण करते हुए उनसे बोले—'ब्रह्मर्षिवर! इस समय आपका दर्शन पाकर हम सब लोग पवित्र हो गये; क्योंकि आप श्रीरामचन्द्रजीकी कथा सुनाकर यहाँ सब लोगोंको पवित्र करते रहते हैं। आपने हमलोगोंसे जो कुछ पूछा है, वह सब हम बता रहे हैं। आप हमारे यथार्थ वचनको श्रवण करें। महर्षि अगस्त्यजीके कहनेसे भगवान् श्रीराम ही सब सामग्री एकत्रित करके अश्वमेधयज्ञका अनुष्ठान कर रहे हैं। उन्हींका यज्ञसम्बन्धी अश्व यहाँ आया है और उसीकी रक्षा करते हुए हम सब लोग भी अश्वके साथ ही आपके आश्रमपर आ पहुँचे हैं। महामते! यही हमारा वृत्तान्त है; आप इसे हृदयंगम करें।'

रसायनके समान मनको प्रिय लगनेवाला यह उत्तम वचन सुनकर राम-भक्त ब्राह्मण आरण्यक मुनिको बड़ा हर्ष हुआ। वे कहने लगे—'आज मेरे मनोरथरूपी वृक्षमें फल आ गया, वह उत्तम शोभासे सम्पन्न हो गया। मेरी माताने जिसके लिये मुझे उत्पन्न किया था, वह शुभ उद्देश्य आज पूरा हो गया। आजतक हविष्यके द्वारा मैंने जो हवन किया है, उस अग्निहोत्रका फल आज मुझे मिल गया; क्योंकि अब मैं श्रीरामचन्द्रजीके युगल-चरणारविन्दोंका दर्शन करूँगा। अहा! जिनका मैं प्रतिदिन अपने हृदयमें ध्यान करता था, वे मनोहर रूपधारी अयोध्यानाथ भगवान् श्रीराम निश्चय ही मेरे नेत्रोंके समक्ष होकर दर्शन देंगे। हनुमान्जी मुझे हृदयसे लगाकर मेरी कुशल पूछेंगे। वे संतोंके शिरोमणि हैं; मेरी भक्ति देखकर उन्हें बड़ा सन्तोष होगा।' आरण्यक मुनिके ये वचन सुनकर कपिश्रेष्ठ हनुमान्जीने उनके दोनों चरण पकड़ लिये और कहा—'ब्रह्मर्षे! मैं ही हनुमान् हूँ, स्वामिन्! मैं आपका सेवक हूँ और आपके सामने खड़ा हूँ। मुनीश्वर! मुझे श्रीरघुनाथजीके दासकी चरण-धूलि समझिये।' हनुमान्जी श्रीरामभक्त होनेके कारण अत्यन्त शोभा पा रहे थे। उनकी उपर्युक्त बातें सुनकर आरण्यक मुनिको बड़ा हर्ष हुआ और उन्होंने हनुमान्जीको हृदयसे लगा लिया। दोनोंके हृदयसे प्रेमकी धारा फूटकर बह रही थी। दोनों ही आनन्दसुधामें निमग्न होकर शिथिल एवं चित्रलिखित-से प्रतीत हो रहे थे। श्रीरघुनाथजीके चरणकमलोंके प्रेमसे दोनोंका ही मानस भरा हुआ था। अतः दोनों ही बैठकर आपसमें भगवान्की मनोहारिणी कथाएँ कहने लगे। मुनिश्रेष्ठ आरण्यक श्रीरामके चरणोंका ध्यान कर रहे थे। हनुमान्जीने उनसे यह मनोहर वचन कहा—'महर्षे! ये श्रीरघुनाथजीके भ्राता महावीर शत्रुघ्न आपको प्रणाम कर रहे हैं। ये उद्भट वीरोंसे सेवित भरतकुमार पुष्कल भी आपके चरणोंमें शीश झुकाते हैं तथा इधरकी ओर जो ये महान् बली और अनेक गुणोंसे विभूषित सज्जन खड़े हैं, इन्हें श्रीरघुनाथजीके मन्त्री समझिये। अत्यन्त भयंकर योद्धा महायशस्वी राजा सुबाहु भी आपको प्रणाम करते हैं। ये श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंका मकरन्द पान करनेवाले मधुकर हैं। ये राजा सुमद हैं, जिन्हें पार्वतीजीने श्रीरघुनाथजीके चरणोंकी भक्ति प्रदान की है, जिससे ये संसार-समुद्रके पार हो चुके हैं; ये भी आपके चरणोंमें नमस्कार करते हैं। जिन्होंने अपने सेवकके मुखसे श्रीरामचन्द्रजीके अश्वको आया हुआ सुनकर अपना सारा राज्य ही भगवान्को समर्पण कर दिया है, वे राजा सत्यवान् भी पृथ्वीपर माथा टेककर आपके चरणोंमें प्रणाम करते हैं।'

हनुमान्जीके ये वचन सुनकर आरण्यक मुनिने बड़े आदरके साथ सबको हृदयसे लगाया और फल-मूल आदिके द्वारा सबका स्वागत-सत्कार किया। फिर शत्रुघ्न आदि सब लोगोंने बड़ी प्रसन्नताके साथ महर्षिके आश्रमपर निवास किया। प्रातःकाल नर्मदामें नित्यकर्म करके वे महान् उद्योगी सैनिक आगे जानेको उद्यत हुए। शत्रुघ्नने आरण्यक मुनिको पालकीपर बिठाकर अपने सेवकोंद्वारा उन्हें श्रीरघुनाथजीकी निवासभूत अयोध्या-

पुरीको पहुँचवा दिया। सूर्यवंशी राजाओंने जिसे अपना निवासस्थान बनाया था, उस अवधपुरीको दूरसे ही देखकर आरण्यक मुनि सवारीसे उतर पड़े और श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनकी इच्छासे पैदल ही चलने लगे। जनसमुदायसे शोभा पानेवाली उस रमणीय नगरीमें पहुँचकर उनके मनमें श्रीरामको देखनेके लिये हजार-हजार अभिलाषाएँ उत्पन्न हुईं। थोड़ी ही देरमें वहाँ यज्ञमण्डपसे सुशोभित सरयूके पावन तटपर उन्हें श्रीरामचन्द्रजीकी झाँकी हुई। भगवान्‌का श्रीविग्रह दूर्वादलके समान श्यामसुन्दर दिखायी देता था। उनके नेत्र खिले हुए कमलके समान शोभा पा रहे थे। वे अपने कटिभागमें मृगशृंग धारण किये हुए थे। व्यास* आदि महर्षि उन्हें घेरकर विराजमान थे और बहुत-से शूरवीर उनकी सेवामें उपस्थित थे। उनके दोनों पार्श्वभागोंमें भरत और सुमित्रानन्दन लक्ष्मण खड़े थे तथा श्रीरघुनाथजी दीनजनोंको मुँहमाँगा दान दे रहे थे।

भगवान्‌का दर्शन करके आरण्यक मुनिने अपनेको कृतार्थ माना। वे कहने लगे—'आज मेरे नेत्र सफल हो गये, क्योंकि ये श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन कर रहे हैं। मैंने जो सम्पूर्ण शास्त्रोंका ज्ञान प्राप्त किया था, वह आज सार्थक हो गया; क्योंकि श्रीरामचन्द्रजीकी महिमाको जानकर इस समय मैं अयोध्यापुरीमें आ पहुँचा हूँ।' इस प्रकार हर्षमें भरकर उन्होंने बहुत-सी बातें कहीं। श्रीरघुनाथजीके चरणोंका दर्शन करके उनके समस्त शरीरमें रोमांच हो आया था। इस अवस्थामें वे रमानाथ भगवान् श्रीरामके समीप गये, जो दूसरोंके लिये अगम्य हैं तथा विचारपरायण योगेश्वरोंसे भी जो बहुत दूर हैं। भगवान्‌के निकट पहुँचकर वे बोल उठे—'अहा! आज मैं धन्य हो गया; क्योंकि श्रीरघुनाथजीके चरण मेरे नेत्रोंके समक्ष विराजमान हैं। अब मैं श्रीरामचन्द्रजीको देखकर इनसे वार्तालाप करके अपनी वाणीको पवित्र बनाऊँगा।'

श्रीरामचन्द्रजी भी अपने तेजसे जाज्वल्यमान तपोमूर्ति विप्रवर आरण्यक मुनिको आया देख उनके स्वागतके लिये उठकर खड़े हो गये। वे बड़ी देरतक उनके चरणोंमें मस्तक झुकाये रहे। देवता और असुर अपनी मुकुट-मणियोंसे जिनके युगल-चरणोंकी आरती उतारते हैं, वे ही प्रभु श्रीरघुनाथजी मुनिके पैरोंपर पड़कर कहने लगे—'ब्राह्मणदेव! आज आपने मेरे शरीरको पवित्र कर दिया।' ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ महातपस्वी आरण्यक मुनिने राजाओंके शिरोमणि श्रीरामचन्द्रजीको चरणोंमें पड़ा देख उनका हाथ पकड़कर उठाया और अपने प्रियतम प्रभुको छातीसे लगा लिया। कौसल्यानन्दन श्रीरामने ब्राह्मणको मणिनिर्मित ऊँचे आसनपर बिठाया और स्वयं ही जल लेकर उनके दोनों पैर धोये। फिर चरणोदक लेकर भगवान्‌ने उसे अपने मस्तकपर चढ़ाया और कहा—'आज मैं अपने कुटुम्ब और सेवकोंसहित पवित्र हो गया।' तत्पश्चात् देवाधिदेवोंसे सेवित श्रीरघुनाथजीने मुनिके ललाटमें चन्दन लगाया और उन्हें दूध देनेवाली गौ दान की। फिर मनोहर वचनोंमें कहा—'स्वामिन्! मैं अश्वमेधयज्ञ कर रहा हूँ। आपके चरण यहाँ आ गये, इससे अब यह यज्ञ पूर्ण हो जायगा। मेरे अश्वमेधयज्ञको आपने चरणोंसे पवित्र कर दिया।' राजाधिराजोंसे सेवित श्रीरघुनाथजीके ये वचन सुनकर आरण्यक मुनिने हँसते हुए मधुर वाणीमें कहा—'स्वामिन्! आप ब्राह्मणोंके हितैषी और इस पृथ्वीके रक्षक हैं; अतः यह वचन आपहीके योग्य है। महाराज! वेदोंके पारगामी ब्राह्मण आपके ही विग्रह हैं। यदि आप ब्राह्मणोंकी पूजा आदि कर्तव्य-कर्मोंका आचरण करेंगे तो अन्य सब राजा भी ब्राह्मणोंका आदर करेंगे। शास्त्रोंके ज्ञानसे रहित मूढ़ मनुष्य भी यदि आपके नामका स्मरण करता है तो वह सम्पूर्ण पापोंके महासागरको पार करके परम पदको प्राप्त होता है। सभी

---

* यहाँ 'व्यास' शब्दका अर्थ शास्त्रकी व्याख्या करनेवाले विद्वान् महर्षि वसिष्ठ या अगस्त्य आदिका वाचक है, श्रीकृष्णद्वैपायनका नहीं; क्योंकि उस समयतक उनका प्रादुर्भाव नहीं हुआ था। 'विस्तारो विग्रहो व्यासः' इस कोषके अनुसार 'व्याख्याकारक' अर्थ मानना सुसंगत है। पुराण आदि कथा बाचनेवाले ब्राह्मणको भी 'व्यास' कहते हैं; 'य एवं वाचयेद् विप्रः स ब्रह्मन् व्यास उच्यते।' इस पौराणिक वचनसे इसका समर्थन होता है।

वेदों और इतिहासोंका यह स्पष्ट सिद्धान्त है कि राम-नामका जो स्मरण किया जाता है, वह पापोंसे उद्धार करनेवाला है। श्रीरघुनाथजी! ब्रह्महत्या-जैसे पाप भी तभीतक गर्जना करते हैं, जबतक आपके नामोंका स्पष्टरूपसे उच्चारण नहीं किया जाता। महाराज! आपके नामोंकी गर्जना सुनकर महापातकरूपी गजराज कहीं छिपनेके लिये स्थान ढूँढ़ते हुए भाग खड़े होते हैं।[1] श्रीराम! आपकी कथा सुनकर सब लोग पवित्र हो जायँगे। पूर्वकालमें जब कि सत्ययुग चल रहा था, मैंने गंगातीरपर निवास करनेवाले पुराणवेत्ता ऋषियोंके मुखसे यह बात सुनी थी—'महान् पाप करनेके कारण कातर हृदयवाले पुरुषोंको तभीतक पापका भय बना रहता है जबतक वे अपनी जिह्वासे परम मनोहर राम-नामका उच्चारण नहीं करते।'[2] अतः श्रीरामचन्द्रजी! इस समय मैं धन्य हो गया। आपके दर्शनसे मेरे संसार-बन्धनका नाश सुलभ हो गया।'

मुनिके ऐसा कहनेपर श्रीरघुनाथजीने उनका पूजन किया। उस समय सभी महर्षि उन्हें साधुवाद देने लगे। इसी बीचमें वहाँ जो अत्यन्त आश्चर्यजनक घटना घटी, उसे मैं बतला रहा हूँ। मुनिश्रेष्ठ वात्स्यायन! तुम श्रीरामके भजनमें तत्पर रहनेवाले हो; मेरी बातोंको ध्यान देकर सुनो। आरण्यक मुनिको ध्यानमें श्रीरघुनाथजीका जैसा स्वरूप दिखायी देता था; उसी रूपमें महाराज श्रीरामचन्द्रजीको प्रत्यक्ष देखकर उन्हें अत्यन्त हर्ष हुआ। वे वहाँ बैठे हुए महर्षियोंसे बोले—'मुनीश्वरो! आपलोग मेरे मनोहर वचन सुनें। भला, इस भूमण्डलमें मेरे-जैसा सौभाग्यशाली मनुष्य कौन होगा? श्रीरामचन्द्रजीने मुझे नमस्कार करके अपने श्रीमुखसे मेरा स्वागत एवं कुशल-समाचार पूछा है। अतः आज मेरी समानता करनेवाला न कोई है न हुआ है और न होगा। श्रुतियाँ भी जिनके चरणकमलोंकी रजको सदा ही ढूँढ़ा करती हैं, उन्हीं भगवान्ने आज मेरे चरणोंका जल पीकर अपनेको पवित्र माना है!'

ऐसा कहते-कहते उनका ब्रह्मरन्ध्र फूट गया तथा उससे जो तेज निकला वह श्रीरघुनाथजीमें समा गया। इस प्रकार सरयूके तटवर्ती यज्ञ-मण्डपमें सब लोगोंके देखते-देखते आरण्यक मुनिको सायुज्यमुक्ति प्राप्त हुई, जो योगियोंके लिये भी दुर्लभ है। उस समय आकाशमें तूर्य और वीणा आदि बाजे बजने लगे। भगवान्के आगे फूलोंकी वर्षा हुई। दर्शकोंके लिये यह विचित्र एवं अद्भुत घटना थी। मुनियोंने भी यह दृश्य देखकर मुनीश्वर आरण्यककी प्रशंसा करते हुए कहा—'ये मुनिश्रेष्ठ कृतार्थ हो गये! क्योंकि श्रीरघुनाथजीके स्वरूपमें मिल गये हैं।'
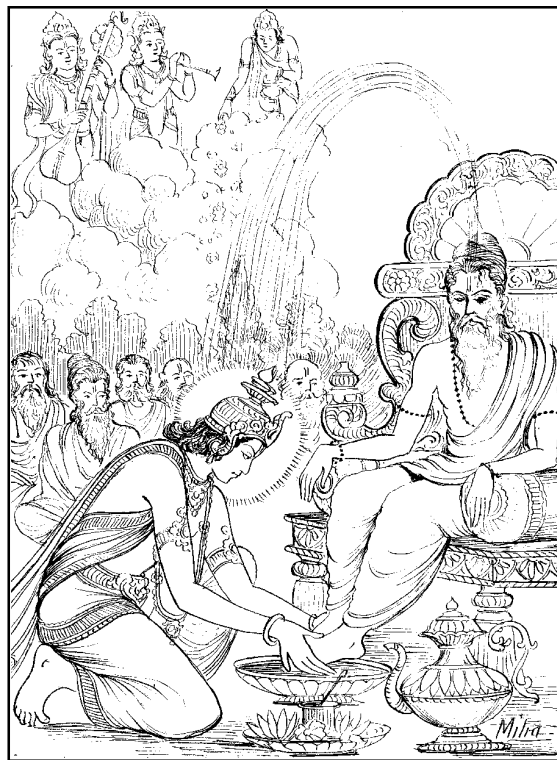
१-त्वन्नामस्मरणान्मूढः सर्वशास्त्रविवर्जितः। सर्वपापाब्धिमुत्तीर्य स गच्छेत्परमं पदम्॥
सर्ववेदेतिहासानां सारार्थोऽयमिति स्फुटम्। यद्रामनामस्मरणं क्रियते पापतारकम्॥
तावद्गर्जन्ति पापानि ब्रह्महत्यासमानि च। न यावत्प्रोच्यते नाम रामचन्द्र तव स्फुटम्॥
त्वन्नामगर्जनं श्रुत्वा महापातककुञ्जराः। पलायन्ते महाराज कुत्रचित्स्थानलिप्सया॥ (३७। ५०—५३)

२-तावत्पापभियः पुंसां कातराणां सुपापिनाम्। यावन्न वदते वाचा रामनाम मनोहरम्॥ (३७। ५६)

देवपुरके राजकुमार रुक्मांगदद्वारा अश्वका अपहरण, दोनों ओरकी सेनाओंमें युद्ध और पुष्कलके बाणसे राजा वीरमणिका मूर्च्छित होना

वात्स्यायन बोले—फणीश्वर! जो भक्तोंकी पीड़ा दूर करनेके लिये नाना प्रकारकी कीर्ति किया करते हैं, उन श्रीरघुनाथजीकी कथा सुननेसे मुझे तृप्ति नहीं होती—अधिकाधिक सुननेकी इच्छा बढ़ती जाती है। वेदोंको धारण करनेवाले आरण्यक मुनि धन्य थे, जिन्होंने श्रीरघुनाथजीका दर्शन करके उनके सामने ही अपने नश्वर शरीरका परित्याग किया था। शेषजी! अब यह बताइये कि महाराजका वह यज्ञसम्बन्धी अश्व वहाँसे किस ओर गया, किसने उसे पकड़ा तथा वहाँ रमानाथ श्रीरघुनाथजीकी कीर्तिका किस प्रकार विस्तार हुआ?

शेषजीने कहा—ब्रह्मर्षे! आपका प्रश्न बड़ा सुन्दर है। आप श्रीरघुनाथजीके सुने हुए गुणोंको भी नहीं सुने हुएके समान मानकर उनके प्रति अपना लोभ प्रकट करते हैं और बारम्बार उन्हें पूछते हैं। अच्छा, अब आगेकी कथा सुनिये। बहुतेरे सैनिकोंसे घिरा हुआ वह घोड़ा आरण्यक मुनिके आश्रमसे बाहर निकला और नर्मदाके मनोहर तटपर भ्रमण करता हुआ देवनिर्मित देवपुर नामक नगरमें जा पहुँचा। जहाँ मनुष्योंके घरोंकी दीवारें स्फटिक मणिकी बनी हुई थीं तथा वे गृह अपनी ऊँचाईके कारण हाथियोंसे भरे हुए विन्ध्याचल पर्वतका उपहास करते थे। वहाँकी प्रजाके घर भी चाँदीके बने हुए दिखायी देते थे तथा उनके गोपुर नाना प्रकारके माणिक्योंद्वारा बने हुए थे; जिनमें भाँति-भाँतिकी विचित्र मणियाँ जड़ी हुई थीं। उस नगरमें महाराज वीरमणि राज्य करते थे, जो धर्मात्माओंमें अग्रगण्य थे। उनका विशाल राज्य सब प्रकारके भोगोंसे सम्पन्न था। राजाके पुत्रका नाम था रुक्मांगद। वह महान् शूरवीर और बलवान् था। एक दिन वह सुन्दर शरीरवाली रमणियोंके साथ विहार करनेके लिये वनमें गया और वहाँ प्रसन्नचित्त होकर मधुर वाणीमें मनोहर गान करता हुआ विचरने लगा। इसी समय परम बुद्धिमान् राजाधिराज श्रीरामचन्द्रजीका वह शोभाशाली अश्व उस वनमें आ पहुँचा। उसके ललाटमें स्वर्णपत्र बँधा हुआ था। शरीरका रंग गंगाजलके समान स्वच्छ था। परन्तु केसर और कुंकुमसे चर्चित होनेके कारण कुछ पीला दिखायी देता था। वह अपनी तीव्र गतिसे वायुके वेगको भी तिरस्कृत कर रहा था। उसका स्वरूप अत्यन्त कौतूहलसे भरा हुआ था। उसे देखकर राजकुमारकी स्त्रियोंने कहा—'प्रियतम! स्वर्णपत्रसे शोभा पानेवाला यह महान् अश्व किसका है? यह देखनेमें बड़ा सुन्दर है। आप इसे बलपूर्वक पकड़ लें।'

राजकुमारके नेत्र लीलायुक्त चितवनके कारण बड़े सुन्दर जान पड़ते थे। उसने स्त्रियोंकी बातें सुनकर खेल-सा करते हुए एक ही हाथसे घोड़ेको पकड़ लिया। उसके भालपत्रपर स्पष्ट अक्षर लिखे हुए थे। राजकुमार उसे बाँचकर हँसा और उस महिला-मण्डलमें इस प्रकार बोला—'अहो! शौर्य और सम्पत्तिमें मेरे पिता महाराज वीरमणिकी समानता करनेवाला इस पृथ्वीपर दूसरा कोई नहीं है, तथापि उनके जीते-जी ये राजा रामचन्द्र इतना अहंकार कैसे धारण करते हैं? पिनाकधारी भगवान् शंकर जिनकी सदा रक्षा करते रहते हैं तथा देवता, दानव और यक्ष—अपने मणिमय मुकुटोंद्वारा जिनके चरणोंकी वन्दना किया करते हैं, वे महाबली मेरे पिताजी ही इस घोड़ेके द्वारा अश्वमेध-यज्ञ करें। इस समय यह घुड़सालमें जाय और मेरे सैनिक इसे ले जाकर वहाँ बाँध दें।' इस प्रकार उस घोड़ेको पकड़कर राजा वीरमणिका ज्येष्ठ पुत्र रुक्मांगद अपनी पत्नियोंके साथ नगरमें आया। उस समय उसके मनमें बड़ा उत्साह भरा हुआ था। उसने पितासे जाकर कहा—'मैं रघुकुलके स्वामी श्रीरामचन्द्रका घोड़ा ले आया हूँ। यह इच्छानुसार चलनेवाला अद्भुत अश्व अश्वमेधयज्ञके लिये छोड़ा गया था। रामके भाई शत्रुघ्न अपनी विशाल सेनाके साथ इसकी रक्षाके लिये आये हैं।' महाराज वीरमणि बड़े

बुद्धिमान् थे। पुत्रकी बात सुनकर उन्होंने उसके कार्यकी प्रशंसा नहीं की। सोचा कि 'यह घोड़ा लेकर चुपकेसे चला आया है। इसका यह कार्य तो चोरके समान है।' अद्‌भुत कर्म करनेवाले भगवान् शंकर राजाके इष्टदेव थे। उनसे राजाने सारा हाल कह सुनाया।

भगवान् शिवने कहा—राजन्! तुम्हारे पुत्रने बड़ा अद्‌भुत काम किया है। यह परम बुद्धिमान् भगवान् श्रीरामचन्द्रके महान् अश्वको हर लाया है, जिनका मैं अपने हृदयमें ध्यान करता हूँ, जिह्वासे जिनके नामका उच्चारण करता हूँ, उन्हीं श्रीरामके यज्ञ-सम्बन्धी अश्वका तुम्हारे पुत्रने अपहरण किया है। परन्तु इस युद्धक्षेत्रमें एक बहुत बड़ा लाभ यह होगा कि हमलोग भक्तोंद्वारा सेवित श्रीरघुनाथजीके चरणकमलोंका दर्शन कर सकेंगे। परन्तु अब हमें अश्वकी रक्षाके लिये महान् प्रयत्न करना होगा। इतनेपर भी मुझे संदेह है कि शत्रुघ्नके सैनिक मेरे द्वारा रक्षा किये जानेपर भी इसे बलपूर्वक पकड़ ले जायँगे। इसलिये महाराज [मैं तो यही सलाह दूँगा कि] तुम विनीत होकर जाओ और राज्यसहित इस सुन्दर अश्वको भगवान्‌की सेवामें अर्पण करके उनके चरणोंका दर्शन करो।

वीरमणि बोले—भगवन्! क्षत्रियोंका यह धर्म है कि वे अपने प्रतापकी रक्षा करें, अतः हर एक मानी पुरुषके लिये अपने प्रतापकी रक्षा करना कर्तव्य है; इसके लिये उसे अपनी शक्तिभर पराक्रम करना चाहिये। आवश्यकता हो तो शरीरको भी होम देना चाहिये। सहसा किसीकी शरणमें जानेसे शत्रु उपहास करते हैं। वे कहते हैं—'यह कायर है, राजाओंमें अधम है, क्षुद्र है। इस नीचने भयसे विह्वल होकर अनार्यपुरुषोंकी भाँति शत्रुके चरणोंमें मस्तक झुकाया है।' अतः अब युद्धका अवसर उपस्थित हो गया है। इस समय जैसा उचित हो, वही आप करें। कर्तव्यका विचार करके आपको अपने इस भक्तकी रक्षा करनी चाहिये।

शेषजी कहते हैं—राजाकी बात सुनकर भगवान् चन्द्रमौलि अपनी मेघके समान गम्भीर वाणीसे उनका मन लुभाते हुए हँसकर बोले—'राजन्! यदि तैंतीस करोड़ देवता भी आ जायँ तो भी किसमें इतनी शक्ति है जो मेरे द्वारा रक्षित रहनेपर तुमसे घोड़ा ले सके। यदि साक्षात् भगवान् यहाँ आकर अपने स्वरूपकी झाँकी करायेंगे तो मैं उनके कोमल चरणोंमें मस्तक झुकाऊँगा; क्योंकि सेवकका स्वामीके साथ युद्ध करना बहुत बड़ा अन्याय बताया गया है। शेष जितने वीर हैं, वे मेरे लिये तिनकेके समान हैं—कुछ भी नहीं कर सकते। अतः राजेन्द्र! तुम युद्ध करो, मैं तुम्हारा रक्षक हूँ। मेरे रहते कौन ऐसा वीर है जो बलपूर्वक घोड़ा ले जा सके? यदि त्रिलोकी भी संगठित होकर आ जाय तो मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती।'

इधर श्रीरघुनाथजीके जितने सैनिक थे, वे अश्वका मार्ग ढूँढ़ रहे थे। इतने ही में महाराज शत्रुघ्न भी अपनी विशाल सेनाके साथ आ पहुँचे। आते ही उन्होंने सभी सेवकोंसे प्रश्न किया—'कहाँ है मेरा अश्व? स्वर्णपत्रसे सुशोभित वह यज्ञसम्बन्धी घोड़ा इस समय दिखायी क्यों नहीं देता?' उनकी बात सुनकर अश्वके पीछे चलनेवाले सेवकोंने कहा—'नाथ! उस मनके समान तीव्रगामी अश्वको इस जंगलमें किसीने हर लिया। हमें भी वह कहीं दिखायी नहीं देता।' सेवकोंके वचन सुनकर राजा शत्रुघ्नने सुमतिसे पूछा—'मन्त्रिवर! यहाँ कौन राजा निवास करता है? हमें अश्वकी प्राप्ति कैसे होगी? जिसने आज हमारे अश्वका अपहरण किया है, उस राजाके पास कितनी सेना है?' इस प्रकार शत्रुघ्नजी मन्त्रीके साथ परामर्श कर रहे थे, इतनेहीमें देवर्षि नारद युद्ध देखनेके लिये उत्सुक होकर वहाँ आये। शत्रुघ्नने उन्हें स्वागत-सत्कारसे सन्तुष्ट किया। वे बातचीत करनेमें बड़े चतुर थे; अतः अपनी वाणीसे नारदजीको प्रसन्न करते हुए बोले—'महामते! बताइये, मेरा अश्व कहाँ है? उसका कुछ पता नहीं चलता। मेरे कार्यकुशल अनुचर भी उसके मार्गका अनुसन्धान नहीं कर पाते।'

नारदजी वीणा बजाते और श्रीराम-कथाका बारम्बार गान करते हुए बोले—'राजन्! यहाँ देवपुर नामका नगर है उसमें वीरमणि नामसे विख्यात एक बहुत बड़े राजा रहते हैं। उनका पुत्र इस वनमें आया था, उसीने

अश्वको पकड़ लिया है। आज उस राजाके साथ तुमलोगोंका बड़ा भयंकर युद्ध होगा। उसमें बड़े-बड़े बलवान् और शूरवीर मारे जायँगे। इसलिये तुम पूरी तैयारीके साथ यहाँ स्थिरतापूर्वक खड़े रहो तथा सेनाका ऐसा व्यूह बनाओ; जिसमें शत्रुके सैनिकोंका प्रवेश करना अत्यन्त कठिन हो। श्रेष्ठ राजा वीरमणिसे युद्ध करते समय तुम्हें बड़ी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ेगा; तथापि अन्तमें विजय तुम्हारी ही होगी। भला, सम्पूर्ण जगत्में कौन ऐसा वीर है, जो भगवान् श्रीरामको पराजित कर सके।' ऐसा कहकर नारदजी वहाँसे अन्तर्धान हो गये और देवता तथा दानवोंके समान उन दोनों पक्षोंका भयंकर युद्ध देखनेके लिये आकाशमें ठहर गये।
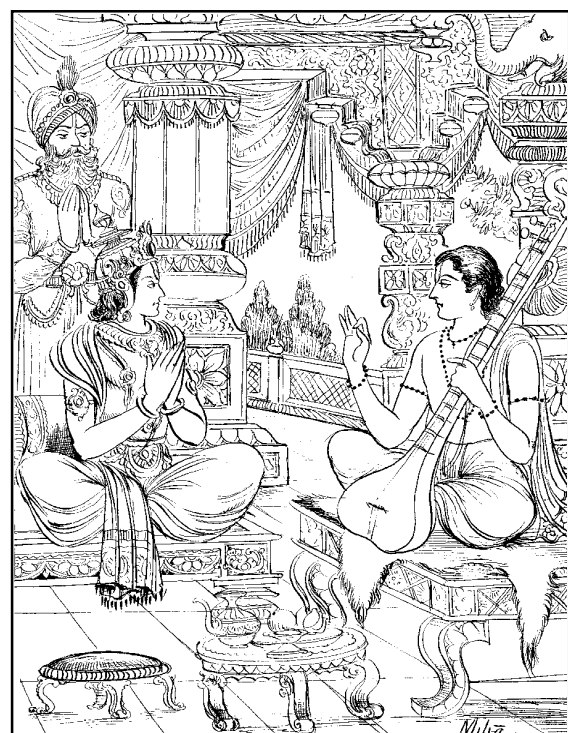
उधर शूरशिरोमणि राजा वीरमणिने रिपुवार नामक सेनापतिको बुलाया और उसे अपने नगरमें ढिंढोरा पिटवानेका आदेश दिया। सेनापतिने राजाकी आज्ञाका पालन किया। प्रत्येक घर, गली और सड़कपर डंकेकी आवाज सुनायी देने लगी। लोगोंको जो घोषणा सुनायी गयी, वह इस प्रकार थी—'राजधानीमें जो-जो वीर उपस्थित हैं, वे सभी शत्रुघ्नपर चढ़ाई करें। जो लोग वीरताके अभिमानमें आकर राजाज्ञाका उल्लंघन करेंगे, वे महाराजके पुत्र या भाई ही क्यों न हों, वधके योग्य समझे जायँगे। फिरसे डंका बजाकर उपर्युक्त घोषणा दुहराई जाती है—सभी वीर सुन लें और सुनकर शीघ्र ही अपने कर्तव्यका पालन करें। विलम्ब नहीं होना चाहिये।' नरश्रेष्ठ वीरमणिके सैनिक श्रेष्ठ योद्धा थे। उन्होंने यह घोषणा अपने कानों सुनी और कवच आदिसे सुसज्जित होकर वे महाराजके पास गये। उनकी दृष्टिमें युद्ध एक महान् उत्सवके समान था; उसका अवसर पाकर उनका हृदय हर्ष और उत्साहसे भर गया था। राजकुमार रुक्मांगद भी अपने मनके समान वेगशाली रथपर सवार होकर आये। उनके छोटे भाई शुभांगद भी अपने सुन्दर शरीरपर बहुमूल्य रत्नमय कवच धारण करके रणोत्सवमें सम्मिलित होनेके लिये प्रस्थित हुए। महाराजके भाईका नाम था वीरसिंह। वे सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंकी विद्यामें प्रवीण थे। राजाज्ञाके अनुसार वे भी दरबारमें गये; क्योंकि महाराजका शासन कोई लाँघ नहीं सकता था। राजाका भानजा बलमित्र भी उपस्थित हुआ तथा सेनापति रिपुवारने भी चतुरंगिणी सेना तैयार करके महाराजको इसकी सूचना दी।

तदनन्तर राजा वीरमणि सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे भरे हुए अपने श्रेष्ठ रथपर सवार हुए। वह रथ बहुत ऊँचा था और उसके ऊँचे-ऊँचे पहिये मणियोंके बने हुए थे। चारों ओरसे भेरियाँ बज उठीं। उनके बजानेवाले बहुत अच्छे थे। भेरी बजते ही राजाकी सेना संग्रामके लिये प्रस्थित हुई। सर्वत्र कोलाहल छा गया। महाराज वीरमणि युद्धके उत्साहसे युक्त होकर रणक्षेत्रकी ओर गये। राजाकी सेना आ पहुँची। शस्त्र-संचालनमें चतुर रथियोंके द्वारा समूची सेनामें महान् कोलाहल छा रहा है, यह देखकर शत्रुघ्नने सुमतिसे कहा—'मन्त्रिवर! मेरे अश्वको पकड़नेवाले बलवान् राजा वीरमणि मुझसे युद्ध करनेके लिये विशाल चतुरंगिणी सेनाके साथ आ गये; अब किस तरह युद्ध आरम्भ करना चाहिये। कौन-कौन महाबली योद्धा इस समय युद्ध करेंगे? उन सबको आदेश दो; जिससे इस संग्राममें हमें मनोवांछित विजय प्राप्त हो।'

सुमतिने कहा—स्वामिन्! वीर पुष्कल श्रेष्ठ अस्त्रोंके ज्ञाता हैं; इस समय ये ही युद्ध करें। नीलरत्न आदि दूसरे योद्धा भी संग्राममें कुशल हैं; अतः वे भी लड़ सकते हैं। आपको तो भगवान् शंकर अथवा राजा वीरमणिके साथ ही युद्ध करना चाहिये। वे राजा बड़े बलवान् और पराक्रमी हैं; उन्हें द्वन्द्वयुद्धके द्वारा जीतना चाहिये। इस उपायसे काम लेनेपर आपकी विजय होगी। इसके बाद आपको जैसा जँचे, वैसा ही कीजिये; क्योंकि आप तो स्वयं ही परम बुद्धिमान् हैं।

मन्त्रीकी यह बात सुनकर शत्रुवीरोंका दमन करनेवाले शत्रुघ्नने युद्धके लिये निश्चय किया और श्रेष्ठ योद्धाओंको लड़नेकी आज्ञा दी। संग्रामके लिये उनकी आज्ञा सुनकर युद्धकुशल वीर अत्यन्त उत्साहसे भर गये और शत्रुसैनिकोंके साथ युद्ध करनेके लिये चले। वे हाथोंमें धनुष धारण किये युद्धके मैदानमें दिखायी दिये और बाणोंकी बौछार करके बहुतेरे विपक्षी योद्धाओंको विदीर्ण करने लगे। उनके द्वारा अपने सैनिकोंका संहार सुनकर मणिमय रथपर बैठा हुआ बलवान् राजकुमार रुक्मांगद उनका सामना करनेके लिये आगे बढ़ा। उसने अपने अनेकों बाणोंकी मारसे शत्रुपक्षके हजारों वीरोंको उद्विग्न कर दिया। उनमें हाहाकार मच गया। राजकुमार बलवान् था; उसने बल, यश और सम्पत्तिमें अपनी समानता रखनेवाले शत्रुघ्न तथा भरतकुमार पुष्कलको युद्धके लिये ललकारा—'वीररत्न! मुझसे युद्ध करनेके लिये आओ। इन करोड़ों मनुष्योंको डराने या मारनेसे क्या लाभ? मेरे साथ घोर संग्राम करके विजय प्राप्त करो।'

रुक्मांगदके ऐसा कहनेपर बलवान् वीर पुष्कल हँस पड़े। उन्होंने अपने तीखे बाणोंसे राजकुमारकी छातीमें बड़े वेगसे प्रहार किया। राजकुमार शत्रुके इस पराक्रमको नहीं सह सका। उसने अपने महान् धनुषपर बाणोंका सन्धान किया और दस सायकोंसे वीर पुष्कलकी छातीको बींध डाला। दोनों ही युद्धमें एक दूसरेपर कुपित थे। दोनोंहीके हृदयमें विजयकी अभिलाषा थी। रुक्मांगदने पुष्कलसे कहा—'वीर! अब तुम बलपूर्वक किया हुआ मेरा पराक्रम देखो। सम्हलकर बैठ जाओ, मैं तुम्हारे रथको आकाशमें उड़ाता हूँ।' ऐसा कहकर उसने मन्त्र पढ़ा और पुष्कलके रथपर भ्रामकास्त्रका प्रयोग किया। उस बाणसे आहत होकर पुष्कलका रथ चक्कर काटता हुआ एक योजन दूर जा पड़ा। सारथिने बड़ी कठिनाईसे रथको रोका तो भी वह पृथ्वीपर ही चक्कर लगाता रहा। किसी तरह पूर्वस्थानपर रथको ले जाकर उत्तम अस्त्रोंके ज्ञाता पुष्कलने कहा—'राजकुमार! तुम्हारे-जैसे वीर पृथ्वीपर रहनेके योग्य नहीं हैं। तुम्हें तो इन्द्रकी सभामें रहना चाहिये; इसलिये अब देवलोकको ही चले जाओ।' ऐसा कहकर उन्होंने आकाशमें उड़ा देनेवाले महान् अस्त्रका प्रयोग किया। उस बाणकी चोटसे रुक्मांगदका रथ सीधे आकाशमें उड़ चला और समस्त लोकोंको लाँघता हुआ सूर्यमण्डलतक जा पहुँचा। वहाँकी प्रचण्ड ज्वालासे राजकुमारका रथ घोड़े और सारथिसहित दग्ध हो गया तथा वह स्वयं भी सूर्यकी किरणोंसे झुलस जानेके कारण बहुत दुःखी हो गया। अन्तमें वह दग्ध होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। उस समय युद्धके अग्रभागमें महान् हाहाकार मचा। राजा वीरमणि अपने पुत्रको मूर्च्छित देखकर क्रोधमें भर गये और रणभूमिके मध्यभागमें खड़े हुए पुष्कलकी ओर चले।

इधर कपिवर हनुमान्‌जीने जब देखा कि समुद्रके समान विशाल सेनाके भीतर स्थित हुए राजा वीरमणि भरतकुमार पुष्कलको ललकार रहे हैं तब वे उनकी ओर दौड़े। उन्हें आते देख पुष्कलने कहा—'महाकपे! आप क्यों युद्धभूमिमें लड़नेके लिये आ रहे हैं? राजा वीरमणिकी यह सेना है ही कितनी! मैं तो इसे बहुत थोड़ी—अत्यन्त तुच्छ समझता हूँ। जिस प्रकार आपने भगवान् श्रीरामकी कृपासे राक्षस-सेनारूपी समुद्रको पार किया था, उसी प्रकार मैं भी श्रीरघुनाथजीका स्मरण करके इस दुस्तर संकटके पार हो जाऊँगा। जो लोग दुस्तर अवस्थामें पड़कर श्रीरघुनाथजीका स्मरण करते हैं, उनका दुःखरूपी समुद्र सूख जाता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है; इसलिये महावीर! आप चाचा शत्रुघ्नके

पास जाइये। मैं अभी एक क्षणमें राजा वीरमणिको जीतकर आ रहा हूँ।'

हनुमान्‌जी बोले—बेटा! राजा वीरमणिसे भिड़नेका साहस न करो। ये दानी, शरणागतकी रक्षामें कुशल, बलवान् और शौर्यसे शोभा पानेवाले हैं। तुम अभी बालक हो और राजा वृद्ध। ये सम्पूर्ण अस्त्र-वेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं। इन्होंने युद्धमें अनेकों शूरवीरोंको परास्त किया है। तुम्हें मालूम होना चाहिये कि भगवान् सदाशिव इनके रक्षक हैं और सदा इनके पास रहते हैं। वे राजाकी भक्तिके वशीभूत होकर इनके नगरमें पार्वतीसहित निवास करते हैं।

पुष्कलने कहा—कपिश्रेष्ठ! माना कि राजाने भगवान् शंकरको भक्तिसे वशमें करके अपने नगरमें स्थापित कर रखा है; परन्तु भगवान् शंकर स्वयं जिनकी आराधना करके सर्वोत्कृष्ट स्थानको प्राप्त हुए हैं, वे श्रीरघुनाथजी मेरा हृदय छोड़कर कहीं नहीं जाते। जहाँ श्रीरघुनाथजी हैं, वहीं सम्पूर्ण चराचर जगत् है; अत: मैं राजा वीरमणिको युद्धमें जीत लूँगा।

धीरतापूर्वक कही हुई पुष्कलकी ऐसी वाणी सुनकर हनुमान्‌जी राजाके छोटे भाई वीरसिंहसे युद्ध करनेके लिये चले गये। पुष्कल द्वैरथ-युद्धमें कुशल थे और सुवर्णजटित रथपर विराजमान थे। वे राजाको ललकारते देख उनका सामना करनेके लिये गये। उन्हें आया देखकर राजा वीरमणिने कहा—'बालक! मेरे सामने न आओ, मैं इस समय क्रोधमें भरा हूँ; युद्धमें मेरा क्रोध और भी बढ़ जाता है; यदि प्राण बचानेकी इच्छा हो तो लौट जाओ। मेरे साथ युद्ध मत करो।' राजाका यह वचन सुनकर पुष्कलने कहा—'राजन्! आप युद्धके मुहानेपर सँभलकर खड़े होइये। मैं श्रीरामका भक्त हूँ; मुझे कोई युद्धमें जीत नहीं सकता, चाहे वह इन्द्र-पदका ही अधिकारी क्यों न हो।' पुष्कलका ऐसा वचन सुनकर राजाओंमें अग्रगण्य वीरमणि उन्हें निरा बालक समझकर हँसने लगे, तत्पश्चात् उन्होंने अपना क्रोध प्रकट किया। राजाको कुपित जानकर रणोन्मत्त वीर भरतकुमारने उनकी छातीमें बीस तीखे बाणोंका प्रहार किया। उन बाणोंको आते देख राजाने अत्यन्त कुपित होकर अपने तीक्ष्ण सायकोंसे उनके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। बाणोंका काटा जाना देख शत्रु-वीरोंका विनाश करनेवाले भरतकुमारके हृदयमें बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने तीन बाणोंसे राजाके ललाटको बींध डाला। उन बाणोंकी चोटसे राजाको बड़ी व्यथा हुई। वे प्रचण्ड क्रोधमें भर गये और वीर पुष्कलकी छातीमें उन्होंने नौ बाण मारे। तब तो पुष्कलका क्रोध भी बढ़ा। उन्होंने तीखे पर्ववाले सौ बाण मारकर तुरंत ही राजाको घायल कर दिया। उन बाणोंके प्रहारसे राजाका कवच, किरीट, शिरस्त्राण तथा रथ—सभी छिन्न-भिन्न हो गये। तब वीरमणि दूसरे रथपर सवार होकर भरतकुमारके सामने आये और बोले—'श्रीरामचन्द्रजीके चरण-कमलोंमें भ्रमरके समान अनुराग रखनेवाले वीर पुष्कल! तुम धन्य हो!' ऐसा कहकर अस्त्र-विद्यामें कुशल राजाने उनपर असंख्य बाणोंका प्रहार किया। वहाँ पृथ्वीपर और दिशाओंमें उनके बाणोंके सिवा दूसरा कुछ नहीं दिखायी देता था। अपनी सेनाका यह संहार देखकर रथियोंमें अग्रगण्य पुष्कलने भी शत्रुपक्षके योद्धाओंका विनाश आरम्भ किया। हाथियोंके मस्तक विदीर्ण होने लगे, उनके मोती बिखर-बिखरकर गिरने लगे। उस समय क्रोधमें भरे हुए पुष्कलने राजा वीरमणिको सम्बोधित करके शंख बजाकर निर्भयतापूर्वक कहा—'राजन्! आप वृद्ध होनेके कारण मेरे मान्य हैं, तथापि इस समय युद्धमें मेरा महान् पराक्रम देखिये। वीरवर! यदि तीन बाणोंसे मैं आपको मूर्च्छित न कर दूँ तो जो महापापी मनुष्य पापहारिणी गंगाजीके तटपर जाकर भी उनकी निन्दा करके उनके जलमें डुबकी नहीं लगाता, उसको लगनेवाला पाप मुझे ही लगे।'

यह कहकर पुष्कलने राजाके महान् वक्ष:स्थलको, जो किवाड़ोंके समान विस्तृत था निशाना बनाया और एक अग्निके समान तेजस्वी एवं तीक्ष्ण बाण छोड़ा। किन्तु राजाने अपने बाणसे पुष्कलके उस बाणके दो टुकड़े कर डाले। उनमेंसे एक टुकड़ा तो भूमण्डलको प्रकाशित करता हुआ पृथ्वीपर गिर पड़ा और दूसरा

राजाके रथपर गिरा। तब पुष्कलने अपना मातृ-भक्तिजनित पुण्य अर्पण करके दूसरा बाण चलाया; किन्तु राजाने अपने महान् बाणसे उसको भी काट दिया। इससे पुष्कलके मनमें बड़ा खेद हुआ। वे सोचने लगे—'अब क्या करना चाहिये?' इतनेहीमें उन्हें एक उपाय सूझ गया। वे श्रेष्ठ अस्त्रोंके ज्ञाता तो थे ही, अपनी पीड़ा दूर करनेवाले श्रीरघुनाथजीका उन्होंने मन-ही-मन स्मरण किया और तीसरा बाण छोड़ दिया। वह बाण सर्पके समान विषैला और सूर्यके समान प्रज्वलित था। उसने राजाकी छातीमें चोट पहुँचाकर उन्हें मूर्च्छित कर दिया। राजाके मूर्च्छित होते ही उनकी सारी सेना हाहाकार मचाती हुई भाग चली और पुष्कल विजयी हुए।

हनुमान्जीके द्वारा वीरसिंहकी पराजय, वीरभद्रके हाथसे पुष्कलका वध, शंकरजीके द्वारा शत्रुघ्नका मूर्च्छित होना, हनुमान्के पराक्रमसे शिवका संतोष, हनुमान्जीके उद्योगसे मरे हुए वीरोंका जीवित होना, श्रीरामका प्रादुर्भाव और वीरमणिका आत्मसमर्पण

शेषजी कहते हैं—मुने! हनुमान्जीने वीरसिंहके पास जाकर कहा—'वीरवर! ठहरो, कहाँ जाते हो? मैं एक ही क्षणमें तुम्हें परास्त करूँगा।' वानरके मुखसे ऐसी बढ़ी-चढ़ी बात सुनकर वीरसिंह क्रोधमें भर गये और मेघके समान गम्भीर ध्वनि करनेवाले धनुषको खींचकर तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करने लगे। उस समय रणभूमिमें उनकी ऐसी शोभा हो रही थी, मानो आषाढ़के महीनेमें धारावाहिक वृष्टि करनेवाला मनोहर मेघ शोभा पा रहा हो। उन तीखे बाणोंको अपने शरीरपर लगते देख हनुमान्जीने वज्रके समान मुक्का वीरसिंहकी छातीमें मारा। मुष्टिका-प्रहार होते ही वे मूर्च्छित होकर धरतीपर गिर पड़े। अपने चाचाको मूर्च्छित देख राजकुमार शुभांगद वहाँ आ पहुँचा। रुक्मांगदकी भी मूर्च्छा दूर हो चुकी थी; अतः वह भी युद्ध क्षेत्रमें आ धमका। वे दोनों भाई भयंकर संग्राम करते हुए हनुमान्जीके पास गये। उन दोनों वीरोंको समर-भूमिमें आया देख हनुमान्जीने उन्हें रथ और धनुषसहित अपनी पूँछमें लपेट लिया और पृथ्वीपर बड़े वेगसे पटका। इससे वे दोनों राजकुमार तत्काल मूर्च्छित हो गये। इसी प्रकार बलमित्र भी सुमदके साथ बहुत देरतक युद्ध करके अन्तमें मूर्च्छाको प्राप्त हुए।

तदनन्तर अपने आत्मीय जनोंको मूर्च्छित देख भक्तोंकी पीड़ा दूर करनेवाले भगवान् महेश्वर स्वयं ही उस विशाल सेनामें शत्रुघ्नके सैनिकोंके साथ युद्ध करनेके लिये गये। उनका उद्देश्य था भक्तोंकी रक्षा करना। वे पूर्वकालमें जैसे त्रिपुरसे युद्ध करनेके लिये गये थे, उसी प्रकार वहाँ भी अपने पार्षदों और प्रमथ-गणोंसहित पृथ्वीतलको कँपाते हुए जा पहुँचे। महाबली शत्रुघ्नने जब देखा कि सर्वदेवशिरोमणि साक्षात् महेश्वर पधारे हैं, तब वे भी उनका सामना करनेके लिये रणभूमिमें गये। शत्रुघ्नको आया देख पिनाकधारी रुद्रने वीरभद्रसे कहा—'तुम मेरे भक्तको पीड़ा देनेवाले पुष्कलसे युद्ध करो।' फिर नन्दीको उन्होंने महाबली हनुमान्से लड़नेके लिये भेजा। तदनन्तर कुशध्वजके पास प्रचण्डको, सुबाहुके पास भृंगीको और सुमदके पास चण्ड नामक अपने गणको भेजकर युद्धके लिये आदेश दिया। महारुद्रके प्रधान गण वीरभद्रको आया देख पुष्कल अत्यन्त उत्साहपूर्वक उनसे युद्ध करनेको आगे बढ़े। उन्होंने पाँच बाणोंसे वीरभद्रको घायल किया। उनके बाणोंसे क्षत-विक्षत होकर वीरभद्रने त्रिशूल हाथमें लिया; किन्तु महाबली पुष्कलने एक ही क्षणमें उस त्रिशूलको काटकर विकट गर्जना की। अपने त्रिशूलको कटा देख रुद्रके अनुगामी महाबली वीरभद्रको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने महारथी पुष्कलके रथको तोड़ डाला। वीरभद्रके वेगसे चकनाचूर हुए रथको त्याग कर महाबली पुष्कल पैदल हो गये

और वीरभद्रको मुक्केसे मारने लगे। फिर दोनोंने एक दूसरेपर मुष्टिकाप्रहार आरम्भ किया। दोनों ही परस्पर विजयके अभिलाषी और एक-दूसरेके प्राण लेनेको उतारू थे। इस प्रकार रात-दिन लगातार युद्ध करते उन्हें चार दिन व्यतीत हो गये। पाँचवें दिन पुष्कलको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने वीरभद्रका गला पकड़कर उन्हें पृथ्वीपर दे मारा। उनके प्रहारसे महाबली वीरभद्रको बड़ी पीड़ा हुई। फिर उन्होंने भी पुष्कलके पैर पकड़कर उन्हें बारम्बार घुमाया और पृथ्वीपर पछाड़कर मार डाला। महाबली वीरभद्रने पुष्कलके मस्तकको, जिसमें कुण्डल जगमगा रहे थे, त्रिशूलसे काट दिया। इसके बाद वे जोर-जोरसे गर्जना करने लगे। यह देखकर सभी लोग थर्रा उठे। रणभूमिमें जो युद्ध-कुशल वीर थे, उन्होंने वीरभद्रके द्वारा पुष्कलके मारे जानेका समाचार शत्रुघ्नसे कहा।

पुष्कलके वधका वृत्तान्त सुनकर महावीर शत्रुघ्नको बड़ा दुःख हुआ। वे शोकसे काँप उठे। उन्हें दुःखी जानकर भगवान् शंकरने कहा—'रे शत्रुघ्न! तू युद्धमें शोक न कर। वीर पुष्कल धन्य है, जिसने महाप्रलयकारी वीरभद्रके साथ पाँच दिनोंतक युद्ध किया। ये वीरभद्र वे ही हैं, जिन्होंने मेरे अपमान करनेवाले दक्षको क्षणभरमें मार डाला था; अतः महाबलवान् राजेन्द्र! तू शोक त्याग दे और युद्ध कर। शत्रुघ्नने शोक छोड़ दिया। उन्हें शंकरके प्रति बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने चढ़ाये हुए धनुषको हाथमें लेकर महेश्वरपर बाणोंका प्रहार आरम्भ किया। उधरसे शंकरने भी बाण छोड़े। दोनोंके बाण आकाशमें छा गये। बाण-युद्धमें दोनोंकी क्षमता देखकर सब लोगोंको यह विश्वास हो गया कि अब सबको मोहमें डालनेवाला लोक-संहारकारी प्रलयकाल आ पहुँचा। दर्शक कहने लगे—'ये तीनों लोकोंकी उत्पत्ति और प्रलय करनेवाले रुद्र हैं, तो वे भी महाराज श्रीरामचन्द्रके छोटे भाई हैं। न जाने क्या होगा। इस भूतलपर किसकी विजय होगी?'

इस प्रकार शत्रुघ्न और शिवमें ग्यारह दिनोंतक परस्पर युद्ध होता रहा। बारहवें दिन राजा शत्रुघ्नने क्रोधमें भरकर महादेवजीका वध करनेके लिये ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया, किन्तु महादेवजी उस महान् अस्त्रको हँसते-हँसते पी गये। इससे शत्रुघ्नको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे सोचने लगे—'अब क्या करना चाहिये?' वे इस प्रकार विचार कर ही रहे थे कि देवाधिदेवोंके शिरोमणि भगवान् शिवने शत्रुघ्नकी छातीमें एक अग्निके समान तेजस्वी बाण भोंक दिया। उससे मूर्च्छित होकर शत्रुघ्न रणभूमिमें गिर पड़े। उस समय योद्धाओंसे भरी हुई उनकी सारी सेनामें हाहाकार मच गया। शत्रुघ्नको बाणोंसे पीड़ित एवं मूर्च्छित होकर गिरा देख हनुमान्जीने पुष्कलके शरीरको रथपर सुला दिया और सेवकोंको उनकी रक्षामें तैनात करके वे स्वयं संहारकारी शिवसे युद्ध करनेके लिये आये। हनुमान्जी श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण करके अपने पक्षके योद्धाओंका हर्ष बढ़ाते हुए रोषके मारे अपनी पूँछको जोर-जोरसे हिला रहे थे।

युद्धके मुहानेपर रुद्रके समीप पहुँचकर महावीर हनुमान्जी देवाधिदेव महादेवजीका वध करनेकी इच्छासे बोले—'रुद्र! तुम राम-भक्तका वध करनेके लिये उद्यत होकर धर्मके प्रतिकूल आचरण कर रहे हो; इसलिये मैं तुम्हें दण्ड देना चाहता हूँ। मैंने पूर्वकालमें वैदिक ऋषियोंके मुँहसे अनेकों बार सुना है कि पिनाकधारी रुद्र सदा ही श्रीरघुनाथजीके चरणोंका स्मरण करते रहते हैं; किन्तु वे सभी बातें आज झूठी साबित हुईं। क्योंकि तुमने राम-भक्त शत्रुघ्नके साथ युद्ध किया है।' हनुमान्जीके ऐसा कहनेपर महेश्वर बोले—'कपिश्रेष्ठ! तुम वीरोंमें प्रधान और धन्य हो। तुमने जो कुछ कहा है, वह सत्य है। देव-दानववन्दित ये भगवान् श्रीरामचन्द्रजी वास्तवमें मेरे स्वामी हैं। किन्तु मेरा भक्त वीरमणि उनके अश्वको ले आया है और उस अश्वके रक्षक शत्रुघ्न, जो शत्रुवीरोंका दमन करनेवाले हैं, इसके ऊपर चढ़ आये हैं। इस अवस्थामें मैं वीरमणिकी भक्तिके वशीभूत होकर उसकी रक्षाके लिये आया हूँ; क्योंकि भक्त अपना ही स्वरूप होता है। अतः जिस किसी तरह भी सम्भव हो, उसकी रक्षा करनी चाहिये; यही मर्यादा है।'

चण्डीपति भगवान् शंकरके ऐसा कहनेपर हनुमान्जी बहुत कुपित हुए और उन्होंने एक बड़ी शिला

लेकर उसे उनके रथपर दे मारा। शिलाका आघात पाकर महादेवजीका रथ घोड़े, सारथि, ध्वजा और पताकासहित चूर-चूर हो गया। शिवजीको रथहीन देखकर नन्दी दौड़े हुए आये और बोले—'भगवन्! मेरी पीठपर सवार हो जाइये।' भूतनाथको वृषभपर आरूढ़ देख हनुमान्‌जीका क्रोध और भी बढ़ गया। उन्होंने शालका वृक्ष उखाड़कर बड़े वेगसे उनकी छातीपर प्रहार किया। उसकी चोट खाकर भगवान् भूतनाथने एक तीखा शूल हाथमें लिया, जिसकी तीन शिखाएँ थीं तथा जो अग्निकी ज्वालाकी भाँति जाज्वल्यमान हो रहा था। अग्नितुल्य तेजस्वी उस महान् शूलको अपनी ओर आते देख हनुमान्‌जीने वेगपूर्वक हाथसे पकड़ लिया और उसे क्षणभरमें तिल-तिल करके तोड़ डाला। कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌ने जब वेगके साथ त्रिशूलके टुकड़े-टुकड़े कर डाले, तब भगवान् शिवने तुरंत ही शक्ति हाथमें ली, जो सब-की-सब लोहेकी बनी हुई थी। शिवजीकी चलायी हुई वह शक्ति बुद्धिमान् हनुमान्‌जीकी छातीमें आ लगी। इससे वे कपिश्रेष्ठ क्षणभर बड़े विकल रहे। फिर एक ही क्षणमें उस पीड़ाको सहकर उन्होंने एक भयंकर वृक्ष उखाड़ लिया और बड़े-बड़े नागोंसे विभूषित महादेवजीकी छातीमें प्रहार किया। वीरवर हनुमान्‌जीकी मार खाकर शिवजीके शरीरमें लिपटे हुए नाग थर्रा उठे और वे उन्हें छोड़कर इधर-उधर होते हुए बड़े वेगसे पातालमें घुस गये। इसके बाद शिवजीने उनके ऊपर मूसल चलाया, किन्तु वे उसका वार बचा गये। उस समय रामसेवक हनुमान्‌जीको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने हाथपर पर्वत लेकर उसे शिवजीकी छातीपर दे मारा। तदनन्तर, उनके ऊपर दूसरी-दूसरी शिलाओं, वृक्षों और पर्वतोंकी वृष्टि आरम्भ कर दी। वे भगवान् भूतनाथको अपनी पूँछमें लपेटकर मारने लगे। इससे नन्दीको बड़ा भय हुआ। उन्होंने एक-एक क्षणमें प्रहार करके शिवजीको अत्यन्त व्याकुल कर दिया। तब वे वानरराज हनुमान्‌जीसे बोले—'रघुनाथजीकी सेवामें रहनेवाले भक्तप्रवर तुम धन्य हो। आज तुमने महान् पराक्रम कर दिखाया। इससे मुझे बड़ा सन्तोष हुआ है। महान् वेगशाली वीर! मैं दान, यज्ञ या थोड़ी-सी तपस्यासे सुलभ नहीं हूँ; अतः मुझसे कोई वर माँगो।'

भगवान् शिव सन्तुष्ट होकर जब ऐसी बात कहने लगे, तब हनुमान्‌जीने हँसकर निर्भय वाणीमें कहा—'महेश्वर! श्रीरघुनाथजीके प्रसादसे मुझे सब कुछ प्राप्त है; तथापि आप मेरे युद्धसे सन्तुष्ट हैं, इसलिये मैं आपसे यह वर माँगता हूँ। हमारे पक्षके ये वीर पुष्कल युद्धमें मारे जाकर पृथ्वीपर पड़े हैं, श्रीरामचन्द्रजीके छोटे भाई शत्रुघ्न भी रणमें मूर्च्छित हो गये हैं तथा दूसरे भी बहुत-से वीर बाणोंकी मारसे क्षत-विक्षत एवं मूर्च्छित होकर धरतीपर गिरे हुए हैं। इन सबकी आप अपने गणोंके साथ रहकर रक्षा करें। इनके शरीरका खण्ड-खण्ड न हो, इस बातकी चेष्टा करें। मैं अभी द्रोणगिरिको लाने जा रहा हूँ, उसपर मरे हुए प्राणियोंको जिलानेवाली ओषधियाँ रहती हैं।' यह सुनकर शंकरजीने कहा—'बहुत अच्छा, जाओ।' उनकी स्वीकृति पाकर हनुमान्‌जी सम्पूर्ण द्वीपोंको लाँघते हुए क्षीरसागरके तटपर गये। इधर भगवान् शिव अपने गणोंके साथ रहकर पुष्कल आदिकी रक्षा करने लगे। हनुमान्‌जी द्रोण नामक महान् पर्वतपर पहुँचकर जब उसे लानेको उद्यत हुए, तब वह काँपने लगा। उस पर्वतको काँपते देख उसकी रक्षा करनेवाले देवताओंने कहा—'छोड़ दो इसे, किसलिये यहाँ आये हो? क्यों इसे ले जाना चाहते हो?' उनकी बात सुनकर महायशस्वी हनुमान्‌जी बोले—'देवताओ! राजा वीरमणिके नगरमें जो संग्राम हो रहा है, उसमें रुद्रके द्वारा हमारे पक्षके बहुत-से योद्धा मारे गये हैं। उन्हींको जीवित करनेके लिये मैं यह द्रोण पर्वत ले जाऊँगा। जो लोग अपने बल और पराक्रमके घमंडमें आकर इसे रोकेंगे, उन्हें एक ही क्षणमें मैं यमराजके घर भेज दूँगा। अतः तुमलोग मुझे समूचा द्रोण पर्वत अथवा वह औषध दे दो, जिससे मैं रणभूमिमें मरे हुए वीरोंको जीवन-दान कर सकूँ।' पवनकुमारके ये वचन सुनकर सबने उन्हें प्रणाम किया और संजीवनी नामक ओषधि उन्हें दे दी। हनुमान्‌जी औषध लेकर युद्धक्षेत्रमें आये।

उन्हें आया देख समस्त वैरी भी साधु-साधु कहकर उनकी प्रशंसा करने लगे तथा सबने उन्हें एक अद्भुत शक्तिशाली वीर माना। हनुमान्‌जी बड़ी प्रसन्नताके साथ मरे हुए वीर पुष्कलके पास आये और महापुरुषोंके भी आदरणीय मन्त्रिवर सुमतिको बुलाकर बोले—'आज मैं युद्धमें मरे हुए सम्पूर्ण वीरोंको जिलाऊँगा।'

ऐसा कहकर उन्होंने पुष्कलके विशाल वक्षःस्थल-पर औषध रखा और उनके सिरको धड़से जोड़कर यह कल्याणमय वचन कहा—'यदि मैं मन, वाणी और क्रियाके द्वारा श्रीरघुनाथजीको ही अपना स्वामी समझता हूँ तो इस दवासे पुष्कल शीघ्र ही जीवित हो जायँ।' इस बातको ज्यों ही उन्होंने मुँहसे निकाला त्यों ही वीरशिरोमणि पुष्कल उठकर खड़े हो गये और रणभूमिमें रोषके मारे दाँत कटकटाने लगे। वे बोले—'मुझे युद्धमें मूर्च्छित करके वीरभद्र कहाँ चले गये? मैं अभी उन्हें मार गिराता हूँ। कहाँ है मेरा उत्तम धनुष!' उन्हें ऐसा कहते देख कपिराज हनुमान्‌जीने कहा—'वीरवर! तुम्हें वीरभद्रने मार डाला था। श्रीरघुनाथजीके प्रसादसे पुनः नया जीवन प्राप्त हुआ है। शत्रुघ्न भी मूर्च्छित हो गये हैं। चलो, उनके पास चलें।' यों कहकर वे युद्धके मुहानेपर पहुँचे, जहाँ भगवान् श्रीशिवके बाणोंसे पीड़ित होकर शत्रुघ्नजी केवल साँस ले रहे थे। साँस आनेपर हनुमान्‌जीने उनकी छातीपर दवा रख दी और कहा—'भैया शत्रुघ्न! तुम तो महाबलवान् और पराक्रमी हो, रणभूमिमें मूर्च्छित होकर कैसे पड़े हो? यदि मैंने प्रयत्नपूर्वक आजन्म ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन किया है तो वीर शत्रुघ्न क्षणभरमें जीवित हो उठें।' इतना कहते ही वे क्षणमात्रमें जीवित हो बोल उठे—'शिव कहाँ हैं, शिव कहाँ हैं? वे रणभूमि छोड़कर कहाँ चले गये?'

पिनाकधारी रुद्रने युद्धमें अनेकों वीरोंका सफाया कर डाला था, किन्तु महात्मा हनुमान्‌जीने उन सबको जीवित कर दिया। तब वे सभी वीर कवच आदिसे सुसज्जित हो अपने-अपने रथपर बैठकर रोषपूर्ण हृदयसे शत्रुओंकी ओर चले। अबकी बार राजा वीरमणि स्वयं ही शत्रुघ्नका सामना करनेके लिये गये। उन्हें देखकर शत्रुघ्नको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने राजाके ऊपर आग्नेयास्त्रका प्रयोग किया, जिससे उनकी सेना दग्ध होने लगी। शत्रुके छोड़े हुए उस महान् दाहक अस्त्रको देखकर राजाके क्रोधकी सीमा न रही। उन्होंने वारुणास्त्रका प्रयोग किया। वारुणास्त्रद्वारा अपनी सेनाको शीतके कष्टसे पीड़ित देख महाबली शत्रुघ्नने उसपर वायव्यास्त्रका प्रहार किया। इससे बड़े जोरोंकी हवा चलने लगी। वायुके वेगसे मेघोंकी घिरी हुई घटा छिन्न-भिन्न हो गयी। वे चारों ओर फैलकर विलीन हो गये। अब शत्रुघ्नके सैनिक सुखी दिखायी देने लगे। उधर महाराज वीरमणिने जब देखा कि मेरी सेना आँधीसे कष्ट पा रही है, तब उन्होंने अपने धनुषपर शत्रुओंका संहार करनेवाले पर्वतास्त्रका प्रयोग किया। पर्वतोंके द्वारा वायुकी गति रुक गयी। अब वह युद्धक्षेत्रमें फैल नहीं पाती थी। यह देख शत्रुघ्नने वज्रास्त्रका सन्धान किया। वज्रास्त्रकी मार पड़नेपर समस्त पर्वत तिल-तिल करके चूर्ण हो गये। शत्रुवीरोंके अंग विदीर्ण होने लगे। खूनसे लथपथ होनेके कारण उनकी बड़ी शोभा हो रही थी। उस समय युद्धका अद्भुत दृश्य था। राजा वीरमणिका क्रोध सीमाको पार कर गया। उन्होंने अपने धनुषपर ब्रह्मास्त्रका सन्धान किया, जो वैरियोंको दग्ध करनेवाला अद्भुत अस्त्र था। ब्रह्मास्त्र उनके हाथसे छूटकर शत्रुकी ओर चला। तबतक शत्रुघ्नने भी मोहनास्त्र छोड़ा। मोहनास्त्रने एक ही क्षणमें ब्रह्मास्त्रके दो टुकड़े कर डाले तथा राजाकी छातीमें चोट करके उन्हें तुरंत मूर्च्छित कर दिया। तब शिवजीको बड़ा क्रोध हुआ और वे रथपर बैठकर राजाके पास आये। उस समय शत्रुघ्न सहसा उनसे युद्धके लिये आगे बढ़ आये और अपने धनुषपर प्रत्यंचा चढ़ाकर युद्ध करने लगे। उन दोनोंमें बड़ा भयंकर संग्राम छिड़ा, जो वैरियोंको विदीर्ण करनेवाला था। नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंका प्रयोग होनेके कारण सारी दिशाएँ उद्दीप्त हो उठी थीं। शिवके साथ युद्ध करते-करते शत्रुघ्न अत्यन्त व्याकुल हो गये। तब हनुमान्‌जीके उपदेशसे उन्होंने अपने स्वामी श्रीरघुनाथजीका स्मरण किया—'हा नाथ! हा भाई! ये

अत्यन्त भयंकर शिव धनुष उठाकर मेरे प्राण लेनेपर उतारू हो गये हैं; आप युद्धमें मेरी रक्षा कीजिये। राम! आपका नाम लेकर अनेकों दुःखी जीव दुःख-सागरके पार हो चुके हैं। कृपानिधे! मुझ दुखियाको भी उबारिये।' शत्रुघ्नने ज्यों ही उपर्युक्त बात मुँहसे निकाली, त्यों ही नीलकमल-दलके समान श्यामसुन्दर कमलनयन भगवान् श्रीराम मृगका शृंग हाथमें लिये यज्ञदीक्षित पुरुषके वेषमें वहाँ आ पहुँचे। समरभूमिमें उन्हें देखकर शत्रुघ्नको बड़ा विस्मय हुआ।

प्रणतजनोंका क्लेश दूर करनेवाले अपने भाई श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन पाकर शत्रुघ्न सभी दुःखोंसे मुक्त हो गये। हनुमान्जी भी श्रीरघुनाथजीको देखकर सहसा उनके चरणोंमें गिर पड़े। उस समय उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई और वे भक्तकी रक्षाके लिये आये हुए भगवान्से बोले—'स्वामिन्! अपने भक्तोंका सब प्रकारसे पालन करना आपके लिये सर्वथा योग्य ही है। हम धन्य हैं, जो इस समय श्रीचरणोंका दर्शन पा रहे हैं। श्रीरघुनन्दन! अब आपकी कृपासे हमलोग क्षणभरमें ही शत्रुओंपर विजय पा जायँगे।' इसी समय योगियोंके

ध्यानगोचर श्रीरामचन्द्रजीको आया जान श्रीमहादेवजी भी आगे बढ़े और उनके चरणोंमें प्रणाम करके शरणागतभयहारी प्रभुसे बोले—"भगवन्! एकमात्र आप ही साक्षात् अन्तर्यामी पुरुष हैं, आप ही प्रकृतिसे पर परब्रह्म कहलाते हैं। जो अपनी अंश-कलासे इस विश्वकी सृष्टि, रक्षा और संहार करते हैं, वे परमात्मा आप ही हैं। आप सृष्टिके समय विधाता, पालनके समय स्वयंप्रकाश राम और प्रलयके समय शर्व नामसे प्रसिद्ध साक्षात् मेरे स्वरूप हैं। मैंने अपने भक्तका उपकार करनेके लिये आपके कार्यमें बाधा डालनेवाला आयोजन किया है। कृपालो! मेरे इस अपराधको क्षमा कीजिये। क्या करूँ, मैंने अपने सत्यकी रक्षाके लिये ही यह सब कुछ किया है। आपके प्रभावको जानकर भी भक्तकी रक्षाके लिये यहाँ आया हूँ। पूर्वकालकी बात है, इस राजाने क्षिप्रा नदीमें स्नान करके उज्जयिनीके महाकाल-मन्दिरमें बड़ी अद्भुत तपस्या की थी। इससे प्रसन्न होकर मैंने कहा—'महाराज! वर माँगो।' इसने अद्भुत राज्य माँगा।' मैंने कहा—'देवपुरमें तुम्हारा राज्य होगा और जबतक वहाँ श्रीरामचन्द्रजीके यज्ञसम्बन्धी अश्वका आगमन होगा, तबतक मैं भी तुम्हारी रक्षाके लिये उस स्थानपर निवास करूँगा।' इस प्रकार मैंने इसे वरदान दे दिया था। उसी सत्यसे मैं इस समय बँधा हूँ। अब यह राजा अपने पुत्र, पशु और बान्धवोंसहित यज्ञका घोड़ा आपको समर्पित करके आपके ही चरणोंकी सेवा करेगा।"

श्रीरामने कहा—भगवन्! देवताओंका तो यह धर्म ही है कि वे अपने भक्तोंका पालन करें। आपने जो इस समय अपने भक्तकी रक्षा की है, यह आपके द्वारा बहुत उत्तम कार्य हुआ है। मेरे हृदयमें शिव हैं और शिवके हृदयमें मैं हूँ। हम दोनोंमें भेद नहीं है। जो मूर्ख हैं, जिनकी बुद्धि दूषित है; वे ही भेददृष्टि रखते हैं। हम दोनों एकरूप हैं। जो हमलोगोंमें भेदबुद्धि करते हैं, वे मनुष्य हजार कल्पोंतक कुम्भीपाकमें पकाये जाते हैं। महादेवजी! जो सदा आपके भक्त रहे हैं, वे धर्मात्मा पुरुष मेरे भी भक्त हैं तथा जो मेरे भक्त हैं, वे भी बड़ी
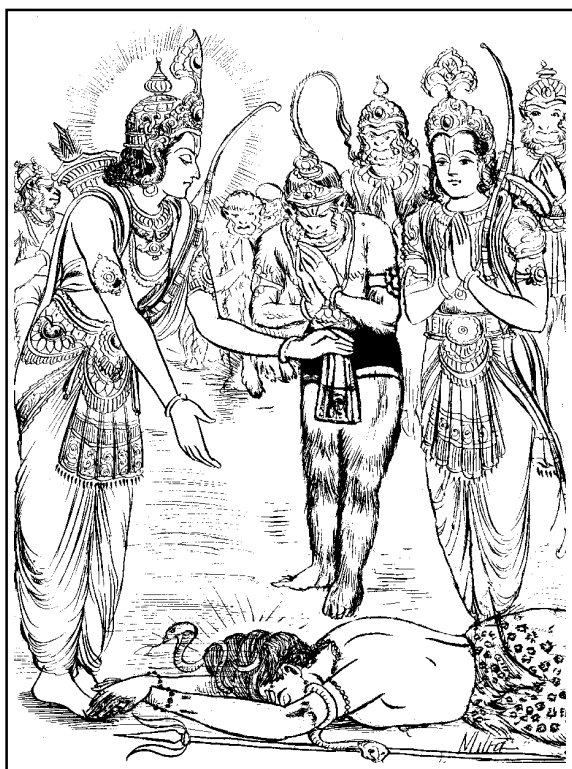
भक्तिसे आपके चरणोंमें मस्तक झुकाते हैं।*

शेषजी कहते हैं— श्रीरघुनाथजीका ऐसा वचन सुनकर भगवान् शिवने मूर्च्छित पड़े हुए राजा वीरमणिको अपने हाथके स्पर्श आदिसे जीवित किया। इसी प्रकार उनके दूसरे पुत्रोंको भी, जो बाणोंसे पीड़ित होकर अचेत-अवस्थामें पड़े थे, जिलाया। भगवान् भूतनाथने राजाको तैयार करके पुत्र-पौत्रोंसहित उन्हें श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें गिराया। वात्स्यायनजी! धन्य हैं राजा वीरमणि, जिन्होंने श्रीरघुनाथजीका दर्शन किया। जो लाखों योगियोंके लिये उनकी योगनिष्ठाके द्वारा भी दुर्लभ हैं, उन्हीं भगवान् श्रीरामको प्रणाम करके समस्त राज-परिवारके लोग कृतार्थ हो गये—उनका शरीर धारण करना सफल हो गया। इतना ही नहीं, वे ब्रह्मादि देवताओंके भी पूजनीय बन गये। शत्रुघ्न, हनुमान् और पुष्कल आदि उद्भट योद्धा जिनकी स्तुति करते हैं, उन श्रीरामचन्द्रजीको राजा वीरमणिने शिवजीकी प्रेरणासे वह उत्तम अश्व दे दिया; साथ ही पुत्र, पशु और बान्धवोंसहित अपना सारा राज्य भी समर्पण कर दिया। तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी समस्त शत्रुओं तथा सेवकोंसे अभिवन्दित होकर मणिमय रथपर बैठे-बैठे ही अन्तर्धान हो गये। मुने! विश्ववन्दित श्रीरामको तुम मनुष्य न समझो। जलमें, थलमें, सब जगह तथा सबके भीतर सदा वे ही स्थित रहते हैं। भगवान् शंकरने भी अपनी प्रतिज्ञा पूरी करके सेवक राजासे विदा ली और कहा—'राजन्! श्रीरामचन्द्रजीका आश्रय ही संसारमें सबसे दुर्लभ वस्तु है, अतः तुम श्रीरघुनाथजीकी ही शरणमें रहो।' यों कहकर प्रलय और उत्पत्तिके कर्ता-धर्ता भगवान् शिव स्वयं भी अदृश्य हो समस्त पार्षदोंके साथ कैलासको चले गये। इसके बाद राजा वीरमणि श्रीरामके चरणकमलोंका ध्यान करते हुए स्वयं भी अपनी सेना लेकर महाबली शत्रुघ्नके साथ-साथ गये। जो श्रेष्ठ मनुष्य श्रीरामचन्द्रजीके इस चरित्रका श्रवण करेंगे, उन्हें कभी सांसारिक दुःख नहीं होगा।

अश्वका गात्र-स्तम्भ, श्रीरामचरित्र-कीर्तनसे एक स्वर्गवासी ब्राह्मणका राक्षसयोनिसे उद्धार तथा अश्वके गात्र-स्तम्भकी निवृत्ति

शेषजी कहते हैं— द्विजश्रेष्ठ! तदनन्तर बँधे हुए चँवरसे सुशोभित वह यज्ञसम्बन्धी अश्व हजारों योद्धाओंसे सुरक्षित होकर भारतवर्षके अन्तमें स्थित हेमकूट पर्वतपर गया, जो चारों ओरसे दस हजार योजन लंबा-चौड़ा है। उसके सुन्दर शिखर सोने-चाँदी आदि धातुओंके हैं। वहाँ एक विशाल उद्यान है, जो बहुत ही सुन्दर और भाँति-भाँतिके वृक्षोंसे सुशोभित है। घोड़ा उसमें प्रवेश कर गया। वहाँ जानेपर उस अश्वके सम्बन्धमें सहसा एक आश्चर्यजनक घटना हुई; उसे बतलाता हूँ, सुनिये—अकस्मात् उसका सारा शरीर अकड़ गया, वह हिल-डुल नहीं पाता था। मार्गमें खड़ा-खड़ा वह हेमकूट पर्वतकी ही भाँति अविचल प्रतीत होने लगा। अश्वके रक्षकोंने शत्रुघ्नके पास जाकर पुकार मचायी—'स्वामिन्! हम नहीं जानते घोड़ेको क्या हो गया। अकस्मात् उसका सम्पूर्ण शरीर स्तब्ध हो गया है। इस बातपर विचार कर जो कुछ करना उचित जान पड़े, कीजिये।' यह सुनकर राजा शत्रुघ्नको बड़ा विस्मय हुआ। वे अपने समस्त सैनिकोंके साथ अश्वके निकट गये। पुष्कलने अपनी बाँहसे पकड़कर उसके दोनों चरणोंको धरतीसे ऊपर उठानेका प्रयत्न किया। परन्तु वे अपने स्थानसे हिल भी न सके। तब शत्रुघ्नने सुमतिसे पूछा—'मन्त्रिवर! घोड़ेको क्या हुआ है, जो इसका

---

* ममास्ति हृदये शर्वो भवतो हृदये त्वहम्। आवयोरन्तरं नास्ति मूढाः पश्यन्ति दुर्धियः॥
ये भेदं विदधत्यद्धा आवयोरेकरूपयोः। कुम्भीपाकेषु पच्यन्ते नराः कल्पसहस्रकम्॥
ये त्वद्भक्ताः सदासंस्ते मद्भक्ता धर्मसंयुताः। मद्भक्ता अपि भूयस्या भक्त्या तव नतिङ्कराः॥ (४६। २०—२२)

सारा शरीर अकड़ गया? अब यहाँ क्या उपाय करना चाहिये, जिससे इसमें चलनेकी शक्ति आ जाय?'

सुमतिने कहा—स्वामिन्! किन्हीं ऐसे ऋषि-मुनिकी खोज करनी चाहिये, जो सब बातोंको जाननेमें कुशल हों। मैं तो लोकमें होनेवाले प्रत्यक्ष विषयोंको ही जानता हूँ; परोक्षमें मेरी गति नहीं है।

शेषजी कहते हैं—सुमतिकी यह बात सुनकर धर्मके ज्ञाता शत्रुघ्नने अपने सेवकोंद्वारा ऋषिकी खोज करायी। एक सेवक वहाँसे एक योजन दूर पूर्व दिशाकी ओर गया। वहाँ उसे एक बहुत बड़ा आश्रम दिखायी दिया, जहाँके पशु और मनुष्य—सभी परस्पर वैर-भावसे रहित थे। गंगाजीमें स्नान करनेके कारण उनके समस्त पाप दूर हो गये थे तथा वे सब-के-सब बड़े मनोहर दिखायी देते थे। वह शौनक मुनिका मनोहर आश्रम था। उसका पता लगाकर सेवक लौट आया और विस्मित होकर उसने राजा शत्रुघ्नसे उस आश्रमका समाचार निवेदन किया। सेवककी बात सुनकर अनुचरोंसहित शत्रुघ्नको बड़ा हर्ष हुआ और वे हनुमान् तथा पुष्कल आदिके साथ ऋषिके आश्रमपर गये। वहाँ जाकर उन्होंने मुनिके पापहारी चरणोंमें साष्टांग प्रणाम किया। बलवानोंमें श्रेष्ठ राजा शत्रुघ्नको आया जान शौनक मुनिने अर्घ्य, पाद्य आदि देकर उनका स्वागत किया। उनके दर्शनसे मुनिको बड़ी प्रसन्नता हुई। शत्रुघ्नजी सुखपूर्वक बैठकर जब विश्राम कर चुके तो मुनीश्वरने पूछा—'राजन्! तुम किसलिये भ्रमण कर रहे हो? तुम्हारी यह यात्रा तो बड़ी दूरकी जान पड़ती है।' मुनिकी यह बात सुनकर राजा शत्रुघ्नका शरीर हर्षसे पुलकित हो उठा। वे अपना परिचय देते हुए गद्‌गद वाणीमें बोले—'महर्षे! मेरा अश्व अकस्मात् एक फूलोंसे सुशोभित उद्यानमें चला गया। उसके भीतर एक किनारेपर पहुँचते ही तत्काल उसका शरीर अकड़ गया। इसके कारण हमलोग अपार दुःखके समुद्रमें डूब रहे हैं; आप नौका बनकर हमें बचाइये। हमारे बड़े भाग्य थे, जो दैवात् आपका दर्शन हुआ। घोड़ेकी इस अवस्थाका प्रधान कारण क्या है? यह बतानेकी कृपा कीजिये।'

शत्रुघ्नके इस प्रकार पूछनेपर परम बुद्धिमान् मुनिश्रेष्ठ शौनकने थोड़ी देरतक ध्यान किया। फिर एक ही क्षणमें सारा रहस्य समझमें आ गया। उनकी आँखें आश्चर्यसे खिल उठीं तथा वे दुःख और संशयमें पड़े हुए राजा शत्रुघ्नसे बोले—राजन्! मैं अश्वके गात्र-स्तम्भका कारण बताता हूँ, सुनो। गौड़ देशके सुरम्य प्रदेशमें, कावेरीके तटपर सात्त्विक नामका एक ब्राह्मण बड़ी भारी तपस्या कर रहा था। वह एक दिन जल पीता, दूसरे दिन हवा पीकर रहता और तीसरे दिन कुछ भी नहीं खाता था। इस प्रकार तीन-तीन दिनका व्रत लेकर वह समय व्यतीत करता था। उसका यह व्रत चल ही रहा था कि सबका विनाश करनेवाले कालने उसे अपने दाढ़ोंमें ले लिया। उस महान् व्रतधारी तपस्वीकी मृत्यु हो गयी। तत्पश्चात् वह सात्त्विक नामका ब्राह्मण सब प्रकारके रत्नोंसे विभूषित तथा सब तरहकी शोभासे सम्पन्न विमानपर बैठकर मेरुगिरिके शिखरपर गया। वहाँ जम्बू नामकी नदी बहती थी, जिसके किनारे तप और ध्यानमें संलग्न रहनेवाले ऋषि-महर्षि निवास करते थे। वह ब्राह्मण वहीं आनन्दमग्न होकर अपनी इच्छाके अनुसार अप्सराओंके साथ विहार करने लगा। अभिमान और मदसे उन्मत्त होकर उसने वहाँ रहनेवाले ऋषियोंके प्रतिकूल बर्ताव किया। इससे रुष्ट होकर उन ऋषियोंने शाप दिया—'जा, तू राक्षस हो जा; तेरा मुख विकृत हो जाय।' यह शाप सुनकर ब्राह्मणको बड़ा दुःख हुआ और उसने उन विद्वान् एवं तपस्वी ब्राह्मणोंसे कहा—'ब्रह्मर्षियो! आप सब लोग दयालु हैं; मुझपर कृपा कीजिये।' तब उन्होंने उसपर अनुग्रह करते हुए कहा—'जिस समय तुम श्रीरामचन्द्रजीके अश्वको अपने वेगसे स्तब्ध कर दोगे, उस समय तुम्हें श्रीरामकी कथा सुननेका अवसर मिलेगा। उसके बाद इस भयंकर शापसे तुम्हारी मुक्ति हो जायगी।' मुनियोंके कथनानुसार उसीने यहाँ राक्षस होकर श्रीरघुनाथजीके अश्वको स्तम्भित किया है; अतः तुम कीर्तनके द्वारा घोड़ेको उसके चंगुलसे छुड़ाओ।'

मुनिका यह कथन सुनकर शत्रुवीरोंका दमन

करनेवाले शत्रुघ्नके मनमें बड़ा विस्मय हुआ। वे शौनकसे बोले—'कर्मकी बात बड़ी गहन है, जिससे सात्त्विक नामधारी ब्राह्मण अपने महान् कर्मसे स्वर्गमें पहुँचकर भी पुनः राक्षसभावको प्राप्त हो गया। स्वामिन्! आप कर्मोंके अनुसार जैसी गति होती है, उसका वर्णन कीजिये! जिस कर्मके परिणामसे जैसे नरककी प्राप्ति होती है, उसे बताइये।'

शौनकने कहा—रघुकुलश्रेष्ठ! तुम धन्य हो, जो तुम्हारी बुद्धि सदा ऐसी बातोंको जानने और सुननेमें लगी रहती है। इसमें संदेह नहीं कि तुम इस विषयको भलीभाँति जानते हो; तो भी लोगोंके हितके लिये मुझसे पूछ रहे हो। महाराज! कर्मोंके स्वरूप विचित्र हैं तथा उनकी गति भी नाना प्रकारकी है; मैं उसका वर्णन करता हूँ, सुनो। इस विषयका श्रवण करनेसे मनुष्यको मोक्षकी प्राप्ति हो सकती है।

जो दुष्ट बुद्धिवाला पुरुष पराये धन, परायी संतान और परायी स्त्रीको भोग-बुद्धिसे बलात् अपने अधिकारमें कर लेता है, उसको महाबली यमदूत काल-पाशमें बाँधकर तामिस्र नामक नरकमें गिराते हैं और जबतक एक हजार वर्ष पूरे नहीं हो जाते, तबतक उसीमें रखते हैं। यमराजके प्रचण्ड दूत वहाँ उस पापीको खूब पीटते हैं। इस प्रकार पाप-भोगके द्वारा भलीभाँति क्लेश उठाकर अन्तमें वह सूअरकी योनिमें जन्म लेता है और उसमें भी महान् दुःख भोगनेके पश्चात् वह फिर मनुष्यकी योनिमें जाता है; परन्तु वहाँ भी अपने पूर्वजन्मके कलंकको सूचित करनेवाला कोई रोग आदिका चिह्न धारण किये रहता है। जो केवल दूसरे प्राणियोंसे द्रोह करके ही अपने कुटुम्बका पोषण करता है, वह पापपरायण पुरुष अन्धतामिस्र नरकमें पड़ता है। जो लोग यहाँ दूसरे प्राणियोंका वध करते हैं, वे रौरव नरकमें गिराये जाते हैं तथा रुरु नामक पक्षी रोषमें भरकर उनका शरीर नोचते हैं। जो अपने पेटके लिये दूसरे जीवोंका वध करता है, उसे यमराजकी आज्ञासे महारौरव नामक नरकमें डाला जाता है। जो पापी अपने पिता और ब्राह्मणसे द्वेष करता है, वह महान् दुःखमय कालसूत्र नरकमें, जिसका विस्तार दस हजार योजन है, पड़ता है। जो गौओंसे द्रोह करता है, उसे यमराजके किंकर नरकमें डालकर पकाते हैं; वह भी थोड़े समयतक नहीं, गौओंके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने ही हजार वर्षोंतक। जो इस पृथ्वीका राजा होकर दण्ड न देनेयोग्य पुरुषको दण्ड देता है तथा लोभवश (अन्यायपूर्वक) ब्राह्मणको भी शारीरिक दण्ड देता है, उसे सूअरके समान मुँहवाले दुष्ट यमदूत पीड़ा देते हैं। तत्पश्चात् वह शेष पापोंसे छुटकारा पानेके लिये दुष्ट योनियोंमें जन्म ग्रहण करता है। जो मनुष्य मोहवश ब्राह्मणों तथा गौओंके थोड़े-से भी द्रव्य, धन अथवा जीविकाको लेते या लूटते हैं, वे परलोकमें जानेपर अन्धकूप नामक नरकमें गिराये जाते हैं। वहाँ उनको महान् कष्ट भोगना पड़ता है। जो जीभके लिये आतुर हो लोलुपतावश स्वयं ही मधुर अन्न लेकर खा जाता है, देवताओं तथा सुहृदोंको नहीं देता, वह निश्चय ही 'कृमिभोजन' नामक नरकमें पड़ता है। जो मनुष्य सुवर्ण आदिका अपहरण अथवा ब्राह्मणके धनकी चोरी करता है, वह अत्यन्त दुःखदायक 'संदंश' नामक नरकमें गिरता है।

जो मूढ बुद्धिवाला पुरुष केवल अपने शरीरका पोषण करता है, दूसरेको नहीं जानता, वह तपाये हुए तेलसे पूर्ण अत्यन्त भयंकर कुम्भीपाक नरकमें डाला जाता है। जो पुरुष मोहवश अगम्या स्त्रीको भार्याबुद्धिसे भोगना चाहता है, उसे यमराजके दूत उसी स्त्रीकी लोहमयी तपायी हुई प्रतिमाके साथ आलिंगन करवाते हैं। जो अपने बलसे उन्मत्त होकर बलपूर्वक वेदकी मर्यादाका लोप करते हैं, वे वैतरणी नदीमें डूबकर मांस और रक्त भोजन करते हैं। जो द्विज होकर शूद्रकी स्त्रीको अपनी भार्या बनाकर उसके साथ गृहस्थी चलाता है, वह निश्चय ही 'पूयोद' नामक नरकमें गिरता है। वहाँ उसे बहुत दुःख भोगना पड़ता है। जो धूर्त लोगोंको धोखेमें डालनेके लिये दम्भका आश्रय लेते हैं, वे मूढ वैशस नामक नरकमें डाले जाते हैं और वहाँ उनपर यमराजकी मार पड़ती है। जो मूढ सवर्णा (समान गोत्रवाली) स्त्रीकी योनिमें वीर्यपात करते हैं, उन्हें वीर्यकी नहरमें

डाला जाता है और वे वीर्य पीकर ही रहते हैं। जो लोग चोर, आग लगानेवाले, दुष्ट, जहर देनेवाले और गाँवोंको लूटनेवाले हैं, वे महापातकी जीव 'सारमेयादन' नरकमें गिराये जाते हैं। जो पापराशिका संचय करनेवाला पुरुष झूठी गवाही देता या बलपूर्वक दूसरोंका धन छीन लेता है, वह पापी 'अवीचि' नामक नरकमें नीचे सिर करके डाल दिया जाता है। उसमें महान् दुःख भोगनेके पश्चात् वह पुनः अत्यन्त पापमयी योनिमें जन्म लेता है। जो मूढ सुरापान करता है, उसे धर्मराजके दूत गरम-गरम लोहेका रस पिलाते हैं। जो अपनी विद्या और आचारके घमंडमें आकर गुरुजनोंका अनादर करता है, वह मनुष्य मृत्युके पश्चात् 'क्षार' नरकमें नीचे मुँह करके गिराया जाता है। जो लोग धर्मसे बहिष्कृत होकर विश्वासघात करते हैं, उन्हें अत्यन्त यातनापूर्ण 'शूलप्रोत' नरकमें डाला जाता है। जो चुगली करके सब लोगोंको अपने वचनसे उद्वेगमें डाला करता है, वह 'दंदशूक' नामक नरकमें पड़कर दंदशूकों (सर्पों)-द्वारा डँसा जाता है। राजन्! इस प्रकार पापियोंके लिये अनेकों नरक हैं; पाप करके वे उन्हींमें जाते और अत्यन्त भयंकर यातना भोगते हैं। जिन्होंने श्रीरामचन्द्रजीकी कथा नहीं सुनी है तथा दूसरोंका उपकार नहीं किया है, उनको नरकके भीतर सब तरहके दुःख भोगने पड़ते हैं। इस लोकमें भी जिसको अधिक सुख प्राप्त है, उसके लिये वह स्वर्ग कहलाता है तथा जो रोगी और दुःखी हैं, वे नरकमें ही हैं।

दान-पुण्यमें लगे रहने, तीर्थ आदिका सेवन करने, श्रीरघुनाथजीकी लीलाओंको सुनने अथवा तपस्या करनेसे पापोंका नाश होता है। हरिकीर्तनरूपी नदी ही मनुष्योंके लिये सब उपायोंसे श्रेष्ठ है। वह पापियोंके सारे पाप-पंकको धो डालती है। इस विषयमें कोई अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।* जो भगवान्‌का अपमान करता है, उसे गंगा भी पवित्र नहीं कर सकती। पवित्र-से-पवित्र तीर्थ भी उसे पावन बनानेकी शक्ति नहीं रखते। जो ज्ञानहीन होनेके कारण भगवान्‌के लीला-कीर्तनका उपहास करता है, उसको कल्पके अन्ततक भी नरकसे छुटकारा नहीं मिलता। राजन्! अब तुम जाओ और घोड़ेको संकटसे छुड़ानेके लिये सेवकोंसहित भगवान्‌का चरित्र सुनाओ, जिससे अश्वमें पुनः चलने-फिरनेकी शक्ति आ जाय।

शेषजी कहते हैं—शौनकजीकी उपर्युक्त बात सुनकर शत्रुघ्नको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे मुनिको प्रणाम और परिक्रमा करके सेवकोंसहित चले गये। वहाँ जाकर हनुमान्‌जीने घोड़ेके पास श्रीरघुनाथजीके चरित्रका वर्णन किया, जो बड़ी-से-बड़ी दुर्गतिका नाश करनेवाला है। अन्तमें उन्होंने कहा—'देव! आप श्रीरामचन्द्रजीके कीर्तनके पुण्यसे अपने विमानपर सवार होइये और स्वेच्छानुसार अपने लोकमें विचरण कीजिये। इस कुत्सित योनिसे अब आपका छुटकारा हो जाय।' यह वाक्य सुनकर देवताने कहा—'राजन्! मैं श्रीरामचन्द्रजीका कीर्तन सुननेसे पवित्र हो गया। महामते! अब मैं अपने लोकको जा रहा हूँ; आप मुझे आज्ञा दीजिये।' यह कहकर देवता विमानपर बैठे हुए स्वर्ग चले गये। उस समय यह दृश्य देखकर शत्रुघ्न और उनके सेवकोंको बड़ा विस्मय हुआ। तदनन्तर वह अश्व गात्र-स्तम्भसे मुक्त होकर पक्षियोंसे भरे हुए उस उद्यानमें सब ओर भ्रमण करने लगा।

---

* दानपुण्यप्रसंगेन तीर्थादिक्रियया तथा । रामचारित्रसंश्रुत्या तपसा वा क्षयं व्रजेत्॥
सर्वेषामप्युपायानां हरिकीर्तिधुनी नृणाम् । क्षालयेत् पापिनां पङ्कं नात्र कार्या विचारणा॥ (४८। ६५-६६)

राजा सुरथके द्वारा अश्वका पकड़ा जाना, राजाकी भक्ति और उनके प्रभावका वर्णन, अंगदका दूत बनकर राजाके यहाँ जाना और राजाका युद्धके लिये तैयार होना

शेषजी कहते हैं—उस श्रेष्ठ अश्वको अनेकों राजाओंसे भरे हुए भारतवर्षमें लीलापूर्वक भ्रमण करते सात महीने व्यतीत हो गये। उसने हिमालयके निकट बहुत-से देशोंमें विचरण किया, किन्तु श्रीरामचन्द्रजीके बलका स्मरण करके कोई उसे पकड़ न सका। अंग, बंग और कलिंग-देशके राजाओंने तो उस अश्वका भलीभाँति स्तवन किया। वहाँसे आगे बढ़नेपर वह राजा सुरथके मनोहर नगरमें पहुँचा, जो अदितिका कुण्डल गिरनेके कारण कुण्डलके ही नामसे प्रसिद्ध था। वहाँके लोग कभी धर्मका उल्लंघन नहीं करते थे। वहाँकी जनता प्रतिदिन प्रेमपूर्वक श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण किया करती थी। उस नगरके मनुष्य नित्यप्रति अश्वत्थ और तुलसीकी पूजा करते थे। वे सब-के-सब श्रीरघुनाथजीके सेवक थे। पापसे कोसों दूर रहते थे। वहाँके सुन्दर देवालयोंमें श्रीरघुनाथजीकी प्रतिमा शोभा पाती थी तथा कपटरहित शुद्ध चित्तवाले नगर-निवासी प्रतिदिन वहाँ जाकर भगवान्‌की पूजा करते थे। उनकी जिह्वापर केवल भगवान्‌का नाम शोभा पाता था, झगड़े-फसादकी चर्चा नहीं। उनके हृदयमें भगवान्‌का ही ध्यान होता; कामना या फलकी स्मृति नहीं होती थी। वहाँके सभी देहधारी पवित्र थे। श्रीरामचन्द्रजीकी कथा-वार्तासे ही उनका मनबहलाव होता था। वे सब प्रकारके दुर्व्यसनोंसे रहित थे; अतः कभी भी जुआ नहीं खेलते थे। उस नगरमें धर्मात्मा, सत्यवादी एवं महाबली राजा सुरथ निवास करते थे, जिनका चित्त श्रीरघुनाथजीके चरणोंका स्मरण करके सदा आनन्दमग्न रहा करता था। वे भगवद्-प्रेममें मस्त रहते थे। राम-भक्त राजा सुरथकी महिमाका मैं क्या वर्णन करूँ? उनके समस्त गुण भूमण्डलमें विस्तृत होकर सबके पापोंका परिमार्जन कर रहे हैं।

एक समय राजाके कुछ सेवक टहल रहे थे। उन्होंने देखा, चन्दनसे चर्चित अश्वमेधका अश्व आ रहा है। निकटसे देखनेपर उन्हें मालूम हुआ कि यह नेत्र और मनको मोहनेवाला अश्व श्रीरामचन्द्रजीका छोड़ा हुआ है। यह जानकर वे बड़े प्रसन्न हुए और उत्सुक-भावसे राजसभामें जा वहाँ बैठे हुए महाराजको सूचना देते हुए बोले—'स्वामिन्! अयोध्या-नगरीके स्वामी जो श्रीरघुनाथजी हैं, उनका छोड़ा हुआ अश्वमेधयोग्य अश्व सर्वत्र भ्रमण कर रहा है। वह अनुचरोंसहित आपके नगरके निकट आ पहुँचा है। महाराज! वह अश्व अत्यन्त मनोहर है, आप उसे पकड़ें।'

सुरथ बोले—हम सेवकोंसहित धन्य हैं; क्योंकि हमें श्रीरामचन्द्रजीके मुखचन्द्रका दर्शन होगा। करोड़ों योद्धाओंसे घिरे हुए उस अश्वको आज मैं पकड़ूँगा और तभी छोड़ूँगा जब श्रीरघुनाथजी चिरकालसे अपना चिन्तन करनेवाले मुझ भक्तपर कृपा करनेके लिये स्वयं यहाँ पदार्पण करें।

शेषजी कहते हैं—ऐसा कहकर राजाने सेवकोंको आज्ञा दी—'जाओ, अश्वको बलपूर्वक पकड़ लाओ। सामने पड़ जानेपर उसे कदापि न छोड़ना। मुझे ऐसा विश्वास है कि इससे अपना महान् लाभ होगा। ब्रह्मा और इन्द्रके लिये भी जिनका दर्शन दुर्लभ है, उन्हीं श्रीराम-चरणोंकी झाँकी हमारे लिये सुलभ होगी। वही स्वजन, पुत्र, बान्धव, पशु अथवा वाहन धन्य है, जिससे श्रीरामचन्द्रजीकी प्राप्ति सम्भव हो; अतः जो स्वर्णपत्रसे शोभा पा रहा है, इच्छानुसार वेगसे चलता है तथा देखनेमें अत्यन्त मनोरम जान पड़ता है, उस यज्ञसम्बन्धी अश्वको पकड़कर घुड़सालमें बाँध दो।' महाराजके ऐसा कहनेपर सेवकोंने जाकर श्रीरामचन्द्रजीके सुन्दर अश्वको पकड़ लिया और दरबारमें लाकर उन्हें अर्पण कर दिया। वात्स्यायनजी! आप एकाग्रचित्त होकर सुनें। राजा सुरथके राज्यमें कोई भी ऐसा मनुष्य नहीं था, जो परायी स्त्रीसे अनुराग रखता हो। दूसरोंके धन लेनेवाले तथा कामलम्पट पुरुषका वहाँ सर्वथा अभाव था। जिह्वासे श्रीरघुनाथजीका कीर्तन करनेके

सिवा दूसरी कोई अनुचित बात किसीके मुँहसे नहीं निकलती थी। वहाँ सभी एकपत्नीव्रतका पालन करनेवाले थे। दूसरोंपर झूठा कलंक लगानेवाला और वेदविरुद्ध पथपर चलनेवाला उस राज्यमें एक भी मनुष्य नहीं था। राजाके सभी सैनिक प्रतिदिन श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण करते रहते थे। उनके देशमें पापिष्ठ नहीं थे, किसीके मनमें भी पापका विचार नहीं उठता था। भगवान्‌का ध्यान करनेसे सबके समस्त पाप नष्ट हो गये थे। सभी आनन्दमग्न रहते थे।

उस देशके राजा जब इस प्रकार धर्मपरायण हो गये तो उनके राज्यमें रहनेवाले सभी मनुष्य मरनेके बाद शान्ति प्राप्त करने लगे। सुरथके नगरमें यमदूतोंका प्रवेश नहीं होने पाता था। जब ऐसी अवस्था हो गयी, तो एक दिन यमराज मुनिका रूप धारण करके राजाके पास गये। उनके शरीरपर वल्कल-वस्त्र और मस्तकपर जटा शोभा पा रही थी। राजसभामें पहुँचकर वे भगवद्भक्त महाराज सुरथसे मिले। उनके मस्तकपर तुलसी और जिह्वापर भगवान्‌का उत्तम नाम था। वे अपने सैनिकोंको धर्म-कर्मकी बात सुना रहे थे। राजाने भी मुनिको देखा;
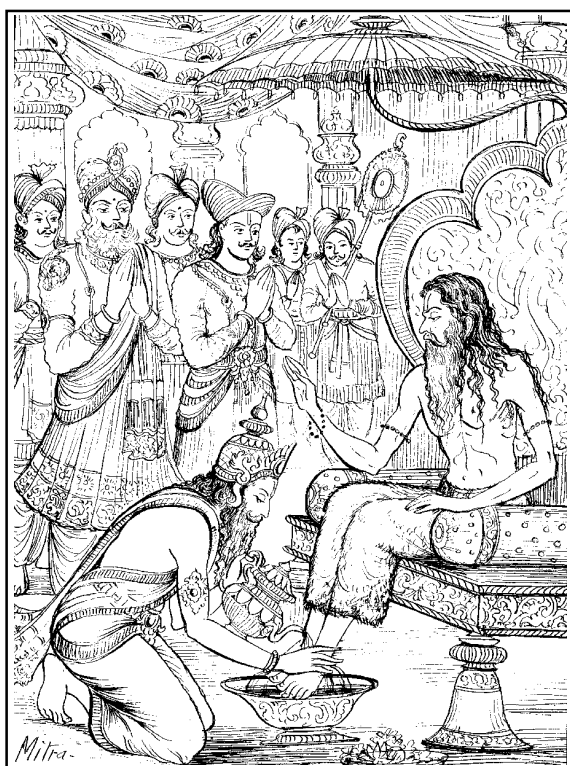
वे तपस्याके साक्षात् विग्रह-से जान पड़ते थे। उन्होंने मुनिके चरणोंमें प्रणाम करके उन्हें अर्घ्य, पाद्य आदि निवेदन किया। तत्पश्चात् जब वे सुखपूर्वक आसनपर विराजमान हो विश्राम कर चुके, तब राजाओंमें अग्रगण्य सुरथने उनसे कहा—'मुनिवर! आज मेरा जीवन धन्य है! आज मेरा घर धन्य हो गया!! आप मुझे श्रीरघुनाथजीकी उत्तम कथाएँ सुनाइये। जिन्हें सुननेवाले मनुष्योंका पद-पदपर पाप नाश होता है।' राजाका ऐसा वचन सुनकर मुनि अपने दाँत दिखाते हुए जोर-जोरसे हँसने और ताली पीटने लगे। राजाने पूछा—'मुने! आपके हँसनेका क्या कारण है? कृपा करके बताइये, जिससे मनको सुख मिले।' तब मुनि बोले—'राजन्! बुद्धि लगाकर मेरी बात सुनो, मैं तुम्हें अपने हँसनेका उत्तम कारण बताता हूँ। तुमने अभी कहा है कि 'मेरे सामने भगवान्‌की कीर्तिका वर्णन कीजिये।' मगर मैं पूछता हूँ—भगवान् हैं कौन? वे किसके हैं और उनकी कीर्ति क्या है? संसारके सभी मनुष्य अपने कर्मोंके अधीन हैं। कर्मसे ही स्वर्ग मिलता है, कर्मसे ही नरकमें जाना पड़ता है तथा कर्मसे ही पुत्र, पौत्र आदि सभी वस्तुओंकी प्राप्ति होती है। इन्द्रने सौ यज्ञ करके स्वर्गका उत्कृष्ट स्थान प्राप्त किया तथा ब्रह्माजीको भी कर्मसे ही सत्य नामक अद्भुत लोक उपलब्ध हुआ। कर्मसे बहुतोंको सिद्धि प्राप्त हुई है। मरुत् आदि कर्मसे ही लोकेश्वर-पदको प्राप्त हुए हैं; इसलिये तुम भी यज्ञ-कर्मोंमें लगो, देवताओंका पूजन करो। इससे सम्पूर्ण भूमण्डलमें तुम्हारी उज्ज्वल कीर्तिका विस्तार होगा।'

राजा सुरथका मन एकमात्र श्रीरघुनाथजीमें लगा हुआ था; अतः मुनिके उपर्युक्त वचन सुनकर उनका हृदय क्रोधसे क्षुब्ध हो उठा और वे कर्मविशारद ब्राह्मण-देवतासे इस प्रकार बोले—'ब्राह्मणाधम! यहाँ नश्वर फल देनेवाले कर्मकी बात न करो। तुम लोकमें निन्दाके पात्र हो, इसलिये मेरे नगर और प्रान्तसे बाहर चले जाओ [इन्द्र और ब्रह्माका दृष्टान्त क्या दे रहे हो?] इन्द्र शीघ्र ही अपने पदसे भ्रष्ट होंगे, किन्तु श्रीरामचन्द्रजीकी सेवा करनेवाले मनुष्य कभी नीचे नहीं गिरेंगे। ध्रुव,

प्रह्लाद और विभीषणको देखो तथा अन्य रामभक्तोंपर भी दृष्टिपात करो; वे कभी अपनी स्थितिसे भ्रष्ट नहीं होते। जो दुष्ट श्रीरामकी निन्दा करते हैं, उन्हें यमराजके दूत कालपाशसे बाँधकर लोहेके मुद्‌गरोंसे पीटते हैं। तुम ब्राह्मण हो, इसलिये तुम्हें शारीरिक दण्ड नहीं दे सकता। मेरे सामनेसे जाओ, चले जाओ; नहीं तो तुम्हारी ताड़ना करूँगा।' महाराज सुरथके ऐसा कहनेपर उनके सेवक मुनिको हाथसे पकड़कर निकाल देनेको उद्यत हुए। तब यमराजने अपना विश्ववन्दित रूप धारण करके राजासे कहा—'श्रीरामभक्त! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम्हारी जो इच्छा हो, माँगो। सुव्रत! मैंने बहुत-सी बातें बनाकर तुम्हें प्रलोभनमें डालनेका प्रयत्न किया, किन्तु तुम श्रीरामचन्द्रजीकी सेवासे विचलित नहीं हुए। क्यों न हो, तुमने साधु पुरुषोंका सेवन—महात्माओंका सत्संग किया है।' यमराजको संतुष्ट देखकर राजा सुरथने कहा—'धर्मराज! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो यह उत्तम वर प्रदान कीजिये—जबतक मुझे श्रीराम न मिलें, तबतक मेरी मृत्यु न हो। आपसे मुझे कभी भय न हो।' तब यमराजने कहा—'राजन्! तुम्हारा यह कार्य सिद्ध होगा। श्रीरघुनाथजी तुम्हारे सब मनोरथ पूर्ण करेंगे।' यों कहकर धर्मराजने हरिभक्तिपरायण राजाकी प्रशंसा की और वहाँसे अदृश्य होकर वे अपने लोकको चले गये।

तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीकी सेवामें लगे रहनेवाले धर्मात्मा राजाने अत्यन्त हर्षमें भरकर अपने सेवकोंसे कहा—'मैंने महाराज श्रीरामचन्द्रजीके अश्वको पकड़ा है; इसलिये तुम सब लोग युद्धके लिये तैयार हो जाओ। मैं जानता हूँ, तुमने युद्ध-कलामें पूरी प्रवीणता प्राप्त की है।' महाराजकी ऐसी आज्ञा पाकर उनके सभी महाबली योद्धा थोड़ी ही देरमें तैयार हो गये और शीघ्रतापूर्वक दरबारके सामने उपस्थित हुए। राजाके दस वीर पुत्र थे, जिनके नाम थे—चम्पक, मोहक, रिपुंजय, दुर्वार, प्रतापी, बलमोदक, हर्यक्ष, सहदेव, भूरिदेव तथा असुतापन। ये सभी अत्यन्त उत्साहपूर्वक तैयार हो युद्धक्षेत्रमें जानेकी इच्छा प्रकट करने लगे।

इधर शत्रुघ्नने शीघ्रताके साथ आकर अपने सेवकोंसे पूछा—'यज्ञसम्बन्धी अश्व कहाँ है?' वे बोले—'महाराज! हमलोग पहचानते तो नहीं, परन्तु कुछ योद्धा आये थे, जो हमें हटाकर घोड़ेको साथ ले इस नगरमें गये हैं।' उनकी बात सुनकर शत्रुघ्नने सुमतिसे कहा—'मन्त्रिवर! यह किसका नगर है? कौन इसका स्वामी है, जिसने मेरे अश्वका अपहरण किया है?' मन्त्री बोले—'राजन्! यह परम मनोहर नगर कुण्डलपुरके नामसे प्रसिद्ध है। इसमें महाबली धर्मात्मा राजा सुरथ निवास करते हैं। वे सदा धर्ममें लगे रहते हैं। श्रीरामचन्द्रजीके युगल चरणोंके उपासक हैं। श्रीहनुमान्‌जीकी भाँति ये भी मन, वाणी और क्रियाद्वारा भगवान्‌की सेवामें ही तत्पर रहते हैं।'

शत्रुघ्न बोले—यदि इन्होंने ही श्रीरघुनाथजीके अश्वका अपहरण किया हो तो इनके साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये?

सुमतिने कहा—महाराज! राजा सुरथके पास कोई बातचीत करनेमें कुशल दूत भेजना चाहिये।

यह सुनकर शत्रुघ्नने अंगदसे विनययुक्त वचन कहा—'बालिकुमार! यहाँसे पास ही जो राजा सुरथका विशाल नगर है, वहाँ दूत बनकर जाओ और राजासे कहो कि आपने जानकर या अनजानमें यदि श्रीरामचन्द्रजीके अश्वको पकड़ लिया हो तो उसे लौटा दें अथवा वीरोंसे भरे हुए युद्धक्षेत्रमें पधारें।' अंगदने 'बहुत अच्छा' कहकर शत्रुघ्नकी आज्ञा स्वीकार की और राजसभामें गये। वहाँ उन्होंने राजा सुरथको देखा, जो वीरोंके समूहसे घिरे हुए थे। उनके मस्तकपर तुलसीकी मंजरी थी और जिह्वासे श्रीरामचन्द्रजीका नाम लेते हुए वे अपने सेवकोंको उन्हींकी कथा सुना रहे थे। राजा भी मनोहर शरीरधारी वानरको देखकर समझ गये कि ये शत्रुघ्नके दूत हैं; तथापि बालिकुमारसे इस प्रकार बोले—'वानरराज! बताओ, तुम किसलिये और कैसे यहाँ आये हो! तुम्हारे आनेका सारा कारण जानकर मैं उसके अनुसार कार्य करूँगा।' यह सुनकर वानरराज अंगद मन-ही-मन बहुत विस्मित हुए और श्रीरामचन्द्रजीकी उपासनामें लगे रहनेवाले उन नरेशसे

बोले—'नृपश्रेष्ठ! मुझे बालिपुत्र अंगद समझो। श्रीशत्रुघ्नजीने मुझे दूत बनाकर तुम्हारे निकट भेजा है। इस समय तुम्हारे कुछ सेवकोंने आकर मेरे यज्ञ-सम्बन्धी घोड़ेको पकड़ लिया है। अज्ञानवश उनके द्वारा सहसा यह बहुत बड़ा अन्याय हो गया है; अब तुम प्रसन्नतापूर्वक श्रीशत्रुघ्नजीके पास चलो और उनके चरणोंमें पड़कर अपने राज्य और पुत्रोंसहित वह अश्व शीघ्र ही समर्पित कर दो। अन्यथा श्रीशत्रुघ्नके बाणोंसे घायल होकर पृथ्वीतलकी शोभा बढ़ाते हुए सदाके लिये सो जाओगे; तुम्हें अपना मस्तक कटा देना होगा।'

अंगदके मुखसे इस तरहकी बातें सुनकर राजा सुरथने उत्तर दिया—'कपिश्रेष्ठ! तुम सब कुछ ठीक ही कह रहे हो, तुम्हारा कहना मिथ्या नहीं है; परंतु मैं शत्रुघ्न आदिके भयसे उस अश्वको नहीं छोड़ सकता। यदि भगवान् श्रीराम स्वयं ही आकर मुझे दर्शन दें तो मैं उनके चरणोंमें प्रणाम करके पुत्रोंसहित अपना राज्य, कुटुम्ब, धन, धान्य तथा प्रचुर सेना—सब कुछ समर्पण कर दूँगा। क्षत्रियोंका धर्म ही ऐसा है कि उन्हें स्वामीसे भी विरोध करना पड़ता है। उसमें भी यह धार्मिक युद्ध है। मैं केवल श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनकी इच्छासे ही युद्ध कर रहा हूँ। यदि श्रीरघुनाथजी मेरे घरपर नहीं पधारेंगे तो मैं इस समय शत्रुघ्न आदि सभी प्रधान वीरोंको क्षणभरमें जीतकर कैद कर लूँगा।'

अंगद बोले—राजन्! जिन्होंने मान्धाताके शत्रु लवण नामक दैत्यको खेलमें ही मार डाला था, जिनके द्वारा संग्राममें कितने ही बलवान् वैरी परास्त हुए हैं तथा जिन्होंने इच्छानुसार चलनेवाले विमानपर बैठे हुए विद्युन्माली नामक राक्षसका वध किया है, उन्हीं वीरशिरोमणि श्रीशत्रुघ्नको तुम कैद करोगे! मुझे तो ऐसा जान पड़ता है, तुम्हारी बुद्धि मारी गयी है। श्रेष्ठ अस्त्रोंका ज्ञाता महाबली पुष्कल, जिसने युद्धमें रुद्रके प्रधान गण वीरभद्रके छक्के छुड़ा दिये थे, श्रीशत्रुघ्नका भतीजा है। श्रीरघुनाथजीके चरणकमलोंका चिन्तन करनेवाले हनुमान्‌जी भी सदा उनके निकट ही रहते हैं। तुमने हनुमान्‌जीके अनेकों पराक्रम सुने होंगे। उन्होंने त्रिकूट पर्वतसहित समूची लंकापुरीको क्षणभरमें फूँक डाला और दुष्ट बुद्धिवाले राक्षसराज रावणके पुत्र अक्षकुमारको मौतके घाट उतार दिया। अपने सैनिकोंकी जीवन-रक्षाके लिये वे देवताओंसहित द्रोण पर्वतको अपनी पूँछके अग्रभागमें लपेटकर कई बार लाये हैं। हनुमान्‌जीका चरित्रबल कैसा है, इस बातको श्रीरघुनाथजी ही जानते हैं; इसीलिये अपने प्रिय सेवक इन पवनकुमारको वे मनसे तनिक भी नहीं बिसारते। वानरराज सुग्रीव आदि वीर, जो सारी पृथ्वीको ग्रस लेनेकी शक्ति रखते हैं, राजा शत्रुघ्नका रुख जोहते हुए उनकी सेवा करते हैं। कुशध्वज, नीलरत्न, महान् अस्त्रवेत्ता रिपुताप, प्रतापाग्र्य, सुबाहु, विमल, सुमद और श्रीरामभक्त सत्यवादी राजा वीरमणि—ये तथा अन्य भूपाल श्रीशत्रुघ्नकी सेवामें रहते हैं। इन वीरोंके समुद्रमें एक मच्छरके समान तुम्हारी क्या हस्ती है। इन बातोंको भलीभाँति समझकर चलो। शत्रुघ्नजी बड़े दयालु हैं; उन्हें पुत्रोंसहित अश्व समर्पित करके तुम कमलनयन श्रीरामचन्द्रजीके पास जाना। वहीं उनका दर्शन करके अपने शरीर और जन्म दोनोंको सफल बना सकते हो।

शेषजी कहते हैं—इस प्रकार अनेक तरहकी बातें करते हुए दूतसे राजाने कहा—'यदि मैं मन, वाणी और क्रियाद्वारा श्रीरामका ही भजन करता हूँ, तो वे मुझे शीघ्र दर्शन देंगे, अन्यथा श्रीरामभक्त हनुमान् आदि वीर मुझे बलपूर्वक बाँध लें और घोड़ेको छीन ले जायँ। दूत! तुम जाओ, राजा शत्रुघ्नसे मेरी कही हुई बातें सुना दो। अच्छे-अच्छे योद्धा तैयार हों, मैं अभी युद्धके लिये चलता हूँ।' यह सुनकर वीर अंगद मुसकराते हुए वहाँसे चल दिये। वहाँ पहुँचकर राजा सुरथकी कही हुई बातें उन्होंने ज्यों-की-त्यों कह सुनायीं।

युद्धमें चम्पकके द्वारा पुष्कलका बाँधा जाना, हनुमान्‌जीका चम्पकको मूर्च्छित करके पुष्कलको छुड़ाना, सुरथका हनुमान् और शत्रुघ्न आदिको जीतकर अपने नगरमें ले जाना तथा श्रीरामके आनेसे सबका छुटकारा होना

शेषजी कहते हैं—अंगदके मुखसे सुरथका सन्देश सुनकर युद्धकी कलामें निपुणता रखनेवाले समस्त योद्धा संग्रामके लिये तैयार हो गये। सभी वीर उत्साहसे भरे थे, सब-के-सब रण-कर्ममें कुशल थे। वे नाना प्रकारके स्वरोंमें ऐसी गर्जनाएँ करते थे, जिन्हें सुनकर कायरोंको भय होता था। इसी समय राजा सुरथ अपने पुत्रों और सैनिकोंके साथ युद्धक्षेत्रमें आये। जैसे समुद्र प्रलयकालमें पृथ्वीको जलसे आप्लावित कर देता है, उसी प्रकार वे हाथी, रथ, घोड़े और पैदल योद्धाओंको साथ ले सारी पृथ्वीको आच्छादित करते हुए दिखायी दिये। उनकी सेनामें शंखनाद और विजय-गर्जनाका कोलाहल छा रहा था। इस प्रकार राजा सुरथको युद्धके लिये उद्यत देख शत्रुघ्नने सुमतिसे कहा—'महामते! ये राजा अपनी विशाल सेनासे घिरकर आ पहुँचे; अब हमलोगोंका जो कर्तव्य हो उसे बताओ।'

सुमतिने कहा—अब यहाँ सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंका ज्ञान रखनेवाले पुष्कल आदि युद्ध-विशारद वीरोंको अधिक संख्यामें उपस्थित होकर शत्रुओंसे लोहा लेना चाहिये। वायुनन्दन हनुमान्‌जी महान् शौर्यसे सम्पन्न हैं; अतः ये ही राजा सुरथके साथ युद्ध करें।

शेषजी कहते हैं—प्रधान मन्त्री सुमति इस प्रकारकी बातें बता ही रहे थे कि सुरथके उद्धत राजकुमार रणभूमिमें पहुँचकर अपनी धनुषकी टंकार करने लगे। उन्हें देखकर पुष्कल आदि महाबली योद्धा धनुष लिये अपने-अपने रथोंपर बैठकर आगे बढ़े। उत्तम अस्त्रोंके ज्ञाता वीर पुष्कल चम्पकके साथ भिड़ गये और महावीरजीसे सुरक्षित होकर द्वैरथ-युद्धकी रीतिसे लड़ने लगे। जनककुमार लक्ष्मीनिधिने कुशध्वजको साथ लेकर मोहकका सामना किया। रिपुंजयके साथ विमल, दुर्वारके साथ सुबाहु, प्रतापीके साथ प्रतापाग्र्य, बलमोदसे अंगद, हर्यक्षसे नीलरत्न, सहदेवसे सत्यवान्, भूरिदेवसे महाबली राजा वीरमणि और असुतापके साथ उग्राश्व युद्ध करने लगे। ये सभी युद्ध-कर्ममें कुशल, सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंमें प्रवीण तथा बुद्धिविशारद थे; अतः सबने घोर द्वन्द्वयुद्ध किया। वात्स्यायनजी! इस प्रकार घमासान युद्ध छिड़ जानेपर सुरथके पुत्रोंद्वारा शत्रुघ्नकी सेनाका भारी संहार हुआ। युद्ध आरम्भ होनेके पहले पुष्कलने चम्पकसे कहा—'राजकुमार! तुम्हारा क्या नाम है? तुम धन्य हो, जो मेरे साथ युद्ध करनेके लिये आ पहुँचे।'

चम्पकने कहा—वीरवर! यहाँ नाम और कुलसे युद्ध नहीं होगा; तथापि मैं तुम्हें अपने नाम और बलका परिचय देता हूँ। श्रीरघुनाथजी ही मेरी माता तथा वे ही मेरे पिता हैं, श्रीराम ही मेरे बन्धु और श्रीराम ही मेरे स्वजन हैं। मेरा नाम रामदास है, मैं सदा श्रीरामचन्द्रजीकी ही सेवामें रहता हूँ। भक्तोंपर कृपा करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी ही मुझे इस युद्धसे पार लगायेंगे। अब लौकिक दृष्टिसे अपना परिचय देता

हूँ—मैं राजा सुरथका पुत्र हूँ, मेरी माताका नाम वीरवती है। [अपने नामका उच्चारण निषिद्ध है, इसलिये मैं उसे संकेतसे बता रहा हूँ] मेरे नामका एक वृक्ष होता है, जो वसन्त-ऋतुमें खिलकर अपने आस-पासके सभी प्रदेशोंको शोभासम्पन्न बना देता है। यद्यपि उसका पुष्प रसका भण्डार होता है; तथापि मधुसे मोहित भ्रमर उसका परित्याग कर देते हैं—उससे दूर ही रहते हैं। वह फूल जिस नामसे पुकारा जाता है, उसे ही मेरा भी मनोहर नाम समझो। अच्छा, अब तुम इस संग्राममें अपने बाणोंद्वारा युद्ध करो; मुझे कोई भी जीत नहीं सकता। मैं अभी अपना अद्‌भुत पराक्रम दिखाता हूँ।

चम्पककी बात सुनकर पुष्कलका चित्त सन्तुष्ट हो गया। अब वे उसके ऊपर करोड़ों बाणोंकी वर्षा करने लगे। तब चम्पकने भी कुपित होकर अपने धनुषपर प्रत्यंचा चढ़ायी और शत्रु-समुदायको विदीर्ण करनेवाले तीखे बाणोंको छोड़ना आरम्भ किया। किन्तु महावीर पुष्कलने उसके उन बाणोंको काट डाला। यह देख चम्पकने पुष्कलकी छातीमें प्रहार करनेके लिये सौ बाणोंका सन्धान किया; किन्तु पुष्कलने तुरंत ही उनके भी टुकड़े-टुकड़े कर डाले तथा अत्यन्त कोपमें भरकर बाणोंकी बौछार आरम्भ कर दी। बाणोंकी वह वर्षा अपने ऊपर आती देख चम्पकने 'साधु-साधु' कहकर पुष्कलकी प्रशंसा करते हुए उन्हें अच्छी तरह घायल किया। पुष्कल सब शस्त्रोंके ज्ञाता थे। उन्होंने चम्पकको महापराक्रमी जानकर अपने धनुषपर ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया। उधर चम्पक भी कुछ कम नहीं था, उसने भी सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंकी विद्वत्ता प्राप्त की थी। पुष्कलके छोड़े हुए अस्त्रको देखकर उसे शान्त करनेके लिये उसने भी ब्रह्मास्त्रका ही प्रयोग किया। दोनों अस्त्रोंके तेज जब एकत्रित हुए, तो लोगोंने समझा अब प्रलय हो जायगा। किन्तु जब शत्रुका अस्त्र अपने अस्त्रसे मिलकर एक हो गया तो चम्पकने पुनः उसे शान्त कर दिया।

चम्पकका वह अद्‌भुत कर्म देखकर पुष्कलने 'खड़ा रह, खड़ा रह' कहते हुए उसपर असंख्य बाणोंका प्रहार किया। किन्तु महामना चम्पकने पुष्कलके छोड़े हुए बाणोंकी परवा न करके उनके प्रति भयंकर बाण—रामास्त्रका प्रयोग किया। पुष्कल उसे काटनेका विचार कर रहे थे कि उस बाणने आकर उन्हें बाँध लिया। इस प्रकार वीरवर चम्पकने पुष्कलको बाँधकर अपने रथपर बिठा लिया। उनके बाँधे जानेपर सेनामें महान् हाहाकार मचा। समस्त योद्धा भागकर शत्रुघ्नके पास चले गये। उन्हें भागते देख शत्रुघ्नने हनुमान्‌जीसे पूछा—'मेरी सेना तो बहुतेरे वीरोंसे अलंकृत है; फिर किस वीरने उसे भगाया है।' तब हनुमान्‌जीने कहा—'राजन्! शत्रुवीरोंका दमन करनेवाला वीरवर चम्पक पुष्कलको बाँधकर लिये जा रहा है।' उनकी ऐसी बात सुनकर शत्रुघ्न क्रोधसे जल उठे और पवनकुमारसे बोले—'आप शीघ्र ही पुष्कलको राजकुमारके बन्धनसे छुड़ाइये।' यह सुनकर हनुमान्‌जीने कहा—'बहुत अच्छा।' फिर वे पुष्कलको चम्पककी कैदसे मुक्त करनेके लिये चल दिये। हनुमान्‌जीको उन्हें छुड़ानेके लिये आते देख चम्पकको बड़ा क्रोध हुआ और उसने उनके ऊपर सैकड़ों-हजारों बाणोंका प्रहार किया। परन्तु उन्होंने शत्रुके छोड़े हुए समस्त सायकोंको चूर्ण कर डाला और एक शाल हाथमें लेकर राजकुमारपर दे मारा। चम्पक भी बड़ा बलवान् था। उसने हनुमान्‌जीके चलाये हुए शालको तिल-तिल करके काट डाला। तब हनुमान्‌जीने उसके ऊपर बहुत-सी शिलाएँ फेंकी; परन्तु उन सबको भी उसने क्षणभरमें चूर्ण कर दिया। यह देख हनुमान्‌जीके हृदयमें बहुत क्रोध हुआ। वे यह सोचकर कि यह राजकुमार बहुत पराक्रमी है; उसके पास आये और उसे हाथसे पकड़कर आकाशमें उड़ गये। अब चम्पक आकाशमें ही खड़ा होकर हनुमान्‌जीसे युद्ध करने लगा। उसने बाहुयुद्ध करके कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जीको बहुत चोट पहुँचायी। उसका बल देखकर हनुमान्‌जीने हँसते-हँसते पुनः उसका एक पैर पकड़ लिया और उसे सौ बार घुमाकर हाथीके हौदेपर पटक दिया। वहाँसे धरतीपर गिरकर वह बलवान् राजकुमार मूर्च्छित हो गया। उस समय चम्पकके अनुगामी सैनिक

हाहाकर करके चीख उठे और हनुमान्‌जीने चम्पकके पाशमें बँधे हुए पुष्कलको छुड़ा लिया।

चम्पकको पृथ्वीपर पड़ा देख बलवान् राजा सुरथ पुत्रके दुःखसे व्याकुल हो उठे और रथपर सवार हो हनुमान्‌जीके पास गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने कहा—'कपिश्रेष्ठ! तुम धन्य हो! तुम्हारा बल और पराक्रम महान् हैं; जिसके द्वारा राक्षसोंकी पुरी लंकामें तुमने श्रीरघुनाथजीके बड़े-बड़े कार्य सिद्ध किये हैं। निस्सन्देह तुम श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंके सेवक और भक्त हो। तुम्हारी वीरताके लिये क्या कहना है। तुमने मेरे बलवान् पुत्र चम्पकको रणभूमिमें गिरा दिया है। कपीश्वर! अब तुम सावधान हो जाओ। मैं इस समय तुम्हें बाँधकर अपने नगरमें ले जाऊँगा। मैंने बिलकुल सत्य कहा है।'

हनुमान्‌जीने कहा—राजन्! तुम श्रीरघुनाथजीके चरणोंका चिन्तन करनेवाले हो और मैं भी उन्हींका सेवक हूँ। यदि मुझे बाँध लोगे तो मेरे प्रभु बलपूर्वक तुम्हारे हाथसे छुटकारा दिलायेंगे। वीर! तुम्हारे मनमें जो बात है, उसे पूर्ण करो। अपनी प्रतिज्ञा सत्य करो। वेद कहते हैं, जो श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण करता है, उसे कभी दुःख नहीं होता।

शेषजी कहते हैं—उनके ऐसा कहनेपर राजा सुरथने पवनकुमारकी बड़ी प्रशंसा की और सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए भयंकर बाणोंद्वारा उन्हें अच्छी तरह घायल किया। वे बाण हनुमान्‌जीके शरीरसे रक्त निकाल रहे थे; तो भी उन्होंने उनकी परवा न की और राजाके धनुषको अपने दोनों हाथोंसे पकड़कर तोड़ डाला। हनुमान्‌जीके द्वारा अपने धनुषको प्रत्यंचासहित टूटा हुआ देख राजाने दूसरा धनुष हाथमें लिया। किन्तु पवनकुमारने उसे भी छीनकर क्रोधपूर्वक तोड़ डाला। इस प्रकार उन्होंने राजाके अस्सी धनुष खण्डित कर दिये तथा क्षण-क्षणपर महान् रोषमें भरकर वे बारम्बार गर्जना करते थे। तब राजाके क्रोधकी सीमा न रही। उन्होंने भयंकर शक्ति हाथमें ली। उस शक्तिसे आहत होकर हनुमान्‌जी गिर पड़े, किन्तु थोड़ी ही देरमें उठकर खड़े हो गये। फिर अत्यन्त क्रोधमें भर उन्होंने राजाका रथ पकड़ लिया और उसे लेकर बड़े वेगसे आकाशमें उड़ गये। ऊपर जाकर बहुत दूरसे उन्होंने रथको छोड़ दिया और वह रथ धरतीपर गिरकर क्षणभरमें चकनाचूर हो गया। राजा दूसरे रथपर जा चढ़े और बड़े वेगसे हनुमान्‌जीका सामना करनेके लिये आये। किन्तु क्रोधमें भरे हुए पवनकुमारने तुरंत ही उस रथको भी चौपट कर डाला। इस प्रकार उन्होंने राजाके उनचास रथ नष्ट कर दिये। उनका यह पराक्रम देखकर राजाके सैनिकों तथा स्वयं राजाको भी बड़ा विस्मय हुआ। वे कुपित होकर बोले—'वायुनन्दन! तुम धन्य हो! कोई भी पराक्रमी ऐसा कर्म न तो कर सकता है और न करेगा। अब तुम एक क्षणके लिये ठहर जाओ, जबतक कि मैं अपने धनुषपर प्रत्यंचा चढ़ा रहा हूँ। तुम वायुदेवताके सुपुत्र श्रीरघुनाथजीके चरण-कमलोंके चंचरीक हो [अतः मेरी बात मान लो]।' ऐसा कहकर रोषमें भरे हुए राजा सुरथने अपने धनुषपर प्रत्यंचा चढ़ायी और भयंकर बाणमें पाशुपत अस्त्रका सन्धान किया। लोगोंने देखा हनुमान्‌जी पाशुपत अस्त्रसे बँध गये। किन्तु दूसरे ही क्षण उन्होंने मन-ही-मन भगवान् श्रीरामका स्मरण करके उस बन्धनको तोड़ डाला और सहसा मुक्त होकर वे राजासे युद्ध करने लगे। सुरथने जब उन्हें बन्धनसे मुक्त देखा तो महाबलवान् मानकर ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया। परन्तु महावीर पवनकुमार उस अस्त्रको हँसते-हँसते निगल गये। यह देख राजाने श्रीरघुनाथजीका स्मरण किया। उनका स्मरण करके उन्होंने अपने धनुषपर रामास्त्रका प्रयोग किया और हनुमान्‌जीसे कहा—'कपिश्रेष्ठ! अब तुम बँध गये।' हनुमान्‌जी बोले—'राजन्! क्या करूँ, तुमने मेरे स्वामीके अस्त्रसे ही मुझे बाँधा है, किसी दूसरे प्राकृत अस्त्रसे नहीं; अतः मैं उसका आदर करता हूँ। अब तुम मुझे अपने नगरमें ले चलो। मेरे प्रभु दयाके सागर हैं; वे स्वयं ही आकर मुझे छुड़ायेंगे।'

हनुमान्‌जीके बाँधे जानेपर पुष्कल कुपित हो

राजाके सामने आये। उन्हें आते देख राजाने आठ बाणोंसे बींध डाला। यह देख बलवान् पुष्कलने राजापर कई हजार बाणोंका प्रहार किया। दोनों एक-दूसरेपर मन्त्र-पाठपूर्वक दिव्यास्त्रोंका प्रयोग करते और दोनों ही शान्त करनेवाले अस्त्रोंका प्रयोग करके एक-दूसरेके चलाये हुए अस्त्रोंका निवारण करते थे। इस प्रकार उन दोनोंमें बड़ा घमासान युद्ध हुआ, जो वीरोंके रोंगटे खड़े कर देनेवाला था। तब राजाको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने एक नाराचका प्रयोग किया। पुष्कल उसको काटना ही चाहते थे कि वह नाराच उनकी छातीमें आ लगा। वे महान् तेजस्वी थे, तो भी उसका आघात न सह सके, उन्हें मूर्च्छा आ गयी!

पुष्कलके गिर जानेपर शत्रुओंको ताप देनेवाले शत्रुघ्नको बड़ा क्रोध हुआ। वे रथपर बैठकर राजा सुरथके पास गये और उनसे कहने लगे—'राजन्! तुमने यह बड़ा भारी पराक्रम कर दिखाया, जो पवनकुमार हनुमान्‌जीको बाँध लिया। अभी ठहरो, मेरे वीरोंको रणभूमिमें गिराकर तुम कहाँ जा रहे हो। अब मेरे सायकोंकी मार सहन करो।' शत्रुघ्नका यह वीरोचित भाषण सुनकर बलवान् राजा सुरथ मन-ही-मन श्रीरामचन्द्रजीके मनोहर चरणकमलोंका चिन्तन करते हुए बोले—'वीरवर! मैंने तुम्हारे पक्षके प्रधान वीर हनुमान् आदिको रणमें गिरा दिया; अब तुम्हें भी समरांगणमें सुलाऊँगा। श्रीरघुनाथजीका स्मरण करो, जो यहाँ आकर तुम्हारी रक्षा करेंगे; अन्यथा मेरे सामने युद्धमें आकर जीवनकी रक्षा असम्भव है।' ऐसा कहकर राजा सुरथने शत्रुघ्नको हजारों बाणोंसे घायल किया। उन्हें बाण-समूहोंकी बौछार करते देख शत्रुघ्नने आग्नेयास्त्रका प्रयोग किया। वे शत्रुके बाणोंको दग्ध करना चाहते थे। शत्रुघ्नके छोड़े हुए उस अस्त्रको राजा सुरथने वारुणास्त्रके द्वारा बुझा दिया और करोड़ों बाणोंसे उन्हें घायल किया। तब शत्रुघ्नने अपने धनुषपर मोहन नामक महान् अस्त्रका सन्धान किया। वह अद्भुत अस्त्र समस्त वीरोंको मोहित करके उन्हें निद्रामें निमग्न कर देनेवाला था। उसे देख राजाने भगवान्‌का स्मरण करते हुए कहा—'मैं श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण करके ही मोहित रहता हूँ, दूसरी कोई वस्तु मुझे मोहनेवाली नहीं जान पड़ती। माया भी मुझसे भय खाती है।' वीर राजाके ऐसा कहनेपर भी शत्रुघ्नने वह महान् अस्त्र उनके ऊपर छोड़ ही दिया। किन्तु राजा सुरथके बाणसे कटकर वह रणभूमिमें गिर पड़ा। तदनन्तर सुरथने अपने धनुषपर एक प्रज्वलित बाण चढ़ाया और शत्रुघ्नको लक्ष्य करके छोड़ दिया। शत्रुघ्नने अपने पास पहुँचनेसे पहले उसे मार्गमें ही काट दिया, तो भी उसका फलवाला अग्रिम भाग उनकी छातीमें धँस गया। उस बाणके आघातसे मूर्च्छित होकर शत्रुघ्न रथपर गिर पड़े; फिर तो सारी सेना हाहाकार करती हुई भाग चली। संग्राममें रामभक्त सुरथकी विजय हुई। उनके दस पुत्रोंने भी अपने साथ लड़नेवाले दस वीरोंको मूर्च्छित कर दिया था। वे रणभूमिमें ही कहीं पड़े हुए थे।

तदनन्तर सुग्रीवने जब देखा कि सारी सेना भाग गयी और स्वामी भी मूर्च्छित होकर पड़े हैं, तो वे स्वयं ही राजा सुरथसे युद्ध करनेके लिये गये और बोले—'राजन्! तुम हमारे पक्षके सब लोगोंको मूर्च्छित करके कहाँ चले जा रहे हो? आओ और शीघ्र ही मेरे साथ युद्ध करो।' यों कहकर उन्होंने डालियोंसहित एक विशाल वृक्ष उखाड़ लिया और उसे बलपूर्वक राजाके मस्तकपर दे मारा। उसकी चोट खाकर महाबली नरेशने एक बार सुग्रीवकी ओर देखा और फिर अपने धनुषपर तीखे बाणोंका सन्धान करके अत्यन्त बल तथा पौरुषका परिचय देते हुए रोषमें भरकर उनकी छातीमें प्रहार किया। किन्तु सुग्रीवने हँसते-हँसते उनके चलाये हुए सभी बाणोंको नष्ट कर दिया। इसके बाद वे राजा सुरथको अपने नखोंसे विदीर्ण करते हुए पर्वतों, शिखरों, वृक्षों तथा हाथियोंको फेंक-फेंककर उन्हें चोट पहुँचाने लगे। तब सुरथने अपने भयंकर रामास्त्रसे सुग्रीवको भी तुरंत ही बाँध लिया। बन्धनमें पड़ जानेपर कपिराज सुग्रीवको यह विश्वास हो गया कि राजा सुरथ वास्तवमें श्रीरामचन्द्रजीके सच्चे सेवक हैं।

इस प्रकार महाराज सुरथने विजय प्राप्त की। वे

शत्रुपक्षके सभी प्रधान वीरोंको रथपर बिठाकर अपने नगरमें ले गये। वहाँ जाकर वे राज-सभामें बैठे और बँधे हुए हनुमान्‌जीसे बोले—'पवनकुमार! अब तुम भक्तोंकी रक्षा करनेवाले परमदयालु श्रीरघुनाथजीका स्मरण करो, जिससे सन्तुष्ट होकर वे तुम्हें तत्काल इस बन्धनसे मुक्त कर दें।' उनका कथन सुनकर हनुमान्‌जीने अपनेसहित समस्त वीरोंको बँधा देख रघुकुलमें अवतीर्ण, कमलके समान नेत्रोंवाले, परमदयालु सीतापति श्रीरामचन्द्रजीका सम्पूर्ण इन्द्रियोंसे स्मरण किया। वे मन-ही-मन कहने लगे—'हा नाथ! हा पुरुषोत्तम!! हा दयालु सीतापते!!! [आप कहाँ हैं? मेरी दशापर दृष्टिपात करें] प्रभो! आपका मुख स्वभावसे ही शोभासम्पन्न है, उसपर भी सुन्दर कुण्डलोंके कारण तो उसकी सुषमा और भी बढ़ गयी है। आप भक्तोंकी पीड़ाका नाश करनेवाले हैं। मनोहर रूप धारण करते हैं। दयामय! मुझे इस बन्धनसे शीघ्र मुक्त कीजिये; देर न लगाइये। आपने गजराज आदि भक्तोंको संकटसे बचाया है, दानव-वंशरूपी अग्निकी ज्वालामें जलते हुए देवताओंकी रक्षा की है तथा दानवोंको मारकर उनकी पत्नियोंके मस्तककी केश-राशिको भी बन्धनसे मुक्त किया है [वे विधवा होनेके कारण कभी केश नहीं बाँधतीं]; करुणानिधे! अब मेरी भी सुध लीजिये। नाथ! बड़े-बड़े सम्राट् भी आपके चरणोंका पूजन करते हैं, इस समय आप यज्ञकर्ममें लगे हैं, मुनीश्वरोंके साथ धर्मका विचार कर रहे हैं और यहाँ मैं सुरथके द्वारा गाढ बन्धनमें बाँधा गया हूँ। महापुरुष! देव! शीघ्र आकर मुझे छुटकारा दीजिये। प्रभो! सम्पूर्ण देवेश्वर भी आपके चरण-कमलोंकी अर्चना करते हैं। यदि इतने स्मरणके बाद भी आप हमलोगोंको इस बन्धनसे मुक्त नहीं करेंगे तो संसार खुश हो-होकर आपकी हँसी उड़ायेगा; इसलिये अब आप विलम्ब न कीजिये, हमें शीघ्र छुड़ाइये।'*

जगत्‌के स्वामी कृपानिधान श्रीरघुवीरजीने हनुमान्‌जीकी प्रार्थना सुनी और अपने भक्तको बन्धनसे मुक्त करनेके लिये वे तीव्रगामी पुष्पक विमानपर चढ़कर तुरंत चल दिये। हनुमान्‌जीने देखा, भगवान् आ गये। उनके पीछे लक्ष्मण और भरत हैं तथा साथमें मुनियोंका समुदाय शोभा पा रहा है। अपने स्वामीको आया देख हनुमान्‌जीने सुरथसे कहा—'राजन्! देखो, भगवान् दया करके अपने भक्तको छुड़ानेके लिये आ गये। पूर्वकालमें जिस प्रकार इन्होंने स्मरण करनेमात्रसे पहुँचकर अनेक भक्तोंको संकटसे मुक्त किया है, उसी प्रकार आज बन्धनमें पड़े हुए मुझको भी छुड़ानेके लिये मेरे प्रभु आ पहुँचे।'

श्रीरामचन्द्रजी एक ही क्षणमें यहाँ आ पहुँचे, यह देखकर राजा सुरथ प्रेममग्न हो गये और उन्होंने भगवान्‌को सैकड़ों बार प्रणाम किया। श्रीरामने भी चतुर्भुज रूप धारणकर अपने भक्त सुरथको भुजाओंमें

---

* इत्युक्तमाकर्ण्य समीरजस्तदा सुबद्धमात्मानमवेक्ष्य वीरान्। संमूर्च्छिताञ्शत्रुशराविघातपीडायुतान् बन्धनमुक्तयेऽस्मरत्॥
श्रीरामचन्द्रं रघुवंशजातं सीतापतिं पंकजपत्रनेत्रम्। स्वमुक्तये बन्धनतः कृपालुं सस्मार सर्वैः करणैर्विशोकैः॥

हनुमानुवाच—

हा नाथ हा नरवरोत्तम हा दयालो सीतापते रुचिरकुण्डलशोभिवक्त्र।
भक्तार्तिदाहक मनोहररूपधारिन् मां बन्धनात् सपदि मोचय मा विलम्बम्॥
संमोचितास्तु भवता गजपुङ्गवाद्या देवाश्च दानवकुलाग्निसुदह्यमानाः।
तत्सुन्दरीशिरसि संस्थितकेशबन्धसंमोचितासि करुणालय मां स्मरस्व॥
त्वं यागकर्मनिरतोऽसि मुनीश्वरेन्द्रैर्धर्मं विचारयसि भूमिपतीड्यपाद।
अत्राहमद्य सुरथेन विगाढपाशबद्धोऽस्मि मोचय महापुरुषाशु देव॥
नो मोचयस्यथ यदि स्मरणातिरेकात्त्वं सर्वदेववरपूजितपादपद्म।
लोको भवन्तमिदमुल्लसितो हसिष्यत्तस्माद् विलम्बमिह मा चर मोचयाशु॥
(५३। १२—१७)

कसकर छातीसे लगा लिया और आनन्दके आँसुओंसे उनका मस्तक भिगोते हुए कहा—'राजन्! तुम धन्य हो। आज तुमने बड़ा भारी पराक्रम कर दिखाया। कपिराज हनुमान् सबसे बढ़कर बलवान् हैं, किन्तु इनको भी तुमने बाँध लिया।' यह कहकर श्रीरघुनाथजीने वानरश्रेष्ठ हनुमान्को बन्धनसे मुक्त किया तथा जितने योद्धा मूर्च्छित पड़े थे, उन सबपर अपनी दयादृष्टि डालकर उन्हें जीवित कर दिया। असुरोंका विनाश करनेवाले श्रीरामकी दृष्टि पड़ते ही वे सब मूर्च्छा त्याग कर उठ खड़े हुए और मनोहर रूपधारी श्रीरघुनाथजीकी झाँकी करके उनके चरणोंमें पड़ गये। भगवान्ने उनसे कुशल पूछी तो वे सुखी होकर बोले—'भगवन्! आपकी कृपासे सब कुशल है।' राजा सुरथने सेवकपर कृपा करनेके लिये आये हुए श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन करके उन्हें प्रसन्नतापूर्वक अपना सारा राज्य समर्पित कर दिया और कहा—'रघुनन्दन! मैंने आपके साथ अन्याय किया है, उसे क्षमा कीजिये।'

श्रीराम बोले—राजन्! क्षत्रियोंका यह धर्म ही है। उन्हें स्वामीके साथ भी युद्ध करना पड़ता है। तुमने संग्राममें समस्त वीरोंको सन्तुष्ट करके बड़ा उत्तम कार्य किया।

भगवान्के ऐसा कहनेपर राजा सुरथने अपने पुत्रोंके साथ उनका पूजन किया। तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी तीन दिनतक वहाँ ठहरे रहे। चौथे दिन राजाकी अनुमति लेकर वे इच्छानुसार चलनेवाले पुष्पक विमानद्वारा वहाँसे चले गये। उनका दर्शन करके सबको बड़ा विस्मय हुआ और सब लोग उनकी मनोहारिणी कथाएँ कहने-सुनने लगे। इसके बाद महाबली राजा सुरथने चम्पकको अपने नगरके राज्यपर स्थापित कर दिया और स्वयं शत्रुघ्नके साथ जानेका विचार किया। शत्रुघ्नने अपना अश्व पाकर भेरी बजवायी तथा सब ओर नाना प्रकारके शंखोंकी ध्वनि करायी। तत्पश्चात् उन्होंने यज्ञसम्बन्धी अश्वको आगे जानेके लिये छोड़ा और स्वयं राजा सुरथके साथ अनेकों देशोंमें भ्रमण करते रहे, किन्तु कहीं किसी भी बलवान्ने घोड़ेको नहीं पकड़ा।

वाल्मीकिके आश्रमपर लवद्वारा घोड़ेका बँधना और अश्वरक्षकोंकी भुजाओंका काटा जाना

शेषजी कहते हैं—एक दिन प्रातःकाल वह अश्व गंगाके किनारे महर्षि वाल्मीकिके श्रेष्ठ आश्रमपर जा पहुँचा, जहाँ अनेकों ऋषि-मुनि निवास करते थे और अग्निहोत्रका धुँआ उठ रहा था। जानकीजीके पुत्र लव अन्य मुनिकुमारोंके साथ प्रातःकालीन हवन-कर्म करनेके उद्देश्यसे उसके योग्य समिधाएँ लानेके लिये वनमें गये थे। वहाँ सुवर्णपत्रसे चिह्नित उस यज्ञ-सम्बन्धी अश्वको उन्होंने देखा, जो कुंकुम, अगुरु और कस्तूरीकी दिव्य गन्धसे सुवासित था। उसे देखकर उनके मनमें कौतूहल पैदा हुआ और वे मुनिकुमारोंसे बोले—'यह मनके समान शीघ्रगामी अश्व किसका है, जो दैवात् मेरे आश्रमपर आ पहुँचा है? तुम सब लोग

मेरे साथ चलकर इसे देखो, डरना नहीं।' यह कहकर लव तुरंत ही घोड़ेके समीप गये। रघुकुलमें उत्पन्न कुमार लव कंधेपर धनुष-बाण धारण किये उस घोड़ेके समीप ऐसे सुशोभित हुए मानो दुर्जय वीर जयन्त दिखायी दे रहा हो। घोड़ेके ललाटमें जो पत्र बँधा था, उसमें सुस्पष्ट वर्णमालाओंद्वारा कुछ पंक्तियाँ लिखी थीं; जिनसे उसकी बड़ी शोभा हो रही थी। लवने पहुँचकर मुनि-पुत्रोंके साथ वह पत्र पढ़ा। पढ़ते ही उन्हें क्रोध आ गया और वे हाथमें धनुष लेकर ऋषिकुमारोंसे बोले, उस समय रोषके कारण उनकी वाणी स्पष्ट नहीं निकल पाती थी। उन्होंने कहा—'अरे! इस क्षत्रियकी धृष्टता तो देखो, जो इस घोड़ेके भालपत्रपर इसने अपने प्रताप और बलका उल्लेख किया है। राम क्या हैं, शत्रुघ्नकी क्या हस्ती है? क्या ये ही लोग क्षत्रियके कुलमें उत्पन्न हुए हैं? हमलोग श्रेष्ठ क्षत्रिय नहीं हैं?' इस प्रकारकी बहुत-सी बातें कहकर लवने उस घोड़ेको पकड़ लिया और समस्त राजाओंको तिनकेके समान समझकर हाथमें धनुष-बाण ले वे युद्धके लिये तैयार हो गये। मुनिपुत्रोंने देखा कि लव घोड़ेका अपहरण करना चाहते हैं, तो वे उनसे बोले—'कुमार! हम तुम्हें हितकी बात बता रहे हैं, सुनो, अयोध्याके राजा श्रीराम बड़े बलवान् और पराक्रमी हैं। अपने बलका घमंड रखनेवाले इन्द्र भी उनका घोड़ा नहीं छू सकते [फिर दूसरेकी तो बात ही क्या है?]; अतः तुम इस अश्वको न पकड़ो।'

यह सुनकर लवने कहा—'तुमलोग ब्राह्मण-बालक हो; क्षत्रियोंका बल क्या जानो। क्षत्रिय अपने पराक्रमके लिये प्रसिद्ध होते हैं, किन्तु ब्राह्मणलोग केवल भोजनमें ही पटु हुआ करते हैं। इसलिये तुमलोग घर जाकर माताका परोसा हुआ पक्वान्न उड़ाओ!' लवके ऐसा कहनेपर मुनिकुमार चुप हो रहे और उनका पराक्रम देखनेके लिये दूर जाकर खड़े हो गये। तदनन्तर राजा शत्रुघ्नके सेवक वहाँ आये और घोड़ेको बँधा देखकर लवसे बोले—'अहो! किसने इस घोड़ेको यहाँ बाँध रखा है? किसके ऊपर आज यमराज कुपित हुए हैं? लवने तुरंत उत्तर दिया—'मैंने इस उत्तम अश्वको बाँध रखा है, जो इसे छुड़ाने आयेगा, उसके ऊपर मेरे बड़े भाई कुश शीघ्र ही क्रोध करेंगे। यमराज भी आ जायँ तो क्या कर लेंगे? हमारे बाणोंकी बौछारसे सन्तुष्ट होकर स्वयं ही माथा टेक देंगे और तुरंत अपनी राह लेंगे।'
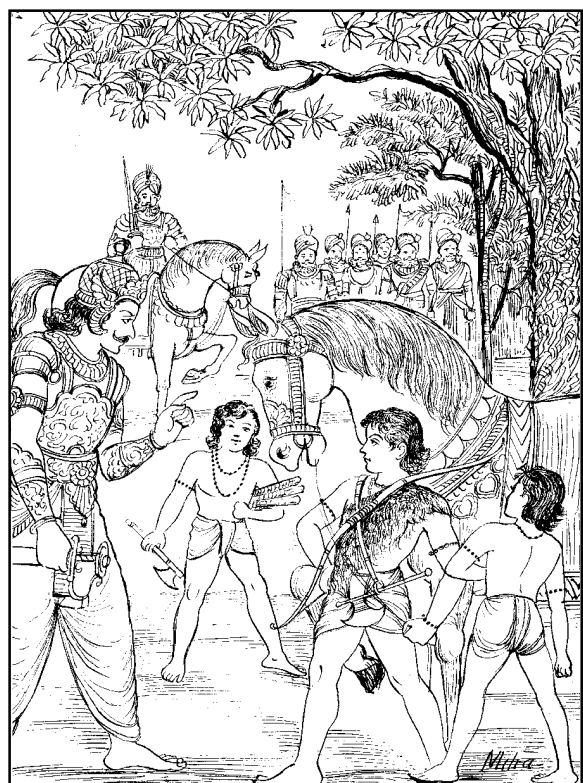
लवकी बात सुनकर सेवकोंने आपसमें कहा—'यह बेचारा बालक है [इसकी बातपर ध्यान नहीं देना चाहिये]।' तत्पश्चात् वे बँधे हुए घोड़ेको खोलनेके लिये आगे बढ़े। यह देख लवने दोनों हाथोंमें धनुष धारणकर शत्रुघ्नके सेवकोंपर क्षुरप्रोंका प्रहार आरम्भ किया। इससे उनकी भुजाएँ कट गयीं और वे शोकसे व्याकुल होकर शत्रुघ्नके पास गये। पूछनेपर सबने लवके द्वारा अपनी बाँहें काटी जानेका समाचार कह सुनाया।

गुप्तचरोंसे अपवादकी बात सुनकर श्रीरामका भरतके प्रति सीताको वनमें छोड़ आनेका आदेश और भरतकी मूर्च्छा

वात्स्यायनजी बोले—भगवन्! पहले आप बता चुके हैं कि श्रीरामचन्द्रजीने एक धोबीके निन्दा करनेपर सीताको अकेली वनमें छोड़ दिया; फिर कहाँ उनके पुत्र हुए, कहाँ उन्हें धनुष-धारणकी क्षमता प्राप्त हुई तथा कहाँ उन्होंने अस्त्रविद्याकी शिक्षा पायी, जिससे वे श्रीरामचन्द्रजीके अश्वका अपहरण कर सके?

शेषजीने कहा—मुने! श्रीरामचन्द्रजी धर्मपूर्वक सारी पृथ्वीका पालन करते हुए अपनी धर्मपत्नी महारानी सीता और भाइयोंके साथ अयोध्याका राज्य करने लगे। इसी बीचमें सीताजीने गर्भ धारण किया। धीरे-धीरे पाँच महीने बीत गये। एक दिन श्रीरामने सीताजीसे पूछा—'देवि! इस समय तुम्हारे मनमें किस बातकी अभिलाषा है, बताओ; मैं उसे पूर्ण करूँगा।'

सीताजीने कहा—प्राणनाथ! आपकी कृपासे मैंने सभी उत्तम भोग भोगे हैं और भविष्यमें भी भोगती रहूँगी। इस समय मेरे मनमें किसी विषयकी इच्छा शेष नहीं है। जिस स्त्रीको आप-जैसे स्वामी मिलें, जिनके चरणोंकी देवता भी स्तुति करते हैं; उसको सभी कुछ प्राप्त है, कुछ भी बाकी नहीं है। फिर भी यदि आप आग्रहपूर्वक मुझसे मेरे मनकी अभिलाषा पूछ रहे हैं तो मैं आपके सामने सच्ची बात कहती हूँ; नाथ! बहुत दिन हुए, मैंने लोपामुद्रा आदि पतिव्रताओंके दर्शन नहीं किये। मेरा मन इस समय उन्हींको देखनेके लिये उत्कण्ठित है। वे सब तपस्याकी भंडार हैं, मैं वहाँ जाकर वस्त्र आदिसे उनकी पूजा करूँगी और उन्हें चमकीले रत्न तथा आभूषण भेंट दूँगी; यही मेरा मनोरथ है। प्रियतम! इसे पूर्ण कीजिये।

इस प्रकार सीताजीके मनोहर वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजीको बड़ी प्रसन्नता हुई और वे अपनी प्रियतमासे बोले—'जनककिशोरी! तुम धन्य हो! कल प्रातःकाल जाना और उन तपस्विनी स्त्रियोंका दर्शन करके कृतार्थ होना।' श्रीरामचन्द्रजीके ये वचन सुनकर सीताजीको बड़ा हर्ष हुआ। वे सोचने लगीं, कल प्रातःकाल मुझे तपस्विनी देवियोंके दर्शन होंगे। तदनन्तर उस रातमें श्रीरामचन्द्रजीके भेजे हुए गुप्तचर नगरमें गये, उन्हें भेजनेका उद्देश्य यह था कि वे लोग घर-घर जाकर महाराजकी कीर्ति सुनें और देखें [जिससे उनके प्रति लोगोंके मनमें क्या भाव हैं, इसका पता लग सके]। वे दूत आधी रातके समय चुपकेसे गये। उन्हें प्रतिदिन श्रीरामचन्द्रजीकी मनोहर कथाएँ सुननेको मिलती थीं। उस दिन वे एक धनाढ्यके विशाल भवनमें प्रविष्ट हुए और थोड़ी देरतक वहाँ रुककर श्रीरामचन्द्रजीके सुयशका श्रवण करने लगे। वहाँ सुन्दर नेत्रोंवाली कोई युवती बड़े हर्षमें भरकर अपने नन्हे-से शिशुको दूध पिला रही थी। उसने बालकको लक्ष्य करके बड़ी मनोहर बात कही—'बेटा! तू जी भरकर मेरा मीठा दूध पी ले, पीछे यह तेरे लिये दुर्लभ हो जायगा। नीलकमल-दलके समान श्याम वर्णवाले

श्रीरामचन्द्रजी इस अयोध्यापुरीके स्वामी हैं; उनके नगरमें निवास करनेवाले लोगोंका फिर इस संसारमें जन्म नहीं
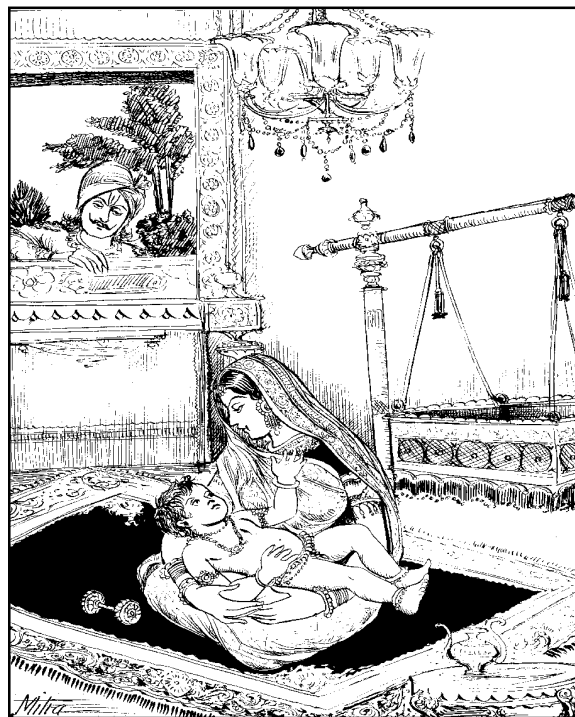
होगा। जन्म न होनेपर यहाँ दूध पीनेका अवसर कैसे मिलेगा। इसलिये मेरे लाल! तू इस दुर्लभ दूधका बारम्बार पान कर ले। जो लोग श्रीरामका भजन, ध्यान और कीर्तन करेंगे, उन्हें भी कभी माताका दूध सुलभ न होगा।' इस तरह श्रीरामचन्द्रजीके यशरूपी अमृतसे भरे हुए वचन सुनकर वे गुप्तचर बहुत प्रसन्न हुए और दूसरे किसी भाग्यशाली पुरुषके घरमें गये। वे पृथक्-पृथक् विभिन्न घरोंमें जाकर श्रीरामके यशका श्रवण करते थे। एक घरकी बात है, एक गुप्तचर श्रीरघुनाथजीका यश सुननेकी इच्छासे वहाँ आया और क्षणभर रुका रहा। उस घरकी एक सुन्दरी नारी, जिसके नेत्र बड़े मनोहर थे, पलँगपर बैठे हुए कामदेवके समान सुन्दर अपने पतिकी ओर देखकर बोली—'नाथ! आप मुझे ऐसे लगते हैं, मानो साक्षात् श्रीरघुनाथजी हों।' प्रियतमाके ये मनोहर वचन सुनकर उसके पतिने कहा—'प्रिये! मेरी बात सुनो, तुम साध्वी हो; अतः तुमने जो कुछ कहा है, वह मनको बहुत ही प्रिय लगनेवाला है। पतिव्रताओंके योग्य ही यह बात है। सती नारीके लिये उसका पति श्रीरघुनाथजीका ही स्वरूप है; परन्तु कहाँ मेरे-जैसा मन्दभाग्य और कहाँ महाभाग्यशाली श्रीराम। कहाँ कीड़ेकी-सी हस्ती रखनेवाला मैं एक तुच्छ जीव और कहाँ ब्रह्मादि देवताओंसे भी पूजित परमात्मा श्रीराम। कहाँ जुगनू और कहाँ सूर्य? कहाँ पामर पतिंगा और कहाँ गरुड़। कहाँ बुरे रास्तेसे बहनेवाला गलियोंका गँदला पानी और कहाँ भगवती भागीरथीका पावन जल। इसी प्रकार कहाँ मैं और कहाँ भगवान् श्रीराम, जिनके चरणोंकी धूलि पड़नेसे शिलामयी अहल्या क्षणभरमें भुवन-मोहन सौन्दर्यसे युक्त युवती बन गयी!'

इसी समय दूसरा गुप्तचर दूसरेके घरमें कुछ और ही बातें सुन रहा था। वहाँ कोई कामिनी पलँगपर बैठकर वीणा बजाती हुई अपने पतिके साथ

श्रीरामचन्द्रजीकी कीर्तिका गान कर रही थी—'स्वामिन्! हमलोग धन्य हैं, जिनके नगरके स्वामी साक्षात् भगवान् श्रीराम हैं, जो अपनी प्रजाको पुत्रोंकी भाँति पालते और उसके योगक्षेमकी व्यवस्था करते हैं। उन्होंने बड़े-बड़े दुष्कर कर्म किये हैं, जो दूसरोंके लिये

असाध्य हैं। उदाहरणके लिये—'उन्होंने समुद्रको वशमें किया और उसपर पुल बाँधा। फिर वानरोंसे लंकापुरीका विध्वंस कराया और अपने शत्रु रावणको मारकर वे जानकीजीको यहाँ ले आये। इस प्रकार श्रीरामने महापुरुषोंके आचारका पालन किया है।' पत्नीके ये मधुर वचन सुनकर पति मुसकराये और उससे इस प्रकार बोले—'मुग्धे रावणको मारना और समुद्रका दमन आदि जितने कार्य हैं, वे श्रीरामचन्द्रजीके लिये कोई महान् कर्म नहीं हैं। महान् परमेश्वर ही ब्रह्मा आदिकी प्रार्थनासे लीलापूर्वक इस पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए हैं और बड़े-बड़े पापोंका नाश करनेवाले उत्तम चरित्रका विस्तार करते हैं। कौसल्याका आनन्द बढ़ानेवाले श्रीरामको तुम मनुष्य न समझो। वे ही इस जगत्की सृष्टि, पालन और संहार करते हैं। केवल लीला करनेके लिये ही उन्होंने मनुष्य-विग्रह धारण किया है। हमलोग धन्य हैं, जो प्रतिदिन श्रीरामके मुख-कमलका दर्शन करते हैं, जो ब्रह्मादि देवोंके लिये भी दुर्लभ है। हमें यह सौभाग्य प्राप्त है, इसलिये हम बड़े पुण्यात्मा हैं।' गुप्तचरने दरवाजेपर खड़े होकर इस प्रकारकी बहुत-सी बातें सुनीं।

इसके सिवा, एक अन्य गुप्तचर अपने सामने धोबीका घर देखकर वहीं महाराज श्रीरामका यश सुननेकी इच्छासे गया। किन्तु उस घरका स्वामी धोबी क्रोधमें भरा था। उसकी पत्नी दूसरेके घरमें दिनका अधिक समय व्यतीत करके आयी थी। उसने आँखें लाल-लाल करके पत्नीको धिक्कारा और उसे लात मारकर कहा—'निकल जा मेरे घरसे; जिसके यहाँ सारा दिन बिताया है, उसीके घर चली जा। तू दुष्टा है, पतिकी आज्ञाका उल्लंघन करनेवाली है; इसलिये मैं तुझे नहीं रखूँगा।' उस समय उसकी माताने कहा—'बेटा! बहू घरमें आ गयी है, इस बेचारीका त्याग मत करो। यह सर्वथा निरपराध है; इसने कोई कुकर्म नहीं किया है।' धोबी क्रोधमें तो था ही, उसने माताको जवाब दिया—'मैं राम-जैसा नहीं हूँ, जो दूसरेके घरमें रही हुई प्यारी पत्नीको फिरसे ग्रहण कर लूँ। वे राजा हैं; जो कुछ भी करेंगे, सब न्याययुक्त ही माना जायगा। मैं तो दूसरेके घरमें निवास करनेवाली भार्याको कदापि नहीं ग्रहण कर सकता।' धोबीकी बात सुनकर गुप्तचरको बड़ा क्रोध हुआ और उसने तलवार हाथमें लेकर उसे मार डालनेका विचार किया। परन्तु सहसा उसे श्रीरामचन्द्रजीके आदेशका स्मरण हो आया। उन्होंने आज्ञा दी थी, 'मेरी किसी भी प्रजाको प्राणदण्ड न देना।' इस बातको समझकर उसने अपना क्रोध शान्त कर लिया। उस समय रजककी बातें सुनकर उसे बहुत दुःख हुआ था, वह कुपित हो बारम्बार उच्छ्वास खींचता हुआ उस स्थानपर गया, जहाँ उसके साथी अन्य गुप्तचर मौजूद थे। वे सब आपसमें मिले और सबने एक-दूसरेको अपना सुना हुआ श्रीरामचन्द्रजीका विश्ववन्दित चरित्र सुनाया। अन्तमें उस धोबीकी बात सुनकर उन्होंने आपसमें सलाह की और यह निश्चय किया कि दुष्टोंकी कही हुई बातें श्रीरघुनाथजीसे नहीं कहनी चाहिये। ऐसा विचार करके वे घरपर जाकर सो रहे। उन्होंने अपनी बुद्धिसे यह स्थिर किया था कि कल प्रातःकाल महाराजसे यह समाचार कहा जायगा।

शेषजी कहते हैं—श्रीरघुनाथजीने प्रातःकाल

नित्यकर्मसे निवृत्त होकर वेदवेत्ता ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक सुवर्णदानसे संतुष्ट किया। उसके बाद वे राजसभामें गये। श्रीरामचन्द्रजी सारी प्रजाका पुत्रकी भाँति पालन करते थे। अतः सब लोग उनको प्रणाम करनेके लिये वहाँ गये। लक्ष्मणने राजाके मस्तकपर छत्र लगाया और भरत-शत्रुघ्नने दो चँवर धारण किये। वसिष्ठ आदि महर्षि तथा सुमन्त्र आदि न्यायकर्ता मन्त्री भी वहाँ उपस्थित हो भगवान्‌की उपासना करने लगे।
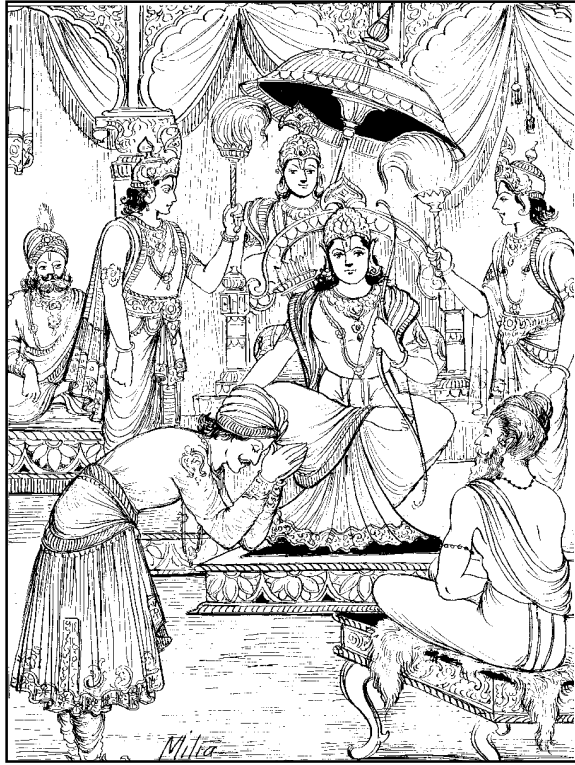
इसी समय वे गुप्तचर अच्छी तरह सज-धजकर सभामें बैठे हुए महाराजको नमस्कार करनेके लिये आये। उत्तम बुद्धिवाले महाराज श्रीरामने [सभा-विसर्जनके पश्चात्] उन सभी गुप्तचरोंको एकान्तमें बुलाकर पूछा—'तुमलोग सच-सच बताओ। नगरके लोग मेरे विषयमें क्या कहते हैं? मेरी धर्मपत्नीके विषयमें उनकी कैसी धारणा है? तथा मेरे मन्त्रियोंका बर्ताव वे लोग कैसा बतलाते हैं?'

गुप्तचर बोले—नाथ! आपकी कीर्ति इस भूमण्डलके सब लोगोंको पवित्र कर रही है। हमलोगोंने घर-घरमें प्रत्येक पुरुष और स्त्रीके मुखसे आपके यशका बखान सुना है। राजा सगर आदि आपके अनेकानेक पूर्वज अपने मनोरथको सिद्ध करके कृतार्थ हो चुके हैं; किन्तु उनकी भी ऐसी कीर्ति नहीं छायी थी, जैसी इस समय आपकी है। आप-जैसे स्वामीको पाकर सारी प्रजा कृतार्थ हो रही है। उन्हें न तो अकाल-मृत्युका कष्ट है और न रोग आदिका भय। आपकी विस्तृत कीर्ति सुनकर ब्रह्मादि देवताओंको बड़ी लज्जा होती है [क्योंकि आपके सुयशसे उनका यश फीका पड़ गया है]। इस प्रकार आपकी कीर्ति सर्वत्र फैलकर इस समय जगत्‌के सब लोगोंको पावन बना रही है। महाराज! हम सभी गुप्तचर धन्य हैं कि क्षण-क्षणमें आपके मनोहर मुखका अवलोकन करते हैं।

उन गुप्तचरोंके मुखसे इस तरहकी बातें सुनकर श्रीरघुनाथजीने अन्तमें एक दूसरे दूतपर दृष्टि डाली; उसके मुखकी आभा कुछ और ढंगकी हो रही थी। उन्होंने पूछा—'महामते! तुम सच-सच बताओ। लोगोंके मुखसे जो कुछ जैसा भी सुना हो, वह ज्यों-का-त्यों सुना दो; अन्यथा तुम्हें पाप लगेगा।'

गुप्तचरने कहा—स्वामिन्! राक्षसोंके वध आदिसे सम्बन्ध रखनेवाली आपकी सभी कथाओंका सर्वत्र गान हो रहा है—केवल एक बातको छोड़कर। आपकी धर्मपत्नीने जो राक्षसके घरमें कुछ कालतक निवास किया था, उसके सम्बन्धमें लोगोंका अच्छा भाव नहीं है। गत आधी रातकी बात है—एक धोबीने अपनी पत्नीको, जो दिनमें कुछ देरतक दूसरेके घरमें रहकर आयी थी, धिक्कारा और मारा। यह देखकर उसकी माता बोली—'बेटा! यह बेचारी निरपराध है, इसे क्यों मारते हो? तुम्हारी स्त्री है, रख लो; निन्दा न करो, मेरी बात मानो।' तब धोबी कहने लगा—'मैं राजा राम नहीं हूँ कि इसे रख लूँ। उन्होंने राक्षसके घरमें रही हुई सीताको फिरसे ग्रहण कर लिया, मैं ऐसा नहीं कर सकता। राजा समर्थ होता है, उसका किया हुआ सारा काम न्याययुक्त ही माना जाता है। दूसरे लोग पुण्यात्मा हों, तो भी उनका कार्य अन्याययुक्त ही समझ लिया जाता है।' उसने बारंबार इस बातको दुहराया कि 'मैं राजा राम नहीं हूँ।'

उस समय मुझे बड़ा क्रोध हुआ, किन्तु सहसा आपका आदेश स्मरण हो आया [इसलिये मैं उसे दण्ड न दे सका]; अब यदि आप आज्ञा दें तो मैं उसे मार गिराऊँ। यह बात न कहनेयोग्य और न्यायके विपरीत थी, तो भी मैंने आपके आग्रहसे कह डाली है। अब इस विषयमें महाराज ही निर्णायक हैं; जो उचित कर्तव्य हो, उसका विचार करें।

गुप्तचरका यह वाक्य, जिसका एक-एक अक्षर महाभयानक वज्रके समान मर्मपर आघात करनेवाला था, सुनकर श्रीरामचन्द्रजी बारम्बार उच्छ्वास खींचते हुए उन सब दूतोंसे बोले—'अब तुमलोग जाओ और भरतको मेरे पास भेज दो।' वे दूत दुःखी होकर तुरंत ही भरतजीके भवनमें गये और वहाँ उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीका संदेश कह सुनाया। श्रीरघुनाथजीका संदेश सुनकर बुद्धिमान् भरतजी बड़ी उतावलीके साथ राजसभामें गये और वहाँ द्वारपालसे बोले—'मेरे भ्राता कृपानिधान श्रीरामचन्द्रजी कहाँ हैं?' द्वारपालने एक रत्ननिर्मित मनोहर गृहकी ओर संकेत किया। भरतजी वहाँ जा पहुँचे। श्रीरामचन्द्रजीको विकल देखकर उनके मनमें

बड़ा भय हुआ। उन्होंने महाराजसे कहा—'स्वामिन्! सुखसे आराधनाके योग्य आपका यह सुन्दर मुख इस समय नीचेकी ओर क्यों झुका हुआ है? यह आँसुओंसे भींगा कैसे दिखायी दे रहा है? मुझे इसका पूरा-पूरा यथार्थ कारण बताइये और आज्ञा दीजिये, मैं क्या करूँ?' भाई भरतने जब गद्‌गद वाणीसे इस प्रकार कहा, तब धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी बोले—'प्रिय बन्धु! इस पृथ्वीपर उन्हीं मनुष्योंका जीवन उत्तम है, जिनके सुयशका विस्तार हो रहा हो। अपकीर्तिके मारे हुए मनुष्योंका जीवन तो मरे हुएके ही समान है। आज सम्पूर्ण संसारमें विस्तृत मेरी कीर्तिमयी गंगा कलुषित हो गयी। इस नगरमें रहनेवाले एक धोबीने आज जानकीजीके सम्बन्धको लेकर कुछ निन्दाकी बात कह डाली है; इसलिये भाई! बताओ, अब मैं क्या करूँ? क्या आज अपने शरीरको त्याग दूँ या अपनी धर्मपत्नी जानकीका ही परित्याग कर दूँ? दोनोंके लिये मुझे क्या करना चाहिये, इस बातको ठीक-ठीक बताओ।'

भरतजीने पूछा—आर्य! कौन है यह धोबी तथा इसने कौन-सी निन्दाकी बात कही है?

तब श्रीरामचन्द्रजीने धोबीके मुँहसे निकली हुई सारी बातें, जो दूतके द्वारा सुनी थीं, महात्मा भरतसे कह सुनायीं। उन्हें सुनकर भरतने दुःख और शोकमें पड़े हुए भाई श्रीरामसे कहा—'वीरोंद्वारा सुपूजित जानकीदेवी लंकामें अग्नि-परीक्षाद्वारा शुद्ध प्रमाणित हो चुकी हैं। ब्रह्माजीने भी इन्हें शुद्ध बतलाया है तथा पूज्य पिता स्वर्गीय महाराज दशरथजीने भी इस बातका समर्थन किया है। यह सब होते हुए भी केवल एक धोबीके कहनेसे विश्ववन्दित सीताका परित्याग कैसे किया जा सकता है? ब्रह्मादि देवताओंने भी आपकी कीर्तिका गान किया है, वह इस समय सारे जगत्‌को पवित्र कर रही है। ऐसी पावन कीर्ति आज केवल एक धोबीके कहनेसे कलुषित या कलंकित कैसे हो जायगी? भला, आप अपने इस कल्याणमय विग्रहका परित्याग क्यों करना चाहते हैं। आप ही हमारे दुःखोंको दूर करनेवाले हैं। आपके बिना तो हम सब लोग आज ही मर जायँगे।

महान् अभ्युदयसे शोभा पानेवाली सीताजी तो आपके बिना क्षणभर भी जीवित नहीं रह सकतीं। इसलिये मेरा अनुरोध तो यही है कि आप पतिव्रता श्रीसीताके साथ रहकर इस विशाल राज्य-लक्ष्मीकी रक्षा कीजिये।'

भरतके ये वचन सुनकर वक्ताओंमें श्रेष्ठ, परम धार्मिक श्रीरघुनाथजी इस प्रकार बोले—'भाई! तुम जो कुछ कह रहे हो, वह धर्मसम्मत और युक्तियुक्त है। परन्तु इस समय मैं जो बात कह रहा हूँ, उसीको मेरी आज्ञा मानकर करो। मैं जानता हूँ मेरी सीता अग्निद्वारा शुद्ध, पवित्र और लोकपूजित है, तथापि मैं लोकापवादके कारण आज उसका त्याग करता हूँ। इसलिये तुम जनककिशोरीको वनमें ले जाकर छोड़ आओ।' श्रीरामका यह आदेश सुनते ही भरतजी मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े।

सीताका अपवाद करनेवाले धोबीके पूर्वजन्मका वृत्तान्त

वात्स्यायनजीने पूछा—स्वामिन्! जिनकी उत्तम कीर्ति सम्पूर्ण जगत्‌को पवित्र करनेवाली है, उन्हीं जानकीदेवीके प्रति उस धोबीने निन्दायुक्त वचन क्यों कहे? इसका रहस्य बतलाइये।

शेषजीने कहा—मिथिला नामकी महापुरीमें महाराज जनक राज्य करते थे। उनका नाम था सीरध्वज। एक बार वे यज्ञके लिये पृथ्वी जोत रहे थे। उस समय चौड़े मुँहवाली सीता (फालके धँसनेसे

बनी हुई गहरी रेखा)-के द्वारा एक कुमारी कन्याका प्रादुर्भाव हुआ, जो रतिसे भी बढ़कर सुन्दर थी। इससे राजाको बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने भुवनमोहिनी शोभासे सम्पन्न उस कन्याका नाम सीता रख दिया। परम सुन्दरी सीता एक दिन सखियोंके साथ उद्यानमें खेल रही थीं। वहाँ उन्हें शुक पक्षीका एक जोड़ा दिखायी दिया,

जो बड़ा मनोरम था। वे दोनों पक्षी एक पर्वतकी चोटीपर बैठकर इस प्रकार बोल रहे थे—'पृथ्वीपर श्रीराम नामसे प्रसिद्ध एक बड़े सुन्दर राजा होंगे। उनकी महारानी सीताके नामसे विख्यात होंगी। श्रीरामचन्द्रजी

बड़े बुद्धिमान् और बलवान् होंगे तथा समस्त राजाओंको अपने वशमें रखते हुए सीताके साथ ग्यारह हजार वर्षोंतक राज्य करेंगे। धन्य हैं वे जानकीदेवी और धन्य हैं श्रीराम, जो एक-दूसरेको प्राप्त होकर इस पृथ्वीपर आनन्दपूर्वक विहार करेंगे।'

तोतेके उस जोड़ेको ऐसी बातें करते देख सीताने सोचा कि 'ये दोनों मेरे ही जीवनकी मनोहर कथा कह रहे हैं इन्हें पकड़कर सभी बातें पूछूँ।' ऐसा विचार कर उन्होंने अपनी सखियोंसे कहा, 'यह पक्षियोंका जोड़ा बहुत सुन्दर है, तुमलोग चुपकेसे जाकर इसे पकड़ लाओ।' सखियाँ उस पर्वतपर गयीं और दोनों सुन्दर पक्षियोंको पकड़ लायीं। लाकर उन्होंने सीताको अर्पण कर दिया। सीता उन पक्षियोंसे बोलीं—'तुम दोनों बड़े सुन्दर हो; देखो, डरना नहीं। बताओ, तुम कौन हो और कहाँसे आये हो? राम कौन हैं? और सीता कौन हैं? तुम्हें उनकी जानकारी कैसे हुई? इस सारी बातोंको जल्दी-जल्दी बताओ। मेरी ओरसे तुम्हें भय नहीं होना चाहिये।' सीताके इस प्रकार पूछनेपर दोनों पक्षी सब बातें बताने लगे—'देवि! वाल्मीकि नामसे प्रसिद्ध एक बहुत बड़े महर्षि हैं, जो धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ माने जाते हैं। हम दोनों उन्हींके आश्रममें रहते हैं। महर्षिने रामायण नामका एक ग्रन्थ बनाया है, जो सदा ही मनको प्रिय जान पड़ता है। उन्होंने शिष्योंको उस रामायणका अध्ययन कराया है तथा प्रतिदिन वे सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें संलग्न रहकर उस रामायणके पद्योंका चिन्तन किया करते हैं। रामायणका कलेवर बहुत बड़ा है। हमलोगोंने उसे पूरा-पूरा सुना है। बारम्बार उसका गान और पाठ सुननेसे हमें भी उसका अभ्यास हो गया है। राम और जानकी कौन हैं, इस बातको हम बताते हैं तथा इसकी भी सूचना देते हैं कि श्रीरामके साथ क्रीडा करनेवाली जानकीके विषयमें क्या-क्या बातें होनेवाली हैं; तुम ध्यान देकर सुनो। 'महर्षि ऋष्यशृंगके द्वारा कराये हुए पुत्रेष्टि-यज्ञके प्रभावसे भगवान् विष्णु राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न—ये चार शरीर धारण करके प्रकट होंगे। देवांगनाएँ भी उनकी उत्तम कथाका गान करेंगी। श्रीमान् राम महर्षि विश्वामित्रके साथ भाई लक्ष्मणसहित हाथमें धनुष लिये मिथिला पधारेंगे। उस समय वहाँ एक ऐसे धनुषको, जिसका धारण करना दूसरोंके लिये कठिन है, देखकर वे उसे तोड़ डालेंगे और अत्यन्त मनोहर रूपवाली जनककिशोरी सीताको अपनी धर्मपत्नीके रूपमें ग्रहण करेंगे। फिर उन्हींके साथ श्रीरामचन्द्रजी अपने विशाल साम्राज्यका पालन करेंगे।' ये तथा और भी बहुत-सी बातें वहाँ रहते समय हमारे सुननेमें आयी हैं। सुन्दरी! हमने तुम्हें सब कुछ बता दिया। अब हम जाना चाहते हैं, हमें छोड़ दो।'

कानोंको अत्यन्त मधुर प्रतीत होनेवाली पक्षियोंकी ये बातें सुनकर सीताने उन्हें मनमें धारण किया और पुनः उन दोनोंसे इस प्रकार पूछा—'राम कहाँ होंगे? किसके पुत्र हैं और कैसे वे दूलह-वेषमें आकर जानकीको ग्रहण करेंगे? तथा मनुष्यावतारमें उनका श्रीविग्रह कैसा होगा?' उनके प्रश्न सुनकर शुकी मन-ही-मन जान गयी कि ये ही सीता हैं। उन्हें पहचानकर वह सामने आ उनके चरणोंपर गिर पड़ी और बोली—'श्रीरामचन्द्रजीका मुख कमलकी कलीके समान सुन्दर होगा। नेत्र बड़े-बड़े तथा खिले हुए पंकजकी शोभाको धारण करनेवाले होंगे। नासिका ऊँची, पतली और मनोहारिणी होगी। दोनों भौंहें सुन्दर ढंगसे परस्पर मिली होनेके कारण मनोहर प्रतीत होंगी। भुजाएँ घुटनोंतक लटकी हुई एवं मनको लुभानेवाली होंगी। गला शंखके समान सुशोभित और छोटा होगा। वक्षःस्थल उत्तम, चौड़ा एवं शोभासम्पन्न होगा। उसमें श्रीवत्सका चिह्न होगा। सुन्दर जाँघों और कटिभागकी शोभासे युक्त उनके दोनों घुटने अत्यन्त निर्मल होंगे, जिनकी भक्तजन आराधना करेंगे। श्रीरघुनाथजीके चरणारविन्द भी परम शोभायुक्त होंगे; और समस्त भक्तजन उनकी सेवामें सदा संलग्न रहेंगे। श्रीरामचन्द्रजी ऐसा ही मनोहर रूप धारण करनेवाले हैं। मैं उनका क्या वर्णन कर सकती हूँ। जिसके सौ मुख हैं, वह भी उनके गुणोंका बखान नहीं कर सकता। फिर हमारे-जैसे पक्षीकी क्या बिसात है। परम सुन्दर रूप धारण करनेवाली लावण्यमयी लक्ष्मी भी जिनकी झाँकी

करके मोहित हो गयी, उन्हें देखकर पृथ्वीपर दूसरी कौन स्त्री है, जो मोहित न हो। उनका बल और पराक्रम महान् है। वे अत्यन्त मोहक रूप धारण करनेवाले हैं। मैं श्रीरामका कहाँतक वर्णन करूँ। वे सब प्रकारके ऐश्वर्यमय गुणोंसे युक्त हैं। परम मनोहर रूप धारण करनेवाली वे जानकीदेवी धन्य हैं, जो श्रीरघुनाथजीके साथ हजारों वर्षोंतक प्रसन्नतापूर्वक विहार करेंगी। परन्तु सुन्दरी! तुम कौन हो? तुम्हारा नाम क्या है, जो इतनी चतुरता और आदरके साथ श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंका कीर्तन सुननेके लिये प्रश्न कर रही हो।'

पक्षियोंकी ये बातें सुनकर जनककुमारी सीता अपने जन्मकी ललित एवं मनोहर चर्चा करती हुई बोलीं—'जिसे तुमलोग जानकी कह रहे हो, वह जनककी पुत्री मैं ही हूँ। मेरे मनको लुभानेवाले श्रीराम जब यहाँ आकर मुझे स्वीकार करेंगे, तभी मैं तुम दोनोंको छोड़ूँगी, अन्यथा नहीं; क्योंकि तुमने अपने वचनोंसे मेरे मनमें लोभ उत्पन्न कर दिया है। अब तुम इच्छानुसार खेल करते हुए मेरे घरमें सुखसे रहो और मीठे-मीठे पदार्थ भोजन करो।' यह सुनकर सुग्गीने जानकीसे कहा—'साध्वी! हम वनके पक्षी हैं, पेड़ोंपर रहते हैं और सर्वत्र विचरा करते हैं। हमें तुम्हारे घरमें सुख नहीं मिलेगा। मैं गर्भिणी हूँ, अपने स्थानपर जाकर बच्चे पैदा करूँगी। उसके बाद फिर तुम्हारे यहाँ आ जाऊँगी।' उसके ऐसा कहनेपर भी सीताने उसे न छोड़ा। तब उसके पतिने विनीत वाणीमें उत्कण्ठित होकर कहा—'सीता! मेरी सुन्दरी भार्याको छोड़ दो। इसे क्यों रख रही हो। शोभने! यह गर्भिणी है, सदा मेरे मनमें बसी रहती है। जब यह बच्चोंको जन्म दे लेगी, तब इसे लेकर फिर तुम्हारे पास आ जाऊँगा।' तोतेके ऐसा कहनेपर जानकीने कहा—'महामते! तुम आरामसे जा सकते हो, मगर तुम्हारी यह भार्या मेरा प्रिय करनेवाली है। मैं इसे अपने पास बड़े सुखसे रखूँगी।'

यह सुनकर पक्षी दुःखी हो गया। उसने करुणायुक्त वाणीमें कहा—'योगीलोग जो बात कहते हैं, वह सत्य ही है—किसीसे कुछ न कहे, मौन होकर रहे, नहीं तो उन्मत्त प्राणी अपने वचनरूपी दोषके कारण ही बन्धनमें पड़ता है। यदि हम इस पर्वतके ऊपर बैठकर वार्तालाप न करते होते तो हमारे लिये यह बन्धन कैसे प्राप्त होता। इसलिये मौन ही रहना चाहिये।' इतना कहकर पक्षी पुनः बोला—'सुन्दरी! मैं अपनी इस भार्याके बिना जीवित नहीं रह सकता, इसलिये इसे छोड़ दो। सीता! तुम बड़ी अच्छी हो [मेरी प्रार्थना मान लो]।' इस तरह नाना प्रकारकी बातें कहकर उसने समझाया, किन्तु सीताने उसकी पत्नीको नहीं छोड़ा, तब उसकी भार्याने क्रोध और दुःखसे आकुल होकर जानकीको शाप दिया—'अरी! जिस प्रकार तू मुझे इस समय अपने पतिसे विलग कर रही है, वैसे ही तुझे स्वयं भी गर्भिणीकी अवस्थामें श्रीरामसे अलग होना पड़ेगा।' यों कहकर पति-वियोगके शोकसे उसके प्राण निकल गये। उसने श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण तथा पुनः-पुनः राम-नामका उच्चारण करते हुए प्राण त्याग किया था, इसलिये उसे ले जानेके लिये एक सुन्दर विमान आया और वह पक्षिणी उसपर बैठकर भगवान्के धामको चली गयी।

भार्याकी मृत्यु हो जानेपर पक्षी शोकसे आतुर होकर बोला—'मैं मनुष्योंसे भरी हुई श्रीरामकी नगरी अयोध्यामें जन्म लूँगा तथा मेरे ही वाक्यसे उद्वेगमें पड़कर इसे पतिके वियोगका भारी दुःख उठाना पड़ेगा।' यह कहकर वह चला गया। क्रोध और सीताजीका अपमान करनेके कारण उसका धोबीकी योनिमें जन्म हुआ। जो बड़े लोगोंकी बुराई करते हुए क्रोधपूर्वक अपने प्राणोंका परित्याग करता है, वह द्विजोंमें श्रेष्ठ ही क्यों न हो, मरनेके बाद नीच-योनिमें उत्पन्न होता है। यही बात उस तोतेके लिये भी हुई। उस धोबीके कथनसे ही सीताजी निन्दित हुईं और उन्हें पतिसे वियुक्त होना पड़ा। धोबीके रूपमें उत्पन्न हुए उस तोतेका शाप ही सीताका पतिसे विछोह करानेमें कारण हुआ और इसीसे वे वनमें गयीं। विप्रवर! विदेहनन्दिनी सीताके सम्बन्धमें तुमने जो बात पूछी थी वह कह दी। अब फिर आगेका वृत्तान्त कहता हूँ, सुनो।

सीताजीके त्यागकी बातसे शत्रुघ्नकी भी मूर्च्छा, लक्ष्मणका दुःखित चित्तसे सीताको जंगलमें छोड़ना और वाल्मीकिके आश्रमपर लव-कुशका जन्म एवं अध्ययन

शेषजी कहते हैं—मुने! भरतको मूर्च्छित देख श्रीरघुनाथजीको बड़ा दुःख हुआ, उन्होंने द्वारपालसे कहा—'शत्रुघ्नको शीघ्र मेरे पास बुला लाओ।' आज्ञा पाकर वह क्षणभरमें शत्रुघ्नको बुला लाया। आते ही उन्होंने भरतको अचेत और श्रीरघुनाथजीको दुःखी देखा; इससे उन्हें भी बड़ा दुःख हुआ और वे श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम करके बोले—'आर्य! यह कैसा दारुण दृश्य है?' तब श्रीरामने धोबीके मुखसे निकला हुआ वह लोकनिन्दित वचन कह सुनाया तथा जानकीको त्यागनेका विचार भी प्रकट किया।

शत्रुघ्नने कहा—स्वामिन्! आप जानकीजीके प्रति यह कैसी कठोर बात कह रहे हैं! भगवान् सूर्यका उदय सारे संसारको प्रकाश पहुँचानेके लिये होता है; किन्तु उल्लुओंको वे पसंद नहीं आते, इससे जगत्‌की क्या हानि होती है? इसलिये आप भी सीताको स्वीकार करें, उनका त्याग न करें; क्योंकि वे सती-साध्वी स्त्री हैं। आप कृपा करके मेरी यह बात मान लीजिये।

महात्मा शत्रुघ्नकी यह बात सुनकर श्रीरामचन्द्रजी बारम्बार वही (सीताके त्यागकी) बात दुहराने लगे, जो एक बार भरतसे कह चुके थे। भाईकी वह कठोर बात सुनते ही शत्रुघ्न दुःखके अगाध जलमें डूब गये और जड़से कटे हुए वृक्षकी भाँति मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। भाई शत्रुघ्नको भी अचेत होकर गिरा देख श्रीरामचन्द्रजीको बहुत दुःख हुआ और वे द्वारपालसे बोले—'जाओ, लक्ष्मणको मेरे पास बुला लाओ।' द्वारपालने लक्ष्मणजीके महलमें जाकर उनसे इस प्रकार निवेदन किया—'स्वामिन्! श्रीरघुनाथजी आपको याद कर रहे हैं।' श्रीरामका आदेश सुनकर वे शीघ्र उनके पास गये। वहाँ भरत और शत्रुघ्नको मूर्च्छित तथा श्रीरामचन्द्रजीको दुःखसे व्याकुल देखकर लक्ष्मण भी दुःखी हो गये। वे श्रीरघुनाथजीसे बोले—'राजन्! यह मूर्च्छा आदिका दारुण दृश्य कैसे दिखायी दे रहा है? इसका सब कारण मुझे शीघ्र बताइये।'

उनके ऐसा कहनेपर महाराज श्रीरामने लक्ष्मणको वह सारा दुःखमय वृत्तान्त आरम्भसे ही कह सुनाया। सीताके परित्यागसे सम्बन्ध रखनेवाली बात सुनकर वे बारम्बार उच्छ्वास खींचते हुए सन्न हो गये। उन्हें कुछ भी उत्तर देते न देख श्रीरामचन्द्रजी शोकसे पीड़ित होकर बोले—'मैं अपयशसे कलंकित हो इस पृथ्वीपर रहकर क्या करूँगा। मेरे बुद्धिमान् भ्राता सदा मेरी आज्ञाका पालन करते थे, किन्तु इस समय दुर्भाग्यवश वे भी मेरे प्रतिकूल बातें करते हैं। कहाँ जाऊँ? कैसे करूँ? पृथ्वीके सभी राजा मेरी हँसी उड़ायेंगे।' श्रीरामको ऐसी बातें करते देख लक्ष्मणने आँसू रोककर व्यथित स्वरमें कहा—'स्वामिन्! विषाद न कीजिये। मैं अभी उस धोबीको बुलाकर पूछता हूँ, संसारकी सभी स्त्रियोंमें श्रेष्ठ जानकीजीकी निन्दा उसने कैसे की है? आपके राज्यमें किसी छोटे-से-छोटे मनुष्यको भी बलपूर्वक कष्ट नहीं पहुँचाया जाता। अतः उसके मनमें जिस तरह प्रतीति हो, जैसे वह संतुष्ट रहे, वैसा ही उसके साथ बर्ताव कीजिये [परंतु एक बार उससे पूछना आवश्यक है]। जनककुमारी सीता मनसे अथवा वाणीसे भी आपके सिवा दूसरेको नहीं जानतीं; अतः उन्हें तो आप स्वीकार ही करें, उनका त्याग न करें। मेरे ऊपर कृपा करके मेरी बात मानें।'

ऐसा कहते हुए लक्ष्मणसे श्रीरामने शोकातुर होकर कहा—'भाई! मैं जानता हूँ सीता निष्पाप है; तो भी लोकापवादके कारण उसका त्याग करूँगा। लोकापवादसे निन्दित हो जानेपर मैं अपने शरीरको भी त्याग सकता हूँ; फिर घर, पुत्र, मित्र तथा उत्तम वैभव आदि दूसरी-दूसरी वस्तुओंकी तो बात ही क्या है। इस समय धोबीको बुलाकर पूछनेकी आवश्यकता नहीं है। समय आनेपर सब कुछ अपने-आप हो जायगा; लोगोंके चित्तमें

सीताके प्रति स्वयं ही प्रतीति हो जायगी। जैसे कच्चा घाव चिकित्साके योग्य नहीं होता, समयानुसार जब वह पक जाता है तभी दवासे नष्ट होता है, उसी प्रकार समयसे ही इस कलंकका मार्जन होगा। इस समय मेरी आज्ञाका उल्लंघन न करो। पतिव्रता सीताको जंगलमें छोड़ आओ।' यह आदेश सुनकर लक्ष्मण एक क्षणतक शोकाकुल हो दु:खमें डूबे रहे, फिर मन-ही-मन विचार किया—'परशुरामजीने पिताकी आज्ञासे अपनी माताका भी वध कर डाला था; इससे जान पड़ता है, गुरुजनोंकी आज्ञा उचित हो या अनुचित, उसका कभी उल्लंघन नहीं करना चाहिये। अत: श्रीरामचन्द्रजीका प्रिय करनेके लिये मुझे सीताका त्याग करना ही पड़ेगा।'

यह सोचकर लक्ष्मण अपने भाई श्रीरघुनाथजीसे बोले—'सुव्रत! गुरुजनोंके कहनेसे नहीं करनेयोग्य कार्य भी कर लेना चाहिये, किन्तु उनकी आज्ञाका उल्लंघन कदापि उचित नहीं है। इसलिये आप जो कुछ कहते हैं, उस आदेशका मैं पालन करूँगा।' लक्ष्मणके मुखसे ऐसी बात सुनकर श्रीरघुनाथजीने उनसे कहा—'बहुत अच्छा; बहुत अच्छा; महामते! तुमने मेरे चित्तको संतुष्ट कर दिया। अभी-अभी रातमें जानकीने तापसी स्त्रियोंके दर्शनकी इच्छा प्रकट की थी, इसीलिये रथपर बिठाकर जंगलमें छोड़ आओ।' फिर सुमन्त्रको बुलाकर उन्होंने कहा—'मेरा रथ अच्छे-अच्छे घोड़ों और वस्त्रोंसे सजाकर तैयार करो।' श्रीरघुनाथजीका आदेश सुनकर वे उनका उत्तम रथ तैयार करके ले आये। रथको आया देख भ्रातृभक्त लक्ष्मण उसपर सवार हुए और जानकीजीके महलकी ओर चले। अन्त:पुरमें पहुँचकर वे मिथिलेशकुमारी सीतासे बोले—'माता जानकी! श्रीरघुनाथजीने मुझे आपके महलमें भेजा है। आप तापसी स्त्रियोंके दर्शनके लिये वनमें चलिये।'

जानकी बोलीं—श्रीरघुनाथजीके चरणोंका चिन्तन करनेवाली यह महारानी मैथिली आज धन्य हो गयी, जिसका मनोरथ पूर्ण करनेके लिये स्वामीने लक्ष्मणको भेजा है! आज मैं वनमें रहनेवाली सुन्दरी तपस्विनियोंको, जो पतिको ही देवता मानती हैं, मस्तक झुकाऊँगी और वस्त्र आदि अर्पण करके उनकी पूजा करूँगी।

ऐसा कहकर उन्होंने सुन्दर-सुन्दर वस्त्र, बहुमूल्य आभूषण, नाना प्रकारके रत्न, उज्ज्वल मोती, कपूर आदि सुगन्धित पदार्थ तथा चन्दन आदि सहस्रों प्रकारकी विचित्र वस्तुएँ साथ ले लीं। ये सारी चीजें दासियोंके हाथों उठवाकर वे लक्ष्मणकी ओर चलीं। अभी घरका चौकठ भी नहीं लाँघने पायी थीं कि लड़खड़ाकर गिर पड़ीं। यह एक अपशकुन था; परन्तु वनमें जानेकी उत्कण्ठाके कारण सीताजीने इसपर विचार नहीं किया। वे अपना प्रिय कार्य करनेवाले देवरसे बोलीं—'वत्स! कहाँ वह रथ है, जिसपर मुझे ले चलोगे?' लक्ष्मणने सुवर्णमय रथकी ओर संकेत किया और जानकीजीके साथ उसपर बैठकर सुमन्त्रसे बोले—'चलाओ घोड़ोंको।' इसी समय सीताका दाहिना नेत्र फड़क उठा, जो भावी दु:खकी सूचना देनेवाला था। साथ ही पुण्यमय पक्षी विपरीत दिशासे होकर जाने लगे। यह सब देखकर जानकीने देवरसे कहा—'वत्स! मैं तो
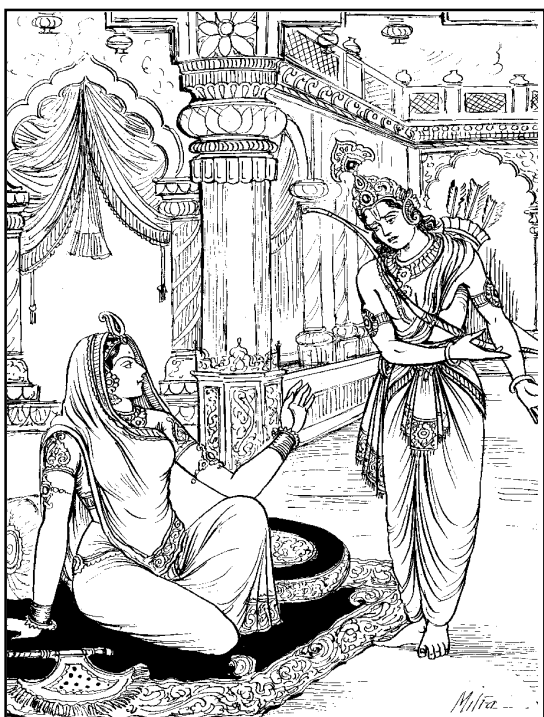
तपस्विनियोंके दर्शनकी इच्छासे यात्रा करना चाहती हूँ,

फिर ये दुःख देनेवाले अपशकुन कैसे हो रहे हैं! श्रीरामका, भरतका तथा तुम्हारे छोटे भाई शत्रुघ्नका कल्याण हो, उनकी प्रजामें सर्वत्र शान्ति रहे, कहीं कोई विप्लव या उपद्रव न हो।'

जानकीजीको ऐसी बातें करते देख लक्ष्मण कुछ बोल न सके, आँसुओंसे उनका गला भर आया। इसी प्रकार आगे जाकर सीताजीने फिर देखा, बहुत-से मृग बायीं ओरसे घूमकर निकले जा रहे हैं। वे भारी दुःखकी सूचना देनेवाले थे। उन्हें देखकर जानकीजी कहने लगीं—'आज ये मृग जो मेरी बायीं ओरसे निकल रहे हैं, सो ठीक ही है; श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंको छोड़कर अन्यत्र जानेवाली सीताके लिये ऐसा होना उचित ही है। नारियोंका सबसे बड़ा धर्म है—अपने स्वामीके चरणोंका पूजन, उसीको छोड़कर मैं अन्यत्र जा रही हूँ; अतः मेरे लिये जो दण्ड मिले, उचित ही है।' इस प्रकार मार्गमें पारमार्थिक विचार करती हुई देवी जानकीने गंगाजीको देखा, जिनके तटपर मुनियोंका समुदाय निवास करता है। जिनके जलकणोंका स्पर्श होते ही राशि-राशि महापातक पलायन कर जाते हैं—उन्हें वहाँ चारों ओर अपने रहनेयोग्य कोई स्थान नहीं दिखायी देता। गंगाके किनारे पहुँचकर लक्ष्मणजीने रथपर बैठी हुई सीताजीसे आँसू बहाते हुए कहा—'भाभी! चलो, लहरोंसे भरी हुई गंगाको पार करो।' सीताजी देवरकी बात सुनकर तुरंत रथसे उतर गयीं।

तदनन्तर नावसे गंगाके पार होकर लक्ष्मणजी जानकीजीको साथ लिये वनमें चले। वे श्रीरामचन्द्रजीकी

आज्ञाका पालन करनेमें कुशल थे; अतः सीताको अत्यन्त भयंकर एवं दुःखदायी जंगलमें ले गये—जहाँ बबूल, खैरा और धव आदिके महाभयानक वृक्ष थे, जो दावानलसे दग्ध होनेके कारण सूख गये थे। ऐसा जंगल देखकर सीता भयके कारण बहुत चिन्तित हुईं। काँटोंसे उनके कोमल चरणोंमें घाव हो गये। वे लक्ष्मणसे बोलीं—'वीरवर! यहाँ अच्छे-अच्छे ऋषि-मुनियोंके रहनेयोग्य आश्रम मुझे नहीं दिखायी देते, जो नेत्रोंको सुख प्रदान करनेवाले हैं तथा महर्षियोंकी तपस्विनी स्त्रियोंके भी दर्शन नहीं होते। यहाँ तो केवल भयंकर पक्षी, सूखे वृक्ष और दावानलसे सब ओर जलता हुआ

यह वन ही दृष्टिगोचर हो रहा है। इसके सिवा, मैं तुमको भी किसी भारी दु:खसे आतुर देखती हूँ। तुम्हारी आँखें आँसुओंसे भरी हैं, इनसे व्याकुलताके भाव प्रकट होते हैं; और मुझे भी पग-पगपर हजारों अपशकुन दिखायी देते हैं। सच बताओ, क्या बात है?'

सीताजीके इतना कहनेपर भी लक्ष्मणजीके मुखसे कोई भी बात नहीं निकली, वे चुपचाप उनकी ओर देखते हुए खड़े रहे। तब जानकीजीने बारम्बार प्रश्न करके उनसे उत्तर देनेके लिये बड़ा आग्रह किया। उनके आग्रहपूर्वक पूछनेपर लक्ष्मणजीका गला भर आया। उन्होंने शोक प्रकट करते हुए सीताजीको उनके परित्यागकी बात बतायी। मुनिवर! वह वज्रके तुल्य कठोर वचन सुनकर सीताजी जड़से कटी हुई लताकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ीं। विदेहकुमारीको पृथ्वीपर पड़ी देख लक्ष्मणजीने पल्लवोंसे हवा करके उन्हें सचेत किया। होशमें आनेपर जानकीजीने कहा—''देवर! मुझसे परिहास न करो। मैंने कोई पाप नहीं किया है, फिर श्रीरघुनाथजी मुझे कैसे छोड़ देंगे। वे परम बुद्धिमान् और महापुरुष हैं, मेरा त्याग कैसे कर सकते हैं। वे जानते हैं मैं निष्पाप हूँ; फिर भी एक धोबीके कहनेसे मुझे छोड़ देंगे? [ऐसी आशा नहीं है।]'' इतना कहते-कहते वे फिर बेहोश हो गयीं। इस बार उन्हें मूर्च्छित देख लक्ष्मणजी फूट-फूटकर रोने लगे। जब पुन: उनको चेत हुआ, तब लक्ष्मणजीको दु:खसे आतुर और रुद्धकण्ठ देखकर वे बहुत दु:खी हुईं और बोलीं—''सुमित्रानन्दन! जाओ, तुम धर्मके स्वरूप और यशके सागर श्रीरामचन्द्रजीसे तपोनिधि वसिष्ठ मुनिके सामने ही मेरी एक बात पूछना—'नाथ! यह जानते हुए भी कि सीता निष्पाप है, जो आपने मुझे त्याग दिया है, यह बर्ताव आपके कुलके अनुरूप हुआ है या शास्त्र-ज्ञानका फल है? मैं सदा आपके चरणोंमें ही अनुराग रखती हूँ; तो भी जो आपके द्वारा मेरा त्याग हुआ है, इसमें आपका कोई दोष नहीं है। यह सब मेरे भाग्य-दोषसे हुआ है, इसमें मेरा प्रारब्ध ही कारण है। वीरवर! आपका सदा और सर्वत्र कल्याण हो। मैं इस वनमें आपका ही स्मरण करती हुई प्राण धारण करूँगी। मन, वाणी और क्रियाके द्वारा एकमात्र आप ही मेरे सर्वोत्तम आराध्यदेव हैं। रघुनन्दन! आपके सिवा और सब कुछ मैंने अपने मनसे तुच्छ समझा है। महेश्वर! प्रत्येक जन्ममें आप ही मेरे पति हों और मैं आपके ही चरणोंके चिन्तनसे अपने अनेकों पापोंका नाश कर आपकी सती-साध्वी पत्नी बनी रहूँ—यही मेरी प्रार्थना है।'

''लक्ष्मण! मेरी सासुओंसे भी यह संदेश कहना—'माताओ! अनेकों जन्तुओंसे भरे हुए इस घोर जंगलमें मैं आप सब लोगोंके चरणोंका स्मरण करती हूँ। मैं गर्भवती हूँ, तो भी महात्मा रामने मुझे इस वनमें त्याग दिया है।' 'सौमित्रे! अब तुम मेरी बात सुनो—श्रीरघुनाथजीका कल्याण हो। मैं अभी प्राण त्याग देती, किन्तु विवश हूँ; अपने गर्भमें श्रीरामचन्द्रजीके तेजकी रक्षा कर रही हूँ। तुम जो उनके वचनोंको पूर्ण करते हो, सो ठीक ही है; इससे तुम्हारा कल्याण होगा। तुम श्रीरामके चरणकमलोंके सेवक और उनके अधीन हो, अत: तुम्हें ऐसा ही करना उचित है। अच्छा, अब श्रीरामचन्द्रजीके समीप जाओ; तुम्हारे मार्ग मंगलमय हों। मुझपर कृपा करके कभी-कभी मेरी याद करते रहना।''

इतना कहकर सीताजी लक्ष्मणजीके सामने ही अचेत हो पृथ्वीपर गिर पड़ीं। उन्हें मूर्च्छित

देख लक्ष्मणजी पुनः दुःखमें डूब गये और वस्त्रके अग्रभागसे पंखा झलने लगे। जब होशमें आयीं, तब उन्हें प्रणाम करके वे बोले—'देवि! अब मैं श्रीरामके पास जाता हूँ, वहाँ जाकर मैं आपका सब संदेश कहूँगा। आपके समीप ही महर्षि वाल्मीकिका बहुत बड़ा आश्रम है।' यों कहकर लक्ष्मणने उनकी परिक्रमा की और दुःखमग्न हो आँसू बहाते हुए वे महाराज श्रीरामके पास चल दिये। जानकीजीने जाते हुए देवरकी ओर विस्मित दृष्टिसे देखा। वे सोचने लगीं—'महाभाग

लक्ष्मण मेरे देवर हैं, शायद परिहास करते हों; भला, श्रीरघुनाथजी अपने प्राणोंसे भी अधिक प्रिय मुझ पापरहित पत्नीको कैसे त्याग सकते हैं।' यही विचार करती हुई वे निर्निमेष नेत्रोंसे उनकी ओर देखती रहीं; किन्तु जब वे गंगाके उस पार चले गये, तब उन्हें सर्वथा विश्वास हो गया कि सचमुच ही मैं त्याग दी गयी। अब मेरे प्राण बचेंगे या नहीं, इस संशयमें पड़कर वे पृथ्वीपर गिर पड़ीं और तत्काल उन्हें मूर्च्छाने आ दबाया।

उस समय हंस अपने पंखोंसे जल लाकर सीताके शरीरपर सब ओरसे छिड़कने लगे। फूलोंकी सुगन्ध लिये मन्द-मन्द वायु चलने लगी तथा हाथी भी अपनी सूँड़ोंमें जल लिये सब ओरसे वहाँ आकर खड़े हो गये, मानो धूलिसे भरे हुए सीताके शरीरको धोनेके लिये आये हों। इसी समय सती सीता होशमें आयीं और बारम्बार राम-रामकी रट लगाती हुई बड़े दुःखसे विलाप करने लगीं—'हा राम! हा दीनबन्धो!! हा करुणानिधे!!! बिना अपराधके ही क्यों मुझे इस वनमें त्याग रहे हो।' इस प्रकारकी बहुत-सी बातें कहती हुई वे बार-बार विलाप करती और इधर-उधर देखती हुई रह-रहकर मूर्च्छित हो जाती थीं। उस समय भगवान् वाल्मीकि शिष्योंके साथ वनमें गये थे। वहाँ उन्हें करुणाजनक स्वरमें विलाप और रोदन सुनायी पड़ा। वे शिष्योंसे बोले—'वनके भीतर जाकर देखो तो सही, इस महाघोर जंगलमें कौन रो रहा है? उसका स्वर दुःखसे पूर्ण जान पड़ता है।' मुनिके भेजनेसे वे उस स्थानपर गये, जहाँ जानकी राम-रामकी पुकार मचाती हुई आँसुओंमें डूब रही थीं। उन्हें देखकर वे शिष्य उत्कण्ठावश वाल्मीकि मुनिके पास लौट गये। उनकी बातें सुनकर मुनि स्वयं ही उस स्थानपर गये। पतिव्रता जानकीने देखा एक महर्षि

आ रहे हैं, जो तपस्याके पुंज जान पड़ते हैं। उन्हें देख सीताजीने हाथ जोड़कर कहा—व्रतके सागर और वेदोंके साक्षात् स्वरूप महर्षिको नमस्कार है।' उनके
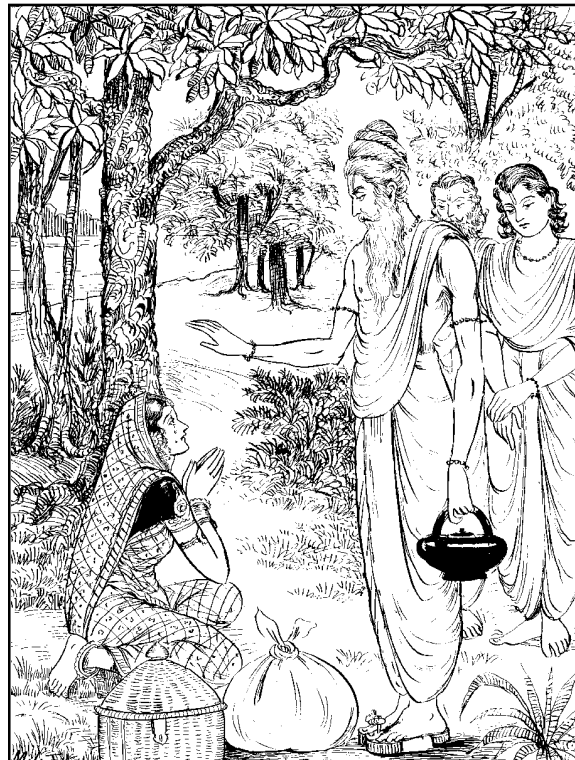
यों कहनेपर महर्षिने आशीर्वादके द्वारा उन्हें प्रसन्न करते हुए कहा—'बेटी! तुम अपने पतिके साथ चिरकालतक जीवित रहो। तुम्हें दो सुन्दर पुत्र प्राप्त हों। बताओ, तुम कौन हो? इस भयंकर वनमें क्यों आयी हो तथा क्यों ऐसी हो रही हो? सब कुछ बताओ, जिससे मैं तुम्हारे दुःखका कारण जान सकूँ।' तब श्रीरघुनाथजीकी पत्नी सीताजी एक दीर्घ निःश्वास ले काँपती हुई करुणामयी वाणीमें बोलीं—'महर्षे! मुझे श्रीरघुनाथजीकी सेविका समझिये। मैं बिना अपराधके ही त्याग दी गयी हूँ। इसका कारण क्या है, यह मैं बिलकुल नहीं जानती। श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे लक्ष्मण मुझे यहाँ छोड़ गये हैं।'

वाल्मीकिजी बोले—विदेहकुमारी! मुझे अपने पिताका गुरु समझो, मेरा नाम वाल्मीकि है। अब तुम दुःख न करो, मेरे आश्रमपर आओ। पतिव्रते! तुम यही जानो कि दूसरे स्थानपर बना हुआ मेरे पिताका ही यह घर है।

सती सीताका मुख शोकके आँसुओंसे भीगा था। मुनिका सान्त्वनापूर्ण वचन सुनकर उन्हें कुछ सुख मिला। उनके नेत्रोंमें इस समय भी दुःखके आँसू छलक रहे थे। वाल्मीकिजी उन्हें आश्वासन देकर तापसी स्त्रियोंसे भरे हुए अपने पवित्र आश्रमपर ले गये। सीता महर्षिके पीछे-पीछे गयीं और वे मुनिसमुदायसे भरे हुए अपने आश्रमपर पहुँचकर तापसियोंसे बोले—'अपने आश्रमपर जानकी आयी हैं [उनका स्वागत करो]। महामना सीताने सब तपस्विनियोंको प्रणाम किया और उन्होंने भी प्रसन्न होकर उन्हें छातीसे लगाया। तपोनिधि वाल्मीकिने अपने शिष्योंसे कहा—'तुम जानकीके लिये एक सुन्दर पर्णशाला तैयार करो।' आज्ञा पाकर उन्होंने पत्तों और लकड़ियोंके द्वारा एक सुन्दर कुटी निर्माण की। पतिव्रता जानकी उसीमें निवास करने लगीं। वे वाल्मीकि मुनिकी टहल बजाती हुई फलाहार करके रहती थीं तथा मन और वाणीसे निरन्तर राम-मन्त्रका

जप करती हुई दिन व्यतीत करती थीं, समय आनेपर उन्होंने दो सुन्दर पुत्रोंको जन्म दिया, जो आकृतिमें

श्रीरामचन्द्रजीके समान तथा अश्विनीकुमारोंकी भाँति मनोहर थे। जानकीके पुत्र होनेका समाचार सुनकर मुनिको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे मन्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ थे, अतः उन बालकोंके जातकर्म आदि संस्कार उन्होंने ही सम्पन्न किये। महर्षि वाल्मीकिने उन बालकोंके संस्कार-सम्बन्धी सभी कर्म कुशों और उनके लवों (टुकड़ों)-द्वारा ही किये थे; अतः उन्हींके नामपर उन दोनोंका नाम क्रमशः कुश और लव रखा। जिस समय उन शुद्धात्मा महर्षिने पुत्रोंका मंगल-कार्य सम्पन्न किया, उस समय सीताजीका हृदय आनन्दसे भर गया। उनके मुख और नेत्र प्रसन्नतासे खिल उठे। उसी दिन लवणासुरको मारकर शत्रुघ्नजी भी अपने थोड़े-से सैनिकोंके साथ वाल्मीकि मुनिके सुन्दर आश्रमपर रात्रिमें आये थे। उस समय वाल्मीकिजीने उन्हें सिखा दिया था कि 'तुम श्रीरघुनाथजीको जानकीके पुत्र होनेकी बात न बताना, मैं ही उनके सामने सारा वृत्तान्त कहूँगा।'

जानकीके वे दोनों पुत्र वहाँ बढ़ने लगे। उनका रूप बड़ा ही मनोहर था। सीता उन्हें कन्द, मूल और फल खिलाकर पुष्ट करने लगीं। वे दोनों परम सुन्दर और अपनी रूप-माधुरीसे उन्मत्त बना देनेवाले थे। शुक्लपक्षकी प्रतिपदाके चन्द्रमाकी भाँति मनको मोहनेवाले दोनों कुमारोंका समयानुसार उपनयन-संस्कार हुआ, इससे उनकी मनोहरता और भी बढ़ गयी। महर्षि वाल्मीकिने उपनयनके पश्चात् उन्हें अंगोंसहित वेद और रहस्योंसहित धनुर्वेदका अध्ययन कराया। उसके बाद स्वरचित रामायणकाव्य भी पढ़ाया। उन्होंने भी उन बालकोंको सुवर्णभूषित धनुष प्रदान किये, जो अभेद्य और श्रेष्ठ थे। जिनकी प्रत्यंचा बहुत ही उत्तम थी तथा जो शत्रु-समुदायके लिये अत्यन्त भयंकर थे। धनुषके साथ ही बाणोंसे भरे दो अक्षय तरकश, दो खड्ग तथा बहुत-सी अभेद्य ढालें भी उन्होंने जानकीकुमारोंको अर्पण किये। धनुर्वेदके पारगामी होकर वे दोनों बालक धनुष धारण किये बड़ी प्रसन्नताके साथ आश्रममें विचरा करते थे। उस समय सुन्दर अश्विनीकुमारोंकी भाँति उनकी बड़ी शोभा होती थी। जानकीजी ढाल-तलवार धारण किये अपने दोनों सुन्दर कुमारोंको देख-देखकर
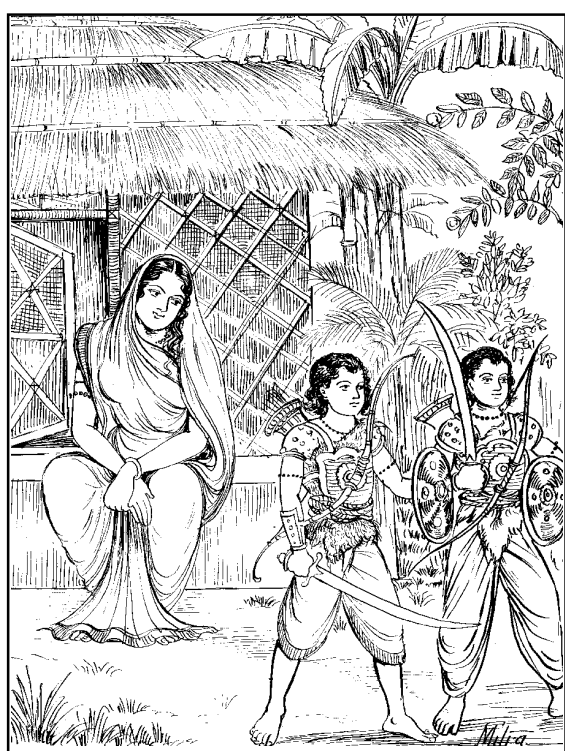
बहुत प्रसन्न रहा करती थीं। वात्स्यायनजी! यह मैंने आपको जानकीके पुत्रजन्मका प्रसंग सुनाया है। अब अश्वकी रक्षा करनेवाले वीरोंकी भुजाओंके काटे जानेके पश्चात् जो घटना हुई, उसका वर्णन सुनिये।

युद्धमें लवके द्वारा सेनाका संहार, कालजित्‌का वध तथा पुष्कल और हनुमान्‌जीका मूर्च्छित होना

शेषजी कहते हैं—मुनिवर! अपने वीरोंकी भुजाएँ कटी देख शत्रुघ्नजीको बड़ा क्रोध हुआ। वे रोषके मारे दाँतोंसे ओठ चबाते हुए बोले—'योद्धाओ! किस वीरने तुम्हारी भुजाएँ काटी हैं? आज मैं उसकी बाँहें काट डालूँगा; देवताओंद्वारा सुरक्षित होनेपर भी वह छुटकारा नहीं पा सकता।' शत्रुघ्नजीके इस प्रकार कहनेपर वे योद्धा विस्मित और अत्यन्त दुःखी होकर बोले—'राजन्! एक बालकने जिसका स्वरूप श्रीरामचन्द्रजीसे बिलकुल मिलता-जुलता है, हमारी यह दुर्दशा की है।' बालकने घोड़ेको पकड़ रखा है, यह सुनकर शत्रुघ्नजीकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं और उन्होंने युद्धके लिये उत्सुक होकर कालजित् नामक सेनाध्यक्षको आदेश दिया—'सेनापते! मेरी आज्ञासे सम्पूर्ण सेनाका व्यूह बना लो। इस समय अत्यन्त बलवान् और पराक्रमी शत्रुपर चढ़ाई करनी है। यह घोड़ा पकड़नेवाला वीर कोई साधारण बालक नहीं है। निश्चय ही उसके रूपमें साक्षात् इन्द्र होंगे।' आज्ञा पाकर सेनापतिने चतुरंगिणी सेनाको दुर्भेद्य व्यूहके रूपमें सुसज्जित किया। सेनाको सजी देख शत्रुघ्नजीने उसे उस स्थानपर कूच करनेकी आज्ञा दी, जहाँ अश्वका अपहरण करनेवाला बालक खड़ा था। तब वह चतुरंगिणी सेना आगे बढ़ी। सेनापतिने श्रीरामके समान रूपवाले उस बालकको देखा और कहा—'कुमार! यह पराक्रमसे शोभा पानेवाले श्रीरामचन्द्रजीका श्रेष्ठ अश्व है, इसे छोड़ दो। तुम्हारी आकृति श्रीरामचन्द्रजीसे बहुत मिलती-जुलती है, इसलिये तुम्हें देखकर मेरे हृदयमें दया आती है। यदि मेरी बात नहीं मानोगे तो तुम्हारे जीवनकी रक्षा नहीं हो सकती।'

शत्रुघ्नजीके योद्धाकी यह बात सुनकर कुमार

Mitra

लव किंचित् मुसकराये और कुछ रोषमें आकर यह अद्‌भुत वचन बोले—''जाओ, तुम्हें छोड़ देता हूँ, श्रीरामचन्द्रजीसे इस घोड़ेके पकड़े जानेका समाचार कहो। वीर! तुम्हारे इस नीतियुक्त वचनको सुनकर मैं तुमसे भय नहीं खाता। तुम्हारे-जैसे करोड़ों योद्धा आ जायँ, तो भी मेरी दृष्टिमें यहाँ उनकी कोई गिनती नहीं है। मैं अपनी माताके चरणोंकी कृपासे उन सबको रूईकी ढेरीके तुल्य मानता हूँ, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। तुम्हारी माताने जो तुम्हारा नाम 'कालजित्' रखा है, उसे सफल बनाओ। मैं तुम्हारा काल हूँ, मुझे जीत लेनेपर ही तुम अपना नाम सार्थक कर सकोगे।''

कालजित्‌ने कहा—बालक! तुम्हारा जन्म किस वंशमें हुआ है? तुम किस नामसे प्रसिद्ध हो? मुझे तुम्हारे कुल, शील, नाम और अवस्थाका कुछ भी पता नहीं है। इसके सिवा, मैं रथपर बैठा हूँ और तुम पैदल हो। ऐसी दशामें मैं तुम्हें अधर्मपूर्वक कैसे परास्त करूँ?

लव बोले—कुल, शील, नाम और अवस्थासे क्या लेना है? मैं लव हूँ और लवमात्रमें ही समस्त शत्रु-योद्धाओंको जीत लूँगा [मुझे पैदल जानकर संकोच मत करो], लो, तुम्हें भी अभी पैदल किये देता हूँ।

ऐसा कहकर बलवान् लवने धनुषपर प्रत्यंचा चढ़ायी तथा पहले अपने गुरु वाल्मीकिका, फिर माता जानकीका स्मरण करके तीखे बाणोंको छोड़ना आरम्भ किया, जो तत्काल ही शत्रुके प्राण लेनेवाले थे। तब कालजित्‌ने भी कुपित होकर अपना धनुष चढ़ाया तथा अपने युद्ध-कौशलका परिचय देते हुए बड़े वेगसे लवपर बाणोंका प्रहार किया। किन्तु कुशके छोटे भाईने क्षणभरमें उन सभी बाणोंको काटकर एक-एकके सौ-सौ टुकड़े कर दिये और आठ बाण मारकर सेनापतिको भी रथहीन कर दिया। रथके नष्ट हो जानेपर वे अपने सैनिकोंद्वारा लाये हुए हाथीपर सवार हुए। वह हाथी बड़ा ही वेगशाली और मदसे उन्मत्त था। उसके मस्तकसे मदकी सात धाराएँ फूटकर बह रही थीं। कालजित्‌को हाथीपर बैठे देख सम्पूर्ण शत्रुओंपर विजय पानेवाले वीर लवने हँसकर उन्हें दस बाणोंसे बींध डाला। लवका पराक्रम देख कालजित्‌के मनमें बड़ा विस्मय हुआ और उन्होंने एक तीक्ष्ण एवं भयंकर परिघका प्रहार किया, जो शत्रुके प्राणोंका अपहरण करनेवाला था। किन्तु लवने तुरंत ही उसे काट गिराया। फिर उसी क्षण तलवारसे हाथीकी सूँड़ काट डाली और उसके दाँतोंपर पैर रखकर वे तुरंत उसके मस्तकपर चढ़ गये। वहाँ सेनापतिके मुकुटके सौ और कवचके हजार टुकड़े करके उनके मस्तकका बाल खींचकर उन्हें धरतीपर गिरा दिया। फिर तो सेनापतिको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने लवका वध करनेके लिये तलवार हाथमें ली। उन्हें तलवार लेकर आते देख लवने उनकी दाहिनी भुजाको बीचसे काट डाला। कटा हुआ हाथ तलवारसहित पृथ्वीपर जा पड़ा। खड्गधारी हाथको कटा देख सेनापतिने क्रोधमें भरकर बायें हाथसे लवपर गदा मारनेकी तैयारी की। इतनेहीमें लवने अपने तीखे बाणोंसे उनकी उस बाँहको भी भुजबंदसहित काट गिराया। तदनन्तर कालाग्निके समान प्रज्वलित खड्ग हाथमें लेकर उन्होंने सेनापतिके मुकुटमण्डित मस्तकको भी धड़से अलग कर दिया।
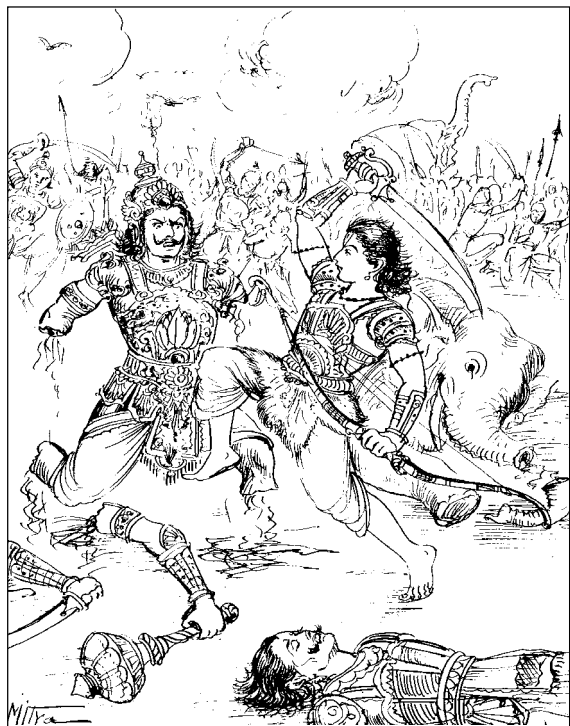
सेनाध्यक्षके मारे जानेपर सेनामें महान् हाहाकार मचा। सारे सैनिक क्रोधमें भरकर लवका वध करनेके लिये क्षणभरमें आगे बढ़ आये, परन्तु लवने अपने बाणोंकी मारसे उन सबको पीछे खदेड़ दिया। कितने ही छिन्न-भिन्न होकर वहीं ढेर हो गये और कितने ही रणभूमि छोड़कर भाग गये। इस प्रकार सम्पूर्ण योद्धाओंको पीछे हटाकर लव बड़ी प्रसन्नताके साथ सेनामें जा घुसे। किन्हींकी बाँहें, किन्हींके पैर, किन्हींके कान, किन्हींकी नाक तथा किन्हींके कवच और कुण्डल कट गये। इस प्रकार सेनापतिके मारे जानेपर सैनिकोंका भयंकर संहार हुआ। युद्धमें आये हुए प्रायः सभी वीर

मारे गये, कोई भी जीवित न बचा। इस प्रकार लवने शत्रु-समुदायको परास्त करके युद्धमें विजय पायी तथा दूसरे योद्धाओंके आनेकी आशंकासे वे खड़े होकर प्रतीक्षा करने लगे। कोई-कोई योद्धा भाग्यवश उस युद्धसे बच गये। उन्होंने ही शत्रुघ्नके पास जाकर रण-भूमिका सारा समाचार सुनाया। बालकके हाथसे कालजित्‌की मृत्यु तथा उसके विचित्र रण-कौशलका वृत्तान्त सुनकर शत्रुघ्नको बड़ा विस्मय हुआ। वे बोले—'वीरो! तुमलोग छल तो नहीं कर रहे हो? तुम्हारा चित्त विकल तो नहीं है? कालजित्‌का मरण कैसे हुआ? वे तो यमराजके लिये भी दुर्धर्ष थे? उन्हें एक बालक कैसे परास्त कर सकता है?' शत्रुघ्नकी बात सुनकर खूनसे लथपथ हुए उन योद्धाओंने कहा—'राजन्! हम छल या खेल नहीं कर रहे हैं; आप विश्वास कीजिये। कालजित्‌की मृत्यु सत्य है और वह लवके हाथसे ही हुई है। उसका युद्ध-कौशल अनुपम है। उस बालकने सारी सेनाको मथ डाला। इसके बाद अब जो कुछ करना हो, खूब सोच-विचारकर करें। जिन्हें युद्धके लिये भेजना हो, वे सभी श्रेष्ठ पुरुष होने चाहिये।' उन वीरोंका कथन सुनकर शत्रुघ्नने श्रेष्ठ बुद्धिवाले मन्त्री सुमतिसे युद्धके विषयमें पूछा—'मन्त्रिवर! क्या तुम जानते हो कि किस बालकने मेरे अश्वका अपहरण किया है? उसने मेरी सारी सेनाका, जो समुद्रके समान विशाल थी, विनाश कर डाला है।'

सुमतिने कहा—स्वामिन्! यह मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकिका महान् आश्रम है, क्षत्रियोंका यहाँ निवास नहीं है। सम्भव है इन्द्र हों और अमर्षमें आकर उन्होंने घोड़ेका अपहरण किया हो अथवा भगवान् शंकर ही बालक-वेषमें आये हों अन्यथा दूसरा कौन ऐसा है, जो तुम्हारे अश्वका अपहरण कर सके। मेरा तो ऐसा विचार है कि अब तुम्हीं वीर योद्धाओं तथा सम्पूर्ण राजाओंसे घिरे हुए वहाँ जाओ और विशाल सेना भी अपने साथ ले लो। तुम शत्रुका उच्छेद करनेवाले हो, अतः वहाँ जाकर उस वीरको जीते-जी बाँध लो। मैं उसे ले जाकर कौतुक देखनेकी इच्छा रखनेवाले श्रीरघुनाथजीको दिखाऊँगा।

मन्त्रीका यह वचन सुनकर शत्रुघ्नने सम्पूर्ण वीरोंको आज्ञा दी—'तुमलोग भारी सेनाके साथ चलो, मैं भी पीछेसे आता हूँ।' आज्ञा पाकर सैनिकोंने कूच किया। वीरोंसे भरी हुई उस विशाल सेनाको आते देख लव सिंहके समान उठकर खड़े हो गये। उन्होंने समस्त योद्धाओंको मृगोंके समान तुच्छ समझा। वे सैनिक उन्हें चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये। उस समय उन्होंने घेरा डालनेवाले समस्त सैनिकोंको प्रज्वलित अग्निकी भाँति भस्म करना आरम्भ किया। किन्हींको तलवारके घाट उतारा, किन्हींको बाणोंसे मार परलोक पहुँचाया तथा किन्हींको प्रास, कुन्त, पट्टिश और परिघ आदि शस्त्रोंका निशाना बनाया। इस प्रकार महात्मा लवने सभी घेरोंको तोड़ डाला। सातों घेरोंसे मुक्त होनेपर कुशके छोटे भाई लव शरद्-ऋतुमें मेघोंके आवरणसे उन्मुक्त हुए चन्द्रमाकी भाँति शोभा पाने लगे। उनके बाणोंसे पीड़ित होकर अनेकों वीर धराशायी हो गये। सारी सेना भाग चली। यह देख वीरवर पुष्कल युद्धके लिये आगे बढ़े। उनके नेत्र क्रोधसे भरे थे और वे 'खड़ा रह, खड़ा रह' कहकर लवको ललकार रहे थे। निकट आनेपर पुष्कलने लवसे कहा—'वीर! मैं तुम्हें उत्तम घोड़ोंसे सुशोभित एक रथ प्रदान करता हूँ, उसपर बैठ जाओ। इस समय तुम पैदल हो; ऐसी दशामें मैं तुम्हारे साथ युद्ध कैसे कर सकता हूँ; इसलिये पहले रथपर बैठो, फिर तुम्हारे साथ लोहा लूँगा।'

यह सुनकर लवने पुष्कलसे कहा—'वीर! यदि मैं तुम्हारे दिये हुए रथपर बैठकर युद्ध करूँगा, तो मुझे पाप ही लगेगा और विजय मिलनेमें भी सन्देह रहेगा। हमलोग दान लेनेवाले ब्राह्मण नहीं हैं, अपितु स्वयं ही प्रतिदिन दान आदि शुभकर्म करनेवाले क्षत्रिय हैं [तुम मेरे पैदल होनेकी चिन्ता न करो]। मैं अभी क्रोधमें भरकर तुम्हारा रथ तोड़ डालता हूँ, फिर तुम भी पैदल ही हो जाओगे। उसके बाद युद्ध करना।' लवका यह धर्म और धैर्यसे युक्त वचन सुनकर पुष्कलका चित्त बहुत देरतक विस्मयमें पड़ा रहा। तत्पश्चात् उन्होंने धनुष चढ़ाया। उन्हें धनुष उठाते देख लवने कुपित होकर बाण

मारा और पुष्कलके हाथका धनुष काट डाला। फिर जब वे दूसरे धनुषपर प्रत्यंचा चढ़ाने लगे तबतक उस उद्धत एवं बलवान् वीरने हँसते-हँसते उनके रथको भी तोड़ दिया। महात्मा लवके द्वारा अपने धनुषको छिन्न-भिन्न हुआ देख पुष्कल क्रोधमें भर गये और उस महाबली वीरके साथ बड़े वेगसे युद्ध करने लगे। लवने लवमात्रमें तरकशसे तीर निकाला, जो विषैले साँपकी भाँति जहरीला था। उसने वह तेजस्वी बाण क्रोधपूर्वक छोड़ा। धनुषसे छूटते ही वह पुष्कलकी छातीमें धँस गया और वह महावीरशिरोमणि मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। पुष्कलको मूर्च्छित होकर गिरा देख पवन-कुमारने उठा लिया और श्रीरघुनाथजीके भ्राता शत्रुघ्नको अर्पित कर दिया। उन्हें अचेत देख शत्रुघ्नका चित्त शोकसे विह्वल हो गया। उन्होंने क्रोधमें भरकर हनुमान्जीको लवका वध करनेकी आज्ञा दी। हनुमान्जी भी कुपित होकर महाबली लवको युद्धमें परास्त करनेके लिये बड़े वेगसे गये और उनके मस्तकको लक्ष्य करके उन्होंने वृक्षका प्रहार किया। वृक्षको अपने ऊपर आते देख लवने अपने बाणोंसे उसको सौ टुकड़े कर डाले। तब हनुमान्जीने बड़ी-बड़ी शिलाएँ उखाड़कर बड़े वेगसे लवके मस्तकपर फेंकीं। शिलाओंका आघात पाकर उन्होंने अपना धनुष ऊपरको उठाया और बाणोंकी वर्षासे शिलाओंको चूर्ण कर दिया। फिर तो हनुमान्जीके क्रोधकी सीमा न रही; उन्होंने बलवान् लवको पूँछमें लपेट लिया। यह देख लवने अपनी माता जानकीका स्मरण किया और हनुमान्जीकी पूँछपर मुक्केसे मारा। इससे उनको बड़ी व्यथा हुई और उन्होंने लवको बन्धनसे मुक्त कर दिया। पूँछसे छूटनेपर उस बलवान् वीरने हनुमान्जीपर बाणोंकी बौछार आरम्भ कर दी; जिससे उनके समस्त शरीरमें बड़ी पीड़ा होने लगी। उन्होंने लवकी बाणवर्षाको अपने लिये अत्यन्त दुःसह समझा और समस्त वीरोंके देखते-देखते वे मूर्च्छित होकर रणभूमिमें गिर पड़े। फिर लव अन्य सब राजाओंको मारने लगे। वे बाण छोड़नेमें बड़े निपुण थे।
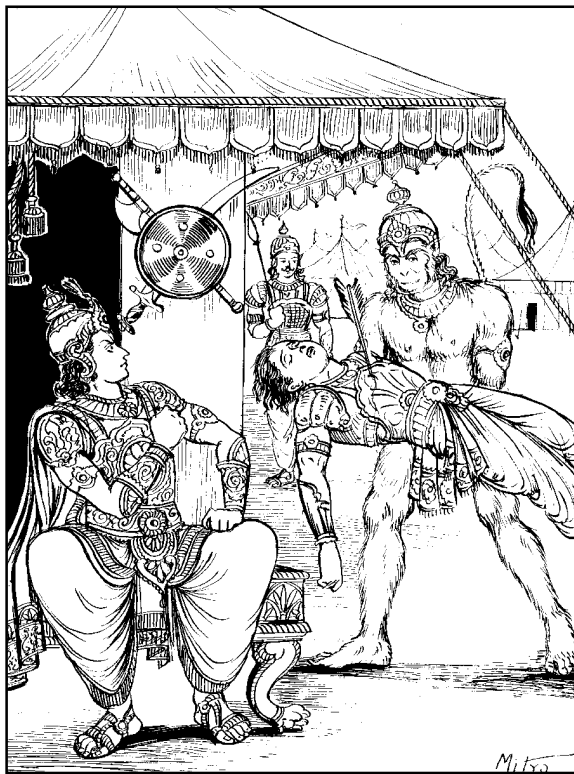
शत्रुघ्नके बाणसे लवकी मूर्च्छा, कुशका रणक्षेत्रमें आना, कुश और लवकी विजय तथा सीताके प्रभावसे शत्रुघ्न आदि एवं उनके सैनिकोंकी जीवन-रक्षा

शेषजी कहते हैं—मुने! वायुनन्दन हनुमान्जीके मूर्च्छित होनेका समाचार सुनकर शत्रुघ्नको बड़ा शोक हुआ। अब वे स्वयं सुवर्णमय रथपर विराजमान हुए और श्रेष्ठ वीरोंको साथ ले युद्धके लिये उस स्थानपर गये, जहाँ विचित्र रणकुशल वीरवर लव मौजूद थे। उन्हें देखकर शत्रुघ्नने मन-ही-मन विचार किया कि 'श्रीरामचन्द्रजीके सदृश स्वरूप धारण करनेवाला यह बालक कौन है? इसका नीलकमल-दलके समान श्याम शरीर कितना मनोहर है! हो न हो, यह विदेहकुमारी सीताका ही पुत्र है।' भीतर-ही-भीतर ऐसा सोचकर वे बालकसे बोले—'वत्स! तुम कौन हो, जो रणभूमिमें हमारे योद्धाओंको गिरा रहे हो? तुम्हारे

माता-पिता कौन हैं? तुम बड़े सौभाग्यशाली हो; क्योंकि इस युद्धमें तुमने विजय पायी है। महाबली वीर! तुम्हारा लोक-प्रसिद्ध नाम क्या है? मैं जानना चाहता हूँ।' शत्रुघ्नके इस प्रकार पूछनेपर वीर बालक लवने उत्तर दिया—'वीरवर! मेरे नामसे, पितासे, कुलसे तथा अवस्थासे तुम्हें क्या काम है? यदि तुम स्वयं बलवान् हो तो समरमें मेरे साथ युद्ध करो, यदि शक्ति हो तो बलपूर्वक अपना घोड़ा छुड़ा ले जाओ।' ऐसा कहकर उस उद्भट वीरने अनेकों बाणोंका सन्धान करके शत्रुघ्नकी छाती, मस्तक और भुजाओंपर प्रहार किया। तब राजा शत्रुघ्नने भी अत्यन्त कोपमें भरकर अपना धनुष चढ़ाया और बालकको त्रास-सा देते हुए मेघके समान गम्भीर वाणीमें टंकार की। बलवानोंमें श्रेष्ठ तो वे थे ही, असंख्य बाणोंकी वर्षा करने लगे। परन्तु बालक लवने उनके सभी सायकोंको बलपूर्वक काट दिया। तत्पश्चात् लवके छोड़े हुए करोड़ों बाणोंसे वहाँकी सारी पृथ्वी आच्छादित हो गयी।

इतने बाणोंका प्रहार देखकर शत्रुघ्न दंग रह गये। फिर उन्होंने लवके लाखों बाणोंको काट गिराया। अपने समस्त सायकोंको कटा देख कुशके छोटे भाई लवने राजा शत्रुघ्नके धनुषको वेगपूर्वक काट डाला। वे दूसरा धनुष लेकर ज्यों ही बाण छोड़नेको उद्यत होते हैं, त्यों ही लवने तीक्ष्ण सायकोंसे उनके रथको भी खण्डित कर दिया। रथ, घोड़े, सारथि और धनुषके कट जानेपर वे दूसरे रथपर सवार हुए और बलपूर्वक लवका सामना करनेके लिये चले। उस समय शत्रुघ्नने अत्यन्त कोपमें भरकर लवके ऊपर दस तीखे बाण छोड़े, जो प्राणोंका संहार करनेवाले थे। परन्तु लवने तीखी गाँठवाले बाणोंसे उनके टुकड़े-टुकड़े करके एक अर्धचन्द्राकार बाणसे शत्रुघ्नकी छातीमें प्रहार किया, उससे उनकी छातीमें गहरी चोट पहुँची और उन्हें बड़ी भयंकर पीड़ा हुई। वे हाथमें धनुष लिये ही रथकी बैठकमें गिर पड़े।

शत्रुघ्नको मूर्च्छित देख सुरथ आदि राजा युद्धमें विजय प्राप्तिके लिये उद्यत हो लवपर टूट पड़े। किसीने क्षुरप्र और मुशल चलाये तो कोई अत्यन्त भयानक बाणोंद्वारा ही प्रहार करने लगे। किसीने प्रास, किसीने कुन्त और किसीने फरसोंसे ही काम लिया। सारांश यह कि राजालोग सब ओरसे लवपर प्रहार करने लगे। वीरशिरोमणि लवने देखा कि ये क्षत्रिय अधर्मपूर्वक युद्ध करनेको तैयार हैं तो उन्होंने दस-दस बाणोंसे सबको घायल कर दिया। लवकी बाणवर्षासे आहत होकर कितने ही क्रोधी राजा रणभूमिसे पलायन कर गये और कितने ही युद्धक्षेत्रमें ही मूर्च्छित होकर गिर पड़े। इतनेहीमें राजा शत्रुघ्नकी मूर्च्छा दूर हुई और वे महावीर लवसे बलपूर्वक युद्ध करनेके लिये आगे बढ़े तथा सामने आकर बोले—'वीर! तुम धन्य हो! देखनेमें ही बालक-जैसे जान पड़ते हो, [वास्तवमें तुम्हारी वीरता अद्‌भुत है!] अब मेरा पराक्रम देखो; मैं अभी तुम्हें युद्धमें गिराता हूँ।' ऐसा कहकर शत्रुघ्नने एक बाण हाथमें लिया, जिसके द्वारा लवणासुरका वध हुआ था तथा जो यमराजके मुखकी भाँति भयंकर था। उस तीखे बाणको धनुषपर चढ़ाकर शत्रुघ्नने लवकी छातीको विदीर्ण करनेका विचार किया। वह बाण धनुषसे छूटते ही दसों दिशाओंको प्रकाशित करता हुआ प्रज्वलित हो उठा। उसे देखकर लवको अपने बलिष्ठ भ्राता कुशकी याद आयी, जो वैरियोंको मार गिरानेवाले थे। वे सोचने लगे, यदि इस समय मेरे बलवान् भाई वीरवर कुश होते तो मुझे शत्रुघ्नके अधीन न होना पड़ता तथा मुझपर यह दारुण भय न आता। इस प्रकार विचारते हुए महात्मा लवकी छातीमें वह महान् बाण आ लगा। जो कालाग्निके समान भयंकर था। उसकी चोट खाकर वीर लव मूर्च्छित हो गये।

बलवान् वैरियोंको विदीर्ण करनेवाले लवको मूर्च्छित देख महाबली शत्रुघ्नने युद्धमें विजय प्राप्त की। वे शिरस्त्राण आदिसे अलंकृत बालक लवको, जो स्वरूपसे श्रीरामचन्द्रजीकी समानता करता था, रथपर बिठाकर वहाँसे जानेका विचार करने लगे। अपने मित्रको शत्रुके चंगुलमें फँसा देख आश्रमवासी ब्राह्मण-बालकोंको बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने तुरंत जाकर लवकी माता सीतासे सब समाचार कह सुनाया—'माँ

जानकी! तुम्हारे पुत्र लवने किसी बड़े राजा महाराजाके घोड़ेको जबरदस्ती पकड़ लिया है। राजाके पास सेना भी है तथा उनका मान-सम्मान भी बहुत है। घोड़ा पकड़नेके बाद लवका राजाकी सेनाके साथ भयंकर युद्ध हुआ। किन्तु सीता मैया! तुम्हारे वीर पुत्रने सब योद्धाओंको मार गिराया। उसके बाद वे लोग फिर लड़ने आये। परन्तु उसमें भी तुम्हारे सुन्दर पुत्रकी ही जीत हुई। उसने राजाको बेहोश कर दिया और युद्धमें विजय पायी। तदनन्तर कुछ ही देरके बाद उस भयंकर राजाकी मूर्च्छा दूर हो गयी और उसने क्रोधमें भरकर तुम्हारे पुत्रको रणभूमिमें मूर्च्छित करके गिरा दिया है।'

सीता बोलीं—हाय! राजा बड़ा निर्दयी है, वह बालकके साथ क्यों युद्ध करता है? अधर्मके कारण उसकी बुद्धि दूषित हो गयी है, तभी उसने मेरे बच्चेको धराशायी किया है। बालको! बताओ, उस राजाने मेरे पुत्रको कैसे युद्धमें गिराया है तथा अब वह कहाँ जायगा?

पतिव्रता जानकी बालकोंसे इस प्रकारकी बातें कह रही थीं, इतनेहीमें वीरवर कुश भी महर्षियोंके साथ आश्रमपर आ पहुँचे। उन्होंने देखा, माता जानकी अत्यन्त व्याकुल हैं तथा उनके नेत्रोंसे आँसू बह रहे हैं। तब वे अपनी जननीसे बोले—'माँ! मुझ पुत्रके रहते हुए तुमपर कैसा दुःख आ पड़ा? शत्रुओंका मर्दन करनेवाला मेरा भाई लव कहाँ है? वह बलवान् वीर दिखायी क्यों नहीं देता? कहाँ घूमने चला गया? मेरी माँ! तुम रोती क्यों हो? बताओ न, लव कहाँ है?'
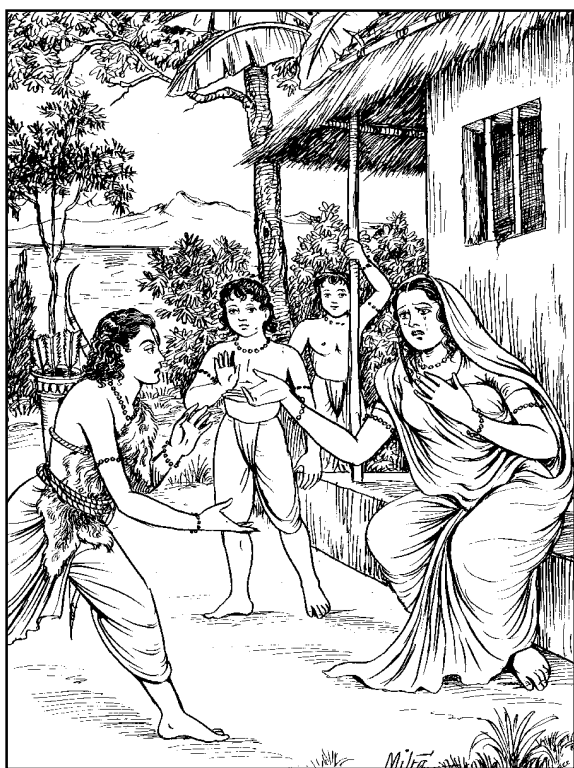
जानकीने कहा—बेटा! किसी राजाने लवको पकड़ लिया है। वह अपने घोड़ेकी रक्षाके लिये यहाँ आया था। सुना है, मेरे बच्चेने उसके यज्ञसम्बन्धी अश्वको पकड़कर बाँध लिया था। लव बलवान् है, उसे अकेले ही अनेकों शत्रुओंसे लड़ना पड़ा है। फिर भी उसने बहुत-से अश्व-रक्षकोंको परास्त किया है। परन्तु अन्तमें उस राजाने लवको युद्धमें मूर्च्छित करके बाँध लिया है, यह बात इन बालकोंने बतायी है, जो उसके साथ ही गये थे। यही सुनकर मुझे दुःख हुआ है। वत्स! तुम समयपर आ गये। जाओ और उस श्रेष्ठ राजाके हाथसे लवको बलपूर्वक छुड़ा लाओ।

कुश बोले—माँ! तुम जान लो कि लव अब उस राजाके बन्धनसे मुक्त हो गया। मैं अभी जाकर राजाको सेना और सवारियोंसहित अपने बाणोंका निशाना बनाता हूँ। यदि कोई अमर देवता या साक्षात् रुद्र आ गये हों तो भी अपने तीखे बाणोंकी मारसे उन्हें व्यथित करके मैं लवको छुड़ा लूँगा। माता! तुम रोओ मत; वीर पुरुषोंका संग्राममें मूर्च्छित होना उनके यशका कारण होता है। युद्धसे भागना ही उनके लिये कलंककी बात है।

शेषजी कहते हैं—मुने! कुशके इस वचनसे शुभलक्षणा सीताको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने पुत्रको सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्र दिये और विजयके लिये आशीर्वाद देकर कहा—'बेटा! युद्धक्षेत्रमें जाकर मूर्च्छित हुए लवको बन्धनसे छुड़ाओ।' माताकी यह आज्ञा पाकर कुशने कवच और कुण्डल धारण किये तथा जननीके चरणोंमें प्रणाम करके बड़े वेगसे रणकी ओर प्रस्थान किया। वे वेगपूर्वक युद्धके लिये संग्रामभूमिमें उपस्थित हुए, वहाँ पहुँचते ही उनकी दृष्टि

लवके ऊपर पड़ी, जिन्हें शत्रुओंने मूर्च्छित करके गिराया था [वे रथपर बँधे पड़े थे और उनकी मूर्च्छा दूर हो चुकी थी]। अपने महाबली भ्राता कुशको आया देख लव युद्धभूमिमें चमक उठे; मानो वायुका सहयोग पाकर अग्नि प्रज्वलित हो उठी हो। वे रथसे अपनेको छुड़ाकर युद्धके लिये निकल पड़े। फिर तो कुशने रणभूमिमें खड़े हुए समस्त वीरोंको पूर्व दिशाकी ओरसे मारना आरम्भ किया और लवने कोपमें भरकर सबको पश्चिम ओरसे पीटना शुरू किया। एक ओर कुशके बाणोंसे व्यथित और दूसरी ओर लवके सायकोंसे पीड़ित हो सेनाके समस्त योद्धा उत्ताल तरंगोंसे युक्त समुद्रकी भँवरके समान क्षुब्ध हो गये। सारी सेना इधर-उधर भाग चली।
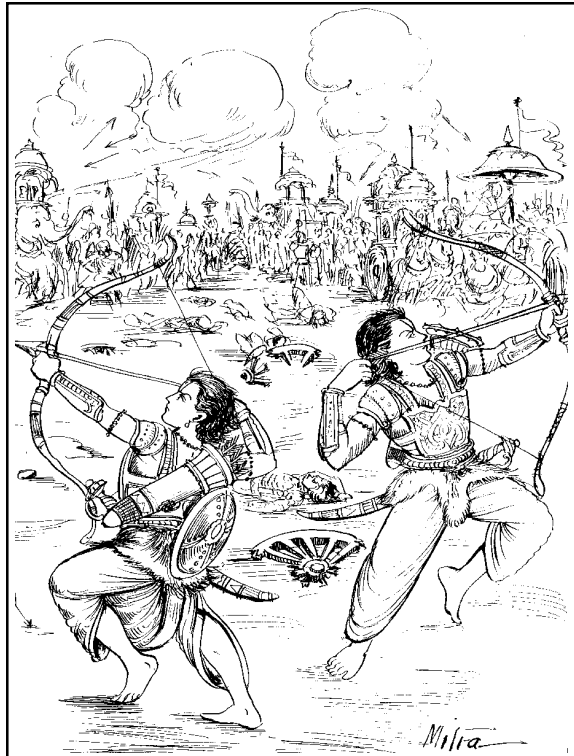
सबके ऊपर आतंक छा रहा था। कोई भी बलवान् रणभूमिमें कहीं भी खड़ा होकर युद्ध करना नहीं चाहता था।

इसी समय शत्रुओंको ताप देनेवाले राजा शत्रुघ्न लवके समान ही प्रतीत होनेवाले वीरवर कुशसे युद्ध करनेके लिये आगे बढ़े। समीप पहुँचकर उन्होंने पूछा—'महावीर! तुम कौन हो? आकार-प्रकारसे तो तुम अपने भाई लवके ही समान जान पड़ते हो। तुम्हारा बल भी महान् है। बताओ तुम्हारा नाम क्या है? तुम्हारी माता कहाँ हैं? और पिता कौन हैं?'

कुशने कहा—राजन्! पातिव्रत्य-धर्मका पालन करनेवाली केवल माता सीताने हमें जन्म दिया है। हम दोनों भाई महर्षि वाल्मीकिके चरणोंका पूजन करते हुए इस वनमें रहते हैं और माताकी सेवा किया करते हैं। हम दोनोंने सब प्रकारकी विद्याओंमें प्रवीणता प्राप्त की है। मेरा नाम कुश है और इसका नाम लव। अब तुम अपना परिचय दो, कौन हो? युद्धकी श्लाघा रखनेवाले वीर जान पड़ते हो। यह सुन्दर अश्व तुमने किसलिये छोड़ रखा है? भूपाल! यदि वास्तवमें वीर हो तो मेरे साथ युद्ध करो। मैं अभी इस युद्धके मुहानेपर तुम्हारा वध कर डालूँगा।

शत्रुघ्नको जब यह मालूम हुआ कि यह श्रीरामचन्द्रजीके वीर्यसे उत्पन्न सीताका पुत्र है, तो उनके चित्तमें बड़ा विस्मय हुआ [किन्तु उस बालकने उन्हें युद्धके लिये ललकारा था; इसलिये] उन्होंने क्रोधमें भरकर धनुष उठा लिया। उन्हें धनुष लेते देख कुशको भी क्रोध हो आया और उसने अपने सुदृढ़ एवं उत्तम धनुषको खींचा। फिर तो कुश और शत्रुघ्नके धनुषसे लाखों बाण छूटने लगे। उनसे वहाँका सारा प्रदेश व्याप्त हो गया। यह एक अद्भुत बात थी। उस समय उद्भट वीर कुशने शत्रुघ्नपर नारायणास्त्रका प्रयोग किया; किन्तु वह अस्त्र उन्हें पीड़ा देनेमें समर्थ न हो सका। यह देख कुशके क्रोधकी सीमा न रही। वे महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न राजा शत्रुघ्नसे बोले—'राजन्! मैं जानता हूँ, तुम संग्राममें जीतनेवाले महान् वीर हो; क्योंकि मेरे इस भयंकर अस्त्र—नारायणास्त्रने भी तुम्हें तनिक बाधा नहीं पहुँचायी; तथापि आज इसी समय मैं अपने तीन बाणोंसे तुम्हें गिरा दूँगा। यदि ऐसा न करूँ तो मेरी प्रतिज्ञा सुनो, जो करोड़ों पुण्योंसे भी दुर्लभ मनुष्य-शरीरको पाकर मोहवश उसका आदर नहीं करता [भगवद्भजन आदिके द्वारा उसको सफल नहीं बनाता] उस पुरुषको लगनेवाला पातक मुझे भी लगे। अच्छा,

अब तुम सावधान हो जाओ! मैं तत्काल ही तुम्हें पृथ्वीपर गिराता हूँ।' ऐसा कहकर कुशने अपने धनुषपर एक बाण चढ़ाया, जो कालाग्निके समान भयंकर था। उन्होंने शत्रुके अत्यन्त कठोर एवं विशाल वक्ष:स्थलको लक्ष्य करके छोड़ दिया। कुशको उस बाणका सन्धान करते देख शत्रुघ्न कोपमें भर गये तथा श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण करके उन्होंने तुरंत ही उसे काट डाला। बाणके कटनेसे कुशका क्रोध और भी भड़क उठा तथा उन्होंने धनुषपर दूसरा बाण चढ़ाया। उस बाणके द्वारा वे शत्रुघ्नकी छाती छेद डालनेका विचार कर ही रहे थे कि शत्रुघ्नने उसको भी काट गिराया। तब तो कुशको और भी क्रोध हुआ। अब उन्होंने अपनी माताके चरणोंका स्मरण करके धनुषपर तीसरा उत्तम बाण रखा। शत्रुघ्नने उसको भी शीघ्र ही काट डालनेके विचारसे बाण हाथमें लिया; किन्तु उसे छोड़नेके पहले ही वे कुशके बाणसे घायल होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। शत्रुघ्नके गिरनेपर सेनामें बड़ा भारी हाहाकार मचा। उस समय अपनी भुजाओंके बलपर गर्व रखनेवाले वीरवर कुशकी विजय हुई।

शेषजी कहते हैं—मुने! राजाओंमें श्रेष्ठ सुरथने जब शत्रुघ्नको गिरा देखा तो वे अत्यन्त अद्भुत मणिमय रथपर बैठकर युद्धके लिये गये। वे महान् वीरोंके शिरोमणि थे। कुशके पास पहुँचकर उन्होंने अनेकों बाण छोड़े और समरभूमिमें कुशको व्यथित कर दिया। तब कुशने भी दस बाण मारकर सुरथको रथहीन कर दिया और प्रत्यंचा चढ़ाये हुए उनके सुदृढ़ धनुषको भी वेगपूर्वक काट डाला। जब एक किसी दिव्य अस्त्रका प्रयोग करता, तो दूसरा उसके बदलेमें संहारास्त्रका उपयोग करता था और जब दूसरा किसी अस्त्रको फेंकता तो पहला भी वैसा ही अस्त्र चलाकर तुरंत उसका बदला चुकाता था। इस प्रकार उन दोनोंमें घोर घमासान युद्ध हुआ, जो वीरोंके रोंगटे खड़े कर देनेवाला था। कुशने सोचा, अब मुझे क्या करना चाहिये? कर्तव्यका निश्चय करके उन्होंने एक तीक्ष्ण एवं भयंकर सायक हाथमें लिया। छूटते ही वह कालाग्निके समान प्रज्वलित हो उठा। उसे आते देख सुरथने ज्यों ही काटनेका विचार किया, त्यों ही वह महाबाण तुरंत उनकी छातीमें आ लगा। सुरथ मूर्च्छित होकर रथपर गिर पड़े। यह देख सारथि उन्हें रणभूमिसे बाहर ले गया।

सुरथके गिर जानेपर कुश विजयी हुए—यह देख पवनकुमार हनुमान्‌जीने सहसा एक विशाल शालका वृक्ष उखाड़ लिया। महान् बलवान् तो वे थे ही, कुशकी छातीको लक्ष्य बनाकर उनसे युद्ध करनेके लिये गये। निकट जाकर उन्होंने कुशकी छातीपर वह शालवृक्ष दे मारा। उसकी चोट खाकर वीर कुशने संहारास्त्र उठाया। उनका छोड़ा हुआ संहारास्त्र दुर्जय (अमोघ) था। उसे देखकर हनुमान्‌जी मन-ही-मन भक्तोंका विघ्न नष्ट करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान करने लगे। इतनेहीमें उनकी छातीपर उस अस्त्रकी करारी चोट पड़ी। वह बड़ी व्यथा पहुँचानेवाला अस्त्र था। उसके लगते ही हनुमान्‌जीको मूर्च्छा आ गयी। तत्पश्चात् उस रणक्षेत्रमें कुशके चलाये हुए हजारों बाणोंकी मार खाकर सारी सेनाके पाँव उखड़ गये। समूची चतुरंगिणी सेना भाग चली।

उस समय वानरराज सुग्रीव उस विशाल वाहिनीके संरक्षक हुए। वे अनेकों वृक्ष उखाड़कर उद्भट वीर कुशकी ओर दौड़े। परन्तु कुशने हँसते-हँसते खेलमें ही वे सारे वृक्ष काट गिराये। तब सुग्रीवने एक भयंकर पर्वत उठाकर कुशके मस्तकको उसका निशाना बनाया। उस पर्वतको आते देख कुशने शीघ्र ही अनेकों बाणोंका प्रहार करके उसे चूर्ण कर डाला। वह पर्वत महारुद्रके शरीरमें लगानेयोग्य भस्म-सा बन गया। बालकका यह महान् पराक्रम देखकर सुग्रीवको बड़ा अमर्ष हुआ और उन्होंने कुशको मारनेके लिये रोषपूर्वक एक वृक्ष हाथमें लिया। इतनेहीमें लवके बड़े भाई वीरवर कुशने वारुणास्त्रका प्रयोग किया और सुग्रीवको वरुण-पाशसे दृढतापूर्वक बाँध लिया। बलशाली कुशके द्वारा कोमल पाशोंसे बाँधे जानेपर सुग्रीव रणभूमिमें गिर पड़े। सुग्रीवको गिरा देख सभी योद्धा इधर-उधर भाग गये। महावीरशिरोमणि कुशने विजय पायी। इसी समय लवने भी पुष्कल, अंगद, प्रतापाग्र्य, वीरमणि तथा अन्य

राजाओंको जीतकर रणमें विजय पायी। फिर दोनों भाई बड़े हर्षमें भरकर एक-दूसरेसे मिले।

लवने कहा—भैया! आपकी कृपासे मैं युद्धरूपी समुद्रके पार हुआ। अब हमलोग इस रणकी स्मृतिके लिये कोई सुन्दर चिह्न तलाश करने चलें।' ऐसा कहकर लव अपने भाई कुशके साथ पहले राजा शत्रुघ्नके निकट गये। वहाँ कुशने उनकी सुवर्णमण्डित मनोहर मुकुटमणि ले ली। फिर वीरवर लवने पुष्कलका सुन्दर किरीट उतार लिया। इसके बाद दोनों भाइयोंने उनके बहुमूल्य भुजबंद तथा हथियारोंको भी हथिया लिया। तदनन्तर हनुमान् और सुग्रीवके पास जाकर उन दोनोंको बाँधा। फिर लवने अपने भाईसे कहा—'भैया! मैं इन दोनोंको अपने आश्रममें ले चलूँगा। वहाँ मुनियोंके बालक इनसे खेलेंगे और मेरा भी मनोरंजन होगा।' इस तरहकी बातें करते हुए उन दोनों महाबली वानरोंको पकड़कर वे आश्रमकी ओर चले और माताकी कुटीपर जा पहुँचे। अपने दोनों मनोहर बालकोंको आया देख माता जानकीको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने बड़े स्नेहके साथ उन्हें छातीसे लगाया। किन्तु जब उनके लाये हुए दोनों वानरोंपर उनकी दृष्टि पड़ी तो उन्होंने हनुमान् और वानरराज सुग्रीवको सहसा पहचान लिया। अब वे उन्हें छोड़ देनेकी आज्ञा देती हुई यह श्रेष्ठ वचन बोलीं—'पुत्रो! ये दोनों वानर बड़े वीर

और महाबलवान् हैं; इन्हें छोड़ दो। ये वीर हनुमान्जी हैं, जिन्होंने रावणकी पुरी लंकाको भस्म किया था; तथा ये भी वानर और भालुओंके राजा सुग्रीव हैं। इन दोनोंको तुमने किसलिये पकड़ा है? अथवा क्यों इनके साथ अनादरपूर्ण बर्ताव किया है?'

पुत्रोंने कहा—'माँ! एक राम नामसे प्रसिद्ध बलवान् राजा हैं, जो महाराज दशरथके पुत्र हैं। उन्होंने एक सुन्दर घोड़ा छोड़ रखा है, जिसके ललाटपर सोनेका पत्र बँधा है। उसमें यह लिखा है कि 'जो सच्चे क्षत्रिय हों, वे इस घोड़ेको पकड़ें; अन्यथा मेरे सामने मस्तक झुकावें।' उस राजाकी ढिठाई देखकर मैंने घोड़ेको पकड़ लिया। सारी सेनाको हमलोगोंने युद्धमें मार गिराया है। यह राजा शत्रुघ्नका मुकुट है तथा यह दूसरे वीर महात्मा पुष्कलका किरीट है।

सीताने कहा—पुत्रो! तुम दोनोंने बड़ा अन्याय किया। श्रीरामचन्द्रजीका छोड़ा हुआ महान् अश्व तुमने

पकड़ा, अनेकों वीरोंको मार गिराया और इन कपीश्वरोंको भी बाँध लिया—यह सब अच्छा नहीं हुआ। वीरो! तुम नहीं जानते, वह तुम्हारे पिताका ही घोड़ा है [श्रीराम तुम्हारे पिता हैं], उन्होंने अश्वमेध-यज्ञके लिये उस अश्वको छोड़ रखा था। इन दोनों वानर वीरोंको छोड़ दो तथा उस श्रेष्ठ अश्वको भी खोल दो।

माताकी बात सुनकर उन बलवान् बालकोंने कहा—'माँ! हमलोगोंने क्षत्रिय-धर्मके अनुसार उस बलवान् राजाको परास्त किया है। क्षात्रधर्मके अनुसार युद्ध करनेवालोंको अन्यायका भागी नहीं होना पड़ता। आजके पहले जब हमलोग पढ़ रहे थे, उस समय महर्षि वाल्मीकिजीने भी हमसे ऐसा ही कहा था— 'क्षात्रधर्मके अनुसार पुत्र पितासे, भाई भाईसे और शिष्य गुरुसे भी युद्ध कर सकता है, इससे पाप नहीं होता।' तुम्हारी आज्ञासे हमलोग अभी उस उत्तम अश्वको लौटाये देते हैं; तथा इन वानरोंको भी छोड़ देंगे। तुमने जो कुछ कहा है, सबका हम पालन करेंगे।'

मातासे ऐसा कहकर वे दोनों वीर पुनः रणभूमिमें गये और वहाँ उन दोनों कपीश्वरों तथा उस अश्वमेध-योग्य अश्वको भी छोड़ आये। अपने पुत्रोंके द्वारा सेनाका मारा जाना सुनकर सीतादेवीने मन-ही-मन श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान किया और सबके साक्षी भगवान् सूर्यकी ओर देखा। वे कहने लगीं—'यदि मैं मन, वाणी तथा क्रियाद्वारा केवल श्रीरघुनाथजीका ही भजन करती हूँ, दूसरे किसीको कभी मनमें भी नहीं लाती तो ये राजा शत्रुघ्न जीवित हो जायँ तथा इनकी वह विशाल सेना भी जो मेरे पुत्रोंके द्वारा बलपूर्वक नष्ट की गयी है, मेरे सत्यके प्रभावसे जी उठे।' पतिव्रता जानकीने ज्यों ही यह वचन मुँहसे निकाला, त्यों ही वह सारी सेना, जो संग्राम भूमिमें नष्ट हुई थी, जीवित हो गयी।

शत्रुघ्न आदिका अयोध्यामें जाकर श्रीरघुनाथजीसे मिलना तथा मन्त्री सुमतिका उन्हें यात्राका समाचार बतलाना

शेषजी कहते हैं—मुने! रणभूमिमें पड़े हुए वीर शत्रुघ्नने क्षणभरमें मूर्च्छा त्याग दी तथा अन्यान्य बलवान् वीर भी जो मूर्च्छामें पड़े थे, जीवित हो गये। शत्रुघ्नने देखा अश्वमेधका श्रेष्ठ अश्व सामने खड़ा है, मेरे मस्तकका मुकुट गायब है तथा मरी हुई सेना भी जी उठी है। यह सब देखकर उनके मनमें बड़ा आश्चर्य हुआ और वे मूर्च्छासे जगे हुए बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ सुमतिसे बोले—'मन्त्रिवर! इस बालकने कृपा करके यज्ञ पूर्ण करनेके लिये यह घोड़ा दे दिया है। अब हमलोग जल्दी ही श्रीरघुनाथजीके पास चलें। वे घोड़ेके आनेकी प्रतीक्षा करते होंगे।' यों कहकर वे अपने रथपर जा बैठे और घोड़ेको साथ लेकर वेगपूर्वक उस आश्रमसे दूर चले गये। भेरी और शंखकी आवाज बंद थी। उनके पीछे-पीछे विशाल चतुरंगिणी सेना चली जा रही थी। तरंग-मालाओंसे सुशोभित गंगा नदीको पार करके उन्होंने अपने राज्यमें प्रवेश किया, जो आत्मीयजनोंके निवाससे शोभा पा रहा था। शत्रुघ्न मणिमय रथपर बैठे महान् कोदण्ड धारण किये हुए जा रहे थे। उनके साथ भरतकुमार पुष्कल और राजा सुरथ भी थे। चलते-चलते क्रमशः वे अपनी नगरी अयोध्यामें पहुँचे, जो सूर्यवंशी क्षत्रियोंसे सुशोभित थी। वहाँ अनेकों ऊँची-ऊँची पताकाएँ फहराकर उस नगरकी शोभा बढ़ा रही थीं। दुर्गके कारण उसकी सुषमा और भी बढ़ गयी थी। श्रीरामचन्द्रजीने जब सुना कि महात्मा शत्रुघ्न और वीर पुष्कलके साथ अश्व आ पहुँचा तो उन्हें बड़ा हर्ष हुआ और बलवानोंमें श्रेष्ठ भाई लक्ष्मणको उन्होंने शत्रुघ्नके पास भेजा। लक्ष्मण सेनाके साथ जाकर प्रवाससे आये हुए भाई शत्रुघ्नसे बड़ी प्रसन्नताके साथ मिले। शत्रुघ्नका शरीर अनेकों घावोंसे सुशोभित था। उन्होंने कुशल पूछी और तरह-तरहकी बातें कीं। उनसे मिलकर शत्रुघ्नको बड़ी प्रसन्नता हुई। महामना लक्ष्मणने भाई शत्रुघ्नके साथ अपने रथपर बैठकर विशाल सेनासहित नगरमें प्रवेश

किया; जहाँ तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाली पुण्यसलिला सरयू श्रीरघुनाथजीकी चरण-रजसे पवित्र होकर शरत्कालीन चन्द्रमाके समान स्वच्छ जलसे शोभा पा रही हैं। श्रीरघुनाथजी शत्रुघ्नको पुष्कलके साथ आते देख अपने आनन्दोल्लासको रोक न सके। वे अपने अश्वरक्षक बन्धुसे मिलनेके लिये ज्यों ही खड़े हुए, त्यों ही भ्रातृभक्त शत्रुघ्न उनके चरणोंमें पड़
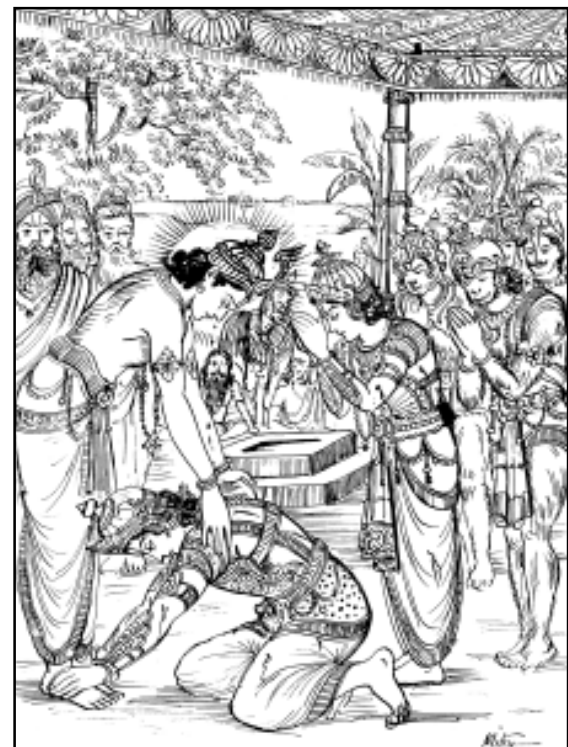
गये। घावके चिह्नोंसे सुशोभित अपने विनयशील भाईको पैरोंपर पड़ा देख श्रीरामचन्द्रजीने उन्हें प्रेमपूर्वक उठाकर भुजाओंमें कस लिया और उनके मस्तकपर हर्षके आँसू गिराते हुए परमानन्दमें निमग्न हो गये। उस समय उन्हें जितनी प्रसन्नता हुई, वह वाणीसे परे है—उसका वर्णन नहीं हो सकता। तत्पश्चात् पुष्कलने विनयसे विह्वल होकर भगवान्‌के चरणोंमें प्रणाम किया। उन्हें अपने चरणोंमें पड़ा देख श्रीरघुनाथजीने गोदमें उठा लिया और कसकर छातीसे लगाया। इसी प्रकार हनुमान्, सुग्रीव, अंगद, लक्ष्मीनिधि, प्रतापाग्र्य, सुबाहु, सुमद, विमल, नीलरत्न, सत्यवान्, वीरमणि, श्रीरामभक्त सुरथ तथा अन्य बड़भागी स्नेहियों और चरणोंमें पड़े हुए राजाओंको श्रीरघुनाथजीने अपने हृदयसे लगाया। सुमति भी भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले श्रीरघुनाथजीका गाढ़ आलिंगन करके प्रसन्नतापूर्वक उनके सामने खड़े हो गये। तब वक्ताओंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी समीप आये हुए अपने मन्त्रीकी ओर देख अत्यन्त हर्षमें भरकर बोले—'मन्त्रिवर! बताओ, ये कौन-कौन-से राजा हैं? तथा ये सब लोग यहाँ कैसे पधारे हैं? अपना अश्व कहाँ-कहाँ गया, किसने-किसने उसे पकड़ा तथा मेरे महान् बलशाली बन्धुने किस प्रकार उसको छुड़ाया?'

सुमतिने कहा—भगवन्! आप सर्वज्ञ हैं, भला आपके सामने आज मैं इन सब बातोंका वर्णन कैसे करूँ। आप सबके द्रष्टा हैं, सब कुछ जानते हैं, तो भी लौकिक रीतिका आश्रय लेकर मुझसे पूछ रहे हैं। तथापि मैं सदाकी भाँति आपकी आज्ञा शिरोधार्य करके कहता हूँ, सुनिये—'स्वामिन्! आप समस्त राजाओंके शिरोमणि हैं। आपकी कृपासे आपके अश्वने, जो भालपत्रके कारण बड़ी शोभा पा रहा था, इस पृथ्वीपर सर्वत्र भ्रमण किया है। प्रायः कोई राजा ऐसा नहीं निकला, जिसने अपने मान और बलके घमंडमें आकर अश्वको पकड़ा हो। सबने अपना-अपना राज्य समर्पण करके आपके चरणोंमें मस्तक झुकाया। भला, विजयकी अभिलाषा रखनेवाला कौन ऐसा राजा होगा, जो राक्षसराज रावणके प्राण-हन्ता श्रीरघुनाथजीके श्रेष्ठ अश्वको पकड़ सके? प्रभो! आपका मनोहर अश्व सर्वत्र घूमता हुआ अहिच्छत्रा नगरीमें पहुँचा। वहाँके राजा सुमदने जब सुना कि श्रीरामचन्द्रजीका अश्व आया है, तो उन्होंने सेना और पुत्रोंके साथ आकर अपना सारा अकण्टक राज्य आपकी सेवामें समर्पित कर दिया। ये हैं राजा सुमद, जो बड़े-बड़े राजा—प्रभुओंके सेव्य आपके चरणोंमें प्रणाम करते हैं। इनके हृदयमें बहुत दिनोंसे आपके दर्शनकी अभिलाषा थी। आज अपनी कृपादृष्टिसे इन्हें अनुगृहीत कीजिये। अहिच्छत्रा नगरीसे आगे बढ़नेपर वह अश्व राजा सुबाहुके नगरमें गया, जो सब प्रकारके बलसे सम्पन्न हैं। वहाँ राजकुमार दमनने उस श्रेष्ठ अश्वको पकड़ लिया। फिर तो युद्ध छिड़ा और

पुष्कलने सुबाहु-पुत्रको मूर्च्छित करके विजय प्राप्त की। तब महाराज सुबाहु भी क्रोधमें भरकर रणभूमिमें आये और पवनकुमार हनुमान्‌जीसे बलपूर्वक युद्ध करने लगे। उनका ज्ञान शापसे विलुप्त हो गया था। हनुमान्‌जीके चरण-प्रहारसे उनका शाप दूर हुआ और वे अपने खोये हुए ज्ञानको पाकर अपना सब कुछ आपकी सेवामें अर्पण करके अश्वके रक्षक बन गये। ये ऊँचे डील-डौलवाले राजा सुबाहु हैं, जो आपको नमस्कार करते हैं। ये युद्धकी कलामें बड़े निपुण हैं। आप अपनी दया-दृष्टिसे देखकर इनके ऊपर स्नेहकी वर्षा कीजिये। तदनन्तर अपना यज्ञसम्बन्धी अश्व देवपुरमें गया, जो भगवान् शिवका निवासस्थान होनेके कारण अत्यन्त शोभा पा रहा था। वहाँका हाल तो आप जानते ही हैं, क्योंकि स्वयं आपने पदार्पण किया था। तत्पश्चात् विद्युन्माली दैत्यका वध किया गया। उसके बाद राजा सत्यवान् हमलोगोंसे मिले। महामते! वहाँसे आगे जानेपर कुण्डलनगरमें राजा सुरथके साथ जो युद्ध हुआ, उसका हाल भी आपको मालूम ही है। कुण्डलनगरसे छूटनेपर अपना घोड़ा सब ओर बेखटके विचरता रहा। किसीने भी अपने पराक्रम और बलके घमण्डमें आकर उसे पकड़नेका नाम नहीं लिया। नरश्रेष्ठ! तदनन्तर लौटते समय जब आपका मनोरम अश्व महर्षि वाल्मीकिके रमणीय आश्रमपर पहुँचा, तो वहाँ जो कौतुक हुआ, उसको ध्यान देकर सुनिये। वहाँ एक सोलह वर्षका बालक आया, जो रूप-रंगमें हू-बहू आपहीके समान था। वह बलवानोंमें श्रेष्ठ था। उसने भालपत्रसे चिह्नित अश्वको देखा और उसे पकड़ लिया। वहाँ सेनापति कालजित्‌ने उसके साथ घोर युद्ध किया। किन्तु उस वीर बालकने अपनी तीखी तलवारसे सेनापतिका काम तमाम कर दिया। फिर उस वीरशिरोमणिने पुष्कल आदि अनेकों बलवानोंको युद्धमें मार गिराया और शत्रुघ्नको भी मूर्च्छित किया। तब राजा शत्रुघ्नने अपने हृदयमें महान् दुःखका अनुभव करके क्रोध किया और बलवानोंमें श्रेष्ठ उस वीरको मूर्च्छित कर दिया। शत्रुघ्नके द्वारा ज्यों ही वह मूर्च्छित हुआ, त्यों ही उसीके आकारका एक दूसरा बालक वहाँ आ पहुँचा। फिर तो उसने और इसने भी एक-दूसरेका सहारा पाकर आपकी सारी सेनाका संहार कर डाला। मूर्च्छामें पड़े हुए सभी वीरोंके अस्त्र और आभूषण उतार लिये। फिर सुग्रीव और हनुमान्—इन दो वानरोंको उन्होंने पकड़कर बाँधा और इन्हें वे अपने आश्रमपर ले गये। पुनः कृपा करके उन्होंने स्वयं ही यह यज्ञका महान् अश्व लौटा दिया और मरी हुई समस्त सेनाको जीवन-दान दिया। तत्पश्चात् घोड़ा लेकर हमलोग आपके समीप आ गये। इतनी ही बातें मुझे ज्ञात हैं, जिन्हें मैंने आपके सामने प्रकट कर दिया।

वाल्मीकिजीके द्वारा सीताकी शुद्धता और अपने पुत्रोंका परिचय पाकर श्रीरामका सीताको लानेके लिये लक्ष्मणको भेजना, लक्ष्मण और सीताकी बातचीत, सीताका अपने पुत्रोंको भेजकर स्वयं न आना, श्रीरामकी प्रेरणासे पुनः लक्ष्मणका उन्हें बुलानेको जाना तथा शेषजीका वात्स्यायनको रामायणका परिचय देना

शेषजी कहते हैं—मुने! सुमतिने जो वाल्मीकि मुनिके आश्रमपर रहनेवाले दो बालकोंकी चर्चा की, उसे सुनकर श्रीरामचन्द्रजी समझ गये वे दोनों मेरे ही पुत्र हैं, तो भी उन्होंने अपने यज्ञमें पधारे हुए महर्षि वाल्मीकिसे पूछा—मुनिवर! आपके आश्रमपर मेरे समान रूप धारण करनेवाले दो महाबली बालक कौन हैं? वहाँ किसलिये रहते हैं? सुननेमें आया है, वे धनुर्विद्यामें बड़े प्रवीण हैं। अमात्यके मुखसे उनका वर्णन सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है! वे कैसे बालक हैं, जिन्होंने खेल-खेलमें ही शत्रुघ्नको भी मूर्च्छित कर दिया और हनुमान्‌जीको भी बाँध लिया था? महर्षे! कृपा करके उन बालकोंका सारा चरित्र सुनाइये।

वाल्मीकिने कहा—प्रभो! आप अन्तर्यामी हैं; मनुष्योंके सम्बन्धकी हर एक बातका ज्ञान आपको क्यों न होगा? तथापि आपके सन्तोषके लिये मैं कह रहा हूँ। जिस समय आपने जनककिशोरी सीताको बिना किसी अपराधके वनमें त्याग दिया, उस समय वह गर्भवती थी और बारम्बार विलाप करती हुई घोर वनमें भटक रही थी। परमपवित्र जनककिशोरीको दु:खसे आतुर होकर कुररीकी भाँति रोती-बिलखती देख मैं उसे अपने आश्रमपर ले गया। मुनियोंके बालकोंने उसके रहनेके लिये एक बड़ी सुन्दर पर्णशाला तैयार कर दी। उसीमें उसके दो पुत्र उत्पन्न हुए। जो अपनी कान्तिसे दसों दिशाओंको प्रकाशित कर रहे थे। उनमेंसे एकका नाम मैंने कुश रख दिया और दूसरेका लव। वे दोनों बालक शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी भाँति वहाँ प्रतिदिन बढ़ने लगे। समय-समयपर उनके उपनयन आदि जो-जो आवश्यक संस्कार थे, उनको भी मैंने सम्पन्न किया तथा उन्हें अंगोंसहित सम्पूर्ण वेदोंका अध्ययन कराया। इसके सिवा आयुर्वेद, धनुर्वेद और शस्त्रविद्या आदि सभी शास्त्रोंकी उनके रहस्योंसहित शिक्षा दी। इस प्रकार सम्पूर्ण शास्त्रोंका ज्ञान कराकर मैंने उनके मस्तकपर हाथ रखा। वे दोनों संगीतमें भी बड़े प्रवीण हुए। उन्हें देखकर सब लोगोंको विस्मय होने लगा। षडज, मध्यम, गान्धार आदि स्वरोंकी विद्यामें उन्होंने बड़ी कुशलता प्राप्त की। उनकी ऐसी योग्यता देखकर मैं प्रतिदिन उनसे परम मनोहर रामायण-काव्यका गान कराया करता हूँ। भविष्य-ज्ञानकी शक्ति होनेके कारण इस रामायणको मैंने पहलेसे बना रखा था। मृदंग, पणव, यन्त्र और वीणा आदि बाजे बजानेमें भी वे दोनों बालक बड़े चतुर हैं। वन-वनमें घूमकर रामायण गाते हुए वे मृग और पक्षियोंको भी मोहित कर लेते हैं। श्रीराम! उन बालकोंके गीतका माधुर्य अद्भुत है। एक दिन उनका संगीत सुननेके लिये वरुणदेवता उन दोनों बालकोंको विभावरी पुरीमें ले गये। उनकी अवस्था, उनका रूप सभी मनोहर हैं। वे गान-विद्यारूपी समुद्रके पारगामी हैं। लोकपाल वरुणके आदेशसे उन्होंने मधुरस्वरमें आपके परम सुन्दर, मृदु एवं पवित्र चरित्रका गान किया। वरुणने दूसरे-दूसरे गायकों तथा अपने समस्त परिवारके साथ सुना। मित्र देवता भी उनके साथ थे। रघुनन्दन! आपका चरित्र सुधासे भी अधिक सरस एवं स्वादिष्ट है। उसे सुनते-सुनते मित्र और वरुणकी तृप्ति नहीं हुई।

तत्पश्चात् मैं भी उत्तम वरुणलोकमें गया। वहाँ वरुणने प्रेमसे द्रवीभूत होकर मेरी पूजा की। वे उन दोनों बालकोंके गाने-बजानेकी विद्या, अवस्था और गुणोंसे बहुत प्रसन्न थे। उस समय उन्होंने सीताके सम्बन्धमें [आपसे कहनेके लिये] मुझसे इस प्रकार बातचीत की—सीता पतिव्रताओंमें अग्रगण्य हैं। वे शील, रूप और अवस्था—सभी सद्गुणोंसे सम्पन्न हैं। उन्होंने वीर पुत्रोंको जन्म दिया है। वे बड़ी सौभाग्यशालिनी हैं; कदापि त्याग करनेके योग्य नहीं हैं। उनका चरित्र सदासे ही पवित्र है—इस बातके हम सभी देवता साक्षी हैं। जो लोग सीताजीके चरणोंका चिन्तन करते हैं, उन्हें तत्काल सिद्धि प्राप्त होती है। सीताके संकल्पमात्रसे ही संसारकी सृष्टि, स्थिति और लय आदि कार्य होते हैं। ईश्वरीय व्यापार भी उन्हींसे सम्पन्न होते हैं। सीता ही मृत्यु और अमृत हैं। वे ही ताप देती और वे ही वर्षा करती हैं। श्रीरघुनाथजी! आपकी जानकी ही स्वर्ग, मोक्ष, तप और दान हैं। ब्रह्मा, शिव तथा हम सभी लोकपालोंको वे ही उत्पन्न करती हैं। आप सम्पूर्ण जगत्‌के पिता और सीता सबकी माता हैं। आप सर्वज्ञ हैं, साक्षात् भगवान् हैं; अत: आप भी इस बातको जानते हैं कि सीता नित्य शुद्ध हैं। वे आपको प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय हैं; इसलिये जनककिशोरी सीताको शुद्ध एवं अपनी प्रिया जानकर आप सदा उनका आदर करें। प्रभो! आपका या सीताका किसी शापके कारण पराभव नहीं हो सकता—मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकिजी! मेरी ये सभी बातें आप साक्षात् महाराज श्रीरामचन्द्रजीसे कहियेगा।'

इस प्रकार सीताको स्वीकार करनेके सम्बन्धमें वरुणने मुझसे अपना विचार प्रकट किया था। इसी तरह अन्य सब लोकपालोंने भी अपनी-अपनी सम्मति दी है।

देवता, असुर और गन्धर्व—सबने कौतूहलवश आपके पुत्रोंके मुखसे रामायणका गान सुना है। सुनकर सभी प्रसन्न ही हुए हैं! उन्होंने आपके पुत्रोंकी बड़ी प्रशंसा की है। उन दोनों बालकोंने अपने रूप, गान, अवस्था और गुणोंके द्वारा तीनों लोकोंको मोह लिया है। लोकपालोंने आशीर्वादरूपसे जो कुछ दिया, उसे आपके पुत्रोंने स्वीकार किया। उन्होंने ऋषियों तथा अन्य लोकोंसे भी बढ़कर कीर्ति पायी है। पुण्यश्लोक (पवित्र यशवाले) पुरुषोंके शिरोमणि श्रीरघुनाथजी! आप त्रिलोकीनाथ होकर भी इस समय गृहस्थ-धर्मकी लीला कर रहे हैं; अतः विद्या, शील एवं सद्‌गुणोंसे विभूषित अपने दोनों पुत्रोंको उनकी मातासहित ग्रहण कीजिये। सीताने ही आपकी मरी हुई सेनाको जिलाकर उसे प्राण-दान दिया है—इससे सब लोगोंको उनकी शुद्धिका विश्वास हो गया है [यह लोगोंकी प्रतीतिके लिये प्रत्यक्ष प्रमाण है]। यह प्रसंग पतित पुरुषोंको भी पावन बनानेवाला है। मानद! सीताकी शुद्धिके विषयमें न तो आपसे कोई बात छिपी है, न हमलोगोंसे और न देवताओंसे ही। केवल साधारण लोगोंको कुछ भ्रम हो गया था, किन्तु उपर्युक्त घटनासे वह भी अवश्य दूर हो गया।

शेषजी कहते हैं—मुने! भगवान् श्रीराम यद्यपि सर्वज्ञ हैं, तो भी जब वाल्मीकिजीने उन्हें इस प्रकार समझाया, तो वे उनकी स्तुति और नमस्कार करके लक्ष्मणसे बोले—'तात! तुम सुमित्रसहित रथपर बैठकर धर्मचारिणी सीताको पुत्रोंसहित ले आनेके लिये अभी जाओ। वहाँ मेरे तथा मुनिके इन वचनोंको सुनाना और सीताको समझा-बुझाकर शीघ्र ही अयोध्यापुरीमें ले आना।'

लक्ष्मणने कहा—प्रभो! मैं अभी जाऊँगा, यदि आप सब लोगोंका प्रिय संदेश सुनकर महारानी सीताजी यहाँ पधारेंगी तो समझूँगा, मेरी यात्रा सफल हो गयी।

श्रीरामचन्द्रजीसे ऐसा कहकर लक्ष्मण उनकी आज्ञासे रथपर बैठे और मुनिके एक शिष्य तथा सुमित्रको साथ लेकर आश्रमको गये। रास्तेमें यह सोचते जाते थे कि 'भगवती सीताको किस प्रकार प्रसन्न करना चाहिये?' ऐसा विचार करनेसे उनके हृदयमें कभी हर्ष होता था और कभी संकोच। वे दोनों भावोंके बीचकी स्थितिमें थे। इसी अवस्थामें सीताके आश्रमपर पहुँचे, जो उनके श्रमको दूर करनेवाला था। वहाँ लक्ष्मण रथसे उतरकर सीताके समीप गये और आँखोंमें आँसू भरकर 'आर्ये! पूजनीये!! भगवति!! कल्याणमयी!' इत्यादि सम्बोधनोंका बारम्बार उच्चारण करते हुए उनके चरणोंमें गिर पड़े। भगवती सीताने वात्सल्य-प्रेमसे विह्वल होकर लक्ष्मणको उठाया और इस प्रकार पूछा—'सौम्य! मुनिजनोंको ही प्रिय लगनेवाले इस वनमें तुम कैसे आये? बताओ, माता कौसल्याके गर्भरूपी शुक्तिसे जो मौक्तिकके समान प्रकट हुए हैं, वे मेरे आराध्यदेव श्रीरघुनाथजी तो कुशलसे हैं न? देवर! उन्होंने अकीर्तिसे डरकर तुम्हें मेरे परित्यागका कार्य सौंपा था। यदि इससे भी संसारमें उनकी निर्मल कीर्तिका विस्तार हो सके तो मुझे संतोष ही होगा। मैं अपने प्राण देकर भी पतिदेवके सुयशको स्थिर रखना चाहती हूँ। उन्होंने मुझे त्याग दिया है तो भी मैंने उनका थोड़ी देरके लिये भी कभी त्याग नहीं किया है [निरन्तर उन्हींका चिन्तन करती रहती हूँ]। मेरे ऊपर सदा कृपा रखनेवाली माता कौसल्याको तो कोई कष्ट नहीं है? वे कुशलसे हैं न? भरत आदि भाई भी तो सकुशल हैं न? तथा महाभागा सुमित्रा, जो मुझे अपने प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय मानती हैं, कैसी हैं? उनकी कुशल बताओ।'

इस प्रकार सीताने जब बारम्बार सबकी कुशल पूछी तो लक्ष्मणने कहा—'देवि! महाराज कुशलसे हैं और आपकी भी कुशलता पूछ रहे हैं। माता कौसल्या, सुमित्रा तथा राजभवनकी अन्य सभी देवियोंने प्रेमपूर्वक आशीर्वाद देते हुए आपकी कुशल पूछी है। भरत और शत्रुघ्नने कुशल-प्रश्नके साथ ही आपके श्रीचरणोंमें प्रणाम कहलाया है, जिसे मैं सेवामें निवेदन करता हूँ। गुरुओं तथा समस्त गुरुपत्नियोंने भी आशीर्वाद दिया है, साथ ही कुशल-मंगल भी पूछा है। महाराज श्रीराम आपको बुला रहे हैं। हमारे स्वामीने कुछ रोते-रोते आपके प्रति जो सन्देश दिया है, उसे सुनिये। वक्ताके

हृदयमें जो बात रहती है, वह उसकी वाणीमें निस्सन्देह व्यक्त हो जाती है [श्रीरघुनाथजीने कहा है—] 'सतीशिरोमणि सीते! लोग मुझे ही सबके ईश्वरका भी ईश्वर कहते हैं; किन्तु मैं कहता हूँ, जगत्‌में जो कुछ हो रहा है, इसका स्वतन्त्र कारण अदृष्ट (प्रारब्ध) ही है। जो सबका ईश्वर है, वह भी प्रत्येक कार्यमें अदृष्टका ही अनुसरण करता है। मेरे धनुष तोड़नेमें, कैकेयीकी बुद्धि भ्रष्ट होनेमें, पिताकी मृत्युमें, मेरे वन जानेमें, वहाँ तुम्हारा हरण होनेमें, समुद्रके पार जानेमें, राक्षसराज रावणके मारनेमें, प्रत्येक युद्धके अवसरपर वानर, भालू और राक्षसोंकी सहायता मिलनेमें, तुम्हारी प्राप्तिमें, मेरी प्रतिज्ञाके पूर्ण होनेमें, पुनः अपने बन्धुओंके साथ संयोग होनेमें, राज्यकी प्राप्तिमें तथा फिर मुझसे मेरी प्रियाका वियोग होनेमें एकमात्र अदृष्ट ही अनिवार्य कारण है। देवि! आज वही अदृष्ट फिर हम दोनोंका संयोग करानेके लिये प्रसन्न हो रहा है। ज्ञानीलोग भी अदृष्टका ही अनुसरण करते हैं। उस अदृष्टका भोगसे ही क्षय होता है; अतः तुमने वनमें रहकर उसका भोग पूरा कर लिया है। सीते! तुम्हारे प्रति जो मेरा अकृत्रिम स्नेह है, वह निरन्तर बढ़ता रहता है, आज वही स्नेह निन्दा करनेवाले लोगोंकी उपेक्षा करके तुम्हें आदरपूर्वक बुला रहा है। दोषकी आशंका-मात्रसे भी स्नेहकी निर्मलता नष्ट हो जाती है; इसलिये विद्वानोंको [दोषके मार्जनद्वारा] स्नेहको शुद्ध करके ही उसका आस्वादन करना चाहिये। कल्याणी! [तुम्हें वनमें भेजकर] मैंने तुम्हारे प्रति अपने स्नेहकी शुद्धि ही की है; अतः तुम्हें इस विषयमें कुछ अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये [मैंने तुम्हारा त्याग किया है—ऐसा नहीं मानना चाहिये]। शिष्ट पुरुषोंके मार्गका अनुसरण करके मैंने निन्दा करनेवाले लोगोंकी भी रक्षा ही की है। देवि! हम दोनोंकी जो निन्दा की गयी है, इससे हमारी तो प्रत्येक अवस्थामें शुद्धि ही होगी; किन्तु ये मूर्खलोग जो महापुरुषोंके चरित्रको लेकर निन्दा करते हैं; इससे वे स्वयं ही नष्ट हो जायँगे। हम दोनोंकी कीर्ति उज्ज्वल है, हम दोनोंका स्नेह-रस उज्ज्वल है, हमलोगोंके वंश उज्ज्वल हैं तथा हमारे सम्पूर्ण कर्म भी उज्ज्वल हैं। इस पृथ्वीपर जो हम दोनोंकी कीर्तिका गान करनेवाले पुरुष हैं, वे भी उज्ज्वल रहेंगे। जो हम दोनोंके प्रति भक्ति रखते हैं, वे संसार-सागरसे पार हो जायँगे।' इस प्रकार आपके गुणोंसे प्रसन्न होकर श्रीरघुनाथजीने यह संदेश दिया है; अतः अब आप अपने पतिदेवके चरणकमलोंका दर्शन करनेके लिये अपने मनको उनके प्रति सदय बनाइये। महारानी! आपके दोनों कुमार हाथीपर बैठकर आगे-आगे चलें, आप शिविकामें आरूढ़ होकर मध्यमें रहें और मैं आपके पीछे-पीछे चलूँ। इस तरह आप अपनी पुरी अयोध्यामें पधारें। वहाँ चलकर जब आप अपने प्रियतम श्रीरामसे मिलेंगी, उस समय यज्ञशालामें सब ओरसे आयी हुई सम्पूर्ण राज-महिलाओंको, समस्त ऋषि-पत्नियोंको तथा माता कौसल्याको भी बड़ा आनन्द होगा। नाना प्रकारके बाजे बजेंगे, मंगलगान होंगे तथा अन्य ऐसे ही समारोहोंके द्वारा आज आपके शुभागमनका महान् उत्सव मनाया जायगा।'

शेषजी कहते हैं—मुने! यह सन्देश सुनकर महारानी सीताने कहा—'लक्ष्मण! मैं धर्म, अर्थ और कामसे शून्य हूँ। भला मेरे द्वारा महाराजका कौन-सा कार्य सिद्ध होगा? पाणिग्रहणके समय जो उनका मनोहर रूप मेरे हृदयमें बस गया, वह कभी अलग नहीं होता। ये दोनों कुमार उन्हींके तेजसे प्रकट हुए हैं। ये वंशके अंकुर और महान् वीर हैं। इन्होंने धनुर्विद्यामें विशिष्ट योग्यता प्राप्त की है। इन्हें पिताके समीप ले जाकर यत्नपूर्वक इनका लालन-पालन करना। मैं तो अब यहीं रहकर तपस्याके द्वारा अपनी इच्छाके अनुसार श्रीरघुनाथजीकी आराधना करूँगी। महाभाग! तुम वहाँ जाकर सभी पूज्यजनोंके चरणोंमें मेरा प्रणाम कहना और सबसे कुशल बताकर मेरी ओरसे भी सबकी कुशल पूछना।'

इसके बाद सीताने अपने दोनों बालकोंको आदेश दिया—'पुत्रो! अब तुम अपने पिताके पास जाओ। उनकी सेवा-शुश्रूषा करना। वे तुम दोनोंको अपना पद

प्रदान करेंगे।' कुमार कुश और लव नहीं चाहते थे कि

हम माताके चरणोंसे अलग हों; फिर भी उनकी आज्ञा मानकर वे लक्ष्मणके साथ गये। वहाँ पहुँचनेपर भी वे वाल्मीकिजीके ही चरणोंके निकट गये। लक्ष्मणने भी बालकोंके साथ जाकर पहले महर्षिको ही प्रणाम किया। फिर वाल्मीकि, लक्ष्मण तथा वे दोनों कुमार सब एक साथ मिलकर चले और श्रीरामचन्द्रजीको सभामें स्थित जान उनके दर्शनके लिये उत्कण्ठित हो वहीं गये। लक्ष्मणने श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें प्रणाम करके सीताके साथ जो कुछ बातचीत हुई थी, वह सब उनसे कह सुनायी। उस समय परम बुद्धिमान् लक्ष्मण हर्ष और शोक—दोनों भावोंमें मग्न हो रहे थे।

श्रीरामचन्द्रजीने कहा—सखे! एक बार फिर वहाँ जाओ और महान् प्रयत्न करके सीताको शीघ्र यहाँ ले आओ। तुम्हारा कल्याण हो। मेरी ये बातें जानकीसे कहना—'देवि! क्या वनमें तपस्या करके तुमने मेरे सिवा कोई दूसरी गति प्राप्त करनेका विचार किया है? अथवा मेरे अतिरिक्त और कोई गति सुनी या देखी है जो मेरे बुलानेपर भी नहीं आ रही हो? तुम अपनी ही इच्छाके कारण यहाँसे मुनियोंको प्रिय लगनेवाले वनमें गयी थीं। वहाँ तुमने मुनिपत्नियोंका पूजन किया और मुनियोंके भी दर्शन किये; अब तो तुम्हारी इच्छा पूरी हुई! अब क्यों नहीं आतीं? जानकी! स्त्री कहीं भी क्यों न जाय, पति ही उसके लिये एकमात्र गति है। वह गुणहीन होनेपर भी पत्नीके लिये गुणोंका सागर है। फिर यदि वह मनके अनुकूल हुआ तब तो उसकी मान्यताके विषयमें कहना ही क्या है। उत्तम कुलकी स्त्रियाँ जो-जो कार्य करती हैं, वह सब पतिको सन्तुष्ट करनेके लिये ही होता है। परन्तु मैं तो तुमपर पहलेसे ही विशेष सन्तुष्ट हूँ और इस समय वह सन्तोष और भी बढ़ गया है। त्याग, जप, तप, दान, व्रत, तीर्थ और दया आदि सभी साधन मेरे प्रसन्न होनेपर ही सफल होते हैं। मेरे सन्तुष्ट होनेपर सम्पूर्ण देवता सन्तुष्ट हो जाते हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।'

लक्ष्मणने कहा—भगवन्! सीताको ले आनेके उद्देश्यसे प्रसन्न होकर आपने जो-जो बातें कही हैं, वह सब मैं उन्हें विनयपूर्वक सुनाऊँगा।

ऐसा कहकर लक्ष्मणने श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें प्रणाम किया और अत्यन्त वेगशाली रथपर सवार हो वे तुरंत सीताके आश्रमपर चल दिये। तदनन्तर वाल्मीकिजीने श्रीरामचन्द्रजीके दोनों पुत्रोंकी ओर, जो परम शोभायमान और अत्यन्त तेजस्वी थे, देखा तथा किंचित् मुसकराकर कहा—'वत्स! तुम दोनों वीणा बजाते हुए मधुर स्वरसे श्रीरामचन्द्रजीके अद्भुत चरित्रका गान करो।' महर्षिके इस प्रकार आज्ञा देनेपर उन बड़भागी बालकोंने महान् पुण्यदायक श्रीरामचरित्रका गान किया, जो सुन्दर वाक्यों और उत्तम पदोंमें चित्रित हुआ था, जिसमें धर्मकी साक्षात् विधि, पातिव्रत्यके उपदेश, महान् भ्रातृ-स्नेह तथा उत्तम गुरुभक्तिका वर्णन है। जहाँ स्वामी और सेवककी नीति मूर्तिमान् दिखायी देती है तथा जिसमें साक्षात् श्रीरघुनाथजीके हाथसे पापाचारियोंको दण्ड मिलनेका वर्णन है। बालकोंके उस गानसे सारा जगत् मुग्ध हो गया। स्वर्गके देवता भी विस्मयमें पड़ गये। किन्नर भी वह गान सुनकर मूर्च्छित

हो गये। श्रीराम आदि सभी राजा नेत्रोंसे आनन्दके आँसू

बहाने लगे। वे गीतके पंचम स्वरका आलाप सुनकर ऐसे मोहित हुए कि हिल-डुल नहीं सकते थे; चित्र-लिखित-से जान पड़ते थे।

तत्पश्चात् महर्षि वाल्मीकिने कुश और लवसे कृपापूर्वक कहा—'वत्स! तुमलोग नीतिके विद्वानोंमें श्रेष्ठ हो, अपने पिताको पहचानो [ये श्रीरघुनाथजी तुम्हारे पिता हैं; इनके प्रति पुत्रोचित बर्ताव करो]।' मुनिका यह वचन सुनकर दोनों बालक विनीतभावसे पिताके चरणोंमें लग गये। माताकी भक्तिके कारण उन दोनोंके हृदय अत्यन्त निर्मल हो गये थे। श्रीरामचन्द्रजीने अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने दोनों बालकोंको छातीसे लगा लिया। उस समय उन्होंने ऐसा माना कि मेरा धर्म ही इन दोनों पुत्रोंके रूपमें मूर्तिमान् होकर उपस्थित हुआ है। वात्स्यायनजी! सभामें बैठे हुए लोगोंने भी श्रीरामचन्द्रजीके पुत्रोंका मनोहर मुख देखकर जानकीजीकी पतिभक्तिको सत्य माना।

शेषजीके मुखसे इतनी कथा सुनकर वात्स्यायनको सम्पूर्ण धर्मोंसे युक्त रामायणके विषयमें कुछ सुननेकी इच्छा हुई; अतएव उन्होंने पूछा—'स्वामिन्! महर्षि वाल्मीकिने इस रामायण नामक महान् काव्यकी रचना किस समय की, किस कारणसे की तथा इसके भीतर किन-किन बातोंका वर्णन है?'

शेषजीने कहा—एक समयकी बात है, वाल्मीकिजी महान् वनके भीतर गये, जहाँ ताल, तमाल और खिले हुए पलाशके वृक्ष शोभा पा रहे थे। कोयलकी मीठी तान और भ्रमरोंकी गुंजारसे गूँजते रहनेके कारण वह वन्यप्रदेश सब ओरसे रमणीय जान पड़ता था। कितने ही मनोहर पक्षी वहाँ बसेरा ले रहे थे। महर्षि जहाँ खड़े थे, उसके पास ही दो सुन्दर क्रौंचपक्षी कामबाणसे पीड़ित हो रमण कर रहे थे। दोनोंमें परस्पर स्नेह था और दोनों एक-दूसरेके सम्पर्कमें रहकर अत्यन्त हर्षका अनुभव करते थे। इसी समय एक व्याध वहाँ आया और उस निर्दयीने उन पक्षियोंमेंसे एकको जो बड़ा सुन्दर था, बाणसे मार गिराया। यह देख मुनिको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने सरिताका पावन जल हाथमें लेकर क्रौंचकी हत्या करनेवाले उस निषादको शाप दिया—'ओ निषाद! तुझे कभी भी शाश्वत शान्ति नहीं मिलेगी; क्योंकि तूने इन क्रौंच-पक्षियोंमेंसे एककी, जो कामसे मोहित हो रहा था,
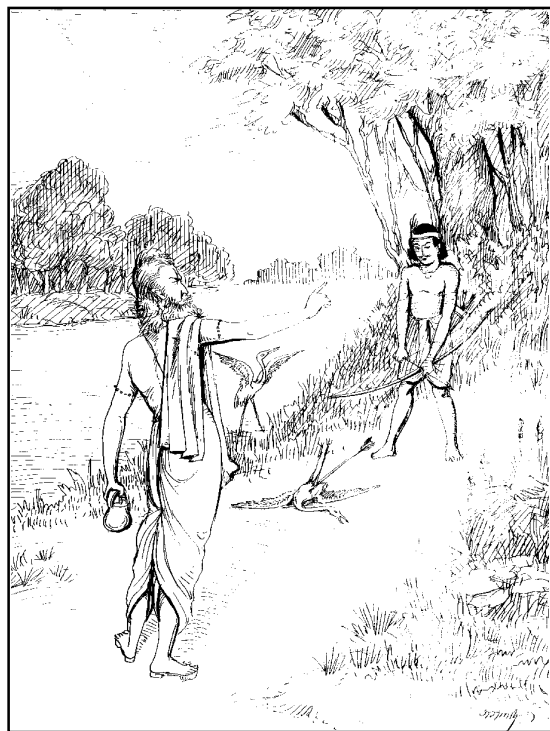
[बिना किसी अपराधके] हत्या कर डाली है।'*

यह वाक्य छन्दोबद्ध श्लोकके रूपमें निकला; इसे सुनकर मुनिके शिष्योंने प्रसन्न होकर कहा—'स्वामिन्! आपने शाप देनेके लिये जिस वाक्यका प्रयोग किया है, उसमें सरस्वती देवीने श्लोकका विस्तार किया है। मुनिश्रेष्ठ! यह वाक्य अत्यन्त मनोहर श्लोक बन गया है।' उस समय ब्रह्मर्षि वाल्मीकिजीके मनमें भी बड़ी प्रसन्नता हुई। उसी अवसरपर ब्रह्माजीने आकर

वाल्मीकिजीसे कहा—'मुनीश्वर! तुम धन्य हो। आज सरस्वती तुम्हारे मुखमें स्थित होकर श्लोकरूपमें प्रकट हुई है। इसलिये अब तुम मधुर अक्षरोंमें सुन्दर रामायणकी रचना करो। मुखसे निकलनेवाली वही वाणी धन्य है, जो श्रीरामनामसे युक्त हो। इसके सिवा, अन्य जितनी बातें हैं, सब कामकी कथाएँ हैं, ये मनुष्योंके लिये केवल सूतक (अपवित्रता) उत्पन्न करती हैं। अतः तुम श्रीरामचन्द्रजीके लोकप्रसिद्ध चरित्रको लेकर काव्य रचना करो, जिससे पद-पदपर पापियोंके पापका निवारण होगा।' इतना कहकर ब्रह्माजी सम्पूर्ण देवताओंके साथ अन्तर्धान हो गये।

तदनन्तर एक दिन वाल्मीकिजी नदीके मनोहर तटपर ध्यान लगा रहे थे। उस समय उनके हृदयमें सुन्दर रूपधारी श्रीरामचन्द्रजी प्रकट हुए। नील पद्म-दलके समान श्याम विग्रहवाले कमलनयन श्रीरामचन्द्रजीका
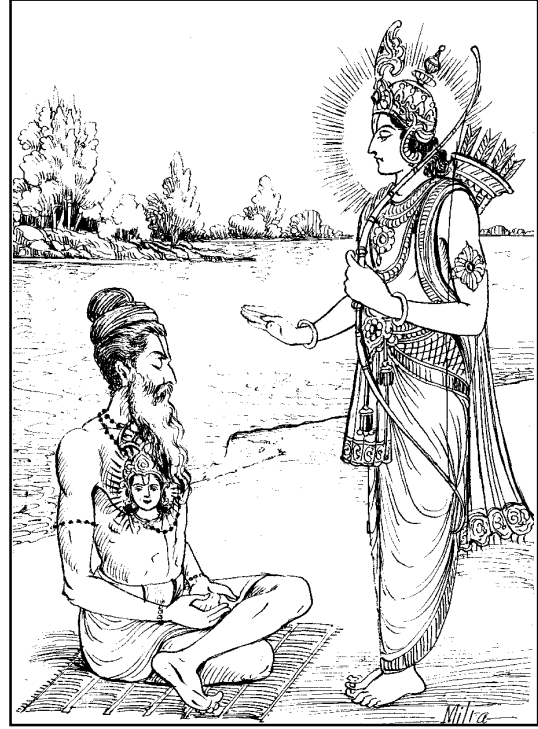
दर्शन पाकर मुनिने उनके भूत, वर्तमान और भविष्य—तीनों कालके चरित्रोंका साक्षात्कार किया। फिर तो उन्हें बड़ा आनन्द मिला और उन्होंने मनोहर पदों तथा नाना प्रकारके छन्दोंमें रामायणकी रचना की। उसमें अत्यन्त मनोरम छः काण्ड हैं—बाल, आरण्यक, किष्किन्धा, सुन्दर, युद्ध तथा उत्तर। महामते! जो इन काण्डोंको सुनता है, वह मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। बालकाण्डमें—राजा दशरथने प्रसन्नतापूर्वक पुत्रेष्टि यज्ञ करके चार पुत्र प्राप्त किये, जो साक्षात् सनातन ब्रह्म श्रीहरिके अवतार थे। फिर श्रीराम-चन्द्रजीका विश्वामित्रके यज्ञमें जाना, वहाँसे मिथिलामें जाकर सीतासे विवाह करना, मार्गमें परशुरामजीसे मिलते हुए अयोध्यापुरीमें आना, वहाँ युवराजपदपर अभिषेक होनेकी तैयारी, फिर

* मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः । यत्क्रौञ्चपक्षिणोरेकमवधीः काममोहितम् ॥

माता कैकेयीके कहनेसे वनमें जाना, गंगापार करके चित्रकूट पर्वतपर पहुँचना तथा वहाँ सीता और लक्ष्मणके साथ निवास करना—इत्यादि प्रसंगोंका वर्णन है। इसके अतिरिक्त न्यायके अनुसार चलनेवाले भरतने जब अपने भाई श्रीरामके वनमें जानेका समाचार सुना तो वे भी उन्हें लौटानेके लिये चित्रकूट पर्वतपर गये, किन्तु उन्हें जब न लौटा सके तो स्वयं भी उन्होंने अयोध्यासे बाहर नन्दिग्राममें वास किया। ये सब बातें भी बालकाण्डके ही अन्तर्गत हैं। इसके बाद आरण्यककाण्डमें आये हुए विषयोंका वर्णन सुनिये। सीता और लक्ष्मणसहित श्रीरामका भिन्न-भिन्न मुनियोंके आश्रमोंमें निवास करना, वहाँ-वहाँके स्थान आदिका वर्णन, शूर्पणखाकी नाकका काटा जाना, खर और दूषणका विनाश, मायामय मृगके रूपमें आये हुए मारीचका मारा जाना, राक्षस रावणके द्वारा राम-पत्नी सीताका हरण, श्रीरामका विरहाकुल होकर वनमें भटकना और मानवोचित लीलाएँ करना, फिर कबन्धसे भेंट होना, पम्पासरोवरपर जाना और श्रीहनुमान्‌जीसे मिलाप होना—ये सभी कथाएँ आरण्यककाण्डके नामसे प्रसिद्ध हैं। तदनन्तर श्रीरामद्वारा सप्त ताल-वृक्षोंका भेदन, बालिका अद्भुत वध, सुग्रीवको राज्यदान, लक्ष्मणके द्वारा सुग्रीवको कर्तव्य-पालनका सन्देश देना, सुग्रीवका नगरसे निकलना, सैन्यसंग्रह, सीताकी खोजके लिये वानरोंका भेजा जाना। वानरोंकी सम्पातीसे भेंट, हनुमान्‌जीके द्वारा समुद्र-लंघन और दूसरे तटपर उनका पहुँचना—ये सब प्रसंग किष्किन्धाकाण्डके अन्तर्गत हैं। यह काण्ड अद्भुत है। अब सुन्दरकाण्डका वर्णन सुनिये, जहाँ श्रीरामचन्द्रजीकी अद्भुत कथाका उल्लेख है। हनुमान्‌जीका सीताकी खोजके लिये लंकाके प्रत्येक घरमें घूमना तथा वहाँके विचित्र-विचित्र दृश्योंका देखना, फिर सीताका दर्शन, उनके साथ बातचीत तथा वनका विध्वंस, कुपित हुए राक्षसोंके द्वारा हनुमान्‌जीका बन्धन, हनुमान्‌जीके द्वारा लंकाका दाह, फिर समुद्रके इस पार आकर उनका वानरोंसे मिलना। श्रीरामचन्द्रजीको सीताकी दी हुई पहचान अर्पण करना, सेनाका लंकाके लिये प्रस्थान, समुद्रमें पुल बाँधना तथा सेनामें शुक और सारणका आना—ये सब विषय सुन्दरकाण्डमें हैं। इस प्रकार सुन्दरकाण्डका परिचय दिया गया। युद्धकाण्डमें युद्ध और सीताकी प्राप्तिका वर्णन है। उत्तरकाण्डमें श्रीरामका ऋषियोंके साथ संवाद तथा यज्ञका आरम्भ आदि है। उसमें श्रीरामचन्द्रजीकी अनेकों कथाओंका वर्णन है, जो श्रोताओंके पापको नाश करनेवाली हैं। इस प्रकार मैंने छः काण्डोंका वर्णन किया। ये ब्रह्महत्याके पापको भी दूर करनेवाले हैं। उनकी कथाएँ बड़ी मनोहर हैं। मैंने यहाँ संक्षेपसे ही इनका परिचय दिया है। जो छः काण्डोंसे चिह्नित और चौबीस हजार श्लोकोंसे युक्त है, उसी वाल्मीकिनिर्मित ग्रन्थको रामायण नाम दिया गया है।

सीताका आगमन, यज्ञका आरम्भ, अश्वकी मुक्ति, उसके पूर्वजन्मकी कथा, यज्ञका उपसंहार और रामभक्ति तथा अश्वमेध-कथा-श्रवणकी महिमा

शेषजी कहते हैं—मुने! तदनन्तर लक्ष्मणने आकर पुनः जानकीके चरणोंमें प्रणाम किया। विनयशील लक्ष्मणको आया देख पुनः अपने बुलाये जानेकी बात सुनकर सीताने कहा—'सुमित्रानन्दन! मुझे श्रीरामचन्द्रजीने महान् वनमें त्याग दिया है, अतः अब मैं कैसे चल सकती हूँ? यहीं महर्षि वाल्मीकिके आश्रमपर रहूँगी और निरन्तर श्रीरामका स्मरण किया करूँगी।' उनकी बात सुनकर लक्ष्मणने कहा—'माताजी! आप पतिव्रता हैं, श्रीरघुनाथजी बारम्बार आपको बुला रहे हैं। पतिव्रता स्त्री अपने पतिके अपराधको मनमें नहीं लाती; इसलिये इस उत्तम रथपर बैठिये और मेरे साथ चलनेकी कृपा कीजिये।' पतिको ही देवता माननेवाली जानकीने लक्ष्मणकी ये सब बातें सुनकर आश्रमकी सम्पूर्ण तपस्विनी स्त्रियों तथा वेदवेत्ता मुनियोंको प्रणाम किया और मन-ही-मन श्रीरामका स्मरण करती हुई वे रथपर बैठकर अयोध्यापुरीकी ओर

चलीं। उस समय उन्होंने बहुमूल्य वस्त्र और आभूषण धारण किये थे। क्रमशः नगरीमें पहुँचकर वे सरयू नदीके तटपर गयीं, जहाँ स्वयं श्रीरघुनाथजी विराजमान थे। पातिव्रत्यमें तत्पर रहनेवाली सुन्दरी सीता वहाँ जाकर रथसे उतर गयीं और लक्ष्मणके साथ श्रीरामचन्द्रजीके समीप पहुँचकर उनके चरणोंमें लग गयीं।

प्रेमविह्वला जानकीको आयी देख श्रीरामचन्द्रजी बोले—'साध्वि! इस समय तुम्हारे साथ मैं यज्ञकी समाप्ति करूँगा।'

तत्पश्चात् सीता महर्षि वाल्मीकि तथा अन्यान्य ब्रह्मर्षियोंको नमस्कार करके माताओंके चरणोंमें प्रणाम करनेके लिये उत्कण्ठापूर्वक उनके पास गयीं। वीर पुत्रोंको जन्म देनेवाली अपनी प्यारी बहू जानकीको आती देख कौसल्याको बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने सीताको बहुत आशीर्वाद दिया। कैकेयीने भी विदेहनन्दिनीको अपने चरणोंमें प्रणाम करती देखकर आशीर्वाद देते हुए कहा—'बेटी! तुम अपने पति और पुत्रोंके साथ चिरकालतक जीवित रहो।' इसी प्रकार सुमित्राने भी पुत्रवती जानकीको अपने पैरपर पड़ी देख उत्तम आशीर्वाद प्रदान किया। श्रीरामचन्द्रजीकी प्यारी पत्नी सती-साध्वी सीता सबको प्रणाम करके बहुत प्रसन्न हुईं। श्रीरघुनाथजीकी धर्मपत्नीको उपस्थित देख महर्षि कुम्भजने सोनेकी सीताको हटा दिया और उसकी जगह उन्हींको बिठाया। उस समय यज्ञमण्डपमें सीताके साथ बैठे हुए श्रीरामचन्द्रजीकी बड़ी शोभा हुई। फिर उत्तम समय आनेपर श्रीरघुनाथजीने यज्ञका कार्य आरम्भ किया। उन्होंने उत्तम बुद्धिवाले वसिष्ठसे पूछा—'स्वामिन्! अब इस श्रेष्ठ यज्ञमें कौन-सा आवश्यक कर्तव्य बाकी रह गया है?' रामकी बात सुनकर महाबुद्धिमान् गुरुदेवने कहा—'अब आपको ब्राह्मणोंकी सन्तोषजनक पूजा करनी चाहिये।' यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने महर्षि कुम्भजको पूज्य मानकर सबसे पहले उन्हींका पूजन किया। रत्न और सुवर्णोंके अनेकों भार, मनुष्योंसे भरे हुए कई देश तथा अत्यन्त प्रीतिदायक वस्तुएँ दक्षिणामें देकर उन्होंने पत्नीसहित अगस्त्य मुनिका सत्कार किया। फिर उत्तम रत्न आदिके द्वारा पत्नीसहित महर्षि च्यवनका पूजन किया। इसी प्रकार अन्यान्य महर्षियों तथा सम्पूर्ण तपस्वी ऋत्विजोंका
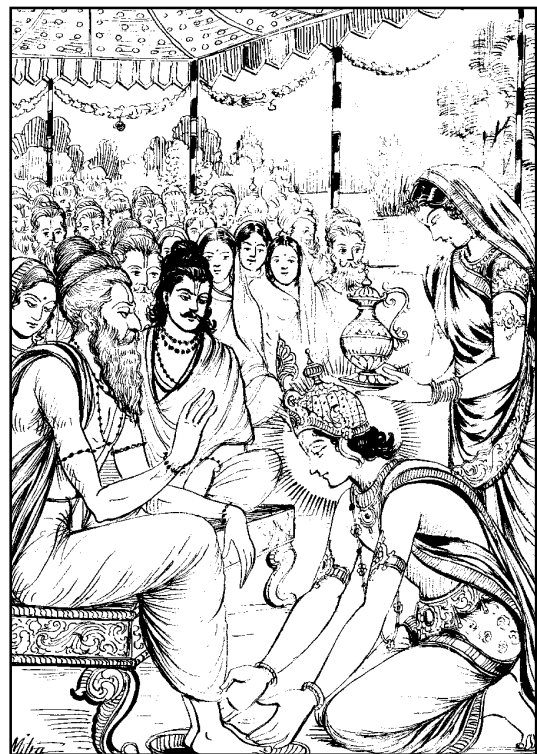
भी उन्होंने अनेकों भार सुवर्ण और रत्न आदिके द्वारा सत्कार किया। उस यज्ञमें श्रीरामने ब्राह्मणोंको बहुत दक्षिणा दी। दीनों, अंधों और दुःखियोंको भी नाना प्रकारके दान दिये। विचित्र-विचित्र वस्त्र तथा मधुर भोजन वितीर्ण किये। भगवान्ने शास्त्रकी आज्ञाके अनुसार ऐसा दान किया, जो सबको सन्तोष देनेवाला था। उन्हें सबको दान देते देख महर्षि कुम्भजको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने अश्वको नहलानेके निमित्त अमृतके समान जल मँगानेके लिये चौंसठ राजाओंको उनकी रानियोंसहित बुलाया। श्रीरामचन्द्रजी सब प्रकारके अलंकारोंसे सुशोभित सीताजीके साथ सोनेके घड़ेमें जल ले आनेके लिये गये। उनके पीछे माण्डवीके साथ भरत, उर्मिलाके साथ लक्ष्मण, श्रुतिकीर्तिके साथ शत्रुघ्न, कान्तिमतीके साथ पुष्कल, कोमलाके साथ लक्ष्मीनिधि, महामूर्तिके साथ विभीषण, सुमनोहारीके साथ सुरथ तथा मोहनाके साथ सुग्रीव भी चले। इसी प्रकार और कई राजाओंको वसिष्ठ ऋषिने भेजा। उन्होंने स्वयं भी शीतल एवं पवित्र जलसे भरी हुई सरयूमें जाकर वेदमन्त्रके द्वारा उसके जलको अभिमन्त्रित किया। वे बोले—'हे जल! तुम सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षा करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीके यज्ञके लिये निश्चित किये हुए इस अश्वको पवित्र करो।'

मुनिके अभिमन्त्रित किये हुए उस जलको राम आदि सभी राजा ब्राह्मणोंद्वारा सुसंस्कृत यज्ञ-मण्डपमें ले आये। उस निर्मल जलसे दूधके समान श्वेत अश्वको नहलाकर महर्षि कुम्भजने मन्त्रद्वारा रामके हाथसे उसे अभिमन्त्रित कराया। श्रीरामचन्द्रजी अश्वको लक्ष्य करके बोले—'महाबाह! ब्राह्मणोंसे भरे हुए इस यज्ञ-मण्डपमें तुम मुझे पवित्र करो।' ऐसा कहकर श्रीरामने सीताके साथ उस अश्वका स्पर्श किया। उस समय सम्पूर्ण ब्राह्मणोंको कौतूहलवश यह बड़ी विचित्र बात मालूम पड़ी। वे आपसमें कहने लगे—'अहो! जिनके नामका स्मरण करनेसे मनुष्य बड़े-बड़े पापोंसे छुटकारा पा जाते हैं, वे ही श्रीरामचन्द्रजी यह क्या कह रहे हैं [क्या अश्व इन्हें पवित्र करेगा?]।' यज्ञ-मण्डपमें श्रीरामके हाथका स्पर्श होते ही उस अश्वने पशु-शरीरका परित्याग करके तुरंत दिव्यरूप धारण कर लिया। घोड़ेका शरीर छोड़कर दिव्यरूपधारी मनुष्यके रूपमें प्रकट हुए उस अश्वको देखकर यज्ञमें आये हुए सब लोगोंको बड़ा विस्मय हुआ। यद्यपि श्रीरामचन्द्रजी स्वयं सब कुछ जानते थे, तो भी सब लोगोंको इस रहस्यका ज्ञान करानेके लिये उन्होंने पूछा—'दिव्य शरीर धारण करनेवाले पुरुष! तुम कौन हो? अश्व-योनिमें क्यों पड़े थे तथा इस समय क्या करना चाहते हो? ये सब बातें बताओ।'
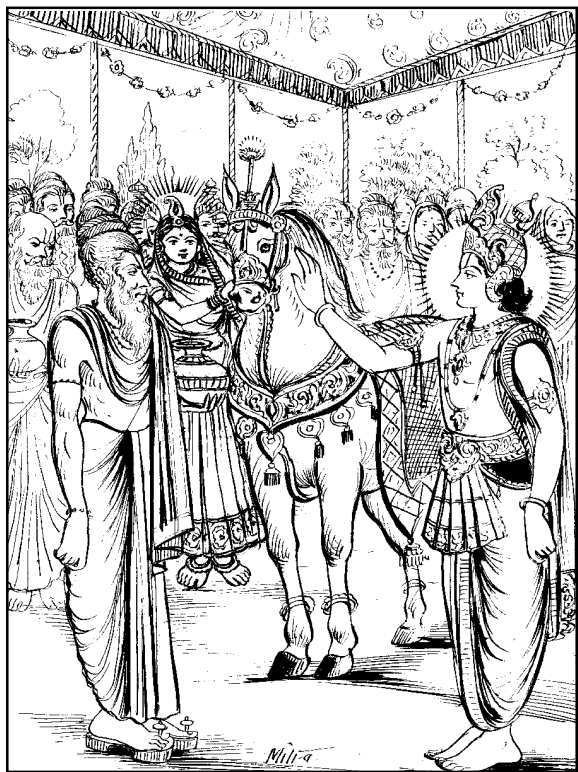
रामकी बात सुनकर दिव्यरूपधारी पुरुषने कहा—'भगवन्! आप बाहर और भीतर सर्वत्र व्याप्त हैं; अतः आपसे कोई बात छिपी नहीं है। फिर भी यदि पूछ रहे हैं तो मैं आपसे सब कुछ ठीक-ठीक बता रहा हूँ। पूर्वजन्ममें मैं एक परम धर्मात्मा ब्राह्मण था, किन्तु मुझसे एक अपराध हो गया। महाबाहो! एक दिन मैं पापहारिणी सरयूके तटपर गया और वहाँ स्नान, पितरोंका तर्पण तथा विधिपूर्वक दान करके वेदोक्त रीतिसे आपका ध्यान करने लगा। महाराज! उस समय मेरे पास

बहुत-से मनुष्य आये और उन सबको ठगनेके लिये मैंने कई प्रकारका दम्भ प्रकट किया। इसी समय महातेजस्वी महर्षि दुर्वासा अपनी इच्छाके अनुसार पृथ्वीपर विचरते हुए वहाँ आये और सामने खड़े होकर मुझ दम्भीको देखने लगे। मैंने मौन धारण कर रखा था; न तो उठकर उन्हें अर्घ्य दिया और न उनके प्रति कोई स्वागतपूर्ण वचन ही मुँहसे निकाला। मैं उन्मत्त हो रहा था। महामति दुर्वासाका स्वभाव तो यों ही तीक्ष्ण है, मुझे दम्भ करते देख वे और भी प्रचण्ड क्रोधके वशीभूत हो गये तथा शाप देते हुए बोले—'तापसाधम! यदि तू सरयूके तटपर ऐसा घोर दम्भ कर रहा है तो पशु-योनिको प्राप्त हो जा।' मुनिके दिये हुए शापको सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ और मैंने उनके चरण पकड़ लिये। रघुनन्दन! तब मुनिने मुझपर महान् अनुग्रह किया। वे बोले—'तापस! तू श्रीरामचन्द्रजीके अश्वमेध-यज्ञका अश्व बनेगा; फिर भगवान्‌के हाथका स्पर्श होनेसे तू दम्भहीन, दिव्य एवं मनोहर रूप धारण कर परमपदको प्राप्त हो जायगा।' महर्षिका दिया हुआ यह शाप भी मेरे लिये अनुग्रह बन गया। राम! अनेकों जन्मोंके पश्चात् देवता आदिके लिये भी जिसकी प्राप्ति होनी कठिन है, वही आपकी अंगुलियोंका अत्यन्त दुर्लभ स्पर्श आज मुझे प्राप्त हुआ है। महाराज! अब आज्ञा दीजिये, मैं आपकी कृपासे महत् पदको प्राप्त हो रहा हूँ। जहाँ न शोक है, न जरा; न मृत्यु है, न कालका विलास—उस स्थानको जाता हूँ। राजन्! यह सब आपका ही प्रसाद है।'

यह कहकर उसने श्रीरघुनाथजीकी परिक्रमा की और श्रेष्ठ विमानपर बैठकर भगवान्‌के चरणोंकी कृपासे वह उनके सनातन धामको चला गया। उस दिव्य पुरुषकी बातें सुनकर अन्य साधारण लोगोंको भी श्रीरामचन्द्रजीकी महिमाका ज्ञान हुआ और वे सब-के-सब परस्पर आनन्दमग्न होकर बड़े विस्मयमें पड़े। महाबुद्धिमान् वात्स्यायनजी! सुनिये; दम्भपूर्वक स्मरण करनेपर भी भगवान् श्रीहरि मोक्ष प्रदान करते हैं, फिर यदि दम्भ छोड़कर उनका भजन किया जाय तब तो कहना ही क्या है? जैसे भी हो, श्रीरामचन्द्रजीका निरन्तर स्मरण करना चाहिये; जिससे उस परमपदकी प्राप्ति होती है, जो देवता आदिके लिये भी दुर्लभ है। अश्वकी मुक्तिरूप विचित्र व्यापार देखकर मुनियोंने अपनेको भी कृतार्थ समझा; क्योंकि वे स्वयं भी श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंके दर्शन और करस्पर्शसे पवित्र हो रहे थे। तदनन्तर मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजी जो सम्पूर्ण देवताओंका मनोभाव समझनेमें निपुण थे, बोले—'रघुनन्दन! आप देवताओंको कर्पूर भेंट कीजिये, जिससे वे स्वयं प्रत्यक्ष प्रकट होकर हविष्य ग्रहण करेंगे।' यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने देवताओंकी प्रसन्नताके लिये शीघ्र ही बहुत सुन्दर कर्पूर अर्पण किया। इससे महर्षि वसिष्ठके हृदयमें बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने अद्भुतरूपधारी देवताओंका आवाहन किया। मुनिके आवाहन करनेपर एक ही क्षणमें सम्पूर्ण देवता अपने-अपने परिवारसहित वहाँ आ पहुँचे।

शेषजी कहते हैं—मुने! उस यज्ञमें दी जानेवाली हवि श्रीरामचन्द्रजीकी दृष्टि पड़नेसे अत्यन्त पवित्र हो गयी थी। देवताओंसहित इन्द्र उसका आस्वादन करने लगे, उन्हें तृप्ति नहीं होती थी—अधिकाधिक लेनेकी इच्छा बनी रहती थी। नारायण, महादेव, ब्रह्मा, वरुण, कुबेर तथा अन्य लोकपाल सब-के-सब तृप्त हो अपना-अपना भाग लेकर अपने धामको चले गये। होताका कार्य करनेवाले जो प्रधान-प्रधान ऋषि थे, उन सबको भगवान्‌ने चारों दिशाओंमें राज्य दिया तथा उन्होंने भी सन्तुष्ट होकर श्रीरघुनाथजीको उत्तम आशीर्वाद दिये। तत्पश्चात् वसिष्ठजीने पूर्णाहुति करके कहा—'सौभाग्यवती स्त्रियाँ आकर यज्ञकी पूर्ति करनेवाले महाराजकी संवर्द्धना (अभ्युदय-कामना) करें।' उनकी बात सुनकर स्त्रियाँ उठीं और बड़े-बड़े राजाओंद्वारा पूजित श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर, जो अपने सौन्दर्यसे कामदेवको भी परास्त कर रहे थे, अत्यन्त हर्षके साथ लाजा (खील)-की वर्षा करने लगीं। इसके बाद महर्षिने श्रीरामचन्द्रजीको अवभृथ (यज्ञान्त) स्नानके लिये प्रेरित किया। तब श्रीरघुनाथजी आत्मीयजनोंके साथ सरयूके उत्तम तटपर गये। उस समय जो लोग

सीतापतिके मुखचन्द्रका अवलोकन करते, वे एकटक दृष्टिसे देखते ही रह जाते थे; उनकी आँखें स्थिर हो जाती थीं। जिनके हृदयमें चिरन्तन कालसे भगवान्‌के दर्शनकी लालसा लगी हुई थी, वे लोग महाराज श्रीरामको सीताके साथ सरयूकी ओर जाते देखकर आनन्दमें मग्न हो गये। अनेकों नट और गन्धर्व उज्ज्वल यशका गान करते हुए सर्वलोक-नमस्कृत महाराजके पीछे-पीछे गये। नदीका मार्ग झुंड-के-झुंड स्त्री-पुरुषोंसे भरा था। उसीसे चलकर वे शीतल एवं पवित्र जलसे परिपूर्ण सरयू नदीके समीप पहुँचे, वहाँ पहुँचकर कमलनयन श्रीरामने सीताके साथ सरयूके पावन जलमें प्रवेश किया। तत्पश्चात् भगवान्‌के चरणोंकी धूलिसे पवित्र हुए उस विश्ववन्दित जलमें सम्पूर्ण राजा तथा साधारण जन-समुदायके लोग भी उतरे। धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी सरयूके पावन जलप्रवाहमें सीताके साथ चिरकालतक क्रीड़ा करके बाहर निकले। फिर उन्होंने धौत-वस्त्र धारण किया, किरीट और कुण्डल पहने तथा केयूर और कंकणकी शोभाको भी अपनाया। इस प्रकार वस्त्र और आभूषणोंसे विभूषित होकर करोड़ों कन्दर्पोंकी सुषमा धारण करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी अत्यन्त सुशोभित हुए। उस समय कितने ही राजे-महाराजे उनकी स्तुति करने लगे। महामना श्रीरघुनाथजीने सरयूके पावन तटपर उत्तम वर्णसे सुशोभित यज्ञयूपकी स्थापना करके अपनी भुजाओंके बलसे तीनों लोकोंकी अद्‌भुत सम्पत्ति प्राप्त की, जो दूसरे नरेशोंके लिये सर्वथा दुर्लभ है। इस तरह भगवान् श्रीरामने जनकनन्दिनी सीताके साथ तीन अश्वमेध-यज्ञोंका अनुष्ठान किया तथा त्रिभुवनमें अत्यन्त दुर्लभ और अनुपम कीर्ति प्राप्त की।

वात्स्यायनजी! आपने जो श्रीरामचन्द्रजीकी उत्तम कथाके विषयमें प्रश्न किया था, उसका उपर्युक्त प्रकारसे वर्णन किया गया। अश्वमेध-यज्ञका वृत्तान्त मैंने विस्तारके साथ कहा है; अब आप और क्या पूछना चाहते हैं? जो मनुष्य भगवान्‌के प्रति भक्ति रखते हुए श्रीरामचन्द्रजीके इस उत्तम यज्ञका श्रवण करता है, वह ब्रह्महत्या-जैसे पापको भी क्षणभरमें पार करके सनातन ब्रह्मको प्राप्त होता है। इस कथाके सुननेसे पुत्रहीन पुरुषको पुत्रोंकी प्राप्ति होती है, धनहीनको धन मिलता है, रोगी रोगसे और कैदमें पड़ा हुआ मनुष्य बन्धनसे छुटकारा पा जाता है। जिनकी कथा सुननेसे दुष्ट चाण्डाल भी परम पदको प्राप्त होता है, उन्हीं श्रीरामचन्द्रजीकी भक्तिमें यदि श्रेष्ठ ब्राह्मण प्रवृत्त हो तो उसके लिये क्या कहना? महाभाग श्रीरामका स्मरण करके पापी भी उस परम पद या परम स्वर्गको प्राप्त होते हैं, जो इन्द्र आदि देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। संसारमें वे ही मनुष्य धन्य हैं, जो श्रीरघुनाथजीका स्मरण करते हैं! वे लोग क्षणभरमें इस संसार-समुद्रको पार करके अक्षय सुखको प्राप्त होते हैं। इस अश्वमेधकी कथाको सुनकर वाचकको दो गौ प्रदान करे तथा वस्त्र, अलंकार और भोजन आदिके द्वारा उसका तथा उसकी पत्नीका सत्कार करे। यह कथा ब्रह्महत्याकी राशिका विनाश करनेवाली है। जो लोग इसका श्रवण करते हैं, वे देवदुर्लभ परम पदको प्राप्त होते हैं।

वृन्दावन और श्रीकृष्णका माहात्म्य

ऋषियोंने कहा—सूतजी! महाराज! हमने आपके मुखसे रामाश्वमेधकी कथा अच्छी तरह सुन ली; अब परमात्मा श्रीकृष्णके माहात्म्यका वर्णन कीजिये।

सूतजी बोले—महर्षियो! जिनका हृदय भगवान् शंकरके प्रेममें डूबा रहता है, वे पार्वती देवी एक दिन अपने पतिको प्रेमपूर्वक नमस्कार करके इस प्रकार बोलीं—'प्रभो! वृन्दावनका माहात्म्य अथवा अद्‌भुत रहस्य क्या है, उसे मैं सुनना चाहती हूँ?'

महादेवजीने कहा—देवि! मैं यह बता चुका हूँ कि वृन्दावन ही भगवान्‌का सबसे प्रियतम धाम है।

वह गुह्यसे भी गुह्य, उत्तम-से-उत्तम और दुर्लभसे भी दुर्लभ है। तीनों लोकोंमें अत्यन्त गुप्तस्थान है। बड़े-बड़े देवेश्वर भी उसकी पूजा करते हैं। ब्रह्मा आदि भी उसमें रहनेकी इच्छा करते हैं। वहाँ देवता और सिद्धोंका निवास है। योगीन्द्र और मुनीन्द्र आदि भी सदा उसके ध्यानमें तत्पर रहते हैं। श्रीवृन्दावन बहुत ही सुन्दर और पूर्णानन्दमय रसका आश्रय है। वहाँकी भूमि चिन्तामणि है और जल रससे भरा हुआ अमृत है। वहाँके पेड़ कल्पवृक्ष हैं, जिनके नीचे झुंड-की-झुंड कामधेनु गौएँ निवास करती हैं। वहाँकी प्रत्येक स्त्री लक्ष्मी और हरेक पुरुष विष्णु हैं; क्योंकि वे लक्ष्मी और विष्णुके दशांशसे प्रकट हुए हैं। उस वृन्दावनमें सदा श्याम तेज विराजमान रहता है, जिसकी नित्य-निरन्तर किशोरावस्था (पंद्रह वर्षकी उम्र) बनी रहती है। वह आनन्दका मूर्तिमान् विग्रह है। उसमें संगीत, नृत्य और वार्तालाप आदिकी अद्‌भुत योग्यता है। उसके मुखपर सदा मन्द मुसकानकी छटा छायी रहती है। जिनका अन्त:करण शुद्ध है, जो प्रेमसे परिपूर्ण हैं, ऐसे वैष्णवजन ही उस वनका आश्रय लेते हैं। वह वन पूर्ण ब्रह्मानन्दमें निमग्न है। वहाँ ब्रह्मके ही स्वरूपकी स्फुरणा होती है। वास्तवमें वह वन ब्रह्मानन्दमय ही है। वहाँ प्रतिदिन पूर्ण चन्द्रमाका उदय होता है। सूर्यदेव अपनी मन्द रश्मियोंके द्वारा उस वनकी सेवा करते हैं। वहाँ दु:खका नाम भी नहीं है। उसमें जाते ही सारे दु:खोंका नाश हो जाता है। वह जरा और मृत्युसे रहित स्थान है। वहाँ क्रोध और मत्सरताका प्रवेश नहीं है। भेद और अहंकारकी भी वहाँ पहुँच नहीं होती। वह पूर्ण आनन्दमय अमृत-रससे भरा हुआ अखण्ड प्रेमसुखका समुद्र है, तीनों गुणोंसे परे है और महान् प्रेमधाम है। वहाँ प्रेमकी पूर्णरूपसे अभिव्यक्ति हुई है। जिस वृन्दावनके वृक्ष आदिने भी पुलकित होकर प्रेमजनित आनन्दके आँसू बरसाये हैं; वहाँके चेतन वैष्णवोंकी स्थितिके सम्बन्धमें क्या कहा जा सकता है?

भगवान् श्रीकृष्णकी चरण-रजका स्पर्श होनेके कारण वृन्दावन इस भूतलपर नित्य धामके नामसे प्रसिद्ध है। वह सहस्रदल-कमलका केन्द्रस्थान है। उसके स्पर्शमात्रसे यह पृथ्वी तीनों लोकोंमें धन्य समझी जाती है। भूमण्डलमें वृन्दावन गुह्यसे भी गुह्यतम, रमणीय, अविनाशी तथा परमानन्दसे परिपूर्ण स्थान है। वह गोविन्दका अक्षयधाम है। उसे भगवान्‌के स्वरूपसे भिन्न नहीं समझना चाहिये। वह अखण्ड ब्रह्मानन्दका आश्रय है। जहाँकी धूलिका स्पर्श होनेमात्रसे मोक्ष हो जाता है, उस वृन्दावनके माहात्म्यका किस प्रकार वर्णन किया जा सकता है। इसलिये देवि! तुम सम्पूर्ण चित्तसे अपने हृदयके भीतर उस वृन्दावनका चिन्तन करो तथा उसकी विहारस्थलियोंमें किशोरविग्रह श्रीकृष्णचन्द्रका ध्यान करती रहो। पहले बता आये हैं कि वृन्दावन सहस्रदल-कमलका केन्द्रस्थान है। कलिन्द-कन्या यमुना उस कमल-कर्णिकाकी प्रदक्षिणा किया करती हैं। उनका जल अनायास ही मुक्ति प्रदान करनेवाला और गहरा है। वह अपनी सुगन्धसे मनुष्योंका मन मोह लेता है। उस जलमें आनन्ददायिनी सुधासे मिश्रित घनीभूत मकरन्द (रस)-की प्रतिष्ठा है। पद्म और उत्पल आदि नाना प्रकारके पुष्पोंसे यमुनाका स्वच्छ सलिल अनेक रंगका दिखायी देता है। अपनी चंचल तरंगोंके कारण

वह जल अत्यन्त मनोहर एवं रमणीय प्रतीत होता है।

पार्वतीजीने पूछा—दयानिधे! भगवान् श्रीकृष्णका आश्चर्यमय सौन्दर्य और श्रीविग्रह कैसा है, मैं उसे सुनना चाहती हूँ; कृपया बतलाइये।

महादेवजीने कहा—देवि! परम सुन्दर वृन्दावनके मध्यभागमें एक मनोहर भवनके भीतर अत्यन्त उज्ज्वल योगपीठ है। उसके ऊपर माणिक्यका बना हुआ सुन्दर सिंहासन है, सिंहासनके ऊपर अष्टदल कमल है, जिसकी कर्णिका अर्थात् मध्यभागमें सुखदायी आसन लगा हुआ है; वही भगवान् श्रीकृष्णका उत्तम स्थान है। उसकी महिमाका क्या वर्णन किया जाय? वहीं भगवान् गोविन्द विराजमान होते हैं। वैष्णववृन्द उनकी सेवामें लगा रहता है। भगवान्‌का व्रज, उनकी अवस्था और उनका रूप—ये सभी दिव्य हैं। श्रीकृष्ण ही वृन्दावनके अधीश्वर हैं, वे ही व्रजके राजा हैं। उनमें सदा षड्विध ऐश्वर्य विद्यमान रहते हैं। वे व्रजकी बालक-बालिकाओंके एकमात्र प्राण-वल्लभ हैं और किशोरावस्थाको पार करके यौवनमें पदार्पण कर रहे हैं। उनका शरीर अद्भुत है, वे सबके आदि कारण हैं, किन्तु उनका आदि कोई भी नहीं है। वे नन्दगोपके प्रिय पुत्ररूपसे प्रकट हुए हैं; परन्तु वास्तवमें अजन्मा एवं नित्य ब्रह्म हैं, जिन्हें वेदकी श्रुतियाँ सदा ही खोजती रहती हैं। उन्होंने गोपीजनोंका चित्त चुरा लिया है। वे ही परमधाम हैं। उनका स्वरूप सबसे उत्कृष्ट है। उनका श्रीविग्रह दो भुजाओंसे सुशोभित है। वे गोकुलके अधिपति हैं। ऐसे गोपीनन्दन श्रीकृष्णका इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—

भगवान्‌की कान्ति अत्यन्त सुन्दर और अवस्था नूतन है। वे बड़े स्वच्छ दिखायी देते हैं। उनके शरीरकी आभा श्याम रंगकी है, जिसके कारण उनकी झाँकी बड़ी मनोहर जान पड़ती है। उनका विग्रह नूतन मेघ मालाके समान अत्यन्त स्निग्ध है। वे कानोंमें मनोहर कुण्डल धारण किये हुए हैं। उनकी कान्ति खिले हुए नील कमलके समान जान पड़ती है। उनका स्पर्श सुखद है। वे सबको सुख पहुँचानेवाले हैं। वे अपनी साँवली छटासे मनको मोहे लेते हैं। उनके केश बहुत ही चिकने, काले और घुँघराले हैं। उनसे सब प्रकारकी सुगन्ध निकलती रहती है। केशोंके ऊपर ललाटके दक्षिण भागमें श्याम रंगकी चूड़ाके कारण वे अत्यन्त मनोहर जान पड़ते हैं। नाना रंगके आभूषण धारण करनेसे उनकी दीप्ति बड़ी उज्ज्वल दिखायी देती है। सुन्दर मोरपंख उनके मस्तककी शोभा बढ़ाता है। उनकी सज-धज बड़ी सुन्दर है। वे कभी तो मन्दारपुष्पोंसे सुशोभित गोपुच्छके आकारकी बनी हुई चूड़ा (चोटी) धारण करते हैं, कभी मोरपंखके मुकुटसे अलंकृत होते हैं और कभी अनेकों मणि-माणिक्योंके बने हुए सुन्दर किरीटोंसे विभूषित होते हैं। चंचल अलकावली उनके मस्तककी शोभा बढ़ाती है। उनका मनोहर मुख करोड़ों चन्द्रमाओंके समान कान्तिमान् है। ललाटमें कस्तूरीका तिलक है, साथ ही सुन्दर गोरोचनकी बिंदी भी शोभा दे रही है। उनका शरीर इन्दीवरके समान स्निग्ध और नेत्र कमल-दलकी भाँति विशाल हैं। वे कुछ-कुछ भौंहें नचाते हुए मन्द मुसकानके साथ तिरछी चितवनसे देखा करते हैं। उनकी नासिकाका अग्रभाग रमणीय सौन्दर्यसे युक्त है, जिसके कारण वे अत्यन्त मनोहर जान पड़ते हैं। उन्होंने नासाग्रभागमें गजमोती धारण करके उसकी कान्तिसे त्रिभुवनका मन मोह लिया है। उनका नीचेका ओठ सिन्दूरके समान लाल और चिकना है, जिससे उनकी मनोहरता और भी बढ़ गयी है। वे अपने कानोंमें नाना प्रकारके वर्णोंसे सुशोभित सुवर्णनिर्मित मकराकृत कुण्डल पहने हुए हैं। उन कुण्डलोंकी किरण पड़नेसे उनका सुन्दर कपोल दर्पणके समान शोभा पा रहा है। वे कानोंमें पहने हुए कमल, मन्दारपुष्प और मकराकार कुण्डलसे विभूषित हैं। उनके वक्ष:स्थलपर कौस्तुभमणि और श्रीवत्सचिह्न शोभा पा रहे हैं। गलेमें मोतियोंका हार चमक रहा है। उनके विभिन्न अंगोंमें दिव्य माणिक्य तथा मनोहर सुवर्णमिश्रित आभूषण सुशोभित हैं। हाथोंमें कड़े, भुजाओंमें बाजूबन्द तथा कमरमें करधनी शोभा दे रही है। सुन्दर मंजीरकी सुषमासे चरणोंकी श्री बहुत बढ़ गयी है, जिससे भगवान्‌का श्रीविग्रह अत्यन्त

शोभायमान दिखायी दे रहा है। श्रीअंगोंमें कर्पूर, अगुरु, कस्तूरी और चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्य शोभा पा रहे हैं। गोरोचन आदिसे मिश्रित दिव्य अंगरागोंद्वारा विचित्र पत्र-भंगी (रंग-बिरंगे चित्र) आदिकी रचना की गयी है। कटिसे लेकर पैरोंके अग्रभागतक चिकने पीताम्बरसे शोभायमान है। भगवान्‌का नाभि-कमल गम्भीर है, उसके नीचेकी रोमावलियोंतक माला लटक रही है। उनके दोनों घुटने सुन्दर गोलाकार हैं तथा कमलोंकी शोभा धारण करनेवाले चरण बड़े मनोहर जान पड़ते हैं। हाथ और पैरोंके तलुवे ध्वज, वज्र, अंकुश और कमलके चिह्नसे सुशोभित हैं तथा उनके ऊपर नखरूपी चन्द्रमाकी किरणावलियोंका प्रकाश पड़ रहा है। सनक-सनन्दन आदि योगीश्वर अपने हृदयमें भगवान्‌के इसी स्वरूपकी झाँकी करते हैं। उनकी त्रिभंगी छवि है। उनके श्रीअंग इतने सुन्दर, इतने मनोहर हैं, मानो सृष्टिकी समस्त निर्माण-सामग्रीका सार निकालकर बनाये गये हों। जिस समय वे गर्दन मोड़कर खड़े होते हैं, उस समय उनका सौन्दर्य इतना बढ़ जाता है कि उसके सामने अनन्तकोटि कामदेव लज्जित होने लगते हैं। बायें कंधेपर झुका हुआ उनका सुन्दर कपोल बड़ा भला मालूम होता है। उनके सुवर्णमय कुण्डल जगमगाते रहते हैं। वे तिरछी चितवन और मंद मुसकानसे सुशोभित होनेवाले करोड़ों कामदेवोंसे भी अधिक सुन्दर हैं। सिकोड़े हुए ओठपर वंशी रखकर बजाते हैं और उसकी मीठी तानसे त्रिभुवनको मोहित करते हुए सबको प्रेम-सुधाके समुद्रमें निमग्न कर रहे हैं।

पार्वतीजीने कहा—देवदेवेश्वर! आपके उपदेशसे यह ज्ञात हुआ कि गोविन्द नामसे प्रसिद्ध भगवान् श्रीकृष्ण ही इस जगत्‌के परम कारण हैं। वे ही परमपद हैं, वृन्दावनके अधीश्वर हैं तथा नित्य परमात्मा हैं। प्रभो! अब मैं यह सुनना चाहती हूँ कि श्रीकृष्णका गूढ रहस्य, माहात्म्य और सुन्दर ऐश्वर्य क्या है; आप उसका वर्णन कीजिये।

महादेवजीने कहा—देवि! जिनके चन्द्र-तुल्य चरण-नखोंकी किरणोंके माहात्म्यका भी अन्त नहीं है, उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णकी महिमाके सम्बन्धमें मैं कुछ बातें बता रहा हूँ, तुम आनन्दपूर्वक श्रवण करो। सृष्टि, पालन और संहारकी शक्तिसे युक्त, जो ब्रह्मा आदि देवता हैं, वे सब श्रीकृष्णके ही वैभव हैं। उनके रूपका जो करोड़वाँ अंश है, उसके भी करोड़ अंश करनेपर एक-एक अंश कलासे असंख्य कामदेवोंकी उत्पत्ति होती है, जो इस ब्रह्माण्डके भीतर व्याप्त होकर जगत्‌के जीवोंको मोहमें डालते रहते हैं। भगवान्‌के श्रीविग्रहकी शोभामयी कान्तिके कोटि-कोटि अंशसे चन्द्रमाका आविर्भाव हुआ है। श्रीकृष्णके प्रकाशके करोड़वें अंशसे जो किरणें निकलती हैं, वे ही अनेकों सूर्योंके रूपमें प्रकट होती हैं। उनके साक्षात् श्रीअंगसे जो रश्मियाँ प्रकट होती हैं, वे परमानन्दमय रसामृतसे परिपूर्ण हैं, परम आनन्द और परम चैतन्य ही उनका स्वरूप है। उन्हींसे इस विश्वके ज्योतिर्मय जीव जीवन धारण करते हैं, जो भगवान्‌के ही कोटि-कोटि अंश हैं। उनके युगल चरणारविन्दोंके नखरूपी चन्द्रकान्तमणिसे निकलनेवाली प्रभाको ही सबका कारण बताया गया है। वह कारण-तत्त्व वेदोंके लिये भी दुर्गम्य है। विश्वको विमुग्ध करनेवाले जो नाना प्रकारके सौरभ (सुगन्ध) हैं, वे सब भगवद्विग्रहकी दिव्य सुगन्धके अनन्तकोटि अंशमात्र हैं। भगवान्‌के स्पर्शसे ही पुष्पगन्ध आदि नाना सौरभोंका प्रादुर्भाव होता है। श्रीकृष्णकी प्रियतमा—उनकी प्राणवल्लभा श्रीराधा हैं, वे ही आद्या प्रकृति कही गयी हैं।

श्रीराधा-कृष्ण और उनके पार्षदोंका वर्णन तथा नारदजीके द्वारा व्रजमें अवतीर्ण श्रीकृष्ण और राधाके दर्शन

पार्वती बोलीं—दयानिधे! अब भगवान् श्रीकृष्णके जो पार्षद हैं, उनका वर्णन सुननेकी इच्छा हो रही है; अतः बतलाइये।

महादेवजीने कहा—देवि! भगवान् श्रीकृष्ण श्रीराधाके साथ सुवर्णमय सिंहासनपर विराजमान हैं। उनका रूप और लावण्य वैसा ही है, जैसा कि पहले बताया गया है। वे दिव्य वस्त्र, दिव्य आभूषण और दिव्य हारसे विभूषित हैं। उनकी त्रिभंगी छवि बड़ी मनोहर जान पड़ती है। उनका स्वरूप अत्यन्त स्निग्ध है। वे गोपियोंकी आँखोंके तारे हैं। उपर्युक्त सिंहासनसे पृथक् एक योगपीठ है। वह भी सोनेके सिंहासनसे आवृत है। उसके ऊपर ललिता आदि प्रधान-प्रधान सखियाँ, जो श्रीकृष्णको बहुत ही प्रिय हैं, विराजमान होती हैं। उनका प्रत्येक अंग भगवन्मिलनकी उत्कण्ठा तथा रसावेशसे युक्त होता है। ये ललिता आदि सखियाँ प्रकृतिकी अंशभूता हैं। श्रीराधिका ही इनकी मूलप्रकृति हैं। श्रीराधा और श्रीकृष्ण पश्चिमाभिमुख विराजमान हैं, उनकी पश्चिम दिशामें ललितादेवी विद्यमान हैं, वायव्यकोणमें श्यामला नामवाली सखी हैं। उत्तरमें श्रीमती धन्या हैं। ईशानकोणमें श्रीहरिप्रियाजी विराज रही हैं। पूर्वमें विशाखा, अग्निकोणमें शैव्या, दक्षिणमें पद्मा तथा नैर्ऋत्यकोणमें भद्रा हैं। इसी क्रमसे ये आठों सखियाँ योगपीठपर विराजमान हैं। योगपीठकी कर्णिकामें परमसुन्दरी चन्द्रावलीकी स्थिति है—वे भी श्रीकृष्णकी प्रिया हैं। उपर्युक्त आठ सखियाँ श्रीकृष्णको प्रिय लगनेवाली परमपवित्र आठ प्रधान प्रकृतियाँ हैं। वृन्दावनकी अधीश्वरी श्रीराधा तथा चन्द्रावली दोनों ही भगवान्‌की प्रियतमा हैं। इन दोनोंके आगे चलनेवाली हजारों गोपकन्याएँ हैं, जो गुण, लावण्य और सौन्दर्यमें एक समान हैं। उन सबके नेत्र विस्मयकारी गुणोंसे युक्त हैं। वे बड़ी मनोहर हैं। उनका वेष मनको मुग्ध कर लेनेवाला है। वे सभी किशोर-अवस्था (पंद्रह वर्षकी उम्र)-वाली हैं। उन सबकी कान्ति उज्ज्वल है। वे सब-की-सब श्याममय अमृतरसमें निमग्न रहती हैं। उनके हृदयमें श्रीकृष्णके ही भाव स्फुरित होते हैं। वे अपने कमलवत् नेत्रोंके द्वारा पूजित श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंमें अपना-अपना चित्त समर्पित कर चुकी हैं।

श्रीराधा और चन्द्रावलीके दक्षिण भागमें श्रुति-कन्याएँ रहती हैं [वेदकी श्रुतियाँ ही इन कन्याओंके रूपमें प्रकट हुई हैं] इनकी संख्या सहस्र अयुत (एक करोड़) है। इनकी मनोहर आकृति संसारको मोहित कर लेनेवाली है। इनके हृदयमें केवल श्रीकृष्णकी लालसा है। ये नाना प्रकारके मधुर स्वर और आलाप आदिके द्वारा त्रिभुवनको मुग्ध करनेकी शक्ति रखती हैं तथा प्रेमसे विह्वल होकर श्रीकृष्णके गूढ़ रहस्योंका गान किया करती हैं। इसी प्रकार श्रीराधा आदिके वामभागमें दिव्यवेष-धारिणी देवकन्याएँ रहती हैं, जो रसातिरेकके कारण अत्यन्त उज्ज्वल प्रतीत होती हैं। वे भाँति-भाँतिकी प्रणयचातुरीमें निपुण तथा दिव्य भावसे परिपूर्ण हैं। उनका सौन्दर्य चरम सीमाको पहुँचा हुआ है। वे कटाक्षपूर्ण चितवनके कारण अत्यन्त मनोहर जान पड़ती हैं। उनके मनमें श्रीकृष्णके प्रति तनिक भी संकोच नहीं है; उनके अंगोंका स्पर्श प्राप्त करनेके लिये सदा उत्कण्ठित रहती हैं। उनका हृदय निरन्तर श्रीकृष्णके ही चिन्तनमें मग्न रहता है। वे भगवान्‌की ओर मंद-मंद मुसकाती हुई तिरछी चितवनसे निहारा करती हैं।

तदनन्तर मन्दिरके बाहर गोपगण स्थित होते हैं, वे भगवान्‌के प्रिय सखा हैं, उन सबके वेष, अवस्था, बल, पौरुष, गुण, कर्म तथा वस्त्राभूषण आदि एक समान हैं। वे एक समान स्वरसे गाते हुए वेणु बजाया करते हैं। मन्दिरके पश्चिम द्वारपर श्रीदामा, उत्तरमें वसुदामा, पूर्वमें सुदामा तथा दक्षिण द्वारपर किंकिणीका निवास है। उस स्थानसे पृथक् एक सुवर्णमय मन्दिरके भीतर सुवर्णवेदी

बनी हुई है। उसके ऊपर सोनेके आभूषणोंसे विभूषित सुवर्णपीठ है, जिसके ऊपर अंशुभद्र आदि हजारों ग्वालबाल विराजते हैं। वे सब-के-सब एक समान सींग, वीणा, वेणु, बेंतकी छड़ी, किशोरावस्था, मनोहर वेष, सुन्दर आकार तथा मधुर स्वर धारण करते हैं। वे भगवान्के गुणोंका चिन्तन करते हुए उनका गान करते हैं तथा भगवत्-प्रेममय रससे विह्वल रहते हैं। ध्यानमें स्थिर होनेके कारण वे चित्र-लिखित-से जान पड़ते हैं। उनका रूप आश्चर्यजनक सौन्दर्यसे युक्त होता है। वे सदा आनन्दके आँसू बहाया करते हैं। उनके सम्पूर्ण अंगोंमें रोमांच छाया रहता है तथा वे योगीश्वरोंकी भाँति सदा विस्मयविमुग्ध रहते हैं। अपने थनोंसे दूध बहानेवाली असंख्य गौएँ उन्हें घेरे रहती हैं। वहाँसे बाहरके भागमें एक सोनेकी चहारदीवारी है, जो करोड़ों सूर्योंके समान देदीप्यमान दिखायी देती है। उसके चारों ओर बड़े-बड़े उद्यान हैं, जिनकी मनोहर सुगन्ध सब ओर फैली रहती है।

जो मन और इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए सदा पवित्र भावसे श्रीकृष्णचरित्रका भक्तिपूर्वक पाठ या श्रवण करता है, उसे भगवान् श्रीकृष्णकी प्राप्ति होती है।

पार्वतीजीने पूछा—भगवन्! अत्यन्त मोहक रूप धारण करनेवाले श्रीकृष्णने गोपियोंके साथ किन-किन विशेषताओंके कारण क्रीड़ा की, इस रहस्यका मुझसे वर्णन कीजिये।

महादेवजीने कहा—देवि! एक समयकी बात है, मुनिश्रेष्ठ नारद यह जानकर कि श्रीकृष्णका प्राकट्य हो चुका है, वीणा बजाते हुए नन्दजीके गोकुलमें पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने देखा महायोगमायाके स्वामी सर्वव्यापी भगवान् अच्युत बालकका स्वाँग धारण किये नन्दजीके घरमें कोमल बिछौनोंसे युक्त सोनेके पलंगपर सो रहे हैं और गोपकन्याएँ बड़ी प्रसन्नताके साथ निरन्तर उनकी ओर निहार रही हैं। भगवान्का श्रीविग्रह अत्यन्त सुकुमार था। उनके काले-काले घुँघराले बाल सब ओर बिखरे हुए थे। किंचित्-किंचित् मुसकराहटके कारण उनके दो-एक दाँत दिखायी दे जाते थे। वे अपनी प्रभासे समूचे घरके भीतरी भागमें प्रकाश फैला रहे थे। नग्न शिशुके रूपमें भगवान्की झाँकी करके नारदजीको बड़ा हर्ष हुआ। वे भगवान्के प्रिय भक्त तो थे ही, गोपति नन्दजीसे बातचीत करके सब बातें बताने लगे, 'नन्दरायजी! भगवान्के भक्तोंका जीवन अत्यन्त दुर्लभ होता है। आपके इस बालकका प्रभाव अनुपम है, इसे कोई नहीं जानता। शिव और ब्रह्मा आदि देवता भी इसके प्रति सनातन प्रेम चाहते हैं। इस बालकका चरित्र सबको हर्ष प्रदान करनेवाला होगा। भगवद्भक्त पुरुष इस बालककी लीलाओंका श्रवण, गायन और अभिनन्दन करते हैं। आपके पुत्रका प्रभाव अचिन्त्य है। जिनका इसके प्रति हार्दिक प्रेम होगा, वे संसार-समुद्रसे तर जायँगे। उन्हें इस जगत्की कोई बाधा नहीं सतायेगी; अतः नन्दजी! आप भी इस बालकके प्रति निरन्तर अनन्य भावसे प्रेम कीजिये।'

यों कहकर मुनिश्रेष्ठ नारदजी नन्दके घरसे निकले। नन्दने भी भगवद्बुद्धिसे उनका पूजन किया और प्रणाम करके उन्हें विदा दी। तदनन्तर वे महाभागवत मुनि मन-ही-मन सोचने लगे, 'जब भगवान्का अवतार हो

हो चुका है, तो उनकी परम प्रियतमा भगवती भी अवश्य अवतीर्ण हुई होंगी। वे भगवान्‌की क्रीड़ाके लिये गोपी रूप धारण करके निश्चय ही प्रकट हुई होंगी, इसमें तनिक भी सन्देहकी बात नहीं है; इसलिये अब मैं व्रजवासियोंके घर-घरमें घूमकर उनका पता लगाऊँगा।' ऐसा विचारकर मुनिवर नारदजी व्रजवासियोंके घरोंमें अतिथिरूपसे जाने और उनके द्वारा विष्णु-बुद्धिसे पूजित होने लगे। नन्द-कुमार श्रीकृष्णमें समस्त गोप-गोपियोंका प्रगाढ़ प्रेम देखकर नारदजीने उन्हें मन-ही-मन प्रणाम किया।

तदनन्तर बुद्धिमान् नारदजी किसी श्रेष्ठ गोपके विशाल भवनमें गये। वह नन्दके सखा महात्मा भानुका घर था। वहाँ जानेपर भानुने नारदजीका विधिवत् सत्कार किया। तत्पश्चात् महामना नारदजीने पूछा—'साधो! तुम अपनी धर्मनिष्ठताके लिये इस भूमण्डलपर विख्यात हो, बताओ, क्या तुम्हें कोई योग्य पुत्र अथवा उत्तम लक्षणोंवाली कन्या है?' मुनिके ऐसा कहनेपर भानुने अपने पुत्रको लाकर दिखाया। उसे देखकर नारदजीने कहा—'तुम्हारा यह पुत्र बलराम और श्रीकृष्णका

श्रेष्ठ सखा होगा तथा आलस्यरहित होकर सदा उन दोनोंके साथ विहार करेगा।'

भानुने कहा—मुनिवर! मेरे एक पुत्री भी है, जो इस बालककी छोटी बहिन है, कृपया उसपर भी दृष्टिपात कीजिये।

यह सुनकर नारदजीके मनमें बड़ा कौतूहल हुआ। उन्होंने घरके भीतर प्रवेश करके देखा, भानुकी कन्या धरतीपर लोट रही है। नारदजीने उसे अपनी गोदमें उठा लिया। उस समय उनका चित्त अत्यधिक स्नेहके कारण विह्वल हो रहा था। महामुनि नारद भगवत्प्रेमके साक्षात् स्वरूप हैं। बालरूप श्रीकृष्णको देखकर उनकी जो अवस्था हुई थी, वही इस कन्याको भी देखकर हुई। उनका मन मुग्ध हो गया। वे एकमात्र रसके आश्रयभूत परमानन्दके समुद्रमें डूब गये। चार घड़ीतक नारदजी पत्थरकी भाँति निश्चेष्ट बैठे रहे। उसके बाद उन्हें चेत हुआ। फिर मुनीश्वरने धीरे-धीरे अपने दोनों नेत्र खोले और महान् आश्चर्यमें मग्न होकर वे चुपचाप स्थित हो गये। तत्पश्चात् वे महाबुद्धिमान् महर्षि मन-ही-मन इस प्रकार सोचने लगे—'मैं सदा स्वच्छन्द विचरनेवाला हूँ, मैंने सभी लोकोंमें भ्रमण किया है, परन्तु रूपमें इस बालिकाकी समानता करनेवाली स्त्री कहीं नहीं देखी है। महामायास्वरूपिणी गिरिराज-कुमारी भगवती उमाको भी देखा है, किन्तु वे भी इस बालिकाकी शोभाको कदापि नहीं पा सकतीं। लक्ष्मी, सरस्वती, कान्ति तथा विद्या आदि सुन्दरी स्त्रियाँ तो कभी इसके सौन्दर्यकी छायाका भी स्पर्श करती नहीं दिखायी देतीं; अतः मुझमें इसके तत्त्वको समझनेकी किसी प्रकार शक्ति नहीं है। यह भगवान्‌की प्रियतमा है, इसे प्रायः दूसरे लोग भी नहीं जानते। इसके दर्शनमात्रसे ही श्रीकृष्णके चरणकमलोंमें मेरे प्रेमकी जैसी वृद्धि हुई है, वैसी आजके पहले कभी भी नहीं हुई थी; अतः अब मैं एकान्तमें इस देवीकी स्तुति करूँगा। इसका रूप श्रीकृष्णको अत्यन्त आनन्द प्रदान करनेवाला होगा।'

ऐसा विचारकर मुनिने गोप-प्रवर भानुको कहीं भेज दिया और स्वयं एकान्तमें उस दिव्य रूपधारिणी

बालिकाकी स्तुति करने लगे—'देवि! तुम महायोगमयी

हो, मायाकी अधीश्वरी हो। तुम्हारा तेज:पुंज महान् है। तुम्हारे दिव्यांग मनको अत्यन्त मोहित करनेवाले हैं। तुम महान् माधुर्यकी वर्षा करनेवाली हो। तुम्हारा हृदय अत्यन्त अद्‍भुत रसानुभूति-जनित आनन्दसे शिथिल रहता है। मेरा कोई महान् सौभाग्य था, जिससे तुम मेरे नेत्रोंके समक्ष प्रकट हुई हो। देवि! तुम्हारी दृष्टि सदा आन्तरिक सुखमें निमग्न दिखायी देती है। तुम भीतर-ही-भीतर किसी महान् आनन्दसे परितृप्त जान पड़ती हो। तुम्हारा यह प्रसन्न, मधुर एवं शान्त मुखमण्डल तुम्हारे अन्त:करणमें किसी परम आश्चर्यमय आनन्दके उद्रेककी सूचना दे रहा है। सृष्टि, स्थिति और संहार—तुम्हारे ही स्वरूप हैं, तुम्हीं इनका अधिष्ठान हो। तुम्हीं विशुद्ध सत्त्वमयी हो तथा तुम्हीं पराविद्यारूपिणी उत्तम शक्ति हो। तुम्हारा वैभव आश्चर्यमय है। ब्रह्मा और रुद्र आदिके लिये भी तुम्हारे तत्त्वका बोध होना कठिन है। बड़े-बड़े योगीश्वरोंके ध्यानमें भी तुम कभी नहीं आतीं। तुम्हीं सबकी अधीश्वरी हो। इच्छा-शक्ति, ज्ञान-शक्ति और क्रिया-शक्ति—ये सब तुम्हारे अंशमात्र हैं। ऐसी ही मेरी धारणा है—मेरी बुद्धिमें यही बात आती है। मायासे बालकरूप धारण करनेवाले परमेश्वर महाविष्णुकी जो मायामयी अचिन्त्य विभूतियाँ हैं, वे सब तुम्हारी अंशभूता हैं। तुम आनन्दरूपिणी शक्ति और सबकी ईश्वरी हो; इसमें तनिक भी संदेहकी बात नहीं है। निश्चय ही भगवान् श्रीकृष्ण वृन्दावनमें तुम्हारे ही साथ क्रीडा करते हैं। कुमारावस्थामें भी तुम अपने रूपसे विश्वको मोहित करनेकी शक्ति रखती हो। तुम्हारा जो स्वरूप भगवान् श्रीकृष्णको परम प्रिय है, मैं उसका दर्शन करना चाहता हूँ। महेश्वरि! मैं तुम्हारी शरणमें आया हूँ, चरणोंमें पड़ा हूँ; मुझपर दया करके इस समय अपना वह मनोहर रूप प्रकट करो, जिसे देखकर नन्द-नन्दन श्रीकृष्ण भी मोहित हो जायँगे।'

यों कहकर देवर्षि नारदजी श्रीकृष्णका ध्यान करते हुए इस प्रकार उनके गुणोंका गान करने लगे—'भक्तोंके चित्त चुरानेवाले श्रीकृष्ण! तुम्हारी जय हो, वृन्दावनके प्रेमी गोविन्द! तुम्हारी जय हो। बाँकी भौंहोंके कारण अत्यन्त सुन्दर, वंशी बजानेमें व्यग्र, मोरपंखका मुकुट धारण करनेवाले गोपीमोहन! तुम्हारी जय हो, जय हो। अपने श्रीअंगोंमें कुंकुम लगाकर रत्नमय आभूषण धारण करनेवाले नन्दनन्दन! तुम्हारी जय हो, जय हो। अपने किशोरस्वरूपसे प्रेमीजनोंका मन मोहनेवाले जगदीश्वर! वह दिन कब आयेगा, जब कि मैं तुम्हारी ही कृपासे तुम्हें अभिनव तरुणावस्थाके कारण अंग-अंगमें मनोहरण शोभा धारण करनेवाली इस दिव्यरूपा बालिकाके साथ देखूँगा।'

नारदजी जब इस प्रकार कीर्तन कर रहे थे, उसी समय वह बालिका क्षणभरमें अत्यन्त मनोहर दिव्यरूप धारण करके पुन: उनके सामने प्रकट हुई। वह रूप चौदह वर्षकी अवस्थाके अनुरूप और सौन्दर्यकी चरम सीमाको पहुँचा हुआ था। तत्काल ही उसीके समान अवस्थावाली दूसरी व्रज-बालाएँ भी दिव्य वस्त्र, आभूषण और मालाओंसे सुसज्जित हो वहाँ आ पहुँचीं तथा भानुकुमारीको सब ओरसे घेरकर खड़ी हो गयीं। मुनीश्वर नारदजीकी स्तवन-शक्तिने जवाब दे दिया। वे

आश्चर्यसे मोहित हो गये, तब उन व्रज-बालाओंने कृपापूर्वक अपनी सखीका चरणोदक लेकर मुनिके ऊपर छींटा दिया। इस प्रकार जब वे होशमें आये तो बालिकाओंने कहा—मुनिश्रेष्ठ! तुम बड़े भाग्यशाली हो, महान् योगेश्वरोंके भी ईश्वर हो। तुम्हींने पराभक्तिके साथ सर्वेश्वर भगवान् श्रीहरिकी आराधना की है। भक्तोंकी इच्छा पूर्ण करनेवाले भगवान्की उपासना वास्तवमें तुम्हारे ही द्वारा हुई है। यही कारण है कि ब्रह्मा और रुद्र आदि देवता, सिद्ध, मुनीश्वर तथा अन्य भगवद्भक्तोंके लिये भी जिसे देखना और जानना कठिन है, वही अपनी अद्‌भुत अवस्था और रूपसे सबको मोहित करनेवाली यह श्रीकृष्णकी प्रियतमा हमारी सखी आज तुम्हारे समक्ष प्रकट हुई है। निश्चय ही यह तुम्हारे किसी अचिन्त्य सौभाग्यका प्रभाव है। ब्रह्मर्षे! धैर्य धारण करके शीघ्र ही उठो, खड़े हो जाओ और इस देवीकी प्रदक्षिणा करो; इसके चरणोंमें बारम्बार मस्तक झुका लो। फिर समय नहीं मिलेगा, यह अभी इसी क्षण अन्तर्धान हो जायगी। अब इसके साथ तुम्हारी बातचीत किसी तरह नहीं हो सकेगी।'

व्रज-बालाओंका चित्त स्नेहसे विह्वल हो रहा था। उनकी बातें सुनकर नारदजी नाना प्रकारके वेष-विन्याससे शोभा पानेवाली उस दिव्य बालाके चरणोंमें दो मुहूर्ततक पड़े रहे। तदनन्तर उन्होंने भानुको बुलाकर उस सर्वशोभा-सम्पन्न कन्याके सम्बन्धमें इस प्रकार कहा—'गोपश्रेष्ठ! तुम्हारी इस कन्याका स्वरूप और स्वभाव दिव्य है। देवता भी इसे अपने वशमें नहीं कर सकते। जो घर इसके चरण-चिह्नोंसे विभूषित होगा, वहाँ भगवान् नारायण सम्पूर्ण देवताओंके साथ निवास करेंगे और भगवती लक्ष्मी भी सब प्रकारकी सिद्धियोंके साथ वहाँ मौजूद रहेंगी। अब तुम सम्पूर्ण आभूषणोंसे विभूषित इस सुन्दरी कन्याको परा देवीकी भाँति समझकर इसकी अपने घरमें यत्नपूर्वक रक्षा करो।'

ऐसा कहकर भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ नारदजीने मन-ही-मन उस देवीको प्रणाम किया और उसीके स्वरूपका चिन्तन करते हुए वे गहन वनके भीतर चले गये।

भगवान्के परात्पर स्वरूप—श्रीकृष्णकी महिमा तथा मथुराके माहात्म्यका वर्णन

श्रीमहादेवजीने कहा—देवि! महर्षि वेदव्यासने विष्णुभक्त महाराज अम्बरीषसे जिस रहस्यका वर्णन किया था, वही मैं तुम्हें भी बतला रहा हूँ। एक समयकी बात है, राजा अम्बरीष बदरिकाश्रममें गये। वहाँ परम जितेन्द्रिय महर्षि वेदव्यास विराजमान थे। राजाने विष्णु-धर्मको जाननेकी इच्छासे महर्षिको प्रणाम करके उनका स्तवन करते हुए कहा—भगवन्! आप विषयोंसे विरक्त हैं। मैं आपको बारम्बार नमस्कार करता हूँ। प्रभो! जो परमपद, उद्वेगशून्य—शान्त है, जो सच्चिदानन्द-स्वरूप और परब्रह्मके नामसे प्रसिद्ध है, जिसे 'परम आकाश' कहा गया है, जो इस भौतिक जड आकाशसे सर्वथा विलक्षण है, जहाँ किसी रोग-व्याधिका प्रवेश

नहीं है तथा जिसका साक्षात्कार करके मुनिगण भवसागरसे पार हो जाते हैं, उस अव्यक्त परमात्मामें मेरे मनकी नित्य स्थिति कैसे हो?'
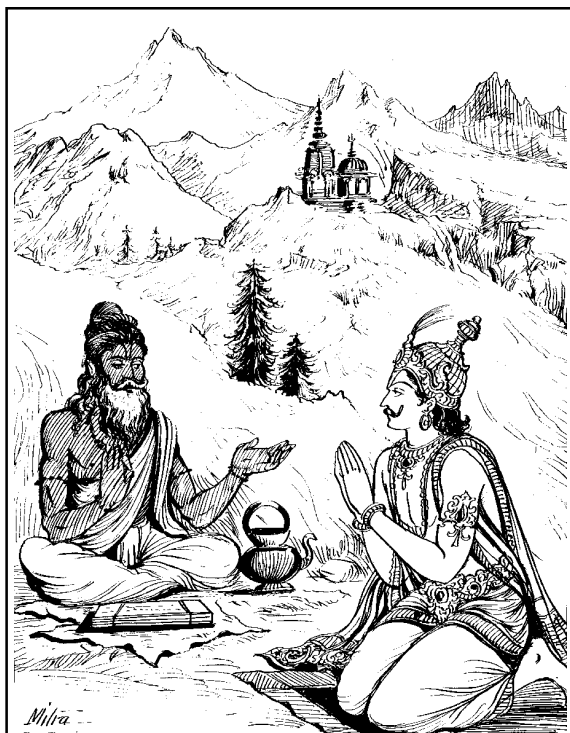
वेदव्यासजी बोले—राजन्! तुमने अत्यन्त गोपनीय प्रश्न किया है, जिस आत्मानन्दके विषयमें मैंने अपने पुत्र शुकदेवको भी कुछ नहीं बतलाया था, वही आज तुमको बता रहा हूँ; क्योंकि तुम भगवान्के प्रिय भक्त हो। पूर्वकालमें यह सारा विश्व-ब्रह्माण्ड जिसके रूपमें स्थित रहकर अव्यक्त और अविकारी स्वरूपसे प्रतिष्ठित था, उसी परमेश्वरके रहस्यका वर्णन किया जाता है, सुनो—प्राचीन समयमें मैंने फल, मूल, पत्र, जल, वायुका आहार करके कई हजार वर्षोंतक भारी तपस्या की। इससे भगवान् मुझपर बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने अपने ध्यानमें लगे रहनेवाले मुझ भक्तसे कहा—'महामते! तुम कौन-सा कार्य करना अथवा किस विषयको जानना चाहते हो? मैं प्रसन्न हूँ, तुम मुझसे कोई वर माँगो। संसारका बन्धन तभीतक रहता है, जबतक कि मेरा साक्षात्कार नहीं हो जाता; यह मैं तुमसे सच्ची बात बता रहा हूँ।' यह सुनकर मेरे शरीरमें रोमांच हो आया; मैंने श्रीकृष्णसे कहा—'मधुसूदन! मैं आपहीके तत्त्वका यथार्थरूपसे साक्षात्कार करना चाहता हूँ। नाथ! जो इस जगत्का पालक और प्रकाशक है; उपनिषदोंमें जिसे सत्यस्वरूप परब्रह्म बतलाया गया है; आपका वही अद्भुत रूप मेरे समक्ष प्रकट हो—यही मेरी प्रार्थना है।'

श्रीभगवान्ने कहा—महर्षे! [मेरे विषयमें लोगोंकी भिन्न-भिन्न धारणाएँ हैं] कोई मुझे 'प्रकृति' कहते हैं, कोई पुरुष। कोई ईश्वर मानते हैं, कोई धर्म। किन्हीं-किन्हींके मतमें मैं सर्वथा भयरहित मोक्षस्वरूप हूँ। कोई भाव (सत्तास्वरूप) मानते हैं और कोई-कोई कल्याणमय सदाशिव बतलाते हैं। इसी प्रकार दूसरे लोग मुझे वेदान्तप्रतिपादित अद्वितीय सनातन ब्रह्म मानते हैं। किन्तु वास्तवमें जो सत्तास्वरूप और निर्विकार है, सत्-चित् और आनन्द ही जिसका विग्रह है तथा वेदोंमें जिसका रहस्य छिपा हुआ है, अपना वह पारमार्थिक स्वरूप आज तुम्हारे सामने प्रकट करता हूँ, देखो।

राजन्! भगवान्के इतना कहते ही मुझे एक बालकका दर्शन हुआ, जिसके शरीरकी कान्ति नील
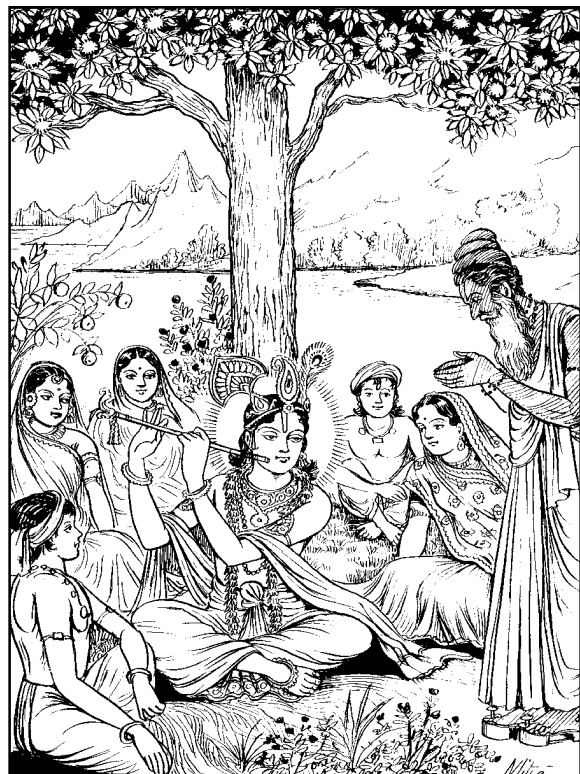
मेघके समान श्याम थी। वह गोपकन्याओं और ग्वाल-बालोंसे घिरकर हँस रहा था। वे भगवान् श्यामसुन्दर थे, जो पीत वस्त्र धारण किये कदम्बकी जड़पर बैठे हुए थे। उनकी झाँकी अद्भुत थी। उनके साथ ही नूतन पल्लवोंसे अलंकृत 'वृन्दावन' नामवाला वन भी दृष्टिगोचर हुआ। इसके बाद मैंने नील कमलकी आभा धारण करनेवाली कलिन्दकन्या यमुनाके दर्शन किये। फिर गोवर्धनपर्वतपर दृष्टि पड़ी, जिसे श्रीकृष्ण तथा बलरामने इन्द्रका घमंड चूर्ण करनेके लिये अपने हाथोंपर उठाया था। वह पर्वत गौओं तथा गोपोंको बहुत सुख देनेवाला है। गोपाल श्रीकृष्ण अबलाओंके साथ बैठकर बड़ी प्रसन्नताके साथ वेणु बजा रहे थे, उनके शरीरपर सब प्रकारके आभूषण शोभा पा रहे थे। उनका दर्शन करके मुझे बड़ा हर्ष हुआ। तब वृन्दावनमें विचरनेवाले भगवान्ने स्वयं मुझसे कहा—'मुने! तुमने जो इस दिव्य सनातनरूपका दर्शन किया है, यही मेरा निष्कल, निष्क्रिय, शान्त और सच्चिदानन्दमय पूर्ण विग्रह है। इस कमललोचनस्वरूपसे बढ़कर दूसरा कोई उत्कृष्ट तत्त्व नहीं है। वेद इसी स्वरूपका वर्णन करते हैं। यही कारणोंका भी कारण है। यही सत्य, परमानन्दस्वरूप, चिदानन्दघन, सनातन और शिवतत्त्व है। तुम मेरी इस मथुरापुरीको नित्य समझो। यह वृन्दावन, यह यमुना, ये गोपकन्याएँ तथा ग्वाल-बाल सभी नित्य हैं। यहाँ जो मेरा अवतार हुआ है, यह भी नित्य है। इसमें संशय न करना। राधा मेरी सदाकी प्रियतमा हैं। मैं सर्वज्ञ, परात्पर, सर्वकाम, सर्वेश्वर तथा सर्वानन्दमय परमेश्वर हूँ। मुझमें ही यह सारा विश्व, जो मायाका विलासमात्र है, प्रतीत हो रहा है।'

तब मैंने जगत्के कारणोंके भी कारण भगवान्से कहा—'नाथ! ये गोपियाँ और ग्वाल कौन हैं? तथा यह वृक्ष कैसा है?' तब वे बड़े प्रेमसे बोले—'मुने! गोपियोंको श्रुतियाँ समझो तथा देवकन्याएँ भी इनके रूपमें प्रकट हुई हैं। तपस्यामें लगे हुए मुमुक्षु मुनि ही इन ग्वाल-बालोंके रूपमें दिखायी दे रहे हैं। ये सभी मेरे आनन्दमय विग्रह हैं। यह कदम्ब कल्पवृक्ष है, जो परमानन्दमय श्रीकृष्णका एकमात्र आश्रय बना हुआ है तथा यह पर्वत भी अनादिकालसे मेरा भक्त है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। अहो! कितने आश्चर्यकी बात है कि दूषित चित्तवाले मनुष्य मेरी इस उत्कृष्ट, सनातन एवं मनोरम पुरीको, जिसकी देवराज इन्द्र, नागराज अनन्त तथा बड़े-बड़े मुनीश्वर भी स्तुति करते हैं, नहीं जानते। यद्यपि काशी आदि अनेकों मोक्षदायिनी पुरियाँ विद्यमान हैं, तथापि उन सबमें मथुरापुरी ही धन्य है; क्योंकि यह अपने क्षेत्रमें जन्म, उपनयन, मृत्यु और दाह-संस्कार—इन चारों ही कारणोंसे मनुष्योंको मोक्ष प्रदान करती है। जब तप आदि साधनोंके द्वारा मनुष्योंके अन्तःकरण शुद्ध एवं शुभसंकल्पसे युक्त हो जाते हैं और वे निरन्तर ध्यानरूपी धनका संग्रह करने लगते हैं, तभी उन्हें मथुराकी प्राप्ति होती है। मथुरावासी धन्य हैं, वे देवताओंके भी माननीय हैं, उनकी महिमाकी गणना नहीं हो सकती। मथुरावासियोंके जो दोष हैं; वे नष्ट हो जाते हैं; उनमें जन्म लेने और मरनेका दोष नहीं देखा जाता। जो निरन्तर मथुरापुरीका चिन्तन करते हैं, वे निर्धन होनेपर भी धन्य हैं; क्योंकि मथुरामें भगवान् भूतेश्वरका निवास है, जो पापियोंको भी मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। देवताओंमें श्रेष्ठ भगवान् भूतेश्वर मुझको सदा ही प्रिय हैं; क्योंकि वे मेरी प्रसन्नताके लिये कभी भी मथुरापुरीका परित्याग नहीं करते। जो भगवान् भूतेश्वरको नमस्कार, उनका पूजन अथवा स्मरण नहीं करता, वह मनुष्य दुराचारी है। जो मेरे परम भक्त शिवका पूजन नहीं करता, उस पापीको किसी तरह मेरी भक्ति नहीं प्राप्त होती। ध्रुवने बालक होनेपर भी जहाँ मेरी आराधना करके उस परम विशुद्ध स्थानको प्राप्त किया, जो उसके बाप-दादोंको भी नहीं नसीब हुआ था; वह मेरी मथुरापुरी देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। वहाँ जाकर मनुष्य यदि लँगड़ा या अंधा होकर भी प्राणोंका परित्याग करे तो उसकी भी मुक्ति हो जाती है। महामना वेदव्यास! तुम इस विषयमें कभी सन्देह न करना। यह उपनिषदोंका रहस्य है, जिसे मैंने तुम्हारे सामने प्रकाशित किया है।'

जो मनुष्य पवित्र होकर भगवान्के श्रीमुखसे कहे हुए इस अध्यायका भक्तिपूर्वक पाठ या श्रवण करता है, उसे भी सनातन मोक्षकी प्राप्ति होती है।

भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा व्रज तथा द्वारकामें निवास करनेवालोंकी मुक्ति, वैष्णवोंकी द्वादश शुद्धि, पाँच प्रकारकी पूजा, शालग्रामके स्वरूप और महिमाका वर्णन, तिलककी विधि, अपराध और उनसे छूटनेके उपाय, हविष्यान्न और तुलसीकी महिमा

महादेवजी कहते हैं—देवि! एक समयकी बात है, भगवान् श्रीकृष्ण द्वारकासे मथुरामें आये और वहाँसे यमुना पार करके नन्दके व्रजमें गये। वहाँ उन्होंने अपने पिता नन्दजी तथा यशोदा मैयाको प्रणाम करके उन्हें भलीभाँति सान्त्वना दी, फिर पिता-माताने भी उन्हें छातीसे लगाया। इसके बाद वे बड़े-बूढ़े गोपोंसे मिले। उन सबको आश्वासन दिया तथा बहुत-से वस्त्र और आभूषण आदि भेंटमें देकर वहाँ रहनेवाले सब लोगोंको सन्तुष्ट किया।

तत्पश्चात् पावन वृक्षोंसे भरे हुए यमुनाके रमणीय तटपर गोपांगनाओंके साथ श्रीकृष्णने तीन राततक वहाँ सुखपूर्वक निवास किया। उस समय उस स्थानपर अपने पुत्रों और स्त्रियोंसहित नन्दगोप आदि सब लोग, यहाँतक कि पशु, पक्षी और मृग आदि भी भगवान् वासुदेवकी कृपासे दिव्य रूप धारण कर विमानपर आरूढ़ हुए और परम धाम—वैकुण्ठलोकको चले गये। इस प्रकार नन्दके व्रजमें निवास करनेवाले सब लोगोंको अपना निरामय पद प्रदान करके भगवान् श्रीकृष्ण देवियों और देवताओंके मुखसे अपनी स्तुति सुनते हुए शोभा-सम्पन्न द्वारकापुरीमें आये।

वहाँ वसुदेव, उग्रसेन, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और अक्रूर आदि यादव प्रतिदिन उनकी पूजा करते थे तथा वे विश्वरूपधारी भगवान् दिव्य रत्नोंद्वारा बने लतागृहोंमें पारिजात-पुष्प बिछाये हुए मृदुल पलंगोंपर शयन करके अपनी सोलह हजार आठ रानियोंके साथ विहार किया करते थे। इस प्रकार सम्पूर्ण देवताओंका हित और समस्त भूभारका नाश करनेके लिये भगवान् यदुवंशमें अवतीर्ण हुए थे। उन्होंने सभी राक्षसोंका संहार करके पृथ्वीके महान् भारको दूर किया तथा नन्दके व्रज और द्वारकापुरीमें निवास करनेवाले समस्त चराचर प्राणियोंको भवबन्धनसे मुक्त करके उन्हें योगियोंके ध्येयभूत परम सनातन धाममें स्थापित कर दिया। तदनन्तर वे स्वयं भी अपने परम धामको पधारे।

पार्वतीने कहा—भगवन्! वैष्णवोंका जो यथार्थ धर्म है, जिसका अनुष्ठान करके सब मनुष्य भवसागरसे पार हो जाते हैं, उसका मुझसे वर्णन कीजिये।

महादेवजीने कहा—देवि! प्रथम वैष्णवोंकी द्वादश* प्रकारकी शुद्धि बतायी जाती है। भगवान्के मन्दिरको लीपना, भगवान्की प्रतिमाके पीछे-पीछे जाना तथा भक्तिपूर्वक उनकी प्रदक्षिणा करना—ये तीन कर्म चरणोंकी शुद्धि करनेवाले हैं। भगवान्की पूजाके लिये भक्तिभावके साथ पत्र और पुष्पोंका संग्रह करना—यह हाथोंकी शुद्धिका उपाय है। यह शुद्धि सब प्रकारकी शुद्धियोंसे बढ़कर है। भक्तिपूर्वक भगवान् श्रीकृष्णके नाम और गुणोंका कीर्तन वाणीकी शुद्धिका उपाय बताया गया है। उनकी कथाका श्रवण और उत्सवका दर्शन—ये दो कार्य क्रमशः कानों और नेत्रोंकी शुद्धि करनेवाले कहे गये हैं। मस्तकपर भगवान्का चरणोदक, निर्माल्य तथा माला धारण करना—ये भगवान्के चरणोंमें पड़े हुए पुरुषके लिये सिरकी शुद्धिके साधन हैं। भगवान्के निर्माल्यभूत पुष्प आदिको सूँघना अन्तःशुद्धि तथा घ्राणशुद्धिका उपाय माना गया है। श्रीकृष्णके युगल चरणोंपर चढ़ा हुआ पत्र-पुष्प आदि संसारमें एकमात्र पावन है, वह सभी अंगोंको शुद्ध कर देता है।

भगवान्की पूजा पाँच प्रकारकी बतायी गयी है; उन पाँचों भेदोंको सुनो—अभिगमन, उपादान, योग, स्वाध्याय और इज्या—ये ही पूजाके पाँच प्रकार हैं; अब तुम्हें इनका क्रमशः परिचय दे रहा हूँ। देवताके स्थानको

* दो पैर, दो हाथ, दो कान, दो नेत्र, दो नासिका, एक मस्तक और एक अन्तःकरण—इन बारह अंगोंकी शुद्धि ही द्वादश शुद्धि है।

झाड़-बुहारकर साफ करना, उसे लीपना तथा पहलेके चढ़े हुए निर्माल्यको दूर हटाना—'अभिगमन' कहलाता है। पूजाके लिये चन्दन और पुष्पादिके संग्रहका नाम 'उपादान' है। अपने साथ अपने इष्टदेवकी आत्मभावना करना अर्थात् मेरा इष्टदेव मुझसे भिन्न नहीं है, वह मेरा ही आत्मा है; इस तरहकी भावनाको दृढ़ करना 'योग' कहा गया है। इष्टदेवके मन्त्रका अर्थानुसन्धानपूर्वक जप करना 'स्वाध्याय' है। सूक्त और स्तोत्र आदिका पाठ, भगवान्‌का कीर्तन तथा भगवत्तत्त्व आदिका प्रतिपादन करनेवाले शास्त्रोंका अभ्यास भी 'स्वाध्याय' कहलाता है। अपने आराध्यदेवकी यथार्थ विधिसे पूजा करनेका नाम 'इज्या' है। सुव्रते! यह पाँच प्रकारकी पूजा मैंने तुम्हें बतायी। यह क्रमशः सार्ष्टि, सामीप्य, सालोक्य, सायुज्य और सारूप्य नामक मुक्ति प्रदान करनेवाली है।

अब प्रसंगवश शालग्राम-शिलाकी पूजाके सम्बन्धमें कुछ निवेदन करूँगा। चार भुजाधारी भगवान् विष्णुके दाहिनी एवं ऊर्ध्वभुजाके क्रमसे अस्त्रविशेष ग्रहण करनेपर केशव आदि नाम होते हैं अर्थात् दाहिनी ओरका ऊपरका हाथ, दाहिनी ओरका नीचेका हाथ, बायीं ओरका ऊपरका हाथ और बायीं ओरका नीचेका हाथ—इस क्रमसे चारों हाथोंमें शंख, चक्र आदि आयुधोंको क्रम या व्यतिक्रमपूर्वक धारण करनेपर भगवान्‌की भिन्न-भिन्न संज्ञाएँ होती हैं। उन्हीं संज्ञाओंका निर्देश करते हुए यहाँ भगवान्‌का पूजन बतलाया जाता है। उपर्युक्त क्रमसे चारों हाथोंमें शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण करनेवाले विष्णुका नाम 'केशव' है। पद्म, गदा, चक्र और शंखके क्रमसे शस्त्र धारण करनेपर उन्हें 'नारायण' कहते हैं। क्रमशः चक्र, शंख, पद्म और गदा ग्रहण करनेसे वे 'माधव' कहलाते हैं। गदा, पद्म, शंख और चक्र—इस क्रमसे आयुध धारण करनेवाले भगवान्‌का नाम 'गोविन्द' है। पद्म, शंख, चक्र और गदाधारी विष्णुरूप भगवान्‌को प्रणाम है। शंख, पद्म, गदा और चक्र धारण करनेवाले मधुसूदन-विग्रहको नमस्कार है। गदा, चक्र, शंख और पद्मसे युक्त त्रिविक्रमको तथा चक्र, गदा, पद्म और शंखधारी वामनमूर्तिको प्रणाम है। चक्र, पद्म, शंख और गदा धारण करनेवाले श्रीधररूपको नमस्कार है। चक्र, गदा, शंख तथा पद्मधारी हृषीकेश! आपको प्रणाम है। पद्म, शंख, गदा और चक्र ग्रहण करनेवाले पद्मनाभविग्रहको नमस्कार है। शंख, गदा, चक्र और पद्मधारी दामोदर! आपको मेरा प्रणाम है। शंख, कमल, चक्र तथा गदा धारण करनेवाले संकर्षणको नमस्कार है। चक्र, शंख गदा तथा पद्मसे युक्त भगवान् वासुदेव! आपको प्रणाम है। शंख, चक्र, गदा और कमल आदिके द्वारा प्रद्युम्नमूर्ति धारण करनेवाले भगवान्‌को नमस्कार है। गदा, शंख, कमल तथा चक्रधारी अनिरुद्धको प्रणाम है। पद्म, शंख, गदा और चक्रसे चिह्नित पुरुषोत्तमरूपको नमस्कार है। गदा, शंख, चक्र और पद्म ग्रहण करनेवाले अधोक्षजको प्रणाम है। पद्म, गदा, शंख और चक्र धारण करनेवाले नृसिंह-भगवान्‌को नमस्कार है। पद्म, चक्र, शंख और गदा लेनेवाले अच्युतस्वरूपको प्रणाम है। गदा, पद्म, चक्र और शंखधारी श्रीकृष्णविग्रहको नमस्कार है।

जिस शालग्राम-शिलामें द्वार-स्थानपर परस्पर सटे हुए दो चक्र हों, जो शुक्लवर्णकी रेखासे अंकित और शोभासम्पन्न दिखायी देती हों, उसे भगवान् श्रीगदाधरका स्वरूप समझना चाहिये। संकर्षणमूर्तिमें दो सटे हुए चक्र होते हैं, लाल रेखा होती है और उसका पूर्वभाग कुछ मोटा होता है। प्रद्युम्नके स्वरूपमें कुछ-कुछ पीलापन होता है और उसमें चक्रका चिह्न सूक्ष्म रहता है। अनिरुद्धकी मूर्ति गोल होती है और उसके भीतरी भागमें गहरा एवं चौड़ा छेद होता है; इसके सिवा, वह द्वारभागमें नीलवर्ण और तीन रेखाओंसे युक्त भी होती है। भगवान् नारायण श्यामवर्णके होते हैं, उनके मध्यभागमें गदाके आकारकी रेखा होती है और उनका नाभि-कमल बहुत ऊँचा होता है। भगवान् नृसिंहकी मूर्तिमें चक्रका स्थूल चिह्न रहता है, उनका वर्ण कपिल होता है तथा वे तीन या पाँच विन्दुओंसे युक्त होते हैं। ब्रह्मचारीके लिये उन्हींका पूजन विहित है। वे भक्तोंकी रक्षा करनेवाले हैं। जिस शालग्राम-शिलामें दो चक्रके

चिह्न विषमभावसे स्थित हों, तीन लिंग हों तथा तीन रेखाएँ दिखायी देती हों; वह वाराहभगवान्का स्वरूप है, उसका वर्ण नील तथा आकार स्थूल होता है। भगवान् वाराह भी सबकी रक्षा करनेवाले हैं। कच्छपकी मूर्ति श्यामवर्णकी होती है। उसका आकार पानीकी भँवरके समान गोल होता है। उसमें यत्र-तत्र विन्दुओंके चिह्न देखे जाते हैं तथा उसका पृष्ठभाग श्वेत रंगका होता है। श्रीधरकी मूर्तिमें पाँच रेखाएँ होती हैं, वनमालीके स्वरूपमें गदाका चिह्न होता है। गोल आकृति, मध्यभागमें चक्रका चिह्न तथा नीलवर्ण, यह वामनमूर्तिकी पहचान है। जिसमें नाना प्रकारकी अनेकों मूर्तियों तथा सर्प-शरीरके चिह्न होते हैं, वह भगवान् अनन्तकी प्रतिमा है। दामोदरकी मूर्ति स्थूलकाय एवं नीलवर्णकी होती है। उसके मध्यभागमें चक्रका चिह्न होता है। भगवान् दामोदर नील चिह्नसे युक्त होकर संकर्षणके द्वारा जगत्की रक्षा करते हैं। जिसका वर्ण लाल है, तथा जो लम्बी-लम्बी रेखा, छिद्र, एक चक्र और कमल आदिसे युक्त एवं स्थूल है, उस शालग्रामको ब्रह्माकी मूर्ति समझनी चाहिये। जिसमें बृहत् छिद्र, स्थूल चक्रका चिह्न और कृष्ण वर्ण हो, वह श्रीकृष्णका स्वरूप है। वह विन्दुयुक्त और विन्दुशून्य दोनों ही प्रकारका देखा जाता है। हयग्रीव मूर्ति अंकुशके समान आकारवाली और पाँच रेखाओंसे युक्त होती है। भगवान् वैकुण्ठ कौस्तुभमणि धारण किये रहते हैं। उनकी मूर्ति बड़ी निर्मल दिखायी देती है। वह एक चक्रसे चिह्नित और श्याम वर्णकी होती है। मत्स्य भगवान्की मूर्ति बृहत् कमलके आकारकी होती है। उसका रंग श्वेत होता है तथा उसमें हारकी रेखा देखी जाती है। जिस शालग्रामका वर्ण श्याम हो, जिसके दक्षिण भागमें एक रेखा दिखायी देती हो तथा जो तीन चक्रोंके चिह्नसे युक्त हो, वह भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका स्वरूप है, वे भगवान् सबकी रक्षा करनेवाले हैं। द्वारकापुरीमें स्थित शालग्रामस्वरूप भगवान् गदाधरको नमस्कार है, उनका दर्शन बड़ा ही उत्तम है। वे भगवान् गदाधर एक चक्रसे चिह्नित देखे जाते हैं। लक्ष्मीनारायण दो चक्रोंसे, त्रिविक्रम तीनसे, चतुर्व्यूह चारसे, वासुदेव पाँचसे, प्रद्युम्न छ:से, संकर्षण सातसे, पुरुषोत्तम आठसे, नवव्यूह नवसे, दशावतार दससे, अनिरुद्ध ग्यारहसे और द्वादशात्मा बारह चक्रोंसे युक्त होकर जगत्की रक्षा करते हैं। इससे अधिक चक्र-चिह्न धारण करनेवाले भगवान्का नाम अनन्त है। दण्ड, कमण्डलु और अक्षमाला धारण करनेवाले चतुर्मुख ब्रह्मा तथा पाँच मुख और दस भुजाओंसे सुशोभित वृषध्वज महादेवजी अपने आयुधोंसहित शालग्राम-शिलामें स्थित रहते हैं। गौरी, चण्डी, सरस्वती और महालक्ष्मी आदि माताएँ, हाथमें कमल धारण करनेवाले सूर्यदेव, हाथीके समान कंधेवाले गजानन गणेश, छः मुखोंवाले स्वामी कार्तिकेय तथा और भी बहुत-से देवगण शालग्राम-प्रतिमामें मौजूद रहते हैं, अतः मन्दिरमें शालग्राम-शिलाकी स्थापना अथवा पूजा करनेपर ये उपर्युक्त देवता भी स्थापित और पूजित होते हैं। जो पुरुष ऐसा करता है, उसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष आदिकी प्राप्ति होती है।

गण्डकी अर्थात् नारायणी नदीके एक प्रदेशमें शालग्रामस्थल नामका एक महत्त्वपूर्ण स्थान है; वहाँसे निकलनेवाले पत्थरको शालग्राम कहते हैं। शालग्राम-शिलाके स्पर्शमात्रसे करोड़ों जन्मोंके पापका नाश हो जाता है। फिर यदि उसका पूजन किया जाय, तब तो उसके फलके विषयमें कहना ही क्या है; वह भगवान्के समीप पहुँचानेवाला है। बहुत जन्मोंके पुण्यसे यदि कभी गोष्पदके चिह्नसे युक्त श्रीकृष्ण-शिला प्राप्त हो जाय तो उसीके पूजनसे मनुष्यके पुनर्जन्मकी समाप्ति हो जाती है। पहले शालग्राम-शिलाकी परीक्षा करनी चाहिये; यदि वह काली और चिकनी हो तो उत्तम है। यदि उसकी कालिमा कुछ कम हो तो वह मध्यम श्रेणीकी मानी गयी है और यदि उसमें दूसरे किसी रंगका सम्मिश्रण हो तो वह मिश्रित फल प्रदान करनेवाली होती है। जैसे सदा काठके भीतर छिपी हुई आग मन्थन करनेसे प्रकट होती है, उसी प्रकार भगवान् विष्णु सर्वत्र व्याप्त होनेपर भी शालग्राम-शिलामें विशेषरूपसे अभिव्यक्त होते हैं। जो प्रतिदिन द्वारकाकी शिला—गोमतीचक्रसे युक्त बारह

शालग्राममूर्तियोंका पूजन करता है, वह वैकुण्ठलोकमें प्रतिष्ठित होता है। जो मनुष्य शालग्राम-शिलाके भीतर गुफाका दर्शन करता है, उसके पितर तृप्त होकर कल्पके अन्ततक स्वर्गमें निवास करते हैं। जहाँ द्वारकापुरीकी शिला—अर्थात् गोमतीचक्र रहता है, वह स्थान वैकुण्ठलोक माना जाता है; वहाँ मृत्युको प्राप्त हुआ मनुष्य विष्णुधाममें जाता है। जो शालग्राम-शिलाकी कीमत लगाता है, जो बेचता है, जो विक्रयका अनुमोदन करता है तथा जो उसकी परीक्षा करके मूल्यका समर्थन करता है, वे सब नरकमें पड़ते हैं। इसलिये देवि! शालग्राम-शिला और गोमतीचक्रकी खरीद-विक्री छोड़ देनी चाहिये। शालग्राम-स्थलसे प्रकट हुए भगवान् शालग्राम और द्वारकासे प्रकट हुए गोमतीचक्र—इन दोनों देवताओंका जहाँ समागम होता है, वहाँ मोक्ष मिलनेमें तनिक भी सन्देह नहीं है। द्वारकासे प्रकट हुए गोमतीचक्रसे युक्त, अनेकों चक्रोंसे चिह्नित तथा चकासन-शिलाके समान आकारवाले भगवान् शालग्राम साक्षात् चित्स्वरूप निरंजन परमात्मा ही हैं। ओंकाररूप तथा नित्यानन्दस्वरूप शालग्रामको नमस्कार है। महाभाग शालग्राम! मैं आपका अनुग्रह चाहता हूँ। प्रभो! मैं ऋणसे ग्रस्त हूँ, मुझ भक्तपर अनुग्रह कीजिये।

अब मैं प्रसन्नतापूर्वक तिलककी विधिका वर्णन करता हूँ। ललाटमें केशव, कण्ठमें श्रीपुरुषोत्तम, नाभिमें नारायणदेव, हृदयमें वैकुण्ठ, बायीं पसलीमें दामोदर, दाहिनी पसलीमें त्रिविक्रम, मस्तकपर हृषीकेश, पीठमें पद्मनाभ, कानोंमें गंगा-यमुना तथा दोनों भुजाओंमें श्रीकृष्ण और हरिका निवास समझना चाहिये। उपर्युक्त स्थानोंमें तिलक करनेसे ये बारह देवता संतुष्ट होते हैं। तिलक करते समय इन बारह नामोंका उच्चारण करना चाहिये। जो ऐसा करता है, वह सब पापोंसे शुद्ध होकर विष्णुलोकको जाता है। भगवान्के चरणोदकको पीना चाहिये और पुत्र, मित्र तथा स्त्री आदि समस्त परिवारके शरीरपर उसे छिड़कना चाहिये। श्रीविष्णुका चरणोदक यदि पी लिया जाय तो वह करोड़ों जन्मोंके पापका नाश करनेवाला होता है।

भगवान्के मन्दिरमें खड़ाऊँ या सवारीपर चढ़कर जाना, भगवत्-सम्बन्धी उत्सवोंका सेवन न करना, भगवान्के सामने जाकर प्रणाम न करना, उच्छिष्ट या अपवित्र अवस्थामें भगवान्की वन्दना करना, एक हाथसे प्रणाम करना, भगवान्के सामने ही एक स्थानपर खड़े-खड़े प्रदक्षिणा करना, भगवान्के आगे पाँव फैलाना, पलंगपर बैठना, सोना, खाना, झूठ बोलना, जोर-जोरसे चिल्लाना, परस्पर बात करना, रोना, झगड़ा करना, किसीको दण्ड देना, अपने बलके घमंडमें आकर किसीपर अनुग्रह करना, स्त्रियोंके प्रति कठोर बात कहना, कम्बल ओढ़ना, दूसरेकी निन्दा, परायी स्तुति, गाली बकना, अधोवायुका त्याग (अपशब्द) करना, शक्ति रहते हुए गौण उपचारोंसे पूजा करना—मुख्य उपचारोंका प्रबन्ध न करना, भगवान्को भोग लगाये बिना ही भोजन करना, सामयिक फल आदिको भगवान्की सेवामें अर्पण न करना, उपयोगमें लानेसे बचे हुए भोजनको भगवान्के लिये निवेदन करना, भोजनका नाम लेकर दूसरेकी निन्दा तथा प्रशंसा करना, गुरुके समीप मौन रहना, आत्म-प्रशंसा करना तथा देवताओंको कोसना—ये विष्णुके प्रति बत्तीस अपराध बताये गये हैं। 'मधुसूदन! मुझसे प्रतिदिन हजारों अपराध होते रहते हैं; किन्तु मैं आपका ही सेवक हूँ, ऐसा समझकर मुझे उनके लिये क्षमा करें।'* इस मन्त्रका उच्चारण करके भगवान्के सामने पृथ्वीपर दण्डकी भाँति पड़कर साष्टांग प्रणाम करना चाहिये। ऐसा करनेसे भगवान् श्रीहरि सदा हजारों अपराध क्षमा करते हैं। द्विजातियोंके लिये सबेरे और शाम—दो ही समय भोजन करना वेदविहित है। गोल लौकी, लहसुन, ताड़का फल और भाँटा—इन्हें वैष्णव पुरुषोंको नहीं खाना चाहिये। वैष्णवके लिये बड़, पीपल, मदार, कुम्भी, तिन्दुक, कोविदार (कचनार) और कदम्बके

* अपराधसहस्राणि क्रियन्तेऽहर्निशं मया। तवाहमिति मां मत्वा क्षमस्व मधुसूदन॥ (७९।४४)

पत्तेमें भोजन करना निषिद्ध है। जला हुआ तथा भगवान्‌को अर्पण न किया हुआ अन्न, जम्बीर और बिजौरा नीबू, शाक तथा खाली नमक भी वैष्णवको नहीं खाना चाहिये। यदि दैवात् कभी खा ले तो भगवन्नामका स्मरण करना चाहिये। हेमन्त-ऋतुमें उत्पन्न होनेवाला सफेद धान जो सड़ा हुआ न हो, मूँग, तिल, यव, केराव, कंगनी, नीवार (तीना), शाक, हिलमोचिका (हिलसा), कालशाक, बथुवा, मूली, दूसरे-दूसरे मूल-शाक, सेंधा और साँभर नमक, गायका दही, गायका घी, बिना माखन निकाला हुआ गायका दूध, कटहल, आम, हर्रे, पिप्पली, जीरा, नारंगी, इमली, केला, लवली (हरफा रेवरी), आँवलेका फल, गुड़के सिवा ईंखके रससे तैयार होनेवाली अन्य सभी वस्तुएँ तथा बिना तेलके पकाया हुआ अन्न— इन सभी खाद्य पदार्थोंको मुनिलोग हविष्यान्न कहते हैं।

जो मनुष्य तुलसीके पत्र और पुष्प आदिसे युक्त माला धारण करता है, उसको भी विष्णु ही समझना चाहिये। आँवलेका वृक्ष लगाकर मनुष्य विष्णुके समान हो जाता है। आँवलेके चारों ओर साढ़े तीन सौ हाथकी भूमिको कुरुक्षेत्र जानना चाहिये। तुलसीकी लकड़ीके रुद्राक्षके समान दाने बनाकर उनके द्वारा तैयार की हुई माला कण्ठमें धारण करके भगवान्‌का पूजन आरम्भ करना चाहिये। भगवान्‌को चढ़ायी हुई तुलसीकी माला मस्तकपर धारण करे तथा भगवान्‌को अर्पण किये हुए चन्दनके द्वारा अपने अंगोंपर भगवान्‌का नाम लिखे। यदि तुलसीके काष्ठकी बनी हुई मालाओंसे अलंकृत होकर मनुष्य देवताओं और पितरोंके पूजनादि कार्य करे तो वह कोटिगुना फल देनेवाला होता है। जो मनुष्य तुलसीके काष्ठकी बनी हुई माला भगवान् विष्णुको अर्पित करके पुनः प्रसादरूपसे उसको भक्तिपूर्वक धारण करता है, उसके पातक नष्ट हो जाते हैं। पाद्य आदि उपचारोंसे तुलसीकी पूजा करके इस मन्त्रका उच्चारण करे—जो दर्शन करनेपर सारे पापसमुदायका नाश कर देती है, स्पर्श करनेपर शरीरको पवित्र बनाती है, प्रणाम करनेपर रोगोंका निवारण करती है, जलसे सींचनेपर यमराजको भी भय पहुँचाती है, आरोपित करनेपर भगवान् श्रीकृष्णके समीप ले जाती है और भगवान्‌के चरणोंमें चढ़ानेपर मोक्षरूपी फल प्रदान करती है, उस तुलसी देवीको नमस्कार है।*

नाम-कीर्तनकी महिमा, भगवान्‌के चरण-चिह्नोंका परिचय तथा प्रत्येक मासमें भगवान्‌की विशेष आराधनाका वर्णन

पार्वतीजीने पूछा—कृपानिधे! विषयरूपी ग्राहोंसे भरे हुए भयंकर कलियुगके आनेपर संसारके सभी मनुष्य पुत्र, स्त्री और धन आदिकी चिन्तासे व्याकुल रहेंगे, ऐसी दशामें उनके उद्धारका क्या उपाय है? यह बतानेकी कृपा कीजिये।

महादेवजीने कहा—देवि! कलियुगमें केवल हरिनाम ही संसारसमुद्रसे पार लगानेवाला है। जो लोग प्रतिदिन 'हरे राम हरे कृष्ण' आदि प्रभुके मंगलमय नामोंका उच्चारण करते हैं, उन्हें कलियुग बाधा नहीं पहुँचाता, अतः बीच-बीचमें जो आवश्यक कर्म प्राप्त हों, उन्हें करते-करते भगवान्‌के नामोंका भी स्मरण करते रहना चाहिये। जो बारम्बार 'कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण'की रट लगाता रहता है तथा मेरे और तुम्हारे नामका भी व्यतिक्रमपूर्वक अर्थात् गौरीशंकर आदि कहकर जप किया करता है, वह भी जैसे आग रूईकी ढेरीको जला डालती है उसी प्रकार अपनी पाप-राशिको भस्म करके उससे मुक्त हो जाता है। जय अथवा श्रीशब्दपूर्वक जो तुम्हारा, मेरा या श्रीकृष्णका मंगलमय नाम है, उसका

* या दृष्टा निखिलाघसंघशमनी स्पृष्टा वपुष्पावनी रोगाणामभिवन्दिता निरसनी सिक्तान्तकत्रासिनी।
प्रत्यासत्तिविधायिनी भगवतः कृष्णस्य संरोपिता न्यस्ता तच्चरणे विमुक्तिफलदा तस्यै तुलस्यै नमः॥ (७९। ६८)

जप करनेसे मनुष्य पापमुक्त हो जाता है। दिन, रात और सन्ध्या—सभी समय नाम-स्मरण करना चाहिये। दिन-रात हरि-नामका जप करनेवाला पुरुष श्रीकृष्णका प्रत्यक्ष दर्शन पाता है। अपवित्र हो या पवित्र, सब समय, निरन्तर भगवन्नामका स्मरण करनेसे वह क्षणभरमें भव-बन्धनसे छुटकारा पा जाता है।[१] भगवान्‌का नाम नाना प्रकारके अपराधोंसे युक्त मनुष्यका पाप भी हर लेता है। कलियुगमें यज्ञ, व्रत, तप और दान—कोई भी कर्म सब अंगोंसे पूर्ण नहीं उतरता; केवल गंगाका स्नान और हरि-नामका कीर्तन—ये ही दो साधन विघ्न-बाधाओंसे रहित हैं। कल्याणी! हत्याजनित हजारों भयंकर पाप तथा दूसरे-दूसरे पातक भी भगवान्‌के गोविन्द नामका उच्चारण करनेसे नष्ट हो जाते हैं। मनुष्य अपवित्र हो या पवित्र अथवा किसी भी दशामें क्यों न स्थित हो, जो पुण्डरीकाक्ष (कमल-नयन) भगवान् विष्णुका स्मरण करता है, वह बाहर और भीतर—सब ओरसे पवित्र हो जाता है।[२] केवल भगवन्नामोंके स्मरणसे तथा भगवान्‌के चरणोंका चिन्तन करनेसे शुद्धि होती है। सोने, चाँदी, भिगोये हुए आटे अथवा पुष्प-मालाके द्वारा भगवान्‌के चरणोंकी आकृति बनाकर उसे चक्र आदि चिह्नोंसे अंकित कर ले, उसके बाद पूजन आरम्भ करे। पूजनके समय भगवच्चरणोंका इस प्रकार ध्यान करे—भगवान् अपने दाहिने पैरके अँगूठेकी जड़में प्रणतजनोंके संसार-बन्धनका उच्छेद करनेके लिये चक्रका चिह्न धारण करते हैं। मध्यमा अँगुलीके मध्यभागमें अच्युतने अत्यन्त सुन्दर कमलका चिह्न धारण कर रखा है; उसका उद्देश्य है—ध्यान करनेवाले भक्तोंके चित्तरूपी भ्रमरको लुभाना। कमलके नीचे वे ध्वजका चिह्न धारण करते हैं, जो मानो समस्त अनर्थोंको परास्त करके फहरानेवाली विजय-ध्वजा है। कनिष्ठिका अँगुलीकी जड़में वज्रका चिह्न है, जो भक्तोंकी पापराशिको विदीर्ण करनेवाला है। पैरके पार्श्व-भागमें बीचकी ओर अंकुशका चिह्न है, जो भक्तोंके चित्तरूपी हाथीका दमन करनेवाला है। श्रीहरि अपने अंगुष्ठके पर्वमें भोग-सम्पत्तिके प्रतीकभूत यवका चिह्न धारण करते हैं तथा मूल-भागमें गदाकी रेखा है, जो समस्त देहधारियोंके पापरूपी पर्वतको चूर्ण कर डालनेवाली है। इतना ही नहीं, वे अजन्मा भगवान् सम्पूर्ण विद्याओंको प्रकाशित करनेके लिये भी पद्म आदि चिह्नको धारण करते हैं। दाहिने पैरमें जो-जो चिह्न हैं, उन्हीं-उन्हीं चिह्नोंको करुणानिधान प्रभु अपने बायें पैरमें भी धारण करते हैं; इसलिये गोविन्दके माहात्म्यका, जो आनन्दमय रसके कारण अत्यन्त मनोरम जान पड़ता है, सदा श्रवण और कीर्तन करना चाहिये। ऐसा करनेवाले मनुष्यकी मुक्ति होनेमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

अब मैं प्रत्येक मासका वह कृत्य बतला रहा हूँ, जो भगवान् विष्णुको प्रसन्न करनेवाला है। जेष्ठके महीनेमें पूर्णिमा तिथिको स्नान आदिसे पवित्र होकर यत्नपूर्वक श्रीहरिका स्नानोत्सव मनाना चाहिये, इससे दिन, पक्ष, मास, ऋतु और वर्षभरके पाप नष्ट हो जाते हैं। कोटि-कोटि सहस्र जो पातक और उपपातक होते हैं, उन सबका नाश हो जाता है। स्नानके समय कलशमें जल लेकर भगवान्‌के मस्तकपर धीरे-धीरे गिराना चाहिये और पुरुषसूक्तके मन्त्रों तथा पावमानी ऋचाओंका क्रमशः पाठ करते रहना चाहिये। नारियल-युक्त जल, तालफलसे युक्त जल, रत्नमिश्रित जल, चन्दनमिश्रित जल तथा पुष्पयुक्त जल—इन पाँच उपचारोंसे स्नान कराकर अपने वैभव-विस्तारके अनुसार भगवान्‌की आराधना करे। तत्पश्चात् **'घं घण्टायै नमः'** इस मन्त्रको पढ़कर घण्टा बजावे और इस प्रकार प्रार्थना करे—'अपनी ऊँची आवाजसे पतितोंकी पातकराशिका निवारण करनेवाली घण्टे! घोर संसारसागरमें पड़े हुए मुझ पापीकी रक्षा करो।' जो श्रोत्रिय विद्वान् ब्राह्मण पवित्रभावसे इस प्रकार भगवान्‌की

१-अशुचिर्वा शुचिर्वापि सर्वकालेषु सर्वदा॥ नामसंस्मरणादेव संसारान्मुच्यते क्षणात्। (८०। ७, ८)

२-अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा। यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥ (८०। ११)

आराधना करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकमें जाता है।

आषाढ़ शुक्ल द्वितीयाको भगवान्‌की सवारी निकालकर रथयात्रा-सम्बन्धी उत्सव करना चाहिये। तथा आषाढ़ शुक्ल एकादशीको भगवान्‌के शयनका उत्सव मनाना चाहिये। फिर श्रावणके महीनेमें श्रावणीकी विधिका पालन करना उचित है। भाद्रपद कृष्ण अष्टमीको भगवान् श्रीकृष्णके जन्मका दिन है, उस दिन व्रत रखना चाहिये। तत्पश्चात् आश्विनके महीनेमें सोये हुए भगवान्‌के करवट बदलनेका उत्सव मनाना उचित है। उसके बाद समयानुसार श्रीहरिके शयनसे उठनेका उत्सव करे, अन्यथा वह मनुष्य विष्णुका द्रोह करनेवाला माना जाता है। आश्विनके शुक्लपक्षमें भगवती महामायाका भी पूजन करना कर्तव्य है। उस समय विष्णुरूपा भगवतीकी सोने या चाँदीकी प्रतिमा बना लेनी चाहिये। हिंसा और द्वेषका परित्याग करना चाहिये; क्योंकि विष्णुकी पूजा करनेवाला पुरुष धर्मात्मा होता है [और हिंसा, द्वेष आदि महान् अधर्म हैं]। कार्तिक पुण्यमास है; उसमें इच्छानुसार पुण्य करे। भगवान् दामोदरके लिये प्रतिदिन किसी ऊँचे स्थानपर दीपदान करना उचित है। दीपक चार अंगुलका चौड़ा हो और उसमें सात बत्तियाँ जलायी जायँ। फिर पक्षके अन्तमें अमावास्याको सुन्दर दीपावलीका उत्सव मनाया जाय। मार्गशीर्षके शुक्लपक्षमें षष्ठी तिथिको सफेद वस्त्रोंके द्वारा भगवान् जगदीशकी और विशेषतः ब्रह्माजीकी पूजा करे। पौष मासमें भगवान्‌का पुष्पमिश्रित जलसे अभिषेक तथा तरल चन्दन वर्जित है। मकरसंक्रान्तिके दिन तथा माघके महीनेमें अधिवासित तण्डुलका भगवान्‌के लिये नैवेद्य लगावे और **'ॐ विष्णवे नमः'** इस मन्त्रका उच्चारण करे। फिर ब्राह्मणोंको देवाधिदेव भगवान्‌के सामने बिठाकर भक्तिपूर्वक भोजन करावे तथा उन भगवद्भक्त द्विजोंकी भगवद्बुद्धिसे पूजा करे। एक भगवद्भक्त पुरुषके भोजन करा देनेपर करोड़ों मनुष्योंके भोजन करानेका फल होता है। यदि पूजामें किसी अंगकी कमी रह गयी हो तो वह ब्राह्मण-भोजन करानेसे अवश्य पूर्ण हो जाती है। माघके शुक्लपक्षमें वसन्त-पंचमीको भगवान् केशवको नहलाकर आमके पल्लव तथा भाँति-भाँतिके सुगन्धित चूर्ण आदिके द्वारा विधिपूर्वक उनकी पूजा करे। तत्पश्चात् 'जय कृष्ण' कहकर भगवान्‌का स्मरण करते हुए उन्हें एक मनोहर उपवनमें प्रदक्षिणभावसे ले जाय और वहाँ दोलोत्सव मनावे। उक्त उपवनको प्रज्वलित दीपकोंके द्वारा प्रकाशित किया जाय। उसमें ऐसे-ऐसे वृक्ष हों, जो सभी ऋतुओंमें फूलोंसे भरे रहें। फल-फूलोंसे सुशोभित नाना प्रकारके वृक्ष, पुष्पनिर्मित चँदोवे, जलसे भरे हुए घट, आमकी छोटी-बड़ी शाखाएँ तथा छत्र और चँवर आदि वस्तुएँ उस वनकी शोभा बढ़ा रही हों। कलियुगमें विशेषरूपसे दोलोत्सवका विधान है। फाल्गुनकी चतुर्दशीको आठवें पहरमें अथवा पूर्णिमा या प्रतिपदाकी सन्धिमें भगवान्‌की भक्तिपूर्वक विधिवत् पूजा करे। उस समय श्वेत, लाल, गौर तथा पीले—इन चार प्रकारके चूर्णोंका उपयोग करे, उनमें कर्पूर आदि सुगन्धित पदार्थ मिले होने चाहिये। हल्दीका रंग मिला देनेसे उन चूर्णोंके रंग तथा रूप और भी मनोहर हो जाते हैं। इनके सिवा, अन्य प्रकारके रंग-रूपवाले चूर्णोंद्वारा भी परमेश्वरको प्रसन्न करे। एकादशीसे लेकर पंचमीतक इस उत्सवको पूरा करे अथवा पाँच या तीन दिनतक दोलोत्सव करना उचित है। यदि मनुष्य एक बार भी झूलेमें झूलते हुए दक्षिणाभिमुख श्रीकृष्णका दर्शन कर लें तो वे पापराशिसे मुक्त हो जाते हैं; इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

महाभागे! जो मनुष्य वैशाख-मासमें जलसे भरे हुए सोने, चाँदी, ताँबे अथवा मिट्टीके पात्रमें श्रीशालग्रामको या भगवान्‌की प्रतिमाको पधराकर जलमें ही उसका पूजन करता है, उसके पुण्यकी गणना नहीं हो सकती। 'दमन' (दौना) नामक पुष्पका आरोपण करके उसे श्रीविष्णुको अर्पित करना चाहिये। वैशाख, श्रावण अथवा भाद्रपद मासमें 'दमनार्पण' करना उचित है। पूर्वी हवा चलनेपर ही दमनार्पण आदि कर्म होते हैं; उस समय विधिपूर्वक भगवान्‌का पूजन

करना चाहिये; अन्यथा सब कुछ निष्फल हो जाता है। वैशाखकी तृतीयाको विशेषतः जलमें अथवा मण्डल, मण्डप या बहुत बड़े वनमें यह कार्य सम्पन्न करना चाहिये। वैशाख-मासमें प्रतिदिन भगवान्‌के अंगको सुगन्धित चन्दन आदि लगाकर परिपुष्ट करे। प्रयत्नपूर्वक ऐसा कार्य करे, जो भगवान्‌के कृश शरीरके लिये पुष्टिकारक जान पड़े। चन्दन, अगुरु, ह्रीवेर, कालागरु, कुंकुम, रोचना, जटामाँसी और मुरा—ये विष्णुके उपयोगमें आनेवाले आठ गन्ध माने गये हैं। उन सुगन्धित पदार्थोंका भगवान् विष्णुके अंगोंपर लेप करे। तुलसीके काष्ठको चन्दनकी भाँति घिसकर उसमें कर्पूर और अगरु मिला दे अथवा केसर ही मिलावे तो वह भगवान्‌के लिये 'हरिचन्दन' हो जाता है। जो मनुष्य यात्राके समय भक्तिपूर्वक श्रीकृष्णका दर्शन करते हैं, उनकी पुनरावृत्ति नहीं होती। जो लोग सुगन्धमिश्रित जलसे भगवान्‌को नहलाते हैं; उनके लिये भी यही फल है अथवा वैशाख-मासमें भगवान्‌को फूलोंके भीतर रखना चाहिये। वृन्दावनमें जाकर तरह-तरहके फल जुटावे और भगवान्‌को भोग लगाकर किसी सुयोग्य भगवद्भक्तको सब खिला दे। नारियलका फल अर्पण करे अथवा उसे फोड़कर उसकी गरी निकाल कर दे। बेरका फल निवेदन करे। कटहलका कोया निकालकर भोग लगावे तथा दहीयुक्त अन्नको घीसे तर करके भगवान्‌के आगे रखे। कहाँतक कहा जाय? जो-जो वस्तु अपनेको विशेष प्रिय हो, वह सब भगवान्‌को अर्पण करे। नैवेद्य और वस्त्र आदि भगवान्‌को अर्पण करे। पुनः उसे स्वयं उपयोगमें न लावे। विष्णुके उद्देश्यसे दी हुई वस्तु विशेषतः उनके भक्तोंको ही देनी चाहिये। महेश्वरि! इस प्रकार संक्षेपसे ही मैंने तुम्हारे सामने ये कुछ बातें बतायी हैं। जिन शास्त्रोंमें श्रीकृष्णके रूप और गुणोंका वर्णन है, उन्हें समझनेकी शक्ति हो जाय तो और कोई शास्त्र पढ़नेकी कुछ भी आवश्यकता नहीं है। भगवान्‌के प्रेम, भाव, रस, भक्ति, विलास, नाम तथा हारोंमें यदि मन लग गया तो कामिनियोंसे क्या लेना है? अतः व्रज-बालकोंके स्वामी श्रीकृष्णको, उनके क्रीडा-निकेतन वृन्दावनको, व्रजभूमिको तथा यमुना-जलको मन लगाकर भजो। यदि इस शरीरमें त्रिभुवनके स्वामी भगवान् गोविन्दके चरणारविन्दोंकी धूलि लिपटी हो तो इसमें अगरु और चन्दन आदि लगाना व्यर्थ है।

मन्त्र-चिन्तामणिका उपदेश तथा उसके ध्यान आदिका वर्णन

सूतजी कहते हैं—महर्षियो! एक समयकी बात है, देवाधिदेव जगद्गुरु भगवान् सदाशिव यमुनाजीके तटपर बैठे हुए थे। उस समय नारदजीने उनके चरणोंमें प्रणाम करके कहा—'देवदेव महादेव! आप सर्वज्ञ, जगदीश्वर, भगवद्धर्मका तत्त्व जाननेवाले तथा श्रीकृष्ण-मन्त्रका ज्ञान रखनेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं। देवेश्वर! यदि मैं सुननेका अधिकारी होऊँ तो कृपा करके मुझे वह मन्त्र बताइये, जो एक बारके उच्चारण मात्रसे मनुष्योंको उत्तम फल प्रदान करता है।

शिवजी बोले—महाभाग! तुमने यह बहुत उत्तम प्रश्न किया है। क्यों न हो, तुम सम्पूर्ण जगत्‌के हितैषी जो ठहरे! मैं तुम्हें मन्त्र-चिन्तामणिका उपदेश दे रहा हूँ। यद्यपि वह बहुत ही गोपनीय है तो भी मैं तुमसे उसका वर्णन करूँगा। कृष्णके दो मन्त्र अत्यन्त उत्तम

हैं, उन दोनोंको तुम्हें बताता हूँ; मन्त्र-चिन्तामणि, युगल, द्वय और पंचपदी—ये इन दोनों मन्त्रोंके पर्यायवाची नाम हैं। इनमें पहले मन्त्रका प्रथम पद है—'**गोपीजन**', द्वितीय पद है—'**वल्लभ**', तृतीय पद है—'**चरणान्**', चतुर्थ पद है—'**शरणम्**' तथा पंचम पद है—'**प्रपद्ये।**' इस प्रकार यह ('**गोपीजनवल्लभचरणान् शरणं प्रपद्ये**') मन्त्र पाँच पदोंका है। इसका नाम मन्त्र-चिन्तामणि है। इस महामन्त्रमें सोलह अक्षर हैं। दूसरे मन्त्रका स्वरूप इस प्रकार है—'**नमो गोपीजन**' इतना कहकर पुनः '**वल्लभाभ्याम्**' का उच्चारण करना चाहिये। तात्पर्य यह कि '**नमो गोपीजनवल्लभाभ्याम्**'-के रूपमें यह दो पदोंका मन्त्र है, जो दस अक्षरोंका बताया गया है। जो मनुष्य श्रद्धा या अश्रद्धासे एक बार भी इस पंचपदीका जप कर लेता है, उसे निश्चय ही श्रीकृष्णके प्यारे भक्तोंका सान्निध्य प्राप्त होता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। इस मन्त्रको सिद्ध करनेके लिये न तो पुरश्चरणकी अपेक्षा पड़ती है और न न्यास-विधानका क्रम ही अपेक्षित है। देश-कालका भी कोई नियम नहीं है। अरि और मित्र आदिके शोधनकी भी आवश्यकता नहीं है। मुनीश्वर! ब्राह्मणसे लेकर चाण्डालतक सभी मनुष्य इस मन्त्रके अधिकारी हैं। स्त्रियाँ, शूद्र आदि, जड, मूक, अन्ध, पंगु, हूण, किरात, पुलिन्द, पुल्कस, आभीर, यवन, कंक एवं खश आदि पापयोनिके दम्भी, अहंकारी, पापी, चुगुलखोर, गोघाती, ब्रह्महत्यारे, महापातकी, उपपातकी, ज्ञान-वैराग्यहीन, श्रवण आदि साधनोंसे रहित तथा अन्य जितने भी निकृष्ट श्रेणीके लोग हैं, उन सबका इस मन्त्रमें अधिकार है। मुनिश्रेष्ठ! यदि सर्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्णमें उनकी भक्ति है तो वे सब-के-सब अधिकारी हैं, अन्यथा नहीं; इसलिये भगवान्में भक्ति न रखनेवाले कृतघ्न, मानी, श्रद्धाहीन और नास्तिकको इस मन्त्रका उपदेश नहीं देना चाहिये। जो सुनना न चाहता हो अथवा जिसके हृदयमें गुरुके प्रति सेवाका भाव न हो उसे भी यह मन्त्र नहीं बताना चाहिये। जो श्रीकृष्णका अनन्य भक्त हो, जिसमें दम्भ और लोभका अभाव हो तथा जो काम और क्रोधसे सर्वथा मुक्त हो, उसे यत्नपूर्वक इस मन्त्रका उपदेश देना चाहिये। इस मन्त्रका ऋषि मैं ही हूँ। बल्लवी-वल्लभ श्रीकृष्ण इसके देवता हैं तथा प्रियासहित भगवान् गोविन्दके दास्यभावकी प्राप्तिके लिये इसका विनियोग किया जाता है। यह मन्त्र एक बारके ही उच्चारणसे कृतकृत्यता प्रदान करनेवाला है।

द्विजश्रेष्ठ! अब मैं इस मन्त्रका ध्यान बतलाता हूँ। वृन्दावनके भीतर कल्पवृक्षके मूलभागमें रत्नमय सिंहासनके ऊपर भगवान् श्रीकृष्ण अपनी प्रिया श्रीराधिकाजीके साथ विराजमान हैं। श्रीराधिकाजी उनके वामभागमें बैठी हुई हैं। भगवान्का श्रीविग्रह मेघके समान श्याम है। उसके ऊपर पीताम्बर शोभा पा रहा है। उनके दो भुजाएँ हैं। गलेमें वनमाला पड़ी हुई है। मस्तकपर मोरपंखका मुकुट शोभा दे रहा है। मुख-मण्डल करोड़ों चन्द्रमाओंकी भाँति कान्तिमान् है। वे अपने चंचल नेत्रोंको इधर-उधर घुमा रहे हैं। उनके कानोंमें कनेर-पुष्पके आभूषण सुशोभित हैं। ललाटमें दोनों ओर चन्दन तथा बीचमें कुंकुम-विन्दुसे तिलक लगाया गया है, जो मण्डलाकार जान पड़ता है। दोनों कुण्डलोंकी प्रभासे वे प्रातःकालीन सूर्यके समान तेजस्वी दिखायी दे रहे हैं। उनके कपोल दर्पणकी भाँति स्वच्छ हैं, जो पसीनेकी छोटी-छोटी बूँदोंके कारण बड़े शोभायमान प्रतीत होते हैं। उनके नेत्र प्रियाके मुखपर लगे हुए हैं। उन्होंने लीलावश अपनी भौंहें ऊँची कर ली हैं। ऊँची नासिकाके अग्रभागमें मोतीकी बुलाक चमक रही है। पके हुए कुँदरूके समान लाल ओठ दाँतोंका प्रकाश पड़नेसे अधिक सुन्दर दिखायी देते हैं। केयूर, अंगद, अच्छे-अच्छे रत्न तथा मुँदरियोंसे भुजाओं और हाथोंकी शोभा बहुत बढ़ गयी है। वे बायें हाथमें मुरली तथा दाहिनेमें कमल लिये हुए हैं। करधनीकी प्रभासे शरीरका मध्यभाग जगमगा रहा है। नूपुरोंसे चरण सुशोभित हो रहे हैं। भगवान् क्रीड़ा-रसके आवेशसे चंचल प्रतीत होते हैं। उनके नेत्र भी चपल हो रहे हैं। वे अपनी प्रियाको बारंबार हँसाते हुए स्वयं भी उनके साथ हँस रहे हैं। इस प्रकार श्रीराधाके साथ श्रीकृष्णका चिन्तन करना चाहिये।

तदनन्तर श्रीराधाकी सखियोंका ध्यान करे। उनकी अवस्था और गुण श्रीराधाजीके ही समान हैं। वे चँवर और पंखी आदि लेकर अपनी स्वामिनीकी सेवामें लगी हुई हैं।

नारदजी! श्रीकृष्णप्रिया राधा अपनी चैतन्य आदि अन्तरंग विभूतियोंसे इस प्रपंचका गोपन—संरक्षण करती हैं; इसलिये उन्हें 'गोपी' कहते हैं। वे श्रीकृष्णकी आराधनामें तन्मय होनेके कारण 'राधिका' कहलाती हैं। श्रीकृष्णमयी होनेसे ही वे परादेवता हैं। पूर्णतः लक्ष्मीस्वरूपा हैं। श्रीकृष्णके आह्लादका मूर्तिमान् स्वरूप होनेके कारण मनीषीजन उन्हें 'ह्लादिनी शक्ति' कहते हैं। श्रीराधा साक्षात् महालक्ष्मी हैं और भगवान् श्रीकृष्ण साक्षात् नारायण हैं। मुनिश्रेष्ठ! इनमें थोड़ा-सा भी भेद नहीं है। श्रीराधा दुर्गा हैं तो श्रीकृष्ण रुद्र। वे सावित्री हैं तो ये साक्षात् ब्रह्मा हैं। अधिक क्या कहा जाय, उन दोनोंके बिना किसी भी वस्तुकी सत्ता नहीं है। जड-चेतनमय सारा संसार श्रीराधा-कृष्णका ही स्वरूप है। इस प्रकार सबको उन्हीं दोनोंकी विभूति समझो। मैं नाम ले-लेकर गिनाने लगूँ तो सौ करोड़ वर्षोंमें भी उस विभूतिका वर्णन नहीं कर सकता।* तीनों लोकोंमें पृथ्वी सबसे श्रेष्ठ मानी गयी है। उसमें भी जम्बूद्वीप सब द्वीपोंसे श्रेष्ठ है। जम्बूद्वीपमें भी भारतवर्ष और भारतवर्षमें भी मथुरापुरी श्रेष्ठ है। मथुरामें भी वृन्दावन, वृन्दावनमें भी गोपियोंका समुदाय, उस समुदायमें भी श्रीराधाकी सखियोंका वर्ग तथा उसमें भी स्वयं श्रीराधिका सर्वश्रेष्ठ हैं। श्रीकृष्णके अत्यधिक निकट होनेके कारण श्रीराधाका महत्त्व सबकी अपेक्षा अधिक है। पृथ्वी आदिकी उत्तरोत्तर श्रेष्ठताका इसके सिवा दूसरा कोई कारण नहीं है। वही ये श्रीराधिका हैं, जो 'गोपी' कही गयी हैं; इनकी सखियाँ ही 'गोपीजन' कहलाती हैं। इन सखियोंके समुदायके दो ही प्रियतम हैं, दो ही उनके प्राणोंके स्वामी हैं—श्रीराधा और श्रीकृष्ण। उन दोनोंके चरण ही इस जगत्में शरण देनेवाले हैं। मैं अत्यन्त दुःखी जीव हूँ, अतः उन्हींका आश्रय लेता हूँ—उन्हींकी शरणमें पड़ा हूँ। शरणमें जानेवाला मैं जो कुछ भी हूँ तथा मेरी कहलानेवाली जो कोई भी वस्तु है, वह सब श्रीराधा और श्रीकृष्णको ही समर्पित है—सब कुछ उन्हींके लिये है, उन्हींकी भोग्य वस्तु है। मैं और मेरा कुछ भी नहीं है। विप्रवर! इस प्रकार मैंने थोड़ेमें '**गोपीजनवल्लभचरणान् शरणं प्रपद्ये**' इस मन्त्रके अर्थका वर्णन किया है। युगलार्थ, न्यास, प्रपत्ति, शरणागति तथा आत्मसमर्पण—ये पाँच पर्याय बतलाये गये हैं। साधकको रात-दिन आलस्य छोड़कर यहाँ बताये हुए विषयका चिन्तन करना चाहिये।

---

* देवी कृष्णमयी प्रोक्ता राधिका परदेवता । सर्वलक्ष्मीस्वरूपा सा कृष्णाह्लादस्वरूपिणी ॥
ततः सा प्रोच्यते विप्र ह्लादिनीति मनीषिभिः । तत्कलाकोटिकोट्यंशा दुर्गाद्यास्त्रिगुणात्मिकाः ॥
सा तु साक्षान्महालक्ष्मीः कृष्णो नारायणः प्रभुः । नैतयोर्विद्यते भेदः स्वल्पोऽपि मुनिसत्तम ॥
इयं दुर्गा हरी रुद्रः कृष्णः शक्र इयं शची । सावित्रीयं हरिर्ब्रह्मा धूमोर्णासौ यमो हरिः ॥
बहुना किं मुनिश्रेष्ठ विना ताभ्यां न किंचन । चिदचिल्लक्षणं सर्वं राधाकृष्णमयं जगत् ॥
इत्थं सर्वं तयोरेव विभूतिं विद्धि नारद । न शक्यते मया वक्तुं वर्षकोटिशतैरपि ॥
(८१। ५३—५८)

दीक्षाकी विधि तथा श्रीकृष्णके द्वारा रुद्रको युगल-मन्त्रकी प्राप्ति

शिवजी कहते हैं—नारद! अब मैं दीक्षाकी यथार्थ विधिका वर्णन करता हूँ, ध्यान देकर सुनो। इस विधिका अनुष्ठान न करके केवल श्रवण मात्रसे भी मनुष्य भव-बन्धनसे मुक्त हो जाते हैं। विद्वान् पुरुष इस बातको समझ ले कि साधारण कीटसे लेकर ब्रह्माजीतक यह सम्पूर्ण जगत् नश्वर है; इसमें आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक—इन तीन प्रकारके दु:खोंका ही अनुभव होता है। यहाँके जितने सुख हैं, वे सभी अनित्य हैं; अत: उन्हें भी दु:खोंकी ही श्रेणीमें रखे। फिर विरक्त होकर उनसे अलग हो जाय और संसार-बन्धनसे छूटनेके लिये उपायोंका विचार करे; साथ ही सर्वोत्तम सुखकी प्राप्तिके साधनोंको भी सोचे तथा पूर्ण शान्त बना रहे। नाना प्रकारके कर्मोंका ठीक-ठीक सम्पादन बहुत कठिन है, ऐसा समझकर परम बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि वह अत्यन्त चिन्तित होकर श्रीगुरुदेवकी शरणमें जाय। जो शान्त हों, जिनमें मात्सर्यका नितान्त अभाव हो, जो श्रीकृष्णके अनन्य भक्त हों, जिनके मनमें श्रीकृष्ण-प्राप्तिके सिवा दूसरी कोई कामना न हो, जो भगवत्कृपाके सिवा दूसरे किसी साधनका भरोसा न करते हों, जिनमें क्रोध और लोभ लेशमात्र भी न हों, जो श्रीकृष्णरसके तत्त्वज्ञ और श्रीकृष्णमन्त्रकी जानकारी रखनेवालोंमें श्रेष्ठ हों, जिन्होंने श्रीकृष्णमन्त्रका ही आश्रय लिया हो, जो सदा मन्त्रके प्रति श्रद्धा-भक्ति रखते हों, सर्वदा पवित्र रहते हों, प्रतिदिन सद्धर्मका उपदेश देते और लोगोंको सदाचारमें प्रवृत्त करते हों, ऐसे कृपालु एवं विरक्त महात्मा ही गुरु कहलाते हैं। शिष्य भी ऐसा होना चाहिये, जिसमें प्राय: उपर्युक्त गुण मौजूद हों। इसके सिवा उसे गुरुचरणोंकी सेवाके लिये इच्छुक, गुरुका नितान्त भक्त तथा मुमुक्षु होना चाहिये। जिसमें ऐसी योग्यता हो, वही शिष्य कहलाता है। प्रेमपूर्ण हृदयसे भगवान् श्रीकृष्णकी साक्षात् सेवाका जो अवसर मिलता है, उसीको वेद-वेदांगका ज्ञान रखनेवाले विद्वानोंने मोक्ष कहा है।*

शिष्यको चाहिये कि वह गुरुके चरणोंकी शरणमें जाकर उनसे अपना वृत्तान्त निवेदन करे तथा गुरुको उचित है कि वे अत्यन्त प्रसन्न होकर बारम्बार समझाते हुए शिष्यके सन्देहोंका निराकरण करें, तत्पश्चात् उसे मन्त्रका उपदेश दें। चन्दन या मिट्टी लेकर शिष्यकी बायीं और दाहिनी भुजाओंके मूल-भागमें क्रमश: शंख और चक्रका चिह्न अंकित करें। फिर ललाट आदिमें विधिपूर्वक ऊर्ध्वपुण्ड्र लगायें। तदनन्तर पहले बताये हुए दोनों मन्त्रोंका शिष्यके दाहिने कानमें उपदेश करें तथा क्रमश: उन मन्त्रोंका अर्थ भी उसे अच्छी तरह समझा दें। फिर यत्नपूर्वक उसका कोई नूतन नाम रखें, जिसके अन्तमें 'दास' शब्द जुड़ा हो। इसके बाद विद्वान् शिष्य प्रेमपूर्वक वैष्णवोंको भोजन कराये तथा अत्यन्त भक्तिके साथ वस्त्र और आभूषण आदिके द्वारा श्रीगुरुका पूजन करे। इतना ही नहीं, अपने शरीरको भी गुरुकी सेवामें समर्पित कर दे।

नारद! अब मैं तुम्हें शरणागत पुरुषोंके धर्म बताना चाहता हूँ, जिनका आश्रय लेकर कलियुगके मनुष्य भगवान्‌के धाममें पहुँच जायँगे। ऊपर बताये अनुसार गुरुसे मन्त्रका उपदेश पाकर गुरुभक्त शिष्य प्रतिदिन गुरुकी सेवामें संलग्न हो अपने ऊपर उनकी पूर्ण कृपा समझे। तदनन्तर सत्पुरुषोंके, उनमें भी विशेषत: शरणागतोंके धर्म सीखे और वैष्णवोंको अपना इष्टदेव

---

* शान्तो विमत्सर: कृष्णे भक्तोऽनन्यप्रयोजन:। अनन्यसाधन: श्रीमान् क्रोधलोभविवर्जित:॥
श्रीकृष्णरसतत्त्वज्ञ: कृष्णमन्त्रविदां वर:। कृष्णमन्त्राश्रयो नित्यं मन्त्रे भक्त: सदा शुचि:॥
सद्धर्मशासको नित्यं सदाचारनियोजक:। सम्प्रदायी कृपापूर्णो विरागी गुरुरुच्यते॥
एवमादिगुण: प्राय: शुश्रूषुर्गुरुपादयो:। गुरौ नितान्तभक्तश्च मुमुक्षु: शिष्य उच्यते॥
यत्साक्षात्सेवनं तस्य प्रेम्णा भगवतो भवेत्। स मोक्ष: प्रोच्यते प्राज्ञैर्वेदवेदाङ्गवेदिभि:॥ (८२। ६—१०)

समझकर सदा उन्हें संतुष्ट रखे। शरणागत शिष्यको कभी इहलोक और परलोककी चिन्ता नहीं करनी चाहिये; क्योंकि इहलोकके जितने भी सुख भोग हैं, वे पूर्वजन्ममें किये हुए कर्मोंके अनुसार प्राप्त होते हैं। [अतः जितना प्रारब्धमें होगा, उतना अपने-आप मिल जायगा] और जो परलोकका सुख है, उसे तो भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं ही पूर्ण करेंगे। अतः मनुष्यको इहलोक और परलोकके सुखोंके लिये किये जानेवाले प्रयत्नका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये। सब प्रकारके उपायोंका परित्याग करके अपनेको श्रीकृष्णका सेवक समझकर निरन्तर उन्हींकी आराधनामें संलग्न रहना चाहिये। जैसे पतिव्रता स्त्री चिरकालसे परदेश गये हुए अपने पतिके लिये सदा दीन बनी रहती है, प्रियतममें अनुराग रखती हुई केवल उसीसे मिलनेकी आकांक्षा रखती है, निरन्तर उसीके गुणोंका चिन्तन, गायन और श्रवण करती है, उसी प्रकार शरणागत भक्तको भी सदा श्रीकृष्णके गुण तथा लीला आदिका स्मरण, कीर्तन और श्रवण करते रहना चाहिये। परन्तु यह सब किसी दूसरे फलका साधन बनाकर कदापि नहीं करना चाहिये। जैसे पतिव्रता कामिनी चिरकालके बाद परदेशसे लौटे हुए पतिको एकान्तमें पाकर उसे छातीसे लगाती तथा नेत्रोंसे उसकी रूप-सुधाका पान करती है, साथ ही वह अधिक प्रसन्नताके साथ उसकी सेवामें लग जाती है, उसी प्रकार अर्चाविग्रह (स्वयं प्रकट हुई मूर्ति)-के रूपमें अवतीर्ण हुए भगवान्के साथ रहकर भक्तको निरन्तर उनकी परिचर्यामें लगे रहना चाहिये। वह सदा अनन्य भावसे भगवान्की शरणमें रहे। भगवान्की आराधनाके सिवा दूसरे किसी साधनका न तो आश्रय ले और न दूसरे साधनकी इच्छा करे। भगवान्के सिवा अन्य किसी वस्तुसे प्रयोजन न रखे। कभी किसीकी निन्दा न करे। न तो दूसरेका जूठा खाय और न दूसरेका प्रसाद ही ग्रहण करे। भगवान् और वैष्णवोंकी निन्दा कभी न सुने। यदि कहीं निन्दा होती हो तो कान बंद करके वहाँसे अन्यत्र चला जाय।

विप्रवर नारद! मेरा तो ऐसा विचार है कि शरणागत भक्तको मृत्युपर्यन्त चातकी वृत्तिका आश्रय लेकर युगल मन्त्रके अर्थका विचार करते हुए रहना चाहिये। जैसे चातक सरोवर, समुद्र और नदी आदिको छोड़कर केवल मेघसे पानीकी याचना करता है अथवा प्यासा ही मर जाता है, उसी प्रकार प्रयत्नपूर्वक भगवत्प्राप्तिके साधनोंपर विचार करना चाहिये। अपने इष्टदेव श्रीराधा और श्रीकृष्णसे इस बातकी याचना करनी चाहिये कि वे उसे आश्रय प्रदान करें। सदा अपने इष्टदेवके, उनके भक्तोंके और विशेषतः गुरुके अनुकूल रहना चाहिये। प्रतिकूलताका सर्वथा परित्याग कर देना चाहिये। मैं एक बार शरणमें जाकर अनुभवपूर्वक कहता हूँ—श्रीराधा और श्रीकृष्ण दोनोंके गुण परम कल्याणमय हैं; मेरी बातपर विचार करके शरणागत पुरुष उनपर विश्वास करे कि ये दोनों इष्टदेव निश्चय ही मेरा उद्धार करेंगे। फिर विनीत भावसे प्रार्थना करते हुए कहे—'नाथ! आप ही दोनों पुत्र, मित्र और गृह आदिकी ममतासे पूर्ण इस संसारसागरसे मेरी रक्षा करनेवाले हैं। आप ही शरणागतोंका भय दूर करते हैं। मैं जैसा भी हूँ, इस लोक और परलोकमें मेरा जो कुछ भी है, वह सब आज मैंने आप दोनोंके चरणोंमें समर्पित कर दिया। मैं अपराधोंका घर हूँ। मैंने सब साधन छोड़ रखे हैं; अब मुझे कोई सहारा देनेवाला नहीं है, इसलिये नाथ! अब आप ही दोनों मेरे आश्रय हैं। राधिकाकान्त! मैं मन, वाणी और कर्मसे आपका हूँ। कृष्णप्रिया राधे! मैं आपका ही हूँ, आप ही दोनों मेरी गति हैं। मैं आपकी शरणमें पड़ा हूँ। आप दोनों करुणाके भंडार—दयाके सागर हैं; मुझपर कृपा करें। मैं दुष्ट हूँ, अपराधी हूँ; तो भी कृपा करके मुझे अपना दास्यभाव प्रदान करें।' मुनिश्रेष्ठ! जो भक्त शीघ्र ही दास्यभावकी प्राप्ति चाहता हो, उसे भगवान्के चरणकमलोंका चिन्तन करते हुए प्रतिदिन उपर्युक्त प्रार्थना करनी चाहिये।*

---

* संसारसागरान्नाथौ पुत्रमित्रगृहाकुलात्। गोप्तारौ मे युवामेव प्रपन्नभयभञ्जनौ॥
योऽहं ममास्ति यत्किंचिदिह लोके परत्र च। तत्सर्वं भवतोरद्य चरणेषु समर्पितम्॥

यहाँतक मैंने शरणागतोंके बाह्य धर्मोंका संक्षेपसे वर्णन किया है। अब उनके अत्यन्त उत्कृष्ट आन्तरिक धर्मका परिचय दिया जाता है। अन्तरंग भक्तको यत्नपूर्वक कृष्णप्रिया श्रीराधाके सखीभावका आश्रय लेकर निरन्तर उन दोनोंकी सेवा करनी चाहिये तथा आलस्यको अपने पास फटकने नहीं देना चाहिये। मन्त्र और उसके अंगोंका पहले वर्णन किया जा चुका है। उसके अधिकारी, अधिकारियोंके धर्म तथा उन्हें मिलनेवाले फलका भी प्रतिपादन किया गया है। नारद! तुम भी इस साधनाका अनुष्ठान करो; तुम्हें श्रीराधा और श्रीकृष्णके दास्य भावकी प्राप्ति अवश्य होगी—इसमें कोई संदेह नहीं है। जो एक बार भी शरणमें जा 'मैं आपका हूँ' ऐसा कहकर याचना करता है, उसे भगवान् अवश्य ही अपना दासत्व प्रदान करते हैं। मेरे मनमें इसके लिये अन्यथा विचार करनेकी गुंजाइश नहीं है।* मुनिवर! यह मैंने तुमसे शरणागत भक्तके आन्तरिक धर्मका वर्णन किया है। यह गुह्यसे भी बढ़कर अत्यन्त गुह्यतम विषय है, इसलिये इसे प्रयत्नपूर्वक गुप्त रखना चाहिये—सर्वत्र प्रकाशित नहीं करना चाहिये।

इस प्रसंगमें मैं तुम्हें अत्यन्त अद्‌भुत रहस्यकी बात बतलाता हूँ, जिसे मैंने साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णके मुखसे सुना था। पूर्वकालकी बात है, मैं कैलाश पर्वतके शिखरपर एक सघन वनमें रहता था और यहाँ भगवान् श्रीनारायणका ध्यान करते हुए उनके श्रेष्ठ मन्त्रका जप करता था। इससे संतुष्ट होकर भगवान् मेरे सामने प्रकट हुए और बोले—'वर माँगो।' उनके यों कहनेपर मैंने आँखें खोलकर देखा, भगवान् अपनी प्रिया श्रीलक्ष्मीजीके साथ गरुड़पर विराजमान थे। मैंने बारम्बार प्रणाम करके लक्ष्मीपतिसे कहा—'कृपासिन्धो! आपका जो रूप परम आनन्ददायक, सम्पूर्ण आनन्दोंका आश्रय, नित्य, मनोहर मूर्तिधारी, सबसे श्रेष्ठ निर्गुण, निष्क्रिय और शान्त है, जिसे विद्वान् पुरुष ब्रह्म कहते हैं, उसको मैं अपने नेत्रोंसे देखना चाहता हूँ।' यह सुनकर भगवान् कमलापतिने मुझ शरणागत भक्तसे कहा—'महादेव! तुम्हारे मनमें मेरे जिस रूपको देखनेकी इच्छा है, उसका अभी दर्शन करोगे। यमुनाके पश्चिम तटपर मेरा लीला-धाम वृन्दावन है वहीं चले जाओ।' यों कहकर वे जगदीश्वर अपनी प्रियाके साथ अन्तर्धान हो गये। तब मैं भी यमुनाके सुन्दर तटपर चला आया। वहाँ मुझे सम्पूर्ण देवेश्वरोंके भी ईश्वर श्रीकृष्णका दर्शन हुआ, जो किशोरावस्थासे युक्त, कमनीय गोपवेष धारण किये,

अहमस्म्यपराधानामालयस्त्यक्तसाधनः । अगतिश्च ततो नाथौ भवन्तावेव मे गतिः॥
तवास्मि राधिकानाथ कर्मणा मनसा गिरा। कृष्णकान्ते तवैवास्मि युवामेव गतिर्मम॥
शरणं वां प्रपन्नोऽस्मि करुणानिकराकरौ। प्रसादं कुरुतं दास्यं मयि दुष्टेऽपराधिनि॥
इत्येवं जपता नित्यं स्थातव्यं पदपंकजम्। अचिरादेव तद्दास्यमिच्छता मुनिसत्तम॥ (८२। ४२—४७)

* सकृन्मात्रप्रपन्नाय तवास्मीत्यभियाचते । निजदास्यं हरिर्दद्यान्न मेऽत्रास्ति विचारणा॥ (८२। ५२)

अपनी प्रियाके कंधेपर बायाँ हाथ रखकर खड़े थे। उनकी वह झाँकी बड़ी मनोहर जान पड़ती थी। चारों ओरसे गोपियोंका समुदाय था और बीचमें भगवान् खड़े होकर श्रीराधिकाजीको हँसाते हुए स्वयं ही हँस रहे थे। उनका श्रीविग्रह सजल मेघके समान श्यामवर्ण तथा कल्याणमय गुणोंका धाम था। श्रीकृष्ण मुझे देखकर हँसे। उनकी वाणीमें अमृत भरा था। वे मुझसे बोले—'रुद्र! तुम्हारा मनोरथ जानकर आज मैंने तुम्हें दर्शन दिया। इस समय मेरे जिस अलौकिक रूपको तुम देख रहे हो, यह निर्मल प्रेमका पुंज है। इसके रूपमें सत्, चित् और आनन्द ही मूर्तिमान् हुए हैं। उपनिषदोंके समूह मेरे इसी स्वरूपको निराकार, निर्गुण, व्यापक, निष्क्रिय और परात्पर बतलाते हैं। मेरे दिव्य गुणोंका अन्त नहीं है तथा उन गुणोंको कोई सिद्ध नहीं कर सकता; इसीलिये वेदान्त शास्त्र मुझ ईश्वरको निर्गुण बतलाता है। महेश्वर! मेरा यह रूप चर्मचक्षुओंसे नहीं देखा जा सकता; अतः सम्पूर्ण वेद मुझे अरूप—निराकार कहते हैं। मैं अपने चैतन्य-अंशसे सर्वत्र व्यापक हूँ। इससे विद्वान् लोग मुझे 'ब्रह्म' के नामसे पुकारते हैं। मैं इस प्रपंचका कर्ता नहीं हूँ; इसलिये शास्त्र मुझे निष्क्रिय बताते हैं। शिव! मेरे अंश ही मायामय गुणोंके द्वारा सृष्टि आदि कार्य करते हैं। मैं स्वयं कुछ भी नहीं करता। महादेव! मैं तो इन गोपियोंके प्रेममें विह्वल होकर न तो दूसरी कोई क्रिया जानता हूँ और न मुझे अपने-आपका ही भान रहता है। ये मेरी प्रिया श्रीराधिका हैं; इन्हें परा देवता समझो। मैं इनके प्रेमके वशीभूत होकर सदा इन्हींके साथ विचरण करता हूँ। इनके पीछे और अगल-बगलमें जो लाखों सखियाँ हैं, ये सब-की-सब नित्य हैं। जैसे मेरा विग्रह नित्य है, वैसे ही इनका भी है। मेरे सखा, पिता, गोप, गौएँ तथा वृन्दावन—ये सब नित्य हैं। इन सबका स्वरूप चिदानन्दरसमय ही है। मेरे इस वृन्दावनका नाम आनन्दकन्द समझो। इसमें प्रवेश करने मात्रसे मनुष्यको पुनः संसारमें जन्म नहीं लेना पड़ता। मैं वृन्दावन छोड़कर कहीं नहीं जाता। अपनी इस प्रियाके साथ सदा यहीं निवास करता हूँ। रुद्र! तुम्हारे मनमें जिस-जिस बातको जाननेकी इच्छा थी, वह सब मैंने बता दिया। बोलो, इस समय मुझसे और क्या सुनना चाहते हो?'

मुनिश्रेष्ठ नारद! तब मैंने भगवान्‌से कहा—'प्रभो! आपके इस स्वरूपकी प्राप्ति कैसे हो सकती है? इसका उपाय मुझे बताइये।' भगवान्‌ने कहा—'रुद्र! तुमने बहुत अच्छी बात पूछी है; किन्तु यह विषय अत्यन्त रहस्यका है, इसलिये इसे यत्नपूर्वक गुप्त रखना चाहिये। देवेश्वर! जो दूसरे उपायोंका भरोसा छोड़कर एक बार हम दोनोंकी शरणमें आ जाता है और गोपीभावसे मेरी उपासना करता है, वही मुझे पा सकता है। जो एक बार हम दोनोंकी शरणमें आ जाता है अथवा अकेली मेरी इस प्रियाकी ही अनन्यभावसे उपासना करता है, वह मुझे अवश्य प्राप्त होता है। जो एक बार भी शरणमें आकर 'मैं आपका हूँ' ऐसा कह देता है, वह साधनके बिना भी मुझे प्राप्त कर लेता है—इसमें संशय नहीं है।* इसलिये

* सकृदेव प्रपन्नो यस्तवास्मीति वदेदपि। साधनेन विनाप्येव मामाप्नोति न संशयः॥ (८२। ८५)

सर्वथा प्रयत्न करके मेरी प्रियाकी शरण ग्रहण करनी चाहिये। रुद्र! मेरी प्रियाका आश्रय लेकर तुम भी मुझे अपने वशमें कर सकते हो। यह बड़े रहस्यकी बात है, जिसे मैंने तुम्हें बता दिया है। तुम्हें यत्नपूर्वक इसे छिपाये रखना चाहिये। अब तुम भी मेरी प्रियतमा श्रीराधाकी शरण लो और मेरे युगल-मन्त्रका जप करते हुए सदा मेरे इस धाममें निवास करो।'

यह कहकर दयानिधान श्रीकृष्ण मेरे दाहिने कानमें पूर्वोक्त युगल-मन्त्रका उपदेश देकर मेरे देखते-देखते वहीं अपने गणोंसहित अन्तर्धान हो गये। तबसे मैं भी निरन्तर यहीं रहता हूँ। नारद! इस प्रकार मैंने तुम्हारे पूछे हुए विषयका सांगोपांग वर्णन कर दिया।

सूतजी कहते हैं—शौनकजी! पूर्वकालमें भगवान् शंकरने साक्षात् श्रीकृष्णके मुखसे इस रहस्यका ज्ञान प्राप्त किया। उन्होंने नारदजीसे कहा और नारदजीने मुझे इसका उपदेश दिया था [वही आज मैंने यहाँ आपको सुनाया है।]। आपको भी उचित है कि इस परम अद्भुत रहस्यको सदा गोपनीय रखें—इसे हर एकके सामने प्रकट न करें।

शौनकने कहा—गुरुदेव! आपकी कृपासे आज मैं कृतकृत्य हो गया; क्योंकि आपने मेरे सामने यह रहस्योंका भी रहस्य प्रकाशित किया है।

सूतजी कहते हैं—ब्रह्मन्! आप भी अहर्निश युगल-मन्त्रका जप करते हुए इन धर्मोंका पालन कीजिये। थोड़े ही दिनोंमें आपको भगवान्के दास्यभावकी प्राप्ति हो जायगी। मैं भी यमुनाके तटपर भगवान् गोपीनाथके नित्य-धाम वृन्दावनमें जा रहा हूँ। महादेवजीके मुखसे निकला हुआ यह उत्तम चरित्र परम पवित्र है, इसमें महान् अनुभव भरा हुआ है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इसका श्रवण करते हैं, वे अवश्य ही भगवान्के परमपदको प्राप्त होते हैं। यह स्वर्ग तथा मोक्षकी प्राप्तिका भी कारण और समस्त पापोंका नाशक है। जो लोग सदा भगवान् विष्णुकी सेवामें तत्पर रहकर इसका भक्तिपूर्वक पाठ करते हैं, उन्हें विष्णुलोकसे कभी किसी तरह भी पुनः इस संसारमें नहीं आना पड़ता।

अम्बरीष-नारद-संवाद तथा नारदजीके द्वारा निर्गुण एवं सगुण ध्यानका वर्णन

ऋषियोंने कहा—महाभाग! हमलोगोंने आपके मुखसे भगवान् श्रीकृष्णका अत्यन्त अद्भुत चरित्र सुना है और इससे हमें पूरा संतोष हुआ है। अहो! भगवान् श्रीकृष्णका माहात्म्य भक्तोंको सद्गति प्रदान करनेवाला है, उससे किसको तृप्ति हो सकती है। अतः हम पुनः श्रीकृष्णका चरित्र सुनना चाहते हैं।

सूतजी बोले—द्विजवरो! आपने बहुत उत्तम प्रश्न किया, यह जगत्को तारनेवाला है। आपलोग स्वयं तो कृतार्थ ही हैं; क्योंकि श्रीकृष्णके भक्तोंका मनोरथ सदा पूर्ण रहता है। श्रीकृष्णका पावन चरित्र साधु पुरुषोंको अत्यन्त हर्ष प्रदान करनेवाला है। अब मैं इस विषयमें एक अत्यन्त अद्भुत उपाख्यान सुनाता हूँ। एक समयकी बात है, भगवान्के प्रिय भक्त देवर्षि नारदजी सब लोकोंमें घूमते हुए मथुरामें गये और वहाँ राजा अम्बरीषसे मिले, जिनका चित्त श्रीकृष्णकी आराधनामें
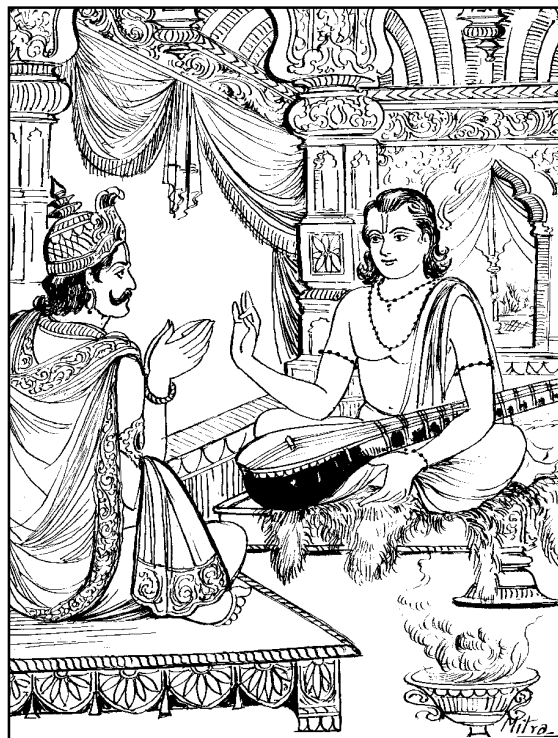
लगा हुआ था। मुनिश्रेष्ठ नारदके पधारनेपर साधु राजा अम्बरीषने उनका सत्कार किया और प्रसन्नचित्त होकर श्रद्धाके साथ आपलोगोंकी ही भाँति प्रश्न किया—'मुने! वेदोंके वक्ता विद्वान् पुरुष जिन्हें परम ब्रह्म कहते हैं, वे स्वयं भगवान् कमलनयन नारायण ही हैं। जो सबसे परे हैं, जिनकी कोई मूर्ति न होनेपर भी जो मूर्तिमान् स्वरूप धारण करते हैं, जो सबके ईश्वर, व्यक्त और अव्यक्तस्वरूप हैं, सनातन हैं, समस्त भूत जिनके स्वरूप हैं, जिनका चित्तद्वारा चिन्तन नहीं किया जा सकता, ऐसे भगवान् श्रीहरिका ध्यान किस प्रकार हो सकता है? जिनमें यह सारा विश्व ओतप्रोत है, जो अव्यक्त, एक, पर (उत्कृष्ट) और परमात्माके नामसे प्रसिद्ध हैं, जिनसे इस जगत्का जन्म, पालन और संहार होता है, जिन्होंने ब्रह्माजीको उत्पन्न करके उन्हें अपने ही भीतर स्थित वेदोंका ज्ञान दिया, जो समस्त पुरुषार्थोंको देनेवाले हैं, योगीजनोंको भी जिनके तत्त्वका बड़ी कठिनाईसे बोध होता है, उनकी आराधना कैसे की जा सकती है? कृपया यह बात बताइये। जिसने श्रीगोविन्दकी आराधना नहीं की, वह निर्भय पदको नहीं प्राप्त कर सकता। इतना ही नहीं, उसे तप, यज्ञ और दानका भी उत्तम फल नहीं मिलता। जिसने श्रीगोविन्दके चरणारविन्दोंका रसास्वादन नहीं किया, उसे मनोवांछित फलकी प्राप्ति कैसे हो सकती है? भगवान्की आराधना समस्त पापोंको दूर करनेवाली है, उसे छोड़कर मैं मनुष्योंके लिये दूसरा कोई प्रायश्चित्त नहीं देखता।[१] जिनके भ्रूभंग मात्रसे समस्त सिद्धियोंकी प्राप्ति सुनी जाती है, उन क्लेशहारी केशवकी आराधना कैसे होती है? स्त्रियाँ भी किस प्रकारसे उनकी उपासना कर सकती हैं? ये सब बातें संसारकी भलाईके लिये आप मुझे बताइये। भगवान् भक्तिके प्रेमी हैं। सब लोग उनकी आराधना किस प्रकार कर सकते हैं? नारदजी! आप वैष्णव हैं, भगवान्के प्रिय भक्त हैं, परमार्थतत्त्वके ज्ञाता तथा ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं; इसलिये मैं आपसे ही यह बात पूछता हूँ। भगवान् श्रीकृष्णके विषयमें किया हुआ प्रश्न वक्ता, श्रोता और प्रश्नकर्ता—इन तीनों पुरुषोंको पवित्र करता है; ठीक उसी तरह, जैसे उनके चरणोंका जल श्रीगंगाजीके रूपमें प्रवाहित होकर तीनों लोकोंको पावन बनाता है। देहधारियोंका यह देह क्षणभंगुर है, इसमें मनुष्य-शरीरका मिलना बड़ा दुर्लभ है, उसमें भी भगवान्के प्रेमी भक्तोंका दर्शन तो मैं और भी दुर्लभ समझता हूँ। इस संसारमें यदि क्षणभरके लिये भी सत्संग मिल जाय तो वह मनुष्योंके लिये निधिका काम देता है; क्योंकि उससे चारों पुरुषार्थ प्राप्त हो जाते हैं। भगवन्! आपकी यात्रा सम्पूर्ण प्राणियोंका मंगल करनेके लिये होती है। जैसे माता-पिताका प्रत्येक विधान बालकोंके हितके लिये ही होता है, उसी प्रकार भगवान्के पथपर चलनेवाले संत-महात्माओंकी हर एक क्रिया जगत्के जीवोंका कल्याण करनेके लिये ही होती है। देवताओंका चरित्र प्राणियोंके लिये कभी दुःखका कारण होता है और कभी सुखका; किन्तु आप-जैसे भगवत्परायण साधु पुरुषोंका प्रत्येक कार्य जीवोंके सुखका ही साधक होता है। जो देवताओंकी जैसी सेवा करते हैं, देवता भी उन्हें उसी प्रकार सुख पहुँचानेकी चेष्टा करते हैं। जैसे छाया सदा शरीरके साथ ही रहती है, उसी प्रकार देवता भी कर्मोंके साथ रहते हैं—जैसा कर्म होता है, वैसी ही सहायता उनसे प्राप्त होती है, किन्तु साधु पुरुष स्वभावसे ही दीनोंपर दया करनेवाले होते हैं।[२] इसलिये भगवन्! मुझे वैष्णव-धर्मोंका उपदेश कीजिये, जिससे वेदोंके स्वाध्यायका फल प्राप्त होता है।

१-अनाराधितगोविन्दो न विन्दति यतोऽभयम्। न तपोयज्ञदानानां लभते फलमुत्तमम्॥
अनास्वादितगोविन्दपादाम्बुजरसो नरः। मनोरथकथानीतं कथमाकलयेत्फलम्॥
हरेराराधनं हित्वा दुरितौघनिवारणम्। नान्यत्पश्यामि जन्तूनां प्रायश्चित्तं परं मुने॥ (८४। १५—१७)

२-श्रोतारमथ वक्तारं प्रष्टारं पुरुषं हरेः। प्रश्नः पुनाति कृष्णस्य तदङ्घ्रिसलिलं यथा॥
दुर्लभो मानुषो देहो देहिनां क्षणभङ्गुरः। तत्रापि दुर्लभं मन्ये वैकुण्ठप्रियदर्शनम्॥

नारदजीने कहा—राजन्! तुमने बहुत उत्तम प्रश्न किया है। तुम भगवान् श्रीविष्णुके भक्त हो और एकमात्र लक्ष्मीपतिका सेवन ही परमधर्म है—इस बातको जानते हो। जिन विष्णुकी आराधना करनेपर समस्त विश्वकी आराधना हो जाती है तथा जिन सर्वदेवमय श्रीहरिके संतुष्ट होनेपर सारा जगत् संतुष्ट हो जाता है, जिनके स्मरण मात्रसे महापातकोंकी सेना तत्काल थर्रा उठती है, वे भगवान् श्रीनारायण ही सेवनके योग्य हैं। राजन्! सब ओर मृत्युसे घिरा हुआ कौन ऐसा मनुष्य होगा, जो अपनी इन्द्रियोंके सकुशल रहते हुए श्रीमुकुन्दके चरणारविन्दोंका सेवन न करे। भगवान् तो ऋषियों और देवताओंके भी आराध्यदेव हैं।* भगवान्के नाम और लीलाओंका श्रवण, उनका निरन्तर पाठ, श्रीहरिके स्वरूपका ध्यान, उनका आदर तथा उनकी भक्तिका अनुमोदन—ये सब मनुष्यको तत्काल पवित्र कर देते हैं। वीर! भगवान् उत्तम धर्मस्वरूप हैं, वे विश्व-द्रोहियोंको भी पावन बना देते हैं। कारण-कार्य आदिके भी जो कारण हैं, भगवान् उनके भी कारण हैं; किन्तु उनका कोई कारण नहीं है। वे योगी हैं। जगत्के जीव उन्हींके स्वरूप हैं। सम्पूर्ण जगत् ही उनका रूप है। श्रीहरि अणु, बृहत्, कृश, स्थूल, निर्गुण, गुणवान्, महान्, अजन्मा तथा जन्म-मृत्युसे परे हैं; उनका सदा ही ध्यान करना चाहिये। सत्पुरुषोंके संगसे कीर्तन करनेयोग्य भगवान् श्रीकृष्णकी निर्मल कथाएँ सुननेको मिलती हैं, जो आत्मा, मन तथा कानोंको अत्यन्त सरस एवं मधुर जान पड़ती हैं। भगवान् भावसे—हृदयके प्रगाढ़ प्रेमसे प्राप्त होते हैं, इस बातको तुम स्वयं भी जानते हो; तथापि तुम्हारे गौरवका खयाल करके संसारके हितके लिये मैं भी कुछ निवेदन करूँगा। जिसे परब्रह्म कहते हैं, जो पुरुषसे परे और सर्वोत्कृष्ट है तथा जिसकी मायासे ही इस सम्पूर्ण जगत्की सत्ता प्रतीत होती है, वह तत्त्व भगवान् अच्युत ही हैं। वे भक्तिपूर्वक पूजित होनेपर सभी मनोवांछित वस्तुएँ प्रदान करते हैं। राजन्! जो मनुष्य मन, वाणी और क्रियासे भगवान्की आराधनामें लगे हैं, उनके व्रत-नियम बतलाया हूँ, इससे तुम्हें प्रसन्नता होगी। अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना) तथा निष्कपटभावसे रहना—ये भगवान्की प्रसन्नताके लिये मानसिक व्रत कहे गये हैं। नरेश्वर! दिनमें एक बार भोजन करना, रात्रिमें उपवास करना और बिना माँगे जो अपने-आप प्राप्त हो जाय उसी अन्नका उपयोग करना—यह पुरुषोंके लिये कायिक व्रत बताया गया है। वेदोंका स्वाध्याय, श्रीविष्णुके नाम एवं लीलाओंका कीर्तन तथा सत्यभाषण करना एवं चुगली न करना—यह वाणीसे सम्पन्न होनेवाला व्रत कहा गया है। चक्रधारी भगवान् विष्णुके नामोंका सदा और सर्वत्र कीर्तन करना चाहिये। वे नित्य शुद्धि करनेवाले हैं; अतः उनके कीर्तनमें कभी अपवित्रता आती ही नहीं। वर्ण और आश्रम-सम्बन्धी आचारोंका विधिवत् पालन करनेवाले पुरुषके द्वारा परम पुरुष श्रीविष्णुकी सम्यक् आराधना होती है। यह मार्ग भगवान्को संतुष्ट करनेवाला है। स्त्रियाँ मन, वाणी और शरीरके संयमरूप व्रतों तथा हितकारी आचरणोंके द्वारा अपने पतिरूपी दयानिधान वासुदेवकी उपासना करती हैं। शूद्रोंके लिये द्विजाति तथा स्त्रियोंके लिये पति ही श्रीकृष्णचन्द्रके

संसारेऽस्मिन् क्षणार्द्धोऽपि सत्सङ्गः शेवधिर्नृणाम्। यस्मादवाप्यते सर्वं पुरुषार्थचतुष्टयम्॥
भगवन् भवतो यात्रा स्वस्तये सर्वदेहिनाम्। बालानां च यथा पित्रोरुत्तमश्लोकवर्त्मनाम्॥
भूतानां देवचरितं दुःखाय च सुखाय च। सुखायैव हि साधूनां त्वादृशामच्युतात्मनाम्॥
भजन्ति ये यथा देवान् देवा अपि तथैव तान्। छायेव कर्मसचिवाः साधवो दीनवत्सलाः॥ (८४। २२—२७)

* साधु पृष्टं महीपाल विष्णुभक्तिमता त्वया। जानता परमं धर्ममेकं माधवसेवनम्॥
यस्मिन्नाराधिते विष्णौ विश्वमाराधितं भवेत्। तुष्टं च सकलं तुष्टे सर्वदेवमये हरौ॥
यस्य स्मरणमात्रेण महापातकसंहतिः। तत्क्षणात् त्रासमायाति स सेव्यो हरिरेव हि॥
को नु राजन्निन्द्रियवान् मुकुन्दचरणाम्बुजम्। न भजेत् सर्वतोमृत्युरुपास्यममृषिदैवतैः॥ (८४। २९—३२)

स्वरूप हैं; अतः उनको शास्त्रोक्त मार्गसे इन्हींका पूजन करना चाहिये।[१] ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—इन तीन वर्णोंके लोग ही वेदोक्त मार्गसे भगवान्‌की आराधना करें। स्त्री और शूद्र आदि केवल नाम-जप या नाम-कीर्तनके द्वारा ही भगवदाराधनके अधिकारी हैं। भगवान् लक्ष्मीपति केवल पूजन, यजन तथा व्रतोंसे ही नहीं संतुष्ट होते। वे भक्ति चाहते हैं; क्योंकि उन्हें 'भक्तिप्रिय' कहा गया है। पतिव्रता स्त्रियोंका तो पति ही देवता है। उन्हें पतिमें ही श्रीविष्णुके समान भक्ति रखनी चाहिये तथा मन, वाणी, शरीर और क्रियाओंद्वारा पतिकी ही पूजा करनी चाहिये। अपने पतिका प्रिय करनेमें लगी हुई स्त्रियोंके लिये पति-सेवा ही विष्णुकी उत्तम आराधना है। यह सनातन श्रुतिका आदेश है। विद्वान् पुरुष अग्निमें हविष्यके द्वारा, जलमें पुष्पोंके द्वारा, हृदयमें ध्यानके द्वारा तथा सूर्यमण्डलमें जपके द्वारा प्रतिदिन श्रीहरिकी पूजा करते हैं।[२]

अहिंसा पहला, इन्द्रिय-संयम दूसरा, जीवोंपर दया करना तीसरा, क्षमा चौथा, शम पाँचवाँ, दम छठा, ध्यान सातवाँ और सत्य आठवाँ पुष्प है। इन पुष्पोंके द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण संतुष्ट होते हैं। नृपश्रेष्ठ! अन्य पुष्प तो पूजाके बाह्य अंग हैं, भगवान् उपर्युक्त पुष्पोंसे ही प्रसन्न होते हैं; क्योंकि वे भक्तिके प्रेमी हैं। जल वरुण देवताका [प्रिय] पुष्प है, घी, दूध और दही—चन्द्रमाके पुष्प हैं, अन्न आदि प्रजापतिके, धूप-दीप अग्निका और फल-पुष्पादि वनस्पतिका पुष्प है! कुश-मूलादि पृथ्वीका, गन्ध और चन्दन वायुका तथा श्रद्धा विष्णुका पुष्प है। बाजा विष्णुपद (विष्णु-प्राप्तिका साधन) माना गया है। इन आठ पुष्पोंसे पूजित होनेपर भगवान् विष्णु तत्काल प्रसन्न होते हैं। सूर्य, अग्नि, ब्राह्मण, गौ, वैष्णव, हृदयाकाश, वायु, जल, पृथ्वी, आत्मा और सम्पूर्ण प्राणी—ये भगवान्‌की पूजाके स्थान हैं। सूर्यमें त्रयीविद्या (ऋक्, यजु, साम)-के द्वारा और अग्निमें हविष्यकी आहुतिके द्वारा भगवान्‌की पूजा करनी चाहिये। श्रेष्ठ ब्राह्मणमें आवभगतके द्वारा, गौओंमें घास और जल आदिके द्वारा, वैष्णवमें बन्धुजनोचित आदरके द्वारा तथा हृदयाकाशमें ध्याननिष्ठाके द्वारा श्रीहरिकी आराधना करनी उचित है। वायुमें मुख्य प्राण-बुद्धिके द्वारा, जलमें जलसहित पुष्पादि द्रव्योंके द्वारा, पृथ्वी अर्थात् वेदी या मृन्मयी मूर्तिमें मन्त्रपाठपूर्वक हार्दिक श्रद्धाके साथ समस्त भोग-समर्पणके द्वारा, आत्मामें अभेद-बुद्धिसे क्षेत्रज्ञके चिन्तनद्वारा तथा सम्पूर्ण भूतोंमें भगवान्‌को व्यापक मानकर उनके प्रति समतापूर्ण भावके द्वारा श्रीहरिका पूजन करना चाहिये। इन सभी स्थानोंमें शंख, चक्र, गदा और पद्मसे सुशोभित भगवान्‌के चतुर्भुज एवं शान्त रूपका ध्यान करते हुए एकाग्रचित्त होकर आराधन करना उचित है। ब्राह्मणोंके पूजनसे भगवान्‌की भी पूजा हो जाती है। तथा ब्राह्मणोंके फटकारे जानेपर भगवान् भी तिरस्कृत होते हैं। वेद और धर्मशास्त्र जिनके आधारपर टिके हुए हैं, वे ब्राह्मण भगवान् विष्णुके ही स्वरूप हैं; उनका नामोच्चारण करनेसे मनुष्य पवित्र हो जाते हैं। राजन्! संसारमें धर्मसे ही सब प्रकारके शुभ फलोंकी प्राप्ति होती है और धर्मका ज्ञान वेद तथा धर्मशास्त्रसे होता है। उन दोनोंके भी आधार इस पृथ्वीपर ब्राह्मण ही हैं; अतः उनकी पूजा करनेसे जगदीश्वर ही पूजित होते हैं। देवाधिदेव विष्णु यज्ञ और दानोंसे, उग्र तपस्यासे, योगके अभ्याससे तथा सम्यक् पूजनसे भी उतने प्रसन्न नहीं होते, जितना ब्राह्मणोंको संतुष्ट करनेसे होते हैं। वेदोंके जाननेवाले ब्रह्माजी भी ब्राह्मणोंके भक्त हैं। ब्राह्मण देवता हैं, इस बातके वे ही प्रवर्तक हैं। वे ब्राह्मणोंको देवता मानते हैं; अतः

१-पतिरूपो हिताचारैर्मनोवाक्कायसंयमैः। व्रतैराराध्यते स्त्रीभिर्वासुदेवो दयानिधिः॥
स्वागमोक्तेन मार्गेण स्त्रीशूद्रैरपि पूजनम्। कर्तव्यं कृष्णचन्द्रस्य द्विजातिवररूपिणः॥(८४। ४७-४८)

२-स्त्रीणां पतिव्रतानां तु पतिरेव हि दैवतम्। स तु पूज्यो विष्णुभक्त्या मनोवाक्कायकर्मभिः॥
स्त्रीणामथाधिकतया विष्णोराराधनादिकम्। पतिप्रियरतानां च श्रुतिरेषा सनातनी॥
हविषाग्नौ जले पुष्पैर्ध्यानेन हृदये हरिम्। यजन्ति सूरयो नित्यं जपेन रविमण्डले॥ (८४। ५१-५२, ५५)

ब्राह्मणोंके संतुष्ट होनेपर ही उन्हें भी संतोष होता है।

मातृकुल और पितृकुल—दोनों कुलोंके पूर्वज चिरकालसे नरकमें डूबे हों तो भी जब उनका वंशधर पुत्र श्रीहरिकी पूजा आरम्भ करता है, उसी समय वे स्वर्गमें चले जाते हैं। जिनका चित्त विश्वरूप वासुदेवमें आसक्त नहीं हुआ, उनके जीवनसे तथा पशुओंकी भाँति आहार-विहार आदि चेष्टाओंसे क्या लाभ।* राजन्! अब मैं विष्णुका ध्यान बतलाता हूँ, जो अबतक किसीने देखा न होगा, वह नित्य, निर्मल एवं मोक्ष प्रदान करनेवाला ध्यान तुम सुनो। जैसे वायुहीन स्थानमें रखा हुआ दीपक स्थिरभावसे अग्निमय स्वरूप धारण करके प्रज्वलित होता रहता है और घरके समूचे अन्धकारका नाश करता है, उसी प्रकार ध्यानस्थ आत्मा सब प्रकारके दोषोंसे रहित, निरामय, निष्काम, निश्चल तथा वैर और मैत्रीसे शून्य हो जाता है। श्रीकृष्णका ध्यान करनेवाला पुरुष शोक, दुःख, भय, द्वेष, लोभ, मोह तथा भ्रम आदिसे और इन्द्रियोंके विषयोंसे भी मुक्त हो जाता है। जैसे दीपक जलते रहनेसे तेलको सोख लेता है, उसी प्रकार ध्यान करनेसे कर्मका भी क्षय हो जाता है।

मानद! भगवान् शंकर आदिने ध्यान दो प्रकारका बतलाया है—निर्गुण और सगुण। उनमेंसे प्रथम अर्थात् निर्गुण ध्यानका वर्णन सुनो। जो लोग योग-शास्त्रोक्त यम-नियमादि साधनोंके द्वारा परमात्म-साक्षात्कारका प्रयत्न कर रहे हैं, वे ही सदा ध्यानपरायण होकर केवल ज्ञानदृष्टिसे परमात्माका दर्शन करते हैं। परमात्मा हाथ और पैरसे रहित है, तो भी वह सब कुछ ग्रहण करता और सर्वत्र जाता है। मुखके बिना ही भोजन करता और नाकके बिना ही सूँघता है। उसके कान नहीं हैं, तथापि वह सब कुछ सुनता है। वह सबका साक्षी और इस जगत्का स्वामी है। रूपहीन होकर भी रूपसे सम्बद्ध हो पाँचों इन्द्रियोंके वशीभूत हुआ-सा प्रतीत होता है। वह समस्त लोकोंका प्राण है, सम्पूर्ण चराचर जगत्के प्राणी उसकी पूजा करते हैं। बिना जीभके ही वह सब कुछ वेद-शास्त्रोंके अनुकूल बोलता है। उसके त्वचा नहीं है, तथापि वह शीत-उष्ण आदि सब प्रकारके स्पर्शका अनुभव करता है। सत्ता और आनन्द उसके स्वरूप हैं। वह जितेन्द्रिय, एकरूप, आश्रयविहीन, निर्गुण, ममतारहित, व्यापक, सगुण, निर्मल, ओजस्वी, सबको वशमें करनेवाला, सब कुछ देनेवाला और सर्वज्ञोंमें श्रेष्ठ है। वह सर्वत्र व्यापक एवं सर्वमय है। इस प्रकार जो अनन्य-बुद्धिसे उस सर्वमय ब्रह्मका ध्यान करता है, वह निराकार एवं अमृततुल्य परम पदको प्राप्त होता है।

महामते! अब मैं द्वितीय अर्थात् सगुण ध्यानका वर्णन करता हूँ, इसे सुनो। इस ध्यानका विषय भगवान्का मूर्त किंवा साकार रूप है। वह निरामय—रोग-व्याधिसे रहित है, उसका दूसरा कोई आलम्ब—आधार नहीं है [वह स्वयं ही सबका आधार है]। राजन्! जिनकी वासनासे यह सारा ब्रह्माण्ड वासित है—जिनके संकल्पमें इस जगत्का वास है, वे भगवान् श्रीहरि इस विश्वको वासित करनेके कारण ही वासुदेव कहलाते हैं। उनका श्रीविग्रह वर्षा-ऋतुके सजल मेघके समान श्याम है, उनकी प्रभा सूर्यके तेजको भी लज्जित करती है। उनके दाहिने भागके एक हाथमें बहुमूल्य मणियोंसे चित्रित शंख शोभा पा रहा है और दूसरेमें बड़े-बड़े असुरोंका संहार करनेवाली कौमोदकी गदा विराजमान है। उन जगदीश्वरके बायें हाथोंमें पद्म और चक्र सुशोभित हो रहे हैं। इस प्रकार उनके चार भुजाएँ हैं। वे सम्पूर्ण देवताओंके स्वामी हैं। 'शार्ङ्ग' नामक धनुष धारण करनेके कारण उन्हें शार्ङ्गी भी कहते हैं। वे लक्ष्मीके स्वामी हैं। [उनकी झाँकी बड़ी सुन्दर है—] शंखके समान मनोहर ग्रीवा, सुन्दर गोलाकार मुखमण्डल तथा पद्म-पत्रके समान बड़ी-बड़ी आँखें [—सभी आकर्षक हैं]। कुन्द-जैसे चमकते हुए दाँतोंसे भगवान्

---

* नरकेऽपि चिरं मग्नाः पूर्वजा ये कुलद्वये। तदैव यान्ति ते स्वर्गं यदार्चति सुतो हरिम्॥
किं तेषां जीवितेनेह पशुवच्चेष्टितेन किम्। येषां न प्रवणं चित्तं वासुदेवे जगन्मये॥ (८४। ७२-७३)

हृषीकेशकी बड़ी शोभा हो रही है। राजन्! श्रीहरि निद्राके ऊपर शासन करनेवाले हैं, उनका नीचेका ओठ मूँगेकी तरह लाल है। नाभिसे कमल प्रकट होनेके कारण उन्हें पद्मनाभ कहते हैं। वे अत्यन्त तेजस्वी किरीटके कारण बड़ी शोभा पा रहे हैं। श्रीवत्सके चिह्नने उनकी छविको और बढ़ा दिया है। श्रीकेशवका वक्ष:स्थल कौस्तुभमणिसे अलंकृत है। वे जनार्दन सूर्यके समान तेजस्वी कुण्डलोंद्वारा अत्यन्त देदीप्यमान हो रहे हैं। केयूर, हार, कड़े, कटिसूत्र, करधनी तथा अँगूठियोंसे उनके श्रीअंग विभूषित हैं, जिससे उनकी शोभा बहुत बढ़ गयी है। भगवान् तपाये हुए सुवर्णके रंगका पीताम्बर पहने हुए हैं और गरुड़की पीठपर विराजमान हैं। वे भक्तोंकी पापराशिको दूर करनेवाले हैं। इस प्रकार श्रीहरिके सगुण स्वरूपका ध्यान करना चाहिये।

राजन्! इस प्रकार मैंने तुम्हें दो तरहका ध्यान बतलाया है। इसका अभ्यास करके मनुष्य मन, वाणी तथा शरीरद्वारा होनेवाले सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। वह जिस-जिस फलको प्राप्त करना चाहता है, वह सब उसे निश्चितरूपसे मिल जाता है, देवता भी उसका आदर करते हैं तथा अन्तमें वह विष्णुलोकको प्राप्त होता है।

भगवद्भक्तिके लक्षण तथा वैशाख-स्नानकी महिमा

अम्बरीष बोले—मुनिश्रेष्ठ! आपने बड़ी अच्छी बात बतायी, इसके लिये आपको धन्यवाद है! आप सम्पूर्ण लोकोंपर अनुग्रह करनेवाले हैं। आपने भगवान् विष्णुके सगुण एवं निर्गुण ध्यानका वर्णन किया; अब आप भक्तिका लक्षण बतलाइये। साधुओंपर कृपा करनेवाले महर्षे! मुझे यह समझाइये कि किस मनुष्यको कब, कहाँ, कैसी और किस प्रकार भक्ति करनी चाहिये।

सूतजी कहते हैं—राजाओंमें श्रेष्ठ महाराज अम्बरीषके ये वचन सुनकर देवर्षि नारदजीको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे उनसे बोले—राजन्! सुनो—भगवान्की भक्ति समस्त पापोंका नाश करनेवाली है, मैं तुमसे उस भक्तिका भलीभाँति वर्णन करता हूँ। भक्ति अनेकों प्रकारकी बतायी गयी है—मानसी, वाचिकी, कायिकी, लौकिकी, वैदिकी तथा आध्यात्मिकी। ध्यान, धारणा, बुद्धि तथा वेदार्थके चिन्तनद्वारा जो विष्णुको प्रसन्न करनेवाली भक्ति की जाती है, उसे 'मानसी' भक्ति कहते हैं। दिन-रात अविश्रान्त भावसे वेदमन्त्रोंके उच्चारण, जप तथा आरण्यक आदिके पाठद्वारा जो भगवान्की प्रसन्नताका सम्पादन किया जाता है, उसका नाम 'वाचिकी' भक्ति है। व्रत, उपवास और नियमोंके पालन तथा पाँचों इन्द्रियोंके संयमद्वारा की जानेवाली आराधना [शरीरसे साध्य होनेके कारण] 'कायिकी' भक्ति कही गयी है; यह सब प्रकारकी सिद्धियोंका सम्पादन करनेवाली है। पाद्य, अर्घ्य आदि उपचार, नृत्य, वाद्य, गीत, जागरण तथा पूजन आदिके द्वारा जो भगवान्की सेवा की जाती है, उसे 'लौकिकी' भक्ति कहते हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदके जप, संहिताओंके अध्ययन आदि तथा हविष्यकी आहुति—यज्ञ-यागादिके द्वारा की जानेवाली उपासनाका नाम 'वैदिकी' भक्ति है। विज्ञ पुरुषोंने अमावास्या, पूर्णिमा तथा विषुव* (तुला और मेषकी संक्रान्ति) आदिके दिन जो याग करनेका आदेश दिया है, वह वैदिकी भक्तिका साधक है।

अब मैं योगजन्य आध्यात्मिकी भक्तिका भी वर्णन करता हूँ, सुनो। योगज भक्तिका साधक सदा अपनी इन्द्रियोंको संयममें रखकर प्राणायामपूर्वक ध्यान किया करता है। विषयोंसे अलग रहता है। वह ध्यानमें देखता है—भगवान्का मुख अनन्त तेजसे उद्दीप्त हो रहा है, उनकी कटिके ऊपरी भागतक लटका हुआ यज्ञोपवीत शोभा पा रहा है। उनका शुक्ल वर्ण है, चार भुजाएँ हैं।

---

* जब दिन और रात बराबर हों, उस दिन विषुव-योग होता है।

उनके हाथोंमें वरद एवं अभयकी मुद्राएँ हैं। वे पीत वस्त्र धारण किये हुए हैं तथा उनके नेत्र अत्यन्त सुन्दर हैं। वे प्रसन्नतासे परिपूर्ण दिखायी देते हैं। राजन्! इस प्रकार योगयुक्त पुरुष अपने हृदयमें परमेश्वरका ध्यान करता है।

जैसे प्रज्वलित अग्नि काष्ठको भस्म कर डालती है, उसी प्रकार भगवान्‌की भक्ति मनुष्यके पापोंको तत्काल दग्ध कर देती है। भगवान् श्रीविष्णुकी भक्ति साक्षात् सुधाका रस है, सम्पूर्ण रसोंका एकमात्र सार है। इस पृथ्वीपर मनुष्य जबतक उस भक्तिका श्रवण नहीं करता—उसका आश्रय नहीं लेता, तभीतक उसे सैकड़ों बार जन्म, मृत्यु और जराके आघातसे होनेवाले नाना प्रकारके दैहिक दुःख प्राप्त होते हैं। यदि महान् प्रभावशाली भगवान् अनन्तका कीर्तन और स्मरण किया जाय तो वे समस्त पापोंका नाश कर देते हैं, ठीक उसी तरह जैसे वायु मेघका तथा सूर्यदेव अन्धकारका विनाश कर डालते हैं। राजन्! देवपूजा, यज्ञ, तीर्थ-स्नान, व्रतानुष्ठान, तपस्या और नाना प्रकारके कर्मोंसे भी अन्तःकरणकी वैसी शुद्धि नहीं होती, जैसी भगवान् अनन्तका ध्यान करनेसे होती है।* नरनाथ! जिनमें पवित्र यशवाले तथा अपने भक्तोंको भक्ति प्रदान करनेवाले विशुद्धस्वरूप भगवान् श्रीविष्णुका कीर्तन होता है, वे ही कथाएँ शुद्ध हैं तथा वे ही यथार्थ, वे ही लाभ पहुँचानेवाली और वे ही हरिभक्तोंके कहने-सुननेयोग्य होती हैं। भूमण्डलके राज्यका भार सँभालनेवाले धीरचित्त महाराज अम्बरीष! तुम धन्य हो; क्योंकि तुम्हारा हृदय पुरुषोत्तमके ध्यानमें एकतान हो रहा है तथा सौभाग्यलक्ष्मीसे सुशोभित होनेवाली तुम्हारी नैष्ठिक बुद्धि श्रीकृष्णचन्द्रकी पुण्यमयी लीलाओंके श्रवणमें प्रवृत्त हो रही है। भूपते! भक्तोंको वरदान देनेवाले अविनाशी भगवान् श्रीविष्णुकी भक्तिपूर्वक आराधना किये बिना अहंकारवश अपनेको ही बड़ा माननेवाले पुरुषका कल्याण कैसे होगा। भगवान् मायाके जन्मदाता हैं, उनपर मायाका प्रभाव नहीं पड़ता। साधु पुरुष उन्हें भक्तिके द्वारा ही प्राप्त करते हैं, इस बातको तुम भी जानते हो। राजन्! धर्मका कोई भी तत्त्व ऐसा नहीं है, जो तुम्हें ज्ञात न हो। फिर भी जिनके चरण ही तीर्थ हैं, उन भगवान्‌की चर्चाका प्रसंग उठाकर जो तुम उनकी सरस कथाको मुझसे विस्तारके साथ पूछ रहे हो—उसमें यही कारण है कि तुम वैष्णवोंका गौरव बढ़ाना चाहते हो—मुझ-जैसे लोगोंको आदर दे रहे हो। साधु-संत जो एक-दूसरेसे मिलनेपर अधिक श्रद्धाके साथ भगवान् अनन्तके कल्याणमय गुणोंका कीर्तन और श्रवण करते हैं, इससे बढ़कर परम संतोषकी बात तथा समुचित पुण्य मुझे और किसी कार्यमें नहीं दिखायी देता। ब्राह्मण, गौ, सत्य, श्रद्धा, यज्ञ, तपस्या, श्रुति, स्मृति, दया, दीक्षा और संतोष—ये सब श्रीहरिके स्वरूप हैं। सूर्य, चन्द्रमा, वायु, पृथ्वी, जल, आकाश, दिशाएँ, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तथा सम्पूर्ण प्राणी उस परमेश्वरके ही स्वरूप हैं। इस चराचर जगत्‌को उत्पन्न करनेकी शक्ति रखनेवाले वे विश्वरूप भगवान् स्वयं ही ब्राह्मणके शरीरमें प्रवेश करके सदा उन्हें खिलाया जानेवाला अन्न भोजन करते हैं; इसलिये जिनकी चरण-रेणु तीर्थके समान है, भगवान् अनन्त ही जिनके आधार हैं, जो सम्पूर्ण प्राणियोंके आत्मा तथा पुण्यमयी लक्ष्मीके सर्वस्व हैं, उन ब्राह्मणोंका आदरपूर्वक पूजन करो। जो विद्वान् ब्राह्मणको विष्णुबुद्धिसे देखता है, वही सच्चा वैष्णव है तथा वही अपने धर्ममें भलीभाँति स्थित माना जाता है। तुमने भक्तिके लक्षण सुननेके लिये प्रार्थना की थी, सो सब मैंने तुम्हें सुना दिया। अब गंगा-स्नान करनेके लिये जा रहा हूँ।

'यह वैशाखका महीना उपस्थित है, जो भगवान् लक्ष्मीपतिको अत्यन्त प्रिय है। इसकी भी आज शुक्ल सप्तमी है; इसमें गंगाका स्नान अत्यन्त दुर्लभ है। पूर्वकालमें राजा जह्नुने वैशाख शुक्ल सप्तमीको क्रोधमें आकर गंगाजीको पी लिया था और फिर अपने दाहिने कानके छिद्रसे उन्हें बाहर निकाला था; अतः जह्नुकी

---

* न भूप देवार्चनयज्ञतीर्थस्नानव्रताचारक्रियातपोभिः । तथा विशुद्धिं लभतेऽन्तरात्मा यथा हृदिस्थे भगवत्यनन्ते॥ (८५। २८)

कन्या होनेके कारण गंगाको 'जाह्नवी' कहते हैं। इस तिथिको स्नान करके जो आकाशकी मेखलाभूत गंगा-देवीका उत्तम विधानके साथ पूजन करता है, वह मनुष्य धन्य एवं पुण्यात्मा है। जो वैशाख शुक्ल सप्तमीको विधिपूर्वक गंगामें देवताओं और पितरोंका तर्पण करता है, उसे गंगादेवी कृपा-दृष्टिसे देखती हैं तथा वह स्नानके पश्चात् सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। वैशाखके समान कोई मास नहीं है तथा गंगाके सदृश दूसरी कोई नदी नहीं है। इन दोनोंका संयोग दुर्लभ है। भगवान्‌की भक्तिसे ही ऐसा सुयोग प्राप्त होता है। गंगाजीका प्रादुर्भाव भगवान् श्रीविष्णुके चरणोंसे हुआ है। वे ब्रह्मलोकसे आकर भगवान् शंकरके जटा-जूटमें निवास करती हैं। गंगा समस्त दुःखोंका नाश करनेवाली हैं। वे अपने तीन स्रोतोंसे निरन्तर प्रवाहित होकर तीनों लोकोंको पवित्र करती रहती हैं। उन्हें स्वर्गपर चढ़नेके लिये सीढ़ी माना गया है। वे सदा आनन्द देनेवाली, नाना प्रकारके पापोंको हरनेवाली, संकटसे तारनेवाली, भक्तजनोंके अन्तःकरणमें दिव्य प्रकाश फैलानेकी लीलासे सुशोभित होनेवाली, सगरके पुत्रोंको मोक्ष प्रदान करनेवाली, धर्म-मार्गमें लगानेवाली तथा तीन मार्गोंसे प्रवाहित होनेवाली हैं। गंगादेवी तीनों लोकोंका शृंगार हैं। वे अपने दर्शन, स्पर्श, स्नान, कीर्तन, ध्यान और सेवनसे हजारों पवित्र तथा अपवित्र पुरुषोंको पावन बनाती रहती हैं। जो लोग दूर रहकर भी तीनों समय 'गंगा, गंगा, गंगा' इस प्रकार उच्चारण करते हैं, उनके तीन जन्मोंका पाप गंगाजी नष्ट कर देती हैं। जो मनुष्य हजार योजन दूरसे भी गंगाका स्मरण करता है, वह पापी होनेपर भी उत्तम गतिको प्राप्त होता है।

'राजन्! वैशाख शुक्ल सप्तमीको गंगाजीका दर्शन विशेष दुर्लभ है। भगवान् श्रीविष्णु और ब्राह्मणोंकी कृपासे ही उस दिन उनकी प्राप्ति होती है। माधव (वैशाख)-के समान महीना और माधव (विष्णु)-के समान कोई देवता नहीं है; क्योंकि पापके समुद्रमें डूबते हुए मनुष्यके लिये माधव ही जहाजका काम देते हैं। माधव मासमें जो भक्तिपूर्वक दान, जप, हवन और स्नान आदि शुभकर्म किये जाते हैं, उनका पुण्य अक्षय तथा सौ करोड़गुना अधिक होता है। जिस प्रकार देवताओंमें विश्वात्मा भगवान् नारायणदेव श्रेष्ठ हैं, जैसे जप करनेयोग्य मन्त्रोंमें गायत्री सबसे उत्कृष्ट है, उसी प्रकार नदियोंमें गंगाजीका स्थान सबसे ऊँचा है। जैसे सम्पूर्ण स्त्रियोंमें पार्वती, तपनेवालोंमें सूर्य, लाभोंमें आरोग्यलाभ, मनुष्योंमें ब्राह्मण, पुण्योंमें परोपकार, विद्याओंमें वेद, मन्त्रोंमें प्रणव, ध्यानोंमें आत्मचिन्तन, तपस्याओंमें सत्य और स्वधर्म-पालन, शुद्धियोंमें आत्मशुद्धि, दानोंमें अभयदान तथा गुणोंमें लोभका त्याग ही सबसे प्रधान माना गया है, उसी प्रकार सब मासोंमें वैशाख मास अत्यन्त श्रेष्ठ है। पापोंका अन्त वैशाख मासमें प्रातःस्नान करनेसे होता है। अन्धकारका अन्त सूर्यके उदयसे तथा पुण्योंका अन्त दूसरोंकी बुराई और चुगली करनेसे होता है। राजन्! कार्तिक मासमें जब सूर्य तुलाराशिपर स्थित हों, उस समय जो स्नान-दान आदि पुण्यकार्य किया जाता है, उसका पुण्य परार्धगुना* अधिक होता है। माघ मासमें जब मकरराशिपर सूर्य हों तो कार्तिककी अपेक्षा भी हजारगुना उत्तम फल होता है और वैशाख मासमें मेषकी संक्रान्ति होनेपर माघसे भी सौगुना अधिक पुण्य होता है। वे ही मनुष्य पुण्यात्मा और धन्य हैं, जो वैशाख मासमें प्रातःकाल स्नान करके विधि-विधानसे भगवान् लक्ष्मीपतिकी पूजा करते हैं। वैशाख मासमें सबेरेका स्नान, यज्ञ, दान, उपवास, हविष्य-भक्षण तथा ब्रह्मचर्यका पालन—ये महान् पातकोंका नाश करनेवाले हैं। राजन्! कलियुगमें वैशाखकी महिमा गुप्त नहीं रहने पायेगी; क्योंकि उस समय वैशाखस्नानका माहात्म्य अश्वमेध-यज्ञके अनुष्ठानसे भी बढ़कर है। कलियुगमें परमपावन अश्वमेध-यज्ञका अनुष्ठान नहीं हो सकता। उस समय वैशाख मासका स्नान ही अश्वमेध-यज्ञके समान विहित है। कलियुगके अधिकांश मनुष्य पापी

* संख्याकी पराकाष्ठाका नाम 'परार्ध' है। आधुनिक गणनाके अनुसार यह संख्या 'शंख' या 'महाशंख' कहलाती है।

होंगे। उनकी बुद्धि पापमें ही आसक्त होगी; अतः वे अश्वमेधके पुण्यको, जो स्वर्ग और मोक्षरूप फल प्रदान करनेवाला है, नहीं जान सकेंगे। उस समयके लोग अपने पापोंके कारण नरकमें पड़ेंगे। अतएव कलियुगके लिये अश्वमेधका प्रचार कम कर दिया गया [और उसके स्थानपर वैशाख मासके स्नानका विधान किया गया]।

वैशाख-माहात्म्य

सूतजी कहते हैं—महात्मा नारदके ये वचन सुनकर राजर्षि अम्बरीषने विस्मित होकर कहा—'महामुने! आप मार्गशीर्ष (अगहन) आदि पवित्र महीनोंको छोड़कर वैशाख मासकी ही इतनी प्रशंसा क्यों करते हैं? उसीको सब मासोंमें श्रेष्ठ क्यों बतलाते हैं? यदि माधव मास सबसे श्रेष्ठ और भगवान् लक्ष्मीपतिको अधिक प्रिय है तो उस समय स्नान करनेकी क्या विधि है? वैशाख मासमें किस वस्तुका दान, कौन-सी तपस्या तथा किस देवताका पूजन करना चाहिये? कृपानिधे! उस समय किये जानेवाले पुण्यकर्मका आप मुझे उपदेश कीजिये। सद्गुरुके मुखसे उपदेशकी प्राप्ति दुर्लभ होती है। उत्तम देश और कालका मिलना भी बड़ा कठिन होता है। राज्य-प्राप्ति आदि दूसरे कोई भी भाव हमारे हृदयको इतनी शीतलता नहीं प्रदान करते, जितनी कि आपका यह समागम।

नारदजीने कहा—राजन्! सुनो, मैं संसारके हितके लिये तुमसे माधव मासकी विधिका वर्णन करता हूँ। जैसा कि पूर्वकालमें ब्रह्माजीने बतलाया था। पहले तो जीवका भारतवर्षमें जन्म होना ही दुर्लभ है, उससे भी अधिक दुर्लभ है—वहाँ मनुष्यकी योनिमें जन्म। मनुष्य होनेपर भी अपने-अपने धर्मके पालनमें प्रवृत्ति होनी तो और भी कठिन है। उससे भी अत्यन्त दुर्लभ है—भगवान् वासुदेवमें भक्ति और उसके होनेपर भी माधव मासमें स्नान आदिका सुयोग मिलना तो और भी कठिन है। माधव मास माधव (लक्ष्मीपति)-को बहुत प्रिय है। माधव (वैशाख) मासको पाकर जो विधिपूर्वक स्नान, दान तथा जप आदिका अनुष्ठान करते हैं, वे ही मनुष्य धन्य एवं कृतकृत्य हैं। उनके दर्शन मात्रसे पापियोंके भी पाप दूर हो जाते हैं और वे भगवद्भावसे भावित होकर धर्माचरणके अभिलाषी बन जाते हैं। वैशाख मासके जो एकादशीसे लेकर पूर्णिमातक अन्तिम पाँच दिन हैं, वे समूचे महीनेके समान महत्त्व रखते हैं। राजेन्द्र! जिन लोगोंने वैशाख मासमें भाँति-भाँतिके उपचारोंद्वारा मधु दैत्यके मारनेवाले भगवान् लक्ष्मीपतिका पूजन कर लिया, उन्होंने अपने जन्मका फल पा लिया। भला, कौन-सी ऐसी अत्यन्त दुर्लभ वस्तु है जो वैशाखके स्नान तथा विधिपूर्वक भगवान्के पूजनसे नहीं प्राप्त होती। जिन्होंने दान, होम, जप, तीर्थमें प्राणत्याग तथा सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाले भगवान् श्रीनारायणका ध्यान नहीं किया, उन मनुष्योंका जन्म इस संसारमें व्यर्थ ही समझना चाहिये। जो धनके रहते हुए भी कंजूसी करता है, दान आदि किये बिना ही मर जाता है, उसका धन व्यर्थ है।

राजन्! उत्तम कुलमें जन्म, अच्छी मृत्यु, श्रेष्ठ भोग, सुख, सदा दान करनेमें अधिक प्रसन्नता, उदारता तथा उत्तम धैर्य—ये सब कुछ भगवान् श्रीविष्णुकी कृपासे ही प्राप्त होते हैं। महात्मा नारायणके अनुग्रहसे ही मनोवांछित सिद्धियाँ मिलती हैं। जो कार्तिकमें, माघमें तथा माधवको प्रिय लगनेवाले वैशाख मासमें स्नान करके मधुहन्ता लक्ष्मीपति दामोदरकी विशेष विधिके साथ भक्तिपूर्वक पूजा करता है और अपनी शक्तिके अनुसार दान देता है, वह मनुष्य इस लोकका सुख भोगकर अन्तमें श्रीहरिके पदको प्राप्त होता है। भूप! जैसे सूर्योदय होनेपर अन्धकार नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार वैशाख मासमें प्रातःस्नान करनेसे अनेक जन्मोंकी उपार्जित पापराशि नष्ट हो जाती है। यह बात ब्रह्माजीने मुझे बतायी थी। भगवान् श्रीविष्णुने माधव मासकी महिमाका विशेष प्रचार किया है। अतः इस महीनेके

आनेपर मनुष्योंको पवित्र करनेवाले पुण्यजलसे परिपूर्ण गंगातीर्थ, नर्मदातीर्थ, यमुनातीर्थ अथवा सरस्वतीतीर्थमें सूर्योदयके पहले स्नान करके भगवान् मुकुन्दकी पूजा करनी चाहिये। इससे तपस्याका फल भोगनेके पश्चात् अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति होती है। भगवान् श्रीनारायण अनामय—रोग-व्याधिसे रहित हैं, उन गोविन्ददेवकी आराधना करके तुम भगवान्का पद प्राप्त कर लोगे। राजन्! देवाधिदेव लक्ष्मीपति पापोंका नाश करनेवाले हैं, उन्हें नमस्कार करके चैत्रकी पूर्णिमाको इस व्रतका आरम्भ करना चाहिये। व्रत लेनेवाला पुरुष यम-नियमोंका पालन करे, शक्तिके अनुसार कुछ दान दे, हविष्यान्न भोजन करे, भूमिपर सोये, ब्रह्मचर्यव्रतमें दृढ़तापूर्वक स्थित रहे तथा हृदयमें भगवान् श्रीनारायणका ध्यान करते हुए कृच्छ्र आदि तपस्याओंके द्वारा शरीरको सुखाये। इस प्रकार नियमसे रहकर जब वैशाखकी पूर्णिमा आये, उस दिन मधु तथा तिल आदिका दान करे, श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भक्तिपूर्वक भोजन कराये, उन्हें दक्षिणासहित धेनु-दान दे तथा वैशाख-स्नानके व्रतमें जो कुछ त्रुटि हुई हो उसकी पूर्णताके लिये ब्राह्मणोंसे प्रार्थना करे। भूपाल! जिस प्रकार लक्ष्मीजी जगदीश्वर माधवकी प्रिया हैं, उसी प्रकार माधव मास भी मधुसूदनको बहुत प्रिय है। इस तरह उपर्युक्त नियमोंके पालनपूर्वक बारह वर्षोंतक वैशाख-स्नान करके अन्तमें मधुसूदनकी प्रसन्नताके लिये अपनी शक्तिके अनुसार व्रतका उद्यापन करे। अम्बरीष! पूर्वकालमें ब्रह्माजीके मुखसे मैंने जो कुछ सुना था, वह सब वैशाख मासका माहात्म्य तुम्हें बता दिया।

अम्बरीषने पूछा—मुने! स्नानमें परिश्रम तो बहुत थोड़ा है, फिर भी उससे अत्यन्त दुर्लभ फलकी प्राप्ति होती है—मुझे इसपर विश्वास क्यों नहीं होता? मुझे मोह क्यों हो रहा है?

नारदजीने कहा—राजन्! तुम्हारा संदेह ठीक है। थोड़े-से परिश्रमके द्वारा महान् फलकी प्राप्ति असम्भव-सी बात है; तथापि इसपर विश्वास करो, क्योंकि यह ब्रह्माजीकी बतायी हुई बात है। धर्मकी गति सूक्ष्म होती है, उसे समझनेमें बड़े-बड़े पुरुषोंको भी कठिनाई होती है। श्रीहरिकी शक्ति अचिन्त्य है, उनकी कृतिमें विद्वानोंको भी मोह हो जाता है। विश्वामित्र आदि क्षत्रिय थे, किन्तु धर्मका अधिक अनुष्ठान करनेके कारण वे ब्राह्मणत्वको प्राप्त हो गये; अतः धर्मकी गति अत्यन्त सूक्ष्म है। भूपाल! तुमने सुना होगा, अजामिल अपनी धर्मपत्नीका परित्याग करके सदा पापके मार्गपर ही चलता था। तथापि मृत्युके समय उसने केवल पुत्रके स्नेहवश 'नारायण' कहकर पुकारा—पुत्रका चिन्तन करके 'नारायण' का नाम लिया; किन्तु इतनेसे ही उसको अत्यन्त दुर्लभ पदकी प्राप्ति हुई। जैसे अनिच्छापूर्वक भी यदि आगका स्पर्श किया जाय तो वह शरीरको जलाती ही है, उसी प्रकार किसी दूसरे निमित्तसे भी यदि श्रीगोविन्दका नामोच्चारण किया जाय तो वह पापराशिको भस्म कर डालता है।* जीव विचित्र हैं, जीवोंकी भावनाएँ विचित्र हैं, कर्म विचित्र है तथा कर्मोंकी शक्तियाँ भी विचित्र हैं। शास्त्रमें जिसका महान् फल बताया गया हो, वही कर्म महान् है [फिर वह अल्प परिश्रम-साध्य हो या अधिक परिश्रम-साध्य]। छोटी-सी वस्तुसे भी बड़ी-से-बड़ी वस्तुका नाश होता देखा जाता है। जरा-सी चिनगारीसे बोझ-के-बोझ तिनके स्वाहा हो जाते हैं। जो श्रीकृष्णके भक्त हैं, उनके अनजानमें किये हुए हजारों हत्याओंसे युक्त भयंकर पातक तथा चोरी आदि पाप भी नष्ट हो जाते हैं। वीर! जिसके हृदयमें भगवान् श्रीविष्णुकी भक्ति है वह विद्वान् पुरुष यदि थोड़ा-सा भी पुण्य-कार्य करता है तो वह अक्षय फल देनेवाला होता है। अतः माधव मासमें माधवकी भक्तिपूर्वक आराधना करके मनुष्य अपनी मनोवांछित कामनाओंको प्राप्त कर लेता है—इस विषयमें संदेह नहीं करना चाहिये। शास्त्रोक्त विधिसे किया जानेवाला छोटे-से-छोटा कर्म क्यों न हो, उसके

*अनिच्छयापि दहति स्पृष्टो हुतवहो यथा। तथा दहति गोविन्दनाम व्याजादपीरितम्॥ (८७।८)

द्वारा बड़े-से-बड़े पापका भी क्षय हो जाता है तथा उत्तम कर्मकी वृद्धि होने लगती है। राजन्! भाव तथा भक्ति दोनोंकी अधिकतासे फलमें अधिकता होती है। धर्मकी गति सूक्ष्म है, वह कई प्रकारोंसे जानी जाती है। महाराज! जो भावसे हीन है—जिसके हृदयमें उत्तम भाव एवं भगवान्की भक्ति नहीं है, वह अच्छे देश और कालमें जा-जाकर जीवनभर पवित्र गंगा-जलसे नहाता और दान देता रहे तो भी कभी शुद्ध नहीं हो सकता—ऐसा मेरा विचार है। अतः अपने हृदय-कमलमें शुद्ध-भावकी स्थापना करके वैशाख मासमें प्रातःस्नान करनेवाला जो विशुद्धचित्त पुरुष भक्तिपूर्वक भगवान् लक्ष्मीपतिकी पूजा करता है, उसके पुण्यका वर्णन करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है। अतः भूपाल! तुम वैशाख मासके फलके विषयमें विश्वास करो। छोटा-सा शुभ कर्म भी सैकड़ों पापकर्मोंका नाश करनेवाला होता है। जैसे हरिनामके भयसे राशि-राशि पाप नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार सूर्यके मेषराशिपर स्थित होनेके समय प्रातःस्नान करनेसे तथा तीर्थमें भगवान्की स्तुति करनेसे भी समस्त पापोंका नाश हो जाता है।* जिस प्रकार गरुड़के तेजसे साँप भाग जाते हैं, उसी तरह प्रातःकाल वैशाख-स्नान करनेसे पाप पलायन कर जाते हैं—यह निश्चित बात है। जो मनुष्य मेषराशिके सूर्यमें गंगा या नर्मदाके जलमें नहाकर एक, दो या तीनों समय भक्ति-भावके साथ पाप-प्रशमन नामक स्तोत्रका पाठ करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर परम पदको प्राप्त होता है। अम्बरीष! इस प्रकार मैंने थोड़ेमें यह वैशाख-स्नानका सारा माहात्म्य सुना दिया, अब और क्या सुनना चाहते हो?'

वैशाख-स्नानसे पाँच प्रेतोंका उद्धार तथा 'पाप-प्रशमन' नामक स्तोत्रका वर्णन

अम्बरीषने कहा—मुने! जिसके चिन्तन मात्रसे पापराशिका लय हो जाता है, उस पाप-प्रशमन नामक स्तोत्रको मैं भी सुनना चाहता हूँ। आज मैं धन्य हूँ, अनुगृहीत हूँ; आपने मुझे उस शुभ विधिका श्रवण कराया, जिसके सुनने मात्रसे पापोंका क्षय हो जाता है। वैशाख मासमें जो भगवान् केशवके कल्याणमय नामोंका कीर्तन किया जाता है, उसीको मैं संसारमें सबसे बड़ा पुण्य, पवित्र, मनोरम तथा एकमात्र सुकृतसे ही सुलभ होनेवाला शुभ कर्म मानता हूँ। अहो! जो लोग माधव मासमें भगवान् मधुसूदनके नामोंका स्मरण करते हैं, वे धन्य हैं। अतः यदि आप उचित समझें तो मुझे पुनः माधव मासकी ही पवित्र कथा सुनायें।

सूतजी कहते हैं—राजाओंमें श्रेष्ठ हरिभक्त अम्बरीषका वचन सुनकर नारद मुनिको बड़ी प्रसन्नता हुई। यद्यपि वे वैशाख-स्नानके लिये जानेको उत्कण्ठित थे, तथापि सत्संगमें आनन्द आनेके कारण रुक गये और राजासे बोले।

नारदजीने कहा—महीपाल! मुझे ऐसा जान पड़ता है कि यदि दो व्यक्तियोंमें परस्पर भगवत्कथा-सम्बन्धी सरस वार्तालाप छिड़ जाय तो वह अत्यन्त विशुद्ध—अन्तःकरणको शुद्ध करनेवाला होता है। आज तुम्हारे साथ जो माधव मासके माहात्म्यकी चर्चा चल रही है, यह वैशाख-स्नानकी अपेक्षा भी अधिक पुण्य प्रदान करनेवाली है; क्योंकि माधव मासके देवता भगवान् श्रीविष्णु हैं [अतः उसका कीर्तन भगवान्का ही कीर्तन है]। जिसका जीवन धर्मके लिये और धर्म भगवान्की प्रसन्नताके लिये है तथा जो रातों-दिन पुण्योपार्जनमें ही लगा रहता है, उसीको इस पृथ्वीपर मैं वैष्णव मानता हूँ। राजन्! अब मैं वैशाख-स्नानसे होनेवाले पुण्य-फलका संक्षेपसे वर्णन करता हूँ; विस्तारके साथ सारा वर्णन तो मेरे पिता—ब्रह्माजी भी नहीं कर सकते। वैशाखमें डुबकी लगाने मात्रसे समस्त

* यथा हरेर्नामभयेन भूप नश्यन्ति सर्वे दुरितस्य वृन्दाः। नूनं रवौ मेषगते विभाते स्नानेन तीर्थे च हरिस्तवेन॥ (८७। ३४)

पाप छूट जाते हैं। पूर्वकालकी बात है, कोई मुनीश्वर तीर्थयात्राके प्रसंगसे सर्वत्र घूम रहे थे। उनका नाम था मुनिशर्मा। वे बड़े धर्मात्मा, सत्यवादी, पवित्र तथा शम, दम एवं शान्तिधर्मसे युक्त थे। वे प्रतिदिन पितरोंका तर्पण और श्राद्ध करते थे। उन्हें वेदों और स्मृतियोंके विधानोंका सम्यक् ज्ञान था। वे मधुर वाणी बोलते और भगवान्का पूजन करते रहते थे। वैष्णवोंके संसर्गमें ही उनका समय व्यतीत होता था। वे तीनों कालोंके ज्ञाता, मुनि, दयालु, अत्यन्त तेजस्वी, तत्त्वज्ञानी और ब्राह्मण-भक्त थे। वैशाखका महीना था, मुनिशर्मा स्नानके लिये नर्मदाके किनारे जा रहे थे। उसी समय उन्होंने अपने सामने पाँच पुरुषोंको देखा, जो भारी दुर्गतिमें फँसे हुए थे। वे अभी-अभी एक-दूसरेसे मिले थे! उनके शरीरका रंग काला था। वे एक बरगदकी छायामें बैठे थे और पापोंके कारण उद्विग्न होकर चारों ओर दृष्टिपात कर रहे थे। उन्हें देखकर द्विजवर मुनिशर्मा बड़े विस्मयमें पड़े और सोचने लगे—इस भयानक वनमें ये मनुष्य कहाँसे आये? इनकी चेष्टा बड़ी दयनीय है, किन्तु इनका आकार बड़ा भयंकर दिखायी देता है। ये पापभागी चोर तो नहीं हैं? विप्रवर मुनिशर्माकी बुद्धि बड़ी स्थिर थी, वे ज्यों ही इस प्रकार विचार करने लगे, उसी समय उपर्युक्त पाँचों पुरुष उनके पास आये और हाथ जोड़कर मुनिशर्मासे बोले।

पंच पुरुषोंने कहा—विप्रवर! हमें आप कल्याणमय पुरुषोत्तम जान पड़ते हैं। हम दुःखी जीव हैं। अपना दुःख विचारकर आपको बताना चाहते हैं। द्विजराज! आप कृपा करके हमारी कष्ट-कथा सुनें। दैववश जिनके पाप प्रकट हो गये हैं, उन दीन-दुःखी प्राणियोंके आधार आप-जैसे संत-महात्मा ही हैं। साधु पुरुष अपनी दृष्टिमात्रसे पीड़ितोंकी पीड़ाएँ हर लेते हैं। [अब उनमेंसे एकने सबका परिचय देना आरम्भ किया—] मैं पंचाल देशका क्षत्रिय हूँ, मेरा नाम नरवाहन है। मैंने मार्गमें मोहवश बाणद्वारा एक ब्राह्मणकी हत्या कर डाली। मुझसे ब्रह्म-हत्याका पाप हो गया है। इसलिये शिखा, सूत्र और तिलकसे रहित होकर इस पृथ्वीपर घूमता हूँ और सबसे कहता फिरता हूँ कि 'मैं ब्रह्महत्यारा हूँ।' मुझ महापापी ब्रह्मघातीको आप कृपाकी भिक्षा दें। इस दशामें पड़े-पड़े मुझे एक वर्ष बीत गया। मैं पापसे जल रहा हूँ। मेरा चित्त शोकसे व्याकुल है तथा ये जो सामने दिखायी देते हैं, इनका नाम चन्द्रशर्मा है। ये जातिके ब्राह्मण हैं। इन्होंने मोहसे मलिन होकर गुरुका वध किया है। ये मगध देशके निवासी हैं। इनके स्वजनोंने इनका परित्याग कर दिया है। ये भी घूमते-घामते दैवात् यहाँ आ पहुँचे हैं। इनके भी न शिखा है न सूत्र। ब्राह्मणका कोई भी चिह्न इनके शरीरमें नहीं रह गया है। इनके सिवा जो ये तीसरे व्यक्ति हैं, इनका नाम देवशर्मा है। स्वामिन्! ये भी बड़े कष्टमें हैं। ये भी जातिके ब्राह्मण हैं, किन्तु मोहवश वेश्याकी आसक्तिमें फँसकर शराबी हो गये थे। इन्होंने भी पूछनेपर अपना सारा हाल सच-सच कह सुनाया है। अपने प्रथम पापाचारको याद करके इनके हृदयमें बड़ा संताप होता है। ये सदा मनस्तापसे पीड़ित रहते हैं। इनको इनकी स्त्रीने, बन्धु-बान्धवोंने तथा गाँवके सब लोगोंने वहाँसे निकाल दिया है। ये अपने उसी पापके साथ भ्रमण करते हुए यहाँ आये हैं। ये चौथे महाशय जातिके वैश्य हैं। इनका नाम विधुर है। ये गुरुपत्नीके साथ समागम करनेवाले हैं। इनकी माता मिथिलामें जाकर वेश्या हो गयी थी। इन्होंने मोहवश तीन महीनोंतक उसीका उपभोग किया है। परन्तु जब असली बातका पता लगा है तो बहुत दुःखी होकर पृथ्वीपर विचरते हुए ये भी यहाँ आ पहुँचे हैं। हममेंसे ये जो पाँचवें दिखायी दे रहे हैं, ये भी वैश्य ही हैं। इनका नाम नन्द है। ये पापियोंका संसर्ग करनेवाले महापापी हैं। इन्होंने प्रतिदिन धनके लालचमें पड़कर बहुत चोरी की है। पातकोंसे आक्रान्त हो जानेपर इन्हें स्वजनोंने त्याग दिया है। तब ये स्वयं भी खिन्न होकर दैवात् यहाँ आ पहुँचे हैं। इस प्रकार हम पाँचों महापापी एक स्थानपर जुट गये हैं। हम सब-के-सब दुःखोंसे घिरे हुए हैं। अनेकों तीर्थोंमें घूम आये, मगर हमारा घोर पातक नहीं मिटता। आपको तेजसे उद्दीप्त देखकर हमलोगोंका मन

प्रसन्न हो गया है। आप-जैसे साधु पुरुषके पुण्यमय दर्शनसे हमारे पातकोंके अन्त होनेकी सूचना मिल रही है। स्वामिन्! कोई ऐसा उपाय बताइये, जिससे हमलोगोंके पापोंका नाश हो जाय। प्रभो! आप वेदार्थके ज्ञाता और परम दयालु जान पड़ते हैं; आपसे हमें अपने उद्धारकी बड़ी आशा है।

मुनिशर्माने कहा—तुमलोगोंने अज्ञानवश पाप किया, किन्तु इसके लिये तुम्हारे हृदयमें अनुताप है तथा तुम सब-के-सब सत्य बोल रहे हो; इस कारण तुम्हारे ऊपर अनुग्रह करना मेरा कर्तव्य है। मैं अपनी भुजा ऊपर उठाकर कहता हूँ, मेरी सत्य बातें सुनो। पूर्वकालमें जब मुनियोंका समुदाय एकत्रित हुआ था, उस समय मैंने महर्षि अंगिराके मुखसे जो कुछ सुना था, वही वेद-शास्त्रोंमें भी देखा; वह सबके लिये विश्वास करनेयोग्य है। मेरी आराधनासे संतुष्ट हुए स्वयं भगवान् विष्णुने भी पहले ऐसी ही बात बतायी थी। वह इस प्रकार है। भोजनसे बढ़कर दूसरा कोई तृप्तिका साधन नहीं है। पितासे बढ़कर कोई गुरु नहीं है। ब्राह्मणोंसे उत्तम दूसरा कोई पात्र नहीं है तथा भगवान् विष्णुसे श्रेष्ठ दूसरा कोई देवता नहीं है। गंगाकी समानता करनेवाला कोई तीर्थ, गोदानकी तुलना करनेवाला कोई दान, गायत्रीके समान जप, एकादशीके तुल्य व्रत, भार्याके सदृश मित्र, दयाके समान धर्म तथा स्वतन्त्रताके समान सुख नहीं है। गार्हस्थ्यसे बढ़कर आश्रम और सत्यसे बढ़कर सदाचार नहीं है। इसी प्रकार संतोषके समान सुख तथा वैशाख मासके समान महान् पापोंका अपहरण करनेवाला दूसरा कोई मास नहीं है। वैशाख मास भगवान् मधुसूदनको बहुत ही प्रिय है। गंगा आदि तीर्थोंमें तो वैशाख-स्नानका सुयोग अत्यन्त दुर्लभ है। उस समय गंगा, यमुना तथा नर्मदाकी प्राप्ति कठिन होती है। जो शुद्ध हृदयवाला मनुष्य भगवान्‌के भजनमें तत्पर हो पूरे वैशाखभर प्रातःकाल गंगास्नान करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर परम गतिको प्राप्त होता है।

इसलिये पुण्यके सारभूत इस वैशाख मासमें तुम सभी पातकी मेरे साथ नर्मदा-तटपर चलो और उसमें गोते लगाओ। नर्मदाके जलका मुनिलोग भी सेवन करते हैं, वह समस्त पापोंके भयका नाश करनेवाला है। मुनिके यों कहनेपर वे सब पापी उनके साथ अद्‌भुत पुण्य प्रदान करनेवाली नर्मदाकी प्रशंसा करते हुए उसके तटपर गये। किनारे पहुँचकर ब्राह्मणश्रेष्ठ मुनिशर्माका चित्त प्रसन्न हो गया। उन्होंने वेदोक्त विधिके अनुसार नर्मदाके जलमें प्रातःस्नान किया। उपर्युक्त पाँचों पापियोंने भी ब्राह्मणके कहनेसे ज्यों ही नर्मदामें डुबकी लगायी, त्यों ही उनके शरीरका रंग बदल गया; वे तत्काल सुवर्णके समान कान्तिमान् हो गये। फिर मुनिशर्माने सब लोगोंके सामने उन्हें पाप-प्रशमन नामक स्तोत्र सुनाया।

भूपाल! अब तुम पाप-प्रशमन नामक स्तोत्र सुनो। इसका भक्तिपूर्वक श्रवण करके भी मनुष्य पापराशिसे मुक्त हो जाता है। इसके चिन्तन मात्रसे बहुतेरे पापी शुद्ध हो चुके हैं। इसके सिवा और भी बहुत-से मनुष्य इस स्तोत्रका सहारा लेकर अज्ञानजनित पापसे मुक्त हो गये हैं। जब मनुष्योंका चित्त परायी स्त्री, पराये धन तथा जीव-हिंसा आदिकी ओर जाय तो इस प्रायश्चित्तरूपा स्तुतिकी शरण लेनी चाहिये। यह स्तुति इस प्रकार है—

विष्णवे विष्णवे नित्यं विष्णवे विष्णवे नमः।
नमामि विष्णुं चित्तस्थमहङ्कारगतं हरिम्॥
चित्तस्थमीशमव्यक्तमनन्तमपराजितम्।
विष्णुमीड्यमशेषाणामनादिनिधनं हरिम्॥

सम्पूर्ण विश्वमें व्यापक भगवान् श्रीविष्णुको सर्वदा नमस्कार है। विष्णुको बारम्बार प्रणाम है। मैं अपने चित्तमें विराजमान विष्णुको नमस्कार करता हूँ। अपने अहंकारमें व्याप्त श्रीहरिको मस्तक झुकाता हूँ। श्रीविष्णु चित्तमें विराजमान ईश्वर (मन और इन्द्रियोंके शासक), अव्यक्त, अनन्त, अपराजित, सबके द्वारा स्तवन करनेयोग्य तथा आदि-अन्तसे रहित हैं; ऐसे श्रीहरिको मैं नित्य-निरन्तर प्रणाम करता हूँ।

विष्णुश्चित्तगतो यन्मे विष्णुर्बुद्धिगतश्च यत्।
योऽहङ्कारगतो विष्णुर्यो विष्णुर्मयि संस्थितः॥
करोति कर्तृभूतोऽसौ स्थावरस्य चरस्य च।
तत्पापं नाशमायाति तस्मिन् विष्णौ विचिन्तिते॥

जो विष्णु मेरे चित्तमें विराजमान हैं, जो विष्णु मेरी बुद्धिमें स्थित हैं, जो विष्णु मेरे अहंकारमें व्याप्त हैं तथा जो विष्णु सदा मेरे स्वरूपमें स्थित हैं, वे ही कर्ता होकर सब कुछ करते हैं। उन विष्णुभगवान्‌का चिन्तन करनेपर चराचर प्राणियोंका सारा पाप नष्ट हो जाता है।

ध्यातो हरति यः पापं स्वप्ने दृष्टश्च पापिनाम्।
तमुपेन्द्रमहं विष्णुं नमामि प्रणतप्रियम्॥

जो ध्यान करने और स्वप्नमें दीख जानेपर भी पापियोंके पाप हर लेते हैं तथा चरणोंमें पड़े हुए शरणागत भक्त जिन्हें अत्यन्त प्रिय हैं, उन वामनरूपधारी भगवान् श्रीविष्णुको नमस्कार करता हूँ।

जगत्यस्मिन्निरालम्बे ह्यजमक्षरमव्ययम्।
हस्तावलम्बनं स्तोत्रं विष्णुं वन्दे सनातनम्॥

जो अजन्मा, अक्षर और अविनाशी हैं तथा इस अवलम्बशून्य संसारमें हाथका सहारा देनेवाले हैं, स्तोत्रोंद्वारा जिनकी स्तुति की जाती है, उन सनातन श्रीविष्णुको मैं प्रणाम करता हूँ।

सर्वेश्वरेश्वर विभो परमात्मन्नधोक्षज।
हृषीकेश हृषीकेश हृषीकेश नमोऽस्तु ते॥

हे सर्वेश्वर! हे ईश्वर! हे व्यापक परमात्मन्! हे अधोक्षज! हे इन्द्रियोंका शासन करनेवाले अन्तर्यामी हृषीकेश! आपको बारम्बार नमस्कार है।

नृसिंहानन्त गोविन्द भूतभावन केशव।
दुरुक्तं दुष्कृतं ध्यातं शमयाशु जनार्दन॥

हे नृसिंह! हे अनन्त! हे गोविन्द! हे भूतभावन! हे केशव! हे जनार्दन! मेरे दुर्वचन, दुष्कर्म और दुश्चिन्तनको शीघ्र नष्ट कीजिये।

यन्मया चिन्तितं दुष्टं स्वचित्तवशवर्तिना।
आकर्णय महाबाहो तच्छमं नय केशव॥

महाबाहो! मेरी प्रार्थना सुनिये—अपने चित्तके वशमें होकर मैंने जो कुछ बुरा चिन्तन किया हो, उसको शान्त कर दीजिये।

ब्रह्मण्यदेव गोविन्द परमार्थपरायण।
जगन्नाथ जगद्धातः पापं शमय मेऽच्युत॥

ब्राह्मणोंका हित साधन करनेवाले देवता गोविन्द! परमार्थमें तत्पर रहनेवाले जगन्नाथ! जगत्‌को धारण करनेवाले अच्युत! मेरे पापोंका नाश कीजिये।

यच्चापराह्ने सायाह्ने मध्याह्ने च तथा निशि।
कायेन मनसा वाचा कृतं पापमजानता॥
जानता च हृषीकेश पुण्डरीकाक्ष माधव।
नामत्रयोच्चारणतः सर्वं यातु मम क्षयम्॥

मैंने पूर्वाह्न, सायाह्न, मध्याह्न तथा रात्रिके समय शरीर, मन और वाणीके द्वारा, जानकर या अनजानमें जो कुछ पाप किया हो, वह सब 'हृषीकेश, पुण्डरीकाक्ष और माधव'—इन तीन नामोंके उच्चारणसे नष्ट हो जाय।

शारीरं मे हृषीकेश पुण्डरीकाक्ष मानसम्।
पापं प्रशममायातु वाक्कृतं मम माधव॥

हृषीकेश! आपके नामोच्चारणसे मेरा शारीरिक पाप नष्ट हो जाय, पुण्डरीकाक्ष! आपके स्मरणसे मेरा मानस पाप शान्त हो जाय तथा माधव! आपके नाम-कीर्तनसे मेरे वाचिक पापका नाश हो जाय।

यद् भुञ्जानः पिबंस्तिष्ठन् स्वपञ्जाग्रद् यदा स्थितः।
अकार्षं पापमर्थार्थं कायेन मनसा गिरा॥
महदल्पं च यत्पापं दुर्योनिनरकावहम्।
तत्सर्वं विलयं यातु वासुदेवस्य कीर्तनात्॥

मैंने खाते, पीते, खड़े होते, सोते, जागते तथा ठहरते समय मन, वाणी और शरीरसे, स्वार्थ या धनके लिये जो कुत्सित योनियों और नरकोंकी प्राप्ति करानेवाला महान् या थोड़ा पाप किया है, वह सब भगवान् वासुदेवका नामोच्चारण करनेसे नष्ट हो जाय।

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं च यत्।
अस्मिन् संकीर्तिते विष्णौ यत् पापं तत् प्रणश्यतु॥

जिसे परब्रह्म, परम धाम और परम पवित्र कहते हैं, वह तत्त्व भगवान् विष्णु ही हैं; इन श्रीविष्णुभगवान्‌का कीर्तन करनेसे मेरे जो भी पाप हों, वे नष्ट हो जायँ।

यत्प्राप्य न निवर्तन्ते गन्धस्पर्शविवर्जितम्।
सूरयस्तत्पदं विष्णोस्तत्सर्वं मे भवत्वलम्॥

जो गन्ध और स्पर्शसे रहित है, ज्ञानी पुरुष जिसे पाकर पुनः इस संसारमें नहीं लौटते, वह श्रीविष्णुका ही परमपद है। वह सब मुझे पूर्णरूपसे प्राप्त हो जाय।

पापप्रशमनं स्तोत्रं यः पठेच्छृणुयान्नरः।
शारीरैर्मानसैर्वाचा कृतैः पापैः प्रमुच्यते॥
मुक्तः पापग्रहादिभ्यो याति विष्णोः परं पदम्।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्तोत्रं सर्वाघनाशनम्॥
प्रायश्चित्तमघौघानां पठितव्यं नरोत्तमैः।*

यह 'पाप-प्रशमन' नामक स्तोत्र है। जो मनुष्य इसे पढ़ता और सुनता है, वह शरीर, मन और वाणीद्वारा किये हुए पापोंसे मुक्त हो जाता है। इतना ही नहीं, वह पापग्रह आदिके भयसे भी मुक्त होकर विष्णुके परमपदको प्राप्त होता है। यह स्तोत्र सब पापोंका नाशक तथा पापराशिका प्रायश्चित्त है; इसलिये श्रेष्ठ मनुष्योंको पूर्ण प्रयत्न करके इस स्तोत्रका पाठ करना चाहिये।

राजन्! इस स्तोत्रके श्रवणमात्रसे पूर्वजन्म तथा इस जन्मके किये हुए पाप भी तत्काल नष्ट हो जाते हैं। यह स्तोत्र पापरूपी वृक्षके लिये कुठार और पापमय ईंधनके लिये दावानल है। पापराशिरूपी अन्धकारसमूहका नाश करनेके लिये यह स्तोत्र सूर्यके समान है। मैंने सम्पूर्ण जगत्पर अनुग्रह करनेके लिये इसे तुम्हारे सामने प्रकाशित किया है। इसके पुण्यमय माहात्म्यका वर्णन करनेमें स्वयं श्रीहरि भी समर्थ नहीं हैं।

वैशाख मासमें स्नान, तर्पण और श्रीमाधव-पूजनकी विधि एवं महिमा

अम्बरीषने पूछा—मुने! वैशाख मासके व्रतका क्या विधान है? इसमें किस तपस्याका अनुष्ठान करना पड़ता है? क्या दान होता है? कैसे स्नान किया जाता है और किस प्रकार भगवान् केशवकी पूजा की जाती है? ब्रह्मर्षे! आप श्रीहरिके प्रिय भक्त तथा सर्वज्ञ हैं; अतः कृपा करके मुझे ये सब बातें बताइये।

नारदजीने कहा—साधुश्रेष्ठ! सुनो—वैशाख मासमें जब सूर्य मेषराशिपर चले जायँ तो किसी बड़ी नदीमें, नदीरूप तीर्थमें, नदमें, सरोवरमें, झरनेमें, देवकुण्डमें, स्वतः प्राप्त हुए किसी भी जलाशयमें, बावड़ीमें अथवा कुएँ आदिपर जाकर नियमपूर्वक भगवान् श्रीविष्णुका स्मरण करते हुए स्नान करना चाहिये। स्नानके पहले निम्नांकित श्लोकका उच्चारण करना चाहिये—

यथा ते माधवो मासो वल्लभो मधुसूदन।
प्रातःस्नानेन मे तस्मिन् फलदः पापहा भव॥
(८९। ११)

'मधुसूदन! माधव (वैशाख) मास आपको विशेष प्रिय है, इसलिये इसमें प्रातःस्नान करनेसे आप शास्त्रोक्त फलके देनेवाले हों और मेरे पापोंका नाश कर दें।'

इस प्रकार कहकर मौनभावसे उस तीर्थके किनारे अपने दोनों पैर धो ले; फिर भगवान् नारायणका स्मरण करते हुए विधिपूर्वक स्नान करे। स्नानकी विधि इस प्रकार है—विद्वान् पुरुषको मूल-मन्त्र पढ़कर तीर्थकी कल्पना कर लेनी चाहिये। '**ॐ नमो नारायणाय**' यह मन्त्र ही मूल-मन्त्र कहा गया है। पहले हाथमें कुश लेकर विधिपूर्वक आचमन करे तथा मन और इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए बाहर-भीतरसे पवित्र रहे। फिर चार हाथका चौकोर मण्डल बनाकर उसमें निम्नांकित मन्त्रोंद्वारा भगवती श्रीगंगाजीका आवाहन करे।

विष्णुपादप्रसूतासि वैष्णवी विष्णुदेवता॥
त्राहि नस्त्वेनसस्तस्मादाजन्ममरणान्तिकात्।
तिस्रःकोट्योऽर्धकोटी च तीर्थानां वायुरब्रवीत्॥
दिवि भुव्यन्तरिक्षे च तानि ते सन्ति जाह्नवि।
नन्दिनीति च ते नाम देवेषु नलिनीति च॥
दक्षा पृथ्वी वियद्‌गङ्गा विश्वकाया शिवामृता।
विद्याधरी महादेवी तथा लोकप्रसादिनी॥
क्षेमङ्करी जाह्नवी च शान्ता शान्तिप्रदायिनी।
(८९। १५—१९)

'गंगे! तुम भगवान् श्रीविष्णुके चरणोंसे प्रकट हुई

---

* अध्याय ८८ श्लोक ७२ से ९१ तक।

हो। श्रीविष्णु ही तुम्हारे देवता हैं; इसीलिये तुम्हें वैष्णवी कहते हैं। देवि! तुम जन्मसे लेकर मृत्युतक समस्त पापोंसे मेरी रक्षा करो। स्वर्ग, पृथ्वी और अन्तरिक्षमें कुल साढ़े तीन करोड़ तीर्थ हैं—ऐसा वायु देवताका कथन है। माता जाह्नवी! वे सभी तीर्थ तुम्हारे अंदर मौजूद हैं। देवलोकमें तुम्हारा नाम नन्दिनी और नलिनी है। इनके सिवा दक्षा, पृथ्वी, वियद्गंगा, विश्वकाया, शिवा, अमृता, विद्याधरी, महादेवी, लोकप्रसादिनी क्षेमंकरी, जाह्नवी, शान्ता और शान्तिप्रदायिनी आदि तुम्हारे अनेकों नाम हैं।'

स्नानके समय इन पवित्र नामोंका कीर्तन करना चाहिये; इससे त्रिपथगामिनी भगवती गंगा उपस्थित हो जाती हैं। सात बार उपर्युक्त नामोंका जप करके संपुटके आकारमें दोनों हाथोंको जोड़कर उनमें जल ले और चार, छः या सात बार मस्तकपर डाले। इस प्रकार स्नान करके पूर्ववत् मृत्तिकाको भी विधिवत् अभिमन्त्रित करे और उसे शरीरमें लगाकर नहा ले। मृत्तिकाको अभिमन्त्रित करनेका मन्त्र इस प्रकार है—

अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे।
मृत्तिके हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम्॥
उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना।
नमस्ते सर्वलोकानां प्रभवारणि सुव्रते॥

(८९। २२-२३)

वसुन्धरे! तुम्हारे ऊपर अश्व और रथ चला करते हैं। भगवान् श्रीविष्णुने भी वामन-अवतार धारण करके तुम्हें एक पैरसे नापा था। मृत्तिके! मैंने जो बुरे कर्म किये हों, मेरे उस सब पापोंको तुम हर लो। देवि! सैकड़ों भुजाओंवाले भगवान् श्रीविष्णुने वराहका रूप धारण करके तुम्हें जलसे बाहर निकाला था। तुम सम्पूर्ण लोकोंकी उत्पत्तिके लिये अरणीके समान हो—अर्थात् जैसे अरणी-काष्ठसे आग प्रकट होती है, उसी प्रकार तुमसे सम्पूर्ण लोक उत्पन्न होते हैं। सुव्रते! तुम्हें मेरा नमस्कार है।'

इस प्रकार स्नान करनेके पश्चात् विधिपूर्वक आचमन करके जलसे बाहर निकले और दो शुद्ध श्वेत वस्त्र—धोती-चादर धारण करे। तदनन्तर त्रिलोकीको तृप्त करनेके लिये तर्पण करे। सबसे पहले श्रीब्रह्माका तर्पण करे; फिर श्रीविष्णु, श्रीरुद्र और प्रजापतिका। तत्पश्चात् 'देवता, यक्ष, नाग, गन्धर्व, अप्सरा, असुरगण, क्रूर सर्प, गरुड, वृक्ष, जीव-जन्तु, पक्षी, विद्याधर, मेघ, आकाशचारी जीव, निराधार जीव, पापी जीव तथा धर्मपरायण जीवोंको तृप्त करनेके लिये मैं उन्हें जल अर्पण करता हूँ।' यह कहकर उन सबको जलांजलि दे। देवताओंका तर्पण करते समय यज्ञोपवीतको बायें कंधेपर डाले रहे। तत्पश्चात् उसे गलेमें मालाकी भाँति कर ले और दिव्य मनुष्यों, ऋषिपुत्रों तथा ऋषियोंका भक्तिपूर्वक तर्पण करे। सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार—ये दिव्य मनुष्य हैं। कपिल, आसुरि, बोढु तथा पंचशिख—ये प्रधान ऋषिपुत्र हैं। 'ये सभी मेरे दिये हुए जलसे तृप्त हों' ऐसा कहकर इन्हें जल दे। इसी प्रकार मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वसिष्ठ, नारद तथा अन्यान्य देवर्षियों एवं ब्रह्मर्षियोंका अक्षतसहित जलके द्वारा तर्पण करे।

इस प्रकार ऋषि-तर्पण करनेके पश्चात् यज्ञोपवीतको दायें कंधेपर करके बायें घुटनेको पृथ्वीपर टेककर बैठे। फिर अग्निष्वात्त, सौम्य, हविष्मान्, उष्मप, कव्यवाट् अनल, बर्हिषद्, पिता-पितामह आदि तथा मातामह आदि सब लोगोंका विधिवत् तर्पण करके निम्नांकित मन्त्रका उच्चारण करे—

येऽबान्धवा बान्धवा ये येऽन्यजन्मनि बान्धवाः।
ते तृप्तिमखिला यान्तु येऽप्यस्मत्तोयकाङ्क्षिणः॥

(८९। ३५)

'जो लोग मेरे बान्धव न हों, जो मेरे बान्धव हों तथा जो दूसरे किसी जन्ममें मेरे बान्धव रहे हों, वे सब मेरे दिये हुए जलसे तृप्त हों। उनके सिवा और भी जो कोई प्राणी मुझसे जलकी अभिलाषा रखते हों, वे भी तृप्ति लाभ करें।'

यों कहकर उनकी तृप्तिके उद्देश्यसे जल गिराना चाहिये। तत्पश्चात् विधिपूर्वक आचमन करके अपने आगे कमलकी आकृति बनावे और सूर्यदेवके नामोंका

उच्चारण करते हुए अक्षत, फूल, लाल चन्दन और जलके द्वारा उन्हें यत्नपूर्वक अर्घ्य दे। अर्घ्यदानका मन्त्र इस प्रकार है—

नमस्ते विश्वरूपाय नमस्ते ब्रह्मरूपिणे॥
सहस्त्ररश्मये नित्यं नमस्ते सर्वतेजसे।
नमस्ते रुद्रवपुषे नमस्ते भक्तवत्सल॥
पद्मनाभ नमस्तेऽस्तु कुण्डलाङ्गदभूषित।
नमस्ते सर्वलोकानां सुप्तानामुपबोधन॥
सुकृतं दुष्कृतं चैव सर्वं पश्यसि सर्वदा।
सत्यदेव नमस्तेऽस्तु प्रसीद मम भास्कर॥
दिवाकर नमस्तेऽस्तु प्रभाकर नमोऽस्तु ते।

(८९। ३७—४१)

'भगवान् सूर्य! आप विश्वरूप और ब्रह्मस्वरूप हैं। इन दोनों रूपोंमें आपको नमस्कार है। आप सहस्त्रों किरणोंसे सुशोभित और सबके तेजरूप हैं, आपको सदा नमस्कार है। भक्तवत्सल! रुद्ररूपधारी आप परमेश्वरको बारम्बार नमस्कार है। कुण्डल और अंगद आदि आभूषणोंसे विभूषित पद्मनाभ! आपको नमस्कार है। भगवन्! आप सोये हुए सम्पूर्ण लोकोंको जगानेवाले हैं; आपको मेरा प्रणाम है। आप सदा सबके पाप-पुण्यको देखा करते हैं। सत्यदेव! आपको नमस्कार है। भास्कर! मुझपर प्रसन्न होइये। दिवाकर! आपको नमस्कार है। प्रभाकर! आपको नमस्कार है।'

इस प्रकार सूर्यदेवको नमस्कार करके सात बार उनकी प्रदक्षिणा करे। फिर द्विज, गौ और सुवर्णका स्पर्श करके अपने घरमें जाय। वहाँ आश्रमवासी अतिथियोंका सत्कार तथा भगवान्की प्रतिमाका पूजन करे। राजन्! घरमें पहले भक्तिपूर्वक जितेन्द्रियभावसे भगवान् गोविन्दकी विधिवत् पूजा करनी चाहिये। विशेषत: वैशाखके महीनेमें जो श्रीमधुसूदनका पूजन करता है, उसके द्वारा पूरे एक वर्षतक श्रीमाधवकी पूजा सम्पन्न हो जाती है। वैशाख मास आनेपर जब सूर्यदेव मेषराशिपर स्थित हों तो श्रीकेशवकी प्रसन्नताके लिये उनके व्रतोंका संचय करना चाहिये। अपने अभीष्टकी सिद्धिके लिये अन्न, जल, शक्कर, धेनु तथा तिलकी धेनु आदिका दान करना चाहिये; इस कार्यमें धनकी कंजूसी उचित नहीं है। जो समूचे वैशाखभर प्रतिदिन सबेरे स्नान करता, जितेन्द्रियभावसे रहता, भगवान्के नाम जपता और हविष्य भोजन करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

जो वैशाख मासमें आलस्य त्यागकर एकभुक्त (चौबीस घंटेमें एक बार भोजन), नक्तव्रत (केवल रातमें एक बार भोजन) अथवा अयाचितव्रत (बिना माँगे मिले हुए अन्नका एक समय भोजन) करता है, वह अपनी सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको प्राप्त कर लेता है। वैशाख मासमें प्रतिदिन दो बार गाँवसे बाहर नदीके जलमें स्नान करना, हविष्य खाकर रहना, ब्रह्मचर्यका पालन करना, पृथ्वीपर सोना, नियमपूर्वक रहना, व्रत, दान, जप, होम और भगवान् मधुसूदनकी पूजा करना—ये नियम हजारों जन्मोंके भयंकर पापको भी हर लेते हैं। जैसे भगवान् माधव ध्यान करनेपर सारे पाप नष्ट कर देते हैं, उसी प्रकार नियमपूर्वक किया हुआ माधव मासका स्नान भी समस्त पापोंको दूर कर देता है। प्रतिदिन तीर्थ-स्नान, तिलोंद्वारा पितरोंका तर्पण, धर्मघट आदिका दान और श्रीमधुसूदनका पूजन—ये भगवान्को संतोष प्रदान करनेवाले हैं; वैशाख मासमें इनका पालन अवश्य करना चाहिये। वैशाखमें तिल, जल, सुवर्ण, अन्न, शक्कर, वस्त्र, गौ, जूता, छाता, कमल या शंख तथा घड़े—इन वस्तुओंका ब्राह्मणोंको दान करे। तीनों सन्ध्याओंके समय एकाग्रचित्त हो विमलस्वरूपा साक्षात् भगवती लक्ष्मीके साथ परमेश्वर श्रीविष्णुका भक्तिपूर्वक पूजन करना चाहिये। सामयिक फूलों और फलोंसे भक्तिपूर्वक श्रीहरिका पूजन करनेके पश्चात् यथाशक्ति ब्राह्मणोंकी भी पूजा करनी चाहिये। पाखण्डियोंसे वार्तालाप नहीं करना चाहिये। जो फूलोंद्वारा विधिवत् अर्चन करके श्रीमधुसूदनकी आराधना करता है; वह सब पापोंसे मुक्त हो परम पदको प्राप्त होता है!

श्रीनारदजी कहते हैं—राजेन्द्र! सुनो, मैं संक्षेपसे माधवके पूजनकी विधि बतला रहा हूँ। महाराज! जिनका कहीं अन्त नहीं है, जो अनन्त और

अपार हैं, उन भगवान् अनन्तकी पूजा-विधिका अन्त नहीं है। श्रीविष्णुका पूजन तीन प्रकारका होता है—वैदिक, तान्त्रिक तथा मिश्र। तीनोंके ही बताये हुए विधानसे श्रीहरिका पूजन करना चाहिये। वैदिक और मिश्र पूजनकी विधि ब्राह्मण आदि तीन वर्णोंके ही लिये बतायी गयी है, किन्तु तान्त्रिक पूजन विष्णुभक्त शूद्रके लिये भी विहित है। साधक पुरुषको उचित है कि शास्त्रोक्त विधिका ज्ञान प्राप्त करके एकाग्रचित्त हो ब्रह्मचर्य-पालन करते हुए श्रीविष्णुका विधिवत् पूजन करे। भगवान्की प्रतिमा आठ प्रकारकी मानी गयी है—शिलामयी, धातुमयी, लोहेकी बनी हुई, लीपने योग्य मिट्टीकी बनी हुई, चित्रमयी, बालूकी बनायी हुई, मनोमयी तथा मणिमयी। इन प्रतिमाओंकी प्रतिष्ठा (स्थापना) दो प्रकारकी होती है—एक चल प्रतिष्ठा और दूसरी अचल प्रतिष्ठा।

राजन्! भक्त पुरुषको चाहिये कि वह जो कुछ भी सामग्री प्राप्त हो, उसीसे भक्तिभावके साथ पूजन करे। प्रतिमा-पूजनमें स्नान और अलंकार ही अभीष्ट हैं अर्थात् भगवद्विग्रहको स्नान कराकर पुष्प आदिसे शृंगार कर देना ही प्रधान सेवा है। श्रीकृष्णमें भक्ति रखनेवाला मनुष्य यदि केवल जल भी भगवान्को अर्पण करे तो वह उनकी दृष्टिमें श्रेष्ठ है; फिर गन्ध, धूप, पुष्प, दीप और अन्न आदिका नैवेद्य अर्पण करनेपर तो कहना ही क्या है। पवित्रतापूर्वक पूजनकी सारी सामग्री एकत्रित करके पूर्वाग्र कुशोंका आसन बिछाकर उसपर बैठे; पूजन करनेवालेका मुख उत्तर दिशाकी ओर या प्रतिमाके सामने हो। फिर पाद्य, अर्घ्य, स्नान तथा अर्हण आदि उपचारोंकी व्यवस्था करे। उसके बाद कर्णिका और केसरसे सुशोभित अष्टदल कमल बनावे और उसके ऊपर श्रीहरिके लिये आसन रखे। तदनन्तर चन्दन, उशीर (खस) कपूर, केसर तथा अरगजासे सुवासित जलके द्वारा मन्त्रपाठपूर्वक श्रीहरिको स्नान कराये। वैभव हो तो प्रतिदिन इस तरहकी व्यवस्था करनी चाहिये। 'स्वर्णघर्म' नामक अनुवाक, महापुरुष-विद्या, 'सहस्रशीर्षा' आदि पुरुषसूक्त तथा सामवेदोक्त नीराजना आदि मन्त्रोंद्वारा श्रीहरिको स्नान कराये। तत्पश्चात् विष्णुभक्त पुरुष वस्त्र, यज्ञोपवीत, आभूषण, हार, गन्ध तथा अनुलेपनके द्वारा प्रेमपूर्वक भगवान्का यथायोग्य शृंगार करे। पुजारीको उचित है कि वह श्रद्धापूर्वक पाद्य, आचमनीय, गन्ध, पुष्प, अक्षत तथा धूप आदि उपहार अर्पण करे। उसके बाद गुड़, खीर, घी, पूड़ी, मालपूआ, लड्डू, दूध और दही आदि नाना प्रकारके नैवेद्य निवेदन करे। पर्वके अवसरोंपर अंगराग लगाना, दर्पण दिखाना, दन्तधावन कराना, अभिषेक करना, अन्न आदिके बने हुए पदार्थ भोग लगाना, कीर्तन करते हुए नृत्य करना और गीत गाना आदि सेवाएँ भी करनी चाहिये। सम्भव हो तो प्रतिदिन ऐसी ही व्यवस्था रखनी चाहिये।

पूजनके पश्चात् इस प्रकार ध्यान करे—भगवान् श्रीविष्णुका श्रीविग्रह श्यामवर्ण एवं तपाये हुए जाम्बूनद नामक सुवर्णके समान तेजस्वी है; भगवान्के शंख, चक्र, गदा और पद्मसे सुशोभित चार भुजाएँ हैं; उनकी आकृति शान्त है, उनका वस्त्र कमलके केसरके समान पीले रंगका है; वे मस्तकपर किरीट, दोनों हाथोंमें कड़े, गलेमें यज्ञोपवीत तथा अँगुलियोंमें अँगूठी धारण किये हुए हैं; उनके वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न है, कौस्तुभमणि उनकी शोभा बढ़ाता है तथा वे वनमाला धारण किये हुए हैं।

इस प्रकार ध्यान करते हुए पूजन समाप्त करके घीमें डुबोयी हुई समिधाओं तथा हविष्यद्वारा अग्निमें हवन करे। 'आज्यभाग' तथा 'आघार' नामक आहुतियाँ देनेके पश्चात् घृतपूर्ण हविष्यका होम करे। तदनन्तर पुनः भगवान्का पूजन करके उन्हें प्रणाम करे और पार्षदोंको नैवेद्य अर्पण करे। उसके बाद मुख-शुद्धिके लिये सुगन्धित द्रव्योंसे युक्त ताम्बूल निवेदन करना चाहिये। फिर छोटे-बड़े पौराणिक तथा अर्वाचीन स्तोत्रोंद्वारा भगवान्की स्तुति करके 'भगवन्! प्रसीद' (भगवन्! प्रसन्न होइये) यों कहकर प्रतिदिन दण्डवत् प्रणाम करे। अपना मस्तक भगवान्के चरणोंमें रखकर दोनों भुजाओंको फैलाकर परस्पर मिला दे और इस प्रकार कहे—'परमेश्वर! मैं मृत्युरूपी ग्रह तथा समुद्रसे

भयभीत होकर आपकी शरणमें आया हूँ; आप मेरी रक्षा कीजिये।'

तदनन्तर भगवान्‌को अर्पण की हुई प्रसाद-माला आदिको आदरपूर्वक सिरपर चढ़ाये तथा यदि मूर्ति विसर्जन करनेयोग्य हो तो उसका विसर्जन भी करे। ईश्वरीय ज्योतिको आत्म-ज्योतिमें स्थापित कर ले। प्रतिमा आदिमें जहाँ भगवान्‌का चरण हो, वहीं श्रद्धापूर्वक पूजन करना चाहिये तथा मनमें यह विश्वास रखना चाहिये कि 'जो सम्पूर्ण भूतोंमें तथा मेरे आत्मामें भी रम रहे हैं, वे ही सर्वात्मा परमेश्वर इस मूर्तिमें विराजमान हैं।'

इस प्रकार वैदिक तथा तान्त्रिक क्रियायोगके मार्गसे जो भगवान्‌की पूजा करता है, वह सब ओरसे अभीष्ट सिद्धिको प्राप्त होता है। श्रीविष्णु-प्रतिमाकी स्थापना करके उसके लिये सुदृढ़ मन्दिर बनवाना चाहिये तथा पूजाकर्मकी सुव्यवस्थाके लिये सुन्दर फुलवाड़ी भी लगवानी चाहिये। बड़े-बड़े पर्वोंपर तथा प्रतिदिन पूजाकार्यका भलीभाँति निर्वाह होता रहे, इसके लिये भगवान्‌के नामसे खेत, बाजार, कसबा और गाँव आदि भी लगा देने चाहिये। यों करनेसे मनुष्य भगवान्‌के सायुज्यको प्राप्त होता है। भगवद्विग्रहकी स्थापना करनेसे सार्वभौम (सम्राट्)-के पदको, मन्दिर बनवानेसे तीनों लोकोंके राज्यको, पूजा आदिकी व्यवस्था करनेसे ब्रह्मलोकको तथा इन तीनों कार्योंके अनुष्ठानसे मनुष्य भगवत्सायुज्यको प्राप्त कर लेता है। केवल अश्वमेध-यज्ञ करनेसे किसीको भक्तियोगकी प्राप्ति नहीं होती; भक्तियोगको तो वही प्राप्त करता है, जो पूर्वोक्त रीतिसे प्रतिदिन श्रीहरिकी पूजा करता है।

राजन्! वही शरीर शुभ-कल्याणका साधक है, जो भगवान् श्रीकृष्णको साष्टांग प्रणाम करनेके कारण धूलि-धूसरित हो रहा है; नेत्र भी वे ही अत्यन्त सुन्दर और तपःशक्तिसे सम्पन्न हैं, जिनके द्वारा श्रीहरिका दर्शन होता है; वही बुद्धि निर्मल और चन्द्रमा तथा शंखके समान उज्ज्वल है, जो सदा श्रीलक्ष्मीपतिके चिन्तनमें संलग्न रहती है तथा वही जिह्वा मधुरभाषिणी है, जो बारम्बार भगवान् नारायणका स्तवन किया करती है।*

स्त्री और शूद्रोंको भी मूलमन्त्रके द्वारा श्रीहरिका पूजन करना चाहिये तथा अन्यान्य वैष्णवजनोंको भी गुरुकी बतायी हुई पद्धतिसे श्रद्धापूर्वक भगवान्‌की पूजा करनी उचित है। राजन्! यह सब प्रसंग मैंने तुम्हें बता दिया। श्रीमाधवका पूजन परम पावन है। विशेषतः वैशाख मासमें तुम इस प्रकार पूजन अवश्य करना।

सूतजी कहते हैं—महर्षिगण! इस प्रकार पत्नी-सहित मन्त्रवेत्ता महाराज अम्बरीषको उपदेश दे, उनसे पूजित हो, विदा लेकर देवर्षि नारदजी वैशाख मासमें गंगा-स्नान करनेके लिये चले गये। लोकमें जिनका पावन सुयश फैला हुआ था, उन राजा अम्बरीषने भी मुनिकी बतायी हुई वैशाख मासकी विधिका पुण्य-बुद्धिसे पत्नीसहित पालन किया।

यम-ब्राह्मण-संवाद—नरक तथा स्वर्गमें ले जानेवाले कर्मोंका वर्णन

ऋषियोंने कहा—सूतजी! इस विषयको पुनः विस्तारके साथ कहिये। आपके उत्तम वचनामृतोंका पान करते-करते हमें तृप्ति नहीं होती है।

सूतजी बोले—महर्षियो! इस विषयमें एक प्राचीन इतिहास कहा करते हैं, जिसमें एक ब्राह्मण और महात्मा धर्मराजके संवादका वर्णन है।

ब्राह्मणने पूछा—धर्मराज! धर्म और अधर्मके निर्णयमें आप सबके लिये प्रमाणस्वरूप हैं; अतः बताइये, मनुष्य किस कर्मसे नरकमें पड़ते हैं? तथा किस कर्मके अनुष्ठानसे वे स्वर्गमें जाते हैं? कृपा करके

* यत्कृष्णप्रणिपातधूलिधवलं तद्वर्ष्म तद्वच्छुभं नेत्रे चेत्तपसोर्जिते सुरुचिरे याभ्यां हरिर्दृश्यते।
सा बुद्धिर्विमलेन्दुशङ्खधवला या माधवव्यापिनी सा जिह्वा मृदुभाषिणी नृप मुहुर्या स्तौति नारायणम्॥ (९०। ४७)

इन सब बातोंका वर्णन कीजिये।

यमराज बोले—ब्रह्मन्! जो मनुष्य मन, वाणी तथा क्रियाद्वारा धर्मसे विमुख और श्रीविष्णुभक्तिसे रहित हैं; जो ब्रह्मा, शिव तथा विष्णुको भेदबुद्धिसे देखते हैं; जिनके हृदयमें विष्णु-विद्यासे विरक्ति है; जो दूसरोंके खेत, जीविका, घर, प्रीति तथा आशाका उच्छेद करते हैं, वे नरकोंमें जाते हैं। जो मूर्ख जीविकाका कष्ट भोगनेवाले ब्राह्मणोंको भोजनकी इच्छासे दरवाजेपर आते देख उनकी परीक्षा करने लगता है—उन्हें तुरंत भोजन नहीं देता, उसे नरकका अतिथि समझना चाहिये। जो मूढ़ अनाथ, वैष्णव, दीन, रोगातुर तथा वृद्ध मनुष्यपर दया नहीं करता तथा जो पहले कोई नियम लेकर पीछे अजितेन्द्रियताके कारण उसे छोड़ देता है, वह निश्चय ही नरकका पात्र है।

जो सब पापोंको हरनेवाले, दिव्यस्वरूप, व्यापक, विजयी, सनातन, अजन्मा, चतुर्भुज, अच्युत, विष्णुरूप, दिव्य पुरुष श्रीनारायणदेवका पूजन, ध्यान और स्मरण करते हैं, वे श्रीहरिके परम धामको प्राप्त होते हैं—यह सनातन श्रुति है। भगवान् दामोदरके गुणोंका कीर्तन ही मंगलमय है, वही धनका उपार्जन है तथा वही इस जीवनका फल है। अमिततेजस्वी देवाधिदेव श्रीविष्णुके कीर्तनसे सब पाप उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जैसे दिन निकलनेपर अन्धकार। जो प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक भगवान् श्रीविष्णुकी यशोगाथाका गान करते और सदा स्वाध्यायमें लगे रहते हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। विप्रवर! भगवान् वासुदेवके नाम-जपमें लगे हुए मनुष्य पहलेके पापी रहे हों, तो भी भयानक यमदूत उनके पास नहीं फटकने पाते। द्विजश्रेष्ठ! हरिकीर्तनको छोड़कर दूसरा कोई ऐसा साधन मैं नहीं देखता, जो जीवोंके सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला प्रायश्चित्त हो।[१]

जो माँगनेपर प्रसन्न होते हैं, देकर प्रिय वचन बोलते हैं तथा जिन्होंने दानके फलका परित्याग कर दिया है, वे मनुष्य स्वर्गमें जाते हैं। जो दिनमें सोना छोड़ देते हैं, सब कुछ सहन करते हैं, पर्वके अवसरपर लोगोंको आश्रय देते हैं, अपनेसे द्वेष रखनेवालोंके प्रति भी कभी द्वेषवश अहितकारक वचन मुँहसे नहीं निकालते अपितु सबके गुणोंका ही बखान करते हैं, वे मनुष्य स्वर्गमें जाते हैं। जो परायी स्त्रियोंकी ओरसे उदासीन होते हैं और सत्त्वगुणमें स्थित होकर मन, वाणी अथवा क्रियाद्वारा कभी उनमें रमण नहीं करते, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं।

जिस-किसी कुलमें उत्पन्न होकर भी जो दयालु, यशस्वी, उपकारी और सदाचारी होते हैं, वे मनुष्य स्वर्गमें जाते हैं। जो व्रतको क्रोधसे, लक्ष्मीको डाहसे, विद्याको मान और अपमानसे, आत्माको प्रमादसे, बुद्धिको लोभसे, मनको कामसे तथा धर्मको कुसंगसे बचाये रखते हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं।[२] विप्र! जो शुक्ल और कृष्णपक्षमें भी एकादशीको विधिपूर्वक उपवास करते हैं, वे मानव स्वर्गमें जाते हैं। समस्त बालकोंका पालन करनेके लिये जैसे माता बनायी गयी है तथा रोगियोंकी रक्षाके लिये जैसे औषधकी रचना हुई है, उसी

१-येऽर्चयन्ति हरिं देवं विष्णुं जिष्णुं सनातनम्। नारायणमजं देवं विष्णुरूपं चतुर्भुजम्॥
ध्यायन्ति पुरुषं दिव्यमच्युतं ये स्मरन्ति च। लभन्ते ते हरिस्थानं श्रुतिरेषा सनातनी॥
इदमेव हि माङ्गल्यमिदमेव धनार्जनम्। जीवितस्य फलं चैतद् यद्दामोदरकीर्तनम्॥
कीर्तनाद् देवदेवस्य विष्णोरमिततेजसः। दुरितानि विलीयन्ते तमांसीव दिनोदये॥
गाथां गायन्ति ये नित्यं वैष्णवीं श्रद्धयान्विताः। स्वाध्यायनिरता नित्यं ते नराः स्वर्गगामिनः॥
वासुदेवजपासक्तानपि पापकृतो जनान्। नोपसर्पन्ति तान् विप्र यमदूताः सुदारुणाः॥
नान्यत्पश्यामि जन्तूनां विहाय हरिकीर्तनम्। सर्वपापप्रशमनं प्रायश्चित्तं द्विजोत्तम॥ (९२। १०—१६)

२-यस्मिन् कस्मिन् कुले जाता दयावन्तो यशस्विनः। सानुक्रोशः सदाचारास्ते नराः स्वर्गगामिनः॥
व्रतं रक्षन्ति ये कोपाच्छ्रियं रक्षन्ति मत्सरात्। विद्यां मानापमानाभ्यां ह्यात्मानं तु प्रमादतः॥
मतिं रक्षन्ति ये लोभान्मनो रक्षन्ति कामतः। धर्मं रक्षन्ति दुःसङ्गात्ते नराः स्वर्गगामिनः॥ (९२। २१—२३)

प्रकार सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षाके निमित्त एकादशी तिथिका निर्माण हुआ है। एकादशीके व्रतके समान पापसे रक्षा करनेवाला दूसरा कोई साधन नहीं है। अत: एकादशीको विधिपूर्वक उपवास करनेसे मनुष्य स्वर्गलोकमें जाते हैं।

अखिल विश्वके नायक भगवान् श्रीनारायणमें जिनकी भक्ति है, वे सत्यसे हीन और रजोगुणसे युक्त होनेपर भी अनन्त पुण्यशाली हैं तथा अन्तमें वे वैकुण्ठधाममें पधारते हैं।[१] जो वेतसी, यमुना, सीता (गंगा) तथा पुण्यसलिला गोदावरीका सेवन और सदाचारका पालन करते हैं; जिनकी स्नान और दानमें सदा प्रवृत्ति है, वे मनुष्य कभी नरकके मार्गका दर्शन नहीं करते।[२] जो कल्याणदायिनी नर्मदा नदीमें गोते लगाते तथा उसके दर्शनसे प्रसन्न होते हैं, वे पापरहित हो महादेवजीके लोकमें जाते और चिरकालतक वहाँ आनन्द भोगते हैं। जो मनुष्य चर्मण्वती (चम्बल) नदीमें स्नान करके शौचसंतोषादि नियमोंका पालन करते हुए उसके तटपर—विशेषत: व्यासाश्रममें तीन रात निवास करते हैं, वे स्वर्गलोकके अधिकारी माने गये हैं। जो गंगाजीके जलमें अथवा प्रयाग, केदारखण्ड, पुष्कर, व्यासाश्रम या प्रभासक्षेत्रमें मृत्युको प्राप्त होते हैं, वे विष्णुलोकमें जाते हैं। जिनकी द्वारका या कुरुक्षेत्रमें मृत्यु हुई है अथवा जो योगाभ्याससे मृत्युको प्राप्त हुए हैं अथवा मृत्युकालमें जिनके मुखसे 'हरि' इन दो अक्षरोंका उच्चारण हुआ है, वे सभी भगवान् श्रीहरिके प्रिय हैं।

विप्र! जो द्वारकापुरीमें तीन रात भी ठहर जाता है, वह अपनी ग्यारह इन्द्रियोंद्वारा किये हुए सारे पापोंको नष्ट करके स्वर्गमें जाता है—ऐसी वहाँकी मर्यादा है। वैष्णवव्रत (एकादशी)-के पालनसे होनेवाला धर्म तथा यज्ञादिके अनुष्ठानसे उत्पन्न होनेवाला धर्म—इन दोनोंको विधाताने तराजूपर रखकर तोला था, उस समय इनमेंसे पहलेका ही पलड़ा भारी रहा। ब्रह्मन्! जो एकादशीका सेवन करते हैं तथा जो 'अच्युत-अच्युत' कहकर भगवन्नामका कीर्तन करते हैं, उनपर मेरा शासन नहीं चलता। मैं तो स्वयं ही उनसे बहुत डरता हूँ।

जो मनुष्य प्रत्येक मासमें एक दिन—अमावास्याको श्राद्धके नियमका पालन करते हैं और ऐसा करनेके कारण जिनके पितर सदा तृप्त रहते हैं, वे धन्य हैं। वे स्वर्गगामी होते हैं। भोजन तैयार होनेपर जो आदरपूर्वक उसे दूसरोंको परोसते हैं और भोजन देते समय जिनके चेहरेके रंगमें परिवर्तन नहीं होता, वे शिष्ट पुरुष स्वर्गलोकमें जाते हैं। जो मर्त्यलोकके भीतर भगवान् श्रीनर-नारायणके आवासस्थान बदरिकाश्रममें और नन्दा (सरस्वती)-के तटपर तीन रात निवास करते हैं, वे धन्यवादके पात्र और भगवान् श्रीविष्णुके प्रिय हैं। ब्रह्मन्! जो भगवान् पुरुषोत्तमके समीप (जगन्नाथपुरीमें) छ: मासतक निवास कर चुके हैं, वे अच्युतस्वरूप हैं और दर्शनमात्रसे समस्त पापोंको हर लेनेवाले हैं।

जो अनेक जन्मोंमें उपार्जित पुण्यके प्रभावसे काशीपुरीमें जाकर मणिकर्णिकाके जलमें गोते लगाते और श्रीविश्वनाथजीके चरणोंमें मस्तक झुकाते हैं, वे भी इस लोकमें आनेपर मेरे वन्दनीय होते हैं। जो श्रीहरिकी पूजा करके पृथ्वीपर कुश और तिल बिछाकर चारों ओर तिल बिखेरते और लोहा तथा दूध देनेवाली गौ दान करके विधिपूर्वक मृत्युको प्राप्त होते हैं, वे मनुष्य स्वर्गमें जाते हैं। जो पुत्रोंको उत्पन्न करके उन्हें पिता-पितामहोंके पदपर बिठाकर ममता और अहंकारसे रहित होकर मरते हैं, वे भी स्वर्गलोकके अधिकारी होते हैं। जो चोरी-

---

१-ये भक्तिमन्तो मधुसूदनस्य नारायणस्याखिलनायकस्य। सत्येन हीना रजसापि युक्ता गच्छन्ति ते नाकमनन्तपुण्या:॥ (९२। २७)

२-वेतसीं यमुनां सीतां पुण्यां गोदावरीनदीम्। सेवन्ते ये शुभाचारा: स्नानदानपरायणा:॥
....। न ते पश्यन्ति पन्थानं नरकस्य कदाचन॥ (९२। २८-२९)

डकैतीसे दूर रहकर सदा अपने ही धनसे संतुष्ट रहते हैं अथवा अपने भाग्यपर ही निर्भर रहकर जीविका चलाते हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। जो स्वागत करते हुए शुद्ध पीड़ारहित मधुर तथा पापरहित वाणीका प्रयोग करते हैं, वे लोग स्वर्गमें जाते हैं। जो दान-धर्ममें प्रवृत्त तथा धर्ममार्गके अनुयायी पुरुषोंका उत्साह बढ़ाते हैं, वे चिरकालतक स्वर्गमें आनन्द भोगते हैं। जो हेमन्त-ऋतु (शीतकाल)-में सूखी लकड़ी, गर्मीमें शीतल जल तथा वर्षामें आश्रय प्रदान करता है, वह स्वर्गलोकमें सम्मानित होता है। जो नित्य-नैमित्तिक आदि समस्त पुण्यकालोंमें भक्तिपूर्वक श्राद्ध करता है, वह निश्चय ही देवलोकका भागी होता है। दरिद्रका दान, सामर्थ्यशालीकी क्षमा, नौजवानोंकी तपस्या, ज्ञानियोंका मौन, सुख भोगनेके योग्य पुरुषोंकी सुखेच्छा-निवृत्ति तथा सम्पूर्ण प्राणियोंपर दया—ये सद्‌गुण स्वर्गमें ले जाते हैं।[१]

ध्यानयुक्त तप भवसागरसे तारनेवाला है और पापको पतनका कारण बताया गया है; यह बिलकुल सत्य है, इसमें संदेहकी गुंजाइश नहीं है।[२] ब्रह्मन्! स्वर्गकी राहपर ले जानेवाले समस्त साधनोंका मैंने यहाँ संक्षेपसे वर्णन किया है; अब तुम और क्या सुनना चाहते हो?

तुलसीदल और अश्वत्थकी महिमा तथा वैशाख-माहात्म्यके सम्बन्धमें तीन प्रेतोंके उद्धारकी कथा

ब्राह्मणने पूछा—धर्मराज! वैशाख मासमें प्रातःकाल स्नान करके एकाग्रचित्त हुआ पुरुष भगवान् माधवका पूजन किस प्रकार करे? आप इसकी विधिका वर्णन करें।

धर्मराजने कहा—ब्रह्मन्! पत्तोंकी जितनी जातियाँ हैं, उन सबमें तुलसी भगवान् श्रीविष्णुको अधिक प्रिय है। पुष्कर आदि जितने तीर्थ हैं, गंगा आदि जितनी नदियाँ हैं तथा वासुदेव आदि जो-जो देवता हैं, वे सभी तुलसीदलमें निवास करते हैं। अतः तुलसी सर्वदा और सब समय भगवान् श्रीविष्णुको प्रिय है। कमल और मालतीका फूल छोड़कर तुलसीका पत्ता ग्रहण करे और उसके द्वारा भक्तिपूर्वक माधवकी पूजा करे। उसके पुण्यफलका पूरा-पूरा वर्णन करनेमें शेष भी समर्थ नहीं हैं। जो बिना स्नान किये ही देवकार्य या पितृकार्यके लिये तुलसीका पत्ता तोड़ता है, उसका सारा कर्म निष्फल हो जाता है तथा वह पंचगव्य पान करनेसे शुद्ध होता है। जैसे हर्रे बहुतेरे रोगोंको तत्काल हर लेती है, उसी प्रकार तुलसी दरिद्रता और दुःखभोग आदिसे सम्बन्ध रखनेवाले अधिक-से-अधिक पापोंको भी शीघ्र ही दूर कर देती है।[३] तुलसी काले रंगके पत्तोंवाली हो या हरे रंगकी, उसके द्वारा श्रीमधुसूदनकी पूजा करनेसे प्रत्येक मनुष्य—विशेषतः भगवान्का भक्त नरसे नारायण हो जाता है। जो पूरे वैशाखभर तीनों सन्ध्याओंके समय तुलसीदलसे मधुहन्ता श्रीहरिका पूजन करता है, उसका पुनः इस संसारमें जन्म नहीं होता। फूल और पत्तोंके न मिलनेपर अन्न आदिके द्वारा—धान, गेहूँ, चावल अथवा जौके द्वारा भी सदा श्रीहरिका पूजन करे। तत्पश्चात् सर्वदेवमय भगवान् विष्णुकी प्रदक्षिणा करे। इसके बाद देवताओं, मनुष्यों, पितरों तथा चराचर जगत्का तर्पण करना चाहिये।

पीपलको जल देनेसे दरिद्रता, कालकर्णी (एक तरहका रोग), दुःस्वप्न, दुश्चिन्ता तथा सम्पूर्ण दुःख नष्ट

१-दानं दरिद्रस्य विभोः क्षमित्वं यूनां तपो ज्ञानवतां च मौनम्। इच्छानिवृत्तिश्च सुखोचितानां दया च भूतेषु दिवं नयन्ति॥ (९२। ५८)

२-तपो ध्यानसमायुक्तं तारणाय भवाम्बुधेः। पापं तु पतनायोक्तं सत्यमेव न संशयः॥ (९२। ६०)

३-दारिद्र्यदुःखभोगादिपापानि सुबहून्यपि॥ तुलसी हरते क्षिप्रं रोगानिव हरीतकी। (९४। ८-९)

हो जाते हैं। जो बुद्धिमान् पीपलके पेड़की पूजा करता है, उसने अपने पितरोंको तृप्त कर दिया, भगवान् विष्णुकी आराधना कर ली तथा सम्पूर्ण ग्रहोंका भी पूजन कर लिया। अष्टांगयोगका साधन, स्नान करके पीपलके वृक्षका सिंचन तथा श्रीगोविन्दका पूजन करनेसे मनुष्य कभी दुर्गतिको नहीं प्राप्त होता। जो सब कुछ करनेमें असमर्थ हो, वह स्त्री या पुरुष यदि पूर्वोक्त नियमोंसे युक्त होकर वैशाखकी त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमा—तीनों दिन भक्तिसे विधिपूर्वक प्रात:स्नान करे तो सब पातकोंसे मुक्त होकर अक्षय स्वर्गका उपभोग करता है। जो वैशाख मासमें प्रसन्नताके साथ भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन कराता है तथा तीन राततक प्रात:काल एक बार भी स्नान करके संयम और शौचका पालन करते हुए श्वेत या काले तिलोंको मधुमें मिलाकर बारह ब्राह्मणोंको दान देता है और उन्हींके द्वारा स्वस्तिवाचन कराता है तथा 'मुझपर धर्मराज प्रसन्न हों' इस उद्देश्यसे देवताओं और पितरोंका तर्पण करता है, उसके जीवनभरके किये हुए पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं। जो वैशाखकी पूर्णिमाको मणिक (मटका), जलके घड़े, पकवान तथा सुवर्णमय दक्षिणा दान करता है, उसे अश्वमेध-यज्ञका फल मिलता है।

इस विषयमें एक प्राचीन इतिहास कहा जाता है, जिसमें एक ब्राह्मणका महान् वनके भीतर प्रेतोंके साथ संवाद हुआ था। मध्यदेशमें एक धनशर्मा नामक ब्राह्मण रहता था; उसमें पापका लेशमात्र भी नहीं था। एक दिन वह कुश आदिके लिये वनमें गया। वहाँ उसने एक अद्‌भुत बात देखी। उसे तीन महाप्रेत दिखायी दिये, जो बड़े ही दुष्ट और भयंकर थे। धनशर्मा उन्हें देखकर डर गया। उन प्रेतोंके केश ऊपरको उठे हुए थे। लाल-लाल आँखें, काले-काले दाँत और सूखा हुआ उनका पेट था।

धनशर्माने पूछा—तुमलोग कौन हो? यह नारकी अवस्था तुम्हें कैसे प्राप्त हुई? मैं भयसे आतुर और दु:खी हूँ, दयाका पात्र हूँ; मेरी रक्षा करो। मैं भगवान् विष्णुका दास हूँ, मेरी रक्षा करनेसे भगवान् तुमलोगोंका भी कल्याण करेंगे। भगवान् विष्णु ब्राह्मणोंके हितैषी हैं, मुझपर दया करनेसे वे तुम्हारे ऊपर संतुष्ट होंगे। श्रीविष्णुका अलसीके पुष्पके समान श्याम वर्ण है, वे पीताम्बरधारी हैं, उनका नाम श्रवण करने-मात्रसे सब पापोंका क्षय हो जाता है। भगवान् आदि और अन्तसे रहित, शंख, चक्र एवं गदा धारण करनेवाले, अविनाशी, कमलके समान नेत्रोंवाले तथा प्रेतोंको मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं।

यमराज कहते हैं—ब्रह्मन्! भगवान् विष्णुका नाम सुननेमात्रसे वे पिशाच संतुष्ट हो गये। उनका भाव पवित्र हो गया। वे दया और उदारताके वशीभूत हो गये। ब्राह्मणके कहे हुए वचनसे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई थी। उसके पूछनेपर वे प्रेत इस प्रकार बोले।

प्रेतोंने कहा—विप्र! तुम्हारे दर्शनमात्रसे तथा भगवान् श्रीहरिका नाम सुननेसे हम इस समय दूसरे ही भावको प्राप्त हो गये—हमारा भाव बदल गया, हम दयालु हो गये। वैष्णव पुरुषका समागम निश्चय ही पापोंको दूर भगाता, कल्याणसे संयोग कराता तथा शीघ्र ही यशका विस्तार करता है।* अब हमलोगोंका परिचय सुनो। यह पहला 'कृतघ्न' नामका प्रेत है, इस दूसरेका नाम 'विदैवत' है तथा तीसरा मैं हूँ, मेरा नाम 'अवैशाख' है, मैं तीनोंमें अधिक पापी हूँ। इस प्रथम पापीने सदा ही कृतघ्नता की है; अत: इसके कर्मके अनुसार ही इसका 'कृतघ्न' नाम पड़ा है। ब्रह्मन्! यह पूर्वजन्ममें 'सुदास' नामक द्रोही मनुष्य था, सदा कृतघ्नता किया करता था, उसी पापसे यह इस अवस्थाको पहुँचा है। अत्यन्त पापी, धूर्त तथा गुरु और स्वामीका अहित करनेवाले मनुष्यके लिये भी पापोंसे

* दर्शनेनैव ते विप्र नामश्रवणतो हरे:। भावमन्यमनुप्राप्ता वयं जाता दयालव:॥
अपाकरोति दुरितं श्रेय: संयोजयत्यपि। यशो विस्तारयत्याशु नूनं वैष्णवसङ्गम:॥ (९४। ५४-५५)

छूटनेका उपाय है; परन्तु कृतघ्नके लिये कोई प्रायश्चित्त नहीं है।[१]

इस दूसरे पापीने देवताओंका पूजन किये बिना ही सदा अन्न भोजन किया है, इसने गुरु और ब्राह्मणोंको कभी दान नहीं दिया है; इसीलिये इसका नाम 'विदैवत' हुआ है। यह पूर्वजन्ममें 'हरिवीर' नामसे विख्यात राजा था। दस हजार गाँवोंपर इसका अधिकार था। यह रोष, अहंकार तथा नास्तिकताके कारण गुरुजनोंकी आज्ञाका उल्लंघन करनेमें तत्पर रहता था। प्रतिदिन पंच-महायज्ञोंका अनुष्ठान किये बिना ही खाता और ब्राह्मणोंकी निन्दा किया करता था। उसी पापकर्मके कारण यह बड़े-बड़े नरकोंका कष्ट भोगकर इस समय 'विदैवत' नामक प्रेत हुआ है।

'अवैशाख' नामक तीसरा प्रेत मैं हूँ। मैं पूर्वजन्ममें ब्राह्मण था। मध्यदेशमें मेरा जन्म हुआ था। मेरा नाम भी गौतम था और गोत्र भी। मैं 'वासपुर' गाँवमें निवास करता था। मैंने वैशाख मासमें भगवान् माधवकी प्रसन्नताके उद्देश्यसे कभी स्नान नहीं किया। दान और हवन भी नहीं किया। विशेषतः वैशाख माससे सम्बन्ध रखनेवाला कोई कर्म नहीं किया। वैशाखमें भगवान् मधुसूदनका पूजन नहीं किया तथा विद्वान् पुरुषोंको दान आदिसे संतुष्ट नहीं किया। वैशाख मासकी एक भी पूर्णिमाको, जो पूर्ण फल प्रदान करनेवाली है, मैंने स्नान, दान, शुभकर्म, पूजा तथा पुण्यके द्वारा उसके व्रतका पालन नहीं किया। इससे मेरा सारा वैदिक कर्म निष्फल हो गया। मैं 'अवैशाख' नामक प्रेत होकर सब ओर विचरता हूँ।

हम तीनोंके प्रेतयोनिमें पड़नेका जो कारण है, वह सब मैंने तुम्हें बता दिया। अब तुम हमलोगोंका पापसे उद्धार करो; क्योंकि तुम विप्र हो। ब्रह्मन्! पुण्यात्मा साधु पुरुष तीर्थोंसे भी बढ़कर हैं। वे शरणमें आये हुए महान् पापियोंको भी नरकसे तार देते हैं। जो मनुष्य सदा गंगा आदि सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करता है तथा जो केवल साधु पुरुषोंका संग करता है, उनमें साधु-संग करनेवाला पुरुष ही श्रेष्ठ है।[२] अतः तुम मेरा उद्धार करो अथवा मेरा एक पुत्र है, जो धनशर्मा नामसे विख्यात है; स्वामिन्! तुम उसीके पास जाकर ये सब बातें समझाओ। हमारे लिये इतना परिश्रम करो। जो दूसरोंका कार्य उपस्थित होनेपर उसके लिये उद्योग करता है, उसे उसका पूरा फल मिलता है; वह यज्ञ, दान और शुभकर्मोंसे भी अधिक फलका भागी होता है।

यमराज कहते हैं—ब्रह्मन्! उस प्रेतका वचन सुनकर धनशर्माको बड़ा दुःख हुआ। उसने यह जान लिया कि ये मेरे पिता हैं, जो नरकमें पड़े हुए हैं। तब वह सर्वथा अपनी निन्दा करते हुए बोला।

धनशर्माने कहा—स्वामिन्! मैं ही गौतमका—आपका पुत्र धनशर्मा हूँ। मैं आपके किसी काम न आया, मेरा जन्म निरर्थक है। जो पुत्र आलस्य छोड़कर अपने पिताका उद्धार नहीं करता, वह अपनेको पवित्र नहीं कर पाता। जो इस लोक और परलोकमें भी सुखका संतान—विस्तार कर सके, वही संतान या तनय माना गया है। इस लोकमें धर्मकी दृष्टिसे पुरुषके दो ही गुरु हैं—पिता और माता। इनमें भी पिता ही श्रेष्ठ है; क्योंकि सर्वत्र बीजकी ही प्रधानता देखी जाती है। पिताजी! क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? कैसे आपकी गति होगी? मैं धर्मका तत्त्व नहीं जानता, केवल आपकी आज्ञाका पालन करूँगा।

प्रेत बोला—बेटा! घर जाओ और यमुनामें विधिपूर्वक स्नान करो। आजसे पाँचवें दिन वैशाखकी पूर्णिमा आनेवाली है, जो सब प्रकारकी उत्तम गति प्रदान करनेवाली तथा देवता और पितरोंके पूजनके लिये उपयुक्त है। उस दिन पितरोंके निमित्त भक्तिपूर्वक तिलमिश्रित जल, जलका घड़ा, अन्न और फल दान करना चाहिये। उस दिन जो श्राद्ध किया जाता है, वह

१-अतिपापिनि धूर्ते च गुरुस्वाम्यहितेऽपि वा। निष्कृतिर्विद्यते विप्र कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः॥ (९४। ६०)

२-गङ्गादिसर्वतीर्थेषु यो नरः स्नाति सर्वदा। यः करोति सतां सङ्गं तयोः सत्सङ्गमो वरः॥ (९४। ७६)

पितरोंको हजार वर्षोंतक आनन्द प्रदान करनेवाला होता है। जो वैशाखकी पूर्णिमाको विधिपूर्वक स्नान करके दस ब्राह्मणोंको खीर भोजन कराता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो धर्मराजकी प्रसन्नताके लिये जलसे भरे हुए सात घड़े दान करता है, वह अपनी सात पीढ़ियोंको तार देता है। बेटा! त्रयोदशी, चतुर्दशी तथा पूर्णिमाको भक्तिपरायण होकर स्नान, जप, दान, होम और श्रीमाधवका पूजन करो और उससे जो फल हो, वह हमलोगोंको समर्पित कर दो। ये दोनों प्रेत भी मेरे परिचित हो गये हैं; अतः इनको इसी अवस्थामें छोड़कर मैं स्वर्गमें नहीं जा सकता। इन दोनोंके पापका भी अन्त आ गया है।

यमराज कहते हैं—ब्रह्मन्! 'बहुत अच्छा' कहकर वह श्रेष्ठ ब्राह्मण अपने घर गया और वहाँ जाकर उसने सब कुछ उसी तरह किया। वह प्रसन्नतापूर्वक परम भक्तिके साथ वैशाख-स्नान और दान करने लगा। वैशाखकी पूर्णिमा आनेपर उसने आनन्दपूर्वक भक्तिसे स्नान किया और बहुत-से दान करके उन सबको पृथक्-पृथक् पुण्य प्रदान किया। उस पवित्र दानके संयोगसे वे सब आनन्दमग्न हो विमानपर बैठकर तत्क्षण ही स्वर्गको चले गये।

ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ धनशर्मा भी श्रुति, स्मृति और पुराणोंका ज्ञाता था। वह चिरकालतक उत्तम भोग भोगकर अन्तमें ब्रह्मलोकको प्राप्त हुआ। अतः यह वैशाखकी पूर्णिमा परम पुण्यमयी और समस्त विश्वको पवित्र करनेवाली है। इसका माहात्म्य बहुत बड़ा है, अतएव मैंने संक्षेपसे तुम्हें इसका महत्त्व बतला दिया है। जो वैशाख मासमें प्रातःकाल स्नान करके नियमोंके पालनसे विशुद्धचित्त हो भगवान् मधुसूदनकी पूजा करते हैं, वे ही पुरुष धन्य हैं, वे ही पुण्यात्मा हैं तथा वे ही संसारमें पुरुषार्थके भागी हैं। जो मनुष्य वैशाख मासमें सबेरे स्नान करके सम्पूर्ण यम-नियमोंसे युक्त हो भगवान् लक्ष्मीपतिकी आराधना करता है, वह निश्चय ही अपने पापोंका नाश कर डालता है। जो प्रातःकाल उठकर श्रीविष्णुकी पूजाके लिये गंगाजीके जलमें डुबकी लगाते हैं, उन्हीं पुरुषोंने समयका सदुपयोग किया है, वे ही मनुष्योंमें धन्य तथा पापरहित हैं। वैशाख मासमें प्रातःकाल नियमयुक्त हो मनुष्य जब तीर्थमें स्नान करनेके लिये पैर बढ़ाता है, उस समय श्रीमाधवके स्मरण और नामकीर्तनसे उसका एक-एक पग अश्वमेध-यज्ञके समान पुण्य देनेवाला होता है। श्रीहरिके प्रियतम वैशाख मासके व्रतका यदि पालन किया जाय तो यह मेरुपर्वतके समान बड़े उग्र पापोंको भी जलाकर भस्म कर डालता है। विप्रवर! तुमपर अनुग्रह होनेके कारण मैंने यह प्रसंग संक्षेपसे तुम्हें बता दिया है। जो मेरे कहे हुए इस इतिहासको भक्तिपूर्वक सुनेगा, वह भी सब पापोंसे मुक्त हो जायगा तथा उसे मेरे लोक—यमलोकमें नहीं आना पड़ेगा। वैशाख मासके व्रतका विधिपूर्वक पालन करनेसे अनेकों बारके किये हुए ब्रह्महत्यादि पाप भी नष्ट हो जाते हैं—यह निश्चित बात है। वह पुरुष अपने तीस पीढ़ी पहलेके पूर्वजों और तीस पीढ़ी बादकी संतानोंको भी तार देता है; क्योंकि अनायास ही नाना प्रकारके कर्म करनेवाले भगवान् श्रीहरिको वैशाख मास बहुत ही प्रिय है; अतएव वह सब मासोंमें श्रेष्ठ है।

वैशाख-माहात्म्यके प्रसंगमें राजा महीरथकी कथा और यम-ब्राह्मण-संवादका उपसंहार

यमराज कहते हैं—ब्रह्मन्! पूर्वकालकी बात है, महीरथ नामसे विख्यात एक राजा थे। उन्हें अपने पूर्वजन्मके पुण्योंके फलस्वरूप प्रचुर ऐश्वर्य और सम्पत्ति प्राप्त हुई थी। परन्तु राजा राज्यलक्ष्मीका सारा भार मन्त्रीपर रखकर स्वयं विषयभोगमें आसक्त हो रहे थे। वे न प्रजाकी ओर दृष्टि डालते थे न धनकी ओर। धर्म और अर्थका काम भी कभी नहीं देखते थे। उनकी वाणी तथा उनका मन कामिनियोंकी क्रीड़ामें ही आसक्त था। राजाके पुरोहितका नाम कश्यप था; जब राजाको विषयोंमें रमते हुए बहुत दिन व्यतीत हो गये, तब

पुरोहितने मनमें विचार किया—'जो गुरु मोहवश राजाको अधर्मसे नहीं रोकता, वह भी उसके पापका भागी होता है; यदि समझानेपर भी राजा अपने पुरोहितके वचनोंकी अवहेलना करता है तो पुरोहित निर्दोष हो जाता है। उस दशामें राजा ही सारे दोषोंका भागी होता है।' यह सोचकर उन्होंने राजासे धर्मानुकूल वचन कहा।

कश्यप बोले—राजन्! मैं तुम्हारा गुरु हूँ, अत: धर्म और अर्थसे युक्त मेरे वचनोंको सुनो। राजाके लिये यही सबसे बड़ा धर्म है कि वह गुरुकी आज्ञामें रहे। गुरुकी आज्ञाका आंशिक पालन भी राजाओंकी आयु, लक्ष्मी तथा सौख्यको बढ़ानेवाला है। तुमने दानके द्वारा कभी ब्राह्मणोंको तृप्त नहीं किया; भगवान् श्रीविष्णुकी आराधना नहीं की; कोई व्रत, तपस्या तथा तीर्थ भी नहीं किया। महाराज! कितने खेदकी बात है कि तुमने कामके अधीन होकर कभी भगवान्के नामका स्मरण नहीं किया। अबलाओंकी संगतिमें पड़कर विद्वानोंकी संगति नहीं की। जिसका मन स्त्रियोंने हर लिया, उसे अपनी विद्या, तपस्या, त्याग, नीति तथा विवेकशील चित्तसे क्या लाभ हुआ।[१] एकमात्र धर्म ही सबसे महान् और श्रेष्ठ है, जो मृत्युके बाद भी साथ जाता है। शरीरके उपभोगमें आनेवाली अन्य जितनी वस्तुएँ हैं, वे सब यहीं नष्ट हो जाती हैं। धर्मकी सहायतासे ही मनुष्य दुर्गतिसे पार होता है। राजेन्द्र! क्या तुम नहीं जानते, मनुष्योंके जीवनका विलास जलकी उत्ताल तरंगोंके समान चंचल एवं अनित्य है। जिनके लिये विनय ही पगड़ी और मुकुट हैं, सत्य और धर्म ही कुण्डल हैं तथा त्याग ही कंगन हैं, उन्हें जड आभूषणोंकी क्या आवश्यकता है। मनुष्यके निर्जीव शरीरको ढेले और काठके समान पृथ्वीपर फेंक, उसके बन्धु-बान्धव मुँह फेरकर चल देते हैं; केवल धर्म ही उसके पीछे-पीछे जाता है। सब कुछ जा रहा है, आयु प्रतिदिन क्षीण हो रही है तथा यह जीवन भी लुप्त होता जा रहा है; ऐसी अवस्थामें भी तुम उठकर भागते क्यों नहीं? स्त्री-पुत्र आदि कुटुम्ब, शरीर तथा द्रव्य-संग्रह—ये सब पराये हैं, अनित्य हैं; किन्तु पुण्य और पाप अपने हैं। जब एक दिन सब कुछ छोड़कर तुम्हें विवशतापूर्वक जाना ही है तो तुम अनर्थमें फँसकर अपने धर्मका अनुष्ठान क्यों नहीं करते? मरनेके बाद उस दुर्गम पथपर अकेले कैसे जा सकोगे, जहाँ न ठहरनेके लिये स्थान, न खानेयोग्य अन्न, न पानी, न राहखर्च और न राह बतानेवाला कोई गुरु ही है। यहाँसे प्रस्थान करनेके बाद तुम्हारे पीछे कुछ भी नहीं जायगा, केवल पाप और पुण्य जाते समय तुम्हारे पीछे-पीछे जायँगे।[२]

अत: अब तुम आलस्य छोड़कर वेदों तथा स्मृतियोंमें बताये हुए देश और कुलके अनुरूप हितकारक कर्मका अनुष्ठान करो, धर्ममूलक सदाचारका सेवन करो। अर्थ और काम भी यदि धर्मसे रहित हों तो उनका परित्याग कर देना चाहिये। दिन-रात इन्द्रिय-विजयरूपी योगका अनुष्ठान करना चाहिये; क्योंकि जितेन्द्रिय राजा ही प्रजाको अपने वशमें रख सकता है। लक्ष्मी अत्यन्त प्रगल्भ रमणीके कटाक्षके समान चंचल होती है, विनयरूपी गुण धारण करनेसे ही वह राजाओंके पास दीर्घकालतक ठहरती है। जो अत्यन्त कामी और घमंडी हैं, जिनका सारा कार्य बिना विचारे ही होता है, उन मूढ़चेता राजाओंकी सम्पत्ति उनकी आयुके साथ ही नष्ट हो जाती है। व्यसन और मृत्यु—इनमें व्यसनको ही

१-किं विद्यया किं तपसा किं त्यागेन नयेन वा। किं विविक्तेन मनसा स्त्रीभिर्यस्य मनो हृतम्॥ (९५। १४)

२-मृतं शरीरमुत्सृज्य लोष्टकाष्ठसमं भुवि। विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति॥
गम्यमानेषु सर्वेषु क्षीयमाणे तथायुषि। जीविते लुप्यमाने च किमुत्थाय न धावसि॥
कुटुम्बं पुत्रदारादि शरीरं द्रव्यसञ्चय:। पारक्यमध्रुवं किन्तु स्वीये सुकृतदुष्कृते॥
यदा सर्वं परित्यज्य गन्तव्यमवशेन ते। अनर्थे किं प्रसक्तस्त्वं स्वधर्मं नानुतिष्ठसि॥
अविश्राममभक्ष्याम्बुमपाथेयमदेशिकम्। मृत: कान्तारमध्वानं कथमेको गमिष्यसि॥
न हि त्वां प्रस्थितं किञ्चित् पृष्ठतोऽनुगमिष्यति। दुष्कृतं सुकृतं च त्वां यास्यन्तमनुयास्यति॥ (९५। १९—२४)

कष्टदायक बताया गया है। व्यसनमें पड़े हुए राजाकी अधोगति होती है और जो व्यसनसे दूर रहता है, वह स्वर्गलोकमें जाता है।* व्यसन और दुःख विशेषतः कामसे ही उत्पन्न होते हैं; अतः कामका परित्याग करो। पापोंमें फँस जानेपर वैभव एवं भोग स्थिर नहीं रहते; वे शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। चलते, रुकते, जागते और सोते समय भी जिसका चित्त विचारमें संलग्न नहीं रहता वह जीते-जी भी मरे हुएके ही तुल्य है। विद्वान् पुरुष विषय-चिन्ता छोड़कर समतापूर्ण, स्थिर एवं व्यावहारिक युक्तिसे परमार्थका साधन करते हैं। जीवका चित्त बालककी भाँति चपल होता है; अतः उससे बलपूर्वक काम लेना चाहिये। राजन्! धर्मके तत्त्वदर्शी वृद्ध पुरुषोंकी बुद्धिका सहारा ले पराबुद्धिके द्वारा अपने कुपथगामी चित्तको वशमें करना चाहिये। लौकिक धर्म, मित्र, भाई-बन्धु, हाथ-पैरोंका चलाना, देशान्तरमें जाना, शरीरसे क्लेश उठाना तथा तीर्थके लिये यत्न करना आदि कोई भी परमपदकी प्राप्तिमें सहायता नहीं कर सकते; केवल परमात्मामें मन लगाकर उनका नाम-जप करनेसे ही उस पदकी प्राप्ति होती है।

इसलिये राजन्! विद्वान् पुरुषको उचित है कि वह विषयोंमें प्रवृत्त हुए चित्तको रोकनेके लिये यत्न करे। यत्नसे वह अवश्य ही वशमें हो जाता है। यदि मनुष्य मोहमें पड़ जाय—स्वयं विचार करनेमें असमर्थ हो जाय तो उसे विद्वान् सुहृदोंके पास जाकर प्रश्न करना चाहिये। वे पूछनेपर यथोचित कर्तव्यका उपदेश देते हैं। कल्याणकी इच्छा रखनेवालेको हर एक उपायसे काम और क्रोधका निग्रह करना चाहिये; क्योंकि वे दोनों कल्याणका विघात करनेके लिये उद्यत रहते हैं। राजन्! काम बड़ा बलवान् है; वह शरीरके भीतर रहनेवाला महान् शत्रु है। श्रेयकी अभिलाषा रखनेवाले पुरुषको उसके अधीन नहीं होना चाहिये। अतः विधिपूर्वक पालन किया हुआ धर्म ही सबसे श्रेष्ठ है। इसलिये तुम धैर्य धारण करके धर्मका ही आचरण करो। यह श्वास बड़ा चंचल है, जीवन उसीके अधीन है। ऐसी स्थितिमें भी कौन मनुष्य धर्मके आचरणमें विलम्ब करेगा। राजन्! जो वृद्धावस्थाको प्राप्त हो चुका है, उसका चित्त भी इन निषिद्ध विषयोंकी ओरसे नहीं हटता; हाय! यह कितने शोककी बात है। पृथ्वीनाथ! इस कामके मोहमें पड़कर तुम्हारी सारी उम्र व्यर्थ बीत गयी, अब भी तो अपने हित-साधनमें लगो। राजन्! तुम्हारे लिये सर्वोत्तम हितकी बात कहता हूँ; क्योंकि मैं तुम्हारा पुरोहित और तुम्हारे भले-बुरे कर्मोंका भागी हूँ। मुनीश्वरोंने ब्रह्महत्या, सुरापान, चोरी, गुरुपत्नीगमन आदि महापातक बताये हैं; उनमेंसे मनुष्योंद्वारा मन, वाणी और शरीरसे भी किये हुए जो पाप हैं, उन्हें वैशाख मास नष्ट कर देता है। जैसे सूर्य अन्धकारका नाश करता है, उसी प्रकार वैशाख मास पापरूपी महान् अन्धकारको सर्वथा नष्ट कर डालता है। इसलिये तुम विधिपूर्वक वैशाख-व्रतका पालन करो। राजन्! मनुष्य वैशाख मासकी विधिके अनुष्ठानद्वारा होनेवाले पुण्यके प्रभावसे जन्मभरके किये हुए घोर पापोंका परित्याग करके परमधामको प्राप्त होता है। इसलिये महाराज! तुम भी इस वैशाख मासमें प्रातःस्नान करके विधिपूर्वक भगवान् मधुसूदनकी पूजा करो। जिस प्रकार कूटने-छाँटनेकी क्रियासे चावलकी भूसी छूट जाती है, माँजनेसे ताँबेकी कालिख मिट जाती है, उसी प्रकार शुभ कर्मका अनुष्ठान करनेसे पुरुषके अन्तःकरणका मल धुल जाता है।

राजाने कहा—सौम्य स्वभाववाले गुरुदेव! आपने मुझे वह अमृत पिलाया, जिसका आविर्भाव समुद्रसे नहीं हुआ है। आपका वचन संसाररूपी रोगका निवारण तथा दुर्व्यसनोंसे मुक्त करनेवाला द्रव्यभिन्न औषध है। आपने कृपा करके मुझे आज इस औषधका पान कराया है। विप्रवर! सत्पुरुषोंका समागम मनुष्योंको हर्ष प्रदान करनेवाली, उनके पापको दूर भगानेवाली तथा जरा-मृत्युका अपहरण करनेवाली संजीवनी बूटी है। इस पृथ्वीपर जो-जो मनोरथ दुर्लभ

* व्यसनस्य च मृत्योश्च व्यसनं कष्टमुच्यते । व्यसन्यधोऽधो व्रजति स्वर्यात्यव्यसनी नृपः॥ (९५। ३१)

माने गये हैं, वे सब यहाँ साधु पुरुषोंके संगसे प्राप्त हो जाते हैं। जो पापोंका अपहरण करनेवाली सत्संगकी गंगामें स्नान कर चुका है, उसे दान, तीर्थसेवन, तपस्या तथा यज्ञ करनेकी क्या आवश्यकता है।[१] प्रभो! आजके पहले मेरे मनमें जो-जो भाव उठते थे, वे सब केवल काम-सुखके प्रति लोभ उत्पन्न करनेवाले थे; परन्तु आज आपके दर्शनसे तथा वचन सुननेसे उनमें विपरीत भाव आ गया। मूर्ख मनुष्य एक जन्मके सुखके लिये हजारों जन्मोंका सुख नष्ट करता है और विद्वान् पुरुष एक जन्मसे हजारों जन्म बना लेते हैं। हाय! हाय! कितने खेदकी बात है कि मुझ मूर्खने अपने मनको सदा कामजनित रसके आस्वादन-सुखमें ही फँसाये रखनेके कारण कभी कुछ भी आत्म-कल्याणका कार्य नहीं किया। अहो! मेरे मनका कैसा मोह है, जिससे मैंने स्त्रियोंके फेरमें पड़कर अपने आत्माको घोर विपत्तिमें डाल दिया, जिसका भविष्य अत्यन्त दुःखमय है तथा जिससे पार पाना बहुत कठिन है। भगवन्! आपने स्वतः संतुष्ट होकर अपनी वाणीसे आज मुझे मेरी स्थितिका बोध करा दिया। अब उपदेश देकर मेरा उद्धार कीजिये। पूर्वजन्ममें मैंने कोई पुण्य किया था, जिससे आपने मुझे बोध कराया है। विशेषतः आपके चरणोंकी धूलिसे आज मैं पवित्र हो गया। वक्ताओंमें श्रेष्ठ! अब आप मुझे वैशाख मासकी विधि बताइये।

कश्यपजी बोले—राजन्! बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि वह बिना पूछे अथवा अन्यायपूर्वक पूछनेपर किसीको उपदेश न दे। लोकमें जानते हुए भी जडवत्—अनजानकी भाँति आचरण करे।[२] परन्तु विद्वानों, शिष्यों, पुत्रों तथा श्रद्धालु पुरुषोंको उनके हितकी बात कृपापूर्वक बिना पूछे भी बतानी चाहिये।[३] राजन्! इस समय तुम्हारा मन धर्ममें स्थित हुआ है, अतः तुम्हें वैशाख-स्नानके उत्तम व्रतका पालन कराऊँगा।

तदनन्तर पुरोहित कश्यपने राजा महीरथसे वैशाख मासमें स्नान, दान और पूजन कराया। शास्त्रमें वैशाख-स्नानकी जैसी विधि उन्होंने देखी थी, उसका पूरा-पूरा पालन कराया। राजा महीरथने भी गुरुकी प्रेरणासे उस समय विधिपूर्वक सब नियमोंका पालन किया तथा माधव मासका जो-जो विधान उन्होंने बताया, वह सब आदरपूर्वक सुना। उन नृपश्रेष्ठने प्रातःकाल स्नान करके भक्ति-भावके साथ पाद्य और अर्घ्य आदि देकर श्रीहरिका पूजन किया तथा नैवेद्य भोग लगाया।

यमराज कहते हैं—ब्रह्मन्! तत्पश्चात् राजाके ऊपर कालकी दृष्टि पड़ी। अधिक मात्रामें रतिका सेवन करनेसे उन्हें क्षयका रोग हो गया था, जिससे उनका शरीर अत्यन्त दुर्बल हो गया; अन्ततोगत्वा उनकी मृत्यु
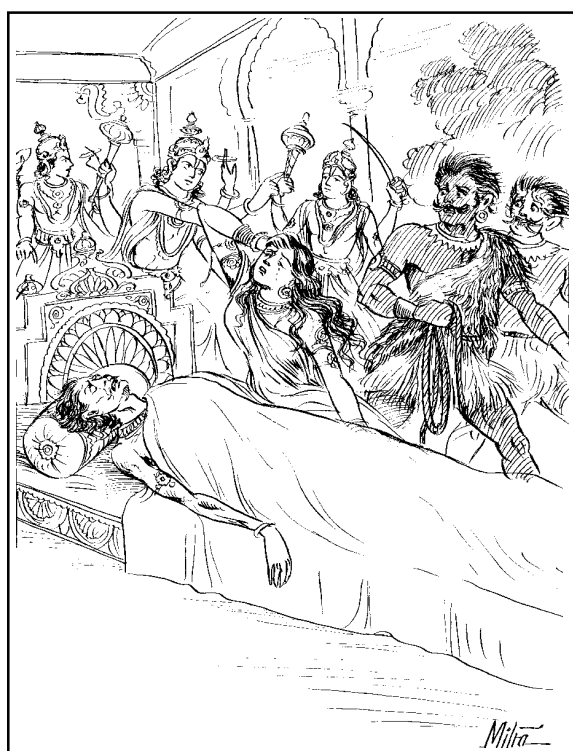
१-हर्षप्रदो नृणां पापहानिकृज्जीवनौषधम्। जरामृत्युहरो विप्र सद्भिः सह समागमः॥
यानि यानि दुरापानि वाञ्छितानि महीतले। प्राप्यन्ते तानि तान्येव साधुनापीह संगमात्॥
यः स्नातः पापहरया साधुसंगमगङ्गया। किं तस्य दानैः किं तीर्थैः किं तपोभिः किमध्वरैः॥ (९६। ३—५)

२-नापृष्टः कस्यचिद् ब्रूयान्न चान्यायेन पृच्छतः। जानन्नपि हि मेधावी जडवल्लोक आचरेत्॥ (९६। १७)

३-विदुषामथ शिष्याणां पुत्राणां च कृपावता। अपृष्टमपि वक्तव्यं श्रेयः श्रद्धावतां हितम्॥ (९६। १८)

हो गयी। उस समय मेरे तथा भगवान् विष्णुके दूत भी उन्हें लेने पहुँचे। विष्णुदूतोंने 'ये राजा धर्मात्मा हैं' यों कहकर मेरे सेवकोंको डाँटा और स्वयं राजाको विमानपर बिठाकर वे वैकुण्ठलोकमें ले गये। वैशाख मासमें प्रातःकाल स्नान करनेसे राजाका पातक नष्ट हो चुका था। भगवान् विष्णुके दूत अत्यन्त चतुर होते हैं; वे भगवान्‌की आज्ञाके अनुसार राजा महीरथको नरक-मार्गके निकटसे ले चले। जाते-जाते राजाने नरकमें पकाये जानेके कारण घोर चीत्कार करनेवाले नारकीय जीवोंका आर्तनाद सुना। कड़ाहमें डालकर औंटाये जानेवाले पापियोंका क्रन्दन बड़ा भयंकर था। सुनकर राजाको बड़ा विस्मय हुआ। वे अत्यन्त दुःखी होकर दूतोंसे बोले—'जीवोंके कराहनेकी यह भयंकर आवाज क्यों सुनायी दे रही है? इसमें क्या कारण है? आपलोग सब बातें बतानेकी कृपा करें।'

विष्णुदूत बोले—जिन प्राणियोंने धर्मकी मर्यादाका परित्याग किया है, जो पापाचारी एवं पुण्यहीन हैं, वे तामिस्र आदि भयंकर नरकोंमें डाले गये हैं। पापी मनुष्य प्राण-त्यागके पश्चात् यमलोकके मार्गमें आकर भयानक दुःख भोगते हैं। यमराजके भयंकर दूत उन्हें इधर-उधर घसीटते हैं और वे अन्धकारमें गिर पड़ते हैं। उन्हें आगमें जलाया जाता है। उनके शरीरमें काँटे चुभाये जाते हैं। उनको आरीसे चीरा जाता है तथा वे भूख-प्याससे पीड़ित रहते हैं। पीब और रक्तकी दुर्गन्धके कारण उन्हें बार-बार मूर्च्छा आ जाती है। कहीं वे खौलते हुए तेलमें औंटाये जाते हैं; कहीं उनपर मूसलोंकी मार पड़ती है और कहीं तपाये हुए लोहेकी शिलाओंपर डालकर उन्हें पकाया जाता है। कहीं वमन, कहीं पीब और कहीं रक्त उन्हें खानेको मिलता है। मुर्दोंकी दुर्गन्धसे भरे हुए करोड़ों नरक हैं, जहाँ 'शरपत्र' वन है, 'शिलापात' के स्थान हैं (जहाँ पापी शिलाओंपर पटके जाते हैं) तथा वहाँकी समतल भूमि भी आगसे तपी होती है। इसके सिवा गरम लोहेके, खौलते हुए तेलके, मेदाके, तपे हुए स्तम्भके तथा कूट-शाल्मलि नामके भी नरक हैं। छूरे, काँटे, कील और उग्र ज्वालाके कारण क्षोभ एवं भय उत्पन्न करनेवाले बहुत-से नरक हैं। कहीं तपी हुई वैतरणी नदी है। कहीं पीबसे भरे हुए अनेकों कुण्ड हैं। इन सबमें पृथक्-पृथक् पापियोंको डाला जाता है। कुछ नरक ऐसे हैं, जो जंगलके रूपमें हैं; वहाँके पत्ते तलवारकी धारके समान तीखे हैं। इसीसे उन्हें 'असिपत्रवन' कहते हैं; वहाँ प्रवेश करते ही नर-नारियोंके शरीर कटने और छिलने लगते हैं। कितने ही नरक घोर अन्धकार तथा आगकी लपटोंके कारण अत्यन्त दारुण प्रतीत होते हैं। इनमें बार-बार यातना भोगनेके कारण पापी जीव नाना प्रकारके स्वरोंमें रोते और विलाप करते हैं। राजन्! इस प्रकार ये शास्त्र-विरुद्ध कर्म करनेवाले पापी जीव कराहते हुए नरकयातनाका कष्ट भोग रहे हैं। उन्हींका यह क्रन्दन हो रहा है। सभी प्राणियोंको अपने पूर्वकृत कर्मोंका भोग भोगना पड़ता है। परायी स्त्रियोंका संग प्रसन्नताके लिये किया जाता है, किन्तु वास्तवमें वह दुःख ही देनेवाला होता है। दो घड़ीतक किया हुआ विषय-सुखका आस्वादन अनेक कल्पोंतक दुःख देनेवाला होता है। राजेन्द्र! तुमने वैशाख मासमें प्रातःस्नान किया है, उसकी विधिका पालन करनेसे तुम्हारा शरीर पावन बन गया है। उससे छूकर बहनेवाली वायुका स्पर्श पाकर ये क्षणभरके लिये सुखी हो गये हैं। तुम्हारे तेजसे इन्हें बड़ी तृप्ति मिल रही है। इसीसे अब ये नरकवर्ती जीव कराहना छोड़कर चुप हो गये हैं। पुण्यवानोंका नाम भी यदि सुना या उच्चारण किया जाय तो वह सुखका साधक होता है तथा उसे छूकर चलनेवाली वायु भी शरीरमें लगनेपर बड़ा सुख देती है।*

यमराज कहते हैं—करुणाके सागर राजा महीरथ अद्भुत कर्म करनेवाले भगवान् श्रीविष्णुके दूतोंकी उपर्युक्त बात सुनकर द्रवित हो उठे। निश्चय ही साधु पुरुषोंका हृदय मक्खनके समान होता है। जैसे नवनीत

---

* नामापि पुण्यशीलानां श्रुतं सौख्याय कीर्तितम् । जायते तद्वपुःस्पर्शवायुः स्पर्शसुखावहः॥ (९७। २७)

आगकी आँच पाकर पिघल जाता है, उसी प्रकार साधु पुरुषोंका हृदय भी दूसरोंके संतापसे संतप्त होकर द्रवित हो उठता है। उस समय राजाने दूतोंसे कहा।

राजा बोले—इन्हें देखकर मुझे बड़ी व्यथा हो रही है। मैं इन व्यथित प्राणियोंको छोड़कर जाना नहीं चाहता। मेरी समझमें सबसे बड़ा पापी वही है, जो समर्थ होते हुए भी वेदनाग्रस्त जीवोंका शोक दूर न कर सके। यदि मेरे शरीरको छूकर बहनेवाली वायुके स्पर्शसे ये जीव सुखी हुए हैं तो आपलोग मुझे उसी स्थानपर ले चलिये; क्योंकि जो चन्दनवृक्षकी भाँति दूसरोंके ताप दूर करके उन्हें आह्लादित करते हैं तथा जो परोपकारके लिये स्वयं कष्ट उठाते हैं, वे ही पुण्यात्मा हैं। संसारमें वे ही संत हैं, जो दूसरोंके दु:खोंका नाश करते हैं तथा पीड़ित जीवोंकी पीड़ा दूर करनेके लिये जिन्होंने अपने प्राणोंको तिनकेके समान निछावर कर दिया है। जो मनुष्य सदा दूसरोंकी भलाईके लिये उद्यत रहते हैं, उन्होंने ही इस पृथ्वीको धारण कर रखा है। जहाँ सदा अपने मनको ही सुख मिलता है, वह स्वर्ग भी नरकके ही समान है; अत: साधु पुरुष सदा दूसरोंके सुखसे ही सुखी होते हैं। यहाँ नरकमें गिरना अच्छा, प्राणोंसे वियोग हो जाना भी अच्छा; किन्तु पीड़ित जीवोंकी पीड़ा दूर किये बिना एक क्षण भी सुख भोगना अच्छा नहीं है।*

दूत बोले—राजन्! पापी पुरुष अपने कर्मोंका ही फल भोगते हुए भयंकर नरकमें पकाये जाते हैं। जिन्होंने दान, होम अथवा पुण्यतीर्थमें स्नान नहीं किया है; मनुष्योंका उपकार तथा कोई उत्तम पुण्य नहीं किया है; यज्ञ, तपस्या और प्रसन्नतापूर्वक भगवन्नामोंका जप नहीं किया है, वे ही परलोकमें आनेपर घोर नरकोंमें पकाये जाते हैं। जिनका शील-स्वभाव दूषित है, जो दुराचारी, व्यवहारमें निन्दित, दूसरोंकी बुराई करनेवाले एवं पापी हैं, वे ही नरकोंमें पड़ते हैं। जो पापी अपने मर्मभेदी वचनोंसे दूसरोंका हृदय विदीर्ण कर डालते हैं तथा जो परायी स्त्रियोंके साथ विहार करते हैं, वे नरकोंमें पकाये जाते हैं। महाभाग भूपाल! आओ, अब भगवान्‌के धामको चलें। तुम पुण्यवान् हो, अत: अब तुम्हारा यहाँ ठहरना उचित नहीं है।

राजाने कहा—विष्णुदूतगण! यदि मैं पुण्यात्मा हूँ तो इस महाभयंकर यातनामार्गमें कैसे लाया गया? मैंने कौन-सा पाप किया है तथा किस पुण्यके प्रभावसे मैं विष्णुधामको जाऊँगा? आपलोग मेरे इस संशयका निवारण करें।

दूत बोले—राजन्! तुम्हारा मन कामके अधीन हो रहा था; इसलिये तुमने कोई पुण्य, यज्ञानुष्ठान अथवा यज्ञावशिष्ट अन्नका भोजन नहीं किया है। इसीलिये तुम्हें इस मार्गसे लाया गया है। किन्तु लगातार तीन वर्षोंतक तुमने अपने गुरुकी प्रेरणासे वैशाख मासमें विधिपूर्वक प्रात:स्नान किया है तथा महापापों और अतिपापोंकी राशिका विनाश करनेवाले भक्तवत्सल, विश्वेश्वर भगवान् मधुसूदनकी भक्तिपूर्वक पूजा की है। यह सब पुण्योंका सार है। केवल इस एक ही पुण्यसे तुम देवताओंद्वारा पूजित होकर श्रीविष्णुधामको ले जाये जा रहे हो। नरेश्वर! जैसे एक ही चिनगारी पड़ जानेसे तिनकोंकी राशि भस्म हो जाती है, उसी प्रकार वैशाखमें प्रात:स्नान करनेसे पापराशिका विनाश हो जाता है। जो वैशाखमें शास्त्रोक्त नियमोंसे युक्त होकर स्नान करता है, वह

---

* परतापच्छिदो ये तु चन्दना इव चन्दना:। परोपकृतये ये तु पीड्यन्ते कृतिनो हि ते॥
सन्त्रस्त एव ये लोके परदु:खविदारणा:। आर्तानामार्तिनाशार्थं प्राणा येषां तृणोपमा:॥
तैरियं धार्यते भूमिर्नरै: परहितोद्यतै:। मनसो यत्सुखं नित्यं स स्वर्गो नरकोपम:॥
तस्मात्परसुखेनैव साधव: सुखिन: सदा। वरं निरयपातोऽत्र वरं प्राणवियोजनम्॥
न पुन: क्षणमार्तानामार्तिनाशमृते सुखम्॥

(९७। ३२—३५)

हरिभक्त पुरुष अतिपापोंके समूहसे छुटकारा पाकर विष्णुपदको प्राप्त होता है।[१]

यमराज कहते हैं—ब्रह्मन्! तब दयासागर राजाने उन जीवोंके शोकसे पीड़ित हो भगवान् श्रीविष्णुके दूतोंसे विनयपूर्वक कहा—'साधु पुरुष प्राप्त हुए ऐश्वर्यका, गुणोंका तथा पुण्यका यही फल मानते हैं कि इनके द्वारा कष्टमें पड़े हुए जीवोंकी रक्षा की जाय। यदि मेरा कुछ पुण्य है तो उसीके प्रभावसे ये नरकमें पड़े हुए जीव निष्पाप होकर स्वर्गको चले जायँ और मैं इनकी जगह नरकमें निवास करूँगा।' राजाके ऐसे वचन सुनकर श्रीविष्णुके मनोहर दूत उनके सत्य और उदारतापर विचार करते हुए इस प्रकार बोले—'राजन्! इस दयारूप धर्मके अनुष्ठानसे तुम्हारे संचित धर्मकी विशेष वृद्धि हुई है। तुमने वैशाख मासमें जो स्नान, दान, जप, होम, तप तथा देवपूजन आदि कर्म किये हैं, वे अक्षय फल देनेवाले हो गये। जो वैशाख मासमें स्नान-दान करके भगवान्का पूजन करता है, वह सब कामनाओंको प्राप्त होकर श्रीविष्णुधामको जाता है। एक ओर तप, दान और यज्ञ आदिकी शुभ क्रियाएँ और एक ओर विधिपूर्वक आचरणमें लाया हुआ वैशाख मासका व्रत हो तो यह वैशाख मास ही महान् है। राजन्! वैशाख मासके एक दिनका भी जो पुण्य है, वह तुम्हारे लिये सब दानोंसे बढ़कर है। दयाके समान धर्म, दयाके समान तप, दयाके समान दान और दयाके समान कोई मित्र नही है।[२] पुण्यका दान करनेवाला मनुष्य सदा लाखगुना पुण्य प्राप्त करता है। विशेषतः तुम्हारी दयाके कारण धर्मकी अधिक वृद्धि हुई है। जो मनुष्य दुःखित प्राणियोंका दुःखसे उद्धार करता है, वही संसारमें पुण्यात्मा है। उसे भगवान् नारायणके अंशसे उत्पन्न समझना चाहिये। वीर! वैशाख मासकी पूर्णिमाको तीर्थमें जाकर जो तुमने सब पापोंका नाश करनेवाला स्नान-दान आदि पुण्य किया है, उसे विधिवत् भगवान् श्रीहरिको साक्षी बनाकर तीन बार प्रतिज्ञा करके इन पापियोंके लिये दान कर दो, जिससे ये नरकसे निकलकर स्वर्गको चले जायँ। हमारा तो ऐसा विश्वास है कि पीड़ित जन्तुओंको शान्ति प्रदान करनेसे जो आनन्द मिलता है, उसे मनुष्य स्वर्ग और मोक्षमें भी नहीं पा सकता। सौम्य! तुम्हारी बुद्धि दया एवं दानमें दृढ़ है, इसे देखकर हमलोगोंको भी उत्साह होता है। राजन्! यदि तुम्हें अच्छा जान पड़े तो अब बिना विलम्ब किये इन्हें वह पुण्य प्रदान करो, जो नरकयातनाके दुःखको दग्ध करनेवाला है।'

विष्णुदूतोंके यों कहनेपर दयालु राजा महीरथने भगवान् गदाधरको साक्षी बनाकर तीन बार प्रतिज्ञापूर्वक संकल्प करके उन पापियोंके लिये अपना पुण्य अर्पण किया। वैशाख मासके एक दिनके ही पुण्यका दान करनेपर वे सभी जीव यम-यातनाके दुःखसे मुक्त हो गये। फिर अत्यन्त हर्षमें भरकर वे श्रेष्ठ विमानपर आरूढ़ हुए और राजाकी प्रशंसा करते हुए उन्हें प्रणाम करके स्वर्गको चले गये। इस दानसे राजाको विशेष पुण्यकी प्राप्ति हुई। मुनियों और देवताओंका समुदाय उनकी स्तुति करने लगा तथा वे जगदीश्वर श्रीविष्णुके पार्षदोंद्वारा अभिवन्दित होकर उस परमपदको प्राप्त हुए, जो बड़े-बड़े योगियोंके लिये भी दुर्लभ है।

द्विजश्रेष्ठ! यह वैशाख मास और पूर्णिमाका कुछ माहात्म्य यहाँ थोड़ेमें बतलाया गया। यह धन, यश, आयु तथा परम कल्याण प्रदान करनेवाला है। इतना ही नहीं, इससे स्वर्ग तथा लक्ष्मीकी भी प्राप्ति होती है। यह

१-भक्त्या सम्पूजितो विष्णुर्विश्वेशो मधुसूदनः। महापापातिपापौघनिहन्ता मधुसूदनः॥
सर्वैकसारेण पुनस्तेनैकेन नरेश्वर। नीयसे विष्णुभवनं पूज्यमानो मरुद्गणैः॥
यथैव विस्फुलिङ्गेन ज्वाल्यते तृणसञ्चयः। प्रातःस्नानेन वैशाखे तथाघौघो नरेश्वर॥
वैशाखे मासि यो युक्तो यथोक्तनियमैर्नरः। हरिभक्तोऽतिपापौघैर्मुक्तोऽच्युतपदं व्रजेत्॥
(९७। ४६—४८, ५०)

२-न दयासदृशो धर्मो न दयासदृशं तपः। न दयासदृशं दानं न दयासदृशः सखा॥ (९८। १५)

प्रशंसनीय माहात्म्य अन्तःकरणको शुद्ध करनेवाला और पापोंको धो डालनेवाला है। माधव मासका यह माहात्म्य भगवान् माधवको अत्यन्त प्रिय है। राजा महीरथका चरित्र और हम दोनोंका मनोरम संवाद सुनने, पढ़ने तथा विधिपूर्वक अनुमोदन करनेसे मनुष्यको भगवान्की भक्ति प्राप्त होती है, जिससे समस्त क्लेशोंका नाश हो जाता है।

सूतजी कहते हैं—धर्मराजकी यह बात सुनकर वह ब्राह्मण उन्हें प्रणाम करके चला गया। उसने भूतलपर प्रतिवर्ष स्वयं तो वैशाख-स्नानकी विधिका पालन किया ही, दूसरोंसे भी कराया। यह ब्राह्मण और यमका संवाद मैंने आपलोगोंसे वैशाख मासके पुण्यमय स्नानके प्रसंगमें सुनाया है। जो एकचित्त होकर वैशाख मासके माहात्म्यका श्रवण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर श्रीविष्णुके परमपदको प्राप्त होता है।

भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान

ऋषि बोले—महाप्राज्ञ सूतजी! आपका हृदय अत्यन्त करुणापूर्ण है; आपने कृपा करके ही पापनाशक वैशाख-माहात्म्यका वर्णन किया है। अब इस समय हम भक्तगणोंके प्रिय परमात्मा श्रीकृष्णका ध्यान सुनना चाहते हैं, जो भवसागरसे तारनेवाला है।

सूतजीने कहा—मुनियो! वृन्दावनमें विचरनेवाले जगदात्मा श्रीकृष्णके, जो गौओं, ग्वालों और गोपियोंके प्राण हैं, ध्यानका वर्णन आप सब लोग सुनें। द्विजवरो! एक समय महर्षि गौतमने देवर्षि नारदजीसे यही बात पूछी थी। नारदजीने उनसे जिस पापनाशक ध्यानका वर्णन किया था, वही मैं आपलोगोंको बताता हूँ।

नारदजी कहते हैं—

सुमनप्रकरसौरभोद्गलितमाध्विकाद्युल्लस-
त्सुशाखिनवपल्लवप्रकरनम्रशोभायुतम् ।
प्रफुल्लनवमञ्जरीललितवल्लरीवेष्टितं
स्मरेत सततं शिवं सितमतिः सुवृन्दावनम्॥

ध्यान करनेवाले मनुष्यको सदा शुद्धचित्त होकर पहले उस परम कल्याणमय सुन्दर वृन्दावनका चिन्तन करना चाहिये, जो फूलोंके समुदाय, मनोहर सुगन्ध और बहते हुए मकरन्द आदिसे सुशोभित सुन्दर-सुन्दर वृक्षोंके नूतन पल्लवोंसे झुका हुआ शोभा पा रहा है तथा खिली हुई नवल मंजरियों और ललित लताओंसे आवृत है।

प्रवालनवपल्लवं मरकतच्छदं मौक्तिक-
प्रभाप्रकरकोरकं कमलरागनानाफलम्।
स्थविष्ठमखिलर्तुभिः सततसेवितं कामदं
तदन्तरपि कृपकाङ्घ्रिपमुदञ्चितं चिन्तयेत्॥

उस वनके भीतर भी एक कल्पवृक्षका चिन्तन करे, जो बहुत ही मोटा और ऊँचा है, जिसके नये-नये पल्लव मूँगेके समान लाल हैं, पत्ते मरकत मणिके सदृश नीले हैं, कलिकाएँ मोतीके प्रभा-पुंजकी भाँति शोभा पा रही हैं और नाना प्रकारके फल पद्मराग मणिके समान जान पड़ते हैं। समस्त ऋतुएँ सदा ही उस वृक्षकी सेवामें रहती हैं तथा वह सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है।

सुहेमशिखराचले उदितभानुवद्भासुरा-
मधोऽस्य कनकस्थलीममृतशीकरासारिणः।
प्रदीप्तमणिकुट्टिमां कुसुमरेणुपुञ्जोज्ज्वलां
स्मरेत्पुनरतन्द्रितो विगतषट्तरङ्गां बुधः॥

फिर आलस्यरहित हो विद्वान् पुरुष धारावाहिकरूपसे अमृतकी बूँदें बरसानेवाले उस कल्पवृक्षके नीचे सुवर्णमयी वेदीकी भावना करे, जो मेरु गिरिपर उगे हुए सूर्यकी भाँति प्रभासे उद्भासित हो रही है, जिसका फर्श जगमगाती हुई मणियोंसे बना है, जो फूलोंके पराग-पुंजसे कुछ धवल वर्णकी हो गयी है तथा जहाँ क्षुधा-पिपासा, शोक-मोह और जरा-मृत्यु—ये छः ऊर्मियाँ नहीं पहुँचने पातीं।

तद्रत्नकुट्टिमनिविष्टमहिष्ठयोग-
पीठेऽष्टपत्रमरुणं कमलं विचिन्त्य।
उद्यद्विरोचनसरोचिरमुष्य मध्ये
संचिन्तयेत् सुखनिविष्टमथो मुकुन्दम्॥

उस रत्नमय फर्शपर रखे हुए एक विशाल योग-

पीठके ऊपर लाल रंगके अष्टदल कमलका चिन्तन करके उसके मध्यभागमें सुखपूर्वक बैठे हुए भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान करे, जो अपनी दिव्य प्रभासे उदयकालीन सूर्यदेवकी भाँति देदीप्यमान हो रहे हैं।

सुत्रामहेतिदलिताञ्जनमेधपुञ्ज-
प्रत्यग्रनीलजलजन्मसमानभासम्।
सुस्निग्धनीलघनकुञ्चितकेशजालं
राजन्मनोज्ञशितिकण्ठशिखण्डचूडम्॥

भगवान्के श्रीविग्रहकी आभा इन्द्रके वज्रसे विदीर्ण हुए कज्जलगिरि, मेघोंकी घटा तथा नूतन नील-कमलके समान श्याम रंगकी है; श्याम मेघके सदृश काले-काले घुँघराले केश-कलाप बड़े ही चिकने हैं तथा उनके मस्तकपर मनोहर मोर-पंखका मुकुट शोभा पा रहा है।

रोलम्बलालितसुरद्रुमसूनसम्प-
द्युक्तं समुत्कचनवोत्पलकर्णपूरम्।
लोलालिभिः स्फुरितभालतलप्रदीप्त-
गोरोचनातिलकमुज्ज्वलचिल्लिचापम्॥

कल्पवृक्षके फूलोंसे, जिनपर भौंरे मँडरा रहे हैं, भगवान्का श्रृंगार हुआ है। उन्होंने कानोंमें खिले हुए नवीन कमलके कुण्डल धारण कर रखे हैं; जिनपर चंचल भ्रमर उड़ रहे हैं। उनके ललाटमें चमकीले गोरोचनका तिलक चमक रहा है तथा धनुषाकार भौंहें बड़ी सुन्दर प्रतीत हो रही हैं।

आपूर्णशारदगताङ्कशशाङ्कबिम्ब-
कान्ताननं कमलपत्रविशालनेत्रम्।
रत्नस्फुरन्मकरकुण्डलरश्मिदीप्त-
गण्डस्थलीमुकुरमुन्नतचारुनासम्॥

भगवान्का मुख शरत्पूर्णिमाके कलंकहीन चन्द्रमण्डलकी भाँति कान्तिमान् है, बड़े-बड़े नेत्र कमलदलके समान सुन्दर जान पड़ते हैं, दर्पणके सदृश स्वच्छ कपोल रत्नोंके कारण चमकते हुए मकराकृत कुण्डलोंकी किरणोंसे देदीप्यमान हो रहे हैं तथा ऊँची नासिका बड़ी मनोहर जान पड़ती है।

सिन्दूरसुन्दरतराधरमिन्दुकुन्द-
मन्दारमन्दहसितद्युतिदीपिताशम्।
वन्यप्रवालकुसुमप्रचयावक्लृप्त-
ग्रैवेयकोज्ज्वलमनोहरकम्बुकण्ठम्॥

सिन्दूरके समान परम सुन्दर लाल-लाल ओठ हैं; चन्द्रमा, कुन्द और मन्दार पुष्पकी-सी मन्द मुसकानकी छटासे सामनेकी दिशा प्रकाशित हो रही है तथा वनके कोमल पल्लवों और फूलोंके समूहद्वारा बनाये हुए हारसे शंखसदृश मनोहर ग्रीवा बड़ी सुन्दर जान पड़ती है।

मत्तभ्रमद्भ्रमरघुष्टविलम्बमान-
संतानकप्रसवदामपरिष्कृतांसम्।
हारावलीभगणराजितपीवरोरो-
व्योमस्थलीलसितकौस्तुभभानुमन्तम्॥

मँड़राते हुए मतवाले भौंरोंसे निनादित एवं घुटनोंतक लटकी हुई पारिजात पुष्पोंकी मालासे दोनों कंधे शोभा पा रहे हैं। पीन और विशाल वक्षःस्थलरूपी आकाश हाररूपी नक्षत्रोंसे सुशोभित है तथा उसमें कौस्तुभमणिरूपी सूर्य भासमान हो रहा है।

श्रीवत्सलक्षणसुलक्षितमुन्नतांस-
माजानुपीनपरिवृत्तसुजातबाहुम्।
आबन्धुरोदरमुदारगभीरनाभिं
भृङ्गाङ्गनानिकरमञ्जुलरोमराजिम्॥

भगवान्के वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न बड़ा सुन्दर दिखायी देता है, उनके कंधे ऊँचे हैं, गोल-गोल सुन्दर भुजाएँ घुटनोंतक लंबी एवं मोटी हैं, उदरका भाग बड़ा मनोहर है, नाभि विस्तृत और गहरी है तथा त्रिवलीकी रोमपंक्ति भँवरोंकी पंक्तिके समान शोभा पा रही है।

नानामणिप्रघटिताङ्गदकङ्कणोर्मि-
ग्रैवेयकारसननूपुरतुन्दबन्धम्।
दिव्याङ्गरागपरिपिञ्जरिताङ्गयष्टि-
मापीतवस्त्रपरिवीतनितम्बबिम्बम्॥

नाना प्रकारकी मणियोंके बने हुए भुजबंद, कड़े, अँगूठियाँ, हार, करधनी, नूपुर और पेटी आदि आभूषण भगवान्के श्रीविग्रहपर शोभा पा रहे हैं; उनके समस्त अंग दिव्य अंगरागोंसे अनुरंजित हैं तथा कटिभाग कुछ हलके रंगके पीताम्बरसे ढका हुआ है।

चारूरुजानुमनुवृत्तमनोज्ञजङ्घं
कान्तोन्नतप्रपदनिन्दितकूर्मकान्तिम् ।
माणिक्यदर्पणलसन्नखराजिराज-
द्रक्तांगुलिच्छदनसुन्दरपादपद्मम् ॥

दोनों जाँघें और घुटने सुन्दर हैं; पिंडलियोंका भाग गोलाकार एवं मनोहर है; पादाग्रभाग परम कान्तिमान् तथा ऊँचा है और अपनी शोभासे कछुएके पृष्ठभागकी कान्तिको मलिन कर रहा है तथा दोनों चरणकमल माणिक्य तथा दर्पणके समान स्वच्छ नखपंक्तियोंसे सुशोभित लाल-लाल अंगुलिदलोंके कारण बड़े सुन्दर जान पड़ते हैं।

मत्स्याङ्कुशारिदरकेतुयवाब्जवज्रैः
संलक्षितारुणकराङ्घ्रितलाभिरामम् ।
लावण्यसारसमुदायविनिर्मिताङ्गं
सौन्दर्यनिन्दित मनोभवदेहकान्तिम् ॥

मत्स्य, अंकुश, चक्र, शंख, पताका, जौ, कमल और वज्र आदि चिह्नोंसे चिह्नित लाल-लाल हथेलियों तथा तलवोंसे भगवान् बड़े मनोहर प्रतीत हो रहे हैं। उनका श्रीअंग लावण्यके सार-संग्रहसे निर्मित जान पड़ता है तथा उनके सौन्दर्यके सामने कामदेवके शरीरकी कान्ति फीकी पड़ जाती है।

आस्यारविन्दपरिपूरितवेणुरन्ध्र-
लोलत्कराङ्गुलिसमीरितदिव्यरागैः ।
शश्वद्द्रवैः कृतनिविष्टसमस्तजन्तु-
सन्तानसंनतिमनन्तसुखाम्बुराशिम् ॥

भगवान् अपने मुखारविन्दसे मुरली बजा रहे हैं; उस समय मुरलीके छिद्रोंपर उनकी अँगुलियोंके फिरनेसे निरन्तर दिव्य रागोंकी सृष्टि हो रही है, जिनसे प्रभावित हो समस्त जीव-जन्तु जहाँ-के-तहाँ बैठकर भगवान्‌की ओर मस्तक टेक रहे हैं। भगवान् गोविन्द अनन्त आनन्दके समुद्र हैं।

गोभिर्मुखाम्बुजविलीनविलोचनाभि-
रूधोभरस्खलितमन्थरमन्दगाभिः ।
दन्ताग्रदष्टपरिशिष्टतृणाङ्कुराभि-
रालम्बिवालधिलताभिरथाभिवीतम् ॥

थनोंके भारसे लड़खड़ाती हुई मन्द-मन्द गतिसे चलनेवाली गौएँ दाँतोंके अग्रभागमें चबानेसे बचे हुए तिनकोंके अंकुर लिये, पूँछ लटकाये भगवान्‌के मुखकमलमें आँखें गड़ाये उन्हें चारों ओरसे घेरकर खड़ी हैं।

सम्प्रस्नुतस्तनविभूषणपूर्णनिश्च-
लास्याद् दृढक्षरितफेनिलदुग्धमुग्धैः ।
वेणुप्रवर्तितमनोहरमन्दगीत-
दत्तोच्चकर्णयुगलैरपि तर्णकैश्च ॥

गौओंके साथ ही छोटे-छोटे बछड़े भी भगवान्‌को सब ओरसे घेरे हुए हैं और मुरलीसे मन्दस्वरमें जो मनोहर संगीतकी धारा बह रही है, उसे वे कान लगाकर सुन रहे हैं, जिसके कारण उनके दोनों कान खड़े हो गये हैं। गौओंके टपकते हुए थनोंके आभूषणरूप दूधसे भरे हुए उनके मुख स्थिर हैं, जिनसे फेनयुक्त दूध बह रहा है; इससे वे बछड़े बड़े मनोहर प्रतीत हो रहे हैं।

गोपैः समानगुणशीलवयोविलास-
वेशैश्च मूर्च्छितकलस्वनवेणुवीणैः ।
मन्दोच्चतारपटुगानपरैर्विलोल-
दोर्वल्लरीललितलास्यविधानदक्षैः ॥

भगवान्‌के ही समान गुण, शील, अवस्था, विलास तथा वेश-भूषावाले गोप भी, जो अपनी चंचल भुजाओंको सुन्दर ढंगसे नचानेमें चतुर हैं, वंशी और वीणाकी मधुर ध्वनिका विस्तार करके मन्द, उच्च और तारस्वरमें कुशलतापूर्वक गान करते हुए भगवान्‌को सब ओरसे घेरकर खड़े हैं।

जङ्घान्तपीवरकटीरतटीनिबद्ध-
व्यालोलकिङ्किणिघटारणितैरटद्भिः ।
मुग्धैस्तरक्षुनखकल्पितकान्तभूषै-
रव्यक्तमञ्जुवचनैः पृथुकैः परीतम् ॥

छोटे-छोटे ग्वाल-बाल भी भगवान्‌के चारों ओर घूम रहे हैं; जाँघसे ऊपर उनके मोटे कटिभागमें करधनी पहनायी गयी है, जिसकी क्षुद्रघण्टिकाओंकी मधुर झनकार सुनायी पड़ती है। वे भोले-भाले बालक बघनखोंके सुन्दर आभूषण पहने हुए हैं। उनकी

मीठी-मीठी तोतली वाणी साफ समझमें नहीं आती।

भगवान्‌के प्रति दृढ़ अनुराग रखनेवाली सुन्दरी गोपांगनाएँ भी उन्हें प्रेमपूर्ण दृष्टिसे निहारती हुई सब ओरसे घेरकर खड़ी हैं। गोपी, गोप और पशुओंके घेरेसे बाहर भगवान्‌के सामनेकी ओर ब्रह्मा, शिव तथा इन्द्र आदि देवताओंका समुदाय खड़ा होकर स्तुति कर रहा है।

तद्वद् दक्षिणतो मुनिनिकरं दृढधर्मवाञ्छया समाम्नायपरम्।
योगीन्द्रानथ पृष्ठे मुमुक्षमाणान् समाधिना तु सनकाद्यान्॥

इसी प्रकार उपर्युक्त घेरेसे बाहर भगवान्‌के दक्षिण भागमें सुदृढ़ धर्मकी अभिलाषासे वेदाभ्यासपरायण मुनियोंका समुदाय उपस्थित है तथा पृष्ठभागकी ओर समाधिके द्वारा मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले सनकादि योगीश्वर खड़े हैं।

सव्ये सकान्तानथ यक्षसिद्धान्
गन्धर्वविद्याधरचारणांश्च।
सकिन्नरानप्सरसश्च मुख्याः
कामार्थिनीर्नर्तनगीतवाद्यैः॥

वाम भागमें अपनी स्त्रियोंसहित यक्ष, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर, चारण और किन्नर खड़े हैं। साथ ही भगवत्प्रेमकी इच्छा रखनेवाली मुख्य-मुख्य अप्सराएँ भी मौजूद हैं। ये सब लोग नाचने, गाने तथा बजानेके द्वारा भगवान्‌की सेवा कर रहे हैं।

शङ्खेन्दुकुन्दधवलं सकलागमज्ञं
सौदामनीततिपिशङ्गजटाकलापम्।
तत्पादपङ्कजगताममलां च भक्तिं
वाञ्छन्तमुज्झिततरान्यसमस्तसङ्गम्॥
नानाविधश्रुतिगणान्वितसप्तराग-
ग्रामत्रयीगतमनोहरमूर्च्छनाभिः।
सम्प्रीणयन्तमुदिताभिरपि प्रभक्तया
संचिन्तयेन्नभसि मां द्रुहिणप्रसूतम्॥

तत्पश्चात् आकाशमें स्थित मुझ ब्रह्मपुत्र देवर्षि नारदका चिन्तन करना चाहिये। नारदजीके शरीरका वर्ण शंख, चन्द्रमा तथा कुन्दके समान गौर है; वे सम्पूर्ण आगमोंके ज्ञाता हैं, उनकी जटाएँ बिजलीकी पंक्तियोंके समान पीली और चमकीली हैं, वे भगवान्‌के चरणकमलोंकी निर्मल भक्तिके इच्छुक हैं तथा अन्य सब ओरकी आसक्तियोंका सर्वथा परित्याग कर चुके हैं और संगीतसम्बन्धी नाना प्रकारकी श्रुतियोंसे युक्त सात स्वरों और त्रिविध ग्रामोंकी मनोहर मूर्च्छनाओंको अभिव्यंजित करके अत्यन्त भक्तिके साथ भगवान्‌को प्रसन्न कर रहे हैं।

इति ध्यात्वाऽऽत्मानं पटुविशदधीर्नन्दतनयं
नरो बौद्धैर्वार्घप्रभृतिभिरनिन्द्योपहृतिभिः।
यजेद् भूयो भक्त्या स्ववपुषि बहिष्ठैश्च विभवै-
रिति प्रोक्तं सर्वं यदभिलषितं भूसुरवराः॥*

इस प्रकार प्रखर एवं निर्मल बुद्धिवाला पुरुष अपने आत्मस्वरूप भगवान् नन्दनन्दनका ध्यान करके मानसिक अर्घ्य आदि उत्तम उपहारोंसे अपने शरीरके भीतर ही भक्तिपूर्वक उनका पूजन करे तथा बाह्य उपचारोंसे भी उनकी आराधना करे। ब्राह्मणो! आपलोगोंकी जैसी अभिलाषा थी, उसके अनुसार भगवान्‌का यह सम्पूर्ण ध्यान मैंने बता दिया।

सूतजी कहते हैं— महर्षिगण! जो इस कथाको सुनाता है, वह भगवान्‌के समान हो जाता है। विप्रो! यह गुह्यसे भी गुह्य प्रसंग कल्याणमय ज्ञान प्रदान करनेवाला है। जो इसे पढ़ता अथवा सुनता है, वह परम पदको प्राप्त होता है।

॥ पातालखण्ड समाप्त ॥

---

* ये ध्यानसम्बन्धी श्लोक अध्याय ९९ से लिये गये हैं।

संक्षिप्त पद्मपुराण

उत्तरखण्ड

नारद-महादेव-संवाद—बदरिकाश्रम तथा नारायणकी महिमा

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥*

ऋषियोंने कहा—वक्ताओंमें श्रेष्ठ सूतजी! आपके द्वारा वर्णित नाना प्रकारके उपाख्यानोंसे युक्त परमानन्ददायक पातालखण्डका हमलोगोंने श्रवण किया; अब भगवद्भक्तिको बढ़ानेवाला जो पद्मपुराणका शेष अंश है, उसे हम सुनना चाहते हैं। गुरुदेव! कृपा करके उस अंशका वर्णन कीजिये।

सूतजी बोले—मुनियो! भगवान् शंकरने देवर्षि नारदके प्रश्न करनेपर जिस पापनाशक विज्ञानका श्रवण कराया था, उसीको मैं कहता हूँ; आप सब लोग सुनें। एक समयकी बात है, भगवान्के प्रिय भक्त देवर्षि नारदजी लोक-लोकान्तरोंमें भ्रमण करते हुए मन्दराचल पर्वतपर गये। वहाँ भगवान् शंकरसे अपनी कुछ मनोगत बातोंको पूछना ही उनकी यात्राका उद्देश्य था। भगवान् उमानाथ उस पर्वतपर विराजमान थे। नारदजीने उन्हें प्रणाम किया और उनकी आज्ञासे उन्हींके सामने वे एक आसनपर बैठ गये। महात्माओ! उस समय उन्होंने भगवान् शिवसे यही प्रश्न किया, जिसे आपलोग मुझसे पूछ रहे हैं।

नारदजीने कहा—भगवन्! देवदेवेश्वर! पार्वतीपते! जगद्गुरो! जिससे भगवत्तत्त्वका ज्ञान हो, उस विषयका आप मुझे उपदेश कीजिये।

महादेवजी बोले—नारद! सुनो; मैं वेदोंकी समानता करनेवाले पुराणका वर्णन आरम्भ करता हूँ, जिसे सुनकर मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। इस पृथ्वीपर एक लाख पचीस हजार पर्वत हैं, उन सबमें बदरिकाश्रम महान् पुण्यदायक एवं उत्तम है, जहाँ भगवान् नर-नारायण विराजमान हैं। नारदजी! मैं इस समय उन्हींके तेज और स्वरूपका वर्णन करूँगा। ब्रह्मन्! हिमालय पर्वतपर दो पुरुष हैं, जो क्रमशः नर-नारायणके नामसे विख्यात हैं; उनमें एक तो गौर वर्णके हैं और दूसरे श्याम वर्णके। श्याम वर्णवाले पुरुष ही 'नारायण' हैं; ये इस जगत्के आदि कारण और महान् प्रभु हैं। इनके चार भुजाएँ हैं। ये बड़े ही शोभासम्पन्न हैं। इनके दो रूप हैं—व्यक्त और अव्यक्त (साकार

---

* जिन्होंने अज्ञानरूपी अन्धकारसे अंधे हुए मुझ शिष्यके विवेकरूपी बंद नेत्रको ज्ञानरूप अंजनकी शलाकासे खोल दिया है, उन श्रीगुरुदेवको प्रणाम है।

और निराकार)। ये सनातन पुरुष हैं। सुव्रत! उत्तरायणमें ही इनकी महती पूजा होती है। प्राय: छ: महीनोंतक इनकी पूजा नहीं होती; क्योंकि जबतक दक्षिणायन रहता है, इनका स्थान हिमसे आच्छादित रहा करता है। अत: इनके-जैसा देवता न अबतक हुआ है और न आगे होगा। बदरिकाश्रममें देवगण निवास करते हैं। वहाँ ऋषियोंके भी आश्रम हैं। अग्निहोत्र और वेदपाठकी ध्वनि वहाँ सदा श्रवण-गोचर होती रहती है। भगवान् नारायणका दर्शन करना चाहिये। उनका दर्शन करोड़ों हत्याओंका नाश करनेवाला है। वहाँ 'अलकनन्दा' नामवाली गंगा बहती हैं, उनमें स्नान करना चाहिये। वहाँ स्नान करके मनुष्य महान् पापसे मुक्त हो जाता है। उस तीर्थमें सम्पूर्ण जगत्के स्वामी भगवान् नारायण सदा ही विराजमान रहते हैं।

एक समयकी बात है, मैंने एक वर्षतक वहाँ बड़ी कठोर तपस्या की थी। उस समय भक्तोंपर कृपा करनेवाले भगवान् नारायण, जो अविनाशी, अन्तर्यामी, साक्षात् परमेश्वर तथा गरुड़के-से चिह्नवाली ध्वजासे युक्त हैं, बहुत प्रसन्न हुए और मुझसे बोले—'सुव्रत! कोई वर माँगो; देव! तुम जो-जो चाहोगे, वह सभी मनोरथ मैं पूर्ण करूँगा; तुम कैलासके स्वामी, साक्षात् रुद्र तथा विश्वके पालक हो।

तब मैंने कहा—जनार्दन! यदि आप वर देना चाहते हैं तो मुझे दो वर प्रदान कीजिये—मेरे हृदयमें सदा ही आपके प्रति भक्ति बनी रहे और देवेश्वर! मैं आपके प्रसादसे मुक्तिदाता होऊँ।

गंगावतरणकी संक्षिप्त कथा और हरिद्वारका माहात्म्य

महादेवजी कहते हैं—देवर्षियोंमें श्रेष्ठ नारद! अब तुम परम पुण्यमय हरिद्वारका माहात्म्य श्रवण करो। जहाँ भगवती गंगा बहती हैं, वहाँ उत्तम तीर्थ बताया गया है। वहाँ देवता, ऋषि और मनुष्य निवास करते हैं। वहाँ साक्षात् भगवान् केशव नित्य विराजमान रहते हैं। विद्वन्! राजा भगीरथ उसी मार्गसे भगवती गंगाको लाये थे तथा उन महात्माने गंगाजलका स्पर्श कराकर अपने पूर्वजोंका उद्धार किया था।

नारद! अत्यन्त सुन्दर गंगाद्वारमें जो जिस प्रकार गंगाजीको ले आये थे, वह सब प्रसंग मैं क्रमश: सुनाता हूँ। पूर्वकालमें हरिश्चन्द्र नामके एक राजा हो चुके हैं, जो त्रिभुवनमें सत्यके पालक विख्यात थे। उनके रोहित नामक एक पुत्र हुआ, जो भगवान् विष्णुकी भक्तिमें तत्पर था। रोहितका पुत्र वृक था, जो बड़ा ही धर्मात्मा और सदाचारी था। उसके सुबाहु नामक पुत्र हुआ। सुबाहुसे 'गर' नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई। एक समय गरको कालयोगसे दु:खी होना पड़ा। अनेक राजाओंने चढ़ाई करके उनके देशको अपने अधीन कर लिया। गर कुटुम्बको साथ ले भृगुनन्दन और्वके आश्रमपर चले गये। और्वने कृपापूर्वक वहाँ उनकी रक्षा की। वहीं उनके सगर नामक पुत्रका जन्म हुआ। महात्मा भार्गवसे रक्षित होकर वह उसी आश्रमपर बढ़ने लगा। मुनिने उसके यज्ञोपवीत आदि सब क्षत्रियोचित संस्कार कराये। अस्त्र-शस्त्रों तथा वेद-विद्याका भी उसको अभ्यास कराया।

तदनन्तर महातपस्वी राजा सगरने और्व मुनिसे आग्नेयास्त्र प्राप्त किया और समूची पृथ्वीपर भ्रमण करके अपने शत्रु तालजंघ, हैहय, शक तथा पारदवंशियोंका वध कर डाला। इस प्रकार सबको जीतकर उन्होंने धर्म-संचय करना आरम्भ किया। राजाने अश्वमेध-यज्ञका अनुष्ठान करनेके लिये अश्व छोड़ा। वह अश्व पूर्व दक्षिण-समुद्रके तटपर हर लिया गया और पृथ्वीके भीतर पहुँचा दिया गया। तब राजाने अपने पुत्रोंको लगाकर सब ओरसे उस स्थानको खुदवाया। महासागर खोदते समय वे अश्वको तो नहीं पा सके, किन्तु वहाँ तपस्या करनेवाले आदि पुरुष महात्मा कपिलपर उनकी दृष्टि पड़ी। वे उतावलीके साथ उनके निकट गये और जगत्प्रभु कपिलको लक्ष्य करके कहने लगे—'यह चोर है।'

कोलाहल सुनकर भगवान् कपिल समाधिसे जाग उठे। उस समय उनके नेत्रोंसे आग प्रकट हुई, जिससे साठ
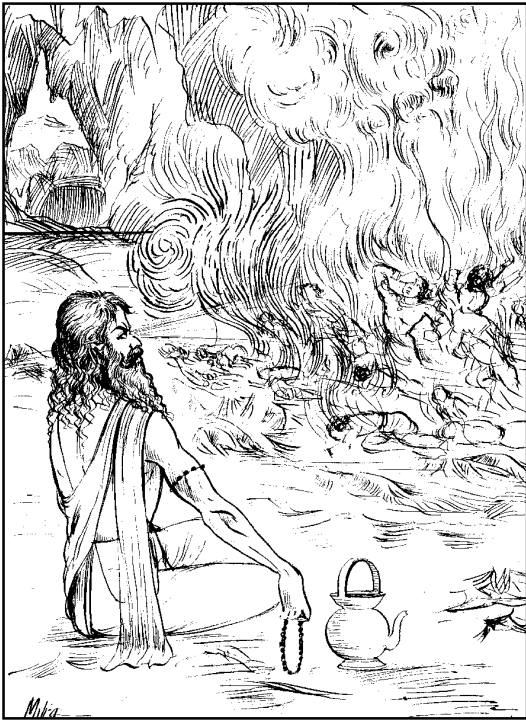
हजार सगर-पुत्र जलकर भस्म हो गये। महायशस्वी राजाने समुद्रसे उस आश्वमेधिक अश्वको प्राप्त किया और उसके द्वारा सौ अश्वमेध-यज्ञोंका अनुष्ठान पूर्ण किया।

नारदजीने पूछा—विज्ञानेश्वर! सगरके साठ हजार पुत्र बड़े बलवान् और पराक्रमी थे, उन वीरोंकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई? यह बताइये।

महादेवजी बोले—नारद! राजा सगरकी दो पत्नियाँ थीं, वे दोनों ही तपस्याके द्वारा अपने पाप दग्ध कर चुकी थीं। इससे प्रसन्न होकर मुनिश्रेष्ठ और्वने उन्हें वरदान दिया। उनमेंसे एक रानीने साठ हजार पुत्र माँगे और दूसरीने एक ही ऐसे पुत्रके लिये प्रार्थना की, जो वंश चलानेवाला हो। पहली रानीने तूँबीमें बहुत-से शूरवीर पुत्रोंको जन्म दिया; उन सबको धाइयोंने ही क्रमशः पाल-पोसकर बड़ा किया। घीसे भरे हुए घड़ोंमें रखकर उन कुमारोंका पोषण किया गया। कपिला गायका दूध पीकर वे सब-के-सब बड़े हुए। दूसरी रानीके गर्भसे पंचजन नामक पुत्र हुआ, जो राजा बना। पंचजनके अंशुमान् नामक पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुआ। अंशुमान्‌के दिलीप और दिलीपके भगीरथ हुए, जो उत्तम व्रत (तपस्या)-का अनुष्ठान करके नदियोंमें श्रेष्ठ गंगाजीको पृथ्वीपर ले आये तथा जिन्होंने गंगाको समुद्रतक ले जाकर उन्हें अपनी कन्याके रूपमें अंगीकार किया।

नारदजीने पूछा—भगवन्! राजा भगीरथ गंगाको किस प्रकार लाये थे? उन्होंने कौन-सी तपस्या की थी, ये सब बातें मुझे बताइये।

महादेवजी बोले—नारद! राजा भगीरथ अपने पूर्वजोंका हित करनेके लिये हिमालय पर्वतपर गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने दस हजार वर्षोंतक भारी तपस्या की। इससे आदिदेव भगवान् निरंजन श्रीविष्णु प्रसन्न हुए। उन्हींके आदेशसे गंगाजी आकाशसे चलीं और जहाँ विश्वेश्वर श्रीशिव नित्य विराजमान रहते हैं, उस कैलास पर्वतपर उपस्थित हुईं। मैंने गंगाजीको आया देख उन्हें अपने जटाजूटमें धारण कर लिया और दस हजार वर्षोंतक उसी रूपमें स्थित रहा। इधर राजा भगीरथ गंगाजीको न देखकर विचार करने लगे—गंगा कहाँ चली
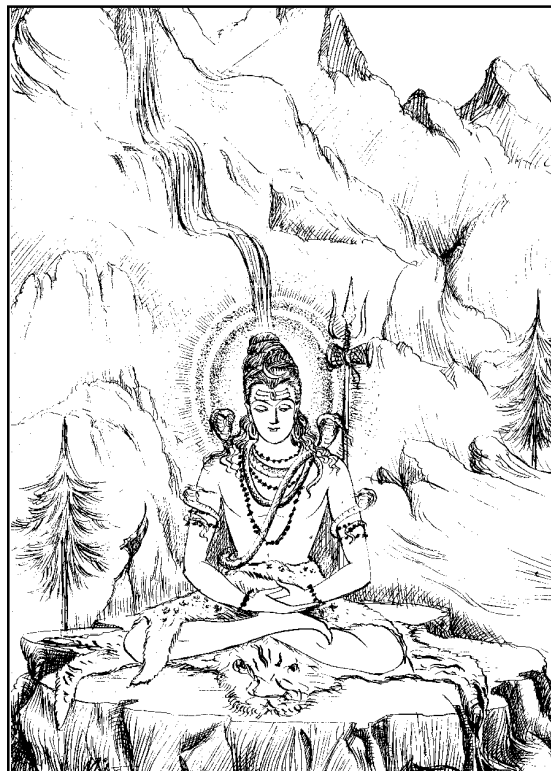
गयीं? ध्यान करके जब उन्होंने यह निश्चितरूपसे जान लिया कि उन्हें महादेवजीने ग्रहण कर लिया है, तब वे कैलास पर्वतपर गये। मुनिश्रेष्ठ वहाँ पहुँचकर वे तीव्र तपस्या करने लगे। उनके आराधना करनेपर मैंने अपने मस्तकसे एक बाल उखाड़ा और उसीके साथ त्रिपथगा गंगाजीको उन्हें अर्पण कर दिया। गंगाको लेकर वे पातालमें, जहाँ उनके पूर्वज भस्म हुए थे, गये। उस समय भगवान् विष्णुके चरणोंसे प्रकट हुई गंगा जब हरिद्वारमें आयीं, तब वह देवताओंके लिये भी दुर्लभ श्रेष्ठ तीर्थ बन गया। जो मनुष्य उस तीर्थमें स्नान तथा विशेषरूपसे श्रीहरिका दर्शन करके उनकी परिक्रमा करते हैं, वे दुःखके भागी नहीं होते। ब्रह्महत्या आदि पापोंकी अनेक राशियाँ ही क्यों न हों, वे सब सर्वदा श्रीहरिके दर्शनमात्रसे नष्ट हो जाती हैं। एक समय मैं भी हरिद्वारमें श्रीहरिके स्थानपर गया था, उस समय उस तीर्थके प्रभावसे मैं विष्णुस्वरूप हो गया। सभी मनुष्य वहाँ श्रीहरिका दर्शन करनेमात्रसे वैकुण्ठलोकको प्राप्त होते हैं। परम सुन्दर हरिद्वार-तीर्थ मेरी दृष्टिमें सबसे अधिक महत्त्वशाली है। वह समस्त तीर्थोंमें श्रेष्ठ और धर्म-अर्थ-काम-मोक्षरूप चारों पुरुषार्थ प्रदान करनेवाला है।

गंगाकी महिमा, श्रीविष्णु, यमुना, गंगा, प्रयाग, काशी, गया एवं गदाधरकी स्तुति

महादेवजी कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ! अब मैं श्रीगंगाजीके माहात्म्यका यथावत् वर्णन करूँगा, जिसके श्रवणमात्रसे तत्काल पापोंका नाश हो जाता है। जो मनुष्य सैकड़ों योजन दूरसे भी 'गंगा-गंगा' का उच्चारण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होता और अन्तमें विष्णुलोकको जाता है।* नारद! श्रीहरिके चरणकमलोंसे प्रकट हुई 'गंगा' नामसे विख्यात नदी पापोंकी स्थूल राशियोंका भी नाश करनेवाली है। नर्मदा, सरयू, वेत्रवती (बेतवा), तापी, पयोष्णी (मन्दाकिनी), चन्द्रा, विपाशा (ब्यास), कर्मनाशिनी, पुष्पा, पूर्णा, दीपा, विदीपा तथा सूर्यतनया यमुना—इनमें स्नान करनेसे जो पुण्य होता है, वह सब पुण्य गंगा-स्नानसे मनुष्य प्राप्त कर लेते हैं। जो मनीषी पुरुष समुद्रसहित पृथ्वीका दान करते हैं, उनको मिलनेवाला फल भी गंगा-स्नानसे प्राप्त हो जाता है। सहस्र गोदान, सौ अश्वमेध-यज्ञ तथा सहस्र वृषभ-दानसे जिस अक्षय फलकी प्राप्ति होती है, वह गंगाजीके दर्शनसे क्षणभरमें प्राप्त हो जाता है। वह गंगा नदी महान् पुण्यदायिनी है, विशेषतः ब्रह्महत्यारोंके लिये परम पावन है। वे नरकमें पड़नेवाले हों तो भी गंगाजी उनके पाप हर लेती हैं। तात! जैसे सूर्योदय होनेपर अन्धकार दूर हो जाता है, उसी प्रकार गंगाके प्रभावसे पातक नष्ट हो जाते हैं। ये माता गंगा संसारमें सदा पवित्र मानी गयी हैं। इनका स्वरूप परम कल्याणमय है। माता जाह्नवीका स्वरूप दिव्य है। जैसे देवताओंमें श्रीविष्णु श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार नदियोंमें गंगा उत्तम हैं। जहाँ गंगा, यमुना और सरस्वती हैं, उन तीर्थोंमें स्नान और आचमन करके मनुष्य मोक्षका भागी होता है—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।

[भिन्न-भिन्न तीर्थोंमें जानेपर भगवान् श्रीविष्णु तथा यमुना, गंगा आदि नदियोंका किस प्रकार स्तवन करना चाहिये, यह बताया जाता है—]

त्वद्वार्तां प्रयतो ब्रवीमि यदहं सास्तु स्तुतिस्ते प्रभो
यद् भुञ्जे तव सन्निवेदनमथो यद्यामि सा प्रेष्यता।
यच्छ्रान्तः स्वपिमि त्वदङ्घ्रियुगले दण्डप्रणामोऽस्तु मे
स्वामिन् यच्च करोमि तेन स भवान् विश्वेश्वरः प्रीयताम्॥

प्रभो! मैं शुद्धभावसे आपके सम्बन्धमें जो कुछ भी चर्चा करता हूँ, वही आपके लिये स्तुति हो। जो कुछ भोजन करता हूँ, वह आपके लिये नैवेद्यका काम दे। जो चलता-फिरता हूँ, वही आपकी सेवा-टहल समझी जाय। जो थककर सो जाता हूँ, वही आपके लिये

---

* गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद् योजनानां शतैरपि। मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥ (२३।२)

साष्टांग प्रणाम हो तथा स्वामिन्! मैं जो कुछ करता हूँ, उससे आप जगदीश्वर श्रीविष्णु प्रसन्न हों।

दृष्टेन वन्दितेनापि स्पृष्टेन च धृतेन च।
नरा येन विमुच्यन्ते तदेतद् यामुनं जलम्॥

जिसके दर्शन, वन्दन, स्पर्श तथा धारण करनेसे मनुष्य भव-बन्धनसे मुक्त हो जाते हैं, वही यह यमुनाजीका जल है।

तावद् भ्रमन्ति भुवने मनुजा भवोत्थ-
दारिद्र्यरोगमरणव्यसनाभिभूताः।
यावज्जलं तव महानदि नीलनीलं
पश्यन्ति नो दधति मूर्धसु सूर्यपुत्रि॥

सूर्यपुत्री महानदी यमुनाजी! मनुष्य इस जगत्‌में प्राप्त होनेवाले दरिद्रता, रोग और मृत्यु आदि दुःखोंसे पीड़ित होकर तभीतक संसारमें भटकते रहते हैं, जबतक वे नीलमणिके सदृश आपके नीले जलका दर्शन नहीं करते अथवा उसे अपने मस्तकपर नहीं चढ़ाते।

यत्संस्मृतिः सपदि कृन्तति दुष्कृतौघं
पापावलीं जयति योजनलक्षतोऽपि।
यन्नाम नाम जगदुच्चरितं पुनाति
दिष्ट्या हि सा पथि दृशोर्भविताद्य गङ्गा॥

जिनकी स्मृति पापराशिका तत्काल नाश कर देती है, जो लाख योजन दूरसे भी पापोंके समूहको परास्त करती हैं, जिनका नाम उच्चारण किये जानेपर सम्पूर्ण जगत्‌को पवित्र कर देता है, वे गंगाजी आज सौभाग्यवश मेरे दृष्टिपथमें आयेंगी।

आलोकोत्कण्ठितेन प्रमुदितमनसा वर्त्म यस्याः प्रयातं
सद् यस्मिन् कृत्यमेतामथ प्रथमकृती जज्ञिवान् स्वर्गसिन्धुम्।
स्नानं सन्ध्या निवापः सुरयजनमपि श्राद्धविप्राशनाद्यं
सर्वं सम्पूर्णमेतद् भवति भगवतः प्रीतिदं नात्र चित्रम्॥

मनुष्य दर्शनके लिये उत्कण्ठित तथा प्रसन्नचित्त होकर जिसके पथका अनुसरण करता है, जिसके तटपर समस्त शास्त्रविहित कर्म उत्तमतापूर्वक सम्पन्न होते हैं, उन गंगाजीको आदि सृष्टिके रचयिता ब्रह्माजीने पहले स्वर्गगंगाके रूपमें उत्पन्न किया था। उनके तटपर किया हुआ स्नान, सन्ध्या, तर्पण, देवपूजा, श्राद्ध और ब्राह्मण-भोजन आदि सब कुछ परिपूर्ण एवं भगवान्‌को प्रसन्नता प्रदान करनेवाला होता है—इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

द्रवीभूतं परं ब्रह्म परमानन्ददायिनि।
अर्घ्यं गृहाण मे गङ्गे पापं हर नमोऽस्तु ते॥

परमानन्द प्रदान करनेवाली गंगाजी! आप जल-रूपमें अवतीर्ण साक्षात् परब्रह्म हैं। आपको नमस्कार है। आप मेरा दिया हुआ अर्घ्य ग्रहण कीजिये और मेरे पाप हर लीजिये।

साक्षाद्धर्मद्रवौघं मुररिपुचरणाम्भोजपीयूषसारं
दुःखस्वाब्धेस्तरित्रं सुरदनुजनुतं स्वर्गसोपानमार्गम्।
सर्वांहोहारि वारि प्रवरगुणगणं भासि या संवहन्ती
तस्यै भागीरथि श्रीमति मुदितमना देवि कुर्वे नमस्ते॥

श्रीमती भागीरथी देवी! जो जलरूपमें परिणत साक्षात् धर्मकी राशि है, भगवान् विष्णुके चरणारविन्दोंसे प्रकट हुई सुधाका सार है, दुःखरूपी समुद्रसे पार होनेके लिये जहाज है तथा स्वर्गलोकमें जानेके लिये सीढ़ी है, जिसे देवता और दानव भी प्रणाम करते हैं, जो समस्त पापोंका संहार करनेवाला, उत्तम गुणसमूहसे युक्त और शोभा-सम्पन्न है, ऐसे जलको आप धारण करती हैं। मैं प्रसन्नचित्त होकर आपको नमस्कार करता हूँ।

स्वःसिन्धो दुरिताब्धिमग्नजनतासंतारणि प्रोल्लसत्-
कल्लोलामलकान्तिनाशिततमस्तोमे जगत्पावनि।
गङ्गे देवि पुनीहि दुष्कृतभयक्रान्तं कृपाभाजनं
मातर्मां शरणागतं शरणदे रक्षाद्य भो भीषितम्॥

स्वर्गलोककी नदी भगवती गंगे! आप पापके समुद्रमें डूबी हुई जनताको तारनेवाली हैं, अपनी उठती हुई शोभायुक्त लहरोंकी निर्मल कान्तिसे पापरूपी अन्धकार-राशिका नाश करती हैं तथा जगत्‌को पवित्र करनेवाली हैं; मैं पापके भयसे ग्रस्त और आपका कृपा-भाजन हूँ। शरणदायिनी माता! आपकी शरणमें आया हूँ; आज मुझ भयभीतकी रक्षा कीजिये।

हं हो मानस कम्पसे किमु सखे त्रस्तो भयान्नारकात्
किं ते भीतिरिति श्रुतिर्दुरितकृत् संजायते नारकी।
मा भैषीः शृणु मे गतिं यदि मया पापाचलस्पर्धिनी
प्राप्ता ते निरयः कथं किमपरं किं मे न धर्मो धनम्॥

ऐ मेरे चित्त! ओ मित्र! तुम नरकके भयसे त्रस्त होकर काँप क्यों रहे हो? क्या तुम्हें यह सोचकर भय हो रहा है कि पापी मनुष्य नरकमें पड़ता है—ऐसा श्रुतिका कथन है। सखे! इसके लिये भय न करो; मेरी क्या गति होगी—यह बताता हूँ, सुनो; यदि मुझे पापोंके पहाड़से भी टक्कर लेनेवाली भगवती गंगा प्राप्त हो गयी हैं तो तुम्हें नरककी प्राप्ति कैसे हो सकती है अथवा दूसरी कोई दुर्गति भी क्यों होगी। क्या मेरे पास धर्मरूपी धन नहीं है?

स्वर्वासाधिप्रशंसामुदमनुभवितुं मज्जनं यत्र चोक्तं
स्वर्नार्यो वीक्ष्य हृष्टा विबुधसुरपतिप्राप्तिसंभावनेन।
नीरे श्रीजह्नुकन्ये यमनियमरताः स्नान्ति ये तावकीने
देवत्वं ते लभन्ते स्फुटमशुभकृतोऽप्यत्र वेदाः प्रमाणम्॥

जिस गंगाजीके जलमें किया हुआ स्नान स्वर्ग-लोकके निवास तथा प्रशंसाके आनन्दकी अनुभूतिका कारण बताया गया है, वहाँ किसीको स्नान करते देख स्वर्गलोककी देवियाँ एक नूतन देवता अथवा इन्द्रके मिलनेकी संभावनासे बहुत प्रसन्न होती हैं। जह्नुपुत्री गंगे! जो लोग यम-नियमोंका पालन करते हुए आपके जलमें स्नान करते हैं, वे पहलेके पापी होनेपर भी निश्चय ही देवत्व प्राप्त कर लेते हैं—इस विषयमें वेद प्रमाण हैं।

बुद्धे सद्बुद्धिरेवं भवतु तव सखे मानस स्वस्ति तेऽस्तु
आस्तां पादौ पदस्थौ सततमिह युवां साधुदृष्टी च दृष्टी।
वाणि प्राणप्रियेऽधिप्रकटगुणवपुः प्राप्नुहि प्राणपुष्टिं
यस्मात् सर्वैर्भवद्भिः सुखमतुलमहं प्राप्नुयां तीर्थपुण्यम्॥

बुद्धे! सदा इसी प्रकार तुम्हारी सद्बुद्धि बनी रहे। सखे मन! तुम्हारा भी कल्याण हो। चरणो! तुम भी इसी प्रकार योग्य पद (स्थान)-पर स्थित रहो। नेत्रो! तुम दोनों भी उत्तम दृष्टिसे सम्पन्न रहो। वाणी! तुम प्राणोंकी प्रिया हो तथा प्रकट हुए उत्तम गुणोंसे युक्त शरीर! तुम्हारी प्राणशक्तिका पोषण हो; क्योंकि मैं तुम सब लोगोंके साथ आज अतुलित सुख प्रदान करनेवाले तीर्थजनित पुण्यको प्राप्त करूँगा।

श्रीजाह्नवीरविसुतापरमेष्ठिपुत्री-
सिन्धुत्रयाभरण तीर्थवर प्रयाग।
सर्वेश मामनुगृहाण नयस्व चोर्ध्व-
मन्तस्तमोदशविधं दलय स्वधाम्ना॥

गंगा, यमुना और सरस्वती—इन तीनों नदियोंको आभूषणरूपमें धारण करनेवाले तीर्थराज प्रयाग! सर्वेश्वर! मुझपर अनुग्रह करो, मुझे ऊँचे उठाओ तथा मेरे अन्तःकरणके दस प्रकारके अविद्यान्धकारको अपने तेजसे नष्ट करो।

वागीशविष्णवीशपुरन्दराद्याः
पापप्रणाशाय विदां विदोऽपि।
भजन्ति यत्तीरमनीलनीलं
स तीर्थराजो जयति प्रयागः॥

ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा इन्द्र आदि देवता और विद्वानोंमें श्रेष्ठ विद्वान् (ऋषि-महर्षि) भी जिसके श्वेत-कृष्णजलसे शोभित तटका सेवन करते हैं, उस तीर्थराज प्रयागकी जय हो।

कलिन्दजासङ्गमवाप्य यत्र
प्रत्यागता स्वर्गधुनी धुनोति।
अध्यात्मतापत्रितयं जनस्य
स तीर्थराजो जयति प्रयागः॥

जहाँ आयी हुई गंगा कलिन्दनन्दिनी यमुनाका संगम पाकर मनुष्योंके आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक—इन तीनों तापोंका नाश करती हैं, उस तीर्थराज प्रयागकी जय हो।

श्यामो वटोऽश्यामगुणं वृणोति
स्वच्छायया श्यामलया जनानाम्।
श्यामः श्रमं कृन्तति यत्र दृष्टः
स तीर्थराजो जयति प्रयागः॥

जहाँ श्यामवट उज्ज्वल गुण धारण करता है तथा दर्शन करनेपर अपनी श्यामल छायासे मनुष्योंके जन्म-मरणरूप श्रमका नाश कर डालता है, उस तीर्थराज प्रयागकी जय हो।

ब्रह्मादयोऽप्यात्मकृतिं विहाय
भजन्ति पुण्यात्मकभागधेयम्।
यत्रोज्झिता दण्डधरः स्वदण्डं
स तीर्थराजो जयति प्रयागः॥

ब्रह्मा आदि देवता भी अपना काम छोड़कर जिस पुण्यमय सौभाग्यसे युक्त तीर्थका सेवन करते हैं तथा जहाँ दण्डधारी यमराज भी अपना दण्ड त्याग देते हैं, उस तीर्थराज प्रयागकी जय हो।

यत्सेवया देवनृदेवतादि-
देवर्षयः प्रत्यहमामनन्ति।
स्वर्गं च सर्वोत्तमभूमिराज्यं
स तीर्थराजो जयति प्रयागः॥

देवता, मनुष्य, ब्राह्मण तथा देवर्षि भी प्रतिदिन जिसके सेवनसे स्वर्ग एवं सर्वोत्तम भूमण्डलका राज्य प्राप्त करते हैं, उस तीर्थराज प्रयागकी जय हो।

एनांसि हन्तीति प्रसिद्धवार्ता
नामप्रतापेन दिशो द्रवन्ती।
यस्य त्रिलोकी प्रतता यशोभिः
स तीर्थराजो जयति प्रयागः॥

प्रयाग अपने नामके प्रतापसे समस्त पापोंका नाश कर डालता है, यह प्रसिद्ध वार्ता सम्पूर्ण दिशाओंमें फैली हुई है। जिसके सुयशसे सारी त्रिलोकी आच्छादित है, उस तीर्थराज प्रयागकी जय हो।

धत्तोऽभितश्चामरचारुकान्ती
सितासिते यत्र सरिद्वरेण्ये।
आद्यो वटश्छत्रमिवातिभाति
स तीर्थराजो जयति प्रयागः॥

जहाँ दोनों किनारे श्याम और श्वेत सलिलसे सुशोभित दो श्रेष्ठ सरिताएँ यमुना और गंगा चँवरकी मनोहर कान्ति धारण कर रही हैं और आदि वट (अक्षयवट) छत्रके समान सुशोभित होता है, उस तीर्थराज प्रयागकी जय हो।

ब्राह्मीनपुत्रीत्रिपथास्त्रिवेणी-
समागमेनाक्षतयागमात्रान् ।
यत्राप्लुतान् ब्रह्मपदं नयन्ति
स तीर्थराजो जयति प्रयागः॥

सरस्वती, यमुना और गंगा—ये तीन नदियाँ जहाँ डुबकी लगानेवाले मनुष्योंको, जो त्रिवेणी-संगमके सम्पर्कसे अक्षत यागफलको प्राप्त हो चुके हैं, ब्रह्म-लोकमें पहुँचा देती हैं, उस तीर्थराज प्रयागकी जय हो।

केषाञ्चिज्जन्मकोटिर्व्रजति सुवचसा यामि यामीति यस्मिन्
केषाञ्चित्प्रोषितानां नियतमतिपतेद् वर्षवृन्दं वरिष्ठम्।
यः प्राप्तो भाग्यलक्षैर्भवति भवति नो वा स वाचामवाच्यो
दिष्ट्या वेणीविशिष्टो भवति दृगतिथिः किं प्रयागः प्रयागः॥

'मैं प्रयागमें जाऊँगा, जाऊँगा' इन सुन्दर बातोंमें ही कितने ही लोगोंके करोड़ों जन्म बीत जाते हैं [और प्रयागकी यात्रा सुलभ नहीं होती]। कुछ लोग घरसे चल तो देते हैं, पर मार्गमें ही फँस जानेके कारण उनके अनेकों वर्ष समाप्त हो जाते हैं। लाखों बार भाग्यकी सहायता होनेपर भी जो कभी प्राप्त होता है और कभी नहीं भी होता, वह त्रिवेणी-संगम-विशिष्ट उत्तम यज्ञभूमि प्रयाग वाणीसे परे है। क्या मेरा ऐसा भाग्य है कि वह मेरे नेत्रोंका अतिथि हो सके?

लोकानामक्षमाणां मखकृतिषु कलौ स्वर्गकामैर्जपस्तु-
त्यादिस्तोत्रैर्वचोभिः कथममरपदप्राप्तिचिन्तातुराणाम्।
अग्निष्टोमाश्वमेधप्रमुखमखफलं सम्यगालोच्य साङ्गं
ब्रह्माद्यैस्तीर्थराजोऽभिमतद उपदिष्टोऽयमेव प्रयागः॥

कलियुगमें मनुष्य स्वर्गकी इच्छा होते हुए भी यज्ञ-यागादि करनेमें असमर्थ होनेके कारण जप, स्तुति, स्तोत्र एवं पाठ आदिके द्वारा किस प्रकार अमरपदकी प्राप्ति हो—इस चिन्तासे आतुर होंगे; उनको अंगोंसहित अग्निष्टोम और अश्वमेध आदि यज्ञोंका फल कैसे मिले—इसकी भलीभाँति आलोचना करके ब्रह्मा आदि देवताओंने इस तीर्थराज प्रयागको ही सब प्रकारके अभीष्ट फलोंका दाता बताया है।

मया प्रमादातुरतादिदोषतः
संध्याविधिर्नो समुपासितोऽभूत्।
चेदत्र संध्यां चरतोऽप्रमादतः
संध्यास्तु पूर्णाखिलजन्मनोऽपि मे॥

यदि मैंने प्रमाद और आतुरता आदि दोषोंके कारण भलीभाँति संध्योपासना नहीं की है तो यहाँ सावधानतापूर्वक संध्या करनेसे मेरे सम्पूर्ण जन्मकी संध्योपासना पूर्ण हो जाय।

अन्यत्रापि प्रगर्जन्महिमनि तपसि प्रेमिभिर्विप्रकृष्टै-
र्ध्यातः संकीर्तितो योऽभिमतपदविधातानिशं निर्व्यपेक्षम्।

श्रीमत्पांशुं त्रिवेणीपरिवृढमतुलं तीर्थराजं प्रयागं
गोऽलंकारप्रकाशं स्वयममरवरैश्चार्चितं तं नमामि॥

जो माघमासमें अपनी महिमाके विषयमें अन्यत्र भी गर्जना करता है, प्रेमीजनोंके दूरसे भी अपना ध्यान और कीर्तन करनेपर जो बिना किसीकी सहायताके निरन्तर अभीष्ट फल प्रदान करनेवाला है, जिसकी धूलिराशि शोभासे सम्पन्न है, जो त्रिवेणीका स्वामी है, जिसकी संसारमें कहीं भी तुलना नहीं है तथा जिसका दिव्य स्वरूप अंशुमाली सूर्यके समान प्रकाशमान है, उस श्रेष्ठ देवताओंद्वारा पूजित तीर्थराज प्रयागको मैं प्रणाम करता हूँ।

अस्माभिः सुतपोऽन्वतापि किमहोऽयज्यन्त किं वाध्वराः
पात्रे दानमदायि किं बहुविधं किं वा सुराश्चार्चिताः।
किं सत्तीर्थमसेवि किं द्विजकुलं पूजादिभिः सत्कृतं
येन प्राप सदाशिवस्य शिवदा सा राजधानी स्वयम्॥

अहो! हमलोगोंने क्या कोई उत्तम तपस्या की थी? अथवा यज्ञोंका अनुष्ठान किया था? या किसी सुपात्रको नाना प्रकारकी वस्तुओंका दान दिया था? अथवा देवताओंकी पूजा की थी? या किसी उत्तम तीर्थका सेवन किया था? अथवा ब्राह्मणवंशका पूजा आदिके द्वारा सत्कार किया था, जिससे भगवान् सदाशिवकी यह कल्याणदायिनी राजधानी काशी हमें स्वयं ही प्राप्त हो गयी!

भाग्यैर्मेऽधिगता ह्यनेकजनुषां सर्वाघविध्वंसिनी
सर्वाश्चर्यमयी मया शिवपुरी संसारसिन्धोस्तरी।
लब्धं तज्जनुषः फलं कुलमलंचक्रे पवित्रीकृतः
स्वात्मा चाप्यखिलं कृतं किमपरं सर्वोपरिष्टात् स्थितम्॥

मेरे बड़े भाग्य थे, जो अनेक जन्मोंकी पापराशिका विध्वंस करनेवाली संसार-समुद्रके लिये नौकारूपा यह सर्वाश्चर्यमयी शिवपुरी मुझे प्राप्त हुई। इससे जन्म लेनेका फल मिल गया। मेरे कुलकी शोभा बढ़ गयी। मेरी अन्तरात्मा पवित्र हो गयी तथा मेरे सम्पूर्ण कर्तव्य पूर्ण हो गये। अधिक क्या कहूँ, अब मैं सर्वोपरि पदपर प्रतिष्ठित हो गया।

जीवन्नरः पश्यति भद्रलक्षमेवं वदन्तीति मृषा न यस्मात्।
तस्मान्मया वै वपुषेदृशेन प्राप्तापि काशी क्षणभङ्गुरेण॥

मनुष्य जीवित रहे तो वह लाखों कल्याणकी बातें देखता है—ऐसी जो किंवदन्ती है, वह झूठी नहीं है; इसीलिये मैंने इस क्षणभंगुर शरीरसे भी काशी-जैसी पुरीको प्राप्त कर लिया।

काश्यां विधातुममरैरपि दिव्यभूमौ
सत्तीर्थलिङ्गगणनार्चनतो न शक्या।
यानीह गुप्तविवृतानि पुरातनानि
सिद्धानि योजितकरः प्रणमामि तेभ्यः॥

काशीपुरीकी दिव्य भूमिमें कितने उत्तम तीर्थ और लिंग हैं, उनकी पूजनपूर्वक गणना करना देवताओंके लिये भी असंभव है। यहाँ गुप्त और प्रकटरूपसे जो-जो पुरातन सिद्धपीठ हैं, उन्हें मैं हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ।

किं भीत्या दुरितात्कृतात् किमु मुदा पुण्यैरगण्यैः कृतैः
किं विद्याभ्यसनान्मदेन जडतादोषाद् विषादेन किम्।
किं गर्वेण धनोदयादधनतातापेन किं भो जनाः
स्नात्वा श्रीमणिकर्णिकापयसि चेद् विश्वेश्वरो दृश्यते॥

मनुष्यो! यदि श्रीमणिकर्णिकाके जलमें स्नान करके भगवान् विश्वनाथजीका दर्शन किया जाता हो तो पूर्वकृत पापोंसे भयकी क्या आवश्यकता है। अथवा किये हुए अगणित पुण्योंद्वारा प्राप्त होनेवाले आनन्दसे भी क्या लेना है। विद्याभ्यासको लेकर घमंड या मूर्खताके लिये खेद करनेसे क्या लाभ है? धनकी प्राप्तिसे होनेवाले गर्व तथा निर्धनताके कारण होनेवाले संतापसे भी क्या प्रयोजन है।

अल्पस्फीतिनिरामयापि तनुताप्रव्यक्तशक्त्यात्मता
प्रोत्साहाढ्यबलेन केवलमनोरागद्वितीयेन यत्।
अप्राप्यापि मनोरथैरविषया स्वप्नप्रवृत्तेरपि
प्राप्ता सापि गदाधरस्य नगरी सद्योऽपवर्गप्रदा॥

जो स्वल्प समृद्धिसे युक्त होनेपर भी निरामय (नाशरहित) है, सूक्ष्मताके द्वारा ही जो अपनी शक्तिशालिता सूचित कर रही है, अप्राप्य होनेपर भी जो उत्साहयुक्त बल तथा विशुद्ध मानसिक अनुरागसे प्राप्त होती है, मनोरथोंकी भी जहाँतक पहुँच नहीं है, जो स्वप्नमें भी सुलभ नहीं होती, वह तत्काल मोक्ष प्रदान करनेवाली भगवान् गदाधरकी नगरी गया आज मुझे प्राप्त हुई है।

मन्ये नात्मकृतिर्न पूर्वपुरुषप्राप्तेर्बलं चात्र त-
न्नापीदं स्वजनप्रमाणमचलं किं शापतापादिकम्।
या दुष्प्रापगयाप्रयागयमुनाकाशीषु पर्वागमात्
प्राप्तिस्तत्र महाफलो विजयते श्रीशारदानुग्रहः॥

कोई पुण्यपर्व आनेपर जो गया, प्रयाग, यमुना और काशी आदि दुर्लभ तीर्थोंमें आनेका सौभाग्य प्राप्त होता है, उसमें महान् फलदायक भगवती शारदाका अनुग्रह ही एकमात्र कारण है; उसीकी विजय है। मैं इसे अपना पुरुषार्थ नहीं मानता। पूर्वजोंने जो यहाँ आकर पुण्योपार्जन किया है, उसका बल भी इसमें सहायक नहीं है तथा स्वजनवर्गकी अविचल शक्ति भी इसमें कारण नहीं है। इन तीर्थोंमें आनेपर शाप-ताप आदि क्या कर सकते हैं।

यः श्राद्धसमये दूरात्स्मृतोऽपि पितृमुक्तिदः।
तं गयायां स्थितं साक्षान्नमामि श्रीगदाधरम्॥

जो श्राद्ध-कालमें दूरसे स्मरण करनेपर भी पितरोंको मोक्ष प्रदान करते हैं, गयामें स्थित उन साक्षात् भगवान् श्रीगदाधरको मैं प्रणाम करता हूँ।

पन्थानं समतीत्य दुस्तरमिमं दूराद्दवीयस्तरं
क्षुद्रव्याघ्रतरक्षुकण्टकफणिप्रत्यर्थिभिः संकुलम्।
आगत्य प्रथमं ह्ययं कृपणवाग् याचेज्जनः कं परं
श्रीमद्द्वारि गदाधर प्रतिदिनं त्वां द्रष्टुमुत्कण्ठते॥

भगवान् गदाधर! यह आपका दास मक्खी, मच्छर, बाघ, चीते, काँटे, सर्प तथा लुटेरोंसे भरे हुए इस दुस्तर मार्गको, जो दूरसे भी दूर पड़ता है, तै करके पहले-पहल यहाँ आया है और दीन वाणीमें आपसे याचना करता है। भला, आपके सिवा और किसके सामने यह हाथ फैलाये। भगवन्! यह सेवक प्रतिदिन आपके शोभासम्पन्न द्वारपर आकर दर्शनके लिये उत्कण्ठित रहता है।

सर्वात्मन्निजदर्शनेन च गयाश्राद्धेन वै दैवतान्
प्रीणन् विश्वमनीहवत् कथमिहौदासीन्यमालम्बसे।
किं ते सर्वद निर्दयत्वमधुना किं वा प्रभुत्वं कलेः
किं वा सत्त्वनिरीक्षणं नृषु चिरं किं वास्य सेवारुचिः॥

सर्वात्मन्! आप अपने दर्शनसे तथा गयामें किये जानेवाले श्राद्धसे देवताओंसहित सम्पूर्ण विश्वको तृप्त करते हैं; फिर मेरे सामने क्यों निश्चेष्ट-से होकर उदासीन भाव धारण कर रहे हैं? भक्तको सर्वस्व देनेवाले दयामय! क्या इस समय आपने निर्दयता धारण कर ली है? या यह कलियुगका प्रभाव है? अथवा देर लगाकर आप मनुष्योंके सत्त्व (शुद्ध भाव एवं धैर्य)-की परीक्षा ले रहे हैं या इस दासकी भगवत्सेवामें कितनी रुचि है, इसका निरीक्षण कर रहे हैं?

गदाधर मया श्राद्धं यच्चीर्णं त्वत्प्रसादतः।
अनुजानीहि मां देव गमनाय गृहं प्रति॥*

गदाधर! आपकी कृपासे मैंने यहाँ श्राद्धका अनुष्ठान किया है; [इसे स्वीकार कीजिये और] देव! अब मुझे घर जानेकी आज्ञा दीजिये।

एवं हि देवतानां च स्तोत्रं स्वर्गार्थदायकम्।
श्राद्धकाले पठेन्नित्यं स्नानकाले तु यः पठेत्॥
सर्वतीर्थसमं स्नानं श्रवणात्पठनाज्जपात्॥
प्रयागस्य च गङ्गाया यमुनायाः स्तुतेर्द्विज।
श्रवणेन विनश्यन्ति दोषाश्चैव तु कर्मजाः॥

(२३। ५१, ५३, ५४)

इस प्रकार यह देवताओंका स्तोत्र स्वर्ग एवं अभीष्ट वस्तु प्रदान करनेवाला है। जो मनुष्य श्राद्धकालमें तथा प्रतिदिन स्नानके समय इसका पाठ करता है, उसे सब तीर्थोंमें स्नानके समान पुण्य होता है। इसके श्रवण, पाठ तथा जपसे उक्त फलकी सिद्धि होती है। ब्रह्मन्! प्रयाग, गंगा तथा यमुनाकी स्तुतिका श्रवण करनेसे कर्मजन्य दोष नष्ट हो जाते हैं।

---

* अध्याय २३ श्लोक १५से ५०तक।

तुलसी, शालग्राम तथा प्रयागतीर्थका माहात्म्य

शिवजी बोले—नारद! सुनो; अब मैं तुलसीका माहात्म्य बताता हूँ, जिसे सुनकर मनुष्य जन्मसे लेकर मृत्युपर्यन्त किये हुए पापसे छुटकारा पा जाता है। तुलसीका पत्ता, फूल, फल, मूल, शाखा, छाल, तना और मिट्टी आदि सभी पावन हैं।[१] जिनका मृत शरीर तुलसी-काष्ठकी आगसे जलाया जाता है, वे विष्णुलोकमें जाते हैं। मृत पुरुष यदि अगम्यागमन आदि महान् पापोंसे ग्रस्त हो तो भी तुलसी-काष्ठकी अग्निसे देहका दाह-संस्कार होनेपर वह शुद्ध हो जाता है। जो मृत पुरुषके सम्पूर्ण अंगोंमें तुलसीका काष्ठ देकर पश्चात् उसका दाह-संस्कार करता है, वह भी पापसे मुक्त हो जाता है। जिसकी मृत्युके समय श्रीहरिका कीर्तन और स्मरण हो तथा तुलसीकी लकड़ीसे उसके शरीरका दाह किया जाय, उसका पुनर्जन्म नहीं होता। यदि दाह-संस्कारके समय अन्य लकड़ियोंके भीतर एक भी तुलसीका काष्ठ हो तो करोड़ों पापोंसे युक्त होनेपर भी मनुष्यकी मुक्ति हो जाती है।[२] तुलसीकी लकड़ीसे मिश्रित होनेपर सभी काष्ठ पवित्र हो जाते हैं। तुलसी-काष्ठकी अग्निसे मृत मनुष्यका दाह होता देख विष्णुदूत ही आकर उसे वैकुण्ठमें ले जाते हैं; यमराजके दूत उसे नहीं ले जा सकते। वह करोड़ों जन्मोंके पापसे मुक्त हो भगवान् विष्णुको प्राप्त होता है। जो मनुष्य तुलसी-काष्ठकी अग्निमें जलाये जाते हैं, उन्हें विमानपर बैठकर वैकुण्ठमें जाते देख देवता उनके ऊपर पुष्पांजलि चढ़ाते हैं। ऐसे पुरुषको देखकर भगवान् विष्णु और शिव संतुष्ट होते हैं तथा श्रीजनार्दन उसके सामने जा हाथ पकड़कर उसे अपने धाममें ले जाते हैं। जिस अग्निशाला अथवा श्मशानभूमिमें घीके साथ तुलसी-काष्ठकी अग्नि प्रज्वलित होती है, वहाँ जानेसे मनुष्योंका पातक भस्म हो जाता है।

जो ब्राह्मण तुलसी-काष्ठकी अग्निमें हवन करते हैं, उन्हें एक-एक सिक्थ (भातके दाने) अथवा एक-एक तिलमें अग्निष्टोम यज्ञका फल मिलता है। जो भगवान्‌को तुलसी-काष्ठका धूप देता है, वह उसके फलस्वरूप सौ यज्ञानुष्ठान तथा सौ गोदानका पुण्य प्राप्त करता है। जो तुलसीकी लकड़ीकी आँचसे भगवान्‌का नैवेद्य तैयार करता है, उसका वह अन्न यदि थोड़ा-सा भी भगवान् केशवको अर्पण किया जाय तो वह मेरुके समान अन्नदानका फल देनेवाला होता है। जो तुलसी-काष्ठकी आगसे भगवान्‌के लिये दीपक जलाता है, उसे दस करोड़ दीप-दानका पुण्य प्राप्त होता है। इस लोकमें पृथ्वीपर उसके समान वैष्णव दूसरा कोई नहीं दिखायी देता। जो भगवान् श्रीकृष्णको तुलसी-काष्ठका चन्दन अर्पण करता तथा उनके श्रीविग्रहमें उस चन्दनको भक्तिपूर्वक लगाता है। वह सदा श्रीहरिके समीप रमण करता है। जो मनुष्य अपने अंगमें तुलसीकी कीचड़ लगाकर श्रीविष्णुका पूजन करता है, उसे एक ही दिनमें सौ दिनोंके पूजनका पुण्य मिल जाता है। जो पितरोंके पिण्डमें तुलसीदल मिलाकर दान करता है, उसके दिये हुए एक दिनके पिण्डसे पितरोंको सौ वर्षोंतक तृप्ति बनी रहती है। तुलसीकी जड़की मिट्टीके द्वारा विशेषरूपसे स्नान करना चाहिये। इससे जबतक वह मिट्टी शरीरमें लगी रहती है, तबतक स्नान करनेवाले पुरुषको तीर्थ-स्नानका फल मिलता है। जो तुलसीकी नयी मंजरीसे भगवान्‌की पूजा करता है, उसे नाना प्रकारके पुष्पोंद्वारा किये हुए पूजनका फल प्राप्त होता है। जबतक सूर्य और चन्द्रमा हैं, तबतक वह उसका पुण्य भोगता है। जिस घरमें तुलसी-वृक्षका बगीचा है, उसके दर्शन और स्पर्शसे भी ब्रह्महत्या आदि सारे पाप नष्ट हो जाते हैं।

१-पत्रं पुष्पं फलं मूलं शाखा त्वक् स्कन्धसंज्ञितम्। तुलसीसंभवं सर्वं पावनं मृत्तिकादिकम्॥ (२४।२)

२-यद्येकं तुलसीकाष्ठं मध्ये काष्ठस्य तस्य हि। दाहकाले भवेन्मुक्तिः कोटिपापयुतस्य च॥ (२४।७)

जिस-जिस घर, गाँव अथवा वनमें तुलसीका वृक्ष हो, वहाँ-वहाँ जगदीश्वर श्रीविष्णु प्रसन्नचित्त होकर निवास करते हैं। उस घरमें दरिद्रता नहीं रहती और बन्धुओंसे वियोग नहीं होता। जहाँ तुलसी विराजमान होती हैं, वहाँ दुःख, भय और रोग नहीं ठहरते। यों तो तुलसी सर्वत्र ही पवित्र होती हैं, किन्तु पुण्यक्षेत्रमें वे अधिक पावन मानी गयी हैं। भगवान्‌के समीप पृथ्वी-तलपर तुलसीको लगानेसे सदा विष्णुपद (वैकुण्ठ-धाम)-की प्राप्ति होती है। तुलसीद्वारा भक्तिपूर्वक पूजित होनेपर शान्तिकारक भगवान् श्रीहरि भयंकर उत्पातों, रोगों तथा अनेक दुर्निमित्तोंका भी नाश कर डालते हैं। जहाँ तुलसीकी सुगन्ध लेकर हवा चलती है, वहाँकी दसों दिशाएँ और चारों प्रकारके जीव पवित्र हो जाते हैं। मुनिश्रेष्ठ! जिस गृहमें तुलसीके मूलकी मिट्टी मौजूद है, वहाँ सम्पूर्ण देवता तथा कल्याणमय भगवान् श्रीहरि सर्वदा स्थित रहते हैं। ब्रह्मन्! तुलसीवनकी छाया जहाँ-जहाँ जाती हो, वहाँ-वहाँ पितरोंकी तृप्तिके लिये तर्पण करना चाहिये।

नारद! जहाँ तुलसीका समुदाय पड़ा हो, वहाँ किया हुआ पिण्डदान आदि पितरोंके लिये अक्षय होता है। तुलसीकी जड़में ब्रह्मा, मध्यभागमें भगवान् जनार्दन तथा मंजरीमें श्रीरुद्रदेवका निवास है; इसीसे वह पावन मानी गयी है। विशेषतः शिवमन्दिरमें यदि तुलसीका वृक्ष लगाया जाय तो उससे जितने बीज तैयार होते हैं, उतने ही युगोंतक मनुष्य स्वर्गलोकमें निवास करता है। जो पार्वण श्राद्धके अवसरपर, श्रावणमासमें तथा संक्रान्तिके दिन तुलसीका पौधा लगाता है, उसके लिये वह अत्यन्त पुण्यदायिनी होती है। जो प्रतिदिन तुलसीदलसे भगवान्‌की पूजा करता है, वह यदि दरिद्र हो तो धनवान् हो जाता है। तुलसीकी मूर्ति सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्रदान करनेवाली होती है; वह श्रीकृष्णकी कीर्ति प्रदान करती है। जहाँ शालग्रामकी शिला होती है, वहाँ श्रीहरिका सांनिध्य बना रहता है। वहाँ किया हुआ स्नान और दान काशीसे सौगुना अधिक महत्त्वशाली है। शालग्रामकी पूजासे कुरुक्षेत्र, प्रयाग तथा नैमिषारण्यकी अपेक्षा कोटिगुना पुण्य प्राप्त होता है। जहाँ कहीं शालग्राममयी मुद्रा हो, वहाँ काशीका सारा पुण्य प्राप्त हो जाता है। मनुष्य ब्रह्महत्या आदि जो कुछ पाप करता है, वह सब शालग्रामशिलाकी पूजासे शीघ्र नष्ट हो जाता है।

महादेवजी कहते हैं—नारद! अब मैं वेदोंमें कही हुई प्रयागतीर्थकी महिमाका वर्णन करूँगा। जो मनुष्य पुण्य-कर्म करनेवाले हैं, वे ही प्रयागमें निवास करते हैं। जहाँ गंगा, यमुना और सरस्वती—तीनों नदियोंका संगम है, वही तीर्थप्रवर प्रयाग है; वह देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। इसके समान तीर्थ तीनों लोकोंमें न कोई हुआ है न होगा। जैसे ग्रहोंमें सूर्य और नक्षत्रोंमें चन्द्रमा श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार सब तीर्थोंमें प्रयाग नामक तीर्थ उत्तम है। विद्वन्! जो प्रातःकाल प्रयागमें स्नान करता है, वह महान् पापसे मुक्त हो परमपदको प्राप्त होता है। जो दरिद्रताको दूर करना चाहता हो, उसे प्रयागमें जाकर कुछ दान करना चाहिये। जो मनुष्य प्रयागमें जाकर वहाँ स्नान करता है, वह धनवान् और दीर्घजीवी होता है। वहाँ जाकर मनुष्य अक्षयवटका दर्शन करता है, उसके दर्शनमात्रसे ब्रह्महत्याका पाप नष्ट होता है। उसे आदिवट कहा गया है। कल्पान्तमें भी उसका दर्शन होता है। उसके पत्रपर भगवान् विष्णु शयन करते हैं; इसलिये वह अविनाशी माना गया है। विष्णुभक्त मनुष्य प्रयागमें अक्षयवटका पूजन करते हैं। उस वृक्षमें सूत लपेटकर उसकी पूजा करनी चाहिये।

वहाँ 'माधव' नामसे प्रसिद्ध भगवान् विष्णु नित्य विराजमान रहते हैं; उनका दर्शन अवश्य करना चाहिये। ऐसा करनेवाला पुरुष महापापोंसे छुटकारा पा जाता है। देवता, ऋषि और मनुष्य—सभी वहाँ अपने-अपने योग्य स्थानका आश्रय लेकर नित्य निवास करते हैं। गोहत्यारा, चाण्डाल, दुष्ट, दूषितहृदय, बालघाती तथा अज्ञानी मनुष्य भी यदि वहाँ मृत्युको प्राप्त होता है तो चतुर्भुजरूप धारण करके सदा ही वैकुण्ठधाममें निवास करता है। जो मानव प्रयागमें माघ-स्नान करता है, उसे प्राप्त होनेवाले पुण्यफलकी कोई गणना नहीं है। भगवान् नारायण प्रयागमें स्नान करनेवाले पुरुषोंको भोग और

मोक्ष प्रदान करते हैं। जैसे ग्रहोंमें सूर्य और नक्षत्रोंमें चन्द्रमा श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार महीनोंमें माघमास श्रेष्ठ है। यह सभी कर्मोंके लिये उत्तम है। विद्वन्! यह माघ-मकरका योग चराचर त्रिलोकीके लिये दुर्लभ है। जो इसमें यत्नपूर्वक सात, पाँच अथवा तीन दिन भी प्रयाग-स्नान कर लेता है, उसका अभ्युदय होता है। मनुष्य आदि चराचर जीव प्रयाग तीर्थका सेवन करके वैकुण्ठलोकको प्राप्त होते हैं। दिव्यलोकमें रहनेवाले जो वसिष्ठ और सनकादि ऋषि हैं, वे भी प्रयागतीर्थका बारंबार सेवन करते हैं। विष्णु, रुद्र और इन्द्र भी तीर्थप्रवर प्रयागमें निवास करते हैं। प्रयागमें दान और नियमोंके पालनकी प्रशंसा होती है। वहाँ स्नान और जलपान करनेसे पुनर्जन्म नहीं होता।

त्रिरात्र तुलसीव्रतकी विधि और महिमा

नारदजी बोले—भगवन्! आपकी कृपासे मैंने तुलसीके माहात्म्यका श्रवण किया। अब त्रिरात्र तुलसी-व्रतका वर्णन कीजिये।

महादेवजीने कहा—विद्वन्! तुम बड़े बुद्धिमान् हो, सुनो; यह व्रत बहुत पुराना है। इसका श्रवण करके मनुष्य निश्चय ही सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। नारद! व्रत करनेवाला पुरुष कार्तिक शुक्लपक्षकी नवमी तिथिको नियम ग्रहण करे। पृथ्वीपर सोये और इन्द्रियोंको काबूमें रखे। त्रिरात्रव्रत करनेके उद्देश्यसे वह शौच-स्नानसे शुद्ध हो मनको संयममें रखते हुए प्रतिदिन रातको नियमपूर्वक तुलसीवनके समीप शयन करे। मध्याह्नकालमें नदी आदिके निर्मल जलमें स्नान करके विधिपूर्वक देवताओं और पितरोंका तर्पण करे। इस व्रतमें पूजाके लिये लक्ष्मी और श्रीविष्णुकी सुवर्णमयी प्रतिमा बनवानी चाहिये तथा उनके लिये दो वस्त्र भी तैयार करा लेने चाहिये। वस्त्र पीत और श्वेत वर्णके हों। व्रतके आरम्भमें विधिपूर्वक नवग्रह-शान्ति कराये, उसके बाद चरु पकाकर उसके द्वारा श्रीविष्णु देवताकी प्रीतिके लिये हवन करे। द्वादशीके दिन देवदेवेश्वर भगवान्की यत्नपूर्वक पूजा करके विधिके अनुसार कलश-स्थापन करे। कलश शुद्ध हो और फूटा-टूटा न हो। उसमें पंचरत्न, पंचपल्लव तथा ओषधियाँ पड़ी हों। कलशके ऊपर एक पात्र रखे और उसके भीतर लक्ष्मीजीके साथ भगवान् विष्णुकी प्रतिमाको विराजमान करे। फिर वैदिक और पौराणिक मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए तुलसी-वृक्षके मूलमें भगवत्प्रतिमाकी स्थापना करे। तुलसीकी वाटिकाको केवल जलसे सींचे। फिर देवाधिदेव जगद्‌गुरु भगवान्‌को पंचामृतसे स्नान कराकर इस प्रकार प्रार्थना करे—

प्रार्थना-मन्त्र

योऽनन्तरूपोऽखिलविश्वरूपो गर्भोदके लोकविधिं बिभर्ति।
प्रसीदतामेष स देवदेवो यो मायया विश्वकृदेव रूपी॥

'जिनके रूपका कहीं अन्त नहीं है, सम्पूर्ण विश्व जिनका स्वरूप है, जो गर्भरूप (आधारभूत) जलमें स्थित होकर लोकसृष्टिका भरण-पोषण करते हैं और मायासे ही रूपवान् होकर समस्त संसारकी सृष्टि करते हैं, वे देवदेव परमेश्वर मुझपर प्रसन्न हों।'

आवाहन-मन्त्र

आगच्छाच्युत देवेश तेजोराशे जगत्पते।
सदैव तिमिरध्वंसिंस्त्राहि मां भवसागरात्॥

'हे अच्युत! हे देवेश्वर! हे तेजःपुंज जगदीश्वर! यहाँ पधारिये; आप सदा ही अज्ञानान्धकारका नाश करनेवाले हैं, इस भवसागरसे मेरी रक्षा कीजिये।'

स्नान-मन्त्र

पञ्चामृतेन सुस्नातस्तथा गन्धोदकेन च।
गङ्गादीनां च तोयेन स्नातोऽनन्तः प्रसीदतु॥

'पंचामृत और चन्दनयुक्त जलसे भलीभाँति नहाकर गंगा आदि नदियोंके जलसे स्नान किये हुए भगवान् अनन्त मुझपर प्रसन्न हों।'

विलेपन-मन्त्र

श्रीखण्डागुरुकर्पूरकुङ्कुमादिविलेपनम् ।
भक्त्या दत्तं मयाऽऽग्रेयं लक्ष्म्या सह गृहाण वै॥

'भगवन्! मैंने चन्दन, अगरजा, कपूर और केसर आदिका सुगन्धित अंगराग भक्तिपूर्वक अर्पण किया है; आप श्रीलक्ष्मीजीके साथ इसे स्वीकार करें।'

वस्त्र-मन्त्र

नारायण नमस्तेऽस्तु नरकार्णवतारण।
त्रैलोक्याधिपते तुभ्यं ददामि वसनं शुचि॥

'नरकके समुद्रसे तारनेवाले नारायण! आपको नमस्कार है। त्रिलोकीनाथ! मैं आपको पवित्र वस्त्र अर्पण करता हूँ।'

यज्ञोपवीत-मन्त्र

दामोदर नमस्तेऽस्तु त्राहि मां भवसागरात्।
ब्रह्मसूत्रं मया दत्तं गृहाण पुरुषोत्तम॥

'दामोदर! आपको नमस्कार है, भवसागरसे मेरी रक्षा कीजिये। पुरुषोत्तम! मैंने ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीत) अर्पण किया है, आप इसे ग्रहण करें।'

पुष्प-मन्त्र

पुष्पाणि च सुगन्धीनि मालत्यादीनि वै प्रभो।
मया दत्तानि देवेश प्रीतितः प्रतिगृह्यताम्॥

'प्रभो! मैंने मालती आदिके सुगन्धित पुष्प सेवामें प्रस्तुत किये हैं, देवेश्वर! आप इन्हें प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करें।'

नैवेद्य-मन्त्र

नैवेद्यं गृह्यतां नाथ भक्ष्यभोज्यैः समन्वितम्।
सर्वैं रसैः सुसम्पन्नं गृहाण परमेश्वर॥

'नाथ! भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंसे युक्त नैवेद्य स्वीकार कीजिये; परमेश्वर! यह सब रसोंसे सम्पन्न है, इसे ग्रहण करें।'

ताम्बूल-मन्त्र

पूगानि नागपत्राणि कर्पूरसहितानि च।
मया दत्तानि देवेश ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम्॥

'देवेश्वर! मैंने सुपारी, पानके पत्ते और कपूर आपकी सेवामें भेंट किये हैं; आप यह बीड़ा स्वीकार करें।'

तत्पश्चात् भक्तिपूर्वक धूप, अगर तथा घी मिलाया हुआ गुग्गुल—इनकी आहुति देकर भगवान्को सुँघाये। इस प्रकार पूजा करनी चाहिये। घीका दीपक जलाना चाहिये। मुनिश्रेष्ठ! एकाग्रचित्त हो भगवान् श्रीलक्ष्मीनारायणके सामने तथा तुलसीवनके समीप नाना प्रकारका दीपक सजाना चाहिये। चक्रधारी देवाधिदेव विष्णुको प्रतिदिन अर्घ्य भी देना चाहिये। पुत्र-प्राप्तिके लिये नवमीको नारियलका अर्घ्य देना उत्तम है। धर्म, काम तथा अर्थ—तीनोंकी सिद्धिके लिये दशमीको बिजौरेका अर्घ्य अर्पण करना उचित है तथा एकादशीको अनारसे अर्घ्य देना चाहिये; इससे सदा दरिद्रताका नाश होता है। नारद! बाँसके पात्रमें सप्तधान्य रखकर उसमें सात फल रखे; फिर तुलसीदल, फूल एवं सुपारी डालकर उस पात्रको वस्त्रसे ढक दे। तत्पश्चात् उसे भगवान्के सम्मुख निवेदन करे। विप्रेन्द्र! अर्घ्य निम्नांकित मन्त्रसे देना चाहिये; इसे एकाग्रचित्त होकर सुनो—

अर्घ्य-मन्त्र

तुलसीसहितो देव सदा शङ्खेन संयुतम्।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं देवदेव नमोऽस्तु ते॥

'देव! आप तुलसीजीके साथ मेरे दिये हुए इस शंखयुक्त अर्घ्यको ग्रहण करें। देवदेव! आपको नमस्कार है।'

इस प्रकार लक्ष्मीसहित देवेश्वर भगवान् विष्णुकी पूजा करके व्रतकी पूर्तिके निमित्त उन देवदेवेश्वरसे प्रार्थना करे—

उपोषितोऽहं देवेश कामक्रोधविवर्जितः।
व्रतेनानेन देवेश त्वमेव शरणं मम॥
गृहीतेऽस्मिन् व्रते देव यदपूर्णं कृतं मया।
सर्वं तदस्तु सम्पूर्णं त्वत्प्रसादाज्जनार्दन॥
नमः कमलपत्राक्ष नमस्ते जलशायिने।
इदं व्रतं मया चीर्णं प्रसादात्तव केशव॥

अज्ञानतिमिरध्वंसिन् व्रतेनानेन केशव।
प्रसादसुमुखो भूत्वा ज्ञानदृष्टिप्रदो भव॥*

'देवेश्वर! मैंने काम-क्रोधसे रहित होकर इस व्रतके द्वारा उपवास किया है। देवेश! आप ही मेरे शरणदाता हैं। देव! जनार्दन! इस व्रतको ग्रहण करके मैंने इसके जिस अंगकी पूर्ति न की हो, वह सब आपके प्रसादसे पूर्ण हो जाय। कमलनयन! आपको नमस्कार है। जलशायी नारायण! आपको प्रणाम है। केशव! आपके ही प्रसादसे मैंने इस व्रतका अनुष्ठान किया है। अज्ञानान्धकारका विनाश करनेवाले केशव! आप इस व्रतसे प्रसन्न होकर मुझे ज्ञान-दृष्टि प्रदान करें।'

तदनन्तर रातमें जागरण, गान तथा पुस्तकका स्वाध्याय करे। गानविद्या तथा नृत्यकलामें प्रवीण पुरुषोंद्वारा संगीत और नृत्यकी व्यवस्था करे। अत्यन्त सुन्दर एवं पवित्र उपाख्यानोंके द्वारा रात्रिका समय व्यतीत करे। निशाके अन्तमें प्रभात होनेपर जब सूर्यदेवका उदय हो जाय, तब ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करके भक्तिपूर्वक वैष्णव श्राद्ध करे। यज्ञोपवीत, वस्त्र, माला तथा चन्दन देकर वस्त्राभूषण एवं केसरके द्वारा पूजनपूर्वक तीन ब्राह्मण-दम्पतिको भोजन कराये। घृत-मिश्रित खीरके द्वारा यथेष्ट भोजन करानेके पश्चात् दक्षिणासहित पान, फूल और गन्ध आदि दान करे। अपनी शक्तिके अनुसार बाँसके अनेक पात्र बनवाकर उन्हें पके हुए नारियल, पकवान, वस्त्र तथा भाँति-भाँतिके फलोंसे भरे। सपत्नीक आचार्यको वस्त्र पहनाये। दिव्य आभूषण देकर चन्दन और मालासे उनका पूजन करे। फिर उन्हें सब सामग्रियोंसे युक्त दूध देनेवाली गौ दान करे। गौके साथ दक्षिणा, वस्त्र, आभूषण, दोहनपात्र तथा अन्यान्य सामग्री भी दे। श्रीलक्ष्मीनारायणकी प्रतिमा भी सब सामग्रियोंसहित आचार्यको दे। सब तीर्थोंमें स्नान करनेवाले मनुष्योंको जो पुण्य प्राप्त होता है, वह सब इस व्रतके द्वारा देवदेव विष्णुके प्रसादसे प्राप्त हो जाता है। व्रत करनेवाला पुरुष इस लोकमें मनको प्रिय लगनेवाले सम्पूर्ण पदार्थों और प्रचुर भोगोंका उपभोग करके अन्तमें श्रीविष्णुकी कृपासे भगवान् विष्णुके परमधामको प्राप्त होता है।

अन्नदान, जलदान, तडाग-निर्माण, वृक्षारोपण तथा सत्यभाषण आदिकी महिमा

नारदजीने पूछा—भगवन्! गुणोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको देनेकी इच्छा रखनेवाला मनुष्य इस लोकमें किन-किन वस्तुओंका दान करे? यह सब बताइये।

महादेवजी बोले—देवर्षिप्रवर! सुनो—लोकमें तत्त्वको जानकर सज्जन पुरुष अन्नदानकी ही प्रशंसा करते हैं; क्योंकि सब कुछ अन्नमें ही प्रतिष्ठित हैं। अतएव साधु महात्मा विशेषरूपसे अन्नका ही दान करना चाहते हैं। अन्नके समान कोई दान न हुआ है न होगा। यह चराचर जगत् अन्नके ही आधारपर टिका हुआ है। लोकमें अन्न ही बलवर्धक है। अन्नमें ही प्राणोंकी स्थिति है। कल्याणकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको उचित है कि वह अपने कुटुम्बको कष्ट देकर भी अन्नकी भिक्षा माँगनेवाले महात्मा ब्राह्मणको अवश्य दान दे। नारद! जो याचना करनेवाले पीड़ित ब्राह्मणको अन्न दे, वही विद्वानोंमें श्रेष्ठ है। यह दान आत्माके पारलौकिक सुखका साधन है। रास्तेका थका-माँदा गृहस्थ ब्राह्मण यदि भोजनके समय घरपर आकर उपस्थित हो जाय तो कल्याणकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको अवश्य उसे अन्न देना चाहिये। अन्नदाता इहलोक और परलोकमें भी सुख उठाता है। थके-माँदे अपरिचित राहगीरको जो बिना क्लेशके अन्न देता है, वह सब धर्मोंका फल प्राप्त करता है। अतिथिकी न तो निन्दा करे और न उससे द्रोह ही रखे। उसे अन्न अर्पण करे। उस दानकी विशेष प्रशंसा है।

महामुने! जो मनुष्य अन्नसे देवताओं, पितरों,

* उत्तरखण्डके २६वें अध्यायसे उद्धृत।

ब्राह्मणों तथा अतिथियोंको तृप्त करता है, उसे अक्षय पुण्यकी प्राप्ति होती है। महान् पाप करके भी जो याचकको—विशेषत: ब्राह्मणको अन्न-दान करता है, वह पापसे मुक्त हो जाता है। ब्राह्मणको दिया हुआ दान अक्षय होता है। शूद्रको भी किया हुआ अन्न-दान महान् फल देनेवाला है। अन्न-दान करते समय याचकसे यह न पूछे कि वह किस गोत्र और किस शाखाका है तथा उसने कितना अध्ययन किया है? अन्नका अभिलाषी कोई भी क्यों न हो, उसे दिया हुआ अन्न-दान महान् फल देनेवाला होता है। अत: मनुष्योंको इस पृथ्वीपर विशेषरूपसे अन्नका दान करना चाहिये।

जलका दान भी श्रेष्ठ है; वह सदा सब दानोंमें उत्तम है। इसलिये बावली, कुआँ और पोखरा बनवाना चाहिये। जिसके खोदे हुए जलाशयमें गौ, ब्राह्मण और साधु पुरुष सदा पानी पीते हैं, वह अपने कुलको तार देता है। नारद! जिसके पोखरेमें गर्मीके समयतक पानी ठहरता है, वह कभी दुर्गम एवं विषम संकटका सामना नहीं करता। पोखरा बनवानेवाला पुरुष तीनों लोकोंमें सर्वत्र सम्मानित होता है। मनीषी पुरुष धर्म, अर्थ और कामका यही फल बतलाते हैं कि देशमें खेतके भीतर उत्तम पोखरा बनवाया जाय, जो प्राणियोंके लिये महान् आश्रय हो। देवता, मनुष्य, गन्धर्व, पितर, नाग, राक्षस तथा स्थावर प्राणी भी जलाशयका आश्रय लेते हैं। जिसके पोखरेमें केवल वर्षा-ऋतुमें ही जल रहता है, उसे अग्निहोत्रका फल मिलता है। जिसके तालाबमें हेमन्त और शिशिर कालतक जल ठहरता है, उसे सहस्र गोदानका फल मिलता है। यदि वसन्त तथा ग्रीष्म-ऋतुतक पानी रुकता हो तो मनीषी पुरुष अतिरात्र और अश्वमेध-यज्ञोंका फल बतलाते हैं।

अब वृक्ष लगानेके जो लाभ हैं, उनका वर्णन सुनो। महामुने! वृक्ष लगानेवाला पुरुष अपने भूतकालीन पितरों तथा होनेवाले वंशजोंका भी उद्धार कर देता है। इसलिये वृक्षोंको अवश्य लगाना चाहिये। वह पुरुष परलोकमें जानेपर वहाँ अक्षय लोकोंको प्राप्त करता है। वृक्ष अपने फूलोंसे देवताओंका, पत्तोंसे पितरोंका तथा छायासे समस्त अतिथियोंका पूजन करते हैं। किन्नर, यक्ष, राक्षस, देवता, गन्धर्व, मानव तथा ऋषि भी वृक्षोंका आश्रय लेते हैं। वृक्ष फूल और फलोंसे युक्त होकर इस लोकमें मनुष्योंको तृप्त करते हैं। वे इस लोक और परलोकमें भी धर्मत: पुत्र माने गये हैं। जो पोखरेके किनारे वृक्ष लगाते, यज्ञानुष्ठान करते तथा जो सदा सत्य बोलते हैं, वे कभी स्वर्गसे भ्रष्ट नहीं होते।

सत्य ही परम मोक्ष है, सत्य ही उत्तम शास्त्र है, सत्य देवताओंमें जाग्रत् रहता है तथा सत्य परम पद है। तप, यज्ञ, पुण्यकर्म, देवर्षि-पूजन, आद्यविधि और विद्या—ये सभी सत्यमें प्रतिष्ठित हैं। सत्य ही यज्ञ, दान, मन्त्र और सरस्वती देवी हैं; सत्य ही व्रतचर्या है तथा सत्य ही ॐकार है। सत्यसे ही वायु चलती है, सत्यसे ही सूर्य तपता है, सत्यके प्रभावसे ही आग जलती है तथा सत्यसे ही स्वर्ग टिका हुआ है। लोकमें जो सत्य बोलता है, वह सब देवताओंके पूजन तथा सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करनेका फल निस्संदेह प्राप्त कर लेता है। एक हजार अश्वमेध-यज्ञका पुण्य और सत्य—इन दोनोंको यदि तराजूपर रखकर तौला जाय तो सम्पूर्ण यज्ञोंकी अपेक्षा सत्यका ही पलड़ा भारी होगा। देवता, पितर और ऋषि सत्यमें ही विश्वास करते हैं। सत्यको ही परम धर्म और सत्यको ही परम पद कहते हैं।* सत्यको

---

* सत्यमेव परो मोक्ष: सत्यमेव परं श्रुतम् । सत्यं देवेषु जागर्ति सत्यं च परमं पदम्॥
तपो यज्ञाश्च पुण्यं च तथा देवर्षिपूजनम् । आद्यो विधिश्च विद्या च सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्॥
सत्यं यज्ञस्तथा दानं मन्त्रा देवी सरस्वती । व्रतचर्या तथा सत्यमोङ्कार: सत्यमेव च॥
सत्येन वायुरभ्येति सत्येन तपते रवि: । सत्येन चाग्निर्दहति स्वर्ग: सत्येन तिष्ठति॥
पूजनं सर्वदेवानां सर्वतीर्थावगाहनम् । सत्यं च वदते लोके सर्वमाप्नोत्यसंशय:॥
अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम् । सर्वेषां सर्वयज्ञानां सत्यमेव विशिष्यते॥
सत्ये देवा: प्रतीयन्ते पितर ऋषयस्तथा । सत्यमाहु: परं धर्मं सत्यमाहु: परं पदम्॥ (२८। २०—२६)

परब्रह्मका स्वरूप बताया गया है; इसलिये मैं तुम्हें सत्यका उपदेश करता हूँ। सत्यपरायण मुनि अत्यन्त दुष्कर तपस्या करके सत्यधर्मका पालन करते हुए इस लोकसे स्वर्गको प्राप्त हुए हैं। सदा सत्य ही बोलना चाहिये, सत्यसे बढ़कर दूसरी कोई वस्तु नहीं है। सत्यरूपी तीर्थ अगाध, विस्तृत एवं पवित्र ह्रद (कुण्ड)-से युक्त है; योगयुक्त पुरुषोंको उसमें मनसे स्नान करना चाहिये। यही स्नान उत्तम माना गया है। जो मनुष्य अपने, पराये अथवा पुत्रके लिये भी असत्य भाषण नहीं करते, वे स्वर्गगामी होते हैं। ब्राह्मणोंमें वेद, यज्ञ तथा मन्त्र नित्य निवास करते हैं; किन्तु जो ब्राह्मण सत्यका परित्याग कर देते हैं, उनमें वेद आदि शोभा नहीं देते; अतः सत्य-भाषण करना चाहिये।

नारदजीने कहा—भगवन्! अब मुझे विशेषतः तपस्याका फल बताइये; क्योंकि प्रायः सभी वर्णोंका तथा मुख्यतः ब्राह्मणोंका तपस्या ही बल है।

महादेवजी बोले—नारद! तपस्याको श्रेष्ठ बताया गया है। तपसे उत्तम फलकी प्राप्ति होती है। जो सदा तपस्यामें संलग्न रहते हैं, वे सदा देवताओंके साथ आनन्द भोगते हैं। तपसे मनुष्य मोक्ष पा लेता है, तपसे **'महत्'** पदकी प्राप्ति होती है। मनुष्य अपने मनसे ज्ञान-विज्ञानका खजाना, सौभाग्य और रूप आदि जिस-जिस वस्तुकी इच्छा करता है, वह सब उसे तपस्यासे मिल जाती है। जिन्होंने तपस्या नहीं की है, वे कभी ब्रह्मलोकमें नहीं जाते। पुरुष जिस किसी कार्यका उद्देश्य लेकर तप करता है, वह सब इस लोक और परलोकमें उसे प्राप्त हो जाता है। शराबी, परस्त्रीगामी, ब्रह्महत्यारा तथा गुरुपत्नीगामी-जैसा पापी भी तपस्याके बलसे सबसे पार हो जाता है—सब पापोंसे छुटकारा पा लेता है।* तपस्याके प्रभावसे छियासी हजार ऊर्ध्वरेता मुनि स्वर्गमें रहकर देवताओंके साथ आनन्द भोग रहे हैं। तपस्यासे राज्य प्राप्त होता है। इन्द्र तथा सम्पूर्ण देवता और असुरोंने तपस्यासे ही सदा सबका पालन किया है। तपस्यासे ही वे वृत्तिदाता हुए हैं। सम्पूर्ण लोकोंके हितमें लगे रहनेवाले दोनों देवता सूर्य और चन्द्रमा तपसे ही प्रकाशित होते हैं। नक्षत्र और ग्रह भी तपस्यासे ही कान्तिमान् हुए हैं। तपस्यासे मनुष्य सब कुछ पा लेता है, सब सुखोंका अनुभव करता है।

मुने! जो जंगलमें फल-मूल खाकर तपस्या करता है तथा जो पहले केवल वेदका अध्ययन ही करता है—वे दोनों समान हैं। वह अध्ययन तपस्याके ही तुल्य है। श्रेष्ठ द्विज वेद पढ़ानेसे जो पुण्य प्राप्त करता है, स्वाध्याय और जपसे इसकी अपेक्षा दूना फल पा जाता है। जो सदा तपस्या करते हुए शास्त्रके अभ्याससे ज्ञानोपार्जन करता है और लोकको उस ज्ञानका बोध कराता है, वह परम पूजनीय गुरु है। पुराणवेत्ता पुरुष दानका सबसे श्रेष्ठ पात्र है। वह पतनसे त्राण करता है, इसलिये पात्र कहलाता है। जो लोग सुपात्रको धन, धान्य, सुवर्ण तथा भाँति-भाँतिके वस्त्र-दान करते हैं, वे परम गतिको प्राप्त होते हैं। जो श्रेष्ठ पात्रको गौ, भैंस, हाथी और सुन्दर-सुन्दर घोड़े दान करता है, वह सम्पूर्ण लोकोंमें अश्वमेधके अक्षय फलको प्राप्त होता है। जो सुपात्रको जोती-बोयी एवं फलसे भरी हुई सुन्दर भूमि दान करता है, वह अपने दस पीढ़ी पहलेके पूर्वजों और दस पीढ़ी बादतकके संतानोंको तार देता है तथा दिव्य विमानसे विष्णुलोकको जाता है। देवगण पुस्तक बाँचनेसे जितना संतुष्ट होते हैं, उतना संतोष उन्हें यज्ञोंसे, प्रोक्षण (अभिषेक)-से तथा फूलोंद्वारा की हुई पूजाओंसे भी नहीं होता। जो भगवान् विष्णुके मन्दिरमें धर्म-ग्रन्थका पाठ कराता है तथा देवी, शिव, गणेश और सूर्यके

---

* तपो हि परमं प्रोक्तं तपसा विन्दते फलम् । तपोरता हि ये नित्यं मोदन्ते सह दैवतैः॥
तपसा मोक्षमाप्नोति तपसा विन्दते महत् । ज्ञानविज्ञानसम्पत्तिः सौभाग्यं रूपमेव च॥
तपसा लभ्यते सर्वं मनसा यद्यदिच्छति । नातप्ततपसो यान्ति ब्रह्मलोकं कदाचन॥
यत्कार्यं किञ्चिदास्थाय पुरुषस्तप्यते तपः । तत्सर्वं समवाप्नोति परत्रेह च मानवः॥
सुरापः परदारी च ब्रह्महा गुरुतल्पगः । तपसा तरते सर्वं सर्वतश्च विमुच्यते॥ (२८। ३५—३९)

मन्दिरमें भी उसकी व्यवस्था करता है, वह मानव राजसूय और अश्वमेध-यज्ञोंका फल पाता है। इतिहास-पुराणके ग्रन्थोंका बाँचना पुण्यदायक है। ऐसा करनेवाला पुरुष सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है तथा अन्तमें सूर्यलोकका भेदन करके ब्रह्मलोकको चला जाता है। वहाँ सौ कल्पोंतक रहनेके पश्चात् इस पृथ्वीपर जन्म ले राजा होता है। एक हजार अश्वमेध-यज्ञोंका जो फल बताया गया है, उसे वह मनुष्य भी प्राप्त कर लेता है, जो देवताके आगे महाभारतका पाठ करता है। अतः सब प्रकारका प्रयत्न करके भगवान् विष्णुके मन्दिरमें इतिहास-पुराणके ग्रन्थोंका पाठ करना चाहिये। वह शुभकारक होता है। विष्णु तथा अन्य देवताओंके लिये दूसरा कोई साधन इतना प्रीतिकारक नहीं है।

मन्दिरमें पुराणकी कथा कराने और सुपात्रको दान देनेसे होनेवाली सद्गतिके विषयमें एक आख्यान तथा गोपीचन्दनके तिलककी महिमा

महादेवजी कहते हैं—नारद! इस विषयमें विज्ञ पुरुष एक प्राचीन इतिहास कहा करते हैं। यह इतिहास अत्यन्त पुरातन, पुण्यदायक सब पापोंको हरनेवाला तथा शुभकारक है। देवर्षे! ब्रह्मपुत्र सनत्कुमारने लोक-पितामह ब्रह्माजीको नमस्कार करके मुझे यह उपाख्यान सुनाया था।

सनत्कुमार बोले—एक दिन मैं धर्मराजसे मिलने गया था। वहाँ उन्होंने बड़ी प्रसन्नता और भक्तिके साथ नाना प्रकारकी स्तुतियोंद्वारा मेरा सत्कार किया। तत्पश्चात् मुझे सुखमय आसनपर बैठनेके लिये कहा। बैठनेपर मैंने वहाँ एक अद्भुत बात देखी। एक पुरुष सोनेके विमानपर बैठकर वहाँ आया। उसे देखकर धर्मराज बड़े वेगसे आसनसे उठ खड़े हुए और आगन्तुकका दाहिना हाथ पकड़कर उन्होंने अर्घ्य आदिके द्वारा उसका पूर्ण सत्कार किया। तत्पश्चात् वे उससे इस प्रकार बोले।

धर्मने कहा—धर्मके द्रष्टा महापुरुष! तुम्हारा स्वागत है! मैं तुम्हारे दर्शनसे बहुत प्रसन्न हूँ। मेरे पास बैठो और मुझे कुछ ज्ञानकी बातें सुनाओ। इसके बाद उस धाममें जाना, जहाँ श्रीब्रह्माजी विराजमान हैं।

सनत्कुमार कहते हैं—धर्मराजके इतना कहते ही एक दूसरा पुरुष उत्तम विमानपर बैठा हुआ वहाँ आ पहुँचा। धर्मराजने विनीत भावसे उसका भी विमानपर ही पूजन किया तथा जिस प्रकार पहले आये हुए मनुष्यसे सान्त्वनापूर्वक वार्तालाप किया था, उसी प्रकार इस नवागन्तुकके साथ भी किया। यह देखकर मुझे बड़ा विस्मय हुआ। मैंने धर्मसे पूछा—'इन्होंने कौन-सा ऐसा कर्म किया है, जिसके ऊपर आप अधिक संतुष्ट हुए हैं? इन दोनोंके द्वारा ऐसा कौन-सा कर्म बन गया है, जिसका इतना उत्तम पुण्य है? आप सर्वज्ञ हैं, अतः बताइये किस कर्मके प्रभावसे इन्हें दिव्य फलकी प्राप्ति हुई है?' मेरी बात सुनकर धर्मराजने कहा—'इन
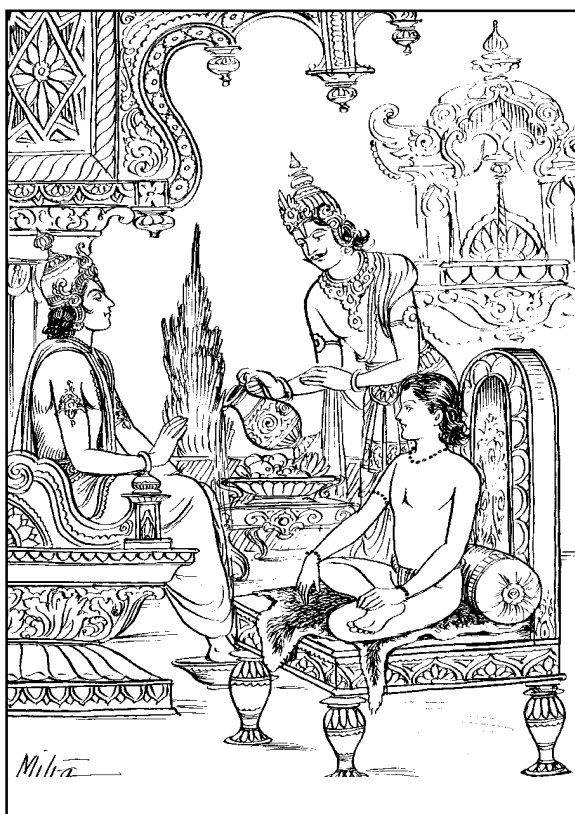
दोनोंका किया हुआ कर्म बताता हूँ, सुनो। पृथ्वीपर वैदिश नामका एक विख्यात नगर है। वहाँ धरापाल नामसे प्रसिद्ध एक राजा थे, जिन्होंने भगवान् विष्णुका मन्दिर बनवाकर उसमें उनकी स्थापना की। उस नगरमें जितने लोग रहते थे, उन सबको उन्होंने भगवान्‌का दर्शन करनेके लिये आदेश दिया। गाँवके भीतर बना हुआ श्रीविष्णुका वह सुन्दर मन्दिर लोगोंसे ठसाठस भर गया। तब राजाने पहले ब्राह्मण आदिके समुदायका पूजन किया, फिर उन महाबुद्धिमान् नरेशने इतिहास-पुराणके ज्ञाता एक श्रेष्ठ द्विजको, जो विद्यामें भी श्रेष्ठ थे, वाचक बनाकर उनकी विशेष रूपसे पूजा की। फिर क्रमशः गन्ध-पुष्प आदि उपचारोंसे पुस्तकका भी पूजन करके राजाने वाचक ब्राह्मणसे विनयपूर्वक कहा—'द्विजश्रेष्ठ! मैंने जो यह भगवान् विष्णुका मन्दिर बनवाया है, इसमें धर्म श्रवण करनेकी इच्छासे चारों वर्णोंका समुदाय एकत्रित हुआ है; अतः आप पुस्तक बाँचिये। इस समय ये सौ स्वर्णमुद्राएँ उत्तम जीविकावृत्तिके रूपमें ग्रहण कीजिये और एक वर्षतक प्रतिदिन कथा कहिये। वर्ष समाप्त होनेपर पुनः और धन दूँगा।'

मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार राजाके आदेशसे वहाँ पुण्यमय कथा-वार्ताका क्रम चालू हो गया। वर्ष बीतते-बीतते आयु क्षीण हो जानेके कारण राजाकी मृत्यु हो गयी। तब मैंने तथा भगवान् विष्णुने भी इनके लिये द्युलोकसे विमान भेजा था। ये जो दूसरे ब्राह्मण यहाँ आये थे, इन्होंने सत्संगके द्वारा उत्तम धर्मका श्रवण किया था। श्रवण करनेसे श्रद्धावश इनके हृदयमें परमात्माकी भक्तिका उदय हुआ। मुनिश्रेष्ठ! फिर इन्होंने उन महात्मा वाचककी परिक्रमा की और उन्हें एक माशा सुवर्ण दान दिया। सुपात्रको दान देनेसे इन्हें इस प्रकारके फलकी प्राप्ति हुई है। मुने! इस प्रकार यह कर्म, जिसे इन दोनोंने किया था, मैंने कह सुनाया।

महादेवजी कहते हैं—जो मनीषी पुरुष इस पुण्य-प्रसंगका माहात्म्य श्रवण करते हैं, उनकी किसी जन्ममें कभी दुर्गति नहीं होती। देवर्षिप्रवर! अब दूसरी बात सुनाता हूँ, सुनो। गोपीचन्दनका माहात्म्य जैसा मैंने देखा और सुना है, उसका वर्णन करता हूँ। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र—कोई भी क्यों न हो, जो विष्णुका भक्त होकर उनके भजनमें तत्पर रहकर अपने अंगोंमें गोपीचन्दन लगाता है, वह गंगाजलसे नहाये हुएकी भाँति सब दोषोंसे मुक्त हो जाता है। कल्याणकी इच्छा रखनेवाले वैष्णव ब्राह्मणोंके लिये गोपीचन्दनका तिलक धारण करना विशेष रूपसे कर्तव्य है। ललाटमें दण्डके आकारका, वक्षःस्थलमें कमलके सदृश, बाहुओंके मूलभागमें बाँसके पत्तेके समान तथा अन्यत्र दीपकके तुल्य चन्दन लगाना चाहिये अथवा जैसी रुचि हो, उसीके अनुसार भिन्न-भिन्न अंगोंमें चन्दन लगाये, इसके लिये कोई खास नियम नहीं है। गोपीचन्दनका तिलक धारण करनेमात्रसे ब्राह्मणसे लेकर चाण्डालतक सभी मनुष्य शुद्ध हो जाते हैं। जो वैष्णव ब्राह्मण भगवान् विष्णुके ध्यानमें तत्पर हो, उसमें तथा विष्णुमें भेद नहीं मानना चाहिये; वह इस लोकमें श्रीविष्णुका ही स्वरूप होता है।

तुलसीके पत्र अथवा काष्ठकी बनी हुई माला

धारण करनेसे ब्राह्मण निश्चय ही मुक्तिका भागी होता है।* मृत्युके समय भी जिसके ललाटपर गोपीचन्दनका तिलक रहता है, वह विमानपर आरूढ हो विष्णुके परम पदको प्राप्त होता है। नारद! कलियुगमें जो नरश्रेष्ठ गोपीचन्दनका तिलक धारण करते हैं, उनकी कभी दुर्गति नहीं होती। ब्रह्मन्! इस पृथ्वीपर जो शराबी, स्त्री और बालकोंकी हत्या करनेवाले तथा अगम्या स्त्रीके साथ समागम करनेवाले देखे जाते हैं, वे भगवद्भक्तोंके दर्शनमात्रसे पापमुक्त हो जाते हैं। मैं भी भगवान् विष्णुकी भक्तिके प्रसादसे वैष्णव हुआ हूँ।

संवत्सरदीप-व्रतकी विधि और महिमा

नारदजी बोले—भगवन्! अब मुझे सब व्रतोंमें प्रधान 'संवत्सरदीप' नामक व्रतकी उत्तम विधि बताइये, जिसके करनेसे सब व्रतोंके अनुष्ठानका फल निस्संदेह प्राप्त हो जाय, सब कामनाओंकी सिद्धि हो तथा सब पापोंका नाश हो जाय।

महादेवजीने कहा—देवर्षे! मैं तुम्हें एक पापनाशक रहस्य बताता हूँ, जिसे सुनकर ब्रह्महत्यारा, गोघाती, मित्रहन्ता, गुरुस्त्रीगामी, विश्वासघाती तथा क्रूर हृदयवाला मनुष्य भी शाश्वत मोक्षको प्राप्त होता है तथा अपनी सौ पीढ़ियोंका उद्धार करके विष्णुलोकको जाता है। वह रहस्य संवत्सरदीप-व्रत है, जो बहुत ही श्रेयस्कर व्रत है। मैं उसकी विधि और महिमाका वर्णन करूँगा। हेमन्त-ऋतुके प्रथम मास—अगहनमें शुभ एकादशी तिथि आनेपर ब्राह्ममुहूर्तमें उठे और काम-क्रोधसे रहित हो नदीके संगम, तीर्थ, पोखरे या नदीमें जाकर स्नान करे अथवा मनको वशमें रखते हुए घरपर ही स्नान करे। स्नान करनेका मन्त्र इस प्रकार है—

स्नातोऽहं सर्वतीर्थेषु गर्ते प्रस्रवणेषु च।
नदीषु सर्वतीर्थेषु तत्स्नानं देहि मे सदा॥

'मैं सम्पूर्ण तीर्थों, कुण्डों, झरनों तथा नदियोंमें स्नान कर चुका। जल! तुम मुझे उन सबमें स्नान करनेका फल प्रदान करो।'

तदनन्तर देवताओं और पितरोंका तर्पण करके जप करनेके अनन्तर जितेन्द्रिय पुरुष देवदेव भगवान् लक्ष्मी-नारायणका पूजन करे। पहले पंचामृतसे नहलाकर फिर चन्दनयुक्त जलसे स्नान कराये। तत्पश्चात् इस प्रकार कहे—

स्नातोऽसि लक्ष्म्या सहितो देवदेव जगत्पते।
मां समुद्धर देवेश घोरात् संसारबन्धनात्॥

'देवदेव! जगत्पते! देवेश्वर! आप लक्ष्मीजीके साथ स्नान कर चुके हैं; इस घोर संसार-बन्धनसे मेरा उद्धार कीजिये।'

इसके बाद वैदिक तथा पौराणिक मन्त्रोंसे भक्तिपूर्वक लक्ष्मीसहित भगवान् विष्णुका पूजन करे। '**अतो देव**' इस सूक्तसे अथवा पुरुषसूक्तसे पूजा करनी चाहिये। अथवा—

नमो मत्स्याय देवाय कूर्मदेवाय वै नमः।
नमो वाराहदेवाय नरसिंहाय वै नमः॥
वामनाय नमस्तुभ्यं परशुरामाय ते नमः।
नमोऽस्तु रामदेवाय विष्णुदेवाय ते नमः॥
नमोऽस्तु बुद्धदेवाय कल्किने च नमो नमः।
नमः सर्वात्मने तुभ्यं शिरसेत्यभिपूजयेत्॥

'मत्स्य, कच्छप, वाराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्की—ये दस अवतार धारण करनेवाले आप सर्वात्माको मैं मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूँ।' यों कहकर पूजन करे।

अथवा भगवान्के जो 'केशव' आदि प्रसिद्ध नाम हैं, उनके द्वारा श्रीहरिका पूजन करना चाहिये।

धूपका मन्त्र

वनस्पतिरसो दिव्यः सुरभिर्गन्धवाञ्छुचिः।
धूपोऽयं देवदेवेश नमस्ते प्रतिगृह्यताम्॥

* तुलसीपत्रमालां च तुलसीकाष्ठसंभवाम्। धृत्वा वै ब्राह्मणो भूयान्मुक्तिभागी न संशयः॥ (३०।१९)

'देवदेवेश्वर! मनोहर सुगन्धसे भरा यह परम पवित्र दिव्य वनस्पतिका रसरूप धूप आपकी सेवामें प्रस्तुत है; आपको नमस्कार है, आप इसे स्वीकार करें।'

दीपका मन्त्र

दीपस्तमो नाशयति दीपः कान्तिं प्रयच्छति।
तस्माद्दीपप्रदानेन प्रीयतां मे जनार्दनः॥

'दीप अन्धकारका नाश करता है, दीप कान्ति प्रदान करता है; अतः दीपदानसे भगवान् जनार्दन मुझपर प्रसन्न हों।'

नैवेद्य-मन्त्र

नैवेद्यमिदमन्नाद्यं देवदेव जगत्पते।
लक्ष्म्या सह गृहाण त्वं परमामृतमुत्तमम्॥

'देवदेव! यह अन्न आदिका बना हुआ नैवेद्य सेवामें प्रस्तुत है; जगदीश्वर! आप लक्ष्मीजीके साथ इस परम अमृतरूप उत्तम नैवेद्यको ग्रहण कीजिये।'

तदनन्तर श्रीजनार्दनका ध्यान करके शंखमें जल और हाथमें फल लेकर भक्तिपूर्वक अर्घ्य निवेदन करे; अर्घ्यका मन्त्र इस प्रकार है—

जन्मान्तरसहस्त्रेण यन्मया पातकं कृतम्।
तत्सर्वं नाशमायातु प्रसादात्तव केशव॥

'केशव! हजारों जन्मोंमें मैंने जो पातक किये हैं, वे सब आपकी कृपासे नष्ट हो जायँ।'

इसके बाद घी अथवा तेलसे भरा हुआ एक सुन्दर नवीन कलश ले आकर भगवान् लक्ष्मीनारायणके सामने स्थापित करे। कलशके ऊपर ताँबे या मिट्टीका पात्र रखे। उसमें नौ तन्तुओंके समान मोटी बत्ती डाल दे तथा कलशको स्थिरतापूर्वक स्थापित करके वहाँ वायुरहित गृहमें दीपक जलाये। देवर्षे! फिर पवित्रतापूर्वक पुष्प और गन्ध आदिसे कलशकी पूजा करके निम्नांकित मन्त्रसे शुभ संकल्प करे—

कामो भूतस्य भव्यस्य सम्राडेको विराजते।
दीपः संवत्सरं यावन्मयायं परिकल्पितः।
अग्निहोत्रमविच्छिन्नं प्रीयतां मम केशवः॥

'भूत और भविष्यके सम्राट् तथा सबकी कामनाके विषय एक—अद्वितीय परमात्मा सर्वत्र विराजमान हैं। मैंने एक वर्षतक प्रज्वलित रखनेके लिये इस दीपककी स्थापना की है; यह अखण्ड अग्निहोत्ररूप है। इससे भगवान् केशव मुझपर प्रसन्न हों।

तत्पश्चात् इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए वेदोंके स्वाध्याय तथा ज्ञानयोगमें तत्पर रहे। पतितों, पापियों और पाखण्डी मनुष्योंसे बातचीत न करे। रातको गीत, नृत्य, बाजे आदिसे, पुण्य ग्रन्थोंके पाठसे तथा भाँति-भाँतिके धार्मिक उपाख्यानोंसे मन बहलाते हुए उपवासपूर्वक जागरण करे। इसके बाद सबेरा होनेपर पूर्वाह्णके नित्य-कर्मोंका अनुष्ठान करके भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन कराये तथा अपनी शक्तिके अनुसार उनकी पूजा करे। फिर स्वयं भी पारण करके ब्राह्मणोंको प्रणाम कर विदा करे। इस प्रकार दृढ संकल्प करके एक वर्षतक दिन-रात उक्त नियमसे रहे। एक या आधे पल सोनेका दीपक बनाये; उसके लिये बत्ती चाँदीकी बतायी गयी है, जो दो या ढाई पलकी होनी चाहिये। घीसे भरा हुआ घड़ा हो तथा उसके ऊपर ताँबेका पात्र रखा रहे। मुक्तिकी अभिलाषा रखनेवाले पुरुषको भक्तिपूर्वक भगवान् लक्ष्मीनारायणकी प्रतिमा भी यथाशक्ति सोनेकी बनवानी चाहिये। इसके बाद [वर्ष पूर्ण होनेपर] विद्वान् पुरुष साधु एवं श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे। बारह ब्राह्मण हों—यह उत्तम पक्ष है। छः ब्राह्मणोंका होना मध्यम पक्ष है। इतना भी न हो सके तो तीन ब्राह्मणोंको ही निमन्त्रित करे। इनमेंसे एक कर्मनिष्ठ एवं सपत्नीक ब्राह्मणकी पूजा करे। वह ब्राह्मण शान्त होनेके साथ ही विशेषतः क्रियावान् हो। इतिहास-पुराणोंका ज्ञाता, धर्मज्ञ, मृदुल स्वभावका, पितृभक्त, गुरुसेवापरायण तथा देवता-ब्राह्मणोंका पूजन करनेवाला हो। पाद्य-अर्घ्यदान आदिकी विधिसे वस्त्र, अलंकार तथा आभूषण अर्पण करते हुए पत्नीसहित ब्राह्मणदेवकी भक्तिपूर्वक पूजा करके भगवान् लक्ष्मीनारायणको तथा बत्तीसहित दीपकको भी ताम्रपात्रमें रखकर घीसे भरे हुए घड़ेके साथ ही उस ब्राह्मणको दान कर दे। देवर्षे! उस समय निम्नांकित मन्त्रसे परम पुरुष नारायणदेवका ध्यान भी करता रहे—

अविद्यातमसा व्याप्ते संसारे पापनाशनः।
ज्ञानप्रदो मोक्षदश्च तस्माद्दत्तो मयानघ॥

'पापरहित नारायण तथा ज्योतिर्मय दीप! अविद्यामय अन्धकारसे भरे हुए संसारमें तुम्हीं ज्ञान एवं मोक्ष प्रदान करनेवाले हो; इसलिये मैंने आज तुम्हारा दान किया है।'

फिर पूजित ब्राह्मणको अपनी शक्तिके अनुसार भक्तिपूर्वक दक्षिणा दे। अन्यान्य ब्राह्मणोंको भी घृतयुक्त खीर तथा मिठाईका भोजन कराये। ब्राह्मणभोजनके अनन्तर सपत्नीक ब्राह्मणको वस्त्र पहनाये। सामग्रियों-सहित शय्या तथा बछड़ेसहित धेनु दान करे। अन्य ब्राह्मणोंको भी अपनी सामर्थ्यके अनुसार दक्षिणा दे। सुहृदों, स्वजनों तथा बन्धु-बान्धवोंको भी भोजन कराये और उनका सत्कार करे। इस प्रकार इस संवत्सरदीप-व्रतकी समाप्तिके अवसरपर महान् उत्सव करे। फिर सबको प्रणाम करके विदा करे और अपनी त्रुटियोंके लिये क्षमा माँगे।

दान, व्रत, यज्ञ तथा योगाभ्याससे मनुष्य जिस फलको प्राप्त करता है, वही फल उसे संवत्सरदीप-व्रतके पालनसे मिलता है। गौ, भूमि, सुवर्ण तथा विशेषतः गृह आदिके दानसे विद्वान् पुरुष जिस फलको पाता है, वही दीपव्रतसे भी प्राप्त होता है। दीपदान करनेवाला पुरुष कान्ति, अक्षय धन, ज्ञान तथा परम सुख पाता है। दीपदान करनेसे मनुष्यको सौभाग्य, अत्यन्त निर्मल विद्या, आरोग्य तथा परम उत्तम समृद्धिकी प्राप्ति होती है—इसमें तनिक भी संशय नहीं है। दीपदान करनेवाला मानव समस्त शुभ लक्षणोंसे युक्त सौभाग्यवती पत्नी, पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र तथा अक्षय संतति प्राप्त करता है। दीपदानके प्रभावसे ब्राह्मणको परम ज्ञान, क्षत्रियको उत्तम राज्य, वैश्यको धन और समस्त पशु तथा शूद्रको सुखकी प्राप्ति होती है। कुमारी कन्याको सम्पूर्ण शुभ लक्षणोंसे युक्त पति मिलता है। वह बहुत-से पुत्र-पौत्र तथा बड़ी आयु पाती है। युवती स्त्री इस व्रतके प्रभावसे कभी वैधव्यका दुःख नहीं देखती। उसका अपने स्वामीसे कभी वियोग नहीं होता। दीपदानसे मानसिक चिन्ता तथा रोग भी दूर होते हैं। भयभीत पुरुष भयसे तथा कैदी बन्धनसे छूट जाता है। दीपव्रतमें तत्पर रहनेवाला मनुष्य ब्रह्महत्या आदि पापोंसे निस्संदेह मुक्त हो जाता है—ऐसा ब्रह्माजीका वचन है।

जिसने श्रीहरिके सम्मुख सांवत्सर-दीप जलाया है, उसने निश्चय ही चान्द्रायण तथा कृच्छ्र-व्रतोंका अनुष्ठान पूरा कर लिया। जिन्होंने भक्तिपूर्वक श्रीहरिकी पूजा करके संवत्सरदीप-व्रतका पालन किया है, वे धन्य हैं तथा उन्होंने जन्म लेनेका फल पा लिया। जो सलाईसे दीपकी बत्तीको उकसा देते हैं, वे भी देवदुर्लभ परमपदको प्राप्त होते हैं। जो लोग सदा ही मन्दिरके दीपमें यथाशक्ति तेल और बत्ती डालते हैं, वे परम धामको जाते हैं। जो लोग बुझते या बुझे हुए दीपको स्वयं जलानेमें असमर्थ होनेपर दूसरे लोगोंसे उसकी सूचना दे देते हैं, वे भी उक्त फलके भागी होते हैं। जो दीपकके लिये थोड़े-थोड़े तेलकी भीख माँगकर श्रीविष्णुके सम्मुख दीप जलाता है, उसे भी पुण्यकी प्राप्ति होती है। दीपक जलाते समय यदि कोई नीच पुरुष भी उसकी ओर श्रद्धासे हाथ जोड़कर निहारता है तो वह विष्णुधाममें जाता है। जो दूसरोंको भगवान्के सामने दीप जलानेकी सलाह देता है तथा स्वयं भी ऐसा करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकको प्राप्त होता है।

जो लोग पृथ्वीपर दीपव्रतके इस माहात्म्यको सुनते हैं, वे सब पापोंसे छुटकारा पाकर श्रीविष्णुधामको जाते हैं। विद्वन्! मैंने तुमसे यह दीपव्रतका वर्णन किया है। यह मोक्ष तथा सब प्रकारका सुख देनेवाला, प्रशस्त एवं महान् व्रत है। इसके अनुष्ठानसे पापके प्रभावसे होनेवाले नेत्ररोग नष्ट हो जाते हैं। मानसिक चिन्ताओं तथा व्याधियोंका क्षणभरमें नाश हो जाता है। नारद! इस व्रतके प्रभावसे दारिद्र्य और शोक नहीं होता। मोह और भ्रान्ति मिट जाती है।

जयन्ती संज्ञावाली जन्माष्टमीके व्रत तथा विविध प्रकारके दान आदिकी महिमा

नारदजी बोले—देवदेव! जगदीश्वर! भक्तोंको अभयदान देनेवाले महादेव! मुझपर कृपा करके कोई दूसरा व्रत बताइये।

महादेवजीने कहा—पूर्वकालमें हरिश्चन्द्र नामक एक चक्रवर्ती राजा हो गये हैं। उनपर संतुष्ट होकर ब्रह्माजीने उन्हें एक सुन्दर पुरी प्रदान की, जो समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाली थी। उसमें रहकर राजा हरिश्चन्द्र सात द्वीपोंसे युक्त वसुन्धराका धर्मपूर्वक पालन करते थे। प्रजाको वे औरस पुत्रकी भाँति मानते थे। राजाके पास धन-धान्यकी अधिकता थी। उन्हें नाती-पोतोंकी भी कमी न थी। अपने उत्तम राज्यका पालन करते हुए राजाको एक दिन बड़ा विस्मय हुआ। वे सोचने लगे—'आजके पहले कभी किसीको ऐसा राज्य नही मिला था। मेरे सिवा दूसरे मनुष्योंने ऐसे विमानपर सवारी नहीं की होगी। यह मेरे किस कर्मका फल है, जिससे मैं देवराज इन्द्रके समान सुखी हूँ?'

राजाओंमें श्रेष्ठ हरिश्चन्द्र इस प्रकार सोच-विचारकर अपने उत्तम विमानपर आरूढ हुए। आकाशमार्गसे जाते समय पर्वतोंमें श्रेष्ठ मेरुपर उनकी दृष्टि पड़ी। उस श्रेष्ठ शैलपर ज्ञानयोग-परायण ब्रह्मर्षि सनत्कुमार दिखायी पड़े, जो सुवर्णमयी शिलाके ऊपर विराजमान थे। उन्हें देखकर राजा अपना विस्मय पूछनेके लिये उतर पड़े। उन्होंने पास जा हर्षमें भरकर मुनिके चरणोंमें मस्तक झुकाया। ब्रह्मर्षिने भी राजाका अभिनन्दन किया। फिर सुखपूर्वक बैठकर राजाने मुनिश्रेष्ठ सनत्कुमारजीसे पूछा—'भगवन्! मुझे जो यह सम्पत्ति प्राप्त हुई है, मानवलोकमें प्रायः दुर्लभ है। ऐसी सम्पत्ति किस कर्मसे प्राप्त होती है? मैं पूर्वजन्ममें कौन था? ये सब बातें यथार्थरूपसे बतलाइये।'

सनत्कुमारजी बोले—राजन्! सुनो—तुम पूर्वजन्ममें सत्यवादी, पवित्र एवं उत्तम वैश्य थे। तुमने अपना काम-धाम छोड़ दिया था, इसलिये बन्धु-बान्धवोंने तुम्हारा परित्याग कर दिया। तुम्हारे पास जीविकाका कोई साधन नहीं रह गया था; इसलिये तुम स्वजनोंको छोड़कर चल दिये। स्त्रीने ही तुम्हारा साथ दिया। एक समय तुम दोनों किसी घने जंगलमें जा पहुँचे। वहाँ एक पोखरेमें कमल खिले हुए थे। उन्हें देखकर तुम दोनोंके मनमें यह विचार उठा कि हम यहाँसे कमल ले लें। कमल लेकर तुम दोनों एक-एक पग भूमि लाँघते हुए शुभ एवं पुण्यमयी वाराणसी पुरीमें पहुँचे। वहाँ तुमलोग कमल बेचने लगे, किन्तु कोई भी उन्हें खरीदता नहीं था। वहीं खड़े-खड़े तुम्हारे कानोंमें बाजेकी आवाज सुनायी पड़ी। फिर तुम उसी ओर चल दिये। वहाँ काशीके विख्यात राजा इन्द्रद्युम्नकी सती-साध्वी कन्या चन्द्रावतीने, जो बड़ी सौभाग्यशालिनी थी, जयन्ती नामक जन्माष्टमीका शुभकारक व्रत किया था। उस स्थानपर तुम बड़े हर्षके साथ गये। वहाँ पहुँचनेपर तुम्हारा चित्त संतुष्ट हो गया। तुमने वहाँ भगवान्‌के पूजनका विधान देखा। कलशके ऊपर श्रीहरिकी स्थापना करके उनकी पूजा हो रही थी। विशेष

समारोहके साथ भगवान्‌का पूजन किया गया था, भिन्न-भिन्न पुष्पोंसे उनका श्रृंगार हुआ था। भगवान्‌की भक्तिके वशीभूत हो तुमने भी अपनी पत्नीके साथ कमलके फूलोंसे वहाँ श्रीहरिका पूजन किया तथा पूजासे बचे हुए फूलोंको उनके समीप ही बिखेर दिया। तुमने भगवान्‌को पुष्पमय कर दिया। इससे उस कन्याको बड़ा संतोष हुआ। वह स्वयं तुम्हें धन देने लगी, किन्तु तुमने नहीं लिया। तब राजकुमारीने तुम्हें भोजनके लिये निमन्त्रित किया; किन्तु उस समय तुमने न तो भोजन स्वीकार किया और न धन ही लिया। यही पुण्य तुमने पिछले जन्ममें उपार्जित किया था। फिर अपने कर्मके अनुसार तुम्हारी मृत्यु हो गयी। उसी महान् पुण्यके प्रभावसे तुम्हें विमान मिला है। राजन्! पूर्वजन्ममें जो तुम्हारे द्वारा वह पुण्य हुआ था, उसीका फल इस समय तुम भोग रहे हो।

हरिश्चन्द्र बोले—मुनिवर! किस महीनेमें वह तिथि आती है और किस विधिसे उसका व्रत करना चाहिये? यह मुझे बताइये।

सनत्कुमारजीने कहा—राजन्! मैं तुम्हें इस व्रतको बताता हूँ; सावधान होकर सुनो। श्रावणमासके[१] कृष्णपक्षकी अष्टमी तिथिको यदि रोहिणी नक्षत्रका योग मिल जाय तो उस जन्माष्टमीका नाम 'जयन्ती' होता है। अब मैं इसकी विधिका वर्णन करता हूँ, जैसा कि ब्रह्माजीने मुझे बताया था। उस दिन उपवासका व्रत लेकर काले तिलोंसे मिश्रित जलसे स्नान करे। फिर नवीन कलशकी, जो फूटा-टूटा न हो, स्थापना करे। उसमें पंचरत्न डाल दे। हीरा, मोती, वैदूर्य, पुष्पराग (पुखराज) और इन्द्रनील—ये उत्तम पंचरत्न हैं—ऐसा कात्यायनका कथन है[२]। कलशके ऊपर सोनेका पात्र रखे और सोनेकी बनी हुई नन्दरानी यशोदाकी प्रतिमा स्थापित करे। प्रतिमाका भाव यह होना चाहिये—'यशोदा अपने पुत्र श्रीकृष्णको स्तन पिलाती हुई मन्द-मन्द मुसकरा रही हैं, श्रीकृष्ण यशोदा मैयाका एक स्तन तो पी रहे हैं और दूसरा स्तन दूसरे हाथसे पकड़े हुए हैं। वे माताकी ओर प्रेमसे देखकर उन्हें सुख पहुँचा रहे हैं।' इस प्रकार जैसी अपनी शक्ति हो, उसीके अनुसार सुवर्णमय भगवत्प्रतिमाका निर्माण कराये। इसके सिवा सोनेकी रोहिणी और चाँदीके चन्द्रमाकी प्रतिमा बनवाये। अँगूठेके बराबर चन्द्रमा हों और चार अंगुलकी रोहिणी। भगवान्‌के कानोंमें कुण्डल और गलेमें कण्ठा पहनाये। इस प्रकार माताके साथ जगत्पति गोविन्दकी प्रतिमा बनवाकर दूध आदिसे स्नान कराये तथा चन्दनसे अनुलेप करे। दो श्वेत वस्त्रोंसे भगवान्‌को आच्छादित करके फूलोंकी मालासे उनका श्रृंगार करे। भाँति-भाँतिके भक्ष्य पदार्थोंका नैवेद्य लगाये, नाना प्रकारके फल अर्पण करे। दीप जलाकर रखे और फूलोंके मण्डपसे पूजास्थानको सुशोभित करे। विज्ञ

१-यहाँ श्रावणका अर्थ भाद्रपद समझना चाहिये। जहाँ शुक्लपक्षसे मासका आरम्भ होता है; वहाँ भाद्रपदका कृष्णपक्ष श्रावणका कृष्णपक्ष समझा जाता है। इन प्रान्तोंमें कृष्णपक्षसे ही महीना आरम्भ होता है।

२- वज्रमौक्तिकवैदूर्यपुष्परागेन्द्रनीलकम्। पञ्चरत्नं प्रशस्तं तु इति कात्यायनोऽब्रवीत्॥ (३२।३८)

पुरुषोंके द्वारा भक्तिपूर्वक नृत्य, गीत और वाद्य कराये। इस प्रकार अपने वैभवके अनुसार सब विधान पूर्ण करके गुरुका पूजन करे, तत्पश्चात् पूजाकी समाप्ति करे।

महादेवजी कहते हैं—जब इन्द्रके सौ यज्ञ पूर्ण हो गये और उत्तम दक्षिणा देकर यज्ञका कार्य समाप्त कर दिया गया, उस समय देवराजके मनमें कुछ पूछनेका संकल्प हुआ; अतएव उन्होंने अपने गुरु बृहस्पतिजीसे इस प्रकार प्रश्न किया।

इन्द्र बोले—भगवन्! किस दानसे सब ओर सुखकी वृद्धि होती है? जो अक्षय तथा महान् अर्थका साधक हो, उसका वर्णन कीजिये।

बृहस्पतिजीने कहा—इन्द्र! सोना, वस्त्र, गौ तथा भूमि—इनका दान करनेवाला पुरुष सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो भूमिका दान करता है, उसके द्वारा सोने, चाँदी, वस्त्र, मणि एवं रत्नका भी दान हो जाता है। जो फालसे जोती हो, जिसमें बीज बो दिया गया हो तथा जहाँ खेती लहरा रही हो, ऐसी भूमिका दान करके मनुष्य तबतक स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है, जबतक सूर्यका प्रकाश बना रहता है। जीविकाके कष्टसे मनुष्य जो कुछ भी पाप करता है, वह गोचर्ममात्र भूमिके दानसे छूट जाता है। दस हाथका एक दण्ड होता है, तीस दण्डका एक वर्तन होता है और दस वर्तनका एक गोचर्म होता है; यही ब्रह्म-गोचर्मकी भी परिभाषा है। छोटे बछड़ोंको जन्म देनेवाली एक हजार गौएँ जहाँ साँड़ोंके साथ खड़ी हो सकें, उतनी भूमिको एक गोचर्म माना गया है। गुणवान्, तपस्वी तथा जितेन्द्रिय ब्राह्मणको दान देना चाहिये। उस दानका अक्षय फल तबतक मिलता रहता है, जबतक यह समुद्रपर्यन्त पृथ्वी कायम रहती है। इन्द्र! जैसे तेलकी बूँद कहीं गिरनेपर शीघ्र ही फैल जाती है, उसी प्रकार खेतीके साथ किया हुआ भूमिदान विशेष विस्तारको प्राप्त होता है। गौ, भूमि और विद्या—इन तीन वस्तुओंके दानको अतिदान बताया गया है; ये क्रमशः दुहने, बोने तथा अभ्यास करनेसे नरकसे उद्धार कर देती हैं।[1]

वस्त्रदान करनेवाले पुरुष परलोकके मार्गपर वस्त्रोंसे आच्छादित होकर यात्रा करते हैं और जिन्होंने वस्त्रदान नहीं किया है, उन्हें नंगे ही जाना पड़ता है। अन्नदान करनेवाले लोग तृप्त होकर जाते हैं; जो अन्नदान नहीं करते, उन्हें भूखे ही यात्रा करनी पड़ती है। नरकके भयसे डरे हुए सभी पितर इस बातकी अभिलाषा करते हैं कि हमारे पुत्रोंमेंसे जो कोई गया जायगा, वह हमें तारनेवाला होगा। बहुत-से पुत्रोंकी इच्छा करनी चाहिये; क्योंकि उनमेंसे एक भी तो गया जायगा अथवा नील वृषका उत्सर्ग करेगा। जो रंगसे लाल हो, जिसकी पूँछके अग्रभागमें कुछ पीलापन लिये सफेदी हो और खुर तथा सींगोंका विशुद्ध श्वेत वर्ण हो, वह 'नील वृष' कहलाता है।[2] पाण्डु रंगकी पूँछवाला नील वृष जो जल उछालता है, उससे साठ हजार वर्षोंतक पितर तृप्त रहते हैं। जिसके सींगमें नदीके किनारेकी उखाड़ी हुई मिट्टी लगी होती है, उसके दानसे पितरगण परम प्रकाशमय चन्द्रलोकका सुख भोगते हैं।

यह पृथ्वी पूर्वकालमें राजा दिलीप, नृग, नहुष तथा अन्यान्य नरेशोंके अधीन थी और पुनः अन्यान्य राजाओंके अधिकारमें जाती रहेगी। सगर आदि बहुत-से राजा इस पृथ्वीका दान कर चुके हैं। यह जब जिसके अधिकारमें रहती है, तब उसीको इसके दानका फल मिलता है। जो अपनी या दूसरेकी दी हुई पृथ्वीको हर लेता है; वह विष्ठाका कीड़ा होकर पितरोंसहित नरकमें पकाया जाता है। भूमिदान करनेवालेसे बढ़कर पुण्यवान् तथा भूमि हर लेनेवालेसे बढ़कर पापी दूसरा कोई नहीं है। जबतक महाप्रलय नहीं हो जाता, तबतक भूमिदाता ऊर्ध्वलोकमें और भूमिहर्ता नरकमें रहता है। सुवर्ण अग्निकी प्रथम संतान है, पृथ्वी विष्णुके अंशसे प्रकट हुई है तथा गौएँ सूर्यकी कन्याएँ हैं। इसलिये जो सुवर्ण, गौ

१-त्रीण्याहुरतिदानानि गावः पृथ्वी सरस्वती। नरकादुद्धरन्त्येते जपवापनदोहनात्॥ (३३। १८)

२-लोहितो यस्तु वर्णेन पुच्छाग्रे यस्तु पाण्डुरः॥ श्वेतः खुरविषाणाभ्यां स नीलो वृष उच्यते। (३३। २२-२३)

तथा पृथ्वीका दान करता है, वह उनके दानका अक्षय फल भोगता है। जो भूमिको न्यायपूर्वक देता और जो न्यायपूर्वक ग्रहण करता है, वे दोनों ही पुण्यकर्मा हैं; उन्हें निश्चय ही स्वर्गकी प्राप्ति होती है। जिन लोगोंने अन्यायपूर्वक पृथ्वीका अपहरण किया अथवा कराया है, वे दोनों ही प्रकारके मनुष्य अपनी सात पीढ़ियोंका विनाश करते हैं—उन्हें सद्‌गतिसे वंचित कर देते हैं। ब्राह्मणका खेत हर लेनेपर कुलकी तीन पीढ़ियोंका नाश हो जाता है। एक हजार कूप और बावली बनवानेसे, सौ अश्वमेध करनेसे तथा करोड़ों गौएँ देनेसे भी भूमिहर्ताकी शुद्धि नहीं होती।

किया हुआ शुभ कर्म, दान, तप, स्वाध्याय तथा जो कुछ भी धर्मसम्बन्धी कार्य है, वह सब खेतकी आधी अंगुल सीमा हर लेनेसे भी नष्ट हो जाता है। गोतीर्थ (गौओंके चरने और पानी पीने आदिका स्थान), गाँवकी सड़क, मरघट तथा गाँवको दबाकर मनुष्य प्रलयकालतक नरकमें पड़ा रहता है।* यदि जीविकाके बिना प्राण कण्ठतक आ जायँ तो भी ब्राह्मणके धनका लोभ नहीं करना चाहिये। अग्निकी आँच और सूर्यके तापसे जले हुए वृक्ष आदि पुनः पनपते हैं, राजदण्डसे दण्डित मनुष्योंकी अवस्था भी पुनः सुधर जाती है; किन्तु जिनपर ब्राह्मणोंके शापका प्रहार होता है, वे तो नष्ट ही हो जाते हैं। ब्राह्मणके धनका अपहरण करनेवाला मनुष्य रौरव नरकमें पड़ता है। केवल विषको ही विष नहीं कहते, ब्राह्मणका धन सबसे बड़ा विष कहा जाता है। साधारण विष तो एकको ही मारता है, किन्तु ब्राह्मणका धनरूपी विष बेटों और पोतोंका भी नाश कर डालता है! मनुष्य लोहे और पत्थरके चूरेको तथा विषको भी पचा सकता है; परन्तु तीनों लोकोंमें कौन ऐसा पुरुष है, जो ब्राह्मणके धनको पचा सके। ब्राह्मणके धनसे जो सुख उठाया जाता है, देवताके धनके प्रति जो राग पैदा होता है, वह धन समूचे कुलके नाशका कारण होता है तथा अपना विनाश तो वह करता ही है। ब्राह्मणका धन, ब्रह्महत्या, दरिद्रका धन, गुरु और मित्रका सुवर्ण—ये सब स्वर्गमें जानेपर भी मनुष्यको पीड़ा पहुँचाते हैं।

देवश्रेष्ठ इन्द्र! जो ब्राह्मण श्रोत्रिय, कुलीन, दरिद्र, संतुष्ट, विनयी, वेदाभ्यासी, तपस्वी, ज्ञानी और इन्द्रियसंयमी हो, उसे ही दिया हुआ दान अक्षय होता है। जैसे कच्चे बर्तनमें रखा हुआ दूध, दही, घी अथवा मधु दुर्बलताके कारण पात्रको ही छेद देता है, उसी प्रकार यदि अज्ञानी पुरुष गौ, सुवर्ण, वस्त्र, अन्न, पृथ्वी और तिल आदिका दान ग्रहण करता है तो वह काष्ठकी भाँति भस्म हो जाता है।

जो नया पोखरा बनवाता है अथवा पुरानेको ही खुदवाता है, वह समस्त कुलका उद्धार करके स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। बावली, कुआँ, तडाग और बगीचे पुनः संस्कार (जीर्णोद्धार) करनेपर मोक्षरूप फल प्रदान करते हैं। इन्द्र! जिसके जलाशयमें गर्मीके मौसमतक पानी ठहरता है, वह कभी दुर्गम एवं विषम संकटका सामना नहीं करता। देवश्रेष्ठ! यदि एक दिन भी पानी ठहर जाय तो वह सात पहलेकी और सात पीछेकी पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। दीपका प्रकाश दान करनेसे मनुष्य रूपवान् होता है और दक्षिणा देनेसे स्मरणशक्ति तथा मेधा (धारणा-शक्ति)-को प्राप्त करता है। यदि बलपूर्वक अपहरण की हुई भूमि, गौ तथा स्त्रीको मनुष्य पुनः लौटा न दे तो उसे ब्रह्महत्यारा कहा जाता है।

इन्द्र! जो विवाह, यज्ञ तथा दानका अवसर उपस्थित होनेपर उसमें मोहवश विघ्न डालता है, वह मरनेपर कीड़ा होता है। दान करनेसे धन और जीव-रक्षा करनेसे जीवन सफल होता है। रूप, ऐश्वर्य तथा आरोग्य—ये अहिंसाके फल हैं, जो अनुभवमें आते हैं। फल-मूलके भोजनसे सम्मान तथा सत्यसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है। मरणान्त उपवाससे राज्य और सर्वत्र सुख

* कृतं दत्तं तपोऽधीतं यत्किञ्चिद्धर्मसंस्थितम् । अर्धाङ्गुलस्य सीमाया हरणेन प्रणश्यति॥
गोतीर्थं ग्रामरथ्यां च श्मशानं ग्राममेव च। संपीड्य नरकं याति यावदाभूतसंप्लवम्॥ (३३। ३८-३९)

उपलब्ध होता है। तीनों काल स्नान करनेवाला मनुष्य रूपवान् होता है। वायु पीकर रहनेवाला यज्ञका फल पाता है। जो उपवास करता है, वह चिरकालतक स्वर्गमें निवास करता है। जो सदा भूमिपर शयन करता है,उसे अभीष्ट गतिकी प्राप्ति होती है, जो पवित्र धर्मका आचरण करता है, वह स्वर्गलोकमें सम्मानित होता है। जो द्विजश्रेष्ठ बृहस्पतिजीके इस पवित्र मतका स्वाध्याय करते हैं,उनकी आयु, विद्या, यश और बल—ये चार बातें बढ़ती हैं।

महाराज दशरथका शनिको संतुष्ट करके लोकका कल्याण करना

नारदजीने पूछा—सुरश्रेष्ठ! शनैश्चरकी दी हुई पीड़ा कैसे दूर होती है? यह मुझे बताइये।

महादेवजी बोले—देवर्षे! सुनो, ये शनैश्चर देवताओंमें प्रसिद्ध कालरूपी महान् ग्रह हैं। इनके मस्तकपर जटा है, शरीरमें बहुत-से रोएँ हैं तथा ये दानवोंको भय पहुँचानेवाले हैं। पूर्वकालकी बात है, रघुवंशमें दशरथ नामके एक बहुत प्रसिद्ध राजा हो गये हैं। वे चक्रवर्ती सम्राट्, महान् वीर तथा सातों द्वीपोंके स्वामी थे। उन दिनों ज्योतिषियोंने यह जानकर कि शनैश्चर कृत्तिकाके अन्तमें जा पहुँचे हैं, राजाको सूचित किया—'महाराज! इस समय शनि रोहिणीका भेदन करके आगे बढ़ेंगे; यह अत्यन्त उग्र शाकटभेद नामक योग है, जो देवताओं तथा असुरोंके लिये भी भयंकर है। इससे बारह वर्षोंतक संसारमें अत्यन्त भयानक दुर्भिक्ष फैलेगा।' यह सुनकर राजाने मन्त्रियोंके साथ विचार किया और वसिष्ठ आदि ब्राह्मणोंसे पूछा—द्विजवरो! बताइये, इस संकटको रोकनेका यहाँ कौन-सा उपाय है?'

वसिष्ठजी बोले—राजन्! यह रोहिणी प्रजापति ब्रह्माजीका नक्षत्र है, इसका भेद हो जानेपर प्रजा कैसे रह सकती है। ब्रह्मा और इन्द्र आदिके लिये भी यह योग असाध्य है।

महादेवजी कहते हैं—नारद! इस बातपर विचार करके राजा दशरथने मनमें महान् साहसका संग्रह किया और दिव्यास्त्रोंसहित दिव्य धनुष लेकर रथपर आरूढ़ हो बड़े वेगसे वे नक्षत्र-मण्डलमें गये। रोहिणीपृष्ठ सूर्यसे सवा लाख योजन ऊपर है; वहाँ पहुँचकर राजाने धनुषको कानतक खींचा और उसपर संहारास्त्रका संधान किया। वह अस्त्र देवता और असुरोंके लिये भयंकर था। उसे देखकर शनि कुछ भयभीत हो हँसते हुए बोले—'राजेन्द्र! तुम्हारा महान् पुरुषार्थ शत्रुको भय
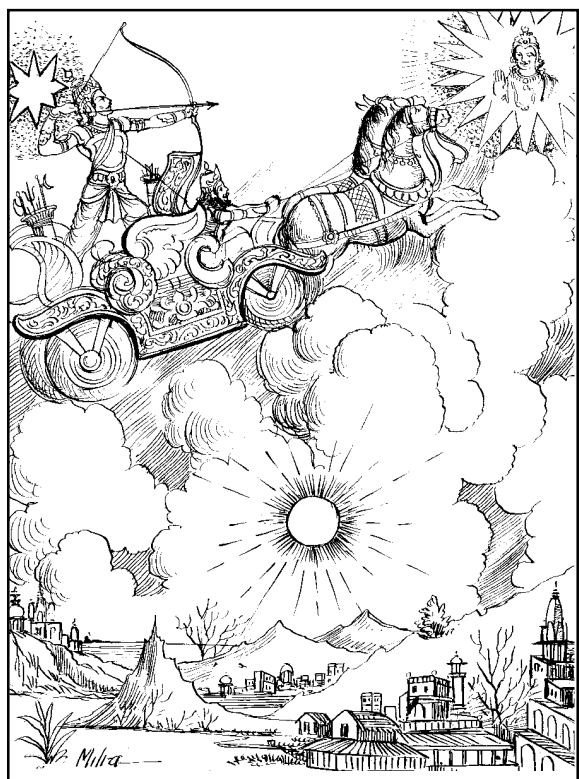
पहुँचानेवाला है। मेरी दृष्टिमें आकर देवता, असुर, मनुष्य, सिद्ध, विद्याधर और नाग—सब भस्म हो जाते हैं; किन्तु तुम बच गये। अतः महाराज! तुम्हारे तेज और पौरुषसे मैं संतुष्ट हूँ। वर माँगो; तुम अपने मनसे जो कुछ चाहोगे, उसे अवश्य दूँगा।'

दशरथने कहा—शनिदेव! जबतक नदियाँ और समुद्र हैं, जबतक सूर्य और चन्द्रमासहित पृथ्वी कायम है, तबतक आप रोहिणीका भेदन करके आगे न बढ़ें। साथ ही कभी बारह वर्षोंतक दुर्भिक्ष न करें।

शनि बोले—एवमस्तु।

महादेवजी कहते हैं—ये दोनों वर पाकर राजा बड़े प्रसन्न हुए, उनके शरीरमें रोमांच हो आया। वे रथके ऊपर धनुष डाल हाथ जोड़ शनिदेवकी इस प्रकार स्तुति करने लगे।

दशरथ बोले—जिनके शरीरका वर्ण कृष्ण, नील तथा भगवान् शंकरके समान है, उन शनिदेवको नमस्कार है। जो जगत्‌के लिये कालाग्नि एवं कृतान्तरूप हैं, उन शनैश्चरको बारम्बार नमस्कार है। जिनका शरीर कंकाल है तथा जिनकी दाढ़ी-मूँछ और जटा बढ़ी हुई है, उन शनिदेवको प्रणाम है। जिनके बड़े-बड़े नेत्र, पीठमें सटा हुआ पेट और भयानक आकार हैं, उन शनैश्चरदेवको नमस्कार है। जिनके शरीरका ढाँचा फैला हुआ है, जिनके रोएँ बहुत मोटे हैं, जो लम्बे-चौड़े किन्तु सूखे शरीरवाले हैं तथा जिनकी दाढ़ें कालरूप हैं, उन शनिदेवको बारम्बार प्रणाम है। शने! आपके नेत्र खोखलेके समान गहरे हैं, आपकी ओर देखना कठिन है, आप घोर, रौद्र, भीषण और विकराल हैं। आपको नमस्कार है। बलीमुख! आप सब कुछ भक्षण करनेवाले हैं; आपको नमस्कार है। सूर्यनन्दन! भास्करपुत्र! अभय देनेवाले देवता! आपको प्रणाम है। नीचेकी ओर दृष्टि रखनेवाले शनिदेव! आपको नमस्कार है। संवर्तक! आपको प्रणाम है। मन्दगतिसे चलनेवाले शनैश्चर! आपका प्रतीक तलवारके समान है, आपको पुनः-पुनः प्रणाम है। आपने तपस्यासे अपने देहको दग्ध कर दिया है; आप सदा योगाभ्यासमें तत्पर, भूखसे आतुर और अतृप्त रहते हैं। आपको सदा-सर्वदा नमस्कार है। ज्ञाननेत्र! आपको प्रणाम है। कश्यपनन्दन सूर्यके पुत्र शनिदेव! आपको नमस्कार है। आप संतुष्ट होनेपर राज्य दे देते हैं और रुष्ट होनेपर उसे तत्क्षण हर लेते हैं। देवता, असुर, मनुष्य, सिद्ध, विद्याधर और नाग—ये सब आपकी दृष्टि पड़नेपर समूल नष्ट हो जाते हैं। देव! मुझपर प्रसन्न होइये। मैं वर पानेके योग्य हूँ और आपकी शरणमें आया हूँ।*

महादेवजी कहते हैं—नारद! राजाके इस प्रकार स्तुति करनेपर ग्रहोंके राजा महाबलवान् सूर्यपुत्र शनैश्चर बोले—उत्तम व्रतके पालक राजेन्द्र! तुम्हारी इस स्तुतिसे मैं संतुष्ट हूँ। रघुनन्दन! तुम इच्छानुसार वर माँगो, मैं तुम्हें अवश्य दूँगा।

दशरथ बोले—सूर्यनन्दन! आजसे आप देवता, असुर, मनुष्य, पशु, पक्षी तथा नाग—किसी भी प्राणीको पीड़ा न दें।

शनिने कहा—राजन्! देवता, असुर, मनुष्य, सिद्ध, विद्याधर तथा राक्षस—इनमेंसे किसीके भी मृत्यु-स्थान, जन्मस्थान अथवा चतुर्थ स्थानमें मैं रहूँ तो उसे मृत्युका कष्ट दे सकता हूँ। किन्तु जो श्रद्धासे युक्त, पवित्र और एकाग्रचित्त हो मेरी लोहमयी सुन्दर प्रतिमाका शमीपत्रोंसे पूजन करके तिलमिश्रित उड़द-भात, लोहा, काली गौ या काला वृषभ ब्राह्मणको दान करता है तथा विशेषतः मेरे दिनको इस स्तोत्रसे मेरी पूजा करता है, पूजनके पश्चात् भी हाथ जोड़कर मेरे स्तोत्रका जप करता है, उसे मैं कभी भी पीड़ा नहीं दूँगा। गोचरमें, जन्मलग्नमें,

---

* नमः कृष्णाय नीलाय शितिकण्ठनिभाय च । नमः कालाग्निरूपाय कृतान्ताय च वै नमः॥
नमो निर्मांसदेहाय दीर्घश्मश्रुजटाय च । नमो विशालनेत्राय शुष्कोदरभयाकृते॥
नमः पुष्कलगात्राय स्थूलरोम्णे च वै पुनः । नमो दीर्घाय शुष्काय कालदंष्ट्र नमोऽस्तु ते॥
नमस्ते कोटराक्षाय दुर्निरीक्ष्याय वै नमः । नमो घोराय रौद्राय भीषणाय करालिने॥
नमस्ते सर्वभक्षाय बलीमुख नमोऽस्तु ते । सूर्यपुत्र नमस्तेऽस्तु भास्करेऽभयदाय च॥
अधोदृष्टे नमस्तेऽस्तु संवर्तक नमोऽस्तु ते । नमो मन्दगते तुभ्यं निस्त्रिंशाय नमोऽस्तु ते॥
तपसा दग्धदेहाय नित्यं योगरताय च । नमो नित्यं क्षुधार्ताय अतृप्ताय च वै नमः॥
ज्ञानचक्षुर्नमस्तेऽस्तु कश्यपात्मजसूनवे । तुष्टो ददासि वै राज्यं रुष्टो हरसि तत्क्षणात्॥
देवासुरमनुष्याश्च सिद्धविद्याधरोरगाः । त्वया विलोकिताः सर्वे नाशं यान्ति समूलतः।
प्रसादं कुरु मे देव वरार्होऽहमुपागतः॥

(३४। २७—३५)

दशाओं तथा अन्तर्दशाओंमें ग्रह-पीड़ाका निवारण करके मैं सदा उसकी रक्षा करूँगा। इसी विधानसे सारा संसार पीड़ासे मुक्त हो सकता है। रघुनन्दन! इस प्रकार मैंने युक्तिसे तुम्हें वरदान दिया है।

महादेवजी कहते हैं—नारद! वे तीनों वरदान पाकर उस समय राजा दशरथने अपनेको कृतार्थ माना। वे शनैश्चरको नमस्कार करके उनकी आज्ञा ले रथपर सवार हो बड़े वेगसे अपने स्थानको चले गये। उन्होंने कल्याण प्राप्त कर लिया था। जो शनिवारको सबेरे उठकर इस स्तोत्रका पाठ करता है तथा पाठ होते समय जो श्रद्धापूर्वक इसे सुनता है, वह मनुष्य पापसे मुक्त हो स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

त्रिस्पृशाव्रतकी विधि और महिमा

नारदजी बोले—सर्वेश्वर! अब आप विशेष रूपसे त्रिस्पृशा नामक व्रतका वर्णन कीजिये, जिसे सुनकर लोग तत्काल कर्मबन्धनसे मुक्त हो जाते हैं।

महादेवजीने कहा—विद्वन्! पूर्वकालमें सम्पूर्ण लोकोंके हितकी इच्छासे सनत्कुमारजीने व्यासजीके प्रति इस व्रतका वर्णन किया था। यह व्रत सम्पूर्ण पापराशिका शमन करनेवाला और महान् दुःखोंका विनाशक है। विप्र! त्रिस्पृशा नामक महान् व्रत सम्पूर्ण कामनाओंका दाता माना गया है। ब्राह्मणोंके लिये तो मोक्षदायक भी है। महामुने! जो प्रतिदिन 'त्रिस्पृशा' का नामोच्चारण करता है, उसके समस्त पापोंका क्षय हो जाता है। देवाधिदेव भगवान्ने मोक्ष-प्राप्तिके लिये इस व्रतकी सृष्टि की है, इसीलिये इसे 'वैष्णवी तिथि' कहते हैं। इन्द्रियोंका निग्रह न होनेसे मनमें स्थिरता नहीं आती [मनकी यह अस्थिरता ही मोक्षमें बाधक है।] ब्रह्मन्! जो ध्यान-धारणासे वर्जित, विषयपरायण तथा काम-भोगमें आसक्त हैं, उनके लिये त्रिस्पृशा ही मोक्षदायिनी है। मुनिश्रेष्ठ! पूर्वकालमें जब चक्रधारी श्रीविष्णुके द्वारा क्षीरसागरका मन्थन हो रहा था, उस समय चरणोंमें पड़े हुए देवताओंके मध्यमें ब्रह्माजीसे मैंने ही इस व्रतका वर्णन किया था। जो लोग विषयोंमें आसक्त रहकर भी त्रिस्पृशाका व्रत करेंगे, उनके लिये भी मैंने मोक्षका अधिकार दे रखा है। नारद! तुम इस व्रतका अनुष्ठान करो, क्योंकि त्रिस्पृशा मोक्ष देनेवाली है। महामुने! बड़े-बड़े मुनियोंके समुदायने इस व्रतका पालन किया है। यदि कार्तिक शुक्लपक्षमें सोमवार या बुधवारसे युक्त त्रिस्पृशा एकादशी हो तो वह करोड़ों पापोंका नाश करनेवाली है। विप्रवर! और पापोंकी तो बात ही क्या है, त्रिस्पृशाके व्रतसे ब्रह्महत्या आदि महापाप भी नष्ट हो जाते हैं। प्रयागमें मृत्यु होनेसे तथा द्वारकामें श्रीकृष्णके निकट गोमतीमें स्नान करनेसे शाश्वत मोक्ष प्राप्त होता है, परन्तु त्रिस्पृशाका उपवास करनेसे घरपर भी मुक्ति हो जाती है। इसलिये विप्रवर नारद! तुम मोक्षदायिनी त्रिस्पृशाके व्रतका अवश्य अनुष्ठान करो। विप्र! पूर्वकालमें भगवान् माधवने प्राची सरस्वतीके तटपर गंगाजीके प्रति कृपापूर्वक त्रिस्पृशाव्रतका वर्णन किया था।

गंगाने पूछा—हृषीकेश! ब्रह्महत्या आदि करोड़ों पाप-राशियोंसे युक्त मनुष्य मेरे जलमें स्नान करते हैं, उनके पापों और दोषोंसे मेरा शरीर कलुषित हो गया है। देव! गरुडध्वज! मेरा वह पातक कैसे दूर होगा?

प्राचीमाधव बोले—शुभे! तुम त्रिस्पृशाका व्रत करो। यह सौ करोड़ तीर्थोंसे भी अधिक महत्त्वशालिनी है। करोड़ों यज्ञ, व्रत, दान, जप, होम और सांख्ययोगसे भी इसकी शक्ति बढ़ी हुई है। यह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंको देनेवाली है। नदियोंमें श्रेष्ठ गंगा! त्रिस्पृशाव्रत जिस-किसी महीनेमें भी आये तथा वह शुक्लपक्षमें हो या कृष्णपक्षमें, उसका अनुष्ठान करना ही चाहिये। उसे करके तुम पापसे मुक्त हो जाओगी। जब एक ही दिन एकादशी, द्वादशी तथा रात्रिके अन्तिम प्रहरमें त्रयोदशी भी हो तो उसे 'त्रिस्पृशा' समझना चाहिये। उसमें दशमीका योग नहीं होता। देवनदी! एकादशी-व्रतमें दशमी-वेधका दोष मैं नहीं क्षमा करता।

ऐसा जानकर दशमीयुक्त एकादशीका व्रत नहीं करना चाहिये। उसे करनेसे करोड़ों जन्मोंके किये हुए पुण्य तथा संतानका नाश होता है। वह पुरुष अपने वंशको स्वर्गसे गिराता और रौरव आदि नरकोंमें पहुँचाता है। अपने शरीरको शुद्ध करके मेरे दिन—एकादशीका व्रत करना चाहिये। द्वादशी मुझे अत्यन्त प्रिय है, मेरी आज्ञासे इसका व्रत करना उचित है।

गंगा बोलीं—जगन्नाथ! आपके कहनेसे मैं त्रिस्पृशाका व्रत अवश्य करूँगी, आप मुझे इसकी विधि बताइये।

प्राचीमाधवने कहा—सरिताओंमें उत्तम गंगा देवी! सुनो, मैं त्रिस्पृशाका विधान बताता हूँ। इसका श्रवण मात्र करनेसे भी मनुष्य पातकोंसे मुक्त हो जाता है। अपने वैभवके अनुसार एक या आधे पल सोनेकी मेरी प्रतिमा बनवानी चाहिये। इसके बाद एक ताँबेके पात्रको तिलसे भरकर रखे और जलसे भरे हुए सुन्दर कलशकी स्थापना करे, जिसमें पंचरत्न मिलाये गये हों। कलशको फूलोंकी मालाओंसे आवेष्टित करके कपूर आदिसे सुवासित करे। इसके बाद भगवान् दामोदरको स्थापित करके उन्हें स्नान कराये और चन्दन चढ़ाये। फिर भगवान्‌को वस्त्र धारण कराये। तदनन्तर पुराणोक्त सामयिक सुन्दर पुष्प तथा कोमल तुलसीदलसे भगवान्‌की पूजा करे। उन्हें छत्र और उपानह (जूतियाँ) अर्पण करे! मनोहर नैवेद्य और बहुत-से सुन्दर-सुन्दर फलोंका भोग लगाये। यज्ञोपवीत तथा नूतन एवं सुदृढ़ उत्तरीय वस्त्र चढ़ाये। सुन्दर ऊँची बाँसकी छड़ी भी भेंट करे। **'दामोदराय नमः'** कहकर दोनों चरणोंकी, **'माधवाय नमः'** से दोनों घुटनोंकी, **'कामप्रदाय नमः'** से गुह्यभागकी तथा **'वामनमूर्तये नमः'** कहकर कटिकी पूजा करे। **'पद्मनाभाय नमः'** से नाभिकी, **'विश्वमूर्तये नमः'** से पेटकी, **'ज्ञानगम्याय नमः'** से हृदयकी, **'वैकुण्ठगामिने नमः'** से कण्ठकी, **'सहस्त्रबाहवे नमः'** से बाहुओंकी, **'योगरूपिणे नमः'** से नेत्रोंकी, **'सहस्त्रशीर्ष्णे नमः'** से सिरकी तथा **'माधवाय नमः'** कहकर सम्पूर्ण अंगोंकी पूजा करनी चाहिये।

इस प्रकार विधिवत् पूजा करके विधिके अनुसार अर्घ्य देना चाहिये। जलयुक्त शंखके ऊपर सुन्दर नारियल रखकर उसमें रक्षासूत्र लपेट दे। फिर दोनों हाथोंमें वह शंख आदि लेकर निम्नांकित मन्त्र पढ़े—

स्मृतो हरसि पापानि यदि नित्यं जनार्दन॥
दुःस्वप्नं दुर्निमित्तानि मनसा दुर्विचिन्तितम्।
नारकं तु भयं देव भयं दुर्गतिसंभवम्॥
यन्मम स्यान्महादेव ऐहिकं पारलौकिकम्।
तेन देवेश मां रक्ष गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥
सदा भक्तिर्ममैवास्तु दामोदर तवोपरि।

(३५।६९—७२)

'जनार्दन! यदि आप सदा स्मरण करनेपर मनुष्यके सब पाप हर लेते हैं तो देव! मेरे दुःस्वप्न, अपशकुन, मानसिक दुश्चिन्ता, नारकीय भय तथा दुर्गतिजन्य त्रास हर लीजिये। महादेव! देवेश्वर! मेरे लिये इहलोक तथा परलोकमें जो भय हैं, उनसे मेरी रक्षा कीजिये तथा यह अर्घ्य ग्रहण कीजिये। आपको नमस्कार है। दामोदर! सदा आपमें ही मेरी भक्ति बनी रहे।'

तत्पश्चात् धूप, दीप और नैवेद्य अर्पण करके भगवान्‌की आरती उतारे। उनके मस्तकपर शंख घुमाये। यह सब विधान पूरा करके सद्‌गुरुकी पूजा करे। उन्हें सुन्दर वस्त्र, पगड़ी तथा अंगा दे। साथ ही जूता, छत्र, अँगूठी, कमण्डलु, भोजन, पान, सप्तधान्य तथा दक्षिणा दे। गुरु और भगवान्‌की पूजाके पश्चात् श्रीहरिके समीप जागरण करे। जागरणमें गीत, नृत्य तथा अन्यान्य उपचारोंका भी समावेश रहना चाहिये। तदनन्तर रात्रिके अन्तमें विधिपूर्वक भगवान्‌को अर्घ्य दे स्नान आदि कार्य करके ब्राह्मणोंको भोजन करानेके पश्चात् स्वयं भोजन करे।

महादेवजी कहते हैं—ब्रह्मन्! 'त्रिस्पृशा' व्रतका यह अद्‌भुत उपाख्यान सुनकर मनुष्य गंगातीर्थमें स्नान करनेका पुण्य-फल प्राप्त करता है। त्रिस्पृशाके उपवाससे हजार अश्वमेध और सौ वाजपेय यज्ञोंका फल मिलता है। यह व्रत करनेवाला पुरुष पितृकुल, मातृकुल तथा पत्नीकुलके सहित विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। करोड़ों तीर्थोंमें जो पुण्य तथा करोड़ों क्षेत्रोंमें जो फल

मिलता है, वह त्रिस्पृशाके उपवाससे मनुष्य प्राप्त कर लेता है। द्विजश्रेष्ठ! जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा अन्य जातिके लोग भगवान् श्रीकृष्णमें मन लगाकर इस व्रतको करते हैं, वे सब इस धराधामको छोड़नेपर मुक्त हो जाते हैं। इसमें द्वादशाक्षर मन्त्रका जप करना चाहिये। यह मन्त्रोंमें मन्त्रराज माना गया है। इसी प्रकार त्रिस्पृशा सब व्रतोंमें उत्तम बतायी गयी है। जिसने इसका व्रत किया, उसने सम्पूर्ण व्रतोंका अनुष्ठान कर लिया। पूर्वकालमें स्वयं ब्रह्माजीने इस व्रतको किया था, तदनन्तर अनेकों ऋषियोंने भी इसका अनुष्ठान किया; फिर दूसरोंकी तो बात ही क्या है। नारद! यह त्रिस्पृशा मोक्ष देनेवाली है।

पक्षवर्धिनी एकादशी तथा जागरणका माहात्म्य

नारदजीने पूछा—महादेव! 'पक्षवर्धिनी' नामवाली तिथि कैसी होती है, जिसका व्रत करनेसे मनुष्य महान् पापसे छुटकारा पा जाता है?

श्रीमहादेवजी बोले—यदि अमावास्या अथवा पूर्णिमा साठ दण्डकी होकर दिन-रात अविकल रूपसे रहे और दूसरे दिन प्रतिपदामें भी उसका कुछ अंश चला गया हो तो वह 'पक्षवर्धिनी' मानी जाती है। उस पक्षकी एकादशीका भी यही नाम है, वह दस हजार अश्वमेध-यज्ञोंके समान फल देनेवाली होती है। अब उस दिन की जानेवाली पूजाविधिका वर्णन करता हूँ, जिससे भगवान् लक्ष्मीपतिको संतोष प्राप्त होता है। सबसे पहले जलसे भरे हुए कलशकी स्थापना करनी चाहिये। कलश नवीन हो—फूटा-टूटा न हो और चन्दनसे चर्चित किया गया हो। उसके भीतर पंचरत्न डाले गये हों तथा वह कलश फूलकी मालाओंसे आवृत हो। उसके ऊपर एक ताँबेका पात्र रखकर उसमें गेहूँ भर देना चाहिये। उस पात्रमें भगवान्के सुवर्णमय विग्रहकी स्थापना करे। जिस मासमें पक्षवर्धिनी तिथि पड़ी हो, उसीका नाम भगवद्विग्रहका भी नाम समझना चाहिये। जगत्के स्वामी देवेश्वर जगन्नाथका स्वरूप अत्यन्त मनोहर बनवाना चाहिये। फिर विधिपूर्वक पंचामृतसे भगवान्को नहलाना तथा कुंकुम, अगरजा और चन्दनसे अनुलेप करना चाहिये। फिर दो वस्त्र अर्पण करने चाहिये; उनके साथ छत्र और जूते भी हों। इसके बाद कलशपर विराजमान देवेश्वर श्रीहरिकी पूजा आरम्भ करे। '**पद्मनाभाय नमः**' कहकर दोनों चरणोंकी, '**विश्वमूर्तये नमः**' बोलकर दोनों घुटनोंकी, '**ज्ञानगम्याय नमः**' से दोनों जाँघोंकी, '**ज्ञानप्रदाय नमः**' से कटिभागकी, '**विश्वनाथाय नमः**' से उदरकी, '**श्रीधराय नमः**' से हृदयकी, '**कौस्तुभ-कण्ठाय नमः**' से कण्ठकी, '**क्षत्रान्तकारिणे नमः**' से दोनों बाँहोंकी, '**व्योममूर्ध्ने नमः**' से ललाटकी तथा '**सर्वरूपिणे नमः**' से सिरकी पूजा करनी चाहिये। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न अस्त्रोंका भी उनके नाममन्त्रद्वारा पूजन करना उचित है। अन्तमें '**दिव्यरूपिणे नमः**' कहकर भगवान्के सम्पूर्ण अंगोंकी पूजा करनी चाहिये।

इस तरह विधिवत् पूजन करके विद्वान् पुरुष सुन्दर नारियलके द्वारा चक्रधारी देवदेव श्रीहरिको अर्घ्य प्रदान करे। इस अर्घ्यदानसे ही व्रत पूर्ण होता है। अर्घ्यदानका मन्त्र इस प्रकार है—

संसारार्णवमग्नं भो मामुद्धर जगत्पते॥
त्वमीशः सर्वलोकानां त्वं साक्षाच्च जगत्पतिः।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं पद्मनाभ नमोऽस्तु ते॥

(३८। १४-१५)

'जगदीश्वर! मैं संसारसागरमें डूब रहा हूँ, मेरा उद्धार कीजिये। आप सम्पूर्ण लोकोंके ईश्वर तथा साक्षात् जगत्पति परमेश्वर हैं। पद्मनाभ! आपको नमस्कार है। मेरा दिया हुआ अर्घ्य स्वीकार कीजिये।'

तत्पश्चात् भगवान् केशवको भक्तिपूर्वक भाँति-भाँतिके नैवेद्य अर्पण करे, जो मनको अत्यन्त प्रिय लगनेवाले और मधुर आदि छहों रसोंसे युक्त हों। इसके बाद भगवान्को भक्तिके साथ कपूरयुक्त ताम्बूल निवेदन करे। घी अथवा तिलके तेलसे दीपक जलाकर रखे।

यह सब करनेके पश्चात् गुरुकी पूजा करे। उन्हें वस्त्र, पगड़ी तथा जामा दे। अपनी शक्तिके अनुसार दक्षिणा भी दे। फिर भोजन और ताम्बूल निवेदन करके आचार्यको संतुष्ट करे। निर्धन पुरुषोंको भी यथाशक्ति प्रयत्नपूर्वक पक्षवर्धिनी एकादशीका व्रत करना चाहिये। तदनन्तर गीत, नृत्य, पुराण-पाठ तथा हर्षके साथ रात्रिमें जागरण करे।

जो मनीषी पुरुष पक्षवर्धिनी एकादशीका माहात्म्य श्रवण करते हैं, उनके द्वारा सम्पूर्ण व्रतका अनुष्ठान हो जाता है। पंचाग्निसेवन तथा तीर्थोंमें साधना करनेसे जो पुण्य होता है, वह श्रीविष्णुके समीप जागरण करनेसे ही प्राप्त हो जाता है। पक्षवर्धिनी एकादशी परम पुण्यमयी तथा सब पापोंका नाश करनेवाली है। ब्रह्मन्! यह उपवास करनेवाले मनुष्योंकी करोड़ों हत्याओंका भी विनाश कर डालती है। मुने! पूर्वकालमें महर्षि वसिष्ठ, भरद्वाज, ध्रुव तथा राजा अम्बरीषने भी इसका व्रत किया था। यह तिथि श्रीविष्णुको अत्यन्त प्रिय है। यह काशी तथा द्वारकापुरीके समान पवित्र है। भक्त पुरुषके उपवास करनेपर यह उसे मनोवांछित फल प्रदान करती है। जैसे सूर्योदय होनेपर तत्काल अन्धकारका नाश हो जाता है, उसी प्रकार पक्षवर्धिनीका व्रत करनेसे पापराशि नष्ट हो जाती है।

नारद! अब मैं एकादशीकी रातमें जागरण करनेका माहात्म्य बतलाऊँगा, ध्यान देकर सुनो। भक्त पुरुषको चाहिये कि एकादशी तिथिको रात्रिके समय भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णुका पूजन करके वैष्णवोंके साथ उनके सामने जागरण करे। जो गीत, वाद्य, नृत्य, पुराण-पाठ, धूप, दीप, नैवेद्य, पुष्प, चन्दनानुलेप, फल, अर्घ्य, श्रद्धा, दान, इन्द्रियसंयम, सत्यभाषण तथा शुभकर्मके अनुष्ठानपूर्वक प्रसन्नताके साथ श्रीहरिके समक्ष जागरण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान्‌का प्रिय होता है। जो विद्वान् मनुष्य भगवान् विष्णुके समीप जागरण करते, श्रीकृष्णकी भावना करते हुए कभी नींद नहीं लेते तथा मन-ही-मन बारम्बार श्रीकृष्णका नामोच्चारण करते हैं, उन्हें परम धन्य समझना चाहिये। विशेषत: एकादशीकी रातमें जागनेपर तो वे और भी धन्यवादके पात्र हैं। जागरणके समय एक क्षण गोविन्दका नाम लेनेसे व्रतका चौगुना फल होता है, एक पहरतक नामोच्चारणसे कोटिगुना फल मिलता है और चार पहरतक नामकीर्तन करनेसे असीम फलकी प्राप्ति होती है। श्रीविष्णुके आगे आधे निमेष भी जागनेपर कोटिगुना फल होता है, उसकी संख्या नहीं है। जो नरश्रेष्ठ भगवान् केशवके आगे नृत्य करता है, उसके पुण्यका फल जन्मसे लेकर मृत्युकालतक कभी क्षीण नहीं होता। महाभाग! प्रत्येक पहरमें विस्मय और उत्साहसे युक्त हो पाप तथा आलस्य आदि छोड़कर निर्वेदशून्य हृदयसे श्रीहरिके समक्ष नमस्कार और नीराजनासे युक्त आरती उतारनी चाहिये। जो मनुष्य एकादशीको भक्तिपूर्वक अनेक गुणोंसे युक्त जागरण करता है, वह फिर इस पृथ्वीपर जन्म नहीं लेता। जो धनकी कंजूसी छोड़कर पूर्वोक्त प्रकारसे एकादशीको भक्तिसहित जागरण करता है, वह परमात्मामें लीन होता है।

जो भगवान् विष्णुके लिये जागरणका अवसर प्राप्त होनेपर उसका उपहास करता है, वह साठ हजार वर्षोंतक विष्ठाका कीड़ा होता है। प्रतिदिन वेद-शास्त्रमें परायण तथा यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाला ही क्यों न हो, यदि एकादशीकी रातमें जागरणका समय आनेपर उसकी निन्दा करता है तो उसका अध:पतन होता है। जो मेरी (शिवकी) पूजा करते हुए विष्णुकी निन्दामें तत्पर रहता है, वह अपनी इक्कीस पीढ़ियोंके साथ नरकमें पड़ता है। विष्णु ही शिव हैं और शिव ही विष्णु हैं। दोनों एक ही मूर्तिकी दो झाँकियोंके समान स्थित हैं, अत: किसी प्रकार भी इनकी निन्दा नहीं करनी चाहिये। यदि जागरणके समय पुराणकी कथा बाँचनेवाला कोई न हो तो नाच-गान कराना चाहिये। यदि कथावाचक मौजूद हों तो पहले पुराणका ही पाठ होना चाहिये। वत्स! श्रीविष्णुके लिये जागरण करनेपर एक हजार अश्वमेध तथा दस हजार वाजपेय यज्ञोंसे भी करोड़गुना पुण्य प्राप्त होता है। श्रीहरिकी प्रसन्नताके लिये जागरण करके मनुष्य पिता, माता तथा पत्नी—तीनोंके कुलोंका उद्धार कर देता है।

यदि एकादशीके व्रतका दिन दशमीसे विद्ध हो तो

श्रीहरिका पूजन, जागरण और दान आदि सब व्यर्थ होता है—ठीक उसी तरह, जैसे कृतघ्न मनुष्योंके साथ किया हुआ नेकीका बर्ताव व्यर्थ हो जाता है। जो वेधरहित एकादशीको जागरण करते हैं, उनके बीचमें साक्षात् श्रीहरि संतुष्ट होकर नृत्य करते हैं। जो श्रीहरिके लिये नृत्य, गीत और जागरण करता है, उसके लिये ब्रह्माजीका लोक, मेरा कैलासधाम तथा भगवान् श्रीविष्णुका वैकुण्ठधाम—सब-के-सब निश्चय ही सुलभ हैं। जो स्वयं श्रीहरिके लिये जागरण करते हुए और लोगोंको भी जगाये रखता है, वह विष्णुभक्त पुरुष अपने पितरोंके साथ वैकुण्ठलोकमें निवास करता है। जो श्रीहरिके लिये जागरण करनेकी लोगोंको सलाह देता है, वह मनुष्य साठ हजार वर्षोंतक श्वेतद्वीपमें निवास करता है। नारद! मनुष्य करोड़ों जन्मोंमें जो पाप संचित करता है, वह सब श्रीहरिके लिये एक रात जागरण करनेपर नष्ट हो जाता है। जो शालग्राम-शिलाके समक्ष जागरण करते हैं, उन्हें एक-एक पहरमें कोटि-कोटि तीर्थोंके सेवनका फल प्राप्त होता है। जागरणके लिये भगवान्के मन्दिरमें जाते समय मनुष्य जितने पग चलता है, वे सभी अश्वमेध-यज्ञके समान फल देनेवाले होते हैं। पृथ्वीपर चलते समय दोनों चरणोंपर जितने धूलिकण गिरते हैं, उतने हजार वर्षोंतक जागरण करनेवाला पुरुष दिव्यलोकमें निवास करता है।

इसलिये प्रत्येक द्वादशीको जागरणके लिये अपने घरसे भगवान् विष्णुके मन्दिरमें जाना चाहिये। इससे कलिमलका विनाश होता है। दूसरोंकी निन्दामें संलग्न होना, मनका प्रसन्न न रहना, शास्त्रचर्चाका न होना, संगीतका अभाव, दीपक न जलाना, शक्तिके अनुसार पूजाके उपचारोंका न होना, उदासीनता, निन्दा तथा कलह—इन दोषोंसे युक्त नौ प्रकारका जागरण अधम माना गया है।[1] जिस जागरणमें शास्त्रकी चर्चा, सात्त्विक नृत्य, संगीत, वाद्य, ताल, तैलयुक्त दीपक, कीर्तन, भक्तिभावना, प्रसन्नता, संतोषजनकता, समुदायकी उपस्थिति तथा लोगोंके मनोरंजनका सात्त्विक साधन हो, वह उक्त बारह गुणोंसे युक्त जागरण भगवान्को बहुत प्रिय है। शुक्ल और कृष्ण दोनों ही पक्षोंकी एकादशीको प्रयत्नपूर्वक जागरण करना चाहिये।[2] नारद! परदेशमें जानेपर मार्गका थका-माँदा होनेपर भी जो द्वादशीको भगवान् वासुदेवके निमित्त किये जानेवाले जागरणका नियम नहीं छोड़ता, वह मुझे विशेष प्रिय है। जो एकादशीके दिन भोजन कर लेता है, उसे पशुसे भी गया-बीता समझना चाहिये; वह न तो शिवका उपासक है न सूर्यका, न देवीका भक्त है और न गणेशजीका। जो एकादशीको जागरण करते हैं, उनका बाहर-भीतर यदि करोड़ों पापोंसे घिरा हो तो भी वे मुक्त हो जाते हैं। वेधरहित द्वादशीका व्रत और श्रीविष्णुके लिये किया जानेवाला जागरण यमदूतोंका मानमर्दन करनेवाला है। मुनिश्रेष्ठ! एकादशीको जागरण करनेवाले मनुष्य अवश्य मुक्त हो जाते हैं।

जो रातको भगवान् वासुदेवके समक्ष जागरणमें प्रवृत्त होनेपर प्रसन्नचित्त हो ताली बजाते हुए नृत्य करता, नाना प्रकारके कौतुक दिखाते हुए मुखसे गीत गाता, वैष्णवजनोंका मनोरंजन करते हुए श्रीकृष्ण-चरितका पाठ करता, रोमांचित होकर मुखसे बाजा बजाता तथा स्वेच्छानुसार धार्मिक आलाप करते हुए भाँति-भाँतिके नृत्यका प्रदर्शन करता है, वह भगवान्का प्रिय है। इन भावोंके साथ जो श्रीहरिके लिये जागरण करता है, उसे नैमिष तथा कोटितीर्थका फल प्राप्त होता है। जो शान्तचित्तसे श्रीहरिको धूप-आरती दिखाते हुए रातमें जागरण करता है, वह सात द्वीपोंका अधिपति होता है।

१- परापवादसंयुक्तं मन:प्रसादवर्जितम् । शास्त्रहीनमगान्धर्वं यथा दीपविवर्जितम्॥
शक्त्योपचाररहितमुदासीनं सनिन्दनम् । कलियुक्तं विशेषेण जागरं नवधाऽधमम्॥ (३९।५३-५४)

२-सशास्त्रं जागरं यच्च नृत्यगन्धर्वसंयुतम् । सवाद्यं तालसंयुक्तं सदीपं मधुभिर्युतम्॥
उच्चारैस्तु समायुक्तं यथोक्तैर्भक्तिभावितै: । प्रसन्नं तुष्टिजननं समूढं लोकरञ्जनम्॥
गुणैर्द्वादशभिर्युक्तं जागरं माधवप्रियम् । कर्तव्यं तत् प्रयत्नेन पक्षयो: शुक्लकृष्णयो:॥ (३९।५५—५७)

ब्रह्महत्याके समान भी जो कोई पाप हों, वे सब श्रीकृष्णकी प्रीतिके लिये जागरण करनेपर नष्ट हो जाते हैं। एक ओर उत्तम दक्षिणाके साथ समाप्त होनेवाले सम्पूर्ण यज्ञ और दूसरी ओर देवाधिदेव श्रीकृष्णको प्रिय लगनेवाला एकादशीका जागरण—दोनों समान हैं।

जहाँ भगवान्‌के लिये जागरण किया जाता है वहाँ काशी, पुष्कर, प्रयाग, नैमिषारण्य, शालग्राम नामक महाक्षेत्र, अर्बुदारण्य (आबू), शूकरक्षेत्र (सोरों), मथुरा तथा सम्पूर्ण तीर्थ निवास करते हैं। समस्त यज्ञ और चारों वेद भी श्रीहरिके निमित्त किये जानेवाले जागरणके स्थानपर उपस्थित होते हैं। गंगा, सरस्वती, तापी, यमुना, शतद्रु (सतलज), चन्द्रभागा तथा वितस्ता आदि सम्पूर्ण नदियाँ भी वहाँ जाती हैं। द्विजश्रेष्ठ! सरोवर, कुण्ड और समस्त समुद्र भी एकादशीको जागरणस्थानपर जाते हैं। जो मनुष्य श्रीकृष्णप्रीतिके लिये होनेवाले जागरणके समय वीणा आदि बाजोंसे हर्षमें भरकर नृत्य करते और पद गाते हैं, वे देवताओंके लिये भी आदरणीय होते हैं। इस प्रकार जागरण करके श्रीमहाविष्णुकी पूजा करे और द्वादशीको अपनी शक्तिके अनुसार कुछ वैष्णव पुरुषोंको निमन्त्रित करके उनके साथ बैठकर पारण करे।

द्वादशीको सदा पवित्र और मोक्षदायिनी समझना चाहिये। उस दिन प्रातःस्नान करके श्रीहरिकी पूजा करे और उन्हें निम्नांकित मन्त्र पढ़कर अपना व्रत समर्पण करे—

अज्ञानतिमिरान्धस्य व्रतेनानेन केशव॥
प्रसीद सुमुखो भूत्वा ज्ञानदृष्टिप्रदो भव।

(३९।८१-८२)

'केशव! मैं अज्ञानरूपी रतौंधीसे अंधा हो रहा हूँ, आप इस व्रतसे प्रसन्न हों और प्रसन्न होकर मुझे ज्ञानदृष्टि प्रदान करें।'

इसके बाद यथासम्भव पारण करना चाहिये। पारण समाप्त होनेपर इच्छानुसार विहित कर्मोंका अनुष्ठान करे। नारद! यदि दिनमें पारणके समय थोड़ी भी द्वादशी न हो तो मुक्तिकामी पुरुषको रातको ही [पिछले पहरमें] पारण कर लेना चाहिये। ऐसे समयमें रात्रिको भोजन करनेका दोष नहीं लगता। रात्रिके पहले और पिछले पहरमें दिनकी भाँति कर्म करने चाहिये। यदि पारणके दिन बहुत थोड़ी द्वादशी हो तो उषःकालमें ही प्रातःकाल तथा मध्याह्नकालकी भी संध्या कर लेनी चाहिये। इस पृथ्वीपर जिस मनुष्यने द्वादशी-व्रतको सिद्ध कर लिया है, उसका पुण्य-फल बतलानेमें मैं भी समर्थ नहीं हूँ। एकादशी देवी सब पुण्योंसे अधिक है तथा यह सर्वदा मोक्ष देनेवाली है। यह द्वादशी नामक व्रत महान् पुण्यदायक है। जो इसका साधन कर लेते हैं, वे महापुरुष समस्त कामनाओंको प्राप्त कर लेते हैं। अम्बरीष आदि सभी भक्त, जो इस भूमण्डलमें विख्यात हैं, द्वादशी-व्रतका साधन करके ही विष्णुधामको प्राप्त हुए हैं। यह माहात्म्य जो मैंने तुम्हें बताया है, सत्य है! सत्य है!! सत्य है!!! श्रीविष्णुके समान कोई देवता नहीं है और द्वादशीके समान कोई तिथि नहीं है। इस तिथिको जो कुछ दान किया जाता, भोगा जाता तथा पूजन आदि किया जाता है, वह सब भगवान् माधवके पूजित होनेपर पूर्णताको प्राप्त होता है। अधिक क्या कहा जाय, भक्तवल्लभ श्रीहरि द्वादशी-व्रत करनेवाले पुरुषोंकी कामना कल्पान्ततक पूर्ण करते रहते हैं। द्वादशीको किया हुआ सारा दान सफल होता है।

एकादशीके जया आदि भेद, नक्तव्रतका स्वरूप, एकादशीकी विधि, उत्पत्ति-कथा और महिमाका वर्णन

नारदजीने पूछा—महादेव! महाद्वादशीका उत्तम व्रत कैसा होता है। सर्वेश्वर प्रभो! उसके व्रतसे जो कुछ भी फल प्राप्त होता है, उसे बतानेकी कृपा कीजिये।

महादेवजीने कहा—ब्रह्मन्! यह एकादशी महान् पुण्यफलको देनेवाली है। श्रेष्ठ मुनियोंको भी इसका अनुष्ठान करना चाहिये। विशेष-विशेष नक्षत्रोंका योग होनेपर यह तिथि जया, विजया, जयन्ती तथा पापनाशिनी—इन चार नामोंसे विख्यात होती है। ये सभी पापोंका नाश करनेवाली हैं। इनका व्रत अवश्य करना चाहिये। जब शुक्लपक्षकी एकादशीको 'पुनर्वसु' नक्षत्र हो तो वह उत्तम तिथि 'जया' कहलाती है। उसका व्रत करके मनुष्य निश्चय ही पापसे मुक्त हो जाता है। जब शुक्लपक्षकी द्वादशीको 'श्रवण' नक्षत्र हो तो वह उत्तम तिथि 'विजया' के नामसे विख्यात होती है; इसमें किया हुआ दान और ब्राह्मण-भोजन सहस्रगुना फल देनेवाला है तथा होम और उपवास तो सहस्रगुनेसे भी अधिक फल देता है। जब शुक्लपक्षकी द्वादशीको 'रोहिणी' नक्षत्र हो तो वह तिथि 'जयन्ती' कहलाती है; वह सब पापोंको हरनेवाली है। उस तिथिको पूजित होनेपर भगवान् गोविन्द निश्चय ही मनुष्यके सब पापोंको धो डालते हैं। जब कभी शुक्लपक्षकी द्वादशीको 'पुष्य' नक्षत्र हो तो वह महापुण्यमयी 'पापनाशिनी' तिथि कहलाती है। जो एक वर्षतक प्रतिदिन एक प्रस्थ तिल दान करता है तथा जो केवल 'पापनाशिनी' एकादशीको उपवास करता है, उन दोनोंका पुण्य समान होता है। उस तिथिको पूजित होनेपर संसारके स्वामी सर्वेश्वर श्रीहरि संतुष्ट होते हैं तथा प्रत्यक्ष दर्शन भी देते हैं। उस दिन प्रत्येक पुण्यकर्मका अनन्त फल माना गया है। सगरनन्दन ककुत्स्थ, नहुष तथा राजा गाधिने उस तिथिको भगवान्की आराधना की थी, जिससे भगवान्ने इस पृथ्वीपर उन्हें सब कुछ दिया था। इस तिथिके सेवनसे मनुष्य सात जन्मोंके कायिक, वाचिक और मानसिक पापसे मुक्त हो जाता है। इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। पुष्य नक्षत्रसे युक्त एकमात्र पापनाशिनी एकादशीका व्रत करके मनुष्य एक हजार एकादशियोंके व्रतका फल प्राप्त कर लेता है। उस दिन स्नान, दान, जप, होम, स्वाध्याय और देवपूजा आदि जो कुछ भी किया जाता है, उसका अक्षय फल माना गया है। इसलिये प्रयत्नपूर्वक इसका व्रत करना चाहिये। जिस समय धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर पंचम अश्वमेध-यज्ञका स्नान कर चुके, उस समय उन्होंने यदुवंशावतंस भगवान् श्रीकृष्णसे इस प्रकार प्रश्न किया।

युधिष्ठिर बोले—प्रभो! नक्तव्रत तथा एकभुक्त व्रतका पुण्य एवं फल क्या है? जनार्दन! यह सब मुझे बताइये।

श्रीभगवान्ने कहा—कुन्तीनन्दन! हेमन्त-ऋतुमें जब परम कल्याणमय मार्गशीर्ष मास आये, तब उसके कृष्णपक्षकी द्वादशी तिथिको उपवास (व्रत) करना चाहिये। उसकी विधि इस प्रकार है—दृढ़तापूर्वक उत्तम

व्रतका पालन करनेवाला शुद्धचित्त पुरुष दशमीको सदा एकभुक्त रहे अथवा शौच-सन्तोषादि नियमोंके पालनपूर्वक नक्तव्रतके स्वरूपको जानकर उसके अनुसार एक बार भोजन करे। दिनके आठवें भागमें जब सूर्यका तेज मन्द पड़ जाता है, उसे 'नक्त' जानना चाहिये। रातको भोजन करना 'नक्त' नहीं है। गृहस्थके लिये तारोंके दिखायी देनेपर नक्त-भोजनका विधान है और संन्यासीके लिये दिनके आठवें भागमें; क्योंकि उसके लिये रातमें भोजनका निषेध है। कुन्तीनन्दन! दशमीकी रात व्यतीत होनेपर एकादशीको प्रातःकाल व्रत करनेवाला पुरुष व्रतका नियम ग्रहण करे और सबेरे तथा मध्याह्नको पवित्रताके लिये स्नान करे। कुएँका स्नान निम्न श्रेणीका है। बावलीमें स्नान करना मध्यम, पोखरेमें उत्तम तथा नदीमें उससे भी उत्तम माना गया है। जहाँ जलमें खड़ा होनेपर जल-जन्तुओंको पीड़ा होती हो, वहाँ स्नान करनेपर पाप और पुण्य बराबर होता है। यदि जलको छानकर शुद्ध कर ले तो घरपर भी स्नान करना उत्तम माना गया है। इसलिये पाण्डव श्रेष्ठ! घरपर उक्त विधिसे स्नान करे। स्नानके पहले निम्नांकित मन्त्र पढ़कर शरीरमें मृत्तिका लगा ले—

अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे।
मृत्तिके हर मे पापं यन्मया पूर्वसञ्चितम्॥
(४०।२८)

'वसुन्धरे! तुम्हारे ऊपर अश्व और रथ चला करते हैं। भगवान् विष्णुने भी वामन अवतार धारण कर तुम्हें अपने पैरोंसे नापा था। मृत्तिके! मैंने पूर्वकालमें जो पाप संचित किया है, उस मेरे पापको हर लो।'

व्रती पुरुषको चाहिये कि वह एकचित्त और दृढ़-संकल्प होकर क्रोध तथा लोभका परित्याग करे। अन्त्यज, पाखण्डी, मिथ्यावादी, ब्राह्मणनिन्दक, अगम्या स्त्रीके साथ गमन करनेवाले अन्यान्य दुराचारी, परधनहारी तथा परस्त्रीगामी मनुष्योंसे वार्तालाप न करे। भगवान् केशवकी पूजा करके उन्हें नैवेद्य भोग लगाये। घरमें भक्तियुक्त मनसे दीपक जलाकर रखे। पार्थ! उस दिन निद्रा और मैथुनका परित्याग करे। धर्मशास्त्रसे मनोरंजन करते हुए सम्पूर्ण दिन व्यतीत करे। नृपश्रेष्ठ! भक्तियुक्त होकर रात्रिमें जागरण करे, ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे और प्रणाम करके उनसे त्रुटियोंके लिये क्षमा माँगे। जैसी कृष्णपक्षकी एकादशी है, वैसी ही शुक्लपक्षकी भी है। इसी विधिसे उसका भी व्रत करना चाहिये।

पार्थ! द्विजको उचित है कि वह शुक्ल और कृष्णपक्षकी एकादशीके व्रती लोगोंमें भेदबुद्धि न उत्पन्न करे। शंखोद्धार तीर्थमें स्नान करके भगवान् गदाधरका दर्शन करनेसे जो पुण्य होता है तथा संक्रान्तिके अवसरपर चार लाखका दान देकर जो पुण्य प्राप्त किया जाता है, वह सब एकादशीव्रतकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं है। प्रभासक्षेत्रमें चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणके अवसरपर स्नान-दानसे जो पुण्य होता है, वह निश्चय ही एकादशीको उपवास करनेवाले मनुष्यको मिल जाता है। केदारक्षेत्रमें जल पीनेसे पुनर्जन्म नहीं होता। एकादशीका भी ऐसा ही माहात्म्य है। यह भी गर्भवासका निवारण करनेवाली है। पृथ्वीपर अश्वमेध-यज्ञका जो फल होता है, उससे सौगुना अधिक फल एकादशीव्रत करनेवालेको मिलता है। जिसके घरमें तपस्वी एवं श्रेष्ठ ब्राह्मण भोजन करते हैं उसको जिस फलकी प्राप्ति होती है, वह एकादशीव्रत करनेवालेको भी अवश्य मिलता है। वेदांगोंके पारगामी विद्वान् ब्राह्मणको सहस्र गोदान करनेसे जो पुण्य होता है, उससे सौगुना पुण्य एकादशीव्रत करनेवालेको प्राप्त होता है। इस प्रकार व्रतीको वह पुण्य प्राप्त होता है, जो देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। रातको भोजन कर लेनेपर उससे आधा पुण्य प्राप्त होता है तथा दिनमें एक बार भोजन करनेसे देहधारियोंको नक्त-भोजनका आधा फल मिलता है। जीव जबतक भगवान् विष्णुके प्रिय दिवस एकादशीको उपवास नहीं करता, तभीतक तीर्थ, दान और नियम अपने महत्त्वकी गर्जना करते हैं। इसलिये पाण्डव-श्रेष्ठ! तुम इस व्रतका अनुष्ठान करो। कुन्तीनन्दन! यह गोपनीय एवं उत्तम व्रत है, जिसका मैंने तुमसे वर्णन किया है। हजारों यज्ञोंका अनुष्ठान भी एकादशी-व्रतकी तुलना नहीं कर सकता।

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! पुण्यमयी एकादशी तिथि कैसे उत्पन्न हुई? इस संसारमें क्यों पवित्र मानी गयी? तथा देवताओंको कैसे प्रिय हुई?

श्रीभगवान् बोले—कुन्तीनन्दन! प्राचीन समयकी बात है, सत्ययुगमें मुर नामक दानव रहता था। वह बड़ा ही अद्भुत, अत्यन्त रौद्र तथा सम्पूर्ण देवताओंके लिये भयंकर था। उस कालरूपधारी दुरात्मा महासुरने इन्द्रको भी जीत लिया था। सम्पूर्ण देवता उससे परास्त होकर स्वर्गसे निकाले जा चुके थे और शंकित तथा भयभीत होकर पृथ्वीपर विचरा करते थे। एक दिन सब देवता महादेवजीके पास गये। वहाँ इन्द्रने भगवान् शिवके आगे सारा हाल कह सुनाया।

इन्द्र बोले—महेश्वर! ये देवता स्वर्गलोकसे भ्रष्ट होकर पृथ्वीपर विचर रहे हैं। मनुष्योंमें रहकर इनकी शोभा नहीं होती। देव! कोई उपाय बतलाइये। देवता किसका सहारा लें?

महादेवजीने कहा—देवराज! जहाँ सबको शरण देनेवाले, सबकी रक्षामें तत्पर रहनेवाले जगत्के स्वामी भगवान् गरुडध्वज विराजमान हैं, वहाँ जाओ। वे तुमलोगोंकी रक्षा करेंगे।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—युधिष्ठिर! महादेवजीकी बात सुनकर परम बुद्धिमान् देवराज इन्द्र सम्पूर्ण देवताओंके साथ वहाँ गये। भगवान् गदाधर क्षीरसागरके जलमें सो रहे थे। उनका दर्शन करके इन्द्रने हाथ जोड़कर स्तुति आरम्भ की।

इन्द्र बोले—देवदेवेश्वर! आपको नमस्कार है। देवता और दानव दोनों ही आपकी वन्दना करते हैं। पुण्डरीकाक्ष! आप दैत्योंके शत्रु हैं। मधुसूदन! हमलोगोंकी रक्षा कीजिये। जगन्नाथ! सम्पूर्ण देवता मुर नामक दानवसे भयभीत होकर आपकी शरणमें आये हैं।

भक्तवत्सल! हमें बचाइये। देवदेवेश्वर! हमें बचाइये। जनार्दन! हमारी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। दानवोंका विनाश करनेवाले कमलनयन! हमारी रक्षा कीजिये। प्रभो! हम सब लोग आपके समीप आये हैं। आपकी ही शरणमें आ पड़े हैं। भगवन्! शरणमें आये हुए देवताओंकी सहायता कीजिये। देव! आप ही पति, आप ही मति, आप ही कर्ता और आप ही कारण हैं। आप ही सब लोगोंकी माता और आप ही इस जगत्के पिता हैं। भगवन्! देवदेवेश्वर! शरणागतवत्सल! देवता भयभीत होकर आपकी शरणमें आये हैं। प्रभो! अत्यन्त उग्र स्वभाववाले महाबली मुर नामक दैत्यने सम्पूर्ण देवताओंको जीतकर इन्हें स्वर्गसे निकाल दिया है।*

* ॐ नमो देवदेवेश देवदानववन्दित। दैत्यारे पुण्डरीकाक्ष त्राहि नो मधुसूदन॥
सुराः सर्वे समायाता भयभीताश्च दानवात्। शरणं त्वां जगन्नाथ त्राहि नो भक्तवत्सल॥
त्राहि नो देवदेवेश त्राहि त्राहि जनार्दन। त्राहि वै पुण्डरीकाक्ष दानवानां विनाशक॥
त्वत्समीपं गताः सर्वे त्वामेव शरणं प्रभो। शरणागतदेवानां साहाय्यं कुरु वै प्रभो॥
त्वं पतिस्त्वं मतिर्देव त्वं कर्ता त्वं च कारणम्। त्वं माता सर्वलोकानां त्वमेव जगतः पिता॥
भगवन् देवदेवेश शरणागतवत्सल। शरणं तव चाऽऽयाता भयभीताश्च देवताः॥
देवता निर्जिताः सर्वाः स्वर्गभ्रष्टाः कृता विभो। अत्युग्रेण हि दैत्येन मुरनाम्ना महौजसा॥ (४०।५७—६३)

इन्द्रकी बात सुनकर भगवान् विष्णु बोले—'देवराज! वह दानव कैसा है? उसका रूप और बल कैसा है तथा उस दुष्टके रहनेका स्थान कहाँ है?'

इन्द्र बोले—देवेश्वर! पूर्वकालमें ब्रह्माजीके वंशमें तालजंघ नामक एक महान् असुर उत्पन्न हुआ था, जो अत्यन्त भयंकर था। उसका पुत्र मुर दानवके नामसे विख्यात हुआ। वह भी अत्यन्त उत्कट, महापराक्रमी और देवताओंके लिये भयंकर है। चन्द्रावती नामसे प्रसिद्ध एक नगरी है, उसीमें स्थान बनाकर वह निवास करता है। उस दैत्यने समस्त देवताओंको परास्त करके स्वर्गलोकसे बाहर कर दिया है। उसने एक दूसरे ही इन्द्रको स्वर्गके सिंहासनपर बैठाया है। अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, वायु तथा वरुण भी उसने दूसरे ही बनाये हैं। जनार्दन! मैं सच्ची बात बता रहा हूँ। उसने सब कोई दूसरे ही कर लिये हैं। देवताओंको तो उसने प्रत्येक स्थानसे वंचित कर दिया है।

इन्द्रका कथन सुनकर भगवान् जनार्दनको बड़ा क्रोध हुआ। वे देवताओंको साथ लेकर चन्द्रावतीपुरीमें गये। देवताओंने देखा, दैत्यराज बारम्बार गर्जना कर रहा है; उससे परास्त होकर सम्पूर्ण देवता दसों दिशाओंमें भाग गये। अब वह दानव भगवान् विष्णुको देखकर बोला—'खड़ा रह, खड़ा रह।' उसकी ललकार सुनकर भगवान्के नेत्र क्रोधसे लाल हो गये। वे बोले—'अरे दुराचारी दानव! मेरी इन भुजाओंको देख।' यह कहकर श्रीविष्णुने अपने दिव्य बाणोंसे सामने आये हुए दुष्ट दानवोंको मारना आरम्भ किया। दानव भयसे विह्वल हो उठे। पाण्डुनन्दन! तत्पश्चात् श्रीविष्णुने दैत्य-सेनापर चक्रका प्रहार किया। उससे छिन्न-भिन्न होकर सैकड़ों योद्धा मौतके मुखमें चले गये। इसके बाद भगवान् मधुसूदन बदरिकाश्रमको चले गये। वहाँ सिंहावती नामकी गुफा थी, जो बारह योजन लम्बी थी। पाण्डुनन्दन! उस गुफामें एक ही दरवाजा था। भगवान् विष्णु उसीमें सो रहे। दानव मुर भगवान्को मार डालनेके उद्योगमें लगा था। वह उनके पीछे लगा रहा। वहाँ पहुँचकर उसने भी उसी गुहामें प्रवेश किया। वहाँ भगवान्को सोते देख उसे बड़ा हर्ष हुआ। उसने सोचा—'यह दानवोंको भय देनेवाला देवता है। अतः निस्सन्देह इसे मार डालूँगा।' युधिष्ठिर! दानवके इस प्रकार विचार

Milra

Milra

करते ही भगवान् विष्णुके शरीरसे एक कन्या प्रकट हुई, जो बड़ी ही रूपवती, सौभाग्यशालिनी तथा दिव्य अस्त्र-शस्त्रोंसे युक्त थी। वह भगवान्के तेजके अंशसे उत्पन्न हुई थी। उसका बल और पराक्रम महान् था। युधिष्ठिर! दानवराज मुरने उस कन्याको देखा। कन्याने युद्धका विचार करके दानवके साथ युद्धके लिये याचना की। युद्ध छिड़ गया। कन्या सब प्रकारकी युद्धकलामें निपुण थी! वह मुर नामक महान् असुर उसके हुंकार-मात्रसे राखका ढेर हो गया। दानवके मारे जानेपर भगवान् जाग उठे। उन्होंने दानवको धरतीपर पड़ा देख, पूछा—'मेरा यह शत्रु अत्यन्त उग्र और भयंकर था, किसने इसका वध किया है?'

कन्या बोली—स्वामिन्! आपके ही प्रसादसे मैंने इस महादैत्यका वध किया है।

श्रीभगवान्ने कहा—कल्याणी! तुम्हारे इस कर्मसे तीनों लोकोंके मुनि और देवता आनन्दित हुए हैं! अतः तुम्हारे मनमें जैसी रुचि हो, उसके अनुसार मुझसे कोई वर माँगो; देवदुर्लभ होनेपर भी वह वर मैं तुम्हें दूँगा, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।

वह कन्या साक्षात् एकादशी ही थी। उसने कहा—'प्रभो! यदि आप प्रसन्न हैं तो मैं आपकी कृपासे सब तीर्थोंमें प्रधान, समस्त विघ्नोंका नाश करनेवाली तथा सब प्रकारकी सिद्धि देनेवाली देवी होऊँ। जनार्दन! जो लोग आपमें भक्ति रखते हुए मेरे दिनको उपवास करेंगे, उन्हें सब प्रकारकी सिद्धि प्राप्त हो। माधव! जो लोग उपवास, नक्त अथवा एकभुक्त करके मेरे व्रतका पालन करें, उन्हें आप धन, धर्म और मोक्ष प्रदान कीजिये।'

श्रीविष्णु बोले—कल्याणी! तुम जो कुछ कहती हो, वह सब पूर्ण होगा।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—युधिष्ठिर! ऐसा वर पाकर महाव्रता एकादशी बहुत प्रसन्न हुई। दोनों पक्षोंकी एकादशी समान रूपसे कल्याण करनेवाली है। इसमें शुक्ल और कृष्णका भेद नहीं करना चाहिये। यदि उदयकालमें थोड़ी-सी एकादशी, मध्यमें पूरी द्वादशी और अन्तमें किंचित् त्रयोदशी हो तो वह 'त्रिस्पृशा' एकादशी कहलाती है। वह भगवान्को बहुत ही प्रिय है। यदि एक त्रिस्पृशा एकादशीको उपवास कर लिया जाय तो एक सहस्र एकादशीव्रतोंका फल प्राप्त होता है तथा इसी प्रकार द्वादशीमें पारण करनेपर सहस्रगुना फल माना गया है। अष्टमी, एकादशी, षष्ठी, तृतीया और चतुर्दशी—ये यदि पूर्व तिथिसे विद्ध हों तो उनमें व्रत नहीं करना चाहिये। परवर्तिनी तिथिसे युक्त होनेपर ही इनमें उपवासका विधान है। पहले दिन दिनमें और रातमें भी एकादशी हो तथा दूसरे दिन केवल प्रातःकाल एक दण्ड एकादशी रहे तो पहली तिथिका परित्याग करके दूसरे दिनकी द्वादशीयुक्त एकादशीको ही उपवास करना चाहिये। यह विधि मैंने दोनों पक्षोंकी एकादशीके लिये बतायी है। जो मनुष्य एकादशीको उपवास करता है, वह वैकुण्ठधाममें, जहाँ साक्षात् भगवान् गरुडध्वज विराजमान हैं, जाता है। जो मानव हर समय एकादशीके माहात्म्यका पाठ करता है, उसे सहस्र गोदानोंके पुण्यका फल प्राप्त होता है। जो दिन या रातमें भक्तिपूर्वक इस माहात्म्यका श्रवण करते हैं, वे निस्सन्देह ब्रह्महत्या आदि पापोंसे मुक्त हो जाते हैं। एकादशीके समान पापनाशक व्रत दूसरा कोई नहीं है।

मार्गशीर्ष शुक्लपक्षकी 'मोक्षा' एकादशीका माहात्म्य

युधिष्ठिर बोले—देवदेवेश्वर! मैं पूछता हूँ—मार्गशीर्षमासके शुक्लपक्षमें जो एकादशी होती है, उसका क्या नाम है? कौन-सी विधि है तथा उसमें किस देवताका पूजन किया जाता है? स्वामिन्! यह सब यथार्थरूपसे बताइये।

श्रीकृष्णने कहा—नृपश्रेष्ठ! मार्गशीर्षमासके कृष्णपक्षमें 'उत्पत्ति' नामकी एकादशी होती है, जिसका वर्णन मैंने तुम्हारे समक्ष कर दिया है। अब शुक्लपक्षकी एकादशीका वर्णन करूँगा, जिसके श्रवणमात्रसे वाजपेय यज्ञका फल मिलता है। उसका नाम है—'मोक्षा'

एकादशी जो सब पापोंका अपहरण करनेवाली है। राजन्! उस दिन यत्नपूर्वक तुलसीकी मंजरी तथा धूप-दीपादिसे भगवान् दामोदरका पूजन करना चाहिये। पूर्वोक्त विधिसे ही दशमी और एकादशीके नियमका पालन करना उचित है। 'मोक्षा' एकादशी बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाली है। उस दिन रात्रिमें मेरी प्रसन्नताके लिये नृत्य, गीत और स्तुतिके द्वारा जागरण करना चाहिये। जिसके पितर पापवश नीच योनिमें पड़े हों, वे इसका पुण्य दान करनेसे मोक्षको प्राप्त होते हैं। इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। पूर्वकालकी बात है, वैष्णवोंसे विभूषित परम रमणीय चम्पक नगरमें वैखानस नामक राजा रहते थे। वे अपनी प्रजाका पुत्रकी भाँति पालन करते थे। इस प्रकार राज्य करते हुए राजाने एक दिन रातको स्वप्नमें अपने पितरोंको नीच योनिमें पड़ा हुआ देखा। उन सबको इस अवस्थामें देखकर राजाके मनमें बड़ा विस्मय हुआ और प्रात:काल ब्राह्मणोंसे उन्होंने उस स्वप्नका सारा हाल कह सुनाया।

राजा बोले—ब्राह्मणो! मैंने अपने पितरोंको नरकमें गिरा देखा है। वे बारम्बार रोते हुए मुझसे यों कह रहे थे कि 'तुम हमारे तनुज हो, इसलिये इस नरक-समुद्रसे हमलोगोंका उद्धार करो।' द्विजवरो! इस रूपमें मुझे पितरोंके दर्शन हुए हैं। इससे मुझे चैन नहीं मिलता। क्या करूँ, कहाँ जाऊँ? मेरा हृदय रुँधा जा रहा है। द्विजोत्तमो! वह व्रत, वह तप और वह योग, जिससे मेरे पूर्वज तत्काल नरकसे छुटकारा पा जायँ, बतानेकी कृपा करें। मुझ बलवान् एवं साहसी पुत्रके जीते-जी मेरे माता-पिता घोर नरकमें पड़े हुए हैं! अत: ऐसे पुत्रसे क्या लाभ है।

ब्राह्मण बोले—राजन्! यहाँसे निकट ही पर्वत मुनिका महान् आश्रम है। वे भूत और भविष्यके भी ज्ञाता हैं। नृपश्रेष्ठ! आप उन्हींके पास चले जाइये।

ब्राह्मणोंकी बात सुनकर महाराज वैखानस शीघ्र ही पर्वत मुनिके आश्रमपर गये और वहाँ उन मुनिश्रेष्ठको देखकर उन्होंने दण्डवत्-प्रणाम करके मुनिके चरणोंका स्पर्श किया। मुनिने भी राजासे राज्यके सातों* अंगोंकी कुशल पूछी।

राजा बोले—स्वामिन्! आपकी कृपासे मेरे राज्यके सातों अंग सकुशल हैं। किन्तु मैंने स्वप्नमें देखा है कि मेरे पितर नरकमें पड़े हैं; अत: बताइये किस पुण्यके प्रभावसे उनका वहाँसे छुटकारा होगा?

राजाकी यह बात सुनकर मुनिश्रेष्ठ पर्वत एक मुहूर्त्ततक ध्यानस्थ रहे। इसके बाद वे राजासे बोले— 'महाराज! मार्गशीर्ष मासके शुक्लपक्षमें जो 'मोक्षा' नामकी एकादशी होती है, तुम सब लोग उसका व्रत करो और उसका पुण्य पितरोंको दे डालो। उस पुण्यके प्रभावसे उनका नरकसे उद्धार हो जायगा।'

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—युधिष्ठिर! मुनिकी यह बात सुनकर राजा पुन: अपने घर लौट आये। जब उत्तम मार्गशीर्ष मास आया, तब राजा वैखानसने मुनिके कथनानुसार 'मोक्षा' एकादशीका व्रत करके उसका पुण्य समस्त पितरोंसहित पिताको दे दिया। पुण्य देते ही क्षणभरमें आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी। वैखानसके पिता पितरोंसहित नरकसे छुटकारा पा गये और आकाशमें आकर राजाके प्रति यह पवित्र वचन बोले—'बेटा! तुम्हारा कल्याण हो।' यह कहकर वे स्वर्गमें चले गये। राजन्! जो इस प्रकार कल्याणमयी 'मोक्षा' एकादशीका व्रत करता है, उसके पाप नष्ट हो जाते हैं और मरनेके बाद वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है। यह मोक्ष देनेवाली 'मोक्षा' एकादशी मनुष्योंके लिये चिन्तामणिके समान समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाली है। इस माहात्म्यके पढ़ने और सुननेसे वाजपेय यज्ञका फल मिलता है।

---

* राजा, मन्त्री, राष्ट्र, किला, खजाना, सेना और मित्रवर्ग—ये ही परस्पर उपकार करनेवाले राज्यके सात अंग हैं।

पौष मासकी 'सफला' और 'पुत्रदा' नामक एकादशीका माहात्म्य

युधिष्ठिरने पूछा—स्वामिन्! पौष मासके कृष्णपक्षमें जो एकादशी होती है, उसका क्या नाम है? उसकी क्या विधि है तथा उसमें किस देवताकी पूजा की जाती है? यह बताइये।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—राजेन्द्र! बतलाता हूँ, सुनो; बड़ी-बड़ी दक्षिणावाले यज्ञोंसे भी मुझे उतना संतोष नहीं होता, जितना एकादशी-व्रतके अनुष्ठानसे होता है। इसलिये सर्वथा प्रयत्न करके एकादशीका व्रत करना चाहिये। पौष मासके कृष्णपक्षमें 'सफला' नामकी एकादशी होती है। उस दिन पूर्वोक्त विधानसे ही विधिपूर्वक भगवान् नारायणकी पूजा करनी चाहिये। एकादशी कल्याण करनेवाली है। अतः इसका व्रत अवश्य करना उचित है। जैसे नागोंमें शेषनाग, पक्षियोंमें गरुड़, देवताओंमें श्रीविष्णु तथा मनुष्योंमें ब्राह्मण श्रेष्ठ है, उसी प्रकार सम्पूर्ण व्रतोंमें एकादशी तिथि श्रेष्ठ है। राजन्! 'सफला' एकादशीको नाम-मन्त्रोंका उच्चारण करके फलोंके द्वारा श्रीहरिका पूजन करे। नारियलके फल, सुपारी, बिजौरा नीबू, जमीरा नीबू, अनार, सुन्दर आँवला, लौंग, बेर तथा विशेषतः आमके फलोंसे देवदेवेश्वर श्रीहरिकी पूजा करनी चाहिये। इसी प्रकार धूप-दीपसे भी भगवान्‌की अर्चना करे। 'सफला' एकादशीको विशेषरूपसे दीप-दान करनेका विधान है। रातको वैष्णव पुरुषोंके साथ जागरण करना चाहिये। जागरण करनेवालेको जिस फलकी प्राप्ति होती है, वह हजारों वर्ष तपस्या करनेसे भी नहीं मिलता।

नृपश्रेष्ठ! अब 'सफला' एकादशीकी शुभकारिणी कथा सुनो। चम्पावती नामसे विख्यात एक पुरी है, जो कभी राजा माहिष्मतकी राजधानी थी। राजर्षि माहिष्मतके पाँच पुत्र थे। उनमें जो ज्येष्ठ था, वह सदा पापकर्ममें ही लगा रहता था। परस्त्रीगामी और वेश्यासक्त था। उसने पिताके धनको पापकर्ममें ही खर्च किया। वह सदा दुराचारपरायण तथा ब्राह्मणोंका निन्दक था। वैष्णवों और देवताओंकी भी हमेशा निन्दा किया करता था। अपने पुत्रको ऐसा पापाचारी देखकर राजा माहिष्मतने राजकुमारोंमें उसका नाम लुम्भक रख दिया। फिर पिता और भाइयोंने मिलकर उसे राज्यसे बाहर निकाल दिया। लुम्भक उस नगरसे निकलकर गहन वनमें चला गया। वहीं रहकर उस पापीने प्रायः समूचे नगरका धन लूट लिया। एक दिन जब वह चोरी करनेके लिये नगरमें आया तो रातमें पहरा देनेवाले सिपाहियोंने उसे पकड़ लिया। किन्तु जब उसने अपनेको राजा माहिष्मतका पुत्र बतलाया तो सिपाहियोंने उसे छोड़ दिया। फिर वह पापी वनमें लौट आया और प्रतिदिन मांस तथा वृक्षोंके फल खाकर जीवन-निर्वाह करने लगा। उस दुष्टका विश्राम-स्थान पीपल वृक्षके निकट था। वहाँ बहुत वर्षोंका पुराना पीपलका वृक्ष था। उस वनमें वह वृक्ष एक महान् देवता माना जाता था। पापबुद्धि लुम्भक वहीं निवास करता था।

बहुत दिनोंके पश्चात् एक दिन किसी संचित पुण्यके प्रभावसे उसके द्वारा एकादशीके व्रतका पालन हो गया। पौष मासमें कृष्णपक्षकी दशमीके दिन पापिष्ठ लुम्भकने वृक्षोंके फल खाये और वस्त्रहीन होनेके कारण रातभर जाड़ेका कष्ट भोगा। उस समय न तो उसे नींद आयी और न आराम ही मिला। वह निष्प्राण-सा हो रहा था। सूर्योदय होनेपर भी उस पापीको होश नहीं हुआ। 'सफला' एकादशीके दिन भी लुम्भक बेहोश पड़ा रहा। दोपहर होनेपर उसे चेतना प्राप्त हुई। फिर इधर-उधर दृष्टि डालकर वह आसनसे उठा और लँगड़ेकी भाँति पैरोंसे बार-बार लड़खड़ाता हुआ वनके भीतर गया। वह भूखसे दुर्बल और पीड़ित हो रहा था। राजन्! उस समय लुम्भक बहुत-से फल लेकर ज्यों ही विश्राम-स्थानपर लौटा, त्यों ही सूर्यदेव अस्त हो गये। तब उसने वृक्षकी जड़में बहुत-से फल निवेदन करते हुए कहा—'इन फलोंसे लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु संतुष्ट हों।' यों कहकर लुम्भकने रातभर नींद नहीं ली। इस प्रकार अनायास ही उसने इस व्रतका पालन कर लिया। उस

समय सहसा आकाशवाणी हुई—'राजकुमार! तुम 'सफला' एकादशीके प्रसादसे राज्य और पुत्र प्राप्त करोगे।' 'बहुत अच्छा' कहकर उसने वह वरदान स्वीकार किया। इसके बाद उसका रूप दिव्य हो गया। तबसे उसकी उत्तम बुद्धि भगवान् विष्णुके भजनमें लग गयी। दिव्य आभूषणोंकी शोभासे सम्पन्न होकर उसने अकण्टक राज्य प्राप्त किया और पंद्रह वर्षोंतक वह उसका संचालन करता रहा। उस समय भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे उसके मनोज्ञ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। जब वह बड़ा हुआ, तब लुम्भकने तुरंत ही राज्यकी ममता छोड़कर उसे पुत्रको सौंप दिया और वह भगवान् श्रीकृष्णके समीप चला गया, जहाँ जाकर मनुष्य कभी शोकमें नहीं पड़ता। राजन्! इस प्रकार जो 'सफला' एकादशीका उत्तम व्रत करता है, वह इस लोकमें सुख भोगकर मरनेके पश्चात् मोक्षको प्राप्त होता है। संसारमें वे मनुष्य धन्य हैं, जो 'सफला' एकादशीके व्रतमें लगे रहते हैं। उन्हींका जन्म सफल है। महाराज! इसकी महिमाको पढ़ने, सुनने तथा उसके अनुसार आचरण करनेसे मनुष्य राजसूय यज्ञका फल पाता है।

युधिष्ठिर बोले—श्रीकृष्ण! आपने शुभकारिणी 'सफला' एकादशीका वर्णन किया। अब कृपा करके शुक्लपक्षकी एकादशीका महत्त्व बतलाइये। उसका क्या नाम है? कौन-सी विधि है? तथा उसमें किस देवताका पूजन किया जाता है?

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—राजन्! पौषके शुक्लपक्षकी जो एकादशी है, उसे बतलाता हूँ; सुनो। महाराज! संसारके हितकी इच्छासे मैं इसका वर्णन करता हूँ। राजन्! पूर्वोक्त विधिसे ही यत्नपूर्वक इसका व्रत करना चाहिये। इसका नाम 'पुत्रदा' है। यह सब पापोंको हरनेवाली उत्तम तिथि है। समस्त कामनाओं तथा सिद्धियोंके दाता भगवान् नारायण इस तिथिके अधिदेवता हैं। चराचर प्राणियोंसहित समस्त त्रिलोकीमें इससे बढ़कर दूसरी कोई तिथि नहीं है। पूर्वकालकी बात है, भद्रावती पुरीमें राजा सुकेतुमान् राज्य करते थे। उनकी रानीका नाम चम्पा था। राजाको बहुत समयतक कोई वंशधर पुत्र नहीं प्राप्त हुआ। इसलिये दोनों पति-पत्नी सदा चिन्ता और शोकमें डूबे रहते थे। राजाके पितर उनके दिये हुए जलको शोकोच्छ्वाससे गरम करके पीते थे। 'राजाके बाद और कोई ऐसा नहीं दिखायी देता, जो हमलोगोंका तर्पण करेगा' यह सोच-सोचकर पितर दुःखी रहते थे।

एक दिन राजा घोड़ेपर सवार हो गहन वनमें चले गये। पुरोहित आदि किसीको भी इस बातका पता न था। मृग और पक्षियोंसे सेवित उस सघन काननमें राजा भ्रमण करने लगे। मार्गमें कहीं सियारकी बोली सुनायी पड़ती थी तो कहीं उल्लुओंकी। जहाँ-तहाँ रीछ और मृग दृष्टिगोचर हो रहे थे। इस प्रकार घूम-घूमकर राजा वनकी शोभा देख रहे थे, इतनेमें दोपहर हो गयी। राजाको भूख और प्यास सताने लगी। वे जलकी खोजमें इधर-उधर दौड़ने लगे। किसी पुण्यके प्रभावसे उन्हें एक उत्तम सरोवर दिखायी दिया, जिसके समीप मुनियोंके बहुत-से आश्रम थे। शोभाशाली नरेशने उन आश्रमोंकी ओर देखा। उस समय शुभकी सूचना देनेवाले शकुन होने लगे। राजाका दाहिना नेत्र और दाहिना हाथ

फड़कने लगा, जो उत्तम फलकी सूचना दे रहा था। सरोवरके तटपर बहुत-से मुनि वेद-पाठ कर रहे थे। उन्हें देखकर राजाको बड़ा हर्ष हुआ। वे घोड़ेसे उतरकर मुनियोंके सामने खड़े हो गये और पृथक्-पृथक् उन सबकी वन्दना करने लगे। वे मुनि उत्तम व्रतका पालन करनेवाले थे। जब राजाने हाथ जोड़कर बारम्बार दण्डवत् किया, तब मुनि बोले—'राजन्! हमलोग तुमपर प्रसन्न हैं।'

राजा बोले—आपलोग कौन हैं? आपके नाम क्या हैं तथा आपलोग किसलिये यहाँ एकत्रित हुए हैं? यह सब सच-सच बताइये।

मुनि बोले—राजन्! हमलोग विश्वेदेव हैं, यहाँ स्नानके लिये आये हैं। माघ निकट आया है। आजसे पाँचवें दिन माघका स्नान आरम्भ हो जायगा। आज ही 'पुत्रदा' नामकी एकादशी है, जो व्रत करनेवाले मनुष्योंको पुत्र देती है।

राजाने कहा—विश्वेदेवगण! यदि आपलोग प्रसन्न हैं तो मुझे पुत्र दीजिये।

मुनि बोले—राजन्! आजके ही दिन 'पुत्रदा' नामकी एकादशी है। इसका व्रत बहुत विख्यात है। तुम आज इस उत्तम व्रतका पालन करो। महाराज! भगवान् केशवके प्रसादसे तुम्हें अवश्य पुत्र प्राप्त होगा।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—युधिष्ठिर! इस प्रकार उन मुनियोंके कहनेसे राजाने उत्तम व्रतका पालन किया। महर्षियोंके उपदेशके अनुसार विधिपूर्वक पुत्रदा एकादशीका अनुष्ठान किया। फिर द्वादशीको पारण करके मुनियोंके चरणोंमें बारम्बार मस्तक झुकाकर राजा अपने घर आये। तदनन्तर रानीने गर्भ धारण किया। प्रसवकाल आनेपर पुण्यकर्मा राजाको तेजस्वी पुत्र प्राप्त हुआ, जिसने अपने गुणोंसे पिताको संतुष्ट कर दिया। वह प्रजाओंका पालक हुआ। इसलिये राजन्! 'पुत्रदा' का उत्तम व्रत अवश्य करना चाहिये। मैंने लोगोंके हितके लिये तुम्हारे सामने इसका वर्णन किया है। जो मनुष्य एकाग्रचित्त होकर 'पुत्रदा' का व्रत करते हैं, वे इस लोकमें पुत्र पाकर मृत्युके पश्चात् स्वर्गगामी होते हैं। इस माहात्म्यको पढ़ने और सुननेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल मिलता है।

माघ मासकी 'षट्तिला' और 'जया' एकादशीका माहात्म्य

युधिष्ठिरने पूछा—जगन्नाथ! श्रीकृष्ण! आदिदेव! जगत्पते! माघ मासके कृष्णपक्षमें कौन-सी एकादशी होती है? उसके लिये कैसी विधि है? तथा उसका फल क्या है? महाप्राज्ञ! कृपा करके ये सब बातें बताइये।

श्रीभगवान् बोले—नृपश्रेष्ठ! सुनो, माघ मासके कृष्णपक्षकी जो एकादशी है, वह 'षट्तिला' के नामसे विख्यात है, जो सब पापोंका नाश करनेवाली है। अब तुम 'षट्तिला' की पापहारिणी कथा सुनो, जिसे मुनिश्रेष्ठ पुलस्त्यने दाल्भ्यसे कहा था।

दाल्भ्यने पूछा—ब्रह्मन्! मृत्युलोकमें आये हुए प्राणी प्रायः पापकर्म करते हैं। उन्हें नरकमें न जाना पड़े, इसके लिये कौन-सा उपाय है? बतानेकी कृपा करें।

पुलस्त्यजी बोले—महाभाग! तुमने बहुत अच्छी बात पूछी है, बतलाता हूँ; सुनो। माघ मास आनेपर मनुष्यको चाहिये कि वह नहा-धोकर पवित्र हो इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए काम, क्रोध, अहंकार, लोभ और चुगली आदि बुराइयोंको त्याग दे। देवाधिदेव! भगवान्का स्मरण करके जलसे पैर धोकर भूमिपर पड़े हुए गोबरका संग्रह करे। उसमें तिल और कपास छोड़कर एक सौ आठ पिंडिकाएँ बनाये। फिर माघमें जब आर्द्रा या मूल नक्षत्र आये, तब कृष्णपक्षकी एकादशी करनेके लिये नियम ग्रहण करे। भलीभाँति स्नान करके पवित्र हो शुद्धभावसे देवाधिदेव श्रीविष्णुकी पूजा करे। कोई भूल हो जानेपर श्रीकृष्णका नामोच्चारण करे। रातको जागरण और होम करे। चन्दन, अरगजा, कपूर, नैवेद्य आदि सामग्रीसे शंख, चक्र और गदा धारण करनेवाले देवदेवेश्वर श्रीहरिकी पूजा करे। तत्पश्चात्

भगवान्‌का स्मरण करके बारम्बार श्रीकृष्णनामका उच्चारण करते हुए कुम्हड़े, नारियल अथवा बिजौरेके फलसे भगवान्‌को विधिपूर्वक पूजकर अर्घ्य दे। अन्य सब सामग्रियोंके अभावमें सौ सुपारियोंके द्वारा भी पूजन और अर्घ्यदान किये जा सकते हैं। अर्घ्यका मन्त्र इस प्रकार है—

कृष्ण कृष्ण कृपालुस्त्वमगतीनां गतिर्भव।
संसारार्णवमग्नानां प्रसीद पुरुषोत्तम॥
नमस्ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन।
सुब्रह्मण्य नमस्तेऽस्तु महापुरुष पूर्वज॥
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं लक्ष्म्या सह जगत्पते।

(४४। १८—२०)

'सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण! आप बड़े दयालु हैं। हम आश्रयहीन जीवोंके आप आश्रयदाता होइये। पुरुषोत्तम! हम संसार-समुद्रमें डूब रहे हैं, आप हमपर प्रसन्न होइये। कमलनयन! आपको नमस्कार है, विश्वभावन! आपको नमस्कार है। सुब्रह्मण्य! महापुरुष! सबके पूर्वज! आपको नमस्कार है। जगत्पते! आप लक्ष्मीजीके साथ मेरा दिया हुआ अर्घ्य स्वीकार करें।'

तत्पश्चात् ब्राह्मणकी पूजा करे। उसे जलका घड़ा दान करे। साथ ही छाता, जूता और वस्त्र भी दे। दान करते समय ऐसा कहे—'इस दानके द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण मुझपर प्रसन्न हों।' अपनी शक्तिके अनुसार श्रेष्ठ ब्राह्मणको काली गौ दान करे। द्विजश्रेष्ठ! विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वह तिलसे भरा हुआ पात्र भी दान करे। उन तिलोंके बोनेपर उनसे जितनी शाखाएँ पैदा हो सकती हैं, उतने हजार वर्षोंतक वह स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। तिलसे स्नान करे, तिलका उबटन लगाये, तिलसे होम करे; तिल मिलाया हुआ जल पिये, तिलका दान करे और तिलको भोजनके काममें ले। इस प्रकार छः कामोंमें तिलका उपयोग करनेसे यह एकादशी 'षट्तिला' कहलाती है, जो सब पापोंका नाश करनेवाली है।*

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! आपने माघ मासके कृष्णपक्षकी 'षट्तिला' एकादशीका वर्णन किया। अब कृपा करके यह बताइये कि शुक्लपक्षमें कौन-सी एकादशी होती है? उसकी विधि क्या है? तथा उसमें किस देवताका पूजन किया जाता है?

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजेन्द्र! बतलाता हूँ, सुनो। माघ मासके शुक्लपक्षमें जो एकादशी होती है, उसका नाम 'जया' है। वह सब पापोंको हरनेवाली उत्तम तिथि है। पवित्र होनेके साथ ही पापोंका नाश करनेवाली है तथा मनुष्योंको भोग और मोक्ष प्रदान करती है। इतना ही नहीं, वह ब्रह्महत्या-जैसे पाप तथा पिशाचत्वका भी विनाश करनेवाली है। इसका व्रत करनेपर मनुष्योंको कभी प्रेतयोनिमें नहीं जाना पड़ता। इसलिये राजन्! प्रयत्नपूर्वक 'जया' नामकी एकादशीका व्रत करना चाहिये।

एक समयकी बात है, स्वर्गलोकमें देवराज इन्द्र राज्य करते थे। देवगण पारिजातवृक्षोंसे भरे हुए नन्दनवनमें अप्सराओंके साथ विहार कर रहे थे। पचास करोड़ गन्धर्वोंके नायक देवराज इन्द्रने स्वेच्छानुसार वनमें विहार करते हुए बड़े हर्षके साथ नृत्यका आयोजन किया। उसमें गन्धर्व गान कर रहे थे, जिनमें पुष्पदन्त, चित्रसेन तथा उसका पुत्र—ये तीन प्रधान थे। चित्रसेनकी स्त्रीका नाम मालिनी था। मालिनीसे एक कन्या उत्पन्न हुई थी, जो पुष्पवन्तीके नामसे विख्यात थी। पुष्पदन्त गन्धर्वके एक पुत्र था, जिसको लोग माल्यवान् कहते थे। माल्यवान् पुष्पवन्तीके रूपपर अत्यन्त मोहित था। ये दोनों भी इन्द्रके संतोषार्थ नृत्य करनेके लिये आये थे। इन दोनोंका गान हो रहा था, इनके साथ अप्सराएँ भी थीं। परस्पर अनुरागके कारण ये दोनों मोहके वशीभूत हो गये। चित्तमें भ्रान्ति आ गयी। इसलिये वे शुद्ध गान न गा सके। कभी ताल भंग हो जाता और कभी गीत बंद हो जाता था। इन्द्रने इस प्रमादपर विचार किया और इसमें अपना अपमान

* तिलस्नायी तिलोद्वर्ती तिलहोमी तिलोदकी। तिलदाता च भोक्ता च षट्तिला पापनाशिनी॥ (४४। २४)

समझकर वे कुपित हो गये। अतः इन दोनोंको शाप देते हुए बोले—'ओ मूर्खो! तुम दोनोंको धिक्कार है! तुमलोग पतित और मेरी आज्ञा भंग करनेवाले हो; अतः पति-पत्नीके रूपमें रहते हुए पिशाच हो जाओ।'

इन्द्रके इस प्रकार शाप देनेपर इन दोनोंके मनमें बड़ा दुःख हुआ। वे हिमालय पर्वतपर चले गये और पिशाचयोनिको पाकर भयंकर दुःख भोगने लगे। शारीरिक पातकसे उत्पन्न तापसे पीड़ित होकर दोनों ही पर्वतकी कन्दराओंमें विचरते रहते थे। एक दिन पिशाचने अपनी पत्नी पिशाचीसे कहा—'हमने कौन-सा पाप किया है, जिससे यह पिशाचयोनि प्राप्त हुई है? नरकका कष्ट अत्यन्त भयंकर है तथा पिशाचयोनि भी बहुत दुःख देने-वाली है। अतः पूर्ण प्रयत्न करके पापसे बचना चाहिये।'

इस प्रकार चिन्तामग्न होकर वे दोनों दुःखके कारण सूखते जा रहे थे। दैवयोगसे उन्हें माघ मासकी एकादशी तिथि प्राप्त हो गयी। 'जया' नामसे विख्यात तिथि, जो सब तिथियोंमें उत्तम है, आयी। उस दिन उन दोनोंने सब प्रकारके आहार त्याग दिये। जलपानतक नहीं किया। किसी जीवकी हिंसा नहीं की, यहाँतक कि फल भी नहीं खाया। निरन्तर दुःखसे युक्त होकर वे एक पीपलके समीप बैठे रहे। सूर्यास्त हो गया। उनके प्राण लेनेवाली भयंकर रात उपस्थित हुई। उन्हें नींद नहीं आयी। वे रति या और कोई सुख भी नहीं पा सके। सूर्योदय हुआ। द्वादशीका दिन आया। उन पिशाचोंके द्वारा 'जया' के उत्तम व्रतका पालन हो गया। उन्होंने रातमें जागरण भी किया था। उस व्रतके प्रभावसे तथा भगवान् विष्णुकी शक्तिसे उन दोनोंकी पिशाचता दूर हो गयी। पुष्पवन्ती और माल्यवान् अपने पूर्वरूपमें आ गये। उनके हृदयमें वही पुराना स्नेह उमड़ रहा था। उनके शरीरपर पहले ही-जैसे अलंकार शोभा पा रहे थे। वे दोनों मनोहर रूप धारण करके विमानपर बैठे और स्वर्गलोकमें चले गये। वहाँ देवराज इन्द्रके सामने जाकर दोनोंने बड़ी प्रसन्नताके साथ उन्हें प्रणाम किया। उन्हें इस रूपमें उपस्थित देखकर इन्द्रको बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने पूछा— 'बताओ, किस पुण्यके प्रभावसे तुम दोनोंका पिशाचत्व दूर हुआ है। तुम मेरे शापको प्राप्त हो चुके थे, फिर किस देवताने तुम्हें उससे छुटकारा दिलाया है?'

माल्यवान् बोला—स्वामिन्! भगवान् वासुदेवकी कृपा तथा 'जया' नामक एकादशीके व्रतसे हमारी पिशाचता दूर हुई है।

इन्द्रने कहा—तो अब तुम दोनों मेरे कहनेसे सुधापान करो। जो लोग एकादशीके व्रतमें तत्पर और भगवान् श्रीकृष्णके शरणागत होते हैं, वे हमारे भी पूजनीय हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन्! इस कारण एकादशीका व्रत करना चाहिये। नृपश्रेष्ठ! 'जया' ब्रह्महत्याका पाप भी दूर करनेवाली है। जिसने 'जया'-का व्रत किया है, उसने सब प्रकारके दान दे दिये और सम्पूर्ण यज्ञोंका अनुष्ठान कर लिया। इस माहात्म्यके पढ़ने और सुननेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल मिलता है।

फाल्गुन मासकी 'विजया' तथा 'आमलकी' एकादशीका माहात्म्य

युधिष्ठिरने पूछा—वासुदेव! फाल्गुनके कृष्णपक्षमें किस नामकी एकादशी होती है? कृपा करके बताइये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—युधिष्ठिर! एक बार नारदजीने कमलके आसनपर विराजमान होनेवाले ब्रह्माजीसे प्रश्न किया—'सुरश्रेष्ठ! फाल्गुनके कृष्णपक्षमें जो 'विजया' नामकी एकादशी होती है, कृपया उसके पुण्यका वर्णन कीजिये।'

ब्रह्माजीने कहा—नारद! सुनो—'मैं एक उत्तम कथा सुनाता हूँ, जो पापोंका अपहरण करनेवाली है। यह व्रत बहुत ही प्राचीन, पवित्र और पापनाशक है। यह 'विजया' नामकी एकादशी राजाओंको विजय प्रदान करती है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। पूर्वकालकी बात है, भगवान् श्रीरामचन्द्रजी चौदह वर्षोंके लिये वनमें

गये और वहाँ पंचवटीमें सीता तथा लक्ष्मणके साथ रहने लगे। वहाँ रहते समय रावणने चपलतावश विजयात्मा श्रीरामकी तपस्विनी पत्नी सीताको हर लिया। उस दु:खसे श्रीराम व्याकुल हो उठे। उस समय सीताकी खोज करते हुए वे वनमें घूमने लगे। कुछ दूर जानेपर उन्हें जटायु मिले, जिनकी आयु समाप्त हो चुकी थी। इसके बाद उन्होंने वनके भीतर कबन्ध नामक राक्षसका वध किया। फिर सुग्रीवके साथ उनकी मित्रता हुई। तत्पश्चात् श्रीरामके लिये वानरोंकी सेना एकत्रित हुई। हनुमान्‌जीने लंकाके उद्यानमें जाकर सीताजीका दर्शन किया और उन्हें श्रीरामकी चिह्नस्वरूप मुद्रिका प्रदान की। यह उन्होंने महान् पुरुषार्थका काम किया था। वहाँसे लौटकर वे श्रीरामचन्द्रजीसे मिले और लंकाका सारा समाचार उनसे निवेदन किया। हनुमान्‌जीकी बात सुनकर श्रीरामने सुग्रीवकी अनुमति ले लंकाको प्रस्थान करनेका विचार किया और समुद्रके किनारे पहुँचकर उन्होंने लक्ष्मणसे कहा—'सुमित्रानन्दन! किस पुण्यसे इस समुद्रको पार किया जा सकता है? यह अत्यन्त अगाध और भयंकर जलजन्तुओंसे भरा हुआ है। मुझे ऐसा कोई उपाय नहीं दिखायी देता, जिससे इसको सुगमतासे पार किया जा सके।'

लक्ष्मण बोले—महाराज! आप ही आदिदेव और पुराणपुरुष पुरुषोत्तम हैं। आपसे क्या छिपा है? यहाँ द्वीपके भीतर बकदाल्भ्य नामक मुनि रहते हैं। यहाँसे आधे योजनकी दूरीपर उनका आश्रम है। रघुनन्दन! उन प्राचीन मुनीश्वरके पास जाकर उन्हींसे इसका उपाय पूछिये।

लक्ष्मणकी यह अत्यन्त सुन्दर बात सुनकर श्रीरामचन्द्रजी महामुनि बकदाल्भ्यसे मिलनेके लिये गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने मस्तक झुकाकर मुनिको प्रणाम किया। मुनि उनको देखते ही पहचान गये कि ये पुराणपुरुषोत्तम श्रीराम हैं, जो किसी कारणवश मानवशरीरमें अवतीर्ण हुए हैं। उनके आनेसे महर्षिको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने पूछा—'श्रीराम! आपका कैसे यहाँ आगमन हुआ?'

श्रीराम बोले—ब्रह्मन्! आपकी कृपासे राक्षसोंसहित लंकाको जीतनेके लिये सेनाके साथ समुद्रके किनारे आया हूँ। मुने! अब जिस प्रकार समुद्र पार किया जा सके, वह उपाय बताइये। मुझपर कृपा कीजिये।

बकदाल्भ्यने कहा—श्रीराम! फाल्गुनके कृष्णपक्षमें जो 'विजया' नामकी एकादशी होती है, उसका व्रत करनेसे आपकी विजय होगी। निश्चय ही आप अपनी वानरसेनाके साथ समुद्रको पार कर लेंगे। राजन्! अब इस व्रतकी फलदायक विधि सुनिये। दशमीका दिन आनेपर एक कलश स्थापित करे। वह सोने, चाँदी, ताँबे अथवा मिट्टीका भी हो सकता है। उस कलशको जलसे भरकर उसमें पल्लव डाल दे। उसके ऊपर भगवान् नारायणके सुवर्णमय विग्रहकी स्थापना करे। फिर एकादशीके दिन प्रात:काल स्नान करे। कलशको पुन: स्थिरतापूर्वक स्थापित करे। माला, चन्दन, सुपारी तथा नारियल आदिके द्वारा विशेषरूपसे उसका पूजन करे। कलशके ऊपर सप्तधान्य और जौ रखे। गन्ध, धूप, दीप और भाँति-भाँतिके नैवेद्यसे पूजन

करे। कलशके सामने बैठकर वह सारा दिन उत्तम कथा-वार्ता आदिके द्वारा व्यतीत करे तथा रातमें भी वहाँ जागरण करे। अखण्ड व्रतकी सिद्धिके लिये घीका दीपक जलाये। फिर द्वादशीके दिन सूर्योदय होनेपर उस कलशको किसी जलाशयके समीप— नदी, झरने या पोखरेके तटपर ले जाकर स्थापित करे और उसकी विधिवत् पूजा करके देव-प्रतिमासहित उस कलशको वेदवेत्ता ब्राह्मणके लिये दान कर दे। महाराज! कलशके साथ ही और भी बड़े-बड़े दान देने चाहिये। श्रीराम! आप अपने यूथपतियोंके साथ इसी विधिसे प्रयत्नपूर्वक 'विजया' का व्रत कीजिये। इससे आपकी विजय होगी।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने मुनिके कथनानुसार उस समय 'विजया' एकादशीका व्रत किया। उस व्रतके करनेसे श्रीरामचन्द्रजी विजयी हुए। उन्होंने संग्राममें रावणको मारा, लंकापर विजय पायी और सीताको प्राप्त किया। बेटा! जो मनुष्य इस विधिसे व्रत करते हैं, उन्हें इस लोकमें विजय प्राप्त होती है और उनका परलोक भी अक्षय बना रहता है।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—युधिष्ठिर! इस कारण 'विजया' का व्रत करना चाहिये। इस प्रसंगको पढ़ने और सुननेसे वाजपेय यज्ञका फल मिलता है।

युधिष्ठिरने कहा—श्रीकृष्ण! मैंने विजया एकादशीका माहात्म्य, जो महान् फल देनेवाला है, सुन लिया। अब फाल्गुन शुक्लपक्षकी एकादशीका नाम और माहात्म्य बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाभाग धर्मनन्दन! सुनो—तुम्हें इस समय वह प्रसंग सुनाता हूँ, जिसे राजा मान्धाताके पूछनेपर महात्मा वसिष्ठने कहा था। फाल्गुन शुक्लपक्षकी एकादशीका नाम 'आमलकी' है। इसका पवित्र व्रत विष्णुलोककी प्राप्ति करानेवाला है।

मान्धाताने पूछा—द्विजश्रेष्ठ! यह 'आमलकी' कब उत्पन्न हुई, मुझे बताइये।

वसिष्ठजीने कहा—महाभाग! सुनो—पृथ्वीपर 'आमलकी' की उत्पत्ति किस प्रकार हुई, यह बताता हूँ। आमलकी महान् वृक्ष है, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है। भगवान् विष्णुके थूकनेपर उनके मुखसे चन्द्रमाके समान कान्तिमान् एक बिन्दु प्रकट हुआ। वह बिन्दु पृथ्वीपर गिरा। उसीसे आमलकी (आँवले)-का महान् वृक्ष उत्पन्न हुआ। यह सभी वृक्षोंका आदिभूत कहलाता है। इसी समय समस्त प्रजाकी सृष्टि करनेके लिये भगवान्ने ब्रह्माजीको उत्पन्न किया। उन्हींसे इन प्रजाओंकी सृष्टि हुई। देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, नाग तथा निर्मल अन्तःकरणवाले महर्षियोंको ब्रह्माजीने जन्म दिया। उनमेंसे देवता और ऋषि उस स्थानपर आये, जहाँ विष्णुप्रिया आमलकीका वृक्ष था। महाभाग! उसे देखकर देवताओंको बड़ा विस्मय हुआ। वे एक-दूसरेपर दृष्टिपात करते हुए उत्कण्ठापूर्वक उस वृक्षकी ओर देखने लगे और खड़े-खड़े सोचने लगे कि प्लक्ष (पाकर) आदि वृक्ष तो पूर्वकल्पकी ही भाँति हैं, जो सब-के-सब हमारे परिचित हैं, किन्तु इस वृक्षको हम नहीं जानते। उन्हें इस प्रकार चिन्ता करते देख आकाशवाणी हुई—'महर्षियो! यह सर्वश्रेष्ठ आमलकीका वृक्ष है, जो विष्णुको प्रिय है। इसके स्मरणमात्रसे गोदानका फल मिलता है। स्पर्श करनेसे इससे दूना और फल भक्षण करनेसे तिगुना पुण्य प्राप्त होता है। इसलिये सदा प्रयत्नपूर्वक आमलकीका सेवन करना चाहिये। यह सब पापोंको हरनेवाला वैष्णव वृक्ष बताया गया है। इसके मूलमें विष्णु, उसके ऊपर ब्रह्मा, स्कन्धमें परमेश्वर भगवान् रुद्र, शाखाओंमें मुनि, टहनियोंमें देवता, पत्तोंमें वसु, फूलोंमें मरुद्गण तथा फलोंमें समस्त प्रजापति वास करते हैं। आमलकी सर्वदेवमयी बतायी गयी है।* अतः विष्णुभक्त पुरुषोंके लिये यह परम पूज्य है।'

ऋषि बोले—[अव्यक्त स्वरूपसे बोलनेवाले महापुरुष!] हमलोग आपको क्या समझें—आप कौन हैं? देवता हैं या कोई और? हमें ठीक-ठीक बताइये।

---

* तस्या मूले स्थितो विष्णुस्तदूर्ध्वं च पितामहः। स्कन्धे च भगवान् रुद्रः संस्थितः परमेश्वरः॥
शाखासु मुनयः सर्वे प्रशाखासु च देवताः। पर्णेषु वसवो देवाः पुष्पेषु मरुतस्तथा॥

आकाशवाणी हुई—जो सम्पूर्ण भूतोंके कर्ता और समस्त भुवनोंके स्रष्टा हैं, जिन्हें विद्वान् पुरुष भी कठिनतासे देख पाते हैं, वही सनातन विष्णु मैं हूँ।

देवाधिदेव भगवान् विष्णुका कथन सुनकर उन ब्रह्मकुमार महर्षियोंके नेत्र आश्चर्यसे चकित हो उठे। उन्हें बड़ा विस्मय हुआ। वे आदि-अन्तरहित भगवान्की स्तुति करने लगे।

ऋषि बोले—सम्पूर्ण भूतोंके आत्मभूत, आत्मा एवं परमात्माको नमस्कार है। अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले अच्युतको नित्य प्रणाम है। अन्तरहित परमेश्वरको बारम्बार प्रणाम है। दामोदर, कवि (सर्वज्ञ) और यज्ञेश्वरको नमस्कार है। मायापते! आपको प्रणाम है। आप विश्वके स्वामी हैं; आपको नमस्कार है।

ऋषियोंके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् श्रीहरि संतुष्ट हुए और बोले—महर्षियो! तुम्हें कौन-सा अभीष्ट वरदान दूँ?'

ऋषि बोले—भगवन्! यदि आप संतुष्ट हैं तो हमलोगोंके हितके लिये कोई ऐसा व्रत बतलाइये, जो स्वर्ग और मोक्षरूपी फल प्रदान करनेवाला हो।

श्रीविष्णु बोले—महर्षियो! फाल्गुन शुक्लपक्षमें यदि पुष्य नक्षत्रसे युक्त द्वादशी हो तो वह महान् पुण्य देनेवाली और बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाली होती है। द्विजवरो! उसमें जो विशेष कर्तव्य है, उसको सुनो। आमलकी एकादशीमें आँवलेके वृक्षके पास जाकर वहाँ रात्रिमें जागरण करना चाहिये। इससे मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता और सहस्र गोदानोंका फल प्राप्त करता है। विप्रगण! यह व्रतोंमें उत्तम व्रत है, जिसे मैंने तुमलोगोंको बताया है।

ऋषि बोले—भगवन्! इस व्रतकी विधि बतलाइये। यह कैसे पूर्ण होता है? इसके देवता, नमस्कार और मन्त्र कौन-से बताये गये हैं? उस समय स्नान और दान कैसे किया जाता है? पूजनकी कौन-सी विधि है तथा उसके लिये मन्त्र क्या है? इन सब बातोंका यथार्थ रूपसे वर्णन कीजिये।

भगवान् विष्णुने कहा—द्विजवरो! इस व्रतकी जो उत्तम विधि है, उसको श्रवण करो! एकादशीको प्रातःकाल दन्तधावन करके यह संकल्प करे कि 'हे पुण्डरीकाक्ष! हे अच्युत! मैं एकादशीको निराहार रहकर दूसरे दिन भोजन करूँगा। आप मुझे शरणमें रखें।' ऐसा नियम लेनेके बाद पतित, चोर, पाखण्डी, दुराचारी, मर्यादा भंग करनेवाले तथा गुरुपत्नीगामी, मनुष्योंसे वार्तालाप न करे। अपने मनको वशमें रखते हुए नदीमें, पोखरेमें, कुएँपर अथवा घरमें ही स्नान करे। स्नानके पहले शरीरमें मिट्टी लगाये।

मृत्तिका लगानेका मन्त्र

अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे।
मृत्तिके हर मे पापं जन्मकोट्यां समर्जितम्॥

(४७। ४३)

'वसुन्धरे! तुम्हारे ऊपर अश्व और रथ चला करते हैं तथा वामन अवतारके समय भगवान् विष्णुने भी तुम्हें अपने पैरोंसे नापा था। मृत्तिके! मैंने करोड़ों जन्मोंमें जो पाप किये हैं, मेरे उन सब पापोंको हर लो।'

स्नान-मन्त्र

त्वं मातः सर्वभूतानां जीवनं तत्तु रक्षकम्।
स्वेदजोद्भिज्जजातीनां रसानां पतये नमः॥
स्नातोऽहं सर्वतीर्थेषु ह्रदप्रस्रवणेषु च।
नदीषु देवखातेषु इदं स्नानं तु मे भवेत्॥

(४७। ४४-४५)

'जलकी अधिष्ठात्री देवी! मातः! तुम सम्पूर्ण भूतोंके लिये जीवन हो। वही जीवन, जो स्वेदज और उद्भिज्ज जातिके जीवोंका भी रक्षक है। तुम रसोंकी स्वामिनी हो। तुम्हें नमस्कार है। आज मैं सम्पूर्ण तीर्थों, कुण्डों, झरनों, नदियों और देवसम्बन्धी सरोवरोंमें स्नान कर चुका। मेरा यह स्नान उक्त सभी स्नानोंका फल देनेवाला हो।'

विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वह परशुरामजीकी सोनेकी प्रतिमा बनवाये। प्रतिमा अपनी शक्ति और

प्रजानां पतयः सर्वे फलेष्वेव व्यवस्थिताः। सर्वदेवमयी ह्येषा धात्री च कथिता मया॥ (४७। २०—२३)

धनके अनुसार एक या आधे माशे सुवर्णकी होनी चाहिये। स्नानके पश्चात् घर आकर पूजा और हवन करे। इसके बाद सब प्रकारकी सामग्री लेकर आँवलेके वृक्षके पास जाय। वहाँ वृक्षके चारों ओरकी जमीन झाड़-बुहार, लीप-पोतकर शुद्ध करे। शुद्ध की हुई भूमिमें मन्त्रपाठपूर्वक जलसे भरे हुए नवीन कलशकी स्थापना करे। कलशमें पंचरत्न और दिव्य गन्ध आदि छोड़ दे। श्वेतचन्दनसे उसको चर्चित करे। कण्ठमें फूलकी माला पहनाये। सब प्रकारके धूपकी सुगन्ध फैलाये। जलते हुए दीपकोंकी श्रेणी सजाकर रखे। तात्पर्य यह कि सब ओरसे सुन्दर एवं मनोहर दृश्य उपस्थित करे। पूजाके लिये नवीन छाता, जूता और वस्त्र भी मँगाकर रखे। कलशके ऊपर एक पात्र रखकर उसे दिव्य लाजों (खीलों)-से भर दे। फिर उसके ऊपर सुवर्णमय परशुरामजीकी स्थापना करे। **'विशोकाय नमः'** कहकर उनके चरणोंकी, **'विश्वरूपिणे नमः'** से दोनों घुटनोंकी, **'उग्राय नमः'** से जाँघोंकी, **'दामोदराय नमः'** से कटिभागकी, **'पद्मनाभाय नमः'** से उदरकी, **'श्रीवत्सधारिणे नमः'** से वक्ष:स्थलकी, **'चक्रिणे नमः'** से बायी बाँहकी, **'गदिने नमः'**-से दाहिनी बाँहकी, **'वैकुण्ठाय नमः'** से कण्ठकी, **'यज्ञमुखाय नमः'** से मुखकी, **'विशोकनिधये नमः'**-से नासिकाकी, **'वासुदेवाय नमः'** से नेत्रोंकी, **'वामनाय नमः'** से ललाटकी, **'सर्वात्मने नमः'** से सम्पूर्ण अंगों तथा मस्तककी पूजा करे। ये ही पूजाके मन्त्र हैं। तदनन्तर भक्तियुक्त चित्तसे शुद्ध फलके द्वारा देवाधिदेव परशुरामजीको अर्घ्य प्रदान करे। अर्घ्यका मन्त्र इस प्रकार है—

नमस्ते देवदेवेश जामदग्न्य नमोऽस्तु ते।
गृहाणार्घ्यमिमं दत्तमामलक्या युतं हरे॥
(४७।५७)

'देवदेवेश्वर! जमदग्निनन्दन! श्रीविष्णुस्वरूप परशुरामजी! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। आँवलेके फलके साथ दिया हुआ मेरा यह अर्घ्य ग्रहण कीजिये।'

तदनन्तर भक्तियुक्त चित्तसे जागरण करे। नृत्य, संगीत, वाद्य, धार्मिक उपाख्यान तथा श्रीविष्णुसम्बन्धिनी कथा-वार्ता आदिके द्वारा वह रात्रि व्यतीत करे। उसके बाद भगवान् विष्णुके नाम ले-लेकर आमलकी वृक्षकी परिक्रमा एक सौ आठ या अट्ठाईस बार करे। फिर सबेरा होनेपर श्रीहरिकी आरती करे। ब्राह्मणकी पूजा करके वहाँकी सब सामग्री उसे निवेदन कर दे। परशुरामजीका कलश, दो वस्त्र, जूता आदि सभी वस्तुएँ दान कर दे और यह भावना करे कि 'परशुरामजीके स्वरूपमें भगवान् विष्णु मुझपर प्रसन्न हों।' तत्पश्चात् आमलकीका स्पर्श करके उसकी प्रदक्षिणा करे और स्नान करनेके बाद विधिपूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन कराये। तदनन्तर कुटुम्बियोंके साथ बैठकर स्वयं भी भोजन करे। ऐसा करनेसे जो पुण्य होता है, वह सब बतलाता हूँ; सुनो। सम्पूर्ण तीर्थोंके सेवनसे जो पुण्य प्राप्त होता है तथा सब प्रकारके दान देनेसे जो फल मिलता है, वह सब उपर्युक्त विधिके पालनसे सुलभ होता है। समस्त यज्ञोंकी अपेक्षा भी अधिक फल मिलता है; इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। यह व्रत सब व्रतोंमें उत्तम है, जिसका मैंने तुमसे पूरा-पूरा वर्णन किया है।

वसिष्ठजी कहते हैं—महाराज! इतना कहकर देवेश्वर भगवान् विष्णु वहीं अन्तर्धान हो गये। तत्पश्चात् उन समस्त महर्षियोंने उक्त व्रतका पूर्णरूपसे पालन किया। नृपश्रेष्ठ! इसी प्रकार तुम्हें भी इस व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—युधिष्ठिर! यह दुर्धर्ष व्रत मनुष्यको सब पापोंसे मुक्त करनेवाला है।

चैत्र मासकी 'पापमोचनी' तथा 'कामदा' एकादशीका माहात्म्य

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! फाल्गुन शुक्लपक्षकी आमलकी एकादशीका माहात्म्य मैंने सुना। अब चैत्र कृष्णपक्षकी एकादशीका क्या नाम है, यह बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजेन्द्र! सुनो—मैं इस विषयमें एक पापनाशक उपाख्यान सुनाऊँगा, जिसे चक्रवर्ती नरेश मान्धाताके पूछनेपर महर्षि लोमशने कहा था।

मान्धाता बोले—भगवन्! मैं लोगोंके हितकी इच्छासे यह सुनना चाहता हूँ कि चैत्र मासके कृष्णपक्षमें किस नामकी एकादशी होती है? उसकी क्या विधि है तथा उससे किस फलकी प्राप्ति होती है? कृपया ये सब बातें बताइये।

लोमशजीने कहा—नृपश्रेष्ठ! पूर्वकालकी बात है, अप्सराओंसे सेवित चैत्ररथ नामक वनमें, जहाँ गन्धर्वोंकी कन्याएँ अपने किंकरोंके साथ बाजे बजाती हुई विहार करती हैं, मंजुघोषा नामक अप्सरा मुनिवर मेधावीको मोहित करनेके लिये गयी। वे महर्षि उसी वनमें रहकर ब्रह्मचर्यका पालन करते थे। मंजुघोषा मुनिके भयसे आश्रमसे एक कोस दूर ही ठहर गयी और सुन्दर ढंगसे वीणा बजाती हुई मधुर गीत गाने लगी। मुनिश्रेष्ठ मेधावी घूमते हुए उधर जा निकले और उस सुन्दरी अप्सराको इस प्रकार गान करते देख सेनासहित कामदेवसे परास्त होकर बरबस मोहके वशीभूत हो गये। मुनिकी ऐसी अवस्था देख मंजुघोषा उनके समीप आयी और वीणा नीचे रखकर उनका आलिंगन करने लगी। मेधावी भी उसके साथ रमण करने लगे। कामवश रमण करते हुए उन्हें रात और दिनका भी भान न रहा। इस प्रकार मुनिजनोचित सदाचारका लोप करके अप्सराके साथ रमण करते उन्हें बहुत दिन व्यतीत हो गये। मंजुघोषा देवलोकमें जानेको तैयार हुई। जाते समय उसने मुनिश्रेष्ठ मेधावीसे कहा—'ब्रह्मन्! अब मुझे अपने देश जानेकी आज्ञा दीजिये।'

मेधावी बोले—देवी! जबतक सबेरेकी सन्ध्या न हो जाय तबतक मेरे ही पास ठहरो।

अप्सराने कहा—विप्रवर! अबतक न जाने कितनी सन्ध्या चली गयी! मुझपर कृपा करके बीते हुए समयका विचार तो कीजिये।

लोमशजी कहते हैं—राजन्! अप्सराकी बात सुनकर मेधावीके नेत्र आश्चर्यसे चकित हो उठे। उस समय उन्होंने बीते हुए समयका हिसाब लगाया तो मालूम हुआ कि उसके साथ रहते सत्तावन वर्ष हो गये। उसे अपनी तपस्याका विनाश करनेवाली जानकर मुनिको उसपर बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने शाप देते हुए कहा—'पापिनी! तू पिशाची हो जा।' मुनिके शापसे दग्ध होकर वह विनयसे नतमस्तक हो बोली—'विप्रवर! मेरे शापका उद्धार कीजिये। सात वाक्य बोलने या सात पद साथ-साथ चलनेमात्रसे ही सत्पुरुषोंके साथ मैत्री हो जाती है। ब्रह्मन्! मैंने तो आपके साथ अनेक वर्ष व्यतीत किये हैं; अतः स्वामिन्! मुझपर कृपा कीजिये।'

मुनि बोले—भद्रे! मेरी बात सुनो—यह शापसे उद्धार करनेवाली है। क्या करूँ? तुमने मेरी बहुत बड़ी तपस्या नष्ट कर डाली है। चैत्र कृष्णपक्षमें जो शुभ एकादशी आती है उसका नाम है 'पापमोचनी'। वह सब पापोंका क्षय करनेवाली है। सुन्दरी! उसीका व्रत करनेपर तुम्हारी पिशाचता दूर होगी।

ऐसा कहकर मेधावी अपने पिता मुनिवर च्यवनके आश्रमपर गये। उन्हें आया देख च्यवनने पूछा—'बेटा! यह क्या किया? तुमने तो अपने पुण्यका नाश कर डाला!'

मेधावी बोले—पिताजी! मैंने अप्सराके साथ रमण करनेका पातक किया है। कोई ऐसा प्रायश्चित्त बताइये, जिससे पापका नाश हो जाय।

च्यवनने कहा—बेटा! चैत्र कृष्णपक्षमें जो पापमोचनी एकादशी होती है, उसका व्रत करनेपर पापराशिका विनाश हो जायगा।

पिताका यह कथन सुनकर मेधावीने उस व्रतका अनुष्ठान किया। इससे उनका पाप नष्ट हो गया और वे पुनः तपस्यासे परिपूर्ण हो गये। इसी प्रकार मंजुघोषाने भी इस उत्तम व्रतका पालन किया। 'पापमोचनी' का व्रत करनेके कारण वह पिशाच-योनिसे मुक्त हुई और दिव्य रूपधारिणी श्रेष्ठ अप्सरा होकर स्वर्गलोकमें चली गयी। राजन्! जो श्रेष्ठ मनुष्य पापमोचनी एकादशीका व्रत करते हैं, उनका सारा पाप नष्ट हो जाता है। इसको पढ़ने और सुननेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है। ब्रह्महत्या, सुवर्णकी चोरी, सुरापान और गुरुपत्नीगमन करनेवाले महापातकी भी इस व्रतके करनेसे पापमुक्त हो जाते हैं। यह व्रत बहुत पुण्यमय है।

युधिष्ठिरने पूछा—वासुदेव! आपको नमस्कार है। अब मेरे सामने यह बताइये कि चैत्र शुक्लपक्षमें किस नामकी एकादशी होती है?

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! एकाग्रचित्त होकर यह पुरातन कथा सुनो, जिसे वसिष्ठजीने दिलीपके पूछनेपर कहा था।

दिलीपने पूछा—भगवन्! मैं एक बात सुनना चाहता हूँ। चैत्रमासके शुक्लपक्षमें किस नामकी एकादशी होती है?

वसिष्ठजी बोले—राजन्! चैत्र शुक्लपक्षमें 'कामदा' नामकी एकादशी होती है। वह परम पुण्यमयी है। पापरूपी ईंधनके लिये तो वह दावानल ही है। प्राचीन कालकी बात है, नागपुर नामका एक सुन्दर नगर था, जहाँ सोनेके महल बने हुए थे। उस नगरमें पुण्डरीक आदि महा भयंकर नाग निवास करते थे। पुण्डरीक नामका नाग उन दिनों वहाँ राज्य करता था। गन्धर्व, किन्नर और अप्सराएँ भी उस नगरीका सेवन करती थीं। वहाँ एक श्रेष्ठ अप्सरा थी, जिसका नाम ललिता था। उसके साथ ललित नामवाला गन्धर्व भी था। वे दोनों पति-पत्नीके रूपमें रहते थे। दोनों ही परस्पर कामसे पीड़ित रहा करते थे। ललिताके हृदयमें सदा पतिकी ही मूर्ति बसी रहती थी और ललितके हृदयमें सुन्दरी ललिताका नित्य निवास था। एक दिनकी बात है, नागराज पुण्डरीक राजसभामें बैठकर मनोरंजन कर रहा था। उस समय ललितका गान हो रहा था। किन्तु उसके साथ उसकी प्यारी ललिता नहीं थी। गाते-गाते उसे ललिताका स्मरण हो आया। अतः उसके पैरोंकी गति रुक गयी और जीभ लड़खड़ाने लगी। नागोंमें श्रेष्ठ कर्कोटकको ललितके मनका सन्ताप ज्ञात हो गया; अतः उसने राजा पुण्डरीकको उसके पैरोंकी गति रुकने एवं गानमें त्रुटि होनेकी बात बता दी। कर्कोटककी बात सुनकर नागराज पुण्डरीककी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं। उसने गाते हुए कामातुर ललितको शाप दिया—'दुर्बुद्धे! तू मेरे सामने गान करते समय भी पत्नीके वशीभूत हो गया, इसलिये राक्षस हो जा।'

महाराज पुण्डरीकके इतना कहते ही वह गन्धर्व राक्षस हो गया। भयंकर मुख, विकराल आँखें और देखनेमात्रसे भय उपजानेवाला रूप। ऐसा राक्षस होकर वह कर्मका फल भोगने लगा। ललिता अपने पतिकी विकराल आकृति देख मन-ही-मन बहुत चिन्तित हुई। भारी दुःखसे कष्ट पाने लगी। सोचने लगी, 'क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? मेरे पति पापसे कष्ट पा रहे हैं।' वह रोती हुई घने जंगलोंमें पतिके पीछे-पीछे घूमने लगी। वनमें उसे एक सुन्दर आश्रम दिखायी दिया, जहाँ एक शान्त मुनि बैठे हुए थे। उनका किसी भी प्राणीके साथ वैर-विरोध नहीं था। ललिता शीघ्रताके साथ वहाँ गयी और मुनिको प्रणाम करके उनके सामने खड़ी हुई। मुनि बड़े दयालु थे। उस दुःखिनीको देखकर वे इस प्रकार बोले—'शुभे! तुम कौन हो? कहाँसे यहाँ आयी हो? मेरे सामने सच-सच बताओ।'

ललिताने कहा—महामुने! वीरधन्वा नामवाले एक गन्धर्व हैं। मैं उन्हीं महात्माकी पुत्री हूँ। मेरा नाम ललिता है। मेरे स्वामी अपने पाप-दोषके कारण राक्षस हो गये हैं। उनकी यह अवस्था देखकर मुझे चैन नहीं है। ब्रह्मन्! इस समय मेरा जो कर्तव्य हो, वह बताइये। विप्रवर! जिस पुण्यके द्वारा मेरे पति राक्षसभावसे छुटकारा पा जायँ, उसका उपदेश कीजिये।'

ऋषि बोले—भद्रे! इस समय चैत्रमासके

शुक्लपक्षकी 'कामदा' नामक एकादशी तिथि है, जो सब पापोंको हरनेवाली और उत्तम है। तुम उसीका विधि-पूर्वक व्रत करो और इस व्रतका जो पुण्य हो, उसे अपने स्वामीको दे डालो। पुण्य देनेपर क्षणभरमें ही उसके शापका दोष दूर हो जायगा।

राजन्! मुनिका यह वचन सुनकर ललिताको बड़ा हर्ष हुआ। उसने एकादशीको उपवास करके द्वादशीके दिन उन ब्रह्मर्षिके समीप ही भगवान् वासुदेवके [श्रीविग्रहके] समक्ष अपने पतिके उद्धारके लिये यह वचन कहा—'मैंने जो यह कामदा एकादशीका उपवासव्रत किया है, उसके पुण्यके प्रभावसे मेरे पतिका राक्षस-भाव दूर हो जाय।'

वसिष्ठजी कहते हैं—ललिताके इतना कहते ही उसी क्षण ललितका पाप दूर हो गया। उसने दिव्य देह धारण कर लिया। राक्षस-भाव चला गया और पुनः गन्धर्वत्वकी प्राप्ति हुई। नृपश्रेष्ठ! वे दोनों पति-पत्नी 'कामदा' के प्रभावसे पहलेकी अपेक्षा भी अधिक सुन्दर रूप धारण करके विमानपर आरूढ़ हो अत्यन्त शोभा पाने लगे। यह जानकर इस एकादशीके व्रतका यत्नपूर्वक पालन करना चाहिये। मैंने लोगोंके हितके लिये तुम्हारे सामने इस व्रतका वर्णन किया है। कामदा एकादशी ब्रह्महत्या आदि पापों तथा पिशाचत्व आदि दोषोंका भी नाश करनेवाली है। राजन्! इसके पढ़ने और सुननेसे वाजपेय यज्ञका फल मिलता है।

वैशाख मासकी 'वरूथिनी' और 'मोहिनी' एकादशीका माहात्म्य

युधिष्ठिरने पूछा—वासुदेव! आपको नमस्कार है। वैशाख मासके कृष्णपक्षमें किस नामकी एकादशी होती है? उसकी महिमा बताइये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! वैशाख कृष्णपक्षकी एकादशी 'वरूथिनी' के नामसे प्रसिद्ध है। यह इस लोक और परलोकमें भी सौभाग्य प्रदान करनेवाली है। 'वरूथिनी' के व्रतसे ही सदा सौख्यका लाभ और पापकी हानि होती है। यह समस्त लोकोंको भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली है। 'वरूथिनी' के ही व्रतसे मान्धाता तथा धुन्धुमार आदि अन्य अनेक राजा स्वर्गलोकको प्राप्त हुए हैं। जो दस हजार वर्षोंतक तपस्या करता है, उसके समान ही फल 'वरूथिनी' के व्रतसे भी मनुष्य प्राप्त कर लेता है। नृपश्रेष्ठ! घोड़ेके दानसे हाथीका दान श्रेष्ठ है। भूमिदान उससे भी बड़ा है। भूमिदानसे भी अधिक महत्त्व तिलदानका है। तिलदानसे बढ़कर स्वर्णदान और स्वर्णदानसे बढ़कर अन्नदान है; क्योंकि देवता, पितर तथा मनुष्योंको अन्नसे ही तृप्ति होती है। विद्वान् पुरुषोंने कन्यादानको भी अन्नदानके ही समान बताया है। कन्यादानके तुल्य ही धेनुका दान है—यह साक्षात् भगवान्‌का कथन है। ऊपर बताये हुए सब दानोंसे बड़ा विद्यादान है। मनुष्य वरूथिनी एकादशीका व्रत करके विद्यादानका भी फल प्राप्त कर लेता है। जो लोग पापसे मोहित होकर कन्याके धनसे जीविका चलाते हैं, वे पुण्यका क्षय होनेपर यातनामय नरकमें

जाते हैं। अतः सर्वथा प्रयत्न करके कन्याके धनसे बचना चाहिये—उसे अपने काममें नहीं लाना चाहिये।[१] जो अपनी शक्तिके अनुसार आभूषणोंसे विभूषित करके पवित्रभावसे कन्याका दान करता है, उसके पुण्यकी संख्या बतानेमें चित्रगुप्त भी असमर्थ हैं। वरूथिनी एकादशी करके भी मनुष्य उसीके समान फल प्राप्त करता है। व्रत करनेवाला वैष्णव पुरुष दशमी तिथिको काँस, उड़द, मसूर, चना, कोदो, शाक, मधु, दूसरेका अन्न, दो बार भोजन तथा मैथुन—इन दस वस्तुओंका परित्याग कर दे।[२] एकादशीको जुआ खेलना, नींद लेना, पान खाना, दाँतुन करना, दूसरेकी निन्दा करना, चुगली खाना, चोरी, हिंसा, मैथुन, क्रोध तथा असत्य-भाषण—इन ग्यारह बातोंको त्याग दे।[३] द्वादशीको काँस, उड़द, शराब, मधु, तेल, पतितोंसे वार्तालाप, व्यायाम, परदेशगमन, दो बार भोजन, मैथुन, बैलकी पीठपर सवारी और मसूर—इन बारह वस्तुओंका त्याग करे।[४] राजन्! इस विधिसे वरूथिनी एकादशी की जाती है। रातको जागरण करके जो भगवान् मधुसूदनका पूजन करते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त हो परमगतिको प्राप्त होते हैं। अतः पापभीरु मनुष्योंको पूर्ण प्रयत्न करके इस एकादशीका व्रत करना चाहिये। यमराजसे डरनेवाला मनुष्य अवश्य 'वरूथिनी'का व्रत करे। राजन्! इसके पढ़ने और सुननेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है और मनुष्य सब पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

युधिष्ठिरने पूछा—जनार्दन! वैशाख मासके शुक्लपक्षमें किस नामकी एकादशी होती है? उसका क्या फल होता है? तथा उसके लिये कौन-सी विधि है?

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! पूर्वकालमें परम बुद्धिमान् श्रीरामचन्द्रजीने महर्षि वसिष्ठसे यही बात पूछी थी, जिसे आज तुम मुझसे पूछ रहे हो।

श्रीरामने कहा—भगवन्! जो समस्त पापोंका क्षय तथा सब प्रकारके दुःखोंका निवारण करनेवाला व्रतोंमें उत्तम व्रत हो, उसे मैं सुनना चाहता हूँ।

वसिष्ठजी बोले—श्रीराम! तुमने बहुत उत्तम बात पूछी है। मनुष्य तुम्हारा नाम लेनेसे ही सब पापोंसे शुद्ध हो जाता है। तथापि लोगोंके हितकी इच्छासे मैं पवित्रोंमें पवित्र उत्तम व्रतका वर्णन करूँगा। वैशाख मासके शुक्लपक्षमें जो एकादशी होती है, उसका नाम मोहिनी है। वह सब पापोंको हरनेवाली और उत्तम है। उसके व्रतके प्रभावसे मनुष्य मोहजाल तथा पातक-समूहसे छुटकारा पा जाते हैं।

सरस्वती नदीके रमणीय तटपर भद्रावती नामकी सुन्दर नगरी है। वहाँ धृतिमान् नामक राजा, जो चन्द्र-वंशमें उत्पन्न और सत्यप्रतिज्ञ थे, राज्य करते थे। उसी नगरमें एक वैश्य रहता था, जो धन-धान्यसे परिपूर्ण और समृद्धिशाली था। उसका नाम था धनपाल। वह सदा पुण्यकर्ममें ही लगा रहता था। दूसरोंके लिये पौंसला, कुआँ, मठ, बगीचा, पोखरा और घर बनवाया

---

१. कन्यावित्तेन जीवन्ति ये नराः पापमोहिताः॥
पुण्यक्षयात्ते गच्छन्ति निरयं यातनामयम्। तस्मात् सर्वप्रयत्नेन न ग्राह्यं कन्यकाधनम्॥ (५०।१४-१५)

२. कांस्यं माषं मसूरांश्च चणकान् कोद्रवांस्तथा। शाकं मधु परान्नं च पुनर्भोजनमैथुने॥
वैष्णवो व्रतकर्ता च दशम्यां दश वर्जयेत्॥ (५०।१७-१८)

३. द्यूतक्रीडां च निद्रां च ताम्बूलं दन्तधावनम्। परापवादंपैशुन्यं स्तेयं हिंसां तथा रतिम्॥
क्रोधं चानृतवाक्यानि ह्येकादश्यां विवर्जयेत्॥ (५०।१९-२०)

४. कांस्यं माषं सुरां क्षौद्रं तैलं पतितभाषणम्॥
व्यायामं च प्रवासं च पुनर्भोजनमैथुने। वृषपृष्ठं मसूरान्नं द्वादश्यां परिवर्जयेत्॥ (५०।२०-२१)

करता था। भगवान् श्रीविष्णुकी भक्तिमें उसका हार्दिक अनुराग था। वह सदा शान्त रहता था। उसके पाँच पुत्र थे—सुमना, द्युतिमान्, मेधावी, सुकृत तथा धृष्टबुद्धि। धृष्टबुद्धि पाँचवाँ था। वह सदा बड़े-बड़े पापोंमें ही संलग्न रहता था। जुए आदि दुर्व्यसनोंमें उसकी बड़ी आसक्ति थी। वह वेश्याओंसे मिलनेके लिये लालायित रहता था। उसकी बुद्धि न तो देवताओंके पूजनमें लगती थी और न पितरों तथा ब्राह्मणोंके सत्कारमें। वह दुष्टात्मा अन्यायके मार्गपर चलकर पिताका धन बरबाद किया करता था। एक दिन वह वेश्याके गलेमें बाँह डाले चौराहेपर घूमता देखा गया। तब पिताने उसे घरसे निकाल दिया तथा बन्धु-बान्धवोंने भी उसका परित्याग कर दिया। अब वह दिन-रात दुःख और शोकमें डूबा तथा कष्ट-पर-कष्ट उठाता हुआ इधर-उधर भटकने लगा। एक दिन किसी पुण्यके उदय होनेसे वह महर्षि कौण्डिन्यके आश्रमपर जा पहुँचा। वैशाखका महीना था। तपोधन कौण्डिन्य गंगाजीमें स्नान करके आये थे। धृष्टबुद्धि शोकके भारसे पीड़ित हो मुनिवर कौण्डिन्यके पास गया और हाथ जोड़ सामने खड़ा होकर बोला—'ब्रह्मन्! द्विजश्रेष्ठ! मुझपर दया करके कोई ऐसा व्रत बताइये, जिसके पुण्यके प्रभावसे मेरी मुक्ति हो।'

कौण्डिन्य बोले—वैशाखके शुक्लपक्षमें मोहिनी नामसे प्रसिद्ध एकादशीका व्रत करो। मोहिनीको उपवास करनेपर प्राणियोंके अनेक जन्मोंके किये हुए मेरुपर्वत-जैसे महापाप भी नष्ट हो जाते हैं।

वसिष्ठजी कहते हैं—श्रीरामचन्द्र! मुनिका यह वचन सुनकर धृष्टबुद्धिका चित्त प्रसन्न हो गया। उसने कौण्डिन्यके उपदेशसे विधिपूर्वक मोहिनी एकादशीका व्रत किया। नृपश्रेष्ठ! इस व्रतके करनेसे वह निष्पाप हो गया और दिव्य देह धारणकर गरुड़पर आरूढ़ हो सब प्रकारके उपद्रवोंसे रहित श्रीविष्णुधामको चला गया। इस प्रकार यह मोहिनीका व्रत बहुत उत्तम है। इसके पढ़ने और सुननेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है।

ज्येष्ठ मासकी 'अपरा' तथा 'निर्जला' एकादशीका माहात्म्य

युधिष्ठिरने पूछा—जनार्दन! ज्येष्ठके कृष्णपक्षमें किस नामकी एकादशी होती है? मैं उसका माहात्म्य सुनना चाहता हूँ। उसे बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! तुमने सम्पूर्ण लोकोंके हितके लिये बहुत उत्तम बात पूछी है। राजेन्द्र! इस एकादशीका नाम 'अपरा' है। यह बहुत पुण्य प्रदान करनेवाली और बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाली है। ब्रह्महत्यासे दबा हुआ, गोत्रकी हत्या करनेवाला, गर्भस्थ बालकको मारनेवाला, परनिन्दक तथा परस्त्रीलम्पट पुरुष भी अपरा एकादशीके सेवनसे निश्चय ही पापरहित हो जाता है। जो झूठी गवाही देता, माप-तोलमें धोखा देता, बिना जाने ही नक्षत्रोंकी गणना करता और कूटनीतिसे आयुर्वेदका ज्ञाता बनकर वैद्यका काम करता है—ये सब नरकमें निवास करनेवाले प्राणी हैं। परन्तु अपरा एकादशीके सेवनसे ये भी पापरहित हो जाते हैं। यदि क्षत्रिय क्षात्रधर्मका परित्याग करके युद्धसे भागता है, तो वह क्षत्रियोचित धर्मसे भ्रष्ट होनेके कारण घोर नरकमें पड़ता है। जो शिष्य विद्या प्राप्त करके स्वयं ही गुरुकी निन्दा करता है, वह भी महापातकोंसे युक्त होकर भयंकर नरकमें गिरता है। किन्तु अपरा एकादशीके सेवनसे ऐसे मनुष्य भी सद्गतिको प्राप्त होते हैं।

माघमें जब सूर्य मकरराशिपर स्थित हों, उस समय प्रयागमें स्नान करनेवाले मनुष्योंको जो पुण्य होता है, काशीमें शिवरात्रिका व्रत करनेसे जो पुण्य प्राप्त होता है, गयामें पिण्डदान करके पितरोंको तृप्ति प्रदान करनेवाला पुरुष जिस पुण्यका भागी होता है, बृहस्पतिके सिंहराशिपर स्थित होनेपर गोदावरीमें स्नान करनेवाला मानव जिस फलको प्राप्त करता है, बदरिकाश्रमकी यात्राके समय भगवान् केदारके दर्शनसे तथा बदरीतीर्थके सेवनसे जो पुण्य-फल उपलब्ध होता है तथा सूर्यग्रहणके समय कुरुक्षेत्रमें दक्षिणासहित यज्ञ करके हाथी, घोड़ा और सुवर्ण-दान करनेसे जिस

फलकी प्राप्ति होती है; अपरा एकादशीके सेवनसे भी मनुष्य वैसे ही फल प्राप्त करता है। 'अपरा'-को उपवास करके भगवान् वामनकी पूजा करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो श्रीविष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। इसको पढ़ने और सुननेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है।

युधिष्ठिरने कहा—जनार्दन! 'अपरा' का सारा माहात्म्य मैंने सुन लिया, अब ज्येष्ठके शुक्लपक्षमें जो एकादशी हो उसका वर्णन कीजिये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! इसका वर्णन परम धर्मात्मा सत्यवतीनन्दन व्यासजी करेंगे; क्योंकि ये सम्पूर्ण शास्त्रोंके तत्त्वज्ञ और वेद-वेदांगोंके पारंगत विद्वान् हैं।

तब वेदव्यासजी कहने लगे—दोनों ही पक्षोंकी एकादशियोंको भोजन न करे। द्वादशीको स्नान आदिसे पवित्र हो फूलोंसे भगवान् केशवकी पूजा करके नित्यकर्म समाप्त होनेके पश्चात् पहले ब्राह्मणोंको भोजन देकर अन्तमें स्वयं भोजन करे। राजन्! जननाशौच और मरणाशौचमें भी एकादशीको भोजन नहीं करना चाहिये।

यह सुनकर भीमसेन बोले—परम बुद्धिमान् पितामह! मेरी उत्तम बात सुनिये। राजा युधिष्ठिर, माता कुन्ती, द्रौपदी, अर्जुन, नकुल और सहदेव—ये एकादशीको कभी भोजन नहीं करते तथा मुझसे भी हमेशा यही कहते हैं कि 'भीमसेन! तुम भी एकादशीको न खाया करो।' किन्तु मैं इन लोगोंसे यही कह दिया करता हूँ कि 'मुझसे भूख नहीं सही जायगी।'

भीमसेनकी बात सुनकर व्यासजीने कहा—यदि तुम्हें स्वर्गलोककी प्राप्ति अभीष्ट है और नरकको दूषित समझते हो तो दोनों पक्षोंकी एकादशीको भोजन न करना।

भीमसेन बोले—महाबुद्धिमान् पितामह! मैं आपके सामने सच्ची बात कहता हूँ एक बार भोजन करके भी मुझसे व्रत नहीं किया जा सकता। फिर उपवास करके तो मैं रह ही कैसे सकता हूँ। मेरे उदरमें वृक नामक अग्नि सदा प्रज्वलित रहती है; अतः जब मैं बहुत अधिक खाता हूँ, तभी यह शान्त होती है। इसलिये महामुने! मैं वर्षभरमें केवल एक ही उपवास कर सकता हूँ; जिससे स्वर्गकी प्राप्ति सुलभ हो तथा जिसके करनेसे मैं कल्याणका भागी हो सकूँ, ऐसा कोई एक व्रत निश्चय करके बताइये। मैं उसका यथोचितरूपसे पालन करूँगा।

व्यासजीने कहा—भीम! ज्येष्ठ मासमें सूर्य वृष-राशिपर हों या मिथुनराशिपर; शुक्लपक्षमें जो एकादशी हो, उसका यत्नपूर्वक निर्जल व्रत करो। केवल कुल्ला या आचमन करनेके लिये मुखमें जल डाल सकते हो, उसको छोड़कर और किसी प्रकारका जल विद्वान् पुरुष मुखमें न डाले, अन्यथा व्रत भंग हो जाता है। एकादशीको सूर्योदयसे लेकर दूसरे दिनके सूर्योदयतक मनुष्य जलका त्याग करे तो यह व्रत पूर्ण होता है। तदनन्तर द्वादशीको निर्मल प्रभातकालमें स्नान करके ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक जल और सुवर्णका दान करे। इस प्रकार सब कार्य पूरा करके जितेन्द्रिय पुरुष ब्राह्मणोंके साथ भोजन करे। वर्षभरमें जितनी एकादशियाँ होती हैं, उन सबका फल निर्जला एकादशीके सेवनसे मनुष्य प्राप्त कर लेता है; इसमें
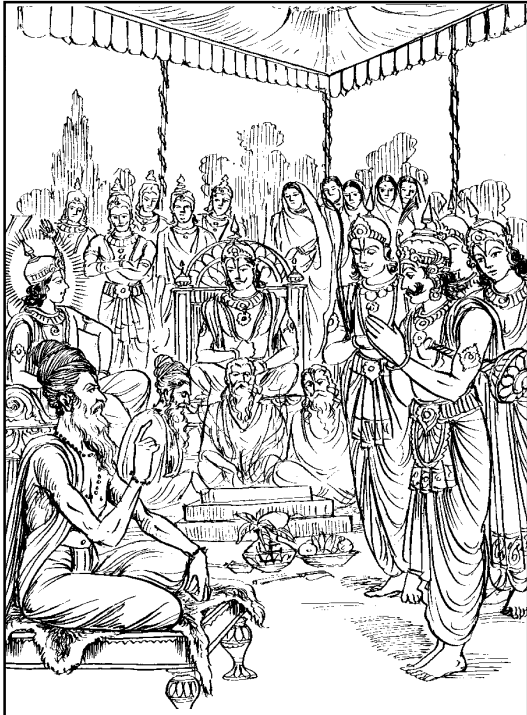
तनिक भी सन्देह नहीं है। शंख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् केशवने मुझसे कहा था कि 'यदि मानव सबको छोड़कर एकमात्र मेरी शरणमें आ जाय और एकादशीको निराहार रहे तो वह सब पापोंसे छूट जाता है।'

एकादशीव्रत करनेवाले पुरुषके पास विशालकाय, विकराल आकृति और काले रंगवाले दण्ड-पाशधारी भयंकर यमदूत नहीं जाते। अन्तकालमें पीताम्बरधारी, सौम्य स्वभाववाले, हाथमें सुदर्शन धारण करनेवाले और मनके समान वेगशाली विष्णुदूत आकर इस वैष्णव पुरुषको भगवान् विष्णुके धाममें ले जाते हैं। अतः निर्जला एकादशीको पूर्ण यत्न करके उपवास करना चाहिये। तुम भी सब पापोंकी शान्तिके लिये यत्नके साथ उपवास और श्रीहरिका पूजन करो। स्त्री हो या पुरुष, यदि उसने मेरुपर्वतके बराबर भी महान् पाप किया हो तो वह सब एकादशीके प्रभावसे भस्म हो जाता है। जो मनुष्य उस दिन जलके नियमका पालन करता है, वह पुण्यका भागी होता है, उसे एक-एक पहरमें कोटि-कोटि स्वर्णमुद्रा दान करनेका फल प्राप्त होता सुना गया है। मनुष्य निर्जला एकादशीके दिन स्नान, दान, जप, होम आदि जो कुछ भी करता है, वह सब अक्षय होता है, यह भगवान् श्रीकृष्णका कथन है। निर्जला एकादशीको विधिपूर्वक उत्तम रीतिसे उपवास करके मानव वैष्णवपदको प्राप्त कर लेता है। जो मनुष्य एकादशीके दिन अन्न खाता है, वह पाप-भोजन करता है। इस लोकमें वह चाण्डालके समान है और मरनेपर दुर्गतिको प्राप्त होता है।[१]

जो ज्येष्ठके शुक्लपक्षमें एकादशीको उपवास करके दान देंगे, वे परमपदको प्राप्त होंगे। जिन्होंने एकादशीको उपवास किया है, वे ब्रह्महत्यारे, शराबी, चोर तथा गुरुद्रोही होनेपर भी सब पातकोंसे मुक्त हो जाते हैं। कुन्तीनन्दन! निर्जला एकादशीके दिन श्रद्धालु स्त्री-पुरुषोंके लिये जो विशेष दान और कर्तव्य विहित है, उसे सुनो—उस दिन जलमें शयन करनेवाले भगवान् विष्णुका पूजन और जलमयी धेनुका दान करना चाहिये। अथवा प्रत्यक्ष धेनु या घृतमयी धेनुका दान उचित है। पर्याप्त दक्षिणा और भाँति-भाँतिके मिष्टान्नोंद्वारा यत्नपूर्वक ब्राह्मणोंको संतुष्ट करना चाहिये। ऐसा करनेसे ब्राह्मण अवश्य संतुष्ट होते हैं और उनके संतुष्ट होनेपर श्रीहरि मोक्ष प्रदान करते हैं। जिन्होंने शम, दम और दानमें प्रवृत्त हो श्रीहरिकी पूजा और रात्रिमें जागरण करते हुए इस निर्जला एकादशीका व्रत किया है, उन्होंने अपने साथ ही बीती हुई सौ पीढ़ियोंको और आनेवाली सौ पीढ़ियोंको भगवान् वासुदेवके परम धाममें पहुँचा दिया है। निर्जला एकादशीके दिन अन्न, वस्त्र, गौ, जल, शय्या, सुन्दर आसन, कमण्डलु तथा छाता दान करने चाहिये।[२] जो श्रेष्ठ एवं सुपात्र ब्राह्मणको जूता दान करता है, वह सोनेके विमानपर बैठकर स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। जो इस एकादशीकी महिमाको भक्तिपूर्वक सुनता तथा जो भक्तिपूर्वक उसका वर्णन करता है, वे दोनों स्वर्गलोकमें जाते हैं। चतुर्दशीयुक्त अमावास्याको सूर्यग्रहणके समय श्राद्ध करके मनुष्य जिस फलको प्राप्त करता है, वही इसके श्रवणसे भी प्राप्त होता है। पहले दन्तधावन करके यह नियम लेना चाहिये कि 'मैं भगवान् केशवकी प्रसन्नताके लिये एकादशीको निराहार रहकर आचमनके सिवा दूसरे जलका भी त्याग करूँगा।' द्वादशीको देवदेवेश्वर भगवान् विष्णुका पूजन करना चाहिये। गन्ध, धूप, पुष्प और सुन्दर वस्त्रसे विधिपूर्वक पूजन करके जलका घड़ा संकल्प करते हुए निम्नांकित मन्त्रका उच्चारण करे।

देवदेव हृषीकेश संसारार्णवतारक।
उदकुम्भप्रदानेन नय मां परमां गतिम्॥

(५३।६०)

१-एकादश्यां दिने योऽन्नं भुङ्क्ते पापं भुनक्ति सः। इह लोके च चाण्डालो मृतः प्राप्नोति दुर्गतिम्॥ (५३।४३-४४)

२-अन्नं वस्त्रं तथा गावो जलं शय्यासनं शुभम्। कमण्डलुस्तथा छत्रं दातव्यं निर्जलादिने॥ (५३।५३)

'संसारसागरसे तारनेवाले देवदेव हृषीकेश! इस जलके घड़ेका दान करनेसे आप मुझे परम गतिकी प्राप्ति कराइये।'

भीमसेन! ज्येष्ठ मासमें शुक्लपक्षकी जो शुभ एकादशी होती है, उसका निर्जल व्रत करना चाहिये तथा उस दिन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको शक्करके साथ जलके घड़े दान करने चाहिये। ऐसा करनेसे मनुष्य भगवान् विष्णुके समीप पहुँचकर आनन्दका अनुभव करता है। तत्पश्चात् द्वादशीको ब्राह्मणभोजन करानेके बाद स्वयं भोजन करे। जो इस प्रकार पूर्णरूपसे पापनाशिनी एकादशीका व्रत करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो अनामय पदको प्राप्त होता है।

यह सुनकर भीमसेनने भी इस शुभ एकादशीका व्रत आरम्भ कर दिया। तबसे यह लोकमें 'पाण्डव-द्वादशी' के नामसे विख्यात हुई।

आषाढ़ मासकी 'योगिनी' और 'शयनी' एकादशीका माहात्म्य

युधिष्ठिरने पूछा—वासुदेव! आषाढ़के कृष्णपक्षमें जो एकादशी होती है, उसका क्या नाम है? कृपया उसका वर्णन कीजिये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—नृपश्रेष्ठ! आषाढ़के कृष्णपक्षकी एकादशीका नाम 'योगिनी' है। यह बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाली है। संसारसागरमें डूबे हुए प्राणियोंके लिये यह सनातन नौकाके समान है। तीनों लोकोंमें यह सारभूत व्रत है।

अलकापुरीमें राजाधिराज कुबेर रहते हैं। वे सदा भगवान् शिवकी भक्तिमें तत्पर रहनेवाले हैं। उनके हेममाली नामवाला एक यक्ष सेवक था, जो पूजाके लिये फूल लाया करता था। हेममालीकी पत्नी बड़ी सुन्दरी थी। उसका नाम विशालाक्षी था। वह यक्ष कामपाशमें आबद्ध होकर सदा अपनी पत्नीमें आसक्त रहता था। एक दिनकी बात है, हेममाली मानसरोवरसे फूल लाकर अपने घरमें ही ठहर गया और पत्नीके प्रेमका रसास्वादन करने लगा; अतः कुबेरके भवनमें न जा सका। इधर कुबेर मन्दिरमें बैठकर शिवका पूजन कर रहे थे। उन्होंने दोपहरतक फूल आनेकी प्रतीक्षा की। जब पूजाका समय व्यतीत हो गया तो यक्षराजने कुपित होकर सेवकोंसे पूछा—'यक्षो! दुरात्मा हेममाली क्यों नहीं आ रहा है, इस बातका पता तो लगाओ।'

यक्षोंने कहा—राजन्! वह तो पत्नीकी कामनामें आसक्त हो अपनी इच्छाके अनुसार घरमें ही रमण कर रहा है।

उनकी बात सुनकर कुबेर क्रोधमें भर गये और तुरंत ही हेममालीको बुलवाया। देर हुई जानकर हेममालीके नेत्र भयसे व्याकुल हो रहे थे। वह आकर कुबेरके सामने खड़ा हुआ। उसे देखकर कुबेरकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं। वे बोले—'ओ पापी! ओ दुष्ट! ओ दुराचारी! तूने भगवान्‌की अवहेलना की है, अतः कोढ़से युक्त और अपनी उस प्रियतमासे वियुक्त होकर इस स्थानसे भ्रष्ट होकर अन्यत्र चला जा।' कुबेरके ऐसा कहनेपर वह उस स्थानसे नीचे गिर गया। उस समय उसके हृदयमें महान् दुःख हो रहा था। कोढ़ोंसे सारा शरीर पीड़ित था। परन्तु शिवपूजाके प्रभावसे उसकी स्मरणशक्ति लुप्त नहीं होती थी। पातकसे दबा होनेपर भी वह अपने पूर्वकर्मको याद रखता था। तदनन्तर इधर-उधर घूमता हुआ वह पर्वतोंमें श्रेष्ठ मेरुगिरिके शिखरपर गया। वहाँ उसे तपस्याके पुंज मुनिवर मार्कण्डेयजीका दर्शन हुआ। पापकर्मा यक्षने दूरसे ही मुनिके चरणोंमें प्रणाम किया। मुनिवर मार्कण्डेयने उसे भयसे काँपते देख परोपकारकी इच्छासे निकट बुलाकर कहा—'तुझे कोढ़के रोगने कैसे दबा लिया? तू क्यों इतना अधिक निन्दनीय जान पड़ता है?'

यक्ष बोला—मुने! मैं कुबेरका अनुचर हूँ। मेरा नाम हेममाली है। मैं प्रतिदिन मानसरोवरसे फूल ले आकर शिवपूजाके समय कुबेरको दिया करता था। एक दिन पत्नी-सहवासके सुखमें फँस जानेके कारण मुझे

समयका ज्ञान ही नहीं रहा; अतः राजाधिराज कुबेरने कुपित होकर मुझे शाप दे दिया, जिससे मैं कोढ़से आक्रान्त होकर अपनी प्रियतमासे बिछुड़ गया। मुनि-श्रेष्ठ! इस समय किसी शुभ कर्मके प्रभावसे मैं आपके निकट आ पहुँचा हूँ। संतोंका चित्त स्वभावतः परोपकारमें लगा रहता है, यह जानकर मुझ अपराधीको कर्तव्यका उपदेश दीजिये।
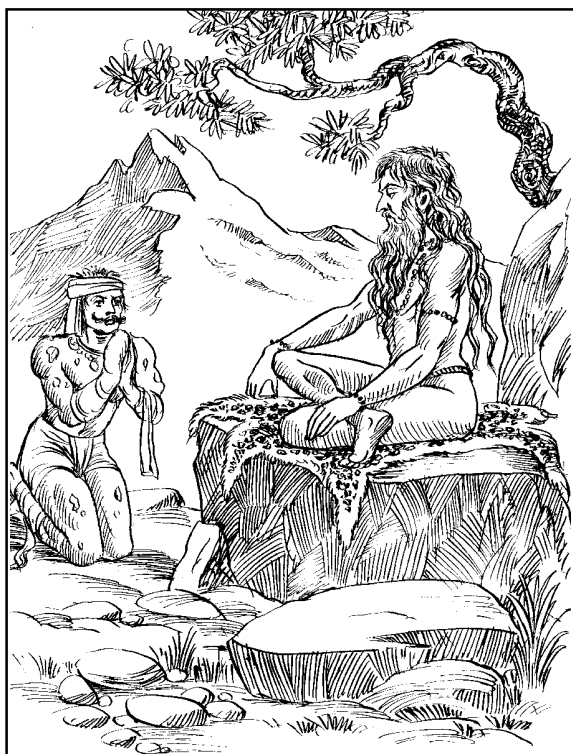
मार्कण्डेयजीने कहा—तुमने यहाँ सच्ची बात कही है, असत्य-भाषण नहीं किया है; इसलिये मैं तुम्हें कल्याणप्रद व्रतका उपदेश करता हूँ। तुम आषाढ़के कृष्णपक्षमें 'योगिनी' एकादशीका व्रत करो। इस व्रतके पुण्यसे तुम्हारी कोढ़ निश्चय ही दूर हो जायगी।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—ऋषिके ये वचन सुनकर हेममाली दण्डकी भाँति मुनिके चरणोंमें पड़ गया। मुनिने उसे उठाया, इससे उसको बड़ा हर्ष हुआ। मार्कण्डेयजीके उपदेशसे उसने योगिनी एकादशीका व्रत किया, जिससे उसके शरीरकी कोढ़ दूर हो गयी। मुनिके कथनानुसार उस उत्तम व्रतका अनुष्ठान करनेपर वह पूर्ण सुखी हो गया। नृपश्रेष्ठ! यह योगिनीका व्रत ऐसा ही बताया गया है। जो अट्ठासी हजार ब्राह्मणोंको भोजन कराता है, उसके समान ही फल उस मनुष्यको भी मिलता है, जो योगिनी एकादशीका व्रत करता है। 'योगिनी' महान् पापोंको शान्त करनेवाली और महान् पुण्य-फल देनेवाली है। इसके पढ़ने और सुननेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! आषाढ़के शुक्ल-पक्षमें कौन-सी एकादशी होती है? उसका नाम और विधि क्या है? यह बतलानेकी कृपा करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! आषाढ़ शुक्लपक्षकी एकादशीका नाम 'शयनी' है। मैं उसका वर्णन करता हूँ। वह महान् पुण्यमयी, स्वर्ग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाली, सब पापोंको हरनेवाली तथा उत्तम व्रत है। आषाढ़ शुक्लपक्षमें शयनी एकादशीके दिन जिन्होंने कमलपुष्पसे कमललोचन भगवान् विष्णुका पूजन तथा एकादशीका उत्तम व्रत किया है, उन्होंने तीनों लोकों और तीनों सनातन देवताओंका पूजन कर लिया। हरिशयनी एकादशीके दिन मेरा एक स्वरूप राजा बलिके यहाँ रहता है और दूसरा क्षीरसागरमें शेषनागकी शय्यापर तबतक शयन करता है, जबतक आगामी कार्तिककी एकादशी नहीं आ जाती; अतः आषाढ़शुक्ला एकादशीसे लेकर कार्तिकशुक्ला एकादशीतक मनुष्यको भलीभाँति धर्मका आचरण करना चाहिये। जो मनुष्य इस व्रतका अनुष्ठान करता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है, इस कारण यत्नपूर्वक इस एकादशीका व्रत करना चाहिये। एकादशीकी रातमें जागरण करके शंख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् विष्णुकी भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिये। ऐसा करनेवाले पुरुषके पुण्यकी गणना करनेमें चतुर्मुख ब्रह्माजी भी असमर्थ हैं। राजन्! जो इस प्रकार भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले सर्वपापहारी एकादशीके उत्तम व्रतका पालन करता है, वह जातिका चाण्डाल होनेपर भी संसारमें सदा मेरा प्रिय करनेवाला है। जो मनुष्य दीपदान, पलाशके पत्तेपर भोजन और व्रत करते हुए चौमासा व्यतीत करते हैं, वे मेरे प्रिय हैं। चौमासेमें भगवान् विष्णु सोये रहते हैं; इसलिये मनुष्यको भूमिपर

शयन करना चाहिये। सावनमें साग, भादोंमें दही, क्वारमें दूध और कार्तिकमें दालका त्याग कर देना चाहिये।* अथवा जो चौमासेमें ब्रह्मचर्यका पालन करता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है। राजन्! एकादशीके व्रतसे ही मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है; अतः सदा इसका व्रत करना चाहिये। कभी भूलना नहीं चाहिये। 'शयनी' और 'बोधिनी'के बीचमें जो कृष्णपक्षकी एकादशियाँ होती हैं, गृहस्थके लिये वे ही व्रत रखने-योग्य हैं—अन्य मासोंकी कृष्णपक्षीय एकादशी गृहस्थके रखनेयोग्य नहीं होती। शुक्लपक्षकी एकादशी सभीको करनी चाहिये।

श्रावणमासकी 'कामिका' और 'पुत्रदा' एकादशीका माहात्म्य

युधिष्ठिरने पूछा—गोविन्द! वासुदेव! आपको नमस्कार है! श्रावणके कृष्णपक्षमें कौन-सी एकादशी होती है? उसका वर्णन कीजिये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! सुनो, मैं तुम्हें एक पापनाशक उपाख्यान सुनाता हूँ, जिसे पूर्वकालमें ब्रह्माजीने नारदजीके पूछनेपर कहा था।

नारदजीने प्रश्न किया—भगवन्! कमलासन! मैं आपसे यह सुनना चाहता हूँ कि श्रावणके कृष्णपक्षमें जो एकादशी होती है, उसका क्या नाम है, उसके कौन-से देवता हैं तथा उससे कौन-सा पुण्य होता है? प्रभो! यह सब बताइये।

ब्रह्माजीने कहा—नारद! सुनो—मैं सम्पूर्ण लोकोंके हितकी इच्छासे तुम्हारे प्रश्नका उत्तर दे रहा हूँ। श्रावणमासमें जो कृष्णपक्षकी एकादशी होती है, उसका नाम 'कामिका' है; उसके स्मरणमात्रसे वाजपेय-यज्ञका फल मिलता है। उस दिन श्रीधर, हरि, विष्णु, माधव और मधुसूदन आदि नामोंसे भगवान्का पूजन करना चाहिये। भगवान् श्रीकृष्णके पूजनसे जो फल मिलता है, वह गंगा, काशी, नैमिषारण्य तथा पुष्कर क्षेत्रमें भी सुलभ नहीं है। सिंहराशिके बृहस्पति होनेपर तथा व्यतीपात और दण्डयोगमें गोदावरीस्नानसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, वही फल भगवान् श्रीकृष्णके पूजनसे भी मिलता है। जो समुद्र और वनसहित समूची पृथ्वीका दान करता है तथा जो कामिका एकादशीका व्रत करता है, वे दोनों समान फलके भागी माने गये हैं। जो ब्यायी हुई गायको अन्यान्य सामग्रियोंसहित दान करता है, उस मनुष्यको जिस फलकी प्राप्ति होती है, वही 'कामिका'का व्रत करनेवालेको मिलता है। जो नरश्रेष्ठ श्रावणमासमें भगवान् श्रीधरका पूजन करता है, उसके द्वारा गन्धर्वों और नागोंसहित सम्पूर्ण देवताओंकी पूजा हो जाती है; अतः पापभीरु मनुष्योंको यथाशक्ति पूरा प्रयत्न करके 'कामिका'के दिन श्रीहरिका पूजन करना चाहिये। जो पापरूपी पंकसे भरे हुए संसारसमुद्रमें डूब रहे हैं, उनका उद्धार करनेके लिये कामिकाका व्रत सबसे उत्तम है। अध्यात्मविद्यापरायण पुरुषोंको जिस फलकी प्राप्ति होती है; उससे बहुत अधिक फल 'कामिका' व्रतका सेवन करनेवालोंको मिलता है। 'कामिका'का व्रत करनेवाला मनुष्य रात्रिमें जागरण करके न तो कभी भयंकर यमराजका दर्शन करता है और न कभी दुर्गतिमें ही पड़ता है।

लाल मणि, मोती, वैदूर्य और मूँगे आदिसे पूजित होकर भी भगवान् विष्णु वैसे संतुष्ट नहीं होते, जैसे तुलसीदलसे पूजित होनेपर होते हैं। जिसने तुलसीकी मंजरियोंसे श्रीकेशवका पूजन कर लिया है; उसके जन्मभरका पाप निश्चय ही नष्ट हो जाता है। जो दर्शन करनेपर सारे पापसमुदायका नाश कर देती है, स्पर्श करनेपर शरीरको पवित्र बनाती है, प्रणाम करनेपर रोगोंका निवारण करती है, जलसे सींचनेपर यमराजको भी भय पहुँचाती है, आरोपित करनेपर भगवान् श्रीकृष्णके समीप ले जाती है और भगवान्के चरणोंमें

* श्रावणे वर्जयेच्छाकं दधि भाद्रपदे तथा। दुग्धमाश्वयुजि त्याज्यं कार्तिके द्विदलं त्यजेत्॥ (५५। ३३-३४)

चढ़ानेपर मोक्षरूपी फल प्रदान करती है, उस तुलसी देवीको नमस्कार है।* जो मनुष्य एकादशीको दिन-रात दीपदान करता है, उसके पुण्यकी संख्या चित्रगुप्त भी नहीं जानते। एकादशीके दिन भगवान् श्रीकृष्णके सम्मुख जिसका दीपक जलता है, उसके पितर स्वर्गलोकमें स्थित होकर अमृतपानसे तृप्त होते हैं। घी अथवा तिलके तेलसे भगवान्के सामने दीपक जलाकर मनुष्य देह-त्यागके पश्चात् करोड़ों दीपकोंसे पूजित हो स्वर्गलोकमें जाता है।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—युधिष्ठिर! यह तुम्हारे सामने मैंने कामिका एकादशीकी महिमाका वर्णन किया है। 'कामिका' सब पातकोंको हरनेवाली है; अतः मानवोंको इसका व्रत अवश्य करना चाहिये। यह स्वर्गलोक तथा महान् पुण्यफल प्रदान करनेवाली है। जो मनुष्य श्रद्धाके साथ इसका माहात्म्य श्रवण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो श्रीविष्णुलोकमें जाता है।

युधिष्ठिरने पूछा—मधुसूदन! श्रावणके शुक्ल-पक्षमें किस नामकी एकादशी होती है? कृपया मेरे सामने उसका वर्णन कीजिये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! प्राचीन कालकी बात है, द्वापरयुगके प्रारम्भका समय था, माहिष्मतीपुरमें राजा महीजित् अपने राज्यका पालन करते थे, किन्तु उन्हें कोई पुत्र नहीं था; इसलिये वह राज्य उन्हें सुखदायक नहीं प्रतीत होता था। अपनी अवस्था अधिक देख राजाको बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने प्रजावर्गमें बैठकर इस प्रकार कहा—'प्रजाजनो! इस जन्ममें मुझसे कोई पातक नहीं हुआ। मैंने अपने खजानेमें अन्यायसे कमाया हुआ धन नहीं जमा किया है। ब्राह्मणों और देवताओंका धन भी मैंने कभी नहीं लिया है। प्रजाका पुत्रवत् पालन किया, धर्मसे पृथ्वीपर अधिकार जमाया तथा दुष्टोंको, वे बन्धु और पुत्रोंके समान ही क्यों न रहे हों, दण्ड दिया है। शिष्ट पुरुषोंका सदा सम्मान किया और किसीको द्वेषका पात्र नहीं समझा। फिर क्या कारण है, जो मेरे घरमें आजतक पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ। आपलोग इसका विचार करें।'

राजाके ये वचन सुनकर प्रजा और पुरोहितोंके साथ ब्राह्मणोंने उनके हितका विचार करके गहन वनमें प्रवेश किया। राजाका कल्याण चाहनेवाले वे सभी लोग इधर-उधर घूमकर ऋषिसेवित आश्रमोंकी तलाश करने लगे। इतनेहीमें उन्हें मुनिश्रेष्ठ लोमशका दर्शन हुआ। लोमशजी धर्मके तत्त्वज्ञ, सम्पूर्ण शास्त्रोंके विशिष्ट विद्वान्, दीर्घायु और महात्मा हैं। उनका शरीर लोमसे भरा हुआ है। वे ब्रह्माजीके समान तेजस्वी हैं। एक-एक कल्प बीतनेपर उनके शरीरका एक-एक लोम विशीर्ण होता—टूटकर गिरता है; इसीलिये उनका नाम लोमश हुआ है। वे महामुनि तीनों कालोंकी बातें जानते हैं। उन्हें देखकर सब लोगोंको बड़ा हर्ष हुआ। उन्हें निकट आया देख लोमशजीने पूछा—'तुम सब लोग किसलिये यहाँ आये

---

* या दृष्टा निखिलाघसंघशमनी स्पृष्टा वपुष्पावनी रोगाणामभिवन्दिता निरसनी सिक्तान्तकत्रासिनी।
प्रत्यासत्तिविधायिनी भगवतः कृष्णस्य संरोपिता न्यस्ता तच्चरणे विमुक्तिफलदा तस्यै तुलस्यै नमः॥ (५६।२२)
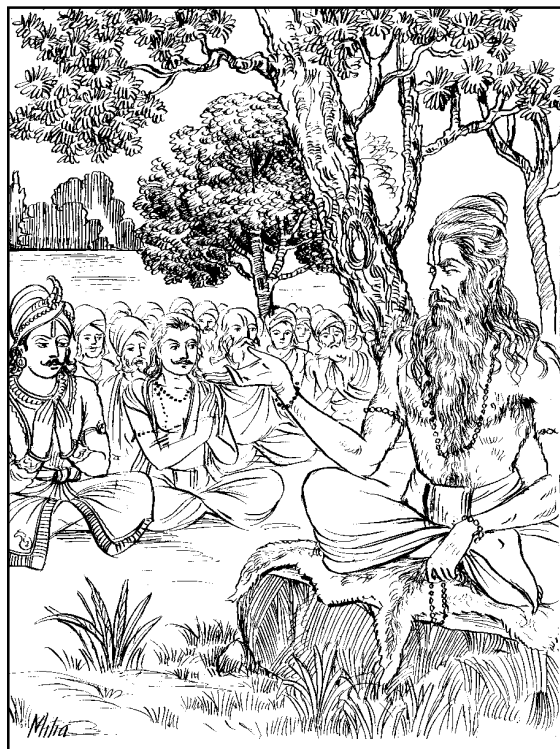
हो? अपने आगमनका कारण बताओ। तुमलोगोंके लिये जो हितकर कार्य होगा, उसे मैं अवश्य करूँगा।

प्रजाओंने कहा—ब्रह्मन्! इस समय महीजित् नामवाले जो राजा हैं, उन्हें कोई पुत्र नहीं है। हमलोग उन्हींकी प्रजा हैं, जिनका उन्होंने पुत्रकी भाँति पालन किया है। उन्हें पुत्रहीन देख, उनके दुःखसे दुःखित हो हम तपस्या करनेका दृढ़ निश्चय करके यहाँ आये हैं। द्विजोत्तम! राजाके भाग्यसे इस समय हमें आपका दर्शन मिल गया है। महापुरुषोंके दर्शनसे ही मनुष्योंके सब कार्य सिद्ध हो जाते हैं। मुने! अब हमें उस उपायका उपदेश कीजिये, जिससे राजाको पुत्रकी प्राप्ति हो।

उनकी बात सुनकर महर्षि लोमश दो घड़ीतक ध्यानमग्न हो गये। तत्पश्चात् राजाके प्राचीन जन्मका वृत्तान्त जानकर उन्होंने कहा—'प्रजावृन्द! सुनो—राजा महीजित् पूर्वजन्ममें मनुष्योंको चूसनेवाला धनहीन वैश्य था। वह वैश्य गाँव-गाँव घूमकर व्यापार किया करता था। एक दिन जेठके शुक्लपक्षमें दशमी तिथिको, जब दोपहरका सूर्य तप रहा था, वह गाँवकी सीमामें एक जलाशयपर पहुँचा। पानीसे भरी हुई बावली देखकर वैश्यने वहाँ जल पीनेका विचार किया। इतनेहीमें वहाँ बछड़ेके साथ एक गौ भी आ पहुँची। वह प्याससे व्याकुल और तापसे पीड़ित थी; अतः बावलीमें जाकर जल पीने लगी। वैश्यने पानी पीती हुई गायको हाँककर दूर हटा दिया और स्वयं पानी पीया। उसी पापकर्मके कारण राजा इस समय पुत्रहीन हुए हैं। किसी जन्मके पुण्यसे इन्हें अकण्टक राज्यकी प्राप्ति हुई है।'

प्रजाओंने कहा—मुने! पुराणमें सुना जाता है कि प्रायश्चित्तरूप पुण्यसे पाप नष्ट होता है; अतः पुण्यका उपदेश कीजिये, जिससे उस पापका नाश हो जाय।

लोमशजी बोले—प्रजाजनो! श्रावण मासके शुक्लपक्षमें जो एकादशी होती है, वह 'पुत्रदा' के नामसे विख्यात है। वह मनोवांछित फल प्रदान करनेवाली है। तुमलोग उसीका व्रत करो।

यह सुनकर प्रजाओंने मुनिको नमस्कार किया और नगरमें आकर विधिपूर्वक पुत्रदा एकादशीके व्रतका अनुष्ठान किया। उन्होंने विधिपूर्वक जागरण भी किया और उसका निर्मल पुण्य राजाको दे दिया। तत्पश्चात् रानीने गर्भ धारण किया और प्रसवका समय आनेपर बलवान् पुत्रको जन्म दिया।

इसका माहात्म्य सुनकर मनुष्य पापसे मुक्त हो जाता है तथा इहलोकमें सुख पाकर परलोकमें स्वर्गीय गतिको प्राप्त होता है।

भाद्रपद मासकी 'अजा' और 'पद्मा' एकादशीका माहात्म्य

युधिष्ठिरने पूछा—जनार्दन! अब मैं यह सुनना चाहता हूँ कि भाद्रपद मासके कृष्णपक्षमें कौन-सी एकादशी होती है? कृपया बताइये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! एकचित्त होकर सुनो। भाद्रपद मासके कृष्णपक्षकी एकादशीका नाम 'अजा' है, वह सब पापोंका नाश करनेवाली बतायी गयी है। जो भगवान् हृषीकेशका पूजन करके इसका व्रत करता है, उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। पूर्वकालमें हरिश्चन्द्र नामक एक विख्यात चक्रवर्ती राजा हो गये हैं, जो समस्त भूमण्डलके स्वामी और सत्यप्रतिज्ञ थे। एक समय किसी कर्मका फलभोग प्राप्त होनेपर उन्हें राज्यसे भ्रष्ट होना पड़ा। राजाने अपनी पत्नी और पुत्रको बेचा। फिर अपनेको भी बेच दिया। पुण्यात्मा होते हुए भी उन्हें चाण्डालकी दासता करनी पड़ी। वे मुर्दोंका कफन लिया करते थे। इतनेपर भी नृपश्रेष्ठ हरिश्चन्द्र सत्यसे विचलित नहीं हुए। इस प्रकार चाण्डालकी दासता करते उनके अनेक वर्ष व्यतीत हो गये। इससे राजाको बड़ी चिन्ता हुई। वे अत्यन्त दुःखी होकर सोचने लगे—'क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? कैसे मेरा उद्धार होगा?' इस प्रकार चिन्ता करते-करते वे शोकके समुद्रमें डूब गये। राजाको आतुर जानकर कोई मुनि उनके पास आये, वे महर्षि गौतम थे। श्रेष्ठ ब्राह्मणको

आया देख नृपश्रेष्ठने उनके चरणोंमें प्रणाम किया और दोनों हाथ जोड़ गौतमके सामने खड़े होकर अपना सारा दुःखमय समाचार कह सुनाया। राजाकी बात सुनकर गौतमने कहा—'राजन्! भादोंके कृष्णपक्षमें अत्यन्त कल्याणमयी 'अजा' नामकी एकादशी आ रही है, जो पुण्य प्रदान करनेवाली है। इसका व्रत करो। इससे पापका अन्त होगा। तुम्हारे भाग्यसे आजके सातवें दिन एकादशी है। उस दिन उपवास करके रातमें जागरण करना।'

ऐसा कहकर महर्षि गौतम अन्तर्धान हो गये। मुनिकी बात सुनकर राजा हरिश्चन्द्रने उस उत्तम व्रतका अनुष्ठान किया। उस व्रतके प्रभावसे राजा सारे दुःखोंसे पार हो गये। उन्हें पत्नीका सन्निधान और पुत्रका जीवन मिल गया। आकाशमें दुन्दुभियाँ बज उठीं। देवलोकसे फूलोंकी वर्षा होने लगी। एकादशीके प्रभावसे राजाने अकण्टक राज्य प्राप्त किया और अन्तमें वे पुरजन तथा परिजनोंके साथ स्वर्गलोकको प्राप्त हो गये। राजा युधिष्ठिर! जो मनुष्य ऐसा व्रत करते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त हो स्वर्गलोकमें जाते हैं। इसके पढ़ने और सुननेसे अश्वमेधयज्ञका फल मिलता है।

युधिष्ठिरने पूछा—केशव! भाद्रपद मासके शुक्लपक्षमें जो एकादशी होती है, उसका क्या नाम, कौन देवता और कैसी विधि है? यह बताइये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! इस विषयमें मैं तुम्हें आश्चर्यजनक कथा सुनाता हूँ; जिसे ब्रह्माजीने महात्मा नारदसे कहा था।

नारदजीने पूछा—चतुर्मुख! आपको नमस्कार है। मैं भगवान् विष्णुकी आराधनाके लिये आपके मुखसे यह सुनना चाहता हूँ कि भाद्रपद मासके शुक्लपक्षमें कौन-सी एकादशी होती है?

ब्रह्माजीने कहा—मुनिश्रेष्ठ! तुमने बहुत उत्तम बात पूछी है। क्यों न हो, वैष्णव जो ठहरे। भादोंके शुक्लपक्षकी एकादशी 'पद्मा' के नामसे विख्यात है। उस दिन भगवान् हृषीकेशकी पूजा होती है। यह उत्तम व्रत अवश्य करनेयोग्य है।

सूर्यवंशमें मान्धाता नामक एक चक्रवर्ती, सत्य-प्रतिज्ञ और प्रतापी राजर्षि हो गये हैं। वे प्रजाका अपने औरस पुत्रोंकी भाँति धर्मपूर्वक पालन किया करते थे। उनके राज्यमें अकाल नहीं पड़ता था, मानसिक चिन्ताएँ नहीं सताती थीं और व्याधियोंका प्रकोप भी नहीं होता था। उनकी प्रजा निर्भय तथा धन-धान्यसे समृद्ध थी। महाराजके कोषमें केवल न्यायोपार्जित धनका ही संग्रह था। उनके राज्यमें समस्त वर्णों और आश्रमोंके लोग अपने-अपने धर्ममें लगे रहते थे। मान्धाताके राज्यकी भूमि कामधेनुके समान फल देनेवाली थी। उनके राज्य करते समय प्रजाको बहुत सुख प्राप्त होता था। एक समय किसी कर्मका फलभोग प्राप्त होनेपर राजाके राज्यमें तीन वर्षोंतक वर्षा नहीं हुई। इससे उनकी प्रजा भूखसे पीड़ित हो नष्ट होने लगी; तब सम्पूर्ण प्रजाने महाराजके पास आकर इस प्रकार कहा—

प्रजा बोली—नृपश्रेष्ठ! आपको प्रजाकी बात सुननी चाहिये। पुराणोंमें मनीषी पुरुषोंने जलको 'नारा' कहा है; वह नारा ही भगवान्‌का अयन—निवासस्थान है; इसलिये वे नारायण कहलाते हैं। नारायणस्वरूप भगवान् विष्णु सर्वत्र व्यापकरूपमें विराजमान हैं। वे ही मेघस्वरूप होकर वर्षा करते हैं, वर्षासे अन्न पैदा होता है और अन्नसे प्रजा जीवन धारण करती है। नृपश्रेष्ठ! इस समय अन्नके बिना प्रजाका नाश हो रहा है; अतः ऐसा कोई उपाय कीजिये, जिससे हमारे योगक्षेमका निर्वाह हो।

राजाने कहा—आपलोगोंका कथन सत्य है, क्योंकि अन्नको ब्रह्म कहा गया है। अन्नसे प्राणी उत्पन्न होते हैं और अन्नसे ही जगत् जीवन धारण करता है। लोकमें बहुधा ऐसा सुना जाता है तथा पुराणमें भी बहुत विस्तारके साथ ऐसा वर्णन है कि राजाओंके अत्याचारसे प्रजाको पीड़ा होती है; किन्तु जब मैं बुद्धिसे विचार करता हूँ तो मुझे अपना किया हुआ कोई अपराध नहीं दिखायी देता। फिर भी मैं प्रजाका हित करनेके लिये पूर्ण प्रयत्न करूँगा।

ऐसा निश्चय करके राजा मान्धाता इने-गिने व्यक्तियोंको साथ ले विधाताको प्रणाम करके सघन

वनकी ओर चल दिये। वहाँ जाकर मुख्य-मुख्य मुनियों और तपस्वियोंके आश्रमोंपर घूमते फिरे। एक दिन उन्हें ब्रह्मपुत्र अंगिरा ऋषिका दर्शन हुआ। उनपर दृष्टि पड़ते ही राजा हर्षमें भरकर अपने वाहनसे उतर पड़े और इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए दोनों हाथ जोड़कर उन्होंने मुनिके चरणोंमें प्रणाम किया। मुनिने भी 'स्वस्ति' कहकर राजाका अभिनन्दन किया और उनके राज्यके सातों अंगोंकी कुशल पूछी। राजाने अपनी कुशल बताकर मुनिके स्वास्थ्यका समाचार पूछा। मुनिने राजाको आसन और अर्घ्य दिया। उन्हें ग्रहण करके जब वे मुनिके समीप बैठे तो उन्होंने इनके आगमनका कारण पूछा।

तब राजाने कहा—भगवन्! मैं धर्मानुकूल प्रणालीसे पृथ्वीका पालन कर रहा था। फिर भी मेरे राज्यमें वर्षाका अभाव हो गया। इसका क्या कारण है इस बातको मैं नहीं जानता।

ऋषि बोले—राजन्! यह सब युगोंमें उत्तम सत्ययुग है। इसमें सब लोग परमात्माके चिन्तनमें लगे रहते हैं तथा इस समय धर्म अपने चारों चरणोंसे युक्त होता है। इस युगमें केवल ब्राह्मण ही तपस्वी होते हैं, दूसरे लोग नहीं। किन्तु महाराज! तुम्हारे राज्यमें यह शूद्र तपस्या करता है; इसी कारण मेघ पानी नहीं बरसाते। तुम इसके प्रतीकारका यत्न करो; जिससे यह अनावृष्टिका दोष शान्त हो जाय।

राजाने कहा—मुनिवर! एक तो यह तपस्यामें लगा है, दूसरे निरपराध है; अतः मैं इसका अनिष्ट नहीं करूँगा। आप उक्त दोषको शान्त करनेवाले किसी धर्मका उपदेश कीजिये।

ऋषि बोले—राजन्! यदि ऐसी बात है तो एकादशीका व्रत करो। भाद्रपद मासके शुक्लपक्षमें जो 'पद्मा' नामसे विख्यात एकादशी होती है, उसके व्रतके प्रभावसे निश्चय ही उत्तम वृष्टि होगी। नरेश! तुम अपनी प्रजा और परिजनोंके साथ इसका व्रत करो।

ऋषिका यह वचन सुनकर राजा अपने घर लौट आये। उन्होंने चारों वर्णोंको समस्त प्रजाओंके साथ भादोंके शुक्लपक्षकी 'पद्मा' एकादशीका व्रत किया। इस प्रकार व्रत करनेपर मेघ पानी बरसाने लगे। पृथ्वी जलसे आप्लावित हो गयी और हरी-भरी खेतीसे सुशोभित होने लगी। उस व्रतके प्रभावसे सब लोग सुखी हो गये।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन्! इस कारण इस उत्तम व्रतका अनुष्ठान अवश्य करना चाहिये। 'पद्मा' एकादशीके दिन जलसे भरे हुए घड़ेको वस्त्रसे ढँककर दही और चावलके साथ ब्राह्मणको दान देना चाहिये, साथ ही छाता और जूता भी देने चाहिये। दान करते समय निम्नांकित मन्त्रका उच्चारण करे—

नमो नमस्ते गोविन्द बुधश्रवणसंज्ञक॥
अघौघसंक्षयं कृत्वा सर्वसौख्यप्रदो भव।
भुक्तिमुक्तिप्रदश्चैव लोकानां सुखदायकः॥

(५९। ३८-३९)

'[बुधवार और श्रवण नक्षत्रके योगसे युक्त द्वादशीके दिन] बुधश्रवण नाम धारण करनेवाले भगवान् गोविन्द! आपको नमस्कार है, नमस्कार है; मेरी पापराशिका नाश करके आप मुझे सब प्रकारके सुख प्रदान करें। आप पुण्यात्माजनोंको भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले तथा सुखदायक हैं।'

राजन्! इसके पढ़ने और सुननेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

आश्विन मासकी 'इन्दिरा' और 'पापांकुशा' एकादशीका माहात्म्य

युधिष्ठिरने पूछा—मधुसूदन! कृपा करके मुझे यह बताइये कि आश्विनके कृष्णपक्षमें कौन-सी एकादशी होती है?

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! आश्विन कृष्णपक्षमें 'इन्दिरा' नामकी एकादशी होती है, उसके व्रतके प्रभावसे बड़े-बड़े पापोंका नाश हो जाता है। नीच योनिमें पड़े हुए पितरोंको भी यह एकादशी सद्गति देनेवाली है।

राजन्! पूर्वकालकी बात है, सत्ययुगमें इन्द्रसेन नामसे विख्यात राजकुमार थे, जो अब माहिष्मतीपुरीके राजा होकर धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करते थे। उनका यश सब ओर फैल चुका था। राजा इन्द्रसेन भगवान् विष्णुकी भक्तिमें तत्पर हो गोविन्दके मोक्षदायक नामोंका जप करते हुए समय व्यतीत करते थे और विधिपूर्वक अध्यात्मतत्त्वके चिन्तनमें संलग्न रहते थे। एक दिन राजा राजसभामें सुखपूर्वक बैठे हुए थे, इतनेहीमें देवर्षि नारद आकाशसे उतरकर वहाँ आ पहुँचे। उन्हें आया देख राजा हाथ जोड़कर खड़े हो गये और विधिपूर्वक पूजन करके उन्हें आसनपर बिठाया, इसके बाद वे इस प्रकार बोले—'मुनिश्रेष्ठ! आपकी कृपासे मेरी सर्वथा कुशल

है। आज आपके दर्शनसे मेरी सम्पूर्ण यज्ञ-क्रियाएँ सफल हो गयीं। देवर्षे! अपने आगमनका कारण बताकर मुझपर कृपा करें।'

नारदजीने कहा—नृपश्रेष्ठ! सुनो, मेरी बात तुम्हें आश्चर्यमें डालनेवाली है, मैं ब्रह्मलोकसे यमलोकमें आया था, वहाँ एक श्रेष्ठ आसनपर बैठा और यमराजने मेरी भक्तिपूर्वक पूजा की। उस समय यमराजकी सभामें मैंने तुम्हारे पिताको भी देखा था। वे व्रतभंगके दोषसे वहाँ आये थे। राजन्! उन्होंने तुमसे कहनेके लिये एक सन्देश दिया है, उसे सुनो। उन्होंने कहा है, 'बेटा! मुझे 'इन्दिरा' के व्रतका पुण्य देकर स्वर्गमें भेजो।' उनका यह सन्देश लेकर मैं तुम्हारे पास आया हूँ। राजन्! अपने पिताको स्वर्गलोककी प्राप्ति करानेके लिये 'इन्दिरा' का व्रत करो।

राजाने पूछा—भगवन्! कृपा करके 'इन्दिरा'-का व्रत बताइये। किस पक्षमें, किस तिथिको और किस विधिसे उसका व्रत करना चाहिये।

नारदजीने कहा—राजेन्द्र! सुनो, मैं तुम्हें इस व्रतकी शुभकारक विधि बतलाता हूँ। आश्विन मासके कृष्णपक्षमें दशमीके उत्तम दिनको श्रद्धायुक्त चित्तसे प्रात:काल स्नान करे। फिर मध्याह्नकालमें स्नान करके एकाग्रचित्त हो एक समय भोजन करे तथा रात्रिमें भूमिपर सोये। रात्रिके अन्तमें निर्मल प्रभात होनेपर एकादशीके दिन दातुन करके मुँह धोये; इसके बाद भक्तिभावसे निम्नांकित मन्त्र पढ़ते हुए उपवासका नियम ग्रहण करे—

अद्य स्थित्वा निराहार: सर्वभोगविवर्जित:।
श्वो भोक्ष्ये पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत॥

(६०। २३)

'कमलनयन भगवान् नारायण! आज मैं सब भोगोंसे अलग हो निराहार रहकर कल भोजन करूँगा। अच्युत! आप मुझे शरण दें।'

इस प्रकार नियम करके मध्याह्नकालमें पितरोंकी प्रसन्नताके लिये शालग्राम-शिलाके सम्मुख विधिपूर्वक श्राद्ध करे तथा दक्षिणासे ब्राह्मणोंका सत्कार करके उन्हें भोजन करावे। पितरोंको दिये हुए अन्नमय पिण्डको सूँघकर विद्वान् पुरुष गायको खिला दे। फिर धूप और गन्ध आदिसे भगवान् हृषीकेशका पूजन करके रात्रिमें उनके समीप जागरण करे। तत्पश्चात् सबेरा होनेपर द्वादशीके दिन पुन: भक्तिपूर्वक श्रीहरिकी पूजा करे। उसके बाद ब्राह्मणोंको भोजन कराकर भाई-बन्धु, नाती और पुत्र आदिके साथ स्वयं मौन होकर भोजन करे।

राजन्! इस विधिसे आलस्यरहित होकर तुम 'इन्दिरा' का व्रत करो। इससे तुम्हारे पितर भगवान् विष्णुके वैकुण्ठधाममें चले जायँगे।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन्! राजा इन्द्रसेनसे ऐसा कहकर देवर्षि नारद अन्तर्धान हो गये। राजाने उनकी बतायी हुई विधिसे अन्त:पुरकी रानियों, पुत्रों और भृत्योंसहित उस उत्तम व्रतका अनुष्ठान किया। कुन्तीनन्दन! व्रत पूर्ण होनेपर आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी। इन्द्रसेनके पिता गरुड़पर आरूढ़ होकर श्रीविष्णुधामको चले गये और राजर्षि इन्द्रसेन भी अकण्टक राज्यका उपभोग करके अपने पुत्रको राज्यपर बिठाकर स्वयं स्वर्गलोकको गये। इस प्रकार मैंने तुम्हारे सामने 'इन्दिरा' व्रतके माहात्म्यका वर्णन किया है। इसको पढ़ने और सुननेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

युधिष्ठिरने पूछा—मधुसूदन! अब कृपा करके यह बताइये कि आश्विनके शुक्लपक्षमें किस नामकी एकादशी होती है?

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! आश्विनके शुक्लपक्षमें जो एकादशी होती है, वह 'पापांकुशा' के नामसे विख्यात है। वह सब पापोंको हरनेवाली तथा उत्तम है। उस दिन सम्पूर्ण मनोरथकी प्राप्तिके लिये मनुष्योंको स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करनेवाले पद्मनाभसंज्ञक मुझ वासुदेवका पूजन करना चाहिये। जितेन्द्रिय मुनि चिरकालतक कठोर तपस्या करके जिस फलको प्राप्त करता है, वह उस दिन भगवान् गरुड़ध्वजको प्रणाम करनेसे ही मिल जाता है। पृथ्वीपर जितने तीर्थ और पवित्र देवालय हैं, उन सबके सेवनका फल भगवान् विष्णुके नामकीर्तनमात्रसे मनुष्य प्राप्त कर लेता है। जो शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले सर्वव्यापक भगवान् जनार्दनकी शरणमें जाते हैं, उन्हें कभी यमलोककी यातना नहीं भोगनी पड़ती। यदि अन्य कार्यके प्रसंगसे भी मनुष्य एकमात्र एकादशीको उपवास कर ले तो उसे कभी यम-यातना नहीं प्राप्त होती। जो पुरुष विष्णुभक्त होकर भगवान् शिवकी निन्दा करता है, वह भगवान् विष्णुके लोकमें स्थान नहीं पाता; उसे निश्चय ही नरकमें गिरना पड़ता है। इसी प्रकार यदि कोई शैव या पाशुपत होकर भगवान् विष्णुकी निन्दा करता है तो वह घोर रौरव नरकमें डालकर तबतक पकाया जाता है, जबतक कि चौदह इन्द्रोंकी आयु पूरी नहीं हो जाती। यह एकादशी स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करनेवाली, शरीरको नीरोग बनानेवाली तथा सुन्दर स्त्री, धन एवं मित्र देनेवाली है। राजन्! एकादशीको दिनमें उपवास और रात्रिमें जागरण करनेसे अनायास ही विष्णुधामकी प्राप्ति हो जाती है। राजेन्द्र! वह पुरुष मातृ-पक्षकी दस, पिताके पक्षकी दस तथा स्त्रीके पक्षकी भी दस पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। एकादशी व्रत करनेवाले मनुष्य दिव्यरूपधारी, चतुर्भुज, गरुड़की ध्वजासे युक्त, हारसे सुशोभित और पीताम्बरधारी होकर भगवान् विष्णुके धामको जाते हैं। आश्विनके शुक्लपक्षमें पापांकुशाका व्रत करनेमात्रसे ही मानव सब पापोंसे मुक्त हो श्रीहरिके लोकमें जाता है। जो पुरुष सुवर्ण, तिल, भूमि, गौ, अन्न, जल, जूते और छातेका दान करता है, वह कभी यमराजको नहीं देखता। नृपश्रेष्ठ! दरिद्र पुरुषको भी चाहिये कि वह यथाशक्ति स्नान-दान आदि क्रिया करके अपने प्रत्येक दिनको सफल बनावे।* जो होम, स्नान, जप, ध्यान और यज्ञ आदि पुण्यकर्म करनेवाले हैं, उन्हें भयंकर यमयातना नहीं देखनी पड़ती। लोकमें जो मानव दीर्घायु, धनाढ्य, कुलीन और नीरोग देखे जाते हैं, वे पहलेके पुण्यात्मा हैं। पुण्यकर्ता पुरुष ऐसे ही देखे जाते हैं। इस विषयमें अधिक कहनेसे क्या लाभ, मनुष्य पापसे दुर्गतिमें पड़ते हैं और धर्मसे स्वर्गमें जाते हैं। राजन्! तुमने मुझसे जो कुछ पूछा था, उसके अनुसार पापांकुशाका माहात्म्य मैंने वर्णन किया; अब और क्या सुनना चाहते हो?

---

* अवन्ध्यं दिवसं कुर्याद् दरिद्रोऽपि नृपोत्तम । समाचरन् यथाशक्ति स्नानदानादिका: क्रिया:॥ (६१। २४-२५)

कार्तिक मासकी 'रमा' और 'प्रबोधिनी' एकादशीका माहात्म्य

युधिष्ठिरने पूछा—जनार्दन! मुझपर आपका स्नेह है; अतः कृपा करके बताइये। कार्तिकके कृष्णपक्षमें कौन-सी एकादशी होती है?

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! कार्तिकके कृष्णपक्षमें जो परम कल्याणमयी एकादशी होती है, वह 'रमा' के नामसे विख्यात है। 'रमा' परम उत्तम है और बड़े-बड़े पापोंको हरनेवाली है।

पूर्वकालमें मुचुकुन्द नामसे विख्यात एक राजा हो चुके हैं, जो भगवान् श्रीविष्णुके भक्त और सत्यप्रतिज्ञ थे। निष्कण्टक राज्यका शासन करते हुए उस राजाके यहाँ नदियोंमें श्रेष्ठ चन्द्रभागा कन्याके रूपमें उत्पन्न हुई। राजाने चन्द्रसेनकुमार शोभनके साथ उसका विवाह कर दिया। एक समयकी बात है, शोभन अपने ससुरके घर आये। उनके यहाँ दशमीका दिन आनेपर समूचे नगरमें ढिंढोरा पिटवाया जाता था कि एकादशीके दिन कोई भी भोजन न करे, कोई भी भोजन न करे। यह डंकेकी घोषणा सुनकर शोभनने अपनी प्यारी पत्नी चन्द्रभागासे कहा—'प्रिये! अब मुझे इस समय क्या करना चाहिये, इसकी शिक्षा दो।'

चन्द्रभागा बोली—प्रभो! मेरे पिताके घरपर तो एकादशीको कोई भी भोजन नहीं कर सकता। हाथी, घोड़े, हाथियोंके बच्चे तथा अन्यान्य पशु भी अन्न, घास तथा जलतकका आहार नहीं करने पाते; फिर मनुष्य एकादशीके दिन कैसे भोजन कर सकते हैं। प्राणनाथ! यदि आप भोजन करेंगे तो आपकी बड़ी निन्दा होगी। इस प्रकार मनमें विचार करके अपने चित्तको दृढ़ कीजिये।

शोभनने कहा—प्रिये! तुम्हारा कहना सत्य है, मैं भी आज उपवास करूँगा। दैवका जैसा विधान है, वैसा ही होगा।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—इस प्रकार दृढ़ निश्चय करके शोभनने व्रतके नियमका पालन किया। क्षुधासे उनके शरीरमें पीड़ा होने लगी; अतः वे बहुत दुःखी हुए। भूखकी चिन्तामें पड़े-पड़े सूर्यास्त हो गया। रात्रि आयी, जो हरिपूजापरायण तथा जागरणमें आसक्त वैष्णव मनुष्योंका हर्ष बढ़ानेवाली थी; परन्तु वही रात्रि शोभनके लिये अत्यन्त दुःखदायिनी हुई। सूर्योदय होते-होते उनका प्राणान्त हो गया। राजा मुचुकुन्दने राजोचित काष्ठोंसे शोभनका दाह-संस्कार कराया। चन्द्रभागा पतिका पारलौकिक कर्म करके पिताके ही घरपर रहने लगी। नृपश्रेष्ठ! 'रमा' नामक एकादशीके व्रतके प्रभावसे शोभन मन्दराचलके शिखरपर बसे हुए परम रमणीय देवपुरको प्राप्त हुआ। वहाँ शोभन द्वितीय कुबेरकी भाँति शोभा पाने लगा। राजा मुचुकुन्दके नगरमें सोमशर्मा नामसे विख्यात एक ब्राह्मण रहते थे, वे तीर्थयात्राके प्रसंगसे घूमते हुए कभी मन्दराचल पर्वतपर गये। वहाँ उन्हें शोभन दिखायी दिये। राजाके दामादको पहचानकर वे उनके समीप गये। शोभन भी उस समय द्विजश्रेष्ठ सोमशर्माको आया जान शीघ्र ही आसनसे उठकर खड़े हो गये और उन्हें प्रणाम किया। फिर क्रमशः अपने श्वशुर राजा

मुचुकुन्दका, प्रिय पत्नी चन्द्रभागाका तथा समस्त नगरका कुशल-समाचार पूछा।

सोमशर्माने कहा—राजन्! वहाँ सबकी कुशल है। यहाँ तो अद्भुत आश्चर्यकी बात है! ऐसा सुन्दर और विचित्र नगर तो कहीं किसीने भी नहीं देखा होगा। बताओ तो सही, तुम्हें इस नगरकी प्राप्ति कैसे हुई?

शोभन बोले—द्विजेन्द्र! कार्तिकके कृष्णपक्षमें जो 'रमा' नामकी एकादशी होती है, उसीका व्रत करनेसे मुझे ऐसे नगरकी प्राप्ति हुई है। ब्रह्मन्! मैंने श्रद्धाहीन होकर इस उत्तम व्रतका अनुष्ठान किया था; इसलिये मैं ऐसा मानता हूँ कि यह नगर सदा स्थिर रहनेवाला नहीं है। आप मुचुकुन्दकी सुन्दरी कन्या चन्द्रभागासे यह सारा वृत्तान्त कहियेगा।

शोभनकी बात सुनकर सोमशर्मा ब्राह्मण मुचुकुन्द-पुरमें गये और वहाँ चन्द्रभागाके सामने उन्होंने सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

सोमशर्मा बोले—शुभे! मैंने तुम्हारे पतिको प्रत्यक्ष देखा है तथा इन्द्रपुरीके समान उनके दुर्धर्ष नगरका भी अवलोकन किया है। वे उसे अस्थिर बतलाते थे। तुम उसको स्थिर बनाओ।

चन्द्रभागाने कहा—ब्रह्मर्षे! मेरे मनमें पतिके दर्शनकी लालसा लगी हुई है। आप मुझे वहाँ ले चलिये। मैं अपने व्रतके पुण्यसे उस नगरको स्थिर बनाऊँगी।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन्! चन्द्रभागाकी बात सुनकर सोमशर्मा उसे साथ ले मन्दराचल पर्वतके निकट वामदेव मुनिके आश्रमपर गये। वहाँ ऋषिके मन्त्रकी शक्ति तथा एकादशीसेवनके प्रभावसे चन्द्रभागाका शरीर दिव्य हो गया तथा उसने दिव्य गति प्राप्त कर ली। इसके बाद वह पतिके समीप गयी। उस समय उसके नेत्र हर्षोल्लाससे खिल रहे थे। अपनी प्रिय पत्नीको आयी देख शोभनको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने उसे बुलाकर अपने वामभागमें सिंहासनपर बिठाया; तदनन्तर चन्द्रभागाने हर्षमें भरकर अपने प्रियतमसे यह प्रिय वचन कहा—'नाथ! मैं हितकी बात कहती हूँ, सुनिये। पिताके घरमें रहते समय जब मेरी अवस्था आठ वर्षसे अधिक हो गयी, तभीसे लेकर आजतक मैंने जो एकादशीके व्रत किये हैं और उनसे मेरे भीतर जो पुण्य संचित हुआ है, उसके प्रभावसे यह नगर कल्पके अन्ततक स्थिर रहेगा तथा सब प्रकारके मनोवांछित वैभवसे समृद्धिशाली होगा।'

नृपश्रेष्ठ! इस प्रकार 'रमा' व्रतके प्रभावसे चन्द्रभागा दिव्य भोग, दिव्य रूप और दिव्य आभरणोंसे विभूषित हो अपने पतिके साथ मन्दराचलके शिखरपर विहार करती है। राजन्! मैंने तुम्हारे समक्ष 'रमा' नामक एकादशीका वर्णन किया है। यह चिन्तामणि तथा कामधेनुके समान सब मनोरथोंको पूर्ण करनेवाली है। मैंने दोनों पक्षोंके एकादशीव्रतोंका पापनाशक माहात्म्य बताया है। जैसी कृष्णपक्षकी एकादशी है, वैसी ही शुक्लपक्षकी भी है; उनमें भेद नहीं करना चाहिये। जैसे सफेद रंगकी गाय हो या काले रंगकी, दोनोंका दूध एक-सा ही होता है, इसी प्रकार दोनों पक्षोंकी एकादशियाँ समान फल देनेवाली हैं। जो मनुष्य एकादशी व्रतोंका माहात्म्य सुनता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो श्रीविष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

युधिष्ठिरने पूछा—श्रीकृष्ण! मैंने आपके मुखसे 'रमा' का यथार्थ माहात्म्य सुना। मानद! अब कार्तिक शुक्लपक्षमें जो एकादशी होती है; उसकी महिमा बताइये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! कार्तिकके शुक्लपक्षमें जो एकादशी होती है, उसका जैसा वर्णन लोकस्रष्टा ब्रह्माजीने नारदजीसे किया था; वही मैं तुम्हें बतलाता हूँ।

नारदजीने कहा—पिताजी! जिसमें धर्म-कर्ममें प्रवृत्ति करानेवाले भगवान् गोविन्द जागते हैं, उस 'प्रबोधिनी' एकादशीका माहात्म्य बतलाइये।

ब्रह्माजी बोले—मुनिश्रेष्ठ! 'प्रबोधिनी' का माहात्म्य पापका नाश, पुण्यकी वृद्धि तथा उत्तम बुद्धिवाले पुरुषोंको मोक्ष प्रदान करनेवाला है। समुद्रसे लेकर सरोवरतक जितने भी तीर्थ हैं, वे सभी अपने माहात्म्यकी तभीतक गर्जना करते हैं, जबतक कि कार्तिक मासमें भगवान् विष्णुकी 'प्रबोधिनी' तिथि नहीं

आ जाती। 'प्रबोधिनी' एकादशीको एक ही उपवास कर लेनेसे मनुष्य हजार अश्वमेध तथा सौ राजसूय-यज्ञका फल पा लेता है। बेटा! जो दुर्लभ है, जिसकी प्राप्ति असम्भव है तथा जिसे त्रिलोकीमें किसीने भी नहीं देखा है; ऐसी वस्तुके लिये भी याचना करनेपर 'प्रबोधिनी' एकादशी उसे देती है। भक्तिपूर्वक उपवास करनेपर मनुष्योंको 'हरिबोधिनी' एकादशी ऐश्वर्य, सम्पत्ति, उत्तम बुद्धि, राज्य तथा सुख प्रदान करती है। मेरुपर्वतके समान जो बड़े-बड़े पाप हैं, उन सबको यह पापनाशिनी 'प्रबोधिनी' एक ही उपवाससे भस्म कर देती है। पहलेके हजारों जन्मोंमें जो पाप किये गये हैं, उन्हें 'प्रबोधिनी' की रात्रिका जागरण रूईकी ढेरीके समान भस्म कर डालता है। जो लोग 'प्रबोधिनी' एकादशीका मनसे ध्यान करते तथा जो इसके व्रतका अनुष्ठान करते हैं, उनके पितर नरकके दुःखोंसे छुटकारा पाकर भगवान् विष्णुके परमधामको चले जाते हैं। ब्रह्मन्! अश्वमेध आदि यज्ञोंसे भी जिस फलकी प्राप्ति कठिन है, वह 'प्रबोधिनी' एकादशीको जागरण करनेसे अनायास ही मिल जाता है। सम्पूर्ण तीर्थोंमें नहाकर सुवर्ण और पृथ्वी दान करनेसे जो फल मिलता है, वह श्रीहरिके निमित्त जागरण करनेमात्रसे मनुष्य प्राप्त कर लेता है। जैसे मनुष्योंके लिये मृत्यु अनिवार्य है, उसी प्रकार धन-सम्पत्तिमात्र भी क्षणभंगुर है; ऐसा समझकर एकादशीका व्रत करना चाहिये। तीनों लोकोंमें जो कोई भी तीर्थ सम्भव हैं, वे सब 'प्रबोधिनी' एकादशीका व्रत करनेवाले मनुष्यके घरमें मौजूद रहते हैं। कार्तिककी 'हरिबोधिनी' एकादशी पुत्र तथा पौत्र प्रदान करनेवाली है। जो 'प्रबोधिनी' को उपासना करता है, वही ज्ञानी है, वही योगी है, वही तपस्वी और जितेन्द्रिय है तथा उसीको भोग और मोक्षकी प्राप्ति होती है।

बेटा! 'प्रबोधिनी' एकादशीको भगवान् विष्णुके उद्देश्यसे मानव जो स्नान, दान, जप और होम करता है, वह सब अक्षय होता है। जो मनुष्य उस तिथिको उपवास करके भगवान् माधवकी भक्तिपूर्वक पूजा करते हैं, वे सौ जन्मोंके पापोंसे छुटकारा पा जाते हैं। इस व्रतके द्वारा देवेश्वर! जनार्दनको सन्तुष्ट करके मनुष्य सम्पूर्ण दिशाओंको अपने तेजसे प्रकाशित करता हुआ श्रीहरिके वैकुण्ठधामको जाता है। 'प्रबोधिनी' को पूजित होनेपर भगवान् गोविन्द मनुष्योंके बचपन, जवानी और बुढ़ापेमें किये हुए सौ जन्मोंके पापोंको, चाहे वे अधिक हों या कम, धो डालते हैं। अतः सर्वथा प्रयत्न करके सम्पूर्ण मनोवांछित फलोंको देनेवाले देवाधिदेव जनार्दनकी उपासना करनी चाहिये। बेटा नारद! जो भगवान् विष्णुके भजनमें तत्पर होकर कार्तिकमें पराये अन्नका त्याग करता है, वह चान्द्रायण-व्रतका फल पाता है। जो प्रतिदिन शास्त्रीय चर्चासे मनोरंजन करते हुए कार्तिक मास व्यतीत करता है, वह अपने सम्पूर्ण पापोंको जला डालता और दस हजार यज्ञोंका फल प्राप्त करता है। कार्तिक मासमें शास्त्रीय कथाके कहने-सुननेसे भगवान् मधुसूदनको जैसा सन्तोष होता है, वैसा उन्हें यज्ञ, दान अथवा जप आदिसे भी नहीं होता। जो शुभकर्म-परायण पुरुष कार्तिक मासमें एक या आधा श्लोक भी भगवान् विष्णुकी कथा बाँचते हैं, उन्हें सौ गोदानका फल मिलता है। महामुने! कार्तिकमें भगवान् केशवके सामने शास्त्रका स्वाध्याय तथा श्रवण करना चाहिये। मुनिश्रेष्ठ! जो कार्तिकमें कल्याण-प्राप्तिके लोभसे श्रीहरिकी कथाका प्रबन्ध करता है, वह अपनी सौ पीढ़ियोंको तार देता है। जो मनुष्य सदा नियमपूर्वक कार्तिक मासमें भगवान् विष्णुकी कथा सुनता है, उसे सहस्र गोदानका फल मिलता है। जो 'प्रबोधिनी' एकादशीके दिन श्रीविष्णुकी कथा श्रवण करता है, उसे सातों द्वीपोंसे युक्त पृथ्वी-दान करनेका फल प्राप्त होता है। मुनिश्रेष्ठ! जो भगवान् विष्णुकी कथा सुनकर अपनी शक्तिके अनुसार कथा-वाचककी पूजा करते हैं, उन्हें अक्षय लोककी प्राप्ति होती है। नारद! जो मनुष्य कार्तिक मासमें भगवत्संबन्धी गीत और शास्त्रविनोदके द्वारा समय बिताता है, उसकी पुनरावृत्ति मैंने नहीं देखी है। मुने! जो पुण्यात्मा पुरुष भगवान्‌के समक्ष गान, नृत्य, वाद्य और श्रीविष्णुकी कथा करता है, वह तीनों लोकोंके ऊपर विराजमान होता है।

मुनिश्रेष्ठ! कार्तिककी 'प्रबोधिनी' एकादशीके दिन बहुत-से फल-फूल, कपूर, अरगजा और कुंकुमके द्वारा श्रीहरिकी पूजा करनी चाहिये। एकादशी आनेपर धनकी कंजूसी नहीं करनी चाहिये; क्योंकि उस दिन दान आदि करनेसे असंख्य पुण्यकी प्राप्ति होती है। 'प्रबोधिनी' को जागरणके समय शंखमें जल लेकर फल तथा नाना प्रकारके द्रव्योंके साथ श्रीजनार्दनको अर्घ्य देना चाहिये। सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करने और सब प्रकारके दान देनेसे जो फल मिलता है, वही 'प्रबोधिनी' एकादशीको अर्घ्य देनेसे करोड़ गुना होकर प्राप्त होता है। देवर्षे! अर्घ्यके पश्चात् भोजन-आच्छादन और दक्षिणा आदिके द्वारा भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये गुरुकी पूजा करनी चाहिये। जो मनुष्य उस दिन श्रीमद्भागवतकी कथा सुनता अथवा पुराणका पाठ करता है, उसे एक-एक अक्षरपर कपिलादानका फल मिलता है। मुनिश्रेष्ठ! कार्तिकमें जो मनुष्य अपनी शक्तिके अनुसार शास्त्रोक्त रीतिसे वैष्णवव्रत (एकादशी)-का पालन करता है, उसकी मुक्ति अविचल है। केतकीके एक पत्तेसे पूजित होनेपर भगवान् गरुड़ध्वज एक हजार वर्षतक अत्यन्त तृप्त रहते हैं। देवर्षे! जो अगस्तके फूलसे भगवान् जनार्दनकी पूजा करता है, उसके दर्शनमात्रसे नरककी आग बुझ जाती है। वत्स! जो कार्तिकमें भगवान् जनार्दनको तुलसीके पत्र और पुष्प अर्पण करते हैं, उनका जन्मभरका किया हुआ सारा पाप भस्म हो जाता है। मुने! जो प्रतिदिन दर्शन, स्पर्श, ध्यान, नाम-कीर्तन, स्तवन, अर्पण, सेचन, नित्यपूजन तथा नमस्कारके द्वारा तुलसीमें नव प्रकारकी भक्ति करते हैं, वे कोटि सहस्र युगोंतक पुण्यका विस्तार करते हैं।* नारद! सब प्रकारके फूलों और पत्तोंको चढ़ानेसे जो फल होता है, वह कार्तिक मासमें तुलसीके एक पत्तेसे मिल जाता है। कार्तिक आया देख प्रतिदिन नियमपूर्वक तुलसीके कोमल पत्तोंसे महाविष्णु श्रीजनार्दनका पूजन करना चाहिये। सौ यज्ञोंद्वारा देवताओंका यजन करने और अनेक प्रकारके दान देनेसे जो पुण्य होता है, वह कार्तिकमें तुलसीदलमात्रसे केशवकी पूजा करनेपर प्राप्त हो जाता है।

पुरुषोत्तम मासकी 'कमला' और 'कामदा' एकादशीका माहात्म्य

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! अब मैं श्रीविष्णुके व्रतोंमें उत्तम व्रतका, जो सब पापोंको हर लेनेवाला तथा व्रती मनुष्योंको मनोवांछित फल देनेवाला हो, श्रवण करना चाहता हूँ। जनार्दन! पुरुषोत्तम मासकी एकादशीकी कथा कहिये, उसका क्या फल है? और उसमें किस देवताका पूजन किया जाता है? प्रभो! किस दानका क्या पुण्य है? मनुष्योंको क्या करना चाहिये? उस समय कैसे स्नान किया जाता है? किस मन्त्रका जप होता है? कैसी पूजन-विधि बतायी गयी है? पुरुषोत्तम! पुरुषोत्तम मासमें किस अन्नका भोजन उत्तम है?

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजेन्द्र! अधिक मास आनेपर जो एकादशी होती है, वह 'कमला' नामसे प्रसिद्ध है। वह तिथियोंमें उत्तम तिथि है। उसके व्रतके प्रभावसे लक्ष्मी अनुकूल होती हैं। उस दिन ब्राह्म-मुहूर्तमें उठकर भगवान् पुरुषोत्तमका स्मरण करे और विधिपूर्वक स्नान करके व्रती पुरुष व्रतका नियम ग्रहण करे। घरपर जप करनेका एक गुना, नदीके तटपर दूना, गोशालामें सहस्रगुना, अग्निहोत्रगृहमें एक हजार एक सौ गुना, शिवके क्षेत्रोंमें, तीर्थोंमें, देवताओंके निकट तथा

---

* तुलसीदलपुष्पाणि ये यच्छन्ति जनार्दने। कार्तिके सकलं वत्स पापं जन्मार्जितं दहेत्॥
दृष्टा स्पृष्टाथ वा ध्याता कीर्तिता नामतः स्तुता। रोपिता सेचिता नित्यं पूजिता तुलसी नता॥
नवधा तुलसीभक्तिं ये कुर्वन्ति दिने दिने। युगकोटिसहस्राणि तन्वन्ति सुकृतं मुने॥ (६३। ६१—६३)

तुलसीके समीप लाख गुना और भगवान् विष्णुके निकट अनन्त गुना फल होता है।

अवन्तीपुरीमें शिवशर्मा नामक एक श्रेष्ठ ब्राह्मण रहते थे, उनके पाँच पुत्र थे। इनमें जो सबसे छोटा था, वह पापाचारी हो गया; इसलिये पिता तथा स्वजनोंने उसे त्याग दिया। अपने बुरे कर्मोंके कारण निर्वासित होकर वह बहुत दूर वनमें चला गया। दैवयोगसे एक दिन वह तीर्थराज प्रयागमें जा पहुँचा। भूखसे दुर्बल शरीर और दीन मुख लिये उसने त्रिवेणीमें स्नान किया। फिर क्षुधासे पीड़ित होकर वह वहाँ मुनियोंके आश्रम खोजने लगा। इतनेमें उसे वहाँ हरिमित्र मुनिका उत्तम आश्रम दिखायी दिया। पुरुषोत्तम मासमें वहाँ बहुत-से मनुष्य एकत्रित हुए थे। आश्रमपर पापनाशक कथा कहनेवाले ब्राह्मणोंके मुखसे उसने श्रद्धापूर्वक 'कमला' एकादशीकी महिमा सुनी, जो परम पुण्यमयी तथा भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली है। जयशर्माने विधिपूर्वक 'कमला' एकादशीकी कथा सुनकर उन सबके साथ मुनिके आश्रमपर ही व्रत किया। जब आधी रात हुई तो भगवती लक्ष्मी उसके पास आकर बोलीं—'ब्रह्मन्! इस समय

कमला' एकादशीके व्रतके प्रभावसे मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ और देवाधिदेव श्रीहरिकी आज्ञा पाकर वैकुण्ठधामसे आयी हूँ। मैं तुम्हें वर दूँगी।'

ब्राह्मण बोला—माता लक्ष्मी! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो वह व्रत बताइये, जिसकी कथा-वार्तामें साधु-ब्राह्मण सदा संलग्न रहते हैं।

लक्ष्मीने कहा—ब्राह्मण! एकादशी-व्रतका माहात्म्य श्रोताओंके सुननेयोग्य सर्वोत्तम विषय है। यह पवित्र वस्तुओंमें सबसे उत्तम है। इससे दुःस्वप्नका नाश तथा पुण्यकी प्राप्ति होती है, अतः इसका यत्नपूर्वक श्रवण करना चाहिये। उत्तम पुरुष श्रद्धासे युक्त हो एक या आधे श्लोकका पाठ करनेसे भी करोड़ों महापातकोंसे तत्काल मुक्त हो जाता है। जैसे मासोंमें पुरुषोत्तम मास, पक्षियोंमें गरुड़ तथा नदियोंमें गंगा श्रेष्ठ हैं; उसी प्रकार तिथियोंमें द्वादशी तिथि उत्तम है। समस्त देवता आज भी [एकादशी व्रतके ही लोभसे] भारतवर्षमें जन्म लेनेकी इच्छा रखते हैं। देवगण सदा ही रोग-शोकसे रहित भगवान् नारायणका पूजन करते हैं। जो लोग मेरे प्रभु भगवान् नारायणके नामका सदा भक्तिपूर्वक जप करते हैं, उनकी ब्रह्मा आदि देवता सर्वदा पूजा करते हैं। जो लोग श्रीहरिके नाम-जपमें संलग्न हैं, उनकी लीला-कथाओंके कीर्तनमें तत्पर हैं तथा निरन्तर श्रीहरिकी पूजामें ही प्रवृत्त रहते हैं; वे मनुष्य कलियुगमें कृतार्थ हैं। यदि दिनमें एकादशी और द्वादशी हो तथा रात्रि बीतते-बीतते त्रयोदशी आ जाय तो उस त्रयोदशीके पारणमें सौ यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। व्रत करनेवाला पुरुष चक्रसुदर्शनधारी देवाधिदेव श्रीविष्णुके समक्ष निम्नांकित मन्त्रका उच्चारण करके भक्तिभावसे संतुष्टचित्त होकर उपवास करे। वह मन्त्र इस प्रकार है—

एकादश्यां निराहारः स्थित्वाहमपरेऽहनि।
भोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत॥

(६४। ३४)

'कमलनयन! भगवान् अच्युत! मैं एकादशीको निराहार रहकर दूसरे दिन भोजन करूँगा। आप मुझे शरण दें।'

तत्पश्चात् व्रत करनेवाला मनुष्य मन और इन्द्रियोंको वशमें करके गीत, वाद्य, नृत्य और पुराण-पाठ आदिके द्वारा रात्रिमें भगवान्‌के समक्ष जागरण करे। फिर द्वादशीके दिन उठकर स्नानके पश्चात् जितेन्द्रियभावसे विधिपूर्वक श्रीविष्णुकी पूजा करे। एकादशीको पंचामृतसे जनार्दनको नहलाकर द्वादशीको केवल दूधमें स्नान करानेसे श्रीहरिका सायुज्य प्राप्त होता है। पूजा करके भगवान्‌से इस प्रकार प्रार्थना करे—

अज्ञानतिमिरान्धस्य व्रतेनानेन केशव।
प्रसीद सुमुखो भूत्वा ज्ञानदृष्टिप्रदो भव॥
(६४। ३९)

'केशव! मैं अज्ञानरूपी रतौंधीसे अंधा हो गया हूँ। आप इस व्रतसे प्रसन्न हों और प्रसन्न होकर मुझे ज्ञानदृष्टि प्रदान करें।'

इस प्रकार देवताओंके स्वामी देवाधिदेव भगवान् गदाधरसे निवेदन करके भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन कराये तथा उन्हें दक्षिणा दे। उसके बाद भगवान् नारायणके शरणागत होकर बलिवैश्वदेवकी विधिसे पंचमहायज्ञोंका अनुष्ठान करके स्वयं मौन हो अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ भोजन करे। इस प्रकार जो शुद्धभावसे पुण्यमय एकादशीका व्रत करता है, वह पुनरावृत्तिसे रहित वैकुण्ठधामको प्राप्त होता है।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन्! ऐसा कहकर लक्ष्मीदेवी उस ब्राह्मणको वरदान दे अन्तर्धान हो गयीं। फिर वह ब्राह्मण भी धनी होकर पिताके घरपर आ गया। इस प्रकार जो 'कमला' का उत्तम व्रत करता है तथा एकादशीके दिन इसका माहात्म्य सुनता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

युधिष्ठिर बोले—जनार्दन! पापका नाश और पुण्यका दान करनेवाली एकादशीके माहात्म्यका पुनः वर्णन कीजिये, जिसे इस लोकमें करके मनुष्य परम पदको प्राप्त होता है।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—राजन्! शुक्ल या कृष्णपक्षमें जभी एकादशी प्राप्त हो, उसका परित्याग न करे, क्योंकि वह मोक्षरूप सुखको बढ़ानेवाली है। कलियुगमें तो एकादशी ही भव-बन्धनसे मुक्त करनेवाली, सम्पूर्ण मनोवांछित कामनाओंको देनेवाली तथा पापोंका नाश करनेवाली है। एकादशी रविवारको, किसी मंगलमय पर्वके समय अथवा संक्रान्तिके ही दिन क्यों न हो, सदा ही उसका व्रत करना चाहिये। भगवान् विष्णुके प्रिय भक्तोंको एकादशीका त्याग कभी नहीं करना चाहिये। जो शास्त्रोक्त विधिसे इस लोकमें एकादशीका व्रत करते हैं, वे जीवन्मुक्त देखे जाते हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

युधिष्ठिरने पूछा—श्रीकृष्ण! वे जीवन्मुक्त कैसे हैं? तथा विष्णुरूप कैसे होते हैं? मुझे इस विषयको जाननेके लिये बड़ी उत्सुकता हो रही है।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! जो कलियुगमें भक्तिपूर्वक शास्त्रीय विधिके अनुसार निर्जल रहकर एकादशीका उत्तम व्रत करते हैं, वे विष्णुरूप तथा जीवन्मुक्त क्यों नहीं हो सकते हैं? एकादशीव्रतके समान सब पापोंको हरनेवाला तथा मनुष्योंकी समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला पवित्र व्रत दूसरा कोई नहीं है। दशमीको एक बार भोजन, एकादशीको निर्जलव्रत तथा द्वादशीको पारण करके मनुष्य श्रीविष्णुके समान हो जाते हैं। पुरुषोत्तम मासके द्वितीय पक्षकी एकादशीका नाम 'कामदा' है। जो श्रद्धापूर्वक 'कामदा' के शुभ व्रतका अनुष्ठान करता है, वह इस लोक और परलोकमें भी मनोवांछित वस्तुको पाता है। यह 'कामदा' पवित्र, पावन, महापातकनाशिनी तथा व्रत करनेवालोंको भोग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाली है। नृपश्रेष्ठ! 'कामदा' एकादशीको विधिपूर्वक पुष्प, धूप, नैवेद्य तथा फल आदिके द्वारा भगवान् पुरुषोत्तमकी पूजा करनी चाहिये। व्रत करनेवाला वैष्णव पुरुष दशमी तिथिको काँसके बर्तन, उड़द, मसूर, चना, कोदो, साग, मधु, पराया अन्न, दो बार भोजन तथा मैथुन—इन दसोंका परित्याग करे। इसी प्रकार एकादशीको जूआ, निद्रा, पान, दाँतुन, परायी निन्दा, चुगली, चोरी, हिंसा, मैथुन, क्रोध और असत्य-भाषण—इन ग्यारह दोषोंको त्याग दे तथा द्वादशीके

दिन काँसका बर्तन, उड़द, मसूर, तेल, असत्य-भाषण, व्यायाम, परदेशगमन, दो बार भोजन, मैथुन, बैलकी पीठपर सवारी, पराया अन्न तथा साग—इन बारह वस्तुओंका त्याग करे। राजन्! जिन्होंने इस विधिसे 'कामदा' एकादशीका व्रत किया और रात्रिमें जागरण करके श्रीपुरुषोत्तमकी पूजा की है, वे सब पापोंसे मुक्त हो परम गतिको प्राप्त होते हैं। इसके पढ़ने और सुननेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है।

चातुर्मास्य व्रतकी विधि और उद्यापन

नारदजीने पूछा—महेश्वर! पृथ्वीपर चातुर्मास्य व्रतके जो प्रसिद्ध नियम हैं, उन्हें मैं सुनना चाहता हूँ; आप उनका वर्णन कीजिये।

महादेवजी बोले—देवर्षे! सुनो, मैं तुम्हारे प्रश्नका उत्तर देता हूँ। आषाढ़के शुक्लपक्षमें एकादशीको उपवास करके भक्तिपूर्वक चातुर्मास्य व्रतके नियम ग्रहण करे। श्रीहरिके योगनिद्रामें प्रवृत्त हो जानेपर मनुष्य चार मास अर्थात् कार्तिककी पूर्णिमातक भूमिपर शयन करे। इस बीचमें न तो घर या मन्दिर आदिकी प्रतिष्ठा होती है और न यज्ञादि कार्य ही सम्पन्न होते हैं विवाह, यज्ञोपवीत, अन्यान्य मांगलिक कर्म, राजाओंकी यात्रा तथा नाना प्रकारकी दूसरी-दूसरी क्रियाएँ भी नहीं होतीं। मनुष्य एक हजार अश्वमेधयज्ञ करनेसे जिस फलको पाता है, वही चातुर्मास्य व्रतके अनुष्ठानसे प्राप्त कर लेता है। जब सूर्य मिथुनराशिपर हों, तब भगवान् मधुसूदनको शयन कराये और तुलाराशिके सूर्य होनेपर पुनः श्रीहरिको शयनसे उठाये। यदि मलमास आ जाय तो निम्नलिखित विधिका अनुष्ठान करे। भगवान् विष्णुकी प्रतिमा स्थापित करे, जो शंख, चक्र और गदा धारण करनेवाली हो, जिसे पीताम्बर पहनाया गया हो तथा जो सौम्य आकारवाली हो। नारद! उसे शुद्ध एवं सुन्दर पलंगपर, जिसके ऊपर सफेद चादर बिछी हो और तकिया रखी हो, स्थापित करे। फिर दही, दूध, मधु , लावा और घीसे नहलाकर उत्तम चन्दनका लेप करे। तत्पश्चात् धूप दिखाकर मनोहर पुष्पोंसे श्रृंगार करे। इस प्रकार उसकी पूजा करके निम्नांकित मन्त्रसे प्रार्थना करे—

सुप्ते त्वयि जगन्नाथ जगत्सुप्तं भवेदिदम्।
विबुद्धे त्वयि बुध्येत जगत्सर्वं चराचरम्॥
(६६।१५)

'जगन्नाथ! आपके सो जानेपर यह सारा जगत् सो जाता है तथा आपके जाग्रत् होनेपर सम्पूर्ण चराचर जगत् जाग उठता है।'

नारद! इस प्रकार भगवान् विष्णुकी प्रतिमाको स्थापित करके उसीके आगे स्वयं वाणीसे कहकर चातुर्मास्य व्रतके नियम ग्रहण करे। स्त्री हो या पुरुष, जो भगवान्‌का भक्त हो, उसे हरिबोधिनी एकादशीतक चार महीनोंके लिये नियम अवश्य ग्रहण करने चाहिये। जितात्मा पुरुष निर्मल प्रभातकालमें दन्तधावनपूर्वक उपवास करके नित्यकर्मका अनुष्ठान करनेके पश्चात् भगवान् विष्णुके समक्ष जिन नियमोंको ग्रहण करता है, उनका तथा उनके पालन करनेवालोंका फल पृथक्-पृथक् बतलाता हूँ।

विद्वन्! चातुर्मास्यमें गुड़का त्याग करनेसे मनुष्यको मधुरताकी प्राप्ति होती है। इसी प्रकार तेलको त्याग देनेसे दीर्घायु संतान और सुगन्धित तेलके त्यागसे अनुपम सौभाग्यकी प्राप्ति होती है। योगाभ्यासी मनुष्य ब्रह्मपदको प्राप्त होता है। ताम्बूलका त्याग करनेसे मनुष्य भोग-सामग्रीसे सम्पन्न होता और उसका कण्ठ सुरीला होता है। घीके त्यागसे लावण्यकी प्राप्ति होती और शरीर चिकना होता है। विप्रवर! फलका त्याग करनेवालेको बहुत-से पुत्रोंकी प्राप्ति होती है। जो चौमासेभर पलाशके पत्तेमें भोजन करता है, वह रूपवान् और भोग-सामग्रीसे सम्पन्न होता है। दही-दूध छोड़नेवाले मनुष्यको गोलोक मिलता है। जो मौनव्रत धारण करता है, उसकी आज्ञा भंग नहीं होती। जो स्थालीपाक (बटलोईमें भोजन बनाकर खाने)-का त्याग करता है, वह इन्द्रका सिंहासन प्राप्त करता है। नारद! इस प्रकारके त्यागसे धर्मकी सिद्धि होती है। इसके साथ **'नमो नारायणाय'** का जप

करनेसे सौगुने फलकी प्राप्ति होती है। चौमासेका व्रत करनेवाला पुरुष पोखरेमें स्नान करनेमात्रसे गंगा-स्नानका फल पाता है। जो सदा पृथ्वीपर भोजन करता है, वह पृथ्वीका स्वामी होता है। श्रीविष्णुकी चरण-वन्दना करनेसे गोदानका फल मिलता है। उनके चरणकमलोंका स्पर्श करनेसे मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। प्रतिदिन एक समय भोजन करनेवाला पुरुष अग्निष्टोमयज्ञका फलभागी होता है। जो श्रीविष्णुकी एक सौ आठ बार परिक्रमा करता है, वह दिव्य विमानपर बैठकर यात्रा करता है। विद्वन्! पंचगव्य खानेवाले मनुष्यको चान्द्रायणका फल मिलता है। जो प्रतिदिन भगवान् विष्णुके आगे शास्त्रविनोदके द्वारा लोगोंको ज्ञान देता है, वह व्यासस्वरूप विद्वान् श्रीविष्णुधामको प्राप्त होता है। तुलसीदलसे भगवान्‌की पूजा करके मानव वैकुण्ठधाममें जाता है। गर्म जलका त्याग कर देनेसे पुष्कर तीर्थमें स्नान करनेका फल होता है। जो पत्तोंमें भोजन करता है, उसे कुरुक्षेत्रका फल मिलता है। जो प्रतिदिन पत्थरकी शिलापर भोजन करता है, उसे प्रयाग-तीर्थका पुण्य प्राप्त होता है।

चौमासेमें काँसीके बरतनोंका त्याग करके अन्यान्य धातुओंके पात्रोंका उपयोग करे। अन्य किसी प्रकारका पात्र न मिलनेपर मिट्टीका ही पात्र उत्तम है अथवा स्वयं ही पलाशके पत्ते लाकर उनकी पत्तल बनावे और उनसे भोजन-पात्रका काम ले। जो पूरे एक वर्षतक प्रतिदिन अग्निहोत्र करता है और जो वनमें रहकर केवल पत्तोंमें भोजन करता है, उन दोनोंको समान फल मिलता है। पलाशके पत्तोंमें किया हुआ भोजन चान्द्रायणके समान माना गया है। पलाशके पत्तोंमें एक-एक बारका भोजन त्रिरात्र-व्रतके समान पुण्यदायक और बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला बताया गया है। एकादशीके व्रतका जो पुण्य है, वही पलाशके पत्तेमें भोजन करनेका भी बतलाया गया है। उससे मनुष्य सब प्रकारके दानों तथा समस्त तीर्थोंका फल पा लेता है। कमलके पत्तोंमें भोजन करनेसे कभी नरक नहीं देखना पड़ता। ब्राह्मण उसमें भोजन करनेसे वैकुण्ठमें जाता है। ब्रह्माजीका महान् वृक्ष—पलाश पापोंका नाशक और सम्पूर्ण कामनाओंका दाता है। नारद! इसका बिचला पत्ता शूद्रजातिके लिये निषिद्ध है। यदि शूद्र पलाशके बिचले पत्रमें भोजन करता है तो उसे चौदह इन्द्रोंकी आयुपर्यन्त नरकमें रहना पड़ता है; अतः वह बिचले पत्रको त्याग दे और शेष पत्रोंमें भोजन किया करे। ब्रह्मन्! जो शूद्र बिचले पत्रमें भोजन करता है, वह ब्राह्मणको कपिला गौ दान करनेसे ही शुद्ध होता है, अन्यथा नहीं।

यदि शूद्र अपने घरमें कपिला गौका दोहन करे तो वह दस हजार वर्षोंतक विष्ठाका कीड़ा होता है। कीड़ेकी योनिसे छूटनेपर पशुयोनिमें जन्म लेता है। जो शूद्र कपिल जातिके बैलको गाड़ीमें जोतकर हाँकता है, वह उस बैलके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने वर्षोंतक कुम्भीपाकमें पकाया जाता है; यदि शूद्र पानी लानेके लिये किसी ब्राह्मणको घरमें भेजे तो वह जल मदिराके तुल्य होता है और उसे पीनेवाला नरकमें जाता है। जो शूद्र बुलानेपर ब्राह्मणोंके घर भोजन करता है, उसके लिये वह अन्न अमृतके समान होता है और उसे खाकर वह मोक्ष प्राप्त करता है। जो शूद्र लोभवश दूसरेका, विशेषतः ब्राह्मणोंका सोना या चाँदी ले लेता है, वह नरकमें जाता है। शूद्रको चाहिये कि वह सदा ब्राह्मणोंको दान दे और उनमें विशेषरूपसे भक्तिभाव करे। विशेषतः चौमासेमें जैसे भगवान् विष्णु आराधनीय हैं, वैसे ही ब्राह्मण भी। नारद! ब्राह्मणोंकी विधिपूर्वक पूजा करनी चाहिये। भाद्रपद मास आनेपर उनकी महापूजा होती है। चौमासेमें भूमिपर शयन करनेवाला मनुष्य विमान प्राप्त करता है। दस हजार वर्षोंतक उसे रोग नहीं सताते। वह मनुष्य बहुत-से पुत्र और धनसे युक्त होता है। उसे कभी कोढ़की बीमारी नहीं होती। बिना माँगे स्वतः प्राप्त हुए अन्नका भोजन करनेसे बावली और कुआँ बनवानेका फल होता है। जो प्राणियोंकी हिंसासे मुँह मोड़कर द्रोहका त्याग कर देता है, वह भी पूर्वोक्त पुण्यका भागी होता है। वेदोंमें बताया गया है कि 'अहिंसा श्रेष्ठ धर्म है।' दान, दया और दम—ये भी उत्तम धर्म हैं, यह बात मैंने सर्वत्र ही सुनी है; अतः बड़े लोगोंको भी

चाहिये कि वे पूरा प्रयत्न करके उक्त धर्मोंका पालन करें। यह चातुर्मास्य व्रत मनुष्योंद्वारा सदा पालन करनेयोग्य है। ब्रह्मन्! और अधिक कहनेकी क्या आवश्यकता? इस पृथ्वीपर जो लोग भगवान् विष्णुके भक्त हैं, वे धन्य हैं! उनका कुल अत्यन्त धन्य है! तथा उनकी जाति भी परम धन्य मानी गयी है।

जो भगवान् जनार्दनके शयन करनेपर मधु भक्षण करता है, उसे महान् पाप लगता है; अब उसके त्यागनेका जो पुण्य है, उसका भी श्रवण करो, नाना प्रकारके जितने भी यज्ञ हैं, उन सबके अनुष्ठानका फल उसे प्राप्त होता है। चौमासेमें अनार, नीबू और नारियलका भी त्याग करे। ऐसा करनेवाला पुरुष विमानपर विचरनेवाला देवता होकर अन्तमें भगवान् विष्णुके वैकुण्ठधामको प्राप्त होता है। जो मनुष्य धान, जौ और गेहूँका त्याग करता है, वह विधिपूर्वक दक्षिणासहित अश्वमेधादि यज्ञोंके अनुष्ठानका फल पाता है। साथ ही वह धन-धान्यसे सम्पन्न और अनेक पुत्रोंसे युक्त होता है। तुलसीदल, तिल और कुशोंसे तर्पण करनेका फल कोटिगुना बताया गया है। विशेषतः चातुर्मास्यमें उसका फल बहुत अधिक होता है। जो भगवान् विष्णुके सामने वेदके एक या आधे पदका अथवा एक या आध ऋचाका भी गान करते हैं, वे निश्चय ही भगवान्‌के भक्त हैं; इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। नारद! जो चौमासेमें दही, दूध, पत्र, गुड़ और साग छोड़ देता है, वह निश्चय ही मोक्षका भागी होता है। मुने! जो मनुष्य प्रतिदिन आँवला मिले हुए जलसे ही स्नान करते हैं, उन्हें नित्य महान् पुण्य प्राप्त होता है। मनीषी पुरुष आँवलेके फलको पापहारी बतलाते हैं। ब्रह्माजीने तीनों लोकोंको तारनेके लिये पूर्वकालमें आँवलेकी सृष्टि की थी। जो मनुष्य चौमासेभर अपने हाथसे भोजन बनाकर खाता है, वह दस हजार वर्षोंतक इन्द्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। जो मौन होकर भोजन करता है, वह कभी दुःखमें नहीं पड़ता। मौन होकर भोजन करनेवाले राक्षस भी स्वर्गलोकमें चले गये हैं। यदि पके हुए अन्नमें कीड़े-मकोड़े पड़ जायँ तो वह अशुद्ध हो जाता है। यदि मानव उस अपवित्र अन्नको खा ले तो वह दोषका भागी होता है।

मौन होकर भोजन करनेवाला पुरुष निस्सन्देह स्वर्गलोकमें जाता है। जो बात करते हुए भोजन करता है, उसके वार्तालापसे अन्न अशुद्ध हो जाता है, वह केवल पापका भोजन करता है; अतः मौनधारण अवश्य करना चाहिये। नारद! मौनावलम्बनपूर्वक जो भोजन किया जाता है, उसे उपवासके समान जानना चाहिये। जो नरश्रेष्ठ प्रतिदिन प्राणवायुको पाँच आहुतियाँ देकर मौन भोजन करता है, उसके पाँच पातक निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं। ब्रह्मन्! पितृकर्म (श्राद्ध)-में सिला हुआ वस्त्र नहीं पहनना चाहिये। अपवित्र अंगपर पड़ा हुआ वस्त्र भी अशुद्ध हो जाता है। मल-मूत्रका त्याग अथवा मैथुन करते समय कमर अथवा पीठपर जो वस्त्र रहता है, उस वस्त्रको अवश्य ही बदल दे। श्राद्धमें तो ऐसे वस्त्रको त्याग देना ही उचित है। मुने! विद्वान् पुरुषोंको सदा चक्रधारी भगवान् विष्णुकी पूजा करनी चाहिये। विशेषतः पवित्र एवं जितेन्द्रिय पुरुषोंका यह आवश्यक कर्तव्य है। भगवान् हृषीकेशके शयन करनेपर तृणशाक (पत्तियोंका साग), कुसुम्भिका (लौकी) तथा सिले हुए कपड़े यत्नपूर्वक त्याग देने चाहिये। जो चौमासेमें भगवान्‌के शयन करनेपर इन वस्तुओंको त्याग देता है, वह कल्पपर्यन्त कभी नरकमें नहीं पड़ता। विप्रवर! जिसने असत्य-भाषण, क्रोध, शहद तथा पर्वके अवसरपर मैथुनका त्याग कर दिया है, वह अश्वमेधयज्ञका फल पाता है। विद्वन्! किसी पदार्थको उपभोगमें लानेके पहले उसमेंसे कुछ ब्राह्मणको दान करना चाहिये; जो ब्राह्मणको दिया जाता है, वह धन अक्षय होता है। ब्रह्मन्! मनुष्य दानमें दिये हुए धनका कोटि-कोटि गुना फल पाता है। जो पुरुष सदा ब्राह्मणकी बतायी हुई उत्तम विधि तथा शास्त्रोक्त नियमोंका पालन करता है, वह परमपदको प्राप्त होता है, अतः पूर्ण प्रयत्न करके यथाशक्ति नियम और दानके द्वारा देवाधिदेव जनार्दनको संतुष्ट करना चाहिये।

नारदजीने पूछा—विश्वेश्वर! जिसके आचरणसे

भगवान् गोविन्द मनुष्योंपर संतुष्ट होते हैं, वह ब्रह्मचर्य कैसा होता है? प्रभो! यह बतलानेकी कृपा करें।

महादेवजीने कहा—विद्वन्! जो केवल अपनी ही स्त्रीसे अनुराग रखता है, उसे विद्वानोंने ब्रह्मचारी माना है। केवल ऋतुकालमें स्त्रीसमागम करनेसे ब्रह्मचर्यकी रक्षा होती है। जो अपनेमें भक्ति रखनेवाली निर्दोष पत्नीका परित्याग करता है, वह पापी मनुष्य लोकमें भ्रूणहत्याको प्राप्त होता है।

चौमासेमें जो स्नान, दान, जप, होम, स्वाध्याय और देवपूजन किया जाता है, वह सब अक्षय होता है। जो एक अथवा दोनों समय पुराण सुनता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके धामको जाता है। जो भगवान्‌के शयन करनेपर विशेषत: उनके नामका कीर्तन और जप करता है, उसे कोटिगुना फल मिलता है। जो ब्राह्मण भगवान् विष्णुका भक्त है और प्रतिदिन उनका पूजन करता है, वही सबमें धर्मात्मा तथा वही सबसे पूज्य है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। मुने! इस पुण्यमय पवित्र एवं पापनाशक चातुर्मास्य व्रतको सुननेसे मनुष्यको गंगास्नानका फल मिलता है।

नारदजीने कहा—प्रभो! चातुर्मास्य व्रतका उद्यापन बतलाइये; क्योंकि उद्यापन करनेपर निश्चय ही सब कुछ परिपूर्ण होता है।

महादेवजी बोले—महाभाग! यदि व्रत करनेवाला पुरुष व्रत करनेके पश्चात् उसका उद्यापन नहीं करता, तो वह कर्मोंके यथावत् फलका भागी नहीं होता। मुनिश्रेष्ठ! उस समय विशेषरूपसे सुवर्णके साथ अन्नका दान करना चाहिये; क्योंकि अन्नके दानसे वह विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। जो मनुष्य चौमासेभर पलाशकी पत्तलमें भोजन करता है, वह उद्यापनके समय घीके साथ भोजनका पदार्थ ब्राह्मणको दान करे। यदि उसने अयाचित व्रत (बिना माँगे स्वत: प्राप्त अन्नका भोजन) किया हो तो सुवर्णयुक्त वृषभका दान करे। मुनिश्रेष्ठ! उड़दका त्याग करनेवाला पुरुष बछड़ेसहित गौका दान करे। आँवलेके फलसे स्नानका नियम पालन करनेपर मनुष्य एक माशा सुवर्ण दान करे। फलोंके त्यागका नियम करनेपर फल दान करे। धान्यके त्यागका नियम होनेपर कोई-सा धान्य (अन्न) अथवा अगहनीके चावलका दान करे। भूमिशयनका नियम पालन करनेपर रूईके गद्दे और तकियेसहित शय्यादान करे। द्विजवर! जिसने चौमासेमें ब्रह्मचर्यका पालन किया है, उसको चाहिये कि भक्तिपूर्वक ब्राह्मण-दम्पतिको भोजन दे, साथ ही उपभोगके अन्यान्य सामान, दक्षिणा, साग और नमक दान करे। प्रतिदिन बिना तेल लगाये स्नानका नियम पालन करनेवाला मनुष्य घी और सत्तू दान करे। नख और केश रखनेका नियम पालन करनेपर दर्पण दान करे। यदि जूते छोड़ दिये हों तो उद्यापनके समय जूतोंका दान करना चाहिये। जो प्रतिदिन दीपदान करता रहा हो, वह उस दिन सोनेका दीप प्रस्तुत करे और उसमें घी डालकर विष्णुभक्त ब्राह्मणको दे दे। देते समय यही उद्देश्य होना चाहिये कि मेरा व्रत पूर्ण हो जाय। पान न खानेका नियम लेनेपर सुवर्णसहित कपूरका दान करे। द्विजश्रेष्ठ! इस प्रकार नियमके द्वारा समय-समयपर जो कुछ परित्याग किया हो, वह परलोकमें सुख-प्राप्तिकी इच्छासे विशेषरूपसे दान करे। पहले स्नान आदि करके भगवान् विष्णुके समक्ष उद्यापन कराना चाहिये। शंख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् विष्णु आदि-अन्तसे रहित हैं, उनके आगे उद्यापन करनेसे व्रत परिपूर्ण होता है।

यमराजकी आराधना और गोपीचन्दनका माहात्म्य

नारदजीने कहा—सुरश्रेष्ठ! अब मेरे हितके लिये आप यमकी आराधना बताइये। देव! किस उपायसे मनुष्यको एक नरकसे दूसरे नरकमें नहीं जाना पड़ता। सुना जाता है—यमलोकमें वैतरणी नदी है, जो दुर्द्धर्ष, अपार, दुस्तर तथा रक्तकी धारा बहानेवाली है। वह समस्त प्राणियोंके लिये दुस्तर है, उसे सुगमताके साथ किस प्रकार पार किया जा सकता है?

महादेवजी बोले—ब्रह्मन्! पूर्वकालकी बात है, द्वारकापुरीके समुद्रमें स्नान करके मैं ज्यों ही निकला, सामनेसे मुझे ब्रह्मचारी मुद्‌गल मुनि आते दिखायी दिये। उन्होंने प्रणाम किया और विस्मित होकर इस प्रकार कहना आरम्भ किया।

मुद्‌गल बोले—देव! मैं अकस्मात् मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा था। उस समय मेरे सारे अंग जल रहे थे। इतनेहीमें यमराजके दूतोंने आकर मुझे बलपूर्वक शरीरसे खींचा। मैं अंगूठेके बराबर पुरुष-शरीर धारण करके बाहर निकला; फिर उन दूतोंने मुझे खूब कसकर बाँधा और उसी अवस्थामें यमराजके पास पहुँचा दिया। मैं एक ही क्षणमें यमराजकी सभामें पहुँचकर देखता हूँ कि पीले नेत्र और काले मुखवाले यम सामने ही बैठे हैं। वे महाभयंकर जान पड़ते थे। भयानक राक्षस और दानव उनके पास बैठे और सामने खड़े थे। अनेक धर्माधिकारी तथा चित्रगुप्त आदि लेखक वहाँ मौजूद थे। मुझे देखकर विश्वके शासक यमने अपने किंकरोंसे कहा—'अरे! तुमलोग नामके भ्रममें पड़कर मुनिको कैसे ले आये? इन्हें छोड़ो और कौण्डिन्य नामक ग्राममें जो भीमकका पुत्र मुद्‌गल नामक क्षत्रिय है, उसको ले आओ; क्योंकि उसकी आयु समाप्त हो चुकी है।'

यह सुनकर वे दूत वहाँ गये और पुनः लौट आये। फिर समस्त यमदूत धर्मराजसे बोले—'सूर्यनन्दन! वहाँ जानेपर भी हमलोगोंने ऐसे किसी प्राणीको नहीं देखा, जिसकी आयु क्षीण हो चुकी हो। न जाने, कैसे हमलोगोंका चित्त भ्रममें पड़ गया?'

यमराज बोले—जिन लोगोंने 'वैतरणी' नामक द्वादशीका व्रत किया है, वे तुम यमदूतोंके लिये प्रायः अदृश्य हैं। उज्जैन, प्रयाग अथवा यमुनाके तटपर जिनकी मृत्यु हुई है तथा जिन्होंने तिल, हाथी, सुवर्ण और गौ आदिका दान किया है, वे भी तुमलोगोंकी दृष्टिमें नहीं आ सकते।

दूतोंने पूछा—स्वामिन्! वह व्रत कैसा है? आप उसका पूरा-पूरा वर्णन कीजिये। देव! मनुष्योंको उस समय ऐसा कौन-सा कर्म करना चाहिये जो आपको संतोष देनेवाला हो। जिन्होंने कृष्णपक्षकी एकादशीका व्रत किया है, वे कैसे पापमुक्त हो सकते हैं?

यमराज बोले—दूतो! मार्गशीर्ष आदि मासोंमें जो ये कृष्णपक्षकी द्वादशियाँ आती हैं, उन सबमें विधिपूर्वक वैतरणी व्रत करना चाहिये। जबतक वर्ष पूरा न हो जाय, तबतक प्रतिमास व्रतको चालू रखना चाहिये। व्रतके दिन उपवासका नियम ग्रहण करना

चाहिये, जो भगवान् विष्णुको संतोष प्रदान करनेवाला है। द्वादशीको श्रद्धा और भक्तिके साथ श्रीगोविन्दकी पूजा करके इस प्रकार कहे—'देव! स्वप्नमें इन्द्रियोंकी विकलताके कारण यदि भोजन और मैथुनकी क्रिया बन जाय तो आप मुझपर कृपा करके क्षमा कीजिये।' इस प्रकार नियम करके मिट्टी, गोमय और तिल लेकर मध्याह्नमें तीर्थ (जलाशय)-के पास जाय और व्रतकी पूर्तिके लिये निम्नांकित मन्त्रसे विधिपूर्वक स्नान करे—

अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे॥
मृत्तिके हर मे पापं यन्मया पूर्वसञ्चितम्।
त्वया हतेन पापेन सर्वपापैः प्रमुच्यते॥
काश्यां चैव तु संभूतास्तिला वै विष्णुरूपिणः।
तिलस्नानेन गोविन्दः सर्वपापं व्यपोहति॥
विष्णुदेहोद्भवे देवि महापापापहारिणि।
सर्वपापं हर त्वं वै सर्वौषधि नमोऽस्तु ते॥

(६८। ३४—३७)

'वसुन्धरे! तुम्हारे ऊपर अश्व और रथ चला करते हैं तथा वामन अवतारके समय भगवान् विष्णुने भी तुम्हें अपने चरणोंसे नापा था। मृत्तिके! मैंने पूर्वजन्ममें जो पाप संचित किया है, मेरा वह सारा पाप तुम हर लो। तुम्हारे द्वारा पापका नाश हो जानेपर मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। तिल काशीमें उत्पन्न हुए हैं तथा वे भगवान् विष्णुके स्वरूप हैं। तिलमिश्रित जलके द्वारा स्नान करनेपर भगवान् गोविन्द सब पापोंका नाश कर देते हैं। देवी सर्वौषधि! तुम भगवान् विष्णुके देहसे प्रकट हुई तथा महान् पापोंका अपहरण करनेवाली हो। तुम्हें नमस्कार है। तुम मेरे सारे पाप हर लो।'

इस प्रकार मृत्तिका आदिके द्वारा स्नान करके सिरपर तुलसीदल धारण कर तुलसीका नाम लेते हुए स्नान करे। यह स्नान ऋषियोंद्वारा बताया गया है। इसे विधिपूर्वक करना चाहिये। इस तरह स्नान करनेके पश्चात् जलसे बाहर निकलकर दो शुद्ध वस्त्र धारण करे। फिर देवताओं और पितरोंका तर्पण करके श्रीविष्णुका पूजन करे। उसकी विधि इस प्रकार है। पहले एक कलशकी, जो फूटा-टूटा न हो, स्थापना करे। उसमें पंचपल्लव और पंचरत्न डाल दे। फिर दिव्य माला पहनाकर उस कलशको गन्धसे सुवासित करे। कलशमें जल भर दे और उसमें द्रव्य डालकर उसके ऊपर ताँबेका पात्र रख दे। इसके बाद उस पात्रमें देवाधिदेव तपोनिधि भगवान् श्रीधरकी स्थापना करके पूर्वोक्त विधिसे पूजा करे। फिर मिट्टी और गोबर आदिसे सुन्दर मण्डल बनावे। सफेद और धुले हुए चावलोंको पानीमें पीसकर उसके द्वारा मण्डलका संस्कार करे। तत्पश्चात् हाथ-पैर आदि अंगोंसे युक्त धर्मराजका स्वरूप बनावे और उसके आगे ताँबेकी वैतरणी नदी स्थापित करके उसकी पूजा करे। उसके बाद पृथक् आवाहन आदि करके यमराजकी विधिवत् पूजा करे।

पहले भगवान् विष्णुसे इस प्रकार प्रार्थना करे—महाभाग केशव! मैं विश्वरूपी देवेश्वर यमका आवाहन करता हूँ। आप यहाँ पधारें और समीपमें निवास करें। लक्ष्मीकान्त! हरे! यह आसनसहित पाद्य आपकी सेवामें समर्पित है। प्रभो! विश्वका प्राणिसमुदाय आपका स्वरूप है। आपको नमस्कार है। आप प्रतिदिन मुझपर कृपा कीजिये।' इस प्रकार प्रार्थना करके '**भूतिदाय नमः**' इस मन्त्रके द्वारा भगवान् विष्णुके चरणोंका, '**अशोकाय नमः**'-से घुटनोंका, '**शिवाय नमः**' से जाँघोंका, '**विश्वमूर्तये नमः**' से कटिभागका, '**कन्दर्पाय नमः**'-से लिंगका, '**आदित्याय नमः**' से अण्डकोषका, '**दामोदराय नमः**' से उदरका, '**वासुदेवाय नमः**'-से स्तनोंका, '**श्रीधराय नमः**' से मुखका, '**केशवाय नमः**' से केशोंका, '**शार्ङ्गधराय नमः**'-से पीठका, '**वरदाय नमः**' से पुनः चरणोंका, '**शङ्खपाणये नमः**', **चक्रपाणये नमः**', '**असिपाणये नमः**', '**गदापाणये नमः**' और '**परशुपाणये नमः**'—इन नाममन्त्रोंद्वारा क्रमशः शंख, चक्र, खड्ग, गदा तथा परशुका तथा '**सर्वात्मने नमः**' इस मन्त्रके द्वारा मस्तकका ध्यान करे। इसके बाद यों कहे—'मैं समस्त पापोंकी राशिका नाश करनेके लिये मत्स्य, कच्छप, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, श्रीराम, श्रीकृष्ण, बुद्ध तथा कल्किका पूजन करता हूँ; भगवन्! इन अवतारोंके रूपमें आपको

नमस्कार है। बारम्बार नमस्कार है।' इन सभी मन्त्रोंके द्वारा श्रीविष्णुका ध्यान करके उनका पूजन करे।*

तत्पश्चात् निम्नांकित नाममन्त्रोंके द्वारा भगवान् धर्मराजका पूजन करना चाहिये—

धर्मराज नमस्तेऽस्तु धर्मराज नमोऽस्तु ते।
दक्षिणाशाय ते तुभ्यं नमो महिषवाहन॥
चित्रगुप्त नमस्तुभ्यं विचित्राय नमो नमः।
नरकार्तिप्रशान्त्यर्थं कामान् यच्छ ममेप्सितान्॥
यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च।
वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च॥
वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय वै नमः।
नीलाय चैव दध्नाय नित्यं कुर्यान्नमो नमः॥

(६८।५३—५६)

'धर्मराज! आपको बारम्बार नमस्कार है। दक्षिण दिशाके स्वामी! आपको नमस्कार है। महिषपर चलनेवाले देवता! आपको नमस्कार है। चित्रगुप्त! आपको नमस्कार है। नरककी पीड़ा शान्त करनेके लिये विचित्र नामसे प्रसिद्ध आपको नमस्कार है। आप मेरी मनोवांछित कामनाएँ पूर्ण करें। यम, धर्मराज, मृत्यु, अन्तक, वैवस्वत, काल, सर्वभूतक्षय, वृकोदर, चित्र, चित्रगुप्त, नील और दध्नको नित्य नमस्कार करना चाहिये।'

तदनन्तर वैतरणीकी प्रतिमाको अर्घ्य देते हुए इस प्रकार कहे—'वैतरणी! तुम्हें पार करना अत्यन्त कठिन है। तुम पापोंका नाश करनेवाली और सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाली हो। महाभागे! यहाँ आओ और मेरे दिये हुए अर्घ्यको ग्रहण करो। यमद्वारके भयंकर मार्गमें वैतरणी नदी विख्यात है। उससे उद्धार पानेके लिये मैं यह अर्घ्य दे रहा हूँ। जो जन्म, मृत्यु और वृद्धावस्थासे परे है, पापी पुरुषोंके लिये जिसको पार करना अत्यन्त कठिन है, जो समस्त प्राणियोंके भयका निवारण करनेवाली है तथा यातनामें पड़े हुए प्राणी भयके मारे जिसमें डूब जाते हैं, उस भयंकर वैतरणी नदीको पार करनेके लिये मैंने यह पूजन किया है। वैतरणी देवी! तुम्हारी जय हो। तुम्हें बारम्बार नमस्कार है। जिसमें देवता वास करते हैं, वही वैतरणी नदी है। मैंने भगवान् केशवकी प्रसन्नताके लिये भक्तिपूर्वक उस नदीका पूजन किया है। पापोंका नाश करनेवाली सिन्धुरूपिणी वैतरणी नदीकी पूजा सम्पन्न हुई। मैं उसे पार करने तथा सब पापोंसे छुटकारा पानेके लिये इस वैतरणी-प्रतिमाका दान करता हूँ।'

इसके बाद निम्नांकित मन्त्र पढ़कर भगवान्से प्रार्थना करे—

कृष्ण कृष्ण जगन्नाथ संसारादुद्धरस्य माम्॥
नामग्रहणमात्रेण सर्वपापं हरस्व मे।

(६८।६४-६५)

'कृष्ण! कृष्ण! जगदीश्वर! आप संसारसे मेरा उद्धार कीजिये। अपने नामोंके कीर्तनमात्रसे मेरा सारा पाप हर लीजिये।'

फिर क्रमशः यज्ञोपवीत आदि समर्पण करे। यज्ञोपवीतका मन्त्र इस प्रकार है—

यज्ञोपवीतं परमं कारितं नवतन्तुभिः॥
प्रतिगृह्णीष्व देवेश प्रीतो यच्छ ममेप्सितम्।

(६८।६५-६६)

'देवेश्वर! मैंने नौ तन्तुओंसे इस उत्तम

---

* आवाहयामि देवेशं यमं वै विश्वरूपिणम् । इहाभ्येहि महाभाग सांनिध्यं कुरु केशव॥
इदं पाद्यं श्रियः कान्त सोपविष्टं हरे प्रभो । विश्वौघाय नमो नित्यं कृपां कुरु ममोपरि॥
भूतिदाय नमः पादौ अशोकाय च जानुनी । ऊरू नमः शिवायेति विश्वमूर्ते नमः कटिम्॥
कन्दर्पाय नमो मेढ्मादित्याय फलं तथा । दामोदराय जठरं वासुदेवाय वै स्तनौ॥
श्रीधराय मुखं केशान् केशवायेति वै नमः । पृष्ठं शार्ङ्गधरायेति चरणौ वरदाय च॥
स्वनाम्ना शङ्खचक्रासिगदापरशुपाणये । सर्वात्मने नमस्तुभ्यं शिर इत्यभिधीयते॥
मत्स्यं कूर्मं च वाराहं नारसिंहं च वामनम् । रामं रामं च कृष्णं च बुद्धं कल्किं नमोऽस्तु ते॥
सर्वपापौघनाशार्थं पूजयामि नमो नमः । एभिश्च सर्वशो मन्त्रैर्विष्णुं ध्यात्वा प्रपूजयेत्॥ (६८।४५—५२)

यज्ञोपवीतका निर्माण कराया है, आप इसे ग्रहण करें और प्रसन्न होकर मेरा मनोरथ पूर्ण करें।'

ताम्बूल-मन्त्र

इदं दत्तं च ताम्बूलं यथाशक्ति सुशोभनम्॥
प्रतिगृह्णीष्व देवेश मामुद्धर भवार्णवात्।

(६८। ६६-६७)

'देवेश! मैंने यथाशक्ति उत्तम शोभासम्पन्न ताम्बूल दान किया है, इसे स्वीकार करें और भवसागरसे मेरा उद्धार कर दें।'

दीप-आरतीका मन्त्र

पञ्चवर्तिप्रदीपोऽयं देवेशारार्तिकं तव॥
मोहान्धकारद्युमणे भक्तियुक्तो भवार्तिहन्।

(६८। ६७-६८)

'देवेश! आप मोहरूपी अन्धकार दूर करनेके लिये सूर्यरूप हैं। भव-बन्धनकी पीड़ा हरनेवाले परमात्मन्! मैं भक्तियुक्त होकर आपकी सेवामें यह पाँच बत्तियोंका दीपक प्रस्तुत करता हूँ। यह आपके लिये आरती है।'

नैवेद्य-मन्त्र

परमान्नं सुपक्वान्नं समस्तरससंयुतम्॥
निवेदितं मया भक्त्या भगवन् प्रतिगृह्यताम्।

(६८। ६८-६९)

'भगवन्! मैंने सब रसोंसे युक्त सुन्दर पकवान, जो परम उत्तम अन्न है, भक्तिपूर्वक सेवामें निवेदन किया है; आप इसे स्वीकार करें।'

जप-समर्पण

द्वादशाक्षरमन्त्रेण यथासंख्यजपेन च॥
प्रीयतां मे श्रियः कान्तः प्रीतो यच्छतु वाञ्छितम्।

(६८। ६९-७०)

'द्वादशाक्षर-मन्त्रका यथाशक्ति जप करनेसे भगवान् लक्ष्मीकान्त मुझपर प्रसन्न हों और प्रसन्न होकर मुझे मनोवांछित वस्तु प्रदान करें।'

इस प्रकार श्रीहरिका पूजन करनेके बाद निम्नांकित मन्त्र पढ़कर गौको प्रणाम करे—

पञ्च गावः समुत्पन्ना मथ्यमाने महोदधौ।
तासां मध्ये तु या नन्दा तस्यै धेन्वै नमो नमः॥

(६८। ७०-७१)

'समुद्रका मन्थन होते समय पाँच गौएँ उत्पन्न हुई थीं। उनमेंसे जो नन्दा नामकी धेनु है, उसे मेरा बारम्बार नमस्कार है।'

तत्पश्चात् विधिपूर्वक गौकी पूजा करके निम्नांकित मन्त्रोंद्वारा एकाग्रचित्त हो अर्घ्य प्रदान करे—

सर्वकामदुहे देवि सर्वार्तिकनिवारिणि।
आरोग्यं संततिं दीर्घां देहि नन्दिनि मे सदा॥
पूजिता च वसिष्ठेन विश्वामित्रेण धीमता।
कपिले हर मे पापं यन्मया पूर्वसञ्चितम्॥
गावो मे अग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः।
नाके मामुपतिष्ठन्तु हेमशृङ्ग्यः पयोमुचः॥
सुरभ्यः सौरभेयाश्च सरितः सागरास्तथा।
सर्वदेवमये देवि सुभद्रे भक्तवत्सले॥

(६८। ७२—७५)

'समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाली तथा सब प्रकारकी पीड़ा हरनेवाली देवी नन्दिनी! मुझे सर्वदा आरोग्य तथा दीर्घायु संतान प्रदान करो। कपिले! महर्षि वसिष्ठ तथा बुद्धिमान् विश्वामित्रजीने भी तुम्हारी पूजा की है। मैंने पूर्वजन्ममें जो पाप संचित किया है, उसे हर लो। गौएँ मेरे आगे रहें, गौएँ ही मेरे पीछे रहें तथा स्वर्गलोकमें भी सुवर्णमय सींगोंसे सुशोभित, सरिताओं और समुद्रोंकी भाँति दूधकी धारा बहानेवाली सुरभी और उनकी संतानें मेरे पास आवें। सर्वदेवमयी देवी नन्दिनी! तुम परम कल्याणमयी और भक्तवत्सला हो। तुम्हें नमस्कार है।'

इस प्रकार विधिवत् पूजा करके गौओंको प्रतिदिन ग्रास समर्पण करे। उसका मन्त्र इस प्रकार है—

सौरभेय्यः सर्वहिताः पवित्राः पापनाशिनीः।
प्रतिगृह्णन्तु मे ग्रासं गावस्त्रैलोक्यमातरः॥

(६८। ७६-७७)

'सबके हितमें लगी रहनेवाली, पवित्र, पापनाशिनि तथा त्रिभुवनकी माता गौएँ मेरा दिया हुआ ग्रास ग्रहण करें।'

महादेवजी कहते हैं—इस प्रकार धर्मराजके मुखसे सुने हुए वैतरणीव्रतका मेरे आगे वर्णन करके

इच्छानुसार भ्रमण करनेवाले द्विजश्रेष्ठ मुद्‌गल मुनि चले गये।

द्विजवर! जहाँ गोपीचन्दन रहता है, वह घर तीर्थस्वरूप है—यह भगवान् श्रीविष्णुका कथन है। जिस ब्राह्मणके घरमें गोपीचन्दन मौजूद रहता है, वहाँ कभी शोक, मोह तथा अमंगल नहीं होते। जिसके घरमें रात-दिन गोपीचन्दन प्रस्तुत रहता है, उसके पूर्वज सुखी होते हैं तथा सदा उसकी संतति बढ़ती है। गोपीतालाबसे उत्पन्न होनेवाली मिट्टी परम पवित्र एवं शरीरका शोधन करनेवाली है। देहमें उसका लेप करनेसे सारे रोग नष्ट होते हैं तथा मानसिक चिन्ताएँ भी दूर हो जाती हैं। अतः पुरुषोंद्वारा शरीरमें धारण किया हुआ गोपीचन्दन सम्पूर्ण कामनाओंकी पूर्ति तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला है। इसका ध्यान और पूजन करना चाहिये। यह मल-दोषका विनाश करनेवाला है। इसके स्पर्शमात्रसे मनुष्य पवित्र हो जाता है। वह अन्तकालमें मनुष्योंके लिये मुक्तिदाता एवं परम पावन है। द्विजश्रेष्ठ! मैं क्या बताऊँ, गोपीचन्दन मोक्ष प्रदान करनेवाला है। भगवान् विष्णुका प्रिय तुलसीकाष्ठ, उसके मूलकी मिट्टी, गोपीचन्दन तथा हरिचन्दन—इन चारोंको एकमें मिलाकर विद्वान् पुरुष अपने शरीरमें लगाये। जो ऐसा करता है, उसके द्वारा जम्बूद्वीपके समस्त तीर्थोंका सदाके लिये सेवन हो जाता है। जो गोपीचन्दनको घिसकर उसका तिलक लगाता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो श्रीविष्णुके परम पदको प्राप्त होता है। जिस पुरुषने गोपीचन्दन धारण कर लिया, उसने मानो गयामें जाकर अपने पिताका श्राद्ध-तर्पण आदि सब कुछ कर लिया।

वैष्णवोंके लक्षण और महिमा तथा श्रवणद्वादशी-व्रतकी विधि और माहात्म्य-कथा

महादेवजी कहते हैं—नारद! सुनो, अब मैं वैष्णवोंके लक्षण बताऊँगा, जिन्हें सुनकर लोग ब्रह्महत्या आदि पातकोंसे मुक्त हो जाते हैं। भक्त भगवान् विष्णुका होकर रहा है, इसलिये वह वैष्णव कहलाता है। समस्त वर्णोंकी अपेक्षा वैष्णवको श्रेष्ठ कहा गया है। जिनका आहार अत्यन्त पवित्र है, उन्हींके वंशमें वैष्णव पुरुष जन्म धारण करता है। ब्रह्मन्! जिनके भीतर क्षमा, दया, तपस्या और सत्यकी स्थिति है, उन वैष्णवोंके दर्शनमात्रके आगसे रूईकी भाँति सारा पाप नष्ट हो जाता है। जो हिंसासे दूर रहता है, जिसकी मति सदा भगवान् विष्णुमें लगी रहती है, जो अपने कण्ठमें तुलसीकाष्ठकी माला धारण करता है, प्रतिदिन अपने अंगोंमें बारह तिलक लगाये रहता है तथा विद्वान् होकर धर्म और अधर्मका ज्ञान रखता है, वह मनुष्य वैष्णव कहलाता है। जो सदा वेद-शास्त्रके अभ्यासमें लगे रहते, प्रतिदिन यज्ञोंका अनुष्ठान करते तथा बारम्बार वर्षके चौबीस उत्सव मनाते रहते हैं, उनका कुल परम धन्य है; उन्हींका यश विस्तारको प्राप्त होता है तथा वे ही लोग संसारमें धन्यतम एवं भगवद्भक्त हैं। ब्रह्मन्! जिसके कुलमें एक ही भगवद्भक्त पुरुष उत्पन्न हो जाता है, उसका कुल बारम्बार उस पुरुषके द्वारा उद्धारको प्राप्त होता रहता है। वैष्णवोंके दर्शनमात्रसे ब्रह्महत्यारा भी शुद्ध हो जाता है। महामुने! इस लोकमें जो वैष्णव पुरुष देखे जाते हैं, तत्त्ववेत्ता पुरुषोंको उन्हें विष्णुके समान ही जानना चाहिये। जिसने भगवान् विष्णुकी पूजा की, उसके द्वारा सबका पूजन हो गया। जिसने वैष्णवोंकी पूजा की, उसने महादान कर लिया। जो वैष्णवोंको सदा फल, पत्र, साग, अन्न अथवा वस्त्र दिया करते हैं, वे इस भूमण्डलमें धन्य हैं। ब्रह्मन्! वैष्णवोंके विषयमें अब और क्या कहा जाय। बारम्बार अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं है; उनका दर्शन और स्पर्श—सब कुछ सुखद है। जैसे भगवान् विष्णु हैं, वैसा ही उनका भक्त वैष्णव पुरुष भी है। इन दोनोंमें कभी अन्तर नहीं रहता। ऐसा जानकर विद्वान् पुरुष सदा वैष्णवोंकी पूजा करे। जो इस पृथ्वीपर एक ही वैष्णव ब्राह्मणको भोजन करा देता है, उसने सहस्रों ब्राह्मणोंको भोजन करा दिया—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।

नारदजीने कहा—सुरश्रेष्ठ! जो सदा उपवास

करनेमें असमर्थ हैं, उनके लिये कोई एक ही द्वादशीका व्रत, जो पुण्यजनक हो, बतलाइये।

महादेवजी बोले—भाद्रपद मासके शुक्लपक्षमें जो श्रवण नक्षत्रसे युक्त द्वादशी होती है, वह सब कुछ देनेवाली पुण्यमयी तथा उपवास करनेपर महान् फल देनेवाली है। जो नदियोंके संगममें नहाकर उक्त द्वादशीको उपवास करता है, वह अनायास ही बारह द्वादशियोंका फल पा लेता है। बुधवार और श्रवण नक्षत्रसे युक्त जो द्वादशी होती है, उसका महत्त्व बहुत बड़ा है। उस दिन किया हुआ सब कुछ अक्षय हो जाता है। श्रवण-द्वादशीके दिन विद्वान् पुरुष जलपूर्ण कलशकी स्थापना करके उसके ऊपर एक पात्र रखे और उसमें श्रीजनार्दनकी स्थापना करे। तत्पश्चात् उनके आगे घीमें पका हुआ नैवेद्य निवेदन करे; साथ ही अपनी शक्तिके अनुसार जलसे भरे हुए अनेक नये घड़ोंका दान करे। इस प्रकार श्रीगोविन्दकी पूजा करके उनके समीप रात्रिमें जागरण करे। फिर निर्मल प्रभातकाल आनेपर स्नान करके फूल, धूप, नैवेद्य, फल और सुन्दर वस्त्र आदिके द्वारा भगवान् गरुडध्वजकी पूजा करे। तदनन्तर पुष्पांजलि दे और इस मन्त्रको पढ़े—

नमो नमस्ते गोविन्द बुधश्रवणसंयुत।
अघौघसंक्षयं कृत्वा सर्वसौख्यप्रदो भव॥
(७०।१०)

'बुधवार और श्रवण नक्षत्रसे युक्त भगवान् गोविन्द! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। मेरी पापराशिका नाश करके आप मुझे सब प्रकारके सुख प्रदान करें।'

तत्पश्चात् वेद-वेदांगोंके पारगामी, विशेषतः पुराणोंके ज्ञाता विद्वान् ब्राह्मणको विधिपूर्वक पवित्र अन्नका दान करे। इस प्रकार श्रेष्ठ पुरुष किसी नदीके किनारे एकचित्त होकर उक्त विधिसे सब कार्य पूर्ण करे। इस विषयमें जानकार लोग यह प्राचीन इतिहास कहा करते हैं—एक महान् वनमें जो घटना घटित हुई थी, उसका वर्णन करता हूँ; सुनो।

विद्वन्! दाशेरक नामका जो देश है, उसके पश्चिमभागमें मरु (मारवाड़) प्रदेश है, जो समस्त प्राणियोंके लिये भय उत्पन्न करनेवाला है। वहाँकी भूमि तपी हुई बालूसे भरी रहती है। वहाँ बड़े-बड़े साँप हैं, जो महादुष्ट होते हैं। वह भूमि थोड़ी छायावाले वृक्षोंसे व्याप्त है। शमी, खैर, पलाश, करील और पीलू—ये ही वहाँके वृक्ष हैं। मजबूत काँटोंसे घिरे हुए वहाँके वृक्ष बड़े भयंकर दिखायी देते हैं; तथापि कर्मबन्धनसे बँधे होनेके कारण वहाँ भी सब जीव जीवन धारण करते हैं। विद्वन्! उस देशमें न तो पर्याप्त जल है और न जल धारण करनेवाले बादल ही वहाँ दृष्टिगोचर होते हैं। ऐसे देशमें कोई बनिया भाग्यवश अपने साथियोंसे बिछुड़कर इधर-उधर भटक रहा था। उसके हृदयमें भ्रम छा गया था। वह भूख, प्यास और परिश्रमसे पीड़ित हो रहा था। कहाँ गाँव है? कहाँ जल है? मैं कहाँ जाऊँगा? यह कुछ भी उसे जान नहीं पड़ता था। इसी समय उसने कुछ प्रेत देखे, जो भूख-प्याससे व्याकुल एवं भयंकर दिखायी देते थे। उनमें एक प्रेत ऐसा था, जो दूसरे प्रेतके कंधेपर चढ़कर चलता था तथा और बहुत-से प्रेत उसे चारों ओरसे घेरे हुए थे। प्रेतोंकी भयानक आवाजके साथ वह
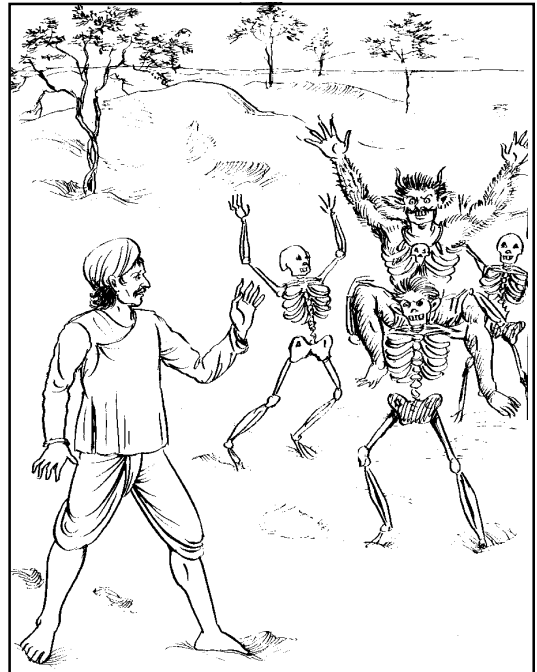
भयंकर प्रेत उधर ही आ रहा था। वह उस भयानक जंगलमें मनुष्यको आया देख प्रेतके कंधेसे पृथ्वीपर उतर पड़ा और बनियेके पास आकर उसे प्रणाम करके इस प्रकार बोला—'इस घोर प्रदेशमें आपका कैसे प्रवेश हुआ?' यह सुनकर उस बुद्धिमान् बनियेने कहा—'दैवयोगसे तथा पूर्वजन्मके किये हुए कर्मकी प्रेरणासे मैं अपने साथियोंसे बिछुड़ गया हूँ। इस प्रकार मेरा यहाँ प्रवेश सम्भव हुआ है। इस समय मुझे बड़े जोरकी भूख और प्यास सता रही है।'

तब उस प्रेतने उस समय अपने अतिथिको उत्तम अन्न प्रदान किया। उसके खानेमात्रसे बनियेको बड़ी तृप्ति हुई। वह एक ही क्षणमें प्यास और संतापसे रहित हो गया। इसके बाद वहाँ बहुत-से प्रेत आ पहुँचे। प्रधान प्रेतने क्रमशः उन सबको अन्नका भाग दिया। दही, भात और जलसे उन्हें बड़ी प्रसन्नता और तृप्ति हुई। इस प्रकार अतिथि और प्रेतसमुदायको तृप्त करके उसने स्वयं भी बचे हुए अन्नका सुखपूर्वक भोजन किया। उसके भोजन कर लेनेपर वहाँ जो सुन्दर अन्न और जल प्रस्तुत हुआ था, वह सब अदृश्य हो गया। तब बनियेने उस प्रेतराजसे कहा—'भाई! इस वनमें तो मुझे यह बड़े आश्चर्यकी बात प्रतीत हो रही है। तुम्हें यह उत्तम अन्न और जल कहाँसे प्राप्त हुआ? तुमने थोड़े-से ही अन्नसे इन बहुत-से जीवोंको तृप्त कर दिया। इस घोर जंगलमें तुमलोग कैसे निवास करते हो?'

प्रेत बोला—महाभाग! मैंने अपना पूर्वजन्म केवल वाणिज्य-व्यवसायमें आसक्त होकर व्यतीत किया है। समूचे नगरमें मेरे समान दूसरा कोई दुरात्मा नहीं था। धनके लोभसे मैंने कभी किसीको भीखतक नहीं दी। उन दिनों एक गुणवान् ब्राह्मण मेरे मित्र थे। एक समय भादोंके महीनेमें, जब श्रवण नक्षत्र और द्वादशीका योग आया था, वे मुझे साथ लेकर तापी नदीके तटपर गये, जहाँ उसका चन्द्रभागा नदीके साथ पवित्र संगम हुआ था, चन्द्रभागा चन्द्रमाकी पुत्री है और तापी सूर्यकी। उन दोनोंके मिले हुए शीत और उष्ण जलमें मैंने ब्राह्मणके साथ प्रवेश किया। श्रवण द्वादशीके योगमें बहुत-से मनुष्योंको संतुष्ट किया। चन्द्रभागाके उत्तम जलसे भरकर ब्राह्मणको जलपात्र दान किया तथा दही और भातके साथ जलसे भरे हुए बहुत-से पुरवे भी ब्राह्मणोंको दिये। इसके सिवा भगवान् शंकरके समक्ष श्रेष्ठ ब्राह्मणको छाता, जूते, वस्त्र तथा श्रीहरिकी प्रतिमा भी दान की। उस नदीके तीरपर मैंने धनकी रक्षाके लिये व्रत किया था। उपवासपूर्वक एक मनोहर जलपात्र भी दान किया था। यह सब करके मैं घर लौट आया। तदनन्तर, कुछ कालके बाद मेरी मृत्यु हो गयी। नास्तिक होनेके कारण मुझे प्रेतकी योनिमें आना पड़ा। श्रवण-द्वादशीके योगमें मैंने जलका बड़ा पात्र दान किया था, इसलिये प्रतिदिन मध्याह्नके समय यह मुझे प्राप्त होता है। ये सब ब्राह्मणका धन चुरानेवाले पापी हैं, जो प्रेतभावको प्राप्त हुए हैं। इनमें कुछ परस्त्रीलम्पट और कुछ अपने स्वामीसे द्रोह करनेवाले रहे हैं। इस मरुप्रदेशमें आकर ये मेरे मित्र हो गये हैं। सनातन परमात्मा भगवान् विष्णु अक्षय (अविनाशी) हैं। उनके उद्देश्यसे जो कुछ दिया जाता है, वह सब अक्षय कहा गया है। उस अक्षय अन्नसे ही ये प्रेत पुनः-पुनः तृप्त होते रहते हैं। आज तुम मेरे अतिथिके रूपमें उपस्थित हुए हो। मैं अन्नसे तुम्हारी पूजा करके प्रेतभावसे मुक्त हो परमगतिको प्राप्त होऊँगा, परन्तु मेरे बिना ये प्रेत इस भयंकर वनमें कर्मानुसार प्राप्त हुई प्रेतयोनिकी दुस्सह पीड़ा भोगेंगे; अतः तुम मुझपर कृपा करनेके लिये इन सबके नाम और गोत्र लिखकर ले लो। महामते! यहाँसे हिमालयपर जाकर तुम खजाना प्राप्त करोगे। तत्पश्चात् गया जाकर इन सबका श्राद्ध कर देना।

महादेवजी कहते हैं—नारद! बनियेको इस प्रकार आदेश देकर प्रेतने उसे सुखपूर्वक विदा किया। घर आनेपर उसने हिमालयकी यात्रा की और वहाँसे प्रेतका बताया हुआ खजाना लेकर वह लौट आया। उस खजानेका छठा अंश साथ लेकर वह 'गया' तीर्थमें गया। वहाँ पहुँचकर उस परम बुद्धिमान् बनियेने शास्त्रोक्त विधिसे उन प्रेतोंका श्राद्ध किया। एक-एकके नाम और गोत्रका उच्चारण करके उनके लिये पिण्डदान

किया। वह जिस दिन जिसका श्राद्ध करता था, उस दिन वह आकर स्वप्नमें बनियेको प्रत्यक्ष दर्शन देता और कहता कि 'महाभाग! तुम्हारी कृपासे मैंने प्रेतभावको त्याग दिया और अब मैं परमगतिको प्राप्त हो रहा हूँ।' इस प्रकार वह महामना वैश्य गयातीर्थमें प्रेतोंका विधिपूर्वक श्राद्ध करके बारम्बार भगवान् विष्णुका ध्यान करता हुआ अपने घर लौट आया। फिर भाद्रपद मासके शुक्लपक्षमें, जब श्रवण-द्वादशीका योग आया, तब वह सब आवश्यक सामग्री साथ लेकर नदीके संगमपर गया और वहाँ स्नान करके उसने द्वादशीका व्रत किया। स्नान, दान और भगवान् विष्णुका पूजन करनेके अनन्तर ब्राह्मणको उपहार भेंट किया। एकचित्त होकर उस बुद्धिमान् वैश्यने शास्त्रोक्त विधिसे सब कार्य सम्पन्न किया। उसके बाद प्रतिवर्ष भादोंका महीना आनेपर श्रवण-द्वादशीके योगमें नदीके संगमपर जाकर वह भगवान् विष्णुके उद्देश्यसे पूर्वोक्त प्रकारसे स्नान-दान आदि सब कार्य करने लगा। तदनन्तर दीर्घकालके पश्चात् उसकी मृत्यु हो गयी। उसने सब मनुष्योंके लिये दुर्लभ परमधामको प्राप्त कर लिया। आज भी वह विष्णुदूतोंसे सेवित हो वैकुण्ठधाममें विहार कर रहा है। ब्रह्मन्! तुम भी इसी प्रकार श्रवण-द्वादशीका व्रत करो। वह इस लोक और परलोकमें भी सम्पूर्ण सौभाग्य प्रदान करनेवाला, उत्तम बुद्धिका देनेवाला तथा सब पापोंको हरनेवाला उत्तम साधन है। जो श्रवण-द्वादशीके योगमें इस व्रतका अनुष्ठान करता है, वह इसके प्रभावसे विष्णुलोकमें जाता है।

नाम-कीर्तनकी महिमा तथा श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रका वर्णन

ऋषियोंने कहा—सूतजी! आपका हृदय अत्यन्त करुणायुक्त है; अतएव श्रीमहादेवजी और देवर्षि नारदका जो अद्‌भुत संवाद हुआ था, उसे आपने हमलोगोंसे कहा है। हमलोग श्रद्धापूर्वक सुन रहे हैं। अब आप कृपापूर्वक यह बताइये कि महात्मा नारदने ब्रह्माजीसे भगवन्नामोंकी महिमाका किस प्रकार श्रवण किया था।

सूतजी बोले—द्विजश्रेष्ठ मुनियो! इस विषयमें मैं पुराना इतिहास सुनाता हूँ। आप सब लोग ध्यान देकर सुनें। इसके श्रवणसे भगवान् श्रीकृष्णमें भक्ति बढ़ती है। एक समयकी बात है, चित्तको पूर्ण एकाग्र रखनेवाले नारदजी अपने पिता ब्रह्माजीका दर्शन करनेके लिये मेरुपर्वतके शिखरपर गये। वहाँ आसनपर बैठे हुए जगत्पति ब्रह्माजीको प्रणाम करके मुनिश्रेष्ठ नारदजीने इस प्रकार कहा—'विश्वेश्वर! भगवान्‌के नामकी जितनी शक्ति है, उसे बताइये। प्रभो! ये जो सम्पूर्ण विश्वके स्वामी साक्षात् श्रीनारायण हरि हैं, इन अविनाशी परमात्माके नामकी कैसी महिमा है?'

ब्रह्माजी बोले—बेटा! इस कलियुगमें विशेषतः नाम-कीर्तनपूर्वक भगवान्‌की भक्ति जिस प्रकार करनी चाहिये, वह सुनो। जिनके लिये शास्त्रोंमें कोई प्रायश्चित्त नहीं बताया गया है, उन सभी पापोंकी शुद्धिके
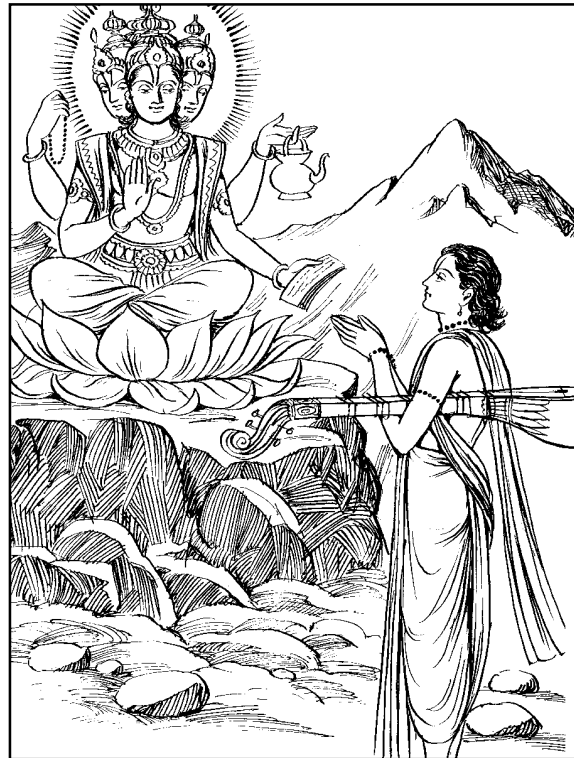
लिये एकमात्र विजयशील भगवान् विष्णुका प्रयत्नपूर्वक स्मरण ही सर्वोत्तम साधन देखा गया है, वह समस्त पापोंका नाश करनेवाला है।[१] अतः श्रीहरिके नामका कीर्तन और जप करना चाहिये। जो ऐसा करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो श्रीविष्णुके परमपदको प्राप्त होता है। जो मनुष्य 'हरि' इस दो अक्षरोंवाले नामका सदा उच्चारण करते हैं, वे उसके उच्चारणमात्रसे मुक्त हो जाते हैं— इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। तपस्याके रूपमें किये जानेवाले जो सम्पूर्ण प्रायश्चित्त हैं, उन सबकी अपेक्षा श्रीकृष्णका निरन्तर स्मरण श्रेष्ठ है। जो मनुष्य प्रातः, सायं, रात्रि तथा मध्याह्न आदिके समय 'नारायण' नामका स्मरण करता है, उसके समस्त पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं।[२]

उत्तम व्रतका पालन करनेवाले नारद! मेरा कथन सत्य है, सत्य है, सत्य है। भगवान्के नामोंका उच्चारण करनेमात्रसे मनुष्य बड़े-बड़े पापोंसे मुक्त हो जाता है। 'राम-राम-राम-राम' इस प्रकार बारम्बार जप करनेवाला मनुष्य यदि चाण्डाल हो तो भी वह पवित्रात्मा हो जाता है। इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। उसने नाम-कीर्तनमात्रसे कुरुक्षेत्र, काशी, गया और द्वारका आदि सम्पूर्ण तीर्थोंका सेवन कर लिया। जो 'कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण!' इस प्रकार जप और कीर्तन करता है, वह इस संसारका परित्याग करनेपर भगवान् विष्णुके समीप आनन्द भोगता है। ब्रह्मन्! जो कलियुगमें प्रसन्नतापूर्वक 'नृसिंह' नामका जप और कीर्तन करता है, वह भगवद्भक्त मनुष्य महान् पापसे छुटकारा पा जाता है। सत्ययुगमें ध्यान, त्रेतामें यज्ञ तथा द्वापरमें पूजन करके मनुष्य जो कुछ पाता है, वही कलियुगमें केवल भगवान् केशवका कीर्तन करनेसे पा लेता है। जो लोग इस बातको जानकर जगदात्मा केशवके भजनमें लीन होते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त हो श्रीविष्णुके परमपदको प्राप्त कर लेते हैं। मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, श्रीराम, श्रीकृष्ण, बुद्ध तथा कल्कि—ये दस अवतार इस पृथ्वीपर बताये गये हैं। इनके नामोच्चारणमात्रसे सदा ब्रह्महत्यारा भी शुद्ध होता है। जो मनुष्य प्रातःकाल जिस किसी तरह भी श्रीविष्णुनामका कीर्तन, जप तथा ध्यान करता है, वह निस्सन्देह मुक्त होता है, निश्चय ही नरसे नारायण बन जाता है।[३]

सूतजी कहते हैं—यह सुनकर नारदजीको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे अपने पिता ब्रह्माजीसे बोले—'तात! तीर्थसेवनके लिये पृथ्वीपर भ्रमण करनेकी क्या आवश्यकता है; जिनके नामका ऐसा माहात्म्य है कि

---

१. दृष्टं परेषां पापानामनुक्तानां विशोधनम्। विष्णोर्जिष्णोः प्रयत्नेन स्मरणं पापनाशनम्॥ (७२। १०)

२. ये वदन्ति नरा नित्यं हरिरित्यक्षरद्वयम्। तस्योच्चारणमात्रेण विमुक्तास्ते न संशयः॥
प्रायश्चित्तानि सर्वाणि तपःकर्मात्मकानि वै। यानि तेषामशेषाणां कृष्णानुस्मरणं परम्॥
प्रातर्निशि तथा सायं मध्याह्नादिषु संस्मरन्। नारायणमवाप्नोति सद्यः पापक्षयं नरः॥ (७२। १२—१४)

३. सत्यं सत्यं पुनः सत्यं भाषितं मम सुव्रत। नामोच्चारणमात्रेण महापापात्प्रमुच्यते॥
राम रामेति रामेति रामेति च पुनर्जपन्। स चाण्डालोऽपि पूतात्मा जायते नात्र संशयः॥
कुरुक्षेत्रं तथा काशी गया वै द्वारका तथा। सर्वं तीर्थं कृतं तेन नामोच्चारणमात्रतः॥
कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति इति वा यो जपन् पठन्। इहलोकं परित्यज्य मोदते विष्णुसंनिधौ॥
नृसिंहेति मुदा विप्र वर्तते यो जपन् पठन्। महापापात् प्रमुच्येत कलौ भागवतो नरः॥
ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन्। यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम्॥
ये तज्ज्ञात्वा निमग्नाश्च जगदात्मनि केशवे। सर्वपापपरिक्षीणा यान्ति विष्णोः परं पदम्॥
मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नृसिंहो वामनस्तथा। रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्की ततः स्मृतः॥
एते दशावताराश्च पृथिव्यां परिकीर्तिताः। एतेषां नाममात्रेण ब्रह्महा शुद्ध्यते सदा॥
प्रातः पठञ्जपन् ध्यायन् विष्णोर्नाम यथा तथा। मुच्यते नात्र संदेहः स वै नारायणो भवेत्॥ (७२। २०—२९)

उसे सुननेमात्रसे मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है, उन भगवान्‌का ही स्मरण करना चाहिये। जिस मुखमें 'राम-राम' का जप होता रहता है, वही महान् तीर्थ है, वही प्रधान क्षेत्र है तथा वही समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। सुव्रत! भगवान्‌के कीर्तन करनेयोग्य कौन-कौन-से नाम हैं? उन सबको विशेष रूपसे बताइये।

ब्रह्माजीने कहा—बेटा! ये भगवान् विष्णु सर्वत्रव्यापक सनातन परमात्मा हैं। इनका न आदि है न अन्त। ये लक्ष्मीसे युक्त, सम्पूर्ण भूतोंके आत्मा तथा समस्त प्राणियोंको उत्पन्न करनेवाले हैं। जिनसे मेरा प्रादुर्भाव हुआ है, वे भगवान् विष्णु सदा मेरी रक्षा करें। वही कालके भी काल और वही मेरे पूर्वज हैं। उनका कभी विनाश नहीं होता। उनके नेत्र कमलके समान शोभा पाते हैं। वे परम बुद्धिमान् ,अविकारी एवं पुरुष (अन्तर्यामी) हैं। सदा शेषनागकी शय्यापर शयन करनेवाले भगवान् विष्णु सहस्रों मस्तकवाले हैं। वे महाप्रभु हैं। सम्पूर्ण भूत उन्हींके स्वरूप हैं। भगवान् जनार्दन साक्षात् विश्वरूप हैं। कैटभ नामक असुरका वध करनेके कारण वे कैटभारि कहलाते हैं। वे ही व्यापक होनेके कारण विष्णु , धारण-पोषण करनेके कारण धाता और जगदीश्वर हैं। नारद! मैं उनका नाम और गोत्र नहीं जानता। तात! मैं केवल वेदोंका वक्ता हूँ , वेदातीत परमात्माका ज्ञाता नहीं, अतः देवर्षे! तुम वहाँ जाओ, जहाँ भगवान् विश्वनाथ रहते हैं। मुनिश्रेष्ठ! वे तुमसे सम्पूर्ण तत्त्वका वर्णन करेंगे। कैलासके स्वामी श्रीमहादेवजी ही अन्तर्यामी पुरुष हैं। वे देवताओंके स्वामी और सम्पूर्ण भक्तोंके आराध्यदेव हैं। पाँच मुखोंसे सुशोभित भगवान् उमानाथ सब दुःखोंका विनाश करनेवाले हैं। सम्पूर्ण विश्वके ईश्वर श्रीविश्वनाथजी सदा भक्तोंपर दया करनेवाले हैं। नारद! वहीं जाओ, वे तुम्हें सब कुछ बता देंगे।

सूतजी कहते हैं—पिताकी बात सुनकर देवर्षि नारद कैलास पर्वतपर, जहाँ कल्याणप्रद भगवान् विश्वेश्वर नित्य निवास करते हैं, गये। देवताओंद्वारा पूजित देवाधिदेव जगद्गुरु भगवान् शंकर कैलासके शिखरपर विराजमान थे। उनके पाँच मुख, दस भुजाएँ, प्रत्येक मुखमें तीन नेत्र तथा हाथोंमें त्रिशूल, कपाल, खट्वांग, तीक्ष्ण शूल, खड्ग और पिनाक नामका धनुष शोभा पा रहे थे। बैलपर सवारी करनेवाले वरदाता भगवान् भीम अपने अंगोंमें भस्म रमाये सर्पोंकी शोभासे युक्त चन्द्रमाका मुकुट पहने करोड़ों सूर्योंके समान देदीप्यमान हो रहे थे। नारदजीने देवेश्वर शिवको साष्टांग दण्डवत् किया। उन्हें देखकर महादेवजीके नेत्रकमल खिल उठे। उस समय वैष्णवोंमें सर्वश्रेष्ठ शिवने ब्रह्मचारियोंमें श्रेष्ठ नारदजीसे पूछा—'देवर्षिप्रवर! बताओ, कहाँसे आ रहे हो?'

नारदजीने कहा—भगवन्! एक समय मैं ब्रह्माजीके पास गया था। वहाँ उनके मुखसे मैंने भगवान् विष्णुके पापनाशक माहात्म्यका श्रवण किया। सुरश्रेष्ठ! ब्रह्माजीने मेरे सामने भगवान्‌की महिमाका भलीभाँति वर्णन किया। भगवान्‌के नामकी जितनी शक्ति है, वह भी मैंने उनके मुखसे सुनी है। तत्पश्चात् पहले विष्णुके नामोंके विषयमें प्रश्न किया। तब उन्होंने कहा— 'नारद! मैं इस बातको नहीं जानता; इसका ज्ञान महारुद्रको है। वे ही सब कुछ बतायेंगे।' यह सुनकर मैं आपके पास आया हूँ। इस घोर कलियुगमें मनुष्योंकी आयु थोड़ी होगी। वे सदा अधर्ममें तत्पर रहेंगे। भगवान्‌के नामोंमें उनकी निष्ठा नहीं होगी। कलियुगके ब्राह्मण पाखण्डी, धर्मसे विरक्त, संध्या न करनेवाले, व्रतहीन, दुष्ट और मलिन होंगे; जैसे ब्राह्मण होंगे, वैसे ही क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा अन्य जातिके लोग भी होंगे। प्रायः मनुष्य भगवान्‌के भक्त नहीं होंगे। द्विजोंसे बाहर गिने जानेवाले शूद्र कलियुगमें धर्म-अधर्म तथा हिताहितका ज्ञान भी नहीं रखते; ऐसा जानकर मैं आपके निकट आया हूँ। आप कृपा करके विष्णुके सहस्र नामोंका वर्णन कीजिये, जो पुरुषोंके लिये सौभाग्यजनक, परम उत्तम तथा सर्वदा भक्तिभावको बढ़ानेवाले हैं; इसी प्रकार जो ब्राह्मणोंको ब्रह्मज्ञान, क्षत्रियोंको विजय, वैश्योंको धन तथा शूद्रोंको सदा सुख देनेवाले हैं।

सुव्रत! जो सहस्रनाम परम गोपनीय है, उसका वर्णन कीजिये। वह परम पवित्र एवं सदा सर्वतीर्थमय है; अतः मैं उसका श्रवण करना चाहता हूँ। प्रभो! विश्वेश्वर! कृपया उस सहस्रनामका उपदेश कीजिये।

नारदजीके वचन सुनकर भगवान् शंकरके नेत्र आश्चर्यसे चकित हो उठे। भगवान् विष्णुके नामका बारम्बार स्मरण करके उनके शरीरमें रोमांच हो आया। वे बोले—'ब्रह्मन्! भगवान् विष्णुके सहस्रनाम परम गोपनीय हैं। इन्हें सुनकर मनुष्य कभी दुर्गतिमें नहीं पड़ता।' यों कहकर भगवान् शंकरने नारदजीको विष्णुसहस्रनामका उपदेश दिया, जिसे पूर्वकालमें वे भगवती पार्वतीजीको सुना चुके थे। इस प्रकार नारदजीने कैलासपर्वतपर भगवान् महेश्वरसे श्रीविष्णुसहस्रनामका ज्ञान प्राप्त किया। फिर दैवयोगसे एक बार वे कैलाससे उतरकर नैमिषारण्य नामक तीर्थमें आये। वहाँके ऋषियोंने ऋषिश्रेष्ठ महात्मा नारदको आया देख विशेषरूपसे उनका स्वागत-सत्कार किया। उन्होंने विष्णुभक्त विप्रवर नारदजीके ऊपर फूल बरसाये, पाद्य और अर्घ्य निवेदन किया, उनकी आरती उतारी और फल-मूल निवेदन करके पृथ्वीपर साष्टांग प्रणाम किया। तत्पश्चात् वे बोले—'महामुने! हमलोग इस वंशमें जन्म लेकर आज कृतार्थ हो गये; क्योंकि आज हमें परम पवित्र और पापोंका नाश करनेवाला आपका दर्शन प्राप्त हुआ। देवर्षे! आपके प्रसादसे हमने पुराणोंका श्रवण किया है। ब्रह्मन्! अब आप यह बताइये कि किस प्रकारसे समस्त पापोंका क्षय हो सकता है। दान, तपस्या, तीर्थ, यज्ञ, योग, ध्यान, इन्द्रिय-निग्रह और शास्त्र-समुदायके बिना ही कैसे मुक्ति प्राप्त हो सकती है?'

नारदजी बोले—मुनिवरो! एक समय भगवती पार्वतीने कैलासशिखरपर बैठे हुए अपने प्रियतम देवाधिदेव जगद्गुरु महादेवजीसे इस प्रकार प्रश्न किया।

पार्वती बोलीं—भगवन्! आप सर्वज्ञ और सर्वपूजित श्रेष्ठ देवता हैं। जन्म और मृत्युसे रहित, स्वयम्भू एवं सर्वशक्तिमान् हैं। स्वामिन्! आप सदा किसका ध्यान करते हैं? किस मन्त्रका जप करते हैं? देवेश्वर! इसे जाननेकी मेरे मनमें बड़ी उत्कण्ठा है। सुव्रत! यदि मैं आपकी प्रियतमा और कृपापात्र हूँ तो मुझसे यथार्थ बात कहिये।

महादेवजी बोले—देवि! पहले सत्ययुगमें विशुद्ध चित्तवाले सब पुरुष सम्पूर्ण ईश्वरोंके भी ईश्वर एकमात्र भगवान् विष्णुका तत्त्व जानकर उन्हींके नामोंका जप किया करते थे और उसीके प्रभावसे इस लोक तथा परलोकमें भी परम ऐश्वर्यको प्राप्त करते थे। प्रिये! तुलादान, अश्वमेध आदि यज्ञ, काशी, प्रयाग आदि तीर्थोंमें किये हुए स्नान आदि शुभकर्म, गयामें किये हुए पितरोंके श्राद्ध-तर्पण आदि, वेदोंके स्वाध्याय आदि, जप, उग्र तप, नियम, यम, जीवोंपर दया, गुरुशुश्रूषा, सत्यभाषण, वर्ण और आश्रमके धर्मोंका पालन, ज्ञान तथा ध्यान आदि साधनोंका कोटि जन्मोंतक भलीभाँति अनुष्ठान करनेपर भी मनुष्य परम कल्याणमय सर्वेश्वरेश्वर भगवान् विष्णुको नहीं पाते। परन्तु जो दूसरेका भरोसा न करके सर्वभावसे पुराण पुरुषोत्तम श्रीनारायणकी शरण ग्रहण करते हैं, वे उन्हें प्राप्त कर लेते हैं। जो लोग एकमात्र श्रीभगवान् विष्णुके नामोंका कीर्तन करते हैं, वे

सुखपूर्वक जिस गतिको प्राप्त करते हैं, उसे समस्त धार्मिक भी नहीं पा सकते। अतः सदा भगवान् विष्णुका स्मरण करना चाहिये, इन्हें कभी भी भूलना नहीं चाहिये। क्योंकि सभी विधि और निषेध इन्हींके किंकर हैं—इन्हींकी आज्ञाका पालन करते हैं।[१] प्रिये! अब मैं तुमसे भगवान् विष्णुके मुख्य-मुख्य हजार नामोंका वर्णन करूँगा, जो तीनों लोकोंको मुक्ति प्रदान करनेवाले हैं।

विनियोग

अस्य श्रीविष्णोर्नामसहस्रस्तोत्रस्य श्रीमहादेव ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, परमात्मा देवता, ह्रीं बीजम्, श्रीं शक्तिः, क्लीं कीलकम्, चतुर्वर्गधर्मार्थकाममोक्षार्थे जपे विनियोगः॥ ११४॥

इस श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रके महादेवजी ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, परमात्मा देवता, ह्रीं बीज, श्रीं शक्ति और क्लीं कीलक हैं। चारों पुरुषार्थ—धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षकी प्राप्तिके निमित्त जप करनेके लिये इस स्तोत्रका विनियोग (प्रयोग) किया जाता है॥ ११४॥

ॐ वासुदेवाय विद्महे, महाहंसाय धीमहि, तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्॥ ११५॥

हम श्रीवासुदेवका तत्त्व समझनेके लिये ज्ञान प्राप्त करते हैं, महाहंसस्वरूप नारायणके लिये ध्यान करते हैं, श्रीविष्णु हमें प्रेरित करें—हमारी मन, बुद्धिको प्रेरणा देकर इस कार्यमें लगायें॥ ११५॥

अङ्गन्यासकरन्यासविधिपूर्वं यदा पठेत्।
तत्फलं कोटिगुणितं भवत्येव न संशयः॥ ११६॥

यदि पहले अंगन्यास और करन्यासकी विधि पूर्ण करके सहस्रनामस्तोत्रका पाठ किया जाय तो निस्सन्देह उसका फल कोटिगुना होता है॥ ११६॥

अङ्गन्यास

श्रीवासुदेवः परं ब्रह्मेति हृदयम्। मूलप्रकृतिरिति शिरः। महावराह इति शिखा। सूर्यवंशध्वज इति कवचम्। ब्रह्मादिकाम्यलालित्यजगदाश्चर्यशैशव इति नेत्रम्। पार्थार्थखण्डिताशेष इत्यस्त्रम्। नमो नारायणायेति न्यासं सर्वत्र कारयेत्॥ ११७॥

'श्रीवासुदेवः परं ब्रह्म' (श्रीवासुदेव परब्रह्म हैं)—यह कहकर दाहिने हाथकी अँगुलियोंसे हृदयका स्पर्श करे। **'मूलप्रकृतिः'** (मूल प्रकृति-) का उच्चारण करके सिरका स्पर्श करे। **'महावराहः'** (महान् वराहरूपधारी भगवान् विष्णु)—यह कहकर शिखाका स्पर्श करे। **'सूर्यवंशध्वजः'** (सूर्यवंशके ध्वजारूप भगवान् श्रीराम) यों कहकर दोनों हाथोंसे दोनों भुजाओंके मूलभागका स्पर्श करे। **'ब्रह्मादिकाम्यला-लित्यजगदाश्चर्यशैशवः'** (अवतार धारण करनेपर जिनका शिशुरूप अपने अनुपम सौन्दर्यसे संसारको आश्चर्यमें डाल देता है तथा ब्रह्मा आदि देवता भी उस रूपमें जिनकी झाँकी करनेकी अभिलाषा रखते हैं, वे भगवान् विष्णु धन्य हैं) यह कहकर नेत्रोंका स्पर्श करे। **'पार्थार्थखण्डिताशेषः'** (अर्जुनके लिये महाभारतके समस्त वीरोंका संहार करानेवाले श्रीकृष्ण) यों कहकर ताली बजाये। अन्तमें **'नमो नारायणाय'** (श्रीनारायणको नमस्कार है)—ऐसा बोलकर सर्वांगका स्पर्श करे॥ ११७॥[२]

ॐ नमो नारायणाय पुरुषाय महात्मने, विशुद्धसत्त्वाय महाहंसाय धीमहि, तन्नो देवः प्रचोदयात्॥ ११८॥

ॐकाररूप सर्वान्तर्यामी महात्मा नारायणको

१.स्मर्तव्यः सततं विष्णुर्विस्मर्तव्यो न जातुचित्। सर्वे विधिनिषेधाः स्युरेतस्यैव हि किङ्कराः॥ (७२। १००)

२.यहाँ अंगन्यासकी विधिका उल्लेख किया गया है; इन्हीं मन्त्रोंसे करन्यास भी किया जा सकता है, उसकी विधि इस प्रकार है। 'श्रीवासुदेवः परं ब्रह्म' यह कहकर दोनों हाथोंके अँगूठोंको परस्पर मिलाये; इसी तरह 'मूलप्रकृतिः' कहकर दोनों तर्जनियोंको, 'महावराहः' का उच्चारण करके दोनों बीचकी अँगुलियोंको, 'सूर्यवंशध्वजः' कहकर दोनों अनामिकाओंको, 'ब्रह्मादिकाम्यलालित्यजगदाश्चर्यशैशवः' का उच्चारण करके दोनों कनिष्ठिका अँगुलियोंको, 'पार्थार्थखण्डिताशेषः' कहकर दोनों हथेलियोंको तथा 'नमो नारायणाय' का उच्चारण करके हथेलियोंके पृष्ठभागोंको परस्पर स्पर्श कराये।

नमस्कार है, विशुद्ध सत्त्वमय महाहंसस्वरूप श्रीविष्णुका हम ध्यान करते हैं; अतः श्रीविष्णु देवता हमें सत्कार्यमें प्रेरित करें॥ ११८॥

क्लीं कृष्णाय विद्महे, ह्रीं रामाय धीमहि, तन्नो देवः प्रचोदयात्॥ ११९॥

'क्लीं' रूप श्रीकृष्णतत्त्वको समझनेके लिये हम ज्ञान प्राप्त करते हैं; 'ह्रीं' रूप श्रीरामका हम ध्यान करते हैं; वे देव श्रीरघुनाथजी हमें प्रेरित करें॥ ११९॥

शं नृसिंहाय विद्महे, श्रीकण्ठाय धीमहि, तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्॥ १२०॥

शम्—कल्याणमय भगवान् नृसिंहका तत्त्व जाननेके लिये हम ज्ञान प्राप्त करते हैं, श्रीकण्ठका ध्यान करते हैं; वे श्रीनृसिंहरूप भगवान् विष्णु हमें प्रेरित करें॥ १२०॥

ॐ वासुदेवाय विद्महे, देवकीसुताय धीमहि, तन्नः कृष्णः प्रचोदयात्॥ १२१॥

ॐकाररूप श्रीवासुदेवका तत्त्व जाननेके लिये हम ज्ञान प्राप्त करते हैं, श्रीदेवकीनन्दन श्रीकृष्णका हम ध्यान करते हैं, वे श्रीकृष्ण हमें प्रेरित करें॥ १२१॥

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय नमः स्वाहा॥ १२२॥

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः क्लीं—सच्चिदानन्दस्वरूप, गोपीजनोंके प्रियतम भगवान् गोविन्दको नमस्कार है; हम उनकी तृप्तिके लिये उत्तम रीतिसे हवन करते हैं—अपना सब कुछ अर्पण करते हैं॥ १२२॥

इति मन्त्रं समुच्चार्य यजेद् वा विष्णुमव्ययम्।
श्रीनिवासं जगन्नाथं ततः स्तोत्रं पठेत् सुधीः।
ॐ वासुदेवः परं ब्रह्म परमात्मा परात्परः॥ १२३॥

—उपर्युक्त मन्त्रोंका उच्चारण करके लक्ष्मीके निवासस्थान और संसारके स्वामी अविनाशी भगवान् श्रीविष्णुका पूजन करे; इसके बाद विद्वान् पुरुष सहस्रनामस्तोत्रका पाठ करे। ॐ सच्चिदानन्दस्वरूप, **१ वासुदेवः**—सम्पूर्ण प्राणियोंको अपनेमें बसानेवाले तथा समस्त भूतोंमें सर्वात्मारूपसे बसनेवाले, चतुर्व्यूहमें वासुदेवस्वरूप, **२ परं ब्रह्म**— सर्वोत्कृष्ट ब्रह्म—निर्गुण परमात्मा, **३ परमात्मा**—परम श्रेष्ठ, नित्य-शुद्ध-बुद्ध—मुक्तस्वभाव, **४ परात्परः**—पर अर्थात् प्रकृतिसे भी परे विराजमान परमात्मा॥ १२३॥

परं धाम परं ज्योतिः परं तत्त्वं परं पदम्।
परः शिवः परो ध्येयः परं ज्ञानं परा गतिः॥ १२४॥

५ परं धाम—सर्वोत्तम वैकुण्ठधाम, निर्गुण परमात्मा, **६ परं ज्योतिः**—सूर्य आदि ज्योतियोंको भी प्रकाशित करनेवाले सर्वोत्कृष्ट ज्योतिःस्वरूप, **७ परं तत्त्वम्**—परम तत्त्व, उपनिषदोंसे जाननेयोग्य सर्वोत्तम रहस्य, **८ परं पदम्**—प्राप्त करनेयोग्य सर्वोत्कृष्ट पद, मोक्षस्वरूप, **९ परः शिवः**—परम कल्याणरूप, **१० परो ध्येयः**—ध्यान करनेयोग्य सर्वोत्तम देव, चिन्तनके सर्वश्रेष्ठ आश्रय, **११ परं ज्ञानम्**—भ्रान्तिशून्य उत्कृष्ट बोधस्वरूप परमात्मा, **१२ परा गतिः**—सर्वोत्तम गति, मोक्षस्वरूप॥ १२४॥

परमार्थः परश्रेष्ठः परानन्दः परोदयः।
परोऽव्यक्तात्परं व्योम परमर्द्धिः परेश्वरः॥ १२५॥

१३ परमार्थः—मोक्षरूप परम पुरुषार्थ, परम सत्य **१४ परश्रेष्ठः**—श्रेष्ठसे भी श्रेष्ठ, **१५ परानन्दः**—परम आनन्दमय, असीम आनन्दकी निधि, **१६ परोदयः**—सर्वाधिक अभ्युदयशाली, **१७ अव्यक्तात्परः**—अव्यक्तपदवाच्य मूलप्रकृतिसे परे, **१८ परं व्योम**—नित्य एवं अनन्त आकाशस्वरूप निर्गुण परमात्मा, **१९ परमर्द्धिः**—सर्वोत्तम ऐश्वर्यसे सम्पन्न, **२० परेश्वरः**—पर अर्थात् ब्रह्मादि देवताओंके भी ईश्वर॥ १२५॥

निरामयो निर्विकारो निर्विकल्पो निराश्रयः।
निरञ्जनो निरालम्बो निर्लेपो निरवग्रहः॥ १२६॥

२१ निरामयः—रोग-शोकसे रहित, **२२ निर्विकारः**—उत्पत्तिः, सत्ता, वृद्धि, विपरिणाम, अपक्षय और विनाश—इन छः विकारोंसे शून्य, **२३ निर्विकल्पः**—सन्देहरहित, संकल्पशून्य, **२४ निराश्रयः**—स्वयं ही सबके आश्रय होनेके कारण अन्य किसी आश्रयसे रहित, **२५ निरञ्जनः**—वासना और आसक्तिरूपी मलसे शून्य, तमोगुणरहित,

२६ निरालम्बः—आधारशून्य, स्वयं ही सबके आधार, **२७ निर्लेपः**—जलसे कमलकी भाँति राग-द्वेषादि दोषोंसे अलिप्त, **२८ निरवग्रहः**—विघ्न-बाधाओंसे रहित ॥ १२६ ॥

निर्गुणो निष्कलोऽनन्तोऽभयोऽचिन्त्योऽचलोऽञ्चितः।
अतीन्द्रियोऽमितोऽपारो नित्योऽनीहोऽव्ययोऽक्षयः॥ १२७॥

२९ निर्गुणः—सत्त्व, रज और तम—इन तीनों गुणोंसे रहित परमात्मा, **३० निष्कलः**—अवयवशून्य ब्रह्म, **३१ अनन्तः**—असीम एवं अविनाशी परमेश्वर, **३२ अभयः**—काल आदिके भयसे रहित, **३३ अचिन्त्यः**—मनकी गतिसे परे होनेके कारण चिन्तनमें न आनेवाले, **३४ अचलः**—अपनी मर्यादासे विचलित न होनेवाले, **३५ अञ्चितः**—सबके द्वारा पूजित, **३६ अतीन्द्रियः**—इन्द्रियोंके अगोचर, **३७ अमितः**— माप या सीमासे रहित, महान्, अपरिच्छिन्न, **३८ अपारः**—पाररहित, अनन्त, **३९ नित्यः**—सदा रहनेवाले, सनातन, **४० अनीहः**—चेष्टारहित ब्रह्म, **४१ अव्ययः**— विनाशरहित, **४२ अक्षयः**—कभी क्षीण न होनेवाले॥ १२७॥

सर्वज्ञः सर्वगः सर्वः सर्वदः सर्वभावनः।
सर्वशास्ता सर्वसाक्षी पूज्यः सर्वस्य सर्वदृक्॥ १२८॥

४३ सर्वज्ञः—परोक्ष और अपरोक्ष सबके ज्ञाता, **४४ सर्वगः**—कारणरूपसे सर्वत्र व्याप्त रहनेवाले, **४५ सर्वः**—सर्वस्वरूप, **४६ सर्वदः**—भक्तोंको सर्वस्व देनेवाले, **४७ सर्वभावनः**—सबको उत्पन्न करनेवाले, **४८ सर्वशास्ता**—सबके शासक, **४९ सर्वसाक्षी**—भूत, भविष्य और वर्तमान—सबपर दृष्टि रखनेवाले, **५० सर्वस्य पूज्यः**—सबके पूजनीय, **५१ सर्वदृक्**—सबके द्रष्टा॥ १२८॥

सर्वशक्तिः सर्वसारः सर्वात्मा सर्वतोमुखः।
सर्ववासः सर्वरूपः सर्वादिः सर्वदुःखहा॥ १२९॥

५२ सर्वशक्तिः—सब प्रकारकी शक्तियोंसे सम्पन्न, **५३ सर्वसारः**—सबके बल, **५४ सर्वात्मा**—सबके आत्मा, **५५ सर्वतोमुखः**—सब ओर मुखवाले, विराट्स्वरूप, **५६ सर्ववासः**—सम्पूर्ण विश्वके वासस्थान, **५७ सर्वरूपः**—सब रूपोंमें स्वयं ही उपलब्ध होनेवाले, विश्वरूप, **५८ सर्वादिः**—सबके आदि कारण, **५९ सर्वदुःखहा**—सबके दुःखोंका नाश करनेवाले॥ १२९॥

सर्वार्थः सर्वतोभद्रः सर्वकारणकारणम्।
सर्वातिशयितः सर्वाध्यक्षः सर्वेश्वरेश्वरः॥ १३०॥

६० सर्वार्थः—समस्त पुरुषार्थरूप, **६१ सर्वतोभद्रः**—सब ओरसे कल्याणरूप, **६२ सर्वकारणकारणम्**—विश्वके कारणभूत प्रकृति आदिके भी कारण, **६३ सर्वातिशयितः**—सबसे सब बातोंमें बढ़े हुए, ब्रह्मा और शिव आदिसे भी अधिक महिमावाले, **६४ सर्वाध्यक्षः**—सबके साक्षी, सबके नियन्ता, **६५ सर्वेश्वरेश्वरः**—सम्पूर्ण ईश्वरोंके भी ईश्वर, ब्रह्मादि देवताओंके भी नियामक॥ १३०॥

षड्विंशको महाविष्णुर्महागुह्यो महाविभुः।
नित्योदितो नित्ययुक्तो नित्यानन्दः सनातनः॥ १३१॥

६६ षड्विंशकः—पचीस* तत्त्वोंसे विलक्षण छब्बीसवाँ तत्त्व, पुरुषोत्तम, **६७ महाविष्णुः**—सब देवताओंमें महान् सर्वव्यापी भगवान् विष्णु, **६८ महागुह्यः**—परम गोपनीय तत्त्व, **६९ महाविभुः**—प्राकृत आकाश आदि व्यापक तत्त्वोंसे भी महान् एवं व्यापक, **७० नित्योदितः**—सूर्य आदिकी भाँति अस्त न होकर नित्य-निरन्तर उदित रहनेवाले, **७१ नित्ययुक्तः**—चराचर प्राणियोंसे नित्य संयुक्त अथवा सदा योगमें स्थित रहनेवाले, **७२ नित्यानन्दः**— नित्य आनन्दस्वरूप, **७३ सनातनः**—सदा एकरस रहनेवाले॥१३१॥

मायापतिर्योगपतिः कैवल्यपतिरात्मभूः।
जन्ममृत्युजरातीतः कालातीतो भवातिगः॥ १३२॥

---

* पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच इन्द्रियोंके विषय, मन, पाँच भूत, अहंकार, महत्तत्त्व, प्रकृति और पुरुष (जीवात्मा)—ये पचीस तत्त्व हैं। इनसे भिन्न सर्वज्ञ परमात्मा छब्बीसवाँ तत्त्व है। इसीलिये इसे 'षड्विंशक' कहा गया है।

७४ **मायापतिः**—मायाके स्वामी, ७५ **योगपतिः**—योगपालक, योगेश्वर, ७६ **कैवल्यपतिः**—मोक्ष प्रदान करनेका अधिकार रखनेवाले, मुक्तिके स्वामी, ७७ **आत्मभूः**—स्वतः प्रकट होनेवाले, स्वयम्भू, ७८ **जन्ममृत्युजरातीतः**—जन्म, मरण और वृद्धावस्था आदि शरीरके धर्मोंसे रहित, ७९ **कालातीतः**—कालके वशमें न आनेवाले, ८० **भवातिगः**—भवबन्धनसे अतीत॥ १३२॥

पूर्णः सत्यः शुद्धबुद्धस्वरूपो नित्यचिन्मयः।
योगप्रियो योगगम्यो भवबन्धैकमोचकः॥ १३३॥

८१ **पूर्णः**—समस्त ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य और गुणोंसे परिपूर्ण, ८२ **सत्यः**—भूत, भविष्य और वर्तमान— तीनों कालोंमें सदा समानरूपसे रहनेवाले, सत्यस्वरूप, ८३ **शुद्धबुद्धस्वरूपः**—स्वाभाविक शुद्धि और ज्ञानसे सम्पन्न, प्रकृतिके संसर्गसे रहित बोधस्वरूप परमात्मा, ८४ **नित्यचिन्मयः**—नित्य चैतन्यस्वरूप, ८५ **योगप्रियः**—चित्तवृत्तियोंके निरोधरूप योगके प्रेमी, ८६ **योगगम्यः**—ध्यान अथवा समाधिके द्वारा अनुभवमें आनेयोग्य, ८७ **भवबन्धैकमोचकः**— संसार-बन्धनसे एकमात्र छुड़ानेवाले॥ १३३॥

पुराणपुरुषः प्रत्यक्चैतन्यः पुरुषोत्तमः।
वेदान्तवेद्यो दुर्ज्ञेयस्तापत्रयविवर्जितः॥ १३४॥

८८ **पुराणपुरुषः**—ब्रह्मा आदि पुरुषोंकी अपेक्षा भी प्राचीन, आदिपुरुष, ८९ **प्रत्यक्चैतन्यः**—अन्तर्यामी चेतन, ९० **पुरुषोत्तमः**—क्षर और अक्षर पुरुषोंसे श्रेष्ठ, ९१ **वेदान्तवेद्यः**—उपनिषदोंके द्वारा जाननेयोग्य, ९२ **दुर्ज्ञेयः**—कठिनतासे अनुभवमें आनेवाले, ९३ **तापत्रयविवर्जितः**—आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक तीनों तापोंसे रहित॥ १३४॥

ब्रह्मविद्याश्रयोऽनघः स्वप्रकाशः स्वयम्प्रभुः।
सर्वोपाय उदासीनः प्रणवः सर्वतः समः॥ १३५॥

९४ **ब्रह्मविद्याश्रयः**—ब्रह्मविद्याके आश्रय, उसके द्वारा जाननेमें आनेवाले ब्रह्म, ९५ **अनघः**— पापरहित, शुद्ध, ९६ **स्वप्रकाशः**—अपने ही प्रकाशसे प्रकाशित होनेवाले, ९७ **स्वयम्प्रभुः**—दूसरेकी सामर्थ्यकी अपेक्षासे रहित, स्वयं समर्थ, ९८ **सर्वोपायः**—सर्वसाधनरूप, ९९ **उदासीनः**— राग-द्वेषसे ऊपर उठे हुए, पक्षपातरहित, १०० **प्रणवः**—ओंकाररूप शब्दब्रह्म, १०१ **सर्वतः समः**—सब ओर समान दृष्टि रखनेवाले॥ १३५॥

सर्वानवद्यो दुष्प्राप्यस्तुरीयस्तमसः परः।
कूटस्थः सर्वसंश्लिष्टो वाङ्मनोगोचरातिगः॥ १३६॥

१०२ **सर्वानवद्यः**—सबकी प्रशंसाके पात्र, सबके द्वारा स्तुत्य, १०३ **दुष्प्राप्यः**—अनन्यचित्तसे भजन न करनेवालोंके लिये दुर्लभ, १०४ **तुरीयः**—जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति—इन तीनों अवस्थाओंसे अतीत चतुर्थावस्थास्वरूप, १०५ **तमसः परः**— तमोगुण एवं अज्ञानसे परे, १०६ **कूटस्थः**—निहाईकी भाँति अविचलरूपसे स्थिर रहनेवाला निर्विकार आत्मा, १०७ **सर्वसंश्लिष्टः**—सर्वत्र व्यापक होनेके कारण सबसे संयुक्त, १०८ **वाङ्मनोगोचरातिगः**—वाणी और मनकी पहुँचसे बाहर॥ १३६॥

संकर्षणः सर्वहरः कालः सर्वभयंकरः।
अनुल्लङ्घ्यश्चित्रगतिर्महारुद्रो दुरासदः॥ १३७॥

१०९ **संकर्षणः**—कालरूपसे सबको अपनी ओर खींचनेवाले, चतुर्व्यूहमें संकर्षणरूप, शेषावतार बलराम, ११० **सर्वहरः**—प्रलयकालमें सबका संहार करनेवाले, १११ **कालः**—युग, वर्ष, मास, पक्ष आदि रूपसे सम्पूर्ण विश्वको अपना ग्रास बनानेवाले, काल-पदवाच्य यमराज, ११२ **सर्वभयंकरः**—मृत्युरूपसे सबको भय पहुँचानेवाले, ११३ **अनुल्लङ्घ्यः**—काल आदि भी जिनकी आज्ञाका उल्लंघन नहीं कर सकते, ऐसे सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर, ११४ **चित्रगतिः**—विचित्र लीलाएँ करनेवाले लीलापुरुषोत्तम अथवा विचित्र गतिसे चलनेवाले, ११५ **महारुद्रः**— महान् दुःखोंको दूर भगानेवाले, ग्यारह रुद्रोंकी अपेक्षा भी महान् महेश्वररूप, ११६ **दुरासदः**—बड़े-बड़े दानवोंके लिये भी जिनका सामना करना कठिन है, ऐसे दुर्धर्ष वीर॥ १३७॥

मूलप्रकृतिरानन्दः प्रद्युम्नो विश्वमोहनः।
महामायो विश्वबीजं परशक्तिः सुखैकभूः॥ १३८॥

११७ मूलप्रकृतिः—सम्पूर्ण विश्वके महाकारण-स्वरूप, **११८ आनन्दः**—सब ओरसे सुख प्रदान करनेवाले, आनन्दस्वरूप, **११९ प्रद्युम्नः**—महान् बलवाले कामदेव, चतुर्व्यूहमें प्रद्युम्नस्वरूप, **१२० विश्वमोहनः**—अपने अलौकिक रूपलावण्यसे सम्पूर्ण विश्वको मोहित करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण, **१२१ महामायः**—मायावियोंपर भी माया डालनेवाले महान् मायावी, **१२२ विश्वबीजम्**—जगत्की उत्पत्तिके आदिकारण, **१२३ परशक्तिः**—महान् सामर्थ्यशाली, **१२४ सुखैकभूः**—सुखके एकमात्र उत्पत्तिस्थान॥ १३८॥

सर्वकाम्योऽनन्तलीलः सर्वभूतवशंकरः।
अनिरुद्धः सर्वजीवो हृषीकेशो मनःपतिः॥ १३९॥

१२५ सर्वकाम्यः—सबकी कामनाके विषय, **१२६ अनन्तलीलः**—जिनकी लीलाओंका अन्त नहीं है—ऐसे भगवान्, **१२७ सर्वभूतवशंकरः**—सम्पूर्ण प्राणियोंको अपने वशमें करनेवाले, **१२८ अनिरुद्धः**—संग्राममें जिनकी गतिको कोई रोक नहीं सकता—ऐसे पराक्रमी, शूरवीर, चतुर्व्यूहमें अनिरुद्धस्वरूप, **१२९ सर्वजीवः**—सबको जीवन प्रदान करनेवाले, सबके आत्मा, **१३० हृषीकेशः**—इन्द्रियोंके स्वामी, **१३१ मनःपतिः**—मनके स्वामी, हृदयेश्वर॥ १३९॥

निरुपाधिप्रियो हंसोऽक्षरः सर्वनियोजकः।
ब्रह्मप्राणेश्वरः सर्वभूतभृद् देहनायकः॥ १४०॥

१३२ निरुपाधिप्रियः—जिनकी बुद्धिसे उपाधिकृत भेदभ्रम दूर हो गये हैं, उन ज्ञानी परमहंसोंके भी प्रियतम, **१३३ हंसः**—हंसरूप धारण करके सनकादिकोंको उपदेश करनेवाले, **१३४ अक्षरः**—कभी नष्ट न होनेवाले, आत्मा, **१३५ सर्वनियोजकः**—सबको विभिन्न कर्मोंमें लगानेवाले, सबके प्रेरक, सबके स्वामी, **१३६ ब्रह्मप्राणेश्वरः**—ब्रह्माजीके प्राणोंके स्वामी, **१३७ सर्वभूतभृत्**—सम्पूर्ण भूतोंका भरण-पोषण करनेवाले, **१३८ देहनायकः**—शरीरका संचालन करनेवाले॥ १४०॥

क्षेत्रज्ञः प्रकृतिस्वामी पुरुषो विश्वसूत्रधृक्।
अन्तर्यामी त्रिधामान्तःसाक्षी निर्गुण ईश्वरः॥ १४१॥

१३९ क्षेत्रज्ञः—सम्पूर्ण क्षेत्रों (शरीरों)-में स्थित होकर उनका ज्ञान रखनेवाले, **१४० प्रकृतिस्वामी**— जगत्की कारणभूता प्रकृतिके स्वामी, **१४१ पुरुषः**— समस्त शरीरोंमें शयन करनेवाले अन्तर्यामी, **१४२ विश्वसूत्रधृक्**—संसाररूपी नाटकके सूत्रधार, **१४३ अन्तर्यामी**—अन्तःकरणमें विराजमान परमेश्वर, **१४४ त्रिधामा**—भूः-भुवः-स्वःरूप तीन धामवाले, त्रिलोकीमें व्याप्त, **१४५ अन्तःसाक्षी**—अन्तःकरणके द्रष्टा, **१४६ निर्गुणः**—गुणातीत, **१४७ ईश्वरः**—सम्पूर्ण ऐश्वर्यसे सम्पन्न॥ १४१॥

योगिगम्यः पद्मनाभः शेषशायी श्रियः पतिः।
श्रीशिवोपास्यपादाब्जो नित्यश्रीः श्रीनिकेतनः॥ १४२॥

१४८ योगिगम्यः—योगियोंके अनुभवमें आनेवाले, **१४९ पद्मनाभः**—अपनी नाभिसे कमल प्रकट करनेवाले, **१५० शेषशायी**—शेषनागकी शय्यापर शयन करनेवाले, **१५१ श्रियःपतिः**— लक्ष्मीके स्वामी, **१५२ श्रीशिवोपास्यपादाब्जः**— पार्वतीसहित भगवान् शिव जिनके चरणकमलोंकी उपासना करते हैं, वे भगवान् विष्णु, **१५३ नित्यश्रीः**—कभी विलग न होनेवाली लक्ष्मीकी शोभासे युक्त, **१५४ श्रीनिकेतनः**—भगवती लक्ष्मीके हृदय-मन्दिरमें निवास करनेवाले॥ १४२॥

नित्यवक्षःस्थलस्थश्रीः श्रीनिधिः श्रीधरो हरिः।
वश्यश्रीर्निश्चलश्रीदो विष्णुः क्षीराब्धिमन्दिरः॥ १४३॥

१५५ नित्यवक्षःस्थलस्थश्रीः—जिनके वक्षःस्थलमें लक्ष्मी सदा निवास करती हैं—ऐसे भगवान् विष्णु, **१५६ श्रीनिधिः**—शोभाके भण्डार, सब प्रकारकी सम्पत्तियोंके आधार, **१५७ श्रीधरः**—जगज्जननी श्रीको हृदयमें धारण करनेवाले, **१५८ हरिः**—पापहारी, भक्तोंका मन हर लेनेवाले—**१५९ वश्यश्रीः**—लक्ष्मीको सदा अपने वशमें रखनेवाले,

१६० निश्चलश्रीदः—स्थिर सम्पत्ति प्रदान करनेवाले, **१६१ विष्णुः**—सर्वत्र व्यापक, **१६२ क्षीराब्धिमन्दिरः**—क्षीरसागरको अपना निवासस्थान बनानेवाले॥ १४३॥

कौस्तुभोद्भासितोरस्को माधवो जगदार्तिहा।
श्रीवत्सवक्षा निःसीमकल्याणगुणभाजनम्॥ १४४॥

१६३ कौस्तुभोद्भासितोरस्कः—कौस्तुभमणिकी प्रभासे उद्भासित हृदयवाले, **१६४ माधवः**—जगन्माता लक्ष्मीके स्वामी अथवा मधुवंशमें प्रादुर्भूत भगवान् श्रीकृष्ण, **१६५ जगदार्तिहा**—समस्त संसारकी पीड़ा दूर करनेवाले, **१६६ श्रीवत्सवक्षाः**—वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न धारण करनेवाले, **१६७ निःसीमकल्याणगुणभाजनम्**—सीमारहित कल्याणमय गुणोंके आधार॥ १४४॥

पीताम्बरो जगन्नाथो जगत्त्राता जगत्पिता।
जगद्बन्धुर्जगत्स्रष्टा जगद्धाता जगन्निधिः॥ १४५॥

१६८ पीताम्बरः—पीत वस्त्रधारी, **१६९ जगन्नाथः**—जगत्के स्वामी, **१७० जगत्त्राता**—सम्पूर्ण विश्वके रक्षक, **१७१ जगत्पिता**—समस्त संसारके जन्मदाता, **१७२ जगद्बन्धुः**—बन्धुकी भाँति जगत्के जीवोंकी सहायता करनेवाले, **१७३ जगत्स्रष्टा**—जगत्की सृष्टि करनेवाले ब्रह्मारूप, **१७४ जगद्धाता**—अखिल विश्वका धारण-पोषण करनेवाले विष्णुरूप, **१७५ जगन्निधिः**—प्रलयके समय सम्पूर्ण जगत्को बीजरूपमें धारण करनेवाले॥ १४५॥

जगदेकस्फुरद्वीर्यो नाहंवादी जगन्मयः।
सर्वाश्चर्यमयः सर्वसिद्धार्थः सर्वरञ्जितः॥ १४६॥

१७६ जगदेकस्फुरद्वीर्यः—संसारमें एकमात्र विख्यात पराक्रमी, **१७७ नाहंवादी**—अहंकाररहित, **१७८ जगन्मयः**—विश्वरूप, **१७९ सर्वाश्चर्यमयः**—जिनका सब कुछ आश्चर्यमय है—ऐसे अथवा सम्पूर्ण आश्चर्योंसे युक्त, **१८० सर्वसिद्धार्थः**—पूर्णकाम होनेके कारण जिनके सभी प्रयोजन सदा सिद्ध हैं—ऐसे परमेश्वर, **१८१ सर्वरञ्जितः**—देवता, दानव और मानव आदि सभी प्राणी जिन्हें रिझानेकी चेष्टामें लगे रहते हैं—ऐसे भगवान्॥ १४६॥

सर्वामोघोद्यमो ब्रह्मरुद्राद्युत्कृष्टचेतनः।
शम्भोः पितामहो ब्रह्मपिता शक्राद्यधीश्वरः॥ १४७॥

१८२ सर्वामोघोद्यमः—जिनके सम्पूर्ण उद्योग सफल होते हैं, कभी व्यर्थ नहीं जाते—ऐसे भगवान् विष्णु, **१८३ ब्रह्मरुद्राद्युत्कृष्टचेतनः**—ब्रह्मा और रुद्र आदिसे उत्कृष्ट चेतनावाले, **१८४ शम्भोः पितामहः**— शंकरजीके पिता भगवान् ब्रह्माको भी जन्म देनेवाले श्रीविष्णु, **१८५ ब्रह्मपिता**—ब्रह्माजीको उत्पन्न करनेवाले, **१८६ शक्राद्यधीश्वरः**—इन्द्र आदि देवताओंके स्वामी॥ १४७॥

सर्वदेवप्रियः सर्वदेवमूर्तिरनुत्तमः।
सर्वदेवैकशरणं सर्वदेवैकदेवता॥ १४८॥

१८७ सर्वदेवप्रियः—सम्पूर्ण देवताओंके प्रिय, **१८८ सर्वदेवमूर्तिः**—समस्त देवस्वरूप, **१८९ अनुत्तमः**—जिनसे उत्तम दूसरा कोई नहीं है, सर्वश्रेष्ठ, **१९० सर्वदेवैकशरणम्**—समस्त देवताओंके एकमात्र आश्रय, **१९१ सर्वदेवैकदेवता**—सम्पूर्ण देवताओंके एकमात्र आराध्यदेव॥ १४८॥

यज्ञभुग्यज्ञफलदो यज्ञेशो यज्ञभावनः।
यज्ञत्राता यज्ञपुमान्वनमाली द्विजप्रियः॥ १४९॥

१९२ यज्ञभुक्—समस्त यज्ञोंके भोक्ता, **१९३ यज्ञफलदः**—सम्पूर्ण यज्ञोंका फल देनेवाले, **१९४ यज्ञेशः**—यज्ञोंके स्वामी, **१९५ यज्ञभावनः**—अपनी वेदमयी वाणीके द्वारा यज्ञोंको प्रकट करनेवाले, **१९६ यज्ञत्राता**—यज्ञविरोधी असुरोंका वध करके यज्ञोंकी रक्षा करनेवाले, **१९७ यज्ञपुमान्**—यज्ञपुरुष, यज्ञाधिष्ठाता देवता, **१९८ वनमाली**—परम मनोहर वनमाला धारण करनेवाले, **१९९ द्विजप्रियः**— ब्राह्मणोंके प्रेमी और प्रियतम॥ १४९॥

द्विजैकमानदो विप्रकुलदेवोऽसुरान्तकः।
सर्वदुष्टान्तकृत्सर्वसज्जनानन्यपालकः॥ १५०॥

२०० द्विजैकमानदः—ब्राह्मणोंको एकमात्र सम्मान देनेवाले, **२०१ विप्रकुलदेवः**—ब्राह्मणवंशको अपना आराध्यदेव माननेवाले,

२०२ असुरान्तकः—संसारमें अशान्ति फैलानेवाले असुरोंके प्राणहन्ता, **२०३ सर्वदुष्टान्तकृत्**—समस्त दुष्टोंका अन्त करनेवाले, **२०४ सर्वसज्जनानन्यपालकः**—सम्पूर्ण साधु पुरुषोंके एकमात्र पालक॥ १५०॥

सप्तलोकैकजठरः सप्तलोकैकमण्डनः।
सृष्टिस्थित्यन्तकृच्चक्री शार्ङ्गधन्वा गदाधरः॥ १५१॥

२०५ सप्तलोकैकजठरः—भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक—इन सातों लोकोंको अपने एकमात्र उदरमें स्थापित करनेवाले, **२०६ सप्तलोकैकमण्डनः**—सातों लोकोंके एकमात्र शृंगार—अपनी ही शोभासे समस्त लोकोंको विभूषित करनेवाले, **२०७ सृष्टिस्थित्यन्तकृत्**—संसारकी सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले, **२०८ चक्री**—सुदर्शनचक्र धारण करनेवाले, **२०९ शार्ङ्गधन्वा**—शार्ङ्ग नामक धनुष धारण करनेवाले, **२१० गदाधरः**—कौमोदकी नामकी गदा धारण करनेवाले॥ १५१॥

शङ्खभृन्नन्दकी पद्मपाणिर्गरुडवाहनः।
अनिर्देश्यवपुः सर्वपूज्यस्त्रैलोक्यपावनः॥ १५२॥

२११ शङ्खभृत्—एक हाथमें पांचजन्य नामक शंख लिये रहनेवाले, **२१२ नन्दकी**—नन्दक नामक खड्ग (तलवार) बाँधनेवाले, **२१३ पद्मपाणिः**—हाथमें कमल धारण करनेवाले, **२१४ गरुडवाहनः**—पक्षियोंके राजा विनतानन्दन गरुड़पर सवारी करनेवाले, **२१५ अनिर्देश्यवपुः**—जिसके दिव्यस्वरूपका किसी प्रकार भी वर्णन या संकेत न किया जा सके—ऐसे अनिर्वचनीय शरीरवाले, **२१६ सर्वपूज्यः**—देवता, दानव और मनुष्य आदि—सबके पूजनीय, **२१७ त्रैलोक्यपावनः**—अपने दर्शन और स्पर्श आदिसे त्रिभुवनको पावन बनानेवाले॥ १५२॥

अनन्तकीर्तिर्निःसीमपौरुषः सर्वमङ्गलः।
सूर्यकोटिप्रतीकाशो यमकोटिदुरासदः॥ १५३॥

२१८ अनन्तकीर्तिः—शेष और शारदा भी जिनकी कीर्तिका पार न पा सकें—ऐसे अपार सुयश-वाले, **२१९ निःसीमपौरुषः**—असीम पुरुषार्थवाले, अमितपराक्रमी, **२२० सर्वमङ्गलः**—सबका मंगल करनेवाले अथवा सबके लिये मंगलरूप, **२२१ सूर्यकोटिप्रतीकाशः**—करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी, **२२२ यमकोटिदुरासदः**—करोड़ों यमराजोंके लिये भी दुर्धर्ष॥ १५३॥

कन्दर्पकोटिलावण्यो दुर्गाकोट्यरिमर्दनः।
समुद्रकोटिगम्भीरस्तीर्थकोटिसमाह्वयः॥ १५४॥

२२३ कन्दर्पकोटिलावण्यः—करोड़ों कामदेवोंके समान मनोहर कान्तिवाले, **२२४ दुर्गाकोट्यरिमर्दनः**—करोड़ों दुर्गाओंके समान शत्रुओंको रौंद डालनेवाले, **२२५ समुद्रकोटिगम्भीरः**—करोड़ों समुद्रोंके समान गम्भीर, **२२६ तीर्थकोटिसमाह्वयः**—करोड़ों तीर्थोंके समान पावन नामवाले॥ १५४॥

ब्रह्मकोटिजगत्स्त्रष्टा वायुकोटिमहाबलः।
कोटीन्दुजगदानन्दी शम्भुकोटिमहेश्वरः॥ १५५॥

२२७ ब्रह्मकोटिजगत्स्त्रष्टा—करोड़ों ब्रह्माओंके समान संसारकी सृष्टि करनेवाले, **२२८ वायुकोटिमहाबलः**—करोड़ों वायुओंके तुल्य महाबली, **२२९ कोटीन्दुजगदानन्दी**—करोड़ों चन्द्रमाओंकी भाँति जगत्को आनन्द प्रदान करनेवाले, **२३० शम्भुकोटिमहेश्वरः**—करोड़ों शंकरोंके समान महेश्वर (महान् ऐश्वर्यशाली) ॥ १५५॥

कुबेरकोटिलक्ष्मीवाञ्शक्रकोटिविलासवान्।
हिमवत्कोटिनिष्कम्पः कोटिब्रह्माण्डविग्रहः॥ १५६॥

२३१ कुबेरकोटिलक्ष्मीवान्—करोड़ों कुबेरोंके समान सम्पत्तिशाली, **२३२ शक्रकोटिविलासवान्**—करोड़ों इन्द्रोंके सदृश भोग-विलासके साधनोंसे परिपूर्ण, **२३३ हिमवत्कोटिनिष्कम्पः**—करोड़ों हिमालयोंकी भाँति अचल, **२३४ कोटिब्रह्माण्डविग्रहः**—अपने श्रीविग्रहमें कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंको धारण करनेवाले, महाविराट्रूप ॥ १५६॥

कोट्यश्वमेधपापघ्नो यज्ञकोटिसमार्चनः।
सुधाकोटिस्वास्थ्यहेतुः कामधुक्कोटिकामदः॥ १५७॥

२३५ कोट्यश्वमेधपापघ्नः—करोड़ों अश्वमेध-

यज्ञोंके समान पापनाशक, **२३६ यज्ञकोटिसमार्चनः**—करोड़ों यज्ञोंके तुल्य पूजन-सामग्रीसे पूजित होनेवाले, **२३७ सुधाकोटिस्वास्थ्यहेतुः**—कोटि-कोटि अमृतके तुल्य स्वास्थ्य-रक्षाके साधन, **२३८ कामधुक्कोटि-कामदः**—करोड़ों कामधेनुओंके समान मनोरथ पूर्ण करनेवाले॥ १५७॥

ब्रह्मविद्याकोटिरूपः शिपिविष्टः शुचिश्रवाः।
विश्वम्भरस्तीर्थपादः पुण्यश्रवणकीर्तनः॥ १५८॥

२३९ ब्रह्मविद्याकोटिरूपः—करोड़ों ब्रह्म-विद्याओंके तुल्य ज्ञानस्वरूप, **२४० शिपिविष्टः**—सूर्य-किरणोंमें स्थित रहनेवाले, **२४१ शुचिश्रवाः**—पवित्र यशवाले, **२४२ विश्वम्भरः**—सम्पूर्ण विश्वका भरण-पोषण करनेवाले, **२४३ तीर्थपादः**—तीर्थोंकी भाँति पवित्र चरणोंवाले अथवा अपने चरणोंमें ही समस्त तीर्थोंको धारण करनेवाले, **२४४ पुण्यश्रवण-कीर्तनः**—जिनके नाम, गुण, महिमा तथा स्वरूप आदिका श्रवण और कीर्तन परम पवित्र एवं पावन है—ऐसे भगवान्॥ १५८॥

आदिदेवो जगज्जैत्रो मुकुन्दः कालनेमिहा।
वैकुण्ठोऽनन्तमाहात्म्यो महायोगेश्वरोत्सवः॥ १५९॥

२४५ आदिदेवः—आदि देवता, सबके आदि कारण एवं प्रकाशमान, **२४६ जगज्जैत्रः**— विश्वविजयी, **२४७ मुकुन्दः**—मोक्षदाता, **२४८ कालनेमिहा**—कालनेमि नामक दैत्यका वध करनेवाले, **२४९ वैकुण्ठः**—परमधामस्वरूप, **२५० अनन्त-माहात्म्यः**—जिनकी महिमाका अन्त नहीं है— ऐसे महामहिम परमेश्वर, **२५१ महायोगेश्वरोत्सवः**—बड़े-बड़े योगेश्वरोंके लिये जिनका दर्शन उत्सवरूप है—ऐसे भगवान्॥ १५९॥

नित्यतृप्तो लसद्भावो निःशङ्को नरकान्तकः।
दीनानाथैकशरणं विश्वैकव्यसनापहः॥ १६०॥

२५२ नित्यतृप्तः—अपने-आपमें ही सदा तृप्त रहनेवाले, **२५३ लसद्भावः**—सुन्दर स्वभाववाले, **२५४ निःशङ्कः**—अद्वितीय होनेके कारण भय-शंकासे रहित, **२५५ नरकान्तकः**—नरकके भयका नाश अथवा नरकासुरका वध करनेवाले, **२५६ दीनानाथैकशरणम्**—दीनों और अनाथोंको एकमात्र शरण देनेवाले, **२५७ विश्वैकव्यसनापहः**—संसारके एकमात्र संकट हरनेवाले॥ १६०॥

जगत्कृपाक्षमो नित्यं कृपालुः सज्जनाश्रयः।
योगेश्वरः सदोदीर्णो वृद्धिक्षयविवर्जितः॥ १६१॥

२५८ जगत्कृपाक्षमः—सम्पूर्ण विश्वपर कृपा करनेमें समर्थ, **२५९ नित्यं कृपालुः**—सदा स्वभावसे ही कृपा करनेवाले, **२६० सज्जनाश्रयः**—सत्पुरुषोंके शरणदाता, **२६१ योगेश्वरः**—सम्पूर्ण योगों तथा उनसे प्राप्त होनेवाली सिद्धियोंके स्वामी, **२६२ सदोदीर्णः**—सदा अभ्युदयशील, नित्य उदार, सदा सबसे श्रेष्ठ, **२६३ वृद्धिक्षयविवर्जितः**—वृद्धि और ह्रासरूप विकारसे रहित॥ १६१॥

अधोक्षजो विश्वरेताः प्रजापतिशताधिपः।
शक्रब्रह्मार्चितपदः शम्भुब्रह्मोर्ध्वधामगः॥ १६२॥

२६४ अधोक्षजः—इन्द्रियोंके विषयोंसे ऊपर उठे हुए, अपने स्वरूपसे क्षीण न होनेवाले, **२६५ विश्वरेताः**—सम्पूर्ण विश्व जिनके वीर्यसे उत्पन्न हुआ है, वे परमेश्वर, **२६६ प्रजापतिशताधिपः**—सैकड़ों प्रजापतियोंके स्वामी, **२६७ शक्रब्रह्मार्चितपदः**—इन्द्र और ब्रह्माजीके द्वारा पूजित चरणोंवाले, **२६८ शम्भुब्रह्मोर्ध्वधामगः**—भगवान् शंकर और ब्रह्माजीके धामसे भी ऊपर विराजमान वैकुण्ठधाममें निवास करनेवाले॥ १६२॥

सूर्यसोमेक्षणो विश्वभोक्ता सर्वस्य पारगः।
जगत्सेतुर्धर्मसेतुधरो विश्वधुरन्धरः॥ १६३॥

२६९ सूर्यसोमेक्षणः—सूर्य और चन्द्रमारूपी नेत्रवाले, **२७० विश्वभोक्ता**—विश्वका पालन करनेवाले, **२७१ सर्वस्य पारगः**—सबसे परे विराजमान, **२७२ जगत्सेतुः**—संसारसागरसे पार होनेके लिये सेतुरूप, **२७३ धर्मसेतुधरः**—धर्ममर्यादाका पालन करनेवाले, **२७४ विश्वधुरन्धरः**—शेषनागके रूपसे समस्त विश्वका भार वहन करनेवाले॥ १६३॥

निर्ममोऽखिललोकेशो निःसङ्गोऽद्भुतभोगवान्।
वश्यमायो वश्यविश्वो विष्वक्सेनः सुरोत्तमः॥ १६४॥

२७५ निर्ममः—आसक्तिमूलक ममतासे रहित, **२७६ अखिललोकेशः**—सम्पूर्ण लोकोंका शासन करनेवाले, **२७७ निःसङ्गः**—आसक्तिरहित, **२७८ अद्भुतभोगवान्**—आश्चर्यजनक भोग-सामग्रीसे सम्पन्न, **२७९ वश्यमायः**—मायाको अपने वशमें रखनेवाले, **२८० वश्यविश्वः**—समस्त जगत्को अपने अधीन रखनेवाले, **२८१ विष्वक्सेनः**—युद्धके लिये की हुई तैयारीमात्रसे ही दैत्यसेनाको तितर-बितर कर डालनेवाले, **२८२ सुरोत्तमः**—समस्त देवताओंमें श्रेष्ठ॥ १६४॥

सर्वश्रेयःपतिर्दिव्योऽनर्घ्यभूषणभूषितः।
सर्वलक्षणलक्षण्यः सर्वदैत्येन्द्रदर्पहा॥ १६५॥

२८३ सर्वश्रेयःपतिः—समस्त कल्याणोंके स्वामी, **२८४ दिव्यः**—लोकोत्तर सौन्दर्य-माधुर्य आदि गुणोंसे सम्पन्न, **२८५ अनर्घ्यभूषणभूषितः**— अमूल्य आभूषणोंसे विभूषित, **२८६ सर्वलक्षणलक्षण्यः**—समस्त शुभ लक्षणोंसे युक्त, **२८७ सर्वदैत्येन्द्रदर्पहा**—समस्त दैत्यपतियोंका दर्प दलन करनेवाले॥ १६५॥

समस्तदेवसर्वस्वं सर्वदैवतनायकः।
समस्तदेवकवचं सर्वदेवशिरोमणिः॥ १६६॥

२८८ समस्तदेवसर्वस्वम्—सम्पूर्ण देवताओंके सर्वस्व, **२८९ सर्वदैवतनायकः**— समस्त देवताओंके नेता, **२९० समस्तदेवकवचम्**—सब देवताओंकी कवचके समान रक्षा करनेवाले,**२९१ सर्वदेव-शिरोमणिः**— सम्पूर्ण देवताओंके शिरोमणि॥ १६६॥

समस्तदेवतादुर्गः प्रपन्नाशनिपञ्जरः।
समस्तभयहृन्नामा भगवान् विष्टरश्रवाः॥ १६७॥

२९२ समस्तदेवतादुर्गः—मजबूत किलेके समान समस्त देवताओंकी रक्षा करनेवाले, **२९३ प्रपन्नाशनिपञ्जरः**—शरणागतोंकी रक्षाके लिये वज्रमय पिंजड़ेके समान, **२९४ समस्तभयहृन्नामा**—जिनका नाम सब प्रकारके भयोंको दूर करनेवाला है—ऐसे विष्णु, **२९५ भगवान्**—पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्यसे सम्पन्न, **२९६ विष्टरश्रवाः**—कुशाकी मुष्टिके समान कानोंवाले॥ १६७॥

विभुः सर्वहितोदर्को हतारिः स्वर्गतिप्रदः।
सर्वदैवतजीवेशो ब्राह्मणादिनियोजकः॥ १६८॥

२९७ विभुः—सर्वत्र व्यापक, **२९८ सर्वहितोदर्कः**—सबके लिये हितकर भविष्यका निर्माण करनेवाले, **२९९ हतारिः**—जिनके शत्रु नष्ट हो चुके हैं, शत्रुहीन, **३०० स्वर्गतिप्रदः**—स्वर्गीय— उच्चगति प्रदान करनेवाले, **३०१ सर्वदैवतजीवेशः**— समस्त देवताओंके जीवनके स्वामी, **३०२ ब्राह्मणादि-नियोजकः**— ब्राह्मण आदि वर्णोंको अपने-अपने धर्ममें नियुक्त करनेवाले॥ १६८॥

ब्रह्मशम्भुपरार्धायुर्ब्रह्मज्येष्ठः शिशुस्वराट्।
विराड् भक्तपराधीनः स्तुत्यः स्तोत्रार्थसाधकः॥ १६९॥

३०३ ब्रह्मशम्भुपरार्धायुः—ब्रह्मा और शिवकी अपेक्षा भी अनन्तगुनी आयुवाले, **३०४ ब्रह्मज्येष्ठः**—ब्रह्माजीसे भी ज्येष्ठ, **३०५ शिशुस्वराट्**—बालमुकुन्द-रूपसे शोभा पानेवाले, **३०६ विराट्**—विशेष शोभा-सम्पन्न, अखिल ब्रह्माण्डमय विराट् रूपधारी भगवान् , **३०७ भक्तपराधीनः**—प्रेमविवश होकर भक्तोंके अधीन रहनेवाले, **३०८ स्तुत्यः**—स्तुति करनेयोग्य, **३०९ स्तोत्रार्थसाधकः**—स्तोत्रमें कहे हुए अर्थको सिद्ध करनेवाले॥ १६९॥

परार्थकर्ता कृत्यज्ञः स्वार्थकृत्यसदोज्झितः।
सदानन्दः सदाभद्रः सदाशान्तः सदाशिवः॥ १७०॥

३१० परार्थकर्ता—परोपकार करनेवाले, **३११ कृत्यज्ञः**—कर्तव्यका ज्ञान रखनेवाले, **३१२ स्वार्थ-कृत्यसदोज्झितः**—स्वार्थसाधनके कार्योंसे सदा दूर रहनेवाले, **३१३ सदानन्दः**—सदा आनन्दमग्न, सत्पुरुषोंको आनन्द प्रदान करनेवाले अथवा सत् एवं आनन्दस्वरूप, **३१४ सदाभद्रः**—सर्वदा कल्याणरूप, **३१५ सदाशान्तः**—नित्य शान्त, **३१६ सदाशिवः**—निरन्तर कल्याण करनेवाले॥ १७०॥

सदाप्रियः सदातुष्टः सदापुष्टः सदार्चितः।
सदापूतः पावनाग्र्यो वेदगुह्यो वृषाकपिः॥ १७१॥

३१७ सदाप्रियः—सर्वदा सबके प्रियतम, **३१८ सदातुष्टः**—निरन्तर संतुष्ट रहनेवाले, **३१९ सदापुष्टः**—क्षुधा-पिपासा तथा आधि-व्याधिसे रहित होनेके कारण सदा पुष्ट शरीरवाले, **३२० सदार्चितः**—भक्तोंद्वारा निरन्तर पूजित, **३२१ सदापूतः**—नित्य पवित्र, **३२२ पावनाग्र्यः**— पवित्र करनेवालोंमें अग्रगण्य, **३२३ वेदगुह्यः**— वेदोंके गूढ़ रहस्य, **३२४ वृषाकपिः**— वृष—धर्मको अकम्पित (अविचल) रखनेवाले श्रीविष्णु॥ १७१॥

सहस्रनामा त्रियुगश्चतुर्मूर्तिश्चतुर्भुजः।
भूतभव्यभवन्नाथो महापुरुषपूर्वजः॥ १७२॥

३२५ सहस्रनामा—हजारों नामवाले, **३२६ त्रियुगः**—सत्ययुग, त्रेता और द्वापर नामक त्रियुग-स्वरूप, **३२७ चतुर्मूर्तिः**—राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नरूप चार मूर्तियोंवाले, **३२८ चतुर्भुजः**—चार भुजाओंवाले, **३२९ भूतभव्यभवन्नाथः**—भूत, भविष्य और वर्तमान—सभी प्राणियोंके स्वामी, **३३० महापुरुषपूर्वजः**—महापुरुष ब्रह्मा आदिके भी पूर्वज॥ १७२॥

नारायणो मञ्जुकेशः सर्वयोगविनिःसृतः।
वेदसारो यज्ञसारः सामसारस्तपोनिधिः॥ १७३॥

३३१ नारायणः—जलमें शयन करनेवाले, **३३२ मञ्जुकेशः**—मनोहर घुँघराले केशोंवाले, **३३३ सर्वयोगविनिःसृतः**—नाना प्रकारके शास्त्रोक्त साधनोंसे जाननेमें आनेवाले, समस्त योग-साधनोंसे प्रकट होनेवाले, **३३४ वेदसारः**—वेदोंके सारभूत तत्त्व, ब्रह्म, **३३५ यज्ञसारः**—यज्ञोंके सारतत्त्व—यज्ञपुरुष विष्णु, **३३६ सामसारः**— सामवेदकी श्रुतियोंद्वारा गाये जानेवाले सारभूत परमात्मा, **३३७ तपोनिधिः**—तपस्याके भंडार नर-नारायण-स्वरूप॥ १७३॥

साध्यश्रेष्ठः पुराणर्षिर्निष्ठा शान्तिः परायणम्।
शिवस्त्रिशूलविध्वंसी श्रीकण्ठैकवरप्रदः॥ १७४॥

३३८ साध्यश्रेष्ठः—साध्य देवताओंमें श्रेष्ठ, साधनसे प्राप्त होनेवालोंमें सबसे श्रेष्ठ, **३३९ पुराणर्षिः**—पुरातन ऋषि नारायण, **३४० निष्ठा**—सबकी स्थितिके आधार—अधिष्ठानस्वरूप, **३४१ शान्तिः**—परम शान्तिस्वरूप, **३४२ परायणम्**—परम प्राप्यस्थान, **३४३ शिवः**—कल्याणस्वरूप, **३४४ त्रिशूलविध्वंसी**—आध्यात्मिक आदि त्रिविध शूलोंका नाश करनेवाले अथवा प्रलयकालमें महारुद्ररूप होकर त्रिशूलसे समस्त विश्वका विध्वंस करनेवाले, **३४५ श्रीकण्ठैकवरप्रदः**—भगवान् शंकरके एकमात्र वरदाता॥ १७४॥

नरः कृष्णो हरिर्धर्मनन्दनो धर्मजीवनः।
आदिकर्ता सर्वसत्यः सर्वस्त्रीरत्नदर्पहा॥ १७५॥

३४६ नरः—बदरिकाश्रममें तपस्या करनेवाले ऋषिश्रेष्ठ नर, नरके अवतार अर्जुन, **३४७ कृष्णः**—भक्तोंके मनको आकृष्ट करनेवाले देवकीनन्दन श्रीकृष्ण, सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा, **३४८ हरिः**—गजेन्द्रकी पुकार सुनकर तत्काल प्रकट हो ग्राहके प्राणोंका अपहरण करनेवाले भगवान् श्रीहरि, **३४९ धर्म-नन्दनः**—धर्मके यहाँ पुत्ररूपसे अवतीर्ण होनेवाले भगवान् नारायण अथवा धर्मराज युधिष्ठिरको आनन्दित करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण, **३५० धर्मजीवनः**—पापाचारी असुरोंका मूलोच्छेद करके धर्मको जीवित रखनेवाले, **३५१ आदिकर्ता**—जगत्के आदि कारण ब्रह्माजीको उत्पन्न करनेवाले, **३५२ सर्वसत्यः**—पूर्णतः सत्यस्वरूप, **३५३ सर्वस्त्रीरत्नदर्पहा**— जितेन्द्रिय होनेके कारण सम्पूर्ण सुन्दरी स्त्रियोंका अभिमान चूर्ण करनेवाले॥ १७५॥

त्रिकालजितकन्दर्प उर्वशीसृड्मुनीश्वरः।
आद्यः कविर्हयग्रीवः सर्ववागीश्वरेश्वरः॥१७६॥

३५४ त्रिकालजितकन्दर्पः—भूत, भविष्य और वर्तमान—तीनों कालोंमें कामदेवको परास्त करनेवाले, **३५५ उर्वशीसृक्**—उर्वशी अप्सराकी सृष्टि करनेवाले भगवान् नारायण, **३५६ मुनीश्वरः**—तपस्वी मुनियोंमें श्रेष्ठ नर-नारायणस्वरूप, **३५७ आद्यः**—आदिपुरुष विष्णु, **३५८ कविः**—त्रिकालदर्शी विद्वान्, **३५९ हयग्रीवः**—हयग्रीव नामक अवतार धारण करनेवाले

भगवान्, **३६० सर्ववागीश्वरेश्वरः**—ब्रह्मा आदि समस्त वागीश्वरोंके भी ईश्वर॥ १७६॥

सर्वदेवमयो ब्रह्मगुरुर्वागीश्वरीपतिः।
अनन्तविद्याप्रभवो मूलाविद्याविनाशकः॥ १७७॥

३६१ सर्वदेवमयः—सम्पूर्ण देवस्वरूप, **३६२ ब्रह्मगुरुः**—ब्रह्माजीको वेदका उपदेश करनेवाले गुरु, **३६३ वागीश्वरीपतिः**—वाणीकी अधीश्वरी सरस्वतीदेवीके स्वामी, **३६४ अनन्तविद्याप्रभवः**—असंख्य विद्याओंकी उत्पत्तिके हेतु, **३६५ मूलाविद्याविनाशकः**— भव-बन्धनकी हेतुभूत मूल अविद्याका विनाश करनेवाले॥ १७७॥

सार्वज्ञ्यदो नमज्जाड्यनाशको मधुसूदनः।
अनेकमन्त्रकोटीशः शब्दब्रह्मैकपारगः॥ १७८॥

३६६ सार्वज्ञ्यदः—सर्वज्ञता प्रदान करनेवाले, **३६७ नमज्जाड्यनाशकः**—प्रणाम करनेवाले भक्तोंकी जड़ताका नाश करनेवाले, **३६८ मधुसूदनः**— मधु नामक दैत्यका वध करनेवाले, **३६९ अनेकमन्त्रकोटीशः**—अनेक करोड़ मन्त्रोंके स्वामी, **३७० शब्दब्रह्मैकपारगः**— शब्दब्रह्म (वेद-वेदांगों)-के एकमात्र पारंगत विद्वान्॥ १७८॥

आदिविद्वान् वेदकर्ता वेदात्मा श्रुतिसागरः।
ब्रह्मार्थवेदाहरणः सर्वविज्ञानजन्मभूः॥ १७९॥

३७१ आदिविद्वान्—सर्वप्रथम वेदका ज्ञान प्रकाशित करनेवाले, **३७२ वेदकर्ता**—अपने निःश्वासके साथ वेदोंको प्रकट करनेवाले, **३७३ वेदात्मा**—वेदोंके सार तत्त्व—उनके द्वारा प्रतिपादित होनेवाले सिद्धान्तभूत परमात्मा, **३७४ श्रुतिसागरः**— वैदिक ज्ञानके समुद्र, **३७५ ब्रह्मार्थवेदाहरणः**— मत्स्यरूप धारण करके ब्रह्माजीके लिये वेदोंको ले आनेवाले, **३७६ सर्वविज्ञानजन्मभूः**—सब प्रकारके विज्ञानोंकी जन्मभूमि॥ १७९॥

विद्याराजो ज्ञानमूर्तिर्ज्ञानसिन्धुरखण्डधीः।
मत्स्यदेवो महाशृंगो जगद्बीजवहित्रधृक्॥ १८०॥

३७७ विद्याराजः—समस्त विद्याओंके राजा, **३७८ ज्ञानमूर्तिः**—ज्ञानस्वरूप, **३७९ ज्ञानसिन्धुः**—ज्ञानके सागर, **३८० अखण्डधीः**—संशय-विपर्यय आदिके द्वारा कभी खण्डित न होनेवाली बुद्धिसे युक्त, **३८१ मत्स्यदेवः**—मत्स्यावतारधारी भगवान्, **३८२ महाशृंगः**—मत्स्य-शरीरमें ही महान् शृंग धारण करनेवाले, **३८३ जगद्बीजवहित्रधृक्**—संसारकी बीजभूत ओषधियोंके सहित नौकाको अपने सींगमें बाँधकर धारण करनेवाले मत्स्यभगवान्॥ १८०॥

लीलाव्याप्ताखिलाम्भोधिर्ऋग्वेदादिप्रवर्तकः।
आदिकूर्मोऽखिलाधारस्तृणीकृतजगद्भरः॥ १८१॥

३८४ लीलाव्याप्ताखिलाम्भोधिः—अपने मत्स्य-शरीरसे लीलापूर्वक सम्पूर्ण समुद्रको आच्छादित कर लेनेवाले, **३८५ ऋग्वेदादिप्रवर्तकः**—ऋग्वेद, यजुर्वेद आदिके प्रवर्तक, **३८६ आदिकूर्मः**— सर्वप्रथम कच्छपरूपमें प्रकट होनेवाले भगवान्, **३८७ अखिलाधारः**—अखिल ब्रह्माण्डके आधारभूत, **३८८ तृणीकृतजगद्भरः**—समस्त जगत्के भारको तिनकेके समान समझनेवाले॥ १८१॥

अमरीकृतदेवौघः पीयूषोत्पत्तिकारणम्।
आत्माधारो धराधारो यज्ञाङ्गो धरणीधरः॥ १८२॥

३८९ अमरीकृतदेवौघः—अमृत पिलाकर देवसमुदायको अमर बनानेवाले, **३९० पीयूषोत्पत्तिकारणम्**—क्षीरसागरसे अमृतके निकालनेमें प्रधान कारण, **३९१ आत्माधारः**—अन्य किसी आधारकी अपेक्षा न रखकर अपने ही आधारपर स्थित रहनेवाले, **३९२ धराधारः**—पृथ्वीके आधार, **३९३ यज्ञाङ्गः**—यज्ञमय शरीरवाले भगवान् वराह, **३९४ धरणीधरः**—अपनी दाढ़ोंपर पृथ्वीको धारण करनेवाले॥ १८२॥

हिरण्याक्षहरः पृथ्वीपतिः श्राद्धादिकल्पकः।
समस्तपितृभीतिघ्नः समस्तपितृजीवनम्॥ १८३॥

३९५ हिरण्याक्षहरः—वराहरूपसे ही हिरण्याक्ष नामक दैत्यका वध करनेवाले, **३९६ पृथ्वीपतिः**—उक्त अवतारमें ही पृथ्वीको पत्नीरूपमें ग्रहण करनेवाले, अथवा पृथ्वीके पालक, **३९७ श्राद्धादिकल्पकः**—पितरोंके लिये श्राद्ध आदिकी व्यवस्था करनेवाले,

३९८ समस्तपितृभीतिघ्नः—सम्पूर्ण पितरोंके भयका निवारण करनेवाले, **३९९ समस्तपितृजीवनम्**—समस्त पितरोंके जीवनाधार॥ १८३॥

हव्यकव्यैकभुग्घव्यकव्यैकफलदायकः।
रोमान्तर्लीनजलधिः क्षोभिताशेषसागरः॥ १८४॥

४०० हव्यकव्यैकभुक्—हव्य और कव्य (यज्ञ और श्राद्ध)-के एकमात्र भोक्ता, **४०१ हव्यकव्यैक-फलदायकः**—यज्ञ और श्राद्धके एकमात्र फलदाता, **४०२ रोमान्तर्लीनजलधिः**— अपने रोमकूपोंमें समुद्रको लीन कर लेनेवाले महावराह, **४०३ क्षोभिताशेषसागरः**—वराहरूपसे पृथ्वीकी खोज करते समय समस्त समुद्रको क्षुब्ध कर डालनेवाले॥ १८४॥

महावराहो यज्ञघ्नध्वंसको याज्ञिकाश्रयः।
श्रीनृसिंहो दिव्यसिंहः सर्वानिष्टार्थदुःखहा॥ १८५॥

४०४ महावराहः—महान् वराहरूपधारी भगवान्, **४०५ यज्ञघ्नध्वंसकः**—यज्ञमें विघ्न डालनेवाले असुरोंके विनाशक, **४०६ याज्ञिकाश्रयः**—यज्ञ करनेवाले ऋत्विजोंके परम आश्रय, **४०७ श्रीनृसिंहः**—अपने भक्त प्रह्लादकी बात सत्य करनेके लिये नृसिंहरूप धारण करनेवाले भगवान्, **४०८ दिव्यसिंहः**—अलौकिक सिंहकी आकृति धारण करनेवाले, **४०९ सर्वानिष्टार्थदुःखहा**—सब प्रकारकी अनिष्ट वस्तुओं और दुःखोंका नाश करनेवाले॥ १८५॥

एकवीरोऽद्भुतबलो यन्त्रमन्त्रैकभञ्जनः।
ब्रह्मादिदुःसहज्योतिर्युगान्ताग्न्यतिभीषणः॥ १८६॥

४१० एकवीरः—अद्वितीय वीर, **४११ अद्भुतबलः**—अद्भुत शक्तिशाली, **४१२ यन्त्र-मन्त्रैकभञ्जनः**—शत्रुके यन्त्र-मन्त्रोंको एकमात्र भंग करनेवाले, **४१३ ब्रह्मादिदुःसहज्योतिः**—जिनके श्रीविग्रहकी ज्योति ब्रह्मा आदि देवताओंके लिये भी दुःसह है, ऐसे नृसिंहभगवान्, **४१४ युगान्ताग्न्यतिभीषणः**—प्रलयकालीन अग्निके समान अत्यन्त भयंकर॥ १८६॥

कोटिवज्राधिकनखो जगद्दुष्प्रेक्ष्यमूर्तिधृक्।
मातृचक्रप्रमथनो महामातृगणेश्वरः॥ १८७॥

४१५ कोटिवज्राधिकनखः—करोड़ों वज्रोंसे भी अधिक तीक्ष्ण नखोंवाले, **४१६ जगद्दुष्प्रेक्ष्य-मूर्तिधृक्**—सम्पूर्ण जगत् जिसकी ओर कठिनतासे देख सके, ऐसी भयानक मूर्ति धारण करनेवाले, **४१७ मातृचक्रप्रमथनः**—डाकिनी, शाकिनी, पूतना आदि मातृमण्डलको मथ डालनेवाले, **४१८ महामातृगणेश्वरः**—अपनी शक्तिभूत दिव्य महामातृगणोंके अधीश्वर॥ १८७॥

अचिन्त्यामोघवीर्याढ्यः समस्तासुरघस्मरः।
हिरण्यकशिपुच्छेदी कालः संकर्षणीपतिः॥ १८८॥

४१९ अचिन्त्यामोघवीर्याढ्यः—कभी व्यर्थ न जानेवाले अचिन्त्य पराक्रमसे सम्पन्न, **४२० समस्तासुरघस्मरः**—समस्त असुरोंको ग्रास बनानेवाले, **४२१ हिरण्यकशिपुच्छेदी**— हिरण्यकशिपु नामक दैत्यको विदीर्ण करनेवाले, **४२२ कालः**—असुरोंके लिये कालरूप, **४२३ संकर्षणीपतिः**—संहारकारिणी शक्तिके स्वामी॥ १८८॥

कृतान्तवाहनः सद्यःसमस्तभयनाशनः।
सर्वविघ्नान्तकः सर्वसिद्धिदः सर्वपूरकः॥ १८९॥

४२४ कृतान्तवाहनः—कालको अपना वाहन बनानेवाले, **४२५ सद्यःसमस्तभयनाशनः**— शरणमें आये हुए भक्तोंके समस्त भयोंका तत्काल नाश करनेवाले, **४२६ सर्वविघ्नान्तकः**—सम्पूर्ण विघ्नोंका अन्त करनेवाले, **४२७ सर्वसिद्धिदः**—सब प्रकारकी सिद्धि प्रदान करनेवाले, **४२८ सर्वपूरकः**—सम्पूर्ण मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले॥ १८९॥

समस्तपातकध्वंसी सिद्धिमन्त्राधिकाह्वयः।
भैरवेशो हरार्तिघ्नः कालकोटिदुरासदः॥ १९०॥

४२९ समस्तपातकध्वंसी—सब पातकोंका नाश करनेवाले, **४३० सिद्धिमन्त्राधिकाह्वयः**— नाममें ही सिद्धि और मन्त्रोंसे अधिक शक्ति रखनेवाले, **४३१ भैरवेशः**—भैरवगणोंके स्वामी, **४३२ हरार्तिघ्नः**—भगवान् शंकरकी पीड़ाका नाश करनेवाले, **४३३ कालकोटिदुरासदः**—करोड़ों कालोंके लिये भी दुर्धर्ष॥ १९०॥

दैत्यगर्भस्त्राविनामा स्फुटद्ब्रह्माण्डगर्जितः।
स्मृतमात्राखिलत्राताद्भुतरूपो महाहरिः॥ १९१॥

४३४ दैत्यगर्भस्त्राविनामा—जिनका नाम सुनकर ही दैत्यपत्नियोंके गर्भ गिर जाते हैं—ऐसे भगवान् नृसिंह, **४३५ स्फुटद्ब्रह्माण्डगर्जितः**—जिनके गर्जनेपर सारा ब्रह्माण्ड फटने लगता है, **४३६ स्मृतमात्राखिलत्राता**—स्मरण करनेमात्रसे सम्पूर्ण जगत्‌की रक्षा करनेवाले, **४३७ अद्भुतरूपः**—आश्चर्यजनक रूप धारण करनेवाले, **४३८ महाहरिः**—महान् सिंहकी आकृति धारण करनेवाले॥ १९१॥

ब्रह्मचर्यशिरःपिण्डी दिक्पालोऽर्धाङ्गभूषणः।
द्वादशार्कशिरोदामा रुद्रशीर्षैकनूपुरः॥ १९२॥

४३९ ब्रह्मचर्यशिरःपिण्डी—अपने शिरोभागमें ब्रह्मचर्यको धारण करनेवाले, **४४० दिक्पालः**—समस्त दिशाओंका पालन करनेवाले, **४४१ अर्धाङ्गभूषणः**—आधे अंगमें आभूषण धारण करनेवाले नृसिंह, **४४२ द्वादशार्कशिरोदामा**—मस्तकमें बारह सूर्योंके समान तेज धारण करनेवाले, **४४३ रुद्रशीर्षैकनूपुरः**—जिनके चरणोंमें प्रणाम करते समय रुद्रका मस्तक एक नुपूरकी भाँति शोभा धारण करता है, वे भगवान्॥ १९२॥

योगिनीग्रस्तगिरिजात्राता भैरवतर्जकः।
वीरचक्रेश्वरोऽत्युग्रो यमारिः कालसंवरः॥ १९३॥

४४४ योगिनीग्रस्तगिरिजात्राता— योगिनियोंके चंगुलमें फँसी हुई पार्वतीकी रक्षा करनेवाले, **४४५ भैरवतर्जकः**—भैरवगणोंको डाँट बतानेवाले, **४४६ वीरचक्रेश्वरः**—वीरमण्डलके ईश्वर, **४४७ अत्युग्रः**—अत्यन्त भयंकर, **४४८ यमारिः**—यमराजके शत्रु, **४४९ कालसंवरः**—कालको आच्छादित करनेवाले॥ १९३॥

क्रोधेश्वरो रुद्रचण्डीपरिवारादिदुष्टभुक्।
सर्वाक्षोभ्यो मृत्युमृत्युः कालमृत्युनिवर्तकः॥ १९४॥

४५० क्रोधेश्वरः—क्रोधपर शासन करनेवाले, **४५१ रुद्रचण्डीपरिवारादिदुष्टभुक्**—रुद्र और चण्डीके पार्षदोंमें रहनेवाले दुष्टोंके भक्षक, **४५२ सर्वाक्षोभ्यः**—किसीके द्वारा भी विचलित नहीं किये जा सकनेवाले, **४५३ मृत्युमृत्युः**—मौतको भी मारनेवाले, **४५४ कालमृत्युनिवर्तकः**—काल और मृत्युका निवारण करनेवाले॥ १९४॥

असाध्यसर्वरोगघ्नः सर्वदुर्ग्रहसौम्यकृत्।
गणेशकोटिदर्पघ्नो दुःसहाशेषगोत्रहा॥ १९५॥

४५५ असाध्यसर्वरोगघ्नः—सम्पूर्ण असाध्य रोगोंका नाश करनेवाले, **४५६ सर्वदुर्ग्रहसौम्यकृत्**—समस्त दुष्ट ग्रहोंको शान्त करनेवाले, **४५७ गणेशकोटिदर्पघ्नः**—करोड़ों गणपतियोंका अभिमान चूर्ण करनेवाले, **४५८ दुःसहाशेषगोत्रहा**—समस्त दुस्सह शत्रुओंके कुलका नाश करनेवाले॥ १९५॥

देवदानवदुर्दर्शो जगद्भयदभीषकः।
समस्तदुर्गतित्राता जगद्भक्षकभक्षकः॥ १९६॥

४५९ देवदानवदुर्दर्शः—देवता और दानवोंको भी जिनकी ओर देखनेमें कठिनाई होती है—ऐसे भगवान् नृसिंह, **४६० जगद्भयदभीषकः**—संसारके भयदाता असुरोंको भी भयभीत करनेवाले, **४६१ समस्तदुर्गतित्राता**—सम्पूर्ण दुर्गतियोंसे उद्धार करनेवाले, **४६२ जगद्भक्षकभक्षकः**—जगत्‌का भक्षण करनेवाले कालके भी भक्षक ॥ १९६॥

उग्रेशोऽम्बरमार्जारः कालमूषकभक्षकः।
अनन्तायुधदोर्दण्डी नृसिंहो वीरभद्रजित्॥ १९७॥

४६३ उग्रेशः—उग्र शक्तियोंपर शासन करनेवाले, **४६४ अम्बरमार्जारः**—आकाशरूपी बिलाव, **४६५ कालमूषकभक्षकः**—कालरूपी चूहेको खा जानेवाले, **४६६ अनन्तायुधदोर्दण्डी**— अपने बाहुदण्डोंको ही अक्षय आयुधोंके रूपमें धारण करनेवाले, **४६७ नृसिंहः**—नर तथा सिंह दोनोंकी आकृति धारण करनेवाले, **४६८ वीरभद्रजित्**— वीरभद्रपर विजय पानेवाले॥ १९७॥

योगिनीचक्रगुह्येशः शक्रारिपशुमांसभुक्।
रुद्रो नारायणो मेषरूपशङ्करवाहनः॥ १९८॥

४६९ योगिनीचक्रगुह्येशः—योगिनीमण्डलके रहस्योंके स्वामी, **४७० शक्रारिपशुमांसभुक्**—इन्द्रके शत्रुभूत दैत्यरूपी पशुओंका भक्षण

करनेवाले, **४७१ रुद्रः**—प्रलयकालमें सबको रुलाने-वाले रुद्र अथवा भयंकर आकारवाले नृसिंह, **४७२ नारायणः**—नार अर्थात् जीवसमुदायके आश्रय; अथवा नार—जलको निवासस्थान बनाकर रहनेवाले शेषशायी, **४७३ मेषरूपशङ्करवाहनः**—मेषरूपधारी शिवको वाहन बनानेवाले॥ १९८॥

मेषरूपशिवत्राता दुष्टशक्तिसहस्त्रभुक्।
तुलसीवल्लभो वीरो वामाचाराखिलेष्टदः॥ १९९॥

४७४ मेषरूपशिवत्राता—मेषरूपधारी शिवके रक्षक, **४७५ दुष्टशक्तिसहस्त्रभुक्**—सहस्त्रों दुष्ट-शक्तियोंका विनाश करनेवाले, **४७६ तुलसी-वल्लभः**—तुलसीके प्रेमी, **४७७ वीरः**—शूरवीर, **४७८ वामाचाराखिलेष्टदः**—सुन्दर आचरणवालोंका सम्पूर्ण अभीष्ट सिद्ध करनेवाले॥ १९९॥

महाशिवः शिवारूढो भैरवैककपालधृक्।
झिल्लिचक्रेश्वरः शक्रदिव्यमोहनरूपदः॥ २००॥

४७९ महाशिवः—परम मंगलमय, **४८० शिवारूढः**—कल्याणमय वाहनपर आरूढ़ होनेवाले, अथवा ध्यानस्थ भगवान् शिवके हृदयकमलपर आसीन होनेवाले, **४८१ भैरवैककपालधृक्**—रुद्ररूपसे हाथमें एक भयानक कपाल धारण करनेवाले, **४८२ झिल्लिचक्रेश्वरः**—झींगुरोंके समुदायके स्वामी, **४८३ शक्रदिव्यमोहनरूपदः**—इन्द्रको दिव्य एवं मोहक रूप देनेवाले॥ २००॥

गौरीसौभाग्यदो मायानिधिर्मायाभयापहः।
ब्रह्मतेजोमयो ब्रह्मश्रीमयश्च त्रयीमयः॥ २०१॥

४८४ गौरीसौभाग्यदः—भगवती पार्वतीको सौभाग्य प्रदान करनेवाले, **४८५ मायानिधिः**— मायाके भंडार, **४८६ मायाभयापहः**—मायाजनित भयका नाश करनेवाले, **४८७ ब्रह्मतेजोमयः**—ब्रह्मतेजसे सम्पन्न भगवान् वामन, **४८८ ब्रह्मश्रीमयः**— ब्राह्मणोचित श्रीसे परिपूर्ण विग्रहवाले, **४८९ त्रयीमयः**—ऋक्, यजुः और साम—इन तीन वेदोंद्वारा प्रतिपादित स्वरूपवाले॥ २०१॥

सुब्रह्मण्यो बलिध्वंसी वामनोऽदितिदुःखहा।
उपेन्द्रो नृपतिर्विष्णुः कश्यपान्वयमण्डनः॥ २०२॥

४९० सुब्रह्मण्यः—ब्राह्मण, वेद, तप और ज्ञानकी भलीभाँति रक्षा करनेवाले, **४९१ बलिध्वंसी**—राजा बलिको स्वर्गसे हटानेवाले, **४९२ वामनः**—वामनरूपधारी भगवान्, **४९३ अदितिदुःखहा**—देवमाता अदितिके दुःख दूर करनेवाले, **४९४ उपेन्द्रः**—इन्द्रके छोटे भाई, द्वितीय इन्द्र, **४९५ नृपतिः**—राजा, जो '**नराणां च नराधिपः**' के अनुसार भगवान्‌की दिव्य विभूति है, **४९६ विष्णुः**—बारह आदित्योंमेंसे एक, **४९७ कश्यपान्वयमण्डनः**—कश्यपजीके कुलकी शोभा बढ़ानेवाले॥ २०२॥

बलिस्वाराज्यदः सर्वदेवविप्रान्नदोऽच्युतः।
उरुक्रमस्तीर्थपादस्त्रिपदस्थस्त्रिविक्रमः॥ २०३॥

४९८ बलिस्वाराज्यदः—राजा बलिको [अगले मन्वन्तरमें इन्द्र बनाकर] स्वर्गका राज्य प्रदान करनेवाले, **४९९ सर्वदेवविप्रान्नदः**—सम्पूर्ण देवताओं तथा ब्राह्मणोंको अन्न देनेवाले, **५०० अच्युतः**—अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले, **५०१ उरुक्रमः**—बलिके यज्ञमें विराट्‌रूप होकर लम्बे डगसे त्रिलोकीको नापनेवाले, **५०२ तीर्थपादः**— गंगाजीको प्रकट करनेके कारण तीर्थरूप चरणोंवाले, **५०३ त्रिपदस्थः**— तीन स्थानोंपर पैर रखनेवाले, **५०४ त्रिविक्रमः**—तीन बड़े-बड़े डगवाले॥ २०३॥

व्योमपादः स्वपादाम्भःपवित्रितजगत्त्रयः।
ब्रह्मेशाद्यभिवन्द्याङ्घ्रिर्द्रुतधर्माहिधावनः॥ २०४॥

५०५ व्योमपादः—सम्पूर्ण आकाशको चरणोंसे नापनेवाले, **५०६ स्वपादाम्भःपवित्रितजगत्त्रयः**—अपने चरणोंके जल (गंगाजी)-से तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाले, **५०७ ब्रह्मेशाद्यभिवन्द्याङ्घ्रिः**—ब्रह्मा और शंकर आदि देवताओंके द्वारा वन्दनीय चरणोंवाले, **५०८ द्रुतधर्मा**—शीघ्रतापूर्वक धर्मका पालन करनेवाले, **५०९ अहिधावनः**—सर्पकी भाँति तेज दौड़नेवाले॥ २०४॥

अचिन्त्याद्भुतविस्तारो विश्ववृक्षो महाबलः।
राहुमूर्धापराङ्गच्छिद् भृगुपत्नीशिरोहरः॥ २०५॥

५१० अचिन्त्याद्भुतविस्तारः—किसी तरह चिन्तनमें न आनेवाले अद्भुत विस्तारसे युक्त,

५११ विश्ववृक्षः—संसार-वृक्षरूप, **५१२ महाबलः**—महान् बलसे युक्त, **५१३ राहुमूर्धापराङ्गच्छित्**—राहुके मस्तक और धड़को काटकर अलग करनेवाले, **५१४ भृगुपत्नीशिरोहरः**—भृगुपत्नीके मस्तकका अपहरण करनेवाले॥ २०५॥

पापात्रस्तः सदापुण्यो दैत्याशानित्यखण्डकः।
पूरिताखिलदेवाशो विश्वार्थैकावतारकृत्॥ २०६॥

५१५ पापात्रस्तः—पापसे डरनेवाले, **५१६ सदापुण्यः**—निरन्तर पुण्यमें प्रवृत्त, **५१७ दैत्याशा नित्यखण्डकः**—धर्मविरोधी दैत्योंकी आशाका सदा खण्डन करनेवाले, **५१८ पूरिताखिलदेवाशः**— सम्पूर्ण देवताओंकी आशा पूर्ण करनेवाले, **५१९ विश्वार्थैकावतारकृत्**—एकमात्र विश्वका कल्याण करनेके लिये अवतार लेनेवाले॥ २०६॥

स्वमायानित्यगुप्तात्मा भक्तचिन्तामणिः सदा।
वरदः कार्तवीर्यादिराजराज्यप्रदोऽनघः॥ २०७॥

५२० स्वमायानित्यगुप्तात्मा—अपनी मायासे निरन्तर अपने स्वरूपको छिपाये रखनेवाले, **५२१ सदा भक्तचिन्तामणिः**—सदा भक्तोंका मनोरथ पूर्ण करनेके लिये चिन्तामणिके समान, **५२२ वरदः**—भक्तोंको वर प्रदान करनेवाले, **५२३ कार्तवीर्यादिराजराज्यप्रदः**— कृतवीर्यपुत्र अर्जुन आदि राजाओंको राज्य देनेवाले, **५२४ अनघः**—स्वभावतः पापसे रहित॥ २०७॥

विश्वश्लाघ्योऽमिताचारो दत्तात्रेयो मुनीश्वरः।
पराशक्तिसदाश्लिष्टो योगानन्दसदोन्मदः॥ २०८॥

५२५ विश्वश्लाघ्यः—समस्त संसारके लिये प्रशंसनीय, **५२६ अमिताचारः**—अपरिमित आचारवाले, **५२७ दत्तात्रेयः**—अत्रिकुमार दत्त, जो भगवान्के अवतार हैं, **५२८ मुनीश्वरः**—मुनियोंके स्वामी, **५२९ पराशक्तिसदाश्लिष्टः**—सदा पराशक्तिसे युक्त, **५३० योगानन्दसदोन्मदः**— निरन्तर योगजनित आनन्दमें विभोर रहनेवाले॥ २०८॥

समस्तेन्द्रारितेजोहृत्परमामृतपद्मपः।
अनसूयागर्भरत्नं भोगमोक्षसुखप्रदः॥ २०९॥

५३१ समस्तेन्द्रारितेजोहृत्—इन्द्रसे शत्रुता रखनेवाले सम्पूर्ण दैत्योंका तेज हर लेनेवाले, **५३२ परमामृतपद्मपः**—परम अमृतमय कमलका रस पान करनेवाले, **५३३ अनसूयागर्भरत्नम्**—अत्रिपत्नी अनसूयाजीके गर्भके रत्न, **५३४ भोगमोक्षसुखप्रदः**—भोग और मोक्षका सुख प्रदान करनेवाले॥ २०९॥

जमदग्निकुलादित्यो रेणुकाद्भुतशक्तिधृक्।
मातृहत्यादिनिर्लेपः स्कन्दजिद्विप्रराज्यदः॥ २१०॥

५३५ जमदग्निकुलादित्यः—मुनिवर जमदग्निके वंशको सूर्यके समान प्रकाशित करनेवाले परशुरामजी, **५३६ रेणुकाद्भुतशक्तिधृक्**—माता रेणुकाकी अद्भुत शक्ति धारण करनेवाले, **५३७ मातृहत्यादिनिर्लेपः**— मातृहत्या आदि दोषोंसे निर्लिप्त रहनेवाले परशुरामजी, **५३८ स्कन्दजित्**—कार्तिकेयजीको जीतनेवाले, **५३९ विप्रराज्यदः**—ब्राह्मणोंको राज्य देनेवाले॥ २१०॥

सर्वक्षत्रान्तकृद्वीरदर्पहा कार्तवीर्यजित्।
सप्तद्वीपवतीदाता शिवार्चकयशःप्रदः॥ २११॥

५४० सर्वक्षत्रान्तकृत्—समस्त क्षत्रियोंका अन्त करनेवाले, **५४१ वीरदर्पहा**—बड़े-बड़े वीरोंका दर्प दलन करनेवाले, **५४२ कार्तवीर्यजित्**—कृतवीर्य-पुत्र अर्जुनको परास्त करनेवाले, **५४३ सप्तद्वीपवती-दाता**—ब्राह्मणोंको सातों द्वीपोंसे युक्त पृथ्वीका दान करनेवाले, **५४४ शिवार्चकयशःप्रदः**—शिवकी पूजा करनेवालेको यश देनेवाले॥ २११॥

भीमः परशुरामश्च शिवाचार्यैकविश्वभूः।
शिवाखिलज्ञानकोशो भीष्माचार्योऽग्निदैवतः॥ २१२॥

५४५ भीमः—भयंकर पराक्रम करनेवाले, **५४६ परशुरामः**—परशुरामरूपधारी भगवान्, **५४७ शिवाचार्यैकविश्वभूः**—भगवान् शंकरको गुरु बनाकर विद्या सीखनेवाले संसारमें एकमात्र पुरुष, **५४८ शिवाखिलज्ञानकोशः**—भगवान् शंकरसे सम्पूर्ण ज्ञानका कोष प्राप्त करनेवाले, **५४९ भीष्माचार्यः**—पाण्डवोंके पितामह भीष्मजीके आचार्य, **५५० अग्निदैवतः**—अग्निदेवताके उपासक॥ २१२॥

द्रोणाचार्यगुरुर्विश्वजैत्रधन्वा कृतान्तजित्।
अद्वितीयतपोमूर्तिर्ब्रह्मचर्यैकदक्षिणः॥ २१३॥

५५१ द्रोणाचार्यगुरुः—आचार्य द्रोणके गुरु, **५५२ विश्वजैत्रधन्वा**—विश्वविजयी धनुष धारण करनेवाले, **५५३ कृतान्तजित्**—कालको भी परास्त करनेवाले, **५५४ अद्वितीयतपोमूर्तिः**—अद्वितीय तपस्याके मूर्तिमान् स्वरूप, **५५५ ब्रह्मचर्यैकदक्षिणः**—ब्रह्मचर्यपालनमें एकमात्र दक्ष॥ २१३॥

मनुश्रेष्ठः सतां सेतुर्महीयान् वृषभो विराट्।
आदिराजः क्षितिपिता सर्वरत्नैकदोहकृत्॥ २१४॥

५५६ मनुश्रेष्ठः—मनुष्योंमें श्रेष्ठ राजा पृथु, **५५७ सतां सेतुः**—सेतुके समान सत्पुरुषोंकी मर्यादाके रक्षक, अथवा सत्पुरुषोंके लिये सेतुरूप, **५५८ महीयान्**— बड़ोंसे भी बड़े महापुरुष, **५५९ वृषभः**—कामनाओंकी वर्षा करनेवाले श्रेष्ठ राजा, **५६० विराट्**— तेजस्वी राजा, **५६१ आदिराजः**—मनुष्योंमें सबसे प्रथम राजाके पदसे विभूषित, **५६२ क्षितिपिता**—पृथ्वीको अपनी कन्याके रूपमें स्वीकार करनेवाले, **५६३ सर्वरत्नैकदोहकृत्**—गोरूपधारिणी पृथ्वीसे समस्त रत्नोंके एकमात्र दुहनेवाले॥ २१४॥

पृथुर्जन्माद्येकदक्षो गीःश्रीकीर्तिस्वयंवृतः।
जगद्वृत्तिप्रदश्चक्रवर्तिश्रेष्ठोऽद्वयास्त्रधृक् ॥ २१५॥

५६४ पृथुः—अपने यशसे प्रख्यात पृथु नामक राजा, **५६५ जन्माद्येकदक्षः**—उत्पत्ति, पालन और संहारमें एकमात्र कुशल, **५६६ गीःश्रीकीर्तिस्वयं-वृतः**—वाणी, लक्ष्मी और कीर्तिके द्वारा स्वयं वरण किये हुए, **५६७ जगद्वृत्तिप्रदः**—संसारको जीविका प्रदान करनेवाले, **५६८ चक्रवर्तिश्रेष्ठः**—चक्रवर्ती राजाओंमें श्रेष्ठ, **५६९ अद्वयास्त्रधृक्**—अद्वितीय शस्त्रधारी वीर॥ २१५॥

सनकादिमुनिप्राप्यभगवद्भक्तिवर्धनः ।
वर्णाश्रमादिधर्माणां कर्ता वक्ता प्रवर्तकः॥ २१६॥

५७० सनकादिमुनिप्राप्यभगवद्भक्तिवर्धनः—सनकादि मुनियोंसे प्राप्त होनेयोग्य भगवद्भक्तिका विस्तार करनेवाले, **५७१ वर्णाश्रमादिधर्माणां-कर्ता**—वर्ण और आश्रम आदिके धर्मोंके बनानेवाले, **५७२ वक्ता**—वर्ण और आश्रम आदिके धर्मोंका उपदेश करनेवाले, **५७३ प्रवर्तकः**—उक्त धर्मोंका प्रचार करनेवाले॥ २१७॥

सूर्यवंशध्वजो रामो राघवः सद्गुणार्णवः।
काकुत्स्थो वीरराजार्यो राजधर्मधुरन्धरः॥ २१७॥

५७४ सूर्यवंशध्वजः—सूर्यवंशकी कीर्तिपताका फहरानेवाले श्रीरघुनाथजी, **५७५ रामः**— योगीजनोंके रमण करनेके लिये नित्यानन्दस्वरूप परमात्मा, मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजी, **५७६ राघवः**—रघुकुलमें जन्म ग्रहण करनेवाले, **५७७ सद्गुणार्णवः**—उत्तम गुणोंके सागर, **५७८ काकुत्स्थः**—ककुत्स्थ-पदवी धारण करनेवाले राजा पुरंजयकी कुल-परम्परामें अवतीर्ण, **५७९ वीरराजार्यः**—वीर राजाओंमें श्रेष्ठ, **५८० राजधर्मधुरन्धरः**—राजधर्मका भार वहन करनेवाले॥ २१७॥

नित्यस्वस्थाश्रयः सर्वभद्रग्राही शुभैकदृक्।
नररत्नं रत्नगर्भो धर्माध्यक्षो महानिधिः॥ २१८॥

५८१ नित्यस्वस्थाश्रयः—सदा अपने स्वरूपमें स्थित रहनेवाले महात्माओंके आश्रय, **५८२ सर्वभद्र-ग्राही**—समस्त कल्याणोंकी प्राप्ति करानेवाले, **५८३ शुभैकदृक्**—एकमात्र शुभकी ओर ही दृष्टि रखनेवाले, **५८४ नररत्नम्**—मनुष्योंमें श्रेष्ठ, **५८५ रत्नगर्भः**—अपनी माताके गर्भके रत्न अथवा अपने भीतर रत्नमय गुणोंको धारण करनेवाले, **५८६ धर्माध्यक्षः**—धर्मके साक्षी, **५८७ महानिधिः**—अखिल भूमण्डलके सम्राट् होनेके कारण बहुत बड़े कोषवाले॥ २१८॥

सर्वश्रेष्ठाश्रयः सर्वशस्त्रास्त्रग्रामवीर्यवान्।
जगदीशो दाशरथिः सर्वरत्नाश्रयो नृपः॥ २१९॥

५८८ सर्वश्रेष्ठाश्रयः—सबसे श्रेष्ठ आश्रय, **५८९ सर्वशस्त्रास्त्रग्रामवीर्यवान्**—समस्त अस्त्र-शस्त्रोंके समुदायकी शक्ति रखनेवाले, **५९० जगदीशः**—सम्पूर्ण जगत्के स्वामी, **५९१ दाशरथिः**—अयोध्याके चक्रवर्ती नरेश महाराज दशरथके प्राणाधिक प्रियतम पुत्र, **५९२ सर्वरत्नाश्रयो नृपः**—सम्पूर्ण रत्नोंके आश्रयभूत राजा॥ २१९॥

समस्तधर्मसूः सर्वधर्मद्रष्टाखिलार्तिहा।
अतीन्द्रो ज्ञानविज्ञानपारद्रष्टा क्षमाम्बुधिः॥ २२०॥

५९३ समस्तधर्मसूः—समस्त धर्मोंको उत्पन्न करनेवाले, **५९४ सर्वधर्मद्रष्टा**—सम्पूर्ण धर्मोंपर दृष्टि रखनेवाले, **५९५ अखिलार्तिहा**—सबकी पीड़ा दूर करनेवाले अथवा समस्त पीड़ाओंके नाशक, **५९६ अतीन्द्रः**—इन्द्रसे भी बढ़कर ऐश्वर्यशाली, **५९७ ज्ञानविज्ञानपारद्रष्टा**—ज्ञान और विज्ञानके पारंगत, **५९८ क्षमाम्बुधिः**—क्षमाके सागर॥ २२०॥

सर्वप्रकृष्टः शिष्टेष्टो हर्षशोकाद्यनाकुलः।
पित्राज्ञात्यक्तसाम्राज्यः सपत्नोदयनिर्भयः॥ २२१॥

५९९ सर्वप्रकृष्टः—सबसे श्रेष्ठ, **६०० शिष्टेष्टः**—शिष्ट पुरुषोंके इष्टदेव, **६०१ हर्ष-शोकाद्यनाकुलः**—हर्ष और शोक आदिसे विचलित न होनेवाले, **६०२ पित्राज्ञात्यक्तसाम्राज्यः**—पिताकी आज्ञासे समस्त भूमण्डलका साम्राज्य त्याग देनेवाले, **६०३ सपत्नोदयनिर्भयः**—शत्रुओंके उदयसे भयभीत न होनेवाले॥ २२१॥

गुहादेशार्पितैश्वर्यः शिवस्पर्धाजटाधरः।
चित्रकूटाप्तरत्नाद्रिर्जगदीशो वनेचरः॥ २२२॥

६०४ गुहादेशार्पितैश्वर्यः—वनवासके समय पर्वतकी कन्दराओंको ऐश्वर्य समर्पित करनेवाले—अपने निवाससे गुफाओंको भी ऐश्वर्यसम्पन्न बनानेवाले, **६०५ शिवस्पर्धाजटाधरः**—शंकरजीकी जटाओंसे होड़ लगानेवाली जटाएँ धारण करनेवाले, **६०६ चित्रकूटाप्तरत्नाद्रिः**—चित्रकूटको निवासस्थल बनाकर उसे रत्नमय पर्वत (मेरुगिरि)-की महत्ता प्राप्त करानेवाले, **६०७ जगदीशः**—सम्पूर्ण जगत्के ईश्वर, **६०८ वनेचरः**—वनमें विचरनेवाले॥ २२२॥

यथेष्टामोघसर्वास्त्रो देवेन्द्रतनयाक्षिहा।
ब्रह्मेन्द्रादिनतैषीको मारीचघ्नो विराधहा॥ २२३॥

६०९ यथेष्टामोघसर्वास्त्रः—जिनके सभी अस्त्र इच्छानुसार चलनेवाले एवं अचूक हैं, **६१० देवेन्द्रतनयाक्षिहा**—देवराजके पुत्र जयन्तकी आँख फोड़नेवाले, **६११ ब्रह्मेन्द्रादिनतैषीकः**—जिनके चलाये हुए सींकके बाणको ब्रह्मा आदि देवताओंने भी मस्तक झुकाया था, ऐसे प्रभावशाली भगवान् श्रीराम, **६१२ मारीचघ्नः**—मायामय मृगका रूप धारण करनेवाले मारीच नामक राक्षसके नाशक, **६१३ विराधहा**—विराधका वध करनेवाले॥ २२३॥

ब्रह्मशापहताशेषदण्डकारण्यपावनः।
चतुर्दशसहस्रोग्ररक्षोघ्नैकशरैकधृक्॥ २२४॥

६१४ ब्रह्मशापहताशेषदण्डकारण्यपावनः—ब्राह्मण (शुक्राचार्य)-के शापसे नष्ट हुए दण्डकारण्यको अपने निवाससे पुनः पावन बनानेवाले **६१५ चतुर्दशसहस्रोग्ररक्षोघ्नैकशरैकधृक्**— चौदह हजार भयंकर राक्षसोंको मारनेकी शक्तिसे युक्त एकमात्र बाण धारण करनेवाले॥ २२४॥

खरारिस्त्रिशिरोहन्ता दूषणघ्नो जनार्दनः।
जटायुषोऽग्निगतिदोऽगस्त्यसर्वस्वमन्त्रराट्॥ २२५॥

६१६ खरारिः—खर नामक राक्षसके शत्रु, **६१७ त्रिशिरोहन्ता**—त्रिशिराका वध करनेवाले, **६१८ दूषणघ्नः**—दूषण नामक राक्षसके प्राण लेनेवाले, **६१९ जनार्दनः**—भक्तलोग जिनसे अभ्युदय एवं निःश्रेयसरूप परम पुरुषार्थकी याचना करते हैं, **६२० जटायुषोऽग्निगतिदः**—जटायुका दाह-संस्कार करके उन्हें उत्तम गति प्रदान करनेवाले, **६२१ अगस्त्यसर्वस्वमन्त्रराट्**—जिनका नाम महर्षि अगस्त्यका सर्वस्व एवं मन्त्रोंका राजा है॥ २२५॥

लीलाधनुष्कोट्यपास्तदुन्दुभ्यस्थिमहाचलः।
सप्ततालव्यधाकृष्टध्वस्तपातालदानवः॥ २२६॥

६२२ लीलाधनुष्कोट्यपास्तदुन्दुभ्यस्थि-महाचलः—खेल-खेलमें ही दुन्दुभि नामक दानवकी हड्डियोंके महान् पर्वतको धनुषकी नोकसे उठाकर दूर फेंक देनेवाले, **६२३ सप्ततालव्यधाकृष्ट-ध्वस्तपातालदानवः**—सात तालवृक्षोंके वेधसे आकृष्ट होकर आये हुए पातालवासी दानवका विनाश करनेवाले॥ २२६॥

सुग्रीवराज्यदोऽहीनमनसैवाभयप्रदः।
हनुमद्रुद्रमुख्येशः समस्तकपिदेहभृत्॥ २२७॥

६२४ सुग्रीवराज्यदः—सुग्रीवको राज्य देनेवाले, **६२५ अहीनमनसैवाभयप्रदः**—उदार चित्तसे अभय-दान देनेवाले, **६२६ हनुमद्रुद्रमुख्येशः**— हनुमान्‌जी तथा भगवान् शंकरके प्रधान आराध्यदेव, **६२७ समस्तकपिदेहभृत्**—सम्पूर्ण वानरोंके शरीरोंका पोषण करनेवाले॥ २२७॥

सनागदैत्यबाणैकव्याकुलीकृतसागरः ।
सम्लेच्छकोटिबाणैकशुष्कनिर्दग्धसागरः ॥ २२८॥

६२८ सनागदैत्यबाणैकव्याकुलीकृत-सागरः—एक ही बाणसे नाग और दैत्योंसहित समुद्रको क्षुब्ध कर देनेवाले, **६२९ सम्लेच्छकोटि-बाणैकशुष्कनिर्दग्धसागरः**—एक ही बाणसे करोड़ों म्लेच्छोंसहित समुद्रको सुखा देने और जला डालनेवाले॥ २२८॥

समुद्राद्भुतपूर्वैकबद्धसेतुर्यशोनिधिः ।
असाध्यसाधको लङ्कासमूलोत्सादददक्षिणः॥ २२९॥

६३० समुद्राद्भुतपूर्वैकबद्धसेतुः—समुद्रमें पहले-पहल एक अद्‌भुत पुल बाँधनेवाले, **६३१ यशोनिधिः**—सुयशके भंडार, **६३२ असाध्यसाधकः**—असम्भवको भी सम्भव कर दिखानेवाले, **६३३ लङ्कासमूलोत्साददक्षिणः**—लंकाको जड़से नष्ट कर डालनेमें दक्ष॥ २२९॥

वरदृप्तजगच्छल्यपौलस्त्यकुलकृन्तनः ।
रावणिघ्नः प्रहस्तच्छित्कुम्भकर्णभिदुग्रहा॥ २३०॥

६३४ वरदृप्तजगच्छल्यपौलस्त्यकुलकृन्तनः—वर पाकर घमंडसे भरे हुए तथा संसारके लिये कण्टकरूप रावणके कुलका उच्छेद करनेवाले, **६३५ रावणिघ्नः**—लक्ष्मणरूपसे रावणके पुत्र मेघनादका वध करनेवाले, **६३६ प्रहस्तच्छित्**—प्रहस्तका मस्तक काटनेवाले, **६३७ कुम्भकर्णभित्**— कुम्भकर्णको विदीर्ण करनेवाले, **६३८ उग्रहा**—भयंकर राक्षसोंका वध करनेवाले॥ २३०॥

रावणैकशिरश्छेत्ता निःशङ्केन्द्रैकराज्यदः।
स्वर्गास्वर्गत्वविच्छेदी देवेन्द्रानिन्द्रताहरः॥ २३१॥

६३९ रावणैकशिरश्छेत्ता—रावणके सिर काटनेवाले एकमात्र वीर, **६४० निःशङ्केन्द्रैकराज्यदः**—निःशंक होकर इन्द्रको एकमात्र राज्य देनेवाले, **६४१ स्वर्गास्वर्गत्वविच्छेदी**—स्वर्गकी अस्वर्गताको मिटा डालनेवाले,[1] **६४२ देवेन्द्रानिन्द्रताहरः**—देवराज इन्द्रकी अनिन्द्रता दूर करनेवाले[2]॥ २३१॥

रक्षोदेवत्वहृद्धर्माधर्मत्वघ्नः पुरुष्टुतः।
नतिमात्रदशास्यारिर्दत्तराज्यविभीषणः ॥ २३२॥

६४३ रक्षोदेवत्वहृत्—राक्षसलोग जो देवताओंको हटाकर स्वयं देवता बन बैठे थे, उनके उस देवत्वको हर लेनेवाले, **६४४ धर्माधर्मत्वघ्नः**—धर्मकी अधर्मताका नाश करनेवाले (राक्षसोंके कारण धर्म भी अधर्मरूपमें परिणत हो रहा था, भगवान् रामने उन्हें मारकर धर्मको पुनः अपने स्वरूपमें प्रतिष्ठित किया), **६४५ पुरुष्टुतः**— बहुत लोगोंके द्वारा स्तुत होनेवाले, **६४६ नतिमात्रदशास्यारिः**—नतमस्तक होनेतक ही रावणको शत्रु माननेवाले, **६४७ दत्तराज्यविभीषणः**—विभीषणको राज्य प्रदान करनेवाले॥ २३२॥

सुधावृष्टिमृताशेषस्वसैन्योज्जीवनैककृत् ।
देवब्राह्मणनामैकधाता सर्वामरार्चितः॥ २३३॥

६४८ सुधावृष्टिमृताशेषस्वसैन्योज्जीवनैक-कृत्—सुधाकी वर्षा कराकर अपने समस्त मरे हुए सैनिकोंको जीवन प्रदान करनेवाले, **६४९ देवब्राह्मण-नामैकधाता**—देवता और ब्राह्मणके नामोंके एकमात्र रक्षक, वे यदि न होते तो देवताओं एवं ब्राह्मणोंका

---

१. राक्षसोंने 'स्वर्ग' का वैभव लूटकर उसे 'अस्वर्ग' बना दिया था, भगवान् रामने रावणको मारकर पुनः उसे अपनी प्रतिष्ठाके अनुरूप बनाया, स्वर्गकी अस्वर्गता दूर कर दी।

२. रावणने इन्द्रको इन्द्रपदसे हटा दिया था, वे 'अनिन्द्र' (इन्द्रपदसे च्युत) हो गये थे; श्रीरामने उनकी अनिन्द्रता दूर की—उन्हें पुनः इन्द्रके सिंहासनपर बिठाया।

नाम-निशान मिट जाता, **६५० सर्वामरार्चितः**—सम्पूर्ण देवताओंसे पूजित॥ २३३॥

ब्रह्मसूर्येन्द्ररुद्रादिवृन्दार्पितसतीप्रियः ।
अयोध्याखिलराजाग्र्यः सर्वभूतमनोहरः॥ २३४॥

६५१ ब्रह्मसूर्येन्द्ररुद्रादिवृन्दार्पितसतीप्रियः—ब्रह्मा, सूर्य, इन्द्र तथा रुद्र आदि देवताओंके समूहद्वारा शुद्ध प्रमाणित करके समर्पित की हुई सती सीताके प्रियतम, **६५२ अयोध्याखिलराजाग्र्यः**—अयोध्यापुरीके सम्पूर्ण राजाओंमें अग्रगण्य, **६५३ सर्वभूतमनोहरः**—अपने सौन्दर्य-माधुर्यके कारण सम्पूर्ण प्राणियोंका मन हरनेवाले॥ २३४॥

स्वाम्यतुल्यकृपादण्डो हीनोत्कृष्टैकसत्प्रियः।
श्वपक्ष्यादिन्यायदर्शी हीनार्थाधिकसाधकः॥ २३५॥

६५४ स्वाम्यतुल्यकृपादण्डः—प्रभुताके अनुरूप ही कृपा करने और दण्ड देनेवाले, **६५५ हीनोत्कृष्टैकसत्प्रियः**—ऊँच-नीच—सबके सच्चे प्रेमी, **६५६ श्वपक्ष्यादिन्यायदर्शी**—कुत्ते और पक्षी आदिके प्रति भी न्याय प्रदर्शित करनेवाले, **६५७ हीनार्थाधिकसाधकः**—असहाय पुरुषोंके कार्यकी अधिक सिद्धि करनेवाले॥ २३५॥

वधव्याजानुचितकृत्तारकोऽखिलतुल्यकृत् ।
पावित्र्याधिक्यमुक्तात्मा प्रियात्यक्तः स्मरारिजित्॥ २३६॥

६५८ वधव्याजानुचितकृत्तारकः—अनुचित कर्म करनेवाले लोगोंका वधके बहाने उद्धार करनेवाले, **६५९ अखिलतुल्यकृत्**—सबके साथ उसकी योग्यताके अनुरूप बर्ताव करनेवाले, **६६० पावित्र्याधिक्य-मुक्तात्मा**—अधिक पवित्रताके कारण नित्यमुक्त स्वभाववाले, **६६१ प्रियात्यक्तः**—प्रिय पत्नी सीतासे कुछ कालके लिये वियुक्त, **६६२ स्मरारिजित्**—कामदेवके शत्रु भगवान् शिवको भी जीतनेवाले॥ २३६॥

साक्षात्कुशलवच्छद्मद्रावितो ह्यपराजितः।
कोसलेन्द्रो वीरबाहुः सत्यार्थत्यक्तसोदरः॥ २३७॥

६६३ साक्षात्कुशलवच्छद्मद्रावितः—कुश और लवके रूपमें स्वयं अपने-आपसे युद्धमें हार जानेवाले, **६६४ अपराजितः**—वास्तवमें कभी किसीके द्वारा भी परास्त न होनेवाले, **६६५ कोसलेन्द्रः**—कोसलदेशके ऐश्वर्यशाली सम्राट्, **६६६ वीरबाहुः**—शक्तिशालिनी भुजाओंसे युक्त, **६६७ सत्यार्थत्यक्त-सोदरः**—सत्यकी रक्षाके लिये अपने भाई लक्ष्मणका त्याग करनेवाले॥ २३७॥

शरसंधाननिर्धूतधरणीमण्डलो जयः।
ब्रह्मादिकामसांनिध्यसनाथीकृतदैवतः ॥ २३८॥

६६८ शरसंधाननिर्धूतधरणीमण्डलः— बाणोंके संधानसे समस्त भूमण्डलको कँपा देनेवाले, **६६९ जयः**—विजयशील, **६७० ब्रह्मादि-कामसांनिध्यसनाथीकृतदैवतः**—ब्रह्मा आदिकी कामनाके अनुसार समीपसे दर्शन देकर समस्त देवताओंको सनाथ करनेवाले॥ २३८॥

ब्रह्मलोकाप्तचाण्डालाद्यशेषप्राणिसार्थकः।
स्वर्नीतगर्दभश्वादिश्चिरायोध्यावनैककृत् ॥ २३९॥

६७१ ब्रह्मलोकाप्तचाण्डालाद्यशेषप्राणिसार्थकः— चाण्डाल आदि समस्त प्राणियोंको ब्रह्मलोकमें पहुँचाकर कृतार्थ करनेवाले, **६७२ स्वर्नीतगर्दभश्वादिः**—गदहे और कुत्ते आदिको भी स्वर्गलोकमें ले जानेवाले, **६७३ चिरायोध्यावनैककृत्**—चिरकालतक अयोध्याकी एकमात्र रक्षा करनेवाले॥ २३९॥

रामो द्वितीयसौमित्रिर्लक्ष्मणः प्रहतेन्द्रजित्।
विष्णुभक्तः सरामाङ्घ्रिपादुकाराज्यनिर्वृतिः ॥ २४०॥

६७४ रामः—मुनियोंका मन रमानेवाले भगवान् श्रीराम, **६७५ द्वितीयसौमित्रिः**—सुमित्राकुमार लक्ष्मणको साथ रखनेवाले, **६७६ लक्ष्मणः**—शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न लक्ष्मणरूप, **६७७ प्रहतेन्द्रजित्**— लक्ष्मणरूपसे मेघनादका वध करनेवाले, **६७८ विष्णुभक्तः**—विष्णुके अवतारभूत भगवान् श्रीरामके भक्त भरतरूप, **६७९ सरामाङ्घ्रिपादुकाराज्यनिर्वृतिः**—श्रीरामचन्द्रजीकी चरणपादुकाके साथ मिले हुए राज्यसे संतुष्ट होनेवाले भरतरूप॥ २४०॥

भरतोऽसह्यगन्धर्वकोटिघ्नो लवणान्तकः।
शत्रुघ्नो वैद्यराडायुर्वेदगर्भौषधीपतिः॥ २४१॥

६८० भरतः—प्रजाका भरण-पोषण करनेवाले

कैकेयीकुमार भरतरूप, **६८१ असह्यगन्धर्वकोटिघ्नः**—करोड़ों दुःसह गन्धर्वोंका वध करनेवाले, **६८२ लवणान्तकः**—लवणासुरको मारनेवाले शत्रुघ्नरूप, **६८३ शत्रुघ्नः**—शत्रुओंका वध करनेवाले सुमित्राके छोटे कुमार, **६८४ वैद्यराट्**—वैद्योंके राजा धन्वन्तरिरूप, **६८५ आयुर्वेदगर्भौषधीपतिः**— आयुर्वेदके भीतर वर्णित ओषधियोंके स्वामी॥ २४१॥

नित्यामृतकरो धन्वन्तरिर्यज्ञो जगद्धरः।
सूर्यारिघ्नः सुराजीवो दक्षिणेशो द्विजप्रियः॥ २४२॥

६८६ नित्यामृतकरः—हाथोंमें सदा अमृत लिये रहनेवाले, **६८७ धन्वन्तरिः**—धन्वन्तरि नामसे प्रसिद्ध एक वैद्य, जो समुद्रसे प्रकट हुए और भगवान् नारायणके अंश थे, **६८८ यज्ञः**—यज्ञस्वरूप, **६८९ जगद्धरः**—संसारके पालक, **६९० सूर्यारिघ्नः**—सूर्यके शत्रु (केतु)-को मारनेवाले, **६९१ सुराजीवः**—अमृतके द्वारा देवताओंको जीवन प्रदान करनेवाले, **६९२ दक्षिणेशः**—दक्षिणदिशाके स्वामी धर्मराजरूप, **६९३ द्विजप्रियः**—ब्राह्मणोंके प्रियतम॥ २४२॥

छिन्नमूर्धापदेशार्कः शेषाङ्गस्थापितामरः।
विश्वार्थाशेषकृद्राहुशिरश्छेत्ताक्षताकृतिः॥ २४३॥

६९४ छिन्नमूर्धापदेशार्कः—जिसका मस्तक कटा हुआ है तथा जो कहनेमात्रके लिये सूर्य— 'स्वर्भानु' नाम धारण करता है, ऐसा राहु नामक ग्रह,* **६९५ शेषाङ्गस्थापितामरः**—जिसके शेष अंगोंमें अमरत्वकी स्थापना हुई है, ऐसा राहु, **६९६ विश्वार्थाशेषकृत्**—संसारके सम्पूर्ण मनोरथोंको सिद्ध करनेवाले भगवान्, **६९७ राहुशिरश्छेत्ता**— राहुका मस्तक काटनेवाले, **६९८ अक्षताकृतिः**—स्वयं किसी प्रकारकी भी क्षतिसे रहित शरीरवाले॥ २४३॥

वाजपेयादिनामाग्निर्वेदधर्मपरायणः।
श्वेतद्वीपपतिः सांख्यप्रणेता सर्वसिद्धिराट्॥ २४४॥

६९९ वाजपेयादिनामाग्निः—वाजपेय आदि नाम धारण करनेवाले अग्निदेवता, **७०० वेदधर्मपरायणः**—वेदोक्त धर्मके परम आश्रय, **७०१ श्वेतद्वीपपतिः**—श्वेतद्वीपके स्वामी, **७०२ सांख्यप्रणेता**—सांख्यशास्त्रकी रचना करनेवाले कपिलस्वरूप, **७०३ सर्वसिद्धिराट्**—सम्पूर्ण सिद्धियोंके राजा॥ २४४॥

विश्वप्रकाशितज्ञानयोगमोहतमिस्रहा।
देवहूत्यात्मजः सिद्धः कपिलः कर्दमात्मजः॥ २४५॥

७०४ विश्वप्रकाशितज्ञानयोगमोहतमिस्रहा—संसारमें ज्ञानयोगका प्रकाश करके मोहरूपी अन्धकारका नाश करनेवाले, **७०५ देवहूत्यात्मजः**—मनुकुमारी देवहूतिके पुत्र, **७०६ सिद्धः**—सब प्रकारकी सिद्धियोंसे परिपूर्ण, **७०७ कपिलः**—कपिल नामसे प्रसिद्ध भगवान्के अवतार, **७०८ कर्दमात्मजः**—कर्दम ऋषिके सुयोग्य पुत्र॥ २४५॥

योगस्वामी ध्यानभङ्गसगरात्मजभस्मकृत्।
धर्मो वृषेन्द्रः सुरभीपतिः शुद्धात्मभावितः॥ २४६॥

७०९ योगस्वामी—सांख्ययोगके स्वामी, **७१० ध्यानभङ्गसगरात्मजभस्मकृत्**—ध्यान भंग होनेसे सगर-पुत्रोंको भस्म कर डालनेवाले, **७११ धर्मः**—जगत्को धारण करनेवाले धर्मके स्वरूप, **७१२ वृषेन्द्रः**—श्रेष्ठ वृषभकी आकृति धारण करनेवाले, **७१३ सुरभीपतिः**—सुरभी गौके स्वामी, **७१४ शुद्धात्मभावितः**—शुद्ध अन्तःकरणमें चिन्तन किये जानेवाले॥ २४६॥

शम्भुस्त्रिपुरदाहैकस्थैर्यविश्वरथोद्वहः।
भक्तशम्भुजितो दैत्यामृतवापीसमस्तपः॥ २४७॥

७१५ शम्भुः—कल्याणकी उत्पत्तिके स्थानभूत, शिवस्वरूप, **७१६ त्रिपुरदाहैकस्थैर्यविश्वरथोद्वहः**—त्रिपुरका दाह करनेके समय एकमात्र स्थिर रहनेवाले और विश्वमय रथका वहन करनेवाले, **७१७ भक्तशम्भुजितः**—अपने भक्त शिवके द्वारा पराजित,

* राहुका एक नाम 'स्वर्भानु' भी है; इस प्रकार कहनेके लिये तो वह भानु है, पर वास्तवमें अन्धकाररूप है। प्रत्येक ग्रह भगवान्की दिव्य विभूति है, इसलिये वह भी भगवत्स्वरूप ही है।

७१८ दैत्यामृतवापीसमस्तपः—त्रिपुरनिवासी दैत्योंकी अमृतसे भरी हुई सारी बावलीको गोरूपसे पी जानेवाले॥ २४७॥

महाप्रलयविश्वैकनिलयोऽखिलनागराट्।
शेषदेवः सहस्राक्षः सहस्रास्यशिरोभुजः॥ २४८॥

७१९ महाप्रलयविश्वैकनिलयः—महाप्रलयके समय सम्पूर्ण विश्वके एकमात्र निवासस्थान, **७२० अखिलनागराट्**—सम्पूर्ण नागोंके राजा शेषनाग-स्वरूप, **७२१ शेषदेवः**—प्रलयकालमें भी शेष रहनेवाले देवता, **७२२ सहस्राक्षः**—सहस्रों नेत्रवाले, **७२३ सहस्रास्यशिरोभुजः**—सहस्रों मुख, मस्तक और भुजाओंवाले॥ २४८॥

फणामणिकणाकारयोजिताच्छाम्बुदक्षितिः।
कालाग्निरुद्रजनको मुशलास्त्रो हलायुधः॥ २४९॥

७२४ फणामणिकणाकारयोजिताच्छाम्बुद-क्षितिः—फनोंकी मणियोंके कणोंके आकारसे पृथ्वीपर श्वेत बादलोंकी घटा-सी छा देनेवाले, **७२५ कालाग्निरुद्रजनकः**—भयंकर कालाग्नि एवं संहारमूर्ति रुद्रको प्रकट करनेवाले, **७२६ मुशलास्त्रः**—मुशलको अस्त्ररूपमें ग्रहण करनेवाले शेषावतार बलरामरूप, **७२७ हलायुधः**—हलरूपी आयुधवाले॥ २४९॥

नीलाम्बरो वारुणीशो मनोवाक्कायदोषहा।
असंतोषदृष्टिमात्रपातितैकदशाननः॥ २५०॥

७२८ नीलाम्बरः—नीलवस्त्रधारी, **७२९ वारुणीशः**—वारुणीके स्वामी, **७३० मनोवाक्काय-दोषहा**—मन, वाणी और शरीरके दोष दूर करनेवाले, **७३१ असंतोषदृष्टिमात्रपातितैकदशाननः**— असंतोषपूर्ण दृष्टि डालनेमात्रसे ही पातालमें गये हुए रावणको गिरा देनेवाले शेषनागरूप॥ २५०॥

बिलसंयमनो घोरो रौहिणेयः प्रलम्बहा।
मुष्टिकघ्नो द्विविदहा कालिन्दीकर्षणो बलः॥ २५१॥

७३२ बिलसंयमनः—सातों पाताललोकोंको काबूमें रखनेवाले, **७३३ घोरः**—प्रलयके समय भयंकर आकृति धारण करनेवाले, **७३४ रौहिणेयः**—रोहिणीके पुत्र, **७३५ प्रलम्बहा**—प्रलम्ब दानवको मारनेवाले, **७३६ मुष्टिकघ्नः**—मुष्टिकके प्राण लेनेवाले, **७३७ द्विविदहा**—द्विविद नामक वीर वानरका वध करनेवाले, **७३८ कालिन्दीकर्षणः**— यमुनाकी धाराको खींचनेवाले, **७३९ बलः**—बलके मूर्तिमान् स्वरूप॥ २५१॥

रेवतीरमणः पूर्वभक्तिखेदाच्युताग्रजः।
देवकीवसुदेवाह्वकश्यपादितिनन्दनः॥ २५२॥

७४० रेवतीरमणः—अपनी पत्नी रेवतीके साथ रमण करनेवाले, **७४१ पूर्वभक्तिखेदाच्युताग्रजः**—पूर्वजन्ममें लक्ष्मणरूपसे भगवान्‌की निरन्तर सेवा करते-करते थके रहनेके कारण दूसरे जन्ममें भगवान्‌की इच्छासे उनके ज्येष्ठ बन्धुके रूपमें अवतार लेनेवाले बलरामरूप, **७४२ देवकीवसुदेवाह्वकश्यपादिति-नन्दनः**—वसुदेव और देवकीके नामसे प्रसिद्ध महर्षि कश्यप और अदितिको पुत्ररूपसे आनन्द देनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण॥ २५२॥

वार्ष्णेयः सात्वतां श्रेष्ठः शौरिर्यदुकुलेश्वरः।
नराकृतिः परं ब्रह्म सव्यसाचिवरप्रदः॥ २५३॥

७४३ वार्ष्णेयः—वृष्णिकुलमें उत्पन्न, **७४४ सात्वतां श्रेष्ठः**—सात्वतकुलमें सर्वश्रेष्ठ, **७४५ शौरिः**—शूरसेनके कुलमें अवतीर्ण, **७४६ यदुकुलेश्वरः**—यदुकुलके स्वामी, **७४७ नराकृतिः**—मानव-शरीर धारण करनेवाले श्रीकृष्ण, **७४८ परं ब्रह्म**—वस्तुतः परमात्मा, **७४९ सव्यसाचिवरप्रदः**—अर्जुनको वर देनेवाले॥ २५३॥

ब्रह्मादिकाम्यलालित्यजगदाश्चर्यशैशवः।
पूतनाघ्नः शकटभिद्यमलार्जुनभञ्जकः॥ २५४॥

७५० ब्रह्मादिकाम्यलालित्यजगदाश्चर्यशैशवः—ब्रह्मा आदि भी जिन्हें देखनेकी इच्छा रखते हैं तथा जो सम्पूर्ण जगत्‌को आश्चर्यमें डालनेवाली हैं, ऐसी ललित बाललीलाओंसे युक्त श्रीकृष्ण, **७५१ पूतनाघ्नः**—पूतनाके प्राण लेनेवाले, **७५२ शकटभित्**—लातके हलके आघातसे छकड़ेको चकनाचूर कर देनेवाले, **७५३ यमलार्जुनभञ्जकः**— यमलार्जुन नामसे प्रसिद्ध दो जुड़वें वृक्षोंको तोड़ डालनेवाले॥ २५४॥

वातासुरारिः केशिघ्नो धेनुकारिर्गवीश्वरः।
दामोदरो गोपदेवो यशोदानन्ददायकः॥ २५५॥

७५४ वातासुरारिः—तृणावर्तके शत्रु, **७५५ केशिघ्नः**—केशी नामक दैत्यको मारनेवाले, **७५६ धेनुकारिः**—धेनुकासुरके शत्रु, **७५७ गवीश्वरः**—गौओंके स्वामी, **७५८ दामोदरः**—उदरमें यशोदा मैयाद्वारा रस्सी बाँधी जानेके कारण दामोदर नाम धारण करनेवाले, **७५९ गोपदेवः**—ग्वालोंके इष्टदेव, **७६० यशोदानन्ददायकः**—यशोदा मैयाको आनन्द देनेवाले॥ २५५॥

कालीयमर्दनः सर्वगोपगोपीजनप्रियः।
लीलागोवर्धनधरो गोविन्दो गोकुलोत्सवः॥ २५६॥

७६१ कालीयमर्दनः—कालिय नागका मान-मर्दन करनेवाले, **७६२ सर्वगोपगोपीजनप्रियः**—समस्त गोपों और गोपियोंके प्रियतम, **७६३ लीलागोवर्धनधरः**— अनायास ही गोवर्धनपर्वतको अँगुलीपर उठा लेनेवाले, **७६४ गोविन्दः**—इन्द्रकी वर्षासे गौओंकी रक्षा करनेके कारण कामधेनुद्वारा 'गोविन्द' पदपर अभिषिक्त भगवान् श्रीकृष्ण, **७६५ गोकुलोत्सवः**—गोकुलनिवासियोंको निरन्तर आनन्द प्रदान करनेके कारण उत्सवरूप॥ २५६॥

अरिष्टमथनः कामोन्मत्तगोपीविमुक्तिदः।
सद्यःकुवलयापीडघाती चाणूरमर्दनः॥ २५७॥

७६६ अरिष्टमथनः—अरिष्टासुरको नष्ट करनेवाले, **७६७ कामोन्मत्तगोपीविमुक्तिदः**— प्रेमविभोर गोपीको मुक्ति प्रदान करनेवाले, **७६८ सद्यःकुवलयापीडघाती**—कुवलयापीड नामक हाथीको शीघ्र मार गिरानेवाले, **७६९ चाणूरमर्दनः**—चाणूर नामक मल्लको कुचल डालनेवाले॥ २५७॥

कंसारिरुग्रसेनादिराज्यव्यापारितामरः।
सुधर्माङ्कितभूलोको जरासंधबलान्तकः॥ २५८॥

७७० कंसारिः—मथुराके राजा कंसके शत्रु, **७७१ उग्रसेनादिराज्यव्यापारितामरः**—राज्य-सम्बन्धी कार्योंमें उग्रसेन आदिके रूपमें देवताओंको ही नियुक्त करनेवाले, **७७२ सुधर्माङ्कितभूलोकः**—देवोचित सुधर्मा नामक सभासे भूलोकको भी सुशोभित करनेवाले, **७७३ जरासंधबलान्तकः**—जरासंधकी सेनाका संहार करनेवाले॥ २५८॥

त्यक्तभग्नजरासंधो भीमसेनयशःप्रदः।
सांदीपनिमृतापत्यदाता कालान्तकादिजित्॥ २५९॥

७७४ त्यक्तभग्नजरासंधः—युद्धसे भगे हुए जरासंधको जीवित छोड़ देनेवाले, **७७५ भीमसेन-यशःप्रदः**—युक्तिसे जरासंधका वध कराकर भीमसेनको यश प्रदान करनेवाले, **७७६ सांदीपनिमृतापत्यदाता**—अपने विद्यागुरु सांदीपनिके मरे हुए पुत्रको पुनः ला देनेवाले, **७७७ कालान्तकादिजित्**— काल और अन्तक आदिपर विजय पानेवाले॥ २५९॥

समस्तनारकत्राता सर्वभूपतिकोटिजित्।
रुक्मिणीरमणो रुक्मिशासनो नरकान्तकः॥ २६०॥

७७८ समस्तनारकत्राता—शरणमें आनेपर नरकमें पड़े हुए समस्त प्राणियोंका भी उद्धार करनेवाले, **७७९ सर्वभूपतिकोटिजित्**—रुक्मिणीके विवाहमें करोड़ोंकी संख्यामें आये हुए समस्त राजाओंको परास्त करनेवाले, **७८० रुक्मिणीरमणः**—रुक्मिणीके साथ रमण करनेवाले, **७८१ रुक्मिशासनः**—रुक्मीको दण्ड देनेवाले, **७८२ नरकान्तकः**—नरकासुरका विनाश करनेवाले॥ २६०॥

समस्तसुन्दरीकान्तो मुरारिर्गरुडध्वजः।
एकाकिजितरुद्रार्कमरुदाद्यखिलेश्वरः॥ २६१॥

७८३ समस्तसुन्दरीकान्तः—समस्त सुन्दरियाँ जिन्हें पानेकी इच्छा करती हैं, **७८४ मुरारिः**—मुर नामक दानवके शत्रु, **७८५ गरुडध्वजः**—गरुड़के चिह्नसे चिह्नित ध्वजावाले, **७८६ एकाकिजितरुद्रार्क-मरुदाद्यखिलेश्वरः**— अकेले ही रुद्र, सूर्य और वायु आदि समस्त लोकपालोंको जीतनेवाले॥ २६१॥

देवेन्द्रदर्पहा कल्पद्रुमालङ्कृतभूतलः।
बाणबाहुसहस्रच्छिन्नन्द्यादिगणकोटिजित्॥ २६२॥

७८७ देवेन्द्रदर्पहा—देवराज इन्द्रका अभिमान चूर्ण करनेवाले, **७८८ कल्पद्रुमालङ्कृतभूतलः**—कल्पवृक्षको स्वर्गसे लाकर उसके द्वारा भूतलकी शोभा

बढ़ानेवाले, **७८९ बाणबाहुसहस्रच्छित्**—बाणासुरकी सहस्र भुजाओंका उच्छेद करनेवाले, **७९० नन्द्यादिगणकोटिजित्**—नन्दी आदि करोड़ों शिवगणोंको परास्त करनेवाले॥ २६२॥

लीलाजितमहादेवो महादेवैकपूजितः।
इन्द्रार्थार्जुननिर्भङ्गजयदः पाण्डवैकधृक्॥ २६३॥

७९१ लीलाजितमहादेवः—अनायास ही महादेवजीपर विजय पानेवाले, **७९२ महादेवैकपूजितः**—महादेवजीके द्वारा एकमात्र पूजित, **७९३ इन्द्रार्थार्जुननिर्भङ्गजयदः**—इन्द्रकी प्रसन्नताके लिये अर्जुनको अखण्ड विजय प्रदान करनेवाले, **७९४ पाण्डवैकधृक्**—पाण्डवोंके एकमात्र रक्षक॥ २६३॥

काशिराजशिरश्छेत्ता रुद्रशक्त्येकमर्दनः।
विश्वेश्वरप्रसादाढ्यः काशिराजसुतार्दनः॥ २६४॥

७९५ काशिराजशिरश्छेत्ता—काशिराजका मस्तक काट देनेवाले, **७९६ रुद्रशक्त्येकमर्दनः**— रुद्रकी शक्तिके एकमात्र मर्दन करनेवाले, **७९७ विश्वेश्वरप्रसादाढ्यः**—काशीविश्वनाथकी प्रसन्नता प्राप्त करनेवाले, **७९८ काशिराजसुतार्दनः**— काशीनरेशके पुत्रको पीड़ा देनेवाले॥ २६४॥

शम्भुप्रतिज्ञाविध्वंसीकाशीनिर्दग्धनायकः।
काशीशगणकोटिघ्नो लोकशिक्षाद्विजार्चकः॥ २६५॥

७९९ शम्भुप्रतिज्ञाविध्वंसी—शंकरजीकी प्रतिज्ञा तोड़नेवाले, **८०० काशीनिर्दग्धनायकः**— जिन्होंने काशीको जलाकर अनाथ-सी कर दिया था, वे भगवान् श्रीकृष्ण, **८०१ काशीशगणकोटिघ्नः**—काशीपति विश्वेश्वरके करोड़ों गणोंका नाश करनेवाले, **८०२ लोकशिक्षाद्विजार्चकः**—लोकको शिक्षा देनेके लिये सुदामा आदि ब्राह्मणोंकी पूजा करनेवाले॥ २६५॥

शिवतीव्रतपोवश्यः पुराशिववरप्रदः।
शङ्करैकप्रतिष्ठाधृक्स्वांशशङ्करपूजकः॥ २६६॥

८०३ शिवतीव्रतपोवश्यः—शिवजीकी तीव्र तपस्याके वशीभूत होनेवाले, **८०४ पुराशिववरप्रदः**—पूर्वकालमें शिवजीको वरदान देनेवाले, **८०५ शङ्करैकप्रतिष्ठाधृक्**—भगवान् शंकरकी एकमात्र प्रतिष्ठा करनेवाले, **८०६—स्वांशशङ्करपूजकः**— अपने अंशभूत शंकरकी पूजा करनेवाले॥ २६६॥

शिवकन्याव्रतपतिः कृष्णरूपशिवारिहा।
महालक्ष्मीवपुर्गौरीत्राता वैदलवृत्रहा॥ २६७॥

८०७ शिवकन्याव्रतपतिः—शिवकी कन्याके व्रतकी रक्षा करनेवाले, **८०८ कृष्णरूपशिवारिहा**—कृष्णरूपसे शिवके शत्रु (भस्मासुर)-का संहार करनेवाले, **८०९ महालक्ष्मीवपुर्गौरीत्राता**— महालक्ष्मीका शरीर धारण करनेवाली पार्वतीके रक्षक, **८१० वैदलवृत्रहा**—वैदलवृत्र नामक दैत्यका वध करनेवाले॥ २६७॥

स्वधाममुचुकुन्दैकनिष्कालयवनेष्टकृत्।
यमुनापतिरानीतपरिलीनद्विजात्मजः॥ २६८॥

८११ स्वधाममुचुकुन्दैकनिष्कालयवनेष्टकृत्— अपने तेजःस्वरूप राजा मुचुकुन्दके द्वारा केवल कालयवनका नाश कराकर उन्हें अभीष्ट वरदान देनेवाले, **८१२ यमुनापतिः**—सूर्यकन्या यमुनाको पत्नीरूपसे ग्रहण करनेवाले, **८१३ आनीतपरिलीनद्विजात्मजः**— मरे हुए ब्राह्मणपुत्रोंको पुनः लानेवाले॥ २६८॥

श्रीदामरङ्कभक्तार्थभूम्यानीतेन्द्रवैभवः।
दुर्वृत्तशिशुपालैकमुक्तिदो द्वारकेश्वरः॥ २६९॥

८१४ श्रीदामरङ्कभक्तार्थभूम्यानीतेन्द्रवैभवः—अपने दीन भक्त श्रीदामा (सुदामा)-के लिये पृथ्वीपर इन्द्रके समान वैभव उपस्थित करनेवाले, **८१५ दुर्वृत्तशिशुपालैकमुक्तिदः**—दुराचारी शिशुपालको एकमात्र मोक्ष प्रदान करनेवाले, **८१६ द्वारकेश्वरः**—द्वारकाके स्वामी॥ २६९॥

आचाण्डालादिकप्राप्यद्वारकानिधिकोटिकृत्।
अक्रूरोद्धवमुख्यैकभक्तः स्वच्छन्दमुक्तिदः॥ २७०॥

८१७ आचाण्डालादिकप्राप्यद्वारकानिधिकोटिकृत्—द्वारकामें चाण्डाल आदितकके लिये सुलभ होनेवाली करोड़ों निधियोंका संग्रह करनेवाले, **८१८ अक्रूरोद्धवमुख्यैकभक्तः**— अक्रूर और उद्धव आदि प्रधान भक्तोंके साथ रहनेवाले, **८१९ स्वच्छन्द-**

मुक्तिदः—इच्छानुसार मुक्ति देनेवाले॥ २७०॥

सबालस्त्रीजलक्रीडामृतवापीकृतार्णवः।
ब्रह्मास्त्रदग्धगर्भस्थपरीक्षिज्जीवनैककृत्॥ २७१॥

८२० सबालस्त्रीजलक्रीडामृतवापीकृतार्णवः—बालकों और स्त्रियोंके जल-विहार करनेके लिये समुद्रको अमृतमयी बावलीके समान बना देनेवाले, **८२१ ब्रह्मास्त्रदग्धगर्भस्थपरीक्षिज्जीवनैककृत्**—अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे दग्ध हुए गर्भस्थ परीक्षित्‌को एकमात्र जीवन-दान देनेवाले॥ २७१॥

परिलीनद्विजसुतानेतार्जुनमदापहः।
गूढमुद्राकृतिग्रस्तभीष्माद्यखिलकौरवः॥ २७२॥

८२२ परिलीनद्विजसुतानेता—नष्ट हुए ब्राह्मणकुमारोंको पुनः ले आनेवाले, **८२३ अर्जुनमदापहः**—अर्जुनका घमंड दूर करनेवाले, **८२४ गूढमुद्राकृतिग्रस्तभीष्माद्यखिलकौरवः**— गम्भीर मुद्रावाली आकृति बनाकर भीष्म आदि समस्त कौरवोंको कालका ग्रास बनानेवाले॥ २७२॥

यथार्थखण्डिताशेषदिव्यास्त्रपार्थमोहहृत्।
गर्भशापच्छलध्वस्तयादवोर्वीभरापहः॥ २७३॥

८२५ यथार्थखण्डिताशेषदिव्यास्त्रपार्थमोहहृत्—समस्त दिव्यास्त्रोंका भलीभाँति खण्डन करनेवाले अर्जुनके मोहको हरनेवाले, **८२६ गर्भशापच्छलध्वस्तयादवोर्वीभरापहः**— स्त्रीरूप धारण करके गये हुए साम्बके गर्भको मुनियोंद्वारा शाप दिलानेके बहाने पृथ्वीके भारभूत समस्त यादवोंका संहार करानेवाले॥ २७३॥

जराव्याधारिगतिदः स्मृतमात्राखिलेष्टदः।
कामदेवो रतिपतिर्मन्मथः शम्बरान्तकः॥ २७४॥

८२७ जराव्याधारिगतिदः—शत्रुका काम करनेवाले जरा नामक व्याधको उत्तम गति प्रदान करनेवाले, **८२८ स्मृतमात्राखिलेष्टदः**—स्मरण करनेमात्रसे सम्पूर्ण अभीष्ट पदार्थोंको देनेवाले, **८२९ कामदेवः**—कामदेवस्वरूप, **८३० रतिपतिः**—रतिके स्वामी, **८३१ मन्मथः**—विचारशक्तिका नाश करनेवाले कामदेवरूप, **८३२ शम्बरान्तकः**—शम्बरासुरके प्राणहन्ता॥ २७४॥

अनङ्गो जितगौरीशो रतिकान्तः सदेप्सितः।
पुष्पेषुर्विश्वविजयी स्मरः कामेश्वरीप्रियः॥ २७५॥

८३३ अनङ्गः—अंगरहित, **८३४ जितगौरीशः**—गौरीपति शंकरको भी जीतनेवाले, **८३५ रतिकान्तः**—रतिके प्रियतम, **८३६ सदेप्सितः**—कामी पुरुषोंको सदा अभीष्ट, **८३७ पुष्पेषुः**—पुष्पमय बाणवाले, **८३८ विश्वविजयी**— सम्पूर्ण जगत्‌पर विजय पानेवाले, **८३९ स्मरः**—विषयोंके स्मरणमात्रसे मनमें प्रकट हो जानेवाले, **८४० कामेश्वरीप्रियः**—कामेश्वरी—रतिके प्रेमी॥ २७५॥

ऊषापतिर्विश्वकेतुर्विश्वतृप्तोऽधिपूरुषः।
चतुरात्मा चतुर्व्यूहश्चतुर्युगविधायकः॥ २७६॥

८४१ ऊषापतिः—बाणासुरकी कन्या ऊषाके स्वामी अनिरुद्धरूप, **८४२ विश्वकेतुः**—विश्वमें विजयपताका फहरानेवाले, **८४३ विश्वतृप्तः**—सब ओरसे तृप्त, **८४४ अधिपूरुषः**—अन्तर्यामी साक्षी चेतन, **८४५ चतुरात्मा**—मन, बुद्धि, अहंकार और चित्तरूप चार अन्तःकरणवाले, **८४६ चतुर्व्यूहः**—वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—इन चार व्यूहोंसे युक्त, **८४७ चतुर्युगविधायकः**—सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग—इन चार युगोंका विधान करनेवाले॥ २७६॥

चतुर्वेदैकविश्वात्मा सर्वोत्कृष्टांशकोटिसूः।
आश्रमात्मा पुराणर्षिर्व्यासः शाखासहस्रकृत्॥ २७७॥

८४८ चतुर्वेदैकविश्वात्मा—चारों वेदोंद्वारा प्रतिपादित एकमात्र सम्पूर्ण विश्वके आत्मा, **८४९ सर्वोत्कृष्टांशकोटिसूः**—सबसे श्रेष्ठ कोटि-कोटि अंशोंको जन्म देनेवाले, **८५० आश्रमात्मा**—आश्रमधर्मरूप, **८५१ पुराणर्षिः**—पुराणोंके प्रकाशक ऋषि, **८५२ व्यासः**—वेदोंका विस्तार करनेवाले, **८५३ शाखासहस्रकृत्**—सामवेदकी सहस्र शाखाओंका सम्पादन करनेवाले॥ २७७॥

महाभारतनिर्माता कवीन्द्रो बादरायणः।
कृष्णद्वैपायनः सर्वपुरुषार्थैकबोधकः॥ २७८॥

८५४ महाभारतनिर्माता—महाभारत ग्रन्थके रचयिता, **८५५ कवीन्द्रः**—कवियोंके राजा, **८५६ बादरायणः**—बदरी-वनमें उत्पन्न भगवान् वेदव्यासरूप, **८५७ कृष्णद्वैपायनः**—द्वीपमें उत्पन्न श्यामवर्णवाले व्यासजी, **८५८ सर्वपुरुषार्थैकबोधकः**—समस्त पुरुषार्थोंके एकमात्र बोध करानेवाले॥ २७८॥

वेदान्तकर्ता ब्रह्मैकव्यञ्जकः पुरुवंशकृत्।
बुद्धो ध्यानजिताशेषदेवदेवीजगत्प्रियः॥ २७९॥

८५९ वेदान्तकर्ता—वेदान्तसूत्रोंके रचयिता, **८६० ब्रह्मैकव्यञ्जकः**—एक अद्वितीय ब्रह्मकी अभिव्यक्ति करानेवाले, **८६१ पुरुवंशकृत्**— पुरुवंशकी परम्परा सुरक्षित रखनेवाले, **८६२ बुद्धः**—भगवान्‌के अवतार बुद्धदेव, **८६३ ध्यानजिताशेषदेवदेवीजगत्प्रियः**—ध्यानके द्वारा समस्त देव-देवियोंको जीतकर जगत्‌के प्रियतम बननेवाले॥ २७९॥

निरायुधो जगज्जैत्रः श्रीधनो दुष्टमोहनः।
दैत्यवेदबहिष्कर्ता वेदार्थश्रुतिगोपकः॥ २८०॥

८६४ निरायुधः—अस्त्र-शस्त्रोंका त्याग करनेवाले, **८६५ जगज्जैत्रः**—सम्पूर्ण जगत्‌को वशमें करनेवाले, **८६६ श्रीधनः**—शोभाके धनी, **८६७ दुष्टमोहनः**—दुष्टोंको मोहित करनेवाले, **८६८ दैत्यवेदबहिष्कर्ता**—दैत्योंको वेदसे बहिष्कृत करनेवाले, **८६९ वेदार्थश्रुतिगोपकः**—वेदोंके अर्थ और श्रुतियोंको गुप्त रखनेवाले॥ २८०॥

शौद्धोदनिर्दृष्टदिष्टः सुखदः सदसस्पतिः।
यथायोग्याखिलकृपः सर्वशून्योऽखिलेष्टदः॥ २८१॥

८७० शौद्धोदनिः—कपिलवस्तुके राजा शुद्धोदनके पुत्र, **८७१ दृष्टदिष्टः**—दैवके विधानको प्रत्यक्ष देखनेवाले, **८७२ सुखदः**—सबको सुख देनेवाले, **८७३ सदसस्पतिः**—सत्पुरुषोंकी सभाके अध्यक्ष, **८७४ यथायोग्याखिलकृपः**—यथायोग्य सम्पूर्ण जीवोंपर कृपा रखनेवाले, **८७५ सर्वशून्यः**—सम्पूर्ण पदार्थोंको शून्यरूप ही माननेवाले, **८७६ अखिलेष्टदः**—सबको सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुएँ देनेवाले॥ २८१॥

चतुष्कोटिपृथक्तत्त्वप्रज्ञापारमितेश्वरः।
पाखण्डवेदमार्गेशः पाखण्डश्रुतिगोपकः॥ २८२॥

८७७ चतुष्कोटिपृथक्—स्थावर आदि चार श्रेणियोंमें विभक्त हुई सृष्टिसे पृथक्, **८७८ तत्त्व-प्रज्ञापारमितेश्वरः**—तत्त्वभूत प्रज्ञापारमिता[1] (बुद्धिकी पराकाष्ठा)-के ईश्वर, **८७९ पाखण्डवेदमार्गेशः**—पाखण्ड-वेदमार्गके स्वामी, **८८० पाखण्डश्रुतिगोपकः**—पाखण्डके द्वारा प्रतिपादित वेदकी श्रुतियोंके रक्षक॥ २८२॥

कल्की विष्णुयशःपुत्रः कलिकालविलोपकः।
समस्तम्लेच्छदुष्टघ्नः सर्वशिष्टद्विजातिकृत्॥ २८३॥

८८१ कल्की—कलियुगके अन्तमें होनेवाला भगवान्‌का एक अवतार, **८८२ विष्णुयशःपुत्रः**—श्रीविष्णुयशाके पुत्र भगवान् कल्कि, **८८३ कलिकाल-विलोपकः**—कलियुगका लोप करके सत्ययुगका प्रवेश करानेवाले, **८८४ समस्तम्लेच्छदुष्टघ्नः**—सम्पूर्ण म्लेच्छों और दुष्टोंका वध करनेवाले, **८८५ सर्वशिष्टद्विजातिकृत्**—सबको श्रेष्ठ द्विज बनानेवाले अथवा समस्त साधु द्विजातियोंके रक्षक॥ २८३॥

सत्यप्रवर्तको देवद्विजदीर्घक्षुधापहः।
अश्ववारादिरेकान्तपृथ्वीदुर्गतिनाशनः॥ २८४॥

८८६ सत्यप्रवर्तकः—सत्ययुगकी प्रवृत्ति करानेवाले, **८८७ देवद्विजदीर्घक्षुधापहः**—[यज्ञ और ब्राह्मणभोजन आदिका प्रचार करके] देवताओं और ब्राह्मणोंकी बढ़ी हुई भूखको शान्त करनेवाले, **८८८ अश्ववारादिः**—घुड़सवारोंमें श्रेष्ठ, **८८९ एकान्तपृथ्वीदुर्गतिनाशनः**—पृथ्वीकी दुर्गतिका पूर्णतया नाश करनेवाले॥ २८४॥

सद्यःक्ष्मानन्तलक्ष्मीकृन्नष्टनिःशेषधर्मवित्।
अनन्तस्वर्णयागैकहेमपूर्णाखिलद्विजः॥ २८५॥

---

[1] १-दस पारमिताओंमेंसे एकका नाम प्रज्ञापारमिता है।

८९० सद्यःक्ष्मानन्तलक्ष्मीकृत्—पृथ्वीको शीघ्र ही अनन्त लक्ष्मीसे परिपूर्ण करनेवाले, **८९१ नष्टनिःशेषधर्मवित्**—नष्ट हुए सम्पूर्ण धर्मोंके ज्ञाता, **८९२ अनन्तस्वर्णयागैकहेमपूर्णाखिलद्विजः**— अनन्त सुवर्णकी दक्षिणाओंसे युक्त यज्ञोंका अनुष्ठान कराकर सम्पूर्ण ब्राह्मणोंको स्वर्णसे सम्पन्न करनेवाले॥ २८५॥

असाध्यैकजगच्छास्ता विश्वबन्धो जयध्वजः।
आत्मतत्त्वाधिपः कर्तृश्रेष्ठो विधिरुमापतिः॥ २८६॥

८९३ असाध्यैकजगच्छास्ता—किसीके वशमें न होनेवाले सम्पूर्ण जगत्‌के एकमात्र शासक, **८९४ विश्वबन्धः**—समस्त विश्वको अपनी मायासे बाँध रखनेवाले, **८९५ जयध्वजः**—सर्वत्र अपनी विजयपताका फहरानेवाले, **८९६ आत्मतत्त्वाधिपः**—आत्मतत्त्वके स्वामी, **८९७ कर्तृश्रेष्ठः**—कर्ताओंमें श्रेष्ठ, **८९८ विधिः**—शास्त्रीय विधिरूप, **८९९ उमापतिः**—उमाके स्वामी॥ २८६॥

भर्तृश्रेष्ठः प्रजेशाग्र्यो मरीचिर्जनकाग्रणीः।
कश्यपो देवराडिन्द्रः प्रह्लादो दैत्यराट् शशी॥ २८७॥

९०० भर्तृश्रेष्ठः—भरण-पोषण करनेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ, **९०१ प्रजेशाग्र्यः**—प्रजापतियोंमें अग्रगण्य, **९०२ मरीचिः**—मरीचि नामक प्रजापतिरूप, **९०३ जनकाग्रणीः**—जन्म देनेवाले प्रजापतियोंमें श्रेष्ठ, **९०४ कश्यपः**—सर्वद्रष्टा कश्यपमुनिस्वरूप, **९०५ देवराट्**—देवताओंके राजा, **९०६ इन्द्रः**—परम ऐश्वर्यशाली इन्द्रस्वरूप, **९०७ प्रह्लादः**—भगवद्भक्तिके प्रभावसे अत्यन्त आह्लादपूर्ण रानी कयाधूके पुत्ररूप, **९०८ दैत्यराट्**—दैत्योंके स्वामी प्रह्लादरूप, **९०९ शशी**— खरगोशका चिह्न धारण करनेवाले चन्द्रमारूप॥ २८७॥

नक्षत्रेशो रविस्तेजःश्रेष्ठः शुक्रः कवीश्वरः।
महर्षिराड्भृगुर्विष्णुरादित्येशो बलिस्वराट्॥ २८८॥

९१० नक्षत्रेशः—नक्षत्रोंके स्वामी चन्द्रमारूप, **९११ रविः**—सूर्यस्वरूप, **९१२ तेजःश्रेष्ठः**—तेजस्वियोंमें सबसे श्रेष्ठ, **९१३ शुक्रः**—भृगुके पुत्र शुक्राचार्यस्वरूप, **९१४ कवीश्वरः**—कवियोंके स्वामी, **९१५ महर्षिराट्**—महर्षियोंमें अधिक तेजस्वी, **९१६ भृगुः**—ब्रह्माजीके पुत्र प्रजापति भृगुस्वरूप, **९१७ विष्णुः**—बारह आदित्योंमेंसे एक, **९१८ आदित्येशः**—बारह आदित्योंके स्वामी, **९१९ बलिस्वराट्**—बलिको इन्द्र बनानेवाले॥ २८८॥

वायुर्वह्निः शुचिश्रेष्ठः शङ्करो रुद्रराड्गुरुः।
विद्वत्तमश्चित्ररथो गन्धर्वाग्र्योऽक्षरोत्तमः॥ २८९॥

९२० वायुः—वायुतत्त्वके अधिष्ठाता देवता, **९२१ वह्निः**—अग्नितत्त्वके अधिष्ठाता देवता, **९२२ शुचिश्रेष्ठः**—पवित्रोंमें श्रेष्ठ, **९२३ शङ्करः**—सबका कल्याण करनेवाले शिवरूप, **९२४ रुद्रराट्**—ग्यारह रुद्रोंके स्वामी, **९२५ गुरुः**—गुरु नामसे प्रसिद्ध अंगिरापुत्र बृहस्पतिरूप, **९२६ विद्वत्तमः**—सर्वश्रेष्ठ विद्वान्, **९२७ चित्ररथः**—विचित्र रथवाले गन्धर्वोंके राजा, **९२८ गन्धर्वाग्र्यः**—गन्धर्वोंमें अग्रगण्य चित्ररथरूप, **९२९ अक्षरोत्तमः**—अक्षरोंमें उत्तम 'ॐ'कारस्वरूप॥ २८९॥

वर्णादिरग्र्यस्त्री गौरी शक्त्यग्र्या श्रीश्च नारदः।
देवर्षिराट्पाण्डवाग्र्योऽर्जुनो वादः प्रवादराट्॥ २९०॥

९३० वर्णादिः—समस्त अक्षरोंके आदिभूत अकारस्वरूप, **९३१ अग्र्यस्त्री**—स्त्रियोंमें अग्रगण्य सती पार्वतीरूप, **९३२ गौरी**—गौरवर्णा उमारूप, **९३३ शक्त्यग्र्या**—भगवान्‌की अन्तरंगा शक्तियोंमें सर्वश्रेष्ठ भगवती लक्ष्मीरूप, **९३४ श्रीः**—भगवान् विष्णुका आश्रय लेनेवाली लक्ष्मी, **९३५ नारदः**—सबको ज्ञान देनेवाले देवर्षि नारदरूप, **९३६ देवर्षिराट्**—देवर्षियोंके राजा, **९३७ पाण्डवाग्र्यः**— पाण्डवोंमें अपने गुणोंके कारण श्रेष्ठ अर्जुनरूप, **९३८ अर्जुनः**—अर्जुन नामसे प्रसिद्ध कुन्तीके तृतीय पुत्र, **९३९ वादः**—तत्त्वनिर्णयके उद्देश्यसे शुद्ध नीयतके साथ किये जानेवाले शास्त्रार्थरूप, **९४० प्रवादराट्**—उत्तम वाद करनेवालोंमें श्रेष्ठ॥ २९०॥

पावनः पावनेशानो वरुणो यादसां पतिः।
गङ्गा तीर्थोत्तमो द्यूतं छलकाग्र्यं वरौषधम्॥ २९१॥

९४१ पावनः—सबको पवित्र करनेवाले, **९४२**

पावनेशानः—पावन वस्तुओंके ईश्वर, **९४३ वरुणः**—जलके अधिष्ठाता देवता वरुणरूप, **९४४ यादसां पतिः**—जल-जन्तुओंके स्वामी, **९४५ गङ्गा**—भगवान् विष्णुके चरणोंसे प्रकट हुई परम पवित्र नदी, जो भूतलमें भागीरथीके नामसे विख्यात एवं भगवद्विभूति है, **९४६ तीर्थोत्तमः**— तीर्थोंमें उत्तम गंगारूप, **९४७ द्यूतम्**—छल करनेवालोंमें द्यूतरूप भगवान्‌की विभूति, **९४८ छलकाग्र्यम्**—छलकी पराकाष्ठा, जूआरूप **९४९ वरौषधम्**—जीवनकी रक्षा करनेवाली श्रेष्ठ ओषधि—अन्नरूप॥ २९१ ॥

अन्नं सुदर्शनोऽस्त्राग्र्यं वज्रं प्रहरणोत्तमम्।
उच्चैःश्रवा वाजिराज ऐरावत इभेश्वरः॥ २९२॥

९५० अन्नम्—प्राणियोंकी क्षुधा दूर करनेवाला धरतीसे उत्पन्न खाद्य पदार्थ, **९५१ सुदर्शनः**—देखनेमें सुन्दर तेजस्वी अस्त्र—सुदर्शनचक्ररूप, **९५२ अस्त्राग्र्यम्**—समस्त अस्त्रोंमें श्रेष्ठ सुदर्शन, **९५३ वज्रम्**—इन्द्रके आयुधस्वरूप, **९५४ प्रहरणोत्तमम्**—प्रहार करनेयोग्य आयुधोंमें उत्तम वज्ररूप, **९५५ उच्चैःश्रवाः**—ऊँचे कानोंवाला दिव्य अश्व, जो समुद्रसे उत्पन्न हुआ था, **९५६ वाजिराजः**—घोड़ोंके राजा उच्चैःश्रवारूप, **९५७ ऐरावतः**—समुद्रसे उत्पन्न इन्द्रका वाहन ऐरावत नामक हाथी, **९५८ इभेश्वरः**—हाथियोंके राजा ऐरावतस्वरूप॥ २९२ ॥

अरुन्धत्येकपत्नीशो ह्यश्वत्थोऽशेषवृक्षराट्।
अध्यात्मविद्या विद्याग्र्यः प्रणवश्छन्दसां वरः॥ २९३॥

९५९ अरुन्धती—पतिव्रताओंमें श्रेष्ठ अरुन्धती-स्वरूप, **९६० एकपत्नीशः**—पतिव्रता अरुन्धतीके स्वामी महर्षि वसिष्ठरूप, **९६१ अश्वत्थः**—पीपलके वृक्षरूप, **९६२ अशेषवृक्षराट्**—सम्पूर्ण वृक्षोंके राजा अश्वत्थरूप, **९६३ अध्यात्मविद्या**—आत्मतत्त्वका बोध करानेवाली ब्रह्मविद्यास्वरूप, **९६४ विद्याग्र्यः**—विद्याओंमें अग्रगण्य प्रणवरूप, **९६५ प्रणवः**—ओंकाररूप, **९६६ छन्दसां वरः**—वेदोंका आदिभूत ओंकार, अथवा मन्त्रोंमें श्रेष्ठ प्रणव॥ २९३ ॥

मेरुर्गिरिपतिर्मार्गो मासाग्र्यः कालसत्तमः।
दिनाद्यात्मा पूर्वसिद्धः कपिलः साम वेदराट्॥ २९४॥

९६७ मेरुः—मेरु नामक दिव्य पर्वतरूप, **९६८ गिरिपतिः**—पर्वतोंके स्वामी, **९६९ मार्गः**—मार्गशीर्ष (अगहन)-का महीना, **९७० मासाग्र्यः**—मासोंमें अग्रगण्य मार्गशीर्षस्वरूप, **९७१ कालसत्तमः**—समयोंमें सर्वश्रेष्ठ—ब्रह्मवेला, **९७२ दिनाद्यात्मा**—दिन और रात्रि दोनोंका सम्मिलितरूप—प्रभात या ब्रह्मवेला, **९७३ पूर्वसिद्धः**—आदिसिद्ध महर्षि कपिलरूप, **९७४ कपिलः**—कपिलवर्णवाले एक मुनि, जो भगवान्‌के अवतार हैं, **९७५ साम**—सहस्र शाखाओंसे विशिष्ट सामवेद, **९७६ वेदराट्**—वेदोंके राजा सामवेदरूप॥ २९४॥

तार्क्ष्यः खगेन्द्र ऋत्वग्र्यो वसन्तः कल्पपादपः।
दातृश्रेष्ठः कामधेनुरार्तिघ्नाग्र्यः सुहृत्तमः॥ २९५॥

९७७ तार्क्ष्यः—तार्क्ष (कश्यप) ऋषिके पुत्र गरुड़रूप, **९७८ खगेन्द्रः**—पक्षियोंके राजा गरुड़, **९७९ ऋत्वग्र्यः**—ऋतुओंमें श्रेष्ठ वसन्तरूप, **९८० वसन्तः**—चैत्र और वैशाख मास, **९८१ कल्पपादपः**—कल्पवृक्षस्वरूप, **९८२ दातृश्रेष्ठः**— मनोवांछित वस्तु देनेवालोंमें श्रेष्ठ कल्पवृक्ष, **९८३ कामधेनुः**—अभीष्ट पूर्ण करनेवाली गोरूप, **९८४ आर्तिघ्नाग्र्यः**—पीड़ा दूर करनेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ, **९८५ सुहृत्तमः**—परम हितैषी॥ २९५ ॥

चिन्तामणिर्गुरुश्रेष्ठो माता हिततमः पिता।
सिंहो मृगेन्द्रो नागेन्द्रो वासुकिर्नृवरो नृपः॥ २९६॥

९८६ चिन्तामणिः—मनमें चिन्तन की हुई इच्छाको पूर्ण करनेवाली भगवत्स्वरूप दिव्य मणि, **९८७ गुरुश्रेष्ठः**—गुरुओंमें श्रेष्ठ मातारूप, **९८८ माता**—जन्म देनेवाली जननी, **९८९ हिततमः**— सबसे बड़े हितकारी, **९९० पिता**—जन्मदाता, **९९१ सिंहः**—मृगोंके राजा सिंहस्वरूप, **९९२ मृगेन्द्रः**—समस्त वनके जन्तुओंका स्वामी सिंहरूप, **९९३ नागेन्द्रः**—नागोंके राजा, **९९४ वासुकिः**—नागराज वासुकिरूप, **९९५ नृवरः**— मनुष्योंमें श्रेष्ठ, **९९६ नृपः**—मनुष्योंका पालन करनेवाले राजारूप॥ २९६ ॥

वर्णेशो ब्राह्मणश्चेतः करणाग्र्यं नमो नमः।
इत्येतद्वासुदेवस्य विष्णोर्नामसहस्रकम्॥ २९७॥*

९९७ वर्णेशः—समस्त वर्णोंके स्वामी ब्राह्मण-रूप, **९९८ ब्राह्मणः**—ब्राह्मण माता-पितासे उत्पन्न एवं ब्रह्मज्ञानी, **९९९ चेतः**— परमात्मचिन्तनकी योग्यतावाले चित्तरूप, **१००० करणाग्र्यम्**— इन्द्रियोंका प्रेरक होनेके कारण उनमें सबसे श्रेष्ठ चित्त—इस प्रकार ये सबके हृदयमें वास करनेवाले भगवान् विष्णुके सहस्र नाम हैं। इन सब नामोंको मेरा बारम्बार नमस्कार है॥ २९७॥

यह विष्णुसहस्रनामस्तोत्र समस्त अपराधोंको शान्त करनेवाला, परम उत्तम तथा भगवान्‌में भक्तिको बढ़ानेवाला है। इसका कभी नाश नहीं होता। ब्रह्मलोक आदिका तो यह सर्वस्व ही है। विष्णुलोकतक पहुँचनेके लिये यह अद्वितीय सीढ़ी है। इसके सेवनसे सब दुःखोंका नाश हो जाता है। यह सब सुखोंको देनेवाला तथा शीघ्र ही परम मोक्ष प्रदान करनेवाला है। काम, क्रोध आदि जितने भी अन्तःकरणके मल हैं, उन सबका इससे शोधन होता है। यह परम शान्तिदायक एवं महापातकी मनुष्योंको भी पवित्र बनानेवाला है। समस्त प्राणियोंको यह शीघ्र ही सब प्रकारके अभीष्ट फल दान करता है। समस्त विघ्नोंकी शान्ति और सम्पूर्ण अरिष्टोंका विनाश करनेवाला है। इसके सेवनसे भयंकर दुःख शान्त हो जाते हैं। दुःसह दरिद्रताका नाश हो जाता है तथा तीनों प्रकारके ऋण दूर हो जाते हैं। यह परम गोपनीय तथा धन-धान्य और यशकी वृद्धि करनेवाला है। सब प्रकारके ऐश्वर्यों, समस्त सिद्धियों और सम्पूर्ण धर्मोंको देनेवाला है। इससे कोटि-कोटि तीर्थ, यज्ञ, तप, दान और व्रतोंका फल प्राप्त होता है। यह संसारकी जडता दूर करनेवाला और सब प्रकारकी विद्याओंमें प्रवृत्ति करानेवाला है। जो राज्यसे भ्रष्ट हो गये हैं, उन्हें यह राज्य दिलाता और रोगियोंके सब रोगोंको हर लेता है। इतना ही नहीं, यह स्तोत्र वन्ध्या स्त्रियोंको पुत्र और रोगसे क्षीण हुए पुरुषोंको तत्काल जीवन देनेवाला है। यह परम पवित्र, मंगलमय तथा आयु बढ़ानेवाला है। एक बार भी इसका श्रवण, पठन अथवा जप करनेसे अंगोंसहित सम्पूर्ण वेद, कोटि-कोटि मन्त्र, पुराण, शास्त्र तथा स्मृतियोंका श्रवण और पाठ हो जाता है। प्रिये! जो इसके एक श्लोक, एक चरण अथवा एक अक्षरका भी नित्य जप या पाठ करता है, उसके सम्पूर्ण मनोरथ तत्काल सिद्ध हो जाते हैं। सब कार्योंकी सिद्धिसे शीघ्र ही विश्वास पैदा करानेवाला इसके समान दूसरा कोई साधन नहीं है।

कल्याणी! तुम्हें इस स्तोत्रको सदा गुप्त रखना चाहिये और अपने अभीष्ट अर्थकी सिद्धिके लिये केवल इसीका पाठ करना चाहिये। जिसका हृदय संशयसे दूषित हो, जो भगवान् विष्णुका भक्त न हो, जिसमें श्रद्धा और भक्तिका अभाव हो तथा जो भगवान् विष्णुको साधारण देवता समझता हो, ऐसे पुरुषको इसका उपदेश नहीं देना चाहिये। जो अपना पुत्र, शिष्य अथवा सुहृद् हो, उसे उसका हित करनेकी इच्छासे इस श्रीविष्णुसहस्रनामका उपदेश देना चाहिये। अल्पबुद्धि पुरुष इसे नहीं ग्रहण करेंगे। देवर्षि नारद मेरे प्रसादसे कलियुगमें तत्काल फल देनेवाले इस स्तोत्रको ग्रहण करके कल्पग्राम (कलापग्राम)-में ले जायँगे, जिससे भाग्यहीन लोगोंका दुःख दूर हो जायगा। भगवान् विष्णुसे बढ़कर कोई धाम नहीं है, श्रीविष्णुसे बढ़कर कोई तपस्या नहीं है, श्रीविष्णुसे बढ़कर कोई धर्म नहीं है और श्रीविष्णुसे भिन्न कोई मन्त्र नहीं है। भगवान् श्रीविष्णुसे भिन्न कोई सत्य नहीं है, श्रीविष्णुसे बढ़कर जप नहीं है, श्रीविष्णुसे उत्तम ध्यान नहीं है तथा श्रीविष्णुसे श्रेष्ठ कोई गति नहीं है। जिस पुरुषकी भगवान् जनार्दनके चरणोंमें भक्ति है, उसे अनेक मन्त्रोंके जप, बहुत विस्तारवाले शास्त्रोंके स्वाध्याय तथा सहस्रों वाजपेय यज्ञोंके अनुष्ठान करनेकी क्या आवश्यकता है? मैं सत्य-सत्य कहता हूँ—भगवान् विष्णु सर्वतीर्थमय हैं, भगवान् विष्णु सर्वशास्त्रमय हैं

* पद्मपुराण, उत्तरखण्डका ७२ वाँ अध्याय।

तथा भगवान् विष्णु सर्वयज्ञमय हैं।[१] यह सब मैंने सम्पूर्ण विश्वका सर्वस्वभूत सार-तत्त्व बतलाया है।

पार्वती बोलीं—जगत्पते! आज मैं धन्य हो गयी। आपने मुझपर बड़ा अनुग्रह किया। मैं कृतार्थ हो गयी, क्योंकि आपके मुखसे यह परम दुर्लभ एवं गोपनीय स्तोत्र मुझे सुननेको मिला है। देवेश! मुझे तो संसारकी अवस्था देखकर आश्चर्य होता है। हाय! कितने महान् कष्टकी बात है कि सम्पूर्ण सुखोंके दाता श्रीहरिके विद्यमान रहते हुए भी मूर्ख मनुष्य संसारमें क्लेश उठा रहे हैं।[२] भला, लक्ष्मीके प्रियतम भगवान् मधुसूदनसे बढ़कर दूसरा कौन देवता है। आप-जैसे योगीश्वर भी जिनके तत्त्वका निरन्तर चिन्तन करते रहते हैं, उन श्रीपुरुषोत्तमसे बड़ा दूसरा कौन-सा पद है। उनको जाने बिना ही अपनेको ज्ञानी माननेवाले मूढ़ मनुष्य दूसरे किस देवताकी आराधना करते हैं। अहो! सर्वेश्वर भगवान् विष्णु सम्पूर्ण श्रेष्ठ देवताओंसे भी उत्तम हैं। स्वामिन्! जो आपके भी आदिगुरु हैं, उन्हें मूढ़ मनुष्य सामान्य दृष्टिसे देखते हैं; किन्तु प्रभो! सर्वेश्वर! यदि मैं अर्थ-कामादिमें आसक्त होने या केवल आपमें ही मन लगाये रहनेके कारण अथवा प्रमादवश ही समूचे सहस्रनामस्तोत्रका पाठ न कर सकूँ, तो उस अवस्थामें जिस किसी भी एक नामसे मुझे सम्पूर्ण सहस्रनामका फल प्राप्त हो जाय, उसे बतानेकी कृपा कीजिये।[३]

महादेवजी बोले—सुमुखि! मैं तो 'राम! राम! राम!' इस प्रकार जप करते हुए परम मनोहर श्रीरामनाममें ही निरन्तर रमण किया करता हूँ। रामनाम सम्पूर्ण सहस्रनामके समान हैं।[४] पार्वती! यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र भी प्रतिदिन विशेषरूपसे इस श्रीविष्णुसहस्रनामका पाठ करें तो वे धन-धान्यसे युक्त होकर भगवान् विष्णुके परमपदको प्राप्त होते हैं।[५] देवि! जो लोग पूर्वोक्त अंगन्याससे युक्त श्रीविष्णुसहस्रनामका पाठ करते हैं, वे श्रेष्ठ पुरुष अविनाशी पदको प्राप्त होते हैं। सुमुखि! बार-बार बहुत कहनेसे क्या लाभ; थोड़ेमें इतना ही जान लो कि भगवान् विष्णुका सहस्रनाम परम मोक्ष प्रदान करनेवाला है। इसके पाठमें उतावली नहीं करनी चाहिये। यदि उतावली की जाती है, तो आयु और धनका नाश होता है। इस पृथ्वीपर जम्बूद्वीपके अंदर जितने भी तीर्थ हैं, वे सब सदा वहीं निवास करते हैं, जहाँ श्रीविष्णुसहस्रनामका पाठ होता है। जहाँ श्रीविष्णुसहस्रनामकी स्थिति होती है, वहीं गंगा, यमुना, कृष्णवेणी, गोदावरी, सरस्वती और समस्त तीर्थ निवास करते हैं। यह परम पवित्र स्तोत्र भक्तोंको सदा प्रिय है। भक्तिभावसे भावित चित्तके द्वारा सदा ही इस स्तोत्रका चिन्तन करना चाहिये। जो मनीषी पुरुष परम उत्तम श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रका पाठ करते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त होकर श्रीहरिके समीप जाते हैं। जो लोग सूर्योदयके समय इसका पाठ और जप करते हैं, उनके बल, आयु और लक्ष्मीकी प्रतिदिन वृद्धि होती है। एक-एक नामका उच्चारण करके श्रीहरिको तुलसीदल अर्पण करनेसे जो पूजा सम्पन्न होती

---

१. नास्ति विष्णोः परं धाम नास्ति विष्णोः परं तपः। नास्ति विष्णोः परो धर्मो नास्ति मन्त्रो ह्यवैष्णवः॥
नास्ति विष्णोः परं सत्यं नास्ति विष्णोः परो जपः। नास्ति विष्णोः परं ध्यानं नास्ति विष्णोः परा गतिः॥
किं तस्य बहुभिर्मन्त्रैः शास्त्रैः किं बहुविस्तरैः। वाजपेयसहस्रैर्वा भक्तिर्यस्य जनार्दने॥
सर्वतीर्थमयो विष्णुः सर्वशास्त्रमयः प्रभुः। सर्वक्रतुमयो विष्णुः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥ (७२। ३१३—३१६)

२. अहो बत महत्कष्टं समस्तसुखदे हरौ । विद्यमानेऽपि देवेश मूढाः क्लिश्यन्ति संसृतौ॥ (७२। ३१८)

३. कामाद्यासक्तचित्तत्वात्किन्तु सर्वेश्वर प्रभो। त्वन्मयत्वात्प्रमादाद्वा शक्नोमि पठितुं न चेत्॥
विष्णोः सहस्रनामैतत्प्रत्यहं वृषभध्वज। नाम्नैकेन तु येन स्यात्तत्फलं ब्रूहि मे प्रभो॥ (७२। ३३३-३३४)

४. राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे। सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने॥ (७२। ३३५)

५. ब्राह्मणा वा क्षत्रिया वा वैश्या वा गिरिकन्यके। शूद्रा वाथ विशेषेण पठन्त्यनुदिनं यदि॥
धनधान्यसमायुक्ता यान्ति विष्णोः परं पदम्।.. (७३। १—३)

है, उसे कोटि यज्ञोंकी अपेक्षा भी अधिक फल देनेवाली समझना चाहिये। पार्वती! जो द्विज रास्ता चलते हुए भी श्रीविष्णुसहस्रनामका पाठ करते हैं, उन्हें मार्गजनित दोष नहीं प्राप्त होते। जो लोग भगवान् केशवके इस माहात्म्यका श्रवण करते हैं, वे मनुष्योंमें श्रेष्ठ, पवित्र एवं पुण्यस्वरूप हैं।

गृहस्थ-आश्रमकी प्रशंसा तथा दान-धर्मकी महिमा

श्रीमहादेवजी कहते हैं—देवि! सुनो, अब मैं धर्मके उत्तम माहात्म्यका वर्णन करूँगा, जिसका श्रवण करनेसे इस पृथ्वीपर फिर कभी जन्म नहीं होता। धर्मसे अर्थ, काम और मोक्ष—तीनोंकी प्राप्ति होती है; अतः जो धर्मके लिये चेष्टा करता है, वही विशेष-रूपसे विद्वान् माना गया है।[१] जो कभी कुत्सित कर्ममें प्रवृत्त नहीं होता, वह घरपर भी पाँचों इन्द्रियोंका संयमरूप तप कर सकता है। जिसकी आसक्ति दूर हो गयी है, उसके लिये घर भी तपोवनके ही समान है; अतः गृहस्थाश्रमको स्वधर्म बताया गया है।[२] गिरिराजकिशोरी! जिन्होंने अपनी इन्द्रियोंको वशमें नहीं किया है, उनके लिये इस गृहस्थ-आश्रमको पार करना कठिन है; वे इस शुभ एवं श्रेष्ठतम आश्रमका विनाश कर डालते हैं। ब्रह्मा आदि देवताओंने मनीषी पुरुषोंके लिये गृहस्थ-धर्मको बहुत उत्तम बताया है। साधु पुरुष वनमें तपस्या करके जब भूखसे पीड़ित होता है, तब सदा अन्नदाता गृहस्थके ही घर आता है। वह गृहस्थ जब भक्तिपूर्वक उस भूखे अतिथिको अन्न देता है तो उसकी तपस्यामें हिस्सा बँटा लेता है; अतः मनुष्य समस्त आश्रमोंमें श्रेष्ठ इस गृहस्थाश्रमका सदा पालन करता है और इसीमें मानवोचित भोगोंका उपभोग करके अन्तमें स्वर्गको जाता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। देवि! सदा गृहस्थ-धर्मका पालन करनेवाले मनुष्योंके पास पाप कैसे आ सकता है। गृहस्थाश्रम परम पवित्र है। घर सदा तीर्थके समान पावन है। इस पवित्र गृहस्थाश्रममें रहकर विशेषरूपसे दान देना चाहिये। यहाँ देवताओंका पूजन होता है, अतिथियोंको भोजन दिया जाता है और [थके-माँदे] राहगीरोंको ठहरनेका स्थान मिलता है; अतः गृहस्थाश्रम परम धन्य है।[३] ऐसे गृहस्थाश्रममें रहकर जो लोग ब्राह्मणोंकी पूजा करते हैं, उन्हें आयु, धन और संतानकी कभी कमी नहीं होती।

शुभ समय आनेपर चन्द्रदेवकी पूजा करके नित्यनैमित्तिक कर्मोंका अनुष्ठान करनेके पश्चात् अपनी शक्तिके अनुसार दान देना चाहिये। दानसे मनुष्य निस्सन्देह अपने पापोंका नाश कर डालता है। दानके प्रभावसे इस लोकमें अभीष्ट भोगोंका उपभोग करके मनुष्य सनातन श्रीविष्णुको प्राप्त होता है। जो अभक्ष्य-भक्षणमें प्रवृत्त रहनेवाला, गर्भस्थ बालककी हत्या करनेवाला, गुरुपत्नीके साथ सम्भोग करनेवाला तथा झूठ बोलनेवाला है, ये सभी नीच योनियोंमें जन्म लेते हैं। जो यज्ञ करानेके योग्य नहीं है ऐसे मनुष्यसे जो यज्ञ कराता, लोकनिन्दित पुरुषसे याचना करता, सदा कोपसे युक्त रहता, साधुओंको पीड़ा देता, विश्वासघात करता, अपवित्र रहता और धर्मकी निन्दा करता है—इन पापोंसे युक्त होनेपर मनुष्यकी आयु शीघ्र नष्ट हो जाती है, ऐसा जानकर [पापका सर्वथा त्याग करके] विशेषरूपसे दान करना उचित है।

१-धर्मादर्थं च कामं च मोक्षं च त्रितयं लभेत्। तस्माद्धर्मं समीहेत विद्वान् स बहुधा स्मृतः॥ (७५। २)

२-गृहेऽपि पञ्चेन्द्रियनिग्रहस्तपस्त्वकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्तते। निवृत्तरागस्य तपोवनं गृहं गृहाश्रमोऽतो गदितः स्वधर्मः॥ (७५। ८)

३-गृहाश्रमः पुण्यतमः सर्वदा तीर्थवद्गृहम्। अस्मिन् गृहाश्रमे पुण्ये दानं देयं विशेषतः॥
देवानां पूजनं यत्र अतिथीनां तु भोजनम्। पथिकानां च शरणमतो धन्यतमो मतः॥ (७५। १२-१३)

गण्डकी नदीका माहात्म्य तथा अभ्युदय एवं और्ध्वदैहिक नामक स्तोत्रका वर्णन

श्रीमहादेवजी कहते हैं—देवि! अब मैं गण्डकी नदीके माहात्म्यका विधिपूर्वक वर्णन करूँगा। पार्वती! गंगाका जैसा माहात्म्य है, वैसा ही गण्डकी नदीका भी बताया गया है। जहाँसे नाना प्रकारकी शालग्राम-शिला प्रकट होती है, उस गण्डकी नदीकी महिमाका बड़े-बड़े मुनियोंने वर्णन किया है। अण्डज, उद्भिज्ज, स्वेदज और जरायुज—सभी प्राणी उसके दर्शनमात्रसे पवित्र हो जाते हैं। महानदी गण्डकी उत्तरमें प्रकट हुई है। गिरिजे! वह स्मरण करनेपर निश्चय ही सब पापोंका नाश कर देती है। वहाँ कल्याण प्रदान करनेवाले भगवान् नारायण सदा विद्यमान रहते हैं, ऋषियोंका भी वहाँ निवास है तथा सम्पूर्ण देवता, रुद्र, नाग और यक्ष विशेषरूपसे वहाँ रहा करते हैं। उस स्थलपर भगवान्‌की अनेक रूपवाली और सुखदायिनी चौबीस अवतारोंकी मूर्तियाँ उपलब्ध होती हैं। एक मत्स्यरूप है, दूसरी कच्छपरूप; इसी प्रकार वाराह, नृसिंह और वामनकी भी कल्याणदायिनी मूर्तियाँ हैं। श्रीराम, परशुराम तथा श्रीकृष्णकी भी मोक्षदायिनी मूर्ति देखी जाती है। श्रीविष्णुनामसे प्रसिद्ध उस स्थलपर उपर्युक्त मूर्तियोंके सिवा बुद्धकी मूर्ति भी बतायी गयी है। कल्कि और महर्षि कपिलकी भी पुण्यमयी मूर्ति उपलब्ध होती है, इनके सिवा और भी भाँति-भाँतिके आकारवाली बहुत-सी मूर्तियाँ देखी जाती हैं। उन सबके अनेक रूप हैं और उनकी संख्या भी बहुत है। वह गण्डकी नामकी गंगा परम पुण्यमयी तथा धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष प्रदान करनेवाली है। उस भूमिपर आज भी मेरे साथ भगवान् हृषीकेश नियमपूर्वक निवास करते हैं, उसके जलका स्पर्श करनेमात्रसे मनुष्य भ्रूणहत्या, बालहत्या और गोहत्या आदि समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है।

गण्डकी नदीके जलका दर्शन करनेसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा अन्य जातिके मनुष्य—सभी निश्चय ही मुक्त हो जाते हैं; विशेषतः पापियोंके लिये तो यह त्रिवेणीके समान पुण्यमयी है। जहाँ ब्रह्महत्यारेकी भी मुक्ति हो जाती है, वहाँ औरोंके लिये क्या कहना है? पार्वती! मैं सदा हर समय वहाँ जाता रहता हूँ; वह तीर्थोंमें तीर्थराज है—यह बात ब्रह्माजीने कही थी। मुनियोंने वहाँ स्नान और दानका विधान किया है। भगवान् विष्णुद्वारा पूर्वकालमें निर्मित हुआ वह क्षेत्र महान्-से-महान् है। वह वैष्णव पुरुषोंको उत्तम गति प्रदान करनेवाला और परम पावन माना गया है। देवि! इस संसारमें मनुष्यका जन्म सदा दुर्लभ है; उसमें भी गण्डकी नदीका तीर्थ और वहाँ भी श्रीविष्णुक्षेत्र अत्यन्त दुर्लभ है। अतः श्रेष्ठ द्विजोंको आषाढ़ मासमें वहाँकी यात्रा करनी चाहिये। वरानने! मैं बारंबार कहता हूँ कि गण्डकीके समान कोई तीर्थ, द्वादशीके तुल्य कोई व्रत और श्रीविष्णुसे भिन्न कोई देवता नहीं है। जो नरश्रेष्ठ गण्डकी नदीका माहात्म्य श्रवण करते हैं, वे इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें श्रीविष्णुधामको जाते हैं।

महादेव उवाच—

शृणु सुन्दरि वक्ष्यामि स्तोत्रं चाभ्युदयं ततः।
यच्छ्रुत्वा मुच्यते पापी ब्रह्महा नात्र संशयः॥ १॥
धाता वै नारदं प्राह तदहं तु ब्रवीमि ते।
तमुवाच ततो देवः स्वयम्भूरमितद्युतिः॥ २॥
प्रगृह्य रुचिरं बाहुं स्मारये चौर्ध्वदेहिकम्।

महादेवजी कहते हैं—सुन्दरी! सुनो, अब मैं अभ्युदयकारी स्तोत्रका वर्णन करूँगा, जिसे सुनकर ब्रह्महत्यारा भी निस्सन्देह मुक्त हो जाता है। ब्रह्माजीने देवर्षि नारदसे इस स्तोत्रका वर्णन किया था, वही मैं तुम्हें बताता हूँ। [पूर्वकालमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजी जब रावणका वध कर चुके, उस समय समस्त देवता उनकी स्तुति करनेके लिये आये। उसी अवसरपर] अमिततेजस्वी भगवान् ब्रह्माने श्रीरघुनाथजीकी सुन्दर बाँह हाथमें लेकर जो उनकी स्तुति की थी, वह 'और्ध्वदैहिक स्तोत्र' के नामसे प्रसिद्ध है। आज मैं उसीको स्मरण करके तुमसे कहता हूँ।

भवान्नारायणः श्रीमान् देवश्चक्रायुधो हरिः॥ ३॥
शार्ङ्गधारी हृषीकेशः पुराणपुरुषोत्तमः।
अजितः खड्गभिज्जिष्णुः कृष्णश्चैव सनातनः॥ ४॥

एकशृङ्गो वराहस्त्वं भूतभव्यभवात्मकः।
अक्षरं ब्रह्म सत्यं तु आदौ चान्ते च राघव॥५॥
लोकानां त्वं परो धर्मो विष्वक्सेनश्चतुर्भुजः।
सेनानी रक्षणस्त्वं च वैकुण्ठस्त्वं जगत्प्रभो॥६॥

श्रीब्रह्माजी बोले—श्रीरघुनन्दन! आप समस्त जीवोंके आश्रयभूत नारायण, लक्ष्मीसे युक्त, स्वयंप्रकाश एवं सुदर्शन नामक चक्र धारण करनेवाले श्रीहरि हैं। शार्ङ्ग नामक धनुषको धारण करनेवाले भी आप ही हैं। आप ही इन्द्रियोंके स्वामी एवं पुराणप्रतिपादित पुरुषोत्तम हैं। आप कभी किसीसे भी परास्त नहीं होते। शत्रुओंकी तलवारोंको टूक-टूक करनेवाले, विजयी और सदा एकरस रहनेवाले—सनातन देवता सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण भी आप ही हैं। आप एक दाँतवाले भगवान् वराह हैं। भूत, भविष्य और वर्तमान—तीनों काल आपके ही रूप हैं। श्रीरघुनन्दन! इस विश्वके आदि, मध्य और अन्तमें जो सत्यस्वरूप अविनाशी परब्रह्म स्थित है, वह आप ही हैं। आप ही लोकोंके परम धर्म हैं। आपको युद्धके लिये तैयार होते देख दैत्योंकी सेना चारों ओर भाग खड़ी होती है, इसीलिये आप विष्वक्सेन कहलाते हैं। आप ही चार भुजा धारण करनेवाले श्रीविष्णु हैं।

प्रभवश्चाव्ययस्त्वं च उपेन्द्रो मधुसूदनः।
पृश्निगर्भो धृतार्चिस्त्वं पद्मनाभो रणान्तकृत्॥७॥
शरण्यं शरणं च त्वामाहुः सेन्द्रा महर्षयः।
ऋक्सामश्रेष्ठो वेदात्मा शतजिह्वो महर्षभः॥८॥
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोंकारः परन्तपः।
शतधन्वा वसुः पूर्वं वसूनां त्वं प्रजापतिः॥९॥

आप सबकी उत्पत्तिके स्थान और अविकारी हैं। इन्द्रके छोटे भाई वामन एवं मधु दैत्यके प्राणहन्ता श्रीविष्णु भी आप ही हैं। आप अदिति या देवकीके गर्भमें अवतीर्ण होनेके कारण पृश्निगर्भ कहलाते हैं। आपने महान् तेज धारण कर रखा है। आपकी ही नाभिसे विराट् विश्वकी उत्पत्तिका कारणभूत कमल प्रकट हुआ था। आप शान्तस्वरूप होनेके कारण युद्धका अन्त करनेवाले हैं। इन्द्र आदि देवता तथा सम्पूर्ण महर्षिगण आपको ही सबका आश्रय एवं शरणदाता कहते हैं। ऋग्वेद और सामवेदमें आप ही सबसे श्रेष्ठ बताये गये हैं। आप सैकड़ों विधिवाक्यरूप जिह्वाओंसे युक्त वेदस्वरूप महान् वृषभ हैं। आप ही यज्ञ, आप ही वषट्कार और आप ही ॐकार हैं। आप शत्रुओंको ताप देनेवाले तथा सैकड़ों धनुष धारण करनेवाले हैं। आप ही वसु, वसुओंके भी पूर्ववर्ती एवं प्रजापति हैं।

त्रयाणामपि लोकानामादिकर्ता स्वयंप्रभुः।
रुद्राणामष्टमो रुद्रः साध्यानामपि पञ्चमः॥१०॥
अश्विनौ चापि कर्णौ ते सूर्यचन्द्रौ च चक्षुषी।
अन्ते चादौ च मध्ये च दृश्यसे त्वं परन्तप॥११॥
प्रभवो निधनं चासि न विदुः को भवानिति।
दृश्यसे सर्वलोकेषु गोषु च ब्राह्मणेषु च॥१२॥
दिक्षु सर्वासु गगने पर्वतेषु गुहासु च।
सहस्रनयनः श्रीमाञ्शतशीर्षः सहस्रपात्॥१३॥

आप तीनों लोकोंके आदिकर्ता और स्वयं ही अपने प्रभु (परम स्वतन्त्र) हैं। आप रुद्रोंमें आठवें रुद्र और साध्योंमें पाँचवें साध्य हैं। दोनों अश्विनीकुमार आपके कान तथा सूर्य और चन्द्रमा नेत्र हैं। परंतप! आप ही आदि, मध्य और अन्तमें दृष्टिगोचर होते हैं। सबकी उत्पत्ति और लयके स्थान भी आप ही हैं। आप कौन हैं—इस बातको ठीक-ठीक कोई भी नहीं जानते। सम्पूर्ण लोकोंमें, गौओंमें और ब्राह्मणोंमें आप ही दिखायी देते हैं तथा समस्त दिशाओंमें, आकाशमें, पर्वतोंमें और गुफाओंमें भी आपकी ही सत्ता है। आप शोभासे सम्पन्न हैं। आपके सहस्रों नेत्र, सैकड़ों मस्तक और सहस्रों चरण हैं।

त्वं धारयसि भूतानि वसुधां च सपर्वताम्।
अन्तःपृथिव्यां सलिले दृश्यसे त्वं महोरगः॥१४॥
त्रीँल्लोकान्धारयन् राम देवगन्धर्वदानवान्।

आप सम्पूर्ण प्राणियोंको तथा पर्वतोंसहित पृथ्वीको भी धारण करते हैं। पृथ्वीके भीतर पाताललोकमें और क्षीरसागरके जलमें आप ही महान् सर्प—शेषनागके रूपमें दृष्टिगोचर होते हैं। राम! आप उस स्वरूपसे देवता, गन्धर्व और दानवोंके सहित तीनों लोकोंको धारण करते हैं।

अहं ते हृदयं राम जिह्वा देवी सरस्वती॥ १५॥
देवा रोमाणि गात्रेषु निर्मितास्ते स्वमायया।
निमेषस्ते स्मृता रात्रिरुन्मेषो दिवसस्तथा॥ १६॥

श्रीराम! मैं (ब्रह्मा) आपका हृदय हूँ, सरस्वती-देवी जिह्वा हैं तथा आपके द्वारा अपनी मायासे उत्पन्न किये हुए देवता आपके अंगोंमें रोम हैं। आपका आँख मूँदना रात्रि और आँख खोलना दिन है।

संस्कारस्तेऽभवद्देहो नैतदस्ति विना त्वया।
जगत्सर्वं शरीरं ते स्थैर्यं च वसुधातलम्॥ १७॥
अग्निः कोपः प्रसादस्ते शेषः श्रीमांश्च लक्ष्मणः।

शरीर और संस्कारकी उत्पत्ति आपसे ही हुई है। आपके बिना इस जगत्की स्थिति नहीं है। सम्पूर्ण विश्व आपका शरीर है, पृथ्वी आपकी स्थिरता है, अग्नि आपका कोप है और शेषावतार श्रीमान् लक्ष्मण आपके प्रसाद हैं।

त्वया लोकास्त्रयः क्रान्ताः पुरा स्वैर्विक्रमैस्त्रिभिः॥ १८॥
त्वयेन्द्रश्च कृतो राजा बलिर्बद्धो महासुरः।
लोकान् संहृत्य कालस्त्वं निवेश्यात्मनि केवलम्॥ १९॥
करोष्येकार्णवं घोरं दृश्यादृश्ये च नान्यथा।

पूर्वकालमें वामनरूप धारण कर आपने अपने तीन पगोंसे तीनों लोक नाप लिये थे तथा महान् असुर बलिको बाँधकर इन्द्रको स्वर्गका राजा बनाया था। आप ही कालरूपसे समस्त लोकोंका संहार करके अपने भीतर लीनकर सब ओर केवल भयंकर एकार्णवका दृश्य उपस्थित करते हैं। उस समय दृश्य और अदृश्यमें कुछ भेद नहीं रह जाता।

त्वया सिंहवपुः कृत्वा परमं दिव्यमद्भुतम्॥ २०॥
भयदः सर्वभूतानां हिरण्यकशिपुर्हतः।

आपने नृसिंहावतारके समय परम अद्भुत एवं दिव्य सिंहका शरीर धारण करके समस्त प्राणियोंको भय देनेवाले हिरण्यकशिपु नामक दैत्यका वध किया था।

त्वमश्ववदनो भूत्वा पातालतलमाश्रितः॥ २१॥
संहृतं परमं दिव्यं रहस्यं वै पुनः पुनः।

आपने ही हयग्रीव अवतार धारण करके पातालके भीतर प्रवेशकर दैत्योंद्वारा अपहरण किये हुए वेदोंके परम रहस्य और यज्ञ-यागादिके प्रकरणोंको पुनः प्राप्त किया।

यत्परं श्रूयते ज्योतिर्यत्परं श्रूयते परम्॥ २२॥
यत्परं परतश्चैव परमात्मेति कथ्यते।
परो मन्त्रः परं तेजस्त्वमेव हि निगद्यसे॥ २३॥

जो परम ज्योतिःस्वरूप तत्त्व सुना जाता है, जो परम उत्कृष्ट परब्रह्मके नामसे श्रवणगोचर होता है, जिसे परात्पर परमात्मा कहा जाता है तथा जो परम मन्त्र और परम तेज है, उसके रूपमें आपके ही स्वरूपका प्रतिपादन किया जाता है।

हव्यं कव्यं पवित्रं च प्राप्तिः स्वर्गापवर्गयोः।
स्थित्युत्पत्तिविनाशांस्ते त्वामाहुः प्रकृतेः परम्॥ २४॥
यज्ञश्च यजमानश्च होता चाध्वर्युरेव च।
भोक्ता यज्ञफलानां च त्वं वै वेदैश्च गीयसे॥ २५॥

हव्य (यज्ञ), कव्य (श्राद्ध), पवित्र, स्वर्ग और मोक्षकी प्राप्ति, संसारकी उत्पत्ति, स्थिति तथा संहार— ये सब आपके ही कार्य हैं। ज्ञानी पुरुष आपको प्रकृतिसे पर बतलाते हैं। वेदोंके द्वारा आप ही यज्ञ, यजमान, होता, अध्वर्यु तथा यज्ञफलोंके भोक्ता कहे जाते हैं।

सीता लक्ष्मीर्भवान् विष्णुर्देवः कृष्णः प्रजापतिः।
वधार्थं रावणस्य त्वं प्रविष्टो मानुषीं तनुम्॥ २६॥

सीता साक्षात् लक्ष्मी हैं और आप स्वयंप्रकाश विष्णु, कृष्ण एवं प्रजापति हैं। आपने रावणका वध करनेके लिये ही मानव-शरीरमें प्रवेश किया है।

तदिदं च त्वया कार्यं कृतं कर्मभृतां वर।
निहतो रावणो राम प्रहृष्टा देवताः कृताः॥ २७॥

कर्म करनेवालोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी! आपने हमारा यह कार्य पूरा कर दिया। रावण मारा गया, इससे सम्पूर्ण देवताओंको आपने बहुत प्रसन्न कर दिया है।

अमोघं देव वीर्यं ते नमोऽमोघपराक्रम।
अमोघं दर्शनं राम अमोघस्तव संस्तवः॥ २८॥

देव! आपका बल अमोघ है। अचूक पराक्रम कर दिखानेवाले श्रीराम! आपको नमस्कार है। राम! आपके दर्शन और स्तवन भी अमोघ हैं।

अमोघास्ते भविष्यन्ति भक्तिमन्तो नरा भुवि।
ये च त्वां देव संभक्ताः पुराणं पुरुषोत्तमम्॥ २९॥

देव! जो मनुष्य इस पृथ्वीपर आप पुराण

पुरुषोत्तमका भलीभाँति भजन करते हुए निरन्तर आपके चरणोंमें भक्ति रखेंगे, वे जीवनमें कभी असफल न होंगे।

इममार्षं स्तवं पुण्यमितिहासं पुरातनम्।
ये नराः कीर्तयिष्यन्ति नास्ति तेषां पराभवः॥ ३०॥*

जो लोग परम ऋषि ब्रह्माजीके मुखसे निकले हुए इस पुरातन इतिहासरूप पुण्यमय स्तोत्रका पाठ करेंगे, उनका कभी पराभव नहीं होगा।

यह महात्मा श्रीरघुनाथजीका स्तोत्र है, जो सब स्तोत्रोंमें श्रेष्ठ है। जो प्रतिदिन तीनों समय इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह महापातकी होनेपर भी मुक्त हो जाता है। श्रेष्ठ द्विजोंको चाहिये कि वे संध्याके समय विशेषतः श्राद्धके अवसरपर भक्तिभावसे मन लगाकर प्रयत्नपूर्वक इस स्तोत्रका पाठ करें। यह परम गोपनीय स्तोत्र है। इसे कहीं और कभी भी अनधिकारी व्यक्तिसे नहीं कहना चाहिये। इसके पाठसे मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर लेता है। निश्चय ही उसे सनातन गति प्राप्त होती है। नरश्रेष्ठ ब्राह्मणोंको श्राद्धमें पहले तथा पिण्ड-पूजाके बाद भी इस स्तोत्रका पाठ करना चाहिये; इससे श्राद्ध अक्षय हो जाता है। यह परम पवित्र स्तोत्र मनुष्योंको मुक्ति प्रदान करनेवाला है। जो एकाग्र चित्तसे इस स्तोत्रको लिखकर अपने घरमें रखता है, उसकी आयु, सम्पत्ति तथा बलकी प्रतिदिन वृद्धि होती है। जो बुद्धिमान् पुरुष कभी इस स्तोत्रको लिखकर ब्राह्मणको देता है, उसके पूर्वज मुक्त होकर श्रीविष्णुके परमपदको प्राप्त होते हैं। चारों वेदोंका पाठ करनेसे जो फल होता है, वही फल मनुष्य इस स्तोत्रका पाठ और जप करके पा लेता है। अतः भक्तिमान् पुरुषको यत्नपूर्वक इस स्तोत्रका पाठ करना चाहिये। इसके पढ़नेसे मनुष्य सब कुछ पाता है और सुखपूर्वक रहकर उत्तरोत्तर उन्नतिको प्राप्त होता है।

ऋषिपंचमी-व्रतकी कथा, विधि और महिमा

महादेवजी कहते हैं—पार्वती! एक समयकी बात है, मैंने जगत्के स्वामी भगवान् श्रीविष्णुसे पूछा था—भगवन्! सब व्रतोंमें उत्तम व्रत कौन है, जो पुत्र-पौत्रकी वृद्धि करनेवाला और सुख-सौभाग्यको देनेवाला हो? उस समय उन्होंने जो कुछ उत्तर दिया, वह सब मैं तुम्हें कहता हूँ; सुनो।

श्रीविष्णु बोले—महाबाहु शिव! पूर्वकालमें देवशर्मा नामके एक ब्राह्मण रहते थे, जो वेदोंके पारगामी विद्वान् थे और सदा स्वाध्यायमें ही लगे रहते थे। प्रतिदिन अग्निहोत्र करते तथा सदा अध्ययन-अध्यापन, यजन-याजन एवं दान-प्रतिग्रहरूप छः कर्मोंमें प्रवृत्त रहते थे। सभी वर्णोंके लोगोंमें उनका बड़ा मान था। वे पुत्र, पशु और बन्धु-बान्धव—सबसे सम्पन्न थे। ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ देवशर्माकी गृहिणीका नाम भग्ना था। वे भादोंके शुक्लपक्षमें पंचमी तिथि आनेपर तपस्या (व्रत-पालन)-के द्वारा इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए पिताका एकोद्दिष्ट श्राद्ध किया करते थे। पहले दिन रात्रिमें सुख और सौभाग्य प्रदान करनेवाले ब्राह्मणोंको निमन्त्रण देते और निर्मल प्रभातकाल आनेपर दूसरे-दूसरे नये बर्तन मँगाते तथा उन सभी बर्तनोंमें अपनी स्त्रीके द्वारा पाक तैयार कराते थे। वह पाक अठारह रसोंसे युक्त एवं पितरोंको संतोष प्रदान करनेवाला होता था। पाक तैयार होनेपर वे पृथक्-पृथक् ब्राह्मणोंको बुलावा भेजकर बुलवाते थे।

एक बार उक्त समयपर निमन्त्रण पाकर समस्त वेदपाठी ब्राह्मण दोपहरीमें देवशर्माके घर उपस्थित हुए। विप्रवर देवशर्माने अर्घ्य-पाद्यादि निवेदन करके विधिपूर्वक उनका स्वागत-सत्कार किया। फिर घरके भीतर जानेपर सबको बैठनेके लिये आसन दिया और विशेषतः मिष्टान्नके साथ उत्तम अन्न उन्हें भोजन करनेके

---

* पद्मपुराण उत्तरखण्डका ७७वाँ अध्याय।

लिये परोसा; साथ ही विधिपूर्वक पिण्डदानकी पूर्ति करनेवाला श्राद्ध भी किया। इसके बाद पिताका चिन्तन करते हुए उन्होंने उन ब्राह्मणोंको नाना प्रकारके वस्त्र, दक्षिणा और ताम्बूल निवेदन किये। फिर उन सबको विदा किया। वे सभी ब्राह्मण आशीर्वाद देते हुए चले गये। तत्पश्चात् अपने सगोती, बन्धु-बान्धव तथा और भी जो लोग भूखे थे, उन सबको ब्राह्मणने विधिपूर्वक भोजन दिया। इस प्रकार श्राद्धका कार्य समाप्त होनेपर ब्राह्मण जब कुटीके दरवाजेपर बैठे, उस समय उनके घरकी कुतिया और बैल दोनों परस्पर कुछ बातचीत करने लगे। देवि! बुद्धिमान् ब्राह्मणने उन दोनोंकी बातें सुनीं और समझीं। फिर मन-ही-मन वे इस प्रकार सोचने लगे—'ये साक्षात् मेरे पिता हैं, जो मेरे ही घरके पशु हुए हैं तथा यह भी साक्षात् मेरी माता है, जो दैवयोगसे कुतिया हो गयी है। अब मैं इनके उद्धारके लिये निश्चितरूपसे क्या करूँ?' इसी विचारमें पड़े-पड़े ब्राह्मणको रातभर नींद नहीं आयी। वे भगवान् विश्वेश्वरका स्मरण करते रहे। प्रातःकाल होनेपर वे ऋषियोंके समीप गये। वहाँ वसिष्ठजीने उनका भलीभाँति स्वागत किया।

वसिष्ठजी बोले—ब्राह्मणश्रेष्ठ! अपने आनेका कारण बताओ।

ब्राह्मण बोले—मुनिवर! आज मेरा जन्म सफल हुआ तथा आज मेरी सम्पूर्ण क्रियाएँ सफल हो गयीं; क्योंकि इस समय मुझे आपका दुर्लभ दर्शन प्राप्त हुआ है। अब मेरा समाचार सुनिये। आज मैंने शास्त्रोक्त विधिसे श्राद्ध किया, ब्राह्मणोंको भोजन कराया तथा समस्त कुटुम्बके लोगोंको भी भोजन दिया है। सबके भोजनके पश्चात् एक कुतिया आयी और मेरे घरमें जहाँ एक बैल रहता है, वहाँ जा उसे पतिरूपसे सम्बोधित करके इस प्रकार कहने लगी—'स्वामिन्! आज जो घटना घटी है, उसे सुन लीजिये। इस घरमें जो दूधका बर्तन रखा हुआ था, उसे साँपने अपना जहर उगलकर दूषित कर दिया। यह मैंने अपनी आँखों देखा था। देखकर मेरे मनमें बड़ी चिन्ता हुई। सोचने लगी—इस दूधसे जब भोजन तैयार होगा, उस समय सब ब्राह्मण इसको खाते ही मर जायँगे। यों विचारकर मैं स्वयं उस दूधको पीने लगी। इतनेमें बहूकी दृष्टि मुझपर पड़ गयी। उसने मुझे खूब मारा। मेरा अंग-भंग हो गया है। इसीसे मैं लड़खड़ाती हुई चल रही हूँ। क्या करूँ, बहुत दुःखी हूँ।'

कुतियाके दुःखका अनुभव करके बैलने भी उससे कहा—'अब मैं अपने दुःखका कारण बताता हूँ, सुनो; मैं पूर्वजन्ममें इस ब्राह्मणका साक्षात् पिता था। आज इसने ब्राह्मणोंको भोजन कराया और प्रचुर अन्नका दान किया है; किन्तु मेरे आगे इसने घास और जलतक नहीं रखा। इसी दुःखसे मुझे आज बहुत कष्ट हुआ है।' उन दोनोंका यह कथानक सुनकर मुझे रातभर नींद नहीं आयी। मुनिश्रेष्ठ! मुझे तभीसे बड़ी चिन्ता हो रही है। मैं वेदका स्वाध्याय करनेवाला हूँ, वैदिक कर्मोंके अनुष्ठानमें कुशल हूँ; फिर भी मेरे माता और पिताको महान् दुःख सहन करना पड़ रहा है। इसके लिये मैं क्या करूँ? यही सोचता-विचारता आपके पास आया हूँ। आप ही मेरा कष्ट दूर कीजिये।

ऋषि बोले—ब्रह्मन्! उन दोनोंने पूर्वजन्ममें जो कर्म किया है, उसे सुनो—ये तुम्हारे पिता परम सुन्दर कुण्डिननगरमें श्रेष्ठ ब्राह्मण रहे हैं। एक समय भादोंके महीनेमें पंचमी तिथि आयी थी, तुम्हारे पिता अपने पिताके श्राद्ध आदिमें लगे थे, इसलिये उन्हें पंचमीके व्रतका ध्यान न रहा। उनके पिताकी क्षयाह तिथि थी। उस दिन तुम्हारी माता रजस्वला हो गयी थी, तो भी उसने ब्राह्मणोंके लिये सारा भोजन स्वयं ही तैयार किया। रजस्वला स्त्री पहले दिन चाण्डाली, दूसरे दिन ब्रह्मघातिनी और तीसरे दिन धोबिनके समान अपवित्र बतायी गयी है; चौथे दिन स्नानके बाद उसकी शुद्धि होती है। तुम्हारी माताने इसका विचार नहीं किया, अतः उसी पापसे उसको अपने ही घरकी कुतिया होना पड़ा है तथा तुम्हारे पिता भी इसी कर्मसे बैल हुए हैं।

ब्राह्मणने कहा—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले मुने! मुझे कोई ऐसा व्रत, दान, यज्ञ और तीर्थ बतलाइये, जिसके सेवनसे मेरे माता-पिताकी मुक्ति हो जाय।

ऋषि बोले—भादोंके शुक्लपक्षमें जो पंचमी आती है, उसका नाम ऋषिपंचमी है। उस दिन नदी, कुएँ, पोखरे अथवा ब्राह्मणके घरपर जाकर स्नान करे। फिर अपने घर आकर गोबरसे लीपकर मण्डल बनाये; उसमें कलशकी स्थापना करे। कलशके ऊपर एक पात्र रखकर उसे तिन्नीके चावलसे भर दे। उस पात्रमें यज्ञोपवीत, सुवर्ण तथा फलके साथ ही सुख और सौभाग्य देनेवाले सात ऋषियोंकी स्थापना करे। 'ऋषिपंचमी' के व्रतमें स्थित हुए पुरुषोंको उन सबका आवाहन करके पूजन करना चाहिये। तिन्नीके चावलका ही नैवेद्य लगाये और उसीका भोजन करे। केवल एक समय भोजन करके व्रत करना चाहिये। उस दिन परम भक्तिके साथ मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए विधिपूर्वक ऋषियोंका पूजन करना उचित है। पूजनके समय ब्राह्मणको दक्षिणा और घीके साथ विधिपूर्वक भोजनसामग्रीका दान देना चाहिये तथा समस्त ऋषियोंकी प्रसन्नता ही इस दानका उद्देश्य होना चाहिये। फिर विधिपूर्वक माहात्म्य-कथा सुनकर ऋषियोंकी प्रदक्षिणा करे और सबको पृथक्-पृथक् धूप-दीप तथा नैवेद्य निवेदन करके अर्घ्य प्रदान करे। अर्घ्यका मन्त्र इस प्रकार है—

ऋषयः सन्तु मे नित्यं व्रतसंपूर्तिकारिणः।
पूजां गृह्णन्तु मद्दत्तामृषिभ्योऽस्तु नमो नमः॥
पुलस्त्यः पुलहश्चैव क्रतुः प्राचेतसस्तथा।
वसिष्ठमारिचात्रेया अर्घ्यं गृह्णन्तु वो नमः॥
(७८।५९-६०)

'ऋषिगण सदा मेरे व्रतको पूर्ण करनेवाले हों। वे मेरी दी हुई पूजा स्वीकार करें। सब ऋषियोंको मेरा नमस्कार है। पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्राचेतस, वसिष्ठ, मारीच और आत्रेय—ये मेरा अर्घ्य ग्रहण करें। आप सब ऋषियोंको मेरा प्रणाम है।'

इस प्रकार मनोरम धूप-दीप आदिके द्वारा ऋषियोंकी पूजा करनी चाहिये। इस व्रतके प्रभावसे पितरोंकी मुक्ति होती है। वत्स! पूर्वकर्मके परिणामसे अथवा रजके संसर्गदोषसे जो कष्ट होता है, उससे इस व्रतका अनुष्ठान करनेपर निःसंदेह छुटकारा मिल जाता है।

महादेवजी कहते हैं—यह सुनकर देवशर्माने पिता-माताकी मुक्तिके लिये 'ऋषिपंचमी' व्रतका अनुष्ठान किया। उस व्रतके प्रभावसे वे दोनों पति-पत्नी पुत्रको आशीर्वाद देते हुए मुक्तिमार्गसे चले गये। 'ऋषिपंचमी'-का यह पवित्र व्रत ब्राह्मणके लिये बताया गया, किन्तु जो नरश्रेष्ठ इसका अनुष्ठान करते हैं, वे सभी पुण्यके भागी होते हैं। जो श्रेष्ठ पुरुष इस परम उत्तम ऋषिव्रतका पालन करते हैं, वे इस लोकमें प्रचुर भोगोंका उपभोग करके अन्तमें भगवान् श्रीविष्णुके सनातन लोकको प्राप्त होते हैं।

न्याससहित अपामार्जन नामक स्तोत्र और उसकी महिमा

पार्वती बोलीं—भगवन्! सभी प्राणी विष और रोग आदिके उपद्रवसे ग्रस्त तथा दुष्ट ग्रहोंसे हर समय पीड़ित रहते हैं। सुरश्रेष्ठ! जिस उपायका अवलम्बन करनेसे मनुष्योंको अभिचार (मारण-उच्चाटन आदि) तथा कृत्या आदिसे उत्पन्न होनेवाले नाना प्रकारके भयंकर रोगोंका शिकार न होना पड़े, उसका मुझसे वर्णन कीजिये।

महादेवजी बोले—पार्वती! जिन लोगोंने व्रत, उपवास और नियमोंके पालनद्वारा भगवान् विष्णुको संतुष्ट कर लिया है, वे कभी रोगसे पीड़ित नहीं होते। जिन्होंने कभी व्रत, पुण्य, दान, तप, तीर्थ-सेवन, देव-पूजन तथा अधिक मात्रामें अन्न-दान नहीं किया है, उन्हीं लोगोंको सदा रोग और दोषसे पीड़ित समझना चाहिये। मनुष्य अपने मनसे आरोग्य तथा उत्तम समृद्धि आदि जिस-जिस वस्तुकी इच्छा करता है, वह सब भगवान् विष्णुकी सेवासे निश्चय ही प्राप्त कर लेता है। श्रीमधुसूदनके संतुष्ट हो जानेपर न कभी मानसिक चिन्ता सताती है, न रोग होता है, न विष तथा ग्रहोंके कष्टमें

बँधना पड़ता है और न कृत्याके ही स्पर्शका भय रहता है। श्रीजनार्दनके प्रसन्न होनेपर समस्त दोषोंका नाश हो जाता है। सभी ग्रह सदाके लिये शुभ हो जाते हैं तथा वह मनुष्य देवताओंके लिये भी दुर्धर्ष बन जाता है। जो सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति समानभाव रखता है और अपने प्रति जैसा बर्ताव चाहता है वैसा ही दूसरोंके प्रति भी करता है, उसने मानो उपवास आदि करके भगवान् मधुसूदनको संतुष्ट कर लिया। ऐसे लोगोंके पास शत्रु नहीं आते, उन्हें रोग या आभिचारिक कष्ट नहीं होता तथा उनके द्वारा कभी पापका कार्य भी नहीं बनता। जिसने भगवान् विष्णुकी उपासना की है, उसे भगवान्‌के चक्र आदि अमोघ अस्त्र सदा सब आपत्तियोंसे बचाते रहते हैं।

पार्वती बोलीं—भगवन्! जो लोग भगवान् गोविन्दकी आराधना न करनेके कारण दु:ख भोग रहे हैं, उन दु:खी मनुष्योंके प्रति सब प्राणियोंमें सनातन वासुदेवको स्थित देखनेवाले समदर्शी एवं दयालु पुरुषोंका जो कर्तव्य हो, वह मुझे विशेषरूपसे बताइये।

महादेवजी बोले—देवेश्वरि! बतलाता हूँ, एकाग्रचित्त होकर सुनो। यह उपाय रोग, दोष एवं अशुभको हरनेवाला तथा शत्रुजनित आपत्तिका नाश करनेवाला है। विद्वान् पुरुष शिखामें श्रीधरका, शिखाके निचले भागमें भगवान् श्रीकरका, केशोंमें हृषीकेशका, मस्तकमें परम पुरुष नारायणका, कानके ऊपरी भागमें श्रीविष्णुका, ललाटमें जलशायीका, दोनों भौंहोंमें श्रीविष्णुका, भौंहोंके मध्यभागमें श्रीहरिका, नासिकाके अग्रभागमें नरसिंहका, दोनों कानोंमें अर्णवेशय (समुद्रमें शयन करनेवाले भगवान्)-का, दोनों नेत्रोंमें पुण्डरीकाक्षका, नेत्रोंके नीचे भूधर (धरणीधर)-का, दोनों गालोंमें कल्किनाथका, कानोंके मूल भागमें वामनका, गलेकी दोनों हँसलियोंमें शंखधारीका, मुखमें गोविन्दका, दाँतोंकी पंक्तिमें मुकुन्दका, जिह्वामें वाणीपतिका, ठोढ़ीमें श्रीरामका, कण्ठमें वैकुण्ठका, बाहुमूलके निचले भाग (काँख)-में बलघ्न (बल नामक दैत्यके मारनेवाले)-का, कंधोंमें कंसघातीका, दोनों भुजाओंमें अज (जन्मरहित)-का, दोनों हाथोंमें शार्ङ्गपाणिका, हाथके अँगूठेमें संकर्षणका, अँगुलियोंमें गोपालका, वक्ष:स्थलमें अधोक्षजका, छातीके बीचमें श्रीवत्सका, दोनों स्तनोंमें अनिरुद्धका, उदरमें दामोदरका, नाभिमें पद्मनाभका, नाभिके नीचे केशवका, लिंगमें धराधरका, गुदामें गदाग्रजका, कटिमें पीताम्बरधारीका, दोनों जाँघोंमें मधुद्विट् (मधुसूदन)-का, पिंडलियोंमें मुरारिका, दोनों घुटनोंमें जनार्दनका, दोनों घुट्टियोंमें फणीशका, दोनों पैरोंकी गतिमें त्रिविक्रमका, पैरके अँगूठेमें श्रीपतिका, पैरके तलवोंमें धरणीधरका, समस्त रोमकूपोंमें विष्वक्सेनका, शरीरके मांसमें मत्स्यावतारका, मेदेमें कूर्मावतारका, वसामें वाराहका, सम्पूर्ण हड्डियोंमें अच्युतका, मज्जामें द्विजप्रिय (ब्राह्मणोंके प्रेमी)-का, शुक्र (वीर्य)-में श्वेतपतिका, सर्वांगमें यज्ञपुरुषका तथा आत्मामें परमात्माका न्यास करे। इस प्रकार न्यास करके मनुष्य साक्षात् नारायण हो जाता है; वह जबतक मुँहसे कुछ बोलता नहीं, तबतक विष्णुरूपसे ही स्थित रहता है।*

---

* तद् वक्ष्यामि सुरश्रेष्ठे समाहितमना: शृणु । रोगदोषाशुभहरं विद्विडापद्विनाशनम्॥
शिखायां श्रीधरं न्यस्य शिखाध: श्रीकरं तथा । हृषीकेशं तु केशेषु मूर्ध्नि नारायणं परम्॥
ऊर्ध्वश्रोत्रे न्यसेद्विष्णुं ललाटे जलशायिनम् । विष्णुं वै भ्रुयुगे न्यस्य भ्रूमध्ये हरिमेव च॥
नरसिंहं नासिकाग्रे कर्णयोरर्णवेशयम् । चक्षुषो: पुण्डरीकाक्षं तदधो भूधरं न्यसेत्॥
कपोलयो: कल्किनाथं वामनं कर्णमूलयो: । शङ्खिनं शङ्खयोर्न्यस्य गोविन्दं वदने तथा॥
मुकुन्दं दन्तपङ्क्तौ तु जिह्वायां वाक्पतिं तथा । रामं हनौ तु विन्यस्य कण्ठे वैकुण्ठमेव च॥
बलघ्नं बाहुमूलाधश्चांसयो: कंसघातिनम् । अजं भुजद्वये न्यस्य शार्ङ्गपाणिं करद्वये॥
संकर्षणं कराङ्गुष्ठे गोपमङ्गुलिपङ्क्तिषु । वक्षस्यधोक्षजं न्यस्य श्रीवत्सं तस्य मध्यत:॥
स्तनयोरनिरुद्धं च दामोदरमथोदरे । पद्मनाभं तथा नाभौ नाभ्यधश्चापि केशवम्॥

शान्ति करनेवाला पुरुष मूलसहित शुद्ध कुशोंको लेकर एकाग्रचित्त हो रोगीके सब अंगोंको झाड़े; विशेषतः विष्णुभक्त पुरुष रोग, ग्रह और विषसे पीड़ित मनुष्यकी अथवा केवल विषसे ही कष्ट पानेवाले रोगियोंकी इस प्रकार शुभ शान्ति करे। पार्वती! कुशसे झाड़ते समय सब रोगोंका नाश करनेवाले इस स्तोत्रका पाठ करना चाहिये।

ॐ परमार्थस्वरूप, अन्तर्यामी, महात्मा, रूपहीन होते हुए भी अनेक रूपधारी तथा व्यापक परमात्माको नमस्कार है। वाराह, नरसिंह और सुखदायी वामन भगवान्का ध्यान एवं नमस्कार करके श्रीविष्णुके उपर्युक्त नामोंका अपने अंगोंमें न्यास करे। न्यासके पश्चात् इस प्रकार कहे—'मैं पापके स्पर्शसे रहित, शुद्ध, व्याधि और पापोंका अपहरण करनेवाले गोविन्द, पद्मनाभ, वासुदेव और भूधर नामसे प्रसिद्ध भगवान्को नमस्कार करके जो कुछ कहूँ, वह मेरा सारा वचन सिद्ध हो। तीन पगोंसे त्रिलोकीको नापनेवाले भगवान् त्रिविक्रम, सबके हृदयमें रमण करनेवाले राम, वैकुण्ठधामके अधिपति, बदरिकाश्रममें तपस्या करनेवाले भगवान् नर, वाराह, नृसिंह, वामन और उज्ज्वल रूपधारी हयग्रीवको नमस्कार है। हृषीकेश! आप सारे अमंगलको हर लीजिये। सबके हृदयमें निवास करनेवाले भगवान् वासुदेवको नमस्कार है। नन्दक नामक खड्ग धारण करनेवाले सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्णको नमस्कार है। कमलके समान नेत्रोंवाले आदि चक्रधारी श्रीकेशवको नमस्कार है। कमल-केसरके समान वर्णवाले भगवान्को नमस्कार है। पीले रंगके निर्मल वस्त्र धारण करनेवाले भगवान् विष्णुको नमस्कार है। अपनी एक दाढ़पर समूची पृथ्वीको उठा लेनेवाले त्रिमूर्तिपति भगवान् वाराहको नमस्कार है। जिसके नखोंका स्पर्श वज्रसे भी अधिक तीक्ष्ण और कठोर है, ऐसे दिव्य सिंहका रूप धारण करनेवाले भगवान् नृसिंह! आपको नमस्कार है। ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदसे लक्षित होनेवाले परमात्मन्! अत्यन्त लघु शरीरवाले कश्यपपुत्र वामनका रूप धारण करके भी समूची पृथ्वीको एक ही पगमें नाप लेनेवाले! आपको बारंबार नमस्कार है। बहुत बड़ी दाढ़वाले भगवान् वाराह! सम्पूर्ण दुःखों और समस्त पापके फलोंको रौंद डालिये, रौंद डालिये। पापके फलको नष्ट कर डालिये, नष्ट कर डालिये। विकराल मुख और दाँतोंवाले, नखोंसे उद्दीप्त दिखायी देनेवाले, पीड़ाओंके नाशक भगवान् नृसिंह! आप अपनी गर्जनासे इस रोगीके दुःखोंका भंजन कीजिये, भंजन कीजिये। इच्छानुसार रूप ग्रहण करके पृथ्वी आदिको धारण करनेवाले भगवान् जनार्दन अपनी ऋक्, यजुः और साममयी वाणीद्वारा इस रोगीके सब दुःखोंकी शान्ति कर दें। एक, दो, तीन या चार दिनका अन्तर देकर आनेवाले हलके या भारी ज्वरको, सदा बने रहनेवाले ज्वरको, किसी दोषके कारण उत्पन्न हुए ज्वरको, सन्निपातसे होनेवाले तथा आगन्तुक ज्वरको विदीर्ण कर उसकी वेदनाका नाश करके भगवान् गोविन्द उसे सदाके लिये शान्त कर दें। नेत्रका कष्ट, मस्तकका कष्ट, उदररोगका कष्ट, अनुच्छ्वास (साँसका रुकना), महाश्वास (साँसका तेज चलना—दमा), परिताप, (ज्वर), वेपथु (कम्प या जूड़ी), गुदारोग, नासिकारोग, पादरोग, कुष्ठरोग, क्षयरोग, कमला आदि रोग, प्रमेह आदि भयंकर रोग, बातरोग, मकड़ी और चेचक आदि समस्त रोग भगवान् विष्णुके चक्रकी चोट खाकर नष्ट हो जायँ। अच्युत, अनन्त और गोविन्द नामोंके उच्चारणरूपी

मेढ्रे धराधरं देवं गुदे चैव गदाग्रजम् । पीताम्बरधरं कट्यामूरुयुग्मे मधुद्विषम्॥
मुरद्विषं पिण्डकयोर्जानुयुग्मे जनार्दनम् । फणीशं गुल्फयोर्न्यस्य क्रमयोश्च त्रिविक्रमम्॥
पादाङ्गुष्ठे श्रीपतिं च पादाधो धरणीधरम् । रोमकूपेषु सर्वेषु विष्वक्सेनं न्यसेद्बुधः॥
मत्स्यं मांसे तु विन्यस्य कूर्मं मेदसि विन्यसेत् । वाराहं तु वसामध्ये सर्वास्थिषु तथाच्युतम्॥
द्विजप्रियं तु मज्जायां शुक्रे श्वेतपतिं तथा । सर्वाङ्गे यज्ञपुरुषं परमात्मानमात्मनि॥
एवं न्यासविधिं कृत्वा साक्षान्नारायणो भवेत् । यावन्न व्याहरेत्किंचित्तावद्विष्णुमयः स्थितः॥ (७९। १६—३०)

ओषधिसे समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं—यह बात मैं सत्य-सत्य कहता हूँ। स्थावर, जंगम अथवा कृत्रिम विष हो या दाँत, नख, आकाश तथा भूत आदिसे प्रकट होनेवाला अत्यन्त दुस्सह विष हो; वह सारा-का-सारा श्रीजनार्दनका नाम-कीर्तन करनेपर इस रोगीके शरीरमें शान्त हो जाय। बालकके शरीरमें ग्रह, प्रेतग्रह अथवा अन्यान्य शाकिनी-ग्रहोंका उपद्रव हो या मुखपर चकत्ते निकल आये हों अथवा रेवती, वृद्ध रेवती तथा वृद्धिका नामके भयंकर ग्रह, मातृग्रह एवं बालग्रह पीड़ा दे रहे हों; भगवान् श्रीविष्णुका चरित्र उन सबका नाश कर देता है। वृद्धों अथवा बालकोंपर जो कोई भी ग्रह लगे हों, वे श्रीनृसिंहके दर्शनमात्रसे तत्काल शान्त हो जाते हैं। भयानक दाढ़ोंके कारण विकराल मुखवाले भगवान् नृसिंह दैत्योंको भयभीत करनेवाले हैं। उन्हें देखकर सभी ग्रह बहुत दूर भाग जाते हैं। ज्वालाओंसे देदीप्यमान मुखवाले महासिंहरूपधारी नृसिंह! सुन्दर मुख और नेत्रोंवाले सर्वेश्वर! आप समस्त दुष्ट ग्रहोंको दूर कीजिये। जो-जो रोग, महान् उत्पात, विष, महान् ग्रह, क्रूरस्वभाववाले भूत, भयंकर ग्रह-पीड़ाएँ, हथियारसे कटे हुए घावोंपर होनेवाले रोग, चेचक आदि फोड़े और शरीरके भीतर स्थित रहनेवाले ग्रह हों, उन सबको हे त्रिभुवनकी रक्षा करनेवाले! दुष्ट दानवोंके विनाशक! महातेजस्वी सुदर्शन! आप काट डालिये, काट डालिये। महान् ज्वर, वातरोग, लूतारोग तथा भयानक महाविषको भी आप नष्ट कर दीजिये, नष्ट कर दीजिये। असाध्य अमरशूल विषकी ज्वाला और गर्दभ रोग—ये सब-के-सब शत्रु हैं, **'ॐ ह्रां ह्रां ह्रूं ह्रूं'** इस बीजमन्त्रके साथ तीखी धारवाले कुठारसे आप इन शत्रुओंको मार डालें। दूसरोंका दुःख दूर करनेके लिये शरीर धारण करनेवाले परमेश्वर! आप भगवान्‌को नमस्कार है। इनके सिवा और भी जो प्राणियोंको पीड़ा देनेवाले दुष्ट ग्रह और रोग हों, उन सबको सबके आत्मा परमात्मा जनार्दन दूर करें। वासुदेव! आपको नमस्कार है। आप कोई रूप धारण करके ज्वालाओंके कारण अत्यन्त भयानक सुदर्शन नामक चक्र चलाकर सब दुष्टोंको नष्ट कर दीजिये। देववर! अच्युत! आप दुष्टोंका संहार कीजिये।

महाचक्र सुदर्शन! भगवान् गोविन्दके श्रेष्ठ आयुध! तीखी धार और महान् वेगवाले शस्त्र! कोटि सूर्यके समान तेज धारण करनेवाले महाज्वालामय सुदर्शन! भारी आवाजसे सबको भयभीत करनेवाले चक्र! आप समस्त दुःखों और सम्पूर्ण राक्षसोंका उच्छेद कर डालिये, उच्छेद कर डालिये। हे सुदर्शनदेव! आप पापोंका नाश और आरोग्य प्रदान कीजिये। महात्मा नृसिंह अपनी गर्जनाओंसे पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर—सब ओर रक्षा करें। अनेक रूप धारण करनेवाले भगवान् जनार्दन भूमिपर और आकाशमें, पीछे-आगे तथा पार्श्वभागमें रक्षा करें। देवता, असुर और मनुष्योंके सहित सम्पूर्ण विश्व श्रीविष्णुमय है। योगेश्वर श्रीविष्णु ही सब वेदोंमें गाये जाते हैं, इस सत्यके प्रभावसे इस रोगीका सारा दुःख दूर हो जाय। समस्त वेदांगोंमें भी परमात्मा श्रीविष्णुका ही गान किया जाता है। इस सत्यके प्रभावसे विश्वात्मा केशव इसको सुख देनेवाले हों। भगवान् वासुदेवके शरीरसे प्रकट हुए कुशोंके द्वारा मैंने इस मनुष्यका मार्जन किया है; इससे शान्ति हो, कल्याण हो और इसके दुःखोंका नाश हो जाय। जिसने गोविन्दके अपामार्जनस्तोत्रसे मार्जन किया है, वह भी यद्यपि साक्षात् श्रीनारायणका ही स्वरूप है; तथापि सब दुःखोंकी शान्ति श्रीहरिके वचनसे ही होती है। श्रीमधुसूदनका स्मरण करनेपर सम्पूर्ण दोष, समस्त ग्रह, सभी विष और सारे भूत शान्त हो जाते हैं। अब यह श्रीहरिके वचनानुसार पूर्ण स्वस्थ हो जाय। शान्ति हो, कल्याण हो और दुःख नष्ट हो जायँ। भगवान् हृषीकेशके नाम-कीर्तनके प्रभावसे सदा ही इसके स्वास्थ्यकी रक्षा रहे। जो पाप जहाँसे इसके शरीरमें आये हों, वे वहीं चले जायँ।

यह परम उत्तम 'अपामार्जन' नामक स्तोत्र है। समस्त प्राणियोंका कल्याण चाहनेवाले श्रीविष्णुभक्त पुरुषोंको रोग और पीड़ाओंके समय इसका प्रयोग करना चाहिये। इससे समस्त दुःखोंका पूर्णतया नाश हो जाता है। यह

सब पापोंकी शुद्धिका साधन है। श्रीविष्णुके 'अपामार्जन-स्तोत्र' से आर्द्र[1]-शुष्क[2], लघु-स्थूल (छोटे-बड़े) एवं ब्रह्महत्या आदि जितने भी पाप हैं, वे सब उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जैसे सूर्यके दर्शनसे अन्धकार दूर हो जाता है। जिस प्रकार सिंहके भयसे छोटे मृग भागते हैं, उसी प्रकार इस स्तोत्रसे सारे रोग और दोष नष्ट हो जाते हैं। इसके श्रवणमात्रसे ही ग्रह, भूत और पिशाच आदिका नाश हो जाता है। लोभी पुरुष धन कमानेके लिये कभी इसका उपयोग न करें। अपामार्जन-स्तोत्रका उपयोग करके किसीसे कुछ भी नहीं लेना चाहिये, इसीमें अपना हित है। आदि, मध्य और अन्तका ज्ञान रखनेवाले शान्तचित्त श्रीविष्णुभक्तोंको निःस्वार्थभावसे इस स्तोत्रका प्रयोग करना उचित है; अन्यथा यह सिद्धिदायक नहीं होता। भगवान् विष्णुका जो अपामार्जन नामक स्तोत्र है, यह मनुष्योंके लिये अनुपम सिद्धि है, रक्षाका परम साधन है और सर्वोत्तम ओषधि है। पूर्वकालमें ब्रह्माजीने अपने पुत्र पुलस्त्य मुनिको इसका उपदेश किया था; फिर पुलस्त्य मुनिने दाल्भ्यको सुनाया। दाल्भ्यने समस्त प्राणियोंका हित करनेके लिये इसे लोकमें प्रकाशित किया; तबसे श्रीविष्णुका यह अपामार्जनस्तोत्र तीनों लोकोंमें व्याप्त हो गया। यह सब प्रसंग भक्तिपूर्वक श्रवण करनेसे मनुष्य अपने रोग और दोषोंका नाश करता है।

'अपामार्जन' नामक स्तोत्र परम अद्भुत और दिव्य है। मनुष्यको चाहिये कि पुत्र, काम और अर्थकी सिद्धिके लिये इसका विशेषरूपसे पाठ करे। जो द्विज एक या दो समय बराबर इसका पाठ करते हैं, उनकी आयु, लक्ष्मी और बलकी दिन-दिन वृद्धि होती है। ब्राह्मण विद्या, क्षत्रिय राज्य, वैश्य धन-सम्पत्ति और शूद्र भक्ति प्राप्त करता है। दूसरे लोग भी इसके पाठ, श्रवण और जपसे भक्ति प्राप्त करते हैं। पार्वती! जो इसका पाठ करता है, उसे सामवेदका फल होता है; उसकी सारी पाप-राशि तत्काल नष्ट हो जाती है। देवि! ऐसा जानकर एकाग्रचित्तसे इस स्तोत्रका पाठ करना चाहिये। इससे पुत्रकी प्राप्ति होती है और घरमें निश्चय ही लक्ष्मी परिपूर्ण हो जाती हैं। जो वैष्णव इस स्तोत्रको भोजपत्रपर लिखकर सदा धारण किये रहता है, वह इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें श्रीविष्णुके परमपदको प्राप्त होता है। जो इसका एक-एक श्लोक पढ़कर भगवान्‌को तुलसीदल समर्पित करता है, वह तुलसीसे पूजन करनेपर सम्पूर्ण तीर्थोंके सेवनका फल पा लेता है। यह भगवान् विष्णुका स्तोत्र परम उत्तम और मोक्ष प्रदान करनेवाला है। सम्पूर्ण पृथ्वीका दान करनेसे मनुष्य श्रीविष्णुलोकमें जाता है; किन्तु जो ऐसा करनेमें असमर्थ हो, वह श्रीविष्णुलोककी प्राप्तिके लिये विशेषरूपसे इस स्तोत्रका जप करे। यह रोग और ग्रहोंसे पीड़ित बालकोंके दुःखकी शान्ति करनेवाला है। इसके पाठमात्रसे भूत, ग्रह और विष नष्ट हो जाते हैं। जो ब्राह्मण कण्ठमें तुलसीकी माला पहनकर इस स्तोत्रका पाठ करता है, उसे वैष्णव जानना चाहिये; वह निश्चय ही श्रीविष्णुधाममें जाता है। इस लोकका परित्याग करनेपर उसे श्रीविष्णुधामकी प्राप्ति होती है। जो मोह-मायासे दूर हो दम्भ और तृष्णाका त्याग करके इस दिव्य स्तोत्रका पाठ करता है, वह परम मोक्षको प्राप्त होता है। इस भूमण्डलमें जो ब्राह्मण भगवान् विष्णुके भक्त हैं, वे धन्य माने गये हैं; उन्होंने कुलसहित अपने आत्माका उद्धार कर लिया—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। जिन्होंने भगवान् नारायणकी शरण ग्रहण कर ली है, संसारमें वे परम धन्य हैं। उनकी सदा भक्ति करनी चाहिये, क्योंकि वे भागवत (भगवद्भक्त) पुरुष हैं।

१-स्वेच्छासे किये हुए पाप। २-अनिच्छासे किये हुए पाप।

श्रीविष्णुकी महिमा—भक्तप्रवर पुण्डरीककी कथा

श्रीपार्वती बोलीं—विश्वेश्वर! प्रभो! भगवान् श्रीविष्णुका माहात्म्य अद्‌भुत है, जिसे सुनकर फिर कभी संसार-बन्धन नहीं प्राप्त होता। आप पुन: उसका वर्णन कीजिये।

महादेवजीने कहा—सुन्दरी! मैं भगवान् श्रीविष्णुके उत्तम माहात्म्यका वर्णन करता हूँ, सुनो; इसे सुनकर मनुष्य पुण्य प्राप्त करता है और अन्तमें उसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। महाप्राज्ञ देवव्रत, जो इन्द्र आदि देवताओंके लिये भी दुर्धर्ष थे, कुरुक्षेत्रकी पुण्यभूमिमें ध्यानयोगपरायण हो रहे थे। वे सम्पूर्ण शास्त्रोंके आश्रय थे। उन्होंने अपनी इन्द्रियोंको वशमें कर लिया था। उनमें पापका लेश भी नहीं था। वे सत्यप्रतिज्ञ थे और क्रोधको जीतकर समतामें प्रतिष्ठित हो चुके थे। संसारके स्वामी और सबको शरण देनेवाले भक्तवत्सल भगवान् नारायणमें मन, वाणी, शरीर और क्रियाके द्वारा वे परम निष्ठाको प्राप्त थे। ऐसे शान्तचित्त तथा समस्त गुणोंके आश्रयभूत कुरु-पितामह भीष्मको पृथ्वीपर मस्तक झुकाकर राजा युधिष्ठिरने प्रणाम किया और इस प्रकार पूछा।

युधिष्ठिर बोले—समस्त शास्त्र-वेत्ताओंमें श्रेष्ठ, धर्मके ज्ञाता पितामह! कोई तो धर्मको सबसे श्रेष्ठ बतलाते हैं और कोई धनको। कोई दानकी प्रशंसा करते हैं, तो कोई संग्रहके गीत गाते हैं। कुछ लोग सांख्यके समर्थक हैं, तो दूसरे लोग योगके। कोई यथार्थ ज्ञानको उत्तम मानते हैं, तो कोई वैराग्यको। कुछ लोग अग्निष्टोम आदि कर्मको ही सबसे श्रेष्ठ समझते हैं, तो कुछ लोग उस आत्मज्ञानको बड़ा मानते हैं, जिसे पाकर मिट्टीके ढेले, पत्थर और सुवर्णमें समबुद्धि हो जाती है। कुछ लोगोंके मतमें मनीषी पुरुषोंद्वारा बताये हुए यम और नियम ही सबसे उत्तम हैं। कुछ लोग दयाको श्रेष्ठ बताते हैं, तो कुछ तपस्वी महात्मा अहिंसाको ही सर्वोत्तम कहते हैं। कुछ मनुष्य शौचाचारको श्रेष्ठ बतलाते हैं, तो कुछ देवार्चनको। इस विषयमें पाप-कर्मोंसे मोहित चित्तवाले मानव चक्कर खा जाते हैं—वे कुछ निर्णय नहीं कर पाते। इन सबमें जो सर्वोत्तम कृत्य हो, जिसका महात्मा पुरुष भी अनुष्ठान कर सकें, उसे बतानेकी कृपा कीजिये।

भीष्मजी बोले—धर्मनन्दन! सुनो, यह अत्यन्त गूढ़ विषय है, जो संसारबन्धनसे मोक्ष दिलानेवाला है। यह विषय तुम्हें भलीभाँति सुनना और जानना चाहिये। पुण्डरीक नामके एक परम बुद्धिमान् और वेदविद्यासे सम्पन्न ब्राह्मण थे, जो ब्रह्मचर्य-आश्रममें निवास करते हुए सदा गुरुजनोंकी आज्ञाके अधीन रहा करते थे। वे जितेन्द्रिय, क्रोधजयी, संध्योपासनमें तत्पर, वेद-वेदांगोंके ज्ञानमें निपुण और शास्त्रोंकी व्याख्या करनेमें कुशल थे। प्रतिदिन सायंकाल और प्रात:-काल समिधाओंसे अग्निको प्रज्वलित करके उत्तम हविष्यसे होम किया करते थे। जगत्पति भगवान् विष्णुका ध्यान करके विधिपूर्वक उनकी आराधनामें लगे रहते थे। तपस्या और स्वाध्यायमें तत्पर रहकर वे साक्षात् ब्रह्माजीके पुत्रकी भाँति जान पड़ते थे। जल, समिधा और फूल आदि लाकर निरन्तर गुरुकी पूजामें प्रवृत्त रहते थे। उनके मनमें माता-पिताके प्रति भी पूर्ण सेवाका भाव था। वे भिक्षाका आहार करते और दम्भ-द्वेषसे दूर रहते
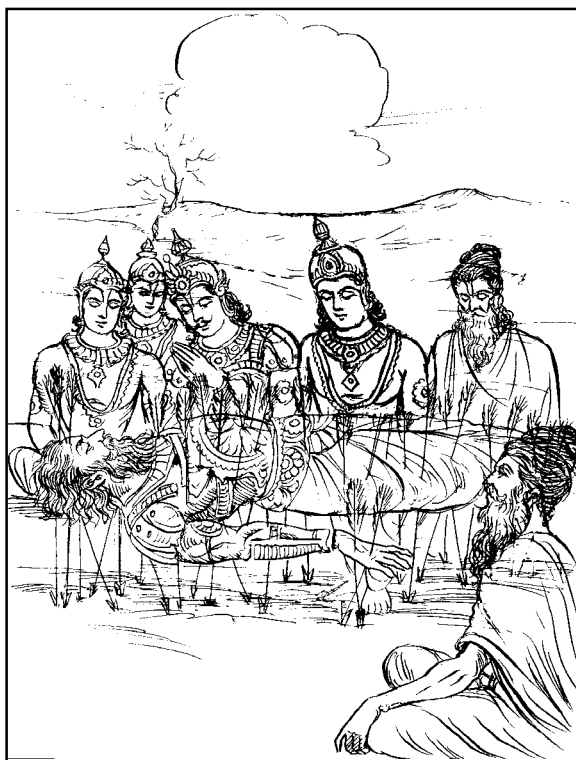
थे। ब्रह्मविद्या (उपनिषद्)-का स्वाध्याय करते और प्राणायामके अभ्यासमें संलग्न रहते थे। उनके हृदयमें सबके प्रति आत्मभाव था। संसारकी ओरसे वे नि:स्पृह हो गये थे। एक बार उनके मनमें संसार-सागरसे तारनेवाला विचार उत्पन्न हुआ; फिर तो वे माता-पिता, भाई, सुहृद्, मित्र, सखा, सम्बन्धी, बन्धु-बान्धव, वंशपरम्परासे प्राप्त एवं धन-धान्यसे परिपूर्ण गृह, सब प्रकारके अन्नकी पैदावारके योग्य बहुमूल्य खेत तथा उनकी तृष्णा छोड़कर महान् धैर्यसे सम्पन्न और परम सुखी होकर पैदल ही पृथ्वीपर विचरने लगे। 'यह यौवन, रूप, आयु और धनका संग्रह सब अनित्य है'— यों विचारकर उनका मन तीनों लोकोंकी ओरसे फिर गया। पाण्डुनन्दन! महायोगी पुण्डरीक पुराणोक्त मार्गसे यथासमय समस्त तीर्थोंमें विधिपूर्वक विचरने लगे।

एक समय धीर तपस्वी महाभाग पुण्डरीक अपने पूर्वकर्मोंके अधीन हो घूमते-घामते शालग्रामतीर्थमें जा पहुँचे, जो तपस्याके धनी एवं तत्त्ववेत्ता मुनियोंके द्वारा सेवित था। उस परम पुण्यमय क्षेत्रमें सरस्वती नदीके देवहृद नामक तीर्थमें स्नान करके उत्तम व्रतका पालन करनेवाले वे महाबुद्धिमान् ब्राह्मण वहींके जातिस्मरी, चक्रकुण्ड, चक्र नदीसे सम्बन्ध रखनेवाले अन्य कुण्ड तथा अन्यान्य तीर्थोंमें भी घूमने लगे। तीर्थसेवनसे उनका अन्त:करण अत्यन्त शुद्ध हो चुका था, अत: उन्होंने ध्यानयोगमें प्रवृत्त होकर वहीं अपना आश्रम बना लिया। उसी तीर्थमें शास्त्रोक्त विधि तथा परम भक्तिके साथ भगवान् गरुडध्वजकी आराधना करके वे सिद्धि पाना चाहते थे; इसलिये शीत, उष्ण आदि द्वन्द्वोंसे रहित एवं जितेन्द्रिय हो दीर्घ कालतक अकेले ही वहाँ निवास करते रहे। शाक, मूल और फल—यही उनका भोजन था। वे सदा संतुष्ट रहते और सबमें समान दृष्टि रखते थे। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधिके द्वारा आलस्यरहित हो सदा विधिपूर्वक योगाभ्यास करते थे। उनके सारे पाप दूर हो चुके थे; वे वैदिक, तान्त्रिक तथा पौराणिक मन्त्रोंसे सर्वेश्वर भगवान् विष्णुकी आराधना करते थे; अत: उन्होंने भलीभाँति शुद्धि प्राप्त कर ली थी। राग-द्वेषसे मुक्त हो मूर्तिमान् स्वधर्मकी भाँति चित्तवृत्तियोंको भगवान्में लगाकर वे निरन्तर उनकी आराधनामें संलग्न रहते थे।

तदनन्तर किसी समय परमार्थ-तत्त्वके ज्ञाता साक्षात् सूर्यके समान महातेजस्वी, विष्णुभक्तिसे परिपूर्ण हृदयवाले तथा वैष्णवोंके हितमें तत्पर रहनेवाले देवर्षि नारदजी तपोनिधि पुण्डरीकको देखनेके लिये उस स्थानपर आये। नारदजीको आया देख पुण्डरीक प्रसन्न चित्तसे उठे और हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया। तत्पश्चात् विधिपूर्वक अर्घ्य निवेदन करके उन्होंने पुन: नारदजीको मस्तक झुकाया। फिर मन-ही-मन विचार किया—ये अद्भुत आकार और मनोहर वेष धारण करनेवाले तेजस्वी पुरुष कौन हैं। इनके हाथमें वीणा है तथा मुखपर प्रसन्नता छा रही है। यह सोचते हुए वे उन परम तेजस्वी नारदजीसे बोले—'महाद्युते! आप कौन हैं? और कहाँसे इस आश्रमपर पधारे हैं? भगवन्! इस पृथ्वीपर आपका दर्शन तो प्राय: दुर्लभ ही है। मेरे लिये जो आज्ञा हो, उसे बतानेकी कृपा कीजिये।'

नारदजीने कहा—ब्रह्मन्! मैं नारद हूँ। तुम्हें

देखनेकी उत्कण्ठासे यहाँ आया हूँ। द्विजश्रेष्ठ! भगवान्‌का भक्त यदि चाण्डाल हो तो भी वह स्मरण, वार्तालाप अथवा पूजन करनेपर सबको पवित्र कर देता है।* जो अपने हाथोंमें शार्ङ्ग नामक धनुष, पांचजन्य शंख, सुदर्शन चक्र और कौमोदकी गदा धारण करते हैं तथा जो त्रिभुवनके नेत्र हैं, उन देवाधिदेव भगवान्‌का मैं दास हूँ।

पुण्डरीक बोले—देवर्षे! आपका दर्शन पाकर मैं देहधारियोंमें धन्य हो गया, देवताओंके लिये भी परम पूजनीय बन गया। मेरे माता-पिता कृतार्थ हो गये और आज मैंने जन्म लेनेका फल पा लिया। नारदजी! मैं आपका भक्त हूँ, मुझपर अनुग्रह कीजिये। मुझे परम गूढ़ रहस्यसे भरे हुए कर्तव्यका उपदेश दीजिये।

नारदजीने कहा—ब्रह्मन्! इस पृथ्वीपर अनेक शास्त्र, बहुत-से कर्म और नाना प्रकारके धर्म हैं; इसीलिये संसारमें ऐसी विलक्षणता दिखायी देती है। अन्यथा सभी प्राणियोंको या तो केवल सुख-ही-सुख प्राप्त होता या केवल दुःख-ही-दुःख। [कोई सुखी और कोई दुःखी—ऐसा अन्तर देखनेमें नहीं आता।] कुछ लोगोंके मतमें 'यह जगत् क्षणिक, विज्ञानमात्र, चेतन आत्मासे रहित तथा बाह्य पदार्थोंकी अपेक्षासे शून्य है।' दूसरे लोग ऐसा कहते हैं कि 'यह जगत् सदा नित्य अव्यक्त (मूल प्रकृति)-से उत्पन्न होता है तथा उसीमें लीन होता है, अतः उपादानकी नित्यताके अनुसार यह भी नित्य ही है। कुछ लोग तत्त्वके विचारमें प्रवृत्त होकर ऐसा निश्चय करते हैं कि 'आत्मा अनेक, नित्य एवं सर्वगत है।' दूसरे लोग इस निश्चयपर पहुँचे हैं कि 'जितने शरीर हैं, उतने ही आत्मा हैं।' इस मतके अनुसार हाथी और कीड़े आदिके शरीरमें तथा [ब्रह्माण्डरूपी] महान् अण्डमें भी आत्माकी सत्ता मौजूद है। कुछ लोगोंका कहना है कि 'आज इस जगत्‌की जैसी अवस्था है, वैसी ही कालान्तरमें भी रहती है। संसारका यह [अनादि] प्रवाह नित्य ही बना रहता है, भला इसका कर्ता कौन है।' कुछ अन्य व्यक्तियोंकी रायमें 'जो-जो वस्तु प्रत्यक्ष उपलब्ध होती है, उसके सिवा और किसी वस्तुकी सत्ता नहीं है; फिर स्वर्ग आदि कहाँ हैं।' कुछ लोग जगत्‌को ईश्वरकी सत्तासे रहित समझते हैं और कुछ लोग इसमें ईश्वरको व्यापक मानते हैं। इस प्रकार एक-दूसरेसे अत्यन्त भिन्न विचार रखनेवाले ये सभी लोग सत्यसे विमुख हो रहे हैं। इसी तरह भिन्न-भिन्न मतका मायाजाल फैलानेवाले दूसरे लोग भी बुद्धि और विद्याके अनुसार अपनी-अपनी युक्तियोंको स्थापित करते हुए भेदपूर्ण विचारोंको लेकर भाँति-भाँतिकी बातें करते हैं।

तपोधन! अब मैं तर्कमें स्थित होकर वास्तविक तत्त्वकी बात कहता हूँ। यह परमार्थज्ञान परम पुण्यमय और भयंकर संसारबन्धनका नाश करनेवाला है। देवता आदिसे लेकर मनुष्यपर्यन्त सब लोग उसीको प्रामाणिक मानते हैं, जो परमार्थज्ञानमूलक प्रतीत होता है। किन्तु जो अज्ञानसे मोहित हो रहे हैं, वे लोग अनागत (भविष्य), अतीत (भूत) और दूरवर्ती वस्तुको प्रमाणरूपमें नहीं स्वीकार करते। उन्हें प्रत्यक्ष वर्तमान वस्तुकी ही प्रामाणिकता मान्य है। परन्तु मुनियोंने प्रत्यक्ष और अनुमानके सिवा उस आगमको भी प्रमाण माना है, जो पूर्वपरम्परासे एक ही रूपमें चला आ रहा हो। वास्तवमें ऐसे आगमको ही परमार्थ वस्तुके साधनमें प्रमाण मानना चाहिये। द्विजश्रेष्ठ! आगम उस शास्त्रका नाम है, जिसके अभ्यासके बलसे राग-द्वेषरूपी मलका नाश करनेवाला उत्तम ज्ञान उत्पन्न होता हो। जो कर्म और उसके फलरूपसे प्रसिद्ध है, जिसका तत्त्व ही विज्ञान और दर्शन नाम धारण करता है, जो सर्वत्र व्यापक और जाति आदिकी कल्पनासे रहित है, जिसे आत्मसंवेदन (आत्मानुभव)-रूप, नित्य, सनातन, इन्द्रियातीत, चिन्मय, अमृत, ज्ञेय, अनन्त, अजन्मा, अविकारी, व्यक्त और अव्यक्तरूपमें स्थित, निरंजन (निर्मल), सर्वव्यापी श्रीविष्णुके नामसे विख्यात तथा वाणीद्वारा वर्णित समस्त

* स्मृतः संभाषितो वापि पूजितो वा द्विजोत्तम। पुनाति भगवद्भक्तश्चाण्डालोऽपि यदृच्छया॥ (८१।५५)

वस्तुओंसे भिन्नरूपमें स्थित माना गया है, वह परमात्मा ही आगमका दूसरा लक्षण है। तात्पर्य यह कि साधन-भूत ज्ञान और साध्यस्वरूप ज्ञेय दोनों ही आगम हैं। वह ज्ञेय परमात्मा योगियोंद्वारा ध्यान करनेयोग्य है। परमार्थसे विमुख मनुष्योंद्वारा उसका ज्ञान होना असम्भव है। भिन्न-भिन्न बुद्धियोंसे वह यद्यपि भिन्न-सा लक्षित होता है, तथापि आत्मासे भिन्न नहीं है। तात पुण्डरीक! ध्यान देकर सुनो। सुव्रत! पूर्वकालमें ब्रह्माजीने मेरे पूछनेपर जिस तत्त्वका उपदेश किया था, वही तुम्हें बतलाता हूँ। एक समय अज, अविनाशी पितामह ब्रह्माजी ब्रह्मलोकमें विराजमान थे। उस समय मैंने विधिपूर्वक उनके चरणोंमें प्रणाम करके पूछा—'ब्रह्मन्! कौन-सा ज्ञान सबसे उत्तम बताया गया है? तथा कौन-सा योग सर्वश्रेष्ठ माना गया है? यह सब यथार्थरूपसे मुझे बताइये।'

ब्रह्माजीने कहा—तात! सावधान होकर परम उत्तम ज्ञानयोगका श्रवण करो। यह थोड़े-से वाक्योंमें कहा गया है, किन्तु इसका अर्थ बहुत विस्तृत है। इसकी उपासनामें कोई क्लेश या परिश्रम नहीं है। जिन्हें गुरु-परम्परासे पंचविंशक* पुरुष बतलाया गया है, वे ही सम्पूर्ण भूतोंके आत्मा हैं; इसलिये उन्हींको सम्पूर्ण जगत्के निवासरूप सनातन परमात्मा नारायण कहा जाता है। वे ही संसारकी सृष्टि, संहार और पालनमें लगे रहते हैं। ब्रह्मन्! ब्रह्मा, शिव और विष्णु—इन तीनों रूपोंमें एक ही देवाधिदेव सनातन पुरुष विराज रहे हैं। अपना हित चाहनेवाले पुरुषको सदा उन्हींकी आराधना करनी चाहिये। जो निःस्पृह, नित्य संतुष्ट, ज्ञानी, जितेन्द्रिय, ममता-अहंकारसे रहित, राग-द्वेषसे शून्य, शान्तचित्त और सब प्रकारकी आसक्तियोंसे पृथक् हो ध्यानयोगमें प्रवृत्त रहते हैं, वे ही उन अक्षय जगदीश्वरको देखते और प्राप्त करते हैं। जो लोग भगवान् नारायणकी शरण ग्रहण कर चुके हैं तथा जिनके मन-प्राण उन्हींके चिन्तनमें लगे हैं, वे ही ज्ञानदृष्टिसे संसारकी वर्तमान अवस्थाको, कालान्तरमें होनेवाली अवस्थाको, भूत, भविष्य, वर्तमान और दूरको, स्थूल और सूक्ष्मको तथा अन्य ज्ञातव्य बातोंको यथार्थरूपसे देख पाते हैं। इसके विपरीत जिनकी बुद्धि मन्द और अन्तःकरण दूषित है तथा जिनका स्वभाव कुतर्क और अज्ञानसे दुष्ट हो रहा है, ऐसे लोगोंको सब कुछ उलटा ही प्रतीत होता है।

नारदजी कहते हैं—पुण्डरीक! अब मैं दूसरा प्रसंग सुनाता हूँ, इसे भी सुनो। पूर्वकालमें जगत्के कारणभूत ब्रह्माजीने ही इसका भी उपदेश किया था। एक बार इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता तथा ऋषियोंके पूछनेपर उत्तम व्रतका पालन करनेवाले ब्रह्माजीने उनके हितकी बात इस प्रकार बतायी थी।

ब्रह्माजीने कहा—देवताओ! भगवान् नारायण ही सबके आश्रय हैं। सनातन लोक, यज्ञ तथा नाना प्रकारके शास्त्रोंका भी पर्यवसान नारायणमें ही होता है। छहों अंगोंसहित वेद तथा अन्य आगम सर्वव्यापी

* पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच इन्द्रियोंके विषय, मन, पाँच भूत, अहंकार, महत्तत्त्व और प्रकृति—ये चौबीस तत्त्व हैं, इनसे भिन्न सर्वज्ञ परमात्मा पचीसवाँ तत्त्व है; इसलिये वह 'पंचविंशक' कहलाता है।

विश्वेश्वर श्रीहरिके ही स्वरूप हैं। पृथ्वी आदि पाँचों भूत भी वे ही अविनाशी परमेश्वर हैं। देवताओंसहित सम्पूर्ण जगत्को श्रीविष्णुमय ही जानना चाहिये; तथापि पापी मनुष्य मोहग्रस्त होनेके कारण इस बातको नहीं समझते। यह समस्त चराचर जगत् उन्हींकी मायासे व्याप्त है। जो मनसे भगवान्का ही चिन्तन करता है, जिसके प्राण भगवान्में ही लगे रहते हैं, वह परमार्थतत्त्वका ज्ञाता पुरुष ही इस रहस्यको जानता है। सम्पूर्ण भूतोंके ईश्वर भगवान् विष्णु ही तीनों लोकोंका पालन करनेवाले हैं। यह सारा संसार उन्हींमें स्थित है और उन्हींसे उत्पन्न होता है। वे ही रुद्ररूप होकर जगत्का संहार करते हैं। पालनके समय उन्हींको श्रीविष्णु कहते हैं तथा सृष्टिकालमें मैं (ब्रह्मा) और अन्यान्य लोकपाल भी उन्हींके स्वरूप हैं। वे सबके आधार हैं, परन्तु उनका आधार कोई नहीं है। वे सम्पूर्ण कलाओंसे युक्त होते हुए भी उनसे रहित हैं। वे ही छोटे-बड़े तथा उनसे भिन्न हैं। साथ ही इन सबसे विलक्षण भी हैं; अतः देवताओ! सबका संहार करनेवाले उन श्रीहरिकी ही शरणमें जाओ। वे ही हमारे जन्मदाता पिता हैं। उन्हींको मधुसूदन कहा गया है।

नारदजी कहते हैं—कमलयोनि ब्रह्माजीके यों कहनेपर सब देवताओंने सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी सर्वव्यापी देव भगवान् जनार्दनकी शरण होकर उन्हें प्रणाम किया; अतः विप्रर्षे! तुम भी श्रीनारायणकी आराधनामें लग जाओ। उनके सिवा दूसरा कौन ऐसा परम उदार देवता है, जो भक्तकी माँगी हुई वस्तु दे सके। वे पुरुषोत्तम ही पिता और माता हैं। सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी, देवताओंके भी देवता और जगदीश्वर हैं। तुम उन्हींकी परिचर्या करो। प्रतिदिन आलस्यरहित हो अग्निहोत्र, भिक्षा, तपस्या और स्वाध्यायके द्वारा उन देवदेवेश्वर गुरुको ही संतुष्ट करना चाहिये। ब्रह्मर्षे! उन्हीं पुरुषोत्तम नारायणको तुम सब तरहसे अपनाओ।

उन बहुत-से मन्त्रों और उन बहुत-से व्रतोंके द्वारा क्या लेना है। '**ॐ नमो नारायणाय**' यह मन्त्र ही सम्पूर्ण अभीष्ट अर्थकी सिद्धि करनेवाला है। द्विजश्रेष्ठ! ब्राह्मण चीरवस्त्र पहनकर जटा रखा ले या दण्ड धारण करके मूँड़ मुँड़ा ले अथवा आभूषणोंसे विभूषित रहे; ऊपरी चिह्न धर्मका कारण नहीं होता। जो भगवान् नारायणकी शरण ले चुके हैं, वे क्रूर, दुरात्मा और सदा ही पापाचारी रहे हों तो भी परमपदको प्राप्त होते हैं। जिनके पाप दूर हो गये हैं, ऐसे वैष्णव पुरुष कभी पापसे लिप्त नहीं होते। वे अहिंसाभावके द्वारा अपने मनको काबूमें किये रहते हैं और सम्पूर्ण संसारको पवित्र करते हैं।*

क्षत्रबन्धु नामके राजाने, जो सदा प्राणियोंकी हिंसामें ही लगा रहता था, भगवान् केशवकी शरण लेकर श्रीविष्णुके परमधामको प्राप्त कर लिया। महान् धैर्यशाली राजा अम्बरीषने अत्यन्त कठोर तपस्या की थी और भगवान् पुरुषोत्तमकी आराधना करके उनका साक्षात्कार किया था। राजाओंके भी राजा मित्रासन बड़े तत्त्ववेत्ता थे। उन्होंने भी भगवान् हृषीकेशकी आराधना करके ही उनके वैकुण्ठधामको प्राप्त किया था। उनके सिवा बहुत-से ब्रह्मर्षि भी, जो तीक्ष्ण व्रतोंका पालन करनेवाले और शान्तचित्त थे, परमात्मा विष्णुका ध्यान करके परम सिद्धि (मोक्ष)-को प्राप्त हुए। पूर्वकालमें परम आह्लादसे भरे हुए प्रह्लाद भी सम्पूर्ण जीवोंके आश्रयभूत श्रीहरिका सेवन, पूजन और ध्यान करते थे; अतः भगवान्ने ही उनकी संकटोंसे रक्षा की। परम धर्मात्मा और तेजस्वी राजा भरतने भी दीर्घकालतक इन श्रीविष्णुभगवान्की उपासना करके परम मोक्ष प्राप्त कर लिया था।

---

* किं तैस्तु मन्त्रैर्बहुभिः किं तैस्तु बहुभिर्व्रतैः। ॐ नमो नारायणायेति मन्त्रः सर्वार्थसाधकः॥
चीरवासा जटी विप्रो दण्डी मुण्डी तथैव च। भूषितो वा द्विजश्रेष्ठ न लिङ्गं धर्मकारणम्॥
ये नृशंसा दुरात्मानः पापाचारपराः सदा। तेऽपि यान्ति परं स्थानं नारायणपरायणाः॥
लिप्यन्ते न च पापेन वैष्णवा वीतकिल्बिषाः। पुनन्ति सकलं लोकमहिंसाजितमानसाः॥ (८१। १०७—११०)

ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ अथवा संन्यासी—कोई भी क्यों न हो, भगवान् केशवकी आराधनाको छोड़कर परमगतिको नहीं प्राप्त हो सकता। हजारों जन्म लेनेके पश्चात् जिसकी ऐसी बुद्धि होती है कि 'मैं भगवान् विष्णुके भक्तोंका दास हूँ', वह समस्त पुरुषार्थोंका साधक होता है। वह पुरुष भी निस्सन्देह श्रीविष्णुधाममें जाता है। फिर जो कठोर व्रतोंका पालन करनेवाले पुरुष भगवान् विष्णुमें ही मन-प्राण लगाये रहते हैं, उनकी उत्तम गतिके विषयमें क्या कहना है। अतः तत्त्वका चिन्तन करनेवाले पुरुषोंको चाहिये कि वे नित्य-निरन्तर अनन्यचित्तसे विश्वव्यापी सनातन परमात्मा नारायणका ध्यान करते रहें।*

भीष्मजी कहते हैं—यों कहकर परोपकारपरायण परमार्थवेत्ता देवर्षि नारद वहीं अन्तर्धान हो गये। नारायणकी शरणमें पड़े हुए धर्मात्मा पुण्डरीक भी '**ॐ नमो नारायणाय**' इस अष्टाक्षरमन्त्रका जप करने लगे। वे अपने हृदयकमलमें अमृतस्वरूप गोविन्दकी स्थापना करके मुखसे सदा यही कहा करते थे कि 'हे विश्वात्मन्! आप मुझपर प्रसन्न होइये।' द्वन्द्व और परिग्रहसे रहित हो तपोधन पुण्डरीकने उस निर्मल शालग्रामतीर्थमें अकेले ही चिरकालतक निवास किया। स्वप्नमें भी उन्हें केशवके सिवा और कुछ नहीं दिखायी देता था। उनकी निद्रा भी पुरुषार्थ-सिद्धिकी विरोधिनी नहीं थी। तपस्या, ब्रह्मचर्य तथा विशेषतः शौचाचारके पालनसे, जन्म-जन्मान्तरोंके विशुद्ध संस्कारसे तथा सर्वलोकसाक्षी देवाधिदेव श्रीविष्णुके प्रसादसे पापरहित पुण्डरीकने परम उत्तम वैष्णवी सिद्धि प्राप्त कर ली। वे सदा हाथोंमें शंख, चक्र और गदा लिये कमलके समान नेत्रोंवाले श्यामसुन्दर पीताम्बरधारी भगवान् अच्युतकी ही झाँकी किया करते थे। मृगों और प्राणियोंकी हिंसा करनेवाले सिंह, व्याघ्र तथा अन्यान्य जीव अपना स्वाभाविक विरोध छोड़कर उनके समीप आते और इच्छानुसार विचरा करते थे। उनकी सम्पूर्ण इन्द्रियाँ प्रसन्न रहती थीं। उनके हृदयमें एक-दूसरेके हितसाधनका मनोरम भाव भर जाता था। वहाँके जलाशय और नदियोंके जल स्वच्छ हो गये थे। सभी ऋतुओंमें वहाँ प्रसन्नता छायी रहती थी। सबकी इन्द्रिय-वृत्तियाँ शुद्ध हो गयी थीं। हवा ऐसी चलती थी, जिसका स्पर्श सुखदायक जान पड़े। वृक्ष फूल और फलोंसे लदे रहते थे। परम बुद्धिमान् पुण्डरीकके लिये सभी पदार्थ अनुकूल हो गये थे। देवदेवेश्वर भक्तवत्सल गोविन्दके प्रसन्न होनेपर उनके लिये समस्त चराचर जगत् प्रसन्न हो गया था।

तदनन्तर एक दिन बुद्धिमान् पुण्डरीकके सामने भगवान् जगन्नाथ प्रकट हुए। हाथोंमें शंख, चक्र और

---

* ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः। केशवाराधनं हित्वा नैव याति परां गतिम्॥
जन्मान्तरसहस्रेषु यस्य स्यान्मतिरीदृशी। दासोऽहं विष्णुभक्तानामिति सर्वार्थसाधकः॥
स याति विष्णुसालोक्यं पुरुषो नात्र संशयः। किं पुनस्तद्गतप्राणाः पुरुषाः संशितव्रताः॥
अनन्यमनसा नित्यं ध्यातव्यस्तत्त्वचिन्तकैः। नारायणो जगद्व्यापी परमात्मा सनातनः॥ (८१। ११७—१२०)

गदा शोभा पा रहे थे। तेजोमयी आकृति, कमलके समान बड़े-बड़े नेत्र और चन्द्रमण्डलके समान कान्तिमान् मुख। कमरमें करधनी, कानोंमें कुण्डल, गलेमें हार, बाहुओंमें भुजबन्द, वक्ष:स्थलमें श्रीवत्सका चिह्न और श्याम शरीरपर पीतवस्त्र शोभा पा रहे थे। भगवान् कौस्तुभमणिसे विभूषित थे। वनमालासे उनका सारा अंग व्याप्त था। मकराकृत कुण्डल जगमगा रहे थे। दमकते हुए यज्ञोपवीत और नीचेतक लटकती हुई मोतियोंकी मालासे उनकी शोभा और भी बढ़ गयी थी। देव, सिद्ध, देवेन्द्र, गन्धर्व और मुनि चँवर तथा व्यजन आदिसे भगवान्की सेवा कर रहे थे। पापरहित पुण्डरीकने स्वयं उन देवदेवेश्वर महात्मा जनार्दनको वहाँ उपस्थित देख पहचान लिया और प्रसन्न चित्तसे हाथ जोड़ प्रणाम करके स्तुति करना आरम्भ किया।

पुण्डरीक बोले—सम्पूर्ण जगत्के एकमात्र नेत्र आप भगवान् विष्णुको नमस्कार है। आप निरंजन (निर्मल), नित्य, निर्गुण एवं महात्मा हैं; आपको नमस्कार है। आप समस्त प्राणियोंके ईश्वर हैं भक्तोंका भय एवं पीड़ा दूर करनेके लिये गोविन्द तथा गरुडध्वजरूप धारण करते हैं। जीवोंपर अनुग्रह करनेके लिये अनेक आकार धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। यह सम्पूर्ण विश्व आपमें ही स्थित है। केवल आप ही इसके उपादान कारण हैं। आपने ही जगत्का निर्माण किया है। नाभिसे कमल प्रकट करनेवाले आप भगवान् पद्मनाभको बारंबार नमस्कार है। समस्त वेदान्तोंमें जिनकी आत्मविभूतिका ही श्रवण किया जाता है, उन परमेश्वरको नमस्कार है। नारायण! आप ही सम्पूर्ण देवताओंके स्वामी और जगत्के कारण हैं। मेरे हृदयमन्दिरमें निवास करनेवाले भगवान् शंख-चक्र-गदाधर! मुझपर प्रसन्न होइये। समस्त प्राणियोंके आदिभूत, इस पृथ्वीको धारण करनेवाले, अनेक रूपधारी तथा सबकी उत्पत्तिके कारण श्रीविष्णुको नमस्कार है। ब्रह्मा आदि देवता और सुरेश्वर भी जिनकी महिमाको नहीं जानते, जिनकी महिमाका तपस्यासे ही अनुमान हो सकता है, उन परमात्माको नमस्कार है। भगवन्! आपकी महिमा वाणीका विषय नहीं है, उसे कहना असम्भव है। आप जाति आदिकी कल्पनासे दूर हैं, अत: सदा तत्त्वत: ध्यान करनेके योग्य हैं। पुरुषोत्तम! आप एक—अद्वितीय होते हुए भी भक्तोंपर कृपा करनेके लिये भेदरूपसे मत्स्य-कूर्म आदि अवतार धारण करके दर्शन देते हैं।

भीष्मजी कहते हैं—इस प्रकार जगत्के स्वामी वीरवर भगवान् पुरुषोत्तमकी स्तुति करके पुण्डरीक उन्हींको निहारने लगे; क्योंकि चिरकालसे वे उनके दर्शनकी लालसा रखते थे। तब तीन पगोंसे त्रिलोकीको नापनेवाले तथा नाभिसे कमल प्रकट करनेवाले भगवान् विष्णुने महाभाग पुण्डरीकसे गम्भीर वाणीमें कहा—'बेटा पुण्डरीक! तुम्हारा कल्याण हो। मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। महामते! तुम्हारे मनमें जो भी कामना हो, उसे वरके रूपमें माँगो। मैं अवश्य दूँगा।'

पुण्डरीक बोले—देवेश्वर! कहाँ मैं अत्यन्त खोटी बुद्धिवाला मनुष्य और कहाँ मेरे परम हितैषी आप। माधव! जिसमें मेरा हित हो, उसे आप ही दीजिये।

पुण्डरीकके यों कहनेपर भगवान् अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले—'सुव्रत! तुम्हारा कल्याण हो। आओ, मेरे ही साथ चलो। तुम मेरे परम उपकारी और सदा मुझमें ही मन लगाये रखनेवाले हो; अत: सर्वदा मेरे साथ ही रहो।'

भीष्मजी कहते हैं—भक्तवत्सल भगवान् श्रीधरने प्रसन्नतापूर्वक जब इस प्रकार कहा, उसी समय आकाशमें देवताओंकी दुंदुभी बज उठी और आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी। ब्रह्मा आदि देवता साधुवाद देने लगे। सिद्ध, गन्धर्व और किन्नर गान करने लगे। समस्त लोकोंद्वारा वन्दित देवदेव जगदीश्वरने वहीं पुण्डरीकको अपने साथ ले लिया और गरुड़पर आरूढ़ हो वे परमधामको चले गये; इसलिये राजेन्द्र युधिष्ठिर!

तुम भी भगवान् विष्णुकी भक्तिमें लग जाओ। उन्हींमें मन, प्राण लगाये रहो और सदा उनके भक्तोंके हितमें तत्पर रहो। यथायोग्य अर्चना करके पुरुषोत्तमका भजन करो और सब पापोंका नाश करनेवाली भगवान्‌की पवित्र कथा सुनो। राजन्! जिस उपायसे भी भक्तपूजित विश्वात्मा भगवान् विष्णु प्रसन्न हों, वह विस्तारके साथ करो। जो मनुष्य भगवान् नारायणसे विमुख होते हैं, वे सौ अश्वमेध और सौ वाजपेययज्ञोंका अनुष्ठान करके भी उन्हें नहीं पा सकते। जिसने एक बार भी 'हरि' इन दो अक्षरोंका उच्चारण कर लिया, उसने मोक्षतक पहुँचनेके लिये मानो कमर कस ली। जिनके हृदयमें नीलकमलके समान श्यामसुन्दर भगवान् जनार्दन विराजमान हैं, उन्हींको लाभ है, उन्हींकी विजय है; उनकी पराजय कैसे हो सकती है।* जो एकाग्रचित्त होकर प्रतिदिन इसे सुनता या पढ़ता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके धाममें जाता है।

श्रीगंगाजीकी महिमा, वैष्णव पुरुषोंके लक्षण तथा श्रीविष्णु-प्रतिमाके पूजनका माहात्म्य

पार्वती बोलीं—महामते! श्रीगंगाजीके माहात्म्यका पुनः वर्णन कीजिये, जिसे सुनकर सभी मुनि संसारकी ओरसे विरक्त हो जाते हैं।

श्रीमहादेवजीने कहा—देवि! बुद्धिमें बृहस्पति और पराक्रममें इन्द्रके समान भीष्मजी जब बाणशय्यापर शयन कर रहे थे, उस समय उन्हें देखनेके लिये अत्रि, वसिष्ठ, भृगु, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अंगिरा, गौतम, अगस्त्य और सुमति आदि बहुत-से ऋषि आये। धर्मपुत्र युधिष्ठिर अपने भाइयोंके साथ वहाँ मौजूद थे। उन्होंने उन परम तेजस्वी, जगत्पूज्य ऋषियोंको प्रणाम करके विधिपूर्वक उनका पूजन किया। पूजा ग्रहण करके वे तपोधन महात्मा जब सुखपूर्वक आसनपर बैठ गये, तब युधिष्ठिरने भीष्मजीको प्रणाम करके इस प्रकार पूछा—पितामह! धर्मार्थी पुरुषोंके नित्य सेवन करनेयोग्य परम पुण्यमय देश, पर्वत और आश्रम कौन-कौन-से हैं?'

* अश्वमेधशतैरिष्ट्वा वाजपेयशतैरपि । प्राप्नुवन्ति नरा नैव नारायणपराङ्मुखाः ॥

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर! इस विषयमें एक प्राचीन इतिहास बतलाया जाता है, जिसमें शिल और उञ्छवृत्तिसे जीविका चलानेवाले ब्राह्मणका किसी सिद्ध पुरुषके साथ हुए संवादका वर्णन है। कोई सिद्ध पुरुष समूची पृथ्वीकी परिक्रमा करके किसी उञ्छवृत्तिवाले महात्मा गृहस्थके घर गये। वे आत्मविद्याके तत्त्वज्ञ, सदा अपनी इन्द्रियोंको काबूमें रखनेवाले, राग-द्वेषसे रहित, ज्ञान-कर्ममें कुशल, वैष्णवोंमें श्रेष्ठ, वैष्णव-धर्मके पालनमें तत्पर, वैष्णवोंकी निन्दासे दूर रहनेवाले, योगाभ्यासी, त्रिकालपूजाके तत्त्वज्ञ, वेदविद्यामें निपुण, धर्माधर्मका विचार करनेवाले, नित्य नियमपूर्वक वेदपाठ करनेवाले और सदा अतिथिपूजामें तत्पर रहनेवाले थे। सिद्ध पुरुषको आया देख गृहस्थने उनका विधिपूर्वक आतिथ्य-सत्कार किया। तत्पश्चात् उनसे पूछा—द्विजवर! कौन-कौनसे देश, पर्वत और आश्रम पवित्र हैं? मुझे प्रेमपूर्वक बतानेकी कृपा कीजिये।

सिद्ध पुरुषने कहा—ब्रह्मन्! जिनके बीच नदियोंमें श्रेष्ठ त्रिपथगा गंगाजी सदा बहती रहती हैं, वे ही देश, वे ही जनपद, वे ही पर्वत और वे ही आश्रम परम पवित्र हैं। जीव गंगाजीका सेवन करके जिस गतिको प्राप्त करता है, उसे तपस्या, ब्रह्मचर्य, यज्ञ अथवा त्यागसे भी नहीं पा सकता।[1] अपने मनको संयममें रखनेवाले पुरुषोंको गंगाजीके जलमें स्नान करनेसे जो संतोष होता है, वह सौ यज्ञोंके अनुष्ठानसे भी नहीं हो सकता। जैसे सूर्य उदयकालमें तीव्र अन्धकारका नाश करके तेजसे उद्भासित हो उठता है, उसी प्रकार गंगाजीके जलमें डुबकी लगानेवाला मनुष्य पापोंका नाश करके पुण्यसे प्रकाशमान होने लगता है। विप्र! जैसे आगका संयोग पाकर रूईका ढेर जल जाता है, उसी प्रकार गंगाका स्नान मनुष्यके सारे पापोंको दूर कर देता है।[2] जो मनुष्य सूर्यकी किरणोंसे तपे हुए गंगाजलका पान करता है, वह सब रोगोंसे मुक्त हो जाता है। जो पुरुष एक पैरसे खड़ा होकर एक हजार चान्द्रायणव्रतोंका अनुष्ठान करता है और जो केवल गंगाजीके जलमें डुबकी लगाता है—इन दोनोंमें डुबकी लगानेवाला मनुष्य ही श्रेष्ठ है। जो दस हजार वर्षोंतक नीचे सिर करके लटका रहता है, उसकी अपेक्षा भी वही मनुष्य श्रेष्ठ है जो एक मास भी गंगाजलका सेवन कर लेता है। नरश्रेष्ठ! गंगाजीमें स्नान करके मनुष्य देहत्यागके पश्चात् तुरंत वैकुण्ठमें चला जाता है। जो सौ योजन दूरसे भी 'गंगा-गंगा' का उच्चारण करता है, वह

सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम्। बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति॥
लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः। येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः॥ (८१। १६३—१६५)

१-तपसा ब्रह्मचर्येण यज्ञैस्त्यागेन वा पुनः। गतिं तां न लभेज्जन्तुर्गङ्गां संसेव्य यां लभेत्॥ (८२। २४)

२-अपहृत्य तमस्तीव्रं यथा भात्युदये रविः। तथापहृत्य पाप्मानं भाति गङ्गाजलाप्लुतः॥
अग्निं प्राप्य यथा विप्र तूलराशिर्विनश्यति। तथा गङ्गावगाहश्च सर्वपापं व्यपोहति॥ (८२। २६-२७)

सब पापोंसे मुक्त हो श्रीविष्णुलोकको चला जाता है।[१]

ब्रह्महत्यारा, गोघाती, शराबी और बालहत्या करनेवाला मनुष्य भी गंगाजीमें स्नान करके सब पापोंसे छूट जाता और तत्काल देवलोकमें चला जाता है। माधव तथा अक्षयवटका दर्शन और त्रिवेणीमें स्नान करनेवाला पुरुष वैकुण्ठमें जाता है। जैसे सूर्यके उदय होनेपर अन्धकार नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार गंगामें स्नान करनेमात्रसे मनुष्यके सारे पाप दूर हो जाते हैं। गंगाद्वार, कुशावर्त, बिल्वक, नील पर्वत तथा कनखलतीर्थ-में स्नान करनेसे मनुष्यका पुनर्जन्म नहीं होता।[२]

भीष्मजी कहते हैं—ऐसा जानकर श्रेष्ठ मनुष्यको बारंबार गंगास्नान करना चाहिये। राजन्! वहाँ स्नान करनेमात्रसे मनुष्य पापमुक्त हो जाता है। जैसे देवताओंमें विष्णु, यज्ञोंमें अश्वमेध और समस्त वृक्षोंमें अश्वत्थ (पीपल) श्रेष्ठ है, उसी प्रकार नदियोंमें भागीरथी गंगा सदा श्रेष्ठ मानी गयी हैं।

पार्वतीने पूछा—विश्वेश्वर! वैष्णवोंका लक्षण कैसा बताया गया है तथा उनकी महिमा कैसी है? प्रभो! यह बतानेकी कृपा करें।

महादेवजी बोले—देवि! भक्त पुरुष भगवान् विष्णुकी वस्तु माना गया है, इसलिये इसे 'वैष्णव' कहते हैं। जो शौच, सत्य और क्षमासे युक्त हो, राग-द्वेषसे दूर रहता हो, वेद-विद्याके विचारका ज्ञाता हो, नित्य अग्निहोत्र और अतिथियोंका सत्कार करता हो तथा पिता-माताका भक्त हो, वह वैष्णव कहलाता है। जो कण्ठमें माला धारण करके मुखसे सदा श्रीरामनामका उच्चारण करते, भक्तिपूर्वक भगवान्‌की लीलाओंका गान करते, पुराणोंके स्वाध्यायमें लगे रहते और सर्वदा यज्ञ किया करते हैं, उन मनुष्योंको वैष्णव जानना चाहिये। वे सब धर्मोंमें सम्मानित होते हैं। जो पापाचारी मनुष्य उन वैष्णवोंकी निन्दा करते हैं, वे मरनेपर बारंबार कुत्सित योनियोंमें पड़ते हैं। जो द्विज धातु अथवा मिट्टीकी बनी हुई चार हाथोंवाली शोभामयी गोपाल मूर्तिका सदा पूजन करते हैं, वे पुण्यके भागी होते हैं। जो ब्राह्मण पत्थरकी बनी हुई परम सुन्दर रूपवाली श्रीकृष्ण-प्रतिमाकी पूजा करते हैं, वे पुण्यस्वरूप हैं। जहाँ शालग्रामशिला तथा द्वारकाकी गोमती-चक्रांकित शिला हो और उन दोनोंका पूजन किया जाता हो, वहाँ निःसन्देह मुक्ति मौजूद रहती है। वहाँ यदि मन्त्रद्वारा मूर्तिकी स्थापना करके पूजन किया जाय तो वह पूजन कोटिगुना अधिक पुण्य देनेवाला तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्रदान करनेवाला होता है। वहाँ भगवान् जनार्दनकी नवधा भक्ति करनी चाहिये। भक्त पुरुषोंको मूर्तिमें भगवान्‌का ध्यान और पूजन करना चाहिये। सम्भव हो तो भगवन्मूर्तिकी राजोचित उपचारोंसे पूजा करे तथा उस मूर्तिमें दीनों और अनाथोंको एकमात्र शरण देनेवाले, सम्पूर्ण लोकोंके हितकारी एवं बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाले सर्वात्मा भगवान् अधोक्षजका नित्य-निरन्तर स्मरण करे। जो मूर्तिके सम्बन्धमें 'ये गोपाल हैं', 'ये साक्षात् श्रीकृष्ण हैं', 'ये श्रीरामचन्द्रजी हैं'—यों कहता है और इसी भावसे विधिपूर्वक पूजा करता है, वह निश्चय ही भगवान्‌का भक्त है। श्रेष्ठ वैष्णव द्विजोंको चाहिये कि वे परम भक्तिके साथ सोने, चाँदी, ताँबे अथवा पीतलकी विष्णु-प्रतिमाका निर्माण करायें, जिसके चार भुजा, दो नेत्र, हाथोंमें शंख, चक्र और गदा, शरीरपर पीत वस्त्र, गलेमें वनमाला, कानोंमें वैदूर्यमणिके कुण्डल, माथेपर मुकुट और वक्षःस्थलमें कौस्तुभमणिका दिव्य प्रकाश हो। प्रतिमा भारी और शोभासम्पन्न होनी चाहिये। फिर वेद-शास्त्रोक्त मन्त्रोंके द्वारा विशेष समारोहसे उसकी स्थापना कराकर पीछे शास्त्रके अनुसार षोडशोपचारके मन्त्र आदिद्वारा विधिपूर्वक उसका पूजन करना चाहिये। जगत्के स्वामी भगवान् विष्णुके पूजित होनेपर सम्पूर्ण देवताओंकी पूजा हो जाती है। अतः इस प्रकार आदि-अन्तसे रहित, शंख, चक्र और गदा धारण करनेवाले

१-गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद् योजनानां शतैरपि। मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥ (८२। ३४-३५)

२-गङ्गाद्वारे कुशावर्ते बिल्वके नीलपर्वते। स्नात्वा कनखले तीर्थे पुनर्जन्म न विद्यते॥ (८२। ३८-३९)

भगवान् श्रीहरिका पूजन करना चाहिये। वे सर्वेश्वर पुण्यस्वरूप वैष्णवोंको सब कुछ देते हैं। जो शिवकी पूजा नहीं करता और श्रीविष्णुकी निन्दामें तत्पर रहता है, उसे निश्चय ही रौरव नरकमें निवास करना पड़ता है। मैं ही विष्णु हूँ, मैं ही रुद्र हूँ और मैं ही पितामह ब्रह्मा हूँ। मैं ही सदा सब भूतोंमें निवास किया करता हूँ।

चैत्र और वैशाख मासके विशेष उत्सवका वर्णन, वैशाख, ज्येष्ठ और आषाढ़में जलस्थ श्रीहरिके पूजनका महत्त्व

पार्वती बोलीं—महेश्वर! सब महीनोंकी विधिका वर्णन कीजिये। प्रत्येक मासमें कौन-कौनसे महोत्सव करने चाहिये और उनके लिये उत्तम विधि क्या है? सुरेश्वर! किस महीनेका कौन देवता है? किसकी पूजा करनी चाहिये, उस पूजनकी महिमा कैसी है और वह किस तिथिको करना उचित है?

महादेवजी बोले—देवि! मैं प्रत्येक मासके उत्सवकी विधि बतलाता हूँ। पहले चैत्र मासके शुक्लपक्षमें विशेषतः एकादशी तिथिको भगवान्‌को झूलेपर बिठाकर पूजा करनी चाहिये। यह दोलारोहणका उत्सव बड़ी भक्तिके साथ और विधिपूर्वक मनाना चाहिये। पार्वती! जो लोग कलियुगके पाप-दोषका अपहरण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णको झूलेपर विराजमान देखते हैं—उस रूपमें उनकी झाँकी करते हैं, वे सहस्रों अपराधोंसे मुक्त हो जाते हैं। करोड़ों जन्मोंमें किये हुए पाप तभीतक मौजूद रहते हैं, जबतक मनुष्य विश्वके स्वामी भगवान् जगन्नाथको झूलेपर बिठाकर उन्हें अपने हाथसे झुलाता नहीं। जो लोग कलियुगमें झूलेपर बैठे हुए जनार्दनका दर्शन करते हैं, वे गोहत्यारे हों तो भी मुक्त हो जाते हैं; फिर औरोंकी तो बात ही क्या है। दोलोत्सवसे प्रसन्न होकर समस्त देवता भगवान् शंकरको साथ लेकर झूलेपर बैठे हुए श्रीविष्णुकी झाँकी करनेके लिये आते हैं और आँगनमें खड़े हो हर्षमें भरकर स्वयं भी नाचते, गाते एवं बाजे बजाते हैं। वासुकि आदि नाग और इन्द्र आदि देवता भी दर्शनके लिये पधारते हैं। भगवान् विष्णुको झूलेपर विराजमान देख तीनों लोकोंमें उत्सव होने लगता है; अतः सैकड़ों कार्य छोड़कर दोलोत्सवके दिन झूलनका उत्सव करो। जो लोग झूलेपर बैठे हुए भगवान् श्रीकृष्णके सामने रात्रिमें जागरण करते हैं, उन्हें एक निमेषमें ही सब पुण्योंकी प्राप्ति हो जाती है। सुरेश्वरि! झूलेपर विराजमान दक्षिणाभिमुख भगवान् गोविन्दका एक बार भी दर्शन करके मनुष्य ब्रह्महत्याके पापसे छूट जाता है।

ॐ दोलारूढाय विद्महे माधवाय च धीमहि। तन्नो देवः प्रचोदयात्॥

'झूलेपर बैठे हुए भगवान्‌का तत्त्व जाननेके लिये हम ज्ञान प्राप्त करते हैं। श्रीमाधवका ध्यान करते हैं। अतः वे देव—भगवान् विष्णु हमलोगोंकी बुद्धिको प्रेरित करें।'

इस गायत्री-मन्त्रके द्वारा भगवान्‌का पूजन करना चाहिये। '**माधवाय नमः**', '**गोविन्दाय नमः**' और '**श्रीकण्ठाय नमः**' इन मन्त्रोंसे भी पूजन किया जा सकता है। मन्त्रोच्चारणके साथ विधिपूर्वक पूजन करना उचित है। एकाग्रचित्त होकर गुरुको यथाशक्ति दक्षिणा देनी चाहिये तथा निरन्तर भक्तिपूर्वक श्रीविष्णुकी लीलाओंका गान करते रहना चाहिये। इससे उत्सव पूर्ण होता है। सुमुखि! और अधिक कहनेसे क्या लाभ। झूलेपर विराजमान भगवान् विष्णु सब पापोंको हरनेवाले हैं। जहाँ दोलोत्सव होता है, वहाँ देवता, गन्धर्व, किन्नर और ऋषि बहुधा दर्शनके लिये आते हैं। उस समय '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**' इस मन्त्रद्वारा षोडशोपचारसे विधिवत् पूजा करनी उचित है। इससे सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण होती हैं। सुव्रते! अंगन्यास, करन्यास तथा शरीरन्यास—सब कुछ द्वादशाक्षर-मन्त्रसे करना चाहिये और इस आगमोक्त मन्त्रसे ही महान् उत्सवका कार्य सम्पन्न करना चाहिये। झूलेपर सबसे

ऊँचे लक्ष्मीसहित भगवान् विष्णुको बैठाना चाहिये। भगवान्के आगे [कुछ नीची सतहमें] वैष्णवोंको, नारदादि देवर्षियोंको तथा विष्वक्सेन आदि भक्तोंको स्थापित करना चाहिये। फिर पाँच प्रकारके बाजोंकी आवाजके साथ विद्वान् पुरुष भगवान्की आरती करे और प्रत्येक पहरमें यत्नपूर्वक पूजा भी करता रहे। तत्पश्चात् नारियल तथा सुन्दर केलोंके साथ जलसे भगवान्को अर्घ्य दे। अर्घ्यका मन्त्र इस प्रकार है—

देवदेव जगन्नाथ शङ्खचक्रगदाधर।
अर्घ्यं गृहाण मे देव कृपां कुरु ममोपरि॥

(८५। ३१)

'देवताओंके देवता, जगत्के स्वामी तथा शंख, चक्र और गदा धारण करनेवाले दिव्यस्वरूप नारायण! यह अर्घ्य ग्रहण करके मुझपर कृपा कीजिये।'

तदनन्तर भगवान्के प्रसादभूत चरणामृत आदि वैष्णवोंको बाँटे। वैष्णवजनोंको चाहिये कि वे बाजे बजाकर भगवान्के सामने नृत्य करें और सभी लोग बारी-बारीसे भगवान्को झुलायें। सुरेश्वरि! पृथ्वीपर जो-जो तीर्थ और क्षेत्र हैं, वे सभी उस दिन भगवान्का दर्शन करने आते हैं—ऐसा जानकर यह महान् उत्सव अवश्य करना चाहिये।

पार्वती! वैशाख मासकी पूर्णिमाके दिन वैष्णव पुरुष भक्ति, उत्साह और प्रसन्नताके साथ जगदीश्वर भगवान्को जलमें पधराकर उनकी पूजा करे अथवा एकादशी तिथिको अत्यन्त हर्षमें भरकर गीत, वाद्य तथा नृत्यके साथ यह पुण्यमय महोत्सव करे। भक्तिपूर्वक श्रीहरिकी लीला-कथाका गान करते हुए ही यह शुभ उत्सव रचाना उचित है। उस समय भगवान्से प्रार्थनापूर्वक कहे—'हे देवेश्वर! इस जलमें शयन कीजिये।' जो लोग वर्षाकालके आरम्भमें भगवान् जनार्दनको जलमें शयन कराते हैं, उन्हें कभी नरककी ज्वालामें नहीं तपना पड़ता। देवेश्वरि! सोने, चाँदी, ताँबे अथवा मिट्टीके बर्तनमें श्रीविष्णुको शयन कराना उचित है। पहले उस बर्तनमें शीतल एवं सुगन्धित जल रखकर विद्वान् पुरुष उस जलके भीतर श्रीविष्णुको स्थापित करे। गोपाल या श्रीराम नामक मूर्तिकी स्थापना करे अथवा शालग्रामशिलाको ही स्थापित करे या और ही कोई प्रतिमा जलमें रखे। उससे होनेवाले पुण्यका अन्त नहीं है। देवि! इस पृथ्वीपर जबतक पर्वत, लोक और सूर्यकी किरणें विद्यमान हैं, तबतक उसके कुलमें कोई नरकगामी नहीं होता। अतः ज्येष्ठ मासमें श्रीहरिको जलमें पधराकर उनकी पूजा करनी चाहिये। इससे मनुष्य प्रलयकालतक निष्पाप बना रहता है। ज्येष्ठ और आषाढ़के समय तुलसीदलसे वासित शीतल जलमें भगवान् धरणीधरकी पूजा करे। जो लोग ज्येष्ठ और आषाढ़ मासमें नाना प्रकारके पुष्पोंसे जलमें स्थित श्रीकेशवकी पूजा करते हैं, वे यम-यातनासे छुटकारा पा जाते हैं। भगवान् विष्णु जलके प्रेमी हैं, उन्हें जल बहुत ही प्रिय है; इसीलिये वे जलमें शयन करते हैं। अतः गरमीके मौसममें विशेषरूपसे जलमें स्थापित करके ही श्रीहरिका पूजन करना चाहिये। जो शालग्रामशिलाको जलमें विराजमान करके परम भक्तिके साथ उसकी पूजा करता है, वह अपने कुलको पवित्र करनेवाला होता है। पार्वती! सूर्यके मिथुन और कर्कराशिपर स्थित होनेके

समय जिसने भक्तिपूर्वक जलमें श्रीहरिकी पूजा की है, विशेषतः द्वादशी तिथिको जिसने जलशायी विष्णुका अर्चन किया है, उसने मानो कोटिशत यज्ञोंका अनुष्ठान कर लिया। जो वैशाख मासमें भगवान् माधवको जलपात्रमें स्थापित करके उनका पूजन करते हैं, वे इस पृथ्वीपर मनुष्य नहीं, देवता हैं।

जो द्वादशीकी रातको जलपात्रमें गन्ध आदि डालकर उसमें भगवान् गरुडध्वजकी स्थापना और पूजा करता है, वह मोक्षका भागी होता है। जो श्रद्धारहित, पापात्मा, नास्तिक, संशयात्मा और तर्कमें ही स्थित रहनेवाले हैं, ये पाँच व्यक्ति पूजाके फलके भागी नहीं होते।* इसी प्रकार जो जगत्के स्वामी महेश्वर श्रीविष्णुको सदा जलमें रखकर उनकी पूजा करता है, वह मनुष्य सदाके लिये महापापोंसे मुक्त हो जाता है। देवेश्वरि! **'ॐ ह्रां ह्रीं रामाय नमः'** इस मन्त्रसे वहाँ पूजन बताया गया है। **'ॐ क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय नमः'** इस मन्त्रसे जलको अभिमन्त्रित करना चाहिये। तत्पश्चात् निम्नांकित मन्त्रसे अर्घ्य निवेदन करे—

देवदेव महाभाग श्रीवत्सकृतलाञ्छन।
महादेव नमस्तेऽस्तु नमस्ते विश्वभावन॥
अर्घ्यं गृहाण भो देव मुक्तिं मे देहि सर्वदा।

(८७। २३-२४)

'देवदेव! महाभाग! श्रीवत्सके चिह्नोंसे युक्त महान् देवता! विश्वको उत्पन्न करनेवाले भगवान् नारायण! मेरा अर्घ्य ग्रहण करें और मुझे सदाके लिये मोक्ष प्रदान करें।'

जो नाना प्रकारके पुष्पोंसे गरुडासन श्रीविष्णुकी पूजा करता है, वह सब बाधाओंसे मुक्त हो श्रीविष्णुके सायुज्यको प्राप्त होता है। द्वादशीको एकाग्रचित्त हो रातमें जागरण करके अविकारी एवं अविनाशी भगवान् विष्णुका भक्तिपूर्वक भजन करे। इस तरह भक्तिकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको भक्तिभावसे तत्पर हो भगवान् विष्णुका वैशाखसम्बन्धी उत्सव करना चाहिये तथा उसमें आगमोक्त मन्त्रद्वारा समस्त विधिका पालन करना चाहिये। महादेवी! ऐसा करनेसे कोटि यज्ञोंके समान फल मिलता है। इस उत्सवको करनेवाला पुरुष राग-द्वेषसे मुक्त हो महामोहकी निवृत्ति करके इस लोकमें सुख भोगता और अन्तमें श्रीविष्णुके सनातन धामको जाता है। वेदके अध्ययनसे रहित तथा शास्त्रके स्वाध्यायसे शून्य मनुष्य भी श्रीहरिकी भक्ति पाकर वैष्णवपदको प्राप्त होता है।

पवित्रारोपणकी विधि, महिमा तथा भिन्न-भिन्न मासमें श्रीहरिकी पूजामें काम आनेवाले विविध पुष्पोंका वर्णन

श्रीमहादेवजी कहते हैं—देवेश्वरी! श्रावण मास आनेपर पवित्रारोपणका विधान है। इसका पालन करनेपर दिव्य भक्ति उत्पन्न होती है। विद्वान् पुरुषको भक्तिपूर्वक श्रीविष्णुका पवित्रारोपण करना चाहिये। पार्वती! ऐसा करनेसे वर्षभरकी पूजा सम्पन्न हो जाती है। श्रीविष्णुके लिये पवित्रारोपण करनेपर अपनेको सुख होता है। कपड़ेका सूत, जो किसी ब्राह्मणीका काता हुआ हो अथवा अपने हाथसे तैयार किया हुआ हो, ले आये और उसीसे पवित्रक बनाये। उपर्युक्त सूतके अभावमें किसी उत्तम शूद्र जातिकी स्त्रीके हाथका काता हुआ सूत भी लिया जा सकता है। यदि ऐसा भी न मिले तो जैसा-तैसा खरीदकर भी ले आना चाहिये। पवित्रारोपणकी विधि रेशमके सूतसे ही करनी चाहिये अथवा चाँदी या सोनेसे श्रीविष्णु देवताके लिये विधिपूर्वक पवित्रक बनाना चाहिये। सब धातुओंके अभावमें विद्वान् पुरुषोंको साधारण सूत ग्रहण करना चाहिये। सूतको

* अश्रद्दधानः पापात्मा नास्तिकोऽच्छिन्नसंशयः। हेतुनिष्ठश्च पञ्चैते न पूजाफलभागिनः॥ (८७। १९)

तिगुना करके उसे जलसे धोना चाहिये। फिर यदि शिवलिंगके लिये बनाना हो तो उस लिंगके बराबर अथवा किसी प्रतिमाके लिये बनाना हो तो उस प्रतिमाके सिरसे लेकर पैरतकका या घुटनेतकका या नाभिके बराबरतकका पवित्रक बनाना चाहिये। इनमें पहला उत्तम, दूसरा मध्यम और तीसरा लघु श्रेणीका है। एक सालमें जितने दिन हों, उतनी संख्यामें या उसके आधी संख्यामें अथवा एक सौ आठकी संख्यामें सूतसे ही उस पवित्रकमें गाँठें लगानी चाहिये। पार्वती! चौवनकी संख्यामें भी गाँठें लगायी जा सकती हैं। विष्णुप्रतिमाके लिये जो पवित्रक बने; उसे वनमालाके आकारका बना लेना चाहिये। जैसे भी शोभा हो, वह उपाय करना चाहिये। इससे भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं। पवित्रक तैयार होनेके पश्चात् भगवान्‌को अर्पण करना चाहिये।

पार्वती! कुबेरके लिये पवित्रारोपण करनेकी तिथि प्रतिपदा बतायी गयी है। लक्ष्मीदेवीके लिये द्वितीया सब तिथियोंमें उत्तम है। तुम्हारे लिये तृतीया बतायी गयी है और गणेशके लिये चतुर्थी। चन्द्रमाके लिये पंचमी, कार्तिकेयके लिये षष्ठी, सूर्यके लिये सप्तमी, दुर्गाके लिये अष्टमी, मातृवर्गके लिये नवमी, यमराजके लिये दशमी, अन्य सब देवताओंके लिये एकादशी, लक्ष्मीपति श्रीविष्णुके लिये द्वादशी, कामदेवके लिये त्रयोदशी, मेरे लिये चतुर्दशी तथा ब्रह्माजीके लिये पवित्रकसे पूजन करनेके निमित्त पूर्णिमा तिथि बतायी गयी है। ये भिन्न-भिन्न देवताओंके लिये पवित्रारोपणके योग्य तिथियाँ कही गयी हैं। लघु श्रेणीके पवित्रकमें बारह, मध्यम श्रेणीके पवित्रकमें चौबीस और उत्तम श्रेणीके पवित्रकमें छत्तीस ग्रन्थियाँ कम-से-कम होनी चाहिये। सब पवित्रकोंको कपूर और केसर अथवा चन्दन और हल्दीमें रँगकर बाँसके नये पात्रमें रखना चाहिये और जहाँ भगवान्‌का पूजन हो, वहाँ उन सबको देवताकी भाँति स्थापित करना चाहिये। पहले देवताकी पूजा करके फिर उन्हें पवित्रकोंमें अधिवासित करना चाहिये। पवित्रकमें अधिवास हो जानेपर पुनः पूजन करना उचित है। पवित्रकोंमें जो देवता अधिवास करते हैं, उनका आगे बतायी जानेवाली विधिसे संनिधीकरण (समीपतास्थापन) करना चाहिये। ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र—ये तीन सूत्रोंके देवता हैं तथा क्रिया, पौरुषी, वीरा, अपराजिता, जया, विजया, मुक्तिदा, सदाशिवा, मनोन्मनी और सर्वतोमुखी—ये दस ग्रन्थियोंकी अधिष्ठात्री देवियाँ हैं। इन सबका सूत्रोंमें आवाहन करना चाहिये। शास्त्रोक्त विधिसे मुद्राद्वारा आवाहन करे। सबका आवाहन करके संनिधीकरणकी क्रिया करे।

मुद्राद्वारा समीपता स्थापित करनेका नाम संनिधीकरण है। पहले रक्षामुद्रासे संरक्षण करके धेनुमुद्राके द्वारा उन्हें अमृतस्वरूप बनाये। फिर सबसे पहले भगवान्‌के आगे कलशका जल लेकर **'क्लीं कृष्णाय'** इस मन्त्रसे उन पवित्रकोंका प्रोक्षण करे। तत्पश्चात् गन्ध, धूप, दीप, नैवेद्य और ताम्बूल आदि निवेदन करके षोडशोपचार आदिसे पवित्रकके देवताओंका पूजन करे। फिर उन्हें धूप देकर देवताके सम्मुख हो नमस्कारमुद्राके द्वारा देवताको अभिमन्त्रित करे। उस समय इस मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये—

आमन्त्रितो महादेव सार्धं देव्या गणादिभिः।
मन्त्रैर्वा लोकपालैश्च सहितः परिचारकैः॥
आगच्छ भगवन् विष्णो विधेः सम्पूर्तिहेतवे।
प्रातस्त्वत्पूजनं कुर्मः सांनिध्यं नियतं कुरु॥

(८८। २९-३०)

'महान् देवता भगवान् विष्णु! मन्त्रोंद्वारा आवाहन करनेपर आप देवी लक्ष्मी, पार्षद, लोकपाल और परिचारकोंके साथ विधिकी पूर्तिके लिये यहाँ पधारिये। प्रातःकालमें आपकी पूजा करूँगा। यहाँ निश्चितरूपसे सन्निकटता स्थापित कीजिये।'

तदनन्तर वह गन्ध और पवित्रक भगवान् राघवके अथवा श्रीविष्णुके चरणोंके समीप रख दे, फिर प्रातः-काल नित्यकर्म करके पुण्याह और स्वस्तिवाचन कराये तथा भगवान्‌की जय-जयकारके साथ घण्टा आदि बाजे और तुरही आदि बजाते हुए पवित्रकोंद्वारा पूजन करे।

'ॐ वासुदेवाय विद्महे, विष्णुदेवाय धीमहि, तन्नो देवः प्रचोदयात्।'

श्रीवासुदेवका तत्त्व जाननेके लिये हम ज्ञान प्राप्त करते हैं, श्रीविष्णुदेवके लिये ध्यान करते हैं, वे देव विष्णु हमारी बुद्धिको प्रेरित करें।

इस मन्त्रसे अथवा देवताके नाम-मन्त्रसे पवित्रक अर्पण करना चाहिये। इसके बाद भगवान् विष्णुकी महापूजा करे, जिससे सबके आत्मा श्रीविष्णु प्रसन्न होते हैं। चारों ओर विधिपूर्वक दीपमाला जलाकर रखे। भक्ष्य, भोज्य, लेह्य और चोष्य—ये चार प्रकारके अन्न नैवेद्यके लिये प्रस्तुत करे। पूर्वपूजित पवित्रक भगवान्को अर्पण कर दे। फिर विशेष भक्तिके साथ श्रीगुरुकी पूजा करे। गुरु महान् देवता हैं, उन्हें वस्त्र और अलंकार आदि अर्पण करके विधिपूर्वक पूजन करना उचित है। गुरुपूजनके पश्चात् पवित्रक धारण करे। इसके बाद वहाँ जो वैष्णव उपस्थित हों, उन्हें ताम्बूल आदि देकर अग्निको पूर्णाहुति अर्पण करे। अन्तमें लक्ष्मीनिवास भगवान् श्रीकृष्णको कर्म समर्पित करे—

मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं तु केशव।
यत्पूजितं मया सम्यक् सम्पूर्णं यातु मे ध्रुवम्॥
(८८। ३९)

'हे केशव! मैंने मन्त्र, क्रिया और भक्तिके बिना जो पूजन किया हो, वह भी निश्चय ही परिपूर्ण हो जाय।'

तदनन्तर देवताओंका विसर्जन करके वैष्णव ब्राह्मणों तथा इष्ट-बन्धुओंके साथ स्वयं भी शुद्ध अन्न भोजन करे। जो उत्तम द्विज इस दिव्य पूजनके प्रसंगको सुनते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके परम पदको प्राप्त होते हैं। इस प्रकार पवित्रारोपण करनेपर इस पृथ्वीपर जितने भी दान और नियम किये जाते हैं, वे सब परिपूर्ण होते हैं। पवित्रारोपणका विधान उत्सवोंका सम्राट् है। इससे ब्रह्महत्यारा भी शुद्ध हो जाता है, इसमें तनिक भी अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। गिरिराजकुमारी! मैंने जो कुछ कहा है, वह सत्य है, सत्य है, सत्य है। पवित्रारोपणमें जो पुण्य है, वही उसके दर्शनमें भी है। महाभागे! यदि शूद्र भी भक्तिभावसे पवित्रारोपणका विधान पूर्ण कर लें तो वे परम धन्य माने जाते हैं। मैं इस भूतलपर धन्य और कृतकृत्य हूँ; क्योंकि मैंने भगवान् विष्णुकी मोक्षदायिनी भक्ति प्राप्त की है।

पार्वतीने पूछा—देवेश्वर! विश्वनाथ! किस मासमें किन-किन फूलोंका भगवान्की पूजामें उपयोग करना चाहिये? यह बतानेकी कृपा करें।

श्रीमहादेवजी बोले—चैत्र मासमें चम्पा और चमेलीके फूलोंसे क्लेशहारी केशवका प्रयत्नपूर्वक पूजन करना चाहिये। दौना, कटसरैया और वरुणवृक्षके फूलोंसे भी जगत्के स्वामी सर्वेश्वर श्रीविष्णुका पूजन किया जा सकता है। मनुष्य एकाग्रचित्त होकर लाल या और किसी रंगके सुन्दर कमलपुष्पोंद्वारा चैत्र मासमें श्रीहरिका पूजन करे। देवि! वैशाख मासमें जब कि सूर्य वृषराशिपर स्थित हों, केतकी (केवड़े)-के पत्ते लेकर महाप्रभु श्रीविष्णुका पूजन करना चाहिये। जिन्होंने भक्तिपूर्वक भगवान्का पूजन कर लिया, उनके ऊपर श्रीहरि संतुष्ट रहते हैं। ज्येष्ठ मास आनेपर नाना प्रकारके फूलोंसे भगवान्की पूजा करनी चाहिये। देवदेवेश्वर श्रीविष्णुके पूजित होनेपर सम्पूर्ण देवताओंकी पूजा सम्पन्न हो जाती है। आषाढ़ मासमें कनेरके फूल, लाल फूल अथवा कमलके फूलोंसे भगवान्की विशेष पूजा करनी चाहिये। जो मनुष्य इस प्रकार भगवान् विष्णुकी पूजा करते हैं, वे पुण्यके भागी होते हैं। जो सुवर्णके समान रंगवाले कदम्बके फूलोंसे सर्वव्यापी गोविन्दकी पूजा करेंगे, उन्हें कभी यमराजका भय नहीं होगा। लक्ष्मीपति श्रीविष्णु श्रीलक्ष्मीजीको पाकर जैसे प्रसन्न रहते हैं, उसी प्रकार कदंबका फूल पाकर भी विश्वविधाता श्रीहरिको विशेष प्रसन्नता होती है। सुरेश्वरि! तुलसी, श्यामा-तुलसी तथा अशोकके द्वारा सर्वदा पूजित होनेपर श्रीविष्णु नित्यप्रति कष्टका निवारण करते हैं। जो लोग सावन मास आनेपर अलसीका फूल लेकर अथवा दूर्वादलके द्वारा श्रीजनार्दनकी पूजा करते हैं, उन्हें भगवान् प्रलयकालतक मनोवांछित भोग प्रदान करते रहते हैं। पार्वती! भादोंके महीनेमें चम्पा, श्वेत पुष्प, रक्तसिंदूरक तथा कह्लारके पुष्पोंसे पूजन करके मनुष्य सब कामनाओंका फल प्राप्त कर लेता है। आश्विनके शुभ मासमें जुही, चमेली तथा नाना प्रकारके शुभ पुष्पोंद्वारा प्रयत्नपूर्वक भक्तिके साथ सदा श्रीहरिका पूजन करना चाहिये। जो कमलके फूल ले आकर श्रीजनार्दनकी

पूजा करते हैं, वे मानव इस पृथ्वीपर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पदार्थ प्राप्त कर लेते हैं। कार्तिक मास आनेपर परमेश्वर श्रीविष्णुकी पूजा करनी चाहिये। उस समय ऋतुके अनुकूल जितने भी पुष्प उपलब्ध हों, वे सभी श्रीमाधवको अर्पण करने चाहिये। तिल और तिलके फूल भी चढ़ाये अथवा उन्हींके द्वारा पूजन करे। उनके द्वारा देवेश्वरके पूजित होनेपर मनुष्य अक्षय फलका भागी होता है। जो लोग कार्तिकमें छितवन, मौलसिरी तथा चम्पाके फूलोंसे श्रीजनार्दनकी पूजा करते हैं, वे मनुष्य नहीं, देवता हैं। मार्गशीर्ष मासमें नाना प्रकारके पुष्पों, विशेषतः दिव्य पुष्पों, उत्तम नैवेद्यों, धूपों तथा आरती आदिके द्वारा सदा प्रयत्नपूर्वक भगवान्का पूजन करे। महादेवि! पौष मासमें नाना प्रकारके तुलसीदल तथा कस्तूरीमिश्रित जलके द्वारा पूजन करना कल्याणदायक माना गया है। माघ मास आनेपर नाना प्रकारके फूलोंसे भगवान्की पूजा करे। उस समय कपूरसे तथा नाना प्रकारके नैवेद्य एवं लड्डुओंसे पूजा होनी चाहिये। इस प्रकार देवदेवेश्वरके पूजित होनेपर मनुष्य निश्चय ही मनोवांछित फलोंको प्राप्त कर लेता है। फाल्गुनमें भी नवीन पुष्पों अथवा सब प्रकारके फूलोंसे श्रीहरिका अर्चन करना चाहिये। सब तरहके फूल लेकर वसन्तकालकी पूजा सम्पादन करे। इस प्रकार श्रीजगन्नाथके पूजित होनेपर पुरुष श्रीविष्णुकी कृपासे अविनाशी वैकुण्ठपदको प्राप्त कर लेता है।

कार्तिक-व्रतका माहात्म्य—गुणवतीको कार्तिक-व्रतके पुण्यसे भगवान्की प्राप्ति

सूतजी कहते हैं—एक समयकी बात है, देवर्षि नारद कल्पवृक्षके दिव्य पुष्प लेकर द्वारकामें भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन करनेके लिये आये। श्रीकृष्णने स्वागत-पूर्वक नारदजीका सत्कार करते हुए उन्हें पाद्य-अर्घ्य निवेदन करनेके पश्चात् बैठनेको आसन दिया। नारदजीने वे दिव्य पुष्प भगवान्को भेंट कर दिये। भगवान्ने अपनी सोलह हजार रानियोंमें उन फूलोंको बाँट दिया।

तदनन्तर एक दिन सत्यभामाने पूछा—'प्राणनाथ!
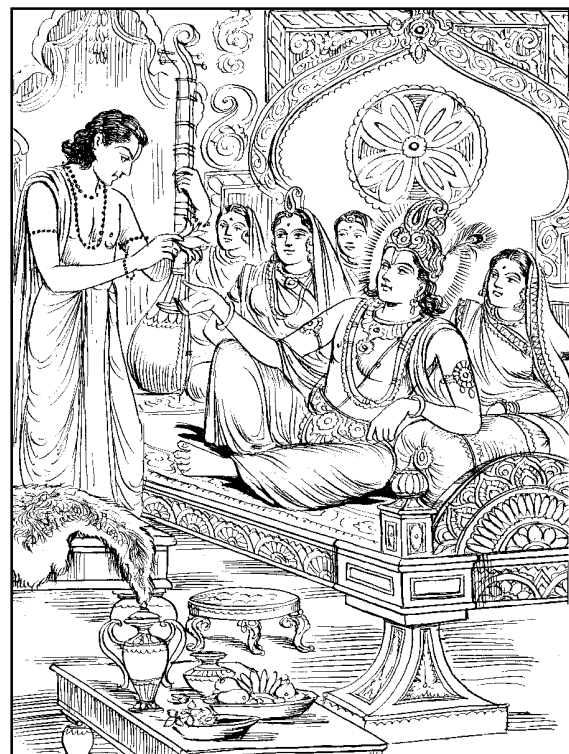
मैंने पूर्वजन्ममें कौन-सा दान, तप अथवा व्रत किया था, जिससे मैं मर्त्यलोकमें जन्म लेकर भी मर्त्यभावसे ऊपर उठ गयी, आपकी अर्द्धांगिनी हुई।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—प्रिये! एकाग्रचित्त होकर सुनो—तुम पूर्वजन्ममें जो कुछ थीं और जिस पुण्यकारक व्रतका तुमने अनुष्ठान किया था, वह सब मैं बताता हूँ। सत्ययुगके अन्तमें मायापुरी (हरद्वार)-के भीतर अत्रिकुलमें उत्पन्न एक ब्राह्मण रहते थे, जो देवशर्मा नामसे प्रसिद्ध थे। वे वेद-वेदांगोंके पारंगत विद्वान्, अतिथिसेवी, अग्निहोत्रपरायण और सूर्यव्रतके पालनमें तत्पर रहनेवाले थे। प्रतिदिन सूर्यकी आराधना करनेके कारण वे साक्षात् दूसरे सूर्यकी भाँति तेजस्वी जान पड़ते थे। उनकी अवस्था अधिक हो चली थी। ब्राह्मणके कोई पुत्र नहीं था; केवल एक पुत्री थी, जिसका नाम गुणवती था। उन्होंने अपने चन्द्र नामक शिष्यके साथ उसका विवाह कर दिया। वे उस शिष्यको ही पुत्रकी भाँति मानते थे और वह जितेन्द्रिय शिष्य भी उन्हें पिताके ही तुल्य समझता था। एक दिन वे दोनों गुरु-शिष्य कुश और समिधा लानेके लिये गये और हिमालयके शाखाभूत पर्वतके वनमें इधर-उधर भ्रमण करने लगे; इतनेमें ही उन्होंने एक भयंकर राक्षसको अपनी ओर आते देखा। उनके सारे अंग भयसे काँपने लगे। वे भागनेमें भी असमर्थ हो गये। तबतक उस कालरूपी राक्षसने उन दोनोंको मार डाला। उस क्षेत्रके प्रभावसे तथा स्वयं धर्मात्मा होनेके कारण उन दोनोंको मेरे पार्षदोंने वैकुण्ठधाममें पहुँचा दिया। उन्होंने जो जीवनभर सूर्यपूजन आदि किया था, उस कर्मसे मैं उनके ऊपर बहुत संतुष्ट था। सूर्य, शिव, गणेश, विष्णु तथा शक्तिके उपासक भी मुझे ही प्राप्त होते हैं। जैसे वर्षाका जल सब ओरसे समुद्रमें ही जाता है, उसी प्रकार इन पाँचोंके उपासक मेरे ही पास आते हैं। मैं एक ही हूँ, तथापि लीलाके अनुसार भिन्न-भिन्न नाम धारण करके पाँच रूपोंमें प्रकट हुआ हूँ। ठीक उसी तरह, जैसे कोई देवदत्त नामक एक ही व्यक्ति पुत्र-पिता आदि भिन्न-भिन्न नामोंसे पुकारा जाता है।*

तदनन्तर गुणवतीने जब राक्षसके हाथसे उन दोनोंके मारे जानेका हाल सुना, तब वह पिता और पतिके वियोग-दुःखसे पीड़ित होकर करुणस्वरमें विलाप करने लगी—'हा नाथ! हा तात! आप दोनों मुझे अकेली छोड़कर कहाँ चले गये? मैं अनाथ बालिका आपके बिना अब क्या करूँगी। अब कौन घरमें बैठी हुई मुझ कुशलहीन दुःखिनी स्त्रीका भोजन और वस्त्र आदिके द्वारा पालन करेगा।' इस प्रकार बारंबार करुणाजनक विलाप करके वह बहुत देरके बाद चुप हुई। गुणवती शुभकर्म करनेवाली थी। उसने घरका सारा सामान बेंचकर अपनी शक्तिके अनुसार पिता और पतिका पारलौकिक कर्म किया। तत्पश्चात् वह उसी नगरमें निवास करने लगी। शान्तभावसे सत्य-शौच आदिके पालनमें तत्पर हो भगवान् विष्णुके भजनमें समय बिताने लगी। उसने अपने जीवनभर दो व्रतोंका विधिपूर्वक पालन किया—एक तो एकादशीका उपवास और दूसरा कार्तिक मासका भलीभाँति सेवन। प्रिये! ये दो व्रत मुझे बहुत ही प्रिय हैं। ये पुण्य उत्पन्न करनेवाले, पुत्र और सम्पत्तिके दाता तथा भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। जो कार्तिकके महीनेमें सूर्यके तुलाराशिपर रहते समय प्रातःकाल स्नान करते हैं, वे महापातकी होनेपर भी मुक्त हो जाते हैं। जो मनुष्य कार्तिकमें स्नान, जागरण, दीपदान और तुलसीवनका पालन करते हैं, वे साक्षात् भगवान् विष्णुके स्वरूप हैं। जो लोग श्रीविष्णुमन्दिरमें झाड़ू देते, स्वस्तिक आदि निवेदन करते और श्रीविष्णुकी पूजा करते रहते हैं, वे जीवन्मुक्त हैं। जो कार्तिकमें तीन दिन भी इस नियमका पालन करते हैं, वे देवताओंके लिये वन्दनीय हो जाते हैं। फिर जिन लोगोंने आजन्म इस कार्तिकव्रतका

* सौराश्च शैवा गाणेशा वैष्णवाः शक्तिपूजकाः। मामेव प्राप्नुवन्तीह वर्षापः सागरं यथा॥
एकोऽहं पञ्चधा जातः क्रीडया नामभिः किल। देवदत्तो यथा कश्चित्पुत्राद्याह्वाननामभिः॥ (९०। ६३-६४)

अनुष्ठान किया है, उनके लिये तो कहना ही क्या है।

इस प्रकार गुणवती प्रतिवर्ष कार्तिकका व्रत किया करती थी। वह श्रीविष्णुकी परिचर्यामें नित्य-निरन्तर भक्तिपूर्वक मन लगाये रहती थी। एक समय, जब कि जरावस्थासे उसके सारे अंग दुर्बल हो गये थे और वह स्वयं भी ज्वरसे पीड़ित थी, किसी तरह धीरे-धीरे चलकर गंगाके तटपर स्नान करनेके लिये गयी। ज्यों ही उसने जलके भीतर पैर रखा, त्यों ही वह शीतसे पीड़ित हो काँपती हुई गिर पड़ी। उस घबराहटकी दशामें ही उसने देखा, आकाशसे विमान उतर रहा है, जो शंख,
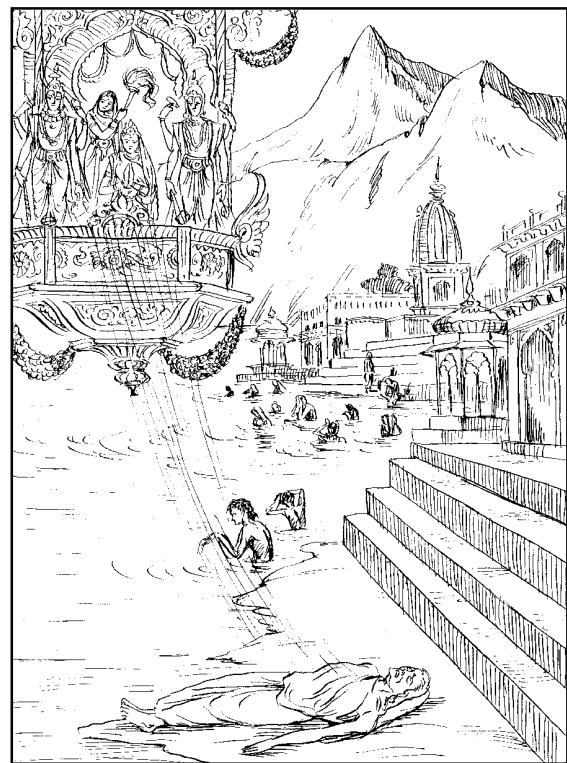
चक्र, गदा और पद्म धारण करनेवाले श्रीविष्णुरूपधारी पार्षदोंसे सुशोभित है और उसमें गरुड़चिह्नसे अंकित ध्वजा फहरा रही है। विमानके निकट आनेपर वह दिव्यरूप धारण करके उसपर बैठ गयी। उसके लिये चँवर डुलाया जाने लगा। मेरे पार्षद उसे वैकुण्ठ ले चले। विमानपर बैठी हुई गुणवती प्रज्वलित अग्नि-शिखाके समान तेजस्विनी जान पड़ती थी, कार्तिकव्रतके पुण्यसे उसे मेरे निकट स्थान मिला।

तदनन्तर जब मैं ब्रह्मा आदि देवताओंकी प्रार्थनासे इस पृथ्वीपर आया, तब मेरे पार्षदगण भी मेरे साथ ही आये। भामिनि! समस्त यादव मेरे पार्षदगण ही हैं। ये मेरे समान गुणोंसे शोभा पानेवाले और मेरे प्रियतम हैं। जो तुम्हारे पिता देवशर्मा थे, वे ही अब सत्राजित् हुए हैं। शुभे! चन्द्रशर्मा ही अक्रूर हैं और तुम गुणवती हो। कार्तिकव्रतके पुण्यसे तुमने मेरी प्रसन्नताको बहुत बढ़ाया है। पूर्वजन्ममें तुमने मेरे मन्दिरके द्वारपर जो तुलसीकी वाटिका लगा रखी थी, इसीसे तुम्हारे आँगनमें कल्पवृक्ष शोभा पा रहा है। पूर्वकालमें तुमने जो कार्तिकमें दीपदान किया था, उसीके प्रभावसे तुम्हारे घरमें यह स्थिर लक्ष्मी प्राप्त हुई है तथा तुमने जो अपने व्रत आदि सब कर्मोंको पतिस्वरूप श्रीविष्णुकी सेवामें निवेदन किया था, इसीलिये तुम मेरी पत्नी हुई हो। मृत्युपर्यन्त जो कार्तिकव्रतका अनुष्ठान किया है, उसके प्रभावसे तुम्हारा मुझसे कभी भी वियोग नहीं होगा। इस प्रकार जो मनुष्य कार्तिक मासमें व्रतपरायण होते हैं, वे मेरे समीप आते हैं, जिस प्रकार कि तुम मुझे प्रसन्नता देती हुई यहाँ आयी हो। केवल यज्ञ, दान, तप और व्रत करनेवाले मनुष्य कार्तिकव्रतके पुण्यकी एक कला भी नहीं पा सकते।

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार जगत्के स्वामी भगवान् श्रीकृष्णके मुखसे अपने पूर्वजन्मके पुण्यमय वैभवकी बात सुनकर उस समय महारानी सत्यभामाको बड़ा हर्ष हुआ।

कार्तिककी श्रेष्ठताके प्रसंगमें शंखासुरके वध, वेदोंके उद्धार तथा 'तीर्थराज' के उत्कर्षकी कथा

सत्यभामाने पूछा—देवदेवेश्वर! तिथियोंमें एकादशी और महीनोंमें कार्तिक मास आपको विशेष प्रिय क्यों हैं? इसका कारण बताइये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—सत्ये! तुमने बहुत अच्छी बात पूछी है। एकाग्रचित्त होकर सुनो। प्रिये! पूर्वकालमें राजा पृथुने भी देवर्षि नारदसे ऐसा ही प्रश्न किया था। उस समय सर्वज्ञ मुनिने उन्हें कार्तिक मासकी श्रेष्ठताका कारण बताया था।

नारदजी बोले—पूर्वकालमें शंख नामक एक असुर था, जो त्रिलोकीका नाश करनेमें समर्थ तथा महान् बल एवं पराक्रमसे युक्त था। वह समुद्रका पुत्र था। उस महान् असुरने समस्त देवताओंको परास्त करके स्वर्गसे बाहर कर दिया और इन्द्र आदि लोकपालोंके अधिकार छीन लिये। देवता मेरुगिरिकी दुर्गम कन्दराओंमें छिपकर रहने लगे। शत्रुके अधीन नहीं हुए। तब दैत्यने सोचा कि 'देवता वेदमन्त्रोंके बलसे प्रबल प्रतीत होते हैं। यह बात मेरी समझमें आ गयी है, अतः मैं वेदोंका ही अपहरण करूँगा। इससे समस्त देवता निर्बल हो जायँगे।' ऐसा निश्चय करके वह वेदोंको हर ले आया। इधर ब्रह्माजी पूजाकी सामग्री लेकर देवताओंके साथ वैकुण्ठलोकमें जा भगवान् विष्णुकी शरणमें गये। उन्होंने भगवान्‌को जगानेके लिये गीत गाये और बाजे बजाये। तब भगवान् विष्णु उनकी भक्तिसे संतुष्ट हो जाग उठे। देवताओंने उनका दर्शन किया। वे सहस्रों सूर्योंके समान कान्तिमान् दिखायी देते थे। उस समय षोडशोपचारसे भगवान्‌की पूजा करके देवता उनके चरणोंमें पड़ गये। तब भगवान् लक्ष्मीपतिने उनसे इस प्रकार कहा।

श्रीविष्णु बोले—देवताओ! तुम्हारे गीत, वाद्य आदि मंगलमय कार्योंसे संतुष्ट हो मैं वर देनेको उद्यत हूँ। तुम्हारी सभी मनोवांछित कामनाओंको पूर्ण करूँगा। कार्तिकके शुक्लपक्षमें 'प्रबोधिनी' एकादशीके

दिन जब एक पहर रात बाकी रहे, उस समय गीत-वाद्य आदि मंगलमय विधानोंके द्वारा जो लोग तुम्हारे ही समान मेरी आराधना करेंगे, वे मुझे प्रसन्न करनेके कारण मेरे समीप आ जायँगे। शंखासुरके द्वारा हरे गये सम्पूर्ण वेद जलमें स्थित हैं। मैं सागरपुत्र शंखका वध करके उन्हें ले आऊँगा। आजसे लेकर सदा ही प्रतिवर्ष कार्तिक मासमें मन्त्र, बीज और यज्ञोंसे युक्त वेद जलमें विश्राम करेंगे। आजसे मैं भी इस महीनेमें जलके भीतर निवास करूँगा। तुमलोग भी मुनीश्वरोंको साथ लेकर मेरे साथ आओ। इस समय जो श्रेष्ठ द्विज प्रात:स्नान करते हैं, वे निश्चय ही सम्पूर्ण यज्ञोंका अवभृथस्नान कर चुके। जिन्होंने जीवनभर शास्त्रोक्त विधिसे कार्तिकके उत्तम व्रतका पालन किया हो, वे तुमलोगोंके भी माननीय हों। तुमने एकादशीको मुझे जगाया है; इसलिये यह तिथि मेरे लिये अत्यन्त प्रीतिदायिनी और माननीय होगी। कार्तिक मास और एकादशी तिथि—इन दो व्रतोंका यदि मनुष्य अनुष्ठान करें तो ये मेरे सांनिध्यकी प्राप्ति करानेवाले हैं। इनके समान दूसरा कोई साधन नहीं है।

नारदजी कहते हैं—यह कहकर भगवान् विष्णु मछलीके समान रूप धारण करके आकाशसे विन्ध्य-पर्वतनिवासी कश्यप मुनिकी अंजलिमें गिरे। मुनिने करुणावश उस मत्स्यको अपने कमण्डलुमें रख लिया; किन्तु वह उसमें अँट न सका। तब उन्होंने उसे कुएँमें ले जाकर डाल दिया। जब उसमें भी वह न आ सका, तब मुनिने उसे तालाबमें पहुँचा दिया; किन्तु वहाँ भी यही दशा हुई। इस प्रकार उसे अनेक स्थानोंमें रखते हुए अन्ततोगत्वा उन्होंने समुद्रमें डाल दिया। वहाँ भी बढ़कर वह विशालकाय हो गया। तदनन्तर उन मत्स्यरूपधारी भगवान् विष्णुने शंखासुरका वध किया और उस शंखको अपने हाथमें लिये वे बदरीवनमें गये। वहाँ सम्पूर्ण ऋषियोंको बुलाकर भगवान्‌ने इस प्रकार आदेश दिया।

श्रीविष्णु बोले—महर्षियो! जलके भीतर बिखरे हुए वेदोंकी खोज करो और रहस्योंसहित उनका पता लगाकर शीघ्र ही ले आओ। तबतक मैं देवताओंके साथ प्रयागमें ठहरता हूँ।

तब तेज और बलसे सम्पन्न समस्त मुनियोंने यज्ञ और बीजसहित वेदमन्त्रोंका उद्धार किया। जिस वेदके जितने मन्त्रको जिस ऋषिने उपलब्ध किया, वही उतने
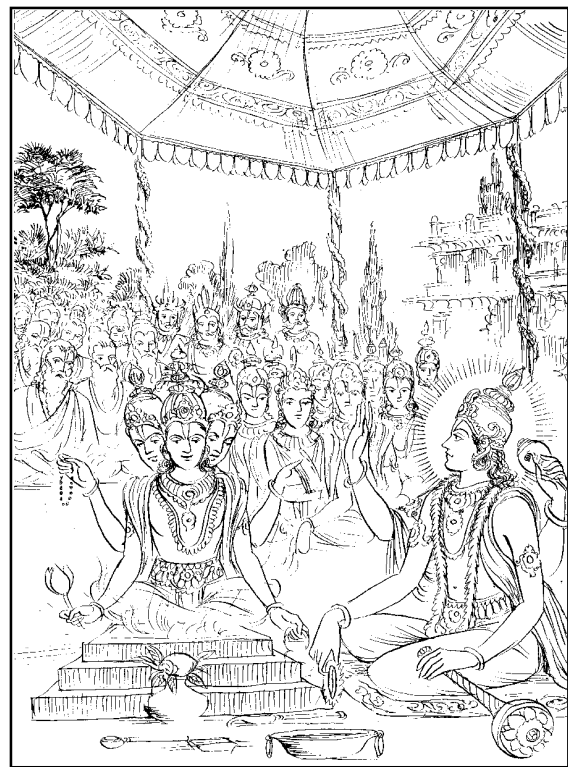
भागका तबसे ऋषि माना जाने लगा। तदनन्तर सब मुनि एकत्रित होकर प्रयागमें गये तथा ब्रह्माजीसहित भगवान् विष्णुको उन्होंने प्राप्त किये हुए वेद अर्पण कर दिये। यज्ञसहित वेदोंको पाकर ब्रह्माजीको बड़ा हर्ष हुआ तथा उन्होंने देवताओं और ऋषियोंके साथ प्रयागमें अश्वमेधयज्ञ किया। यज्ञकी समाप्ति होनेपर देवता, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर तथा गुह्यकोंने पृथ्वीपर साष्टांग प्रणाम करके यह प्रार्थना की।

देवता बोले—देवाधिदेव जगन्नाथ! प्रभो!! हमारा निवेदन सुनिये। हमलोगोंके लिये यह बड़े हर्षका समय है, अतः आप हमें वरदान दें। रमापते! इस स्थानपर ब्रह्माजीको खोये हुए वेदोंकी प्राप्ति हुई है तथा आपकी कृपासे हमें भी यज्ञभाग उपलब्ध हुआ है; अतः यह स्थान पृथ्वीपर सबसे अधिक श्रेष्ठ और पुण्यवर्धक हो। इतना ही नहीं, आपके प्रसादसे यह भोग और मोक्षका भी दाता हो। साथ ही यह समय भी महान् पुण्यदायक और ब्रह्महत्यारे आदिकी भी शुद्धि करनेवाला हो। इसमें दिया हुआ सब कुछ अक्षय हो। यही वर हमें दीजिये।

भगवान् विष्णुने कहा—देवताओ! तुमने जो कुछ कहा है, उसमें मेरी भी सम्मति है; अतः तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो, यह स्थान आजसे 'ब्रह्मक्षेत्र' नाम धारण करे। सूर्यवंशमें उत्पन्न राजा भगीरथ यहाँ गंगाको ले आयेंगे और वह सूर्यकन्या यमुनाजीके साथ यहाँ मिलेगी। ब्रह्माजीसहित तुम सम्पूर्ण देवता भी मेरे साथ यहाँ निवास करो। आजसे यह तीर्थ 'तीर्थराज' के नामसे विख्यात होगा। यहाँ किये हुए दान, व्रत, तप, होम, जप और पूजा आदि कर्म अक्षय फलके दाता और सदा मेरी समीपताकी प्राप्ति करानेवाले हों। सात जन्मोंमें किये हुए ब्रह्महत्या आदि पाप भी इस तीर्थका दर्शन करनेसे तत्काल नष्ट हो जायँ। जो धीर पुरुष इस तीर्थमें मेरे समीप मृत्युको प्राप्त होंगे, वे मुझमें ही प्रवेश कर जायँगे, उनका पुनर्जन्म नहीं होगा। जो यहाँ मेरे आगे पितरोंके उद्देश्यसे श्राद्ध करेंगे, उनके समस्त पितर मेरे लोकमें चले जायँगे। यह काल भी मनुष्योंके लिये महान् पुण्यमय तथा उत्तम फल प्रदान करनेवाला होगा। सूर्यके मकरराशिपर स्थित रहते हुए जो लोग यहाँ प्रातःकाल स्नान करेंगे, उनके लिये यह स्थान पापनाशक होगा। मकरराशिपर सूर्यके रहते समय माघमें प्रातःस्नान करनेवाले मनुष्योंके दर्शनमात्रसे सारे पाप उसी प्रकार भाग जाते हैं, जैसे सूर्योदयसे अन्धकार। माघमें जब सूर्य मकरराशिपर स्थित हों, उस समय यहाँ प्रातःस्नान करनेपर मैं मनुष्योंको क्रमशः सालोक्य, सामीप्य और सारूप्य—तीनों प्रकारकी मुक्ति दूँगा। मुनीश्वरो! तुम सब लोग मेरी बात सुनो। यद्यपि मैं सर्वत्र व्यापक हूँ, तो भी बदरीवनमें सदा विशेषरूपसे निवास करता हूँ; अन्यत्र दस वर्षोंतक तपस्या करनेसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, वही वहाँ एक दिनकी तपस्यासे तुमलोग प्राप्त कर सकते हो। जो नरश्रेष्ठ उस स्थानका दर्शन करते हैं, वे सदाके लिये जीवन्मुक्त हैं। उनके शरीरमें पाप नहीं रहता।

नारदजी कहते हैं—देवदेव भगवान् विष्णु देवताओंसे इस प्रकार कहकर ब्रह्माजीके साथ वहीं अन्तर्धान हो गये तथा इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता भी अपने अंशोंसे वहाँ रहकर स्वरूपसे अन्तर्धान हो गये। जो शुद्ध चित्तवाला श्रेष्ठ पुरुष इस कथाको सुनता या सुनाता है, वह तीर्थराज प्रयाग और बदरीवनकी यात्रा करनेका फल प्राप्त कर लेता है।

कार्तिक मासमें स्नान और पूजनकी विधि

राजा पृथुने कहा—मुने! आपने कार्तिक और माघके स्नानका महान् फल बतलाया; अब उनमें किये जानेवाले स्नानकी विधि और नियमोंका भी वर्णन कीजिये, साथ ही उनकी उद्यापन-विधिको भी ठीक-ठीक बताइये।

नारदजी बोले—राजन्! तुम भगवान् विष्णुके अंशसे उत्पन्न हुए हो, तुम्हारे लिये कोई बात अज्ञात नहीं है। तथापि तुम पूछते हो, इसलिये मैं कार्तिकके परम उत्तम माहात्म्यका वर्णन करता हूँ; सुनो। आश्विन मासके शुक्लपक्षमें जो एकादशी आती है, उसी दिन आलस्य छोड़कर कार्तिकके उत्तम व्रतोंका नियम ग्रहण करे। व्रत करनेवाला पुरुष पहरभर रात बाकी रहे, तभी उठे और जलसहित लोटा लेकर गाँवसे बाहर नैर्ऋत्यकोणकी ओर जाय। दिन और सन्ध्याके समय उत्तरदिशाकी ओर मुँह करके तथा रात हो तो दक्षिणकी ओर मुँह करके मल-मूत्रका त्याग करे। पहले जनेऊको दाहिने कानपर चढ़ा ले और भूमिको तिनकेसे ढककर अपने मस्तकको वस्त्रसे आच्छादित कर ले। शौचके समय मुखको यत्नपूर्वक मूँदे रखे। न तो थूके और न मुँहसे ऊपरको साँस ही खींचें। मलत्यागके पश्चात् गुदाभाग तथा हाथको इस प्रकार धोये, जिससे मलका लेप और दुर्गन्ध दूर हो जाय। इस कार्यमें आलस्य नहीं करना चाहिये। पाँच बार गुदामें, दस बार बायें हाथमें तथा सात-सात बार दोनों हाथोंमें मिट्टी लगाकर धोये। फिर एक बार लिंगमें, तीन बार बायें हाथमें और दो-दो बार दोनों हाथोंमें मिट्टी लगाकर धोये। यह गृहस्थके लिये शौचकी विधि बतायी गयी। ब्रह्मचारीके लिये इससे दूना, वानप्रस्थके लिये तिगुना और संन्यासीके लिये चौगुना करनेका विधान है। रातको दिनकी अपेक्षा आधे शौच (मिट्टी लगाकर धोने)-का नियम है। रास्ता चलनेवाले व्यक्तिके लिये, स्त्रीके लिये तथा शूद्रोंके लिये उससे भी आधे शौचका विधान है। शौचकर्मसे हीन पुरुषकी समस्त क्रियाएँ निष्फल होती हैं। जो अपने मुँहको अच्छी तरह साफ नहीं रखता, उसके उच्चारण किये हुए मन्त्र फलदायक नहीं होते; इसलिये प्रयत्नपूर्वक दाँत और जीभकी शुद्धि करनी चाहिये। गृहस्थ पुरुष किसी दूधवाले वृक्षकी बारह अंगुलकी लकड़ी लेकर दाँतुन करे; किन्तु यदि घरमें पिताकी क्षयाह तिथि या व्रत हो तो दाँतुन न करे। दाँतुन करनेके पहले वनस्पतिदेवतासे इस प्रकार प्रार्थना करे—

आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च।
ब्रह्मप्रज्ञां च मेधां च त्वं नो देहि वनस्पते॥

(९४।११)

'हे वनस्पते! आप मुझे आयु, बल, यश, तेज, संतति, पशु, धन, ब्रह्मज्ञान और स्मरणशक्ति प्रदान करें।'

इस मन्त्रका उच्चारण करके दाँतुनसे दाँत साफ करना चाहिये। प्रतिपदा, अमावास्या, नवमी, षष्ठी, रविवार तथा चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणके दिन दाँतुन नहीं करना चाहिये। व्रत और श्राद्धके दिन भी लकड़ीकी दाँतुन करना मना है, उन दिनों जलके बारह कुल्ले करके मुख शुद्ध करनेका विधान है। काँटेदार वृक्ष, कपास, सिन्धुवार, ब्रह्मवृक्ष (पलाश), बरगद, एरण्ड (रेंड़) और दुर्गन्धयुक्त वृक्षोंकी लकड़ीको दाँतुनके काममें नहीं लेना चाहिये। फिर स्नान करनेके पश्चात् भक्तिपरायण एवं प्रसन्नचित्त होकर चन्दन, फूल और ताम्बूल आदि पूजाकी सामग्री ले भगवान् विष्णु अथवा शिवके मन्दिरमें जाय। वहाँ भगवान्को पृथक्-पृथक् पाद्य-अर्घ्य आदि उपचार अर्पण करके स्तुति करे तथा पुनः नमस्कार करके गीत आदि मांगलिक उत्सवका प्रबन्ध करे। ताल, वेणु और मृदंग आदि बाजोंके साथ भगवान्के सामने नृत्य और गान करनेवाले लोगोंका भी ताम्बूल आदिके द्वारा सत्कार करे। जो भगवान्के मन्दिरमें गान करते हैं, वे साक्षात् विष्णुरूप हैं। कलियुगमें किये हुए यज्ञ, दान और तप भक्तिसे युक्त होनेपर ही जगद्गुरु भगवान्को संतोष देनेवाले होते हैं।

राजन्! एक बार मैंने भगवान्से पूछा—'देवेश्वर! आप कहाँ निवास करते हैं?' तो वे मेरी भक्तिसे संतुष्ट होकर बोले—'नारद! न तो मैं वैकुण्ठमें निवास करता हूँ और न योगियोंके हृदयमें। मेरे भक्त जहाँ मेरा गुण-गान करते हैं, वहीं मैं भी रहता हूँ।'[१] यदि मनुष्य गन्ध, पुष्प आदिके द्वारा मेरे भक्तोंका पूजन करते हैं तो उससे मुझे जितनी अधिक प्रसन्नता होती है, उतनी स्वयं मेरी पूजा करनेसे भी नहीं होती। जो मूर्ख मानव मेरी पुराण-कथा और मेरे भक्तोंका गान सुनकर निन्दा करते हैं, वे मेरे द्वेषके पात्र होते हैं।

शिरीष, (सिरस), उन्मत्त (धतूरा), गिरिजा (मातुलुंगी), मल्लिका (मालती), सेमल, मदार और कनेरके फूलोंसे तथा अक्षतोंके द्वारा श्रीविष्णुकी पूजा नहीं करनी चाहिये। जवा, कुन्द, सिरस, जूही, मालती और केवड़ेके फूलोंसे श्रीशंकरजीका पूजन नहीं करना चाहिये। लक्ष्मी-प्राप्तिकी इच्छा रखनेवाला पुरुष तुलसीदलसे गणेशका, दूर्वादलसे दुर्गाका तथा अगस्त्यके फूलोंसे सूर्यदेवका पूजन न करे।[२] इनके अतिरिक्त जो उत्तम पुष्प हैं, वे सदा सब देवताओंकी पूजाके लिये प्रशस्त माने गये हैं। इस प्रकार पूजा-विधि पूर्ण करके देवदेव भगवान्से क्षमा-प्रार्थना करे—

मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वर।
यत्पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे॥

(९४। ३०)

'देवेश्वर! देव! मेरे द्वारा किये गये आपके पूजनमें जो मन्त्र, विधि तथा भक्तिकी न्यूनता हुई हो, वह सब आपकी कृपासे पूर्ण हो जाय।'

तदनन्तर प्रदक्षिणा करके दण्डवत् प्रणाम करे तथा पुनः भगवान्से त्रुटियोंके लिये क्षमा-याचना करते हुए गायन आदि समाप्त करे। जो इस कार्तिककी रात्रिमें भगवान् विष्णु अथवा शिवकी भलीभाँति पूजा करते हैं, वे मनुष्य पापहीन हो अपने पूर्वजोंके साथ श्रीविष्णुके धाममें जाते हैं।

नारदजी कहते हैं—जब दो घड़ी रात बाकी रहे, तब तिल, कुश, अक्षत, फूल और चन्दन आदि लेकर पवित्रतापूर्वक जलाशयके तटपर जाय। मनुष्योंका खुदवाया हुआ पोखरा हो अथवा कोई देवकुण्ड हो या नदी अथवा उसका संगम हो—इनमें उत्तरोत्तर दसगुने पुण्यकी प्राप्ति होती है तथा यदि तीर्थमें स्नान करे तो उसका अनन्त फल माना गया है। तत्पश्चात् भगवान् विष्णुका स्मरण करके स्नानका संकल्प करे तथा तीर्थ आदिके देवताओंको क्रमशः अर्घ्य आदि निवेदन करे। फिर भगवान् विष्णुको अर्घ्य देते हुए निम्नांकित मन्त्रका पाठ करे—

नमः कमलनाभाय नमस्ते जलशायिने।
नमस्तेऽस्तु हृषीकेश गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥

× × ×

कार्त्तिकेऽहं करिष्यामि प्रातःस्नानं जनार्दन।
प्रीत्यर्थं तव देवेश दामोदर मया सह॥
ध्यात्वाऽहं त्वां च देवेश जलेऽस्मिन् स्नातुमुद्यतः।
तव प्रसादात्पापं मे दामोदर विनश्यतु॥

(९५। ४, ७, ८)

'भगवान् पद्मनाभको नमस्कार है। जलमें शयन करनेवाले श्रीनारायणको नमस्कार है। हृषीकेश! आपको बारंबार नमस्कार है। यह अर्घ्य ग्रहण कीजिये। जनार्दन! देवेश! लक्ष्मीसहित दामोदर! मैं आपकी प्रसन्नताके लिये कार्तिकमें प्रातःस्नान करूँगा। देवेश्वर! आपका ध्यान करके मैं इस जलमें स्नान करनेको उद्यत हूँ। दामोदर! आपकी कृपासे मेरा पाप नष्ट हो जाय।'

तत्पश्चात् राधासहित भगवान् श्रीकृष्णको निम्नांकित मन्त्रसे अर्घ्य दे—

१-नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न वै। मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥ (९४। २३)

२-शिरीषोन्मत्तगिरिजामल्लिकाशाल्मलीभवैः। अर्कजैः कर्णिकारैश्च विष्णुर्नार्च्यस्तथाक्षतैः॥
जपाकुन्दशिरीषैश्च यूथिकामालतीभवैः। केतकीभवपुष्पैश्च नैवार्च्यः शङ्करस्तथा॥
गणेशं तुलसीपत्रैर्दुर्गां नैव तु दूर्वया। मुनिपुष्पैस्तथा सूर्यं लक्ष्मीकामो न चार्चयेत्॥ (९४। २६—२८)

नित्ये नैमित्तिके कृष्ण कार्त्तिके पापनाशने।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं राधया सहितो हरे॥
(९५। ९)

'श्रीराधासहित भगवान् श्रीकृष्ण! नित्य और नैमित्तिक कर्मरूप इस पापनाशक कार्तिकस्नानके व्रतके निमित्त मेरा दिया हुआ यह अर्घ्य स्वीकार करें।'

इसके बाद व्रत करनेवाला पुरुष भागीरथी, श्रीविष्णु, शिव और सूर्यका स्मरण करके नाभिके बराबर जलमें खड़ा हो विधिपूर्वक स्नान करे। गृहस्थ पुरुषको तिल और आँवलेका चूर्ण लगाकर स्नान करना चाहिये। वनवासी संन्यासी तुलसीके मूलकी मिट्टी लगाकर स्नान करे। सप्तमी, अमावास्या, नवमी, द्वितीया, दशमी और त्रयोदशीको आँवलेके फल और तिलके द्वारा स्नान करना निषिद्ध है। पहले मल-स्नान करे अर्थात् शरीरको खूब मल-मलकर उसकी मैल छुड़ाये। उसके बाद मन्त्रस्नान करे। स्त्री और शूद्रोंको वेदोक्त मन्त्रोंसे स्नान नहीं करना चाहिये। उनके लिये पौराणिक मन्त्रोंका उपयोग बताया गया है।

व्रती पुरुष अपने हाथमें पवित्रक धारण करके निम्नांकित मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए स्नान करे—

त्रिधाभूद्देवकार्यार्थं यः पुरा भक्तिभावितः।
स विष्णुः सर्वपापघ्नः पुनातु कृपयात्र माम्॥
विष्णोराज्ञामनुप्राप्य कार्तिकव्रतकारणात्।
क्षमन्तु देवास्ते सर्वे मां पुनन्तु सवासवाः॥
वेदमन्त्राः सबीजाश्च सरहस्या मखान्विताः।
कश्यपाद्याश्च मुनयो मां पुनन्तु सदैव ते॥
गङ्गाद्याः सरितः सर्वास्तीर्थानि जलदा नदाः।
ससप्तसागराः सर्वे मां पुनन्तु सदैव ते॥
पतिव्रतास्त्वदित्याद्या यक्षाः सिद्धाः सपन्नगाः।
ओषध्यः पर्वताश्चापि मां पुनन्तु त्रिलोकजाः॥
(९५। १४—१८)

'जो पूर्वकालमें भक्तिपूर्वक चिन्तन करनेपर देवताओंके कार्यकी सिद्धिके लिये तीन स्वरूपोंमें प्रकट हुए तथा जो समस्त पापोंका नाश करनेवाले हैं, वे भगवान् विष्णु यहाँ कृपापूर्वक मुझे पवित्र करें। श्रीविष्णुकी आज्ञा प्राप्त करके कार्तिकका व्रत करनेके कारण यदि मुझसे कोई त्रुटि हो जाय तो उसके लिये समस्त देवता मुझे क्षमा करें तथा इन्द्र आदि देवता मुझे पवित्र करें। बीज, रहस्य और यज्ञोंसहित वेदमन्त्र और कश्यप आदि मुनि मुझे सदा ही पवित्र करें। गंगा आदि सम्पूर्ण नदियाँ, तीर्थ, मेघ, नद और सात समुद्र—ये सभी मुझे सर्वदा पवित्र करें। अदिति आदि पतिव्रताएँ, यक्ष, सिद्ध, नाग तथा त्रिभुवनकी ओषधि और पर्वत भी मुझे पवित्र करें।'

स्नानके पश्चात् विधिपूर्वक देवता, ऋषि, मनुष्य (सनकादि) तथा पितरोंका तर्पण करे। कार्तिक मासमें पितृतर्पणके समय जितने तिलोंका उपयोग किया जाता है, उतने ही वर्षोंतक पितर स्वर्गलोकमें निवास करते हैं। तदनन्तर जलसे बाहर निकलकर व्रती मनुष्य पवित्र वस्त्र धारण करे और प्रातःकालोचित नित्यकर्म पूरा करके श्रीहरिका पूजन करे। फिर भक्तिसे भगवान्में मन लगाकर तीर्थों और देवताओंका स्मरण करते हुए पुनः गन्ध, पुष्प और फलसे युक्त अर्घ्य निवेदन करे। अर्घ्यका मन्त्र इस प्रकार है—

व्रतिनः कार्त्तिके मासि स्नातस्य विधिवन्मम।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं राधया सहितो हरे॥
(९५। २३)

'भगवन्! मैं कार्तिक मासमें स्नानका व्रत लेकर विधिपूर्वक स्नान कर चुका हूँ। मेरे दिये हुए इस अर्घ्यको आप श्रीराधिकाजीके साथ स्वीकार करें।'

इसके बाद वेदविद्याके पारंगत ब्राह्मणोंका गन्ध, पुष्प और ताम्बूलके द्वारा भक्तिपूर्वक पूजन करे और बारंबार उनके चरणोंमें मस्तक झुकावे। ब्राह्मणके दाहिने पैरमें सम्पूर्ण तीर्थ, मुखमें वेद और समस्त अंगोंमें देवता निवास करते हैं; अतः ब्राह्मणके पूजन करनेसे इन सबकी पूजा हो जाती है। इसके पश्चात् हरिप्रिया भगवती तुलसीकी पूजा करे। प्रयागमें स्नान करने, काशीमें मृत्यु होने और वेदोंके स्वाध्याय करनेसे जो फल प्राप्त होता है; वह सब श्रीतुलसीके पूजनसे मिल जाता है; अतः एकाग्रचित्त होकर निम्नांकित मन्त्रसे तुलसीकी प्रदक्षिणा और नमस्कार करे—

देवैस्त्वं निर्मिता पूर्वमर्चिताऽसि मुनीश्वरैः।
नमो नमस्ते तुलसि पापं हर हरिप्रिये॥

(९५।३०)

'हरिप्रिया तुलसीदेवी! पूर्वकालमें देवताओंने तुम्हें उत्पन्न किया और मुनीश्वरोंने तुम्हारी पूजा की। तुम्हें बारंबार नमस्कार है। मेरे सारे पाप हर लो।'

तुलसी-पूजनके पश्चात् व्रत करनेवाला भक्तिमान् पुरुष चित्तको एकाग्र करके भगवान् विष्णुकी पौराणिक कथा सुने तथा कथा-वाचक विद्वान् ब्राह्मण अथवा मुनिकी पूजा करे। जो मनुष्य भक्तियुक्त होकर पूर्वोक्त सम्पूर्ण विधियोंका भलीभाँति पालन करता है, वह अन्तमें भगवान् नारायणके परमधाममें जाता है।

कार्तिक-व्रतके नियम और उद्यापनकी विधि

नारदजी कहते हैं—राजन्! कार्तिकका व्रत करनेवाले पुरुषोंके लिये जो नियम बताये गये हैं, उनका मैं संक्षेपसे वर्णन करता हूँ। ध्यान देकर सुनो। अन्नदान देना, गौओंको ग्रास अर्पण करना, वैष्णव पुरुषोंके साथ वार्तालाप करना तथा दूसरेके दीपकको जलाना या उकसाना—इन सब कार्योंसे मनीषी पुरुष धर्मकी प्राप्ति बतलाते हैं। बुद्धिमान् पुरुष दूसरेके अन्न, दूसरेकी शय्या, दूसरेकी निन्दा और दूसरेकी स्त्रीका सदा ही परित्याग करे तथा कार्तिकमें तो इन्हें त्यागनेकी विशेषरूपसे चेष्टा करे। उड़द, मधु, सौवीरक तथा राजमाष (किराव) आदि अन्न कार्तिकका व्रत करनेवाले मनुष्यको नहीं खाने चाहिये। दाल, तिलका तेल, भाव-दूषित तथा शब्द-दूषित अन्नका भी व्रती मनुष्य परित्याग करे। कार्तिकका व्रत करनेवाला पुरुष देवता, वेद, द्विज, गुरु, गौ, व्रती, स्त्री, राजा तथा महापुरुषोंकी निन्दा छोड़ दे। बकरी, गाय और भैंसके दूधको छोड़कर अन्य सभी पशुओंका दूध मांसके समान वर्जित है। ब्राह्मणोंके खरीदे हुए सभी प्रकारके रस, ताँबेके पात्रमें रखा हुआ गायका दूध, दही और घी, गढ़ेका पानी और केवल अपने लिये बनाया हुआ भोजन—इन सबको विद्वान् पुरुषोंने आमिषके तुल्य माना है। व्रती मनुष्योंको सदा ही ब्रह्मचर्यका पालन, भूमिपर शयन, पत्तलमें भोजन और दिनके चौथे पहरमें एक बार अन्न ग्रहण करना चाहिये। कार्तिकका व्रत करनेवाला मानव प्याज, लहसुन, हींग, छत्राक (गोबर-छत्ता), गाजर, नालिक (भसींड़), मूली और साग खाना छोड़ दे। लौकी, भाँटा (बैगन), कोंहड़ा, भतुआ, लसोड़ा और कैथ भी त्याग दे। व्रती पुरुष रजस्वलाका स्पर्श न करे; म्लेच्छ, पतित, व्रतहीन, ब्राह्मणद्रोही तथा वेदके अनधिकारी पुरुषोंसे कभी वार्तालाप न करे। इन लोगोंने जिस अन्नको देख लिया हो, उस अन्नको भी न खाय; कौओंका जूठा किया हुआ, सूतकयुक्त घरका बना हुआ, दो बार पकाया तथा जला हुआ अन्न भी वैष्णवव्रतका पालन करनेवाले पुरुषोंके लिये अखाद्य है। जो कार्तिकमें तेल लगाना, खाटपर सोना, दूसरेका अन्न लेना और काँसके बर्तनमें भोजन करना छोड़ देता है, उसीका व्रत परिपूर्ण होता है। व्रती पुरुष प्रत्येक व्रतमें सदा ही पूर्वोक्त निषिद्ध वस्तुओंका त्याग करे तथा अपनी शक्तिके अनुसार भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये कृच्छ्र आदि व्रतोंका अनुष्ठान करता रहे। गृहस्थ पुरुष रविवारके दिन सदा ही आँवलेके फलका त्याग करे।

इसी प्रकार माघमें भी व्रती पुरुष उक्त नियमोंका पालन करे और श्रीहरिके समीप शास्त्रविहित जागरण भी करे। यथोक्त नियमोंके पालनमें लगे हुए कार्तिकव्रत करनेवाले मनुष्यको देखकर यमदूत उसी प्रकार भागते हैं, जैसे सिंहसे पीड़ित हाथी। भगवान् विष्णुके इस व्रतको सौ यज्ञोंकी अपेक्षा भी श्रेष्ठ जानना चाहिये; क्योंकि यज्ञ करनेवाला पुरुष स्वर्गलोकको पाता है और कार्तिकका व्रत करनेवाला मनुष्य वैकुण्ठधामको। इस पृथ्वीपर भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले जितने भी क्षेत्र हैं, वे सभी कार्तिकका व्रत करनेवाले पुरुषके शरीरमें निवास करते हैं। मन, वाणी, शरीर और क्रियाद्वारा

होनेवाला जो कुछ भी दुष्कर्म या दुःस्वप्न होता है, वह कार्तिक-व्रतमें लगे हुए पुरुषको देखकर तत्काल नष्ट हो जाता है। इन्द्र आदि देवता भगवान् विष्णुकी आज्ञासे प्रेरित होकर कार्तिकका व्रत करनेवाले पुरुषकी निरन्तर रक्षा करते रहते हैं—ठीक उसी तरह, जैसे सेवक राजाकी रक्षा करते हैं। जहाँ सबके द्वारा सम्मानित वैष्णव-व्रतका अनुष्ठान करनेवाला पुरुष नित्य निवास करता है, वहाँ ग्रह, भूत, पिशाच आदि नहीं रहते।

राजन्! अब मैं कार्तिक-व्रतके अनुष्ठानमें लगे हुए पुरुषके लिये उत्तम उद्यापन-विधिका संक्षेपसे वर्णन करता हूँ। तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो। व्रती मनुष्य कार्तिक शुक्लपक्षकी चतुर्दशीको व्रतकी पूर्ति तथा भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये उद्यापन करे। तुलसीजीके ऊपर एक सुन्दर मण्डप बनाये, जिसमें चार दरवाजे बने हों; उस मण्डपमें सुन्दर बंदनवार लगाकर उसे पुष्पमय चँवरसे सुशोभित करे। चारों दरवाजोंपर पृथक्-पृथक् मिट्टीके चार द्वारपाल—पुण्यशील, सुशील, जय और विजयकी स्थापना करके उन सबका पूजन करे। तुलसीके मूलभागमें वेदीपर सर्वतोभद्र मण्डल बनाये, जो चार रंगोंसे रंजित होकर सुन्दर शोभासम्पन्न और अत्यन्त मनोहर प्रतीत होता हो। सर्वतोभद्रके ऊपर पंचरत्नयुक्त कलशकी स्थापना करे। उसके ऊपर नारियलका महान् फल रख दे। इस प्रकार कलश स्थापित करके उसके ऊपर समुद्रकन्या लक्ष्मीजीके साथ शंख, चक्र और गदा धारण करनेवाले पीताम्बरधारी देवेश्वर श्रीविष्णुकी पूजा करे। सर्वतोभद्रके मण्डलमें इन्द्र आदि लोकपालोंका भी पूजन करना चाहिये। भगवान् द्वादशीको शयनसे उठे, त्रयोदशीको देवताओंने उनका दर्शन किया और चतुर्दशीको सबने उनकी पूजा की; इसीलिये इस समय भी उसी तिथिको इनकी पूजा की जाती है। उस दिन शान्त एवं शुद्धचित्त होकर भक्तिपूर्वक उपवास करना चाहिये तथा आचार्यकी आज्ञासे देवदेवेश्वर श्रीविष्णुकी सुवर्णमयी प्रतिमाका षोडशोपचारद्वारा नाना प्रकारके भक्ष्य-भोज्य पदार्थ प्रस्तुत करते हुए पूजन करना चाहिये। रात्रिमें गीत और वाद्य आदि मांगलिक उत्सवोंके साथ भगवान्‌के समीप जागरण करना चाहिये। जो भगवान् विष्णुके समीप जागरणकालमें भक्तिपूर्वक गान करते हैं, वे सौ जन्मोंकी पापराशिसे मुक्त हो जाते हैं। भगवान् विष्णुके निमित्त जागरणकालमें गीत-वाद्य करनेवालों तथा सहस्र गोदान करनेवालोंको भी समान फलकी ही प्राप्ति बतलायी गयी है। जो रात्रिमें वासुदेवके समक्ष जागरण करते समय भगवान् विष्णुके चरित्रोंका पाठ करके वैष्णव पुरुषोंका मनोरंजन करता है तथा मनमानी बातें नहीं करता, उसे प्रतिदिन कोटि तीर्थोंके सेवनके समान पुण्य प्राप्त होता है।

रात्रि-जागरणके पश्चात् पूर्णिमाको प्रातःकाल अपनी शक्तिके अनुसार तीस या एक सपत्नीक ब्राह्मणको भोजनके लिये निमन्त्रित करे। उस दिन किया हुआ दान, होम और जप अक्षय फल देनेवाला माना गया है; अतः व्रती पुरुष खीर आदिके द्वारा ब्राह्मणोंको भलीभाँति भोजन कराये। '**अतो देवाः**' आदि दो मन्त्रोंसे देवदेव भगवान् विष्णु तथा अन्य देवताओंकी प्रसन्नताके लिये पृथक्-पृथक् तिल और खीरकी आहुति छोड़े। फिर यथाशक्ति दक्षिणा दे उन्हें प्रणाम करे। इसके बाद भगवान् विष्णु, देवगण तथा तुलसीका पुनः पूजन करे। कपिला गायकी विधिपूर्वक पूजा करे और व्रतका उपदेश करनेवाले सपत्नीक आचार्यका भी वस्त्र तथा आभूषणों आदिके द्वारा पूजन करे। अन्तमें सब ब्राह्मणोंसे क्षमा-प्रार्थना करे—'विप्रवरो! आपलोगोंकी कृपासे देवेश्वर भगवान् विष्णु मुझपर सदा प्रसन्न रहें। मैंने गत सात जन्मोंमें जो पाप किये हों, वे सब इस व्रतके प्रभावसे नष्ट हो जायँ। प्रतिदिन भगवान्‌के पूजनसे मेरे सम्पूर्ण मनोरथ सफल हों तथा इस देहका अन्त होनेपर मैं अत्यन्त दुर्लभ वैकुण्ठधामको प्राप्त करूँ।'

इस प्रकार क्षमायाचना करके ब्राह्मणोंको प्रसन्न करनेके पश्चात् उन्हें विदा करे और गौसहित भगवान् विष्णुकी सुवर्णमयी प्रतिमा आचार्यको दान कर दे। तत्पश्चात् भक्त पुरुष सुहृदों और गुरुजनोंके साथ स्वयं भी भोजन करे। कार्त्तिक हो या माघ, उसके लिये ऐसी ही विधि बतायी गयी है। जो मनुष्य इस प्रकार कार्त्तिकके

उत्तम व्रतका पालन करता है, वह निष्पाप एवं मुक्त होकर भगवान् विष्णुकी समीपता प्राप्त करता है। सम्पूर्ण व्रतों, तीर्थों और दानोंसे जो फल मिलता है, वही इस कार्त्तिक-व्रतका विधिपूर्वक पालन करनेसे करोड़गुना होकर मिलता है। जो कार्त्तिक-व्रतका अनुष्ठान करते हुए भगवान् विष्णुकी भक्तिमें तत्पर होते हैं, वे धन्य हैं, वे सदा पूज्य हैं तथा उन्हींके यहाँ सब प्रकारके शुभफलोंका उदय होता है। देहमें स्थित हुए पाप उस मनुष्यके भयसे काँप उठते हैं और आपसमें कहने लगते हैं—'अरे! यह तो कार्तिकका व्रत करने लगा, अब हम कहाँ जायँगे।' जो कार्तिक-व्रतके इन नियमोंको भक्तिपूर्वक सुनता तथा वैष्णव पुरुषके आगे इनका वर्णन करता है, वे दोनों ही उत्तम व्रत करनेका फल पाते हैं और उनका दर्शन करनेसे मनुष्योंके पापोंका नाश हो जाता है।

नारदजी कहते हैं—राजन्! कार्तिक-व्रतके उद्यापनमें तुलसीके मूलप्रदेशमें भगवान् विष्णुकी पूजा की जाती है; क्योंकि तुलसी उनके लिये अत्यन्त प्रीतिदायिनी मानी गयी है। जिसके घरमें तुलसीका बगीचा लगा होता है, उसका वह घर तीर्थस्वरूप है। वहाँ यमराजके दूत नहीं जाते। तुलसीवन सब पापोंको हरनेवाला, पवित्र तथा मनोवांछित भोगोंको देनेवाला है। जो श्रेष्ठ मानव तुलसीका वृक्ष लगाते हैं, वे कभी यमराजको नहीं देखते। नर्मदाका दर्शन, गंगाका स्नान और तुलसीवनके पास रहना—ये तीनों एक समान माने गये हैं। रोपने, रक्षा करने, सींचने तथा दर्शन और स्पर्श करनेसे तुलसी मन, वाणी और शरीरद्वारा किये हुए समस्त पापोंको भस्म कर डालती है। जो तुलसीकी मंजरियोंसे भगवान् विष्णु और शिवकी पूजा करता है, वह कभी गर्भमें नहीं आता तथा निश्चय ही मोक्षका भागी होता है। पुष्कर आदि तीर्थ, गंगा आदि नदियाँ तथा वासुदेव आदि देवता—ये सभी तुलसीदलमें निवास करते हैं। नृपश्रेष्ठ! जो तुलसीकी मंजरीसे संयुक्त होकर प्राणोंका परित्याग करता है, उसे श्रीविष्णुका सायुज्य प्राप्त होता है—यह सत्य है, सत्य है। जो शरीरमें तुलसीकी मिट्टी लगाकर मृत्युको प्राप्त होता है, वह सैकड़ों पापोंसे युक्त हो तो भी उसकी ओर साक्षात् यमराज भी नहीं देख सकते। जो मनुष्य तुलसीकाष्ठका चन्दन लगाता है, उसके शरीरको पाप नहीं छू सकते। जहाँ-जहाँ तुलसीवनकी छाया हो, वहीं श्राद्ध करना चाहिये; क्योंकि वहाँ पितरोंके निमित्त दिया हुआ दान अक्षय होता है।

नृपश्रेष्ठ! जो आँवलेकी छायामें पिण्डदान करता है, उसके नरकमें पड़े हुए पितर भी मुक्त हो जाते हैं। जो मस्तकपर, हाथमें, मुखमें तथा शरीरके अन्य किसी अवयवमें आँवलेका फल धारण करता है, उसे साक्षात् श्रीहरिका स्वरूप समझना चाहिये। आँवला, तुलसी और द्वारकाकी मिट्टी (गोपीचन्दन)—ये जिसके शरीरमें स्थित हों, वह मनुष्य सदा जीवन्मुक्त कहलाता है। जो मनुष्य आँवलेके फल और तुलसीदलसे मिश्रित जलके द्वारा स्नान करता है, उसके लिये गंगास्नानका फल बताया गया है। जो आँवलेके पत्ते और फलोंसे देवताकी पूजा करता है, वह भाँति-भाँतिके सुवर्णमय पुष्पोंसे पूजा करनेका फल पाता है। कार्त्तिकमें जब सूर्य तुलाराशिपर स्थित होते हैं, उस समय समस्त तीर्थ, मुनि, देवता और यज्ञ—ये सभी आँवलेके वृक्षका आश्रय लेकर रहते हैं। जो द्वादशीको तुलसीदल और कार्त्तिकमें आँवलेका पत्ता तोड़ता है, वह अत्यन्त निन्दित नरकोंमें पड़ता है। जो कार्त्तिकमें आँवलेकी छायामें बैठकर भोजन करता है, उसका वर्षभरका अन्नसंसर्गजनित दोष दूर हो जाता है। जो मनुष्य कार्त्तिकमें आँवलेकी जड़में भगवान् विष्णुकी पूजा करता है, उसके द्वारा सदा सम्पूर्ण क्षेत्रोंमें श्रीविष्णुका पूजन सम्पन्न हो जाता है। जैसे भगवान् विष्णुकी महिमाका पूरा-पूरा वर्णन असम्भव है, उसी प्रकार आँवले और तुलसीके माहात्म्यका भी वर्णन नहीं हो सकता। जो आँवले और तुलसीकी उत्पत्ति-कथाको भक्तिपूर्वक सुनता और सुनाता है, वह पापरहित हो अपने पूर्वजोंके साथ श्रेष्ठ विमानपर बैठकर स्वर्गलोकमें जाता है।

कार्तिक-व्रतके पुण्य-दानसे एक राक्षसीका उद्धार

राजा पृथुने कहा—मुनिश्रेष्ठ! कार्तिकका व्रत करनेवाले पुरुषके लिये जिस महान् फलकी प्राप्ति बतायी गयी है, उसका वर्णन कीजिये। किसने इस व्रतका अनुष्ठान किया था?

नारदजी बोले—राजन्! पूर्वकालकी बात है, सह्य पर्वतपर करवीरपुरमें धर्मदत्त नामके एक धर्मज्ञ ब्राह्मण रहते थे, जो भगवान् विष्णुका व्रत करनेवाले तथा भलीभाँति श्रीविष्णु-पूजनमें सर्वदा तत्पर रहनेवाले थे। वे द्वादशाक्षर-मन्त्रका जप किया करते थे। अतिथियोंका सत्कार उन्हें विशेष प्रिय था। एक दिन कार्तिक मासमें श्रीहरिके समीप जागरण करनेके लिये वे भगवान्के मन्दिरकी ओर चले। उस समय एक पहर रात बाकी थी। भगवान्के पूजनकी सामग्री साथ लिये जाते हुए ब्राह्मणने मार्गमें देखा, एक राक्षसी आ रही है।
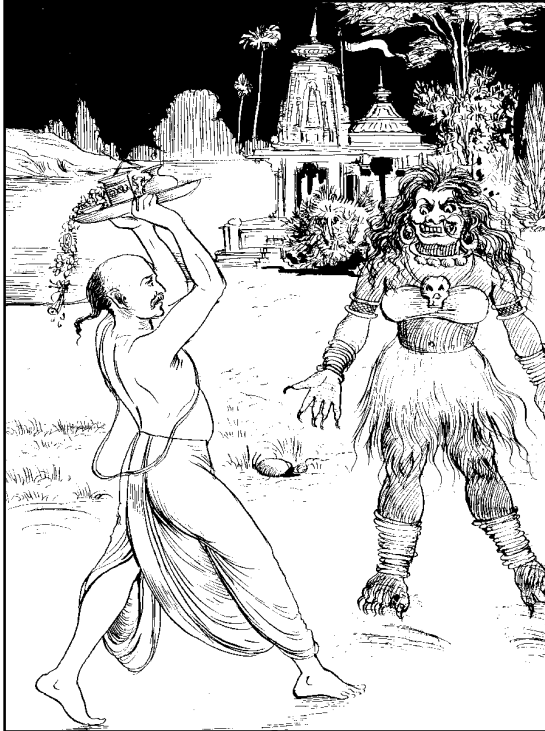
उसकी आवाज बड़ी डरावनी थी। टेढ़ी-मेढ़ी दाढ़ें, लपलपाती हुई जीभ, धँसे हुए लाल-लाल नेत्र, नग्न शरीर, लंबे-लंबे ओठ और घर्घर शब्द—यही उसकी हुलिया थी। उसे देखकर ब्राह्मणदेवता भयसे थर्रा उठे। सारा शरीर काँपने लगा। उन्होंने साहस करके पूजाकी सामग्री तथा जलसे ही उस राक्षसीके ऊपर रोषपूर्वक प्रहार किया। हरिनामका स्मरण करके तुलसीदलमिश्रित जलसे उसको मारा था, इसलिये उसका सारा पातक नष्ट हो गया। अब उसे अपने पूर्वजन्मके कर्मोंके परिणामस्वरूप प्राप्त हुई दुर्दशाका स्मरण हो आया। उसने ब्राह्मणको दण्डवत् प्रणाम किया और इस प्रकार कहा—'ब्रह्मन्! मैं पूर्वजन्मके कर्मोंके कुपरिणामवश इस दशाको पहुँची हूँ। अब कैसे मुझे उत्तम गति प्राप्त होगी?'

राक्षसीको अपने आगे प्रणाम करते तथा पूर्वजन्मके किये हुए कर्मोंका वर्णन करते देख ब्राह्मणको बड़ा विस्मय हुआ। वे उससे इस प्रकार बोले—'किस कर्मके फलसे तुम इस दशाको पहुँची हो? कहाँसे आयी हो? तुम्हारा नाम क्या है? तथा तुम्हारा आचार-व्यवहार कैसा है? ये सारी बातें मुझे बताओ।'

कलहा बोली—ब्रह्मन्! मेरे पूर्वजन्मकी बात है,

सौराष्ट्र नगरमें भिक्षु नामके एक ब्राह्मण रहते थे। मैं उन्हींकी पत्नी थी। मेरा नाम कलहा था। मैं बड़े भयंकर स्वभावकी स्त्री थी। मैंने वचनसे भी कभी अपने पतिका भला नहीं किया। उन्हें कभी मीठा भोजन नहीं परोसा। मैं सदा उनकी आज्ञाका उल्लंघन किया करती थी। कलह मुझे विशेष प्रिय था। वे ब्राह्मण मुझसे सदा उद्विग्न रहा करते थे। अन्ततोगत्वा मेरे पतिने दूसरी स्त्रीसे विवाह करनेका विचार कर लिया। तब मैंने विष खाकर अपने प्राण त्याग दिये। फिर यमराजके दूत आये और मुझे बाँधकर पीटते हुए यमलोकमें ले गये। यमराजने मुझे उपस्थित देख चित्रगुप्तसे पूछा— 'चित्रगुप्त! देखो तो सही, इसने कैसा कर्म किया है? इसे शुभकर्मका फल मिलेगा या अशुभकर्मका?'

चित्रगुप्तने कहा—धर्मराज! इसने तो कोई भी शुभकर्म नहीं किया है। यह स्वयं मिठाइयाँ उड़ाती थी और अपने स्वामीको उसमेंसे कुछ भी नहीं देती थी। अतः बल्गुली (चमगादर)-की योनिमें जन्म लेकर यह अपनी विष्ठा खाती हुई जीवन धारण करे। इसने सदा अपने स्वामीसे द्वेष किया है तथा सर्वदा कलहमें ही इसकी प्रवृत्ति रही है; इसलिये यह शूकरीकी योनिमें जन्म ले विष्ठाका भोजन करती हुई समय व्यतीत करे। जिस बर्तनमें भोजन बनाया जाता है, उसीमें यह हमेशा खाया करती थी; अतः उस दोषके प्रभावसे यह अपनी ही संतानका भक्षण करनेवाली बिल्ली हो तथा अपने स्वामीको निमित्त बनाकर इसने आत्मघात किया है, अतः यह अत्यन्त निन्दनीय स्त्री कुछ कालतक प्रेत-शरीरमें भी निवास करे। दूतोंके साथ इसको यहाँसे मरुप्रदेशमें भेज देना चाहिये। वहाँ चिरकालतक यह प्रेतका शरीर धारण करके रहे। इसके बाद यह पापिनी तीन योनियोंका भी कष्ट भोगेगी।

कलहा कहती है—विप्रवर! मैं वही पापिनी कलहा हूँ, प्रेतके शरीरमें आये मुझे पाँच सौ वर्ष व्यतीत हो गये। मैं सदा ही अपने कर्मसे दुःखित तथा भूख-प्याससे पीड़ित रहा करती हूँ। एक दिन भूखसे पीड़ित होकर मैंने एक बनियेके शरीरमें प्रवेश किया और उसके साथ दक्षिण देशमें कृष्णा और वेणीके संगमपर आयी। आनेपर ज्यों ही संगमके किनारे खड़ी हुई, त्यों ही उस बनियेके शरीरसे भगवान् शिव और विष्णुके पार्षद निकले और उन्होंने मुझे बलपूर्वक दूर भगा दिया। द्विजश्रेष्ठ! तबसे मैं भूखका कष्ट सहन करती हुई इधर-उधर घूम रही थी। इतनेमें ही आपके ऊपर मेरी दृष्टि पड़ी। आपके हाथसे तुलसीमिश्रित जलका संसर्ग पाकर अब मेरे पाप नष्ट हो गये। विप्रवर! मुझपर कृपा कीजिये और बताइये, मैं इस प्रेत-शरीरसे और भविष्यमें प्राप्त होनेवाली भयंकर तीन योनियोंसे किस प्रकार मुक्त होऊँगी?

नारदजी कहते हैं—कलहाके ये वचन सुनकर द्विजश्रेष्ठ धर्मदत्तको उसके कर्मोंके परिणामका विचार करके बड़ा विस्मय और दुःख हुआ। उसकी ग्लानि देखकर उनका हृदय करुणासे द्रवित हो उठा। वे बहुत देरतक सोच-विचारकर खेदके साथ बोले—

धर्मदत्तने कहा—तीर्थ, दान और व्रत आदि शुभ साधनोंके द्वारा पाप नष्ट होते हैं; किन्तु तुम इस समय प्रेतके शरीरमें स्थित हो, अतः उन शुभ कर्मोंमें तुम्हारा

अधिकार नहीं है। तथापि तुम्हारी ग्लानि देखकर मेरे मनमें बड़ा दु:ख हो रहा है। तुम दु:खिनी हो, तुम्हारा उद्धार किये बिना मेरे चित्तको शान्ति नहीं मिलेगी; अत: मैंने जन्मसे लेकर आजतक जो कार्तिक-व्रतका अनुष्ठान किया है, उसका आधा पुण्य लेकर तुम उत्तम गतिको प्राप्त होओ।

यों कहकर धर्मदत्तने द्वादशाक्षर-मन्त्रका श्रवण कराते हुए तुलसीमिश्रित जलसे ज्यों ही उसका अभिषेक किया, त्यों ही वह प्रेत-शरीरसे मुक्त हो दिव्यरूपधारिणी देवी हो गयी। धधकती हुई आगकी ज्वालाके समान तेजस्विनी दिखायी देने लगी। लावण्यसे तो वह ऐसी जान पड़ती थी, मानो साक्षात् लक्ष्मी हों। तदनन्तर उसने भूमिपर मस्तक टेककर ब्राह्मणदेवताको प्रणाम किया और आनन्दविभोर हो गद्‌गदवाणीमें कहा—'द्विजश्रेष्ठ! आपकी कृपासे मैं नरकसे छुटकारा पा गयी। मैं पापके समुद्रमें डूब रही थी, आप मेरे लिये नौकाके समान हो गये।'

वह इस प्रकार ब्राह्मणदेवसे वार्तालाप कर ही रही थी कि आकाशसे एक तेजस्वी विमान उतरता दिखायी दिया। वह श्रीविष्णुके समान रूप धारण करनेवाले पार्षदोंसे युक्त था। पास आनेपर विमानके द्वारपर खड़े हुए पुण्यशील और सुशील नामक पार्षदोंने उस देवीको विमानपर चढ़ा लिया। उस समय उस विमानको देखकर धर्मदत्तको बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने श्रीविष्णुरूपधारी पार्षदोंका दर्शन करके उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। ब्राह्मणको प्रणाम करते देख पुण्यशील और सुशीलने उन्हें उठाया और उनकी प्रशंसा करते हुए यह धर्मयुक्त वचन कहा।

दोनों पार्षद बोले—द्विजश्रेष्ठ! तुम्हें धन्यवाद है। क्योंकि तुम सदा भगवान् विष्णुकी आराधनामें संलग्न रहते हो। दीनोंपर दया करनेका तुम्हारा स्वभाव है। तुम धर्मात्मा और श्रीविष्णुव्रतका अनुष्ठान करनेवाले हो। तुमने बचपनसे लेकर अबतक जो कल्याणमय कार्तिकका व्रत किया है, उसके आधेका दान करके दूना पुण्य प्राप्त कर लिया है। तुम बड़े दयालु हो, तुम्हारे द्वारा दान किये हुए कार्तिक-व्रतके अंगभूत तुलसीपूजन आदि शुभ कर्मोंके फलसे यह स्त्री आज भगवान् विष्णुके समीप जा रही है। तुम भी इस शरीरका अन्त होनेपर अपनी दोनों पत्नियोंके साथ भगवान् विष्णुके वैकुण्ठधाममें जाओगे और उन्हींके समान रूप धारण करके सदा उनके समीप निवास करोगे। धर्मदत्त! जिन लोगोंने तुम्हारी ही भाँति श्रीविष्णुकी भक्तिपूर्वक आराधना की है, वे धन्य और कृतकृत्य हैं; तथा संसारमें उन्हींका जन्म लेना सार्थक है। जिन्होंने पूर्वकालमें राजा उत्तानपादके पुत्र ध्रुवको ध्रुवपदपर स्थापित किया था, उन श्रीविष्णुकी यदि भलीभाँति आराधना की जाय तो वे प्राणियोंको क्या नहीं दे डालते। भगवान्‌के नामोंका स्मरण करने-मात्रसे देहधारी जीव सद्‌गतिको प्राप्त हो जाते हैं। पूर्वकालमें जब गजराजको ग्राहने पकड़ लिया था, उस समय उसने श्रीहरिके नामस्मरणसे ही संकटसे छुटकारा पाकर भगवान्‌की समीपता प्राप्त की थी और वही अब भगवान्‌का 'जय' नामसे प्रसिद्ध पार्षद है। तुमने भी श्रीहरिकी आराधना की है, अत: वे तुम्हें अपने समीप अवश्य स्थान देंगे।

कार्तिक-माहात्म्यके प्रसंगमें राजा चोल और विष्णुदासकी कथा

नारदजी कहते हैं—इस प्रकार विष्णुपार्षदोंके वचन सुनकर धर्मदत्तको बड़ा आश्चर्य हुआ, वे उन्हें साष्टांग प्रणाम करके बोले—'प्राय: सभी लोग भक्तोंका कष्ट दूर करनेवाले श्रीविष्णुकी यज्ञ, दान, व्रत, तीर्थसेवन और तपस्याओंके द्वारा विधिपूर्वक आराधना करते हैं; उन समस्त साधनोंमें कौन-सा ऐसा साधन है, जो श्रीविष्णुको प्रीतिकारक तथा उनके सामीप्यकी प्राप्ति करानेवाला है? किस साधनका अनुष्ठान करनेसे उपर्युक्त सभी साधनोंका अनुष्ठान स्वत: हो जाता है?

दोनों पार्षदोंने कहा—ब्रह्मन्! तुमने बहुत उत्तम बात पूछी है; अब एकाग्रचित्त होकर सुनो, हम इतिहाससहित प्राचीन वृत्तान्तका वर्णन करते हैं। पहले कांचीपुरीमें चोल नामक एक चक्रवर्ती राजा हो गये हैं; उनके अधीन जितने देश थे वे भी चोल नामसे ही विख्यात हुए। राजा चोल जब इस भूमण्डलका शासन करते थे, उस समय कोई भी मनुष्य दरिद्र, दु:खी, पापमें मन लगानेवाला अथवा रोगी नहीं था। उन्होंने इतने यज्ञ किये थे, जिनकी कोई गणना नहीं हो सकती। उनके यज्ञोंके सुवर्णमय एवं शोभाशाली यूपोंसे भरे हुए ताम्रपर्णी नदीके दोनों किनारे चैत्ररथ वनके समान सुशोभित होते थे। एक समयकी बात है, राजा चोल 'अनन्तशयन' नामक तीर्थमें गये, जहाँ जगदीश्वर श्रीविष्णु योगनिद्राका आश्रय ले सो रहे थे। वहाँ लक्ष्मीरमण भगवान् श्रीविष्णुके दिव्य विग्रहकी राजाने विधिपूर्वक पूजा की। मणि, मोती तथा सुवर्णके बने हुए सुन्दर फूलोंसे पूजन करके उन्होंने भगवान्‌को साष्टांग प्रणाम किया। प्रणाम करके वे ज्यों ही बैठे, उसी समय उनकी दृष्टि भगवान्‌के पास आते हुए एक ब्राह्मणपर पड़ी, जो उन्हींकी कांचीनगरीके निवासी थे। उनका नाम विष्णुदास था। वे भगवान्‌की पूजाके लिये अपने हाथमें तुलसीदल और जल लिये हुए थे। निकट आनेपर उन ब्रह्मर्षिने विष्णुसूक्तका पाठ करते हुए देवदेव भगवान्‌को स्नान कराया और तुलसीकी मंजरी तथा पत्तोंसे विधिवत् पूजा की। राजा चोलने जो पहले रत्नोंसे भगवान्‌की पूजा की थी, वह सब तुलसी-पूजासे ढक गयी। यह देख राजा कुपित होकर बोले—'विष्णुदास! मैंने मणियों तथा सुवर्णसे भगवान्‌की पूजा की थी, वह कितनी शोभा पा रही थी! किन्तु तुमने तुलसीदल चढ़ाकर सब ढक दी। बताओ, ऐसा क्यों किया? मुझे तो ऐसा जान पड़ता है, तुम बड़े मूर्ख हो; भगवान् विष्णुकी भक्तिको बिलकुल नहीं जानते। तभी तो तुम अत्यन्त सुन्दर सजी-सजायी पूजाको पत्तोंसे ढके जा रहे हो। तुम्हारे इस बर्तावपर मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है।'
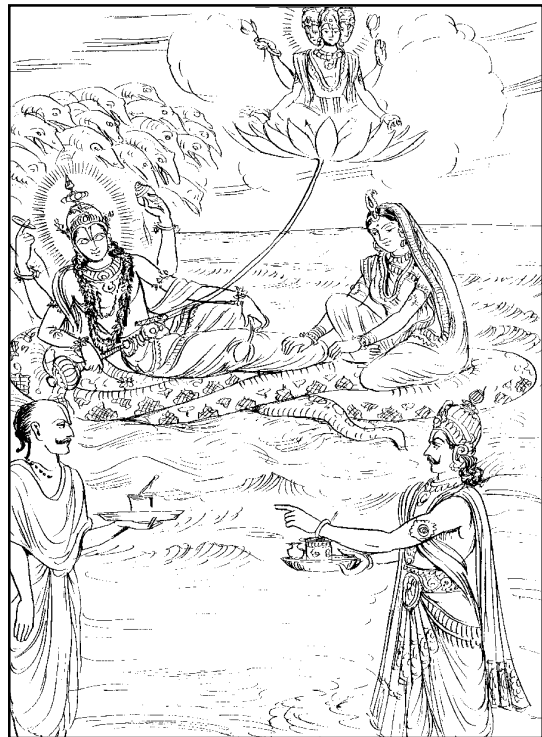
विष्णुदास बोले—राजन्! आपको भक्तिका कुछ भी पता नहीं है, केवल राजलक्ष्मीके कारण आप घमंड कर रहे हैं। बताइये तो, आजसे पहले आपने कितने वैष्णव व्रतोंका पालन किया है?

राजाने कहा—ब्राह्मण! यदि तुम विष्णुभक्तिसे अत्यन्त गर्वमें आकर ऐसी बात करते हो तो बताओ, तुममें कितनी भक्ति है? तुम तो दरिद्र हो, निर्धन हो।

तुमने श्रीविष्णुको संतुष्ट करनेवाले यज्ञ और दान आदि कभी नहीं किये हैं तथा पहले कहीं कोई देवालय भी नहीं बनवाया है। ऐसी दशामें भी तुम्हें अपनी भक्तिका इतना घमंड है! अच्छा, तो आज यहाँ जितने भी श्रेष्ठ ब्राह्मण उपस्थित हैं, वे सभी कान खोलकर मेरी बात सुन लें। देखना है, मैं पहले भगवान् विष्णुका दर्शन पाता हूँ या यह; इससे लोगोंको स्वयं ही ज्ञात हो जायगा कि हम दोनोंमेंसे किसमें कितनी भक्ति है।

दोनों पार्षद बोले—ब्रह्मन्! यह कहकर राजा चोल अपने राजभवनको चले गये और उन्होंने महर्षि मुद्गलको आचार्य बनाकर वैष्णव-यज्ञका अनुष्ठान आरम्भ किया, जिसमें बहुत-से ऋषियोंका समुदाय
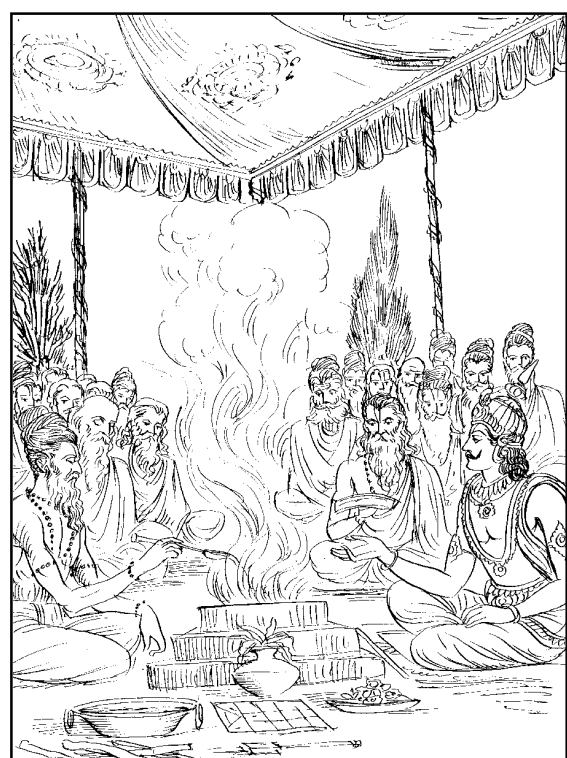
एकत्रित हुआ। बहुत-सा अन्न खर्च किया गया और प्रचुर दक्षिणा बाँटी गयी। जैसे पूर्वकालमें गयाक्षेत्रके भीतर ब्रह्माजीने समृद्धिशाली यज्ञका अनुष्ठान किया था, उसी प्रकार राजा चोलने भी महान् यज्ञ आरम्भ किया। उधर विष्णुदास भी वहीं भगवान्‌के मन्दिरमें ठहर गये और श्रीविष्णुको सन्तुष्ट करनेवाले शास्त्रोक्त नियमोंका भलीभाँति पालन करते हुए सदा ही व्रतका अनुष्ठान करने लगे। माघ और कार्तिकके व्रत, तुलसीके बगीचेका भलीभाँति पालन, एकादशीका व्रत, द्वादशाक्षर-मन्त्रका जप तथा गीत-नृत्य आदि मांगलिक उत्सवोंके साथ षोडशोपचारद्वारा प्रतिदिन श्रीविष्णुकी पूजा—यही उनकी जीवनचर्या थी। वे इन्हीं व्रतोंका पालन करते थे। चलते, खाते और सोते समय भी उन्हें निरन्तर श्रीविष्णुका स्मरण बना रहता था। वे समदर्शी थे और सम्पूर्ण प्राणियोंमें भगवान् विष्णुको स्थित देखते थे। उन्होंने भगवान् विष्णुके संतोषके लिये उद्यापन-विधिसहित माघ और कार्तिकके विशेष-विशेष नियमोंका भी सर्वदा पालन किया। इस प्रकार राजा चोल और विष्णुदास दोनों ही भगवान् विष्णुकी आराधना करने लगे। दोनों ही अपने-अपने व्रतमें स्थित रहते थे, दोनोंकी ही इन्द्रियाँ और दोनोंके ही कर्म भगवान्‌में ही केन्द्रित थे।
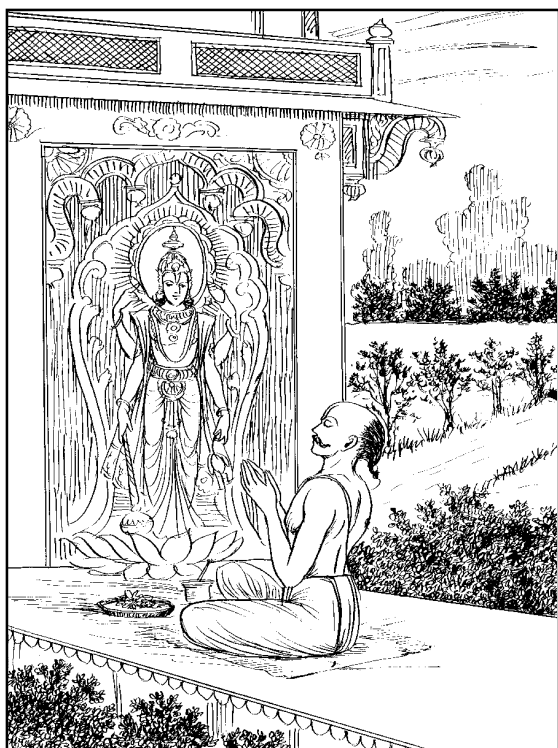
एक दिनकी बात है, विष्णुदासने नित्यकर्म करनेके पश्चात् भोजन तैयार किया; किन्तु उसे किसीने चुरा लिया। चुरानेवालेपर किसीकी दृष्टि नहीं पड़ी। विष्णुदासने देखा, भोजन गायब है; फिर भी उन्होंने

दुबारा भोजन नहीं बनाया; क्योंकि ऐसा करनेपर सायंकालकी पूजाके लिये अवकाश नहीं मिलता, अत: प्रतिदिनके नियमके भंग हो जानेका भय था। दूसरे दिन उसी समयपर भोजन बनाकर वे ज्यों ही भगवान् विष्णुको भोग लगानेके लिये गये, त्यों ही कोई आकर फिर सारा भोजन हड़प ले गया। इस प्रकार लगातार सात दिनोंतक कोई आ-आकर उनके भोजनका अपहरण करता रहा। इससे विष्णुदासको बड़ा विस्मय हुआ। वे मन-ही-मन इस प्रकार विचार करने लगे—'अहो! यह कौन प्रतिदिन आकर मेरी रसोई चुरा ले जाता है? मैं क्षेत्र-संन्यास ले चुका हूँ, अत: अब किसी तरह इस स्थानका परित्याग नहीं कर सकता। यदि दुबारा बनाकर भोजन करूँ तो सायंकालकी यह पूजा कैसे छोड़ दूँ। कोई-सा भी पाक बनाकर मैं तुरंत भोजन तो करूँगा ही नहीं; क्योंकि जबतक सारी सामग्री भगवान् विष्णुको निवेदन न कर लूँ तबतक मैं भोजन नहीं करता। प्रतिदिन उपवास करनेसे मैं इस व्रतकी समाप्तितक जीवित कैसे रह सकता हूँ। अच्छा, आज मैं रसोईकी भलीभाँति रक्षा करूँगा।'

यों सोचकर भोजन बनानेके पश्चात् वे वहीं कहीं छिपकर खड़े हो गये। इतनेमें ही एक चाण्डाल दिखायी दिया, जो रसोईका अन्न हड़प ले जानेको तैयार खड़ा था। भूखके मारे उसका सारा शरीर दुर्बल हो रहा था, मुखपर दीनता छा रही थी, शरीरमें हाड़ और चामके सिवा और कुछ बाकी नहीं बचा था। उसे देखकर श्रेष्ठ ब्राह्मण विष्णुदासका हृदय करुणासे व्यथित हो उठा। उन्होंने भोजन लेकर जाते हुए चाण्डालपर दृष्टि डाली और कहा—'भैया! जरा ठहरो, ठहरो। क्यों रूखा-सूखा खाते हो। यह घी तो ले लो।' इस तरह बोलते हुए विप्रवर विष्णुदासको आते देख चाण्डाल बड़े वेगसे भागा और भयसे मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। चाण्डालको भयभीत और मूर्च्छित देख द्विजश्रेष्ठ विष्णुदास वेगसे चलकर उसके पास पहुँचे और करुणावश अपने वस्त्रके किनारेसे उसको हवा करने लगे। तदनन्तर जब वह उठकर खड़ा हुआ तो विष्णुदासने देखा—वह चाण्डाल नहीं, साक्षात् भगवान् नारायण ही शंख, चक्र और गदा धारण किये सामने विराजमान हैं। कटिमें पीताम्बर, चार भुजाएँ, हृदयमें श्रीवत्सका चिह्न तथा मस्तकपर किरीट
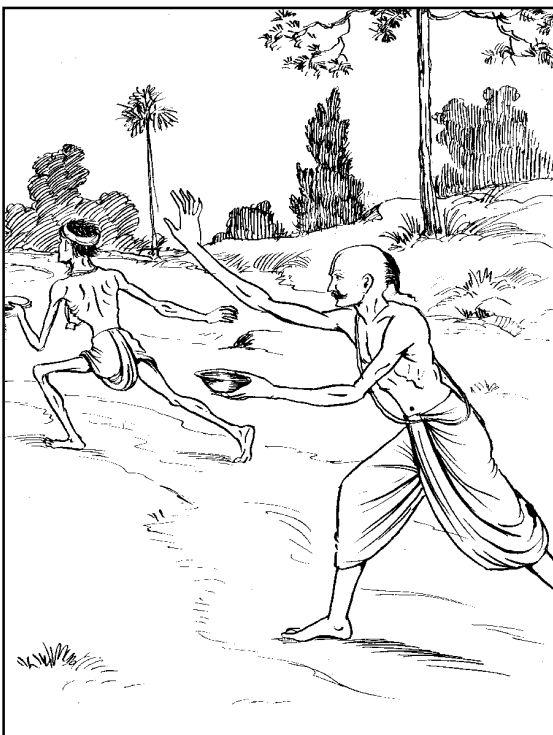
शोभा पा रहे हैं। अलसीके फूलकी भाँति श्यामसुन्दर शरीर और कौस्तुभमणिसे जगमगाते हुए वक्ष:स्थलकी अपूर्व शोभा हो रही है। अपने प्रभुको प्रत्यक्ष देखकर द्विजश्रेष्ठ विष्णुदास सात्त्विकभावोंके* वशीभूत हो गये। वे स्तुति और नमस्कार करनेमें भी समर्थ न हो सके। उस समय वहाँ इन्द्र आदि देवता भी आ पहुँचे। गन्धर्व और अप्सराएँ गाने और नाचने लगीं। वह स्थान सैकड़ों विमानोंसे भर गया और देवर्षियोंके समुदायसे सुशोभित होने लगा। चारों ओर गीत और वाद्योंकी ध्वनि छा गयी। तब भगवान् विष्णुने सात्त्विक व्रतका पालन करनेवाले अपने भक्त विष्णुदासको छातीसे लगा लिया और उन्हें अपने-ही-जैसा रूप देकर वे वैकुण्ठधामको ले चले। उस समय यज्ञमें दीक्षित हुए राजा चोलने देखा, विष्णुदास एक सुन्दर विमानपर बैठकर भगवान् विष्णुके समीप जा रहे हैं। विष्णुदासको वैकुण्ठधाममें जाते देख राजाने तुरंत ही अपने गुरु महर्षि मुद्‌गलको बुलाया और इस प्रकार कहना आरम्भ किया।

राजा बोले—जिसके साथ लाग-डाँट होनेके कारण मैंने यह यज्ञ-दान आदि कर्मका अनुष्ठान किया है, वह ब्राह्मण आज भगवान् विष्णुका रूप धारण करके मुझसे पहले ही वैकुण्ठधाममें जा रहा है। मैंने इस वैष्णवयागमें भलीभाँति दीक्षित होकर अग्निमें हवन किया और दान आदिके द्वारा ब्राह्मणोंका मनोरथ पूर्ण किया; तथापि अभीतक भगवान् मुझपर प्रसन्न नहीं हुए और इस ब्राह्मणको केवल भक्तिके ही कारण श्रीहरिने प्रत्यक्ष दर्शन दिया है। अत: जान पड़ता है, भगवान् विष्णु केवल दान और यज्ञोंसे प्रसन्न नहीं होते। उन प्रभुका दर्शन करानेमें भक्ति ही प्रधान कारण है।

दोनों पार्षद कहते हैं—यों कहकर राजाने अपने भानजेको राज्यसिंहासनपर अभिषिक्त कर दिया। वे बचपनसे ही यज्ञकी दीक्षा लेकर उसीमें संलग्न रहते थे, इसलिये उन्हें कोई पुत्र नहीं हुआ। यही कारण है कि उस देशमें अबतक भानजे ही सदा राज्यके उत्तराधिकारी होते हैं। वे सब-के-सब राजा चोलके द्वारा स्थापित आचारका ही पालन करते हैं। भानजेको राज्य देनेके पश्चात् राजा यज्ञशालामें गये और यज्ञकुण्डके सामने खड़े होकर श्रीविष्णुको सम्बोधित करते हुए तीन बार उच्चस्वरसे निम्नांकित वचन बोले—'भगवान् विष्णु! आप मुझे मन, वाणी, शरीर और क्रियाद्वारा स्थिर भक्ति प्रदान कीजिये।' यों कहकर वे सबके देखते-देखते अग्निमें कूद पड़े। उस समय मुद्‌गल मुनिने क्रोधमें आकर अपनी शिखा उखाड़ डाली। तभीसे आजतक उस गोत्रमें उत्पन्न होनेवाले समस्त मुद्‌गल ब्राह्मण बिना शिखाके ही रहते हैं। राजा ज्यों ही अग्निकुण्डमें कूदे, उसी समय भक्तवत्सल भगवान् विष्णु प्रकट हो गये और उन्होंने राजाको छातीसे लगाकर एक श्रेष्ठ विमानपर बिठाया; फिर अपने ही समान रूप देकर उन देवेश्वरने देवताओंसहित वैकुण्ठधामको प्रस्थान किया। उक्त

* प्रेमकी प्रगाढ़ावस्थामें होनेवाले आठ प्रकारके अंग-विकारोंको, जो सत्त्वगुणकी प्रेरणासे प्रकट होते हैं, सात्त्विकभाव कहते हैं। उनके नाम ये हैं—स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग, कम्प, विवर्णता, आँसू और प्रलय।

दोनों भक्तोंमें जो विष्णुदास थे, वे तो पुण्यशील नामसे
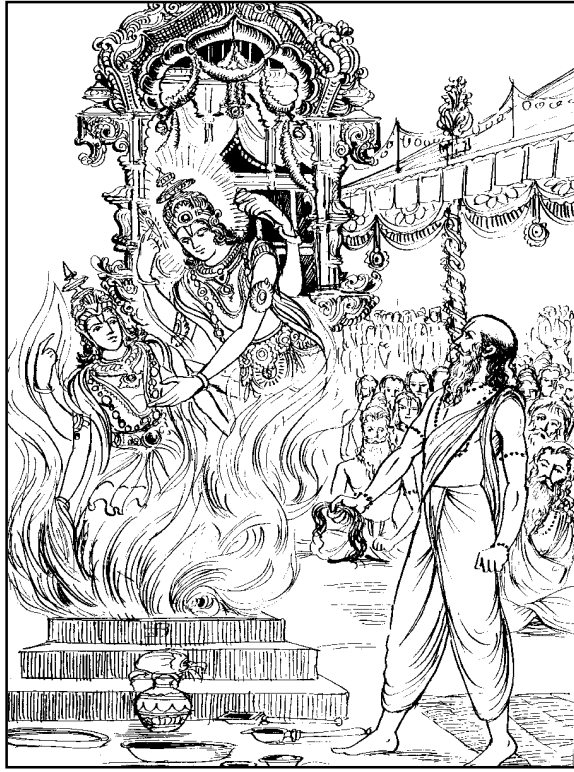
प्रसिद्ध भगवान्‌के पार्षद हुए तथा जो राजा चोल थे, उनका नाम सुशील हुआ। हम वे ही दोनों हैं। लक्ष्मीजीके प्रियतम श्रीहरिने हमें अपने समान रूप देकर अपना द्वारपाल बना लिया है।

इसलिये धर्मज्ञ ब्राह्मण! तुम भी सदा भगवान् विष्णुके व्रतमें स्थित रहो। मात्सर्य और दम्भका परित्याग करके सर्वत्र समान दृष्टि रखो। तुला, मकर और मेषकी संक्रान्तिमें सदा प्रातःस्नान किया करो। एकादशीके व्रतमें लगे रहो और तुलसीवनकी रक्षा करते रहो। ब्राह्मणों, गौओं तथा वैष्णवोंकी सदा ही सेवा करो। मसूर, काँजी और बैंगन खाना छोड़ दो। धर्मदत्त! ऐसा करनेसे तुम भी शरीरका अन्त होनेपर श्रीविष्णुके परमपदको प्राप्त करोगे। जैसे हमलोगोंने भगवान्‌की भक्तिसे ही उन्हें पाया है, उसी प्रकार तुम भी उन्हें प्राप्त कर लोगे। तुमने जन्मसे लेकर अबतक जो श्रीविष्णुको संतुष्ट करनेवाला यह व्रत किया है, इससे यज्ञ, दान और तीर्थ भी बड़े नहीं हैं। विप्रवर! तुम धन्य हो; क्योंकि तुमने जगद्‌गुरु भगवान् श्रीविष्णुको प्रसन्न करनेवाले इस व्रतका अनुष्ठान किया है; जिसके एक भागका पुण्य पाकर ही प्रेतयोनिमें पड़ी हुई कलहा मुक्त हो गयी। अब हमलोग इसे भगवान् विष्णुके लोकमें ले जा रहे हैं।

नारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार विमानपर बैठे हुए विष्णुके दूतोंने धर्मदत्तको उपदेश देकर कलहाके साथ वैकुण्ठधामकी यात्रा की। तत्पश्चात् धर्मदत्त भी पूर्ण विश्वासके साथ उस व्रतमें लगे रहे और शरीरका अन्त होनेपर अपनी दोनों पत्नियोंके साथ वे भगवान्‌के परमधामको चले गये। जो पुरुष इस प्राचीन इतिहासको सुनता और सुनाता है, वह जगद्‌गुरु भगवान्‌की कृपासे उनका सान्निध्य प्राप्त करानेवाली उत्तम गति पाता है।

पुण्यात्माओंके संसर्गसे पुण्यकी प्राप्तिके प्रसंगमें धनेश्वर ब्राह्मणकी कथा

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—प्रिये! यह कथा सुनकर राजा पृथुके मनमें बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने भक्तिपूर्वक देवर्षि नारदका पूजन करनेके पश्चात् उन्हें विदा किया। इसलिये माघस्नान, कार्तिकस्नान तथा एकादशी—ये तीनों व्रत मुझे अत्यन्त प्रिय हैं। वनस्पतियोंमें तुलसी, महीनोंमें कार्तिक, तिथियोंमें एकादशी तथा पुण्य-क्षेत्रोंमें द्वारकापुरी मुझे विशेष प्रिय हैं।* जो अपनी इन्द्रियोंको संयममें रखकर इन सबका सेवन करता है, वह मुझे बहुत ही प्रिय होता है। यज्ञ आदिके द्वारा भी कोई मेरा ऐसा प्रिय नहीं हो सकता, जैसा कि पूर्वोक्त चारोंके सेवनसे होता है।

सत्यभामा बोलीं—नाथ! आपने मुझे जो कथा सुनायी है, वह बड़े ही आश्चर्यमें डालनेवाली है; क्योंकि कलहा दूसरेके दिये हुए पुण्यसे ही मुक्ति पा गयी। इस

---

* वनस्पतीनां तुलसी मासानां कार्तिकः प्रियः। एकादशी तिथीनां च क्षेत्राणां द्वारका मम॥ (११४। ३)

कार्तिक मासका ऐसा प्रभाव है और यह आपको इतना प्रिय है कि इसमें किये हुए स्नान-दानसे कलहाके पतिद्रोह आदि पाप भी नष्ट हो गये। प्रभो! जो दूसरेका किया हुआ पुण्य है, वह उसके देनेसे तो मिल जाता है; किन्तु बिना दिया हुआ पुण्य मनुष्य किस मार्गसे पा सकता है?

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—प्रिये! सत्ययुग, त्रेता और द्वापरमें देश, ग्राम और कुल भी मनुष्यके किये हुए पुण्य और पापके भागी होते हैं; परन्तु कलियुगमें केवल कर्ताको ही पुण्य और पापका फल भोगना पड़ता है। पढ़ानेसे, यज्ञ करानेसे अथवा एक पंक्तिमें बैठकर भोजन करनेसे भी मनुष्य दूसरोंके पुण्य और पापका चौथाई भाग परोक्षरूपसे पा लेता है। एक आसनपर बैठने, एक सवारीपर चलने, श्वासका स्पर्श होने और परस्पर अंग सट जानेसे भी निश्चय ही पुण्य-पापके छठे अंशका फलभागी होना पड़ता है। स्पर्श करनेसे, बातचीत करनेसे तथा दूसरेकी स्तुति करनेसे भी मानव पुण्य-पापके दशमांशको ग्रहण करता है। देखनेसे, नाम सुननेसे तथा मनके द्वारा चिन्तन करनेसे दूसरेके पुण्य-पापका शतांश भाग प्राप्त होता है। जो दूसरेकी निन्दा करता, चुगली खाता और उसे धिक्कार देता है, वह उसके किये हुए पातकको स्वयं लेकर बदलेमें अपने पुण्यको देता है।[१] एक पंक्तिमें बैठकर भोजन करनेवाले लोगोंमेंसे जो किसीको परोसनेमें छोड़ देता है, उसके पुण्यका छठा भाग उस छोड़े हुए व्यक्तिको मिल जाता है। जो स्नान और सन्ध्या आदि करते समय किसीको छूता या उससे बातचीत करता है, उसे अपने कर्मजनित पुण्यके छठे अंशको उस व्यक्तिके लिये निश्चय ही देना पड़ता है।[२] जो धर्मके उद्देश्यसे दूसरे मनुष्यसे धनकी याचना करता है, उसके पुण्य-कर्मके फलको धन देनेवाला व्यक्ति भी पाता है। जो दूसरेका धन चुराकर पुण्य-कर्म करता है, उसका फल धनीको ही मिलता है, कर्म करनेवालेको नहीं। जो मनुष्य दूसरेका ऋण चुकाये बिना ही मर जाता है, उसके पुण्यको धनी मनुष्य अपने धनके अनुसार बाँट लेता है। कर्म करनेकी सलाह देनेवाला, अनुमोदन करनेवाला, सामग्री जुटानेवाला तथा बलसे सहायता करनेवाला पुरुष भी पुण्य-पापके छठे अंशको पा लेता है। राजा अपनी प्रजासे, गुरु शिष्यसे, पति अपनी पत्नीसे तथा पिता अपने पुत्रसे उसके पुण्य-पापका छठा अंश प्राप्त करता है। स्त्री भी यदि सदा अपने पतिके मनके अनुसार चले और सदा उसे संतोष देनेवाली हो तो वह पतिके पुण्यका आधा भाग प्राप्त करती है। स्वयं धन देकर अपने नौकर या पुत्रके अतिरिक्त किसी भी दूसरेके हाथसे दान करानेवाले पुरुषके पुण्य-कर्मोंके छठे भागको कर्ता ले लेता है। वृत्ति देनेवाला पुरुष वृत्तिभोगीके पुण्यका छठा अंश ले लेता है; किन्तु यदि उसके बदलेमें उसने अपनी या दूसरेकी सेवा न करायी हो, तभी उसे लेनेका अधिकारी होता है। इस प्रकार दूसरोंके किये हुए पुण्य और पाप बिना दिये भी सदा आते रहते हैं। इस विषयमें एक प्राचीन इतिहास है, जो बहुत ही उत्तम और पुण्यमयी बुद्धि प्रदान करनेवाला है, उसे सुनो।

पूर्वकालकी बात है, अवन्तीपुरीमें धनेश्वर नामक एक ब्राह्मण रहता था। वह ब्राह्मणोचित कर्मसे भ्रष्ट, पापपरायण और खोटी बुद्धिवाला था, रस, कम्बल और चमड़ा आदि बेचकर तथा झूठ बोलकर वह जीविका चलाता था। उसका मन चोरी, वेश्यागमन, मदिरापान और जुए आदिमें सदा आसक्त रहता था। एक बार वह खरीद-बिक्रीके कामसे देश-देशान्तरमें भ्रमण करता हुआ माहिष्मतीपुरीमें जा पहुँचा, जिसकी चहारदीवारीसे सटकर बहनेवाली पापनाशिनी नर्मदा सदा सुशोभित होती रहती है। वहाँ कार्तिकका व्रत करनेवाले बहुत-से मनुष्य अनेक गाँवोंसे स्नान करनेके लिये आये थे। धनेश्वरने उन सबको देखा। कितने ही ब्राह्मण स्नान

१-परस्य निन्दां पैशुन्यं धिक्कारं च करोति यः। तत्कृतं पातकं प्राप्य स्वपुण्यं प्रददाति सः॥ (११४। १७)

२-स्नानसन्ध्यादिकं कुर्वन् यः स्पृशेद्वा प्रभाषते। स कर्मपुण्यषष्ठांशं दद्यात्तस्मै सुनिश्चितम्॥ (११४। २१)

करके यज्ञ तथा देव-पूजनमें लगे थे। कुछ लोग पुराणोंका पाठ करते और कुछ लोग सुनते थे। कितने ही भक्त नाच, गान, दान और वाद्यके द्वारा भगवान् विष्णुकी स्तुतिमें संलग्न थे। धनेश्वर प्रतिदिन घूम-घूमकर वैष्णवोंके दर्शन, स्पर्श तथा उनसे वार्तालाप करता था। इससे उसे श्रीविष्णुके नाम सुननेका शुभ अवसर प्राप्त होता था। इस प्रकार वह एक मासतक वहाँ टिका रहा। कार्तिक-व्रतके उद्यापनमें भक्त पुरुषोंने जो श्रीहरिके समीप जागरण किया, उसको भी उसने देखा। उसके बाद पूर्णिमाको व्रत करनेवाले मनुष्योंने जो ब्राह्मणों और गौओंका पूजन आदि किया तथा दक्षिणा और भोजन आदि दिये, उन सबका भी उसने अवलोकन किया। तत्पश्चात् सूर्यास्तके समय श्रीशंकरजीकी प्रसन्नताके लिये जो दीपोत्सर्गकी विधि की गयी, उसपर भी धनेश्वरकी दृष्टि पड़ी। उस तिथिको भगवान् शंकरने तीनों पुरोंका दाह किया था, इसीलिये भक्तपुरुष उस दिन दीपोत्सर्गका महान् उत्सव किया करते हैं। जो मुझमें और शिवजीमें भेद-बुद्धि करता है, उसके सारे पुण्य-कर्म निष्फल हो जाते हैं—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। धनेश्वर नर्मदाके तटपर नृत्य आदि देखता हुआ घूम रहा था। इतनेमें ही एक काले साँपने उसे काट लिया। वह व्याकुल होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसे गिरा देख बहुत-से मनुष्योंने दयावश उसको चारों ओरसे घेर लिया और तुलसीमिश्रित जलके द्वारा उसके मुखपर छींटे देना आरम्भ किया। देहत्यागके पश्चात् धनेश्वरको यमराजके दूतोंने बाँधा और क्रोधपूर्वक कोड़ोंसे पीटते हुए वे उसे संयमनीपुरीको ले गये। चित्रगुप्तने धनेश्वरको देखकर उसे बहुत फटकारा और उसने बचपनसे लेकर मृत्युपर्यन्त जितने दुष्कर्म किये थे, वे सब उन्होंने यमराजको बताये।
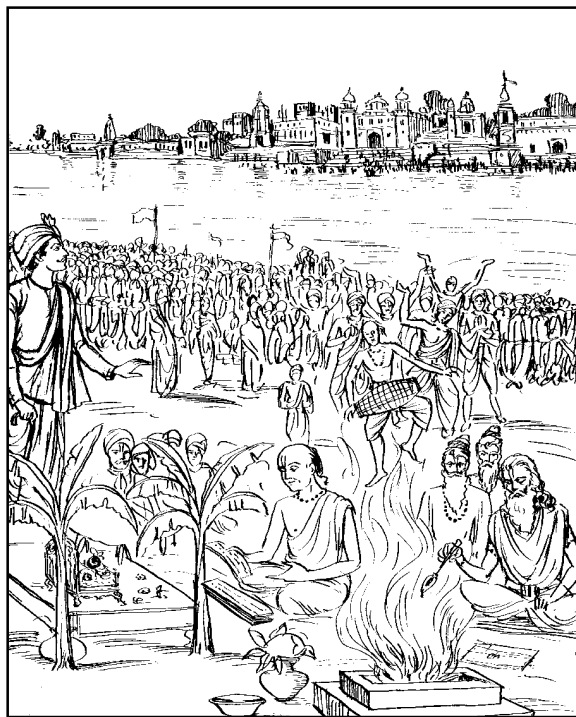
चित्रगुप्त बोले—प्रभो! बचपनसे लेकर मृत्युपर्यन्त इसका कोई पुण्य नहीं दिखायी देता। यह दुष्ट केवल पापका मूर्तिमान् स्वरूप दीख पड़ता है, अतः इसे कल्पभर नरकमें पकाया जाय।

यमराज बोले—प्रेतराज! केवल पापोंपर ही दृष्टि रखनेवाले इस दुष्टको मुद्गरोंसे पीटते हुए ले जाओ और तुरंत ही कुम्भीपाकमें डाल दो।

यमराजकी आज्ञा पाकर प्रेतराज पापी धनेश्वरको ले चला। मुद्गरोंकी मारसे उसका मस्तक विदीर्ण हो गया था। कुम्भीपाकमें तेलके खौलनेका खलखल शब्द हो रहा था। प्रेतराजने उसे तुरंत ही उसमें डाल दिया। वह ज्यों ही कुम्भीपाकमें गिरा, त्यों ही उसका तेल ठंडा हो गया—ठीक उसी तरह, जैसे पूर्वकालमें भक्तप्रवर प्रह्लादको डालनेसे दैत्योंकी जलायी हुई आग बुझ गयी थी। यह महान् आश्चर्यकी बात देखकर प्रेतराजको बड़ा विस्मय हुआ। उसने बड़े वेगसे आकर यह सारा हाल यमराजको कह सुनाया। प्रेतराजकी कही हुई कौतूहलपूर्ण बात सुनकर यमने कहा—'आह यह कैसी बात है!' फिर उसे साथ ले वे उस स्थानपर आये और उस घटनापर विचार करने लगे। इतनेमें ही देवर्षि नारद हँसते हुए बड़ी उतावलीके साथ वहाँ आये। यमराजने भलीभाँति उनका पूजन किया। उनसे मिलकर देवर्षि नारदजीने इस प्रकार कहा।

नारदजी बोले—सूर्यनन्दन! यह नरक भोगनेके योग्य नहीं है; क्योंकि इसके द्वारा ऐसा कर्म बन गया है, जो नरकका नाश करनेवाला है। जो पुरुष पुण्य-कर्म करनेवाले लोगोंका दर्शन, स्पर्श और उनके साथ वार्तालाप करता है, वह उनके पुण्यका छठा अंश प्राप्त कर लेता है। यह तो एक मासतक श्रीहरिके कार्तिक-व्रतका अनुष्ठान करनेवाले असंख्य मनुष्योंके सम्पर्कमें रहा है; अतः उन सबके पुण्यांशका भागी हुआ है। उनकी सेवा करनेके कारण इसे सम्पूर्ण व्रतका पुण्य प्राप्त हुआ है, अतः इसके कार्तिक-व्रतसे उत्पन्न होनेवाले पुण्योंकी कोई गिनती नहीं है। कार्तिक-व्रत करनेवाले पुरुषोंके बड़े-से-बड़े पातकोंका भी भक्तवत्सल श्रीविष्णु पूर्णतया नाश कर डालते हैं। इतना ही नहीं, अन्तकालमें वैष्णव पुरुषोंने तुलसीमिश्रित नर्मदाके जलसे इसको नहलाया है और श्रीविष्णुके नामका भी श्रवण कराया है; इसलिये इसके सारे पाप नष्ट हो गये हैं। अब धनेश्वर उत्तम गति प्राप्त करनेका अधिकारी हो गया है। यह वैष्णव पुरुषोंका कृपापात्र है, अतः इसे नरकमें न पकाओ। इसको अनिच्छासे पुण्य प्राप्त हुआ है; इसलिये यह यक्षयोनिमें रहे और सम्पूर्ण नरकोंके दर्शनमात्रसे अपने पापोंका भोग पूरा कर ले।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—प्रिये! यों कहकर देवर्षि नारदजी चले गये। फिर यमराज अपने सेवकके द्वारा उस ब्राह्मणको सम्पूर्ण नरकोंका दर्शन करानेके लिये वहाँसे ले गये। इसके बाद यमकी आज्ञाका पालन करनेवाला प्रेतराज धनेश्वरको सम्पूर्ण नरकोंके पास ले गया और उनका अवलोकन कराता हुआ इस प्रकार कहने लगा।

प्रेतराजने कहा—धनेश्वर! महान् भय देनेवाले इन घोर नरकोंकी ओर दृष्टि डालो। इनमें पापी पुरुष सदा यमराजके सेवकोंद्वारा पकाये जाते हैं। यह जो भयानक नरक दिखायी देता है, इसका नाम तप्तबालुक है। इसमें ये पापाचारी जीव अपनी देह दग्ध होनेके कारण क्रन्दन कर रहे हैं। जो मनुष्य बलिवैश्वदेवके अन्तमें भूखसे दुर्बल हो घरपर आये हुए अतिथियोंका सत्कार नहीं करते, वे अपने पापकर्मके कारण इस नरकमें कष्ट भोगते हैं। जो गुरु, अग्नि, ब्राह्मण, गौ, देवता तथा मूर्धाभिषिक्त राजाओंको लात मारते हैं, वे ही पापी यहाँ दृष्टिगोचर हो रहे हैं। यहाँ तपी हुई बालूपर चलनेके कारण इनके पैर जल गये हैं। इस नरकके छः अवान्तर भेद हैं। नाना प्रकारके पापोंके कारण इसमें आना पड़ता है। इसी प्रकार यह दूसरा महान् नरक अन्धतामिस्त्र कहलाता है। देखो, यहाँ सुईके समान मुँहवाले कीड़ोंके द्वारा पापियोंके शरीर विदीर्ण हो रहे हैं। यह नरक भयानक मुखवाले अनेक प्रकारके कीटोंसे ठसाठस भरा हुआ है। यह तीसरा क्रकच नामक नरक है। यह भी बड़ा भयानक दिखायी देता है। इसमें ये पापी मनुष्य आरेसे चीरे जानेका कष्ट भोगते हैं। असिपत्रवन आदि भेदोंसे यह नरक छः प्रकारका बताया गया है। जो दूसरोंका पत्नी और पुत्र आदिसे तथा अन्यान्य प्रियजनोंसे विछोह कराते हैं, वे ही लोग यहाँ कष्ट भोगते हैं। तलवारके समान पत्तोंसे इनके अंग छिन्न-भिन्न हो रहे हैं और इसी भयसे ये इधर-उधर भाग रहे हैं। देखो, ये

पापी कितने कष्ट भोगते हैं और किस प्रकार इधर-उधर क्रन्दन करते फिरते हैं। यह चौथा नरक तो और भी भयानक है। इसका नाम अर्गला है। देखो, यमराजके दूत नाना प्रकारके पाशोंसे बाँधकर इन पापियोंको मुद्गर आदिसे पीट रहे हैं और ये जोर-जोरसे चीख रहे हैं। जो साधु पुरुषों और ब्राह्मण आदिको गला पकड़कर या और किसी उपायसे कहीं आने-जानेसे रोकते हैं, वे पापी यमराजके सेवकोंद्वारा यहाँ यातनामें डाले जाते हैं। वध और भेदन आदिके द्वारा इस नरकके भी छः भेद हैं। अब पाँचवें नरकपर दृष्टिपात करो। इसका नाम कूटशाल्मलि है। यहाँ जो ये सेमल आदिके वृक्ष खड़े हैं, ये सभी जलते हुए अँगारेके समान हैं। इसमें पापियोंको यातना दी जाती है। परायी स्त्री और पराये धनका अपहरण करनेवाले तथा दूसरोंसे द्रोह करनेवाले पापी सदा ही यहाँ कष्ट भोगते हैं। यह छठा नरक और भी अद्भुत है। इसे रक्तपूय कहते हैं—इसमें रक्त और पीब भरा रहता है। इसकी ओर देखो तो सही, इसमें कितने ही पापी मनुष्य नीचे मुँह करके लटकाये गये हैं और भयानक कष्ट भोग रहे हैं। ये सब अभक्ष्य-भक्षण और निन्दा करनेवाले तथा चुगली खानेवाले हैं। कोई डूब रहे हैं, कोई मारे जा रहे हैं। ये सब-के-सब डरावनी आवाजके साथ चीख रहे हैं। इस नरकके भी विगन्ध आदि छः भेद हैं। धनेश्वर! अब इधर दृष्टि डालो। यह भयंकर दिखायी देनेवाला सातवाँ नरक कुम्भीपाक है। यह तेल आदि द्रव्योंके भेदसे छः प्रकारका है। यमराजके दूत महापातकी पुरुषोंको इसीमें डालकर औंटाते हैं और वे पापी इसमें अनेक हजार वर्षोंतक डूबते-उतराते रहते हैं। देखो, वे भयानक नरक सब मिलाकर बयालीस हैं। बिना इच्छाके किया हुआ पातक शुष्क कहलाता है और इच्छापूर्वक किये हुए पातकको आर्द्र कहा गया है। आर्द्र और शुष्क आदि भेदोंसे प्रत्येक नरक दो प्रकारका है। इस प्रकार ये नरक पृथक्-पृथक् चौरासीकी संख्यामें स्थित हैं। प्रकीर्ण, अपांक्तेय, मलिनीकरण, जातिभ्रंशकर, उपपातक, अतिपातक और महापातक—ये सात प्रकारके पातक माने गये हैं। इनके कारण पापी पुरुष उपर्युक्त सात नरकोंमें क्रमशः यातना भोगते हैं। तुम्हें कार्तिक-व्रत करनेवाले पुरुषोंका संसर्ग प्राप्त हो चुका था; इसलिये अधिक पुण्यराशिका संचय हो जानेसे नरकोंके कष्टसे छुटकारा मिल गया।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—सत्यभामा! इस प्रकार प्रेतराज धनेश्वरको नरकोंका दर्शन कराकर उसे यक्षलोकमें ले गया तथा वहाँ जाकर वह यक्ष हुआ।

अशक्तावस्थामें कार्तिक-व्रतके निर्वाहका उपाय

सूतजी कहते हैं—महर्षियो! भगवान् वासुदेव अपनी प्रियतमा सत्यभामाको यह कथा सुनाकर सायंकालका सन्ध्योपासन करनेके लिये अपनी माता देवकीके भवनमें चले गये। इस पापनाशक कार्तिक मासका ऐसा ही प्रभाव बतलाया गया है। यह भगवान् विष्णुको सदा ही प्रिय है तथा भोग और मोक्षरूपी फल प्रदान करनेवाला है। रातमें भगवान् विष्णुके समीप जागना, प्रातःकाल स्नान करना, तुलसीकी सेवामें संलग्न रहना, उद्यापन करना और दीप-दान देना—ये कार्तिक मासके पाँच नियम हैं।* इन पाँचों नियमोंके पालनसे कार्तिकका व्रत करनेवाला पुरुष पूर्ण फलका भागी होता है। वह फल भोग और मोक्ष देनेवाला बताया गया है।

ऋषि बोले—रोमहर्षणकुमार सूतजी! आपने इतिहाससहित कार्तिक मासकी विधिका भलीभाँति वर्णन किया। यह भगवान् विष्णुको प्रिय लगनेवाला तथा अत्यन्त उत्तम फल देनेवाला है। इसका प्रभाव बड़ा ही आश्चर्यजनक है। इसलिये इसका अनुष्ठान अवश्य

* हरिजागरणं प्रातःस्नानं तुलसिसेवनम् । उद्यापनं दीपदानं व्रतान्येतानि कार्तिके॥ (११७।३)

करना चाहिये। परन्तु यदि कोई व्रत करनेवाला पुरुष संकटमें पड़ जाय या दुर्गम वनमें स्थित हो अथवा रोगोंसे पीड़ित हो तो उसे इस कल्याणमय कार्तिक-व्रतका अनुष्ठान कैसे करना चाहिये?

सूतजीने कहा—महर्षियो! ऐसे मनुष्यको भगवान् विष्णु अथवा शिवके मन्दिरमें केवल जागरण करना चाहिये। विष्णु और शिवके मन्दिर न मिलें तो किसी भी मन्दिरमें वह जागरण कर सकता है। यदि कोई दुर्गम वनमें स्थित हो अथवा आपत्तिमें फँस जाय तो वह अश्वत्थवृक्षकी जड़के पास अथवा तुलसीके वृक्षोंके बीच बैठकर जागरण करे। जो पुरुष भगवान् विष्णुके समीप बैठकर श्रीविष्णुके नाम तथा चरित्रोंका गान करता है, उसे सहस्र गो-दानोंका फल मिलता है। बाजा बजानेवाला पुरुष वाजपेययज्ञका फल पाता है और भगवान्‌के पास नृत्य करनेवाला पुरुष सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करनेका फल प्राप्त करता है। जो उक्त नियमोंका पालन करनेवाले मनुष्योंको धन देता है, उसे यह सब पुण्य प्राप्त होता है। उक्त नियमोंका पालन करनेवाले पुरुषोंके दर्शन और नाम सुननेसे भी उनके पुण्यका छठा अंश प्राप्त होता है। जो आपत्तिमें फँस जानेके कारण नहानेके लिये जल न पा सके अथवा जो रोगी होनेके कारण स्नान न कर सके, वह भगवान् विष्णुका नाम लेकर मार्जन कर ले। जो कार्तिक-व्रतके पालनमें प्रवृत्त होकर भी उसका उद्यापन करनेमें समर्थ न हो, उसे चाहिये कि अपने व्रतकी पूर्तिके लिये यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन कराये। ब्राह्मण इस पृथ्वीपर अव्यक्तरूप श्रीविष्णुके व्यक्तस्वरूप हैं। उनके सन्तुष्ट होनेपर भगवान् सदा सन्तुष्ट होते हैं, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। जो स्वयं दीपदान करनेमें असमर्थ हो, वह दूसरोंका दीप जलाये अथवा हवा आदिसे उन दीपोंकी यत्नपूर्वक रक्षा करे। तुलसीवृक्षके अभावमें वैष्णव ब्राह्मणका पूजन करे; क्योंकि भगवान् विष्णु अपने भक्तोंके हृदयमें सदा ही विराजमान रहते हैं। अथवा सब साधनोंके अभावमें व्रत करनेवाला पुरुष व्रतकी पूर्तिके लिये ब्राह्मणों, गौओं तथा पीपल और वटके वृक्षोंकी सेवा करे।

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! आपने पीपल और वटको गौ तथा ब्राह्मणके समान कैसे बता दिया? वे दोनों अन्य सब वृक्षोंकी अपेक्षा अधिक पूज्य क्यों माने गये?

सूतजी बोले—महर्षियो! पीपलके रूपमें साक्षात् भगवान् विष्णु ही विराजते हैं। इसी प्रकार वट भगवान् शंकरका और पलाश ब्रह्माजीका स्वरूप है। इन तीनोंका दर्शन, पूजन और सेवन पापहारी माना गया है। दुःख, आपत्ति, व्याधि और दुष्टोंके नाशमें भी उसको कारण बताया गया है।

कार्तिक मासका माहात्म्य और उसमें पालन करनेयोग्य नियम

सत्यभामाने कहा—प्रभो! कार्तिक मास सब मासोंमें श्रेष्ठ माना गया है। मैंने उसके माहात्म्यको विस्तारपूर्वक नहीं सुना। कृपया उसीका वर्णन कीजिये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—सत्यभामे! तुमने बड़ी उत्तम बात पूछी है। पूर्वकालमें महात्मा सूतने शौनक मुनिसे आदरपूर्वक कार्तिक-व्रतका वर्णन किया था। वही प्रसंग मैं तुम्हें सुनाता हूँ।

सूतजीने कहा—मुनिश्रेष्ठ शौनकजी! पूर्वकालमें कार्तिकेयजीके पूछनेपर महादेवजीने जिसका वर्णन किया था, उसको आप श्रवण कीजिये।

कार्तिकेयजी बोले—पिताजी! आप वक्ताओंमें श्रेष्ठ हैं। मुझे कार्तिक मासके स्नानकी विधि बताइये, जिससे मनुष्य दुःखरूपी समुद्रसे पार हो जाते हैं। साथ ही तीर्थके जलका माहात्म्य और माघस्नानका फल भी बताइये।

महादेवजीने कहा—एक ओर सम्पूर्ण तीर्थ, समस्त दान, दक्षिणाओंसहित यज्ञ, पुष्कर, कुरुक्षेत्र,

हिमालय, अक्रूरतीर्थ, काशी और शूकरक्षेत्रमें निवास तथा दूसरी ओर केवल कार्तिक मास हो, तो वही भगवान् केशवको सर्वदा प्रिय है। जिसके हाथ, पैर, वाणी और मन वशमें हों तथा जिसमें विद्या, तप और कीर्ति विद्यमान हों, वही तीर्थके पूर्ण फलको प्राप्त करता है। श्रद्धारहित, नास्तिक, संशयालु और कोरी तर्कबुद्धिका सहारा लेनेवाले मनुष्य तीर्थसेवनके फलभागी नहीं होते। जो ब्राह्मण सबेरे उठकर सदा प्रातः स्नान करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो परमात्माको प्राप्त होता है। षडानन! स्नानका महत्त्व जाननेवाले पुरुषोंने चार प्रकारके स्नान बतलाये हैं—वायव्य, वारुण, ब्राह्म और दिव्य।

यह सुनकर सत्यभामा बोलीं—प्रभो! मुझे चारों स्नानोंके लक्षण बतलाइये।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—प्रिये! गोधूलिद्वारा किया हुआ स्नान वायव्य कहलाता है, सागर आदि जलाशयोंमें किये हुए स्नानको वारुण कहते हैं, **'आपो हि ष्ठा मयो०'** आदि ब्राह्मण-मन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक जो मार्जन किया जाता है, उसका नाम ब्राह्म है तथा बरसते हुए मेघके जल और सूर्यकी किरणोंसे शरीरकी शुद्धि करना दिव्य स्नान माना गया है। सब प्रकारके स्नानोंमें वारुण-स्नान श्रेष्ठ है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य मन्त्रोच्चारणपूर्वक स्नान करें। परन्तु शूद्र और स्त्रियोंके लिये बिना मन्त्रके ही स्नानका विधान है। बालक, युवा, वृद्ध, पुरुष, स्त्री और नपुंसक—सब लोग कार्तिक और माघमें प्रातःस्नानकी प्रशंसा करते हैं। कार्तिकमें प्रातःकाल स्नान करनेवाले लोग मनोवांछित फल प्राप्त करते हैं।

कार्तिकेयजी बोले—पिताजी! अन्य धर्मोंका भी वर्णन कीजिये, जिनका अनुष्ठान करनेसे मनुष्य अपने समस्त पाप धोकर देवता बन जाता है।

महादेवजीने कहा—बेटा! कार्तिक मासको उपस्थित देख जो मनुष्य दूसरेका अन्न त्याग देता है, वह प्रतिदिन कृच्छ्रव्रतका फल प्राप्त करता है। कार्तिकमें तेल, मधु, काँसेके बर्तनमें भोजन और मैथुनका विशेषरूपसे परित्याग करना चाहिये। एक बार भी मांस भक्षण करनेसे मनुष्य राक्षसकी योनिमें जन्म पाता है और साठ हजार वर्षोंतक विष्ठामें डालकर सड़ाया जाता है। उससे छुटकारा पानेपर वह पापी विष्ठा खानेवाला ग्राम-शूकर होता है। कार्तिक मासमें शास्त्रविहित भोजनका नियम करनेपर अवश्य ही मोक्ष प्राप्त होता है। भगवान् विष्णुका परमधाम ही मोक्ष है। कार्तिकके समान कोई मास नहीं है, श्रीविष्णुसे बढ़कर कोई देवता नहीं है, वेदके तुल्य कोई शास्त्र नहीं है, गंगाके समान कोई तीर्थ नहीं है, सत्यके समान सदाचार, सत्ययुगके समान युग, रसनाके तुल्य तृप्तिका साधन, दानके सदृश सुख, धर्मके समान मित्र और नेत्रके समान कोई ज्योति नहीं है।*

---

* .... । प्रवृत्तानां तु भक्षाणां कार्तिके नियमे कृते॥
अवश्यं प्राप्यते मोक्षो विष्णोस्तत्परमं पदम् । न कार्तिकसमो मासो न देवः केशवात्परः॥

स्नान करनेवाले पुरुषोंके लिये समुद्रगामिनी पवित्र नदी प्रायः दुर्लभ होती है। कुलके अनुरूप उत्तम शीलवाली कन्या, कुलीन और शीलवान् दम्पति, जन्मदायिनी माता, विशेषतः पिता, साधु पुरुषोंके सम्मानका अवसर, धार्मिक पुत्र, द्वारकाका निवास, भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन, गोमतीका स्नान और कार्तिकका व्रत—ये सब मनुष्यके लिये प्रायः दुर्लभ हैं। चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणकालमें ब्राह्मणोंको पृथ्वी दान करनेसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, वह कार्तिकमें भूमिपर शयन करनेवाले पुरुषको स्वतः प्राप्त हो जाता है। ब्राह्मण-दम्पतिको भोजन कराये, चन्दन आदिसे उनकी पूजा करे। कम्बल, नाना प्रकारके रत्न और वस्त्र दान करे। ओढ़नेके साथ ही बिछौना भी दे। तुम्हें कार्तिक मासमें जूते और छातेका भी दान करना चाहिये। कार्तिक मासमें जो मनुष्य प्रतिदिन पत्तलमें भोजन करता है, वह चौदह इन्द्रोंकी आयुपर्यन्त कभी दुर्गतिमें नहीं पड़ता। उसे सम्पूर्ण कामनाओं तथा समस्त तीर्थोंका फल प्राप्त होता है। पलाशके पत्तेपर भोजन करनेसे मनुष्य कभी नरक नहीं देखता; किन्तु वह पलाशके बिचले पत्रका अवश्य त्याग कर दे।

कार्तिकमें तिलका दान, नदीका स्नान, सदा साधुपुरुषोंका सेवन और पलाशके पत्तोंमें भोजन सदा मोक्ष देनेवाला है। कार्तिकके महीनेमें मौन-व्रतका पालन, पलाशके पत्तेमें भोजन, तिलमिश्रित जलसे स्नान, निरन्तर क्षमाका आश्रय और पृथ्वीपर शयन करनेवाला पुरुष युग-युगके उपार्जित पापोंका नाश कर डालता है। जो कार्तिक मासमें भगवान् विष्णुके सामने उषाकालतक जागरण करता है, उसे सहस्र गोदानोंका फल मिलता है। पितृ-पक्षमें अन्नदान करनेसे तथा ज्येष्ठ और आषाढ़ मासमें जल देनेसे मनुष्योंको जो फल मिलता है, वह कार्तिकमें दूसरोंका दीपक जलानेमात्रसे प्राप्त हो जाता है। जो बुद्धिमान् कार्तिकमें मन, वाणी और क्रियाद्वारा पुष्कर तीर्थका स्मरण करता है, उसे लाखों-करोड़ोंगुना पुण्य होता है। माघ मासमें प्रयाग, कार्तिकमें पुष्कर और वैशाख मासमें अवन्तीपुरी (उज्जैन)—ये एक युगतक उपार्जित किये हुए पापोंका नाश कर डालते हैं। कार्तिकेय! संसारमें विशेषतः कलियुगमें वे ही मनुष्य धन्य हैं, जो सदा पितरोंके उद्धारके लिये श्रीहरिका सेवन करते हैं। बेटा! बहुत-से पिण्ड देने और गयामें श्राद्ध आदि करनेकी क्या आवश्यकता है। वे मनुष्य तो हरिभजनके ही प्रभावसे पितरोंका नरकसे उद्धार कर देते हैं। यदि पितरोंके उद्देश्यसे दूध आदिके द्वारा भगवान् विष्णुको स्नान कराया जाय तो वे पितर स्वर्गमें पहुँचकर कोटि कल्पोंतक देवताओंके साथ निवास करते हैं। जो कमलके एक फूलसे भी देवेश्वर भगवान् लक्ष्मीपतिका पूजन करता है, वह एक करोड़ वर्षतकके पापोंका नाश कर देता है। देवताओंके स्वामी भगवान् विष्णु कमलके एक पुष्पसे भी पूजित और अभिवन्दित होनेपर एक हजार सात सौ अपराध क्षमा कर देते हैं। षडानन! जो मुखमें, मस्तकपर तथा शरीरमें भगवान्‌की प्रसादभूता तुलसीको प्रसन्नतापूर्वक धारण करता है, उसे कलियुग नहीं छूता। भगवान् विष्णुको निवेदन किये हुए प्रसादसे जिसके शरीरका स्पर्श होता है, उसके पाप और व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं। शंखका जल, श्रीहरिको भक्तिपूर्वक अर्पण किया हुआ नैवेद्य, चरणोदक, चन्दन तथा प्रसादस्वरूप धूप—ये ब्रह्महत्याका भी पाप दूर करनेवाले हैं।

न वेदसदृशं शास्त्रं न तीर्थं गङ्गया समम् । न सत्येन समं वृत्तं न कृतेन समं युगम्॥
न तृप्ती रसनातुल्या न दानसदृशं सुखम् । न धर्मसदृशं मित्रं न ज्योतिश्चक्षुषा समम्॥ (१२०।२२—२५)

प्रसंगतः माघस्नानकी महिमा, शूकरक्षेत्रका माहात्म्य तथा मासोपवास-व्रतकी विधिका वर्णन

महादेवजी कहते हैं—भक्तप्रवर कार्तिकेय! अब माघस्नानका माहात्म्य सुनो। महामते! इस संसारमें तुम्हारे समान विष्णु-भक्त पुरुष नहीं हैं। चक्रतीर्थमें श्रीहरिका और मथुरामें श्रीकृष्णका दर्शन करनेसे मनुष्यको जो फल मिलता है, वही माघ मासमें केवल स्नान करनेसे मिल जाता है। जो जितेन्द्रिय, शान्तचित्त और सदाचारयुक्त होकर माघ मासमें स्नान करता है, वह फिर कभी संसार-बन्धनमें नहीं पड़ता।

इतनी कथा सुनाकर भगवान् श्रीकृष्णने कहा—सत्यभामा! अब मैं तुम्हारे सामने शूकरक्षेत्रके माहात्म्यका वर्णन करूँगा, जिसके विज्ञानमात्रसे मेरा सान्निध्य प्राप्त होता है। पाँच योजन विस्तृत शूकरक्षेत्र मेरा मन्दिर (निवासस्थान) है। देवि! जो इसमें निवास करता है, वह गदहा हो तो भी चतुर्भुजस्वरूपको प्राप्त होता है। तीन हजार तीन सौ तीन हाथ मेरे मन्दिरका परिमाण माना गया है। देवि! जो अन्य स्थानोंमें साठ हजार वर्षोंतक तपस्या करता है, वह मनुष्य शूकरक्षेत्रमें आधे पहरतक तप करनेपर ही उतनी तपस्याका फल प्राप्त कर लेता है। कुरुक्षेत्रके सन्निहति* नामक तीर्थमें सूर्यग्रहणके समय तुला-पुरुषके दानसे जो फल बताया गया है, वह काशीमें दसगुना, त्रिवेणीमें सौगुना और गंगा-सागर-संगममें सहस्रगुना कहा गया है; किन्तु मेरे निवासभूत शूकरक्षेत्रमें उसका फल अनन्तगुना समझना चाहिये। भामिनि! अन्य तीर्थोंमें उत्तम विधानके साथ जो लाखों दान दिये जाते हैं, शूकरक्षेत्रमें एक ही दानसे उनके समान फल प्राप्त हो जाता है। शूकरक्षेत्र, त्रिवेणी और गंगा-सागर-संगममें एक बार ही स्नान करनेसे मनुष्यकी ब्रह्महत्या दूर हो जाती है। पूर्वकालमें राजा अलर्कने शूकरक्षेत्रका माहात्म्य श्रवण करके सातों द्वीपोंसहित पृथ्वीका राज्य प्राप्त किया था।

कार्तिकेयने कहा—भगवन्! मैं व्रतोंमें उत्तम मासोपवास-व्रतका वर्णन सुनना चाहता हूँ। साथ ही उसकी विधि एवं यथोचित फलको भी श्रवण करना चाहता हूँ।

महादेवजी बोले—बेटा! तुम्हारा विचार बड़ा उत्तम है। तुमने जो कुछ पूछा है, वह सब बताता हूँ। जैसे देवताओंमें भगवान् विष्णु, तपनेवालोंमें सूर्य, पर्वतोंमें मेरु, पक्षियोंमें गरुड़, तीर्थोंमें गंगा तथा प्रजाओंमें वैश्य श्रेष्ठ है, उसी प्रकार सब व्रतोंमें मासोपवास-व्रत श्रेष्ठ माना गया है। सम्पूर्ण व्रतोंसे, समस्त तीर्थोंसे तथा सब प्रकारके दानोंसे जो पुण्य प्राप्त होता है, वह सब मासोपवास करनेवालेको मिल जाता है। वैष्णवयज्ञके उद्देश्यसे भगवान् जनार्दनकी पूजा करनेके पश्चात् गुरुकी आज्ञा लेकर मासोपवास-व्रत करना चाहिये। शास्त्रोक्त जितने भी वैष्णवव्रत हैं, उन सबको तथा द्वादशीके पवित्र व्रतको करनेके पश्चात् मासोपवास-व्रत करना उचित है। अतिकृच्छ्र, पराक और चान्द्रायण-व्रतोंका अनुष्ठान करके गुरु और ब्राह्मणकी आज्ञासे मासोपवास-व्रत करे। आश्विन मासके शुक्लपक्षकी एकादशीको उपवास करके तीस दिनोंके लिये इस व्रतको ग्रहण करे। जो मनुष्य भगवान् वासुदेवकी पूजा करके कार्तिक मासभर उपवास करता है, वह मोक्षफलका भागी होता है। भगवान्‌के मन्दिरमें जाकर तीनों समय भक्तिपूर्वक सुन्दर मालती, नीलकमल, पद्म, सुगन्धित कमल, केशर, खस, कपूर, उत्तम चन्दन, नैवेद्य और धूप-दीप आदिसे श्रीजनार्दनका पूजन करे। मन, वाणी और क्रियाद्वारा श्रीगरुडध्वजकी आराधनामें लगा रहे। स्त्री, पुरुष, विधवा—जो कोई भी

---

* महाभारत युद्धका स्थान ही 'सन्निहति' कहलाता है। इसीको कहीं-कहीं 'विनशन तीर्थ' भी कहा गया है।

इस व्रतको करे, पूर्ण भक्तिके साथ इन्द्रियोंको काबूमें रखते हुए दिन-रात श्रीविष्णुके नामोंका कीर्तन करता रहे। भक्तिपूर्वक श्रीविष्णुकी स्तुति करे। झूठ न बोले। सम्पूर्ण जीवोंपर दया करे। अन्त:करणकी वृत्तियोंको अशान्त न होने दे। हिंसा त्याग दे। सोया हो या बैठा, श्रीवासुदेवका कीर्तन किया करे। अन्नका स्मरण, अवलोकन, सूँघना, स्वाद लेना, चर्चा करना तथा ग्रासको मुँहमें लेना—ये सभी निषिद्ध हैं। व्रतमें स्थित मनुष्य-शरीरमें उबटन लगाना, सिरमें तेलकी मालिश कराना, पान खाना और चन्दन लगाना छोड़ दे तथा अन्यान्य निषिद्ध वस्तुओंका भी त्याग करे। व्रत करनेवाला पुरुष शास्त्रविरुद्ध कर्म करनेवाले व्यक्तिका स्पर्श न करे। उससे वार्तालाप भी न करे। पुरुष, सौभाग्यवती स्त्री अथवा विधवा नारी शास्त्रोक्त विधिसे एक मासतक उपवास करके भगवान् वासुदेवका पूजन करे। यह व्रत गिने-गिनाये तीस दिनोंका होता है, इससे अधिक या कम दिनोंका नहीं। मनको संयममें रखनेवाला जितेन्द्रिय पुरुष एक मासतक उपवासके नियमको पूरा करके द्वादशी तिथिको भगवान् गरुडध्वजका पूजन करे। फूल, माला, गन्ध, धूप, चन्दन, वस्त्र, आभूषण और वाद्य आदिके द्वारा भगवान् विष्णुको संतुष्ट करे। चन्दनमिश्रित तीर्थके जलसे भक्तिपूर्वक भगवान्‌को स्नान कराये। फिर उनके अंगोंमें चन्दनका लेप करके गन्ध और पुष्पोंसे शृंगार करे। फिर वस्त्र आदिका दान करके उत्तम ब्राह्मणोंको भोजन कराये, उन्हें दक्षिणा दे और प्रणाम करके उनसे त्रुटियोंके लिये क्षमा-याचना करे। इस प्रकार मासोपवासपूर्वक जनार्दनकी पूजा करके ब्राह्मणोंको भोजन करानेसे मनुष्य श्रीविष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। मण्डपमें उपस्थित ब्राह्मणोंसे बारंबार इस प्रकार कहना चाहिये— 'द्विजवरो! इस व्रतमें जो कोई भी कार्य मन्त्रहीन, क्रियाहीन और सब प्रकारके साधनों एवं विधियोंसे हीन हुआ हो, वह सब आपलोगोंके वचन और प्रसादसे परिपूर्ण हो जाय।' कार्तिकेय! इस प्रकार मैंने तुमसे मासोपवासकी विधिका यथावत् वर्णन किया है।

शालग्रामशिलाके पूजनका माहात्म्य

कार्तिकेयने कहा—भगवन्! आप योगियोंमें श्रेष्ठ हैं। मैंने आपके मुखसे सब धर्मोंका श्रवण किया। प्रभो! अब शालग्राम-पूजनकी विधिका विस्तारके साथ वर्णन कीजिये।

महादेवजी बोले—महामते! तुमने बहुत उत्तम बात पूछी है। वत्स! तुम जो कुछ पूछ रहे हो, उसका उत्तर देता हूँ; सुनो। शालग्रामशिलामें सदा चराचर प्राणियोंसहित समस्त त्रिलोकी लीन रहती है। जो शालग्रामशिलाका दर्शन करता, उसे मस्तक झुकाता, स्नान कराता और पूजन करता है, वह कोटि यज्ञोंके समान पुण्य तथा कोटि गोदानोंका फल पाता है। बेटा! जो पुरुष सर्वदा भगवान् विष्णुकी शालग्रामशिलाका चरणामृत पान करता है, उसने गर्भवासके भयंकर कष्टका नाश कर दिया। जो सदा भोगोंमें आसक्त और भक्तिभावसे हीन है, वह भी शालग्रामशिलाका पूजन करके भगवत्स्वरूप हो जाता है। शालग्रामशिलाका स्मरण, कीर्तन, ध्यान, पूजन और नमस्कार करनेपर कोटि-कोटि ब्रह्महत्याओंका पाप नष्ट हो जाता है। शालग्रामशिलाका दर्शन करनेसे अनेक पाप दूर हो जाते हैं। जो मनुष्य प्रतिदिन शालग्रामशिलाकी पूजा करता है, उसे न तो यमराजका भय होता है और न मरने या जन्म लेनेका ही। जिन मनुष्योंने भक्तिभावसे शालग्रामको नमस्कारमात्र कर लिया, उनको तथा मेरे भक्तोंको फिर मनुष्ययोनिकी प्राप्ति कैसे हो सकती है। वे तो मुक्तिके अधिकारी हैं। जो मेरी भक्तिके घमंडमें आकर मेरे प्रभु भगवान् वासुदेवको नमस्कार नहीं करते, वे पापसे मोहित हैं; उन्हें मेरा भक्त नहीं समझना चाहिये।

करोड़ों कमल-पुष्पोंसे मेरी पूजा करनेपर जो फल होता है, वही शालग्रामशिलाके पूजनसे कोटिगुना होकर मिलता है, जिन लोगोंने मर्त्यलोकमें आकर शालग्राम-

शिलाका पूजन नहीं किया, उन्होंने न तो कभी मेरा पूजन किया और न नमस्कार ही किया। जो शालग्रामशिलाके अग्रभागमें मेरा पूजन करता है, उसने मानो लगातार इक्कीस युगोंतक मेरी पूजा कर ली। जो मेरा भक्त होकर वैष्णव पुरुषका पूजन नहीं करता वह मुझसे द्वेष रखनेवाला है। उसे तबतकके लिये नरकमें रहना पड़ता है, जबतक कि चौदह इन्द्रोंकी आयु समाप्त नहीं हो जाती।

जिसके घरमें कोई वानप्रस्थी, वैष्णव अथवा संन्यासी दो घड़ी भी विश्राम करता है, उसके पितामह आठ युगोंतक अमृत भोजन करते हैं। शालग्रामशिलासे प्रकट हुए लिंगोंका एक बार भी पूजन करनेपर मनुष्य योग और सांख्यसे रहित होनेपर भी मुक्त हो जाते हैं। मेरे कोटि-कोटि लिंगोंका दर्शन, पूजन और स्तवन करनेसे जो फल मिलता है, वह एक ही शालग्रामशिलाके पूजनसे प्राप्त हो जाता है।

जो वैष्णव प्रतिदिन बारह शालग्रामशिलाओंका पूजन करता है, उसके पुण्यका वर्णन सुनो। गंगाजीके तटपर करोड़ों शिवलिंगोंका पूजन करनेसे तथा लगातार आठ युगोंतक काशीपुरीमें रहनेसे जो पुण्य होता है, वह उस वैष्णवको एक ही दिनमें प्राप्त हो जाता है। अधिक कहनेकी क्या आवश्यकता—जो वैष्णव मनुष्य शालग्रामशिलाका पूजन करता है, उसके पुण्यकी गणना करनेमें मैं तथा ब्रह्माजी भी समर्थ नहीं हैं; इसलिये बेटा! मेरे भक्तोंको उचित है कि वे मेरी प्रसन्नताके लिये भक्तिपूर्वक शालग्रामशिलाका भी पूजन करें। जहाँ शालग्रामशिलारूपी भगवान् केशव विराजमान हैं, वहीं सम्पूर्ण देवता, असुर, यक्ष तथा चौदहों भुवन मौजूद हैं। अन्य देवताओंका करोड़ों बार कीर्तन करनेसे जो फल होता है, वह भगवान् केशवका एक बार कीर्तन करनेसे ही मिल जाता है। अतः कलियुगमें श्रीहरिका कीर्तन ही सर्वोत्तम पुण्य हैं।* श्रीहरिका चरणोदक पान करनेसे ही समस्त पापोंका प्रायश्चित्त हो जाता है। फिर उनके लिये दान, उपवास और चान्द्रायण-व्रत करनेकी क्या आवश्यकता है।

बेटा स्कन्द! अन्य सभी शुभकर्मोंके फलोंका माप है; किन्तु शालग्रामशिलाके पूजनसे जो फल मिलता है, उसका कोई माप नहीं। जो विष्णुभक्त ब्राह्मणको शालग्रामशिलाका दान करता है, उसने मानो सौ यज्ञोंद्वारा भगवान्‌का यजन कर लिया। जो शालग्रामशिलाके जलसे अपना अभिषेक करता है, उसने सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान कर लिया और समस्त यज्ञोंकी दीक्षा ले ली। जो प्रतिदिन भक्तिपूर्वक एक-एक सेर तिलका दान करता है, वह शालग्रामशिलाके पूजनमात्रसे उस फलको प्राप्त कर लेता है। शालग्रामशिलाको अर्पण किया हुआ थोड़ा-सा पत्र, पुष्प, फल, जल, मूल और दूर्वादल भी मेरुपर्वतके समान महान् फल देनेवाला होता है।

जहाँ शालग्रामशिला होती है, वहाँ भगवान् श्रीहरि विराजमान रहते हैं। वहाँ किया हुआ स्नान और दान काशीसे सौगुना अधिक फल देनेवाला है। प्रयाग, कुरुक्षेत्र, पुष्कर और नैमिषारण्य—ये सभी तीर्थ वहाँ मौजूद रहते हैं; अतः वहाँ उन तीर्थोंकी अपेक्षा कोटिगुना अधिक पुण्य होता है। काशीमें मिलनेवाला मोक्षरूपी महान् फल भी वहाँ सुलभ होता है। जहाँ शालग्रामशिलासे प्रकट होनेवाले भगवान् शालग्राम तथा द्वारकासे प्रकट होनेवाले भगवान् गोमतीचक्र हों तथा जहाँ इन दोनोंका संगम हो गया हो वहाँ निःसन्देह मोक्षकी प्राप्ति होती है। शालग्रामशिलाके पूजनमें मन्त्र, जप, भावना, स्तुति अथवा किसी विशेष प्रकारके आचारका बन्धन नहीं है। शालग्रामशिलाके सम्मुख विशेषतः कार्तिक मासमें आदरपूर्वक स्वस्तिकका चिह्न बनाकर मनुष्य अपनी सात पीढ़ियोंको पवित्र कर देता है। जो भगवान् केशवके समक्ष मिट्टी अथवा गेरू आदिसे छोटा-सा भी मण्डल (चौक) बनाता है, वह कोटि कल्पोंतक दिव्यलोकमें निवास करता है। श्रीहरिके मन्दिरको सजानेसे अगम्यागमन तथा अभक्ष्यभक्षण-जैसे पाप भी नष्ट हो जाते हैं। जो नारी प्रतिदिन भगवान् विष्णुके सामने चौक पूरती है, वह सात जन्मोंतक कभी विधवा नहीं होती।

---

* सुराणां कीर्तनैः सर्वैः कोटिभिश्च फलं कृतम्। तत्फलं कीर्तनादेव केशवे सुकृतं कलौ॥ (१२२। ३६-३७)

भगवत्पूजन, दीपदान, यमतर्पण, दीपावली-कृत्य, गोवर्धन-पूजा और यमद्वितीयाके दिन करनेयोग्य कृत्योंका वर्णन

महादेवजी कहते हैं—जो प्रतिदिन मालतीसे भगवान् गरुड़ध्वजका पूजन करता है, वह जन्मके दुःखों और बुढ़ापेके रोगोंसे छुटकारा पाकर मुक्त हो जाता है। जिसने कार्तिकमें मालतीकी मालासे भगवान् विष्णुकी पूजा की है, उसके पापोंको भगवान् श्रीकृष्ण धो डालते हैं। चन्दन, कपूर, अरगजा, केशर, केवड़ा और दीपदान भगवान् केशवको सदा ही प्रिय हैं। कमलका पुष्प, तुलसीदल, मालती, अगस्त्यका फूल और दीपदान—ये पाँच वस्तुएँ कार्तिकमें भगवान्‌के लिये परम प्रिय मानी गयी हैं। कार्तिकेय! केवड़ेके फूलोंसे भगवान् हृषीकेशका पूजन करके मनुष्य उनके परम पवित्र एवं कल्याणमय धामको प्राप्त होता है। जो अगस्त्यके फूलोंसे जनार्दनका पूजन करता है, उसके दर्शनसे नरककी आग बुझ जाती है। जैसे कौस्तुभमणि और वनमालासे भगवान्‌को प्रसन्नता होती है, उसी प्रकार कार्तिकमें तुलसीदलसे वे अधिक संतुष्ट होते हैं।

कार्तिकेय! अब कार्तिकमें दिये जानेवाले दीपका माहात्म्य सुनो। मनुष्यके पितर अन्य पितृगणोंके साथ सदा इस बातकी अभिलाषा करते हैं कि क्या हमारे कुलमें भी कोई ऐसा उत्तम पितृभक्त पुत्र उत्पन्न होगा, जो कार्तिकमें दीपदान करके श्रीकेशवको संतुष्ट कर सके। स्कन्द! कार्तिकमें घी अथवा तिलके तेलसे जिसका दीपक जलता रहता है, उसे अश्वमेध-यज्ञसे क्या लेना है। जिसने कार्तिकमें भगवान् केशवके समक्ष दीपदान किया है, उसने सम्पूर्ण यज्ञोंका अनुष्ठान कर लिया और समस्त तीर्थोंमें गोता लगा लिया। बेटा! विशेषतः कृष्णपक्षमें पाँच दिन बड़े पवित्र हैं। (कार्तिक कृष्णा १३ से कार्तिक शुक्ला २ तक) उनमें जो कुछ भी दान किया जाता है, वह सब अक्षय एवं सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाला होता है। लीलावती वेश्या दूसरेके रखे हुए दीपको ही जलाकर शुद्ध हो अक्षय स्वर्गको चली गयी। इसलिये रात्रिमें सूर्यास्त हो जानेपर घरमें, गोशालामें, देववृक्षके नीचे तथा मन्दिरोंमें दीपक जलाकर रखना चाहिये। देवताओंके मन्दिरोंमें, श्मशानोंमें और नदियोंके तटपर भी अपने कल्याणके लिये घृत आदिसे पाँच दिनोंतक दीपक जलाने चाहिये। ऐसा करनेसे जिनके श्राद्ध और तर्पण नहीं हुए हैं, वे पापी पितर भी दीपदानके पुण्यसे परम मोक्षको प्राप्त हो जाते हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—'भामिनि! कार्तिकके कृष्णपक्षकी त्रयोदशीको घरसे बाहर यमराजके लिये दीप देना चाहिये। इससे दुर्मृत्युका नाश होता है। दीप देते समय इस प्रकार कहना चाहिये—'मृत्यु', पाशधारी काल और अपनी पत्नीके साथ सूर्यनन्दन यमराज त्रयोदशीको दीप देनेसे प्रसन्न हों।'[१] कार्तिक कृष्णा चतुर्दशीको चन्द्रोदयके समय नरकसे डरनेवाले मनुष्योंको अवश्य स्नान करना चाहिये। जो चतुर्दशीको प्रातःकाल स्नान करता है, उसे यमलोकका दर्शन नहीं करना पड़ता। अपामार्ग (ओंगा या चिचड़ा), तुम्बी (लौकी), प्रपुन्नाट (चकवड़) और कट्‌फल (कायफल)—इनको स्नानके बीचमें मस्तकपर घुमाना चाहिये। इससे नरकके भयका नाश होता है। उस समय इस प्रकार प्रार्थना करे—'हे अपामार्ग! मैं हराईके ढेले, काँटे और पत्तोंसहित तुम्हें बार-बार मस्तकपर घुमा रहा हूँ। मेरे पाप हर लो।'[२] यों कहकर अपामार्ग और चकवड़को मस्तकपर घुमाये। तत्पश्चात् यमराजके नामोंका उच्चारण करके तर्पण करे। वे नाम-मन्त्र इस प्रकार हैं—**यमाय नमः, धर्मराजाय नमः, मृत्यवे नमः, अन्तकाय नमः, वैवस्वताय नमः, कालाय**

१-मृत्युना पाशहस्तेन कालेन भार्यया सह। त्रयोदश्यां दीपदानात्सूर्यजः प्रीयतामिति॥ (१२४।५)

२-सीतालोष्टसमायुक्तः सकण्टकदलान्वितः। हर पापमपामार्ग भ्राम्यमाणः पुनः पुनः॥ (१२४।११)

नमः, सर्वभूतक्षयाय नमः, औदुम्बराय नमः, दध्नाय नमः, नीलाय नमः, परमेष्ठिने नमः, वृकोदराय नमः, चित्राय नमः, चित्रगुप्ताय नमः।

देवताओंका पूजन करके दीपदान करना चाहिये। इसके बाद रात्रिके आरम्भमें भिन्न-भिन्न स्थानोंपर मनोहर दीप देने चाहिये। ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदिके मन्दिरोंमें, गुप्त गृहोंमें, देववृक्षोंके नीचे, सभाभवनमें, नदियोंके किनारे, चहारदीवारीपर, बगीचेमें, बावलीके तटपर, गली-कूचोंमें, गृहोद्यानमें तथा एकान्त अश्वशालाओं एवं गजशालाओंमें भी दीप जलाने चाहिये। इस प्रकार रात व्यतीत होनेपर अमावास्याको प्रातःकाल स्नान करे और भक्तिपूर्वक देवताओं तथा पितरोंका पूजन और उन्हें प्रणाम करके पार्वण श्राद्ध करे; फिर दही, दूध, घी आदि नाना प्रकारके भोज्य पदार्थोंद्वारा ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उनसे क्षमा-प्रार्थना करे। तदनन्तर भगवान्‌के जागनेसे पहले स्त्रियोंके द्वारा लक्ष्मीजीको जगाये। जो प्रबोधकाल (ब्राह्ममुहूर्त)-में लक्ष्मीजीको जगाकर उनका पूजन करता है, उसे धन-सम्पत्तिकी कमी नहीं होती। तत्पश्चात् प्रातःकाल (कार्तिकशुक्ला प्रतिपदाको) गोवर्धनका पूजन करना चाहिये। उस समय गौओं तथा बैलोंको आभूषणोंसे सजाना चाहिये। उस दिन उनसे सवारीका काम नहीं लेना चाहिये तथा गायोंको दुहना भी नहीं चाहिये। पूजनके पश्चात् गोवर्धनसे इस प्रकार प्रार्थना करे—

गोवर्धन धराधार गोकुलत्राणकारक॥
विष्णुबाहुकृतोच्छ्राय गवां कोटिप्रदो भव।
या लक्ष्मीर्लोकपालानां धेनुरूपेण संस्थिता॥
घृतं वहति यज्ञार्थे मम पापं व्यपोहतु।
अग्रतः सन्तु मे गावो गावो मे सन्तु पृष्ठतः।
गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम्॥

(१२४। ३१—३३)

'पृथ्वीको धारण करनेवाले गोवर्धन! आप गोकुलके रक्षक हैं। भगवान् श्रीकृष्णने आपको अपनी भुजाओंपर उठाया था। आप मुझे कोटि-कोटि गौएँ प्रदान करें। लोकपालोंकी जो लक्ष्मी धेनुरूपमें स्थित है और यज्ञके लिये घृत प्रदान करती है, वह मेरे पापको दूर करे। मेरे आगे गौएँ रहें, मेरे पीछे भी गौएँ रहें, मेरे हृदयमें गौओंका निवास हो तथा मैं भी गौओंके बीचमें निवास करूँ।'

कार्तिक शुक्लपक्षकी द्वितीयाको पूर्वाह्णमें यमकी पूजा करे। यमुनामें स्नान करके मनुष्य यमलोकको नहीं देखता। कार्तिक शुक्ला द्वितीयाको पूर्वकालमें यमुनाने यमराजको अपने घरपर सत्कारपूर्वक भोजन कराया था। उस दिन नारकी जीवोंको यातनासे छुटकारा मिला और उन्हें तृप्त किया गया। वे पाप-मुक्त होकर सब बन्धनोंसे छुटकारा पा गये और सब-के-सब यहाँ अपनी इच्छाके अनुसार संतोषपूर्वक रहे। उन सबने मिलकर एक महान् उत्सव मनाया, जो यमलोकके राज्यको सुख पहुँचानेवाला था। इसीलिये यह तिथि तीनों लोकोंमें यमद्वितीयाके नामसे विख्यात हुई; अतः विद्वान् पुरुषोंको उस दिन अपने घर भोजन नहीं करना चाहिये। वे बहिनके घर जाकर उसीके हाथसे मिले हुए अन्नको, जो पुष्टिवर्धक है, स्नेहपूर्वक भोजन करें तथा जितनी बहिनें हों, उन सबको पूजा और सत्कारके साथ विधिपूर्वक सुवर्ण, आभूषण एवं वस्त्र दें। सगी बहिनके हाथका अन्न भोजन करना उत्तम माना गया है। उसके अभावमें किसी भी बहिनके हाथका अन्न भोजन करना चाहिये। वह बलको बढ़ानेवाला है। जो लोग उस दिन सुवासिनी बहिनोंको वस्त्र-दान आदिसे सन्तुष्ट करते हैं, उन्हें एक सालतक कलह एवं शत्रुके भयका सामना नहीं करना पड़ता। यह प्रसंग धन, यश, आयु, धर्म, काम एवं अर्थकी सिद्धि करनेवाला है।

प्रबोधिनी एकादशी और उसके जागरणका महत्त्व तथा भीष्मपंचक-व्रतकी विधि एवं महिमा

महादेवजी कहते हैं—सुरश्रेष्ठ कार्तिकेय! अब प्रबोधिनी एकादशीका माहात्म्य सुनो। यह पापका नाशक, पुण्यकी वृद्धि करनेवाला तथा तत्त्वचिन्तनपरायण पुरुषोंको मोक्ष देनेवाला है। समुद्रसे लेकर सरोवरोंतक जितने तीर्थ हैं, वे भी तभीतक गरजते हैं जबतक कि कार्तिकमें श्रीहरिकी प्रबोधिनी तिथि नहीं आती। प्रबोधिनीको एक ही उपवाससे सहस्र अश्वमेध और सौ राजसूय यज्ञोंका फल मिल जाता है। इस चराचर त्रिलोकीमें जो वस्तु अत्यन्त दुर्लभ मानी गयी है, उसे भी माँगनेपर हरिबोधिनी एकादशी प्रदान करती है। यदि हरिबोधिनी एकादशीको उपवास किया जाय तो वह अनायास ही ऐश्वर्य, सन्तान, ज्ञान, राज्य और सुख-सम्पत्ति प्रदान करती है। मनुष्यके किये हुए मेरुपर्वतके समान बड़े-बड़े पापोंको भी हरिबोधिनी एकादशी एक ही उपवाससे भस्म कर डालती है। जो प्रबोधिनी एकादशीको स्वभावसे ही विधिपूर्वक उपवास करता है, वह शास्त्रोक्त फलका भागी होता है। प्रबोधिनी एकादशीको रात्रिमें जागरण करनेसे पहलेके हजारों जन्मोंकी की हुई पापराशि रूईके ढेरकी भाँति भस्म हो जाती है।

रात्रिमें जागरण करते समय भगवत्सम्बन्धी गीत, वाद्य, नृत्य और पुराणोंके पाठकी भी व्यवस्था करनी चाहिये। धूप, दीप, नैवेद्य, पुष्प, गन्ध, चन्दन, फल और अर्घ्य आदिसे भगवान्‌की पूजा करनी चाहिये। मनमें श्रद्धा रखकर दान देना और इन्द्रियोंको संयममें रखना चाहिये। सत्यभाषण, निद्राका अभाव, प्रसन्नता, शुभकर्ममें प्रवृत्ति, मनमें आश्चर्य और उत्साह, आलस्य आदिका त्याग, भगवान्‌की परिक्रमा तथा नमस्कार—इन बातोंका यत्नपूर्वक पालन करना चाहिये। महाभाग! प्रत्येक पहरमें उत्साह और उमंगके साथ भक्तिपूर्वक भगवान्‌की आरती उतारनी चाहिये। जो पुरुष भगवान्‌के समीप एकाग्रचित्त होकर उपर्युक्त गुणोंसे युक्त जागरण करता है, वह पुनः इस पृथ्वीपर जन्म नहीं लेता। जो धनकी कृपणता छोड़कर इस प्रकार भक्तिभावसे एकादशीको जागरण करता है, वह परमात्मामें लीन हो जाता है। जो कार्तिकमें पुरुषसूक्तके द्वारा प्रतिदिन श्रीहरिका पूजन करता है, उसके द्वारा करोड़ों वर्षोंतक भगवान्‌की पूजा सम्पन्न हो जाती है। जो मनुष्य पांचरात्रमें बतायी हुई यथार्थ विधिके अनुसार कार्तिकमें भगवान्‌का पूजन करता है, वह मोक्षका भागी होता है। जो कार्तिकमें '**ॐ नमो नारायणाय**' इस मन्त्रके द्वारा श्रीहरिकी अर्चना करता है, वह नरकके दुःखोंसे छुटकारा पाकर अनामयपदको प्राप्त होता है। जो कार्तिकमें श्रीविष्णुसहस्रनाम तथा गजेन्द्र-मोक्षका पाठ करता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता। उसके कुलमें जो सैकड़ों, हजारों पुरुष उत्पन्न हो चुके हैं, वे सभी श्रीविष्णुधामको प्राप्त होते हैं। अतः एकादशीको जागरण अवश्य करना चाहिये। जो कार्तिकमें रात्रिके पिछले पहरमें भगवान्‌के सामने स्तोत्रगान करता है, वह अपने पितरोंके साथ श्वेतद्वीपमें निवास करता है। जो मनुष्य कार्तिक शुक्लपक्षमें एकादशीका व्रत पूर्ण करके प्रातःकाल सुन्दर कलश दान करता है, वह श्रीहरिके परमधामको प्राप्त होता है।

व्रतधारियोंमें श्रेष्ठ कार्तिकेय! अब मैं तुम्हें महान् पुण्यदायक व्रत बताता हूँ। यह व्रत कार्तिकके अन्तिम पाँच दिनोंमें किया जाता है। इसे भीष्मजीने भगवान् वासुदेवसे प्राप्त किया था, इसलिये यह व्रत भीष्मपंचक नामसे प्रसिद्ध है। भगवान् केशवके सिवा दूसरा कौन ऐसा है, जो इस व्रतके गुणोंका यथावत् वर्णन कर सके। वसिष्ठ, भृगु और गर्ग आदि मुनीश्वरोंने सत्ययुगके आदिमें कार्तिकके शुक्लपक्षमें इस पुरातन धर्मका अनुष्ठान किया था। राजा अम्बरीषने भी त्रेता आदि युगोंमें इस व्रतका पालन किया था। ब्राह्मणोंने ब्रह्मचर्यपालन, जप तथा हवन कर्म आदिके द्वारा और क्षत्रियों एवं वैश्योंने सत्य-शौच आदिके पालनपूर्वक इस व्रतका अनुष्ठान किया है। सत्यहीन मूढ़ मनुष्योंके लिये इस व्रतका अनुष्ठान असम्भव है। जो इस व्रतको पूर्ण कर लेता है, उसने मानो सब कुछ कर लिया।

कार्तिकके शुक्लपक्षमें एकादशीको विधिपूर्वक स्नान करके पाँच दिनोंका व्रत ग्रहण करे। व्रती पुरुष प्रातःस्नानके बाद मध्याह्नके समय भी नदी, झरने या पोखरेपर जाकर शरीरमें गोबर लगाकर विशेषरूपसे स्नान करे। फिर चावल, जौ और तिलोंके द्वारा क्रमशः देवताओं, ऋषियों और पितरोंका तर्पण करे। मौनभावसे स्नान करके धुले हुए वस्त्र पहन दृढ़तापूर्वक व्रतका पालन करे। ब्राह्मणको पंचरत्न दान दे। लक्ष्मीसहित भगवान् विष्णुका प्रतिदिन पूजन करे। इस पंचकव्रतके अनुष्ठानसे मनुष्य वर्षभरके सम्पूर्ण व्रतोंका फल प्राप्त कर लेता है। जो मनुष्य निम्नांकित मन्त्रोंसे भीष्मको जलदान देता और अर्घ्यके द्वारा उनका पूजन (सत्कार) करता है, वह मोक्षका भागी होता है। मन्त्र इस प्रकार है—

वैयाघ्रपद्यगोत्राय सांकृत्यप्रवराय च।
अनपत्याय भीष्माय उदकं भीष्मवर्मणे॥
वसूनामवताराय शन्तनोरात्मजाय च।
अर्घ्यं ददामि भीष्माय आजन्मब्रह्मचारिणे॥

(१२५। ४३-४४)

'जिनका गोत्र वैयाघ्रपद्य और प्रवर सांकृत्य है, उन सन्तानरहित राजर्षि भीष्मके लिये यह जल समर्पित है। जो वसुओंके अवतार तथा राजा शन्तनुके पुत्र हैं, उन आजन्म ब्रह्मचारी भीष्मको मैं अर्घ्य दे रहा हूँ।'

तत्पश्चात् सब पापोंका हरण करनेवाले श्रीहरिका पूजन करे। उसके बाद प्रयत्नपूर्वक भीष्मपंचकव्रतका पालन करना चहिये। भगवान्‌को भक्तिपूर्वक जलसे स्नान कराये। फिर मधु, दूध, घी, पंचगव्य, गन्ध और चन्दनमिश्रित जलसे उनका अभिषेक करे। तदनन्तर सुगन्धित चन्दन और केशरमें कपूर और खस मिलाकर भगवान्‌के श्रीविग्रहपर उसका लेप करे। फिर गन्ध और धूपके साथ सुन्दर फूलोंसे श्रीहरिकी पूजा करे तथा उनकी प्रसन्नताके लिये भक्तिपूर्वक घी मिलाया हुआ गूगल जलाये। लगातार पाँच दिनोंतक भगवान्‌के समीप दिन-रात दीपक जलाये रखे। देवाधिदेव श्रीविष्णुको नैवेद्यके रूपमें उत्तम अन्न निवेदन करे। इस प्रकार भगवान्‌का स्मरण और उन्हें प्रणाम करके उनकी अर्चना करे। फिर '**ॐ नमो वासुदेवाय**' इस मन्त्रका एक सौ आठ बार जप करे तथा उस षडक्षर-मन्त्रके अन्तमें '**स्वाहा**' पद जोड़कर उसके उच्चारणपूर्वक घृतमिश्रित तिल, चावल और जौ आदिसे अग्निमें हवन करे। सायंकालमें सन्ध्योपासना करके भगवान् गरुड़ध्वजको प्रणाम करे और पूर्ववत् षडक्षर-मन्त्रका जप करके व्रत-पालनपूर्वक पृथ्वीपर शयन करे। इन सब विधियोंका पाँच दिनोंतक पालन करते रहना चाहिये।

एकादशीको सनातन भगवान् हृषीकेशका पूजन करके थोड़ा-सा गोबर खाकर उपवास करे। फिर द्वादशीको व्रती पुरुष भूमिपर बैठकर मन्त्रोचारणके साथ गोमूत्र पान करे। त्रयोदशीको दूध पीकर रहे। चतुर्दशीको दही भोजन करे। इस प्रकार शरीरकी शुद्धिके लिये चार दिनोंका लंघन करके पाँचवें दिन स्नानके पश्चात् विधिपूर्वक भगवान् केशवकी पूजा करे और भक्तिके साथ ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उन्हें दक्षिणा दे। पापबुद्धिका परित्याग करके बुद्धिमान् पुरुष ब्रह्मचर्यका पालन करे। शाकाहारसे अथवा मुनियोंके अन्न (तिन्नीके चावल)-से इस प्रकार निर्वाह करते हुए मनुष्य श्रीकृष्णके पूजनमें संलग्न रहे। उसके बाद रात्रिमें पहले पंचगव्य पान करके पीछे अन्न भोजन करे। इस प्रकार भलीभाँति व्रतकी पूर्ति करनेसे मनुष्य शास्त्रोक्त फलका भागी होता है। इस भीष्म-व्रतका अनुष्ठान करनेसे मनुष्य परमपदको प्राप्त करता है। स्त्रियोंको भी अपने स्वामीकी आज्ञा लेकर इस धर्मवर्धक व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। विधवाएँ भी मोक्ष-सुखकी वृद्धि, सम्पूर्ण कामनाओंकी पूर्ति तथा पुण्यकी प्राप्तिके लिये इस व्रतका पालन करें। भगवान् विष्णुके चिन्तनमें लगे रहकर प्रतिदिन बलिवैश्वदेव भी करना चाहिये। यह आरोग्य और पुत्र प्रदान करनेवाला तथा महापातकोंका नाश करनेवाला है। एकादशीसे लेकर पूर्णिमातकका जो व्रत है, वह इस पृथ्वीपर भीष्मपंचकके नामसे विख्यात है। भोजनपरायण पुरुषके लिये इस व्रतका निषेध है। इस व्रतका पालन करनेपर भगवान् विष्णु शुभ फल प्रदान करते हैं।

महादेवजी कहते हैं—यह मोक्षदायक शास्त्र अनधिकारी पुरुषोंके सामने प्रकाशित करनेयोग्य नहीं है। जो मनुष्य इसका श्रवण करता है, वह मोक्षको प्राप्त होता है। कार्तिकेय! इस व्रतको यत्नपूर्वक गुप्त रखना चाहिये। जो त्यागी मनुष्य हैं, वे भी यदि इस व्रतका अनुष्ठान करें तो उनके पुण्यको बतलानेमें मैं असमर्थ हूँ। इस प्रकार कार्तिक मासका जो कुछ भी फल है, वह सब मैंने बतला दिया।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—देवदेव भगवान् शंकरने पुत्रकी मंगल-कामनासे यह व्रत उसे बताया था। पिताके वचन सुनकर कार्तिकेय आनन्दमग्न हो गये। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस कार्तिकमाहात्म्यका पाठ करता, सुनता और सुनकर हृदयमें धारण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है। इस माहात्म्यका श्रवण करनेमात्रसे ही धन, धान्य, यश, पुत्र, आयु और आरोग्यकी प्राप्ति हो जाती है।

भक्तिका स्वरूप, शालग्रामशिलाकी महिमा तथा वैष्णवपुरुषोंका माहात्म्य

श्रीपार्वतीजीने पूछा—प्रभो! विश्वेश्वर! श्रेष्ठ भक्तिका क्या स्वरूप है, जिसके जाननेमात्रसे मनुष्योंको सुख प्राप्त होता है?

महादेवजी बोले—देवि! भक्ति तीन प्रकारकी बतायी गयी है—सात्त्विकी, राजसी और तामसी। इनमें सात्त्विकी उत्तम, राजसी मध्यम और तामसी कनिष्ठ है। मोक्षरूप फलकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको श्रीहरिकी उत्तम भक्ति करनी चाहिये। अहंकारको लेकर या दूसरोंको दिखानेके लिये अथवा ईर्ष्यावश या दूसरोंका संहार करनेकी इच्छासे जो किसी देवताकी भक्ति की जाती है, वह तामसी बतायी गयी है। जो विषयोंकी इच्छा रखकर अथवा यश और ऐश्वर्यकी प्राप्तिके लिये भगवान्‌की पूजा करता है, उसकी भक्ति राजसी मानी गयी है। ज्ञानपरायण ब्राह्मणोंको कर्म-बन्धनका नाश करनेके लिये श्रीविष्णुके प्रति आत्मसमर्पणकी बुद्धि करनी चाहिये। यही सात्त्विकी भक्ति है। अतः देवि! सदा सब प्रकारसे श्रीहरिका सेवन करना चाहिये। तामसभावसे तामस, राजससे राजस और सात्त्विकसे सात्त्विक गति प्राप्त होती है। भगवान् गोविन्दमें भक्ति रखनेवाले पुरुषोंको समस्त देवता प्रसन्नतापूर्वक शान्ति देते हैं, ब्रह्मा आदि देवेश्वर उनका मंगल करते हैं और प्रधान-प्रधान मुनीश्वर उन्हें कल्याण प्रदान करते हैं। जो भगवान् गोविन्दमें भक्ति रखते हैं, उनके लिये भूत-पिशाचोंसहित समस्त ग्रह शुभ हो जाते हैं। ब्रह्मा आदि देवता उनपर प्रसन्न होते हैं तथा उनके घरोंमें लक्ष्मी सदा स्थिर रहती है। भगवान् गोविन्दमें भक्ति रखनेवाले मानवोंके शरीरमें सदा गंगा, गया, नैमिषारण्य, काशी, प्रयाग और कुरुक्षेत्र आदि तीर्थ निवास करते हैं।[१]

इस प्रकार विद्वान् पुरुष भगवती लक्ष्मीसहित भगवान् विष्णुकी आराधना करे। जो ऐसा करता है, वह ब्राह्मण सदा कृतकृत्य होता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। पार्वती! क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र ही क्यों न हो—जो भगवान् विष्णुकी विशेषरूपसे भक्ति करता है, वह निस्सन्देह मुक्त हो जाता है।[२]

पार्वतीजीने पूछा—सुरेश्वर! इस पृथ्वीपर शालग्रामशिलाकी विशुद्ध मूर्तियाँ बहुत-सी हैं, उनमेंसे कितनी मूर्तियोंको पूजनमें ग्रहण करना चाहिये।

महादेवजी बोले—देवि! जहाँ शालग्रामशिलाकी कल्याणमयी मूर्ति सदा विराजमान रहती है, उस घरको वेदोंमें सब तीर्थोंसे श्रेष्ठ बताया गया है। ब्राह्मणोंको पाँच, क्षत्रियोंको चार, वैश्योंको तीन और शूद्रोंको एक ही शालग्राममूर्तिका यत्नपूर्वक पूजन करना

१-गङ्गागयानैमिषपुष्कराणि काशी प्रयागः कुरुजाङ्गलानि। तिष्ठन्ति देहे कृतभक्तिपूर्वं गोविन्दभक्तिं वहतां नराणाम्॥ (१२६। १७)

२-क्षत्रियो वाऽथ वैश्यो वा शूद्रो वा सुरसत्तमे। भक्तिं कुर्वन् विशेषेण मुक्तिं याति न संशयः॥ (१२६। १९)

चाहिये। ऐसा करनेसे वे इस लोकमें समस्त भोगोंका उपभोग करके अन्तमें भगवान् विष्णुके सनातन धामको जाते हैं। यह शालग्रामशिला भगवान्‌की सबसे बड़ी मूर्ति है, जो पूजन करनेपर सदा पापोंका अपहरण करनेवाली और मोक्षरूप फल देनेवाली है। जहाँ शालग्रामशिला विराजती है, वहाँ गंगा, यमुना, गोदावरी और सरस्वती—सभी तीर्थ निवास करते हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। अत: मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको इसका भलीभाँति पूजन करना चाहिये। देवेश्वरि! जो भक्तिभावसे जनार्दनका पूजन करते हैं, उनके दर्शनमात्रसे ब्रह्महत्यारा भी शुद्ध हो जाता है। पितर सदा यही बातचीत किया करते हैं कि हमारे कुलमें वैष्णव पुत्र उत्पन्न हों, जो हमारा उद्धार करके हमें विष्णुधाममें पहुँचा सकें। वही दिवस धन्य है, जिसमें भगवान् विष्णुका पूजन किया जाय और उसी पुरुषकी माता, बन्धु-बान्धव तथा पिता धन्य हैं, जो श्रीविष्णुकी अर्चना करता है। जो लोग भगवान् विष्णुकी भक्तिमें तत्पर रहते हैं, उन सबको परम धन्य समझना चाहिये।[1] वैष्णव पुरुषोंके दर्शनमात्रसे जितने भी उपपातक और महापातक हैं, उन सबका नाश हो जाता है। भगवान् विष्णुकी पूजामें संलग्न रहनेवाले मनुष्य अग्निकी भाँति तेजस्वी प्रतीत होते हैं। वे मेघोंके आवरणसे उन्मुक्त चन्द्रमाकी भाँति सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं। वैष्णवोंके पूजनसे बड़े-बड़े पाप नष्ट हो जाते हैं। आर्द्र (स्वेच्छासे किया हुआ पाप), शुष्क (अनिच्छासे किया हुआ पाप), लघु और स्थूल, मन, वाणी तथा शरीरद्वारा किया हुआ, प्रमादसे होनेवाला तथा जानकर और अनजानमें किया हुआ जो पाप है, वह सब वैष्णवोंके साथ वार्तालाप करनेसे नष्ट हो जाता है। साधु पुरुषोंके दर्शनसे पापहीन पुरुष स्वर्गको जाते हैं और पापिष्ठ मनुष्य पापसे रहित—शुद्ध हो जाते हैं। यह बिलकुल सत्य बात है। भगवान् विष्णुका भक्त पवित्रको भी पवित्र बनानेवाला तथा संसाररूपी कीचड़के दागको धो डालनेमें दक्ष होता है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।[2]

जो विष्णुभक्त प्रतिदिन भगवान् मधुसूदनका स्मरण करते हैं, उन्हें विष्णुमय समझना चाहिये। उनके विष्णुरूप होनेमें तनिक भी सन्देह नहीं है। भगवान्‌के श्रीविग्रहका वर्ण नूतन मेघोंकी नील घटाके समान श्याम एवं सुन्दर है। नेत्र कमलके समान विकसित एवं विशाल हैं। वे अपने हाथोंमें शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हुए हैं। शरीरपर पीताम्बर शोभा पा रहा है। वक्ष:स्थल कौस्तुभमणिसे देदीप्यमान है। श्रीहरि गलेमें वनमाला धारण किये हुए हैं। कुण्डलोंकी दिव्य ज्योतिसे उनके कपोल और मुखकी कान्ति बहुत बढ़ गयी है। किरीटसे मस्तक सुशोभित है। कलाइयोंमें कंगन, बाँहोंमें भुजबंद और चरणोंमें नूपुर शोभा दे रहे हैं। मुखकमल प्रसन्नतासे खिला हुआ है। चार भुजाएँ हैं और साथमें भगवती लक्ष्मीजी विराजमान हैं। पार्वती! जो ब्राह्मण भक्तिभावसे युक्त हो इस प्रकार श्रीविष्णुका ध्यान करते हैं, वे साक्षात् विष्णुके स्वरूप हैं। वे ही वास्तवमें वैष्णव हैं—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। देवेश्वरि! उनका दर्शनमात्र करनेसे, उनमें भक्ति रखनेसे, उन्हें भोजन करानेसे तथा उनकी पूजा करनेसे निश्चय ही वैकुण्ठधामकी प्राप्ति होती है।[3]

१-पितर: संवदन्त्येतत्कुलेऽस्माकं तु वैष्णवा:॥
ये स्युस्तेऽस्मान्समुद्धृत्य नयन्ते विष्णुमन्दिरम्। स एव दिवसो धन्यो धन्या माताऽथ बान्धवा:॥
पिता तस्य च वै धन्यो यस्तु विष्णुं समर्चयेत्। सर्वे धन्यतमा ज्ञेया विष्णुभक्तिपरायणा:॥ (१२७। १४—१६)

२-संसारकर्दमालेपप्रक्षालनविशारद: ॥ पावन: पावनानां च विष्णुभक्तो न संशय:॥ (१२७। २१-२२)

३-तेषां दर्शनमात्रेण भक्त्या वा भोजनेन वा। पूजनेन च देवेशि वैकुण्ठं लभते ध्रुवम्॥ (१२७। २८)

भगवत्स्मरणका प्रकार, भक्तिकी महत्ता, भगवत्तत्त्वका ज्ञान, प्रारब्धकर्मकी प्रबलता तथा भक्तियोगका उत्कर्ष

श्रीपार्वतीजीने पूछा—प्रभो! अविनाशी भगवान् वासुदेवका स्मरण कैसे करना चाहिये?

श्रीमहादेवजी बोले—देवेश्वरि! मैं वास्तविक-रूपसे भगवान्‌के स्वरूपका साक्षात्कार करके निरन्तर उनका स्मरण करता रहता हूँ। जैसे प्यासा मनुष्य बड़ी व्याकुलताके साथ पानीकी याद करता है, उसी प्रकार मैं भी आकुल होकर श्रीविष्णुका स्मरण करता हूँ। जिस प्रकार सर्दीका सताया हुआ संसार अग्निका स्मरण करता है, वैसे ही देवता, पितर, ऋषि और मनुष्य निरन्तर भगवान् विष्णुका चिन्तन करते रहते हैं। जैसे पतिव्रता नारी सदा पतिकी याद किया करती है, भयसे आतुर मनुष्य किसी निर्भय आश्रयको खोजता फिरता है, धनका लोभी जैसे धनका चिन्तन करता है और पुत्रकी इच्छा रखनेवाला मनुष्य जैसे पुत्रके लिये लालायित रहता है, उसी प्रकार मैं भी श्रीविष्णुका स्मरण करता हूँ। जैसे हंस मानसरोवरको, ऋषि भगवान्‌के स्मरणको, वैष्णव भक्तिको, पशु हरी-हरी घासको और साधु पुरुष धर्मको चाहते हैं, वैसे ही मैं श्रीविष्णुका चिन्तन करता हूँ।[1] जैसे समस्त प्राणियोंको आत्माका आश्रयभूत शरीर प्रिय है, जिस प्रकार जीव अधिक आयुकी अभिलाषा रखते हैं, जैसे भ्रमर पुष्पको, चक्रवाक सूर्यको और परमात्माके प्रेमीजन भक्तिको चाहते हैं, उसी प्रकार मैं भी श्रीविष्णुका स्मरण करता हूँ। जैसे अन्धकारसे घबराये हुए लोग दीपक चाहते हैं, उसी प्रकार साधु पुरुष इस जगत्‌में केवल भगवान्‌के स्मरणकी इच्छा रखते हैं। जैसे थके-माँदे मनुष्य विश्राम, रोगी निद्रा और आलस्यहीन पुरुष विद्या चाहते हैं, उसी प्रकार मैं भी श्रीविष्णुका स्मरण करता हूँ। जैसे सूर्यकान्तमणि और सूर्यकी किरणोंका संयोग होनेपर आग प्रकट हो जाती है, उसी प्रकार साधु पुरुषोंके संसर्गसे श्रीहरिके प्रति भक्ति उत्पन्न होती है। जैसे चन्द्रकान्तमणि चन्द्रकिरणोंके संयोगसे द्रवीभूत होने लगती है, उसी प्रकार वैष्णव पुरुषोंके संयोगसे स्थिर भक्तिका प्रादुर्भाव होता है। जैसे कुमुदिनी चन्द्रमाको देखकर खिल जाती है, उसी प्रकार भगवान्‌के प्रति की हुई भक्ति मनुष्योंको सदा मोक्ष प्रदान करनेवाली है।[2] भक्तिसे, स्नेहसे, द्वेषभावसे, स्वामि-सेवकभावसे अथवा विचारपूर्वक बुद्धिके द्वारा जिस किसी भावसे भी जो भगवान् जनार्दनका चिन्तन करते हैं, वे इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें श्रीविष्णुके सनातन धामको जाते हैं।[3] अहो! भगवान् विष्णुका माहात्म्य अद्‌भुत है। उसपर विचार करनेसे रोमांच हो आता है। भगवान्‌का जैसे-तैसे किया हुआ स्मरण भी मोक्ष देनेवाला है। बढ़े हुए धनसे और विपुल बुद्धिसे भगवान्‌की प्राप्ति नहीं होती; केवल भक्तियोगसे ही क्षणभरमें भगवान्‌का अपने

१-हंसा मानसमिच्छन्ति ऋषयः स्मरणं हरेः। भक्ताश्च भक्तिमिच्छन्ति तथा विष्णुं स्मराम्यहम्॥ (१२८।७)

२-सूर्यकान्तरवेर्योगाद्वह्निस्तत्र प्रजायते॥
एवं वै साधुसंयोगाद्धरौ भक्तिः प्रजायते। शीतरश्मिशिला यद्वच्चन्द्रयोगादपः स्रवेत्॥
एवं वैष्णवसंयोगाद्भक्तिर्भवति शाश्वती। कुमुद्वती यथा सोमं दृष्ट्वा पुष्पं विकासते॥
तद्वद्देवे कृता भक्तिर्मुक्तिदा सर्वदा नृणाम्। (१२८।१४—१७)

३-भक्त्या वा स्नेहभावेन द्वेषभावेन वा पुनः॥
केऽपि स्वामित्वभावेन बुद्ध्या वा बुद्धिपूर्वकम्। येन केनापि भावेन चिन्तयन्ति जनार्दनम्॥
इहलोके सुखं भुक्त्वा यान्ति विष्णोः सनातनम्। (१२८।२०—२२)

समीप दर्शन होता है। भगवान् अपने समीप रहकर भी दूर जान पड़ते हैं—ठीक उसी तरह, जैसे आँखोंमें लगाया हुआ अंजन अत्यन्त समीप होनेपर भी दृष्टिगोचर नहीं होता।

भक्तियोगके प्रभावसे भक्त पुरुषोंको सनातन परमात्माका प्रत्यक्ष दर्शन होता है। भगवान्‌की मायासे मोहित पुरुष 'यह तत्त्व है, यह तत्त्व है' यों कहते हुए संशयमें ही पड़े रह जाते हैं। जब भक्तितत्त्व प्राप्त होता है, तभी विष्णुरूप तत्त्वकी उपलब्धि होती है। सुन्दरि! मेरी बात सुनो। इन्द्र आदि देवताओंने सुखके लिये अमृत प्राप्त किया था; तथापि वे विष्णुभक्तिके बिना दुःखी ही रह गये। भक्ति ही एक ऐसा अमृत है, जिसको पाकर फिर कभी दुःख नहीं होता। भक्त पुरुष वैकुण्ठधामको प्राप्त होकर भगवान् विष्णुके समीप सदा आनन्दका अनुभव करता है। जैसे हंस हमेशा पानीको अलग करके दूध पीता है, उसी प्रकार अन्य कर्मोंका आश्रय छोड़कर केवल श्रीविष्णु-भक्तिकी ही शरण लेनी चाहिये। शरीरको पाकर बिना भक्तिके जो कुछ भी किया जाता है, वह सब व्यर्थ परिश्रममात्र होता है। जैसे कोई मूर्ख अपनी बाँहोंसे समुद्र पार करना चाहे, उसी प्रकार मूढ मानव विष्णुभक्तिके बिना संसारसागरको पार करनेकी अभिलाषा करता है। संसारमें बहुतेरे लोग ऐसे हैं, जो दूसरोंको उपदेश दिया करते हैं; किन्तु जो स्वयं आचरण करता हो, ऐसा मनुष्य करोड़ोंमें कोई एक ही देखा जाता है।* जड़में सींचे हुए वृक्षके ही हरे-हरे पत्ते और शाखाएँ दिखायी देती हैं। इसी प्रकार भजनसे ही आगे-आगे फल प्रस्तुत होता है। जैसे जलमें जल, दूधमें दूध और घीमें घी डाल देनेपर कोई अन्तर नहीं रहता, उसी प्रकार विष्णुभक्तिके प्रसादसे भेददृष्टि नहीं रहती। जैसे सूर्य सर्वत्र व्यापक है, अग्नि सब वस्तुओंमें व्याप्त है, इन्हें किसी संकुचित सीमामें आबद्ध नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार भक्तिमें स्थित भक्त भी कर्मोंसे आबद्ध नहीं होता।

अजामिलने अपना धर्म छोड़कर पापका आचरण किया था, तथापि अपने पुत्र नारायणका स्मरण करके उसने निश्चय ही भक्ति प्राप्त कर ली थी। जो भक्त दिन-रात केवल भगवन्नामके ही सहारे जीवन धारण करते हैं, वे वैकुण्ठधामके निवासी हैं—इस विषयमें वेद ही साक्षी हैं। अश्वमेध आदि यज्ञोंका फल स्वर्गमें भी देखा जाता है। उन यज्ञोंका पूरा-पूरा फल भोगकर मनुष्य पुनः स्वर्गसे नीचे गिर जाते हैं; परन्तु जो भगवान् विष्णुके भक्त हैं, वे अनेक प्रकारके भोगोंका उपभोग करके इस प्रकार नीचे नहीं गिरते। वैकुण्ठधाममें पहुँच जानेपर उनका पुनरागमन नहीं होता। जिसने भगवान् विष्णुकी भक्ति की है, वह सदा विष्णुधाममें ही निवास करता है। विष्णुभक्तिके प्रसादसे उसका कभी अन्त नहीं देखा गया है। मेढक जलमें रहता है और भँवरा वनमें; परन्तु कुमुदिनीकी गन्धका ज्ञान भँवरेको ही होता है, मेढकको नहीं। इसी प्रकार भक्त अपनी भक्तिके प्रभावसे श्रीहरिके तत्त्वको जान लेता है। कुछ लोग गंगाके किनारे निवास करते हैं और कुछ गंगासे सौ योजन दूर; किन्तु गंगाका प्रभाव कोई-कोई ही जानता है। इसी प्रकार कोई उत्तम पुरुष ही श्रीविष्णुभक्तिको उपलब्ध कर पाता है। जैसे ऊँट प्रतिदिन कपूर और अरगजेका बोझ ढोता है किन्तु उनके भीतरकी सुगन्धको नहीं जानता, उसी प्रकार जो भगवान् विष्णुकी भक्तिसे विमुख हैं, वे भक्तिके महत्त्वको नहीं जान पाते। कस्तूरीकी सुगन्धको ग्रहण करनेकी इच्छावाले मृग शालवृक्षको सूँघा करते हैं। उनकी नाभिमें ही कस्तूरीकी गन्ध है—इस बातको वे नहीं जानते। इसी प्रकार भगवान् विष्णुसे विमुख मनुष्य अपने भीतर ही विराजमान भगवत्तत्त्वका अनुभव नहीं कर पाते। पार्वती! जैसे मूर्खोंको उपदेश देना व्यर्थ है, उसी प्रकार जो दूसरोंके भक्त हैं उनके लिये विष्णुभक्तिका उपदेश निरर्थक है। जैसे अंधे मनुष्य आँख न होनेके कारण पास ही रखे हुए दीपक तथा दर्पणको नहीं देख पाते,

---

* बुद्धिं परेषां दास्यन्ति लोके बहुविधा जनाः॥ स्वयमाचरते सोऽपि नरः कोटिषु दृश्यते। (१२८। ३६-३७)

उसी प्रकार बहिर्मुख (विषयासक्त) मानव अपने अन्त:करणमें विराजमान श्रीविष्णुको नहीं देखते।

जैसे अग्नि धूमसे, दर्पण मैलसे तथा गर्भ झिल्लीसे ढका रहता है, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण इस शरीरके भीतर छिपे हुए हैं। गिरिराजकुमारी! जैसे दूधमें घी तथा तिलमें तेल सदा मौजूद रहता है, वैसे ही इस चराचर जगत्में भगवान् विष्णु सर्वदा व्यापक देखे जाते हैं। जैसे एक ही धागेमें बहुत-से सूतके मनके पिरो दिये जाते हैं, इसी प्रकार ब्रह्मा आदि सम्पूर्ण विश्वके प्राणी चिन्मय श्रीविष्णुमें पिरोये हुए हैं। जिस प्रकार काठमें स्थित अग्निको मन्थनसे ही प्रत्यक्ष किया जाता है, वैसे ही सर्वत्र व्यापक विष्णुका ध्यानसे ही साक्षात्कार होता है। जैसे पृथ्वी जलके संयोगसे नाना प्रकारके वृक्षोंको जन्म देती है, उसी प्रकार आत्मा प्रकृतिके गुणोंके संयोगसे नाना योनियोंमें जन्म ग्रहण करता है। हाथी या मच्छरमें, देवता अथवा मनुष्यमें वह आत्मा न अधिक है न कम। वह प्रत्येक शरीरमें स्थिरभावसे स्थित देखा गया है। वह आत्मा ही सच्चिदानन्दस्वरूप, कल्याणमय एवं महेश्वरके रूपमें उपलब्ध होता है। उस परमात्माको ही विष्णु कहा गया है। वह सर्वगत श्रीहरि मैं ही हूँ। मैं वेदान्तवेद्य विभु, सर्वेश्वर, कालातीत और अनामय परमात्मा हूँ। देवि! जो इस प्रकार मुझे जानता है, वह निस्सन्देह भक्त है।

वह एक ही परमात्मा नाना रूपोंमें प्रतीत होता है और नाना रूपोंमें प्रतीत होनेपर भी वास्तवमें वह एक ही है—ऐसा जानना चाहिये। नाम-रूपके भेदसे ही उसको इस पृथ्वीपर नाना रूपोंमें बतलाया जाता है। जैसे आकाश प्रत्येक घटमें पृथक्-पृथक् स्थित जान पड़ता है किन्तु घड़ा फूट जानेपर वह एक अखण्डरूपमें ही उपलब्ध होता है, उसी प्रकार प्रत्येक शरीरमें पृथक्-पृथक् आत्मा प्रतीत होता है परन्तु उस शरीररूप उपाधिके भग्न होनेपर वह एकमात्र सुस्थिर सिद्ध होता है। सूर्य जब बादलोंसे ढक जाते हैं, तब मूर्ख मनुष्य उन्हें तेजोहीन मानने लगता है; उसी प्रकार जिनकी बुद्धि अज्ञानसे आवृत है, वे मूर्ख परमेश्वरको नहीं जानते। परमात्मा विकल्पसे रहित और निराकार है। उपनिषदोंमें उसके स्वरूपका वर्णन किया गया है। वह अपनी इच्छासे निराकारसे साकाररूपमें प्रकट होता है। उस परमात्मासे ही आकाश प्रकट हुआ, जो शब्दरहित था। उस आकाशसे वायुकी उत्पत्ति हुई। तबसे आकाशमें शब्द होने लगा। वायुसे तेज और तेजसे जलका प्रादुर्भाव हुआ। जलमें विश्वरूपधारी विराट् हिरण्यगर्भ प्रकट हुआ। उसकी नाभिसे उत्पन्न हुए कमलमें कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंकी सृष्टि हुई। प्रकृति और पुरुषसे ही तीनों लोकोंकी उत्पत्ति हुई तथा उन्हीं दोनोंके संयोगसे पाँचों तत्त्वोंका परस्पर योग हुआ। भगवान् श्रीविष्णुका आविर्भाव सत्त्वगुणसे युक्त माना जाता है। अविनाशी भगवान् विष्णु इस संसारमें सदा व्यापकरूपसे विराजमान रहते हैं। इस प्रकार सर्वगत विष्णु इसके आदि, मध्य और अन्तमें स्थित रहते हैं। कर्मोंमें ही आस्था रखनेवाले अज्ञानीजन अविद्याके कारण भगवान्को नहीं जानते। जो नियत समयपर कर्तव्यबुद्धिसे वर्णोचित कर्मोंका पालन करता है, उसका कर्म विष्णुदेवताको अर्पित होकर गर्भवासका कारण नहीं बनता। मुनिगण सदा ही वेदान्तशास्त्रका विचार किया करते हैं। यह ब्रह्मज्ञान ही है, जिसका मैं तुमसे वर्णन कर रहा हूँ। शुभ और अशुभकी प्रवृत्तिमें मनको ही कारण मानना चाहिये। मनके शुद्ध होनेपर सब कुछ शुद्ध हो जाता है और तभी सनातन ब्रह्मका साक्षात्कार होता है। मन ही सदा अपना बन्धु है और मन ही शत्रु है। मनसे ही कितने तर गये और कितने गिर गये। बाहरसे कर्मका आचरण करते हुए भी भीतरसे सबका त्याग करे। इस प्रकार कर्म करके भी मनुष्य उससे लिप्त नहीं होता, जैसे कमलका पत्ता पानीमें रहकर भी उससे लेशमात्र भी लिप्त नहीं होता। जब भक्तिरसका ज्ञान हो जाता है, उस समय मुक्ति अच्छी नहीं लगती। भक्तिसे भगवान् विष्णुकी प्राप्ति होती है। वे सदाके लिये सुलभ हो जाते हैं। वेदान्त-विचारसे तो केवल ज्ञान प्राप्त होता है और ज्ञानसे ज्ञेय।

सम्पूर्ण वस्तुओंमें भाव-शुद्धिकी ही प्रशंसा की

जाती है। जैसा भाव रहता है वैसा ही फल होता है। जिसकी जैसी बुद्धि होती है, वह जगत्‌को वैसा ही समझता है।

वैकुण्ठनाथको छोड़कर भक्त पुरुष दूसरे मार्गमें कैसे रम सकेगा? भक्तिहीन होकर चारों वेदोंके पढ़नेसे क्या लाभ? भक्तियुक्त चाण्डाल ही क्यों न हो, वह देवताओंद्वारा भी पूजित होता है।* जिस समय श्रीहरिके स्मरणजनित प्रसन्नतासे शरीरमें रोमांच हो जाय और नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहने लगें, उस समय मुक्ति दासी बन जाती है। वाणीद्वारा किये हुए पापका भगवान्‌के कीर्तनसे और मनद्वारा किये हुए पापका उनके स्मरणसे नाश हो जाता है।

ब्रह्माजीने सम्पूर्ण वर्णोंको उत्पन्न किया और उन्हें अपने-अपने धर्ममें लगा दिया। अपने धर्मके पालनसे प्राप्त हुआ धन शुक्ल द्रव्य अर्थात् विशुद्ध धन कहलाता है। शुद्ध धनसे श्रद्धापूर्वक जो दान दिया जाता है, उसमें थोड़े दानसे भी महान् पुण्य होता है। उस पुण्यकी कोई गणना नहीं हो सकती। नीच पुरुषोंके संगसे जो धन आता हो, उस धनसे मनुष्यके द्वारा जो दान किया जाता है, उसका कुछ फल नहीं होता। उस दानसे वे मानव पुण्यके भागी नहीं होते। जो इन्द्रियोंको सुख देनेकी इच्छासे ही कर्म करता है, वह ज्ञान-दुर्बल मूढ़ पुरुष अपने कर्मके अनुसार योनिमें जन्म लेता है। मनुष्य इस लोकमें जो कर्म करता है, उसे परलोकमें भोगना पड़ता है। पुण्यकर्म करनेवाले पुरुषको निश्चय ही कभी दुःख नहीं होता। यदि पुण्य करते समय शरीरमें कोई कष्ट हो तो उसे पूर्वजन्ममें किये हुए कर्मका फल समझकर दुःख नहीं मानना चाहिये। पापाचारी पुरुषको सदा दुःख-ही-दुःख मिलता है। यदि उस समय उसे कुछ सुख प्राप्त हुआ हो तो उसे पूर्वकर्मका फल समझना चाहिये और उसपर हर्षसे फूल नहीं उठना चाहिये। जैसे स्वामी रस्सीमें बँधे हुए पशुको अपनी इच्छाके अनुसार इधर-उधर ले जाया करता है, उसी प्रकार कर्मबन्धनमें बँधा हुआ जीव सुख और दुःखकी अवस्थाओंमें ले जाया जाता है। प्रारब्ध-कर्मसे बँधा हुआ जीव अपने बन्धनको दूर करनेमें समर्थ नहीं होता। देवता और ऋषि भी कर्मोंसे बँधे हुए हैं। कैलासपर्वतपर मुझ महादेवके शरीरमें स्थित सर्प भी विषके ही भागी होते हैं; क्योंकि कर्मानुसार प्राप्त हुई योनि बड़ी ही प्रबल है। विद्वान् पुरुष कहते हैं कि सूर्य सुन्दर शरीर प्रदान करनेवाले हैं; परन्तु उनके ही रथका सारथि पंगु है। वास्तवमें कर्मयोनि बड़ी ही प्रबल है। पूर्वकालमें भगवान् विष्णुद्वारा निर्मित सम्पूर्ण जगत् कर्मके अधीन है और वह कर्म श्रीकेशवके अधीन है। श्रीरामनामके जपसे उसका नाश होता है। कोई देवताओंकी प्रशंसा करते हैं, कोई ओषधियोंकी महिमाके गीत गाते हैं, कोई मन्त्र और उसके द्वारा प्राप्त सिद्धिकी महत्ता बतलाते हैं और कोई बुद्धि, पराक्रम, उद्यम, साहस, धैर्य, नीति और बलका बखान करते हैं; परन्तु मैं कर्मकी प्रशंसा करता हूँ; क्योंकि सब लोग कर्मके ही पीछे चलनेवाले हैं—यह मेरा निश्चित विचार है तथा पूर्वकालके विद्वानोंने भी इसका समर्थन किया है।

कुछ लोग क्रोधमें आकर सर्वस्व त्याग देते हैं, कोई-कोई अभाववश सब कुछ छोड़ते हैं तथा कुछ लोग बड़े कष्टसे सबका त्याग करते हैं। ये सभी त्याग मध्यम श्रेणीके हैं। अपनी बुद्धिसे खूब सोच-विचारकर और क्रोध आदिके वशीभूत न होकर श्रद्धापूर्वक त्याग करना चाहिये। जो लोग इस प्रकार सर्वस्वका त्याग करते हैं, उन्हींका त्याग उत्तम माना गया है। योगाभ्यासमें तत्पर हुआ मनुष्य यदि उसमें पूर्णता न प्राप्त कर सके अथवा प्रारब्ध-कर्मकी प्रेरणासे वह साधनसे विचलित हो जाय तो भी वह उत्तम गतिको ही प्राप्त होता है। योगभ्रष्ट पुरुष पवित्र आचरणवाले श्रीमानोंके घरमें जन्म लेता है अथवा ज्ञानवान् योगियोंके यहाँ द्विजकुलमें जन्म ग्रहण करता है तथा वहाँ थोड़े ही समयमें पूर्ण योगसिद्धि प्राप्त कर लेता है। तत्पश्चात् वह योग एवं

---

* भक्तिहीनैश्चतुर्वेदैः पठितैः किं प्रयोजनम् । श्वपचो भक्तियुक्तस्तु त्रिदशैरपि पूज्यते॥ (१२८। १०२)

भक्तिके प्रसादसे चिदानन्दमय पदको प्राप्त होता है। जैसे कीचड़से कीचड़ तथा रक्तसे रक्तको नहीं धोया जा सकता, उसी प्रकार हिंसाप्रधान यज्ञ-कर्मसे कर्मजनित मल कैसे धोया जा सकता है। हिंसायुक्त कर्ममय सकाम यज्ञ कर्म-बन्धनका नाश करनेमें कैसे समर्थ हो सकता है। स्वर्गकी कामनासे किये हुए यज्ञ स्वर्गलोकमें अल्प सुख प्रदान करनेवाले होते हैं। कर्मजनित सुख अधिक मात्रामें हों तो भी वे अनित्य ही होते हैं; उनमें नित्य सुख है ही नहीं। भगवान् श्रीहरिकी भक्तिके बिना कहीं भी नित्य सुख नहीं मिलता।

जो भगवान् सृष्टि करते हैं, वे ही संहारकारी और पालक कहलाते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण! मैं सैकड़ों अपराधोंसे युक्त हूँ। मुझे यहाँसे अपने परमधाममें ले चलिये। मुझ अपराधीपर कृपा कीजिये। आपने व्याधको मोक्ष दिया है, कुब्जाको तारा है [मुझपर भी कृपादृष्टि कीजिये]। योगिजन सदा आपकी महिमाका गान करते हैं। आप परमात्मा, जनार्दन, अविनाशी पुरुष और लक्ष्मीसे सम्पन्न हैं। आपका दर्शन करके कितने ही भक्त आपके परमपदको प्राप्त हो गये। जो लोग इस दिव्य विष्णुस्मरणका प्रतिदिन पाठ करते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त हो श्रीविष्णुके सनातन धाममें जाते हैं। जो भगवान् विष्णुके समीप भक्तिभावसे भावित बुद्धिद्वारा इसका पाठ करते हैं, वे इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें परमपदको प्राप्त होते हैं।

पुष्कर आदि तीर्थोंका वर्णन

श्रीपार्वतीजीने कहा—सुव्रत! इस द्वीपमें जो-जो तीर्थ हैं, उनकी गणना करके मुझे बताइये।

श्रीमहादेवजी बोले—सुरेश्वरि! इस द्वीपमें सबके क्लेशोंका नाश करनेवाले महान् देवता भगवान् केशव ही तीर्थरूपसे विराजमान हैं। देवि! अब मैं तुम्हारे लिये उन तीर्थोंका वर्णन करता हूँ। पहला पुष्कर तीर्थ है, जो सब तीर्थोंमें श्रेष्ठ और शुभकारक है। दूसरा क्षेत्र काशीपुरी है, जो मुक्ति प्रदान करनेवाली है। तीसरा नैमिष क्षेत्र है, जिसे ऋषियोंने परम पावन माना है। चौथा प्रयाग तीर्थ है, जो सब तीर्थोंमें उत्तम माना गया है। पाँचवाँ कामुक तीर्थ है, जिसकी उत्पत्ति गन्धमादन पर्वतपर बतायी गयी है। छठा मानसरोवर तीर्थ है, जो देवताओंको भी अत्यन्त रमणीय प्रतीत होता है। सातवाँ विश्वकाय तीर्थ है, उसकी स्थिति कल्याणमय अम्बर पर्वतपर बतायी गयी है। आठवाँ गौतम नामक तीर्थ है, जिसकी स्थापना पूर्वकालमें मन्दराचल पर्वतपर हुई थी। नवाँ मदोत्कट और दसवाँ रथचैत्रक तीर्थ है। ग्यारहवाँ कान्यकुब्ज तीर्थ है, जहाँ भगवान् वामन विराज रहे हैं। बारहवाँ मलयज तीर्थ है। इसके बाद कुब्जाम्रक, विश्वेश्वर, गिरिकर्ण, केदार और गतिदायक तीर्थ हैं। हिमालयके पृष्ठभागमें बाह्य तीर्थ, गोकर्णमें गोपक, हिमालयपर स्थानेश्वर, बिल्वकमें बिल्वपत्रक, श्रीशैलमें माधव तीर्थ, भद्रेश्वरमें भद्र तीर्थ, वाराहक्षेत्रमें विजय तीर्थ, वैष्णवगिरिपर वैष्णव तीर्थ, रुद्रकोटमें रुद्र तीर्थ, कालंजर पर्वतपर पितृ तीर्थ, कम्पिलमें काम्पिल तीर्थ, मुकुटमें कर्कोटक, गण्डकीमें शालग्रामोद्भव तीर्थ, नर्मदामें शिव तीर्थ, मायापुरीमें विश्वरूप तीर्थ, उत्पलाक्षमें सहस्राक्ष तीर्थ, रैवतक पर्वतपर जात तीर्थ, गयामें पितृ तीर्थ और विष्णुपादोद्भव तीर्थ, विपाशा (व्यास)-में विपाप, पुण्ड्रवर्धनमें पाटल, सुपार्श्वमें नारायण, त्रिकूटमें विष्णुमन्दिर, विपुलमें विपुल, मलयाचलमें कल्याण, कोटि तीर्थमें कौरव, गन्धमादनमें सुगन्ध, कुब्जांकमें त्रिसन्ध्य, गंगाद्वारमें हरिप्रिय, विन्ध्यप्रदेशमें शैल तीर्थ, बदरिकाश्रममें शुभ सारस्वत तीर्थ, कालिन्दीमें कालरूप, सह्यपर्वतपर साह्यक और चन्द्रप्रदेशमें चन्द्र तीर्थ है।

महाकालमें महेश्वर तीर्थ, विन्ध्य-पर्वतकी कन्दरामें अभयद और अमृत नामक तीर्थ, मण्डपमें विश्वरूप तीर्थ, ईश्वरपुरमें स्वाहा तीर्थ, प्रचण्डामें वैगलेय तीर्थ, अमरकण्टकमें चण्डी तीर्थ, प्रभासक्षेत्रमें सोमेश्वर तीर्थ, सरस्वतीमें पारावत तटपर देवमातृ तीर्थ, महापद्ममें

महालय तीर्थ, पयोष्णीमें पिंगलेश्वर, सिंहिका तथा सौरवमें रवि तीर्थ, कृत्तिकाक्षेत्रमें कार्तिक तीर्थ, शंकरगिरिपर शंकर तीर्थ, सुभद्रा और समुद्रके संगमपर दिव्य उत्पल तीर्थ, विष्णुपर्वतपर गणपति तीर्थ, जालन्धरमें विश्वमुख तीर्थ, तार एवं विष्णुपर्वतपर तारक तीर्थ, देवदारुवनमें पौण्ड्र तीर्थ, काश्मीरमण्डलमें पौष्क तीर्थ, हिमालयपर भौम, हिम, तुष्टिक और पौष्टिक तीर्थ, मायापुरमें कपालमोचन तीर्थ, शंखोद्धारमें शंखधारकदेव, पिण्डमें पिण्डन, सिद्धिमें वैखानस और अच्छोद सरोवरपर विष्णुकाम तीर्थ है, जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्षको देनेवाला है। उत्तरकूलमें औषध्य तीर्थ, कुशद्वीपमें कुशोदक तीर्थ, हेमकूटमें मन्मथ तीर्थ, कुमुदमें सत्यवादन तीर्थ, वदन्तीमें आश्मक तीर्थ, विन्ध्यपर्वतपर वैमातृक तीर्थ और चित्तमें ब्रह्ममय तीर्थ है, जो सब तीर्थोंमें पावन माना गया है। सुन्दरि! इन सब तीर्थोंमें उत्तम तीर्थका वर्णन सुनो। भगवान् विष्णुके नामकी समता करनेवाला कोई तीर्थ न तो हुआ है और न होगा। भगवान् केशवकी कृपासे उनका नाम लेनेमात्रसे ब्रह्महत्यारा, सुवर्ण चुरानेवाला, बालघाती और गोहत्या करनेवाला पुरुष भी पापमुक्त हो जाता है। कलियुगमें द्वारकापुरी परम रमणीय है और वहाँके देवता भगवान् श्रीकृष्ण परम धन्य हैं। जो मनुष्य वहाँ जाकर उनका दर्शन करते हैं, उन्हें अविचल मुक्ति प्राप्त होती है। महादेवि! ऐसे परम धन्य देवता सर्वेश्वर प्रभु श्रीविष्णुभगवान्‌का मैं निरन्तर चिन्तन करता रहता हूँ। इस प्रकार यहाँ अनेक तीर्थोंका नामोल्लेख किया गया है। जो इनका जप करता अथवा इन्हें सुनता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो इन तीर्थोंमें स्नान करके पापहारी भगवान् नारायणका दर्शन करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके सनातन धामको जाता है। जगन्नाथपुरी महान् तीर्थ है। वह सब लोकोंको पवित्र करनेवाली मानी गयी है। जो श्रेष्ठ मानव वहाँकी यात्रा करते हैं, वे परम गतिको प्राप्त होते हैं। जो श्राद्ध-कर्ममें इन परम पवित्र तीर्थोंके नाम सुनाता है, वह इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें भगवान् विष्णुके सनातन धामको जाता है। गोदान, श्राद्धदान अथवा देवपूजाके समय प्रतिदिन जो विद्वान् इसका पाठ करता है, वह परमात्माको प्राप्त होता है।

वेत्रवती और साभ्रमती (साबरमती) नदीका माहात्म्य

श्रीमहादेवजी कहते हैं—सुन्दरि! अब मैं वेत्रवती (बेतवा) नदीका माहात्म्य वर्णन करता हूँ, सुनो। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्यकी मुक्ति हो जाती है। पूर्वकालमें वृत्रासुरने एक बहुत ही गहरा कुआँ खुदवाया था, जिसका नाम महागम्भीर था। उसीसे यह दिव्य नदी प्रकट हुई है। वेत्रवती नदी बड़े-बड़े पापोंकी राशिका विनाश करनेवाली है। गंगाजीके समान ही इस श्रेष्ठ नदीका भी माहात्म्य है। इसके दर्शन करनेमात्रसे पापराशि शान्त हो जाती है। पहलेकी बात है, चम्पक नगरमें एक राजा राज्य करता था। वह बड़ा ही दुष्ट और प्रजाको पीड़ा देनेवाला था। वह नीच अधर्मका मूर्तिमान् स्वरूप था। निरन्तर भगवान् विष्णुकी निन्दा करता, देवताओं और ब्राह्मणोंकी घातमें लगा रहता तथा आश्रमोंको कलंकित किया करता था। वह मूर्ख वेदोंकी निन्दामें ही प्रवृत्त रहनेवाला, निर्दयी, शठ, असत् शास्त्रोंमें अनुराग रखनेवाला और परायी स्त्रियोंको दूषित करनेवाला था। उसका नाम था विदारुण। वह अत्यन्त पापी था। महान् पाप और ब्राह्मणोंकी निन्दा करनेके कारण राजा विदारुण कोढ़ी हो गया। एक दिन दैवयोगसे वह शिकार खेलता हुआ उस नदीके किनारे आ निकला। उस समय उसे बड़े जोरकी प्यास सता रही थी। घोड़ेसे उतरकर उसने नदीका जल पीया और पुनः अपनी राजधानीको लौट गया। उस जलके पीनेमात्रसे राजाकी कोढ़ दूर हो गयी और बुद्धिमें भी निर्मलता आ गयी। तबसे उसके हृदयमें भगवान् विष्णुके प्रति भक्ति उत्पन्न हो गयी। अब वह सदा ही समय-समयपर वहाँ

आकर स्नान करने लगा। इससे वह अत्यन्त रूपवान् और निर्मल हो गया। इस लोकमें सुख भोगते हुए उसने अनेकों यज्ञ किये, ब्राह्मणोंको दक्षिणा दी तथा अन्तमें श्रीविष्णुके वैकुण्ठधामको प्राप्त किया।
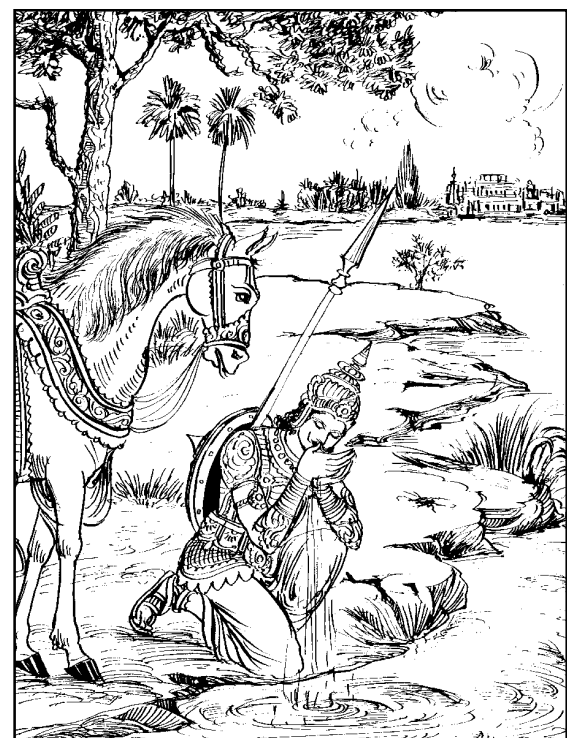
पार्वती! ऐसा जानकर जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र वेत्रवती नदीमें स्नान करते हैं, वे पापबन्धनसे मुक्त हो जाते हैं। कार्तिक, माघ अथवा वैशाखमें जो लोग बारंबार वहाँ स्नान करते हैं, वे भी कर्मोंके बन्धनसे छुटकारा पा जाते हैं। ब्रह्महत्या, गोहत्या, बालहत्या और वेदनिन्दा करनेवाला पुरुष भी नदियोंके संगममें स्नान करके पापसे मुक्त हो जाता है। जिस स्थानपर और जिस नदीका साभ्रमती (साबरमती) नदीके साथ संगम दिखायी दे, वहाँ स्नान करनेपर ब्रह्महत्यारा भी पापमुक्त हो जाता है। खेटक (खेड़ा) नामक दिव्य नगर इस धरातलका स्वर्ग है। वहाँ बहुत-से ब्राह्मणोंने अनेक प्रकारके योगोंका साधन किया है। वहाँ स्नान और भोजन करनेसे मनुष्यका पुनर्जन्म नहीं होता। पार्वती! कलियुगमें वेत्रवती नदी दूसरी गंगाके समान मानी गयी है। जो लोग सुख, धन और स्वर्ग चाहते हैं, वे उस नदीमें बारंबार स्नान करनेसे इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें विष्णुके सनातन धामको जाते हैं। सूर्यवंश और सोमवंशमें उत्पन्न क्षत्रिय वेत्रवती नदीके तटपर आकर उसमें स्नान करके परम शान्ति पा चुके हैं। यह नदी दर्शनसे दु:ख और स्पर्शसे मानसिक पापका नाश करती है। इसमें स्नान और जलपान करनेवाला मनुष्य निस्सन्देह मोक्षका भागी होता है। यहाँ स्नान, जप तथा होम करनेसे अक्षय फलकी प्राप्ति होती है। वाराणसी तीर्थमें जाकर जो भक्तिपूर्वक चान्द्रायणव्रतका अनुष्ठान करता है, और वहाँ उसे जिस पुण्यकी प्राप्ति होती है, उसे वह वेत्रवती नदीमें स्नान करनेमात्रसे पा लेता है। यदि वेत्रवती नदीमें किसीकी मृत्यु हो जाती है तो वह चतुर्भुजरूप होकर विष्णुके परमपदको प्राप्त होता है। पृथ्वीपर जो-जो तीर्थ, देवता और पितर हैं, वे सब वेत्रवती नदीमें वास करते हैं। महेश्वरि! मैं, विष्णु, ब्रह्मा, देवगण तथा महर्षि—ये सब-के-सब वेत्रवती नदीमें विराजमान रहते हैं। जो एक, दो अथवा तीनों समय वेत्रवती नदीमें स्नान करते हैं, वे निश्चय ही मुक्त हो जाते हैं।

देवि! अब मैं साभ्रमती नदीके माहात्म्यका यथावत् वर्णन करता हूँ। मुनिश्रेष्ठ कश्यपने इसके लिये बहुत बड़ी तपस्या की थी। एक दिनकी बात है, महर्षि कश्यप नैमिषारण्यमें गये। वहाँ ऋषियोंके साथ उन्होंने बहुत समयतक वार्तालाप किया। उस समय ऋषियोंने कहा—'कश्यपजी! आप हमलोगोंकी प्रसन्नताके लिये यहाँ गंगाजीको ले आइये। प्रभो! वह सरिताओंमें श्रेष्ठ गंगा आपके ही नामसे प्रसिद्ध होगी।'

उन महर्षियोंकी बात सुनकर कश्यपजीने उन्हें प्रणाम किया और वहाँसे चलकर वे आबूके जंगलमें सरस्वती नदीके समीप आये। वहाँ उन्होंने अत्यन्त दुष्कर तपस्या की। वे मेरी ही आराधनामें संलग्न थे। उस समय मैंने उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया और कहा—'विप्रवर! तुम्हारा कल्याण हो। तुम मुझसे मनोवांछित वर माँगो।'

कश्यपने कहा—देवदेव! जगत्पते! महादेव!

आप वर देनेमें समर्थ हैं। आपके मस्तकपर जो ये परम पवित्र पापहारिणी गंगा स्थित हैं, इन्हें विशेष कृपा करके मुझे दीजिये। आपको नमस्कार है।

पार्वती! उस समय मैंने महर्षि कश्यपसे कहा—'द्विजश्रेष्ठ! लो अपना वर।' यों कहकर मैंने अपने मस्तकसे एक जटा उखाड़कर उसीके साथ उन्हें गंगाको दिया। श्रीगंगाजीको लेकर द्विजश्रेष्ठ कश्यप बड़ी प्रसन्नताके साथ अपने स्थानको चले गये। गिरिजे! पूर्वकालमें विष्णुलोककी इच्छा रखनेवाले राजा भगीरथने मुझसे गंगाजीके लिये याचना की थी, उस समय उन्हें भी मैंने गंगाको समर्पित किया था। तत्पश्चात् पुनः ऋषियोंके कहनेसे कश्यपजीको गंगा प्रदान की। यह काश्यपी गंगा समस्त रोग और दोषोंका अपहरण करनेवाली है। सुन्दरि! भिन्न-भिन्न युगोंमें ये गंगा संसारमें जिन-जिन नामोंसे विख्यात होती हैं, उनका यथार्थ वर्णन करता हूँ ; सुनो। सत्ययुगमें कृतवती, त्रेतामें गिरिकर्णिका, द्वापरमें चन्दना और कलियुगमें इनका नाम साभ्रमती (साबरमती) होता है। जो मनुष्य प्रतिदिन यहाँ विशेषरूपसे स्नान करनेके लिये आते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके सनातन धामको जाते हैं। प्लक्षावतरण तीर्थमें, सरस्वती नदीमें, केदारक्षेत्रमें तथा कुरुक्षेत्रमें स्नान करनेसे जो फल होता है, वह फल साभ्रमती नदीमें नित्य स्नान करनेसे प्रतिदिन प्राप्त होता है। माघ मास आनेपर प्रयाग तीर्थमें प्रातःस्नान करनेसे जो फल होता है, कार्तिककी पूर्णिमाको कृत्तिकाका योग आनेपर श्रीशैलमें भगवान् माधवके समक्ष जिस फलकी प्राप्ति होती है, वह साभ्रमती नदीमें डुबकी लगानेमात्रसे प्राप्त हो जाता है। देवि! यह नदी सबसे श्रेष्ठ और सम्पूर्ण जगत्में पावन है। इतना ही नहीं, यह पवित्र और पापनाशिनी होनेके कारण परम धन्य है।

देवेश्वरि! पितृतीर्थ, सब तीर्थोंसहित प्रयाग, माधवसहित भगवान् वटेश्वर, दशाश्वमेध तीर्थ तथा गंगाद्वार—ये सब मेरी आज्ञासे साभ्रमती नदीमें निवास करते हैं। नन्दा, ललिता, सप्तधारक, मित्रपद, भगवान् शंकरका निवासभूत केदारतीर्थ, सर्वतीर्थमय गंगासागर, शतद्रु (सतलज)-के जलसे भरे हुए कुण्डमें ब्रह्मसर तीर्थ, तथा नैमिष तीर्थ भी मेरी आज्ञासे सदा साभ्रमती नदीके जलमें निवास करते हैं। श्वेता, बल्कलिनी, हिरण्यमयी, हस्तिमती तथा सागरगामिनी नदी बार्त्रघ्नी—ये सब पितरोंको अत्यन्त प्रिय तथा श्राद्धका कोटिगुना फल देनेवाली हैं। वहाँ पुत्रोंको पितरोंके हितके लिये पिण्डदान करना चाहिये। जो मनुष्य वहाँ स्नान और दान करते हैं, वे इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें भगवान् विष्णुके सनातन धामको जाते हैं। नीलकण्ठ तीर्थ, नन्दह्रद तीर्थ, रुद्रह्रद तीर्थ, पुण्यमय रुद्रमहालय तीर्थ, परम पुण्यमयी मन्दाकिनी तथा महानदी अच्छोदा—ये सब तीर्थ और नदियाँ अव्यक्तरूपसे साभ्रमती नदीमें बहती रहती हैं। धूम्र तीर्थ, मित्रपद, बैजनाथ, दृषद्वर, क्षिप्रा नदी, महाकाल तीर्थ, कालंजर पर्वत, गंगोद्भूत तीर्थ, हरोद्भेद तीर्थ, नर्मदा नदी तथा ओंकार तीर्थ—ये गंगामें पिण्डदान करनेके समान फल देनेवाले हैं, ऐसा मनीषी पुरुषोंका कथन है। उक्त सभी तीर्थ ब्रह्मतीर्थ कहलाते हैं। ब्रह्मा आदि देवताओंने इन सभी तीर्थोंको साभ्रमती नदीके उत्तर तटपर गुप्तरूपसे

स्थापित कर रखा है। महेश्वरि! ये तीर्थ स्मरणमात्रसे लोगोंके पापोंका नाश करनेवाले हैं। फिर जो वहाँ श्राद्ध करते हैं, उनके लिये तो कहना ही क्या है। ओंकार तीर्थ, पितृतीर्थ, कावेरी नदी, कपिलाका जल, चण्डवेगाका साभ्रमतीके साथ संगम तथा अमरकण्टक—इन तीर्थोंमें स्नान आदि करनेसे कुरुक्षेत्रकी अपेक्षा सौगुना पुण्य होता है। साभ्रमती और वार्त्रघ्नी नदीका जहाँ संगम हुआ है, वहाँ गणेश आदि देवताओंने तीर्थसंघकी स्थापना की है। इस प्रकार मैंने यहाँ संक्षेपसे साभ्रमती नदीमें तीर्थोंके संगमका वर्णन किया है। विस्तारके साथ उनका वर्णन करनेमें बृहस्पति भी समर्थ नहीं हैं।

अत: इस तीर्थमें प्रयत्नपूर्वक स्नान करना चाहिये। सबेरे तीन मुहूर्त्तका समय प्रात:काल कहलाता है। उसके बाद तीन मुहूर्त्ततक पूर्वाह्ण या संगवकाल होता है। इन दोनों कालोंमें तीर्थके भीतर किया हुआ स्नान आदि देवताओंको प्रीतिदायक होता है। तत्पश्चात् तीन मुहूर्त्ततक मध्याह्न है और उसके बादका तीन मुहूर्त्त अपराह्ण कहलाता है। इसमें किया हुआ स्नान, पिण्डदान और तर्पण पितरोंकी प्रसन्नताका कारण होता है। तदनन्तर तीन मुहूर्त्तका समय सायाह्न माना गया है। उसमें तीर्थस्नान नहीं करना चाहिये। वह राक्षसी बेला है, जो सभी कर्मोंमें निन्दित है। दिन-भरमें कुल पंद्रह मुहूर्त्त बताये गये हैं। उनमें जो आठवाँ मुहूर्त्त है, वह कुतपकाल माना गया है। उस समय पितरोंको पिण्डदान करनेसे अक्षय फलकी प्राप्ति होती है। मध्याह्नकाल, नेपालका कम्बल, चाँदी, कुश, गौ, दौहित्र (पुत्रीका पुत्र) और तिल—ये कुतप कहलाते हैं। 'कु' नाम है पापका, उसको सन्ताप देनेवाले होनेके कारण ये कुतपके नामसे विख्यात हैं। कुतप मुहूर्त्तके बाद चार मुहूर्त्ततक कुल पाँच मुहूर्त्तका समय श्राद्धके लिये उत्तम समय माना गया है। कुश और काले तिल श्राद्धकी रक्षाके लिये भगवान् विष्णुके शरीरसे प्रकट हुए हैं—ऐसा देवताओंका कथन है। तीर्थवासी पुरुष जलमें खड़े हो हाथमें कुश लेकर तिलमिश्रित जलकी अंजलि पितरोंको दें। ऐसा करनेसे श्राद्धमें बाधा नहीं आती।

पार्वती! इस प्रकार मैंने साभ्रमती नदीमें नामोच्चारणपूर्वक तीर्थोंका प्रवेश कराकर उसे महर्षि कश्यपको दिया था। कश्यप मेरे प्रिय भक्त हैं, इसलिये उन्हें मैंने यह पवित्र एवं पापनाशिनी गंगा प्रदान की थी। महाभागे! साभ्रमतीके तटपर ब्रह्मचारितीर्थ है। वहाँ उसी नामसे मैंने अपनेको स्थापित कर रखा है। सम्पूर्ण जगत्‌का हित करनेके लिये मैं वहाँ ब्रह्मचारीश नामसे निवास करता हूँ। साभ्रमती नदीके किनारे ब्रह्मचारीश शिवके पास जाकर भक्त पुरुष यदि कलियुगमें विशेषरूपसे पूजा करे तो इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें महान् शिवधामको प्राप्त होता है। उनके स्थानपर जाकर जो जितेन्द्रियभावसे उपवास करता और रात्रिमें स्थिरभावसे रहकर भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करता है, उसे मैं योगीरूपसे दर्शन देता हूँ तथा उसकी समस्त मनोगत कामनाओंको भी पूर्ण करता हूँ—यह बिलकुल सच्ची बात है। पार्वती! वहाँ मेरा कोई लिंग नहीं है, मेरा स्थानमात्र है। जो विद्वान् वहाँ फूल, धूप तथा नाना प्रकारका नैवेद्य अर्पण करता है, उसे निश्चय ही सब कुछ प्राप्त होता है। जो मेरे स्थानपर आकर बिल्वपत्र, पुष्प तथा चन्दन आदिसे मेरी पूजा करते हैं, उन्हें मैं सब कुछ देता हूँ। दर्शनसे रोग नष्ट होता है, पूजा करनेसे आयु प्राप्त होती है तथा वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य निश्चय ही मोक्षका भागी होता है।

सुन्दरि! सुनो, अब मैं राजखड्ग नामक परम अद्‌भुत तीर्थका वर्णन करता हूँ, जो साभ्रमती नदीके तीर्थोंमें विशेष विख्यात है। सूर्यवंशमें उत्पन्न एक वैकर्तन नामक राजा था, जो दुराचारी, पापात्मा, ब्राह्मण-निन्दक, गुरुद्रोही, सदा असन्तुष्ट रहनेवाला, समस्त कर्मोंकी निन्दा करनेवाला, सदा परायी स्त्रियोंमें प्रीति रखनेवाला और निरन्तर श्रीविष्णुकी निन्दा करनेवाला था। वह बहुत-से प्राणियोंका घातक था और अपनी प्रजाको सदा पीड़ा दिया करता था। इस प्रकार दुष्टात्मा राजा वैकर्तन इस पृथ्वीपर राज्य करता था। कुछ कालके पश्चात् दैवयोगसे अपने पापके कारण वह कोढ़ी हो गया। अपने शरीरकी दुर्दशा देखकर वह बार-बार

सोचने लगा—'अब क्या करना चाहिये?' वह निरन्तर इसी चिन्तामें डूबा रहता था। एक दिन दैवयोगसे क्रीड़ाके लिये राजा वनमें गया। वहाँ साभ्रमती नदीके तीरपर जाकर खड़ा हुआ। फिर उसने वहाँ स्नान किया और वहाँका उत्तम जल पीया। इससे उसका शरीर दिव्य हो गया। पार्वती! जैसे सोनेकी प्रतिमा देदीप्यमान दिखायी देती है, उसी प्रकार राजा वैकर्तन भी परम कान्तिमान् हो गया। उस दिव्य रूपको पाकर राजाने कुछ कालतक राज्य-भोग किया। इसके बाद वह परमपदको प्राप्त हुआ। तबसे वह तीर्थ राजखड्गके नामसे सुप्रसिद्ध हो गया। जो लोग वहाँ स्नान और दान करते हैं, वे इस लोकमें सुख भोगकर भगवान् विष्णुके सनातन धामको प्राप्त होते हैं। उन्हें कभी रोग और शोक नहीं होता। जो प्रतिदिन राजखड्ग तीर्थमें स्नान और श्रद्धापूर्वक पितरोंका तर्पण करते हैं, वे मनुष्य इस पृथ्वीपर पुण्यकर्मा कहलाते हैं। ब्राह्मणों और बालकोंकी हत्या करनेवाले पुरुष भी यदि यहाँ स्नान करते हैं तो वे पापोंसे रहित हो भगवान् शिवके समीप जाते हैं। जो मनुष्य साभ्रमती नदीके तटपर नील वृषका उत्सर्ग करेंगे, उनके पितर प्रलय कालतक तृप्त रहेंगे। राजखड्ग तीर्थका यह दिव्य उपाख्यान जो सुनते हैं, उन्हें कभी भय नहीं प्राप्त होता इसके सुनने और पढ़नेसे समस्त रोग-दोष शान्त हो जाते हैं।

साभ्रमती नदीके अवान्तर तीर्थोंका वर्णन

श्रीपार्वतीजीने पूछा—भगवन्! नन्दिकुण्डसे निकलकर बहती हुई साभ्रमती नदीने किन-किन देशोंको पवित्र किया है, यह बतानेकी कृपा करें।

श्रीमहादेवजी बोले—देवि! परम पावन नन्दि-कुण्ड नामक तीर्थसे निकलनेपर पहले मुनियोंद्वारा प्रकाशित कपालमोचन नामक तीर्थ पड़ता है। यह तीर्थ पावनसे भी अत्यन्त पावन और सबसे अधिक तेजस्वी है। पार्वती! यहाँ मैंने ब्रह्मकपालका परित्याग किया है, अतः मुझसे ही कपालमोचन तीर्थकी उत्पत्ति हुई है। यह सम्पूर्ण भूतोंको पवित्र करनेवाला विश्वविख्यात तीर्थ प्रकट हुआ है। इसे कपालकुण्ड तीर्थ भी कहते हैं। यह तीर्थोंका राजा है। इस शुभ एवं निर्मल तीर्थमें देवता, नाग, गन्धर्व, किन्नर आदि तथा महात्मा पुरुष निवास करते हैं। यह तीनों लोकोंमें विख्यात, ज्ञानदाता एवं मोक्षदायक तीर्थ है। यहाँ स्नान करके पवित्र हो मेरा पूजन करना चाहिये। एक रात उपवास करके ब्राह्मणभोजन कराये। यहाँ वस्त्र दान करनेसे मानव अग्निहोत्रका फल पाता है। जो कोई इस तीर्थमें दर्शन-व्रतका अवलम्बन करके रहता है। वह देहत्यागके अनन्तर निश्चय ही शिवलोकमें जाता है।

भगीरथके कुलमें सुदास नामक एक महाबली राजा हुए थे। उनके पुत्रका नाम मित्रसह था। राजा मित्रसह सौदास नामसे भी विख्यात थे। सौदास महर्षि वसिष्ठके शापसे राक्षस हो गये थे। उन्होंने साभ्रमती नदीमें स्नान किया। इससे वे शापजनित पापसे मुक्त हो गये। यहाँ नन्दितीर्थमें गंगा, यमुना, गोदावरी और सरस्वती आदि पुण्यदायिनी पवित्र नदियाँ निवास करती हैं। पृथ्वीके

समस्त पतित प्राणी साभ्रमतीके जलका स्पर्श करनेमात्रसे शुद्ध हो जाते हैं। जो मनुष्य वहाँ भक्तिपूर्वक श्राद्ध करता है, उसके पितर तृप्त होकर परमपदको प्राप्त होते हैं।

तदनन्तर महर्षि कश्यपके उपदेशसे साभ्रमती नदी ब्रह्मर्षियोंद्वारा सेवित विकीर्ण वनमें आयी। उसका प्रबल वेगसे बहता जल पर्वतोंसे टकराकर सात भागोंमें विभक्त हो गया। उन सभी धाराओंसे युक्त साभ्रमती नदी दक्षिण-समुद्रमें मिली है। पहली धारा परम पवित्र साभ्रमती नामसे ही विख्यात हुई। दूसरीका नाम श्वेता है, तीसरी बकुला या वल्कला और चौथी हिरण्मयी कहलाती है। पाँचवीं धाराका नाम हस्तिमती है, जो सब पापोंका नाश करनेवाली बतायी गयी है। छठी धारा वेत्रवतीके नामसे विख्यात है, जिसे पूर्वकालमें वृत्रासुरने उत्पन्न किया था। यह श्रेष्ठ देवी वृत्रकूपसे निकली थी, इसीलिये इसका नाम वेत्रवती हुआ। यह बड़े-बड़े पापोंका नाश करनेवाली है। सातवीं धाराका नाम भद्रामुखी तथा सुभद्रा है। यह सम्पूर्ण जगत्को पवित्र करनेवाली है। इन सातों धाराओंसे भिन्न-भिन्न देशोंको पवित्र करती हुई एक ही साभ्रमती नदी 'सप्तस्रोता' के रूपमें प्रतिष्ठित हुई है। जो विकीर्ण तीर्थमें पितरोंके उद्देश्यसे श्राद्ध एवं दान करता है, उसे गयामें पिण्डदान करनेका फल प्राप्त होता है। जो धर्मभ्रष्ट होनेके कारण सद्गतिसे वंचित हैं, जिनकी पिण्ड और जलदानकी क्रिया लुप्त हो गयी है, वे भी विकीर्ण तीर्थमें पिण्डदान और जलदान करनेपर मुक्त हो जाते हैं। अतः वेदत्रयीकी विधिके अनुसार यहाँ श्रद्धापूर्वक श्राद्धका अनुष्ठान करना चाहिये। इस तीर्थमें कश्यपजीने ब्राह्मणोंको संबोधित करके कहा था—'द्विजवरो! यदि तुम्हें ऋषिलोक प्राप्त करनेकी इच्छा है तो इस विकीर्ण तीर्थमें, जहाँ सात नदियोंका उद्गम हुआ है, विशेषरूपसे स्नान करो।' यदि यहाँ स्नान किया जाय तो सब दुःखोंका नाश हो जाता है। यह विकीर्ण तीर्थ सब तीर्थोंमें श्रेष्ठ तथा क्षेत्रोंमें परम उत्तम है। यह शुभगति प्रदान करनेवाला तथा रोग और दोषका निवारण करनेवाला है।

विकीर्ण तीर्थके बाद श्वेतोद्भव नामक उत्तम तीर्थ है, जहाँ सब पापोंका नाश करनेवाली त्रिलोकविख्यात श्वेता नदी प्रवाहित होती है। वह नदी मेरे अंगोंमें लगे हुए भस्मके संयोगसे प्रकट हुई थी, इसलिये देवताओंद्वारा सम्मानित हुई। उसमें स्नान करके पवित्र और जितेन्द्रिय-भावसे वहाँ तीन रात निवास करनेवाला पुरुष महाकालेश्वरका दर्शन करनेसे रुद्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। जो श्वेताके तटपर कुश और तिलोंके साथ पितरोंको पिण्डदान करता है, उसके पितर पूर्ण तृप्त हो जाते हैं। श्वेतगंगा परम पुण्यमयी और दुःख एवं दरिद्रताको दूर करनेवाली है। पार्वती! मैं उसके पवित्र संगममें नित्य निवास करता हूँ। उसमें जो स्नान और दान करते हैं, उन्हें उसका अक्षय फल प्राप्त होता है। जो नरश्रेष्ठ वहाँ धूप, फूल, माला और आरती निवेदन करते हैं, वे पुण्यात्मा हैं। जो बिल्वपत्र लेकर श्वेताके किनारे शिवके ऊपर चढ़ाता है, वह मनोवांछित फल प्राप्त करता है।

यहाँसे तीर्थ-यात्री पुरुष गणतीर्थको जाय। वह तीर्थ चन्दना नदीके तटपर है। शिवगणोंने उसका नाम त्रिविष्टप रखा है। पूर्णिमाको एकाग्रचित्त हो त्रिविष्टप तीर्थमें स्नान करके मनुष्य ब्रह्महत्या-जैसे पापसे मुक्त हो जाता है। जो वर्षाके चार महीनोंमें वहाँ निवास करता है, वह महान् सौभाग्यशाली एवं पवित्र होकर रुद्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। कृष्णपक्षकी अष्टमीको गणतीर्थमें स्नान करके जो उपवास करता है तथा बकुलासंगममें गोता लगाता है, वह मानव स्वर्गलोकमें जाता है। उस तीर्थमें स्नान करके बकुलेश्वरका दर्शन करनेसे मनुष्य गणेशजीके प्रसादसे गणपतिपदको प्राप्त होता है। यहाँ परम पराक्रमी चन्द्रवंशी राजा विश्वदत्तने दीर्घकालतक बड़ी भारी तपस्या की थी और श्रीगणेशजीके प्रसादसे गणपतिपदको प्राप्त किया था। महेश्वरि! वसिष्ठ, वामदेव, कहोड, कौषीतक, भारद्वाज, अंगिरा, विश्वामित्र तथा वामन—ये पुण्यात्मा मुनि श्रीगणेशजीकी कृपासे सदा ही इस तीर्थका सेवन करते हैं। इसके सेवनसे पुत्रहीनको पुत्र, धनहीनको धन, विद्याहीनको विद्या और मोक्षार्थीको मोक्ष प्राप्त होता है। जो यहाँ स्नान अथवा पूजन करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो विष्णुके परमपदको प्राप्त होता है।

अग्नितीर्थ, हिरण्यासंगमतीर्थ, धर्मतीर्थ आदिकी महिमा

महादेवजी कहते हैं—पार्वती! साभ्रमतीके पास ही ईशानकोणमें पालेश्वर नामक तीर्थ है, जहाँ चण्डीदेवी प्रतिष्ठित हैं। वह योगमाताओंका पीठ है, जो समस्त सिद्धियोंका साधक है। वहाँ जगत्पर अनुग्रह करने और सब देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये माताएँ परम यत्नपूर्वक स्थित हैं। उस तीर्थमें दृढ़तापूर्वक व्रतका पालन करते हुए तीन रात निवास करके मनुष्य चण्डीपति भगवान् शंकरके समीप जा उनका दर्शन करे और उनके निकट साभ्रमती नदीमें स्नान करके समाधिविधिसे युक्त हो मातृ-मण्डलके दर्शनके लिये जाय; ऐसा करनेसे मनुष्य सहस्र गोदानोंका फल पाता है। अग्नितीर्थमें स्नान करके चामुण्डाका दर्शन करनेपर मनुष्यको राक्षस, भूत और पिशाचोंका भय नहीं रहता। पार्वती! साभ्रमतीमें जहाँ गोक्षुरा नदी मिली है, वहाँ सहस्रों तीर्थ हैं। वहाँ तिलके चूर्णसे श्राद्ध करना चाहिये। उस तीर्थमें पिण्डदान करके ब्राह्मणोंको भोजन करानेसे अक्षय पदकी प्राप्ति होती है।

पूर्वकालमें कुकर्दम नामक एक पापिष्ठ एवं दुर्धर्ष राजा रहता था, जो बड़ा ही खल, मूढ, अहंकारी, ब्राह्मणोंका निन्दक, गोहत्यारा, बालघाती और सदा उन्मत्त रहनेवाला था। पिण्डार नामक नगरमें वह राज्य करता था। एक समय अधर्मके ही योगमें उसकी मृत्यु हो गयी। मरनेपर वह प्रेत हुआ। उसे हवातक पीनेको नहीं मिलती थी; अत: वह अनेक प्रेतोंके साथ करुणस्वरमें रोता और हाहाकार मचाता हुआ इधर-उधर भटकता फिरता था। एक समय दैवयोगसे वह अपने गुरुके आश्रमपर जा पहुँचा। पूर्वजन्ममें उसने कुछ पुण्य किया था, जिसके योगसे उसे गुरुका सत्संग प्राप्त हुआ।

पार्वती! पूर्वजन्ममें वह वेदपाठी ब्राह्मण था और प्रतिदिन महादेवजीकी पूजा तथा अतिथियोंका स्वागत-सत्कार करके ही भोजन करता था। उस पुण्यके प्रभावसे वह श्रेष्ठ ब्राह्मण पिण्डारपुण्ड्रमें राजा कुकर्दमके रूपमें उत्पन्न हुआ। जबतक उसने राज्य किया, कभी मन और क्रियाद्वारा भी पुण्य कर्म नहीं किया था, इसलिये दैवात् मृत्यु होनेपर वह प्रेतराज हुआ। सूखा हुआ मुँह, कंकाल शरीर, पीला रंग, विकराल रूप और गहरी आँखें—यही उसकी आकृति थी। वह महापापी प्रेत अन्य दुष्ट प्रेतोंके साथ रहता था। उसके रोएँ ऊपरको उठे हुए थे। जटाओंसे युक्त होनेके कारण वह भयंकर जान पड़ता था। उसे इस रूपमें देखकर आश्रमवासी ब्राह्मण कहोड व्याकुल हो उठे।
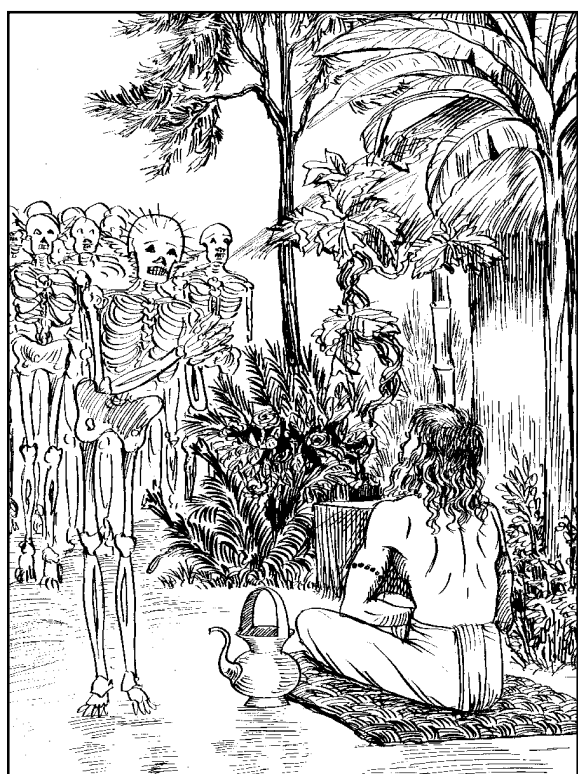
कहोड बोले—राजन्! यह अग्निपालेश्वर तीर्थ है। मैं इस परम अद्भुत, मनोरम एवं रमणीय स्थानमें प्रतिदिन निवास करता हूँ। तुम तो मेरे यजमान हो। फिर इस प्रकार प्रेतराज कैसे हो गये?

प्रेत बोला—देव! मैं वही पिण्डारपुरका कुकर्दम राजा हूँ। वहाँ रहकर मैंने जो कुछ किया है, उसे सुनिये। ब्राह्मणोंकी हिंसा, असत्यभाषण, प्रजाओंका उत्पीड़न, जीवोंकी हत्या, गौओंको दु:ख देना, सदा बिना स्नान

किये ही रहना, सज्जन पुरुषोंको कलंक लगाना, भगवान् विष्णु और वैष्णवोंकी सर्वदा निन्दा करना—यही मेरा काम था। मैं दुराचारी और दुरात्मा था। जहाँ जीमें आता, वहीं खा लेता। कभी भी शौचाचारका पालन नहीं करता था। द्विजराज! उसी पापकर्मके योगसे मैं मृत्युके बादसे प्रेतयोनिमें पड़ा हूँ। यहाँ नाना प्रकारके दुःख सहन करने पड़ते हैं। जिसके माता, पिता, स्वजन एवं बन्धु-बान्धव नहीं हैं, उसके लिये गुरु ही माता हैं और गुरु ही उत्तम गति हैं। ब्रह्मन्! ऐसा जानकर मुझे मोक्ष प्रदान कीजिये।

कहोडने कहा—राजन्! मैं तुम्हारी प्रार्थना पूर्ण करूँगा। तुम्हारे साथ जो ग्यारह प्रेत और हैं, इन्हें भी इस तीर्थमें मुक्ति दिलाऊँगा।

पार्वती! यों कहकर ब्राह्मण कहोडने सबके साथ तीर्थमें जाकर तिलसहित पिण्डदान एवं जलदानका कार्य किया। तीर्थमें मास और तिथिका कोई विचार नहीं है। वहाँ जाकर सदा ही श्राद्धादि कर्म करने चाहिये। यह बात पूर्वकालमें ब्रह्माजीने मुझसे कही थी। ब्राह्मणके द्वारा श्राद्धकी क्रिया पूर्ण होनेपर उस श्रेष्ठ तीर्थमें वे सभी प्रेत मुक्त हो गये और उत्तम विमानपर बैठकर मेरे धामको चले गये। सुरेश्वरि! जहाँ साभ्रमतीके साथ गोक्षुरा नदीका संगम हुआ है, वहाँ स्नान और दान करनेसे करोड़ यज्ञोंका फल होता है। कपालेश्वर क्षेत्रमें जहाँ अग्नितीर्थ है, वहाँ साभ्रमती नदी मुक्ति देनेवाली बतायी गयी है।
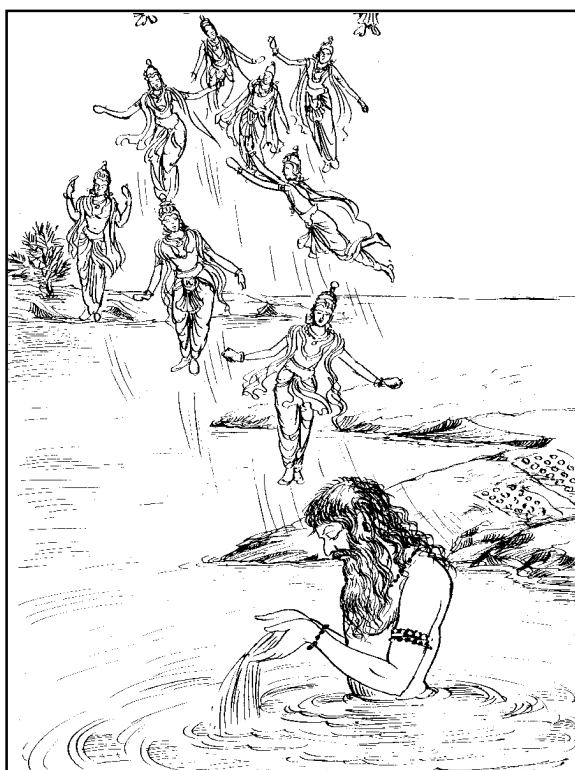
देवि! अब मैं दूसरे तीर्थ हिरण्यासंगमका वर्णन करता हूँ। वह महान् तीर्थ है। पूर्वकालमें जब साभ्रमती गंगा सात धाराओंमें विभक्त हुई, उस समय वह ब्रह्मतनया सप्तस्रोताके नामसे विख्यात हुई। उसके सातवें स्रोतको ही हिरण्या कहते हैं। ऋक्ष और मंजुमके बीचमें सत्यवान् नामक पर्वत है। उससे पूर्व दिशामें हिरण्यासंगम नामक महातीर्थ है, जिसमें स्नान और जलपान करनेसे मनुष्य शुभगतिको प्राप्त होता है। वहाँसे वनस्थलीमें जाय और पापहारी भगवान् नारायणका दर्शन करे। यह वही स्थान है, जहाँ भगवान् नर और नारायणने उत्तम तपस्या की थी। एक हजार कपिला गौओंके दानसे जो फल मिलता है, दशाश्वमेधतीर्थमें चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहणके समय स्नानसे जो पुण्य होता है तथा तुलापुरुषके दानसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, उसी पुण्यफलको मनुष्य हिरण्यासंगममें स्नान करके प्राप्त कर लेता है, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र—जो भी हिरण्यासंगममें स्नान करते हैं, वे शिवधामको जाते हैं।

देवि! अब मैं हिरण्यासंगमके बाद आनेवाले धर्मतीर्थका वर्णन करता हूँ, जहाँ साभ्रमती गंगाके साथ धर्मावती नदीका संगम हुआ है। वहाँ स्नान करके मनुष्य धन्य हो जाता है और निश्चय ही स्वर्गलोकको प्राप्त होता है। जो वहाँ धर्मद्वारा स्थापित तीर्थका दर्शन करता है, वह पुण्यका भागी होता है। जो लोग वहाँ श्राद्ध करते हैं, वे पितृऋणसे मुक्त हो जाते हैं। वहाँसे मधुरातीर्थकी यात्रा करे, जहाँ सब पापोंका नाश हो जाता है। मधुरातीर्थमें स्नान करके मधुर संज्ञक श्रीहरिका दर्शन करना चाहिये। कंसासुरका वध हो जानेके पश्चात् जब भगवान् श्रीकृष्ण द्वारकापुरीको जाने लगे, उस समय

उन्होंने चन्दना नदीके तटपर सात राततक निवास किया। उसके बाद भोज, वृष्णि और अन्धक-वंशियोंसे घिरे हुए वे समस्त यादव-वीरोंके साथ मधुरातीर्थमें आये और वहाँ विधिपूर्वक स्नान करके द्वारकापुरीको गये। जो मनुष्य तीर्थमें स्नान करके मधुर नामसे विख्यात भगवान् सूर्यकी पूजा करता है और माघके शुक्लपक्षकी सप्तमीको कपिला गौका दान करता है, वह इस लोकमें दीर्घकालतक सुख भोगनेके पश्चात् सूर्यलोकको जाता है।

साभ्रमती-तटके कपीश्वर, एकधार, सप्तधार और ब्रह्मवल्ली आदि तीर्थोंकी महिमाका वर्णन

महादेवजी कहते हैं—पार्वती! मनुष्य कम्बुतीर्थमें स्नान और पितृतर्पण करके रोग-शोकसे रहित देवदेवेश्वर भगवान् नारायणका पूजन करे। फिर ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक दान दे। ऐसा करनेपर वह उस तीर्थके प्रभावसे श्रीविष्णुधामको प्राप्त होता है। उसके बाद कपीश्वर नामक तीर्थकी यात्रा करे। वह रक्तसिंहके समीप है और महापातकोंका नाश करनेवाला है। पूर्वकालमें श्रीराम-रावण-युद्धके प्रारम्भमें जब समुद्रपर पुल बाँधा जा रहा था, उस समय इस पर्वतका शिखर लेकर कपियोंने इसका विशेषरूपसे स्मरण किया। उन्होंने यहाँ कपीश्वरादित्य नामक उत्तम तीर्थकी स्थापना की। उस तीर्थमें स्नान और पितृतर्पण करके कपीश्वरादित्यका दर्शन करनेपर मनुष्य ब्रह्महत्यासे मुक्त हो जाता है। कपीश्वरतीर्थमें विशेषतः चैत्रकी अष्टमीको स्नान करना चाहिये। हनुमान्जी आदि प्रमुख वीरोंने इस तीर्थमें तीन दिनोंतक स्नान किया था। पार्वती! इस प्रकार मैंने तुम्हारे लिये कपितीर्थके प्रभावका वर्णन किया है। वहाँसे परमपावन एकधार तीर्थको जाना चाहिये। जो एकधारमें स्नान करके एक रात्रि उपवास करता और स्वामिदेवेश्वरका पूजन करता है, वह अपनी सौ पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। वहाँ स्नान और जलपान करनेसे मनुष्य ब्रह्मलोकमें जाता है। तत्पश्चात् तीर्थयात्री पुरुष सप्तधार नामक तीर्थकी यात्रा करे। वह सब तीर्थोंमें उत्तम तीर्थ है। उस तीर्थको मुनियोंने सप्त-सारस्वत नाम दिया है। त्रेतायुगमें महर्षि मंकिने वहाँ मंकितीर्थका निर्माण किया था। फिर द्वापरमें पाण्डवोंने सप्तधार तीर्थको प्रवृत्त किया। भगवान् शंकरकी जटासे निकला हुआ गंगाजल यहाँ सात धाराओंके रूपमें प्रकट हुआ, इसलिये यह सप्तधार तीर्थ कहलाता है। सात लोकोंमें जो गंगाजीके सात रूप सुने जाते हैं, वे सभी इस सप्तधार नामक तीर्थमें अपने पवित्र जलको प्रवाहित करते हैं। सप्तधार तीर्थमें किया हुआ श्राद्ध पितरोंको तृप्ति प्रदान करनेवाला होता है।

देवेश्वरि! वहाँसे ब्रह्मवल्ली नामक महान् तीर्थकी यात्रा करे। उस तीर्थके स्वरूपका वर्णन सुनो। जहाँ साभ्रमती नदीका जल ब्रह्मवल्लीके जलसे मिला है, वह स्थान ब्रह्मतीर्थ कहलाता है। उसका महत्त्व प्रयागके समान माना गया है। ब्रह्माजीका कथन है कि वहाँ पिण्डदान करनेसे पितरोंको बारह वर्षोंतक तृप्ति बनी रहती है। विशेषतः ब्रह्मवल्लीमें पिण्डदानका गया-श्राद्धके समान पुण्य माना गया है। पुष्कर, गंगानदी और अमरकण्टक क्षेत्रमें जानेसे जो फल मिलता है, वह ब्रह्मवल्लीमें विशेषरूपसे प्राप्त होता है। चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहणके समय जो लोग दान करते हैं, उन्हें मिलनेवाला फल ब्रह्मवल्लीमें स्वतः प्राप्त हो जाता है। ब्रह्मवल्लीमें स्नान करके गलेमें तुलसीकी माला धारण किये भगवान् नारायणका स्मरण करता हुआ मनुष्य दिव्य वैकुण्ठधाममें जाता है, जो आनन्दस्वरूप एवं अविनाशी पद है।

तत्पश्चात् वृषतीर्थमें जाय, जो खण्डतीर्थके नामसे भी प्रसिद्ध है। पूर्वकालमें गौएँ वहाँ स्नान करके दिव्य गोलोकधामको प्राप्त हुई थीं। उस तीर्थमें निराहार रहकर जो गौओंके लिये पिण्डदान करता है, वह चौदह इन्द्रोंकी आयुपर्यन्त सुखी एवं अभ्युदयशाली होता है, करोड़ गौओंके दानसे मनुष्यको जिस फलकी प्राप्ति होती है, वह खण्डतीर्थमें निस्सन्देह प्राप्त हो जाता है। जो

खण्डतीर्थमें बैलका मूत्र लेकर पान करता है, उसकी तत्काल शुद्धि हो जाती है। खण्डतीर्थसे बढ़कर दूसरा कोई तीर्थ न हुआ है और न होगा। पार्वती! जो मनुष्य वहाँकी यात्रा करते हैं, वे पुण्यके भागी होते हैं। वहाँ जाकर गौओंका पूजन करना चाहिये। उसके बाद वृषभकी पूजा करके एकाग्रतापूर्वक पुनः स्नान करना चाहिये। गो-पूजनसे मनुष्य गोलोकमें नित्य निवास करता है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। जो वहाँ पाँच आँवलेके पौधे लगाते हैं, वे इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें श्रीहरिके परमधाममें जाते हैं।

तदनन्तर संगमेश्वर नामक उत्तम तीर्थकी यात्रा करे। वह बहुत बड़ा तीर्थ है। वहाँ पुण्यमयी हस्तिमती नदी साभ्रमतीसे मिली है। वह नदी कौण्डिन्य मुनिके शापसे सूख गयी थी। तबसे लोकमें बहिश्चर्याके नामसे उसकी ख्याति हुई। वह त्रिलोक-विख्यात तीर्थ परमपवित्र और सब पापोंको हरनेवाला है। मनुष्य उस तीर्थमें स्नान तथा महेश्वरका दर्शन करके सब पापोंसे मुक्त होता और रुद्रके लोकमें जाता है। देवि! जिस प्रकार शाप मिलनेके कारण उस नदीका जल सूख गया था, वह प्रसंग बतलाता हूँ; सुनो। जहाँ परमपवित्र महानदी साभ्रमती गंगा और हस्तिमती नदीका संगम हुआ है, वहीं मुनिवर कौण्डिन्यने बड़ी भारी तपस्या आरम्भ की। इस प्रकार बहुत समयतक उन्होंने समस्त इन्द्रियोंके स्वामी शुद्ध-बुद्ध भगवान् नारायणकी आराधना की। एक समय दैवयोगसे वर्षाकाल उपस्थित हुआ। नदी जलसे भर गयी। तब कौण्डिन्य ऋषिने उस स्थानको छोड़ दिया। किन्तु रातमें नदीकी बाढ़के कारण उन्हें बड़ा कष्ट हुआ। वे चिन्तित होकर सोचने लगे 'अब क्या करना चाहिये?' उनका आश्रम दिव्य शोभासे सम्पन्न और महान् था। किन्तु जलके वेगसे वह हस्तिमती नदीमें बह गया। उनके पास जो बहुत-से फल-मूल और पुस्तकें थीं, वे भी नदीमें बह गयीं। तब मुनिश्रेष्ठ कौण्डिन्यने उस नदीको शाप दिया—'अरी! तू कलियुगमें बिना जलकी हो जायगी।' पार्वती! इस प्रकार हस्तिमतीको शाप देकर विप्रवर कौण्डिन्य सनातन विष्णुधामको चले गये। आज भी वह संगमेश्वर नामक तीर्थ मौजूद है, जिसका दर्शन करके पापी मनुष्य ब्रह्महत्या आदि पातकसे मुक्त हो जाता है।

देवेश्वरि! वहाँसे तीर्थयात्री मनुष्य रुद्रमहालय नामक तीर्थकी यात्रा करे। वह केदार तीर्थके समान अनुपम है। साक्षात् रुद्रने उसका निर्माण किया है। वहाँ अवश्य श्राद्ध करना चाहिये; क्योंकि वह पितरोंकी पूर्ण तृप्तिका कारण होता है। उस तीर्थमें श्राद्ध करनेसे पितर और पितामह तृप्त हो रुद्रके परमपदको प्राप्त होते हैं। जो रुद्रमहालय तीर्थमें कार्तिक एवं वैशाखकी पूर्णिमाको वृषोत्सर्ग करता है, वह रुद्रके साथ आनन्दका भागी होता है। केदार तीर्थमें जलपान करनेमें मनुष्यका पुनर्जन्म नहीं होता। वहाँ स्नान करनेमात्रसे वह मोक्षका भागी हो जाता है। देवि! एक समय मैं साभ्रमती नामक महागंगाका महत्त्व जानकर कैलास छोड़ यहाँ आया था और लोकहितके लिये यहाँ स्नान तथा जलपान करके इसे परम उत्तम तीर्थ बनाकर पुनः अपने कैलासधामको लौट गया। तबसे महालय परम पुण्यमय तीर्थ हो गया। संसारमें इसकी रुद्रमहालयके नामसे ख्याति हुई। देवि! जो कार्तिक और वैशाखकी पूर्णिमाको यहाँकी यात्रा करते हैं, उन्हें फिर कभी संसारजनित दुःखकी प्राप्ति नहीं होती।

पार्वती! अब देवताओंके लिये भी दुर्लभ उत्तम तीर्थका वर्णन सुनो। वह खड्गतीर्थके नामसे विख्यात और समस्त पापोंका नाश करनेवाला है। खड्गतीर्थमें स्नान करके खड्गेश्वर शिवका दर्शन करनेसे मनुष्य कभी दुर्गतिमें नहीं पड़ता और अन्तमें स्वर्गलोकको जाता है। जो खड्गधारेश्वर महादेवका दर्शन करता और कार्तिककी पूर्णिमाको उनकी विशेषरूपसे पूजा करता है, उसको ये सर्वेश्वर भगवान् विश्वनाथ सदा इस पृथ्वीपर सब प्रकारका सुख देते हैं; क्योंकि ये मनोवांछित फल देनेवाले हैं।

साभ्रमतीके तटपर चित्रांगवदन नामक एक तीर्थ है, जो गयासे भी श्रेष्ठ है। उस शुभकारक तीर्थके अधिष्ठातृ देवता मालार्क नामके सूर्य हैं। जिसको कोढ़ हो गयी हो,

वह मनुष्य यदि उस तीर्थमें जाय तो भगवान् मालार्क उसकी कोढ़को दूर कर देते हैं। जो नारी शास्त्रोक्तविधिसे वहाँ अभिषेक करती है, वह मृतवत्सा हो या वन्ध्या, शीघ्र ही पुत्र प्राप्त करती है। उस तीर्थमें रविवारके दिन यदि स्नान, सन्ध्या, जप, होम, स्वाध्याय और देवपूजन किये जायँ तो वे अक्षय हो जाते हैं। देवेश्वरि! वहाँ जाकर श्रीसूर्यका व्रत करना चाहिये। ऐसा करनेसे मनुष्य इस लोकमें सुख भोगकर सूर्यलोकको जाता है। जो उस तीर्थमें जाकर विशेषरूपसे उपवास करता और इन्द्रियोंको वशमें करके भगवान् मालार्कका पूजन करता है, वह निश्चय ही मोक्षका भागी होता है।

इस तीर्थके बाद दूसरे तीर्थमें जाय, जो मालार्कसे उत्तरमें स्थित है। उसका नाम है—चन्दनेश्वर तीर्थ। वह उत्तम स्थान सदा चन्दनकी सुगन्धसे सुवासित रहता है। वहाँ स्नान, जलपान और पितृतर्पण करनेसे मनुष्य कभी नरकमें नहीं पड़ता और रुद्रलोकको प्राप्त होता है। वहाँ जगत्का कल्याण करनेवाले विश्वके स्वामी भगवान् चन्दनेश्वरका दर्शन करके रुद्रलोककी इच्छा रखनेवाला पुरुष यथाशक्ति उनका पूजन करे। उस तीर्थमें कल्याण प्रदान करनेवाले साक्षात् परमात्मा श्रीविष्णु नित्य निवास करते हैं। धन्य है साभ्रमती नदी और धन्य हैं विश्वके स्वामी भगवान् शिव एवं विष्णु!

वहाँसे पापनाशक जम्बूतीर्थमें स्नान करनेके लिये जाय। कलियुगमें वह तीर्थ मनुष्योंके लिये स्वर्गकी सीढ़ीके समान स्थित है। पूर्वकालमें जाम्बवान्ने वहाँ दशांग पर्वतपर अपने नामसे एक शिवलिंगकी स्थापना की थी। वहाँ स्नान करके मनुष्य तत्काल श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणका स्मरण करे तथा जाम्बवतेश्वर शिवको मस्तक झुकाये तो वह रुद्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। देवि! जहाँ-जहाँ श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण किया जाता है, वहाँ-वहाँ सम्पूर्ण चराचर जगत्में भव-बन्धनसे छुटकारा देखा जाता है। मुझे ही श्रीराम जानना चाहिये और श्रीराम ही रुद्र हैं—यों जानकर कहीं भेददृष्टि नहीं रखनी चाहिये। जो मन-ही-मन 'राम! राम! राम!' इस प्रकार जप किया करते हैं, उनके समस्त मनोरथोंकी प्रत्येक युगमें सिद्धि हुआ करती है। देवि! मैं सदा श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण किया करता हूँ। श्रीरामचन्द्रजीका नाम श्रवण करनेसे कभी भव-बन्धनकी प्राप्ति नहीं होती। पार्वती! मैं काशीमें रहकर प्रतिदिन भक्तिपूर्वक कमलनयन श्रीरघुनाथजीका निरन्तर स्मरण किया करता हूँ। जाम्बवान्ने पूर्वकालमें परम सुन्दर श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण करके जम्बूतीर्थमें जाम्बवत नामसे प्रसिद्ध शिवलिंगको स्थापित किया था। वहाँ स्नान, देवपूजन तथा भोजन करके मनुष्य शिवलोकको प्राप्त होता है और वहाँ चौदह इन्द्रोंकी आयुपर्यन्त निवास करता है। वहाँसे इन्द्रग्राम नामक उत्तम तीर्थमें जाना चाहिये, जहाँ पूर्वकालमें स्नान करके इन्द्र घोर पापसे मुक्त हुए थे।

श्रीपार्वतीजीने पूछा—भगवन्! इन्द्रको किस कर्मसे घोर पाप लगा था और किस प्रकार वे पापरहित हुए! उस प्रसंगको विस्तारके साथ सुनाइये।

श्रीमहादेवजी बोले—देवि! पूर्वकालमें देवराज इन्द्र और असुरोंके स्वामी नमुचिने परस्पर यह प्रतिज्ञा की कि हम दोनों एक-दूसरेका बिना किसी शस्त्रकी सहायता लिये वध करें; परन्तु इन्द्रने आकाशवाणीके कथनानुसार जलका फेन लेकर उसीसे नमुचिको मार डाला। तब इन्द्रको ब्रह्महत्या लगी। उन्होंने गुरुके पास जाकर अपने पापकी शान्तिका उपाय पूछा। फिर बृहस्पतिजीके आज्ञानुसार वे साभ्रमती नदीके उत्तर तटपर आये और वहाँ उन्होंने स्नान किया। इससे उनका सारा पाप तत्काल दूर हो गया। शरीरमें पूर्ण चन्द्रमाके समान उज्ज्वल कान्ति छा गयी। तब इन्द्रने वहाँ धवलेश्वर नामक शिवकी स्थापना की।

वह शिवलिंग इस पृथ्वीपर इन्द्रके ही नामसे प्रसिद्ध हुआ। वहाँ पूर्णिमा, अमावास्या, संक्रान्ति और ग्रहणके दिन श्राद्ध करनेपर पितरोंको बारह वर्षोंतक तृप्ति बनी रहती है। जो धवलेश्वरके पास जाकर ब्राह्मण-भोजन कराता है, उसके एक ब्राह्मणको भोजन करानेपर सहस्र ब्राह्मणोंको भोजन करानेका फल होता है। वहाँ अपनी शक्तिके अनुसार सुवर्ण, भूमि और वस्त्रका दान करना चाहिये। ब्राह्मणको श्वेत रंगकी दूध देनेवाली गौ

बछड़ेसहित दान करनी चाहिये। जो ब्राह्मण यहाँ आकर रुद्रमन्त्रका जप आदि करता है, उसका शुभ कर्म वहाँ भगवान् शंकरजीके प्रसादसे कोटिगुना फल देनेवाला होता है । जो मनुष्य उस तीर्थमें आकर उपवास आदि करता है, वह अपनी सम्पूर्ण कामनाओंको निस्सन्देह प्राप्त कर लेता है। जो बिल्वपत्र लाकर भगवान् धवलेश्वरकी पूजा करता है, वह मानव इस पृथ्वीपर धर्म, अर्थ और काम—तीनों प्राप्त करता है, विशेषतः सोमवारको जो श्रेष्ठ मनुष्य वहाँकी यात्रा करते हैं, उनके रोग-दोषको भगवान् धवलेश्वर शान्त कर देते हैं। जो सदा रविवारको उनका विशेषरूपसे पूजन करता है, उसकी महिमाका ज्ञान मुझे कभी नहीं हुआ। जो दूर्वादल, मदारके फूल, कह्लारपुष्प तथा कोमल पत्तियोंसे श्रीधवलेश्वरका पूजन करते हैं, वे मनुष्य पुण्यके भागी होते हैं। श्वेत मदारका फूल लाकर उसके द्वारा धवलेश्वरकी पूजा करके उन्हींके प्रसादसे मनुष्य सदा मनोवांछित फल पाता है। सत्ययुगमें भगवान् नीलकण्ठके नामसे प्रसिद्ध होकर सबका कल्याण करते थे। फिर त्रेतायुगमें वे भगवान् हरके नामसे विख्यात हुए, द्वापरमें उनकी शर्व संज्ञा होती है और कलियुगमें वे धवलेश्वर नामसे प्रसिद्ध होते हैं। जो श्रेष्ठ मानव यहाँ स्नान और दान करते हैं, वे धर्म, अर्थ और कामका उपभोग करके शिवधामको जाते हैं। चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण तथा पिताकी वार्षिक तिथिको श्राद्ध करनेसे जो फल मिलता है, उसे धवलेश्वर तीर्थमें मनुष्य अनायास ही प्राप्त कर लेता है। देवि! धवलेश्वरमें कालसे प्रेरित होकर सदा ही जो प्राणी मृत्युको प्राप्त होते हैं, वे जबतक सूर्य और चन्द्रमा हैं तबतक शिवधाममें निवास करते हैं।

साभ्रमती-तटके बालार्क, दुर्धर्षेश्वर तथा खड्गधार आदि तीर्थोंकी महिमाका वर्णन

श्रीमहादेवजी कहते हैं—साभ्रमतीके तटपर बालार्क नामका श्रेष्ठ तीर्थ है, जो भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है। मनुष्य उस बालार्कतीर्थमें स्नान करके पवित्रतापूर्वक तीन रात निवास करे और सूर्योदयके समय बाल-सूर्यके मुखका दर्शन करे। ऐसा करनेसे वह निश्चय ही सूर्यलोकको प्राप्त होता है। रविवार, संक्रान्ति, सप्तमी तिथि, विषुवयोग, अयनके आरम्भ-दिवस, चन्द्रग्रहण तथा सूर्यग्रहणके दिन स्नान करके देवताओं, पितरों और पितामहोंका तर्पण करे। फिर ब्राह्मणोंको गुड़मयी धेनु और गुड़-भात दान करे। तत्पश्चात् कनेर और जपाके फूलोंसे बाल-सूर्यका पूजन करना चाहिये। जो मनुष्य ऐसा करते हैं, वे सूर्यलोकमें निवास करते हैं। जो मानव वहाँ दूध देनेवाली लाल गौ तथा बोझ ढोनेमें समर्थ एक बैल दान करता है, वह यज्ञका फल पाता है और कभी भी नरकमें नहीं पड़ता। इतना ही नहीं, यदि वह रोगी हो तो रोगसे और कैदी हो तो बन्धनसे मुक्त हो जाता है। इस तीर्थमें पिण्डदान करनेसे पितामहगण पूर्ण तृप्त होते हैं।

पूर्वकालकी बात है, एक बुड्ढा भैंसा, जो वृद्धावस्थाके कारण जर्जर हो रहा था, बोझ ढोनेमें असमर्थ हो गया। यह देख व्यापारीने उसको रास्तेमें ही त्याग दिया। गरमीका महीना था, वह पानी पीनेके लिये महानदी साभ्रमतीके तटपर आया। दैववश वह भैंसा कीचड़में फँस गया, जिससे उसकी मृत्यु हो गयी। नदीके पवित्र जलमें उसकी हड्डियाँ बह गयीं। उस तीर्थके प्रभावसे वह भैंसा कान्यकुब्ज देशके राजाका पुत्र हुआ। क्रमशः बड़े होनेपर उसे राज्यसिंहासनपर बिठाया गया। उसे अपने पूर्वजन्मका स्मरण बना रहा। वहाँ अपने पूर्ववृत्तान्तको याद करके उस तीर्थके प्रभावका विचार कर वह राजा उक्त तीर्थमें आया और वहाँके जलमें स्नान करके उसने अनेक प्रकारके दान किये। साथ ही उस तीर्थमें राजाने देवाधिदेव महेश्वरकी स्थापना की। वहाँ स्नान करके महिषेश्वरका पूजन तथा बाल-सूर्यके मुखका दर्शन करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। यों तो समूची साभ्रमती नदी ही परम पवित्र है, किन्तु बालार्कक्षेत्रमें उसकी पावनता विशेष बढ़ गयी है।

उसका नामोच्चारणमात्रसे मनुष्य बड़े-बड़े पापोंसे भी छुटकारा पा जाता है। साभ्रमती नदीका जल जहाँ पूर्वसे पश्चिमकी ओर बहता है, वह स्थान प्रयागसे भी अधिक पवित्र, समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला और महान् है। वहाँ ब्राह्मणोंको दिया हुआ गौ, भूमि, तिल, सुवर्ण, वस्त्र, अन्न, शय्या, भोजन, वाहन और छत्र आदिका दान, अग्निमें किया हुआ हवन, पितरोंके लिये किया गया श्राद्ध तथा जप आदि कर्म अक्षय हो जाता है। उस तीर्थमें मनुष्य जिस-जिस वस्तुकी कामना करता है, वह-वह उसे महेश्वरकी कृपा तथा तीर्थके प्रभावसे प्राप्त होती है।

अब दुर्धर्षेश्वर नामक एक दूसरे उत्तम तीर्थका वर्णन करता हूँ। उसके स्मरण करनेमात्रसे पापी भी पुण्यवान् हो जाता है। देवासुर-संग्रामकी समाप्ति और दैत्योंका संहार हो जानेपर भृगुनन्दन शुक्राचार्यने वहाँ कठोर व्रतका पालन करके लोक-सृष्टिके कारणभूत दुर्धर्ष देवता महादेवजीकी समाराधना की और उनसे दैत्योंके जीवनके लिये मृतसंजीवनी विद्या प्राप्त की। तबसे यह तीर्थ भूमण्डलमें उन्हींके नामपर विख्यात हुआ। काव्यतीर्थमें स्नान करके दुर्धर्षेश्वर नामक महादेवका पूजन करनेसे मनुष्य सब पापोंसे छुटकारा पा जाता है।

साभ्रमती नदीके तटपर खड्गधार नामसे विख्यात एक परम पावन तीर्थ है, जो अब गुप्त हो गया है और जहाँ प्रसंगवश भी कभी अचानक स्नान और जलपान कर लेनेपर मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो रुद्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। वहाँ कश्यपके पीछे जाती हुई पवित्र साभ्रमती नदीको पातालकी ओर जाते देख रुद्रने उसे अपने जटाजूटमें धारण कर लिया तथा वे रुद्र खड्गधार नामसे विख्यात होकर वहीं रहने लगे। देवेश्वरि! वहाँ स्नान करनेसे पापी भी स्वर्गमें चले जाते हैं। पार्वती! माघमें, वैशाखमें तथा विशेषतः कार्तिककी पूर्णिमाको जो वहाँ स्नान करते हैं, वे मुक्त हो जाते हैं। वसिष्ठ, वामदेव, भारद्वाज और गौतम आदि ऋषि वहाँ स्नान तथा भगवान् शिवका दर्शन करनेके लिये आया करते हैं। यदि मनुष्य मेरे स्थानपर जाकर विशेषरूपसे मेरा पूजन करता है तो उसका सारा पाप तत्काल नष्ट हो जाता है। जो इस तीर्थमें मेरी मिट्टीकी मूर्ति बनाकर पूजते हैं, वे मेरे परमधाममें निवास करते हैं। मेरा विग्रह कलियुगमें खड्गधारेश्वरके नामसे विख्यात होता है। सत्ययुगमें मैं 'मन्दिर' कहलाता हूँ और त्रेतामें 'गौरव'। द्वापरमें मेरा 'विश्वविख्यात' नाम होता है और कलियुगमें 'खड्गेश्वर' या 'खड्गधारेश्वर'। इस तीर्थके दक्षिणभागमें मेरा स्थान है—यह जानकर जो विद्वान् वहीं मेरी मूर्ति बनाता और नित्य उसकी पूजा करता है, उसे मनोवांछित फलकी प्राप्ति होती है। वह मानव धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंको प्राप्त कर लेता है। देवेश्वरि! जो लोग लोकनाथ महेश्वरको धूप, दीप, नैवेद्य तथा चन्दन आदि अर्पण करते हैं, उन्हें कभी दुःख नहीं होता।

खड्गधार तीर्थसे दक्षिणकी ओर परम पावन दुग्धेश्वर तीर्थ बताया गया है, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है। उस तीर्थमें स्नान करके दुग्धेश्वर शिवका दर्शन करनेपर मनुष्य पापजनित दुःखसे तत्काल छुटकारा पा जाता है। साभ्रमतीके सुन्दर तटपर जहाँ परम पुण्यमयी चन्द्रभागा नदी आकर मिली है, महर्षि दधीचिने भारी तपस्या की थी। वहाँ किये हुए स्नान, दान, जप, पूजा और तप आदि समस्त शुभ कर्म दुग्धतीर्थके प्रभावसे अक्षय होते हैं।

दुग्धेश्वर तीर्थसे पूर्वकी ओर एक परम पावन तीर्थ है, जहाँ साभ्रमतीमें चन्द्रभागा नदी मिली है। वहाँ पुण्यदाता चन्द्रेश्वर नामक महादेवजी नित्य विराजमान रहते हैं। जो सम्पूर्ण लोकोंको सुख देनेवाले, परम महान् और सर्वत्र व्यापक हैं, वे ही भगवान् 'हर' वहाँ निवास करते हैं। उस तीर्थमें चन्द्रमाने दीर्घकालतक तप किया था और उन्होंने ही चन्द्रेश्वर नामक महादेवकी स्थापना की थी। वहाँ स्नान, जलपान और शिवकी पूजा करनेवाले मनुष्य धर्म और अर्थ प्राप्त करते हैं। जो लोग वहाँ विशेषरूपसे वृषोत्सर्ग आदि कर्म करते हैं, वे पहले स्वर्ग भोगकर पीछे शिवधामको जाते हैं। जो दूसरे तटपर जाकर समस्त पापोंका नाश करनेवाले चन्द्रेश्वर नामक

शिवकी अर्चना करते हैं तथा विशेषत: रुद्रके मन्त्रोंका जप करते हैं, उन्हें शिवका स्वरूप समझना चाहिये। देवि! जो यहाँ सर्वदा स्नान करते हैं, उन मनुष्योंको निस्सन्देह विष्णुस्वरूप जानना चाहिये। जो तिलपिण्डसे यहाँ श्राद्ध करते हैं, वे भी उसके प्रभावसे विष्णुधामको जाते हैं। यहाँ विधिपूर्वक स्नान और दान करना चाहिये। स्नान करनेपर ब्रह्महत्या आदि पापोंसे भी छुटकारा मिल जाता है। इस तटपर जो विशेषरूपसे वटका वृक्ष लगाते हैं, वे मृत्युके पश्चात् शिवपदको प्राप्त होते हैं।

दुग्धेश्वरके समीप एक अत्यन्त पावन तथा रमणीय तीर्थ है, जो इस पृथ्वीपर पिप्पलादके नामसे प्रसिद्ध है। देवेश्वरि! वहाँ स्नान और जलपान करनेसे ब्रह्महत्याका पाप दूर हो जाता है। साभ्रमतीके तटपर पिप्पलाद तीर्थ गुप्त है। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य मोक्षका भागी होता है। वहाँ विधिपूर्वक पीपलका वृक्ष लगाना चाहिये। ऐसा करनेपर मनुष्य कर्म-बन्धनसे मुक्त हो जाता है। पिप्पलाद तीर्थसे आगे साभ्रमतीके तटपर निम्बार्क नामक उत्तम तीर्थ है, जो व्याधि तथा दुर्गन्धका नाश करनेवाला है। पूर्वकालमें कोलाहल दैत्यके साथ युद्धमें दानवोंके द्वारा परास्त होकर देवतालोग सूक्ष्म-शरीर धारण करके प्राणरक्षाके लिये यहाँ वृक्षोंमें समा गये थे। वहाँ जानेपर विशेषरूपसे भगवान् सूर्यका पूजन करना चाहिये। पार्वती! सूर्यके पूजनसे मनोवांछित फलकी प्राप्ति होती है। जो मनुष्य इस तीर्थमें जाकर सूर्यके बारह नामोंका पाठ करते हैं, वे जीवनभर पुण्यात्मा बने रहते हैं। वे नाम इस प्रकार हैं—आदित्य, भास्कर, भानु, रवि, विश्वप्रकाशक, तीक्ष्णांशु, मार्तण्ड, सूर्य, प्रभाकर, विभावसु, सहस्राक्ष तथा पूषा।* पार्वती! जो विद्वान् एकाग्रचित्त होकर इन बारह नामोंका पाठ करता है, वह धन, पुत्र और पौत्र प्राप्त करता है। जो मनुष्य इनमेंसे एक-एक नामका उच्चारण करके सूर्यदेवका पूजन करता है, वह ब्राह्मण हो तो सात जन्मोंतक धनाढ्य एवं वेदोंका पारगामी होता है। क्षत्रिय हो तो राज्य, वैश्य हो तो धन और शूद्र हो तो भक्ति पाता है। इसलिये उपर्युक्त नाममय उत्तम सूक्तका जप करना चाहिये।

पार्वती! निम्बार्क तीर्थसे बहुत दूर जानेपर परम उत्तम सिद्धक्षेत्र आता है।

उपर्युक्त तीर्थके बाद तीर्थराज नामसे विख्यात एक उत्तम तीर्थ है, जहाँ सात नदियाँ बहती हैं। अन्य तीर्थोंकी अपेक्षा यहाँके स्नानमें सौगुनी विशेषता है। यहाँ देवताओंमें श्रेष्ठ साक्षात् भगवान् वामन विराजमान हैं। जो माघ मासकी द्वादशीको तिलकी धेनुका दान करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो अपनी सौ पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। यदि मनुष्य शुद्धचित्त होकर यहाँ केवल तिलमिश्रित जल भी पितरोंको अर्पण करे तो उसके द्वारा हजार वर्षोंतकके लिये श्राद्ध-कर्म सम्पन्न हो जाता है। इस रहस्यको साक्षात् पितर ही बतलाते हैं। जो इस तीर्थमें ब्राह्मणोंको गुड़ और खीर भोजन कराते हैं, उनको एक-एक ब्राह्मणके भोजन करानेपर सहस्र-सहस्र ब्राह्मणोंको भोजन करानेका फल मिलता है।

तदनन्तर, साभ्रमतीके तटपर गुप्तरूपसे स्थित सोमतीर्थकी यात्रा करे, जहाँ कालाग्निस्वरूप भगवान् शिव पातालसे निकलकर प्रकट हुए थे। सोमतीर्थमें स्नान करके सोमेश्वर शिवका दर्शन करनेसे नि:सन्देह सोमपानका फल प्राप्त होता है। वहाँ स्नान करनेवाला पुरुष परलोकमें कल्याण प्राप्त करता है। जो सोमवारके दिन भगवान् सोमेश्वरके मन्दिरमें दर्शनके लिये जाता है, वह सोमलिंगकी कृपासे मनोवांछित फल प्राप्त करता है। जो श्वेत रंगके फूलोंसे, कनेरके पुष्पोंसे तथा पारिजातके प्रसूनोंसे पिनाकधारी श्रीमहादेवजीकी पूजा करते हैं, वे परम उत्तम शिवधामको प्राप्त होते हैं।

वहाँसे कापोतिक तीर्थकी यात्रा करे, जहाँ साभ्रमतीका जल पश्चिमसे पूर्वकी ओर बहता है। जो मनुष्य पितृ-तर्पणपूर्वक वहाँ पिण्डदान करता है तथा

---

* आदित्यं भास्करं भानुं रविं विश्वप्रकाशकम्। तीक्ष्णांशुं चैव मार्तण्डं सूर्यं चैव प्रभाकरम्॥
विभावसुं सहस्राक्षं तथा पूषणमेव च। ....॥ (१५१। ९-१०)

प्रत्येक पर्वपर वनके फूलों और फलोंसे कौवे तथा कुत्ते आदिको बलि अर्पण करता है, वह यमराजके मार्गको सुखपूर्वक लाँघ जाता है। जो वैशाखकी पूर्णिमाको उस तीर्थमें स्नान करके पीली सरसोंसे परम उत्तम प्राचीनेश्वर नामक शिवकी पूजा करता है, वह अपनेको तो तारता ही है, अपने पितरों और पितामहोंका भी उद्धार कर देता है। यह वही स्थान है, जहाँ एक कबूतरने अपने अतिथिको प्रसन्नतापूर्वक अपना शरीर दे दिया था और विमानपर बैठकर सम्पूर्ण देवताओंके मुखसे अपनी प्रशंसा सुनता हुआ वह स्वर्गलोकमें गया था। तभीसे वह तीर्थ कापोत तीर्थके नामसे विख्यात हुआ। वहाँ स्नान और जलपान करनेसे मनुष्यकी ब्रह्महत्या दूर हो जाती है।

अत: देवि! उस तीर्थमें जानेपर सदा ही अतिथिका पूजन करना चाहिये। अतिथिका पूजन करनेपर वहाँ निश्चय ही सब कुछ प्राप्त होता है।

वहाँसे आगे काश्यप ह्रदके समीप गोतीर्थ है, जो सब तीर्थोंमें श्रेष्ठ और महापातकोंका नाश करनेवाला है। ब्रह्महत्याके समान भी जो कोई पाप हैं, वे गोतीर्थमें स्नान करनेसे निस्सन्देह नष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य वहाँ स्नान करके गौओंको एक दिनका भोजन देता है, वह गो-माताओंके प्रसादसे मातृ-ऋणसे मुक्त हो जाता है। जो गोतीर्थमें जानेपर स्नान करके श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको दूध देनेवाली गौ दान करता है, वह ब्रह्मपदको प्राप्त होता है।

यहाँ एक दूसरा भी महान् तीर्थ है, जो काश्यप कुण्डके नामसे प्रसिद्ध है। वहाँ कुशेश्वर नामक महादेवजी विराजते हैं। उनके पास ही कश्यपजीका बनवाया हुआ सुन्दर कुण्ड है। उसमें स्नान करनेसे मनुष्य कभी नरकमें नहीं पड़ता। महादेवि! काश्यपके तटपर नित्य अग्निहोत्र करनेवाले तथा वेदोंके स्वाध्यायमें तत्पर रहनेवाले अनेक शास्त्रोंके ज्ञाता ब्राह्मण निवास करते हैं। जैसा काशीका माहात्म्य है, वैसा ही इस ऋषिनिर्मित नगरीका भी है। महर्षि कश्यपने यहाँ रहकर बड़ी भारी तपस्या की है तथा वे भगवान् शंकरकी जटासे प्रकट होनेवाली गंगाको यहाँ ले आये हैं। यह काश्यपी गंगा बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाली है। उसके दर्शनमात्रसे मनुष्य घोर पापसे छुटकारा पा जाते हैं। वहाँ गो-दान और रथ-दानकी प्रशंसा की जाती है। उस तीर्थमें श्राद्ध करके यत्नपूर्वक दान देना चाहिये। भयंकर कलियुगमें वह तीर्थ महापातकोंका नाश करनेवाला है। वहाँसे भूतालय तीर्थमें जाना चाहिये, जो पापोंका अपहरण करनेवाला और उत्तम तीर्थ है। वहाँ भूतोंका निवासभूत वटका वृक्ष है और पूर्ववाहिनी चन्दना नदी है। भूतालयमें स्नान करके भूतोंके निवासभूत वटका दर्शन करनेपर भगवान् भूतेश्वरके प्रसादसे मनुष्यको कभी भय नहीं प्राप्त होता। वहाँसे आगे घटेश्वर नामका उत्तम तीर्थ है, जहाँ स्नान और दर्शन करनेसे मानव निश्चय ही मोक्षका भागी होता है। वहाँ जाकर जो विशेषरूपसे पाकरकी पूजा करता है, वह इस पृथ्वीपर मनोवांछित कामनाओंको प्राप्त करता है।

वहाँसे मनुष्य भक्तिपूर्वक वैद्यनाथ नामक तीर्थमें जाय और उसमें स्नान करके शिवजीकी पूजा करे। वहाँ विधिपूर्वक पितरोंका तर्पण करनेसे सम्पूर्ण यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। वहाँ देवताओंसे प्रकट हुआ विजय तीर्थ है, जिसका दर्शन करनेसे मनुष्य सदा भाँति-भाँतिके मनोवांछित भोग प्राप्त करते हैं। वैद्यनाथ तीर्थसे आगे तीर्थोंमें उत्तम देवतीर्थ है, जो सब प्रकारकी सिद्धियोंको देनेवाला है। वहाँ धर्मपुत्र युधिष्ठिरने राक्षसराज विभीषणसे कर लेकर राजसूय नामक महान् यज्ञ आरम्भ किया था। पाण्डुपुत्र नकुलने दक्षिण दिशापर विजय पानेके बाद साभ्रमती नदीके तटपर बड़ी भक्तिके साथ पाण्डुरार्य्या नामसे विख्यात देवीकी स्थापना की थी, जो भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली है। साभ्रमतीके जलमें स्नान करके पाण्डुरार्य्याको नमस्कार करनेवाला मनुष्य अणिमा आदि आठ सिद्धियों तथा प्रचुर मेधाशक्तिको प्राप्त करता है। यदि मानव शुद्धभावसे पाण्डुरार्य्याको नमस्कार कर ले तो उसके द्वारा एक वर्षतककी पूजा सम्पन्न हो गयी—ऐसा जानना चाहिये। देवतीर्थमें पाण्डुरार्य्याके समीप जिसकी मृत्यु होती है, वह कैलास-शिखरपर पहुँचकर भगवान् चन्द्रेश्वरका गण होता है।

उस तीर्थसे आगे चण्डेश नामका उत्तम तीर्थ है, जहाँ सबको ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले भगवान् चण्डेश्वर नित्य निवास करते हैं। उनका दर्शन करनेसे मनुष्य अनजानमें अथवा जान-बूझकर किये हुए पापसे छुटकारा पा जाता है। सम्पूर्ण देवताओंने मिलकर एक नगरका निर्माण किया, जो भगवान् चण्डेश्वरके नामसे ही विख्यात है। वहाँसे आगे गणपति-तीर्थ है, जो बहुत ही उत्तम है। वह साभ्रमतीके समीप ही विख्यात है। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य निस्सन्देह मुक्त हो जाता है। साभ्रमतीके पावन तटपर लोगोंकी कल्याण-कामनासे पृथ्वीके अन्य सब तीर्थोंका परित्याग करके जो भगवान् रुद्रमें भक्ति रखता हुआ जितेन्द्रियभावसे श्राद्ध करता है, वह शुद्धचित्त होकर सब यज्ञोंका फल पाता है। उस तीर्थमें स्नान करके ब्राह्मणको वृषभ दान करना चाहिये। ऐसा करनेवाला पुरुष सब लोकोंको लाँघकर परम गतिको प्राप्त होता है।

वार्त्रघ्नी आदि तीर्थोंकी महिमा

श्रीमहादेवजी कहते हैं—महादेवि! तदनन्तर उस तीर्थमें जाना चाहिये, जहाँ परम साध्वी गिरिकन्या वार्त्रघ्नीके साथ इन्द्रका समागम हुआ था। जो मनुष्य अपने मनको संयममें रखते हुए वहाँ स्नान करते हैं, उन्हें दस अश्वमेधयज्ञोंका फल प्राप्त होता है। जो पुरुष वहाँ तिलके चूर्णसे पिण्ड बनाकर श्राद्ध करता है, वह अपनेसे पहलेकी सात और बादकी सात पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। संगममें विधिपूर्वक स्नान करके गणेशजीका भलीभाँति पूजन करनेवाला मनुष्य कभी विघ्न-बाधाओंसे आक्रान्त नहीं होता और लक्ष्मी भी कभी उसका त्याग नहीं करती।

पूर्वकालमें वृत्रासुर और इन्द्रमें रोमांचकारी युद्ध हुआ था, जो लगातार ग्यारह हजार वर्षोंतक चलता रहा। उसमें इन्द्रकी पराजय हुई और वे वृत्रासुरसे पुनः लौटनेकी शर्त करके युद्ध छोड़कर मेरी शरणमें आये। उन्होंने वार्त्रघ्नीके पवित्र संगमपर आराधनाके द्वारा मुझे सन्तुष्ट किया। तब मैंने आकाशमें प्रकट होकर उन्हें दर्शन दिया। उस समय काश्यपी गंगाके तटपर मेरे शरीरसे कुछ भस्म झड़कर गिरा, जिससे एक पवित्र लिंग प्रकट हो गया। उस शिवलिंगकी 'भस्मगात्र' नामसे प्रसिद्धि हुई। तब मैंने प्रसन्न होकर महात्मा इन्द्रसे कहा—'देव! तुम जो-जो चाहते हो, वह सब तुम्हें दूँगा। इस वज्रकी सहायतासे तुम शीघ्र ही वृत्रासुरका वध करोगे।'

इन्द्रने कहा—भगवन्! आपकी कृपासे उस दुर्धर्ष दैत्यको आपके देखते-देखते ही इस वज्रसे मारूँगा।

पार्वती! यों कहकर इन्द्र पुनः वृत्रासुरके पास गये। उस समय देवताओंकी सेनामें दुन्दुभि बज उठी। एक ही क्षणमें इन्द्र प्रबल शक्तिसे सम्पन्न हो गये। युद्धकी इच्छासे वृत्रासुरके पास जाते हुए इन्द्रका रूप अत्यन्त तेजस्वी दिखायी देता था। महर्षिगण उनकी

स्तुति कर रहे थे। उधर युद्धके मुहानेपर खड़े हुए वृत्रासुरके शरीरमें जो सहसा पराजयके चिह्न प्रकट हुए, उनका वर्णन करता हूँ; सुनो। वृत्रासुरका मुख अत्यन्त भयानक और जलता हुआ-सा प्रतीत होने लगा। उसके शरीरका तेज फीका पड़ गया। सारे अंग काँपने लगे। जोर-जोरसे गरम साँस चलने लगी। वृत्रासुरके रोंगटे खड़े हो गये। उसके उच्छ्वासकी गति अत्यन्त तीव्र हो गयी। आकाशसे महाभयानक उल्कापात हुआ। उस दैत्यके पास गिद्ध, बाज और कंक आदि पक्षी आकर अत्यन्त कठोर शब्द करने लगे। वे सब वृत्रासुरके ऊपर मण्डल बनाकर घूमने लगे। इतनेमें ही इन्द्र ऐरावत हाथीपर चढ़कर वहाँ आये। उनके उठे हुए हाथमें वज्र शोभा पा रहा था। इन्द्र ज्यों ही दैत्यके समीप पहुँचे, उसने अमानुषिक गर्जना की और वह उनके ऊपर टूट पड़ा। वृत्रासुरको अपनी ओर आते देख इन्द्रने उसके ऊपर वज्रका प्रहार किया और उस दैत्यको समुद्रके तटपर मार गिराया। उस समय इन्द्रके मस्तकपर फूलोंकी वर्षा होने लगी। उस भयंकर दानवराजका वध करके अमरोंके मुखसे अपनी स्तुति सुनते हुए इन्द्रने देवलोककी राजधानीमें प्रवेश किया।

तदनन्तर अत्यन्त भयंकर ब्रह्महत्या रौद्ररूप धारण किये वृत्रके शरीरसे निकली और इन्द्रको ढूँढ़ने लगी। उसने दौड़कर महातेजस्वी इन्द्रका पीछा किया और जब वे दिखायी दिये, तब उसने उनका गला पकड़ लिया। इन्द्रको ब्रह्महत्या लग गयी। वे किसी तरह उसे हटानेमें समर्थ न हो सके। उसी दशामें ब्रह्माजीके पास जाकर उन्होंने मस्तक झुकाया। इन्द्रको ब्रह्महत्यासे गृहीत जानकर ब्रह्माजीने उसका स्मरण किया। उनके स्मरण करते ही ब्रह्महत्या ब्रह्माजीके पास उपस्थित हुई।

ब्रह्माजीने कहा—देवि! मेरा प्रिय कार्य करो। देवराज इन्द्रको छोड़ दो। बताओ, तुम क्या चाहती हो? मैं तुम्हारी कौन-सी इच्छा पूर्ण करूँ?

ब्रह्महत्या बोली—सुरश्रेष्ठ! मैं आपकी आज्ञा मानकर इन्द्रके शरीरसे अलग हो जाऊँगी, किन्तु देवदेव! मुझे कोई दूसरा निवासस्थान दीजिये। आपको नमस्कार है। भगवन्! आपने ही तो लोकरक्षाके लिये यह मर्यादा बनायी है।

तब ब्रह्माजीने ब्रह्महत्यासे 'तथास्तु', कहकर इन्द्रकी

हत्या दूर करनेके उपायपर विचार किया। उन्होंने अग्निदेवको बुलाकर कहा—'अग्ने! तुम इन्द्रकी ब्रह्महत्याका चौथाई भाग ग्रहण करो।'

अग्निने कहा—प्रभो! इस ब्रह्महत्याके दोषसे मेरे छूटनेका क्या उपाय है?

ब्रह्माजी बोले—अग्ने! जो तुम्हें प्रज्वलित रूपमें पाकर कभी बीज, ओषधि, तिल, फल, मूल, समिधा और कुश आदिके द्वारा तुममें आहुति नहीं डालेगा, उस समय ब्रह्महत्या तुम्हें छोड़कर उसीमें प्रवेश कर जायगी।

यह सुनकर अग्निने ब्रह्माजीकी आज्ञा शिरोधार्य की। तत्पश्चात् पितामहने वृक्ष, ओषधि और तृण आदिको बुलाकर उनके सामने भी यही प्रस्ताव रखा। यह बात सुनकर उन्हें भी अग्निकी ही भाँति कष्ट हुआ; अतः वे ब्रह्माजीसे इस प्रकार बोले—'पितामह! हमारी ब्रह्महत्याका अन्त कैसे होगा?'

ब्रह्माजीने कहा—जो मनुष्य महान् मोहके वशीभूत होकर अकारण तुम्हें काटे या चीरेगा, ब्रह्महत्या उसीको लग जायगी।

तब ओषधि और तृण आदिने 'हाँ' कहकर अपनी स्वीकृति दे दी। फिर लोकपितामह ब्रह्माजीने अप्सराओंको बुलाकर मधुर वाणीमें उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा—'अप्सराओ! यह ब्रह्महत्या वृत्रासुरके शरीरसे आयी है; इसके चौथे भागको तुमलोग ग्रहण करो।'

अप्सराएँ बोलीं—देवेश्वर! आपकी आज्ञासे हम इसे ग्रहण करनेको तैयार हैं; परन्तु हमारे उद्धारका कोई उपाय भी आपको सोचना चाहिये।

ब्रह्माजीने कहा—जो रजस्वला स्त्रीसे मैथुन करेगा, उसीके अंदर यह तुरंत चली जायगी।

'बहुत अच्छा' कहकर अप्सराओंने हार्दिक प्रसन्नता प्रकट की और अपने-अपने स्थानपर जाकर वे विहार करने लगीं। तदनन्तर लोकविधाता ब्रह्माजीने जलका स्मरण किया। जब जल उपस्थित हुआ, तब ब्रह्माजीने कहा—'यह भयानक ब्रह्महत्या वृत्रासुरके शरीरसे निकलकर इन्द्रके ऊपर आयी है। इसका चौथा भाग तुम ग्रहण करो।'

जलने कहा—लोकेश्वर! आप हमें जो आज्ञा देते हैं, वही होगा; परन्तु हमारे उद्धारके उपायका भी विचार कीजिये।

ब्रह्माजी बोले—जो मनुष्य अज्ञानसे मोहित होकर तुम्हारे भीतर थूक या मल-मूत्र डालेगा, उसीके भीतर यह शीघ्र चली जायगी और वहीं निवास करेगी। इससे तुम्हें छुटकारा मिल जायगा।

श्रीमहादेवजी कहते हैं—सुरेश्वरि! इस प्रकार ब्रह्माजीकी आज्ञासे वह ब्रह्महत्या देवराज इन्द्रको छोड़कर चली गयी। इससे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। पूर्वकालमें इन्द्रको इसी प्रकार ब्रह्महत्या प्राप्त हुई थी। इस वार्त्रघ्नी तीर्थमें तपस्या करके शुद्धचित्त होकर वे स्वर्गमें गये थे। पार्वती! साभ्रमतीके तीर्थोंमें 'वार्त्रघ्नी'-का ऐसा ही माहात्म्य है।

वार्त्रघ्नी-संगमसे आगे जानेपर देवनदी साभ्रमती भद्रानदीके साथ-साथ वरुणके निवासभूत समुद्रमें जा मिली है। समुद्र भी साभ्रमतीके अनुरागसे उसका प्रिय करनेके लिये आगे बढ़ आया है और उसके प्रिय-मिलनको उसने अंगीकार किया है। भद्रानदी पूर्वकालमें सुभद्राकी सखी थी। उसने मार्गमें मूर्तिमती साक्षात् लक्ष्मीकी भाँति प्रकट होकर साभ्रमती गंगाकी सहायता की। उन दोनों नदियोंका पवित्र संगम समुद्रके उत्तर-तटपर हुआ है। उस तीर्थमें स्नान करके जो भगवान् महावराहको नमस्कार करता और स्वच्छ जलका दान करता है, वह वरुणलोकको प्राप्त होता है। उसी मार्गसे वराहरूपधारी भगवान् विष्णुने समुद्रमें प्रवेश करके देवताओंके वैरी सम्पूर्ण दानवोंपर विजय पायी थी। भगवान्ने जो वाराहका रूप धारण किया था, उसका उद्देश्य देवताओंका कार्य सिद्ध करना ही था। वह रूप धारण करके वे समुद्रमें जा घुसे और पृथ्वीदेवीको अपनी दाढ़ोंपर रखकर कर्दमालयमें आ निकले; इससे वहाँ वाराहतीर्थके नामसे एक महान् तीर्थ बन गया। जो मनुष्य वहाँ स्नान करता है, वह निश्चय ही मोक्षका भागी होता है। यहाँ पितरोंकी मुक्तिके लिये श्राद्ध करना चाहिये। ऐसा करनेवाला पुरुष पितरोंके साथ ही मुक्त होकर अत्यन्त सुखद लोकमें जाता है।

वाराहतीर्थसे आगे संगम नामक तीर्थ है, जहाँ साभ्रमती गंगा समुद्रसे मिली है। वहाँ विधिपूर्वक स्नान और दान करना चाहिये। इस तीर्थमें स्नान करनेसे महापातकी भी मुक्त हो जाते हैं। स्वजनोंका हित चाहनेवाले पुरुषोंको वहाँ श्राद्धका अनुष्ठान अवश्य करना चाहिये। वहाँ श्राद्ध करनेसे मनुष्य निश्चय ही पितृलोकमें निवास करता है। जहाँ समुद्रसे साभ्रमती गंगाका नित्य संगम हुआ है, उस स्थानपर ब्रह्महत्यारा भी मुक्त हो जाता है। फिर अन्य पापोंसे युक्त मनुष्योंके लिये तो कहना ही क्या है। मन्दबुद्धि लोग जहाँ तीर्थ नहीं जानते, वहाँ मेरे नामसे उत्तम तीर्थकी स्थापना कर लेनी चाहिये।

संगमके पास ही आदित्य नामक उत्तम तीर्थ है, जो सम्पूर्ण विश्वमें विख्यात है। उसका दर्शन अवश्य करना चाहिये। वहाँ स्नान करनेसे पुष्करमें स्नान करनेका फल होता है। मदार और कनेरके फूलोंसे भगवान् सूर्यका पूजन, श्राद्ध तथा दान करना चाहिये। यह आदित्यतीर्थ परम पवित्र और पापोंका नाशक है। महापातकी मनुष्योंको भी यह पुण्य प्रदान करनेवाला है। उस तीर्थके बाद नीलकण्ठ नामका एक उत्तम तीर्थ है। मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको उसका दर्शन अवश्य करना चाहिये। पार्वती! जो मनुष्य बिल्वपत्र तथा धूप-दीपसे नीलकण्ठका पूजन करता है, उसे मनोवांछित फलकी प्राप्ति होती है। जो निर्जन स्थानमें रहकर वहाँ उपवास करते हैं, वे लोग जिस-जिस वस्तुकी इच्छा करते हैं, उसे वह तीर्थ प्रदान करता है।

पार्वती! जहाँ साभ्रमती नदी दुर्गासे मिली है तथा जहाँ उसका समुद्रसे संगम हुआ है, वहाँ स्नान करना चाहिये। जो कलियुगमें वहाँ स्नान करेंगे, वे निश्चय ही निष्पाप हो जायँगे। दुर्गा-संगमपर श्राद्ध करना चाहिये। वहाँ जानेपर विशेषरूपसे ब्राह्मणोंको भोजन कराना और विधिपूर्वक गाय-भैंसका दान देना उचित है। यह साभ्रमती नदी पवित्र, पापोंका नाश करनेवाली और परम धन्य है। इसका दर्शन करके मनुष्य पापोंसे मुक्त हो जाते हैं। पार्वती! साभ्रमती नदीको गंगाके समान ही जानना चाहिये। कलियुगमें वह विशेषरूपसे प्रचुर फल देनेवाली है।

श्रीनृसिंहचतुर्दशीके व्रत तथा श्रीनृसिंहतीर्थकी महिमा

श्रीमहादेवजी कहते हैं—देवि! सुनो, अब मैं तुम्हें त्रिलोकदुर्लभ व्रतका वर्णन सुनाता हूँ, जिसके सुननेसे मनुष्य ब्रह्महत्या आदि पातकोंसे मुक्त हो जाता है। स्वयंप्रकाश परमात्मा जब भक्तोंको सुख देनेके लिये अवतार ग्रहण करते हैं, वह तिथि और मास भी पुण्यके कारण बन जाते हैं। देवि! जिनके नामका उच्चारण करनेवाला पुरुष सनातन मोक्षको प्राप्त होता है, वे परमात्मा कारणोंके भी कारण हैं। वे सम्पूर्ण विश्वके आत्मा, विश्वस्वरूप और सबके प्रभु हैं। जिन्होंने बारह सूर्योंको धारण कर रखा है, वे ही भगवान् भक्तोंका अभीष्ट सिद्ध करनेके लिये महात्मा नृसिंहके रूपमें प्रकट हुए थे।

देवि! जब हिरण्यकशिपु नामक दैत्यका वध करके देवाधिदेव जगद्गुरु भगवान् नृसिंह सुखपूर्वक विराजमान हुए, तब उनकी गोदमें बैठे हुए ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ प्रह्लादजीने उनसे इस प्रकार प्रश्न किया—'सर्वव्यापी भगवान् नारायण! नृसिंहका अद्‌भुत रूप धारण करनेवाले

आपको नमस्कार है। सुरश्रेष्ठ! मैं आपका भक्त हूँ, अतः यथार्थ बात जाननेके लिये आपसे पूछता हूँ। स्वामिन्! आपके प्रति मेरी अभेद-भक्ति अनेक प्रकारसे स्थिर हुई है। प्रभो! मैं आपको इतना प्रिय कैसे हुआ? इसका कारण बताइये।'

भगवान् नृसिंह बोले—वत्स! तुम पूर्वजन्ममें किसी ब्राह्मणके पुत्र थे। फिर भी तुमने वेदोंका अध्ययन नहीं किया। उस समय तुम्हारा नाम वसुदेव था। उस जन्ममें तुमसे कुछ भी पुण्य नहीं बन पड़ा। केवल मेरे व्रतके प्रभावसे मेरे प्रति तुम्हारी भक्ति हुई। पूर्वकालमें ब्रह्माजीने सृष्टि-रचनाके लिये इस उत्तम व्रतका अनुष्ठान किया था। मेरे व्रतके प्रभावसे ही उन्होंने चराचर जगत्‌की रचना की है। और भी बहुत-से देवताओं, प्राचीन ऋषियों तथा परम बुद्धिमान् राजाओंने मेरे उत्तम व्रतका पालन किया है और उसके प्रभावसे उन्हें सब प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त हुई हैं। स्त्री या पुरुष, जो कोई भी इस उत्तम व्रतका अनुष्ठान करते हैं, उन्हें मैं सौख्य, भोग और मोक्षरूपी फल प्रदान करता हूँ।

प्रह्लादने पूछा—देव! अब मैं इस व्रतकी उत्तम विधिको सुनना चाहता हूँ। प्रभो! किस महीनेमें और किस दिनको यह व्रत आता है? यह विस्तारके साथ बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् नृसिंह बोले—बेटा! प्रह्लाद! तुम्हारा कल्याण हो। एकाग्रचित्त होकर इस व्रतको श्रवण करो। यह व्रत मेरे प्रादुर्भावसे सम्बन्ध रखता है, अतः वैशाखके शुक्लपक्षकी चतुर्दशी तिथिको इसका अनुष्ठान करना चाहिये। इससे मुझे बड़ा सन्तोष होता है। पुत्र! भक्तोंको सुख देनेके लिये जिस प्रकार मेरा आविर्भाव हुआ, वह प्रसंग सुनो। पश्चिम दिशामें एक विशेष कारणसे मैं प्रकट हुआ था। वह स्थान अब मूलस्थान (मुलतान) क्षेत्रके नामसे प्रसिद्ध है, जो परम पवित्र और समस्त पापोंका नाशक है। उस क्षेत्रमें हारीत नामक एक प्रसिद्ध ब्राह्मण रहते थे, जो वेदोंके पारगामी विद्वान् और ज्ञान-ध्यानमें

तत्पर रहनेवाले थे। उनकी स्त्रीका नाम लीलावती था। वह भी परम पुण्यमयी, सतीरूपा तथा स्वामीके अधीन रहनेवाली थी। उन दोनोंने बहुत समयतक बड़ी भारी तपस्या की। तपस्यामें ही उनके इक्कीस युग बीत गये। तब उस क्षेत्रमें प्रकट होकर मैंने उन दोनोंको प्रत्यक्ष दर्शन दिया। उस समय उन्होंने मुझसे कहा—'भगवन्! यदि आप मुझे वर देना चाहते हैं तो इसी समय आपके समान पुत्र मुझे प्राप्त हो।' बेटा प्रह्लाद! उनकी बात सुनकर मैंने उत्तर दिया—'ब्रह्मन्! निस्सन्देह मैं आप दोनोंका पुत्र हूँ। किन्तु मैं सम्पूर्ण विश्वकी सृष्टि करनेवाला साक्षात् परात्पर परमात्मा हूँ, सदा रहनेवाला सनातन पुरुष हूँ; अत: गर्भमें नहीं निवास करूँगा।' तब हारीतने कहा—'अच्छा, ऐसा ही हो।' तबसे मैं भक्तके कारण उस क्षेत्रमें निवास करता हूँ। मेरे श्रेष्ठ भक्तको चाहिये कि उस तीर्थमें आकर मेरा दर्शन करे। इससे उसकी सारी बाधाओंका मैं निरन्तर नाश करता रहता हूँ। जो हारीत और लीलावतीके साथ मेरे बालरूपका ध्यान करके रात्रिमें मेरा पूजन करता है, वह नरसे नारायण हो जाता है।

बेटा! मेरे व्रतका दिन आनेपर भक्त पुरुष सबेरे दन्तधावन करके इन्द्रियोंको काबूमें रखते हुए मेरे सामने व्रतका संकल्प करे—'भगवन्! आज मैं आपका व्रत करूँगा। इसे निर्विघ्नतापूर्वक पूर्ण कराइये।' व्रतमें स्थित होकर दुष्ट पुरुषोंसे वार्तालाप आदि नहीं करना चाहिये। फिर मध्याह्नकालमें नदी आदिके निर्मल जलमें, घरपर, देवसम्बन्धी कुण्डमें अथवा किसी सुन्दर तालाबके भीतर वैदिक मन्त्रोंसे स्नान करे। मिट्टी, गोबर, आँवलेका फल और तिल लेकर उनसे सब पापोंकी शान्तिके लिये विधिपूर्वक स्नान करे। तत्पश्चात् दो सुन्दर वस्त्र धारण करके सन्ध्या-तर्पण आदि नित्यकर्मका अनुष्ठान करना चाहिये। उसके बाद घर लीपकर उसमें सुन्दर अष्टदल कमल बनाये। कमलके ऊपर पंचरत्नसहित ताँबेका कलश स्थापित करे। कलशके ऊपर चावलोंसे भरा हुआ पात्र रखे और पात्रमें अपनी शक्तिके अनुसार सोनेकी लक्ष्मीसहित मेरी प्रतिमा बनवाकर स्थापित करे। तत्पश्चात् उसे पंचामृतसे स्नान कराये। इसके बाद शास्त्रके ज्ञाता और लोभहीन ब्राह्मणको बुलाकर आचार्य बनाये और उसे आगे रखकर भगवान्की अर्चना करे। पूजाके स्थानपर एक मण्डप बनवाकर उसे फूलके गुच्छोंसे सजा दे। फिर वर्तमान ऋतुमें सुलभ होनेवाले फूलोंसे और षोडशोपचारकी सामग्रियोंसे विधिपूर्वक मेरा पूजन करे। पूजामें नियमपूर्वक रहकर मुझसे सम्बन्ध रखनेवाले पौराणिक मन्त्रोंका उपयोग करे। जो चन्दन, कपूर, रोली, सामयिक पुष्प तथा तुलसीदल मुझे अर्पण करता है, वह निश्चय ही मुक्त हो जाता है। समस्त कामनाओंकी सिद्धिके लिये जगद्गुरु श्रीहरिको सदा कृष्णागरुका बना हुआ धूप निवेदन करना चाहिये, क्योंकि वह उन्हें बहुत ही प्रिय है। एक महान् दीप जलाकर रखना चाहिये, जो अज्ञानरूपी अन्धकारका नाश करनेवाला है। फिर घण्टेकी आवाजके साथ बड़े रूपमें आरती उतारनी चाहिये। तदनन्तर नैवेद्य निवेदन करे, जिसका मन्त्र इस प्रकार है—

नैवेद्यं शर्करां चापि भक्ष्यभोज्यसमन्वितम्।
ददामि ते रमाकान्त सर्वपापक्षयं कुरु॥

(१७०। ६२)

लक्ष्मीकान्त! मैं आपके लिये भक्ष्य-भोज्यसहित नैवेद्य तथा शर्करा निवेदन करता हूँ। आप मेरे सब पापोंका नाश कीजिये।

तत्पश्चात् भगवान्से इस प्रकार प्रार्थना करे—'नृसिंह! अच्युत! देवेश्वर! आपके शुभ जन्मदिनको मैं सब भोगोंका परित्याग करके उपवास करूँगा। स्वामिन्! आप इससे प्रसन्न हों तथा मेरे पाप और जन्मके बन्धनको दूर करें।' यों कहकर व्रतका पालन करे। रातमें गीत और वाद्योंकी ध्वनिके साथ जागरण करना चाहिये। भगवान् नृसिंहकी कथासे सम्बन्ध रखनेवाले पौराणिक प्रसंगका पाठ भी करना उचित है। फिर प्रात:काल होनेपर स्नानके अनन्तर पूर्वोक्त विधिसे यत्नपूर्वक मेरी पूजा करे। उसके बाद स्वस्थचित्त होकर मेरे आगे वैष्णव श्राद्ध करे। तदनन्तर इस लोक और परलोक दोनोंपर विजय पानेकी इच्छासे सुपात्र

ब्राह्मणोंको नीचे लिखी वस्तुओंका दान करना चाहिये। गौ, भूमि, तिल, सुवर्ण, ओढ़ने-बिछौने आदिके सहित चारपाई, सप्तधान्य तथा अन्यान्य वस्तुएँ भी अपनी शक्तिके अनुसार दान करनी चाहिये। शास्त्रोक्त फल पानेकी इच्छा हो तो धनकी कृपणता नहीं करनी चाहिये। अन्तमें ब्राह्मणोंको भोजन कराये और उन्हें उत्तम दक्षिणा दे। धनहीन व्यक्तियोंको भी चाहिये कि वे इस व्रतका अनुष्ठान करें और शक्तिके अनुसार दान दें। मेरे व्रतमें सभी वर्णके मनुष्योंका अधिकार है। मेरी शरणमें आये हुए भक्तोंको विशेषरूपसे इसका अनुष्ठान करना चाहिये।*

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वती! इसके बाद व्रत करनेवाले पुरुषको इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये। विशाल रूप धारण करनेवाले भगवान् नृसिंह! करोड़ों कालोंके लिये भी आपको परास्त करना कठिन है। बालरूपधारी प्रभो! आपको नमस्कार है। बाल अवस्था तथा बालकरूप धारण करनेवाले श्रीनृसिंह भगवान्को नमस्कार है। जो सर्वत्र व्यापक, सबको आनन्दित करनेवाले, स्वत: प्रकट होनेवाले, सर्वजीव-स्वरूप, विश्वके स्वामी, देवस्वरूप और सूर्यमण्डलमें स्थित रहनेवाले हैं, उन भगवान्को प्रणाम है। दयासिन्धो! आपको नमस्कार है। आप तेईस तत्त्वोंके साक्षी चौबीसवें तत्त्वरूप हैं। काल, रुद्र और अग्नि आपके ही स्वरूप हैं। यह जगत् भी आपसे भिन्न नहीं है। नर और सिंहका रूप धारण करनेवाले आप भगवान्को नमस्कार है।

देवेश! मेरे वंशमें जो मनुष्य उत्पन्न हो चुके हैं और जो उत्पन्न होनेवाले हैं, उन सबका दु:खदायी भवसागरसे उद्धार कीजिये। जगत्पते! मैं पातकके समुद्रमें डूबा हूँ। नाना प्रकारकी व्याधियाँ ही इस समुद्रकी जल-राशि हैं। इसमें रहनेवाले जीव मेरा तिरस्कार करते हैं। इस कारण मैं महान् दु:खमें पड़ गया हूँ। शेषशायी देवेश्वर! मुझे अपने हाथोंका सहारा दीजिये और इस व्रतसे प्रसन्न हो मुझे भोग और मोक्ष प्रदान कीजिये।

इस प्रकार प्रार्थना करके विधिपूर्वक देवताका विसर्जन करे। उपहार आदिकी सभी वस्तुएँ आचार्यको निवेदन करे। ब्राह्मणोंको दक्षिणासे सन्तुष्ट करके विदा करे। फिर भगवान्का चिन्तन करते हुए भाई-बन्धुओंके साथ भोजन करे। जिसके पास कुछ भी नहीं है, ऐसा दरिद्र मनुष्य भी यदि नियमपूर्वक नृसिंहचतुर्दशीको उपवास करता है तो वह नि:सन्देह सात जन्मके पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो भक्तिपूर्वक इस पापनाशक व्रतका श्रवण करता है, उसकी ब्रह्महत्या दूर हो जाती है। जो मानव इस परम पवित्र एवं गोपनीय व्रतका कीर्तन करता है, वह सम्पूर्ण मनोरथोंके साथ ही इस व्रतके फलको भी पा लेता है। जो मध्याह्नकालमें यथाशक्ति इस व्रतका अनुष्ठान करता और लीलावती देवीके साथ हारीत मुनि एवं भगवान् नृसिंहका पूजन करता है, उसे सनातन मोक्षकी प्राप्ति होती है। इतना ही नहीं, वह श्रीनृसिंहके प्रसादसे सदा मनोवांछित वस्तुओंको प्राप्त करता रहता है।

उस तीर्थमें परम पुण्यमयी सिन्धु नदी बहुत ही रमणीय है। उसके समीप मूलस्थान नामक नगर आज भी वर्तमान है। उस नगरका निर्माण देवताओंने किया था। वहीं महात्मा हारीतका निवासस्थान है और उसीमें लीलावती देवी भी रहती हैं। सिन्धु नदीके निकट होनेसे वहाँ निरन्तर जलके प्रबल वेगकी प्रतिध्वनि सुनायी पड़ती है। कलियुग आनेपर वहाँ बहुत-से पापाचारी म्लेच्छ निवास करने लगते हैं। पार्वती! भगवान् नृसिंहके प्रादुर्भाव-कालमें जैसा अद्भुत शब्द हुआ था, उसीके समान प्रतिध्वनि वहाँ आज भी सुनायी देती है। ब्रह्महत्यारा, सुवर्ण चुरानेवाला, शराबी और गुरुपत्नीके साथ समागम करनेवाला ही क्यों न हो, जो मनुष्य सिन्धु नदीके तटपर जाकर विशेषरूपसे स्नान करता है, वह निश्चय ही श्रीनृसिंहके प्रसादसे मुक्त हो जाता है। जो

* सर्वेषामेव वर्णानामधिकारोऽस्ति मद्व्रते। मद्भक्तैस्तु विशेषेण कर्तव्यं मत्परायणै:॥ (१७०।७३)

मानव वहाँ दस रात निवास करते हैं, उन्हें पुण्यात्मा जानना चाहिये। जो वहाँ मांस खाते और शराब पीते हैं, वे अधर्मके मूर्तिमान् स्वरूप और महापापी हैं। भगवान् नृसिंहके नामसे प्रसिद्ध एक ही तीर्थ है, जो बहुत ही उत्तम और विस्तृत है। उसका श्रवण करनेमात्रसे मनुष्य तत्काल पापमुक्त हो जाता है।

श्रीमद्भगवद्गीताके पहले अध्यायका माहात्म्य

श्रीपार्वतीने कहा—भगवन्! आप सब तत्त्वोंके ज्ञाता हैं। आपकी कृपासे मुझे श्रीविष्णु-सम्बन्धी नाना प्रकारके धर्म सुननेको मिले, जो समस्त लोकका उद्धार करनेवाले हैं। देवेश! अब मैं गीताका माहात्म्य सुनना चाहती हूँ। जिसका श्रवण करनेसे श्रीहरिमें भक्ति बढ़ती है।

श्रीमहादेवजी बोले—जिनका श्रीविग्रह अलसीके फूलकी भाँति श्यामवर्णका है, पक्षिराज गरुड़ ही जिनके वाहन हैं, जो अपनी महिमासे कभी च्युत नहीं होते तथा शेषनागकी शय्यापर शयन करते हैं, उन भगवान् महाविष्णुकी हम उपासना करते हैं। एक समयकी बात है, मुर दैत्यके नाशक भगवान् विष्णु शेषनागके रमणीय आसनपर सुखपूर्वक विराजमान थे।

उस समय समस्त लोकोंको आनन्द देनेवाली भगवती लक्ष्मीने आदरपूर्वक प्रश्न किया।

श्रीलक्ष्मीने पूछा—भगवन्! आप सम्पूर्ण जगत्का पालन करते हुए भी अपने ऐश्वर्यके प्रति उदासीनसे होकर जो इस क्षीरसागरमें नींद ले रहे हैं, इसका क्या कारण है?

श्रीभगवान् बोले—सुमुखि! मैं नींद नहीं लेता हूँ, अपितु तत्त्वका अनुसरण करनेवाली अन्तर्दृष्टिके द्वारा अपने ही माहेश्वर तेजका साक्षात्कार कर रहा हूँ। देवि! यह वही तेज है, जिसका योगी पुरुष कुशाग्र बुद्धिके द्वारा अपने अन्त:करणमें दर्शन करते हैं तथा जिसे मीमांसक विद्वान् वेदोंका सार-तत्त्व निश्चित करते हैं। वह माहेश्वर तेज एक, अजर, प्रकाशस्वरूप, आत्मरूप, रोग-शोकसे रहित, अखण्ड आनन्दका पुंज, निष्पन्द (निरीह) तथा द्वैतरहित है। इस जगत्का जीवन उसीके अधीन है। मैं उसीका अनुभव करता हूँ। देवेश्वरि! यही कारण है कि मैं तुम्हें नींद लेता-सा प्रतीत हो रहा हूँ।

श्रीलक्ष्मीने कहा—हृषीकेश! आप ही योगी पुरुषोंके ध्येय हैं। आपके अतिरिक्त भी कोई ध्यान करनेयोग्य तत्त्व है, यह जानकर मुझे बड़ा कौतूहल हो रहा है। इस चराचर जगत्की सृष्टि और संहार करनेवाले स्वयं आप ही हैं। आप सर्वसमर्थ हैं। इस प्रकारकी स्थितिमें होकर भी यदि आप उस परम तत्त्वसे भिन्न हैं, तो मुझे उसका बोध कराइये।

श्रीभगवान् बोले—प्रिये! आत्माका स्वरूप द्वैत और अद्वैतसे पृथक्, भाव और अभावसे मुक्त तथा आदि और अन्तसे रहित है। शुद्ध ज्ञानके प्रकाशसे उपलब्ध होनेवाला तथा परमानन्दस्वरूप होनेके कारण एकमात्र सुन्दर है। यही मेरा ईश्वरीय रूप है। आत्माका
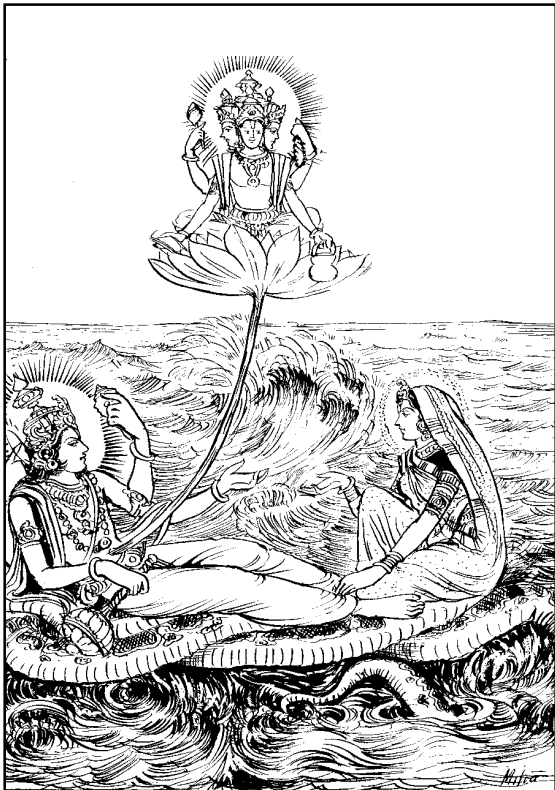
एकत्व ही सबके द्वारा जाननेयोग्य है। गीताशास्त्रमें इसीका प्रतिपादन हुआ है।

अमिततेजस्वी भगवान् विष्णुके ये वचन सुनकर लक्ष्मीदेवीने शंका उपस्थित करते हुए कहा—'भगवन्! यदि आपका स्वरूप स्वयं परमानन्दमय और मन-वाणीकी पहुँचके बाहर है तो गीता कैसे उसका बोध कराती है? मेरे इस सन्देहका आप निवारण कीजिये।'

श्रीभगवान् बोले—सुन्दरि! सुनो, मैं गीतामें अपनी स्थितिका वर्णन करता हूँ। क्रमशः पाँच अध्यायोंको तुम पाँच मुख जानो, दस अध्यायोंको दस भुजाएँ समझो तथा एक अध्यायको उदर और दो अध्यायोंको दोनों चरणकमल जानो। इस प्रकार यह अठारह अध्यायोंकी वाङ्मयी ईश्वरीय मूर्ति ही समझनी चाहिये।* यह ज्ञानमात्रसे ही महान् पातकोंका नाश करनेवाली है। जो उत्तम बुद्धिवाला पुरुष गीताके एक या आधे अध्यायका अथवा एक, आधे या चौथाई श्लोकका भी प्रतिदिन अभ्यास करता है, वह सुशर्माके समान मुक्त हो जाता है।

श्रीलक्ष्मीजीने पूछा—देव! सुशर्मा कौन था? किस जातिका था? और किस कारणसे उसकी मुक्ति हुई?

श्रीभगवान् बोले—प्रिये! सुशर्मा बड़ी खोटी बुद्धिका मनुष्य था। पापियोंका तो वह शिरोमणि ही था। उसका जन्म वैदिक ज्ञानसे शून्य एवं क्रूरतापूर्ण कर्म करनेवाले ब्राह्मणोंके कुलमें हुआ था। वह न ध्यान करता था न जप; न होम करता था न अतिथियोंका सत्कार। वह लम्पट होनेके कारण सदा विषयोंके सेवनमें ही आसक्त रहता था। हल जोतता और पत्ते बेंचकर जीविका चलाता था। उसे मदिरा पीनेका व्यसन था तथा वह मांस भी खाया करता था। इस प्रकार उसने अपने जीवनका दीर्घकाल व्यतीत कर दिया। एक दिन मूढ़बुद्धि सुशर्मा पत्ते लानेके लिये किसी ऋषिकी वाटिकामें घूम रहा था। इसी बीचमें कालरूपधारी काले साँपने उसे डँस लिया। सुशर्माकी मृत्यु हो गयी। तदनन्तर वह अनेक नरकोंमें जा वहाँकी यातनाएँ भोगकर मर्त्यलोकमें लौट आया और यहाँ बोझ ढोनेवाला बैल हुआ। उस समय किसी पंगुने अपने जीवनको आरामसे व्यतीत करनेके लिये उसे खरीद लिया। बैलने अपनी पीठपर पंगुका भार ढोते हुए बड़े कष्टसे सात-आठ वर्ष बिताये। एक दिन पंगुने किसी ऊँचे स्थानपर बहुत देरतक बड़ी तेजीके साथ उस बैलको घुमाया। इससे वह थककर बड़े वेगसे पृथ्वीपर गिरा और मूर्च्छित हो गया। उस समय वहाँ कुतूहलवश आकृष्ट हो बहुत-से लोग एकत्रित हो गये। उस जनसमुदायमेंसे किसी पुण्यात्मा व्यक्तिने उस बैलका कल्याण करनेके लिये उसे अपना पुण्य दान किया। तत्पश्चात् कुछ दूसरे लोगोंने भी अपने-अपने पुण्योंको याद करके उन्हें उसके लिये दान किया। उस भीड़में एक वेश्या भी खड़ी थी। उसे अपने पुण्यका पता नहीं था, तो भी उसने लोगोंकी देखा-देखी उस बैलके लिये कुछ त्याग किया।

तदनन्तर यमराजके दूत उस मरे हुए प्राणीको पहले यमपुरी ले गये। वहाँ यह विचारकर कि यह वेश्याके दिये हुए पुण्यसे पुण्यवान् हो गया है, उसे छोड़ दिया गया। फिर वह भूलोकमें आकर उत्तम कुल और शीलवाले ब्राह्मणोंके घरमें उत्पन्न हुआ। उस समय भी उसे अपने पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण बना रहा। बहुत दिनोंके बाद अपने अज्ञानको दूर करनेवाले कल्याण-तत्त्वका जिज्ञासु होकर वह उस वेश्याके पास गया और उसके दानकी बात बतलाते हुए उसने पूछा—'तुमने कौन-सा पुण्य दान किया था?' वेश्याने उत्तर दिया—'वह पिंजरेमें बैठा हुआ तोता प्रतिदिन कुछ पढ़ता है। उससे मेरा अन्तःकरण पवित्र हो गया है। उसीका पुण्य मैंने तुम्हारे लिये दान किया था।' इसके बाद उन दोनोंने

---

* शृणु सुश्रोणि वक्ष्यामि गीतासु स्थितिमात्मनः। वक्त्राणि पञ्च जानीहि पञ्चाध्यायाननुक्रमात्॥
दशाध्यायान्भुजांश्चैकमुदरं द्वौ पदाम्बुजे। एवमष्टादशाध्यायी वाङ्मयी मूर्तिरैश्वरी॥ (१७१। २७-२८)

तोतेसे पूछा। तब उस तोतेने अपने पूर्वजन्मका स्मरण करके प्राचीन इतिहास कहना आरम्भ किया।

शुक बोला—पूर्वजन्ममें मैं विद्वान् होकर भी विद्वत्ताके अभिमानसे मोहित रहता था। मेरा राग-द्वेष इतना बढ़ गया था कि मैं गुणवान् विद्वानोंके प्रति भी ईर्ष्या-भाव रखने लगा। फिर समयानुसार मेरी मृत्यु हो गयी और मैं अनेकों घृणित लोकोंमें भटकता फिरा। उसके बाद इस लोकमें आया। सद्गुरुकी अत्यन्त निन्दा करनेके कारण तोतेके कुलमें मेरा जन्म हुआ। पापी होनेके कारण छोटी अवस्थामें ही मेरा माता-पितासे वियोग हो गया। एक दिन मैं ग्रीष्मऋतुमें तपे हुए मार्गपर पड़ा था। वहाँसे कुछ श्रेष्ठ मुनि मुझे उठा लाये और महात्माओंके आश्रयमें आश्रमके भीतर एक पिंजरेमें उन्होंने मुझे डाल दिया। वहीं मुझे पढ़ाया गया। ऋषियोंके बालक बड़े आदरके साथ गीताके प्रथम अध्यायकी आवृत्ति करते थे। उन्हींसे सुनकर मैं भी बारम्बार पाठ करने लगा। इसी बीचमें एक चोरी करनेवाले बहेलियेने मुझे वहाँसे चुरा लिया। तत्पश्चात् इस देवीने मुझे खरीद लिया। यही मेरा वृत्तान्त है, जिसे मैंने आपलोगोंसे बता दिया। पूर्वकालमें मैंने इस प्रथम अध्यायका अभ्यास किया था, जिससे मैंने अपने पापको दूर किया है। फिर उसीसे इस वेश्याका भी अन्त:करण शुद्ध हुआ है और उसीके पुण्यसे ये द्विजश्रेष्ठ सुशर्मा भी पापमुक्त हुए हैं।

इस प्रकार परस्पर वार्तालाप और गीताके प्रथम
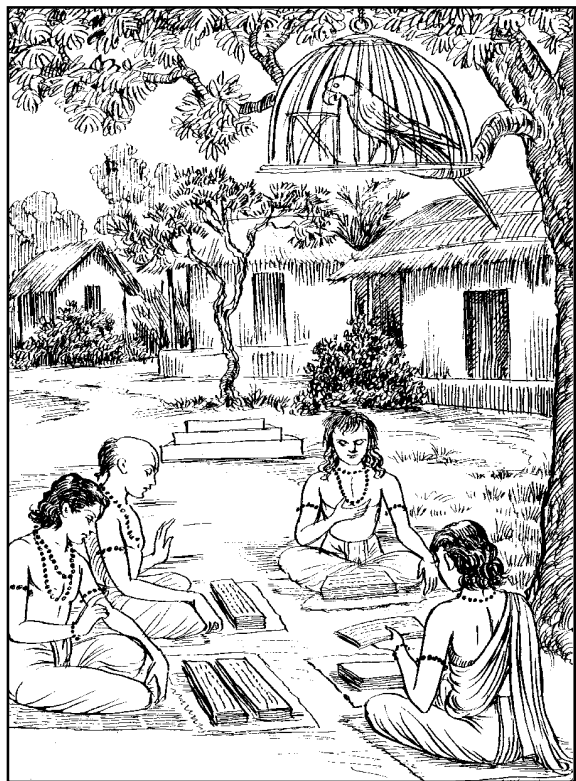
अध्यायके माहात्म्यकी प्रशंसा करके वे तीनों निरन्तर अपने-अपने घरपर गीताका अभ्यास करने लगे। फिर ज्ञान प्राप्त करके वे मुक्त हो गये। इसलिये जो गीताके प्रथम अध्यायको पढ़ता, सुनता तथा अभ्यास करता है, उसे इस भवसागरको पार करनेमें कोई कठिनाई नहीं होती।

श्रीमद्भगवद्गीताके दूसरे अध्यायका माहात्म्य

श्रीभगवान् कहते हैं—लक्ष्मी! प्रथम अध्यायके माहात्म्यका उत्तम उपाख्यान मैंने तुम्हें सुना दिया। अब अन्य अध्यायोंके माहात्म्य श्रवण करो। दक्षिण-दिशामें वेदवेत्ता ब्राह्मणोंके पुरन्दरपुर नामक नगरमें श्रीमान् देवशर्मा नामक एक विद्वान् ब्राह्मण रहते थे। वे अतिथियोंके पूजक, स्वाध्यायशील, वेद-शास्त्रोंके विशेषज्ञ, यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाले और तपस्वियोंके सदा ही प्रिय थे। उन्होंने उत्तम द्रव्योंके द्वारा अग्निमें हवन करके दीर्घकालतक देवताओंको तृप्त किया, किन्तु उन धर्मात्मा ब्राह्मणको कभी सदा रहनेवाली शान्ति न मिली। वे परम कल्याणमय तत्त्वका ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छासे प्रतिदिन प्रचुर सामग्रियोंके द्वारा सत्य-संकल्पवाले तपस्वियोंकी सेवा करने लगे। इस प्रकार शुभ आचरण करते हुए उन्हें बहुत समय बीत गया। तदनन्तर एक दिन पृथ्वीपर उनके समक्ष एक त्यागी महात्मा प्रकट हुए। वे पूर्ण अनुभवी, आकांक्षारहित, नासिकाके अग्रभागपर दृष्टि रखनेवाले तथा शान्तचित्त थे। निरन्तर परमात्माके चिन्तनमें संलग्न हो वे सदा

आनन्दविभोर रहते थे। देवशर्माने उन नित्यसन्तुष्ट तपस्वीको शुद्धभावसे प्रणाम किया और पूछा—'महात्मन्! मुझे शान्तिमयी स्थिति कैसे प्राप्त होगी?' तब उन आत्मज्ञानी संतने देवशर्माको सौपुर ग्रामके निवासी मित्रवान्‌का, जो बकरियोंका चरवाहा था, परिचय दिया और कहा 'वही तुम्हें उपदेश देगा।'

यह सुनकर देवशर्माने महात्माके चरणोंकी वन्दना की और समृद्धिशाली सौपुर ग्राममें पहुँचकर उसके उत्तरभागमें एक विशाल वन देखा। उसी वनमें नदीके किनारे एक शिलापर मित्रवान् बैठा था। उसके नेत्र आनन्दातिरेकसे निश्चल हो रहे थे—वह अपलक दृष्टिसे देख रहा था। वह स्थान आपसका स्वाभाविक वैर छोड़कर एकत्रित हुए परस्पर-विरोधी जन्तुओंसे घिरा था। वहाँ उद्यानमें मन्द-मन्द वायु चल रही थी। मृगोंके झुंड शान्तभावसे बैठे थे और मित्रवान् दयासे भरी हुई आनन्दमयी मनोहारिणी दृष्टिसे पृथ्वीपर मानो अमृत छिड़क रहा था। इस रूपमें उसे देखकर देवशर्माका मन प्रसन्न हो गया। वे उत्सुक होकर बड़ी विनयके साथ मित्रवान्‌के पास गये। मित्रवान्‌ने भी अपने मस्तकको किंचित् नवाकर देवशर्माका सत्कार किया। तदनन्तर विद्वान् देवशर्मा अनन्य चित्तसे मित्रवान्‌के समीप गये और जब उसके ध्यानका समय समाप्त हो गया, उस समय उन्होंने अपने मनकी बात पूछी—'महाभाग! मैं आत्माका ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूँ। मेरे इस मनोरथकी पूर्तिके लिये मुझे किसी ऐसे उपायका उपदेश कीजिये, जिसके द्वारा सिद्धि प्राप्त हो चुकी हो।'

देवशर्माकी बात सुनकर मित्रवान्‌ने एक क्षणतक कुछ विचार किया। उसके बाद इस प्रकार कहा—'विद्वन्! एक समयकी बात है, मैं वनके भीतर बकरियोंकी रक्षा कर रहा था। इतनेमें ही एक भयंकर व्याघ्रपर मेरी दृष्टि पड़ी, जो मानो सबको ग्रस लेना चाहता था। मैं मृत्युसे डरता था, इसलिये व्याघ्रको आते देख बकरियोंके झुंडको आगे करके वहाँसे भाग चला; किन्तु एक बकरी तुरंत ही सारा भय छोड़कर नदीके किनारे उस व्याघ्रके पास बेरोक-टोक चली गयी। फिर तो व्याघ्र भी द्वेष छोड़कर चुपचाप खड़ा हो गया। उसे इस अवस्थामें देखकर बकरी बोली—'व्याघ्र! तुम्हें तो अभीष्ट भोजन प्राप्त हुआ है। मेरे शरीरसे मांस निकालकर प्रेमपूर्वक खाओ न। तुम इतनी देरसे खड़े क्यों हो? तुम्हारे मनमें मुझे खानेका विचार क्यों नहीं हो रहा है?'

व्याघ्र बोला—बकरी! इस स्थानपर आते ही मेरे मनसे द्वेषका भाव निकल गया। भूख-प्यास भी मिट गयी। इसलिये पास आनेपर भी अब मैं तुझे खाना नहीं चाहता।

व्याघ्रके यों कहनेपर बकरी बोली—'न जाने मैं कैसे निर्भय हो गयी हूँ। इसमें क्या कारण हो सकता है? यदि तुम जानते हो तो बताओ।' यह सुनकर व्याघ्रने कहा—'मैं भी नहीं जानता। चलो, सामने खड़े हुए इन महापुरुषसे पूछें।' ऐसा निश्चय करके वे दोनों वहाँसे चल दिये। उन दोनोंके स्वभावमें यह विचित्र परिवर्तन देखकर मैं बहुत विस्मयमें पड़ा था। इतनेमें ही उन्होंने मुझीसे आकर प्रश्न किया। वहाँ वृक्षकी शाखापर एक वानरराज था। उन दोनोंके साथ मैंने भी वानरराजसे पूछा। विप्रवर! मेरे पूछनेपर वानरराजने आदरपूर्वक कहा—'अजापाल! सुनो, इस विषयमें मैं तुम्हें प्राचीन वृत्तान्त सुनाता हूँ। यह सामने वनके भीतर जो बहुत बड़ा मन्दिर है, उसकी ओर देखो। इसमें ब्रह्माजीका स्थापित किया हुआ एक शिवलिंग है। पूर्वकालमें यहाँ सुकर्मा नामक एक बुद्धिमान् महात्मा रहते थे, जो तपस्यामें संलग्न होकर इस मन्दिरमें उपासना करते थे। वे वनमेंसे फूलोंका संग्रह कर लाते और नदीके जलसे पूजनीय भगवान् शंकरको स्नान कराकर उन्हींसे उनकी पूजा किया करते थे। इस प्रकार आराधनाका कार्य करते हुए सुकर्मा यहाँ निवास करते थे। बहुत समयके बाद उनके समीप किसी अतिथिका आगमन हुआ। सुकर्माने भोजनके लिये फल लाकर अतिथिको अर्पण किया और कहा—'विद्वन्! मैं केवल तत्त्वज्ञानकी इच्छासे भगवान् शंकरकी आराधना करता हूँ। आज इस आराधनाका फल परिपक्व होकर मुझे मिल गया; क्योंकि इस समय आप-जैसे महापुरुषने मुझपर अनुग्रह किया है।'

सुकर्माके ये मधुर वचन सुनकर तपस्याके धनी महात्मा अतिथिको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने एक शिलाखण्डपर गीताका दूसरा अध्याय लिख दिया और ब्राह्मणको उसके पाठ एवं अभ्यासके लिये आज्ञा देते हुए कहा—'ब्रह्मन्! इससे तुम्हारा आत्मज्ञान-सम्बन्धी

मनोरथ अपने-आप सफल हो जायगा।' यों कहकर वे बुद्धिमान् तपस्वी सुकर्माके सामने ही उनके देखते-देखते अन्तर्धान हो गये। सुकर्मा विस्मित होकर उनके आदेशके अनुसार निरन्तर गीताके द्वितीय अध्यायका अभ्यास करने लगे। तदनन्तर दीर्घकालके पश्चात् अन्तःकरण शुद्ध होकर उन्हें आत्मज्ञानकी प्राप्ति हुई। फिर वे जहाँ-जहाँ गये, वहाँ-वहाँका तपोवन शान्त हो गया। उनमें शीत-उष्ण और राग-द्वेष आदिकी बाधाएँ दूर हो गयीं। इतना ही नहीं, उन स्थानोंमें भूख-प्यासका कष्ट भी जाता रहा तथा भयका सर्वथा अभाव हो गया। यह सब द्वितीय अध्यायका जप करनेवाले सुकर्मा ब्राह्मणकी तपस्याका ही प्रभाव समझो।

मित्रवान् कहता है—वानरराजके यों कहनेपर मैं प्रसन्नतापूर्वक बकरी और व्याघ्रके साथ उस मन्दिरकी ओर गया। वहाँ जाकर शिलाखण्डपर लिखे हुए गीताके द्वितीय अध्यायको मैंने देखा और पढ़ा। उसीकी आवृत्ति करनेसे मैंने तपस्याका पार पा लिया है, अतः भद्रपुरुष! तुम भी सदा द्वितीय अध्यायकी ही आवृत्ति किया करो। ऐसा करनेपर मुक्ति तुमसे दूर नहीं रहेगी।

श्रीभगवान् कहते हैं—प्रिये! मित्रवान्के इस प्रकार आदेश देनेपर देवशर्माने उसका पूजन किया और उसे प्रणाम करके पुरन्दरपुरकी राह ली। वहाँ किसी देवालयमें पूर्वोक्त आत्मज्ञानी महात्माको पाकर उन्होंने यह सारा वृत्तान्त निवेदन किया और सबसे पहले उन्हींसे द्वितीय अध्यायको पढ़ा। उनसे उपदेश पाकर शुद्ध अन्तःकरणवाले देवशर्मा प्रतिदिन बड़ी श्रद्धाके साथ द्वितीय अध्यायका पाठ करने लगे। तबसे उन्होंने अनवद्य (प्रशंसाके योग्य) परमपदको प्राप्त कर लिया। लक्ष्मी! यह द्वितीय अध्यायका उपाख्यान कहा गया। अब तृतीय अध्यायका माहात्म्य बतलाऊँगा।

श्रीमद्भगवद्गीताके तीसरे अध्यायका माहात्म्य

श्रीभगवान् कहते हैं—प्रिये! जनस्थानमें एक जड नामक ब्राह्मण था, जो कौशिक-वंशमें उत्पन्न हुआ था। उसने अपना जातीय धर्म छोड़कर बनियेकी वृत्तिमें मन लगाया। उसे परायी स्त्रियोंके साथ व्यभिचार करनेका व्यसन पड़ गया था। वह सदा जूआ खेलता, शराब पीता और शिकार खेलकर जीवोंकी हिंसा किया करता था। इसी प्रकार उसका समय बीतता था। धन नष्ट हो जानेपर वह व्यापारके लिये बहुत दूर उत्तर दिशामें चला गया। वहाँसे धन कमाकर घरकी ओर लौटा। बहुत दूरतकका रास्ता उसने तै कर लिया था। एक दिन सूर्यास्त हो जानेपर जब दसों दिशाओंमें अन्धकार फैल गया, तब एक वृक्षके नीचे उसे लुटेरोंने

धर दबाया और शीघ्र ही उसके प्राण ले लिये। उसके धर्मका लोप हो गया था, इसलिये वह बड़ा भयानक प्रेत हुआ।

उसका पुत्र बड़ा धर्मात्मा और वेदोंका विद्वान् था। उसने अबतक पिताके लौट आनेकी राह देखी। जब वे नहीं आये, तब उनका पता लगानेके लिये वह स्वयं भी घर छोड़कर चल दिया। वह प्रतिदिन खोज करता, मगर राहगीरोंसे पूछनेपर भी उसे उनका कुछ समाचार नहीं मिलता था। तदनन्तर एक दिन एक मनुष्यसे उसकी भेंट हुई, जो उसके पिताका सहायक था। उससे सारा हाल जानकर उसने पिताकी मृत्युपर बहुत शोक किया। वह बड़ा बुद्धिमान् था। बहुत कुछ सोच-विचार कर पिताका पारलौकिक कर्म करनेकी इच्छासे आवश्यक सामग्री साथ ले उसने काशी जानेका विचार किया। मार्गमें सात-आठ मुकाम डालकर वह नवें दिन उसी वृक्षके नीचे पहुँचा, जहाँ उसके पिता मारे गये थे। उस स्थानपर उसने सन्ध्योपासना की और गीताके तीसरे अध्यायका पाठ किया। इसी समय आकाशमें बड़ी भयानक आवाज हुई। उसने अपने पिताको भयंकर आकारमें देखा; फिर तुरंत ही अपने सामने आकाशमें उसे एक सुन्दर विमान दिखायी दिया, जो महान् तेजसे व्याप्त था। उसमें अनेकों क्षुद्र घण्टिकाएँ लगी थीं। उसके तेजसे समस्त दिशाएँ आलोकित हो रही थीं। यह दृश्य देखकर उसके चित्तकी व्यग्रता दूर हो गयी। उसने विमानपर अपने पिताको दिव्यरूप धारण किये विराजमान देखा। उनके शरीरपर पीताम्बर शोभा पा रहा था और मुनिजन उनकी स्तुति कर रहे थे। उन्हें देखते ही पुत्रने प्रणाम किया। तब पिताने भी उसे आशीर्वाद दिया।

तत्पश्चात् उसने पितासे यह सारा वृत्तान्त पूछा। उसके उत्तरमें पिताने सब बातें बताकर इस प्रकार कहना आरम्भ किया—'बेटा! दैववश मेरे निकट गीताके तृतीय अध्यायका पाठ करके तुमने इस शरीरके द्वारा किये हुए दुस्त्यज कर्म-बन्धनसे मुझे छुड़ा दिया। अत: अब घर लौट जाओ; क्योंकि जिसके लिये तुम काशी जा रहे थे, वह प्रयोजन इस समय तृतीय अध्यायके पाठसे ही सिद्ध हो गया है।' पिताके यों कहनेपर पुत्रने पूछा—'तात! मेरे हितका उपदेश दीजिये तथा और कोई कार्य जो मेरे लिये करनेयोग्य हो बतलाइये।' तब पिताने उससे कहा—'अनघ! तुम्हें यही कार्य फिर करना है। मैंने जो कर्म किया है, वही मेरे भाईने भी किया था। इससे वे घोर नरकमें पड़े हैं। उनका भी तुम्हें उद्धार करना चाहिये तथा मेरे कुलके और भी जितने लोग नरकमें पड़े हैं, उन सबका भी तुम्हारे द्वारा उद्धार हो जाना चाहिये; यही मेरा मनोरथ है। बेटा! जिस साधनके द्वारा तुमने मुझे संकटसे छुड़ाया है। उसीका अनुष्ठान औरोंके लिये भी करना उचित है। उसका अनुष्ठान करके उससे होनेवाला पुण्य उन नारकी जीवोंको संकल्प करके दे दो। इससे वे समस्त पूर्वज मेरी ही तरह यातनासे मुक्त हो स्वल्पकालमें ही श्रीविष्णुके परमपदको प्राप्त हो जायँगे।'
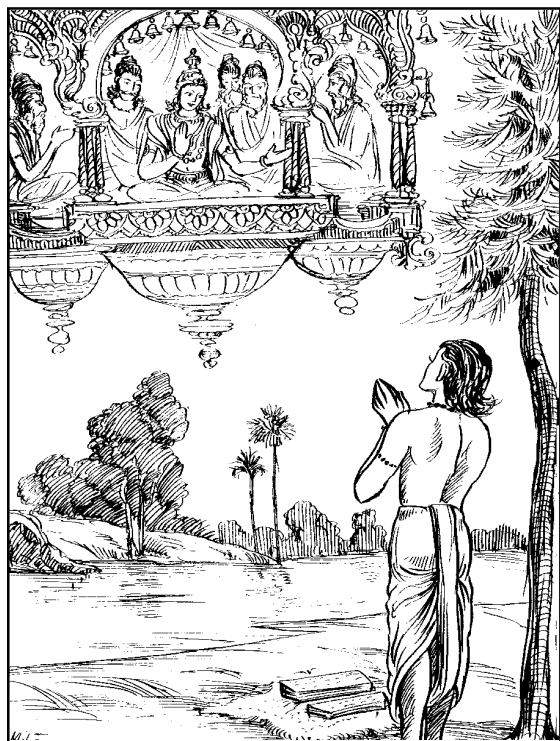
पिताका यह सन्देश सुनकर पुत्रने कहा—'तात! यदि ऐसी बात है और आपकी भी ऐसी ही रुचि है तो मैं समस्त नारकी जीवोंका नरकसे उद्धार कर दूँगा।' यह सुनकर उसके पिता बोले—'बेटा! एवमस्तु, तुम्हारा

कल्याण हो; मेरा अत्यन्त प्रिय कार्य सम्पन्न हो गया!' इस प्रकार पुत्रको आश्वासन देकर उसके पिता भगवान् विष्णुके परमधामको चले गये। तत्पश्चात् वह भी लौटकर जनस्थानमें आया और परम सुन्दर भगवान् श्रीकृष्णके मन्दिरमें उनके समक्ष बैठकर पिताके आदेशानुसार गीताके तीसरे अध्यायका पाठ करने लगा। उसने नारकी जीवोंका उद्धार करनेकी इच्छासे गीतापाठजनित सारा पुण्य संकल्प करके दे दिया।

इसी बीचमें भगवान् विष्णुके दूत यातना भोगनेवाले नारकी जीवोंको छुड़ानेके लिये यमराजके पास गये। यमराजने नाना प्रकारके सत्कारोंसे उनका पूजन किया और कुशल पूछी। वे बोले—'धर्मराज! हमलोगोंके लिये सब ओर आनन्द-ही-आनन्द है।' इस प्रकार सत्कार करके पितृलोकके सम्राट् परम बुद्धिमान् यमने विष्णुदूतोंसे यमलोकमें आनेका कारण पूछा।

तब विष्णुदूतोंने कहा—यमराज! शेषशय्यापर शयन करनेवाले भगवान् विष्णुने हमलोगोंको आपके पास कुछ सन्देश देनेके लिये भेजा है। भगवान् हमलोगोंके मुखसे आपकी कुशल पूछते हैं और यह आज्ञा देते हैं कि 'आप नरकमें पड़े हुए समस्त प्राणियोंको छोड़ दें।'

अमिततेजस्वी भगवान् विष्णुका यह आदेश सुनकर यमने मस्तक झुकाकर उसे स्वीकार किया और मन-ही-मन कुछ सोचा। तत्पश्चात् मदोन्मत्त नारकी जीवोंको नरकसे मुक्त देखकर उनके साथ ही वे भगवान् विष्णुके वास-स्थानको चले। यमराज श्रेष्ठ विमानके द्वारा जहाँ क्षीरसागर है, वहाँ जा पहुँचे। उसके भीतर कोटि-कोटि सूर्योंके समान कान्तिमान् नील कमल-दलके समान श्यामसुन्दर लोकनाथ जगद्‌गुरु श्रीहरिका उन्होंने दर्शन किया। भगवान्‌का तेज उनकी शय्या बने हुए शेषनागके फनोंकी मणियोंके प्रकाशसे दुगुना हो रहा था। वे आनन्दयुक्त दिखायी दे रहे थे। उनका हृदय प्रसन्नतासे परिपूर्ण था। भगवती लक्ष्मी अपनी सरल चितवनसे प्रेमपूर्वक उन्हें बारम्बार निहार रही थीं। चारों ओर योगीजन भगवान्‌की सेवामें खड़े थे। उन योगियोंकी आँखोंके तारे ध्यानस्थ होनेके कारण निश्चल प्रतीत होते थे। देवराज इन्द्र अपने विरोधियोंको परास्त करनेके उद्देश्यसे भगवान्‌की स्तुति कर रहे थे। ब्रह्माजीके मुखसे निकले हुए वेदान्तवाक्य मूर्तिमान् होकर भगवान्‌के गुणोंका गान कर रहे थे। भगवान् पूर्णतः सन्तुष्ट होनेके साथ ही समस्त योनियोंकी ओरसे उदासीन प्रतीत होते थे। जीवोंमेंसे जिन्होंने योग-साधनके द्वारा अधिक पुण्य संचय किया था, उन सबको एक ही साथ वे कृपादृष्टिसे निहार रहे थे। भगवान् अपने स्वरूपभूत अखिल चराचर जगत्‌को आनन्दपूर्ण दृष्टिसे आमोदित कर रहे थे। शेषनागकी प्रभासे उद्भासित एवं सर्वत्र व्यापक दिव्य विग्रह धारण किये नील कमलके सदृश श्यामवर्णवाले श्रीहरि ऐसे जान पड़ते थे, मानो चाँदनीसे घिरा हुआ आकाश सुशोभित हो रहा हो। इस प्रकार भगवान्‌की झाँकी करके यमराज अपनी विशाल बुद्धिके द्वारा उनकी स्तुति करने लगे।

यमराज बोले—सम्पूर्ण जगत्‌का निर्माण करनेवाले परमेश्वर! आपका अन्तःकरण अत्यन्त निर्मल है। आपके मुखसे ही वेदोंका प्रादुर्भाव हुआ है। आप

ही विश्वस्वरूप और इसके विधायक ब्रह्मा हैं। आपको नमस्कार है। अपने बल और वेगके कारण जो अत्यन्त दुर्धर्ष प्रतीत होते हैं, ऐसे दानवेन्द्रोंका अभिमान चूर्ण करनेवाले भगवान् विष्णुको नमस्कार है। पालनके समय सत्त्वमय शरीर धारण करनेवाले, विश्वके आधारभूत, सर्वव्यापी श्रीहरिको नमस्कार है। समस्त देहधारियोंकी पातक-राशिको दूर करनेवाले परमात्माको प्रणाम है। जिनके ललाटवर्ती नेत्रके तनिक-सा खुलनेपर भी आगकी लपटें निकलने लगती हैं, उन रुद्ररूपधारी आप परमेश्वरको नमस्कार है। आप सम्पूर्ण विश्वके गुरु, आत्मा और महेश्वर हैं; अतः समस्त वैष्णवजनोंको संकटसे मुक्त करके उनपर अनुग्रह करते हैं। आप मायासे विस्तारको प्राप्त हुए अखिल विश्वमें व्याप्त होकर भी कभी माया अथवा उससे उत्पन्न होनेवाले गुणोंसे मोहित नहीं होते। माया तथा मायाजनित गुणोंके बीचमें स्थित होनेपर भी आपपर उनमेंसे किसीका प्रभाव नहीं पड़ता। आपकी महिमाका अन्त नहीं है; क्योंकि आप असीम हैं। फिर आप वाणीके विषय कैसे हो सकते हैं। अतः मेरा मौन रहना ही उचित है।

इस प्रकार स्तुति करके यमराजने हाथ जोड़कर कहा—'जगद्गुरो! आपके आदेशसे इन जीवोंको गुणरहित होनेपर भी मैंने छोड़ दिया है। अब मेरे योग्य और जो कार्य हो, उसे बताइये।' उनके यों कहनेपर भगवान् मधुसूदन मेघके समान गम्भीर वाणीद्वारा मानो अमृत-रससे सींचते हुए बोले—'धर्मराज! तुम सबके प्रति समानभाव रखते हुए लोकोंका पापसे उद्धार कर रहे हो। तुमपर देहधारियोंका भार रखकर मैं निश्चिन्त हूँ। अतः तुम अपना काम करो और अपने लोकको लौट जाओ।'

यों कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये। यमराज भी अपनी पुरीको लौट आये तथा वह ब्राह्मण अपनी जातिके और समस्त नारकी जीवोंका नरकसे उद्धार करके स्वयं भी श्रेष्ठ विमानद्वारा श्रीविष्णुधामको चला गया।

श्रीमद्भगवद्गीताके चौथे अध्यायका माहात्म्य

श्रीभगवान् कहते हैं—प्रिये! अब मैं चौथे अध्यायका माहात्म्य बतलाता हूँ, सुनो। भागीरथीके तटपर वाराणसी (बनारस) नामकी एक पुरी है। वहाँ विश्वनाथजीके मन्दिरमें भरत नामके एक योगनिष्ठ महात्मा रहते थे, जो प्रतिदिन आत्मचिन्तनमें तत्पर हो आदरपूर्वक गीताके चतुर्थ अध्यायका पाठ किया करते थे। उसके अभ्याससे उनका अन्तःकरण निर्मल हो गया था। वे शीत-उष्ण आदि द्वन्द्वोंसे कभी व्यथित नहीं होते थे। एक समयकी बात है, वे तपोधन नगरकी सीमामें स्थित देवताओंका दर्शन करनेकी इच्छासे भ्रमण करते हुए नगरसे बाहर निकल गये। वहाँ बेरके दो वृक्ष थे। उन्हींकी जड़में वे विश्राम करने लगे। एक वृक्षकी जड़में उन्होंने अपना मस्तक रखा था और दूसरे वृक्षके मूलमें उनका एक पैर टिका हुआ था। थोड़ी देर बाद जब वे तपस्वी चले गये, तब बेरके वे दोनों वृक्ष पाँच-ही-छः दिनोंके भीतर सूख गये। उनमें पत्ते और डालियाँ भी नहीं रह गयीं। तत्पश्चात् वे दोनों वृक्ष कहीं ब्राह्मणोंके पवित्र गृहमें दो कन्याओंके रूपमें उत्पन्न हुए।

वे दोनों कन्याएँ जब बढ़कर सात वर्षकी हो गयीं, तब एक दिन उन्होंने दूर देशोंसे घूमकर आते हुए भरतमुनिको देखा। उन्हें देखते ही वे दोनों उनके चरणोंमें पड़ गयीं और मीठी वाणीमें बोलीं—'मुने! आपकी ही कृपासे हम दोनोंका उद्धार हुआ है। हमने बेरकी योनि त्यागकर मानव-शरीर प्राप्त किया है।' उनके इस प्रकार कहनेपर मुनिको बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने पूछा—'पुत्रियो! मैंने कब और किस साधनसे तुम्हें मुक्त किया था? साथ ही यह भी बताओ कि तुम्हारे बेरके वृक्ष होनेमें क्या कारण था? क्योंकि इस विषयमें मुझे कुछ भी ज्ञात नहीं है।'

तब वे कन्याएँ पहले उन्हें अपने बेर हो जानेका

कारण बतलाती हुई बोलीं—''मुने! गोदावरी नदीके तटपर छिन्नपाप नामका एक उत्तम तीर्थ है, जो मनुष्योंको पुण्य प्रदान करनेवाला है। वह पावनताकी चरम सीमापर पहुँचा हुआ है। उस तीर्थमें सत्यतपा नामक एक तपस्वी बड़ी कठोर तपस्या कर रहे थे। वे ग्रीष्मऋतुमें प्रज्वलित अग्नियोंके बीचमें बैठते थे, वर्षाकालमें जलकी धाराओंसे उनके मस्तकके बाल सदा भींगे ही रहते थे तथा जाड़ेके समय जलमें निवास करनेके कारण उनके शरीरमें हमेशा रोंगटे खड़े रहते थे। वे बाहर-भीतरसे सदा शुद्ध रहते, समयपर तपस्या करते तथा मन और इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए परम शान्ति प्राप्त करके आत्मामें ही रमण करते थे। वे अपनी विद्वत्ताके द्वारा जैसा व्याख्यान करते थे, उसे सुननेके लिये साक्षात् ब्रह्माजी भी प्रतिदिन उनके पास उपस्थित होते और प्रश्न करते थे। ब्रह्माजीके साथ उनका संकोच नहीं रह गया था; अतः उनके आनेपर भी वे सदा तपस्यामें मग्न रहते थे। परमात्माके ध्यानमें निरन्तर संलग्न रहनेके कारण उनकी तपस्या सदा बढ़ती रहती थी। सत्यतपाको जीवन्मुक्तके समान मानकर इन्द्रको अपने समृद्धिशाली पदके सम्बन्धमें कुछ भय हुआ। तब उन्होंने उनकी तपस्यामें सैकड़ों विघ्न डालने आरम्भ किये। अप्सराओंके समुदायसे हम दोनोंको बुलाकर इन्द्रने इस प्रकार आदेश दिया—'तुम दोनों उस तपस्वीकी तपस्यामें विघ्न डालो, जो मुझे इन्द्रपदसे हटाकर स्वयं स्वर्गका राज्य भोगना चाहता है।'

''इन्द्रका यह आदेश पाकर हम दोनों उनके सामनेसे चलकर गोदावरीके तीरपर, जहाँ वे मुनि तपस्या करते थे, आयीं। वहाँ मन्द एवं गम्भीर स्वरसे बजते हुए मृदंग तथा मधुर वेणुनादके साथ हम दोनोंने अन्य अप्सराओंसहित मधुर स्वरमें गाना आरम्भ किया। इतना ही नहीं, उन योगी महात्माको वशमें करनेके लिये हमलोग स्वर, ताल और लयके साथ नृत्य भी करने लगीं। बीच-बीचमें जरा-जरा-सा अंचल खिसकनेपर उन्हें हमारी छाती भी दीख जाती थी। हम दोनोंकी उन्मत्त गति कामभावका उद्दीपन करनेवाली थी; किन्तु उसने उन निर्विकार चित्तवाले महात्माके मनमें क्रोधका संचार कर दिया। तब उन्होंने हाथसे जल छोड़कर हमें क्रोधपूर्वक शाप दिया—'अरी! तुम दोनों गंगाजीके तटपर बेरके वृक्ष हो जाओ।' यह सुनकर हमलोगोंने बड़ी विनयके साथ कहा—'महात्मन्! हम दोनों पराधीन थीं; अतः हमारे द्वारा जो दुष्कर्म बन गया है, उसे आप क्षमा करें।' यों कहकर हमने मुनिको प्रसन्न कर लिया। तब उन पवित्र चित्तवाले मुनिने हमारे शापोद्धारकी अवधि निश्चित करते हुए कहा—'भरत मुनिके आनेतक ही तुमपर यह शाप लागू होगा। उसके बाद तुमलोगोंका मर्त्यलोकमें जन्म होगा और पूर्वजन्मकी स्मृति बनी रहेगी।'

''मुने! जिस समय हम दोनों बेर-वृक्षके रूपमें खड़ी थीं, उस समय आपने हमारे समीप आकर गीताके चौथे अध्यायका जप करते हुए हमारा उद्धार किया था; अतः हम आपको प्रणाम करती हैं। आपने केवल शापसे ही नहीं, इस भयानक संसारसे भी गीताके चतुर्थ अध्यायके पाठद्वारा हमें मुक्त कर दिया।''

श्रीभगवान् कहते हैं—उन दोनोंके इस प्रकार कहनेपर मुनि बहुत ही प्रसन्न हुए और उनसे पूजित हो विदा लेकर जैसे आये थे, वैसे ही चले गये तथा वे कन्याएँ भी बड़े आदरके साथ प्रतिदिन गीताके चतुर्थ अध्यायका पाठ करने लगीं, जिससे उनका उद्धार हो गया।

श्रीमद्भगवद्गीताके पाँचवें अध्यायका माहात्म्य

श्रीभगवान् कहते हैं—देवि! अब सब लोगों-द्वारा सम्मानित पाँचवें अध्यायका माहात्म्य संक्षेपसे बतलाता हूँ, सावधान होकर सुनो। मद्रदेशमें पुरुकुत्सपुर नामक एक नगर है। उसमें पिंगल नामका एक ब्राह्मण रहता था। वह वेदपाठी ब्राह्मणोंके विख्यात वंशमें, जो सर्वथा निष्कलंक था, उत्पन्न हुआ था; किन्तु अपने कुलके लिये उचित वेद-शास्त्रोंके स्वाध्यायको छोड़कर ढोल आदि बजाते हुए उसने नाच-गानमें मन लगाया। गीत, नृत्य और बाजा बजानेकी कलामें परिश्रम करके पिंगलने बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त कर ली और उसीसे उसका राजभवनमें भी प्रवेश हो गया। अब वह राजाके साथ रहने लगा और परायी स्त्रियोंको बुला-बुलाकर उनका उपभोग करने लगा। स्त्रियोंके सिवा और कहीं इसका मन नहीं लगता था। धीरे-धीरे अभिमान बढ़ जानेसे उच्छृंखल होकर वह एकान्तमें राजासे दूसरोंके दोष बतलाने लगा। पिंगलकी एक स्त्री थी, जिसका नाम था अरुणा। वह नीच कुलमें उत्पन्न हुई थी और कामी पुरुषोंके साथ विहार करनेकी इच्छासे सदा उन्हींकी खोजमें घूमा करती थी। उसने पतिको अपने मार्गका कण्टक समझकर एक दिन आधी रातमें घरके भीतर ही उसका सिर काटकर मार डाला और उसकी लाशको जमीनमें गाड़ दिया। इस प्रकार प्राणोंसे वियुक्त होनेपर वह यमलोकमें पहुँचा और भीषण नरकोंका उपभोग करके निर्जन वनमें गिद्ध हुआ।

अरुणा भी भगन्दर रोगसे अपने सुन्दर शरीरको त्याग कर घोर नरक भोगनेके पश्चात् उसी वनमें शुकी हुई। एक दिन वह दाना चुगनेकी इच्छासे इधर-उधर फुदक रही थी, इतनेमें ही उस गिद्धने पूर्वजन्मके वैरका स्मरण करके उसे अपने तीखे नखोंसे फाड़ डाला। शुकी घायल होकर पानीसे भरी हुई मनुष्यकी खोपड़ीमें गिरी। गिद्ध पुन: उसकी ओर झपटा। इतनेमें ही जाल फैलानेवाले बहेलियोंने उसे भी बाणोंका निशाना बनाया। उसकी पूर्वजन्मकी पत्नी शुकी उस खोपड़ीके जलमें डूबकर प्राण त्याग चुकी थी। फिर वह क्रूर पक्षी भी उसीमें गिरकर डूब गया। तब यमराजके दूत उन दोनोंको यमराजके लोकमें ले गये। वहाँ अपने पूर्वकृत पापकर्मको याद करके दोनों ही भयभीत हो रहे थे। तदनन्तर यमराजने जब उनके घृणित कर्मोंपर दृष्टिपात किया, तब उन्हें मालूम हुआ कि मृत्युके समय अकस्मात् खोपड़ीके जलमें स्नान करनेसे इन दोनोंका पाप नष्ट हो चुका है। तब उन्होंने उन दोनोंको मनोवांछित लोकमें जानेकी आज्ञा दी। यह सुनकर अपने पापको याद करते हुए वे दोनों बड़े विस्मयमें पड़े और पास जाकर धर्मराजके चरणोंमें प्रणाम करके पूछने लगे—'भगवन्! हम दोनोंने पूर्वजन्ममें अत्यन्त घृणित पापका संचय किया है। फिर हमें मनोवांछित लोकोंमें भेजनेका क्या कारण है? बताइये।'

यमराजने कहा—गंगाके किनारे वट नामक एक उत्तम ब्रह्मज्ञानी रहते थे। वे एकान्तसेवी, ममतारहित, शान्त, विरक्त और किसीसे भी द्वेष न रखनेवाले थे।
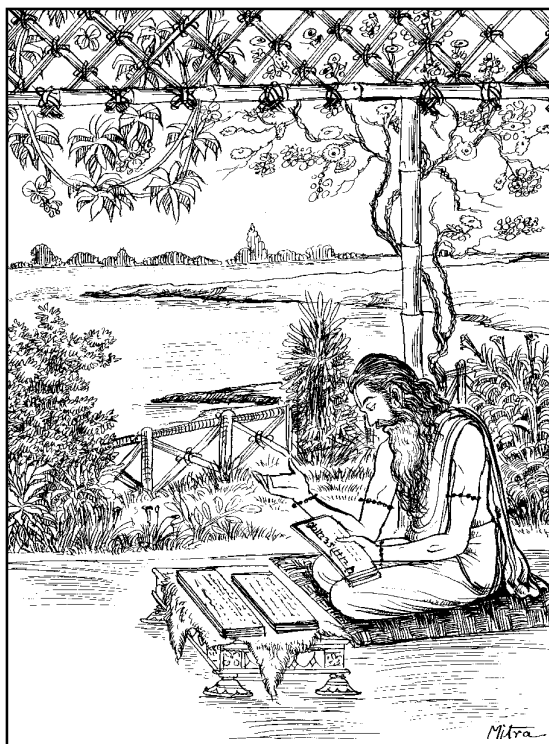
प्रतिदिन गीताके पाँचवें अध्यायका जप करना उनका सदाका नियम था। पाँचवें अध्यायको श्रवण कर लेनेपर महापापी पुरुष भी सनातन ब्रह्मका ज्ञान प्राप्त कर लेता है। उसी पुण्यके प्रभावसे शुद्धचित्त होकर उन्होंने अपने शरीरका परित्याग किया था। गीताके पाठसे जिनका शरीर निर्मल हो गया था, जो आत्मज्ञान प्राप्त कर चुके थे, उन्हीं महात्माकी खोपड़ीका जल पाकर तुम दोनों पवित्र हो गये हो। अतः अब तुम दोनों मनोवांछित लोकोंको जाओ; क्योंकि गीताके पाँचवें अध्यायके माहात्म्यसे तुम दोनों शुद्ध हो गये हो।

श्रीभगवान् कहते हैं—सबके प्रति समानभाव रखनेवाले धर्मराजके द्वारा इस प्रकार समझाये जानेपर ये दोनों बहुत प्रसन्न हुए और विमानपर बैठकर वैकुण्ठधामको चले गये।

श्रीमद्भगवद्गीताके छठे अध्यायका माहात्म्य

श्रीभगवान् कहते हैं—सुमुखि! अब मैं छठे अध्यायका माहात्म्य बतलाता हूँ, जिसे सुननेवाले मनुष्योंके लिये मुक्ति करतलगत हो जाती है। गोदावरी नदीके तटपर प्रतिष्ठानपुर (पैठण) नामक एक विशाल नगर है, जहाँ मैं पिप्पलेशके नामसे विख्यात होकर रहता हूँ। उस नगरमें जानश्रुति नामक एक राजा रहते थे, जो भूमण्डलकी प्रजाको अत्यन्त प्रिय थे। उनका प्रताप मार्तण्ड-मण्डलके प्रचण्ड तेजके समान जान पड़ता था। प्रतिदिन होनेवाले उनके यज्ञके धुएँसे नन्दनवनके कल्पवृक्ष इस प्रकार काले पड़ गये थे, मानो राजाकी असाधारण दानशीलता देखकर वे लज्जित हो गये हों। उनके यज्ञमें प्राप्त पुरोडाशके रसास्वादनमें सदा आसक्त होनेके कारण देवतालोग कभी प्रतिष्ठानपुरको छोड़कर बाहर नहीं जाते थे। उनके दानके समय छोड़े हुए जलकी धारा, प्रतापरूपी तेज और यज्ञके धूमोंसे पुष्ट होकर मेघ ठीक समयपर वर्षा करते थे। उस राजाके शासनकालमें ईतियों (खेतीमें होनेवाले छः प्रकारके उपद्रवों)-के लिये कहीं थोड़ा भी स्थान नहीं मिलता था और अच्छी नीतियोंका सर्वत्र प्रसार होता था। वे बावली, कुएँ और पोखरे खुदवानेके बहाने मानो प्रतिदिन पृथ्वीके भीतरकी निधियोंका अवलोकन करते थे। एक समय राजाके दान, तप, यज्ञ और प्रजापालनसे सन्तुष्ट होकर स्वर्गके देवता उन्हें वर देनेके लिये आये। वे कमलनालके समान उज्ज्वल हंसोंका रूप धारण कर अपनी पाँखें हिलाते हुए आकाशमार्गसे चलने लगे। बड़ी उतावलीके साथ उड़ते हुए वे सभी हंस परस्पर बातचीत भी करते जाते थे। उनमेंसे भद्राश्व आदि दो-तीन हंस वेगसे उड़कर आगे निकल गये। तब पीछेवाले हंसोंने आगे जानेवालोंको संबोधित करके कहा—'अरे भाई भद्राश्व! तुमलोग वेगसे चलकर आगे क्यों हो गये? यह मार्ग बड़ा दुर्गम है; इसमें हम सबको साथ मिलकर चलना चाहिये। क्या तुम्हें दिखायी नहीं देता, यह सामने ही पुण्यमूर्ति महाराज जानश्रुतिका तेजःपुंज अत्यन्त स्पष्टरूपसे प्रकाशमान हो रहा है। [उस तेजसे भस्म होनेकी आशंका है, अतः सावधान होकर चलना चाहिये।]'

पीछेवाले हंसोंके वचन सुनकर आगेवाले हंस हँस पड़े और उच्चस्वरसे उनकी बातोंकी अवहेलना करते हुए बोले—'अरे भाई! क्या इस राजा जानश्रुतिका तेज ब्रह्मवादी महात्मा रैक्वके तेजसे भी अधिक तीव्र है?'

हंसोंकी ये बातें सुनकर राजा जानश्रुति अपने ऊँचे महलकी छतसे उतर गये और सुखपूर्वक आसनपर विराजमान हो अपने सारथिको बुलाकर बोले—'जाओ, महात्मा रैक्वको यहाँ ले आओ।' राजाका यह अमृतके समान वचन सुनकर मह नामक सारथि प्रसन्नता प्रकट करता हुआ नगरसे बाहर निकला। सबसे पहले उसने मुक्तिदायिनी काशीपुरीकी यात्रा की, जहाँ जगत्के स्वामी भगवान् विश्वनाथ मनुष्योंको उपदेश दिया करते हैं। उसके बाद वह गयाक्षेत्रमें पहुँचा, जहाँ प्रफुल्ल नेत्रोंवाले भगवान् गदाधर सम्पूर्ण लोकोंका उद्धार करनेके लिये

निवास करते हैं। तदनन्तर नाना तीर्थोंमें भ्रमण करता हुआ सारथि पापनाशिनी मथुरापुरीमें गया; यह भगवान् श्रीकृष्णका आदि स्थान है, जो परम महान् एवं मोक्ष प्रदान करनेवाला है। वेद और शास्त्रोंमें वह तीर्थ त्रिभुवनपति भगवान् गोविन्दके अवतारस्थानके नामसे प्रसिद्ध है। नाना देवता और ब्रह्मर्षि उसका सेवन करते हैं। मथुरा नगर कालिन्दी (यमुना)-के किनारे शोभा पाता है। उसकी आकृति अर्द्धचन्द्रके समान प्रतीत होती है। वह सब तीर्थोंके निवाससे परिपूर्ण है। परम आनन्द प्रदान करनेके कारण सुन्दर प्रतीत होता है। गोवर्धन पर्वतके होनेसे मथुरामण्डलकी शोभा और भी बढ़ गयी है। वह पवित्र वृक्षों और लताओंसे आवृत है। उसमें बारह वन हैं। वह परम पुण्यमय तथा सबको विश्राम देनेवाले श्रुतियोंके सारभूत भगवान् श्रीकृष्णकी आधारभूमि है।

तत्पश्चात् मथुरासे पश्चिम और उत्तर दिशाकी ओर बहुत दूरतक जानेपर सारथिको काश्मीर नामक नगर दिखायी दिया, जहाँ शंखके समान उज्ज्वल गगनचुम्बी महलोंकी पंक्तियाँ भगवान् शंकरके अट्टहासकी भाँति शोभा पाती हैं। जहाँ ब्राह्मणोंके शास्त्रीय आलाप सुनकर मूक मनुष्य भी सुन्दर वाणी और पदोंका उच्चारण करते हुए देवताके समान हो जाते हैं। जहाँ निरन्तर होनेवाले यज्ञ-धूमसे व्याप्त होनेके कारण आकाशमण्डल मेघोंसे धुलते रहनेपर भी अपनी कालिमा नहीं छोड़ता। जहाँ उपाध्यायके पास आकर छात्र जन्मकालीन अभ्याससे ही सम्पूर्ण कलाएँ स्वत: पढ़ लेते हैं तथा जहाँ माणिक्येश्वर नामसे प्रसिद्ध भगवान् चन्द्रशेखर देहधारियोंको वरदान देनेके लिये नित्य निवास करते हैं। काश्मीरके राजा माणिक्येशने दिग्विजयमें समस्त राजाओंको जीतकर भगवान् शिवका पूजन किया था, तभीसे उनका नाम माणिक्येश्वर हो गया था। उन्हींके मन्दिरके दरवाजेपर महात्मा रैक्व एक छोटी-सी गाड़ीपर बैठे अपने अंगोंको खुजलाते हुए वृक्षकी छायाका सेवन कर रहे थे। इसी अवस्थामें सारथिने उन्हें देखा। राजाके बताये हुए भिन्न-भिन्न चिह्नोंसे उसने शीघ्र ही रैक्वको पहचान लिया और उनके चरणोंमें प्रणाम करके कहा—'ब्रह्मन्! आप किस स्थानपर रहते हैं? आपका पूरा नाम क्या है? आप तो सदा स्वच्छन्द विचरनेवाले हैं, फिर यहाँ किसलिये ठहरे हैं? इस समय आपका क्या करनेका विचार है?'

सारथिके ये वचन सुनकर परम आनन्दमें निमग्न महात्मा रैक्वने कुछ सोचकर उससे कहा—'यद्यपि हम पूर्णकाम हैं—हमें किसी वस्तुकी आवश्यकता नहीं है, तथापि कोई भी हमारी मनोवृत्तिके अनुसार परिचर्या कर सकता है।' रैक्वके हार्दिक अभिप्रायको आदरपूर्वक ग्रहण करके सारथि धीरेसे राजाके पास चल दिया। वहाँ पहुँचकर राजाको प्रणाम करके उसने हाथ जोड़ सारा समाचार निवेदन किया। उस समय स्वामीके दर्शनसे उसके मनमें बड़ी प्रसन्नता थी। सारथिके वचन सुनकर राजाके नेत्र आश्चर्यसे चकित हो उठे। उनके हृदयमें रैक्वका सत्कार करनेकी श्रद्धा जाग्रत् हुई। उन्होंने दो खच्चरियोंसे जुती हुई एक गाड़ी लेकर यात्रा की। साथ ही मोतीके हार, अच्छे-अच्छे वस्त्र और एक सहस्र गौएँ भी ले लीं। काश्मीरमण्डलमें महात्मा रैक्व जहाँ रहते थे,
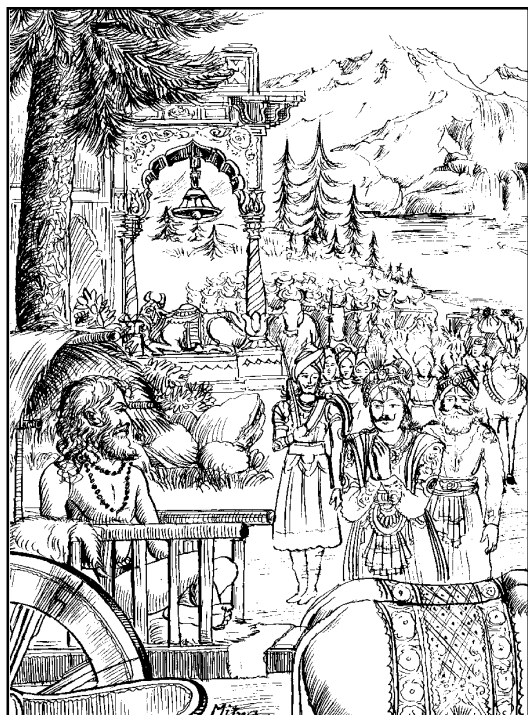
उस स्थानपर पहुँचकर राजाने सारी वस्तुएँ उनके आगे निवेदन कर दीं और पृथ्वीपर पड़कर साष्टांग प्रणाम किया। महात्मा रैक्व अत्यन्त भक्तिके साथ चरणोंमें पड़े हुए राजा जानश्रुतिपर कुपित हो उठे और बोले—'रे शूद्र! तू दुष्ट राजा है। क्या तू मेरा वृत्तान्त नहीं जानता? यह खच्चरियोंसे जुती हुई अपनी ऊँची गाड़ी ले जा। ये वस्त्र, ये मोतियोंके हार और ये दूध देनेवाली गौएँ भी स्वयं ही ले जा।' इस तरह आज्ञा देकर रैक्वने राजाके मनमें भय उत्पन्न कर दिया। तब राजाने शापके भयसे महात्मा रैक्वके दोनों चरण पकड़ लिये और भक्तिपूर्वक कहा—'ब्रह्मन्! मुझपर प्रसन्न होइये। भगवन्! आपमें यह अद्‌भुत माहात्म्य कैसे आया? प्रसन्न होकर मुझे ठीक-ठीक बताइये।'

रैक्व कहा—राजन्! मैं प्रतिदिन गीताके छठे अध्यायका जप करता हूँ; इसीसे मेरी तेजोराशि देवताओंके लिये भी दु:सह है।

तदनन्तर परम बुद्धिमान् राजा जानश्रुतिने यत्नपूर्वक महात्मा रैक्वसे गीताके छठे अध्यायका अभ्यास किया। इससे उन्हें मोक्षकी प्राप्ति हुई। इधर रैक्व भी भगवान् माणिक्येश्वरके समीप मोक्षदायक गीताके छठे अध्यायका जप करते हुए सुखसे रहने लगे। हंसका रूप धारण करके वरदान देनेके लिये आये हुए देवता भी विस्मित होकर स्वेच्छानुसार चले गये। जो मनुष्य सदा इस एक ही अध्यायका जप करता है, वह भी भगवान् विष्णुके ही स्वरूपको प्राप्त होता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

श्रीमद्भगवद्गीताके सातवें तथा आठवें अध्यायोंका माहात्म्य

भगवान् शिव कहते हैं—पार्वती! अब मैं सातवें अध्यायका माहात्म्य बतलाता हूँ, जिसे सुनकर कानोंमें अमृत-राशि भर जाती है। पाटलिपुत्र नामक एक दुर्गम नगर है, जिसका गोपुर (द्वार) बहुत ही ऊँचा है। उस नगरमें शंकुकर्ण नामक एक ब्राह्मण रहता था; उसने वैश्य-वृत्तिका आश्रय लेकर बहुत धन कमाया, किन्तु न तो कभी पितरोंका तर्पण किया और न देवताओंका पूजन ही। वह धनोपार्जनमें तत्पर होकर राजाओंको ही भोज दिया करता था। एक समयकी बात है, उस ब्राह्मणने अपना चौथा विवाह करनेके लिये पुत्रों और बन्धुओंके साथ यात्रा की। मार्गमें आधी रातके समय जब वह सो रहा था, एक सर्पने कहींसे आकर उसकी बाँहमें काट लिया। उसके काटते ही ऐसी अवस्था हो गयी कि मणि, मन्त्र और ओषधि आदिसे भी उसके शरीरकी रक्षा असाध्य जान पड़ी। तत्पश्चात् कुछ ही क्षणोंमें उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। फिर बहुत समयके बाद वह प्रेत सर्पयोनिमें उत्पन्न हुआ। उसका चित्त धनकी वासनामें बँधा था। उसने पूर्व वृत्तान्तको स्मरण करके सोचा—'मैंने जो घरके बाहर करोड़ोंकी संख्यामें अपना धन गाड़ रखा है, उससे इन पुत्रोंको वंचित करके स्वयं ही उसकी रक्षा करूँगा।' एक दिन साँपकी योनिसे पीड़ित होकर पिताने स्वप्नमें अपने पुत्रोंके समक्ष आकर अपना मनोभाव बताया, तब उसके निरंकुश पुत्रोंने सबेरे उठकर बड़े विस्मयके साथ एक-दूसरेसे स्वप्नकी बातें कहीं। उनमेंसे मझला पुत्र कुदाल हाथमें लिये घरसे निकला और जहाँ उसके पिता सर्पयोनि धारण करके रहते थे, उस स्थानपर गया। यद्यपि उसे धनके स्थानका ठीक-ठीक पता नहीं था तो भी उसने चिह्नोंसे उसका ठीक निश्चय कर लिया और लोभबुद्धिसे वहाँ पहुँचकर बाँबीको खोदना आरम्भ किया। तब उस बाँबीसे बड़ा भयानक साँप प्रकट हुआ और बोला—ओ मूढ़! तू कौन है, किसलिये आया है, क्यों बिल खोद रहा है, अथवा किसने तुझे भेजा है? ये सारी बातें मेरे सामने बता।'

पुत्र बोला—मैं आपका पुत्र हूँ। मेरा नाम शिव है। मैं रात्रिमें देखे हुए स्वप्नसे विस्मित होकर यहाँका सुवर्ण लेनेके कौतूहलसे आया हूँ।

पुत्रकी यह लोकनिन्दित वाणी सुनकर वह साँप हँसता हुआ उच्चस्वरसे इस प्रकार स्पष्ट वचन

बोला—'यदि तू मेरा पुत्र है तो मुझे शीघ्र ही बन्धनसे मुक्त कर। मैं पूर्वजन्मके गाड़े हुए धनके ही लिये सर्पयोनिमें उत्पन्न हुआ हूँ।'

पुत्रने पूछा—पिताजी! आपकी मुक्ति कैसे होगी? इसका उपाय मुझे बताइये; क्योंकि मैं इस रातमें सब लोगोंको छोड़कर आपके पास आया हूँ।

पिताने कहा—बेटा! गीताके अमृतमय सप्तम अध्यायको छोड़कर मुझे मुक्त करनेमें तीर्थ, दान, तप और यज्ञ भी सर्वथा समर्थ नहीं हैं। केवल गीताका सातवाँ अध्याय ही प्राणियोंके जरा-मृत्यु आदि दुःखको दूर करनेवाला है। पुत्र! मेरे श्राद्धके दिन सप्तम अध्यायका पाठ करनेवाले ब्राह्मणको श्रद्धापूर्वक भोजन कराओ। इससे निस्सन्देह मेरी मुक्ति हो जायगी। वत्स! अपनी शक्तिके अनुसार पूर्ण श्रद्धाके साथ वेद-विद्यामें प्रवीण अन्य ब्राह्मणोंको भी भोजन कराना।

सर्पयोनिमें पड़े हुए पिताके ये वचन सुनकर सभी पुत्रोंने उसकी आज्ञाके अनुसार तथा उससे भी अधिक किया। तब शंकुकर्णने अपने सर्पशरीरको त्यागकर दिव्य देह धारण किया और सारा धन पुत्रोंके अधीन कर दिया। पिताने करोड़ोंकी संख्यामें जो धन बाँटकर दिया था, उससे वे सदाचारी पुत्र बहुत प्रसन्न हुए। उनकी बुद्धि धर्ममें लगी हुई थी; इसलिये उन्होंने बावली, कुआँ, पोखरा, यज्ञ तथा देवमन्दिरके लिये उस धनका उपयोग किया और अन्नशाला भी बनवायी। तत्पश्चात् सातवें अध्यायका सदा जप करते हुए उन्होंने मोक्ष प्राप्त किया। पार्वती! यह तुम्हें सातवें अध्यायका माहात्म्य बताया गया है; जिसके श्रवणमात्रसे मानव सब पातकोंसे मुक्त हो जाता है।

भगवान् शिव कहते हैं—देवि! अब आठवें अध्यायका माहात्म्य सुनो! उसके सुननेसे तुम्हें बड़ी प्रसन्नता होगी। [लक्ष्मीजीके पूछनेपर भगवान् विष्णुने उन्हें इस प्रकार अष्टम अध्यायका माहात्म्य बतलाया था।] दक्षिणमें आमर्दकपुर नामक एक प्रसिद्ध नगर है। वहाँ भावशर्मा नामक एक ब्राह्मण रहता था, जिसने वेश्याको पत्नी बनाकर रखा था। वह मांस खाता, मदिरा पीता, साधुओंका धन चुराता, परायी स्त्रीसे व्यभिचार करता और शिकार खेलनेमें दिलचस्पी रखता था। वह बड़े भयानक स्वभावका था और मनमें बड़े-बड़े हौसले रखता था। एक दिन मदिरा पीनेवालोंका समाज जुटा था। उसमें भावशर्माने भर पेट ताड़ी पी—खूब गलेतक उसे चढ़ाया; अतः अजीर्णसे अत्यन्त पीड़ित होकर वह पापात्मा कालवश मर गया और बहुत बड़ा ताड़का वृक्ष हुआ। उसकी घनी और ठण्डी छायाका आश्रय लेकर ब्रह्मराक्षसभावको प्राप्त हुए कोई पति-पत्नी वहाँ रहा करते थे।

उनके पूर्वजन्मकी घटना इस प्रकार है। एक कुशीबल नामक ब्राह्मण था, जो वेद-वेदांगके तत्त्वोंका ज्ञाता, सम्पूर्ण शास्त्रोंके अर्थका विशेषज्ञ और सदाचारी था। उसकी स्त्रीका नाम कुमति था। वह बड़े खोटे विचारकी थी। वह ब्राह्मण विद्वान् होनेपर भी अत्यन्त लोभवश अपनी स्त्रीके साथ प्रतिदिन भैंस, कालपुरुष और घोड़े आदि बड़े दानोंको ग्रहण किया करता था; परन्तु दूसरे ब्राह्मणोंको दानमें मिली हुई कौड़ी भी नहीं देता था। वे ही दोनों पति-पत्नी कालवश

मृत्युको प्राप्त होकर ब्रह्मराक्षस हुए। वे भूख और प्याससे पीड़ित हो इस पृथ्वीपर घूमते हुए उसी ताड़-वृक्षके पास आये और उसके मूलभागमें विश्राम करने लगे। इसके बाद पत्नीने पतिसे पूछा—'नाथ! हमलोगोंका यह महान् दुःख कैसे दूर होगा तथा इस ब्रह्मराक्षसयोनिसे किस प्रकार हम दोनोंकी मुक्ति होगी?' तब उस ब्राह्मणने कहा—'ब्रह्मविद्याके उपदेश, अध्यात्मतत्त्वके विचार और कर्मविधिके ज्ञान बिना किस प्रकार संकटसे छुटकारा मिल सकता है।'

यह सुनकर पत्नीने पूछा—'किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम' (पुरुषोत्तम! वह ब्रह्म क्या है? अध्यात्म क्या है और कर्म कौन-सा है?) उसकी पत्नीके इतना कहते ही जो आश्चर्यकी घटना घटित हुई, उसको सुनो। उपर्युक्त वाक्य गीताके आठवें अध्यायका आधा श्लोक था। उसके श्रवणसे वह वृक्ष उस समय ताड़के रूपको त्यागकर भावशर्मा नामक ब्राह्मण हो गया। तत्काल ज्ञान होनेसे विशुद्धचित्त होकर वह पापके चोलेसे मुक्त हो गया तथा उस आधे श्लोकके ही माहात्म्यसे वे पति-पत्नी भी मुक्त हो गये। उनके मुखसे दैवात् ही आठवें अध्यायका आधा श्लोक निकल पड़ा था। तदनन्तर आकाशसे एक दिव्य विमान आया और वे दोनों पति-पत्नी उस विमानपर आरूढ़ होकर स्वर्गलोकको चले गये। वहाँका यह सारा वृत्तान्त अत्यन्त आश्चर्यजनक था।

उसके बाद उस बुद्धिमान् ब्राह्मण भावशर्माने आदरपूर्वक उस आधे श्लोकको लिखा और देवदेव जनार्दनकी आराधना करनेकी इच्छासे वह मुक्तिदायिनी काशीपुरीमें चला गया। वहाँ उस उदार बुद्धिवाले ब्राह्मणने भारी तपस्या आरम्भ की। उसी समय क्षीरसागरकी कन्या भगवती लक्ष्मीने हाथ जोड़कर देवताओंके भी देवता जगत्पति जनार्दनसे पूछा—'नाथ! आप सहसा नींद त्यागकर खड़े क्यों हो गये?'

श्रीभगवान् बोले—देवि! काशीपुरीमें भागीरथीके तटपर बुद्धिमान् ब्राह्मण भावशर्मा मेरे भक्तिरससे परिपूर्ण होकर अत्यन्त कठोर तपस्या कर रहा
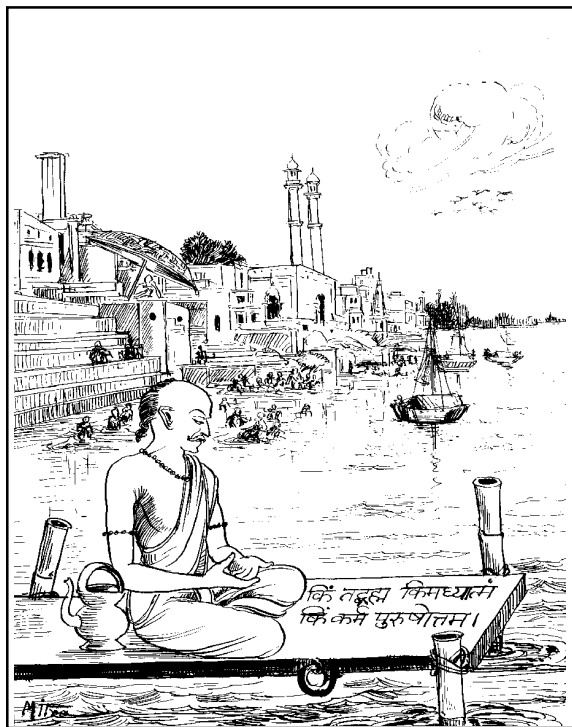
है। वह अपनी इन्द्रियोंको वशमें करके गीताके आठवें अध्यायके आधे श्लोकका जप करता है। मैं उसकी तपस्यासे बहुत सन्तुष्ट हूँ। बहुत देरसे उसकी तपस्याके अनुरूप फलका विचार कर रहा था। प्रिये! इस समय वह फल देनेको मैं उत्कण्ठित हूँ।

पार्वतीजीने पूछा—भगवन्! श्रीहरि सदा प्रसन्न होनेपर भी जिसके लिये चिन्तित हो उठे थे, उस भगवद्भक्त भावशर्माने कौन-सा फल प्राप्त किया?

श्रीमहादेवजी बोले—देवि! द्विजश्रेष्ठ भावशर्मा प्रसन्न हुए भगवान् विष्णुके प्रसादको पाकर आत्यन्तिक सुख (मोक्ष)-को प्राप्त हुआ तथा उसके अन्य वंशज भी, जो नरक-यातनामें पड़े थे, उसीके शुभकर्मसे भगवद्धामको प्राप्त हुए। पार्वती! यह आठवें अध्यायका माहात्म्य थोड़ेमें ही तुम्हें बताया है। इसपर सदा विचार करते रहना चाहिये।

श्रीमद्भगवद्गीताके नवें और दसवें अध्यायोंका माहात्म्य

श्रीमहादेवजी कहते हैं—पार्वती! अब मैं आदर-पूर्वक नवम अध्यायके माहात्म्यका वर्णन करूँगा, तुम स्थिर होकर सुनो। नर्मदाके तटपर माहिष्मती नामकी एक नगरी है। वहाँ माधव नामके एक ब्राह्मण रहते थे, जो वेद-वेदांगोंके तत्त्वज्ञ और समय-समयपर आनेवाले अतिथियोंके प्रेमी थे। उन्होंने विद्याके द्वारा बहुत धन कमाकर एक महान् यज्ञका अनुष्ठान आरम्भ किया। उस यज्ञमें बलि देनेके लिये एक बकरा मँगाया गया। जब उसके शरीरकी पूजा हो गयी, तब सबको आश्चर्यमें डालते हुए उस बकरेने हँसकर उच्चस्वरसे कहा—'ब्रह्मन्! इन बहुत-से यज्ञोंद्वारा क्या लाभ है। इनका फल तो नष्ट हो जानेवाला है तथा ये जन्म, जरा और मृत्युके भी कारण हैं। यह सब करनेपर भी मेरी जो वर्तमान दशा है, इसे देख लो।' बकरेके इस अत्यन्त कौतूहलजनक वचनको सुनकर यज्ञमण्डपमें रहनेवाले सभी लोग बहुत ही विस्मित हुए। तब वे यजमान ब्राह्मण हाथ जोड़ अपलक नेत्रोंसे देखते हुए बकरेको प्रणाम करके श्रद्धा और आदरके साथ पूछने लगे।

ब्राह्मण बोले—आप किस जातिके थे? आपका स्वभाव और आचरण कैसा था? तथा किस कर्मसे आपको बकरेकी योनि प्राप्त हुई? यह सब मुझे बताइये।

बकरा बोला—ब्रह्मन्! मैं पूर्वजन्ममें ब्राह्मणोंके अत्यन्त निर्मल कुलमें उत्पन्न हुआ था। समस्त यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाला और वेद-विद्यामें प्रवीण था। एक दिन मेरी स्त्रीने भगवती दुर्गाकी भक्तिसे विनम्र होकर अपने बालकके रोगकी शान्तिके लिये बलि देनेके निमित्त मुझसे एक बकरा माँगा। तत्पश्चात् जब चण्डिकाके मन्दिरमें वह बकरा मारा जाने लगा, उस समय उसकी माताने मुझे शाप दिया—'ओ ब्राह्मणोंमें नीच, पापी! तू मेरे बच्चेका वध करना चाहता है; इसलिये तू भी बकरेकी योनिमें जन्म लेगा।' द्विजश्रेष्ठ! तब कालवश मृत्युको प्राप्त होकर मैं बकरा हुआ। यद्यपि मैं पशुयोनिमें पड़ा हूँ, तो भी मुझे अपने पूर्वजन्मोंका स्मरण बना हुआ है। ब्रह्मन्! यदि आपको सुननेकी उत्कण्ठा हो, तो मैं एक और भी आश्चर्यकी बात बताता हूँ। कुरुक्षेत्र नामका एक नगर है, जो मोक्ष प्रदान करनेवाला है। वहाँ चन्द्रशर्मा नामक एक सूर्यवंशी राजा राज्य करते थे। एक समय जब कि सूर्यग्रहण लगा था, राजाने बड़ी श्रद्धाके साथ कालपुरुषका दान करनेकी तैयारी की। उन्होंने वेद-वेदांगोंके पारगामी एक विद्वान् ब्राह्मणको बुलवाया और पुरोहितके साथ वे तीर्थके पावन जलसे स्नान करनेको चले। तीर्थके पास पहुँचकर राजाने स्नान किया और दो वस्त्र धारण किये। फिर पवित्र एवं प्रसन्नचित्त होकर उन्होंने श्वेत चन्दन लगाया और बगलमें खड़े हुए पुरोहितका हाथ पकड़कर तत्कालोचित मनुष्योंसे घिरे हुए अपने स्थानपर लौट आये। आनेपर राजाने यथोचित विधिसे भक्तिपूर्वक ब्राह्मणको कालपुरुषका दान किया।

तब कालपुरुषका हृदय चीरकर उसमेंसे एक पापात्मा चाण्डाल प्रकट हुआ। फिर थोड़ी देरके बाद निन्दा भी चाण्डालीका रूप धारण करके कालपुरुषके शरीरसे निकली और ब्राह्मणके पास आ गयी। इस प्रकार चाण्डालोंकी वह जोड़ी आँखें लाल किये निकली और ब्राह्मणके शरीरमें हठात् प्रवेश करने लगी। ब्राह्मण मन-ही-मन गीताके नवम अध्यायका जप करते थे और राजा चुपचाप यह सब कौतुक देखने लगे। ब्राह्मणके अन्तःकरणमें भगवान् गोविन्द शयन करते थे। वे उन्हींका ध्यान करने लगे। ब्राह्मणने [जब गीताके नवम अध्यायका जप करते हुए] अपने आश्रयभूत भगवान्का ध्यान किया, उस समय गीताके अक्षरोंसे प्रकट हुए विष्णुदूतोंद्वारा पीड़ित होकर वे दोनों चाण्डाल भाग चले। उनका उद्योग निष्फल हो गया। इस प्रकार इस घटनाको प्रत्यक्ष देखकर राजाके नेत्र आश्चर्यसे चकित हो उठे। उन्होंने ब्राह्मणसे पूछा—'विप्रवर! इस महाभयंकर आपत्तिको आपने कैसे पार किया? आप किस मन्त्रका

जप तथा किस देवताका स्मरण कर रहे थे? वह पुरुष तथा वह स्त्री कौन थी? वे दोनों कैसे उपस्थित हुए? फिर वे शान्त कैसे हो गये? यह सब मुझे बतलाइये।'

ब्राह्मणने कहा—राजन्! चाण्डालका रूप धारण करके भयंकर पाप ही प्रकट हुआ था तथा वह स्त्री निन्दाकी साक्षात् मूर्ति थी। मैं इन दोनोंको ऐसा ही समझता हूँ। उस समय मैं गीताके नवें अध्यायके मन्त्रोंकी माला जपता था। उसीका माहात्म्य है कि सारा संकट दूर हो गया। महीपते! मैं नित्य ही गीताके नवम अध्यायका जप करता हूँ। उसीके प्रभावसे प्रतिग्रहजनित आपत्तियोंके पार हो सका हूँ।

यह सुनकर राजाने उसी ब्राह्मणसे गीताके नवम अध्यायका अभ्यास किया, फिर वे दोनों ही परमशान्ति (मोक्ष)-को प्राप्त हो गये।

[यह कथा सुनकर ब्राह्मणने बकरेको बन्धनसे मुक्त कर दिया और गीताके अभ्याससे परमगतिको प्राप्त किया।]

भगवान् शिव कहते हैं—सुन्दरि! अब तुम दशम अध्यायके माहात्म्यकी परम पावन कथा सुनो, जो स्वर्गरूपी दुर्गमें जानेके लिये सुन्दर सोपान और प्रभावकी चरम सीमा है। काशीपुरीमें धीरबुद्धि नामसे विख्यात एक ब्राह्मण था, जो मुझमें नन्दीके समान भक्ति रखता था। वह पावन कीर्तिके अर्जनमें तत्पर रहनेवाला, शान्तचित्त और हिंसा, कठोरता एवं दुःसाहससे दूर रहनेवाला था। जितेन्द्रिय होनेके कारण वह निवृत्तिमार्गमें ही स्थित रहता था। उसने वेदरूपी समुद्रका पार पा लिया था। वह सम्पूर्ण शास्त्रोंके तात्पर्यका ज्ञाता था। उसका चित्त सदा मेरे ध्यानमें संलग्न रहता था। वह मनको अन्तरात्मामें लगाकर सदा आत्मतत्त्वका साक्षात्कार किया करता था; अतः जब वह चलने लगता तो मैं प्रेमवश उसके पीछे दौड़-दौड़कर उसे हाथका सहारा देता रहता था।

यह देख मेरे पार्षद भृंगिरिटिने पूछा— भगवन्! इस प्रकार भला, किसने आपका दर्शन किया होगा। इस महात्माने कौन-सा तप, होम अथवा जप किया है कि स्वयं आप ही पद-पदपर इसे हाथका सहारा देते चलते हैं?

भृंगिरिटिका यह प्रश्न सुनकर मैंने इस प्रकार उत्तर

देना आरम्भ किया। एक समयकी बात है, कैलास-पर्वतके पार्श्वभागमें पुन्नाग वनके भीतर चन्द्रमाकी अमृतमयी किरणोंसे धुली हुई भूमिमें एक वेदीका आश्रय लेकर मैं बैठा हुआ था। मेरे बैठनेके क्षणभर बाद ही सहसा बड़े जोरकी आँधी उठी, वहाँके वृक्षोंकी शाखाएँ नीचे-ऊपर होकर आपसमें टकराने लगीं, कितनी ही टहनियाँ टूट-टूटकर बिखर गयीं। पर्वतकी अविचल छाया भी हिलने लगी। इसके बाद वहाँ महान् भयंकर शब्द हुआ। जिससे पर्वतकी कन्दराएँ प्रतिध्वनित हो उठीं। तदनन्तर आकाशसे कोई विशाल पक्षी उतरा, जिसकी कान्ति काले मेघके समान थी। वह कज्जलकी राशि, अन्धकारके समूह अथवा पंख कटे हुए काले पर्वत-सा जान पड़ता था। पैरोंसे पृथ्वीका सहारा लेकर उस पक्षीने मुझे प्रणाम किया और एक सुन्दर नवीन कमल मेरे चरणोंमें रखकर स्पष्ट वाणीमें स्तुति करनी आरम्भ की।

पक्षी बोला—देव! आपकी जय हो। आप चिदानन्दमयी सुधाके सागर तथा जगत्के पालक हैं। सदा सद्भावनासे युक्त एवं अनासक्तिकी लहरोंसे उल्लसित हैं। आपके वैभवका कहीं अन्त नहीं है। आपकी जय हो। अद्वैतवासनासे परिपूर्ण बुद्धिके द्वारा आप त्रिविध मलोंसे रहित हैं। आप जितेन्द्रिय भक्तोंके अधीन रहते हैं तथा ध्यानमें आपके स्वरूपका साक्षात्कार होता है। आप अविद्यामय उपाधिसे रहित, नित्यमुक्त, निराकार, निरामय, असीम, अहंकारशून्य, आवरणरहित और निर्गुण हैं। आपके चरणकमल शरणागत भक्तोंकी रक्षा करनेमें प्रवीण हैं। अपने भयंकर ललाटरूपी महासर्पकी विष-ज्वालासे आपने कामदेवको भस्म किया है। आपकी जय हो। आप प्रत्यक्ष आदि प्रमाणोंसे दूर होते हुए भी प्रामाण्यस्वरूप हैं। आपको बारंबार नमस्कार है। चैतन्यके स्वामी तथा त्रिभुवनरूप-धारी आपको प्रणाम है। मैं श्रेष्ठ योगियोंद्वारा चुम्बित आपके उन चरणकमलोंकी वन्दना करता हूँ, जो अपार भव-पापके समुद्रसे पार उतारनेमें अद्भुत शक्तिशाली हैं। महादेव! साक्षात् बृहस्पति भी आपकी स्तुति करनेकी धृष्टता नहीं कर सकते। सहस्र मुखोंवाले नागराज शेषमें भी इतनी चातुरी नहीं है कि वे आपके गुणोंका वर्णन कर सकें। फिर मेरे-जैसे छोटी बुद्धिवाले पक्षीकी तो बिसात ही क्या है।

उस पक्षीके द्वारा किये हुए इस स्तोत्रको सुनकर मैंने उससे पूछा—'विहंगम! तुम कौन हो और कहाँसे आये हो? तुम्हारी आकृति तो हंस-जैसी है, मगर रंग कौएका मिला है। तुम जिस प्रयोजनको लेकर यहाँ आये हो, उसे बताओ।'

पक्षी बोला—देवेश! मुझे ब्रह्माजीका हंस जानिये। धूर्जटे! जिस कर्मसे मेरे शरीरमें इस समय कालिमा आ गयी है, उसे सुनिये। प्रभो! यद्यपि आप सर्वज्ञ हैं [अतः आपसे कोई भी बात छिपी नहीं है] तथापि यदि आप पूछते हैं तो बतलाता हूँ। सौराष्ट्र (सूरत) नगरके पास एक सुन्दर सरोवर है, जिसमें कमल लहलहाते रहते थे। उसीमेंसे बालचन्द्रमाके टुकड़े-जैसे श्वेत मृणालोंके ग्रास लेकर मैं बड़ी तीव्र गतिसे आकाशमें उड़ रहा था। उड़ते-उड़ते सहसा वहाँसे पृथ्वीपर गिर पड़ा। जब होशमें आया और अपने गिरनेका कोई कारण न देख सका तो मन-ही-मन सोचने लगा—'अहो! यह मुझपर क्या आ पड़ा? आज मेरा पतन कैसे हो गया? पके हुए कपूरके समान मेरे श्वेत शरीरमें यह कालिमा कैसे आ गयी?' इस प्रकार विस्मित होकर मैं अभी विचार ही कर रहा था कि उस पोखरेके कमलोंमेंसे मुझे ऐसी वाणी सुनायी दी—'हंस! उठो, मैं तुम्हारे गिरने और काले होनेका कारण बताती हूँ।' तब मैं उठकर सरोवरके बीचमें गया और वहाँ पाँच कमलोंसे युक्त एक सुन्दर कमलिनीको देखा। उसको प्रणाम करके मैंने प्रदक्षिणा की और अपने पतनका सारा कारण पूछा।

कमलिनी बोली—कलहंस! तुम आकाशमार्गसे मुझे लाँघकर गये हो, उसी पातकके परिणामवश तुम्हें पृथ्वीपर गिरना पड़ा है तथा उसीके कारण तुम्हारे शरीरमें कालिमा दिखायी देती है। तुम्हें गिरा देख मेरे हृदयमें दया भर आयी और जब मैं इस मध्यम कमलके

द्वारा बोलने लगी हूँ, उस समय मेरे मुखसे निकली हुई सुगन्धको सूँघकर साठ हजार भँवरे स्वर्गलोकको प्राप्त हो गये हैं। पक्षिराज! जिस कारण मुझमें इतना वैभव—ऐसा प्रभाव आया है, उसे बतलाती हूँ; सुनो! इस जन्मसे पहले तीसरे जन्ममें मैं इस पृथ्वीपर एक ब्राह्मणकी कन्याके रूपमें उत्पन्न हुई थी। उस समय मेरा नाम सरोजवदना था। मैं गुरुजनोंकी सेवा करती हुई सदा एकमात्र पातिव्रत्यके पालनमें तत्पर रहती थी। एक दिनकी बात है, मैं एक मैनाको पढ़ा रही थी। इससे पतिसेवामें कुछ विलम्ब हो गया। इससे पतिदेवता कुपित हो गये और उन्होंने शाप दिया—'पापिनी! तू मैना हो जा।' मरनेके बाद यद्यपि मैं मैना ही हुई, तथापि पातिव्रत्यके प्रसादसे मुनियोंके ही घरमें मुझे आश्रय मिला। किसी मुनिकन्याने मेरा पालन-पोषण किया। मैं जिनके घरमें थी, वे ब्राह्मण प्रतिदिन प्रातःकाल विभूतियोग नामसे प्रसिद्ध गीताके दसवें अध्यायका पाठ करते थे और मैं उस पापहारी अध्यायको सुना करती थी। विहंगम! काल आनेपर मैं मैनाका शरीर छोड़कर दशम अध्यायके माहात्म्यसे स्वर्गलोकमें अप्सरा हुई। मेरा नाम पद्मावती हुआ और मैं पद्माकी प्यारी सखी हो गयी। एक दिन मैं विमानसे आकाशमें विचर रही थी। उस समय सुन्दर कमलोंसे सुशोभित इस रमणीय सरोवरपर मेरी दृष्टि पड़ी और इसमें उतरकर ज्यों ही मैंने जलक्रीड़ा आरम्भ की, त्यों ही दुर्वासा मुनि आ धमके। उन्होंने वस्त्रहीन अवस्थामें मुझे देख लिया। उनके भयसे मैंने स्वयं ही यह कमलिनीका रूप धारण कर लिया। मेरे दोनों पैर दो कमल हुए। दोनों हाथ भी दो कमल हो गये और शेष अंगोंके साथ मेरा मुख भी एक कमल हुआ। इस प्रकार मैं पाँच कमलोंसे युक्त हुई। मुनिवर दुर्वासाने मुझे देखा। उनके नेत्र क्रोधाग्निसे जल रहे थे। वे बोले—'पापिनी! तू इसी रूपमें सौ वर्षोंतक पड़ी रह।' यह शाप देकर वे क्षणभरमें अन्तर्धान हो गये। कमलिनी होनेपर भी विभूति-योगाध्यायके माहात्म्यसे मेरी वाणी लुप्त नहीं हुई है। मुझे लाँघनेमात्रके अपराधसे तुम पृथ्वीपर गिरे हो। पक्षिराज! यहाँ खड़े हुए तुम्हारे सामने ही आज मेरे शापकी निवृत्ति हो रही है, क्योंकि आज सौ वर्ष पूरे हो गये। मेरे द्वारा गाये जाते हुए उस उत्तम अध्यायको तुम भी सुन लो। उसके श्रवणमात्रसे तुम भी आज ही मुक्त हो जाओगे।

यों कहकर पद्मिनीने स्पष्ट एवं सुन्दर वाणीमें दसवें अध्यायका पाठ किया और वह मुक्त हो गयी। उसे सुननेके बाद उसीके दिये हुए इस उत्तम कमलको लाकर मैंने आपको अर्पण किया है।

इतनी कथा सुनाकर उस पक्षीने अपना शरीर त्याग दिया। यह एक अद्‌भुत-सी घटना हुई। वही पक्षी अब दसवें अध्यायके प्रभावसे ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न हुआ है। जन्मसे ही अभ्यास होनेके कारण शैशवावस्थासे ही इसके मुखसे सदा गीताके दसवें अध्यायका उच्चारण हुआ करता है। दसवें अध्यायके अर्थ-चिन्तनका यह परिणाम हुआ है कि यह सब भूतोंमें स्थित शंख-चक्रधारी भगवान् विष्णुका सदा ही दर्शन करता रहता है। इसकी स्नेहपूर्ण दृष्टि जब कभी किसी देहधारीके शरीरपर पड़ जाती है, तो वह चाहे शराबी और ब्रह्महत्यारा ही क्यों न हो, मुक्त हो जाता है तथा

पूर्वजन्ममें अभ्यास किये हुए दसवें अध्यायके माहात्म्यसे इसको दुर्लभ तत्त्वज्ञान प्राप्त है तथा इसने जीवन्मुक्ति भी पा ली है। अतः जब यह रास्ता चलने लगता है तो मैं इसे हाथका सहारा दिये रहता हूँ। भृंगिरिटे! यह सब दसवें अध्यायकी ही महामहिमा है। पार्वती! इस प्रकार मैंने भृंगिरिटिके सामने जो पापनाशक कथा कही थी, वही यहाँ तुमसे भी कही है। नर हो या नारी, अथवा कोई भी क्यों न हो, इस दसवें अध्यायके श्रवणमात्रसे उसे सब आश्रमोंके पालनका फल प्राप्त होता है।

श्रीमद्भगवद्गीताके ग्यारहवें अध्यायका माहात्म्य

श्रीमहादेवजी कहते हैं—प्रिये! गीताके वर्णनसे सम्बन्ध रखनेवाली कथा एवं विश्वरूप अध्यायके पावन माहात्म्यको श्रवण करो। विशाल नेत्रोंवाली पार्वती! इस अध्यायके माहात्म्यका पूरा-पूरा वर्णन नहीं किया जा सकता। इसके सम्बन्धमें सहस्रों कथाएँ हैं। उनमेंसे एक यहाँ कही जाती है। प्रणीता नदीके तटपर मेघंकर नामसे विख्यात एक बहुत बड़ा नगर है। उसके प्राकार और गोपुर बहुत ऊँचे हैं। वहाँ बड़ी-बड़ी विश्रामशालाएँ हैं, जिनमें सोनेके खंभे शोभा दे रहे हैं। उस नगरमें श्रीमान्, सुखी, शान्त, सदाचारी तथा जितेन्द्रिय मनुष्योंका निवास है। वहाँ हाथमें शार्ङ्ग नामक धनुष धारण करनेवाले जगदीश्वर भगवान् विष्णु विराजमान हैं। वे परब्रह्मके साकार स्वरूप हैं। संसारके नेत्रोंको जीवन प्रदान करनेवाले हैं। उनका गौरवपूर्ण श्रीविग्रह भगवती लक्ष्मीके नेत्र-कमलोंद्वारा पूजित होता है। भगवान्‌की वह झाँकी वामन-अवतारकी है। मेघके समान उनका श्यामवर्ण तथा कोमल आकृति है। वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न शोभा पाता है। वे कमल और वनमालासे विभूषित हैं। अनेक प्रकारके आभूषणोंसे सुशोभित हो भगवान् वामन रत्नयुक्त समुद्रके सदृश जान पड़ते हैं। पीताम्बरसे उनके श्याम विग्रहकी कान्ति ऐसी प्रतीत होती है, मानो चमकती हुई बिजलीसे घिरा हुआ स्निग्ध मेघ शोभा पा रहा हो। उन भगवान् वामनका दर्शन करके जीव जन्म एवं संसारके बन्धनसे मुक्त हो जाता है। उस नगरमें मेखला नामक महान् तीर्थ है, जिसमें स्नान करके मनुष्य शाश्वत वैकुण्ठधामको प्राप्त होता है। वहाँ जगत्‌के स्वामी करुणासागर भगवान् नृसिंहका दर्शन करनेसे मनुष्य सात जन्मोंके किये हुए घोर पापसे छुटकारा पा जाता है। जो मनुष्य मेखलामें गणेशजीका दर्शन करता है, वह सदा दुस्तर विघ्नोंके भी पार हो जाता है।

उसी मेघंकर नगरमें कोई श्रेष्ठ ब्राह्मण थे, जो ब्रह्मचर्यपरायण, ममता और अहंकारसे रहित, वेद-शास्त्रोंमें प्रवीण, जितेन्द्रिय तथा भगवान् वासुदेवके शरणागत थे। उनका नाम सुनन्द था। प्रिये! वे शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले भगवान्‌के पास गीताके ग्यारहवें अध्याय—विश्वरूपदर्शनयोगका पाठ किया करते थे। उस अध्यायके प्रभावसे उन्हें ब्रह्मज्ञानकी प्राप्ति हो गयी थी। परमानन्द-सन्दोहसे पूर्ण उत्तम ज्ञानमयी समाधिके द्वारा इन्द्रियोंके अन्तर्मुख हो जानेके कारण वे निश्चल स्थितिको प्राप्त हो गये थे और सदा जीवन्मुक्त योगीकी स्थितिमें रहते थे। एक समय जब बृहस्पति सिंहराशिपर स्थित थे, महायोगी सुनन्दने गोदावरीतीर्थकी यात्रा आरम्भ की। वे क्रमशः विरजतीर्थ, तारातीर्थ, कपिलासंगम, अष्टतीर्थ, कपिलाद्वार, नृसिंहवन, अम्बिकापुरी तथा करस्थानपुर आदि क्षेत्रोंमें स्नान और दर्शन करते हुए विवाहमण्डप नामक नगरमें आये। वहाँ उन्होंने प्रत्येक घरमें जाकर अपने ठहरनेके लिये स्थान माँगा, परन्तु कहीं भी उन्हें स्थान नहीं मिला। अन्तमें गाँवके मुखियाने उन्हें एक बहुत बड़ी धर्मशाला दिखा दी। ब्राह्मणने साथियोंसहित उसके भीतर जाकर रातमें निवास किया। सबेरा होनेपर उन्होंने अपनेको तो धर्मशालाके बाहर पाया, किन्तु उनके और साथी नहीं दिखायी दिये। वे उन्हें खोजनेके लिये चले, इतनेमें ही

ग्रामपाल (मुखिये)-से उनकी भेंट हो गयी। ग्रामपालने कहा—'मुनिश्रेष्ठ! तुम सब प्रकारसे दीर्घायु जान पड़ते हो। सौभाग्यशाली तथा पुण्यवान् पुरुषोंमें तुम सबसे पवित्र हो। तुम्हारे भीतर कोई लोकोत्तर प्रभाव विद्यमान है। तुम्हारे साथी कहाँ गये? और कैसे इस भवनसे बाहर हुए? इसका पता लगाओ। मैं तुम्हारे सामने इतना ही कहता हूँ कि तुम्हारे-जैसा तपस्वी मुझे दूसरा कोई नहीं दिखायी देता। विप्रवर! तुम्हें किस महामन्त्रका ज्ञान है? किस विद्याका आश्रय लेते हो तथा किस देवताकी दयासे तुममें अलौकिक शक्ति आ गयी है? भगवन्! कृपा करके इस गाँवमें रहो! मैं तुम्हारी सब सेवा-शुश्रूषा करूँगा।'

यों कहकर ग्रामपालने मुनीश्वर सुनन्दको अपने गाँवमें ठहरा लिया। वह दिन-रात बड़ी भक्तिसे उनकी सेवा-टहल करने लगा। जब सात-आठ दिन बीत गये, तब एक दिन प्रातःकाल आकर वह बहुत दुःखी हो महात्माके सामने रोने लगा और बोला—'हाय! आज रातमें राक्षसने मुझ भाग्यहीनके बेटेको चबा लिया है। मेरा पुत्र बड़ा ही गुणवान् और भक्तिमान् था।' ग्रामपालके इस प्रकार कहनेपर योगी सुनन्दने पूछा—'कहाँ है वह राक्षस? और किस प्रकार उसने तुम्हारे पुत्रका भक्षण किया है?'

ग्रामपाल बोला—ब्रह्मन्! इस नगरमें एक बड़ा भयंकर नरभक्षी राक्षस रहता है। वह प्रतिदिन आकर इस नगरके मनुष्योंको खा लिया करता था। तब एक दिन समस्त नगरवासियोंने मिलकर उससे प्रार्थना की—'राक्षस! तुम हम सब लोगोंकी रक्षा करो। हम तुम्हारे लिये भोजनकी व्यवस्था किये देते हैं। यहाँ बाहरके जो पथिक रातमें आकर नींद लेने लगें, उनको खा जाना।' इस प्रकार नागरिक मनुष्योंने गाँवके (मुझ) मुखियाद्वारा इस धर्मशालामें भेजे हुए पथिकोंको ही राक्षसका आहार निश्चित किया। अपने प्राणोंकी रक्षाके लिये ही उन्हें ऐसा करना पड़ा। तुम भी अन्य राहगीरोंके साथ इस घरमें आकर सोये थे; किन्तु राक्षसने उन सबोंको तो खा लिया, केवल तुम्हें छोड़ दिया है। द्विजोत्तम! तुममें ऐसा क्या प्रभाव है, इस बातको तुम्हीं जानते हो। इस समय मेरे पुत्रका एक मित्र आया था, किन्तु मैं उसे पहचान न सका। वह मेरे पुत्रको बहुत ही प्रिय था; किन्तु अन्य राहगीरोंके साथ उसे भी मैंने उसी धर्मशालामें भेज दिया। मेरे पुत्रने जब सुना कि मेरा मित्र भी उसमें प्रवेश कर गया है, तब वह उसे वहाँसे ले आनेके लिये गया। परन्तु राक्षसने उसे भी खा लिया। आज सबेरे मैंने बहुत दुःखी होकर उस पिशाचसे पूछा—'ओ दुष्टात्मन्! तूने रातमें मेरे पुत्रको भी खा लिया। तुम्हारे पेटमें पड़ा हुआ मेरा पुत्र जिससे जीवित हो सके, ऐसा कोई उपाय यदि हो तो बता।'

राक्षसने कहा—ग्रामपाल! धर्मशालाके भीतर घुसे हुए तुम्हारे पुत्रको न जाननेके कारण मैंने भक्षण किया है। अन्य पथिकोंके साथ तुम्हारा पुत्र भी अनजानमें ही मेरा ग्रास बन गया है। वह मेरे उदरमें जिस प्रकार जीवित और रक्षित रह सकता है, वह उपाय स्वयं विधाताने ही कर दिया है। जो ब्राह्मण सदा गीताके ग्यारहवें अध्यायका पाठ करता हो, उसके प्रभावसे मेरी मुक्ति होगी और मरे हुओंको पुनः जीवन प्राप्त होगा। यहाँ कोई ब्राह्मण रहते हैं, जिनको मैंने एक दिन धर्मशालेसे बाहर कर दिया था। वे निरन्तर गीताके ग्यारहवें अध्यायका जप किया करते हैं। इस अध्यायके मन्त्रसे सात बार अभिमन्त्रित करके यदि वे मेरे ऊपर जलका छींटा दें तो निस्सन्देह मेरा शापसे उद्धार हो जायगा।

इस प्रकार उस राक्षसका सन्देश पाकर मैं तुम्हारे निकट आया हूँ।

ब्राह्मणने पूछा—ग्रामपाल! जो रातमें सोये हुए मनुष्योंको खाता है, वह प्राणी किस पापसे राक्षस हुआ है?

ग्रामपाल बोला—ब्रह्मन्! पहले इस गाँवमें कोई किसान ब्राह्मण रहता था। एक दिन वह अगहनीके खेतकी क्यारियोंकी रक्षा करनेमें लगा था। वहाँसे थोड़ी ही दूरपर एक बहुत बड़ा गिद्ध किसी राहीको मारकर खा रहा था। उसी समय एक तपस्वी कहींसे आ निकले, जो उस राहीको बचानेके लिये दूरसे ही दया दिखाते आ रहे

थे। गिद्ध उस राहीको खाकर आकाशमें उड़ गया। तब तपस्वीने कुपित होकर उस किसानसे कहा—'ओ दुष्ट हलवाहे! तुझे धिक्कार है। तू बड़ा ही कठोर और निर्दयी है। दूसरेकी रक्षासे मुँह मोड़कर केवल पेट पालनेके धंधेमें लगा है। तेरा जीवन नष्टप्राय है। अरे! जो चोर, दाढ़वाले जीव, सर्प, शत्रु, अग्नि, विष, जल, गीध, राक्षस, भूत तथा बेताल आदिके द्वारा घायल हुए मनुष्योंकी शक्ति होते हुए भी उपेक्षा करता है, वह उनके वधका फल पाता है। जो शक्तिशाली होकर भी चोर आदिके चंगुलमें फँसे हुए ब्राह्मणको छुड़ानेकी चेष्टा नहीं करता, वह घोर नरकमें पड़ता और पुनः भेड़ियेकी योनिमें जन्म लेता है। जो वनमें मारे जाते हुए तथा गृध्र और व्याघ्रकी दृष्टिमें पड़े हुए जीवकी रक्षाके लिये 'छोड़ो, छोड़ो' की पुकार करता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है। जो मनुष्य गौओंकी रक्षाके लिये व्याघ्र, भील तथा दुष्ट राजाओंके हाथसे मारे जाते हैं, वे भगवान् विष्णुके उस परमपदको पाते हैं जो योगियोंके लिये भी दुर्लभ है। सहस्र अश्वमेध और सौ वाजपेययज्ञ मिलकर शरणागत-रक्षाकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हो सकते। दीन तथा भयभीत जीवकी उपेक्षा करनेसे पुण्यवान् पुरुष भी समय आनेपर कुम्भीपाक नामक नरकमें पकाया जाता है।* तूने दुष्ट गिद्धके द्वारा खाये जाते हुए राहीको देखकर उसे बचानेमें समर्थ होते हुए भी जो उसकी रक्षा नहीं की, इससे तू निर्दयी जान पड़ता है; अतः तू राक्षस हो जा?'

हलवाहा बोला—महात्मन्! मैं यहाँ उपस्थित अवश्य था, किन्तु मेरे नेत्र बहुत देरसे खेतकी रक्षामें लगे थे, अतः पास होनेपर भी गिद्धके द्वारा मारे जाते हुए इस मनुष्यको मैं नहीं जान सका। अतः मुझ दीनपर आपको अनुग्रह करना चाहिये।

तपस्वी ब्राह्मणने कहा—जो प्रतिदिन गीताके ग्यारहवें अध्यायका जप करता है, उस मनुष्यके द्वारा अभिमन्त्रित जल जब तुम्हारे मस्तकपर पड़ेगा, उस समय तुम्हें शापसे छुटकारा मिल जायगा।

यह कहकर तपस्वी ब्राह्मण चले गये और वह हलवाहा राक्षस हो गया; अतः द्विजश्रेष्ठ! तुम चलो और ग्यारहवें अध्यायसे तीर्थके जलको अभिमन्त्रित करो। फिर अपने ही हाथसे उस राक्षसके मस्तकपर उसे छिड़क दो।

ग्रामपालकी यह सारी प्रार्थना सुनकर ब्राह्मणका हृदय करुणासे भर आया। वे 'बहुत अच्छा' कहकर उसके साथ राक्षसके निकट गये। वे ब्राह्मण योगी थे। उन्होंने विश्वरूपदर्शन नामक ग्यारहवें अध्यायसे जल अभिमन्त्रित करके उस राक्षसके मस्तकपर डाला। गीताके अध्यायके प्रभावसे वह शापसे मुक्त हो गया। उसने राक्षस-देहका परित्याग करके चतुर्भुजरूप धारण कर लिया तथा उसने

* अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च॥
शरणागतसंत्राणकलां नार्हन्ति षोडशीम्।
दीनस्योपेक्षणं कृत्वा भीतस्य च शरीरिणः॥
पुण्यवानपि कालेन कुम्भीपाके स पच्यते। (१८१। ८२—८४)

जिन सहस्रों पथिकोंका भक्षण किया था, वे भी शंख, चक्र एवं गदा धारण किये चतुर्भुजरूप हो गये। तत्पश्चात् वे सभी विमानपर आरूढ़ हुए। इतनेमें ही ग्रामपालने राक्षससे कहा—'निशाचर! मेरा पुत्र कौन है? उसे दिखाओ।' उसके यों कहनेपर दिव्य बुद्धिवाले राक्षसने कहा—'ये जो तमालके समान श्याम, चार भुजाधारी, माणिक्यमय मुकुटसे सुशोभित तथा दिव्य मणियोंके बने हुए कुण्डलोंसे अलंकृत हैं, हार पहननेके कारण जिनके कंधे मनोहर प्रतीत होते हैं, जो सोनेके भुजबंदोंसे विभूषित, कमलके समान नेत्रवाले, स्निग्धरूप तथा हाथमें कमल लिये हुए हैं और दिव्य विमानपर बैठकर देवत्वको प्राप्त हो चुके हैं, इन्हींको अपना पुत्र समझो।' यह सुनकर ग्रामपालने उसी रूपमें अपने पुत्रको देखा और उसे अपने घर ले जाना चाहा। यह देख उसका पुत्र हँस पड़ा और इस प्रकार कहने लगा।

पुत्र बोला—ग्रामपाल! कई बार तुम भी मेरे पुत्र हो चुके हो। पहले मैं तुम्हारा पुत्र था, किन्तु अब देवता हो गया हूँ। इन ब्राह्मणदेवताके प्रसादसे वैकुण्ठधामको जाऊँगा। देखो, यह निशाचर भी चतुर्भुजरूपको प्राप्त हो गया। ग्यारहवें अध्यायके माहात्म्यसे यह सब लोगोंके साथ श्रीविष्णुधामको जा रहा है; अतः तुम भी इन ब्राह्मणदेवसे गीताके ग्यारहवें अध्यायका अध्ययन करो और निरन्तर उसका जप करते रहो। इसमें सन्देह नहीं कि तुम्हारी भी ऐसी ही उत्तम गति होगी। तात! मनुष्योंके लिये साधु पुरुषोंका संग सर्वथा दुर्लभ है। वह भी इस समय तुम्हें प्राप्त है; अतः अपना अभीष्ट सिद्ध करो। धन, भोग, दान, यज्ञ, तपस्या और पूर्तकर्मोंसे क्या लेना है। विश्वरूपाध्यायके पाठसे ही परम कल्याणकी प्राप्ति हो जाती है। पूर्णानन्दसन्दोह-स्वरूप श्रीकृष्ण नामक ब्रह्मके मुखसे कुरुक्षेत्रमें अपने मित्र अर्जुनके प्रति जो अमृतमय उपदेश निकला था, वही श्रीविष्णुका परम तात्त्विक रूप है। तुम उसीका चिन्तन करो। वह मोक्षके लिये प्रसिद्ध रसायन है। संसार-भयसे डरे हुए मनुष्योंकी आधि-व्याधिका विनाशक तथा अनेक जन्मके दुःखोंका नाश करनेवाला है। मैं उसके सिवा दूसरे किसी साधनको ऐसा नहीं देखता, अतः उसीका अभ्यास करो।

श्रीमहादेवजी कहते हैं—यों कहकर वह सबके साथ श्रीविष्णुके परमधामको चला गया। तब ग्रामपालने ब्राह्मणके मुखसे उस अध्यायको पढ़ा। फिर वे दोनों ही उसके माहात्म्यसे विष्णुधामको चले गये। पार्वती! इस प्रकार तुम्हें ग्यारहवें अध्यायकी माहात्म्य-कथा सुनायी है। इसके श्रवणमात्रसे महान् पातकोंका नाश हो जाता है।

श्रीमद्भगवद्गीताके बारहवें अध्यायका माहात्म्य

श्रीमहादेवजी कहते हैं—पार्वती! दक्षिणदिशामें कोल्हापुर नामका एक नगर है, जो सब प्रकारके सुखोंका आधार, सिद्ध-महात्माओंका निवासस्थान तथा सिद्धि-प्राप्तिका क्षेत्र है। वह पराशक्ति भगवती लक्ष्मीका प्रधान पीठ है। सम्पूर्ण देवता उसका सेवन करते हैं। वह पुराणप्रसिद्ध तीर्थ भोग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाला है। वहाँ करोड़ों तीर्थ और शिवलिंग हैं। रुद्रगया भी वहीं है। वह विशाल नगर लोगोंमें बहुत विख्यात है। एक दिन कोई युवक पुरुष उस नगरमें आया। [वह कहींका राजकुमार था।] उसके शरीरका रंग गोरा, नेत्र सुन्दर, ग्रीवा शंखके समान, कंधे मोटे, छाती चौड़ी तथा भुजाएँ बड़ी-बड़ी थीं। नगरमें प्रवेश करके सब ओर महलोंकी शोभा निहारता हुआ वह देवेश्वरी महालक्ष्मीके दर्शनार्थ उत्कण्ठित हो मणिकण्ठ तीर्थमें गया और वहाँ स्नान करके उसने पितरोंका तर्पण किया। फिर महामाया महालक्ष्मीजीको प्रणाम करके भक्तिपूर्वक स्तवन करना आरम्भ किया।

राजकुमार बोला—जिसके हृदयमें असीम दया भरी हुई है, जो समस्त कामनाओंको देती तथा अपने कटाक्षमात्रसे सारे जगत्‌की सृष्टि, पालन और संहार

करती है, उस जगन्माता महालक्ष्मीकी जय हो! जिस शक्तिके सहारे उसीके आदेशके अनुसार परमेष्ठी ब्रह्मा सृष्टि करते हैं, भगवान् अच्युत जगत्का पालन करते हैं तथा भगवान् रुद्र अखिल विश्वका संहार करते हैं, उस सृष्टि, पालन और संहारकी शक्तिसे सम्पन्न भगवती पराशक्तिका मैं भजन करता हूँ।

कमले! योगिजन तुम्हारे चरणकमलोंका चिन्तन करते हैं। कमलालये! तुम अपनी स्वाभाविक सत्तासे ही हमारे समस्त इन्द्रियगोचर विषयोंको जानती हो। तुम्हीं कल्पनाओंके समूहको तथा उसका संकल्प करनेवाले मनको उत्पन्न करती हो। इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति—ये सब तुम्हारे ही रूप हैं। तुम परासंवित् (परम ज्ञान)-रूपिणी हो। तुम्हारा स्वरूप निष्कल, निर्मल, नित्य, निराकार, निरंजन, अन्तररहित आतंकशून्य, आलम्बहीन तथा निरामय है। देवि! तुम्हारी महिमाका वर्णन करनेमें कौन समर्थ हो सकता है। जो षट्चक्रोंका भेदन करके अन्त:करणके बारह स्थानोंमें विहार करती है, अनाहत ध्वनि, बिन्दु, नाद और कला—ये जिसके स्वरूप हैं, उस माता महालक्ष्मीको मैं प्रणाम करता हूँ। माता! तुम अपने [मुखरूपी] पूर्ण चन्द्रमासे प्रकट होनेवाली अमृत-राशिको बहाया करती हो। तुम्हीं परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी नामक वाणी हो। मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ। देवि! तुम जगत्की रक्षाके लिये अनेक रूप धारण किया करती हो। अम्बिके! तुम्हीं ब्राह्मी, वैष्णवी तथा माहेश्वरी शक्ति हो। वाराही, महालक्ष्मी, नारसिंही, ऐन्द्री, कौमारी, चण्डिका, जगत्को पवित्र करनेवाली लक्ष्मी, जगन्माता सावित्री, चन्द्रकला तथा रोहिणी भी तुम्हीं हो। परमेश्वरि! तुम भक्तोंका मनोरथ पूर्ण करनेके लिये कल्पलताके समान हो। मुझपर प्रसन्न हो जाओ।

उसके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवती महालक्ष्मी अपना साक्षात् स्वरूप धारण करके बोलीं—'राजकुमार! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। तुम कोई उत्तम वर माँगो।'

राजपुत्र बोला—माँ! मेरे पिता राजा बृहद्रथ अश्वमेध नामक महान् यज्ञका अनुष्ठान कर रहे थे। वे दैवयोगसे रोगग्रस्त होकर स्वर्गगामी हो गये। इसी बीचमें यूपमें बँधे हुए मेरे यज्ञसम्बन्धी घोड़ेको, जो समूची पृथ्वीकी परिक्रमा करके लौटा था, किसीने रात्रिमें बन्धन काटकर कहीं अन्यत्र पहुँचा दिया। उसकी खोजमें मैंने कुछ लोगोंको भेजा था; किन्तु वे कहीं भी उसका पता न पाकर जब खाली हाथ लौट आये हैं, तब मैं सब ऋत्विजोंसे आज्ञा लेकर तुम्हारी शरणमें आया हूँ। देवि! यदि तुम मुझपर प्रसन्न हो तो मेरे यज्ञका घोड़ा मुझे मिल जाय, जिससे यज्ञ पूर्ण हो सके। तभी मैं अपने पिता महाराजका ऋण उतार सकूँगा। शरणागतोंपर दया करनेवाली जगज्जननी लक्ष्मी! जिससे मेरा यज्ञ पूर्ण हो, वह उपाय करो।

भगवती लक्ष्मीने कहा—राजकुमार! मेरे मन्दिरके दरवाजेपर एक ब्राह्मण रहते हैं, जो लोगोंमें सिद्धसमाधिके नामसे विख्यात हैं। वे मेरी आज्ञासे तुम्हारा सब काम पूरा कर देंगे।

महालक्ष्मीके इस प्रकार कहनेपर राजकुमार उस स्थानपर आये, जहाँ सिद्धसमाधि रहते थे। उनके

चरणोंमें प्रणाम करके राजकुमार चुपचाप हाथ जोड़ खड़े हो गये। तब ब्राह्मणने कहा—'तुम्हें माताजीने यहाँ भेजा है। अच्छा, देखो; अब मैं तुम्हारा सारा अभीष्ट कार्य सिद्ध करता हूँ।' यों कहकर मन्त्रवेत्ता ब्राह्मणने सब देवताओंको वहीं खींचा। राजकुमारने देखा, उस समय सब देवता हाथ जोड़े थर-थर काँपते हुए वहाँ उपस्थित हो गये। तब उन श्रेष्ठ ब्राह्मणने समस्त देवताओंसे कहा—'देवगण! इस राजकुमारका अश्व, जो यज्ञके लिये निश्चित हो चुका था, रातमें देवराज इन्द्रने चुराकर अन्यत्र पहुँचा दिया है; उसे शीघ्र ले आओ।'

तब देवताओंने मुनिके कहनेसे यज्ञका घोड़ा लाकर दे दिया। इसके बाद उन्होंने उन्हें जानेकी आज्ञा दी। देवताओंका आकर्षण देखकर तथा खोये हुए अश्वको पाकर राजकुमारने मुनिके चरणोंमें प्रणाम करके कहा—'महर्षे! आपका यह सामर्थ्य आश्चर्यजनक है। आप ही ऐसा कार्य कर सकते हैं, दूसरा कोई नहीं। ब्रह्मन्! मेरी प्रार्थना सुनिये, मेरे पिता राजा बृहद्रथ अश्वमेधयज्ञका अनुष्ठान आरम्भ करके दैवयोगसे मृत्युको प्राप्त हो गये हैं। अभीतक उनका शरीर तपाये हुए तेलमें सुखाकर मैंने रख छोड़ा है। साधुश्रेष्ठ! आप उन्हें पुनः जीवित कर दीजिये।'

यह सुनकर महामुनि ब्राह्मणने किंचित् मुसकराकर कहा—'चलो, जहाँ यज्ञमण्डपमें तुम्हारे पिता मौजूद हैं, चलें।' तब सिद्धसमाधिने राजकुमारके साथ वहाँ जाकर जल अभिमन्त्रित किया और उसे उस शवके मस्तकपर रखा। उसके रखते ही राजा सचेत होकर उठ बैठे। फिर उन्होंने ब्राह्मणको देखकर पूछा—'धर्मस्वरूप! आप कौन हैं?' तब राजकुमारने महाराजसे पहलेका सारा हाल कह सुनाया। राजाने अपनेको पुनः जीवन-दान देनेवाले ब्राह्मणको नमस्कार करके पूछा—'ब्रह्मन्! किस पुण्यसे आपको यह अलौकिक शक्ति प्राप्त हुई है?' उनके यों कहनेपर ब्राह्मणने मधुर वाणीमें कहा—'राजन्! मैं प्रतिदिन आलस्यरहित होकर गीताके बारहवें अध्यायका जप करता हूँ; उसीसे मुझे यह शक्ति मिली है, जिससे तुम्हें जीवन प्राप्त हुआ है।' यह सुनकर ब्राह्मणोंसहित राजाने उन ब्रह्मर्षिसे गीताके बारहवें अध्यायका अध्ययन किया। उसके माहात्म्यसे उन सबकी सद्गति हो गयी। दूसरे-दूसरे जीव भी उसके पाठसे परम मोक्षको प्राप्त हो चुके हैं।

श्रीमद्भगवद्गीताके तेरहवें और चौदहवें अध्यायोंका माहात्म्य

श्रीमहादेवजी कहते हैं—पार्वती! अब तेरहवें अध्यायकी अगाध महिमाका वर्णन सुनो। उसको सुननेसे तुम बहुत प्रसन्न होओगी। दक्षिणदिशामें तुंगभद्रा नामकी एक बहुत बड़ी नदी है। उसके किनारे हरिहरपुर नामक रमणीय नगर बसा हुआ है। वहाँ साक्षात् भगवान् हरिहर विराजमान हैं, जिनके दर्शनमात्रसे परम कल्याणकी प्राप्ति होती है। हरिहरपुरमें हरिदीक्षित नामक एक श्रोत्रिय ब्राह्मण रहते थे, जो तपस्या और स्वाध्यायमें संलग्न तथा वेदोंके पारगामी विद्वान् थे। उनके एक स्त्री थी, जिसे लोग दुराचारा कहकर पुकारते थे। इस नामके अनुसार ही उसके कर्म भी थे। वह सदा पतिको कुवाच्य कहती थी। उसने कभी भी उनके साथ शयन नहीं किया। पतिसे सम्बन्ध रखनेवाले जितने लोग घरपर आते, उन सबको डाँट बताती और स्वयं कामोन्मत्त होकर निरन्तर व्यभिचारियोंके साथ रमण किया करती थी। एक दिन नगरको इधर-उधर आते-जाते हुए पुरवासियोंसे भरा देख उसने निर्जन एवं दुर्गम वनमें अपने लिये संकेतस्थान बना लिया। एक समय रातमें किसी कामीको न पाकर वह घरके किवाड़ खोल नगरसे बाहर संकेतस्थानपर चली गयी। उस समय उसका चित्त कामसे मोहित हो रहा था। वह एक-एक कुंजमें तथा प्रत्येक वृक्षके नीचे जा-जाकर किसी प्रियतमकी खोज करने लगी; किन्तु उन सभी स्थानोंपर उसका परिश्रम व्यर्थ गया। उसे प्रियतमका दर्शन नहीं हुआ। तब वह उस वनमें नाना प्रकारकी बातें

कहकर विलाप करने लगी। चारों दिशाओंमें घूम-घूमकर वियोगजनित विलाप करती हुई उस स्त्रीकी आवाज सुनकर कोई सोया हुआ व्याघ्र जाग उठा और उछलकर उस स्थानपर पहुँचा, जहाँ वह रो रही थी। उधर वह भी उसे आते देख किसी प्रेमीकी आशंकासे उसके सामने खड़ी होनेके लिये ओटसे बाहर निकल आयी। उस समय व्याघ्रने आकर उसे नखरूपी बाणोंके प्रहारसे पृथ्वीपर गिरा दिया। इस अवस्थामें भी वह कठोर वाणीमें चिल्लाती हुई पूछ बैठी—'अरे बाघ! तू किसलिये मुझे मारनेको यहाँ आया है? पहले इन सारी बातोंको बता दे, फिर मुझे मारना।'

उसकी यह बात सुनकर प्रचण्ड पराक्रमी व्याघ्र क्षणभरके लिये उसे अपना ग्रास बनानेसे रुक गया और हँसता हुआ-सा बोला—'दक्षिण देशमें मलापहा नामक एक नदी है। उसके तटपर मुनिपर्णा नगरी बसी हुई है। वहाँ पंचलिंग नामसे प्रसिद्ध साक्षात् भगवान् शंकर निवास करते हैं। उसी नगरीमें मैं ब्राह्मणकुमार होकर रहता था। नदीके किनारे अकेला बैठा रहता और जो यज्ञके अधिकारी नहीं हैं, उन लोगोंसे भी यज्ञ कराकर उनका अन्न खाया करता था। इतना ही नहीं, धनके लोभसे मैं सदा अपने वेदपाठके फलको भी बेचा करता था। मेरा लोभ यहाँतक बढ़ गया था कि अन्य भिक्षुओंको गालियाँ देकर हटा देता और स्वयं दूसरोंका नहीं देनेयोग्य धन भी बिना दिये ही हमेशा ले लिया करता था। ऋण लेनेके बहाने मैं सब लोगोंको छला करता था। तदनन्तर कुछ काल व्यतीत होनेपर मैं बूढ़ा हुआ। मेरे बाल सफेद हो गये। आँखोंसे सूझता न था और मुँहके सारे दाँत गिर गये। इतनेपर भी मेरी दान लेनेकी आदत नहीं छूटी। पर्व आनेपर प्रतिग्रहके लोभसे मैं हाथमें कुश लिये तीर्थके समीप चला जाया करता था। तत्पश्चात् जब मेरे सारे अंग शिथिल हो गये, तब एक बार मैं कुछ धूर्त ब्राह्मणोंके घरपर माँगने-खानेके लिये गया। उसी समय मेरे पैरमें कुत्तेने काट लिया। तब मैं मूर्च्छित होकर क्षणभरमें पृथ्वीपर गिर पड़ा। मेरे प्राण निकल गये। उसके बाद मैं इसी व्याघ्रयोनिमें उत्पन्न हुआ। तबसे इस दुर्गम वनमें रहता हूँ तथा अपने पूर्व पापोंको याद करके कभी धर्मिष्ठ महात्मा, यति, साधु पुरुष तथा सती स्त्रियोंको मैं नहीं खाता। पापी, दुराचारी तथा कुलटा स्त्रियोंको ही मैं अपना भक्ष्य बनाता हूँ; अतः कुलटा होनेके कारण तू अवश्य ही मेरा ग्रास बनेगी।'

यों कहकर वह अपने कठोर नखोंसे उसके शरीरके टुकड़े-टुकड़े करके खा गया। इसके बाद यमराजके दूत उस पापिनीको संयमनीपुरीमें ले गये। वहाँ यमराजकी आज्ञासे उन्होंने अनेकों बार उसे विष्ठा, मूत्र और रक्तसे भरे हुए भयानक कुण्डोंमें गिराया। करोड़ों कल्पोंतक उसमें रखनेके बाद उसे वहाँसे ले आकर सौ मन्वन्तरोंतक रौरव नरकमें रखा। फिर चारों ओर मुँह करके दीनभावसे रोती हुई उस पापिनीको वहाँसे खींचकर दहनानन नामक नरकमें गिराया। उस समय उसके केश खुले हुए थे और शरीर भयानक दिखायी देता था। इस प्रकार घोर नरक-यातना भोग चुकनेपर वह महापापिनी इस लोकमें आकर चाण्डालयोनिमें उत्पन्न हुई। चाण्डालके घरमें भी प्रतिदिन बढ़ती हुई वह पूर्वजन्मके अभ्याससे पूर्ववत् पापोंमें प्रवृत्त रही। फिर उसे कोढ़ और राजयक्ष्माका रोग हो गया। नेत्रोंमें पीड़ा होने लगी। फिर कुछ कालके पश्चात् वह पुनः अपने निवासस्थानको गयी, जहाँ भगवान् शिवके अन्तःपुरकी स्वामिनी जम्भकादेवी विराजमान हैं। वहाँ उसने वासुदेव नामक एक पवित्र ब्राह्मणका दर्शन किया, जो निरन्तर गीताके तेरहवें अध्यायका पाठ करता रहता था। उसके मुखसे गीताका पाठ सुनते ही वह चाण्डाल-शरीरसे मुक्त हो गयी और दिव्य देह धारण करके स्वर्गलोकमें चली गयी।

श्रीमहादेवजी कहते हैं—पार्वती! अब मैं भव-बन्धनसे छुटकारा पानेके साधनभूत चौदहवें अध्यायका माहात्म्य बतलाता हूँ, तुम ध्यान देकर सुनो। सिंहल द्वीपमें विक्रम बेताल नामक एक राजा थे, जो सिंहके समान पराक्रमी और कलाओंके भंडार थे। एक दिन वे शिकार खेलनेके लिये उत्सुक होकर राजकुमारों-सहित दो कुतियोंको साथ लिये वनमें गये। वहाँ पहुँचनेपर उन्होंने तीव्र गतिसे भागते हुए खरगोशके पीछे

अपनी कुतिया छोड़ दी। उस समय सब प्राणियोंके

देखते-देखते खरगोश इस प्रकार भागने लगा मानो कहीं उड़ गया हो। दौड़ते-दौड़ते बहुत थक जानेके कारण वह एक बड़ी खंदकमें गिर पड़ा। गिरनेपर भी वह कुतियाके हाथ नहीं आया और उस स्थानपर जा पहुँचा, जहाँका वातावरण बहुत ही शान्त था। वहाँ हरिन निर्भय होकर सब ओर वृक्षोंकी छायामें बैठे रहते थे। बंदर भी अपने-आप टूटकर गिरे हुए नारियलके फलों और पके हुए आमोंसे पूर्ण तृप्त रहते थे। वहाँ सिंह हाथीके बच्चोंके साथ खेलते और साँप निडर होकर मोरकी पाँखोंमें घुस जाते थे। उस स्थानपर एक आश्रमके भीतर वत्स नामक मुनि रहते थे, जो जितेन्द्रिय एवं शान्तभावसे निरन्तर गीताके चौदहवें अध्यायका पाठ किया करते थे। आश्रमके पास ही वत्समुनिके किसी शिष्यने अपना पैर धोया था। उसके जलसे वहाँकी मिट्टी गीली हो गयी थी। खरगोशका जीवन कुछ शेष था। वह हाँफता हुआ आकर उसी कीचड़में गिर पड़ा। उसके स्पर्शमात्रसे ही खरगोश संसार-सागरके पार हो गया और दिव्य विमानपर बैठकर स्वर्गलोकको चला गया। फिर कुतिया भी उसका पीछा करती हुई आयी। वहाँ उसके शरीरमें भी कुछ कीचड़के छींटे लग गये। फिर भूख-प्यासकी पीड़ासे रहित हो कुतियाका रूप त्यागकर उसने दिव्यांगनाका रमणीय रूप धारण कर लिया तथा गन्धर्वोंसे सुशोभित दिव्य विमानपर आरूढ़ हो वह भी स्वर्गलोकको चली गयी। यह देख मुनिके मेधावी शिष्य स्वकन्धर हँसने लगे। उन दोनोंके पूर्वजन्मके वैरका कारण सोचकर उन्हें बड़ा विस्मय हुआ था। उस समय राजाके नेत्र भी आश्चर्यसे चकित हो उठे। उन्होंने बड़ी भक्तिके साथ प्रणाम करके पूछा—'विप्रवर! ये नीच योनिमें पड़े हुए दोनों प्राणी—कुतिया और खरगोश ज्ञानहीन होते हुए भी जो स्वर्गमें चले गये—इसका क्या कारण है? इसकी कथा सुनाइये।'

शिष्यने कहा—भूपाल! इस वनमें वत्स नामक ब्राह्मण रहते हैं, वे बड़े जितेन्द्रिय महात्मा हैं; गीताके चौदहवें अध्यायका सदा जप किया करते हैं। मैं उन्हींका शिष्य हूँ, मैंने भी ब्रह्मविद्यामें विशेषज्ञता प्राप्त की है। गुरुजीकी ही भाँति मैं भी चौदहवें अध्यायका प्रतिदिन जप करता हूँ। मेरे पैर धोनेके जलमें लोटनेके कारण यह खरगोश कुतियाके साथ ही स्वर्गलोकको प्राप्त हुआ है।

अब मैं अपने हँसनेका कारण बताता हूँ। महाराष्ट्रमें प्रत्युदक नामक महान् नगर है; वहाँ केशव नामका एक ब्राह्मण रहता था, जो कपटी मनुष्योंमें अग्रगण्य था। उसकी स्त्रीका नाम विलोभना था। वह स्वच्छन्द विहार करनेवाली थी। इससे क्रोधमें आकर जन्मभरके वैरको याद करके ब्राह्मणने अपनी स्त्रीका वध कर डाला और उसी पापसे उसको खरगोशकी योनिमें जन्म मिला। ब्राह्मणी भी अपने पापके कारण कुतिया हुई।

श्रीमहादेवजी कहते हैं—यह सारी कथा सुनकर श्रद्धालु राजाने गीताके चौदहवें अध्यायका पाठ आरम्भ कर दिया। इससे उन्हें परमगतिकी प्राप्ति हुई।

श्रीमद्भगवद्गीताके पंद्रहवें तथा सोलहवें अध्यायोंका माहात्म्य

श्रीमहादेवजी कहते हैं—पार्वती! अब गीताके पंद्रहवें अध्यायका माहात्म्य सुनो। गौडदेशमें कृपाण-नरसिंह नामक एक राजा थे, जिनकी तलवारकी धारसे युद्धमें देवता भी परास्त हो जाते थे। उनका बुद्धिमान् सेनापति शस्त्र और शास्त्रकी कलाओंका भण्डार था। उसका नाम था सरभ-मेरुण्ड। उसकी भुजाओंमें प्रचण्ड बल था। एक समय उस पापीने राजकुमारोंसहित महाराजका वध करके स्वयं ही राज्य करनेका विचार किया। इस निश्चयके कुछ ही दिनों बाद वह हैजेका शिकार होकर मर गया। थोड़े समयमें वह पापात्मा अपने पूर्वकर्मके कारण सिन्धुदेशमें एक तेजस्वी घोड़ा हुआ। उसका पेट सटा हुआ था। घोड़ेके लक्षणोंका ठीक-ठीक ज्ञान रखनेवाले किसी वैश्यके पुत्रने बहुत-सा मूल्य देकर उस अश्वको खरीद लिया और बड़े यत्नके साथ उसे राजधानीतक वह ले आया। वैश्य-कुमार वह अश्व राजाको देनेके लिये लाया था। यद्यपि राजा उससे परिचित थे, तथापि द्वारपालने जाकर उसके आगमनकी सूचना की। राजाने पूछा—'किसलिये आये हो?' तब उसने स्पष्ट शब्दोंमें उत्तर दिया—'देव! सिन्धुदेशमें एक उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न अश्व था, जिसे तीनों लोकोंका एक रत्न समझकर मैंने बहुत-सा मूल्य देकर खरीद लिया है।' राजाने आज्ञा दी—'उस अश्वको यहाँ ले आओ।'

वास्तवमें वह घोड़ा गुणोंमें उच्चैःश्रवाके समान था। सुन्दर रूपका तो मानो घर ही था। शुभ लक्षणोंका समुद्र जान पड़ता था। वैश्य घोड़ा ले आया और राजाने उसे देखा। अश्वका लक्षण जाननेवाले अमात्योंने उसकी बड़ी प्रशंसा की। सुनकर राजा अपार आनन्दमें निमग्न हो गये और उन्होंने वैश्यको मुँहमाँगा सुवर्ण देकर तुरंत ही उस अश्वको खरीद लिया। कुछ दिनोंके बाद एक समय राजा शिकार खेलनेके लिये उत्सुक हो उसी घोड़ेपर चढ़कर वनमें गये। वहाँ मृगोंके पीछे इन्होंने अपना घोड़ा बढ़ाया। पीछे-पीछे सब ओरसे दौड़कर आते हुए समस्त सैनिकोंका साथ छूट गया। वे हिरनोंद्वारा आकृष्ट होकर बहुत दूर निकल गये। प्यासने उन्हें व्याकुल कर दिया। तब वे घोड़ेसे उतरकर जलकी खोज करने लगे। घोड़ेको तो उन्होंने वृक्षकी डालीमें बाँध दिया और स्वयं एक चट्टानपर चढ़ने लगे। कुछ दूर जानेपर इन्होंने देखा कि एक पत्तेका टुकड़ा हवासे उड़कर शिलाखण्डपर गिरा है। उसमें गीताके पंद्रहवें अध्यायका आधा श्लोक लिखा हुआ था। राजा उसे बाँचने लगे। उनके मुखसे गीताके अक्षर सुनकर घोड़ा तुरंत गिर पड़ा और अश्वयोनिसे उसकी मुक्ति हो गयी तथा तुरंत ही दिव्य विमानपर बैठकर वह स्वर्गलोकको चला गया। तत्पश्चात् राजाने पहाड़पर चढ़कर एक उत्तम आश्रम देखा, जहाँ नागकेसर, केले, आम और नारियलके वृक्ष लहरा रहे थे। आश्रमके भीतर एक ब्राह्मण बैठे हुए थे, जो संसारकी वासनाओंसे मुक्त थे। राजाने उन्हें प्रणाम करके बड़ी भक्तिके साथ पूछा—'ब्रह्मन्! मेरा अश्व जो अभी-अभी स्वर्गको चला गया है, उसमें क्या कारण है?'

राजाकी बात सुनकर त्रिकालदर्शी, मन्त्रवेत्ता एवं महापुरुषोंमें श्रेष्ठ विष्णुशर्मा नामक ब्राह्मणने कहा—

'राजन्! पूर्वकालमें तुम्हारे यहाँ जो 'सरभ मेरुण्ड' नामक सेनापति था, वह तुम्हें पुत्रोंसहित मारकर स्वयं राज्य हड़प लेनेको तैयार था। इसी बीचमें हैजेका शिकार होकर वह मृत्युको प्राप्त हो गया। उसके बाद वह उसी पापसे घोड़ा हुआ था। यहाँ कहीं गीताके पंद्रहवें अध्यायका आधा श्लोक लिखा मिल गया था, उसे ही तुम बाँचने लगे। उसीको तुम्हारे मुखसे सुनकर वह अश्व स्वर्गको प्राप्त हुआ है।'

तदनन्तर राजाके पार्श्ववर्ती सैनिक उन्हें ढूँढ़ते हुए वहाँ आ पहुँचे। उन सबके साथ ब्राह्मणको प्रणाम करके राजा प्रसन्नतापूर्वक वहाँसे चले और गीताके पंद्रहवें अध्यायके श्लोकाक्षरोंसे अंकित उसी पत्रको बाँच-बाँचकर प्रसन्न होने लगे। उनके नेत्र हर्षसे खिल उठे थे। घर आकर उन्होंने मन्त्रवेत्ता मन्त्रियोंके साथ अपने पुत्र सिंहबलको राज्यसिंहासनपर अभिषिक्त किया और स्वयं पंद्रहवें अध्यायके जपसे विशुद्धचित्त होकर मोक्ष प्राप्त कर लिया।

श्रीमहादेवजी कहते हैं—पार्वती! अब मैं गीताके सोलहवें अध्यायका माहात्म्य बताऊँगा, सुनो। गुजरातमें सौराष्ट्र नामक एक नगर है। वहाँ खड्गबाहु नामके राजा राज्य करते थे, जो दूसरे इन्द्रके समान प्रतापी थे। उनके एक हाथी था, जो मद बहाया करता और सदा मदसे उन्मत्त रहता था। उस हाथीका नाम अरिमर्दन था। एक दिन रातमें वह हठात् साँकलों और लोहेके खम्भोंको तोड़-फोड़कर बाहर निकला। हाथीवान उसके दोनों ओर अंकुश लेकर डरा रहे थे, किन्तु क्रोधवश उन सबकी अवहेलना करके उसने अपने रहनेके स्थान—हथिसारको ढहा दिया। उसपर चारों ओरसे भालोंकी मार पड़ रही थी। फिर भी हाथीवान ही डरे हुए थे, हाथीको तनिक भी भय नहीं होता था। इस कौतूहलपूर्ण घटनाको सुनकर राजा स्वयं हाथीको मनानेकी कलामें निपुण राजकुमारोंके साथ वहाँ आये। आकर उन्होंने उस बलवान् दँतैले हाथीको देखा। नगरके निवासी अन्य काम-धंधोंकी चिन्ता छोड़ अपने बालकोंको भयसे बचाते हुए बहुत दूर खड़े होकर उस महाभयंकर गजराजको देखते रहे। इसी समय कोई ब्राह्मण तालाबसे नहाकर उसी मार्गसे लौटे। वे गीताके सोलहवें अध्यायके कुछ श्लोकोंका जप कर रहे थे। पुरवासियों और पीलवानोंने उन्हें बहुत मना किया; किन्तु उन्होंने किसीकी न मानी। उन्हें हाथीसे भय नहीं था; इसीलिये वे विचलित नहीं हुए। उधर हाथी अपने फूत्कारसे चारों दिशाओंको व्याप्त करता हुआ लोगोंको कुचल रहा था। वे ब्राह्मण उसके बहते हुए मदको हाथसे छूकर कुशलपूर्वक निकल गये। इससे वहाँ राजा तथा देखनेवाले पुरवासियोंके मनमें इतना विस्मय हुआ कि उसका वर्णन नहीं हो सकता। राजाके कमलनेत्र चकित हो उठे थे। उन्होंने ब्राह्मणको बुला सवारीसे उतरकर उन्हें प्रणाम किया और पूछा—'ब्रह्मन्! आज आपने यह महान् अलौकिक कार्य किया है, क्योंकि इस कालके समान भयंकर गजराजके सामनेसे आप सकुशल लौट आये हैं। प्रभो! आप किस देवताका पूजन तथा किस मन्त्रका जप करते हैं? बताइये, आपने कौन-सी सिद्धि प्राप्त की है?'

ब्राह्मणने कहा—राजन्! मैं प्रतिदिन गीताके

सोलहवें अध्यायके कुछ श्लोकोंका जप किया करता हूँ, उसीसे ये सारी सिद्धियाँ प्राप्त हुई हैं।

श्रीमहादेवजी कहते हैं—तब हाथीका कौतूहल देखनेकी इच्छा छोड़कर राजा ब्राह्मणदेवताको साथ ले अपने महलमें आये। वहाँ शुभ मुहूर्त देखकर एक लाख स्वर्ण-मुद्राओंकी दक्षिणा दे उन्होंने ब्राह्मणको संतुष्ट किया और उनसे गीता-मन्त्रकी दीक्षा ली। गीताके सोलहवें अध्यायके कुछ श्लोकोंका अभ्यास कर लेनेके बाद उनके मनमें हाथीको छोड़कर उसके कौतुक देखनेकी इच्छा जाग्रत् हुई। फिर तो एक दिन सैनिकोंके साथ बाहर निकलकर राजाने हाथीवानोंसे उसी मत्त गजराजका बन्धन खुलवाया। उन्हें भयकी बात भूल गयी। राज्यके सुख-विलासके प्रति आदरका भाव नहीं रहा। वे अपना जीवन तृणवत् समझकर हाथीके सामने चले गये। साहसी मनुष्योंमें अग्रगण्य राजा खड्गबाहु मन्त्रपर विश्वास करके हाथीके समीप गये और मदकी अनवरत धारा बहाते हुए उसके गण्डस्थलको हाथसे छूकर सकुशल लौट आये। कालके मुखसे धार्मिक और खलके मुखसे साधु पुरुषकी भाँति राजा उस गजराजके मुखसे बचकर निकल आये। नगरमें आनेपर उन्होंने अपने राजकुमारको राज्यपर अभिषिक्त कर दिया तथा स्वयं गीताके सोलहवें अध्यायका जप करके परमगति प्राप्त की।
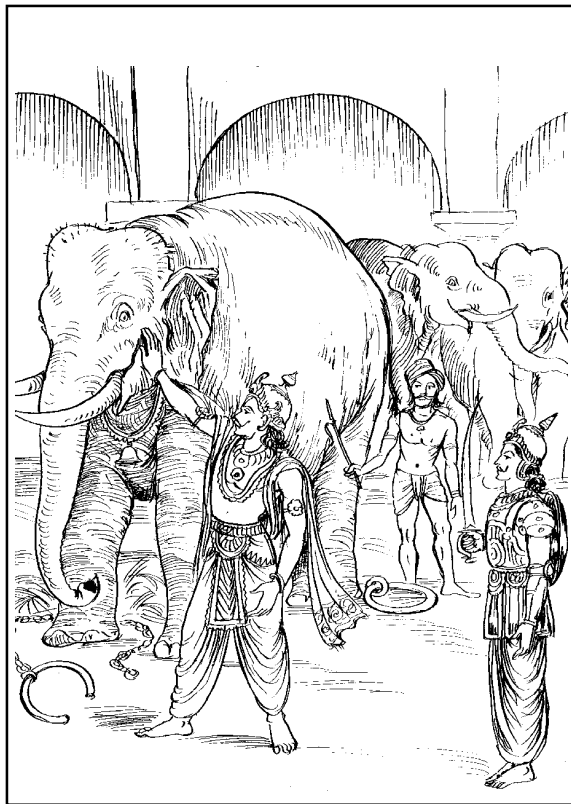
श्रीमद्भगवद्गीताके सत्रहवें और अठारहवें अध्यायोंका माहात्म्य

श्रीमहादेवजी कहते हैं—पार्वती! सोलहवें अध्यायका माहात्म्य बतलाया गया। अब सत्रहवें अध्यायकी अनन्त महिमा श्रवण करो। राजा खड्गबाहुके पुत्रका दु:शासन नामक एक नौकर था। वह बड़ी खोटी बुद्धिका मनुष्य था। एक बार वह माण्डलिक राजकुमारोंके साथ बहुत धनकी बाजी लगाकर हाथीपर चढ़ा और कुछ ही कदम आगे जानेपर लोगोंके मना करनेपर भी वह मूढ़ हाथीके प्रति जोर-जोरसे कठोर शब्द करने लगा। उसकी आवाज सुनकर हाथी क्रोधसे अंधा हो गया और दु:शासन पैर फिसल जानेके कारण पृथ्वीपर गिर पड़ा। दु:शासनको गिरकर कुछ-कुछ उच्छ्वास लेते देख कालके समान निरंकुश हाथीने क्रोधमें भरकर उसे ऊपर फेंक दिया। ऊपरसे गिरते ही उसके प्राण निकल गये। इस प्रकार कालवश मृत्युको प्राप्त होनेके बाद उसे हाथीकी ही योनि मिली और सिंहलद्वीपके महाराजके यहाँ उसने अपना बहुत समय व्यतीत किया।

सिंहलद्वीपके राजाकी महाराज खड्गबाहुसे बड़ी मैत्री थी, अत: उन्होंने जलके मार्गसे उस हाथीको मित्रकी प्रसन्नताके लिये भेज दिया। एक दिन राजाने श्लोककी समस्या-पूर्तिसे सन्तुष्ट होकर किसी कविको पुरस्काररूपमें वह हाथी दे दिया और उन्होंने सौ स्वर्ण-मुद्राएँ लेकर उसे मालव-नरेशके हाथ बेच दिया। कुछ काल व्यतीत होनेपर वह हाथी यत्नपूर्वक पालित होनेपर भी असाध्य ज्वरसे ग्रस्त होकर मरणासन्न हो गया। हाथीवानोंने जब उसे ऐसी शोचनीय अवस्थामें

देखा तो राजाके पास जाकर हाथीके हितके लिये शीघ्र ही सारा हाल कह सुनाया—'महाराज! आपका हाथी अस्वस्थ जान पड़ता है। उसका खाना, पीना और सोना सब छूट गया है। हमारी समझमें नहीं आता इसका क्या कारण है।'

हाथीवानोंका बताया हुआ समाचार सुनकर राजाने हाथीके रोगको पहचाननेवाले चिकित्साकुशल मन्त्रियोंके साथ उस स्थानपर पदार्पण किया जहाँ हाथी ज्वरग्रस्त होकर पड़ा था। राजाको देखते ही उसने ज्वरजनित वेदनाको भूलकर संसारको आश्चर्यमें डालनेवाली वाणीमें कहा—'सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञाता, राजनीतिके समुद्र, शत्रु-समुदायको परास्त करनेवाले तथा भगवान् विष्णुके चरणोंमें अनुराग रखनेवाले महाराज! इन औषधोंसे क्या लेना है? वैद्योंसे भी कुछ लाभ होनेवाला नहीं है। दान और जपसे भी क्या सिद्ध होगा? आप कृपा करके गीताके सत्रहवें अध्यायका पाठ करनेवाले किसी ब्राह्मणको बुलवाइये।'

हाथीके कथनानुसार राजाने सब कुछ वैसा ही किया। तदनन्तर गीता-पाठ करनेवाले ब्राह्मणने जब उत्तम जलको अभिमन्त्रित करके उसके ऊपर डाला, तो दुःशासन गजयोनिका परित्याग करके मुक्त हो गया। राजाने दुःशासनको दिव्य विमानपर आरूढ़ एवं इन्द्रके समान तेजस्वी देखकर पूछा—'तुम्हारी पूर्व-जन्ममें क्या जाति थी? क्या स्वरूप था? कैसे आचरण थे? और किस कर्मसे तुम यहाँ हाथी होकर आये थे? ये सारी बातें मुझे बताओ।' राजाके इस प्रकार पूछनेपर संकटसे छूटे हुए दुःशासनने विमानपर बैठे-ही-बैठे स्थिरताके साथ अपना यथावत् समाचार कह सुनाया। तत्पश्चात् नरश्रेष्ठ मालवनरेश भी गीताके सत्रहवें अध्यायका जप करने लगे। इससे थोड़े ही समयमें उनकी मुक्ति हो गयी।

श्रीपार्वतीजीने कहा—भगवन्! आपने सत्रहवें अध्यायका माहात्म्य बतलाया। अब अठारहवें अध्यायके माहात्म्यका वर्णन कीजिये।

श्रीमहादेवजीने कहा—गिरिनन्दिनि! चिन्मय आनन्दकी धारा बहानेवाले अठारहवें अध्यायके पावन माहात्म्यको, जो वेदसे भी उत्तम है, श्रवण करो। यह सम्पूर्ण शास्त्रोंका सर्वस्व, कानोंमें पड़ा हुआ रसायनके समान तथा संसारके यातना-जालको छिन्न-भिन्न करनेवाला है। सिद्ध पुरुषोंके लिये यह परम रहस्यकी वस्तु है। इसमें अविद्याका नाश करनेकी पूर्ण क्षमता है। यह भगवान् विष्णुकी चेतना तथा सर्वश्रेष्ठ परमपद है। इतना ही नहीं, यह विवेकमयी लताका मूल, काम, क्रोध और मदको नष्ट करनेवाला, इन्द्र आदि देवताओंके चित्तका विश्राम-मन्दिर तथा सनक-सनन्दन आदि महायोगियोंका मनोरंजन करनेवाला है। इसके पाठमात्रसे यमदूतोंकी गर्जना बंद हो जाती है। पार्वती! इससे बढ़कर कोई ऐसा रहस्यमय उपदेश नहीं है, जो सन्तप्त मानवोंके त्रिविध तापको हरनेवाला और बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला हो। अठारहवें अध्यायका लोकोत्तर माहात्म्य है। इसके सम्बन्धमें जो पवित्र उपाख्यान है, उसे भक्तिपूर्वक सुनो। उसके श्रवणमात्रसे जीव समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है।

मेरुगिरिके शिखरपर अमरावती नामवाली एक
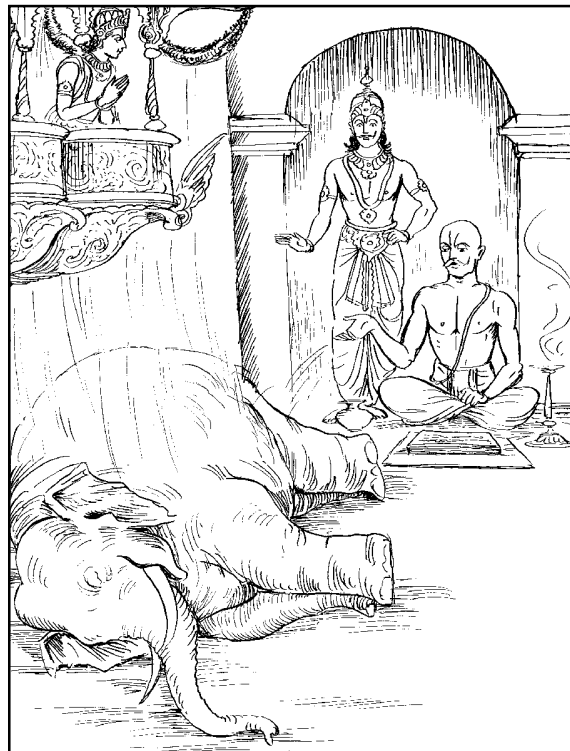
रमणीय पुरी है। उसे पूर्वकालमें विश्वकर्माने बनाया था। उस पुरीमें देवताओंद्वारा सेवित इन्द्र शचीके साथ निवास करते थे। एक दिन वे सुखपूर्वक बैठे हुए थे, इतनेहीमें उन्होंने देखा कि भगवान् विष्णुके दूतोंसे सेवित एक अन्य पुरुष वहाँ आ रहा है। इन्द्र उस नवागत पुरुषके तेजसे तिरस्कृत होकर तुरंत ही अपने मणिमय सिंहासनसे मण्डपमें गिर पड़े। तब इन्द्रके सेवकोंने देवलोकके साम्राज्यका मुकुट इस नूतन इन्द्रके मस्तकपर रख दिया। फिर तो दिव्य गीत गाती हुई देवांगनाओंके साथ सब देवता उनकी आरती उतारने लगे। ऋषियोंने वेदमन्त्रोंका उच्चारण करके उन्हें अनेक आशीर्वाद दिये। रम्भा आदि अप्सराएँ उनके आगे नृत्य करने लगीं। गन्धर्वोंका ललित स्वरमें मंगलमय गान होने लगा।

इस प्रकार इस नवीन इन्द्रको सौ यज्ञोंका अनुष्ठान किये बिना ही नाना प्रकारके उत्सवोंसे सेवित देखकर पुराने इन्द्रको बड़ा विस्मय हुआ। वे सोचने लगे—'इसने तो मार्गमें न कभी पौंसले बनवाये हैं, न पोखरे खुदवाये हैं और न पथिकोंको विश्राम देनेवाले बड़े-बड़े वृक्ष ही लगवाये हैं। अकाल पड़नेपर अन्नदानके द्वारा इसने प्राणियोंका सत्कार भी नहीं किया है। इसके द्वारा तीर्थोंमें सत्र और गाँवोंमें यज्ञका अनुष्ठान भी नहीं हुआ है। फिर इसने यहाँ भाग्यकी दी हुई ये सारी वस्तुएँ कैसे प्राप्त की हैं?' इस चिन्तासे व्याकुल होकर इन्द्र भगवान् विष्णुसे पूछनेके लिये वेगपूर्वक क्षीरसागरके तटपर गये और वहाँ अकस्मात् अपने साम्राज्यसे भ्रष्ट होनेका दुःख निवेदन करते हुए बोले—'लक्ष्मीकान्त! मैंने पूर्व-कालमें आपकी प्रसन्नताके लिये सौ यज्ञोंका अनुष्ठान किया था। उसीके पुण्यसे मुझे इन्द्रपदकी प्राप्ति हुई थी; किन्तु इस समय स्वर्गमें कोई दूसरा ही इन्द्र अधिकार जमाये बैठा है। उसने तो न कभी धर्मका अनुष्ठान किया है और न यज्ञोंका। फिर उसने मेरे दिव्य सिंहासनपर कैसे अधिकार जमाया है?'

श्रीभगवान् बोले—इन्द्र! वह गीताके अठारहवें अध्यायमेंसे पाँच श्लोकोंका प्रतिदिन जप करता है। उसीके पुण्यसे उसने तुम्हारे उत्तम साम्राज्यको प्राप्त कर लिया है। गीताके अठारहवें अध्यायका पाठ सब पुण्योंका शिरोमणि है। उसीका आश्रय लेकर तुम भी अपने पदपर स्थिर हो सकते हो।

भगवान् विष्णुके ये वचन सुनकर और उस उत्तम उपायको जानकर इन्द्र ब्राह्मणका वेष बनाये गोदावरीके तटपर गये। वहाँ उन्होंने कालिकाग्राम नामक उत्तम और पवित्र नगर देखा, जहाँ कालका भी मर्दन करनेवाले भगवान् कालेश्वर विराजमान हैं। वहीं गोदावरी-तटपर एक परम धर्मात्मा ब्राह्मण बैठे थे, जो बड़े ही दयालु और वेदोंके पारंगत विद्वान् थे। वे अपने मनको वशमें करके प्रतिदिन गीताके अठारहवें अध्यायका जप किया करते थे। उन्हें देखकर इन्द्रने बड़ी प्रसन्नताके साथ उनके दोनों चरणोंमें मस्तक झुकाया और उन्हींसे अठारहवें अध्यायको पढ़ा। फिर उसीके पुण्यसे उन्होंने श्रीविष्णुका सायुज्य प्राप्त कर लिया। इन्द्र आदि देवताओंका पद बहुत ही छोटा है, यह जानकर वे परम हर्षके साथ उत्तम वैकुण्ठधामको गये। अतः यह अध्याय मुनियोंके लिये श्रेष्ठ परमतत्त्व है। पार्वती! अठारहवें अध्यायके इस दिव्य माहात्म्यका वर्णन

समाप्त हुआ। इसके श्रवणमात्रसे मनुष्य सब पापोंसे छुटकारा पा जाता है। इस प्रकार सम्पूर्ण गीताका पापनाशक माहात्म्य बतलाया गया। महाभागे! जो पुरुष श्रद्धायुक्त होकर इसका श्रवण करता है, वह समस्त यज्ञोंका फल पाकर अन्तमें श्रीविष्णुका सायुज्य प्राप्त कर लेता है।

देवर्षि नारदकी सनकादिसे भेंट तथा नारदजीके द्वारा भक्ति, ज्ञान और वैराग्यके वृत्तान्तका वर्णन

पार्वतीजीने कहा—भगवन्! समस्त पुराणोंमें श्रीमद्भागवत श्रेष्ठ है, क्योंकि उसके प्रत्येक पदमें महर्षिद्वारा भगवान् श्रीकृष्णकी महिमाका नाना प्रकारसे गान किया गया है; अतः इस समय उसीके माहात्म्यका इतिहाससहित वर्णन कीजिये।

श्रीमहादेवजीने कहा—जिनका अभी यज्ञोपवीत-संस्कार भी नहीं हुआ था तथा जो समस्त लौकिक-वैदिक कृत्योंका परित्याग करके घरसे निकले जा रहे थे, ऐसे शुकदेवजीको बाल्यावस्थामें ही संन्यासी होते देख उनके पिता श्रीकृष्णद्वैपायन विरहसे कातर हो उठे और 'बेटा! बेटा!! तुम कहाँ चले जा रहे हो?' इस प्रकार पुकारने लगे। उस समय शुकदेवजीके साथ एकाकार होनेके कारण वृक्षोंने ही उनकी ओरसे उत्तर दिया था। ऐसे सम्पूर्ण भूतोंके हृदयमें आत्मारूपसे विराजमान परम ज्ञानी श्रीशुकदेव मुनिको मैं प्रणाम करता हूँ।

एक समय भगवत्कथाका रसास्वादन करनेमें कुशल परम बुद्धिमान् शौनकजीने नैमिषारण्यमें विराजमान सूतजीको नमस्कार करके पूछा।

शौनकजी बोले—सूतजी! आप इस समय कोई ऐसी सारगर्भित कथा कहिये, जो हमारे कानोंको अमृतके समान मधुर जान पड़े तथा जो अज्ञानान्धकारका विध्वंस और कोटि-कोटि जन्मोंके पापोंका नाश करनेवाली हो। भक्ति, ज्ञान और वैराग्यसे प्राप्त होनेवाला विज्ञान कैसे बढ़ता है तथा वैष्णवलोग किस प्रकार माया-मोहका निवारण करते हैं। इस घोर कलिकालमें प्रायः जीव असुरस्वभावके हो गये हैं, इसीलिये वे नाना प्रकारके क्लेशोंसे घिरे रहते हैं; अतः उनकी शुद्धिका सर्वश्रेष्ठ उपाय क्या है? इस समय हमें ऐसा कोई साधन बताइये, जो सबसे अधिक कल्याणकारी, पवित्रको भी पवित्र करनेवाला तथा सदाके लिये भगवान् श्रीकृष्णकी प्राप्ति करा देनेवाला हो। चिन्तामणि केवल लौकिक सुख देती है, कल्पवृक्ष स्वर्गतककी सम्पत्ति दे सकता है; किन्तु यदि गुरुदेव प्रसन्न हो जायँ तो वे योगियोंको भी कठिनतासे मिलनेवाला नित्य वैकुण्ठधामतक दे सकते हैं।

सूतजीने कहा—शौनकजी! आपके हृदयमें भगवत्कथाके प्रति प्रेम है; अतः मैं भलीभाँति विचार करके सम्पूर्ण सिद्धान्तोंद्वारा अनुमोदित और संसार-जनित भयका नाश करनेवाले सारभूत साधनका वर्णन करता हूँ। वह भक्तिको बढ़ानेवाला तथा भगवान् श्रीकृष्णकी प्रसन्नताका प्रधान हेतु है। आप उसे सावधान होकर सुनें। कलियुगमें कालरूपी सर्पसे डँसे जानेके भयको दूर करनेके लिये ही श्रीशुकदेवजीने श्रीमद्भागवत-शास्त्रका उपदेश किया है। मनकी शुद्धिके लिये इससे बढ़कर दूसरा कोई साधन नहीं है। जब जन्म-जन्मान्तरोंका पुण्य उदय होता है तब कहीं श्रीमद्भागवत-शास्त्रकी प्राप्ति होती है। जिस समय श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित्को कथा सुनानेके लिये सभामें विराजमान हुए, उस समय देवतालोग अमृतका कलश लेकर उनके पास आये। देवता अपना कार्य-साधन करनेमें बड़े चतुर होते हैं। वे सब-के-सब श्रीशुकदेवजीको नमस्कार करके कहने लगे—'मुने! आप यह अमृत लेकर बदलेमें हमें कथामृतका दान दीजिये। इस प्रकार परिवर्तन करके राजा परीक्षित् अमृतका पान करें [और अमर हो जायँ] तथा हम सब लोग श्रीमद्भागवतामृतका पान करेंगे। तब श्रीशुकदेवजीने सोचा—'इस लोकमें कहाँ अमृत और

कहाँ भागवतकथा, कहाँ काँच और कहाँ बहुमूल्य मणि!' यह विचारकर वे देवताओंकी बातपर हँसने लगे, तथा उन्हें अनधिकारी जानकर कथामृतका दान नहीं किया। अत: श्रीमद्भागवतकी कथा देवताओंके लिये भी अत्यन्त दुर्लभ है। केवल श्रीमद्भागवतके श्रवणसे ही राजा परीक्षित्का मोक्ष हुआ देख पूर्वकालमें ब्रह्माजीको बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने सत्यलोकमें तराजू बाँधकर सब साधनोंको तौला। उस समय अन्य सभी साधन हलके पड़ गये, अपने गौरवके कारण श्रीमद्भागवतका ही पलड़ा सबसे भारी रहा। यह देखकर समस्त ऋषियोंको भी बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने इस पृथ्वीपर भगवत्स्वरूप भागवत-शास्त्रको ही पढ़ने-सुननेसे तत्काल भगवान्की प्राप्ति करानेवाला निश्चय किया। यदि एक वर्षमें श्रीमद्भागवतको सुनकर पूरा किया जाय, तो वह श्रवण महान् सौख्य प्रदान करनेवाला होता है। जिसके हृदयमें भगवद्भक्तिकी कामना हो, उसके लिये एक मासमें पूरे श्रीमद्भागवतका श्रवण उत्तम माना गया है। यदि सप्ताहपारायणकी विधिसे इसका श्रवण किया जाय तो यह सर्वथा मोक्ष देनेवाला होता है। पूर्वकालमें सनकादि महर्षियोंने कृपा करके इसे देवर्षि नारदको सुनाया था। यद्यपि देवर्षि नारद श्रीमद्भागवतको पहले ही ब्रह्माजीके मुखसे सुन चुके थे तथापि इसके सप्ताहश्रवणकी विधि तो उन्हें सनकादिने ही बतायी थी।

शौनकजी! अब मैं आपको वह भक्तिपूर्ण कथानक सुनाता हूँ, जो श्रीशुकदेवजीने मुझे अपना प्रिय शिष्य जानकर एकान्तमें सुनाया था। एक समयकी बात है, सनक-सनन्दन आदि चारों निर्मल अन्त:करणवाले महर्षि सत्संगके लिये विशालापुरी (बदरिकाश्रम)-में आये। वहाँ उन्होंने नारदजीको देखा।

सनकादि कुमारोंने पूछा—ब्रह्मन्! आपके मुखपर दीनता क्यों छा रही है। आप चिन्तासे आतुर कैसे हो रहे हैं। इतनी उतावलीके साथ आप जाते कहाँ हैं और आये कहाँसे हैं? इस समय तो आप जिसका सारा धन लुट गया हो, उस पुरुषके समान सुध-बुध खोये हुए हैं। आप-जैसे आसक्तिशून्य विरक्त पुरुषकी ऐसी अवस्था होनी तो उचित नहीं है। बताइये, इसका क्या कारण है?

नारदजीने कहा—महात्माओ! मैं पृथ्वीको [नाना तीर्थोंके कारण] सबसे उत्तम जानकर यहाँकी यात्रा करनेके लिये आया था। आनेपर पुष्कर, प्रयाग, काशी, गोदावरी, हरिक्षेत्र, कुरुक्षेत्र, श्रीरंग और सेतुबन्ध आदि तीर्थोंमें इधर-उधर विचरता रहा। किन्तु कहीं भी मुझे मनको सन्तोष देनेवाली शान्ति नहीं मिली। इस समय अधर्मके सखा कलियुगने सारी पृथ्वीको पीड़ित कर रखा है। अब यहाँ सत्य, तपस्या, शौच, दया और दान आदि कुछ भी नहीं हैं। बेचारे जीव पेट पालनेमें लगे हैं। वे असत्यभाषी, आलसी, मन्दबुद्धि और भाग्यहीन हो गये हैं। उन्हें तरह-तरहके उपद्रव घेरे रहते हैं। साधु-संत कहलानेवाले लोग पाखण्डमें फँस गये हैं। ऊपरसे विरक्त जान पड़ते हैं, किन्तु वास्तवमें पूरे संग्रही हैं। घर-घरमें स्त्रियोंका राज्य है। साले ही सलाहकार बने हुए हैं। पैसोंके लोभसे कन्याएँतक बेची जाती हैं। पति-पत्नीमें सदा ही कलह मचा रहता है। आश्रमों, तीर्थों और नदियोंपर म्लेच्छोंने अधिकार जमा रखा है। उन दुष्टोंने बहुत-से देवमन्दिर भी नष्ट कर दिये हैं। अब यहाँ न कोई योगी है न सिद्ध, न कोई ज्ञानी है और न सत्कर्म करनेवाला ही। इस समय सब साधन कलिरूपी दावानलसे भस्म हो गया है। पृथ्वीपर चारों ओर सभी

देशवासी बाजारोंमें अन्न बेचते हैं। ब्राह्मणलोग पैसे लेकर वेद पढ़ाते हैं और स्त्रियाँ वेश्यावृत्तिसे जीवन-निर्वाह करती देखी जाती हैं।

इस प्रकार कलियुगके दोष देखता और पृथ्वीपर विचरता हुआ मैं यमुनाजीके तटपर आ पहुँचा, जहाँ भगवान् श्रीकृष्णकी लीला हुई थी। मुनीश्वरो! वहाँ आनेपर मैंने जो आश्चर्यकी बात देखी है, उसे आपलोग सुनें—'वहाँ एक तरुणी स्त्री बैठी थी; जिसका चित्त बहुत ही खिन्न था। उसके पास ही दो वृद्ध पुरुष अचेत अवस्थामें पड़े जोर-जोरसे साँस ले रहे थे। वह तरुणी उनकी सेवा-शुश्रूषा करती, उन्हें जगानेकी चेष्टा करती और अपने प्रयत्नमें असफल होकर रोने लगती थी। बीच-बीचमें दसों दिशाओंकी ओर दृष्टि डालकर वह अपने लिये कोई रक्षक भी ढूँढ़ रही थी। उसके चारों ओर सैकड़ों स्त्रियाँ पंखा झलती हुई उसे बार-बार सान्त्वना दे रही थीं। दूरसे ही यह सब देखकर मैं कौतूहलवश उसके पास चला गया। मुझे देखते ही वह युवती स्त्री उठकर खड़ी हो गयी और व्याकुल होकर बोली—'महात्माजी!

क्षणभरके लिये ठहर जाइये और मेरी चिन्ताको भी नष्ट कीजिये। आपका दर्शन संसारके समस्त पापोंको सर्वथा नष्ट कर देनेवाला है। आपके वचनोंसे मेरे दुःखकी बहुत कुछ शान्ति हो जायगी। जब बहुत बड़ा भाग्य होता है, तभी आप-जैसे महात्माका दर्शन होता है।'

नारदजी कहते हैं—युवतीकी ऐसी बात सुनकर मेरा हृदय करुणासे भर आया और मैंने उत्कण्ठित होकर उस सुन्दरीसे पूछा—देवि! तुम कौन हो? ये दोनों पुरुष कौन हैं? तथा तुम्हारे पास ये कमलके समान नेत्रोंवाली देवियाँ कौन हैं? तुम विस्तारके साथ अपने दुःखका कारण बताओ।

युवती बोली—मेरा नाम भक्ति है, ये दोनों पुरुष मेरे पुत्र हैं; इनका नाम ज्ञान और वैराग्य है। समयके फेरसे आज इनका शरीर जराजीर्ण हो गया है। इन देवियोंके रूपमें गंगा आदि नदियाँ हैं, जो मेरी सेवाके लिये आयी हैं। इस प्रकार साक्षात् देवियोंके द्वारा सेवित होनेपर भी मुझे सुख नहीं मिलता। तपोधन! अब तनिक सावधान होकर मेरी बात सुनिये। मेरी कथा कुछ विस्तृत है। उसे सुनकर मुझे शान्ति प्रदान कीजिये। मैं द्रविड़ देशमें उत्पन्न होकर कर्णाटकमें बड़ी हुई। महाराष्ट्रमें भी कहीं-कहीं मेरा आदर हुआ। गुजरातमें आनेपर तो मुझे बुढ़ापेने घेर लिया। वहाँ घोर कलियुगके प्रभावसे पाखण्डियोंने मुझे अंग-भंग कर डाला। तबसे बहुत दिनोंतक मैं दुर्बल-ही-दुर्बल रही। वृन्दावन मुझे बहुत प्रिय है, इसलिये अपने दोनों पुत्रोंके साथ यहाँ चली आयी। इस स्थानपर आते ही मैं परम सुन्दरी नवयुवती हो गयी। इस समय मेरा रूप अत्यन्त मनोरम हो गया है, परन्तु मेरे ये दोनों पुत्र थके-माँदे होनेके कारण यहीं सोकर कष्ट भोग रहे हैं। मैं यह स्थान छोड़कर विदेश जाना चाहती थी; परन्तु ये दोनों बूढ़े हो गये हैं, इसी दुःखसे मैं दुःखित हो रही हूँ। पता नहीं मैं यहाँ युवती कैसे हो गयी और मेरे ये दोनों पुत्र बूढ़े क्यों हो गये। हम तीनों साथ-ही-साथ यात्रा करते थे, फिर हममें यह विपरीत अवस्था कैसे आ गयी। उचित तो यह है कि माता बूढ़ी हो और बेटे जवान; परन्तु यहाँ उलटी बात हो गयी। इसीलिये मैं चकितचित्त होकर अपने लिये शोक करती हूँ। महात्मन्! आप परम बुद्धिमान् और योगनिधि हैं। बताइये, इसमें क्या कारण हो सकता है?

नारदजी कहते हैं—उसके इस प्रकार पूछनेपर

मैंने कहा—साध्वी! मैं अभी ज्ञानदृष्टिसे अपने हृदयके भीतर तुम्हारे दुःखका सारा कारण देखता हूँ। तुम खेद न करो। भगवान् तुम्हें शान्ति देंगे।

तब मुनीश्वर नारदजीने ध्यान लगाया और एक ही क्षणमें उसका कारण जानकर कहा—'बाले! तुम ध्यान देकर सुनो। यह कलिकाल बड़ा भयंकर युग है। इसीने सदाचारका लोप कर दिया। योगमार्ग और तप आदि भी लुप्त हो गये हैं। इस समय मनुष्य शठता और दुष्कर्ममें प्रवृत्त होकर असुरस्वभावके हो गये हैं। आज जगत्‌में सज्जन पुरुष दुःखी हैं और दुष्टलोग मौज करते हैं। ऐसे समयमें जो धैर्य धारण किये रहे, वही बुद्धिमान्, धीर अथवा पण्डित है। अब यह पृथ्वी न तो स्पर्श करनेयोग्य रह गयी है और न देखनेयोग्य। यह क्रमशः प्रतिवर्ष शेषनागके लिये भारभूत होती जा रही है। इसमें कहीं भी मंगल नहीं दिखायी देता। तुम्हें और तुम्हारे पुत्रोंको तो अब कोई देखता भी नहीं है। इस प्रकार विषयान्ध मनुष्योंके उपेक्षा करनेसे ही तुम जर्जर हो गयी थी, किन्तु वृन्दावनका संयोग पाकर पुनः नवीन तरुणी-सी हो गयी हो; अतः यह वृन्दावन धन्य है, जहाँ सब ओर भक्ति नृत्य कर रही है! परन्तु इन ज्ञान और वैराग्यका यहाँ भी कोई ग्राहक नहीं है; इसलिये अभीतक इनका बुढ़ापा दूर नहीं हुआ। इन्हें अपने भीतर कुछ सुख-सा प्रतीत हो रहा है, इससे इनकी गाढ़ सुषुप्तावस्थाका अनुमान होता है।

भक्तिने कहा—महर्षे! महाराज परीक्षित्‌ने इस अपवित्र कलियुगको पृथ्वीपर रहने ही क्यों दिया? तथा कलियुगके आते ही सब वस्तुओंका सार कहाँ चला गया? भगवान् तो बड़े दयालु हैं, उनसे भी यह अधर्म कैसे देखा जाता है? मुने! मेरे इस संशयका निवारण कीजिये। आपकी बातोंसे मुझे बड़ा सुख मिला है।

नारदजी बोले—बाले! यदि तुमने पूछा है तो प्रेमपूर्वक सुनो। कल्याणी! मैं तुम्हें सब बातें बताऊँगा और इससे तुम्हारा सब शोक दूर हो जायगा। जिस दिन भगवान् श्रीकृष्ण इस भूलोकको छोड़कर अपने परमधामको पधारे, उसी दिनसे यहाँ कलियुगका आगमन हुआ है, जो समस्त साधनोंमें बाधा उपस्थित करनेवाला है। दिग्विजयके समय जब राजा परीक्षित्‌की दृष्टि इस कलियुगके ऊपर पड़ी तो यह दीनभावसे उनकी शरणमें गया। राजा भौंरेके समान सारग्राही थे, इसलिये उन्होंने सोचा कि मुझे इसका वध नहीं करना चाहिये; क्योंकि इस कलियुगमें एक बड़ा अद्भुत गुण है। अन्य युगोंमें तपस्या, योग और समाधिसे भी जिस फलकी प्राप्ति नहीं होती, वही फल कलियुगमें भगवान् केशवके कीर्तनमात्रसे और अच्छे रूपमें उपलब्ध होता है।* असार होनेपर भी इस एक ही रूपमें यह सारभूत फल प्रदान करनेवाला है, यही देखकर राजा परीक्षित्‌ने कलियुगमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंके सुखके लिये इसे रहने दिया।

इस समय लोगोंकी खोटे कर्मोंमें प्रवृत्ति होनेसे सभी वस्तुओंका सार निकल गया है तथा इस पृथ्वीपर जितने भी पदार्थ हैं, वे बीजहीन भूसीके समान निस्सार हो गये हैं। ब्राह्मणलोग धनके लोभसे घर-घरमें जाकर प्रत्येक मनुष्यको [अधिकारी-अनधिकारीका विचार किये बिना ही] भागवतकी कथा सुनाने लगे हैं, इससे कथाका सार चला गया—लोगोंकी दृष्टिमें उसका कुछ महत्त्व नहीं रह गया है। तीर्थोंमें बड़े भयंकर कर्म करनेवाले नास्तिक और दम्भी मनुष्य भी रहने लगे हैं; इसलिये तीर्थोंका भी सार चला गया। जिनका चित्त काम, क्रोध, भारी लोभ और तृष्णासे सदा व्याकुल रहता है, वे भी तपस्वी बनकर बैठते हैं। इसलिये तपस्याका सार भी निकल गया। मनको काबूमें न करने, लोभ, दम्भ और पाखण्डका आश्रय लेने तथा शास्त्रका अभ्यास न करनेके कारण ध्यानयोगका फल भी चला गया। औरोंकी तो बात ही क्या, पण्डितलोग भी अपनी स्त्रियोंके साथ भैंसोंकी तरह रमण करते हैं। वे सन्तान

* यत्फलं नास्ति तपसा न योगेन समाधिना । तत्फलं लभते सम्यक्कलौ केशवकीर्तनात्॥ (१८९। ७५)

पैदा करनेमें ही दक्ष हैं। मुक्तिके साधनमें वे नितान्त असमर्थ पाये जाते हैं। परम्परासे प्राप्त हुआ वैष्णव-धर्म कहीं भी नहीं रह गया है। इस प्रकार जगह-जगह सभी वस्तुओंका सार लुप्त हो गया है। यह तो इस युगका स्वभाव ही है, इसमें दोष किसीका नहीं है; यही कारण है कि कमलनयन भगवान् विष्णु निकट रहकर भी यह सब कुछ सहन करते हैं।

शौनकजी! इस प्रकार देवर्षि नारदके वचन सुनकर भक्तिको बड़ा आश्चर्य हुआ। फिर उसने जो कुछ कहा, उसे आप सुनिये।

भक्ति बोली—देवर्षे! आप धन्य हैं। मेरे सौभाग्यसे ही आपका यहाँ शुभागमन हुआ है। संसारमें साधु-महात्माओंका दर्शन सब प्रकारके कार्योंको सिद्ध करनेवाला और सर्वश्रेष्ठ साधन है। अब जिस प्रकार मुझे सुख मिले—मेरा दुःख दूर हो जाय, वह उपाय बताइये। ब्रह्मन्! आप समस्त योगोंके स्वामी हैं, आपके लिये इस समय कुछ भी असाध्य नहीं है। एकमात्र आपके ही सुन्दर उपदेशको सुनकर कयाधू-नन्दन प्रह्लादने संसारकी मायाका त्याग किया था तथा राजकुमार ध्रुव भी आपकी ही कृपासे ध्रुवपदको प्राप्त हुए थे। आप सब प्रकारसे मंगलभाजन एवं श्रीब्रह्माजीके पुत्र हैं; मैं आपको प्रणाम करती हूँ।

भक्तिका कष्ट दूर करनेके लिये नारदजीका उद्योग और सनकादिके द्वारा उन्हें साधनकी प्राप्ति

नारदजीने कहा—बाले! तुम व्यर्थ ही अपनेको खेदमें डालती हो। अहो! इतनी चिन्तातुर क्यों हो रही हो? भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंका स्मरण करो। इससे तुम्हारा सारा दुःख दूर हो जायगा। जिन्होंने कौरवोंके अत्याचारसे द्रौपदीकी रक्षा की तथा गोपसुन्दरियोंका मनोरथ पूर्ण किया, वे श्रीकृष्ण कहीं चले नहीं गये हैं। तुम तो साक्षात् भक्ति हो, जो उन्हें प्राणोंसे भी अधिक प्रिय है। तुम्हारे बुलानेपर तो भगवान् नीच पुरुषोंके घरोंमें भी चले जाते हैं। सत्ययुग, त्रेता और द्वापर—इन तीन युगोंमें ज्ञान और वैराग्य मुक्तिके साधन थे; किन्तु कलियुगमें तो केवल भक्ति ही ब्रह्म-सायुज्य (मोक्ष)-की प्राप्ति करानेवाली है। ऐसा सोचकर ही ज्ञानस्वरूप श्रीहरिने तुम्हें प्रकट किया है। तुम भगवत्स्वरूपा, परमानन्दचिन्मूर्ति, परम सुन्दरी तथा साक्षात् श्रीकृष्णकी प्रियतमा हो। एक बार जब तुमने हाथ जोड़कर पूछा था कि 'मैं क्या करूँ?' उस समय भगवान् श्रीकृष्णने तुम्हें यही आज्ञा दी थी कि 'मेरे भक्तोंका पोषण करो।' तुमने भगवान्की यह आज्ञा स्वीकार कर ली। इससे प्रसन्न होकर श्रीहरिने तुम्हें मुक्तिको दासीरूपमें दिया और इन ज्ञान-वैराग्यको पुत्ररूपमें। तुम अपने साक्षात् स्वरूपसे तो वैकुण्ठधाममें ही भक्तोंका पोषण करती हो। भूलोकमें उनका पोषण करनेके लिये तुमने केवल छायारूप धारण कर रखा है।

मुक्ति अपने साथ ज्ञान और वैराग्यको लेकर तुम्हारी सेवाके लिये इस पृथ्वीपर आयी तथा सत्ययुगके आरम्भसे द्वापरके अन्ततक यहाँ बड़े आनन्दसे रही; परन्तु कलियुग आनेपर वह पाखण्डरूप रोगसे पीड़ित होकर क्षीण होने लगी। तब तुम्हारी आज्ञासे वह तुरंत ही फिर वैकुण्ठलोकको चली गयी। अब भी वह तुम्हारे स्मरण करनेपर इस लोकमें आती है और फिर चली जाती है। इन ज्ञान और वैराग्यको तुमने पुत्र मानकर अपने ही पास रख छोड़ा था। कलियुगमें मनुष्योंद्वारा इनकी उपेक्षा होनेके कारण ये तुम्हारे पुत्र उत्साहहीन और वृद्ध हो गये हैं; फिर भी तुम चिन्ता न करो। मैं इनके उद्धारका उपाय सोचता हूँ। सुमुखि! कलियुगके समान कोई युग नहीं है। इस युगमें मैं तुम्हें घर-घरमें और मनुष्य-मनुष्यके भीतर स्थापित कर दूँगा। अन्य जितने भी धर्म हैं, उन सबको दबाकर और बड़े-बड़े उत्सव रचाकर यदि संसारमें मैं तुम्हारा प्रचार न कर दूँ तो मैं श्रीहरिका दास ही नहीं। इस कलियुगमें जो जीव तुमसे सम्बन्ध रखेंगे, वे पापी होनेपर भी निर्भयतापूर्वक भगवान् श्रीकृष्णके नित्य धामको चले जायँगे। जिनके

हृदयमें सदा प्रेमरूपिणी भक्ति निवास करती है, वे पवित्रमूर्ति पुरुष स्वप्नमें भी यमराजको नहीं देखते। जिनके हृदयमें भक्तिभाव भरा हुआ है, उन्हें प्रेत, पिशाच, राक्षस अथवा असुर भी नहीं छू सकते। भगवान् तपस्या, वेदाध्ययन, ज्ञान तथा कर्म आदि किसी भी साधनसे वशमें नहीं किये जा सकते। वे केवल भक्तिसे ही वशीभूत होते हैं। इस विषयमें गोपियाँ ही प्रमाण हैं। सहस्रों जन्मोंका पुण्य उदय होनेपर मनुष्योंका भक्तिमें अनुराग होता है। कलियुगमें भक्ति ही सार है। भक्तिसे ही भगवान् श्रीकृष्ण सामने प्रकट होते—प्रत्यक्ष दर्शन देते हैं। जो लोग भक्तिसे द्रोह करते हैं, वे तीनों लोकोंमें दुःख उठाते हैं। पूर्वकालमें भक्तका तिरस्कार करनेवाले दुर्वासा ऋषिको कितना क्लेश भोगना पड़ा था। व्रत, तीर्थ, योग, यज्ञ और ज्ञान-चर्चा आदि बहुत-से साधनोंकी क्या आवश्यकता है? एकमात्र भक्ति ही मोक्ष प्रदान करनेवाली है।

इस प्रकार नारदजीद्वारा निर्णय किये हुए अपने माहात्म्यको सुनकर भक्तिके सारे अंग पुष्ट हो गये। उसने नारदजीसे कहा—'नारदजी! आप धन्य हैं। मुझमें आपकी निश्चल प्रीति है। मैं सदा आपके हृदयमें निवास करूँगी। कभी उसे छोड़कर नहीं जाऊँगी। साधो! आप बड़े कृपालु हैं। आपने एक क्षणमें ही मेरा सारा दुःख दूर कर दिया, किन्तु अभीतक मेरे पुत्रोंको चेत नहीं हुआ; अतः इन्हें भी शीघ्र ही सचेत कीजिये।

भक्तिके ये वचन सुनकर नारदजीको बड़ी दया आयी। वे उन्हें हाथकी अंगुलियोंसे दबा-दबाकर जगाने लगे; फिर कानके पास मुँह लगाकर जोर-जोरसे बोले—'ओ ज्ञान! जल्दी जागो। वैराग्य! तुम भी शीघ्र ही जाग उठो।' फिर वेदध्वनि, वेदान्तघोष और बारम्बार गीता-पाठ करके उन्होंने उन दोनोंको जगाया। इससे वे बहुत जोर लगाकर किसी तरह उठ तो गये; किन्तु आँख खोलकर देख न सके। आलस्यके कारण दोनों ही जँभाई लेते रहे। उनके सिरके बाल पककर बगुलोंकी तरह सफेद हो गये थे। सारे अंग रक्त-मांससे हीन होनेके कारण कंकाल प्रतीत होते थे। उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता था, मानो सूखे काठ हों। भूखसे दुर्बल होनेके कारण वे फिर सो गये। उन्हें इस अवस्थामें देखकर देवर्षि नारदजीको बड़ी चिन्ता हुई। वे सोचने लगे 'अब मुझे क्या करना चाहिये, इनकी यह नींद कैसे जाय, तथा यह सबसे बड़ा बुढ़ापा कैसे दूर हो?' शौनकजी! इस प्रकार चिन्ता करते-करते उन्होंने भगवान् गोविन्दका स्मरण किया। उसी समय आकाशवाणी हुई—'मुने! खेद मत करो। तुम्हारा उद्योग निश्चय ही सफल होगा। देवर्षे! तुम इसके लिये सत्कर्मका अनुष्ठान करो। वह कर्म क्या है, यह तुम्हें साधु-शिरोमणि संतजन बतलायेंगे। उस सत्कर्मके करनेपर इनकी निद्रा और वृद्धावस्था दोनों क्षणभरमें दूर हो जायँगी तथा सर्वत्र भक्तिका प्रसार हो जायगा।'

यह आकाशवाणी वहाँ सबको साफ-साफ सुनायी दी। इससे नारदजीको बड़ा विस्मय हुआ। वे कहने लगे—'मैं तो इसका भाव नहीं समझ सका। इस आकाशवाणीने भी गुप्तरूपसे ही बात की है। यह नहीं बताया कि वह कौन-सा साधन करनेयोग्य है, जिससे इनका कार्य सिद्ध हो सके। वे संत न जाने कहाँ होंगे और किस प्रकार उस साधनका उपदेश देंगे। आकाशवाणीने जो कुछ कहा है, उसके अनुसार यहाँ मुझे क्या करना चाहिये?'

तदनन्तर ज्ञान और वैराग्य दोनोंको वहीं छोड़कर नारद मुनि वहाँसे चल दिये और एक-एक तीर्थमें जाकर मार्गमें मिलनेवाले मुनीश्वरोंसे वह साधन पूछने लगे। उनका वृत्तान्त सब लोग सुन लेते; किन्तु कोई भी कुछ निश्चय करके उत्तर नहीं देता था। कुछ लोगोंने तो इस कार्यको असाध्य बता दिया और कोई बोले, 'इसका ठीक-ठीक पता लगना कठिन है।' कुछ लोग सुनकर मौन रह गये और कितने ही मुनि अपनी अवज्ञा होनेके भयसे चुपचाप खिसक गये। तीनों लोकोंमें महान् हाहाकार मचा, जो सबको विस्मयमें डालनेवाला था। लोग आपसमें काना-फूँसी करने लगे—'भाई! जब वेदध्वनि, वेदान्तघोष और गीता-पाठ सुनानेपर भी ज्ञान और वैराग्य नहीं जाग सके तो अब दूसरा कोई उपाय

नहीं है। भला, योगी नारदको भी स्वयं जिसका ज्ञान नहीं है, उसे दूसरे संसारी मनुष्य कैसे बता सकते हैं?' इस प्रकार जिन-जिन मुनियोंसे यह बात पूछी गयी, उन सबने निर्णय करके यही बताया कि यह कार्य दुस्साध्य है।

सूतजी बोले—तब नारदजी चिन्तासे आतुर हो बदरीवनमें आये। उन्होंने मन-ही-मन यह निश्चय किया था कि 'उस साधनकी प्राप्तिके लिये यहीं तपस्या करूँगा।' बदरीवनमें पहुँचते ही उन्हें अपने सामने करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी सनकादि मुनीश्वर दिखायी दिये। तब मुनिश्रेष्ठ नारदजीने उनसे कहा—'महात्माओ! इस समय बड़े सौभाग्यसे मुझे आपलोगोंका समागम प्राप्त हुआ है। कुमारो! आप मुझपर कृपा करके अब शीघ्र ही उस साधनको बताइये। आप सब लोग योगी, बुद्धिमान् और बहुज्ञ विद्वान् हैं। देखनेमें पाँच वर्षके बालक-से होनेपर भी आप पूर्वजोंके भी पूर्वज हैं। आपलोग सदा वैकुण्ठधाममें निवास करते हैं। निरन्तर हरिनामकीर्तनमें तत्पर रहते हैं। भगवल्लीलामृतका रसास्वादन करके सदा उन्मत्त बने रहते हैं और एकमात्र भगवत्कथा ही आपके जीवनका आधार है। आपके मुखमें सदा '**हरिः शरणम्**' (भगवान् ही हमारे रक्षक हैं) यह मन्त्र विद्यमान रहता है। इसीसे कालप्रेरित वृद्धावस्था आपको बाधा नहीं पहुँचा सकती। पूर्वकालमें आपके भ्रूभंगमात्रसे भगवान् विष्णुके द्वारपाल जय और विजय तुरंत ही पृथ्वीपर गिर पड़े थे और फिर आपहीकी कृपासे वे पुनः वैकुण्ठधाममें पहुँचे। मेरा अहोभाग्य है, जिससे इस समय आपका दर्शन हुआ। मैं बहुत दीन हूँ और आपलोग स्वभावसे ही दयालु हैं; अतः मुझपर आपकी कृपा होनी चाहिये। आकाशवाणीने जिस साधनकी ओर संकेत किया है, वह क्या है? इसे बताइये और किस प्रकार उसका अनुष्ठान करना चाहिये, इसका विस्तारसहित वर्णन कीजिये। भक्ति, ज्ञान और वैराग्यको किस प्रकार सुख प्राप्त हो सकता है और किस तरह इनका प्रेमपूर्वक यत्न करके सब वर्णोंमें प्रचार किया जा सकता है?'

श्रीसनकादि बोले—देवर्षे! आप चिन्ता न करें। अपने मनमें प्रसन्न हों। उनके उद्धारका एक सुगम उपाय पहलेसे ही मौजूद है। नारदजी! आप धन्य हैं। विरक्तोंके शिरोमणि हैं। भगवान् श्रीकृष्णके दासोंमें सदा आगे गिननेयोग्य हैं तथा योगमार्गको प्रकाशित करनेवाले साक्षात् सूर्य ही हैं। आप जो भक्तिके लिये इतना उद्योग कर रहे हैं, यह आपके लिये कोई आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि भगवान् श्रीकृष्णके भक्तको तो भक्तिकी सदा स्थापना करना उचित ही है। ऋषियोंने इस संसारमें बहुत-से मार्ग प्रकट किये हैं; किन्तु वे सभी परिश्रमसाध्य हैं और उनमेंसे अधिकांश स्वर्गरूप फलकी ही प्राप्ति करानेवाले हैं। भगवान्‌की प्राप्ति करानेवाला मार्ग तो अभीतक गुप्त ही रहा है। उसका उपदेश करनेवाला पुरुष प्रायः बड़े भाग्यसे मिलता है। आपको आकाशवाणीने पहले जिस कर्तव्यका संकेत किया है, उसे बतलाया जाता है। आप स्थिर एवं प्रसन्नचित्त होकर सुनिये। नारदजी! द्रव्ययज्ञ, तपोयज्ञ, योगयज्ञ तथा स्वाध्यायरूप ज्ञानयज्ञ—ये सब तो स्वर्गादिकी प्राप्ति करानेवाले कर्ममात्रके ही सूचक हैं, सत्कर्मके नहीं। सत्कर्म (मोक्षदायक कर्म)-का सूचक तो विद्वानोंने केवल ज्ञानयज्ञको माना है। श्रीमद्भागवतका पारायण ही वह ज्ञानयज्ञ है, जिसका शुक आदि महात्माओंने गान किया है। उसके शब्द सुननेसे भक्ति, ज्ञान और वैराग्यको बड़ा बल मिलेगा। इससे ज्ञान-वैराग्यका कष्ट दूर हो जायगा और भक्तिको सुख मिलेगा। श्रीमद्भागवतकी ध्वनि होनेपर कलियुगके ये सारे दोष उसी प्रकार दूर हो जायँगे, जैसे सिंहकी गर्जना सुनकर भेड़िये भाग जाते हैं। तब प्रेमरसकी धारा बहानेवाली भक्ति ज्ञान और वैराग्यके सहित प्रत्येक घरमें तथा प्रत्येक व्यक्तिके हृदयमें क्रीड़ा करेगी।

नारदजीने कहा—मैंने वेदध्वनि, वेदान्तघोष और गीतापाठ आदिके द्वारा ज्ञान और वैराग्यको बहुत जगाया; किन्तु वे उठ न सके। ऐसी दशामें श्रीमद्भागवतका पाठ सुनानेसे वे कैसे जग सकेंगे; क्योंकि श्रीमद्भागवत-कथाके श्लोक-श्लोकमें और पद-पदमें वेदोंका ही अर्थ भरा हुआ है। आपलोग शरणागत पुरुषोंपर दया

करनेवाले हैं। आपका दर्शन कभी व्यर्थ नहीं जाता; इसलिये मेरे सन्देहका निवारण कीजिये। इस कार्यमें विलम्ब नहीं करना चाहिये।

श्रीसनकादि बोले—नारदजी! श्रीमद्भागवतकी कथा वेद और उपनिषदोंके सारसे प्रकट हुई है, अतः उनसे पृथक् फलके रूपमें आकर यह उनकी अपेक्षा भी अत्यन्त उत्तम प्रतीत होती है। जैसे आमके वृक्षमें जड़से लेकर शाखातक रस मौजूद रहता है, किन्तु उसका आस्वादन नहीं किया जा सकता; फिर वही एकत्रित होकर जब उससे पृथक् फलके रूपमें प्रकट होता है तो संसारमें सबके मनको प्रिय लगता है। जैसे दूधमें घी रहता है; किन्तु उस समय उसका अलग स्वाद नहीं मिलता। फिर वही जब उससे पृथक् हो जाता है तो दिव्य जान पड़ता है और देवताओंके लिये भी स्वादवर्धक हो जाता है। खाँड ईखके आदि, मध्य और अन्त—प्रत्येक भागमें व्याप्त रहती है; तथापि उससे पृथक् होनेपर ही उसमें अधिक मधुरता आती है। इसी प्रकार यह श्रीमद्भागवतकी कथा भी है। यह श्रीमद्भागवतपुराण वेदोंके समान माना गया है। श्रीवेदव्यासजीने भक्ति, ज्ञान और वैराग्यकी स्थापनाके लिये ही इसे प्रकट किया है। पूर्वकालमें जिस समय वेद-वेदान्तके निष्णात विद्वान् और गीताकी भी रचना करनेवाले वेदव्यासजी खिन्न होकर अज्ञानके समुद्रमें डूब रहे थे, उस समय आपने ही उन्हें चतुःश्लोकी भागवतका उपदेश किया था। उसका श्रवण करते ही व्यासदेवकी सारी चिन्ताएँ तत्काल दूर हो गयी थीं। उसी श्रीमद्भागवतके विषयमें आपको आश्चर्य क्यों हो रहा है, जो आप हमसे सन्देह पूछ रहे हैं? श्रीमद्भागवतशास्त्र समस्त शोक और दुःखका विनाश करनेवाला है।

नारदजीने कहा—महानुभावो! आपका दर्शन जीवके समस्त अमंगलका तत्काल नाश कर देता है और सांसारिक दुःखरूपी दावानलसे पीड़ित प्राणियोंपर शान्तिकी वर्षा करता है। आप निरन्तर शेषजीके सहस्र मुखोंद्वारा वर्णित भगवत्कथामृतका पान करते रहते हैं, मैं प्रेमलक्षणा-भक्तिका प्रकाश करनेके उद्देश्यसे आपकी शरणमें आया हूँ। अनेक जन्मोंके संचित सौभाग्यप्रद पुण्यका उदय होनेपर जब कभी मनुष्यको सत्संग प्राप्त होता है, तभी अज्ञानजनित मोहमय महान् अन्धकारका नाश करके विवेकका उदय होता है।

सनकादिद्वारा श्रीमद्भागवतकी महिमाका वर्णन तथा कथा-रससे पुष्ट होकर भक्ति, ज्ञान और वैराग्यका प्रकट होना

नारदजी बोले—ज्ञानयोगके विशेषज्ञ महात्माओ! अब मैं भक्ति, ज्ञान और वैराग्यकी स्थापना करनेके लिये श्रीशुकदेवजीके कहे हुए श्रीमद्भागवतशास्त्रकी कथाद्वारा यत्नपूर्वक उज्ज्वल ज्ञानयज्ञ करूँगा। यह यज्ञ मुझे कहाँ करना चाहिये? इसके लिये कोई स्थान बतलाइये। आपलोग वेदोंके पारंगत विद्वान् हैं, इसलिये मुझे शुकशास्त्र (श्रीमद्भागवत)-की महिमा भी सुनाइये और यह भी बताइये कि श्रीमद्भागवतकी कथा कितने दिनोंमें सुननी चाहिये तथा उसके सुननेके लिये कौन-सी विधि है।

श्रीसनकादिने कहा—नारदजी! आप विनयी और विवेकी हैं, सुनिये—हम आपकी पूछी हुई सभी बातें बताते हैं। हरद्वारके समीप एक आनन्द नामका घाट है। वहाँ अनेकों ऋषि-महर्षि रहते हैं तथा देवता और सिद्धलोग भी उसका सेवन करते हैं। नाना प्रकारके वृक्षों और लताओंसे वह स्थान व्याप्त है। वहाँ नूतन एवं कोमल बालू बिछी हुई है। वह घाट बड़ा ही सुरम्य और एकान्त प्रदेशमें है। सुवर्णमय कमल उसकी शोभा बढ़ाया करते हैं। उसके आस-पास रहनेवाले जीवोंके मनमें वैरका भाव नहीं ठहरने पाता। वहाँ अधिक समारोहके बिना ही आपको ज्ञान-यज्ञका अनुष्ठान करना चाहिये। उस स्थानपर जो कथा होगी, उसमें बड़ा अपूर्व रस मिलेगा। भक्ति भी निर्बल एवं जरा-जीर्ण शरीरवाले अपने दोनों पुत्रोंको आगे करके वहीं आ जायगी; क्योंकि

जहाँ श्रीमद्भागवतकी कथा होती है, वहाँ ये भक्ति आदि स्वतः पहुँच जाते हैं। वहाँ कानोंमें कथाका शब्द पड़नेसे तीनों ही तरुण हो जायँगे।

ऐसा कहकर देवर्षि नारदजीके साथ सनकादि भी भागवत-कथारूपी अमृतका पान करनेके लिये शीघ्र ही हरद्वारमें गंगाजीके तटपर आ गये। जिस समय वे वहाँ तटपर पहुँचे भूलोक, देवलोक तथा ब्रह्मलोकमें—सब जगह इस कथाका शोर हो गया। रसिक भक्त श्रीमद्भागवतामृतका पान करनेके लिये वहाँ सबसे पहले दौड़-दौड़कर आने लगे। भृगु, वसिष्ठ, च्यवन, गौतम, मेधातिथि, देवल, देवरात, परशुराम, विश्वामित्र, शाकल, मार्कण्डेय, दत्तात्रेय, पिप्पलाद, योगेश्वर व्यास और पराशर, श्रीमान् छायाशुक, जाजलि और जह्नु आदि सभी प्रधान मुनिगण अपने पुत्र, मित्र और स्त्रियोंको साथ लिये बड़े प्रेमसे वहाँ आये। इनके सिवा वेद, वेदान्त, मन्त्र, तन्त्र, सत्रह पुराण और छहों शास्त्र भी वहाँ मूर्तिमान् होकर उपस्थित हुए। गंगा आदि नदियाँ; पुष्कर आदि सरोवर; समस्त क्षेत्र; सम्पूर्ण दिशाएँ, दण्डक आदि वन; नाग आदि गण; देव, गन्धर्व और किन्नर—सभी कथा सुननेके लिये चले आये। जो लोग अपनेको बड़ा माननेके कारण संकोचवश वहाँ नहीं उपस्थित हुए थे, उन्हें महर्षि भृगु समझा-बुझाकर ले आये।

तदनन्तर, कथा सुनानेके लिये दीक्षा ग्रहण कर लेनेपर श्रीकृष्णपरायण सनकादि नारदजीके दिये हुए उत्तम आसनपर विराजमान हुए। उस समय सभी श्रोताओंने उनको मस्तक झुकाया। श्रोताओंमें वैष्णव, विरक्त, संन्यासी और ब्रह्मचारी—ये सबसे आगे बैठे और उनके भी आगे देवर्षि नारदजी विराजमान हुए। एक ओर ऋषि बैठे थे और दूसरी ओर देवता। वेदों और उपनिषदोंका अलग आसन था। एक ओर तीर्थ विराजमान हुए और दूसरी ओर स्त्रियाँ। उस समय सब ओर जय-जयकार, नमस्कार और शंखोंका शब्द होने लगा। अबीर-गुलाल आदि चूर्ण, खील और फूलोंकी खूब वर्षा हुई। कितने ही देवेश्वर विमानोंपर बैठकर वहाँ उपस्थित हुए सब लोगोंपर कल्पवृक्षके फूलोंकी वर्षा करने लगे।

इस प्रकार जब पूजा समाप्त हुई और सब लोग एकाग्रचित्त होकर बैठ गये, तब सनकादि मुनि महात्मा नारदको श्रीमद्भागवतका माहात्म्य स्पष्ट करके बतलाने लगे।

श्रीसनकादिने कहा—नारदजी! अब हम आपसे इस भागवत-शास्त्रकी महिमाका वर्णन करते हैं। इसके सुननेमात्रसे ही मुक्ति हाथ लग जाती है। श्रीमद्भागवतकी कथाका सदा ही सेवन करना चाहिये। इसके श्रवणमात्रसे मुक्तिरत्नकी प्राप्ति हो जाती है। यह ग्रन्थ अठारह हजार श्लोकोंका है। इसमें बारह स्कन्ध हैं। यह राजा परीक्षित् और श्रीशुकदेव मुनिका संवादरूप है। हम इस श्रीमद्भागवतको सुनाते हैं, आप ध्यान देकर सुनें। जीव तभीतक अज्ञानवश इस संसारचक्रमें भटकता है, जबतक कि क्षणभरके लिये भी यह श्रीमद्भागवत-कथा उसके कानोंमें नहीं पड़ती। बहुत-से शास्त्रों और पुराणोंके सुननेसे क्या लाभ। इससे तो भ्रम ही बढ़ता है। भागवत-शास्त्र अकेला ही मोक्ष देनेके लिये गरज रहा है। जिस घरमें प्रतिदिन श्रीमद्भागवतकी कथा होती है, वह घर तीर्थस्वरूप हो जाता है। जो लोग उसमें निवास करते हैं, उनके पापोंका नाश कर देता है। सहस्रों अश्वमेध और सैकड़ों वाजपेय यज्ञ भी इस श्रीमद्भागवतकी कथाका सोलहवाँ अंश भी नहीं हो सकते। तपोधनो! मनुष्य जबतक श्रीमद्भागवत-कथाका भलीभाँति श्रवण नहीं करते, तभीतक उनके शरीरमें पाप ठहर सकते हैं। गंगा, गया, काशी, पुष्कर और प्रयाग—ये श्रीमद्भागवत-कथाके फलकी बराबरी नहीं कर सकते। ॐकार, गायत्रीमन्त्र, पुरुषसूक्त, ऋक्, साम और यजुः—ये तीनों वेद, श्रीमद्भागवत, **'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'** यह द्वादशाक्षर-मन्त्र, बारह मूर्तियोंवाले सूर्य, प्रयाग, संवत्सररूप काल, ब्राह्मण, अग्निहोत्र, गौ, द्वादशी तिथि, तुलसी, वसन्त ऋतु और भगवान् पुरुषोत्तम—इन सबमें विद्वान् पुरुष वस्तुतः

कोई अन्तर नहीं मानते। जो मनुष्य प्रतिदिन श्रीमद्भागवत-शास्त्रका अर्थसहित पाठ करता है, उसके करोड़ों जन्मोंके किये हुए पापका नाश हो जाता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। जो नित्यप्रति श्रीमद्भागवतके आधे या चौथाई श्लोकका भी पाठ करता है, उसे राजसूय और अश्वमेधयज्ञोंका फल प्राप्त होता है। नित्य श्रीमद्भागवतका पाठ करना, श्रीहरिका ध्यान करना, तुलसीके पौधेको सींचना और गौओंकी सेवा करना—ये चारों समान हैं। जो पुरुष अन्तकालमें श्रीमद्भागवतका वाक्य सुन लेता है, उसपर प्रसन्न हो भगवान् गोविन्द उसे अपना वैकुण्ठधामतक दे डालते हैं। जो मानव इसे सोनेके सिंहासनपर रखकर श्रीविष्णु-भक्तको दान करता है, उसे निश्चय ही भगवान् श्रीकृष्णका सायुज्य प्राप्त होता है। जिस दुष्टने अपने जन्मसे लेकर समस्त जीवनमें चित्तको एकाग्र करके कभी श्रीमद्भागवत-कथामृतका थोड़ा-सा भी रसास्वादन नहीं किया, उसने अपना सारा जन्म चाण्डाल और गधेके समान व्यर्थ ही गँवा दिया। वह तो माताको प्रसवकी पीड़ा पहुँचानेके लिये ही उत्पन्न हुआ था। यह कितने खेदकी बात है। जिसने इस शुक-शास्त्रके थोड़े-से भी वचन नहीं सुने, वह पापात्मा जीते-जी भी मुर्देके ही समान है। वह इस पृथ्वीका भाररूप है। मनुष्य होकर भी पशुके ही तुल्य है। उसे धिक्कार है—इस प्रकार उसके विषयमें स्वर्गके प्रधान-प्रधान देवता कहा करते हैं। संसारमें श्रीमद्भागवतकी कथा परम दुर्लभ है। जब करोड़ों जन्मोंके पुण्योंका उदय होता है, तभी इसकी प्राप्ति होती है।

इसलिये योगनिधि बुद्धिमान् नारदजी! श्रीमद्भागवतका यत्नपूर्वक श्रवण करना चाहिये। इसके लिये दिनोंका कोई नियम नहीं है। सदा ही इसका सुनना उत्तम माना गया है। सत्यभाषण और ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए सदा ही इसको सुनना उत्तम है, किन्तु कलियुगमें ऐसा होना बहुत ही कठिन है, इसलिये इसके विषयमें श्रीशुकदेवजीके आदेशके अनुसार यह विशेष विधि जान लेनी चाहिये। मनके असंयम, रोगोंके आक्रमण, मनुष्योंकी आयुके ह्रास और कलियुगके अनेक दोषोंकी सम्भावनाके कारण एक सप्ताहमें ही भागवतके श्रवणका नियम किया गया है। कलियुगमें अधिक दिनोंतक मनकी वृत्तियोंपर काबू रखना, नियमोंका पालन करना और विधिपूर्वक दीक्षा ग्रहण करना बहुत कठिन है; इसलिये इस समय सप्ताह-श्रवणका विधान है। प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक श्रीमद्भागवतको आदिसे अन्ततक सुननेका जो फल है, वही श्रीशुकदेवजीने सप्ताहश्रवणमें भी बताया है। तपस्या, योग और समाधिसे भी जिस फलकी प्राप्ति असम्भव है, वह सब श्रीमद्भागवतका सप्ताहश्रवण करनेसे अनायास ही मिल जाता है। सप्ताहश्रवण यज्ञसे भी बढ़कर अपने महत्त्वकी घोषणा करता है, व्रतसे भी अधिक होनेका दावा करता है, तपस्यासे भी श्रेष्ठ होनेकी गर्जना करता है और तीर्थसे तो वह सदा बढ़कर है ही। इतना ही नहीं, सप्ताहश्रवण योगसे भी बढ़कर है, ध्यान और ज्ञानसे भी बढ़ा-चढ़ा है। कहाँतक उसकी विशेषताका वर्णन करें। अरे! वह तो सबसे बढ़-चढ़कर है।

शौनकजीने पूछा—सूतजी! यह तो आपने बड़े आश्चर्यकी बात बतायी। माना कि यह श्रीमद्भागवत-पुराण योगवेत्ता ब्रह्माजीके भी आदिकारण भगवान् श्रीपुरुषोत्तमका निरूपण करनेवाला है; परन्तु यह इस युगमें ज्ञान आदि साधनोंका तिरस्कार करके उनसे भी बढ़कर कल्याणका साधक कैसे हो गया?

सूतजीने कहा—शौनकजी! जब भगवान् श्रीकृष्ण इस धराधामको छोड़कर अपने परमधामको पधारनेके लिये उद्यत हुए, उस समय उद्धवजीने उनके मुखसे एकादशस्कन्धमें वर्णित ज्ञानका उपदेश सुनकर भी उनसे इस प्रकार कहा।

उद्धवजी बोले—गोविन्द! अब आप तो अपने भक्तोंका कार्य सिद्ध करके परमधामको पधारना चाहते हैं; किन्तु मेरे मनमें एक बहुत बड़ी चिन्ता है, उसे सुनकर आप मुझे सुखी कीजिये। देखिये, यह भयंकर कलिकाल आया ही चाहता है। अब फिर संसारमें दुष्टलोग उत्पन्न होंगे। उनके संसर्गसे साधु पुरुष भी उग्र स्वभाव हो

जायँगे। उस समय उनके भारसे दबी हुई यह गोरूपधारिणी भूमि किसकी शरणमें जायगी। कमल-नयन! मुझे तो आपके सिवा दूसरा कोई इसका रक्षक नहीं दिखायी देता; इसलिये भक्तवत्सल! आप साधु पुरुषोंपर दया करके यहाँसे मत जाइये। निराकार एवं चिन्मय होते हुए भी आपने भक्तोंके लिये ही यह सगुणरूप धारण किया है। अब वे ही भक्त आपके वियोगमें इस पृथ्वीपर कैसे रह सकेंगे? निर्गुणकी उपासनामें तो बहुत कठिनाई है, अतः वह उनसे हो नहीं सकती; इसलिये मेरे कथनपर कुछ विचार कीजिये।

सूतजी कहते हैं—प्रभासक्षेत्रमें उद्धवजीके ये वचन सुनकर श्रीहरिने सोचा—'भक्तोंके अवलम्बके लिये इस समय मुझे क्या करना चाहिये?' इस प्रकार विचार करके भगवान्‌ने अपना सम्पूर्ण तेज श्रीमद्भागवतमें स्थापित कर दिया। वे अन्तर्धान होकर श्रीमद्भागवतरूपी समुद्रमें प्रवेश कर गये; इसलिये यह श्रीमद्भागवत भगवान्‌की साक्षात् वाङ्मयी मूर्ति है। इसके सेवनसे तथा सुनने, पढ़ने और दर्शन करनेसे यह सब पापोंका नाश कर देती है। इसीसे इसका सप्ताहश्रवण सबसे बढ़कर माना गया है। कलियुगमें अन्य सब साधनोंको छोड़कर इसीको प्रधान धर्म बताया गया है। दुःख, दरिद्रता, दुर्भाग्य और पापोंको धो डालनेके लिये तथा काम और क्रोधको काबूमें करनेके लिये कलिकालमें यही प्रधान धर्म कहा गया है; अन्यथा भगवान् विष्णुकी मायासे पिण्ड छुड़ाना देवताओंके लिये भी कठिन है, फिर मनुष्य तो उसे छोड़ ही कैसे सकते हैं। अतः इससे छुटकारा पानेके लिये भी सप्ताह-श्रवणका विधान किया गया है।

शौनकजी! जब सनकादि ऋषि इस प्रकार सप्ताहश्रवणकी महान् महिमाका वर्णन कर रहे थे, उस समय सभामें एक बड़े आश्चर्यकी बात हुई; उसे मैं बतलाता हूँ, सुनिये। प्रेमरूपा भक्ति तरुण अवस्थाको प्राप्त हुए अपने दोनों पुत्रोंको साथ ले सहसा वहाँ प्रकट हो गयी। उस समय उसके मुखसे ***'श्रीकृष्ण! गोविन्द! हरे! मुरारे! हे नाथ! नारायण! वासुदेव!'***आदि भगवन्नामोंका बारंबार उच्चारण हो रहा था। उस समाजमें बैठे हुए श्रोताओंने जब श्रीमद्भागवतके अर्थभूत, भगवान्‌के गलेकी हार एवं मनोहर वेषवाली भक्ति-देवीको वहाँ उपस्थित देखा तो वे मन-ही-मन तर्क करने लगे—'ये मुनियोंके बीचमें कैसे आ गयीं? इनका यहाँ किस प्रकार प्रवेश हुआ?' तब सनकादिने कहा—'इस समय ये भक्तिदेवी यहाँ कथाके अर्थसे ही प्रकट हुई हैं।' उनके ये वचन सुनकर भक्तिने पुत्रोंसहित अत्यन्त विनीत हो सनत्कुमारजीसे कहा—'महानुभाव! मैं कलियुगमें नष्टप्राय हो गयी थी; किन्तु आपने भागवत-कथारूप अमृतसे सींचकर आज फिर मुझे पुष्ट कर दिया। अब आपलोग बताइये, मैं कहाँ रहूँ?' तब ब्रह्मकुमार सनकादि ऋषियोंने कहा—'भक्ति भक्तोंके हृदयमें भगवान् गोविन्दके सुन्दर रूपकी स्थापना करनेवाली है। वह अनन्य प्रेम प्रदान करनेवाली तथा संसार-रोगको हर लेनेवाली है। तुम वही भक्ति हो, अतः धैर्य धारण करके नित्य-निरन्तर भक्तोंके हृदय-मन्दिरमें निवास करो। वहाँ ये कलियुगके दोष सारे संसारपर प्रभाव डालनेमें समर्थ होकर भी तुम्हारी ओर आँख उठाकर देख भी नहीं सकते।' इस प्रकार उनकी आज्ञा पाते ही भक्तिदेवी भगवद्भक्तोंके हृदयमन्दिरमें विराजमान हो गयीं। शौनकजी! जिनके हृदयमें एकमात्र श्रीहरिकी भक्तिका ही निवास है, वे मनुष्य सारे संसारमें

निर्धन होनेपर भी धन्य हैं; क्योंकि इस भक्तिकी डोरीसे बँधकर साक्षात् भगवान् भी अपने धामको छोड़कर सर्वथा उनके हृदयमें बस जाते हैं। भूलोकमें यह श्रीमद्भागवत साक्षात् परब्रह्मका स्वरूप है। हम इसकी महिमाका आज तुमसे कहाँतक बखान करें। इसका आश्रय लेकर पाठ करनेपर इसके वक्ता और श्रोता दोनों ही भगवान् श्रीकृष्णकी समता प्राप्त कर लेते हैं; अतः इसको छोड़कर अन्य धर्मोंसे क्या प्रयोजन है?

कथामें भगवान्का प्रादुर्भाव, आत्मदेव ब्राह्मणकी कथा—धुन्धुकारी और गोकर्णकी उत्पत्ति तथा आत्मदेवका वनगमन

सूतजी कहते हैं—शौनकजी! तदनन्तर अपने भक्तोंके हृदयमें अलौकिक भक्तिका प्रादुर्भाव हुआ देख भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण अपना धाम छोड़कर वहाँ पधारे। उनके गलेमें वनमाला शोभा पा रही थी। श्रीविग्रह नूतन मेघके समान श्यामवर्ण था। उसपर पीताम्बर सुशोभित हो रहा था। भगवान्की वह झाँकी चित्तको चुराये लेती थी। उनका कटिप्रदेश करधनीकी लड़ियोंसे अलंकृत था। मस्तकपर मुकुट और कानोंमें कुण्डल शोभा पा रहे थे। बाँकी अदासे खड़े होनेके कारण वे बड़े मनोहर प्रतीत होते थे। वक्षःस्थलपर सुन्दर कौस्तुभमणि दमक रही थी। सारा श्रीअंग हरिचन्दनसे चर्चित था। करोड़ों कामदेवोंकी रूप-माधुरी उनपर निछावर हो रही थी। इस प्रकार वे परमानन्द-चिन्मूर्ति परम मधुर मुरलीधर श्रीकृष्ण अपने भक्तोंके निर्मल हृदयमें प्रकट हुए। वैकुण्ठ (गोलोक)-में निवास करनेवाले जो उद्धव आदि वैष्णव हैं, वे भी वह कथा सुननेके लिये गुप्तरूपसे वहाँ उपस्थित थे। भगवान्के पधारते ही वहाँ चारों ओरसे जय-जयकारकी ध्वनि होने लगी। उस समय भक्तिरसका अलौकिक प्रवाह बह चला। अबीर और गुलालके साथ ही फूलोंकी वर्षा होने लगी। बारंबार शंखध्वनि होती रहती थी। उस सभामें जितने लोग विराजमान थे, उन्हें अपने देह-गेह और आत्मातककी सुध-बुध भूल गयी थी। उनकी यह तन्मयताकी अवस्था देख देवर्षि नारदजी इस प्रकार कहने लगे—

नारदजी बोले—मुनीश्वरो! आज मैंने सप्ताह-श्रवणकी यह बड़ी अलौकिक महिमा देखी है। यहाँ जो मूढ़, शठ और पशु-पक्षी आदि हैं, वे भी इसके प्रभावसे पापशून्य प्रतीत होते हैं। अतः इस मर्त्यलोकमें चित्त-शुद्धिके लिये इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है। कलिकालमें यह श्रीमद्भागवतकी कथा ही पाप-राशिका विनाश करनेवाली है। इस कथाके समान पृथ्वीपर दूसरा कोई साधन नहीं है। अच्छा, अब मुझे यह बताइये कि इस कथामय सप्ताहयज्ञसे संसारमें कौन-कौन लोग शुद्ध होते हैं। मुनिवर! आपलोग बड़े दयालु हैं। आपलोगोंने लोकहितका विचार करके यह बिलकुल निराला मार्ग निकाला है।

सनकादिने कहा—देवर्षे! जो लोग सदा ही भाँति-भाँतिके पाप करते हैं, दुराचारमें प्रवृत्त रहते हैं और शास्त्र-विरुद्ध मार्गोंसे चलते हैं तथा जो क्रोधाग्निसे जलनेवाले, कुटिल और कामी हैं, वे सभी कलिकालमें सप्ताहयज्ञसे पवित्र हो जाते हैं। जो सत्यसे हीन, पिता-माताकी निन्दा करनेवाले, तृष्णासे व्याकुल, आश्रम-धर्मसे रहित, दम्भी, दूसरोंसे डाह रखनेवाले और प्राणियोंकी हिंसा करनेवाले हैं, वे भी कलियुगमें सप्ताहयज्ञसे पवित्र हो जाते हैं। जो मदिरापान, ब्रह्महत्या, सुवर्णकी चोरी, गुरुपत्नी-गमन और विश्वासघात—ये पाँच भयंकर पाप करनेवाले, छल-छद्ममें प्रवृत्त रहनेवाले, क्रूर, पिशाचोंके समान निर्दयी, ब्राह्मणोंके धनसे पुष्ट होनेवाले और व्यभिचारी हैं, वे भी कलियुगमें सप्ताहयज्ञसे पवित्र हो जाते हैं। जो शठ हठपूर्वक मन, वाणी और शरीरके द्वारा सदा पाप करते रहते हैं, दूसरोंके धनसे पुष्ट होते हैं, मलिन शरीर तथा खोटे हृदयवाले हैं, वे भी कलियुगमें सप्ताहयज्ञसे पवित्र हो जाते हैं।

नारदजी! इस विषयमें अब हम तुम्हें एक प्राचीन इतिहास सुनाते हैं, जिसके श्रवणमात्रसे पापोंका नाश हो जाता है। पूर्वकालकी बात है—तुंगभद्रा नदीके तटपर एक उत्तम नगर बसा हुआ था। वहाँ सभी वर्णोंके लोग अपने-अपने धर्मोंका पालन करते और सत्य एवं सत्कर्ममें लगे रहते थे। उस नगरमें आत्मदेव नामक एक ब्राह्मण रहता था, जो समस्त वेदोंका विशेषज्ञ और श्रौत-स्मार्त कर्मोंमें निष्णात था। वह ब्राह्मण द्वितीय सूर्यकी भाँति तेजस्वी जान पड़ता था। यद्यपि वह भिक्षासे ही जीवन-निर्वाह करता था, तो भी लोकमें धनवान् समझा जाता था। उसकी स्त्रीका नाम धुन्धुली था। वह सुन्दरी तो थी ही, अच्छे कुलमें भी उत्पन्न हुई थी। फिर भी स्वभावकी बड़ी हठीली थी। सदा अपनी ही टेक रखती थी। हमेशा दूसरे लोगोंकी चर्चा किया करती थी। उसमें क्रूरता भी थी तथा वह प्रायः बहुत बकवाद किया करती थी, परन्तु घरका काम-काज करनेमें बड़ी बहादुर थी। कंजूस भी कम नहीं थी। कलहका तो उसे व्यसन-सा हो गया था। वे दोनों पति-पत्नी बड़े प्रेमसे रहते थे। फिर भी उन्हें कोई सन्तान नहीं थी। इस कारण धन, भोग-सामग्री तथा घर आदि कोई भी वस्तु उन्हें सुखद नहीं जान पड़ती थी। कुछ कालके पश्चात् उन्होंने सन्तान-प्राप्तिके लिये धर्मका अनुष्ठान आरम्भ किया। वे दीनोंको सदा गौ, भूमि, सुवर्ण और वस्त्र आदि दान करने लगे। उन्होंने अपने धनका आधा भाग धर्मके मार्गपर खर्च कर दिया; तो भी उनके न कोई पुत्र हुआ, न पुत्री। इससे ब्राह्मणको बड़ी चिन्ता हुई। वह आकुल हो उठा और एक दिन अत्यन्त दुःखके कारण घर छोड़कर वनमें चला गया। वहाँ दोपहरके समय उसे प्यास लगी, इसलिये वह एक पोखरेके किनारे गया और वहाँ जल पीकर बैठ रहा। सन्तानहीनताके दुःखसे उसका सारा शरीर सूख गया था। उसके बैठनेके दो ही घड़ी बाद एक संन्यासी वहाँ आये। उन्होंने भी पोखरेमें जल पीया। ब्राह्मणने देखा, वे जल पी चुके हैं, तो वह उनके पास गया और चरणोंमें मस्तक झुकाकर जोर-जोरसे साँस लेता हुआ सामने खड़ा हो गया।

संन्यासीने पूछा—ब्राह्मण! तुम रोते कैसे हो? तुम्हें क्या भारी चिन्ता सता रही है? तुम शीघ्र ही मुझसे अपने दुःखका कारण बताओ।

ब्राह्मणने कहा—मुने! मैं अपना दुःख क्या कहूँ, यह सब मेरे पूर्वपापोंका संचित फल है। [मेरे कोई सन्तान नहीं है, इससे मेरे पितर भी दुःखी हैं; वे] मेरे पूर्वज मेरी दी हुई जलांजलिको जब पीने लगते हैं, उस समय वह उनकी चिन्ताजनित साँसोंसे कुछ गरम हो जाती है। देवता और ब्राह्मण भी मेरी दी हुई वस्तुको प्रसन्नतापूर्वक नहीं लेते। सन्तानके दुःखसे मेरा संसार सूना हो गया है, अतः अब मैं यहाँ प्राण त्यागनेके लिये आया हूँ। सन्तानहीन पुरुषका जीवन धिक्कारके योग्य है। जिस घरमें कोई सन्तान—कोई बाल-बच्चे न हों, वह घर भी धिक्कार देनेयोग्य है। निस्सन्तान पुरुषके धनको भी धिक्कार है! तथा सन्तानहीन कुल भी धिक्कारके ही योग्य है। [मैं अपने दुर्भाग्यको कहाँतक बताऊँ?] जिस गायको पालता हूँ, वह भी सर्वथा वन्ध्या हो जाती है। मैं जिसको रोपता हूँ, उस वृक्षमें भी फल नहीं लगते। इतना ही नहीं, मेरे घरमें बाहरसे जो फल आता है, वह भी शीघ्र ही सूख जाता है। जब मैं ऐसा अभागा और सन्तानहीन हूँ, तो इस जीवनको रखनेसे क्या लाभ है।

यों कहकर वह ब्राह्मण दुःखसे व्यथित हो उठा और उन संन्यासी बाबाके पास फूट-फूटकर रोने लगा। संन्यासीके हृदयमें बड़ी करुणा भर आयी। वे योगी भी थे, उन्होंने ब्राह्मणके ललाटमें लिखे हुए विधाताके अक्षरोंको पढ़ा और सब कुछ जानकर विस्तारपूर्वक कहना आरम्भ किया।

संन्यासीने कहा—ब्राह्मण! सुनो, मैंने इस समय तुम्हारा प्रारब्ध देखा है। उससे जान पड़ता है कि सात जन्मोंतक तुम्हारे कोई सन्तान किसी प्रकार नहीं हो सकती; अतः सन्तानका मोह छोड़ो, क्योंकि यह महान् अज्ञान है। देखो, कर्मकी गति बड़ी प्रबल है; अतः विवेकका आश्रय लेकर संसारकी वासना त्याग दो। अजी! पूर्वकालमें सन्तानके ही कारण राजा सगर और

अंगको दु:ख भोगना पड़ा था; इसलिये अब तुम कुटुम्बकी आशा छोड़ दो। त्यागमें ही सब प्रकारका सुख है।

ब्राह्मण बोले—बाबा! विवेकसे क्या होगा? मुझे तो जैसे बने वैसे पुत्र ही दीजिये; नहीं तो मैं शोकसे मूर्च्छित होकर आपके आगे ही प्राण त्याग दूँगा। पुत्र आदिके सुखसे हीन यह संन्यास तो सर्वथा नीरस ही है। संसारमें पुत्र-पौत्रोंसे भरा हुआ गृहस्थाश्रम ही सरस है।

ब्राह्मणका यह आग्रह देख उन तपोधनने कहा—'देखो, विधाताके लेखको मिटानेका हठ करनेसे राजा चित्रकेतुको कष्ट भोगना पड़ा; अत: दैवने जिसके पुरुषार्थको कुचल दिया हो, ऐसे पुरुषके समान तुम्हें पुत्रसे सुख नहीं मिलेगा; फिर भी तुम हठ करते जा रहे हो। तुम्हें केवल अपना स्वार्थ ही सूझ रहा है; अत: मैं तुमसे क्या कहूँ।'
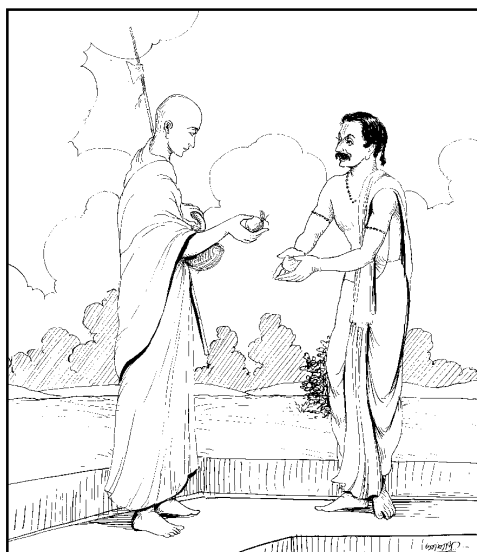
अन्तमें ब्राह्मणका बहुत आग्रह देख संन्यासीने उसे एक फल दिया और कहा—'इसे तुम अपनी पत्नीको खिला देना। इससे उसके एक पुत्र होगा। तुम्हारी स्त्रीको चाहिये कि वह एक वर्षतक सत्य, शौच, दया और दानका नियम पालती हुई प्रतिदिन एक समय भोजन करे। इससे उसका बालक अत्यन्त शुद्ध स्वभाववाला होगा।' ऐसा कहकर वे योगी महात्मा चले गये और ब्राह्मण अपने घर लौट आया। यहाँ उसने अपनी पत्नीके हाथमें वह फल दे दिया और स्वयं कहीं चला गया। उसकी पत्नी तो कुटिल स्वभावकी थी ही। अपनी सखीके आगे रो-रोकर इस प्रकार कहने लगी—'अहो! मुझे तो बड़ी भारी चिन्ता हो गयी। मैं तो इस फलको नहीं खाऊँगी। सखी! इस फलको खानेसे गर्भ रहेगा और गर्भसे पेट बढ़ जायगा। फिर तो खाना-पीना कम होगा और इससे मेरी शक्ति घट जायगी। ऐसी दशामें तुम्हीं बताओ, घरका काम-धंधा कैसे होगा? यदि दैववश गाँवमें लूट पड़ जाय तो गर्भिणी स्त्री भाग कैसे सकेगी? यदि कहीं शुकदेवजीकी तरह यह गर्भ भी [बारह वर्षोंतक] पेटमें ही रह गया, तो इसे बाहर कैसे निकाला जायगा? यदि कहीं प्रसवकालमें बच्चा टेढ़ा हो गया, तब तो मेरी मौत ही हो जायगी। बच्चा पैदा होते समय बड़ी असह्य पीड़ा होती है। मैं सुकुमारी स्त्री, भला उसे कैसे सह सकूँगी? गर्भवती अवस्थामें जब मेरा शरीर भारी हो जायगा और चलने-फिरनेमें आलस्य लगेगा, उस समय मेरी ननद-रानी आकर घरका सारा माल-मता उड़ा ले जायँगी। और तो और, यह सत्य-शौचादिका नियम पालना तो मेरे लिये बहुत ही कठिन दिखायी देता है। जिस स्त्रीके सन्तान होती है, उसे बच्चोंके लालन-पालनमें भी कष्ट भोगना पड़ता है। मैं तो समझती हूँ, बाँझ अथवा विधवा स्त्रियाँ ही अधिक सुखी होती हैं।'

नारदजी! इस प्रकार कुतर्क करके उस ब्राह्मणीने फल नहीं खाया। जब पतिने पूछा—'तुमने फल खाया?' तो उसने कह दिया—'हाँ, खा लिया।' एक दिन उसकी बहिन अपने-आप ही उसके घर आयी। धुन्धुलीने उसके आगे अपना सारा वृत्तान्त सुनाकर कहा—'बहिन! मुझे इस बातकी बड़ी चिन्ता है कि सन्तान न होनेपर मैं पतिको क्या उत्तर दूँगी। इस दु:खके कारण मैं दिनोदिन दुबली हुई जा रही हूँ। बताओ, मैं क्या करूँ? तब उसने कहा—'दीदी! मेरे पेटमें बच्चा है। प्रसव होनेपर वह बालक मैं तुमको दे दूँगी। तबतक तुम गर्भवती स्त्रीकी भाँति घरमें छिपकर मौजसे रहो। तुम मेरे पतिको धन दे देना। इससे वे अपना बालक

तुम्हें दे देंगे तथा लोगोंमें इस बातका प्रचार कर देंगे कि मेरा बच्चा छः महीनेका होकर मर गया। मैं प्रतिदिन तुम्हारे घरमें आकर बच्चेका पालन-पोषण करती रहूँगी। तुम इस समय परीक्षा लेनेके लिये यह फल गौको खिला दो।' तब उस ब्राह्मणीने स्त्रीस्वभावके कारण वह सब कुछ वैसे ही किया। तदनन्तर समय आनेपर उसकी बहिनको बच्चा पैदा हुआ। बच्चेके पिताने बालकको लाकर एकान्तमें धुन्धुलीको दे दिया। उसने अपने स्वामीको सूचना दे दी कि मेरे बच्चा पैदा हो गया और कोई कष्ट नहीं हुआ। आत्मदेवके पुत्र होनेसे लोगोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। ब्राह्मणने बालकका जातकर्म-संस्कार करके ब्राह्मणोंको दान दिया। उसके दरवाजेपर गाना, बजाना आदि नाना प्रकारका मांगलिक उत्सव होने लगा। धुन्धुलीने स्वामीसे कहा—'मेरे स्तनोंमें दूध नहीं है, फिर गाय-भैंस आदि अन्य जीवोंके दूधसे मैं बालकका पोषण कैसे करूँगी? मेरी बहिनको भी बच्चा हुआ था, किन्तु वह मर गया है; अतः अब उसीको बुलाकर घरमें रखिये, वही आपके बालकका पालन-पोषण करेगी।' उसके पतिने पुत्रकी जीवन-रक्षाके लिये सब कुछ किया। माताने उसका नाम 'धुन्धुकारी' रखा।

तदनन्तर तीन महीने बीतनेके बाद ब्राह्मणकी गौने भी एक बालकको जन्म दिया, जो सर्वांगसुन्दर, दिव्य, निर्मल तथा सुवर्णकी-सी कान्तिवाला था। उसे
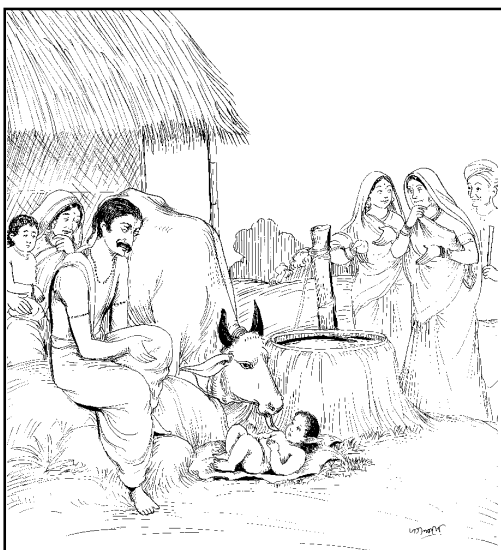
देखकर ब्राह्मणदेवताको बड़ी प्रसन्नता हुई और उसने स्वयं ही बालकके सब संस्कार किये। यह आश्चर्यजनक समाचार सुनकर सब लोग उसे देखनेके लिये आये और आपसमें कहने लगे—'देखो, इस समय आत्मदेवका कैसा भाग्य उदय हुआ है। कितने आश्चर्यकी बात है कि गायके पेटसे भी देवताके समान रूपवाला बालक उत्पन्न हुआ।' किन्तु दैवयोगसे किसीको भी इस गुप्त रहस्यका पता न लगा। उस बालकके कान गौके समान थे, यह देखकर आत्मदेवने उसका नाम गोकर्ण रख दिया। कुछ काल व्यतीत होनेपर वे दोनों बालक जवान हो गये। उनमें गोकर्ण तो पण्डित और ज्ञानी हुआ; किन्तु धुन्धुकारी महादुष्ट निकला। स्नान और शौचाचारका तो उसमें नाम भी नहीं था। वह अभक्ष्य भक्षण करता, क्रोधमें भरा रहता और बुरी-बुरी वस्तुओंका संग्रह किया करता था। भोजन तो वह सबके हाथका कर लेता था। चोरी करता, सब लोगोंसे द्वेष बढ़ाता, दूसरोंके घरोंमें आग लगा देता और खेलानेके बहाने छोटे बच्चोंको पकड़कर कुएँमें डाल देता था। जीवोंकी हिंसा करनेका उसका स्वभाव हो गया था। वह हमेशा हथियार लिये रहता और दीन, दुःखियों तथा अंधोंको कष्ट पहुँचाया करता था। चाण्डालोंके साथ उसने खूब हेल-मेल बढ़ा लिया था। वह प्रतिदिन हाथमें फंदा लिये कुत्तोंकी टोलीके साथ शिकारकी टोहमें घूमता रहता था। उसने वेश्याके कुसंगमें पड़कर पिताका सारा धन बरबाद कर दिया। एक दिन तो माता-पिताको खूब पीटकर वह घरके सारे बर्तन-भाँड़े उठा ले गया। इस प्रकार धनहीन हो जानेके कारण बेचारा बाप फूट-फूटकर रोने लगा। वह बोला—'इस प्रकार पुत्रवान् बननेसे तो अपुत्र रहना ही अच्छा है। कुपुत्र बड़ा ही दुःखदायी होता है। अब मैं कहाँ रहूँ? कहाँ जाऊँ? कौन मेरा दुःख दूर करेगा? हाय! मुझपर बड़ा भारी कष्ट आ पहुँचा। अब तो मैं इस दुःखसे अपना प्राण त्याग दूँगा।'

इसी समय ज्ञानवान् गोकर्णजी वहाँ आये और वैराग्यका महत्त्व दिखलाते हुए अपने पिताको समझाने लगे—'पिताजी! इस संसारमें कुछ भी सार नहीं है।

दु:ख ही इसका स्वरूप है। यह जीवोंको मोहमें डालनेवाला है। भला, यहाँ कौन किसका पुत्र है और कौन किसका धन। जो इनमें आसक्त होता है, उसे ही रात-दिन जलना पड़ता है। इन्द्र अथवा चक्रवर्ती राजाओंको भी कोई सुख नहीं है। सुख तो बस, एकान्तवासी वैराग्यवान् मुनिको ही है। सन्तानके प्रति जो आपकी ममता है, यह महान् अज्ञान है; इसे छोड़िये। मोहमें फँसनेसे मनुष्यको नरकमें ही जाना पड़ता है। औरोंकी तो बात ही क्या है, आपका यह प्रिय शरीर भी एक-न-एक दिन नष्ट हो जायगा—आपको छोड़कर चल देगा; इसलिये आप अभीसे सब कुछ छोड़कर वनमें चले जाइये।'
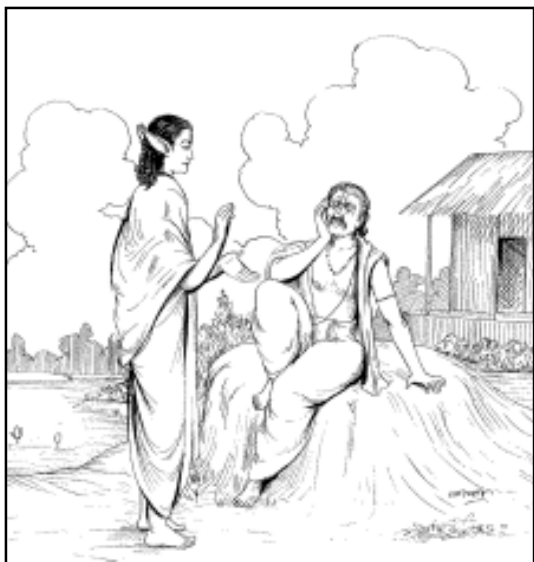
गोकर्णकी बात सुनकर उनके पिता आत्मदेव वनमें जानेके लिये उद्यत होकर बोले—'तात! मुझे वनमें रहकर क्या करना चाहिये? यह विस्तारपूर्वक बताओ! मैं बड़ा शठ हूँ। अबतक कर्मवश स्नेहके बन्धनमें बँधकर मैं अपंगकी भाँति इस गृहरूपी अँधेरे कुएँमें ही पड़ा हुआ हूँ। दयानिधे! तुम निश्चय ही मेरा उद्धार करो!'

गोकर्णने कहा—पिताजी! हड्डी, मांस और रक्तके पिण्डरूप इस शरीरमें आप 'मैं' पनका अभिमान छोड़ दीजिये और स्त्री-पुत्र आदिमें भी 'ये मेरे हैं' इस भावको सदाके लिये त्याग दीजिये। इस संसारको निरन्तर क्षणभंगुर देखिये और एकमात्र वैराग्य-रसके रसिक होकर भगवान्‌के भजनमें लग जाइये। सदा भगवद्भजनरूप दिव्य धर्मका ही आश्रय लीजिये। सकामभावसे किये जानेवाले लौकिक धर्मोंको छोड़िये। साधु पुरुषोंकी सेवा कीजिये, भोगोंकी तृष्णाको त्याग दीजिये तथा दूसरोंके गुण-दोषोंका विचार करना शीघ्र छोड़कर निरन्तर भगवत्सेवा एवं भगवत्कथाके रसका पान कीजिये।*

इस प्रकार पुत्रके कहनेसे आत्मदेव साठ वर्षकी अवस्था बीत जानेपर घर छोड़कर स्थिरचित्तसे वनको चले गये और वहाँ प्रतिदिन भगवान् श्रीहरिकी परिचर्या करते हुए नियमपूर्वक दशम स्कन्धका पाठ करनेसे उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको प्राप्त कर लिया।

---

* देहेऽस्थिमांसरुधिरेऽभिमतिं त्यज त्वं जायासुतादिषु सदा ममतां विमुञ्च।
पश्यानिशं जगदिदं क्षणभङ्गनिष्ठं वैराग्यरागरसिको भव भक्तिनिष्ठ:॥
धर्मं भजस्व सततं त्यज लोकधर्मान् सेवस्व साधुपुरुषाञ्जहि कामतृष्णाम्।
अन्यस्य दोषगुणचिन्तनमाशु मुक्त्वा सेवाकथारसमहो नितरां पिब त्वम्॥ (१९२। ७८-७९)

गोकर्णजीकी भागवत-कथासे धुन्धुकारीका प्रेतयोनिसे उद्धार तथा समस्त श्रोताओंको परमधामकी प्राप्ति

सूतजी कहते हैं—पिताके विरक्त होकर वनमें चले जानेके बाद एक दिन धुन्धुकारीने अपनी माताको खूब पीटा और कहा—'बता, धन कहाँ रखा है? नहीं तो लातोंसे तेरी खबर लूँगा।' उसकी इस बातसे डरकर और पुत्रके उपद्रवोंसे दु:खी होकर उसकी माँ रातको कुएँमें कूद पड़ी; इससे उसकी मृत्यु हो गयी। इस प्रकार माता-पिताके न रहनेपर गोकर्णजी तीर्थयात्राके लिये चल दिये। वे योगनिष्ठ थे। उनके मनमें इस घटनाके कारण न कोई दु:ख था, न कोई सुख; क्योंकि उनका न कोई शत्रु था न मित्र। अब धुन्धुकारी पाँच वेश्याओंके साथ घरमें रहने लगा। उनके पालन-पोषणके लिये बहुत सामग्री जुटानेकी चिन्तासे उसकी बुद्धि मोहित हो गयी थी; अत: वह अत्यन्त क्रूरतापूर्ण कर्म करने लगा। एक दिन उन कुलटाओंने उससे गहनोंके लिये इच्छा प्रकट की। धुन्धुकारी तो कामसे अंधा हो रहा था। उसे अपनी मृत्युकी भी याद नहीं रहती थी। वह गहने जुटानेके लिये घरसे निकल पड़ा और जहाँ-तहाँसे बहुत-सा धन चुराकर पुन: अपने घर लौट आया। वहाँ आकर उसने उन वेश्याओंको बहुत-से सुन्दर-सुन्दर वस्त्र और कितने ही आभूषण दिये। अधिक धनका संग्रह देखकर रातमें उन स्त्रियोंने विचार किया—'यह प्रतिदिन चोरी करने जाता है, अत: राजा इसे अवश्य पकड़ेंगे; फिर सारा धन छीनकर निश्चय ही इसे प्राणदण्ड भी देंगे। ऐसी दशामें इस धनकी रक्षाके लिये हमींलोग क्यों न इसे गुप्तरूपसे मार डालें। इसे मार, यह सारा धन लेकर हम कहीं और जगह चल दें।'

ऐसा निश्चय करके उन स्त्रियोंने धुन्धुकारीके सो जानेपर उसे रस्सियोंसे कसकर बाँध दिया और गलेमें फाँसी डालकर उसके प्राण लेनेकी चेष्टा करने लगीं; किन्तु वह तुरंत न मरा। इससे उनको बड़ी चिन्ता हुई। तब उन्होंने जलते हुए अँगारे लाकर उसके मुँहपर डाल दिये। इससे वह आगकी लपटोंसे पीड़ित होकर छटपटाता हुआ मर गया। फिर उन्होंने उसकी लाशको गड्ढेमें डालकर गाड़ दिया। प्राय: ऐसी स्त्रियाँ बड़ी दु:साहसवाली होती हैं। इस रहस्यका किसीको भी पता नहीं चला। लोगोंके पूछनेपर उन स्त्रियोंने कह दिया कि हमारे प्रियतम धनके लोभसे कहीं दूर चले गये हैं, इस वर्षके भीतर ही लौट आयेंगे। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वह असन्मार्गपर चलनेवाली दुष्टा स्त्रियोंका विश्वास न करे। जो मूर्ख इनका विश्वास करता है, उसे अवश्य ही संकटोंका सामना करना पड़ता है। इनकी वाणी तो अमृतके समान कामियोंके हृदयमें रसका संचार करती है, किन्तु हृदय छुरेकी धारके समान तीखा होता है; भला, इन स्त्रियोंका कौन प्रिय है? अनेक पतियोंसे सहवास करनेवाली वे कुलटाएँ धुन्धुकारीका सारा धन लेकर चम्पत हो गयीं और धुन्धुकारी अपने कुकर्मके कारण बहुत बड़ा प्रेत हुआ। वह बवंडरका रूप धारण करके सदा दसों दिशाओंमें दौड़ता फिरता था और शीत-घामका क्लेश सहता तथा भूख-प्याससे पीड़ित होता हुआ 'हा! दैव', 'हा! दैव' की बारंबार पुकार लगाता रहता था; किन्तु कहीं भी उसे शरण नहीं मिलती थी। कुछ कालके पश्चात् गोकर्णको भी लोगोंके मुँहसे धुन्धुकारीके मरनेका हाल मालूम हुआ। तब उसे अनाथ समझकर उन्होंने उसके लिये गयाजीमें श्राद्ध किया और तबसे जिस तीर्थमें भी वे चले जाते, वहाँ उसका श्राद्ध अवश्य करते थे।

इस प्रकार तीर्थोंमें भ्रमण करते हुए गोकर्णजी एक दिन अपने गाँवमें आये और रात्रिके समय दूसरोंकी दृष्टिसे बचकर वे अपने घरके आँगनमें सोनेके लिये गये। अपने भाई गोकर्णको वहाँ सोया देख धुन्धुकारीने आधी रातके समय उन्हें अपना महाभयंकर रूप दिखाया। वह कभी भेड़ा, कभी हाथी, कभी भैंसा, कभी इन्द्र और कभी अग्निका रूप धारण करता था। अन्तमें पुन: मनुष्यके रूपमें प्रकट हुआ। गोकर्णजी बड़े

धैर्यवान् महात्मा थे। उन्होंने उसकी विपरीत अवस्थाएँ देखकर जान लिया कि यह कोई दुर्गतिमें पड़ा हुआ जीव है। तब उन्होंने पूछा—'अरे भाई! तू कौन है? रात्रिके समय अत्यन्त भयानक रूपमें क्यों प्रकट हुआ है? तेरी ऐसी दशा क्यों हुई है? हमें बता तो सही, तू प्रेत है या पिशाच है अथवा कोई राक्षस है?'

उनके ऐसा पूछनेपर वह बारंबार उच्चस्वरसे रोदन करने लगा। उसमें बोलनेकी शक्ति नहीं थी; इसलिये केवल संकेतमात्र किया। तब गोकर्णजीने अंजलिमें जल ले उसे अभिमन्त्रित करके धुन्धुकारीके ऊपर छिड़क दिया। उस जलसे सींचनेपर उसका पाप-ताप कुछ कम हुआ। तब वह इस प्रकार कहने लगा—'भैया! मैं तुम्हारा भाई धुन्धुकारी हूँ। मैंने अपने ही दोषसे अपने ब्राह्मणत्वका नाश किया है। मैं महान् अज्ञानमें चक्कर लगा रहा था; अतः मेरे पापकर्मोंकी कोई गिनती नहीं है। मैंने बहुत लोगोंकी हिंसा की थी। अतः मैं भी स्त्रियोंद्वारा तड़पा-तड़पाकर मारा गया। इसीसे मैं प्रेतयोनिमें पड़कर दुर्दशा भोग रहा हूँ। अब दैवाधीन कर्मफलका उदय हुआ है, इसलिये मैं वायु पीकर जीवन धारण करता हूँ। मेरे भाई! तुम दयाके समुद्र हो। अब किसी प्रकार जल्दी ही मेरा उद्धार करो।'

धुन्धुकारीकी बात सुनकर गोकर्ण बोले— भाई! यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है। मैंने तो तुम्हारे लिये गयाजीमें विधिपूर्वक पिण्डदान किया है, फिर तुम्हारी मुक्ति कैसे नहीं हुई? यदि गया-श्राद्धसे भी मुक्ति न हो, तो यहाँ दूसरा तो कोई उपाय ही नहीं है। प्रेत! इस समय मुझे क्या करना चाहिये? यह तुम्हीं विस्तारपूर्वक बताओ।

प्रेतने कहा— भाई! सैकड़ों गया-श्राद्ध करनेसे भी मेरी मुक्ति नहीं होगी। इसके लिये अब तुम और ही कोई उपाय सोचो।

प्रेतकी यह बात सुनकर गोकर्णको बड़ा विस्मय हुआ। वे कहने लगे—'यदि सैकड़ों गया-श्राद्धसे तुम्हारी मुक्ति नहीं होगी, तब तो तुम्हें इस प्रेतयोनिसे छुड़ाना असम्भव ही है। अच्छा, इस समय तो तुम अपने स्थानपर ही निर्भय होकर रहो। तुम्हारी मुक्तिके लिये कोई दूसरा उपाय सोचकर उसीको काममें लाऊँगा।'

गोकर्णजीकी आज्ञा पाकर धुन्धुकारी अपने स्थानपर चला गया। इधर गोकर्णजी रातभर सोचते-विचारते रहे, किन्तु उसके उद्धारका कोई भी उपाय उन्हें नहीं सूझा। सबेरा होनेपर उन्हें आया देख गाँवके लोग बड़े प्रेमके साथ उनसे मिलनेके लिये आये। तब गोकर्णने रातमें जो घटना घटित हुई थी, वह सब उन्हें कह सुनायी। उनमें जो लोग विद्वान्, योगनिष्ठ, ज्ञानी और ब्रह्मवादी थे, उन्होंने शास्त्र-ग्रन्थोंको उलट-पलटकर देखा; किन्तु उन्हें धुन्धुकारीके उद्धारका कोई उपाय नहीं दिखायी दिया। तब सब लोगोंने मिलकर यही निश्चय किया कि भगवान् सूर्यनारायण उसकी मुक्तिके लिये जो उपाय बतावें, वही करना चाहिये। यह सुनकर गोकर्णने भगवान् सूर्यकी ओर देखकर कहा—'भगवन्! आप सारे जगत्के साक्षी हैं। आपको नमस्कार है। आप मुझे धुन्धुकारीकी मुक्तिका साधन बताइये।' यह सुनकर सूर्यदेवने दूरसे ही स्पष्ट वाणीमें कहा—'श्रीमद्भागवतसे मुक्ति हो सकती है। तुम उसका सप्ताहपारायण करो।' भगवान् सूर्यका यह ध्वनिरूप वचन वहाँ सब लोगोंने सुना और सबने यही कहा—'यह तो बहुत सरल साधन है। इसको यत्नपूर्वक करना चाहिये।' गोकर्णजी भी ऐसा ही निश्चय करके कथा बाँचनेको तैयार हो गये। उस समय वहाँ कथा सुननेके लिये आस-पासके स्थानों और गाँवोंसे लोग एकत्रित होने लगे। अपंग, अंधे, बूढ़े और मन्दभाग्य पुरुष भी अपने पापोंका नाश करनेके लिये वहाँ आ पहुँचे। इस प्रकार वहाँ बहुत बड़ा समाज जुट गया, जो देवताओंको भी आश्चर्यमें डालनेवाला था। जिस समय गोकर्णजी व्यासगद्दीपर बैठकर कथा बाँचने लगे, उस समय वह प्रेत भी वहाँ आया और इधर-उधर बैठनेके लिये स्थान ढूँढ़ने लगा। इतनेमें ही उसकी दृष्टि एक सात गाँठवाले ऊँचे बाँसपर पड़ी। उसीके नीचेवाले छेदमें घुसकर वह कथा सुननेके लिये बैठा। वायुरूप होनेके कारण वह बाहर कहीं बैठ नहीं सकता था। इसलिये बाँसमें ही घुस गया था।

गोकर्णजीने एक वैष्णव ब्राह्मणको प्रधान श्रोता बनाकर पहले स्कन्धसे ही स्पष्ट वाणीमें कथा सुनानी आरम्भ की। सायंकालमें जब कथा बंद होने लगी, तब एक विचित्र घटना घटित हुई। सब श्रोताओंके देखते-देखते तड़-तड़ शब्द करती हुई बाँसकी एक गाँठ फट गयी। दूसरे दिन शामको दूसरी गाँठ फटी और तीसरे दिन भी उसी समय तीसरी गाँठ फट गयी। इस प्रकार सात दिनोंमें उस बाँसकी सातों गाठोंको फोड़कर धुन्धुकारीने बारहों स्कन्धोंके श्रवणसे निष्पाप हो प्रेतयोनिका त्याग कर दिया और दिव्य रूप धारण करके वह सबके सामने प्रकट हो गया। उसका मेघके समान श्यामवर्ण था। शरीरपर पीताम्बर शोभा पा रहा था। गलेमें तुलसीकी माला उसकी शोभा बढ़ा रही थी। मस्तकपर मुकुट और कानोंमें दिव्य कुण्डल झलमला रहे थे। उसने तुरंत अपने भाई गोकर्णको प्रणाम किया और कहा—"भाई! तुमने कृपा करके मुझे प्रेतयोनिके क्लेशोंसे मुक्त कर दिया। प्रेतयोनिकी पीड़ा नष्ट करनेवाली यह श्रीमद्भागवतकी कथा धन्य है तथा भगवान् श्रीकृष्णके परमधामकी प्राप्ति करानेवाला इसका सप्ताहपारायण भी धन्य है। सप्ताह-कथा सुननेके लिये बैठ जानेपर सारे पाप काँपने लगते हैं। उन्हें इस बातकी चिन्ता होती है कि अब यह कथा शीघ्र ही हमलोगोंका अन्त कर देगी। जैसे आग गीली-सूखी, छोटी और बड़ी—सभी तरहकी लकड़ियोंको जला डालती है, उसी प्रकार यह सप्ताहश्रवण मन, वाणी और क्रियाद्वारा किये हुए, इच्छा या अनिच्छासे होनेवाले छोटे-बड़े सभी तरहके पापोंको भस्म कर देता है। विद्वानोंने देवताओंकी सभामें कहा है कि 'इस भारतवर्षमें जो पुरुष श्रीमद्भागवतकी कथा नहीं सुनते, उनका जन्म व्यर्थ ही है।' यदि भागवत-शास्त्रकी कथा सुननेको न मिली तो मोहपूर्वक पालन करके हृष्ट-पुष्ट और बलवान् बनाये हुए इस अनित्य शरीरसे क्या लाभ हुआ। जिसमें हड्डियाँ ही खम्भे हैं, जो नस-नाड़ीरूप रस्सियोंसे बँधा है, जिसके ऊपर मांस और रक्तका लेप करके उसे चमड़ेसे मढ़ दिया गया है, जिसके भीतरसे दुर्गन्ध आती रहती है, जो मल-मूत्रका पात्र ही है, वृद्धावस्था और शोकके कारण जो परिणाममें दुःखमय जान पड़ता है, जिसमें रोगोंका निवास है, जो सदा किसी कामनासे आतुर रहता है, जिसका पेट कभी नहीं भरता, जिसको सदा धारण किये रहना कठिन है तथा जो अनेक दोषोंसे भरा हुआ और क्षणभंगुर है, वही यह शरीर कहलाता है। अन्तमें इसकी तीन ही गतियाँ होती हैं—यदि मृत्युके पश्चात् इसे गाड़ दिया जाय तो इसमें कीड़े पड़ जाते हैं, कोई पशु खा जाय तो यह विष्ठा बन जाता है और यदि अग्निमें जला दिया जाय तो यह राखका ढेर हो जाता है। ऐसी दशामें भी मनुष्य इस अस्थिर शरीरसे स्थायी फल देनेवाला कर्म क्यों नहीं कर लेता? प्रातःकाल जो अन्न पकाया जाता है, वह शाम होनेतक बिगड़ जाता है। फिर उसीके रससे पुष्ट हुए इस शरीरमें नित्यता क्या है?"

"इस लोकमें श्रीमद्भागवतका सप्ताह सुननेसे अपने निकट ही भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है। अतः सब प्रकारके दोषोंकी निवृत्तिके लिये एकमात्र यही साधन है। जहाँ कथा-श्रवण करनेसे जड़ एवं सूखे बाँसकी गाँठें फट सकती हैं, वहीं यदि हृदयकी गाँठें खुल जायँ तो क्या आश्चर्य है? जो भागवतकी कथा सुननेसे वंचित हैं, वे लोग जलमें बुद्बुदों और जीवोंमें मच्छरोंके समान केवल मरनेके लिये पैदा हुए हैं। सप्ताह श्रवण करनेपर हृदयकी अज्ञानमयी गाँठ खुल जाती है, सारे सन्देह नष्ट हो जाते हैं और बन्धनके हेतुभूत समस्त कर्म क्षीण हो जाते हैं। यह भागवत-कथा एक महान् पुण्यतीर्थ है। यह संसाररूपी कीचड़के लेपको धो डालनेमें अत्यन्त पटु है। विद्वान् पुरुषोंका मत है कि जब यह कथा-तीर्थ चित्तमें स्थिर हो जाय तो मनुष्यकी मुक्ति निश्चत ही है।"

धुन्धुकारी इस प्रकारकी बातें कह ही रहा था कि उसे लेनेके लिये आकाशसे एक विमान उतरा। उससे चारों ओर मण्डलाकार प्रकाश-पुंज फैल रहा था। उसमें भगवान्‌के वैकुण्ठवासी पार्षद विराजमान थे। धुन्धुकारी सब लोगोंके देखते-देखते उस विमानपर जा बैठा। उसमें आये हुए श्रीविष्णु-पार्षदोंको देखकर गोकर्णने

उनसे इस प्रकार पूछा—'भगवान्‌के परिकरो! यहाँ तो बहुत-से शुद्ध अन्त:करणवाले मेरी कथाके श्रोता बैठे हुए हैं। आपलोग एक ही साथ इनके लिये भी विमान क्यों नहीं लाये? देखनेमें आता है—सबने समानरूपसे यहाँ कथा-श्रवण किया है; फिर फलमें क्यों इस प्रकार भेद हुआ? यह बतानेकी कृपा कीजिये।'
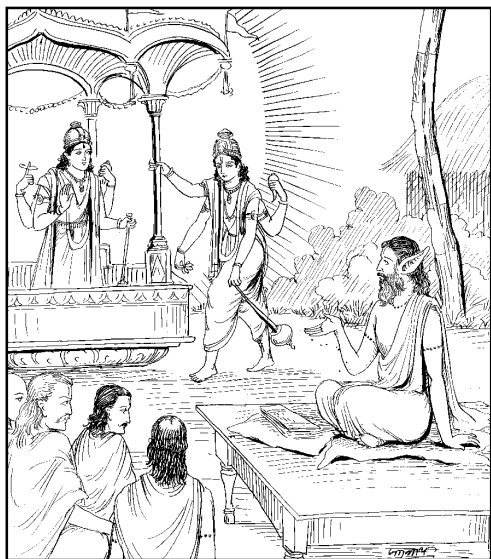
भगवान्‌के पार्षद बोले—गोकर्णजी! इनके कथा-श्रवणमें भेद होनेसे ही फलमें भी भेद हुआ है। यद्यपि श्रवण सब लोगोंने ही किया है; किन्तु इसके-जैसा मनन किसीने नहीं किया है, इसीलिये फलमें भेद हुआ है। पुन: कथा-श्रवण करनेपर यह फल-भेद भी दूर हो जायगा। प्रेतने सात रात उपवास करके कथा-श्रवण किया है। अत: उसने स्थिरचित्तसे भलीभाँति मनन आदि किया है। जो ज्ञान दृढ़ नहीं होता, वह व्यर्थ हो जाता है। इसी प्रकार ध्यान न देनेसे श्रवण, सन्देहसे मन्त्र और चंचलचित्त होनेसे जप निष्फल हो जाता है। वैष्णव-पुरुषोंसे रहित देश, कुपात्र ब्राह्मणसे कराया हुआ श्राद्ध, अश्रोत्रियको दिया हुआ दान और सदाचारहीन कुल भी नष्ट ही समझना चाहिये। गुरुके वचनोंमें विश्वास हो, अपनेमें दीनताकी भावना बनी रहे, मनके दोषोंको काबूमें रखा जाय और कथामें दृढ़ निष्ठा बनी रहे—इन सब बातोंका यदि पालन किया जाय तो अवश्य ही कथा-श्रवणका पूरा-पूरा फल मिलता है। पुन: कथा-श्रवण करनेके पश्चात् इन सब लोगोंका वैकुण्ठमें निवास निश्चित है। गोकर्णजी! तुम्हें तो स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ही गोलोक प्रदान करेंगे।

ऐसा कहकर वे सब पार्षद भगवान्‌के नामोंका कीर्तन करते हुए वैकुण्ठधाममें चले गये। उसके बाद गोकर्णने पुन: श्रावण मासमें कथा बाँची। उस समय सब लोगोंने सात दिनोंतक उपवास करके कथा-श्रवण किया। नारदजी! कथाकी समाप्ति होनेपर वहाँ जो कुछ हुआ, उसे सुनिये। उस समय बहुत-से विमानोंको साथ लिये भक्तोंसहित साक्षात् भगवान् उस स्थानपर प्रकट हो गये। चारों ओरसे जय-जयकार और नमस्कारके शब्द बारंबार सुनायी देने लगे। भगवान्‌ने प्रसन्न होकर वहाँ स्वयं भी अपने पांचजन्य नामक शंखको बजाया तथा गोकर्णको छातीसे लगाकर उन्हें अपने समान ही बना लिया। उनके सिवा और भी जितने श्रोता थे, उन सबको श्रीहरिने एक ही क्षणमें अपना सारूप्य दे दिया। वे सभी मेघके समान श्यामवर्ण, पीताम्बरधारी तथा किरीट और कुण्डलोंसे सुशोभित हो गये। उस गाँवमें कुत्ते और चाण्डाल आदि जितने भी जीव थे, उन सबको गोकर्णकी दयासे भगवान्‌ने विमानपर बिठा लिया और वैकुण्ठधाममें भेज दिया, जहाँ योगी पुरुष जाया करते हैं। तत्पश्चात् भक्तवत्सल भगवान् गोपाल कथा-श्रवणसे प्रसन्न हो, गोकर्णको साथ ले गोपवल्लभ गोलोक-धामको पधारे। जैसे पूर्वकालमें समस्त अयोध्यावासी भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके साथ साकेतधाममें गये थे, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णने उस गाँवके सब मनुष्योंको योगियोंके लिये भी दुर्लभ गोलोकधाममें पहुँचा दिया। जहाँ सूर्य, चन्द्रमा और सिद्ध पुरुषोंकी भी कभी पहुँच नहीं होती, उसी लोकमें वहाँके सब प्राणी केवल श्रीमद्भागवतकी कथा सुननेसे चले गये।

नारदजी! श्रीमद्भागवतकी कथामें सप्ताह-यज्ञसे जिस उज्ज्वल फलसमुदायका संचय होता है, उसका इस समय हम आपसे क्या वर्णन करें। जिन्होंने गोकर्णजीकी कथाका एक अक्षर भी अपने कर्ण-पुटोंके द्वारा पान किया, वे फिर माताके गर्भमें नहीं आये। हवा

पीकर, पत्ते चबाकर और शरीरको सुखाकर दीर्घकालतक कठोर तपस्या करनेसे तथा योगाभ्यास करनेसे भी मनुष्य उस गतिको नहीं प्राप्त होते, जिसे वे सप्ताह-कथाके श्रवणसे पा लेते हैं। मुनीश्वर शाण्डिल्य चित्रकूटमें रहकर ब्रह्मानन्दमें निमग्न हो इस पवित्र इतिहासका सदा पाठ किया करते हैं। यह उपाख्यान परम पवित्र है। एक बार श्रवण करनेपर भी सारी पाप-राशिको भस्म कर देता है। यदि श्राद्धमें इसका पाठ किया जाय तो इससे पितरोंको पूर्ण तृप्ति होती है और प्रतिदिन इसका पाठ करनेसे मनुष्यको मोक्ष प्राप्त हो जाता है।

श्रीमद्भागवतके सप्ताहपारायणकी विधि तथा भागवत-माहात्म्यका उपसंहार

श्रीसनकादि कहते हैं—नारदजी! अब हम सप्ताह-श्रवणकी विधिका वर्णन करते हैं। यह कार्य प्रायः लोगोंकी सहायता और धनसे साध्य होनेवाला माना गया है। पहले ज्योतिषीको बुलाकर इसके लिये यत्नपूर्वक मुहूर्त पूछना चाहिये। फिर विवाहके कार्यमें जितने धनकी आवश्यकता होती है, उतने ही धनका प्रबन्ध कर लेना चाहिये। कथा आरम्भ करनेके लिये भादों, कुआर, कार्तिक, अगहन, आषाढ़ और सावन—ये महीने श्रोताओंके लिये मोक्षप्राप्तिके कारण माने गये हैं। महीनोंमें जो भद्रा, व्यतीपात आदि काल त्यागनेयोग्य माने गये हैं, उन सबको सब प्रकारसे त्याग देना ही उचित है। जो लोग उत्साही और उद्योगी हों—ऐसे अन्य व्यक्तियोंको भी सहायक बना लेना चाहिये। फिर प्रयत्नपूर्वक देश-देशान्तरोंमें यह समाचार भेज देना चाहिये कि अमुक स्थानपर श्रीमद्भागवतकी कथा होनेवाली है, अतः सब लोग कुटुम्बसहित यहाँ पधारें। कुछ लोग भगवत्कथा और कीर्तन आदिसे बहुत दूर हैं; इसलिये इस समाचारको इस प्रकार फैलावें, जिससे स्त्रियों और शूद्र आदिको भी इसका पता लग जाय। देश-देशमें जो विरक्त और कथा-कीर्तनके लिये उत्सुक रहनेवाले वैष्णव हों, उनके पास भी पत्र भेजना चाहिये तथा उन पत्रोंमें इस प्रकार लिखना उचित है—'महानुभावो! यहाँ सात राततक सत्पुरुषोंका सुन्दर समागम होगा, जो अन्यत्र बहुत ही दुर्लभ है। इसमें श्रीमद्भागवतकी अपूर्व रसमयी कथा होगी। आपलोग श्रीमद्भागवतामृतका पान करनेके रसिक हैं, अतः यहाँ प्रेमपूर्वक शीघ्र ही पधारनेकी कृपा करें। यदि आपको किसी कारणवश विशेष अवकाश न हो, तब भी एक दिनके लिये तो कृपा करनी ही चाहिये; क्योंकि यहाँका एक क्षण भी अत्यन्त दुर्लभ है। इसलिये सब प्रकारसे यहाँ पधारनेके लिये ही चेष्टा करनी चाहिये।' इस प्रकार बड़ी विनयके साथ उनको आमन्त्रित करे और जो लोग आवें, उन सबके ठहरनेके लिये प्रबन्ध करे। तीर्थमें, वनमें अथवा अपने घरपर भी कथा-श्रवण उत्तम माना गया है। जहाँ भी लम्बी-चौड़ी भूमि—मैदान खाली हो, वहीं कथाके लिये स्थान बनाना चाहिये। जमीनको झाड़-बुहारकर, धोकर और लीप-पोतकर शुद्ध करे। फिर उसपर गेरु आदिसे चौक पुरावे। यदि वहाँ कोई घरका सामान पड़ा हो तो उसे उठाकर एक कोनेमें रखवा दे। कथा आरम्भ होनेसे पाँच दिन पहलेसे ही यत्नपूर्वक बहुत-से आसन जुटा लेने चाहिये, तथा एक ऊँचा मण्डप तैयार कराकर उसे केलेके खम्भोंसे सजा देना चाहिये। उसे फल, फूल, पत्तों तथा चँदोवेसे सब ओर अलंकृत करे; मण्डपके चारों ओर ध्वजारोपण करे और नाना प्रकारकी शोभामयी सामग्रियोंसे उसे सजावे। उस मण्डपके ऊपरी भागमें विस्तारपूर्वक सात लोकोंकी कल्पना करे और उनमें विरक्त ब्राह्मणोंको बुला-बुलाकर बिठावे। पहलेसे ही वहाँ उनके लिये यथोचित आसन तैयार करके रखे। वक्ताके लिये भी सुन्दर व्यासगद्दी बनवानी चाहिये। यदि वक्ताका मुख उत्तरकी ओर हो तो श्रोता पूर्वाभिमुख होकर बैठे और यदि वक्ताका मुख पूर्वकी ओर हो तो श्रोताको उत्तराभिमुख होकर बैठना चाहिये। अथवा वक्ता और श्रोताके बीचमें पूर्व दिशा आ जानी चाहिये। देश, काल आदिको जाननेवाले

विद्वानोंने श्रोताओंके लिये ऐसा ही शास्त्रोक्त नियम बतलाया है।

वक्ता ऐसे पुरुषको बनाना चाहिये जो विरक्त, वैष्णव, जातिका ब्राह्मण, वेद-शास्त्रकी विशुद्ध व्याख्या करनेमें समर्थ, भाँति-भाँतिके दृष्टान्त देकर ग्रन्थके भावको हृदयंगम करानेमें कुशल, धीर और अत्यन्त निःस्पृह हो। जो अनेक मत-मतान्तरोंके चक्करमें पड़कर भ्रान्त हो रहे हों, स्त्री-लम्पट हों और पाखण्डकी बातें करते हों, ऐसे लोग यदि पण्डित भी हों तो भी उन्हें श्रीमद्भागवतकथाका वक्ता न बनावे। वक्ताके पास उसकी सहायताके लिये उसी योग्यताका एक और विद्वान् रखे; वह भी संशय निवारण करनेमें समर्थ और लोगोंको समझानेमें कुशल होना चाहिये। वक्ताको उचित है कि कथा आरम्भ होनेसे एक दिन पहले क्षौर करा ले, जिससे व्रतका पूर्णतया निर्वाह हो सके तथा श्रोता अरुणोदयकालमें—दिन निकलनेसे दो घड़ी पहले शौच आदिसे निवृत्त होकर विधिपूर्वक स्नान करे, फिर सन्ध्या आदि नित्यकर्मोंको संक्षेपसे समाप्त करके कथाके विघ्नोंका निवारण करनेके लिये श्रीगणेशजीकी पूजा करे। तदनन्तर पितरोंका तर्पण करके पूर्वपापोंकी शुद्धिके लिये प्रायश्चित्त करे और एक मण्डल बनाकर उसमें श्रीहरिकी स्थापना करे। फिर भगवान् श्रीकृष्णके उद्देश्यसे मन्त्रोच्चारणपूर्वक क्रमशः षोडशोपचारविधिसे पूजन करे। पूजा समाप्त होनेपर प्रदक्षिणा तथा नमस्कार करके इस प्रकार स्तुति करे—'करुणानिधे! मैं इस संसार-समुद्रमें डूबा हुआ हूँ। मुझे कर्मरूपी ग्राहने पकड़ रखा है। आप मुझ दीनका इस भवसागरसे उद्धार कीजिये।'* इसके पश्चात् धूप-दीप आदि सामग्रियोंसे प्रयत्नपूर्वक प्रसन्नताके साथ श्रीमद्भागवतकी भी विधिवत् पूजा करनी चाहिये। फिर पुस्तकके आगे श्रीफल (नारियल) रखकर नमस्कार करे और प्रसन्नचित्तसे इस प्रकार स्तुति करे—'श्रीमद्भागवतके रूपमें आप साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण ही यहाँ विराजमान हैं। नाथ! मैंने भवसागरसे छुटकारा पानेके लिये ही आपकी शरण ली है। मेरे इस मनोरथको किसी विघ्न-बाधाके बिना ही आप सब प्रकारसे सफल करें। केशव! मैं आपका दास हूँ।'

इस प्रकार दीन वचन कहकर वक्ताको वस्त्र और आभूषणोंसे विभूषित करके उसकी पूजा करे और पूजाके पश्चात् उसकी इस प्रकार स्तुति करे—'शुकदेवस्वरूप महानुभाव! आप समझानेकी कलामें निपुण और समस्त शास्त्रोंके विशेषज्ञ हैं। इस श्रीमद्भागवतकथाको प्रकाशित करके आप मेरे अज्ञानको दूर कीजिये। तदनन्तर वक्ताके आगे अपने कल्याणके लिये प्रसन्नतापूर्वक नियम ग्रहण करे और यथाशक्ति सात दिनोंतक निश्चय ही उसका पालन करे। कथामें कोई विघ्न न पड़े, इसके लिये पाँच ब्राह्मणोंका वरण करे। उन ब्राह्मणोंको द्वादशाक्षर-मन्त्रका जप करना चाहिये। इसके बाद वहाँ उपस्थित हुए ब्राह्मणों, विष्णुभक्तों और कीर्तन करनेवाले लोगोंको नमस्कार करके उनकी पूजा करे और उनसे आज्ञा लेकर स्वयं श्रोताके आसनपर बैठे। जो पुरुष लोक, सम्पत्ति, धन, घर और पुत्र आदिकी चिन्ता छोड़कर शुद्ध बुद्धिसे केवल कथामें ही मन लगाये रहता है, उसे उत्तम फलकी प्राप्ति होती है।

बुद्धिमान् वक्ताको उचित है कि वह सूर्योदयसे लेकर साढ़े तीन पहरतक मध्यम स्वरसे अच्छी तरह कथा बाँचे, दोपहरके समय दो घड़ीतक कथा बंद रखे। कथा बंद होनेपर वैष्णव पुरुषोंको वहाँ कीर्तन करना चाहिये। कथाके समय मल-मूत्रके वेगको काबूमें रखनेके लिये हलका भोजन करना अच्छा होता है। अतः कथा सुननेकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको एक बार हविष्यान्न भोजन करना उचित है। यदि शक्ति हो तो सात रात उपवास करके कथा श्रवण करे अथवा केवल घी या दूध पीकर सुखपूर्वक कथा सुने। इससे काम न चले

---

* संसारसागरे मग्नं दीनं मां करुणानिधे॥
कर्मग्राहगृहीताङ्गं मामुद्धर भवार्णवात्। (१९४। २९—३०)

तो फलाहार अथवा एक समय भोजन करके कथा सुने। तात्पर्य यह कि जिसके लिये जो नियम सुगमतापूर्वक निभ सके, वह उसीको कथा सुननेके लिये ग्रहण करे। मैं तो उपवासकी अपेक्षा भोजनको ही श्रेष्ठ मानता हूँ, यदि वह कथा-श्रवणमें सहायक हो सके। अगर उपवाससे कथामें विघ्न पड़ता हो तो वह अच्छा नहीं माना गया है।

नारदजी! नियमसे सप्ताह-कथा सुननेवाले पुरुषोंके लिये पालन करनेयोग्य जो नियम हैं, उन्हें बतलाता हूँ; सुनिये। जिन्होंने श्रीविष्णुमन्त्रकी दीक्षा नहीं ली है अथवा जिनके हृदयमें भगवान्‌की भक्ति नहीं है, उन्हें इस कथाको सुननेका अधिकार नहीं है। कथाका व्रत लेनेवाला पुरुष ब्रह्मचर्यसे रहे, भूमिपर शयन करे और कथा समाप्त होनेपर पत्तलमें भोजन करे। दाल, मधु, तेल, गरिष्ठ अन्न, भावदूषित पदार्थ और बासी अन्नको वह सर्वथा त्याग दे। काम, क्रोध, मद, मान, मत्सर, लोभ, दम्भ, मोह तथा द्वेषको बुरा समझकर पास न आने दे। वेद, वैष्णव, ब्राह्मण, गुरु, गोसेवक, स्त्री, राजा और महापुरुषोंकी निन्दा न करे। रजस्वला स्त्री, अन्त्यज (चाण्डाल आदि), म्लेच्छ, पतित, गायत्रीहीन द्विज, ब्राह्मणद्रोही तथा वेदको न माननेवाले पुरुषोंसे वार्तालाप न करे। नियमसे कथाका व्रत लेनेवाले पुरुषको सदा सत्य, शौच, दया, मौन, सरलता, विनय और उदारताका बर्ताव करना चाहिये। दरिद्र, क्षयका रोगी, अन्य किसी रोगसे पीड़ित, भाग्यहीन, पापाचारी, सन्तानहीन तथा मुमुक्षु पुरुष इस कथाको अवश्य सुने। जिस स्त्रीका मासिक धर्म रुक गया हो, जिसके एक ही सन्तान होकर रह गयी हो, जो बाँझ हो, जिसके बच्चे पैदा होकर मर जाते हों तथा जिसका गर्भ गिर जाता हो, उस स्त्रीको प्रयत्नपूर्वक इस कथाका श्रवण करना चाहिये। इन्हें विधिपूर्वक दिया हुआ कथाका दान अक्षय फल देनेवाला है [अर्थात् ये यदि कथा सुनें तो इनके उक्त दोष अवश्य मिट जाते हैं]। कथाके लिये सात दिन अत्यन्त उत्तम माने गये हैं। वे कोटि यज्ञोंका फल देनेवाले हैं।

इस प्रकार व्रतकी विधि पूर्ण करके उसका उद्यापन करे। उत्तम फलकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको जन्माष्टमीव्रतके समान इसका उद्यापन करना चाहिये। जो अकिंचन भक्त हैं, उनके लिये प्रायः उद्यापनका आग्रह नहीं है। वे कथा-श्रवणमात्रसे ही शुद्ध हो जाते हैं; क्योंकि वे निष्काम वैष्णव हैं। इस तरह सप्ताह-यज्ञ पूर्ण होनेपर श्रोताओंको बड़ी भक्तिके साथ पुस्तक तथा कथावाचककी पूजा करनी चाहिये और वक्ताको उचित है कि वह श्रोताओंको प्रसाद एवं तुलसीकी माला दे। तत्पश्चात् मृदंग बजाकर तालस्वरके साथ कीर्तन किया जाय, जय-जयकार और नमस्कार शब्दके साथ शंखोंकी ध्वनि हो तथा ब्राह्मणों और याचकोंको धन दिया जाय। यदि श्रोता विरक्त हो तो कथा-समाप्तिके दूसरे दिन गीता बाँचनी चाहिये और गृहस्थ हो तो कर्मकी शान्तिके लिये होम करना चाहिये। उस हवनमें दशम स्कन्धका एक-एक श्लोक पढ़कर विधिपूर्वक खीर, मधु, घी, तिल और अन्न आदिसे युक्त हवन-सामग्रीकी आहुति दे अथवा एकाग्रचित्त होकर गायत्री-मन्त्रसे हवन करे; क्योंकि वास्तवमें यह महापुराण गायत्रीमय ही है। यदि होम करानेकी शक्ति न हो तो उसका फल प्राप्त करनेके लिये विद्वान् पुरुष ब्राह्मणोंको कुछ हवन-सामग्रीका दान करे तथा कर्ममें जो नाना प्रकारकी त्रुटियाँ रह गयी हों या विधिमें जो न्यूनता अथवा अधिकता हो गयी हो, उनके दोषकी शान्तिके लिये विष्णुसहस्रनामका पाठ करे। उससे सभी कर्म सफल हो जाते हैं; क्योंकि इससे बढ़कर दूसरा कोई साधन नहीं है। हवनके पश्चात् बारह ब्राह्मणोंको मीठी खीर भोजन करावे और व्रतकी पूर्तिके लिये दूध देनेवाली गौ तथा सुवर्णका दान करे। यदि शक्ति हो तो तीन तोले सोनेका एक सिंहासन बनवावे, उसपर सुन्दर अक्षरोंमें लिखी हुई श्रीमद्भागवतकी पोथी रखकर आवाहन आदि उपचारोंसे उसका पूजन करे। फिर वस्त्र, आभूषण और गन्ध आदिके द्वारा जितेन्द्रिय आचार्यकी पूजा करके उन्हें दक्षिणासहित वह पुस्तक दान कर दे। जो बुद्धिमान् श्रोता ऐसा करता है, वह भव-बन्धनसे मुक्त हो जाता है। यह सप्ताह-यज्ञका

विधान सब पापोंका निवारण करनेवाला है; इसका इस प्रकार यथावत् पालन करनेसे कल्याणमय श्रीमद्भागवतपुराण मनोवांछित फल प्रदान करता है तथा धर्म, अर्थ काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंका साधक होता है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

श्रीसनकादि कहते हैं—नारदजी! इस प्रकार तुम्हें यह सप्ताह-श्रवणकी सारी विधि सुना दी। अब और क्या सुनना चाहते हो? श्रीमद्भागवतसे ही भोग और मोक्ष दोनों हाथ लगते हैं। श्रीमद्भागवत नामक एक कल्पवृक्ष है, जिसका अंकुर बहुत ही उज्ज्वल है। सत्स्वरूप परमात्मासे इस वृक्षका उद्गम हुआ है, यह बारह स्कन्धों (मोटी डालियों)-से सुशोभित है, भक्ति ही इसका थाल्हा है, तीन सौ बत्तीस अध्याय ही इसकी सुन्दर शाखाएँ हैं और अठारह हजार श्लोक ही इसके पत्ते हैं। यह सम्पूर्ण अभीष्ट फलोंको देनेवाला है। इस प्रकार यह भागवतरूपी दिव्य वृक्ष अत्यन्त सुलभ होनेपर भी अपनी अनुपम महत्ताके कारण सर्वोपरि विराजमान है।

सूतजी कहते हैं—ऐसा कहकर सनकादि महात्माओंने परम पवित्र श्रीमद्भागवतकी कथा बाँचनी आरम्भ की, जो सब पापोंको हरनेवाली तथा भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली है। उस समय समस्त प्राणी अपने मनको काबूमें रखकर सात दिनोंतक वह कथा सुनते रहे। तत्पश्चात् सबने विधिपूर्वक भगवान् पुरुषोत्तमकी स्तुति की। कथाके अन्तमें ज्ञान, वैराग्य और भक्तिकी पूर्णरूपसे पुष्टि की। उन्हें उत्तम तरुण अवस्था प्राप्त हुई, जो समस्त प्राणियोंका मन हर लेनेवाली थी। नारदजी भी अपना मनोरथ सिद्ध हो जानेसे कृतार्थ हो गये, उनके सारे शरीरमें रोमांच हो आया और वे परमानन्दमें निमग्न हो गये। इस प्रकार कथा सुनकर भगवान्के प्रिय भक्त नारदजी हाथ जोड़कर प्रेमपूर्ण गद्गद वाणीमें सनकादि महात्माओंसे बोले—'तपोधनो! आज मैं धन्य हो गया। आप दयालु महात्माओंने मुझपर बड़ा अनुग्रह किया। सप्ताह-यज्ञमें श्रीमद्भागवतका श्रवण करनेसे आज मुझे भगवान् श्रीहरि समीपमें ही मिल गये। मैं तो सब धर्मोंकी अपेक्षा श्रीमद्भागवत-श्रवणको ही श्रेष्ठ मानता हूँ, क्योंकि उसके सुननेसे वैकुण्ठवासी भगवान् श्रीकृष्णकी प्राप्ति होती है।'

सूतजी कहते हैं—वैष्णवोंमें श्रेष्ठ श्रीनारदजी जब इस प्रकार कह रहे थे, उसी समय सोलह वर्षकी अवस्थावाले व्यासपुत्र योगेश्वर श्रीशुकदेव मुनि वहाँ घूमते हुए आ पहुँचे। वे ऐसे जान पड़ते थे मानो ज्ञानरूपी महासागरसे निकले हुए चन्द्रमा हों। वे ठीक कथा समाप्त होनेपर वहाँ पहुँचे थे। आत्मलाभसे परिपूर्ण श्रीशुकदेवजी उस समय बड़े प्रेमसे धीरे-धीरे श्रीमद्भागवतका पाठ कर रहे थे। उन परम तेजस्वी मुनिको आया देख सारे सभासद् तुरंत ही उठकर खड़े हो गये और उन्हें बैठनेके लिये एक ऊँचा आसन दिया; फिर देवर्षि नारदजीने बड़ी प्रसन्नताके साथ उनका पूजन किया। जब वे सुखपूर्वक आसनपर विराजमान हो गये तो 'मेरी उत्तम वाणी सुनो' ऐसा कहते हुए बोले—'भगवत्कथाके रसिक भावुक भक्तजन! यह श्रीमद्भागवत वेदरूप कल्पवृक्षका पका एवं चूकर गिरा हुआ फल है, जो परमानन्दमय अमृत-रससे भरा है। यह श्रीशुकदेवरूप तोतेके मुखसे इस पृथ्वीपर प्राप्त हुआ है; जबतक यह जीवन रहे, जबतक संसारका प्रलय न हो जाय, तबतक आपलोग इस दिव्य रसका नित्य-निरन्तर बारंबार पान करते रहिये। महामुनि श्रीव्यासजीके द्वारा रचित इस श्रीमद्भागवतमें परम उत्तम निष्काम धर्मका प्रतिपादन किया गया है तथा जिनके हृदयमें ईर्ष्या-द्वेषका अभाव है, उन साधु पुरुषोंके जानने योग्य उस कल्याणप्रद परमार्थतत्त्वका निरूपण किया गया है, जो आध्यात्मिक आदि तीनों तापोंका समूल नाश करनेवाला है। इस श्रीमद्भागवतकी शरण लेनेवाले पुरुषोंको दूसरे साधनोंकी क्या आवश्यकता है। जो बुद्धिमान् एवं पुण्यात्मा पुरुष इस पुराणको श्रवण करनेकी इच्छा करते हैं, उनके हृदयमें स्वयं भगवान् ही तत्काल प्रकट होकर सदाके लिये स्थिर हो जाते हैं। श्रीमद्भागवत समस्त पुराणोंका तिलक और वैष्णव पुरुषोंकी प्रिय वस्तु है। इसमें परमहंस महात्माओंको प्राप्त

होनेयोग्य परम उत्तम विशुद्ध अद्वैत-ज्ञानका वर्णन किया गया है तथा ज्ञान, वैराग्य और भक्तिके सहित नैष्कर्म्य धर्म-(निवृत्तिमार्ग-) को प्रकाशित किया गया है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इसके श्रवण, पठन और मननमें संलग्न रहता है, वह संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है। यह रस स्वर्गलोक, सत्यलोक, कैलास तथा वैकुण्ठमें भी नहीं है; अतः सौभाग्यशाली पुरुषो! तुम इसका निरन्तर पान करते रहो। कभी किसी प्रकार भी इसको छोड़ो मत, छोड़ो मत।'

शौनकजी! व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी इस प्रकार कह ही रहे थे कि वहाँ बीच सभामें प्रह्लाद, बलि, उद्धव और अर्जुन आदि पार्षदोंके सहित साक्षात् श्रीहरि प्रकट हो गये। देवर्षि नारदने भगवान् और उनके भक्तोंका पूजन किया। भगवान्‌को प्रसन्न देखकर नारदजीने उन्हें एक श्रेष्ठ आसनपर बिठा दिया और सब लोग मिलकर उनके सामने कीर्तन करने लगे। उस कीर्तनको देखनेके लिये पार्वतीसहित महादेवजी और ब्रह्माजी भी वहाँ आ गये। प्रह्लादजी चंचल गतिसे थिरकते हुए करताल बजाने लगे, उद्धवने मँजीरे ले लिये, देवर्षि नारदजीने वीणाकी तान छेड़ दी, स्वरमें कुशल होनेके कारण अर्जुन राग अलापने लगे, इन्द्रने मृदंग बजाना आरम्भ किया। महात्मा सनक, सनन्दन, आदि कीर्तनके बीचमें जय-जयकार करने लगे और इन सबके आगे व्यासपुत्र शुकदेवजी रसकी अभिव्यक्ति करते हुए भाव बताने लगे। उस कीर्तन-मण्डलीके बीच परम तेजस्वी ज्ञान, भक्ति और वैराग्य नटोंके समान नृत्य कर रहे थे। यह अलौकिक कीर्तन देखकर भगवान् बहुत प्रसन्न हुए और बोले—'भक्तजन! मैं तुम्हारी इस कथा और कीर्तनसे बहुत प्रसन्न हूँ, अतः तुमलोग मुझसे वर माँगो।' भगवान्‌का यह वचन सुनकर सब लोगोंको बड़ी प्रसन्नता हुई, उनका हृदय भगवत्प्रेमसे सराबोर हो गया। वे श्रीहरिसे कहने लगे—'भगवन्! हमारी इच्छा है कि जहाँ कहीं भी श्रीमद्भागवतकी सप्ताह-कथा हो, वहाँ इन समस्त पार्षदोंके साथ यत्नपूर्वक पधारें। हमलोगोंका यह मनोरथ अवश्य पूर्ण होना चाहिये।' तब भगवान् 'तथास्तु' कहकर वहाँसे अन्तर्धान हो गये।

तत्पश्चात् नारदजीने भगवान् तथा उनके भक्तोंके चरणोंको लक्ष्य करके मस्तक झुकाया और शुकदेव आदि तपस्वियोंको भी प्रणाम किया। इस प्रकार कथामृतका पान करके सब लोगोंको बड़ी प्रसन्नता हुई और उन सबका मोह नष्ट हो गया। फिर वे सब लोग अपने-अपने स्थानको चले गये। उस समय श्रीशुकदेवजीने ज्ञान-वैराग्यसहित भक्तिको श्रीमद्भागवत-शास्त्रमें स्थापित कर दिया। इसीसे श्रीमद्भागवतका सेवन करनेपर भगवान् विष्णु वैष्णवोंके हृदयोंमें विराजमान हो जाते हैं; जो लोग दरिद्रता (तरह-तरहके अभाव) और दुःखरूप ज्वरसे दग्ध हो रहे हैं, जिनको मायापिशाचीने अपने पैरोंसे कुचल डाला है तथा जो संसार-समुद्रमें पड़े हुए हैं, उनका कल्याण करनेके लिये श्रीमद्भागवत-शास्त्र निरन्तर गर्जना कर रहा है।

शौनकजीने पूछा—सूतजी! शुकदेवजीने राजा परीक्षित्‌को, गोकर्णजीने धुन्धुकारीको तथा सनकादिने देवर्षि नारदको किस-किस समय श्रीमद्भागवतकी कथा सुनायी थी?

सूतजीने कहा—भगवान् श्रीकृष्णके परमधाम पधारनेके पश्चात् जब कलियुगको आये तीस वर्ष हो गये, उस समय भादोंके शुक्लपक्षकी नवमी तिथिको श्रीशुकदेवजीने कथा आरम्भ की। राजा परीक्षित्‌के कथा सुननेके पश्चात् कलियुगके दो सौ वर्ष बीत जानेपर शुद्ध आषाढ़ मासकी शुक्ला नवमीको गोकर्णजीने कथा सुनायी थी। उसके बाद जब कलियुगके तीन सौ छः वर्ष व्यतीत हो गये, तब कार्तिक शुक्लपक्षकी नवमी तिथिको सनकादिने कथा आरम्भ की थी। पापरहित शौनकजी! आपने जो कुछ पूछा था, वह सब मैंने बता दिया। इस कलियुगमें श्रीमद्भागवतकी कथा संसाररूपी रोगका नाश करनेवाली है। संतजन! आपलोग श्रद्धापूर्वक इस कथामृतका पान करें। यह भगवान् श्रीकृष्णको परम प्रिय, समस्त पापोंका नाश करनेवाला, मुक्तिका एकमात्र कारण तथा भक्तिको बढ़ानेवाला है। इसको छोड़कर लोकमें अन्य कल्याणकारी साधनोंके विचार करनेकी

क्या आवश्यकता है? अपने सेवकको पाश हाथमें लिये देख यमराज उसके कानमें कहते हैं—'देखो, जो लोग भगवान्‌की कथा-वार्तामें मस्त हो रहे हों, उनसे दूर ही रहना। मैं दूसरे ही लोगोंको दण्ड देनेमें समर्थ हूँ, वैष्णवोंको नहीं।' इस असार संसारमें विषयरूपी विषके सेवनसे व्याकुलचित्त हुए मनुष्यो! यदि कल्याण चाहते हो तो आधे क्षणके लिये भी श्रीमद्भागवतकथारूपी अनुपम सुधाका पान करो। अरे भाई! घृणित चर्चासे भरे हुए कुमार्गपर क्यों व्यर्थ भटक रहे हो। इस कथाके कानमें पड़ते ही मुक्ति हो जाती है। मेरे इस कथनमें राजा परीक्षित् प्रमाण हैं। श्रीशुकदेवजीने प्रेम-रसके प्रवाहमें स्थित होकर यह कथा कही है। जो इसे अपने कण्ठसे लगाता है, वह वैकुण्ठका स्वामी बन जाता है। शौनकजी! मैंने समस्त शास्त्रसमुदायका मन्थन करके इस समय आपको यह परम गुह्य रहस्य सुनाया है। यह समस्त सिद्धान्तोंद्वारा प्रमाणित है। संसारमें श्रीमद्भागवतकी कथासे अधिक पवित्र और कोई वस्तु नहीं है, अतः आपलोग परमानन्दकी प्राप्तिके लिये द्वादशस्कन्धरूप इस सारमय कथामृतका किंचित्-किंचित् पान करते रहिये। जो मनुष्य नियमपूर्वक इस कथाको भक्तिभावसे सुनता है और जो विशुद्ध वैष्णव पुरुषोंके आगे इसे सुनाता है, वे दोनों ही उत्तम विधिका पालन करनेके कारण इसका यथार्थ फल प्राप्त करते हैं। उनके लिये संसारमें कुछ भी असाध्य नहीं है।

यमुनातटवर्ती 'इन्द्रप्रस्थ' नामक तीर्थकी माहात्म्य-कथा

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! अब आप यमुनाजीके माहात्म्यका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये। साथ ही यह बात भी बताइये, किसने किसके प्रति इस माहात्म्यका उपदेश किया था?

सूतजीने कहा—एक समयकी बात है, पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर सौभरिमुनिसे कल्याणमय ज्ञान सुननेके लिये उनके स्थानपर गये और उन्हें नमस्कार करके इस प्रकार पूछने लगे—'ब्रह्मन्! सूर्यकन्या यमुनाजीके तटपर जितने तीर्थ हैं उनमें ऐसा कल्याणमय तीर्थ कौन है, जो भगवान्‌की जन्मभूमि मथुरासे भी बड़ा हो।'

सौभरि बोले—एक समय मुनिश्रेष्ठ नारद और पर्वत आकाशमार्गसे जा रहे थे। जाते-जाते उनकी दृष्टि परम मनोहर खाण्डव वनपर पड़ी। वे दोनों मुनि आकाशसे वहाँ उतर पड़े और यमुनाजीके उत्तम तटपर बैठकर विश्राम करने लगे। क्षणभर विश्राम करनेके बाद उन्होंने स्नान करनेके लिये जलमें प्रवेश किया। इसी समय उशीनर देशके राजा शिबिने, जो उस वनमें शिकार खेलनेके लिये आये थे, उन दोनों मुनियोंको देखा। तब वे उनके निकलनेकी प्रतीक्षा करते हुए नदीके तटपर बैठ गये। नारद और पर्वत मुनि जब विधिपूर्वक स्नान करके वस्त्र पहन चुके तब राजा शिबिने उनके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रणाम किया। फिर तो वे मुनि भी राजाके साथ ही तटपर विराजमान हो गये। वहाँ सुवर्णके हजारों यूप दिखायी दे रहे थे। अभिमानरहित राजा शिबिने उन यूपोंपर दृष्टि डालकर देवर्षि नारद और पर्वतसे पूछा—'मुनिवरो! ये यज्ञ-यूप किनके हैं? किस देवता अथवा मनुष्यने यहाँ यज्ञ किये हैं? काशी आदि तीर्थोंको छोड़कर किस पुरुषने यहाँ यज्ञ किया है? अन्य तीर्थोंसे यहाँ क्या विशेषता है? इसमें कौन-सा विज्ञानका भण्डार भरा हुआ है? यह बतानेकी कृपा करें।'

नारदजीने कहा—राजन्! पूर्वकालमें हिरण्यकशिपुने जब देवताओंको जीतकर तीनों लोकोंका राज्य प्राप्त कर लिया तो उसे बड़ा घमण्ड हो गया। उसके पुत्र प्रह्लादजी भगवान् विष्णुके अनन्य भक्त थे; किन्तु वह पापात्मा उनसे सदा द्वेष रखता था। भक्तसे द्रोह करनेके कारण उसे दण्ड देनेके लिये भगवान् विष्णुने नृसिंहरूप धारण किया और उसका वध करके स्वर्गका राज्य इन्द्रको समर्पित कर दिया। अपना स्थान पाकर इन्द्रने गुरु बृहस्पतिके चरणोंमें मस्तक झुकाकर

प्रणाम किया और भगवान् नारायणके गुणोंका स्मरण करते हुए कहा—'गुरुदेव! समस्त जगत्का पालन करनेवाले नृसिंहरूपधारी श्रीहरिने मुझे पुन: देवताओंका राज्य प्रदान किया है, अत: मैं यज्ञोंद्वारा उनका पूजन करना चाहता हूँ। इसके लिये आप मुझे पवित्र स्थान बताइये और योग्य ब्राह्मणोंका परिचय दीजिये। आप हमलोगोंके हितकारी हैं, अत: इस कार्यमें विलम्ब नहीं करना चाहिये।'

बृहस्पतिजीने कहा—देवराज! तुम्हारा खाण्डव वन परम पवित्र और रमणीय स्थान है। वहाँ त्रिभुवनको पवित्र करनेवाली पुण्यमयी यमुना नदी है। यदि तुम आत्मीयजनोंका कल्याण चाहते हो तो उसीके तटपर चलकर नाना प्रकारके यज्ञोंद्वारा भगवान् केशवकी आराधना करो।

गुरु बृहस्पतिके वचन सुनकर देवराज इन्द्र तुरंत गुरु, देवता तथा यज्ञसामग्रीके साथ खाण्डव वनमें आये। फिर गुरुकी आज्ञासे ब्रह्मकुमार वसिष्ठ आदि सप्तर्षियों तथा अन्य ब्राह्मणोंका वरण करके इन्द्रने जगत्पति भगवान् विष्णुका यजन किया। इससे प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु, ब्रह्मा और महादेवजीके साथ इन्द्रके यज्ञमें पधारे। सरलहृदय इन्द्र तीनों देवताओंको उपस्थित देख तुरंत आसनसे उठकर खड़े हो गये और मुनियोंके साथ उनके चरणोंमें प्रणाम किया। फिर वाहनोंसे उतरकर वे तीनों देवता सोनेके सिंहासनोंपर विराजमान हुए। उस समय वेदियोंपर प्रज्वलित त्रिविध अग्नियोंकी भाँति उन तीनोंकी शोभा हो रही थी। श्वेत और लाल वर्णवाले शंकर एवं ब्रह्माजीके बीचमें बैठे हुए पीताम्बरधारी श्यामसुन्दर भगवान् विष्णु ऐसे जान पड़ते थे मानो दो पर्वत-शिखरोंके बीच बिजलीसहित मेघ दिखायी दे रहा हो। इन्द्रने उन तीनोंके चरण धोकर उस जलको अपने मस्तकपर चढ़ाया और बड़ी प्रसन्नताके साथ मधुर वाणीमें इस प्रकार स्तुति करना आरम्भ किया।

इन्द्र बोले—देव! आज मेरे द्वारा आरम्भ किया हुआ यह यज्ञ सफल हो गया; क्योंकि योगियोंको भी जिनका दर्शन मिलना अत्यन्त कठिन है, वे ही आप तीनों देवता स्वत: मुझे दर्शन देने पधारे हैं। विष्णो! यद्यपि आप एक ही हैं, तो भी सत्त्व आदि गुणोंका आश्रय लेकर आपने अपने तीन स्वरूप बना लिये हैं। इन तीनों ही रूपोंका तीनों वेदोंमें वर्णन है अथवा ये तीनों रूप तीन वेदस्वरूप ही हैं। जैसे स्फटिकमणि स्वत: उज्ज्वल है, किन्तु भाँति-भाँतिके रंगोंके सम्पर्कमें आकर विविध रंगका जान पड़ता है, उसी प्रकार आप एक होनेपर भी उपाधिभेदसे अनेकवत् प्रतीत होते हैं। आपका यह नानात्व स्फटिकमणिके रंगोंकी भाँति मिथ्या ही है। प्रभो! जैसे लकड़ियोंमें छिपी हुई आग रगड़े बिना प्रकट नहीं होती, उसी प्रकार सम्पूर्ण भूतोंके हृदयमें छिपे हुए आप परमात्मा भक्तिसे ही प्रत्यक्ष प्रकट होकर दर्शन देते हैं। आप सब प्राणियोंका उपकार करनेवाले हैं। आपमें एककी भी भक्ति हो तो अनेकोंको सुख होता है। प्रह्लादजीकी की हुई भक्तिके द्वारा आज सम्पूर्ण देवता सुखी हो गये हैं। देव! हम सभी देवता विषय-भोगोंमें ही फँसे हैं। हमारे मनपर आपकी मायाका पर्दा पड़ा है, अत: हम आपके स्वरूपको नहीं जानते; उसका यथावत् ज्ञान तो उन्हींको होता है, जो आपके चरणोंके सेवक हैं। ब्रह्मा और महादेवजी! आप दोनों भी इस जगत्के गुरु हैं; यह गुरुत्व भगवान् विष्णुका ही है, इसलिये आपलोग इनसे पृथक् नहीं हैं। वाणीसे जो कुछ भी कहा जाता है और मनसे जो कुछ सोचा जाता है, वह सब भगवान् विष्णुकी माया ही है। जो कुछ देखनेमें आ रहा है, यह सारा प्रपंच ही मिथ्या है—ऐसा विचार करके जो मनुष्य भगवान् विष्णुके चरणोंका भजन करते हैं, वे संसार-सागरसे तर जाते हैं। महादेवजी! इन चरणोंकी महिमाका कहाँतक वर्णन किया जाय, जिनका जल आप भी अपने मस्तकपर धारण करते हैं। ब्रह्माजी! मैं तो यही चाहता हूँ कि जिनकी दृष्टि पड़नेमात्रसे विकारको प्राप्त होकर प्रकृति महत्तत्त्व आदि समस्त जगत्की सृष्टि करती है, उन्हीं भगवान् विष्णुके चरण-कमलोंमें मेरा जन्म-जन्म दृढ़ अनुराग बना रहे। भगवान् नृसिंह! आपके समान दयालु प्रभु दूसरा कोई नहीं है; क्योंकि जो आपसे शत्रुभाव रखते हैं, उनके लिये भी आप सुखका

ही विस्तार करते हैं। जो लोग ऐसा कहते हैं कि आप अपने भक्तोंका शोक दूर करनेके लिये ही दयालु हैं— यह उनकी अज्ञता है।

राजन्! इस प्रकार भगवान् केशवकी स्तुति करके देवराज इन्द्रने उनके चरणोंमें प्रणाम किया तथा उनका वचन सुननेके लिये वे दत्तचित्त होकर खड़े हो गये। तब यज्ञसभामें आये हुए मुनि इन्द्रद्वारा की हुई रमापति भगवान् विष्णुकी यह स्तुति सुनकर भगवद्भक्तिकी प्रशंसा करते हुए उन्हें साधुवाद देने लगे।

नारदजी कहते हैं—मुनियोंद्वारा त्रिलोकीसे अतीत नित्य धामकी प्राप्ति करानेवाली तथा सबके सेवन करनेयोग्य अपनी भक्तिका समर्थन सुनकर सम्पूर्ण जगत्के गुरु भगवान् श्रीहरि उस समाजके भीतर इन्द्रसे मधुर वाणीमें बोले।

श्रीभगवान्ने कहा—देवराज! ये मुनि परम ज्ञानी हैं। अत: यदि ये मेरी भक्तिको गौरव देते और उसका सत्कार करते हैं तो यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है; क्योंकि ये तीनों लोकोंमें निवास करनेवाले प्राणियोंको उपदेश देनेवाले हैं। ये ही सदा नष्ट हुए वैदिक मार्गको पुन: स्थापित करते हैं। यद्यपि तुम स्वर्गके भोगोंमें आसक्त थे, तथापि जो भक्तिपूर्वक मेरी शरणमें आ गये—इसमें कोई आश्चर्य नहीं है; क्योंकि देवगुरु बृहस्पति-जैसे महात्मा तुम्हारे गुरु हैं। सुरश्रेष्ठ! तुम बहुत-सी दक्षिणावाले यज्ञोंसे मेरा यजन करो, किन्तु मनमें कोई कामना न रखो। इससे तुम तुरंत ही मेरे समीपवर्ती पद—परमधामको प्राप्त होओगे। तुम प्रत्येक यज्ञमें रत्नोंके अनेक प्रस्थ (ढेर) दान करो; फिर इसी नामसे यह स्थान इन्द्रप्रस्थ कहलायेगा। महादेवजी! आप यहीं काशी और शिवकांचीकी स्थापना कीजिये और पार्वतीजीके साथ सदा इस तीर्थमें निवास कीजिये। बृहस्पतिजी! आप भी यहाँ निगमोद्बोधक तीर्थकी स्थापना कीजिये। यहाँ स्नान करनेसे पूर्वजन्मकी स्मृति और परमात्माका ज्ञान प्राप्त हो। मैं भी यहाँ परम मनोहर द्वारकापुरी, अयोध्यापुरी, मधुवन और बदरिकाश्रमकी स्थापना करता हूँ तथा सदा यहाँ उपस्थित रहूँगा। इन्द्र! हरिद्वार और पुष्कर नामक जो दो श्रेष्ठ तीर्थ हैं, उनको भी मैं तुम्हारे हितकी कामनासे यहाँ स्थापित करता हूँ। नैमिषारण्य, कालंजरगिरि तथा सरस्वतीके तटपर भी जितने तीर्थ हैं, उन सबकी मैं यहाँ स्थापना करता हूँ।

नारदजी कहते हैं—राजा शिबि! श्रीहरिके ये कल्याणमय वचन सुनकर सबने वैसा ही किया। अब यह स्थान सम्पूर्ण तीर्थोंका स्वरूप बन गया, अत: देवराज इन्द्रने सुवर्णके यूपोंसे सुशोभित अनेक यज्ञोंद्वारा पुन: भगवान् लक्ष्मीपतिका यजन किया और भगवान्के सामने ही ब्राह्मणोंको रत्नोंके कितने ही प्रस्थ दान किये। दान देते समय उन्होंने केवल यही उद्देश्य रखा कि मुझपर सर्वात्मा नारायण सन्तुष्ट हों। तभीसे यह तीर्थ इन्द्रप्रस्थ कहलाता है।

इन्द्रने यहाँ सुवर्ण-यूपोंसे सुशोभित यज्ञोंका विधिपूर्वक अनुष्ठान पूर्ण किया और भगवान् विष्णु आदि देवताओंकी पूजा करके उन्हें विदा किया। फिर ब्रह्माजीके पुत्र वसिष्ठ आदि ऋत्विजोंको धन आदिके द्वारा सन्तुष्ट करके बृहस्पतिको आगे करके इन्द्र स्वर्गलोकको चले गये। राजन्! वहाँ भगवान्की भक्तिसे युक्त हो इन्द्रने राज्य किया और पुण्य क्षीण होनेपर पुन: हस्तिनापुरमें जन्म लिया।

वहाँ शिवशर्मा नामक एक ब्राह्मण थे, जो वेद-वेदांगोंके पारंगत विद्वान् थे। उनकी पत्नीका नाम गुणवती था। भगवान् विष्णुके सेवक देवराज इन्द्र उसीके गर्भसे उत्पन्न हुए। शिवशर्माने ज्यौतिषियोंको बुलवाया। ज्यौतिषी लग्न देखकर उसका फल बतलाने लगे— 'शिवशर्माजी! आपका यह बालक भगवान् विष्णुका प्रिय भक्त होगा तथा आपके कुलका उद्धार करेगा।' ज्यौतिषियोंका यह शान्तिदायक वचन सुनकर शिवशर्माने अपने पुत्रका नाम विष्णुशर्मा रखा और उन्हें धन देकर विदा किया। शिवशर्मा बड़े बुद्धिमान् थे। वे मन-ही-मन सोचने लगे—'मेरा जीवन धन्य है; क्योंकि मेरा पुत्र भगवान् विष्णुका भक्त होगा।' मनमें ऐसी ही बात विचारते हुए शिवशर्माने किसी अच्छे दिनको श्रेष्ठ

ब्राह्मणोंके द्वारा शिशुके जात-कर्म आदि संस्कार कराये। जब सात वर्ष व्यतीत हो गये और आठवाँ वर्ष आ लगा तब उन्होंने अपने पुत्रका उपनयन-संस्कार किया। इसके बाद बारह वर्षोंतक उसे अंगोंसहित वेद पढ़ाये। तत्पश्चात् शिवशर्माने पुत्रका विवाह कर दिया। बुद्धिमान् विष्णुशर्माने अपनी पत्नीसे एक पुत्र उत्पन्न करके अपने विषय-वासनारहित मनको तीर्थयात्रामें लगाया और पिताके पास जाकर उनके दोनों चरणोंमें प्रणाम किया। तत्पश्चात् महाप्राज्ञ विष्णुशर्मा इस प्रकार बोले—'पिताजी! मुझे आज्ञा दीजिये। मैं सत्संग प्रदान करनेवाले तृतीय आश्रमको स्वीकार करके अब श्रीविष्णुकी आराधना करूँगा। स्त्री, गृह, धन, सन्तान और सुहृद्—ये सभी जलमें उठनेवाले बुद्‌बुदोंकी तरह क्षणभंगुर हैं; अतः विद्वान् पुरुष इनमें आसक्त नहीं होता। मैंने वेदोंके स्वाध्यायसे और सन्तानोत्पत्तिके द्वारा क्रमशः ऋषि-ऋण और पितृ-ऋणसे उद्धार पा लिया है। अब तीर्थोंमें रहकर निष्कामभावसे भगवान् केशवकी आराधना करना चाहता हूँ। गुणमय पदार्थोंकी आसक्तिका त्याग करके जबतक प्रारब्ध शेष है, किसी उत्तम तीर्थमें रहनेका विचार करता हूँ।'

शिवशर्माने कहा—बेटा! मेरे लिये भी अहंकारशून्य होकर चतुर्थ आश्रममें प्रवेश करनेका समय आ गया है, अतः मैं भी विषयोंको विषकी भाँति त्यागकर श्रीकेशवरूपी अमृतका सेवन करूँगा। अब मेरी वृद्धावस्था आ गयी, अतः घरमें मेरा मन नहीं लगता। तुम्हारा छोटा भाई सुशर्मा कुटुम्बका पालन-पोषण करेगा। हम दोनों श्रीहरिके चरण-कमलोंका चिन्तन करते हुए अब यहाँसे चल दें।

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! ऐसा निश्चय करके वे दोनों मुमुक्षु पिता-पुत्र अन्धकारपूर्ण आधी रातके समय घरसे चल दिये और घूमते हुए इस परम कल्याणदायक तीर्थ इन्द्रप्रस्थमें आये। यहाँ अपने पूर्वजन्मके किये हुए यज्ञयूपोंको देखकर विष्णुशर्माको श्रीहरिके समागमका स्मरण हो आया। उन्होंने अपने पितासे कहा—'पिताजी! मैं पूर्वजन्ममें इन्द्र था। मैंने ही भगवान् विष्णुको प्रसन्न करनेकी इच्छासे यहाँ यज्ञ किये थे। यहीं मेरे ऊपर भक्तवत्सल भगवान् केशव प्रसन्न हुए थे। मैंने रत्नोंके प्रस्थ दान करके यहाँ ब्राह्मणों और सप्तर्षियोंको सन्तुष्ट किया था। उन्होंने ही मुझे विष्णुभक्तिकी प्राप्ति तथा इस जन्ममें मोक्ष होनेका आशीर्वाद दिया था। इस तीर्थको सर्वतीर्थमय बनाकर इन्द्रप्रस्थ नाम दिया गया था। उन मुनिवरोंने इसी स्थानपर मेरी मृत्यु होनेकी बात बतायी है और अन्तमें भगवान्‌के परमधामकी प्राप्ति होनेका आश्वासन दिया है। ये सब बातें मुझे इस समय याद आ रही हैं। यह निगमोद्बोधक नामक तीर्थ है, जिसे मेरे गुरु बृहस्पतिजीने स्थापित किया था। सप्ततीर्थ और निगमोद्बोध—इन दो तीर्थोंके बीचमें देवताओंने इस इन्द्रप्रस्थनामक महान् क्षेत्रकी स्थापना की है। पिताजी! यह पूर्वसे पश्चिमकी ओर एक योजन चौड़ा है और यमुनाके दक्षिण तटपर चार योजनकी लंबाईमें फैला हुआ है। महर्षियोंने इन्द्रप्रस्थकी इतनी ही सीमा बतायी है।'

निगमोद्बोध नामक तीर्थकी महिमा—शिवशर्माके पूर्वजन्मकी कथा

नारदजी कहते हैं—राजन्! यह बात सुनकर शिवशर्माके मनमें बड़ा सन्देह हुआ और उन्होंने अपने सत्यवादी पुत्र विष्णुशर्मासे पूछा—'बेटा! मैं कैसे समझूँ कि तुम पूर्वजन्ममें देवताओंके राजा इन्द्र थे और तुमने ही यज्ञ करके रत्नोंके द्वारा ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट किया था। तुम्हारी कही हुई बातें जिस प्रकार मेरी समझमें आ जायँ, वह करो। पूर्वजन्ममें किये हुए कार्योंका ज्ञान इस समय तुम्हें कैसे हो रहा है?

विष्णुशर्माने कहा—पिताजी! मुझे ऋषियोंने पूर्वजन्मकी स्मृति बनी रहनेका वरदान दिया है। उन्हींके मुँहसे इस तीर्थके विषयमें ऐसी महिमा सुनी थी। आप यहाँ निगमोद्बोध तीर्थमें स्नान कीजिये। इससे आपको भी

पूर्वजन्मकी स्मृति प्रदान करनेवाला दुर्लभ ज्ञान प्राप्त होगा।

यह सुनकर विप्रवर शिवशर्माने पूर्वजन्मकी स्मृति प्राप्त करनेके लिये भगवान् श्रीहरि, श्रीगंगाजी एवं अयोध्या आदि सात पुरियोंका स्मरण करके और भगवान् गोविन्दमें चित्त लगाकर निगमोद्बोध तीर्थमें बार-बार डुबकियाँ लगाकर स्नान किया। उसके बाद सन्ध्या-तर्पण किया। तदनन्तर सूर्यको सादर अर्घ्य देकर विविध उपचारोंसे भगवान् विष्णुका पूजन किया। इस तरह नित्यकर्म पूरा करके वे सुखपूर्वक बैठे और अपने सुयोग्य पुत्र विष्णुशर्मासे बोले।

शिवशर्माने कहा—विष्णुशर्मन्! यहाँ स्नान करनेसे मुझे भी पहलेके जन्म-कर्मोंका स्मरण हो आया है। महाभाग! मैं उन्हें तुम्हारे सामने कहता हूँ, सुनो। पूर्वजन्ममें मैं धनवान् वैश्यके कुलमें उत्पन्न हुआ था। मेरे पिताका नाम शरभ था। वे कान्यकुब्जपुरमें निवास करते थे। वहाँ व्यापारके द्वारा उन्होंने बहुत धन कमाया; परन्तु रात-दिन उन्हें यही चिन्ता घेरे रहती थी कि पुत्रके बिना मेरी संचित की हुई यह सारी धनराशि व्यर्थ ही है। इस प्रकार चिन्तामें पड़े हुए वैश्यके घर एक दिन परोक्ष विषयोंका ज्ञान रखनेवाले मुनिवर देवलजी पधारे। उन्हें आया देख मेरे पिता आसनसे उठकर खड़े हो गये। उन्होंने पाद्य और अर्घ्य देकर मुनिको प्रणाम किया, उत्तम आसनपर बैठाया और सम्मानपूर्वक कुशलप्रश्न पूछते हुए कहा—'मुनिश्रेष्ठ! आपका इस पृथ्वीपर विचरना हम-जैसे गृहस्थोंको सुख देनेके लिये ही होता है; अन्यथा यदि आप कृपा करके स्वतः न पधारें, तो घरकी चिन्तामें डूबे हुए मनुष्योंको आप-जैसे महात्माका दर्शन कहाँ हो सकता है? जिनकी बुद्धि भगवान्‌की चरण-रजके चिन्तनमें लगी हुई है, उन्हें कहीं भी कोई कामना नहीं हो सकती। तथापि यहाँ आपके पधारनेका क्या कारण है? यह शीघ्र बतानेकी कृपा करें।'

वैश्यके ऐसा कहनेपर देवल मुनिने उनके मनोभावको जाननेके लिये पूछा—'वैश्यप्रवर! तुमने धर्मपूर्वक बहुत धनका संचय कर लिया है और उसीसे तुम नित्य और नैमित्तिक क्रियाओंका भलीभाँति अनुष्ठान करते हो। फिर भी तुम्हारा शरीर सूखा क्यों जा रहा है? यदि कोई गोपनीय बात न हो, तो मुझे अवश्य बताओ।'

वैश्यने कहा—मुनिश्रेष्ठ! आपसे छिपानेयोग्य कौन-सी बात हो सकती है? आपकी कृपासे मुझे सब प्रकारका सुख है। दुःख केवल एक ही बातका है कि बुढ़ापा आ जानेपर भी अबतक मेरे कोई पुत्र नहीं हुआ। आप कृपा करके ऐसा कोई उपाय कीजिये, जिससे मैं भी पुत्रवान् हो सकूँ। आप-जैसे महात्माओंके लिये इस पृथ्वीपर कोई भी कार्य असम्भव नहीं है।

वैश्यश्रेष्ठ शरभके ये वचन सुनकर परोक्षज्ञानी देवलजीने आँखें बंद कर मनको स्थिर करके क्षणभर ध्यान किया और मेरे पिताको सन्तानकी प्राप्ति होनेमें जो रुकावट थी, उसका कारण जानकर उन्हें पुरानी बातोंकी याद दिलाते हुए कहा—"वैश्य! पहलेकी बात है, एक दिन तुम्हारी धर्मपत्नीने अपने मनमें जो कामना की थी, उसे बतलाता हूँ; सुनो। इसने पार्वतीजीसे प्रार्थना की—'शिवप्रिया गौरीदेवी! यदि मैं गर्भवती हो जाऊँ तो तुम्हें षड्रस भोजनसे सन्तुष्ट करूँगी।' इस प्रार्थनाके बाद उसी महीनेमें तुम्हारी पत्नीके गर्भ रह गया। तब सखियोंके अनुरोधसे तुम्हारी पतिव्रता पत्नीने तुम्हारे पास आकर विनयपूर्वक कहा—'नाथ! मैं सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाली पार्वती देवीकी पूजा करना चाहती हूँ, क्योंकि उन्हींकी कृपासे इस समय मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ है।'

"वैश्यप्रवर! अपनी पत्नीके ये शुभ वचन सुनकर तुम बहुत प्रसन्न हुए और तुमने मधु, अन्न, द्राक्षा और गन्ध आदि सब सामग्रियोंको मँगवाकर अपनी पत्नीके हवाले कर दिया। तब तुम्हारी पत्नीने सखियोंको बुलाकर कहा—'सहेलियो! पूजनकी सारी सामग्री मैंने मँगा ली है। यह सब लेकर तुमलोग मन्दिरमें जाओ और विधिवत् पूजा करके देवीको सन्तुष्ट करो। हमारे कुलमें गर्भवती स्त्री घरसे बाहर नहीं निकलती; इसलिये मैं नहीं चल सकूँगी। तुम्हीं लोग देवीकी पूजाके लिये जाओ।'

''तुम्हारी पत्नीकी आज्ञा पाकर सखियाँ पूजाकी सामग्री ले अम्बिकाके मन्दिरमें गयीं। वहाँ उन्होंने पार्वतीजीको प्रणाम और प्रदक्षिणा करके भक्तिपूर्वक कहा—'जगदम्बे! तुम्हें नमस्कार है। शिवप्रिये! हमारा कल्याण करो। शरभ नामक वैश्यकी पत्नी ललिताको तुम्हारी कृपासे गर्भ प्राप्त हो गया, अतः उसने तुम्हारी पूजाके लिये यह सब सामग्री हमारे हाथ भेजी है। उसके कुलमें गर्भवती स्त्री घरसे बाहर नहीं निकलती, इसीलिये वह स्वयं नहीं आ सकी है। देवि! तुम प्रसन्न होकर इस पूजनको ग्रहण करो।'

''ऐसा कहकर सखियोंने माता पार्वतीका चन्दन आदिसे विधिपूर्वक पूजन किया; परन्तु भगवती गौरीकी ओरसे उन्हें कोई उत्तर नहीं मिला। सखियाँ घर लौट आयीं और तुम्हारी पत्नीसे बोलीं कि इस पूजासे पार्वतीजी प्रसन्न नहीं हैं। सखियोंकी बात सुनकर तुम्हारी स्त्रीके मनमें बड़ी व्याकुलता हुई। वह मन-ही-मन चिन्ता करने लगी कि 'उनके सुन्दर मन्दिरमें पूजाके समय मैं स्वयं नहीं जा सकी, यही मेरा अपराध है। इसके सिवा दूसरी कोई ऐसी बात नहीं जान पड़ती, जो उनकी अप्रसन्नताका कारण हो। जो बात बीत गयी, उसको तो बदलना असम्भव है; किन्तु मैं गर्भसे छुटकारा पानेपर स्वयं भगवतीकी पूजाके लिये उनके मन्दिरमें जाऊँगी। महादेवजीकी पत्नी भगवती उमाको नमस्कार है। वे मेरा कल्याण करें।'

वैश्यने पूछा—मुने! मेरी पत्नीने जैसी प्रतिज्ञा की थी, उसके अनुसार उसने पार्वतीजीका पूजन किया; फिर उनकी अप्रसन्नताका क्या कारण है, यह बतानेकी कृपा करें।

देवलजीने कहा—वैश्यवर! इसका कारण सुनो; जब तुम्हारी पत्नीकी सखियाँ स्कन्दमाता पार्वतीका पूजन करके लौट आयीं तब विजयाने कौतूहलवश पार्वतीजीसे पूछा—'गिरिजे! ललिताकी सखियोंने तुम्हारी श्रद्धापूर्वक पूजा की है; फिर तुम प्रसन्न क्यों नहीं हुईं।'

पार्वतीजीने कहा—सखी विजया! मैं जानती हूँ, वैश्य-पत्नी घरसे बाहर निकलनेमें असमर्थ थी; इसीलिये उसकी सखियाँ आयी थीं। किन्तु मेरी-जैसी देवियाँ दूसरेके हाथकी पूजा स्वीकार नहीं कर सकतीं। उसका पति आ जाता, तो भी उसका कल्याण होता। पत्नी जिस व्रत और पूजनको करनेमें असमर्थ हो, उसे अपने पतिसे ही करा सकती है। इससे उसकी वह पूजा भंग नहीं होती। अथवा अनन्यभावसे पतिसे पूछकर किसी श्रेष्ठ ब्राह्मणके द्वारा भी वह पूजा करा सकती थी। पर उसने न तो स्वयं पूजन किया और न पतिसे करवाया। इसलिये उसका गर्भ निष्फल हो जायगा। यदि दोनों पति-पत्नी श्रद्धापूर्वक यहाँ आकर मेरी पूजा करेंगे, तो उन्हें पुत्रकी प्राप्ति होगी।''

वैश्य! तुम्हारे सन्तान न होनेमें यही कारण है, जो तुम्हें बता दिया। जैसे पूर्वकालमें महर्षि वसिष्ठने महाराज दिलीपको सन्तान-प्राप्तिके लिये नन्दिनीकी सेवा बतलायी थी, उसे सुनकर राजाने नन्दिनीको सन्तुष्ट किया था और राजाकी सेवासे प्रसन्न हुई नन्दिनीने उन्हें पुत्र प्रदान किया था, उसी प्रकार तुम भी पत्नीसहित जाकर भगवती पार्वतीकी आराधना करो। इससे वे तुम्हें पुत्र प्रदान करेंगी।

देवल मुनिका शरभको राजा दिलीपकी कथा सुनाना—राजाको नन्दिनीकी सेवासे पुत्रकी प्राप्ति

वैश्यने पूछा—मुने राजा दिलीप कौन थे तथा वह नन्दिनी गौ कौन थी, जिसकी आराधना करके महाराजने पुत्र प्राप्त किया था? इस कथाके सुननेके बाद मैं पत्नीसहित पार्वतीजीकी आराधना करूँगा।

देवलने कहा—महामते! वैवस्वत मनुके वंशमें एक दिलीप नामके श्रेष्ठ राजा हुए हैं। वे धर्मपूर्वक इस पृथ्वीका पालन करते हुए अपने उत्तम गुणोंके द्वारा समस्त प्रजाको प्रसन्न रखते थे। मगधराजकुमारी

सुदक्षिणा राजा दिलीपकी महारानी थी। महारानीको अवधमें आये बहुत दिन हो गये, किन्तु उनके गर्भसे कोई पुत्र नहीं हुआ। तब कोसलसम्राट् दिलीप अपने मनमें विचार करने लगे कि 'मैंने कोई दोष नहीं किया है और धर्म, अर्थ तथा कामका यथासमय सेवन किया है। फिर मेरे किस दोषके कारण महारानीके गर्भसे सन्तान नहीं हुई? हमारे कुलगुरु वसिष्ठजी भूत और भविष्यके ज्ञाता हैं; वे ही उस दोषको बता सकते हैं, जिससे मुझे पुत्र नहीं हो रहा है।'

ऐसा विचारकर राजा अपनी रानीसहित गुरु वसिष्ठके शुभ आश्रमपर गये। वसिष्ठजी सायंकालका नित्यकर्म समाप्त करके आश्रममें बैठे थे। उसी समय राजा और रानीने वहाँ पहुँचकर उनका दर्शन किया। महाराजने गुरुके और महारानीने गुरुपत्नी अरुन्धती देवीके चरणोंमें प्रणाम किया। वसिष्ठजीने राजाको और अरुन्धती देवीने रानीको आशीर्वाद दिया। तत्पश्चात् पूजनीय पुरुषोंमें श्रेष्ठ महर्षि वसिष्ठने मधुपर्क आदि सामग्रियोंसे अपने नवागत अतिथिका सत्कार करके उनसे कुशल पूछी।

तदनन्तर मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठने अपने योगके प्रभावसे नाना प्रकारके भोज्य पदार्थ प्रस्तुत किये और उन्हें राजा दिलीपको भोजन कराया तथा उदारहृदया अरुन्धती देवीने भी महारानी सुदक्षिणाको बड़े आदरके साथ भाँति-भाँतिके व्यंजन और पकवान भोजन कराये। जब राजा भोजन करके आरामसे बैठे, तब सदा आत्मस्वरूपमें स्थित रहनेवाले मुनि उन विनयशील नरेशका हाथ अपने हाथमें लेकर पूछने लगे—'राजन्! जिस राज्यके राजा, मन्त्री, राष्ट्र, किला, खजाना, सेना और मित्रवर्ग—ये सातों अंग एक-दूसरेके उपकारक एवं सकुशल हों, जहाँकी प्रजा अपने-अपने धर्मके पालनमें तत्पर रहती हो, जहाँ बन्धुजन और मन्त्री प्रेम और प्रसन्नतासे रहते हों, जहाँके योद्धा अस्त्र-शस्त्रोंके संचालनकी क्रियामें कुशल हों, मित्र वशमें हों और शत्रुओंका नाश हो गया हो तथा जहाँ निवास करनेवाले लोगोंका मन भगवान्‌की आराधनामें लगा रहता हो, ऐसा राज्य जिस राजाके अधिकारमें हो, उसे स्वर्गका राज्य लेकर क्या करना है? राजन्! इक्ष्वाकुकुलके धार्मिक नरेश पुत्र उत्पन्न करके उनको राज्यका भार सौंपनेके बाद तपके लिये वनमें आया करते थे। तुम तो अभी जवान हो। तुमने अभी पुत्रका मुँह भी नहीं देखा है, अतः तुम तपस्याके अधिकारी नहीं हो। फिर वैसा राज्य छोड़कर इस तपोवनमें किस लिये आये हो?'

राजाने कहा—ब्रह्मन्! मैं तपस्या करनेके लिये यहाँ नहीं आया हूँ। जैसे बाल्यावस्था चली गयी और जवानी आयी है, उसी प्रकार यह भी चली जायगी और वृद्धावस्था आयेगी। वृद्धावस्थाके अनन्तर मृत्यु निश्चित है। गुरुदेव! इस प्रकार यदि मैं पुत्र हुए बिना ही मर जाऊँगा, तो मेरे बाद यह पृथ्वीका राज्य किसके अधिकारमें रहेगा? तपोनिधे! किस दोषके कारण मुझे पुत्र नहीं होता? गुरुदेव! मेरे उस दोषको ध्यानके द्वारा देखकर शीघ्र ही बतानेकी कृपा मुझे कीजिये।

राजाका यह वचन सुनकर महर्षि वसिष्ठने ध्यान लगाया और सन्तान-बाधाका कारण जानकर इस प्रकार कहा—''नृपश्रेष्ठ! पहलेकी बात है, तुमने देवराज इन्द्रकी सेवासे राजमहलको लौटते समय उतावलीके कारण मार्गमें कल्पवृक्षके नीचे खड़ी कामधेनु गौको प्रदक्षिणा करके प्रणाम नहीं किया। इससे कामधेनुको बड़ा क्रोध हुआ और उसने यह शाप दे दिया कि 'जबतक तू मेरी सन्तानकी सेवा नहीं करेगा, तबतक तुझे पुत्र नहीं होगा।' अतः अब तुम बछड़ेसहित मेरी नन्दिनी गौकी, जो कामधेनुकी पुत्रीकी पुत्री है, इस बहूके साथ आराधना करो। यह नन्दिनी तुम्हें पुत्र प्रदान करेगी।'

इसी समय नन्दिनी गौ तपोवनसे आश्रमपर आ पहुँची। उसे देखकर मुनिवरका मन प्रसन्न हो गया। वे नन्दिनीको दिखाकर राजासे बोले—'राजन्! देखो, स्मरणमात्रसे कल्याण करनेवाली यह नन्दिनी गौ चर्चा होते ही चली आयी; अतः तुम अपनी कार्य-सिद्धिको समीप ही समझो। तपोवनमें इसके पीछे-पीछे रहकर तुम इसकी आराधना करो और आश्रमपर आनेपर रानी सुदक्षिणा इसकी सेवामें लगी रहे। इससे प्रसन्न

होकर यह गौ तुम्हें निश्चय ही पुत्र प्रदान करेगी। महाराज! तुम हाथमें धनुष लेकर वनमें पूरी सावधानीके साथ गौको चराओ, जिससे कोई हिंसक जीव इसपर आक्रमण न कर बैठे।' राजाने 'बहुत अच्छा' कहकर शीघ्र ही गुरुकी आज्ञा शिरोधार्य की।

देवलजी कहते हैं—तदनन्तर प्रात:काल जब महारानी सुदक्षिणाने फूल आदिसे नन्दिनीकी पूजा कर ली, तब राजा उस धेनुको लेकर वनमें गये। वह गौ जब चलने लगती तो राजा भी छायाकी भाँति उसके पीछे-पीछे चलते थे। जब घास आदि चरने लगती, तब वे भी फल-मूल आदि भक्षण करते थे। जब वह वृक्षोंके नीचे बैठती तो वे भी बैठते और जब पानी पीने लगती तो वे भी स्वयं पानी पीते थे। राजा हरी-हरी घास लाकर गौको देते, उसके शरीरसे डाँस और मच्छरोंको हटाते तथा उसे हाथोंसे सहलाते और खुजलाते थे। इस प्रकार वे गुरुकी कामधेनु गौके सेवनमें लगे रहे। जब शाम हुई, तब वह गौ अपने खुरोंसे उड़े हुए धूलिकणोंद्वारा राजाके शरीरको पवित्र करती हुई आश्रमको लौटी। आश्रमके निकट पहुँचनेपर रानी सुदक्षिणाने आगे बढ़कर नन्दिनीकी अगवानी की और विधिपूर्वक पूजा करके बारंबार उसके चरणोंमें मस्तक झुकाया। फिर गौकी परिक्रमा करके वह हाथ जोड़ उसके आगे खड़ी हो गयी। गौने स्थिरभावसे खड़ी होकर रानीद्वारा श्रद्धापूर्वक की हुई पूजाको स्वीकार किया, तत्पश्चात् उन दोनों दम्पतिके साथ वह आश्रमपर आयी। इस प्रकार दृढ़तापूर्वक व्रतका पालन करनेवाले राजा दिलीपके उस गौकी आराधना करते हुए इक्कीस दिन बीत गये। तत्पश्चात् राजाके भक्तिभावकी परीक्षा लेनेके लिये नन्दिनी सुन्दर घासोंसे सुशोभित हिमालयकी कन्दरामें प्रवेश कर गयी। उस समय उसके हृदयमें तनिक भी भय नहीं था। राजा दिलीप हिमालयके सुन्दर शिखरकी शोभा निहार रहे थे। इतनेमें ही एक सिंहने आकर नन्दिनीको बलपूर्वक धर दबाया। राजाको उस सिंहके आनेकी आहटतक नहीं मालूम हुई। सिंहके चंगुलमें फँसकर नन्दिनीने दयनीय स्वरमें बड़े जोरसे चीत्कार किया। उसके करुण-क्रन्दनने धनुर्धर राजाके चित्तमें दयाका संचार कर दिया। उन्होंने देखा, गौका मुख आँसुओंसे भीगा हुआ है और उसके ऊपर तीखे दाढ़ों तथा पंजोंवाला सिंह चढ़ा हुआ है। यह दु:खपूर्ण दृश्य देखकर राजा व्यथित हो उठे। उन्होंने सिंहके पंजेमें पड़ी हुई गौको फिरसे देखा और तरकससे एक बाण निकालकर उसे धनुषकी डोरीपर रखा और सिंहका वध करनेके लिये धनुषकी प्रत्यंचाको खींचा। इसी समय सिंहने राजाकी ओर देखा। उसकी दृष्टि पड़ते ही उनका सारा शरीर जडवत् हो गया। अब उनमें बाण छोड़नेकी शक्ति न रही। इससे वे बहुत ही विस्मित हुए।

राजाको इस अवस्थामें देखकर सिंहने उन्हें और भी विस्मयमें डालते हुए मनुष्यकी वाणीमें कहा—'राजन्! मैं तुम्हें जानता हूँ। तुम सूर्यवंशमें उत्पन्न राजा दिलीप हो। तुम्हारा शरीर जो जडवत् हो गया है, उसके लिये तुम्हें विस्मय नहीं करना चाहिये; क्योंकि इस हिमालयमें भगवान् शंकरकी बहुत बड़ी माया फैली है। किसी दूसरे सिंहकी भाँति मुझपर प्रहार करना भी तुम्हारे वशकी बात नहीं है; क्योंकि भगवान् शंकर मेरी पीठपर पैर रखकर अपने वृषभपर आरूढ़ हुआ करते हैं। अच्छा, अब तुम लौट जाओ और समस्त पुरुषार्थोंके साधनभूत अपने शरीरकी रक्षा करो। वीर! इस गौको दैवने मेरे आहारके लिये ही भेजा है।'

सिंहके 'वीर!' सम्बोधनसे युक्त वचन सुनकर जडवत् शरीरवाले राजा दिलीपने उसे इस प्रकार उत्तर दिया—'मृगराज! हमारे गुरु महर्षि वसिष्ठकी यह सम्पूर्ण मनोरथोंको सिद्ध करनेवाली नन्दिनी नामक धेनु है। गुरुदेवने सन्तान-प्राप्तिके उद्देश्यसे इसकी आराधना करनेके लिये इसे मुझको सौंपा है। मैंने अबतक इसकी भलीभाँति आराधना की है। यह छोटे बछड़ेकी माँ है। तुमने इसे पर्वतकी कन्दरामें पकड़ रखा है। तुम शंकरजीके सेवक हो, इसलिये तुम्हारे हाथसे बलपूर्वक इसको छुड़ाना मेरे लिये असम्भव है। अब मेरा यह शरीर अपकीर्तिसे मलिन हो चुका। मैं इस गौके बदले अपने शरीरको ही तुम्हें समर्पित करता हूँ। ऐसा करनेसे

महर्षिके धार्मिक कृत्योंमें भी कोई बाधा नहीं पड़ेगी और तुम्हारे भोजनका भी काम चल जायगा। साथ ही गो-रक्षाके लिये प्राणत्याग करनेसे मेरी भी उत्तम गति होगी।'

यह सुनकर सिंह मौन हो गया। धर्मज्ञ राजा दिलीप उसके आगे नीचे मुँह किये पड़ गये। वे सिंहके द्वारा होनेवाले दु:सह आघातकी प्रतीक्षा कर रहे थे कि अकस्मात् उनके ऊपर देवेश्वरोंद्वारा की हुई फूलोंकी वृष्टि होने लगी। फिर, 'बेटा! उठो।' यह वचन सुनकर राजा दिलीप उठकर खड़े हो गये। उस समय उन्होंने माताके समान सामने खड़ी हुई धेनुको ही देखा। वह सिंह नहीं दिखायी दिया। इससे राजाको बड़ा विस्मय हुआ। तब नन्दिनीने नृपश्रेष्ठ दिलीपसे कहा—'राजन्! मैंने मायासे सिंहका रूप बनाकर तुम्हारी परीक्षा ली है। मुनिके प्रभावसे यमराज भी मुझे पकड़नेका विचार नहीं ला सकता। तुम अपना शरीर देकर भी मेरी रक्षाके लिये तैयार थे। अत: मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम मुझसे अपना अभीष्ट वर माँगो।'

राजा बोले—माता! देहधारियोंके अन्त:करणमें जो बात होती है, वह आप-जैसी देवियोंसे छिपी नहीं रहती। आप तो मेरा मनोरथ जानती ही हैं। मुझे वंशधर पुत्र प्रदान कीजिये।

राजाकी बात सुनकर देवता, पितर, ऋषि और मनुष्य आदि सब भूतोंका मनोरथ सिद्ध करनेवाली नन्दिनीने कहा—'बेटा! तुम पत्तेके दोनेमें मेरा दूध दुहकर इच्छानुसार पी लो। इससे तुम्हें अस्त्र-शस्त्रोंके तत्त्वको जाननेवाला वंशधर पुत्र प्राप्त होगा।' यह सुनकर राजाने कामधेनुकी दौहित्री नन्दिनीसे विनयपूर्वक कहा—'माता! इस समय तो मैं आपके मधुर वचनामृतका पान करके ही तृप्त हूँ, अब आश्रमपर चलकर समस्त धार्मिक क्रियाओंके अनुष्ठानसे बचे हुए आपके प्रसादस्वरूप दूधका ही पान करूँगा।'

राजाका यह वचन सुनकर गौको बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने 'साधु-साधु' कहकर राजाका सम्मान किया। तत्पश्चात् वह उनके साथ आश्रमपर गयी। पूर्व दिनकी भाँति उस दिन भी महारानी सुदक्षिणाने आगे आकर उसका पूजन किया। महाराजके मुखको प्रसन्न देखकर रानीको कार्य-सिद्धिका निश्चय हो गया। वह समझ गयी कि जिसके लिये यह यत्न हो रहा था, वह उद्देश्य सफल हो गया। तदनन्तर वे दोनों पति-पत्नी विधिवत् पूजित हुई गौके साथ अपने गुरु वसिष्ठजीके सामने उपस्थित हुए। उन दोनोंके मुख-कमल प्रसन्नतासे खिले हुए देखकर ज्ञानके भण्डार मुनिवर वसिष्ठजी उन्हें प्रसन्न करते हुए बोले—'राजन्! मुझे मालूम हो गया कि यह गौ तुम दोनोंपर प्रसन्न है; क्योंकि इस समय तुम्हारे मुखकी कान्ति अपूर्व दिखायी दे रही है। कामधेनु और कल्पवृक्ष—दोनों ही सबकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हैं—यह बात प्रसिद्ध है। फिर उसी कामधेनुकी सन्तानकी भलीभाँति आराधना करके यदि कोई सफलमनोरथ हो जाय तो आश्चर्य ही क्या है? यह पापरहित कामधेनु तथा देवनदी गंगा दूरसे भी नाम लेनेपर समस्त मनोरथोंको पूर्ण करती हैं; फिर श्रद्धापूर्वक निकटसे सेवा करनेपर ये समस्त कामनाएँ पूर्ण करें—इसके लिये तो कहना ही क्या है। राजन्! आज इस गौकी पूजा करके रानीसहित यहीं रात्रि बिताओ। कल अपने व्रतको विधिपूर्वक समाप्त करके अयोध्यापुरीको जाना।'

देवलजी कहते हैं—वैश्यवर! इस प्रकार धेनुकी आराधनासे मनोवांछित वर पाकर राजा दिलीप रात्रिमें पत्नीसहित आश्रमपर रहे। फिर प्रात:काल होनेपर गुरुकी आज्ञा ले वे राजधानीको पधारे। कुछ दिनोंके बाद राजा दिलीपके रघु नामक पुत्र हुआ, जिसके नामसे इस पृथ्वीपर सूर्यवंशकी ख्याति हुई अर्थात् रघुके बाद वह वंश 'रघुवंश' के नामसे प्रसिद्ध हुआ। जो भूतलपर राजा दिलीपकी इस कथाका पाठ करता है, उसे धन-धान्य और पुत्रकी प्राप्ति होती है। शरभ! तुम भी इस वधूके साथ जा श्रेष्ठ पुत्रकी प्राप्तिके लिये अपनी बुद्धिसे आराधना करके पार्वतीजीको प्रसन्न करो। वे तुम्हें पापरहित, गुणवान् एवं वंशधर पुत्र प्रदान करेंगी।

इस प्रकार शरभसे राजा दिलीपके मनोहर चरित्रका वर्णन करके देवल मुनिने उन्हें अम्बिकाके पूजनकी विधि बतायी। इसके बाद वे अपने अभीष्ट स्थानको चले गये।

शरभको देवीकी आराधनासे पुत्रकी प्राप्ति; शिवशर्माके पूर्वजन्मकी कथाका और निगमोद्बोधकतीर्थकी महिमाका उपसंहार

शिवशर्मा कहते हैं—विष्णुशर्मन्! तदनन्तर शरभ वैश्यने अपनी पत्नीके साथ मन्दिरमें जाकर पुत्रकी कामनासे विधिपूर्वक स्नान करके पुष्प, धूप और दीप आदिके द्वारा भक्तिपूर्वक पार्वतीजीका पूजन किया। इस प्रकार सात दिनोंतक श्रद्धापूर्वक पूजन करनेके बाद माता पार्वतीने प्रत्यक्ष दर्शन देकर कहा—'वैश्य! तुम्हारी सुदृढ़ भक्तिसे मैं बहुत प्रसन्न हूँ। साधो! तुम जिसके लिये प्रयत्नशील हो, वह पुत्र मैं तुम्हें देती हूँ। अब तुम इन्द्रके खाण्डव वनमें जाओ। विलम्ब न करो। वहाँ परम पुण्यमय इन्द्रप्रस्थ नामक उत्तम तीर्थ है। उस तीर्थमें बृहस्पतिजीके द्वारा स्थापित किया हुआ सर्वकामप्रद निगमोद्बोधकतीर्थ है। उसमें पुत्रकी कामनासे स्नान करो। तुम्हें अवश्य पुत्र प्राप्त होगा।'

देवीके आज्ञानुसार शरभ पत्नीके साथ इस उत्तम तीर्थमें आये और पुत्रकी इच्छासे उन्होंने यहाँ स्नान किया; फिर ब्राह्मणोंको अन्य उपकरणोंसहित सौ गौएँ दान कीं तथा देवता और पितरोंका विधिपूर्वक तर्पण किया, फिर सात दिन वहाँ रहकर वे घर लौट आये। उसी महीनेमें वैश्यपत्नीको गर्भ रह गया। समयपर मेरा जन्म हुआ। मेरे योग्य होनेपर एक दिन पिताजीने संसारसे विरक्त होकर मुझसे कहा कि 'घर तुम सँभालो; मैं विषय-कामनाओंको छोड़कर श्रीहरिकी भक्ति, तीर्थ-भ्रमण और सत्संगरूपी ओषधिका पान करके संसाररूपी रोगका नाश करूँगा।' इस प्रसंगमें उन्होंने बार-बार विषयासक्तिकी निन्दा और भगवद्भक्तिकी प्रशंसा की।

मैंने श्रीगंगाजीकी प्रशंसा करते हुए पिताजीसे प्रार्थना की कि अपने समीप ही श्रीगंगाजी बहती हैं, इन्हें छोड़कर आप अन्यत्र न जाइये। पिताजी मेरी बात मानकर घरपर ही रह गये; वे प्रतिदिन तीनों समय श्रीगंगाजीमें स्नान करते और पुराणोंकी कथा सुनते रहते। एक दिन उन्होंने इन्द्रप्रस्थ तीर्थकी बड़ी महिमा सुनी और तबसे वे यहाँ आकर मोक्ष, कामनासे निगमोद्बोधकतीर्थका सेवन करने लगे। कुछ दिनों बाद उन्हें भयंकर ज्वर हो आया। तब यह समाचार पाकर मैं भी यहाँ आ गया। मेरे आनेके बाद तीर्थराजके जलमें आधा शरीर रखे हुए पिताजीकी मृत्यु हो गयी। उसी समय स्वयं भगवान् विष्णु यहाँ पधारे और पिताजीको श्रीवैकुण्ठधाममें ले गये।

पिताजीको भगवान् विष्णुका सारूप्य प्राप्त हुआ देखकर उनका अन्तिम संस्कार करनेके बाद मैं भी भगवान्का चिन्तन करता हुआ मोक्षकी कामनासे यहीं रहने लगा।

शिवशर्माकी यह बात सुनकर उसके पुत्र विष्णुशर्माने कहा—'महान् तीर्थमें निवास करनेपर भी आपको फिरसे जन्म क्यों लेना पड़ा? मुक्ति कैसे नहीं हुई?' इसके उत्तरमें शिवशर्माने कहा कि एक दिन मैं भगवान्के ध्यानमें बैठा था। महर्षि दुर्वासा उसी समय पधारे और मुझे चुप देखकर उन्होंने शाप दे दिया कि 'इस जन्ममें तेरा मनोरथ पूर्ण नहीं होगा।' मेरे बहुत गिड़गिड़ानेपर उन्होंने कहा—'अगले जन्ममें ब्राह्मण होकर तुम यहीं मृत्युको प्राप्त होओगे और फिर तुम्हें जन्म नहीं लेना पड़ेगा।' तदनन्तर फिर मैं घर लौट आया और मैंने संसारके समस्त भोगोंको अनित्य मानकर श्रीभगवन्नामकीर्तन और भजन करनेका निश्चय किया। कुछ दिनों बाद गंगातटपर मेरी मृत्यु हो गयी। दुर्वासाजीके कथनानुसार वैष्णव ब्राह्मणकुलमें मेरा जन्म हुआ। अब इस उत्तम तीर्थमें मृत्युको प्राप्त होकर मैं श्रीहरिके वैकुण्ठधाममें जाऊँगा।

नारदजी कहते हैं—राजा शिबि! इस प्रकार अपने-अपने पूर्वजन्मके कर्मोंका वर्णन करके वे दोनों पिता-पुत्र श्रीहरिके चरणकमलोंका चिन्तन करते हुए यहाँ रहने लगे और अन्तमें दोनोंने भगवान्के समान रूप प्राप्त कर लिया।

इन्द्रप्रस्थके द्वारका, कोसला, मधुवन, बदरी, हरिद्वार, पुष्कर, प्रयाग, काशी, कांची और गोकर्ण आदि तीर्थोंका माहात्म्य

राजा शिबि बोले—मुने! अब मुझे इन्द्रप्रस्थके सैकड़ों तीर्थोंमेंसे अन्य तीर्थोंका भी माहात्म्य बतलाइये।

नारदजीने कहा—राजन्! इन्द्रप्रस्थके भीतर यह द्वारका नामक तीर्थ है। इसकी महिमा सुनो। काम्पिल्य नगरमें एक बहुत सुन्दर और संगीतज्ञ ब्राह्मण रहता था। उसके गानकी सुरीली ध्वनिसे नगरकी स्त्रियोंके मनोंमें उसके प्रति पाप-वासनायुक्त बड़ा आकर्षण हो गया। नगरके लोगोंने जाकर राजासे शिकायत की। राजाके पूछनेपर ब्राह्मणने अपनेको निर्दोष बताया और नगरकी स्त्रियोंको उच्छृंखल। इतनेमें कुछ स्त्रियाँ भी वहाँ आ गयीं और निर्लज्जतापूर्ण बातें करने लगीं। ब्राह्मणने कामवासनाकी और पति-वंचनाकी निन्दा करते हुए पातिव्रतकी महिमा बताकर उन स्त्रियोंको समझाया। वे ब्राह्मणकी बात सुनकर बहुत लज्जित हुईं और परस्पर पापी कामकी निन्दा करती हुई अपने घरोंको लौट आयीं। कुछ समय बाद कारूष देशके राजाने काम्पिल्य नगरपर आक्रमण किया और युद्धमें काम्पिल्यराज मारे गये। उनका नगर लुट गया। शूरवीर मारे गये और नगरकी स्त्रियाँ जहर खाकर मर गयीं। जिन स्त्रियोंने संगीतज्ञ ब्राह्मणके प्रति आकर्षित होनेके पापका प्रायश्चित्त नहीं किया था, वे सब-की-सब बड़ी भयानक राक्षसियाँ होकर भूख-प्याससे पीड़ित रहने लगीं। वाणी और मनके किये हुए एक ही पापसे उन्हें दो जन्मोंतक राक्षसी योनिमें रहना पड़ा। अतएव पापसे डरनेवाली किसी भी स्त्रीको मन-वाणीसे कभी किसी भी पराये पतिका सेवन नहीं करना चाहिये। अपना पति रोगी, मूर्ख, दरिद्र और अंधा हो, तो भी उत्तम गतिकी इच्छा रखनेवाली स्त्रियोंको उसका त्याग नहीं करना चाहिये। ये राक्षसियाँ इन्द्रप्रस्थके द्वारका नामक तीर्थसे जल लेकर पुष्कर जाते हुए ब्राह्मणके कमण्डलुसे जलकी कुछ बूँदें पड़ते ही निष्पाप हो गयीं और भयानक राक्षसी-शरीरसे मुक्त होकर स्वर्गमें चली गयीं।

इसी इन्द्रप्रस्थमें कोसला (अयोध्या) नामक एक तीर्थ है। इसके विषयमें भी एक पुण्यमय उपाख्यान है। चन्द्रभागा नदीके किनारे एक पुरीमें चण्डक नामक एक जुआरी, शराबखोर, व्यभिचारी, डकैत, हत्यारा और मन्दिरोंका सामान चुरानेमें चतुर एक नाई रहता था। उसने एक दिन अपने समीप ही रहनेवाले मुकुन्द नामक धार्मिक और धनवान् ब्राह्मणके घरमें चोरी करनेके लिये प्रवेश करके ब्राह्मणको मार डाला। इससे उनकी स्नेहमयी माता और सती पत्नीको बड़ा दुःख हुआ और वे आर्तस्वरसे विलाप करने लगीं। इतनेमें ही मुकुन्दके गुरु वेदायन नामक संन्यासी वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने शरीरकी नश्वरताका वर्णन करते हुए आत्मज्ञानका उपदेश देकर उन लोगोंको समझाया और मुकुन्दका अन्त्येष्टि-संस्कार करवाया। मुकुन्दकी गर्भवती पत्नीको विद्वान् संन्यासीने सती होनेसे रोक दिया। मुकुन्दका छोटा भाई मुकुन्दकी अस्थियोंको लेकर गंगाजीमें छोड़नेके लिये चला, चलते-चलते वह इस कोसलातीर्थमें आया। आधी रातको यहाँ अस्थिकी गठरीको एक कुत्तेने उठाकर कोसलाके जलमें फेंक दिया। अस्थियोंके जलमें पड़ते ही मुकुन्द दिव्य विमानपर चढ़कर वहाँ आया और उसने तीर्थके माहात्म्यका वर्णन करते हुए यह बताया कि 'मेरी हड्डियोंके तीर्थमें पड़ते ही मैं नरकसे निकलकर इस उत्तम गतिको प्राप्त हुआ हूँ। नरक मुझे इसीलिये प्राप्त हुआ था कि मैं गुरुद्रोही था। अब मैं उस पापसे मुक्त होकर चौदह इन्द्रोंके कालतक सुखपूर्वक स्वर्गमें निवास करूँगा।' यों कहकर वह देवताके समान सुन्दर शरीरवाला ब्राह्मण देखते-ही-देखते तत्काल स्वर्गको चला गया।

अब उस चण्डक नाईकी कथा सुनो। मुकुन्दकी हत्याका समाचार पाकर राजाने चण्डकको पकड़ मँगवाया और उसे चन्द्रभागासे आठ कोसकी दूरीपर ले जाकर चाण्डालोंके द्वारा मरवा डाला। वह मारवाड़

देशमें काला साँप हुआ। एक ब्राह्मण अपने माता-पिताकी हड्डियाँ गंगाजीमें डालनेके लिये एक पेटीमें रखकर लाया था और वह कुछ साधुओंके दलके साथ वहीं आकर ठहरा, जहाँ साँप रहता था। रातको साँप उस पेटीमें घुस गया और पेटीके साथ वह भी कोसलातटपर आ पहुँचा। यहाँ पेटी खोली गयी तो साँप निकल भागा; पर लोगोंने उसे मार डाला और मरते ही वह देवशरीर प्राप्तकर दिव्य विमानमें बैठकर आ गया। उसने कहा, 'मैं चण्डक नामक नाई था और ब्रह्महत्याके पापसे पाँच लाख वर्षतक नरककी पीड़ा और बीस हजार वर्षतक सर्पयोनि भोगकर आज इस तीर्थमें मरनेके कारण परम उत्तम देवत्वको प्राप्त हुआ हूँ।'

तीर्थका यह प्रत्यक्ष वैभव देखकर उस ब्राह्मणने भी अपने माता-पिताकी हड्डियोंको इसी तीर्थमें डाल दिया। हड्डियोंके पड़ते ही उसके माता-पिता श्रेष्ठ विमानपर बैठकर दिव्यरूप धारण किये यहाँ आये और अपने पुत्रको आशीर्वाद देते हुए स्वर्गको चले गये। फिर वे सब साधु भी इसी कोसलातीर्थमें रह गये और अन्तमें वैकुण्ठको प्राप्त हुए।

नारदजी कहते हैं—यह परमपावन मधुवनतीर्थ है, यहाँ विश्रान्तिघाट नामक तीर्थ है। एक ब्राह्मण पर्णशाला बनाकर यहाँ भगवान्‌के दर्शनकी इच्छासे सकुटुम्ब रहते थे। एक दिन तीर्थमें स्नान करते समय भी उन्हें यही अभिलाषा हुई और तत्काल भगवान्‌ने दर्शन देकर उनको कृतार्थ कर दिया और वे भगवान्‌की स्तुति करके उन्हींके साथ वैकुण्ठलोकको चले गये।

इस मधुवनसे ग्यारह धनुषकी दूरीपर एक बदरिकाश्रमतीर्थ है। मगधदेशमें देवदास नामक एक सत्यवादी, जितेन्द्रिय और धर्मात्मा ब्राह्मण रहते थे। वे भगवान्‌के परम भक्त थे। उनके घरमें उत्तमा नामकी गुणवती पतिव्रता पत्नी थी। देवदासके अंगद नामक एक पुत्र और वलया नामकी एक कन्या थी। देवदासने दोनोंका विवाह कर दिया। कन्या विवाहिता होनेपर ससुराल चली गयी और पुत्र अंगदने घरका काम सँभाल लिया। कुछ समय बाद विप्रवर देवदासने अपनी पत्नी उत्तमासे परामर्श करके निश्चय किया कि अब इस वृद्धावस्थामें संसारके समस्त विनाशी पदार्थोंसे मन हटाकर इन्द्रिय-संयमपूर्वक हमलोगोंको भगवान्‌का भजन और तीर्थसेवन करना चाहिये। फिर उन्होंने अपने पुत्र अंगदको बुलाकर भगवान् श्रीहरिकी आराधनाका महत्त्व बतलाते हुए अपना निश्चय सुनाया और पुत्रसे अनुमति पाकर वे दोनों कुछ धन लेकर भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये चल पड़े। रास्तेमें कल्पग्रामके एक सिद्ध पुरुषसे उनकी भेंट हुई। उस सिद्ध पुरुषने इन्द्रप्रस्थके बदरी नामक तीर्थका माहात्म्य सुनाया, जिसमें पूर्वजन्मके व्यभिचार और डकैती आदि पापोंके फलस्वरूप भयंकर भैंसा बने हुए एक राजाका तीर्थमें प्रवेश करते ही उद्धार हो गया था। फिर सिद्ध पुरुषने उन दोनोंसे कहा कि 'यदि तुम भी अपने परमकल्याणकी इच्छा रखते हो, तो वहीं चले जाओ। मैं भी अपने निःस्पृह और मोक्षके इच्छुक बूढ़े पिताको इस बदरिकाश्रमतीर्थमें लानेके लिये घर जा रहा हूँ।' सिद्धकी बात सुनकर धीरबुद्धि ब्राह्मण देवदास तीर्थोंमें घूमते हुए इन्द्रप्रस्थमें आये और यहाँ इस बदरिकाश्रममें भगवान् उन्हें उसी शरीरसे परमधामको ले गये। सिद्ध पुरुषने भी शीघ्र ही अपने पिताको घरसे लाकर उस तीर्थमें नहलवाया। इससे उनको भी भगवान् विष्णुका परमधाम प्राप्त हो गया।

इन्द्रप्रस्थमें हरिद्वार नामक तीर्थ है। इसकी भी बड़ी महिमा है। कुरुक्षेत्रमें नगरसे बाहर कालिंग नामक एक पापी चाण्डाल रहता था। एक बार सूर्यग्रहणके समय आये हुए एक धनी वैश्यके पीछे वह लग गया और कुरुक्षेत्रसे उस वैश्यके लौटनेके समय इसी हरिद्वारमें आधी रातके वक्त उस पापीने वैश्यके खेमेमें चोरी करनेकी चेष्टा की और दो पहरेदारोंको मार डाला। इसी समय वैश्यके एक सेवकने दूरसे बाण मारा, जिससे भागता हुआ वह पापी भी मर गया। तदनन्तर चाण्डालद्वारा मारे हुए वैश्यके दोनों पहरेदार और वह चाण्डाल—तीनों देवताओंके द्वारा लाये हुए विमानपर चढ़कर वैश्यसे बोले—'देखो इस तीर्थका माहात्म्य!

यह हरिद्वार पापियोंका भी कल्याण करनेवाला है।' यों कहकर वे स्वर्गलोकको चले गये। दूसरे दिन वैश्यने अपने दोनों पहरेदारोंके शरीरोंका दाह-संस्कार कराकर उनकी हड्डियाँ हरिद्वारतीर्थमें डलवा दीं। इसके परिणामस्वरूप वे दोनों भाग्यवान् स्वर्गसे लौटकर भगवान् विष्णुके परमधाममें चले गये। तदनन्तर बुद्धिमान् वैश्यने अपने घर जाकर सांसारिक कार्योंको धर्मपूर्वक करते हुए भगवान्की भक्तिमें मन लगाया और अन्तमें इसी वैकुण्ठधामकी प्राप्ति करानेवाले तीर्थमें आकर मृत्युको प्राप्त हुआ।

अब इन्द्रप्रस्थके पुष्करतीर्थका माहात्म्य सुनो। विदर्भ नगरमें मालव नामक एक ब्रह्मवेत्ता, शान्त, विद्वान्, हरिभक्त, देवता, ऋषि, पितर, मनुष्य और समस्त भूत-प्राणियोंके पोषक ब्राह्मण रहते थे। वे एक समय जब बृहस्पति सिंहराशिपर थे, दान करनेके लिये दस हजार स्वर्णमुद्राएँ साथ लेकर गोदावरी नदीमें स्नान करनेको चले। उन्होंने आधे रुपये अपने पुण्डरीक नामक भानजेको देनेका विचार किया और आधे अन्यान्य श्रोत्रिय ब्राह्मणोंको। गोदावरीके तटपर पहुँचनेके बाद मालवके बुलाये हुए उनके भानजे पुण्डरीक भी वहीं आ गये और उन्होंने अपना आधा धन पुण्डरीकको दे दिया। पुण्यात्मा पुण्डरीकने अपने धनमेंसे चौथाई भाग प्रसन्नतापूर्वक श्रोत्रिय ब्राह्मणोंको दिया। इसके बाद वे अपने मामा मालवसे उपदेश, आशीर्वाद और सन्देश प्राप्त करके अपने घरकी ओर लौटे और कुछ दिनों बाद इस कल्याणप्रद तीर्थमें आये। यहाँ आकर अपने छोटे भाई भरतको खूनसे लथपथ और अन्तिम श्वास लेते हुए पृथ्वीपर पड़ा देखा। कुछ ही देरमें पीड़ासे छटपटाकर उसने प्राण त्याग दिये। उसी समय आकाशसे एक विमान उतरा और दिव्य देह धारण करके भरत उसपर जा बैठा। फिर उस समय भरतने भाई पुण्डरीकसे कहा—'भाईजी! इस समय मैं तुम्हें मारकर मामाका दिया हुआ धन छीननेके लिये आया था और तुम्हारी ही घातमें था। परन्तु आधी रातके समय बाहरसे आये हुए व्यापारियोंके सेवकोंने मुझे चोर समझकर मार दिया। पर इस पुष्करतीर्थके प्रसादसे मैंने दिव्य देह प्राप्त कर ली। मैं एक बार बाजारमें किसी अनाथ बालकको मरा देखकर उसे उठाकर गंगाजीके सुन्दर तटपर ले गया था और कफन आदिसे ढककर उसका दाह-संस्कार किया था। उसी पुण्यसे मुझे इस तीर्थकी प्राप्ति हुई।'

धर्मात्मा पुण्डरीकने भाई भरतकी सद्गति देखकर अपने हृदयमें अनुमान किया कि यह तीर्थ मन:कामना पूर्ण करनेवाला है। फिर उन्होंने 'माघभर भगवान् विष्णु अपने साक्षात् स्वरूपसे मेरे घरमें पधारकर निवास करें' इस कामनासे पुष्करतीर्थमें स्नान किया। तदनन्तर घर लौटकर पौषकी पूर्णिमाके दिन घरको भलीभाँति सजाकर उत्सव किया, ब्राह्मणभोजन करवाया और भगवान्का गुणगान करते हुए जागरण किया। भगवान्के पधारनेकी प्रतीक्षा तो थी ही। दूसरे दिन सचमुच ही भगवान् उसके घर पधार गये। पुण्डरीकने आनन्दमग्न होकर आसन, अर्घ्य आदिके द्वारा भगवान्की पूजा की और फिर स्तवन करके माघभर घरमें निवास करनेके लिये उनसे प्रार्थना की। भगवान् उसके द्वारा विविध भाँतिसे पूजित होकर पूरे माघभर उसके घरमें रहे और अन्तमें उसको सर्वतीर्थशिरोमणि इन्द्रप्रस्थके पुष्करतीर्थमें लाकर स्नान कराया। बस, उसी समय पुण्डरीकके शरीरसे एक दिव्य ज्योति निकली और वह भगवान् गोविन्दके चरणोंमें समा गयी।

अब इन्द्रप्रस्थके प्रयागकी महिमा सुनो। नर्मदा नदीके किनारे माहिष्मतीपुरीमें एक रूप-यौवन-सम्पन्ना, नाच-गानमें निपुण मोहिनी नामकी वेश्या रहती थी। धनके लोभमें उसने अनेकों महापाप किये थे। वृद्धावस्था आनेपर उसको सुबुद्धि आयी और उसने अपना धन बगीचे, पोखरे, बावली, कुआँ, देवमन्दिर और धर्मशाला बनवानेमें लगाया। यात्रियोंके लिये भोजन और जगह-जगह जलकी भी व्यवस्था की। एक बार वह बीमार पड़ी। अपना सारा धन ब्राह्मणोंको देना चाहा, पर ब्राह्मणोंके न लेनेपर उसने एक भाग अपने दासियोंको और दूसरा परदेशी यात्रियोंको दे दिया। स्वयं निर्धन हो गयी। इस समय जरद्गवा नामक मोहिनीकी

एक सखी उसकी सेवा करती थी। भाग्यवश कुछ दिनोंमें वह अच्छी हो गयी, पर निर्धनताकी अवस्थामें जरद्गवाके घर रहनेमें उसे बड़ा संकोच हुआ और वह घरसे निकल गयी।

एक दिन मोहिनी वनके मार्गसे जा रही थी। चोरोंने उसके पास धन समझकर लोभसे उसे मार दिया। पर जब धन नहीं मिला, तब वे उसे वनमें ही छोड़कर चल दिये। अभी मोहिनीकी साँस चल रही थी, उसी समय एक वानप्रस्थी महात्मा इस प्रयागके जलको कमण्डलुमें लिये वहाँ आ पहुँचे और तीर्थकी महिमा कहते हुए उन्होंने मोहिनीके मुखमें वह जल डाल दिया। उस समय मोहिनीके मनमें किसी राजाकी महारानी बननेकी इच्छा थी। मुँहमें प्रयागका जल पड़ते ही मोहिनी मर गयी और दूसरे जन्ममें वह द्रविड़ देशमें राजा वीरवर्माकी हेमांगी नामक महारानी हुई। राजमन्त्रीकी लड़की कला उसकी सखी थी। एक दिन हेमांगी कलाके घर गयी और कलाने एक सोनेकी पेटीमें उसे एक विचित्र पुस्तक दिखायी, जिसमें अवतारोंके चित्रोंके साथ-साथ सारे भूगोलका मानचित्र था। मानचित्र देखते-देखते हेमांगीकी दृष्टि इस प्रयागतीर्थपर पड़ी और उसे तुरंत अपने पूर्वजन्मका स्मरण हो आया। तदनन्तर उसने घर लौटकर अपने पतिसे पूर्वजन्मकी सारी घटनाएँ सुनाकर प्रार्थना की कि 'नाथ! मैं उस तीर्थ-जलके प्रसादसे ही आपके घरकी रानी बनी हूँ। इस समय आपके साथ चलकर इन्द्रप्रस्थके मनोवांछा पूर्ण करनेवाले तीर्थराज प्रयागका दर्शन करना चाहती हूँ। जब मैं उस तीर्थराजके लिये चल पड़ूँगी, तभी अन्न-जल ग्रहण करूँगी।' राजाके पूरा विश्वास न करनेपर उसी समय आकाशवाणीने कहा—'राजन्! तुम्हारी पत्नीका कथन सत्य है। इन्द्रप्रस्थके परम पवित्र प्रयागतीर्थमें जाकर तुम स्नान करो। इससे तुम्हारी सारी इच्छाएँ पूर्ण हो जायँगी।' तब तो राजा आकाशवाणीको नमस्कार करके मन्त्रीको सारा भार सौंप हेमांगीके साथ चल पड़े और कुछ दिनोंमें इन्द्रप्रस्थके प्रयागमें आ पहुँचे। 'इस प्रयागस्नानके पुण्यसे हमपर भगवान् विष्णु प्रसन्न हों' इस इच्छासे तीर्थमें स्नान करते ही भगवान् विष्णु और ब्रह्माजी क्रमशः गरुड़ और हंसपर बैठे हुए वहाँ आ पहुँचे। राजा वीरवर्माने मस्तक झुकाकर भगवान्‌के दोनों स्वरूपोंको प्रणाम किया और एकाग्रचित्तसे उनकी विलक्षण स्तुति की। फिर हेमांगीने उनका स्तवन करके मनोरथ पूर्ण करनेकी प्रार्थना की। भगवान् विष्णु और ब्रह्माजीने प्रसन्न होकर हेमांगीकी बड़ी प्रशंसा की और फिर दोनोंको अपने साथ सत्यलोकमें ले गये।

अब इन्द्रप्रस्थके काशीतीर्थका परम पवित्र तथा यश और आयुको बढ़ानेवाला माहात्म्य सुनो। सत्ययुगमें इन्द्रप्रस्थके काशीतीर्थमें शिंशपाके वृक्षपर एक कौआ रहता था और उसके नीचे खोखलेमें एक बहुत बड़ा साँप। एक दिन आँधी आयी और शिंशपाका वृक्ष उखड़कर गिर पड़ा। उसके नीचे दबकर साँप और कौआ मर गये। फिर तो शिंशपा, कौआ और साँप—तीनों ही दिव्य रूप धारण करके तीन विमानोंपर सवार होकर भगवान्‌के वैकुण्ठधाममें चले गये। पूर्वजन्ममें वह कौआ कुरुजांगल देशमें श्रवण नामक ब्राह्मण था और एकान्तमें अकेला मिठाइयाँ उड़ाया करता था। वह कालसर्प उसी ब्राह्मणका भाई कुरण्टक था, जो बड़ा नास्तिक, निर्दयी, वेदमार्गको तोड़नेवाला और देवताओंका निन्दक था और वह शिंशपा पेड़ बनी हुई श्रवणकी स्त्री कुण्ठा थी, जो दोनोंके ही दोषोंसे युक्त थी। इसीलिये वह स्थावर बनकर दोनोंका ही आश्रय हुई। इन दोनों भाइयोंने एक दिन किसी पथिककी कुएँमें पड़ी हुई गौको बाहर निकाल दिया था और घर आनेपर कुण्ठाने 'बहुत अच्छा' कहकर उनके कार्यका समर्थन किया था। इसी पुण्यके प्रभावसे इन्द्रप्रस्थके तटपर स्थित काशीमें दुर्लभ मृत्युको पाकर वे तीनों वैकुण्ठको गये।

अब इन्द्रप्रस्थके गोकर्णतीर्थकी महिमा सुनो। यह शिवजीका परम पवित्र क्षेत्र है। इसमें मरनेवाला मनुष्य निस्सन्देह शिवस्वरूप हो जाता है। गोकर्णतीर्थमें मरे हुए मनुष्यका पुनर्जन्म नहीं होता।

इन्द्रप्रस्थके किनारे शिवकांचीतीर्थ है। इसमें मरनेवाला भी पुनर्जन्मको नहीं प्राप्त होता। यहाँ

श्रीमहादेवजीने भगवान् विष्णुकी आराधना करके भक्तराजकी पदवी पायी है। हेरम्ब नामक एक धर्मात्मा ब्राह्मण बड़े शिवभक्त थे। वे शिवतीर्थोंमें घूमते हुए यहाँ शिवकांचीमें आये और यहीं उनके प्राण छूटे। वे भगवान् शिवजीके लोकमें जाकर पश्चात् वैकुण्ठको प्राप्त हुए।

इसके सिवा इन्द्रप्रस्थमें कपिलाश्रम, केदार और प्रभास आदि और भी बहुत-से तीर्थ हैं। उनका भी बड़ा माहात्म्य है।

सौभरि कहते हैं—राजा शिबिसे यों कहकर मुनिश्रेष्ठ नारदजी भगवान्‌के गुणोंका गान करते हुए वहाँसे चले गये। राजा शिबिने मुनिके मुखसे इन्द्रप्रस्थका यह वैभव सुनकर अपनेको कृतार्थ माना और विधिपूर्वक स्नान करके अपनी धार्मिक क्रियाएँ पूरी कीं। तदनन्तर वे अपने नगरको चले गये। राजा युधिष्ठिर! यह मैंने यमुना-तीरवर्ती इन्द्रप्रस्थके लोक-पावन माहात्म्यका तुमसे वर्णन किया है।

सूतजी कहते हैं—शौनकजी! इस प्रकार सौभरि मुनिसे इन्द्रप्रस्थका माहात्म्य सुनकर राजा युधिष्ठिर हस्तिनापुरको गये और वहाँसे अपने दुर्योधन आदि भाइयोंको साथ ले राजसूययज्ञ करनेकी इच्छासे पुण्यमय इन्द्रप्रस्थमें आये। राजाने अपने कुलदेवता भगवान् गोविन्दको द्वारकासे बुलाकर राजसूययज्ञके द्वारा उनका यजन किया। 'यह तीर्थ मुक्ति देनेवाला है; अतः यहाँ मुँहसे कुत्सित वचन कहनेपर भी शिशुपालकी मुक्ति हो जायगी।' यह सोचकर ही श्रीहरिने वहाँ शिशुपालका वध किया। शिशुपालने भी उस तीर्थमें मरनेके कारण समस्त पुरुषार्थोंके दाता भगवान् श्रीकृष्णका सायुज्य प्राप्त कर लिया। जहाँ शिशुपाल मारा गया और जहाँ राजा युधिष्ठिरने यज्ञ किया, उस स्थानपर भीमसेनने अपनी गदासे एक विस्तृत कुण्ड बना दिया था। वह पावन कुण्ड इस पृथ्वीपर भीमकुण्डके नामसे विख्यात हुआ। वह यमुनाके दक्षिण एक कोसके भूभागमें है। इन्द्रप्रस्थकी यमुनामें स्नान करनेसे जो फल होता है, वही फल उस कुण्डमें स्नान करनेसे मिल जाता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। जो मनुष्य प्रतिवर्ष इस तीर्थकी परिक्रमा करता है, वह क्षेत्रापराधजनित दोषों और पातकोंसे मुक्त हो जाता है। जो भगवान्‌के नामोंका जप करते हुए इस तीर्थकी प्रदक्षिणा करता है, उसे पग-पगपर कपिलादानका फल मिलता है। जो मनुष्य चैत्र कृष्णा चतुर्दशीको इन्द्रप्रस्थकी प्रदक्षिणा करता है, वह धन्य एवं सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

वसिष्ठजीका दिलीपसे तथा भृगुजीका विद्याधरसे माघस्नानकी महिमा बताना तथा माघस्नानसे विद्याधरकी कुरूपताका दूर होना

ऋषियोंने कहा—लोमहर्षण सूतजी! अब हमें माघका माहात्म्य सुनाइये, जिसको सुननेसे लोगोंका महान् संशय दूर हो जाय।

सूतजी बोले—मुनिवरो! आपलोगोंको साधुवाद देता हूँ। आप भगवान् श्रीकृष्णके शरणागत भक्त हैं; इसीलिये प्रसन्नता और भक्तिके साथ आपलोग बार-बार भगवान्‌की कथाएँ पूछा करते हैं। मैं आपके कथनानुसार माघ-माहात्म्यका वर्णन करूँगा; जो अरुणोदयकालमें स्नान करके इसका श्रवण करते हैं, उनके पुण्यकी वृद्धि और पापका नाश होता है। एक समयकी बात है, राजाओंमें श्रेष्ठ महाराज दिलीपने यज्ञका अनुष्ठान पूरा करके ऋषियोंद्वारा मंगल-विधान होनेके पश्चात् अवभृथ-स्नान किया। उस समय सम्पूर्ण नगरनिवासियोंने उनका बड़ा सम्मान किया। तदनन्तर राजा अयोध्यामें रहकर प्रजाजनोंकी रक्षा करने लगे। वे समय-समयपर वसिष्ठजीकी अनुमति लेकर प्रजावर्गका पालन किया करते थे। एक दिन उन्होंने वसिष्ठजीसे कहा—'भगवन्! आपके प्रसादसे मैंने आचार, दण्डनीति, नाना प्रकारके राजधर्म, चारों वर्णों और आश्रमोंके कर्म, दान, दानकी विधि, यज्ञ, यज्ञके विधान, अनेकों व्रत, उनके

उद्यापन तथा भगवान् विष्णुकी आराधना आदिके सम्बन्धमें बहुत कुछ सुना है। अब माघस्नानका फल सुननेकी इच्छा है। मुने! जिस विधिसे इसको करना चाहिये, वह मुझे बताइये।'

वसिष्ठजीने कहा—राजन्! मैं तुम्हें माघस्नानका फल बतलाता हूँ, सुनो। जो लोग होम, यज्ञ तथा इष्टापूर्त कर्मोंके बिना ही उत्तम गति प्राप्त करना चाहते हों, वे माघमें प्रातःकाल बाहरके जलमें स्नान करें। जो गौ, भूमि, तिल, वस्त्र, सुवर्ण और धान्य आदि वस्तुओंका दान किये बिना ही स्वर्गलोकमें जाना चाहते हों, वे माघमें सदा प्रातःकाल स्नान करें। जो तीन-तीन राततक उपवास, कृच्छ्र और पराक आदि व्रतोंके द्वारा अपने शरीरको सुखाये बिना ही स्वर्ग पाना चाहते हों, उन्हें भी माघमें सदा प्रातःकाल स्नान करना चाहिये। वैशाखमें जल और अन्नका दान उत्तम है, कार्तिकमें तपस्या और पूजाकी प्रधानता है तथा माघमें जप, होम और दान—ये तीन बातें विशेष हैं। जिन लोगोंने माघमें प्रातःस्नान, नाना प्रकारका दान और भगवान् विष्णुका स्तोत्र-पाठ किया है, वे ही दिव्यधाममें आनन्दपूर्वक निवास करते हैं। प्रिय वस्तुके त्याग और नियमोंके पालनसे माघमास सदा धर्मका साधक होता है और अधर्मकी जड़ काट देता है। यदि सकामभावसे माघस्नान किया जाय तो उससे मनोवांछित फलकी सिद्धि होती है और निष्कामभावसे स्नान आदि करनेपर वह मोक्ष देनेवाला होता है। निरन्तर दान करनेवाले, वनमें रहकर तपस्या करनेवाले और सदा अतिथि-सत्कारमें संलग्न रहनेवाले पुरुषोंको जो दिव्यलोक प्राप्त होते हैं, वे ही माघस्नान करनेवालोंको भी मिलते हैं। अन्य पुण्योंसे स्वर्गमें गये हुए मनुष्य पुण्य समाप्त होनेपर वहाँसे लौट आते हैं; किन्तु माघस्नान करनेवाले मानव कभी वहाँसे लौटकर नहीं आते। माघस्नानसे बढ़कर कोई पवित्र और पापनाशक व्रत नहीं है। इससे बढ़कर कोई तप और इससे बढ़कर कोई महत्त्वपूर्ण साधन नहीं है। यही परम हितकारक और तत्काल पापोंका नाश करनेवाला है। महर्षि भृगुने मणिपर्वतपर विद्याधरसे कहा था—'जो मनुष्य माघके महीनेमें, जब उषःकालकी लालिमा बहुत अधिक हो, गाँवसे बाहर नदी या पोखरेमें नित्य स्नान करता है, वह पिता और माताके कुलकी सात-सात पीढ़ियोंका उद्धार करके स्वयं देवताओंके समान शरीर धारण कर स्वर्गलोकमें चला जाता है।'

दिलीपने पूछा—ब्रह्मन्! ब्रह्मर्षि भृगुने किस समय मणिपर्वतपर विद्याधरको धर्मोपदेश किया था—बतानेकी कृपा करें।

वसिष्ठजी बोले—राजन्! प्राचीन कालमें एक समय बारह वर्षोंतक वर्षा नहीं हुई। इससे सारी प्रजा उद्विग्न और दुर्बल होकर दसों दिशाओंमें चली गयी। उस समय हिमालय और विन्ध्यपर्वतके बीचका प्रदेश खाली हो गया। स्वाहा, स्वधा, वषट्कार और वेदाध्ययन—सब बंद हो गये। समस्त लोकमें उपद्रव होने लगा। धर्मका तो लोप हो ही गया था, प्रजाका भी अभाव हो गया। भूमण्डलपर फल, मूल, अन्न और पानीकी बिलकुल कमी हो गयी। उन दिनों नाना प्रकारके वृक्षोंसे आच्छादित नर्मदा नदीके रमणीय तटपर महर्षि भृगुका आश्रम था। वे उस आश्रमसे शिष्योंसहित निकलकर हिमालय पर्वतकी शरणमें गये। वहाँ कैलासगिरिके पश्चिममें मणिकूट नामका पर्वत है, जो सोने और रत्नोंका ही बना हुआ है। उस परम रमणीय श्रेष्ठ पर्वतको देखकर अकाल-पीड़ित महर्षि भृगुका मन बहुत प्रसन्न हुआ और उन्होंने वहीं अपना आश्रम बना लिया। उस मनोहर शैलपर वनों और उपवनोंमें रहते हुए सदाचारी भृगुजीने दीर्घकालतक भारी तपस्या की।

इस प्रकार जब ब्रह्मर्षि भृगुजी वहाँ अपने आश्रमपर निवास करते थे, एक समय एक विद्याधर अपनी पत्नीके साथ पर्वतसे नीचे उतरा। वे दोनों मुनिके पास आये और उन्हें प्रणाम करके अत्यन्त दुःखी हो एक ओर खड़े हो गये। उन्हें इस अवस्थामें देख ब्रह्मर्षिने मधुर वाणीसे पूछा—'विद्याधर! प्रसन्नताके साथ बताओ, तुम दोनों इतने दुःखी क्यों हो?'

विद्याधरने कहा—द्विजश्रेष्ठ! मेरे दुःखका

कारण सुनिये। मैं पुण्यका फल पाकर देवलोकमें गया। वहाँ देवताका शरीर, दिव्य नारीका सुख और दिव्य भोगोंका अनुभव प्राप्त करके भी मेरा मुँह बाघका-सा हो गया। न जाने यह किस दुष्कर्मका फल उपस्थित हुआ है। यही सोच-सोचकर मेरे मनको कभी शान्ति नहीं मिलती। ब्रह्मन्! एक और भी कारण है, जिससे मेरा मन व्याकुल हो रहा है। यह मेरी कल्याणमयी पत्नी बड़ी मधुरभाषिणी तथा सुन्दरी है। स्वर्गलोकमें शील, उदारता, गुणसमूह, रूप और यौवनकी सम्पत्तिद्वारा इसकी समानता करनेवाली एक भी स्त्री नहीं है। कहाँ तो यह देवमुखी सुन्दरी रमणी और कहाँ मेरे-जैसा व्याघ्रमुख पुरुष? ब्रह्मन्! मैं इसी बातकी चिन्ता करके मन-ही-मन सदा जलता रहता हूँ।

भृगुजीने कहा—विद्याधरश्रेष्ठ! पूर्वजन्ममें तुम्हारे द्वारा जो अनुचित कर्म हुआ है, वह सुनो। निषिद्ध कर्म कितना ही छोटा क्यों न हो, परिणाममें वह भयंकर हो जाता है। तुमने पूर्वजन्ममें माघके महीनेमें एकादशीको उपवास करके द्वादशीके दिन शरीरमें तेल लगा लिया था। इसीसे तुम्हारा मुँह व्याघ्रके समान हो गया। पुण्यमयी एकादशीका व्रत करके द्वादशीको तेलका सेवन करनेसे पूर्वकालमें इलानन्दन पुरूरवाको भी कुरूप शरीरकी प्राप्ति हुई थी। वे अपने शरीरको कुरूप देख उसके दुःखसे बहुत दुःखी हुए और गिरिराज हिमालयपर जाकर गंगाजीके किनारे स्नान आदिसे पवित्र हो प्रसन्नतापूर्वक कुशासनपर बैठे। राजाने अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियोंको वशमें करके हृदयमें भगवान्का ध्यान करना आरम्भ किया। उन्होंने ध्यानमें देखा—भगवान्का श्रीविग्रह नूतन नील मेघके समान श्याम है। उनके नेत्र कमलदलके समान विशाल हैं। वे अपने हाथोंमें शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हुए हैं। उनका श्रीअंग पीताम्बरसे ढका है। वक्षःस्थलमें कौस्तुभमणि अपना प्रकाश फैला रही है तथा वे गलेमें वनमाला धारण किये हुए हैं। इस प्रकार श्रीहरिका चिन्तन करते हुए राजाने प्राणवायुके मार्गको भीतर ही रोक लिया और नासिकाके अग्रभागपर दृष्टि जमाये कुण्डलिनीके मुखको ऊपर उठाकर स्वयं सुषुम्णा नाडीमें स्थित हो गये। इस तरह एक मासतक निराहार रहकर उन्होंने दुष्कर तपस्या की।

इस थोड़े दिनोंकी तपस्यासे ही भगवान् संतुष्ट हो गये। उन्होंने राजाके सात जन्मोंकी आराधनाका स्मरण करके उन्हें स्वयं प्रकट हो प्रत्यक्ष दर्शन दिया। उस दिन माघ शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथि थी, सूर्य मकरराशिपर स्थित थे। भगवान् वासुदेवने बड़ी प्रसन्नताके साथ चक्रवर्ती नरेश पुरूरवापर शंखका जल छोड़ा और उन्हें अत्यन्त सुन्दर एवं कमनीय रूप प्रदान दिया। वह रूप इतना मनोहर था, जिससे देवलोककी नायिका उर्वशी भी आकृष्ट हो गयी और उसने पुरूरवाको पतिरूपमें प्राप्त करनेकी अभिलाषा की। इस प्रकार राजा पुरूरवा भगवान्से वरदान पाकर कृतकृत्य हो अपने नगरमें लौट आये। विद्याधर! कर्मकी गति ऐसी ही है। इसे जानकर भी तुम क्यों खिन्न होते हो? यदि तुम अपने मुखकी कुरूपता दूर करना चाहते हो तो मेरे कहनेसे शीघ्र ही मणिकूट-नदीके जलमें माघस्नान करो। वह प्राचीन पापोंका नाश करनेवाला है। तुम्हारे भाग्यसे माघ बिलकुल निकट है। आजसे पाँच दिनके बाद ही माघमास आरम्भ हो जायगा। तुम पौषके शुक्लपक्षकी एकादशीसे ही नीचे वेदीपर सोया करो और एक महीनेतक निराहार रहकर तीनों समय स्नान करो। भोगोंको त्यागकर जितेन्द्रियभावसे तीनों काल भगवान् विष्णुकी पूजा करते रहो। विद्याधरश्रेष्ठ! जिस दिन माघ शुक्ला एकादशी आयेगी, उस दिनतक तुम्हारे सारे पाप जलकर भस्म हो जायँगे। फिर द्वादशीके पवित्र दिनको मैं मन्त्रपूत कल्याणमय जलसे अभिषेक करके तुम्हारा मुख कामदेवके समान सुन्दर कर दूँगा। फिर देवमुख होकर इस सुन्दरीके साथ तुम सुखपूर्वक क्रीड़ा करते रहना।

विद्याधर! माघके स्नानसे विपत्तिका नाश होता है और माघके स्नानसे पाप नष्ट हो जाते हैं। माघ सब व्रतोंसे बढ़कर है तथा यह सब प्रकारके दानोंका फल प्रदान करनेवाला है। पुष्कर, कुरुक्षेत्र, ब्रह्मावर्त, पृथुदक, अविमुक्तक्षेत्र (काशी), प्रयाग तथा गंगा-

सागर-संगममें दस वर्षोंतक शौच-सन्तोषादि नियमोंका पालन करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह माघके महीनेमें तीन दिनोंतक प्रात:स्नान करनेसे ही मिल जाता है। जिनके मनमें दीर्घकालतक स्वर्गलोकके भोग भोगनेकी अभिलाषा हो, उन्हें सूर्यके मकरराशिपर रहते समय जहाँ कहीं भी जल मिले, प्रात:काल स्नान करना चाहिये। आयु, आरोग्य, रूप, सौभाग्य एवं उत्तम गुणोंमें जिनकी रुचि हो, उन्हें सूर्यके मकर-राशिपर रहनेतक प्रात:काल अवश्य स्नान करना चाहिये। जो नरकसे डरते हैं और दरिद्रताके महासागरसे जिन्हें त्रास होता है, उन्हें सर्वथा प्रयत्नपूर्वक माघमासमें प्रात:काल स्नान करना चाहिये। देवश्रेष्ठ! दरिद्रता, पाप और दुर्भाग्यरूपी कीचड़को धोनेके लिये माघस्नानके सिवा दूसरा कोई उपाय नहीं है। अन्य कर्मोंको यदि अश्रद्धापूर्वक किया जाय तो वे बहुत थोड़ा फल देते हैं; किन्तु माघस्नान यदि श्रद्धाके बिना भी विधिपूर्वक किया जाय तो वह पूरा-पूरा फल देता है। गाँवसे बाहर नदी या पोखरेके जलमें जहाँ कहीं भी निष्काम या सकामभावसे माघस्नान करनेवाला पुरुष इस लोक और परलोकमें दुःख नहीं देखता। जैसे चन्द्रमा कृष्णपक्षमें क्षीण होता और शुक्लपक्षमें बढ़ता है, उसी प्रकार माघमासमें स्नान करनेपर पाप क्षीण होता और पुण्यराशि बढ़ती है। जैसे समुद्रमें नाना प्रकारके रत्न उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार माघस्नानसे आयु,धन और स्त्री आदि सम्पत्तियाँ प्राप्त होती हैं। जैसे कामधेनु और चिन्तामणि मनोवांछित भोग देती हैं, उसी प्रकार माघस्नान सब मनोरथोंको पूर्ण करता है। सत्ययुगमें तपस्याको, त्रेतामें ज्ञानको, द्वापरमें भगवान्‌के पूजनको और कलियुगमें दानको उत्तम माना गया है; परन्तु माघका स्नान सभी युगोंमें श्रेष्ठ समझा गया है।* सबके लिये, समस्त वर्णों और आश्रमोंके लिये माघका स्नान धर्मकी धारावाहिक वृष्टि करता है।

भृगुजीके ये वचन सुनकर वह विद्याधर उसी आश्रमपर ठहर गया और माघमासमें भृगुजीके साथ ही उसने विधिपूर्वक पर्वतीय नदीके कुण्डमें पत्नीसहित स्नान किया। महर्षि भृगुके अनुग्रहसे विद्याधरने अपना मनोरथ प्राप्त कर लिया। फिर वह देवमुख होकर मणिपर्वतपर आनन्दपूर्वक रहने लगा। भृगुजी उसपर कृपा करके बहुत प्रसन्न हुए और पुनः विन्ध्यपर्वतपर अपने आश्रममें चले आये। उस विद्याधरका मणिमय पर्वतकी नदीमें माघस्नान करनेमात्रसे कामदेवके समान मुख हो गया तथा भृगुजी भी नियम समाप्त करके शिष्योंसहित विन्ध्याचल पर्वतकी घाटीमें उतरकर नर्मदा-तटपर आये।

वसिष्ठजी कहते हैं—राजन्! महर्षि भृगुके द्वारा विद्याधरके प्रति कहा हुआ यह माघ-माहात्म्य सम्पूर्ण भुवनका सार है तथा नाना प्रकारके फलोंसे विचित्र जान पड़ता है। जो प्रतिदिन इसका श्रवण करता है, वह देवताकी भाँति समस्त सुन्दर भोगोंको प्राप्त कर लेता है।

मृगशृंग मुनिका भगवान्‌से वरदान प्राप्त करके अपने घर लौटना

वसिष्ठजी कहते हैं—राजन्! मैं माघमासका प्रभाव बतलाता हूँ, सुनो। इसे भक्तिपूर्वक सुनकर मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। प्राचीन रथन्तर कल्पके सत्ययुगमें कुत्स नामके एक ऋषि थे, जो ब्रह्माजीके पुत्र थे। वे बड़े ही तेजस्वी और निष्पाप थे। उन्होंने कर्दम ऋषिकी सुन्दरी कन्याके साथ विधिपूर्वक विवाह किया। उसके गर्भसे मुनिके वत्स नामक पुत्र हुआ, जो वंशको बढ़ानेवाला था। वत्सकी पाँच वर्षकी अवस्था होनेपर पिताने उनका उपनयन-संस्कार करके उन्हें गायत्री-मन्त्रका उपदेश किया। अब वे ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए भृगुकुलमें निवास करने लगे। प्रतिदिन प्रात:काल और सायंकाल अग्निहोत्र, तीनों समय स्नान और भिक्षाके

* कृते तपः परं ज्ञानं त्रेतायां यजनं तथा। द्वापरे च कलौ दानं माघः सर्वयुगेषु च॥ (२२१। ८०)

अन्नका भोजन करते थे। इन्द्रियोंको काबूमें रखते, काला मृगचर्म धारण करते और सदा स्वाध्यायमें संलग्न रहते थे। पैरसे लेकर शिखातक लंबा पलाशका डंडा, जिसमें कोई छेद न हो, लिये रहते थे। उनके कटिभागमें मूँजकी मेखला शोभा पाती थी। हाथमें सदा कमण्डलु धारण करते, स्वच्छ कौपीन पहनते, शुद्ध-भावसे रहते और स्वच्छ यज्ञोपवीत धारण करते थे। उनका मस्तक समिधाओंकी भस्मसे सुशोभित था। वे सबके नयनोंको प्रिय जान पड़ते थे। प्रतिदिन माता, पिता, गुरु, आचार्य, अन्यान्य बड़े-बूढ़ों, संन्यासियों तथा ब्रह्मवादियोंको प्रणाम करते थे। बुद्धिमान् वत्स ब्रह्मयज्ञमें तत्पर रहते और सदा शुभ-कर्मोंका अनुष्ठान किया करते थे। वे हाथमें पवित्री धारण करके देवताओं, ऋषियों और पितरोंका तर्पण करते थे। फूल, चन्दन और गन्ध आदिको कभी हाथसे छूते भी नहीं थे। मौन होकर भोजन करते। मधु, पिण्याक और खारा नमक नहीं खाते थे। खड़ाऊँ नहीं पहनते थे तथा सवारीपर नहीं चढ़ते। शीशेमें मुँह नहीं देखते। दन्तधावन, ताम्बूल और पगड़ी आदिसे परहेज रखते थे। नीला, लाल तथा पीला वस्त्र, खाट, आभूषण तथा और भी जो-जो वस्तुएँ ब्रह्मचर्य-आश्रमके प्रतिकूल बतायी गयी हैं, उन सबका वे स्पर्शतक नहीं करते थे; सदा शान्तभावसे सदाचारमें ही तत्पर रहते थे।

ऐसे आचारवान् और विशेषत: ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाले वत्स मुनि सूर्यके मकरराशिपर रहते माघ मासमें भक्तिपूर्वक प्रात:स्नान करते थे। वे उस समय विशेष रूपसे शरीरकी शुद्धि करते थे। आकाशमें जब इने-गिने तारे रह जाते थे, उस समय—ब्रह्मवेलामें तो वे नित्यस्नान करते थे और फिर जब आधे सूर्य निकल आते, उस समय भी माघका स्नान करते थे। वे मन-ही-मन अपने भाग्यकी सराहना करने लगे—'अहो! इस पश्चिमवाहिनी कावेरी नदीमें स्नानका अवसर मिलना प्राय: मनुष्योंके लिये कठिन है, तो भी मैंने मकरार्कमें यहाँ स्नान किया। वास्तवमें मैं बड़ा भाग्यवान् हूँ। समुद्रमें मिली हुई जितनी नदियाँ हैं, उन सबका प्रवाह जहाँ पश्चिम या उत्तरकी ओर है, उस स्थानका प्रयागसे भी अधिक महत्त्व बतलाया गया है। मैंने अपने पूर्वपुण्योंके प्रभावसे आज कावेरीका पश्चिमगामी प्रवाह प्राप्त किया है। वास्तवमें मैं कृतार्थ हूँ, कृतार्थ हूँ, कृतार्थ हूँ।' इस प्रकार सोचते हुए वे प्रसन्न होकर कावेरीके जलमें तीनों काल स्नान करते थे। उन्होंने कावेरीके पश्चिमगामी प्रवाहमें तीन सालतक माघस्नान किया। उसके पुण्यसे उनका अन्त:करण शुद्ध हो गया। वे ममता और कामनासे रहित हो गये। तदनन्तर माता, पिता और गुरुकी आज्ञा लेकर वे सर्वपापनाशक कल्याणतीर्थमें आ गये। उस सरोवरमें भी एक मासतक माघस्नान करके ब्रह्मचारी वत्स मुनि तपस्या करने लगे। राजन्! इस प्रकार उन्हें उत्तम तपस्या करते देख भगवान् विष्णु प्रसन्न होकर उनके आगे प्रत्यक्ष प्रकट हुए और बोले—'महाप्राज्ञ मृगशृंग! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ।' यों कहकर भगवान् पुरुषोत्तमने उनके ब्रह्मरन्ध्र (मस्तक)-का स्पर्श किया।

तब वत्स मुनि समाधिसे विरत हो जाग उठे और उन्होंने अपने सामने ही भगवान् विष्णुको उपस्थित देखा। वे सहस्र सूर्योंके समान तेजस्वी कौस्तुभमणिरूप आभूषणसे अत्यन्त भासमान दिखायी देते थे। तब मुनिने बड़े वेगसे उठकर भगवान्को प्रणाम किया और बड़े भावसे सुन्दर स्तुति की।

भगवान् हृषीकेशकी स्तुति और नमस्कार करके वत्स मुनि अपने मस्तकपर हाथ जोड़े चुपचाप भगवान्के सामने खड़े हो गये। उस समय उनके नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बह रहे थे और सारे शरीरमें रोमांच हो आया था।

तब श्रीभगवान्ने कहा—मृगशृंग! तुम्हारी इस स्तुतिसे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। माघमासमें इस सरोवरके जलमें जो तुमने स्नान और तप किये हैं, इससे मैं बहुत सन्तुष्ट हूँ। मुने! तुम निरन्तर कष्ट सहते-सहते थक गये हो। दक्षिणाओंसहित यज्ञ, दान, अन्यान्य नियम तथा यमोंके पालनसे भी मुझे उतना संतोष नहीं होता, जितना माघके स्नानसे होता है। पहले तुम मुझसे वर माँगो। फिर मैं तुम्हें मनोवांछित वस्तु प्रदान

करूँगा। मृगशृंग! तुम मेरी प्रसन्नताके लिये मैं जो आज्ञा दूँ, उसका पालन करो। इस समय तुम्हारे ब्रह्मचर्यसे जिस प्रकार ऋषियोंको सन्तोष हुआ है, उसी प्रकार तुम यज्ञ करके देवताओंको और सन्तान उत्पन्न करके पितरोंको संतुष्ट करो। मेरे सन्तोषके लिये ये दोनों कार्य तुम्हें सर्वथा करने चाहिये। अगले जन्ममें तुम ब्रह्माजीके पुत्र महाज्ञानी ऋभु नामक जीवन्मुक्त ब्राह्मण होओगे और निदाघको वेदान्तवाक्यजन्य ज्ञानका उपदेश करके पुनः परमधामको प्राप्त होओगे।

मृगशृंग बोले—देवदेव! सम्पूर्ण देवताओंद्वारा वन्दित जगन्नाथ! आप यहाँ सदा निवास करें और सबको सब प्रकारके भोग प्रदान करते रहें। आप सदा सब जीवोंको सब तरहकी सम्पत्ति प्रदान करें। भगवन्! यदि मैं आपका कृपापात्र हूँ तो यही एक वर, जिसे निवेदन कर चुका हूँ, देनेकी कृपा करें। कमलनयन! चरणोंमें पड़े हुए भक्तोंका दुःख दूर करनेवाले अच्युत! आप मुझपर प्रसन्न होइये। शरणागतवत्सल! मैं आपकी शरणमें आया हूँ।

भगवान् विष्णु बोले—मृगशृंग! एवमस्तु, मैं सदा यहाँ निवास करूँगा। जो लोग यहाँ मेरा पूजन करेंगे, उन्हें सब प्रकारकी सम्पत्ति हाथ लगेगी। विशेषतः जब सूर्य मकरराशिपर हों, उस समय इस सरोवरमें स्नान करनेवाले मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो मेरे परमपदको प्राप्त होंगे। व्यतीपातयोगमें, अयन प्रारम्भ होनेके दिन, संक्रान्तिके समय, विषुवयोगमें, पूर्णिमा और अमावास्या तिथिको तथा चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहणके अवसरपर यहाँ स्नान करके यथाशक्ति दान देनेसे और तुम्हारे मुखसे निकले हुए इस स्तोत्रका मेरे सामने पाठ करनेसे मनुष्य मेरे लोकमें प्रतिष्ठित होगा।

भगवान् गोविन्दके यों कहनेपर उन ब्राह्मणकुमारने पुनः प्रणाम किया और भक्तोंके अधीन रहनेवाले श्रीहरिसे फिर एक प्रश्न किया—'कृपानिधे! देवेश्वर! मैं तो कुत्स मुनिका पुत्र वत्स हूँ; फिर मुझे आपने मृगशृंग कहकर क्यों सम्बोधित किया?'

श्रीभगवान् बोले—ब्रह्मन्! इस कल्याण-सरोवरके तटपर जब तुम तपस्या करनेमें लगे थे, उस समय जो मृग प्रतिदिन यहाँ पानी पीने आते थे, वे निर्भय होकर तुम्हारे शरीरमें अपने सींग रगड़ा करते थे। इसीसे श्रेष्ठ महर्षि तुम्हें मृगशृंग कहते हैं। आजसे सब लोग तुम्हें मृगशृंग ही कहेंगे।

यों कहकर सबको सब कुछ प्रदान करनेवाले भगवान् सर्वेश्वर वहाँ रहने लगे। तदनन्तर मृगशृंग मुनिने भगवान्‌का पूजन किया और उनकी आज्ञा लेकर वे उस पर्वतसे चले गये। संसारका उपकार करनेके लिये उन्होंने गृहस्थ-धर्मको स्वीकार करनेका निश्चय किया और अपने अन्तःकरणमें निरन्तर वे आदिपुरुष कमलनयन भगवान् विष्णुका चिन्तन करने लगे। अपनी जन्मभूमि भोजराजनगरमें घर आकर उन्होंने माता और पिताको नमस्कार करके अपना सारा समाचार कह सुनाया। माता-पिताके नेत्रोंमें आनन्दके आँसू छलक आये। उन्होंने पुत्रको छातीसे लगाकर बारंबार उसका मस्तक सूँघा और प्रेमपूर्वक अभिनन्दन किया। वत्स अपने गुरुको प्रणाम करके फिर स्वाध्यायमें लग गये। पिता, माता और गुरु—तीनोंकी प्रतिदिन सेवा करते हुए उन्होंने सम्पूर्ण वेदोंका अध्ययन किया और गुरुकी आज्ञा ले विधिपूर्वक व्रतस्नान और उत्सर्गका कार्य पूर्ण किया। तत्पश्चात् महामना मृगशृंग अपने पितासे इस प्रकार बोले—'तात! पुत्रकी उत्पत्तिके लिये पिता और माताको जो क्लेश सहने पड़ते हैं, उनका बदला सौ वर्षोंमें भी नहीं चुकाया जा सकता; अतः पुत्रको उचित है कि वह माता-पिता तथा गुरुका भी सदा ही प्रिय करे। इन तीनोंके अत्यन्त सन्तुष्ट होनेपर सब तपस्या पूर्ण हो जाती है। इन तीनोंकी सेवाको ही सबसे बड़ा तप कहा गया है। इनकी आज्ञाका उल्लंघन करके जो कुछ भी किया जाता है, वह कभी सिद्ध नहीं होता। विद्वान् पुरुष इन्हीं तीनोंकी आराधना करके तीनों लोकोंपर विजय पाता है। जिससे इन तीनोंको संतोष हो, वही मनुष्योंके लिये चारों पुरुषार्थ कहा गया है; इसके सिवा जो कुछ भी है, वह उपधर्म कहलाता है। मनुष्यको उचित है कि वह अखण्ड ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए पितासे क्रमशः

तीन, दो या एक वेदका अध्ययन करनेके पश्चात् गृहस्थ-आश्रममें प्रवेश करे। यदि पत्नी अपने वशमें रहे तो गृहस्थाश्रमसे बढ़कर दूसरी कोई वस्तु नहीं है। पति और पत्नीकी अनुकूलता धर्म, अर्थ और कामकी सिद्धिका प्रधान कारण है। यदि स्त्री अनुकूल हो तो स्वर्गसे क्या लेना है—घर ही स्वर्ग हो जाता है और यदि पत्नी विपरीत स्वभावकी मिल गयी तो नरकमें जानेकी क्या आवश्यकता है—यहीं नरकका दृश्य उपस्थित हो जाता है। सुखके लिये गृहस्थाश्रम स्वीकार किया जाता है; किन्तु वह सुख पत्नीके अधीन है। यदि पत्नी विनयशील हो तो धर्म, अर्थ और कामकी प्राप्ति निश्चित है।

जो गृहकार्यमें चतुर, सन्तानवती, पतिव्रता, प्रिय वचन बोलनेवाली और पतिके अधीन रहनेवाली है—ऐसी उपर्युक्त गुणोंसे युक्त नारी स्त्रीके रूपमें साक्षात् लक्ष्मी है। इसलिये अपने समान वर्णकी उत्तम लक्षणों-वाली भार्यासे विवाह करना चाहिये। जो पिताके गोत्र अथवा माताके सपिण्डवर्गमें उत्पन्न न हुई हो, वही स्त्री विवाह करनेयोग्य होती है तथा उसीसे द्विजोंके धर्मकी वृद्धि होती है।

जिसको कोई रोग न हो, जिसके भाई हो, जो अवस्था और कदमें अपनेसे कुछ छोटी हो, जिसका मुख सौम्य हो तथा जो मधुर भाषण करनेवाली हो, ऐसी भार्याके साथ द्विजको विवाह करना चाहिये। जिसका नाम पर्वत, नक्षत्र, वृक्ष, नदी, सर्प, पक्षी तथा नौकरोंके नामपर न रखा गया हो, जिसके नाममें कोमलता हो, ऐसी कन्यासे बुद्धिमान् पुरुषको विवाह करना चाहिये।

इस प्रकार उत्तम लक्षणोंकी परीक्षा करके ही किसी कन्याके साथ विवाह करना उचित है। उत्तम लक्षण और अच्छे आचरणवाली कन्या पतिकी आयु बढ़ाती है, अतः पिताजी! ऐसी भार्या कहाँ मिलेगी?

कुत्सने कहा—परम बुद्धिमान् मृगशृंग! इसके लिये कोई विचार न करो। तुम्हारे-जैसे सदाचारी पुरुषके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं है। जो सदाचारहीन, आलसी, माघस्नान न करनेवाले, अतिथि-पूजासे दूर रहनेवाले, एकादशीको उपवास न करनेवाले, महादेवजीकी भक्तिसे शून्य, माता-पितामें भक्ति न रखनेवाले, गुरुको सन्तोष न देनेवाले, गौओंकी सेवासे विमुख, ब्राह्मणोंका हित न चाहनेवाले, यज्ञ, होम और श्राद्ध न करनेवाले, दूसरोंको न देकर अकेले खानेवाले, दान, धर्म और शीलसे रहित तथा अग्निहोत्र न करके भोजन करनेवाले हैं, ऐसे लोगोंके लिये ही वैसी स्त्रियाँ दुर्लभ हैं। बेटा! प्रातःकाल स्नान करनेपर माघका महीना विद्या, निर्मल कीर्ति, आरोग्य, आयु, अक्षय धन, समस्त पापोंसे मुक्ति तथा इन्द्रलोक प्रदान करता है। बेटा! माघमास सौभाग्य, सदाचार, सन्तान-वृद्धि, सत्संग, सत्य, उदारभाव, ख्याति, शूरता और बल—सब कुछ देता है। कहाँतक गिनाऊँ, वह क्या-क्या नहीं देता। पुण्यात्मन्! कमलके समान नेत्रोंवाले भगवान् विष्णु माघस्नान करनेसे तुमपर बहुत प्रसन्न हैं।

वसिष्ठजी कहते हैं—राजन्! पिताके ये सत्य वचन सुनकर मृगशृंग मुनि मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने पिताके चरणोंमें मस्तक झुकाकर पुनः प्रणाम किया और दिन-रात वे अपने हृदयमें श्रीहरिका ही चिन्तन करने लगे।

मृगशृंग मुनिके द्वारा माघके पुण्यसे एक हाथीका उद्धार तथा मरी हुई कन्याओंका जीवित होना

वसिष्ठजी कहते हैं—राजन्! भोजपुरमें उचथ्य नामक एक श्रेष्ठ मुनि थे। उनके कमलके समान नेत्रोंवाली एक कन्या थी, जिसका नाम सुवृत्ता था। वह माघमासमें प्रतिदिन सबेरे ही उठकर अपनी कुमारी सखियोंके साथ कावेरी नदीके पश्चिमगामी प्रवाहमें स्नान किया करती थी। स्नानके समय वह इस प्रकार प्रार्थना करती—'देवि! तुम सह्यपर्वतकी घाटीसे निकलकर श्रीरंगक्षेत्रमें प्रवाहित होती हो। श्रीकावेरी! तुम्हें

नमस्कार है। मेरे पापोंका नाश करो। मरुद्वृधे! तुम बड़ी सौभाग्यशालिनी हो। माघमासमें जो लोग तुम्हारे जलमें स्नान करते हैं, उनके बड़े-बड़े पापोंको हर लेती हो। माता! मुझे मंगल प्रदान करो। पश्चिमवाहिनी कावेरी! मुझे पति, धन, पुत्र, सम्पूर्ण मनोरथ और पातिव्रत्य-पालनकी शक्ति दो।' यों कहकर सुवृत्ता कावेरीको प्रणाम करती और जब कुछ-कुछ सूर्यका उदय होने लगता, उसी समय वह नित्य स्नान किया करती थी। इस प्रकार उसने तीन वर्षोंतक माघस्नान किया। उसका उत्तम चरित्र तथा गृहकार्यमें चतुरता देखकर पिताका मन बड़ा प्रसन्न रहता था। वे सोचने लगे—अपनी कन्याका विवाह किससे करूँ? इसी बीचमें कुत्स मुनिने अपने पुत्र ब्रह्मचारी वत्सका विवाह करनेके लिये उचथ्यकी सुमुखी कन्या सुवृत्ताका वरण करनेका विचार किया। सुवृत्ता बड़ी सुन्दरी थी। उसमें अनेक शुभ लक्षण थे। वह बाहर-भीतरसे शुद्ध तथा नीरोग थी। उस समय उसकी कहीं तुलना नहीं थी। वत्स मुनिने उससे विवाह करनेकी अभिलाषा की।

एक दिन सुवृत्ता अपनी तीन सखियोंके साथ माघस्नान करनेके लिये अरुणोदयके समय कावेरीके तटपर आयी। उसी समय एक भयानक जंगली हाथी पानीसे निकला। उसे देखकर सुवृत्ता आदि कन्याएँ भयसे व्याकुल होकर भागीं। हाथी भी बहुत दूरतक उनके पीछे-पीछे गया। चारों कन्याएँ वेगसे दौड़नेके कारण हाँफने लगीं और तिनकोंसे ढँके हुए एक बहुत बड़े जलशून्य कुएँमें गिर पड़ीं। कुएँमें गिरते ही उनके प्राण निकल गये। जब वे घर लौटकर नहीं आयीं, तब माता-पिता उनकी खोज करते हुए इधर-उधर भटकने लगे। उन्होंने वन-वनमें घूमकर झाड़ी-झाड़ी छान डाली। आगे जानेपर उन्हें एक गहरा कुआँ दिखायी दिया, जो तिनकोंसे ढँका होनेके कारण प्रायः दृष्टिमें नहीं आता था। उन्होंने देखा, वे कमललोचना कन्याएँ कुएँके भीतर निर्जीव होकर पड़ी हैं। उनकी माताएँ कन्याओंके पास चली गयीं और शोकग्रस्त हो बारंबार उन्हें छातीसे लगाकर 'विमले! कमले! सुवृत्ते! सुरसे!' आदि नाम ले-लेकर विलाप करने लगीं।

कन्याओंकी माताएँ जब इस प्रकार जोर-जोरसे क्रन्दन कर रही थीं, उसी समय तपस्याके भण्डार, कान्तिमान्, धीर तथा जितेन्द्रिय, श्रीमान् मृगशृंग मुनि वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने मन-ही-मन एक उपाय सोचा और सोचकर उन्हें आश्वासन देते हुए कहा— 'जबतक इन कमलनयनी कन्याओंको जीवित न कर दूँ, तबतक आपलोग इनके सुन्दर शरीरकी रक्षा करें।' यों कहकर मुनि परम पावन कावेरीके तटपर गये और कण्ठभर पानीमें खड़े हो, मुख एवं भुजाओंको ऊपर उठाये सूर्यदेवकी ओर देखते हुए मृत्यु देवताकी स्तुति करने लगे। इसी बीचमें एक समय वही हाथी पानीके भीतरसे उठा और उन ब्राह्मण मुनिको मारनेके लिये सूँड़ उठाये बड़े वेगसे उनके समीप आया। हाथीका क्रोध देखकर भी मुनिवर मृगशृंग जलसे विचलित नहीं हुए, अपितु, चित्रलिखित-से चुपचाप खड़े रहे। पास आनेपर एक ही क्षणमें उस गजराजका क्रोध चला गया। वह बिलकुल शान्त हो गया। उसने मुनिको सूँड़से पकड़कर अपनी पीठपर बिठा लिया। मुनि उसके भावको समझ गये। उसके कंधेपर सुखपूर्वक बैठनेसे उन्हें बड़ा सन्तोष हुआ और जप समाप्त करके हाथमें जल ले 'मैंने आठ दिनोंके माघस्नानका पुण्य तुम्हें दे दिया।' यों कहकर उन्होंने शीघ्र ही वह जल हाथीके मस्तकपर छोड़ दिया। इससे गजराज पापरहित हो गया और मानो इस बातको स्वयं भी समझते हुए उसने प्रलयकालीन मेघके समान बड़े जोरसे गर्जना की। उसकी इस गर्जनासे भी मुनिके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने कृपापूर्वक उस गजराजकी ओर देखकर उसके ऊपर अपना हाथ फेरा। मुनिके हाथका स्पर्श होनेसे उसने हाथीका शरीर त्याग दिया और आकाशमें देवताकी भाँति दिव्यरूप धारण किये दृष्टिगोचर हुआ। उस रूपमें उसे देखकर मुनीश्वरको बड़ा विस्मय हुआ।

तब दिव्यरूपधारी उस जीवने कहा—मुनीश्वर! मैं कृतार्थ हो गया, क्योंकि आपने मुझे अत्यन्त निन्दित एवं पापमयी पशुयोनिसे मुक्त कर दिया। दयानिधे!

अब मैं अपना सारा वृत्तान्त बतलाता हूँ, सुनिये। पूर्वकालकी बात है, नैषध नगरमें विश्वगुप्त नामसे प्रसिद्ध परम धर्मात्मा तथा स्वधर्मपालनमें तत्पर एक वैश्य रहते थे। मैं उन्हींका पुत्र था। मेरा नाम धर्मगुप्त था। स्वाध्याय, यजन, दान, सूद लेना, पशुपालन, गोरक्षा, खेती और व्यापार—यही सब मेरा काम था। द्विजश्रेष्ठ! मैं [अनुचित] काम और दम्भसे सदा दूर ही रहा। सत्य बोलता और किसीकी निन्दा नहीं करता था। इन्द्रियोंको काबूमें रखकर अपनी स्त्रीसे ही अनुराग करता था और परायी स्त्रियोंके सम्पर्कसे बचा रहता था। मुझमें राग, भय और क्रोध नहीं थे। लोभ और मत्सरको भी मैंने छोड़ रखा था। दान देता, यज्ञ करता, देवताओंके प्रति भक्ति रखता और गौओं तथा ब्राह्मणोंके हितमें संलग्न रहता था। सदा धर्म, अर्थ और कामका सेवन करता तथा व्यापारके काममें कभी किसीको धोखा नहीं देता था। ब्राह्मणलोग जब यज्ञ करते, उस समय उन्हें बिना माँगे ही धन देता था। समयपर श्राद्ध तथा सम्पूर्ण देवताओंका पूजन करता था। अनेक प्रकारके सुगन्धित द्रव्य, बहुत-से पशु, दूध-दही, मट्ठा, गोबर, घास, लकड़ी, फल, मूल, नमक, जायफल, पीपल, अन्न, सागके बीज, नाना प्रकारके वस्त्र, धातु, ईखके रससे तैयार होनेवाली वस्तुएँ और अनेक प्रकारके रस बेचा करता था। जो दूसरोंको देता था, वह तौलमें कम नहीं रहता था और जो औरोंसे लेता, वह अधिक नहीं होता था। जिन रसोंके बेचनेसे पाप होता है, उनको छोड़कर अन्य रसोंको बेचा करता था। बेचनेमें छल-कपटसे काम नहीं लेता था। जो मनुष्य साधु पुरुषोंको व्यापारमें ठगता है, वह घोर नरकमें पड़ता है तथा उसका धन भी नष्ट हो जाता है। मैं सब देवताओं, ब्राह्मणों तथा गौओंकी प्रतिदिन सेवा करता और पाखण्डी लोगोंसे दूर रहता था। ब्रह्मन्! किसी भी प्राणीसे मन, वाणी और क्रियाद्वारा ईर्ष्या किये बिना ही जो जीविका चलायी जाती है, वही परम धर्म है। मैं ऐसी ही जीविकासे जीवन-निर्वाह करता था।

इस प्रकार धर्मके मार्गसे चलकर मैंने एक करोड़ स्वर्णमुद्राओंका उपार्जन किया। मेरे एक ही पुत्र था, जो सम्पूर्ण गुणोंमें श्रेष्ठ था। मैंने अपने सारे धनको दो भागोंमें बाँटकर आधा तो पुत्रको दे दिया और आधा अपने लिये रखा। अपने हिस्सेका धन लेकर पोखरा खुदवाया। नाना प्रकारके वृक्षोंसे युक्त बगीचा लगवाया। अनेक मण्डपोंसे सुशोभित देवमन्दिर बनवाया। मरुभूमिके मार्गोंमें पौंसले और कुएँ बनवाये तथा ठहरनेके लिये धर्मशालाएँ तैयार करायीं। कन्यादान, गोदान और भूमिदान किये। तिल, चावल, गेहूँ और मूँग आदिका भी दान किया। उड़द, धान, तिल और घी आदिका दान तो मैंने बहुत बार किया।

तदनन्तर रसके चमत्कारोंका वर्णन करनेवाला कोई कापालिक मेरे पास आया और कौतूहल पैदा करनेके लिये कुछ करामात दिखाकर उसने मुझे अपने मायाजालमें फँसाकर ठग लिया। उसकी करतूतें देखकर उसके प्रति मेरा विश्वास बढ़ गया और रसवाद—चाँदी, सोना आदि बनानेके नामपर मेरा सारा धन बरबाद हो गया। उस कापालिकने मुझे भ्रममें डालकर बहुत दिनोंतक भटकाया। उसके लिये धन दे-देकर मैं दरिद्र हो गया। माघका महीना आया और मैंने दस दिनोंतक सूर्योदयके समय महानदीमें स्नान किया; किन्तु बुढ़ापेके कारण इससे अधिक समयतक मैं स्नानका नियम चलानेमें असमर्थ हो गया। इसी बीचमें मेरा पुत्र देशान्तरमें चला गया। घोड़े मर गये। खेती नष्ट हो गयी और बेटेने वेश्या रख ली। फिर भी भाई-बन्धु यह सोचकर कि यह बेचारा बूढ़ा, धर्मात्मा और पुण्यवान् है, धर्मके ही उद्देश्यसे मुझे कुछ सूखा अन्न और भात दे दिया करते थे। अब मैं अपना धर्म बेचकर कुटुम्बका पालन-पोषण करने लगा, केवल माघस्नानके फलको नहीं बेच सका। एक दिन जिह्वाकी लोलुपताके कारण दूसरेके घरपर खूब गलेतक ठूँसकर मिठाई खा ली। इससे अजीर्ण हो गया। अजीर्णसे अतिसारकी बीमारी हुई और उससे मेरी मृत्यु हो गयी। केवल माघस्नानके प्रभावसे मैं एक मन्वन्तरतक स्वर्गमें देवराज इन्द्रके पास रहा और पुण्यकी समाप्ति हो जानेपर हाथीकी योनिमें उत्पन्न हुआ।

जो लोग धर्म बेचते हैं, वे हाथी ही होते हैं। विप्रवर! इस समय आपने हाथीकी योनिसे भी मेरा उद्धार कर दिया। मुझे स्वर्गकी प्राप्ति होनेके लिये आपने पुण्यदान किया है। मुनीश्वर! मैं कृतार्थ हो गया, कृतार्थ हो गया, कृतार्थ हो गया। आपको नमस्कार है, नमस्कार है, नमस्कार है।

यों कहकर वह स्वर्गको चला गया। सच है, सत्पुरुषोंका संग उत्तम गति प्रदान करनेवाला होता है। इस प्रकार महानुभाव मृगशृंग वैश्यको हाथीकी योनिसे मुक्त करके स्वयं गलेतक पानीमें खड़े हो सूर्यनन्दन यमराजकी स्तुति करने लगे—

ॐ यम, धर्मराज, मृत्यु, अन्तक, वैवस्वत, काल, सर्वभूतक्षय, औदुम्बर, दध्न, नील, परमेष्ठी, वृकोदर, चित्र और चित्रगुप्त—इन चौदह नामोंसे पुकारे जानेवाले भगवान् यमराजको नमस्कार है।

जिनका मुख दाढ़ोंके कारण विकराल प्रतीत होता है और टेढ़ी भौंहोंसे युक्त आँखें क्रूरतापूर्ण जान पड़ती हैं, जिनके शरीरमें ऊपरकी ओर उठे हुए बड़े-बड़े रोम हैं तथा ओठ भी बहुत लम्बे दिखायी देते हैं, ऐसे आप यमराजको नमस्कार है।

आपके अनेक भुजाएँ हैं, अनन्त नख हैं तथा कज्जलगिरिके समान काला शरीर और भयंकर रूप है। आपको नमस्कार है।

भगवन्! आपका वेष बड़ा भयानक है। आप पापियोंको भय देते, कालदण्डसे धमकाते और सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्र धारण करते हैं। बहुत बड़ा भैंसा आपका वाहन है। आपके नेत्र दहकते हुए अँगारोंके समान जान पड़ते हैं। आप महान् हैं। मेरु पर्वतके समान आपका विशाल रूप है। आप लाल माला और वस्त्र धारण करते हैं। आपको नमस्कार है।

कल्पान्तके मेघोंकी भाँति जिनकी गम्भीर गर्जना और प्रलयकालीन वायुके समान प्रचण्ड वेग है, जो समुद्रको भी पी जाते, सम्पूर्ण जगत्को ग्रास बना लेते, पर्वतोंको भी चबा जाते और मुखसे आग उगलते हैं, उन भगवान् यमराजको नमस्कार है।

भगवन्! अत्यन्त घोर और अग्निके समान तेजस्वी कालरूप मृत्यु तथा बहुत-से रोग आपके पास सेवामें उपस्थित रहते हैं। आपको नमस्कार है।

आप भयानक मारी और अत्यन्त भयंकर महामारीके साथ रहते हैं। पापिष्ठोंके लिये आपका ऐसा ही स्वरूप है। आपको बारंबार नमस्कार है।

वास्तवमें तो आपका मुख खिले हुए कमलके समान प्रसन्नतासे पूर्ण है। आपके नेत्रोंमें करुणा भरी है। आप पितृस्वरूप हैं। आपको नमस्कार है। आपके केश अत्यन्त कोमल हैं और नेत्र भौंहोंकी रेखासे सुशोभित हैं। मुखके ऊपर मूँछें बड़ी सुन्दर जान पड़ती हैं। पके हुए बिम्बफलके समान लाल ओठ आपकी शोभा बढ़ाते हैं। आप दो भुजाओंसे युक्त, सुवर्णके समान कान्तिमान् और सदा प्रसन्न रहनेवाले हैं। आपको नमस्कार है।

आप सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित, रत्नमय सिंहासनपर विराजमान, श्वेत माला और श्वेत वस्त्र धारण करनेवाले तथा श्वेत छत्रसे सुशोभित हैं। आपके दोनों ओर दो दिव्य नारियाँ खड़ी होकर हाथोंमें सुन्दर चँवर लिये डुला रही हैं। आपको नमस्कार है।

गलेके रत्नमय हारसे आप बड़े सुन्दर जान पड़ते हैं। रत्नमय कुण्डल आपके कानोंकी शोभा बढ़ाते हैं। आपके हार और भुजबंद भी रत्नके ही हैं तथा आपके किरीटमें नाना प्रकारके रत्न जड़े हुए हैं। आपकी कृपादृष्टि सीमाका अतिक्रमण कर जाती है। आप मित्रभावसे सबको देखते हैं। सब प्रकारकी सम्पत्तियाँ आपको समृद्धिशाली बनाती हैं। आप सौभाग्यके परम आश्रय हैं तथा धर्म और अधर्मके ज्ञानमें निपुण सभासद् आपकी उपासना करते हैं। आपको नमस्कार है।

संयमनीपुरीकी सभामें शुभ्र रूपवाले धर्म, शुभ-लक्षण सत्य, चन्द्रमाके समान मनोहर रूपधारी शम, दूधके समान उज्ज्वल दम तथा वर्णाश्रमजनित विशुद्ध आचार आपके पास मूर्तिमान् होकर सेवामें उपस्थित रहते हैं; आपको नमस्कार है।

आप साधुओंपर सदा स्नेह रखते, वाणीसे उनमें प्राणोंका संचार करते, वचनोंसे सन्तोष देते और गुणोंसे

उन्हें सर्वस्व समर्पण करते हैं। सज्जन पुरुषोंपर सदा सन्तुष्ट रहनेवाले आप धर्मराजको बारंबार नमस्कार है।

जो सबके काल होते हुए भी शुभकर्म करनेवाले पुरुषोंपर कृपा करते हैं, जो पुण्यात्माओंके हितैषी, सत्पुरुषोंके संगी, संयमनीपुरीके स्वामी, धर्मात्मा तथा धर्मका अनुष्ठान करनेवालोंके प्रिय हैं, उन धर्मराजको नमस्कार है।

जिसकी पीठपर लटके हुए घण्टोंकी ध्वनिसे सारी दिशाएँ गूँज उठती हैं तथा जो ऊँचे-ऊँचे सींगों और फुंकारोंके कारण अत्यन्त भीषण प्रतीत होता है, ऐसे महान् भैंसेपर जो विराजमान रहते हैं तथा जिनकी आठ बड़ी-बड़ी भुजाएँ क्रमशः नाराच, शक्ति, मुसल, खड्ग, गदा, त्रिशूल, पाश और अंकुशसे सुशोभित हैं, उन भगवान् यमराजको प्रणाम है।

जो चौदह सत्पुरुषोंके साथ बैठकर जीवोंके शुभाशुभकर्मोंका भलीभाँति विचार करते हैं, साक्षियों-द्वारा अनुमोदन कराकर उन्हें दण्ड देते हैं तथा सम्पूर्ण विश्वको शान्त रखते हैं, उन दक्षिण-दिशाके स्वामी शान्तस्वरूप यमराजको नमस्कार है।

जो कल्याणस्वरूप, भयहारी, शौच-संतोष आदि नियमोंमें स्थित मनुष्योंके नेत्रोंको प्रिय लगनेवाले, सावर्णि, शनैश्चर और वैवस्वत मनु—इन तीनोंकी माताके सौतेले पुत्र, विवस्वान् (सूर्यदेव)-के आत्मज तथा सदाचारी मनुष्योंको वर देनेवाले हैं, उन भगवान् यमको नमस्कार है।

भगवन्! जब आपके दूत पापी जीवोंको दृढ़ता-पूर्वक बाँधकर आपके सामने उपस्थित करते हैं, तब आप उन्हें यह आदेश देते हैं कि 'इन पापियोंको अनेक घोर नरकोंमें गिराकर छेद डालो, टुकड़े-टुकड़े कर दो, जला दो, सुखा डालो, पीस दो।' इस प्रकारकी बातें कहते हुए यमुनाजीके ज्येष्ठ भ्राता आप यमराजको मेरा प्रणाम है।

जब आप अन्तकरूप धारण करते हैं, उस समय आपके गोलाकार नेत्र किनारे-किनारेसे लाल दिखायी देते हैं। आप भीमरूप होकर भय प्रदान करते हैं। टेढ़ी भौंहोंके कारण आपका मुख वक्र जान पड़ता है। आपके शरीरका रंग उस समय नीला हो जाता है तथा आप अपने निर्दयी दूतोंके द्वारा शास्त्रोक्त नियमोंका उल्लंघन करनेवाले पापियोंको खूब कड़ाईके साथ धमकाते हैं। आपको सर्वदा नमस्कार है।

जिन्होंने पंचमहायज्ञोंका अनुष्ठान किया है तथा जो सदा ही अपने कर्मोंके पालनमें संलग्न रहे हैं, ऐसे लोगोंको दूरसे ही विमानपर आते देख आप दोनों हाथ जोड़े आगे बढ़कर उनका स्वागत करते हैं। आपके नेत्र कमलके समान विशाल हैं तथा आप माता संज्ञाके सुयोग्य पुत्र हैं। आपको मेरा प्रणाम है।

जो सम्पूर्ण विश्वसे उत्कृष्ट, निर्मल, विद्वान्, जगत्के पालक, ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवके प्रिय, सबके शुभाशुभकर्मोंके उत्तम साक्षी तथा समस्त संसारको शरण देनेवाले हैं, उन भगवान् यमको नमस्कार है।

वसिष्ठजी कहते हैं—इस प्रकार स्तुति करके मृगशृंगने उदारता और करुणाके भण्डार तथा दक्षिण-दिशाके स्वामी भगवान् यमका ध्यान करते हुए उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। इससे भगवान् यमको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे महान् तेजस्वी रूप धारण किये मुनिके सामने प्रकट हुए। उस समय उनका मुखकमल प्रसन्नतासे खिला हुआ था और किरीट, हार, केयूर तथा मणिमय कुण्डल धारण करनेवाले अनेक सेवक चारों ओरसे उनकी सेवामें उपस्थित थे।

यमराजने कहा—मुने! मैं तुम्हारे इस स्तोत्रसे बहुत सन्तुष्ट हूँ और तुम्हें वर देनेके लिये यहाँ आया हूँ। तुम मुझसे मनोवांछित वर माँगो। मैं तुम्हें अभीष्ट वस्तु प्रदान करूँगा।

उनकी बात सुनकर मुनीश्वर मृगशृंग उठकर खड़े हो गये। यमराजको सामने उपस्थित देख उन्हें बड़ा विस्मय हुआ। उनके नेत्र प्रसन्नतासे खिल उठे। कृतान्तको पाकर उन्होंने अपनेको सफलमनोरथ समझा और हाथ जोड़कर कहा—'भगवन्! इन कन्याओंको प्राणदान दीजिये। मैं आपसे बारम्बार यही याचना करता हूँ।' मुनिका कथन सुनकर धर्मराजने अदृश्यरूपसे उन

ब्राह्मण-कन्याओंको उनके शरीरमें भेज दिया। फिर तो सोकर उठे हुएकी भाँति वे कन्याएँ उठ खड़ी हुईं। अपनी बालिकाओंको सचेत होते देख माताओंको बड़ा हर्ष हुआ। कन्याएँ पहलेकी ही भाँति अपना-अपना वस्त्र पहनकर माताओंको बुला उनके साथ अपने घर गयीं।

वसिष्ठजी कहते हैं—इस प्रकार विप्रवर मृगशृंगको वरदान दे यम देवता अपने पार्षदोंके साथ अन्तर्धान हो गये। इधर ब्राह्मण भी यमराजसे वर पाकर बड़ी प्रसन्नताके साथ अपने आश्रमको लौटे। जो मानव प्रतिदिन यमराजकी इस स्तुतिका पाठ करेगा, उसे कभी यम-यातना नहीं भोगनी पड़ेगी, उसके ऊपर यमराज प्रसन्न होंगे, उसकी सन्ततिका कभी अपमृत्युसे पराभव न होगा, उसे इस लोक और परलोकमें भी लक्ष्मीकी प्राप्ति होगी तथा उसे कभी रोगोंका शिकार नहीं होना पड़ेगा।

यमलोकसे लौटी हुई कन्याओंके द्वारा वहाँकी अनुभूत बातोंका वर्णन

राजा दिलीपने पूछा—मुने! यमलोकसे लौटकर आयी हुई उन साध्वी कन्याओंने अपनी माताओं और बन्धुओंसे वहाँका वृत्तान्त कैसा बतलाया? पापियोंकी यातना और पुण्यात्माओंकी गतिके सम्बन्धमें क्या कहा? मैं पुण्य और पापके शुभ और अशुभ फलोंको विस्तारके साथ सुनना चाहता हूँ।

वसिष्ठजी बोले—राजन्! कन्याओंने अपनी माताओं और बन्धुओंसे पुण्य-पापके शुभाशुभ फलोंके विषयमें जो कुछ कहा था, वह ज्यों-का-त्यों तुम्हें बतलाता हूँ।

कन्याओंने कहा—माताओ! यमलोक बड़ा ही घोर और भय उत्पन्न करनेवाला है। वहाँ सर्वदा चारों प्रकारके जीवोंको विवश होकर जाना पड़ता है। गर्भमें रहनेवाले अथवा जन्म लेनेवाले शिशु, बालक, तरुण, अधेड़, बूढ़े, स्त्री, पुरुष और नपुंसक—सभी तरहके जीवोंको वहाँ जाना होता है। वहाँ चित्रगुप्त आदि समदर्शी एवं मध्यस्थ सत्पुरुष मिलकर देहधारियोंके शुभ और अशुभ फलका विचार करते हैं। इस लोकमें जो शुभकर्म करनेवाले, कोमलहृदय तथा दयालु पुरुष हैं, वे सौम्य मार्गसे यमलोकमें जाते हैं। नाना प्रकारके दान और व्रतोंमें संलग्न रहनेवाले स्त्री-पुरुषोंसे सूर्यनन्दन यमकी नगरी भरी है। माघस्नान करनेवाले लोग वहाँ विशेषरूपसे शोभित होते हैं। धर्मराज उनका अधिक सम्मान करते हैं। वहाँ उनके लिये सब प्रकारकी भोगसामग्री सुलभ होती है। माघस्नानमें मन लगानेवाले लोगोंके सैकड़ों, हजारों विचित्र-विचित्र विमान वहाँ शोभा पाते हैं। इन पुण्यात्मा जीवोंको विमानपर बैठकर आते देख सूर्यनन्दन यम अपने आसनसे उठकर खड़े हो जाते हैं और अपने पार्षदोंके साथ जाकर उन सबकी अगवानी करते हैं। फिर स्वागतपूर्वक आसन दे, पाद्य-अर्घ्य आदि निवेदन कर प्रिय वचनोंमें कहते हैं— 'आपलोग अपने आत्माका कल्याण करनेवाले महात्मा हैं, अतएव धन्य हैं; क्योंकि आपने दिव्य सुखकी प्राप्तिके लिये पुण्यका उपार्जन किया है। अत: आप इस विमानपर बैठकर स्वर्गको जाइये। स्वर्गलोककी कहीं तुलना नहीं है, वह सब प्रकारके दिव्य भोगोंसे परिपूर्ण है।' इस प्रकार उनकी अनुमति ले पुण्यात्मा पुरुष स्वर्गलोकमें जाते हैं।

माताओ! तथा बन्धुजन! अब हम वहाँके पापी जीवोंके कष्टका वर्णन करती हैं, आप सब लोग धैर्य धारण करके सुनें। जो क्रूरतापूर्ण कर्म करनेवाले और दान न देनेवाले पापी जीव हैं, वे वहाँ यमराजके घरमें अत्यन्त भयंकर दक्षिणमार्गसे जाते हैं। यमराजका नगर अनेक रूपोंमें स्थित है, उसका विस्तार चारों ओरसे छियासी हजार योजन समझना चाहिये। पुण्यकर्म करनेवाले पुरुषोंको वह बहुत निकट-सा जान पड़ता है, किन्तु भयंकर मार्गसे जानेवाले पापी जीवोंके लिये वह अत्यन्त दूर है। वह मार्ग कहीं तो तीखे काँटोंसे भरा होता है और कहीं रेत एवं कंकड़ोंसे। कहीं पत्थरोंके ऐसे टुकड़े बिछे होते हैं, जिनका किनारा छुरोंकी धारके समान

तीखा होता है। कहीं बहुत दूरतक कीचड़-ही-कीचड़ भरी रहती है। कहीं घातक अंकुर उगे होते हैं और कहीं-कहीं लोहेकी सुईके समान नुकीले कुशोंसे सारा मार्ग ढका होता है। इतना ही नहीं, कहीं-कहीं बीच रास्तेमें वृक्षोंसे भरे हुए पर्वत होते हैं, जो किनारेपर भारी जल-प्रपातके कारण अत्यन्त दुर्गम जान पड़ते हैं। कहीं रास्तेपर दहकते हुए अँगारे बिछे रहते हैं। ऐसे मार्गसे पापी जीवोंको दुःखित होकर जाना पड़ता है। कहीं ऊँचे-नीचे गड्ढे, कहीं फिसला देनेवाले चिकने ढेले, कहीं खूब तपी हुई बालू और कहीं तीखी कीलोंसे वह मार्ग व्याप्त रहता है। कहीं-कहीं अनेक शाखाओंमें फैले हुए सैकड़ों वन और दुःखदायी अन्धकार हैं, जहाँ कोई सहारा देनेवाला भी नहीं रहता। कहीं तपे हुए लोहेके काँटेदार वृक्ष, कहीं दावानल, कहीं तपी हुई शिला और कहीं हिमसे वह मार्ग आच्छादित रहता है। कहीं ऐसी बालू भरी रहती है, जिसमें चलनेवाला जीव कण्ठतक धँस जाता है और बालू कानके पासतक आ जाती है। कहीं गरम जल और कहीं कंडोंकी आगसे यमलोकका मार्ग व्याप्त रहता है। कहीं धूल मिली हुई प्रचण्ड वायुका बवंडर उठता है और कहीं बड़े-बड़े पत्थरोंकी वर्षा होती है। उन सबकी पीड़ा सहते हुए पापी जीव यमलोकमें जाते हैं। रेतकी भारी वृष्टिसे सारा अंग भर जानेके कारण पापी जीव रोते हैं। महान् मेघोंकी भयंकर गर्जनासे वे बारंबार थर्रा उठते हैं। कहीं तीखे अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा होती है, जिससे उनके सारे शरीरमें घाव हो जाते हैं। तत्पश्चात् उनके ऊपर नमक मिले हुए पानीकी मोटी धाराएँ बरसायी जाती हैं। इस प्रकार कष्ट सहन करते हुए उन्हें जाना पड़ता है। कहीं अत्यन्त ठंडी, कहीं रूखी और कहीं कठोर वायुका सब ओरसे आघात सहते हुए पापी जीव सूखते और रोते हैं। इस प्रकार वह मार्ग बड़ा ही भयंकर है। वहाँ राहखर्च नहीं मिलता। कोई सहारा देनेवाला नहीं रहता। वह सब ओरसे दुर्गम और निर्जन है। वहाँ और कोई मार्ग आकर नहीं मिला है। वह बहुत बड़ा और आश्रयरहित है। वहाँ अन्धकार-ही-अन्धकार भरा रहता है। वह महान् कष्टप्रद और सब प्रकारके दुःखोंका आश्रय है। ऐसे ही मार्गसे यमकी आज्ञाका पालन करनेवाले अत्यन्त भयंकर यमदूतोंद्वारा समस्त पाप-परायण मूढ़ जीव बलपूर्वक लाये जाते हैं।

वे एकाकी, पराधीन तथा मित्र और बन्धु-बान्धवोंसे रहित होते हैं। अपने कर्मोंके लिये बारंबार शोक करते और रोते हैं। उनका आकार प्रेत-जैसा होता है। उनके शरीरपर वस्त्र नहीं रहता। कण्ठ, ओठ और तालू सूखे होते हैं। वे शरीरसे दुर्बल और भयभीत होते हैं तथा क्षुधाकी आगसे जलते रहते हैं। बलोन्मत्त यमदूत किन्हीं-किन्हीं पापी मनुष्योंको चित सुलाकर उनके पैरोंमें साँकल बाँध देते हैं और उन्हें घसीटते हुए खींचते हैं। कितने ही दूसरे जीव ललाटमें अंकुश चुभाये जानेके कारण क्लेश भोगते हैं। कितनोंकी बाँहें पीठकी ओर घुमाकर बाँध दी जाती और उनके हाथोंमें कील ठोंक दी जाती है; साथ ही पैरोंमें बेड़ी भी पड़ी होती है। इस दशामें भूखका कष्ट सहन करते हुए उन्हें जाना पड़ता है। कुछ दूसरे जीवोंके गलेमें रस्सी बाँधकर उन्हें पशुओंकी भाँति घसीटा जाता है और वे अत्यन्त दुःख उठाते रहते हैं। कितने ही दुष्ट मनुष्योंकी जिह्वामें रस्सी बाँधकर उन्हें खींचा जाता है। किन्हींकी कमरमें भी रस्सी बाँधी जाती और उन्हें गरदनियाँ देकर इधर-उधर ढकेला जाता है। यमदूत किन्हींकी नाक बाँधकर खींचते हैं और किन्हींके गाल तथा ओठ छेदकर उनमें रस्सी डाल देते और उन्हें खींचकर ले जाते हैं। तपे हुए सींकचोंसे कितने ही पापियोंके पेट छिदे होते हैं। कुछ लोगोंके कानों और ठोढ़ियोंमें छेद करके उनमें रस्सी डालकर खींचा जाता है। किन्हींके पैरों और हाथोंके अग्रभाग काट लिये जाते हैं। किन्हींके कण्ठ, ओठ और तालुओंमें छेद कर दिया जाता है। किन्हीं-किन्हींके अण्डकोश कट जाते हैं और कुछ लोगोंके समस्त अंगोंकी सन्धियाँ काट दी जाती हैं। किन्हींको भालोंसे छेदा जाता है, कुछ बाणोंसे घायल किये जाते हैं और कुछ लोगोंको मुद्गरों तथा लोहेके डंडोंसे बारंबार पीटा जाता है और वे निराश्रय होकर चीखते-चिल्लाते हुए इधर-उधर भागा करते हैं।

प्रज्वलित अग्निके समान कान्तिवाले भाँति-भाँतिके भयंकर आरों और भिन्दिपालोंसे उन्हें विदीर्ण किया जाता है और वे पापी जीव पीब तथा रक्त बहाते हुए घावसे पीड़ित होते और कीड़ोंसे डँसे जाते हैं। इस प्रकार उन्हें विवश करके यमलोकमें ले जाया जाता है। वे भूख-प्याससे पीड़ित होकर अन्न और जल माँगते हैं, धूपसे बचनेको छायाके लिये प्रार्थना करते हैं और शीतसे व्यथित होकर तापनेके लिये अग्नि माँगते हैं। जिन्होंने उक्त वस्तुओंका दान नहीं किया होता, वे उस पाथेयरहित पथपर इसी प्रकार कष्ट सहते हुए यात्रा करते हैं। इस प्रकार अत्यन्त दुःखमय मार्गसे चलकर जब वे प्रेतलोकमें पहुँचते हैं, तब दूत उन्हें यमराजके आगे उपस्थित करते हैं। उस समय वे पापी जीव यमराजको भयानक रूपमें देखते हैं। वहाँ असंख्यों भयानक यमदूत, जो काजलके समान काले, महान् वीर और अत्यन्त क्रूर होते हैं, हाथोंमें सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लिये मौजूद रहते हैं। ऐसे ही परिवारके साथ बैठे हुए यमराज तथा चित्रगुप्तको पापी जीव अत्यन्त भयंकररूपमें देखते हैं।

उस समय भगवान् यमराज और चित्रगुप्त उन पापियोंको धर्मयुक्त वाक्योंसे समझाते हुए बड़े जोर-जोरसे फटकारते हैं। वे कहते हैं—'ओ खोटे कर्म करनेवाले पापियो! तुमने दूसरोंके धन हड़प लिये हैं और सुन्दर रूपके घमंडमें आकर परायी स्त्रियोंके साथ व्यभिचार किया है। मनुष्य अपने-आप जो कुछ कर्म करता है, उसे स्वयं ही भोगता है; फिर तुमने अपने ही भोगनेके लिये पापकर्म क्यों किया? और अब अपने कर्मोंकी आगमें जलकर इस समय तुमलोग संतप्त क्यों हो रहे हो? भोगो अपने उन कर्मोंको। इसमें दूसरे किसीका दोष नहीं है। ये राजालोग भी अपने भयंकर कर्मोंसे प्रेरित हो मेरे पास आये हैं; इन्हें अपनी खोटी बुद्धि और बलका बड़ा घमंड था। अरे, ओ दुराचारी राजाओ! तुमलोग प्रजाका सर्वनाश करनेवाले हो। अरे, थोड़े समयतक रहनेवाले राज्यके लिये तुमने पाप क्यों किया? राज्यके लोभमें पड़कर मोहवश बलपूर्वक अन्यायसे जो तुमने प्रजाजनोंको दण्ड दिया है, इस समय उसका फल भोगो। कहाँ है वह राज्य और कहाँ गयी वह रानी, जिसके लिये तुमने पापकर्म किया था? अब तो सबको छोड़कर तुम अकेले ही यहाँ खड़े हो। यहाँ वह बल नहीं दिखायी देता, जिससे तुमने प्रजाओंका विध्वंस किया। इस समय यमदूतोंकी मार पड़नेपर कैसा लग रहा है?' इस तरह नाना प्रकारके वचनोंद्वारा यमराजके उलाहना देनेपर वे राजा अपने-अपने कर्मोंको सोचते हुए चुपचाप खड़े रह जाते हैं।

इस प्रकार राजाओंसे धर्मकी बात कहकर धर्मराज उनके पापपंककी शुद्धिके लिये अपने दूतोंसे इस प्रकार कहते हैं—'ओ चण्ड! ओ महाचण्ड!! तुम इन राजाओंको पकड़कर ले जाओ और क्रमशः नरककी आगमें डालकर इन्हें पापोंसे शुद्ध करो।' तब वे दूत शीघ्र ही उठकर राजाओंके पैर पकड़ लेते हैं और उन्हें बड़े वेगसे आकाशमें घुमाकर ऊपर फेंकते हैं। तत्पश्चात् उन्हें पूरा बल लगाकर तपायी हुई शिलापर बड़े वेगसे पटकते हैं, मानो किसी महान् वृक्षपर वज्रसे प्रहार करते हों। शिलापर गिरनेसे उनका शरीर चूर-चूर हो जाता है, रक्तके स्रोत बहने लगते हैं और जीव अचेत एवं निश्चेष्ट हो जाता है। तदनन्तर वायुका स्पर्श होनेपर वह धीरे-धीरे फिर साँस लेने लगता है। उसके बाद पापकी शुद्धिके लिये उसे नरकके समुद्रमें डाल दिया जाता है। इस पृथ्वीके नीचे नरककी अट्ठाईस कोटियाँ हैं। वे सातवें तलके अन्तमें भयंकर अन्धकारके भीतर स्थित हैं। उनमें पहली कोटिका नाम घोरा है। उसके नीचे सुघोराकी स्थिति है। तीसरी अतिघोरा, चौथी महाघोरा और पाँचवीं कोटि घोररूपा है। छठीका नाम तरलतारा, सातवींका भयानका, आठवींका कालरात्रि और नवींका भयोत्कटा है। उसके नीचे दसवीं कोटि चण्डा है। उसके भी नीचे महाचण्डा है। बारहवींका नाम चण्डकोलाहला है। उसके बाद प्रचण्डा, नरनायिका, कराला, विकराला और वज्रा है। [तीन अन्य नरकोंके साथ] वज्राकी बीसवीं संख्या है। इनके सिवा त्रिकोणा, पंचकोणा,

सुदीर्घा, परिवर्तुला, सप्तभौमा, अष्टभौमा, दीप्ता और माया—ये आठ और हैं। इस प्रकार नरककी कुल अट्ठाईस कोटियाँ बतायी गयी हैं।

उपर्युक्त कोटियोंमेंसे प्रत्येकके पाँच-पाँच नायक हैं। उनके नाम सुनो। उनमें पहला रौरव है, जहाँ देहधारी जीव रोते हैं। दूसरा महारौरव है, जिसकी पीड़ाओंसे बड़े-बड़े जीव भी रो देते हैं। तीसरा तम, चौथा शीत और पाँचवाँ उष्ण है। ये प्रथम कोटिके पाँच नायक माने गये हैं। इनके सिवा सुघोर, सुतम, तीक्ष्ण, पद्म, संजीवन, शठ, महामाय, अतिलोम, सुभीम, कटंकट, तीव्रवेग, कराल, विकराल, प्रकम्पन, महापद्म, सुचक्र, कालसूत्र, प्रतर्दन, सूचीमुख, सुनेमि, खादक, सुप्रदीपक, कुम्भीपाक, सुपाक, अतिदारुणकूप, अंगारराशि, भवन, असृक्पूयह्रद, विरामय, तुण्डशकुनि, महासंवर्तक, क्रतु, तप्तजतु, पंकलेप, पूतिमांस, द्रव, त्रपु, उच्छ्वास, निरुच्छ्वास, सुदीर्घ, कूटशाल्मलि, दुरिष्ट, सुमहानाद, प्रभाव, सुप्रभावन, ऋक्ष, मेष, वृष, शल्य, सिंहानन, व्याघ्रानन, मृगानन, सूकरानन, श्वानन, महिषानन, वृकानन, मेषवरानन, ग्राह, कुम्भीर, नक्र, सर्प, कूर्म, वायस, गृध्र, उलूक, जलूका, शार्दूल, कपि, कर्कट, गण्ड, पूतिवक्त्र, रक्ताक्ष, पूतिमृत्तिक, कणाधूम, तुषाग्नि, कृमिनिचय, अमेय, अप्रतिष्ठ, रुधिरान्न, श्वभोजन, लालाभक्ष, आत्मभक्ष, सर्वभक्ष, सुदारुण, संकष्ट, सुबिलास, सुकट, संकट, कट, पुरीष, कटाह, कष्टदायिनी वैतरणी नदी, सुतप्त लोहशंकु, अय:शंकु, प्रपूरण, घोर, असितालवन, अस्थिभंग, प्रपीड़क, नीलयन्त्र, अतसीयन्त्र, इक्षुयन्त्र, कूट, अंशप्रमर्दन, महाचूर्णी, सुचूर्णी, तप्तलोहमयी शिला, क्षुरधाराभपर्वत, मलपर्वत, मूत्रकूप, विष्ठाकूप, अन्धकूप, पूयकूप, शातन, मुसलोलूखल, यन्त्रशिला, शकटलांगल, तालपत्रासिवन, महामशकमण्डप, सम्मोहन, अतिभंग, तप्तशूल, अयोगुड, बहुदु:ख, महादु:ख, कश्मल, शमल, हालाहल, विरूप, भीमरूप, भीषण, एकपाद, द्विपाद, तीव्र तथा अवीचि। यह अवीचि अन्तिम नरक है। इस प्रकार ये क्रमशः पाँच-पाँचके अट्ठाईस समुदाय माने गये हैं। एक-एक समुदाय एक-एक कोटिका नायक है।

रौरवसे लेकर अवीचितक कुल एक सौ चालीस नरक माने गये हैं। इन सबमें पापी मनुष्य अपने-अपने कर्मोंके अनुसार डाले जाते हैं और जबतक भाँति-भाँतिकी यातनाओंद्वारा उनके कर्मोंका भोग समाप्त नहीं हो जाता, तबतक वे उसीमें पड़े रहते हैं। जैसे सुवर्ण आदि धातु जबतक उनकी मैल न जल जाय तबतक आगमें तपाये जाते हैं, उसी प्रकार पापी पुरुष पापक्षय होनेतक नरकोंकी आगमें शुद्ध किये जाते हैं। इस प्रकार क्लेश सहकर जब ये प्राय: शुद्ध हो जाते हैं, तब शेष कर्मोंके अनुसार पुन: इस पृथ्वीपर आकर जन्म ग्रहण करते हैं। तृण और झाड़ी आदिके भेदसे नाना प्रकारके स्थावर होकर वहाँके दु:ख भोगनेके पश्चात् पापी जीव कीड़ोंकी योनिमें जन्म लेते हैं। फिर कीटयोनिसे निकलकर क्रमश: पक्षी होते हैं। पक्षीरूपसे कष्ट भोगकर मृगयोनिमें उत्पन्न होते हैं। वहाँके दु:ख भोगकर अन्य पशुयोनिमें जन्म लेते हैं। फिर क्रमश: गोयोनिमें आकर मरनेके पश्चात् मनुष्य होते हैं।

माताओ! हमने यमलोकमें इतना ही देखा है। वहाँ पापीको बड़ी भयानक यातनाएँ होती हैं। वहाँ ऐसे-ऐसे नरक हैं, जो न कभी देखे गये थे और न कभी सुने ही गये थे। वह सब हमलोग न तो जान सकती हैं और न देख ही सकती हैं।

माताएँ बोलीं—बस, बस, इतना ही बहुत हुआ। अब रहने दो। इन नरक-यातनाओंको सुनकर हमारे सारे अंग शिथिल हो गये हैं। हृदयमें भय छा गया है। बारम्बार उनकी याद आ जानेसे हमारा मन सुध-बुध खो बैठता है। आन्तरिक भयके उद्रेकसे हमलोगोंके शरीरमें रोमांच हो आया है।

कन्याओंने कहा—माताओ! इस परम पवित्र भारतवर्षमें जो हमें जन्म मिला है, यह अत्यन्त दुर्लभ है। इसमें भी हजार-हजार जन्म लेनेके बाद पुण्यराशिके संचयसे कदाचित् कभी जीव मनुष्ययोनिमें जन्म पाता है; परन्तु जो माघस्नानमें तत्पर रहनेवाले हैं, उनके लिये कुछ

भी दुर्लभ नहीं है। उन्हें यहाँ ही परम मोक्ष मिल जाता है और पर्याप्त भोगसामग्री भी सुलभ होती है। भारतवर्षको कर्मभूमि कहा गया है। अन्य जितनी भूमियाँ हैं, वे भोगभूमि मानी जाती हैं। यहाँ यति तपस्या और याजक यज्ञ करते हैं तथा यहीं पारलौकिक सुखके लिये श्रद्धापूर्वक दान दिये जाते हैं। कितने ही धन्य पुरुष यहीं माघस्नान करते तथा तपस्या करके अपने कर्मोंके अनुसार ब्रह्मा, इन्द्र, देवता और मरुद्गणोंका पद प्राप्त करते हैं। यह भारतवर्ष सभी देशोंसे श्रेष्ठ माना गया है; क्योंकि यहीं मनुष्य धर्म तथा स्वर्ग और मोक्षकी सिद्धि कर सकते हैं। इस पवित्र भारतदेशमें क्षणभंगुर मानव-जीवनको पाकर जो अपने आत्माका कल्याण नहीं करता, उसने अपने-आपको ठग लिया। मनुष्योंमें भी अत्यन्त दुर्लभ ब्राह्मणत्वको पाकर जो अपना कल्याण नहीं करता, उससे बढ़कर मूर्ख कौन होगा। कितने ही कालके बाद जीव अत्यन्त दुर्लभ मानवजीवन प्राप्त करता है; इसे पाकर ऐसा करना चाहिये, जिससे कभी नरकमें न जाना पड़े। देवतालोग भी यह अभिलाषा करते हैं कि हमलोग कब भारतवर्षमें जन्म लेकर माघ मासमें प्रात:काल किसी नदी या सरोवरके जलमें गोते लगायेंगे। देवता यह गीत गाते हैं कि जो लोग देवत्वके पश्चात् स्वर्ग और मोक्षकी प्राप्तिके मार्गभूत भारतवर्षके भूभागमें मनुष्य-जन्म धारण करते हैं, वे धन्य हैं। हम नहीं जानते कि स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाले अपने पुण्यकर्मके क्षीण होनेपर किस देशमें हमें पुन: देह धारण करना पड़ेगा। जो भारतवर्षमें जन्म लेकर सब इन्द्रियोंसे युक्त हैं—किसी भी इन्द्रियसे हीन नहीं हैं, वे ही मनुष्य धन्य हैं; अत: माताओ! तुम भय मत करो, भय मत करो। आदरपूर्वक धर्मका अनुष्ठान करो। जिनके पास दानरूपी राहखर्च होता है, वे यमलोकके मार्गपर सुखसे जाते हैं; अन्यथा उस पाथेयरहित पथपर जीवको क्लेश भोगना पड़ता है। ऐसा जानकर मनुष्य पुण्य करे और पाप छोड़ दे। पुण्यसे देवत्वकी प्राप्ति होती है और अधर्मसे नरकमें गिरना पड़ता है। जो किंचित् भी देवेश्वर भगवान् श्रीहरिकी शरणमें गये हैं, वे भयंकर यमलोकका दर्शन नहीं करते।

बान्धवो! यदि तुमलोग संसार-बन्धनसे छुटकारा पाना चाहते हो तो सच्चिदानन्दस्वरूप परमदेव श्रीनारायणकी आराधना करो। यह चराचर जगत् आपलोगोंकी भावना—संकल्पसे ही निर्मित है, इसे बिजलीकी तरह चंचल—क्षणभंगुर समझकर श्रीजनार्दनका पूजन करो। अहंकार विद्युत्की रेखाके समान व्यर्थ है, इसे कभी पास न आने दो। शरीर मृत्युसे जुड़ा हुआ है, जीवन भी चंचल है, धन राजा आदिसे प्राप्त होनेवाली बाधाओंसे परिपूर्ण है तथा सम्पत्तियाँ क्षणभंगुर हैं। माताओ! क्या तुम नहीं जानतीं, आधी आयु तो नींदमें चली जाती है? कुछ आयु भोजन आदिमें समाप्त हो जाती है। कुछ बालकपनमें, कुछ बुढ़ापेमें और कुछ विषय-भोगोंके सेवनमें ही बीत जाती है; फिर कितनी आयु लेकर तुम धर्म करोगी। बचपन और बुढ़ापेमें तो भगवान्के पूजनका अवसर नहीं प्राप्त होता; अत: इसी अवस्थामें अहंकारशून्य होकर धर्म करो। संसाररूपी भयंकर गड्ढेमें गिरकर नष्ट न हो जाओ। यह शरीर मृत्युका घर है तथा आपत्तियोंका सर्वश्रेष्ठ स्थान है; इतना ही नहीं, यह रोगोंका भी निवासस्थान है और मल आदिसे भी अत्यन्त दूषित रहता है। माताओ! फिर किसलिये इसे स्थिर समझकर तुम पाप करती हो। यह संसार नि:सार है और नाना प्रकारके दु:खोंसे भरा है। इसपर विश्वास नहीं करना चाहिये; क्योंकि एक दिन तुम्हारा निश्चय ही नाश होनेवाला है। बान्धवो! तुम सब लोग सुनो। हम बिलकुल सच्ची बात बता रही हैं। शरीरका नाश बिलकुल निकट है; अत: श्रीजनार्दनका पूजन अवश्य करना चाहिये। सदा ही श्रीविष्णुकी आराधना करते रहो। यह मानव-जीवन अत्यन्त दुर्लभ है। बन्धुओ! स्थावर आदि योनियोंमें अरबों-खरबों बार भटकनेके बाद किसी तरह मनुष्यका शरीर प्राप्त होता है। मनुष्य होनेपर भी देवताओंके पूजन और दानमें मन लगना तो और भी कठिन है। माताओ! योगबुद्धि सबसे दुर्लभ है। जो दुर्लभ मनुष्य-शरीरको पाकर सदा ही श्रीहरिका

पूजन नहीं करता, वह आप ही अपना विनाश करता है। उससे बढ़कर मूर्ख कौन होगा? तुमलोग दम्भका आचरण छोड़कर चक्रसुदर्शनधारी भगवान् विष्णुकी पूजा करो। हमलोग बारंबार भुजाएँ उठाकर तुम्हारे हितकी बात कहती हैं। सर्वथा भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णुका पूजन करना चाहिये और मनुष्योंके साथ ईर्ष्याका भाव छोड़ देना चाहिये। सबके धारण करनेवाले जगदीश्वर भगवान् अच्युतकी आराधना किये बिना संसार-सागरमें डूबे हुए तुम सब लोग कैसे पार जाओगे? माताओ! अधिक कहनेकी क्या आवश्यकता? हमारी यह बात सुनो—जो प्रतिदिन तन्मय होकर भगवान् गोविन्दके गुणोंका गान तथा नामोंका संकीर्तन सुनते हैं, उन्हें वेदोंसे, तपस्यासे, शास्त्रोक्त दक्षिणावाले यज्ञोंसे, पुत्र और स्त्रियोंसे, संसारके कृत्योंसे तथा घर, खेत और बन्धु-बान्धवोंसे क्या लेना है? इसलिये तुमलोग भय छोड़कर श्रीकेशवकी आराधना करो। शालग्रामशिलाका निर्मल एवं शुद्ध चरणामृत पीओ तथा भगवान् विष्णुके दिन—एकादशीको उपवास किया करो।

जब सूर्य मकरराशिपर स्थित हों, उस समय प्रतिदिन प्रात:काल स्नान करो; साथ ही पतिकी सेवामें लगी रहो। नरकका भय तो तुम्हें दूरसे ही छोड़ देना चाहिये; क्योंकि सब पापोंका नाश करनेवाली परम पवित्र एकादशी तिथि प्रत्येक पक्षमें आती है। फिर तुम्हें नरकसे भय क्यों हो रहा है? घरसे बाहरके जलमें स्नान करनेसे पुण्य प्रदान करनेवाला माघमास भी प्रतिवर्ष आया करता है। फिर तुम्हें नरकसे भय क्यों होता है।

वसिष्ठजी कहते हैं—राजन्! वे कन्याएँ अपनी माताओंसे इस प्रकार कहकर पुन: माघस्नान, उपवास आदि व्रत, धर्म तथा दान करने लगीं।

महात्मा पुष्करके द्वारा नरकमें पड़े हुए जीवोंका उद्धार

वसिष्ठजी कहते हैं—राजन्! माघस्नान और उपवास आदि महान् पुण्य करनेवाले मनुष्य इसी प्रकार दिव्य लोकोंमें जाते-आते रहते हैं। पुण्य ही सर्वत्र आने-जानेमें कारण है। पूर्वकालमें विप्रवर पुष्कर भी यमलोकमें गये थे और वहाँ बहुत-से नारकीय जीवोंको नरकसे निकालकर फिर यहीं आ पूर्ववत् अपने घरमें रहने लगे। त्रेतायुगमें जब भगवान् श्रीरामचन्द्रजी राज्य करते थे, तभी एक समय किसी ब्राह्मणका पुत्र मरकर यमलोकमें गया और पुन: वह जी उठा। क्या यह बात तुमने नहीं सुनी है? देवकीनन्दन श्रीकृष्णने अपने गुरु सान्दीपनिके पुत्रको, जिसे बहुत दिन पहले ही ग्राहने अपना ग्रास बना लिया था, पुन: यमलोकसे ले आकर गुरुको अर्पण किया था। इसी प्रकार और भी कई मनुष्य यमलोकसे लौट आये हैं। इस विषयमें सन्देह नहीं करना चाहिये। अच्छा बताओ, अब और क्या सुनना चाहते हो?

दिलीपने पूछा—मुने! पुष्कर नामक श्रेष्ठ ब्राह्मण कहाँके रहनेवाले थे? वे कैसे यमलोकमें आये और किस प्रकार उन्होंने नरकसे पापियोंका उद्धार किया?

वसिष्ठजी बोले—राजन्! मैं महात्मा पुष्करके चरित्रका वर्णन करता हूँ। वह सब पापोंका नाश करनेवाला है। तुम सावधान होकर सुनो। बुद्धिमान् पुष्कर नन्दिग्रामके निवासी थे। वे सदा अपने धर्मके अनुष्ठानमें लगे रहनेवाले और सब प्राणियोंके हितैषी थे। सदा माघस्नान और स्वाध्यायमें तत्पर रहते तथा समयपर अनन्यभावसे श्रीविष्णुकी आराधना किया करते थे। महायोगी पुष्कर अपने कुटुम्बके साथ रहते और नित्य अग्निहोत्र करते थे। राजन्, वे अप्रमेय! हरे! विष्णो! कृष्ण! दामोदार! अच्युत! गोविन्द! अनन्त! देवेश्वर! इत्यादि रूपसे केवल भगवन्नामोंका कीर्तन करते थे। महामते! देवताका आराधन छोड़कर और किसी काममें उन ब्राह्मण देवताका मन स्वप्नमें भी नहीं लगता था। एक दिन सूर्यनन्दन यमराजने अपने

भयंकर दूतोंको आज्ञा दी—'जाओ, नन्दिग्रामनिवासी पुष्कर नामक ब्राह्मणको यहाँ पकड़ ले आओ।' यह आदेश सुनकर और यमराजके बताये हुए पुष्करको न पहचानकर वे इन महात्मा पुष्करको ही यमलोकमें पकड़ लाये। ब्राह्मण पुष्करको आते देख यमराज मन-ही-मन भयभीत हो गये और आसनसे उठकर खड़े हो गये। फिर मुनिको आसनपर बिठाकर उन्होंने दूतोंको फटकारा—'तुमलोगोंने यह क्या किया? मैंने तो दूसरे पुष्करको लानेके लिये कहा था। तुमलोगोंके कितने पापपूर्ण विचार हैं। भला, इन सब धर्मोंके ज्ञाता, विशेषतः भगवान् विष्णुके भक्त, सदा माघस्नान करनेवाले और उपवासपरायण महात्मा पुरुषको यहाँ मेरे समीप क्यों ले आये?'

दूतोंको इस प्रकार डाँट बताकर प्रेतराज यमने पुष्करसे कहा—'ब्रह्मन्! तुम्हारे पुत्र और स्त्री आदि सब बान्धव बहुत व्याकुल होकर रो रहे हैं; अतः तुम भी अभी जाओ।' तब पुष्करने यमसे कहा— 'भगवन्! जहाँ पापी पुरुष यातनामय शरीर धारण करके कष्ट भोगते हैं, उन सब नरकोंको मैं देखना चाहता हूँ। यह सुनकर सूर्यकुमार यमने पुष्करको सैकड़ों और हजारों नरक दिखलाये। पुष्करने देखा, पापी जीव नरकोंमें पड़कर बड़ा कष्ट भोगते हैं। कोई शूलीपर चढ़े हैं, किन्हींको व्याघ्र खा रहा है, जिससे वे अत्यन्त दुःखित हैं। कोई तपी हुई बालूपर जल रहे हैं। किन्हींको कीड़े खा रहे हैं। कोई जलते हुए घड़ेमें डाल दिये गये हैं। कोई कीड़ोंसे पीड़ित हैं। कोई असिपत्रवनमें दौड़ रहे हैं, जिससे उनके अंग छिन्न-भिन्न हो रहे हैं। किन्हींको आरोंसे चीरा जा रहा है। कोई कुल्हाड़ोंसे काटे जाते हैं। किन्हींको खारी कीचड़में कष्ट भोगना पड़ता है। किन्हींको सूई चुभो-चुभोकर गिराया जाता है और कोई सर्दीसे पीड़ित हो रहे हैं। उनको तथा अन्य जीवोंको नरकमें पड़कर यातना भोगते देख पुष्करको बड़ा दुःख हुआ। वे उनसे बोले—'क्या आपलोगोंने पूर्वजन्ममें कोई पुण्य नहीं किया था, जिससे यहाँ यातनामें पड़कर आप सदा दुःख भोगते हैं?'

नरकके जीवोंने कहा—विप्रवर! हमने पृथ्वीपर कोई पुण्य नहीं किया था। इसीसे इस यातनामें पड़कर जलते और बहुत कष्ट उठाते हैं। हमने परायी स्त्रियोंसे अनुराग किया, दूसरोंके धन चुराये, अन्य जीवोंकी हिंसा की, बिना अपराध ही दूसरोंपर लांछन लगाये, ब्राह्मणोंकी निन्दा की और जिनके भरण-पोषणका भार अपने ऊपर था, उनके भोजन किये बिना ही हम सबसे पहले भोजन कर लेते थे। इन्हीं सब पापोंके कारण हमलोग इस नरकाग्निमें दग्ध हो रहे हैं। प्यासी गौएँ जब जलकी ओर दौड़ती हुई जातीं, तो हम सदा उनके पानी पीनेमें विघ्न डाल दिया करते थे। गौओंको कभी खिलाते-पिलाते नहीं थे, तो भी उनका दूध दुहकर पेट पालनेमें लगे रहते थे। याचकोंको दान देनेमें लगे हुए धार्मिक पुरुषोंके कार्यमें रोड़े अटकाया करते थे। अपनी स्त्रियोंको त्याग दिया था। व्रतसे भ्रष्ट हो गये थे। दूसरेके अन्नमें ही सदा रुचि रखते थे। पर्वोंपर भी स्त्रियोंके साथ रमण करते थे। ब्राह्मणोंको देनेकी प्रतिज्ञा करके भी लोभवश उन्हें दान नहीं दिया। हम धरोहर हड़प लेते थे, मित्रोंसे द्रोह करते तथा झूठी गवाही देते रहते थे। इन्हीं सब पापोंके कारण आज हम दग्ध हो रहे हैं।

पुष्करने कहा—क्या आपलोगोंने भगवान् जनार्दनका एक बार भी पूजन नहीं किया? इसीसे आप ऐसी भयानक दशाको पहुँचे हैं। जिन्होंने समस्त लोकोंके स्वामी भगवान् पुरुषोत्तमका पूजन किया है, उन मनुष्योंका मोक्षतक हो सकता है; फिर पापक्षयकी तो बात ही क्या है? प्रायः आपलोगोंने श्रीपुरुषोत्तमके चरणोंमें मस्तक नहीं झुकाया है। इसीसे आपको इस अत्यन्त भयंकर नरककी प्राप्ति हुई है। अब यहाँ हाहाकार करनेसे क्या लाभ? निरन्तर भगवान् श्रीहरिका स्मरण कीजिये। वे श्रीविष्णु समस्त पापोंका नाश करनेवाले हैं। मैं भी यहाँ जगदीश्वरके नामोंका कीर्तन करता हूँ। वे नाम निश्चय ही आपका कल्याण करेंगे।

नरकके जीवोंने कहा—ब्रह्मन्! हमारा अन्तःकरण अपवित्र है। हम अपने पापसे सन्तप्त हैं। ऐसे समयमें आपके शरीरको छूकर बहनेवाली वायु हमें परम आनन्द प्रदान करती है। धर्मात्मन्! आप कुछ देरतक यहाँ ठहरिये, जिससे हम दुःखी जीवोंको क्षणभर भी तो सुख मिल सके। ब्रह्मन्! आपके दर्शनसे भी हमें बड़ा सन्तोष होता है। अहो! हम पापी जीवोंपर

भी आपकी कितनी दया है।

यमराजने कहा—धर्मके ज्ञाता पुष्कर! तुमने नरक देख लिये। अब जाओ। तुम्हारी पत्नी दु:ख और शोकमें डूबकर रो रही है।

पुष्कर बोले—भगवन्! जबतक इन दु:खी जीवोंकी आवाज कानोंमें पड़ती है, तबतक कैसे जाऊँ। जानेपर भी वहाँ मुझे क्या सुख मिलेगा? आपके किंकरोंकी मार खाकर जो आगके ढेरमें गिर रहे हैं, उन नारकीय जीवोंकी यह दिन-रातकी पुकार सुनिये। कितने ही जीवोंके मुखसे निकली हुई यह ध्वनि सुनायी देती है—'हाय! मुझे बचाओ, मेरी रक्षा करो, रक्षा करो।' समस्त भूतोंके आत्मा और सबके ईश्वर सर्वव्यापी श्रीहरिकी मैं नित्य आराधना करता हूँ। इस सत्यके प्रभावसे नारकीय जीव तत्काल मुक्त हो जायँ। भगवान् विष्णु सबमें स्थित हैं और सब कुछ भगवान् विष्णुमें स्थित है। इस सत्यसे नारकीय जीवोंका तुरंत क्लेशसे छुटकारा हो जाय। हे कृष्ण! हे अच्युत! हे जगन्नाथ! हे हरे! हे विष्णो! हे जनार्दन! यहाँ नरकके भीतर यातनामें पड़े हुए इन सब जीवोंकी रक्षा कीजिये।

पुष्करके द्वारा उच्चारित भगवान्‌के नाम सुनकर वहाँ नरकमें पड़े हुए सभी पापी तत्काल उससे छुटकारा पा गये। वे सब बड़ी प्रसन्नताके साथ पुष्करसे बोले—'ब्रह्मन्! हम नरकसे मुक्त हो गये। इससे संसारमें आपकी अनुपम कीर्तिका विस्तार हो।' यमराजको भी इस घटनासे बड़ा विस्मय हुआ। वे पुष्करके पास जा प्रसन्नचित्त होकर वरदानके द्वारा उन्हें सन्तुष्ट करने लगे। वे बोले—'धर्मात्मन्! तुम पृथ्वीपर जाकर सदा वहीं रहो। तुम्हें और तुम्हारे सुहृदोंको भी मुझसे कोई भय नहीं है। जो मनुष्य तुम्हारे माहात्म्यका प्रतिदिन स्मरण करेगा, उसे मेरी कृपासे अपमृत्युका भय नहीं होगा।'

वसिष्ठजी कहते हैं—यमराजके यों कहनेपर पुष्कर पृथ्वीपर लौट आये और यहाँ पूर्ववत् स्वस्थ हो भगवान् मधुसूदनकी पूजा करते हुए रहने लगे। राजन्! मेरे द्वारा कहे हुए महात्मा पुष्करके इस माहात्म्यको जो सुनता है, उसके सारे पापोंका नाश हो जाता है। भगवान् विष्णुका नाम-कीर्तन करनेसे जिस प्रकार नरकसे भी छुटकारा मिल जाता है, वह प्रसंग मैंने तुम्हें सुना दिया। आदिपुरुष परमात्माके नामोंकी थोड़ी-सी भी स्मृति संचित पापोंकी राशिका तत्काल नाश कर देती है, यह बात प्रत्यक्ष देखी गयी है। फिर उन जनार्दनके नामोंका भलीभाँति कीर्तन करनेपर उत्तम फलकी प्राप्ति होगी, इसके लिये तो कहना ही क्या है।*

मृगशृंगका विवाह, विवाहके भेद तथा गृहस्थ-आश्रमका धर्म

राजा दिलीप बोले—मुने! मेरे प्रश्नोंके उत्तरमें आपने बड़ी विचित्र बात सुनायी। अब संसारके हितके लिये महात्मा मृगशृंगके शेष चरित्रका वर्णन कीजिये; क्योंकि उनके समान संतपुरुष स्पर्श, बातचीत और दर्शन करनेसे तथा शरणमें जानेसे सारे पापोंका नाश कर डालते हैं।

वसिष्ठजी कहते हैं—राजन्! ब्रह्मचारी मृगशृंगने गुरुकुलमें रहकर सम्पूर्ण वेदों और दर्शनोंका यथावत् अध्ययन किया। फिर गुरुकी बतायी हुई दक्षिणा दे, समावर्तनकी विधि पूरी करके शुद्ध चित्त होनेपर उन्हें गुरुने घर जानेकी आज्ञा दी। घर आनेपर कुत्स मुनिके उस पुत्रको उचथ्यने अपनी पुत्री देनेका विचार किया तथा मुनीश्वर मृगशृंगने भी पहले जिसे मन-ही-मन वरण किया था, उस उचथ्य-पुत्री सुवृत्ताके साथ विवाह करनेकी इच्छा की। इसके बाद उन्होंने महर्षि वेदव्यासजीकी आज्ञासे सुवृत्ता तथा उसकी तीनों सखियों—कमला, विमला और सुरसाका पाणिग्रहण किया।

श्रुति कहती है—'ब्राह्मणोंके लिये ब्राह्म विवाह सबसे उत्तम है।' इसलिये मुनिने उन चारों कन्याओंको ब्राह्म विवाहकी ही रीतिसे ग्रहण किया। इस प्रकार विवाह हो जानेपर मुनिवर वत्सने समस्त ऋषियोंको मस्तक झुकाया तथा वे मुनीश्वर भी वर-वधूको आशीर्वाद दे उनसे पूछकर अपनी-अपनी कुटीमें चले गये।

राजा दिलीपने पूछा—गुरुदेव वसिष्ठजी! चारों

* स्वल्पापि नामस्मृतिरादिपुंस: क्षयं करोत्याहितपापराशे:। प्रत्यक्षत: किं पुनरत्र दृष्टं संकीर्तिते नाम्नि जनार्दनस्य॥ (२२९। ८३)

वर्णोंके विवाह कितने प्रकारके माने गये हैं? यह बात यदि गोपनीय न हो तो मुझे भी बताइये।

वसिष्ठजी बोले—राजन्! सुनो, मैं क्रमशः तुमसे सभी विवाहोंका वर्णन करता हूँ। विवाह आठ प्रकारके हैं—ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच। जहाँ वरको बुलाकर वस्त्र और आभूषणोंसे विभूषित कन्याका [विधिपूर्वक] दान किया जाता है, वह ब्राह्म विवाह कहलाता है। ऐसे विवाहसे उत्पन्न होनेवाला पुत्र इक्कीस पीढ़ियोंका उद्धार करता है। यज्ञ करनेके लिये ऋत्विज्‌को जो कन्या दी जाती है, वह दैव विवाह है। उससे उत्पन्न होनेवाला पुत्र चौदह पीढ़ियोंका उद्धार करता है। वरसे दो बैल लेकर जो कन्याका दान किया जाता है, वह आर्ष विवाह है। उससे उत्पन्न हुआ पुत्र छः पीढ़ियोंका उद्धार करता है। 'दोनों एक साथ रहकर धर्मका आचरण करें' यों कहकर जो किसी माँगनेवाले पुरुषको कन्या दी जाती है, वह प्राजापत्य विवाह कहलाता है। उससे उत्पन्न हुआ पुत्र भी छः पीढ़ियोंका उद्धार करता है। ये चार विवाह ब्राह्मणोंके लिये धर्मानुकूल माने गये हैं। जहाँ धनसे कन्याको खरीदकर विवाह किया जाता है, वह आसुर विवाह है। वर और कन्यामें परस्पर मैत्रीके कारण जो विवाह-सम्बन्ध स्थापित होता है, उसका नाम गान्धर्व है। बलपूर्वक कन्याको हर लाना राक्षस विवाह है। सत्पुरुषोंने इसकी निन्दा की है। छलपूर्वक कन्याका अपहरण करके किये जानेवाले विवाहको पैशाच कहते हैं। यह बहुत ही घृणित है। समान वर्णकी कन्याओंके साथ विवाहकालमें उनका हाथ अपने हाथमें लेना चाहिये, यही विधि है। धर्मानुकूल विवाहोंसे सौ वर्षतक जीवित रहनेवाली धार्मिक सन्तान उत्पन्न होती है तथा अधर्ममय विवाहोंसे जिनकी उत्पत्ति होती है, वे भाग्यहीन, निर्धन और थोड़ी आयुवाले होते हैं; अतः ब्राह्मणोंके लिये ब्राह्म विवाह ही श्रेष्ठ है।

इस प्रकार मुनीश्वर मृगशृंग विधिपूर्वक विवाह करके वेदोक्त मार्गसे भलीभाँति गार्हस्थ्य-धर्मका पालन करने लगे। उनकी गृहस्थीके समान दूसरे किसीकी गृहस्थी न कभी हुई है, न होगी। सुवृत्ता, कमला, विमला और सुरसा—ये चारों पत्नियाँ पातिव्रत्य-धर्ममें तत्पर हो सदा पतिकी सेवामें लगी रहती थीं। उनके सतीत्वकी कहीं तुलना नहीं थी। इस प्रकार वे धर्मात्मा मुनि उन धर्मपत्नियोंके साथ रहकर भलीभाँति धर्मका अनुष्ठान करने लगे।

राजा दिलीपने पूछा—मुनिवर! पतिव्रताका क्या लक्षण है? तथा गृहस्थ-आश्रमका भी क्या लक्षण है? मैं इस बातको जानना चाहता हूँ। कृपया बताइये।

वसिष्ठजी बोले—राजन्! सुनो, मैं गृहस्थाश्रमका लक्षण बतलाता हूँ। सदाचारका पालन करनेवाला पुरुष दोनों लोक जीत लेता है। ब्राह्म मुहूर्तमें शयनसे उठकर पहले धर्म और अर्थका चिन्तन करे। फिर अर्थोपार्जनमें होनेवाले शारीरिक क्लेशपर विचार करके मन-ही-मन परमेश्वरका स्मरण करे। धनुषसे छूटनेपर एक बाण जितनी दूततक जाता है, उतनी दूरकी भूमि लाँघकर घरसे दूर नैर्ऋत्य कोणकी ओर जाय और वहाँ मल-मूत्रका त्याग करे। दिनको और सन्ध्याके समय कानपर जनेऊ चढ़ाकर उत्तरकी ओर मुँह करके शौचके लिये बैठना चाहिये और रात्रिमें दक्षिण दिशाकी ओर मुँह करके मल-मूत्रका त्याग करना चाहिये। मलत्यागके समय भूमिको तिनकेसे ढँक दे और अपने मस्तकपर वस्त्र डालकर यत्नपूर्वक मौन रहे। न तो थूके और न ऊपरको साँस ही खींचे। शौचके स्थानपर अधिक देरतक न रुके। मलकी ओर दृष्टिपात न करे। अपने शिश्नको हाथसे पकड़े हुए उठे और अन्यत्र जाकर आलस्यरहित हो गुदा और लिंगको अच्छी तरह धो डाले। किनारेकी मिट्टी लेकर उससे इस प्रकार अंगोंकी शुद्धि करे, जिससे मलकी दुर्गन्ध और लेप दूर हो जाय। किसी पवित्र तीर्थमें शौचकी क्रिया (गुदा आदि धोना) न करे; यदि करना हो तो किसी पात्रमें जल निकालकर उससे अलग जाकर शौच-कर्म करे। लिंगमें एक बार, गुदामें पाँच बार तथा बायें हाथमें दस बार मिट्टी लगाये। दोनों पैरोंमें पाँच-पाँच बार मिट्टी लगाकर धोये। इस प्रकार शौच करके मिट्टी और जलसे हाथ-पैर धोकर चोटी बाँध ले और दो बार आचमन करे। आचमनके समय हाथ घुटनोंके भीतर होना चाहिये। पवित्र स्थानमें उत्तर या पूरबकी ओर मुँह करके हाथमें पवित्री धारण किये आचमन करना

चाहिये। इससे पवित्री जूठी नहीं होती। यदि पवित्री पहने हुए ही भोजन कर ले तो वह अवश्य जूठी हो जाती है। उसको त्याग देना चाहिये।

तदनन्तर उठकर दोनों नेत्र धो डाले और दन्तधावन (दातुन) करे। उस समय निम्नांकित मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये—

आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च।
ब्रह्मप्रज्ञां च मेधां च त्वं नो देहि वनस्पते॥

(२३३। १७)

'वनस्पते! आप हमें आयु, बल, यश, तेज, सन्तान, पशु, धन, वेदाध्ययनकी बुद्धि तथा धारणाशक्ति प्रदान करें।'

इस मन्त्रका पाठ करके दातुन करे। दातुन काँटेदार या दूधवाले वृक्षकी होनी चाहिये। उसकी लंबाई बारह अंगुलकी हो और उसमें कोई छेद न हो। मोटाई भी कनिष्ठिका अँगुलीके बराबर होनी चाहिये। रविवारको दातुन निषिद्ध है, उस दिन बारह कुल्लोंसे मुखकी शुद्धि होती है। तत्पश्चात् आचमन करके शुद्ध हो विधिपूर्वक प्रातःस्नान करे। स्नानके बाद देवता और पितरोंका तर्पण करे। फिर उठकर दो शुद्ध वस्त्र धारण करे। विज्ञ ब्राह्मणको उत्तरीय वस्त्र (चादर) सदा ही धारण किये रहना चाहिये। आचमनके बाद भस्मके द्वारा ललाटमें त्रिपुण्ड्र धारण करे अथवा गोपीचन्दन घिसकर ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक लगाये। तदनन्तर सन्ध्या-वन्दन आरम्भ करके प्राणायाम करे। '**आपो हि ष्ठा०**' आदि तीन ऋचाओंसे कुशोदकद्वारा मार्जन करे। पूर्वोक्त ऋचाओंमेंसे एक-एकका प्रणवसहित उच्चारण करके जल सींचे। फिर '**सूर्यश्च०**' इत्यादि मन्त्रके द्वारा अभिमन्त्रित जलका आचमन करे। तत्पश्चात् दोनों हाथोंमें जल लेकर उसे गायत्रीसे अभिमन्त्रित करे और सूर्यकी ओर मुँह करके खड़ा हो तीन बार ऊपरको वह जल फेंके। इस प्रकार सूर्यको अर्घ्यदान करना चाहिये। प्रातःकालकी सन्ध्या जब तारे दिखायी देते हों, उसी समय विधिपूर्वक आरम्भ करे और जबतक सूर्यका दर्शन न हो जाय, तबतक गायत्री-मन्त्रका जप करता रहे। इसके बाद सविता-देवता-सम्बन्धी पापहारी मन्त्रोंद्वारा हाथ जोड़कर सूर्योपस्थान करे। सन्ध्याकालमें गुरुके चरणोंको तथा भूमिदेवीको प्रणाम करे। जो द्विज श्रद्धा और विधिके साथ प्रतिदिन सन्ध्योपासन करता है, उसे तीनों लोकोंमें कुछ भी अप्राप्य नहीं। सन्ध्या समाप्त होनेपर आलस्य छोड़कर होम करे। कोई भी दिन खाली न जाने दे। प्रतिदिन कुछ-न-कुछ दान करे।

यह दिनके प्रथम भागका कृत्य बतलाया गया। दूसरे भागमें वेदोंका स्वाध्याय किया जाता है। समिधा, फूल और कुश आदिके संग्रहका भी यही समय है। दिनके तीसरे भागमें न्यायपूर्वक कुछ धनका उपार्जन करे। शरीरको क्लेश दिये बिना दैवेच्छासे जो उपलब्ध हो सके, उतनेका ही अर्जन करे। ब्राह्मणके छः कर्मोंमेंसे तीन कर्म उसकी जीविकाके साधन हैं। यज्ञ कराना, वेद पढ़ाना और शुद्ध आचरणवाले यजमानसे दान लेना— ये ही उसकी आजीविकाके तीन कर्म हैं। दिनके चौथे भागमें पुनः स्नान करे। [प्रातःकाल सन्ध्या-वन्दनके पश्चात्] कुशके आसनपर बैठे और दोनों हाथोंमें कुश ले अंजलि बाँधकर ब्रह्मयज्ञकी पूर्तिके लिये यथाशक्ति स्वाध्याय करे। उस समय ऋग्वेद, सामवेद, अथर्ववेद और यजुर्वेदके मन्त्रोंका जप करना चाहिये। फिर देवता, ऋषि और पितरोंका तर्पण करे। देवताओंका तर्पण करते समय यज्ञोपवीतको बायें कंधेपर रखे, ऋषि-तर्पणके समय उसे गलेमें मालाकी भाँति कर ले और पितृ-तर्पणमें जनेऊको दायें कंधेपर रखे। उन्हें क्रमशः देवतीर्थ, प्रजापतितीर्थ और पितृतीर्थसे ही जल देना चाहिये। इसके बाद सम्पूर्ण भूतोंको जल दे। [मध्याह्नकालमें] '**आपो हि ष्ठा०**' इस मन्त्रसे अपने मस्तकको सींचकर '**आपः पुनन्तु**' इस मन्त्रसे अभिमन्त्रित किये हुए जलका आचमन करे। तत्पश्चात् दोनों हाथोंसे जल लेकर गायत्री-मन्त्र पढ़ते हुए सूर्यको एक बार अर्घ्य दे। उसके बाद गायत्रीका जप करे। गायत्री-मन्त्रद्वारा यथाशक्ति सूर्यका उपस्थान करके उनकी प्रदक्षिणा और नमस्कारके पश्चात् आसनपर बैठे और जलके देवताओंको नमस्कार करके एकाग्रचित्त हो घरको जाय।

इस प्रकार जप-यज्ञके अनन्तर देवताओंकी पूजा करे। ब्राह्मणको सूर्य, दुर्गा, श्रीविष्णु, गणेश तथा शिव—इन पाँच देवताओंकी पूजा करनी चाहिये।

उसके बाद पंचमहायज्ञोंका अनुष्ठान करे। फिर भूतबलि, काकबलि और कुक्कुरबलि आदि देते हुए निम्नांकित मन्त्रका पाठ करे—

देवा मनुष्याः पशवो वयांसि
सिद्धाश्च यक्षोरगदैत्यसङ्घाः।
प्रेताः पिशाचा उरगाः समस्ता
ये चान्नमिच्छन्ति मयात्र दत्तम्॥

(२३३। ४३)

'देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, सिद्ध, यक्ष, नाग, दैत्य, प्रेत, पिशाच और सब प्रकारके सर्प जो मुझसे अन्न लेनेकी इच्छा रखते हों, वे यहाँ आकर मेरे दिये हुए अन्नको ग्रहण करें।'

यों कहकर सब प्राणियोंके लिये पृथक्-पृथक् बलि दे। तत्पश्चात् विधिपूर्वक आचमन करके प्रसन्नचित्त होकर द्वारपर बैठे और बड़ी श्रद्धाके साथ किसी अतिथिके आनेकी प्रतीक्षा करे। गोदोहनकालतक प्रतीक्षा करनेके बाद यदि भाग्यवश कोई अतिथि आ जाय तो यथाशक्ति अन्न और जल देकर देवताकी भाँति उसकी भक्तिपूर्वक पूजा करे। संन्यासी और ब्रह्मचारीको विधिपूर्वक सब व्यंजनोंसे युक्त रसोईमेंसे, जो अभी उपयोगमें न लायी गयी हो, अन्न निकालकर भिक्षा दे। संन्यासी और ब्रह्मचारी—ये दोनों ही बनी हुई रसोईके स्वामी—प्रधान अधिकारी हैं। संन्यासीके हाथमें पहले जल दे, फिर अन्न दे; उसके बाद पुनः जल दे। ऐसा करनेसे वह भिक्षाका अन्न मेरुके समान और जल समुद्रके तुल्य फल देनेवाला होता है। जो मनुष्य संन्यासीको सत्कारपूर्वक भिक्षा देता है, उसे गोदानके समान पुण्य होता है—ऐसा भगवान् यमका कथन है। माता, पिता, गुरु, बन्धु, गर्भिणी स्त्री, वृद्ध, बालक और आये हुए अतिथि जब भोजन कर लें, उसके बाद घरका मालिक गृहस्थ पुरुष लिपे-पुते पवित्र स्थानमें हाथ-पैर धोकर बैठे और पूर्वाभिमुख होकर भोजन करे। भोजन करते समय वाणीको संयममें रखकर मौन रहे। दोनों हाथ, दोनों पैर और मुख—इन पाँचोंको धोकर ही भोजन करना चाहिये। भोजनका पात्र उत्तम और शुद्ध होना चाहिये। अन्नकी निन्दा न करते हुए भोजन करना उचित है। एक वस्त्र धारण करके अथवा फूटे हुए पात्रमें भोजन न करे। जो शुद्ध काँसेके बरतनमें अकेला ही भोजन करता है, उसकी आयु, बुद्धि, यश और बल—इन चारोंकी वृद्धि होती है। घी, अन्न तथा सभी प्रकारके व्यंजन करछुलसे ही परोसने चाहिये—हाथसे नहीं। भोजनमेंसे पहले कुछ अन्न निकालकर धर्मराज तथा चित्रगुप्तको बलि दे। फिर सम्पूर्ण भूतोंके लिये अन्न देते हुए इस मन्त्रका उच्चारण करे—

यत्र क्वचनसंस्थानां क्षुत्तृष्णोपहतात्मनाम्।
भूतानां तृप्तयेऽक्षय्यमिदमस्तु यथासुखम्॥

(२३३। ५६)

'जहाँ कहीं भी रहकर भूख-प्याससे पीड़ित हुए प्राणियोंकी तृप्तिके लिये यह अन्न और जल प्रस्तुत है; यह उनके लिये सुखपूर्वक अक्षय तृप्तिका साधन हो।'

भोजनमें मन लगाकर पहले मधुर रस ग्रहण करे, बीचमें नमकीन और खट्टी वस्तुएँ खाय। उसके बाद कड़वे और तिक्त पदार्थोंको ग्रहण करे। पहले रसदार चीजें खाय, बीचमें गरिष्ठ अन्न भोजन करे और अन्तमें पुनः द्रव पदार्थ ग्रहण करे। इससे मनुष्य कभी बल और आरोग्यसे हीन नहीं होता। संन्यासीको आठ ग्रास, वनवासीको सोलह ग्रास और गृहस्थको बत्तीस ग्रास भोजन करने चाहिये। ब्रह्मचारीके लिये ग्रासोंकी कोई नियत संख्या नहीं है। द्विजको उचित है कि वह शास्त्र-विरुद्ध भक्ष्य-भोज्यादि पदार्थोंका सेवन न करे। सूखे और बासी अन्नको भोजन करनेके योग्य नहीं बतलाया गया है। भोजनके पश्चात् शास्त्रोक्त विधिसे आचमन करके एकाग्रचित्त हो हाथ और मुँहकी शुद्धि करे। मिट्टी और जलसे खूब मल-मलकर धोये। तदनन्तर कुल्ला करके दाँतोंके भीतरी भागका— उनकी सन्धियोंका [तिनके आदिकी सहायतासे] शोधन करे। फिर आचमन करके पात्रको हटा दे और कुछ भीगे हुए हाथसे मुख तथा नासिकाका स्पर्श करे। हथेलीसे नाभिका स्पर्श करे। तत्पश्चात् शुद्ध एवं शान्तचित्त होकर आसनपर बैठे और अपने इष्टदेवका स्मरण करे। उसके बाद पुनः आचमन करके ताम्बूल भक्षण करे। भोजन करके बैठा हुआ पुरुष विश्रामके बाद कुछ देरतक ब्रह्मका चिन्तन करे। दिनके छठे और सातवें भागको सन्मार्ग आदिके अविरुद्ध उत्तम शास्त्र आदिके द्वारा मनोरंजन

और इतिहास-पुराणोंका पाठ करके व्यतीत करे। आठवें भागमें जीविकाके कार्यमें संलग्न रहे। उसके बाद पुनः बाह्य-सन्ध्या—सायं-सन्ध्याका समय हो जाता है।

जब सूर्य अस्ताचलके शिखरपर पहुँच जायँ, तब हाथ-पैर धोकर हाथमें कुश ले एकाग्रचित्त हो सायंकालीन सन्ध्योपासना करे। सूर्यके रहते-रहते ही पश्चिम सन्ध्या प्रारम्भ करे। उस समय सूर्यका आधा मण्डल ही अस्त होना चाहिये। प्राणायाम करके जल-देवता-सम्बन्धी मन्त्रोंसे मार्जन करे। सायंकालमें '**अग्निश्च मा मन्युश्च०**' इत्यादि मन्त्रके द्वारा और सबेरे '**सूर्यश्च मा मन्युश्च०**' इत्यादि मन्त्रके द्वारा आचमन करे। सायंसन्ध्यामें पश्चिमाभिमुख बैठकर मौन तथा एकाग्रचित्त हो रुद्राक्षकी माला ले तारोंके उदय होनेतक प्रणव और व्याहृतियोंसहित गायत्री-मन्त्रका जप करे। फिर वरुण-देवतासम्बन्धिनी ऋचाओंसे सूर्योपस्थान करके प्रदक्षिणा करते हुए प्रत्येक दिशा और दिक्पालको पृथक्-पृथक् नमस्कार करे। इस प्रकार सायंकालकी सन्ध्योपासना करके अग्निहोत्र करनेके पश्चात् कुटुम्बके अन्य लोगोंके साथ भोजन करे। भोजनकी मात्रा अधिक नहीं होनी चाहिये। भोजनके कुछ काल बाद शयन करे। सायंकाल और प्रातःकालमें भी बलिवैश्वदेव करना चाहिये। स्वयं भोजन न करना हो तो भी बलिवैश्वदेवका अनुष्ठान सदा ही करे; अन्यथा पापका भागी होना पड़ता है। यदि घरपर कोई अतिथि आ जाय तो गृहस्थ पुरुष अपनी शक्तिके अनुसार उसका यथोचित सत्कार करे। रातमें भोजनके पश्चात् हाथ-पैर आदि धोकर गृहस्थ मनुष्य कोमल शय्यापर सोनेके लिये जाय। शय्यापर तकियेका होना आवश्यक है। अपने घरमें सोना हो तो पूर्व दिशाकी ओर सिरहाना करे और ससुरालमें सोना हो तो दक्षिण दिशाकी ओर। परदेशमें गया हुआ मनुष्य पश्चिम दिशाकी ओर सिर करके सोये। उत्तरकी ओर सिरहाना करके कभी नहीं सोना चाहिये। सोनेके पहले रात्रिसूक्तका जप और सुखपूर्वक शयन करनेवाले देवताओंका स्मरण करे। फिर एकाग्रचित्त होकर अविनाशी भगवान् विष्णुको नमस्कार करके रात्रिमें शयन करे। अगस्त्य, माधव, महाबली मुचुकुन्द, कपिल तथा आस्तीक मुनि—ये पाँचों सुखपूर्वक शयन करनेवाले हैं। मांगलिक वस्तुओंसे भरे हुए जलपूर्ण कलशको सिरहानेकी ओर रखकर वरुण-देवता-सम्बन्धी वैदिक मन्त्रोंसे अपनी रक्षा करके सोये। ऋतुकालमें पत्नीके साथ समागम करे। सदा अपनी स्त्रीसे ही अनुराग रखे। पत्नीके स्वीकार करनेपर रतिकी इच्छासे उसके पास जाय। पर्वके दिन उसका स्पर्श न करे। रात्रिके पहले और पिछले प्रहरको वेदाभ्यासमें व्यतीत करे और बीचके दोनों प्रहरोंमें शयन करे। ऐसा करनेवाला पुरुष ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। ऊपर जो कुछ बतलाया गया, वह सारा कर्म गृहस्थको प्रतिदिन करना चाहिये। यही गृहस्थाश्रमका लक्षण है। सम्पूर्ण वेदोक्त सदाचारसे युक्त यह गृहस्थ-आश्रमका लक्षण मैंने तुम्हें संक्षेपसे बताया है। अब पतिव्रताओंके लक्षण सुनो।

पतिव्रता स्त्रियोंके लक्षण एवं सदाचारका वर्णन

वसिष्ठजी कहते हैं—राजन्! मैं सतियोंके उत्तम व्रतका वर्णन करता हूँ, सुनो। पति कुरूप हो या दुराचारी, अच्छे स्वभावका हो या बुरे स्वभावका, रोगी, पिशाच, क्रोधी, बूढ़ा, चालाक, अंधा, बहरा, भयंकर स्वभावका, दरिद्र, कंजूस, घृणित, कायर, धूर्त अथवा परस्त्रीलम्पट ही क्यों न हो, सती-साध्वी स्त्रीके लिये वाणी, शरीर और क्रियाद्वारा देवताकी भाँति पूजनीय है। स्त्रीको कभी किसी प्रकार भी अपने स्वामीके साथ अनुचित बर्ताव नहीं करना चाहिये। स्त्री बालिका हो या युवती, अथवा वृद्धा ही क्यों न हो, उसे अपने घरपर भी कोई काम स्वतन्त्रतासे नहीं करना चाहिये। अहंकार और काम-क्रोधका सदा ही परित्याग करके केवल अपने पतिका ही मनोरंजन करना उचित है, दूसरे पुरुषका नहीं। परपुरुषोंके कामभावसे देखनेपर, प्रिय लगनेवाले वचनोंद्वारा प्रलोभनमें डालनेपर अथवा जनसमूहमें दूसरोंके शरीरसे छू जानेपर भी जिसके मनमें कोई विकार नहीं होता तथा जो परपुरुषद्वारा धनका लोभ दिखाकर लुभायी जानेपर भी मन, वाणी, शरीर और क्रियासे कभी पराये पुरुषका सेवन नहीं करती, वही सती है। वह सम्पूर्ण लोकोंकी शोभा है। सती स्त्री दूतके

मुखसे प्रार्थना करनेपर, बलपूर्वक पकड़ी जानेपर भी दूसरे पुरुषका सेवन नहीं करती। जो पराये पुरुषोंके देखनेपर भी स्वयं उनकी ओर नहीं देखती, हँसनेपर भी नहीं हँसती तथा औरोंके बोलनेपर भी स्वयं उनसे नहीं बोलती, वह उत्तम लक्षणोंवाली स्त्री साध्वी—पतिव्रता है। रूप और यौवनसे सम्पन्न तथा संगीतकी कलामें निपुण सती-साध्वी स्त्री अपने-ही-जैसे योग्य पुरुषको देखकर भी कभी मनमें विकार नहीं लाती। जो सुन्दर, तरुण, रमणीय और कामिनियोंको प्रिय लगनेवाले परपुरुषकी भी कभी इच्छा नहीं करती, उसे महासती जानना चाहिये। पराया पुरुष देवता, मनुष्य अथवा गन्धर्व कोई भी क्यों न हो, वह सती स्त्रियोंको प्रिय नहीं होता। पत्नीको कभी भी ऐसा कार्य नहीं करना चाहिये, जो पतिको अप्रिय जान पड़े। जो पतिके भोजन कर लेनेपर भोजन करती, उनके दुःखी होनेपर दुःखित होती, पतिके आनन्दमें ही आनन्द मानती, उनके परदेश चले जानेपर मलिन वस्त्र धारण करती, पतिके सो जानेपर सोती और पहले ही जग जाती, पतिकी मृत्यु हो जानेपर उनके शरीरके साथ ही चितामें जल जाती और दूसरे पुरुषको कभी भी अपने मनमें स्थान नहीं देती, उस स्त्रीको पतिव्रता जानना चाहिये।

पतिव्रता स्त्रीको अपने सास-ससुर तथा पतिमें विशेष भक्ति रखनी चाहिये; वह धर्मके कार्यमें सदा पतिके अनुकूल रहे, धन खर्च करनेमें संयमसे काम ले, सम्भोगकालमें संकोच न रखे और अपने शरीरको सदा पवित्र बनाये रखे। पतिकी मंगल-कामना करे, उनसे सदा प्रिय वचन बोले, मांगलिक कार्यमें संलग्न रहे, घरको सजाती रहे और घरकी प्रत्येक वस्तुको प्रतिदिन साफ-सुथरी रखनेकी चेष्टा करे। खेतसे, वनसे अथवा गाँवसे लौटकर जब पतिदेव घरपर आवें तो उठकर उनका स्वागत करे। आसन और जल देकर अभिनन्दन करे। बर्तन और अन्न साफ रखे। समयपर भोजन बनाकर दे। संयमसे रहे। अनाजको छिपाकर रखे। घरको झाड़-बुहारकर स्वच्छ बनाये रखे। गुरुजन, पुत्र, मित्र, भाई-बन्धु, काम करनेवाले सेवक, अपने आश्रयमें रहनेवाले भृत्य, दास-दासी, अतिथि-अभ्यागत, संन्यासी तथा ब्रह्मचारी लोगोंको आसन और भोजन देने, सम्मान करने और प्रिय वचन बोलनेमें तत्पर रहे। मुख्य गृहिणीको सदा ही समय-समयपर उपर्युक्त व्यक्तियोंकी यथोचित सेवाके कार्यमें दक्ष होना चाहिये। पति घरका खर्च चलानेके लिये अपनी पत्नीके हाथमें जो द्रव्य दे, उससे घरकी सारी आवश्यकता पूर्ण करके पत्नी अपनी बुद्धिके द्वारा उसमेंसे कुछ बचा ले। पतिने दान करनेके लिये जो धन दिया हो, उसमेंसे लोभवश कुछ बचाकर न रखे। स्वामीकी आज्ञा लिये बिना अपने बन्धुओंको धन न दे। दूसरे पुरुषसे वार्तालाप, असन्तोष, पराये कार्योंकी चर्चा, अधिक हँसी, अधिक रोष और क्रोध उत्पन्न होनेके अवसरका सर्वथा त्याग करे। पतिदेव जो-जो पदार्थ न खायें, न पीयें और न मुँहमें डालें, वह सब पतिव्रता स्त्रीको भी छोड़ देना चाहिये। स्वामी परदेशमें हों तो स्त्रीके लिये तेल लगाकर नहाना, शरीरमें उबटन लगाना, दाँतोंमें मंजन लगाकर धोना, केशोंको सँवारना, उत्तम पदार्थ भोजन करना, अधिक समयतक कहीं बैठना, नये-नये वस्त्रोंको पहनना और शृंगार करना निषिद्ध है। राजन्! त्रेतासे लेकर प्रत्येक युगमें स्त्रियोंको प्रतिमास ऋतुधर्म होता है। उस समय पहले दिन चाण्डाल जातिकी स्त्रीके समान पत्नीका स्पर्श वर्जित है। दूसरे दिन वह ब्राह्मणकी हत्या करनेवाली स्त्रीके तुल्य अपवित्र मानी गयी है। तीसरे दिन उसे धोबिनके तुल्य बताया गया है। चौथे दिन स्नान करके वह शुद्ध होती है। रजस्वला स्त्री स्नान, शौच—जलसे होनेवाली शुद्धि, गाना, रोना, हँसना, यात्रा करना, अंगराग लगाना, उबटन लगाना, दिनमें सोना, दाँतन करना, मन या वाणीके द्वारा भी मैथुन करना तथा देवताओंका पूजन और नमस्कार करना छोड़ दे। पुरुषको भी चाहिये कि वह रजस्वला स्त्रीसे स्पर्श और वार्तालाप न करे तथा पूर्ण प्रयत्न करके उसके वस्त्रोंका भी संयोग न होने दे।

रजस्वला स्त्री स्नान करनेके पश्चात् पराये पुरुषकी ओर दृष्टि न डाले। सर्वप्रथम वह सूर्यदेवका दर्शन करे। उसके बाद अपने अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये ब्रह्मकूर्च—पंचगव्यका अथवा केवल दूधका पान करे। साध्वी स्त्री नियमपूर्वक शास्त्रोक्त विधिके अनुसार जीवन व्यतीत करे। आभूषणोंसे विभूषित होकर परम

पवित्र भावसे स्वामीके प्रिय तथा हित-साधनमें संलग्न रहे। यदि स्त्री गर्भवती हो तो उसे नीचे लिखे हुए नियमोंसे रहना चाहिये। वह आत्मरक्षापूर्वक सुन्दर आभूषण धारण करके वास्तुपूजनमें तत्पर रहे। उसके मुखपर प्रसन्नता छायी रहे। बुरे आचार-विचारकी स्त्रियोंसे बातचीत न करे। सूपकी हवासे बचकर रहे। जिसके बच्चे हो-होकर मर जाते हों अथवा जो वन्ध्या हो, ऐसी स्त्रीके साथ संसर्ग न करे। गर्भिणी स्त्री दूसरेके घरका भोजन न करे। मनमें घृणा पैदा करनेवाली कोई वस्तु न देखे। डरावनी कथा न सुने। भारी और अत्यन्त गरम भोजन न करे। पहलेका किया हुआ भोजन जबतक अच्छी तरह पच न जाय, दुबारा भोजन न करे। इस विधिसे रहनेपर साध्वी स्त्री उत्तम पुत्र प्राप्त करती है; अन्यथा या तो गर्भ गिर जाता है, या उसका निरोध हो जाता है। पतिदेव जब किसी कार्यवश घरके भीतर प्रवेश करें, तो पतिव्रता स्त्री अंगराग आदिसे युक्त हो शुद्ध हृदयसे उनके पास जाय। तरुणी, सुन्दरी, पुत्रवती, ज्येष्ठा अथवा कनिष्ठा—कोई भी क्यों न हो, परोक्षमें या सामने अपनी किसी सौतकी गुणहीन होनेपर भी निन्दा न करे। मनमें राग-द्वेषजनित मत्सरता रहनेपर भी सौतोंको परस्पर एक-दूसरीका अप्रिय नहीं करना चाहिये। स्त्री पराये पुरुषके नामोंका गान और पराये पुरुषके गुणोंका वर्णन न करे। पतिसे दूर न रहे। सदा अपने स्वामीके समीप ही निवास करे। निर्दिष्ट भूभागमें बैठकर सदा प्रियतमकी ओर ही मुख किये रहे। स्वच्छन्दतापूर्वक चारों दिशाओंकी ओर दृष्टि न डाले। पराये पुरुषका अवलोकन न करे। केवल पतिके मुखकमलको ही हाव-भावसे देखे। पतिदेव यदि कोई कथा करते हों तो स्त्री उसे बड़े आदरके साथ सुने। पति बातचीत करते हों तो स्वयं दूसरेसे बात न करे। यदि स्वामी बुलायें तो शीघ्र ही उनके पास चली जाय। पतिदेव उत्साहपूर्वक गीत गाते हों तो प्रसन्नचित्त होकर सुने। अपने प्रियतमके नृत्य करते समय उन्हें हर्षभरे नेत्रोंसे देखे। पतिको शास्त्र आदिमें चतुरता, विद्या और कलामें प्रवीणता दिखलाते देख पत्नी आनन्दमें निमग्न हो जाय। पतिके समीप उद्वेग और व्यग्रतापूर्ण हृदय लेकर न ठहरे। उनके साथ प्रेमशून्य कलह न करे। स्वामी कलह करनेके योग्य नहीं हैं—ऐसा जानकर स्त्री कभी अपने लिये, अपने भाईके लिये या अपनी सौतके लिये क्रोधमें आकर उनसे कलह न करे। फटकारने, निन्दा करने और अत्यन्त ताड़ना देनेके कारण व्यथित होनेपर भी पत्नी अपने प्रियतमको भय छोड़कर गले लगाये। स्त्री जोर-जोरसे विलाप न करे, दूसरे लोगोंको न पुकारे और अपने घरसे बाहर न भागे। पतिसे कोई विरक्तिसूचक वचन न कहे। सती स्त्री उत्सव आदिके समय यदि भाई-बन्धुओंके घर जाना चाहे, तो पतिकी आज्ञा लेकर किसी अध्यक्षके संरक्षणमें रहकर जाय। वहाँ अधिक कालतक निवास न करे। शीघ्र ही अपने घर लौट आये। यदि पति कहींकी यात्रा करते हों तो उस समय मंगलसूचक वचन बोले। 'न जाइये' कहकर पतिको न तो रोके और न यात्राके समय रोये ही।

पतिके परदेश जानेपर स्त्री कभी अंगराग न लगाये। केवल जीवन-निर्वाहके लिये प्रतिदिन कोई उत्तम कार्य करे। यदि स्वामी जीविकाका प्रबन्ध करके परदेशमें जायँ तो उनकी निश्चित की हुई जीविकासे ही गृहिणीको जीवन-निर्वाह करना चाहिये। पतिके न रहनेपर स्त्री सास-ससुरके समीप ही शयन करे और किसीके नहीं। वह प्रतिदिन प्रयत्न करके पतिके कुशल-समाचारका पता लगाती रहे। स्वामीकी कुशल जाननेके लिये दूत भेजे तथा प्रसिद्ध देवताओंसे याचना करे। इस प्रकार जिसके पति परदेश गये हों, उस पतिव्रता स्त्रीको ऐसे ही नियमोंका पालन करना चाहिये। वह अपने अंगोंको न धोये। मैले कपड़े पहनकर रहे। बेंदी और अंजन न लगाये। गन्ध और मालाका भी त्याग करे। नख और केशोंका शृंगार न करे। दाँतोंको न धोये। प्रोषितभर्तृका स्त्रीके लिये पान चबाना और आलस्यके वशीभूत होना बड़ी निन्दाकी बात है। अधिक आलस्य करना, सदा नींद लेना, सर्वदा कलहमें रुचि रखना, जोर-जोरसे हँसना, दूसरोंसे हँसी-परिहास करना, पराये पुरुषोंकी चेष्टाका चिन्तन करना, इच्छानुसार घूमना, पर-पुरुषके शरीरको दबाना, एक वस्त्र पहनकर बाहर घूमना, निर्लज्जताका बर्ताव करना और बिना किसी आवश्यकताके व्यर्थ ही दूसरेके घर

जाना—ये सब युवती स्त्रीके लिये पाप बताये गये हैं, जो पतिको दु:ख देनेवाले होते हैं।

सती स्त्री घरके सब कार्य पूर्ण करके शरीरमें हल्दीकी उबटन लगाये। फिर शुद्ध जलसे सब अंगोंको धोकर सुन्दर शृंगार करे। उसके बाद अपने मुखकमलको प्रसन्न करके प्रियतमके समीप जाय। मन, वाणी और शरीरको संयममें रखनेवाली नारी ऐसे बर्तावसे इस लोकमें उत्तम कीर्ति पाती और परलोकमें पतिका सायुज्य प्राप्त करती है। देवताओंसहित सम्पूर्ण लोकोंमें पतिके समान दूसरा कोई देवता नहीं है। जब पतिदेवता सन्तुष्ट होते हैं, तो इच्छानुसार सम्पूर्ण भोगोंकी प्राप्ति कराते हैं और कुपित होनेपर सब कुछ हर लेते हैं। सन्तान, नाना प्रकारके भोग, शय्या, आसन, अद्भुत वस्त्र, माला, गन्ध, स्वर्गलोक तथा भाँति-भाँतिकी कीर्ति—ये सब पतिसे ही प्राप्त होते हैं।

इस प्रकार मुनिवर मृगशृंग धर्म, नय, नीति एवं गुणोंमें सबसे श्रेष्ठ सुवृत्ता आदि चारों पत्नियोंके साथ चिरकालतक अतिरात्र और वाजपेय आदि यज्ञोंका अनुष्ठान करते रहे। वे नियमपूर्वक संसारी सुख भोगते थे, तथापि उनका अन्त:करण अत्यन्त निर्मल था।

मृगशृंगके पुत्र मृकण्डु मुनिकी काशी-यात्रा, काशी-माहात्म्य तथा माताओंकी मुक्ति

वसिष्ठजी कहते हैं—इस प्रकार गृहस्थाश्रममें निवास करते हुए महामुनि मृगशृंगकी पत्नी सुवृत्ताने समयानुसार एक पुत्रको जन्म दिया। इसके द्वारा पितृ-ऋणसे छुटकारा पाकर मुनिश्रेष्ठ मृगशृंगने अपनेको कृतार्थ माना और विधिपूर्वक नवजात शिशुका जातकर्म-संस्कार किया। वे परम बुद्धिमान् मुनि तीनों कालकी बातें जानते थे; अत: उन्होंने पुत्रके भावी कर्मके अनुसार उसका मृकण्डु नाम रखा। उसके शरीरमें मृगगण निर्भय होकर कण्डूयन करते थे— अपना शरीर खुजलाते या रगड़ते थे। इसीलिये पिताने उसका नाम मृकण्डु रख दिया। मृकण्डु मुनि उत्तम कुलमें उत्पन्न होकर समस्त गुणोंके भंडार बन गये थे। उनका शरीर प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी था। पिताके द्वारा उपनयन-संस्कार हो जानेपर वे ब्रह्मचर्यका पालन करने लगे। उन्होंने पिताके पास रहकर सम्पूर्ण वेदोंका अध्ययन किया। तत्पश्चात् गुरु (पिता)-की आज्ञा ले द्वितीय आश्रमको स्वीकार किया। मुद्गल मुनिकी कन्या मरुद्वतीके साथ मृकण्डु मुनिका विवाह हुआ। तदनन्तर मृगशृंग मुनिकी दूसरी पत्नी कमलाने भी एक उत्तम पुत्र उत्पन्न किया। वह सदाचार, वेदाध्ययन, विद्या और विनयमें सबसे उत्तम निकला; इसलिये उसका नाम उत्तम रखा गया। पिताके उपनयन-संस्कार कर देनेपर उत्तम मुनिने भी सम्पूर्ण वेदोंका अध्ययन करके विधिपूर्वक विवाह किया। कमनीय केशकलाप और मनोहर रूपसे युक्त, कमलके समान विशाल नेत्र तथा कल्याणमय स्वभाववाली कण्व मुनिकी कन्या कुशाको उन्होंने पत्नीरूपमें ग्रहण किया। विमलाने भी सुमति नामसे विख्यात पुत्रको जन्म दिया। सुमति भी सम्पूर्ण वेदोंका अध्ययन करके गृहस्थ हुए। उनकी स्त्रीका नाम सत्या था। तत्पश्चात् सुरसाके गर्भसे भी एक पुत्रका जन्म हुआ, जिसका नाम सुव्रत था। सुरसाकुमार सुव्रतने भी सम्पूर्ण वेदोंका अध्ययन समाप्त करके द्वितीय आश्रममें प्रवेश किया। पृथुकी पुत्री प्रियंवदा सुव्रतकी धर्मपत्नी हुई। पिताने अपने सभी पुत्रोंसे पर्याप्त दक्षिणावाले यज्ञोंका अनुष्ठान करवाया। वे सभी पुत्र सेवा-शुश्रूषामें संलग्न हो प्रतिदिन पिताका प्रिय करते थे। उत्तम लक्षणोंवाली पुत्रवधुओं, वेदोंके पारगामी कल्याणमय पुत्रों तथा उत्तम गुणोंवाली धर्मपत्नियोंसे सेवित हो मृगशृंग मुनि गृहस्थधर्मका पालन करने लगे। सुमति, उत्तम तथा महात्मा सुव्रतको भी पृथक्-पृथक् अनेक पुत्र हुए, जो वेदोंके पारगामी विद्वान् थे। माघमास आनेपर मुनिवर मृगशृंग अपनी धर्मपत्नियों, पुत्रवधुओं, पुत्रों तथा पौत्रोंके साथ प्रात:काल स्नान करते थे। वे एक माघ भी कभी व्यर्थ नहीं जाने देते थे। माघ आनेपर स्नान, दान, शिवकी पूजा, व्रत और नियम—ये गृहस्थ-आश्रमके भूषण हैं। यह सोचकर वे द्विजश्रेष्ठ प्रत्येक माघमें प्रात:स्नान किया करते थे। इस प्रकार सांसारिक सुख-सौभाग्यका अनुभव करके उन महामुनिने अपनी धर्मपत्नियोंका भार पुत्रोंको सौंप दिया और गार्हपत्य अग्निको अपने आत्मामें स्थापित कर

लिया। फिर पुत्रके पुत्रका मुख देख और अपने शरीरको अत्यन्त जराग्रस्त जानकर तपोनिधि मृगशृंगने तपस्या करनेके लिये तपोवनको प्रस्थान किया। वहाँ पत्ते चबाने, छोटे-छोटे तालाबोंमें जल पीने, संसारसे उद्विग्न होने तथा रेतीली भूमिमें निवास करनेके कारण वे मृगोंके समान धर्मका पालन करने लगे। मृगोंके झुंडमें चिरकालतक विचरण करनेके पश्चात् उन्होंने ब्रह्मलोक प्राप्त कर लिया। वहाँ चार मुखोंवाले ब्रह्माजीने उनका अभिनन्दन किया। मुनिवर मृगशृंग दिव्य सिंहासनपर विराजमान हुए और अपने द्वारा उपार्जित उपमारहित अक्षय लोकोंका सुख भोगने लगे। तदनन्तर एक समय प्रलयकालके बाद श्वेतवाराहकल्पमें वे पुनः ब्रह्माजीके पुत्ररूपसे उत्पन्न हुए। उस समय उनका नाम ऋभु हुआ और उन्होंने निदाघको कल्याणका उपदेश दिया।

शील और सदाचारसे सम्पन्न उनकी चारों पत्नियाँ पुत्रोंके आश्रयमें रहकर कुछ दिनोंतक कठोर व्रतका पालन करती रहीं। तत्पश्चात् जीवनके अन्तिम भागमें बुढ़ापेके कारण उनके बाल सफेद हो गये। उनकी कमर झुक गयी। मुँहमें एक-ही-दो दाँत रह गये तथा इन्द्रियोंकी वृत्तियाँ प्रायः नष्ट हो गयीं। मुनिश्रेष्ठ मृकण्डुके मरुद्व्रतीसे कोई सन्तान नहीं हुई। उन्होंने माताओंकी वैसी अवस्था देख मन-ही-मन इस प्रकार विचार किया—'मैं माताओंको साथ ले स्त्रीसहित भगवान् शंकरकी राजधानीमें जाऊँगा, जहाँ वे मुमूर्षु पुरुषोंके कानोंमें तारक-मन्त्रका उपदेश दिया करते हैं।' ऐसा निश्चय करके उन्होंने काशीपुरीकी ओर प्रस्थान किया। वे मार्गमें काशीकी महिमाका इस प्रकार बखान करने लगे।

मृकण्डु बोले—जो माता, पिता और अपने बन्धुओं द्वारा त्याग दिये गये हैं, जिनकी संसारमें कहीं भी गति नहीं है, उनके लिये काशीपुरी ही उत्तम गति है। जो जरावस्थासे ग्रस्त और नाना प्रकारके रोगोंसे व्याकुल हैं, जिनके ऊपर दिन-रात पग-पगपर विपत्तियोंका आक्रमण होता है, जो कर्मोंके बन्धनमें आबद्ध और संसारसे तिरस्कृत हैं, जिन्हें राशि-राशि पापोंने दबा रखा है, जो दरिद्रतासे परास्त, योगसे भ्रष्ट तथा तपस्या और दानसे वर्जित हैं, जिनके लिये कहीं भी गति नहीं है, उनके लिये काशीपुरी ही उत्तम गति है। जिन्हें भाई-बन्धुओंके बीच पग-पगपर मानहानि उठानी पड़ती हो, उनको एकमात्र भगवान् शिवका आनन्दकानन—काशीपुरी ही आनन्द प्रदान करनेवाला है। आनन्दकानन काशीमें निवास करनेवाले दुष्ट पुरुषोंको भी भगवान् शंकरके अनुग्रहसे आनन्दजनित सुखकी प्राप्ति होती है। काशीमें विश्वनाथरूपी आगकी आँचसे सारे कर्ममय बीज भुन जाते हैं; अतः वह काशीतीर्थ जिनकी कहीं भी गति नहीं है, ऐसे पुरुषोंको भी उत्तम गति प्रदान करनेवाला है। वहाँ संसाररूपी सर्पसे डँसे हुए जीवोंको अपने दोनों हाथोंसे पकड़कर भगवान् शंकर उनके कानोंमें तारक ब्रह्मका उपदेश देते हैं। कपिलदेवजीके बताये हुए योगानुष्ठानसे, सांख्यसे तथा व्रतोंके द्वारा भी मनुष्योंको जिस गतिकी प्राप्ति नहीं होती, उसे यह मोक्षभूमि काशीपुरी अनायास ही प्रदान करती है। यह काशीकी प्राप्ति ही योग है, यह काशीकी प्राप्ति ही तप है, यह काशीकी प्राप्ति ही दान है और यह काशीकी प्राप्ति ही शिवकी पूजा है। यह काशीकी प्राप्ति ही यज्ञ, यह काशीकी प्राप्ति ही कर्म, यह काशीकी प्राप्ति ही स्वर्ग और यह काशीकी प्राप्ति ही सुख है। काशीमें निवास करनेवाले मनुष्योंके लिये काम, क्रोध, मद, लोभ, अहंकार, मात्सर्य, अज्ञान, कर्म, जडता, भय, काल, बुढ़ापा, रजोगुण और विघ्न-बाधा क्या चीज हैं? ये उनका कुछ भी बिगाड़ नहीं सकते।

अपनी माताओंका मार्गजनित कष्ट दूर करनेके लिये इस प्रकारकी बातें करते हुए मृकण्डु मुनि धीरे-धीरे चलकर माताओंसहित काशीपुरीमें जा पहुँचे। वहाँ उन मुनिने बिना विलम्ब किये सबसे पहले मणिकर्णिकाके जलमें विधिपूर्वक वस्त्रसहित स्नान किया। तत्पश्चात् सन्ध्या आदि शुभकर्मोंका अनुष्ठान करके पवित्र हो उन्होंने चन्दन और कुशमिश्रित जलसे सम्पूर्ण देवताओं और ऋषियोंका तर्पण किया। फिर अमृतके समान स्वादिष्ट पकवान, शक्कर मिली हुई खीर तथा गोरससे सम्पूर्ण तीर्थ-निवासियोंको पृथक्-पृथक् तृप्त करके अन्नदान, धान्यदान, गन्ध, चन्दन, कपूर, पान और सुन्दर वस्त्र आदिके द्वारा दीनों एवं अनाथोंका सत्कार किया। उसके बाद भक्तिपूर्वक ढुण्ढिराज गणेशके शरीरमें घी और सिन्दूरका लेप किया और पाँच लड्डू

चढ़ाकर आत्मीयजनोंको विघ्न-बाधाओंके आक्रमणसे बचाते हुए अन्तःक्षेत्रमें प्रवेश किया। वहाँ समस्त आवरण-देवताओंकी यथाशक्ति पूजा की। तदनन्तर महामना मृकण्डुने भगवान् विश्वनाथको नमस्कार और उनकी स्तुति करके माताओंके साथ विधिपूर्वक क्षेत्रोपवास किया। विश्वनाथजीके समीप उन्होंने जागकर रात बितायी और निर्मल प्रभात होनेपर एकाग्रचित्त हो मणिकर्णिकाके जलमें स्नान किया। सारा अनुष्ठान पूरा करके नियमोंका पालन करते हुए पवित्र हो वेद-वेदांगोंके पारगामी महात्मा ब्राह्मणोंके साथ अपने नामसे एक शिवलिंगकी स्थापना की, जो सब प्रकारकी सिद्धियोंको देनेवाला है। उनकी चारों माताओंने भी अपने-अपने नामसे एक-एक शिवलिंग स्थापित किया। वे सभी लिंग दर्शनमात्रसे मुक्ति प्रदान करनेवाले हैं। ढुण्ढिराज गणेशके आगे मृकण्ड्वीश्वर शिवका दर्शन करनेसे सम्पूर्ण कार्य सिद्ध होते हैं और काशीका निवास भी सफल होता है। उस शिवलिंगके आगे सुवृत्ताद्वारा स्थापित सुवृत्तेश्वर नामक शिवलिंग है। उसके दर्शनसे मनुष्य कभी विघ्न-बाधाओंसे आक्रान्त नहीं होता तथा वह सदाचारी होता है। सुवृत्तेश्वरसे पूर्वदिशाकी ओर कमलाद्वारा स्थापित उत्तम शिवलिंग है, जिसके दर्शनमात्रसे मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। ढुण्ढिराज गणेशकी देहलीके पास विमलाद्वारा स्थापित विमलेश्वरका स्थान है। उस लिंगके दर्शनसे निर्मल ज्ञानकी प्राप्ति होती है। विमलेश्वरसे ईशानकोणमें सुरसाद्वारा स्थापित सुरसेश्वर नामक शिवलिंग है। उसके दर्शनसे मनुष्य देवताओंका साम्राज्य प्राप्त करके काशीमें आकर मुक्त होगा। मणिकर्णिकासे पश्चिम मरुद्वतीद्वारा पूजित शिवलिंग है, जिसके दर्शनमात्रसे मनुष्य फिर जन्म नहीं लेता।

इस प्रकार शिवलिंगोंकी स्थापना करके वे सब लोग एक वर्षतक काशीमें ठहरे रहे। बारंबार उस विचित्र एवं पवित्र क्षेत्रका दर्शन करनेसे उन्हें तृप्ति नहीं होती थी। मृकण्डु मुनि एक वर्षतक प्रतिदिन तीर्थयात्रा करते रहे, किन्तु वहाँके सम्पूर्ण तीर्थोंका पार न पा सके; क्योंकि काशीपुरीमें पग-पगपर तीर्थ हैं। एक दिन मृकण्डु मुनिकी माताएँ, जो पूर्ण ज्ञानसे सम्पन्न थीं, मणिकर्णिकाके जलमें दोपहरको स्नान करके शिवमन्दिरकी प्रदक्षिणा करने लगीं। इससे परिश्रमके कारण उन्हें थकावट आ गयी और वे सब-की-सब मरणासन्न होकर वहीं गिर पड़ीं। उस समय परम दयालु काशीपति भगवान् शिव बड़े वेगसे वहाँ आये और अपने हाथोंसे स्नेहपूर्वक उन सबके मस्तक पकड़कर एक ही साथ कानोंमें प्रणव-मन्त्रका उच्चारण किया।

मार्कण्डेयजीका जन्म, भगवान् शिवकी आराधनासे अमरत्व-प्राप्ति तथा मृत्युंजय-स्तोत्रका वर्णन

वसिष्ठजी कहते हैं—राजन्! महामना मृकण्डु मुनिने विधिपूर्वक माताओंके और्ध्वदैहिक संस्कार करके दीर्घकालतक काशीमें ही निवास किया। भगवान् शंकरके प्रसादसे उनकी धर्मपत्नी मरुद्वतीके गर्भसे एक महातेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसकी मार्कण्डेयके नामसे प्रसिद्धि हुई। श्रीमान् मार्कण्डेय मुनिने तपस्यासे भगवान् शिवकी आराधना करके उनसे दीर्घायु पाकर अपनी आँखोंसे अनेकों बार प्रलयका दृश्य देखा।

दिलीपने पूछा—मुनिवर! आपने पहले यह बात बतायी थी कि मृकण्डु मुनिके मरुद्वतीसे कोई सन्तान नहीं हुई, फिर भगवान् शिवके प्रसादसे उन्होंने किस प्रकार पुत्र प्राप्त किया? तथा वह पुत्र शंकरजीके प्रसादसे कैसे दीर्घायु हुआ? इन सब बातोंको मैं विस्तारके साथ सुनना चाहता हूँ। आप बतानेकी कृपा करें।

वसिष्ठजीने कहा—राजन्! सुनो, मैं मार्कण्डेयजीके जन्मका वृत्तान्त बतलाता हूँ। महामुनि मृकण्डुके कोई सन्तान नहीं थी; अतः उन्होंने अपनी पत्नीके साथ तपस्या और नियमोंका पालन करते हुए भगवान् शंकरको सन्तुष्ट किया। सन्तुष्ट होनेपर पिनाकधारी शिवने पत्नीसहित मुनिसे कहा—'मुने! मुझसे कोई वर माँगो' तब मुनिने यह वर माँगा— 'परमेश्वर! आप मेरे स्तवनसे सन्तुष्ट हैं; इसलिये मैं आपसे एक पुत्र चाहता हूँ। महेश्वर! मुझे अबतक कोई सन्तान नहीं हुई।'

भगवान् शंकर बोले—मुने! क्या तुम उत्तम गुणोंसे हीन चिरंजीवी पुत्र चाहते हो या केवल सोलह वर्षकी आयुवाला एक ही गुणवान् एवं सर्वज्ञ पुत्र पानेकी इच्छा रखते हो?

उनके इस प्रकार पूछनेपर धर्मात्मा मृकण्डुने कहा—'जगदीश्वर! मैं गुणहीन पुत्र नहीं चाहता। उसकी आयु छोटी ही क्यों न हो, वह सर्वज्ञ होना चाहिये।'

भगवान् शंकर बोले—अच्छा, तो तुम्हें सोलह वर्षकी आयुवाला एक पुत्र प्राप्त होगा, जो परम धार्मिक, सर्वज्ञ, गुणवान्, लोकमें यशस्वी और ज्ञानका समुद्र होगा।

ऐसा कहकर भगवान् शिव अन्तर्धान हो गये और मुनिवर मृकण्डु इच्छानुसार वरदान पाकर प्रसन्न हो अपने आश्रममें लौट आये। उनकी पत्नी मरुद्वती बहुत दिनोंके बाद गर्भवती हुई। मुनिने विधिपूर्वक गर्भाधान-संस्कार किया था। तदनन्तर गर्भस्थ बालकमें चेष्टा उत्पन्न होनेसे पहले पुरुषकी वृद्धिके लिये उन्होंने किसी शुभ दिनको गृह्यसूत्रोंमें बतायी हुई विधिके अनुसार अच्छे ढंगसे पुंसवन-संस्कार किया। जब आठवाँ मास आया, तब संस्कार-कर्मोंके ज्ञाता उन मुनीश्वरने गर्भके रूपकी समृद्धि और सुखपूर्वक सन्तानकी उत्पत्ति होनेके लिये सीमन्तोन्नयन-संस्कार किया। समय आनेपर मरुद्वतीके गर्भसे सूर्यके समान तेजस्वी पुत्रका जन्म हुआ। उस समय देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं, सम्पूर्ण दिशाएँ स्वच्छ हो गयीं और सब ओरसे प्राणियोंको तृप्त करनेवाली कल्याणमयी वाणी सुनायी देने लगी। बालककी शान्तिके लिये वेदव्यास आदि मुनि भी मृकण्डुके आश्रमपर पधारे। साक्षात् महामुनि वेदव्यासने बालकका जातकर्म-संस्कार कराया। तत्पश्चात् ग्यारहवें दिन मुनिने नामकरण-संस्कार किया। उसके बाद नाना प्रकारके वेदोक्त मन्त्रों और आशीर्वादोंसे अभिनन्दन करके मुनियोंने बालककी रक्षाका शास्त्रीय उपाय किया। फिर मृकण्डु मुनिके द्वारा पूजित हो वे सब लोग लौट गये।

उस समय नगर और प्रान्तके लोग हर्षमें भरकर आपसमें कहते थे—'अहो! इस बालकका अद्भुत रूप है! अद्भुत तेज है! और समस्त अंगोंका लक्षण भी अद्भुत है। मरुद्वतीके सौभाग्यसे साक्षात् भगवान् शंकर ही इस बालकके रूपमें प्रकट हुए हैं, यह कितने आश्चर्यकी बात है। चौथे महीनेमें पिताने पुत्रको घरसे बाहर निकाला। छठे महीनेमें उसका अन्नप्राशन कराया। फिर ढाई वर्षकी अवस्थामें चूडाकर्म करके श्रवण नक्षत्रमें कर्णवेध किया। तदनन्तर कर्मोंके ज्ञाता मृकण्डु मुनिने बालकके ब्रह्मतेजकी वृद्धिके लिये पाँचवें वर्षकी अवस्थामें उसे यज्ञोपवीत दे दिया। फिर उपाकर्म करके विद्वान् मुनिने बालकको वेद पढ़ाया। उसने अंग, उपांग, पद तथा क्रमसहित सम्पूर्ण वेदोंका विधिपूर्वक अध्ययन किया। वह बालक बड़ा शक्तिशाली था। गुरु तो उसके साक्षीमात्र थे। उसने विनय आदि गुणोंको प्रकट करते हुए गुरुमुखसे समस्त विद्याओंको ग्रहण किया। वह भिक्षाके अन्नसे जीवन-निर्वाह करता हुआ प्रतिदिन माता-पिताकी सेवामें संलग्न रहता था, बुद्धिमान् मार्कण्डेयकी आयुका सोलहवाँ वर्ष प्रारम्भ होनेपर मृकण्डु मुनिका हृदय शोकसे कातर हो उठा। उनकी सम्पूर्ण इन्द्रियोंमें व्याकुलता छा गयी। वे दीनतापूर्वक विलाप करने लगे। मार्कण्डेयने पिताको अत्यन्त दु:खित होकर विलाप करते देख पूछा—'तात! आपके शोक-मोहका क्या कारण है?' मार्कण्डेयके मधुर वचन सुनकर मृकण्डुने अपने शोकका युक्तियुक्त कारण बताया।

मृकण्डु बोले—बेटा! पिनाकधारी भगवान् शंकरने तुम्हें सोलह वर्षकी ही आयु दी है। उसकी समाप्तिका समय अब आ पहुँचा है; इसीलिये मुझे शोक हो रहा है।

पिताका यह कथन सुनकर मार्कण्डेयने कहा—'पिताजी! आप मेरे लिये कदापि शोक न कीजिये। मैं ऐसा यत्न करूँगा, जिससे अमर हो जाऊँ। महादेवजी सबको मनोवांछित वस्तु प्रदान करनेवाले और कल्याणस्वरूप हैं। वे मृत्युको जीतनेवाले, विकराल नेत्रधारी, सर्वज्ञ, सत्पुरुषोंको सब कुछ देनेवाले, कालके भी काल, महाकालरूप और कालकूट विषको भक्षण करनेवाले हैं। मैं उन्हींकी आराधना करके अमरत्व प्राप्त करूँगा।' पुत्रकी यह बात सुनकर माता-पिताको बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने सारा शोक छोड़कर प्रसन्नतापूर्वक कहा—'बेटा! तुमने हम दोनोंका शोक नष्ट करनेके लिये भगवान् मृत्युंजयकी आराधनारूप महान् उपायका

प्रतिपादन किया है। तात! तुम उन्हींकी शरणमें जाओ। उनसे बढ़कर दूसरा कोई भी हितैषी नहीं है। जो बात मनकी कल्पनामें भी नहीं आ सकती, उसे भी भगवान् शंकर सिद्ध कर देते हैं। वे कालका भी संहार करनेवाले हैं। बेटा! क्या तुमने नहीं सुना है, पूर्वकालमें कालपाशसे बँधे हुए श्वेतकेतुकी महादेवजीने किस प्रकार रक्षा की? उन्होंने ही समुद्रमन्थनसे प्रकट हुए प्रलयकालीन अग्निके समान भयंकर हालाहल विषका पान करके तीनों लोकोंको बचाया था। जिसने तीनों लोकोंकी सम्पत्ति हड़प ली थी, उस महान् अभिमानी जलंधरको अपने चरणोंकी अंगुष्ठरेखासे प्रकट हुए चक्रद्वारा मौतके घाट उतार दिया था। ये वही भगवान् धूर्जटि हैं, जिन्होंने श्रीविष्णुको बाण बनाकर एक ही बाणके प्रहारसे उत्पन्न हुई आगकी लपटोंसे दैत्योंके तीनों पुरोंको फूँक डाला था। अन्धकासुर तीनों लोकोंका ऐश्वर्य पाकर विवेकशून्य हो गया था, किन्तु उसे भी महादेवजीने अपने त्रिशूलकी नोकपर रखकर दस हजार वर्षोंतक सूर्यकी किरणोंमें सुखाया। केवल दृष्टि डालनेमात्रसे तीनों लोकोंको जीत लेनेवाले प्रबल कामदेवको उन्होंने ब्रह्मा आदि देवताओंके देखते-देखते जलाकर भस्म कर डाला—अनंगकी पदवीको पहुँचा दिया। भगवान् शिव ब्रह्मा आदि देवताओंके एकमात्र कर्ता, मेघरूपी वृषभपर सवारी करनेवाले, अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले, सम्पूर्ण विश्वके आश्रय और जगत्‌की रक्षाके लिये दिव्य मणि हैं। बेटा! तुम उन्हींकी शरणमें जाओ।'

इस प्रकार माता-पिताकी आज्ञा पाकर मार्कण्डेयजी दक्षिण-समुद्रके तटपर चले गये और वहाँ विधिपूर्वक अपने ही नामसे एक शिवलिंग स्थापित किया। तीनों समय स्नान करके वे भगवान् शिवकी पूजा करते और पूजाके अन्तमें स्तोत्र पढ़कर नृत्य करते थे। उस स्तोत्रसे एक ही दिनमें भगवान् शंकर सन्तुष्ट हो गये। मार्कण्डेयजीने बड़ी भक्तिके साथ उनका पूजन किया। जिस दिन उनकी आयु समाप्त होनेवाली थी, उस दिन शिवजीकी पूजामें संलग्न हो वे ज्यों ही स्तुति करनेको उद्यत हुए, उसी समय मृत्युको साथ लिये काल उन्हें लेनेके लिये आ पहुँचा। उसके गोलाकार नेत्र किनारेकी ओरसे लाल-लाल दिखायी दे रहे थे। साँप और बिच्छू ही उसके रोम थे। बड़ी-बड़ी दाढ़ोंके कारण उसका मुख अत्यन्त विकराल जान पड़ता था। वह काजलके समान काला था। समीप आकर कालने उनके गलेमें फंदा डाल दिया। गलेमें बहुत बड़ा फंदा लग जानेपर मार्कण्डेयजीने कहा—'महामते काल! मैं जबतक जगदीश्वर शिवके मृत्युंजय नामक महास्तोत्रका पाठ पूरा न कर लूँ, तबतक मेरी प्रतीक्षा करो। मैं शिवजीकी स्तुति किये बिना कहीं नहीं जाता। भोजन और शयनतक नहीं करता। यह मेरा निश्चित व्रत है। संसारमें जीवन, स्त्री, राज्य तथा सुख भी मुझे उतना प्रिय नहीं है, जितना कि यह शिवजीका स्तोत्र है। यदि मैंने इस विषयमें कोई असत्य बात न कही हो तो इस सत्यके प्रभावसे भगवान् महेश्वर सदा मुझपर प्रसन्न रहें।'

यह सुनकर कालने मार्कण्डेयजीसे हँसते-हँसते कहा—'ब्रह्मन्! मालूम होता है तुमने पूर्वकालसे निश्चित की हुई बड़े-बूढ़ोंकी यह बात नहीं सुनी है—जो मूढ़बुद्धि मानव आयुके प्रथम भागमें ही धर्मका अनुष्ठान नहीं करता, वह वृद्ध होनेपर साथियोंसे बिछुड़े हुए राहीकी भाँति पश्चात्ताप करता है। आठ महीनोंमें ऐसा उपाय कर लेना चाहिये, जिससे वर्षाकालके चार महीने सुखसे बीतें। दिनमें ही वह काम पूरा कर ले, जिससे रातमें सुखसे रहे। पहली अवस्थामें ही ऐसा कार्य कर ले, जिससे बुढ़ापेमें सुखसे रहे। जीवनभर ऐसा कार्य करता रहे, जिससे मरनेके बाद सुख हो। जो कार्य कल करना हो, उसे आज ही कर ले। जिसे अपराह्णमें करना हो, उसे पूर्वाह्णमें ही कर डाले। काल इस बातकी प्रतीक्षा नहीं करता कि इस पुरुषका काम पूरा हुआ है या नहीं। यह कार्य कर लिया, यह करना है और इस कार्यका कुछ अंश हो गया है तथा कुछ बाकी है—इस प्रकारकी इच्छाएँ करते हुए पुरुषको काल सहसा आकर दबोच लेता है। जिसका काल नहीं आया है, वह सैकड़ों बाणोंसे बिंध जानेपर भी नहीं मरता तथा जिसका काल आ पहुँचा है, वह कुशके अग्रभागसे छू जानेपर भी जीवित नहीं रहता। मैं हजारों चक्रवर्ती राजाओं और सैकड़ों इन्द्रोंको भी अपना ग्रास बना चुका हूँ। अतः इस विषयमें तुम्हें क्रोध नहीं करना चाहिये।'

जिसका प्रयास कभी विफल नहीं होता, उस

कालके उपर्युक्त वचन सुनकर शिवजीकी स्तुतिमें तत्पर रहनेवाले मार्कण्डेयजीने कहा—'काल! भगवान् शिवकी स्तुतिमें लगे रहनेवाले पुरुषोंके कार्यमें जो लोग विघ्न डालते हैं, वे शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं; इसीलिये मैं तुम्हें मना करता हूँ। जैसे राजाके सिपाहियोंपर राजा ही शासन कर सकता है, दूसरा कोई नहीं, उसी प्रकार शिवजीके भक्तोंका परमेश्वर शिव ही शासन कर सकते हैं। भगवान् शंकरके सेवक पर्वतोंको भी विदीर्ण कर डालते हैं, समुद्रोंको भी पी जाते हैं तथा पृथ्वी और अन्तरिक्षको भी हिला देते हैं। इतना ही नहीं, वे ब्रह्मा और इन्द्रको भी तिनकेके समान समझते हैं। भला उनके लिये कौन-सा कार्य दुष्कर है! भगवान् शिवके भक्तोंपर मृत्यु, ब्रह्मा, यमराज, यमदूत तथा दूसरे कोई भी अपना प्रभुत्व नहीं स्थापित कर सकते। काल! क्या तुमने मनीषी पुरुषोंका यह वचन नहीं सुना है कि शिवभक्त मनुष्योंपर कहीं भी आपत्ति नहीं आती। ब्रह्मा आदि सम्पूर्ण देवता क्रुद्ध हो जायँ, तो भी वे उन्हें मारनेकी शक्ति नहीं रखते।'

मार्कण्डेयजीके इस प्रकार फटकारनेपर भगवान् काल आँखें फाड़-फाड़कर उनकी ओर देखने लगे, मानो तीनों लोकोंको निगल जायँगे। वे क्रोधमें भरकर बोले—'ओ दुर्बुद्धि ब्राह्मण! गंगाजीमें जितने बालूके कण हैं, उतने ब्रह्माओंका इस कालने संहार कर डाला है। इस विषयमें बहुत कहनेकी क्या आवश्यकता। मेरा बल और पराक्रम देखो, मैं तुम्हें अपना ग्रास बनाता हूँ; तुम इस समय जिनके दास बने बैठे हो, वे महादेव मुझसे तुम्हारी रक्षा करें तो सही।'

वसिष्ठजी कहते हैं—राजन्! जैसे राहु चन्द्रमाको ग्रस लेता है, उसी प्रकार गर्जना करते हुए कालने महामुनि मार्कण्डेयको हठपूर्वक ग्रसना आरम्भ किया। उसी समय परमेश्वर शिव उस लिंगसे सहसा प्रकट हो गये। उनकी अवस्था, उनका रूप—सब कुछ अवर्णनीय था। मस्तकपर अर्धचन्द्राकार मुकुट शोभा पा रहा था। हुंकार भरकर मेघके समान प्रचण्ड गर्जना करते हुए उन्होंने तुरंत ही मृत्युकी छातीमें लात मारी। मृत्युदेव उनके चरण-प्रहारसे भयभीत हो दूर जा पड़े। भयंकर आकारवाले कालको दूर पड़ा देख मार्कण्डेयजीने पुनः उस स्तोत्रसे भगवान् शंकरका स्तवन किया—

कैलासके शिखरपर जिनका निवासगृह है, जिन्होंने मेरुगिरिका धनुष, नागराज वासुकिकी प्रत्यंचा और भगवान् विष्णुको अग्निमय बाण बनाकर तत्काल ही दैत्योंके तीनों पुरोंको दग्ध कर डाला था, सम्पूर्ण देवता जिनके चरणोंकी वन्दना करते हैं, उन भगवान् चन्द्रशेखरकी मैं शरण लेता हूँ। यमराज मेरा क्या करेगा?

मन्दार, पारिजात, संतान, कल्पवृक्ष और हरिचन्दन—इन पाँच दिव्य वृक्षोंके पुष्पोंसे सुगन्धित युगल चरणकमल जिनकी शोभा बढ़ाते हैं, जिन्होंने अपने ललाटवर्ती नेत्रसे प्रकट हुई आगकी ज्वालामें कामदेवके शरीरको भस्म कर डाला था, जिनका श्रीविग्रह सदा भस्मसे विभूषित रहता है, जो भव—सबकी उत्पत्तिके कारण होते हुए भी भव—संसारके नाशक हैं तथा जिनका कभी विनाश नहीं होता, उन भगवान् चन्द्रशेखरकी मैं शरण लेता हूँ। यमराज मेरा क्या करेगा?

जो मतवाले गजराजके मुख्य चर्मकी चादर ओढ़े परम मनोहर जान पड़ते हैं, ब्रह्मा और विष्णु भी जिनके चरणकमलोंकी पूजा करते हैं तथा जो देवताओं और सिद्धोंकी नदी गंगाकी तरंगोंसे भीगी हुई शीतल जटा धारण करते हैं, उन भगवान् चन्द्रशेखरकी मैं शरण लेता हूँ। यमराज मेरा क्या करेगा?

गेंडुल मारे हुए सर्पराज जिनके कानोंमें कुण्डलका काम देते हैं, जो वृषभपर सवारी करते हैं, नारद आदि मुनीश्वर जिनके वैभवकी स्तुति करते हैं, जो समस्त भुवनोंके स्वामी, अन्धकासुरका नाश करनेवाले, आश्रितजनोंके लिये कल्पवृक्षके समान और यमराजको भी शान्त करनेवाले हैं, उन भगवान् चन्द्रशेखरकी मैं शरण लेता हूँ। यमराज मेरा क्या करेगा?

जो यक्षराज कुबेरके सखा, भग देवताकी आँख फोड़नेवाले और सर्पोंके आभूषण धारण करनेवाले हैं, जिनके श्रीविग्रहके सुन्दर वामभागको गिरिराजकिशोरी उमाने सुशोभित कर रखा है, कालकूट विष पीनेके कारण जिनका कण्ठभाग नीले रंगका दिखायी देता है, जो एक हाथमें फरसा और दूसरेमें मृग लिये रहते हैं, उन भगवान् चन्द्रशेखरकी मैं शरण लेता हूँ। यमराज मेरा क्या करेगा?

जो जन्म-मरणके रोगसे ग्रस्त पुरुषोंके लिये औषधरूप हैं, समस्त आपत्तियोंका निवारण और दक्ष-यज्ञका विनाश करनेवाले हैं, सत्त्व आदि तीनों गुण जिनके स्वरूप हैं, जो तीन नेत्र धारण करते, भोग और मोक्षरूपी फल देते तथा सम्पूर्ण पापराशिका संहार करते हैं, उन भगवान् चन्द्रशेखरकी मैं शरण लेता हूँ। यमराज मेरा क्या करेगा?

जो भक्तोंपर दया करनेवाले हैं, अपनी पूजा करनेवाले मनुष्योंके लिये अक्षय निधि होते हुए भी जो स्वयं दिगम्बर रहते हैं, जो सब भूतोंके स्वामी, परात्पर, अप्रमेय और उपमारहित हैं, पृथ्वी, जल, आकाश, अग्नि और चन्द्रमाके द्वारा जिनका श्रीविग्रह सुरक्षित है, उन भगवान् चन्द्रशेखरकी मैं शरण लेता हूँ। यमराज मेरा क्या करेगा?

जो ब्रह्मारूपसे सम्पूर्ण विश्वकी सृष्टि करते, फिर विष्णुरूपसे सबके पालनमें संलग्न रहते और अन्तमें सारे प्रपंचका संहार करते हैं, सम्पूर्ण लोकोंमें जिनका निवास है तथा जो गणेशजीके पार्षदोंसे घिरकर दिन-रात भाँति-भाँतिके खेल किया करते हैं, उन भगवान् चन्द्रशेखरकी मैं शरण लेता हूँ। यमराज मेरा क्या करेगा?

रु अर्थात् दुःखको दूर करनेके कारण जिन्हें रुद्र कहते हैं, जो जीवरूपी पशुओंका पालन करनेसे पशुपति, स्थिर होनेसे स्थाणु, गलेमें नीला चिह्न धारण करनेसे नीलकण्ठ और भगवती उमाके स्वामी होनेसे उमापति नाम धारण करते हैं, उन भगवान् शिवको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ। मृत्यु मेरा क्या कर लेगी?

जिनके गलेमें काला दाग है, जो कलामूर्ति, कालाग्निस्वरूप और कालके नाशक हैं, उन भगवान् शिवको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ। मृत्यु मेरा क्या कर लेगी?

जिनका कण्ठ नील और नेत्र विकराल होते हुए भी जो अत्यन्त निर्मल और उपद्रवरहित हैं, उन भगवान् शिवको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ। मृत्यु मेरा क्या कर लेगी?

जो वामदेव, महादेव, विश्वनाथ और जगद्गुरु नाम धारण करते हैं, उन भगवान् शिवको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ। मृत्यु मेरा क्या कर लेगी?

जो देवताओंके भी आराध्यदेव, जगत्‌के स्वामी और देवताओंपर भी शासन करनेवाले हैं, जिनकी ध्वजापर वृषभका चिह्न बना हुआ है, उन भगवान् शिवको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ। मृत्यु मेरा क्या कर लेगी?

जो अनन्त, अविकारी, शान्त, रुद्राक्षमालाधारी और सबके दुःखोंका हरण करनेवाले हैं, उन भगवान् शिवको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ। मृत्यु मेरा क्या कर लेगी?

जो परमानन्दस्वरूप, नित्य एवं कैवल्यपद—मोक्षकी प्राप्तिके कारण हैं, उन भगवान् शिवको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ। मृत्यु मेरा क्या कर लेगी?

जो स्वर्ग और मोक्षके दाता तथा सृष्टि, पालन और संहारके कर्ता हैं, उन भगवान् शिवको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ। मृत्यु मेरा क्या कर लेगी?

वसिष्ठजी कहते हैं—मार्कण्डेयजीके द्वारा किये हुए इस स्तोत्रका जो भगवान् शंकरके समीप पाठ करेगा, उसे मृत्युसे भय नहीं होगा—यह मैं सत्य-सत्य कहता हूँ। बुद्धिमान् मार्कण्डेयके इस प्रकार स्तुति करनेपर महादेवजीने उन्हें अनेक कल्पोंतककी असीम आयु प्रदान की। इस प्रकार देवाधिदेव महादेवजीके प्रसादसे अमरत्व पाकर महातेजस्वी मार्कण्डेयने बहुत-से प्रलयके दृश्य देखे हैं। वरदान पानेके अनन्तर महामुनि मार्कण्डेयने पुनः अपने आश्रममें लौटकर माता-पिताको प्रणाम किया। फिर उन्होंने भी पुत्रका अभिनन्दन किया। उसके बाद मार्कण्डेयजी तीर्थयात्रामें प्रवृत्त होकर सदा इस पृथ्वीपर विचरने लगे। यमराज भी भगवान् शंकरकी स्तुति करके अपने लोकमें चले गये। राजन्! मृगशृंग मुनि सदा माघस्नान किया करते थे। उसीके माहात्म्यसे उनकी सन्तान इस प्रकार सौभाग्यशालिनी हुई।

माघस्नानके लिये मुख्य-मुख्य तीर्थ और नियम

राजा दिलीपने पूछा—मुने! आप इक्ष्वाकुवंशके गुरु और महात्मा हैं। आपको नमस्कार है। माघस्नानमें संलग्न रहनेवाले पुरुषोंके लिये कौन-कौनसे मुख्य तीर्थ हैं? उनका विस्तारके साथ वर्णन कीजिये। मैं सुनना चाहता हूँ।

वसिष्ठजीने कहा—राजन्! माघ मास आनेपर बस्तीसे बाहर जहाँ-कहीं भी जल हो, उसे सब ऋषियोंने गंगाजलके समान बतलाया है; तथापि मैं तुमसे विशेषतः माघस्नानके लिये मुख्य-मुख्य तीर्थोंका वर्णन करता हूँ। पहला है—तीर्थराज प्रयाग। वह बहुत विख्यात तीर्थ है। प्रयाग सब तीर्थोंमें कामनाकी पूर्ति करनेवाला तथा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंको देनेवाला है। उसके सिवा नैमिषारण्य, कुरुक्षेत्र, हरिद्वार, उज्जैन, सरयू, यमुना, द्वारका, अमरावती, सरस्वती और समुद्रका संगम, गंगा-सागर-संगम, कांची, त्र्यम्बक तीर्थ, सप्त-गोदावरीका तट, कालंजर, प्रभास, बदरिकाश्रम, महालय, ओंकारक्षेत्र, पुरुषोत्तमक्षेत्र—जगन्नाथपुरी, गोकर्ण, भृगुकर्ण, भृगुतुंग, पुष्कर, तुंगभद्रा, कावेरी, कृष्णा-वेणी, नर्मदा, सुवर्णमुखरी तथा वेगवती नदी—ये सभी माघ मासमें स्नान करनेवालोंके लिये मुख्य तीर्थ हैं। गया नामक जो तीर्थ है, वह पितरोंके लिये तृप्तिदायक और हितकर है। ये भूमिपर विराजमान तीर्थ हैं, जिनका मैंने तुमसे वर्णन किया है। राजन्! अब मानस तीर्थ बतलाता हूँ, सुनो। उनमें भलीभाँति स्नान करनेसे मनुष्य परम गतिको प्राप्त होता है। सत्यतीर्थ, क्षमातीर्थ, इन्द्रिय-निग्रहतीर्थ, सर्वभूतदयातीर्थ, आर्जव (सरलता)-तीर्थ, दानतीर्थ, दम (मनोनिग्रह)-तीर्थ, सन्तोषतीर्थ, ब्रह्मचर्यतीर्थ, नियमतीर्थ, मन्त्र-जपतीर्थ, प्रियभाषणतीर्थ, ज्ञानतीर्थ, धैर्यतीर्थ, अहिंसातीर्थ, आत्मतीर्थ, ध्यानतीर्थ और शिवस्मरण-तीर्थ—ये सभी मानस तीर्थ हैं। मनकी शुद्धि सब तीर्थोंसे उत्तम तीर्थ है। शरीरसे जलमें डुबकी लगा लेना ही स्नान नहीं कहलाता। जिसने मन और इन्द्रियोंके संयममें स्नान किया है, वास्तवमें उसीका स्नान सफल है; क्योंकि वह पवित्र एवं स्नेहयुक्त चित्तवाला माना गया है।*

जो लोभी, चुगलखोर, क्रूर, दम्भी और विषयलोलुप है, वह सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करके भी पापी और मलिन ही बना रहता है; केवल शरीरकी मैल छुड़ानेसे मनुष्य निर्मल नहीं होता, मनकी मैल धुलनेपर ही वह अत्यन्त निर्मल होता है। जलचर जीव जलमें ही जन्म लेते और उसीमें मर जाते हैं; किन्तु इससे वे स्वर्गमें नहीं जाते, क्योंकि उनके मनकी मैल नहीं धुली रहती। विषयोंमें जो अत्यन्त आसक्ति होती है, उसीको मानसिक मल कहते हैं। विषयोंकी ओरसे वैराग्य हो जाना ही मनकी निर्मलता है। दान, यज्ञ, तपस्या, बाहर-भीतरकी शुद्धि और शास्त्र-ज्ञान भी तीर्थ ही हैं। यदि अन्तःकरणका भाव निर्मल हो तो ये सब-के-सब तीर्थ ही हैं। जिसने इन्द्रियसमुदायको काबूमें कर लिया है, वह मनुष्य जहाँ-जहाँ निवास करता है, वहीं-वहीं उसके लिये कुरुक्षेत्र, नैमिषारण्य और पुष्कर आदि तीर्थ प्रस्तुत हैं। जो ज्ञानसे पवित्र, ध्यानरूपी जलसे परिपूर्ण और राग-द्वेषरूपी मलको धो देनेवाला है, ऐसे मानस तीर्थमें जो स्नान करता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है। राजन्! यह मैंने तुम्हें मानस तीर्थका लक्षण बतलाया है।

अब भूतलके तीर्थोंकी पवित्रताका कारण सुनो। जैसे शरीरके कुछ भाग परम पवित्र माने गये हैं, उसी प्रकार पृथ्वीके भी कुछ स्थान अत्यन्त पुण्यमय माने

---

* सत्यं तीर्थं क्षमा तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः॥
सर्वभूतदया तीर्थं तीर्थमार्जवमेव च। दानं तीर्थं दमस्तीर्थं संतोषस्तीर्थमेव च॥
ब्रह्मचर्यं परं तीर्थं नियमस्तीर्थमुच्यते। मन्त्राणां तु जपस्तीर्थं तीर्थं तु प्रियवादिता॥
ज्ञानं तीर्थं धृतिस्तीर्थमहिंसा तीर्थमेव च। आत्मतीर्थं ध्यानतीर्थं पुनस्तीर्थं शिवस्मृतिः॥
तीर्थानामुत्तमं तीर्थं विशुद्धिर्मनसः पुनः। न जलाप्लुतदेहस्य स्नानमित्यभिधीयते॥
स स्नातो यो दमस्नातः शुचिस्निग्धमना मतः।

(२३७। १२—१७)

जाते हैं। भूमिके अद्भुत प्रभाव, जलकी शक्ति और मुनियोंके अनुग्रहपूर्वक निवाससे तीर्थोंको पवित्र बताया गया है; इसलिये भौम और मानस सभी तीर्थोंमें जो नित्य स्नान करता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है। प्रचुर दक्षिणावाले अग्निष्टोम आदि यज्ञोंसे यजन करके भी मनुष्य उस फलको नहीं पाता, जो उसे तीर्थोंमें जानेसे प्राप्त होता है। जिसके दोनों हाथ, दोनों पैर और मन भलीभाँति काबूमें हों तथा जो विद्या, तप और कीर्तिसे सम्पन्न हो, वह तीर्थके फलका भागी होता है। जो प्रतिग्रहसे निवृत्त, जिस-किसी वस्तुसे भी संतुष्ट रहनेवाला और अहंकारसे मुक्त है, वह तीर्थके फलका भागी होता है। श्रद्धापूर्वक एकाग्रचित्त हो तीर्थोंकी यात्रा करनेवाला धीर पुरुष कृतघ्न हो तो भी शुद्ध हो जाता है; फिर जो शुद्ध कर्म करता है, उसकी तो बात ही क्या है? वह मनुष्य पशु-पक्षियोंकी योनिमें नहीं पड़ता, बुरे देशमें जन्म नहीं लेता, दुःखका भागी नहीं होता, स्वर्गलोकमें जाता और मोक्षका उपाय भी प्राप्त कर लेता है। अश्रद्धालु, पापात्मा, नास्तिक, संशयात्मा और केवल युक्तिवादका सहारा लेनेवाला—ये पाँच प्रकारके मनुष्य तीर्थफलके भागी नहीं होते। जो शास्त्रोक्त तीर्थोंमें विधिपूर्वक विचरते और सब प्रकारके द्वन्द्वोंको सहन करते हैं, वे धीर मनुष्य स्वर्गलोकमें जाते हैं। तीर्थमें अर्घ्य और आवाहनके बिना ही श्राद्ध करना चाहिये। वह श्राद्धके योग्य काल हो या न हो, तीर्थमें बिना विलम्ब किये श्राद्ध और तर्पण करना उचित है; उसमें विघ्न नहीं डालना चाहिये। अन्य कार्यके प्रसंगसे भी तीर्थमें पहुँच जानेपर स्नान करना चाहिये। ऐसा करनेसे तीर्थयात्राका नहीं, परन्तु तीर्थस्नानका फल अवश्य प्राप्त होता है। तीर्थमें नहानेसे पापी मनुष्योंके पापकी शान्ति होती है। जिनका हृदय शुद्ध है, उन मनुष्योंको तीर्थ शास्त्रोक्त फल प्रदान करनेवाला होता है। जो दूसरेके लिये तीर्थयात्रा करता है, वह भी उसके पुण्यका सोलहवाँ अंश प्राप्त कर लेता है। कुशकी प्रतिमा बनाकर तीर्थके जलमें उसे स्नान करावे। जिसके उद्देश्यसे उस प्रतिमाको स्नान कराया जाता है, वह पुरुष तीर्थस्नानके पुण्यका आठवाँ भाग प्राप्त करता है। तीर्थमें जाकर उपवास करना और सिरके बालोंका मुण्डन कराना चाहिये। मुण्डनसे मस्तकके पाप नष्ट हो जाते हैं। जिस दिन तीर्थमें पहुँचे, उसके पहले दिन उपवास करे और दूसरे दिन श्राद्ध एवं दान करे। तीर्थके प्रसंगमें मैंने श्राद्धको भी तीर्थ बतलाया है। यह स्वर्गका साधन तो है ही, मोक्षप्राप्तिका भी उपाय है।

इस प्रकार नियमका आश्रय ले माघ मासमें व्रत ग्रहण करना चाहिये और उस समय ऐसी ही तीर्थयात्रा करनी चाहिये। माघ मासमें स्नान करनेवाला पुरुष सब जगह कुछ-न-कुछ दान अवश्य करे। बेर, केला और आँवलेका फल, सेरभर घी, सेरभर तिल, पान, एक आढक (सोलह सेर) चावल, कुम्हड़ा और खिचड़ी—ये नौ वस्तुएँ प्रतिदिन ब्राह्मणोंको दान करनी चाहिये। जिस किसी प्रकार हो सके, माघ मासको व्यर्थ नहीं जाने देना चाहिये। किंचित् सूर्योदय होते-होते माघस्नान करना चाहिये तथा माघस्नान करनेवाले पुरुषको यथाशक्ति शौच-सन्तोष आदि नियमोंका पालन करना चाहिये। विशेषतः ब्राह्मणों और साधु-संन्यासियोंको पकवान भोजन कराना चाहिये। जाड़ेका कष्ट दूर करनेके लिये बोझ-के-बोझ सूखे काठ दान करे। रूईभरा अंगा, शय्या, गद्दा, यज्ञोपवीत, लाल वस्त्र, रूईदार रजाई, जायफल, लौंग, बहुत-से पान, विचित्र-विचित्र कम्बल, हवासे बचानेवाले गृह, मुलायम जूते और सुगन्धित उबटन दान करे। माघस्नानपूर्वक घी, कम्बल, पूजनसामग्री, काला अगर, धूप, मोटी बत्तीवाले दीप और भाँति-भाँतिके नैवेद्यसे माघस्नानजनित फलकी प्राप्तिके लिये भगवान् माधवकी पूजा करे। माघ मासमें डुबकी लगानेसे सारे दोष नष्ट हो जाते हैं और अनेकों जन्मोंके उपार्जित सम्पूर्ण महापाप तत्काल विलीन हो जाते हैं। यह माघस्नान ही मंगलका साधन है, यही वास्तवमें धनका उपार्जन है तथा यही इस जीवनका फल है। भला, माघस्नान, मनुष्योंका कौन-कौन-सा कार्य नहीं सिद्ध करता? वह पुत्र, मित्र, कलत्र, राज्य, स्वर्ग तथा मोक्षका भी देनेवाला है।

माघ मासके स्नानसे सुव्रतको दिव्यलोककी प्राप्ति

वसिष्ठजी कहते हैं—राजन्! सुनो, मैं तुमसे सुव्रतके चरित्रका वर्णन करता हूँ। यह शुभ प्रसंग श्रोताओंके समस्त पापोंको तत्काल हर लेनेवाला है। नर्मदाके रमणीय तटपर एक बहुत बड़ा अग्रहार—ब्राह्मणोंको दानमें मिला हुआ गाँव था। वह लोगोंमें अकलंक नामसे विख्यात था, उसमें वेदोंके ज्ञाता और धर्मात्मा ब्राह्मण निवास करते थे। वह धन-धान्यसे भरा था और वेदोंके गम्भीर घोषसे सम्पूर्ण दिशाओंको मुखरित किये रहता था। उस गाँवमें एक श्रेष्ठ ब्राह्मण थे, जो सुव्रतके नामसे विख्यात थे। उन्होंने सम्पूर्ण वेदोंका अध्ययन किया था। वेदार्थके वे अच्छे ज्ञाता थे, धर्मशास्त्रोंके अर्थका भी पूर्ण ज्ञान रखते थे, पुराणोंकी व्याख्या करनेमें वे बड़े कुशल थे। वेदांगोंका अभ्यास करके उन्होंने तर्कशास्त्र, ज्यौतिषशास्त्र, गजविद्या, अश्वविद्या, चौसठ कलाएँ, मन्त्रशास्त्र, सांख्यशास्त्र तथा योगशास्त्रका भी अध्ययन किया था। वे अनेक देशोंकी लिपियाँ और नाना प्रकारकी भाषाएँ जानते थे। यह सब कुछ उन्होंने धन कमानेके लिये ही सीखा था तथा लोभसे मोहित होनेके कारण अपने भिन्न-भिन्न गुरुओंको गुरुदक्षिणा भी नहीं दी थी। उपायोंके जानकार तो थे ही, उन्होंने उक्त उपायोंसे बहुत-कुछ धनका उपार्जन किया। उनके मनमें बड़ा लोभ था; इसलिये वे अन्यायसे भी धन कमाया करते थे। जो वस्तु बेचनेके योग्य नहीं है, उसको भी बेचते और जंगलकी वस्तुओंका भी विक्रय किया करते थे; उन्होंने चाण्डाल आदिसे भी दान लिया, कन्या बेची तथा गौ, तिल, चावल, रस और तेलका भी विक्रय किया। वे दूसरोंके लिये तीर्थमें जाते, दक्षिणा लेकर देवताकी पूजा करते, वेतन लेकर पढ़ाते और दूसरोंके घर खाते थे; इतना ही नहीं, वे नमक, पानी, दूध, दही और पक्वान्न भी बेचा करते थे। इस तरह अनेक उपायोंसे उन्होंने यत्नपूर्वक धन कमाया। धनके पीछे उन्होंने नित्य-नैमित्तिक कर्मतक छोड़ दिया था। न खाते थे, न दान करते थे। हमेशा अपना धन गिनते रहते थे कि कब कितना जमा हुआ। इस प्रकार उन्होंने एक लाख स्वर्णमुद्राएँ उपार्जित कर लीं। धनोपार्जनमें लगे-लगे ही वृद्धावस्था आ गयी और सारा शरीर जर्जर हो गया। कालके प्रभावसे समस्त इन्द्रियाँ शिथिल हो गयीं। अब वे उठने और कहीं आने-जानेमें असमर्थ हो गये। धनोपार्जनका काम बंद हो जानेसे स्त्रीसहित ब्राह्मण देवता बहुत दुःखी हुए। इस प्रकार चिन्ता करते-करते जब उनका चित्त बहुत व्याकुल हो गया, तब उनके मनमें सहसा विवेकका प्रादुर्भाव हुआ।

सुव्रत अपने-आप कहने लगे—मैंने नीच प्रतिग्रहसे, नहीं बेचनेयोग्य वस्तुओंके बेचनेसे तथा तपस्या आदिका भी विक्रय करनेसे यह धन जमा किया है; फिर भी मुझे शान्ति नहीं मिली। मेरी तृष्णा अत्यन्त दुस्सह है। यह मेरु पर्वतके समान असंख्य सुवर्ण पानेकी अभिलाषा रखती है। अहो! मेरा मन महान् कष्टदायक और सम्पूर्ण क्लेशोंका कारण है। सब कामनाओंको पाकर भी यह फिर दूसरी-दूसरी नवीन कामनाओंको प्राप्त करना चाहता है। बूढ़े होनेपर सिरके बाल पक जाते हैं, दाँत टूट जाते हैं, आँख और कानोंकी शक्ति भी क्षीण हो जाती है; किन्तु एक तृष्णा ही ऐसी है, जो उस समय भी नित्य तरुण होती जाती है। जिसके मनमें कष्टदायिनी आशा मौजूद है, वह विद्वान् होकर भी अज्ञानी है, अशान्त है, क्रोधी है और बुद्धिमान् होकर भी अत्यन्त मूर्ख है। आशा मनुष्योंको नष्ट करनेवाली है, उसे अग्निके समान जानना चाहिये; अतः जो विद्वान् सनातन पदको प्राप्त करना चाहता हो, वह आशाका परित्याग कर दे। बल, तेज, यश, विद्या, सम्मान, शास्त्रज्ञान तथा उत्तम कुलमें जन्म—इन सबको आशा शीघ्र ही नष्ट कर देती है। मैंने भी इसी प्रकार बहुत क्लेश उठाकर यह धन कमाया है। वृद्धावस्थाने मेरे शरीरको भी गला दिया और सारा बल भी हर लिया। अबसे मैं श्रद्धापूर्वक परलोक सुधारनेके लिये प्रयत्न करूँगा।

ऐसा निश्चय करके ब्राह्मण देवता जब धर्मके मार्गपर चलनेके लिये उत्सुक हुए, उसी दिन रातमें कुछ चोर उनके घरमें घुस आये। आधी रातका समय था; आततायी चोरोंने ब्राह्मणको खूब कसकर बाँध दिया और सारा धन लेकर चंपत हुए। चोरोंके द्वारा धन

छिन जानेपर ब्राह्मण अत्यन्त दारुण विलाप करने लगा—'हाय! मेरा धन कमाना धर्म, भोग अथवा मोक्ष—किसी भी काममें नहीं आया। न तो मैंने उसे भोगा और न दान ही किया। फिर किसलिये धनका उपार्जन किया? हाय! हाय! मैंने अपने आत्माको धोखेमें डालकर यह क्या किया? सब जगहसे दान लिया और मदिरातकका विक्रय किया। पहले तो एक ही गौका प्रतिग्रह नहीं लेना चाहिये। यदि एकको ले लिया तो दूसरीका प्रतिग्रह लेना कदापि उचित नहीं है। उस गौको भी यदि बेच दिया जाय तो वह सात पीढ़ियोंको दग्ध कर देती है। इस बातको जानते हुए भी मैंने लोभवश ऐसे-ऐसे पाप किये हैं। धन कमानेके जोशमें मैंने एक दिन भी एकाग्रचित्त होकर अच्छी तरह सन्ध्योपासना नहीं की। अगर्भ (ध्यानरहित) या सगर्भ (ध्यानसहित) प्राणायाम भी नहीं किया। तीन बार जल पीकर और दो बार ओठ पोंछकर भलीभाँति आचमन नहीं किया। उतावली छोड़कर और हाथमें कुशकी पवित्री लेकर मैंने कभी गायत्री-मन्त्रका वाचिक, उपांशु अथवा मानस जप भी नहीं किया। जीवोंका बन्धन छुड़ानेवाले महादेवजीकी आराधना नहीं की। जो मन्त्र पढ़कर अथवा बिना मन्त्रके ही शिवलिंगके ऊपर एक पत्ता या फूल डाल देता है, उसकी करोड़ों पीढ़ियोंका उद्धार हो जाता है; किन्तु मैंने कभी ऐसा नहीं किया। सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाले भगवान् विष्णुको कभी सन्तुष्ट नहीं किया। पाँच प्रकारकी हत्याओंके पाप शान्त करनेवाले पंचयज्ञोंका अनुष्ठान नहीं किया। स्वर्गलोककी प्राप्ति करानेवाले अतिथिके सत्कारसे भी वंचित रहा। संन्यासीका सत्कार करके उसे अन्नकी भिक्षा नहीं दी। ब्रह्मचारीको विधिपूर्वक अतिथिके योग्य भोजन नहीं दिया।

'मैंने ब्राह्मणोंको भाँति-भाँतिके सुन्दर एवं महीन वस्त्र नहीं अर्पण किये। सब पापोंका नाश करनेके लिये प्रज्वलित अग्निमें घीसे भीगे हुए मन्त्रपूत तिलोंका हवन नहीं किया। श्रीसूक्त, पावमानी ऋचा, मण्डल ब्राह्मण, पुरुषसूक्त और परमपवित्र शतरुद्रिय मन्त्रका जप नहीं किया। पीपलके वृक्षका सेवन नहीं किया। अर्कत्रयोदशीका व्रत त्याग दिया। वह भी यदि रातको अथवा शुक्रवारके दिन पड़े, तो तत्काल सब पापोंको हरनेवाली है; किन्तु मैंने उसकी भी उपेक्षा कर दी। ठंढी छायावाले सघन वृक्षका पौधा नहीं लगाया। सुन्दर शय्या और मुलायम गद्देका दान नहीं किया। पंखा, छतरी, पान तथा मुखको सुगन्धित करनेवाली और कोई वस्तु भी ब्राह्मणको दान नहीं दी। नित्य श्राद्ध, भूतबलि तथा अतिथि-पूजा भी नहीं की। उपर्युक्त उत्तम वस्तुओंका जो लोग दान करते हैं, वे पुण्यके भागी मनुष्य यमलोकमें यमराजको, यमदूतोंको और यमलोककी यातनाओंको नहीं देखते; किन्तु मैंने यह भी नहीं किया। गौओंको ग्रास नहीं दिया। उनके शरीरको कभी नहीं खुजलाया, कीचड़में फँसी हुई गौको, जो गोलोकमें सुख देनेवाली होती है, मैंने कभी नहीं निकाला। याचकोंको उनकी मुँहमाँगी वस्तुएँ देकर कभी सन्तुष्ट नहीं किया। भगवान् विष्णुकी पूजाके लिये कभी तुलसीका वृक्ष नहीं लगाया। शालग्रामशिलाके तीर्थभूत चरणामृतको न तो कभी पीया और न मस्तकपर ही चढ़ाया। एक भी पुण्यमयी एकादशी तिथिको उपवास नहीं किया। शिवलोक प्रदान करनेवाली शिवरात्रिका भी व्रत नहीं किया। वेद, शास्त्र, धन, स्त्री, पुत्र, खेत और अटारी आदि वस्तुएँ इस लोकसे जाते समय मेरे साथ नहीं जायँगी। अब तो मैं बिलकुल असमर्थ हो गया; अतः कोई उद्योग भी नहीं कर सकूँगा। क्या करूँ, कहाँ जाऊँ। हाय! मुझपर बड़ा भारी कष्ट आ पड़ा। मेरे पास परलोकका राहखर्च भी नहीं है।'

इस प्रकार व्याकुलचित्त होकर सुव्रतने मन-ही-मन विचार किया—'अहो! मेरी समझमें आ गया, आ गया, आ गया। मैं धन कमानेके लिये उत्तम देश काश्मीरको जा रहा था। मार्गमें भागीरथी गंगाके तटपर मुझे कुछ ब्राह्मण दिखायी दिये, जो वेदोंके पारगामी विद्वान् थे। वे प्रातःकाल माघस्नान करके बैठे थे। वहाँ किसी पौराणिक विद्वान्ने उस समय यह आधा श्लोक कहा था—

माघे निमग्नाः सलिले सुशीते
विमुक्तपापास्त्रिदिवं प्रयान्ति॥

(२३८।७८)

'माघ मासमें शीतल जलके भीतर डुबकी लगानेवाले

मनुष्य पापमुक्त हो स्वर्गलोकमें जाते हैं।'

पुराणमेंसे मैंने इस श्लोकको सुना है। यह बहुत ही प्रामाणिक है; अतः इसके अनुसार मुझे माघका स्नान करना ही चाहिये।

मन-ही-मन ऐसा निश्चय करके सुव्रतने अपने मनको सुस्थिर किया और नौ दिनोंतक नर्मदाके जलमें माघ मासका स्नान किया। उसके बाद स्नान करनेकी भी शक्ति नहीं रह गयी। वे दसवें दिन किसी तरह नर्मदाजीमें गये और विधिपूर्वक स्नान करके तटपर आये। उस समय शीतसे पीड़ित होकर उन्होंने प्राण त्याग दिया। उसी समय मेरुगिरिके समान तेजस्वी विमान आया और माघस्नानके प्रभावसे सुव्रत उसपर आरूढ़ हो स्वर्गलोकको चले गये। वहाँ एक मन्वन्तरतक निवास करके वे पुनः इस पृथ्वीपर ब्राह्मण हुए। फिर प्रयागमें माघस्नान करके उन्होंने ब्रह्मलोक प्राप्त किया।

सनातन मोक्षमार्ग और मन्त्रदीक्षाका वर्णन

राजा दिलीपने पूछा—भगवन्! आपने वर्णाश्रमधर्म तथा नित्य-नैमित्तिक कर्मोंसहित सम्पूर्ण धर्मोंका वर्णन किया। अब मैं सनातन मोक्ष-मार्गका वर्णन सुनना चाहता हूँ। आप उसे सुनानेकी कृपा करें। सम्पूर्ण मन्त्रोंमें कौन-सा ऐसा मन्त्र है, जो संसाररूपी रोगकी एकमात्र औषध हो? सब देवताओंमें कौन मोक्ष प्रदान करनेवाला श्रेष्ठ देवता है? यह सब बताइये।

वसिष्ठजी बोले—राजन्! प्राचीन कालकी बात है—यज्ञ और दानमें लगे रहनेवाले सम्पूर्ण महर्षियोंने ब्रह्माजीके पुत्र मुनिश्रेष्ठ नारदजीसे प्रश्न किया—'भगवन्! हम किस मन्त्रसे परमपदको प्राप्त होंगे? महाभाग! यह हमें बताइये, हमारे ऊपर कृपा कीजिये।'

नारदजीने कहा—महर्षियो! पूर्वकालमें सनकादि योगियोंने एकान्तमें बैठे हुए ब्रह्माजीसे परम दुर्लभ मोक्ष-मार्गके विषयमें प्रश्न किया।

तब ब्रह्माजीने कहा—सम्पूर्ण योगिजन परम उत्तम मोक्ष-मार्गका वर्णन सुनें। बड़े सौभाग्यकी बात है कि आज मैं इस अद्भुत रहस्यका वर्णन करूँगा। समस्त देवता और तपस्वी ऋषि भी इस रहस्यको नहीं जानते। सृष्टिके आदिमें अविनाशी भगवान् नारायण मुझपर प्रसन्न हुए। उस समय मैंने उन पुराणपुरुषोत्तमसे पूछा—'भगवन्! किस मन्त्रसे मनुष्योंका इस संसारसे उद्धार होगा? इसको यथार्थरूपसे बतलाइये। इससे सब लोगोंका हित होगा। कौन-सा ऐसा मन्त्र है, जो बिना पुरश्चरणके ही एक बार उच्चारण करनेमात्रसे मनुष्योंको परमपद प्रदान करता है।'

श्रीभगवान् बोले—महाभाग! तुम सब लोकोंके हितैषी हो। तुमने यह बहुत उत्तम बात पूछी है। अतः मैं तुम्हें वह रहस्य बतलाता हूँ, जिसके द्वारा मनुष्य मुझे प्राप्त कर सकते हैं। लक्ष्मी और नारायण—ये दो मन्त्ररत्न शरणागतजनोंकी रक्षा करते हैं। सब मन्त्रोंकी अपेक्षा ये शुभकारक हैं। एक बार स्मरण करनेमात्रसे ये परमपद प्रदान करते हैं। लक्ष्मीनारायण मन्त्र सब फलोंको देनेवाला है। जो मेरा भक्त नहीं है, वह इस मन्त्रको पानेका अधिकारी नहीं है। उसे यत्नपूर्वक दूर रखना चाहिये। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री, शूद्र तथा इतर जातिके मनुष्य भी यदि मेरे भक्त हों तो वे सभी इस मन्त्रको पानेके अधिकारी हैं। जो शरणमें आये हों, मेरे सिवा दूसरेका सेवन न करते हों तथा अन्य किसी साधनका आश्रय न लेते हों—ऐसे लोगोंको इस उत्तम मन्त्रका उपदेश देना चाहिये। यह सबको शरण देनेवाला मन्त्र है। एक बार उच्चारण करनेपर भी यह आर्त्त प्राणियोंको शीघ्र फल प्रदान करनेवाला है। आर्त्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी अथवा ज्ञानी—जो कोई भी एक बार मेरी शरणमें आ जाता है, उसे उक्त मन्त्रका पूरा फल मिलता है। जो भक्तिहीन, अभिमानी, नास्तिक, कृतघ्न एवं श्रद्धारहित हो, सुननेकी इच्छा न रखता हो तथा एक वर्षतक साथ न रह चुका हो—ऐसे मनुष्यको इस मन्त्रका उपदेश नहीं देना चाहिये। जो काम-क्रोधसे मुक्त और दम्भ-लोभसे रहित हो तथा अनन्यभक्तियोगके द्वारा मेरी सेवा करता हो, उसे विधिपूर्वक इस उत्तम मन्त्ररत्नका उपदेश करना उचित है।

मेरी आराधना करना, मुझमें समस्त कर्मोंका अर्पण करना, अनन्यभावसे मेरी शरणमें आना, मुझे सब

कर्मोंका फल अत्यन्त विश्वासपूर्वक समर्पित कर देना, मेरे सिवा और किसी साधनपर भरोसा न रखना तथा अपने लिये किसी वस्तुका संग्रह न करना—ये सब शरणागत भक्तके नियम हैं। ऐसे गुणोंसे युक्त पुरुषको इस उत्तम मन्त्रका उपदेश देना चाहिये। उक्त मन्त्रका मैं सर्वव्यापी सनातन नारायण ही ऋषि हूँ। लक्ष्मीके साथ मैं ही इसका देवता भी हूँ अर्थात् वात्सल्य रसके समुद्र, सम्पूर्ण लोकोंके ईश्वर, श्रीमान्, सुशील, सुभग, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, निरन्तर पूर्णकाम, सर्वव्यापक, सबके बन्धु और कृपामयी सुधाके सागर लक्ष्मीसहित मैं नारायण ही इसका देवता हूँ। अतः मेरी अनुगामिनी लक्ष्मीदेवीके साथ मुझ विश्वरूपी भगवान्‌का ध्यान करना चाहिये। अपनी इन्द्रियोंको वशमें करके पवित्र हो उक्त मन्त्ररत्नद्वारा गन्ध-पुष्प आदि निवेदन करके शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण करनेवाले दिव्यरूपधारी मुझ विष्णुका मेरे वामांकमें विराजमान लक्ष्मीसहित पूजन करे। प्रजापते! इस प्रकार एक बार पूजा करनेपर भी मैं सन्तुष्ट हो जाता हूँ।

ब्रह्माजीने कहा—नाथ! आपने इस उत्तम रहस्यका भलीभाँति वर्णन किया तथा मन्त्ररत्नके प्रभावको भी बतलाया, जो मनुष्योंको सब प्रकारकी सिद्धिका प्रदान करनेवाला है। आप सम्पूर्ण लोकोंके पिता, माता, गुरु, स्वामी, सखा, भ्राता, गति, शरण और सुहृद् हैं। देवेश्वर! मैं तो आपका दास, शिष्य तथा सुहृद् हूँ। अतः दयासिन्धो! मुझे अपनेसे अभिन्न बना लीजिये। सर्वज्ञ! अब आप इस समय सब लोगोंके हितकी इच्छासे उत्तम विधिके साथ मन्त्ररत्नकी दीक्षाका तत्त्वतः वर्णन कीजिये।

श्रीभगवान् बोले—वत्स! सुनो—मैं मन्त्र-दीक्षाकी उत्तम विधि बतलाता हूँ। मेरे आश्रयकी सिद्धिके लिये पहले आचार्यकी शरण ले। आचार्य ऐसे होने चाहिये—जो वैदिक ज्ञानसे सम्पन्न, मेरे भक्त, द्वेषरहित, मन्त्रके ज्ञाता, मन्त्रके भक्त, मन्त्रकी शरण लेनेवाले, पवित्र, ब्रह्मविद्याके विशेषज्ञ, मेरे भजनके सिवा और किसी साधनका सहारा न लेनेवाले, अन्य किसीके नियन्त्रणमें न रहनेवाले, ब्राह्मण, वीतराग, क्रोध-लोभसे शून्य, सदाचारकी शिक्षा देनेवाले, मुमुक्षु तथा परमार्थवेत्ता हों। ऐसे गुणोंसे युक्त पुरुषको ही आचार्य कहा गया है। जो आचारकी शिक्षा दे, उसीका नाम आचार्य है। जो आचार्यके अधीन हो, उनके अनुशासनमें मन लगाये और आज्ञापालनमें स्थिरचित्त हो, उसे ही साधु पुरुषोंने शिष्य कहा है। ऐसे लक्षणोंसे युक्त सर्वगुणसम्पन्न शिष्यको विधिपूर्वक उत्तम मन्त्ररत्नका उपदेश करे। द्वादशीको, श्रवण नक्षत्रमें या वैष्णवके बताये हुए किसी भी समयमें उत्तम आचार्यकी प्राप्ति होनेपर दीक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

वसिष्ठजी कहते हैं—इस प्रकार मन्त्ररत्नका उपदेश पाकर तीनों लोकोंके सामने ब्रह्माजीने मुझको और नारदजीको भी उक्त मन्त्रका उपदेश दिया। तत्पश्चात् नैमिषारण्यवासी शौनकादि महर्षियोंको नारदजीने इस मन्त्रका उपदेश दिया, जो शरणागतोंकी रक्षा करता है। राजन्! महर्षि भी इस गुह्यतम मन्त्रको नहीं जानते। लक्ष्मी और नारायण—ये दोनों मन्त्र परम रहस्यमय हैं। इन दोनोंसे श्रेष्ठ दूसरा कोई मन्त्र नहीं है। इन दोनोंसे श्रेष्ठ धर्म सम्पूर्ण लोकोंमें कोई नहीं है। ब्रह्माजीने पूर्वकालमें तीन बार सत्यकी प्रतिज्ञा करके कहा था—'मनुष्योंको मुक्ति प्रदान करनेके लिये भगवान् नारायणसे बढ़कर दूसरा कोई देवता नहीं है। उनकी सेवा ही सम्पूर्ण शुभाशुभकर्मोंका मूलोच्छेद करनेवाला मोक्ष है।'

भगवान् विष्णुकी महिमा, उनकी भक्तिके भेद तथा अष्टाक्षर-मन्त्रके स्वरूप एवं अर्थका निरूपण

राजा दिलीपने कहा—भगवन्! हरिभक्तिमयी सुधासे पूर्ण आपके वचनोंको सुननेसे मुझे तृप्ति नहीं होती—अधिकाधिक सुननेकी इच्छा बढ़ती जाती है। अतः इस विषयमें जितनी बातें हों, सब बताइये। मुनिश्रेष्ठ! इस भयानक संसाररूपी वनमें आध्यात्मिक आदि तीनों तापोंके दावानलकी महाज्वालासे सन्तप्त हुए मनुष्योंके लिये श्रीहरिभक्तिमयी सुधाके समुद्रको छोड़कर दूसरा कौन-सा आश्रय हो सकता है? महामुने! मुनिजन

जिनकी सदा उपासना करते हैं, परमात्माकी भक्तिके उन विभिन्न रूपोंको इस समय विस्तारके साथ बतलाइये।

वसिष्ठजीने कहा—राजेन्द्र! तुम्हारा प्रश्न बहुत उत्तम है। यह मनुष्योंको संसार-सागरके पार उतारनेवाला है। भगवान् विष्णुकी भक्ति नित्य सुख देनेवाली है। प्राचीन कालमें कैलास पर्वतके शिखरपर भगवती पार्वतीजीने लोकपूजित भगवान् शंकरसे इसी महान् प्रश्नको पूछा था।

पार्वतीजी बोलीं—देवदेव! त्रिपुरासुरको मारनेवाले महादेव! सुरेश्वर! मुझे विष्णुभक्तिका उपदेश कीजिये, जो सब प्राणियोंको मुक्ति देनेवाली है।

श्रीमहादेवजीने कहा—सब लोकोंका हित चाहनेवाली महादेवी! तुम्हें साधुवाद। तुम जो भगवान् लक्ष्मीपतिके उत्तम माहात्म्यके विषयमें प्रश्न करती हो, यह बहुत ही उत्तम है। पार्वती! तुम धन्य हो, पुण्यात्मा हो और भगवान् विष्णुकी भक्त हो। तुम्हारा कल्याण हो, मैं तुम्हारे शील, रूप और गुणोंसे सदा ही सन्तुष्ट रहता हूँ। गिरिजे! मैं उत्तम भगवद्भक्ति, भगवान् विष्णुके स्वरूप तथा उनके मन्त्रोंके विधानका वर्णन करता हूँ; सुनो। भगवान् नारायण ही परमार्थतत्त्व हैं। वे ही विष्णु, वासुदेव, सनातन, परमात्मा, परब्रह्म, परम ज्योति, परात्पर, अच्युत, पुरुष, कृष्ण, शाश्वत, शिव, ईश्वर, नित्य, सर्वगत, स्थाणु, रुद्र, साक्षी, प्रजापति, यज्ञ, साक्षात्, यज्ञपति, ब्रह्मणस्पति, हिरण्यगर्भ, सविता, लोककर्ता, लोकपालक और विभु आदि नामोंसे पुकारे जाते हैं। वे भगवान् विष्णु 'अ' अक्षरके वाच्य, लक्ष्मीसे सम्पन्न, लीलाके स्वामी तथा सबके प्रभु हैं। अन्नसे जिसकी उत्पत्ति होती है, उस जीव-समुदायके तथा अमृतत्व (मोक्ष)-के भी स्वामी हैं। वे विश्वात्मा सहस्रों मस्तकवाले, सहस्रों नेत्रवाले और सहस्रों पैरवाले हैं। उनका कभी अन्त नहीं होता। इसलिये वे अनन्त कहलाते हैं। लक्ष्मीके पति होनेसे श्रीपति नाम धारण करते हैं। योगिजन उनमें रमण करते हैं, इसलिये उनका नाम राम है। वे समस्त गुणोंको धारण करते हैं, तथापि निर्गुण हैं। महान् हैं। वे समस्त लोकोंके ईश्वर, श्रीमान्, सर्वज्ञ तथा सब ओर मुखवाले हैं। पार्वती! उन लोकप्रधान जगदीश्वर भगवान् वासुदेवके माहात्म्यका जितना मुझसे हो सकेगा, वर्णन करता हूँ। वास्तवमें तो मैं, ब्रह्माजी तथा सम्पूर्ण देवता मिलकर भी उसका पूरा वर्णन नहीं कर सकते। सम्पूर्ण उपनिषदोंमें भगवान्‌की महिमाका ही प्रतिपादन है तथा वेदान्तमें उन्हींको परमार्थतत्त्व निश्चित किया गया है।

अब मैं भगवान्‌की उपासनाके पृथक्-पृथक् भेद बतलाता हूँ, सुनो। भगवान्‌का अर्चन, उनके मन्त्रोंका जप, स्वरूपका ध्यान, नामोंका स्मरण, कीर्तन, श्रवण, वन्दन, चरण-सेवन, चरणोदक-सेवन, उनका प्रसाद ग्रहण करना, भगवद्भक्तोंकी सेवा, द्वादशीव्रतका पालन तथा तुलसीका वृक्ष लगाना—यह सब देवाधिदेव भगवान् विष्णुकी भक्ति है, जो भव-बन्धनसे छुटकारा दिलानेवाली है। सम्पूर्ण देवताओंके तथा मेरे लिये भी पुरुषोत्तम श्रीहरि ही पूजनीय हैं। ब्राह्मणोंके लिये तो वे विशेषरूपसे पूज्य हैं। अतः ब्राह्मणोंको उचित है कि वे प्रतिदिन विधिपूर्वक श्रीहरिका पूजन करें।

श्रेष्ठ द्विजको अष्टाक्षर-मन्त्रका अभ्यास करना चाहिये। प्रणवको मिलाकर ही वह मन्त्र अष्टाक्षर कहा गया है। मन्त्र है—'**ॐ नमो नारायणाय**'। इस प्रकार इस मन्त्रको अष्टाक्षर जानना चाहिये। यह सब मनोरथोंकी सिद्धि और सब दुःखोंका नाश करनेवाला है। इसे सर्वमन्त्रस्वरूप और शुभकारक माना गया है। इस मन्त्रके 'ऋषि' और 'देवता' लक्ष्मीपति भगवान् नारायण ही हैं। 'छन्द' दैवी* गायत्री है। प्रणवको इसका 'बीज' कहा गया है। भगवान्‌से कभी विलग न होनेवाली भगवती लक्ष्मीको ही विद्वान् पुरुष इस मन्त्रकी 'शक्ति' कहते हैं। इस मन्त्रका पहला पद '**ॐ**', दूसरा पद '**नमः**' और तीसरा पद '**नारायणाय**' है। इस प्रकार यह तीन पदोंका मन्त्र बतलाया गया है। प्रणवमें तीन अक्षर

---

*'दैव्येकम्' इस पिंगल-सूत्रके अनुसार एक अक्षरका अथवा आठ अक्षरोंके एक पदका छन्द 'दैवी गायत्री' है। पहली व्याख्याके अनुसार 'प्रणव' को और दूसरी व्याख्याके अनुसार अष्टाक्षर-मन्त्रको 'दैवी गायत्री' छन्दके अन्तर्गत माना गया है। इस 'दैवी गायत्री' को 'एकाक्षरा' या 'एकपदा' गायत्री भी कहते हैं। चौबीस अक्षरोंकी तो जो प्रसिद्ध गायत्री है, वह आठ-आठ अक्षरोंके तीन पादोंसे युक्त होनेके कारण 'त्रिपदा गायत्री' कहलाती है।

हैं—अकार, उकार तथा मकार। प्रणवको तीनों वेदोंका स्वरूप बतलाया गया है। यह ब्रह्मका निवासस्थान है। अकारसे भगवान् विष्णुका और उकारसे भगवती लक्ष्मीका प्रतिपादन होता है। मकारसे उन दोनोंके दासभूत जीवात्माका कथन है, जो पचीसवाँ[1] तत्त्व है।

किसी-किसीके मतमें उकार अवधारणवाची है। इस पक्षमें भी श्रीतत्त्वका प्रतिपादन उकारके ही द्वारा किया जाता है। जैसे सूर्यकी प्रभा सूर्यसे कभी अलग नहीं होती, उसी प्रकार भगवती लक्ष्मी श्रीविष्णुसे नित्य संयुक्त रहती हैं। अकारसे जिनका बोध कराया जाता है, वे लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु कारणके भी कारण हैं। सम्पूर्ण जीवात्माओंके प्रधान अंगी हैं। जगत्के बीज हैं और परमपुरुष हैं। वे ही जगत्के कर्ता, पालक, ईश्वर और लोकके बन्धु-बान्धव हैं। तथा उनकी मनोरमा पत्नी लक्ष्मी सम्पूर्ण जगत्की माता, अधीश्वरी और आधारशक्ति हैं। वे नित्य हैं और श्रीविष्णुसे कभी विलग नहीं होतीं। उकारसे उन्हींके तत्त्वका बोध कराया जाता है। मकारसे इन दोनोंके दास जीवात्माका कथन है, जिसे विद्वान् पुरुष क्षेत्रज्ञ कहते हैं। यह ज्ञानका आश्रय और ज्ञानरूपी गुणसे युक्त है। इसे चित्त और प्रकृतिसे परे माना गया है। यह अजन्मा, निर्विकार, एकरूप, स्वरूपका भागी, अणु, नित्य, अव्यापक, चिदानन्द-स्वरूप '**अहम्**' पदका अर्थ, अविनाशी, क्षेत्र (शरीर)-का अधिष्ठाता, भिन्न-भिन्न रूप धारण करनेवाला, सनातन, जलाने, काटने, गलाने और सुखानेमें न आनेवाला तथा अविनाशी है। ऐसे गुणोंसे युक्त जो जीवात्मा है, वह सदा परमात्माका अंगभूत है। वह केवल श्रीहरिका ही दास है और किसीका नहीं। इस प्रकार मध्यम अक्षर उकारके द्वारा जीवके दासभावका ही अवधारण (निश्चय) किया जाता है। इस तरह प्रणवका अर्थ जानना चाहिये। प्रणवका अर्थ स्पष्ट हो जानेपर शेष मन्त्रके द्वारा परमात्माके दासभूत जीवकी परतन्त्रता ही सिद्ध होती है। वह कभी स्वतन्त्र नहीं होता। अतः अपनी स्वतन्त्रताके महान् अहंकारको मनसे दूर कर देना चाहिये। अहंकार-बुद्धिसे जो कर्म किया जाता है, उसका भी निषेध है।

'**मनस्**'—मन शब्दमें जो मकार है, वह अहंकारका वाचक है और नकार उसका निषेध करनेवाला है। अतः मनसे ही जीवके लिये अहंकार-त्यागकी प्रेरणा मिलती है। अहंकारसे युक्त मनुष्यको तनिक भी सुख नहीं मिलता। जिसका चित्त अहंकारसे मोहित है, वह घोर अन्धकारसे पूर्ण नरकमें गिरता है। इसलिये मनके द्वारा क्षेत्रज्ञकी स्वतन्त्रताका निषेध किया गया है। वह भगवान्के अधीन है। भगवान्के अधीन ही उसका जीवन है। अतः चेतन जीवात्मा किसी साधनका स्वतन्त्र कर्ता नहीं है। ईश्वरके संकल्पसे ही सम्पूर्ण चराचर जगत् अपने-अपने व्यापारमें लगा है। अतः जीव अपने सामर्थ्यपर निर्भर रहना छोड़ दे। ईश्वरके सामर्थ्यसे उसके लिये कुछ भी अलभ्य नहीं है। अपना सारा भार भगवान् लक्ष्मीपतिको सौंपकर उनकी आराधनाके ही कर्म करे। 'श्रीहरि परमात्मा हैं। मैं सदा उनका दास बना रहूँ।' इस भावसे स्वेच्छापूर्वक अपने आत्माको ईश्वरकी सेवामें लगाना चाहिये। इस प्रकार मनके द्वारा अहंता, ममताका त्याग करना उचित है। देहमें जो अहंबुद्धि होती है, वही संसार-बन्धनका मूल कारण है। वही कर्मोंके बन्धनमें डालती है। अतः विद्वान् पुरुष अहंकारको त्याग दे।[2]

पार्वती! अब मैं 'नारायण' शब्दकी व्याख्या करता हूँ। शुभे! नर अर्थात् जीवोंके समुदायको नार कहते हैं। उन 'नार' शब्दवाच्य जीवोंके अयन—गति अर्थात् आश्रय परम पुरुष श्रीविष्णु हैं। अतः वे नारायण कहलाते हैं अथवा नार यानी जीव उन भगवान्के अयन—

१-दस इन्द्रियाँ, पाँच भूत, पाँच इन्द्रियोंके विषय, मन, अहंकार, महत्तत्त्व और प्रकृति—ये चौबीस तत्त्व हैं; इनका साक्षी चेतन पचीसवाँ तत्त्व है।

२-यहाँ मूलमें 'मनस्' शब्दका पाठ होनेसे मनका ही उल्लेख किया गया है; किन्तु प्रकरण देखनेसे मालूम होता है, 'मनस्'-की जगह 'नमस्' पाठ होना चाहिये। यहाँ अष्टाक्षर-मन्त्रकी व्याख्या चल रही है; मन्त्रका स्वरूप है—'ॐ नमो नारायणाय।' इसमें ॐकारकी व्याख्या विस्तारके साथ की गयी है; इसके बाद 'नमस्' की व्याख्याका प्रसंग है, जिसे शायद भूलसे 'मनस्' लिखा गया है। इसके आगे 'नारायणाय' पदकी व्याख्या मिलती है। अतः यहाँ 'मनस्' के मकार-नकारसे जो भाव लिया गया है, वह 'नमः' के नकार-मकारका भाव है—ऐसा समझना चाहिये।

निवासस्थान हैं। इसलिये भी उन्हें नारायण कहा जाता है। जड-चेतनरूप जितना भी जगत् देखा या सुना जाता है, उसको पूर्णरूपसे व्याप्त करके भगवान् नित्य विराजमान हैं। इसलिये उनका नाम नारायण है। जो कल्पके अन्तमें सम्पूर्ण जगत्को अपना ग्रास बनाकर अपने ही भीतर धारण करते हैं और सृष्टिके आरम्भकालमें पुनः सबकी सृष्टि करते हैं, वे भगवान् नारायण कहे गये हैं। सम्पूर्ण चराचर जगत् नार कहलाता है। उसको जिनका संग नित्य प्राप्त है अथवा उसे जिनके द्वारा उत्तम गति प्राप्त होती है, उन्हें नारायण कहते हैं। जलसे फेनकी भाँति जिनसे सम्पूर्ण लोक उत्पन्न होते और पुनः जिनमें लीन हो जाते हैं, उन भगवान्को नारायण कहा गया है। जो अविनाशी पद, नित्यस्वरूप तथा नित्यप्राप्त भोगोंसे सम्पन्न हैं, साथ ही जो सम्पूर्ण जगत्का शासन करनेवाले हैं, उन भगवान्का नाम नारायण है। दिव्य, एक, सनातन और अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले श्रीहरि ही नारायण कहलाते हैं। द्रष्टा और दृश्य, श्रोता और श्रोतव्य, स्पर्श करनेवाला और स्पृश्य, ध्याता और ध्येय, वक्ता और वाच्य तथा ज्ञाता और ज्ञेय—जो कुछ भी जड-चेतनमय जगत् है, वह सब लक्ष्मीपति श्रीहरि हैं, जिन्हें नारायण कहा गया है। वे सहस्रों मस्तकवाले, अन्तर्यामी पुरुष, सहस्रों नेत्रोंसे युक्त तथा सहस्रों चरणोंवाले हैं। भूत और वर्तमान—सब कुछ नारायण श्रीहरि ही हैं। अन्नसे जिसकी उत्पत्ति होती है, उस प्राणिसमुदाय तथा अमृतत्व—मोक्षके भी स्वामी वे ही हैं। वे ही विराट् पुरुष हैं। वे अन्तर्यामी पुरुष ही श्रीविष्णु, वासुदेव, अच्युत, हरि, हिरण्मय, भगवान्, अमृत, शाश्वत तथा शिव आदि नामोंसे पुकारे जाते हैं। वे ही सम्पूर्ण जगत्के पालक और सब लोकोंपर शासन करनेवाले ईश्वर हैं। वे हिरण्मय अण्डको उत्पन्न करनेके कारण हिरण्यगर्भ और सबको जन्म देनेके कारण सविता हैं। उनकी महिमाका अन्त नहीं है, इसलिये वे अनन्त कहलाते हैं। वे महान् ऐश्वर्यसे सम्पन्न होनेके कारण महेश्वर हैं। उन्हींका नाम भगवान् (षड्विध ऐश्वर्यसे युक्त) और पुरुष है। 'वासुदेव' शब्द बिना किसी उपाधिके सर्वात्माका बोधक है। उन्हींको ईश्वर, भगवान् विष्णु, परमात्मा, संसारके सुहृद्, चराचर प्राणियोंके एकमात्र शासक और यतियोंकी परमगति कहते हैं। जिन्हें वेदके आदिमें स्वर कहा गया है, जो वेदान्तमें भी प्रतिष्ठित हैं तथा जो प्रकृतिलीन पुरुषसे भी परे हैं, वे ही महेश्वर कहलाते हैं। प्रणवका जो अकार है, वह श्रीविष्णु ही हैं और जो विष्णु हैं, वे ही नारायण हरि हैं। उन्हींको नित्यपुरुष, परमात्मा और महेश्वर कहते हैं। मुनियोंने उन्हें ही ईश्वर नाम दिया है। इसलिये भगवान् वासुदेवमें उपाधिशून्य 'ईश्वर' शब्दकी प्रतिष्ठा है। सनातन वेदवादियोंने उन्हें आत्मेश्वर कहा है। इसलिये वासुदेवमें महेश्वरत्वकी भी प्रतिष्ठा है। वे त्रिपाद् विभूति तथा लीलाके भी अधीश्वर हैं। जो श्री, भू तथा लीला देवीके स्वामी हैं, उन्हींको अच्युत कहा गया है। इसलिये वासुदेवमें सर्वेश्वर शब्दकी भी प्रतिष्ठा है। जो यज्ञके ईश्वर, यज्ञस्वरूप, यज्ञके भोक्ता, यज्ञ करनेवाले, विभु, यज्ञरक्षक और यज्ञपुरुष हैं, वे भगवान् ही परमेश्वर कहलाते हैं। वे ही यज्ञके अधीश्वर होकर समस्त हव्य-कव्योंका भोग लगाते हैं। वे ही इस लोकमें अविनाशी श्रीहरि एवं ईश्वर कहलाते हैं। उनके निकट आनेसे समस्त राक्षस, असुर और भूत तत्काल भाग जाते हैं। जो विराट्रूप धारण करके अपनी विभूतिसे तीनों लोकोंको तृप्त करते हैं, वे पापको हरनेवाले श्रीजनार्दन ही परमेश्वर हैं। जब पुरुषरूपी हविके द्वारा देवताओंने यज्ञ किया, तब उस यज्ञसे नीचे-ऊपर दोनों ओर दाँत रखनेवाले जीव उत्पन्न हुए। सबको होमनेवाले उस यज्ञसे ही ऋग्वेद और सामवेदकी उत्पत्ति हुई। उसीसे घोड़े, गौ और पुरुष आदि उत्पन्न हुए। उस सर्वयज्ञमय पुरुष श्रीहरिके शरीरसे स्थावर-जंगमरूप समस्त जगत्की उत्पत्ति हुई। उनके मुख, बाहु, ऊरु और चरणोंसे क्रमशः ब्राह्मण आदि वर्ण उत्पन्न हुए। भगवान्के पैरोंसे पृथ्वी और मस्तकसे आकाशका प्रादुर्भाव हुआ। उनके मनसे चन्द्रमा, नेत्रोंसे सूर्य, मुखसे अग्नि, सिरसे द्युलोक, प्राणसे सदा चलनेवाले वायु, नाभिसे आकाश तथा सम्पूर्ण चराचर जगत्की उत्पत्ति हुई। सब कुछ श्रीविष्णुसे ही प्रकट हुआ है, इसलिये वे सर्वव्यापी नारायण सर्वमय कहलाते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि करके श्रीहरि पुनः उसका संहार करते हैं—ठीक उसी तरह, जैसे मकड़ी अपनेसे प्रकट हुए तन्तुओंको

पुनः अपनेमें ही लीन कर लेती है। ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, वरुण और यम—सभी देवताओंको अपने वशमें करके उनका संहार करते हैं; इसलिये भगवान्‌को हरि कहा जाता है। जब सारा जगत् प्रलयके समय एकार्णवमें निमग्न हो जाता है, उस समय वे सनातन पुरुष श्रीहरि संसारको अपने उदरमें स्थापित करके स्वयं मायामय वटवृक्षके पत्रपर शयन करते हैं। कल्पके आरम्भमें एकमात्र सर्वव्यापी एवं अविनाशी भगवान् नारायण ही थे। उस समय न ब्रह्मा थे, न रुद्र। न देवता थे, न महर्षि। ये पृथ्वी, आकाश, चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र, लोक तथा महत्तत्त्वसे आवृत ब्रह्माण्ड भी नहीं थे। श्रीहरिने समस्त जगत्‌का संहार करके सृष्टिकालमें पुनः उसकी सृष्टि की; इसलिये उन्हें नारायण कहा गया है। पार्वती! **'नारायणाय'** इस चतुर्थ्यन्त पदसे जीवके दासभावका प्रतिपादन होता है। ब्रह्मा आदि सम्पूर्ण जगत् भगवान्‌का दास ही है। पहले इस अर्थको समझकर पीछे मन्त्रका प्रयोग करना चाहिये। मन्त्रार्थको न जाननेसे सिद्धि नहीं प्राप्त होती।

श्रीविष्णु और लक्ष्मीके स्वरूप, गुण, धाम एवं विभूतियोंका वर्णन

पार्वतीजी बोलीं—देवेश्वर! आप मन्त्रोंके अर्थ और पदोंकी महिमाको विस्तारके साथ बतलाइये। साथ ही ईश्वरके स्वरूप, गुण, विभूति, श्रीविष्णुके परमधाम तथा व्यूह-भेदोंका भी यथार्थरूपसे वर्णन कीजिये।

महादेवजीने कहा—देवि! सुनो—मैं परमात्माके स्वरूप, विभूति, गुण तथा अवस्थाओंका वर्णन करता हूँ। भगवान्‌के हाथ, पैर और नेत्र सम्पूर्ण विश्वमें व्याप्त हैं। समस्त भुवन और श्रेष्ठ धाम भगवान्‌में ही स्थित हैं। वे महर्षियोंका मन अपनेमें स्थिर करके विराजमान हैं। उनका स्वरूप विशाल एवं व्यापक है। वे लक्ष्मीके पति और पुरुषोत्तम हैं। उनका लावण्य करोड़ों कामदेवोंके समान है। वे नित्य तरुण किशोर-विग्रह धारण करके जगदीश्वरी भगवती लक्ष्मीजीके साथ परमपद—वैकुण्ठधाममें विराजते हैं। वह परमधाम ही परमव्योम कहलाता है। परमव्योम ऐश्वर्यका उपभोग करनेके लिये है और यह सम्पूर्ण जगत् लीला करनेके लिये। इस प्रकार भोगभूमि और क्रीड़ाभूमिके रूपमें श्रीविष्णुकी दो विभूतियाँ स्थित हैं। जब वे लीलाका उपसंहार करते हैं, तब भोगभूमिमें उनकी नित्य स्थिति होती है। भोग और लीला दोनोंको वे अपनी शक्तिसे ही धारण करते हैं। भोगभूमि या परमधाम त्रिपाद्-विभूतिसे व्याप्त है अर्थात् भगवद्विभूतिके तीन अंशोंमें उसकी स्थिति है और इस लोकमें जो कुछ भी है, वह भगवान्‌की पाद-विभूतिके अन्तर्गत है। परमात्माकी त्रिपाद्-विभूति नित्य और पाद-विभूति अनित्य है। परमधाममें भगवान्‌का जो शुभ विग्रह विराजमान है, वह नित्य है। वह कभी अपनी महिमासे च्युत नहीं होता, उसे सनातन एवं दिव्य माना गया है। वह सदा तरुणावस्थासे सुशोभित रहता है। वहाँ भगवान्‌को भगवती श्रीदेवी और भूदेवीके साथ नित्य संभोग प्राप्त है। जगन्माता लक्ष्मी भी नित्यरूपा हैं। वे श्रीविष्णुसे कभी पृथक् नहीं होतीं। जैसे भगवान् विष्णु सर्वत्र व्याप्त हैं, उसी प्रकार भगवती लक्ष्मी भी हैं। पार्वती! श्रीविष्णुपत्नी रमा सम्पूर्ण जगत्‌की अधीश्वरी और नित्य कल्याणमयी हैं। उनके भी हाथ, पैर, नेत्र, मस्तक और मुख सब ओर व्याप्त हैं। वे भगवान् नारायणकी शक्ति, सम्पूर्ण जगत्‌की माता और सबको आश्रय प्रदान करनेवाली हैं। स्थावर-जंगमरूप सारा जगत् उनके कृपा-कटाक्षपर ही निर्भर है। विश्वका पालन और संहार उनके नेत्रोंके खुलने और बंद होनेसे ही हुआ करते हैं। वे महालक्ष्मी सबकी आदिभूता, त्रिगुणमयी और परमेश्वरी हैं। व्यक्त और अव्यक्त भेदसे उनके दो रूप हैं। वे उन दोनों रूपोंसे सम्पूर्ण विश्वको व्याप्त करके स्थित हैं। जल आदि रसके रूपसे वे ही लीलामय देह धारण करके प्रकट होती हैं। लक्ष्मीरूपमें आकर वे धन प्रदान करनेकी अधिकारिणी होती हैं। ऐसे स्वरूपवाली लक्ष्मीदेवी श्रीहरिके आश्रयमें रहती हैं। सम्पूर्ण वेद तथा उनके द्वारा जाननेयोग्य जितनी वस्तुएँ हैं, वे सब श्रीलक्ष्मीके ही स्वरूप हैं। स्त्रीरूपमें जो कुछ भी उपलब्ध होता है, वह सब लक्ष्मीका ही विग्रह कहलाता है। स्त्रियोंमें जो सौन्दर्य, शील, सदाचार और सौभाग्य स्थित है, वह सब लक्ष्मीका ही रूप है। पार्वती! भगवती लक्ष्मी समस्त स्त्रियोंकी शिरोमणि हैं, जिनकी कृपा-कटाक्षके पड़नेमात्रसे

ब्रह्मा, शिव, देवराज इन्द्र, चन्द्रमा, सूर्य, कुबेर, यमराज तथा अग्निदेव प्रचुर ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं।

उनके नाम इस प्रकार हैं—लक्ष्मी, श्री, कमला, विद्या, माता, विष्णुप्रिया, सती, पद्मालया, पद्महस्ता, पद्माक्षी, पद्मसुन्दरी, भूतेश्वरी, नित्या, सत्या, सर्वगता, शुभा, विष्णुपत्नी, महादेवी, क्षीरोदतनया (क्षीरसागरकी कन्या), रमा, अनन्तलोकनाभि (अनन्त लोकोंकी उत्पत्तिका केन्द्रस्थान), भू, लीला, सर्वसुखप्रदा, रुक्मिणी, सर्ववेदवती, सरस्वती, गौरी, शान्ति, स्वाहा, स्वधा, रति, नारायणवरारोहा (श्रीविष्णुकी सुन्दरी पत्नी) तथा विष्णोर्नित्यानुपायिनी (सदा श्रीविष्णुके समीप रहनेवाली)। जो प्रातःकाल उठकर इन सम्पूर्ण नामोंका पाठ करता है, उसे बहुत बड़ी सम्पत्ति तथा विशुद्ध धन-धान्यकी प्राप्ति होती है।

हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं विष्णोरनपगामिनीम्॥
गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम्॥

(२५५। २८-२९)

'जिनके श्रीअंगोंका रंग सुवर्णके समान सुन्दर एवं गौर है, जो सोने-चाँदीके हारोंसे सुशोभित और सबको आह्लादित करनेवाली हैं, भगवान् श्रीविष्णुसे जिनका कभी वियोग नहीं होता, जो स्वर्णमयी कान्ति धारण करती हैं, उत्तम लक्षणोंसे विभूषित होनेके कारण जिनका नाम लक्ष्मी है, जो सब प्रकारकी सुगन्धोंका द्वार हैं, जिनको परास्त करना कठिन है, जो सदा सब अंगोंसे पुष्ट रहती हैं, गायके सूखे गोबरमें जिनका निवास है तथा जो समस्त प्राणियोंकी अधीश्वरी हैं, उन भगवती श्रीदेवीका मैं यहाँ आवाहन करता हूँ।'

ऋग्वेदमें कहे हुए इस मन्त्रके द्वारा स्तुति करनेपर महेश्वरी लक्ष्मीने शिव आदि सभी देवताओंको सब प्रकारका ऐश्वर्य और सुख प्रदान किया था। श्रीविष्णुपत्नी लक्ष्मी सनातन देवता हैं। वे ही इस जगत्का शासन करती हैं। सम्पूर्ण चराचर जगत्की स्थिति उन्हींके कृपा-कटाक्षपर निर्भर है। अग्निमें रहनेवाली प्रभाकी भाँति भगवती लक्ष्मी जिनके वक्षःस्थलमें निवास करती हैं, वे भगवान् विष्णु सबके ईश्वर, परम शोभा-सम्पन्न, अक्षर एवं अविनाशी पुरुष हैं; वे श्रीनारायण वात्सल्य-गुणके समुद्र हैं। सबके स्वामी, सुशील, सुभग, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, नित्य पूर्णकाम, स्वभावतः सबके सुहृद्, सुखी, दयासुधाके सागर, समस्त देहधारियोंके आश्रय, स्वर्ग और मोक्षका सुख देनेवाले और भक्तोंपर दया करनेवाले हैं। उन श्रीविष्णुको नमस्कार है। मैं सम्पूर्ण देश-काल आदि अवस्थाओंमें पूर्णरूपसे भगवान्का दासत्व स्वीकार करता हूँ। इस प्रकार स्वरूपका विचार करके सिद्धिप्राप्त पुरुष अनायास ही दासभावको प्राप्त कर लेता है। यही पूर्वोक्त मन्त्रका अर्थ है। इसको जानकर भगवान्में भलीभाँति भक्ति करनी चाहिये। यह चराचर जगत् भगवान्का दास ही है। श्रीनारायण इस जगत्के स्वामी, प्रभु, ईश्वर, भ्राता, माता, पिता, बन्धु, निवास, शरण और गति हैं। भगवान् लक्ष्मीपति कल्याणमय गुणोंसे युक्त और समस्त कामनाओंका फल प्रदान करनेवाले हैं। वे ही जगदीश्वर शास्त्रोंमें निर्गुण कहे गये हैं। 'निर्गुण' शब्दसे यही बताया गया है कि भगवान् प्रकृतिजन्य हेय गुणोंसे रहित हैं। जहाँ वेदान्तवाक्योंद्वारा प्रपंचका मिथ्यात्व बताया गया है और यह कहा गया है कि यह सारा दृश्यमान जगत् अनित्य है, वहाँ भी ब्रह्माण्डके प्राकृत रूपको ही नश्वर बताया गया है। प्रकृतिसे उत्पन्न होनेवाले रूपोंकी ही अनित्यताका प्रतिपादन किया गया है।

महादेवि! इस कथनका तात्पर्य यह है कि लीला-विहारी देवदेव श्रीहरिकी लीलाके लिये ही प्रकृतिकी उत्पत्ति हुई है। चौदह भुवन, सात समुद्र, सात द्वीप, चार प्रकारके प्राणी तथा ऊँचे-ऊँचे पर्वतोंसे भरा हुआ यह रमणीय ब्रह्माण्ड प्रकृतिसे उत्पन्न हुआ है। यह उत्तरोत्तर महान् दस आवरणोंसे घिरा हुआ है। कला-काष्ठा आदि भेदसे जो कालचक्र चल रहा है, उसीके द्वारा संसारकी सृष्टि, पालन और संहार आदि कार्य होते हैं। एक सहस्र चतुर्युग व्यतीत होनेपर अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजीका एक दिन पूरा होता है। इतने ही बड़े दिनसे सौ वर्षोंकी उनकी आयु मानी गयी है। ब्रह्माजीकी आयु समाप्त होनेपर सबका संहार हो जाता है। ब्रह्माण्डके समस्त लोक कालाग्निसे दग्ध हो जाते हैं। सर्वात्मा श्रीविष्णुकी प्रकृतिमें उनका लय हो जाता है। ब्रह्माण्ड

और आवरणके समस्त भूत प्रकृतिमें लीन हो जाते हैं। सम्पूर्ण जगत्‌का आधार प्रकृति है और प्रकृतिके आधार श्रीहरि। प्रकृतिके द्वारा ही भगवान् सदा जगत्‌की सृष्टि और संहार करते हैं। देवाधिदेव श्रीविष्णुने लीलाके लिये जगन्मयी मायाकी सृष्टि की है। वही अविद्या, प्रकृति, माया और महाविद्या कहाती है। सृष्टि, पालन और संहारका कारण भी वही है। वह सदा रहनेवाली है। योगनिद्रा और महामाया भी उसीके नाम हैं। प्रकृति सत्त्व, रज और तम—इन तीन गुणोंसे युक्त है। उसे अव्यक्त और प्रधान भी कहते हैं। वह लीलाविहारी श्रीकृष्णकी क्रीड़ास्थली है। संसारकी उत्पत्ति और प्रलय सदा उसीसे होते हैं। प्रकृतिके स्थान असंख्य हैं, जो घोर अन्धकारसे पूर्ण हैं। प्रकृतिसे ऊपरकी सीमामें विरजा नामकी नदी है; किन्तु नीचेकी ओर उस सनातनी प्रकृतिकी कोई सीमा नहीं है। उसने स्थूल, सूक्ष्म आदि अवस्थाओंके द्वारा सम्पूर्ण जगत्‌को व्याप्त कर रखा है। प्रकृतिके विकाससे सृष्टि और संकोचावस्थासे प्रलय होते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण भूत प्रकृतिके ही अन्तर्गत हैं। यह जो महान् शून्य (आकाश) है, वह सब भी प्रकृतिके ही भीतर है। इस तरह प्राकृतरूप ब्रह्माण्ड अथवा पादविभूतिके स्वरूपका अच्छी तरह वर्णन किया गया।

गिरिराजकुमारी! अब त्रिपाद्-विभूतिके स्वरूपका वर्णन सुनो। प्रकृति एवं परम व्योमके बीचमें विरजा नामकी नदी है। वह कल्याणमयी सरिता वेदांगोंके स्वेदजनित जलसे प्रवाहित होती है। उसके दूसरे पारमें परम व्योम है, जिसमें त्रिपाद्-विभूतिमय सनातन, अमृत, शाश्वत, नित्य एवं अनन्त परमधाम है। वह शुद्ध, सत्त्वमय, दिव्य, अक्षर एवं परब्रह्मका धाम है। उसका तेज अनेक कोटि सूर्य तथा अग्नियोंके समान है। वह धाम अविनाशी, सर्ववेदमय, शुद्ध, सब प्रकारके प्रलयसे रहित, परिमाणशून्य, कभी जीर्ण न होनेवाला, नित्य, जाग्रत्, स्वप्न आदि अवस्थाओंसे रहित, हिरण्मय, मोक्षपद, ब्रह्मानन्दमय, सुखसे परिपूर्ण, न्यूनता-अधिकता तथा आदि-अन्तसे शून्य, शुभ, तेजस्वी होनेके कारण अत्यन्त अद्‌भुत, रमणीय, नित्य तथा आनन्दका सागर है। श्रीविष्णुका वह परमपद ऐसे ही गुणोंसे युक्त है। उसे सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्निदेव नहीं प्रकाशित करते—वह अपने ही प्रकाशसे प्रकाशित है। जहाँ जाकर जीव फिर कभी नहीं लौटते, वही श्रीहरिका परमधाम है। श्रीविष्णुका वह परमधाम नित्य, शाश्वत एवं अच्युत है। सौ करोड़ कल्पोंमें भी उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। मैं, ब्रह्मा तथा श्रेष्ठ मुनि श्रीहरिके उस पदका वर्णन नहीं कर सकते। जहाँ अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले साक्षात् परमेश्वर श्रीविष्णु विराजमान हैं, उसकी महिमाको वे स्वयं ही जानते हैं। जो अविनाशी पद है, जिसकी महिमाका वेदोंमें गूढ़रूपसे वर्णन है तथा जिसमें सम्पूर्ण देवता और लोक स्थित हैं उसे जो नहीं जानता, वह केवल ऋचाओंका पाठ करके क्या करेगा। जो उसे जानते हैं, वे ही ज्ञानी पुरुष समभावसे स्थित होते हैं। श्रीविष्णुके उस परम पदको ज्ञानी पुरुष सदा देखते हैं। वह अक्षर, शाश्वत, नित्य एवं सर्वत्र व्याप्त है। कल्याणकारी नामसे युक्त भगवान् विष्णुके उस परमधाम—गोलोकमें बड़े सींगोंवाली गौएँ रहती हैं तथा वहाँकी प्रजा बड़े सुखसे रहा करती है। गौओं तथा पीनेयोग्य सुखदायक पदार्थोंसे उस परमधामकी बड़ी शोभा होती है। वह सूर्यके समान प्रकाशमान, अन्धकारसे परे, ज्योतिर्मय एवं अच्युत—अविनाशी पद है। श्रीविष्णुके उस परमधामको ही मोक्ष कहते हैं। वहाँ जीव बन्धनसे मुक्त होकर अपने लिये सुखकर पदको प्राप्त होते हैं। वहाँ जानेपर जीव पुनः इस लोकमें नहीं लौटते; इसलिये उसे मोक्ष कहा गया है। मोक्ष, परमपद, अमृत, विष्णुमन्दिर, अक्षर, परमधाम, वैकुण्ठ, शाश्वतपद, नित्यधाम, परमव्योम, सर्वोत्कृष्ट पद तथा सनातन पद—ये अविनाशी परमधामके पर्यायवाची शब्द हैं। अब उस त्रिपाद्-विभूतिके स्वरूपका वर्णन करूँगा।

वैकुण्ठधाममें भगवान्‌की स्थितिका वर्णन, योगमायाद्वारा भगवान्‌की स्तुति तथा भगवान्‌के द्वारा सृष्टि-रचना

श्रीमहादेवजी कहते हैं—पार्वती! त्रिपाद्-विभूतिके असंख्य लोक बतलाये गये हैं। वे सब-के-सब शुद्ध सत्त्वमय, ब्रह्मानन्दमय, सुखसे परिपूर्ण, नित्य, निर्विकार, हेय गुणोंसे रहित, हिरण्मय, शुद्ध, कोटि सूर्योंके समान प्रकाशमान, वेदमय, दिव्य तथा काम-क्रोध आदिसे रहित हैं। भगवान् नारायणके चरणकमलोंकी भक्तिमें ही रस लेनेवाले पुरुष उनमें निवास करते हैं। वहाँ निरन्तर सामगानकी सुखदायिनी ध्वनि होती रहती है। वे सभी लोक उपनिषद्-स्वरूप, वेदमय तेजसे युक्त तथा वेदस्वरूप स्त्री-पुरुषोंसे भरे हैं। वेदके ही रससे भरे हुए सरोवर उनकी शोभा बढ़ाते हैं। श्रुति, स्मृति और पुराण आदि भी उन लोकोंके स्वरूप हैं। उनमें दिव्य वृक्ष भी सुशोभित होते हैं। उनके विश्व-विख्यात स्वरूपका पूरा-पूरा वर्णन मुझसे नहीं हो सकता। विरजा और परम व्योमके बीचका जो स्थान है, उसका नाम केवल है। वही अव्यक्त ब्रह्मके उपासकोंके उपभोगमें आता है। वह आत्मानन्दका सुख प्रदान करनेवाला है। उस स्थानको केवल, परमपद, निःश्रेयस्, निर्वाण, कैवल्य और मोक्ष कहते हैं। जो महात्मा भगवान् लक्ष्मीपतिके चरणोंकी भक्ति और सेवाके रसका उपभोग करके पुष्ट हुए हैं, वे महान् सौभाग्यशाली भगवच्चरणसेवक पुरुष श्रीविष्णुके परमधाममें जाते हैं, जो ब्रह्मानन्द प्रदान करनेवाला है।

उसका नाम है वैकुण्ठधाम। वह अनेक जनपदोंसे व्याप्त है। श्रीहरि उसीमें निवास करते हैं। वह रत्नमय प्राकारों, विमानों तथा मणिमय महलोंसे सुशोभित है। उस धामके मध्यभागमें दिव्य नगरी है, जो अयोध्या कहलाती है तथा जो चहारदीवारियों और ऊँचे दरवाजोंसे घिरी है। उनमें मणियों तथा सुवर्णोंके चित्र बने हैं। उस अयोध्यापुरीके चार दरवाजे हैं तथा ऊँचे-ऊँचे गोपुर उसकी शोभा बढ़ाते हैं। चण्ड आदि द्वारपाल और कुमुद आदि दिक्पाल उसकी रक्षामें रहते हैं। पूर्वके दरवाजेपर चण्ड और प्रचण्ड, दक्षिण-द्वारपर भद्र और सुभद्र, पश्चिम-द्वारपर जय और विजय तथा उत्तरके दरवाजेपर धाता और विधाता नामक द्वारपाल रहते हैं। कुमुद, कुमुदाक्ष, पुण्डरीक, वामन, शंकुकर्ण, सर्वनिद्र, सुमुख और सुप्रतिष्ठित—ये उस नगरीके दिक्पाल बताये गये हैं। पार्वती! उस पुरीमें कोटि-कोटि अग्निके समान तेजोमय गृहोंकी पंक्तियाँ शोभा पाती हैं। उनमें तरुण अवस्थावाले दिव्य नर-नारी निवास करते हैं। पुरीके मध्यभागमें भगवान्‌का मनोहर अन्तःपुर है, जो मणियोंके प्राकारसे युक्त और सुन्दर गोपुरसे सुशोभित है। उसमें भी अनेक अच्छे-अच्छे गृह, विमान और प्रासाद हैं। दिव्य अप्सराएँ और स्त्रियाँ सब ओरसे उस अन्तःपुरकी शोभा बढ़ाती हैं। उसके बीचमें एक दिव्य मण्डप है, जो राजाका खास स्थान है; उसमें बड़े-बड़े उत्सव होते रहते हैं। वह मण्डप रत्नोंका बना है तथा उसमें मानिकके हजारों खम्भे लगे हैं। वह दिव्य मोतियोंसे व्याप्त है तथा सामगानसे सुशोभित रहता है। मण्डपके मध्यभागमें एक रमणीय सिंहासन है, जो सर्ववेदस्वरूप और शुभ है। वेदमय धर्मादि देवता उस सिंहासनको सदा घेरे रहते हैं। धर्म, ज्ञान, ऐश्वर्य और वैराग्य तथा ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद भी मूर्तिमान् होकर उस सिंहासनके चारों ओर खड़े रहते हैं। शक्ति, आधारशक्ति, चिच्छक्ति, सदाशिवा शक्ति तथा धर्मादि देवताओंकी शक्तियाँ भी वहाँ उपस्थित रहती हैं। सिंहासनके मध्यभागमें अग्नि, सूर्य और चन्द्रमा निवास करते हैं। कूर्म (कच्छप), नागराज (अनन्त या वासुकि), तीनों वेदोंके स्वामी, गरुड़, छन्द और सम्पूर्ण मन्त्र—ये उसमें पीठरूप धारण करके रहते हैं। वह पीठ सब अक्षरोंसे युक्त है। उसे दिव्य योगपीठ कहते हैं। उसके मध्यभागमें अष्टदलकमल है, जो उदयकालीन सूर्यके समान कान्तिमान् है। उसके बीचमें सावित्री नामकी कर्णिका है, जिसमें देवताओंके स्वामी परम पुरुष भगवान् विष्णु भगवती लक्ष्मीजीके साथ विराजमान होते हैं।

भगवान्‌का श्रीविग्रह नीलकमलके समान श्याम तथा कोटि सूर्योंके समान प्रकाशमान है। वे तरुण कुमार-से जान पड़ते हैं। सारा शरीर चिकना है और

प्रत्येक अवयव कोमल। खिले हुए लाल कमल-जैसे हाथ तथा पैर अत्यन्त मृदुल प्रतीत होते हैं। नेत्र विकसित कमलके समान जान पड़ते हैं। ललाटका निम्न भाग दो सुन्दर भ्रूलताओंसे अंकित है। सुन्दर नासिका, मनोहर कपोल, शोभायुक्त मुखकमल, मोतीके दाने-जैसे दाँत और मन्द मुसकानकी छविसे युक्त मूँगे-जैसे लाल-लाल ओठ हैं। मुखमण्डल पूर्ण चन्द्रमाकी शोभा धारण करता है। कमल-जैसे मुखपर मनोहर हास्यकी छटा छायी रहती है। कानोंमें तरुण सूर्यकी भाँति चमकीले कुण्डल उनकी शोभा बढ़ाते हैं। मस्तक चिकनी, काली और घुँघराली अलकोंसे सुशोभित है। भगवान्‌के बाल गुँथे हुए हैं, जिनमें पारिजात और मन्दारके पुष्प शोभा पाते हैं। गलेमें कौस्तुभमणि शोभा दे रही है, जो प्रातःकाल उगते हुए सूर्यकी कान्ति धारण करती है। भाँति-भाँतिके हार और सुवर्णकी मालाओंसे शंख-जैसी ग्रीवा बड़ी सुन्दर जान पड़ती है। सिंहके कंधोंके समान ऊँचे और मोटे कंधे शोभा दे रहे हैं। मोटी और गोलाकार चार भुजाओंसे भगवान्‌का श्रीअंग बड़ा सुन्दर जान पड़ता है। सबमें अँगूठी, कड़े और भुजबंद हैं, जो शोभावृद्धिके कारण हो रहे हैं। उनका विशाल वक्षःस्थल करोड़ों बालसूर्योंके समान तेजोमय कौस्तुभ आदि सुन्दर आभूषणोंसे देदीप्यमान है। वे वनमालासे विभूषित हैं। नाभिका वह कमल, जो ब्रह्माजीकी जन्मभूमि है, श्रीअंगोंकी शोभा बढ़ा रहा है। शरीरपर मुलायम पीताम्बर सुशोभित है, जो बाल रविकी प्रभाके समान जान पड़ता है। दोनों चरणोंमें सुन्दर कड़े विराज रहे हैं, जो नाना प्रकारके रत्नोंसे जड़े होनेके कारण अत्यन्त विचित्र प्रतीत होते हैं। नखोंकी श्रेणियाँ चाँदनीयुक्त चन्द्रमाके समान उद्भासित हो रही हैं। भगवान्‌का लावण्य कोटि-कोटि कन्दर्पोंका दर्प दलन करनेवाला है। वे सौन्दर्यकी निधि और अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले हैं। उनके सर्वांगमें दिव्य चन्दनका अनुलेप किया हुआ है। वे दिव्य मालाओंसे विभूषित हैं। उनके ऊपरकी दोनों भुजाओंमें शंख और चक्र हैं तथा नीचेकी भुजाओंमें वरद और अभयकी मुद्राएँ हैं।

भगवान्‌के वामांकमें महेश्वरी भगवती महालक्ष्मी विराजमान हैं। उनका श्रीअंग सुवर्णके समान कान्तिमान् तथा गौर है। सोने और चाँदीके हार उनकी शोभा बढ़ाते हैं। वे समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न हैं। उनकी अवस्था ऐसी है, मानो शरीरमें यौवनका आरम्भ हो रहा है। कानोंमें रत्नोंके कुण्डल और मस्तकपर काली-काली घुँघराली अलकें शोभा पाती हैं। दिव्य चन्दनसे चर्चित अंगोंका दिव्य पुष्पोंसे शृंगार हुआ है। केशोंमें मन्दार, केतकी और चमेलीके फूल गुँथे हुए हैं। सुन्दर भौंहें, मनोहर नासिका और शोभायमान कटिभाग हैं। पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर मुख-कमलपर मन्द मुसकानकी छटा छा रही है। बाल रविके समान चमकीले कुण्डल कानोंकी शोभा बढ़ा रहे हैं। तपाये हुए सुवर्णके समान शरीरकी कान्ति और आभूषण हैं। चार हाथ हैं, जो सुवर्णमय कमलोंसे विभूषित हैं। भाँति-भाँतिके विचित्र रत्नोंसे युक्त सुवर्णमय कमलोंकी माला, हार, केयूर, कड़े और अँगूठियोंसे श्रीदेवी सुशोभित हैं। उनके दो हाथोंमें दो कमल और शेष दो हाथोंमें मातुलुंग (बिजौरा) और जाम्बूनद (धतूरा) शोभा पा रहे हैं। इस प्रकार कभी विलग न होनेवाली महालक्ष्मीके साथ महेश्वर भगवान् विष्णु सनातन परम व्योममें सानन्द विराजमान रहते हैं। उनके दोनों पार्श्वमें भूदेवी और लीलादेवी बैठी रहती हैं। आठों दिशाओंमें अष्टदल कमलके एक-एक दलपर क्रमशः विमला आदि शक्तियाँ सुशोभित होती हैं। उनके नाम ये हैं—विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, प्रह्वी, सत्या तथा ईशाना। ये सब परमात्मा श्रीहरिकी पटरानियाँ हैं, जो सब प्रकारके सुन्दर लक्षणोंसे सम्पन्न हैं। ये अपने हाथोंमें चन्द्रमाके समान श्वेतवर्णके दिव्य चँवर लेकर उनके द्वारा सेवा करती हुई अपने पति श्रीहरिको आनन्दित करती हैं। इनके सिवा दिव्य अप्सराएँ तथा पाँच सौ युवती स्त्रियाँ भगवान्‌के अन्तःपुरमें निवास करती हैं, जो सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित, कोटि अग्नियोंके समान तेजस्विनी, समस्त शुभ लक्षणोंसे युक्त तथा चन्द्रमुखी हैं। उन सबके हाथोंमें कमलके पुष्प शोभा पाते हैं। उन सबसे घिरे हुए महाराज परम पुरुष श्रीहरिकी बड़ी शोभा होती है। अनन्त (शेषनाग), गरुड़ तथा सेनानी आदि देवेश्वरों, अन्यान्य पार्षदों तथा नित्यमुक्त भक्तोंसे सेवित हो रमा-सहित परम पुरुष

श्रीविष्णु भोग और ऐश्वर्यके द्वारा सदा आनन्दमग्न रहते हैं। इस प्रकार वैकुण्ठधामके अधिपति भगवान् नारायण अपने परम पदमें रमण करते हैं।

पार्वती! अब मैं भगवान्‌के भिन्न-भिन्न व्यूहों और लोकोंका वर्णन करता हूँ। वैकुण्ठधामके पूर्वभागमें श्रीवासुदेवका मन्दिर है। अग्निकोणमें लक्ष्मीका लोक है। दक्षिण-दिशामें श्रीसंकर्षणका भवन है। नैर्ऋत्य-कोणमें सरस्वतीदेवीका लोक है। पश्चिम-दिशामें श्रीप्रद्युम्नका मन्दिर है। वायव्यकोणमें रतिका लोक है। उत्तर-दिशामें श्रीअनिरुद्धका स्थान है और ईशानकोणमें शान्तिलोक है। भगवान्‌के परमधामको सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि नहीं प्रकाशित करते। कठोर व्रतोंका पालन करनेवाले योगिजन वहाँ जाकर फिर इस संसारमें नहीं लौटते। जो दो नामोंके एक मन्त्र (लक्ष्मीनारायण)-के जपमें लगे रहते हैं, वे निश्चय ही उस अविनाशी पदको प्राप्त होते हैं। मनुष्य अनन्य-भक्तिके साथ उक्त मन्त्रका जप करके उस सनातन दिव्य धामको अनायास ही प्राप्त कर लेते हैं। उनके लिये वह पद जैसा सुगम होता है, वैसा वेदोंके अध्ययन, यज्ञ, दान, शुभव्रत, तपस्या, उपवास तथा अन्य साधनोंसे भी नहीं होता। त्रिपाद्-विभूतिमें जहाँ भगवान् परमेश्वर भगवती लक्ष्मीजीके साथ सदा आनन्दका अनुभव करते हैं, वहाँ संसारकी आश्रयभूता महामायाने हाथ जोड़कर प्रकृतिके साथ उनकी भाँति-भाँतिसे स्तुति करके कहा—केशव! इन जीवोंके लिये लोक और शरीर प्रदान कीजिये। सर्वज्ञ! आप पूर्वकल्पोंकी भाँति अपनी लीलामयी विभूतियोंका विस्तार कीजिये। जड-चेतनमय सम्पूर्ण चराचर जगत् अज्ञान अवस्थामें पड़ा है। आप लीला-विस्तारके लिये इसपर दृष्टिपात कीजिये। परमेश्वर! मेरे तथा प्रकृतिके साथ जगत्‌की सृष्टि कीजिये। धर्म-अधर्म, सुख-दुःख—सबका संसारमें प्रवेश कराके आप मुझे अपनी आज्ञामें रखकर शीघ्र ही लीला आरम्भ कीजिये।

श्रीमहादेवजी कहते हैं—मायादेवीके इस प्रकार कहनेपर परमेश्वरने उसके भीतर जगत्‌की सृष्टि आरम्भ की। जो प्रकृतिसे परे पुरुष कहलाते हैं, वे अच्युत भगवान् विष्णु ही प्रकृतिमें प्रविष्ट हुए। ब्रह्मस्वरूप श्रीहरिने प्रकृतिसे महत्तत्त्वको उत्पन्न किया, जो सब भूतोंका आदि कारण है। महत्‌से अहंकारका जन्म हुआ। यह अहंकार सत्त्वादि गुणोंके भेदसे तीन प्रकारका है—सात्त्विक, राजस और तामस। विश्वभावन परमात्माने उन गुणोंसे अर्थात् तामस अहंकारसे तन्मात्राओंको उत्पन्न किया। तन्मात्राओंसे आकाश आदि पंचमहाभूत प्रकट हुए, जिनमें क्रमशः एक-एक गुण अधिक हैं। आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल और जलसे पृथ्वीका प्रादुर्भाव हुआ। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये ही क्रमशः आकाश आदि पंचभूतोंके प्रधान गुण हैं। महाप्रभु श्रीहरिने उत्तरोत्तर भूतोंमें अधिक गुण देख उन सबको लेकर एकमें मिला दिया तथा सबके मेलसे महान् विश्वब्रह्माण्डकी सृष्टि की। उसीमें पुरुषोत्तमने चौदह भुवन तथा ब्रह्मादि देवताओंको उत्पन्न किया। पार्वती! दैव, तिर्यक्, मानव और स्थावर—यह चार प्रकारका महासर्ग रचा गया। इन चारों सर्गों अथवा योनियोंमें जीव अपने-अपने कर्मोंके अनुसार जन्म लेते हैं।

देवसर्ग तथा भगवान्‌के चतुर्व्यूहका वर्णन

पार्वतीजीने कहा—भगवन्! परम उत्तम देवसर्गका विस्तारके साथ वर्णन कीजिये। साथ ही भगवान्‌के अवतारोंकी कथा भी विस्तृतरूपसे कहिये।

श्रीमहादेवजी बोले—देवि! सृष्टिकी इच्छा रखनेवाले भगवान् मधुसूदनने योगनिद्राको प्राप्त होकर मायाके साथ चिरकालतक रमण किया। उससे कालात्माको जन्म दिया, जो कला, काष्ठा, मुहूर्त, पक्ष और मास आदिके रूपमें उपलब्ध होता है। उस समय श्रीहरिका नाभिकमल, जो सम्पूर्ण जगत्‌का बीज और परम तेजस्वी था, मुकुलाकार हो विकसित होने लगा। उसीसे परम बुद्धिमान् ब्रह्माजी प्रकट हुए। उनके मनमें रजोगुणकी प्रेरणासे सृष्टिकी इच्छा उत्पन्न हुई। तब उन्होंने योगनिद्रामें सोये हुए परमेश्वरका स्तवन किया।

ब्रह्माजीके स्तवन करनेपर समस्त इन्द्रियोंके स्वामी परमेश्वर श्रीविष्णु योगनिद्रासे उठ गये। योगनिद्राको काबूमें करके उन्होंने जगत्‌की सृष्टि आरम्भ की।

जगत्‌के स्वामी श्रीअच्युतने पहले एक क्षणतक कुछ विचार किया। विचारके पश्चात् उन्होंने सम्पूर्ण जगत्‌की सृष्टि की। उस समय सब लोकोंसे युक्त सुवर्णमय अण्डको, सात द्वीप, सात समुद्र और पर्वतोंसहित पृथ्वीको तथा एक अण्डकटाहको भी भगवान्‌ने अपने नाभिकमलसे उत्पन्न किया। तत्पश्चात् उस अण्डमें श्रीहरि स्वयं ही स्थित हुए। तदनन्तर नारायणने अपने मनसे इच्छानुसार ध्यान किया। ध्यानके अन्तमें उनके ललाटसे पसीनेकी बूँद प्रकट हुई। वह बूँद बुदबुदेके आकारमें परिणत हो तत्क्षण पृथ्वीपर गिर पड़ी। पार्वती! उसी बुदबुदेसे मैं उत्पन्न हूँ। उस समय रुद्राक्षकी माला और त्रिशूल हाथमें लेकर जटामय मुकुटसे अलंकृत हो मैंने विनयपूर्वक देवेश्वर श्रीविष्णुसे पूछा—'मेरे लिये क्या आज्ञा है।' तब भगवान् नारायणने प्रसन्नतापूर्वक मुझसे कहा—'रुद्र! तुम संसारका भयंकर संहार करनेवाले होओगे।' इस प्रकार मैं भयंकर आकृतिमें जगत्‌का संहार करनेके लिये ही भगवान् नारायणके श्रीअंगसे उत्पन्न हुआ। जनार्दनने मुझे संहारके कार्यमें नियुक्त करके पुनः अपने नेत्रोंसे अन्धकार दूर करनेवाले चन्द्रमा और सूर्यको उत्पन्न किया। फिर कानोंसे वायु और दिशाओंको, मुखकमलसे इन्द्र और अग्निको, नासिकाके छिद्रोंसे वरुण और मित्रको, भुजाओंसे साध्य और मरुद्‌गणोंसहित सम्पूर्ण देवताओंको, रोमकूपोंसे वन और ओषधियोंको तथा त्वचासे पर्वत, समुद्र और गाय आदि पशुओंको प्रकट किया। भगवान्‌के मुखसे ब्राह्मण, दोनों भुजाओंसे क्षत्रिय, जाँघोंसे वैश्य तथा दोनों चरणोंसे शूद्रजातिकी उत्पत्ति हुई।

इस प्रकार सम्पूर्ण जगत्‌की सृष्टि करके देवेश्वर श्रीकृष्णने उसे अचेतनरूपमें स्थित देख स्वयं ही विश्वरूपसे उसके भीतर प्रवेश किया। श्रीहरिकी शक्तिके बिना संसार हिल-डुल नहीं सकता। इसलिये सनातन श्रीविष्णु ही सम्पूर्ण जगत्‌के प्राण हैं। वे ही अव्यक्तरूपमें स्थित होनेपर परमात्मा कहलाते हैं। वे षड्‌विध ऐश्वर्यसे परिपूर्ण सनातन वासुदेव हैं। वे अपने तीन गुणोंसे चार स्वरूपोंमें स्थित होकर जगत्‌की सृष्टि करते हैं। प्रद्युम्नरूपधारी भगवान् सब ऐश्वर्योंसे युक्त हैं। वे ब्रह्मा, प्रजापति, काल तथा जीव—सबके अन्तर्यामी होकर सृष्टिका कार्य भलीभाँति सिद्ध करते हैं। महात्मा वासुदेवने उन्हें इतिहाससहित सम्पूर्ण वेदोंका ज्ञान प्रदान किया है। लोकपितामह ब्रह्माजी प्रद्युम्नके ही अंशभागी हैं। वे संसारकी सृष्टि और पालन भी करते हैं। भगवान् अनिरुद्ध शक्ति और तेजसे सम्पन्न हैं। वे मनुओं, राजाओं, काल तथा जीवके अन्तर्यामी होकर सबका पालन करते हैं। संकर्षण महाविष्णुरूप हैं। उनमें विद्या और बल दोनों हैं। वे सम्पूर्ण भूतोंके काल, रुद्र और यमके अन्तर्यामी होकर जगत्‌का संहार करते हैं। मत्स्य, कूर्म, वाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, श्रीराम, श्रीकृष्ण, बुद्ध और कल्कि—ये दस भगवान् विष्णुके अवतार हैं।

पार्वती! श्रीहरिकी उस अवस्थाका वर्णन सुनो। परमश्रेष्ठ वैकुण्ठलोक, विष्णुलोक, श्वेतद्वीप और क्षीरसागर—ये चार व्यूह महर्षियोंद्वारा बताये गये हैं। वैकुण्ठलोक जलके घेरेमें है। वह कारणरूप और शुभ है। उसका तेज कोटि अग्नियोंके समान उद्दीप्त रहता है। वह सम्पूर्ण धर्मोंसे युक्त और अविनाशी है। परमधामका जैसा लक्षण बताया गया है, वैसा ही उसका भी है। नाना प्रकारके रत्नोंसे उद्भासित वैकुण्ठनगर चण्ड आदि द्वारपालों और कुमुद आदि दिक्पालोंसे सुरक्षित है। भाँति-भाँतिकी मणियोंसे बने हुए दिव्य गृहोंकी पंक्तियोंसे वह नगर घिरा हुआ है। उसकी चौड़ाई पचपन योजन तथा लंबाई एक हजार योजन है। करोड़ों ऊँचे-ऊँचे महल उसकी शोभा बढ़ाते हैं। वह नगर तरुण अवस्थावाले दिव्य स्त्री-पुरुषोंसे सुशोभित है। वहाँकी स्त्रियाँ और पुरुष समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न दिखायी देते हैं। स्त्रियोंका रूप भगवती लक्ष्मीके समान होता है और पुरुषोंका भगवान् विष्णुके समान। वे सब प्रकार आभूषणोंसे विभूषित होते हैं तथा भक्तिजनित मनोरम आह्लादसे सदा आनन्दमग्न रहते हैं। उनका भगवान् विष्णुके साथ अविच्छिन्न सम्बन्ध बना रहता है। वे सदा उनके समान ही सुख भोगते हैं। जहाँ कहींसे भी श्रीहरिके लोकमें प्रविष्ट हुए शुद्ध अन्तःकरणवाले मानव फिर संसारमें जन्म नहीं लेते। मनीषी पुरुष भगवान् विष्णुके दासभावको ही मोक्ष कहते हैं। उनकी दासताका नाम बन्धन नहीं है। भगवान्‌के भक्त तो सब प्रकारके बन्धनोंसे मुक्त और रोग-शोकसे रहित होते हैं।

ब्रह्मलोकतकके प्राणी पुनः संसारमें आकर जन्म लेते, कर्मोंके बन्धनमें पड़ते और दु:खी तथा भयभीत होते हैं। पार्वती! उन लोकोंमें जो फल मिलता है, वह बड़ा आयाससाध्य होता है। वहाँका सुख-भोग विषमिश्रित मधुर अन्नके समान है। जब पुण्यकर्मोंका क्षय हो जाता है, तब मनुष्योंको स्वर्गमें स्थित देख देवता कुपित हो उठते हैं और उसे संसारके कर्मबन्धनमें डाल देते हैं; इसलिये स्वर्गका सुख बड़े क्लेशसे सिद्ध होता है। वह अनित्य, कुटिल और दु:खमिश्रित होता है; इसलिये योगी पुरुष उसका परित्याग कर दे। भगवान् विष्णु सब दु:खोंकी राशिका नाश करनेवाले हैं; अतः सदा उनका स्मरण करना चाहिये। भगवान्का नाम लेनेमात्रसे मनुष्य परमपदको प्राप्त होते हैं। इसलिये पार्वती! विद्वान् पुरुष सदा भगवान् विष्णुके लोकको पानेकी इच्छा करे। भगवान् दयाके सागर हैं; अतः अनन्यभक्तिके साथ उनका भजन करना चाहिये। वे सर्वज्ञ और गुणवान् हैं। निःसन्देह सबकी रक्षा करते हैं। जो परम कल्याणकारक और सुखमय अष्टाक्षर-मन्त्रका जप करता है, वह सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाले वैकुण्ठधामको प्राप्त होता है।

वहाँ भगवान् श्रीहरि सहस्रों सूर्योंकी किरणोंसे सुशोभित दिव्य विमानपर विराजमान रहते हैं। उस विमानमें मणियोंके खंभे शोभा पाते हैं। उसमें एक सुवर्णमय पीठ है, जिसे आधारशक्ति आदिने धारण कर रखा है तथा जो भाँति-भाँतिके रत्नोंका बना हुआ एवं अलौकिक है। उसमें अनेकों रंग जान पड़ते हैं। पीठपर अष्टदल कमल है, जिसपर मन्त्रोंके अक्षर और पद अंकित हैं। उसकी सुरम्य कर्णिकामें लक्ष्मी-बीजका शुभ अक्षर अंकित है। उसमें कमलके आसनपर दिव्यविग्रह भगवान् श्रीनारायण विराजमान हैं, जो अरबों-खरबों बालसूर्योंके समान कान्ति धारण करते हैं। उनके दाहिने पार्श्वमें सुवर्णके समान कान्तिमती जगन्माता श्रीलक्ष्मी विराजती हैं, जो समस्त शुभ-लक्षणोंसे सम्पन्न और दिव्य मालाओंसे सुशोभित हैं। उनके हाथोंमें सुवर्णपात्र, मातुलुंग और सुवर्णमय कमल शोभा पाते हैं। भगवान्के वामभागमें भूदेवी विराजमान हैं, जिनकी कान्ति नील कमल-दलके समान श्याम है। वे नाना प्रकारके आभूषणों और विचित्र वस्त्रोंसे विभूषित हैं। उनके ऊपरके हाथोंमें दो लाल कमल हैं और नीचेके दो हाथोंमें उन्होंने दो धान्यपात्र धारण कर रखे हैं। विमला आदि शक्तियाँ दिव्य चँवर लेकर कमलके आठों दलोंमें स्थित हो भगवान्की सेवा करती हैं। वे सभी समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न हैं। भगवान् श्रीहरि उन सबके बीचमें विराजते हैं। उनके हाथोंमें शंख, चक्र, गदा और पद्म शोभा पाते हैं। भगवान् केयूर, अंगद और हार आदि दिव्य आभूषणोंसे विभूषित हैं। उनके कानोंमें उदयकालीन सूर्यके समान तेजोमय कुण्डल झिलमिला रहे हैं। पूर्वोक्त देवता उन परमेश्वरकी सेवामें सदा संलग्न रहते हैं। इस प्रकार नित्य वैकुण्ठधाममें भगवान् सब भोगोंसे सम्पन्न हो नित्य विराजमान रहते हैं। वह परम रमणीय लोक अष्टाक्षर-मन्त्रका जप करनेवाले सिद्ध मनीषी पुरुषों तथा श्रीविष्णुभक्तोंको प्राप्त होता है। पार्वती! इस प्रकार मैंने तुमसे प्रथम व्यूहका वर्णन किया।

इसी प्रकार वैष्णवलोक, श्वेतद्वीप और क्षीरसागर-निवासी द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ व्यूहका वर्णन करके श्रीशिवजीने कहा—'पार्वती! अब और क्या सुनना चाहती हो? देवि! भगवान् पुरुषोत्तममें तुम्हारी भक्ति है। इसलिये तुम धन्य और कृतार्थ हो।

मत्स्य और कूर्म अवतारोंकी कथा—समुद्र-मन्थनसे लक्ष्मीजीका प्रादुर्भाव और एकादशी-द्वादशीका माहात्म्य

पार्वतीजीने कहा—महेश्वर! अब मुझसे भगवान्के वैभव—मत्स्य, कूर्म आदि अवतारोंका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये।

श्रीमहादेवजी बोले—देवि! एकाग्रचित्त होकर सुनो। मैं श्रीहरिके वैभव—मत्स्य, कूर्म आदि अवतारोंका वर्णन करता हूँ। जैसे एक दीपकसे दूसरे अनेक दीपक जला लिये जाते हैं, उसी प्रकार एक परमेश्वरके अनेक अवतार होते हैं। उन अवतारोंके परावस्थ, व्यूह और

विभव आदि अनेक भेद हैं। भगवान् विष्णुके अनेक शुभ अवतार बताये गये हैं; ब्रह्माजीने भृगु, मरीचि, अत्रि, दक्ष, कर्दम, पुलस्त्य, पुलह, अंगिरा तथा क्रतु—इन नौ प्रजापतियोंको उत्पन्न किया। इनमें मरीचिने कश्यपको जन्म दिया। कश्यपके चार स्त्रियाँ थीं—अदिति, दिति, कद्रू और विनता। अदितिसे देवताओंका जन्म हुआ। दितिने तमोगुणी पुत्रोंको उत्पन्न किया, जो महान् असुर हुए। उनके नाम इस प्रकार हैं—मकर, हयग्रीव, महाबली हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु, जम्भ और मय आदि। मकर बड़ा बलवान् था। उसने ब्रह्मलोकमें जाकर ब्रह्माजीको मोहित करके उनसे सम्पूर्ण वेद ले लिये। इस प्रकार श्रुतियोंका अपहरण करके वह महासागरमें घुस गया। फिर तो सारा संसार धर्मसे शून्य हो गया। वर्णसंकर-सन्तान उत्पन्न होने लगी। स्वाध्याय, वषट्कार और वर्णाश्रम-धर्मका लोप हो गया। तब ब्रह्माजीने सम्पूर्ण देवताओंके साथ क्षीरसागरपर भगवान्‌की शरणमें जाकर मकर दैत्यके द्वारा अपहरण किये हुए वेदोंका उद्धार करनेके लिये उनका स्तवन किया।

श्रीमहादेवजी कहते हैं—पार्वती! ब्रह्माजीके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर सम्पूर्ण इन्द्रियोंके स्वामी परमेश्वर श्रीविष्णु मत्स्यरूप धारण करके महासागरमें प्रविष्ट हुए। उन्होंने उस अत्यन्त भयंकर मकर नामक दैत्यको थूथुनके अग्रभागसे विदीर्ण करके मार डाला और अंग-उपांगोंसहित सम्पूर्ण वेदोंको लाकर ब्रह्माजीको समर्पित कर दिया। इस प्रकार उन्होंने मत्स्यावतारके द्वारा सम्पूर्ण देवताओंकी रक्षा की। वेदोंको लाकर श्रीहरिने तीनों लोकोंका भय दूर किया, धर्मकी प्राप्ति करायी और देवताओं तथा सिद्धोंके मुखसे अपनी स्तुति सुनते हुए वे वहाँसे अन्तर्धान हो गये।

प्रिये! अब मैं श्रीविष्णुके कूर्मावतार-सम्बन्धी विश्ववन्दित वैभवका वर्णन करूँगा। महर्षि अत्रिके पुत्र दुर्वासा बड़े ही तेजस्वी मुनि हुए। वे महान् तपस्वी, अत्यन्त क्रोधी तथा सम्पूर्ण लोकोंको क्षोभमें डालनेवाले हैं। एक समयकी बात है—वे देवराज इन्द्रसे मिलनेके लिये स्वर्गलोकमें गये। उस समय इन्द्र ऐरावत हाथीपर आरूढ़ हो सम्पूर्ण देवताओंसे पूजित होकर कहीं जानेके लिये उद्यत थे। उन्हें देखकर महातपस्वी दुर्वासाका मन प्रसन्न हो गया। उन्होंने विनीतभावसे देवराजको एक पारिजातकी माला भेंट की। देवराजने उसे लेकर हाथीके मस्तकपर डाल दिया और स्वयं नन्दनवनकी ओर चल दिये। हाथी मदसे उन्मत्त हो रहा था। उसने सूँड़से उस मालाको उतार लिया और मसलते हुए तोड़कर जमीनपर फेंक दिया। इससे दुर्वासाजीको क्रोध आ गया और उन्होंने शाप देते हुए कहा—'देवराज! तुम त्रिभुवनकी राजलक्ष्मीसे सम्पन्न होनेके कारण मेरा अपमान करते हो। इसलिये तीनों लोकोंकी लक्ष्मी नष्ट हो जायगी। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।'

दुर्वासाके इस प्रकार शाप देनेपर इन्द्र पुनः अपने नगरको लौट गये। तत्पश्चात् जगन्माता लक्ष्मी अन्तर्धान हो गयीं। ब्रह्मा आदि देवता, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, दैत्य, दानव, नाग, मनुष्य, राक्षस, पशु, पक्षी तथा कीट आदि जगत्‌के समस्त चराचर प्राणी दरिद्रताके मारे दुःख भोगने लगे। सब लोगोंने भूख-प्याससे पीड़ित होकर ब्रह्माजीके पास जाकर कहा—'भगवन्! तीनों लोक भूख-प्याससे पीड़ित हैं। आप सब लोकोंके स्वामी और रक्षक हैं। अतः हम आपकी शरणमें आये हैं। देवेश! आप हमारी रक्षा करें।'

ब्रह्माजी बोले—देवता, दैत्य, गन्धर्व और मनुष्य आदि प्राणियो! सुनो। इन्द्रके अनाचारसे ही यह सारा संकट उपस्थित हुआ है। उन्होंने अपने बर्तावसे महात्मा दुर्वासाको कुपित कर दिया है। उन्हींके क्रोधसे आज तीनों लोकोंका नाश हो रहा है। जिनकी कृपा-कटाक्षसे सब लोक सुखी होते हैं, वे जगन्माता महालक्ष्मी अन्तर्धान हो गयी हैं। जबतक वे अपनी कृपादृष्टिसे नहीं देखेंगी, तबतक सब लोग दुःखी ही रहेंगे। इसलिये हम सब लोग चलकर क्षीरसागरमें विराजमान सनातनदेव भगवान् नारायणकी आराधना करें। उनके प्रसन्न होनेपर ही सम्पूर्ण जगत्‌का कल्याण होगा।

ऐसा निश्चय करके ब्रह्माजी सम्पूर्ण देवताओं और भृगु आदि महर्षियोंके साथ क्षीरसागरपर गये और विधिपूर्वक पुरुषसूक्तके द्वारा उनकी आराधना करने लगे। उन्होंने अनन्यचित्त होकर अष्टाक्षर-मन्त्रका जप और पुरुषसूक्तका पाठ करके परमेश्वरका ध्यान करते हुए उनके लिये हवन किया तथा दिव्य स्तोत्रोंसे स्तवन

और विधिवत् नमस्कार किया। इससे प्रसन्न होकर भगवान्ने सब देवताओंको दर्शन दिया और कृपापूर्वक कहा—'देवगण! मैं वर देना चाहता हूँ, तुमलोग इच्छानुसार वर माँगो।' यह सुनकर ब्रह्मा आदि सम्पूर्ण देवता हाथ जोड़कर बोले—'भगवन्! दुर्वासा मुनिके शापसे तीनों लोक सम्पत्तिहीन हो गये हैं। पुरुषोत्तम! इसीलिये हम आपकी शरणमें आये हैं।'

श्रीभगवान् बोले—देवताओ! अत्रिकुमार दुर्वासा मुनिके शापसे भगवती लक्ष्मी अन्तर्धान हो गयी हैं। अतः तुमलोग मन्दराचल पर्वतको उखाड़कर क्षीरसमुद्रमें रखो और उसे मथानी बना नागराज वासुकिको रस्सीकी जगह उसमें लपेट दो। फिर दैत्य, गन्धर्व और दानवोंके साथ मिलकर समुद्रका मन्थन करो। तत्पश्चात् जगत्‌की रक्षाके लिये लक्ष्मी प्रकट होंगी। उनकी कृपादृष्टि पड़ते ही तुमलोग महान् सौभाग्यशाली हो जाओगे। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। मैं ही कूर्मरूपसे मन्दराचलको अपनी पीठपर धारण करूँगा तथा मैं ही सम्पूर्ण देवताओंमें प्रवेश करके अपनी शक्तिसे उन्हें बलिष्ठ बनाऊँगा।

भगवान्‌के ऐसा कहनेपर ब्रह्मा आदि सम्पूर्ण देवता उन्हें साधुवाद देने लगे। उनकी स्तुति सुनते हुए भगवान् अच्युत वहाँसे अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर सम्पूर्ण देवता और महाबली दानव आदिने मन्दराचल पर्वतको उखाड़कर क्षीरसागरमें डाला। इसी समय अमितपराक्रमी भूतभावन भगवान् नारायणने कछुएके रूपमें प्रकट होकर उस पर्वतको अपनी पीठपर धारण किया तथा एक हाथसे उन सर्वव्यापी अविनाशी प्रभुने उसके शिखरको भी पकड़ रखा था। तदनन्तर देवता और असुर मन्दराचल पर्वतमें नागराज वासुकिको लपेटकर क्षीरसागरका मन्थन करने लगे। जिस समय महाबली देवता लक्ष्मीको प्रकट करनेके लिये क्षीरसागरको मथने लगे, उस समय सम्पूर्ण महर्षि उपवास करके मन और इन्द्रियोंके संयमपूर्वक श्रीसूक्त और विष्णुसहस्रनामका पाठ करने लगे। शुद्ध एकादशी तिथिको समुद्रका मन्थन आरम्भ हुआ। उस समय लक्ष्मीके प्रादुर्भावकी अभिलाषा रखते हुए श्रेष्ठ ब्राह्मणों और मुनिवरोंने भगवान् लक्ष्मीनारायणका ध्यान और पूजन किया। उस मुहूर्तमें सबसे पहले कालकूट नामक महाभयंकर विष प्रकट हुआ, जो बहुत बड़े पिण्डके रूपमें था। वह प्रलयकालीन अग्निके समान अत्यन्त भयंकर जान पड़ता था। उसे देखते ही सम्पूर्ण देवता और दानव भयसे व्याकुल हो भाग चले। उन्हें भयसे पीड़ित हो भागते देख मैंने उन सबको रोककर कहा—'देवताओ! इस विषसे भय न करो। इस कालकूट नामक महान् विषको मैं अभी अपना आहार बना लूँगा।' मेरी बात सुनकर इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता मेरे चरणोंमें पड़ गये और 'साधु-साधु' कहकर मेरी स्तुति करने लगे। उधर मेघके समान काले रंगवाले उस महाभयानक विषको प्रकट हुआ देख मैंने एकाग्रचित्तसे अपने हृदयमें सर्वदुःखहारी भगवान् नारायणका ध्यान किया और उनके तीन नामरूपी महामन्त्रका भक्तिपूर्वक जप करते हुए उस भयंकर विषको पी लिया। सर्वव्यापी श्रीविष्णुके तीन नामोंके प्रभावसे उस लोकसंहारकारी विषको मैंने अनायास ही पचा लिया। अच्युत, अनन्त और गोविन्द—ये ही श्रीहरिके तीन नाम हैं। जो एकाग्रचित्त हो इनके आदिमें प्रणव और अन्तमें नमः जोड़कर (**ॐ अच्युताय नमः, ॐ अनन्ताय नमः** तथा **ॐ गोविन्दाय नमः** इस रूपमें) भक्तिपूर्वक जप करता है, उसे विष, रोग और अग्निसे होनेवाली मृत्युका महान् भय नहीं प्राप्त होता। जो इस तीन नामरूपी महामन्त्रका एकाग्रतापूर्वक जप करता है, उसे काल और मृत्युसे भी भय नहीं होता; फिर दूसरोंसे भय होनेकी तो बात ही क्या है।* देवि! इस प्रकार मैंने तीन नामोंके ही प्रभावसे विषका पान किया था।

तत्पश्चात् समुद्र-मन्थन करनेपर लक्ष्मीजीकी बड़ी बहन दरिद्रा देवी प्रकट हुईं। वे लाल वस्त्र पहने थीं। उन्होंने देवताओंसे पूछा—'मेरे लिये क्या आज्ञा है।' तब देवताओंने उनसे कहा—'जिनके घरमें प्रतिदिन कलह होता हो, वहीं हम तुम्हें रहनेके लिये स्थान देते हैं। तुम अमंगलको साथ लेकर उन्हीं घरोंमें जा बसो। जहाँ

---

* अच्युतानन्त गोविन्द इति नामत्रयं हरेः। यो जपेत्प्रयतो भक्त्या प्रणवाद्यं नमोऽन्तकम्॥
तस्य मृत्युभयं नास्ति विषरोगाग्निजं महत्। नामत्रयं महामन्त्रं जपेद्यः प्रयतात्मवान्॥
कालमृत्युभयं चापि तस्य नास्ति किमन्यतः। (२६०। १९—२१)

कठोर भाषण किया जाता हो, जहाँके रहनेवाले सदा झूठ बोलते हों तथा जो मलिन अन्त:करणवाले पापी सन्ध्याके समय सोते हों, उन्हींके घरमें दु:ख और दरिद्रता प्रदान करती हुई तुम नित्य निवास करो। महादेवि! जो खोटी बुद्धिवाला मनुष्य पैर धोये बिना ही आचमन करता है, उस पापपरायण मानवकी ही तुम सेवा करो।'

कलहप्रिया दरिद्रा देवीको इस प्रकार आदेश देकर सम्पूर्ण देवताओंने एकाग्रचित्त हो पुन: क्षीरसागरका मन्थन आरम्भ किया। तब सुन्दर नेत्रोंवाली वारुणी देवी प्रकट हुई, जिसे नागराज अनन्तने ग्रहण किया। तदनन्तर समस्त शुभलक्षणोंसे सुशोभित और सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित एक स्त्री प्रकट हुई, जिसे गरुड़ने अपनी पत्नी बनाया। इसके बाद दिव्य अप्सराएँ और महातेजस्वी गन्धर्व उत्पन्न हुए, जो अत्यन्त रूपवान् और सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्निके समान तेजस्वी थी। तत्पश्चात् ऐरावत हाथी, उच्चै:श्रवा नामक अश्व, धन्वन्तरि वैद्य, पारिजात वृक्ष और सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाली सुरभि गौका प्रादुर्भाव हुआ। इन सबको देवराज इन्द्रने बड़ी प्रसन्नताके साथ ग्रहण किया। इसके बाद द्वादशीको प्रात:काल सूर्योदय होनेपर सम्पूर्ण लोकोंकी अधीश्वरी कल्याणमयी भगवती महालक्ष्मी प्रकट हुईं। उन्हें देखकर सब देवताओंको बड़ा हर्ष हुआ। देवलोकमें दुन्दुभियाँ बजने लगीं, वनदेवियाँ फूलोंकी वृष्टि करने लगीं, गन्धर्वराज गाने और अप्सराएँ नाचने लगीं। शीतल एवं पवित्र हवा चलने लगी। सूर्यकी प्रभा निर्मल हो गयी। बुझी हुई अग्नियाँ जल उठीं और सम्पूर्ण दिशाओंमें प्रसन्नता छा गयी।

तदनन्तर क्षीरसागरसे शीतल एवं अमृतमयी किरणोंसे युक्त चन्द्रमा प्रकट हुए, जो माता लक्ष्मीके भाई और सबको सुख देनेवाले हैं। वे नक्षत्रोंके स्वामी और सम्पूर्ण जगत्के मामा हैं। इसके बाद श्रीहरिकी पत्नी तुलसीदेवी प्रकट हुईं, जो परम पवित्र और सम्पूर्ण विश्वको पावन बनानेवाली हैं। जगन्माता तुलसीका प्रादुर्भाव श्रीहरिकी पूजाके लिये ही हुआ है। तत्पश्चात् सब देवता प्रसन्नचित्त होकर मन्दराचल पर्वतको यथास्थान रख आये और सफल मनोरथ हो माता लक्ष्मीके पास जा सहस्रनामसे स्तुति करके श्रीसूक्तका जप करने लगे। तब भगवती लक्ष्मीने प्रसन्न होकर सम्पूर्ण देवताओंसे कहा—'देववरो! तुम्हारा कल्याण हो। मैं तुम्हें वर देना चाहती हूँ। मुझसे मनोवांछित वर माँगो।'

देवता बोले—सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी भगवान् विष्णुकी प्रियतमा लक्ष्मीदेवी! आप हमलोगोंपर प्रसन्न हों और श्रीविष्णुके वक्ष:स्थलमें सदा निवास करें। कभी भगवान्से अलग न हों तथा तीनों लोकोंका भी कभी परित्याग न करें। देवि! यही हमारे लिये श्रेष्ठ वर है। जगन्माता! आपको नमस्कार है। हम आपसे यही चाहते हैं।

देवताओंके ऐसा कहनेपर श्रीनारायणकी प्रियतमा लोकमाता महेश्वरी लक्ष्मीने 'एवमस्तु' कहकर उनकी प्रार्थना स्वीकार की। तदनन्तर क्षीरसागरपर भगवान् नारायण और ब्रह्माजी भी प्रकट हुए। देवताओंने जनार्दनको नमस्कार करके उनका स्तवन किया और प्रसन्नवदन हो, हाथ जोड़कर कहा—'सर्वेश्वर! आप अपनी प्रियतमा और महारानी लक्ष्मीदेवीको, जो कभी आपसे अलग होनेवाली नहीं हैं, जगत्की रक्षाके लिये ग्रहण कीजिये।' ऐसा कहकर ब्रह्मा आदि देवता और मुनियोंने नाना प्रकारके रत्नोंसे बने हुए बालसूर्यके समान तेजस्वी दिव्य पीठपर भगवान् विष्णु और भगवती लक्ष्मीको बिठाया तथा नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहाते हुए उन्होंने दिव्य वस्त्र, दिव्य माला, रत्नमय आभूषण एवं अप्राकृत दिव्य फलोंसे उन दोनोंका पूजन किया। क्षीरसागरसे जो कोमल दलोंवाली तुलसीदेवी प्रकट हुई थीं, उनके द्वारा उन्होंने लक्ष्मीजीके युगल चरणोंका अर्चन किया। फिर तीन बार प्रदक्षिणा और बारंबार नमस्कार करके दिव्य स्तोत्रोंसे स्तुति की। इससे सर्वदेवेश्वर भगवान् श्रीहरिने लक्ष्मीसहित प्रसन्न होकर देवताओंको मनोवांछित वरदान दिया। तबसे देवता और मनुष्य आदि प्राणी बहुत प्रसन्न रहने लगे। उनके यहाँ धन-धान्यकी प्रचुर वृद्धि हुई और वे नीरोग होकर अत्यन्त सुखका अनुभव करने लगे।

इसके बाद लक्ष्मीसहित भगवान् विष्णुने प्रसन्न होकर सम्पूर्ण लोकोंके हितके लिये समस्त महामुनियों और देवताओंसे कहा—'मुनियों और महाबली देवताओ!

तुम सब लोग सुनो—एकादशी तिथि परम पुण्यमयी है। वह सब उपद्रवोंको शान्त करनेवाली है। तुमलोगोंने लक्ष्मीका दर्शन पानेके लिये इस तिथिको उपवास किया है; इसलिये यह द्वादशी तिथि मुझे सदा प्रिय होगी। आजसे जो लोग एकादशीको उपवास करके द्वादशीको प्रात:काल सूर्योदय होनेपर बड़ी श्रद्धाके साथ लक्ष्मी और तुलसीके साथ मेरा पूजन करेंगे, वे सब बन्धनोंसे मुक्त होकर मेरे परम पदको प्राप्त होंगे।'

ऐसा कहकर सनातन परमात्मा भगवान् विष्णु मुनियोंके द्वारा अपनी स्तुति सुनते हुए लक्ष्मीजीके निवासस्थान क्षीरसागरमें चले गये। वहाँ सूर्यके समान तेजोमय विमानपर शेषनागकी शय्याके ऊपर विशाललोचना भगवती रमाके साथ रहने लगे। वे देवताओंको दर्शन देनेके लिये सदा ही वहाँ निवास करते हैं। तदनन्तर सब देवता कच्छपरूपधारी सनातन भगवान्का भक्तिपूर्वक पूजन करके प्रसन्नचित्त हो उनकी स्तुति करने लगे। इससे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई और वे बोले—'देवेश्वरो! तुम्हारे मनमें जैसी इच्छा हो, वैसा वर माँगो।'

देवता बोले—महाबली देवेश्वर! आप शेषनाग और दिग्गजोंकी सहायताके लिये सात द्वीपोंवाली इस पृथ्वीको अपनी पीठपर धारण कीजिये।

देवताओंकी प्रार्थना सुनकर विश्वभावन भगवान्ने बड़ी प्रसन्नताके साथ कहा—'एवमस्तु' (ऐसा ही हो)। तबसे उन्होंने सातों द्वीपोंसहित पृथ्वीको अपनी पीठपर धारण किया। तदनन्तर महर्षियोंसहित देवता, गन्धर्व, दैत्य, दानव तथा मानव भगवान्की आज्ञा ले अपने-अपने लोकको चले गये। तबसे ब्रह्मा आदि देवता, सिद्ध, मनुष्य, योगी तथा मुनिश्रेष्ठ भगवान्की आज्ञा मानकर बड़ी भक्तिके साथ एकादशी तिथिको उपवास और द्वादशी तिथिको भगवान्का पूजन करने लगे।

नृसिंहावतार एवं प्रह्लादजीकी कथा

महादेवजी कहते हैं—पार्वती! दितिसे कश्यपजीके दो महाबली पुत्र हुए थे, जिनका नाम हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष था। वे दोनों महापराक्रमी और सम्पूर्ण दैत्योंके स्वामी थे। उनके दैत्य-योनिमें आनेका कारण इस प्रकार है। वे पूर्वजन्ममें जय-विजय नामक श्रीहरिके पार्षद थे और श्वेतद्वीपमें द्वारपालका काम करते थे। एक समय सनकादि योगीश्वर भगवान्का दर्शन करनेके लिये उत्सुक हो श्वेतद्वीपमें आये। महाबली जय-विजयने उन्हें बीचमें ही रोक दिया। इससे सनकादिने उन्हें शाप दे दिया—'द्वारपालो! तुम दोनों भगवान्के इस धामका परित्याग करके भूलोकमें चले जाओ।' इस प्रकार शाप देकर वे मुनीश्वर वहीं ठहर गये। भगवान्को यह बात मालूम हो गयी और उन्होंने सनकादि महात्माओं तथा दोनों द्वारपालोंको भी बुलाया। निकट आनेपर भूतभावन भगवान्ने जय-विजयसे कहा—'द्वारपालो! तुमलोगोंने महात्माओंका अपराध किया है। अत: तुम इस शापका उल्लंघन नहीं कर सकते। तुम यहाँसे जाकर या तो सात जन्मोंतक मेरे पापहीन भक्त होकर रहो या तीन जन्मोंतक मेरे प्रति शत्रुभाव रखते हुए समय व्यतीत करो।'

यह सुनकर जय-विजयने कहा—मानद! हम अधिक समयतक आपसे अलग पृथ्वीपर रहनेमें असमर्थ हैं। इसलिये केवल तीन जन्मोंतक ही शत्रुभाव धारण करके रहेंगे।

ऐसा कहकर वे दोनों महाबली द्वारपाल कश्यपके वीर्यसे दितिके गर्भमें आये और महापराक्रमी असुर होकर प्रकट हुए। उनमें बड़ेका नाम हिरण्यकशिपु था और छोटेका हिरण्याक्ष। वे दोनों सम्पूर्ण विश्वमें विख्यात हुए। उन्हें अपने बल और पराक्रमपर बड़ा अभिमान था। हिरण्याक्ष मदसे उन्मत्त रहता था। उसका शरीर कितना बड़ा था या हो सकता था—इसके लिये कोई निश्चित मापदण्ड नहीं था। उसने अपनी हजारों भुजाओंसे पर्वत, समुद्र, द्वीप और सम्पूर्ण प्राणियोंसहित इस पृथ्वीको उखाड़ लिया और सिरपर रखकर रसातलमें चला गया। यह देख सम्पूर्ण देवता भयसे पीड़ित हो हाहाकार करने लगे और रोग-शोकसे रहित भगवान् नारायणकी शरणमें गये। उस अद्भुत वृत्तान्तको जानकर विश्वरूपधारी जनार्दनने वाराहरूप धारण किया। उस समय उनकी बड़ी-बड़ी दाढ़ें और विशाल भुजाएँ थीं। उन परमेश्वरने अपनी एक दाढ़से उस दैत्यपर

आघात किया। इससे उसका विशाल शरीर कुचल गया और वह अधम दैत्य तुरंत ही मर गया। पृथ्वीको रसातलमें पड़ी देख भगवान् वाराहने उसे अपनी दाढ़पर उठा लिया और उसे पहलेकी भाँति शेषनागके ऊपर स्थापित करके स्वयं कच्छपरूपसे उसके आधार बन गये। वाराहरूपधारी महाविष्णुको वहाँ देखकर सम्पूर्ण देवता और मुनि भक्तिसे मस्तक झुकाकर उनकी स्तुति करने लगे। स्तुतिके पश्चात् उन्होंने गन्ध, पुष्प आदिसे श्रीहरिका पूजन किया। तब भगवान्ने उन सबको मनोवांछित वरदान दिया। इसके बाद वे महर्षियोंके मुखसे अपनी स्तुति सुनते हुए वहीं अन्तर्धान हो गये।

अपने भाई हिरण्याक्षको मारा गया जान महादैत्य हिरण्यकशिपु मेरुगिरिके पास जा मेरा ध्यान करते हुए तपस्या करने लगा। पार्वती! उस महाबली दैत्यने एक हजार दिव्य वर्षोंतक केवल वायु पीकर जीवन-निर्वाह किया और '**ॐ नमः शिवाय**' इस पंचाक्षर-मन्त्रका जप करते हुए वह सदा मेरा पूजन करता रहा। तब मैंने प्रसन्न होकर उस महान् असुरसे कहा—'दितिनन्दन! तुम्हारे मनमें जो इच्छा हो, उसके अनुसार वर माँगो।' तब वह मुझे प्रसन्न जानकर बोला—'भगवन्! देवता, असुर, मनुष्य, गन्धर्व, नाग, राक्षस, पशु, पक्षी, मृग, सिद्ध, महात्मा, यक्ष, विद्याधर और किन्नरोंसे, समस्त रोगोंसे, सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे तथा सम्पूर्ण महर्षियोंसे भी मेरी मृत्यु न हो सके—यह वरदान दीजिये।' 'एवमस्तु' कहकर मैंने उसे वरदान दे दिया। मुझसे महान् वर पाकर वह महाबली दैत्य इन्द्र और देवताओंको जीत करके तीनों लोकोंका सम्राट् बन बैठा। उसने बलपूर्वक समस्त यज्ञ-भागोंपर अधिकार जमा लिया। देवताओंको कोई रक्षक न मिला। वे उससे परास्त हो गये। गन्धर्व, देवता और दानव—सभी उसके किंकर हो गये। यक्ष, नाग और सिद्ध—सभी उसके अधीन रहने लगे। उस महाबली दैत्यराजने राजा उत्तानपादकी पुत्री कल्याणीके साथ विधिपूर्वक विवाह किया। उसके गर्भसे महातेजस्वी प्रह्लादका जन्म हुआ, जो आगे चलकर दैत्योंके राजा हुए। वे गर्भमें रहते समय भी सम्पूर्ण इन्द्रियोंके स्वामी श्रीहरिमें अनुराग रखते थे। सब अवस्थाओं और समस्त कार्योंमें मन, वाणी, शरीर और क्रियाद्वारा वे देवताओंके स्वामी सनातन भगवान् पद्मनाभके सिवा दूसरे किसीको नहीं जानते थे। उनकी बुद्धि बड़ी निर्मल थी। समयानुसार उपनयन-संस्कार हो जानेपर वे गुरुकुलमें अध्ययन करने लगे। सम्पूर्ण वेदों और नाना प्रकारके शास्त्रोंका अध्ययन करके वे प्रह्लाद किसी समय अपने गुरुके साथ घरपर आये। उन्होंने पिताके पास जाकर बड़ी विनयके साथ उनके चरणोंमें प्रणाम किया। हिरण्यकशिपुने उत्तम लक्षणोंसे युक्त पुत्रको चरणोंमें पड़ा देख भुजाओंसे उठाकर छातीसे लगा लिया और गोदमें बिठाकर कहा—'बेटा प्रह्लाद! तुमने दीर्घकालतक गुरुकुलमें निवास किया है। वहाँ गुरुजीने जो तुम्हें जाननेयोग्य तत्त्व बतलाया हो, वह मुझसे कहो।'

पिताके इस प्रकार पूछनेपर जन्मसे ही वैष्णव प्रह्लादने बड़ी प्रसन्नताके साथ पापनाशक वचन कहा—'पिताजी! जो सम्पूर्ण उपनिषदोंके प्रतिपाद्य तत्त्व, अन्तर्यामी पुरुष और ईश्वर हैं, उन सर्वव्यापी भगवान् विष्णुको नमस्कार करके मैं आपसे कुछ निवेदन करता हूँ।' प्रह्लादके मुखसे इस प्रकार विष्णुकी स्तुति सुनकर दैत्यराज हिरण्यकशिपुको बड़ा विस्मय हुआ। उसने कुपित होकर गुरुसे पूछा—'खोटी बुद्धिवाले ब्राह्मण! तूने मेरे पुत्रको क्या सिखा दिया। मेरा पुत्र और इस प्रकार विष्णुकी स्तुति करे—तूने ऐसी शिक्षा क्यों दी? यह मूर्खतापूर्ण न करनेयोग्य कार्य ब्राह्मणोंके ही योग्य है। ब्राह्मणाधम! मेरे शत्रुकी यह स्तुति, जो कदापि सुननेयोग्य नहीं है, आज मेरे ही आगे इस बालकने भी सुना दी। यह सब तेरा ही प्रसाद है।' इतना कहते-कहते दैत्यराज हिरण्यकशिपु क्रोधके मारे अपनी सुध-बुध खो बैठा और चारों ओर देखकर दैत्योंसे बोला—'अरे! इस ब्राह्मणको मार डालो।' आज्ञा पाते ही क्रोधमें भरे हुए राक्षस आ पहुँचे और उन श्रेष्ठ ब्राह्मणके गलेमें रस्सी लगाकर उन्हें बाँधने लगे। ब्राह्मणोंके प्रेमी प्रह्लाद अपने गुरुको बँधते देख पितासे बोले—'तात! यह गुरुजीने नहीं सिखाया है। मुझे तो देवाधिदेव भगवान् विष्णुकी ही कृपासे ऐसी शिक्षा मिली है। दूसरा कोई गुरु मुझे उपदेश नहीं देता। मेरे लिये तो श्रीहरि ही प्रेरक हैं। सुनने, मनन करने, बोलने तथा देखनेवाले सर्वव्यापी

ईश्वर केवल श्रीविष्णु ही हैं। वे ही अविनाशी कर्ता हैं और वे ही सब प्राणियोंपर नियन्त्रण करनेवाले हैं। अत: प्रभो! मेरे गुरु इन ब्राह्मणदेवताका कोई अपराध नहीं है। इन्हें बन्धनसे मुक्त कर देना चाहिये।'

पुत्रकी यह बात सुनकर हिरण्यकशिपुने ब्राह्मणका बन्धन खुलवा दिया और स्वयं बड़े विस्मयमें पड़कर प्रह्लादसे कहा—'बेटा! तुम ब्राह्मणोंके झूठे बहकावेमें आकर क्यों भ्रममें पड़ रहे हो? कौन विष्णु है? कैसा उसका रूप है और कहाँ वह निवास करता है? संसारमें मैं ही ईश्वर हूँ। मैं ही तीनों लोकोंका स्वामी माना गया हूँ। विष्णु तो हमारे कुलका शत्रु है। उसे छोड़ो और मेरी ही पूजा करो अथवा लोकगुरु भगवान् शंकरकी आराधना करो, जो देवताओंके अध्यक्ष, सम्पूर्ण ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले और परम कल्याणमय हैं। ललाटमें भस्मसे त्रिपुण्ड्र धारण करके पाशुपत-मार्गसे दैत्यपूजित महादेवजीकी पूजामें संलग्न रहो।'

पुरोहितोंने कहा—ठीक ऐसी ही बात है। महाभाग! प्रह्लाद! तुम पिताकी बात मानो। अपने कुलके शत्रु विष्णुको छोड़ो और त्रिनेत्रधारी महादेवजीकी पूजा करो। महादेवजीसे बढ़कर सब कुछ देनेवाला दूसरा कोई देवता नहीं है। उन्हींकी कृपासे आज तुम्हारे पिता भी ईश्वरपदपर प्रतिष्ठित हैं।

प्रह्लाद बोले—अहो! भगवान्की कैसी महिमा है, जिनकी मायासे सारा जगत् मोहित हो रहा है! कितने आश्चर्यकी बात है कि वेदान्तके विद्वान् और सब लोकोंमें पूजित ब्राह्मण भी मदोन्मत्त होकर चपलतावश ऐसी बातें कहते हैं। मेरा तो दृढ़ विश्वास है कि नारायण ही परब्रह्म हैं। नारायण ही परमतत्त्व हैं, नारायण ही सर्वश्रेष्ठ ध्याता और नारायण ही सर्वोत्तम ध्यान हैं। सम्पूर्ण जगत्की गति भी वे ही हैं। वे सनातन, शिव, अच्युत, जगत्के धाता, विधाता और नित्य वासुदेव हैं। परम पुरुष नारायण ही यह सम्पूर्ण विश्व हैं और वे ही इस विश्वको जीवन प्रदान करते हैं। उनका श्रीअंग सुवर्णके समान कान्तिमान् है। वे नित्य देवता हैं। उनके नेत्र कमलके समान हैं। वे श्री, भू और लीला—इन तीनों देवियोंके स्वामी हैं। उनकी आकृति सुन्दर और सौम्य है तथा अन्त:करण अत्यन्त निर्मल है। उन्होंने ही सम्पूर्ण देवताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्मा और महादेवजीको उत्पन्न किया है। ब्रह्मा और महादेवजी उन्हींके आज्ञानुसार चलते हैं। उन्हींके भयसे वायु सदा गतिशील रहती है। उन्हींके डरसे सूर्यदेव ठीक समयपर उदित होते हैं और उन्हींके भयसे अग्नि, इन्द्र तथा मृत्यु देवता सदा दौड़ लगाते रहते हैं। सृष्टिके आदिमें एकमात्र नित्य देवता भगवान् नारायण ही थे। उस समय न ब्रह्मा थे और न महादेवजी, न चन्द्रमा थे न सूर्य, न आकाश था न पृथ्वी। नक्षत्र और देवता भी उस समय प्रकट नहीं हुए थे। विद्वान् पुरुष सदा ही भगवान् विष्णुके उस परमधामका साक्षात्कार करते हैं। परम योगी महात्मा सनकादि भी जिन भगवान् विष्णुका ध्यान करते हैं, ब्रह्मा, शिव तथा इन्द्र आदि देवता भी जिनकी आराधनामें लगे रहते हैं, जिनकी पत्नी भगवती लक्ष्मीकी कृपा-कटाक्षपूर्ण आधी दृष्टि पड़नेपर ही ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, वरुण, यम, चन्द्रमा और कुबेर आदि देवता हर्षसे फूल उठते हैं, जिनके नामोंका स्मरण करनेमात्रसे पापियोंकी भी तत्काल मुक्ति हो जाती है, वे भगवान् लक्ष्मीपति ही देवताओंकी भी सदा रक्षा करते हैं। मैं लक्ष्मीसहित उन परमेश्वरका ही सदा पूजन करूँगा तथा अनायास ही श्रीविष्णुके उस परम पदको प्राप्त कर लूँगा।

प्रह्लादकी ये बातें सुनकर हिरण्यकशिपु अत्यन्त क्रोधमें भरकर द्वितीय अग्निकी भाँति जल उठा और चारों ओर देखकर दैत्योंसे बोला—'अरे! यह प्रह्लाद बड़ा पापी है। यह शत्रुकी पूजामें लगा है। मैं आज्ञा देता हूँ—इसे भयंकर शस्त्रोंसे मार डालो। जिसके बलपर यह 'श्रीहरि ही रक्षक हैं' ऐसा कहता है, उसे आज ही देखना है। उस हरिका रक्षा-कार्य कितना सफल है—यह अभी मालूम हो जायगा।'

दैत्यराजकी यह आज्ञा पाते ही दैत्य हथियार उठाकर महात्मा प्रह्लादको मार डालनेके लिये उन्हें चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये। इधर प्रह्लाद भी अपने हृदय-कमलमें श्रीविष्णुका ध्यान करते हुए अष्टाक्षर-मन्त्रका जप करने लगे और दूसरे पर्वतकी भाँति अविचलभावसे खड़े रहे। दैत्यवीर चारों ओरसे उनके ऊपर शूल, तोमर और शक्तियोंसे प्रहार करने लगे, परन्तु श्रीहरिका स्मरण करनेके कारण प्रह्लादका शरीर

उस समय भगवान्‌के प्रभावसे दुर्धर्ष वज्रके समान हो गया। देवद्रोहियोंके बड़े-बड़े अस्त्र-शस्त्र प्रह्लादके शरीरसे टकराकर टूट जाते और कमलके पत्तोंके समान छिन्न-भिन्न होकर पृथ्वीपर गिर जाते थे। दैत्य उनके अंगमें छोटा-सा भी घाव करनेमें समर्थ न हो सके। तब विस्मयसे नीचा मुँह किये वे सभी योद्धा दैत्यराजके पास जा चुपचाप खड़े हो गये। अपने महात्मा पुत्रको इस प्रकार तनिक भी चोट पहुँचती न देख दैत्यराज हिरण्यकशिपुको बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने क्रोधसे व्याकुल होकर वासुकि आदि बड़े-बड़े विषैले और भयंकर सर्पोंको आज्ञा दी कि 'इस प्रह्लादको काट खाओ।'

राजाका यह आदेश पाकर अत्यन्त भयंकर और महाबली नाग, जिनके मुखोंसे आगकी लपटें निकल रही थीं, प्रह्लादको काट खानेकी चेष्टा करने लगे; किन्तु उनके शरीरमें दाँत लगाते ही वे सर्प विषोंसे हाथ धो बैठे। उनके दाँत भी टूट गये तथा हजारों गरुड़ प्रकट होकर उनके शरीरको छिन्न-भिन्न करने लगे। इससे व्याकुल होकर मुखसे रक्त वमन करते हुए सभी सर्प इधर-उधर भाग गये। बड़े-बड़े सर्पोंकी ऐसी दुर्दशा देख दैत्यराजका क्रोध और भी बढ़ गया। अब उसने मतवाले दिग्गजोंको प्रह्लादपर आक्रमण करनेकी आज्ञा दी। राजाज्ञासे प्रेरित होकर मदोन्मत्त दिग्गज प्रह्लादको चारों ओरसे घेरकर अपने विशाल और मोटे दाँतोंसे उनपर प्रहार करने लगे किन्तु उनके शरीरसे टक्कर लेते ही दिग्गजोंके दाँत जड़-मूलसहित टूटकर पृथ्वीपर गिर पड़े। अब वे बिना दाँतोंके हो गये। इससे उन्हें बड़ी पीड़ा हुई और वे सब ओर भाग गये। बड़े-बड़े गजराजोंको इस प्रकार भागते देख दैत्यराजके क्रोधकी सीमा न रही। उसने बहुत बड़ी चिता जलाकर उसमें अपने बेटेको डाल दिया। जलमें शयन करनेवाले भगवान् विष्णुके प्रियतम प्रह्लादको धीरभावसे बैठे देख भयंकर लपटोंवाले अग्निदेवने उन्हें नहीं जलाया। उनकी ज्वाला शान्त हो गयी। अपने बालकको आगमें भी जलते न देख दैत्यपतिके आश्चर्यकी सीमा न रही। उसने पुत्रको अत्यन्त भयंकर विष दे दिया, जो सब प्राणियोंके प्राण हर लेनेवाला था किन्तु भगवान् विष्णुके प्रभावसे प्रह्लादके लिये विष भी अमृत हो गया। भगवान्‌को अर्पण करके उनके अमृतस्वरूप प्रसादको ही वे खाया करते थे। इस प्रकार राजा हिरण्यकशिपुने अपने पुत्रके वधके लिये बड़े भयंकर और निर्दयतापूर्ण उपाय किये; किन्तु प्रह्लादको सर्वथा अवध्य देखकर वह विस्मयसे व्याकुल हो उठा और बोला।

हिरण्यकशिपुने कहा—प्रह्लाद! तुमने मेरे सामने विष्णुकी श्रेष्ठताका भलीभाँति वर्णन किया है। वे सब भूतोंमें व्यापक होनेके कारण विष्णु कहलाते हैं। जो सर्वव्यापी देवता हैं, वे ही परमेश्वर हैं। अतः तुम मुझे विष्णुकी सर्वव्यापकताको प्रत्यक्ष दिखाओ। उनके ऐश्वर्य, शक्ति, तेज, ज्ञान, वीर्य, बल, उत्तम रूप, गुण और विभूतियोंको अच्छी तरह देख लूँ; तब मैं विष्णुको देवता मान सकता हूँ। इस समय संसारमें तथा देवताओंमें भी मेरे बलकी समानता करनेवाला कोई भी नहीं है। भगवान् शंकरके वरदानसे मैं सब प्राणियोंके लिये अवध्य हो गया हूँ। मुझे परास्त करना किसी भी प्राणीके लिये कठिन है। यदि विष्णु मुझे अपने बल और पराक्रमसे जीत लें तो ईश्वरका पद प्राप्त कर सकते हैं।

पिताकी यह बात सुनकर प्रह्लादको बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने दैत्यराजके सामने श्रीहरिके प्रभावका वर्णन करते हुए कहा—'पिताजी! योगी पुरुष भक्तिके बलसे उनका सर्वत्र दर्शन करते हैं। भक्तिके बिना वे कहीं भी दिखायी नहीं देते। रोष और मत्सर आदिके द्वारा श्रीहरिका दर्शन होना असम्भव है। देवता, पशु, पक्षी, मनुष्य तथा स्थावर समस्त छोटे-बड़े प्राणियोंमें वे व्याप्त हो रहे हैं।'

प्रह्लादके ये वचन सुनकर दैत्यराज हिरण्यकशिपुने क्रोधसे लाल-लाल आँखें करके उन्हें डाँटते हुए कहा—'यदि विष्णु सर्वव्यापी और परम पुरुष है तो इस विषयमें अधिक प्रलाप करनेकी आवश्यकता नहीं है। इसपर विश्वास करनेके लिये कोई प्रत्यक्ष प्रमाण उपस्थित करो।' ऐसा कहकर दैत्यने सहसा अपने महलके खंभेको हाथसे ठोंका और प्रह्लादसे फिर कहा—'यदि विष्णु सर्वत्र व्यापक है तो उसे तुम इस खंभेमें दिखाओ। अन्यथा झूठी बातें बनानेके कारण तुम्हारा वध कर डालूँगा।'

यों कहकर दैत्यराजने सहसा तलवार खींच ली

और क्रोधपूर्वक प्रह्लादको मार डालनेके लिये उनकी छातीपर प्रहार करना चाहा। उसी समय खंभेके भीतरसे बड़े जोरकी आवाज सुनायी पड़ी, मानो वज्रकी गर्जनाके साथ आसमान फट पड़ा हो। उस महान् शब्दसे दैत्योंके कान बहरे हो गये। वे जड़से कटे हुए वृक्षोंकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़े। उनपर आतंक छा गया। उन्हें ऐसा जान पड़ा, मानो अभी तीनों लोकोंका प्रलय हो जायगा। तदनन्तर उस खंभेसे महान् तेजस्वी श्रीहरि विशालकाय सिंहकी आकृति धारण किये निकले। निकलते ही उन्होंने प्रलयकालीन मेघोंके समान महाभयंकर गर्जना की। वे अनेक कोटि सूर्य और अग्नियोंके समान तेजसे सम्पन्न थे। उनका मुँह तो सिंहके समान था और शरीर मनुष्यके समान। दाढ़ोंके कारण मुख बड़ा विकराल दिखायी देता था। लपलपाती हुई जीभ उनके उद्धत-भावकी सूचना दे रही थी। उनके बालोंसे आगकी लपटें निकल रही थीं। क्रोधसे जलती हुई अँगारे-जैसी लाल-लाल आँखें अलातचक्रके समान घूम रही थीं। हजारों बड़ी-बड़ी भुजाओंमें सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लिये भगवान् नरसिंह अनेक शाखावाले वृक्षोंसे युक्त मेरुपर्वतके समान जान पड़ते थे। उनके अंगोंमें दिव्य मालाएँ, दिव्य वस्त्र और दिव्य आभूषण शोभा पाते थे। भगवान् नरसिंह सम्पूर्ण दानवोंका संहार करनेके लिये वहाँ खड़े हुए। भयानक आकृतिवाले महाबली नरसिंहको उपस्थित देख दैत्यराज हिरण्यकशिपुकी आँखोंकी बरौनियाँ जल उठीं। उसका सारा शरीर व्याकुल हो गया और वह अपनेको सँभाल न सकनेके कारण पृथ्वीपर गिर पड़ा।

उस समय प्रह्लादने भगवान् जनार्दनको नरसिंहकी आकृतिमें उपस्थित देख जय-जयकार करते हुए उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया और उन महात्माके अद्भुत अंगोंपर दृष्टिपात किया। उनकी गर्दनके बालोंमें कितने ही लोक, समुद्र, द्वीप, देवता, गन्धर्व, मनुष्य और हजारों अण्डज प्राणी दिखायी देते थे। दोनों नेत्रोंमें सूर्य और चन्द्रमा आदि तथा कानोंमें अश्विनीकुमार और सम्पूर्ण दिशा एवं विदिशाएँ थीं। ललाटमें ब्रह्मा और महादेव, नासिकामें आकाश और वायु, मुखके भीतर इन्द्र और अग्नि, जिह्वामें सरस्वती, दाढ़ोंपर सिंह, व्याघ्र, शरभ और बड़े-बड़े साँपोंका दर्शन होता था। कण्ठमें मेरुगिरि, कंधोंमें महान् पर्वत, भुजाओंमें देवता, मनुष्य और पशु-पक्षी, नाभिमें अन्तरिक्ष और दोनों पैरोंमें पृथ्वी थी। रोमावलियोंमें ओषधियाँ, नखोंमें सम्पूर्ण विश्व और निःश्वासोंमें सांगोपांग वेद थे। उनके सम्पूर्ण अंगोंमें आदित्य, वसु, रुद्र, विश्वेदेव, मरुद्गण, गन्धर्व तथा अप्सराएँ दृष्टिगोचर होती थीं। इस प्रकार उन परमात्माकी विभूतियाँ दिखायी दे रही थीं। उनका वक्षःस्थल श्रीवत्सचिह्न, कौस्तुभमणि और वनमालासे विभूषित था। वे शंख, चक्र, गदा, खड्ग और शार्ङ्गधनुष आदि अस्त्र-शस्त्रोंसे सम्पन्न थे। सम्पूर्ण उपनिषदोंके अर्थभूत भगवान् श्रीविष्णुको उपस्थित देख दैत्य-राजकुमार प्रह्लादके नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बह चले। उनका सर्वांग अश्रुजलसे अभिषिक्त होने लगा और वे बारंबार श्रीहरिके चरणोंमें प्रणाम करने लगे।

दैत्यराज हिरण्यकशिपु सिंहको सामने आया देख क्रोधवश युद्धके लिये तैयार हो गया। वह मृत्युके अधीन हो रहा था। इसलिये हाथमें तलवार लेकर भगवान् नृसिंहकी ओर दौड़ा। इसी बीचमें महाबली दैत्य भी होशमें आ गये और वे अपने-अपने आयुध लेकर बड़ी उतावलीके साथ श्रीहरिपर प्रहार करने लगे। दैत्योंकी उस सेनाको देखकर भगवान् नरसिंहने अपनी अयालसे निकलती हुई लपटोंके द्वारा उसे जलाकर भस्म कर दिया। समस्त दानव उनकी जटाकी आगसे जलकर राखकी ढेर हो गये। प्रह्लाद और उनके अनुचरोंको छोड़कर दैत्यसेनामें कोई भी नहीं बचा। यह देख दैत्यराजने क्रोधमें भरकर तलवार खींच ली और भगवान् नरसिंहपर धावा किया; किन्तु भगवान्ने एक ही हाथसे तलवारसहित दैत्यराजको पकड़ लिया और जैसे आँधी वृक्षकी शाखाको गिरा देती है, उसी प्रकार उसे पृथ्वीपर दे मारा। पृथ्वीपर पड़े हुए उस विशालकाय दैत्यको भगवान् नरसिंहने फिर पकड़ा और अपनी गोदमें रखकर उसके मुखकी ओर दृष्टिपात किया। उसमें श्रीविष्णुकी निन्दा तथा वैष्णवभक्तसे द्वेष करनेका जो पाप था, वह भगवान्के स्पर्शमात्रसे ही जलकर भस्म हो गया। तत्पश्चात् भगवान् नृसिंहने दैत्यराजके उस विशाल शरीरको वज्रके समान कठोर और तीखे नखोंसे विदीर्ण कर डाला। इससे दैत्यराजका अन्तःकरण

निर्मल हो गया। उसने साक्षात् भगवान्‌का मुख देखते हुए प्राणोंका परित्याग किया। इसलिये वह कृतकृत्य हो गया। महान् नृसिंहरूपधारी श्रीहरिने अपने तीखे नखोंसे उसकी देहके सैकड़ों टुकड़े करके उसकी लंबी आँतें बाहर निकाल लीं और उन्हें अपने गलेमें डाल लिया।

तदनन्तर, सम्पूर्ण देवता और तपस्वी मुनि ब्रह्मा तथा महादेवजीको आगे करके धीरे-धीरे भगवान्‌की स्तुति करनेके लिये आये। उस समय सब ओर मुखवाले भगवान् नृसिंह क्रोधाग्निसे प्रज्वलित हो रहे थे। इसलिये सब देवता और मुनि भयभीत हो गये। उन्होंने भगवान्‌को प्रसन्न करनेके लिये जगन्माता भगवती लक्ष्मीका चिन्तन किया, जो सबका धारण-पोषण करनेवाली, सबकी अधीश्वरी, सुवर्णमय कान्तिसे सुशोभित होनेवाली तथा सब प्रकारके उपद्रवोंका नाश करनेवाली हैं। उन्होंने भक्तिपूर्वक देवीसूक्तका जप करते हुए श्रीविष्णुकी शक्ति अनिन्द्य सुन्दरी नारायणीको नमस्कार किया। देवताओंके स्मरण करनेपर सनातन देवता भगवती लक्ष्मी वहाँ प्रकट हुईं। देवाधिदेव श्रीविष्णुकी वल्लभा महालक्ष्मीका दर्शन करके सम्पूर्ण देवता बहुत प्रसन्न हुए और हाथ जोड़कर बोले— 'देवि! अपने प्रियतमको प्रसन्न करो। तुम्हारे स्वामी जिस प्रकार भी तीनों लोकोंको अभय दान दें, वही उपाय करो।'

देवताओंके ऐसा कहनेपर भगवती लक्ष्मी सहसा अपने प्रियतम भगवान् जनार्दनके पास गयीं और चरणोंमें पड़कर नमस्कार करके बोलीं—'प्राणनाथ! प्रसन्न होइये।' अपनी प्यारी महारानीको उपस्थित देख सर्वेश्वर श्रीहरिने राक्षस-शरीरके प्रति उत्पन्न क्रोधको तत्काल त्याग दिया और कृपारूपी अमृतसे सरस दृष्टिके द्वारा देखा। उस समय उनके कृपापूर्ण दृष्टिपातसे संतुष्ट होकर जय-जयकार करते हुए उच्च-स्वरसे स्तुति और नमस्कार करनेवाले लोगोंमें आनन्द और उल्लास छा गया। तत्पश्चात् सम्पूर्ण देवता हर्षमग्न हो जगदीश्वर श्रीविष्णुको नमस्कार करके हाथ जोड़कर बोले—'भगवन्! अनेक भुजाओं और चरणोंसे युक्त आपके इस अद्‌भुत रूप और तीनों लोकोंमें व्याप्त दु:सह तेजकी ओर देखने और आपके समीप ठहरनेमें हम सभी देवता असमर्थ हो रहे हैं।'

देवताओंके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर देवेश्वर श्रीविष्णुने उस अत्यन्त भयानक तेजको समेट लिया और सुखपूर्वक दर्शन करनेयोग्य हो गये। उस समय उनका प्रकाश शरत्कालके करोड़ों चन्द्रमाओंके समान प्रतीत होता था। कमलके समान विशाल नेत्र शोभा पा रहे थे। जटापुंजसे सुधाकी वृष्टि हो रही थी। उसमें इतनी चमक थी, मानो करोड़ों चपलाएँ चमक रही हों। नाना प्रकारके रत्ननिर्मित दिव्य केयूर और कड़ोंसे विभूषित भुजाओंद्वारा वे ऐसे जान पड़ते थे मानो शाखा और फलोंसे युक्त कल्पवृक्ष सुशोभित हो। कोमल, दिव्य तथा जपाकुसुमके समान लाल रंगवाले चार हाथोंसे परमेश्वर श्रीहरिकी बड़ी शोभा हो रही थी। उनकी ऊपरवाली दो भुजाओंमें शंख और चक्र थे तथा शेष दो हाथोंमें वरदान और अभयकी मुद्राएँ शोभा पाती थीं। भगवान्‌का वक्ष:स्थल श्रीवत्सचिह्न, कौस्तुभमणि तथा वनमालासे विभूषित था। कानोंमें उदयकालीन दिनकरकी-सी दीप्तिवाले दो कुण्डल जगमगा रहे थे। हार, केयूर और कड़े आदि आभूषण भिन्न-भिन्न अंगोंकी सुषमा बढ़ा रहे थे। वामांगमें भगवती लक्ष्मीजीको साथ ले भगवान् नृसिंह बड़ी शोभा पाने लगे।

उस समय लक्ष्मी और नृसिंहको एक साथ देख देवता और महर्षि मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए। उनके नेत्रोंसे आनन्दाश्रुकी धारा बह चली, जिससे उनका शरीर भीगने लगा। वे आनन्दसमुद्रमें निमग्न होकर बारंबार भगवान्‌को नमस्कार करने लगे। उन्होंने अमृतसे भरे हुए रत्नमय कलशोंद्वारा सनातन भगवान्‌का अभिषेक करके वस्त्र, आभूषण, गन्ध, दिव्य पुष्प तथा मनोरम धूप अर्पण करके उनका पूजन किया और दिव्य स्तोत्रोंसे स्तुति करके बार-बार उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया। इससे प्रसन्न होकर भगवान् लक्ष्मीपतिने उन देवताओंको मनोवांछित वरदान दिया। तत्पश्चात् सबके स्वामी भक्तवत्सल श्रीहरिने देवताओंको साथ ले प्रह्लादको सब दैत्योंका राजा बनाया। प्रह्लादको आश्वासन दे देवताओंद्वारा उनका अभिषेक कराकर उन्हें अभीष्ट वरदान और अनन्यभक्ति प्रदान की। इसके बाद भगवान्‌के ऊपर फूलोंकी वर्षा हुई और वे देवगणोंसे अपनी स्तुति सुनते हुए वहीं अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर

सब देवता अपने-अपने स्थानको चले गये और प्रसन्नतापूर्वक यज्ञभागका उपभोग करने लगे। तबसे उनका आतंक दूर हो गया। उस महादैत्यके मारे जानेसे सबको बड़ा हर्ष हुआ। तदनन्तर विष्णुभक्त प्रह्लाद धर्मपूर्वक राज्य करने लगे। वह उत्तम राज्य उन्हें भगवान्‌के प्रसादसे ही उपलब्ध हुआ था। उन्होंने अनेक यज्ञ-दान आदिके द्वारा नरसिंहजीका पूजन किया और समय आनेपर वे श्रीहरिके सनातन धामको प्राप्त हुए। जो प्रतिदिन इस प्रह्लाद-चरित्रको सुनते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त हो परम गतिको प्राप्त होते हैं। पार्वती! इस प्रकार मैंने तुम्हें श्रीहरिके नृसिंहावतारका वैभव बतलाया है। अब शेष अवतारोंके वैभवका क्रमशः वर्णन सुनो।

वामन-अवतारके वैभवका वर्णन

श्रीमहादेवजी कहते हैं—पार्वती! प्रह्लादके विरोचन नामक पुत्र हुआ। विरोचनसे महाबाहु बलिका जन्म हुआ। बलि धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ, सत्यप्रतिज्ञ, जितेन्द्रिय, नित्य धर्मपरायण, पवित्र और श्रीहरिके प्रियतम भक्त थे। वे महान् बलवान् थे। उन्होंने इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओं और मरुद्‌गणोंको जीतकर तीनों लोकोंको अपने अधीन कर लिया था। इस प्रकार वे समस्त त्रिलोकीका राज्य करते थे। उनके शासनकालमें पृथ्वी बिना जोते ही पके धान पैदा करती थी और खेतीमें बहुत अधिक अन्नकी उपज होती थी। सभी गौएँ पूरा दूध देतीं और सम्पूर्ण वृक्ष फल-फूलोंसे लदे रहते थे। सब मनुष्य पापोंसे दूर हो अपने-अपने धर्ममें लगे रहते थे। किसीको किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं थी। सब लोग सदा भगवान् हृषीकेशकी पूजा किया करते थे। इस प्रकार दैत्यराज बलि धर्मपूर्वक राज्यका पालन करने लगे। इन्द्र आदि देवता दासभावसे उनकी सेवामें खड़े रहते थे। बलिको अपने बलका अभिमान था। वे तीनों लोकोंका ऐश्वर्य भोग रहे थे।

इधर महर्षि कश्यप अपने पुत्र इन्द्रको राज्यसे वंचित देख उनके हितकी इच्छासे श्रीहरिको प्रसन्न करनेके लिये पत्नीसहित तपस्या करने लगे। धर्मात्मा कश्यपने अपनी भार्या अदितिके साथ पयोव्रतका अनुष्ठान किया और उसमें देवताओंके स्वामी भगवान् जनार्दनका पूजन किया। उसके बाद भी एक सहस्र वर्षोंतक वे श्रीहरिकी आराधनामें संलग्न रहे। तब सनातन देवता भगवान् विष्णु भगवती लक्ष्मीके साथ उनके सामने प्रकट हुए। जगदीश्वर श्रीहरिको सामने देख द्विजश्रेष्ठ कश्यपका हृदय आनन्दमें मग्न हो गया। उन्होंने अदितिके साथ प्रणाम करके भगवान्‌की स्तुति की।

तब भगवान् बोले—विप्रवर! तुम्हारा कल्याण हो। तुमने भक्तिपूर्वक मेरी पूजा की है। इससे मैं बहुत सन्तुष्ट हूँ। तुम कोई वर माँगो। मैं तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करूँगा।

कश्यपजीने कहा—देवेश्वर! दैत्यराज बलिने तीनों लोकोंको बलपूर्वक जीत लिया है। आप मेरे पुत्र होकर देवताओंका हित कीजिये। जिस किसी उपायसे भी मायापूर्वक बलिको परास्त करके मेरे पुत्र इन्द्रको त्रिलोकीका राज्य प्रदान कीजिये।

कश्यपजीके ऐसा कहनेपर भगवान् विष्णुने 'तथास्तु' कहकर उनकी प्रार्थना स्वीकार की और देवताओंके मुखसे अपनी स्तुति सुनते हुए वे वहीं अन्तर्धान हो गये। इसी समय महात्मा कश्यपके संयोगसे देवी अदितिके गर्भमें भूतभावन भगवान्‌का शुभागमन हुआ। तदनन्तर एक हजार वर्ष बीतनेके बाद अदितिने वामनरूपधारी भगवान् विष्णुको जन्म दिया। वे ब्रह्मचारीका वेष धारण किये हुए थे। सम्पूर्ण वेदांगोंमें उन्हींका तत्त्व दृष्टिगोचर होता है। वे मेखला, मृगचर्म और दण्ड आदि चिह्नोंसे उपलक्षित हो रहे थे। इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता उनका दर्शन करके महर्षियोंके साथ उनकी स्तुति करने लगे। तब भगवान्‌ने प्रसन्न होकर उन श्रेष्ठ देवताओंसे कहा—'देवगण! बताइये, इस समय मुझे क्या करना है?'

देवता बोले—मधुसूदन! इस समय राजा बलिका यज्ञ हो रहा है। अतः ऐसे अवसरपर वह कुछ देनेसे इनकार नहीं कर सकता। प्रभो! आप दैत्यराजसे तीनों लोक माँगकर इन्द्रको देनेकी कृपा करें।

देवताओंके ऐसा कहनेपर भगवान् वामन यज्ञ-शालामें महर्षियोंके साथ बैठे हुए राजा बलिके पास आये। ब्रह्मचारीको आया देख दैत्यराज सहसा उठकर

खड़े हो गये और मुसकराते हुए बोले—'अभ्यागत सदा विष्णुका ही स्वरूप है। अतः आप साक्षात् विष्णु ही यहाँ पधारे हैं।' ऐसा कहकर उन्होंने ब्रह्मचारीको फूलोंके आसनपर बिठाकर उनका विधिपूर्वक पूजन किया और चरणोंमें गिरकर प्रणाम करके गद्गद वाणीमें कहा—'विप्रवर! आपका पूजन करके आज मैं धन्य और कृतार्थ हो गया। मेरा जीवन सफल है। कहिये मैं आपका कौन-सा प्रिय कार्य करूँ? द्विजश्रेष्ठ! आप जिस वस्तुको पानेके उद्देश्यसे मेरे पास पधारे हैं, उसे शीघ्र बताइये। मैं अवश्य दूँगा।'

वामनजी बोले—महाराज! मुझे तीन पग भूमि दे दीजिये; क्योंकि भूमिदान सब दानोंमें श्रेष्ठ है। जो भूमिका दान करता और जो उस दानको ग्रहण करता है, वे दोनों ही पुण्यात्मा हैं। वे दोनों अवश्य ही स्वर्गगामी होते हैं। अतः आप मुझे तीन पग भूमिका दान कीजिये।

यह सुनकर राजा बलिने प्रसन्नतापूर्वक कहा—'बहुत अच्छा।' तत्पश्चात् उन्होंने विधिपूर्वक भूमिदानका विचार किया। दैत्यराजको ऐसा करते देख उनके पुरोहित शुक्राचार्यजी बोले—'राजन्! ये साक्षात् परमेश्वर विष्णु हैं। देवताओंकी प्रार्थनासे यहाँ पधारे हैं और तुम्हें चकमेमें डालकर सारी पृथ्वी हड़प लेना चाहते हैं। अतः इन महात्माको पृथ्वीका दान न देना। मेरे कहनेसे कोई और ही वस्तु इन्हें दान करो, भूमि न दो।'

यह सुनकर राजा बलि हँस पड़े और धैर्यपूर्वक गुरुसे बोले—'ब्रह्मन्! मैंने सारा पुण्य भगवान् वासुदेवकी प्रसन्नताके ही लिये किया है। अतः यदि स्वयं विष्णु ही यहाँ पधारे हैं, तब तो आज मैं धन्य हो गया। उनके लिये तो आज मुझे यह परम सुखमय जीवनतक दे डालनेमें संकोच न होगा। अतः इन ब्राह्मणदेवताको आज मैं तीनों लोकोंका भी निश्चय ही दान कर दूँगा।' ऐसा कहकर राजा बलिने बड़ी भक्तिके साथ ब्राह्मणके दोनों चरण पखारे और हाथमें जल लेकर विधिपूर्वक भूमिदानका संकल्प किया। दान दे, नमस्कार करके दक्षिणारूपसे धन दिया और प्रसन्न होकर कहा 'ब्रह्मन्! आज आपको भूमिदान देकर मैं अपनेको धन्य और कृतकृत्य मानता हूँ। आप अपने इच्छानुसार इस पृथ्वीको ग्रहण कीजिये।'

तब भगवान् विष्णुने दैत्यराज बलिसे कहा—'राजन्! मैं तुम्हारे सामने ही अब पृथ्वीको नापता हूँ।' ऐसा कहकर परमेश्वरने वामन ब्रह्मचारीका रूप त्याग दिया और विराट् रूप धारण करके इस पृथ्वीको ले लिया। समुद्र, पर्वत, द्वीप, देवता, असुर और मनुष्योंसहित इस पृथ्वीका विस्तार पचास कोटि योजन है। किन्तु उसे भगवान् मधुसूदनने एक ही पैरसे नाप लिया। फिर दैत्यराजसे कहा—'राजन्! अब क्या करूँ?' भगवान्का वह विराट् रूप महान् तेजस्वी था और महात्मा ऋषियों तथा देवताओंके हितके लिये प्रकट हुआ था। मैं तथा ब्रह्माजी भी उसे नहीं देख सकते थे। भगवान्का वह पग सारी पृथ्वीको लाँघकर सौ योजनतक आगे बढ़ गया। उस समय सनातन भगवान्ने दैत्यराज बलिको दिव्यचक्षु प्रदान किया और उन्हें अपने स्वरूपका दर्शन कराया। भगवान्के विश्वरूपका दर्शन करके दैत्यराज बलिके हर्षकी सीमा न रही। उनके नेत्रोंमें आनन्दके आँसू छलक आये। उन्होंने भगवान्को नमस्कार करके स्तोत्रोंद्वारा उनकी स्तुति की और प्रसन्नचित्तसे गद्गद वाणीमें कहा—'परमेश्वर! आपका दर्शन करके मैं धन्य और कृतकृत्य हो गया। आप इन तीनों ही लोकोंको ग्रहण कीजिये।'

तब सर्वेश्वर विष्णुने अपने द्वितीय पगको ऊपरकी ओर फैलाया। वह नक्षत्र, ग्रह और देवलोकको लाँघता हुआ ब्रह्मलोकके अन्ततक पहुँच गया; किन्तु फिर भी पूरा न पड़ा। उस समय पितामह ब्रह्माने देवाधिदेव भगवान्के चक्र-कमलादि चिह्नोंसे अंकित चरणको देख हर्षयुक्त चित्तसे अपनेको धन्य माना और अपने कमण्डलुके जलसे भक्तिपूर्वक उस चरणको धोया। श्रीविष्णुके प्रभावसे वह चरणोदक अक्षय हो गया। वह तीर्थभूत निर्मल जल मेरुपर्वतके शिखरपर गिरा और जगत्को पवित्र करनेके लिये चारों दिशाओंमें बह चला। वे चारों धाराएँ क्रमशः सीता, अलकनन्दा, चक्षु और भद्राके नामसे प्रसिद्ध हुईं। मेरुके दक्षिण ओर जो धारा चली, उसका नाम अलकनन्दा हुआ। वह तीन धाराओंमें विभक्त होनेके कारण त्रिपथगा और त्रिस्रोता कहलायी। वह लोकपावनी गंगा तीन नामोंसे प्रसिद्ध हुई। ऊपर—स्वर्गलोकमें मन्दाकिनी, नीचे—पाताललोकमें

भोगवती तथा मध्य अर्थात् मर्त्यलोकमें वेगवती गंगा कहलाने लगी। ये गंगा मनुष्योंको पवित्र करनेके लिये प्रकट हुई हैं। इनका स्वरूप कल्याणमय है। पार्वती! जब गंगा मेरुपर्वतसे नीचे गिर रही थीं, उस समय मैंने अपनेको पवित्र करनेके लिये उन्हें मस्तकपर धारण कर लिया। जो श्रीविष्णुचरणोंसे निकली हुई गंगाका पावन जल अपने मस्तकपर धारण करेगा अथवा उनके जलका पान करेगा, वह निःसन्देह सम्पूर्ण जगत्का पूज्य होगा।

तदनन्तर राजा भगीरथ और महातपस्वी गौतमने तपस्याके द्वारा मेरी पूजा करके गंगाजीके लिये मुझसे याचना की। तब मैंने सम्पूर्ण विश्वका हित करनेके लिये कल्याणमयी वैष्णवी गंगाका जल उन दोनों महानुभावोंके लिये प्रसन्नतापूर्वक दान किया। महर्षि गौतम जिन गंगाको ले गये, वे गौतमी (गोदावरी) कही गयी हैं और राजा भगीरथने जिनको भूमिपर उतारा, वे भागीरथी गंगाके नामसे प्रसिद्ध हुईं। यह मैंने प्रसंगवश तुमसे गंगाजीके प्रादुर्भावकी उत्तम कथा सुनायी है। तदनन्तर भक्तवत्सल भगवान् नारायणने दैत्यराज बलिको रसातलका उत्तम लोक प्रदान किया और उन्हें सब दानवों, नागों तथा जल-जन्तुओंका कल्पभरके लिये राजा बना दिया। इस प्रकार कश्यपनन्दन वामनका वेष धारण करके अविनाशी भगवान् विष्णुने बलिसे तीनों लोक लेकर उन्हें प्रसन्नतापूर्वक इन्द्रको दे दिया। तब देवता, गन्धर्व तथा परम तेजस्वी ऋषियोंने दिव्य स्तोत्रोंसे भगवान्का स्तवन और पूजन किया। तत्पश्चात् अपना विराट् रूप समेटकर भगवान् अच्युत वहीं अन्तर्धान हो गये। इस तरह प्रभावशाली श्रीविष्णुने इन्द्रकी रक्षा की और इन्द्रने उनकी कृपासे तीनों लोकोंका महान् ऐश्वर्य प्राप्त किया। शुभे! यह मैंने तुमसे वामन-अवतारके वैभवका वर्णन किया है।

परशुरामावतारकी कथा

श्रीमहादेवजी कहते हैं—पार्वती! भृगुवंशमें द्विजवर जमदग्नि अच्छे महात्मा हो गये हैं। वे सम्पूर्ण वेद-वेदांगोंके पारगामी विद्वान् और महान् तपस्वी थे। धर्मात्मा जमदग्निने इन्द्रको प्रसन्न करनेके लिये गंगाके किनारे एक हजार वर्षतक भारी तपस्या की। इससे प्रसन्न होकर देवराज इन्द्रने कहा—'विप्रवर! तुम्हारे मनमें जैसी इच्छा हो, उसके अनुसार वर माँगो।'

जमदग्नि बोले—देव! मुझे सदा सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाली सुरभि गौ प्रदान कीजिये।

तब देवराज इन्द्रने प्रसन्नतापूर्वक उन्हें सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाली सुरभि गौ प्रदान की। सुरभिको पाकर महातपस्वी जमदग्नि दूसरे इन्द्रकी भाँति महान् ऐश्वर्यसे सम्पन्न होकर रहने लगे। उन्होंने राजा रेणुककी सुन्दरी कन्या रेणुकाके साथ विधिपूर्वक विवाह किया। तत्पश्चात् परम धार्मिक जमदग्निने पुत्रकी कामनासे पुत्रेष्टि नामक यज्ञ किया और उस यज्ञके द्वारा देवराज इन्द्रको सन्तुष्ट किया। सन्तुष्ट होनेपर शचीपति इन्द्रने जमदग्निको एक महाबाहु, महातेजस्वी और महाबलवान् पुत्र होनेका वरदान दिया। समय आनेपर विप्रवर जमदग्निने रेणुकाके गर्भसे एक महापराक्रमी और बलवान् पुत्र उत्पन्न किया, जो भगवान् विष्णुके अंशके अंशसे प्रकट हुआ था। उसमें सब प्रकारके शुभ लक्षण मौजूद थे। पितामह भृगुने आकर उस महापराक्रमी पुत्रका नामकरण-संस्कार किया और बड़ी प्रसन्नताके साथ उसका नाम 'राम' रखा। जमदग्निका पुत्र होनेके कारण वह जामदग्न्य भी कहलाया। भार्गववंशी बालक राम धीरे-धीरे बड़े हुए। उपनयन-संस्कारके पश्चात् उन्होंने सब विद्याओंमें प्रवीणता प्राप्त कर ली। तदनन्तर विप्रवर राम शालग्राम पर्वतके शिखरपर तपस्या करनेके लिये गये। वहाँ उन्हें परमतेजस्वी ब्रह्मर्षि कश्यपजीका दर्शन हुआ। रामने बड़े हर्षके साथ उनका पूजन किया। तब उन्होंने रामको विधिपूर्वक अविनाशी वैष्णव मन्त्रका उपदेश दिया। महात्मा कश्यपसे मन्त्रका उपदेश पाकर राम विधिपूर्वक लक्ष्मीपति श्रीविष्णुकी आराधना करने लगे। उन्होंने दिन-रात षडक्षर महामन्त्रका जप करते हुए सर्वव्यापी कमलनयन श्रीहरिके ध्यानपूर्वक अनेक वर्षोंतक तपस्या की। महातपस्वी ब्रह्मर्षि जमदग्नि जितेन्द्रिय एवं मौनभावसे तप करते हुए गंगाके सुन्दर तटपर निवास करते थे। उन्होंने यज्ञ, दान आदि महान् धर्मोंका विधिपूर्वक अनुष्ठान किया। इन्द्रकी दी हुई

गौके प्रसादसे उनके पास सब सम्पत्तियाँ भरी-पूरी रहती थीं।

एक समयकी बात है—हैहयराज अर्जुन सब राष्ट्रोंको जीतकर अपनी सारी सेनाके साथ जमदग्नि मुनिके आश्रमपर आये। राजाने महाभाग मुनिवरका दर्शन करके उन्हें प्रणाम किया, उनकी कुशल पूछी और उन्हें भाँति-भाँतिके वस्त्र तथा आभूषण दान किये। मुनिने भी अपने घरपर आये हुए राजाका मधुपर्ककी विधिसे प्रेमपूर्वक सत्कार किया तथा शक्तिशालिनी सुरभि गौके प्रभावसे सेनासहित राजाको उत्तम भोजन दिया। राजाको उस गौकी शक्ति देखकर बड़ा कौतूहल हुआ और उन्होंने महर्षि जमदग्निसे उस गौको माँगा।

जमदग्नि मुनिके अस्वीकार करनेपर हैहयराजने उस सबला गौको बलपूर्वक ले लिया। तब महाभागा सबलाने क्रोधमें भरकर अपने सींगोंसे राजाके सब सैनिकोंको मार डाला। तदनन्तर स्वयं अन्तर्धान होकर क्षणभरमें इन्द्रके पास जा पहुँची। इधर अपनी सेनाका विनाश देखकर राजा अर्जुन क्रोधसे पागल हो उठा। उसने मुक्कोंसे मार-मारकर मुनि जमदग्निका वध कर डाला और लौटकर अपने नगरमें प्रवेश किया।

उधर रामने देवदेवेश्वर भगवान् विष्णुकी आराधना करके उन्हें प्रसन्न किया। भगवान्ने अपने परशु, वैष्णव महाधनुष और अनेक दिव्यास्त्र प्रदान करके उनसे कहा—'मैं तुम्हें अपनी उत्तम शक्ति प्रदान करता हूँ। मेरी शक्तिसे आविष्ट होकर तुम पृथ्वीका भार उतारने और देवताओंका हित करनेके लिये दुष्ट राजाओंका वध करो। इस समय पृथ्वीपर बहुत-से मदोन्मत्त राजा एकत्र हो रहे हैं। उन्हें मारकर समुद्रपर्यन्त सारी पृथ्वी अपने अधिकारमें कर लो और महान् पराक्रमसे सम्पन्न हो धर्मपूर्वक इसका पालन करो। फिर समय आनेपर मेरी ही कृपासे मेरे परमपदको प्राप्त होओगे।' भगवान् विष्णुके अन्तर्धान होनेपर राम भी तुरंत अपने पिताके आश्रमको लौट गये। वहाँ जब उन्होंने अपने पिताको मारा गया देखा तो वे क्रोधसे मूर्च्छित हो गये और इस पृथ्वीको क्षत्रियविहीन करनेकी इच्छासे हैहयराजके नगरमें जा पहुँचे। वहाँ राजाको ललकारकर महायुद्धमें प्रवृत्त हुए और उसकी सेनाका संहार करके अन्तमें उन्होंने उसको भी मार डाला।

इस प्रकार सहस्रबाहु अर्जुनका वध करनेके अनन्तर प्रतापी परशुरामजीने कुपित होकर सम्पूर्ण राजाओंका संहार कर डाला। केवल राजा इक्ष्वाकुके महान् कुलपर उन्होंने हाथ नहीं उठाया। एक तो वह नानाका कुल था, दूसरे माता रेणुकाने इक्ष्वाकुवंशी क्षत्रियोंको मारनेकी मनाही कर दी थी। इसलिये उक्त वंशकी उन्होंने रक्षा की।

इस प्रकार क्षत्रियोंका संहार करनेके पश्चात् प्रतापी परशुरामजीने अश्वमेध नामक महायज्ञका विधिवत् अनुष्ठान किया और उसमें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको सात द्वीपोंसहित पृथ्वी दान कर दी। तदनन्तर वे भगवान् नर-नारायणके आश्रममें तपस्या करनेके लिये चले गये। पार्वती! यह मैंने तुमसे परशुरामजीके चरित्रका वर्णन किया है। वे भगवान् विष्णुकी शक्तिके आवेशावतार थे। इसीलिये शक्तिके आवेशसे उन्होंने जो कुछ किया, उसकी उपासना नहीं करनी चाहिये। भगवद्भक्त महात्माओं तथा श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके लिये भगवान् श्रीराम तथा श्रीकृष्णके अवतार ही उपासना करनेयोग्य हैं; क्योंकि वे अपने ईश्वरीय गुणोंसे परिपूर्ण हैं और उपासना करनेपर मनुष्योंको मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं।

श्रीरामावतारकी कथा—जन्मका प्रसंग

श्रीमहादेवजी कहते हैं—पार्वती! पूर्वकालकी बात है, स्वायम्भुव मनु शुभ एवं निर्मल तीर्थ नैमिषारण्यमें गोमती नदीके तटपर द्वादशाक्षर महामन्त्रका जप करते थे। उन्होंने एक हजार वर्षतक लक्ष्मीपति भगवान् श्रीहरिका पूजन किया। तब भगवान्ने प्रकट होकर कहा—'राजन्! मुझसे वर माँगो।' तब स्वायम्भुव मनुने बड़ी प्रसन्नताके साथ कहा—'अच्युत! देवेश्वर! आप तीन जन्मोंतक मेरे पुत्र हों। मैं पुत्रभावसे आप पुरुषोत्तमका भजन करना चाहता हूँ।' उनके ऐसा कहनेपर भगवान् लक्ष्मीपति बोले—'नृपश्रेष्ठ! तुम्हारे मनमें जो अभिलाषा है, वह अवश्य पूर्ण होगी। तुम्हारा पुत्र होनेमें मुझे भी बड़ी प्रसन्नता है। जगत्के पालन

तथा धर्मकी रक्षाका प्रयोजन उपस्थित होनेपर भिन्न-भिन्न समयमें तुम्हारे जन्म लेनेके पश्चात् मैं भी तुम्हारे यहाँ अवतार लूँगा। अनघ! साधु पुरुषोंकी रक्षा, पापियोंका विनाश और धर्मकी स्थापना करनेके लिये मैं प्रत्येक युगमें अवतार लेता हूँ।'*

इस प्रकार स्वायम्भुव मनुको वरदान दे श्रीहरि वहीं अन्तर्धान हो गये। उन स्वायम्भुव मनुका पहला जन्म रघुकुलमें हुआ। वहाँ वे राजा दशरथके नामसे प्रसिद्ध हुए। दूसरी बार वे वृष्णिवंशमें वसुदेवरूपसे प्रकट हुए। फिर जब कलियुगके एक हजार दिव्य वर्ष व्यतीत हो जायँगे तो सम्भल नामक गाँवमें वे हरिगुप्त ब्राह्मणके रूपमें उत्पन्न होंगे। उनकी पत्नी भी प्रत्येक जन्ममें उनके साथ रहीं। अब मैं पहले श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रका वर्णन करता हूँ, जिसके स्मरणमात्रसे पापियोंकी भी मुक्ति हो जाती है। हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष नामक दैत्य दूसरा जन्म धारण करनेपर महाबली कुम्भकर्ण और रावण हुए। मुनिवर पुलस्त्यके विश्रवा नामके एक धार्मिक पुत्र हुए, जिनकी पत्नी राक्षसराज सुमालीकी कन्या थी। उसकी माताका नाम सुकेशी था। उसका नाम केकशी था। केकशी दृढ़तापूर्वक व्रतका पालन करनेवाली थी; किन्तु एक दिन कामवेगकी अधिकतासे सन्ध्याके समय उसने महामुनि विश्रवाके साथ रमण किया; अतः समयके दोषसे उसके गर्भसे दो तमोगुणी पुत्र उत्पन्न हुए, जो बहुत ही बलवान् थे। संसारमें वे रावण और कुम्भकर्णके नामसे विख्यात हुए। केकशीके गर्भसे एक शूर्पणखा नामकी कन्या भी हुई, जिसका मुख बड़ा ही विकराल था। कुछ कालके पश्चात् उससे विभीषणका जन्म हुआ, जो सुशील, भगवद्भक्त, सत्यवादी, धर्मात्मा और परम पवित्र थे।

रावण और कुम्भकर्ण हिमालय पर्वतपर अत्यन्त कठोर तपस्याके द्वारा मेरी आराधना करने लगे। रावण बड़ा दुष्टात्मा था। उसने बड़ा कठोर कर्म करके अपने मस्तकरूपी कमलोंसे मेरी पूजा की। तब मैंने प्रसन्नचित्त होकर उससे कहा—'बेटा! तुम्हारे मनमें जो कुछ हो, उसके अनुसार वर माँगो।' तब वह दुष्टात्मा बोला—'देव! मैं सम्पूर्ण लोकोंपर विजय पाना चाहता हूँ। अतः आप मुझे देवता, दानव और राक्षसोंके द्वारा भी अवध्य कर दीजिये।' पार्वती! मैंने उसके कथनानुसार वरदान दे दिया। वरदान पाकर उस महापराक्रमी राक्षसको बड़ा गर्व हो गया। वह देवता, दानव और मनुष्य तीनों लोकोंके प्राणियोंको पीड़ा देने लगा। उसके सताये हुए ब्रह्मा आदि देवता भयसे आतुर हो भगवान् लक्ष्मीपतिकी शरणमें गये। सनातन प्रभुने देवताओंके कष्ट और उसके दूर होनेके उपायको भलीभाँति जानकर ब्रह्मा आदि सम्पूर्ण देवताओंसे कहा—'देवगण! मैं रघुकुलमें राजा दशरथके यहाँ अवतार धारण करूँगा और दुरात्मा रावणको बन्धु-बान्धवोंसहित मार डालूँगा। मानवशरीर धारण करके मैं देवताओंके इस कण्टकको उखाड़ फेंकूँगा। ब्रह्माजीके शापसे तुमलोग भी गन्धर्वों और अप्सराओंसहित वानर-योनिमें उत्पन्न हो मेरी सहायता करो।'

देवाधिदेव श्रीविष्णुके ऐसा कहनेपर सम्पूर्ण देवता इस पृथ्वीपर वानररूपमें प्रकट हुए। उधर सूर्यवंशमें वैवस्वत मनुके पुत्र राजा इक्ष्वाकु हुए, जो समस्त राजाओंमें श्रेष्ठ, महाबलवान् और सम्पूर्ण धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ थे। उन्हींकी कुल-परम्परामें महातेजस्वी तथा बलवान् राजा दशरथ हुए, जो महाराज अजके पुत्र, सत्यवादी, सुशील एवं पवित्र आचार-विचारवाले थे। उन्होंने अपने पराक्रमसे समस्त भूमण्डलका पालन किया और सब राजाओंको अपने-अपने राज्यपर स्थापित किया। कोशलनरेशके एक सर्वांगसुन्दरी कन्या थी, जिसका नाम कौसल्या था। राजा दशरथने उसीके साथ विवाह किया। तदनन्तर मगधराजकुमारी सुमित्रा उनकी द्वितीय पत्नी हुईं। केकयनरेशकी कन्या कैकेयी, जिसके नेत्र कमलदलके समान विशाल थे, महाराज दशरथकी तीसरी भार्या हुईं। इन तीनों धर्मपत्नियोंके साथ धर्मपरायण होकर राजा दशरथ पृथ्वीका पालन करने लगे। अयोध्या नामकी नगरी, जो सरयूके तीरपर बसी हुई है, महाराजकी राजधानी थी। वह सब प्रकारके रत्नोंसे भरी-पूरी और धन-धान्यसे सम्पन्न थी। वह सोनेकी चहारदीवारीसे घिरी हुई और ऊँचे-ऊँचे गोपुरों (नगरद्वारों)-से सुशोभित थी। धर्मात्मा राजा दशरथ अनेक मुनिवरों और अपने पुरोहित महात्मा वसिष्ठजीके साथ उस पुरीमें निवास

* परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥ (२६९। ७)

करते थे। उन्होंने वहाँ अकण्टक राज्य किया। वहाँ भगवान् पुरुषोत्तम अवतार धारण करनेवाले थे, अतएव वह पवित्र नगरी अयोध्या कहलायी। परमात्माके उस नगरका नाम भी परम कल्याणमय है। जहाँ भगवान् विष्णु विराजते हैं, वही स्थान परमपद हो जाता है। वहाँ सब कर्मोंका बन्धन काटनेवाला मोक्ष सुलभ होता है।

राजा दशरथने समस्त भूमण्डलका पालन करते हुए पुत्रकामनासे वैष्णवयागके द्वारा श्रीहरिका यजन किया। सबको वर देनेवाले सर्वव्यापक लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु उक्त यज्ञद्वारा राजा दशरथसे पूजित होनेपर वहाँ अग्निकुण्डमें प्रकट हुए। जाम्बूनदके समान उनकी श्याम कान्ति थी। वे हाथोंमें शंख, चक्र और गदा लिये हुए थे। उनके शरीरपर श्वेत वस्त्र शोभा पा रहा था। वाम अंकमें भगवती लक्ष्मीजीके साथ वहाँ प्रत्यक्ष प्रकट हुए भक्तवत्सल परमेश्वर राजा दशरथसे बोले—'राजन्! मैं वर देनेके लिये आया हूँ।' सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी भगवान् विष्णुका दर्शन पाकर राजा दशरथ आनन्दमग्न हो गये। उन्होंने पत्नीके साथ प्रसन्नचित्तसे भगवान्‌के चरणोंमें प्रणाम किया और हर्षगद्गद वाणीमें कहा—'भगवन्! आप मेरे पुत्रभावको प्राप्त हों।' तब भगवान्‌ने प्रसन्न होकर राजासे कहा—'नृपश्रेष्ठ! मैं देवलोकका हित, साधुपुरुषोंकी रक्षा, राक्षसोंका वध, लोगोंको मुक्ति प्रदान और धर्मकी स्थापना करनेके लिये तुम्हारे यहाँ अवतार लूँगा।'

ऐसा कहकर श्रीहरिने सोनेके पात्रमें रखा हुआ दिव्य खीर, जो लक्ष्मीजीके हाथमें मौजूद था, राजाको दिया और स्वयं वहाँसे अन्तर्धान हो गये। राजा दशरथने वहाँ बड़ी रानी कौसल्या और छोटी रानी कैकेयीको उपस्थित देख इन्हीं दोनोंमें उस दिव्य खीरको बाँट दिया। इतनेहीमें मझली रानी सुमित्रा भी पुत्रकी कामनासे राजाके समीप आयीं। उन्हें देख कौसल्या और कैकेयीने तुरंत ही अपने-अपने खीरमेंसे आधा-आधा निकालकर उनको दे दिया। उस दिव्य खीरको खाकर तीनों ही रानियाँ गर्भवती हुईं। उस समय उनकी बड़ी शोभा हो रही थी। उन्हें कई बार सपनेमें शंख, चक्र और गदा लिये तथा पीताम्बर पहने देवेश्वर भगवान् विष्णु दर्शन दिया करते थे। तदनन्तर समयानुसार जब चैतका मनोरम मधुमास आया तो शुक्लपक्षकी नवमी तिथिको पुनर्वसु नक्षत्रमें दोपहरके समय रानी कौसल्याने पुत्रको जन्म दिया। उस समय उत्तम लग्न था और सभी ग्रह शुभ स्थानोंमें स्थित थे। कौसल्याके पुत्ररूपमें सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी साक्षात् श्रीहरि ही अवतीर्ण हुए थे, जो योगियोंके ध्येय, सनातन प्रभु, सम्पूर्ण उपनिषदोंके प्रतिपाद्य तत्त्व, अनन्त, संसारकी सृष्टि, रक्षा और प्रलयके हेतु, रोग-शोकसे रहित, सब प्राणियोंको शरण देनेवाले और सर्वभूतस्वरूप परमेश्वर हैं। जगदीश्वरका अवतार होते ही आकाशमें देवताओंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं। श्रेष्ठ देवताओंने फूल बरसाये। प्रजापति आदि देवगण विमानपर बैठकर मुनियोंके साथ हर्षगद्गद हो स्तुति करने लगे।

श्रीरामका जातकर्म, नामकरण, भरत आदिका जन्म, सीताकी उत्पत्ति, विश्वामित्रकी यज्ञरक्षा तथा राम आदिका विवाह

तत्पश्चात् राजा दशरथने बड़ी प्रसन्नताके साथ पुरोहित वसिष्ठजीके द्वारा बालकका जातकर्म-संस्कार कराया। भगवान् वसिष्ठने उस समय बालकका बड़ा सुन्दर नाम रखा। वे बोले—'ये महाप्रभु कमलमें निवास करनेवाली श्रीदेवीके साथ रमण करनेवाले हैं, इसलिये इनका परम प्राचीन स्वतःसिद्ध नाम 'श्रीराम' होगा। यह नाम भगवान् विष्णुके सहस्र नामोंके समान है तथा मनुष्योंको मुक्ति प्रदान करनेवाला है। चैत मास श्रीविष्णुका मास है। इसमें प्रकट होनेके कारण यह विष्णु भी कहलायेंगे।*

इस प्रकार नाम रखकर महर्षि वसिष्ठने नाना प्रकारकी स्तुतियोंसे भगवान्‌का स्तवन किया और बालकके मंगलके लिये सहस्रनामका पाठ करके वे उस परम पवित्र राजभवनसे बाहर निकले। राजा दशरथने

* श्रिय: कमलवासिन्या रमणोऽयं महाप्रभु:। तस्माच्छ्रीराम इत्यस्य नाम सिद्धं पुरातनम्॥
सहस्रनाम्नां श्रीशस्य तुल्यं मुक्तिप्रदं नृणाम्। विष्णुमासि समुत्पन्नो विष्णुरित्यभिधीयते॥ (२६९। ७४-७५)

श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको प्रसन्नतापूर्वक बहुत धन दिया तथा धर्मपूर्वक दस हजार गौएँ दान कीं। इतना ही नहीं, उन रघुकुलश्रेष्ठ राजाने श्रीविष्णुकी प्रसन्नताके लिये एक लाख गाँव दान किये और दिव्य वस्त्र, दिव्य आभूषण तथा असंख्य धन देकर ब्राह्मणोंको तृप्त किया। महारानी कौसल्याने जब अपने पुत्र श्रीरामकी ओर दृष्टिपात किया तो उनके श्रीचरणों और करकमलोंमें शंख, चक्र, गदा, पद्म, ध्वजा और वज्र आदि चिह्न दिखायी दिये। वक्ष:स्थलमें श्रीवत्सका चिह्न, कौस्तुभमणि और वनमाला सुशोभित थी। उनके श्रीअंगमें देवता, असुर और मनुष्योंसहित सम्पूर्ण जगत् दृष्टिगोचर हुआ। मुसकराते हुए मुखके भीतर चौदहों भुवन दिखायी देते थे। उनके नि:श्वासमें इतिहाससहित सम्पूर्ण वेद, जाँघोंमें द्वीप, समुद्र और पर्वत, नाभिमें ब्रह्मा तथा महादेवजी,कानोंमें सम्पूर्ण दिशाएँ, नेत्रोंमें अग्नि और सूर्य तथा नासिकामें महान् वेगशाली वायुदेव विराजमान थे। पार्वती! सम्पूर्ण उपनिषदोंके तात्पर्यभूत भगवान्‌को देखकर रानी कौसल्या भयभीत हो गयीं और बारंबार प्रणाम करके नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहाती हुई हाथ जोड़कर बोलीं 'देवदेवेश्वर! प्रभो! आपको पुत्ररूपमें पाकर मैं धन्य हो गयी। जगन्नाथ! अब मुझपर प्रसन्न होइये और मेरे भीतर पुत्रस्नेहको जाग्रत् कीजिये।'

माताके ऐसा कहनेपर सर्वव्यापक श्रीहरि मायासे मानवभाव तथा शिशुभावको प्राप्त होकर रुदन करने लगे। फिर तो देवी कौसल्याने आनन्दमग्न होकर उत्तम लक्षणोंवाले अपने पुत्रको छातीसे लगा लिया और उसके मुखमें स्तन डाल दिया। संसारका भरण-पोषण करनेवाले सनातन देवता महाप्रभु श्रीहरि बालकरूपसे माताकी गोदमें लेटकर उनका स्तनपान करने लगे। वह दिन बड़ा ही सुन्दर रमणीय और मनुष्योंकी समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला था। नगर और प्रान्तके सब मनुष्योंने बड़ी प्रसन्नताके साथ उस दिन भगवान्‌का जन्मोत्सव मनाया। तदनन्तर कैकेयीके गर्भसे भरतका जन्म हुआ। वे पांचजन्य शंखके अंशसे प्रकट हुए थे। इसके बाद महाभागा सुमित्राने उत्तम लक्षणोंवाले लक्ष्मणको तथा देवशत्रुओंको सन्ताप देनेवाले शत्रुघ्नको जन्म दिया। शत्रुपक्षके वीरोंका संहार करनेवाले श्रीलक्ष्मण भगवान् अनन्तके अंशसे और अमित पराक्रमी शत्रुघ्न सुदर्शनके अंशसे प्रकट हुए थे। वैवस्वत मनुके वंशमें जन्म लेनेवाले वे सभी बालक क्रमश: बड़े हुए। फिर महातेजस्वी महर्षि वसिष्ठने सबका विधिपूर्वक संस्कार किया। तदनन्तर सबने वेद-शास्त्रोंका अध्ययन किया। सम्पूर्ण शास्त्रोंके तत्त्वज्ञ होकर वे धनुर्वेदके भी प्रतिष्ठित विद्वान् हुए। श्रीराम आदि चारों भाई बड़े ही उदार और लोगोंका हर्ष बढ़ानेवाले थे। उनमें श्रीराम और लक्ष्मणकी जोड़ी एक साथ रहती थी और भरत तथा शत्रुघ्नकी जोड़ी एक साथ।

भगवान्‌के अवतार लेनेके पश्चात् जगदीश्वरी भगवती लक्ष्मी राजा जनकके भवनमें अवतीर्ण हुईं। जिस समय राजा जनक किसी शुभक्षेत्रमें यज्ञके लिये हलसे भूमि जोत रहे थे, उसी समय सीता (हलके अग्रभाग)-से एक सुन्दरी कन्या प्रकट हुई, जो साक्षात् लक्ष्मी ही थी। उस वेदमयी कन्याको देख मिथिलापति राजा जनकने गोदमें उठा लिया और अपनी पुत्री मानकर उसका पालन-पोषण किया। इस प्रकार जगदीश्वरकी वल्लभा देवेश्वरी लक्ष्मी सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षाके लिये राजा जनकके मनोहर भवनमें पल रही थीं।

इसी समय विश्वविख्यात महामुनि विश्वामित्रने गंगाजीके सुन्दर तटपर परम पुण्यमय सिद्धाश्रममें एक उत्तम यज्ञ आरम्भ किया। जब यज्ञ होने लगा तो रावणके अधीन रहनेवाले कितने ही निशाचर उसमें विघ्न डालने लगे। इससे विश्वामित्र मुनिको बड़ी चिन्ता हुई। तब उन धर्मात्मा मुनिने लोकहितके लिये रघुकुलमें प्रकट हुए श्रीहरिको वहाँ ले आनेका विचार किया। फिर तो वे रघुवंशी क्षत्रियोंद्वारा सुरक्षित रमणीय नगरी अयोध्यामें गये और वहाँ राजा दशरथसे मिले। कौशिक मुनिको उपस्थित देख राजा दशरथ हाथ जोड़कर खड़े हो गये तथा उन्होंने अपने पुत्रोंके साथ मुनिवर विश्वामित्रके चरणोंमें मस्तक झुकाया और बड़े हर्षके साथ कहा— 'मुने! आज आपका दर्शन पाकर मैं धन्य हो गया।' तत्पश्चात् उन्हें उत्तम आसनपर बिठाकर राजाने विधिपूर्वक सत्कार किया और पुन: प्रणाम करके पूछा—'महर्षे! मेरे लिये क्या आज्ञा है?'

तब महातपस्वी विश्वामित्र अत्यन्त प्रसन्न होकर

बोले—'राजन्! आप मेरे यज्ञकी रक्षाके लिये श्रीरामचन्द्रजीको मुझे दे दीजिये। इनके समीप रहनेसे मेरे यज्ञमें पूर्ण सफलता मिलेगी।' मुनिवर विश्वामित्रकी यह बात सुनकर सर्वज्ञोंमें श्रेष्ठ राजा दशरथने लक्ष्मणसहित श्रीरामको मुनिकी सेवामें समर्पित कर दिया। महातपस्वी विश्वामित्र उन दोनों रघुवंशी कुमारोंको साथ ले बड़ी प्रसन्नताके साथ अपने आश्रमपर गये। श्रीरामचन्द्रजीके जानेसे देवताओंको बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने भगवान्के ऊपर फूल बरसाये और उनकी स्तुति की। उसी समय महाबली गरुड़ सब प्राणियोंसे अदृश्य होकर वहाँ आये और उन दोनों भाइयोंको दो दिव्य धनुष तथा अक्षय बाणोंवाले दो तूणीर आदि दिव्य अस्त्र-शस्त्र देकर चले गये। श्रीराम और लक्ष्मण दोनों भाई महापराक्रमी वीर थे। तपोवनमें पहुँचनेपर महात्मा कौशिकने विशाल वनके भीतर उन्हें एक भयंकर राक्षसीको दिखलाया, जिसका नाम ताड़का था। वह सुन्द नामक राक्षसकी स्त्री थी। मुनिकी प्रेरणासे उन दोनोंने दिव्य धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा ताड़काको मार डाला। श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा मारी जानेपर वह भयंकर राक्षसी अपने भयानक रूपको छोड़कर दिव्यरूपमें प्रकट हुई। उसका शरीर तेजसे उद्दीप्त हो रहा था तथा वह सब आभरणोंसे विभूषित दिखायी देती थी। राक्षसयोनिसे छूटकर श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम करनेके पश्चात् वह श्रीविष्णुलोकको चली गयी।

ताड़काको मारकर महातेजस्वी श्रीरामचन्द्रजीने महात्मा लक्ष्मणके साथ विश्वामित्रके शुभ आश्रममें प्रवेश किया। उस समय समस्त मुनि बड़े प्रसन्न हुए। वे आगे बढ़कर श्रीरामचन्द्रजीको ले गये और उत्तम आसनपर बिठाकर सबने अर्घ्य आदिके द्वारा उनका पूजन किया। द्विजश्रेष्ठ विश्वामित्रने विधिपूर्वक यज्ञकी दीक्षा ले मुनियोंके साथ उत्तम यज्ञ आरम्भ किया। उस महायज्ञका प्रारम्भ होते ही मारीच नामक राक्षस अपने भाई सुबाहुके साथ उसमें विघ्न डालनेके लिये उपस्थित हुआ। उन भयंकर राक्षसोंको देखकर विपक्षी वीरोंका संहार करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीने राक्षसराज सुबाहुको एक ही बाणसे मौतके घाट उतार दिया और महान् पवनास्त्रका प्रयोग करके मारीच नामक निशाचरको समुद्रके तटपर इस प्रकार फेंक दिया, जैसे हवा सूखे पत्तेको उड़ा ले जाती है। श्रीरामचन्द्रजीके इस महान् पराक्रमको देखकर राक्षसश्रेष्ठ मारीचने हथियार फेंक दिया और एक महान् आश्रममें वह तपस्या करनेके लिये चला गया। महान् यज्ञके समाप्त होनेके बाद महातेजस्वी विश्वामित्रने प्रसन्नचित्तसे श्रीरघुनाथजीका पूजन किया। वे मस्तकपर काकपक्ष धारण किये हुए थे। उनके शरीरका वर्ण नील कमलदलके समान श्याम था तथा नेत्र कमलदलके समान विशाल थे। मुनिश्रेष्ठ कौशिकने उन्हें छातीसे लगाकर उनका मस्तक सूँघा और स्तवन किया।

इसी बीचमें मिथिलाके सम्राट् राजा जनकने श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके द्वारा वाजपेययज्ञ आरम्भ किया। विश्वामित्र आदि सब महर्षि उस यज्ञको देखनेके लिये गये। उनके साथ रघुकुलश्रेष्ठ श्रीराम और लक्ष्मण भी थे। मार्गमें महात्मा श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंका स्पर्श हो जानेसे बहुत बड़ी शिलाके रूपमें पड़ी हुई गौतमपत्नी अहल्या शुद्ध हो गयी। पूर्वकालमें वह अपने स्वामी गौतमके शापसे पत्थर हो गयी थी; किन्तु श्रीरघुनाथजीके चरणोंका स्पर्श होनेसे शुद्ध हो वह शुभ गतिको प्राप्त हुई। तदनन्तर दोनों रघुकुमारोंके साथ मिथिला नगरीमें पहुँचकर सभी मुनिवरोंका मन प्रसन्न हो गया। महाबली राजा जनकने महान् सौभाग्यशाली महर्षियोंको आया देख आगे बढ़कर उन्हें प्रणाम और पूजन किया। कमलके समान विशाल नेत्रोंवाले, नील कमलदलके समान श्यामवर्ण, पीताम्बरधारी, कोमलांग, कोटि कन्दर्पोंके सौन्दर्यको मात करनेवाले, समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न तथा सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित रघुवंशनाथ श्रीरामचन्द्रजीको देखकर मिथिलानरेश जनकके मनमें बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने दशरथनन्दन श्रीरामको परमेश्वरका ही स्वरूप समझा और अपनेको धन्य मानते हुए उनका पूजन किया। राजाके मनमें श्रीरामचन्द्रजीको अपनी कन्या देनेका विचार उत्पन्न हुआ। 'ये दोनों कुमार रघुकुलमें उत्पन्न हुए हैं।' इस प्रकार दोनों भाइयोंका परिचय पाकर राजाने उत्तम वस्त्र और आभूषणोंके द्वारा धर्मपूर्वक उनका सत्कार किया और मधुपर्क आदिकी विधिसे सम्पूर्ण महर्षियोंका भी पूजन किया। तत्पश्चात्

यज्ञ समाप्त होनेपर कमलनयन श्रीरामने शंकरजीके दिव्य धनुषको भंग करके जनककिशोरी सीताको जीत लिया। उस पराक्रमरूपी महान् शुल्कसे अत्यन्त सन्तुष्ट होकर मिथिलानरेशने सीताको श्रीरामचन्द्रजीकी सेवामें देनेका निश्चय कर लिया।

तत्पश्चात् राजा जनकने महाराज दशरथके पास दूत भेजा। धर्मात्मा राजा दशरथ अपने दोनों पुत्र भरत और शत्रुघ्नको साथ लेकर वसिष्ठ, वामदेव आदि महर्षियों और सेनाके साथ मिथिलामें आये और जनकके सुन्दर भवनमें उन्होंने जनवासा किया। फिर शुभ समयमें मिथिलानरेशने श्रीरामका सीताके साथ और लक्ष्मणका उर्मिलाके साथ विवाह कर दिया। उनके भाई कुशध्वजके दो सुन्दरी कन्याएँ थीं, जो माण्डवी और श्रुतकीर्तिके नामसे प्रसिद्ध थीं। वे दोनों सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न थीं। उनमेंसे माण्डवीके साथ भरतका और श्रुतकीर्तिके साथ शत्रुघ्नका विवाह किया। इस प्रकार वैवाहिक उत्सव समाप्त होनेपर महाबली राजा दशरथ मिथिलानरेशसे पूजित हो दहेजका सामान ले पुत्रों, पुत्रवधुओं, सेवकों, अश्व-गज आदि सैनिकों तथा नगर और प्रान्तके लोगोंके साथ अयोध्याको प्रस्थित हुए। मार्गमें महापराक्रमी तथा परम प्रतापी परशुरामजी मिले, जो हाथमें फरसा लेकर क्रोधमें भरे हुए सिंहकी भाँति खड़े थे। वे क्षत्रियोंके लिये कालरूप थे और श्रीरामचन्द्रजीके पास युद्धकी इच्छासे आ रहे थे। रघुनाथजीको सामने पाकर परशुरामजीने इस प्रकार कहा—'महाबाहु श्रीराम! मेरी बात सुनो। मैं युद्धमें बहुत-से महापराक्रमी राजाओंका वध करके ब्राह्मणोंको भूमिदान दे तपस्या करनेके लिये चला गया था; किन्तु तुम्हारे वीर्य और बलकी ख्याति सुनकर यहाँ तुमसे युद्ध करनेके लिये आया हूँ। यद्यपि इक्ष्वाकुवंशके वे क्षत्रिय जो मेरे नानाके कुलमें उत्पन्न हुए हैं, मेरे वध्य नहीं हैं; तथापि किसी भी क्षत्रियका बल और पराक्रम सुनकर मेरे लिये उसका सहन करना असम्भव है; इसलिये उदार रघुवंशी वीर! तुम मुझे युद्धका अवसर दो। सुना है, तुमने शंकरजीके दुर्धर्ष धनुषको तोड़ डाला है। यह वैष्णव धनुष भी उसीके समान शत्रुओंका संहार करनेवाला है। तुम अपने पराक्रमसे इसकी प्रत्यंचा चढ़ा दो तो मैं तुमसे हार मान लूँगा अथवा यदि मुझे देखकर तुम्हारे मनमें भय समा गया हो तो मुझ बलवान्‌के आगे अपने हथियार नीचे डाल दो और मेरी शरणमें आ जाओ।'

परशुरामजीके ऐसा कहनेपर परम प्रतापी श्रीरामचन्द्रजीने वह धनुष ले लिया। साथ ही उनसे अपनी वैष्णवी शक्तिको भी खींच लिया। शक्तिसे वियोग होते ही पराक्रमी परशुराम कर्मभ्रष्ट ब्राह्मणकी भाँति वीर्य और तेजसे हीन हो गये। उन्हें तेजोहीन देखकर समस्त क्षत्रिय साधु-साधु कहते हुए बारंबार श्रीरामचन्द्रजीकी सराहना करने लगे। रघुनाथजीने उस महान् धनुषको हाथमें लेकर अनायास ही उसकी प्रत्यंचा चढ़ा दी और बाणका सन्धान करके विस्मयमें पड़े हुए परशुरामजीसे पूछा—'ब्रह्मन्! इस श्रेष्ठ बाणसे आपका कौन-सा कार्य करूँ? आपके दोनों लोकोंका नाश कर दूँ या आपके पुण्योंद्वारा उपार्जित स्वर्गलोकका ही अन्त कर डालूँ?'

उस भयंकर बाणको देखकर परशुरामजीको यह मालूम हो गया कि ये साक्षात् परमात्मा हैं। ऐसा जानकर उन्हें बड़ा हर्ष हुआ और उन्होंने लोकरक्षक श्रीरघुनाथजीको नमस्कार करके अपने सौ यज्ञोंद्वारा उपार्जित स्वर्गलोक और अपने अस्त्र-शस्त्र उनकी सेवामें समर्पित कर दिये। तब महातेजस्वी रघुनाथजीने महामुनि परशुरामजीको प्रणाम किया तथा पाद्य, अर्घ्य और आचमनीय आदिके द्वारा उनकी विधिपूर्वक पूजा की। श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा पूजित होकर महातपस्वी परशुरामजी भगवान् नर-नारायणके रमणीय आश्रममें तपस्या करनेके लिये चले गये। तत्पश्चात् महाराज दशरथने पुत्रों और बहुओंके साथ उत्तम मुहूर्त्तमें अपनी पुरी अयोध्याके भीतर प्रवेश किया। श्रीराम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न चारों भाई अपनी-अपनी पत्नीके साथ प्रसन्नचित्त होकर रहने लगे। धर्मात्मा श्रीरघुनाथजीने सीताके साथ बारह वर्षोंतक विहार किया।

श्रीरामके वनवाससे लेकर पुनः अयोध्यामें आनेतकका प्रसंग

श्रीमहादेवजी कहते हैं—पार्वती! इसी समय राजा दशरथने अपने ज्येष्ठ पुत्र श्रीरामको प्रेमवश युवराजपदपर अभिषिक्त करना चाहा; किन्तु उनकी छोटी रानी कैकेयीने, जिसे पहले वरदान दिया जा चुका था, महाराजसे दो वर माँगे—भरतका राज्याभिषेक और रामका चौदह वर्षोंके लिये वनवास। राजा दशरथने सत्य-वचनमें बँधे होनेके कारण अपने पुत्र श्रीरामको राज्यसे निर्वासित कर दिया। उस समय राजा मारे दुःखके अचेत हो गये तथा रामचन्द्रजीने पिताके वचनोंकी रक्षा करनेके लिये धर्म समझकर राज्यको त्याग दिया और लक्ष्मण तथा सीताके साथ वे वनको चले गये। वहाँ जानेका उद्देश्य था रावणका वध करना। इधर राजा दशरथ पुत्रवियोगसे शोकग्रस्त हो मर गये। उस समय मन्त्रियोंने भरतको राज्यपर बिठानेकी चेष्टा की, किन्तु धर्मात्मा भरतने राज्य लेनेसे इनकार कर दिया। उन्होंने उत्तम भ्रातृ-प्रेमका परिचय देते हुए वनमें आकर श्रीरामसे राज्य ग्रहण करनेके लिये प्रार्थना की; किन्तु पिताकी आज्ञाका पालन करनेके कारण रघुनाथजीने राज्य लेनेकी इच्छा नहीं की। उन्होंने भरतके अनुरोध करनेपर उन्हें अपनी चरणपादुकाएँ दे दीं। भरतने भी भक्तिपूर्वक उन्हें स्वीकार किया और उन पादुकाओंको ही राजसिंहासनपर स्थापित करके गन्ध-पुष्प आदिसे वे प्रतिदिन उनका पूजन करने लगे। महात्मा रघुनाथजीके लौटनेतकके लिये भरतजी तपस्या करते हुए वहाँ रहने लगे तथा समस्त पुरवासी भी तबतकके लिये भाँति-भाँतिके व्रतोंका पालन करने लगे।

श्रीरघुनाथजी चित्रकूट पर्वतपर भरद्वाज मुनिके उत्तम आश्रमके निकट मन्दाकिनीके किनारे लक्ष्मीस्वरूपा विदेह राजकुमारी सीताके साथ रहने लगे। एक दिन महामना श्रीराम जानकीजीकी गोदमें मस्तक रखकर सो रहे थे। इतनेहीमें इन्द्रका पुत्र जयन्त कौएके रूपमें वहाँ आकर विचरने लगा। वह जानकीजीको देखकर उनकी ओर झपटा और अपने तीखे पंजोंसे उसने उनके स्तनपर आघात किया। उस कौएको देखकर श्रीरामने एक कुश हाथमें लिया और उसे ब्रह्मास्त्रसे अभिमन्त्रित करके उसकी ओर फेंका। वह तृण प्रज्वलित अग्निके समान अत्यन्त भयंकर हो गया। उससे आगकी लपटें निकलने लगीं। उसे अपनी ओर आता देख वह कौआ कातर स्वरमें काँव-काँव करता हुआ भाग चला। श्रीरामका छोड़ा हुआ वह भयंकर अस्त्र कौएका पीछा करने लगा। कौआ भयसे पीड़ित हो तीनों लोकोंमें घूमता फिरा। वह जहाँ-जहाँ शरण लेनेके लिये जाता, वहीं-वहीं वह भयानक अस्त्र तुरंत पहुँच जाता था। उस कौएको देखकर रुद्र आदि समस्त देवता, दानव और मनीषी मुनि यही उत्तर देते थे कि 'हमलोग तुम्हारी रक्षा करनेमें असमर्थ हैं।' इसी समय तीनों लोकोंके स्वामी भगवान् ब्रह्माने कहा—'कौआ! तू भगवान् श्रीरामकी ही शरणमें जा। वे करुणाके सागर और सबके रक्षक हैं। उनमें क्षमा करनेकी शक्ति है। वे बड़े ही दयालु हैं। शरणमें आये हुए जीवोंकी रक्षा करते हैं। वे ही समस्त प्राणियोंके ईश्वर हैं। सुशीलता आदि गुणोंसे सम्पन्न हैं और समस्त जीवसमुदायके रक्षक, पिता, माता, सखा और सुहृद् हैं। उन देवेश्वर श्रीरघुनाथजीकी ही शरणमें जा, उनके सिवा और कहीं भी तेरे लिये शरण नहीं है।'

ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर वह कौआ भयसे व्याकुल हो सहसा श्रीरघुनाथजीकी शरणमें आकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। कौएको प्राणसंकटमें पड़ा देख जानकीजीने बड़ी विनयके साथ अपने स्वामीसे कहा—'नाथ! इसे बचाइये, बचाइये।' कौआ सामने धरतीपर पड़ा था। सीताने उसके मस्तकको भगवान् श्रीरामके चरणोंमें लगा दिया। तब करुणारूपी अमृतके सागर भगवान् श्रीरामने कौएको अपने हाथसे उठाया और दयासे द्रवित होकर उसकी रक्षा की। दयानिधि श्रीरघुनाथजीने कौएसे कहा—'काक! डरो मत, मैं तुम्हें अभयदान देता हूँ। अब तुम सुखपूर्वक अपने स्थानको जाओ।' तब वह कौआ श्रीराम और सीताको बारंबार प्रणाम करके श्रीरघुनाथजीके द्वारा सुरक्षित हो शीघ्र ही स्वर्गलोकको चला गया। फिर श्रीरामचन्द्रजी सीता और लक्ष्मणके साथ महर्षियोंके मुखसे अपनी स्तुति सुनते हुए चित्रकूट पर्वतपर रहने लगे।

कुछ कालके पश्चात् एक दिन श्रीरघुनाथजी अत्रिमुनिके विशाल आश्रमपर गये। उन्हें आया देख मुनिश्रेष्ठ धर्मात्मा अत्रिने बड़ी प्रसन्नताके साथ आगे

जाकर उनकी अगवानी की और सीतासहित श्रीरामचन्द्रजीको सुन्दर आसनपर विराजमान करके उन्हें प्रेमपूर्वक अर्घ्य, पाद्य, आचमनीय, भाँति-भाँतिके वस्त्र, मधुपर्क और आभूषण आदि समर्पण किये। मुनिकी पत्नी अनसूयादेवीने भी प्रसन्नतापूर्वक सीताको परम उत्तम दिव्य वस्त्र और चमकीले आभूषण भेंट किये। फिर दिव्य अन्न, पान और भक्ष्य-भोज्य आदिके द्वारा मुनिने तीनोंको भोजन कराया। मुनिके द्वारा पराभक्तिसे पूजित होकर लक्ष्मणसहित श्रीराम वहाँ बड़ी प्रसन्नताके साथ एक दिन रहे। सबेरे उठकर उन्होंने महामुनिसे विदा माँगी और उन्हें प्रणाम करके वे जानेको तैयार हुए। मुनिने आज्ञा दे दी। तब कमलनयन श्रीराम महर्षियोंसे भरे हुए दण्डक वनमें गये। वहाँ अत्यन्त भयंकर विराध नामक राक्षस निवास करता था। उसे मारकर वे शरभंगमुनिके उत्तम आश्रमपर गये। शरभंगने श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन किया। इससे तत्काल पापमुक्त होकर वे ब्रह्मलोकको चले गये। तत्पश्चात् श्रीरघुनाथजी क्रमशः सुतीक्ष्ण, अगस्त्य तथा अगस्त्यके भाईके आश्रमपर गये। उन सबने उनका भलीभाँति सत्कार किया। इसके बाद वे गोदावरीके उत्तम तटपर जा पंचवटीमें रहने लगे। वहाँ उन्होंने दीर्घकालतक बड़े सुखसे निवास किया। धर्मका अनुष्ठान करनेवाले तपस्वी मुनिवर वहाँ जाकर अपने स्वामी राजीवलोचन श्रीरामका पूजन किया करते थे। उन मुनियोंने राक्षसोंसे प्राप्त होनेवाले अपने भयकी भी भगवान्‌को सूचना दी। भगवान्‌ने उन्हें सान्त्वना देकर अभयकी दक्षिणा दी। श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा सत्कार पाकर सब मुनि अपने-अपने आश्रममें चले आये। पंचवटीमें रहते हुए श्रीरामके तेरह वर्ष व्यतीत हो गये।

एक समय भयंकर रूप धारण करनेवाली दुर्धर्ष राक्षसी शूर्पणखाने, जो रावणकी बहिन थी, पंचवटीमें प्रवेश किया। वहाँ कोटि कन्दर्पके समान मनोहर कान्तिवाले श्रीरघुनाथजीको देखकर वह राक्षसी कामदेवके बाणसे पीड़ित हो गयी और उनके पास जाकर बोली—'तुम कौन हो, जो इस दण्डकारण्यके भीतर तपस्वीके वेषमें रहते हो? तपस्वियोंके लिये तो इस वनमें आना बहुत ही कठिन है। तुम किसलिये यहाँ आये हो? ये सब बातें शीघ्र ही सच-सच बताओ। झूठ न बोलना?' उसके इस प्रकार पूछनेपर श्रीरामचन्द्रजीने हँसकर कहा—'मैं राजा दशरथका पुत्र हूँ। मेरा नाम राम है। वे मेरे छोटे भाई धनुर्धर लक्ष्मण हैं। ये मेरी पत्नी सीता हैं। इन्हें मिथिलानरेश जनककी प्यारी पुत्री समझो। मैं पिताके आदेशका पालन करनेके लिये इस वनमें आया हूँ। हम तीनों महर्षियोंका हित करनेकी इच्छासे इस महान् वनमें विचरते हैं। सुन्दरी! तुम मेरे आश्रमपर किसलिये आयी हो? तुम कौन हो और किसके कुलमें उत्पन्न हुई हो? ये सारी बातें सच-सच बताओ।'

राक्षसी बोली—मैं मुनिवर विश्रवाकी पुत्री और रावणकी बहिन हूँ। मेरा नाम शूर्पणखा है। मैं तीनों लोकोंमें विख्यात हूँ। मेरे भाईने यह दण्डकारण्य मुझे दे दिया है। मैं इस महान् वनमें ऋषि-महर्षियोंको खाती हुई विचरती रहती हूँ। तुम एक श्रेष्ठ राजा जान पड़ते हो। तुम्हें देखकर मैं कामदेवके बाणोंसे पीड़ित हो रही हूँ और तुम्हारे साथ बेखटके रमण करनेके लिये यहाँ आयी हूँ। नृपश्रेष्ठ! तुम मेरे पति हो जाओ। मैं तुम्हारी इस सती सीताको अभी खा जाऊँगी।

ऐसा कहकर वह राक्षसी सीताको खा जानेके लिये उद्यत हुई। यह देख श्रीरामचन्द्रजीने तलवार उठाकर उसके नाक-कान काट लिये।* तब विकराल मुखवाली वह राक्षसी भयभीत हो रोती हुई शीघ्र ही खर नामक निशाचरके घर गयी और वहाँ उसने श्रीरामकी सारी करतूत कह सुनायी। यह सुनकर खर कई हजार राक्षसों और दूषण तथा त्रिशिराको साथ ले शत्रुसूदन श्रीरामचन्द्रजीसे युद्ध करनेके लिये आया; किन्तु श्रीरामने उस भयानक वनमें काल और अन्तकके समान प्राणान्तकारी बाणोंद्वारा उन विशालकाय राक्षसोंका अनायास ही संहार कर डाला। विषैले साँपोंके समान तीखे सायकोंद्वारा उन्होंने युद्धमें खर, त्रिशिरा और महाबली दूषणको भी मार गिराया। इस प्रकार दण्डकारण्यवासी समस्त राक्षसोंका वध करके श्रीरामचन्द्रजी देवताओंद्वारा पूजित हुए और महर्षि भी उनकी स्तुति करने लगे। तत्पश्चात् भगवान् श्रीराम सीता और लक्ष्मणके साथ दण्डकारण्यमें रहने लगे। शूर्पणखासे राक्षसोंके मारे जानेका समाचार सुनकर

* इत्युक्त्वा राक्षसीं सीतां ग्रसितुं वीक्ष्य चोद्यताम्। श्रीरामः खड्गमुद्यम्य नासाकर्णौ प्रचिच्छिदे॥ (२६९। २४४)

रावण क्रोधसे मूर्च्छित हो उठा और दुरात्मा मारीचको साथ लेकर जनस्थानमें आया। पंचवटीमें पहुँचकर दशशीश रावणने मारीचको मायामय मृगके रूपमें रामके आश्रमपर भेजा। वह राक्षस अपने पीछे आते हुए दोनों दशरथकुमारोंको आश्रमसे दूर हटा ले गया। इसी बीचमें रावणने अपने वधकी इच्छासे श्रीरामचन्द्रजीकी पत्नी सीताजीको हर लिया।

सीताजीको हरी जाती हुई देख गृध्रोंके राजा महाबली जटायुने श्रीरामचन्द्रजीके प्रति स्नेह होनेके कारण उस राक्षसके साथ युद्ध किया। किन्तु शत्रुविजयी रावणने अपने बाहुबलसे जटायुको मार गिराया और राक्षसोंसे घिरी हुई लंकापुरीमें प्रवेश किया। वहाँ अशोकवाटिकामें सीताको रखा और श्रीरामचन्द्रजीके बाणोंसे मृत्युकी अभिलाषा रखकर वह अपने महलमें चला गया। इधर श्रीरामचन्द्रजी मृगरूपधारी मारीच नामक राक्षसको मारकर भाई लक्ष्मणके साथ जब पुनः आश्रममें आये, तब उन्हें सीता नहीं दिखायी दीं। सीताको कोई राक्षस हर ले गया, यह जानकर दशरथनन्दन श्रीरामको बहुत शोक हुआ और वे सन्तप्त होकर विलाप करने लगे। वनमें घूम-घूमकर उन्होंने सीताकी खोज आरम्भ की। उसी समय मार्गमें महाबली जटायु पृथ्वीपर पड़े दिखायी दिये। उनके पैर और पंख कट गये थे तथा सारा अंग लहूलुहान हो रहा था। उनको इस अवस्थामें देख श्रीरामचन्द्रजीको बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने पूछा—'अहो! किसने तुम्हारा वध किया है?'

जटायुने श्रीरामचन्द्रजीको देखकर धीरे-धीरे कहा—'रघुनन्दन! आपकी पत्नीको महाबली रावणने हर लिया है, उसी राक्षसके हाथसे मैं युद्धमें मारा गया हूँ।' इतना कहकर जटायुने प्राण त्याग दिया। श्रीरामने वैदिक विधिसे उनका दाह-संस्कार किया और उन्हें अपना सनातन धाम प्रदान किया; जो योगियोंको ही प्राप्त होनेयोग्य है। श्रीरघुनाथजीके प्रसादसे गीधको भी परमपदकी प्राप्ति हुई। उन पक्षिराजको श्रीहरिका सारूप्य मोक्ष मिला। तदनन्तर माल्यवान् पर्वतपर जाकर मातंग मुनिके आश्रमपर वे महाभागा धर्म-परायणा शबरीसे मिले। वह भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ थी। उसने श्रीराम-लक्ष्मणको आते देख आगे बढ़कर उनका स्वागत किया और प्रणाम करके आश्रममें कुशके आसनपर उन्हें बिठाया। फिर चरण धोकर वनके सुगन्धित फूलोंसे भक्तिपूर्वक उनका पूजन किया। उस समय शबरीका हृदय आनन्दमग्न हो रहा था। वह दृढ़तापूर्वक उत्तम व्रतका पालन करनेवाली थी। उसने दोनों रघु-कुमारोंको सुगन्धित एवं मधुर फल-मूल निवेदन किये। उन फलोंको भोग लगाकर भगवान्ने शबरीको मोक्ष प्रदान किया। पम्पासरोवरकी ओर जाते समय उन्होंने मार्गमें भयानक रूपधारी कबन्ध नामक राक्षसका वध किया। उसको मारकर महापराक्रमी श्रीरामने उसे जला दिया, इससे वह स्वर्गलोकमें चला गया। इसके बाद महाबली श्रीरघुनाथजीने शबरीतीर्थको अपने शार्ङ्गधनुषकी कोटिसे गंगा और गयाके समान पवित्र बना दिया। 'यह महान् भगवद्भक्तोंका तीर्थ है, इसका जल जिसके उदरमें पड़ेगा, उसका शरीर सम्पूर्ण जगत्के लिये वन्दनीय हो जायगा। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।'

ऐसा कहकर श्रीरामचन्द्रजी ऋष्यमूक पर्वतपर गये। वहाँ पम्पासरोवरके तटपर हनुमान् नामक वानरसे उनकी भेंट हुई। हनुमान्जीके कहनेसे उन्होंने सुग्रीवके साथ मित्रता की और सुग्रीवके अनुरोधसे वानरराज बालिको मारकर सुग्रीवको ही उसके राज्यपर अभिषिक्त कर दिया। तत्पश्चात् जानकीजीका पता लगानेके लिये वानरराज सुग्रीवने हनुमान् आदि वानर-वीरोंको भेजा। पवननन्दन हनुमान्जीने समुद्रको लाँघकर लंका नगरीमें प्रवेश किया और दृढ़तापूर्वक पातिव्रत्यका पालन करनेवाली सीताजीको देखा। वे उपवास करनेके कारण दुर्बल, दीन और अत्यन्त शोकग्रस्त थीं। उनके शरीरपर मैल जम गयी थी तथा वे मलिन वस्त्र पहने हुए थीं। उन्हें श्रीरामचन्द्रजीकी दी हुई पहचान देकर हनुमान्जीने उनसे भगवान्का समाचार निवेदन किया। फिर विदेहराजकुमारीको भलीभाँति आश्वासन दे उन्होंने उस सुन्दर उद्यानको नष्ट कर डाला। तदनन्तर दरवाजेका खम्भा उखाड़कर उससे हनुमान्जीने वनकी रक्षा करनेवाले सेवकों, पाँच सेनापतियों, सात मन्त्रिकुमारों तथा रावणके एक पुत्रको मार डाला। इसके बाद रावणके दूसरे पुत्र मेघनादके द्वारा वे स्वेच्छासे बँध गये। फिर राक्षसराज रावणसे मिलकर हनुमान्जीने उससे वार्तालाप किया और अपनी पूँछमें लगायी हुई आगसे समूची

लंकापुरीको दग्ध कर डाला। फिर सीताजीके दिये हुए चिह्नको लेकर वे लौट आये और कमलनयन श्रीरामचन्द्रजीसे मिलकर सारा हाल बताते हुए बोले— 'मैंने सीताजीका दर्शन किया है।'

इसके बाद सुग्रीवसहित श्रीरामचन्द्रजी बहुत-से वानरोंके साथ समुद्रके तटपर गये। वहाँ जाकर उन्होंने अपनी सेनाका पड़ाव डाल दिया। रावणके एक छोटे भाई थे, जो विभीषणके नामसे प्रसिद्ध थे। वे धर्मात्मा, सत्यप्रतिज्ञ और महान् भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ थे। श्रीरामचन्द्रजीको आया जान विभीषण अपने बड़े भाई रावणको, राज्यको तथा पुत्र और स्त्रीको भी छोड़कर उनकी शरणमें चले गये। हनुमान्‌जीके कहनेसे श्रीरामचन्द्रजीने विभीषणको अपनाया और उन्हें अभयदान देकर राक्षसोंके राज्यपर अभिषिक्त किया। तत्पश्चात् समुद्रको पार करनेकी इच्छासे श्रीरामचन्द्रजी उसकी शरणमें गये, किन्तु प्रार्थना करनेपर भी उसकी गतिविधिमें कोई अन्तर होता न देख महाबली श्रीरामने शार्ङ्गधनुष हाथमें लिया और बाणसमूहोंकी वर्षा करके समुद्रको सुखा दिया। तब सरिताओंके स्वामी समुद्रने करुणासागर भगवान्‌की शरणमें जा उनका विधिवत् पूजन किया। इससे श्रीरघुनाथजीने वारुणास्त्रका प्रयोग करके पुनः सागरको जलसे भर दिया। फिर समुद्रके ही कहनेसे उन्होंने उसपर वानरोंके लाये हुए पर्वतोंके द्वारा पुल बँधवाया। उसीसे सेनासहित लंकापुरीमें जाकर अपनी बहुत बड़ी सेनाको ठहराया। उसके बाद वानरों और राक्षसोंमें खूब युद्ध हुआ।

तदनन्तर रावणके पुत्र महाबली इन्द्रजित् नामक राक्षसने नागपाशसे श्रीराम और लक्ष्मण दोनों भाइयोंको बाँध लिया। उस समय गरुड़ने आकर उन्हें उन अस्त्रोंके बन्धनसे मुक्त किया। महाबली वानरोंके द्वारा बहुत-से राक्षस मारे गये। रावणका छोटा भाई कुम्भकर्ण बड़ा बलवान् वीर था। उसको श्रीरामने युद्धमें अग्निशिखाके समान तेजस्वी बाणोंसे मौतके घाट उतार दिया। तब इन्द्रजित्‌को बड़ा क्रोध हुआ और उसने ब्रह्मास्त्रके द्वारा वानरोंको मार गिराया। उस समय हनुमान्‌जी श्रेष्ठ ओषधियोंसे युक्त पर्वतको उठा ले आये। उसको छूकर बहनेवाली वायुके स्पर्शसे सभी वानर जी उठे। तब परम उदार लक्ष्मणने अपने तीखे बाणोंसे जैसे इन्द्रने वृत्रासुरको मारा था, उसी प्रकार इन्द्रजित्‌को मार गिराया। अब स्वयं रावण ही संग्राममें श्रीरामचन्द्रजीके साथ युद्ध करनेके लिये निकला। उसके साथ चतुरंगिणी सेना और महाबली मन्त्री भी थे। फिर तो वानरों और राक्षसोंमें तथा लक्ष्मणसहित श्रीराम और रावणमें भयंकर युद्ध छिड़ गया। उस समय राक्षसराज रावणने शक्तिका प्रहार करके लक्ष्मणको रणभूमिमें गिरा दिया। इससे महातेजस्वी रघुनाथजी, जो राक्षसोंके काल थे, कुपित हो उठे और काल एवं मृत्युके समान तीखे बाणोंसे राक्षस-वीरोंका संहार करने लगे। उन्होंने कालदण्डके समान सहस्रों तेजस्वी बाण मारकर राक्षसराज रावणको ढक दिया। श्रीरघुनाथजीके बाणोंसे उस निशाचरके सारे अंग बिंध गये और वह भयभीत होकर रणभूमिसे लंकामें भाग गया। उसे सारा संसार श्रीराममय दिखायी देता था; अतः वह खिन्न होकर घरमें घुस गया। इसके बाद हनुमान्‌जी श्रेष्ठ ओषधियोंसे युक्त महान् पर्वत उठा ले आये। इससे लक्ष्मणजीको तुरंत ही चेत हो गया। उधर रावणने विजयकी इच्छासे होम करना आरम्भ किया; किन्तु बड़े-बड़े वानरोंने जाकर शत्रुके उस अभिचारात्मक यज्ञका विध्वंस कर दिया। तब रावण पुनः श्रीरामचन्द्रजीसे युद्ध करनेके लिये निकला। उस समय वह दिव्य रथपर बैठा था और बहुत-से राक्षस उसके साथ थे। यह देख इन्द्रने भी अपने दिव्य अश्वोंसे जुते हुए सारथिसहित दिव्य रथको श्रीरामचन्द्रजीके लिये भेजा। मातलिके लाये हुए उस रथपर बैठकर श्रीरघुनाथजी देवताओंके मुखसे अपनी स्तुति सुनते हुए राक्षसके साथ युद्ध करने लगे। तदनन्तर श्रीराम और रावणमें भयंकर शस्त्रास्त्रोंद्वारा सात दिन और सात रातोंतक घोर युद्ध हुआ। सब देवता विमानोंपर बैठकर उस महायुद्धको देख रहे थे।

रघुकुलश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीने अनेकों बार रावणके मस्तक काटे, किन्तु मेरे (महादेवजीके) वरदानसे उसके फिर नये-नये मस्तक निकल आते थे। तब श्रीरघुनाथजीने उस दुरात्माका वध करनेके लिये महाभयंकर और कालाग्निके समान तेजस्वी ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया। श्रीरामचन्द्रजीका छोड़ा हुआ वह अस्त्र रावणकी छाती छेदकर धरतीको चीरता हुआ रसातलमें चला गया। वहाँ

सर्पोंने उस बाणका पूजन किया। वह महाराक्षस प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिरा और मर गया। इससे सम्पूर्ण देवताओंका हृदय हर्षसे भर गया। वे सम्पूर्ण जगत्‌के गुरु महात्मा श्रीरामपर फूलोंकी वर्षा करने लगे। गन्धर्वराज गाने और अप्सराएँ नाचने लगीं। पवित्र वायु चलने लगी और सूर्यकी प्रभा स्वच्छ हो गयी। मुनि, सिद्ध, देवता, गन्धर्व और किन्नर भगवान्‌की स्तुति करने लगे। श्रीरघुनाथजीने लंकाके राज्यपर विभीषणको अभिषिक्त करके अपनेको कृतार्थ-सा माना और इस प्रकार कहा— 'विभीषण! जबतक सूर्य, चन्द्रमा और पृथ्वी रहेगी तथा जबतक यहाँ मेरी कथाका प्रचार रहेगा, तबतक तुम्हारा राज्य कायम रहेगा। महाबल! यहाँ राज्य करके तुम पुनः अपने पुत्र, पौत्र तथा गणोंके साथ योगियोंको प्राप्त होनेयोग्य मेरे सनातन दिव्य धाममें पहुँच जाओगे।'

इस प्रकार विभीषणको वरदान दे महाबली श्रीरामचन्द्रजीने मिथिलेशकुमारी सीताको पास बुलवाया। यद्यपि वे सर्वथा पवित्र थीं, तो भी श्रीरामने भरी सभामें उनके प्रति बहुत-से निन्दित वचन कहे। पतिके द्वारा निन्दित होनेपर सती-साध्वी सीता अग्नि प्रज्वलित करके उसमें प्रवेश करने लगीं। माता जानकीको अग्निमें प्रवेश करते देख शिव और ब्रह्मा आदि सभी देवता भयसे व्याकुल हो उठे और श्रीरघुनाथजीके पास आ हाथ जोड़कर बोले—'महाबाहु श्रीराम! आप अत्यन्त पराक्रमी हैं। हमारी बात सुनें। सीताजी अत्यन्त निर्मल हैं, साध्वी हैं और कभी भी आपसे विलग होनेवाली नहीं हैं। जैसे सूर्य अपनी प्रभाको नहीं छोड़ सकते, उसी प्रकार आपके द्वारा भी ये त्यागनेयोग्य नहीं हैं। ये सम्पूर्ण जगत्‌की माता और सबको आश्रय देनेवाली हैं; संसारका कल्याण करनेके लिये ही ये भूतलपर प्रकट हुई हैं। रावण और कुम्भकर्ण पहले आपके ही भक्त थे, वे सनकादिकोंके शापसे इस पृथ्वीपर उत्पन्न हुए थे। उन्हींकी मुक्तिके लिये ये विदेहराजकुमारी दण्डकारण्यमें हरी गयीं। इन्हींको निमित्त बनाकर वे दोनों श्रेष्ठ राक्षस आपके हाथसे मारे गये हैं। अब इस राक्षसयोनिसे मुक्त होकर पुत्र, पौत्रों और सेवकोंसहित स्वर्गमें गये हैं। अतः सदा शुद्ध आचरणवाली सती-साध्वी सीताको शीघ्र ही ग्रहण कीजिये। ठीक उसी तरह जैसे पूर्वकालमें आपने समुद्रसे निकलनेपर लक्ष्मीरूपमें इन्हें ग्रहण किया था।'

इसी समय लोकसाक्षी अग्निदेव सीताको लेकर प्रकट हुए। उन्होंने देवताओंके समीप ही श्रीजानकीजीको श्रीरामजीकी सेवामें अर्पण कर दिया और कहा— 'प्रभो! सीता सर्वथा निष्कलंक और शुद्ध आचरणवाली हैं। यह बात मैं सत्य-सत्य निवेदन करता हूँ। आप इन्हें बिना विलम्ब किये ग्रहण कीजिये।' अग्निदेवके इस कथनसे रघुकुलश्रेष्ठ श्रीरामने प्रसन्नताके साथ सीताको स्वीकार किया। फिर सब देवता भगवान्‌का पूजन करने लगे। उस युद्धमें जो-जो श्रेष्ठ वानर राक्षसोंके हाथसे मारे गये थे, वे ब्रह्माजीके वरसे शीघ्र ही जी उठे। तत्पश्चात् राक्षसराज विभीषणने सूर्यके समान तेजस्वी पुष्पकविमानको, जिसे रावणने कुबेरसे छीन लिया था, श्रीरघुनाथजीको भेंट किया। साथ ही बहुत-से वस्त्र और आभूषण भी दिये। विभीषणसे पूजित होकर परम प्रतापी श्रीरामचन्द्रजी अपनी धर्मपत्नी विदेहकुमारी सीताके साथ उस श्रेष्ठ विमानपर आरूढ़ हुए। इसके बाद शूरवीर भाई लक्ष्मण, वानर और भालुओंके समुदायसहित वानरराज सुग्रीव तथा महाबली राक्षसोंसहित शूरवीर विभीषण भी उसपर सवार हुए। वानर, भालू और राक्षस—सबके साथ सवार हो श्रीरामचन्द्रजी श्रेष्ठ देवताओंके द्वारा अपनी स्तुति सुनते हुए अयोध्याकी ओर प्रस्थित हुए। भरद्वाज मुनिके आश्रमपर जाकर सत्यपराक्रमी श्रीरामने हनुमान्‌जीको भरतके पास भेजा। वे निषादोंके गाँव (शृंगवेरपुर)-में जाकर श्रीविष्णुभक्त गुहसे मिले और उनसे श्रीरामचन्द्रजीके आनेका समाचार कहकर नन्दिग्रामको चले गये। वहाँ श्रीरामचन्द्रजीके छोटे भाई भरतसे मिलकर उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीके शुभागमनका समाचार कह सुनाया। हनुमान्‌जीके द्वारा श्रीरघुनाथजीके शुभागमनकी बात सुनकर भाई तथा सुहृदोंके साथ भरतजीको बड़ी प्रसन्नता हुई। फिर वायुनन्दन हनुमान्‌जी पुनः श्रीरामचन्द्रजीके पास लौट आये और भरतका समाचार उनसे कह सुनाया।

तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजीने अपने छोटे भाई लक्ष्मण और सीताके साथ तपस्वी भरद्वाज मुनिको प्रणाम किया। फिर मुनिने भी पकवान, फल, मूल, वस्त्र और

आभूषण आदिके द्वारा भाईसहित श्रीरामका स्वागत-सत्कार किया। उनसे सम्मानित होकर श्रीरघुनाथजीने उन्हें प्रणाम किया और उनकी आज्ञा ले पुनः लक्ष्मणसहित पुष्पकविमानपर आरूढ़ हो सुहृदोंसहित नन्दिग्राममें आये। उस समय कैकेयीनन्दन भरतने भाई शत्रुघ्न, मन्त्रियों, नगरके मुख्य-मुख्य व्यक्तियों तथा सेनासहित अनेक राजाओंको साथ ले प्रसन्नतापूर्वक आगे आकर बड़े भाईकी अगवानी की। रघुकुलश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीके निकट पहुँचकर भरतने अनुयायियोंसहित उन्हें प्रणाम किया। फिर शत्रुओंको ताप देनेवाले श्रीरघुनाथजीने विमानसे उतरकर भरत और शत्रुघ्नको छातीसे लगाया। तत्पश्चात् पुरोहित वसिष्ठजी, माताओं, बड़े-बूढ़ों तथा बन्धु-बान्धवोंको महातेजस्वी श्रीरामने सीता और लक्ष्मणके साथ प्रणाम किया। इसके बाद भरतजीने विभीषण, सुग्रीव, जाम्बवान्, अंगद, हनुमान् और सुषेणको गले लगाया। वहाँ भाइयों और अनुचरोंसहित भगवान्ने मांगलिक स्नान करके दिव्य माला और दिव्य वस्त्र धारण किये, फिर दिव्य चन्दन लगाया। इसके बाद वे सीता और लक्ष्मणके साथ सुमन्त्र नामक सारथिसे संचालित दिव्य रथपर बैठे। उस समय देवगण उनकी स्तुति कर रहे थे। फिर भरत, सुग्रीव, शत्रुघ्न, विभीषण, अंगद, सुषेण, जाम्बवान्, हनुमान्, नील, नल, सुभग, शरभ, गन्धमादन, अन्यान्य कपि, निषादराज गुह, महापराक्रमी राक्षस और महाबली राजा भी बहुत-से घोड़े, हाथी और रथोंपर आरूढ़ हुए। उस समय नाना प्रकारके मांगलिक बाजे बजने लगे तथा नाना प्रकारके स्तोत्रोंका गान होने लगा। इस प्रकार वानर, भालू, राक्षस, निषाद और मानव सैनिकोंके साथ महातेजस्वी श्रीरघुनाथजीने अपने अविनाशी नगर साकेतधाम (अयोध्या)-में प्रवेश किया। मार्गमें उस राजनगरीकी शोभा देखते हुए श्रीरघुनाथजीको बारंबार अपने पिता महाराज दशरथकी याद आने लगी। तत्पश्चात् सुग्रीव, हनुमान् और विभीषण आदि भगवद्भक्तोंके पावन चरणोंके पड़नेसे पवित्र हुए राजमहलमें उन्होंने प्रवेश किया।

श्रीरामके राज्याभिषेकसे परमधामगमनतकका प्रसंग

श्रीमहादेवजी कहते हैं—पार्वती! तदनन्तर किसी पवित्र दिनको शुभ लग्नमें मंगलमय भगवान् श्रीरामका राज्याभिषेक करनेके लिये लोगोंने मांगलिक उत्सव मनाना आरम्भ किया। वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि, कश्यप, मार्कण्डेय, मौद्गल्य, पर्वत और नारद—ये महर्षि जप और होम करके राजशिरोमणि श्रीरघुनाथजीका शुभ अभिषेक करने लगे। नाना रत्नोंसे निर्मित दिव्य सुवर्णमय पीढ़ेपर सीतासहित भगवान् श्रीरामको बिठाकर उत्तम व्रतका पालन करनेवाले महर्षि सोने और रत्नोंके कलशोंमें रखे हुए सब तीर्थोंके शुद्ध एवं मन्त्रपूत जलसे, जिसमें पवित्र मांगलिक वस्तुएँ, दूर्वादल, तुलसीदल, फूल और चन्दन आदि पड़े थे, उनका मंगलमय अभिषेक करने और चारों वेदोंके वैष्णव सूक्तोंको पढ़ने लगे। उस शुभ लग्नके समय आकाशमें देवताओंकी दुन्दुभियाँ बजती थीं। चारों ओरसे फूलोंकी वर्षा होती थी। वेदोंके पारगामी मुनियोंने दिव्य वस्त्र, दिव्य आभूषण, दिव्य गन्ध और नाना प्रकारके दिव्य पुष्पोंसे श्रीसीतादेवीके साथ श्रीरघुनाथजीका शृंगार किया। उस समय लक्ष्मणने दिव्य छत्र और चँवर धारण किये। भरत और शत्रुघ्न भगवान्के दोनों बगलमें खड़े होकर ताड़के पंखोंसे हवा करने लगे। राक्षसराज विभीषणने सामनेसे दर्पण दिखाया। वानरराज सुग्रीव भरा हुआ कलश लेकर खड़े हुए। महातेजस्वी जाम्बवान्ने मनोहर फूलोंकी माला पहनायी। बालिकुमार अंगदने श्रीहरिको कपूर मिला हुआ पान अर्पण किया। हनुमान्जीने दिव्य दीपक दिखाया। सुषेणने सुन्दर झंडा फहराया। सब मन्त्री महात्मा श्रीरामको चारों ओरसे घेरकर उनकी सेवामें खड़े हुए। मन्त्रियोंके नाम इस प्रकार थे—सृष्टि, जयन्त, विजय, सौराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन, अकोप, धर्मपाल तथा सुमन्त्र। नाना जनपदोंके स्वामी नरश्रेष्ठ नृपतिगण, पुरवासी, वैदिक विद्वान् तथा बड़े-बूढ़े सज्जन भी महाराजकी सेवामें उपस्थित थे। वानर, भालू, मन्त्री, राजा, राक्षस, श्रेष्ठ द्विज तथा सेवकोंसे घिरे हुए महाराज श्रीराम साकेतधाम (अयोध्या)-में इस प्रकार शोभा पाने लगे, जैसे भगवान् लक्ष्मीपति विष्णु देवताओंसे घिरे होनेपर परव्योम (वैकुण्ठधाम)-में सुशोभित होते हैं। देवी सीताके साथ श्रीरघुनाथजीको राज्यपर अभिषिक्त

होते देख विमानोंपर बैठे हुए देवताओंका हृदय आनन्दसे भर गया। गन्धर्व और अप्सराओंके समुदाय जय-जयकार करते हुए स्तुति करने लगे। वसिष्ठ आदि महर्षियोंद्वारा अभिषेक हो जानेपर श्रीरामचन्द्रजी सीतादेवीके साथ उसी प्रकार सुशोभित हुए, जैसे लक्ष्मीजीके साथ भगवान् विष्णु शोभा पाते हैं। सीताजी अत्यन्त विनीतभावसे श्रीरघुनाथजीके चरणकमलोंकी सेवा किया करती थीं।

राज्याभिषेक हो जानेके पश्चात् सम्पूर्ण दिशाओंका पालन करते हुए श्रीरामचन्द्रजीने विदेहनन्दिनी सीताके साथ एक हजार वर्षोंतक मनोरम राजभोगोंका उपभोग किया। इस बीचमें अन्तःपुरकी स्त्रियाँ, नगर-निवासी तथा प्रान्तके लोग छिपे तौरपर सीताजीकी निन्दा करने लगे। निन्दाका विषय यही था कि वे कुछ कालतक राक्षसके घरमें निवास कर चुकी थीं। शत्रुओंका संहार करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी लोकापवादके कारण मानव-भावका प्रदर्शन करते हुए उन्होंने राजकुमारी सीताको गर्भवतीकी अवस्थामें वाल्मीकि मुनिके आश्रमके पास गंगातटपर महान् वनके भीतर छुड़वा दिया। महातेजस्विनी जानकी गर्भका कष्ट सहन करती हुई मुनिके आश्रममें रहने लगीं। उनका मन सदा स्वामीके चिन्तनमें ही लगा रहता था। मुनिपत्नियोंसे सत्कृत और महर्षि वाल्मीकिद्वारा सुरक्षित होकर उन्होंने आश्रममें ही दो पुत्र उत्पन्न किये, जो कुश और लवके नामसे प्रसिद्ध हुए। मुनिने ही उनके संस्कार किये और वहीं पलकर वे दोनों बड़े हुए।

उधर श्रीरामचन्द्रजी यम-नियमादि गुणोंसे सम्पन्न हो सब प्रकारके भोगोंका परित्याग करके भाइयोंके साथ पृथ्वीका पालन करने लगे। वे सदा आदि-अन्तसे रहित, सर्वव्यापी श्रीहरिका पूजन करते हुए ब्रह्मचर्यपरायण हो प्रतिदिन पृथ्वीका शासन करते थे। धर्मात्मा शत्रुघ्न लवणासुरको मारकर अपने दो पुत्रोंके साथ देवनिर्मित मथुरापुरीके राज्यका पालन करने लगे। भरतने सिंधु नदीके दोनों तटोंपर अधिकार जमाये हुए गन्धर्वोंका संहार करके उस देशमें अपने दोनों महाबली पुत्रोंको स्थापित कर दिया। इसी प्रकार लक्ष्मणने मद्रदेशमें जाकर मद्रोंका वध किया और अपने दो महापराक्रमी पुत्रोंको वहाँके राज्यपर अभिषिक्त कर दिया। तत्पश्चात् अयोध्यामें आकर वे श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंकी सेवा करने लगे। श्रीरघुनाथजीने एक तपस्वी शूद्रको मारकर मृत्युको प्राप्त हुए एक ब्राह्मणबालकको जीवन प्रदान किया। तत्पश्चात् नैमिषारण्यमें गोमतीके तटपर श्रीरघुनाथजीने सुवर्णमयी जानकीकी प्रतिमाके साथ बैठकर अश्वमेधयज्ञ किया। वहाँ भारी जनसमाज एकत्रित था। उन्होंने बहुत-से यज्ञ किये।

इसी समय महातपस्वी वाल्मीकिजी सीताको साथ लेकर वहाँ आये और श्रीरघुनाथजीसे इस प्रकार बोले—'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले श्रीराम! मिथिलेशकुमारी सीता सर्वथा निष्पाप हैं। ये अत्यन्त निर्मल और सती-साध्वी स्त्री हैं। जैसे प्रभा सूर्यसे पृथक् नहीं होती, उसी प्रकार ये भी कभी आपसे अलग नहीं होतीं। आप भी पापके सम्पर्कसे रहित हैं; फिर आपने इनका त्याग कैसे किया?'

श्रीराम बोले—ब्रह्मन्! मैं जानता हूँ, आपके कथनानुसार जानकी सर्वथा निष्पाप हैं। बात यह है कि सती-साध्वी सीताको दण्डकारण्यमें रावणने हर लिया था। मैंने उस दुष्टको युद्धमें मार डाला। उसके बाद सीताने अग्निमें प्रवेश करके जब अपनेको शुद्ध प्रमाणित कर दिया, तब मैं धर्मतः इन्हें लेकर पुनः अयोध्यामें आया। यहाँ आनेपर इनके प्रति नगरनिवासियोंमें महान् अपवाद फैला। यद्यपि ये तब भी सदाचारिणी ही थीं, तो भी लोकापवादके कारण मैंने इन्हें आपके निकट छोड़ दिया। अतः अब केवल मेरे ही चिन्तनमें संलग्न रहनेवाली सीताको उचित है कि ये लोगोंके सन्तोषके लिये राजाओं और महर्षियोंके सामने अपनी शुद्धताका विश्वास दिलावें।

मुनियों और राजाओंकी सभामें श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर सती सीताने उनके प्रति अपना अनन्य प्रेम दिखलानेके लिये सब लोगोंको आश्चर्यमें डालनेवाला प्रमाण उपस्थित किया। वे हाथ जोड़कर सबके सामने उस भरी सभामें बोलीं—'यदि मैं श्रीरघुनाथजीके सिवा अन्य किसी पुरुषका मनसे चिन्तन भी न करती होऊँ तो हे पृथ्वीदेवी! तुम मुझे अपने अंकमें स्थान दो। यदि मैं मन, वाणी और क्रियाद्वारा केवल श्रीरघुनाथजीकी ही पूजा करती होऊँ तो हे माता पृथिवी! तुम मुझे अपने अंकमें स्थान दो।'

माता जानकीको परमधाममें चलनेके लिये उद्यत जान पक्षिराज गरुड़ अपनी पीठपर रत्नमय सिंहासन लिये रसातलसे प्रकट हुए। इसी समय पृथ्वीदेवी भी प्रत्यक्षरूपसे प्रकट हुईं। उन्होंने मिथिलेशकुमारी सीताको दोनों हाथोंसे उठा लिया और स्वागतपूर्वक अभिनन्दन करके उन्हें सिंहासनपर बिठाया। सीतादेवीको सिंहासनपर बैठी देख देवगण धारावाहिकरूपसे उनके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे तथा दिव्य अप्सराओंने उनका पूजन किया। फिर वे सनातनी देवी गरुड़पर आरूढ़ हो पृथ्वीके ही मार्गसे परमधामको चली गयीं। जगदीश्वरी सीता पूर्वभागमें दासीगणोंसे घिरकर योगियोंको प्राप्त होनेयोग्य सनातन परमधाममें स्थित हुईं। सीताको रसातलमें प्रवेश करते देख सब मनुष्य साधुवाद देते हुए उच्चस्वरसे कहने लगे—'वास्तवमें ये सीतादेवी परम साध्वी हैं।'

सीताके अन्तर्धान हो जानेसे श्रीरामचन्द्रजीको बड़ा शोक हुआ। वे अपने दोनों पुत्रोंको लेकर मुनियों और राजाओंके साथ अयोध्यामें आये। तदनन्तर दीर्घकालके पश्चात् उत्तम व्रतका पालन करनेवाली श्रीरामचन्द्रजीकी माताएँ कालधर्मको प्राप्त हो पतिके समीप स्वर्गलोकमें चली गयीं। कठोर व्रतका पालन करनेवाले श्रीरघुनाथजीने ग्यारह हजार वर्षोंतक धर्मपूर्वक राज्यका पालन किया। एक दिन काल तपस्वीका वेष धारण करके श्रीराम-चन्द्रजीके भवनमें आया और इस प्रकार बोला—'महाभाग श्रीराम! मुझे ब्रह्माजीने भेजा है। रघुश्रेष्ठ! मैं उनका सन्देश कहता हूँ, आप सुनें। मेरी और आपकी बातचीत हम ही दोनोंतक सीमित रहनी चाहिये; इस बीचमें जो यहाँ प्रवेश करे, वह वधके योग्य होगा।'

ऐसा ही होगा, यह प्रतिज्ञा करके श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणको दरवाजेपर पहरा देनेके लिये बिठा दिया और स्वयं कालके साथ वार्तालाप करने लगे। उस समय कालने कहा—''श्रीराम! मेरे आनेका जो कारण है, उसे आप सुनें। देवताओंने आपसे कहा था कि 'आप रावण और कुम्भकर्णको मार ग्यारह हजार वर्षोंतक मनुष्यलोकमें निवास करें।' उनके ऐसा कहनेपर आप इस भूतलपर अवतीर्ण हुए थे। वह समय अब पूरा हो गया है; अतः अब आप परमधामको पधारें, जिससे सब देवता आपसे सनाथ हों।'' महाबाहु श्रीरामने 'एवमस्तु' कहकर कालका अनुरोध स्वीकार किया।

उन दोनोंमें अभी बातचीत हो ही रही थी कि महातपस्वी दुर्वासामुनि राजद्वारपर आ पहुँचे और लक्ष्मणसे बोले—'राजकुमार! तुम शीघ्र जाकर रघुनाथजीको मेरे आनेकी सूचना दो।' यह सुनकर लक्ष्मणने कहा—'ब्रह्मन्! इस समय महाराजके समीप जानेकी आज्ञा नहीं है। लक्ष्मणकी बात सुनकर मुनिश्रेष्ठ दुर्वासाको बड़ा क्रोध हुआ। वे बोले—'यदि तुम श्रीरामचन्द्रजीसे नहीं मिलाओगे तो शाप दे दूँगा।' लक्ष्मणजीने शापके भयसे श्रीरामचन्द्रजीको महर्षि दुर्वासाके आगमनकी सूचना दे दी। तब सब भूतोंको भय देनेवाले कालदेव वहीं अन्तर्धान हो गये। महाराज श्रीरामने दुर्वासाके आनेपर उनका विधिवत् पूजन किया। उधर रघुश्रेष्ठ लक्ष्मणने अपने बड़े भाईकी प्रतिज्ञाको याद करके सरयूके जलमें स्थित हो अपने साक्षात् स्वरूपमें प्रवेश किया। उस समय उनके मस्तकपर सहस्रों फन शोभा पाने लगे। उनके श्रीअंगोंकी कान्ति कोटि चन्द्रमाओंके समान जान पड़ती थी। वे दिव्य माला और दिव्य वस्त्र धारण किये दिव्य चन्दनके अनुलेपसे सुशोभित हो रहे थे। सहस्रों नाग-कन्याओंसे घिरे हुए भगवान् अनन्त दिव्य विमानपर बैठकर परमधामको चले गये।

लक्ष्मणके परमधामगमनका हाल जानकर श्रीरघुनाथजीने भी इस लोकसे जानेका विचार किया। उन्होंने अपने पुत्र वीरवर कुशको कुशावतीमें और लवको द्वारवतीमें धर्मपूर्वक अपने-अपने राज्यपर स्थापित किया। उस समय भगवान् श्रीरामके अभिप्रायको जानकर समस्त वानर और महाबली राक्षस अयोध्यामें आ गये। विभीषण, सुग्रीव, जाम्बवान्, पवनकुमार हनुमान्, नील, नल, सुषेण और निषादराज गुह भी आ पहुँचे। महामना शत्रुघ्न भी अपने वीर पुत्रोंको राज्यपर अभिषिक्त करके श्रीरामपालित अयोध्यानगरीमें आये। वे सभी महात्मा श्रीरामको प्रणाम करके हाथ जोड़कर कहने लगे—'रघुश्रेष्ठ! आप परमधाममें पधारनेको उद्यत हैं—यह जानकर हम सब लोग आपके साथ चलनेको आये हैं। प्रभो! आपके बिना हम क्षणभर भी जीवित रहनेमें समर्थ नहीं हैं; अतः हम भी साथ ही चलेंगे।' उनके

ऐसा कहनेपर श्रीरघुनाथजीने 'बहुत अच्छा' कहकर उनकी प्रार्थना स्वीकार की। तत्पश्चात् उन्होंने राक्षसराज विभीषणसे कहा—'तुम धर्मपूर्वक राज्यका पालन करो। मेरी प्रतिज्ञा व्यर्थ न होने दो। जबतक चन्द्रमा, सूर्य और पृथ्वी कायम हैं, तबतक प्रसन्नतापूर्वक राज्य भोगो। फिर योग्य समय आनेपर मेरे परमपदको प्राप्त होओगे।'

ऐसा कहकर श्रीरामचन्द्रजीने इक्ष्वाकुकुलके देवता श्रीरंगशायी सनातन भगवान् विष्णुके अर्चाविग्रहको विभीषणके लिये समर्पित किया। इसके बाद शत्रुसूदन श्रीरघुनाथजीने हनुमान्‌जीसे कहा—'वानरेश्वर! संसारमें जबतक मेरी कथाका प्रचार रहे, तबतक तुम इस पृथ्वीपर सुखसे रहो। फिर समयानुसार मुझे प्राप्त होओगे।' हनुमान्‌जीसे ऐसा कहकर वे जाम्बवान्‌से बोले—'पुरुषश्रेष्ठ! द्वापरयुग आनेपर मैं पुनः पृथ्वीका भार उतारनेके लिये यदुकुलमें अवतार लूँगा और तुम्हारे साथ युद्ध करूँगा। [अतः तुम यहीं रहो।]'

उपर्युक्त व्यक्तियोंसे ऐसा कहकर श्रीरामचन्द्रजीने अन्य सभी वानरों और भालुओंसे कहा—'तुम सब लोग मेरे साथ चलो।' तदनन्तर ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाले भगवान् श्रीराम श्वेत वस्त्र पहनकर दोनों हाथोंमें कुश लिये अनासक्तभावसे चले। श्रीरामचन्द्रजीके दक्षिण भागमें कमल हाथमें लिये श्रीदेवी उपस्थित हो गयीं और वामभागमें भूदेवी साथ-साथ चलने लगीं। वेद, वेदांग, पुराण, इतिहास, ॐकार, वषट्कार, लोकको पवित्र करनेवाली सावित्री तथा धनुष आदि अस्त्र-शस्त्र—सभी पुरुष-विग्रह धारण करके वहाँ उपस्थित हो गये। भरत, शत्रुघ्न तथा समस्त पुरवासी भी अपनी स्त्री, पुत्र तथा सेवकोंसहित भगवान्‌के साथ-साथ चले। मन्त्री, भृत्यवर्ग, किंकर, वैदिक, वानरगण, भालु तथा राजा सुग्रीव—इन सबने स्त्री और पुत्रोंके साथ परम बुद्धिमान् श्रीरघुनाथजीका अनुसरण किया। इतना ही नहीं, समीपवर्ती पशु, पक्षी तथा समस्त स्थावर-जंगम प्राणी भी महात्मा रघुनाथजीके साथ गये। उस समय श्रीरामचन्द्रजीको जो भी देख लेते, वे ही उनके साथ लग जाते थे। उनमेंसे कोई भी पीछे नहीं लौटता था।

तदनन्तर अयोध्यासे तीन योजन दूर जाकर, जहाँ नदीका प्रवाह पच्छिमकी ओर था, भगवान्‌ने अनुयायियोंसहित पुण्यसलिला सरयूमें प्रवेश किया। उस समय पितामह ब्रह्माजी सब देवताओं और ऋषियोंके साथ आकर रघुनाथजीकी स्तुति करते हुए बोले—'श्रीविष्णो! आइये। आपका कल्याण हो। बड़े सौभाग्यकी बात है जो आप यहाँ पधारे हैं। मानद! अब आप अपने देवोपम भाइयोंके साथ अपने वैष्णव स्वरूपमें प्रवेश कीजिये। वही आपका सनातन रूप है। देव! आप ही सम्पूर्ण विश्वकी गति हैं। कोई भी आपके स्वरूपको वास्तवमें नहीं जानते। आप अचिन्त्य, महात्मा, अविनाशी और सबके आश्रय हैं। भगवन्! आप आइये।' उस समय भगवान् श्रीरामने अपने स्वरूपमें प्रवेश किया। भरत और शत्रुघ्न क्रमशः शंख और चक्रके अंश थे। वे दोनों महात्मा दिव्य तेजसे सम्पन्न हो अपने तेजमें मिल गये। तब शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हुए चतुर्भुज भगवान् विष्णुके रूपमें स्थित हो श्रीरामचन्द्रजी श्री और भू देवियोंके साथ विमानपर आरूढ़ हुए। वहाँ दिव्य कल्पवृक्षके मूल भागमें सुन्दर सिंहासनपर भगवान् विराजमान हुए। उस समय सब देवता उनकी स्तुति कर रहे थे। श्रीराम-चन्द्रजीके पीछे जो वानर, भालु और मनुष्य आये थे, उन्होंने सरयूके जलका स्पर्श करते ही सुखपूर्वक प्राण त्याग दिये और श्रीरघुनाथजीकी कृपासे सबने दिव्य रूप धारण कर लिया। उनके अंगोंमें दिव्य हार और दिव्य वस्त्र शोभा पा रहे थे। वे दिव्य मंगलमय कान्तिसे सम्पन्न थे। असंख्य देहधारियोंसे घिरे हुए राजीवलोचन भगवान् श्रीराम उस विमानपर आरूढ़ हुए। उस समय देवता, सिद्ध, मुनि और महात्माओंसे पूजित होकर वे अपने दिव्य, अविनाशी एवं सनातन धाममें चले गये।

पार्वती! जो मनुष्य श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रके एक या आधे श्लोकको पढ़ता अथवा सुनता या भक्तिपूर्वक स्मरण करता है, वह कोटि जन्मोंके उपार्जित ज्ञाताज्ञात पापसे मुक्त हो स्त्री, पुत्र एवं बन्धु-बान्धवोंके साथ योगियोंको प्राप्त होनेयोग्य विष्णुलोकमें अनायास ही चला जाता है। देवि! यह मैंने तुमसे श्रीरामचन्द्रजीके महान् चरित्रका वर्णन किया है। तुम्हारी प्रेरणासे मुझे श्रीरामचन्द्रजीकी लीलाओंके कीर्तनका शुभ अवसर प्राप्त हुआ, इससे मैं अपनेको धन्य मानता हूँ।

श्रीकृष्णावतारकी कथा—व्रजकी लीलाओंका प्रसंग

पार्वतीजीने कहा—महेश्वर! आपने श्रीरघुनाथजीके उत्तम चरित्रका अच्छी तरह वर्णन किया। देवेश्वर! आपके प्रसादसे इस उत्तम कथाको श्रवण करके मैं धन्य हो गयी। अब मुझे भगवान् वासुदेवके महान् चरित्रोंको सुननेकी इच्छा हो रही है, कृपया कहिये।

श्रीमहादेवजी बोले—देवि! सबके हृदयमें निवास करनेवाले परमात्मा श्रीकृष्णकी लीलाएँ मनुष्योंको मनोवांछित फल देनेवाली हैं। मैं उनका वर्णन करता हूँ, सुनो। यदुवंशमें वसुदेव नामक श्रेष्ठ पुरुष उत्पन्न हुए, जो देवमीढके पुत्र और सब धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ थे। उन्होंने मथुरामें उग्रसेनकी पुत्री* देवकीसे विधिपूर्वक विवाह किया, जो देवांगनाओंके समान सुन्दरी थी। उग्रसेनके एक कंस नामक पुत्र था, जो महाबलवान् और शूरवीर था। जब वधू और वर रथपर बैठकर विदा होने लगे, उस समय कंस स्नेहवश सारथि बनकर उनका रथ हाँकने लगा। इसी समय गम्भीर स्वरमें आकाशवाणी सुनायी पड़ी—'कंस! इस देवकीका आठवाँ बालक तुम्हारे प्राण लेगा।'

यह सुनकर कंस अपनी बहिनको मार डालनेके लिये तैयार हो गया। उसे क्रोधमें भरा देख बुद्धिमान् वसुदेवजीने कहा—'राजन्! यह तुम्हारी बहिन है, तुम्हें धर्मत: इसका वध नहीं करना चाहिये। इसके गर्भसे जो बालक उत्पन्न हों, उन्हींको मार डालना।' 'अच्छा, ऐसा ही हो' यों कहकर कंसने वसुदेव और देवकीको अपने सुन्दर महलमें ही रोक लिया और उनके लिये सब प्रकारके सुखभोगकी व्यवस्था कर दी। पार्वती! इसी बीचमें समस्त लोकोंको धारण करनेवाली पृथ्वी भारी भारसे पीड़ित होकर सहसा लोकनाथ ब्रह्माजीके पास गयी और गम्भीर वाणीमें बोली—'प्रभो! अब मुझमें इन लोकोंको धारण करनेकी शक्ति नहीं रह गयी है। मेरे ऊपर पाप कर्म करनेवाले राक्षस निवास करते हैं। वे बड़े बलवान् हैं, अत: सम्पूर्ण जगत्के धर्मोंका विध्वंस करते हैं। पापसे मोहित हुए समस्त मानव इस समय अधर्मपरायण हो रहे हैं। इस संसारमें अब थोड़ा-सा भी धर्म कहीं दिखायी नहीं देता। देव! मैं सत्य-शौचयुक्त धर्मके ही बलसे टिकी हुई थी। अत: अधर्मपरायण विश्वको धारण करनेमें मैं असमर्थ हो रही हूँ।'

यों कहकर पृथ्वी वहीं अन्तर्धान हो गयी। तदनन्तर ब्रह्मा और शिव आदि समस्त देवता तथा महातपस्वी मुनि क्षीरसागरके उत्तर तटपर जगदीश्वर श्रीविष्णुके पास गये और नाना प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा उनकी स्तुति करने लगे। इससे प्रसन्न होकर भगवान्ने समस्त देवताओं और मुनिवरोंसे कहा—'देवगण! तुम सब लोग यहाँ किसलिये आये हो?' तब पितामह ब्रह्माजीने देवाधिदेव जनार्दनसे कहा—'देवदेव! जगन्नाथ! पृथ्वी भारी भारसे पीडित है। इस समय संसारमें बहुत-से दुर्द्धर्ष राक्षस उत्पन्न हो गये हैं। जरासन्ध, कंस, प्रलम्ब और धेनुक आदि दुरात्मा सब लोगोंको सता रहे हैं; अत: आप इस पृथ्वीका भार उतारनेकी कृपा करें।'

ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर सम्पूर्ण जगत्का पालन करनेवाले अविनाशी भगवान् हृषीकेशने कहा—'देवताओ! मैं मनुष्यलोकके भीतर यदुकुलमें अवतार लेकर पृथ्वीका भार हटाऊँगा।' यह सुनकर सब देवता भगवान् जनार्दनको नमस्कार करके अपने-अपने लोकमें जा उन परमेश्वरका ही चिन्तन करने लगे। तत्पश्चात् परमेश्वर श्रीहरिने भगवती मायासे कहा—'देवि! रसातलसे हिरण्याक्षके छ: पुत्रोंको ले आओ और क्रमश: वसुदेवपत्नी देवकीके गर्भमें स्थापित करो। सातवाँ गर्भ अनन्त (शेषनाग)-का अंश होगा, उसे भी खींचकर तुम देवकीकी सौत रोहिणीके उदरमें स्थापित कर देना। तदनन्तर देवकीके आठवें गर्भमें मेरा अंश प्रकट होगा। तुम नन्दगोपकी पत्नी यशोदाके गर्भसे उत्पन्न होना। इससे इन्द्र आदि देवता तुम्हारी पूजा करेंगे।'

'बहुत अच्छा' कहकर महाभागा मायाने क्रमश: हिरण्याक्षके पुत्रोंको ला-लाकर देवकीके गर्भमें स्थापित किया। महाबली कंसने पैदा होते ही उन बालकोंको मार डाला। फिर भगवत्प्रेरणावश सातवाँ गर्भ अनन्तके अंशसे प्रकट हुआ। वह गर्भ जब बढ़कर कुछ पुष्ट हुआ

* अन्य पुराणोंमें देवकीको उग्रसेनके भाई देवककी पुत्री बताया गया है। कल्पभेदसे ऐसा होना सम्भव है।

तो मायादेवीने उसे रोहिणीके उदरमें स्थापित कर दिया। गर्भका संकर्षण करने (खींचने)-से उस बालकका जन्म हुआ, इसलिये वह संकर्षण नामसे प्रसिद्ध हुआ। भादोंके[1] कृष्णपक्षकी अष्टमी तिथिको रोहिणी नक्षत्रमें शुभ लग्नका उदय होनेपर रोहिणी देवीने भगवान् संकर्षणको जन्म दिया। तत्पश्चात् साक्षात् भगवान् श्रीहरि देवकीके गर्भमें आये। आठवें गर्भसे युक्त देवकीको देखकर कंस बहुत भयभीत हुआ। उस समय समस्त देवताओंके मनमें उल्लास छा रहा था। वे विमानपर बैठे हुए आकाशसे ही देवकी देवीकी स्तुति किया करते थे। तदनन्तर दसवाँ महीना आनेपर श्रावणमासकी[2] कृष्णा अष्टमीको आधी रातके समय श्रीहरिका अवतार हुआ। वसुदेवके पुत्र होनेसे वे सनातन भगवान् वासुदेव कहलाये।

सम्पूर्ण जगत्के स्वामी भगवान् श्रीकृष्णको देखकर वसुदेवजी हाथ जोड़ नमस्कार करके उन जगन्मय प्रभुकी स्तुति करने लगे—'जगन्नाथ! आप भक्तोंकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये साक्षात् कल्पवृक्ष हैं। प्रभो! आप स्वयं मेरे यहाँ प्रकट हुए, मैं कितना भाग्यवान् हूँ। अहो! आज धरणीधरभगवान् इस धरतीके ऊपर मेरे पुत्ररूपसे अवतीर्ण हुए हैं। पुरुषोत्तम! आपके इस अद्‌भुत ईश्वरीय रूपको देखकर महाबली एवं पापाचारी दानव सहन नहीं कर सकेंगे।' वसुदेवजीके इस प्रकार स्तुति और प्रार्थना करनेपर सनातन पुरुष भगवान् पद्मनाभने अपने चतुर्भुज रूपको तिरोहित कर लिया और मानवरूप धारण करके वे दो भुजाओंसे ही शोभा पाने लगे। उस भवनमें पहरा देनेवाले जो दानव रहते थे, वे सब भगवान्की मायासे मोहित और तमोगुणसे आच्छादित हो सो गये। इसी समय मौका पाकर भगवान्के आज्ञानुसार वसुदेवजी भगवान्को गोदमें ले तुरंत ही नगरसे बाहर निकल गये। उस समय सब देवता उनकी स्तुति कर रहे थे। मेघ पानी बरसाने लगे, यह देख महाबली नागराज शेष भक्तिवश अपने हजारों फनोंसे भगवान्के ऊपर छाया करके पीछे-पीछे चलने लगे। उनके चरणोंका स्पर्श होते ही नगरद्वारके किवाड़ खुल गये। वहाँके रक्षक नींदमें बेसुध थे। तीव्र प्रवाहसे बहनेवाली भरी हुई यमुना भी महात्मा वसुदेवजीके प्रवेश करनेपर घट गयी। उसमें घुटनेतक ही जल रह गया। यमुनाके पार हो वसुदेवजीने उसके तटपर ही स्थित व्रजमें प्रवेश किया।

उधर नन्दगोपकी पत्नीके गर्भसे गायोंके व्रजमें ही एक कन्या उत्पन्न हुई। किन्तु यशोदा मायासे मोहित एवं तमोगुणसे आच्छादित हो गाढ़ी नींदमें सो गयी थीं। वसुदेवजीने उनकी शय्यापर भगवान्को सुला दिया और उनकी कन्याको लेकर वे मथुरामें चले आये। वहाँ पत्नीके हाथमें कन्याको देकर वे निश्चिन्त हो गये। देवकीकी शय्यापर जाते ही वह कन्या बालभावसे रोने लगी। बालककी आवाज सुनकर पहरेदार जाग उठे। उन्होंने कंसको देवकीके प्रसव होनेका समाचार दे दिया। कंस तुरंत ही आ पहुँचा और बालिकाको लेकर उसने एक पत्थरपर पटक दिया। किन्तु वह कन्या उसके हाथसे छूटनेपर तुरंत ही आकाशमें जा खड़ी हुई। वह कंसके सिरमें लात मारकर ऊपर गयी और आठ भुजावाली देवीके रूपमें दर्शन दे उससे बोली—'ओ मूर्ख! मुझे पत्थरपर पटकनेसे क्या हुआ? जो तुम्हारा वध करनेवाले हैं, उनका जन्म तो हो गया। जो सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि, पालन तथा संहार करनेवाले हैं, वे भगवान् इस संसारमें अवतार ले चुके हैं, वे ही तुम्हारे प्राण लेंगे।'

इतना कहकर देवीने सहसा अपने तेजसे सम्पूर्ण आकाशको आलोकमय कर दिया और वह देवताओं तथा गन्धर्वोंके मुखसे अपनी स्तुति सुनती हुई हिमालयपर्वतपर चली गयी। देवीकी बात सुनकर कंसका हृदय उद्विग्न हो उठा। उसने भयसे पीड़ित हो प्रलम्ब आदि दानववीरोंको बुलाकर कहा—'वीरो! हमलोगोंके भयसे समस्त देवताओंने क्षीरसागरपर जाकर विष्णुसे राक्षसोंके संहारके विषयमें बहुत कुछ कहा है। उनकी बात सुनकर वे अविनाशी धरणीधर यहाँ कहीं

१-२—यहाँ महीनोंका नाम शुक्लपक्षसे मासका आरम्भ मानकर दिया गया है। जहाँ कृष्णपक्षसे महीनोंका आरम्भ होता है, वहाँ भादोंका कृष्णपक्ष कुआरका कृष्णपक्ष होगा और सावनका कृष्णपक्ष भादोंका कृष्णपक्ष होगा। अत: बलदेवजीकी जन्माष्टमी आश्विन कृष्णपक्षमें मनानी चाहिये और भगवान् श्रीकृष्णकी जन्माष्टमी भादोंके कृष्णपक्षमें।

मनुष्यरूपमें उत्पन्न हुए हैं। अतः आज इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले तुम सभी राक्षस जाओ और जिन बालकोंमें कुछ बलकी अधिकता जान पड़े, उन्हें बेखटके मार डालो।' ऐसी आज्ञा देकर कंसने वसुदेव और देवकीको आश्वासन दे उन्हें बन्धनसे मुक्त कर दिया और स्वयं अपने महलमें चला गया। तत्पश्चात् वसुदेवजी नन्दके उत्तम व्रजमें गये। नन्दरायजीने उनका भलीभाँति स्वागत-सत्कार किया। वहाँ अपने पुत्रको देखकर वसुदेवजीको बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने नन्दरानी यशोदासे कहा—'देवि! रोहिणीके पेटसे पैदा हुए मेरे इस पुत्र (बलराम)-को भी तुम अपना ही पुत्र मानकर इसकी रक्षा करना। यह कंसके डरसे यहाँ लाया गया है।' दृढ़तापूर्वक उत्तम व्रतका पालन करनेवाली नन्दपत्नीने 'बहुत अच्छा' कहकर वसुदेवजीकी आज्ञा शिरोधार्य की और दोनों पुत्रोंको पाकर वे बड़ी प्रसन्नताके साथ उनका पालन करने लगीं। इस प्रकार नन्दगोपके घर अपने दोनों पुत्रोंको रखकर वसुदेवजी निश्चिन्त हो गये और तुरंत ही मथुरापुरीको चले गये। तदनन्तर वसुदेवजीकी प्रेरणासे किसी शुभ दिनको गर्गजी नन्दगोपके व्रजमें गये। वहाँके निवासियोंने उनकी बड़ी आवभगत की। फिर उन्होंने गोकुलमें वसुदेवके दोनों पुत्रोंके विधिपूर्वक जातकर्म और नामकरण-संस्कार कराये। बड़े बालकके नाम उन्होंने संकर्षण, रौहिणेय, बलभद्र, महाबल और राम आदि रखे तथा छोटेके श्रीधर, श्रीकर, श्रीकृष्ण, अनन्त, जगत्पति, वासुदेव और हृषीकेश आदि नाम रखे। 'लोगोंमें ये दोनों बालक क्रमशः राम और कृष्णके नामसे विख्यात होंगे।' ऐसा कहकर द्विजश्रेष्ठ गर्गने पितरों और देवताओंका पूजन किया और स्वयं भी ग्वालोंसे पूजित होकर मथुरामें लौट आये।

एक दिनकी बात है, बालकोंकी हत्या करनेवाली पूतना कंसके भेजनेसे रातमें नन्दके घर आयी। उसने अपने स्तनोंमें विष लगा रखा था। अमित तेजस्वी श्रीकृष्णके मुखमें वही स्तन देकर वह उन्हें दूध पिलाने लगी। भगवान् श्रीकृष्णने उस राक्षसीको पहचान लिया और उसके स्तनोंको खूब दबाकर उसे प्राणोंसहित पीना आरम्भ किया। अब तो वह मतवाली राक्षसी छटपटाने लगी। उसके स्नायुबन्धन टूट गये। वह काँपती हुई गिरी और जोर-जोरसे चिग्घाड़ती हुई मर गयी। उसके चीत्कारसे सारा आकाश-मण्डल गूँज उठा। उसे पृथ्वीपर पड़ी देख समस्त गोप थर्रा उठे। श्रीकृष्णको राक्षसीके विशाल वक्षःस्थलपर खेलते देख गोपगण उद्विग्न हो उठे और तुरंत ही दौड़कर उन्होंने बालकको गोदमें उठा लिया। उस समय नन्दगोपने पास आकर पुत्रको अंकमें ले लिया और राक्षसके भयसे रक्षा करनेके लिये गायके गोबरसे और बालसे बालकके मस्तकको झाड़ा। फिर भगवान्के नाम लेकर श्रीकृष्णके सब अंगोंका मार्जन किया। इसके बाद उस भयानक राक्षसीको गौओंके व्रजसे बाहर करके डरे हुए ग्वालोंकी सहायतासे उसका दाह किया।

एक दिन भगवान् श्रीहरि किसी छकड़ेके नीचे सोये हुए थे और दोनों पैर फेंक-फेंककर रो रहे थे। उनके पैरका धक्का लगनेसे छकड़ा ही उलट गया। उसपर जो बर्तन-भाँड़े रखे हुए थे, वे सब टूट-फूट गये। गोप और गोपियाँ इतने बड़े छकड़ेको सहसा उलटकर गिरा देख बड़े विस्मयमें पड़ीं और 'यह क्या हो गया?' ऐसा कहती हुई शंकित हो उठीं। उस समय विस्मित हुई यशोदाने शीघ्र ही अपने बालकको गोदमें उठा लिया। वे दोनों यदुवंशी बालक माताके स्तनपानसे पुष्ट होकर थोड़े ही समयमें बड़े हो गये और घुटनों तथा हाथोंके बलसे चलने लगे। उन दिनों एक मायावी राक्षस मुर्गेका रूप धारण किये वहाँ पृथ्वीपर विचरता रहता था। वह श्रीकृष्णको मारनेकी ताकमें लगा था। भगवान् श्रीकृष्णने उसे पहचान लिया और एक ही तमाचेमें उसका काम तमाम कर दिया। मार पड़नेपर वह पृथ्वीपर गिरा और मर गया। मरते समय उसने अपने राक्षसस्वरूपको ही धारण किया था।

तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण समूचे व्रजमें विचरने लगे। वे गोपियोंके यहाँसे माखन चुरा लिया करते थे। इससे यशोदाको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने श्रीकृष्णकी कमरमें रस्सी लपेटकर उन्हें ऊखलमें बाँध दिया और स्वयं गोरस बेचने चली गयीं। समस्त पृथ्वीको धारण करनेवाले श्रीकृष्ण ऊखलमें बँधे-ही-बँधे उसे खींचते हुए दो अर्जुनवृक्षोंके बीचसे निकले। गोविन्दने ऊखलके धक्केसे ही उन दोनों वृक्षोंको गिरा दिया। उनके तने

टूट गये और वे बड़े जोरसे तड़तड़ शब्द करते हुए पृथ्वीपर गिर पड़े। उनके गिरनेकी भारी आवाजसे बड़े-बूढ़े गोप वहाँ आ पहुँचे। यह घटना देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। यशोदाजी भी बहुत डर गयीं और श्रीकृष्णके बन्धन खोलकर आश्चर्यमग्न हो उन महात्माको अपने स्तनोंका दूध पिलाने लगीं। माताने जगदीश्वर श्रीकृष्णके उदरको दाम अर्थात् रस्सीसे बाँध दिया था; अतः सभी महापुरुषोंने उनका नाम दामोदर रख दिया। वे दोनों यमलार्जुनवृक्ष भगवान्‌के पार्षद हो गये।

तब नन्द आदि वृद्ध गोप वहाँ बड़े-बड़े उत्पात होते जानकर दूसरे स्थानको चले गये। विशाल वृन्दावनमें यमुनाके मनोहर तटपर उन्होंने स्थान बनाया। वह प्रदेश गौओं और गोपियोंके लिये बड़ा ही रमणीय था। महाबली राम और श्रीकृष्ण वहीं रहकर बढ़ने लगे। अब वे बछड़ोंके चरवाहोंको साथ लेकर सदा बछड़े चराने लगे। बछड़ोंके बीचमें श्रीकृष्णको देखकर बक नामक महान् असुर वहाँ आया और बगलेका रूप धारण कर उन्हें मारनेका उद्योग करने लगा। उसे देखकर भगवान् वासुदेवने भी खिलवाड़में ही एक ढेला उठा लिया और उसके पंखोंमें दे मारा। ढेला लगते ही वह महान् असुर प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। तदनन्तर कुछ दिनोंके बाद एक दिन बछड़े चरानेवाले राम और श्रीकृष्ण वनमें किसी यज्ञवृक्षकी छायामें पल्लव बिछाकर सो गये। इसी बीचमें ब्रह्माजी देवताओंके साथ भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन करनेके लिये आये। किन्तु उन्हें सोते देख बछड़ों और ग्वाल-बालोंको चुराकर स्वर्गलोकमें चले गये। जागनेपर जब उन्होंने बछड़ों और ग्वाल-बालोंको नहीं देखा तो 'वे कहाँ चले गये?' इसका विचार किया; फिर यह जानकर कि यह सारी करतूत ब्रह्माजीकी ही है, उन सनातन प्रभुने वैसे ही बालक और बछड़े बना लिये। वही रंग और वही रूप, कुछ भी अन्तर नहीं था। शामको जब वे लौटकर व्रजमें गये तो गौओं और माताओंने अपने-अपने बछड़ों और बालकोंको पाकर उनके साथ पूर्ववत् बर्ताव किया। इस प्रकार एक वर्षका समय व्यतीत हो गया। तब प्रजापतिने उन बछड़ों और बालकोंको पुनः ले जाकर भगवान्‌को समर्पित किया और हाथ जोड़ विनीतभावसे प्रणाम करके भयभीत होकर कहा—'नाथ! मैंने इन बछड़ोंका अपहरण करके आपका महान् अपराध किया है। शरणागतवत्सल! मैं आपकी शरणमें आया हूँ। मेरे इस अपराधको क्षमा कीजिये। यों कहकर पुनः श्रीहरिके चरणोंमें बारंबार प्रणाम किया और बछड़ोंको उन्हें सौंपकर पुनः अपने लोकमें चले गये। महातपस्वी ब्रह्माजी भगवान्‌के उस बालरूपको हृदयमें धारण करके देवताओंको साथ ले बड़ी प्रसन्नताके साथ पधारे।

इसके बाद श्रीकृष्ण बछड़ोंके साथ नन्दके गोकुलमें चले गये। इसके कुछ दिनोंके पश्चात् यदुश्रेष्ठ श्रीकृष्ण ग्वालोंको साथ लेकर यमुनाके कुण्डमें गये। वहाँ बड़ा विषैला और बलवान् नागराज कालिय रहता था। उसके हजार फन थे; किन्तु भगवान्‌ने अपने एक ही पैरसे उसके हजारों फनोंको कुचल डाला और जब वह प्राणसंकटमें पड़ गया तो होशमें आनेपर उसने भगवान्‌की शरण ली। उसका सारा विष तो निकल ही गया था, शरणमें आनेपर भगवान्‌ने उसकी रक्षा की। वह गरुड़के भयसे इस कुण्डमें आकर रहता था; इसलिये भगवान्‌ने उसके मस्तकपर अपने चरणचिह्न स्थापित करके उसको कालिन्दीके कुण्डसे निकाल दिया। उसने अपने स्त्री-पुत्रोंके साथ तुरंत ही उस कुण्डको छोड़ दिया और भगवान् गोविन्दको नमस्कार करके अन्यत्रकी राह ली। उसके किनारेके जो वृक्ष कालियके विषसे दग्ध हो गये थे, वे श्रीकृष्णकी कृपादृष्टि पड़ते ही फलने-फूलने लगे।

तत्पश्चात् समयानुसार भगवान्‌ने कुमारावस्थामें पदार्पण किया। अब वे सर्वदेवमय प्रभु गौओंकी चरवाही करने लगे। वे अपने समान अवस्थावाले ग्वालोंको साथ ले मनोहर वृन्दावनमें बलरामजीके साथ विचरा करते थे। वहाँ एक अत्यन्त भयानक असुर था, जो अजगर साँपके रूपमें रहा करता था। वह विशालकाय दैत्य मेरुपर्वतके समान भारी था; परन्तु भगवान् श्रीकृष्णने उसको भी मौतके घाट उतार दिया। इसके बाद वे धेनुकासुरके वनमें गये, जो ताड़के वृक्षोंसे बहुत सघन प्रतीत होता था। उसके भीतर धेनुक नामक एक पर्वताकार दानव रहता था। जिसको परास्त करना बहुत ही कठिन था। वह सदा गदहेके रूपमें रहा करता था।

भगवान्‌ने उसके दोनों पैर पकड़कर ऊपर फेंक दिया और एक ताड़के वृक्षसे उसको मार डाला। फिर तो वनमें वे ग्वाले खेलते फिरे। उस वनसे निकलनेपर वे तुरंत ही भाण्डीर वटके पास आ गये और बलराम तथा श्रीकृष्णके साथ बालोचित खेल खेलने लगे। उस समय प्रलम्ब नामक राक्षस गोपका रूप धारण करके वहाँ आया और बलरामजीको अपनी पीठपर चढ़ा आकाशकी ओर उड़ चला। तब बलरामजीने उसे राक्षस समझकर बड़े रोषके साथ मुक्केसे मस्तकपर मारा; उस प्रहारसे राक्षसका शरीर तिलमिला उठा और वह अपने वास्तविक रूपमें आकर बड़े भयंकर स्वरमें चीत्कार करने लगा। उसका मस्तक और शरीर फट गया और वह खूनसे लथपथ हो पृथ्वीपर गिरकर मर गया। इसके बाद एक दिन सन्ध्याकालमें अरिष्ट नामक दैत्य बैलका आकार धारण किये व्रजमें आया और श्रीकृष्णको मारनेके लिये बड़े जोर-जोरसे गर्जना करने लगा। उसे देख समस्त गोप भयसे पीड़ित हो इधर-उधर भाग गये। श्रीकृष्णने उस भयंकर दैत्यको आया देख एक ताड़का वृक्ष उखाड़ लिया और उसके दोनों सींगोंके बीच दे मारा। उसके सींग टूट गये और मस्तक फट गया। वह रक्त वमन करता हुआ बड़े वेगसे गिरा और जोर-जोरसे चीत्कार करके मर गया। इस तरह उस महाकाय दैत्यको मारकर भगवान्‌ने ग्वालबालोंको बुलाया और फिर सब लोग वहीं निवास करने लगे।

तदनन्तर कुछ दिनोंके बाद केशी नामक महान् असुर घोड़ेका रूप धारण किये व्रजमें आया। वह भी श्रीकृष्णको मारनेके ही उद्देश्यसे चला था। गौओंके रमणीय व्रजमें पहुँचकर वह जोर-जोरसे हिनहिनाने लगा। उसकी आवाज तीनों लोकोंमें गूँज उठी। देवता भयभीत हो गये। उन्हें प्रलयकालका-सा सन्देह होने लगा। व्रजके रहनेवाले समस्त गोप अचेत हो गये। गोपियाँ भी व्याकुल हो उठीं। फिर होशमें आनेपर सब लोग चारों ओर भाग चले। गोपियाँ भगवान् श्रीकृष्णकी शरणमें गयीं और 'बचाओ, बचाओ' की रट लगाने लगीं। भक्तवत्सल भगवान्‌ने आश्वासन देते हुए कहा—'डरो मत, डरो मत।' फिर उन्होंने तुरंत ही उस दैत्यके मस्तकपर एक मुक्का जड़ दिया। मार पड़ते ही दैत्यके सारे दाँत गिर गये और आँखें बाहर निकल आयीं। वह बड़े जोर-जोरसे चिल्लाने लगा। केशी सहसा पृथ्वीपर गिरा और उसके प्राणपखेरू उड़ गये। केशीको मारा गया देख आकाशमें खड़े हुए देवता साधु-साधु कहने और फूलोंकी वर्षा करने लगे। इस प्रकार शैशवकालमें श्रीहरिने बड़े-बड़े बलाभिमानी दैत्योंका वध किया। वे बलरामजीके साथ व्रजमें सदा प्रसन्न रहा करते थे। उन दिनों वृन्दावनकी रमणीयता बहुत बढ़ गयी थी। फलों और फूलोंके कारण उसकी बड़ी शोभा होती थी। भगवान् श्रीकृष्ण वहाँ मुरलीकी मधुर तान छेड़ते हुए निवास करते थे। एक समय शरत्काल आनेपर नन्द आदि गोपोंने इन्द्रकी पूजाका महान् उत्सव आरम्भ किया; किन्तु भगवान् गोविन्दने इन्द्रयज्ञके उत्सवको बंद करके गिरिराज गोवर्धनके पूजनका उत्सव कराया। इससे इन्द्रको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने नन्द गोपके व्रजमें लगातार सात रातोंतक बड़ी भारी वर्षा की। तब भगवान् जनार्दनने गिरिराज गोवर्धनको उखाड़ लिया और गोप, गोपियों तथा गौओंकी रक्षाके लिये उसे अनायास ही छत्रकी भाँति धारण कर लिया। पर्वतकी छायाके नीचे आकर गोप और गोपियाँ बड़े सुखसे रहने लगीं, मानो वे किसी महलके भीतर बैठी हों। यह देख सहस्र नेत्रोंवाले इन्द्रको बड़ा भय हुआ। उन्होंने बड़ी घबराहटके साथ उस वर्षाको बंद कराया और स्वयं वे नन्दके व्रजमें गये। वर्षा बंद होनेपर भगवान् श्रीकृष्णने उस महापर्वतको पहलेकी भाँति यथास्थान रख दिया। नन्द आदि बड़े-बूढ़े गोप गोविन्दकी सराहना करते हुए बहुत विस्मित हुए। इतनेमें ही इन्द्रने आकर भगवान् मधुसूदनको प्रणाम किया और हाथ जोड़ हर्षगद्‌गद वाणीमें उनकी स्तुति की। स्तुतिके पश्चात् सब देवताओंके स्वामी इन्द्रने अमृतमय जलसे भगवान् गोविन्दका अभिषेक किया और दिव्य वस्त्र तथा दिव्य आभूषणोंसे उनकी पूजा की। इसके बाद वे स्वर्गलोकमें गये। उस समय बड़े-बूढ़े गोपों और गोपियोंने भी इन्द्रका दर्शन किया तथा इन्द्रसे सम्मानित होनेपर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। इस प्रकार महापराक्रमी बलराम और श्रीकृष्ण नन्दके रमणीय व्रजमें रहकर गौओं और बछड़ोंका पालन करने लगे।

भगवान् श्रीकृष्णकी मथुरा-यात्रा, कंसवध और उग्रसेनका राज्याभिषेक

महादेवजी कहते हैं—पार्वती! तदनन्तर एक दिन मुनिश्रेष्ठ नारदजी मथुरामें कंसके पास गये। राजा कंसने उनका यथावत् सत्कार किया और उन्हें सुन्दर आसनपर बिठाया। नारदजीने कंससे भगवान् विष्णुकी सारी चेष्टाएँ कहीं। देवताओंका उद्योग करना, भगवान् केशवका अवतार लेना, वसुदेवका अपने पुत्रको व्रजमें रख आना, राक्षसोंका मारा जाना, नागराज कालियका यमुनाके कुण्डसे बाहर निकाला जाना, गोवर्धन धारण करना और इन्द्रका भगवान्से मिलना आदि सभी मुख्य-मुख्य घटनाओंको उन्होंने कंससे निवेदन किया। यह सब सुनकर राक्षस कंसने नारदजीका बड़ा आदर किया। उसके बाद वे ब्रह्मलोकमें चल गये। इधर कंसके मनमें बड़ा उद्वेग हुआ। वह मन्त्रियोंके साथ बैठकर मृत्युसे बचनेके विषयमें परामर्श करने लगा। उसके मन्त्रियोंमें अक्रूर सबसे अधिक बुद्धिमान् और धर्मानुरागी थे। महाबली दानवराज कंसने अक्रूरको आज्ञा दी।

कंस बोला—यदुश्रेष्ठ! इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता मेरे भयसे पीड़ित हो श्रीविष्णुकी शरणमें गये थे। भूतभावन भगवान् मधुसूदन उन देवताओंको अभयदान दे मुझे मारनेके लिये देवकीके गर्भसे उत्पन्न हुए हैं। वसुदेव भी ऐसा दुष्टात्मा है कि मुझे धोखा देकर रातमें वह अपने पुत्रको दुरात्मा नन्दके घरमें रख आया। वह बालक बचपनसे ही ऐसा दुर्धर्ष है कि बड़े-बड़े असुर उसके हाथसे मारे गये। यदि ऐसी ही उसकी प्रगति रही तो एक दिन वह मुझे भी मारनेके लिये तैयार हो जायगा। इसमें सन्देह नहीं कि व्रजमें उसे इन्द्र आदि देवता तथा समस्त असुर भी नहीं मार सकते; अतः मुझे उसको यहाँ बुलवाकर किसी विशेष उपायसे ही मारना चाहिये। मतवाले हाथी, बड़े-बड़े पहलवान तथा श्रेष्ठ घोड़े आदिसे उसका वध कराना चाहिये। जिस-किसी उपायसे सम्भव हो, उसे यहीं बुलाकर मारा जा सकता है, अन्यत्र नहीं। इसलिये तुम गौओंके व्रजमें जाकर बलराम, श्रीकृष्ण तथा नन्द आदि सम्पूर्ण ग्वालोंको धनुष-यज्ञका मेला देखनेके बहाने यहाँ बुला ले आओ।'

'बहुत अच्छा' कहकर परम पराक्रमी यदुश्रेष्ठ अक्रूर रथपर आरूढ़ हुए और भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनके लिये उत्सुक होकर गौओंके रमणीय व्रजमें गये। अक्रूरजी महान् भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ थे। उन्होंने अत्यन्त विनीतभावसे गौओंके बीचमें खड़े हुए भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन किया। गोप-कन्याओंसे घिरे हुए श्रीहरिको देखकर अक्रूरजीका सारा शरीर रोमांचित हो उठा। उनके नेत्रोंमें आनन्दके आँसू भर आये। उन्होंने रथसे उतरकर श्रीकृष्णको प्रणाम किया। वे बड़े हर्षके साथ भगवान् गोपालके समीप गये और वज्र तथा चक्र आदि चिह्नोंसे सुशोभित लाल कमलसदृश उनके मनोहर चरणोंमें मस्तक रखकर उन्होंने बारंबार नमस्कार किया। तत्पश्चात् उनकी दृष्टि कैलासशिखरके समान गौरवर्णवाले नीलाम्बरधारी बलरामजीपर पड़ी, जो मोतियोंकी मालासे विभूषित होकर शरत्कालके पूर्ण चन्द्रमाकी भाँति शोभा पा रहे थे। अक्रूरजीने उनको भी प्रणाम किया। दोनों वीर बलराम और श्रीकृष्णने भी बड़े हर्षके साथ उठकर यदुश्रेष्ठ अक्रूरका पूजन किया और उनको साथ लेकर वे दोनों भाई घरपर आये। यदुश्रेष्ठ अक्रूरको आया देख महातेजस्वी नन्दगोपने निकट जाकर उन्हें श्रेष्ठ आसनपर बिठाया और बड़ी प्रसन्नताके साथ विधिपूर्वक अर्घ्य, पाद्य, वस्त्र तथा दिव्य आभूषण आदि निवेदन करके भक्तिभावसे उनका पूजन किया। अक्रूरजीने भी बलराम, श्रीकृष्ण, नन्दजी तथा यशोदाको वस्त्र और आभूषण भेंट किये। फिर कुशल पूछकर शान्तभावसे वे कुशके आसनपर विराजमान हुए। तत्पश्चात् राजकार्यके विषयमें प्रश्न होनेपर बुद्धिमान् अक्रूरने इस प्रकार कहना आरम्भ किया।

अक्रूर बोले—नन्दरायजी! ये महातेजस्वी श्रीकृष्ण साक्षात् अविनाशी भगवान् नारायण हैं। देवताओंका हित, साधु पुरुषोंकी रक्षा, पृथ्वीके भारका नाश, धर्मकी स्थापना तथा कंस आदि सम्पूर्ण दैत्योंका नाश करनेके लिये इनका अवतार हुआ है। उक्त कार्योंके लिये समस्त देवताओं तथा महात्मा मुनियोंने इनसे प्रार्थना की थी। उसीके अनुसार ये वर्षाकालमें आधी रातके समय देवकीके गर्भसे प्रकट हुए। उस समय वसुदेवजीने कंसके भयसे रातमें ही अपने पुत्र भगवान् श्रीहरिको तुम्हारे घरमें पहुँचा दिया। उसी समय यशस्विनी

यशोदाको भी मायाके अंशसे एक सुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई थी। उसीने सम्पूर्ण व्रजको नींदमें बेसुध कर दिया था। यशोदाजी भी मूर्च्छितावस्थामें पड़ी थीं। वसुदेवजीने श्रीकृष्णको तो यशोदाकी शय्यापर सुला दिया और स्वयं उस कन्याको लेकर वे मथुराकी ओर चल दिये। कन्याको देवकीकी शय्यापर रखकर ये प्रसवघरसे बाहर निकल गये। देवकीकी शय्यापर सोयी हुई कन्या शीघ्र ही रोने लगी। उसका जन्म सुनकर दानव कंस सहसा आ पहुँचा और उसने कन्याको लेकर घुमाते हुए पत्थरपर पटक दिया। परन्तु वह कन्या आकाशमें उड़ गयी और आठ भुजाओंसे युक्त हो गम्भीर वाणीमें कंससे रोषपूर्वक बोली—'ओ नीच दानव! जिनका कहीं अन्त नहीं है, जो सम्पूर्ण देवताओंके ईश्वर और पुरुषोत्तम हैं, वे तुम्हारा वध करनेके लिये व्रजमें जन्म ले चुके हैं।' यों कहकर महामाया हिमालय पर्वतपर चली गयी। तभीसे वह दुष्टात्मा भयसे उद्विग्न हो गया और महात्मा श्रीकृष्णको मारनेके लिये एक-एक करके दानवोंको भेजने लगा। बालक होनेपर भी बुद्धिमान् श्रीकृष्णने खेल-खेलमें ही सब दानवोंको मौतके घाट उतार दिया है। इन परमेश्वरने अनेक अद्‌भुत कर्म किये हैं। गोवर्धन-धारण, नागराज कालियका निर्वासन, इन्द्रसे समागम और सम्पूर्ण राक्षसोंका संहार आदि सारे कर्म श्रीकृष्णके ही किये हुए हैं; यह बात नारदजीके मुँहसे सुनकर कंस अत्यन्त भयसे व्याकुल हो उठा है। महाबाहु बलराम और श्रीकृष्ण बड़े दुर्धर्ष वीर हैं; इसलिये इन दोनोंको वहीं बुलाकर वह बड़े-बड़े मतवाले हाथियोंसे कुचलवा डालना चाहता है अथवा पहलवानोंको भिड़ाकर इन्हें मार डालनेको उद्यत है। श्रीकृष्णको बुला लानेके लिये ही उसने मुझे यहाँ भेजा है। यही सब उस दुष्ट दानवकी चेष्टा है, जिसे मैंने बता दिया। अब आप समस्त व्रजवासी दही-घी आदि लेकर कल सबेरे धनुषयज्ञका उत्सव देखनेके लिये मथुरामें चलें। बलराम-श्रीकृष्ण और समस्त गोपोंको राजाके पास चलना है। वहाँ निश्चय ही कंस श्रीकृष्णके हाथसे मारा जायगा; अतः आपलोग राजाकी आज्ञासे निर्भय होकर वहाँ चलिये।

इतना कहकर बुद्धिमान् अक्रूर चुप हो गये। उनकी बातें बड़ी ही भयंकर और रोंगटे खड़े कर देनेवाली थीं। उन्हें सुनकर नन्द आदि समस्त बड़े-बूढ़े गोप भयसे व्याकुल हो दुःखके महान् समुद्रमें डूब गये। उस समय कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णने उन सबको आश्वासन देकर कहा—'आपलोग भय न करें। मैं दुरात्मा कंसका विनाश करनेके लिये भैया बलरामजी तथा आपलोगोंके साथ मथुरा चलूँगा। वहाँ दानवराज दुरात्मा कंसको और उसके साथ रहनेवाले समस्त राक्षसोंको मारकर इस पृथ्वीकी रक्षा करूँगा। अतः आपलोग शोक छोड़कर मथुरापुरीको चलिये।' श्रीहरिके ऐसा कहनेपर नन्द आदि गोपोंने बारंबार छातीसे लगाकर उनका मस्तक सूँघा। उन महात्माके अलौकिक कर्मोंपर विचार करके तथा अक्रूरजीकी बातोंको सुनकर उन सबकी चिन्ता दूर हो गयी। तत्पश्चात् यशोदाने अक्रूरको दही, दूध, घी आदिसे युक्त भाँति-भाँतिके पवित्र, स्वादिष्ट, मधुर और रुचिकर पक्वान्न परोसकर भोजन कराया। उनके साथ बलराम, श्रीकृष्ण, नन्द आदि श्रेष्ठ गोप, अनेकों सुहृद्, बालक और वृद्ध भी थे। यशोदाजीके दिये हुए रुचिवर्धक उत्तम अन्नको यादवश्रेष्ठ अक्रूरजीने बड़े प्रेमसे खाया। भोजन करानेके पश्चात् नन्दरानीने जल देकर आचमन कराया और अन्तमें कपूरसहित पानका बीड़ा दिया। फिर सूर्यास्त होनेपर अक्रूरजीने सन्ध्योपासना की। उसके बाद बलराम और श्रीकृष्णके साथ खीर खाकर वे उन्हींके साथ शयन करनेके लिये गये। दीपकके प्रकाशसे सुशोभित श्रेष्ठ एवं रमणीय भवनमें विचित्र पलंग बिछा था। स्वच्छ सुन्दर बिछावनपर भाँति-भाँतिके फूल उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। उस पलंगपर भगवान् श्रीकृष्ण सोते थे, मानो शेषनागकी शय्यापर श्रीनारायण शयन करते हों।

भगवान्‌को शयन करते देख सहसा अक्रूरके नेत्रोंमें आनन्दके आँसू छलक पड़े। उनका सारा शरीर पुलकित हो उठा। उन्होंने तमोगुणी निद्राको त्याग दिया। वे भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ तो थे ही, अपने परम कल्याणका विचार करके भगवान्‌के चरण दबाने लगे। उस समय वे मन-ही-मन सोच रहे थे—'इसीमें मेरे जीवनकी सफलता है। यही जीवन वास्तवमें उत्तम जीवन है। यही धर्म तथा यही सर्वश्रेष्ठ मोक्षसुख है। शिव और ब्रह्मा

आदि देवता, सनकादि मुनीश्वर तथा वसिष्ठ आदि महर्षि जिनका दर्शन करना तो दूर रहा, मनसे स्मरण भी नहीं कर पाते, वे ही भगवान् लक्ष्मीपतिके दोनों चरण इस समय मुझे प्राप्त हुए हैं। अहो! मेरा कितना सौभाग्य है? ये दोनों चरण शरत्कालके खिले हुए कमलकी भाँति सुन्दर हैं। भगवती लक्ष्मी अपने कोमल एवं चिकने हाथोंसे इनकी सेवा करती हैं। ये चरण परम उत्तम सुखस्वरूप हैं।' इस प्रकार भगवान्की सेवामें लगे हुए अक्रूरजीकी वह रात्रि एक क्षणके समान बीत गयी। उस समय वे ब्रह्मानन्दका अनुभव कर रहे थे। तदनन्तर निर्मल प्रभात होनेपर देवगण आकाशमें खड़े हो भगवान्की स्तुति करने लगे। तब भगवान् शयनसे उठे। उठकर विधिपूर्वक आचमन किया। फिर परम बुद्धिमान् बलरामजीके साथ जाकर माताके चरणोंमें नमस्कार किया और मथुरा जानेकी इच्छा प्रकट की। यशोदाजी दुःख और हर्षमें डूबी हुई थीं। उन्होंने दोनों पुत्रोंको उठाकर बड़े प्रेमके साथ छातीसे लगा लिया। उस समय उनके आँसुओंकी धारा बह रही थी। उन्होंने दोनों महावीर पुत्रोंको आशीर्वाद दिया और बार-बार हृदयसे लगाकर विदा किया। अक्रूरने भी हाथ जोड़कर यशोदाजीके चरणोंमें प्रणाम किया और कहा—'महाभागे! अब मैं जाऊँगा। मुझपर कृपा करो। ये महाबाहु श्रीकृष्ण महाबली कंसको मारकर सम्पूर्ण जगत्के राजा होंगे। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। अतः देवि! तुम शोक छोड़कर सुखी होओ।'

ऐसा कहकर अक्रूरजी नन्दरानीसे विदा ले बलराम और श्रीकृष्णके साथ उत्तम रथपर आरूढ़ हुए और तीव्र गतिसे मथुराकी ओर चले। उनके पीछे नन्द आदि बड़े-बूढ़े गोप भाँति-भाँतिके फल तथा बहुत-से दही-घी आदि लेकर गये। श्रीहरिको रथपर बैठकर व्रजसे जाते देख समस्त गोपांगनाएँ भी उनके पीछे-पीछे चलीं। उनका हृदय शोकसे सन्तप्त हो रहा था। वे 'हा कृष्ण! हा कृष्ण! हा गोविन्द!' कहकर बारंबार रोती और विलाप करती थीं। श्रीहरिने उन सबको समझा-बुझाकर लौटाया। उनके नेत्रोंमें आँसू भरे हुए थे। वे दीनभावसे रोती हुए खड़ी रहीं। इसके बाद अक्रूरजीने अपने दिव्य रथको व्रजसे मथुराकी ओर बढ़ाया। शीघ्र ही यमुनाके पार होकर उन्होंने रथको किनारे खड़ा कर दिया और स्वयं उससे उतरकर वे स्नान तथा अन्य आवश्यक कृत्य करनेकी तैयारी करने लगे। भक्तप्रवर अक्रूरने यमुनाके उत्तम जलमें जाकर डुबकी लगायी और अघमर्षण मन्त्रका जप आरम्भ किया। उस समय उन्हें श्रीबलराम तथा श्रीकृष्ण दोनों ही जलके भीतर दिखायी दिये। उन्हें देखकर अक्रूरजीको बड़ा विस्मय हुआ। तब उन्होंने उठकर रथकी ओर देखा; किन्तु वहाँ भी वे दोनों महाबली वीर बैठे दृष्टिगोचर हुए। तब पुनः जलमें डुबकी लगाकर वे युगल-मन्त्रका जप करने लगे। उस समय उन्हें क्षीरसागरमें शेषनागकी शय्यापर बैठे हुए लक्ष्मीसहित श्रीहरिका दर्शन हुआ। सनकादि मुनि उनकी स्तुति कर रहे थे और सम्पूर्ण देवता सेवामें खड़े थे। इस प्रकार सर्वव्यापी ईश्वरको देखकर यदुश्रेष्ठ अक्रूरने उनका स्तवन किया। स्तुति करनेके पश्चात् सुगन्धित कमलपुष्पोंसे भगवान्का पूजन किया और अपनेको कृतकृत्य मानते हुए वे यमुनाजलसे बलराम और श्रीकृष्णके समीप आये। वहाँ आकर अक्रूरजीने उन दोनों भाइयोंको भी प्रणाम किया। भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें आश्चर्यमग्न और विनीतभावसे खड़ा देख पूछा—'कहिये अक्रूरजी! आपने जलमें कौन-सी आश्चर्यकी बात देखी है?' यह सुनकर अक्रूरजीने महातेजस्वी श्रीकृष्णसे कहा—'प्रभो! आप सर्वत्र व्यापक हैं! आपकी महिमासे क्या आश्चर्यकी बात हो सकती है। हृषीकेश! यह सम्पूर्ण जगत् आपहीका तो स्वरूप है।' इस प्रकार स्तुति करके जगदीश्वर गोविन्दको प्रणाम कर अक्रूरजी उन दोनों भाइयोंके साथ पुनः दिव्य रथपर आरूढ़ हो तुरंत ही देवनिर्मित मथुरापुरीमें जा पहुँचे। वहाँ नगरद्वारपर बलराम और श्रीकृष्णको बिठाकर वे अन्तःपुरमें गये और राजा कंससे उनके आगमनका समाचार सुनाकर उसके द्वारा सम्मानित हो पुनः अपने घरको चले गये।

तदनन्तर सन्ध्याके समय महाबली बलराम और श्रीकृष्ण एक-दूसरेका हाथ पकड़े मथुरापुरीके भीतर गये। वे दोनों राजमार्गसे जा रहे थे। इतनेहीमें उनकी दृष्टि कपड़ा रँगनेवाले एक रँगरेजपर पड़ी, जो दिव्य वस्त्र लिये राजभवनकी ओर जा रहा था। बलरामसहित परम

पराक्रमी श्रीकृष्णने उन वस्त्रोंको अपने लिये माँगा; किन्तु रँगरेजने वे वस्त्र उन्हें नहीं दिये। इतना ही नहीं, उसने सड़कपर खड़े होकर उन्हें बहुत-से कटुवचन भी सुनाये। तब महाबली श्रीकृष्णने रँगरेजके मुँहपर एक तमाचा जड़ दिया। फिर तो वह मुँहसे रक्त वमन करता हुआ मार्गमें ही मर गया। बलराम और श्रीकृष्णने अपने बन्धु-बान्धव ग्वाल-बालोंके साथ उन सुन्दर वस्त्रोंको यथायोग्य धारण किया। फिर वे मालीके घरपर गये। उसने उन्हें देखते ही नमस्कार किया और दिव्य सुगन्धित पुष्पोंसे प्रसन्नतापूर्वक उनकी पूजा की। तब उन दोनों यादव-वीरोंने मालीको मनोवांछित वरदान दिया। अब वे गलीकी राहसे घूमने लगे। सामनेसे एक सुन्दर मुखवाली युवती आती दिखायी दी, जो हाथमें चन्दनका पात्र लिये हुए थी। वह स्त्री कुब्जा थी। उन दोनों भाइयोंने उससे चन्दन माँगा। कुब्जाने मुसकराते हुए उन्हें उत्तम चन्दन प्रदान किया। चन्दन लेकर उन्होंने इच्छानुसार अपने शरीरमें लगाया और कुब्जाको परम मनोहर रूप देकर वे आगेके मार्गपर बढ़ गये। नगरकी स्त्रियाँ सुन्दर मुखवाले उन दोनों सुन्दर कुमारोंको प्रेमपूर्वक निहारती थीं। इस प्रकार वे अपने अनुयायियोंसहित यज्ञशालामें पहुँचे। वहाँ दिव्य धनुष रखा था। उसकी पूजा की गयी थी। भगवान् मधुसूदनने देखते ही उस धनुषको उठा लिया और खेल-खेलमें ही उसे तोड़ डाला। धनुष टूटनेकी आवाज सुनकर कंस अत्यन्त व्याकुल हो उठा और उसने चाणूर आदि मुख्य-मुख्य मल्लोंको बुलाकर मन्त्रियोंकी सलाह ले चाणूरसे कहा—'देखो, सब दैत्योंका विनाश करनेवाले बलराम और श्रीकृष्ण आ पहुँचे हैं। कल सबेरे मल्लयुद्ध करके इन दोनोंको बेखटके मार डालो। इन दोनोंको अपने बलपर बड़ा घमण्ड है। मतवाले हाथियोंको भिड़ाकर अथवा बड़े-बड़े पहलवानोंको लगाकर जिस किसी उपायसे भी हो सके इन दोनोंको यत्नपूर्वक मार डालना चाहिये।'

इस प्रकार आदेश देकर राजा कंस भाई और मन्त्रियोंके साथ शीघ्र ही सुन्दर राजभवनकी छतपर चढ़ गया। नीचे रहनेमें उसे भय लग रहा था। सम्पूर्ण दरवाजों और मार्गोंपर उसने मतवाले हाथियोंको नियुक्त कर दिया और सब ओर बड़े-बड़े बलोन्मत्त पहलवान बिठा दिये। यह सब कुछ जानते हुए भी भगवान् श्रीकृष्ण परम बुद्धिमान् बलरामजी तथा अपने अनुयायी ग्वाल-बालोंके साथ रातभर उस यज्ञशालामें ही ठहरे रहे। रात बीतनेपर जब निर्मल प्रभात आया तो बलराम और श्रीकृष्ण दोनों वीर शय्यासे उठकर स्नान आदिसे निवृत्त हुए। फिर भोजन करके वस्त्र और आभूषणोंसे विभूषित हो युद्धके लिये उत्सुक होकर वे उस यज्ञशालासे चले; मानो दो सिंह किसी बड़ी गुफासे बाहर निकले हों। राजमहलके दरवाजेपर कुवलयापीड़ हाथी खड़ा था, जो हिमालय पर्वतके शिखर-सा जान पड़ता था। वही कंसकी विजयाभिलाषाको बढ़ानेवाला था। उसने ऐरावतके भी दाँत खट्टे कर दिये थे। उस महाकाय और मतवाले गजराजको देखकर भगवान् श्रीकृष्ण सिंहकी भाँति उछल पड़े और अपने हाथसे उसकी सूँड पकड़कर वे लीलापूर्वक उसे घुमाने लगे। घुमाते-घुमाते ही भगवान् धरणीधरने उसे धरतीपर पटक दिया। हाथीका सारा अंग चूर-चूर हो गया और वह डरावनी आवाजमें चिग्घाड़ता हुआ मर गया। इस प्रकार हाथीको मारकर बलराम और श्रीकृष्णने उसके दोनों दाँत उखाड़ लिये और पहलवानोंसे युद्ध करनेके लिये वे रंगभूमिमें पहुँचे। वहाँ जितने दानव थे, वे सब गोविन्दका पराक्रम देख भयभीत हो भाग खड़े हुए। तब कंसके भवनमें प्रवेश करके वे महाबली वीर युद्धके लिये उत्कण्ठित हो हाथीके दाँत घुमाने लगे। वहाँ उन महात्माओंने कंसके दो मल्ल चाणूर और मुष्टिकको उपस्थित देखा। कंस भी महाबली बलराम और गोविन्दको देखकर भयभीत हो उठा तथा अपने प्रधान मल्ल चाणूरसे बोला—'वीर! इस समय तुम इन ग्वाल-बालोंको अवश्य मार डालो। मैं तुम्हें अपना आधा राज्य बाँटकर दे दूँगा।'

उस समय उन दोनों मल्लोंको भगवान् श्रीकृष्ण अभेद्य कवचसे युक्त और दूसरे मेरुपर्वतके समान विशालकाय दिखायी दिये। कंसकी दृष्टिमें प्रलयकालीन अग्नि-से जान पड़े। स्त्रियोंको साक्षात् कामदेव प्रतीत हुए। माता-पिताने उन्हें नन्हें शिशुके रूपमें ही देखा। देवताओंकी दृष्टिमें वे साक्षात् श्रीहरि थे और ग्वाल-बाल उन्हें अपना प्यारा सखा ही समझते थे। इस प्रकार

उन सर्वव्यापक भगवान् विष्णुको वहाँके लोगोंने अपने-अपने भावोंके अनुसार अनेक रूपोंमें देखा। वसुदेव, अक्रूर और परम बुद्धिमान् नन्द दूसरे कोठेपर चढ़कर वहाँका महान् युद्ध देख रहे थे। देवकी अन्तःपुरकी स्त्रियोंके साथ बैठकर बेटेका मुँह निहार रही थीं। उस समय उनके नेत्रोंमें आँसू भर आये थे।

स्त्रियोंने उन्हें बहुत समझाया और आश्वासन दिया। तब वे किसी दूसरे भवनमें चलीं गयीं। तदनन्तर विमानपर बैठे हुए देवता आकाशमें जय-जयकार करते हुए कमलनयन भगवान् अच्युतकी स्तुति करने लगे। वे जोर-जोरसे कहते थे—'भगवन्! कंसका वध कीजिये।'

इसी समय रंगभूमिमें तुरही आदि बाजे बज उठे। कंसके दोनों महामल्लों और महाबली श्रीकृष्ण एवं बलराममें भिड़ंत हो गयी। चाणूरके साथ भगवान् श्रीकृष्ण और मुष्टिकके साथ बलरामजी भिड़ गये। नीलगिरि तथा श्वेतगिरिके समान कान्तिवाले दोनों महात्मा मल्लयुद्धकी रीति-नीतिके अनुसार लड़ने लगे। वे एक-दूसरेको कभी मुक्कोंसे मारते और कभी ताल ठोंकते थे। उनमें बड़ा भयंकर संग्राम हुआ, जो देवताओंको भी भयभीत कर देनेवाला था। भगवान् श्रीकृष्णने चाणूरके साथ बहुत देरतक खेल करके उसके शरीरको रगड़ डाला और फिर लीलापूर्वक पृथ्वीपर दे मारा। देवताओं और दानवोंको भी दुःख देनेवाला वह महामल्ल बहुत रक्त वमन करते हुए पृथ्वीपर गिरा और मर गया। इसी प्रकार पराक्रमी बलरामजी भी मुष्टिकके साथ देरतक लड़ते रहे। अन्तमें उन्होंने उसकी छातीमें कई मुक्के जड़ दिये। इससे उसकी हड्डियाँ चूर-चूर हो गयीं और स्नायु-बन्धन टूट गया। फिर तो वह भी प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। उन दोनों भाइयोंका यह पराक्रम देख बाकी सारे पहलवान भाग गये। यह देखकर कंसको बड़ा भय हुआ। वह वेदनासे व्याकुल हो उठा। इसी बीचमें दुर्धर्ष वीर बलराम और श्रीकृष्ण कंसके ऊँचे महलपर चढ़ गये। फिर भगवान् श्रीकृष्णने कंसके मस्तकमें थप्पड़ मारकर उसे छतसे नीचे गिरा दिया। पृथ्वीपर गिरते ही उसका सारा अंग छिन्न-भिन्न हो गया और वह प्राणोंसे हाथ धो बैठा। फिर श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके द्वारा कंसका और्ध्वदैहिक संस्कार कराया। श्रीकृष्णके द्वारा कंसके मारे जानेपर महाबली बलरामजीने भी कंसके छोटे भाई सुनामाको मुक्केसे ही मार डाला और उसे उठाकर धरतीपर फेंक दिया।

इस प्रकार श्रीकृष्ण और बलरामजी भाईसहित दुरात्मा कंसको मारकर अपने माता-पिताके समीप आये और बड़ी भक्तिके साथ उन्होंने उनके चरणोंमें प्रणाम किया। देवकी और वसुदेवने बड़े प्रेमसे उन दोनोंको बारंबार छातीसे लगाया और पुत्रस्नेहसे द्रवित हो उनका मस्तक सूँघा। देवकीके दोनों स्तनोंसे उनके ऊपर दूधकी वृष्टि होने लगी। तत्पश्चात् बलराम और श्रीकृष्ण माता-पिताको आश्वासन दे बाहर आये। इसी समय आकाशमें देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं। देवेश्वरगण फूलोंकी वर्षा करने लगे। तथा मरुद्गणोंके साथ श्रीजनार्दनको नमस्कार और उनकी स्तुति करके हर्षमग्न हो अपने-अपने लोकको चले गये। तत्पश्चात् भगवान् श्रीकृष्णने बलरामजीके साथ जाकर नन्दरायजी तथा अन्य बड़े-बूढ़े गोपोंको नमस्कार किया। धर्मात्मा नन्दने बड़े स्नेहसे उन दोनोंको गले लगा लिया। फिर भगवान् जनार्दनने उन सबको बहुत-से रत्न और धन भेंट किये। नाना प्रकारके वस्त्र, आभूषण तथा प्रचुर धन-धान्य देकर उन सबका पूजन किया। इस प्रकार श्रीकृष्णके विदा करनेपर नन्द आदि गोप हर्ष और शोकमें डूबे हुए वहाँसे व्रजमें लौट गये। इसके बाद बलराम और श्रीकृष्णने अपने नाना उग्रसेनजीके पास जाकर उन्हें बन्धनसे मुक्त किया और बारंबार सान्त्वना दे मथुराके राज्यपर उनका अभिषेक कर दिया। अक्रूर आदि जितने श्रेष्ठ यदुवंशी थे, उन सबको राज्यमें विशेष पदपर स्थापित किया और उग्रसेनको राजा बनाकर परम धर्मात्मा भगवान् वासुदेव धर्मपूर्वक इस पृथ्वीका पालन करने लगे।

जरासन्धकी पराजय, द्वारका-दुर्गकी रचना, कालयवनका वध और मुचुकुन्दकी मुक्ति

महादेवजी कहते हैं—पार्वती! तदनन्तर वसुदेवजीने अपने दोनों पुत्रोंका वेदोक्त विधिसे उपनयन संस्कार किया। उसमें गर्गजीने आचार्यका काम किया था। विष्णुभक्त विद्वानोंने नहलाने आदिके द्वारा महाबली बलराम और श्रीकृष्णका संस्कारकार्य सम्पन्न किया। तत्पश्चात् उन दोनों भाइयोंने गुरुवर सान्दीपनिके घर जाकर उन महात्माको नमस्कार किया और उनसे वेद-शास्त्रोंका अध्ययन करके गुरुदक्षिणाके रूपमें उनके मरे हुए पुत्रको लाकर दिया। इसके बाद उन महात्मा गुरुसे आशीर्वाद ले उन्हें प्रणाम करके दोनों भाई मथुरापुरीमें चले आये। इधर श्रीकृष्णके द्वारा दुर्धर्ष वीर कंसके मारे जानेका समाचार सुनकर उसके श्वशुर महाबली जरासन्धने श्रीकृष्णको मारनेके लिये अनेक अक्षौहिणी सेनाओंके साथ आकर मथुरापुरीको घेर लिया। महापराक्रमी बलराम और श्रीकृष्णने नगरसे बाहर निकलकर हाथी-घोड़ोंसे भरी हुई उस विशाल सेनाको देखा। तब भगवान् वासुदेवने अपने पूर्वकालीन सनातन सारथिका स्मरण किया। उनके स्मरण करते ही सारथि दारुक सुग्रीवपुष्पक नामक महान् रथ लिये आ पहुँचा। उसमें दिव्य एवं सनातन अश्व जुते हुए थे। उस रथमें शंख, चक्र, गदा आदि दिव्य अस्त्र-शस्त्र मौजूद थे। ध्वजाके ऊपर गरुड़चिह्नसे चिह्नित एवं फहराती हुई पताका उस देवदुर्जय रथकी शोभा बढ़ा रही थी। श्रीहरिके सारथिने भूतलपर आकर भगवान् गोविन्दको प्रणाम किया और आयुधों तथा अश्वोंसहित वह सुन्दर रथ सेवामें समर्पित कर दिया। भगवान् श्रीकृष्ण बड़े हर्षके साथ उस महान् रथके समीप आये और अपने बड़े भाई बलरामजीके साथ उसपर सवार हुए। उस समय मरुद्गण उनकी स्तुति कर रहे थे। भगवान्ने चतुर्भुजरूप धारण करके हाथोंमें शंख, चक्र, गदा और तलवार ले ली और मस्तकपर किरीट धारण किया। दोनों कानोंमें कुण्डल तथा गलेमें वनमाला धारण करके वे संग्रामकी ओर प्रस्थित हुए।* परम पराक्रमी बलदेवजीने भी मूसल और हल हाथमें ले द्वितीय रुद्रकी भाँति जरासन्धकी सेनाका संहार आरम्भ किया। दारुकने बड़ी शीघ्रताके साथ रथको रणभूमिकी ओर बढ़ाया। मानो तृण, गुल्म और लताओंसे आच्छादित वनमें वायु प्रज्वलित अग्निको बढ़ा रही हो।

उस समय जरासन्धके सैनिकोंने गदा, परिघ, शक्ति और मुद्गरोंके द्वारा उस रथको आच्छादित कर दिया, किन्तु बहुत-से तिनकों और सूखे काठोंको जैसे अत्यन्त प्रज्वलित अग्नि अपनी लपटोंसे शीघ्र ही भस्म कर डालती है, उसी प्रकार श्रीहरिने अपने चक्रसे उन सभी अस्त्र-शस्त्रोंको लीलापूर्वक काट डाला। तत्पश्चात् उन्होंने शार्ङ्गधनुष हाथमें लिया और उससे छूटे हुए अक्षय एवं तीखे बाणोंके द्वारा सारी सेनाका संहार कर डाला। इसमें उनको कुछ भी आयास नहीं जान पड़ा। इस प्रकार क्षणभरमें ही शत्रुकी सारी सेनाका विनाश करके यदुश्रेष्ठ भगवान् मधुसूदनने अपना पांचजन्य शंख बजाया, जिसकी आवाज प्रलयकालीन वज्रकी भीषण गर्जनाको भी मात करती थी। शंखनाद सुनते ही शत्रुपक्षके महाबली योद्धाओंके हृदय विदीर्ण हो गये। वे घोड़े-हाथियोंके साथ ही गिरकर प्राणोंसे हाथ धो बैठे। इस प्रकार रथ, हाथी और घोड़ेसहित सम्पूर्ण सेनाका केवल भगवान् श्रीकृष्णने ही सफाया कर डाला। अब उस सेनामें कोई वीर जीवित न बचा। तब सम्पूर्ण देवता प्रसन्नचित्त होकर भगवान्के ऊपर फूल बरसाने और उन्हें साधुवाद देने लगे। इस प्रकार पृथ्वीका सारा भार उतार कर देवताओंके मुँहसे स्तुति सुनते हुए भगवान् धरणीधरकी उस युद्धके मुहानेपर बड़ी शोभा हुई। अपनी सेनाको मारी गयी देख खोटी बुद्धिवाला पराक्रमी वीर जरासन्ध तुरंत ही बलरामजीके साथ लोहा लेनेके लिये आया। वे दोनों ही वीर युद्धसे पीछे हटनेवाले नहीं थे। उनमें बड़ा भयंकर संग्राम हुआ। बलरामजीने हल उठाकर उससे जरासन्धके सारथिसहित रथको चौपट कर डाला और महाबली जरासन्धको भी पकड़कर वे मूसल उठा उसे मार डालनेको तैयार हो गये। जैसे सिंह महान् गजराजको दबोच ले, उसी प्रकार बलरामजीने नृपश्रेष्ठ जरासन्धको प्राणसंकटकी अवस्थामें डाल दिया। यह देख भगवान् श्रीकृष्णने अपने बड़े भाई

* चतुर्भुजवपुर्भूत्वा शङ्खचक्रगदासिभृत् । किरीटी कुण्डली स्रग्वी सङ्ग्रामाभिमुखं ययौ॥ (२७३। १४)

बलरामजीसे कहा—'भैया! इसका वध न कीजिये।' इस प्रकार महामति धर्मात्मा श्रीकृष्णने जरासन्धको छुड़वा दिया। श्रीकृष्णके कहनेसे अविनाशी वीर संकर्षणने शत्रुको छोड़ दिया। इसके बाद वे दोनों भाई रथपर बैठकर मथुरापुरीमें लौट आये।

उधर जरासन्ध महापराक्रमी कालयवनके यहाँ गया। कालयवनके पास बहुत बड़ी सेना थी। वहाँ पहुँचकर उसने वसुदेवके दोनों पुत्रोंके पराक्रमका वर्णन किया। दानवोंका वध, कंसका मारा जाना, अनेक अक्षौहिणी सेनाका संहार तथा अपनी पराजय आदि श्रीकृष्णके सारे चरित्रोंका हाल कह सुनाया। यह सब सुनकर कालयवनको बड़ा क्रोध हुआ और उसने महान् बली एवं पराक्रमी म्लेच्छोंकी बड़ी भारी सेनाके साथ मथुरापर आक्रमण किया। मगधराजके महाबली सैनिक भी उसकी सहायताके लिये आये थे। जरासन्धको साथ लेकर महान् अभिमानी कालयवन बड़ी तेजीके साथ चला। उसकी विशाल सेनासे अनेक जनपदोंकी भूमि आच्छादित हो गयी थी। उस बलवान् वीरने मथुराको चारों ओरसे घेरकर अपनी महासेनाका पड़ाव डाल दिया। उस समय भगवान् श्रीकृष्णने पुरवासियोंके कुशलक्षेमका विचार करके सबके रहनेके लिये समुद्रसे भूमि माँगी। समुद्रने उन्हें तीस योजन विस्तृत भूमि दे दी। तब श्रीकृष्णने वहीं द्वारका नामकी सुन्दर पुरी बनवायी, जो अपनी शोभासे इन्द्रकी अमरावतीपुरीको मात करती थी। भगवान् जनार्दनने मथुरामें सोये हुए पुरवासियोंको उसी अवस्थामें उठाकर रातभरमें ही द्वारका पहुँचा दिया। सबेरे जागनेपर उन्होंने स्त्री-पुत्रोंसहित अपनेको सोनेके महलोंमें बैठा पाया। इससे उनके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। प्रचुर धन-धान्य और दिव्य वस्त्र-आभूषणोंसे भरे हुए सुन्दर गृह, जहाँ भयका नाम भी नहीं था, पाकर सम्पूर्ण यादव बड़ी प्रसन्नताके साथ वहाँ रहने लगे। जैसे स्वर्गमें देवता सुखी रहते हैं, उसी प्रकार द्वारकापुरीमें वहाँके सभी निवासी अत्यन्त प्रसन्न थे। मथुरावासियोंको द्वारकामें पहुँचानेके बाद महाबली बलराम और श्रीकृष्ण कालयवनसे युद्ध करनेके लिये मथुरासे बाहर निकले। एक ओर महारथी बलरामजीने हल और मूसल लेकर बड़े रोषके साथ यवनोंकी विशाल सेनाका संहार आरम्भ किया तथा दूसरी ओर देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने शार्ङ्गधनुष लेकर उससे छूटे हुए अग्निशिखाके सदृश तेजस्वी बाणोंद्वारा म्लेच्छोंकी सम्पूर्ण विशाल वाहिनीको भस्म कर डाला। महाबली कालयवनने अपनी सेनाको मारी गयी देख भगवान् वासुदेवके साथ गदायुद्ध आरम्भ किया। भगवान् श्रीकृष्ण भी बहुत देरतक यवनोंका संहार करके युद्धसे विमुख होकर भागे। कालयवनने 'ठहरो-ठहरो' की पुकार लगाते हुए बड़े वेगसे उनका पीछा किया। परम बुद्धिमान् भगवान् श्रीकृष्ण शीघ्र ही एक पर्वतकी कन्दरामें घुस गये। वहाँ महामुनि राजा मुचुकुन्द सोये थे। भगवान् श्रीकृष्ण, जहाँ कालयवनकी दृष्टि न पड़ सके, ऐसे स्थानमें खड़े हो गये। कालयवन भी महान् धीर-वीर था। वह हाथमें गदा लिये श्रीकृष्णको मारनेके लिये उस कन्दरामें घुसा। उसमें सोये हुए महामुनि राजा मुचुकुन्दको श्रीकृष्ण समझकर उसने लात मारी। इससे उनकी नींद खुल गयी और उन्होंने क्रोधसे लाल-लाल आँखें करके हुंकार किया। उनके हुंकार शब्दसे तथा उनकी रोषभरी दृष्टि पड़नेसे कालयवन प्राणहीन हो जलकर भस्म हो गया। तत्पश्चात् राजर्षि मुचुकुन्दने अपने सामने खड़े हुए भगवान् श्रीकृष्णको देखा। अमित तेजस्वी भगवान्पर दृष्टि पड़ते ही वे सहसा उठकर खड़े हो गये और बोले—'मेरा अहोभाग्य, अहोभाग्य, जो प्रभुका दर्शन मिला।' इतना कहते-कहते उनके सारे शरीरमें रोमांच हो आया और नेत्रोंमें आनन्दके आँसू छलक आये। उन्होंने जय-जयकार करके भगवान्को बारंबार प्रणाम किया और स्तवन करते हुए कहा—'परमेश्वर! आपके दर्शनसे मैं धन्य और कृतकृत्य हो गया। आज मेरा जन्म और जीवन—दोनों सफल हो गये!' इस प्रकार स्तुति करके उन्होंने गोविन्दको पुनः बारंबार प्रणाम किया। इससे सन्तुष्ट होकर भगवान्ने महामुनि मुचुकुन्दसे कहा, 'राजर्षे! तुम मनोवांछित वर माँगो' तब मुचुकुन्दने भगवान्से पुनरावृत्तिरहित मोक्षके लिये प्रार्थना की। भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें अपना सनातन दिव्यलोक प्रदान किया। परम बुद्धिमान् राजा मुचुकुन्दने मानवरूपका परित्याग करके परमात्मा श्रीहरिके समान रूप धारण कर लिया और गरुड़पर आरूढ़ हो वे सनातन धाममें चले गये।

सुधर्मा-सभाकी प्राप्ति, रुक्मिणी-हरण तथा रुक्मिणी और श्रीकृष्णका विवाह

महादेवजी कहते हैं—पार्वती! बुद्धिमान् मुचुकुन्दके द्वारा कालयवनका वध करानेके पश्चात् उन्हें मुक्तिका वरदान दे भगवान् यदुनन्दन गुफासे बाहर निकले। कालयवनको मारा गया सुनकर दुर्बुद्धि जरासन्ध अपनी सेनाके साथ बलराम और श्रीकृष्णके साथ युद्ध करने लगा। भगवान् श्रीकृष्णने उस दुरात्माकी प्राय: सारी सेनाका संहार कर डाला। मगधराज मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। बहुत देरके बाद जब उसे कुछ चेत हुआ तो उसके सारे अंगोंमें व्याकुलता छा रही थी। वह भयसे आतुर था। अब मगधराज जरासन्ध बलरामजीके साथ युद्ध करनेका साहस न कर सका। उसने महाबली बलराम और श्रीकृष्णको अजेय समझा और मरनेसे बची हुई सेनाको साथ ले तुरंत ही वह अपनी राजधानीको भाग गया। अब उसने बलराम और श्रीकृष्णका विरोध छोड़ दिया। तदनन्तर वसुदेवजीके दोनों पुत्र अपनी सेनाके साथ द्वारका चले गये। वहाँ इन्द्रने वायुदेवताको भेजा और विश्वकर्माकी बनायी हुई सुधर्मा नामक देवसभाको प्रेमपूर्वक श्रीकृष्णको भेंट कर दिया। वह सभा हीरे और वैदूर्यमणिकी बनी हुई थी। चन्द्राकार सिंहासनसे उसकी विचित्र शोभा हो रही थी। नाना प्रकारके रत्नोंसे जटित सुवर्णमय दिव्य छत्रोंसे उसकी शोभा और भी बढ़ गयी थी। उस रमणीय सभाको पाकर उग्रसेन आदि यदुवंशी वैदिक विद्वानोंके साथ उसमें बैठकर स्वर्ग-सभामें बैठे हुए देवताओंकी भाँति आनन्दका अनुभव करते थे। उन दिनों इक्ष्वाकुकुलमें उत्पन्न रैवत नामक एक राजा थे। उनके रेवती नामवाली एक कन्या थी, जो समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न थी। उन्होंने बड़ी प्रसन्नताके साथ अपनी कन्याका विवाह बलरामजीके साथ कर दिया। बलरामजीने वैदिक विधिके अनुसार रेवतीका पाणिग्रहण किया।

विदर्भ देशमें भीष्मक नामक एक धर्मात्मा राजा रहते थे। उनके रुक्मी आदि कई पुत्र हुए। उन सबसे छोटी एक कन्या भी हुई, जो बहुत ही सुन्दरी थी। उस कन्याका नाम रुक्मिणी था। वह भगवती लक्ष्मीके अंशसे उत्पन्न हुई थी। उसमें सभी शुभ लक्षण मौजूद थे। श्रीरामावतारके समय जो सीतारूपमें प्रकट हुई थीं, वे ही भगवती लक्ष्मी श्रीकृष्णावतारके समय रुक्मिणीके रूपमें अवतीर्ण हुईं। पूर्वकालमें जो हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष नामक दैत्य हुए थे, वे ही द्वापर आनेपर पुन: शिशुपाल और दन्तवक्त्रके नामसे उत्पन्न हुए थे। उन दोनोंका जन्म चैद्यवंशमें हुआ था। दोनों ही बड़े बलवान् और पराक्रमी थे। राजकुमार रुक्मी अपनी बहिन रुक्मिणीका विवाह शिशुपालके साथ करना चाहता था; किन्तु सुन्दर मुखवाली रुक्मिणी शिशुपालको अपना पति नहीं बनाना चाहती थी। बचपनसे ही उसका भगवान् श्रीकृष्णके प्रति अनुराग था। श्रीकृष्णको ही पति बनानेके उद्देश्यसे वह देवताओंका पूजन और भाँति-भाँतिके दान किया करती थी। वह अपने सनातन स्वामी पुरुषोत्तमका ध्यान करती हुई कठोर व्रतमें संलग्न हो पिताके घरमें निवास करती थी। विदर्भराज भीष्मक अपने पुत्र रुक्मीके साथ मिलकर शिशुपालसे कन्याका विवाह करनेकी तैयारी करने लगे।

तब रुक्मिणीने भगवान् श्रीकृष्णको पति बनानेके उद्देश्यसे अपने पुरोहितके पुत्रको तुरंत ही द्वारकापुरीमें भेजा। ब्राह्मणदेवता द्वारकामें पहुँचकर भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीसे मिले। उन दोनोंने उनका विधिपूर्वक स्वागत-सत्कार किया। ब्राह्मणने एकान्तमें बैठकर उन दोनों भाइयोंसे रुक्मिणीका सारा संदेश कह सुनाया। उसे सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंसे परिपूर्ण आकाशगामी रथपर ब्राह्मणके साथ बैठे। महात्मा दारुकने उस रथको तीव्र गतिसे हाँका। अत: वे दोनों पुरुषश्रेष्ठ शीघ्र ही विदर्भनगरमें जा पहुँचे। बुद्धिमान् शिशुपालके विवाहको देखनेके लिये सब राष्ट्रोंसे जरासन्ध आदि राजा आये थे। विवाहके दिन रुक्मिणी सोनेके आभूषणोंसे विभूषित हो दुर्गाजीकी पूजा करनेके लिये सखियोंके साथ नगरसे बाहर निकली। वह सन्ध्याका समय था। देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण उसी समय वहाँ पहुँचे। बलवान् तो थे ही, उन्होंने रथपर बैठी हुई रुक्मिणीको सहसा उठाकर अपने रथपर बिठा लिया और द्वारकाकी ओर चल दिये। यह देख जरासन्ध आदि राजा क्रोधमें भरकर राजकुमार रुक्मीको साथ ले युद्धके लिये उपस्थित हुए।

उन्होंने चतुरंगिणी सेनाके साथ श्रीहरिका पीछा किया।

तब महाबाहु बलभद्रजी उस उत्तम रथसे कूद पड़े। उन्होंने हल और मूसल लेकर युद्धमें शत्रुओंका संहार आरम्भ किया। कितने ही रथों, घोड़ों, बड़े-बड़े गजराजों तथा पैदल सैनिकोंको भी हल और मूसलकी मारसे कुचल डाला। जैसे वज्रके आघातसे पर्वत विदीर्ण हो जाते हैं, उसी प्रकार उनके हल और मूसल गिरनेसे रथोंकी पंक्तियाँ चूर-चूर हो गयीं और बड़े-बड़े हाथी भी धरतीपर ढेर हो गये। हाथियोंके मस्तक फट जाते और वे रक्त वमन करते हुए प्राणोंसे हाथ धो बैठते थे। इस प्रकार बलरामजीने क्षणभरमें हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंसहित सारी सेनाका सफाया कर दिया। राजाओंके पाँव उखड़ गये। वे सब-के-सब भयसे पीड़ित हो भाग चले। उधर रुक्मी क्रोधमें भरकर श्रीकृष्णके साथ लोहा ले रहा था। उसने धनुष उठाकर बाणोंके समूहसे श्रीकृष्णको बींधना आरम्भ किया। तब गोविन्दने हँसकर लीलापूर्वक अपना शार्ङ्गधनुष हाथमें उठाया और एक ही बाणसे रुक्मीके अश्व, सारथि, रथ और ध्वजा-पताकाको भी काट गिराया। रथ नष्ट हो जानेपर वह तलवार खींचकर पृथ्वीपर खड़ा हो गया। यह देख श्रीकृष्णने एक बाणसे उसकी तलवारको भी काट डाला। तब उसने श्रीकृष्णकी छातीमें मुक्केसे प्रहार किया। श्रीकृष्णने बलपूर्वक उसे पकड़कर रथमें बाँध दिया और हँसते-हँसते तीखा छुरा ले रुक्मीके सिरको मूड़कर उसे बन्धनसे मुक्त कर दिया। इस अपमानके कारण उसको बड़ा शोक हुआ। वह चोट खाये हुए साँपकी भाँति लंबी साँस लेने लगा। लज्जाके कारण उसने विदर्भ-नगरीमें पाँव नहीं रखा। वहीं गाँव बसाकर वह रहने लगा।

तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण बलराम, रुक्मिणी और दारुकके साथ उस दिव्य रथपर आरूढ़ हो तुरंत अपनी पुरीको चले गये। द्वारकामें प्रवेश करके देवकीनन्दन श्रीकृष्णने शुभ दिन और शुभ लग्नमें सुवर्णमय आभूषणोंसे विभूषित राजकुमारी रुक्मिणीका वेदोक्त विधिसे पाणिग्रहण किया। उस विवाहके समय आकाशमें देवतालोग दुन्दुभि बजाते और फूलोंकी वर्षा करते थे। वसुदेव, उग्रसेन, यदुश्रेष्ठ अक्रूर, महातेजस्वी बलभद्र तथा और भी जो-जो श्रेष्ठ यादव थे; उन सबने बड़े उत्साहके साथ श्रीकृष्ण और रुक्मिणीका सुखमय विवाहोत्सव मनाया। उसमें ग्वालों और ग्वालबालोंके साथ नन्दगोप भी पधारे थे तथा वस्त्राभूषणोंसे विभूषित बहुत-सी गोपांगनाओंके साथ स्वयं यशोदाजी भी आयी थीं। वसुदेव, देवकी, रेवती, रोहिणी देवी तथा अन्यान्य नगर-युवतियोंने मिलकर बड़े हर्षके साथ विवाहके सारे कार्य सम्पन्न किये। बड़ी-बूढ़ी स्त्रियोंसहित देवकीने बड़ी प्रसन्नताके साथ विधिपूर्वक देव-पूजनका कार्य सम्पन्न किया। श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने विवाहोत्सवसे सम्बन्ध रखनेवाला सारा शास्त्रीय कार्य पूर्ण किया। सुन्दर वस्त्र और आभूषणोंसे पूजित करके ब्राह्मणोंको भोजन कराया गया। आये हुए राजा, नन्द आदि गोप तथा यशोदा आदि स्त्रियोंका भी स्वर्ण-रत्न आदिके बहुत-से आभूषणों एवं वस्त्रोंद्वारा यथावत् सत्कार किया गया। इस प्रकार उस वैवाहिक महोत्सवमें सम्मानित होकर वे सभी बड़े प्रसन्न हुए।

उन नूतन दम्पति श्रीकृष्ण और रुक्मिणीने ग्रन्थिबन्धनपूर्वक एक साथ अग्निदेवको प्रणाम किया। वेदोंके ज्ञाता श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने आशीर्वादके द्वारा उनका अभिनन्दन किया। उस समय विवाहकी वेदीपर बैठे हुए वर और वधूकी बड़ी शोभा हो रही थी। पत्नीसहित श्रीकृष्णने ब्राह्मणों, राजाओं और बड़े भाई बलरामजीको प्रणाम किया। इस प्रकार समस्त वैवाहिक कार्य सम्पन्न करके भगवान् श्रीकृष्णने विवाहोत्सवमें पधारे हुए समस्त राजाओंको विदा किया। उनसे सम्मानित एवं विदा होकर श्रेष्ठ राजा तथा महात्मा ब्राह्मण अपने-अपने निवासस्थानको चले गये। इसके बाद धर्मात्मा भगवान् देवकीनन्दन रुक्मिणीदेवीके साथ दिव्य अट्टालिकामें बड़े सुखसे रहने लगे। मुनि और देवता उनकी स्तुति किया करते थे। उस शोभामयी द्वारकापुरीमें सनातन भगवान् श्रीकृष्ण प्रतिदिन सन्तुष्टचित्त होकर सदा आनन्दमग्न रहते थे।

भगवान्‌के अन्यान्य विवाह, स्यमन्तकमणिकी कथा, नरकासुरका वध तथा पारिजातहरण

महादेवजी कहते हैं—पार्वती! सत्राजित्‌के एक यशस्विनी कन्या थी, जो भूदेवीके अंशसे उत्पन्न हुई थी। उसका नाम था (सत्या) सत्यभामा। सत्यभामा भगवान् श्रीकृष्णकी दूसरी पत्नी थीं। तीसरी पत्नी सूर्यकन्या कालिन्दी थीं, जो लीलादेवीके अंशसे प्रकट हुई थीं। विन्दानुविन्दकी पुत्री मित्रविन्दाको स्वयंवरसे ले आकर भगवान् श्रीकृष्णने उसके साथ विवाह किया। वहाँ सात महाबली बैलोंको, जिनका दमन करना बहुत ही कठिन था, भगवान्‌ने एक ही रस्सीसे नाथ दिया और इस प्रकार पराक्रमरूपी शुल्क देकर उसका पाणिग्रहण किया। राजा सत्राजित्‌के पास स्यमन्तक नामक एक बहुमूल्य मणि थी, जिसे उन्होंने अपने छोटे भाई महात्मा प्रसेनको दे रखा था। एक दिन भगवान् मधुसूदनने वह श्रेष्ठ मणि प्रसेनसे माँगी। उस समय प्रसेनने बड़ी धृष्टताके साथ उत्तर दिया—'यह मणि प्रतिदिन आठ भार सुवर्ण देती है; अतः इसे मैं किसीको नहीं दे सकता।' प्रसेनका अभिप्राय समझकर भगवान् श्रीकृष्ण चुप हो रहे।

एक दिनकी बात है, भगवान् श्रीकृष्ण प्रसेन आदि समस्त महाबली यादवोंके साथ शिकार खेलनेके लिये बड़े भारी वनमें गये। प्रसेन अकेले ही उस घोर वनमें बहुत दूरतक चले गये। वहाँ एक सिंहने उन्हें मारकर वह मणि ले ली। फिर उस सिंहको महाबली जाम्बवान्‌ने मार डाला और उस मणिको लेकर वे शीघ्र ही अपनी गुफामें चले गये। उस गुफामें दिव्य स्त्रियाँ निवास करती थीं। उस दिन सूर्यास्त हो जानेपर भगवान् वासुदेव अपने अनुचरोंके साथ चले। मार्गमें उन्होंने चतुर्थीके चन्द्रमाको देख लिया। उसके बाद अपने नगरमें प्रवेश किया। तदनन्तर समस्त पुरवासी श्रीकृष्णके विषयमें एक-दूसरेसे कहने लगे—'जान पड़ता है, गोविन्दने प्रसेनको वनमें ही मारकर बेखटके मणि ले ली है। उसके बाद ये द्वारकामें आये हैं।' द्वारकावासियोंकी यह बात जब भगवान्‌के कानोंमें पड़ी तो वे मूर्खलोगोंके द्वारा उठाये हुए अपवादके भयसे पुनः कुछ यदुवंशियोंको साथ ले गहन वनमें गये। वहाँ सिंहद्वारा मारे हुए प्रसेनकी लाश पड़ी थी, जिसे भगवान्‌ने सबको दिखाया। इस प्रकार प्रसेनकी हत्याके झूठे कलंकको मिटाकर भगवान् श्रीकृष्णने अपनी सेनाको वहीं ठहरा दिया तथा हाथमें शार्ङ्गधनुष और गदा लिये वे अकेले ही गहन वनमें घुस गये। वहाँ एक बहुत बड़ी गुफा देखकर श्रीकृष्णने निर्भय होकर उसमें प्रवेश किया। उस गुफाके भीतर एक स्वच्छ भवन था, जो नाना प्रकारकी श्रेष्ठ मणियोंसे जगमगा रहा था। वहाँ एक धायने जाम्बवान्‌के पुत्रको पालनेमें सुलाकर उसके ऊपरी भागमें मणिको बाँधकर लटका दिया था और पालनेको धीरे-धीरे लीलापूर्वक डुलाती हुई वह लोरियाँ गा रही थी। गाते-गाते वह निम्नांकित श्लोकका उच्चारण कर रही थी—

सिंहः प्रसेनमवधीत् सिंहो जाम्बवता हतः।
सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः॥

(२७६। १९)

'प्रसेनको सिंहने मारा और सिंह जाम्बवान्‌के हाथसे मारा गया है। सुन्दर कुमार! रोओ मत। यह स्यमन्तकमणि तुम्हारी ही है।'

यह सुनकर प्रतापी वासुदेवने शंख बजाया। वह महान् शंखनाद सुनकर जाम्बवान् बाहर निकले। फिर उन दोनोंमें लगातार दस राततक भयंकर युद्ध हुआ। दोनों एक-दूसरेको वज्रके समान मुक्कोंसे मारते थे। वह युद्ध समस्त प्राणियोंको भयभीत करनेवाला था। श्रीकृष्णके बलकी वृद्धि और अपने बलका ह्रास देखकर जाम्बवान्‌को भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके कहे हुए पूर्वकालके वचनोंका स्मरण हो आया। वे सोचने लगे—ये ही मेरे स्वामी श्रीराम हैं, जो धर्मकी रक्षाके लिये पुनः इस भूतलपर अवतीर्ण हुए हैं। मेरे नाथ मेरा मनोरथ पूर्ण करनेके लिये ही यहाँ पधारे हैं।' ऐसा सोचकर ऋक्षराजने युद्ध बंद कर दिया और हाथ जोड़कर विस्मयसे पूछा—'आप कौन हैं? कैसे यहाँ पधारे हैं?' तब भगवान् श्रीकृष्णने गम्भीर वाणीमें कहा—'मैं वसुदेवका पुत्र हूँ। मेरा नाम वासुदेव है। तुम मेरी स्यमन्तक नामक मणि हर ले आये हो। उसे शीघ्र लौटा दो, नहीं तो अभी मारे जाओगे।' यह सुनकर जाम्बवान्‌को बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने दण्डकी भाँति पृथ्वीपर पड़कर भगवान्‌को प्रणाम किया और विनीत-भावसे कहा—'प्रभो! आपके दर्शनसे मैं धन्य

और कृतार्थ हो गया। देवकीनन्दन! पहले अवतारसे ही मैं आपका दास हूँ। गोविन्द! पूर्वकालमें जो मैंने युद्धकी अभिलाषा की थी, उसीको आज आपने पूर्ण किया है। जगन्नाथ! करुणाकर! मैंने मोहवश अपने स्वामीके साथ जो यह युद्ध किया है, उसे आप क्षमा करें।'

ऐसा कहकर जाम्बवान् पैरोंमें पड़ गये और बारंबार नमस्कार करके उन्होंने भगवान्‌को रत्नमय सिंहासनपर विनयपूर्वक बिठाया। फिर शरत्कालके कमलसदृश सुन्दर एवं कोमल चरणोंको उत्तम जलसे पखारकर मधुपर्ककी विधिसे उन यदुश्रेष्ठका पूजन किया। दिव्य वस्त्र और आभूषण भेंट किया। इस प्रकार विधिवत् पूजा करके अमिततेजस्वी भगवान्‌को अपनी जाम्बवती नामवाली लावण्यमयी कन्या पत्नीरूपसे दान कर दी। साथ ही अन्यान्य श्रेष्ठ मणियोंसहित स्यमन्तकमणि भी दहेजमें दे दी। विपक्षी वीरोंका दमन करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने वहीं प्रसन्नतापूर्वक जाम्बवतीसे विवाह किया और जाम्बवान्‌को उत्तम मोक्ष प्रदान किया। फिर जाम्बवतीको साथ ले गुफासे बाहर निकलकर वे द्वारकापुरीको गये। वहाँ पहुँचकर यदुश्रेष्ठ श्रीकृष्णने सत्राजित्‌को स्यमन्तकमणि दे दी और सत्राजित्‌ने उसे अपनी कन्या सत्यभामाको दे दिया। भादोंके शुक्लपक्षमें चतुर्थीको चन्द्रमाका दर्शन करनेसे झूठा कलंक लगता है; अतः उस दिन चन्द्रमाको नहीं देखना चाहिये। यदि कदाचित् उस तिथिको चन्द्रमाका दर्शन हो जाय तो इस स्यमन्तकमणिकी कथा सुननेपर मनुष्य मिथ्या कलंकसे छूट जाता है। मद्रराजकी तीन कन्याएँ थीं—सुलक्ष्मणा, नाग्नजिती और सुशीला। इन तीनोंने स्वयंवरमें भगवान् श्रीकृष्णका वरण किया और एक ही दिन भगवान्‌ने उन तीनोंके साथ विवाह किया। इस प्रकार महात्मा श्रीकृष्णके रुक्मिणी, सत्यभामा, कालिन्दी, मित्रविन्दा, जाम्बवती, नाग्नजिती, सुलक्ष्मणा और सुशीला—ये आठ पटरानियाँ थीं।

नरकासुर नामक एक महान् पराक्रमी राक्षस था, जो भूमिसे उत्पन्न हुआ था। उसने देवराज इन्द्र तथा सम्पूर्ण देवताओंको युद्धमें जीतकर देवमाता अदितिके दो तेजस्वी कुण्डल छीन लिये थे। साथ ही देवताओंके भाँति-भाँतिके रत्न, इन्द्रका ऐरावत हाथी, उच्चैःश्रवा घोड़ा, कुबेरके मणि-माणिक्य आदि तथा पद्मनिधि नामक शंख भी ले लिये थे। वह आकाशमें विचरण करनेवाला था और आकाशमें ही नगर बनाकर उसके भीतर निवास करता था। एक दिन सम्पूर्ण देवता उसके भयसे पीड़ित हो शचीपति इन्द्रको आगे करके अनायास ही महान् कर्म करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णकी शरणमें गये। श्रीकृष्णने भी नरकासुरकी सारी चेष्टाएँ सुनकर देवताओंको अभयदान दे विनतानन्दन गरुड़का स्मरण किया। सर्वदेववन्दित महाबली गरुड़ उसी समय भगवान्‌के सामने हाथ जोड़े उपस्थित हो गये। भगवान् सत्यभामाके साथ गरुड़पर सवार हुए और मुनियोंके द्वारा अपनी स्तुति सुनते हुए उस राक्षसके नगरमें गये। जैसे आकाशमें सूर्यका मण्डल देदीप्यमान होता है, उसी प्रकार उसका नगर भी उद्भासित हो रहा था। उसमें दिव्य आभूषण धारण किये बहुत-से राक्षस निवास करते थे। वह नगर देवताओंके लिये भी दुर्भेद्य था। भगवान्‌ने उसके कई आवरण देख चक्रसे उन्हें काट डाला, ठीक उसी तरह, जैसे सूर्य अन्धकारको नष्ट कर देते हैं। आवरण कट जानेपर समस्त राक्षस शूल उठाये सैकड़ों और हजारोंके झुंड बनाकर युद्धके लिये चले। विजयकी अभिलाषा रखनेवाले निशाचर तोमर, भिन्दिपाल और पट्टिश आदि अस्त्र-शस्त्रोंसे भगवान् श्रीकृष्णपर प्रहार करने लगे। तब भगवान् श्रीकृष्णने भी शार्ङ्गधनुष लेकर उनके दिव्य अस्त्र-शस्त्रोंको काट डाला तथा अग्निके समान तेजस्वी बाणोंसे उन सबका संहार आरम्भ किया। इस प्रकार समस्त राक्षस मारे जाकर पृथ्वीपर गिर पड़े। सम्पूर्ण दानवोंका वध करके कमलनयन भगवान् पुरुषोत्तमने पांचजन्य नामक महान् शंख बजाया।

शंखनाद सुनकर पराक्रमी दैत्य नरकासुर दिव्य रथपर आरूढ़ हो भगवान्‌से युद्ध करनेके लिये आया। उन दोनोंमें अत्यन्त भयंकर घमासान युद्ध हुआ, जो रोंगटे खड़े कर देनेवाला था। वे दोनों बरसते हुए मेघोंकी भाँति हजारों बाणोंकी झड़ी लगा रहे थे। इसी बीचमें सनातन भगवान् वासुदेवने अर्द्धचन्द्राकार बाणसे उस राक्षसका धनुष काट दिया और उसकी छातीपर महान् दिव्यास्त्रका प्रहार किया। उससे हृदय विदीर्ण हो जानेके कारण वह महान् असुर पृथ्वीपर गिर पड़ा। तब

भूमिकी प्रार्थनासे भगवान् श्रीकृष्ण उस राक्षसके समीप गये और बोले—'तुम कोई वर माँगो।' यह सुनकर राक्षसने गरुड़पर बैठे हुए भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—'सम्पूर्ण भूतोंके स्वामी श्रीकृष्ण! मुझे वरदानकी कोई आवश्यकता नहीं। फिर भी दूसरे लोगोंके हितके लिये आपसे एक उत्तम वर माँगता हूँ। मधुसूदन! जो मनुष्य मेरी मृत्युके दिन मांगलिक स्नान करें, उन्हें कभी नरकको प्राप्ति न हो।'

'एवमस्तु' कहकर भगवान्ने उसे वह वर दे दिया। नरकासुरने ब्रह्मा और शिव आदि देवताओंद्वारा पूजित, वज्र एवं वैदूर्यमणिसे बने हुए नूपुरोंसे सुशोभित तथा शरत्कालके खिले हुए कमलसदृश कोमल भगवच्चरणोंका दर्शन करते हुए अपने प्राणोंका परित्याग किया और श्रीहरिका सारूप्य प्राप्त कर लिया। तदनन्तर सम्पूर्ण देवता और महर्षि आनन्दमग्न हो भगवान्के ऊपर फूलोंकी वर्षा और स्तुति करने लगे। इसके बाद कमलनयन श्रीकृष्णने नरकासुरके नगरमें प्रवेश किया और उसने बलपूर्वक जो देवताओंका धन लूट लिया था, वह सब उन्हें वापस कर दिया। देवमाता अदितिके दोनों कुण्डल, उच्चैःश्रवा घोड़ा, ऐरावत हाथी और दीप्तिमान् मणिमय पर्वत—ये सारी वस्तुएँ भगवान्ने इन्द्रको दे दीं। बलवान् नरकासुरने समस्त राजाओंको जीतकर सभी राष्ट्रोंसे जो सोलह हजार कन्याओंका अपहरण किया था, वे सब-की-सब उसके अन्तःपुरमें कैद थीं। सैकड़ों कामदेवकी शोभाको तिरस्कृत करनेवाले महापराक्रमी श्रीकृष्णको देखकर उन सबने उन्हें अपना पति बना लिया। तब अनन्त रूप धारण करनेवाले भगवान् गोविन्दने एक ही लग्नमें उन सबका पाणिग्रहण किया। नरकासुरके सभी पुत्र पृथ्वीदेवीको आगे करके भगवान् गोविन्दकी शरणमें गये। तब दयानिधान भगवान्ने उन सबकी रक्षा की और पृथ्वीके वचनोंका आदर करते हुए उन्हें नरकासुरके राज्यपर स्थापित कर दिया। तत्पश्चात् उन सभी सुन्दरी स्त्रियोंको इन्द्रके विमानपर बिठाकर देवदूतोंके साथ द्वारकामें भेज दिया। इसके बाद सत्यभामाके साथ गरुड़पर आरूढ़ हो भगवान् श्रीकृष्ण देवमाताका दर्शन करनेके लिये स्वर्गलोकमें गये। अमरावतीपुरीमें पहुँचकर महाबली श्रीकृष्ण पत्नीसहित गरुड़से उतरे और देवताओंकी वन्दनीया माता अदितिके चरणोंमें उन्होंने प्रणाम किया। पुत्रवत्सला माताने भगवान्को दोनों हाथोंसे पकड़कर छातीसे लगा लिया और एक श्रेष्ठ आसनपर बिठाकर उन्होंने भक्तिपूर्वक भगवान्का पूजन किया। तत्पश्चात् आदित्य, वसु, रुद्र और इन्द्र आदि देवताओंने भी परमेश्वरका यथायोग्य पूजन किया। उस समय यशस्विनी सत्यभामा शचीके महलमें गयीं। वहाँ इन्द्राणीने उन्हें सुखमय आसनपर बिठाकर उनका भलीभाँति पूजन किया। उसी समय सेवकोंने इन्द्रकी प्रेरणासे पारिजातके सुन्दर फूल ले जाकर शचीदेवीको भेंट दिये। सुन्दरी शचीने उन फूलोंको लेकर अपने काले एवं चिकने केशोंमें गूँथ लिया और सत्यभामाकी अवहेलना कर दी। उन्होंने सोचा—'ये फूल देवताओंके योग्य हैं और सत्यभामा मानुषी हैं, अतः ये इन फूलोंकी अधिकारिणी नहीं हैं।' ऐसा विचार करके उन्होंने वे फूल सत्यभामाको नहीं दिये।

सत्यभामा क्रोधमें भरकर इन्द्राणीके घरसे चली आयीं और अपने स्वामीके पास आकर बोलीं—'यदुश्रेष्ठ! उस शचीको पारिजातके फूलोंपर बड़ा घमंड है। उसने मुझे दिये बिना ही सब फूल अपने ही केशोंमें धारण कर लिये हैं।' सत्यभामाकी यह बात सुनकर महाबली वासुदेवने पारिजातका पेड़ उखाड़ लिया और उसे गरुड़की पीठपर रखकर वे सत्यभामाके साथ द्वारकापुरीकी ओर चल दिये। यह देख देवराज इन्द्रको बड़ा क्रोध हुआ और वे देवताओंको साथ लेकर भगवान् जनार्दनपर अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे, मानो मेघ किसी महान् पर्वतपर जलकी बूँदें बरसा रहे हों। भगवान् श्रीकृष्णके चक्र और गरुड़जीके पंखोंकी मारसे देवता परास्त हो गये और इन्द्र भयभीत होकर गजराज ऐरावतसे नीचे उतर पड़े तथा गद्‌गद वाणीसे भगवान्की स्तुति करके बोले—'श्रीकृष्ण! यह पारिजात देवताओंके उपभोगमें आनेयोग्य है। पूर्वकालमें आपने ही इसे देवताओंके लिये दिया था। अब यह मनुष्यलोकमें कैसे रह सकेगा?' तब भगवान्ने इन्द्रसे कहा—'देवराज! तुम्हारे घरमें शचीने सत्यभामाका अपमान किया है। उन्होंने इनको पारिजातके फूल न देकर स्वयं

ही उन्हें अपने मस्तकमें धारण किया है। इसलिये मैंने पारिजातका अपहरण किया है। मैंने सत्यभामासे प्रतिज्ञा की है कि मैं तुम्हारे घरमें पारिजातका वृक्ष लगा दूँगा; अतः आज यह पारिजात तुम्हें नहीं मिल सकता। मैं मनुष्योंके हितके लिये उसे भूतलपर ले जाऊँगा। जबतक मैं वहाँ रहूँगा, मेरे भवनमें पारिजात भी रहेगा। मेरे परमधाम पधारनेपर तुम अपनी इच्छाके अनुसार इसे ले लेना। इन्द्रने भगवान्‌को नमस्कार करके कहा—'अच्छा, ऐसा ही हो।' यों कहकर वे देवताओंके साथ अपनी पुरीमें लौट गये और भगवान् श्रीकृष्ण सत्यभामादेवीके साथ गरुड़पर बैठकर द्वारकापुरीमें चले आये। उस समय मुनिगण उनकी स्तुति करते थे। सर्वव्यापी भगवान् श्रीहरि सत्यभामाके निकट देववृक्ष पारिजातकी स्थापना करके समस्त भार्याओंके साथ विहार करने लगे। विश्वरूपधारी मधुसूदन रात्रिमें इन सभी पत्नियोंके घरोंमें रहकर उन्हें सुख प्रदान करते थे।

अनिरुद्धका ऊषाके साथ विवाह

महादेवजी कहते हैं—पार्वती! भगवान् श्रीकृष्णके रुक्मिणीके गर्भसे प्रद्युम्न उत्पन्न हुए, जो कामदेवके अंशसे प्रकट हुए थे। वे बड़े बलवान् थे। उन्होंने शम्बरासुरका वध किया था। उनके रुक्मीकी पुत्रीके गर्भसे अनिरुद्धका जन्म हुआ। अनिरुद्धने भी बाणासुरकी कन्या ऊषाके साथ विवाह किया। उस विवाहकी कथा इस प्रकार है—एक दिन ऊषाने स्वप्नमें एक नील कमलदलके समान श्यामसुन्दर तरुण पुरुषको देखा। ऊषाने स्वप्नमें ही उस पुरुषके साथ प्रेमालाप किया और जागनेपर उसे सामने न देख वह पागल-सी हो उठी तथा यह कहती हुई कि 'तुम मुझे अकेली छोड़ कहाँ चले गये?' वह भाँति-भाँतिसे विलाप करने लगी। ऊषाकी एक चित्रलेखा नामकी सखी थी। उसने उसकी ऐसी अवस्था देखकर पूछा—'सखी! क्या कारण है कि तुम्हारा मन विक्षिप्त-सा हो रहा है?' ऊषाने स्वप्नमें मिले हुए पतिके विषयकी सारी बातें सच-सच बता दीं।

चित्रलेखाने सम्पूर्ण देवताओं और श्रेष्ठ मनुष्योंके चित्र वस्त्रपर अंकित करके ऊषाको दिखलाये। यदुकुलमें जो श्रीकृष्ण, बलभद्र, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध आदि सुन्दर पुरुष थे, उनके चित्र भी उसने ऊषाके सामने प्रस्तुत किये। ऊषाने उनमेंसे श्रीकृष्णको उससे मिलता-जुलता पाया। अतः उन्हींकी परम्परामें उनके होनेका अनुमान करके उसने उधर ही दृष्टिपात किया। श्रीकृष्णके बाद प्रद्युम्न और प्रद्युम्नके बाद अनिरुद्धको देखकर वह सहसा बोल उठी—'यही है, यही है' ऐसा कहकर उसने अनिरुद्धके चित्रको हृदयसे लगा लिया। तब चित्रलेखा दैत्योंकी बहुत-सी मायाविनी स्त्रियोंको साथ ले द्वारकामें गयी और रातके समय अन्तःपुरमें सोये हुए अनिरुद्धको मायासे मोहित करके बाणासुरके महलमें लाकर ऊषाकी शय्यापर सुला दिया। जागनेपर अनिरुद्धने अपनेको अत्यन्त रमणीय और स्वच्छ पलंगपर सोया हुआ पाया। पास ही समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न विचित्र आभूषण, वस्त्र, गन्ध और माला आदिसे अलंकृत तथा सुवर्णके समान रंग और सुन्दर केशोंवाली ऊषा बैठी हुई थी। तदनन्तर ऊषाकी प्रसन्नतासे अनिरुद्ध उसके साथ रहने लगे।

इस प्रकार लगातार एक मासतक अनिरुद्ध ऊषाके साथ महलमें रहे। एक दिन अन्तःपुरमें रहनेवाली कुछ बूढ़ी स्त्रियोंने उन्हें देख लिया और राजा बाणासुरको इसकी सूचना दे दी। यह समाचार सुनते ही राजाकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं। उसने अत्यन्त विस्मित होकर अपने सेवकोंको भेजा और यह आदेश दिया कि 'उसे यहीं पकड़ लाओ।' सेवक राजाके महलपर चढ़ गये और राजकुमारीके शयनागारमें सोये हुए अनिरुद्धको पकड़नेके लिये आगे बढ़े। अपनेको पकड़नेके लिये आते देख अनिरुद्धने खिलवाड़में ही महलका एक खम्भा उखाड़ लिया और उसीसे मार-मारकर दो ही घड़ीमें उन सबका कचूमर निकाल डाला। अपने सेवकोंको मारा गया देख दैत्यराज बाणासुरको अनिरुद्धके विषयमें बड़ा कौतूहल हुआ। इतनेमें ही देवर्षि नारदने आकर बताया कि ये श्रीकृष्णके पौत्र अनिरुद्ध हैं। यह सुनकर धनुष ले वह स्वयं ही अनिरुद्धको पकड़नेके लिये उनके समीप आया। हजार भुजाओंसे युक्त दैत्यराजको युद्धके लिये आते देख अनिरुद्धने भी एक

परिघ घुमाकर बाणासुरके ऊपर फेंका; किन्तु उसने बाण मारकर उस परिघको काट दिया। तत्पश्चात् सर्पास्त्रसे अनिरुद्धको अच्छी तरह बाँधकर दैत्यराजने उन्हें अन्तःपुरमें ही कैद कर लिया।

इधर देवर्षि नारदके मुखसे यह सारा समाचार ज्यों-का-त्यों जानकर भगवान् श्रीकृष्ण भी बलदेवजी, प्रद्युम्न तथा अपनी सेनाके साथ पक्षिराज गरुड़पर आरूढ़ हो बाणासुरके बाहुबलका उच्छेद करनेके लिये आ पहुँचे। पूर्वकालमें बलिपुत्र बाणासुरने भगवान् शंकरकी आराधना की थी। इससे प्रसन्न होकर भगवान् शंकरने उसे वर माँगनेको कहा। तब उसने महेश्वरसे यही वर माँगा था कि 'आप मेरे नगर-द्वारपर सदा रक्षाके लिये मौजूद रहें और जो शत्रुओंकी सेना आवे, उसका संहार करें।' 'तथास्तु' कहकर भगवान् शंकरने उसकी प्रार्थना स्वीकार की तथा वे अपने पुत्र और पार्षदोंके साथ अस्त्र-शस्त्र लिये उसके नगर-द्वारपर सदा विराजमान रहने लगे। उस समय जब भगवान् श्रीकृष्ण यादवोंकी बहुत बड़ी सेनाको साथ लेकर वहाँ आये तो उन्हें देखकर भगवान् शंकर भी वृषभपर आरूढ़ हो सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लिये अपने पुत्र और पार्षदोंसहित युद्धके लिये निकले। वे हाथीका चमड़ा पहने, कपाल धारण किये, सब अंगोंमें विभूति रमाये और प्रज्वलित सर्पोंका आभूषण पहने शोभा पा रहे थे। उनका श्रीअंग पिंगल वर्णका था। उनके तीन नेत्र थे। वे अपने हाथमें त्रिशूल लिये हुए थे। उन्होंने सम्पूर्ण भूतगणोंका संगठन कर रखा था। वे समस्त प्राणियोंके लिये भयदायक प्रतीत होते थे। उनका तेज प्रलयकालीन अग्निके समान जान पड़ता था। वे अपने दोनों पुत्रों और समस्त पार्षदोंके साथ उपस्थित थे। त्रिपुरका नाश करनेवाले उन भगवान् भूतनाथको सामना करनेके लिये आया देख भगवान् श्रीकृष्णने सेनाको तो बहुत दूर पीछे ही ठहरा दिया और स्वयं बलभद्र एवं प्रद्युम्नसहित निकट आकर वे हँसते-हँसते भगवान् शंकरजीके साथ युद्ध करने लगे। उन दोनोंमें घोर युद्ध हुआ। पिनाक और शार्ङ्गधनुषसे छूटे हुए बाण प्रलयाग्निके समान भयंकर जान पड़ते थे। बलरामजी गणेशजीके साथ और प्रद्युम्न कार्तिकेयजीके साथ भिड़ गये। दोनों पक्षोंके योद्धा महान् पराक्रमी और सिंहके समान उत्कट बलवाले थे। गणेशजीने अपने दाँतसे बलरामजीकी छातीमें प्रहार किया, तब बलरामजीने मूसल उठाकर उनके दाँतपर दे मारा। मूसलकी मार पड़ते ही गणेशजीका दाँत टूट गया और वे चूहेपर चढ़कर रणभूमिसे भाग खड़े हुए। तभीसे टूटे हुए दाँतवाले गणेशजी इस लोकमें तथा देवता, दानव और गन्धर्वोंके यहाँ 'एकदन्त' के नामसे प्रसिद्ध हुए। कार्तिकेयजी प्रद्युम्नके साथ युद्ध कर रहे थे। हल धारण करनेवाले बलरामजीने मूसलकी मारसे शिवगणोंको युद्धभूमिसे भगा दिया।

भगवान् शिव श्रीकृष्णसे बहुत देरतक युद्ध करते रहे। इसके बाद उन्होंने क्रोधसे लाल-लाल आँखें करके अपने बाणपर अत्यन्त प्रज्वलित तापज्वरका आधान किया और उसे भगवान् श्रीकृष्णपर छोड़ दिया; किन्तु श्रीकृष्ण शीतज्वरसे उस अस्त्रका निवारण कर दिया। इस प्रकार श्रीहरि और हरके छोड़े हुए वे दोनों ज्वर उन्हींकी आज्ञासे मनुष्यलोकमें चले गये। जो मानव श्रीहरि और शंकरके युद्धका वृत्तान्त सुनते हैं, वे ज्वरसे मुक्त होकर नीरोग हो जाते हैं।

इसके बाद दैत्यराज बाणासुर रथपर सवार हो भगवान् श्रीकृष्णके साथ युद्ध करनेके लिये आया; किन्तु भगवान्ने अपने चक्रसे उसकी भुजाएँ काट डालीं। यह देख भगवान् शंकरने कहा—'प्रभो! यह बाणासुर राजा बलिका पुत्र है। मैंने इसे अमरत्वका वरदान दिया है। यदुश्रेष्ठ! आप मेरे उस वरदानकी रक्षा करें और इस बलिकुमारके अपराधोंको क्षमा कर दें।' 'बहुत अच्छा' कहकर भगवान् श्रीकृष्णने अपने चक्रको समेट लिया और प्राणोंके संकटमें पड़े हुए बाणासुरको छोड़ दिया। उसको छुड़ाकर उत्तम व्रतका पालन करनेवाले भगवान् शंकर वृषभपर सवार हो कैलासपर चले गये। फिर बाणासुरने महाबली बलराम और श्रीकृष्णको नमस्कार किया और उन दोनोंके साथ नगरमें जाकर अनिरुद्धको बन्धनसे मुक्त कर दिया। तत्पश्चात् उसने दिव्य वस्त्राभूषणोंसे पूजा करके कृष्णपौत्र अनिरुद्धको अपनी कन्या ऊषाका दान कर दिया। अनिरुद्धका विधिपूर्वक विवाह हो जानेके पश्चात् बाणासुरने प्रद्युम्नसहित बलराम और श्रीकृष्णका भी पूजन किया। फिर भगवान् जनार्दन

ऊषा और अनिरुद्धको एक दिव्य रथपर बिठाकर द्वारकाकी ओर प्रस्थित हुए। बलराम, प्रद्युम्न और सेनाके साथ श्रीहरिने अपनी रमणीय पुरीमें प्रवेश किया। वहाँ अनिरुद्ध अनेक रत्नोंद्वारा निर्मित मनोहर भवनमें बाणपुत्री ऊषाके साथ भाँति-भाँतिके भोगोंका उपभोग करते हुए निरन्तर प्रसन्नतापूर्वक निवास करने लगे।

पौण्ड्रक, जरासन्ध, शिशुपाल और दन्तवक्त्रका वध, व्रजवासियोंकी मुक्ति, सुदामाको ऐश्वर्य-प्रदान तथा यदुकुलका उपसंहार

महादेवजी कहते हैं—पार्वती! काशीका राजा पौण्ड्रकवासुदेव काशीपुरीके भीतर एकान्त स्थानमें बैठकर बारह वर्षोंतक बिना कुछ खाये-पिये मेरी आराधनामें संलग्न हो पंचाक्षर-मन्त्रका जप करता रहा। उस समय वह अपने नेत्ररूपी कमलसे मेरी पूजा करता था। तब मैंने अत्यन्त प्रसन्न होकर उससे वर माँगनेके लिये कहा। वह बोला—'मुझे वासुदेवके समान रूप प्रदान कीजिये।' यह सुनकर मैंने उसे शंख, चक्र, गदा और पद्मसहित चार भुजाएँ, कमलदलके समान विशाल नेत्र, किरीट, मणिमय कुण्डल, पीत वस्त्र तथा कौस्तुभमणि आदि चिह्न प्रदान किये। अब वह अपनेको वासुदेव बताकर सब लोगोंको मोहमें डालने लगा। एक दिन अभिमान और बलसे उन्मत्त हुए काशिराजके पास देवर्षि नारदने आकर कहा—'मूढ़! वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णपर विजय पाये बिना तू वासुदेव नहीं हो सकता।' इतना सुनते ही वह उसी समय श्रीकृष्णको जीतनेके लिये गरुड़पताकासे युक्त रथपर आरूढ़ हो चारों अंगोंसे युक्त अक्षौहिणी सेनाके साथ यात्रा करके द्वारकामें जा पहुँचा। वहाँ नगरद्वारपर सुवर्णमय रथमें बैठे हुए पौण्ड्रकने श्रीकृष्णके पास दूत भेजा और यह सन्देश दिया कि 'मैं वासुदेव हूँ तथा युद्धके लिये यहाँ आया हूँ। मुझपर विजय पाये बिना तुम वासुदेव नहीं कहला सकते।' उसका सन्देश सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण गरुड़पर आरूढ़ हुए और पौण्ड्रकसे युद्ध करनेके लिये नगरद्वारपर आये। वहाँ उन्होंने अक्षौहिणी सेनाके साथ रथपर बैठे हुए शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण करनेवाले पौण्ड्रकको देखा। फिर तो शार्ङ्गधनुष हाथमें ले प्रलयाग्निके समान तेजस्वी बाणोंसे रथ, हाथी, घोड़े और पैदलसहित उसकी बहुत बड़ी अक्षौहिणी सेनाको भगवान्ने दो ही घड़ीमें भस्म कर डाला। एक बाणसे उसके हाथोंमें चिपके हुए शंख, चक्र और गदा आदि शस्त्रोंको भी लीलापूर्वक काट दिया। फिर पवित्र सुदर्शनचक्रसे उसके किरीट-कुण्डलयुक्त मस्तकको काटकर उन्होंने काशीके अन्तःपुरमें गिरा दिया। उस मस्तकको देखकर समस्त काशीनिवासी बहुत विस्मित हुए।

उधर मगधराज जरासन्ध कंसवधके पश्चात् यादवोंसे द्वेषभाव रखते हुए ही उन्हें सदा पीड़ा दिया करता था। इससे दुःखित होकर यादवोंने श्रीकृष्णसे उसकी चेष्टाएँ बतलायीं। तब भगवान् श्रीकृष्णने भीमसेन और अर्जुनको बुलाकर परामर्श किया—'इस जरासन्धने महादेवजीकी आराधना की है; अतः उनकी कृपासे यह शस्त्रोंद्वारा नहीं मारा जा सकता। किन्तु किसी-न-किसी प्रकार इसका वध करना आवश्यक है।' फिर कुछ सोचकर भगवान्ने भीमसेनसे कहा—'तुम उसके साथ मल्लयुद्ध करो।' भीमसेनने ऐसा करनेकी प्रतिज्ञा की। तब सम्पूर्ण चराचर जगत्के वन्दनीय भगवान् वासुदेव भीम और अर्जुनको साथ ले जरासन्धकी पुरीमें गये और वहाँ ब्राह्मणका वेष धारण करके उन सबने राजाके अन्तःपुरमें प्रवेश किया। उन्हें देखकर जरासन्धने साष्टांग प्रणाम किया और योग्य आसनोंपर बिठाकर मधुपर्ककी विधिसे उनका पूजन करके कहा—'द्विजवरो! मैं धन्य हूँ, कृतकृत्य हूँ। आपलोग किस लिये मेरे समीप पधारे हैं? उसे बतावें। मैं आपलोगोंको सब कुछ दूँगा।' तब उनमेंसे भगवान् श्रीकृष्णने हँसकर कहा—'राजन्! हम क्रमशः श्रीकृष्ण, भीमसेन और अर्जुन हैं तथा युद्धके लिये तुम्हारे पास आये हैं। हममेंसे किसी एकको द्वन्द्व-युद्धके लिये स्वीकार करो।' 'बहुत अच्छा' कहकर उसने उनकी बात मान ली और द्वन्द्व-युद्धके लिये भीमसेनका वरण किया। फिर तो भीमसेन और जरासन्धमें अत्यन्त भयंकर मल्लयुद्ध हुआ, जो लगातार सत्ताईस दिनोंतक चलता रहा। उसके बाद श्रीकृष्णके संकेतसे भीमसेनने

उसके शरीरको चीर डाला और दो टुकड़े करके उसे पृथ्वीपर गिरा दिया। इस प्रकार पाण्डुनन्दन भीमके द्वारा जरासन्धका वध कराकर उसके कैद किये हुए राजाओंको भी भगवान्ने मुक्त किया। वे राजा भगवान् मधुसूदनको प्रणाम और उनकी स्तुति करके उनके द्वारा सुरक्षित हो अपने-अपने देशोंको चले गये।

तदनन्तर भगवान् वासुदेवने भीमसेन और अर्जुनके साथ इन्द्रप्रस्थमें जाकर महाराज युधिष्ठिरसे राजसूय नामक महान् यज्ञका अनुष्ठान कराया। यज्ञ समाप्त होनेपर युधिष्ठिरने भीष्मजीकी अनुमतिसे अग्रपूजाका अधिकार श्रीकृष्णको ही दिया—सर्वप्रथम उन्हींकी पूजा की। उस समय शिशुपालने श्रीकृष्णके प्रति बहुत-से आक्षेपयुक्त वचन कहे। तब श्रीकृष्णने सुदर्शनचक्रके द्वारा उसका मस्तक काट डाला। वह तीन जन्मोंकी समाप्तिके बाद उस समय श्रीहरिके सारूप्यको प्राप्त हुआ। शिशुपालको मारा गया सुनकर दन्तवक्त्र श्रीकृष्णसे युद्ध करनेके लिये मथुरामें गया। यह सुनकर श्रीकृष्ण भी मथुरामें ही उससे युद्ध करनेके लिये गये। वहाँ मथुरापुरीके दरवाजेपर यमुनाके किनारे उन दोनोंमें दिन-रात युद्ध होता रहा। अन्तमें श्रीकृष्णने दन्तवक्त्रपर गदासे प्रहार किया। उसकी चोट खाकर वज्रसे विदीर्ण हुए पर्वतकी भाँति उसका सारा शरीर चूर-चूर हो गया और वह प्राणहीन होकर पृथ्वीतलपर गिर पड़ा। दन्तवक्त्र भी योगियोंको प्राप्त होनेयोग्य नित्यानन्दमय सुखसे परिपूर्ण सनातन परमपदरूप भगवत्सायुज्यको प्राप्त हुआ। इस प्रकार जय और विजय सनकादिके शापके व्याजसे केवल भगवान्की लीलामें सहयोग देनेके लिये संसारमें तीन बार उत्पन्न हुए और तीनों ही जन्मोंमें भगवान्के ही हाथसे उनकी मृत्यु हुई। इस तरह तीन जन्मोंकी समाप्ति होनेपर वे पुनः मोक्षको प्राप्त हुए।

दन्तवक्त्रका वध करनेके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण यमुनाके पार हो नन्दके व्रजमें गये और पहलेके पिता-माता नन्द और यशोदाको प्रणाम करके उन्होंने उन दोनोंको आश्वासन दिया। फिर नन्द और यशोदाने भी नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए भगवान्को हृदयसे लगाया। तत्पश्चात् श्रीकृष्णने वहाँके समस्त बड़े-बूढ़े गोपोंको प्रणाम करके आश्वासन दिया और बहुमूल्य रत्न, वस्त्र तथा आभूषण आदि देकर व्रजके समस्त निवासियोंको सन्तुष्ट किया। वहाँ रहनेवाले नन्दगोप आदि सब लोग तथा पशु-पक्षी और मृग आदि भी भगवान्की कृपासे स्त्री-पुत्रोंसहित दिव्य रूप धारण करके विमानपर बैठे और परम वैकुण्ठधामको चले गये। इस प्रकार समस्त व्रजवासियोंको अपना निरामय पद प्रदान करके भगवान् श्रीकृष्ण शोभामयी द्वारकापुरीमें आये, उस समय आकाशमें स्थित देवगण उनकी स्तुति कर रहे थे।

द्वारकामें वसुदेव, उग्रसेन, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और अक्रूर आदि यादव सदा भगवान् श्रीकृष्णका पूजन किया करते थे। वे विश्वरूपधारी भगवान् भाँति-भाँतिके दिव्य रत्नोंद्वारा निर्मित मनोहर गृहोंमें कल्पवृक्षके फूलोंसे सजी हुई स्वच्छ एवं कोमल शय्याओंपर सोलह हजार आठ रानियोंके साथ प्रतिदिन आनन्दका अनुभव करते थे। उन दिनों श्रीकृष्ण और बलरामजीका बालसखा एवं सहपाठी एक ब्राह्मण था, जो अत्यन्त दरिद्रतासे पीड़ित रहता था। एक दिन वह भीखमें मिला हुआ मुट्ठीभर चावल पुराने चिथड़ेमें बाँधकर भगवान् वासुदेवसे मिलनेके लिये परम मनोहर द्वारका नगरीमें आया और रुक्मिणीके अन्तःपुरके दरवाजेपर जा क्षणभर चुपचाप खड़ा रहा। इतनेमें उसके ऊपर श्रीकृष्णकी दृष्टि पड़ी, उन्होंने ब्राह्मणको आया जान आगे बढ़कर उसकी अगवानी की और प्रणाम करके हाथ पकड़कर महलके भीतर ले जा उसे सुन्दर आसनपर बिठाया। वह बेचारा भयसे काँप रहा था, किन्तु भगवान्ने रुक्मिणीके हाथमें रखे हुए सुवर्णमय कलशके जलसे स्वयं ही उसके दोनों चरण धोकर मधुपर्कद्वारा उसका पूजन किया। फिर अमृतके समान मधुर अन्न-पान आदिसे ब्राह्मणको तृप्त करके उसके पुराने चिथड़ेमें बँधे हुए चावलोंको लेकर भगवान्ने हँसते-हँसते उनका भोग लगाया। उन्होंने ज्यों ही उन चावलोंको मुँहमें डाला, त्यों ही ब्राह्मणको प्रचुर धन-धान्य, वस्त्र एवं आभूषणोंसे युक्त महान् ऐश्वर्य प्राप्त हो गया। किन्तु उस समय भगवान्से खाली हाथ विदा होकर उसने अपने मनमें इस बातका विचार किया कि 'इन्होंने मुझे कुछ नहीं दिया।' निवासस्थानमें पहुँचनेपर जब उसने अपने लिये धन-धान्यसे सम्पन्न गृह देखा

तो उसे निश्चय हो गया कि यह सब श्रीहरिकी कृपासे ही प्राप्त हुआ है। ब्राह्मणने प्रसन्नचित्त होकर दिव्य वस्त्र एवं आभूषण आदिके द्वारा पत्नीके साथ समस्त कामनाओंका उपभोग किया और श्रीहरिकी प्रसन्नताके लिये नाना प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान करके उन्हींके प्रसादसे वह परमधामको प्राप्त हुआ।

धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनने छलपूर्वक जुआ खेलकर उसीके व्याजसे पाण्डवोंका सारा राज्य हड़प लिया था और उन्हें अपने राज्यसे निर्वासित कर दिया था। इससे युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव अपनी पत्नी द्रौपदीके साथ महान् वनमें जाकर वहाँ बारह वर्षोंतक रहे। फिर एक सालतक उन्हें अज्ञातवास करना पड़ा। अन्तमें सब मत्स्यदेशके राजा विराटके भवनमें एकत्रित हुए और भगवान् श्रीकृष्णकी सहायतासे धृतराष्ट्र-पुत्रोंके साथ युद्ध करनेको आये। अनेक देशोंसे आये हुए राजाओंके साथ परम पुण्यमय कुरुक्षेत्रमें जुटे हुए पाण्डवों और धृतराष्ट्र-पुत्रोंमें बहुत बड़ा संग्राम हुआ, जो देवताओंके लिये भी भयंकर था। उसमें श्रीकृष्णने अर्जुनके सारथिका काम किया और अपनी शक्ति अर्जुनमें स्थापित करके उनके द्वारा ग्यारह अक्षौहिणी सेनाओंसहित दुर्योधन, भीष्म, द्रोण तथा अन्यान्य राजाओंका वध कराकर उन्होंने पाण्डवोंको अपने राज्यपर स्थापित कर दिया। इस प्रकार पृथ्वीका सारा भार उतारकर भगवान्ने द्वारकापुरीमें प्रवेश किया।

तदनन्तर कुछ कालके बाद एक वैदिक ब्राह्मण अपने मरे हुए पाँच वर्षके बालकको लेकर द्वारकामें राजाके द्वारपर रखकर बहुत विलाप करने लगा। उसने श्रीकृष्णके प्रति बहुत आक्षेपयुक्त वचन कहे। श्रीकृष्ण उस आक्षेपको सुनकर भी चुप रहे। ब्राह्मण कहता गया—'मेरे पाँच पुत्र पहले मर चुके हैं। यह छठा पुत्र है। यदि श्रीकृष्ण मेरे इस पुत्रको जीवित नहीं करेंगे तो मैं इस राजद्वारपर प्राण दे दूँगा।' इसी समय अर्जुन भगवान् श्रीकृष्णसे मिलनेके लिये द्वारकामें आये। वहाँ उन्होंने पुत्रशोकसे विलाप करते हुए ब्राह्मणको देखा। उसका पाँच वर्षका बालक कालके मुखमें चला गया है, यह देखकर अर्जुनको बड़ी दया आयी। उन्होंने ब्राह्मणको अभयदान देकर प्रतिज्ञा की—'मैं तुम्हारे पुत्रको जीवित कर दूँगा।' उनसे आश्वासन पाकर ब्राह्मण प्रसन्न हो गया। उन्होंने मन्त्र पढ़कर अनेक संजीवनास्त्रोंका प्रयोग किया; किन्तु वह बालक जीवित न हुआ। इससे अपनी प्रतिज्ञा झूठी होती देख अर्जुनको बड़ा शोक हुआ और उन्होंने उस ब्राह्मणके साथ ही प्राण त्याग देनेका विचार किया। यह सब जानकर भगवान् श्रीकृष्ण अन्तःपुरसे बाहर निकले और उस वैदिक ब्राह्मणसे बोले—'मैं तुम्हारे सभी पुत्रोंको ला दूँगा।' ऐसा कहकर उसे आश्वासन दे अर्जुनसहित गरुड़पर आरूढ़ हो वे विष्णुलोकमें गये। वहाँ दिव्य मणिमय मण्डपमें श्रीलक्ष्मीदेवीके साथ बैठे हुए भगवान् नारायणको देखकर श्रीकृष्ण और अर्जुनने उन्हें नमस्कार किया। भगवान्ने उन दोनोंको अपनी भुजाओंमें कस लिया और पूछा—'तुम दोनों किस लिये आये हो?' श्रीकृष्णने कहा—'भगवन्! मुझे वैदिक ब्राह्मणके पुत्रोंको दे दीजिये।' तब भगवान् नारायणने वैसी ही अवस्थामें स्थित अपने लोकमें विद्यमान ब्राह्मणपुत्रोंको श्रीकृष्णके हाथमें सौंप दिया। श्रीकृष्ण भी उन्हें गरुड़के कंधेपर बिठाकर प्रसन्नतापूर्वक अर्जुनसहित स्वयं भी गरुड़पर सवार हुए और आकाशमें देवताओंके मुँहसे अपनी स्तुति सुनते हुए द्वारकापुरीमें आये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने ब्राह्मणके छः पुत्र उन्हें समर्पित कर दिये तब वह अत्यन्त हर्षमें भरकर श्रीकृष्णको अभ्युदयकारक आशीर्वाद देने लगा। अर्जुनकी भी प्रतिज्ञा सफल हुई; इसलिये उनको भी बड़ा हर्ष था। उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार करके महाराज युधिष्ठिरद्वारा पालित अपनी पुरीकी राह ली।

श्रीकृष्णके सोलह हजार रानियोंके गर्भसे कुल अयुत सहस्र (एक करोड़) पुत्र उत्पन्न हुए थे। इस विषयमें कहते हैं—'श्रीकृष्णके एक करोड़ आठ सौ पुत्र थे। उन सबमें रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्न ही बड़े थे, असंख्य यदुवंशियोंसे यह सारी पृथ्वी व्याप्त हो गयी थी।

एक दिन समस्त यादवकुमार घूमनेके लिये नर्मदातटपर गये। वहाँ महर्षि कण्व तपस्या कर रहे थे। यादवकुमारोंने जाम्बवतीके पुत्र साम्बको स्त्रीके वेषमें सजाकर उसके पेटमें एक लोहेका मूसल बाँध दिया। फिर धीरे-धीरे ऋषिके समीप आकर सबने नमस्कार

किया और स्त्रीरूपधारी साम्बको आगे खड़ा करके पूछा—'मुने! बताइये, इस स्त्रीके गर्भमें कन्या है या पुत्र?' मुनिने मन-ही-मन सब बात जानकर क्रोधपूर्वक कहा—'अरे! तुम सब लोग इसी मूसलसे मारे जाओगे।' यह सुनकर सबका हृदय उद्विग्न हो उठा। उन्होंने श्रीकृष्णके पास आकर महर्षिकी कही हुई सारी बातें कह सुनायीं। श्रीकृष्णने उस लोहेके मूसलको चूर्ण करके कुण्डमें डलवा दिया। उस चूर्णसे वज्रके समान कठोर बड़े-बड़े सरकंडे उग आये। मूसलके चूर्ण होनेसे एक लोहा बच गया था, जो कनिष्ठिका अँगुलीके बराबर था। उसको एक मत्स्य निगल गया। उस मत्स्यको निषादने पकड़ा और उसके पेटसे उस मूसलावशेष लोहेको निकालकर बाणके आगेका फल बनवा लिया। कुछ दिनोंके बाद समस्त यादव परस्पर आक्षेपयुक्त वचन कहते हुए उन सरकंडोंद्वारा एक-दूसरेसे लड़कर नष्ट हो गये। भगवान् श्रीकृष्ण युद्धसे श्रान्त होकर कल्पवृक्षकी छायामें सो रहे थे। उसी समय वह निषाद धनुष-बाण लेकर शिकार खेलनेके लिये आया। भगवान् श्रीकृष्णके सिवा समस्त यादव युद्धमें काम आये थे, वे सभी मरनेके पश्चात् अपने-अपने देवस्वरूपमें मिल गये। इस प्रकार मूसलद्वारा सबका संहार करके अकेले भगवान् श्रीकृष्ण अनेक लताओंसे व्याप्त महान् कल्पवृक्षकी छायामें लेटे हुए अपने चतुर्व्यूहगत वासुदेवस्वरूपका चिन्तन कर रहे थे। वे घुटनेपर अपना एक पैर रखे मानवलोकका त्याग करनेको उद्यत थे। उसी समय मृगयासे जीविका चलानेवाले उस निषादने कालके प्रभावसे चक्र, वज्र, ध्वजा और अंकुश आदि चिह्नोंसे अंकित भगवान्के अत्यन्त लाल तलवेको (मृग जानकर) लक्ष्य करके बींध डाला। उसके बाद उसने भगवान् श्रीकृष्णको पहचाना। फिर तो महान् भयसे पीड़ित हो वह थर-थर काँपने लगा और दोनों हाथ जोड़कर बोला—'नाथ! मुझसे बड़ा अपराध हुआ, क्षमा करें।' यों कहकर वह भगवान्के चरणोंमें पड़ गया।

निषादको इस अवस्थामें देख भगवान् श्रीकृष्णने अपने अमृतमय हाथोंसे उठाया और यह कहकर कि 'तुमने कोई अपराध नहीं किया है।' उसे आश्वासन दिया। इसके बाद उसे योगियोंको प्राप्त होनेयोग्य पुनरावृत्तिरहित सनातन विष्णुलोक प्रदान किया। फिर तो वह स्त्री और पुत्रोंसहित मानव-शरीरका त्याग करके दिव्य विमानपर बैठा तथा सहस्रों सूर्योंके समान प्रकाशमान हिरण्मय वासुदेव नामक विष्णुधामको चला गया। इसी समय दारुक रथ लेकर भगवान् श्रीकृष्णके समीप आये। भगवान्ने कहा—'मेरे स्वरूपभूत अर्जुनको यहाँ बुला ले आओ।' आज्ञा पाकर दारुक मनके समान वेगशाली रथपर आरूढ़ हो तुरंत ही अर्जुनके समीप जा पहुँचे। अर्जुन उस रथपर बैठकर आये और भगवान्को प्रणाम करके हाथ जोड़कर बोले, 'मेरे लिये क्या आज्ञा है?' भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'मैं परमधामको जाऊँगा। तुम द्वारका जाकर वहाँसे रुक्मिणी आदि आठ पटरानियोंको यहाँ ले आकर मेरे शरीरके साथ भेजो।' अर्जुन दारुकके साथ द्वारकापुरीको गये। इधर भगवान् श्रीकृष्ण सम्पूर्ण जगत्के सृष्टि, पालन और संहारके हेतुभूत, सम्पूर्ण क्षेत्रोंके ज्ञाता, अन्तर्यामी, योगियोंद्वारा ध्यान करनेके योग्य, अपने वासुदेवात्मक स्वरूपको धारण करके गरुड़पर आरूढ़ हो महर्षियोंके द्वारा अपनी स्तुति सुनते हुए परमधामको चले गये। अर्जुनने द्वारकामें वसुदेव और उग्रसेनसे तथा रुक्मिणी आदि पटरानियोंसे सारा हाल कह सुनाया। यह सुनकर श्रीकृष्णमें अनुराग रखनेवाले समस्त पुरवासी पुरुष और अन्तःपुरकी स्त्रियाँ द्वारकापुरी छोड़कर बाहर निकल आयीं तथा वसुदेव, उग्रसेन और अर्जुनके साथ शीघ्र ही श्रीहरिके समीप आयीं, वहाँ पहुँचकर आठों रानियाँ श्रीकृष्णके स्वरूपमें मिल गयीं। वसुदेव, उग्रसेन और अक्रूर आदि सम्पूर्ण श्रेष्ठ यादव अपना-अपना शरीर त्यागकर सनातन वासुदेवको प्राप्त हुए। रेवतीदेवीने बलरामजीके शरीरको अंकमें लेकर चिताकी अग्निमें प्रवेश किया और दिव्य विमानपर बैठकर वे अपने स्वामीके निवासस्थान दिव्य संकर्षणलोकमें चली गयीं। इसी प्रकार रुक्मीकी पुत्री प्रद्युम्नके साथ, ऊषा अनिरुद्धके साथ तथा यदुकुलकी अन्य स्त्रियाँ अपने-अपने पतियोंके शरीरके साथ अग्निप्रवेश कर गयीं। उन सबका और्ध्वदैहिक कर्म अर्जुनने ही सम्पन्न किया। उस समय दारुक भी दिव्य अश्वोंसे जुते हुए सुग्रीव नामक दिव्य रथपर आरूढ़ हो परमधामको चले गये। पारिजातवृक्ष और देवताओंकी सुधर्मा-सभा—ये

दोनों इन्द्रलोकमें पहुँच गये। तत्पश्चात् द्वारकापुरी समुद्रमें डूब गयी! अर्जुन भी यह कहते हुए कि 'अब मेरा भाग्य नष्ट हो गया' सायंकालीन सूर्यकी भाँति तेजोहीन होकर अपनी पुरीमें चले आये।

इस प्रकार सम्पूर्ण देवताओंके हितके लिये तथा पृथ्वीके समस्त भारका नाश करनेके लिये भगवान्ने यदुकुलमें अवतार लिया और सम्पूर्ण राक्षसों तथा पृथ्वीके महान् भारका नाश करके नन्दके व्रज, मथुरा और द्वारकामें रहनेवाले समस्त चराचर प्राणियोंको कालधर्मसे मुक्त किया। फिर उन्हें अपने शाश्वत, योगिगम्य, हिरण्मय, रम्य एवं परमैश्वर्यमय पदमें स्थापित करके वे परमधाममें दिव्य पटरानियों आदिसे सेवित हो सानन्द निवास करने लगे।

पार्वती! यह भगवान् श्रीकृष्णका अत्यन्त अद्भुत चरित्र सब प्रकारके उत्तम फल प्रदान करनेवाला है। मैंने इसे संक्षेपमें ही कहा है। जो वासुदेवके इस चरित्रका श्रीहरिके समीप पाठ, श्रवण अथवा चिन्तन करता है, वह भगवान्के परमपदको प्राप्त होता है। महापातक अथवा उपपातकसे युक्त मनुष्य भी बालकृष्णके चरित्रको सुनकर सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। द्वारकामें विराजमान रुक्मिणीसहित श्रीहरिका स्मरण करके मनुष्य निश्चय ही पापरहित हो महान् ऐश्वर्यरूप परमधामको प्राप्त होता है। जो संग्राममें, दुर्गम संकटमें तथा शत्रुओंसे घिर जानेपर सब देवताओंके नेता भगवान् विष्णुका ध्यान करता है, वह विजयी होता है। इस विषयमें बहुत कहनेकी क्या आवश्यकता, जो सब कामनाओंका फल प्राप्त करना चाहता हो, वह विद्वान् मनुष्य '**श्रीकृष्णाय नमः**' इस मन्त्रका उच्चारण करता रहे। 'सबको अपनी ओर खींचनेवाले कृष्ण, सबके हृदयमें निवास करनेवाले वासुदेव, पाप-तापको हरनेवाले श्रीहरि, परमात्मा तथा प्रणतजनोंका क्लेश दूर करनेवाले भगवान् गोविन्दको बारंबार नमस्कार है।'* जो प्रतिदिन भक्तिपूर्वक इस मन्त्रका जप करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो श्रीविष्णुलोकको जाता है। भगवान् जनार्दन सम्पूर्ण देवताओंके ईश्वर हैं। वे समस्त लोकोंकी रक्षा करनेके लिये ही भिन्न-भिन्न अवस्थाओंको ग्रहण करते हैं। वे ही किसी विशेष उद्देश्यकी सिद्धिके लिये बुद्धरूपमें अवतीर्ण होते हैं। कलियुगके अन्तमें एक ब्राह्मणके घरमें अवतीर्ण हो भगवान् जनार्दन समस्त म्लेच्छोंका संहार करेंगे। ये सब जगदीश्वरकी वैभवावस्थाएँ हैं।

श्रीविष्णु-पूजनकी विधि तथा वैष्णवोचित आचारका वर्णन

पार्वतीजीने कहा—भगवन्! आपने श्रीहरिकी वैभवावस्थाका पूरा-पूरा वर्णन किया। इसमें भगवान् श्रीराम और श्रीकृष्णका चरित्र बड़ा ही विस्मयजनक है। अहो! भगवान् श्रीराम और परमात्मा श्रीकृष्णकी लीला कितनी अद्भुत है? देवेश्वर! मैं तो इस कथाको सौ कल्पोंतक सुनती रहूँ तो भी मेरा मन कभी इससे तृप्त नहीं होगा। अब मैं इस समय भगवान् विष्णुके उत्तम माहात्म्य और पूजनविधिका श्रवण करना चाहती हूँ।

श्रीमहादेवजीने कहा—देवि! मैं परमात्मा श्रीहरिके स्थापन और पूजनका वर्णन करता हूँ, सुनो। भगवान्का विग्रह दो प्रकारका बताया गया है—एक तो 'स्थापित' और दूसरा 'स्वयं व्यक्त।' पत्थर, मिट्टी, लकड़ी अथवा लोहा आदिसे श्रीहरिकी आकृति बनाकर श्रुति, स्मृति तथा आगममें बतायी हुई विधिके अनुसार जो भगवान्की स्थापना होती है, वह 'स्थापित विग्रह' है तथा जहाँ भगवान् अपने-आप प्रकट हुए हों, वह 'स्वयं व्यक्त विग्रह' कहलाता है। भगवान्का विग्रह स्वयं व्यक्त हो या स्थापित, उसका पूजन अवश्य करना चाहिये। देवताओं और महर्षियोंके पूजनके लिये जगत्के स्वामी सनातन भगवान् विष्णु स्वयं ही प्रत्यक्षरूपसे उनके सामने प्रकट हो जाते हैं। जिसका भगवान्के जिस विग्रहमें मन लगता है, उसके लिये वे उसी रूपमें भूतलपर प्रकट होते हैं; अतः उसी रूपमें भगवान्का सदा पूजन करना चाहिये और उसीमें सदा अनुरक्त

* किमत्र बहुनोक्तेन सर्वकामफलस्पृहः। कृष्णाय नम इत्येवं मन्त्रमुच्चारयेद् बुधः॥
कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने। प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः॥ (२७९। १०६-१०७)

रहना चाहिये। पार्वती! श्रीरंगक्षेत्रमें शयन करनेवाले भगवान् विष्णुका विधिपूर्वक पूजन करना चाहिये। काशीपुरीमें पापहारी भगवान् माधव मेरे भी पूजनीय हैं। जिस-जिस रमणीय भवनमें सनातन भगवान् स्वयं व्यक्त होते हैं, वहाँ-वहाँ जाकर मैं आनन्दका अनुभव किया करता हूँ। भगवान्का दर्शन हो जानेपर वे मनोवांछित वरदान देते हैं। इस पृथ्वीपर प्रतिमामें अज्ञानीजनोंको भी सदा भगवान्का सान्निध्य प्राप्त होता रहता है। परम पुण्यमय जम्बूद्वीप और उसमें भी भारतवर्षके भीतर प्रतिमामें भगवान् विष्णु सदा सन्निहित रहते हैं; अतः मुनियों तथा देवताओंने भारतवर्षमें ही तप, यज्ञ और क्रिया आदिके द्वारा सदा श्रीविष्णुका सेवन किया है। इन्द्रद्युम्नसरोवर, कूर्मस्थान, सिंहाचल, करवीरक, काशी, प्रयाग, सौम्य, शालग्रामार्चन, द्वारका, नैमिषारण्य, बदरिकाश्रम, कृतशौचतीर्थ, पुण्डरीकतीर्थ, दण्डकवन, मथुरा, वेंकटाचल, श्वेताद्रि, गरुड़ाचल, कांची, अनन्तशयन, श्रीरंग, भैरवगिरि, नारायणाचल, वाराहतीर्थ और वामनाश्रम—इन सब स्थानोंमें भगवान् श्रीहरि स्वयं व्यक्त हुए हैं; अतः उपर्युक्त स्थान सम्पूर्ण कामनाओं तथा फलोंको देनेवाले हैं। इनमें श्रीजनार्दन स्वयं ही सन्निहित होते हैं। ऐसे ही स्थानोंमें जो भगवान्का विग्रह है, उसे मुनिजन 'स्वयं व्यक्त' कहते हैं। महान् भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ पुरुष यदि विधिपूर्वक भगवान्की स्थापना करके मन्त्रके द्वारा उनका सान्निध्य प्राप्त करावे तो उस स्थापनाका विशेष महत्त्व है। गाँवोंमें अथवा घरोंमें जो ऐसे विग्रह हों, उनमें भगवान्का पूजन करना चाहिये। सत्पुरुषोंने घरपर शालग्रामशिलाकी पूजा उत्तम बतायी है।

पार्वती! भगवान्की मानसिक पूजाका सबके लिये समानरूपसे विधान है, अतः अपने-अपने अधिकारके अनुसार सबको जगदीश्वरकी पूजा करनी चाहिये। जो भगवान्के सिवा दूसरे किसी देवताके भक्त नहीं हैं; भगवत्प्राप्तिके सिवा और किसी फलके साधक नहीं हैं, जो वेदवेत्ता, ब्रह्मतत्त्वज्ञ, वीतराग, मुमुक्षु, गुरुभक्त, प्रसन्नात्मा, साधु, ब्राह्मण अथवा इतर मनुष्य हैं, उन सबको सदा श्रीहरिका पूजन करना चाहिये। बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि वह वेद और स्मृतियोंमें बताये हुए उत्तम सदाचारका सदा पालन करे। उनमें बताये हुए कर्मोंका कभी उल्लंघन न करे। शम (मनोनिग्रह), दम (इन्द्रियसंयम), तप (धर्मके लिये क्लेशसहन एवं तितिक्षा), शौच (बाहर-भीतरकी पवित्रता), सत्य (मन, वाणी और क्रियाद्वारा सत्यका पालन), मांस न खाना, चोरी न करना और किसी भी जीवकी हिंसा न करना—यह सबके लिये धर्मका साधन है।[१]

रातके अन्तमें उठकर विधिपूर्वक आचमन करे। फिर गुरुजनोंको नमस्कार करके मन-ही-मन भगवान् विष्णुका स्मरण करे। मौन हो पवित्रभावसे भक्तिपूर्वक सहस्रनामका पाठ करे। तत्पश्चात् गाँवसे बाहर जाकर विधिपूर्वक मल-मूत्रका त्याग करे। फिर उचितरूपसे शरीरकी शुद्धि करके कुल्ला करे और शुद्ध एवं पवित्र हो दन्तधावन करके विधिपूर्वक स्नान करे। तुलसीके मूलभागकी मिट्टी और तुलसीदल लेकर मूलमन्त्रसे[२] और गायत्रीमन्त्रसे अभिमन्त्रित करके मन्त्रसे ही उसको सम्पूर्ण शरीरमें लगावे। फिर अघमर्षण करके स्नान करे। गंगाजी भगवान्के चरणोंसे प्रकट हुई हैं। अतः उनके निर्मल जलमें गोता लगाकर अघमर्षण-सूक्तका जप करे। फिर आचमन करके पुरुषसूक्तके मन्त्रोंसे क्रमशः मार्जन करे। पुनः जलमें डुबकी लगाकर अट्ठाईस या एक सौ आठ बार मूलमन्त्रका जप करे। इसके बाद वैष्णव पुरुष उक्त मन्त्रसे ही जलको अभिमन्त्रित करके उससे आचमन करे। तदनन्तर देवताओं, ऋषियों और पितरोंका तर्पण करे। फिर वस्त्र निचोड़ ले। उसके बाद आचमन करके धौतवस्त्र पहने। वैष्णव पुरुष निर्मल एवं रमणीय मृत्तिका ले उसे मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके ललाट आदिमें लगावे। आलस्य छोड़कर परिगणित अंगोंमें ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करे। उसके बाद विधिपूर्वक सन्ध्योपासना करके गायत्रीका जप करे। तदनन्तर मनको संयममें रखकर घर जाय और पैर धो मौनभावसे आचमन करके एकाग्रचित्त हो पूजामण्डपमें प्रवेश करे।

१-शमो दमस्तपः शौचं सत्यमामिषवर्जनम्। अस्तेयमेवाहिंसा च सर्वेषां धर्मसाधनम्॥ (२८०। ३९)

२-'ॐ नमो नारायणाय' यह अष्टाक्षर-मन्त्र ही मूलमन्त्र है।

एक सुन्दर सिंहासनको फूलोंसे सजाकर भगवान् लक्ष्मीनारायणको विराजमान करे। फिर गन्ध, पुष्प और अक्षत आदिके द्वारा विधिपूर्वक भगवान्का पूजन आरम्भ करे। विग्रह स्थापित, स्वयं व्यक्त अथवा शालग्रामशिला—कोई भी क्यों न हो, श्रुति, स्मृति और आगमोंमें बतायी हुई विधिके अनुसार उसका पूजन करना उचित है। वैष्णव पुरुष शुद्धचित्त हो गुरुके उपदेशके अनुसार भक्तिपूर्वक श्रीविष्णुका यथायोग्य पूजन करे। वेदों तथा ब्राह्मणग्रन्थोंमें बतायी हुई पूजा 'श्रौत' कहलाती है। वासिष्ठी पद्धतिके अनुसार की जानेवाली पूजाको 'स्मार्त' कहते हैं। तथा पांचरात्रमें बताया हुआ विधान 'आगम' कहलाता है। भगवान् विष्णुकी आराधना बहुत ही उत्तम कर्म है। इस क्रियाका कभी लोप नहीं करना चाहिये। आवाहन, आसन, अर्घ्य, पाद्य, आचमनीय, स्नानीय, वस्त्र, यज्ञोपवीत, गन्ध, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल एवं नमस्कार आदि उपचारोंके द्वारा अपनी शक्तिके अनुसार प्रसन्नतापूर्वक श्रीविष्णुकी आराधना करे।* पुरुषसूक्तकी प्रत्येक ऋचा तथा मूलमन्त्र—इन दोनोंहीसे वैष्णव पुरुष षोडशोपचार समर्पण करे। पुनः प्रत्युपचार अर्पण करके पुष्पांजलि दे। वैष्णवको चाहिये कि वह मुद्राद्वारा भगवान् जगन्नाथका आवाहन करे। फिर फूल और मुद्रासे ही आसन दे। इसी प्रकार क्रमशः पाद्य, अर्घ्य, आचमन और स्नानके लिये भिन्न-भिन्न पात्रोंमें निर्मल जल समर्पित करे। उस जलमें मांगलिक द्रव्योंके साथ तुलसीदल मिला हो। इसके बाद उक्त दोनों ही प्रकारके मन्त्रोंसे प्रत्युपचार अर्पण करे। सुगन्धित तेलसे भगवान्को अभ्यंग लगावे। कस्तूरी और चन्दनसे उनके श्रीअंगमें उबटन लगावे। फिर मन्त्रका पाठ करते हुए सुगन्धित जलसे भगवान्को स्नान करावे। तत्पश्चात् दिव्य वस्त्र और आभूषणोंसे विधिपूर्वक भगवान्का शृंगार करे। फिर उन्हें मधुपर्क दे तथा भक्तिके साथ सुगन्धित चन्दन और सौरभयुक्त सुन्दर पुष्प निवेदन करे। इसके बाद दशांग या अष्टांग धूप, मनोहर दीप और भाँति-भाँतिके नैवेद्य भेंट करे। नैवेद्यमें खीर और मालपूआ भी होने चाहिये। नैवेद्यके अन्तमें आचमन कराकर भक्तियुक्त हृदयसे कर्पूरमिश्रित ताम्बूल निवेदित करे। फिर घीकी बत्तियोंसे आरती करके भगवान्को फूलोंकी माला पहनावे। तदनन्तर समीप जा विनीतभावसे प्रणाम करके उत्तम स्तोत्रोंद्वारा भगवान्का स्तवन करे। फिर उन्हें गरुड़के अंकमें शयन कराकर मंगलार्घ्य निवेदन करे। उसके बाद पवित्र नामोंका कीर्तन करके होम करे। भगवान्को भोग लगाये हुए नैवेद्यसे जो शेष बचे, उसीसे अग्निमें हवन करे। प्रत्येक आहुतिके साथ पुरुषसूक्त अथवा मंगलमय श्रीसूक्तकी एक-एक ऋचाका पाठ करे। वेदोक्त विधिसे स्थापित अग्निमें घृतमिश्रित हविष्यके द्वारा उपर्युक्त मन्त्ररत्नका एक सौ आठ या अट्ठाईस बार जप करके हवन करना चाहिये और हवनकालमें यज्ञस्वरूप महाविष्णुका ध्यान भी करना चाहिये।

शुद्ध जाम्बूनद नामक सुवर्णके समान जिनका श्यामवर्ण है, जो शंख, चक्र और गदा धारण करनेवाले हैं, जिनमें अंग-उपांगोंसहित सम्पूर्ण वेद-वेदान्तोंका ज्ञान भरा हुआ है तथा जो श्रीदेवीके साथ सुशोभित हो रहे हैं, उन भगवान्का ध्यान करके होम करना चाहिये। मन्त्रद्वारा होम करनेके पश्चात् नामोंका उच्चारण करके एक-एकके लिये एक-एक आहुति देनी चाहिये। भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ पुरुष भगवान्के 'नित्य भक्तों' के उद्देश्यसे उनके नाम ले-लेकर आहुति दे। पहले क्रमशः भूदेवी, लीलादेवी और विमला आदि शक्तियाँ होमकी अधिकारिणी हैं। फिर अनन्त, गरुड आदि, तदनन्तर वासुदेव आदि, तत्पश्चात् शक्ति आदि, इनके बाद केशव आदि विग्रह, संकर्षण आदि व्यूह, मत्स्य-कूर्म आदि अवतार, चक्र आदि आयुध, कुमुद आदि देवता, चन्द्र आदि देव, इन्द्र आदि लोकपाल तथा धर्म आदि देवता क्रमशः होमके अधिकारी हैं; इन सबका हवन और विशेषरूपसे पूजन करना चाहिये। इस प्रकार भगवद्भक्त पुरुष नित्य-पूजनकी विधिमें प्रतिदिन एकाग्रचित्त हो हवन करे। इस हवनका नाम 'वैकुण्ठहोम' है।

गृहमें पूजा करनेपर उस घरके दरवाजेपर पंचयज्ञकी

* आवाहनासनार्घ्याद्यैर्गन्धपुष्पाक्षतादिभिः। धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैस्ताम्बूलाद्यैर्नमस्कृतैः॥
कुर्यादाराधनं विष्णोर्यथाशक्ति मुदान्वितः। (२८०।५७-५८)

विधिसे बलि अर्पण करे, फिर आचमन कर ले। तत्पश्चात् कुशके आसनपर काला मृगचर्म बिछाकर उस शुद्ध आसनके ऊपर बैठे। मृगचर्म अपने-आप मरे हुए मृगका होना चाहिये। पद्मासनसे बैठकर पहले भूतशुद्धि करे, फिर जितेन्द्रिय पुरुष मन्त्रपाठपूर्वक तीन बार प्राणायाम कर ले। तदनन्तर मन-ही-मन यह भावना करे कि 'मेरे हृदय-कमलका मुख ऊपरकी ओर है और वह विज्ञानरूपी सूर्यके प्रकाशसे विकसित हो रहा है।' इसके बाद श्रेष्ठ वैष्णव पुरुष उस कमलकी वेदत्रयीमयी कर्णिकामें क्रमशः अग्निबिम्ब, सूर्यबिम्ब और चन्द्रबिम्बका चिन्तन करे। उन बिम्बोंके ऊपर नाना प्रकारके रत्नोंद्वारा निर्मित पीठकी भावना करे। इसके ऊपर बालरविके सदृश कान्तिमान् अष्टविध ऐश्वर्यरूप अष्टदलकमलका चिन्तन करे। प्रत्येक दल अष्टाक्षर-मन्त्रके एक-एक अक्षरके रूपमें हो। फिर ऐसी भावना करे कि उस अष्टदलकमलमें श्रीदेवीके साथ भगवान् विष्णु विराजमान हैं, जो कोटि चन्द्रमाओंके समान प्रकाशमान हो रहे हैं। उनके चार भुजाएँ, सुन्दर श्रीअंग तथा हाथोंमें शंख, चक्र और गदा है। पद्मपत्रके समान विशाल नेत्र शोभा पा रहे हैं। वे समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न दिखायी देते हैं। उनके हृदयमें श्रीवत्सका चिह्न है, वहीं कौस्तुभमणिका प्रकाश छा रहा है। भगवान् पीत वस्त्र, विचित्र आभूषण, दिव्य शृंगार, दिव्य चन्दन, दिव्य पुष्प, कोमल तुलसीदल और वनमालासे विभूषित हैं। कोटि-कोटि बालसूर्यके सदृश उनकी सुन्दर कान्ति है। उनके श्रीविग्रहसे सटकर बैठी हुई श्रीदेवी भी सब प्रकारके शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न दिखायी देती हैं।

इस प्रकार ध्यान करते हुए एकाग्रचित्त एवं शुद्ध हो अष्टाक्षर-मन्त्रका एक हजार या एक सौ बार यथाशक्ति जप करे। फिर भक्तिपूर्वक मानसिक पूजा करके विराम करे। उस समय जो भगवद्भक्त पुरुष वहाँ पधारे हों, उन्हें अन्न-जल आदिसे सन्तुष्ट करे और जब वे जाने लगें तो उनके पीछे-पीछे थोड़ी दूर जाकर विदा करे। देवताओं तथा पितरोंका विधिपूर्वक पूजन एवं तर्पण करे और अतिथि एवं भृत्यवर्गोंका यथावत् सत्कार करके सबके अन्तमें वह और उसकी पत्नी भोजन करे। यक्ष, राक्षस और भूतोंका पूजन सदा त्याग दे। जो श्रेष्ठ विप्र उनका पूजन करता है, वह निश्चय ही चाण्डाल हो जाता है। ब्रह्मराक्षस, वेताल, यक्ष तथा भूतोंका पूजन मनुष्योंके लिये महाघोर कुम्भीपाक नामक नरककी प्राप्ति करानेवाला है। यक्ष और भूत आदिके पूजनसे कोटि जन्मोंके किये हुए यज्ञ, दान और शुभ कर्म आदि पुण्य तत्काल नष्ट हो जाते हैं।[1] जो यक्षों, पिशाचों तथा तमोगुणी देवताओंको निवेदित किया हुआ अन्न खाता है, वह पीब और रक्त भोजन करनेवाला होता है। जो स्त्री यक्ष, पिशाच, सर्प और राक्षसोंकी पूजा करती है, वह नीचे मुँह किये घोर कालसूत्र नामक नरकमें गिरती है।[2] अतः यक्ष आदि तामस देवताओंकी पूजा त्याग देनी चाहिये।

वैष्णव पुरुष विश्ववन्द्य भगवान् नारायणका पूजन करके उनके चारों ओर विराजमान देवताओंका पूजन करे। भगवान्‌को भोग लगाये हुए अन्नमेंसे निकालकर उसीसे उनके लिये बलि निवेदन करे। भगवत्प्रसादसे ही उनके निमित्त होम भी करे। देवताओंके लिये भी भगवत्प्रसादस्वरूप हविष्यका ही हवन करे। पितरोंको ही प्रसाद अर्पण करे; इससे वह सब फल प्राप्त करता है। प्राणियोंको पीड़ा देना विद्वानोंकी दृष्टिमें नरकका कारण है। पार्वती! मनुष्य दूसरोंकी वस्तुको जो बिना दिये ही ले लेता है, वह भी नरकका कारण है। अगम्या (परायी) स्त्रीके साथ संभोग, दूसरोंके धनका अपहरण तथा अभक्ष्य वस्तुका भक्षण करनेसे तत्काल नरककी प्राप्ति होती है। जो अपनी विवाहिता पत्नीको छोड़कर दूसरी स्त्रीके साथ संभोग करता है, उसका वह कर्म 'अगम्यागमन' कहलाता है, जो तत्काल नरककी प्राप्तिका कारण है। पतित, पाखण्डी और पापी मनुष्योंके संसर्गसे मनुष्य अवश्य नरकमें पड़ता है। उनसे सम्पर्क

१- यक्षराक्षसभूतानामर्चनं वर्जयेत् सदा। यो महान् कुरुते विप्रः स चाण्डालो भवेद् ध्रुवम्॥
ब्रह्मराक्षसवेतालयक्षभूतार्चनं नृणाम्। कुम्भीपाकमहाघोरनरकप्राप्तिसाधनम्॥
कोटिजन्मकृतं पुण्यं यज्ञदानक्रियादिकम्। सद्यः सर्वं लयं याति यक्षभूतादिपूजनात्॥ (२८०। ९४, ९६-९७)

२- या नारी पूजयेद् यक्षान् पिशाचोरगराक्षसान्। सा याति नरकं घोरं कालसूत्रमधोमुखी॥ (२८०। १०१)

रखनेवालेका भी संसर्ग छोड़ देना चाहिये। एकान्ती पुरुष महापातकयुक्त ग्रामको छोड़ दे और परमैकान्ती मनुष्य वैसे देशका भी परित्याग कर दे। अपने वर्ण तथा आश्रमके अनुसार कर्म, ज्ञान और भक्ति आदिका साधन वैष्णव साधन माना गया है। जो भगवान्‌की आज्ञाके अनुसार कर्म, ज्ञान आदिका अनुष्ठान करता है, वह वासुदेवपरायण ब्राह्मण 'एकान्ती' कहलाता है। वैष्णव पुरुष निषिद्ध कर्मको मन-बुद्धिसे भी त्याग दे। एकान्ती पुरुष अपने धर्मकी निन्दा करनेवाले शास्त्रको मनसे भी त्याग दे और परम एकान्ती भक्त हेय-बुद्धिसे उसका परित्याग करे।

कर्म तीन प्रकारका माना गया है—नित्य, नैमित्तिक और काम्य। इसी प्रकार मुनियोंने ज्ञानके भेदोंका भी वर्णन किया है—कृत्याकृत्यविवेक-ज्ञान, परलोकचिन्तन-ज्ञान, विष्णुप्राप्तिसाधन-ज्ञान तथा विष्णुस्वरूप-ज्ञान—ये चार प्रकारके ज्ञान हैं। पार्वती! नैमित्तिक कृत्यमें भगवान्‌का विशेषरूपसे विधिवत् पूजन करना चाहिये। कार्तिकमासमें प्रतिदिन चमेलीके फूलोंसे श्रीहरिकी पूजा करे, उन्हें अखण्ड दीप दे तथा मन और इन्द्रियोंको संयममें रखकर दृढ़तापूर्वक उत्तम व्रतका पालन करे। फिर कार्तिकके अन्तमें ब्राह्मणोंको भोजन करावे, इससे वह श्रीहरिके सायुज्यको प्राप्त होता है। पौषमासमें सूर्योदयके पहले उठकर लगातार एक मासतक उत्पल तथा श्याम-श्वेत कनेरपुष्पोंसे भगवान् विष्णुका पूजन करे। तत्पश्चात् यथाशक्ति धूप, दीप और नैवेद्य निवेदन करे। मासकी समाप्ति होनेपर श्रेष्ठ भगवद्भक्तोंको भोजन करावे। ऐसा करनेसे मनुष्य निश्चय ही एक हजार अश्वमेध- यज्ञोंका फल प्राप्त करता है। माघमासमें सूर्योदयके समय विशेषत: नदीके जलमें स्नान करके उत्पल (कमल)-के पुष्पोंसे माधवकी पूजा करनी चाहिये और उन्हें भक्तिपूर्वक घृतमिश्रित दिव्य खीरका भोग लगाना चाहिये। चैत्रमासमें वकुल (मौलसिरी) और चम्पाके फूलोंसे भगवान्‌की पूजा करके गुड़मिश्रित अन्नका भोग लगावे। तदनन्तर मासकी समाप्ति होनेपर एकाग्रचित्त हो वैष्णव ब्राह्मणोंको भोजन करावे। ऐसा करनेसे प्रतिदिन एक हजार वर्षोंकी पूजाका पुण्य प्राप्त होता है। वैशाखमासमें शतपत्र[1] और महोत्पलके[2] पुष्पोंसे विधिवत् भगवान्‌का पूजन करके उन्हें दही, अन्न और फलके साथ गुड़ तथा जल भक्तिपूर्वक निवेदन करे। इससे लक्ष्मीसहित जगदीश्वर श्रीविष्णु प्रसन्न होते हैं। ज्येष्ठमासमें श्वेत कमल, गुलाब, कुमुद और उत्पलके पुष्पोंसे भगवान् हृषीकेशका पूजन करके उन्हें आमके फलोंके साथ अन्न भोग लगावे। भक्तिपूर्वक ऐसा करनेसे मनुष्यको कोटि गोदानका फल प्राप्त होता है। फिर मासके अन्तमें वैष्णवोंको भोजन करानेसे सबका फल अनन्त हो जाता है। आषाढ़मासमें देवदेवेश्वर लक्ष्मीपतिकी प्रतिदिन श्रीपुष्पोंसे पूजा करे और उन्हें खीरका भोग लगावे। फिर मासकी समाप्ति होनेपर उत्तम भगवद्भक्त ब्राह्मणोंको भोजन करावे। ऐसा करनेसे वैष्णव पुरुष साठ हजार वर्षोंकी पूजाका फल पाता है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। श्रावणमासमें नागकेसर और केवड़ेसे भक्तिपूर्वक श्रीविष्णुकी पूजा करनेसे मनुष्यका फिर इस लोकमें जन्म नहीं होता। उस समय भक्तिके साथ घी और शक्कर मिले हुए पूएका नैवेद्य निवेदन करे और श्रेष्ठ भगवद्भक्त ब्राह्मणोंको भोजन करावे। भादोंमें कुन्द और कटसरैयाके फूलोंसे पूजा करके खीरका भोग लगावे। आश्विनमें नीलकमलसे मधुसूदनकी पूजा करे और भक्तिके साथ उन्हें खीर-पूआ निवेदन करे। इसी प्रकार कार्तिकमें कोमल तुलसीदलोंके द्वारा भक्तिपूर्वक अच्युतका पूजन करनेसे उनका सायुज्य प्राप्त होता है। दूध, घी और शक्करकी बनी हुई मिठाई, खीर और मालपूआ—इन्हें भक्तिपूर्वक एक-एक करके भगवान्‌को निवेदन करे।

अमावास्या तिथि, शनिवार, वैष्णवनक्षत्र (श्रवण), सूर्यसंक्रान्ति, व्यतीपात, चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहणके अवसरपर अपनी शक्तिके अनुसार भगवान् विष्णुका विशेषरूपसे पूजन करे। श्रेष्ठ द्विजको उचित है कि गुरुके उत्क्रमणके दिन तथा श्रीहरिके अवतारोंके जन्म-नक्षत्रोंमें अपनी शक्तिके अनुसार वैष्णव-याग करे। उसमें वेदमन्त्रोंका उच्चारण करके प्रत्येक ऋचाके साथ भगवान्‌को पुष्पांजलि समर्पण करे। यथाशक्ति वैष्णव ब्राह्मणोंको भोजन करावे और दक्षिणा दे। ऐसा करनेसे वह अपनी करोड़ों

१-२-कमलके भेद।

पीढ़ियोंका उद्धार करके वैष्णवपद (वैकुण्ठधाम)-को प्राप्त होता है। श्रेष्ठ वैष्णव यदि सम्पूर्ण वेदोंके द्वारा भगवान्‌का यजन करनेमें असमर्थ हो तो केवल वैष्णव अनुवाकोंद्वारा लगातार सात राततक प्रतिदिन एक सहस्र पुष्पांजलि समर्पण करे और हविष्यसे हवन करके भगवान्‌का यजन करे। विद्वान् पुरुष विशेषतः श्रेष्ठ भगवद्भक्तोंका पूजन करे। यज्ञान्तमें अपने वैभवके अनुसार अवभृथस्नानका उत्सव करे। अवभृथस्नान भी उसे वैष्णव अनुवाकोंद्वारा ही करना चाहिये। विधिपूर्वक स्नान करके एक सुन्दर पात्रमें आचार्यके चरणोंको भक्तिपूर्वक पखारे। फिर गन्ध, पुष्प, वस्त्र और आभूषण आदिके द्वारा पूजा करे। यथाशक्ति ताम्बूल और फूलोंसे सत्कार करे और अन्न-पान आदिसे भोजन कराकर बारंबार प्रणाम करे। जाते समय गाँवकी सीमातक पहुँचाने जाय और वहाँ प्रणाम करके उन्हें विदा करे।

इस प्रकार जीवनभर आलस्य छोड़कर भगवान् और उनके भक्तोंका विशेषरूपसे पूजन करना चाहिये। समस्त आराधनाओंमें श्रीविष्णुकी आराधना सबसे श्रेष्ठ है। उससे भी उनके भक्तोंकी पूजा करनी अधिक श्रेष्ठ है। जो भगवान् गोविन्दकी पूजा करके उनके भक्तोंका पूजन नहीं करता, उसे भगवद्भक्त नहीं जानना चाहिये। वह केवल दम्भी है। अतः सर्वथा प्रयत्न करके श्रीविष्णुभक्तोंका पूजन करना चाहिये। उनके पूजनसे मनुष्य समस्त दुःखराशिके पार हो जाता है। पार्वती! इस प्रकार मैंने तुमसे श्रीविष्णुकी श्रेष्ठ आराधना, नित्य-नैमित्तिक कृत्य तथा भगवद्भक्तोंकी पूजाका वर्णन किया है।

श्रीराम-नामकी महिमा तथा श्रीरामके १०८ नामका माहात्म्य

पार्वतीजीने कहा—नाथ! आपने उत्तम वैष्णवधर्मका भलीभाँति वर्णन किया। वास्तवमें परमात्मा श्रीविष्णुका स्वरूप गोपनीयसे भी अत्यन्त गोपनीय है। सर्वदेववन्दित महेश्वर! मैं आपके प्रसादसे धन्य और कृतकृत्य हो गयी। अब मैं भी सनातन देव श्रीहरिका पूजन करूँगी।

महादेवजी बोले—देवि! बहुत अच्छा, बहुत अच्छा! तुम सम्पूर्ण इन्द्रियोंके स्वामी भगवान् लक्ष्मीपतिका पूजन अवश्य करो। भद्रे! मैं तुम-जैसी वैष्णवी पत्नीको पाकर अपनेको कृतकृत्य मानता हूँ।

वसिष्ठजी कहते हैं—तदनन्तर वामदेवजीके उपदेशानुसार पार्वतीजी प्रतिदिन श्रीविष्णुसहस्रनामका पाठ करनेके पश्चात् भोजन करने लगीं। एक दिन परम मनोहर कैलासशिखरपर भगवान् श्रीविष्णुकी आराधना करके भगवान् शंकरने पार्वतीदेवीको अपने साथ भोजन करनेके लिये बुलाया। तब पार्वतीदेवीने कहा—'प्रभो! मैं श्रीविष्णुसहस्रनामका पाठ करनेके पश्चात् भोजन करूँगी, तबतक आप भोजन कर लें।' यह सुनकर महादेवजीने हँसते हुए कहा—'पार्वती! तुम धन्य हो, पुण्यात्मा हो; क्योंकि भगवान् विष्णुमें तुम्हारी भक्ति है। देवि! भाग्यके बिना श्रीविष्णुभक्तिका प्राप्त होना बहुत कठिन है। सुमुखि! मैं तो 'राम! राम! राम!' इस प्रकार जप करते हुए परम मनोहर श्रीराम-नाममें ही निरन्तर रमण किया करता हूँ। राम-नाम सम्पूर्ण सहस्रनामके समान है। पार्वती! रकारादि जितने नाम हैं, उन्हें सुनकर राम-नामकी आशंकासे मेरा मन प्रसन्न हो जाता है।* अतः महादेवि! तुम राम-नामका उच्चारण करके इस समय मेरे साथ भोजन करो।'

यह सुनकर पार्वतीजीने राम-नामका उच्चारण करके भगवान् शंकरके साथ बैठकर भोजन किया। इसके बाद उन्होंने प्रसन्नचित्त होकर पूछा—'देवेश्वर! आपने राम-नामको सम्पूर्ण सहस्रनामके तुल्य बतलाया है। यह सुनकर राम-नाममें मेरी बड़ी भक्ति हो गयी है; अतः भगवान् श्रीरामके यदि और भी नाम हों तो बताइये।'

महादेवजी बोले—पार्वती! सुनो, मैं श्रीरामचन्द्रजीके नामोंका वर्णन करता हूँ। लौकिक और वैदिक जितने भी शब्द हैं, वे सब श्रीरामचन्द्रजीके ही नाम हैं, किन्तु सहस्रनाम उन सबमें अधिक है और उन सहस्रनामोंमें भी श्रीरामके एक सौ आठ नामोंकी प्रधानता अधिक है। श्रीविष्णुका एक-एक नाम ही सब वेदोंसे अधिक

* राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे। सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने॥
रकारादीनि नामानि शृण्वतो मम पार्वति। मनः प्रसन्नतां याति रामनामाभिशङ्कया॥ (२८१। २१-२२)

माना गया है। वैसे ही एक हजार नामोंके समान अकेला श्रीराम-नाम माना गया है। पार्वती! जो सम्पूर्ण मन्त्रों और समस्त वेदोंका जप करता है, उसकी अपेक्षा कोटिगुना पुण्य केवल राम-नामसे उपलब्ध होता है।* शुभे! अब श्रीरामके उन मुख्य नामोंका वर्णन सुनो, जिनका महर्षियोंने गान किया है। १ **ॐ श्रीरामः**—जिनमें योगीजन रमण करते हैं, ऐसे सच्चिदानन्दघनस्वरूप श्रीराम अथवा सीतासहित राम। २ **रामचन्द्रः**—चन्द्रमाके समान आनन्ददायी एवं मनोहर राम। ३ **रामभद्रः**—कल्याणमय राम। ४ **शाश्वतः**—सनातन भगवान्। ५ **राजीवलोचनः**— कमलके समान नेत्रोंवाले। ६ **श्रीमान् राजेन्द्रः**—श्रीसम्पन्न राजाओंके भी राजा, चक्रवर्ती सम्राट्। ७ **रघुपुङ्गवः**—रघुकुलमें सर्वश्रेष्ठ। ८ **जानकीवल्लभः**—जनककिशोरी सीताके प्रियतम। ९ **जैत्रः**—विजयशील। १० **जितामित्रः**—शत्रुओंको जीतनेवाले। ११ **जनार्दनः**—सम्पूर्ण मनुष्योंद्वारा याचना करनेयोग्य। १२ **विश्वामित्रप्रियः**—विश्वामित्रजीके प्रियतम। १३ **दान्तः**—जितेन्द्रिय। १४ **शरण्यत्राणतत्परः**— शरणागतोंकी रक्षामें संलग्न । १५ **वालिप्रमथनः**—वालि नामक वानरको मारनेवाले। १६ **वाग्मी**—अच्छे वक्ता। १७ **सत्यवाक्**—सत्यवादी। १८ **सत्यविक्रमः**—सत्यपराक्रमी। १९ **सत्यव्रतः**—सत्यका दृढ़तापूर्वक पालन करनेवाले। २० **व्रतफलः**—सम्पूर्ण व्रतोंके प्राप्त होनेयोग्य फलस्वरूप। २१ **सदा हनुमदाश्रयः**—निरन्तर हनुमान्‌जीके आश्रय अथवा हनुमान्‌जीके हृदयकमलमें सदा निवास करनेवाले। २२ **कौसलेयः**—कौसल्याजीके पुत्र। २३ **खरध्वंसी**—खर नामक राक्षसका नाश करनेवाले। २४ **विराधवध-पण्डितः**—विराध नामक दैत्यका वध करनेमें कुशल। २५ **विभीषणपरित्राता**—विभीषणके रक्षक। २६ **दशग्रीवशिरोहरः**—दशशीश रावणके मस्तक काटनेवाले। २७ **सप्ततालप्रभेत्ता**—सात तालवृक्षोंको एक ही बाणसे बींध डालनेवाले। २८ **हरकोदण्डखण्डनः**—जनकपुरमें शिवजीके धनुषको तोड़नेवाले। २९ **जामदग्न्यमहादर्पदलनः**—परशुरामजीके महान् अभिमानको चूर्ण करनेवाले। ३० **ताडकान्तकृत्**—ताड़का नामवाली राक्षसीका वध करनेवाले। ३१ **वेदान्तपारः**—वेदान्तके पारंगत विद्वान् अथवा वेदान्तसे भी अतीत। ३२ **वेदात्मा**—वेदस्वरूप। ३३ **भवबन्धैकभेषजः**—संसारबन्धनसे मुक्त करनेके लिये एकमात्र औषधरूप। ३४ **दूषणत्रिशिरोऽरिः**—दूषण और त्रिशिरा नामक राक्षसोंके शत्रु। ३५ **त्रिमूर्तिः**—ब्रह्मा, विष्णु और शिव—तीन रूप धारण करनेवाले। ३६ **त्रिगुणः**—त्रिगुणस्वरूप अथवा तीनों गुणोंके आश्रय। ३७ **त्रयी**—तीन वेदस्वरूप। ३८ **त्रिविक्रमः**—वामन-अवतारमें तीन पगोंसे समस्त त्रिलोकीको नाप लेनेवाले। ३९ **त्रिलोकात्मा**—तीनों लोकोंके आत्मा। ४० **पुण्यचारित्रकीर्तनः**—जिनकी लीलाओंका कीर्तन परम पवित्र है, ऐसे। ४१ **त्रिलोकरक्षकः**—तीनों लोकोंकी रक्षा करनेवाले। ४२ **धन्वी**—धनुष धारण करनेवाले। ४३ **दण्डकारण्यवासकृत्**—दण्डकारण्यमें निवास करनेवाले। ४४ **अहल्यापावनः**—अहल्याको पवित्र करनेवाले। ४५ **पितृभक्तः**—पिताके भक्त। ४६ **वरप्रदः**—वर देनेवाले। ४७ **जितेन्द्रियः**— इन्द्रियोंको काबूमें रखनेवाले। ४८ **जितक्रोधः**—क्रोधको जीतनेवाले। ४९ **जितलोभः**—लोभकी वृत्तिको परास्त करनेवाले। ५० **जगद्गुरुः**—अपने आदर्श चरित्रोंसे सम्पूर्ण जगत्‌को शिक्षा देनेके कारण सबके गुरु। ५१ **ऋक्षवानरसंघाती**—वानर और भालुओंकी सेनाका संगठन करनेवाले। ५२ **चित्रकूट-समाश्रयः**—वनवासके समय चित्रकूटपर्वतपर निवास करनेवाले। ५३ **जयन्तत्राणवरदः**—जयन्तके प्राणोंकी रक्षा करके उसे वर देनेवाले। ५४ **सुमित्रापुत्र-सेवितः**— सुमित्रानन्दन लक्ष्मणके द्वारा सेवित। ५५ **सर्वदेवाधिदेवः**—सम्पूर्ण देवताओंके भी अधिदेवता। ५६ **मृतवानरजीवनः**—मरे हुए वानरोंको जीवित करनेवाले। ५७ **मायामारीचहन्ता**—मायामय मृगका रूप धारण करके आये हुए मारीच नामक राक्षसका वध करनेवाले। ५८ **महाभागः**—महान् सौभाग्यशाली। ५९ **महाभुजः**—बड़ी-बड़ी बाँहोंवाले। ६० **सर्वदेवस्तुतः**—सम्पूर्ण देवता जिनकी स्तुति करते हैं,

* विष्णोरेकैकनामैव सर्ववेदाधिकं मतम् । तादृङ्नामसहस्राणि रामनाम समं मतम्॥
जपतः सर्वमन्त्रांश्च सर्ववेदांश्च पार्वति । तस्मात् कोटिगुणं पुण्यं रामनाम्नैव लभ्यते॥ (२८१। २७-२८)

ऐसे। ६१ **सौम्यः**—शान्तस्वभाव। ६२ **ब्रह्मण्यः**—ब्राह्मणोंके हितैषी। ६३ **मुनिसत्तमः**—मुनियोंमें श्रेष्ठ। ६४ **महायोगी**—सम्पूर्ण योगोंके अधिष्ठान होनेके कारण महान् योगी। ६५ **महोदारः**—परम उदार। ६६ **सुग्रीवस्थिरराज्यदः**—सुग्रीवको स्थिर राज्य प्रदान करनेवाले। ६७ **सर्वपुण्याधिकफलः**—समस्त पुण्योंके उत्कृष्ट फलरूप। ६८ **स्मृतसर्वाघनाशनः**—स्मरण करनेमात्रसे ही सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाले। ६९ **आदिपुरुषः**—ब्रह्माजीको भी उत्पन्न करनेके कारण सबके आदिभूत अन्तर्यामी परमात्मा। ७० **महापुरुषः**—समस्त पुरुषोंमें महान्। ७१ **परमः पुरुषः**—सर्वोत्कृष्ट पुरुष। ७२ **पुण्योदयः**—पुण्यको प्रकट करनेवाले। ७३ **महासारः**—सर्वश्रेष्ठ सारभूत परमात्मा। ७४ **पुराणपुरुषोत्तमः**—पुराणप्रसिद्ध क्षर-अक्षर पुरुषोंसे श्रेष्ठ लीलापुरुषोत्तम। ७५ **स्मितवक्त्रः**—जिनके मुखपर सदा मुसकानकी छटा छायी रहती है, ऐसे। ७६ **मितभाषी**—कम बोलनेवाले। ७७ **पूर्वभाषी**—पूर्ववक्ता। ७८ **राघवः**—रघुकुलमें अवतीर्ण। ७९ **अनन्तगुण-गम्भीरः**—अनन्त कल्याणमय गुणोंसे युक्त एवं गम्भीर। ८० **धीरोदात्तगुणोत्तरः**[१]—धीरोदात्त नायकके लोकोत्तर गुणोंसे युक्त। ८१ **मायामानुषचारित्रः**—अपनी मायाका आश्रय लेकर मनुष्योंकी-सी लीलाएँ करनेवाले। ८२ **महादेवाभिपूजितः**—भगवान् शंकरके द्वारा निरन्तर पूजित। ८३ **सेतुकृत्**—समुद्रपर पुल बाँधनेवाले। ८४ **जितवारीशः**—समुद्रको जीतनेवाले। ८५ **सर्वतीर्थमयः**—सर्वतीर्थस्वरूप। ८६ **हरिः**—पाप-तापको हरनेवाले। ८७ **श्यामाङ्गः**—श्याम विग्रहवाले। ८८ **सुन्दरः**—परम मनोहर। ८९ **शूरः**—अनुपम शौर्यसे सम्पन्न वीर। ९० **पीतवासाः**—पीताम्बरधारी। ९१ **धनुर्धरः**—धनुष धारण करनेवाले। ९२ **सर्वयज्ञाधिपः**—सम्पूर्ण यज्ञोंके स्वामी। ९३ **यज्ञः**—यज्ञस्वरूप। ९४ **जरामरणवर्जितः**—बुढ़ापा और मृत्युसे रहित। ९५ **शिवलिङ्गप्रतिष्ठाता**—रामेश्वर नामक ज्योतिर्लिंगकी स्थापना करनेवाले। ९६ **सर्वाघगणवर्जितः**—समस्त पापराशिसे रहित। ९७ **परमात्मा**—परमश्रेष्ठ, नित्यशुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वभाव। ९८ **परं ब्रह्म**—सर्वोत्कृष्ट, सर्वव्यापी एवं सर्वाधिष्ठान परमेश्वर। ९९ **सच्चिदानन्दविग्रहः**—सत्, चित् और आनन्द ही जिनके स्वरूपका निर्देश करानेवाला है, ऐसे परमात्मा अथवा सच्चिदानन्दमय दिव्यविग्रह। १०० **परं ज्योतिः**—परम प्रकाशमय, परम ज्ञानमय। १०१ **परं धाम**—सर्वोत्कृष्ट तेज अथवा साकेतधामस्वरूप। १०२ **पराकाशः**—त्रिपाद विभूतिमें स्थित परमव्योम नामक वैकुण्ठधामरूप, महाकाशस्वरूप ब्रह्म। १०३ **परात्परः**—पर—इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदिसे भी परे परमेश्वर। १०४ **परेशः**—सर्वोत्कृष्ट शासक। १०५ **पारगः**—सबको पार लगानेवाले अथवा मायामय जगत्की सीमासे बाहर रहनेवाले। १०६ **पारः**—सबसे परे विद्यमान अथवा भवसागरसे पार जानेकी इच्छा रखनेवाले प्राणियोंके प्राप्तव्य परमात्मा। १०७ **सर्वभूतात्मकः**—सर्वभूतस्वरूप। १०८ **शिवः**—परम कल्याणमय—ये श्रीरामचन्द्रजीके एक सौ आठ नाम हैं। देवि! ये नाम गोपनीयसे भी गोपनीय हैं; किन्तु स्नेहवश मैंने इन्हें तुम्हारे सामने प्रकाशित किया है।[२]

१-कहीं-कहीं 'धीरो दान्तगुणोत्तरः' पाठ मिलता है, यह छपाईकी भूल जान पड़ती है। यदि ऐसा ही पाठ मानें तो ऐसा अर्थ करना चाहिये—'धीर एवं जितेन्द्रिय पुरुषके श्रेष्ठ गुणोंसे युक्त।'

२-ॐ श्रीरामो रामचन्द्रश्च रामभद्रश्च शाश्वतः। राजीवलोचनः श्रीमान् राजेन्द्रो रघुपुङ्गवः॥
जानकीवल्लभो जैत्रो जितामित्रो जनार्दनः। विश्वामित्रप्रियो दान्तः शरण्यत्राणतत्परः॥
वालिप्रमथनो वाग्मी सत्यवाक् सत्यविक्रमः। सत्यव्रतो व्रतफलः सदा हनुमदाश्रयः॥
कौसलेयः खरध्वंसी विराधवधपण्डितः। विभीषणपरित्राता दशग्रीवशिरोहरः॥
सप्ततालप्रभेत्ता च हरकोदण्डखण्डनः। जामदग्न्यमहादर्पदलनस्ताडकान्तकृत्॥
वेदान्तपारो वेदात्मा भवबन्धैकभेषजः। दूषणत्रिशिरोऽरिश्च त्रिमूर्तिस्त्रिगुणस्त्रयी॥
त्रिविक्रमस्त्रिलोकात्मा पुण्यचारित्रकीर्तनः। त्रिलोकरक्षको धन्वी दण्डकारण्यवासकृत्॥
अहल्यापावनश्चैव पितृभक्तो वरप्रदः। जितेन्द्रियो जितक्रोधो जितलोभो जगद्गुरुः॥
ऋक्षवानरसंघाती चित्रकूटसमाश्रयः। जयन्तत्राणवरदः सुमित्रापुत्रसेवितः॥

जो भक्तियुक्त चित्तसे इन नामोंका पाठ या श्रवण करता है, वह सौ कोटि कल्पोंमें किये हुए समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है। पार्वती! इन नामोंका भक्तिभावसे पाठ करनेवाले मनुष्योंके लिये जल भी स्थल हो जाते हैं, शत्रु मित्र बन जाते हैं, राजा दास हो जाते हैं, जलती हुई आग शान्त हो जाती है, समस्त प्राणी अनुकूल हो जाते हैं, चंचल लक्ष्मी भी स्थिर हो जाती है, ग्रह अनुग्रह करने लगते हैं तथा समस्त उपद्रव शान्त हो जाते हैं। जो भक्तिपूर्वक इन नामोंका पाठ करता है, तीनों लोकके प्राणी उसके वशमें हो जाते हैं तथा वह मनमें जो-जो कामना करता है, वह सब इन नामोंके कीर्तनसे पा लेता है। जो दूर्वादलके समान श्यामसुन्दर कमलनयन, पीताम्बरधारी भगवान् श्रीरामका इन दिव्य नामोंसे स्तवन करते हैं, वे मनुष्य कभी संसार-बन्धनमें नहीं पड़ते। राम, रामभद्र, रामचन्द्र, वेधा, रघुनाथ, नाथ एवं सीतापतिको नमस्कार है।* देवि! केवल इस मन्त्रका भी जो दिन-रात जप करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो श्रीविष्णुका सायुज्य प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार मैंने तुम्हारे प्रेमवश भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके वेदानुमोदित माहात्म्यका वर्णन किया है। यह परम कल्याणकारक है।

वसिष्ठजी कहते हैं—भगवान् शंकरके द्वारा कहे हुए परमात्मा श्रीरामचन्द्रजीके माहात्म्यको सुनकर पार्वती देवी '**रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे। रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः॥**' इस मन्त्रका ही सदा—सब अवस्थाओंमें जप करती हुई कैलासमें अपने पतिके साथ सुखपूर्वक रहने लगीं। राजा दिलीप! यह मैंने तुमसे परम गोपनीय विषयका वर्णन किया है। जो भक्तियुक्त हृदयसे इस प्रसंगका पाठ या श्रवण करता है, वह सबका वन्दनीय, सब तत्त्वोंका ज्ञाता और महान् भगवद्भक्त होता है। इतना ही नहीं, वह समस्त कर्मोंके बन्धनसे मुक्त हो परमपदको प्राप्त कर लेता है। राजन्! तुम इस संसारमें धन्य हो; क्योंकि तुम्हारे ही कुलमें पुराणपुरुषोत्तम श्रीहरि सब लोकोंका हित करनेके लिये दशरथनन्दनके रूपमें अवतार लेंगे। अतः इक्ष्वाकुवंशीय क्षत्रिय देवताओंके लिये भी पूजनीय होते हैं; क्योंकि उनके कुलमें राजीवलोचन भगवान् श्रीरामका अवतार होता है।

त्रिदेवोंमें श्रीविष्णुकी श्रेष्ठता तथा ग्रन्थका उपसंहार

वसिष्ठजी कहते हैं—पूर्वकालकी बात है—स्वायम्भुव मनु परम उत्तम एवं दीर्घकालतक चालू रहनेवाले यज्ञका अनुष्ठान करनेके लिये मुनियोंके साथ मन्दराचल पर्वतपर गये। उस यज्ञमें कठोर व्रतोंका पालन करनेवाले, अनेक शास्त्रोंके ज्ञाता, बालसूर्य एवं अग्निके समान तेजस्वी, समस्त वेदोंके विद्वान् तथा सब धर्मोंके अनुष्ठानमें तत्पर रहनेवाले मुनि पधारे थे। वह महायज्ञ जब आरम्भ हुआ तो पापरहित मुनि, देवता-तत्त्वका अनुसन्धान करनेके लिये परस्पर बोले—'वेदवेत्ता ब्राह्मणोंके लिये कौन देवता सर्वश्रेष्ठ एवं पूज्य है? ब्रह्मा, विष्णु और शिवमेंसे किसकी अधिक स्तुति हुई है? किसका चरणोदक सेवन करनेयोग्य है?

सर्वदेवाधिदेवश्च मृतवानरजीवनः। मायामारीचहन्ता च महाभागो महाभुजः॥
सर्वदेवस्तुतः सौम्यो ब्रह्मण्यो मुनिसत्तमः। महायोगी महोदारः सुग्रीवस्थिरराज्यदः॥
सर्वपुण्याधिकफलः स्मृतसर्वाघनाशनः। आदिपुरुषो महापुरुषः परमः पुरुषस्तथा॥
पुण्योदयो महासारः पुराणपुरुषोत्तमः। स्मितवक्त्रो मितभाषी पूर्वभाषी च राघवः॥
अनन्तगुणगम्भीरो धीरोदात्तगुणोत्तरः। मायामानुषचारित्रो महादेवाभिपूजितः॥
सेतुकृज्जितवारीशः सर्वतीर्थमयो हरिः। श्यामाङ्गः सुन्दरः शूरः पीतवासा धनुर्धरः॥
सर्वयज्ञाधिपो यज्ञो जरामरणवर्जितः। शिवलिङ्गप्रतिष्ठाता सर्वाघगणवर्जितः॥
परमात्मा परं ब्रह्म सच्चिदानन्दविग्रहः। परं ज्योतिः परं धाम पराकाशः परात्परः॥
परेशः पारगः पारः सर्वभूतात्मकः शिवः। इति श्रीरामचन्द्रस्य नाम्नामष्टोत्तरं शतम्।
गुह्याद्गुह्यतरं देवि तव स्नेहात् प्रकीर्तितम्॥

(२८१।३०—४८)

* रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे। रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः॥ (२८१।५५)

किसको भोग लगाया हुआ प्रसाद परम पावन है? कौन अविनाशी, परमधामस्वरूप एवं सनातन परमात्मा है? किसके प्रसाद और चरणोदक पितरोंको तृप्ति प्रदान करनेवाले होते हैं?'

वहाँ बैठे हुए महर्षियोंमें इस विषयपर महान् वाद-विवाद हुआ। किन्हीं महर्षियोंने केवल रुद्रको सर्वश्रेष्ठ बतलाया। कोई कहने लगे—ब्रह्माजी ही पूजनीय हैं। कुछ लोगोंने कहा—सूर्य ही सब जीवोंके पूजनीय हैं तथा कुछ दूसरे ब्राह्मणोंने अपनी सम्मति इस प्रकार प्रकट की—आदि-अन्तसे रहित भगवान् विष्णु ही परमेश्वर हैं। वे ही सब देवताओंमें श्रेष्ठ एवं पूजन करनेके योग्य हैं। इस प्रकार विवाद करते हुए महर्षियोंसे स्वायम्भुव मनुने कहा—'वे जो शुद्ध-सत्त्वमय, कल्याणमय गुणोंसे युक्त, कमलके समान नेत्रोंवाले, श्रीदेवीके स्वामी भगवान् पुरुषोत्तम हैं—एकमात्र वे ही वेदवेत्ता ब्राह्मणोंद्वारा पूजित हैं।'

मनुकी यह बात सुनकर सब महर्षियोंने हाथ जोड़कर तपोनिधि भृगुजीसे कहा—'सुव्रत! आप ही हमलोगोंका सन्देह दूर करनेमें समर्थ हैं। आप ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेव—तीनों देवताओंके पास जाइये।' उनके ऐसा कहनेपर मुनिश्रेष्ठ भृगु तुरंत ही कैलास पर्वतपर गये। भगवान् शंकरके गृहद्वारपर पहुँचकर उन्होंने देखा—महाभयंकर रूपवाले नन्दी हाथमें त्रिशूल लिये खड़े हैं। भृगुजीने उनसे कहा—'मेरा नाम भृगु है, मैं ब्राह्मण हूँ और देवश्रेष्ठ महादेवजीका दर्शन करनेके लिये यहाँ आया हूँ। आप भगवान् शंकरको शीघ्र ही मेरे आनेकी सूचना दें।' यह सुनकर समस्त शिवगणोंके स्वामी नन्दीने उन अमिततेजस्वी महर्षिसे कठोर वाणीमें कहा—'अरे! इस समय भगवान्के पास तुम नहीं पहुँच सकते। अभी भगवान् शंकर देवीके साथ क्रीड़ाभवनमें हैं। यदि जीवित रहना चाहते हो तो लौट जाओ, लौट जाओ।'

तब भृगुने कुपित होकर कहा—'ये रुद्र तमोगुणसे युक्त होकर अपने द्वारपर आये हुए मुझ ब्राह्मणको नहीं जानते हैं। इसलिये इन्हें दिया हुआ अन्न, जल, फूल, हविष्य तथा निर्माल्य—सब कुछ अभक्ष्य हो जायगा।' इस प्रकार भगवान् शिवको शाप देकर भृगु ब्रह्मलोकमें गये। वहाँ ब्रह्माजी सब देवताओंके साथ बैठे हुए थे। उन्हें देख भृगुजीने हाथ जोड़कर प्रणाम किया और चुपचाप वे उनके सामने खड़े रहे। किन्तु ब्रह्माजीने उन मुनिश्रेष्ठको आया हुआ देखकर भी उनका कुछ सत्कार नहीं किया। उनसे प्रिय वचनतक नहीं कहा। उस समय ब्रह्माजी कमलके आसनपर महान् ऐश्वर्यके साथ बैठे हुए थे। तब महातेजस्वी महर्षिने लोक-पितामह ब्रह्मासे कहा—'आप महान् रजोगुणसे युक्त होकर मेरी अवहेलना कर रहे हैं, इसलिये आजसे समस्त संसारके लिये आप अपूज्य हो जायँगे।'

लोकपूजित महात्मा ब्रह्माजीको ऐसा शाप देकर महर्षि भृगु सहसा क्षीरसागरके उत्तर तटपर श्रीविष्णुके लोकमें गये। वहाँ जो महात्मा पुरुष रहते थे, उन्होंने भृगुजीका यथायोग्य सत्कार किया। उस लोकमें कहीं भी उनके लिये रोक-टोक नहीं हुई। वे भगवान्के अन्त:पुरमें बेधड़क चले गये। वहाँ उन्होंने सूर्यके समान तेजस्वी विमल विमानमें शेषनागकी शय्यापर सोये हुए भगवान् लक्ष्मीपतिको देखा। लक्ष्मी अपने करकमलोंसे भगवान्के दोनों चरणोंकी सेवा कर रही थीं। उन्हें देखकर मुनिश्रेष्ठ भृगु अकारण कुपित हो उठे और उन्होंने भगवान्के शोभायमान वक्ष:स्थलपर अपने बायें चरणसे प्रहार किया। भगवान् तुरंत उठ बैठे और प्रसन्नतापूर्वक बोले—'आज मैं धन्य हो गया।' ऐसा कहकर वे हर्षके साथ अपने दो हाथोंसे महर्षिके चरण दबाने लगे। धीरे-धीरे चरण दबाकर उन्होंने मधुर वाणीमें कहा—'ब्रह्मर्षे! आज मैं धन्य और कृतकृत्य हो गया। मेरे शरीरमें आपके चरणोंका स्पर्श होनेसे मेरा बड़ा मंगल होगा। जो समस्त सम्पत्तिकी प्राप्तिके कारण तथा अपार संसारसागरसे पार होनेके लिये सेतुके समान हैं, वे ब्राह्मणोंकी चरणधूलियाँ मुझे सदा पवित्र करती रहें।'

ऐसा कहकर भगवान् जनार्दनने लक्ष्मीदेवीके साथ सहसा उठकर दिव्य माला और चन्दन आदिके द्वारा भक्तिपूर्वक भृगुजीका पूजन किया। उनको इस रूपमें देखकर मुनिश्रेष्ठ भृगुजीके नेत्रोंमें आनन्दके आँसू भर आये। उन्होंने आसनसे उठकर करुणासागर भगवान्को प्रणाम किया और हाथ जोड़कर कहा—'अहो! श्रीहरिका

कितना मनोहर रूप है, कैसी शान्ति है, कैसा ज्ञान है, कितनी दया है, कैसी निर्मल क्षमा और कितना पावन सत्त्वगुण है। भगवन्! आप गुणोंके समुद्र हैं। आपमें ही स्वाभाविक रूपसे कल्याणमय सत्त्वगुणका निवास है। आप ही ब्राह्मणोंके हितैषी, शरणागतोंके रक्षक और पुरुषोत्तम हैं। आपका चरणोदक पितरों, देवताओं तथा सम्पूर्ण ब्राह्मणोंके लिये सेव्य है। यह पापोंका नाशक और मुक्तिका दाता है। भगवन्! आपहीका भोग लगा हुआ प्रसाद देवता, पितर और ब्राह्मण—सबके सेवन करनेयोग्य है। इसलिये ब्राह्मणको उचित है कि वह प्रतिदिन आप सनातन पुरुषका पूजन करके आपका चरणोदक ले और आपके भोग लगाये हुए प्रसादस्वरूप अन्नका भोजन करे। प्रभो! जो आपको निवेदित किये हुए अन्नका हवन या दान करता है, वह देवताओं और पितरोंको तृप्त करता तथा अक्षय फलका भागी होता है। अतः आप ही ब्राह्मणोंके पूजनीय हैं।

आप सम्पूर्ण देवताओंमें ब्राह्मणत्वको प्राप्त हों; क्योंकि आप ब्राह्मणोंके पूज्य और शुद्ध सत्त्वगुणसे सम्पन्न हैं। ब्राह्मणलोग सदा आप पुरुषोत्तमका ही भजन करते हैं। जो आपका पूजन करते हैं, वे ही विप्र वास्तवमें ब्राह्मण हैं, दूसरे नहीं। इस विषयमें सन्देहके लिये स्थान नहीं है। देवकीनन्दन श्रीकृष्ण ब्राह्मणोंके हितैषी हैं। श्रीमधुसूदन ब्राह्मणोंके हितचिन्तक हैं। श्रीपुण्डरीकाक्ष ब्राह्मणोंके प्रेमी हैं। अविनाशी भगवान् विष्णु ब्राह्मणहितैषी हैं। सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान् वासुदेव एवं अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले श्रीहरि ब्राह्मणोंके हितकारक हैं। भगवान् नृसिंह तथा अविनाशी नारायण भी ब्राह्मणोंपर कृपा करनेवाले हैं। श्रीधर, श्रीश, गोविन्द एवं वामन आदि नामोंसे प्रसिद्ध भगवान् श्रीहरि ब्राह्मणोंपर स्नेह रखते हैं। यज्ञवाराह-रूपधारी पुरुषोत्तम भगवान् केशव ब्राह्मणोंका कल्याण करनेवाले हैं। रघुकुलभूषण राजीवलोचन श्रीरामचन्द्रजी भी ब्राह्मणोंके सुहृद् हैं। भगवान् पद्मनाभ तथा दामोदर (श्रीकृष्ण) भी ब्राह्मणोंका हित चाहनेवाले हैं। माधव, यज्ञपुरुष एवं भगवान् त्रिविक्रम भी ब्राह्मणहितैषी हैं। पीताम्बरधारी हृषीकेश श्रीजनार्दन ब्राह्मणोंके हितकारी हैं। शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले ब्राह्मणहितैषी देवता श्रीवासुदेवको नमस्कार है। कमलके समान नेत्रोंवाले लक्ष्मीपति श्रीनारायणको नमस्कार है। ब्राह्मणहितैषी देवता सर्वव्यापी वासुदेवको नमस्कार है। कल्याणमय गुणोंसे परिपूर्ण, सृष्टि, पालन और संहारके कारणरूप आप परमात्माको नमस्कार है। ब्राह्मणोंके हितैषी देवता प्रद्युम्न, अनिरुद्ध तथा संकर्षणको नमस्कार है। शेषनागकी शय्यापर शयन करनेवाले ब्रह्मण्यदेव भगवान् विष्णुको नमस्कार है। कमलके समान नेत्रोंवाले श्रीरघुनाथजीको बारंबार नमस्कार है। प्रभो! सम्पूर्ण देवता और ऋषि आपकी मायासे मोहित होनेके कारण सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी आप परमात्माको नहीं जानते। भगवन्! सम्पूर्ण वेदोंके विद्वान् भी आपके तत्त्वको नहीं जानते।* भगवन्! मैं महर्षियोंके भेजनेपर आपके पास आया

---

* सर्वेषामेव देवानां ब्राह्मणत्वमवाप्नुहि। त्वामेव हि सदा विप्रा भजन्ति पुरुषोत्तमम्॥
ब्राह्मणास्ते बभूवुस्तु नान्यास्तत्र न संशयः। ब्रह्मण्यो देवकीपुत्रो ब्रह्मण्यो मधुसूदनः॥
ब्रह्मण्यः पुण्डरीकाक्षो ब्रह्मण्यो विष्णुरव्ययः। ब्रह्मण्यो भगवान्कृष्णो वासुदेवोऽच्युतो हरिः॥
ब्रह्मण्यो नारसिंहः स्यात्तथा नारायणोऽव्ययः। ब्रह्मण्यः श्रीधरः श्रीशो गोविन्दो वामनस्तथा॥
ब्रह्मण्यो यज्ञवाराहः केशवः पुरुषोत्तमः। ब्रह्मण्यो राघवः श्रीमान्रामो राजीवलोचनः॥
ब्रह्मण्यः पद्मनाभश्च तथा दामोदरः प्रभुः। ब्रह्मण्यो माधवो यज्ञस्तथा त्रिविक्रमः प्रभुः॥
ब्रह्मण्यश्च हृषीकेशः पीतवासा जनार्दनः। नमो ब्रह्मण्यदेवाय वासुदेवाय शार्ङ्गिणे॥
नारायणाय श्रीशाय पुण्डरीकेक्षणाय च। नमो ब्रह्मण्यदेवाय वासुदेवाय विष्णवे॥
कल्याणगुणपूर्णाय नमस्ते परमात्मने। नमो ब्रह्मण्यदेवाय सर्गस्थित्यन्तहेतवे॥
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय तथा संकर्षणाय च। नमो ब्रह्मण्यदेवाय सर्वदेवस्वरूपिणे॥
वाराहवपुषे नित्यं त्रयीनाथाय ते नमः। नमो ब्रह्मण्यदेवाय नागपर्यङ्कशायिने॥
राजीवदलनेत्राय राघवाय नमो नमः। मायया मोहिताः सर्वे देवाश्च ऋषयस्तव॥
न जानन्ति महात्मानं सर्वलोकेश्वरं प्रभो। त्वां न जानन्ति भगवन्सर्ववेदविदोऽपि हि॥
(२८२। ७०—८२)

हूँ। आपके शील और गुणोंका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये ही मैंने आपकी छातीपर पैर रखा है। गोविन्द! कृपानिधे! मेरे इस अपराधको क्षमा करें।'

ऐसा कहकर महर्षि भृगुने बारंबार भगवान्‌के चरणोंमें प्रणाम किया। भगवान्‌के धाममें रहनेवाले दिव्य महर्षियोंने भृगुजीका भलीभाँति स्वागत-सत्कार किया। वहाँसे प्रसन्नचित्त होकर वे यज्ञमें महर्षियोंके पास लौट आये। उन्हें आया देख महर्षियोंने उठकर नमस्कार किया और विधिपूर्वक उनकी पूजा की। तत्पश्चात् मुनिश्रेष्ठ भृगुने उन महर्षियोंसे सब बातें बतायीं। उन्होंने कहा—'ब्रह्माजीमें रजोगुणका आधिक्य है और रुद्रमें तमोगुणका। केवल भगवान् विष्णु शुद्ध सत्त्वमय हैं। वे कल्याणमय गुणोंके सागर, नारायण, परब्रह्म तथा सम्पूर्ण ब्राह्मणोंके देवता हैं। वे ही विप्रोंके लिये पूजनीय हैं। उनके स्मरणमात्रसे पापियोंकी भी मुक्ति हो जाती है। उनका चरणोदक तथा भोग लगाया हुआ प्रसाद समस्त मनुष्यों और विशेषत: ब्राह्मणोंके सेवन करनेयोग्य, परमपावन तथा स्वर्ग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाला है। भगवान् विष्णुको निवेदन किये हुए हविष्यका ही देवताओंके लिये हवन करे और वही पितरोंको भी दे। वह सब अक्षय होता है। अत: द्विजवरो! तुम आलस्य छोड़कर जीवनभर भगवान् विष्णुका पूजन करो। वे ही परम धाम हैं और वे ही सत्य ज्योति। अष्टाक्षर-मन्त्रके द्वारा विधिपूर्वक पुरुषोत्तमका पूजन और उनके प्रसादका सेवन करना चाहिये। श्रीविष्णु ही सब यज्ञोंके भोक्ता परमेश्वर हैं—ऐसा जानकर उन्हींके उद्देश्यसे सदा हवन, दान और जप करे।

वसिष्ठजी कहते हैं—भृगुजीके ऐसा कहनेपर समस्त निष्पाप महर्षियोंने उन्हें नमस्कार किया और उन्हींसे मन्त्रकी दीक्षा ले भगवान् विष्णुका पूजन किया। राजन्! ये सब बातें मैंने प्रसंगवश तुम्हें बतलायी हैं। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी सब देवताओंमें पावन एवं पुरुषोत्तम हैं। अत: यदि तुम परम पदको प्राप्त करना चाहते हो तो उन श्रीरघुनाथजीकी ही शरणमें जाओ। राजन्! यह समस्त पुराण वेदके तुल्य है। स्वायम्भुव मन्वन्तरमें साक्षात् ब्रह्माजीने इसका उपदेश किया था। जो प्रतिदिन एकाग्रचित्त हो इसका श्रवण अथवा पाठ करता है, उसकी भगवान् लक्ष्मीपतिमें अनन्य भक्ति होती है। वह विद्यार्थी हो तो विद्या, धर्मार्थी हो तो धर्म, मोक्षार्थी हो तो मोक्ष और कामार्थी हो तो सुख पाता है। द्वादशी तिथिको, श्रवण नक्षत्रमें, सूर्य और चन्द्रमाके ग्रहणके अवसरपर, अमावास्या तथा पूर्णिमाको इसका भक्तिपूर्वक पाठ करना चाहिये। जो एकाग्रचित्त हो प्रतिदिन इसके आधे या चौथाई श्लोकका भी पाठ करता है वह निश्चय ही एक हजार अश्वमेधयज्ञका फल पाता है। इस प्रकार यह परम गुह्य पद्मपुराण कहा गया। यदि परम पदकी प्राप्ति चाहते हो तो सदा भगवान् हृषीकेशकी आराधना करो।

सूतजी कहते हैं—अपने गुरु वसिष्ठजीके ऐसा कहनेपर नृपश्रेष्ठ राजा दिलीपने उनको प्रणाम किया और यथायोग्य पूजा करके उनसे विधिपूर्वक विष्णुमन्त्रकी दीक्षा ली। फिर आलस्यरहित हो उन्होंने जीवनभर श्रीहृषीकेशकी आराधना करके समयानुसार योगियोंको प्राप्त होनेयोग्य सनातन विष्णुधामको प्राप्त कर लिया।

उत्तरखण्ड सम्पूर्ण

श्रीपद्मपुराण समाप्त